लेख-सूची

नववर्षांक के कुछ महत्त्वपूर्ण विषय

विचारपूर्ण लेख—

श्री नगेन्द्रनाथ गुप्त :—

प्राचीन भारत की स्थापत्यकला (सचित्र)

श्री मोहनलाल महतो :—

बिहार-रत्न राजेन्द्रप्रसाद (संस्मरण)

प्रोफ़ेसर फूलदेवसहाय वर्म्मा :—

आगामी कांग्रेस रामगढ़ में (सचित्र)

पंडित हजारीप्रसाद द्विवेदी :—

कविता का भविष्य

श्रीयुत उमाशंकर :—

पाकिस्तान की रूपरेखा

पंडित वेंकटेश नारायण तिवारी :—

मुसलमानों में दलित जातियाँ

कहानियाँ—

श्री माखनलाल चतुर्वेदी :—

कला का अनुवाद

श्री गोविन्दवल्लभ पन्त :—

करामात

श्री धर्मवीर, एम० ए० :—

सोमा

कवितायें—

श्रीमती महादेवी वर्म्मा, एम० ए०
श्रीमती तारा पांडे,
श्रीमती रूपकुमारी वाजपेयी, बी० ए०,
श्रीमती सुमित्राकुमारी सिनहा,
श्री सुमित्रानन्दन पन्त,
श्री नरेन्द्र शर्म्मा, एम० ए०,
श्री सोहनलाल द्विवेदी, एम० ए०,
श्री शिवमंगलसिंह सुमन, इत्यादि

यामा, प्रवासी के गीत और हजामत की समालोचनाएँ;
'कुछ इधर-उधर की' के चुटीले व्यंग्य, विचारपूर्ण सामयिक व सम्पादकीय नोट।

मैं तो गिरधर आगे नाचूँगी—मीरा

सचित्र मासिक पत्रिका

सम्पादक

देवीदत्त शुक्ल—उमेशचन्द्रदेव

जनवरी १९४० } भाग ४१, खंड १ संख्या १, पूर्ण संख्या ४८१ { पौष १९९६

गीत

लेखिका, श्रीमती महादेवी वर्मा

निमिष से मेरे विरह के कल्प बीते!

नीरदों में मन्द्रगति-स्वन,
वात में उर का प्रकम्पन,
विद्यु में पाया तुम्हारा
अश्रु से उजला निमन्त्रण!
छाँह तेरी जान तम को श्वास पीते!
ओस से खिल कल्प बीते!

पंथ को निर्वाण माना,
शूल को वरदान जाना,
जानते ये चरण कण-कण
छू मिलन-उत्सव मनाना!
प्यास ही से भर लिये अभिसार रीते!
अश्रु से ढुल कल्प बीते!

माँग नींद अनन्त का वर,
कर तुम्हारे स्वप्न को चिर,
पुलक के, सुधि के पुलिन से
बाँध दुख का अगम सागर,
प्राण तुमसे हारकर प्रतिबार जीते!
पलक से चल कल्प बीते!

बिहार-रत्न राजेन्द्रप्रसाद

लेखक, पंडित मोहनलाल महतो

(१)

विभीषण लंका से भगवान् राम के चरणों में आश्रय ग्रहण करने चला। निश्चय ही राक्षसराज भगवान् के सम्बन्ध में अनेक मधुर कल्पनाओं को अपने व्यग्र मन में भरकर चला होगा। सीतानाथ के रूप के सम्बन्ध में भी उसने एक काल्पनिक चित्र बनाया होगा, जो अत्यन्त लुभावना और उदात्त रहा होगा। कहीं ऐसा होता कि वह अपने आराध्यदेव को कुछ दूसरी ही सूरत में पाता। लम्बा दुबला शरीर, रंग काला और दो मोटे मोटे काले होठों के ऊपर उलझी हुई अधपकी मूछें और दमा से बेजार, फटे चप्पल बुरी तरह घसीटते हुए राजीवलोचन राम उसका स्वागत करते और विभीषण देखता कि धौंकनी की तरह उनकी छाती चल रही है, दमा जोर पर है और शारीरिक कष्ट से आँखें बेजार हैं तो इसमें सन्देह नहीं कि विभीषण को अपार मानसिक व्यथा होती। उसकी कल्पनासंभव मूर्ति तहसनहस हो जाती, जिसका उसे ऐसा मलाल होता कि वह 'हाय' करके जहाँ का तहाँ बैठ जाता।

जब सबसे पहली बार हमने राजेन्द्र बाबू को देखा तब यही दशा अपनी भी हुई।

आज भी याद है। १९२२ का जमाना था। गया में कांग्रेस होने जा रही थी। बहुत दिनों से हम अपने इस बिहार-रत्न के, विभीषण की तरह, भक्त हो चुके थे। मगर नजदीक से देखने का पुण्य उदय नहीं हुआ था। अखबारों में उनका चित्र प्रायः देखा करते थे। अखबारों के चित्रों पर से हमारी श्रद्धा उसी दिन लोप हो गई जब हमने राजेन्द्र बाबू को अपने सामने देखा।

कार्तिक का महीना था। आकाश और दिशायें स्वच्छ थीं। अन्तःसलिला फल्गु का सुरम्य तट और आम की घनी बारी की याद आज भी दिल को दुलार जाती है। संध्या हो रही थी। नदी के उस पार श्यामल वन-रेखा और उसके बाद पहाड़ियों की नीली क़तारें। दूसरी ओर पके धान के खेत, सुनहली धूप से चकमक करते हुए दिखाई दे रहे थे। ऐसे ही मनोरम स्थान में 'स्वराज्यपुरी' का निर्माण हो रहा था।

हाँ, संध्या हो रही थी और बसेरा लेनेवाली चिड़ियों के कलरव से सारा वनप्रान्त सजीव हो उठा था। हम 'स्वराज्यपुरी' में घूम रहे थे। बीच में जो चौक बनाया गया था, वहाँ तिरंगा झंडा शान से फहरा रहा था, मानो आकाश में तीन रंगों का एक साथ पैवन्द लगा दिया गया हो। हमने देखा, थके-से राजेन्द्र बाबू भी कुछ आदमियों के साथ निर्माणकार्य देख रहे हैं। हमारे एक साथी ने बतलाया कि यही बिहार-रत्न राजेन्द्रप्रसाद हैं। यह स्वीकार करते हुए हमें तनिक भी मलाल नहीं होता कि राजेन्द्र बाबू को देखकर हमारा हृदय बैठ गया। अच्छा होता यदि हम उन्हें देखते ही नहीं। सूखा-सा चेहरा और रोगी शरीर, दमे से बेजार। वे धीरे-धीरे चल रहे थे और हाँफ रहे थे। हम खड़े खड़े अपने प्रान्त के पुरुषोत्तम को देखते रहे।

संध्या ने गोधूलि का रूप ग्रहण किया। चरागाह से लौटनेवाली गउओं के गले की घंटियों का शब्द संध्या के नीलमणि जैसे हृदय में भर गया। खेतों में से आनेवाली ठंडी हवा के हलके झकोरों में, दिन भर धूप में रहने के कारण, भीगी हुई घास की महक भर गई।

हम उदास हृदय से घर की ओर लौटे। हमारा मन न जाने क्यों आपसे आप भारी हो गया था। ऐसा लगता था कि हृदय के भीतर धुँधली-सी घटा भर गई है और हवा बन्द हो जाने के कारण बरसाती उमस फैल रही है।

(२)

विधाता के यहाँ शायद दो दफ़्तर हैं—एक में रूप बँटता है और दूसरे में ज्ञान। राजेन्द्र बाबू जब धरातल पर आने लगे तब उन्हें भी नियमानुसार दोनों आफ़िसों में जाकर 'रूप' और 'ज्ञान' लाना पड़ा। हमें ऐसा लगता है कि अक़्ल की गठरी बाँधने-बाँधते कुछ अधिक विलम्ब हो गया। इसका नतीजा यह हुआ कि रूपवाला दफ़्तर बन्द हो गया। जब आप वहाँ से लौटे तब देखते क्या

हैं कि इस आफ़िस के दरवाज़े पर बड़े-बड़े ताले लटक रहे हैं। लाचार वेचारे के पास इतना समय नहीं था कि एक-दो दिन ठहरकर यह कमी भी पूरी कर लेते। उन्हें धराधाम पर केवल अक़्ल के साथ ही आजाना पड़ा। इस भूल का संशोधन 'हिमानी-स्नो', 'पामोलिव-साबुन' और 'सेफ़्टी-रेज़र' से होना असम्भव है, अतएव राजेन्द्र बाबू ने मन लगाकर किताबों से ही आँखें लड़ाना उचित समझा। संसार में उनके लिए कोई दूसरी जगह नहीं थी, जहाँ उनकी आँखें लड़तीं। चटशाला से लेकर युनिवर्सिटी की सर्वोच्च परीक्षा तक में वे सर्वप्रथम रहे। इसके बाद जब देश-सेवा की बारी आई तब इस क्षेत्र में भी वे ज़रूरत से अधिक ही नम्बर लाये। एक साधारण कायस्थ-परिवार से ऊपर उठते हुए राजेन्द्र बाबू समस्त भारत के परिवार के आज मुखिया बन बैठे, यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है।

[राष्ट्रपति डाक्टर राजेन्द्रप्रसाद]

यद्यपि सिस्टर निवेदिता ने उनके विद्यार्थी-जीवन में ही यह कहा था कि "राजेन्द्र एक बड़ा नेता होगा", पर यह बात ग़ौर करने के क़ाबिल है कि ईख से ही मीठा रस निकलने की भविष्यवाणी कोई भी कर सकता है। हाँ, सिस्टर निवेदिता की पैनी दृष्टि की प्रशंसा की जा सकती है। चम्पारन (बिहार) में नील का जो आन्दोलन हुआ था और दक्षिण-अफ़्रीका से लौटकर महात्मा गांधी ने जिसका श्रीगणेश किया था, उसी आन्दोलन ने राजेन्द्र बाबू को हाईकोर्ट के कठोर अस्थिपंजरों से खींचकर जनता के बीच में लाकर खड़ा कर दिया। इसमें सन्देह नहीं कि उनकी वकालत आँधी की चाल से चल रही थी और सरस्वती की दासी बनकर लक्ष्मी उनकी मेज़ पर थिरका करती थी। चंचला लक्ष्मी का आदर करना राजेन्द्र बाबू की प्रकृति के विरुद्ध बात थी। महात्मा

जी ने पुकारा और राजेन्द्र बाबू हाईकोर्ट के विशाल फाटक को प्रणाम करके कलकत्ता से सीधे चम्पारन पहुँच गये। बिहार को उनकी ज़रूरत थी। जिस मिट्टी से शरीर बना, जिस आकाश के नीचे खेल-कूद कर आदमी बने, उस जननी जैसी जन्मभूमि की पुकार को राजेन्द्र बाबू सुनकर कैसे टाल जाते जब कि ख़ासतौर से इसी काम के लिए वे यहाँ आये थे?

हम राजेन्द्र बाबू की जीवनी लिखना नहीं चाहते और न यही चाहते हैं कि उनकी महत्ता का बखान भाट बनकर करें। कस्तूरी की महक को शपथ खाकर प्रमाणित करना अपनी बुद्धि के साथ गुस्ताख़ी करना है। एक बात जब शुरू होती है तब उसके साथ कई बातें बेबुलाये चली आती हैं, जैसे फल के साथ छिलका, गुठली, रेशे आदि। पाठक, क्षमा कीजिएगा।

(३)

कांग्रेस समाप्त हो गई!

देशबन्धुदास ने कांग्रेस से विद्रोह किया और 'स्वराज्य-पार्टी' इस संघर्ष के फलस्वरूप पैदा हुई। इस नवजात शिशुपार्टी के लालन-पालन का प्रयत्न होने लगा और हम फिर अपनी पुरानी डफली पर अपना निराला राग अलापने लगे।

'स्वराज्यपुरी' निर्जन हो गई। मज़दूरों की चहल-पहल आरम्भ हुई और बैलगाड़ियों पर चटाइयों के बंडल और लट्ठे लाद-लादकर ठेकेदार जाने लगे। जहाँ देश भर के हुतात्माओं का मेला लगा हुआ था, वहाँ तिरंगे झंडे के लम्बे बाँस पर बैठकर निर्जन दोपहरी में कौआ काँव-काँव करने लगा। दो दिन का 'चिड़िया-रैन बसेरा' था, जो देखते-देखते समाप्त हो गया।

वसन्त की सुषमा जब समाप्त हो गई तब आया जेठ का हाहाकार। आग की फुलझड़ियाँ छोड़ता हुआ ग्रीष्म गरजने लगा। कटे खेतों और पहाड़ियों के कछारों में इसी समय हमारे पास एक सूचना पहुँची।

बौद्धों ने यह दावा कांग्रेस के सामने पेश किया था कि बुद्ध-गया में भगवान् बुद्ध का जो मन्दिर है उस पर बौद्धों का पूर्ण अधिकार होना चाहिए। बौद्धों के इस दावे की जाँच करने के लिए कांग्रेस ने एक छोटी कमिटी बनाई थी। इस कमिटी में यदि मेरी स्मृति धोखा नहीं देती तो हम कह सकते हैं कि तीन सज्जन थे—राजेन्द्र बाबू, ब्रजकिशोर बाबू और अब के बिहार की कांग्रेसी सरकार के अर्थमंत्री अनुग्रह बाबू। इसी कमिटी के सामने बयान देने के लिए हम बुलाये गये थे।

हम अपना बयान लिखवा रहे थे और ब्रजकिशोर बाबू लिख रहे थे। राजेन्द्र बाबू चुपचाप बैठे सुन रहे थे। जब हमें दस्तख़त करने के लिए बयान दिया गया तब हमने उसे पढ़ना आरम्भ किया। भूल से एक वाक्य छूट गया था। हमने प्रार्थना की कि एक वाक्य छूट गया है; तब राजेन्द्र बाबू ने हमारे हाथ से बयान लेकर ख़ुद पढ़ना आरम्भ किया और बिना हमसे पूछे वह छूटा हुआ वाक्य यथास्थान लिख दिया।

हम क़रीब एक घंटा तक बयान देते रहे और यह उनके स्थिर दिमाग़ की ख़ूबी थी कि उन्होंने प्रत्येक वाक्य को सुना, समझा और याद भी रक्खा। यह १७-१८ साल की पुरानी बात है। हम २० साल के एक चंचल नवयुवक थे और किसी बात को याद रखना हमारी आदत के ख़िलाफ़ बात थी। अल्हड़पना सीमा तोड़कर आवारा-गर्दी का रूप ग्रहण करना चाहती थी, पर राजेन्द्र बाबू की इस मानसिक एकाग्रता ने, कुछ भी हो, हमें अजहद प्रभावित किया। हमें अपनी चंचलता पर मन ही मन लज्जित होना पड़ा।

(४)

सौभाग्य ने ज़ोर मारा और फिर कई बार हमें राजेन्द्र बाबू के दर्शनों का सुअवसर मिला। यदि हम पूरा दास्तान लिखने बैठें तो इस लेख का आकार बढ़कर हनुमान् जी की पूँछ का आकार धारण कर लेगा। हम नहीं चाहते कि अकारण अपने पाठकों के धैर्य की परीक्षा लेने की ग़लती करें। हम केवल तीन प्रधान घटनाओं की चर्चा करेंगे, जो हमारी समझ से काफ़ी दिलचस्प हैं।

क़रीब १२ साल हुए, मुंगेर में बिहार प्रान्तीय साहित्य-सम्मेलन का सालाना जलसा हुआ। जिस तरह ब्याह-शादी की धूमधाम बिना बाजे के पूरी नहीं होती, उसी तरह सम्मेलन भी बिना एक कवि-सम्मेलन के अधूरा ही रह जाता है। कवि-सम्मेलनों की व्यर्थता पर बहस करने हम नहीं बैठे हैं, पर इतना निवेदन करना उचित समझते हैं कि इस वाहियात काम में

लोगों का मन खूब लगता है। सही वात तो यह है कि मानव-प्रकृति ही ऐसी है कि वह बहुत समय तक उचित और गम्भीर काम में फँसे रहना कभी भी सहन नहीं करती। व्यर्थ का धन्धा ही उसे रुचता है।

सम्मेलन में जो वालू पेर कर तेल निकाला जाता है उससे ऊवकर मन कवि-सम्मेलन में अपनी थकान मिटाता है। मुंगेर में इसी व्यर्थ के धंधे का प्रधानपद हमें दिया गया। हम इसी तरह का काम करके कानपुर से लौटे थे, पर सूचना मिली कि राजेन्द्र वावू भी सम्मेलन में शरीक होंगे। यह आकर्षण कुछ कम न था। जेठ का महीना था और लू-लपट के मारे घर से वाहर निकलना कठिन हो गया था।

जब मैं रात को वारह बजे मुंगेर पहुँचा तव एक दिल्लगी स्टेशन पर पहुँचते ही हुई। हम खाकी पैंट और हैट में थे और सभा के महानुभाव माला लिये गाँधी-टोपी-धारी सभापति को इधर-उधर खोज रहे थे। हमारे सामने से सुगन्धित माला का थाल कई बार आया-गया, पर किसी ने पूछा तक नहीं। जी चाहता था कि हम अपना नाम लेकर चिल्ला उठें, पर मन मसोसकर रह जाना पड़ा।

कवि-सम्मेलन के अवसर पर हमने राजेन्द्र वावू को देखा। जो रूप गया-कांग्रेस के अवसर पर देखा था वही था। फ़र्क़ इतना ही था कि दमा दवा हुआ था। हम जानते थे कि राजेन्द्र बाबू एक बड़े नेता हैं, उनका व्यक्तित्व भी हिमालय की तरह महान् है। हमारे जैसे एक अख्यात हिन्दी-सेवक के विषय में जानना उनके लिए ज़रूरी नहीं है, पर उस समय हमारा यह भ्रम दूर हो गया जव उन्होंने हमारे नाम का प्रस्ताव सभापति-पद के लिए किया। इसमें सन्देह नहीं कि वे अपने प्रान्त के प्रत्येक ऐसे व्यक्ति के विषय में पूरी जानकारी रखना ज़रूरी समझते हैं जिसके सम्बन्ध में जानना वे ज़रूरी समझते हों। उन्होंने अपने भाषण में हमारे लिए जो शब्द काम में लाये वे शब्द हम आज तक नहीं भूल सके। हम यह समझ रहे थे कि राजेन्द्र वावू की महत्ता शब्द बन बनकर उनके मुँह से निकल रही है, वर्ना हम इस योग्य नहीं थे कि वे हमारे लिए ऐसे विचार प्रकट करते।

संध्या के वाद जब राजेन्द्र बावू की सेवा में उपस्थित हुए तब उन्होंने मुस्कराते हुए कहा—"अच्छा हुआ जो तुम आ गये।" हमने निवेदन किया —"आपके दर्शनों की जो भूख थी वह मिटी। हमारे लिए ज़रूर अच्छा हुआ जो यहाँ आये, कवि-सम्मेलन की बात परमात्मा जाने।"

और भी बहुत-सी बातें हुई, जिनकी चर्चा यहाँ पर व्यर्थ है। जैसे जैसे हम राजेन्द्र बाबू को नज़दीक से देखते गये, हमारी आँखों के सामने उनकी महत्ता निखरती गई।

(५)

चार साल बीत गये!

इन चार वर्षों की लम्बी दौड़ कैसे समाप्त हो गई, यह पता नहीं चलता। चार चार वार ग्रीष्म वसुधा को धूलि से भर गया और चारों वार वर्षा ने इठला इठलाकर उसे धो डाला। प्रकृति हँसती-खेलती आई और चली गई, पर हम अपने जीवन के उलझे हुए सूत को एकाग्र मन से बैठे सुलझाते ही रहे। वसन्त ने हमारे सामने सौरभ का बाज़ार लगाया, ग्रीष्म का ताण्डव देखा और फिर वर्षा की धानी चूनरी धरित्री के आँगन में लहराने लगी। इधर हमने क्या किया? जीवन का दुर्वह भार लादे अतीत के नाम पर आँसू बहाते रहे। वर्तमान को अपने अनुकूल वनाने के लिए एड़ी-चोटी का पसीना एक करते रहे और भविष्य पर अधिकार प्राप्त करने के लिए नाना प्रकार के ऊधमों की सृष्टि करते रहे। एक एक पल करके चार साल वीत गये और जहाँ थे वहीं से हमने खड़े खड़े देखा, घाट पर की नावों में से बहुत-सी पाल तानकर असीम सागर की तरंगों से खेलती हुई आँखों से ओझल हो गईं। हम खूँटे की तरह एक ही जगह गड़े हुए यह आशा किया करते हैं कि कोई अभागा जीव आकर हममें बँधे तो उसके उछलने-कूदने से तनिक-सा मनोरंजन तो हो।

खैर, चार साल पहले हम पटना गये और वहीं कुछ दिनों तक जमे भी रहे। स्वर्गीय जायसवाल जी एक पुस्तक लिखना चाहते थे और उसी पुस्तक के निर्माण का सुख-सपना देखते हुए हम भी पटना की गंगा में दोनों जून गोते लगाया करते थे।

हमारे एक परिचित राजा साहव की कोठी भी पटना में ही थी और विहार का राजनैतिक हृदय 'सदाक़त-

आश्रम' भी पटना में ही है। हम अपने पाठकों का पटना की खास खास इमारतों से परिचय कराना नहीं चाहते, पर जो नाटक होनेवाला था उसका सम्बन्ध उन्हीं स्थानों से था जिनकी चर्चा ऊपर की गई है।

राजा साहब, सदाकत-आश्रम और जायसवाल साहब की कोठी में हम समान रूप से रहते थे। आज तक हमें भी इस बात का पता नहीं चला कि हम सचमुच रहते कहाँ थे।

एक दिन हम जायसवाल साहब की गाड़ी पर राजा साहब की कोठी से लौटे। बीच में ही 'सदाकत-आश्रम' था और वहाँ कुछ काम भी था। आश्रम में पहुँचकर हमने देखा कि एक पटनिया एक्का खड़ा है। मरियल टट्टू अपने भाग्य के नाम पर झख मार रहा है और एक्कावान बाँस पर बैठा आराम से बीड़ी पी रहा है। यह एक्का राजेन्द्र बाबू के कमरे के सामने खड़ा था। इसके बाद हमने देखा कि बिहार-रत्न अपने प्राइवेट सेक्रेटरी के साथ कमरे से निकले और एक्के पर चढ़ने की तैयारी करने लगे।

न जाने क्यों हमारा मन विषाद से भर गया। बिहार का यह गौरव एक्के पर चढ़कर आम सड़कों पर घूमे! इसे हमने अपना जातीय अपमान समझा। एक क्षण सोचकर हमने आगे बढ़कर राजेन्द्र बाबू को रोका और निवेदन किया कि "आप इस मोटर पर जाइए।"

हँसते हुए उन्होंने कहा—"यह गाड़ी तुम्हारी नहीं है। जिनकी यह है उन्होंने तुम्हें काम में लाने का आदेश दिया है न कि जिसको-तिसको चढ़ाकर दिन भर दौड़ाने के लिए।"

हमने कहा—"जब तक यह हमारी सवारी में है, हमारी गाड़ी है। आप इसी पर जाइए।"

वे भला क्यों राजी होने लगे और हमने भी हठ पकड़ा। अन्त में यह तय हुआ कि यदि जायसवाल साहब आज्ञा दे दें तो फिर कोई बात नहीं है। पास ही कोने में फोन का रिसीवर रक्खा हुआ था, जिसे हमने कान में लगाया। जायसवाल साहब ने कहा कि "हम एक ही शर्त पर राजेन्द्र बाबू को गाड़ी दे सकते हैं और वह यह कि वे आज मेरा घर पवित्र करें।"

जायसवाल साहब राष्ट्रीयता के भयानक पोषक और एक महान् व्यक्ति थे। राजेन्द्र बाबू के हृदय में उनके प्रति सम्मान और स्नेह के भाव थे। हम इस चक्कर में पड़े कि किन शब्दों में डाक्टर जायसवाल का सन्देश राजेन्द्र बाबू को सुनाया जाय और इधर एक्कावान त्योरियाँ चढ़ाकर कभी हमें और कभी राजेन्द्र बाबू को घूर रहा था। सोच-विचारकर जब हमने राजेन्द्र बाबू से जायसवाल जी की शर्त कही तब वे मुस्करा पड़े और कहने लगे कि "पार्टी की बैठक से अवसर मिलते ही वे जावेंगे।" मोटर बढ़ गई और एक्कावान पंजे झाड़-कर अपने राम के पीछे पड़ा।

बात यह है कि हम बहुत बार गधागाड़ी की सवारी पंजाब में कर चुके हैं और लड़कपन के उकसाने पर शीतलावाहन की पीठ पर भी आरोहण करने के अनेक मौके आ चुके हैं, पर एक्का पर चढ़ना हमारे लिए जर्मन-वार में जाने से भी भयानक बात है, उस पर पटनिया एक्का! आये दिन एक्का उलटने के समाचार पढ़ते पढ़ते दिल कायर हो गया है। बड़ी कठिनता से हम उस वीर एक्कावान से अपना पिंड छुड़ा पाये।

'सदाकत-आश्रम' बिहार का राजनैतिक दिमाग़ है। राजेन्द्र बाबू के आते ही उसमें जीवन आ जाता है। कई दिनों तक वहाँ हलचल रही, रंगबिरंगी गाड़ियों की रेल-पेल भी रही। एक दिन बिस्तर समेटकर राजेन्द्र बाबू बम्बई की ओर रवाना हो गये और आश्रम में ऐसा सन्नाटा छा गया कि दिन में ही झिल्लीरव सुन पड़ने लगा।

(६)

रोग भी बड़ों की ही शरण में रहना पसन्द करता है, जैसे महात्मा जी की शरण में ब्लडप्रेशर है और राजेन्द्र बाबू की शरण में दमा।

राजेन्द्र बाबू दमा से सदा व्यग्र रहा करते हैं, पर विश्राम करना उनके लिए कठिन है। जब वे कांग्रेस के पहली बार प्रेसीडेण्ट हुए तब सारे भारत का दौरा उन्होंने एक साँस में कर डाला। कन्या-कुमारी से हिमालय और अटक से कटक तक नापकर जब वे लौटे तब हमने आपके दर्शन किये। अभिनन्दन-पत्रों का एक पहाड़ उनके साथ आया और आया उपहार में मिली हुई हज़ारों के दाम की चीज़ों का ढेर। सोने-चाँदी के बहुमूल्य कास्केटों का क्या कहना है! कारीगरी के नमूने भी आये जैसे एक ही चावल पर राजेन्द्र बाबू की तसवीर और हाथ में

तिरंगा झंडा। चावल को खोदकर यह मूर्ति गढ़ी गई थी। फाउन्टेनपेन तो इतने थे कि आसानी से एक अच्छी-ख़ासी दूकान खोली जा सकती थी और पुस्तकें थीं एक छोटी-सी पर सुन्दर लाइब्रेरी जितनी। राजेन्द्र बाबू की जेब में उस समय भी हमने वही जराजीर्ण वाटरमैन देखा जिसकी निब घिसकर पानी पानी हो गई थी। विद्यार्थी रहते हुए शायद उन्होंने उसे ख़रीदा होगा। पूछने पर उन्होंने कहा कि अभी यह काम दे रही है और जो क़लम मुझे मिले हैं वे राष्ट्र की सम्पत्ति हैं।

आत्म-संवरण का यह एक मनोरम उदाहरण था। हमने साधारण काग़ज़ पर उनको निजी पत्र लिखते देखे हैं और जो काग़ज़ या लेटर-पेपर कांग्रेस के होते हैं उन्हें वे निजी काम में नहीं लाते। राजेन्द्र बाबू यहाँ तक अपने को सार्वजनिक पैसे से दूर रखने का प्रयत्न करते हैं। यही ईमानदारी उन्हें लगातार ऊपर उठाती चली जा रही है। हम जानते हैं कि कुछ ऐसे भी महानुभाव हैं जो लीडरी को अपना पेशा समझकर मौज मारा करते हैं और जिन्होंने सार्वजनिक धन को कूड़े-करकट से भी तुच्छ समझा है जब कि हमारा विहार-रत्न सार्वजनिक काम के लिए खरीदा गया काग़ज़ का एक छोटा टुकड़ा भी अपने काम में लाना बुरा समझता है।

पिछले अप्रैल की बात है। गया की गर्मी मशहूर है। हमने सुना कि राजेन्द्र बाबू राँची से गया होते पटना जा रहे हैं। कुछ अपना काम भी था। सुबह स्टेशन पर पहुँचा। पटना की गाड़ी पाँच-पचास पर छूटती थी और लोकल ट्रेन होने के कारण यहाँ वह ठहरती भी खूब है। हमने सोचा, स्टेशन पर ही राजेन्द्र बाबू के दर्शन करके छुटकारा मिल जायगा, पर परिणाम यह हुआ कि कई स्टेशन साथ जाना पड़ा।

हमने देखा, राजेन्द्र बाबू इन्टर में बैठे हैं और नाश्ता करने की धुन में हैं। आप यह न भूलें कि वे दमा के पुराने रोगी हैं। अब नाश्ता का समाचार सुनिए। स्टेशन पर मिलनेवाले पेड़े, फिर मालदह आम, उसके बाद रसगुल्ले, फिर जलेबियाँ और ऊपर से दूध। यह कोई चिकित्सक ही बतला सकता है कि दमा के एक पुराने रोगी के लिए नाश्ता का यह तरीक़ा कितना ख़तरनाक है। जब यह दृश्य देखते देखते हम बहुत ही व्यग्र हो गये तब साहस करके पूछा—"आपको ऐसी चीज़ें खानी नहीं चाहिए। मीठा और वह भी बाज़ारू!"

राजेन्द्र बाबू ने सरलतापूर्वक कहा—"इस समय दमे की कोई शिकायत नहीं है। सर्दी के दिनों में वह उभड़ता है।"

हमने इस उत्तर से यही नतीजा निकाला कि जब रोग उभाड़ पर हो तभी पथ्यापथ्य का विचार होना चाहिए और वह दबा हुआ हो तो जो जी चाहे खाते-पीते रहना चाहिए। इसमें सन्देह नहीं कि अपने प्रति राजेन्द्र बाबू बहुत ही निष्ठुर हैं, यद्यपि उनका हृदय अत्यन्त कोमल है। आश्रम में वे बहुत सादा भोजन करते हैं। जो प्रत्येक आश्रमवासी के लिए बनता है वही राजेन्द्र बाबू के लिए भी काफ़ी समझा जाता है। मोटे चावल का कुछ कुछ लाल रंग का भात, अरहर की दाल और बाज़ार में जो सबसे सस्ती मिलती हो वही सब्ज़ी। मसाला और मिर्च से परहेज़ रक्खा जाता है। चटपटी रसोई खाने के जो अभ्यासी होते हैं वे आश्रम में ठहरने का नाम भी नहीं लेते। आश्रम के लिए यह भी एक फ़ायदा है कि व्यर्थ की भीड़ वहाँ नहीं बढ़ती। तपस्या का जीवन होता तो सुन्दर है, पर ख़ास तौर से उनके लिए जिन्हें परमात्मा ने उनकी इच्छा के ख़िलाफ़ संसार में भेज दिया हो। वे संसार से रूठे रहें तो इसमें कोई हर्ज नहीं है, पर हमारे जैसे व्यक्ति के लिए तो संसार ही सब कुछ है। मरने के बाद क्या है, यह रहस्य जब हमारी समझ में नहीं आया तब पूरे बल से संसार में ही चिपक गये। हम तो खाने के लिए जी रहे हैं न कि जीवित रहने के लिए दवा के रूप में आहार करते हैं।

(७)

राजेन्द्र बाबू में न तो पंडित जवाहरलाल जी जैसी तेज़ी है और न पटेल जी जैसा जोशोख़रोश। लोकमान्य तिलक जैसे वे शेर भी नहीं हैं और न सर सुरेन्द्रनाथ जैसे तार्किक। वे एक विशुद्ध भारतीय हैं और महात्मा गांधी के विहारी संस्करण कहे जा सकते हैं। न केवल विहार में ही बल्कि सारे भारत में उनका एक स्थान है और उस स्थान का मूल्य कोहेनूरों के एक पहाड़ से कूता जा सकता है। आप लोगों ने समाचार-पत्रों में

पड़ा होगा कि विहार में किसान-सभा का बोलबाला है और किसान-नेता स्वामी सहजानन्द जी एक दबंग व्यक्ति हैं, पर यह कितने आश्चर्य की बात है कि वे भी राजेन्द्र बाबू का सम्मान अपने हृदय की पूर्ण श्रद्धा और विश्वास से करते हैं। इतना ही नहीं, बिहार का प्रत्येक दल राजेन्द्र बाबू के सामने सिर झुकाने में अपना गौरव समझता है। प्रजा और ज़मींदार दोनों ही उन्हें अपना हितू मानकर उनका सम्मान करते हैं। निश्चय ही राजेन्द्र बाबू एक सार्वभौम नेता हैं, जो न केवल कांग्रेस के ही प्राण हैं, बल्कि समस्त बिहार के पूजनीय देवता हैं। उनकी सादगी और मिलनसारी अतुलनीय है।

पंडित जवाहरलाल जी के सामने जाते हुए साधारण व्यक्ति क्या, विशेष व्यक्ति भी घबराता है। जब पंडित जी गया आये थे तब हमने एक स्वयंसेवक से यह प्रार्थना की कि वह पंडित जी तक हमारा कार्ड पहुँचा दे, पर वह किसी तरह भी यह गुस्ताखी करने को राज़ी नहीं हुआ। उनके कमरे के सामने से गुज़रता हुआ कोई भी व्यक्ति झिझकता है, पर यह बात हमारे बिहार-रत्न के सम्बन्ध में नहीं सोची जा सकती। हमने देखा है कि वे दमे से परेशान हैं, पर साधारण किसान से लेकर बड़े बड़े कांग्रेस-कार्यकर्ता तक उन्हें लगातार कष्ट पहुँचा रहे हैं। सदाक़त-आश्रम में उनका बैठकखाना प्रत्येक के लिए हर घड़ी खुला रहता है। न तो सेक्रेटरी से मुलाक़ात का प्रबन्ध कराना पड़ता है और न कोई तूफ़ान उठाने की हाजत होती है। यदि राजेन्द्र बाबू आश्रम में मौजूद हुए तो किसी समय भी आप उनसे मुलाक़ात कर सकते हैं और जब तक जी चाहे बातें कर सकते हैं। वे बहुत ही शान्ति और प्रसन्नता के साथ आपकी बातें सुनेंगे और उत्तर देंगे। उन जैसी मानसिक एकाग्रता और संयमशील-हृदय बहुत ही कम हमने देखे हैं। इस सम्बन्ध में महात्मा जी का नाम लेना उचित नहीं होगा, क्योंकि वे आलोचना के विषय नहीं रहे। प्रशंसा और निन्दा के परे की स्थिति में पहुँचकर आज महात्मा जी करोड़ों भारतवासियों की पूजा के अधिकारी बन चुके हैं।

इसी महीने की बात है। हम गोरखपुर से लौटे और सीधे पटना पहुँचे। छोटी लाइन के कष्टों का वर्णन करना हम नहीं चाहते, पर इतना तो अवश्य कहेंगे कि मारे शरीर का कचूमर निकल गया था। 'जनता'-कार्यालय में पहुँचते ही सबसे पहले जनता के यशस्वी सम्पादक और विख्यात साम्यवादी भाई रामवृक्ष बेनीपुरी के दर्शन हुए। बेनीपुरी भाई में लड़कपन इतना है कि अभी जवान होने की क़तई उम्मीद नहीं है। हमने देखा कि वे अपने दोनों तलवों पर पट्टी चढ़ाये लेटे हुए हैं। पूछने पर बच्चों की तरह उचकते हुए कहा—कोढ़ फूट आया है। ख़ैर, यहीं यह पता चला कि आज राजेन्द्र बाबू आनेवाले हैं। प्रयाग से आप सीधे पटना आ रहे थे। वर्किंग कमिटी समाप्त हो चुकी थी। यह इसी नवम्बर की बात है।

फ़ोन करने पर हमें यह सूचना मिली कि राजेन्द्र बाबू अभी अभी आये हैं। हमने यह तय किया कि दोपहर को उनके दर्शन करना उचित होगा। नींद के मारे हम अधमरे हो रहे थे।

ठीक समय पर जब आश्रम पहुँचते हैं तब क्या देखते हैं कि बिहार के भूतपूर्व प्रधान मंत्री के साथ राजेन्द्र बाबू कहीं जाने की व्यवस्था में लगे हुए हैं। अभिवादन आदि के बाद उन्होंने कहा कि ७ बजे आना, तुमसे एक आवश्यक काम है।

पूछने पर उन्होंने कहा—हम एक मीटिंग में जा रहे हैं। वहाँ से मृत्युंजय के यहाँ जायँगे।

मृत्युंजय बाबू उनके ज्येष्ठ पुत्र हैं और फ़िलहाल पटना में ही सपरिवार रहते हैं। हमने सोचा कि ७ बजे तक आश्रम में बैठे रहना एक मानसिक सज़ा है। हम घूमते-फिरते मृत्युंजय बाबू के डेरे पर पहुँचे। वहाँ बिहार के भूतपूर्व अर्थ-मंत्री बाबू अनुग्रहनारायण-सिंह बैठे दिखलाई पड़े और दिखलाई पड़े बिहार के सबसे बड़े राजनीतिज्ञ बाबू ब्रजकिशोर, जो बुढ़ौती और लकवा से लड़ते हुए जीवन व्यतीत कर रहे हैं। उस नखदन्त-विहीन वृद्ध व्याघ्र को हमने क़रीब २० साल के बाद देखा। कितना परिवर्तनशील संसार है! आह!

तत्काल राजेन्द्र बाबू भी आगये। आते ही उन्होंने कहा, अच्छा हुआ जो तुम यहाँ आगये। आओ यहीं एक बात बतला दूँ।

'हिन्दुस्तानी-कमिटी' का पचड़ा उन्होंने हमारे सामने रक्खा। १० दिसम्बर को कमिटी की बैठक होने जा

रही थी और कुछ ज़रूरी बातों पर विचार करना था। हिन्दी और उर्दू के पारिभाषिक शब्दों पर विचार करने का आदेश उन्होंने हमें दिया और कहा कि अमुक अमुक प्रोफ़ेसर तुम्हारी सहायता करेंगे। हमारे लिए यह प्रलोभन कुछ कम नहीं था, पर हिन्दुस्तानी के सम्बन्ध में हम निराश हो चुके हैं। राजेन्द्र बाबू ने यह भी कहा कि विचार करते समय मुसलमानों पर भी ध्यान रखना आवश्यक है।

इस निजी बात-चीत को सार्वजनिक रूप देना हो सकता है कि उचित न हो, पर हम जब संस्मरण लिखने बैठे हैं तब हमारे लिए यह उचित है कि हम उसे असम्पूर्ण न रहने दें। हम यह चाहते थे कि पारिभाषिक शब्दों के इस झगड़े को निबटाकर ही गया जायँ, मगर न जाने क्यों हमारा जी नहीं बढ़ा। हिन्दुस्तानी के नाम पर जैसी भाषा दी जा रही है वह समर्थन के योग्य नहीं कही जा सकती। हम नित्य रेडियो सुनते हैं और दिल्ली से हिन्दुस्तानी नामधारी जो भाषा बोली जाती है वह घृणा के योग्य है। उस भाषा को न तो फ़ारसी कह सकते हैं और न हिन्दी। एक वाहियात भाषा की रचना में तनिक भी सहयोग देना हमारी आत्मा को मंजूर न था और हम गया भागने की व्यवस्था में लग गये। हमें दुःख है कि राजेन्द्र बाबू का आज्ञापालन हम नहीं कर सके।

पटना से गया की ओर गाड़ी भाग रही थी। यही पिछला नवम्बर था। हम अपने बर्थ पर चुपचाप बैठे एक आरमेनियन युवक की बातें सुन रहे थे, जो बड़ी कठिनता से अपने मनोभावों को टूटी-फूटी अँगरेज़ी में व्यक्त कर रहा था। कुछ समय पहले एक बंगाली बाबू से इस आरमेनियन युवक से काफ़ी थूका-फ़ज़ीहत हो चुकी थी। बंगाली बाबू यह समझ रहे थे कि यह एक योरपियन है, पर जब उसने कहा कि वह आरमेनियन है तब दोनों में तत्काल मैत्री हो गई और अचानक सभी मुसाफ़िरों की सहानुभूति उस विदेशी की ओर हो गई। हम यह साहस-पूर्वक कहेंगे कि कुछ समय पहले उक्त बंगाली बाबू की भद्दी और तेज़ बातों का समर्थन गाड़ी के कोने कोने से हो रहा था, पर जैसे ही लोगों को यह मालूम हो गया कि बंगाली बाबू का प्रतिवादी योरपीय नहीं है, वैसे ही सभों ने बंगाली बाबू का साथ छोड़ दिया और स्वयं बंगाली बाबू ने भी बढ़कर हाथ मिलाया।

सारे देश में इस तरह की मनोवृत्ति ज़ोर पकड़ रही है। हम एक बार श्रद्धापूर्वक राजेन्द्र बाबू के चरणों पर सिर झुकाकर अब क़लम को विश्राम देते हैं। उनके पावन संस्मरण लिखकर आज हम धन्य हुए।

आत्म-बोध

श्रीयुत नरेन्द्र शर्मा, एम० ए०

हृदय में संताप मेरे, देह में है ताप !
कौन है जो बात पूछे ?
कौन है जो अश्रु पोंछे ?
अश्रु मेरे सूख जाते किन्तु अपने आप !

वात, पीले पात-सा, जो ले उड़ी थी दे भुलावा,
छोड़कर चल दी मिला जब उसे फूलोंस बुलावा !
कर लिया हलका हृदय रो भींक कर चुपचाप !
मैं किसे अपना कहूँगा कह रहा सुनसान भी जब,
'बंधु जाओ' व्यस्त हूँ मधुमास-स्वागतकाज में अब !
न हो कोई, सुनूँगा मैं स्वयम् आत्म-प्रलाप !

हो उठा करुणार्द्र सहसा था कभी निष्ठुर बधिक जो;
आज समझा, सुख वही है यातना जब अत्यधिक हो;
इसी विधि वरदान बनता वाम विधि का शाप !
झूठ साबित हो रहे हैं ज़िंदगी के सब बहाने,
पर भटक कर भूल कर भी पहुँचता जाता ठिकाने,
हो रहे अपने विराने—छीजते जाते पुराने पाप !

कला का अनुवाद

लेखक, पंडित माखनलाल चतुर्वेदी

पहली मुलाक़ात में मैंने जाना, जैसे देव-दूत मिल गया। खूब चर्चा सुन रक्खी थी। कुछ लोग प्रारम्भ ही से प्रत्येक आदमी को खतरनाक और बेईमान मानकर चलते हैं। और ज्यों-ज्यों व्यक्ति अपने गुणों से अपनी श्रेष्ठता व्यक्त ही नहीं, सिद्ध करता जाता है, त्यों-त्यों वे उसकी बेईमानी के सौ नम्बरों में से एक-दो के क्रम से नम्बर घटाते जाते हैं और ईमानदारी और गुणज्ञता के खाते, एक-दो के ही क्रम से, श्रीगणेश प्रारम्भ करते हैं। कुछ लोग ऐसे होते हैं जो प्रत्येक नये आगन्तुक को सौ फ़ी सदी ईमानदार 'मानकर' चलते हैं; और ज्यों-ज्यों वह विश्वासघात या खराबी करता जाय, त्यों-त्यों उस बेईमानी के खाते नम्बर शुरु करते और ईमानदारी के खाते से नम्बर घटाते जाते हैं। लोग ही तो ठहरे। पहले जिक्र किये लोगों को 'बुद्धिजीवी' और 'चौकन्ना' कहते हैं, जिनके हानि उठाने का उनकी राय आला में कभी अन्देशा नहीं। और दूसरे प्रकार में वर्णित 'भावनाप्रधान व्यावहारिक मूर्ख' कहे जाते हैं, जो आदर के साथ आगन्तुक का स्वागत करते हैं, और उससे अपना मन बिगाड़ कर, तथा अपने से उसका मन फाड़कर, विदा करते हैं। पहले लोग जीवन का सौदा करते हैं, जिसमें टोटे की जोखिम न उठानी पड़े। दूसरे लोग अपने को आगन्तुक के साथ बाज़ी पर चढ़ा देते हैं, और दुःखों और सुखों में परस्परावलम्ब से परिस्थिति बदलने में हार खा जाते हैं; तब ईमानदार साथी की तरह अपने और अपने साथी के गुण-दोषों का विवेचन करते हैं। किन्तु दुनिया तो न जाने किसने दुनिया ही की तरह बनाई है। एक नल में चार टोटियाँ लगी हों साफ़ दीखनेवाली; तो एक नल पर सवर्ण और दूसरे पर हरिजन साथ-साथ पानी नहीं भर सकते हैं! किन्तु टोटियाँ ज़रा दूरी पर लगाकर, दोनों को जोड़नेवाले नल पर मिट्टी या चूना डालकर, उन्हें हमारी आँखों से ओझल कर दिया जाय और यदि उसके बीच में और ओट कर दी जाय, तो फिर मज़े में उस नल के एक छोर पर ब्राह्मण और दूसरे पर चांडाल साथ पानी पी सकते हैं। शायद लोगों की माँग यह है कि धोखा दो, किन्तु स्पष्ट हमारी जानकारी में कुछ न करो, वह जो हमें न भाये। किन्तु जिन्हें जीवन को दूकानदारी के सौदे-सट्टे के साथ नहीं चलाना, किसी कड़वाहट में, गले से नीचे उतारने योग्य मिठास तो मिला सकते हैं, किन्तु अवसरलोलुपता से, माँग पर मीठा देकर, अपने साथी का निश्चित मरण नहीं न्यौत सकते। ख़ैर।

हाँ तो, पहली मुलाक़ात में वे देव-दूत दीखे। इसलिए नहीं कि उन्होंने अपने देव-दूत होने का विज्ञापन किया हो; इसलिए भी नहीं कि उनके देव-दूत होने के इतने उपकार विश्व पर बिखर रहे हों कि उन्हें देखकर कोई भी उन्हें देवदूत ही कहता; यह बात भी नहीं कि उनके कष्ट-सहन ने उनके शरीर को ऐसा तेजोमय और पारदर्शक बना दिया था कि आँखें चार होते ही देखनेवाले की आँखें आँखों पर ठहरने के बजाय उनके चरणों पर ही ठहरें, और न यह कि अपने चिन्तन के चरखे पर, हाथ-कते, हाथ-बुने वे इतने बारीक डोरे निकालते हैं—अनुभव और चिन्तन के ताने-बाने से बने—कि हमारी बुद्धि ललच उठे, अनुभव की रोमावलि फूल उठे और अन्तरिक्ष के अन्धकार में चलती हुई आँखें अन्तश्चेतना और बहिःप्रकाश पा जावें; यह कुछ भी न था। केवल एक बात थी। हृदयवान् मानव में मुग्ध को मनाने और अस्पष्ट पर अपरिमितता का आरोप कर पूजने की जो कमज़ोरी है, वही प्रथम मिलन में वन्दनीय कहने की जड़ में शायद विद्यमान थी। और इसी लिए जब वे आये, तब मैंने किसी चिन्तक का यह विचार अपने सामने रक्खा—

"प्रभु आसमान के परे नहीं, वह तो उम्र के परे निवास करता है।" और धीरे से छाती जुड़ा ली—दूर खड़े खड़े ही।

कपाल चौड़ा था और आँखें लाँबी-लाँबी। हजामत खूब अच्छी बनी हुई थी, किन्तु आँखों की गम्भीरता और कपड़ों की अस्तव्यस्तता कह रही थी कि अपने ध्रुव पथ में सौन्दर्य को पनाह देने के लिए इस व्यक्ति के पास

अवकाश नहीं है। कुरता खादी का था; धुला। परन्तु गले के दो बटन खुले हुए थे। कोट मटमैला-सा था, जिसका रंग ही वैसा था। उसमें दो जेब बाहर और एक अन्दर था। दर्ज़ी की सुघड़ता उसमें ख़र्च हुई थी, किन्तु पहिननेवाले का बेघड़ापन उसके ऐंचक बेंचा लटकने से व्यक्त हो रहा था। टोपी थी खादी की ऊन की, चाकलेट रंग की; किन्तु हाथ में; सिर पर नहीं। तेल लगे किन्तु बिखरे और उलझे केश; श्यामल वेश; बातचीत करते समय, रुख न मिलाने की आदत; बहुत थोड़े बोल, मानों उधार के हों। अथवा, काले काले वदन पर चिपके लाल ओठों की ललाई के घिस जाने का डर हो। बातों में, गले तक सारा वदन वक्ता की ओर किन्तु आँखें दीवार पर उगी घास पर, आविष्कार की तरह कुछ खोजती-सी। प्रत्येक शब्द मुस्कराकर बाहर निकले। हाथ में, पन्त जी का पल्लव; और बायें हाथ की अनामिका में, क़ीमती पत्थर लगी हुई एक सोने की अँगूठी।

चर्चा किसानों पर चल रही थी। और घटना के हर करुण अंश पर श्रोता हाँ या ना कहने के बजाय, उसाँस लेते।

कि इतने ही में पोस्टमैन ने ज़ीने के नीचे से पुकारा, बाबू जी! उनके साथ उनके प्रोफ़ेसर भी थे। वे बेचारे उठे और दौड़े। पोस्टमैन से मेरी चिट्ठियाँ ले आये। इनकी आँखों में भी उत्सुकता आगई।

मैंने सोचा, न जिसका मुँह बोले, न आँखें, उसका तो अन्तरंग ही बोलता होगा। किन्तु 'होगा' कह कर ठहरने के लिए मानव मन तैयार जब हो?

उस दिन की बातें जिज्ञासु जैसी थीं। मैं बोलता गया। वे चुप सुनते ही रहे।

* * *

तीन महीने पश्चात्—मैं अपनी एम० ए० की परीक्षा में उत्तीर्ण हो चुका था और कनवोकेशन के अवसर पर डिगरी का 'आडम्बर' लेने आया था। वे भी बी० ए० पास हो गये थे और आज के सम्मिलन में मेरे समानधर्मा थे।

बोले वे, मैं चुप था। अपने आने का दिन, समय, कारण, ठहरने का मुक़ाम, उनके साथी, उस मुक़ाम पर होनेवाली तकलीफ़, तकलीफ़ का कारण, इत्यादि की चर्चा के बाद मुझसे उन्होंने मेरे ठहरने का मुक़ाम पूछा। मैंने कहा—"बैरिस्टर रामनन्दन तिवारी के बँगले पर।" इस बार मैं ख़ूब मौन था।

वे फिर बोले। इस बार अपने साथियों की एक-एक कर आलोचना थी। वे साथी मेरे अपने भी परिचित थे। आलोचना का पहलू कड़वे-से-कड़वा और मीठे-से-मीठा था। हाँ, हर आलोचना की समाप्ति पर यह "ध्रुपद" किसी न किसी रूप में जुड़ा मिलता—'यों आदमी तो बहुत अच्छे हैं, ख़ूब परिश्रमी, या देशभक्त, या सेवा-परायण, या मन के उदार, या अपने जनों पर प्राण देनेवाले'—जैसा भी प्रसंग होता।

मैंने अपने उत्तर के लिए केवल कुछ शब्द चुन रक्खे थे। वे थे—'अच्छा। अच्छा? कहाँ? कब? ओहो! किसने कहा? हाँ हाँ, हरगिज नहीं, मुझे मालूम नहीं, मुझे क्या करना है? ख़ूब, ऐसा?'—शब्द और भी थे मगर उनकी जाति यही थी।

* * *

इस बार ये यूथलीग के सभापति के नाते मिल रहे थे। मैंने कहा—"बधाई सभापति जी!"

वे बोले—"आप भी मज़ाक करेंगे?"

इसके बाद यूथलीग की चुनाई का क़िस्सा चला। मीठे शब्द; नम्र लहजा। शरमा शरमा कर कहने की आदत। जिन जिन लोगों ने, उनके सभापतित्व को संकट में डालने की कोशिश की, उनकी फ़ेहरिस्त। किन्तु आँखों की पुतलियों पर कुछ चमकता-सा पानी था जो मानों कहता था कि बात कलेजे के भीतरी हिस्से से आ रही है। किन्तु चौकन्नी उदासीनता, एक सजग लापरवाही साथ चल रही थी, जो प्रकट करती थी कि अपने ख़िलाफ़ की गई शरारतों के ख़िलाफ़ एक बेबसी और उपेक्षा के सिवा इनके पास कुछ नहीं है।

* * *

दो साल पश्चात्—

देश में प्रमुख युद्ध चल रहा था। ग़रीब और अमीर सब जेल जा रहे थे। हर चीज़ का अपना मौसम था। जेल जाना भी हमारे राष्ट्र में इतने बड़े पैमाने पर आया कि उसने एक मौसम बना दिया।

एक शहर के बाज़ार में लगभग ३०० आदमी

गिरफ़्तार कोतवाली ले जाये जा रहे थे। तमाशबीनों से भी रहा न जाता था। समाज में, जैसा कि एक नामी लेखक ने लिखा था, ऐसे लोग होते हैं जो सभा में जायें तो सभापति होने की इच्छा करें, बारात में जायें तो स्वयं दूल्हा बनने की; और श्मशान-यात्रा में श्मशान के जुलूस में, उनकी ख्वाहिश होती है कि लोग रोवें तो उनके नाम पर और जलावें या दफ़नायें तो उन्हीं को। दूसरे कुछ लोगों को कुछ नई चीज़ जानने का शौक़ होता है, चाहे वह जेल-जीवन ही क्यों न हो; यदि वह बिना नैतिक गुनाह किये मिले। तीसरे होते हैं जो सोचते हैं कि बिना व्यावहारिक सेवा किये, यदि देशभक्तों के आस पास पड़ी रस्सी को अपने हाथ में बाँध लेने से सीधे मातृभूमि के उद्धारक का पुण्य मिलता हो तो क्यों छोड़ा जाय। चौथे अपनी दूकानों और अटारियों से होते हैं। वे देखते हैं कि धन और कीर्ति की दूकानदारी को अधिक सफलता से चलाये जाने के लिए भविष्य में जेल-जीवन एक रामबाण नुसख़ा होगा, कि वे अटारियों से उतर कर जेलखाने की हथकड़ी उसी तरह पहिन लेते हैं, जैसे किसी बड़े आदमी की शादी में अपना सबसे अधिक बड़प्पन जताने के लिए हीरों का हार या क़ीमती रिस्टवाच पहिनी जाती है। छठवें वे होते हैं जो सोचते हैं कि आज तक तो देशभक्ति का ढोल ढोला; आज जेल न गये तो लोग हँसेंगे; अतः चल पड़े क़ानून-भंग के रुख में आराम-भंग की ओर। इनमें कुछ ग़रीब वे भी होते हैं, जो जेल में दोनों जून भोजन पा लेते हैं, किन्तु बाहर संस्थाओं और नेताओं की पूरी गुलामी करने के बाद भी, उपवासों के वेतन पर, देश भक्ति की ऐसी प्रथा जारी रखते हैं। किन्तु वे नक्षत्र, देशभक्ति के वे सितारे होते हैं, जिनकी तपस्याओं के आसपास ये गरज़मन्द और अलग़र्ज़ उपग्रह लटकने लगते हैं। उस समय इतने ज़ोर की गिरफ़्तारियाँ थीं कि सत्याग्रह के दिनों खादी पहिन कर नागपुर का टिकट लेना नागपुर के सेंट्रल जेल के सन्तरी को अपने आने के लिए दरवाज़ा खुला रखने के लिए न्योता भेजना था। मौसम ऐसा अच्छा था कि विवाहों के बाजेवाले अपने बिगुल और अपने ढोलों पर—"आज़ादी के दीवानों का दीवाना भगतसिंह" गावें; प्राइमरी स्कूल की प्रथम श्रेणियों के बच्चे एकत्र होकर "झंडा ऊँचा रहे हमारा" का खेल खेलें; मजिस्ट्रेट लोग, समाज के उत्साह से घबड़ा कर, उनकी नज़र से गिर जाने के डर से जेलों में देशभक्तों के मुक़दमे करें; व्यापारी विलायती कपड़ा स्वदेशी बताकर बेचें, रेलवे के बाबू गांधी टोपी पहिने बिना टिकट आवारों को बिना कुछ कहे और बिना कुछ लिये बाहर निकल जाने दें; पुलिसवाले "साहब" के सामने हथकड़ी बाँधें और अकेला पाकर क़ैदी से सलाम करें; ताँगेवाले चार आने की मज़दूरी में सफ़ेद टोपीवालों से दो आने पाकर चुप रह जायें। फूल की मालायें शौक़ीनों को मिलनी मुश्किल हो गई थीं। वे देशभक्तों से जब बचें! ठीक इसी मौसम में जब कि मैं एक विश्वविद्यालय में प्रोफ़ेसर था, मैंने एक मासिक पत्र उठाकर पढ़ा। मुखपृष्ठ पर एक कविता "स्फुलिंग" शीर्षक थी। उसमें मरनेवाले रण-वीरों का गुणगान था। नीचे नाम था—'अमरचन्द्र श्रीवास्तव'। कविता क्या थी, मानों शब्दों ने भाषा का सारा तेज पा लिया था। उसमें आग थी, अंगारे थे, मौत थी, लय थी। एक ही महीने पश्चात् मैंने फिर एक समाचार पढ़ा। लिखा था, उक्त कविता छापने के कारण उस मासिक पत्र से "दो हज़ार की ज़मानत ली गई।" इस समय मेरे मन में अपने 'तरुण मित्र' के प्रति फिर अनुराग जागा। ये वे ही थे। मैंने ढूँढ़ा नहीं कि वे कहाँ हैं और क्या करते हैं। जिसकी पंक्तियों में अंगारे बरस रहे हों, वह उस मौसम में कहाँ हो सकता है, मौसिम के फलों को बेचनेवाले कुँजड़े भी कह सकते थे।

इस घटना के तीसरे रोज़ मुझे एक निमन्त्रण-पत्र मिला। वह दीवानचन्द जी श्रीवास्तव का था। उनके पुत्र अमरचन्द्र श्रीवास्तव एम० ए० की शादी का आमन्त्रण था। एक छोटे साहब यानी डिप्टी कलेक्टर के यहाँ बारात जानेवाली थी।

मैंने उसी डाक के अख़बारों पर नज़र डाली। भिन्न-भिन्न शीर्षकों के नीचे जेल जाने और सज़ा पानेवालों के नामों और गुणों (अंकों) से कालम भरे हुए थे। मैं फिर उठा, और वह मासिक पत्र उठा लाया जिसमें कविता छपी थी! फिर आमन्त्रण-पत्र पढ़ा। फिर अख़बारों को देखा। एक विचित्र रामायण बन रही थी; जिसमें

काण्ड पर काण्ड अलग अलग नज़र आ रहे थे। मैंने सोचा, हो न हो यह शादी उक्त राष्ट्रीय "कवि" की मर्ज़ी के ख़िलाफ़ हो रही होगी। या फिर वह कवि कोर्ट और होगा। बारात मानिकपुर से खागा जा रही थी। प्रयाग से मैं भी साथ हो लिया। स्टेशन पर पहुँचते ही अमरचन्द्र मिले। बड़े प्रेम से! उनके हाथ में कटार थी, अँगुलियों में अँगूठियाँ, हाथों में मेहँदी, ओंठों पर पान की लाली, बदन से इत्र की बू आ रही थी और चँवर और पंखे नाइयों के पास दीख पड़े। मैंने मानों थाह-सी लेते हुए—प्रणामों के आपस में बाँधने-खोलने के बाद—"स्फुलिंग" रचना पर अमरचन्द्र को बधाई दी। वे बोले—"आपकी कृपा है। टूटा-फूटा लिख लेता हूँ। यों मुझे आता ही क्या है।" मैंने कहा, "वाह क्या हृदय पाया है। कविता मानों वह उभाड़ है, जो रोके न रुके, थमाये न थमे।" वे बोले—"आपका बिस्तरा कहाँ है? यहीं इसी डिब्बे के नीचेवाले गद्दे पर आ जाइए।" मैं आ गया।

विवाह में मैं दो दिन रहा। रोज़ अख़बार देखता। जहाँ शादी हो रही थी, उस गाँव में भी पुलिस ने उसी दिन "लाठी चार्ज" किया था। किन्तु शादी बहुत धीरे-धीरे होती चली जा रही थी और औरतों के गीतों और मर्दों के मज़ाकों में अमरचन्द्र ऐसा रस ले रहे थे, मानों वे और किसी लोक के नहीं सिर्फ़ इसी लोक के जीव हैं। तीसरे दिन मैं चल दिया। रह रह कर मैं अमरचन्द्र से कुछ पूछना चाहता था, किन्तु रंग में भंग न हो इस भय से मैंने नहीं पूछा।

मैंने वकालत पास कर ली थी और एक रियासत में आ गया था। क्योंकि हम यहीं के रहनेवाले हैं, अतः यहीं वकालत करना था। एक बार कर्म-धर्म-संयोग से मुझे नज़दीक की रियासत में एक डाके के मुक़दमे में मुलज़िमों की ओर से जाना पड़ा। उन दिनों भी वही मासिक पत्र मेरे हाथ में था और उसमें "सच्चा कौन" इस शीर्षक की कहानी छपी हुई थी। इसी लिए मुझे पढ़ने का लालच हुआ कि वह कहानी अमरचन्द्र की लिखी हुई थी। बहुत मस्त कहानी, बड़ी बोलती-सी भाषा, बड़ा गयन्दगामी प्रवाह; कहानी में मातृभूमि के लिए सूली पानेवाले एक तरुण का सजीव चित्रण था। आँखों में आँसू आ गये।

अदालत में सरकारी गवाह एक के बाद एक आ रहे थे। मैं और मेरे साथी चार और वकील उनसे जिरह कर रहे थे। मालूम हुआ कि मामला डाके का न हो कर षड्यन्त्र का है। मैंने ख़ूब सावधानी से जिरह करना प्रारम्भ किया।

जब अपने गवाह नं० ५ को बुलाने के लिए सरकारी वकील ने पुलिस के डिस्ट्रिक्ट सुपरिंटेंडेंट से कहा, तब मैंने देखा कि वे हैं 'अमरचन्द्र श्रीवास्तव'। वे सिर पर ग्रेजुएट की फूँदेदार टोपी लगाये हुए थे और बदन पर गाउन पहने हुए थे। मैंने देखा, वे ख़ूब सावधान और निडर थे और कह रहे थे कि षड्यन्त्र बुरी चीज़ है; वे षड्यन्त्रकारियों को जानते हैं; उनके पास पिस्तौल देखी है; वे परम राजभक्त हैं; उनके पिता और उनके ससुर भी राजभक्त हैं; वे एक कालेज में अध्यापक हैं; अमुक अभियुक्त उनके यहाँ आता-जाता था; उन्होंने उसे मना भी किया; उन्होंने, पुलिस को ला...को सूचना दी थी क्योंकि उन्हें पता चल गया था कि अभियुक्त गुनाह करने पर उतारू है। मैंने जिरह शुरू की और 'उन्हें' जवाब देने में ज़रा भी तकलीफ़ नहीं हुई। न आँखों में वह शर्म थी, न मुंह पर वह उदासीनता, न अपने प्रति वह लापरवाही। मैं उनसे सब बातें ईमान से कहलवाने के लिए उनके हाथ में गीता दे ही रहा था कि मेरे पीछे से तड़ से एक गोली चली और अमरचन्द्र के सीने में जा लगी।

उनका तड़पता हुआ शरीर पुलिस ने उठा कर चट से मोटर पर रक्खा और वे शायद अस्पताल चले गये।

पिस्तौल छोड़नेवाले युवक ने आत्मसमर्पण कर दिया। वह था उन्हीं का चचेरा भाई—गोपालचन्द्र, जो दर्शकों में खड़ा मुक़दमा सुन रहा था।

उसी दिन शाम को मदनमोहन पार्क में श्री अमरचन्द्र जी के निधन पर शोक-सभा हुई। तक़दीर की बात कि मुझे ही वहाँ सभापति होना पड़ा। जब स्वाभाविक सहानुभूतिवाले और कृत्रिम आसुओंवाले दोनों प्रकार के वक्ता बोल चुके, तब मैंने सभा समाप्त करते हुए एक वाक्य यह भी कहा—"कला जीवन से अपना अनुवाद माँगती है। जो दे सकते हैं, उन्हीं की जीवन-छाया, इतिहास के नाम से तिथि-ग्रन्थों में और प्रेरणा के नाम से कृति-ग्रन्थों में पड़ी रह जाती है।"

तीन कवितायें

(१)

छोटी-सी यह नैया मेरी,
डगमग-डगमग डोली।
जली अचानक सागर की भी,
लहरों में ही होली।

तूफानों में तरणी मेरी, आज फँसी अलसाई;
और गरजती उफनाती-सी लहरों से टकराई।
बीच भँवर में नैया मेरी, दिखता नहीं किनारा;
नभ-दीपक भी बुझे आज सब, छाया है अँधियारा।

किन्तु प्रलय की इन घड़ियों में,
मन में नहीं उदासी।
लहरों में लय होना हमको
हम लहरों के वासी।

वेहोशी की घड़ियाँ भी तो हमको हैं अलबेली;
हँसते-हँसते महानाश में हम करते अठखेली।
अतल-वितल से सागर ! जो यह ज्वाला तेरी जागी;
महाप्रलय की अगवानी को मस्ती मेरी जागी।

इस दुनिया की धूप-छाँह में
आज रहे कल जाना।
रैन-बसेरा आज जहाँ, क्यों,
लौट वहीं कल आना ?

छोड़ किनारा मेरी नैया लहरों पर लहराई;
तब क्यों लौटे ? लहरों पर ही रहने को जब आई।
उठने दो तूफान हिलोरें, चलें काल से खेलें;
बुझने दो जीवन की बाती, चल—लहरों से खेलें

—हीरादेवी चतुर्वेदी

(२)

धीरे-धीरे हुआ सवेरा।
जाग, उषा अम्बर में आई,
पुरवैया ने ली अँगड़ाई,
और किरण का हलचल सुनकर चिड़ियों ने तज दिया बसेरा।
आकुल रात बिता कर सारी,
पुलक चकोरी उड़ी विचारी,
मत्त भ्रमर भी सजग हुआ सखि ! आ उसने कलियों को घेरा।
जीवन के क्षण आँसू से धो—
अब तक कितने डाले हैं खो !
जाग सजनि ! क्या जाने यह पल ले आये मंगल का फेरा !

—रूपकुमारी वाजपेयी बी० ए०

(३)

अमर करों के मृदुल स्पर्श से
सजनी, मैं जागी !
बीती स्वप्नों से भरी रात
खग गाते आया नव-प्रभात
बही सुगंधित मलय पवन अलि,
जीवन अनुरागी !
पूर्व गगन में आये दिनकर
सकल जगत में नव आभा भर
अर्घ्यदान दे रही सखी, मैं
जागी अब जागी !

—तारा पांडे

प्राचीन भारत की स्थापत्य-कला

लेखक, श्रीयुत नगेन्द्रनाथ गुप्त
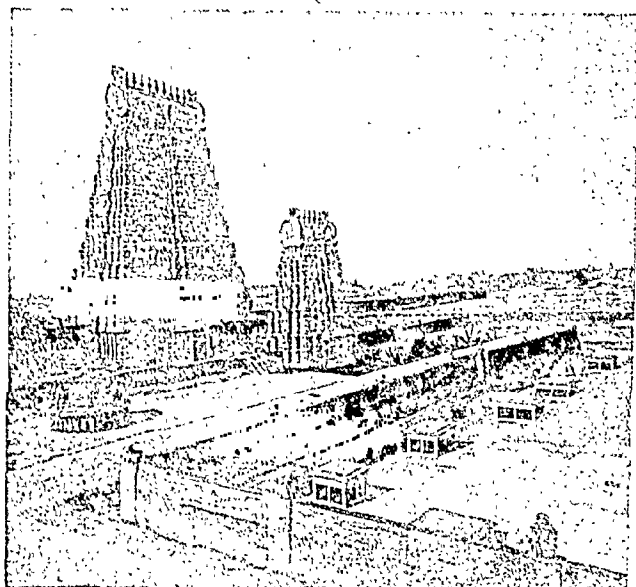
[मदुरा का प्रसिद्ध मन्दिर

पौरस्त्य-कलाओं की चर्चा करते समय योरपीय विद्वान् ईरान को अन्तिम सीमा मान लेते हैं। कुछ लेखक ऐसे भी हैं जिन्होंने जापानी और रोमन कलाओं में सम्बन्ध स्थापित करने की चेष्टा की है। बहुत-से योरपीय विद्वान् क्रिजेन्थमम और गीसा की खाक भी वर्षों छानते रहे हैं। पूर्वीय कलाओं के लिए इतनी दिलचस्पी दिखलाते हुए भी उनमें से किसी विद्वान् ने यह निर्णय करने का प्रयत्न नहीं किया कि जापान और चीन अपनी अपनी कलाओं के लिए प्राचीन भारत के कितनी ऋणी हैं। हमारे पुराने इतिहासों में कलापूर्ण कृतियों के वर्णन मिलते हैं, भले ही उन्हें कोई इतिहास न माने, क्योंकि आर्यों की इतिहास लिखने की रीति ऐसी नहीं थी, जैसी कि आजकल है; पर इसमें संदेह नहीं कि उनमें वर्णित घटनाओं को हम प्रागैतिहासिक भले ही मान लें, एकदम काल्पनिक नहीं मान सकते। रामायण, महाभारत और संस्कृत के अनेक ऐतिहासिक काव्यों-नाटकों में अयोध्या, इन्द्रप्रस्थ, हस्तिनापुर आदि नगरों के कौतूहलपूर्ण वर्णन मिलते हैं। इन नगरों के खण्डहर आज तक मौजूद हैं। दिल्ली में इन्द्रप्रस्थ का खण्डहर अब भी देखने को मिलता है। महाभारत में लिखा है कि इन्द्रप्रस्थ में एक अत्यन्त कलापूर्ण सभा-भवन पाण्डवों के लिए बनाया गया था, जिसके फ़र्श में कुछ ऐसी अद्भुत कारीगरी थी कि स्थल का जल और जल का स्थल दिखाई देता था। इन प्रमाणों से हमें विश्वास हो जाता है कि प्राचीन आर्य स्थापत्य के दोनों प्रकारों में—भवननिर्माण व उनके सजाने में बहुत निपुण थे।

परन्तु इन प्रमाणों व लिखित वर्णनों के अतिरिक्त और कोई वस्तु अब तक ऐसी नहीं मिली है जिसमें आर्य-स्थापत्य-कला का पूरा परिचय मिल सकता। बात यह है कि ब्रिटिश राज्य से पूर्व-काल की पुरातत्त्व-सम्बन्धी खोज भी काफ़ी नहीं की गई। किसी उदार-हृदय योरपीय या भारतीय को इतना अवकाश ही नहीं मिला कि प्रागैतिहासिक काल के खण्डहरों का अन्वेषण करता। पुरातत्त्व-विभाग के कुछ ऍंग्लो-इंडियन लेखकों ने सरकार का ध्यान ब्राह्मण-काल व बौद्धकाल की ओर दिलाया था, पर उनके हृदयों में भारतीय पुरातत्त्व के
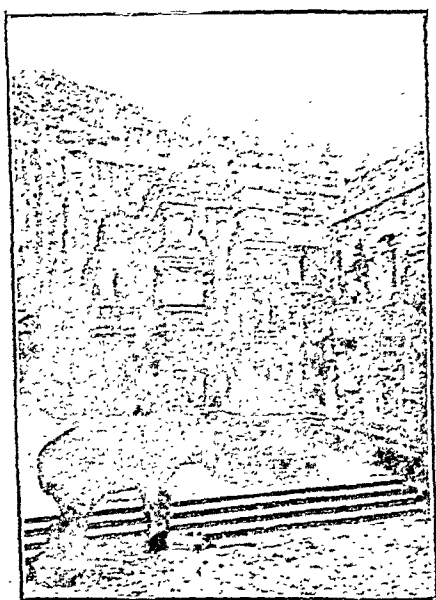
[इलोरा का गुहामन्दिर]

प्रति घृणा के भाव अधिक थे, अन्वेषण की उत्कण्ठा कम; फिर भारतीय इतिहास के सम्बन्ध में उनकी जानकारी भी नहीं के बराबर थी। इनसे भी बढ़कर एक और बात भी थी। पुरातत्त्व-विभाग में नियुक्त महाशयों के दिमाग़ों में यह बात भरी थी कि वे शासक जाति के हैं, और उन्हें जो खोज करनी है उसका सम्बन्ध शासित और दलित जाति से है। इस दशा में यदि उनकी दृष्टि "सुपीरियारिटी-कम्प्लेक्स" से धुँधली हो गई हो तो इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं है। हम स्पष्ट देखते हैं कि भारतीय ध्वंसावशेषों पर उन विद्वानों के निर्णय हम भारतीयों के निकट सन्तोष-जनक नहीं हैं; क्योंकि वे आर्यों की कला और संस्कृति से सर्वथा अनभिज्ञ थे और पूर्ण नास्तिकता के कारण वेदों की प्राचीनता पर भी विश्वास न करते थे; आर्यों के दर्शन और साहित्य के विषय में भी उन्हें कुछ ज्ञान न था; न सबसे बढ़कर हमारी जाति और संस्कृति के प्रति उनके हृदयों में घृणा और तिरस्कार का भाव था; इन बातों का प्रभाव उनके दृष्टिकोण पर पड़ना अनिवार्य था। गांधार स्कूल के तक्षण-कार्य को जो ग्रीम-रोमन कारीगरों की कृतियाँ थीं, देखकर अँगरेज़ पुरातत्त्व-विशारद झट से कह उठे थे कि 'भारत के पास अपनी कोई मौलिक कला नहीं थी; उसके पास जो कुछ था वह या तो प्राचीन ईरान और यूनान से लिया हुआ था, या रोम से।' यदि ये लेखक थोड़े से चतुर और होते तो कह सकते थे कि प्राचीन आर्य-साहित्य ग्रीक-साहित्य से नक़ल किया गया है, 'कृष्ण' ग्रीस 'आरक्रेअस' के अनुकरण-मात्र हैं, महाभारत होमर की नक़ल है और समयानुक्रम का लिहाज़ यदि बाधक न होता तो यह भी कि—भारतीय मायावाद पर बर्कले की छाप है।

पुरातत्त्व के इन प्रकांड विद्वानों के गुरु हैं जान रस्किन। उनकी अमर रचनाओं में अंकित शब्द उसी श्रद्धा और भक्ति से पढ़े जाते हैं मानो वे किसी धर्माचार्य के वाक्य हों। अपने विषय में रस्किन ने स्वयं तो यही लिखा है कि मैंने ग्रीस का तो एक-एक ठीकरा देखा है, पर भारतीय कला के सम्बन्ध में उस अस्तव्यस्त और अव्यवस्थित कूड़े-करकट के अतिरिक्त जो ब्रिटिश और केनसिंगटन के अजायबघरों में इकट्ठा किया गया है, और कुछ भी नहीं देखा है। आश्चर्य है कि इस महान् लेखक ने एलीफेंटा और एलोरा की तक्षण-कला, अजन्ता की चित्रकला, जावा और लंका में की भारतीय कलाओं के नमूनों आदि के विषय में कुछ नहीं सुना। रस्किन ने उक्त संग्रहालयों में जो वस्तुएँ देखीं वे उन्हें जंगली लोगों की बेढंगी कृतियों के नमूने जान पड़ीं। इन्हीं को उन्होंने 'आदिम आर्यों की कृतियाँ' समझ लिया। इनसे कुछ ही ज़्यादा भद्दे नमूने वे थे जो 'अफ्रीका की जंगली जातियों की कारीगरी' के नाम से वहाँ संगृहीत थे। बस, रस्किन साहब फलतः इसी निर्णय पर पहुँच गये कि भारतीय आर्य जंगलियों और मनुष्य-भक्षियों से सभ्यता में केवल एक दर्जे अधिक थे। परन्तु कुछ मनस्वी ऐसे भी हैं जिन्होंने भारतीय स्थापत्य का मनोयोगपूर्वक अध्ययन किया है और उसका उचित सत्कार भी किया है। इनमें मिस्टर फूचर, गडिन, श्रीमती हेरिंघम और उनके भारतीय सहायकों के नाम लिये जा सकते हैं। इन लोगों ने भारतीय कला का ठीक-ठीक मूल्य निर्धारण करने

की भरसक चेष्टा की है। भारतीय कला और प्राचीन भारतीय सभ्यता पर हैवेल का ग्रन्थ विचार-पूर्ण सामग्री उपस्थित करता है। कुमार स्वामी ने भी इस दिशा में अपनी योग्यता का पूरा-पूरा सदुपयोग किया है और उनके प्रयत्नों से आज भारतीय कलाओं का संसार में काफ़ी गौरव-विस्तार हुआ है।

भारतीय स्थापत्य में कुछ अपनी निजी विशेषतायें हैं। एक तो यह है कि भारतीय स्थापक सांसारिक कृतियों की अपेक्षा धार्मिक कृतियों को अधिक स्थायित्व देने की भरसक चेष्टा करता है। भरहुत का स्तूप ऐसी कृतियों का एक सुन्दर नमूना है। यह स्तूप ईसा से पूर्व लगभग तीसरी शताब्दी का बना हुआ है। उस समय के बने हुए राजमहलों के अब खँडहर भी नहीं मिलते। भरहुत, साँची और अमरावती की तक्षण-कृतियाँ स्थापत्य के उत्कृष्ट उदाहरण भर नहीं हैं, प्रत्युत इतिहास और शिक्षा की दृष्टि से भी महत्त्व की हैं। प्रसिद्ध चीनी यात्री हुएन च्वांग ने सातवीं सदी में जब भारत-भ्रमण किया था तब नालन्दा-विश्वविद्यालय पर्याप्त समृद्धिशाली था, पर मगध और अन्य राजस्थानों के खँडहर-मात्र रह गये थे। नालन्दा, अजन्ता, सुधन्या काल और तक्षशिला के विश्वविद्यालय धार्मिक स्थान थे, जिनमें धार्मिक शिक्षा दी जाती थी, इसी लिए इनका निर्माण इतनी मज़बूती से किया गया था। उनके वैदिक मन्दिरों में वेदमन्त्रों के उदात्त, अनुदात्त और स्वरित उच्चारणों का अभ्यास होता था, बुद्ध-चैत्यों में भिक्षुगण बुद्ध-नियमों का मनन किया करते थे एवं जैन-मन्दिरों में जैनमुनि महान् तीर्थंकरों के जीवन पर चिन्तन किया करते थे।

इलोरा की महत्ता का कारण केवल यही नहीं है कि उसका कैलास-मन्दिर तक्षण और स्थापत्य-कलाओं के मिश्रण का एक सुन्दर नमूना है, प्रत्युत यह भी है कि उसमें जैन और बौद्ध मूर्तियाँ एक साथ पाई जाती हैं। इलोरा की इन्द्रसभा एक जैन-मन्दिर है और उसमें जैनियों के चौबीसवें और अन्तिम तीर्थंकर महावीर की प्रतिमा है। महावीर स्वामी बुद्ध के समकालीन थे। प्राचीन भारतीयों की धार्मिक सहिष्णुता का नमूना इससे अच्छा और क्या हो सकता है कि किसी शैव मन्दिर के पास ही अन्य धर्मावलंबियों के मन्दिर भी पाये जायँ।

[अजन्ता के विहार के भीतरी अलिन्द की कारीगरी का एक दृश्य]

अजन्ता के विषय में श्रीयुत हैवेल लिखते हैं—"संसार में—चित्रण, तक्षण और स्थापत्य—इन तीनों कलाओं का ऐसा सुन्दर सामंजस्य शायद ही कहीं देखने में आये, जैसा कि अजन्ता में हुआ है।"

भारत के अनेक स्थानों में दीवारों की चित्रकारी के सुन्दर नमूने पाये जाते हैं। पर अजन्ता की गुफाओं की दीवारों पर की हुई चित्रकारी इनमें सर्व-श्रेष्ठ है। कला की 'टेकनीक', गहरी और स्पष्ट रेखायें, चित्रों की सजीवता, डिज़ाइनों की विभिन्नता और भावों की स्पष्टता—ये सब गुण मिल कर उसे सर्वांग-पूर्ण बना देते हैं। राजकुमार सिद्धार्थ का रूप आत्मिक तेज और गौरव के कारण अब भी दर्शकों के नेत्रों को अपनी ओर खींच लेता है। इन्हीं चित्रणों में एक चित्र वह भी है जिसमें बुद्ध जी ज्ञानोपलब्धि के बाद कपिलवस्तु को लौटे हुए अंकित किये गये हैं। उनके हाथ में भिक्षा-पात्र है और वे अपनी पत्नी यशोधरा और पुत्र राहुल को मिलने जा रहे हैं। इस चित्र की प्रतिलिपि की ब्रिटिश म्युज़ियम की

[सांची का स्तूप]

भारत में गांधार से लेकर गौड़ तक और राजपूताना से लेकर बम्बई के तट तक—मध्य-भारत में महान् स्तूपों और मन्दिरों के रूप में, दक्षिण में ममल्ला-पुरम् की मूर्तियों और मन्दिरों के रूप में, श्रीरंगपुरम्, लंका और मदुरा के मन्दिरों व मूर्तियों के रूप में—यह कला व्यापक थी। भारत के बाहर पश्चिम में महमूद गजनवी की गजनी भारतीय कलाकारों की रचना थी; इसी प्रकार समस्त पूर्वी एशिया की कला-कृतियों पर भारत का प्रभाव पड़ा था। जावा में भी भारतीय तक्षण-कला के कुछ सुन्दर नमूने मिले हैं। जावा के प्रम्बानम् नामक मन्दिर के आँगन में रामायण की कथा के सिलसिलेवार चित्र बनाये हुए मौजूद हैं। धार्मिक और सांसारिक स्थापत्य में विभाजक रेखा का निर्देश करना कठिन है। फलतः भारत से सम्बन्धित स्थापत्य-कला की जितनी भी कृतियाँ हैं—वे चाहे वैदिक हों—चाहे बौद्ध, चाहे जैन या अन्य, सबमें वैदिक संस्कृति अनुस्यूत है। कुछ जैन

एक चित्र-प्रदर्शनी में यह कहकर अत्यन्त प्रशंसा की गई थी कि—"यह सम्भवतः गुप्त-काल की कला का सर्वोत्कृष्ट नमूना है, जो अब तक बच रहा है।" यहाँ के चित्रों में हृदय की उदारता का पूरा परिचय दिया गया है। ब्राह्मणों के देवताओं और बौद्धों के भिक्षुओं का चित्रण समान श्रद्धा से किया गया है। अजन्ता के ये चित्र उपेक्षित हाथों की कृतियाँ नहीं हैं—इनके कलाकारों का भी वैसा ही सत्कार हुआ होगा जैसा कि कोई देश अपने कलाकार का अधिक से अधिक कर सकता है। अशोक की राजधानी अन्य शहरों की भाँति भूमि के गर्भ में विलीन हो गई है, पर उन की कला स्तम्भों के रूप में अब भी संसार के आगे सिर उठाये खड़ी है।

क्षेत्रफल की दृष्टि से विचार करने पर पता चलता है कि भारतीय कला का अधिकार-क्षेत्र यूनानी और रोमन-कला के अधिकार-क्षेत्रों कहीं अधिक विस्तृत था।

[कम्बोडिया के भग्नप्राय ईश्वरपुर मन्दिर में हिन्दू कारीगरी का दृश्य]

और बौद्ध-मन्दिर भी ऐसे ही कलापूर्ण हैं जैसे कि हिन्दू-मन्दिर। चित्तौड़ का विजयस्तम्भ, आबू पहाड़ की महराबदार प्रतिमायें, पलिताना और गिरनार के पहाड़ी मन्दिर आदि—स्थापत्य-कला के अद्भुत नमूने हैं।

[काश्मीर में गांधार-कला के एक हिन्दू-मंदिर का ध्वंसावशेष]

योरप के किसी भी नये विचारक को एलीफेण्टा की त्रिमूर्ति, चतुर्मुखी ब्रह्मा, पंचशिर शिव और हस्ति-मस्तक गणेश की प्रतिमायें बेढंगी लगेंगी और वह असभ्य जातियों के शिल्प के साथ उनका वर्गीकरण चाहेगा। योरप और भारत की प्राचीन कलाओं में यह अन्तर है कि योरप मूर्ति के ही सौन्दर्य पर विशेष ध्यान देता है और भारत उस सौन्दर्य का निर्देश करता है जो मूर्ति से परे और पृथक् है। रोम और यूनान की कलाओं की यह विशेषता रही है कि वे दृष्ट-सौन्दर्य को अंकित करने की चेष्टा करती हैं, और इस अर्थ में हम उन्हें यथार्थवादी कहते हैं। भारतीय कला विभिन्न देवताओं के उस रूप को आकार देने का प्रयत्न करती है जो श्रद्धा और भक्ति की दृष्टि से देखा जा सकता है। ग्रीक और रोम के कलाकार के लिए यह सम्भव है कि वह देवता का चित्रण मानव-विशेष की मूर्ति के रूप में करे, पर भारतीय कलाकार व्यक्ति-विशेष पर देवत्व का अध्यास करने का, या किसी मनुष्य की तुलना देवता से करने का साहस कदापि न करेगा। ग्रीक और भारत की कला में एक भेद और भी है। ग्रीक और रोमन मनुष्यों के दुःखों का कारण 'देवताओं का कोप' मानते हैं; पर भारतवासी 'कर्मफल' को प्रधानता देते हैं। ग्रीक लोगों का सम्मान शारीरिक सौन्दर्य की ओर अधिक था, फलतः उनके अंकन में सौन्दर्य-व्यवस्था का पूरा प्रयास मिलता है—सुन्दर मुख, हृष्ट-पुष्ट अंग, प्रस्फुटित रूप इत्यादि। भारतीय कलाकार लाक्षणिकता
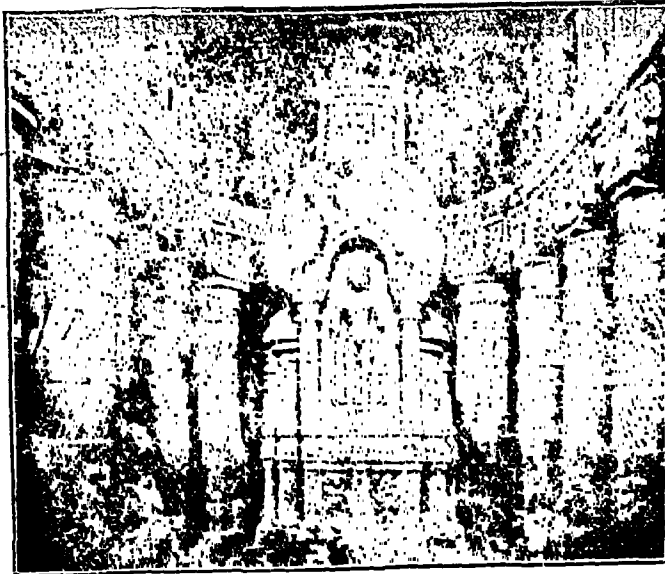
[अजन्ता की चैत्यगुहा के भीतरी भाग की कारीगरी का एक दृश्य]

[यवद्वीप में हिन्दू कला का बरबुदुर का प्रसिद्ध मन्दिर]

की ओर अधिक ध्यान देता है। कमल का एक फूल ही उसके देवता के समस्त अंग-प्रत्यंगों और उसके प्रति कलाकार की समस्त कोमल भावनाओं का प्रतीक हो सकता है। भारत की संस्कृति में कमल सर्वत्र विद्यमान है; स्थापत्य-कला में, सृष्टि-रचना के सिद्धान्त में, देवताओं के खड़े होने और बैठने की मुद्रा में, देवताओं के शृंगार में और उनके अंगों की उपमाओं में। भारत से बाहर किसी कलाकार ने ध्यानमुद्रा में किसी देवमूर्ति का अंकन नहीं किया। योरप के 'क्लासिकल-आर्ट' में तो मूर्ति बनाते समय मांस-पेशियों की लहरें दिखाने का प्रयत्न किया जाता है, जिससे मूर्ति की गति-

[सारनाथ के स्तूप का सिंह-शिखर]

शीलता परिलक्षित हो सके। पर भारत में शान्तिपूर्ण-मुद्रा, ध्यान-योग, एकान्त-प्रेम और वैराग्य का निदर्शन ही कला का लक्ष्य रहा है। इस शान्ति को हम जड़ता नहीं कह सकते, यह वह स्थिर ज्योति है जो किसी वातहीन देवगृह में प्रकाश करती है। पाश्चात्य कलाकार अंगस्थिति पर विशेष ध्यान देते हैं। भारतीय कलाकार 'आसन' पर। सीलोन के अनुराधापुर में प्राप्त बुद्ध की विशाल मूर्ति, एलीफेंटा की त्रिमूर्ति, तीर्थंकरों की मूर्तियाँ, ध्यानी बुद्ध या अमिताभ, बोधि-सत्व—इन सबमें शारीरिक संयम और मानसिक तेजस्विता दिखाई देती है।

दूसरी ओर मदरास की 'नटराज' की मूर्ति जो ताण्डव-नृत्य करती हुई दिखाई गई है, सांसारिक हलचलों की प्रतीक है। अँगुलियों और हाथों के परिचालन-द्वारा हाव-भाव के प्रदर्शन की कला का ज्ञान यूनानियों को नहीं था। न वे मुद्राओं से ही अभिज्ञ थे। और योरपीय चित्रों में २ अँगुलियों को उठाकर आशीर्वाद देने के भाव का निदर्शीकरण ईसाई-कला के प्रभाव से आरम्भ हुआ है। यदि हम अपोलो, बैल्वेडियर और जावा में प्राप्त अवलोकितेश्वर की मूर्तियों को पास-पास रख कर देखें तो योरपीय व भारतीय कला का भेद हमें स्पष्ट ज्ञात हो जायगा।

कविता का भविष्य

लेखक, पण्डित हजारीप्रसाद द्विवेदी

काशी के हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के अवसर पर कवि-सम्मेलन हुआ था। उसकी बैठक एकाधिक दिन तक चलती रही। एक बैठक में उपस्थित होने का अवसर मुझे भी मिला था। मैं श्रोताओं में बैठा था और उनकी मुखाकृति देख रहा था। कवियों में ऐसे सज्जन बहुत ही कम मंच पर आये जिनका नाम प्रतिमास छपे के अक्षरों में उठा करता है। अधिकांश कवि श्रोताओं के लिए मजाक के पात्र थे और अधिकांश श्रोता इसी लिए सभा में आये हुए जान पड़ते थे कि जरा उनका दिल बहल जायगा और जरा मजा आ जायगा। जो साहित्यिक श्रोता वहाँ उपस्थित थे वे निराश थे और एकाध तो अन्य साहित्यिकों को देखकर इस प्रकार शर्मा कर कैफ़ियत देने लगते थे, मानों किसी लज्जा-जनक जगह पर अचानक पकड़े गये हों! संक्षेप में कवि-सम्मेलन उत्साह, मजाक, मौज, निराशा और लज्जा का मिलाजुला रूप था। मैं नौ वर्ष से हिन्दी-क्षेत्र से बाहर रहता हूँ और अपने साहित्य की स्तुति गाने का व्यवसाय करता हूँ। मैं इस व्यवसाय के कारण भूल गया था कि हिन्दी-कविता का एक बहुत बड़ा जीवित रूप वर्तमान है, जो आधुनिक युग में मध्ययुग का साहित्यिक भग्नावशेष कहा जा सकता है। मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई कि मेरा भ्रम दूर हो गया। मैं निराश बिलकुल नहीं हुआ। मुझे वास्तविक हिन्दी-भाषा की शक्ति और प्रकृति का प्रत्यक्ष साक्षात्कार हुआ। इस गद्य-युग में भी इस भाषा के पेट में कितने कवि पड़े हुए हैं! एक आशुकवि भी आ जुटे थे। भले आदमी ने ललकार कर कहा कि जिस विषय पर कहो कविता बना देता हूँ। सदस्यों ने विषय भी दिये। पुराने युग में एक ऐसा ही आशु 'शास्त्रार्थ-कवि' काश्मीर में पहुँचा था। वाद के लिए बैठे हुए दरबारी पंडित गद्य में जवाब दे रहे थे और वह पंडित पद्य में। गद्यवाले को ही लड़खड़ाना पड़ा। आशुकवि ने कहा—मेरे अनवद्य पद्यों के सामने आप गद्य में भी जो लड़खड़ा रहे हैं, सो जान पड़ता है, आपने तारादेवी की आराधना नहीं की—

> अनवद्ये यदि पद्ये गद्ये शैथिल्यमावहसि—
> तत्कि त्रिभुवनसारा तारा नाराधिता भवता?

विडंबना देखिए कि काशीवाले कवि को देखकर श्रोता मन ही मन—अनजान में गुनगुना रहे थे—अनवद्य गद्य के होते हुए भी आप जो पद्य में जरा भी शैथिल्य नहीं आने देते तो क्या आपने गद्याकारा वाक्यधारा की आराधना नहीं की?

> अनवद्ये यदि गद्ये पद्येऽशैथिल्यमावहसि—
> तत्किं गद्याकारा धारा नाराधिता भवता?

जमाना ऐसा आ गया है कि कल तक जो बात सोलह आने निर्विवाद समझी जाती थी वह भी आज संदेह का विषय बन गई है। हम मानें या न मानें, कालप्रवाह हमें जबर्दस्ती एक विशेष दिशा की ओर ठेले लिये जा रहा है। मुँह फेर या आँख मूँदकर बैठ रहने से वह धारा रुकेगी नहीं। कवि-सम्मेलन के कवि यह बात जानते तो उसका रूप कुछ और होता।

लेकिन आज भी शायद निर्विवाद बात यह है कि कविता का क्षेत्र संकुचित हो गया है, परन्तु कवि का महत्त्व बढ़ गया है। इस शताब्दी के आरंभ तक लोकप्रिय साहित्य के क्षेत्र में कवि का प्रतिद्वंद्वी कोई नहीं था। भारतवर्ष के हजारों वर्ष के इतिहास में कविता जैसा लोकप्रिय साहित्य कुछ था ही नहीं। वैद्यक और ज्योतिष के आचार्य भी इसके शरणापन्न होते थे, बीज-गणित और अंकगणित के ग्रंथ भी कविता की ही बोली में और उसी के फ़ैशन में लिखे जाते थे। भगवान् के भजन से लेकर सूम की छीछालेदर तक सभी विषय कविता के प्रतिपाद्य थे। अलख जगानेवालों से लेकर कोकशास्त्री तक कविता के माध्यम का व्यवहार करते थे। नाटक में कविता का बोलबाला होता था, संगीत में कविता मुखरित होती थी, विवाह और श्राद्ध में कविता पढ़ी जाती थी, और जीवन का ऐसा कोई भी अंग नहीं था जहाँ उसका कुछ-न-कुछ उपयोग और उपभोग न होता हो। और जैसा कि मम्मटाचार्य ने

कहा है, काव्य यश के लिए, धन के लिए, व्यवहार-ज्ञान के लिए, कल्याण-प्राप्ति के लिए, मोक्ष के लिए और कान्तासम्मित उपदेश के लिए अर्थात् जीवन की प्रायः समस्त आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए रचे जाते थे। फिर भी अद्भुत विरोधाभास यह है कि यद्यपि सभी तरह के लोग इस माध्यम का आश्रय ग्रहण करते थे, तो भी सभी लोग कवि नहीं माने जाते थे। राजशेखर ने काव्य की उत्पत्ति के दो कारण बताये हैं—समाधि अर्थात मानसिक एकाग्रता और अभ्यास या परिशीलन, इन दोनों के योग का नाम शक्ति है। परन्तु शक्ति ही एकमात्र काव्य का कारण नहीं है। लोक-निरीक्षण, काव्य-निरीक्षण, शास्त्राभ्यास और काव्य-शिक्षा भी नितान्त आवश्यक हैं। दण्डी यहाँ तक कहते हैं कि प्रतिभा न भी हो तो भी आदमी शास्त्राभ्यास के द्वारा कवि हो सकता है। स्पष्ट ही भारतीय समीक्षकों ने काव्य-शास्त्र के अभ्यास को बहुत महत्त्वपूर्ण स्थान दिया है। यह विचार कि बिना शास्त्र पढ़े लोग भी प्रतिभा के बल पर कवि हो सकते हैं, संस्कृत के आलंकारिकों को एकदम मान्य नहीं था।

किन्तु अब मशीनों के उत्पात ने दुनिया बदल दी है। कवि-सम्मेलन के अखाड़ेबाज कवि ऐसी बहुत-सी बातें अब भी कविता के माध्यम से बोलते जा रहे हैं जिनमें से बहुत-सी किसानसभा या हिन्दूसभा के मंच पर गद्य में बोली जा सकती थीं। कुछ कांग्रेसवादी अख़बारों की सम्पादकीय टिप्पणियों में अधिक सफलता-पूर्वक कही जा सकती थीं, कुछ मसखरे अख़बारों को अच्छी सामग्री दे सकती थीं, कुछ कहानी के रूप में लिखने पर ज्यादा पुर-असर हो सकती थीं और कुछ का उपयोग निश्चयपूर्वक फेरीवालों की बिक्री बढ़ाने में किया जा सकता था। छापे की कल ने कविता के व्यापक क्षेत्र को कई हिस्सों में बाँट दिया है। कहानियों ने बहुत हिस्सा पाया है। उपन्यासों ने बहुत कुछ हथिया लिया है, निबन्धों ने भी कम नहीं पाया है। समाचार-पत्रों ने—और विशेष रूप से मासिक पत्रों ने—कवि-सम्मेलनों की कमर तोड़ दी है। कविता कान का विषय न होकर आँख का विषय हो गई है। सुनना अब उतना महत्त्व नहीं रखता, पढ़ना अधिक महत्त्व-पूर्ण हो गया है। और इंद्रिय-परिवर्तन के साथ ही साथ कविता के आस्वाद्य वस्तु में भी परिवर्तन हुआ है। कविता अब भावावेग का विषय न होकर बुद्धि का विषय हो गई है। कवि के मुख से कविता सुनते समय हम उसके पठन-भंगी पर ज्यादा ध्यान देते हैं, उसके काकु को—या, जैसा कि राजशेखर ने इस शब्द की व्याख्या की है, 'अभिप्रायवान् पाठधर्म' को—अधिक महत्त्व देते हैं। पर छापे के अक्षर में छपी हुई कविता को पढ़ते समय न हमारे सामने कवि का कंठ होता है और न काकु या अभिप्रायवान् पाठधर्म। उस समय केवल कविता के विचार हमारे सामने होते हैं। इस प्रकार हम चाहें या न चाहें, कविता का अर्थ हमारे लिए निश्चित रूप से विचार्य हो उठता है। हम अनजान में बुद्धिवृत्तिक हो जाते हैं। छापे की कल ने हमें भावावेश पर से धकिया कर बुद्धि-प्रवाह में फेंक दिया है।

इस कथन का अर्थ बहुत बड़ा है। हमारे निकट अब कवि, यश, अर्थ या व्यवहार से कमाने की मशीन नहीं है; 'कान्ता-सम्मित' उपदेश की भी हम उससे उम्मीद नहीं रखते, कहानियों ने जबर्दस्ती कविता से यह विभाग छीन लिया है। हम उससे कुछ अधिक की उम्मीद रखने लगे हैं। वह उम्मीद क्या है? जीवन की व्याख्या? बताया गया है कि यही कवि का परमधर्म है। परन्तु फिर उपन्यास-लेखक और नाटककार और चिन्ताशील निबन्ध-लेखक—और सबके ऊपर ऐतिहासिक क्या करते हैं? जीवन की व्याख्या क्या कवि की मौरूसी सम्पत्ति है? इतिहास यदि मानव-जीवन का प्रवाह नहीं तो और क्या है? ईंट-पत्थरों के इतिहास में अब भी कोई विश्वास करता है, यह बात कुछ अद्भुत सुनाई देती है। और मोक्ष की चिन्ता तो आज के युग में शायद ही किसी चिन्ताशील पाठक को, फिर कवि से हम क्या आशा करने लगे हैं?

सवाल का जवाब खोजने के पहले हमें यह साफ़ समझ लेना चाहिए कि कविता हम आज-कल समझते किसे हैं। मासिक पत्रिकाओं के संपादक खाली पड़े स्थान को भरने के लिए प्रतिमास जो असंख्य कवितायें छापते जा रहे हैं—(छापे का यंत्र यहाँ भी कविता के क्षेत्र में दखल दे रहा है)—क्या हम उन

सबको कविता मानते हैं ? निश्चय ही नहीं । किसानों और मज़दूरों के दुःख से सभा-भवन को गुंजारित करने-वाली रचनाओं में सबको हम कविता मानते हैं ?—संदिग्ध विषय है । प्रेयसी के अंचल में मुँह छिपाकर सिसकी भरनेवाले कवियों की रचना हमें पसद है—थोड़ी सी । जो कवितायें हमारे दिल को नरम कर दें, हमें सोचने को मजबूर करें, समझने की आँख दें, उन्हें हम कविता मानते हैं—ज़रूर । वस्तुतः अनादिकाल से अब तक कवि ने जो सबसे बड़ा कार्य किया है, जिसे कोई शास्त्रकार नहीं कर सका, जिसे कोई तत्त्ववेत्ता नहीं सुलझा सका, वह कार्य हृदय को मुलायम बनाना है, संवेदनशील बनाना है, दूसरे के सुख-दुःख के अनुभव की योग्यता ला देना है । कवि ने यह कार्य नाना भाव से किया है । मध्ययुग के कवि, जो अपनी मनोवृत्ति के कारण हर राह चलते समालोचक के वाक्यवाणों के निशाना बने हैं, केवल इस एक कारण से कवि की गद्दी के अधिकारी बने रह सकते हैं कि उन्होंने अपने श्रोताओं को संवेदना दी है, उनका हृदय मुलायम बनाया है । उन कविताओं के अभाव में आदर्शभ्रष्ट मानवता कितनी बर्बर हो उठती, यह केवल अनुमान का विषय है । हम कवि से यही आशा रखते हैं कि वह हमारे दिल को मुलायम बना दे । हम उससे यह आशा हरगिज़ नहीं रखते कि वह हमें वेदान्तवाद समझा दे या समाजवाद के तत्त्व रटा दे या राणा प्रताप के घोड़े के खुरों से उड़ी हुई धूलिराशि का खाका खींच दे । इन बातों को हम अन्यत्र पा सकते हैं ।

और भी स्पष्ट रूप से इस प्रकार कह सकते हैं। पिछले खेवे के आलंकारिक आचार्यों ने काव्य की जिस ध्वनि-प्राणता का इतना प्रचार किया था वह चाहे जितना बड़ा भी सिद्धान्त क्यों न रहा हो, आज के काव्य का उपयुक्त आदर्श नहीं हो सकता । इसलिए नहीं कि आज के युग में वह खोखला हो गया है, या उसमें कोई शाश्वत सत्य नहीं रहा, बल्कि इसलिए कि कविता का विषय ही बदल गया है । पहले काव्य सुनाने के लिए और झूम-झूम कर पढ़ने के लिए लिखे जाते थे, इसी लिए कवि को ऐसे वचन-विन्यास की आयोजना करनी पड़ती थी जो सुनने-वालों को शीघ्र ही और आसानी से व्यंग्य-अर्थ की ओर प्रवृत्त करे । उसे शब्द और अर्थ में एक प्रकार की वक्रता का आश्रय लेना पड़ता था जिससे पाठक आसानी से वक्तव्य की ओर उत्सुक हो सके । यह पाठक को एक प्रकार की घूँस दी जाती थी । शब्दों और अर्थों के अलंकार इसी लिए काव्य में प्रधान स्थान अधिकृत करते थे । इसी लिए इनको जाने विना न तो कोई कवि ही हो सकता था और न भावक ही । इसी लिए संस्कृत के आलंकारिक शास्त्राभ्यास को इतना महत्त्व देते थे । आज शब्दालंकार और अर्थालंकार उपदेशकों के काम की चीज़ हो गये हैं । इनके बल पर आज कवि-सम्मेलन में नहीं, व्यवस्थापिका-सभा में प्रधानता प्राप्त की जा सकती है । ध्वनि-संप्रदाय आज भी अपने समस्त अंग-प्रत्यंग के साथ उपयोगी है, पर उसका अधिकांश कविता से बाहर चला गया है । वस्तु से वस्तु या अलंकार, और अलंकार से वस्तु या अलंकार, आज कविता के विषय नहीं रहे । ये सुननेवाले को ज्यादा आकृष्ट करते हैं । परन्तु ध्वनि का सर्वोत्तम अंग 'रस' अब भी काव्य का विषय है । इस रस की अनुभूति को तीव्र करने के लिए ही जो अलंकार प्रयुक्त होंगे वे काव्य में चल सकेंगे । वे नहीं जो अन्य अलंकार को या अन्य वस्तु को ध्वनित करें । यह स्मरण रखने की बात है कि 'रस' सिद्धान्त का मूल उद्भवस्थान नाटक है, काव्य नहीं। काव्य में इसकी आमदनी बाद में हुई है । जिन अनुभाव, विभाव, संचारी आदि भावों के संयोग से इसकी निष्पत्ति होती है वे नाटक में ही होते हैं। इसके सभी बड़े बड़े व्याख्याकार लोल्लट शंकुक, भट्टनायक और अभिनवगुप्त नाट्यशास्त्र के व्याख्याता थे। काव्य के आलोचकों ने रस की अपेक्षा अलंकारों की ही विवेचना अधिक की थी । कारण स्पष्ट है । काव्य सुनाने के लिए लिखे जाते थे, वे कानों के विषय होते थे, इसलिए उनमें अलंकारों की ही प्रधानता होती थी । सभा में काव्य का पाठ बहुत ही महत्त्वपूर्ण माना जाता था । राजशेखर ने लिखा है कि काव्य करते तो वैसे बहुत लोग हैं, पर

पढ़ने का ढंग वही जानता है जिस पर सरस्वती की कृपा होती है। यह अनेक जन्म के प्रयास से आता है। परन्तु नाटक दृष्टि और श्रवण दोनों का विषय है, उसमें आदमी केवल सुनता ही नहीं रहता, प्रत्यक्ष अनुभव जैसा करता रहता है। अनुभव जहाँ है वहीं रस का प्रसंग हो सकता है। महाकाव्यों में ऐसा संभव है, वहाँ पाठक मन ही मन नायक-नायिकाओं को देखता रहता है। वह विभाव-अनुभाव को प्रत्यक्ष-सा अनुभव करता रहता है। यह विचार-पूर्वक देखने की बात है कि काव्य में अलंकारों की प्रधानता को विकृत करनेवाले दण्डी और भामह जैसे प्राचीन आचार्य महाकाव्यों के प्रसंग में ही रस का उल्लेख करते हैं। इसी लिए 'रस' के संबंध में विचार करते समय हमें ध्यान रखना चाहिए कि हमारे सामने वास्तविक या कल्पित आलंबन विभाव का होना निहायत ज़रूरी है। नहीं तो रस का प्रसंग ही नहीं उठता। अत्यंत बुद्धिमानी के साथ रीतिकाव्य के कवि ने इसी लिए कविता में नायिकाभेद का आश्रय लिया था। अगर उसने नायक-नायिकाओं का आश्रय न लिया होता तो उसका 'रसात्मक' वाक्य निश्चय आकाश-पुष्प हो जाता। आधुनिक कविता इस विशेष बात में भी अलग हो गई है। हम सदा आलंबन, उद्दीपन आदि विभावों और संचारी भावों का अनुभव नहीं करते होते। हम आधुनिक कविता में से बहुतों को केवल बुद्धि-द्वारा समझने का प्रयत्न करते रहते हैं। इसी लिए केवल 'रस' का आदर्श भी आज के कवि और भावक को संतुष्ट नहीं कर सकता। केवल 'रस' के आदर्श को स्वीकार करने से हम ऐसी बहुतेरी कविताओं को त्यागने को बाध्य होंगे जो हमारे हृदय को नर्म बना रही हैं, हमें सोचने को मजबूर कर रही हैं और हमें समझने की आँखें दे रही हैं—अर्थात् मन ही मन जिन्हें हम कविता समझ रहे हैं। हमारे कवि-सम्मेलन के कवि इस बात का ख़याल रक्खें तो अच्छा हो।

तो क्या कविता केवल देखने और समझने की चीज़ रह गई है? पढ़ने और अनुभव करने की नहीं? क्या पूर्ववर्ती आलोचना का यही अर्थ है? निश्चय ही नहीं। पूर्ववर्ती आलोचना में केवल इस बात को स्पष्ट करने की कोशिश की गई है कि—(१) छापे की मशीन ने कविता को मन ही मन पढ़ने की चीज़ बना दी है, (२) उसमें की आलंकारिकता का आकर्षण शिथिल कर दिया है और (३) सहृदय को श्रोता की अपेक्षा द्रष्टा अधिक बना दिया है। सहृदय की रुचि बदल गई है। वह कवि-सम्मेलनों के भूमीकोर कवियों को तमाशबीन की दृष्टि से देखता है, कवित्व के प्रति उसके हृदय में जो सम्मान है वह उसकी दृष्टि में नहीं। सम्मान वह छपी कविता को पढ़ते समय देता है। इसका अर्थ यह बिलकुल ही नहीं कि कविता अब पढ़ी नहीं जायगी या जो लोग कविता को सुन्दर ढंग से पढ़ सकते हैं वे अब यह कार्य छोड़ दें। ऐसे शक्तिशाली लोगों को ज़रूर कविता पढ़कर श्रोताओं का मनोरंजन करना चाहिए। वस्तुतः येही लोग कवि-सम्मेलनों में 'हीरो' हो सकते हैं। परन्तु उन्हें साफ़ साफ़ समझ लेना चाहिए कि उनका कार्य कवित्व करना नहीं है। वे कवि नहीं, कविता के आवृत्तिकारी हैं। हमारे कविसम्मेलनों की समस्या यही है कि पाठक और कवि में कोई भेद नहीं किया जा सकता। जो वस्तुतः कवि हैं वे अच्छे आवृत्तिकारी भी हों, यह सदा संभव नहीं हो सकता। साथ ही यह भी स्पष्ट रूप से साफ़ हो जाना चाहिए कि कविता और संगीत दोनों अलग चीज़ें हैं। कविता के आवृत्तिकारी को जो बात सबसे अधिक ध्यान में रखना आज के युग में निहायत आवश्यक है वह कविता को सुर देना नहीं है, बल्कि उसमें उपयुक्त 'काकु' का देना है ताकि काव्यार्थ पाठक को अधिक-से-अधिक बुद्धिग्राह्य हो सके। यहाँ भी छापे की मशीन ने काव्यास्वादन में दख़ल दिया है। अगर आवृत्तिकारी छापे की मशीन को परास्त करने की क्षमता न रखता हो तो उसे प्रयत्न नहीं करना चाहिए।

गान में जो स्थान सुर को प्राप्त है, काव्य में वही स्थान झंकार को प्राप्त है। पद के निश्चित बंधनों को बार बार दुहराने से पद और वाक्य में एक प्रकार की विशेष झंकार पैदा होती है, जो श्रोता के भावावेग को अधिक गतिशील बनाती है और शब्द और अर्थ से अतीत

तत्त्व को सहज ही श्रोत-गम्य बना देती है। मामूली राजनैतिक वक्ता भी जब मंच पर भावाविष्ट होकर बोलने लगता है तब अपने गद्य में भी एक विशेष प्रकार का ज़ोर देकर, एक विशेष प्रकार की यति देकर बोलता है। ऐसे स्थान पर वह काव्य के प्रधान हथियार का सहारा लेता है। सहृदय पाठक छपे हुए काव्य को पढ़ते समय मन-ही-मन इसी प्रकार का जोर देता रहता है और इसी प्रकार अपने आपके लिए भावावेश की अवस्था का निर्माण करता रहता है। छापे में विविध विराम-चिह्न उसकी सहायता करते हैं। वह कवि की बताई हुई कुंजी पाता है। विराम-चिह्न कवि-द्वारा बताई हुई वह कुंजी है जो पाठक को कवि के ढंग पर ही पढ़ने का नियम बताती है। आवृत्तिकारी जब कविता-पाठ करता होता है तब सहृदय पाठक चुप-चाप उसकी परीक्षा लेता रहता है। यदि छापे के विराम-चिह्नों ने उसको भावाविष्ट बनाने में जितनी सहायता की है उतनी सहायता आवृत्तिकारी का पाठ नहीं करता या ग़लत ढंग से उसे गुमराह करता है तो सहृदय की दृष्टि में फिर वह तमाशा हो जाता है। मशीन ने जीवित मनुष्य के साथ कितनी बड़ी प्रतिद्वंद्विता खड़ी कर रखी है!

यह बात, फिर, एक बड़े भारी परिवर्तन की ओर इशारा कर रही है, जिससे कविता के भविष्य पर बड़ा सुन्दर प्रकाश पड़ता है। कवि और पाठक दोनों छापे की मशीन को अपना अच्छा सहायक समझने लगे हैं।

जब तक दुनिया में छापे की मशीन नहीं थी तब तक मुक्त-छंद भी नहीं थे। भारतवर्ष में गद्य-काव्य था; गद्य को कवियों की निकषा भी कहा जाता था, पर मुक्त-छंद और गद्य-काव्य निश्चिय ही एक वस्तु नहीं हैं। समस्त संसार में मुक्त-छंद के प्रचार का कारण मशीनें हैं। जब तक इनका आविर्भाव नहीं हुआ था तब तक यदि किसी के मन में भूले-भटके इस प्रकार के मुक्त-छंद की रचना का कोई संकल्प भी रहा हो तो वह उसके साथ ही लोप हो गया। उचित विराम-चिह्नों के साथ, उचित पंक्तिभंग देकर, जब तक छापने की सुविधा न हो तब तक यह समझना मुश्किल ही रहेगा कि कवि किस बात पर ज़ोर देना चाहता है। छापे की सुविधा के साथ मुक्त-छंद का प्रचार सभी देशों में बढ़ा है। परन्तु अभी उस दिन तक मुक्त-छंदों को प्राचीन पद्यशैली की सुकुमारता से अलग नहीं किया जा सका था। कवि यद्यपि गद्य लिखता था, फिर भी एक ख़ास झंकार के साथ। श्री दिनेशनंदिनी जी ने जो गद्य-काव्य लिखे हैं उनमें वही सुकुमारता वर्तमान है। वे पद्यकाव्य से केवल इतनी ही बात में भिन्न हैं कि उनमें नियमित वर्णों या मात्राओं की पुनरावृत्ति नहीं है। भावों का 'ससज्ज और सलज्ज' अवगुंठन ज्यों का त्यों है। और इसमें कोई सन्देह नहीं कि इन कविताओं को पढ़ते समय पाठक निश्चय ही कवि-वांछित भावावेश की अवस्था में पहुँच जाता है। हाल ही में इस अवगुंठन को हटा देने का भी प्रयास किया गया है। क्योंकि जैसा कि पहले बताया गया है, कविता अब नेत्रों का और उसके ज़रिये बुद्धि का विषय बन गई है। वह उस रसात्मकता को आदर्श नहीं मानती जो 'भरहट्टवधू' के अंग की भाँति वायुविकम्पित अंचल से कुछ-कुछ ढँकी हुई और कुछ कुछ खुली हुई हो!' इसी लिए हाल ही में रवींद्रनाथ ने जब गद्यछंद में प्रयोग शुरू किया तब उन्होंने लिखा था—"गद्यछंद में अति निरूपित छन्द का बन्धन तोड़ना ही पर्याप्त नहीं है, पद्यकाव्य की भाषा और प्रकाशरीति में जो ससज्ज और सलज्ज अवगुंठन की प्रथा है उसे भी जब दूर कर दिया जायगा, तभी गद्य के स्वाधीन क्षेत्र में उसका संचरण स्वाभाविक हो सकता है। मेरा विश्वास है कि असंकुचित गद्य-रीति से काव्य का अधिकार बहुत दूर तक बढ़ा देना संभव है, और उसी ओर लक्ष्य रखकर मैंने ये कवितायें लिखी हैं। इनमें कई कवितायें ऐसी हैं जिनमें तुक नहीं है, पद्य-छन्द है; किन्तु उनमें भी मैंने पद्य की विशेष प्रकार की भाषा-रीति के त्याग करने की चेष्टा की है"—('पुनश्च' की भूमिका में)।

एक अँगरेज़ समालोचक ने लिखा है कि जब-जब किसी भाषा के साहित्य में छंदों का परिवर्तन होता है तब-तब उस साहित्य की ऐसी रचना का जन्म होता है जो पीढ़ियों तक जीवित रहती है और जिस पर उस

भाषावालों को गर्व रहता है। भारतवर्ष में इस मत के समर्थक वाल्मीकि और अश्वघोष और प्राकृत तथा हिंदी के अनेकानेक कवियों का नाम ले सकते हैं। आधुनिक हिंदी में मैथिलीशरण गुप्त, निराला और पन्त भी इसके उदाहरण-स्वरूप पेश किये जा सकते हैं, पर इस मत की पुष्टि करने का मुझे कोई आग्रह नहीं है। यह मत ठीक हो या ग़लत, मुक्त-छंदों की कल्पना ने काव्य की प्रकृति बदलने में जो क्रान्तिकारी भाग लिया है उसे वह भुलाया नहीं जा सकता। कविता इन छंदों में आकर अपने अन्तिम बंधन से छुटकारा पा गई है। एक एक करके वह सुर से, अलंकार से, व्यन्यात्मकता से, झंकार से छूटती हुई पद्यबंध से भी छूट गई है। अतियथार्थवादी-संप्रदाय के कवियों की रचनायें पढ़ने के रहे-सहे संबंध को भी तोड़ रही हैं। इन कविताओं में गणितशास्त्रीय तथा अन्य शास्त्रीय इतने तरह के चिह्न व्यवहृत होने लगे हैं कि उनका पढ़ा जाना असंभव हो है। वे केवल देखने और समझने की चीज़ हो गई हैं! जो लोग काव्य-गत पुराने संस्कारों से मुक्त नहीं हैं—इन पंक्तियों का लिखनेवाला ऐसा ही अभागा है—वे काव्य की इस प्रगति को निराशा के साथ देख सकते हैं, पर यही वह मार्ग है जिस पर से कविता आगे बढ़ रही है, यह सत्य है। वह कुएँ में गिरने जा रही है या पहाड़ पर चढ़ने, यह विवाद का विषय है। कविता की इस भावी गति को सहृदय पाठक ख़ूब समझता है, यद्यपि अनेक समय वह अपनी समझी हुई बात को साफ़-साफ़ अनुभव नहीं करता होता। यही पाठक कवि-सम्मेलनों को देखने जाता है। कवि-सम्मेलन के कवियों को इसका पता शायद नहीं होता।

एक दूसरी निर्विवाद या कम-से-कम विवाद-योग्य बात यह है कि कवि सौंदर्य से प्रेरणा पाता है। लेकिन दो व्यक्ति किसी एक ही वस्तु के सौंदर्य की मात्रा पर शायद ही एक-मत हों। स्पिनोज़ा ने कहा था कि कोई वस्तु सुंदर है, इसलिए अच्छी नहीं लगती, बल्कि अच्छी है—हमारी आकांक्षाओं को तृप्त कर सकती है—इसलिए वह सुंदर होती है। अर्थात् सौंदर्य हमारी अपनी रचना है। जिसको हम चाहते हैं वह सुंदर है। योरपीय देशों में जब वैयक्तिक स्वाधीनता का युग चल रहा था तब कवियों ने इस मत को शिरसा स्वीकार कर लिया था। यह 'टिपिकल' सौंदर्य-निष्ठा के प्रति विद्रोह था। सदियों से कवि लोग अपने पूर्वजों की परंपरा से अपने सिर पर लदी हुई सौंदर्य-भावना को ढोते आ रहे थे। उन्नीसवीं शताब्दी के अँगरेज़ी कवि ने इस बोझ को सिर से उतार फेंका। उसने अपनी आँखों से दुनिया को देखा। अर्थात् अपनी व्यक्तिगत आकांक्षाओं की पूर्ति जहाँ से हो सकती थी वहीं सौंदर्य देखा। यह हवा हिंदुस्तान में भी बही। हिंदी में अब भी बह रही है, यद्यपि योरपीय कवि इसके विरुद्ध होता जा रहा है। योरपीय कवि जब इसके विरुद्ध होता जा रहा है तब वह फिर लौटकर टिपिकल सौंदर्य के आदर्श की ओर नहीं फिर रहा। यह संभव नहीं। 'टाइप' की भावना सदियों की बद्धमूल परंपरा से आती है। आधुनिक युग का कवि ऐसी किसी परम्परा की प्रामाणिकता को स्वीकार नहीं करना चाहता। उसने नया प्रयोग शुरू किया है। उसने अनासक्त और निर्वैयक्तिक दृष्टि से वस्तु के सौंदर्य को देखना चाहा है। वह प्रिया को यह कहकर पुकारने में गौरव का अनुभव करता है कि 'हे प्रिये, तुम सूर्य से भी बड़ी हो, समुद्र से भी और मेढक से भी।' क्योंकि उसकी दृष्टि में अपनी व्यक्तिगत आसक्ति नहीं है। सूर्य और समुद्र अपने आपमें जितने महान् हैं, मेढक भी अपने आपमें उतना ही महान् सत्य है। हम मेढक को छोटा या कुत्सित इसलिए देखते हैं कि उसे अपनी रुचि-अरुचि और अनुरक्ति-विरक्ति में सान देते हैं। निरासक्त भाव से देखने पर मेढक में कहीं भी लघुता और कुत्सितता नहीं है। आज का पाठक पुराना पाठक नहीं है, जो अपनी रुचि-अरुचि को या अपनी पुरानी परम्परा की रुचि-अरुचि को इस बुद्धिगम्य सौंदर्य के मार्ग में बाधा खड़ी करने को प्रोत्साहित करे। वह पत्नी-भक्त पति की भाँति इस कविता के प्रत्येक शृंगार को प्रशंसा की दृष्टि से देखता है।

भारतवर्ष के पुराने कवि का ढंग कुछ और था। वह अपनी व्यक्तिगत रुचि-अरुचि को भी प्राधान्य

नहीं देता था और न अपने दर्शन-शास्त्र के बहु-विघोषित सिद्धान्त 'आब्रह्म-स्तंब-पर्यन्त' ब्रह्म की अद्वैत सत्ता को ही सौंदर्यानुभूति के मार्ग में घसीट लाता था। वह एक ही चाँद को आज पीयूषवर्षी, कल अंगारवर्षी और परसों चाँदी की थाली कह सकता था, बशर्ते कि आज उसकी कल्पित नायिका स्वाधीनपतिका हो, कल प्रोषितपतिका हो और परसों घर से बाहर चली गई हो। संस्कृत-कवि ने इस काव्य-दृष्टि का परिहास करने के लिए एक संन्यासी के मुँह से कहलवाया था—

येषां वल्लभया समं क्षणमपि क्षिप्रं क्षपा क्षीयते।
तेषां शीतकरः शशी, विरहिणामुल्केव सन्तापकृत्॥
अस्माकं तु न वल्लभा न विरहस्तेनोभयभ्रंशिनाम्।
इन्दू राजति दर्पणाकृतिरसौ नोष्णो न वा शीतलः॥

कवि-सम्मेलन में काव्य-पाठ करने के लिए उतावले कवि अधिकांश इसी प्राचीन युग में ऊँघ रहे हैं जब कि उनका श्रोता मान चुका है कि वह युग बीत गया है। यह भी एक कारण है कि जिससे ये लोग तमाशे की चीज़ हो जाते हैं।

दृष्टिकोण के परिवर्तन के साथ ही साथ कवि ने भाषा और शैली में भी परिवर्तन कर दिया है। अब ऐसी उपमाओं और ऐसे रूपकों का व्यवहार नहीं करना चाहता जिनको सुनते ही पाठक को प्राचीनता की गंध आने लगे। वह पूरे ज़ोर से पाठक के चित्त को झकझोर कर उस पर से पुराने संस्कार झाड़ देना चाहता है यद्यपि उसकी दृष्टि में कमल का फूल और करैले का फल अपने आपमें समान भाव से सत्य और सुन्दर हैं, तथापि वह अपनी प्रियतमा की आँख से कमलपुष्प को तुलनीय नहीं बनायेगा। ऐसा करने से उसके सिद्धान्त में कोई भेद तो नहीं आ जाता, परन्तु उसे इस बात की आशंका रहती है कि पाठक पुराने संस्कारों से बद्ध होने के कारण कहीं उसके नवीन दृष्टिकोण को ग़लत न समझ लें। इसी लिए वह प्रियतमा की आँख से करैले के फल की ही उपमा देगा। फिर भाषा में की उस सारी सलज्ज सुकुमारता को दूर कर देना चाहेगा, जो पाठक को ग़लतफ़हमी में पड़ने का अवसर दे। वह अब ज़्यादा गद्यात्मक भाषा पसंद करने लगा है।

स्वभावतः ही प्रश्न होता है कि आख़िर जो कविता छंद को भी नहीं मानती, अलंकार को भी नहीं मानती, सुर को भी नहीं मानती, उसको हम कविता कहें ही क्यों? उत्तर यह है कि कविता को अनादि काल से जो कार्य रहा है—वह कार्य यह कविता कर रही है। वह अपने पाठक के भीतर भावावेग का संचार करती है, उसे संवेदनशील बनाती है, उसे सोचने-समझने को मजबूर करती है। कविता वही है, पाठक बदल गये हैं। इसी लिए उसने पाठक को वश में करने लायक वेश-भूषा धारण की है। पुराने ज़माने में भी देश-भेद के अनुसार पाठक बदलते थे और कविता भी अपना रूप उसी आवश्यकता के अनुसार बदलती रहती थी। चीन और ईरान की कविताओं का बाह्य रूप निश्चय ही एक जैसा नहीं है। केवल इस एक बात के ही कारण वे दोनों कविता कहलाती हैं कि उनके द्वारा वह कार्य हो रहा है जिसे निर्विवादभाव से कविता का कार्य मान लिया गया है। ज़माना बदल गया है, हमारी आवश्यकतायें बदल गई हैं, हमारी रहन-सहन बदल गई है, हमारा दृष्टि-कोण भी बदल गया है। इसको प्रभावित करने का साधन भी बदलना ही चाहिए। यदि हम इस सहज सत्य को मोहवश स्वीकार नहीं करेंगे तो कविता का भविष्य निश्चित रूप से अच्छा नहीं है। और यदि स्वीकार कर लेंगे तो वह अच्छा हो भी सकता है, क्योंकि तब हमारी काव्य-धारा काल-प्रवाह से पिछड़ी नहीं रहेगी।

बापू के प्रति

लेखक, श्रीयुत सुमित्रानंदन पंत

चरमोन्नत जग में जब कि आज विज्ञान-ज्ञान,
वहु भौतिक साधन, यंत्र यान, वैभव महान;
सेवक हैं विद्युत्-वाष्प शक्ति, धन बल नितांत,
फिर क्यों जग में उत्पीड़न ? जीवन यों अशांत ?
मानव ने पाई देश-काल पर जय निश्चय,
मानव के पास न पर मानव का आज हृदय !
चर्वित उसका विज्ञान-ज्ञान, वह नहीं पचित,
भौतिक-मद से मानव-आत्मा हो गई विजित।
है श्लाघ्य मनुज का भौतिक-संचय का प्रयास,
मानवी भावना का क्या पर उसमें विकास ?
चाहिए विश्व को आज भाव का नवोन्मेष,
मानव-उर में फिर मानवता का हो प्रवेश
बापू ! तुम पर हैं आज लगे जन के ह
तुम खोल नहीं जाओगे मानव के बंधन ?

पाकिस्तान की रूप-रेखा

लेखक, श्रीयुत उमाशंकर

[मुसलमान राजनीतिज्ञों की राजनीति भारत को मुस्लिम और हिन्दू-भारत में बाँट देना चाहती है। इस सम्बन्ध में उनकी तीन स्कीमें अब तक प्रकाश में आ चुकी हैं। लेखक महोदय ने इस रोचक लेख में उन सबका बहुत ही अच्छे ढंग से परिचय दिया है।]

रत अखण्ड देश है। इसके दो भाग नहीं हो सकते। जिस तरह शरीर के दो भाग नहीं किये जा सकते, उसी तरह भारत के दो भाग नहीं किये जा सकते। यह विभक्त हुआ नहीं कि इसके खराब दिन आये। पर देश को बरबाद करने के लिए कुछ सम्प्रदायवादी भारत के दो भाग करने के लिए बहुत ज़ोर लगा रहे हैं। स्कीम पर स्कीम बन रही है। लाहौर में गत वर्ष मुस्लिम लीग की जो बैठक हुई थी उसमें हैदराबाद (दक्षिण) के मिस्टर लतीफ़ को एक योजना तैयार करने का आदेश दिया गया था। उसी आदेश पर लतीफ़ साहब ने पाकिस्तान का खाका खींचा है।

पहले-पहल 'पाकिस्तान' की रूप-रेखा केम्ब्रिज-विश्व-विद्यालय में पढ़नेवाले एक भारतीय मुसलमान युवक ने खींची थी। उसका पाकिस्तान पंजाब, अफ़ग़ानिस्तान, काश्मीर और सिन्ध के प्रथम अक्षरों और बिलोचिस्तान के आख़िरी 'स्तान' लेकर बना था। अर्थात् पंजाब से 'प' लिया, अफ़ग़ानिस्तान से 'अ', काश्मीर से 'क', सिन्ध से 'स' और बिलोचिस्तान से 'स्तान' लिया। इस तरह 'पाकिस्तान' शब्द बन गया। उसके 'पाकिस्तान' की तह में यह भाव खेल रहा था कि भारत के मुसलमान भारत के पाकिस्तान से लेकर योरप के तुर्किस्तान तक एक मुस्लिम राज्य क़ायम करें। परन्तु बहुत दिनों तक किसी ने इस स्कीम पर विशेष ध्यान नहीं दिया। अन्त में, सन् १९३० के मुस्लिम लीग के लखनऊवाले अधिवेशन में उसके सभापति स्वर्गीय सर इक़बाल ने इस योजना का ज़ोरदार शब्दों में समर्थन किया और भारत के मुसलमानों से अपील की कि वे पाकिस्तान को अस्तित्व में लाने की चेष्टा करें। फलतः पाकिस्तान के बनाने की चेष्टा होने लगी। स्वर्गीय फ़ज़ले हुसेन आदि ने सर इक़बाल के साथ सहयोग किया। मुस्लिम देशों के साथ लिखा-पढ़ी हुई, पर भारत के मुसलमानों ने काफ़ी दिलचस्पी नहीं ली। इसका परिणाम हुआ कि वह स्कीम खटाई में पड़ गई।

इधर ब्रिटिश सरकार ने संघ-शासन क़ायम करने की घोषणा करके प्रान्तों को स्वराज्य दे दिया। देश में नई जागृति का संचार हुआ। पर हमारी कांग्रेस ने उस संघ-योजना का विरोध किया और विरोध मुस्लिम लीग ने भी किया, पर दोनों के विरोध में भिन्नता है। कांग्रेस ने संघ-योजना का विरोध राष्ट्रीय विचार से किया। पर मुस्लिम लीग ने मुस्लिम-संस्कृति की रक्षा तथा भारत में अपनी एक स्वतन्त्र सत्ता बनाये रखने के लिए विरोध किया।

प्रस्तावित संघ-विधान में ब्रिटिश भारत के मुसलमानों को ३३ फ़ी सदी जगहें मिली हैं, हालाँ कि मिलनी चाहिए १२ फ़ी सदी जगहें, क्योंकि २१ फ़ी सदी ही उनकी भारत में आबादी है। इस तरह वे संघ-असेम्बली की २५० जगहों में ८० के हक़दार हो गये हैं। पर देशी राज्यों में यह साम्प्रदायिक बँटवारा लागू नहीं है। इसलिए मुसलमान डरते हैं कि उन्हें यहाँ ३३ फ़ी सदी जगहें नहीं मिल सकती हैं, यही कारण है कि वे संघ-योजना का विरोध कर रहे हैं और पृथक् मुस्लिम संघ का स्वप्न देख रहे हैं।

'पृथक् मुस्लिम संघ' अर्थात् 'पाकिस्तान' क़ायम करने के लिए देश के मुसलमानों में काफ़ी आन्दोलन खड़ा हो गया है। पंजाब और दक्षिण-हैदराबाद में उसके संचालन के लिए आफ़िस तक खुल गये हैं। ब्रिटिश सरकार के डर से मुसलमानों ने अपने आफ़िसों के नाम 'पृथक् मुस्लिम संघ आन्दोलनकारी सभा' न रखकर कुछ और ही रक्खे हैं।

हैदराबाद में उनकी जो सभा है उसका नाम है 'मुस्लिम कलचर-सोसाइटी' और पंजाबवाली सभा का नाम है 'मुस्लिम ब्रादरहुड' !

हैदराबादवाली सभा के मन्त्री वही सैयद अब्दुल लतीफ़ साहब हैं जिन्होंने मुस्लिम लीग के आदेश से 'पृथक् मुस्लिम संघ' की योजना तैयार की है। लतीफ़ साहब का कहना है कि हिन्दुस्तान एक राष्ट्र नहीं है। यहाँ विभिन्न जातियों के लोग बसते हैं, उनमें सांस्कृतिक ऐक्य नहीं है। इस्लाम और वैदिक धर्म में मौलिक भिन्नता है। सामाजिक रूप में भी दोनों दो हैं। और देशों में जहाँ इन विषयों का अभाव है, वहाँ एक भाषा ने कुछ हद तक इस समस्या को सुलझा रक्खा है, पर भारतवर्ष में इसकी भी कमी है। यहाँ समान भाषा भी एक नहीं है। ऐसी परिस्थिति में भारत अखण्ड नहीं रह सकता है। इसलिए इसे दो भागों में बाँटना ज़रूरी है। अगर ऐसा नहीं होता है तो मुसलमानों को उन ३८ फ़ी सदी हिन्दुओं के हाथ में अपना जान-माल सौंप देना होगा जो हिन्दुस्तान से इस्लाम को मिटा देना चाहते हैं।

इन्हीं सारी बातों को दृष्टि में रखकर लतीफ़ साहब ने भारतवर्ष को उसकी संस्कृति और धार्मिकता के आधार पर बाँट डाला है। उनकी क़लम ने भारत के १५ टुकड़े कर डाले हैं, जिनमें चार मुसलमानों को दिये गये हैं और बाक़ी हिन्दुओं को। पहला मुस्लिम मण्डल 'उत्तरी-पश्चिमी मण्डल' है। इसमें पंजाब, सीमाप्रान्त, काश्मीर, खैरपुर, बहावलपुर, सिन्ध एवं बिलोचिस्तान सम्मिलित हैं। उनकी राय है कि इसके अन्तर्गत जो सिख तथा हिन्दू रियासतें हैं उनको वहाँ से खदेड़कर काश्मीर की पूर्वी सीमा की ओर तथा काँगड़ा के हिन्दू इलाक़े की ओर भेज दिया जाय तथा जम्मू और काश्मीर के महाराज को भी कुछ मुआवज़ा देकर उनका राज्य मुस्लिम भाग में मिला देना चाहिए। दूसरा मण्डल 'उत्तरी-पूर्वी विभाग' है। इसमें आसाम और बंगाल सम्मिलित हैं। वहाँ के हिन्दुओं को बिहार की ओर चला आना पड़ेगा और बिहारी मुसलमानों को बंगाल और आसाम की ओर आना पड़ेगा। तीसरे मण्डल का नाम है 'देहली और लखनऊ विभाग'। इस विभाग में संयुक्त-प्रान्त और बिहार के मुसलमानों को स्थान मिलेगा। इस विभाग में जितने हिन्दू-तीर्थस्थान हैं जैसे—मथुरा, हरिद्वार आदि उन पर हिन्दुओं का अधिकार रहेगा। वहाँ चाहें तो हिन्दू रह भी सकते हैं। वहाँ उन्हें किसी तरह का कष्ट नहीं होगा। चौथा विभाग है 'दक्षिणी विभाग।' इसमें हैदराबाद और मदरास सम्मिलित हैं। इन चारों मण्डलों के अलावा उस स्कीम में यह प्रबन्ध किया गया है कि राजपूताना, गुजरात, मालवा तथा अन्य देशी राज्यों के रहनेवाले मुसलमान वहाँ से अपना बोरिया-बँधना समेट-कर मुसलमानी देशी राज्यों में आकर रहेंगे और उन देशी राज्यों से हिन्दू निकालकर मालवा, गुजरात और राजपूताना में रक्खे जायँगे। इन मण्डलों के घेरे के बाद देश में जो स्थान बचता है, वहाँ हिन्दू रहेंगे। भाषा के अनुसार उनका विभाजन होगा। बँगला, हिन्दी, उड़िया, तेलगू, तामिल, मरहठी, गुजराती, कनारी, मलयालम आदि भाषाओं के अनुसार हिन्दूमण्डल के कतिपय विभाग होंगे। हरिजनों को इस योजना में बहुत सुन्दर स्थान लतीफ़ साहब ने दिया है। उन्हें कहा गया है कि वे जहाँ चाहें रह सकते हैं। हिन्दूमण्डल तो उनका मण्डल रहेगा ही, मुस्लिम मण्डल में भी उन्हें उचित स्थान दिया जायगा। इसी प्रकार बौद्धों, ईसाइयों, जैनों और पारसियों को अधिकार दे दिया गया है कि वे जहाँ चाहें रह सकते हैं। मुस्लिम मण्डल में उनके धर्म, उनकी भाषा, उनके साहित्य तथा उनकी संस्कृति पर किसी तरह का आघात नहीं पड़ेगा। बेचारे आर्यसमाजी कहाँ रहेंगे, इसका इस योजना में कोई ज़िक्र नहीं है।

उपर्युक्त योजना बनी तो मुस्लिम लीग के ही आदेश से, पर अभी तक लीग ने उसे स्वीकार नहीं किया है। हाँ, सिन्ध की प्रान्तीय लीग ने अपने कराँची के अधिवेशन में उसे स्वीकार कर लिया है। मुस्लिम लीग ने इस योजना पर विचार करने के लिए एक समिति बनाई है, जिसमें मिस्टर जिन्ना, सर सिकन्दरहयातखाँ, मिस्टर अब्दुल अज़ीज़, ख्वाजा सर नाज़िमुद्दीन, सर अब्दुल्ला हारून, सरदार औरंगज़ेबखाँ तथा नवाबज़ादा लियाक़तअलीखाँ हैं। देखना है कि आठ करोड़ मुसलमानों के ये स्वयं बने भाग्य-निर्माता क्या करते हैं।

लतीफ़ साहब की योजना की आलोचना और प्रत्यालोचना खूब हो रही है। भारत के सभी राष्ट्रीय पत्रों ने उसकी निन्दा की है। कितने ही मुसलमानों ने भी उसकी कड़ी आलोचना की है। उसकी आलोचना करते हुए सिन्ध के एक मुसलमान सज्जन ने लिखा था कि ऐसी हरकतें केवल इस देश के लिए ही खतरनाक नहीं हैं, वरन मुसलमानी संस्कृति के लिए भी खराब है! इन मुस्लिम मण्डलों में भी किसी तरह इस्लामी संस्कृति खतरे से खाली नहीं रहेगी, क्योंकि वह चारों तरफ़ शत्रुओं से घिरी रहेगी। लीग के अन्दर भी कुछ मुसलमान हैं, जो इस स्कीम की खराबियों को महसूस कर रहे हैं। उनका कहना है कि पश्चिमोत्तर-मण्डल तथा उत्तरी-पूर्वी विभाग हिन्दुओं से घिरे रहेंगे। इसलिए ये दोनों मण्डल अपने को खतरे से बाहर नहीं समझ सकते हैं। दक्षिण-मण्डल की हालत तो बहुत ही शोचनीय होगी। यह मण्डल अपने को बहुत दिनों तक स्वतंत्र नहीं रख सकेगा। जिस तरह मराठों ने १८वीं सदी में निज़ाम को तंग किया था उसी तरह दक्षिण-मण्डल के मुसलमानों को भी मराठे तंग करेंगे। उस समय निज़ाम को बचा रखने के लिए ईस्टइंडिया कम्पनी ने मदद दी थी। परन्तु आज तो ऐसी कोई भी शक्ति नहीं, जो उन्हें आफ़त से बचा सकेगी। पश्चिम में देहली-लखनऊ-मण्डल है और पूर्व में बंगाल और आसाम-मण्डल है। इन दोनों मण्डलों को भी खतरे से बाहर नहीं समझना चाहिए। जिस तरह मराठों के कारण दक्षिण-मण्डल खतरे में रहेगा, उसी तरह राजपूताने में राजपूतों, सिखों और गोरखों तथा नेपाल में नेपालियों के रहने के कारण ये मण्डल भी अपनी स्वाधीनता बहुत दिनों तक क़ायम नहीं रख सकेंगे। बंगाल और आसाम-मण्डल भी लड़ाकू बिहारियों तथा खूनी नेपालियों के द्वारा सताये जायँगे। इन्हीं कारणों से वे लतीफ़ साहब की योजना को पसन्द नहीं करते हैं और उसके विरोध में आवाज उठा रहे हैं तथा अपनी दूसरी योजना पेश कर रहे हैं।

कलकत्ता के एक मौलवी साहब ने एक नई योजना पेश की है। मिस्टर लतीफ़ का दक्षिण-मण्डल उनकी समझ में मुसलमानों के लिए लाभदायक नहीं होगा। वह अन्य मुस्लिम मण्डलों से दूर रहने के कारण खतरे में रहेगा। इसलिए कलकतिया मौलाना साहब ने यह सोचा है कि बिहार और संयुक्तप्रान्त के हिन्दुओं को निकालकर सम्पूर्ण उत्तरी भारत में मुसलमान ही रक्खे जायँ। काश्मीर के महाराज को वे निज़ाम का राज्य दे देने को तैयार हैं। उनकी राय है कि हैदराबाद के निज़ाम और काश्मीर के महाराज आपस में राज्य-बदलीअल कर लें! आप भारत के ११ प्रान्तों में ७ प्रान्त मुसलमानों के लिए चाहते हैं। वे प्रान्त ये हैं—सिन्ध, सीमान्त, पञ्जाब, संयुक्तप्रान्त, बिहार, बङ्गाल और आसाम। इस तरह कलकत्ता से लेकर क्वेटा तक और हिमालय से लेकर विन्ध्याचल तक मौलवी साहब का 'पाकिस्तान' फैला रहेगा!

इस योजना को व्यावहारिक रूप देने पर १२,२०,००,००० हिन्दुओं को सिन्ध, सीमान्त, पञ्जाब, संयुक्तप्रान्त, बिहार, बङ्गाल और आसाम छोड़कर मदरास, बम्बई, मध्यप्रान्त और उड़ीसा के दक्षिणी भाग में जाना पड़ेगा और उन प्रान्तों से ५७,००,००० मुसलमानों को बुलाकर सिन्ध, सीमान्त, पञ्जाब, संयुक्त-प्रान्त, बिहार, बङ्गाल और आसाम में आबाद किया जायगा। पर इस योजना में सबसे बड़ी कठिनता यह है कि एक तरफ़ सघन आबादी हो जाती है और दूसरी तरफ विरल। बम्बई, मदरास, दक्षिण-उड़ीसा और मध्यप्रान्त की आबादी ८ करोड़ ६० लाख है, जिसमें मुसलमान ५७ लाख के लगभग हैं। अगर ५७ लाख मनुष्य वहाँ से निकाल दिये जायँ तो ८ करोड़ ३ लाख रह जायँगे। मौलाना साहब चाहते हैं कि ११ करोड़ २० लाख उत्तरी भारत के हिन्दू दक्षिणी भारत भेज दिये जायँ। क्या कोई भी भला आदमी यह अनुमान लगा सकता है कि जिस प्रदेश का क्षेत्रफल ३,३६,४८५ वर्गमील है, वहाँ १९ करोड़ २० लाख आदमी अँट भी सकते हैं? अगर ऐसा हुआ तो आबादी इतनी घनी हो जायगी कि उस भाग के लोग भूखों मरने लगेंगे। वहाँ तो हर वर्गमील मे ५७१ आदमी रहेंगे और उत्तरी भारत में १३३ आदमी हर वर्गमील में रहेंगे।

मौलाना साहब ने केवल मुसलमानों के लाभ के लिए ही यह योजना बनाई है। आपकी योजना से

साफ़ पता चलता है कि आपको हिन्दुओं का कुछ भी खयाल नहीं है। कैसी मज़ेदार बात है कि ११ करोड़ २० लाख हिन्दुओं को खदेड़ कर वह स्थान ५७ लाख मुसलमानों को दे दिया जाय! बाल्फ़ोर-कमिटी ने क्या पैलिस्टाइन का विभाजन इससे भी खतरनाक किया है? फिर भी वही मुसलमान जब स्वयं ऐसा चाहते हैं तब क्यों हल्ला मचा रक्खा है? क्या उन्होंने कभी खयाल किया है कि उत्तरी भारत तथा दक्षिणी भारत के लोगों की बोली में बहुत फ़र्क़ है? अभी मदरास की सरकार ने अपने प्रान्त में हिन्दुस्तानी-भाषा जारी की थी, पर उसका वहाँ विरोध हो रहा है और काफ़ी लोग जेल जा चुके हैं। हिन्दुओं के जितने तीर्थ-स्थान हैं, वे प्रायः उत्तरी भारत में ही हैं। हिन्दुओं के लिए गंगा स्वर्ग है। क्या मौलाना साहब के कहने से वे अपने तीर्थतुल्य वासस्थान छोड़ देंगे?

इधर पंजाब के प्रधान मंत्री माननीय सर सिकन्दर हयात ख़ाँ ने एक नई संघ-योजना पेश की है। उन्होंने भारत को सात प्रान्तों में विभक्त किया है। उनके सातों प्रान्त ये हैं—(१) आसाम, बंगाल तथा बंगाल की रियासतें और सिक्कम, (२) बिहार, उड़ीसा, बंगाल के दो-तीन पश्चिमी ज़िले, (३) संयुक्त-प्रान्त और उसकी रियासतें, (४) मदरास, ट्रावनकोर, मदरास की रियासतें और कुर्ग (५) बम्बई, हैदराबाद, पश्चिमी भारत की रियासतें, मैसूर और मध्य-प्रान्त की रियासतें, (६) राजपूताने की रियासतें (बीकानेर और जैसलमेर को छोड़ कर), ग्वालियर, मध्यभारत और बरार (७) पंजाब, सिन्ध, सीमान्त, काश्मीर, पंजाब की रियासतें, बिलोचिस्तान, बीकानेर और जैसलमेर।

सर सिकन्दर साहब की इस स्कीम के पेश होने के पहले भारत के ११ प्रान्तों में कांग्रेस का शासन था। इसलिए कांग्रेस की शक्ति को कम करने के लिए उन्हें सबसे पहले विचार करना पड़ा। उनकी इस स्कीम से आसाम और सीमान्त से कांग्रेस की जड़ें उखाड़कर वहाँ मुस्लिम लीग की जड़ें गाड़ने का विचार किया गया है। केन्द्रीय शासन में तो और भी गड़बड़झाला है। ब्रिटिश इण्डिया में मुसलमानों को ८३ सीटें मिलेंगी और भारतीय रियासतों की ११५ सीटों में से ४२ सीटें मिलेंगी। इन दोनों को मिलाकर केन्द्र में मुसलमानों की संख्या १२५ हो जायगी। जहाँ मुसलमानों को ८२ सीटें मिली हैं, वहाँ सिकन्दरी योजना से उन्हें १२५ सीटें मिलती हैं।

मैं यह मानता हूँ कि सिकन्दरी योजना पाकिस्तान की रूप-रेखा नहीं है, पर पाकिस्तान की रूप-रेखा के आधार पर उसकी नींव अवश्य रक्खी गई है। अपनी लीडरी क़ायम करने के अतिरिक्त जिन्हें राष्ट्र का कुछ भी खयाल है वे तो ज़रूर कहेंगे कि भारत अखण्ड है और उसके दो भाग नहीं हो सकते। और जो लोग पाकिस्तान का स्वप्न देखते हैं वे अराष्ट्रीय हैं, उन्हें न देश का कुछ खयाल है, न मुसलमानों का ही कुछ खयाल है। भगवान् ऐसे लोगों को सुबुद्धि दे, हमारा तो यही कहना है।

करामात

लेखक, पण्डित गोविन्दवल्लभ पन्त

दान के उत्ताप से बचने के लिए कमिश्नर साहब चार महीने की छुट्टी लेकर पहाड़ पर विश्राम कर रहे थे। साहब सपत्नीक थे। बाल-बच्चा कोई न था। बैरा, खानसामा, साईस, माली सबको साथ ही ले गये थे।

बैरा और खानसामा पंजाबी थे, साईस तथा माली पुरबिये। दोनों की दोनों से नहीं पटती थी। विशेषकर माली-खानसामा में तो ऐसा मेल था जैसा तेल और पानी में, ऐसी मित्रता थी जैसी मैल और साबुन में।

साईस को बँगले के अन्दर जाने की कोई आवश्यकता थी नहीं। हाँ, माली अवश्य फूलदानों के फूल बदलने और कभी-कभी कोई चिट्ठी-पत्री देने-लेने के लिए भीतर जाता था।

बँगले के अन्दर जो भी टूट-फूट, खाया-खोया होता, बैरा और खानसामा उसमें बार-बार माली को लपेट लेते थे। उस दिन गोल कमरे के नये फूलदान के टुकड़े-टुकड़े हो गये। माली कहता था, कुत्ते या बिल्ली ने तोड़ा है। पर खानसामा ने साहब को विश्वास दिला दिया कि वह माली की ही करतूत है। साहब ने एक तो अपराध करने और उस पर झूठ बोलने के लिए माली पर दो रुपये जुर्माना कर दिया।

रात को क्वार्टर में माली और खानसामा इसी बात पर भिड़ गये। माली ने उस पर तानकर ऐसी खुरपी मारी कि अगर खानसामा अपना सिर न नवा देता तो वह उसकी खोपड़ी पर लाल दस्तखत कर देती।

बैरा, साईस तथा एक-दो और भलेमानसों ने बीच-बचाव कर दोनों को शान्त कर दिया। माली ने जोर-जोर से शपथ लेकर कहा—"आज से बँगले के भीतर कभी पैर न रक्खूँगा।"

दूसरे ने मन-ही-मन प्रतिज्ञा करके कहा—"अगर बँगले के बाहर भी तेरे पैर रहने दिये तो देखना। अगर लोटा-कम्बल बिकवाकर तुझे घर न भेजा तो खानसामा नहीं।"

मन्दिर के अहाते में एक साधु महाराज ने आकर अपना आसन जमाया था। वे माँगते किसी से कुछ न थे, धातु का स्पर्श भी नहीं करते थे, तो भी उनके आसन पर फल-फूल, मेवे-मिष्ठान्न का ढेर जमा हो जाता था। आठों पहर धूनी चैतन्य रहती थी और सुबह-शाम महात्मा जी के चारों ओर भक्तों का अधिक जमघट लगा रहता था।

माली भी महात्मा जी के भक्तों में से था। उसकी उनसे तीन-चार साल की पुरानी जान-पहचान थी। उसका दो साल का जो नन्हा बालक है उसे माली उन्हीं के आशीर्वाद का फल बताता है।

दिन में एक बार महात्मा जी के दर्शन को जाना माली का नित्य का नियम था। उसकी उनमें अविचल भक्ति थी।

सन्ध्या के तीन बजनेवाले थे। कमिश्नर साहब उपवन में टहल रहे थे। एकाएक एक क्यारी के पास आकर वे रुक गये और उन्होंने पुकारा—"माली!"

माली दोपहर की छुट्टी से अभी लौटा न था। कदाचित् महात्मा जी की ही सेवा में गया था।

साहब ने कुछ और उच्च स्वर में कहा—"माली!"

खानसामा को अवसर मिला। वह दौड़ता हुआ उनके निकट आया और अदब से बोला—"हुज़ूर, माली का कहीं पता नहीं है।"

"बड़ा लापरवाह हो गया है यह। देखो, इस क्यारी के पौधे मुरझा रहे हैं। मालूम नहीं, कब से इन्हें पानी की बूँद नहीं मिली है।"

"हुज़ूर ने बिलकुल सच कहा है। मन्दिर में एक लम्पट साधु आया है। माली रोज़ वहीं पहुँचता है, चरस-गाँजे की दम लगाता है। फिर उसे तन-बदन की सुध नहीं रहती। फूल-पत्ती का क्या ध्यान रहेगा! मालिक का नमक फूट-फूटकर निकलता है।"

इसी समय समीप के नल में पानी भरने की आवाज़ ने दोनों का ध्यान खींच लिया। माली आकर फुहारे में पानी भरने लगा था।

साहब ने आवाज़ दी—"माली!"

माली नल बन्दकर साहब के निकट दौड़ता हुआ

मेम साहब ने गम्भीर होकर उत्तर दिया—"यदि साधु सचमुच ही करामाती निकला तो?"

साहब ने उपेक्षा के हास्य में कहा—"यह असम्भव के बाद ही सम्भव है।"

कुछ देर के बाद जब साईस हाँड़ी लेकर आया तब साहब ने पूछा—"इतनी देर क्यों?"

"बाज़ार जाना पड़ा सरकार! नई हाँड़ी यहाँ कहीं नहीं मिली।"—कहते हुए साईस ने लीद की भरी हाँड़ी साहब को दिखाकर निर्दिष्ट स्थान में रख दी।

कमिश्नर साहब बोले—"जो कोई पूछे तो यही बताना कि मिठाई लाया था। जाओ।"

साईस जाने लगा। खानसामा ने आकर साहब और मेम से चाय पी लेने की प्रार्थना की।

साईस ने जाते-जाते लौटकर देखा, साहब चाय पीने के लिए बँगले के अन्दर चले गये हैं।

चाय पीकर वे मेम साहब के साथ बाहर जाने के लिए तैयार होकर बरामदे में आये। आते ही उन्हें फाटक पर प्रवेश करता हुआ माली दिखाई दिया।

"चलो माली, महात्मा जी के पास। हम तैयार हैं। उनकी भेंट वह रक्खी है।"

मेम साहब ने रूमाल में अपने विस्फारित अधरों को छिपा लिया।

माली हाँड़ी को उठाकर दम्पति की परछाईं बचा उनके साथ-साथ चला। साईस ओट से ध्यान-पूर्वक यह सब देख रहा था। उसके मन में आश्चर्य और भय दोनों मिश्रित थे।

महात्मा जी के आसन की ओर कमिश्नर साहब और उनकी मेम को बढ़ते हुए देखकर भक्तगणों में हलचल मच गई। उन्होंने इधर-उधर हटकर उनके लिए मार्ग साफ़ कर दिया। आगे-आगे हाँड़ी लिये हुए माली था।

दौड़कर दो भक्त एक टूटी-सी बेंच उठा लाये और उसे महात्मा जी के सामने धूनी से कुछ दूरी पर रख दिया।

माली ने महात्मा जी के चरण छूकर कहा—"कमिश्नर साहब आपके दर्शन को आये हैं।" फिर उसने साहब से कहा—"महात्मा जी को हाथ जोड़िए सरकार!"

महात्मा जी ने साहब पर दृष्टि-निक्षेप किया। साहब ने एक हाथ उठाकर उनका अभिवादन किया।

महात्मा जी प्रसन्न मुद्रा से बोले—"आनन्द से हो बच्चा। बेंच पर बैठ जाओ।"

मेम साहब ने महात्मा जी का सम्बोधन सुना और गर्दन नीची करके मुसकाने लगीं। वे दोनों बेंच पर बैठे नहीं।

माली ने भेंट की हाँड़ी उठाकर महात्मा जी के सामने रख दी और कहा—"यह साहब की ओर से है।"

साहब ने इसी समय माली से यह सङ्केत किया कि हाँड़ी महात्मा जी के पास से उठा लो, पर वह नहीं समझा और साहब के निकट जाकर बोला—"क्या आज्ञा है?"

"हमने हँसी की थी, यू फ़ूल!" साहब ने दोनों भौंहें मिलाते हुए कहा।

महात्मा जी का एक भक्त हाँड़ी का आवरण हटाने को तैयार हुआ और साहब सोच ही रहे थे कि कौन-सा वाक्य कहा जायगा।

हाँड़ी खुली!

साहब और मेम आँखें फाड़-फाड़कर उधर देख रहे थे।

स्वच्छ और सुवासित मलाई के लड्डुओं से भरी हुई हाँड़ी दृष्टिगत हुई!

साहब ने आँखें मल-मलकर एड़ी उठाकर देखा, मलाई के ही लड्डू थे। मन-ही-मन बोले—"अवश्य कोई चालाकी है, हाथ की सफ़ाई है।"

मेम साहब ने घबराकर क्षीण स्वर में कहा—"मुझे सँभालो। सिर में चक्कर आ रहा है।"

साहब के सँभालते-सँभालते मेम साहब मूर्च्छित हो गईं। घबराकर उन्होंने पुकारा—"डाक्टर, डाक्टर, डाँड़ी, डाँड़ी!"

कुछ आदमी भिन्न-भिन्न दिशाओं में निकटतम डाक्टर की खोज में दौड़ पड़े। पास के ही नाचघर में कुछ डाँड़ियाँ जमा थीं। माली पलक मारते जाकर एक डाँड़ी और कुलियों को खींच लाया।

मेम डाँड़ी में अस्पताल को भेजी गईं। साहब साथ-साथ चले। रास्ते में आते हुए डाक्टर मिले। उन्होंने परीक्षा करके कहा—"एक हलका मानसिक आघात पहुँचा है। चिन्ता की कोई बात नहीं। हृदय की दुर्बलता है।"

महात्मा जी उसी रात आसन-बाघम्बर लपेट, चिमटा,

कमण्डल सँभाल न जाने किस ओर चल दिये। कुछ लोग कहते हैं, बवाल से बचने के लिए आसन सूना कर गये। कुछ का कहना है तीन दिन पहले से ही उन्होंने जाना निश्चित कर रक्खा था।

मेम साहब दूसरे ही दिन अच्छी हो गई। साहब ने करामात की बाबत माली से कुछ नहीं कहा। साईस भी अच्छी तरह उस रहस्य को मालिक के भय से छिपाये ही रहा।

माली पर बात उस दिन खुली, जब साईस के घर से उसके पिता के मरने का समाचार आया। घर की देख-रेख के लिए कोई और न होने के कारण उसे नौकरी से पूरी छुट्टी लेनी पड़ी। माली कुछ दूर तक साईस को पहुँचाने गया तब उसने उस रहस्य का पर्दा हटाते हुए कहा—"जब साहब चाय पी रहे थे तब मैंने महात्मा जी को अपमान और मालिक को अभिशाप से बचाने के लिए लीद की हाँडी लड्डुओं की हाँडी से बदल दी थी।"

"तुम न भी बदलते तो महात्मा जी अपनी करामात से बदल लेते।"

मौन-प्रणय

लेखक, श्रीयुत सोहनलाल द्विवेदी, एम० ए०

कैसे कह दूँ, मेरे उदार!
मेरा मन करता तुम्हें प्यार!

क्या मोल रहेगा पाटल का, जब निकल चली सौरभ अपार?

पलकों से अमृत पीता हूँ,
पल में युग-जीवन जीता हूँ;
खुल जाय न अपना भेद कहीं,
इससे रखता हूँ बंद द्वार।

मेरे स्वप्नों का चित्र-रंग,
होगा फिर तुमको मधुर व्यंग;
मिज़राव पहन मेरी त्रुटि का,
छेड़ोगे मेरा उर-सितार।

राका को अमा बनाओगे,
फिर, तुम शशांक छिप जाओगे;
अधरों की सरल हँसी फिर तो,
होगी बंकिम भ्रू का प्रसार।

मेरी साधों का मद पीकर,
उन्मत्त बनोगे तुम सुन्दर;
मेरी छवि, मेरा मद लेकर,
रूठोगे मुझसे बार-बार।

चिर मौन-प्रणय होगा अपना
जाग्रत न करूँगा यह सपना;
तुम समझ सकोगे कभी नहीं, मेरे मन का यह मधुर भार।
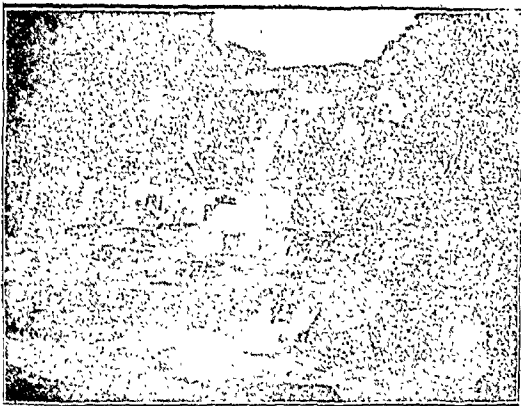
[जोना-प्रपात का एक दृश्य।]

[जोना प्रपात के सामने नदी का दृश्य।]

आगामी कांग्रेस रामगढ़ में

लेखक, प्रोफ़ेसर फूलदेवसहाय वर्मा

बिहार-प्रान्तीय कांग्रेस-कमिटी ने निश्चय किया है कि बिहार में होनेवाला कांग्रेस का अगला अधिवेशन 'रामगढ़' नामक गाँव में हो। अतएव कांग्रेस-अधिवेशन के अवसर पर यहाँ भारत का विशाल लोकसमूह एकत्र होगा। और छोटानागपुर का पठार भारत के दर्शनीय स्थानों में एक गिना जाता है, अतएव यहाँ उसका आवश्यक परिचय दिया गया है।

हज़ारीबाग़ से राँची को जो सड़क गई है उसी पर हज़ारीबाग़ से प्रायः ३० मील की दूरी पर दामोदर नदी के तट पर उपर्युक्त रामगढ़ बसा हुआ है। एक समय यही रामगढ़ वहाँ के राजाओं की राजधानी था। उनके क़िले का खँडहर अब भी विद्यमान है। सन् १७४० में हिदायतअलीख़ाँ के अधीन मुसलमानों ने रामगढ़ पर आक्रमण कर उसे अधिकार में कर लिया, पर सारे ज़िले को वे अपने अधीन न कर सके। मराठों के आक्रमण को रोकने के लिए उन्हें वहाँ से चला जाना पड़ा। सन् १७७२ में लेफ़्टिनेंट गोडर्ड के अधीन ब्रिटिश सैनिकों ने रामगढ़ पर क़ब्ज़ा किया और रामगढ़ के अधीश मुकुन्दसिंह को हटाकर तेजसिंह को वहाँ का अधिपति बनाया। मुकुन्दसिंह भाग गये और शीघ्र ही वे मर गये। उनका लड़का भी मर गया। तेजसिंह ने रामगढ़ को छोड़कर इचाक में अपना निवासस्थान बनाया। तब से रामगढ़ की दशा बिगड़ने लगी और आज वह जीर्णशीर्णावस्था में पड़ा हुआ है।

रामगढ़ हज़ारीबाग़-ज़िले में है। हज़ारीबाग़ पहले एक गाँव-मात्र था। फ़ौज के कलकत्ते से बनारस जाने के रास्ते में यह गाँव पड़ता था। सन् १७८० में 'रामगढ़ बैटेलियन' के लिए यह स्थान चुना गया और सन् १८३४ में ज़िले के शासन का केन्द्र बना। यह नगर छोटानागपुर पठार पर बसा हुआ है। यहाँ के अधिकांश अधिवासी मगही बोली बोलते हैं। दक्षिण-पूर्व के भाग की बोली कुरमाली है। ग्रियर्सन साहब के मतानुसार कुरमाली कुछ बंगाली मिली हुई हिन्दी है। यहाँ की संताल जाति मुण्डारी बोलती है। इस ज़िले में कुछ ओराँव भी हैं, पर ये अधिकांश मगही बोलते हैं। कुछ थोड़े-से ऐसे भी ओराँव हैं जो अपनी द्राविड़-भाषा बोलते हैं। इस ज़िले के अधिकांश अधिवासी हिन्दू हैं। ईसाई पादरियों ने संताल, मुण्डा और ओराँव जातियों में लाखों को ईसाई बनाया है। डबलिन-विश्वविद्यालय के कुछ अविवाहित ग्रेजुएट बाइबिल के प्रचार के लिए केवल २००) वार्षिक वेतन पर वहाँ से भारत आये और सन्

[श्यामेश्वर महादेव का मन्दिर ।]

तब से इसका प्रबन्ध राँची के डिप्टी कमिश्नर के द्वारा होता है। आषाढ़ में रथ-यात्रा के अवसर पर यहाँ एक बहुत बड़ा मेला लगता है, जिसमें लाखों मनुष्य इकट्ठा होते हैं। इस अवसर पर काठ का एक बड़ा रथ पत्र, पुष्पों और झंडों से सुशोभित हो प्रधान मन्दिर से खींचा जाकर प्रायः २००, ३०० गज की दूरी पर एक दूसरी छोटी चट्टान पर जाता है और वहाँ से ठीक एक सप्ताह बाद 'उल्टा रथ' प्रधान मन्दिर को लौटता है।

छोटानागपुर में हिन्दू, मुसलमान, क्रिस्तान, संताल, मुण्डा और ओराँव नाम की जातियाँ बसती हैं। अँगरेज शासकों ने जो पुस्तकें लिखी हैं उनमें उन लोगों ने यह सिद्ध करने की कोशिश की है कि छोटानागपुर के आदि-वासी संताल, मुण्डा और ओराँव हैं। ईसाई मिशनरियों ने भी इस भाव के फैलाने का काफ़ी प्रयत्न किया है और वे आज भी इस प्रयत्न में लगे हुए हैं। इसका परिणाम यह हुआ है कि कुछ मुण्डा और ओराँव ईसाइयों ने भी उनके सुर में सुर मिलाकर यह आवाज़ उठाई है कि छोटानागपुर उनका है और वे ही उसके आदिवासी हैं। आजकल इस आन्दोलन के संचालक श्रीजयपालसिंह नाम के एक व्यक्ति हैं, जिन्होंने आक्सफ़ोर्ड में शिक्षा पाई है। इस आन्दोलन को दबाने के लिए अधिक समझदार हिन्दू-धर्मावलम्बी मुण्डा और ओराँव लोग भी आगे आये हैं। इतिहास के अध्ययन से यह पता लगता है कि बहुत प्राचीन काल से हिन्दू यहाँ आकर बस गये हैं। मुण्डा और ओराँव लोगों का दावा बिलकुल निराधार है।

मुण्डा और ओराँव छोटानागपुर में कब आये, इसका कोई प्रमाण नहीं मिलता। पर यह स्पष्टतया ज्ञात होता है कि मुण्डा लोग पहले आये और जहाँ आज पाये जाते हैं, वहाँ बस गये। इनके पूर्वज सोन नदी को पार कर छोटानागपुर में आये और पलामू, हज़ारीबाग़ और राँची के ज़िलों में बस गये। संताल लोग दामोदर नदी को पार कर हज़ारीबाग़ और उसी नदी के तट पर मानभूम और संताल परगने के ज़िले में बस गये। मुण्डा लोगों ने छोटा-नागपुर के घने जंगलों में ही रहना अधिक पसन्द किया। ओराँव लोगों की किंवदन्तियों से पता लगता है कि वे लोग रोहतासगढ़ से किसी प्रबल-जाति—सम्भवतः खरवारों से भगाये जाकर इधर आ गये और दो भागों में बँट गये। एक भाग गंगा के किनारे किनारे जाते हुए राजमहल की पहाड़ियों में बस गया, दूसरा भाग उत्तर में कोल नदी के तट होते हुए पलामू और राँची के ज़िलों में जाकर बस गया। वहाँ मुण्डा लोग पहले से ही मौजूद थे। उन्होंने उनका स्वागत किया। जो गाँव मुण्डों के अधिकार में थे, धीरे धीरे वे ओराँवों के हाथ आ गये। अब भी अनेक ओराँव गाँवों के पुरोहित मुण्डा लोग ही हैं।

आज-कल छोटानागपुर के सबसे बड़े ज़मींदार राँची के रहनेवाले छोटानागपुर के महाराज हैं। ये नागवंशी राजा हैं। पूरे हिन्दू हैं। इनका विवाह आदि भी हिन्दू घरानों में क्षत्रियों में होता है। इनके पूर्वजों ने बहुत-से ब्राह्मणों और क्षत्रियों और अन्य हिन्दुओं को छोटानागपुर में बुलाया था। शेरशाह के ज़माने में यहाँ के राजा पर मुसलमानों

[राँची के तालाब से मुरादबाद पहाड़ी का दृश्य।]
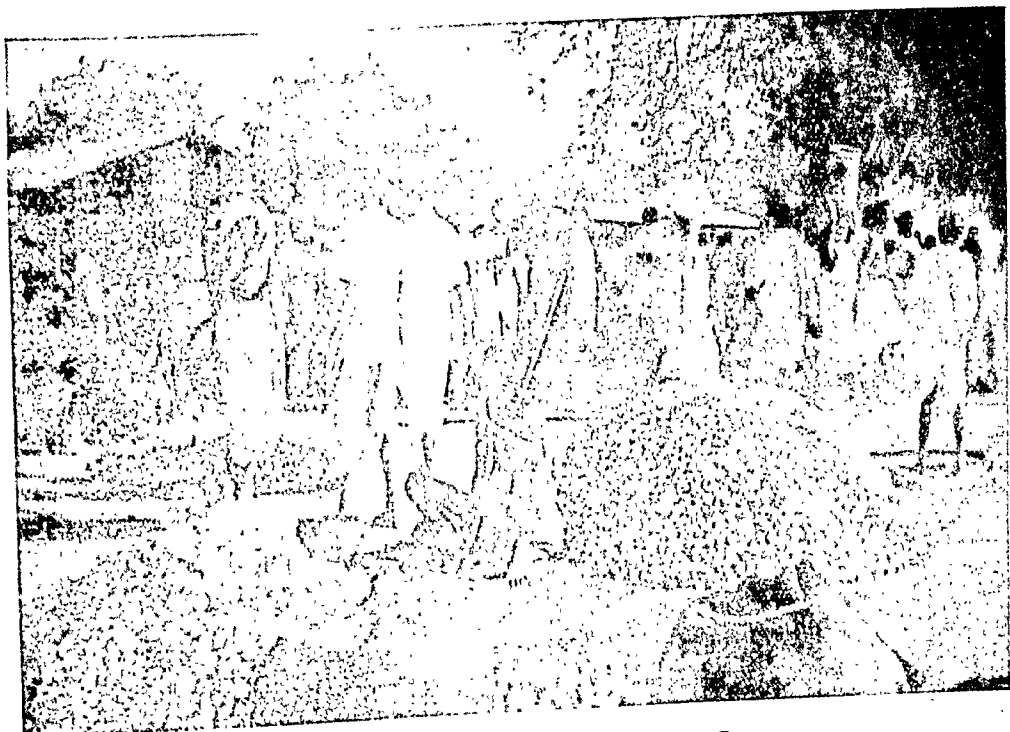
[छोटानागपुर का एक रेशम-कोयों का बाज़ार।]

[छोटानागपुर की रस्सी बनाने वाली स्त्रियाँ।]

[छोटानागपुर के संथाल लोग बाज़ार को जा रहे हैं।]

ब से अब तक कोई विद्रोह वहाँ नहीं हुआ है। इस बीच ाक्षा का वहाँ काफ़ी प्रचार हुआ है। लाखों मुण्डा, ओराँव ौर संताल क्रिस्तान हो गये हैं। लाखों हिन्दू हैं। और ानेक अपने प्राचीन धर्म को ही अभी मानते हैं।

छोटानागपुर में अनेक बोलियाँ बोली जाती हैं। र वहाँ की प्रधान भाषायें हिन्दी के रूपान्तर—नागपुरी, ोजपुरिया, शुद्ध मगही और पंचपरगनिया मगही हैं। ाहाँ के सभी निवासी इन बोलियों को बोल और समझ ाकते हैं। यहाँ की भोजपुरिया बोली पर मगही और छत्तीसगढ़ी का प्रभाव पड़ा है। इस बोली को मुण्डा ोग 'पिक्कु काजी' अर्थात् आर्यों की भाषा कहते हैं। कुछ लोग बंगाली का रूपान्तर 'सराकी' बोली बोलते हैं और कुछ लोग मैथिली का रूपान्तर 'छीका-छीकी' बोली बोलते हैं। यहाँ की जंगली जातियाँ जो बोली बोलती हैं उसे विद्वानों ने दो वर्गों में विभक्त किया है। एक मुण्डा-जाति की भाषा और दूसरी द्राविड़ों की भाषा। मुण्डा-जाति की भाषा में मुण्डारी, संताली, तूरी, असुरी और खरिया बोलियाँ हैं। प्रायः ५ लाख लोग मुण्डारी बोलते हैं। प्रायः ९४ प्रतिशत मुण्डा इस बोली को बोलते हैं। कुछ ओराँव भी मुण्डारी बोलते हैं। मुण्डारी का व्याकरण पादरी हॉफ़मन ने लिखा है। तूरी बोली मुण्डारी से बहुत मिलती-जुलती है। तूरी, असुरी और खरिया बोलियाँ कुछ हज़ार व्यक्तियों-द्वारा ही बोली जाती हैं। ये बोलियाँ धीरे धीरे लुप्त हो रही हैं।

संताली कई लाख लोगों-द्वारा बोली जाती है। यह भी मुण्डा-जाति की बोली है, पर आर्य-भाषाओं का इस पर बहुत कम प्रभाव पड़ा है। कुछ शब्द हिन्दी, बंगाली और उड़िया से अवश्य आये हैं, पर बनावट उनकी अपनी है। लिखित साहित्य इसमें नहीं है, पर परम्परागत कहानियाँ बहुत हैं। पादरियों ने इस भाषा को रोमन-लिपि में लिपिबद्ध किया है। पादरियों ने इस भाषा के दो व्याकरण भी लिखे हैं। यह भाषा बहुत धनी है। इसमें विचार बड़ी स्वच्छता से प्रकट किये जा सकते हैं।

ओराँव लोग जो बोली अपने घरों में बोलते हैं उसे कुरुख कहते हैं। यह द्राविड़-जाति की भाषा है। प्रायः छः-सात लाख ओराँव इसे बोलते हैं।

छोटानागपुर जंगलों का देश है। यहाँ के जंगलों में साल, गंभार, सेमल, महुआ, तून, सीसम, कुसुम और अमलतास के पेड़ होते हैं। अधिकांश जंगल अब काट डाले गये हैं। जंगल के कम हो जाने से वर्षा कम हो गई है। इससे खेती में नुक़सान हो रहा है। यहाँ के जंगलों में जंगली जानवर शेर, चीता, भालू, भेड़िया, हीना और सियार आज भी देखे जाते हैं। साँप भी छोटानागपुर में काफ़ी होते हैं।

छोटानागपुर खानों और खनिजों के लिए प्रसिद्ध है। कोयला, अबरख, लोहा, ताँबा, सफ़ेद मिट्टी, तुरमैलीन, रक्तमणि (याक़ूत) इत्यादि पर्याप्त मात्रा में पाये जाते और खानों से निकलते हैं। छोटानागपुर में गरम जल के झरने भी अनेक हैं।

छोटानागपुर में अनेक देखने योग्य स्थान हैं। उनमें राँची शहर और उसके आस-पास के स्थानों का वर्णन ऊपर हो चुका है। प्रत्येक व्यक्ति को राँची शहर और उसके आस-पास के स्थानों को देखना चाहिए। राँची ज़िले में दो सुन्दर जल-प्रपात भी हैं। वे राँची से प्रायः २५-३० मील दूर हैं। मोटरगाड़ियाँ वहाँ तक चली जाती हैं। उनमें एक हुन्दरु प्रपात है। यह सुवर्णरेखा का प्रपात है। यहाँ नदी पठार से ३२० फ़ुट नीचे गिरती है। वर्षा के दिनों में यह प्रपात अधिक सुन्दर पर भयङ्कर भी होता है। इस प्रपात से प्रायः ८ मील दूर जोन्हा प्रपात की गौतम धारा है। यहाँ बिड़ला बन्धुओं के द्वारा एक सुन्दर बौद्ध-मन्दिर और उसके साथ धर्मशाला भी पहाड़ी के शिखर पर बनाया गया है। यह स्थान भी देखने योग्य है। चट्टानों पर बैठकर प्रपात का दृश्य बड़ा ही सुहावना लगता है।

छोटानागपुर में एक बड़े महत्त्व का स्थान पारसनाथ पहाड़ी है। संतालों के पहाड़ी देवता इसी पर्वत पर रहते हैं। वैशाख की पूर्णिमा को यहाँ एक बहुत बड़ा मेला लगता है। संताल लोग उस समय यहाँ धार्मिक शिकार का त्योहार मनाते हैं। इस धार्मिक शिकार को रोकने के लिए जैनियों ने मुक़दमा दायर किया था, पर हाईकोर्ट से वह ख़ारिज हो गया। जैनियों के लिए पारसनाथ एक पवित्र स्थान है। उनके २३वें तीर्थङ्कर पार्श्वनाथ ने इसी स्थान पर निर्वाण प्राप्त किया था।

दशवर्षीय योजना

लेखक, श्रीयुत कालिदास कपूर, एम० ए०, एल-टी०

हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के कई अधिवेशनों में सम्मिलित होने का सौभाग्य मुझे प्राप्त हुआ है। कई वर्ष तक मेरा उसकी कार्य-कारिणी समिति से भी घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है। इधर कुछ वर्षों से सम्मेलन के अधिवेशनों में मैं सम्मिलित न हो सका था, केवल अन्य आवश्यक कार्यों में फँसे रहने के कारण, सम्मेलन के प्रति उदासीनता के कारण नहीं। कई वर्ष के पश्चात् काशी के सम्मेलन में सम्मिलित होना मैंने अपना सौभाग्य समझा। मेरी हैसियत तो बहुत कुछ दर्शक की ही थी, यद्यपि प्रतिनिधियों में नाम लिखा लिया था। सम्मेलन के राष्ट्रीय उद्देश्य की पूर्ति का मैं हृदय से इच्छुक हूँ। सो यदि सम्मेलन के मंच से कुछ कहने का मौक़ा नहीं मिला तो भी उसके प्रति अपने कर्तव्य की पूर्ति करने का मौक़ा प्रेस-द्वारा तो है ही। मेरे इस लेख का यही तात्पर्य है।

यदि प्रतिनिधियों और दर्शकों की संख्या की दृष्टि से सम्मेलन की सफलता की जाँच की जाय तो इसमें सन्देह नहीं कि काशी का सम्मेलन बहुत सफल रहा। मैंने किसी भी पिछले सम्मेलन के मण्डप के नीचे इतने पुरुष-स्त्री नहीं देखे, जितने काशी के सम्मेलन में। यदि विवाद ग्रस्त-प्रश्नों पर दिये गये व्याख्यानों पर भी सफलता का फ़ैसला हो, तो भी काशी-सम्मेलन की सफलता उच्च कोटि की ही मानी जायगी। भला जिस सम्मेलन में महामना मालवीय, राष्ट्रपति राजेन्द्र-प्रसाद और त्यागवीर पुरुषोत्तमदास जी टंडन जैसे नेता सम्मिलित हों, वहाँ ऊँचे दर्जे के व्याख्यानों की कमी रह सकती है? जो मन्तव्य स्वीकृत हुए वे भी आन्दोलन-क्षेत्र के लिए महत्त्वपूर्ण ही थे। परन्तु इसके आगे—इसके आगे साहित्य-सम्मेलन का काम—साहित्य-निर्माण का संगठन और नियन्त्रण करना भी है। इस महत्त्वपूर्ण उद्देश्य की पूर्ति के लिए क्या कार्यक्रम निश्चित हुआ, कौन योजना बनाई गई, इसका मुझे पता नहीं है।

हिन्दी, उर्दू, हिन्दुस्तानी का झगड़ा किसी संस्था के प्रस्तावों से निबटने का नहीं। हिन्दी और उर्दू एक ही भाषा के दो साहित्यिक रूप हैं। लिपि-भेद है और शब्दावली-भेद भी है। कुछ विचार तथा शैली का भेद है, कुछ व्याकरण-भेद भी है, परन्तु वह नहीं के बराबर है। मेरा विचार भी पहले समझौते के पक्ष में था, परन्तु देखता हूँ कि मर्ज़ बढ़ता जाता है ज्यों ज्यों दवा की जाती है। हिन्दुस्तानी-एकेडमी से कुछ करते धरते नहीं बना, यद्यपि उससे बहुत कुछ आशायें थीं। कांग्रेसी सरकारों ने भी जहाँ कहीं हिन्दुस्तानी की फ़िक्र की कि वैमनस्य की आग भड़की। बिहार की हिन्दुस्तानी के विरुद्ध हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन है तो मध्यप्रान्त तथा युक्तप्रान्त की हिन्दुस्तानी पर अंजुमन-ए-तरक्क़ी उर्दू का वार है।

पारस्परिक वैमनस्य होते हुए भी, प्रकटरूप से राष्ट्रीयता के विरुद्ध कई धाराओं को देखते हुए भी यह निश्चित है कि देश के भीतर आपस के व्यवहार की बाढ़ में राष्ट्रीय संस्कृति का एकीकरण हो रहा है।

राष्ट्रीय भाषा अङ्कुरित हो चुकी है। उसका रूप न अभी तक हिन्दी के हिमायती समझ पायें हैं, न उर्दू के। अभी तक हमारी साहित्यिक हिन्दी और उर्दू बीस प्रतिशत नागरिकों के बीच में ही रही है। अस्सी प्रतिशत देहाती जनता में शिक्षा का प्रचार होने पर इन भाषाओं का क्या रूप होगा सो बताना कठिन है। लिपि के विषय में भी विश्वास-पूर्वक नहीं कहा जा सकता कि उसका क्या रूप होगा। क्या मालूम जिस रोमन-लिपि के विरुद्ध महात्मा गांधी तक अपनी विज्ञप्ति दे चुके हैं, राष्ट्रीय लिपि के पद तक पहुँच जाय। अस्तु, थोड़े समय के लिए हम हिन्दुस्तानी के प्रश्न को स्थगित कर दें तो कोई हर्ज नहीं।

किसी भाषा का अध्ययन लोग उसके द्वारा अपने विचार प्रकट करने के लिए अथवा उस भाषा के बोलने-वालों से अपना काम निकालने के लिए करते हैं। भाषा का अध्ययन प्रायः इसी लिए हुआ करता है। हिन्दी से बढ़कर व्यापक भारतवर्ष की कोई भाषा नहीं है। इसलिए देश के अन्य भाषा-भाषियों के लिए भी हिन्दी सीखना आवश्यक हो जाता है।

परन्तु भाषा विचार-विनिमय के लिए ही नहीं पढ़ी जाती, ज्ञानार्जन के लिए भी पढ़ी जाती है। हम लोगों के

लिए अँगरेज़ी पढ़ने का महत्त्व बहुत कुछ इसी बात में है कि व्यावहारिक ज्ञान के जिन अंगों की हमें ज़रूरत है वे हमें अपनी मातृ-भाषा हिन्दी में नहीं मिलते, अँगरेज़ी में ही मिलते हैं। हिन्दी के भारतवर्ष की इतनी व्यापक भाषा होते हुए भी इसमें आधुनिक साहित्य की बहुत कमी है। इसलिए यद्यपि व्यापकता के नाते हिन्दी राष्ट्र-भाषा होने का दावा कर सकती है, तथापि उसका साहित्यिक भाण्डार लौकिक आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं करता। इस सम्बन्ध में वह बँगला के पीछे ही है और वह समय बहुत दूर है जब ऊँची कक्षाओं की शिक्षा के लिए हमारा काम हिन्दी से ही चल जाय, हमें अँगरेज़ी की ज़रूरत न रहे।

यह बात नहीं कि देशी भाषाओं को अब सरकारी संस्थाओं की ओर से प्रोत्साहन न मिलता हो।

युक्त-प्रान्त में इन्टरमीजिएट की परीक्षा के लिए हिन्दी-उर्दू में उत्तर लिखने की अनुमति दे दी गई है और विश्वविद्यालय भी देशी भाषाओं का आदर करने में अग्रसर हैं। कमी है केवल एक सर्वांगीण योजना की जिसका पृष्ठ-पोषण जनता करे और सरकार भी।

साहित्य-सम्मेलन तथा नागरी-प्रचारिणी सभा के सामने प्रस्ताव है कि दोनों संस्थाओं के प्रतिनिधि एक जगह बैठकर प्रचार और साहित्य-निर्माण की एक दशवर्षीय योजना बनावें। इस योजना को वे पत्रिकाओं-द्वारा सर्व-साधारण के सामने रक्खें। उस पर सार्वजनिक सम्मति के मिलने पर उसमें उचित परिवर्तन करें और फिर उसको पूरा करने में तन-मन-धन से योग दें। दश-वर्षीय योजना बनाने की क्षमता मुझमें नहीं है। परन्तु इस सम्बन्ध में कुछ अपने विचार हैं, जिन्हें सम्मेलन तथा सभा के नेताओं के सामने रखना मेरा कर्तव्य है। कदाचित् इन संस्थाओं के नेताओं के इस ओर ध्यान देने पर कोई उचित योजना बन सके।

भूमिका में यह कहना आवश्यक है कि यह योजना हिन्दी के लिए ही है, परन्तु उर्दू से मेरा कोई विरोध नहीं है। मैं क्लिष्ट हिन्दी का भी पक्षपाती नहीं हूँ। प्रचार के विषय में जो योजना बने उसमें मैं ऐसी ही हिन्दी के प्रचार की हिमायत करूँगा जो सर्वसाधारण में मान्य हो, जिसके भाण्डार में संस्कृत, फ़ारसी, अरबी, अँगरेज़ी के प्रचलित शब्द आवश्यकतानुसार तत्सम या तद्भव के रूप में लिये जा सकें। साथ ही इस प्रचार में उर्दू का विरोध नहीं। उर्दू के हिमायतियों को अधिकार है, वे भी अपनी भाषा और साहित्य के प्रचार के लिए पूर्ण प्रयत्न करें। फिर यदि वे उसे फ़ारसी और अरबी की सगी भतीजी भी बनावें तो हमें उज्र न होगा। उर्दू-साहित्य को सर्वाङ्गीण बनाने और उर्दू का प्रचार होने में हिन्दी की कोई हानि नहीं है।

यह बड़े हर्ष की बात है कि हिन्दी-प्रचार के लिए भारत के उन प्रान्तों में भी प्रयत्न हो रहा है जहाँ की मातृभाषा हिन्दी नहीं है। इस सम्बन्ध में सबसे स्तुत्य प्रयत्न मदरास-प्रान्त का हुआ है। गुजरात और महाराष्ट्र के नगरों में लोग हिन्दी बहुत कुछ समझ और बोल लेते हैं। हैदराबाद में उर्दू के बहाने हमारी हिन्दी के समझनेवाले भी बहुत हो गये हैं। अभी उड़ीसा, छोटानागपुर, बंगाल और आसाम में विशेष प्रयत्न करने की आवश्यकता है। आसामी तथा उड़िया भाषाओं का साहित्य बहुत उन्नत दशा में नहीं है। इसलिए इन प्रान्तों में हिन्दी-प्रचार के लिए विशेष प्रयत्न करने की आवश्यकता है। क्या ही अच्छा हो यदि दक्षिण-भारत-हिन्दी-प्रचार-सभा के समान आसाम और उड़ीसा में भी संस्थायें स्थापित हो जायँ। साहित्य-सम्मेलन के लिए इस ओर ध्यान देना विशेष रूप से आवश्यक है।

भारत के बाहर जहाँ कहीं हमारे भारतीय भाई यथेष्ट संख्या में बसे हैं, वहाँ भी हिन्दी-प्रचार के प्रयत्न करने की आवश्यकता है। हमारे प्रवासी भारतीय हिन्दी के योग्य अध्यापकों के न मिलने के कारण हिन्दी भूलते जा रहे हैं और उनकी भाषा तथा संस्कृति पर विदेशी रंग चढ़ रहा है। इस सम्बन्ध में मेरे पास ट्रिनिडाड से एक पत्र भी आया था। यदि हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन भारतीय उपनिवेशों की संस्थाओं से लिखा-पढ़ी करके अध्यापकों और प्रचारकों को भेजने का काम कर सके तो संसार के उन भागों में हम अपनी भाषा और साहित्य की रक्षा ही न कर सकेंगे, अपनी संस्कृति और सभ्यता की रक्षा और उन्नति भी कर सकेंगे। प्रचार पर विचार करते समय हमें उस कठिनाई पर भी ध्यान देना होगा

जो अध्यापकों के सामने हिन्दी-उर्दू-मिश्रित कक्षाओं को शिक्षा देने के सम्बन्ध में आती है। बोलचाल में हिन्दी और उर्दू का अधिक भेद नहीं है। परन्तु पारिभाषिक शब्दों के प्रयोग में यह भेद बढ़ जाता है। शिक्षा की जो योजना हमारे सामने है उसमें बुनियादी शिक्षा के ऊपर माध्यमिक शिक्षालयों में अँगरेज़ी को एक अनिवार्य विषय रक्खा गया है। आगे चलकर पारिभाषिक शब्दों का जो कुछ रूप हो, परन्तु थोड़े समय के लिए यदि पारिभाषिक शब्दों को यथासम्भव बोलचाल की शब्दावली में ढूँढ़ने के बाद जिन शब्दों के लिए संस्कृत और फ़ारसी-अरबी की ही शरण लेना पड़े उनके लिए हिन्दी और उर्दू के हिमायती अँगरेज़ी की ही शरण लें तो बहुत अच्छा हो। जापानी-भाषा का उदाहरण हमारे सामने है। वहाँ भाषा-भेद का कोई प्रश्न नहीं है। उस भाषा में व्यावहारिक ज्ञान पर साहित्य की कमी नहीं है। सर्वोच्च कक्षाओं तक जापानी-भाषा के द्वारा तो शिक्षा दी जाती है, तोभी पारिभाषाक शब्दों के लिए वहाँ योरपीय भाषाओं की ही बहुत कुछ शरण ली गई है। इससे उनकी देशभक्ति में कोई कमी नहीं आती। इस सम्बन्ध में साहित्य-सम्मेलन ने जो नीति अभी तक रक्खी है, प्रचार की दृष्टि से उसमें परिवर्तन करने की आवश्यकता है।

प्रचार की योजना ही यथेष्ट समय और धन चाहेगी, परन्तु बहुत कुछ स्थानीय संस्थाओं के सहयोग से हो सकता है। सम्मेलन का अधिकतर काम योग्य अध्यापकों को हिन्दी-प्रचार का बीड़ा देकर स्वल्प वेतन पर भेजने का ही होगा। हमें विश्वास है कि खोज करने पर ऐसे प्रचारक यथेष्ट संख्या में मिल सकेंगे।

प्रचार के साथ साहित्यिक भांडार की जाँच करना और जहाँ कहीं कमी हो उसकी पूर्ति करने की योजना करना हिन्दी-प्रचार से अधिक महत्त्वपूर्ण सेवा-कार्य होगा। इस कार्य के लिए भी अधिक धन की आवश्यकता न होगी। हिन्दुस्तानी-एकेडमी को जितनी सहायता दी जाती है उससे अधिक यदि प्रान्तीय सरकार सहायता करने के लिए राज़ी न हो तो यह अधिक उचित होगा कि हिन्दुस्तानी पर खोज करने के लिए सरकार शिक्षा-विभाग की ओर से विद्वानों की एक छोटी-सी समिति बना दे और बचत को सम्मेलन तथा शिबली-एकेडमी जैसी संस्थाओं को कुछ शर्तों पर बाँट दें। मुझे विश्वास है कि इन दोनों की सम्मिलित सेवा हिन्दुस्तानी एकेडमी की सेवा से कहीं अधिक होगी।

सरकारी सहायता के अतिरिक्त भी साहित्य-निर्माण के साधन जुटाये जा सकते हैं। सरसरी नज़र से देखते हुए हिन्दी में शिक्षा-साहित्य की बहुत कमी है। वैज्ञानिक साहित्य का भी प्रायः अभाव ही है। कला-कौशल पर पुस्तकों की बहुत कमी है। भारतीय इतिहास की सामग्री नहीं के बराबर है। राजनीति और अर्थ-शास्त्र पर भी अच्छी पुस्तकों की कमी है। इन सब कमियों की जाँच करके प्रत्येक विभाग में कमी की पूर्ति करने का काम विशेष संस्थाओं तथा प्रकाशकों को दिया जा सकता है। अभी तक राजनैतिक नेताओं ने जनता में पठनपाठन की ओर रुचि बढ़ाने का यथेष्ट प्रयत्न नहीं किया है। कहना पड़ता है कि बहुतेरे सार्वजनिक नेताओं को स्वयं ही पढ़ने-लिखने का शौक़ नहीं है। सम्मेलन का काम उन्हें इस ओर प्रवृत्त करना भी है। फिर स्कूल, कालेज, पुस्तकालय आदि ऐसी संस्थायें हैं जिन्हें विभिन्न ग्रन्थ-मालाओं का स्थायी ग्राहक बनाने के लिए प्रोत्साहित किया जा सकता है। जब नागरी-प्रचारिणी सभा तथा हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन जैसी सर्वमान्य संस्थाओं के नेतृत्व में हिन्दी की पत्र-पत्रिकायें प्रचार की दुंदुभी बजाना प्रारम्भ करेंगी, जब सत्साहित्य की व्याख्याओं और पत्रिकाओं के द्वारा धूम मचाई जायगी, तब पाठक भी निकल आयेंगे। पुस्तकों की बिक्री होगी, प्रकाशक और लेखक स्वयं ही आगे आवेंगे और साहित्य-निर्माण का कार्य चल निकलेगा।

इस निर्माण-कार्य में नियंत्रण की बहुत आवश्यकता है। जिस विषय में देखें कि पुस्तकें अधिक हो गई हैं, वहाँ प्रकाशकों और लेखकों को चेतावनी दे दें और जिस क्षेत्र को सूना देखें वहाँ अपने प्रचार-कार्य को केन्द्रित करें। यह नियंत्रण साहित्य के लिए तो लाभदायक होगा ही, इससे प्रकाशक और लेखक भी लाभान्वित होंगे।

योजना के विषय में जो विचार यहाँ प्रकट किये गये हैं वे बहुत कुछ संकेतात्मक ही हैं, वे केवल साहित्यिक नेताओं का ध्यान आकृष्ट करने के लिए हैं।

सोवियट-जर्मन-पैक्ट और वर्तमान योरप

लेखक, श्रीयुत दिल्लीरमण रेग्मी, एम० ए०

सोवियट-जर्मन-पैक्ट हुए दो महीने से भी ज्यादा हो गये, और इस पैक्ट का योरप की वर्तमान स्थिति पर ऐसा गहरा प्रभाव पड़ा है कि उसमें काफ़ी अधिक उलझन आ गई है। अतएव योरप की वर्तमान परिस्थिति का अध्ययन करने के लिए सोवियट-जर्मन-पैक्ट का अध्ययन करना ज़रूरी है।

सितम्बर के आख़िरी सप्ताह में जब योरप में जंग छिड़नेवाला ही था, लोगों को यह सुनकर आश्चर्य हो गया कि सोवियट रूस और नात्सी जर्मनी में मेल हो गया है। योरप की राजनैतिक कूटनीति का यह अनुपम उदाहरण है। यह पैक्ट ऐसे दो राष्ट्रों के बीच हुआ है जो पिछले पाँच साल से एक दूसरे के विरुद्ध घृणा का घोर प्रचार कर रहे थे। जर्मनी के नात्सीवाद और रूस के समाजवाद, इन दोनों विपरीत सिद्धान्तों का मेल लोगों को आश्चर्य में डालने का है ही।

और जब यह सिद्धान्त का मेल नहीं है तब रूस और जर्मनी में इस तरह मैत्री होने का क्या कारण था? हमारी उत्सुकता और भी बढ़ती है, जब हम यह देखते हैं कि ब्रिटेन, फ्रांस और रूस में मित्रता की बातचीत जारी रहते हुए रूस ने जर्मनी के साथ संधि कर ली। कुछ हद तक तो हिटलर की शीघ्रता ने भी इस पैक्ट को जन्म दिया है। पर यह मुख्य कारण नहीं हो सकता। न यही बात ठीक है कि हिटलर साम्यवाद की ओर झुक गया है, यद्यपि कई लोगों का यही कहना है कि अब नात्सी जर्मनी साम्यवाद ग्रहण करेगा, क्योंकि हर हिटलर रूस के प्रति बड़ी श्रद्धा दिखा रहे हैं। पर जिस तरह हिटलर रूस की तारीफ़ करता है, उसी तरह रूस भी जर्मनी की प्रशंसा कर रहा है। अतएव यदि इसके आधार पर यह कहा जाता है कि नात्सीवाद समाजवाद का रूप धारण करेगा तो उसी के आधार पर यह भी कहा जा सकता है कि रूस का समाजवाद नात्सीवाद का रूप ग्रहण करेगा। पर बात यह नहीं है। रूस-जर्मनी-पैक्ट के होने के दूसरे ही कारण हैं।

[ब्रिटेन के प्रधान मंत्री श्री नेवायल चेम्बरलेन।]

रूस और जर्मनी के बीच १९३३ के बाद से जो वाक्-युद्ध चल रहा था, १९३९ के शुरू से उसमें शिथिलता आ गई थी। दोनों ही राष्ट्र बातचीत छेड़ने का मौक़ा खोज रहे थे। गत जून में एक अफ़वाह भी उड़ी थी कि उन दोनों राष्ट्रों में एक गुप्त संधि हो गई है। अन्तर्राष्ट्रीय साम्यवाद के विरुद्ध जो आन्दोलन खड़ा किया गया था वह भी शान्त हो चुका था। जर्मनी में कितने ही वक्ता यह कहने लग गये कि रूस के उक्रेन पर उनका दावा अब नहीं रहा। इधर रूस में भी लोग 'एन्टी कॉमिन्टर्न पैक्ट' (रूस-विरोधी पैक्ट) को दूसरे रूप में देखने लग गये। गत मार्च में स्टेलिन ने स्वयं अपने एक भाषण में कहा था कि 'एन्टी कॉमिन्टर्न पैक्ट'

सोवियट के विरुद्ध नहीं है, बल्कि साम्राज्यवादी राष्ट्रों के विरुद्ध है। रूस और जर्मनी यह सोचने लगे कि इन दोनों राष्ट्रों को उभाड़कर लड़ा देने का षड्यन्त्र किया जा रहा है। सन् १९३८ तक रूस और जर्मन एक-दूसरे के कट्टर दुश्मन थे। हिटलर ने कई बार रूस के ख़िलाफ़ लड़ने की धमकी तक दी थी। अपनी 'माइन काम्फ' नामक पुस्तक में उसने उक्रेन पर अधिकार करने का उल्लेख किया है। गत चेकोस्लोवेकिया की घटना के सम्बन्ध में भी जर्मन-पत्रकार रूस को फटकार सुना रहे थे। इधर लिटवीनाव के समय तक रूस की ओर से भी कई कोशिशें जर्मनी को परास्त करने के लिए की गई थीं। ऐसा होते हुए भी दोनों राष्ट्र अपने वाग्युद्ध को तोप और बारूद के संग्राम में परिणत करना नहीं चाहते थे। जर्मनी ने जापान और इटली के साथ रूस के विरुद्ध ऐंटी कमिण्टर्न पैक्ट किया था, तो भी रूस के साथ १९२६ में उसकी जो संधि हुई थी उसे नहीं तोड़ा। १९२६ का सुलहनामा जारी रहा और उसकी अवधि समाप्त होते ही दोनों राष्ट्रों ने वार्तालाप [illegible] कर दी। इस [illegible] आशंका से रूस ने यह प्रस्ताव और [illegible] बाल्टिक के और बल्कान के सारे राष्ट्र शान्तिदल में शामिल किये जायँ। ब्रिटेन ने उसके प्रस्ताव को स्वीकार करने में टाल-टूल की, जिससे रूस की शंका और भी बढ़ गई। रूस भी लड़ाई नहीं चाहता है, क्योंकि अपने देश की शान्ति की सुरक्षा के लिए वर्तमान समय में उसको किसी लड़ाई का सामना करना ख़तरनाक है। ब्रिटेन और फ़्रांस के साथ सन्धि करके रूस को अवश्यमेव लड़ाई में कूदना पड़ता। पोलैंड के सवाल पर रूस को जर्मनी से अवश्य ही लड़ना पड़ता। इधर कई महीने से रूस में एक नई विचार-धारा जड़ पकड़ रही थी। रूसवालों को योरप के वातावरण में सन्देह-ही-सन्देह नज़र आ रहा था।

अस्तु, ब्रिटेन के साथ रूस की सन्धि न हो सकी। इसी बीच में मौक़ा देखकर हिटलर ने उससे सन्धि का प्रस्ताव किया। रूस ने भी योरप की नाज़ुक परिस्थिति से फ़ायदा उठाना चाहा। उसने देखा कि जब दो पूँजीवादी राष्ट्रों में जंग होने जा रहा है तब उससे क्यों न लाभ उठाया जाय, साथ यह भी कि

[रूस के डिक्टेटर श्रीयुत स्टेलिन।]

इतने भयभीत थे कि वे संग्राम नहीं करना चाहते थे। जर्मनी ने [illegible] प्रचार लड़ाई के बाद ख़ूब अच्छी तरह हो सकता है, विशेषतः जो देश हार जाता है, उसमें तो साम्यवाद अनायास ही प्रवेश कर जाता है। हिटलर ने यह नहीं समझा। रूस ने जर्मनी से झट अनाक्रमण सन्धि कर ली। युद्ध होने पर दुश्मन राष्ट्रों के प्रति सहानुभूति न दिखाने का वचन दे दिया, पर सामरिक-सन्धि की तरह एक-दूसरे के हितार्थ मैदान में उतरने की प्रतिज्ञा दोनों ने नहीं की। हिटलर ने चाहे जो आशा रक्खी हो, पर रूस उसके पक्ष में कदापि मैदान में नहीं उतरेगा। हाँ, कमज़ोर परिस्थिति को अपने अनुकूल करके साम्यवाद का प्रचार अवश्य करेगा।

गत दो महीने के अन्दर योरप में जो घटनायें घटित हुई हैं उनसे यह स्पष्ट मालूम होता है कि सोवियट रूस की नीति तटस्थ रहकर कमज़ोर परिस्थिति से फ़ायदा उठाने की ही है। जब पोलैंड हार गया और उसकी सेना छिन्न-भिन्न हो गई तब यह भय हुआ कि सारा पोलैंड जर्मनी के हाथ पड़ जायगा। रूस ने लाल सेना भेजकर उसके कितने ही इलाक़ों पर क़ब्ज़ा कर लिया। रूस को जर्मनी से भय है। हिटलर को अतिशय शक्तिशाली न होने देने में ही उसका कुशल है। रूस ने बाल्टिक सागर-तटवर्ती मुल्कों से जो सुलहनामे किये हैं उनसे भी रूस के इसी

मनोभाव का संकेत मिलता है। बाल्टिक सागर का महत्त्व ऐसा-वैसा नहीं। वह पश्चिमी रूस का तो एकमात्र द्वार है। इसलिए बाल्टिक के तटवर्ती राज्यों के साथ सन्धि कर लेने से बाल्टिक पर दूसरे राज्य का प्रभाव नहीं रह सकेगा। अतएव रूस ने वैसा ही किया भी। बाल्टिक सागर और कृष्ण सागर ही रूस के योरप के लिए द्वार हैं। दोनों के बन्द हो जाने पर रूस की नौ-शक्ति का नाम-निशान नहीं रह जाता है। ये द्वार जिस राज्य के क़ब्ज़े में रहते हैं वह राज्य योरप का भाग्य-विधाता बन सकता है। हिटलर इसी बात को ध्यान में रखकर बालकन और बाल्टिक की ओर बढ़ने का प्रयत्न कर रहा था। परन्तु पोलैंड-युद्ध के कारण हिटलर की नीति विफल हो गई। हिटलर को स्वप्न में भी यह खयाल न था कि इधर बाल्टिक में भी उसका दूसरा प्रतिस्पर्द्धी निकल आवेगा और वह भी खासकर उस समय जब उसे दो विशाल शक्तियों से मुठभेड़ करनी पड़ रही हो। बाल्टिक सागर के साथ-साथ हिटलर उत्तर-सागर पर क़ब्ज़ा करने का प्रयत्न करता। उत्तरीय देशों के साथ उसका व्यापार जारी रहने पर ब्रिटेन के ब्लाकेड का कोई अर्थ न रहता। पर उसकी यह आशा निराधार थी। रूस ने बाल्टिक सागर के कितने ही टापुओं की क़िलेबन्दी करके यह दिखा दिया है कि बाल्टिक के बारे में रूस चुप नहीं रह सकता। रूस-जर्मन-पैक्ट ने रूस को यह सहूलियत दे दी है कि वह अब बिना किसी की रोक-टोक के अपना स्थान मजबूत कर सकता है और वह तदनुसार करता भी जा रहा है। उधर वह बालकन के राज्यों को भी अपनी ओर करने का प्रयत्न कर रहा है। वास्तव में रूस को तो अपनी खोई हुई प्रतिष्ठा और इज़्ज़त को प्राप्त करना है। संयोगवश आज रूस बहुत अधिक मजबूत हो गया है।

जर्मनी-रूस-पैक्ट का योरप की कूटनीति पर गहरा असर पड़ा है। जो लोग सैद्धान्तिक मतभेद को राष्ट्रों के बीच की खाई समझ रहे थे, अब उन्हें अपना मत बदलना पड़ा है। अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति कूटनीति का क्षेत्र है। इसमें जितना ही कपटनीति से काम लिया जाय, उतना ही लाभ होता है। सिद्धान्त की नीति होने पर लड़ाई हो नहीं सकती; क्योंकि तब राष्ट्र अपने अपने स्वार्थ के खयाल से अपनी नीति की व्यवस्था नहीं कर सकते। हिटलर और मुसोलिनी ने 'एण्टी कमिण्टर्न पैक्ट' करके लोगों के दिमाग़ में जो ग़लत खयाल बैठा दिये थे, रूस-जर्मनी-पैक्ट ने उन्हें साफ़ कर दिया है।

बहुत-से लोगों का मत है कि रूस-जर्मनी-पैक्ट ने ब्रिटेन के प्रतिकूल परिस्थिति उत्पन्न कर दी है। जहाँ तक शक्ति-संतुलन की नीति का सम्बन्ध है, उस पर बेशक गहरा असर पड़ा है; क्योंकि वर्तमान युद्ध का यही नतीजा होगा कि रूस का सितारा चमकेगा। अभी ही रूस का विस्तार बाल्टिक तक हो गया है। हिटलर रूस का विश्वास पाने के लिए आज अपना बहुत कुछ खो देने तक के लिए तैयार है। उसी तरह मित्रराष्ट्र भी रूस को चिढ़ाना नहीं चाहते। यही नहीं, इँगलैंड के लायडजार्ज प्रभृति तो रूस के साथ सम्बन्ध स्थापित करने के लिए अपनी सरकार से अनुरोध तक कर रहे हैं। जहाँ तक रूस की स्थिति का सम्बन्ध है, ब्रिटेन के प्रतिकूल समस्या उपस्थित हो गई है। पर जहाँ तक युद्ध का सवाल है, ब्रिटेन के अनुकूल ही परिस्थिति हो गई है। रूस-जर्मनी-पैक्ट न रहने से भी पोलैंड की समस्या पर युद्ध छिड़ जाने की सम्भावना थी ही। पर तब जर्मनी को इटली और स्पेन से अवश्य सहायता मिलती, जो आज बोल्शेविकों का प्रभाव बढ़ जाने के भय से जर्मनी का साथ नहीं देना चाहते हैं। रूस-जर्मनी-पैक्ट के होते ही जापान भी जर्मनी का नहीं रहा। नहीं तो प्रशान्त महासागर में ब्रिटेन का जापान के साथ संघर्ष छिड़ता। आज भूमध्यसागर और प्रशान्तमहासागर ब्रिटेन के लिए निरापद हैं। अब हिटलर अकेला रह गया है। ब्रिटेन और फ्रांस को इससे ज्यादा और अनुकूलता क्या होती? रूस के हजार बार धमकी देने पर भी हिटलर और स्टैलिन एक साथ मैदान में नहीं उतर सकते। इस दृष्टि से देखा जाय तो ब्रिटेन के लिए रूस-जर्मनी-पैक्ट का होना एक तरह अच्छा हुआ है। पर ब्रिटेन के लिए केवल जर्मनी का ही तो सवाल नहीं है।

ब्रिटेन का मजदूर-दल रूस की बड़ी निन्दा कर रहा है, इसलिए कि उसने अपने सिद्धान्त के खिलाफ़ एक ऐसे राष्ट्र के साथ मेल कर लिया है जो साम्यवाद का ही नहीं, किसी तरह की समाजवादी व्यवस्था का कट्टर

दुश्मन है। पर यह क्या रूस ही ने किया है? क्या दूसरे राष्ट्र नहीं करते? जर्मनी के साथ संधि करने में तो ब्रिटेन बहुत आगे बढ़ गया था। १९३५ में ब्रिटेन ने जर्मनी से जो पैक्ट कर लिया था उससे जर्मनी को वर्सले की संधि के विरुद्ध फ्रांस के बराबर जहाज बनाने का अधिकार मिल गया था। उक्त पैक्ट यह समझ करके किया गया था कि हिटलर ब्रिटिश साम्राज्यवाद का दोस्त बना रहेगा। जेचोस्लोवेकिया के सुडेटन इलाक़े भी इसी लिए उसके सुपुर्द कर दिये गये थे और उसके बाद ही परस्पर कभी न लड़ने की प्रतिज्ञा भी हुई थी। पर इस सबका परिणाम उलटा ही हुआ। हिटलर ने जेकोस्लोवेकिया को ले लिया और पोलैंड को पददलित कर डाला। ब्रिटेन के आगे जीवन-मरण का प्रश्न उठ खड़ा हुआ। इसलिए उसे किसी भी परिस्थिति का सामना करने को कटिबद्ध होना पड़ा। ऐसी दशा में रूस को ब्रिटेन के साथ सन्धि करके नुक़सान सहना पड़ता, पर जर्मनी से सन्धि करके वह लाभ उठा रहा है। परन्तु क्या रूस जर्मनी का यह पैक्ट स्थायी होगा? कोई यह कह नहीं सकता है कि यह पैक्ट स्थायी है। किसी भी पैक्ट के दीर्घायु प्राप्त करने के लिए यह आवश्यक है कि पैक्ट करनेवाले राष्ट्रों के बीच के संघर्ष के कारणों का आमूल विच्छेदन हो। पैक्ट रहते हुए भी अगर परिस्थिति एक राष्ट्र के विरुद्ध हो गई तो उसका तोड़ा जाना सम्भव है। रूस के साथ मैत्री करके हिटलर ने उक्रेन का दावा छोड़ दिया है, साथ ही पूर्व की ओर बढ़ने का अपना इरादा भी। फिर भी वर्तमान नीति को देखकर यह कोई नहीं कह सकता है कि हिटलर चुप रहेगा। जर्मनी को उत्तरोत्तर व्यापार की वृद्धि के लिए बाल्कन या बाल्टिक में कुछ अधिकार रखना ज़रूरी है। आज के समर का भी मूल कारण यही है। भविष्य के युद्ध का भी कारण यही हो सकता है। योरप में शान्ति की स्थापना के लिए वर्तमान व्यवस्था बिलकुल अपर्याप्त है। दोनों अधिनायक आपस में सिद्धान्त के आधार पर भले ही खूब मेल रक्खें, पर जब दोनों व्यापार की सहूलियत के लिए एक-दूसरे के प्रतिस्पर्धी हैं और पूँजीवाद के आधार पर अपने अपने प्रभाव-क्षेत्र का विस्तार चाहते हैं, तो संघर्ष हुए बिना नहीं रह सकता। इटली, जर्मनी, जापान या रूस, कोई भी राष्ट्र जब तक एक-दूसरे को सन्देह की दृष्टि से देखते हैं और एक-दूसरे को प्रतिस्पर्धी समझते हैं, संघर्ष का मूल कारण नहीं हटाया जा सकता। अतएव रूस और जर्मनी का मेल स्थायी नहीं हो सकता। फिर रूस और जर्मनी अपना अपना विस्तार चाहते हैं। जैसा कि पोलैंड में और बाल्टिक सागर में अपनी अपनी सेना भेज कर वे अपने अपने भाव प्रकट कर चुके हैं। यह सब स्पष्ट होते हुए भी यह कहना ही पड़ेगा कि रूस-जर्मनी-पैक्ट से योरप की परिस्थिति जटिल हो गई है। पोलैंड में हिटलर ने जिस स्फूर्ति से काम लिया है, उससे मालूम होता है कि वह ऐसा कर सका इसलिए कि उसको रूस की आभ्यन्तरिक सहानुभूति प्राप्त थी। पर आज उसका अनुमान ग़लत हो गया है, क्योंकि जिस तरह पोलैंड के कई इलाक़े रूस ने अपने क़ब्ज़े में कर लिये और बाल्टिक में जर्मनी के प्रसार को जिस तरह रोक दिया, उससे यही मालूम होता है कि रूस जर्मनी को सन्देह की दृष्टि से देखता है, भले ही रूस के प्रधान मंत्री जर्मनी की पीठ वचनों से ठोकते रहें। हिटलर की यह आशा कि रूस जर्मनी को समय पर मदद देगा, निराधार है। संग्राम अगर रुक सकता है तो इस खयाल से कि रूस-जर्मनी-पैक्ट से हिटलर को वस्तुतः कुछ भी फ़ायदा नहीं हुआ। इधर इटली और जापान भी जर्मनी से दूर हो गये हैं, इधर रूस से भी उसे सहायता नहीं मिलने की है। फिर भी जब प्रतिष्ठा का खयाल आता है तब सहसा हिटलर ब्रिटेन से हार नहीं मानेगा। पर आज तो यह अवस्था है कि रूस का स्थान महत्त्वपूर्ण हो गया है। रूस के साथ झगड़ा मिटाने के लिए हिटलर ने बाल्टिक राज्यों से जर्मनों को हटा लिया है। ऐसा मालूम होता है कि हिटलर रूस का साथ नहीं छोड़ेगा। प्रजातंत्र-राज्यों से तो वह अन्त तक लड़ेगा ही और आवश्यक होगा तो अपने को साम्यवादी भी घोषित कर सकता है। यह महासमर बड़ा ही विकट होने जा रहा है। लोगों ने सच ही सोचा है कि संसार में एक नया युग आनेवाला है। भारत को भी वह नया सन्देश देगा। हिटलर हारे या जीते, नया युग तो अवश्यम्भावी है।

नीलाम्बर से नक्षत्र-वर्षण

लेखक, श्रीयुत सूर्यनारायण व्यास

न जाने कितनी शताब्दियाँ बीत गईं, गगनमण्डल अपने चमत्कारों से दुनिया को आश्चर्य-चकित करता रहा है। लक्षावधि तारागण विविध रूपों में नीली चादर पर विचित्र चित्र बनाकर प्रकृति की अनुपम छटा बतलाते रहे हैं। कभी-कभी हम इन तारों को पुंजी-भूत देखते हैं, कभी उनकी रंग-बिरंगी झिलमिल की इधर-उधर दौड़-धूप, कभी लम्बी तेजोमयी नीहारिका के रूप में आकाश की सुषमा का बढ़ाना, कभी लम्बी ज्वाल-माला का धूमिल पुच्छ बढ़ाकर भयभीत करना और विविध-वैचित्र्य का दृश्य उपस्थित करना एवं टूटकर भू-मण्डल पर चमकती हुई शिखा के साथ लटकते आना देखते हैं। यह उस विश्व-नियंता का विस्मय-कारी नाटक है, जिसे समझने का युगों से लक्षाब्दियों से मानव-मस्तिष्क यत्न करता आया है। किन्तु वास्तविक तथ्य तक न पहुँचकर केवल विस्मय-विमुग्ध बनकर कल्पनालोक में विहार करता रहा है। पुरातन दिव्य-द्रष्टा आचार्य-प्रवरों ने 'नलिकावेधादि' सरलतम सुलभ साधनों से सहस्रशः तारागणों को पहचानकर उनसे निकट सम्बन्ध स्थापित किया है और उनमें के कुछ ज्योतिष्कारों ने ग्रह-नक्षत्रों की गतिविधि पर अधिकार-पूर्ण ज्ञान स्थिर कर उन पर काबू भी पा लिया था। उनके महत्त्व को, भूमण्डलस्थ वस्तुओं तथा प्राणियों पर उनके द्वारा पड़नेवाले हानि-लाभकर विशिष्ट परिणामों की थाह भी उन्होंने पा ली थी। फिर भी गगनचारी ऐसे अनेक उडु-गण हैं कि जिनका ज्ञान सैकड़ों सदियों पूर्व न तो उन्हें, न इस कहे जानेवाले 'विज्ञान-युग' में आज २०वीं सदी में भी हुआ है, न आगे ही होता दिखाई देता है। मुझको सर्वदा इस ओर जिज्ञासा रही है; समय-समय पर कई नये-नये तारों की खोज हुई है, उनके विशिष्ट प्रभावों का भी अनुभव प्राप्त किया गया है। कुछ प्रभावोत्पादक तारों को कुछ निरीक्षकों ने पहचाना है। किन्तु आज भी प्रकृति की बिखरी हुई जीवित-रत्न-राशि में से कौन कह सकता है कि सब या अधिकांश बहुमूल्य रत्न पूरी तरह पहचान ही लिये गये हैं! और हैं भी ऐसे कितने लोग जिनकी सूक्ष्म निरीक्षक आँखों ने आकाश के घनीभूत तारक-पुंजों में से विशेषता रखनेवाले ज्वलन्त नक्षत्रों का परिचय पा लिया हो? आकाश में तारे हैं, और भी कुछ है। यह आश्चर्य से हम लोग प्रायः देखा करते हैं, कभी उपल-वृष्टि, कभी हिम-वर्षण, कभी शिला, कभी रक्त, कभी लोहखण्ड और कभी क्या-क्या? इस तरह भू-खण्ड पर आई हुई वस्तुओं से हम अनुभव करते हैं कि अवश्य ही उस लोक में भी आश्चर्यकारक साहित्य संगृहीत है। प्रकृति का भी अद्भुत 'म्यूज़ियम' बना हुआ है, जिसका कोई-कोई नमूना कभी-कभी हमारे विस्मय बढ़ाने के लिए, कुतूहल के लिए भेज दिया जाता है। यह बहुत कम लोग जानते होंगे कि जिस तरह जल, हिम, शिला, रक्त, लोह आदि की वृष्टि होती है, उसी तरह निरन्तर तारों की भी वृष्टि होती है। एक-दो या पाँच-सात तारों को कभी-कभी हम टूटते, गिरते देखा करते हैं। परन्तु सामूहिक रूप से जल-वर्षण की तरह 'तारक-वृष्टि' भी होती है, यह ज़रा नवीन-सी बात मालूम होगी। किन्तु यह नवीन बात नहीं है, सृष्टि के उद्भवकाल से ही लगातार मानव-जाति को चकित किये हुए है। हाँ, कभी कभी वह हमें सर्वथा दिङ्मूढ़ बनाकर अवश्य छोड़ देता है। आकाश में चंचलता से चमकनेवाली सौदामिनी, मेघमण्डल का घन-गम्भीर गर्जन, तारों के वर्षण से झरनेवाले अंगारे, पत्थर और विचित्र रत्नों जैसी दीप्तिमान वस्तुओं का वर्षण आश्चर्य-सागर में हमें डुबो देता है। कुछ लोग इनको केवल वैज्ञानिक विवेचन के दृष्टिकोण से देखते हैं और कुछ लोग इनमें 'भावी' सूचना का सन्देश ढूँढ़ते हैं, पर सर्वसाधारण लोग तो प्रायः इनमें प्रकृति का प्रकोप ही मानते हैं। बहुत बार देखा गया है कि आकाश से बरसे हुए पत्थरों या लोह-खण्डों को लोगों ने पूजन-गृह में स्थान दिया है। भारत में ही नहीं, योरप और लघु एशिया माईनर के सुसंस्कृत लोग भी ऐसे साहित्य को मन्दिरों में पूज्यभाव से रखते हैं, और वैज्ञानिक लोग तो अभी अन्वेषण में लगे ही हुए हैं, कि इनमें कौन-सा तत्त्व, और कौन-सा रहस्य निहित है।

जिन्होंने लन्दन के 'नेचरल हिस्ट्री-म्यूज़ियम' के दर्शन किये हैं, वे प्रकृति की इन विचित्र रचनाओं को देखकर विस्मित हुए बिना नहीं रहे होंगे। सन् १९३७ के आक्टोबर में जब मैं लन्दन पहुँचा तब गगन-मण्डल के इस रत्न-समूह को देखने के लिए बहुत उत्सुक था। लगातार दो रोज ६-६ घंटे तक मैंने प्रकृति के इस सुन्दर म्यूज़ियम के विविध रूपों का निरीक्षण किया। आकाशीय साहित्य में सैकड़ों, सहस्रों तारों के ढेर, लौह, शिलायें और जन्तु तथा अनेक विचित्र प्रकार की वस्तुओं को देखा। छोटे-से-छोटे तथा बड़े-से-बड़े तारों को देखा। उनमें कोई-कोई टूट गये हैं, कोई पिचक गये हैं, किसी में अजीब चमक है, तो कोई ज़मीन पर आकर अनार की तरह फूट गया है और अन्दर से हीरे से भी अधिक कान्तिमान् तीखे, शुभ्रतम गाढ़े काँच का-सा साहित्य प्रकाशित होता है। हाथ से छूने पर उनकी तीक्ष्णता इतनी मालूम होती है कि भूल से हाथ पड़ जाये तो वह तुरन्त रक्त-रंजित कर दे। कुछ ऐसे सजीव कछुए जैसे पदार्थ-से तारक-पिण्ड वहाँ दिखाई दिये जो क्रमशः सिकुड़ते जा रहे हैं, अन्दर-ही-अन्दर घनत्व लोहे हैं, मानों उनमें जीवन-तत्त्व का क्रमिक ह्रास हो रहा है। किसी में लोह या रजत, हेम, तथा कांस्य-जैसी चमक हैं, और भारी भरकम! भारतवर्ष की वस्तुएँ भी जो यहाँ कभी आकाश से नीचे आगई हैं इस म्यूज़ियम में सुरक्षित हैं। बड़ी-बड़ी वज़नी शिलायें वहाँ रखी हैं जो प्रस्तर न जाने या किस वस्तु से निर्मित हैं, इसका समझना कठिन है। अनेक विचित्र, चमकीली, मैली, काली या ज्योतित, धूमिल ऐसी-ऐसी वस्तुएँ हैं कि उनके अन्दर किन-किन तत्त्वों का समावेश है, यह सब जानना साध्य नहीं है। ये वस्तुएँ उस आकाशीय म्यूज़ियम से मानो भू-मण्डलीय म्यूज़ियम को भेंट-रूप में आई हैं!

कुछ समय पूर्व गगन-मण्डलीय चमत्कृतिपूर्ण विचित्रताओं के अभ्यास के लिए एक आयोजना की गई थी। अमेरिका के नेचरल हिस्ट्री संग्रहालय के क्यूरेटर मिस्टर निनिगर ने अपने खगोल-विषयक साहित्य के अनुसन्धान पर वहाँ प्रकाश भी डाला था। यद्यपि अभी तक इसका क्रमबद्ध इतिहास नहीं है कि किस किस समय आकाश से कौन-कौन वस्तुएँ, कहाँ कहाँ गिरी हैं और ऐसा कब-कब हो सकता है, इसके लिए कोई नियमित समय भी है या इनका यदा-कदा ही आवागमन होता रहता है, इत्यादि। म्यूज़ियम के साहित्य और नोटों के आधार पर ऐसा विदित होता है कि—सन् १८३३ के नवम्बर मास की १३ या १४ तारीख़ों की रात्रि में अधिकांश भू-भाग पर आकाश से प्रस्तर-वर्षण हुआ। प्रकाशमान् तारिकाओं के झुण्ड-के-झुण्ड ज़मीन पर गिरते हुए दिखाई दिये। उनमें से कई तारे इतने ज्योतिर्मय थे कि शुक्र ग्रह की तरह मालूम होते थे।

इसके बाद ठीक १८६६ ईसवी के नवम्बर में ही ठीक ३० वर्ष के अनन्तर असाधारण भय-जनक तूफ़ान आकाश में उठ खड़ा हुआ था और तारक-वर्षण हुआ था। फिर तो लगातार प्रति ३०वें वर्ष में यही क्रम देखा गया। सम्भव है, इसके पूर्व भी यह क्रम रहा हो, पर इतिहासज्ञों की उदासी से कोई पता नहीं चलाया गया। परन्तु यह सम्भव है कि जिस गणना के हर ३० वें वर्ष का क्रम प्रकट किया है वह इसके पूर्व भी यथावत् रही हो। सन् १८९९ अथवा १९०० में फिर एक ऐसा ही उल्कापात हुआ था। खगोलज्ञ इससे निराश हो गये थे कि पत्थर बरसे होंगे, पर यह तारक-वृष्टि ही थी। बाद में सन् १९३२-३३ में भी आशा थी, पर यह प्रकृति-गणना-क्रम कुछ पलट गया मालूम हुआ। आकाशीय गति-विधि की दृष्टि से सन् १९३४ में भी एक बार सम्भावना की जाती थी। वह भी व्यर्थ हुई।

जिस उल्कापात की अपेक्षा की जाती थी वह नहीं हुआ। जो पत्थरों का समूह आकाश में जमा हो जाता है, वह उल्का के साथ अशनिपात के रूप में बरस जाता है। गुरुत्वाकर्षण के कारण ये ज़मीन पर आ जाती हैं, वायु-वेग से उष्णता पाकर उसका जमाव फट पड़ता है। तूफ़ान के कारण भी प्रायः यही होता है। ग्रह-मण्डल के प्रबल आकर्षण से खिंचनेवाले तारे भी अपनी पंक्ति से विलग हो जा पड़ते हैं। ये तारे प्रायः नवम्बर के मध्य से दिसम्बर के प्रथम सप्ताह तक ही अधिकतर गिरते रहे हैं। टूट कर गिरता हुआ तारा या धूम-केतु (पुच्छल-तारा) जब दिखाई पड़ता है, तब लोगों में अनिष्ट की आशंका हो जाती है। सप्तम एडवर्ड के अवसान के समय विशालाकृति धूम-केतु उदित हुआ था। आरम्भ में वह उत्तर रात्रि

में ज्वलंत मानव-शिशु की आकृति का मस्तकहीन दिखाई देता रहा। बाद को पूर्व-रात्रि में प्रतिदिन एक अर्से तक धूमिल पुच्छ के साथ उदित हुआ। वह सम्भवतः १०० मील की लम्बी पूँछ लिये गगन-मण्डल को घेरे रहा है। इसमें लौह-तत्त्व का भाग ज़्यादा रहा है, अतएव यह भयानक माना जाता था। यह इसी प्रकार का लौह-तत्त्व ज्वालामुखी पर्वतों के अन्तराल में खूब जमा रहता है। ओहियो और अटलांटिक सागर से दूर प्रदेश में भी यह लौहतत्त्व काफ़ी मात्रा में जमा है, इससे मालूम होता है कि कभी सारी पृथ्वी को इन बहु-व्याप्त तत्त्वों ने कम्पित कर डाला होगा।

सन् १९३२ में आकल होमा युनिवर्सिटी के प्रोफ़ेसर एम० ए० मेलटन ने और विलियम स्कीपर ने इस प्रदेश में विमान-द्वारा भ्रमण किया था, फोटो भी खींचे थे। इसके बाद फिर ये लोग इस प्रदेश में गये। सूक्ष्म निरीक्षण करने पर इस परिणाम पर पहुँचे कि ज्वालामुखी पर्वतीय निम्नभाग में 'लौह' का विपुल समूह विस्तृत है, और यह वही लौह है जो आकाश से प्रस्तर या उल्का के रूप में बरसा था। छोटे-छोटे पत्थर पृथ्वी के स्तर में जमा होते गये। निरन्तर वर्षा होती गई, और इनका विस्तृत रूप बन गया। इसी प्रकार का प्रस्तर-समूह अरजेन्टाईन, मध्य-आस्ट्रेलिया, तथा बाल्टिक के द्वीपों में भी प्राप्त होता है। इनमें १२ तारे तो इसी साल के गिरे हुए प्राप्त हुए हैं। एक तारा ओरसा, दूसरा वेन्सलो के निकट आरीजोनों में पड़ा मिला था। तीसरा उत्तर-मध्य साइबेरिया में टूटा था, जो सन् १९०८ में गिरा था। इनकी वृष्टि का स्थान सात सौ मील की परिधि में ही था।

इसकी कल्पना की जा सकती है कि ज्वालामुखी के नीचे कितने बड़े बड़े पुच्छल तारे टूट कर गिरे होंगे? पृथ्वी के सम-भू-भाग पर पौन हिस्सा सागर है। कौन जानता है कि इस विभाग में कितने तारे ऐसे टूटकर अन्तराल में छिपे पड़े हैं? प्रोफ़ेसर निनिगर ने अपने संग्रहालय में ऐसे लगभग १० हज़ार तारों को खोजकर संग्रह कर रक्खा है। ये किन-किन तत्त्वों के मिश्रण से निर्मित हैं, यह अनुसन्धान का विषय है। किन्तु लन्दन-म्यूज़ियम में रक्खे हुए तारे बड़े वज़नी हैं। छोटे-छोटे छिद्र भी इनमें हैं, जैसे ज्वालामुखी से निर्गत द्रव पदार्थ सूख कर बन जाता है। ताज़े पड़े हुए तारे थोड़े भूरे रंग को लिये हुए हैं, और थोड़ी सफ़ेदी भी लक्षित होती है। कुछ सिमेंट के रंग के कालापन लिये हुए हैं। कुछ बाहर-भीतर से काले हैं। इन्हीं कालों का हाल यह है कि कुछ समय बाद जैसे जीवन-तत्त्व कम होकर ये भूरे बनते जा रहे हैं, उनके किनारे पिचकते जाते हैं, पर ये द्रव पदार्थ विसर्जन करते दिखाई नहीं देते, शुष्कता होती जाती है। अमेरिका के कुछ विभाग में तो ४-४ मील के अन्दर अनेक ऐसे तारे पृथ्वी पर प्राप्त हो जाते हैं, जिनको पाना विशेषश्रम-साध्य नहीं है।

सोमा

लेखक, श्रीयुत धर्मवीर एम० ए०

"अरे बाबू साहब!" "अरे बाबू साहब!"

पक्के तालाब के किनारे दो दोस्तों के साथ जा रहा था कि वृक्षों में से यह आवाज़ कान में पड़ी। मैंने समझा, दोनों मित्रों में से किसी को कोई बुला रहा है। मुझे यहाँ जानता ही कौन है, इसलिए मैंने कुछ ख़याल ही न किया। परन्तु एक मित्र ने उस तरफ़ ध्यान दिलाया तब मैं रुक गया। उन्होंने समझा कि कोई माँगनेवाली है, इसलिए वे आगे निकल गये। मैं वहीं खड़ा हो गया। तीस-बत्तीस बरस की एक स्त्री जो देखने में बाईस-तेईस की मालूम देती थी, मेरे सामने खड़ी थी। उसने अँगिया के ऊपर सिर की चुनरी लपेट रक्खी थी। लहँगे के अगले हिस्से को धोती की तरह लाँग बनाकर पीछे कमर में टाँग दिया था। हाथ में उसके गोफन था (गोफन की दो लड़ों के बीच में पत्थर आदि रखकर दूर बैठे बन्दर आदि जानवरों या तोते आदि पंछियों को मारा या उड़ाया जाता है।) बाल बिलकुल काले थे। मुख पर थोड़ी-थोड़ी लाली नज़र आती थी, जितनी काले चेहरे पर आ सकती है।

मुझे देखकर वह हँस पड़ी। मैं बड़ा हैरान था कि कहाँ फँस गया। जान न पहचान और हँसती चली जा रही है। क्या यह बेवक़ूफ़ है या पागल? फिर मन में आया—तू मर्द है। इससे सवाल क्यों नहीं करता कि कौन है? मैंने हिम्मत करके पूछा—"क्या बात है?"

वह फिर हँस दी।

मैं बहुत ही ज्यादा घबराया कि कोई देख लेगा तो क्या कहेगा। यह भील की लड़की और मैं ब्राह्मण। मैं कुछ का कुछ समझने लगा कि इतने में उसने मेरी घबराहट दूर कर दी—"अरे बाबू साहब! बस, भूल गये पुरानी बात!"

इस स्त्री ने शब्द 'बात' को बात नहीं कहा बल्कि कुछ अजीब तरीक़े से 'बातु' कहा। मेरे दिमाग़ के किसी कोने से एक पुरानी घटना निकल आई। अब मुझे सारी बात याद आ गई—"अरे, तू सोमा है?"

"जो हुकुम!"

(पुराना तरीक़ा यहाँ अभी तक चला आ रहा है। इस कारण 'जो हुकुम' और 'हुज़ूर' की भरमार रहती है। छोटा आदमी बड़े को 'जी हाँ' के बजाय हुज़ूर या जो हुकुम कहता है।)

"अरे! तू तो अब बहुत बड़ी हो गई है। कल तक तो छोटी-सी हुआ करती थी।"

"जो हुकुम।" उसने उत्तर दिया—"लेकिन पन्द्रह बरस भी तो हो गये।"

"हाँ हाँ, तू ठीक कहती है। मैं इतने साल नहीं आया, इसी कारण तुझे भूल ही गया। कहो, केवला तो अच्छा है?"

"हुज़ूर, अच्छा ही है।"

"अच्छा ही है! क्यों बीमार है क्या?"

"नहीं हुज़ूर, बीमार तो नहीं है।"

"फिर?" मैंने जिज्ञासा से प्रश्न किया।

"कोई खास बात नहीं है हुज़ूर!" उसने शरमाते हुए उत्तर दिया।

"फिर भी कोई आम बात?" उसकी शरम ने मेरे अन्दर कुछ शक-सा पैदा कर दिया—"अरे! कहती क्यों नहीं? वह मारता तो नहीं?"

"न हुकुम! यह कैसे हो सकता है? लुगाई को भी कोई मारा करता है क्या?"

"तब फिर और क्या बात है?"

"हुज़ूर!" वह यह शब्द कहकर चुप हो गई जैसे किसी ने उसका गला दबा दिया हो। फिर गोफन में पत्थर रखकर उसके हाथ खेलने लगे। वह बोली—"अब हमने एक-दूसरे के साथ जगह बदल ली है।"

इसका मतलब मेरी समझ में कुछ भी न आया।

मैंने मखौल से कहा—"क्या केवला लुगाई बन गया है ?"

"न हुज़ूर, यह नहीं।" वह खिलखिला कर हँस पड़ी—"हमने अपने काम एक-दूसरे से बदल लिये हैं।"

"मर्द लुगाई बन जायँ और लुगाई मर्द की जगह ले ले तब भी तो काम बदल जाते हैं।"

"न हुज़ूर, यह मामला इस तरह का नहीं है। अब वह घर के काम करता है और मैं बाहर के। बच्चों का ध्यान रखना, उनको खिलाना-पिलाना और नहलाना-धुलाना, घर बोहारना और रोटी बनाना—ये सब काम उसके हैं। मैं खेत में हल चलाती, पानी देती और रखवाली करती हूँ।" यह कहकर उसने गोफन की दोनों लड़ें पकड़कर उसे घुमाया। तीसरे घुमाव के बाद एक लड़ छोड़ दी तो पटाक से ज़ोर की आवाज़ हुई और पत्थर बन्दरों से परे जा पहुँचा।

"क्या इन बन्दरों को कभी मारा भी है ?" मैंने इस प्रश्न को दूसरी तरह से भी दोहराया—"तुमसे तो ये बन्दर मुश्किल ही मरते होंगे ?"

"मुझसे क्या, किसी से भी नहीं मरते।" उसने अपने आत्मसम्मान की रक्षा करते हुए चालाकी से उत्तर दिया।

"क्यों ? मरते क्यों नहीं ? बन्दर हैं या....."

"जो हुकुम, बन्दर तो हैं। परन्तु हनूमान् का आशीर्वाद लिये हुए हैं। मरेंगे कैसे ?"

"हाँ हाँ, आशीर्वाद ही नहीं लिये हुए हैं, बल्कि उनकी सन्तान भी हैं।" मैंने उसकी धार्मिक भावना में वृद्धि करने के लिए कहा।

"ठीक है हुज़ूर !"

"तो अब तुम सारा दिन एहे ! ओहो ! अरे हो ! यही कहती रहोगी ? गोफन और ये आवाजें ही या और भी कुछ ?"

"अभी तो हुज़ूर और कुछ नहीं। बारिश हुई नहीं। पहली बार मक्की बोई तो सड़ गई। पानी न पड़ा। दूसरी बार बड़ी मुश्किल से मक्की का बीज लिया। पर अब यह हाल है कि न बरखा होती है और न कुछ बनता नज़र आता है।"

"तुम्हारे छोटे का क्या हाल है ? वह जो कलह का...."

"न हुज़ूर, ऐसा न कहो", । उसने गम्भीरता पकड़ ली—"वह कलह न थी, वह तो प्रेम था। कुछ भी हो। वह लड़का मर गया। तीन साल का हुआ तब बीमारी पड़ी। उसमें वह भी चला गया। अंबा-माता की दी हुई चीज थी; उसी ने ले ली। बहुत दुःख हुआ। फिर चुप हो गई कि उसकी इच्छा हो तो दे, उसकी इच्छा हो तो ले।"

"अरे भई, तुम चलोगे भी कि यहीं जुड़ जाओगे?" एक मित्र ने मेरे कंधे पर हाथ मारकर कहा।

"अजी तुम भी क्या बेवक़ूफ़ हो।" दूसरे ने पहले से कहा—"बाबू साहब बहुत दिन के बाद मिल रहे हैं। ज़रा दो बातें कर लेने दो।"

सोमा ग़ायब हो चुकी थी। मैं उन दोनों के साथ हो गया। उनको बताया—"अरे भई, तुम भी लाल-बुझक्कड़ हो। कुछ तो अक़्ल से काम लिया होता। किसी भील से मेरा क्या वास्ता हो सकता है ? लेकिन शायद तुम्हारे अन्दर कई तरह की बातें काम कर रही हैं। मैं उनको दूर किये देता हूँ।

"पन्द्रह साल पहले की बात है। इसी तालाब के उस परले किनारे पर बारह-चौदह बरस की एक लड़की और एक नवयुवक पानी के अन्दर से डूंगर-घास निकाला करते। यह घास खाद के काम आती थी। तब सरकारी बाग़ों में इसकी काफ़ी खपत होती थी। पास के इस गाँव, दिवाली, के रहनेवाले वे दोनों इस काम को किया करते थे। तब मैं यहाँ बाग़ों के महक़मे में मुलाज़िम था। लड़की समझदार है। इसके पढ़ने का शौक़ देखकर मैंने इसे पहले तो हिन्दी का बाल-बोध और फिर एक-आध साधारण पुस्तक ला दी। तालाब से घास इकट्ठा करके ये दोनों मंडी में बेच आते। मुक़ाबिले के कारण इनके अन्दर ईर्ष्या उत्पन्न हो गई। एक बार यह लड़की—इसका नाम सोमा है—घास निकाल रही थी कि इसका पाँव फँस गया। लड़का जिसका नाम केवला है, वहीं खड़ा देख रहा था। बड़ा खुश हुआ कि आज मेरे दुश्मन को प्रकृति की तरफ़ से सज़ा मिलेगी। थोड़ी देर तक तो लड़की बड़ी मुसीबत में रही। परन्तु बाद में उसने

हाथ-पाँव मारकर अपने आपको घास से छुड़ा लिया। इत्तफ़ाक से उसी दिन केवला का पाँव पत्थर की एक सिल पर से फिसल गया। वह सिर के बल नीचे गिरा। सिर फट गया। खून का सोता फूट पड़ा। वह बेहोश पड़ा था कि सोमा ने उससे बदला लेने के बजाय उसका सिर धोया, घाव साफ़ किया और उसे उठा कर उसके घर पहुँचा दिया। बाद में सेवा-शुश्रूषा भी करती रही। अस्पताल से बाक़ायदा दवा भी लाया करती। इसका फल यह हुआ कि केवला भी उसके लिए प्राण देने लगा। बाद में दोनों की शादी हो गई। तब सोमा ने तालाब के किनारे एक छोटी-सी गुफा में वह पत्थर जिस पर केवला गिरा था, गुफा में ले जाकर उस पर केवला के पैरों के निशान बनाये। बस, वह प्रतिदिन उनकी पूजा किया करती। मुझे मालूम नहीं कि अब भी उसका वह मन्दिर वहाँ है या नहीं और वह वहाँ जाती है या नहीं।"

(२)

मज़ा तब आता है जब स्वयं कलाकार नाचने लगें। मैं तालाब के किनारे पत्थर की बनी छतरी से परे हटकर बैठा था कि नीचे दो सुन्दर कलाकारों को नृत्य करते देखा। किसी को दिखाने के लिए नहीं बल्कि खुद अपने आपको खुश करने के वास्ते ही वे ऐसा कर रहे थे। मैंने अनुभव किया कि मैं चोरों की तरह उनकी यह कला देख रहा हूँ। परन्तु यदि यह चोरी न करता तो वह स्वर्गीय आनन्द कैसे प्राप्त कर सकता था! मैं ऊपर था, वे दोनों नीचे। मैं उनको देख सकता था, वे मुझे न देख सकते थे। परन्तु मैं जानता था कि यदि कहीं उनकी नजर मुझ पर पड़ गई तो वे नाच बन्द कर देंगे। जिस शख्श को दुनिया की वाह-वाह की परवा न हो वह ऐसा ही करता है।

मैं कला के उद्देश्य के विषय में सोच रहा था कि इतने में मुझे पास से ही किसी कपड़े के सरकने की आवाज़ आई। तालाब से ऊपर आनेवाली पगडंडी से पहले तो एक सिर निकला, फिर थाली लिये हाथ। मैं समझ गया कि कोई गँवार औरत पूजा करके वापस आ रही है। सचमुच कितनी गँवार है। सौन्दर्य की ज़रा-सी भी बुद्धि होती तो इन कलाकारों की कला को देखती। मैं फिर अपनी उधेड़बुन में लग गया।

"अरे बाबू साहब!"

हैं, यह क्या? उधर देखा तो सोमा को हँसते पाया। मैंने शरम महसूस की कि यह भी क्या कहेगी। आदमियों को पहचान भी नहीं सकता। कल तो कल, आज भी यह हाल है।

"कहो सोमा, कहाँ से आई?" मैं बोला—"पूजा करके? लेकिन यहाँ तो कोई मन्दिर नहीं है। और, फिर नीचे तालाब के किनारे तू थी नहीं। रास्ते में क्या......"

"अरे बाबू साहब, क्या हो गया है आपको?" उसने मेरी बात को काट कर कहा—"यहाँ दुनिया के लिए मन्दिर नहीं है, मेरे लिए है। मैं अपने देवता का पूजन कर रही थी। देखा नहीं आपने, मेरी पूजा के लिए दो मोर नाच रहे थे? मेरी पूजा समाप्त हुई तो उन्होंने भी नाचना बन्द कर दिया। परन्तु आपने तो इस मन्दिर को कई बार देखा है। भूल गये आप?"

"हाँ सोमा, मैं भूल गया।" मैंने अपनी भूल स्वीकार की—"ज्यों-ज्यों उमर ज़्यादा होती चली जा रही है, दिमाग़ जवाब दे रहा है।" थोड़ी देर चुप रहने के बाद—"लेकिन क्या तू तब से यहाँ आती रही है?"

"जो हुकुम, तब से हर रोज़ यहाँ आती रही हूँ।" वह बड़े गर्व के साथ बोली।

"बड़ी हिम्मत है तेरी।" मेरे मुँह से निकला।

"क्यों हुज़ूर, इसमें हिम्मत की क्या बात है? सुबह उठने के बाद पहले यह धर्म कर लिया। बस।"

इतनी देर में बैठा ही रहा था। अब उठ खड़ा हो गया—"चलूँ, आज ज़रा केवला से दो बातें कर लूँ। घर पर ही होगा न?"

"जो हुकुम, वह घर पर ही है। जब मैं आई थी तब बच्चों को लेकर सो रहा था।"

"हाँ हाँ, अब लुगाई जो ठहरा। इसे तो मैं भूल ही गया था।"

जब हम पहुँचे तब केवला सचमुच ही सो रहा था। सोमा ने ही उसे जगाया। मुझे देखकर केवला हैरान हो गया कि यह कहाँ से टपक पड़ा है। पहचान तो उसने फ़ौरन लिया। फलस्वरूप प्रश्न किया—"अरे बाबू साहब, आज तो आप घने बरस के बाद आये।"

"हाँ, घने ही बरस हो गये केवला।" मुझे उसके प्यारे शब्द 'घने' को दोहराने में ख़ास आनन्द आया—"यह जीवन है। कुछ पता नहीं लगता। आज यहाँ हूँ, कल वहाँ। फिर न मालूम वहाँ कितने दिन रहना पड़े। फिर यहाँ आने में शायद और भी घने बरस हो जायँ। लेकिन तुम ज़रा यह तो बताओ कि आज-कल हाल कैसा है? मैंने सुना है, तूने अपनी लुगाई से जगह बदल ली है। उसके सब काम तू करता है और तेरे . . . . ."

"हुज़ूर, इसका एक काम मैं नहीं कर सकता।" उसकी दृष्टि सोये हुए बच्चों की तरफ़ गई। "उसे छोड़ कर इसके बाक़ी सब काम मैं करता हूँ।" यह कहकर वह हँस पड़ा।

"उसे भी तू क्यों नहीं कर लेता?" मैंने पूछा।

"वह क्या मुझसे हो सकता है?" उसने उत्तर दिया।

"क्यों, उसमें कौन-सी मुश्किल बात है?" मैंने सवाल किया—"थाल लेकर धूप और फूल रख ले और आरती उतार आये। बस"

"अरे हुज़ूर, आप तो कुछ और ही कह गये"। वह बोला।

"अरे तो तू क्या समझा था?"

उसने कुछ उत्तर न दिया। बच्चों पर कपड़ा देने के बाद वह हँस पड़ा।

"अच्छा! तुम अभी तक खचरे हो।"

वह और भी हँस दिया। सोमा भी।

"लेकिन सोमा, तुम दोनों ने अपनी अपनी जगह बदली क्यों है?" यह कह कर मैंने केवला की तरफ़ भी देखा। मैं चाहता था कि दोनों में से जो चाहे उत्तर दे।

केवला ने आँखें नीची कर लीं। मुझे प्रमाण मिल गया कि वह स्त्री बन गया है। अब मैंने उसके पति की तरफ़ देखा।

"हुज़ूर," सोमा ने बग़ैर झिझक के कहा—"अब इसमें छिपाने की कोई बात नहीं। सारे गाँव को मालूम है। किसी से भी पूछ लीजिए।"

देर काफ़ी हो गई थी। इसलिए मैं केवला की तरफ़ देखकर चल दिया। सोमा मुझे सड़क तक छोड़ने आई। घर का मालिक ठहरी।

"हाँ, तो बताया नहीं तुमने सोमा।" मैं बोला।

"हुज़ूर, पार साल की बात है। अंबा-माता का मेला था। भंडारा-गाँव की एक छोकरी माता के मन्दिर में पूजन के वास्ते आई। मेरा आदमी भी मेला देखने गया था। दोनों का सुर मिल गया। मेले के अन्त में केवला उसके साथ हो लिया। कई दिन तक न मालूम कहाँ रहा। कम से कम घर न आया। मुझे बड़ी चिन्ता हुई। अन्त में जब वह वापस आया तब मैंने इससे सवाल किया। इसने क्रोध में आकर, ऐसे मौक़ों पर क्रोध आ ही जाता है, मुझे लाठी मार दी। ख़ून निकल आया। गाँव की पंचायत बैठी। उसने इसे दंड दिया कि या तो पचास रुपये का भोज करके सारे गाँव को मालपुआ खिला, नहीं तो प्रायश्चित्त के तौर पर मेरे साथ जगह बदल ले। रुपये इसके पास थे नहीं, इसने जगह बदलने में शरम न समझी। बस, तब से यह घर का काम करता है और मैं बाहर का।"

"लेकिन इसे तो मौज हो गई होगी?" मैंने कहा।

"क्यों हुज़ूर, मौज कैसी?" उसने पूछा।

"मौज इस बात की कि घर में काम ही कौन सा बड़ा होता है।"

"न हुज़ूर, यह बात नहीं है। छोटा-छोटा, थोड़ा-थोड़ा करके वह भी बहुत ज्यादा हो जाता है। मैंने तो दोनों करके देखे हैं न। यह नहीं, उसमें एक दिक़्क़त यह होती है कि छोरे-छोरियाँ तंग बहुत करते हैं। सारा दिन घर पर रहने से वे नोच-नोच खाते हैं। फिर मर्दों के काम में यह मौज तो है न? कि दिन भर काम करने से एक तो शरीर बन रहा और दूसरा इतने घंटे बिछुड़े रहने के बाद बाल-बच्चों को मिलने से ख़ुशी होती है। मैं तो समझती हूँ कि मर्दों का काम ख़ुद मर्द के लिए ज्यादा फ़ायदेमन्द है।"

"परन्तु यह बात मुझे अभी तक समझ नहीं आई कि . . . ."

"क्या हुज़ूर?" उसने बात काट कर पूछा।

"अभी तो तुम कह रही थी कि मैं अपने देवता की पूजा करके आई हूँ। क्या अब भी वह तेरा देवता है? इस घटना के होने के बाद भी उसके प्रति तुम्हारी श्रद्धा या भक्ति में कोई फ़र्क़ नहीं आया?"

"बड़ी भोली बात की हुजूर ने।" वह बोली—"मैंने जब उसको देवता बनाया था उसमें यह कमज़ोरी न थी। मैं तो हर रोज़ उसी पहले की पूजा करती हूँ। मेरे देवता में कोई फ़र्क़ नहीं आया। फिर अगर इससे एक बार भूल हो भी गई है तो क्या मैं अपना नारी-धर्म बदल सकती हूँ ?"

मैं चुप हो गया। मेरे पश्चिमी विचारों के मुँह पर यह बहुत सख़्त चपत थी। मैंने अपनी भूल का अनुभव किया, बुरी तरह से। सोमा के इस विचार के सामने मैंने सिर झुकाया और कहा—"सोमा, किसी समय तू अपनी 'बीवी'-बच्चों को लेकर हमारे यहाँ आओ न। मेरी स्त्री तुमको मिलकर बहुत खुश होगी।"

'"जो हुकुम हुजूर, ज़रूर देखूँगी बाई साहब को।'

यह गति न मेरी बंद हो

लेखक, श्रीयुत शिवमंगलसिंह 'सुमन'

गिरि गहन, दुर्गम घाटियों के
घात सब सहता रहूँ;
उत्थान और पतन सभी में
एकरस बहता रहूँ;
टकरायँ हिमगिरि सामने, फिर भी न यह मति मंद हो,
यह गति न मेरी बंद हो।

यह गीत का वरदान भी
जलते उरों के ही लिए,
सौरभ सुगंध मिली सुमन को
दूसरों के ही लिए,
संसार मधु-संचय करे, मेरा हृदय मकरंद हो;
यह गति न मेरी बंद हो।

जो तृप्त अमृत से न हो
ऐसी प्रबलतम प्यास हो
जिसके लिए मैं मिट रहा
मेरा उसे विश्वास हो।
अपना न जब कोई रहे, केवल सहारा छंद हो;
यह गति न मेरी बंद हो।

असहाय दुर्बल को कभी
यह विश्व ही सुख-स्वर्ग हो,
मानव ! तुम्हारे ही लिए
जीवन सदा उत्सर्ग हो,
मेरे लिए तो बस यही, सत, चित्त, ब्रह्मानंद हो;
यह गति न मेरी बंद हो।

अन्यायियों के दुर्ग, गढ़
ढह जायँ, मिट्टी में सने,
विश्वास का संबल पकड़
मानव कभी मानव बने।
नव-क्रांति के पथ पर सदा, मेरी प्रगति स्वच्छंद हो,
यह गति न मेरी बंद हो।

विश्व-संघर्ष का एक संख्यावादी विश्लेषण

लेखक, श्रीयुत परिपूर्णानन्द वर्म्मा

संसार में इस समय प्रलय-कारक परिस्थितियाँ उत्पन्न हो गई हैं। यह कोई नहीं कह सकता कि आज जैसी दुनिया है, वैसी कल भी रहेगी या नहीं। किन्तु दुनिया की यह विपत्ति बिना कारण के भी नहीं हो सकती। तृष्णा, भोग-लिप्सा और पैर फैलाने के बाद कब्ज़ा करने की भावना के भीतर सबसे पहले पेट की समस्या होती है। किसी देश में खाने को है तो खानेवाले कम हैं, इसलिए दूसरा उस पर दाँत लगाना चाहता है। कहीं ज़मीन कम और आबादी इतनी अधिक है कि हाथ-पैर फैलाने के लिए भी पड़ोसी देश का मुँह देखना पड़ता है। कहीं पुरुष अधिक हैं, स्त्रियाँ कम हैं—कहीं इसका उलटा ही है। इन हरएक बातों से एक कारण का पता चलता है, जिससे दुनिया की इस बीमारी का कारण समझा जा सकता है।

हमारे आपके सामने संसार बदल रहा है। इसलिए आओ हम और आप मौजूदा दुनिया की हालत को समझ लें। शायद इस जानकारी के बाद, भावी संसार की, वर्तमान महासमर के विस्तार की, अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति की उलझनों की समस्या के सुलझाने में आसानी हो।

इसी लिए इस लेख में पाठकों के सम्मुख दुनिया की आबादी, उसका विस्तार, उसका बँटवारा, जन्म, मृत्यु, उत्पत्ति तथा शादी-ब्याह का ब्योरा बतलाया गया है। इस लेख के आँकड़े काफ़ी छान-बीन करके संग्रह किये गये हैं। सन् १९३१ के नहीं—बल्कि १९३६ तक के आँकड़े भी दिये गये हैं। हरएक संख्या की सचाई-की ज़िम्मेदारी राष्ट्र-परिषद् की रिपोर्टों पर है। उन्हीं की सहायता से यह अत्यन्त नीरस, किन्तु अत्यन्त आवश्यक और उपयोगी लेख तैयार किया गया है।

किन्तु संख्याओं के संकलन में बड़ी कठिनाई का सामना करना पड़ा है। बहुत-से देश ऐसे हैं जिनकी सरकारें इतनी उन्नत नहीं हैं कि जन-संख्या का हिसाब रक्खें। बहुत-से देश ऐसे हैं जिनकी सूचना विश्वसनीय नहीं है। आँकड़े भी दो प्रकार के होते हैं, 'असली' और 'क़ानूनी'। क़ानूनी आँकड़े उतने ठीक नहीं होते। फ़्रांस या नार्वे की जन-संख्या 'क़ानूनी' है। ज़ेकोस्लोवाकिया जैसे देशों की 'असली' है।

इनके अलावा कुछ देशों में इतनी अधिक सरकारें हैं या उनके इतने छोटे-छोटे टुकड़े हैं कि उनका पूरा हिसाब पा जाना कठिन है। इसलिए अफ़्रीका और मध्य तथा दक्षिणी अमरीका की आबादी की संख्यायें 'क़यासी' हैं। चीन का भी यही हाल है। एशिया में ही अफ़ग़ानिस्तान, अरब, भूटान, नैपाल, ईराक़ या सीरिया की आबादी का ठीक पता नहीं है।

क्षेत्रफल के विषय में भी इसी प्रकार आँकड़ों की निश्चितता का दावा नहीं किया जा सकता। कुछ राज्य तो अपनी चौहद्दी जल्दी-जल्दी बदल देते हैं; कुछ राजनैतिक दाँव-पेंच से दूसरे की सीमा काट लेते हैं; कुछ ऐसे भी हैं जिनको अपनी असली सीमा का ही पता नहीं है। बहुतेरे राज्यों की सीमा का विभाजन १९३४-३५ में ही हुआ है। योरप के नक़्शे की रद्दोबदल की बात जाने दीजिए। इन सब बातों को ध्यान में रखते हुए यही उचित प्रतीत होता है कि सन् १९३९ की स्थिति के अनुसार संख्यायें बताई जावें। इस प्रकार विश्व के नवीन परिवर्तनों के समझने में आसानी भी होगी और यह भी पता चलेगा कि कौन-सी बात कहाँ बदली है।

अब हम आगे प्रमुख महाद्वीपों तथा उनके अन्तर्गत प्रधान राज्यों के क्षेत्रफल तथा आबादी की संख्यायें देते हैं—

राज्यों के क्षेत्रफल तथा आबादी

(सन् १९३६ के दिसम्बर तक का अनुमान)

नाम देश	कुल आबादी (००० तीन बिन्दु छोड़कर)	क्षेत्रफल कि०मी० में (००० तीन बिन्दु छोड़कर)
महाद्वीप		
अफ़्रीका ...	१५,१२,००,	२,९९,००,
अमरीका ...	२६,७८,४०,	४,०७,०२,
एशिया (साइबेरिया को छोड़कर)	१,११,६३,००,	२,६८,००,
एशिया (चीन और साइबेरिया को छोड़कर)	६६,६३,००,	१,५७,००,
योरप ...	३९,४५,२०,	५४,२६,
आस्ट्रेलिया इत्यादि...	१,०४,७०,	८५,५०,
प्रमुख देश		
भारतवर्ष ...	३७,४२,००,	४६,८४,
बर्मा ...	१,५६,००,	६,०५,
सीलोन ...	५६,७८,	६६,
फ्रेंच भारत ...	०,५,	३,००,
चीन ...	४५,००,००,	१,११,०३,
ईराक़ ...	३६,००,	३,०२,
ईरान ...	१,५०,००,	१६,४३,
नैपाल ...	५६,००,	१,४०,
जापान ...	७,०६,००,	३,८२,
इँग्लेंड-वेल्स-स्काटलैंड	४,७१,८७,	२,४४,
तुर्की ...	१,६४,९०,	७,६३,
ज़ेकोस्लोवाकिया ...	१,५२,१३,	१,४०,
जर्मनी ...	६,७५,८७,	४,६९,
फ्रांस ...	४,१४,९०,	५,६१,
इटली ...	४,२६,७७,	३,१०,
पोलैंड ...	३,४२,२१,	३,८८,
स्पेन ...	२,५०,५०,	५,०३,
सोवियट रूस ...	१७,५५,००,	१,११,७६,
बेल्जियम ...	८३,३१,	३०
रूमानिया ...	१,९४,२३,	२,९५,
आस्ट्रेलिया ...	६८,०७,	७७,०४,
न्यूज़ीलैंड ...	१५,८५,	२,६८,
मेक्सिको ...	१,९०,०३,	१९,६९,
कनाडा ...	१,१०,८०,	१,९५,४२,
संयुक्तराज्य (अमेरिका)	१२,८८,४०,	१,७८,३९,
मिस्र ...	१,५८,६०,	१०,००,
दक्षिण-अफ़्रीका ...	९७,०७,	१२,२२,
अबीसीनिया ...	५५,००,	९,००,
फ्रेंच अफ़्रीका ...	३,८५,६०,	१,०३,३०,

इन आँकड़ों से काफ़ी रोचक बातें मालूम होती हैं। दुनिया कहाँ कितनी घनी आबाद है, कहाँ कितनी कम आबाद है, कहाँ कितनी बेकार ज़मीन पड़ी है और कहाँ रहनेवाले ही नहीं हैं और कहाँ इतने रहनेवाले हैं कि उनके लिए ज़मीन ही नहीं मिलती, इन सबका इन आँकड़ों से अन्दाज़ मिल जाता है। साथ ही इसका भी कि केवल ज़्यादा संख्या में आदमियों के रहने से ही देश की उन्नति नहीं होती और न वह शक्तिशाली ही कहा जा सकता है। योरप कितना छोटा है, पर आज वह एशिया से अठगुनी ताक़त रखता है। जापान इँग्लेंड से बड़ा है, पर दोनों की ताक़त का क्या मुक़ाबिला! फ्रांस आबादी में जर्मनी का आधा है, पर जर्मनी फ्रांस को निगल नहीं सकता। किन्तु इतने से ही हमारी जानकारी समाप्त नहीं होती। मिस्र के १०,००,०० वर्ग किलोमीटर क्षेत्रफल में केवल ३,५१,६८ वर्ग किलोमीटर में बस्ती है। कनाडा के भीतर के नदी-नालों के पानी का क्षेत्रफल भी मिलाकर उसका क्षेत्रफल ५,८८,००० वर्ग किलोमीटर यानी २, २६,९७९ वर्गमील है और संयुक्त राज्य (अमेरिका) का १,३७,०००वर्ग किलोमीटर यानी ५३,००० वर्गमील है। आस्ट्रेलिया में ६०,००० 'आदिम निवासी' यानी जंगली भी हैं, जिनकी तादाद नहीं जोड़ी गई है। आजकल अख़बारों में इस्टोनिया, फ़िनलैण्ड, नार्वे, नीदरलैण्ड तथा स्वेडेन आदि के नाम बहुत आते हैं। अतएव इनका क्षेत्र-

---

नोट—किलोमीटर—१३ स्क्वायर किलो० = १ स्क्वायर मील।

फल भी जान लेना रोचक होगा, जो क्रमशः २३३८; ४४,८३१; १४,०८२; १,५९८ और ३८,६९२ वर्ग किलोमीटर हैं।

महायुद्ध के समय यह भी जानना बड़ा ज़रूरी है कि किस प्रमुख देश में कितने जवान, बूढ़े और बच्चे हैं तथा कितनी स्त्रियाँ और पुरुष हैं। इस रोचक जानकारी के लिए नीचे दी गई तालिका का अध्ययन करना उचित होगा।

उम्र की दृष्टि से आबादी

(००० शून्य छोड़कर)

देश	सन्	व्यक्ति	१ से २० वर्ष	२०—४० वर्ष	४०—६० वर्ष	(पूरायोग) कुल
भारतवर्ष ..	१९३१	पुरुष	८,७८,४४,	५,७६,४८,	२,७६,६५,	१८,०२,०६,
	"	स्त्री	८,३७,००,	५,४३,१३,	२,४४,३३,	१६,९६,५४,
जापान ..	१९३०	पुरुष	१,४०,५१,	८५,२०,	५३,६८,	३,००,१३,
	"	स्त्री	१,३७,५८,	८८,३८,	५६,७०,	२,९७,२४,
जर्मनी ..	१९३७	पुरुष	१,०५,०८,	१,१४,११,	७२,६०,	३,२९,२२,
	"	स्त्री	१,०१,४७,	१,१६,१४,	८६,२०,	३,४६,६५
फ़्रांस ..	१९३५	पुरुष	६२,४१,	६५,३९,	४५,५३,	१,९९,९७,
	"	स्त्री	६०,७७,	६४,४९,	५३,९९,	२,१३,१७,
इटली ..	१९३६	पुरुष	८१,९२,	६६,७०,	३९,३४,	२,१०,६७,
	"	स्त्री	६८,९६,	६८,५०,	४५,३२,	२,१८,४९,
इँगलैंड और स्काटलैंड, वेल्स	१९३६	पुरुष	६२,१६,	६३,९९,	४६,३४,	१,९६,९१,
	"	स्त्री	६०,७८,	६७,९७,	५४,४८,	२,१२,४८,
सोवियट रूस (साइबेरिया मिलाकर)	१९३६	पुरुष	२,५६,६३,	२,०४,९२,	१,१५,१६,	७,१०,४३,
	"	स्त्री	३,५९,९७,	२,३८,७६,	१,१५,९२,	७,५९,८५,
संयुक्त-राज्य (अमरीका)	१९३०	पुरुष	२,४०,१४,	१,९४,३९,	१,३३,६६,	६,२१,३७,
	"	स्त्री	२,३५,९६,	१,९५,९४,	१,२२,८८,	६,०६,३८,
कनाडा ..	१९३१	पुरुष	२१,८४,	१६,०१,	११,३५,	५३,७५,
	"	स्त्री	२१,४६,	१४,९५,	९,६२,	५०,०२,
मिस्र ..	१९२७	पुरुष	३४,७२,	२०,८३,	१०,५४,	७०,५८,
	"	स्त्री	३२,९२,	२२,४८,	१०,६४,	७१,२०.
तुर्की ..	१९३५	पुरुष	४०,५०,	२४,४२,	१२,८०,	७९,३६,
	"	स्त्री	३१,७२,	२४,८९,	१,३६८,	८२,२१,

इस तालिका के विषय में दो-तीन रोचक बातों की ओर ध्यान आकर्षित करना ज़रूरी है। पहली बात तो यह है कि इससे पाठकों को यह स्पष्ट मालूम हो जायगा कि किस देश की आबादी उसके क्षेत्रफल के लिहाज़ से कम या ज़्यादा है तथा किन देशों में रहने की जगह काफ़ी या कम है। दूसरी बात यह भी विदित हो जायगी कि पिछले महासमर के कारण पुरुषों की अधिक मृत्यु होने से फ़्रांस, ब्रिटेन, इटली, जर्मनी, तुर्की आदि में स्त्रियाँ कितनी अधिक बढ़ गई हैं और स्त्रियों की वृद्धि के कारण इन देशों में नैतिक तथा सैनिक परिस्थितियों में किस प्रकार अन्तर पड़ गया है। लड़ाई फिर से छिड़ जाने के कारण यह जान लेना रुचिकर होगा कि प्रमुख देशों में स्त्री और पुरुष का औसत क्या है। ऊपर जो संख्यायें दी गई हैं उन तक पहुँचने में काफ़ी जोड़-बाक़ी करना पड़ा

है। राष्ट्र-परिषद् की रिपोर्ट में बहुत ही विस्तार के साथ तालिका बनाई गई है। पर हमारे लिए स्थानाभाव के कारण उसी से काम लेना संभव न था। हमने कुल जोड़ भर यथावत् दे दिया है। पर यह जोड़ केवल उन्हीं संख्याओं का नहीं है जिन्हें हमने दिया है। उनके अन्तर को ही उस देश की ६० वर्ष से ऊपर की उम्रवाली स्त्री और पुरुष की तादाद समझ लेनी चाहिए। पाठकों को यह भी मालूम हो जायगा कि कहीं २०-४० वर्ष के भीतर की औरतें ज़्यादा हैं तो कहीं ४०-६० वर्ष की।

चीन हमारा पड़ोसी है। पर उसके आँकड़े जब राष्ट्र-परिषद् को न मिल सके तब हमारी क्या शक्ति है जो उनका संकलन कर सकें। भारतवर्ष की संख्या में अदन और पेरिक टापू शामिल हैं। उनसे पृथक् संख्या नहीं है। जर्मनी के आँकड़े 'वहाँ के बाशिन्दों' को मिलाकर हैं। फ़्रांस की संख्या 'वास्तविक' है, क़ानूनी नहीं। इटली की संख्या दुहराई हुई नहीं है। इन बातों का पाठक ध्यान रक्खें।

स्त्री-पुरुष का औसत

प्रतिशत

देश	पुरुष	स्त्री	ई० सन्
तुर्की ...	४९.१	५०.९	१९३५
सोवियट रूस और साइबेरिया	४८.३	५१.७	१९२६
इँग्लेंड, स्काटलैंड, वेल्स ...	४८.०	५२.०	१९३६
इटली ...	४९.१	५०.९	१९३६
फ़्रांस ...	४८.२	५१.८	१९३५
जर्मनी (आस्ट्रिया छोड़कर)	४८.७	५१.३	१९३७
जापान ...	५०.३	४९.७	१९३०
भारतवर्ष ...	५१.५	४८.५	१९३१
मिस्र ...	४९.८	५०.२	१९२७
कनाडा ...	५१.८	४८.२	१९३१
संयुक्त-राज्य (अमेरिका) ...	५०.६	४९.४	१९३०

इस तालिका से यह विदित होता है कि तुर्की, सोवियट रूस, इँग्लेण्ड-स्कटलैण्ड-वेल्स, इटली, फ़्रांस, जर्मनी और मिस्र में स्त्रियाँ अधिक तथा पुरुष कम हैं।

युद्ध-प्रिय देशों के लिए यह ज़रूरी है कि अपनी पुरुष-संख्या बढ़ावें। इसलिए जहाँ एक ओर बहुत-से राज्य जीतने की चेष्टा हो रही है, वहीं अपनी आबादी बढ़ाने का भी घोर प्रयत्न हो रहा है। फ़्रांस ने तो सन्तान-उत्पत्ति पर बाक़ायदा इनाम बाँटा था। जर्मनी और ग्रेट ब्रिटेन में शादी पर काफ़ी ज़ोर दिया जा रहा है। जर्मनी ने विवाहित सरकारी कर्मचारियों का वेतन और भत्ता बढ़ा दिया। स्त्रियों को नौकरी से अलग कर दिया, उन्हें शादी करने और घर-गृहस्थी बसाने की हिदायत दी गई। यह भी सुना है कि जर्मनी में गर्भ-निरोधक ओषधियों पर काफ़ी रोक-थाम की जा रही है।

विवाह की संख्या-औसत और वृद्धि

(यह संख्या केवल प्रमुख देशों की दी जा रही है। कुछ आँकड़े 'अनुमानित' हैं)

देश	सन् ३१–३५ तक का औसत	सन् ३५ में होनेवाले विवाहों की संख्या	सन् ३६ में होनेवाले विवाहों की संख्या	सन् ३५ का औसत प्रतिशत	सन् ३६ का औसत प्रतिशत
जापान ...	५,१३,५०७	५,५६,७३०	५,४९,११६	८.०	७.८
जर्मनी ..	६,१३,९६९	६,५१,४३५	६,०९,७७०	९.७	९.१
फ़्रांस ..	३,०८,१३७	२,८४,८९५	२,७९,७४३	६.८	६.७
इटली ..	२,८६,८१५	२,८७,६५३	३,१६,५१४	६.७	७.४
इँग्लैंड, वेल्स और स्काटलैंड	३,६८,६०५	३,९६,३६८	४,०१,७०४	८.५	८.६
संयुक्त-राज्य (अमेरिका) ..	११,५४,०००	१३,२७,०००	..	१०.४	..
कनाडा ..	६८,५१४	७६,८९३	८०,९०४	७.०	७.३
पोलैंड	२,७४,९५३	२,८०,०२५	२,८४,४२५	८.३	८.४
रूमानिया	१,६५,५९३	१,६५,७७८	१,७६,७९०	८.७	९.२

पीछे दिये गये आँकड़े काफ़ी रोचक और माननीय हैं। भारत ऐसे बाल-विवाहवाले देश और मिस्र ऐसे पिछड़े देश के शादी-व्याह का हिसाब लगाना कठिन है। सोवियट रूस में विवाह इतना अमहत्त्वपूर्ण चीज़ है और लड़का पैदा कर सरकारी महकमे के सुपुर्द कर देने का रवाज ऐसा चल पड़ा है कि वहाँ की संख्या भी नहीं मिल सकती। फ़्रांस से अधिक जर्मनी ने और जर्मनी से अधिक पोलैण्ड ने विवाह पर ध्यान दिया, यह भी स्पष्ट है। किन्तु सन् १९३६ में जो अच्छा औसत सब जगह था वह सन् १९३६ में नहीं रहा। पर सन् १९३७ की जो थोड़ी-बहुत संख्या प्राप्त हुई है उससे यह विदित होता है कि सन् १९३७ भी सन् १९३६ से अच्छा रहा। फ़्रांस में ८.७ प्रतिशत (सन् १९३६) से घटकर सन् १९३७ में ६.६ प्रतिशत औसत हो गया था, पर इटली में ७.४ प्रतिशत से बढ़कर ८.६ प्रतिशत औसत हो गया। जर्मनी और यूनाइटेड किंगडम (इं०, स्काट०, वेल्स) का प्रतिशत सन् १९३६ के बराबर रहा। रूमानिया में .३ प्रतिशत बढ़ा था।

जन्म-मृत्यु-आबादी की वृद्धि

देश	जन्म १९३५	जन्म १९३६	मृत्यु १९३५	मृत्यु १९३६	सन् १९३६ में आबादी–मृत्यु से अधिक उत्पत्ति का औसत फ़ी १००० व्यक्ति पीछे	सन् १९३६ में ५ वर्ष से कम उम्र वाले बच्चों की मृत्यु फ़ी १००० बच्चे पीछे
ब्रिटिश भारत और बर्मा	९६,९८,३९४	९९,८१,१४३	६५,३८,७११	६२,३५,७३१	२२.८	१६२
जापान ..	२१,९०,३०४	२२,०१,३६९	११,६१,९३६	१२,३०,२३८	१२.४	११७
जर्मनी ..	१२,६३,९७३	१२,३८,५८३	७,९२,०१८	७,९५,७९३	७.२	६६
फ़्रांस	६,४०,५२७	६,३०,०५९	६,५८,३७९	६,४२,१३९	०.३*	६७
इटली ..	९,९६,३०८	९,६२,६७६	५,९३,९५३	५,८९,६६६	८.७	१००
यूनाइटेड किंगडम ..	७,११,४२६	७,२०,१२९	५,६१,३२४	५,८०,९८२	३.०	६२
मिस्र	६,४५,७६०	६,९८,१८६	४,१२,१९७	४,५५,८६२	१५.६	१६४
कनाडा ..	२,२१,८५१	२,२०,३७१	१,०५,५६७	९७,०५०	१०.३	६६
संयुक्त-राज्य (अमेरिका)	२१,५५,१०५	२१,४४,७९०	१२,७३,५५९	१२,३८,३६९	५.१	५७
पोलैंड ..	८,३६,६६७	८,९२,३०	४,३०,९९८	४,८२,६३३	१२.०	१४१
रूमानिया ..	५,८५,५०३	६,०८,७७४	४०,२,६७८	३,८२,१८५	९.६	१७५

ऊपर दी गई तालिका से पाठकों को बहुत-सी नई बातें मालूम होंगी। सन् १९३६ के मुक़ाबिले में सन् १९-३७ में आबादी और भी बढ़ी है और इस हिसाब से सन् १९४० तक दुनिया की जन-संख्या का प्रश्न गुरुतर हो जाता, यदि अपने सर्वनाश के लिए योरप ने लड़ाई न छेड़ दी होती। जापान और भारत में तथा सबसे अधिक मिस्र में आबादी बढ़ी है और फ़्रांस में घट गई है, यानी ०.३ प्रतिशत। संयुक्त-राज्य (अमेरिका) की मृत्यु-संख्या विशेष विश्वसनीय नहीं है, क्योंकि राष्ट्र-परिषद् को भी विश्वस्त आँकड़े न मिल सके।

दुधमुँहे बच्चों की मृत्यु के औसत से उस देश की ग़रीबी-अमीरी और सन्तान की देख-रेख का अन्दाज़ मिलता है। मिस्र की दशा भारत से अधिक गई गुज़री है, जहाँ हमारे यहाँ से अधिक बच्चे मरते हैं। पर जर्मनी, फ़्रांस, इँगलैंड इत्यादि से तुलना करने पर अपने देश

* — ०.३=पहले से ०.३ प्रतिशत घटा है।

की लाचारी पर लज्जा आती है। पाठक यह भी न भूलें कि रूमानिया ऐसा देश जो इतना उन्नत होने का दम भरता है, हमसे भी गया गुज़रा है, क्योंकि उसकी संख्या सबसे बुरी है—वहाँ १००० पीछे १७५ बच्चे मर जाते हैं।

यह लेख अधिकांशतः संख्या-मय है। पर इस लेख का उद्देश्य ही पाठकों को संसार की उस सामाजिक समस्या का ज्ञान कराना है जिससे उसकी राजनैतिक तथा शुद्ध नैतिक दशा का ज्ञान हो जाय और वे स्वतः समझ लें कि महासमर का किसी देश की आबादी और प्रगति पर कितना असर पड़ता है।

जर्मनी ने जिस परिश्रम से अपनी आबादी को बढ़ाना शुरू किया था वह उसका अकारथ गया और पुनः स्त्रीवर्ग की अधिकता और पुरुषों का ह्रास हो जायगा। यही दशा फ्रांस में भी होगी। इँग्लेण्ड की भी गहरी हानि होगी। इटली अवश्य अपने को बचाये रहेगा। किन्तु इस लेख से माल्थस का यह सिद्धान्त भी सिद्ध हो गया कि जब "आबादी ज्यादा बढ़ जाती है तब या तो रोग-व्याधि से लोग मर कर पलड़ा बराबर कर देते हैं या लड़ाई छिड़ जाती है।"

इसलिए विज्ञान की प्रगति ने व्याधि को रोक लिया—मनोविज्ञान के ह्रास ने महासमर को मौक़ा दिया।

मनुज को क्यों मनुज खाये!

लेखक, श्रीयुत श्री मन्नारायण अग्रवाल, एम० ए०

मनुज को क्यों मनुज खाये!
प्रेम के बदले मनुज तो
ख़ून का प्यासा बना है,
स्वार्थ में तल्लीन होकर
द्वेष से पूरा सना है!
नाश के साधन जुटाकर
नाश अपना कर रहा है,
बुद्धि खोकर, पागलों-सा
पाप-घट निज भर रहा है!
तोप-गोलों को गिराकर
वीरता के गान गाये!
मनुज को क्यों मनुज खाये!

एक था वह काल जब निज
वचन पर जन प्राण देते,
अब ज़माना आगया है,
तोड़कर प्रण, जान लेते!

मरण की तांडव-कला में
अति निपुण जग बन गया है,
किन्तु जीवन की कला का
ज्ञान ही अब गुम गया है!

कौन सी वह शक्ति जिसके
सामने मानव लजाये!
मनुज को क्यों मनुज खाये!

सदैव जवान बने रहिए

लेखक, प्रिन्सिपल श्री केदारनाथ गुप्त, एम० ए०

जंगल में दौड़ते हुए हिरन की ओर देखिए। आकाश में उड़ते हुए पक्षी की ओर दृष्टिपात कीजिए। वे कैसे तरुण और फुर्तीले दिखलाई पड़ते हैं? पशुओं और पक्षियों के अतिरिक्त संसार का एक एक प्राणी तरुण बनने का प्रयत्न करता है। मनुष्य प्राणी भी इसी सनक में तल्लीन है। क्यों न हो! तरुण बनने का इस प्रकार प्रयत्न करना कोई अस्वाभाविक बात नहीं है, क्योंकि तरुण और सुन्दर बने रहना हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है।

तरुण और सुन्दर वही रह सकता है जिसका स्वास्थ्य अच्छा हो, और अच्छा स्वास्थ्य उसी का हो सकता है जिसका शरीररूपी यंत्र सुचारु रूप से अपना काम करता हो। शरीररूपी यंत्र को सुचारु रूप से चलाने के लिए आवश्यकता इस बात की है कि हम प्रकृति के नियमों का पालन करें। आधुनिक सभ्यता ने हम लोगों को प्रकृति से कोसों दूर रख छोड़ा है और यद्यपि हम अपने को शिक्षित और सभ्य कहते हैं, तथापि हमारा वर्तमान जीवन प्रकृति से दूर हो जाने के कारण अत्यन्त अशान्त हो रहा है।

तरुण और सुन्दर बनने के लिए हम बढ़िया से बढ़िया वस्त्र पहनते हैं, बढ़िया से बढ़िया साबुन और पाउडर का प्रयोग करते हैं, अच्छे से अच्छे सुगन्धित तेल और इत्र लगाते हैं। किन्तु क्या इन वस्त्रों, पाउडरों और तेलों से हम तरुण और सुन्दर बन सकते हैं? यह तो एक प्रकार की मृगतृष्णा है, जिसके पीछे पड़कर लोगों की एक अच्छी संख्या व्याकुल हो रही है। जवानी और सुन्दरता को कायम रखने के लिए हमें इन अप्राकृतिक वस्तुओं को छोड़कर प्रकृति की देन अर्थात् भोजन, जल, हवा और धूप इत्यादि का आश्रय लेना होगा।

जवानी कायम रखने में भोजन का एक अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है। जो भोजन हम करते हैं उसका
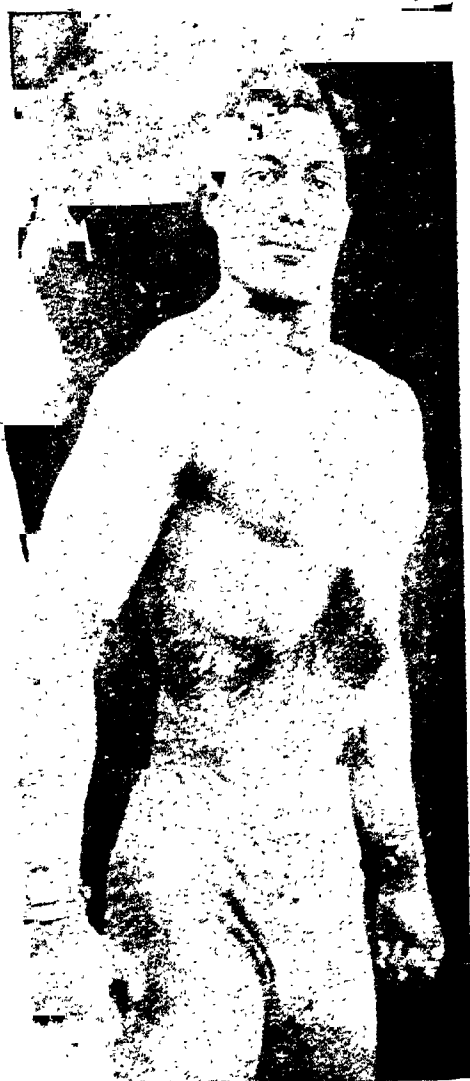
[एक तरुण मनुष्य जिसने अपने शरीर की मांसपेशियों की वृद्धि डम्बिल आदि व्यायामद्वारा की है।]

अच्छा या बुरा प्रभाव हमारे शरीर और मन पर पड़ता है। इसलिए, भोजन का चुनाव हमें बड़ी सावधानी से करना चाहिए। प्रकृति में भोजन का क्षेत्र बड़ा विस्तीर्ण है। उसमें से भोजन का बढ़िया से बढ़िया चुनाव हो सकता है। जो भोजन चुना जाय वह स्फूर्ति देनेवाला हो, अच्छा खून उत्पन्न करे और उसमें वे सब तत्त्व पाये जायँ जिनकी आवश्यकता शरीर को पड़ती है।

किस प्रकार का भोजन किसके लिए अनुकूल है,

[एक स्वस्थ मनुष्य का शरीर।]

इसका निर्णय प्रत्येक व्यक्ति को स्वयम् अनुभव करके करना चाहिए। प्रायः देखा गया है कि कोई कोई भोजन तो ऐसे होते हैं जिनसे एक को लाभ पहुँचता है, किन्तु उन्हीं भोजनों मे दूसरों को हानि पहुँचती है। किन्तु इस बात से तो सभी सहमत हैं कि भोजन के पदार्थ ऐसे हों जिनमें श्वेतसार, प्रोटीन, वसा, लवण, जल और विटेमन का मिश्रण हो। सब प्रकार के अन्न, हरी तरकारियाँ, फल, दूध, मक्खन और घी में ये सब तत्त्व पाये जाते हैं। कितनी तादाद में हमें भोजन करना चाहिए, इसका भी निर्णय व्यक्तिगत रूप में होना चाहिए। जो शारीरिक परिश्रम करते हैं उन्हें अधिक भोजन की जरूरत है और जो पढ़ने-लिखने का काम करते हैं उन्हें कम भोजन चाहिए।

हिन्दुस्तान में काफ़ी समय बीच बीच में देकर तीन या चार बार भोजन करने की आवश्यकता है। प्रातः ७ बजे पाव डेढ़-पाव दूध पिया जाय और साथ में थोड़ी-सी किशमिश, अंजीर या खजूर बदल बदल कर खाये जायँ। ११ बजे पेट भर भोजन किया जाय। इसमें रोटी, छिलकेदार दाल, भात, पकी तरकारी और सलाद (कच्ची तरकारी जैसे टमाटर आदि) हो। दाल में थोड़ा-सा शुद्ध घी डाला जाय। तरकारियों में अधिक मसाला न डाला जाय। सायंकाल यदि भूख लगे तो मौसमी ताज़े फल खाये जायँ और एक पाव दूध पिया जाय। रात ७॥ बजे रोटी, तरकारी और फल की ब्यालू की जाय।

भोजन कुचल कुचल कर करना चाहिए। ठूँस ठूँस-कर भोजन नहीं करना चाहिए। ऐसा करने से सुस्ती आती है और मेदा ख़राब हो जाता है। इसी प्रकार कम भी नहीं खाना चाहिए, क्योंकि कम खाने से अन्त में मनुष्य को हानि पहुँचती है। नशे की वस्तुओं का सेवन नहीं करना चाहिए। चाय और चुरुट का भी व्यवहार नहीं करना चाहिए।

भोजन के बाद नम्बर व्यायाम का आता है। व्यायाम करने से पाचनक्रिया ठीक रहती है और मांस-पेशियों की वृद्धि होती है। व्यायाम कई प्रकार के हैं, किन्तु सबसे बढ़िया व्यायाम जिसको स्त्री-पुरुष, बालक-बूढ़े, सब सरलता से कर सकते हैं, प्रातःकाल की खुली हवा में घूमना है। खुली हवा में चार-पाँच मील घूमने से हमारा शरीर २४ घंटे तक काम करने के लिए फ़ुर्तीला हो जाता है।

स्वास्थ्य के साथ साथ शरीर की पेशियों को भी सुडौल करना चाहिए। इसके लिए प्रातःकाल ५० डंड और पचास बैठकें करनी चाहिए। साथ में डम्बुल का भी व्यायाम करना चाहिए। डम्बुल के व्यायाम से शरीर जल्दी सुडौल और सुन्दर तैयार होता है। एक स्वस्थ मनुष्य का शरीर खूब गढ़ा हुआ होता है और उसका चेहरा लाल होता है।

दिन भर काम करने के पश्चात् शरीर को आराम देने की आवश्यकता है। सोने से बढ़कर शरीर को विश्राम

देनेवाला कोई दूसरा साधन नहीं है। अतएव खुले स्थान में साफ़ बिछौने पर ६ से ८ घंटे सोना तन्दुरुस्ती के लिए अत्यन्त आवश्यक है। सोना शरीर की थकावट को उसी प्रकार खींच लेता है, जिस प्रकार जल को स्पंज।

शरीर और मन को स्वस्थ रखने के लिए हमेशा प्रसन्न रहने की भी बड़ी आवश्यकता है। मन का शरीर पर कितना ज़बर्दस्त प्रभाव पड़ता है, इसका अनुभव आप लोगों ने अपने जीवन में किया होगा। जब आपको किसी बात की चिन्ता होती है तब रात भर नींद नहीं आती और मन हमेशा मलीन रहता है। क्या दरिद्र, क्या धनवान्, क्या बड़े, क्या छोटे सबके पीछे एक न एक चिन्ता लगी हुई है। चिन्ता करने से अन्त में कोई लाभ तो होता नहीं। जिस बात के लिए चिन्ता की जाती है उसके निवारण के लिए प्रयत्न करना चाहिए। यदि तब भी सफलता नहीं मिलती तो वह घटना तो होकर रहेगी ही, उसका सामना धीरता से करना चाहिए। चिन्ता से तो मनुष्य पुरुषार्थहीन हो जायगा और काम में और भी अधिक ख़राबी उत्पन्न हो जायगी। इसलिए घुन की तरह शरीर को खानेवाली इस चिन्ता को हमेशा दूर रखना चाहिए।

क्रोध का भी शरीर पर बुरा प्रभाव पड़ता है। क्रोध करनेवाले के ख़ून में विष उत्पन्न हो जाता है। अमेरिका के डाक्टरों ने प्रयोग करके देखा है कि क्रोध करनेवाले का ख़ून छोटे छोटे जन्तुओं पर पिचकारी से चढ़ाया गया और वे तुरन्त मर गये। काम, मोह, लोभ, मत्सर, आदि मनोविकारों का भी ऐसा ही भयानक प्रभाव शरीर पर पड़ता है।

प्रोफ़ेसर एलमरगेट्स कहते हैं कि "मैंने प्रयोग करके देखा है कि काम, क्रोध, लोभ, मत्सर आदि क्षुद्र मनोविकार शरीर में विष उत्पन्न करते हैं और शरीर को ख़राब कर देते हैं और दूसरे ऊँचे विचार शरीर को पुष्ट बनाने में सहायक होते हैं।"

जवानी को क़ायम रखने के लिए ब्रह्मचर्य्य पालन करने की भी बड़ी आवश्यकता है। आधुनिक नवयुवक ब्रह्मचर्य्य की ओर से बिलकुल उदासीन दिखलाई पड़ते हैं। यह एक बड़े दुर्भाग्य की बात है। ब्रह्मचर्य्य नींव है, जिस पर धर्म्मी शरीर का अस्तित्व निर्भर है।

मनसा, वाचा, कर्मणा से पवित्र रहने का नाम ब्रह्मचर्य्य है। ब्रह्मचर्य्य बुद्धि को बढ़ाता है, शरीर को सुडौल बनाता है और हृदय और फेफड़ों को मज़बूत करता है। ब्रह्मचर्य्य-पालन करने से मनुष्य का जीवन बढ़ता है और उसे शान्ति मिलती है।

[इस पहलवान को घूमने और दौड़ने का बड़ा शौक है।]

हमारे शरीर की मशीन इस प्रकार बनी है कि यदि सावधानी के साथ इसकी रक्षा की जाय तो कम से कम सौ वर्ष तक तो यह अवश्य ही चल सकती है। हाँ, यदि इसमें हमने असावधानी से काम लिया तो यह बहुत जल्दी बिगड़ सकती है।

युवावस्था में मर जाना हमारे युग की एक साधारण-सी बात हो रही है। इसे देश का दुर्भाग्य ही समझना चाहिए। हमें जी तोड़कर इस बात का प्रयत्न करना चाहिए कि हमारी जवानी चिरकाल तक क़ायम रहे। हमेशा जवान रहना तो हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है।

मुसलमानों की 'दलित' जातियाँ

लेखक, श्रीयुत वेंकटेश नारायण तिवारी

इस लेख के शीर्षक को देख कर पाठक चौकेंगे। चौकने की बात भी है। राह चलते हुए हिन्दुस्तानी को इस बात का ख्वाब में भी ख़याल नहीं होता कि जैसे हिन्दुओं में वैसे ही मुसलमानों में भी अनेक जातियाँ और सम्प्रदाय हैं। यदि हिन्दुओं में "दलित" जातियाँ हैं, तो मुसलमानों में भी ऐसी बहुत-सी जातियाँ हैं जिन्हें यदि हम "दलित" कहें तो अनुचित न होगा। आज इन्हीं मुसलमान 'दलितों' की कहानी इस लेख के द्वारा मैं पाठकों को सुनाना चाहता हूँ ताकि इनके अस्तित्व का उन्हें बोध हो जाय। जिस तरह सरकार और जनता हिन्दू "दलितों' की दशा सुधारने के लिए इधर पिछले कई साल से चिन्तित हो रही है, उसी तरह इन मुस्लिम 'दलितों' की भी दशा सुधारने और उन पर होनेवाले साम्पत्तिक अत्याचार का अन्त करने की ओर लोगों का ध्यान जाना और उन्हें इन दीनों की पुकार सुनने और उनके दुःख-दर्द को दूर करने की तदबीरें इमानदारी से सोचना चाहिए। इनका भी सुधार मानवता के उद्धार का एक प्रश्न है। इन मुसलमान "दलितों" को राजनीतिक चालबाजियों का शिकार बनाना नैतिक दृष्टि से निन्द्य और सार्वजनिक हितों का बाधक होगा। हमारी नीति तो स्पष्ट है। हमारी वही नीति है जिसकी घोषणा ३०, ३२ साल पहले गोपालकृष्ण गोखले ने की थी। उन्होंने कहा था कि यदि हमारे दिलों में स्वतन्त्रता के मन्दिर के निर्माण करने की तमन्ना है तो हमारा यह पहला कर्तव्य है कि जिस भूमि पर हम स्वतंत्रता के मन्दिर को खड़ा करना चाहते हैं उसे हम पहले समतल कर लें। उनका कहना था कि वह तो अभी ऊबड़-खाबड़ पड़ी है, उसमें कहीं पर टीले हैं, कहीं पर गहरे खड्ड हैं; जगह-जगह पर उसमें कटीली झाड़ियाँ खड़ी हैं। हिन्दू और मुसलमान दलित जातियाँ, गोखले के शब्दों में, स्वतंत्रता के मन्दिर की भूमि में खाइयाँ हैं। उन खड्डों और खाइयों को भरना, उनको समतल बनाना, राष्ट्रीयता का परम पुनीत धर्म है। जितना वह पुनीत है, उतना ही वह आवश्यक भी है। जो नीचे पड़े हैं, उनको उठाये बिना हमारा काम चल ही नहीं सकता। इसलिए पिछड़ी हुई जातियों को अपनाना, उनके जन्म-सिद्ध अधिकारों को जिन्होंने अपने सामाजिक स्वार्थ में उनसे छीन लिया है उन्हें फिर वापस दिलाना राष्ट्रीयता की बुनियाद डालने के लिए एक महान् तैयारी करना है। महात्मा गांधी के अथक प्रयत्नों से भारतीयों का और विशेष रूप से हिन्दुओं का ध्यान हिन्दुओं की 'दलित' जातियों की ओर काफ़ी खिंच चुका है और उनके सुधार के मसले की अनिवार्यता को अब विरला ही कोई ऐसा सार्वजनिक कार्य-कर्ता मिलेगा जो स्वीकार न करता हो। लेकिन, जैसा हम ऊपर कह चुके हैं, लोगों को इस बात का पता भी नहीं है कि मुसलमानों में भी ऐसी मुसलमान जातियों की संख्या बहुत बड़ी है जिनकी दशा हिन्दुओं की अछूत जातियों की दशा की तुलना में कुछ ही अच्छी कही जा सकती है। मुस्लिम और हिन्दू 'दलितों' की दशा में १९-२० ही का फ़र्क़ है। यदि हिन्दुओं में आबादी के लिहाज से 'दलितों' की संख्या २१ सैकड़ा है तो मुसलमानों में 'दलितों' की संख्या आबादी के लिहाज से ५६ प्रतिशत है। १९०१ की मर्दुमशुमारी के अनुसार इस सूबे में मुसलमानों की १३३ जातियाँ थीं। १९११ में ९४ की गणना हुई थी। कुछ जातियों के नामों का उल्लेख इस लेख के अन्त में दिये हुए परिशिष्ट (अ) में मिलेगा।

कुछ दिन हुए प्रयाग में "मोमिनों" की एक कांफ्रेंस हुई थी। उसमें यह बात कही गई थी कि हिन्दुस्तान के मुसलमानों में मोमिनों की संख्या ५० सैकड़ा है। उस कांफ्रेंस में यह भी कहा गया था कि मुस्लिम लीग में मोमिनों का कोई विश्वास नहीं है और लीग का यह दावा कि वह हिन्दुस्तान के समस्त मुसलमानों की प्रतिनिधि है, ग़लत है। इन कथनों के अर्थ और महत्त्व को, मुसलमानों को छोड़ कर, अखबारों के दूसरे पढ़नेवाले शायद ही समझे हों। उन्हें यही नहीं मालूम है कि "मोमिन" कौन हैं, और न यह मालूम है कि मुसलमानों में भी "दलित" जातियाँ हैं। और न उन्हें यही मालूम है कि अपने को कुलीन—नजीब- कहनेवाले मुसलमान अपने 'रजील" हम—मजहबों, सहधर्मियों को अपने से कितना जलील और हक़ीर समझते हैं। मैंने उन्नाव में "स्वतंत्रता-दिवस"

के दिन (अर्थात्, जनवरी २६, १९३९) बोलते हुए यह कहा था कि मुसलमानों में "दलितों" की संख्या ५६ प्रतिशत है और मुस्लिम लीग के संचालक वे हैं जो अपने-को नजीब या कुलीन कहते हैं और जो अपने इन अभागे भाइयों को उसी तरह से चूसने में मग्न हैं जिस तरह से उच्च कुलवाले हिन्दू अपनी 'दलित" जातियों को अनादि-काल से चूसते चले आये हैं। इसलिए मैंने वहाँ पर यह कहा था कि हिन्दू-महासभा और मुस्लिम लीग तो सरमाएदारों की संस्थाएँ हैं, जिनके दिलों में समाज के अपाहिजों के साथ कोई हमदर्दी नहीं है और न जिन्हें अपने पिछड़े हुए भाइयों को आगे बढ़ाने की कोई लगन ही हो सकती है; क्योंकि उनकी दशा सुधारने से उन लोगों के हितों-स्वार्थों को भारी ठेस लगेगी और उनकी नेतागिरी का खात्मा हो जायगा। मेरे भाषण का सार जब अखबारों में छपा तब मुसलमान अखबार-नवीसों में कोहराम मच गया और उन्होंने मुझे बहुत कुछ भला-बुरा कहा। उन्होंने मेरे ऊपर यह दोष लगाया कि मैं मुसलमानों में फूट डालना चाहता हूँ ताकि मुसलमानों की एकता नष्ट-भ्रष्ट हो जाय। यह दोष, पाठकों को याद होगा, महात्मा गांधी पर भी हिन्दू-समाज के धर्म-ध्वजियों ने अनेक बार लगाया है। शोषक शोषित का भला कब सहायक हो सकता है? शेर और बकरी में कैसा मेल? भक्षक भक्ष्य के साथ कैसे और कब तक सहानुभूति कर सकता है? भक्ष्य को सबल बनाने की कोशिश जो करेगा, उसी को भक्षक-समुदाय अपना शत्रु समझता है। इसलिए मुझको कुछ अचरज न हुआ जब मुस्लिम अखबारों ने मेरे ऊपर अपनी कृपा-दृष्टि की और मेरे कथनों पर अपना रोष प्रकट किया।

आइए, इस सूबे की आबादी पर एक नजर डालें। १९३१ की मर्दुमशुमारी के अनुसार इस सूबे में चार करोड़ ९६ लाख पुरुष-स्त्री थे। उनमें वे लोग भी शामिल हैं, जो सूबे की तीन देशी रियासतों में रहते हैं। इन रियासतों के नाम (१) बनारस, (२) रामपुर (३) टेहरी-गढ़वाल हैं। रियासतों की आबादी घटाने के बाद, सूबे की बाक़ी आबादी ४ करोड़ ८४ लाख रह जाती है। इसमें मुसलमानों की संख्या ७१ लाख ८१ हजार है अर्थात्, पूर्ण अंकों में, ७२ लाख। इस सूबे के मुसलमानों में कम से कम ९४ विभिन्न छोटी-बड़ी जातियाँ हैं, जिनमें से ५ जातियाँ अपने को कुलीन कहती हैं और बाक़ी छोटी कही जाती हैं। इस लेख के अन्त में हम परिशिष्ट (अ) के रूप में इस सूबे की कुछ मुस्लिम जातियों की नामावली का उल्लेख कर रहे हैं। पहली ५ (?) जातियाँ "ऊँची" या "नजीब" जातियाँ हैं और शेष 'नीच' या "रजील" जातियाँ हैं। परिशिष्ट (अ) में प्रत्येक जाति के कितने आदमी सरकारी नौकर हैं उनकी संख्या जाति-विशेष के आगे कोष्ठक में दे दी गई है।

आइए, पहले "नजीब" या "कुलीन" कहलानेवाले मुसलमानों का ज़िक्र कर लें। मुसलमानों में ५ ऐसी जातियाँ हैं जो अपने-आपको "नजीब" या "कुलीन" कहती हैं। उनके नाम हैं—(१) सैयद, (२) शेख़ (३) पठान, (४) मुग़ल और (५) राजपूत। सन् १९३१ में इस सूबे में तीन लाख १२ हज़ार सैयद थे, लगभग ६० हज़ार मुगल थे, ११ लाख पठान थे, १६ लाख शेख़ और १ लाख ६६ हज़ार राजपूत थे। सब जोड़ कर ३२ लाख ३८ हज़ार हुए। इस सूबे में ७२ लाख मुसलमानों में अपने को "नजीब" या "कुलीन" कहनेवाले मुसलमानों की संख्या ३२ लाख है, अर्थात् १०० मुसलमानों में अपने को "कुलीन" कहनेवाले मुसलमान ४४ सैकड़ा हैं। सब आदि ही से सैयद, पठान या शेख नहीं हैं। मुसलमानों में एक मसल मशहूर है जो ऊपर के कथन के समर्थन में मर्दुमशुमारी की अनेक रिपोर्टों में आपको मिलेगी। वह मसल यह है :—"पेशइन क़स्साब बूदम, बादजां गुश्तम शेख़; ग़ल्ला चूं अरजां शवद, इम साल सैयद मीशवम"—यानी, पहले साल मैं क़साई था, उसके बाद शेख़ हो गया। इस साल अगर अनाज का भाव गिर गया तो मैं सैयद हो जाऊँगा।

हिन्दू और मुसलमानों में जाति-मर्यादा के बदलने की प्रथा एकसां जारी है। कारण भी समान ही हैं। इस तरह से पठानों और मुस्लिम राजपूतों की संख्या में भी उलट-फेर हुआ करता है। हिन्दू "सिंह" मुस्लिम होने पर "खां" (ख़ान) में बदल जाता है।

इस स्थान पर मुसलमानों की "नजीब" जातियों की अहंमन्यता का एक उदाहरण दे देना अनुचित न होगा। सर सैयदअहमद खां के नाम से सूबे के सभी

पढ़े-लिखे हिन्दू और मुसलमान परिचित हैं। उन्होंने मुसलमानों में और मुसलमानों के लिए जो काम किया है उसका थोड़ा-बहुत बोध हिन्दुस्तान के पढ़े-लिखे लोगों को अवश्य होगा। इन्हीं सैयद अहमद खां ने एक बार "नसब" (यानी पैदाइश) के एतबार से हिन्दुस्तान के रहनेवाले मुसलमानों का वर्णन किया था। उनका कहना था कि हिन्दुस्तान के मुसलमान हिन्दुस्तान के रहनेवाले नहीं हैं। उनकी यह धारणा थी कि जो मुसलमान इस समय हिन्दुस्तान में हैं, वे वास्तव में उन मुसलमानों की औलाद हैं जो विदेशों से आये थे। उन्हीं के शब्दों में उनकी राय आप अब सुन लीजिए :—

"मुसलमान इस मुल्क के रहनेवाले नहीं हैं। आला (उच्च) या औसत (साधारण) दर्जे के लोग अपने मुल्क (?) से यहाँ आकर आबाद हुए। उनकी औलाद ने हिन्दुस्तान की बहुत-सी जमीन को आबाद किया और कुछ यहाँ के लोगों को, जो इस मुल्क की अदना क़ौमों में से थे अपने साथ शामिल कर (मिला) लिया। पस वे निहायत अदने दर्जे (अत्यन्त छोटी श्रेणी) की क़ौमें जो अब तक एतबार इन्सानी (मनुष्यत्व) से भी खारिज हैं और निहायत क़सीर (पतित) हैं हिन्दुओं की मर्दुमशुमारी में शामिल हैं। मगर इस क़िस्म की कोई क़ौम मुसलमानों की मर्दुमशुमारी में दाखिल नहीं है।"

ऊपर जो हमने कहा है उसके समर्थन में मर्दुमशुमारी की एक रिपोर्ट से निम्न उद्धरण को पढ़िए :—

"The Muhammadans themselves recognise two main social divisions, (i) Ashraf or Sharif and (ii) Ajlaf. The first which means 'noble' or 'person of high extraction' includes all undoubted descendants of foreigners and converts from the higher castes of Hindus. All other Muhammadans, including the functional groups, and all converts of lower rank are collectively known as Ajlaf 'wretches' or 'mean people' or Kamina or Itar, 'base' or 'razil', worthless. This category includes the various classes of converts who are known as Nao Muslim in Bihar and Nasya in North Bengal, but who, in East Bengal, where their numbers are greatest, have usually succeeded in establishing their claim to be called Sheikh. It also includes various functional groups, of which the Ashraf takes no count. To him all alike are Ajlaf. This distinction is primarily one between Muhammadans of foreign birth and those of local origin. The Ashraf consider it degrading to accept menial service or to handle the plough. The traditional occupation of the Saiads is the priesthood, while the Moghals and Pathans correspond to the Kshattriyas of the Hindu regime. In some places a third class called Arzal or lowest of all is added. It consists of the very lowest castes with whom no other Muhammadan would associate and who are forbidden to enter the mosque or use the public burial ground. (See *Bengal*, 1901, p. 452)."

मुसलमान लोग खुद भी दो सामाजिक भेद मानते हैं—(१) अशरफ़ या शरीफ़ और (२) अजलफ़। पहली श्रेणी—जिसके अर्थ हैं 'शरीफ़' या 'ऊँचे खानदान के लोग'—में वे लोग हैं जिनके खानदान सन्दिग्ध नहीं हैं, या जो उच्च जाति के हिन्दुओं में से मुसलमान हुए हैं। शेष सब मुसलमान, मय पेशेवालों व उन मुसलमानों के जो नीच क़ौम के हिन्दुओं में से आये हैं, अजलफ़ कहलाते हैं, जिसके मानी हैं—'कमीना या रजील'। इस श्रेणी में बिहार के 'नौ मुसलिम' और उत्तरी बंगाल के 'नासिया' लोग भी शामिल हैं, यद्यपि 'नासिया' बहुसंख्यक होने के कारण अपने को 'शेख'

कहलाने में कामयाब हो गये हैं। इनमें बहुत-से ऐसे पेशेवर लोग शामिल हैं जिनकी अशरफ़ लोग कुछ परवाह नहीं करते। उनकी दृष्टि में सब अजलफ़ एक-से हैं। यह बात विदेश से आये हुए व इस देश में उत्पन्न हुए—दोनों प्रकार के मुसलमानों में एक-सी पाई जाती है। अशरफ़ लोग छोटी नौकरियों को स्वीकार करने या हल चलाने में अपनी तौहीन समझते हैं। सैय्यदों का परम्परागत पेशा है पुरोहिती; पठान और मुग़ल हिन्दुओं की क्षत्रिय जाति के समकक्ष हैं। इनके सिवा कहीं-कहीं एक तीसरी श्रेणी 'अर्ज़ल' भी मानी जाती है। इस श्रेणी में बहुत नीची जाति के लोग हैं जिनके साथ दीगर मुसलमान लोग मिलना-जुलना पसन्द नहीं करते; इन लोगों को न मस्जिद में जाने का अधिकार है, न क़ब्रिस्तान का उपयोग करने का।

—(बंगाल प्रान्तीय मर्दुमशुमारी की रिपोर्ट, १९०१ पृष्ठ ४५२)

देखिए, सर सैयदअहमद के दर्प-भरे वर्णन को और यह भी देखिए कि नजीबों को परदेशी कहने का उनको कितना नाज़ है। बाहर की क़ौम अपने मुल्क से हिन्दुस्तान में, उनके अनुसार, पधारी। इस देश को उन्होंने जीता, और जीतने के बाद यहाँ बस गये। हिन्दुस्तान में जो आज दिन मुसलमान मिलते हैं वे इन्हीं परदेशी विजेता मुसलमानों की सन्तानें हैं। उनमें हिन्दुओं की "दलित" जातियों के समान कोई जाति नहीं है। सर सैयद अहमद के इस उद्गार के समान साम्प्रदायिक अहंमन्यता का कोई दूसरा उदाहरण मिलना कठिन होगा। इतिहास की दृष्टि से उनका यह कथन जितना असत्य है उतना ही वह शोक-जनक भी है। क्योंकि उसमें जातीय बड़प्पन और तौहीन की गन्ध बेतरह भरी हुई है। मुसलमानों की छोटी जातियों से सर सैयद अहमद ख़ाँ को इतनी नफ़रत थी, इतना द्वेष था, इतनी भयंकर असहिष्णुता थी कि वे उनको मुसलमान भी नहीं मानने को तैयार थे। हमारे दुर्भाग्य से इस समय मुसलमानों में सैकड़ों-हज़ारों भ्रम-पूर्ण युक्तियों का ज़ोर-शोर से प्रचार हो रहा है। इस प्रचार की तह में है उन ४८ फ़ी सदी मुसलमानों की अहंमन्यता और स्वार्थपरता, जो ग़रीबों को कुचल कर राजनैतिक सत्ता की बागडोर अपने हाथ में लेकर मनमानी-घरजानी करने को बेताब हो रहे हैं। मुसलमानों में भंगी हैं, क़साई हैं, लोनियाँ हैं, जोलाहे हैं, दर्ज़ी, तेली, धुनियाँ और फ़क़ीर भी हैं, मनिहार और गद्दी भी हैं, नट भी हैं। लेकिन सर सैयद अहमद के निगाह में वे मुसलमान नहीं क्योंकि वे बेचारे अनपढ़ होने के कारण अपने को ग़ैर-मुल्क से आनेवाली "आला" या औसत दर्जे की क़ौम की औलाद साबित करने में अभी तक सफल नहीं हुए हैं। सर सैयद अहमद को इसकी कोई परवाह न थी, और न उनके अनुयायियों को भी इसकी कोई फ़िक्र है। लेकिन हम हिन्दुस्तानियों की निगाह में तो ये "छोटे" कहे जानेवाले हिन्दू या मुसलमान भाई, "ऊँचे" से "ऊँचे" परदेशी की तुलना में हज़ारों-लाखों गुना अधिक पवित्र हैं; कहीं अधिक ऊँचे हैं—कहीं अधिक आदर और पूजा के पात्र हैं। इनके एक-एक बाल के मुक़ाबिले में "ऊँचे" से "ऊँचे" कुलीनों की न कुछ क़ीमत है और न कुछ वक़त। हिन्दुस्तान की मिट्टी से जो पुतला बना और सँवारा गया, वह तो मेरी नज़र में देवता से भी बढ़ कर है। लेकिन सैयदी "नजीबों" को तो ऐसे मुसलमान रज़ील और हक़ीर ही दिखाई देते हैं। उनकी निगाह में इनका एक ही काम है कि मर्दुमशुमारी में वे मुसलमानों की संख्या को बढ़ायें ताकि "नजीब" मुसलमान उस संख्या के आधार पर सरकारी नौकरियाँ और संस्थाओं में अधिक से अधिक प्रतिनिधित्व माँगने में समर्थ हों और जब उनकी माँग मान ली जाय तब वे उसे अपने ही-से "नजीबों" में बाँट लें। ग़रीबों की न तो उन्हें कुछ फ़िक्र है और न कुछ ख़बर; न तो उनकी परवाह है और न उनसे कोई सरोकार। उन्हें सरोकार हो या न हो, परन्तु इसमें भी अब कोई संदेह नहीं है कि नजीबों का ज़माना लद गया; अब तो उदय हो रहा है उस युग का, जब संसार के अपाहिजों, मुफ़लिसों और कंगालों को मनुष्यता के ऊँचे से ऊँचे शिखर तक उठने और बढ़ने का मौक़ा मिलेगा। उच्चता, श्रेष्ठता, कुलीनता के कपोल-कल्पित पाखंड का अब युग नहीं रहा। रक्त की विशुद्धता या कुल की महत्ता को कोई अब कानी-कौड़ी के बराबर भी नहीं समझेगा। अब तो वास्तव में उस आदमी का आदर

होगा, जो अपने परिश्रम से समाज की सेवा करता है, और उसको सुखी बनाने की चेष्टा करता है अपनी मेहनत का मीठा फल देकर।

मुसलमानों की ऊँच-नीच जातियों में, साक्षरता की दृष्टि से, कितना भयंकर अन्तर है, इसका यदि आपको पता लगाना है तो नीचे के आँकड़ों को ध्यानपूर्वक देखिए। उनसे आपको पता लगेगा कि प्रत्येक जाति के एक हज़ार स्त्री-पुरुषों में से कितने १९३१ में ऐसे थे जो कम से कम अपना नाम किसी भाषा में लिख और पढ़ सकते थे।

पठितों की प्रति-सहस्र संख्या*

जाति	मर्द	औरत
सैयद	३८०	५७
शेख	१२७	३३
राजपूत	१४३	१४
नव मुस्लिम	५९	४
जुलाहा	५५	५
तेली	४३	२
धुनिया	२७	२
लोनिया	२१	+
नट	२१	२
भंगी	१०	१

ऊपर जो आँकड़े हमने दिये हैं, उनका सम्बन्ध युक्त-प्रान्त से है और १९३१ की मर्दुमशुमारी की रिपोर्ट के ४८० पेज़ से वे उद्धृत किये गये हैं। तुलना के लिए हम १९११ की मर्दुमशुमारी की रिपोर्ट से भी मुसलमानों की चार जातियों में हज़ार पीछे साक्षरों की संख्या नीचे के कोष्ठक में दे देते हैं :—

पठितों की संख्या

जाति	मर्द	औरत
सैयद	२७७	३६
शेख	१०७	१२
जुलाहा	२२	२

ऊपर के आँकड़ों में प्रत्येक पर विशेष रूप से ध्यान देने की आवश्यकता है। १९११ से १९३१ तक की २० वर्ष की अवधि में सैयद मर्दों में पढ़े-लिखों की संख्या २७७ से बढ़ कर ३८० प्रतिहज़ार हो गई और सैयद स्त्रियों की भी संख्या १९११ में ३६ से बढ़ कर १९३१ में ५७ हो गई। इसी तरह साक्षर शेख-मर्दों की संख्या १९११ में १०७ से १९३१ में १२७ प्रति-हज़ार और साक्षर औरतों की संख्या १२ से ३३ प्रति-हज़ार हो गई। जुलाहों या मोमिनों के मर्दों में १९२२ में हज़ार पीछे २२ पढ़े-लिखे थे। वे १९३१ में ५५ हो गये और जहाँ उनकी स्त्रियों में १९११ में दो प्रतिहज़ार पठित थीं वहाँ १९३१ में उनकी संख्या ५ प्रतिहज़ार हुई। यह मुसलमानों की उन पिछड़ी हुई जातियों में से एक का हाल है। यह शोचनीय दशा और भी शोचनीय हो जाती है जब हमें यह याद आता है कि इन्हीं पिछड़ी हुई मुसलमान जातियों में शिक्षा के प्रसार के लिए प्रति-वर्ष सूबे की सरकार १० लाख रुपये की विशेष सहायता दिया करती है। यदि इन पिछड़ी हुई जातियों में शिक्षा का काफ़ी प्रचार अब तक नहीं हुआ, बावजूद इसके कि गवर्नमेंट उनके फ़ायदे के लिए वर्षों से १० लाख रुपया देती चली आ रही है, तो इसका कारण सिर्फ़ एक है, और वह यह है जिन जातियों के बच्चों के फ़ायदे के लिए यह १० लाख की सहायता दी जाती है उनके बच्चों की पढ़ाई पर यह रक़म नहीं खर्च की जाती है, बल्कि खर्च की जाती है उन जातियों के बच्चों के पढ़ाने-लिखाने पर जिनमें शिक्षा का यों ही बहुत अधिक प्रचार है। मुसलमानों में सैयदों ही को ले लीजिए उनकी तुलना कीजिए ब्राह्मणों से। १९३१ में प्रति-हज़ार ब्राह्मण-मर्दों में २९८ पढ़े-लिखे थे और उनके मुक़ाबिले में हज़ार सैयद-मर्दों में से ३८० पठित थे। ब्राह्मण स्त्रियों में जहाँ हज़ार पीछे २५ पढ़ी-लिखी औरतें थीं वहाँ सैयदों में पढ़ी-लिखी औरतों की संख्या ५७ प्रतिहज़ार थी। इस्लामिया स्कूलों और मकतबों की संख्या इस सूबे में बहुत काफ़ी है। उन पर हर साल डिस्ट्रिक्ट बोर्ड प्रचुर धन खर्च करते हैं। इन स्कूलों का स्थापन बहुत साल हुए इसी नीयत से किया गया था कि मुसलमानों की जो जातियाँ शिक्षा की दृष्टि से पिछड़ी हैं उनमें तालीम को ख़ास

---

* नोट—परिशिष्ट (इ) को लेख के अंत में देखने की कृपा पाठक अवश्य करें—लेखक

तौर से फैलाने की कोशिश की जाय; लेकिन हुआ क्या? मुसलमानों की इन "उच्च" जातियों ने इन रुपयों को अपने ही बच्चों के फ़ायदे के लिए हड़प कर लिया और जो मकतब या इस्लामिया स्कूल मुसलमानों की पिछड़ी हुई जातियों को आगे बढ़ाने के लिए खोले गये थे, उनमें भी तालीम दी जाने लगी इन्हीं "नजीब" क़ौमों के विद्यार्थियों को। ज़िलों की मुस्लिम शिक्षा-कमेटियों में मुसलमानों की "नीच" जातियों के प्रतिनिधि नहीं मिलते, और न इस्लामिया स्कूल या मकतबों में अध्यापक के पदों पर शेख, सैयद, मुग़ल, पठानों के अलावा, एक्का-दुक्का छोड़ कर, कोई "नीच" जातिवाला मुसलमान आपको दिखाई देगा। इस्लामिया स्कूल और मकतबों में अधिकांश वे बच्चे होने चाहिए जो इन पिछड़ी हुई जातियों से पैदा हुए हैं। इनमें अध्यापक के पदों पर उन्हीं लोगों को नियुक्त करना चाहिए, जो इन जातियों के हैं। लेकिन आज तक ऐसा न हुआ और न आज भी ऐसा हो रहा है। इसका कारण प्रत्यक्ष है। हिन्दुओं को इन पिछड़ी हुई जातियों का कुछ ज्ञान नहीं है। मुसलमान-नेता, सर सैयद अहमद खाँ के शब्दों में, अपने को परदेश की आला क़ौमों की औलाद समझते हैं। उन्हें हिन्दुस्तान की "रज़ील" क़ौमों के मुसलमानों के साथ कोई हमदर्दी नहीं है। यही कारण है कि न तो हिन्दू और न मुसलमान-नेताओं ने इन बेचारों की ओर कभी नज़र उठाई और न उनकी दशा सुधारने की कोई कोशिश की। यही वजह है कि मोमिनों ने अब "बग़ावत" का झंडा उठाया है। उन्होंने समझ लिया है कि उनका इस संसार में कोई मददगार नहीं; उनका कोई साथी नहीं, उनके दुख-दर्द को सुनने को कोई तैयार नहीं। अब वे अपने पैरों के बल खड़े होना चाहते हैं, अपने बाहुबल से अपनी रक्षा करने पर आमादा हैं, अपने पुरुषार्थ से वे अपने उन हक़ों को प्राप्त करना चाहते हैं, जो, हिन्दुस्तानी होने के नाते, उनके जन्म-सिद्ध अधिकार हैं।

सदियों से उनकी लापरवाही, उनकी ग़फ़लत और उनके भोलेपन से लोगों ने नाजायज़ फ़ायदा उठाया। लेकिन स्वार्थ और मद के दिन सदा एक ही-से नहीं बने रहते। इस नश्वर संसार में ऐसे दिनों का भी अन्त एक न एक दिन हो ही जाता है। युग ने करवट बदली है, और इस करवट बदलने का यह नतीजा है कि मोमिन, क़साई और भंगी आदि मुसलमानों की सोती हुई, पिछड़ी जातियाँ युग के साथ निद्रा को भंग कर आँखें खोलने लगी हैं। आँखें खोलते ही उन्होंने देखा कि दुनिया नजीबों की है, मद और स्वार्थ की है, सबल की है, निर्बल की नहीं; प्रभुओं की है, ग़ुलामों की नहीं। उन्होंने यह देखा और देखकर मन में यह बात ठान ली है कि अगर दुनिया ग़ुलामों की नहीं है, वह सिर्फ़ उन्हीं की हो सकती है जो प्रभु हों, तो वे भी अब ग़ुलाम होकर न रहेंगे। वे खुद प्रभुओं के आसन पर जा बैठेंगे; और जिन्होंने आज तक उनके साथ अत्याचार किया है, उनको कुचला और रौंदा है उनको शक्ति के सिंहासन से ढकेल कर वे अब नीचे उतार देंगे।

अब, आइए, देखें कि सरकारी नौकरियों में मुसलमानों की "कुलीन" और "निम्न" जातियों की दशा में क्या अन्तर है। इस सूबे में सरकारी नौकरियाँ पाँच श्रेणियों में विभक्त हैं—(१) "गज़टेड आफ़ीसर, (२) "नान, गज़टेड आफ़ीसर, (३) "सबार्डिनेट" सर्विस (४) "सुपीरियर सर्विस और (५) "इन्फ़ीरियर सर्विस"। नीचे के कोष्ठक में मुसलमान-मुलाज़िमों की संख्या दी जाती है :—

श्रेणी		मुस्लिम मुलाज़िमों की संख्या
(१) गज़टेड सर्विस	...	२८०
(२) नान गज़टेड "	...	१६,५३३
(३) सबार्डिनेट "	...	५,७१३
(४) सुपीरियर "	...	६४५
(५) इंफ़ीरियर "	...	८, २४१
कुल	...	३१,४१२

इन ३१,४१२ सरकारी नौकरियों में से ६,४३१ पदों पर सैयद; ७९८ पदों पर मुग़ल; १२,३८० पदों पर शेख; ९,९२३ पदों पर पठान और ७३० पदों पर मुस्लिम-राजपूत नियुक्त हैं। अर्थात्, मुसलमानों में जो जातियाँ केवल ४४ सैकड़ा हैं उनका ९७ सैकड़ा सरकारी नौकरियों पर क़ब्ज़ा है। और इस सूबे के चालीस लाख मुसलमानों में से लगभग ९५० ऐसे हैं जो सरकारी मुलाज़िमत में इस वक़्त काम कर रहे हैं। एक ओर

३२ लाख में से ३० हज़ार सरकारी मुलाज़िम हैं और दूसरी ओर ४० लाख में से कुछ कम १ हज़ार सरकारी नौकर। इसी तरह से अगर हम डिस्ट्रिक्टबोर्ड, टाउन एरिया, नोटीफ़ाइड एरिया और म्यूनिसिपैलिटियों की छान-बीन करें तो हमें पता लगेगा कि इन संस्थाओं में भी मुसलमानों की "कुलीन" कही जानेवाली जातियों ही के लोग नौकरियों में घुसे पड़े हैं और वहाँ पर भी उन चालीस लाख मुसलमान प्रतिनिधियों को पैर रखने तक को जगह न मिल पाई जिनको "रज़ील" या "हक़ीर" क़ौमें कहते हैं। इमदादी और सरकारी स्कूलों में भी इन बेचारे ४० लाख मुसलमानों को न तो आबादी के एतबार से अध्यापक के पद दिये जाते हैं और न उनके बच्चों के पढ़ाने की कोई खास तजवीज़ की जाती है।

लेख के अन्त में हम एक परिशिष्ट (अ) के रूप में एक कोष्ठक दे रहे हैं, जिसमें चुनी हुई मुस्लिम जातियों के सरकारी नौकरियों की विभिन्न श्रेणियों में नियुक्त आदमियों की संख्या दी गई है। पाठकों को उन बहुत-सी बातों का फिर एक बार पता लगेगा जिसका संकेत उनको हिन्दुओं की 'दलित जातियों' के सम्बन्ध में मिल चुका है। हिन्दुस्तान में दो श्रेणियाँ—हिन्दू और मुस्लिम—अनादिकाल से चली आती हैं। अनादिकाल से नीच कहलानेवाली बहुसंख्यक जातियों के कन्धों पर सवार होकर "कुलीन" कहलानेवाले उनको पीसते, कुचलते, दलते चले आये हैं। नीचेवालों की कमाई ऊपरवालों ने सदा से खाई। मेहनत-मसक़्क़त का काम सौंपा गया नीचेवालों को; लेकिन उस मेहनत की कमाई को ऊपरवालों ने हड़प कर ऐशोआराम से अपनी जिन्दगी बसर की। जो हाल हिन्दुओं का है, वही मुसलमानों का है। दोनों ही सम्प्रदायों की "नजीब" या "कुलीन" कहलानेवाली जातियों ने अपने अपने "रज़ीलों" को अपने स्वार्थ के लिए सदा पेरा, नोचा-खसोटा। इसलिए कि वे अपने आपको सदा से यह समझते चले आये हैं कि भगवान् ने उन्हें पैदा ही इसलिए किया है कि वे अपने कमज़ोर भाइयों के ऊपर हुकूमत करें। बड़ी मछली छोटी मछली को समुन्दर में खाती है, और उससे बड़ी मछली उसको खाती है। यही संसार का नियम है। ऐसा कुलीनों का कहना है। इसी को वे "मत्स्य-न्याय" कहते हैं। लेकिन वे भूल जाते हैं कि "मत्स्य-न्याय" के साथ ही साथ अनादि-काल से विश्व में संघ-न्याय का भी बोल-बाला रहा है। शेर परम शक्तिशाली होता है। पंजे की एक चपेट से मज़बूत से मज़बूत धागे को वह तोड़ सकता है, लेकिन बहुत-से धागों को मिला कर यदि हम एक रस्सी में बट लें तो धागों के इस संगठित संघ में इतनी शक्ति आ जाती है कि एक नहीं, अनेक सिंह उसमें आसानी से बाँधे जा सकते हैं और बाँध कर आसानी से पिंजड़े में डाल दिये जा सकते हैं। "मत्स्य-न्याय" का शिकार अभी तक की दलित जातियाँ होती चली आई हैं। इसी मत्स्य-न्याय ने हिन्दुस्तान की बहुत बड़ी आबादी को "दलित" बना रक्खा है, लेकिन इन दलितों को सतानेवाले अब सचेत हो जायँ क्योंकि दलितों के कमज़ोर धागों को काल के कराल हाथ दुर्दमनीय संघ के रस्से में तेज़ी से बट रहे हैं। रस्से के बटने को अब कोई शक्ति रोक नहीं सकती। उस रस्से के तैयार होने में अधिक विलम्ब भी नहीं है। दीनों को सतानेवाले, दुखियों को रुलानेवाले अपनी खुदग़र्ज़ी को, यदि चाहें तो, अब भी त्याग दें; चाहें तो अभी समय है पश्चात्ताप का, और बिगड़े को बनाने का। नहीं तो उनकी सत्ता के अन्त की वेला आ पहुँची है और इतिहास का यमराज आज दिन हाथ में फ़सरी लिये हुए उनकी ओर क़दम बढ़ाता चला आ रहा है।

यहाँ तक तो इन मुस्लिम दलित जातियों की दशा का वर्णन हुआ। इसको सुधारने के लिए क्या करना उचित है? कुछ लोग नीचे लिखी बातों की ओर ध्यान दिलाना चाहते हैं:—

(१) १० लाख रुपये की सरकारी इमदाद इन्हीं 'दलितों' की पढ़ाई पर खर्च होना चाहिए और इन्हीं जातियों के मुदर्रिस इन बच्चों के स्कूलों में रक्खे जायँ?

(२) स्थानिक संस्थाओं में इनको उचित संख्या में प्रतिनिधित्व मिलना चाहिए और इस पर विचार करना चाहिए कि क्या संरक्षण ज़रूरी है?

(३) जब तक सम्प्रदाय के आधार पर देश में चुनाव की प्रथा जारी है तब तक 'दलितों' के संरक्षित निर्वाचन का प्रबन्ध लाज़िमी है?

(४) डिस्ट्रिक्ट बोर्डों की शिक्षा-कमेटियों में इन्हीं के प्रतिनिधि अधिक संख्या में होने चाहिए ?

(५) नौकरियों—सरकारी अथवा बोर्डों की—में इन्हीं जातियों के आदमियों को अधिक से अधिक संख्या में लेना चाहिए ?

ये केवल विचारार्थ प्रस्ताव-मात्र हैं। मैं इनके विषय में कुछ नहीं कहना चाहता। अपना रास्ता 'दलितों' के नेताओं को स्वयमेव निश्चित करना है। मेरा काम तो मसले के असली रूप को पाठकों के सामने रख देना भर है। हिन्दुओं के 'दलितों' की दशा, इनसे कम नहीं, अधिक शोचनीय है। उनके विषय में आगे चलकर मैं लिखूँगा। मेरी दृष्टि में कमज़ोरों का पीडन देश और समाज के प्रति घोर पातक है, जाति के लिए कलंक भी है। अतएव इन सबकी दशा सुधारना राष्ट्रीयता की वृद्धि और संसार की प्रगति में बहुत ही बड़ी मदद पहुँचाना है।

परिशिष्ट (अ)

मुसलमानों की विभिन्न जातियाँ*

१	सैयद	(६,४३१)
२	मुग़ल	(७१८)
३	शेख़	(१२,३८०)
४	पठान	(९,९२३)
५	राजपूत	(७३०)
६	नौ-मुसलमान	(२००)
७	मोमिन	(२६२)
८	मनिहार	(४३)
९	दर्ज़ी	(३२)
१०	लुहार	(४)
११	तेली	(३५)
१२	कुँजड़ा	(९)
१३	क़स्साब	(३८)
१४	गूजर	(६३)
१५	तुर्क	(८)
१६	लोव	(२)
१७	मेव	(४१)
१८	मल्लाह	(२)
१९	भिस्ती	(७७)
२०	गद्दी	(३१)
२१	लुनिया	(४)
२२	धुनिया	(९३)
२३	नाई-हज्जाम	(७८)
२४	मुस्लिम भट्ट	(७)
२५	फ़क़ीर	(१०)
२६	मेवाती	(२)
२७	इफ़ाली	(१)
२८	टागा	(८)
२९	बंजारा	(१)
३०	धोसी	(३)
३१	छिपी	(३)
३२	रईन	(१)
३३	धोबी	(३)
३४	रंगराज	(१)
३५	हज्जाम	(५)
३६	संत	(२)
३७	दाई बचोहा	(१)
३८	कासगर	(१)
३९	कम्बोह	(४)
४०	जाट मुस्लिम	(२५)
४१	सिलोची	(९)
४२	रैन	(१)
४३	आवान	(१०)
४४	खोकर	(१)
४५	क़ाज़ी	(२)
४६	दर मुस्लिम	(१)
४७	महेशरा मुस्लिम	(२)
४८	मायार	(१)
४९	अफ़ग़ान	(२)
५०	रंघर	(१)
५१	चौधरी	(१)
५२	पंजाबी मुस्लिम	(१)
५३	राँका	(१)
५४	मूदान	(२)
५५	सानी शाह	(१)
५६	दरवेश	(१)
५७	चकई	(१)
५८	नदफ़	(१)
५९	अनसारी†	(३)
६०	गड	(६)
६१	मलिक	(१)
६२	वेज़ात	(४)

*नोट—कोष्ठक में प्रत्येक जाति के सरकारी मुलाज़िमों की संख्या दी गई है।

†नोट—"मोमिन" को 'अनसार' या 'अनसारी' अथवा 'जुलाहा' भी कहते हैं।

परिशिष्ट (इ)

मुस्लिम जातियाँ*

जाति	पुरुष	स्त्री	साक्षर		प्रतिहज़ार	
			पुरुष	स्त्री	पुरुष	स्त्री
सैयद ..	१,३४,०००	१,१९,०००	५१,०००	१०,०००	३८०	
मुग़ल ..	२६,०००	२२,०००	७,०००	१	२६०	
शेख़ ..	६,९९,०००	५,८८,०००	९,३०,०००	१९,०००	१९०	
पठान ..	४,७३,०००	४,०९,०००	७०,०००	९,०००	१५०	
जाट ..	११,०००	९,०००	†	†	८०	
नौ-मुसलमान	३६,०००	३३,०००	२,०००	११६	६०	
जुलाहा ..	४,१६,०००	३,७६,०००	२३,०००	२,०००	५०	
मनिहार ..	४५,०००	४१,०००	२,०००	८८	५०	
दरज़ी ..	१,१३,०००	९३,०००	६,०००	३४५	५०	
लोहार ..	२,५५,०००	२,२१,०००	१२,०००	३३४	५०	
तेली ..	४,२८,०००	३,८०,०००	१८,०००	६६९	४०	
राजपूत ..	८९,०००	७७,०००	†	†	१८०	
कुँजड़ा ..	३७,०००	३३,०००	२,०००	१९२	४०	
क़स्साब ..	७६,०००	६०,०००	३,०००	२३७	३०	
गूजर ..	३९,०००	३५,०००	†	†	३०	
तुर्क ..	२८,०००	३१,०००	१,०००	४३	२०	
धुनिया ..	१,६८,०००	१,५२,०००	४,०००	२३१	३०	
लोध ..	४,७१,०००	४,०९,०००	११,०००	२७३	२०	
मेव ..	१४,०००	१०,०००	१०,०००	४८	२०	
मल्लाह ..	१,१३,०००	१,१९,०००	३,०००	३५	२०	
लुनिया ..	१,८८,०००	१,८१,०००	४,०००	६३	२०	
भिश्ती ..	४२,०००	३६,०००	०,८०९	८०	१०	
गद्दी ..	३७,०००	३०,०००	०,५०२	९८	१०	
कुल जोड़ ..	३५,४८,०००	३४,७४,०००				

* नोट—सब आँकड़े हज़ार के पूर्णांकों में हैं।

† अप्राप्य

वर्तमान पंजाब—समीप से

लेखक, प्रोफ़ेसर धर्मदेव शास्त्री

अपने देश की समस्याओं का स्मरण करते ही पंजाब सबसे प्रथम ध्यान में आ जाता है। पंजाब का स्मरण समस्या को जटिल करनेवाले और नई-नई समस्याओं को जन्म देनेवाले के रूप में ही होता है। कुछ दिन हुए पंजाब-सरकार के प्रधान मन्त्री सर सिकन्दर हयात ख़ाँ ने ठीक ही कहा था कि "यदि पंजाब में साम्प्रदायिक समस्या का हल कर लिया जाय तो सारे देश में यह समस्या सुलझाई जा सकती है।" पंजाब को केवल हिन्दू-मुस्लिम-समस्या को ही जन्म देने का श्रेय नहीं प्राप्त है, हिन्दी-उर्दू-समस्या, काश्तकार और ग़ैर-काश्तकार की समस्या, हिन्दू-सभा और मुस्लिम लीग को जन्म देने और पोषण करने की समस्या, संयुक्त निर्वाचन के विरोध में पृथक् निर्वाचन-प्रणाली को प्रचलित करने की समस्या, बच्चों और स्त्रियों को भगाने की समस्या, हिन्दू-राज्य और पान-इस्लामिक राज्य की समस्या, ख़ाकसारों और दरान्ती-दल की समस्या, ग़र्ज़ कि सभी समस्यायें शुरू होती हैं पंजाब की सर ज़मीन से ही! जिस तरह पंजाब में अच्छा गेहूँ पैदा होता है उसी तरह मुल्क की गुलामी को क़ायम रखनेवाली नई फूट को भी हर मौसम में पंजाब की उर्वरा भूमि हो पैदा करती है। पिछले कुछ सालों के इतिहास को आप देखें तो आपको मालूम होगा कि पंजाबी वीर—हिन्दू और मुसलमान दोनों ने—नेतागिरी के नुस्ख़े की ईजाद में कितने-कितने कष्ट उठाये हैं। कोई भी आन्दोलन पंजाब में छः मास से अधिक नहीं चल सका और जब जब निर्वाचन की ऋतु आई, पंजाब ने देश को नई चीज़ अवश्य दी है।

'इस्लाम ख़तरे में', 'हिन्दू-धर्म नाश की ओर', 'वेद और क़ुरान का लोप हो जायगा', इत्यादि नारे बुलन्द करने का श्रेय पंजाब के धर्म और मज़हब के दीवानों को ही है। हो सकता है, ये मेरे शब्द आवश्यकता से अधिक कड़े हों, परन्तु असत्य तो नहीं ही हैं। इन पंक्तियों का लेखक पंजाब का विरोधी नहीं—उसका जन्म ही पंजाब में हुआ है। उसका यह अर्थ भी नहीं कि पंजाब से कुछ भी भलाई नहीं। पंजाबी भोजन, आर्थिक स्थिति आदि कई बातें अच्छी हैं। परन्तु आज पंजाब की हालत यह है कि उसकी धारा सभा में प्रतिगामी ज़मींदारों—नम्बरदारों और ज़ैलदारों—का बहुत्व है। पंजाब के लोग—बहुसंख्यक—ऐसे हैं जो व्यक्ति को ही वोट देते हैं—प्रोग्राम अथवा दल-विशेष का वहाँ कुछ भी महत्व नहीं। राजनैतिक जागृति का नाम भी जिस तक नहीं पहुँचा ऐसे लाखों व्यक्ति वहाँ आपको मिलेंगे।

आप कभी पंजाब-असेम्बली हाल में जाकर वहाँ के भव्य प्रासाद का दर्शन कीजिए और भीतर पहुँचे हुए एम० एल० ए० महोदयों का दर्शन कीजिए। आपको मालूम होगा, यहाँ बहुसंख्या उन लोगों की है जो राजनीति का क, ख, ग, भी नहीं जानते और बन गये हैं प्रान्त के कर्ता-धर्ता और संहर्ता। हमारा देश अविभाज्य है इसलिए पंजाब की दुरवस्था की उपेक्षा नहीं की जा सकती। हम सबका आज पहले से अधिक कर्तव्य है कि समूचे देश की वस्तुस्थिति से परिचित हों, जिससे अपनी शक्ति का अथवा दुर्बलता का ज्ञान रहे और हम अपने आपको कहीं धोखे में न रक्खें। इन पंक्तियों का लेखक एक ही सप्ताह पूर्व पंजाब को समीप से देखकर आ रहा है, जो कुछ वह देख सका है और पंजाब के व्यक्तियों से बातचीत करके जान सका है उसी का संक्षिप्त परिचय कराना ही प्रस्तुत लेख का उद्देश्य है।

३१ आक्टोबर सायंकाल को देहरादून से चलकर मैं अपने साथी पंडित रमेशचन्द्र बहुखंडी के साथ १ नवम्बर को फगवाड़ा पहुँचा। फगवाड़ा पंजाब की एक प्रसिद्ध मंडी है और कपूरथला-राज्य के अन्तर्गत है। सिक्ख-राज्य होने के कारण प्रायः सबके सिर पर पगड़ी दिखाई देती है। म्यूनिसिपैल्टी के चुनाव की धूमधाम मची थी। कपूरथला में पृथक् निर्वाचन-प्रथा नहीं है, तो भी मैंने देखा कि जिनको किसी भी प्रकार से म्यूनिसिपैल्टी आदि में पहुँचने की धुन है वे संयुक्त निर्वाचन-प्रणाली में भी जाट और कायस्थ के हित से आर्यसमाजी और सनातनधर्मी के हित से ग़र्ज़ कि किसी हित की दुहाई देकर पैसे के बल पर वहाँ पहुँचने का प्रयत्न करते हैं। यह सत्य मुझे फगवाड़ा में स्पष्ट दिखाई दिया।

फगवाड़ा में मुझे एक और 'सत्य' का भी साक्षात्कार हुआ जो ब्रिटिश इंडिया में रहते हुए नहीं दीख सकता। कपूरथला में गोवध क़ानून से निषिद्ध है, इसी कारण मुझे वहाँ अच्छी गौएँ और शुद्ध दूध-घी के दर्शन हुए। हमारे मेजवान लाला गुरुदास राय जी के पास चार गायें हैं, जिनमें १० सेर एक बार में कम दूध देनेवाली कोई नहीं।

लाला जी के घर यथेच्छ मक्खन और दूध की लूट पाकर मुझे बचपन के दिन याद आगये। आज-कल देशी राज्यों में 'डेमोक्रेसी' की चर्चा खूब चल रही है। परन्तु मुझे यह डर है कि डेमोक्रेसी के नाम पर ब्रिटिश भारत के समान देशी राज्यों में भी गौओं की 'डेमोक्रेसी' पर कहीं आघात न हो—कहीं 'इस्लाम खतरे में' का नारा बुलन्द करके गौओं पर वहाँ भी छुरी न चलने लगे। मुझे आशा है, देश के विज्ञ नेता इस पर विचार करेंगे।

फगवाड़ा से चलकर मैं अमृतसर पहुँचा। अमृतसर पंजाब का मुख्य व्यापारिक केन्द्र है। राष्ट्र के इतिहास में अमृतसर का बहुत ऊँचा स्थान है। हमारी राष्ट्रीय उन्नति का सच्चा इतिहास जलियाँवाला बाग़ की घटना के बाद से ही प्रारम्भ होता है। परन्तु आज? अमृतसर को देखकर यह विश्वास नहीं होता कि कभी यहाँ ऐसी घटना घटी होगी। यदि मैं ग़लती नहीं करता तो भारतवर्ष भर में विदेशी वस्तुओं और विशेषतः विदेशी वस्त्रों की जितनी बिक्री अमृतसर में होती है, उतनी शायद अन्यत्र न होती होगी। जिन बाज़ारों में विदेशी सामान बिकता है, वहाँ बहुत अधिक भीड़-भाड़ को और लोगों की तड़क-भड़क को देखकर मैं हैरान हो गया।

जिस जाति का जन्म हिन्दू-जाति की रक्षा के लिए हुआ, जिन सिक्ख वीरों को बाधित रूप से संयमी बनने के लिए गुरुओं ने केश रखने तक का भी आदेश और निर्देश किया; अमृतसर उनका गढ़ है परन्तु आज उन सिक्खों में और उनकी स्त्रियों में फ़ैशन का समुद्र उमड़ रहा है। शराब के नशे में चूर इन वीरों को देखकर यादवों का स्मरण हो आता है। वस्तुतः सिक्ख-जाति को जीवित रखने के लिए यह आवश्यक है कि इस जाति को शराब की लत से मुक्त किया जाय। अन्यथा इस जाति का नाश और सर्वनाश निश्चित है। इतिहास इस सत्य का साक्षी है।

अमृतसर में सिर से पैर तक शुद्ध खादी पहननेवाले मुझे गिनती के चार सज्जन ही दिखाई दिये। फ़ैशन की तो बात ही न पूछिए। लाहौर और अमृतसर हिन्दुस्तान के पेरिस कहे जाते हैं। दुःख तो इस बात का है कि लाहौर और अमृतसर की देखा-देखी पंजाब के छोटे छोटे गाँव तक में फ़ैशन मनोवेग से फैल गया है और फैलता जा रहा है।

अमृतसर हिन्दू-सिक्खों का गढ़ समझा जाता है, परन्तु अब धीरे धीरे वहाँ शहर में भी मुसलमानों की संख्या बढ़ती जा रही है और वहाँ के व्यापार के स्रोत पर भी मुसलमानों का प्रभाव बढ़ता जा रहा है। मैं इसका विरोधी नहीं। मेरा तो उद्देश्य वस्तुस्थिति का बताना है। इसके कारणों की तलाश करने पर मुझे मालूम हुआ कि हिन्दू-जाति सदियों से धन एकत्र करती आई है और धन ही इसका इष्टदेव रहा है, इसलिए परिश्रम और उत्साह की इसमें बहुत कमी हो गई है, इसका परिणाम यह हुआ है कि अब धन का स्रोत भी उसके हाथ से छिन रहा है। मुसलमान इसमें उत्साह के साथ प्रविष्ट हो रहे हैं, इसलिए उनका मुक़ाबिला करना कठिन हो गया है। इसी कारण काफ़ी हिन्दू दूकानदार पंजाब छोड़कर युक्तप्रान्त में जा रहे हैं। हिन्दुओं के अन्दर इतना सड़ियलपन और व्यापारिक रूढ़िवाद है तथा उनको श्रम से नफ़रत पैदा होगई है कि अब उनके हाथों में व्यापार भी नहीं रह सकता। मैं राजनैतिक दृष्टि से इस विषय पर विचार करता हूँ। यदि पंजाब में हिन्दू दूकानदारी से भी न कमा सकेंगे तो वे वहाँ जीवित नहीं रह सकते, क्योंकि सरकारी नौकरियाँ उन्हें मिलने से रहीं और ज़मीन का नया एक टुकड़ा भी उन्हें मिल नहीं सकता। हाँ, जो ज़मीन पास में है वह छिन अवश्य सकती है। क़ानून ही ऐसे ऐसे वहाँ बन गये हैं। पंजाब के हिन्दुओं की हालत यह है कि वे सिवा रोने के कुछ भी करने के लिए तैयार नहीं। आज भी वहाँ जो युवक 'छोटा' काम याने मज़दूरी दर्ज़ी आदि का काम करे तो उसकी शादी हिन्दुओं में नहीं हो सकती। मेरा तो विश्वास है कि पंजाब में व्यापार के अन्दर भी

हिन्दू-मुस्लिम-सवाल पैदा करके हिन्दू-सभाई नेताओं ने हिन्दुओं का महान् अनिष्ट किया है। क्योंकि इस प्रकार मुसलमान 'मुसलमान से खरीदें' का आन्दोलन पैदा हो गया है, जिसका परिणाम है हिन्दुओं की हानि। पंजाब के हिन्दुओं के जीवित रहने का उपाय एक ही है और वह है कांग्रेस में सम्मिलित होना। क्योंकि इसी प्रकार पंजाब में हिन्दू-मुस्लिम-एकता का वातावरण पैदा किया जा सकता है, जिसका परिणाम होगा पंजाब में हिन्दुओं की समृद्धि।

पंजाब के साधारणतया और अमृतसर के मुख्यतया धनी हिन्दू साहूकार अपनी रक्षा के लिए गुंडों को प्रश्रय देते हैं, क्योंकि वे स्वयं अपनी रक्षा करने में असमर्थ हैं। यही हाल मुसलमानों का भी है। फ़र्क़ इतना है कि हिन्दू को रक्षा की फ़िक्र है और मुसलमान को आक्रमण की। अमृतसर में मैंने हिन्दुओं और मुसलमानों के उन सरदारों (गुण्डों के सरदार) के ठाठ-बाट देखे, और देखे उनके रोब-दाब। सैकड़ों आदमी उनके दरबार में भोजन करते हैं। पंजाब में उन्हें 'पहलवान' कहते हैं। मैं शारीरिक शक्ति का विरोधी नहीं, परन्तु शारीरिक शक्ति के नाम पर पंजाब में जिस हिंसा को प्रश्रय मिल रहा है वह देश के लिए घातक है। खाकसार-आन्दोलन की देखा-देखी पंजाब में धीरे धीरे हिन्दुओं में 'दरान्तीदल' 'अग्निदल' आदि दल भी अस्तित्व में आये हैं। महात्मा गांधी के अहिंसा से वहाँ के हिन्दू और मुसलमान डर गये हैं और लाभ उठाने की फ़िक्र में हैं। गांधी जी कहते हैं कि उन्होंने भारत को अहिंसा हृदयङ्गम करा दी है, परन्तु यदि वे आज-कल पंजाब में जायँ तो उन्हें वहाँ का प्रत्येक हिन्दू और मुसलमान दुर्वासा बना हुआ मिलेगा।

लाहौर और अमृतसर में मुझे अनेक ज़िम्मेदार हिन्दू नेताओं से मिलने का अवसर मिला। मैंने देखा कि उनका कार्य केवल कांग्रेस को गाली देना भर है। पंजाब में आपको प्रायः ऐसे हिन्दू-नेता मिलेंगे जो उर्दू-विरोधी हैं और कांग्रेस को तथाकथित हिन्दी-विरोधी होने के कारण न जाने क्या क्या कहते हैं। परन्तु आप आश्चर्य में पड़ जायँगे जब यह सुनेंगे कि उनमें से प्रायः एक भी नागरी-लिपि को नहीं जानता और जो जानते हैं वे भी उसे इस योग्य नहीं समझते कि पत्र-व्यवहार उसी में करें। इस कार्य के लिए तो उर्दू ही उपयुक्त मानी जाती है। यह बात उनके व्यवहार से प्रकट होती है। मैंने सारे अमृतसर और लाहौर में साइन-बोर्डों पर उर्दू और अँगरेज़ी लिखी देखी। भूले-भटके यदि किसी साइन-बोर्ड पर हिन्दी किसी कोने में लिखी हुई मिली भी तो पूछने पर पता चला कि इस दूकान से अधिकतर हिन्दू स्त्रियाँ क्रय करती हैं, इसलिए यहाँ हिन्दी लिखी है। पंजाब में हिन्दी 'औरतों की भाषा' समझी जाती है। मैं समझता तो यह था कि पंजाब में अधिक संख्या उर्दू-विरोधी हिन्दुओं की है, इसलिए हिन्दुओं के यहाँ उर्दू को तो कतई स्थान न होगा, परन्तु दिखा उलटा ही। सचमुच पंजाब में हिन्दी की बहुत ही दयनीय दशा है और हालत यह है कि पंजाब में कोई बाक़ायदा काम करनेवाली हिन्दी-संस्था नहीं है। आश्चर्य तो यह है कि अच्छे अच्छे उर्दू-अखबार हिन्दू चलाते हैं और वे हिन्दू जो कांग्रेस का इसलिए विरोध करते हैं कि वह हिन्दी-विरोधिनी संस्था है।

वास्तव में पंजाबी हिन्दू विरोध ही करना जानता है—काम करना नहीं जानता। इस अन्धकार में भी एक किरण दिखाई देती है और वह है आर्यसमाज। पंजाब के समस्त आर्यसमाजों की कार्यवाही नागरी में लिखी जाती है, जब कि प्रायः आर्यसमाजी उर्दू में ही लिखते पढ़ते हैं।

पंजाब की कांग्रेस की हालत भी सुन लीजिए। मरीज़ों को लड़ते तो आपने देखा होगा, परन्तु पंजाब में डाक्टर ही लड़ते हैं। पंजाब-कांग्रेस में डाक्टर गोपीचन्द-पार्टी और डाक्टर सत्यपाल-पार्टी दो दल हैं, जो देश की स्वतंत्रता के लिए भी एक नहीं हो सकते। यह है क़ौम के डाक्टरों का हाल! किसी ने क्या ही खूब कहा है—उस बाग़ का क्या हाल हो जब माली भी पामाली करे। मेरे विचार में तो कांग्रेस-वर्किंग कमेटी को चाहिए कि वह कुछ दिनों की अवधि देकर पंजाब के इन 'पहलवानों' से कहे कि अमुक तिथि तक या तो एक हो जाओ अन्यथा सब अलग कर दिये जायँगे और प्रान्तीय कांग्रेस का कार्य स्वयं वर्किंग कमेटी करेगी।

पंजाब की राजनैतिक, सामाजिक और साहित्यिक स्थिति को देखकर कोई भी भारतीय मेरे ही समान दुःखी हुए बिना नहीं रहेगा।

हमारा प्रधान उपनिवेश

लेखक, श्रीयुत सेठ गोविन्ददास एम० एल० ए०

(७)

फिर से जंजीवार और लौंग का प्रधान द्वीप पेम्बा

नैरोबी से जंजीवार तक आज रास्ते में बड़े बड़े सुंदर दृश्य दिखाई दिये। नैरोबी से कुछ दूर आगे पहले तो हमने एरोप्लेन से एक विचित्र रंग की घटा जमीन पर चलती हुई देखी। जब उस घटा के ऊपर से हम लोग उड़ने लगे तब मालूम हुआ कि वह घटा न होकर जेवरों का एक झुंड है। सैकड़ों नहीं, हजारों जेवरा उस झुंड में थे। हरे-भरे मैदान में चित्र-विचित्र रंग के जेवरों का यह झुंड चलती हुई वायु में डोलती हुई जंगली फूलों की झाड़ी के सदृश दिखाई दिया। इतना सुंदर दृश्य था कि जब तक वह आँखों की ओट न हुआ तब तक आँखें वहाँ से न हटीं। कुछ ही दूर हम और बढ़े होंगे कि हमें अब अपनी ओर आती हुई जमीन पर एक काली घटा दिखाई दी। नजदीक आने पर मालूम हुआ कि वह हाथियों का झुंड था। हजारों तो नहीं, पर सैकड़ों हाथी इस झुंड में अवश्य थे। इतने हाथी इकट्ठे इस प्रकार हम लोगों ने कभी नहीं देखे थे। जब एरोप्लेन की आवाज से यह झुंड तितर-बितर हुआ उस समय का दृश्य तो देखने योग्य था। वे मोटे मोटे गोलाकार हाथी एरोप्लेन पर से काले काले गोल फुटबाल के सदृश उछलते-कूदते दिखाई दिये। आहा! कैसा अद्भुत दृश्य था। थोड़ी दूर और आगे बढ़ने पर हमें किलिमेंजारो की पर्वत-श्रेणियों के दर्शन होने लगे। इन श्रेणियों की बाईं ओर से एरोप्लेन उड़ रहा था और दाहिनी ओर ये पर्वत-श्रेणियाँ बर्फ़ से ढँकी हुई थीं, जो सूर्य की किरणों में चमक कर आँखों को चकाचौंध किये देती थीं। ऐसा मालूम देता था, मानों पर्वतराज अपने अनन्त मस्तकों पर स्फटिक मणियों से जड़ा हुआ किरीट लगाये हुए है। उन उन्नत श्रेणियों के नीचे की पर्वत-मालायें श्वेत बादलों से आच्छादित थीं। इन्हें देख मालूम होता था, मानों गिरिराज अपने शरीर पर श्वेत वस्त्र धारण किये हुए है। नीचे की श्रेणियाँ रंग-बिरंगे वृक्षों से व्याप्त थीं, मानों इस गिरीश के चरणों पर किसी ने पुष्पांजलियाँ चढ़ा दी हों। किलिमेंजारो की यह वैभव-पूर्ण सुषमा मीलों दृष्टि-गोचर हुई। इसके बाद हम समुद्र के किनारे पर उड़ने लगे। किनारे पर टकराती हुई फेन से पूर्ण समुद्र की तरंगें सूर्य की किरणों में ऊपर से ऐसी दिखाई दीं, मानों रत्नाकर अपने भीतर से अनन्त मुक्ताओं को अपने करों में उठाकर पृथ्वी को भेंट कर रहा हो। जब हम समुद्र पर से उड़ने

लगे उस समय पायलेट विमान को और ऊपर उठाने लगा। धीरे धीरे हम लोग समुद्र की सतह से दस हज़ार फ़ुट ऊपर हो गये। पर्वत-प्रदेश में एरोप्लेन इसलिए अधिक ऊँचाई पर उड़ाया जाता है कि पहाड़ों से टक्कर होने का भय न रहे, परन्तु समुद्र पर से इतनी उड़ान देख कर मुझे आश्चर्य हुआ। जब मैंने इसका कारण पूछा तब पायलेट बोला —

यदि इंजिन बन्द हो जाय तो बिना इंजिन की सहायता के मैं मशीन को प्रतिहज़ार फ़ुट की ऊँचाई से दो मील आगे या पीछे ले जा सकता हूँ। इस प्रकार इस दस हज़ार फ़ुट की ऊँचाई से मैं आगे या पीछे मशीन को २० मील तक ले जा सकूँगा। २० मील के भीतर यदि कहीं ज़मीन मिली तो मैं पानी में गिरने की जगह उस पर मशीन को उतार सकता हूँ। इसी लिए समुद्र पर हम लोग सदा बहुत ऊँचे उड़ा करते हैं।

मैंने पूछा—"क्या इंजिन के बन्द होते ही मशीन एकदम ज़मीन पर नहीं गिरती?"

"हर्गिज़ नहीं। एक बार ऊँचाई पर तेज़ी से उड़ने के बाद बिना इंजिन की सहायता के भी बहुत देर तक मशीन उड़ सकती है।"

यह कहकर पायलेट ने फ़ौरन इंजिन को बन्द कर दिया। बिना पावर के मशीन उसी प्रकार उड़ी हुई चली जा रही थी। थोड़ी देर के बाद उसने फिर इंजिन को चला दिया।

आज के ४०० मील के सफ़र में क़रीब ४ घंटे लग गये, क्योंकि वायु का वेग विपरीत दिशा में था।

एक बजे के क़रीब हम लोग ज़ंजीबार के एरोड्रोम में उतरे। ज़ंजीबार के सभी प्रतिष्ठित व्यक्ति एरोड्रोम पर मौजूद थे। हम लोगों के एरोप्लेन से बाहर निकलते ही 'ज़ंजीबार वायस' के सम्पादक मिस्टर इब्राहीम ने मेरे ज़ंजीबार से जाने के बाद वहाँ जो कुछ हुआ था उसका वृत्तान्त सुना दिया, जो एरोप्लेन की आज की यात्रा से कम मनोरंजक न था। मिस्टर इब्राहीम ने कहा :—

आपके तारीख़ २१ के भाषण ने यहाँ बड़ी सनसनी पैदा कर दी है। उपनिवेशों की भी ब्रिटिश गवर्नमेंट के वर्तमान रुख़ के कारण ब्रिटिश साम्राज्य से पृथक् होने की घोषणा करनी पड़ेगी। आपके इस कथन पर ब्रिटिश रेज़ीडेंट बड़ा क्रुद्ध है। हमारे पूर्व-पुरुषों ने अँगरेज़ों को यहाँ बुलाकर भारी भूल की थी आपके इस कथन पर ज़ंजीबार के सुल्तान बड़े अप्रसन्न हैं। आपको तो अब यहाँ उतरने ही न दिया जायगा, यह ख़बर थी।

इसके बाद मिस्टर इब्राहीम ने मेरे हाथ पर 'अल-फ़लक' अख़बार का तारीख़ २७ नवम्बर का वह अंक रख दिया जिसमें मेरे भाषण की आलोचना छपी थी।

ज़ंजीबार के इस क्षुब्ध वायुमण्डल को देख कर मुझे बड़ा आनन्द आया। मैंने अनुमान किया कि ब्रिटिश रेज़ीडेंट और सुल्तान का क्षोभ मेरे भाषण पर कम और इस बात पर अधिक होगा कि जो व्यापारी लौंग के व्यापार के बहिष्कार में थोड़े बहुत ढुलमुल हो रहे थे वे मेरे भाषण के कारण पक्के हो गये हैं। फिर मुझे ब्रिटिश रेज़ीडेंट के क्रोध पर तो कोई विशेष आश्चर्य न हुआ पर ज़ंजीबार के सुल्तान की अप्रसन्नता पर ज़रूर ताज्जुब हुआ। मेरे इस कथन पर कि हमारे पूर्व पुरुषों ने अँगरेज़ों को यहाँ बुला कर भारी ग़लती की थी सुल्तान को तो सबसे ज़्यादा ख़ुश होना चाहिए था क्योंकि इस ग़लती का सबसे अधिक अनुभव तो सुल्तान ही करते थे जिनकी स्थिति एक पेंशनर क़ैदी की-सी थी। हाँ, यदि ग़ुलामी किसी के ख़ून में ही प्रविष्ट हो गई हो और जिस प्रकार गलीच जगहों में भी रहते हुए कीड़े मकोड़े आनन्द से रह सकते हैं उसी प्रकार ग़ुलामों को ग़ुलामी में ही आनन्द का अनुभव होता हो तो दूसरी बात है। विवशता के कारण अपनी पतितावस्था में भी सन्तोष मान लेना एक बात है और उस पतितावस्था को ही सच्ची उच्च स्थिति मान लेना तो अधःपतन की पराकाष्ठा है। सुल्तान किस मानसिक प्रकृति के मनुष्य थे यह मैं न जानता था।

मैसूर की घटना की पुनरावृत्ति के लिए, और उसके भी आगे बढ़कर ज़ंजीबार के जेल में भी कुछ दिन विश्राम करने के लिए तैयार हो इण्डियन नेशनल एसोसिएशन के सभापति मिस्टर ग़ुलामअली के साथ मैं मिस्टर कावसजी दीनशा के ऐतिहासिक बँगले पर पहुँचा जहाँ मेरे ठहरने की व्यवस्था की गई थी। इसी

स्थान पर महात्मा गांधी, राइट आनरेबिल मि० शास्त्री आदि ठहर चुके थे। बँगला समुद्र के किनारे अत्यन्त रमणीक स्थान पर था। जंजीबार बंदरगाह में आये हुए सभी जहाज इस बँगले की बालकनी से दिखाई देते थे। रात्रि को जहाजों की रोशनी और पानी पर पड़ते हुए उनके प्रतिबिम्ब से ऐसा भास होता था मानों अनेक प्रज्वलित दीपों की पानी में एक माला ग्रथित कर दी गई हो।

उस दिन मुलाक़ातों के अतिरिक्त और कोई काम न था। हिन्दू और मुसलमान सभी बड़ी संख्याओं में मुझसे मिलने आये। इन मुलाक़ातों से मुझे मालूम हो गया कि जंजीबार का वायुमंडल कितना गर्म था। यह देख कर मुझे सन्तोष हुआ कि वहाँ के सभी लोग मेरे समर्थक थे। सब यही पूछते थे कि जाने के पहले मैं भाषण दूँगा या नहीं। मैंने सभी को आश्वासन दिया कि मैं फिर से वहाँ बोले बिना जानेवाला नहीं हूँ।

दूसरे दिन प्रातःकाल मुझे एरोप्लेन से पैम्बा जाना था। लोगों को भय था कि मेरी पैम्बा की यात्रा रोक दी जायगी पर ऐसी कोई घटना न हुई और ठीक ८ बजे प्रातःकाल जंजीबार से उड़ कर एक घंटे में हम लोग पैम्बा पहुँच गये। पैम्बा एरोड्रोम पर वहाँ के सभी प्रतिष्ठित व्यक्ति मौजूद थे।

पैम्बा एक सुन्दर हरा-भरा टापू था, जंजीबार से भी अधिक हरा भरा। लौंग के वृक्ष यहाँ जंजीबार से कई गुने अधिक थे। आज ईद थी इस कारण पैम्बा के छोटे से बाजार में भी बड़ी चहल-पहल थी। इस्लाम धर्म में कितना भ्रातृभाव है इसका एक भारी प्रमाण मुझे आज पैम्बा में मिला। हिन्दुस्तानी मुसलमान और सुहेली मुसलमान दो पृथक् वर्गों के होते हुए भी इस्लाम धर्म में दीक्षित होने के कारण किस प्रकार भाई-भाई के सदृश गले मिल रहे थे। एक दूसरे को किस प्रकार ईद की मुबारकबादी दे रहे थे।

पैम्बा द्वीप के तीनों ज़िलों में हम लोगों ने भ्रमण किया। वहाँ के लौंग की खेती देखी और वहाँ के व्यापारियों की हालत। जो व्यापारी लाखों रुपये साल की लौंग खरीद कर निर्यात कर व्यापार किया करते थे वे अपने प्रण के कारण धनियाँ-मिर्च बेचते हुए किस प्रकार हाथ पर हाथ रक्खे बैठे थे। कैसा सुन्दर संगठन था, कैसी दृढ़ प्रतिज्ञा थी, कैसा महान त्याग था! मैंने आज पैम्बा द्वीप में तीन सार्वजनिक सभाओं में भाषण दिये। पैम्बा की सभा में तो वहाँ के अरबनेता भी उपस्थित थे। संध्या को एरोप्लेन से मैं जंजीबार लौट आया। आज हमारी हवा की यात्रा समाप्त होती थी। पायलेट और एरोप्लेन को विदा करते समय जंजीबार के एरोड्रोम में मेरे नेत्रों से दो बूंद आँसू टपक ही पड़े। अँगरेज होते हुए भी हमारा पायलेट कितना भला आदमी था और सारी यात्रा में लक्ष्मीचन्द और मेरे साथ किस प्रकार रहा था। हम लोग भिन्न भिन्न जातियों के हैं यह उस पायलेट ने हमें अनुभव ही न होने दिया था।

आज संध्या को जंजीबार में मुझे दुग्धपार्टी दी गई। हिन्दू-मुसलमान सभी इस पार्टी में सम्मिलित थे।

तारीख ६ की रात को करञ्जा जहाज़ से हम लोग दक्षिण-अफ्रीका को रवाना होनेवाले थे। आज ही संध्या को जंजीबार में सार्वजनिक सभा थी। सभा में बहुत बड़े जन-समुदाय के उपस्थित होने की सम्भावना के कारण सभा थियेटर में न रख कर मैदान में रक्खी गई थी। सारा मैदान भीड़ से खचाखच भरा हुआ था। लोगों को भय था कि ठीक समय पर सभा को रोक दिया जायगा पर ऐसी कोई बात न हुई। मैं क़रीब एक घंटे तक बोला। तारीख २० नवम्बर की कही हुई प्रत्येक बात का मैंने फिर समर्थन किया जिसका समर्थन किया जनता ने तालियों की कड़कड़ाहट से। मैंने वहाँ के व्यापारियों को प्रतिज्ञा-पालन की दृढ़ता पर बधाई दी और भविष्य में भी वे इसी प्रकार अपने प्रण पर डटे रहेंगे इसका वचन लिया। इसके बदले में मैंने उन्हें यह आश्वासन दिया कि भारत में लौंग के बायकाट को सफल करने में कांग्रेस कुछ उठा न रक्खेगी।

दक्षिण से लौटते हुए फिर से जंजीबार आने का आश्वासन देकर मैं करञ्जा पर सवार हो गया। यह जहाज़ टायरिया से दो हज़ार टन अधिक का था—उससे कहीं अधिक सुन्दर और आधुनिक भीड़ भी कम थी।

अर्द्धरात्रि के समय करञ्जा जंजीबार से छोड़ दिया गया।

रिक्था

अनुवादक, पण्डित ठाकुरदत्त मिश्र

सविता एक डिप्टी कलेक्टर की कन्या थी। लड़कपन में ही पिता की गोद से बिछुड़ जाने के बाद समृद्ध और साधन-सम्पन्न पितृव्यों से उपेक्षित होने के कारण उसे माता के साथ अपने धन-हीन किन्तु सम्मान-प्रिय एवं धर्मप्राण नाना के ही यहाँ आश्रय लेना पड़ा। इसलिए शिक्षा और सदाचार से युक्त होने पर भी ऊपरी तड़क-भड़क से भी वह वञ्चित रही। और यही कारण था कि अपने सुशिक्षित और रूप-गुण-सम्पन्न पति को प्रिय न हो सकी। फल यह हुआ कि सविता घर में दासी का-सा जीवन व्यतीत करने के लिए बाध्य हुई और अरुण उसके कारण घर से दूर रहने लगा। बहुत दिनों के बाद एकाएक सविता को माता का एक पत्र मिला, जिसमें यह लिखा था कि वे उसे देखने के लिए आ रही हैं, परन्तु सविता को भय था कि यहाँ आने पर वे उसकी वास्तविक दशा देखकर दुखी होंगी, इससे उसने उन्हें आने से रोक दिया।

(१०)

बाहर जगत् बाबू से कुछ देर तक बातचीत करने के बाद सविता के नाना ने ज़रा-सा कुण्ठित भाव से कहा—मुझे और अधिक समय तो है नहीं। ज़रा-सा सविता से मुलाक़ात कर लेने के बाद ही मैं चलना चाहता हूँ।

जगत् बाबू ने पूछा—क्यों? इतनी शीघ्रता आप क्यों कर रहे हैं?

"मैं काशी जा रहा हूँ न। गाड़ी पकड़नी होगी"

"तो क्या हमारी समधिन जी घर पर ही रह गई हैं?"

"जी नहीं, वहाँ किसी का सहारा तो है नहीं कि उसे छोड़ जाऊँ? वह भी मेरे साथ ही जा रही हैं। स्टेशन पर मुसाफ़िरख़ाने में उसे बैठाल आया हूँ। इसी लिए लौटने में ज़रा और शीघ्रता कर रहा हूँ। अरुण से मुलाक़ात न हो सकने के कारण मुझे बड़ी निराशा हुई। विवाह के बाद फिर उसे नहीं देख सका। विवाह के ही समय उससे कितनी देर के लिए मुलाक़ात हुई थी!"

समधिन को स्टेशन पर छोड़ आने के सम्बन्ध में जगत् बाबू ने कुछ असन्तोष प्रकट किया। इसके उत्तर में सविता के नाना ने कहा—क्या करूँ? वह किसी प्रकार आने को तैयार ही नहीं हुई। इसके अतिरिक्त आज एकादशी है। इस कारण मैं अधिक आग्रह भी नहीं कर सका।

नीचे के खूब लम्बे-चौड़े दालान में ले जाकर जगत् बाबू ने सविता के नाना को बैठाया। नौकरानी जाकर सविता को बुला ले आई। सविता की गोद में था पुलक। उसे भूमि पर उतार कर उसने श्वसुर और नाना को प्रणाम किया। उसकी ओर ताकते हुए नाना ने कहा—क्या हाल है बच्ची, अच्छी तरह हो न?

मस्तक झुकाकर सविता ने ज़रा-सा हँस दिया। उस समय उसकी दोनों आँखें भर आई थीं। मुख नीचा करके उसने उन आँसुओं को छिपा लिया।

सविता के नाना ने अपनी भर्राई हुई आवाज़ को ज़रा-सा साफ़ करके उसे कुछ दिन के लिए अपने यहाँ ले जाने का प्रस्ताव किया। उसके उत्तर में जगत् बाबू ने कहा—इसमें मुझे तो कोई विशेष आपत्ति नहीं है, किन्तु बहू ने जो एक जीव को पाल रक्खा है उसी के कारण उसका जाना असाध्य हो गया है। इसके सिवा घर में विवाह भी पड़ गया है, इससे इस बार सुविधा नहीं है। कुछ दिनों के बाद ले जाइएगा।

संक्षेप में ही दो-चार बातें करके सविता के नाना विदा हो गये। अरुण से मुलाक़ात न हो सकने के कारण सचमुच वे बहुत क्षुब्ध हो उठे थे। सविता को भी वे जो ज़रा देर के लिए देख पाये उससे उनकी समझ में यह न आ सका कि इस कुल के घर में आकर वास्तव में वह सुखी हो सकी है या नहीं। इससे हृदय में जो सन्देह का भाव उदित हुआ था वह भी नहीं दूर हुआ।

सविता के नाना का यह सारा सन्देह उस समय दूर हो जाता, जब कि उनके हृदय में चमचमाते हुए

अरुण के समान ही अरुण की कान्तिमय मूर्ति उदित हो आती। वे सोचते कि सविता को अरुण-जैसे तेजस्वी वर के हाथों में मैंने सौंपा है तब भला वह सुखी क्यों न होगी?

दूसरे दिन साथ में नई बहू को लिये हुए शुभेन्दु लौट कर घर आ गया। शरीर अच्छा न होने के कारण जगत् बाबू स्वयं नहीं जा सके, समधी को जो कुछ कार्य करने होते हैं, उन सबका भार स्वीकार करके अरुण ही गया था। उस अवसर पर उसके उत्साह में कोई वैसी कमी नहीं देखने में आई।

समस्त दिन आनन्द-उत्सव के तरह-तरह के आयोजन होते रहे। इस अवसर पर मेनका ने सविता को नहीं बुलाया। उसे न बुलाने का एक विशेष कारण था, यद्यपि उसे मेनका ने गुप्त ही रक्खा था। बात यह थी कि सविता अपने स्वामी को प्रिय नहीं थी और जो नारी स्वामी को प्रिय न हो, उसे बुलाना उन्हें उचित नहीं प्रतीत हुआ।

सविता पुलक को लिये हुए घर के कोने में ही पड़ी रही। मेनका ने उसकी इतनी अवज्ञा की थी, इतना तिरस्कार किया था, परन्तु फिर भी स्वेच्छा से राज-शृंगार करके बाहर निकलने की प्रवृत्ति उसकी नहीं हुई। सास की आज्ञा के बिना कपड़े बदलने का साहस भी उसे नहीं हुआ।

वर-वधू की गाड़ी बाजे-गाजे के साथ आकर जब द्वार पर लगी तब मेनका ने सविता को भी बुलाया। इस बुलावे के लिए सविता तैयार थी नहीं। उसने सोच रक्खा था कि शायद इतने आदमियों के बीच में मुझे न जाना पड़ेगा। परन्तु अन्त में जब एकाएक उसका बुलावा हो ही गया तब वह जिस वेश में थी उसी वेश में आकर खड़ी हो गई।

गाड़ी पर से शुभेन्दु के बाद अरुण भी उतर पड़ा। नातेदार-रिश्तेदार और पास-पड़ोस की स्त्रियाँ रंग-बिरंगे कपड़े और तरह-तरह के आभूषण पहने हुए वधू के स्वागत के लिए बड़े ठाट-बाट से खड़ी थीं। उन सबके बीच में केवल एक ही ऐसी स्त्री थी जो बिलकुल आडम्बरहीन थी। पोशाक उसकी बिलकुल सादी थी। परन्तु सोने और हीरे से सुसज्जित न होने पर भी उसके गौरव से आभामय मुख पर सबकी सम्मानपूर्ण और चकित दृष्टि पड़ रही थी, अरुण भी उसके मुख पर पड़ने से अपनी दृष्टि को रोक न सका।

सविता ने एक बार ताक कर देखा। अरुण एक खम्भे में टेक लगाये हुए खड़ा-खड़ा लज्जाहीन दृष्टि से उसी की ओर ताक रहा था। उसने एक पैर जूते से निकाल लिया था और उस नंगे पैर को दूसरे पैर के ऊपर रक्खे पीछे की ओर दोनों हाथ मोड़ कर उनसे खम्भे को पकड़े हुए वह खड़ा था। स्वामी के एक जोड़ा सफ़ेद कमल-जैसे चरणों पर निमेष भर के लिए दृष्टि पड़ते ही सविता का मुख लज्जा से लाल हो गया। वह वहाँ से चली गई।

हाय, दुर्भाग्य! सविता ने स्वेच्छा से अरुण की ओर नहीं ताका था, तो भी निमेषमात्र के लिए जो उसकी दृष्टि पड़ गई थी उसी के कारण मारे लज्जा के वह मरी जा रही थी। वह सोच रही थी कि कहीं कोई मेरे इस प्रकार देख लेने का यह अर्थ न लगा बैठे कि मैं लुब्ध-दृष्टि से उनकी ओर ताक रही थी।

मेनका कुलाचार के अनुसार वधू को गाड़ी पर से उतार रही थीं। वे सौभाग्यवती थीं, इसलिए वहाँ पर वर्तमान स्त्रियों ने वधू को यही आशीर्वाद दिया कि सास के समान तुम भी सौभाग्यवती होओ।

इधर कोई-कोई व्यक्ति एकाग्र मन से सविता के ही सम्बन्ध में विचार कर थे। मानो किसी आश्चर्यजनक वस्तु के रूप में आविर्भूत होकर उसने सबको अवाक् कर दिया था।

एक दूसरे कमरे में पुलक के चिल्ला-चिल्ला कर रोने की आवाज़ सुनकर सविता दौड़ पड़ी। एक ऊँची-सी कुर्सी पर बैठा हुआ पुलक खेल रहा था। एकाएक वह लड़खड़ाकर गिर पड़ा। बिलकुल आगे की ओर उसके दो दाँत नये निकले थे। उनके लग जाने के कारण ओष्ठ कट गया था और रक्त बहने लगा था। जो नौकर उसे खेला रहा था वह उसे अकेला छोड़ कर बहू को देखने चला गया था। पुलक को वह साथ में नहीं ले गया, इससे सविता कुछ रुष्ट हुई। अन्त में उसे गोद में लिये हुए वह कमरे के भीतर ही रह गई। सविता के मन में यह बात आई कि अभी झुंड की झुंड स्त्रियाँ आकर मेरे उपेक्षित शरीर को विद्रूपमय

दृष्टि के बाणों से कोंचेंगी और उसके कारण मुझे क्लेश होगा। इसलिए सबसे अलग रहने में ही मेरा कल्याण है।

सविता का सौभाग्य था कि मेनका ने उसे फिर नहीं बुलाया।

विवाह के उपलक्ष्य में तरह तरह के उत्सवों का आयोजन किया गया था। उस सिलसिले में एक राम-मंडली आई थी। इन ज़मींदार महोदय के घर में जब कभी कोई उत्सव होता, यह मण्डली आती और सबका मनोरंजन कर जाती। यह अरुण के विवाह में भी आई थी और इस बार भी आई।

बाहर खूब बड़े करके शामियाना ताना जा रहा था। इस काम में जितने आदमी लगे थे, वे जितना परिश्रम कर रहे थे, उससे कहीं अधिक शोर-गुल मचा रहे थे। परन्तु चिल्लाने के कारण थोड़ी-सी स्फूर्ति प्राप्त कर लेने के विचार से वे और भी कोलाहल मचा रहे थे।

उस दिन वधू के पाकस्पर्श करने का मुहूर्त था। रात्रि में उसी शामियाने के नीचे रामलीला होनेवाली थी। घर के अन्तःपुर से लेकर बाहर की बैठक तक का सारा स्थान निमन्त्रण में आये हुए व्यक्तियों से परिपूर्ण था। मेनका के आदेश के अनुसार पुलक को सजा देने के लिए सविता बड़ा प्रयत्न कर रही थी। पुलक इस सजावट में बड़ी आपत्ति कर रहा था। वह किसी तरह कपड़े ही नहीं पहनना चाहता था। खटक-पटक कर चिल्ला रहा था। लाख प्रयत्न करने पर भी सविता पुलक की इस रुलाई को कम नहीं कर सकी। जैसे-जैसे वह उसे चुप कराने की कोशिश करती, वैसे ही वैसे वह और भी ज़ोर ज़ोर से रोने लगता। परन्तु बाद को जब सविता को मालूम हो गया कि पुलक की यह रुलाई वास्तव में कृत्रिम रुलाई है तब वह हँस पड़ी।

सविता के मुँह से हँसी की खिलखिलाहट का निकलना ही था कि मेनका कमरे में पहुँच गई। उन्होंने कर्कश स्वर से कहा—समझ में नहीं आता कि कौन-सी ऐसी सुख की बात है, जिससे इस तरह की हँसी आ रही है। बच्चे को यदि सम्मान नहीं प्यारा हो, तो उसे मार-पीट कर और ज़बर्दस्ती पकड़ कर इतना रुला क्यों रही हो? बाद को सविता की ओर ज़रा-सा ताक कर उन्होंने कहा—शरीर जल जाता है। यह अपनी शकल जो बना रक्खी है! चौका-बर्तन करनेवाली मज़दूरिनें ज़रा कुछ साफ़-सुथरी रहती हैं! कुत्ता यदि राजा भी बन जाय तो क्या होगा? लोगों की आँख बचा-बचा कर वह जूते की ही ओर तो ताकेगा!

वसन्त-ऋतु में खिले हुए फूलों से महकती हुई फुलवाड़ी में यदि कहीं बिजली गिर पड़ी तो वहाँ के सारे फूल मुरझा जाते हैं। ठीक वैसे ही सविता के मुख पर खिली हुई स्निग्ध हँसी भी मुरझा गई। उसने स्पष्ट स्वर से कहा—मैंने उसे मारा नहीं माँ!

"नहीं, मारा नहीं।" मेनका ने चिल्ला कर कहा—"यदि मारा नहीं तो क्या यह यों ही चिल्ला रहा है? इस तरह रोनेवाला लड़का भी तो यह नहीं है?"

सविता ने नेत्रों का जल किसी प्रकार रोक लिया। परन्तु फिर भी असह्य उत्ताप के कारण उसका ओष्ठ तक जलने लगा। उसे इस तरह की जो डाँट-फटकार सहनी पड़ी थी उसका कारण यह तो था नहीं कि सविता ने कोई अपराध किया था, जिसके दण्ड के रूप में इतनी बातें सहनी पड़ी थीं। समय-समय पर मन का सारा गुबार सविता पर उतारते रहने का उसकी सास को अभ्यास हो गया था।

इस तरह की कठोर और तीखी बातें जिसने कहीं उसके लिए इन्हें कह डालना जितना आसान था, उतना आसान उसको सुन लेना तो था नहीं! इसके सिवा जिसको यह सब बातें कही गई थीं उसे चौबीस घंटे बराबर ही जलील होते रहना पड़ता था। इस तरह की गृहस्थी में, जिसमें बराबर घृणा और व्यङ्ग्य की ही बातें सहन करनी पड़ती थीं, प्रथम प्रवेश के बाद से आज तक ज़रा-सी शान्ति की झलक तक उसे नहीं दिखाई पड़ी। आज इस तरह की फटकार पाने के बाद सविता ने बड़े प्रयत्न से अपने आपको सम्हाला और जो ज़रा-सी अपनी सफ़ाई देने जा रही थी उसे भी रोक रक्खा। पुलक को बहला कर उसने बाहर भेज दिया। कपड़े वह उसे पहना चुकी थी। सविता का माथा जल रहा था, इससे उसने मस्तक पर ज़रा-सा जल छोड़ा और मुँह पोंछने लगी। इतने में उसने देखा कि ज्ञानदा नाम की

नौकरानी थोड़े-से पान लिये हुए उन्हें धोने जा रही है। सविता ने उससे कहा—ये पान मुझे दे दो। माँ के लिए पान लगाने हैं।

ज्ञानदा ने उसकी बात पर कर्णपात नहीं किया। उसने कहा—आज माँ के लिए पान हमी लगायेंगी।

सविता ने धीर भाव से कहा—तो क्या माँ ने तुमसे यह कह दिया है ?

नौकरानी ने कड़क कर कहा—माँ ने न भी कहा हो, तो क्या हुआ ? माँ का तो पान से ही मतलब है, वह हमी लगा देंगी; बस, मामला खतम !

सविता यह जानती थी कि यह उद्दण्ड नौकरानी गृह-स्वामिनी को बहुत प्रिय है, इससे यह किसी की भी किसी बात की ओर ध्यान नहीं देना चाहती। परन्तु इसी कारण नौकरानी होकर वह इस प्रकार की उद्धता करे, यह सविता को अच्छा न लगा। उसने कड़क कर कहा—नहीं, यह नहीं होने का। पान मैं ही लगाऊँगी। तुम जाओ और ये सब पान मेरे कमरे में रख आओ।

नौकरानी ने क्रोध में आकर कहा—इसी प्रकार की बुद्धि के कारण तो माँ के शरीर में आग लग जाती है। जो बात कही जायगी उस पर कान न करोगी।

सविता ने मस्तक उठाया और सीधी होकर वह खड़ी हो गई। ज्ञानदा की ओर तीक्ष्ण दृष्टि से ताकती हुई वह बोली—तुमको इतना भी ज्ञान नहीं है कि किससे किस तरह की बातें करनी होती हैं ? तुम्हारी बातें सुनने के लिए मैं बाध्य नहीं हूँ। मैं तुमसे जो कहती हूँ वह सुनो। पहले जाकर पान मेरे कमरे में रख आओ।

इसके बाद वहाँ निमेषमात्र भी न रुक कर सविता कमरे में चली गई। पान खाने का मेनका को एक बहुत बड़ा व्यसन हो गया था। वे सुन्दर काम की हुई चाँदी की एक चूनादानी साथ में सदा लिये रहती थीं। पहले वे अपने लिए स्वयं पान लगा लिया करती थीं, नौकरानी का लगाया हुआ पान उन्हें पसन्द नहीं आता था। इधर सविता जब से आई है तब से वही सास के लिए पान लगा दिया करती थी। आज न लगा सकने पर कहीं वे रुष्ट न हो जायँ, इसी लिए उसे इतना आग्रह था।

सविता सास के क्रोध से परित्राण पाने के लिए पान लगाने के लिए इतना अधिक चिन्तित थी, किन्तु इस नौकरानी का ही व्यवहार उसे पागल कर डालना चाहता था। नौकरानी अपनी ही धुन में बड़बड़ाती हुई पान लगाने का सारा सामान सविता के कमरे के बरामदे में लाकर पटक गई।

पान लगा कर सविता ने हाथ धोया और जाकर छत पर खड़ी हो गई। आकाश निर्मेघ था, नीला था, निर्मल था। जल के ऊपर तैरते हुए नैनू की तरह का एक टुकड़ा श्वेत वर्ण का मेघ झील के जल पर हंस की तरह तैरता फिर रहा था। श्यामल धरित्री पर चाँदी के तार का काम की हुई चूनरी के समान धूप की झलक चित्र-विचित्र होकर भिन्न-भिन्न दिशाओं में फैली हुई थी। बग़ीचे में एक ओर कुछ वृक्षों पर खिले हुए स्थल-कमल के पुष्प रंग के चटकीलेपन के कारण गुलाब के रंग को भी मात कर रहे थे। चाहे कितने भी कम समय के लिए क्यों न हो, वर्ण के समक्ष गन्ध की पराजय स्वीकार करना ही पड़ता था।

सविता जब इस उदार आकाश के नीचे आकर खड़ी हुई तब उसके मनरूपी आकाश पर जो घने बादल छाये हुए थे, उनका भार बहुत कुछ हलका हो गया। वहाँ से वह कपड़े बदलने गई। उसे आशंका थी कि कपड़े न बदलने पर सास की डाँट खानी होगी। पूरे बारह महीनों से जो साड़ी वह पहनती आई थी उसे उतार कर उसने एक चौड़े लाल किनारे की साफ़ साड़ी पहन कर सास की मान-रक्षा की। मस्तक के बाल उलझे हुए थे। उन्हें साफ़ करके सँभालने का प्रयत्न उसने नहीं किया। करती भी वह कैसे ? यह कोई दो-चार मिनट का काम तो था नहीं ? इतने दिनों से उपेक्षित अवस्था में डाल रखने का यह परिणाम हुआ कि अपने हाथ से उन्हें सँभाल लेना असाध्य हो उठा। साँझ हो जाने से ज़रा देर के बाद मेनका ने उसे पुकार कर कहा—चलो, नीचे रासमंडलीवालों का गीत हो रहा है, वहीं चल कर बैठें।

ज़रा-सा इधर-उधर करके सविता ने कहा—अभी ही ? ज़रा पुलक को दूध तो दे दूँ ?

"नहीं, नहीं, दूध देने को रहने दो। तुम वहाँ चल कर बैठो। पुलक को आज तारा ही दूध दे देगी।"

इस पर सविता ने और कुछ नहीं कहा। सीढ़ी से उतरते उतरते मेनका ने एक बार सविता को नीचे से

लेकर ऊपर तक देखा, और कहने लगीं—वहाँ दस आदमी आये हैं। उनके बीच में इस वेश में जाने में तुम्हें लज्जा न आवेगी? भला एक बात को मैं तुम्हें कितनी बार कह कर समझाऊँ?

सविता मस्तक झुकाये हुए चलती गई। अपने हाथ से शृंगार करने का उसे कभी अभ्यास नहीं था, इसके सिवा ठाट-बाट बना कर लोगों के सामने निकलने में भी उसे लज्जा आती थी। इससे मेनका के इस तरह की बात कहने पर भी उसने लज्जा का अनुभव नहीं किया। उसी वेश में जाकर वह चिक की आड़ में बिछे हुए आसन पर बैठ गई और चिक के उस ओर की सजावट देखने लगी। ज़मींदार के घर का काम था, तैयारी में कहीं ज़रा भी किसी प्रकार की त्रुटि नहीं थी।

एक बहुत बड़ा फ़र्श था। उस पर बीच में जगह छोड़ कर चारों ओर आदमी बैठे हुए थे। शामियाना के जितने भी बाँस थे, उन सब पर रंगीन काग़ज़ लगा हुआ था। देवदारु की पत्तियों के बीच में बड़े-बड़े गैस जल रहे थे। अरुण स्वयं ही अपनी मधुर मुस्कान से सबका स्वागत करता हुआ उन्हें बिठाल रहा था।

चिक की आड़ में जो स्त्रियाँ बैठी हुई थीं वे गाना आरम्भ होने से पहले ही आपस की बातचीत समाप्त कर लेने का प्रयत्न कर रही थीं।

एक स्त्री ने आकर कहा—क्यों भाई, क्या तुम लोग मेरे लिए यहाँ ज़रा-सी जगह निकाल सकोगी? उस ओर से तो मैं कुछ देख नहीं पाती हूँ।

एक स्त्री स्वयं ज़रा-सा खिसक कर बैठ गई और कहने लगी—इतनी जगह में यदि बैठ सको तो बैठ जाओ।

"किसी तरह बैठ जाऊँगी।" यह कह कर वह स्त्री बैठ गई और कहने लगी—तुम तो यहीं पड़ोस में रहती हो, इस घर की बहू से तुम्हारा परिचय हुआ है? कैसे स्वभाव की है वह?

"अच्छे स्वभाव की है।"

"सचमुच?"

"पागल हो तुम! बहू की बदौलत जिस घर का लड़का घर छोड़-छोड़ कर भागता फिरता है, वहाँ भला क्या हम लोगों को नज़दीक आने को मिलेगा?"

एक साथ ही चार-पाँच मुँह की आवाज़ निकल पड़ी—चुप, चुप, चुप! अर्थात् जिसके सम्बन्ध में यह बातचीत छिड़ी हुई है वह सविता यहीं बैठी है।

सविता ने मुँह फेर कर देखा तब उनमें से कोई भी स्त्री उसकी परिचित नहीं थी। परन्तु उसके सम्बन्ध की बातें कहाँ तक फैल गई थीं, यह उसे मालूम हो गया। वह सोचने लगी कि मैंने ऐसा कौन-सा कार्य किया है जिसके कारण घर का लड़का घर छोड़ कर भटकता फिरता है?

सविता बहुत चिन्तित हो उठी। वह सोचने लगी—इस तरह की बात यदि सत्य भी हो; तो नारी-जीवन में वह सहन करने के योग्य नहीं है। परन्तु बात जब सर्वथा मिथ्या है तब भला मैं इसे कैसे सहन करूँ? मेरी चाहे कैसी भी गति हो, मैं क्या निरन्तर शुद्ध हृदय से यह नहीं प्रार्थना करती रहती हूँ कि वे सुखी हों?

सविता इसी प्रकार की बातें तन्मय होकर सोच रही थी। इधर उसके सम्बन्ध की चर्चा भी नहीं रुकी। उसमें कुछ धीमापन अवश्य आ गया। गीत के समाप्त होने से पहले ही मेनका उठ गईं, उनके साथ ही साथ सविता भी उठी।

उस समय रात्रि प्रायः समाप्त हो चली थी। अन्धकार से आच्छादित नीम के वृक्ष के मस्तक पर एक खूब बड़ा-सा तारा चमचमाता हुआ उदित था। देखने में खूब काले शिवलिंग के मस्तक पर मणि का चन्द्रमा लगा देने पर जिस प्रकार सुशोभित होता है, वैसी ही अपूर्व शोभा उसकी भी थी। जाड़े के दिनों की तेज़ और ठंडी हवा के कारण सिमटी हुई अपने कमरे में जाते-जाते सविता ने सुना, रास-मंडली के बालकों का दल रात्रि की निस्तब्धता को भंग करता हुआ एक भावपूर्ण गीत गा रहा था। उस गीत का सारांश है:—

हे सखा, आओ, आओ, आओ! चाहे किसी भी वेश में आओ, दर्शन देकर मेरी विरह-वेदना को दूर करो। वर्षा-ऋतु के मेघ के ऊपर चमकनेवाली बिजली के ही बहाने से हँस दो।

[क्रमशः
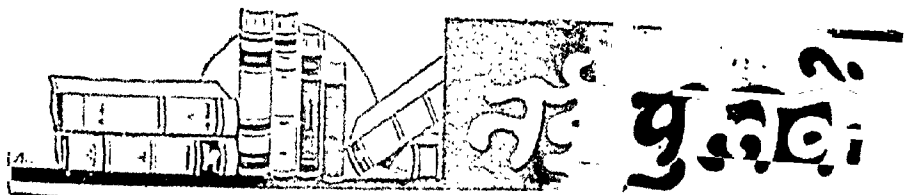
१—हजामत—लेखक, पंडित ज्योतिप्रसाद मिश्र 'निर्मल' हैं। प्रकाशक, छात्र-हितकारी पुस्तकालय, दारागंज, प्रयाग है। छपाई अच्छी, पृष्ठ-संख्या २०० और मूल्य १।) है।

जब मानव अपनी कमजोरियों का निरीक्षण करता है तब साहित्य में 'हास्यरस' का जन्म होता है। ये कमजोरियाँ समाज में कई आकार रूपों में बिखरी रहती हैं। कभी तो ये अपने को 'बहुत कुछ' लगाती हुई 'हुस्सन' की-सी हजामत बनवाती हैं कभी—'चमक-बिहारी' के रूप में कुंजड़ों पर भी अपनी 'समालोचना की तोप' सीधी किये दिखाई देती हैं। कुछ और आगे बढ़कर जब ये समाज-सुधारक का चोगा पहनती हैं तब 'पञ्चानन' और 'व्याख्यान-वाचस्पति' की भाँति फजीहत कराती हैं। होतीं तो ये प्रवृत्तियाँ निम्न और उच्च दोनों वर्गों में हैं, पर निम्नवर्ग दया का पात्र है, अतः उसका मजाक उड़ाने में साहित्यिकता नहीं रहती, क्योंकि वह बुद्धि का नहीं, परिस्थिति का उपहास होता है, जो 'रसाभास' हो जाता है। फलतः हास्य-रस के उसी कथानक को हम शिष्ट और साहित्यिक कह सकते हैं जिसमें उन 'अक्लमन्दों' की चर्चा रहती है जो इसी कारण जन-समाज के मनो-विनोद के कारण बनते हैं कि वे अपने को 'बहुत कुछ' लगाया करते हैं; पर समाज की दृष्टि में उनके दिमाग़ों का कोई पेंच ढीला रहता है।

कहने की आवश्यकता नहीं कि—कहानियों के कथानकों का जहाँ तक सम्बन्ध है—इस पुस्तक की आठों कहानियों के कथानक शिष्ट हैं। इसलिए यह पुस्तक बेखतरा सबके हाथों में दी जा सकती है। लेखक महोदय पाठकों में 'ईषत् हास्य' पैदा करने में सफल हुए हैं जो काव्य-शास्त्र में उच्चकोटि का माना जाता है। हिन्दी में सुरुचिपूर्ण या शिष्ट-हास्य की ऐसी पुस्तकें कम ही हैं।

२—यामा—लेखिका, श्रीमती महादेवी वर्मा और प्रकाशक, किताबिस्तान, इलाहाबाद व लन्दन हैं। पृष्ठ-संख्या २३५ और मूल्य ९) है।

'यामा' कई दृष्टिकोणों से अपने ढंग का एक नया और अनूठा प्रकाशन है। अब तक हिन्दी के कदाचित् किसी आधुनिक कवि की समस्त रचनाओं का संग्रह एक ही जिल्द में नहीं प्रकाशित हुआ है। 'यामा' उस दिशा में पहला प्रयास है। परन्तु सबसे महत्त्वपूर्ण है इसका 'गेट-अप' और छपाई। हिन्दी की आधुनिक कविता के लिए यह सौभाग्य का चिह्न है कि उसकी एक अन्यतम कवयित्री की रचनायें इतनी सावधानी और सुरुचि के साथ प्रकाशित की जायँ। 'यामा' का प्रकाशन सामान्य रूप से आधुनिक हिन्दी-कविता और विशेषरूप से श्रीमती वर्मा के व्यापक अभिनन्दन का प्रमाण है। तीसरी नवीनता है 'यामा' के काव्यगत भावों का रेखाओं और रंगों के द्वारा चित्रांकन। नौ रुपये मूल्य होना भी पुस्तक की एक विशेषता समझी जा सकती है। कुछ लोगों के विचार से हिन्दी के ग़रीब पाठकों के लिए इतना मूल्य दे सकना साधारणतया सम्भव नहीं। परन्तु पुस्तक का सर्वांग-सुन्दर कलेवर देखकर किसी को इसके मूल्य के विषय में साश्चर्य और सशंक होने की आवश्यकता न रहेगी, ऐसा हमारा विश्वास है।

इस नयनाभिराम प्रकाशन के लिए हम प्रकाशकों के साहस और सुरुचि की प्रशंसा किये बिना नहीं रह सकते। सचमुच वे बधाई के पात्र हैं।

'यामा' के काव्य का विवेचन करने की न तो यहाँ आवश्यकता है और न स्थान, क्योंकि श्रीमती महादेवी वर्मा की कविताओं के विस्तृत विवेचन प्रायः सभी पत्र-पत्रिकाओं में निकले हैं और पाठकों में भी वे कदाचित् हिन्दी के किसी अन्य आधुनिक कवि से कम लोकप्रिय नहीं हैं। फिर भी जिस प्रकार पाठक कवि के समस्त

काव्य को एक जगह संगृहीत पाकर निस्सन्देह हर्ष से फूल उठेंगे, उसी प्रकार आलोचक को भी उस पर कम से कम एक सरसरी दृष्टि डाल लेने का प्रलोभन होना अनिवार्य है।

श्रीमती महादेवी वर्मा आधुनिक हिन्दी-कविता की उस धारा की प्रतिनिधि कवि हैं जिसे आध्यात्मिक या रहस्यवादी धारा कह सकते हैं। इस धारा के दूसरे प्रतिनिधि हैं प्रतिष्ठित कवि श्री रामकुमार वर्मा। रहस्यवादी समझे जानेवाले शेष 'छायावादी' कवियों में से अधिकांश या तो केवल सौन्दर्योपासक तथा भाववादी थे, या अब वे 'असीम' और 'अनन्त' की आराधना छोड़ चुके हैं। श्रीमती महादेवी वर्मा इस युग में भी जब कि हिन्दी-कविता एक ओर पलटा खा चुकी है, उसी तन्मयता के साथ अपना अनन्त-संगीत गुनगुनाये जा रही हैं। 'यामा' के अध्ययन से न केवल हमें हिन्दी की रहस्यवादी कविता के स्वरूप-निर्धारण में सहायता मिलेगी, वरन इस धारा के भविष्य के विषय में भी हम किंचित् अनुमान लगा सकते हैं।

'यामा' के चार भाग हैं—'नीहार', 'रश्मि', 'नीरजा' और 'सान्ध्यगीत'; कवि के क्रमिक विकास की ये चार अवस्थायें हैं। मोटे तौर पर हम कह सकते हैं कि नीहार में कवि की तैयारी है, इस तैयारी में काव्य का उल्लास छोटे-छोटे छन्दों में तीव्रता और विह्वलता के साथ व्यक्त हुआ है। 'रश्मि' में वह तीव्रता और विह्वलता मंथर होकर विचार और विश्लेषण में परिणत हो जाती है। उसमें कवि ने जीवन पर सिद्धान्त-रूप से विचार करने का प्रयत्न किया है। 'रश्मि' के प्रकाशन के समय कुछ काव्य-रसिकों का विचार था कि महादेवी जी की कविता ऊँचे उठने के स्थान पर नीचे जा रही है। पर उनकी यह आशंका निर्मूल थी। कह सकते हैं कि कवि के हृदय का उमड़ा हुआ धुआँ जो नीहार के रूप में प्रकट हुआ था, 'रश्मि' के 'अरुण-बान' छूकर ओस की बूँदों के रूप में स्थिर हो गया है। 'नीरजा' में कवि का कण्ठ तरल हो गया है। काव्य की आत्मा गेय पदों के रूप में फूट पड़ी है। और 'सान्ध्य-गीत' उस आध्यात्मिक अनुभूति-मूलक उल्लास का प्रतीक है जो 'तुम मुझमें प्रिय, फिर परिचय क्या?' से भी कुछ ऊँचा है, जिसमें 'नीर भरी दुख की बदली' अपना पार्थिव अस्तित्व मिटाकर 'नव-जीवन-अंकुर' के रूप में 'सुख की सिहरन' होकर खिल उठी है।

कुछ लोगों का विचार है कि श्रीमती महादेवी जी निराशावाद की कवयित्री हैं। परन्तु बात असल में यह नहीं है। उनकी प्रायः प्रत्येक कविता में आध्यात्मिक उल्लास के पर्याप्त संकेत हैं—उनकी करुणा के कम्पित स्वर में उपासक के हृदय की सिहरन है, उनके रुदन के आँसुओं में मन को निर्मल करने की क्षमता है, उनकी पीड़ा मीठी है, क्योंकि पीड़ा में ही उन्हें अपने प्रिय के मिलने का उल्लास मिल सकता है।

महादेवी जी की लेखनी में भाव-प्रतिमाओं की अवतारणा की जितनी शक्ति है, उनकी तूलिका में उससे कम नहीं जान पड़ती। यत्र-तत्र चित्रों में कविता के भावों को चित्रित करके केवल पुस्तक के कलेवर की भव्यता और आकर्षण में ही वृद्धि नहीं की गई है, अपितु भावों के स्पष्टीकरण में भी। कवि और चित्रकार का यह सामंजस्य देखने योग्य है।

इस संकुचित स्थान पर हम महादेवी जी की काव्य-धारा के भविष्य के विषय में विशेष कथन नहीं कर सकते। परन्तु संकोच के साथ इतना कहना आवश्यक जान पड़ता है कि 'सांध्यगीत' आधुनिक आध्यात्मिक कविता की चरम अभिव्यक्ति है। सम्भव है कि महादेवी जी और भी इसी प्रकार के गीत लिखें, परन्तु उनमें हमें किस नवीनता के दर्शन मिलेंगे, इसके विषय में सन्देह होना स्वाभाविक है। यदि आगे भी उन्हें वही बातें दुहरानी हैं तो उन्हें अपना माध्यम बदलना पड़ेगा।

संक्षेप में 'यामा' सब प्रकार अभिनन्दनीय है। श्रीमती वर्मा को हम उनके इतने सुन्दर प्रकाशन पर बधाई देते हैं। आशा है कि हिन्दी के पाठक इसका समुचित स्वागत करेंगे।

३—**प्रवासी के गीत**—लेखक, श्रीयुत नरेन्द्र और प्रकाशक तथा विक्रेता, भारती-भण्डार, लीडर प्रेस, इलाहाबाद हैं। पृष्ठ-संख्या ८२ और मूल्य १) है। छपाई-सफ़ाई और गेट-अप उत्तम है।

'प्रवासी के गीत' विरह का एक करुण-काव्य है। पुस्तक का नाम किसी एक गीत के आधार पर नहीं, बल्कि

समस्त गीतों के विषय के आधार पर रक्खा गया है। सब मिलाकर ५३ गीत हैं और लगभग सभी में 'प्रिया की याद में' जलनेवाले चिर-प्रवासी का करुण-रुदन है।

'प्रभातफेरी' में नरेन्द्र जी ने मिलन के उद्दाम उल्लास-विलास का परिचय दिया था। परन्तु उनकी कविता की प्रकृति से ही यह शंका होती थी कि 'आज न सोने दूँगी बालम' के रूप में प्रकट होनेवाली वासना के बोझ को सुकुमार-वृत्तिवाला यह कवि कब तक सह सकेगा। उसकी संवेदनशीलता उसके पुरुषार्थ की अपेक्षा कहीं अधिक प्रबल थी। अतः उसका भभककर बुझ जाना अनिवार्य था। आलोचकों का विचार है कि यदि कीट्स अकाल-मृत्यु न पाता तो भी वह कदाचित् उससे अच्छी कविता अधिक नहीं लिख सकता था; क्योंकि उसकी इन्द्रियों में अपनी उद्दाम ऐंद्रियकता को सहने की शक्ति नहीं रह गई थी। नरेन्द्र जी में भी उस ऐंद्रियकता के सहन करने की क्षमता नहीं थी। 'पगली ! इन क्षीण बाहुओं में कैसे यों कस कर रख लेगी ?' यह उन्हें कहना ही पड़ता। चाहे उन्हें सामाजिक आवश्यकता के वशीभूत होकर प्रवासी न भी बनना पड़ता, तो भी उन बाहुओं का बन्धन शिथिल होना अनिवार्य था। 'प्रभातफेरी' में इस बात के पर्याप्त प्रमाण हैं कि मानसिक ऊब के बाद यदि उनकी प्रिया का बन्धन खुलता तो वे उसका हाथ पकड़कर साथ-साथ उस पथ पर अग्रसर होते जिस पर जानेवाली असंख्य अकिंचनों की भीड़ का करुण आह्वान वे आज भी सुन रहे हैं और उस ओर जाने को उनकी विवेक-बुद्धि उन्हें प्रेरित भी कर रही है, परन्तु 'पाँवों की हड़कल' उन्हें उठने नहीं देती। ऐंद्रियवासना तो समाप्त हो गई है, परन्तु उसकी स्मृति उनके मन का असाध्य रोग-सी हो गई है। 'प्रवासी के गीत' इस अर्थ में सचमुच क्षय-ग्रस्त युवक कवि की करुण पुकार हैं।

'आज के बिछुड़े न जाने कब मिलेंगे ?' की करुणा उस समय और भी दयनीय हो जाती है जब कवि कहता है—

'यदि मुझे उस पार के भी मिलन का विश्वास होता,
सत्य कहता हूँ न मैं असहाय या निरुपाय होता,
किन्तु क्या अब स्वप्न में ही मिल सकेंगे ?

कवि का यह विरह 'शृंगार' का वह 'विप्रलम्भ' नहीं है जिसमें हृदय की तड़पन के साथ भावी मिलन की आशा भी होती है। यह विरह तो उस करुणा से भी अधिक हृदय-विदारक है जिसमें प्रेमी सदा के लिए प्रिय से निराश हो जाता है और उसे वेदनापूर्ण सन्तोष की साँस ले लेने का कभी-कभी अवसर मिल जाता है। कदाचित् सामाजिक वैषम्य के कारण उसका मिलन असम्भव है—असम्भव है उस प्रिया से जिसे सान्त्वना देने के लिए स्वयं उसी को रोते-रोते आश्वासन देना पड़ा था—

'स्वर्ण-पींजड़े के ओ पंछी !
क्या मैं भी परतंत्र नहीं हूँ ?
क्या मैं भी अब केवल साँसों
से संचालित यंत्र नहीं हूँ ?

क्यों मेरा धीरज हरने को भर भर लाती हो युग लोचन ?

यह परतंत्रता, यह बेबसी कैसी है ? ये बन्धन उन 'दुर्दैवों' के बाँधे हुए नहीं हैं जो मानवों को मक्खियों की तरह अपने विनोद के लिए कुचल देते हैं, बल्कि ये बन्धन कदाचित् समाज के बन्धन हैं, क्योंकि कवि कहता है—

आज से हम तुम गिनेंगे एक ही नभ के सितारे,
दूर होंगे पर सदा को ज्यों नदी के दो किनारे,
सिंधु-तट पर भी न जो दो मिल सकेंगे !

परन्तु कवि ने कहीं भी न तो दुर्दैव या नियति के प्रति रोष प्रकट किया है, न समाज और उसकी कठोर, निर्दय रूढ़ियों की ओर। किसी अन्य कवि से हम ऐसी आशा कर सकते थे, पर अपने कोमल और सुकुमार भावनाओं के कवि से नहीं। यदि वे रोष भी प्रकट करते, तो उसमें अन्त में अपनी बेबसी और निस्सहायता के आँसू ही निकल सकते थे, विध्वंस करनेवाले अंगार नहीं। हमारे कवि में पुरुषत्व की अपेक्षा नारीत्व की सुकुमार वृत्तियों को अधिक प्रश्रय मिला है, जो भावना-प्रधान कविता के लिए सबसे अधिक आवश्यक है।

यदि इस विवशता के साथ कवि का प्रिया से बिछोह न हो जाता तो सम्भव है उसमें प्रबल पुरुषत्व का विकास हो सकता। परन्तु जैसा कि स्वाभाविक होता है, जीवन के एकान्त दुःख ने उसकी वृत्ति को और भी कोमल और करुण कर दिया है। यदि उसमें पुरुषत्व की प्रखरता कुछ रही भी हो तो वह कारुण्य के प्लावन से पानी-पानी

हो गई है। संग्रह का चौदहवाँ गीत किसी स्त्री-हृदय से भी इसी स्वाभाविकता के साथ निकल सकता है—

बस वही अकेली थी ऐसी
छिप सका न जिससे एक राज़ !
वह भी लेती थी इसी लिए
वह मेरे सब अन्दाज-नाज़ !

× × ×

मेरी वह मायाविन न रही,
मैं मान करूँ भी तो किस पर ?

कवि की इस भावात्मक कोमलता ने कविता के सहज गुण को खूब निखार दिया है।

कविता के विषय और उनकी रूप-रेखा के उपर्युक्त विवेचन से ही यह स्पष्ट हो गया है कि कवि अपनी बात कहने के लिए पर्याप्त क्षमता रखता है। उसकी लगभग प्रत्येक पंक्ति में हृदय की गहरी अनुभूति और सच्ची व्यथा का आभास मिलता है। उदाहरण के लिए गीतों का निर्देश कर देना सरल नहीं है। नरेन्द्र जी की कुछ पंक्तियाँ तो कविता-प्रेमियों को रट-सी गई हैं। ३५ वें गीत में 'वियोगी' और 'उनींदी रात' की तुलना कैसे मार्मिक ढंग से की गई है—

मौन हैं दोनों, मिले दृग भी नहीं हैं;
और मन ? उसका कहीं, मेरा कहीं है !
एक शर से बिंधे दो उर बंधे सहज संवेदना के
सूत्र में, पर एक हैं हम !
हैं अपरिचित किन्तु जीवन-पाठ के सहपाठियों से
एक हैं हम !
एक पथ के पथिक जो गावें पृथक् दो गीत
पर हो एक ही सुर,
—स्नेह करुणा से मिले यों एक हैं हम !
एक हैं हम !
रात भर दोनों जगे हैं,
स्नेह करुणा में पगे हैं !
एक हैं हम—
मैं वियोगी, वह उनींदी रात
और दोनों ओर है कुछ एक-सी ही बात !

प्रकृति के प्रत्येक चित्र में वियोगी कवि को अपनी व्यथा को उत्तेजित करने की सामग्री मिल जाती है। वह बहुत चाहता है कि किसी प्रकार इस व्यथा को भुला दे—उस करुण-स्मृति को मन से मिटा दे। परन्तु यह उसके बस की बात नहीं जान पड़ती। विमुक्त होकर उसकी प्रिया उसके रोम-रोम में—जीवन की प्रत्येक गति में बस गई है। अब उसे उसके पार्थिव शरीर की—भौतिक अस्तित्व की भी अपेक्षा नहीं रही—

क्रीत दासी, स्वामिनी, आराध्य हो, आराधिका भी,
प्राण-मोहन कृष्ण हो तुम, शरण-अनुगत राधिका भी,
सहचरी हो, भार्या हो, वन्दनीया अम्बिका भी,
भक्ति की कृति हो स्वयम् फिर भक्त की प्रतिपालिका भी !

* * *

इंद्रियों के ज्ञान से, अन्तःकरण के ध्यान से भी
हो परे तुम कल्पना के व्योम-रत अनुमान से भी,
देवि, यद्यपि दृश्य हो तुम, देह भी धारण किये हो,
नाम गुण औ' रूप से सम्बन्ध-बन्धन से परे हो !
हो अजर तुम काल-क्रम में, हो अमर जीवन-मरण में,
आह ! कैसे कर सकूँगा, प्रिय तुम्हारा विस्मरण मैं !

वह तो स्वयं अपने आचरण में प्रिय को खोजने का उपक्रम करना चाहता है। इसलिए उसका यह कहना—

विदा प्यारे स्वप्न, सुख के स्वप्न मेरे !

केवल दर्शन-सुख के लोभ से निराश होना मात्र है। स्वप्न के स्थायित्व का उसे विश्वास है—

'किन्तु जा, सुख-स्वप्न मेरे ! फिर मिलेंगे कल सवेरे !'

इसी तरह इसकी इन पंक्तियों में वेदना की विह्वलता केवल मन बहलाने भर को दबा दी गई है—

'कुहकती है कोकिला नित, पर न अब मुझको किसी की याद आती !'

* * *

हो मिलने की आश जिसको
वह विरह का वेग धारे,
किन्तु मेरी आश के संग
मिट गये हैं क्लेश सारे।
आज तो सबकी तरह हँस बोलकर दिन काटता हूँ, सुधि न आती !

वेदना की चरम सीमा वहाँ हो जाती है जब कवि अपने प्राणों को 'अनचाहे महमान' कह कर निकाल देना चाहता है—

सभी छोड़ कर चले गये जब,
रुके हुए किस आशा से अब,
मेरे आकुल प्राण ! छोड़ मुझको तुम भी न चले जाते क्यों ?

यह सच है कि इस दुर्बल भावुकता से मन को किसी प्रकार का ऐसा सन्देश नहीं मिलता जिससे जीवन, जागृति और बल का संचार हो सके। स्वयं कवि ने अपने आलोचनात्मक वक्तव्य में स्पष्ट कर दिया है कि उसे ऐसा कुछ दावा नहीं है। वह जानता है कि वह कहाँ है और यह भी जानता है कि उसे वहाँ नहीं होना चाहिए; पर परिस्थितियाँ—आन्तरिक और बाह्य—दोनों उसके बस के बाहर की चीज़ हैं, उसे उन पर कोई अधिकार नहीं। हम आधुनिक हिन्दी-कविता के इस उत्तर-काल की अँगरेज़ी के डेकेडेण्ट-स्कूल से पूरी तुलना नहीं कर सकते। कम से कम नरेन्द्र जी में भावात्मक सूक्ष्मताएँ—बाल की खाल निकालनेवाली खयाली बारीकियाँ—हम नहीं पाते। यद्यपि उनमें रोमांटिक कविता का ओज, तीव्रता और गर्म खून का प्रवाह नहीं है, फिर भी उनकी भावनाएँ सच्ची, तथा उनके व्यक्तीकरण का ढंग स्वच्छ और स्पष्ट है। नरेन्द्र जी के साथ हमें भी पूर्ण आशा और विश्वास है कि हिन्दी-कविता का यह निराशावाद समाप्त होगा, और कवि अपने 'एकान्त-संगीतों' के स्थान पर कोरस-गान—सामूहिक संगीत रचेंगे, जो केवल उनके या उच्च वर्ग के मनोरंजन की वस्तु न होकर जन-जन की दबी हुई आकांक्षाओं को वाणी प्रदान करेंगे।

अन्तिम दो गीतों से सम्भव था पाठक को आशा बँधती कि स्वयं नरेन्द्र जी भी किसी प्रकार अपने मन को समझाकर काव्य के नये उपकरणों को इकट्ठा करने लगेंगे, परन्तु इस आशा को स्वयं उन्होंने अपने वक्तव्य में भंग कर दिया। फिर भी ३२ वें गीत में माँगे हुए उनके वरदान की सफलता की हम हृदय से कामना करते हैं। ईश्वर करे, उनकी यह इच्छा पूर्ण हो—

असफलता और निराशा की
कटुता के विष से रहूँ मुक्त,
कच्चा रह खट्टा बने न उर!
नस-नस हो रस से सराबोर,
दो, प्राण, यही वरदान मुझे,
पीड़ा में पककर बनूँ मधुर!

परन्तु पककर गिरनेवाली उनकी साधु-कामना में हम उनका साथ नहीं दे सकते क्योंकि अभी हिन्दी को उनसे बहुत आशायें हैं।

व्रजेश्वर

४—नवशक्ति-प्रकाशन-मन्दिर, पटना की २ पुस्तकें

(१) हँसानेवाली कहानियाँ—पृष्ठ-संख्या ६७ और सजिल्द पुस्तक का मूल्य ।।=) है।

हिन्दी में शिष्ट हास्य-रस की कृतियाँ उँगलियों पर गिनी जाने योग्य भी नहीं हैं। हाँ, हास्यरस के नाम पर कुरुचिपूर्ण और ग़ैर जिम्मेदार दिमाग़ों से निकले हुए कूड़ा-करकट की अलबत्ता कमी नहीं है। प्रस्तुत पुस्तक से इस अभाव की आंशिक पूर्त्ति होती है। इसमें विभिन्न लेखकों की केवल ६ कहानियाँ संगृहीत हैं, पर उनके चुनने में संपादक महोदय ने सुरुचि का खासा परिचय दिया है। इस प्रकार छोटी रहने पर भी यह पुस्तक सुरुचिपूर्ण पाठकों के निकट संग्रहणीय है।

(२) ग़रीबी की आह—पृष्ठ-संख्या १४७ और सजिल्द पुस्तक का मूल्य १) है।

इसमें विभिन्न लेखकों की लिखी हुई कुल ११ कहानियों का संग्रह है। सभी कहानियाँ 'ग़रीबी की आह' से सम्बन्धित हैं जिनके प्लाट हमारे देश में घर-घर और द्वार-द्वार पर बिखरे हुए मिल जाते हैं, उनको कहीं खोजने नहीं जाना पड़ता। मौत, बीमारी, भूख तथा बेकारी से पीड़ित और धनिकवर्ग से पद-पद पर त्रस्त व तिरस्कृत वर्ग का चित्रण नवयुवकों में क्रान्ति की अग्नि जगाने के लिए आवश्यक होता है; अतः ऐसा करने में कलाकार को यदि यत्किञ्चित् अतिरंजना की सहायता लेनी पड़े तो वह क्षम्य है। कहानियाँ सभी मर्म-स्पर्शी व सजीव हैं। उनके लेखक भी चुने हुए हैं।

स्वर्गीय द्विवेदी जी का लिफ़ाफ़ा

लोगों में कुछ इस प्रकार का भ्रम फैलता दिखाई देता है कि 'स्वर्गीय आचार्य पं० महावीरप्रसाद जी द्विवेदी ने काशी-नागरी-प्रचारिणी सभा को एक मुहरबन्द लिफ़ाफ़ा दिया था जिसे उन्होंने अपनी मृत्यु के पश्चात् खोलने की आज्ञा दी थी, पर जिसे सभा ने गुप्त रक्खा है।' इस सम्बन्ध में 'सभा' से एक वक्तव्य 'सरस्वती' के गत फ़रवरी के अंक (द्विवेदी-अंक) में छपने के लिए भेजा गया था, पर शायद देर से पहुँचने के कारण वह न छप सका। उसे यहाँ प्रकाशित कर देने से, आशा है, स्थिति स्पष्ट हो जायगी।

स्वर्गीय आचार्य पं० महावीरप्रसाद द्विवेदी ने हिन्दी के लिए समर्पित अपने निरन्तर कर्ममय जीवन में हिन्दी-जगत् का जो उपकार किया वह निस्सन्देह उन्हीं के बश का था, वह अभी तक किसी दूसरे से नहीं हो सका। हिन्दी के नाते काशी-नागरी-प्रचारिणी सभा से भी उनका प्रगाढ़ अनुराग था। अपनी पुस्तकें उन्हें प्राणप्रिय थीं। किन्तु जिस प्रकार उनका भण्डार जनता के हितार्थ बेरोक खुला था उसी प्रकार वे अपनी पुस्तकें भी अपने ही पास बन्द न रखकर जनता के लिए सुलभ कर देना चाहते थे। इसलिए उन्होंने अपना अमूल्य संग्रह काशी-नागरी-प्रचारिणी सभा को भेंट कर दिया था जो 'पं० महावीरप्रसाद द्विवेदी संग्रह' के नाम से सभा के पुस्तकालय में, ११ बड़ी आलमारियों में, सुरक्षित है। इस संग्रह में लगभग ३,००० चुनी हुई पुस्तकें हैं। इन पुस्तकों के अतिरिक्त एक और बड़ा दान द्विवेदी जी सभा को दे गये हैं। वह है उनका पत्र-संग्रह। इसमें उनके 'सरस्वती' के सम्पादनकाल तथा उसके बाद के भी कागज़-पत्र और फ़ाइलें हैं जिनके बंडल एक आधी और एक पूरी आलमारी में भरे हुए हैं। इसे देखने के लिए काफ़ी समय की आवश्यकता है।

उक्त वस्तुओं के अतिरिक्त तीन बंडल ऐसे भी हैं जिन्हें द्विवेदी जी ने अपने जीवनकाल में खोलने को मना किया था। उनमें द्विवेदी जी के नाम भेजे गये निजी पत्रों का संग्रह है। तीनों बंडलों में लगभग १,५०० से ऊपर पत्र होंगे।

द्विवेदी जी के निधन के बाद इन पत्रों की एक सूची सभा तैयार करा रही थी, पर अन्य कार्यों की अधिकता के कारण यह काम उस समय अधूरा रह गया था। अब एक सज्जन कृपा कर यह कार्य कर रहे हैं। सूची तैयार हो जाने पर जो सज्जन चाहेंगे वे कार्यालय में आकर देख सकेंगे। आवश्यकता हुई तो उसे प्रकाशित करने की भी व्यवस्था की जायगी।

इन पत्रों को देखने से पता चलता है कि द्विवेदी जी पत्र-व्यवहार में ही सदैव सतर्कता और नियम का पालन नहीं करते थे, प्रत्युत पत्रों के संग्रह में भी वे पूरा परिश्रम करते थे। कोई पत्र ऐसा न मिलेगा जिसको उन्होंने ध्यान-पूर्वक पढ़कर उत्तर न दिया हो। सब पर उनके नोट तथा तारीख सहित हस्ताक्षर हैं। पत्र लिखनेवाले तारीख लिखना भूल गये हैं पर द्विवेदी जी नहीं भूले। एक विषय और व्यक्ति के पत्र एक साथ रक्खे गये हैं। उदाहरणार्थ, पत्नी-वियोग-सम्बन्धी सब पत्र एक साथ रक्खे गये हैं। इसी प्रकार पं० कमलाकिशोर जी के विवाह-सम्बन्धी सब पत्र एकत्र हैं। निजी पत्र भी बिलकुल आफ़िस के ढंग से रक्खे हुए हैं। फुटकर पत्रों में साधारण व्यक्तियों के अतिरिक्त राजाओं, सरकारी अफ़सरों तथा बड़े बड़े देशी और विदेशी विद्वानों के भी पत्र हैं।

—रामबहोरी शुक्ल,
(मंत्री, ना० प्र० सभा)

जाग्रत नारियाँ

नारी

लेखक, श्रीयुत शचीन्द्रनाथ सान्याल

नारी का नाम सुनने से ही एक विचित्र सम्मोहन की सृष्टि होती है; एक भावमयी उन्मादना के आवेश से, एक अभावनीय उद्वेग से जीवन-मन अधीर, चंचल, व्यग्र हो उठता है। नर और नारी के जीवन-मन्थन से ही तो अमिय-हलाहल की उत्पत्ति होती है। इसी अमृत-सिंचन से ही तो साहित्य-रस का आस्वादन होता है, कवित्व की मूर्च्छना उत्पन्न होती है, महाकाव्य का विशाल महीरुह शाखा-पल्लवित होकर मानव-मन को उल्लसित और उन्मत्त करता है। काल की अविरल धारा-प्रवाह से भी तो नर-नारी के जीवन-मन्थन से उत्पन्न रस-प्रवाह का अन्त नहीं होता।

कण्टक से पूर्ण इस संसार-क्षेत्र में, वास्तविक जगत् की रूढ़ता से त्राण पाने के लिए, निष्ठुर प्रतिद्वन्द्वी तथा घोर विरोधियों की निर्दयता से जी छुड़ाने के लिए, जीवन-संग्राम से क्लान्त होकर शान्ति पाने की अभिलाषा से हम जिसके अंचल-प्रान्त के स्नेह स्पर्श के लिए लालायित होते हैं, वह भी स्नेहमयी जननी के रूप में, अथवा जीवन-संगिनी या सखी के रूप में नारी ही तो है। अथवा जयोल्लास की मदिरा पान करने के उन्मत्त अवसर पर हम जिन्हें अपने आनन्द के अंश का भागी बनाने के लिए अधीर-चंचल होते हैं, वह भी तो स्नेहाभिलाषिणी, उल्लास-वर्द्धिनी, कठोरता पर कोमलता का प्रलेप करनेवाली, हास्य-मुखरा, चंचला-चपला कन्या के रूप में अथवा प्रिय-वादिनी सदा हास्यमयी, पति की आनन्द-भागिनी होने के कारण आनन्दोत्सव के अवसरों पर पति का पथ-निर्देश-कारिणी अर्द्धाङ्गिनी के रूप में तथा सार्थकता से सन्तोष-प्राप्त, समाहित चित्त से आशीर्वादकारिणी जननी नारी ही तो है।

[हिन्दी की सुप्रसिद्ध कवयित्री श्रीमती तारा पांडे। आपकी कविता सरस्वती के इसी अंक में अन्यत्र पढ़िए।]

[महिला स्वयंसेविका और अध्यापिकायें।]

नारी हमारी अर्द्धाङ्गिनी न होकर भी, आशीर्वाद-कारिणी स्नेहमयी जननी न होकर भी, चंचला, चपला, कोलाहल-कारिणी कन्या न होकर भी, केवल नारी होने के अधिकार से, परामर्शदायिनी, उत्साहवर्द्धिनी सखी-मात्र हो सकती है अथवा नहीं? नारी सत्ता का साहचर्य पाने की कामना से और नर सखी के सान्निध्य की तृप्त अथवा गुप्त अभिलाषा से, सामाजिक रीति-नीति के अन्तराल में, प्राकृतिक प्रेरणाओं के अनिवार्य आकर्षण से नित्य नव-नव जटिल समस्याओं की सृष्टि करते हैं। इन जटिल उलझनों और गुत्थियों को सुलझाने के लिए, निषिद्ध, रुद्ध, असामाजिक कामनाओं को सामाजिक, रीति-अविरुद्ध, प्रचलित रूप देने के लिए, मनुष्यों में कवि-प्रतिभा का उन्मेष होता है, उपन्यासकारों में लेखनी-शक्ति का विकास होता है, मानव-सभ्यता में नृत्य, गीत, काव्यकला की अभिव्यक्ति होती है। अथवा अतृप्त कामनाओं के रूपान्तरित होने से, परस्परविरोधी कामनाओं के निष्ठुर द्वन्द्व से निष्कृति पाने के लिए, या व्यर्थ कामनाओं की ज्वाला में विदग्ध होकर सन्त तुलसीदास की भाँति साधु-जीवन का प्रादुर्भाव होता है, साधना का मार्ग खुल जाता है, सिद्ध जनों का आविर्भाव होता है।

नारी मायाविनी, महामाया की मोहिनी शक्ति है। नारी-शक्ति के ही केन्द्रस्थल में रहने के कारण संसार, विचित्र और नाना प्रकार से लीलाभिनय का अनन्त भाण्डार है। इस अनन्त, अपार लीलानिकेतन में नारी-सम्पर्क-शून्या किसी भी घटना का मिलना असम्भव-सा है। परन्तु ऐसी सर्व-व्यापिनी, अनन्त-शक्ति-सम्पन्ना मोहिनी नारी, हमारी कितनी समीपवर्त्तिनी एवं परिचिता तथा साथ ही साथ कितनी अपरिचिता, दूर, अभिनव और रहस्यमयी है! नारी को हम जानते हैं, पहचानते हैं, तथापि उसे और भी भले प्रकार से जानने के लिए, और भी निगूढ़ रूप से पहचानने के लिए हमारी उत्सुकता का अन्त नहीं है। इसी रहस्यमयी के रहस्य-उद्घाटन के लिए हम और भी कितने रहस्य की सृष्टि करते हैं। हम सरल को रहस्यपूर्ण बनाते हैं और रहस्यावृत्त मर्मवाणी को सरल बनाने की अविराम चेष्टा करते हैं। कारण, सरल भी तो नितान्त सरल नहीं है और रहस्यपूर्ण भी तो नितान्त अबोध्य नहीं है।

[महिला-छात्रावास का एक दृश्य।]

नारी शब्द के उच्चारण-मात्र

[छात्रायें ड्रिल कर रही हैं।]

लीला के परिणाम में जो विष का उद्गम होता है, उससे सामाजिक वातावरण भी विषैला बन जाता है। ऐसे विष से विदग्ध समाज में हम नारी को ही अभिशाप देते हैं। परन्तु इस अभिशाप से नर का जीवन ही अभिशप्त होता है। इस अभिशाप के कारण नर नारायण नहीं बनता, यथार्थ मानव का उदय नहीं होता।

पङ्क में से जैसे पङ्कज का उदय होता है, वैसे ही अभिशप्त मानव-समाज से मानवता का भी उदय हो सकता है। कौन जाने वैष्णव कवि का उदय ऐसी ही पङ्किलता की पिच्छिल पटभूमि के आधार पर ही न हुआ हो! मृत्यु के बाद ही तो नव-जन्म होता है! मृत्यु के पथ से ही तो अमृत का सन्धान होता है! निराशा के गर्भ में जैसे उन्मादना का बीज अंकुरित होता है, आशाभंग के निष्ठुर निष्पीड़न से जैसे वज्र दृढ़ संकल्प का उदय होता है, अभिशप्त जीवन में भी वैसे ही नर, नारी के नयनाभिराम नमनीय कमनीयता के स्पर्श से, अथवा उसकी निर्मम निर्दयता से अभिशाप-मुक्त हो जाता है।

हम नयनाभिराम नमनीय कमनीय नारी को अलंकार वस्त्रादि से सुशोभित क्यों देखना चाहते हैं?

से हम जितने व्यापक रहस्य का बोध करते हैं, उतना व्यक्त नहीं कर पाते। और जब हम उस बोध को व्यक्त करने की आन्तरिक चेष्टा करते हैं, तब वह अबोध्य हो जाता है। इस प्रकार व्यर्थकाम होकर हम गद्य को छोड़कर पद्य का आश्रय लेते हैं, जैसे कोमल कीड़ा धरित्री के स्थूल स्पर्श से वेदना का अनुभव करता है और तब उसकी मर्म-वेदना तितली के रूप में रूपान्तरित हो जाती है।

नारी को हम तितली के रूप में कल्पना करके तृप्ति पाते हैं, इसलिए कि वह इस दुनिया में रहकर भी दूसरी दुनिया के सौरभ को विकीर्ण करती है, जैसे तितली को देखकर हम इस दुनिया में रहते हुए भी अपने अनजान में दूसरी दुनिया में चले आते हैं।

नारी को जब हम अतीन्द्रिय जगत् का रूपक नहीं समझते, तब हम अनर्थ कर बैठते हैं। कुछ व्यक्ति तितलियों को पकड़-पकड़ के उनकी जीवनी-शक्ति का नाश करते हैं और फिर आलपीन में बेधकर उन्हें चित्रपट के रूप में सजाते हैं। इसी प्रकार रस-लोलुप नर, नारी को अपने व्यसन की सामग्री बनाकर यथार्थ रसास्वादन से भी वंचित रहते हैं और नारी की जीवनी-शक्ति का भी नाश करते हैं। इस विनाश-

[क्लास रूम।]

जैसे सङ्गीत में मीड़ के संयोग से मूर्च्छना का उदय होता है, गिटकिरी के विक्षेप से गमक में मधुरता आती है, वैसे ही नारी के आभरण से सौन्दर्य में द्युति बिखरती है, स्थिर स्थिति में प्रवाह का वेग उत्पन्न होता है, प्रतिभा के साथ ज्योति विकीर्ण होने लगती है, और मधु की तरह मिठास में अम्ल का प्रलेप-सा होता है। नारी को निराभरण देखने से हमें पीड़ा का अनुभव होता है, मानो कहीं त्रुटि रह गई है, कुछ करना बाक़ी रह गया है।

निराभरण नारी की शोभा अंकुश की तरह हमें कुछ और आगे बढ़ने का संकेत करती है। या तो अपमानित होने की आशङ्का से हम विचलित होते हैं, अथवा कर्तव्य-च्युति की ताड़ना से हम लज्जित होते हैं; अथवा बुभुक्षु की तरह पाप-मग्न होने के दुर्निवार आकर्षण से हम अपनी स्थिति से नीचे गिर जाते हैं, और निराभरण नारी के नग्न रूप को देखने की दुरन्त अभिलाषा से हम अपने को समाज से, छिन्न करके केवल नर के रूप में खड़े हो जाते हैं। क्या अपनी लज्जाहीनता को ही कवि नारी के नग्न रूप की वर्णना में काव्य का रूप दान करता है? और शिल्पी उसी नग्न रूप को रेखाङ्कित करके अपनी प्रतिभा का परिचय देता है? कवि की लेखनी अथवा शिल्पी की तूलिका के स्पर्श से क्या नारी की नग्नता भव्यता को प्राप्त करती है?

क्या नर की भी नग्नता नारी के मन में अपनी नग्नता का बोध उत्पन्न करती है? क्या शोभा का अनुभव, सौंदर्य का बोध नर और नारी में भिन्न भिन्न है? क्या नारी-शोभा का वर्णन नारी ने भी कभी किया है? क्या नारी की मोहिनी शक्ति से नारी भी विमुग्धा हुई है? किसने नारी के मन में प्रवेश किया होगा? नारी के मन की कौन जाने? यदि जानते, तो क्या संसार में सुख की मात्रा बढ़ जाती? एक कलाकार ने तो ऐसा ही एक रहस्य-पूर्ण प्रश्न किया था! नारी भी तो वैसा ही पूछ सकती है कि क्या नर के मन में कुछ भिन्न प्रकार की कला-बाज़ियाँ होती रहती हैं? नर के मन की बात यदि खुल जाय, तो क्या संसार में कुछ कम अनर्थों की सृष्टि होगी? टाल्स्टाय और स्ट्रैण्डबर्ग ने तो नारी को ही दोषी ठहराया है, और तुर्गनेव ने भी मैडम सिपियाजिन सृष्टि करके कुछ कम दिल्लगी नहीं की। और मर्माहत होकर दिव्य-दृष्टि-सम्पन्न शरच्चन्द्र ने दलिता नारी को देवी के आसन पर बैठाने की कितनी सार्थक और स्नेहार्द्र चेष्टा की थी। रवीन्द्रनाथ ने सन्दीप की सृष्टि करके पुरुषों पर कैसा कशाघात किया है और विनय की सृष्टि करके पुरुषों के त्याग और सहन-शक्ति का भी कैसा परिचय दिया है।

कहा जाता है कि पुरुष ने दम्भ में आकर नारी पर न जाने कितने अकथनीय अत्याचार किये हैं। और समाज-व्यवस्था में नारी का कोई मूल्य न देकर उसने केवल अपने ही अनुकूल क़ायदे-क़ानून बनाये हैं। परन्तु मर्मज्ञों का कहना है कि नारी के शत्रु पुरुष नहीं हैं, नारी ही हैं। सास, बहू के साथ जो अत्याचार कर सकती है, उसकी तुलना में पुरुष क्या करेगा। नारी को नारी देख नहीं सकती। बहुओं के कारण ही भाई-भाई में विच्छेद होता है, पड़ोसियों में झगड़ा होता है। नारी की निर्दयता से ही नर पशु बन जाता है, और मनुष्य जब पशु बनता है, तो पशुओं की पाशविकता भी मनुष्यों के पास हार मानती है। नारी के पक्षपात से ही तो पैशाचिक लीला का अभिनय होने लगता है, समाज में एक करुण और विकराल क्रन्दन ध्वनि की गुंजन निकलती है, मनुष्य का हृदय श्मशान बन जाता है। नारी क्रोध में आकर भूल जाती है कि उसकी ही विच्छेद-भावना से विक्षिप्त होकर शिव सती की देह को कन्धे पर लेकर भारतवर्ष के कोने कोने में पागल की तरह विचरने लगे थे। ऐसी अवस्था में संसार के ध्वंस होने की सम्भावना से विचलित होकर विष्णु ने उसी सती-देह को शतधा विच्छिन्न करके दिशा-दिशा में फेंक दिया था। आज उसी त्याग-प्रेम के प्रतीक स्वरूप नारी के ही देहावशेष को लेकर हमारे तीर्थस्थान बने हैं। संसार के समस्त सनातन हिन्दू उन तीर्थ-स्थानों में नारी की ही पूजा करते हैं। नारी की मधुर स्मृति में संसार भर में एक ही ताजमहल बना है। परन्तु हिन्दुओं की मानस-सृष्टि में शत-शत ताजमहल भारत के कोने-कोने में शक्ति-पीठ के रूप में युग-युग से हिन्दू-जीवन को अनुप्राणित करते आते हैं। प्राण को छोड़ कर देह में क्या रूप है? शिव-सती की अनुपम वार्त्ता को छोड़कर शक्ति-पीठों में कौन सा प्राण है? ताजमहल को देखकर आँख मूँद कर नारी-स्मृति की महिमा का अनुभव

करना पड़ता है। शक्ति-पीठों में आँख मूँद कर ताजमहलों को देखना पड़ता है। परन्तु हाय! मैं किसके साथ किसकी तुलना कर रहा हूँ! ताजमहल क्या सती के आत्मोसर्ग की कहानी बताता है? शिव की उन्मादना का कोई आभास देता है? लक्षकोटि मनुष्यों की पूजा की वार्त्ता सुनाता है? शत सहस्र साधुओं की मार्मिक साधना का संकेत करता है? हाय नारी! तुम्हारी ही पूजा में सनातन पुरुष जीवन को सार्थक बनाते आये हैं और तुम उसी पुरुष को कोसा करती हो! पुरुष सरस्वती के रूप में नारी को ही तो पूजता है? लक्ष्मी के रूप में नारी की ही तो आराधना करता है? रण-चण्डी के रूप में नारी का ही तो आवाहन करता है?

हिन्दू नारी को अर्द्धाङ्गिनी समझता है। हिन्दू की भावना में पुरुष नारी को ही पाकर पूर्णता को प्राप्त करता है। इसलिए हिन्दू-समाज-व्यवस्था में विवाह मनुष्यों का एक अवश्य कर्त्तव्य-कर्म है। व्यक्तिगत सुख-सुविधा के लिए विवाह-पद्धति का आविष्कार नहीं हुआ है। यह एक सामाजिक व्यवस्था है। व्यक्ति की स्वाभाविक कामनायें और अधिकारों के साथ सामाजिक कल्याण-भावनाओं का समन्वय होने से ही सब प्रकार की सामाजिक व्यवस्था तथा विवाह-प्रथा का उद्भव हुआ है। आधुनिक पाश्चात्य-समाज में विवाह केवल वैयक्तिक व्यापार समझा जाता है, मानों केवल व्यक्ति की सुख-सुविधा के लिए ही विवाह की आयोजना है। परन्तु हिन्दू-समाज में विवाह एक संस्कार है, अपूर्णता में पूर्णता प्राप्त करने का साधन है, अव्यवस्था में व्यवस्था लाने का एक सामाजिक उपाय है। इसलिए भारतीय विवाह-पद्धति में केवल युवक-युवतियों के यौवन-सुलभ चपल आकर्षण से ही विवाह के प्रश्न की मीमांसा नहीं होती। विवाह को सार्थक बनाने में समाज का भी सुदृढ़ हाथ रहता है। विवाह-बन्धन से सन्तानोत्पत्ति के कारण यह प्रश्न केवल व्यक्तिगत दृष्टि से ही नहीं देखी जा सकती। इसलिए हिन्दू-समाज की कल्याण-वेदी पर व्यक्तिगत सुख-सुविधाओं को न्योछावर करने को तैयार रहता है। इस दृष्टि से हिन्दू-आदर्श आधुनिक सुख-सर्वस्व पाश्चात्य वैवाहिक आदर्श से अधिक श्रेष्ठ है। पाश्चात्य-समाज में विवाह के बाद पुत्र, माता-पिता, भाई-बहनों से अलग होकर अपना स्वतन्त्र जीवन बिताने लगता है। विवाहित जीवन में किसी का नियन्त्रण नहीं रहता। बाधा-विघ्न के होते हुए भी विवाहित जीवन का रसास्वादन मधुर होता है। जैसे दोनों तटों के बन्धन से नदी में प्रवाह का वेग उत्पन्न होता है। यदि दिशाहीन होकर जलराशि चतुर्दिशा में विक्षिप्त होने लग जाय, तो नदी के स्रोत में प्रवाह बन्द हो जा सकता है। प्रथम यौवन में संयमहीन उपभोग से जीवनी-शक्ति का ह्रास हो जाता है, जीवन और जीवन-सङ्गिनी से हम ऊबने लग जाते हैं, मधुमय जीवन में गरल का उदय होने लगता है।

पाश्चात्य-समाज में अति आधुनिक युग में एक प्रलयकारी शब्द का उदय हुआ है। कामरेड शब्द में मानों भविष्य युग वर्त्तमान में आकर जीवन-मन्थन करने लगा है। भावी युग की समस्त कल्पनायें मानो इसी कामरेड शब्द के गर्भ में निहित हैं। यह शब्द अभिनव-साम्य का विचित्र द्योतक है। विवाह के सम्बन्ध में भी अति आधुनिक युग में पाश्चात्य-समाज ने विवाह-बन्धन को मृत्यु का फन्दा समझा है। उस देश में पुरुष स्त्री के साथ, और स्त्री पुरुष के साथ विवाह के बन्धन में फँसना नहीं चाहते। आज वे एक-दूसरे के साथी मात्र हैं—कामरेड हैं। परन्तु हिन्दू-समाज में नारी स्त्री के रूप में सहधर्मिणी है; केवल सङ्गिनी नहीं। कामरेड-साथिन-शब्द में धर्म की, अर्थात् सामाजिक और आध्यात्मिक नीतिज्ञान की कोई भावना नहीं है। अच्छे-बुरे सभी कामों के साथी और साथिन हो सकती हैं। परन्तु नारी सहधर्मिणी के रूप में केवल अच्छे कामों में ही पुरुष की साथिन हो सकती है, बुरे कामों में नहीं। हिन्दू-भावना में नारी स्त्री के रूप में केवल अर्द्धाङ्गिनी और सहधर्मिणी हो सकती है, और कुछ नहीं। हिन्दू की दृष्टि में नारी केवल साथिन के रूप में नहीं दिखाई देती। इस वैचित्र्यमय जगत् में नानात्व की अभिव्यञ्जना के साथ नारी को भी हम अनन्त शक्तिरूपिणी, अनन्तरूप से मायाविनी, अनन्त रूप से शक्तिदायिनी, स्नेहमयी जननी, भगिनी, कन्या और सखी के रूप में अनन्तकाल से देखते चले आये हैं।

गीत और भाष्य

दिसम्बर १९३९ की 'माधुरी' के मुखपृष्ठ पर श्रीयुत आरसीप्रसादसिंह का निम्न गीत छपा है—

मञ्जुल-मन्दार-मुकुल—
अभिनव-वन-कन्या।
चपला-चल-चपल-हास,
मलयज-मधु-अगुरु-वास
नूपुर-रव-शिथिल-श्वास,
नृत्यमती कन्या।
प्रति-गति में कल्प-भंग,
वंकायित अंग-अंग
चरणों में नत अनंग
पूजित-सुर-वन्या।

इस रचना में वर्णित 'वनकन्या' और कुछ नहीं, कवि की क़लम है। वन-कन्या क़लम होती ही है। 'अभिनव' से मतलब नई से है। चपला की चमक-दमक उसमें है ही, प्रतिदिन दस-बीस कवितायें-कहानियाँ और निबन्ध लिख सकती है! कभी कभी वह चन्दन की भी बनती है और तब उसमें मलयज मधु की भीनी वास आया करती है। क़त की चरचराहट ही उसको नूपुर-रव है। क्रान्तिकारी रचनायें करती है, जिनको पढ़कर युद्ध-काल में पाठक को 'कल्प-भंग' होने का भय होने लगता है, और इसलिए वह 'शिथिल-श्वास' हो जाता है तथा उसका अनंग (मस्तिष्क) कवि के चरणों में नत हो जाता है।

कल्पना की उड़ान के अलावा इस रचना में और भी सैकड़ों गुण हैं। पहली पंक्ति में 'मकार' की मिठास, दूसरी में 'नकार' की नमकीनियत और तीसरी में 'चकार' की चटपटाहट है, जिससे सिद्ध होता है कि कवि को व्यंजन-मैत्री का ख़ासा ज्ञान है। समस्त रचना शीघ्रता-पूर्वक पढ़ते-पढ़ते जिह्वा को उदयशंकर का पार्ट अदा करने का ख़ासा अभ्यास हो जाता है, जिससे कवि की नृत्यकलाभिज्ञता प्रकट होती है। इन सबसे भी बड़ी बात यह है कि इसे पढ़ लेने के बाद कोई यह कहने का साहस नहीं कर सकता कि हिन्दी के कवियों को 'हायकून' का ठीक प्रयोग करना नहीं आता। यदि कोई फिर भी प्रश्न करे कि इस गीत की रचना में कवि का प्रयोजन क्या है तो उसे यही उत्तर दिया जा सकता है कि कवि एक ऐसे गीत का नमूना दिखलाना चाहता है जो स्टेज पर 'कोरस' का काम दे सके। 'कोरस' के गानों में सुर-ताल और अलंकारों की छमछमाहट की ओर ख़ास ध्यान रखना पड़ता है; शब्दार्थ की संगति की ओर उतना नहीं। अर्थ तो प्रत्येक शब्द का कुछ न कुछ निकल ही आता है।

श्री सुमित्रानन्दन पन्त और 'स-र-ग-म'

हिन्दी-कवियों के नायिका-स्तवन, राष्ट्रवाद और प्रचारवाद से उद्वेलित कवि के अधर-पल्लव ने गुनगुनाया—'सा'। इस 'सा' में नवीनता थी, मिठास थी, आकर्षण था। कवियों ने अपने चिकाड़े फेंक दिये और इस नये सुर से अपना गला मिलाने लगे। 'सुन्दरियों' का नवीन डिज़ायन निकला और 'अनन्त' व 'उस छोर' के यात्रियों के कण्ठ उनकी आराधना करने लगे। कवि ने दूसरा पर्दा दबाया और अलापा —'रे'। यह गुञ्जन पहले से भी मधुर रहा। 'रे' कोमल भी होता है और तीव्र भी। गुञ्जन की अनुभूति में भी ये दोनों बातें थीं। कुछ कवि इस 'रे' तक भी बढ़ गये। काफ़ी समय तक इस 'सा-रे' की ख़ासी चहलपहल रही।

विकासवाद और स्वरारोह के सिद्धान्त से तो आशा थी कि इस बार हमारा कवि अलापेगा—'गा', पर साहित्यिकों को आश्चर्य हुआ जब उन्होंने देखा कि कवि इस 'आरोह' की शैली को सत्य नहीं समझता, क्योंकि 'युगवाणी' उसका साथ नहीं दे सकती और कवि को युगवाणी का प्रतिनिधि होना आवश्यक है।

युगवाणी में तीव्रता है, स्थायित्व है, उसमें कोमलता का एकान्त अभाव है। इसी लिए पन्त जी को फिर सतत तीव्र और स्थायी स्वर 'सा' पर आकर ठहरना पड़ा, क्योंकि

किसानों और मजदूरों के कण्ठस्वर इसी परदे पर कवि-कण्ठ से मिल सकते हैं, 'गान्धार' और 'मध्यम' पर नहीं। देखना यह है कि अन्य सामयिक कविगण कब प्रेयसियों का अञ्चल छोड़कर इस परुष 'सा' के अलापने का प्रयत्न करते हैं।

कमला और प्रगति

बनारस से स्त्रियोपयोगी 'कमला' नाम की एक सुन्दर मासिक पत्रिका कुछ दिनों से निकलने लगी है। उसके दिसम्बर के अङ्क में प्रारम्भ में 'नर और नारी' नाम का एक लेख छपा है। लेख के साथ लेखक का नाम नहीं है। उसमें एक जगह लिखा है—

"जैसे स्त्री-पुरुष परस्पर आलिंगन करके एक हो जाते हैं...गर्भाधान का यह प्रकार अनादि है और अखण्ड रहेगा।...महद् ब्रह्म रूपी...में शिव...की कल्पना इसी...का प्रतीक है। ये दोनों (नर व नारी) एक थे...अतः दोनों का एक दूसरे की ओर आकर्षण होता रहता है। यह आकर्षण अत्यन्त स्वाभाविक अतएव अत्यन्त बलवान् है। जो एक था पर बिछुड़ कर दो हो गया वह फिर मिलकर जब एक होता है उस समय का आनन्द परमानन्द है। इसी परमानन्द को हमारे शास्त्रकारों ने रतिसुख की उपमा दी है; क्योंकि इससे (रतिसुख) बड़े आनन्द की कल्पना मनुष्य के लिए सम्भव नहीं।

जीव-ब्रह्मैक्य से होनेवाले परमानन्द का अनुभव विरले ही भाग्यवान् को होता होगा—पर उसके बाद का आनन्द यदि कुछ है तो वह नर-नारी के पवित्र संगम में ही है। इसे अश्लील कहना मूर्खता है। यह तो पवित्र है।"

बात तो बड़े पते की और सोलहों आना सच है, पर इसे 'कमला' जैसी पत्रिका के अग्रलेख में ऐसी संयत भाषा में पढ़कर अनुमान होता है कि 'कमला' सचमुच नये युग की पत्रिका बनने जा रही है। इसके लिए उसके संचालकों को अनेक साधुवाद!

* * *

एक इम्प्रेशनिस्ट रचना

केवल....

कमरा है मेरा एक
उसमें—
मेज़ पर पड़ा लोटा ख़ाली है;
टँगा—
सामने दीवाल पर,
कोट फटा पुराना है।

* * *

आठ रुपये किराये के हैं
दो मेज़, दो कुर्सियाँ—
दो बिजुली की बत्ती हैं;
एक जली, एक बुझी!

* * *

एक चारपायी पर पड़े रहते हैं हम
उधर—
फ़र्श पर—
एक जोड़ा चप्पल, एक बाटा का जूता है;
और कुछ काग़ज़ के टुकड़े।

* * *

आले में,
धूल से भरा एक आइना,
कभी—
तैरता उसी में जीवन
और मन मैला!

आज-कल हिन्दी-पाठकों को ऐसी रचनाओं में ही 'कला' दिखाई देती है। रुचि का परिवर्त्तन ही जो ठहरा!
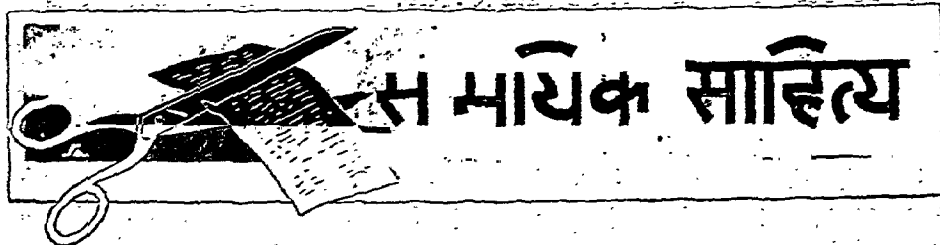
मैंने नेतृत्व क्यों ग्रहण किया

महात्मा गांधी ने कांग्रेस का नेतृत्व फिर ग्रहण कर लिया है। यह बात जहाँ देश के लिए बड़े गौरव की है, वहाँ वैसे ही सौभाग्य की भी है। इस सम्बन्ध में उन्होंने 'हरिजन' में जो पहला लेख लिखा है उसका अधिकांश हम यहाँ 'हरिजन सेवक' से उद्धृत करते हैं—

जवाहरलाल लोकवादी ठहरे। उन्होंने प्रबन्ध किया कि मेरे और उनकी कार्यकारिणी के बीच में खुलकर बातें हो जायें। हमने तीन बार इस तरह की चर्चा की। मैंने समझ रखा था कि इससे हमारे दो रास्ते हो जायेंगे। मेरे सामने जो कांग्रेसी आये उनमें कुछ ऐसे थे भी जो चर्खे और अहिंसा की हँसी उड़ा चुके थे। परन्तु जब मैंने देखा कि वे दोनों चीजों से ही नाराज हो गये, तो मेरे अचरज का ठिकाना न रहा। यह स्थिति कांग्रेसियों के लिए और मेरे दोनों के लिए अटपटी है।

फिर भी इलाहाबाद में मेरे सामने जो जिम्मेदार लोग आये उन पर मैं अविश्वास नहीं कर सकता था। जो बात इन लोगों के लिए सही है वही दूसरे प्रान्तों के कांग्रेसियों पर लागू होती है। तो मैं यह बोझा अपने कन्धों पर ले रहा हूँ।

इसलिए मैं अपने मन की बात साफ़ क्यों न सुना दूँ?

अधीर कांग्रेसजनों से मेरा कहना यह है। सविनय अवज्ञा का एलान करने की तुरन्त मुझे कोई सूरत नहीं दीखती। अँगरेजों को तंग करने ही के लिए तो सविनय अवज्ञा हो नहीं सकती। वह उस समय होगी जब निश्चित रूप से अनिवार्य हो जायगा। आवश्यक सरकारी हल्कों की तरफ़ से नाकोंदम आ जाने पर ही हो। मुझे वाइसराय साहब या भारतमन्त्री महोदय की ईमानदारी में सन्देह नहीं है। साथ ही मुझे भी इसमें कोई शक नहीं कि वे गलती पर हैं।

क

कोई और उत्पादक काम नहीं है। इतना ही नहीं, यह तो शुरू से ही हमारे अहिंसात्मक कार्यक्रम का एक जरूरी अंग रहा है। जिस सभ्यता का आधार अहिंसा है वह हिंसा के लिए संगठित हुई संस्कृति से भिन्न ही होनी चाहिए। इस मौलिक सत्य के साथ कोई कांग्रेसमैन खिलवाड़ न करे। जो बात मैं हजारों बार कह चुका हूँ उसको फिर दुहराता हूँ कि अगर करोड़ों आदमी स्वराज्य की खातिर और अहिंसा की भावना से कातने लगें तो शायद सविनय-अवज्ञा की जरूरत ही न पड़े।

वर्किंग कमेटी मुझे अपना एकमात्र प्रतिनिधि बनाना चाहती थी, ताकि मैं जरूरत पड़ने पर सन्धिवार्ता कर सकूँ और वह नाकामयाब रहे तो सविनय-अवज्ञा-आन्दोलन का संचालन करूँ। यह ऐसा भार था जिसे मैं उठा नहीं सकता। मैं एक गाँव में पड़ा हूँ, इसलिए मेरा जनता के साथ सीधा सम्पर्क नहीं रहता। बहुत बातें ऐसी हैं जिनका सीधा और सच्चा ज्ञान होना चाहिए। ऐसी बातों पर मैं अकेला राय बनाऊँ तो उस पर मेरा विश्वास नहीं होता और न होना चाहिए। मैं तो वर्किंग कमेटी की हर घड़ी राय और हिदायत मिलने पर ही काम कर सकता था। मैं समझौते की बातचीत भी अन्तिम रूप में नहीं करूँगा। सच तो यह है कि इस भार से मुक्त कर दिया जाऊँ तो मुझे खुशी होगी। लेकिन जब तक वर्किंग कमेटी और साधारण कांग्रेसियों का विश्वास और स्नेह मुझे प्राप्त है और जब तक मैं महसूस करता हूँ कि मैं यह काम कर सकता हूँ तब तक मैं किसी जिम्मेदारी से बचने की कोशिश न करूँगा।

संसार का संकट

कवि-सम्राट् रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने संसार की वर्तमान हिंसात्मक प्रवृत्ति को देखकर एक हृदयस्पर्शी लेख लिखा है। उसे 'नवयुग' ने 'यह संकट' शीर्षक में छापा है। इस महत्त्वपूर्ण लेख के प्रारम्भ का अंश इस प्रकार है—

लोग मुझसे आग्रह करते हैं कि वर्तमान स्थिति पर मैं भी कुछ लिखूँ—रास्ता कोई बाहर निकलने का बताऊँ। लेकिन मैं कोई रास्ता नहीं जानता।

* * *

मुझे एक कहानी याद है। किसी भोली स्त्री ने वाल्टेयर से पूछा कि क्या जादू से भेड़ों के झुंड मारे जा सकते हैं। वाल्टेयर ने उत्तर दिया—"हाँ श्रीमती जी, लेकिन थोड़ा-सा संखिया भी चाहिए।" आज संखिये का ऐसे जोर का प्रचार है कि मारनेवाले और मरनेवाले दोनों ही उसके अतिरिक्त और किसी मार्ग का अवलम्बन नहीं कर सकते।

बर्बरता के युग से आज तक देवी को प्रसन्न करने के लिए बलि देने का रवाज चला आया है। 'प्रेम के द्वारा ही सच्ची पूजा हो सकती है', ऋषि महात्माओं का यह उपदेश आध्यात्मिक जगत् की ही बात समझी गई है, व्यावहारिक जीवन में उससे कोई नाता नहीं रक्खा गया। जहाँ प्रत्यक्ष परिणाम की आवश्यकता नहीं, वहाँ ऋषियों की इस सीख का कुछ अर्थ नहीं। जिन क्षेत्रों में प्रत्यक्ष परिणाम चाहिए, वहाँ देवों को प्रसन्न करने के लिए नृशंसतात्मक भेंट दी जाती है। इसके पीछे क्या रहस्य छिपा है? रोगी कड़वी दवा पर आस्था रखता है, खून की बूँदें उसकी ज़बान को लग गई हैं, उन्हीं को वह ओषधि मानता है। यही कारण है कि संसार भर के औषधालयों में ऐसी ही ओषधियाँ तैयार की जा रही हैं। नृशंक शासकों-द्वारा पशुबल—का प्रचार हो रहा है। जो वैद्य अधिक से अधिक मानव-प्राणियों का सिर धड़ से अलग कर सकता है, उसका सम्मान है। सम्भव है, असंख्य मौतें इस वैद्य को अपनी चिकित्सा-प्रणाली पर से विश्वास उठा दें। मृत्यु-आलय जगह जगह खुले हुए हैं, लाखों विद्यार्थी मौत के गाल में धकेले जा रहे हैं, क्योंकि पाठ सीखने का यही तो निराला ढंग है। सम्भव है, कभी मानव इस नर-संहार से कुछ सीखे—कब, कितने समय बाद इसकी मैं भविष्यवाणी नहीं कर सकता। इस समय तो मैं यही देखता हूँ कि क्लास-रूम में जोर जोर से लेक्चर होते हैं, और यह पाठ्यक्रम समाप्त होता नहीं दिखाई देता। जब स्थिति ऐसी है, तो मैं चुप बैठा रहना ही श्रेयस्कर समझता हूँ। मार्ग खोजनेवालों को क्या उत्तर दूँ?

* * *

हिंसा मानव की दुर्बलता पर पाँव टेकती, असहाय मानवता के खेत को पाँवों में रौंद कर यह अपनी फ़सल

बोती है। इसी तरह इसका व्यापार चलता है। इस व्यापार में शक्तिशाली ने अधिकाधिक शक्ति पाई है, अपने प्रभाव-क्षेत्र की सीमा बढ़ाई है। उसने अपार जनसमूह के गले में गुलामी का तौक डाला है—कैसे हम यह जानते हैं। शक्ति अनन्तकाल तक जीवित रहने का दावा करती है—शिकार शक्तिसंचय करके उठ बैठा हो, तो बात दूसरी है। कभी कभी नर-संहार की मशीनरी के भार के कारण, यह अपनी पकड़ को ढीला करती है, तो छटपटा कर दूसरे ही क्षण अपनी भूल का अनुभव कर लेती है। अपनी सत्ता को क़ायम रखने के लिए हिंसा को अनियंत्रित' असीमित शस्त्रागार चाहिए। आज हिंसा जिस तरह जागरूक है, जिस तरह उसने भूमि, सागर और वायुमंडल में अपना जाल बिछा रखा है, उसका मानव-इतिहास में उदाहरण नहीं मिलता। पश्चिम की सभ्य जातियाँ भ्रातृत्व के विजय-तोरण बनाती हुई सैनिक-रूप में आगे बढ़ी जा रही हैं। किसी को रुकने का साहस नहीं है—क्योंकि डर है कहीं प्रतिद्वन्द्वी आगे न निकल जाय।

योरपीय युद्ध और संसार के प्रमुख राष्ट्रों की अभिलाषा

योरप में जो युद्ध छिड़ा हुआ है उसके सम्बन्ध में संसार के प्रमुख राष्ट्रों की उनके स्वार्थों के अनुसार कैसी धारणा हो सकती है, इसका अन्दाज़ 'दि लिविंग एज' नाम के अमरीका के एक प्रसिद्ध पत्र में खूब लगाया गया। उस लेख का अनुवाद उपर्युक्त शीर्षक में 'प्रताप' ने छापा है, जिसका संक्षिप्त अंश इस प्रकार है—

सोवियट रूस की इच्छा—रूस चाहता है कि जर्मनी और ब्रिटेन की अन्तिम रूप में हार हो जाय। लेकिन ब्रिटेन की हार वह कुछ शर्तों के साथ चाहता है क्योंकि ब्रिटेन की पूर्ण हार उसे तभी वांछनीय है, जब उसे (ब्रिटेन) वर्गवादी राज्य में परिणत किया जा सके। रूस का लाभ इसी में है कि लड़ाई लम्बी चले। इसी लिए वह हिटलर को सीमित सहायता दे रहा है और तब तक देगा जब तक कि रूस के नेतृत्व में जर्मनी में क्रान्ति न हो जाय। जब तक पश्चिम की घटनायें जैसे जर्मन-क्रान्ति उसे योरप की ओर मुख़ातिब होने के लिए बाध्य न करे, वह मध्य-एशिया और उत्तरी-पश्चिमी चीन की ओर बढ़ना चाहता है। फिर भी रूस शक्तिशाली जर्मनी से भयभीत है। उसे डर है कि कहीं जर्मनी रूस पर चढ़ न दौड़े। यही कारण है कि स्टैलिन इस बात का स्वागत करता है कि मित्रराष्ट्र जर्मनी के युद्ध-यन्त्रों को कमज़ोर बनावें।

इटली की इच्छा—इटली ग्रेट ब्रिटेन और हिटलर दोनों की हार चाहता है। वह यह भी चाहता है कि रूस की वृद्धि रुक जाय। वह जर्मनी के साथ राजनैतिक सहानुभूति रख कर उसे राजनैतिक दृष्टि से अपने अधीन रखना चाहता है। भूमध्य-सागर में इटली के नेतृत्व की पुनः स्थापना की महत्त्वाकांक्षा के लिए इँगलैंड की हार सबसे पहली चीज़ है। दूसरी तरफ़ इटली जर्मन-रूस के अनाक्रमण-सन्धि से बहुत भयभीत है। उसे भय है कि बालकन में रूस के हस्तक्षेप से इटली और रूस के हितों में कहीं संघर्ष न उत्पन्न हो जाय। इसके अतिरिक्त इटली जर्मनी के समाजवादी होने से भी डर रहा है। ऐसा होने से सम्भव है, मुसोलिनी के शासन के लिए खतरा उपस्थित हो जाय। इसी लिए शान्ति-स्थापक की स्थिति में रहना ही उसने अधिक पसन्द किया है।

संयुक्त-राष्ट्र अमरीका—संयुक्त-राष्ट्र अमरीका चाहता है कि मित्रराष्ट्रों की विजय हो और ब्रिटेन की स्थिति ज्यों की त्यों बनी रहे। वाशिंगटन में यह ज़ोरों से अनुभव किया जा रहा है कि योरप में लोकतन्त्र का ढाँचा अधिक कमज़ोर हुआ तो फ़ासिस्ट और नाज़ी शक्तियाँ अमरीका में प्रविष्ट करने की चेष्टा करेंगी। मान लीजिए कि मित्रराष्ट्रों की हार हो गई और इनकी हार के बाद स्टैलिन और हिटलर एक-दूसरे से भिड़ गये। उस हालत में प्रशान्त-सागर में जापान को खुल खेलने की स्वतन्त्रता मिल जायगी, जिसके लिए इस समय वह स्वतन्त्र नहीं है।

जपान की इच्छा—उक्त दोनों पार्टियों की जीत से जापान को कम ही लाभ होगा। नाज़ियों की हार से एशिया में रूस को बहुत बड़ी

नई ताक़त मिल जायगी। प्रशान्त सागर में ब्रिटेन का जहाज़ी बेड़ा बढ़ जायगा और ब्रिटिश क्षेत्रों में जापानी मनसूबा खतरे में पड जायगा। चीन में सोवियट हस्तक्षेप कर सकता है। इस हालत में मित्रराष्ट्र की विजय जापान के लिए कम हानिकारक होगी।

जिन्ना साहब का राहत का दिन और मुस्लिम लोकमत

मुस्लिम लीग के तानाशाह जनाब मुहम्मद अली जिन्ना कांग्रेस से इतना अधिक नाराज़ हैं कि उसके मंत्रिमण्डलों के पदत्याग करने की खुशियाँ मनाने के लिए उन्होंने भारत के मुसलमानों से यह अपील की थी—

मैं चाहता हूँ कि हिन्दुस्तान भर के मुसलमान आगामी २२ दिसम्बर, शुक्रवार को 'मुक्ति-दिवस' मनायें और कांग्रेसी सरकारों के लोप हो जाने पर जो राहत मुसलमानों को मिली है उसके लिए ख़ुदा की इबादत करें और उसके शुक्रगुजार हों। मैं उम्मीद करता हूँ कि भारत की सभी प्रान्तीय जिला तथा प्राथमिक लीगें इस दिन सभायें करेंगी और मैंने जो प्रस्ताव तैयार किया है, उसे सलाह मिलने पर उचित संशोधन के साथ पास करेंगी और कांग्रेस के निरंकुश शासन के मिट जाने से मुसलमानों को जो मुक्ति मिली है, उसके लिए प्रार्थनायें की जायँगी। मैं विश्वास करता हूँ कि इस काम के लिए बुलाई गई सभी सार्वजनिक सभायें बिलकुल व्यवस्थित ढङ्ग से तथा तहजीब और तरीक़े के साथ की जायँगी और कोई ऐसी कार्रवाई नहीं की जायगी, जिससे किसी सम्प्रदाय या समुदाय को कोई चोट पहुँचे, क्योंकि मुसलमानों तथा अन्य अल्पसंख्यक जातियों के साथ जो भी जुल्म और बेइन्साफ़ी की गई है, उसकी ज़िम्मेदारी सिर्फ़ कांग्रेस के बड़े बड़े नेताओं—कांग्रेस हाई कमाण्ड पर है।

परन्तु भारत के मुसलमान निरा बुद्धू ही नहीं बने हुए हैं। उन्होंने जिन्ना साहब के राहत के दिन का विरोध किया। ऐसे कुछ महत्त्व के प्रतिवाद इस प्रकार हैं—

'मजलिसे अहरार हिंद' के अध्यक्ष मौलाना हबीबुर्रहमान ने एक महती सभा में भाषण देते हुए कहा—"मुक्ति-दिवस मनाने की बात इस्लाम की जीत का मज़ाक है। ग्यारह में से ८ प्रान्तों से कांग्रेस-मंत्रि-मंडलों के त्याग-पत्र देने से मि० जिन्ना तथा उनके साथियों की जीत हो सकती है, परन्तु करोड़ों ग़रीब मुसलमानों का उससे कोई भला न होगा। मि० जिन्ना ने मुसलमानों से जो अपील की है उससे तो इस्लाम की बदनामी है। उनका वक्तव्य तो प्रजातंत्र का विरोधी है तथा वह आत्मसम्मान को इतना धक्का पहुँचानेवाला है कि कोई भी आत्म-सम्मानी मुसलमान उसे बर्दाश्त नहीं कर सकता।

मौलाना आजाद ने अपने वक्तव्य में कहा है—"पिछले दो वर्ष से मैं बराबर कोशिश कर रहा हूँ कि मुस्लिम लीग और कांग्रेस के बीच का भेदभाव दूर हो जाय। लेकिन मुझे यह कहने में बहुत सदमा पहुँचता है कि जब जब कांग्रेस ने समझौते का दरवाज़ा खोला, तब तब एक तीसरे हाथ ने आकर उसमें अड़ंगा लगा दिया। यह हाथ और किसी का नहीं, यह हाथ लीग के प्रधान जनाब मुहम्मद अली जिन्ना का है।

उनकी नेक सलाह यह है कि मुसलमानों को मस्जिद में जाना चाहिए, और ख़ुदा के आगे शुक्रिया अदा करना चाहिए कि इन लोगों को कांग्रेस से छुट्टी मिली।

कोई भी मुसलमान कितना ही उसका मतभेद कांग्रेस से क्यों न हो, इन लफ़्ज़ों में अपने को दुनिया के सामने न पेश करना चाहेगा।

मान लीजिए कि जिन्ना साहब का बयान बिलकुल सच है, इन सरकारों ने इनके राजनीतिक अधिकार छीने, आर्थिक नुक़सान पहुँचाया। और यह सब तहस-नहस सिर्फ़ कुछ ही दिन नहीं पूरे २॥ वर्ष तक होता रहा।

मैंने हमेशा यही बात ज़िम्मेदारी से कही है और उसे आज भी कहता हूँ कि कांग्रेस वज़ारत के खिलाफ़ जो भी इलज़ाम लगाये गये हैं, वे बिलकुल झूठे हैं। यह कहना बिलकुल सफ़ेद झूठ है कि कांग्रेसी वज़ारतों की नीति मुसलमानों के खिलाफ़ थी। ऐसी हालत में या तो जिन्ना साहब ने जो इलज़ाम लगाये हैं, उन्हें साबित करना चाहिए, नहीं तो कम से कम अपनी ज़बान और क़लम को अपने क़ाबू में रखना चाहिए।

मुस्लिम लीग की कार्यकारिणी समिति के

सदस्य मिस्टर अब्दुर्रहमान सिद्दीकी एम० एल० ए० ने कहा है—

हमारे बम्बई मलाबार-हिलवासी मियाँ जिन्ना ने पहाड़ खोदकर चुहिया निकाली है। मुस्लिम भारत तो उत्सुकतापूर्वक प्रतीक्षा कर रहा था कि बड़े लाट और प्रान्तीय गवर्नर अपने नये विधान के प्रयोगों की भूलें स्वीकार करने और सुधारने में लगेंगे और इधर अखिल भारतीय मुस्लिम लीग के सभापति जनाब जिन्ना साहब अपने भाइयों को उनका कर्तव्य सुझाने के बदले एक नई ही रागिनी छेड़ बैठे हैं। आश्चर्य तो यह है कि यह सब उन्होंने मुस्लिम लीग के नाम पर किया है, यद्यपि लीग की कार्य-समिति ने उन्हें इसका कोई अधिकार नहीं दिया है। वे लीग के मौलिक सिद्धान्तों को लेकर मनमाने ढंग पर विनाश के पथ पर नहीं दौड़ सकते। उन्हें यह बात समझ लेना चाहिए कि वे लीग को जिस रास्ते पर लिये जा रहे हैं, वह खतरनाक और भ्रष्ट है—वह भारतीय मुसलमानों को तुर्कस्थान की ओर लिये जा रहा है और उससे लीग के अङ्ग-भङ्ग हुए बिना न रहेंगे। किसी नेता को जनता का पथप्रदर्शन करते समय और उसे आदेश और उपदेश देने के समय जनता की भावना तथा तथ्यों पर विचार कर लेना चाहिए।

'आजाद मुस्लिम-सम्मेलन' ने निम्नलिखित वक्तव्य पास किया :—

'ऐसी हालत में जब कि कांग्रेस और लीग के नेता साम्प्रदायिक समझौता के लिए प्रयत्नशील हैं, लीग के अध्यक्ष को कोई भी ऐसा वक्तव्य देना जिससे साम्प्रदायिक मनोमालिन्य फैले बेमुनासिब था। इसमें क्षुद्र मनोवृत्ति का पता तो चलता ही है, साथ ही जिन्ना साहब के राजनैतिक ज्ञान की अल्पज्ञता का भी पता लगता है। कोई भी इन्साफ़-पसन्द आदमी ऐसी कार्रवाई में शामिल नहीं हो सकता। इसलिए हम सब मुसलमान भाइयों से प्रार्थना करते हैं कि वे इस अराष्ट्रीय और इस्लाम पर कलंक पोतनेवाली योजना का विरोध करें और सदिच्छा और सहयोग की वह भावना पैदा करें जिससे आजादी की राह का रोड़ा निकल जाय और भारत जल्द से जल्द स्वाधीन हो जाय।

बंगाल असेम्बली और कौंसिल के १६ सदस्यों ने, जिनमें मि० शमसुद्दीन अहमद भूतपूर्व मंत्री भी हैं, ने यह वक्तव्य निकाला है—

'मि० जिन्ना द्वारा निकाला गया ताजा वक्तव्य उनके पहले के भी सब कामों को मात कर गया है। आपने भारत को स्वाधीनता और जनतंत्र से महरूम रखने के लिए करोड़ों मुसलमानों को राजनीतिक आधीनता और दासता की प्रक्रिया में रखने की निन्दा करने के रूप में एक नया बहाना ढूँढ़ निकाला है। आपने उन शक्तियों को नष्ट करने का यत्न किया है, जो भारत की एकता और स्वतंत्रता के लिए प्रयत्नशील हैं, और प्रतिगामी साम्राज्यवाद के हाथ में कठपुतली बन गये हैं। मि० जिन्ना की हाल की अपील इतनी विस्मयजनक है, कि उनके समर्थक भी चकित रह गये हैं, और हम यह जानकर प्रसन्न हैं कि उनमें से मि० अब्दुर्रहमान सिद्दिकी ने अपनी आवाज विरोध में प्रकट की है।

हमने कभी भी यह स्वीकार नहीं किया है कि एकमात्र मि० जिन्ना भारत के मुसलमानों के नेता और उनके अधिकारों के सतर्क रक्षक हैं। हम नहीं जानते कि मुस्लिम लीग मि० जिन्ना की जेब में है, मगर हम यह बात जोर देकर कहना चाहते हैं कि सारे भारत भर में बड़ी तादाद में मुसलमान मुस्लिम लीग के प्रति सम्मान न रक्खेंगे जिसकी अन्तरात्मा और वाणी एकमात्र मि० जिन्ना जैसे प्रतिगामी के अधिकार में है।

बम्बई के भूतपूर्व शेरिफ़ और आगाखाँ की सुप्रीम कौंसिल के अध्यक्ष ने अपना यह वक्तव्य दिया है—

यह बिलकुल आश्चर्य की बात है कि श्री जिन्ना ने २२ दिसम्बर को मुसलमानों से मुक्ति-दिवस मनाने की अपील की है। ऐसा वक्तव्य कुछ भी फ़ायदा पहुँचाने के बजाय साम्प्रदायिक समझौता की भावना को नुकसान ही पहुँचायेगा और हिन्दुस्तान की समस्या को बहुत जटिल बना देगा। जिन्ना साहब को यह बात याद रखनी चाहिए कि यह समय ईमानदारी और साहसपूर्वक काम करने का है न कि झूठा राजनैतिक प्रचार करने का। अगर यही रुख रहा तो जिन्ना साहब पर से मुसलमानों का विश्वास उठ जायगा और वे अपना नेतृत्व खो बैठेंगे।

(१६) गोपालदत्त जोशी, बेरीनाग, अल्मोड़ा। (१७) चुन्नीलाल सिलावट, सोभापुर, होशंगाबाद। (१८) सुरेन्द्र सिंह गजेन्द्र सिंह, बिसौली, बदायूं। (१९) परशुराम साव, डोंगरगढ़ (सी० पी०)। (२०) जुगुलकिशोर सक्सेना, अजीतमल, इटावा। (२१) चम्पादेवी, चाईबासा, सिंहभूमि। (२२) शिवकुमारसिंह, सहतवार, बलिया। (२३) सरोजिनी देवी मेहरोत्रा, बरेली बैंक, फ़र्रुखाबाद। (२४) गिरिराज किशोर अग्रवाल, लोहागढ़, मुरादाबाद। (२५) रामदत्त जोशी, देवलीखेत, अल्मोड़ा। (२६) लक्ष्मीनारायण मिश्र, बिलसड़ पुवाया (एटा)। (२७) माधवप्रसाद शुक्ल अँजगैन (उन्नाव)। (२८) रघुनाथप्रसाद, साक्षी विनायक कटरा, बनारस। (२९) परमात्माशरण जकाती, बरेली। (३०) श्यामलाल फ़रीदपुर, बरेली।

उपर्युक्त सब पुरस्कार जनवरी के अन्त तक भेज दिये जायँगे।

नोट—जाँच का फ़ार्म ठीक समय पर आने से यदि किसी को और भी पुरस्कार पाने का अधिकार सिद्ध हुआ तो उपर्युक्त पुरस्कारों में से जो उसकी पूर्ति के अनुसार होगा वह फिर से बाँटा जायगा।

केवल वे ही लोग जाँच का फ़ार्म भेजें जिनका नाम यहाँ नहीं छपा है, पर जिनको यह सन्देह हो कि वे पुरस्कार पाने के अधिकारी हैं।

व्यस्त रेखा शब्द पहेली

CROSSWORD PUZZLE IN HINDI

३००) शुद्ध पूर्तियों पर

२००) न्यूनतम अशुद्धियों पर

यमः—

(१) किसी भी व्यक्ति को यह अधिकार है कि जितनी पूर्तियाँ भेजना चाहे, भेजे, किन्तु ेक वर्ग-पूर्ति सरस्वती पत्रिका के ही छपे हुए फ़ार्म होनी चाहिए। इस प्रतियोगिता में एक व्यक्ति केवल एक ही इनाम मिल सकता है। इंडियन- के कर्मचारी इसमें भाग नहीं ले सकेंगे। प्रत्येक की पूर्ति स्याही से की जाय। पेंसिल से की पूर्तियाँ स्वीकार न की जायँगी। अक्षर सुन्दर, ोल और छापे के सदृश स्पष्ट लिखने चाहिए। जो ार पढ़ा न जा सकेगा अथवा विगाड़ कर या काटकर री बार लिखा गया होगा वह अशुद्ध माना ायगा।

(२) प्रतियोगिता में शामिल होने के लिए जो फ़ीस के ऊपर छपी है, दाखिल करनी होगी। फ़ीस मनी- ्र-द्वारा या सरस्वती-प्रतियोगिता के प्रवेश-शुल्क-पत्र edit voucher) के द्वारा दाखिल की जा सकती इन प्रवेश-शुल्क-पत्रों की किताबें हमारे कार्यालय से ा ६) में खरीदी जा सकती हैं। ३) की किताब में आने मूल्य के और ६) की किताब में १) मूल्य के पत्र बँधे हैं। एक ही कुटुम्ब के अनेक व्यक्ति जिनका ा-ठिकाना भी एक ही हो, एक ही मनीआर्डर-द्वारा नी अपनी फ़ीस भेज सकते हैं और उनकी वर्ग-पूर्तियाँ एक ही लिफ़ाफ़े या पैकेट में भेजी जा सकती हैं। ्-पूर्ति की फ़ीस किसी भी दशा में नहीं लौटाई जायगी। ीआर्डर व वर्ग-पूर्तियाँ 'प्रबन्धक, वर्ग-नम्बर ४२, इंडियन प्रेस, लि०, इलाहाबाद' के पते से आनी चाहिए।

(३) लिफ़ाफ़े में वर्ग-पूर्ति के साथ मनीआर्डर की रसीद, पोस्टल आर्डर या प्रवेश-शुल्क-पत्र नत्थी होकर आना अनिवार्य है। कूपन में दिए हुए स्थान पर इनका नम्बर अवश्य लिख देना चाहिए। ऐसा न होने पर वर्ग-पूर्ति की जाँच न की जायगी।

(४) जो वर्ग-पूर्ति २७ जनवरी तक नहीं पहुँचेगी, जाँच में शामिल नहीं की जायगी। स्थानीय पूर्तियाँ २५ जनवरी को पाँच बजे तक बक्स में पड़ जानी चाहिएँ और दूर के स्थानों (अर्थात् जहाँ से इलाहाबाद को डाक गाड़ी से चिट्ठी पहुँचने में २४ घंटे या अधिक लगता है) से भेजनेवालों की पूर्तियाँ २ दिन बाद तक ली जायँगी। वर्ग-सम्पादक का निर्णय सब प्रकार से और प्रत्येक दशा में अन्तिम तथा मान्य होगा। शुद्ध वर्ग-पूर्ति की प्रतिलिपि सरस्वती पत्रिका के अगले अङ्क म प्रकाशित होगी, जिससे पूर्ति करनेवाले सज्जन अपनी अपनी वर्ग-पूर्ति की शुद्धता-अशुद्धता की जाँच कर सकें।

(५) वर्ग-निर्माता की पूर्ति से, जो मुहर लगा करके रख दी गई है, जो पूर्ति मिलेगी वही सही मानी जायगी। इस संबंध में किसी प्रकार का वाद-विवाद न माना जायगा। यदि कोई पूर्ति शुद्ध न निकली तो मैनेजर शुद्ध पूर्ति का इनाम जिस तरह उचित समझेंगे, बाँटेंगे।

अङ्क-परिचय नं० ४२

बाँयें से दाहिने

१—बच्चों का एक सबसे अच्छा मासिक पत्र। ३—प्रसिद्ध जैन तीर्थंकर। ५—एक प्रकार की घोड़ा-गाड़ी। ७—अफ्रीका की वह जाति जो अपने काले रंग के लिए मशहूर है। १०—रसिक इसकी प्रतीक्षा बड़ी उत्सुकता से करते हैं। १२—कहते हैं कि पद्मिनियाँ यहीं होती हैं। १३—इनकी टोली कभी भय पैदा करती है, कभी सुख। १५—कभी-कभी यह भी अच्छी लगती है। १६—मृतक पति का यह करनेवाली स्त्री ही सती कहलाती है। १८—अपने से निर्बल को यह करने में कौन बहादुरी है? १९—इसका प्रचार देश में दिन-दिन बढ़ रहा है। २०—इसका परिमाण देश में घटता ही जा रहा है। २२—गड्ढा। २३—यह आवश्यक नहीं कि जिसके पास धन न हो वही ऐसा हो। २६—आकाश में इनका टूटना भयजनक होता है। २८—इससे बचने में ही कुशल है। २९—इसकी लालच से मनुष्य क्या नहीं कर सकता? ३२—अपने इसको निरापद बनाने के लिए दुष्ट लोग कभी-कभी घोर अनर्थ कर बैठते हैं। ३३—नाविकों को इसी का सहारा होता है।

अपनी मालवाला के लिए वर्ग ४२ की पूर्तियों की नकल यहाँ पर कर लीजिए और इसे निर्णय प्रकाशित होने तक अपने पास रखिए।
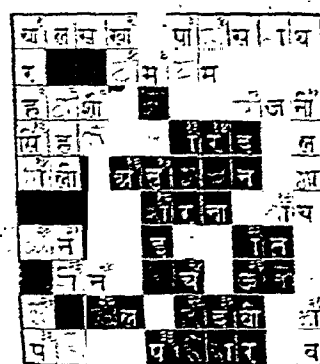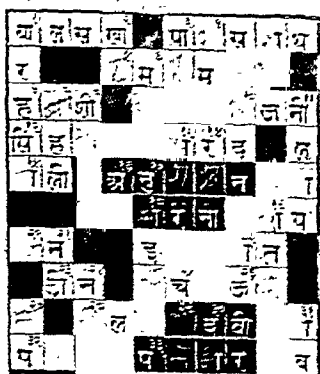
ऊपर से नीचे

१—एक जानवर जो अपने सुन्दर सींगों के लिए मशहूर है। २—चारपाई। ३—रेशम। ४—यह मत कर उलटा हो गया। ६—जिससे यह नहीं मिलता उसके साथ कैसे रहा जाय? ८—बहुसड़िया। ९—स्वभाव की जाँच इसी से होती है। १०—इसकी सफ़ाई का स्वास्थ्य से गहरा सम्बन्ध है। ११—भूरे रंग का एक हिरन जो गाय के बराबर होता है। १३—यात्रा के समय यात्री इसका लोग बहुत बचाव करते हैं। १४—साधुओं का यह उनकी सच्ची लगन का परिचय देता है। १७—प्रदर्शनी। १९—इसे पृथ्वी पर गिरा हुआ पानी पसन्द नहीं है। २१—बाढ़ के समय इसके किनारे के गाँवों के बह जाने का डर बना रहता है। २२—ज्यादा खानेवाले लड़के प्रायः इसी नाम से पुकारे जाते हैं। २४—इनका बढ़ना स्वास्थ्य के लिए हितकर नहीं है। २५—यह भी कभी-कभी मीठा लगता है। २७—बिना इसके मुक्ति नहीं मिलती। ३०—आज-कल के युवक प्रायः इसी की तलाश में रहते हैं। ३१—सदीं के दिनों में प्रायः दूकानदार इसे बढ़ा देते हैं।

वर्ग नं० ४१ की शुद्ध पूर्ति

वर्ग नम्बर ४१ की शुद्ध पूर्ति जो बन्द लिफ़ाफ़े में मुहर लगाकर रख दी गई थी, यहाँ दी जाती है।

वर्ग नं० ४१ (जाँच का फ़ार्म)

मैंने सरस्वती में छपे वर्ग नं० ४१ के आपके उत्तर से अपना उत्तर मिलाया। मेरी पूर्ति

नं०...में { कोई अशुद्धि नहीं है।
१,२,३ अशुद्धियाँ हैं।

मेरी पूर्ति पर जो पारितोषिक मिला हो उसे तुरन्त भेजिए। मैं १) जाँच की फ़ीस भेज रहा हूँ।

हस्ताक्षर ____________________

पता ____________________

____

नोट—जो पुरस्कार आपकी पूर्ति के अनुसार होगा वह फिर से बँटेगा और फ़ीस लौटा दी जायगी। पर यदि पूर्ति ठीक न निकली तो फ़ीस नहीं लौटाई जायगी। जो समझें कि उनका नाम ठीक जगह पर छपा है उन्हें इस फ़ार्म के भेजने की ज़रूरत नहीं। यह फ़ार्म १५ जनवरी के बाद नहीं लिया जायगा।

इसे काटकर लिफ़ाफ़े पर चिपका दीजिए।

मैनेजर वर्ग नं० ४२

इंडियन प्रेस, लि०,

इलाहाबाद

मुफ़्त कूपन की नक़ल यहाँ कीजिए।

वा	ल	स	खा		पा	[illegible]	स	[illegible]ा	थ
र			[illegible]	म	ट	म			
ह	[illegible]	शी		[illegible]			[illegible]	ज	नीं
सिं	ह	[illegible]			[illegible]ा	र	द		ल
गा	ली		अ	नु	[illegible]	म	न		गा
				[illegible]ा	र	ना		[illegible]ा	य
[illegible]	न			इ			[illegible]ा	त	
	दी	न		[illegible]	च		ऊ	[illegible]	
[illegible]		स	ल		प	द	वी		भा
प				प	[illegible]	[illegible]ा	र		व

बिन्दीदार लाइन पर काटिए

वर्ग नं० ४२ मुफ़्त कूपन पूर्ति नं०...

इस लाइन से काटिए

वर्ग नं० ४२ पूर्ति नं०... फ़ीस ||)
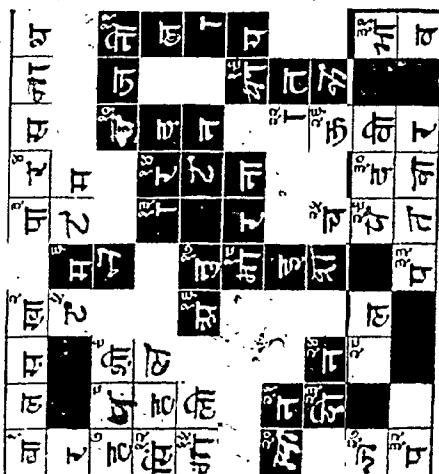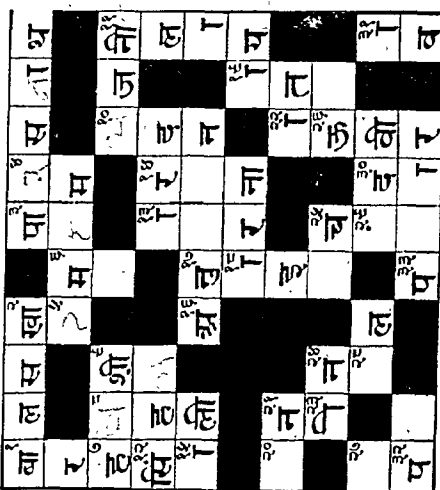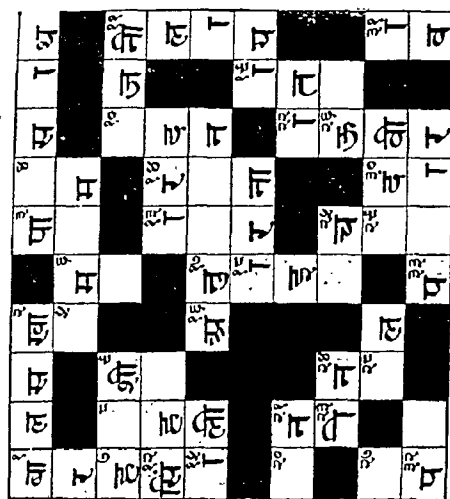
वर्ग नं० ४२ पूर्ति नं०... फ़ीस ||)

रिक्त कोष्ठों के अक्षर मात्रारहित और पूर्ण हैं।

पता

पो० आ०, म० आ०-रसीद या शुल्क-प्रवेश-पत्र नं०..........

नोट—ये तीनों कूपन यहाँ एक साथ केवल एक व्यक्ति के भरने के लिए दिये जा रहे हैं। तीनों कूपनों को एक साथ काट कर भेजना चाहिए। जो एक कूपन भेजना चाहे वे दो को भी छोड़ दें। जो दो भेजें उन्हें तीसरे कूपन की फ़ीस न देनी पड़ेगी। यानी वे १) में तीनों कूपन भेज सकेंगे।

अन्य आवश्यक सूचनायें—

(१) पाठक देखेंगे कि एक कूपन में एक नाम से अधिक भरने की गुंजाइश नहीं है परन्तु प्रत्येक कूपन में ऐसी सुविधा की गई है कि वर्ग नं०, ४२ की तीन पूर्तियाँ एक-साथ भेजी जा सकेंगी। दो आठ-आठ आने की और तीसरी मुफ्त। मुफ्त पूर्ति सिर्फ उन्हीं की स्वीकार की जायगी जो दो पूर्तियों के लिए १) भेजेंगे। और तीनों पूर्तियाँ एक ही नाम से भेजेंगे। एक पूर्ति भेजनेवाले को भी पूरा कूपन काट कर भेजना चाहिए और दो खाने खाली छोड़ देने चाहिए। अन्यथा उनकी पूर्ति स्वीकार न की जायगी।

(२) स्थानीय पूर्तियाँ 'सरस्वती-प्रतियोगिता-बक्स' में जो कार्यालय के सामने रक्खा गया है, दिन में दस और पाँच के बीच में डाली जा सकती हैं।

(३) वर्ग नम्बर ४२ का नतीजा जो बन्द लिफाफे में मुहर लगाकर रख दिया गया है, ता० २९ जनवरी सन् १९४० को सरस्वती-सम्पादकीय विभाग में शाम को ४-५ बजे के बीच में सर्वसाधारण के सामने खोला जायगा। उस समय जो सज्जन चाहें स्वयं उपस्थित होकर उसे देख सकते हैं।

(४) नियमों का पालन पूर्ति भेजने की खास शर्त है। यदि कोई पूर्ति देर से पहुँचे या खो जाय तो कार्यालय उसके लिए उत्तरदायी नहीं है। इस सम्बन्ध में किसी प्रकार का कोई उत्तर न दिया जायगा।

(५) पहेली की फ़ीस जो प्रतियोगी इंडियन प्रेस के 'प्रवेश-शुल्क-पत्रों' के रूप में भेजते हैं उन्हें जान लेना चाहिए कि ये प्रवेश-शुल्क-पत्र जिस व्यक्ति के नाम से लिये जायँ, वही उनका उपयोग कर सकता है। जो प्रतियोगी दूसरे के नाम से लिये गये शुल्क-पत्र अपने कूपन के साथ भेजेगा उसकी पूर्ति अनियमित ठहराई जायगी।

विशेष-सूचना

जिन प्रतियोगियों के पास 'सरस्वती' की वर्ग-प्रतियोगिता के "प्रवेश-शुल्क पत्र" हों, उन्हें चाहिए कि वे फ़रवरी १९४० की पूर्ति तक उन्हें काम में ले लें। इसके बाद वे रद्दी कर दिये जायँगे। जो अपने प्रवेश-शुल्क-पत्रों को काम में न लाना चाहें वे उन्हें हमारे पास वापस भेज कर अपने दाम वापस मँगा लें। इसकी मियाद फ़रवरी के अन्त तक है। इसके बाद किसी का दावा स्वीकार न किया जायगा।

भूल-सुधार

वर्ग नं० ४० के पुरस्कार-विजेताओं में श्रीयुत मार्कण्डेय वाजपेयी, नया कटरा, प्रयाग का नाम भूल से २ बार छप गया है—एक बार प्रथम पुरस्कार-विजेताओं में और दूसरी बार तृतीय पुरस्कार-विजेताओं में। सरस्वती वर्ग-प्रतियोगिता के नियम नं० १ के अनुसार एक व्यक्ति एक ही इनाम का हकदार हो सकता है। इसलिए उपर्युक्त कूपन पर केवल एक इनाम, प्रथम पुरस्कारवाला ही मिलेगा।

योरप की संकटपूर्ण अवस्था

अब योरप पहले का योरप नहीं रहा। उसकी सभ्यता की सारी क़लई खुल गई है, जिसके साथ ही उसकी व्यवस्था एवं सुश्रृंखलता का भी विनाश हो गया है। वहाँ के शक्तिशाली राष्ट्र 'सन्तुष्ट नराधिप' बने रहकर भारत के प्राचीन काल के ब्राह्मणों के आदर्श को अपनाना नहीं चाहते, किन्तु वे भी संसार में अपने पैर फैलाने को उतावले हो उठे हैं। ऐसे राष्ट्र इटली, जर्मनी और रूस हैं। अभी तक इटली और जर्मनी ही अपनी अपनी मनमानी का नंगा नाच दिखला रहे थे। परन्तु इधर पोलैंड पर जर्मनी के चढ़ाई करने के बाद से इटली अलग होकर बैठ गया है और रूस ने आगे आकर उसके अभाव की पूर्ति कर दी है। जर्मनी की अनीतिमूलक चढ़ाई के फलस्वरूप ब्रिटन और फ़्रांस को उसके विरुद्ध युद्ध की घोषणा करके अस्त्र ग्रहण करना पड़ा है और वे इस समय जर्मनी से लड़ भी रहे हैं। इस अवस्था से लाभ उठाने के लिए रूस ने अपना असली रूप प्रकट किया है। जब उसने देखा कि जर्मनी पोलैंड को हड़पे जा रहा है तब उसने अपनी सेना भेजकर उसके उस भाग पर अधिकार कर लिया जो एक समय रूस के साम्राज्य के अन्तर्गत था। इसके बाद उसने बाल्टिक के राज्यों को अपने प्रभाव में लाने के लिए अपना उग्र रूप प्रकट किया। फलतः लेटेविया, इस्थोनिया और लीथआनिया ने उसकी शर्तें स्वीकार कर लीं और वे एक प्रकार से उसकी संरक्षा में हो गये। परन्तु फ़िनलैंड ने उसकी शर्तें नहीं मानीं और अब रूस की फ़ौजें उसका उसी प्रकार संहार करने में लगी हुई हैं, जैसे अभी कुछ दिन पहले जर्मनी की फ़ौजें पोलैंड का कर चुकी हैं। इस प्रकार रूस के इस रूप में प्रकट होने से योरप की संकटपूर्ण राजनैतिक अवस्था जटिल से जटिलतर हो गई है। फ़िनलैंड को भी पोलैंड के घाट उतरना पड़ेगा, क्योंकि उसकी क्रियात्मक सहायता करने को आगे आता कोई भी दिखाई नहीं दे रहा है। यह ज़रूर है कि इस अत्याचार की नीति के विरोधी राष्ट्र रूस की उसके इस अनाचार की कड़े से कड़े शब्दों में निन्दा कर और सहायता देने को भी कह रहे हैं। परन्तु उनकी इस कार्रवाई से क्या फ़िनलैंड की रक्षा होगी? और फ़िनलैंड के विनाश के बाद क्या होगा? सबसे विकट प्रश्न तो यही है। लोगों का अनुमान है कि बाल्टिक में अपनी स्थिति को मज़बूत करके रूस अपना ध्यान काले सागर की ओर लगायेगा। उसे डर है कि दरें दानियाल के उसके अधिकार में न रहने से उस दिशा में वह अरक्षित है। और चूँकि तुर्कों से इस सम्बन्ध में उसका समझौता नहीं हो सका है, अतएव उसकी अगली कार्रवाई उसी दिशा में होगी। इसी से कुछ लोग यह भी कह रहे हैं कि इसी उद्देश्य की सिद्धि के लिए वह रूमानिया से अपना बेसेबेरिया प्रदेश माँगेगा। अर्थात् बेसेबेरिया लेने के बहाने वह रूमानिया पर चढ़ाई करेगा। कहा जाता है कि इस संघर्ष में उसे जर्मनी के सिवा हंगरी और बल्गेरिया की भी सहायता मिलेगी। और उस दशा में ब्रिटेन और फ़्रांस तुर्कों के साथ इस संघर्ष में, रूमानिया की रक्षा के लिए वचन-बद्ध होने के कारण, शामिल होने को बाध्य होंगे। इस प्रकार योरप का वर्तमान युद्ध 'योरपीय महायुद्ध' का भयावह रूप धारण कर जायगा। परन्तु अभी यह अनुमान भर है। कोई निश्चयपूर्वक नहीं कह सकता है कि आगे क्या होगा। परन्तु इतना तो स्पष्ट ही है कि रूस के इस नये रूप ने योरप की बिगड़ी हुई अवस्था को बुरी तरह बिगाड़ दिया है, यहाँ तक कि उसके सँभलने या सँभालने के लक्षण भी नहीं दिखाई दे रहे हैं।

कांग्रेस की माँग

योरप में जिस तरह ब्रिटेन और फ़्रांस का जर्मनी से वातों का युद्ध छिड़ा हुआ है, वैसे ही हमारे देश में कांग्रेस का ब्रिटिश सरकार से युद्ध छिड़ गया है। आठों प्रान्तों से

अपने मन्त्रियों से इस्तीफ़ा दिलाकर कांग्रेस ने ब्रिटिश सरकार से यह माँग की है कि अब यह बात तय हो हो जानी चाहिए कि भारतीय राष्ट्र की अँगरेज़ी साम्राज्य में क्या स्थिति रहेगी। इसके लिए उसने सरकार से विधान बनाने के लिए भारतीय प्रतिनिधियों का एक सम्मेलन कराने की माँग की है। कांग्रेस चाहती है कि भारत का लोकसम्मत शासन-विधान बनाने के लिए एक लोक-सभा का अधिवेशन किया जाय। इस सभा के प्रतिनिधियों का चुनाव देश के प्रत्येक बालिग़ वोटर के वोट से हो। इस प्रकार चुने गये प्रतिनिधियों से उक्त लोक-सभा का संगठन हो और उसे भारत का शासन-विधान बनाने का अधिकार दिया जाय। रहीं अल्पसंख्यक जातियाँ, सो उनका सन्देह दूर करने के लिए उनको इस सभा में विशेष प्रतिनिधित्व दिया जाय और उनके प्रतिनिधियों की इच्छा के विरुद्ध एक भी नियम उक्त सभा न बनावे और इस प्रकार भारत के लिए एक सर्वसम्मत लोकप्रिय शासन विधान तैयार करे जिसे ब्रिटिश सरकार उदारतापूर्वक तत्काल स्वीकार करके उसका देश में प्रवर्तन कर दे।

ऐसी लोक-सभा की यह माँग अँगरेज़ी सरकार के लिए कोई नई बात नहीं है। स्वयं ब्रिटिश साम्राज्य में ऐसी सभायें समय समय पर संगठित हुई हैं। दक्षिण-अफ़्रीका, कनाडा और आस्ट्रेलिया ब्रिटिश साम्राज्य के अन्तर्गत हैं और वे आज 'डोमीनियन' पद का सुख भोग रहे हैं, जिसका विधान बनाने के लिए विधान निर्माण करनेवाली सभायें ही संगठित की गई थीं।

कनाडा में ब्रिटिश और फ्रेंच जन-संख्या के कारण कठिनाई उपस्थित हुई थी, तो भी सन् १८४० में सभी जातियों के प्रतिनिधियों का एक सम्मेलन हुआ। इस सम्मेलन में जो ७२ प्रस्ताव स्वीकृत हुए उनके आधार पर अधिकारों की माँग की गई, और ब्रिटेन को स्वीकार करना पड़ा। सन् १९०० में आस्ट्रेलिया में भी विधान बनानेवाली सभा की रचना हुई थी। सभी दलों के प्रतिनिधियों ने एकमत होकर विधान बनाया और ब्रिटिश पार्लियामेंट को उसे स्वीकार करना पड़ा। इसी प्रकार दक्षिण-अफ़्रीका में अँगरेज़ और डचों में भेदभाव था और एकता न हो पाती थी। १९०८ में एक सम्मेलन हुआ, जिसमें सभी दलों के प्रतिनिधि सम्मिलित हुए। जो विधान प्रतिनिधियों ने बनाया वह १९०९ में स्वीकार किया गया। इसी प्रकार आयरलैंड में विधान बनानेवाली सभा १९२१ में बुलाई गई, और आयरलैंड को स्वतन्त्रता मिली।

कांग्रेस की यह माँग तो पहले से ही है कि भारत का शासन-विधान बनाने का अधिकार एकमात्र भारतीयों को है। परन्तु अब वह समय वास्तव में आ गया है कि ब्रिटिश सरकार उसकी इस माँग को जल्दी से जल्दी पूर्ण कर दे। खेद की बात है कि ब्रिटिश सरकार के प्रधान मन्त्री मिस्टर नेवाइल चैम्बरलेन ने कांग्रेस की इस महत्त्वपूर्ण माँग को अव्यावहारिक कहकर अस्वीकृत कर दिया है। उनका कहना है कि अँगरेज़ सदियों से भारत के शासक रहे हैं, अतएव वे उसके शासन-विधान की रचना से उदासीन कैसे हो सकते हैं। चैम्बरलेन साहब की अस्वीकृति का यह अर्थ है कि अँगरेज़ों के तथा उनके भारतीय मित्रों के भारत में अपने अपने हित जुदा जुदा हैं, जिन्हें वे भारत के प्रतिनिधियों के हवाले कर देने को तैयार नहीं हैं। चाहे जो हो, इस बार कांग्रेस की माँग की उपेक्षा नहीं की जा सकेगी, क्योंकि स्वयं ब्रिटेन में ही अनेक लोग उसकी माँग का समर्थन कर रहे हैं और वहाँ के 'टाइम्स' आदि सरकार के पक्ष के पत्र कांग्रेस की माँग का, अल्पसंख्यकों की बात को आगे लाकर, जो विरोध कर रहे हैं उसका भी वहीं के लोग तथा पत्र उपयुक्त दलीलें दे देकर खंडन भी कर रहे हैं। इससे प्रकट होता है कि ब्रिटिश सरकार को इस बार कांग्रेस की माँग स्वीकार करनी पड़ेगी और निकट भविष्य में ही विधान बनानेवाला सम्मेलन कराना पड़ेगा। इसमें सन्देह नहीं कि ब्रिटिश सरकार के कांग्रेस की माँग को स्वीकार करते ही सारा राष्ट्रीय भारत ब्रिटिश सरकार से सहयोग करने में फिर आगा-पीछा न करेगा, जिसका यह अर्थ होगा कि ब्रिटिश सरकार के बल की असाधारण रूप से वृद्धि हो जायगी और तब एक क्या, लाखों जर्मनी उसके आगे न ठहर सकेंगे।

और इतना ही नहीं, कांग्रेस की इस माँग की पूर्ति हो जाने से भारत की प्रायः सभी समस्याओं की मीमांसा हो जायगी। इस सम्मेलन के सफलतापूर्वक हो जाने पर यहाँ की दारुण साम्प्रदायिक समस्याओं का भी हल

निकल आयगा। एक यह भी कारण है जिससे कांग्रेस अपना सारा ज़ोर इस माँग की पूर्ति पर लगा रही है। और यही कारण है कि वह ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध सत्याग्रह-आन्दोलन भी छेड़ना नहीं चाह रही है—केवल समझौते-द्वारा ही अपने उद्देश्य की पूर्ति का प्रयत्न कर रही है। भगवान् करे, कांग्रेस अपने इस प्रयत्न में सफल हो।

जिन्ना साहब और भारतीय राजनीति

मिस्टर जिन्ना आज मुसलमानों के एकमात्र प्रतिनिधि होने का दावा कर रहे हैं, यद्यपि वे यह बात खुद जानते हैं कि उनका यह दावा ग़लत है। हाँ, वे मुसलमानों के स्वयम्भू नेता ज़रूर हैं और उसी से वे कांग्रेस से मुसलमानों के नाम पर अकारण झगड़ रहे हैं। अकारण हम इसलिए कह रहे हैं कि कांग्रेस बार बार कह चुकी है कि भारत में अल्पसंख्यकों के धर्म, संस्कृति और भाषा आदि बातों की पूर्णरूप से रक्षा की जायगी। यही नहीं, पिछले दिनों जब आठ प्रान्तों का शासन-प्रबन्ध उसके हाथों में आ गया था तब कांग्रेसी मन्त्रि-मंडलों ने उन प्रान्तों में हिन्दुओं के हक़ों की उपेक्षा करके मुसलमानों के कहे जानेवाले हकों की बेजा तौर से रक्षा की थी। परन्तु जिन्ना साहब सन्तुष्ट नहीं हैं और वे मुसलमानों का हित कांग्रेस को कोसने में ही समझ रहे हैं। उनके इस मनोभाव का कारण यह है कि कांग्रेस ने उनकी मुस्लिम लीग को भारत के सारे मुसलमानों की एकमात्र प्रतिनिधि संस्था मानने से इनकार कर दिया है। ऐसी दशा में उनका कांग्रेस से चिढ़ जाना सर्वथा स्वाभाविक है। और फिर जब वे यह देख रहे हैं कि ब्रिटिश सरकार कांग्रेस से युद्ध के मसले पर असन्तुष्ट हो गई है तब उसके होकर बोलने में वे अपनी लीग के लिए हितकर समझते हों तो इसमें कोई आश्चर्य नहीं है। वास्तव में यही दो बातें हैं जिनके कारण वे मनाये जाने पर भी नहीं मान रहे हैं और दिन-दोपहर लोगों की आँखों में धूल झोंकने के काम में संलग्न हैं। जो कांग्रेस बहुसंख्यक हिन्दुओं के हितों को दबाकर प्रत्येक क्षेत्र में मुसलमानों को सन्तुष्ट करने को अपनी न्यायतुला तक झुका देने में कभी नहीं हिचकी है उसी को मुसलमानों के हितों का विघातक घोषित करना लोगों की आँखों में धूल झोंकना नहीं तो और क्या है? दुःख तो यह है कि महात्मा गांधी अपनी साधुता के कारण मुस्लिम लीग को भी अपने साथ रखना चाहते हैं, यद्यपि उनके साथ मुसलमानों की और सभी संस्थायें हैं। महात्मा जी के इस सद्भाव का आदर करते हुए हम तो यही निवेदन करेंगे कि अब वह समय आ गया है जब कांग्रेस को मुस्लिम लीग की उपेक्षा करके शेष सारी मुस्लिम संस्थाओं को अपने साथ लेकर आगे आना चाहिए। इस बात के करने से लीग की ओर से हिंसा का भय हो सकता है, परन्तु गांधी जी की अहिंसा के प्रताप से कांग्रेस उस संकट को पार कर जायगी, साथ ही अपने उद्देश्य की भी पूर्ति कर लेगी। मुस्लिमलीग का मोह छोड़ते ही कांग्रेस के साथ इतने अधिक मुसलमान हो जायँगे कि उनके आगे मुस्लिम लीग अपने आप लघु से लघुतर दिखाई देने लगेगी। ज़रूरत सिर्फ़ दृढ़ता के साथ आगे बढ़ने की है। और इसके लिए यही उपयुक्त समय है। कांग्रेस को एकता का एक सम्मेलन करना चाहिए और मुसलमानों तथा हरिजनों को बुलाकर उनके साथ उसे ऐसा समझौता करना चाहिए जिससे साम्प्रदायिक समस्या सदा के लिए मिट जाय।

फ़िनलैंड पर रूस का आक्रमण

पोलैंड की तरह योरपीय महायुद्ध के बाद फ़िनलैंड भी स्वतंत्र हुआ था। उसके पहले वह रूस-साम्राज्य का एक प्रदेश मात्र था। रूस का उस पर सन् १८०९ में अधिकार हुआ था। उसके पहले वह स्वीडन के अधिकार में था। परन्तु गत महायुद्ध में उसे स्वाधीन हो जाने का अवसर मिल गया और गत बीस वर्ष से वह स्वतन्त्र है तथा अपना शासन-प्रबन्ध सुचारुरूप से करता आ रहा है। परन्तु अब ऐसा प्रत्यक्ष दिखाई दे रहा है कि योरप के नये स्वाधीन राज्य अधिक समय तक स्वाधीनता की साँस नहीं ले पायेंगे। पोलैंड की हत्या जर्मनी कर ही चुका है। वही गति रूस फ़िनलैंड की कर रहा है। रूस चाहता था कि फ़िनलैंड अपने देश का वह भूखण्ड रूस को दे दे जो लेनिनग्राड के

समीप है तथा अपने कुछ द्वीपों पर उसे अपने जहाज़ी अड्डे भी क़ायम करने दे। परन्तु फ़िनलैंड उसकी माँगों की पूर्ति करने को तैयार नहीं हुआ। फलतः रूस ने उस पर धावा बोल दिया। यद्यपि पोलों की तरह फ़िनलैंड के निवासी भी आक्रमणकारी का पद-पद पर दृढ़ता से सामना कर रहे हैं, परन्तु वे अधिक समय तक रूस के आगे नहीं ठहर सकेंगे, यह एक प्रकट बात है। उसकी भी वही दशा होगी जो अभी अभी पोलैंड की हुई है। रूस के इस अनाचार की सारे जगत् में निन्दा हो रही है और राष्ट्र-संघ ने अपनी बैठक करके उसकी स्पष्ट शब्दों में निन्दा की है एवं उसकी सहायता करने का भी आदेश किया है। परन्तु राष्ट्र-संघ फ़िनलैंड की रक्षा नहीं कर सकेगा और कुछ ही दिनों में उसकी स्वाधीनता का अपहरण हो जायगा। इस समय योरप में ऐसी ही धींगा-धींगी मची हुई है। वहाँ के किसी भी छोटे राज्य का कुशल नहीं दिखाई दे रहा है।

किसानों का क़ानून

संयुक्त-प्रान्त के किसानों के एक वर्ग को कांग्रेसी सरकार की बदौलत उनका नैसर्गिक स्वत्व प्राप्त हो गया। अपने कार्य-काल में उसने पट्टेदार किसानों के लिए जो क़ानून बनाया था और जिसे वह असेम्बली और कौंसिल में बड़ी मुश्किल से पास करवा पाई थी उस पर प्रान्त के गवर्नर की मंज़ूरी मिल गई। सर हेरीहेग ने अपने उच्च पद से अवसर ग्रहण करते समय उस पर हस्ताक्षर कर दिये और अब उसे क़ानून का रूप प्राप्त हो गया है। अपने इस कार्य से सर हेरीहेग ने इस प्रान्त में अपना नाम अमर कर लिया है और यहाँ के ग़रीब किसान उनकी सदा मंगल-कामना करते रहेंगे। इस क़ानून के पास हो जाने से इस प्रान्त के सभी होन-ह्यानी काश्तकारों को अपनी जोत की ज़मीन पर मौरूसी हक़ प्राप्त हो गया है, जो वास्तव में एक बहुत बड़ी बात है। इससे यहाँ के पद-दलित किसानों का वर्ग अब सुख की साँस ले सकेगा। अपने कार्यकाल में कांग्रेसी सरकार ने अपना जो यह कर्तव्य-पालन किया है उसे हम जैसे लोग तो महान् पुण्य-कार्य ही कहेंगे और यही चाहेंगे कि वह पुनः पद-ग्रहण कर इसी प्रकार लोक-सेवा के पुण्य-कार्य में अग्रसर हो।

साहित्य-निर्माण की योजना

हिन्दी का प्रचार-कार्य वर्षों से हो रहा है और महात्मा गांधी के इस ओर ध्यान देने से उसने ख़ासा व्यवस्थित रूप धारण कर लिया है। अतएव अब आवश्य-कता इस बात की है कि हिन्दी-साहित्य के निर्माण का कार्य हाथ में लिया जाय। इस सम्बन्ध में हिन्दी के प्रसिद्ध लेखक बाबू कालिदास कपूर एम० ए० ने एक लेख लिखा है, जो 'सरस्वती' के इसी अंक में छपा है। सम्मेलन के अध्यक्ष-पद से काशी में उसके सभापति श्रीमान् वाजपेयी जी ने जो भाषण किया था उसमें भी उन्होंने साहित्य-निर्माण की बात पर ज़ोर दिया था और अपनी एक योजना भी बताई थी। वाजपेयी जी कहते हैं—

मैंने सम्मेलन की उन्नति के उपायों पर बहुत विचार कर एक कार्यक्रम बनाया है। हमारे कई मित्र दशवर्षीय योजना की बात सोच रहे हैं, जिससे मेरी सहानुभूति है। उन्हें अपनी योजना सम्मेलन में रखनी चाहिए। उसके कार्य में परिणत होने से मुझे बड़ी प्रसन्नता होगी। मैंने जो सोचा है वह इस प्रकार है—

१—हिन्दी-भाषी नामी विद्वानों से जो अपने विषय के विशेषज्ञ हों, प्रार्थना की जाय कि वे अगले सम्मेलन से कम से कम ३ मास पहले एक ग्रन्थ सम्मेलन को भेंट करें। ऐसे मौलिक ग्रन्थों की संख्या १० से कम न हो। ये ग्रन्थ, सम्मेलन प्रकाशित करे और यदि सम्भव हो तो सम्मेलन की परीक्षाओं में पाठ्य पुस्तक नियत किये जायँ।

२—मंगलाप्रसाद-पारितोषिक उन्हीं ग्रन्थों पर दिया जाय जो सम्मेलन की तिथि से १५ महीने के अन्दर प्रकाशित हुए हों।

३—योग्य विद्वानों से विविध विषयों के कम से कम दस ग्रन्थों का भाषान्तर कराया जाय।

४—इँग्लिश-हिन्दी-डिक्शनरी तैयार कराई जाय, जिसमें वर्तमान अँगरेज़ी के संयुक्त होनेवाले शब्द भी आ जायँ। इसमें बँगला, मराठी, गुजराती, नैपाली, पंजाबी,

उर्दू आदि भाषाओं की डिक्शनरियों से भी सहायता ली जाय। ऐसी डिक्शनरी की आवश्यकता पर मतभेद नहीं हो सकता।

५—हिन्दी के इतिहास का शोध कराया जाय। अभी तक जो इतिहास निकले हैं वे अधूरे हैं। गद्य के इतिहास में फ़ोर्ट विलियम कालेज जनरल से अच्छी सहायता मिल सकती है।

६—हिन्दी के प्राचीन ग्रन्थ पढ़ाने की योग्यता रखनेवालों का पता लगाया जाय और उनकी सहायता से उनके सभाष्य संस्करण प्रकाशित किये जायँ।

७—हिन्दी की प्राचीन कविता डिंगल और पिंगल दोनों के ज्ञाता खोज खोजकर शिक्षाकार्य में नियुक्त किये जायँ।

८—हिन्दी के पठन-पाठन की जो व्यवस्था शिक्षालयों वा विश्व-विद्यालयों में है, उसकी जानकारी प्राप्त की जाय और यदि कहीं त्रुटियाँ हों तो उन्हें दूर कराने का प्रयत्न किया जाय। कलकत्ते के स्कूल-कालेजों में हिन्दी-शिक्षा की ओर विशेष ध्यान नहीं दिया जाता, जिसके फलस्वरूप बी० ए० के बहुत कम परीक्षार्थी शुद्ध भाषा लिख पाते हैं। इस अवस्था को सुधारने की अत्यन्त आवश्यकता है।

९—हिन्दी के ग्रन्थों की सूची बनाई जाय, जिसमें (अ) पुस्तक का नाम, (आ) लेखक का नाम, (इ) विषय, (ई) रचना-काल, (उ) मुद्रित या हस्त-लिखित, (ऊ) कहाँ से मिली, (ए) प्रतियाँ मिल सकती हैं तो मिलने का ठिकाना और (ऐ) दाम लिखे हों। लागतमात्र पर यह सूची बेची जाय।

१०—एक विद्वत्-परिषद् बनाई जाय, जो समय समय पर हिन्दी-भाषा, वर्णन (spelling या हिज्जे) आदि के सम्बन्ध में विचार किया करे और जिसका निर्णय अन्तिम हो तथा जिसका आधार वोटों की अपेक्षा तर्क हो।

वाजपेयी जी ने जो सोचा है उसमें भी साहित्य-निर्माण की बात आई है। अतएव आवश्यकता इस बात की है कि सम्मेलन इस विषय पर समुचित रूप से ध्यान दे और साहित्य-निर्माण की अपनी एक योजना बनाकर उसके अनुसार साहित्य-निर्माण का कार्य प्रारम्भ कर दे। इससे दो लाभ होंगे। एक तो सम्मेलन को आर्थिक लाभ होगा, दूसरे आवश्यक साहित्य का निर्माण भी हो जायगा।

सक्खर में हिन्दुओं पर अत्याचार

सिन्ध-प्रान्त के सक्खर नगर में मंज़िलगाह नाम की एक शाही इमारत के प्रश्न पर वहाँ जो अचिन्त्य घटना घटित हो गई है वह ध्यान देने योग्य है। उस इमारत को लेकर सक्खर के मुसलमानों का वहाँ की पुलिस से संघर्ष हो गया, जिसके परिणामस्वरूप दंगा-फ़साद हो जाने पर वहाँ के हिन्दू नागरिक बुरी तरह मारे और पीटे गये तथा उनकी सम्पत्ति लूटी और फूँकी गई वह सब कथा वहाँ के हिन्दुओं की दयनीय अवस्था का तो द्योतक है ही, साथ ही यह भी उससे सूचित होता है कि ये स्वराज्य सरकारें ऐसे अवसरों पर कुछ भी कर-धर नहीं पाती हैं और गुण्डे तथा सबल लोग निरीह प्रजा-वर्ग को बुरी तरह सताते हैं। सक्खर की उपर्युक्त दुर्घटना हमारे कथन का ताज़ा उदाहरण है। उक्त शाही इमारत का झगड़ा सन् १९२६ से चल रहा है। मुसलमान कहते हैं कि वह मस्जिद है। परन्तु सरकार ने उनके दावे को कभी नहीं स्वीकार किया। आख़िर को इस वर्ष उन्होंने उस पर बलपूर्वक अधिकार कर लिया। इस पर वहाँ की पुलिस से उनका संघर्ष हो गया। सरकार से तो भिड़ न सके, माथे गई हिन्दुओं के। २० नवम्बर को जो उपद्रव शुरू हुआ उसमें सक्खर के जो हिन्दू मारे पीटे गये सो तो गये ही, देहातों में भी उनकी बड़ी ही दुर्गति हुई। कहाँ कितने हिन्दू मारे गये तथा उनकी सम्पत्ति की कितनी क्षति हुई, इसका विवरण जब वहाँ की सरकार प्रकाशित करेगी तभी ज्ञात हो सकेगा। परन्तु यह तो कहा ही जायगा कि यह दुर्घटना बहुत ही लज्जाजनक है।

आचार्य रामदेव जी का स्वर्गवास

आर्यसमाज के प्रतिष्ठित नेता और विद्वान् आचार्य रामदेव जी अब इस संसार में नहीं रहे। गत ९ दिसम्बर को प्रातःकाल ५॥ बजे देहरादून में उनका देहान्त हो गया।

आचार्य जी उत्तर-भारत के प्रमुख शिक्षा-शास्त्रियों में थे। वैदिक शिक्षा-प्रणाली के अनुसार अधिक-से-अधिक व्यक्तियों को शिक्षित करना उनका जीवन भर ध्येय रहा। स्वामी श्रद्धानन्द ने जब कांगड़ी के गुरुकुल की नींव डाली थी, उसी समय से वे स्वामी जी के प्रमुख सहायक व दाहने हाथ रहे थे। गुरुकुल के मुख्याधिष्ठाता रहते हुए उन्होंने उस संस्था के संचालन व वैदिक संस्कृति व सभ्यता के प्रचार में जो कार्य किया वह कई दृष्टियों से बहुत महत्त्वपूर्ण है। उनकी सुव्यवस्था व अथक परिश्रम ने गुरुकुल को स्थायी बनाने में बहुत कुछ योग दिया। ३५ वर्ष तक उस संस्था के संचालक बने रहने के पश्चात् उनका ध्यान आर्य-कन्याओं की शिक्षा-दीक्षा की ओर गया और उसके लिए उन्होंने १९२६ में दिल्ली में कन्या-गुरुकुल की स्थापना की। बाद में कुछ विशेष सुविधायें देखकर वे इस संस्था को देहरादून उठा ले गये और अपने जीवन के अन्तिम समय तक उसके प्रबन्ध में लगे रहे।

आचार्य जी में राष्ट्रीयता कूट-कूट कर भरी थी। १९३० के आन्दोलन में वे पंजाब के डिक्टेटर की हैसियत से जेल भी गये थे।

गुरुकुल (कांगड़ी) और कन्या-गुरुकुल (देहरादून) जैसी संस्थाओं के निर्माण व संचालन के अतिरिक्त हिन्दी की भी आचार्य जी ने काफ़ी सेवा की है। उनकी पुस्तकों में 'भारतवर्ष का इतिहास' अधिक प्रसिद्ध है। दर्शनशास्त्र पर भी उन्होंने बहुत कुछ लिखा है। देहावसान के समय उनकी अवस्था ६३ वर्ष की थी। वे अपने पीछे २ पुत्र व ४ लड़कियाँ छोड़ गये हैं। दोनों लड़के गुरुकुल (कांगड़ी) के संचालक हैं। आचार्य जी के निधन से आर्य-समाज और गुरुकुल को जो क्षति हुई है उसकी पूर्ति होनी कठिन है। परिवारवालों के साथ संवेदना प्रकट करते हुए हम आचार्य जी की आत्मा की सद्गति के लिए ईश्वर से प्रार्थी हैं।

हिन्दी का संकट और हमारे होनहार हिन्दी प्रेमी

हिन्दी पर 'हिन्दुस्तानी' एवं 'लिपि-सुधार' के रूप में जो महान् संकट आया है उसकी चर्चा पिछले डेढ़ वर्ष से 'सरस्वती' में बराबर होती रही है। परन्तु दुःख की बात है, हिन्दी के महारथियों ने इस ओर दृष्टिपात तक नहीं किया। बनारस के हिन्दी के एक प्रेमी पण्डित चन्द्रबली पाण्डेय अवश्य इस दिशा में ज़ोर से काम करते रहे। इधर हिन्दी के अनन्य प्रेमी तथा विद्वान् लेखक पण्डित वेंकटेश नारायण तिवारी का इस ओर ध्यान गया और उन्होंने अपने कुछ ही दिनों के प्रयत्न से हिन्दी के इस प्रश्न को एक जीवित प्रश्न बना दिया। काशी के सम्मेलन के अवसर पर उपर्युक्त प्रश्नों की जिस खूबी के साथ मीमांसा की गई है उसका सारा श्रेय एक मात्र तिवारी जी को ही है और इस महत्कार्य के लिए हमें उनका कृतज्ञ होना चाहिए। परन्तु यह सब कुछ करना तो दूर रहा, हिन्दी पर आये हुए संकट से बचाने का जो महान् दायित्व उन्होंने अपने ऊपर लिया उसमें उनकी सहायता करने के लिए आगे आना तो अलग रहा, उल्टा हमारे दो-चार बिहारी युवक उनको गालियाँ देने को तयार हो गये हैं, क्योंकि तिवारी जी ने अपने इस आन्दोलन में बिहार की हिन्दी का ही प्रश्न सबसे आगे रक्खा। हम सुना करते थे कि बंगाल की तरह बिहार में भी प्रान्तीयता की भावना ज़ोर पकड़ती जा रही है। परन्तु हम नहीं जानते थे कि वह यहाँ तक बढ़ गई है कि हिन्दी-भाषी होकर हमारे कुछ बिहारी-भाई हिन्दी के मामले में भी प्रान्तीयता की दुर्गन्ध फैलाने की चेष्टा करेंगे। ख़ैर, यह अपनी अपनी समझ की बात है। इस समय हिन्दी पर जो संकट आया है उससे उसे बचाने के लिए श्रद्धेय तिवारी जी ने जो क़दम उठाया है उसमें सभी हिन्दी-भाषी प्रान्तों के हिन्दी-प्रेमी उनका साथ दे रहे हैं। यदि हमारे दस-पाँच भाई उनका विरोध करना ही हिन्दी का हित समझते हैं तो हमें उनसे कुछ नहीं कहना है। परन्तु हम यहाँ यह निवेदन ज़रूर करेंगे कि हिन्दी के प्रश्न पर प्रान्तीयता का प्रश्न उठाना ठीक नहीं है। बिहार का मामला सबसे पहले इसलिए हाथ में लिया गया है कि वहाँ हिन्दुस्तानी अन्य प्रान्तों की अपेक्षा अधिक स्पष्ट रूप में सामने आ गई थी।

चर्म सम्बन्धी अनेक रोग जादू की तरह दूर हो जाते हैं

क्यूटीकूरा मरहम (Cuticura Ointment) की चर्म सम्बन्धी रोग दूर करने के विषय में कितनी भी कठिन परीक्षा क्यों न ली जाय किन्तु सदैव सफल होगा। पैर का कितना भी भयंकर फोड़ा क्यों न हो यानी आदमी लँगड़ा ही क्यों न हो गया हो किन्तु इससे अच्छा हो जाता है। क्यूटीकूरा (Cuticura) फोड़े के कृमि तथा जहर को जिससे फोड़ा बढ़ता रहता है नष्ट कर देता है। सड़ी हुई माँस को दूर कर देता है तथा घाव पर नया माँस तथा चमड़ा ले आकर अच्छा कर देता है।

जिनको चर्म सम्बन्धी कोई भी बीमारी हो उनको स्नान करते समय क्यूटीकरा साबुन (Cuticura Soap) इस्तेमाल करना चाहिये क्योंकि यह बहुत ही आरोग्यकारी तथा सुखदायक है।

खुजली, पपड़ी, फोड़ा, नासूर, अपरस, फोड़ा फुंसी, घाव अथवा बदन या शिर का कोई रोग क्यों न हो क्यूटीकूरा मरहम (Cuticura Ointment) लगाने से अच्छा हो जाता है।

क्यूटीकूरा मरहम

CUTICURA OINTMENT

सब दवाख़ानों और बाज़ारों में मिलता है

Cuticura OINTMENT

A SUPER CREAMY EMOLLIENT

SOOTHING PROMOTES HEALING

अमेरिका और योरप के अख़बार

दिसम्बर की मौडर्न रिव्यू में सुप्रसिद्ध लेखक डा० सुधीन्द्र का एक लेख अमरीका तथा अन्य देशों के समाचार-पत्रों पर निकला है। डा० बोस अमरीका के एक विश्वविद्यालय में प्रोफ़ेसर हैं और समाचार-पत्रों के संचालन की उन्हें विशेष जानकारी है। उनका कहना है—

समाचार-पत्र राष्ट्र की अमूल्य सेवा करते हैं, क्योंकि वे अधिकारियों से भयभीत नहीं होते उनके अनुचित अहंकार और अधिकार के दुरुपयोग को प्रकट कर देते हैं, एकाधिपत्य का विरोध करते हैं, साधारण जनता के अधिकारों को लोगों के सामने रखते हैं और उनका समर्थन करते हैं। जन-तंत्र में तो समाचार-पत्र सोलहों आने लाभदायक माने जाते हैं। .... समाचार-पत्र वर्तमान प्रगतिशाली मनुष्य जाति का इतिहास है।

अमरीका की कई रियासतों में अदालतें किसी समाचार-पत्र को इसके लिए मजबूर नहीं कर सकतीं कि वह यह बतलावे कि कोई समाचार उसे कैसे मिला या कोई 'प्राइवेट' बात उसके समाचार ने किस प्रकार कही। वहाँ 'प्रेस-स्वतंत्रता' एक ऐसा माना हुआ सिद्धान्त है जो निरन्तर व्यवहार में रहता है। अमरीका की रियासतों के सभापति सप्ताह में दो बार समाचार-पत्रवालों से स्वयं मिलते हैं और पत्र के संवाददाता को हत्या के मुक़दमे में आगे एक विशेष स्थान पर बैठने तथा फाँसी का दंड देखने का अधिकार है।

अमरीका अपने ही शासन में रहना चाहता है। अतः जनता के मत की परवा उसे करनी ही पड़ती है। सच तो यह है कि अमरीका के समाचार-पत्र ही संसार में सबसे बढ़कर हैं। 'न्यूयार्क टाइम्स,' 'चिकेगो डेली ट्रिब्यून' आदि की बराबरी कौन कर सकता है?

विलायत का 'मैनचेस्टर गार्जियन' बढ़िया पत्र है, पर वह इनकी बराबरी नहीं कर सकता। वह अन्य पत्रों, 'स्प्रिंग्फ़ील्ड रिपब्लिकन,' 'इम्पोरिया गजट' आदि के समान है।

फ़्रांस के समाचार-पत्रों का इससे भी बुरा हाल है। स्वतंत्र होते हुए भी वे गंदे हैं और रुपयों के ज़ोर से उनमें जो चाहें वह छिपाया जा सकता है। इसका एक कारण यह भी है कि वहाँ के पत्रों का अमरीका की तरह सन्तोषजनक प्रबन्ध नहीं। वहाँ काम करनेवालों को काफ़ी रुपये नहीं मिलते इसलिए समाचार-पत्रों में यथेष्ट सामग्री भी नहीं रहती। यही स्वाभाविक है।

अँगरेज़ लोग अमरीका के समाचार-पत्रों को बहुत नीची निगाह से देखते हैं। पर उनके सबसे अच्छे चलनेवाले पत्र वे ही हैं जो अमरीका के अख़बारों के ढंग के हैं। जहाँ तक हिन्दुस्तान की ख़बरों का सम्बन्ध है, अँगरेज़ी का केवल एक अख़बार 'वर्कर' ही सच्ची ख़बरें छापता है।

भारत का शक्कर-उद्योग

सरकारी रिपोर्ट से पता चलता है कि १९३७-३८ में १०,७२,२०० टन शक्कर पैदा हुई जब कि १९३६-३७ में १२,३७,००० टन पैदा हुई थी। इसी प्रकार १९३७-३८ में ४,८३,००० टन शीरा और ३,३६,४०० टन गुड़ बनाया गया था, जब कि १९३६-३७ में शीरा और गुड़ क्रमशः ५,२१,००० और ४२,६८,००० टन बनाया गया था।

आयात और निर्यात

१९३६-३७ में भारत से विदेशों को १४,२९६ टन शक्कर भेजी गई जब कि १९३६-३७ में ५२१ टन भेजी गई थी। इसी प्रकार आलोच्य वर्ष में ७९,१६७ टन शीरा और गुड़ का निर्यात हुआ, जब कि १९३६-३७ में २४,१९५ टन का हुआ था। १९३७-३८ में भारत में १३,७१५ टन गुड़ विदेशों को भेजा गया जब कि १९३६-३७ में २३,१०० टन गया था।

भारत में शक्कर की खपत

भारत में शक्कर की खपत भिन्न-भिन्न प्रान्तों में अलग-अलग है। युक्त-प्रान्त और विहार में जहाँ भारत के समस्त उत्पादन का ८५ प्रतिशत पैदा होता है, केवल १६ प्रतिशत चीनी की खपत होती है। पंजाब, बम्बई, बंगाल और मदरास प्रान्त में प्रायः दूसरे प्रान्तों से शक्कर मँगाई जाती है। युक्त-प्रान्त और विहार का गुड़ अधिकतर पंजाब और बंगाल को भेजा जाता है।

१९३७-३८ के प्रारम्भ में शक्कर और गुड़ का मूल्य बहुत कम था।

(जयाजीप्रताप)

इस संख्या के कुछ महत्त्वपूर्ण लेख

आचार्य क्षितिमोहन सेन, शान्तिनिकेतन

आर्य और द्रविड़ सभ्यताओं का मिलनक्षेत्र ताम्रलिप्ति

श्रीयुत भक्तमोहन

पृथिवी का स्वर्ग (सचित्र)

श्रीयुत सीतलासहाय, बी० ए०

किसानों का नया क़ानून

पंडित वेंकटेश नारायण तिवारी

क्या उर्दू-काव्य इस्लाम-विरोधी और राष्ट्रद्रोही है ?

कहानियाँ—

श्रीयुत उदयशंकर भट्ट, कुँवर राजेन्द्रसिंह, श्री बालगोविन्द प्रसाद श्रीवास्तव ।

अनेक कवितायें, सामयिक और सम्पादकीय नोट ।

बुद्धगया का मन्दिर

सचित्र मासिक पत्रिका
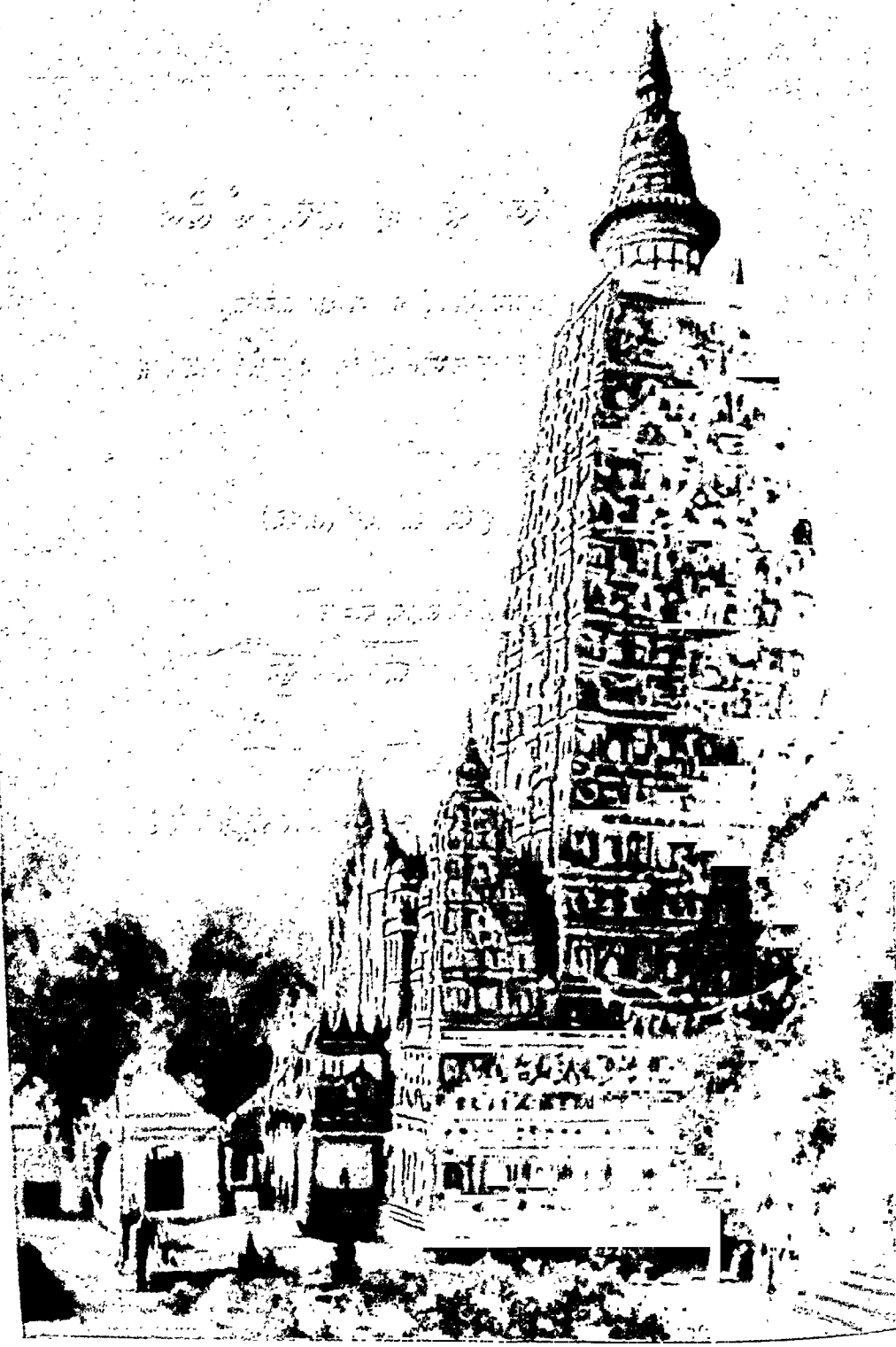
सम्पादक

देवीदत्त शुक्ल—उमेशचन्द्रदेव

फ़रवरी १९४० } भाग ४१, खंड १ संख्या २, पूर्ण संख्या ४८२ { माघ १९९६

सुख-दुख

लेखक, श्रीयुत नरेन्द्र शर्मा, एम० ए०

पर न सदा रहता जग में सुख,
रहता सदा न जीवन में दुख,
माया-से, छाया-से, दोनों—
आते जाते हैं ये सुख-दुख!
तू ही सोच देख क्या इनसे
आत्मा का अभाव भरता है?

हमें नाज़ था अपने सुख पर
पर न टिका दो दिन सुख-वैभव,
दुख! दुख को भी समझा सागर
एक बूँद भी नहीं रहा अब,
देखा जब दिन-रात चीड़-वन
नित कराह आहें भरता है!

मैंने दुख-कातर हो होकर
जब जब दर दर कर फैलाया,
सुख के अभिलाषी मन मेरे!
तब तब सदा निरादर पाया,
ठोकर खा खा कर पाया है,
दुख का कारण कायरता है!

जब तक मन में दुर्बलता है
दुख से दुख, सुख से ममता है!

सुख भी नश्वर, दुख भी नश्वर,
यद्यपि सुख-दुख सबके साथी!
कौन घुले फिर सोच-फ़िकर में
आज घड़ी क्या है, कल क्या थी?
देख, तोड़ सीमायें अपनी
जोगी नित निर्भय रमता है!

जब तक तन है, आधि-व्याधि हैं,
जब तक मन, सुख-दुख हैं घेरे,
तू निर्बल तो क्रीत भृत्य है,
तू चाहे ये तेरे चेरे!
तू इनसे पानी भरवा, भर—
ज्ञान-कूप, तुझमें जमता है!

सुख-दुख के पिंजर में बंदी
कीर धुन रहा सिर बेचारा,
सुख-दुख के दो तीर चीर कर
बहती नित गंगा की धारा,
तेरा जी चाहे जो, बन ले
तू अपना हरता करता है!

आर्य और द्रविड़-सभ्यताओं का मिलन-क्षेत्र ताम्रलिप्ति

लेखक, श्रीयुत क्षितिमोहन सेन

गत वर्ष मुझे मेदिनीपुर-साहित्य-परिषद् में सभापति होकर जाने का सुअवसर मिला था। मैं कई बार इस स्थान की यात्रा कर चुका हूँ और प्रत्येक बार इस प्रदेश की ऐतिहासिक और सांस्कृतिक विशेषता मुझे आकर्षित करती रही है। गंगा और यमुना के मिलने से जैसे पुण्यक्षेत्र प्रयाग हुआ है, उसी प्रकार आर्य और द्रविड़-सभ्यताओं के योग से भारतवर्ष की महा सभ्यता उद्भूत हुई है। उत्तर की आर्य-सभ्यता और दक्षिण की द्रविड़-सभ्यतायें उस स्थान पर मिलित हुई हैं जहाँ बंगाल और उड़ीसा की सीमा पर आज मेदिनीपुर का ज़िला बसा हुआ है। यह स्थान हमारी सभ्यता का प्रयाग-धाम है। इसी लिए साधकों के लिए यह मुक्ति का क्षेत्र है।

ताम्रलिप्ति-शब्द के विषय में बहुत-से पंडितों का मत है कि यह दाम्र (द्रविड़) शब्द से सम्बद्ध है। अर्थात् यह तामिल या द्राविड़-सभ्यता का पुण्यक्षेत्र है। इसी रास्ते से सेनवंशी राजा लोग बंगाल में घुसे थे। पञ्चगौड़ से सारस्वत, कान्यकुब्ज, मैथिल, गौड़ और उत्कल का बोध होता है। उत्कल यहीं से शुरू होता है। यहाँ बैठकर इस देश के पूर्वतम महापुरुषगण दोनों ही सभ्यताओं का माहात्म्य भली भाँति हृदयंगम कर सके थे। भारतवर्ष की उत्तरी सीमा पर होने के कारण जिस प्रकार पाणिनि और यास्क प्रभृति महापुरुषगण भारतीय भाषा का यथार्थ स्वरूप समझ सके थे उसी प्रकार यहाँ बैठकर आर्य और द्रविड़ दोनों सभ्यताओं का यथार्थ परिचय पाना अधिक सम्भव था।

जगन्नाथ का द्वारपथ यहीं से था। इसी लिए भगवान् शंकर, रामानुज, रामानन्द, कबीर, नानक, चैतन्य, मलूकदास प्रभृति महापुरुषों के चरण-स्पर्श से यह भूमि पवित्र हुई थी। पुरी में उत्तर-भारत से जाने के लिए यहाँ से होकर जो मार्ग था वही अधिक सुभीते का था। सन्तों के प्राचीन ग्रन्थों में भी इस स्थान से होकर जाने का संधान मिलता है।

एक ऐसा भी समय था जब भारतवर्ष की सभ्यता इस देश की सीमा में ही आबद्ध नहीं थी। यातायात, धर्म, संस्कृति, वाणिज्य इत्यादि नाना सूत्रों से भारतवर्ष का सम्बन्ध, ब्रह्म, चीन, जापान, कोरिया, श्याम, जावा, सुमात्रा आदि पूर्वी और अनेक उत्तरी और पश्चिमी देशों से भी था। प्राच्य देशों के साथ भारतीय सम्बन्ध का प्रधान क्षेत्र ताम्रलिप्ति ही था। इसी लिए बहुत-से चीनी, फ़ारसी और योरपीय ग्रन्थों में ताम्रलिप्ति की चर्चा मिलती है। इस पुण्यक्षेत्र के आस-पास मध्ययुग में भी अनेकानेक महात्माओं का आविर्भाव हुआ था। मुकुन्दराम के गुरु बलराम कविकंकण, भागवत के अनुवादक सनातन चक्रवर्ती, पदकर्त्ता कानुदास और गोवर्धनदास और वासुदेव घोष प्रभृति बहुतेरे भक्त, कवि और साहित्यिक यहाँ उत्पन्न हुए थे।

चैतन्यदेव, अद्वैत गोस्वामी और नित्यानन्द की तरह श्रीनिवास, नरोत्तम और श्यामानन्द, इन तीन भक्तों का भी वैष्णवधर्म-प्रचार एक ही साथ होता था। श्यामानन्द को समूचे भारतवर्ष के लोग उत्कल श्यामानन्द कहते हैं। उनकी रचनाओं के ऊपर और उनके शिष्य रसिकमुरारि की पदावली पर भी इस क्षेत्र के, और इस ज़िले (मेदिनीपुर) के लोग दावा कर सकते हैं। हिन्दी में नाभा जी के भक्तमाल के ९५ वें छप्पय में और उनके शिष्य प्रियादास की भक्तरसबोधिनी (८४-९३) में और हरिवर रामानुज की हरिभक्तिप्रवेशिका (पृ० १९१-१९५) में रसिकमुरारि की चर्चा है। श्यामानन्द भी समस्त भारतवर्ष में परिचित हैं। उनके द्वारा वृन्दावन में प्रतिष्ठापित श्री श्यामसुन्दर की मूर्ति सारे भारतवर्ष के वैष्णवों द्वारा पूजित होती है। इस क्षेत्र के इतिहास में एक विचित्र बात यह है कि बाहर से निर्यातित और लाञ्छित अनेक महापुरुष यहाँ आश्रय पा चुके हैं। कर्णगढ़

के राजा यशवन्तसिंह के आश्रित, शिवायन नामक ग्रन्थ के प्रणेता रामेश्वर भट्टाचार्य ने यहाँ आश्रय लिया था, नित्यानन्द चक्रवर्ती काशीजोड़ के राजा के आश्रित थे और प्रसिद्ध बँगला-महाभारत के रचयिता काशीरामदास यहाँ आवसगढ़ के राजा के आश्रित होकर रहे थे। दामुन्या के कवि मुकुन्दराम भी अशेष दुःख से पीड़ित होकर अन्त में इस प्रदेश में आखड़ा के राजा के आश्रित होकर रहने लगे थे।

राजा अच्युतानन्द के पुत्र रसिकमुरारि की आतिथेयता और दाक्षिण्य का कुछ परिचय नाभा जी के भक्तमाल से मिलता है। वे लिखते हैं :—

तन मन धन परिवार सहित सेवत संतन कहँ,
दिव्य भोग आरती अधिक हरि हुते हिये मँह,
श्री वृन्दावनचन्द्र श्याम श्यामा रँग भीने,
मग्न प्रेम पीयूष पयधि परचै बहुदीने।
श्रीहरि प्रिय श्यामानन्द वर भजन भूमि उद्धार किय।
श्री रसिकमुरारि उदार अति मत्त जगहिं उपदेस दिय।

पंडितों का मत है कि नाभा जी अनुमानतः १५८५ से १६२३ ई० तक जीवित थे। वे रसिकमुरारि के प्रायः सम-सामयिक थे, कुछ बड़े ही होंगे। रसिक का जन्म १५९० ई० में हुआ था। इसी लिए यह विवरण रसिक की जीवितावस्था का है और इसी लिए इसकी प्रामाणिकता का मूल्य अधिक है। इस पर टीका करते हुए प्रियादास जी ने लिखा है—

रसिकमुरारि साधु-सेवा विसतार कियो,
पावे कौन पार रीति भाँति कछु न्यारियै।
सन्त चरनामृत के माठ गृह भरे रहैं,
ताही को प्रणाम पूजा करि उर धारिये।
आवें हरिदास तिन्हें देत सुखरासि जीभ,
एक न प्रकाश सके थके सो विचारिये।
करें गुरु उत्सव ले दिनमान सबै कोऊ,
द्वादश दिवस जन घटा लागि प्यारिये।
सन्त चरनामृत को ल्यावो जोई नीकी भाँति,
जीकी भाँति जानिवे को दास लै पठायो है।
आनि कै बखान कियो लियो सब साधुन को,
पान करि बोले सो सवाद नहीं आयो है।
जितै सभाजन कही चाखो देवो मन कोऊ,
महिमा न जानै कौन जानी छोड़ि आयो है।
पूँछि कह्यो कोढ़ी एक रह्यो आनो ल्यायो पियो,
दियो सुख पाय नैन नीर ढरकायो हैं।

इससे रसिकमुरारि की नम्रता, शील और विनय का पता चलता है। सन्तों का चरणामृत लेते समय किसी कोढ़ी भक्त का चरणामृत लेना छोड़ दिया गया था। पर रसिकमुरारि को उस संगृहीत चरणामृत में वह स्वाद नहीं मिला जो साधारणतः सन्तों के चरणामृत में मिलता है। उन्होंने कहा कि ज़रूर कोई छूट गया है। जब फिर से कोढ़ी भक्त का चरणामृत लाया गया तब उसे पान करने पर रसिक की आँखों में प्रेमाश्रु भर आये!

प्रियादास ने रसिक के सम्बन्ध में और भी कई आख्यान संग्रह किये हैं। एक बार एक अतिथि साधु ने अपनी लाठी के लिए भी भोजन माँगा। सेवकों ने जब नहीं दिया तब क्षुब्ध साधु ने अपना अन्न रसिक के सिर पर दे मारा। रसिक ने कहा—आहा, ऐसा शीतल प्रसाद तो मुझे कभी नहीं मिला था! एक बार उनके उद्यान में कुछ साधु आये। उनमें एक हुक़्क़ा पी रहे थे, इसी समय रसिकमुरारि वहाँ पहुँचे। साधु ने लजाकर हुक़्क़ा पीछे छिपा लिया। रसिक ने समझा कि उन्होंने साधु को लज्जा दी है। वे पृथ्वी पर गिर कर छटपटाने लगे और बोले कि कोई मुझे ज़रा तम्बाकू पिला दे तो मैं स्वस्थ हो जाऊँ। तम्बाकू मँगाया गया और सिर्फ दिखाने के लिए उन्होंने दो एक फूँक मारे। इस प्रकार उस साधु की लज्जा का निवारण किया। उनका राज्य किसी दुष्ट राजा ने हड़प लिया। उनके गुरु श्यामानन्द ने इस पर लिखा कि जैसे हो वैसे ही चले आओ। चिट्ठी जब रसिक के पास पहुँची तब वे खा रहे थे। जूठे मुँह ही गुरु के पास जा उपस्थित हुए। दुष्ट राजा ने जब यह सुना तब रसिक को यह कहकर बुलवाया कि मैं आपका प्रभाव स्वयं देखना चाहता हूँ। उसने पालकी भेजी और इधर रास्ते में एक मतवाला हाथी भी छोड़ दिया। हाथी को देखकर पालकी-वाहक कहार न जाने कहाँ भाग गये। हाथी रसिक की ओर दौड़ा। यह देखकर उन्होंने कहा कि हे हाथी, भगवान् का नाम लो मुरारि के इस उपदेश से हाथी की आँखों

भर आया। रसिक ने उसके कान में राम-नाम का मंत्र दिया और हाथी का नाम गोपालदास रक्खा।

छोड़ि के कहार भाजि गये न निहारि सके,
आप रस सार बानी बोले जैसी गाई है।
बोलो हरे कृष्ण कृष्ण छोड़ो गज तम तन,
सुनि गयो हिये भाव देह सों नवाई है।
बहे दृग नीर देखि ह्वै गयो अधीर आप
कृपा करि धीर कियो दियो भक्ति भाव है।
कान में सुनायो नाम नाम दे गोपालदास,
माल पहिराइ गले प्रगटो प्रभाव है।

यह सब देखकर उस दुष्ट राजा के मन में लज्जा आई और उनके पाँव पर गिरकर उसने क्षमा माँगी। उनकी सारी सम्पत्ति उसने लौटा दी।

इसी प्रकार राजस्थानी भक्त खेहरीग्रामवासी वृद्ध रामानुजदास हरिवर ने अपनी हरिभक्तिप्रकाशिका नामक महाग्रन्थ में साधु-सेवा के प्रसंग में रसिक-मुरारि की भक्ति और दाक्षिण्य का जयगान किया है।

मुझे ऐसा लगता है कि ग्रन्थ साहब में जो एक चमत्कार-कारक गान संगृहीत हुआ है वह कहीं इसी प्रदेश के आस-पास गाया गया होगा। उस गान की कथा बड़ी मनोरंजक है। छठें गुरु श्री हरिगोविन्द के पास बंगाल के सुन्दरबन के किसी टापू से निमंत्रण आया। बहुत दूर जान कर वे स्वयं न जाकर अपने शिष्य विधिचन्द को वहाँ भेजा। मेदिनीपुर जिले के किसी भाग में उन दिनों देवनगर गाँव रहा होगा। उसी देवनगर में एक फ़क़ीर रहते थे। नाम था सुन्दरशाह। अपने करामाती कार्यों के लिए वे बहुत मशहूर थे। विधिचन्द उस गाँव के पास ही एक सूखे वृक्ष के नीचे बैठे थे। मौज में आकर उन्होंने गुरु अर्जुन का वह गान गाना शुरू किया। समय वसन्त का था, गान भी वसन्तराग का—

वसन्तु चड़िया फूली बनराइ।
एहि जीअ जंत फूलइ हरि चितलाइ॥

इन विधि इहुमन हरिया होइ।
हरि हरि नामु जपै दिनु राति
गुरुमुखि हउ मैं कढ़ै धोइ॥

सति गुरु-बानी सबदु सुनाए
इहु जगि हरिया मति गुरु भाए॥

फल फूल लागे जों आपे लाए
मूलि लग तौं सति गुरु पाए
आपि बसंतु जगतु सभु बाड़ी।
नानक पूरै भागि जगति निराली॥

इधर गान समाप्त हुआ, उधर वृक्ष नवीन किसलयों और पुष्पों से भर गया। यह सुनकर सुंदरशाह बाघ पर चढ़कर साधु को देखने आये। आस-पास के लोग आतंकित होकर भागे। विधिचन्द के कटाक्ष से ही बाघ पत्थर का खंभा हो गया! फिर सुंदरशाह विधिचंद के साथ विचार में प्रवृत्त हुए और अन्त में पराजित हुए। सुन्दरशाह के अनुरोध पर विधिचन्द कुछ दिनों तक वहाँ धर्म-प्रचार करते रहे।

इस प्रकार आर्य और द्रविड़-सभ्यताओं की मिलन-भूमि इस ताम्रलिप्ति में कितने महापुरुषों का समागम हुआ था, कितने संघर्षों का इसे सामना करना पड़ा था, कितने जय-पराजयों की गवाही इसे देनी पड़ी थी, यह सब सोचकर मेरा सिर श्रद्धा से नत हो गया। जिसमें महद्-भाव के प्रति अनुराग है, जिसमें दया-दाक्षिण्य और आश्रित वात्सल्य है, उसे दुःख भोगना ही पड़ता है। दुःख ही उसे महिमान्वित करता है। आज भी इस भूमि को दुःख झेलना पड़ रहा है। निश्चय ही यह दुःख भी इसे नवीन महिमा से पूर्ण करेगा।

हिन्दू-गृह-जीवन की एक मार्मिक कहानी

चूड़ियाँ

लेखक, श्रीयुत राजेश्वरप्रसादसिंह

"बहू जी ! चूड़ी पहनोगी, बहू जी ?"

उत्तर नहीं मिला।

"बहू जी ! ओ बहू जी !"

"कौन है ?"

"चुड़िहारिन।"

"अच्छा।"

दरवाजा खुला।

"चूड़ी पहनोगी, बहू जी ?"

"हाँ, हाँ, आओ, चुड़िहारिन" वृद्धा ने उत्तर दिया—"तुम्हारा तो इन्तजार ही हो रहा था। न आती तो नौकर भेजकर बुलवाती।"

"आती कैसे न बहू जी ?" घर में प्रवेश करते हुए चुड़िहारिन ने कहा—"साल-साल भर का त्योहार ठहरा। महीनों से आसरा लगा था। यों तो ठाला ही रहता है, लेकिन त्योहार पर चार ैसे जरूर मिल जाते हैं।"

"यह तो हई है। वैसे तो बहुत जरूरत पड़ने पर नई चूड़ियाँ पहनी जाती हैं, लेकिन त्योहार पर तो सबको नई चूड़ियाँ पहननी ही पड़ती हैं।"

"हाँ, बहू जी, और क्या !"

आँगन में पहुँचकर चुड़िहारिन ने कमर से टोकरी उतारकर फ़र्श पर रख दी, और टोकरी की बग़ल में बैठकर सुस्ताने लगी।

"बड़ी गर्मी है, बहू जी !"

"हाँ, बड़ी गर्मी है। सावन का महीना ठहरा, और इधर कई दिन से पानी भी नहीं बरसा।"

"जल्दी करो, बहू जी। अभी बहुत जगह जाना है। कल ही गुड़िया है। जहाँ न पहुँचूँगी, वहीं उलहना मिलेगा।"

"बड़ी बहू !" वृद्धा ने आवाज लगाई।

"क्या है, अम्मा जी ?" ऊपर से आवाज आई।

"आओ, देखो, चुड़िहारिन आई है। मँझली बहू कहाँ है ?"

"यहाँ नहीं है।"

"यहाँ हूँ, अम्मा जी"। उधर के एक कमरे से निकलकर मँझली बहू ने कहा।

"चूड़ियाँ नहीं पहनोगी क्या ?"

"पहनूँगी क्यों नहीं ?"

"तो आओ न। खड़ी खड़ी क्या देख रही हो ?"

"जीजी को आ जाने दीजिए।"

"आई जाती है वह भी। तब तक तुम आकर पसन्द करो। चुड़िहारिन को देर हो रही है।"

तब मँझली बहू धीरे धीरे दालान से उतरकर आँगन में पहुँची। चुड़िहारिन ने तुरन्त टोकरी से कपड़ा हटाया, और चूड़ियाँ दिखाने लगी। तरह तरह के रंगों की, भाँति भाँति के डिज़ाइनों की, चूड़ियाँ टोकरी में भरी पड़ी थीं।

"देखो, बहू जी, यह बिलकुल नये फ़ैशन की चूड़ी है। अभी बिजनौर से आई है। नाजिर जी के घर में बहुत पसन्द की गई।"

"कितने की है ?"

"दो आने की।"

"दो आने की एक !"

"हाँ, बहू जी। तुम्हारे यहाँ मैं दाम बढ़ाकर नहीं बताती। बिलकुल ठीक बताती हूँ।"

"क्या अन्धेर करती हो, चुड़िहारिन ?" वृद्धा सास ने कहा—"दो आने की एक ! कौन-सी अनोखी बात है इसमें ?"

"अनोखी बात बनावट में होती है, बहू जी। वैसे तो सभी चूड़ियाँ काँच की ही होती हैं। देखो इसकी बनावट, इसकी नक़्क़ाशी, इसका रंग। जिस हाथ में पड़े वह चमक उठे।"

"यह सब तो ठीक है"। मँझली बहू ने कहा—"लेकिन दाम तो हर चीज का वाजिब होना चाहिए।"

अपने नवजात शिशु को गोद में लिये हुए ब

भी आ पहुँची। चूड़ियाँ देखी जाती रहीं, मोल-भाव होता रहा।

बाहर से दौड़ती हुई लज्जा भी आ पहुँची। उसकी बाछें खिल गईं।

"दादी, दादी! मैं भी चूड़ी पहनूँगी।"

"हाँ, हाँ, पहन, ज़रूर पहन। न पहनेगी तो पुरखिन कैसे बनेगी?"

"मैं वह लाल चूड़ी पहनूँगी। ओ हो—हो—हो! कैसी अच्छी चूड़ी है!" लपककर एक बड़ी-सी लाल चूड़ी लज्जा ने अपने हाथ में डाल ली।

"रहने दो, बिटिया।" चुड़िहारिन ने कहा—"वह बहुत बड़ी है। टूट जायगी।"

लज्जा हँसकर आँगन में नाच उठी।

"वाह री लड़की!" बड़ी बहू बोलीं—"देखो तो इसका दीदा! चल इधर।"

"रख दो उसे, बिटिया।" वृद्धा ने कहा—"तुम्हारे लायक़ वह चूड़ी नहीं है। देखो, यह है तुम्हारे लायक़।"

"कौन-सी, कौन-सी?"

ऊपर के एक कमरे की खिड़की से एक नवयुवती आँगन का यह दृश्य देख रही थी। उसके केश रूखे थे, उसकी माँग सूनी थी, उसके हाथों में चूड़ियाँ नहीं थीं। उसके हाथ सूने थे, पैर सूने थे, गला सूना था, कानों में ईयर-रिंग भी नहीं थे, नाक में कील भी नहीं थी। केवल एक साफ़ साड़ी और एक साफ़ जम्पर उसके शरीर पर था। किन्तु उसके लम्बे, दुबले, सुडौल शरीर से यौवन फूटा पड़ रहा था, सौंदर्य बिखरा जा रहा था। उसके शुष्क वेष में उस पर पर्दा डालने का सामर्थ्य नहीं था। सौंदर्य प्रकृति की देन है, वेष मानव की सृष्टि है। और स्वयं मानव भी प्रकृति की ही देन है। तब मानव के विद्रोह के सम्मुख प्रकृति कैसे झुके? उसका मन मर्म-वेदना के भार से भारी हो उठा। एक दीर्घ निश्वास खींचकर, उस खिड़की से हटकर, दूसरी ओर उस खिड़की के सामने फ़र्श पर पड़ी हुई चटाई पर जाकर वह अस्त-व्यस्त बैठ गई। एक वह दिन भी था जब इस घर की अन्य बहुओं की तरह ऐसे अवसरों पर चूड़ियाँ पहनने के लिए वह भी बुलाई जाती थी। लेकिन आज? ओह! आज कैसा विकट, कैसा भयानक, कैसा दुखदायक अन्तर उसकी स्थिति में आ गया है! ये चूड़ियाँ! काँच की इन चूड़ियों की क्या क़ीमत है, क्या बिसात है? लेकिन इन मामूली-सी चूड़ियों को पहनने के लिए भी स्त्री के पास एक विशेष प्रकार का अधिकार होना चाहिए। कहाँ है आज उसके पास वह अधिकार? हाय रे जला भाग्य!

आकाश में बादल उमड़ने लगे थे। हवा बन्द थी। प्रकृति मौन थी, मानो अन्दर उठते हुए तूफ़ान को दाबने का प्रयत्न कर रही हो। जल के लिए तड़पती हुई कुम्हलाई हरियाली दूर तक फैली हुई थी। उधर दौड़ती हुई बादलों की छाया की ओर वह देख रही थी, लेकिन वह देख रही थी कुछ नहीं।

कैसा सुन्दर था वह समय जब उसे भी वह अधिकार प्राप्त हुआ था! एम० ए० पास कर चुकने के बाद व एल-एल० बी० फ़ाइनल में पढ़ रहे थे। एक दिन अपने एक मित्र के साथ जो उसके पिता के भी मित्र थे, वे उसके घर गये थे। पिता ने अन्दर जाकर उसे पान लाने की आज्ञा दी थी। तब पिता के आदेशानुसार एक तश्तरी में पान लेकर वह बैठक में गई थी। प्रताप ने उसे आँख भरकर देखा था। उसने भी उन्हें देखा था एक बार। कितने अच्छे लगे थे वे! तश्तरी मेज़ पर रखकर वह बैठक से लौट आई थी, लेकिन लौटने को जी नहीं चाहता था। उस दिन उसके मन में एक साध बस गई थी, और आगे चलकर वह साध पूरी हुई थी। एक पखवारे के बाद उसके पिता प्रताप के पिता के पास विवाह का प्रस्ताव लेकर गये थे, और प्रताप के पिता ने शिष्टता-पूर्वक इनकार कर दिया था। कितने उदास होकर उसके पिता घर लौटे थे! हैसियत में प्रताप के पिता से वे बेशक कम थे, लेकिन उन्हें अपनी कुलीनता पर, अपनी भद्रता पर, अपनी पुत्री पर गर्व था। उनके उस गर्व को प्रताप के पिता की अस्वीकृति से गहरी चोट पहुँची थी। यह सब सुनकर प्रताप ने विद्रोह का झंडा उठाया था। एक दिन उन्होंने अपने पिता से साफ़ साफ़ कह दिया था कि वे या तो बाबू कमलकिशोर की पुत्री आशालता के साथ विवाह करेंगे या जीवन भर कौमार्य-व्रत धारण किये रहेंगे। गुमराह पुत्र को ठीक रास्ते पर लाने की पिता ने हर तरह कोशिश की थी, लेकिन उनका निश्चय अटल साबित हुआ था। तब मजबूर होकर बाबू गुरुसहाय

को पुत्र के दुराग्रह के सामने झुकना पड़ा था। उसी वर्ष शुभ लग्न में उसके मनमोहन से उसका शुभ विवाह सम्पन्न हुआ था। एक प्रतिष्ठित स्थानीय दैनिक में वर-वधू का चित्र प्रकाशित हुआ था। दोनों की भूरि भूरि प्रशंसा हुई थी। मायके से विदा होकर वह ससुराल आई थी और प्रथम-मिलन की उस रँगीली रात को उन दोनों का पारस्परिक सुख अपने पराकाष्ठा को पहुँच गया था। पथिक मंज़िल पर पहुँचकर आनन्द से विभोर हो गये थे। उसी वर्ष वकालत की परीक्षा में भी वे उत्तीर्ण हो गये थे।

वे उसे कितना प्यार करते थे! वह अपने को धन्य मानती थी, और कामना करती थी कि प्रत्येक स्त्री को प्रताप जैसा ही पति मिले। लेकिन अक्सर एकान्त में उसके मन में यह विचार उठता कि उसकी रस-भरी गागर कहीं छलक न जाय, गिरकर टूट न जाय। तब किसी अज्ञात आशंका के आतंक से उसका मन भर जाता।

नाग-पंचमी का ही वह भी दिन था। साधारण नियम के विपरीत कारणवश उसे ससुराल में ही रुकी रहना पड़ा था। वह सारे दिन हवा में उड़ती रही थी। उसका हृदय उल्लास से उछला पड़ रहा था। अन्तर्देश में किसी चिन्ता की, किसी अशान्ति की छाया नहीं थी। आमोद किलकारियाँ मार रहा था, जीवन रस घोल रहा था—रंगीन, मदमाती तितली की तरह उड़ रहा था पल पल। दिन बीता। रात आई। ग्यारह बजे। उसने शयनागार में प्रवेश किया। प्रताप ने उसे अपनी सबल भुजाओं में भर लिया। फिर उन्होंने उसका नख से शिख तक अपने हाथों से शृङ्गार किया, और चूड़ियाँ पहनाईं जो खुद बाज़ार से खरीदकर लाये थे।

"इस समय परी लग रही हो तुम!"

"रहने भी दो।"

"सच कहता हूँ, आशा।"

"परियाँ इन्द्रपुरी में रहती हैं। यह तो मानव-लोक है।"

वे हँस पड़े।

"उतना खिलाओ जितना हज़म हो सके!"

"बदहज़मी से डरती हो?"

"हाँ, डरती हूँ।"

और——

आँसू झर-झर गिरने लगे उसकी आँखों से।

× × × ×

दरवाज़ा खड़खड़ा उठा।

"छोटी चाची!"

"हाँ।"

"दरवाज़ा खोलो, छोटी चाची।"

"अच्छा।"

आँखें पोंछकर, उठकर, आशा ने कमरे का दरवाज़ा खोला। लज्जा लपक कर अन्दर आई।

"मैंने चूड़ियाँ पहनी हैं, छोटी चाची।" हँसकर लज्जा ने कहा—"देखो, कैसी हैं?"

"अच्छी हैं।"

आशा चटाई पर बैठ गई। लज्जा उसकी गोद में आसीन हो गई।

"तुमने चूड़ियाँ नहीं पहनीं, छोटी चाची?"

"नहीं।"

"क्यों नहीं पहनी?"

"ऐसे ही।"

"बतला दो, छोटी चाची।"

"मुझे चूड़ियाँ नहीं पहननी चाहिए।"

"यह क्यों?"

"अभी तुम छोटी हो, लज्जा। बड़ी हो जाओगी तब तुम्हें सब आप ही मालूम हो जायगा।"

"छोटी चाची!"

उत्तर नहीं मिला। लज्जा ने उसकी ओर देखा।

"अरे, तुम तो रो रही हो, छोटी चाची!"

आशा आँखें पोंछने लगी। लज्जा उससे लिपट गई।

"न रोओ, छोटी चाची, न रोओ!" रोनी आवाज़ में लज्जा ने अनुनय किया।

"नहीं, बिटिया, रोती नहीं हूँ।" भर्राये हुए कण्ठ से आशा ने कहा, और असीम स्नेह से वह उसकी पीठ पर थपकियाँ देने लगी।

(२)

रात भीग चुकी थी। पानी बरसकर निकल गया था। आकाश के काले पर्दे में तारे झलमला रहे थे, और

रह-रह कर बिजली चमक उठती थी। शीतल, मन्द बयार बह रही थी। अपने कमरे में खिड़की के सामने फ़र्श पर बिछी हुई चटाई पर पड़ी हुई आशा आकाश की ओर ताक रही थी। उसके मस्तिष्क में विचार चल रहे थे।

वह अधिकार क्या उसे पुनः प्राप्त नहीं हो सकता? हो क्यों नहीं सकता? बस, इस घर की क़ैद से निकलने भर की देर है। क्या वह इस क़ैद से निकल नहीं सकती? निकल क्यों नहीं सकती? उसे कौन रोक सकता है? लेकिन इस क़ैद से निकलकर वह कहाँ जायगी? प्रमोद के पास? पागल प्रमोद! कल्पना का रंगीन चश्मा लगाकर देखने से जो वस्तु रंगीन दिखती है वह सचमुच रंगीन हो तो नहीं जाती। बच्चा नया खिलौना देखकर मचलता है, किन्तु उस खिलौने के प्रति उसका आकर्षण सदैव बना तो नहीं रहता! पुरुष स्त्री के प्रति आकृष्ट होता है, किन्तु केवल उस स्त्री का शरीर पाकर वह सन्तुष्ट नहीं रह सकता। सन्तुष्ट रहने के लिए उस स्त्री से उसे और कुछ चाहिए। प्रमोद को देने के लिए उसके पास वह और कुछ कहाँ है? वह तो उस व्यक्ति के साथ चला गया जिसने पहले-पहल उसके जीवन में आकर उसके हृदय को झंकृत किया और समस्त बाधाओं से लड़कर उसे अपनी बनाया।

इस परिवार से प्रमोद का दूर का सम्बन्ध था। धनी पिता का वह पुत्र था, स्वरूपवान् था, सुशिक्षित था, सभ्य था, हँसमुख था, गम्भीर था, भावुक था, दिलवाला था और दिल की क़द्र कर सकता था। अक्सर वह इस घर में आता, और उससे भी मिलता। कभी कोई भद्दी बात उसने नहीं की। लेकिन प्रताप की मृत्यु के एक वर्ष के बाद एक दिन उसने अपना हृदय उसके सामने खोलकर रख दिया। वह उसके कमरे में आया, नमस्कार किया और उसके सामने एक पत्र फेंक कर चला गया। अनाप-शनाप बातें भरी थीं उस पत्र में। उसके प्रति अपने अगाध प्रणय की चर्चा उसने की थी और याचना की थी उसने उसकी प्रीति की। "तुम्हें मैं क्यों चाहता हूँ, यह मैं नहीं जानता। प्रणय तर्क पर आधारित नहीं होता। उसकी जड़ जिस गहराई में होती है, वहाँ तर्क की पहुँच नहीं हो सकती। मैं तो सिर्फ़ इतना जानता हूँ कि तुम जैसी स्त्री मैंने आज तक नहीं देखी। मैं देखता हूँ तुममें सम्पूर्ण नारीत्व का रूप और उसकी आराधना करता हूँ। मुझे पूर्ण विश्वास है कि मेरा यह निरर्थक जीवन तुम्हें पाकर सार्थक हो जायगा। मेरी बन सकोगी, आशा? मेरी ओर मेरे सामने कोई बाधा नहीं है। अपनी इच्छा-अनिच्छा, रुचि-अरुचि, विश्वास-अविश्वास का स्वामी मैं स्वयं हूँ, और मेरे कर्मों पर किसी अन्य व्यक्ति का नियंत्रण नहीं है। इस मामले में किसी के विचारों की परवा मैं नहीं करूँगा। तुम्हारी ओर भी कोई अड़चन न पड़ सकेगी, यदि तुम सहमत हो सको। तुम भी स्वतंत्र हो और मैं भी स्वतंत्र हूँ। सुधारवादी ढंग से हम विवाह के सूत्र में बँधकर यहाँ या कहीं अन्यत्र स्वतंत्रता-पूर्वक रह सकते हैं। जीवन-मार्ग कंटकाकीर्ण है। अकेले चलने में पग-पग पर कठिनाइयाँ हैं, किसी के साथ हो लेने से रास्ता आसानी से कट सकता है। बना लो मुझे अपना संगी, अनुरोध करता हूँ, विनय करता हूँ, भिक्षा माँगता हूँ, कभी साथ नहीं छोड़ूँगा, वचन देता हूँ। कभी इस वचन से हटते देखना तो मेरा काम तमाम कर देना। बेवफ़ा बनकर जीना मैं स्वयं पसन्द न करूँगा।" ऐसी ही बातें उस पत्र में भरी थीं। उसे पढ़कर वह प्रसन्न नहीं हुई। उसने उसे फाड़ डालना चाहा, जला देना चाहा, लेकिन यह सब वह कुछ नहीं कर सकी।

तीन दिन के बाद वह आया।

"उत्तर माँगने आया हूँ, भाभी।"

"उत्तर?"

"हाँ, उत्तर?"

"जो कुछ चाहते हो, लाला, वह मेरे पास नहीं है।"

"यह मैं नहीं मान सकता।"

"न मानना चाहो तो न मानो।"

"सब कुछ है तुम्हारे पास। न देना चाहो तो न दो।"

"खाली घोंसले से सन्तुष्ट रह सकोगे?"

"चिड़िया भी है घोंसले में।"

"यह भूल है तुम्हारी। वह तो उड़ गई।"

"लेकिन मैं तो उसे देख रहा हूँ।"

"यह तुम्हारी दृष्टि का भ्रम है।"

"और अगर तुम्हें ही भ्रम हो रहा हो तो?"

"तो?"

"हाँ, तो ?"

वह विचारों में डूब गई। दुविधा सामने आ खड़ी हुई।

"खूब सोच-विचार कर उत्तर देना। कोई जल्दी नहीं है। मैं प्रतीक्षा कर सकता हूँ।"

प्रमोद चला गया। वह चित्र लिखित-सी बैठी रही।

एक पखवारे के बाद फिर वह आया, लेकिन उत्तर न पा सका। वह बराबर आता और निराश होकर लौट जाता। वह प्रतीक्षा करता रहा—करता रहा।

प्रमोद का कथन सत्य है? वह स्वयं भ्रम में है? नहीं, नहीं। किन्तु वह दुःख का भारी बोझ लिये क्यों जी रही है? उसके मन में कामनायें क्यों उठती हैं? उसे संसार से उठ जाने की प्रेरणा नहीं हुई। कठोर अनुशासन की प्रतिक्रिया कामनाओं को जन्म दे रही है। किन्तु—प्रमोद? दीवाना प्रमोद!

भयावनी रात थी। रोग-शय्या पर अचेत पड़े थे प्रताप। चालीस दिन बीत चुके थे, लेकिन ज्वर उतरने का नाम नहीं लेता था। उनका सुन्दर, बलिष्ठ शरीर सूखकर काँटा हो गया था। कमरे में मोमबत्ती का मन्द प्रकाश फैला था। एक कुर्सी पर बैठी हुई चिन्तित दृष्टि से वह उनके मुर्झाये चेहरे की ओर देख रही थी। सहसा उन्होंने आँखें खोलीं।

"आशा!"

"जी हाँ।"

"उजड़ा जा रहा है मेरा संसार! विवश हूँ, आशा।"

"यह क्या कह रहे हैं आप?"

"बिलकुल ठीक कह रहा हूँ।"

"शान्त रहिए। उत्तेजित न हों। ज़्यादा बात न कीजिए। डाक्टर ने मना किया है।"

"ज़्यादा बात करने की मुझे इच्छा भी नहीं है। बस तुमसे एक बात कहना चाहता हूँ। अभी मौक़ा है। थोड़ी देर के बाद निकल जायगा मौक़ा।"

आशा की आँखों में आँसू छलक आये।

"अब मैं जा रहा हूँ, आशा। दुःख से लड़ना। सुख से रहने की कोशिश करना। मुझे भूल न जाना।"

आशा की आँखों से आँसू बहने लगे।

"रोओ नहीं, आशा, रोओ नहीं। मुझे कष्ट हो रहा है। ओ—ह!"

वे अचेत हो गये। उनका शरीर अकड़ने लगा। वह चीख पड़ी। घर के तमाम लोग दौड़ पड़े। प्रताप की इहलीला समाप्त हो गई। कोहराम मच गया।

वह फफक फफककर रोने लगी। भूल सकती है वह उन्हें कभी? कभी नहीं, कभी नहीं। किन्तु प्रमोद? भ्रम में है प्रमोद।

(३)

रात बीत गई। नागपंचमी का दिन आ पहुँचा। गंगा-स्नान के लिए सब लोग चले गये। आशा घर में रह गई। उससे भी कहा गया था, लेकिन उसने इनकार कर दिया था। महरी एक ओर बैठी हुई दाल पीस रही थी।

"घूरे की माँ!"

"क्या है, बहू जी?"

"मेरा एक काम कर दोगी?"

"क्यों न करूँगी?"

"मेरे लिए चूड़ियाँ ला दो।"

"चूड़ियाँ लेकर क्या करोगी, बहू जी?"

"ज़रूरत है मुझे।"

"अच्छी बात है, ला दूँगी।"

"जो चुड़िहारिन यहाँ आती है उसी के घर जाना। उससे कहना कि नये फ़ैशनवाली चूड़ियाँ दो। यह लो रुपया।"

"अभी जाऊँ या दाल पीसने के बाद?"

"अभी चली जाओ, घूरे की माँ। लौटकर दाल पीसना। तुम्हें इनाम दूँगी। किसी से यह बात न कहना।

"नहीं, बहू जी, इतमीनान रक्खो, किसी से कुछ न कहूँगी। मेरी आदत ऐसी नहीं है। ऐसी होती तो भले आदमियों के बीच कैसे टिकती?" वह चली गई।

आध घंटे के बाद महरी वापस आई। चूड़ियाँ ले आई। वे अच्छी थीं। आशा ने उसे इनाम दिया, और फिर ताकीद की कि इस बात की चर्चा वह किसी से न करे।

दिन बीता। रात आई। ग्यारह बज गये। कामधंधे से निपटकर आशा अपने कमरे में पहुँची। उसने दरवाज़ा बन्द किया, और लैम्प जलाया। फिर वह अपना

शृंगार करने लगी। केश सँवारे, पैरों में महावर लगाया, हाथों में चूड़ियाँ पहनीं, माँग में सिन्दूर भरा, चेहरे पर क्रीम और पाउडर मला, नाखून और होंठ रँगे, गहने पहने, रेशमी साड़ी धारण की, रेशमी जम्पर पहना, इत्र लगाया, पान खाया। इस तरह सज-धजकर वह उधर रक्खे हुए दर्पण के सामने जा खड़ी हुई। "इस समय परी लग रही हो तुम!" गूँज उठे प्रताप के ये शब्द उसके कानों में। उसका रोम-रोम पुलकायमान हो उठा। बड़ी सावधानी से उसने सेज बिछाई और उस पर फूल बिखेरे। फिर एक सन्दूक से पति का एक फ़ोटो निकालकर वह सेज पर जा बैठी। वह उस चित्र को मंत्रमुग्ध-सी देखने लगी। वह उसे देर तक बैठी देखती रही। उसके चेहरे पर अगणित भाव आये-गये। सहसा उठकर उसने एक सन्दूक खोली, और उसमें से कुछ निकालकर खाया। फिर पति के चित्र को सीने से चिपकाकर वह सेज पर लेट गई। उसके होंठों पर अद्भुत मुस्कान नृत्य करने लगी। उसके चेहरे पर विजय-गर्व व्यक्त हो गया।

रात बीती। सवेरा हुआ। दिन चढ़ा।

"छोटी बहू! ओ छोटी बहू!" सास ने आवाज लगाई—"आज सोती ही रहोगी क्या? खाना कब बनेगा? आज भी छुट्टी का दिन है क्या?"

कोई उत्तर नहीं मिला।

"वाह जी वाह! देखो तो दीदा! साढ़े सात बज गये, अभी तक सो रही है। काम में जी ही नहीं लगता।"

"रहने दो, अम्मा जी।" मँझली बहू ने कहा—"आती होगी।"

"रहने क्या दूँ? यह लच्छन मुझे अच्छा नहीं लगता। मैं तो साफ़ बात करती हूँ, चाहे किसी को अच्छी लगे या बुरी।"

"रोज तो वह तड़के ही उठती है। देखो, मैं जाकर देखती हूँ कि क्या बात है।"

मँझली बहू आशा के कमरे के सामने पहुँची।

"दुलहिन! दुलहिन!"

कोई उत्तर नहीं मिला। दरवाज़ा खटखटाया। कोई नतीजा नहीं हुआ। उनका माथा ठनका।

"जीजी! जीजी!"

"क्या है?"

"ज़रा यहाँ तो आओ। अम्मा जी को भी बुलाती आओ।"

"अच्छा।"

वे दोनों भी आ पहुँचीं। फिर आवाज़ें लगाई गई। दरवाज़ा पीटा गया। कोई परिणाम नहीं हुआ। तब मर्दों को खबर दी गई।

मर्द आये। दरवाज़ा तोड़ा गया। सब लोग दंग रह गये। प्रताप के फ़ोटो को सीने से लगाये हुए आशा सजी-धजी सुसज्जित सेज पर पड़ी थी। उसका शरीर निर्जीव था। कोहराम मच गया। मर्दों में सलाह हुई। एक डाक्टर बुलाया गया। उसने शव की परीक्षा की।

"कम से कम छः घंटे पहले मर चुकी हैं।" डाक्टर ने राय दी—"इन्होंने जहर खाकर आत्म-हत्या की है।"

"आत्म-हत्या कहना तो ठीक न होगा, डाक्टर साहब।" बाबू गुरुसहाय ने कहा।

"तब?"

"हार्ट-फ़ेल कहिए, डाक्टर साहब।" दस-दस के कई नोट डाक्टर के हाथ में देते हुए बाबू साहब ने कहा।

"बेहतर है।" नोट जेब में रखते हुए डाक्टर ने उत्तर दिया—"मुझे कोई उज्र नहीं है। मैं आपको सर्टिफ़िकेट दे दूँगा।"

"बड़ी इनायत होगी।"

मर्द बाहर चले गये। रोना-धोना फिर शुरू हो गया।

"ऐसा जान पड़ता है, जैसे सुख की नींद सो रही हो!" आह भरकर एक स्त्री ने कहा—"ऐसी सुन्दरता, भरी जवानी और ऐसा अन्त! हाय रे भाग्य!"

एक घंटा बीता। अर्थी अन्दर आई।

"मुन्ना की मा!" भर्राये हुए स्वर में बाबू गुरुसहाय ने कहा—"बहू जिस तरह है उसी तरह उसे अर्थी पर लेटालो। उसकी कोई चीज़ न उतारी जाय। वह देवी थी, सती थी!"

"गहने तो उतार लेने दो।"

"गहने? नहीं, मत उतारो गहने भी।"

"बेकार फेंकने से क्या फ़ायदा?"

"अच्छा, उतार लो गहने, लेकिन और कोई चीज़ न उतारना।"

"अच्छा।"

ज़ोर का कोहराम मचा। अर्थी उठी। प्रमोद भी अर्थी के साथ था। उसका दिल बैठा जा रहा था, उसे चारों ओर सूना-सूना-सा लग रहा था।

आ गया श्मशान। चिता सजी। चिता को अग्नि दी गई। प्रमोद आगे नहीं देख सका। वह एक ओर चल पड़ा। उसकी आँखों से आँसू गिर रहे थे।

"अरे सुनो तो, प्रमोद!"

नहीं सुना उसने कुछ। वह तेज़ी से बढ़ता गया। एक निर्जन स्थान पर पहुँचकर, रेत पर गिरकर, वह लोटने लगा, बिलखने लगा।

अन्तर्दाह कुछ कम हो गया। वह अस्त-व्यस्त उठकर बैठ गया। इस तरह आज आशा का उत्तर मिल गया! कैसा विकट है यह उत्तर! प्रीति निरी मूर्खता है! किन्तु मनुष्य का उसके ऊपर वश कहाँ? ओह हृदय—पागल हृदय!

मेरे लिए

लेखक, श्रीयुत कुँवर सोमेश्वरसिंह, बी० ए०, एल-एल० बी०

मेरे लिए मेरे लिए
है साँझ आज उदास-सी
है मर रही निश्वास-सी
हैं तारकों ने अश्रुकण बिखरा दिये उद्विग्नमन
मेरे लिए मेरे लिए

कल ही खिली थी जो कली
लगती सभी को थी भली
निज अतुल वैभव को लुटा, मुरझा, गई असमय चली
मेरे लिए मेरे लिए

सुन कुहुकिनी मेरी व्यथा—
की करुणतम कातर कथा
आकुल अकेली आम्र-तरु, पर आ अचानक रो पड़ी
मेरे लिए मेरे लिए

हैं ये सभी दुर्बलहृदय
मत भूल बन जाना सदय
छोटा न जी करना कहीं, देना नहीं दो बूँद भी
मेरे लिए मेरे लिए

[झेलम में नौका पर एक चलती-फिरती दुकान]

पृथिवी का स्वर्ग

लेखक, श्रीयुत भक्तमोहन

काश्मीर को हम पृथिवी का एक देश कहें या स्वर्ग का एक भाग, यह एक समस्या है, और इस समस्या को आज तक कोई भी हल नहीं कर सका। भारत के विशाल मस्तक पर स्वर्गमय काश्मीर आज युग-युगान्तरों से शोभायमान है। काश्मीर की सुहावनी प्रकृति, वहाँ की सुन्दर सुषमा, दर्शकों के हृदय में एक चित्र-सा खींच देती है। तुषारावृत पर्वतों की शोभा, निर्मल एवं शीतल जल-प्रपातों का मधुर रव, वन-मालाओं से आता हुआ मन्द सुगन्धित पवन हृदय में एक विचित्र सुख का संचार कर देता है।

काश्मीर को लोग स्वर्ग से उपमा देते हैं। हिमालय पहाड़ की विशाल श्रेणियाँ आकाश का चुम्बन करती हुई इसके चारों ओर फैली हुई हैं। ऊपर से गिरते हुए सूर्य की कान्ति की भाँति झरनों का मधुर शब्द ऐसा प्रतीत होता है, मानो मेघों के संघर्ष से बिजली चमक कर नृत्य कर रही है। ऊँची-नीची घाटियाँ तथा पहाड़ों पर के ऊँचे ऊँचे चीड़ के वृक्ष और नदियों के किनारे किनारे चनार के पेड़ चित्त को शान्त करते हैं।

काश्मीर में सबसे सुन्दर तथा रमणीक स्थान श्रीनगर है। यह झेलम नदी के तट पर बसा हुआ है तथा यहाँ की राजधानी है। यहाँ का दृश्य तो और भी रमणीक तथा अवर्णनीय है। झेलम नदी में यहाँ हर समय बहुत सी नावें इधर-उधर फिरा करती हैं। इन नावों पर लोग घर बना कर रहते हैं, जिनको 'हाउस-बोट' कहते हैं।

श्रीनगर में काश्मीर के महाराज का भव्य भवन एक बहुत ही रमणीक स्थान पर बना हुआ है। यह स्थान बहुत ही स्वच्छ तथा बाग-बगीचों से सुसज्जित और हरा-भरा है। यह स्थान डल झील के बहुत ही निकट है। महाराज साहब के मकान के अतिरिक्त आप यहाँ के सभी मकान लकड़ी के बने हुए हैं, क्योंकि यहाँ

[मुंशीबाग़ से डल झील का एक दृश्य]

नयनाभिराम दृश्यों को देखकर पुराण-वर्णित नन्दनवन की अपने आप याद आ जाती है। फूलों की सुगन्धि से व्याप्त वायु हृदय में एक अनोखी उमंग उत्पन्न कर देती है। इन उपवनों में बैठने के लिए जगह जगह मनोहर स्थान बने हुए हैं, जहाँ लोगों की भीड़ संध्या तक जमी रहती है।
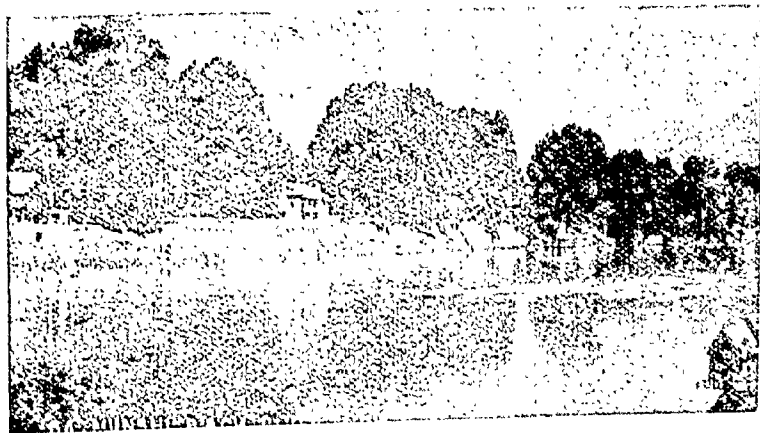
चीड़ की लकड़ी की अधिकता है और यही लोगों को ज्यादा सस्ती मिलती है।

काश्मीर में बहुत-सी सुन्दर सुन्दर झीलें हैं, जहाँ संध्याकालीन दृश्य अत्यन्त ही सुन्दर रहता है। डल झील सब झीलों में सुन्दर तथा श्रेष्ठ है। यह झील श्रीनगर में है। इसका जल स्वच्छ तथा शीतल है और इतना निर्मल है कि इसके अन्दर की सम्पूर्ण वस्तुएँ दृष्टिगोचर होती हैं। ऊलर झील डल से भी बड़ी है और उसमें भी नावें बहुत चलती रहती हैं।

श्रीनगर से लगभग दस मील की दूरी पर पुराने समय के 'शालीमार', 'निशात', 'चश्मे-शाही' तथा 'हारवन' नाम के प्रसिद्ध उपवन हैं। इन उपवनों में प्रवेश करते ही प्रकृति का सच्चा आनन्द प्राप्त होता है। ज़ोर ज़ोर से गिरते हुए झरनों का शब्द इस प्रकार गुंजार करता है, मानो पंडितों का समूह सूर्य की ओर मुँह करके वेद-मंत्र पढ़ता हुआ अर्घ्य दे रहा है। फूलों के

श्रीनगर में झेलम नदी पर सात बड़े बड़े पुल बने हुए हैं, जिनके इस पार तथा उस पार बाज़ार हैं। यहाँ का सबसे स्वच्छ स्थान 'अमीराकदल' है, जो सबसे पहले पुल पर स्थित है। इसे यहाँ 'सिविल-लाइन्स' भी कहते हैं। गुलमर्ग यहाँ से लगभग २५ मील की दूरी पर है। यह एक पहाड़ी स्थल है, जहाँ बर्फ़ सदैव जमी रहती है। गर्मी के दिनों में भी यहाँ इतनी ठंडक रहती है, जितनी हमारे यहाँ जाड़े के महीने में होती है। यह भाग जाड़े के महीने में सुनसान हो जाता है और बर्फ़ की एक सुन्दर झील-सी बन जाती

[शीतकाल में काश्मीर का एक दृश्य]

है। वहाँ के निवासी नीचे के मैदानों में चले जाते हैं।

गुलमर्ग के पास एक और स्थान है, जिसका नाम 'खिलनमर्ग' है। यह स्थान गुलमर्ग से भी अधिक ऊँचाई पर है। यहाँ जून के महीने में इतनी ठंडक पड़ती है कि हम लोगों को और अधिक गर्म वस्त्रों की आवश्यकता हुई थी। बर्फ़ीला स्थान होने के कारण यहाँ के लोग बेपहिये की गाड़ी पर बैठकर फिसलने का आनन्द लेते हैं।

[पहलगाँव के आगे अमरनाथ के मार्ग पर शेषनाग नाम की प्रसिद्ध झील]

यदि हम अपनी काश्मीर-यात्रा का पूर्णरूप से वर्णन करें तो पचासों पृष्ठ रँग जायँगे, और पाठकगण भी पढ़ते पढ़ते ऊब जायँ, इसलिए हमने उसका यहाँ दिग्दर्शन भर कराया है।

कुछ दिनों तक अनेक ऊँचे ऊँचे पहाड़ी स्थानों की सैर करके हम फिर नीचे के भागों में लौट आये। दो-चार दिन विश्राम करके हम लोग 'पहलगाँव' पहुँचे। यह स्थान भी अन्य भागों की अपेक्षा भला प्रतीत हुआ। यहाँ की जलवायु स्वास्थ्य के लिए बहुत ही हितकर है। यहाँ का जल निर्मल तथा स्वास्थ्य-वर्द्धक है। मुख्यतः रोगियों के लिए तो महौषध या अमृत ही कहना चाहिए। यहाँ के सोतों तथा झरनों की शोभा अतुलनीय है। हम लोगों का समय एक महीने यहीं व्यतीत हुआ।
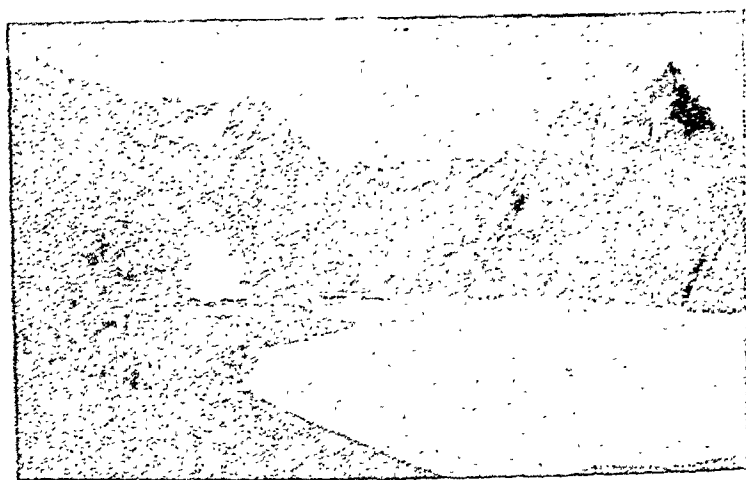
[तैरता हुआ खेत—काश्मीर में झील पर ऐसे ही तैरते हुए खेतों में खेती होती है]

काश्मीर में हिन्दुओं के बहुत-से मन्दिर हैं। श्री शंकराचार्य, क्षीर-भवानी, और अमरनाथ के मन्दिर अधिक प्रसिद्ध हैं।

श्रीनगर से लगभग चार मील की दूरी पर श्री शंकराचार्य जी का प्राचीन मन्दिर एक बहुत ऊँची चोटी पर स्थित है। यद्यपि वह बहुत विशाल नहीं है,
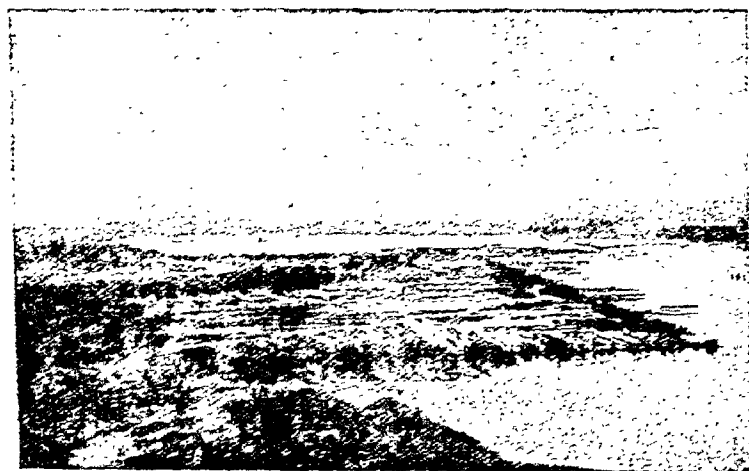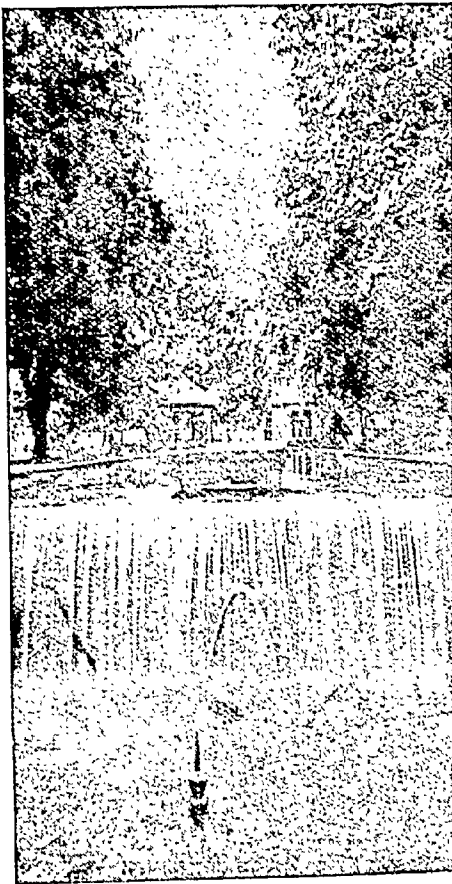
[निशातबाग़ का एक सुन्दर दृश्य]

[घर की ओर]

फिर भी लोग इस मन्दिर का दर्शन करने के लिए दूर दूर से आते हैं। रात्रि में आकाश में झलमलाते हुए तारागणों की भाँति यह मन्दिर बिजली के प्रकाश में चमकता हुआ बहुत ही अच्छा लगता है।

खीरभवानी का मन्दिर भी बहुत पुराना है। वह जङ्गलों से घिरे हुए एक बीहड़ स्थान में है। एक छोटे से तालाब के बीच में देवी जी का मन्दिर है, जिसमें मूर्तियाँ स्थापित हैं। यहाँ के लोगों का कहना है कि ये मूर्तियाँ तालाब के अन्दर से अपने आप प्रकट हुई हैं। देवी जी का दर्शन करने के लिए बहुत दूर दूर के लोग आते हैं।
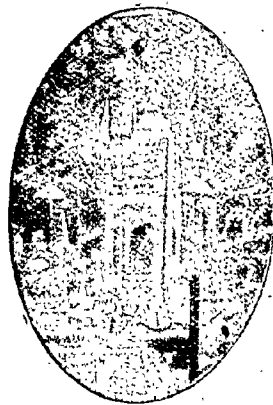
[राज्ञादेवी (खीरभवानी) का मन्दिर]

देवी जी की यहाँ बड़ी महिमा है और लोगों की उन पर बड़ी श्रद्धा है। मन्दिर के निकट गौरवर्ण के बहुत-से नवयुवक बड़े बड़े चोगा पहने सिर पर साफा बाँधे विराजमान रहते हैं। ये लोग मन्दिर के पुजारी हैं और इन्हें बहुधा यात्रियों से बहुत-सा धन मिल जाता है।

श्री अमरनाथ जी यहाँ का सबसे बड़ा तीर्थस्थान माना जाता है। यह स्थान 'पहलगाँव' से काफ़ी दूर है।

काश्मीर यथार्थ में इस पृथिवी से न्यारा है। लोगों का कहना है कि योरप का स्वीटज़रलैंड भी इसकी समता नहीं कर सकता।

किसानों का नया क़ानून

लेखक, श्री सीतलासहाय, बी० ए०

क़ानून क़ब्ज़े आराज़ी पर जिसे कांग्रेस-गवर्नमेंट ने पास किया था, गवर्नर महोदय ने हस्ताक्षर कर दिये और वह अब क़ानून हो गया।

"कांग्रेस-गवर्नमेंट का इस क़ानून के बारे में यह दावा है कि उसने इसकी हर एक 'तजवीज़' को इस कसौटी पर कसा है कि वह कहाँ तक लाभदायक और व्यावहारिक है। उसने उन तजवीज़ों को नामंज़ूर कर दिया है जो किसानों को जान-बूझकर या अनजान में अधीनता की बेड़ियों में सिर्फ़ इसलिए जकड़े रखना चाहती हैं कि वे इन बेड़ियों को बहुत वर्षों से पहने चले आ रहे हैं। साथ ही साथ गवर्नमेंट ने अफ़सोस के साथ उन तजवीज़ों को भी नामंज़ूर कर दिया है जो देखने में बहुत लुभावनी मालूम होती हैं, लेकिन जिनमें सम्भावना है कि किसान मुक़दमेबाज़ी के दलदल में फँस जायँगे या जिनकी उपयोगिता या मूल्य पर गवर्नमेंट को सन्देह है।" (गो० व० पन्त)

अब 'अवध-क़ानून-लगान' और आगरा 'टेनेन्सी ऐक्ट' दोनों रद्द कर दिये गये हैं और इन दोनों की जगह 'युक्त-प्रान्त टेनेन्सी ऐक्ट' जो 'क़ानून क़ब्ज़े आराज़ी' के नाम से प्रसिद्ध है, लागू होगा। अवध और आगरा दोनों प्रान्तों में अब एक ही क़ानून चलेगा।

मौरूसी हक़—गवर्नमेंट ने इस क़ानून के द्वारा किसानों को मौरूसी हक़ दिया है। वे सब किसान मौरूसी काश्तकार कर दिये गये हैं जिन्हें अभी तक 'हीनहयाती हक़' प्राप्त था।

जो किसान मृत व्यक्ति के वारिस की हैसियत से खेत जोत रहे हैं और उनके वारिस भी उस ज़मीन के मौरूसी काश्तकार हो गये हैं। अवध में ऐसे किसान पाँच बरस के अन्दर मृत व्यक्ति की ज़मीन से पिछले क़ानून की दफ़ा ४८ के अनुसार बेदख़ल हो जाते थे। अब यह ४८ दफ़ा टूट गई है।

अभी तक क़ायदा यह था कि अगर किसी किसान के पास मातहती की या ज़मींदारी की बिस्वा भर भी ज़मीन होती थी तो वह अवध में हीन-हयाती क़ानूनी काश्तकार नहीं बन सकता था और वह दफ़ा ६७(१) 'बी' के अनुसार अपने दूसरे खेतों से बेदख़ल हो सकता था। लेकिन नये क़ानून में यह बन्दिश उठा ली गई है। मातहतदारों और आराज़ी के वैसे ही दूसरे मालिकों को अपने दूसरे ख़ालसा खेतों में मौरूसी हक़ मिल सकेगा। मातहतदार और ज़मींदार अभी तक दफ़ा ६७, १(बी) की वजह से क़ानूनी काश्तकार नहीं हो सकते थे। यह दफ़ा [(६७, १(बी)] अब मन्सूख़ हो गई है।

अवध में यह क़ायदा था कि पाही काश्तकार बेदख़ल कर दिया जाता था। अवध के लगान-क़ानून में एक नियम यह था कि अगर कोई किसान किसी ऐसे गाँव में जिसमें वह रहता न हो, खेती करता हो तो वह दफ़ा ६२ ए की उपदफ़ा 'बी' के अनुसार दूसरे गाँववाले खेत से बेदख़ल हो जाता था। लेकिन इस क़ानून के अनुसार अब पाही काश्तकार इस बात पर बेदख़ल नहीं हो सकेगा कि जिस गाँव में उसका खेत है उसमें ख़ास तौर पर वह नहीं रहता है।

अब भविष्य में इस क़ानून के अनुसार अगर किसी किसान को असली काश्तकारी का पट्टा दिया जायगा तो वह मौरूसी किसान समझा जायगा। और सिकमी भी पाँच बरस तक बेदख़ल न हो सकेगा।

मौरूसी हक़ के अपवाद—मौरूसी हक़ बाग़ों में, तरियों में और तालाबों में जिनमें सिंघाड़े बोये जाते हैं नहीं मिलेगा। जो ज़मीन नदी के किनारे है और जहाँ कभी-कभी खेती की जाती है, मौरूसी न हो सकेगी। जनता के हित के लिए या सार्वजनिक काम के लिए दी हुई ज़मीन में मौरूसी हक़ न मिलेगा।

सीर और ख़ुदकाश्त की ज़मीन— जिस ज़मींदार की मालगुज़ारी २५०) से कम है उसकी सीर की ज़मीन में किसानों को मौरूसी हक़ नहीं मिलेगा। लेकिन अगर ज़मींदार की मालगुज़ारी २५०) से ज़्यादा है या वह २५) से ज़्यादा अबवाब देता है तो उसकी सीर की ज़मीन पर किसानों को मौरूसी हक़ मिल सकता है। इस क़ानून के जारी होने के बाद से सीर के मालिक पाँच बरस से ज़्यादा तक के लिए

अपनी सीर को या उसके किसी अंश को शिकमी न दे सकेंगे। अगर वे पाँच वरस से ज़्यादा समय तक अपनी सीर पर किसी शिकमी काश्तकार का क़ब्ज़ा क़ायम रहने देंगे और उस काश्तकार को वेदख़ल न करेंगे तो वह काश्तकार उसकी सीर की उस ज़मीन पर मौरूसी हक़ प्राप्त कर लेगा। पाँच वरस तक शिकमी उठाने के वाद सीर के मालिक के लिए यह ज़रूरी है कि वह तीन वरस तक उस खेत में अपने हल-वैल से ख़ुद खेती करे।

लेकिन ये नियम और ये वन्दिशें सीर के उन मालिकों के लिए नहीं हैं जो असमर्थ हैं, जैसे स्त्रियाँ, नावालिग़, पागल और अन्धे। अभी तक क़ायदा यह था कि ज़मींदार अपनी ख़ुदकाश्त की ज़मीन को सीर करवा देता था और फिर सीर को किसानों को शिकमी उठा देता था। नई तजवीज़ यह है कि कोई ज़मीन नई सीर नहीं वनाई जा सकेगी।

अवध रेंट-ऐक्ट की दफ़ा ३० (१) और आगरा-टेनेन्सी ऐक्ट की दफ़ायें ४० और ४१ मंसूख़ कर दी गई हैं। इन दफ़ाओं के अनुसार ज़मींदार को हक़ था कि कुछ सूरतों में वह किसान से उसकी ज़मीन छीन ले, लेकिन अव यह नहीं हो सकेगा। अगर ज़मींदार या ताल्लुक़ेदार किसी किसान से उसकी ज़मीन लेना चाहता है तो इस मामले को काश्तकार के साथ अपनी तरफ़ से तय करे और अगर किसान ख़ुशी ख़ुशी देने को तैयार है तो ले सकता है, लेकिन पहले की तरह अव वह अदालत के द्वारा ज़मीन छीन नहीं सकता। ज़मींदार ५ एकड़ तक खेत ले सकता है, अगर वह उस पर अपना मकान वनाना या फुलवाड़ी लगाना चाहता है। इससे ज़्यादा वह नहीं ले सकता है।

ज़मीन का सुधार, इमारतें और पेड़—अपने खेतों का सुधार करने के लिए मौरूसी काश्तकारों को भी वही अधिकार हों जो 'दख़ीलकार' और 'साक़ितुल मिल्कियत काश्तकारों' को होते हैं। ऐसे सभी काश्तकारों को यह हक़ भी होगा कि वे अपनी ज़मीन पर स्थायी ढंग का मकान या जानवरों के रहने के लिए घर वनवा सकें। लेकिन अगर ऐसी इमारत आराज़ी के मालिक की मंज़ूरी के बिना वनाई जायगी तो आराज़ी के मालिक पर इस वात की ज़िम्मेदारी नहीं होगी कि काश्तकार के क़ानून के अनुसार वेदख़ल किये जाने पर वह काश्तकार को उस इमारत का मुआविज़ा दे। उस समय काश्तकार या तो सव मलवा वहाँ से हटा ले जा सकता है या उसे किसी दूसरे आदमी के हाथ वेच सकता है।

अगर काश्तकार आराज़ी के मालिक से ऐसी इमारत वनाने के लिए मंज़ूरी माँगे और वह मंज़ूरी न दे तो काश्तकार अपनी दरख़्वास्त अदालत के पास भेज सकता है और अगर अदालत को यह मालूम होगा कि प्रस्तावित इमारत ज़मीन के अनुकूल है और आराज़ी के मालिक ने अपनी मंज़ूरी न देकर अन्याय किया है तो अदालत उस अर्ज़ी को मंज़ूर कर सकती है और अपनी समझ से इस वात की मुनासिव पावन्दी लगा सकती है कि इमारत कितनी वड़ी हो, उसके वनाने की जगह कौन हो, उसमें ख़र्च कितना हो वग़ैरह। अदालत के ऐसा निर्णय करते ही यह समझा जायगा कि आराज़ी के मालिक ने इजाज़त दे दी है और काश्तकार के वेदख़ल किये जाने पर आराज़ी का मालिक उसे हर्जाना देने को ज़िम्मेदार होगा।

ग़ैर दख़ीलकार काश्तकारों के अलावा दूसरे काश्तकारों को इस वात का हक़ होगा कि वे आराज़ी के मालिक की मंज़ूरी लिये विना अपनी ज़मीन में दरख़्त लगा सकें।

किसी ख़िलाफ़ इक़रारनामा के न होने पर जब कभी कोई काश्तकार अपनी ज़मीन में सुधार करेगा या इमारत वनायेगा या दरख़्त लगायेगा तो वह उस ज़मीन का पूरा लगान देने का ज़िम्मेदार होगा।

किसी दैवी आपत्ति के आ जाने पर जैसे वाढ़ या पाला आदि के होने पर प्रान्त की गवर्नमेंट लगान पर छूट देगी, जिसकी दर निम्नलिखित होगी—

अगर फ़सल में १२ आने या वारह आने से ज़्यादा की हानि हुई है तो १६ आने की छूट दी जायगी। अगर १० आने की हानि हुई है लेकिन १२ आने से ज़्यादा की नहीं तो रुपये में १० आने की छूट मिलेगी। अगर ८ आने की हानि हुई है लेकिन १० आने से ज़्यादा की नहीं तो रुपये में ६ आने की छूट मिलेगी। यह भी क़ानून वनाया

गया है कि अगर बुन्देलखंड और यमुना के उस पार इलाहाबाद, इटावा, आगरा, और मथुरा के ज़िलों में और दूसरे ज़िलों में भी हालत ऐसी है कि ६ आने का नुक़सान हुआ है लेकिन ८ आने से ज़्यादा नहीं हुआ है तो रुपये में ४ आने की छूट दी जायगी। शिकमी काश्तकारों को भी छूट दी जायगी।

डिप्टी कमिश्नरों और कलेक्टरों के पास गवर्नमेंट ने यह हिदायत भेज दी है कि वे ख़ुद उन हल्क़ों से जो दैवी आपदाओं में फँसे हुए हों, परिचित रहें और उनकी असली हालत जानते रहें।

लगान की अदायगी—आराज़ी का मालिक लगान या सायर की जो रक़म वसूल करेगा उस हर एक रक़म के लिए निर्धारित फ़ार्म पर छपी हुई रसीद देगा। जो भी रक़म दी जायगी उसे लेना आराज़ी के मालिक के लिए लाज़मी होगा, चाहे वह रक़म लगान की पूरी रक़म हो, चाहे उसका एक हिस्सा। रसीद और मुसन्ना के छपे हुए फ़ार्म गवर्नमेंट से मुनासिब दाम पर मिल सकेंगे।

काश्तकार को इस बात की आज़ादी होगी कि या तो वह मनीआर्डर से लगान की रक़म अदा करे या अदालत में जमा करा दे।

ज़मीन के वाजिब लगान के अलावा सारे ज़ायद मतालबे रद्द हो जायँगे, जैसे हरी, बेगार, भोगहती, भूसा, बयायी आदि और वे वसूल नहीं किये जा सकेंगे और किसी भी काश्तकार से उस लगान के अलावा जो उसकी ज़मीन के लिए दर्ज है, कोई और रक़म माँगी नहीं जा सकेगी।

किसी भी दशा में काश्तकार बक़ाया लगान की बिना पर गिरफ़्तार नहीं किया जा सकता है, न हिरासत में ही रक्खा जा सकता है।

रसीद देने के बारे में या मुसन्ना रखने के मामले में या दी हुई रक़म को जमा करने के सम्बन्ध में या ग़ैर क़ानूनी ढँग से रुपया वसूल करने के सिलसिले में या रक़म और क़िश्त की तारीख़ और सूद की दर आदि के बारे में जो लोग क़ानून भंग करेंगे वे सिर्फ़ हर्जाना देने के ही ज़िम्मेदार नहीं होंगे, बल्कि इस ऐक्ट की दफ़ाओं में ऐसे जुर्मों के लिए जो दण्ड स्पष्ट रूप से निर्धारित किये गये हैं उन्हें भी भुगतना होगा।

क़ुर्क़ी ख़ुद अख़्तियारी—अभी तक क़ायदा यह था कि ताल्लुक़ेदार या ज़मींदार किसान की खड़ी हुई फ़सल को अपनी मर्ज़ी से क़ुर्क़ कर लेता था, वहाँ झंडी गाड़ देता था और शहना बिठला देता था, लेकिन अब क़ुर्क़ी ख़ुद अख़्तियारी न हो सकेगी।

बेदख़ली—इस क़ानून में यह दफ़ा रक्खी गई है कि कोई किसान गाँव में अपने रहने के मकान से सिर्फ़ इस वजह से बेदख़ली के क़ाबिल न होगा कि वह उस मौज़े में अपनी जोत से बेदख़ल कर दिया गया है।

ताल्लुलमिल्कियत, दाख़ीलकार और मौरूसी किसान की बेदख़ली की सिर्फ़ उसी वक़्त इजाज़त है जब बक़ाया एक साल के लगान से ज़्यादा हो। बेदख़ली की कार्रवाइयों के ज़ाब्ते में बहुत ज़्यादा तब्दीली कर दी गई है। इस क़ानून के मातहत डिग्री-शुदा बक़ाया की बिना पर बेदख़ली के लिए १ जून और ३१ अगस्त के दर्मियान दरख़्वास्त दी जानी चाहिए।

बाग़—इस क़ानून में यह व्यवस्था की गई है कि ऐसी आराज़ी का जो बाग़ की आराज़ी न रह गई हो, बाग़दार मौरूसी काश्तकार हो जायगा और इन्तक़ाल या शिकमी पर उठाने के लिए बाग़दारों के अधिकार किसी प्रथा और मुआहिदे के अधीन न होंगे।

नज़र, नज़राना, बेगार—कुछ सज़ायें और मुआविज़े इस उद्देश्य से मुक़र्रर किये गये हैं कि अगर किसान बेजा काम करे तो उसे दंड मिले और अगर ज़मींदार लोग ज़्यादती करें तो उन्हें सज़ा मिले और जिस पर ज़ुल्म हुआ है उसको तावान दिलाया जाय। इस प्रान्त में अकसर यह देखा गया है कि ज़मींदार लोग बक़ाया लगान से ज़्यादा रक़म वसूल कर लेते हैं या बक़ाया लगान पर सूद बहुत ज़्यादा लगाते हैं, हरी, बेगार, नज़राना वग़ैरह लेते हैं। अगर गवर्नमेंट लगान माफ़ कर देती है तो भी वसूल कर लेते हैं। अगर कोई किसान साल हाल का लगान देता है तो उसे बक़ाये में या किसी और मद में काट लेते हैं। रसीदें नहीं देते और खेत पर बिला अदालत के मंज़ूरी के बिना बाक़ायदा बेदख़ल किये हुए क़ब्ज़ा कर लेते हैं। कहीं कहीं किसान लोग बेदख़ल हो

जाने पर भी ज़मीन पर क़ब्ज़ा नहीं छोड़ते। इन सब ख़राबियों के लिए सजायें और तावान मुक़र्रर किये गये हैं। किसान से मतलब यहाँ सिर्फ़ मौरूसी किसान से है। किसी ज़मींदार के लिए यह जायज़ नहीं है कि खेत का पट्टा देने के लिए किसान से नज़राना ले। और न खेत इस शर्त पर दिया जा सकता है कि किसान ज़मींदार का कोई काम मज़दूरी लेकर या बिला मजदूरी लिये करेगा।

आगरा और अवध दोनों प्रान्तों में बहुत क़िस्म के ज़्यादा मतालबे किसानों से वसूल किये जाते थे। कुछ तो वाजिबुल—अर्ज में दर्ज थे, कुछ रसमी थे। ये सब मतालबे बन्द कर दिये जाँयगे।

जहाँ बाज़ारों या मेलों में ज़मींदारों और ताल्लुक़ेदारों की तरफ़ से रक़म वसूल होती है, इसके लिए ज़मींदार या ताल्लुक़ेदार को सूबे की गवर्नमेंट से इजाज़त लेनी पड़ेगी और इजाज़त देते वक़्त गवर्नमेंट सफ़ाई व पुलिस और दूसरी बातों के सिलसिले में जो प्रबन्ध मुनासिब समझेगी उसकी व्यवस्था करनी ज़मींदार या ताल्लुक़ेदार पर लाज़िम कर देगी।

इस नये क़ानून में नीचे लिखी बातें जुर्म मानी गई हैं।

कोई ज़मींदार, ताल्लुक़ेदार या कारिन्दा, अर्थात् कोई भी आदमी जानबूझकर वाजिब वक़ाया लगान या सायर से ज़्यादा रक़म या जिन्स वसूल नहीं कर सकता।

इस क़ानून में निश्चित की हुई सूद की दर से ज़्यादा सूद वक़ाया लगान पर नहीं लगा सकता।

कोई भी जान-बूझकर नज़राना, अबवाब, जायद मतालबा, हरी-बेगार, बयायी वग़ैरह नहीं ले सकता।

अगर किसी लगान को इस क़ानून ने माफ़ कर दिया है तो उसे कोई वसूल नहीं कर सकता। अगर कोई लगान मुलतवी कर दिया गया हो और मुलतवी की मियाद पूरी न हुई तो मियाद ख़तम होने के पहले कोई लगान वसूल नहीं कर सकता।

जिस मद में और जिस साल के लिए लगान या सायर दिया गया हो उसी में जमा करना होगा। बिना किसी उचित कारण के अगर कोई ज़मींदार या ताल्लुक़दार या उसके कारिन्दे किसी दूसरी मद में या दूसरे साल में उस रक़म को जमा करेंगे तो उनका वह काम क़ानून के विरुद्ध होगा। ऐसी हालत में काश्तकार को, मुस्तक़िल पट्टेदार को या सायर के लाइसेंसदार को अदालत २००) तक मुआविज़ा दिलायेगी और इसके अलावा अदालत उस रक़म की भी डिगरी दे सकती है जो ज़मींदार या ताल्लुक़दार ने ग़ैर मुनासिब तरीक़े से वसूल कर ली हो। वक़ाया लगान के मुक़दमे में अगर अदालत को यह मालूम हो जाय कि आराज़ी के मालिक ने बिना किसी उचित कारण के उस साल में जिसके लिए मुक़दमा किया गया है, किसान को रसीद देने से इनकार किया या रसीद देने में बेपरवाही की या यह कि वह रसीद का मुसन्ना न तो तैयार करता है और न रखता है तो अदालत किसान को मुआविज़ा दिलायेगी जो अदा की हुई रक़म से दुगना तक हो सकता है।

अगर आराज़ी का कोई मालिक ऐसा लगान वसूल कर ले जो इस क़ानून के द्वारा माफ़ कर दिया गया है या मुलतवी की मियाद ख़तम होने के पहले इस क़ानून के मुताबिक़ मुलतवी किया हुआ लगान वसूल कर लिया है तो सरकार की तरफ़ से आराज़ी के मालिक को लगान या मालगुज़ारी में दी हुई सारी की सारी माफ़ी मंसूख कर दी जायगी और उसे माफ़ी की रकम वाजिबुलअदा हो जायगी।

अगर कोई आदमी स्वभावतः रसीद देने से इनकार करता हो या देने में बेपरवाही करता है तो फ़ौजदारी की अदालत में उस पर मुक़दमा चलाया जायगा और सज़ा हो जाने पर पहले जुर्म में १००) तक जुर्माना होगा और बाद के जुर्मों में तीन महीने तक की सज़ा या ५००) तक जुर्माना या दोनों तरह की सज़ायें हो सकती हैं।

यदि किसी के विरुद्ध किसी खेत में या उसके किसी हिस्से से इस क़ानून के अनुसार बेदख़ली का हुक्म निकल चुका है या बेदख़ली की डिगरी तामील हो चुकी है या आगरा या अवध के क़ानून लगान के मुताबिक़ भी हुक्म निकला है या डिगरी कर दी गई है और कोई किसान अपने खेत से बेदख़ल कर दिया गया है, जब तक यह डिगरी या हुक्म क़ायम है अगर कोई भी आदमी उस खेत पर बिना उस आदमी की लिखी हुई आज्ञा के जिसको कि

खेत देने का हक़ है, क़ब्ज़ा करेगा या क़ब्ज़ा करने की कोशिश करेगा तो उसके ऊपर ताज़ीरात हिन्द की दफ़ा ४४१ के मुताबिक़ मुक़दमा चलाया जायगा।

अगर आराज़ी का मालिक किसी किसान के खेत पर इस मतलब से क़ब्ज़ा करेगा या क़ब्ज़ा करने की कोशिश करेगा कि बिना इस क़ानून के मदद लिये हुए उसे खेत से बेदख़ल कर दे तो उस ज़मींदार के बारे में यह मान लिया जायगा कि उस किसान को धमकी देने या परेशान करने का इरादा रखता था और उसके ऊपर भी ताज़ीरात हिन्द की दफ़ा ४४१ के मुताबिक़ मुक़दमा चलाया जायगा।

अदालत को अधिकार होगा कि खेत उसको दिला दे जिसका क़ानून से है, चाहे किसान का हो या ज़मींदार का।

अगर कोई किसान १ अप्रैल सन् १९३८ के बाद ख़रीफ़ सन् १३४४ फ़सली के या उसके पहलेवाले कई सालों के बक़ाया लगान के अदा न करने के अपराध में बेदख़ल किया गया है तो उसे हक़ है कि इस क़ानून के लागू होने के बाद छः महीने की मियाद में अपनी ज़मीन पर फिर बहाल किये जाने के लिए उस अदालत में दरख़्वास्त दे जिसने उसे बेदख़ल किया है। अदालत जाँच करेगी और उचित समझकर उसको उसकी ज़मीन पर फिर बहाल कर देगी और क़ब्ज़ा दिलायेगी, लेकिन अगर यह बेदख़ल की गई ज़मीन या इसका कोई हिस्सा १३४५ फ़सली में किसी दूसरे आदमी को पट्टे पर दे दिया गया है और वह लगातार उसके पास रहा है तो अदालत उस ज़मीन के बारे में कोई भी हुक्म न देगी। ज़मीन के वापस मिलने पर किसान को बेदख़ली के मुक़दमे का ख़र्च आराज़ी के मालिक को अदा करना होगा। अगर बेदख़ली के समय आराज़ी के मालिक ने किसान को मुआविज़ा के रूप में कुछ रक़म दी है तो उसे वापस करना होगी। अगर आराज़ी के मालिक ने इस ज़मीन के सुधार के सिलसिले में कुछ ख़र्च किया है तो उसे भी अदा करना होगा। ज़मीन को वापस पाने के बाद किसान को वही हक़ और ज़िम्मेदारी आ जायगी जो उस ज़मीन के सम्बन्ध में उसके ऊपर बेदख़ल हो जाने के पहले थी। जैसे अगर किसान जोत के एक हिस्से पर क़ाबिज़ बताया जाता है तो लगान उस हिस्से का देना पड़ेगा जिस पर उसने क़ब्ज़ा पाया है। अवध में जो किसान इस क़ानून के लागू होने के वक़्त सिकमी हैं इस वक़्त से पाँच बरस तक उस जोत से बेदख़ल नहीं किये जा सकेंगे चाहे वे सिकमी दर सिकमी हों क्यों न हों।

अगर इस क़ानून के लागू होते वक़्त कोई मुक़दमा 'आगरा क़ब्ज़ये आराज़ी' के या 'अवध क़ानून लगान' के अनुसार किसी अदालत में दायर है या इन दोनों के अनुसार कोई डिग्री जिसका मतालबा अभी तक अदा नहीं हुआ है, जारी है तो उन मुक़दमों और डिग्री की कार्रवाई इस नये क़ानून की दफ़ाओं के अनुसार होगी। अगर इस नये क़ानून में इन दफ़ाओं के अनुसार कोई दफ़ा मौजूद है तो मुक़दमा और डिग्री मंसूख़ समझी जायगी।

किसानों के नये क़ानून का यही विवरण है। आशा है, प्रान्त के किसान इस क़ानून से लाभ उठायेंगे।

एकांकी नाटक

सेठ लाभचंद

लेखक, श्रीयुत उदयशङ्कर भट्ट

समय दोपहर—

(सेठ लाभचंद की दूकाननुमा बैठक। ऊपर दरी और आधे भाग में बड़ा गद्दा है, ऊपर एक सफ़ेद चादर। पश्चिम की ओर दो दरवाज़े। बाहर जँगलें लगे हैं और भीतर मोटे किवाड़ हैं। जँगलों की छड़ें नीले रोग़न से पुती हैं। भीतर दरवाज़े भी वैसे ही हैं। गावतकिये के सहारे सेठ बैठा है, उसके पास दो आयरन सेफ़, जिनके दरवाज़े खुले हैं, रक्खे हैं। उनमें चाँदी और सोने के गहने सजा कर रक्खे हैं। सेठ के ऊपर की दीवार पर लक्ष्मी जी और गणेश जी की तसवीरें हैं, जिन पर फूल-मालायें पड़ी हैं। उसके नीचे दीवार पर ही रोली से स्वस्तिक का चिह्न है। सेठ के सामने ज़रा दूर हटकर एक मुनीम बही-खाता खोले काम कर रहा है। पास ही कुछ दूर हटकर लट्ठ-बन्द आदमी बैठा है। दूसरे कोने में तिपाई पर ताँबे का टोंटीदार लोटा 'गंगासागर' रक्खा है। उसके पास ही एक खूँटी पर डोर से लिपटा कपड़े का डोल टँगा है। सेठ की उमर लगभग चालीस साल, छरहरा वदन, पीली पगड़ी, मलमल का कुछ मैला कुरता। चश्मा बिलकुल नाक की नोक पर। पास की चीज़ देखने के लिए ऐनक की आवश्यकता है तो फिर दूर के लिए उससे बार बार उतारने से उसकी कमानी ख़राब हो जाने का डर है। इसलिए सेठ ने ज़रा लम्बी कमानी का चश्मा बनवाया है। दूर से देखने पर मालूम होता है, मानो चश्मे और आँख दोनों का ठीक उपयोग करने के लिए एक ख़ास 'एंगल' पर फ़र्मायशी नाक बनवाई गई है, जो नोक पर काफ़ी मोटी होती हुई भी उसके पास एकदम पतली हो गई है, मानो हजामत के ब्रुश की मुट्ठी हो। काले निर्मांस शरीर में हृदय केवल इसलिए चिपकाया गया है कि वह मस्तिष्क के धन-संग्रह की चिन्ता को एकदम सूख न जाने दे और उससे रस प्रवाहित होता रहे। इसी लिए कभी वह पेटियों की ओर, और कभी सामने टँगे कलेण्डर की तरफ़ दृष्टिपात करता है, फिर गावतकिये का सहारा लेकर छत की तरफ़ देखता है, दोनों हाथों से सिर को सहारा देकर कुछ सोचता हुआ—)

सेठ—छै आने चार पाई के हिसाब से छै रुपये बारह आने एक साल के, और तीन साल के बीस, चार आने ब्याज पाँच आने, बीस नौ आने। (एक कागज़ पर टीपकर) मुनीम जी, मुनीम जी!

मुनीम—जी सेठ जी!

सेठ जी—तनसुखदास के बीस पाँच आने और जोड़ो। पहले कितना है?

मुनीम—(बही खोलकर) दो सौ पचासी चार आने सेठ जी!

सेठ—ठीक, बीस नौ आने और जोड़ दो। और देखो, धर्मादे में इस महीने में कितना आया।

मुनीम—धर्मादे में (बही खोलकर और देखकर) पच्चीस सात आने।

सेठ—और बिक्री!

मुनीम—सेठ जी, अभी जोड़ा नहीं है। जोड़ूँ क्या?

सेठ—ठहरो।

रामसेवक—(जो लट्ठ बाँधे एक ओर बैठा है) सेठ जी!

सेठ—गाहकी तो रही ही नहीं। देखो, नसीमबकस की गिर्वी की म्याद कब ख़तम होती है। (गावतकिये के सहारे पगड़ी को ठीक करके) रामसेवक राधेश्याम, महादीन पाण्डे और सखुनअली के यहाँ गया था?

रामसेवक—हाँ सेठ जी! राधेश्याम बाबू दौरा पर गये हैं। महादीन पाण्डे साग-तरकारी लेने बाज़ार गये थे। सखुनअली के घर से कहलवा दिया है नहीं। हम लौट आये। क्या करते? सेठ जी, महीना की तनखा मिल जाय।

सेठ—काम एक भी पूरा न किया, तनखा माँगे है। मैं हम कुछ नहीं सुनना चाहते। वसूली करके लाओ। बैठे की तनखा नहीं मिलेगी, समझे, जो है सोह के बीच में काम करो। मुनीम जी, देखो कितने की वसूली की है इसने!

मुनीम—सेठ जी, नसीमबक्स का एक दिन बाक़ी है।

सेठ—एक दिन आज कड़े तो अब सेठ लालचंद के हो गये। चार दिन के बीच में लावे (मुनीम की ओर देखकर) हाँ, समझे। देखो, फिर देखो, हिसाब फिर देखो। ओह चार दिन। (पेटी में से कड़े निकाल और देखकर) माल खरा है। पैंतीस में तो कोई भी हँसता हँसता ले लेगा और मैंने रक्खे हैं पच्चीस में। दस फ़ी तोला। (काग़ज़ निकालकर पढ़ता है। इतने में एक पठान भीतर आता है और जूते उतारता हुआ सेठ को सलाम करता है। सेठ सब सामान जहाँ का तहाँ रखकर) सलाम, आइए साहब!

पठान—सेठ जी हम मदरास जा रहा था। हम हैं व्योपारी।

सेठ—अच्छा।

पठान—रास्ते में हमारा (लज्जित-सा होकर) क्या बताये सेठ तुमको। हम बड़ा मुश्किल में पड़ गया है।

सेठ—आप क्या चाहते हैं?

पठान—हम ईमानदार आदमी है, हम भी व्योपारी है। हज़ारों का व्यापार करता है, मेवा बेचता है मेवा। हमारा रुपया खो गया। हम मदरास जा रहा है।

सेठ—(घूरकर) इस समय हमें फ़ुर्सत नहीं है पठान। जाओ अपना काम करो।

पठान—पचास रुपया चाहता है। मदरास से वापिस कर देगा सेठ! हमारा पास बम्बई का टिकट है। (टिकट दिखाता है) हम व्यापारी है। हज़ारों का व्यापार करता है। हम शुक्रिया करेगा। तुम्हारा रुपिया वापिस कर देगा।

सेठ—(खीझकर) हमारे पास रुपया नहीं है। हम नहीं दे सकते। मुनीम जी, देखो...

पठान—हम कभी झूठ नहीं बोलता, पठान का बच्चा कभी झूठ नहीं बोलता। कल शाम से हमने कुछ खाया हो तो सूअर.....।

सेठ—पठान, बोलने की बहुत ज़रूरत नहीं है। हमारे पास रुपया नहीं है। जाओ। हाँ, मुनीम जी, महादीन पाण्डे का हिसाब तो देखो!

पठान—मेहरबानी करो सेठ! मेहरबानी करो।

सेठ—तो भाई, हम क्या यहाँ खैरात बाँटने बैठे हैं। हम तो व्यापारी हैं। कोई सोने की चीज़ हो तो लाओ और रुपया ले जाओ।

पठान—ऐसी गिर्वी रखने लायक कोई चीज़ हमारे पास नहीं है। हमारे पास जो रुपया था वह चोरी हो गया। खुदा जानता है, हम झूठ नहीं बोलता। हम मदरास जाकर रुपया भेज देगा।

सेठ—यह नहीं हो सके है।

मुनीम—तीन सौ तो नगद दिये, छै महीने का सूद, दर सूद भी है। अभी तो ब्याज बाक़ी है। हिसाब जोड़ूँ क्या?

(इसी समय दो आदमी आते हैं और हाथ जोड़कर बैठ जाते हैं। पीछे उनके एक सिपाही की वर्दी पहने हुए आदमी आता है, दूर बैठ जाता है)

सेठ—(चश्मे से घूरकर) आइए साब! (ज़रा सँभल कर बैठता है)

पहला आदमी—(जेब में से पोटली निकालकर) ज़रा इन्हें देखिए।

दूसरा—बहुत खरा माल है, सेठ जी!

सेठ—(उलट-पुलट कर) जड़ाऊ हैं। कहाँ से लाये? (हाथ से तोलकर) कोई होंगे बीस तोले के। (फिर चश्मे में से ध्यान से देखकर, ज़रा रोशनी की तरफ़ कर, फिर पीछे हटकर) किसका माल है? आपका। (दूसरे की ओर) आपका है? कहाँ से लाये?

पहला—ये नागोदा की रानी साहबा के कड़े हैं। यह उनके प्राइवेट सेक्रेटरी हैं। वह उनका सिपाही है। एक बहुत ज़रूरत से कड़े बेचने पड़ रहे हैं। रानी साहबा को एकदम रुपये की ज़रूरत है। सात हज़ार चाहिए। जल्दी से निकालिए। एक बात और। किसी को कानोंकान खबर न होने पावे।

दूसरा—इसमें सन्देह की कोई बात नहीं है सेठ जी। सिर्फ़ दो महीने बाद छुड़ा लेंगे। सात हजार चाहिए।

सेठ—सो तो ठीक है, सो तो वो ट्ठीक है। रानी साव क्या पराई हैं? पर.....सात हज़ार का माल?

पहला—क्या कहा, सात हजार बहुत है! बारह हजार के कड़े हैं सेठ जी? दस हजार तो हँसता हुआ कोई भी दे देगा अगर बेचें तो। बहुत ही जल्दी है। बोलिए आपको मंजूर है?

दूसरा—जल्दी करो। बहुत देर हो रही है?

आगन्तुक सिपाही—जल्दी करो सिकट्टरी साहब! नहीं रानी साहब नाराज़ हो जायँगी। जल्दी करो।

सेठ—पर इनकी ज़मानत कौन देगा कि ये रानी के ही कड़े हैं? चोरी का......।

पहला—(घूरकर) क्या कहा? ज़रा सँभलकर बात कीजिए। (अपने साथी की ओर इशारा करके) प्राइवेट सेक्रेटरी है ये राजा साहब नागोदा के, और यह साथ में उनका सिपाही है। बोलो ज़ल्दी। बोलो सेठ जी!

सेठ—सो तो बात ठीक है। इतने बड़े सिकत्तर साब पर कौन सक करे है? पर हम कहे हैं, पाँच हज्जार छोड़ कर दस हज्जार ले जाओ, पर बात ये है कि माल तो सात हज्जार का है नहीं। तीन हज्जार दे सकूँ हूँ। बोलो दूँ। (सेठ फिर उन्हें देखने लगता है) मोती......

पहला—(हाथ बढ़ाते हुए) लाइए सेठ जी! लाइए! आपसे काम नहीं बनेगा। हमें देर हो रही है। (उठने का उपक्रम करते हुए)

दूसरा—देर हो रही है। माल तो देखो। गिर्वी ही तो रख रहे हैं। बेच तो नहीं रहे।

सेठ—सो तो बात वो ठीक है, माल तो खरा है। पर ठहरो तो। चार हज्जार लोगे। चार हज्जार भौत है। कोई भी न देगा। (दोनों उठते हुए) अच्छा लाओ, रानी साव से जान-पहचान हो जायगी, घर का मामला है। जाओ मत। तो भी यह नहीं मालूम, माल कैसा है। कसौटी पर कसने से भी माल उन्नीस निकले है।

पहला—लाइए चलें (हाथ बढ़ाता है)

सेठ—पहले तो यही देखना है, सोना खरा है अथवा नहीं। देखने से तो ठीक मालूम पड़े हैं। (फिर ग़ौर से देखकर) चमक बहुत है।

जान—सात हजार देना है सेठ जी! हमको देर हो रही है (तो सोना हाथ में लेकर) चलो भाई! उसी को दे दें!

सेठ—लाओ सात हज्जार ही सही। (हाथ में लेकर) कुछ हल्का-हल्का सा लगे हैं।

साथी—ऐसा तो आपको चालीस के भाव भी न मिलेगा सेठजी! लाइए चलें।

सेठ—(सेफ़ में से थैली निकालकर सौ सौ के नोट देता है। फिर देखकर) रुक्का!

जान—(रुपये लेकर) ज़रा जल्दी में हैं रुक्का फिर लिख देंगे सेठ जी! (जाते ही सेठ उन कड़ों को देखने लगता है।)

पठान—क्या मंशा है सेठ?

सेठ—(गहना हाथ में लिये हुए) तो तुमको कोई जानता है?

पठान—हम मुसीबत में हैं। पठान कभी झूठ नहीं बोलता।

मुनीम—यह तो ठीक है, पठान झूठ नहीं बोलते। जो लेते हैं, लौटा देते हैं।

सेठ—(सोचकर) ये तो हमें मालूम है कि पठान झूठ नहीं बोलते, पर ब्याज क्या होगा!

पठान—जो चाहो लगा लो, मैं एक एक पाई लौटा दूँगा।

सेठ—आना रुपया ब्याज लगेगा।

पठान—(चौंककर) आना रुपया! बहुत सूद है। अच्छा!

सेठ—लिखो रुक्का। (कागज हाथ में देकर दवात-क़लम उधर सरकाता है। छपे हुए फ़ार्म पर पठान रुक्का लिखता है और सेठ के हाथ में देता है)।

सेठ—क्या लिखा है?

पठान—जो तुमने कहा।

सेठ—एक आना रुपया ब्याज लिखा है?

पठान—जी।

सेठ—(रुक्का पेटी में रखता हुआ थैलीसे निकालकर रुपये गिनकर देता है। पठान रुपया लेकर सलाम करके चल देता है। मुनीम की ओर देखकर) रुपया लौटे तब है। जुआ खेला है।

मुनीम—पठान ईमानदार होते हैं। लौटा देगा। मालूम तो ऐसा ही होता है। ये लोग ईमानदार होते हैं।

सेठ—पचास रुपये का ही तो खेल है! सूद भी कम नहीं है।

मुनीम—हाँ, सूद तो बहुत लगाया है!

सेठ—रुपया धूल में फेंकने के लिए एक सन्तोष तो हो।

मुनीम—हाँ (कहकर फिर काम में लग जाता है। सेठ कड़े की जोड़ी निकालता है और ग़ौर से देखने लगता है।)

(महादीन पाण्डे का प्रवेश)

महादीन—जैराम जी की सेठ जी!

सेठ—जैराम जी की। मुनीम जी, पाण्डे जी का हिसाब तो निकालो!

महादीन—सेठ जी, मैं हिसाब करने नहीं आया हूँ।

सेठ—(घूरकर) तो फिर?

महादीन—पचास रुपया और चाहिए।

सेठ—कोई चीज़ लाये हो?

महादीन—चीज़ तो नहीं है, पर पाँच सौ की चीज तीन सौ में दी है, उसी के मध्ये पचास और माँगने आया हूँ।

सेठ—(चश्मे से घूरकर) वह अपनी चीज ले जाओ पाण्डे जी। हमारे रुपये हमें दे जाओ! ये तो नहीं कहते कि इतना खोटा माल तुम्हारा विश्वास करके तीन सौ में रख लिया। जमाना ही खराब है। किसी के साथ नेकी करने के दिन तो रहे ही नहीं। एक साल हो गया। बारह तो ब्याज के ही हो गये। माल ही कौन खरा है?

महादीन—पिछले एक साल से पत्नी बीमार है, कोई आराम नहीं आ रहा है। डाक्टर कहता है, एक्सरे कराओ। अब उसके शरीर पर एक छल्ला भी नहीं। सिर्फ़ पचास चाहिए। डाक्टर से अभी आने को कह आया हूँ।

सेठ—वैद्य का इलाज क्यों नहीं करते? हम तो वैद्य का इलाज करावे हैं—सस्ता और देसी।

महादीन—उसे तपेदिक़ हो गई है।

सेठ—(डरकर चश्मे में घूरकर) तपेदिक! लेकिन पाण्डे जी, पचास तो कठिन है। माल भी हो इतने का।

(एक नौकर का प्रवेश)

नौकर—सेठ जी! आज नौमी है। सेठानी कहें हैं, ब्राह्मणों ने दुर्गापाठ किया है। उनको दक्षिणा देनी है (कुछ ब्राह्मणों का प्रवेश)

ब्राह्मण—जय हो सेठ जी।

सेठ—आओ महाराज, पालागन। आपने कितने दिन पाठ किया?

एक ब्राह्मण—नौ दिन। सम्पुट पाठ किया है।

सेठ—एक पाठ का एक आना, नौ दिन के नौ आने। ये लो दस आने। चार ब्राह्मण हैं न। दस चौक चालीस। दो रुपये आठ आने (थैली में से निकालने लगता है) मुनीम जी, लिखो घर खर्च के मध्ये दो रुपये आठ आने।

एक ब्राह्मण—यह भी कोई व्यापार है क्या? कम से कम पाँच पाँच रुपया, एक धोती, एक अँगोछा, आसन और एक एक बर्तन होता है। ब्राह्मण-भोजन अलग।

एक ब्राह्मण—चलो हम समझेंगे, यों ही काम कर दिया। सेठ जी, ब्राह्मण हैं, पूजापाठ किया है, आशीर्वाद देंगे। कम से कम चार चार रुपये तो हों।

दूसरा ब्राह्मण—हाँ सेठ जी, आपका ही दिया खाते हैं अन्नदाता। भरपूर मिल जाय। आशीर्वाद देंगे।

सेठ—महाराज सब ठीक है, पर यह भी तो देखो, समय कैसा जा रहा है। गाहकी रही ही नहीं। दस आने की जगह रुपया रुपया ले लो, बस इससे जादे नहीं मिलने का। (कुछ ब्राह्मण बिना कुछ लिये ही चलने लगते हैं)

दो ब्राह्मण—चलो रामधन चलें, तुम्हें लेना हो तो लो। मैं ऐसे कंजूस सेठ से कुछ भी न लूँगा। समझेंगे, कृष्णार्पण ही किया।

सेठ—नहीं महाराज, आप न दो, कारबार ढीला है।

नहीं तो सब तुम्हारा ही तो है । (रामसेवक से) ला जल ला । (जल हाथ में लेकर) लो महाराज !

एक ब्राह्मण--क्या दे रहे हो सेठ जी ?

सेठ--पत्र-पुष्प महाराज ! दक्षिणा तो सरधा की होवे है महाराज !

एक ब्राह्मण--मैं नहीं लूँगा ।

दूसरा ब्राह्मण--मैं भी नहीं लूँगा ।

सेठ--नहीं तो जाओ । मैं दस दस आने से जादे नहीं दे सकता । रुपया क्या मुफ़्त में आवे है ।

एक ब्राह्मण--जो मिलता है, क्यों छोड़ते हो ? लो न !

बाक़ी सब ब्राह्मण--नहीं हम नहीं लेंगे । (सब चले जाते हैं)

सेठ--नहीं लोगे तो जाओ । रामसेवक, कोई ब्राह्मण जाता-आता हो तो देखियो । चार आना दक्षिणा दे देंगे । (गम्भीर होकर) न कोई यह देखे है कि किस तरह रुपया कमाया जाय है, गाहकी तो रही ही नहीं है, खर्च ही खर्च है । सेठानी को भी सदा पूजा-पाठ की पड़ी रहे है । (नौकर से) देख रे, घर में कोई पूजा-पाठ की जरूरत नहीं है । सेठानी से कह दीजो पैसा देखकर खर्च किया करे ।

महादीन--सेठ जी, मुझे क्या आज्ञा है ? देर हो रही है ।

सेठ--देख तो रहे हो, कितना खर्च हो रहा है । पचास कैसे दे दूँ ? कोई हिसाब भी तो हो ।

महादीन--पाँच सौ की चीज़ में क्या पचास भी नहीं दे सकते ? सेठ जी, आज साल भर से स्त्री बीमार है, नौकरी थोड़ी है । तनख़ाह आते ही सब चुटपुट हो जाती है । बाल-बच्चे हैं, बीमारी का ख़र्च है । जो कुछ था, सब जोड़जाड़ कर तुम्हारे पास रख दिया । अब कहाँ जाऊँ सेठ जी ?

सेठ--तो महाराज घरवाली को बीमार ही क्यों होने दी हो ? पहले से फिकर करनी थी ।

महादीन--बीमारी क्या हाथ की बात है सेठ जी ? कौन चाहता है कि घर में कोई बीमार पड़े ?

सेठ--वैदगी करते । धर्मार्थ-औषधालय से दवा ले आया करो । सेठ अमीचंद का हस्पताल अपना ही है । कहो तो पर्चा लिख दूँ । हमारी कही न मानेंगे । (कड़े निकालकर और फिर देखकर) माल तो खरा है ।

महादीन--सेठ जी ! अब धर्मार्थ-औषधालयों की उसकी अवस्था नहीं रही । डाक्टर ने कहा है अँतड़ियों में बुख़ार जम गया है । एक्स-रे कराओ ।

सेठ--तपेदिक है न ! तपेदिक तो कभी अच्छी होवे नहीं है । क्यों रुपया खराब करो हो पाण्डे जी । हम तो सदा वैदगी करावे हैं । पिछले दिनों छोटीबाई बीमार हुई । वैद ने कहा, गंगाजल पिलाओ ये अच्छी नहीं हो सके हैं । हमने तो गंगाजल ही पिलाया । थोड़े दिनों बाद मर गई ।

महादीन--क्या दुनिया में रुपया ही सब कुछ है ? मनुष्य का जीवन आशा पर अवलम्बित है । जब तक साँस तब तक आस । मैं घर बेच कर उसका इलाज कराऊँगा । तुम इस समय मुझे पचास दे दो । उस गहने में काट लेना ।

सेठ--ये तो तुम्हारी ख़ुसी है पाण्डे जी । हाँ, इलाज तो कराना ही चाहिए । और मकान तो हम भी रखे हैं । कितने का होगा तुम्हारे ख्याल में ? साफ साफ बात तो यह है कि उस गहने में अब तुम्हारा कुछ भी बचे नहीं है । वैसे मैं तुम्हें दो सौ दे सकूँ हूँ ।

महादीन--(खीझ कर) मकान के एवज़ ! पाँच सौ का माल तीन सौ में रखकर भी तुम्हारा पेट नहीं भरा । उस पर ब्याज दर ब्याज की धमकी देकर तुम एक मुसीबत में पड़े हुए की मदद भी नहीं कर सकते । अब मैं कहाँ जाऊँ ? स्त्री की अवस्था दिन पर दिन ख़राब होती जाती है, बीमारी का इलाज नहीं करा सकता । सेठ, तुममें कुछ भी मनुष्यत्व नहीं है । दुष्ट !

सेठ--पाण्डे जी गाली मत दो । हम तो व्यापारी हैं । ख़ैरात तो नहीं बाँटते (कड़ों की जोड़ी फिर हाथ में लेकर) मोती तो खरे हैं । मुनीम जी, तनसुखदास का क्या हिसाब है ? नसीमबक्स की गिर्वी की म्याद आज है न ।

मुनीम--आज ही सेठ जी ।

महादीन—तो मैं जाऊँ सेठ जी।

सेठ—हाँ महाराज, बोलो मैं क्या करूँ? कहाँ तक दान किया जाय। तुमसे पहले एक पठान आ चिपटा। पचास ले के ही मरा। कहाँ तक दूँ। कोई गुंजायश हो तो। मुझे कोई इनकार है नहीं। दस ले जाओ।

महादीन—दस का क्या करूँगा? तुम रक्खो। हाय, कितनी आशा लेकर आया था। तुम इतने निर्दय क्रूर हो, यह नहीं मालूम था। इस दरिद्रता के कारण स्त्री का इलाज नहीं करा सकता। मनुष्य इतना नीच है, स्वार्थी है, पतित है कि वह एक पैसे की मदद भी नहीं कर सकता। सेठ, मेरी स्त्री बिना इलाज के भले ही मर जाय, बिना औषधि के उसके प्राण निकल जायँ, लेकिन तुम पाँच सौ की चीज़ तीन सौ में रखकर ऊपर एक पैसा भी देने को तैयार नहीं हो। (आँखों में आँसू भर) यह व्यापार नहीं है, यह हत्या है, लूट है। दिन दहाड़े डाका है। तुम्हें भले ही चकमा देकर कोई लूट ले, पर तुम मानवता, कृपा, दया और धर्म के नाम पर किसी की मदद नहीं कर सकते। (एकदम आँसू पोंछता हुआ बाहर निकल जाता है)

सेठ—(रामसेवक से) राधेश्याम के घर जा और उनसे रुपया वसूल करके ला। दिन भर बैठा रहता है, न काम न धन्धा।

मुनीम—सेठ जी, पचास महादीन पाण्डे को दिये तो जा सकते थे। बिचारे की बड़ी बुरी हालत है। मेरी तो आँखों में आँसू आ गये। आपके पिता जी बड़े दयालु थे। साल में तीन-चार सौ तो ऐसे ही बाँट देते थे।

सेठ—(घूरकर) मैं व्यापारी हूँ, वैसे लेना-देना अलग चीज़ है। पर मुनीम जी, तुम्हें यह सब कुछ भी कहने का अधिकार नहीं है। समझे! तुम अपना काम करो। कह दिया कि पठान को पचास रुपये दे दो। खोटा देगा। जब घर का माल ही खोटा तब परखने-वाले का क्या दोस? तुम न कहते तो मैं क्यों देता? याद रक्खो अगर पठान रुपये लौटाकर न लाया तो तुम्हें देने होंगे रुपये।

(पुलिस के दो सिपाही, एक थानेदार के साथ और कड़ोंवाला उन आदमियों के साथ)

सेठ—(इन सबको देखकर घबराता हुआ उठ कर खड़ा हो जाता है) आइए सरकार!

थानेदार—(डट कर बैठता हुआ) सेठ लाभचंद की यही दूकान है?

सेठ—(जिसके गले का खून सूख गया है) ज ज ज जी।

थानेदार—इन दोनों को पहचानते हो?

सेठ—जी सरकार! पानी-आनी लावे सरकार।

थानेदार—ये तुम्हारी दूकान पर कोई चीज़ रख गये हैं?

सेठ—(अचकचाकर) जी हुज़ूर।

थानेदार—कड़ों की जड़ाऊ जोड़ी?

सेठ—जी।

थानेदार—वह चोरी की है। लाओ, निकालो और चलो सुपरिण्टेण्डेण्ट साहब के पास।

सेठ—(सुन्न-सा होकर) चोरी की?

थानेदार—हाँ, चोरी की है। निकालो।

सेठ—सरकार मैं बेकसूर हूँ।

थानेदार—सभी बेकसूर होते हैं। तुम्हें मालूम है, चोरी की चीज़ है। रखनेवाले को क्या सज़ा मिलती है? वह भी चोर समझा जाता है। निकालो जल्दी। इन्होंने कितने को बेची?

सेठ—सात हज़ार को।

थानेदार—दस हज़ार का माल सात हज़ार में रख लिया। फिर भी अपने को निरपराध कहते हो। चलो।

सेठ—(जोड़ी निकालकर हाथ में लेता है)

थानेदार—लाओ इधर, दिखाओ।

सेठ—(पास जाकर) हज़ूर, मेरा कसूर नहीं है। मैंने तो रुपया देकर माल रक्खा है। (चुपके से) आप भी कुछ!

थानेदार—रिश्वत देते हो सेठ जी। यह नहीं हो सकता। चलो। सुपरिण्टेण्डेण्ट साहब के पास चलना होगा।

सेठ—इन्होंने कहा था कि हम नागोदा के राजा के आदमी हैं। इसलिए मैंने रख ली। क्यों मुनीम जी?

मुनीम—हाँ सरकार।

थानेदार—मैं कुछ नहीं जानता। चलो। रामसिंह ले चलो। (सिपाही सेठ को पकड़ने को आगे बढ़ते हैं। सेठ बेइज्ज़ती के डर से अपने आप चलने को तैयार हो जाता है)

सेठ—हाय राम! (सब बाहर निकल जाते हैं) पर्दा गिरता है।

दूसरा दृश्य

(सुनसान में सड़क के किनारे एक कोठी का बाहरी भाग। बरामदा है। बरामदे में स्टिकस्टेण्ड रक्खा है। बेंत की कुछ कुर्सियाँ रक्खी हैं। एक तरफ़ सड़क की ओर एक लम्बा बेंच रक्खा है। बरामदे के दोनों ओर के दो दरवाजों में कुछ गमले रक्खे हैं। बाहर दालान में एक बेंत की कुर्सी पर सेठ बैठा है, पास ही एक आदमी भी है, जिसके सिर पर खाकी पगड़ी है, शरीर पर फ़ौज का नीलाम में खरीदा हुआ एक कोट और वैसा ही खाकी पजामा है। आदमी अन्यमनस्क-सा है। सेठ पहले तो कुछ सोचता दिखाई देता है, फिर कुछ घबराकर उठता-सा है, जैसे ही वह उठने लगता है वैसे ही वह आदमी उसकी ओर देखने लगता है, सेठ उसकी इसी भावभंगी को देखकर फिर बैठ जाता है)

सेठ—(ऊबकर) अब मैं कब तक बैठा रहूँ? दो घंटे होने आये। कोई भीतर से आता ही नहीं है। क्या हुआ? साहब को बड़ी देर हो गई। थोड़ी देर पहले एक सिपाही इधर आया था, फिर मुझे देखकर अन्दर चला गया। इधर मैंने बड़ी भूल की। महादीन को पचास दे देता तो उसकी औरत शायद बच जाती। बड़ा बुरा किया। पचास की ही तो बात थी। पाँच सौ का तो खरा माल है। तीन सौ ही तो दिये हैं। लाभचंद! तूने बुरा किया। पर मैं भी कैसा पागल हूँ व्यापार तो व्यापार ही है। इस तरह दया दिखाई जाय तो घर ही न लुट जाय। दया और व्यापार की तो दुश्मनी है। नसीमबक्स के कड़े तो अब हमारे हो चुके। वह अब क्या ले सके है। अब उसके आने पर भी कुछ नहीं हो सके है। यह भी अच्छा ही हुआ जो मैं यहाँ आ गया। शाम तो हुई समझो। आज शाम तक ही तो... आज की तारीख आखिरी तारीख है। अच्छा हुआ। लोग कहे हैं, ईश्वर जो करे है, अच्छा ही करे है। मुनीम तो भला देगा भी क्या। और वह दे ही कैसे सके है। (जेब टटोल कर) चाभियों का गुच्छा तो मेरे पास है। पर बहुत देर होने आ रही है। कोई आवे क्यों नहीं है। साहब पूछेगा तो कह दूँगा, साहब, मैं क्या जानूँ। मुझे क्या मालूम कि चोरी का माल है। न होगा तो दो-चार जुरमाना हो जायगा। पर अभी कोई आया क्यों नहीं। अगर मैं यहाँ से उठकर चला जाऊँ तो मेरा कोई क्या करे। (उस आदमी की ओर देखकर) यह अजीब आदमी है। ज़रा भी तो नहीं बोले है। अरे भले मानुस इतनी चुप्पी किस काम की। ठीक तो है। मैं ही कौन इससे बोलूँ हूँ। कोई आवे क्यों नहीं है, क्या करूँ। ज़ोर से बोल भी तो नहीं सकता। साहब ही निकल आवे तो। पर अब तो बहुत देर हो रही है। ये लोग मुझे थाने ही क्यों नहीं ले गये। कोई भीतर से निकले ही नहीं है। (सामने दरवाजे की ओर देखकर) वह पर्दा तो हिला, शायद कोई आ रहा है, आया, तैयार होकर बैठ जाऊँ। कहूँगा साहब, मेरा इसमें क्या कसूर है, मैंने कोई चोरी थोड़े ही की है। अरे यह क्या, यह तो बिल्ली है। साहब की बिल्ली है। नहीं साहब की तो हो नहीं सकती। अरे भाई सुनते हो!

आदमी—(देखकर भी चुप बैठा रहता है)

सेठ—देखो, सुनो! साहब कब आवेंगे?

आदमी—(चुप)

सेठ—(क्रोध में आकर) तुम बहरे हो क्या?

आदमी—अपने कान की तरफ़ इशारा करता है, मानो सुन नहीं सका। अ...अ...अ

सेठ—(घबराकर एकदम उठता है ज़ोर से) साहब कब आवेगा? थानेदार कहाँ गया?

आदमी—अ...अ...अ...(हाथ से मना करता है। फिर कान को हाथ लगाकर) अ...अ...ब...ब...।

सेठ—(बेचैन होकर) क्या कहता है? कुछ समझ में नहीं आता। पागल है। गूँगा है, बहरा है। सुप-

रेण्टेण्डेण्ट साहब ! ओ सुपरेण्टेण्डेण्ट साहब ! अरे थानेदार साहब ! (एकदम भीतर जाने लगता है। इसी बीच में एक तरफ़ से एक आदमी हाथ में खुरपा लिये आता है)

आगन्तुक—क्या है ? काहे चिल्लावत हो ?

सेठ—साहब भीतर से कब आवेंगे ?

आगन्तुक—कौन साहब ?

सेठ—सुपरेण्टेण्डेण्ट साहब ! थानेदार साहब और दो सिपाही जो मुझे यहाँ लाये हैं।

आगन्तुक—यहाँ कहाँ हैं सुपरडुण्ट साहब ? यह तो खाली कोठी है।

सेठ—हाय, मैं लुट गया ! वह थानेदार कहाँ है, सिपाही कहाँ हैं ?

आगन्तुक—हमका जानी ? हम तो बाहर गये रहे न, अब ही आये हैं।

सेठ—यह कौन है ? क्या यह सिपाही नहीं है उनका ?

आगन्तुक—अरे जे तो हमार भाई हैं, बहिरा है, सुन नाहीं सकत । का बताई माली का काम ससुर बड़ा बुरा, दिन-रात पित्ता मारि के काम करो और फिर भी कछु मिलत नाहीं। तूका चाहत है हो।

सेठ—क्या यह सुपरेण्टण्डेण्ट साहब की कोठी नहीं है ?

आगन्तुक—नाहीं । काहे ?

सेठ—हाय मैं लुट गया, सात हज़ार घर का और कड़े भी ! (एकदम दौड़कर भीतर की ओर भाग जाता है)

आगन्तुक—(इशारे से) को है जे !

आदमी—(हाथ से संकेत करता है और दो रुख दिखाता है)

आगन्तुक—कहाँ से आये ?

आदमी—(उन पहले आदमियों की ओर संकेत करता है कि वे दे गये हैं, और सेठ की ओर इशारा करता है कि इसे रोके रहना। फिर इशारा करता है कि उस सेठ को क्यों जाने दिया।)

सेठ—बाहर आकर (घबराहट से) सुपरेण्टण्डेण्ट। थानेदार हाय ! मैं लुट गया। हाय ! मालूम होता है, दोनों आदमी-सिपाही, थानेदार सब एक ही थे (एकदम कुर्सी पर गिर जाता है । प[र्दा] गिरता है ।

प्रभात

लेखिका, श्रीमती रामकुमारी चौहान

नील नभ पर जब उषा ने, राग रंजित रंग फेरा,
कंज की मुकुलित कली ने, प्रेम का सौरभ बिखेरा ॥१॥

अलि, अवलि हृदयस्थली में, मुग्ध हो जब डोलती थी,
और कोकिल मधुर-मादक रस, हृदय में घोलती थी।
हिमकणों ने कमलदल पर कर लिया दो क्षण बसेरा ॥२॥

रश्मि आई, द्रुमदलों से सकुच कुछ-कुछ झाँकती-सी,
चिर निराशा में विरह की मिलन आशा आँकती-सी।
उर्मियों के मृदुल उर में पवन बैठा डाल डेरा ॥३॥

विधुर दुख की यामिनी ने हृदय का दीपक जलाया,
उडुगणों ने मौन मुख से जब विरह का गीत गाया।
स्वर्णमय विकसित हुआ जब मंजु जीवन का सवेरा,
मुग्ध-सा तब प्रात में प्रकटित हुआ प्राची चितेरा ॥४॥

क्या उर्दू-काव्य इस्लाम-विरोधी और राष्ट्र-द्रोही है ?

लेखक, पण्डित वेंकटेशनारायण तिवारी

(१)

दिसम्बर, १९३९, की 'सरस्वती' में मेरा जो लेख प्रकाशित हुआ था, उसमें मैंने पाठकों को वचन दिया था कि जनवरी, १९४०, की 'सरस्वती' में मैं मुस्लिम लीग की पीरपुर-कमिटी के इस दावे की विवेचना करूँगा कि मुस्लिम-साहित्य इस्लामी कल्चर या संस्कृति का प्रतिबिम्ब है। इस कथन की सचाई की जाँच के लिए हमें दो-तीन प्रश्नों पर विचार करना होगा। पहला प्रश्न यह है कि क्या संसार में कोई ऐसी भी संस्कृति है, जिसे हम इस्लामी संस्कृति कहें ? दूसरा प्रश्न है, क्या भारत में कोई ऐसी संस्कृति मौजूद है, जिसे हम इस्लामी कल्चर या संस्कृति कह सकते हैं ? तीसरा सवाल है, क्या उर्दू-साहित्य इस कथित कल्चर या संस्कृति का प्रतिबिम्ब है ? यह याद रखने की बात है कि इस्लामी कल्चर की आधार-शिला मुसलमानों का पवित्र धर्मग्रन्थ, 'क़ुरानशरीफ़', ही हो सकता है। अतएव, जो साहित्य 'क़ुरानशरीफ़' में प्रतिपादित उपदेशों और सिद्धान्तों का तिरस्कारपूर्वक खंडन करता हो या उनकी खिल्ली उड़ाता हो क्या वह साहित्य इस्लाम-धर्म का प्रतिबिम्ब और समर्थक कहा जा सकता है ? मैं आगे चलकर सिद्ध करूँगा कि इस देश में इस्लामी कल्चर नाम की कोई संस्कृति नहीं है। मैं यह भी सिद्ध करूँगा कि उर्दू-काव्य इस्लाम-विरोधी है। मेरा यह भी दावा है कि वह न केवल इस्लाम-विरोधी है किन्तु अभारतीय होने के कारण राष्ट्र-द्रोही भी है। यदि ये तीनों बातें मैं सिद्ध कर दूँ तो पाठकों को इस परिणाम तक पहुँचने में कोई कठिनाई न होनी चाहिए कि उर्दू-काव्य की इस समय जो हिमायत की जा रही है वह सर्वथा भ्रान्तिमूलक और देश के भावी उत्थान के लिए हानिकारक है।

आइए, पहले इस बात पर हम विचार करें कि संसार में विशुद्ध इस्लामी कल्चर नाम की कोई कल्चर है भी, या नहीं ? किसी देश-विशेष की कल्चर या संस्कृति अनेक कारणों की पारस्परिक क्रियाओं और प्रतिक्रियाओं के सामूहिक रूप में सनातन द्वंद और सहयोग से उत्पन्न उस विशिष्टता का नाम है जो उस देश के निवासियों की प्रकृति और प्रवृत्ति को अनूठा और अनोखा बना देते हैं। देश-विशेष की भौगोलिक स्थिति और उसके ऐतिहासिक विकास का क्रम, विदेशों के साथ उसका परिवर्तनशील सम्पर्क और संघर्ष, उसकी धार्मिक क्रान्तियाँ, उसकी साम्पत्तिक गति-विधि तथा ऐसे ही दूसरे अनेक कारणों से उस देश-विशेष के निवासियों के मानसिक और नैतिक दृष्टिकोण में जो विशेषता आ जाती है, उसी अनोखेपन को उस देश की कल्चर या संस्कृति के नाम से पुकारते हैं। इँगलैंड या फ़्रांस या जर्मनी की संस्कृति को ईसाई-संस्कृति कहना उसके केवल एक पहलू पर ज़ोर देना है। इसी तरह इस्लामी मुल्कों की संस्कृति भी एक नहीं है, क्योंकि विभिन्न कारणों से विभिन्न देशों पर विभिन्न प्रभाव पड़ा करते हैं। टर्की की संस्कृति एक है, अरब की दूसरी। अफ़ग़ानिस्तान और ईरान में यद्यपि पड़ोसी का सम्बन्ध है, परन्तु दोनों देशों की संस्कृतियों में व्यापक अन्तर है। जब टर्की, अरब और ईरान में इतना व्यापक अन्तर है यद्यपि सभी एक ही पैग़म्बर के अनुयायी हैं, तब यह कैसे माना जा सकता है कि हिन्दुस्तान के सब प्रान्तों के सब मुसलमानों की संस्कृति समान है और उनकी संस्कृति का निर्माण एकमात्र इस्लामी आधार पर हुआ है ? पंजाब के हिन्दू, सिक्ख और मुसलमान में कहीं ज़्यादा समानता है, बमुक़ाबिले मद्रासी और बंगाली मुसलमान के। जो मुसलमान जिस प्रान्त में रहता है, वह उस प्रान्त की जीवन-समष्टि का उसी तरह से अंश है, जिस तरह से गंगा जी का एक बूँद गंगा जी का अंश है। यह कहना कि केवल मुसलमानियत के बल पर, युक्त-प्रान्त के मुसलमानों की युक्तप्रान्त के अन्य प्राणियों से, विभिन्न संस्कृति है, सरासर ग़लत है। जो थोड़े से मुसलमान सदियों में बाहर से हिन्दुस्तान में आकर

बसे, उनकी सन्तानें हिन्दुस्तानी समाज में घुल-मिल गईं। उनमें भी हिन्दुस्तानियत का रंग चढ़ गया। वे भी हिन्दुस्तानी के नाम से बिकने लगे। वे कहीं जायँ, कहीं बसें; चाहें जो करें या चाहें जो कहें, पर दरअसल वे हिन्दुस्तान के हैं, वे हिन्दुस्तानी हैं; और अपनी हिन्दुस्तानी संस्कृति को भुलाकर यदि वे केवल इस्लामियत पर जोर देना चाहते हैं तो वे अपने को संसार के सामने उपहास-जनक बनाते हैं। चीन के मुसलमान उसी तरह चीनी हैं, जिस तरह चीन के दूसरे मतावलम्बी चीनी हैं। जापान के मुसलमान उसी तरह जापानी हैं, जिस तरह जापान के और मतावलम्बी। इँगलिस्तान का यदि कोई रहनेवाला मुसलमान हो जाय तो उसकी संस्कृति क्या बदल जायगी या क्या वह इँगलैंड में इस बात का दावा पेश करने की जुरअत करेगा कि उसकी संस्कृति इँगलिश नहीं रही, अब वह इस्लामी हो गई है। वास्तव में मुसलमान राजनीतिज्ञों ने अपनी भेद-भावना के ऐतिहासिक अस्तित्व को सिद्ध करने के लिए जहाँ अनेक बेतुके तर्कों से काम लिया है, वहाँ उन्होंने इस्लामी कल्चर की दोहाई देना भी अपना फ़र्ज़-मन-सबी समझा। मजहब एक चीज़ है, तमद्दुन या संस्कृति दूसरी। भारत के सब मुसलमानों का मजहब भी तो एक नहीं है। उदाहरण के लिए, मुसलमानों के दो प्रसिद्ध सम्प्रदायों ही को ले लीजिए—शिया सम्प्रदाय और सुन्नी सम्प्रदाय। इनके मौलिक सिद्धान्तों में जमीन-आसमान का फ़र्क है। शिया-संस्कृति की बुनियाद में ईरानियत है, सुन्नियत की जड़ में अरबियत। इन दो के अतिरिक्त, इनमें वहाबी भी हैं, अगाखानी बुहरे भी हैं, क़ादियानी भी हैं। मुसलमानों में इसी तरह के अनेक फ़िर्के हैं। उनमें इतने गहरे आपसी भेद हैं कि उनके बीच में समानता का सिद्धान्त ढूँढ़ निकालना उतना ही कठिन है, जितना हिन्दू-सम्प्रदायों के बीच में मौलिक एकता को ढूँढ़ निकालना दुस्तर है। ऐसी दशा में यह कहना कि भारत के सब मुसलमानों की एक संस्कृति है और उस संस्कृति का नाम इस्लामी संस्कृति है, वास्तव में एक निःसार, कपोल-कल्पित प्रपंच-मात्र है। हिन्दुस्तान में न तो शैव संस्कृति है, और न वैष्णव; न आर्य है, न द्रविड़; न इस्लामी संस्कृति है और न ईसाई संस्कृति। हिन्दुस्तान में जो संस्कृति है, उसका तो नाम है हिन्दुस्तानी संस्कृति। जिसके विकास, परिस्फुटन, परिष्कार, परिमार्जन और संवर्धन उन अनन्त युगों की सामूहिक प्रवृत्तियों का परिणाम है, जिनकी प्रेरणा से भारत, अनादि के गर्भ से उत्पन्न होकर ऐहिक लीला के रंगमंच पर अपने भाग्य का नाटक खेलता चला आया है। हमारा भूगोल, हमारा इतिहास, हमारा साहित्य, हमारे कवियों की कवितायें, हमारे मुनियों के मानसिक उड़ान और हमारे शिल्पी और कलाविदों की आश्चर्यजनक कलायें, हमारे धर्माचार्यों के उपदेश और हमारे महापुरुषों के जीवन-वृत्त, इन सबने उस मानसिक और आध्यात्मिक दृष्टिकोणों के सृजन में भाग लिया जिनकी समष्टि को आज दिन हम हिन्दुस्तानी संस्कृति या कल्चर कहते हैं। इस रूहानी विरासत या वर्पौती से इनकार करना अगर कोई चाहे तो वह ऐसा कर सकता है, लेकिन इनकार करने से किसी का कुछ बनता-बिगड़ता थोड़े ही है। पराधीन, पददलित, पर-मुखापेक्षी जाति के लोग अपनी मौजूदा नैतिक दरिद्रता की अनुभूति को छिपाने की गरज़ से भले ही अपने को दूसरों के नाम से पुकारने की चेष्टा करें, लेकिन उन्हें यह न भूलना चाहिए कि एक मुसलमान कवि का कथन उन पर भी उसी तरह लागू है, जिस तरह वह लागू है इस देश के दूसरे रहनेवालों पर।

(२)

पीरपुर-कमिटी के बहुत-से मुसलमान सदस्य 'अनीस' के नाम से परिचित होंगे। 'अनीस' की गणना उर्दू के महाकवियों में होती है। इनका जन्म-वर्ष सन् १८०१ ई० और मृत्यु-वर्ष सन् १८७३ ई० है। आपका पूरा नाम था मीर बबर अलीउर्फ़ 'अनीस'। लखनऊ के रहनेवाले थे। इन्हीं 'अनीस' ने जिस प्रकार उर्दू-जगत् में अपनी चमत्कारिणी कविता के कारण ख्याति पाई है, वैसी ही प्रसिद्धि उन्हें हिन्दी में भी बहुत उच्च दर्जे की कविता करने से प्राप्त हुई है। उनका एक छन्द हम नीचे उद्धृत करते हैं:—

"सुनो, हो विटप, हम पुहुप तिहारे अहैं;
राखियो हमें तो शोभा रावरी बढ़ावेंगे।
तजियो हरपि कै तो बिलग न मानें कछू,
जहाँ-जहाँ जै हैं तहाँ दूनों जस गावेंगे॥

सुरन चढ़ेंगे, नर-सिरन चढ़ेंगे फेरि,
सुकवि 'अनीस' हाथ-हाथन बिकावेंगे।
देस में रहेंगे, परदेस में रहेंगे,
काहू वेष में रहेंगे, तऊ रावरे कहावेंगे ॥

मुस्लिम लीगी मुसलमानों को यह न भूलना चाहिए कि वे चाहे देश में रहें या परदेश में रहें, वे काहू वेष में रहें, लेकिन कहायेंगे भारत ही के। भारत के बाहर जब वे जायँगे तब उन्हें ग़ैर मुल्कों के मुसलमान 'हिन्दी' के नाम से पुकारते हैं। कौआ न तो हंस हो सकता है और न हंस कौआ, चाहे जितनी कोशिशें दोनों अपने-अपने रंग के बदलने की क्यों न करे। हिन्दुस्तान के मुसलमान हिन्दुस्तानी हैं, और उनका कल्याण इसी में है कि वे अपने को हिन्दुस्तानी समझें और अपनी कल्चर को भी हिन्दुस्तानी कल्चर मानें। इन मुसलमान दोस्तों को 'इक़बाल' की इस दर्दभरी आह को न भूलना चाहिए :—

'वाइज़ का वआज़ छोड़ा, छोड़े तेरे फ़िसाने।'

मुल्क के मुसलमानों को समझ लेना चाहिए कि अब मुल्क की पुकार है, समय की प्रेरणा है, युग का तक़ाज़ा है, कि हम 'इक़बाल' की तरह सच्चे दिल से यह कहने लगें :—

"पत्थर की मूरतों में,
समझा है तू खुदा है,
ख़ाके-वतन का मुझको
हर ज़र्रा देवता है।"

अगर ऐसा वे और हम न करेंगे, अगर 'अपनी-अपनी डफ़ली अलग बजाते रहेंगे और अलग-अलग अपने बेसुरे राग गाने में मस्त झूमेंगे तो 'इक़बाल' का यह अभिशाप हमें और आप दोनों को मिट्टी में मिला देगा :—

"न समझोगे तो मिट जाओगे
ऐ हिन्दोस्ताँवालो।
तुम्हारी दास्ताँ (कहानी) तक भी,
न होगी दास्तानों में ॥"

इस्लामी कल्चर! इस्लामी कल्चर! इतिहास में इसका कहीं प्रमाण नहीं, जगत् में कहीं इसकी शहादत नहीं। माना कि मज़हब का असर समाज और व्यक्ति के जीवन पर बहुत बड़ा पड़ता है, लेकिन व्यक्ति और समाज के जीवन पर एकमात्र मज़हब ही का असर नहीं हुआ करता। अनन्त दिशाओं से अनन्त शक्तियाँ हमारे जीवन को नित्य-प्रति अनन्त रूप में प्रभावित किया करती हैं। करोड़ों वर्षों बाद भी हमारे हृदयों, हमारे शरीरों, हमारे अन्तःकरणों, हमारे बहुत-से कर्मों, चेष्टाओं और भावनाओं में आज दिन भी जीता-जागता हाथ है उन आदिम पूर्वजों का, जो इतिहास-स्मृति के जागने से लाखों वर्ष पहले इस भूमंडल पर क्रीड़ा कर गये; लेकिन साम्प्रदायिक ख़ुदग़र्ज़ी और फ़िरक़ेवाराना तंगदिली ने जहाँ हमें भाई-भाई से वैर करना सिखाया, वहाँ उसने हमें यह भी सिखाया कि झूठ को सच मान लें और सच को झूठ क़रार दें। भयंकर असत्यों में से एक यह भी असत्य है कि हिन्दुस्तान के मुसलमानों की संस्कृति महज़ इस्लामी है। जिसकी तह में केवल एकमात्र इस्लाम की प्रेरक शक्तियाँ काम किया करती हैं।

(३)

क्या यह कहना सही है, जैसा पीरपुर-कमिटी ने अपनी रिपोर्ट में कहा है, कि मुसलमानों का सारा साहित्य केवल उर्दू-भाषा और फ़ारसी-लिपि की संकुचित परिधि से सीमित है? क्या जिन मुसलमान लेखकों ने अँगरेज़ी में लिखा, उनकी कृतियाँ मुसलमानों की देश को देन नहीं हैं? जस्टिस अमीरअली के नाम को क्या हम हिन्दुस्तानी कृतज्ञता के साथ याद नहीं करते? उन्होंने इस्लाम के इतिहास पर जो अँगरेज़ी ग्रन्थ लिखे हैं, उनका क्या महत्त्व कम है? अनन्त मुसलमान कवियों और लेखकों ने बंगाली, गुजराती, हिन्दी, मराठी, आदि, प्रान्तिक भाषाओं में जो अनमोल ग्रन्थ रचे या रच रहे हैं, क्या उनका मोल पीरपुर-कमिटी की निगाह में कुछ नहीं है? यदि कमिटी-वालों को इन कृतियों पर अभिमान नहीं तो यह उनके दुर्भाग्य की बात है। जायसी, रहीम, रसखान, आलम, शेख़, नूरमुहम्मद, आदि, अनेक मुसलमान-कवियों, सूफ़ियों और मुस्लिम सन्तों की अनमोल वाणियों का क्या कुछ भी दाम नहीं है? जायसी के पद्मावत की टक्कर के उर्दू-भाषा में लिखे हुए मुसलमान लेखकों के कितने ग्रन्थ मिलेंगे? लेकिन साहित्यिक असहनशीलता की कोई हद नहीं। एक दाग़ की 'चूमा-चाटी' को तो मुसलमान अपने अदबी अभिमान का स्तम्भ मानें पर वे ही जायसी के पद्मावत से अनभिज्ञ रहने ही में अपनी साहित्यिक

सर्वज्ञता का ढिंढोरा पीटते फिरें। बंगाल और गुजरात के मुसल्मानों ने अपने-अपने प्रान्तों की भाषाओं में जो अद्‌भुत ग्रन्थ लिखे हैं, उनके गुणों को फूट-पुजारी साहित्यिक मुक्तकण्ठ से स्वीकार भी नहीं करते। संस्कृत-साहित्य के क्षेत्र में भी श्री चैतन्यदेव के दो शिष्य—रूप और सनातन—का ज़िक्र करना इस बात का प्रमाण है कि सब मुसलमानों ने सब समय में उर्दू या फ़ारसी भाषा ही में लिखना अपना धर्म नहीं समझा। क्यों पीरपुर-कमिटी ने इतना संकीर्ण दावा पेश किया और क्यों उन्होंने उन तमाम मुसलमान लेखकों की भी कृतियों पर हरताल फेरने की धृष्टता की, जब समय-समय पर मुस्लिम लेखकों ने अपनी-अपनी प्रतिभाओं की अभिव्यक्ति के लिए प्रान्तिक भाषाओं और लिपियों का आश्रय लिया, या जब मुसलमान कलाकारों ने कला के क्षेत्र में भारतीय भावनों और भारतीय आदर्शों को अपनाया, और भारतीय होने का सबसे बड़ा प्रमाण उन्होंने अपनी कृतियों को भारतीय ढाँचे में ढालकर व्यक्त किया? लेकिन पीरपुर-कमिटी के मेम्बरों ने अपनी संकुचित नीति का समर्थन कर वास्तव में अनंत मुसलमान लेखकों को दुत्कार दिया। उन लेखकों की मुसलमानियत तक से साफ़ इनकार कर दिया, जिन्होंने उर्दू को छोड़ कर और किसी भाषा या लिपि को अपनाया। मैं यह मानने के लिए तैयार नहीं कि वे मुसलमान मुसलमान नहीं, जो उर्दू बोल या लिख न सकें या अरबी लिपि जिनकी मादरी लिपि न हो। मजहब का न तो लिपि से सम्बन्ध है, और न भाषा से। जो सर्वव्यापक धर्म है, उसके तो सिद्धान्त सनातन हैं। उनका प्रचार किसी एक भाषा या एक लिपि-द्वारा ही करना या करने का हठ करना उस धर्म की व्यापकता से इनकार करना है, उसकी सार्वभौमिकता के दावे का खंडन करना है। लेकिन मुँह के चिढ़ाने के लिए अक्सर लोग बेवकूफ़ी में अपनी नाक काट लेते हैं। पीरपुर-कमिटीवाले भी इसी योनि के प्राणी मालूम होते हैं। वे अपने साम्प्रदायिक विद्वेष में जायसी को भले ही भुला दें। पर इस भुला देने से हम तो उन्हें नहीं भूल सकते। वे उन सूफ़ियों को भी भुला दें, जिन्होंने दरबारी उर्दू को छोड़ कर हिन्दुस्तानी में अपने सिद्धान्तों का प्रचार किया। लेकिन हम तो उनके उपकार को नहीं बिसार सकते और अगर बिसार भी सकें तो भी बिसारना न चाहेंगे, क्योंकि उनके विचार, उनकी भावनायें, उनके उद्‌गार और उनकी उमंगें जातीय संस्कृति की धारा को आज भी अपने जलदान से भरती, पोसती और शक्ति-प्रदान करती हैं।

(४)

आइए, अब हम दूसरे प्रश्न की ओर मुड़ जायँ और देखें कि उर्दू-साहित्य में है क्या? साहित्य का क्या अर्थ है? उसमें वैज्ञानिक ग्रन्थ भी शामिल हैं, इतिहास, भूगोल भी शामिल है। जहाँ तक इस तरह के ग्रन्थों का सम्बन्ध है वहाँ तक यह कहना पड़ेगा कि वे तो भौतिक पदार्थों और सांसारिक घटनाओं के वर्णन, विवरण और विवेचन के संग्रह-मात्र हैं। साहित्य में उन अनन्त धर्म-ग्रन्थों और भाष्यों, आदि, की भी गणना होती है, जिनमें इस्लाम के विभिन्न सम्प्रदायों के आचार्यों ने अपने मतों का मण्डन और विपक्षी मतों का खंडन किया है। उन सबका इस लेख से कोई सम्बन्ध नहीं। साहित्य का प्रयोग संकुचित अर्थ में भी किया जाता है; और इसी संकुचित अर्थ में जब हम उर्दू-साहित्य का ज़िक्र करते हैं तो हमारा संकेत केवल उन ग्रन्थों की ओर है जो संकुचित अर्थ में साहित्य के अंग समझे जाते हैं। उर्दू के गद्य-साहित्य का तो सृजन पीछे हुआ है। आरम्भकाल से बहुत समय तक उर्दू-साहित्य का बोध केवल उर्दू-कवियों की कृतियों तक ही सीमित होता रहा है। पीरपुर-कमिटी ने भी उर्दू-काव्य-जगत् के महारथियों ही का विशिष्ट रूप से नामोल्लेख किया है। इसलिए यह अनुचित कसौटी न होगी यदि हम अपनी परीक्षा केवल उर्दू-शायरों ही की जाँच तक सीमित रक्खें।

उर्दू-शायरी में है क्या? भाषा की दृष्टि से या विषय की दृष्टि से वह ईरान के पतन-काल की कविता की महज़ नक़ल है। वली उर्दू के आदि कवि कहे जाते हैं। कहा जाता है कि दक्षिण से जब ये देहली गये तब इनकी शायरी को सुनकर मुसलमान अमीर-उमरा मुग्ध हो गये और सारी दिल्ली—सारी दिल्ली से मेरा अर्थ है केवल तत्कालीन उर्दू बोलनेवाले दरबारियों की दिल्ली—सारी दिल्ली वली की कविता को सुन कर लट्टू हो गई। वली ने उर्दू-कविता को जो रूप दिया, वही उसके

टकसाली स्वरूप स्थायी रूप से हो गया। इसमें कोई शक नहीं कि उर्दू-जगत् में वली ने एक इन्क़लाब कर दिया। उनके पहले जो मुसलमान कविता करते थे वे या तो फ़ारसी में लिखते थे या हिन्दी में। वली ने एक दूसरा ही मार्ग ग्रहण किया, या यों कहना चाहिए कि उन्होंने अपने लिये एक नये पथ का निर्माण किया। उन्होंने देशी शब्दों के स्थान में फ़ारसी और अरबी के अधिक से अधिक शब्दों को अपनाना शुरू कर दिया और हिन्दुस्तानी विषयों को तिलांजलि देकर ईरानी मज़मूनों को अपना लिया। उनके कारण और उनके प्रभाव से उर्दू-साहित्य देशीपन को गँवाकर परदेशी बन गया और उर्दू-ज़बान जनता की ज़बान न रहकर एक गोप्य भाषा हो गई।

(५)

पिछले लेख में पाठकों को याद होगा, मैंने वली को शाह शादउल्ला गुलशन की नसीहत का ज़िक्र किया था। वली की तमन्ना थी कि वह ईरान और तूरान में प्रसिद्धि पायें और उनके शेर ईरान और तूरानी समझे जायें। इसी लिए, शायर 'नसरती' की तरह, उन्होंने भी 'दक्खिन का किया शेर जो फ़ारसी' परदेशी ज़बान को तो वली ने पहले ही अपना लिया था, बाद में शाह शादउल्ला गुलशन की नसीहत पर कि 'इतने सारे फ़ारसी के मज़मून जो बेकार पड़े हैं उनको अपनी शायरी में इस्तेमाल कर, कौन तुझसे हिसाब माँगेगा,' वह अपनी कविता के विषय भी परदेश से चुनने लगे। भाषा विदेशी, विषय परदेशी और इसी लिए देहली के अराष्ट्रीय, जातिभ्रष्ट दरबारियों ने वली को हाथोंहाथ ले लिया। जब से वे देहली पहुँचे तब से उर्दू-शायरी का निरन्तर एक ही रुख़, एक ही प्रेरणा, एक ही आकांक्षा रही। विदेशी मज़मून और परदेशी शब्दों को उसने अपनाया और परदेशी सिंगार से सजधज कर वह अपनेपन के, अपनी अस्लियत के, अपनी हिन्दुस्तानियत के गौरव को एकदम से भूल गई। आज दिन भी दिल्ली में जाइए और वहाँ के बड़े लाट के महल की परिक्रमा करनेवाले हिन्दुस्तानियों को देखिए। उन्हें भी हिन्दी होने का अभिमान नहीं, अँगरेज़ों की नक़ल करने में वे मारे गर्व के फूले नहीं समाते हैं। इन्हीं के पूर्वज मुग़लों के ज़माने में फ़ारस के फ़ारसियों से भी कहीं बढ़चढ़ कर अपने को फ़ारसीदाँ सिद्ध करने में अपना गौरव समझते थे। और यही कारण है कि उर्दू के कवियों ने अपनी शायरी में फ़ारसी सरस्वती की आराधना की। अपनी जातीय आत्मानुभूति को भुला कर उन्होंने हिन्द की सरस्वती से मुँह मोड़ लिया।

(६)

उसमें है क्या? अगर इसका पता आपको लगाना है तो वली से लेकर 'नूर' और 'बिस्मिल' तक के समय के कवियों के दीवानों (संग्रहों) पर एक नज़र डाल जाइए। उनमें आपको जो मिलेगा, उसका वर्णन हम एक लेखक के शब्दों में नीचे सुनाते हैं—"उर्दू में जो सरमाया इंशा-परदाज़ी का (वाग्विदग्धता या वचन-चातुरी की जो विभूति) है, (वह) फ़ारसी की बदौलत है। उर्दूवालों ने भी आसान काम समझ कर और अवाम-पसन्दी (जन-रुचि) को गरज़ ठहरा कर हुस्न व इश्क़ (सौन्दर्य और आसक्ति) वग़ैरह के मज़ामीन (विषयों) को लिया। और इसमें कुछ शक नहीं कि जो कुछ किया, बहुत ख़ूब किया। लेकिन मज़मून (विषय) इस क़दर मुस्तमल (चिरपरिचित) हो गये कि सुनते सुनते कान थक गये हैं। वही मुक़र्ररी बातें। कहीं हम फ़ज़ों को पशोपेश करते (आगे-पीछे हटाते) हैं, कहीं अदल-बदल करते हैं, और कहे जाते हैं। गोया खाये हुए, बल्कि औरों के चबाये हुए, निवाले हैं; उन्हीं को चबाते हैं और ख़ुश होते हैं। ख़याल करो, इसमें क्या मज़ा रहा? हुस्न (रूप) व इश्क़ (आसक्ति) सुबहान अल्लाह, बहुत ख़ूब। लेकिन हूर या परी गले का हार हो जाय तो अजीरन हो जाती है। हुस्न व इश्क़ से कहाँ तक जी न घबराये। और अब तो वह भी सौ बरस की बुढ़िया हो गई है।"

उर्दू-कवि हैं हिन्दुस्तानी लेकिन उन्होंने इस मोटी-सी बात को भी नहीं समझ पाया कि कवि की प्रतिभा का विकास तभी सम्भव है जब वह निजी अपनी जाति या विशिष्ट की आत्मानुभूति को अभिव्यक्त करे। कवि तो अपने प्रतिनिधित्व को तभी सार्थक कर सकता है जब वह अपनी अन्तरात्मा को अपना सच्चा प्रेरक और निर्णायक स्वीकार कर ले। माइकेल मधुसूदन दत्त

यदि आज अमर हैं तो इसलिए नहीं कि उन्होंने अँगरेज़ी कवियों की तरह अँगरेज़ी में कविता लिखी किन्तु इसलिए कि उन्होंने अपनी जातीय परम्परा का अनुसरण किया और उसी के अनुरूप 'मेघनाथ-वध' अथवा 'विरहिणी व्रजांगना' की रचना की। इसके विपरीत, उर्दू की शायरी स्वदेशी; नहीं विदेशी है, हिन्दुस्तानी नहीं, ईरानी है। इन उर्दू के शायरों के बोल अपने बोल नहीं हैं, वे तो ईरानी बोलों की कृत्रिम गूंज-मात्र हैं। उर्दू-कवियों ने फ़ारसी-कवियों की नक़ल करने को अपनी कला का अन्तिम ध्येय मान लिया है; जैसे उसने बुतपरस्ती का पाठ ईरानी कवियों से सीखा। उर्दू का अप्राकृतिक प्रेम ईरानी कवियों के अनुसरण में अश्लीलता की सीमा को भी पार कर गया। किसी ने ठीक ही कहा कि—

'उर्दू-कवियों ने ईरान से आशिक़-माशूक़ ही नहीं लिये बल्कि उनके साथ विषय-व्यापार की भी आयोजना की है। फ़ारसी का बुलबुल फ़ारस ही में रोता-गाता है। हिन्दुस्तान के बुलबुल से उसका नाम के सिवा और कोई....... मेल नहीं। पर उर्दू के कवि उसके घोंसले के लिए हिन्दुस्तान में रोते रहे हैं।' .... हिन्दुस्तान की नदियों को भुला कर उर्दू के कवियों ने फ़ारस और अरब की नदियों ही में हाथ धोये हैं। लैला, मजनूं, शीरीं, फ़रहाद, युसुफ़, जुलेख़ाँ, के क़िस्से भी भारत के नहीं पर उर्दू ने उन्हें अपने गुलशन में जगह दी है। इसी लेखक ने उर्दू के कवियों की हिन्दी और संस्कृत के कवियों से तुलना की, और वे इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि उर्दू-कविता में जहाँ इश्क़ का ज़िक्र है वहाँ विशुद्ध प्रेम का नहीं, केवल कामवासना का ज़िक्र है; सात्त्विक प्रेम का नहीं।

(७)

हिन्दी-कवियों ने शृंगार-रस को बीभत्स रस का विरोधी माना है। लेकिन उर्दूवाले शृंगार-रस के साथ बीभत्स रस का उपयोग करते हैं। 'किसी उर्दू-कवि के दीवान को खोल लीजिए तो मालूम होता है कि मानों किसी क़साईख़ाने में पहुँच गये हैं।' उर्दू-काव्य मुस्लिम शासन के पतन का प्रमाण और कारण है। उर्दू-शायर के इश्क़ की दीमक देखते देखते दिल्ली और लखनऊ के राजघरानों की हुकूमत चट कर गई। जिस समय देश में उथल-पुथल मची थी और राज्य के तख़्ते एक के बाद दूसरे कड़कड़ाहट के साथ टूट रहे थे उस समय हमारे बादशाह और उनके मुसाहिब उर्दू-शायरों की शायरी की चासनी का रसास्वादन करने में मग्न थे। देश में तो आग लगी थी, प्रजा चिल्ला रही थी रक्षा के लिए लेकिन रक्षक बेख़बर था। वह तो शराब और शायरी के डबल नशे में चूर था। उस समय की शाही दरबार की हालत भी विचित्र थी। उसे एक लेखक ने बड़े सुन्दर शब्दों में वर्णित किया है। 'माशूक़ के ख़ंजर और छूरियों के कल्पित चोट से वे तड़प रहे थे।...उस समय के शायर भी झूठमूठ के एक ख़याली माशूक़ या बुत की कल्पना करके उसके चारों ओर भाँवरें घूमते थे। उसी के ख़याल में मस्त, उसी में ग़र्क़ रहते थे। न कहीं कोई माशूक़ था, न उसकी आँखों से बिजली गिरती थी, न तीर चलते थे, न सैकड़ों क़त्ल होते थे, न जनाज़े और क़ब्र का ही कहीं ठिकाना था। अलग एकान्त कमरे में बैठकर शायर महाशय यह ख़याली तूफ़ान पैदा करते थे। इश्क़ नाम के एक रोग को ग़ज़लरूपी नश्तरों से जीते-जागते सुन्दर तन्दुरुस्त आदमी के शरीर में प्रविष्ट कर देते थे। जो कल हट्टा-कट्टा, मुस्तैद, जवांमर्द, धर्म और जाति का सेवक और देश में स्वराज्य-स्थापन की कल्पना करनेवाला था, वह आज शायरों की बदौलत इश्क़ के रोग में फँसता है। उसकी हिम्मत, उसका कर्त्तव्यज्ञान, उसकी उद्योगशीलता सब हवा हो जाती है, और वह भी आह उह करके दिन काटनेवालों के दल में आ मिलता है। बुतपरस्ती को मुसलमानी धर्म और ईमान से बढ़कर बतलाते हैं। शराब पीता है। न रोज़े रखता है, और न नमाज़ पढ़ता है। उर्दू के शायर मुसलमान होते हुए भी मज़हब की पाबन्दी नहीं करते थे। प्रायः सबने इस्लाम के विरुद्ध कुछ न कुछ कहा।'

इसी लिए 'आबे हयात' के प्रसिद्ध लेखक, प्रोफ़ेसर आज़ाद, दुख से जर्जरित होकर उर्दू-शायरों की करतूतों पर रोते हुए यह फ़ैसला दें—'यह इज़हार क़ाबिल अफ़सोस है कि हमारी शायरी चन्द मामूली मतालिब के फन्दों में फँस गई है, यानी मज़ामीन आशिक़ाना, मैख़्वारिये, मस्ताना, गुलो, गुज़ार, बहारी रँग व बू का पैदा करना, हिज्र की मुसीबत का रोना वस्ले मौहूम पर खुश होना, दुनिया से बेज़ारी, इसी में

फ़लक़ की जफ़ाकारी और ग़ज़ब यह है कि अगर कोई असली माजरा वयान करना चाहते हैं तो भी खयाल इस्तआरों में अदा करते हैं । नतीजा जिसका यह कि कुछ नहीं कर सकते ।'

मौलाना हाली ने भी इस उर्दू की शायरी के लिए कहा है—

"जहन्नुम को भर दें शायर हमारे ।"

और

पैकर जायं हिजरत जो शायर हमारे ।
कहें मिल के 'खस कम जहाँ पाक' सारे ॥

ऊपर जो कुछ हमने कहा है उससे यह स्पष्ट है कि उर्दू का साहित्य हिन्दुस्तानी नहीं है, वह तो ईरानी साहित्य की केवल नक़ल है, और इसी लिए उसमें जीवन-दायिनी शक्ति का अभाव है । वह गँदले पानी का तालाब है । मृत्यु की सहचरी है । संहार का ज़हर उसमें भरा पड़ा है । पौरुष का विनाश उसका परिणाम है । अहिन्दुस्तानी होने के कारण राष्ट्रीय जीवन में उसका कोई मूल्य नहीं । वह तो एक विकार है, आत्मा का वलिदान उसका अभिशाप है । वह अमृत नहीं, हलाहल है। अपनी मधुशाला में बुलाकर वह हमारे प्राणों को हरती है । जब तक उर्दू के कवि अपने रुख़ को नहीं वदलेंगे और परदेशी के रवैये को छोड़कर देशी वनना और यहाँ का हो के रहना अपनी कला का धर्म नहीं समझेंगे तव तक उर्दू-शायरी का राष्ट्र के निर्माण में न कोई हाथ हो सकता और न वह जातीय उत्थान की समर्थ साधक हो सकती है। यह विष का प्याला है जिसे पीने-वाला पी कर मृत्यु का विना माँगे ग्राहक वन जाता है। साहित्य में अपार शक्ति है—पशुओं को पुरुष बनाने की, कायरों को वीरों में वदल देने की, स्वार्थी को परमार्थ के लिए क़ुर्वान हो जाने के लिए उत्साहित करने की, गिरे हुए को उठाने की, भूले भटके को ठीक रास्ते पर लाने की, सोते को जगाने की और मुर्दों को फिर से जिलाने की। उर्दू-कवियों ने अपने इस पूज्य पद को ठुकरा दिया। वे अपनी महत्ता को भूले गये। भड़ैती को उन्होंने अपना उच्चतम आदर्श वनाया और सिंह से सियार वनने में अपना गौरव समझा।

(८)

हमने यह भी कहा है कि उर्दू-शायरी इस्लाम-विरोधी है । इस्लाम ने जिसको हलाल कहा, उर्दू-शायरों की नज़रों में वही हराम है; और जिसे इन्होंने हलाल माना, वह इस्लाम में कुफ़्र है । उसमें आपको वुतपरस्ती की हिदायत मिलेगी, वाइज़ के निन्दा और मैखानों के गुणगान मिलेंगे। कावा और जिन्नत पर फवतियाँ हैं । मुल्लाओं और मसजिदों का हास-उपहास मिलेगा; और मज़ा यह है कि जो मुसलमान मज़हव के नाम पर मिटनेवाले हैं वे दाद देते हैं मज़हव के इन उपहास करनेवालों को । एक ओर तो इतना मज़हवी जोश और दूसरी ओर इतनी लापरवाही । इसको देखकर अमुस्लिम हिन्दुस्तानी यदि हैरान हो जाय तो अचरज की कौन वात ? मज़हवी मुसलमान ही हमें वता सकते हैं, और हम उनसे सादर पूछना भी चाहते हैं कि वे हमें वतायें कि शायरों के दीवान क्या इस्लाम के प्रतिपादक हैं या उसके विरोधी। यदि वे इनको इस्लाम का विरोधी समझते हैं तो वतायें कि वे फिर 'इस्लामी कल्चर' के कैसे प्रतिनिधि हैं ? इन शायरों की कविता को क्या वे मुसलमानी 'कल्चर' या संस्कृति का आधार मानने के लिए तैयार हो जायँगे ? या क्या यह सम्भव है कि मुसलमान कवियों ने जो कुछ कहा है, वही वास्तविक इस्लाम है । मैं मुसलमान नहीं, पर इस्लाम-धर्म-विषयक जो ग्रन्थ मैंने देखे हैं उनके आधार पर मैं यह मानने को तैयार नहीं कि उर्दू की शायरी में इस्लाम-धर्म का सच्चा निरूपण हमें मिलेगा। इस्लाम-धर्म तो जीवनदाता है, जीवन का संहारक नहीं; पुरुषत्व का वर्द्धक है, नपुंसकता का साथी नहीं । लेकिन मैं दावे के साथ इस विषय पर कुछ नहीं कह सकता हूँ । मेरा यही निवेदन है कि यदि किसी मुसलमान भाई की दृष्टि मेरे इस लेख पर पड़े तो उनका मेरे ऊपर परम अनुग्रह होगा यदि वे इस मसले पर प्रकाश डालने की चेष्टा करेंगे ।
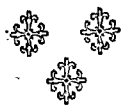
युद्ध और उसका अन्त

लेखक, पण्डित वनमालीप्रसाद शुक्ल

इस लेख में बताया गया है कि युद्ध का अंत करने के लिए मित्रराष्ट्र पहले से प्रयत्नशील हैं। कुटिल राष्ट्रकर्णधार इसमें विघ्न उपस्थित करके सबका अनिष्ट साधते हैं। इस समय संसार के सामने यही एक ज़बरदस्त प्रश्न है कि किस प्रकार युद्ध का अंत किया जाय ताकि विश्व में शांति स्थापित हो।

कहते हैं कि युद्ध-काल में अनेक वर्षों के कठिन साधन से प्राप्त हुई मानव-सभ्यता क्षणभर में लोप हो जाती है और उसके स्थान में मनुष्य की हिंस्र-प्रवृत्ति आ विराजती है। परन्तु यदि सूक्ष्म दृष्टि से देखा जाय तो स्पष्ट होगा कि सभ्यता की छाया मनुष्य-समाज पर जैसे शान्तिकाल में पड़ती है, वैसे ही युद्ध-काल में भी पड़ती है। उसका अस्तित्व दोनों कालों में रहता है। अन्तर केवल इतना ही होता है कि शान्ति-काल में उसकी परछाईं सीधी पड़ती है, जिससे मानव-जीवन उत्तरोत्तर विकसित होकर संसार-सुलभ सुख का समुचित उपभोग करता है और युद्ध-काल में वह ऐसी कुछ उलटी पड़ती है जिससे मनुष्य सब कुछ जानते हुए अनजान होकर अपने आप सर्वनाश का कारण बन जाता है। फिर उसके लिए सत्य-झूठ, न्याय-अन्याय, पाप-पुण्य आदि बातें विचारणीय नहीं रह जातीं। निर्दोष मनुष्यों का रक्तपात प्रकृति के लिए कितना असहनीय होगा, इसकी उसे कल्पना तक नहीं होती। यदि इस काल में 'जिसकी लाठी उसकी भैंस' वाली पुरानी कहावत अपने प्रारम्भिक काल के सरल युद्ध रूप में चरितार्थ होती तो विशेष चिन्ता की बात नहीं थी; क्योंकि उससे संसार भर के अमङ्गल की आशंका नहीं होती जैसा आधुनिक वैज्ञानिक युद्ध से होती है। सभ्य देशों के प्राचीन काल के युद्ध में धर्म की छाप रहती थी। इसी से उन दिनों के युद्ध मर्यादित होते थे। दो भिन्न भिन्न पक्ष को लेकर लड़नेवाले सैनिक दल वादी-प्रतिवादी के समान रणक्षेत्र-रूपी न्यायालय में युद्ध-रूपी न्यायाधीश से अपने झगड़े का निर्णय कराके सन्तुष्ट हो जाते थे। ऐसा कभी नहीं होता था कि सैनिक दल सैनिक मर्यादा का उल्लङ्घन कर सभ्य समाज के कक्ष में आतंक उपस्थित करे या अनुचित रीति से शत्रु-संहार का गुप्त उद्योग करे। ऐसे कृत्य युद्ध-धर्म के विरुद्ध माने जाते थे। परन्तु अब ऐसी बात नहीं रह गई है। इसी से आधुनिक युद्ध प्रलय से भयंकर हो रहा है। प्रलय-काल में सर्वनाश हो जाता है। माता-पिता को पुत्रशोक का सन्ताप नहीं होता। स्त्री वैधव्य-दुःख का अनुभव नहीं कर पाती। सन्तान जानती ही नहीं कि दुर्दैव ने उसे अनाथ बना दिया है। साहित्य का ज्ञान-भांडार, इतिहास की सामग्रियाँ, सभ्यता और कला की अमूल्य सम्पत्ति आदि का नाश किसी को खलता ही नहीं। सबके सब एक ही समय में एक ही रीति से प्रलय के कराल गाल में साथ-साथ विलीन हो जाते हैं। प्रलय-द्वारा होनेवाला नाश पूर्ण होता है और उसके बाद भूमंडल भर में पूर्ण शान्ति छा जाती है। परन्तु आधुनिक वैज्ञानिक युद्ध से आंशिक नाश होता है; इस कारण संसार पूर्ण अशान्ति का अनुभव करता है और वह दुःख, अभाव और प्रतिहिंसा का आगार बन जाता है।

इस बात का सबको अनुभव है कि युद्ध मानव-जीवन और सभ्यता का विनाशक है। घृणा के उदर से जन्म लेने और उन्माद तथा मूर्खता के द्वारा प्रतिपालित होने से वह न तो किसी प्रकार की व्यवस्था ही कर सकता है, न निर्णय। विजित और विजेता दोनों पर अपना क्रूर प्रभाव समान रूप से स्थापित करके दोनों को कष्ट, अभाव और हानि से पुरस्कृत करता है। अन्यायियों को क्षणिक त्राण देकर निरपराधियों को पददलित करते हुए संसार भर के राज्यों की व्यवस्था को विशृंखल कर देता है। यहाँ प्रश्न उठता है कि इतना सब होते हुए उसका आवाहन क्यों किया जाता है। इसके उत्तर में संसार के सभी लोग एक स्वर से यही कहेंगे कि उनके मन में युद्ध के प्रति न तो कभी श्रद्धा होती है, न भक्ति। उनके मन में स्वभावतः पारस्परिक घृणा का भाव भी

अंकुरित नहीं होता है। वे तो सबसे मैत्री रखते हुए अमन-चैन से कालक्षेप करना चाहते हैं। स्थायी विश्व-शान्ति के निमित्त ऐसी कोई बात नहीं है जिसे करने के लिए वे तत्पर न हों। पर संसार में कुछ ऐसे लोग भी हैं जिनका युद्ध ही जीवन है; समराग्नि को प्रज्वलित करते रहने में जिन्हें अपना कल्याण दीखता है। ऐसे लोग राष्ट्रों के बीच प्रथम भय, फिर सन्देह और अंत में घृणा का बीज वपन करते हैं। निर्बल पड़ोसी राज्यों पर अधिकार स्थापनार्थ सक्रिय चेष्टा करते हैं। स्वदेशाभिमान की मिथ्या भावना को लेकर अपने राष्ट्र को सर्वोपरि बनाने की कामना करते हैं। फल यह होता है कि उनकी इस भावना-कामना से भय एवं सन्देह जनित कलह उग्ररूप धारण कर लेता है। जल, स्थल और आकाश को थर्रा देनेवाली रणभेरी बजने लगती है। उन कुछ संसार-द्रोहियों के प्रभाव से मनुष्य मनुष्यत्व को भूल जाता है। वह हिंस्र पशु से अधिक भयंकर क्रूरकर्मा और कृत्रिम हो जाता है। विगत योरपीय महासमर एक सम्राट् के प्रमाद का प्रतिफल था। उसके बाद के युद्ध स्वार्थान्ध राष्ट्र-कर्णधारों की महत्त्वाकांक्षा से प्रसूत हैं।

गत योरपीय महासमर में न्याय का पक्ष लेकर लड़नेवाले मित्रराष्ट्रों ने घोषित किया था कि वे युद्ध का अन्त कर देने के लिए लड़ रहे हैं, जिसमें भविष्य में युद्ध असम्भव हो जाय और मनुष्य अपने बन्धु-बान्धवों का संहार किसी भी परिस्थिति में न कर सके। इसमें सन्देह नहीं कि उनकी यह घोषणा निरी घोषणा नहीं थी। उसमें उनके हृदय का सच्चा उद्गार निहित था, जिससे प्रेरित होकर हज़ारों योधा उनके झंडे के नीचे सोत्साह आ जमे। उनमें से न जाने कितनों ने महासमर की बलिवेदी पर हँसते हँसते आत्म-समर्पण कर दिया। राष्ट्रों की करोड़ों की सम्पत्ति समर-यज्ञ में स्वाहा हो गई। अन्त में न्याय की जीत हुई। मित्रराष्ट्रों के जी में जी आया। मृत सैनिकों के माता-पिता स्त्री-पुत्र तथा भगिनी-भ्राताओं ने यह सोचकर अपने शोक-संतप्त मन को धीरज दिया कि उनका असाधारण त्याग निष्फल नहीं जायगा। सर्वसाधारण लोगों ने समझा कि अब शक्ति के स्थान में न्याय की स्थापना होगी; युद्ध अनावश्यक और असम्भव समझा जाकर संसार में स्थायी शान्ति के निमित्त उद्योग किया जायगा; सैन्यशक्ति जिसके आतंक से संसार त्रस्त है, निर्बल कर दी जायगी।

सबके विश्वासानुकूल कार्य भी प्रारम्भ हुआ। अमरीका के तत्कालीन अध्यक्ष श्री विलसन महोदय ने कहा कि पारस्परिक ईर्षा-द्वेष को दफ़ना कर मनुष्य-जाति के कल्याणार्थ ऐसा ठोस कार्य करना चाहिए जिसमें भविष्य में संसार की शान्ति न भंग होने पावे। मित्र-राष्ट्रों ने न केवल उनकी बात का स्वागत ही किया, वरन उनके ध्येय को सम्मुख रखकर विश्व-शान्ति के निमित्त प्रबल उद्योग करने में उन्होंने अपनी ओर से कोई बात उठा नहीं रक्खी। राष्ट्रसंघ की उत्पत्ति उनके उसी उद्योग का प्रतिफल है।

राष्ट्रसंघ के राजनीतिज्ञों ने अपने भूतकालीन अनुभव के आधार पर सोचा था कि जब युद्ध के साधन नहीं रह जायँगे तब मनुष्यों के सिर पर युद्ध का भूत नहीं सवार होगा। परन्तु विश्व-कल्याणकारी इस महान् अनुष्ठान की सफलता में कुटिल मनोवृत्ति के कुछ राष्ट्र-कर्णधार आड़े आये। परिणाम यह हुआ कि इस योजना के विपरीत जर्मनी जैसे सर्वोपरि बनने के इच्छुक राज्य तथा उनके भय से भयभीत होनेवाले दूसरे राज्य सामरिक तैयारी में ऐसे तल्लीन हुए जैसा इसके पूर्व कभी भी नहीं हुए थे। यहाँ यह प्रश्न उठता है कि यदि राष्ट्रसंघ-द्वारा योजित निःशस्त्रीकरण सफलीभूत होता तो क्या युद्ध का अन्त हो जाता। इसके उत्तर में हाँ कहते शंका होती है जब कि हम देखते हैं कि युद्ध के इच्छुक जनों के अभिलाषा-पूर्त्यर्थ रसायनशास्त्री सामरिक शस्त्रों एवं सैनिकों से कई गुना अधिक सहायता अपनी रासायनिक क्रियाओं-द्वारा देने के लिए तत्पर हैं। सुनते हैं कि उनकी सहायता से छोटे से छोटे राष्ट्र में युद्ध के निमित्त तैयारी किये बिना बड़ी से बड़ी सेना को तहस-नहस कर देने की शक्ति आसानी से प्राप्त हो सकती है। हाल में ही जर्मनी ने किसी बात पर बिगड़कर मित्रराष्ट्रों को धमकी दी थी कि अनुचित रीति से किसी तरह विवश किये जाने पर वह अपने उन रासायनिक प्रयोगों का उपयोग करेगी जिनकी कल्पना तक लोग

नहीं कर सकते। विगत महासमर में जर्मनी ने विषैले धूम्र (एसफ़ैक्सिएटिंग गैस) का उपयोग किया भी था, जिससे रणक्षेत्र में आतंक छा गया था और संसार भर के लोगों को उसके फलस्वरूप इनफ़्लुएन्ज़ा की बीमारी हुई थी। अतएव ऐसे गुप्त एवं अमोघ अस्त्रों का भी निःशस्त्रीकरण होना चाहिए। इसके अतिरिक्त संसार भर के राजनीतिज्ञों, लेखकों, पत्रकारों, उपदेशकों और व्याख्यानदाताओं के उन समस्त विचारों का भी निःशस्त्रीकरण परमावश्यक है जिनके द्वारा युद्धीय भाव प्रस्फुटित एवं विकसित होते हैं। परन्तु उन विचारों का निःशस्त्रीकरण तभी सम्भव है जब वे सब यह अनुभव करने लगें कि पृथ्वी के भिन्न भिन्न भागों में निवास करने और भिन्न भिन्न रूप-रंग के होने से मनुष्यों में भिन्नता नहीं आती। इस बात को दूसरे शब्दों में ऐसा भी कह सकते हैं कि संसार भर की जातियों में खान-पान, रहन-सहन और धर्म-कर्म की भिन्नता होने से क्या, जब उन सबकी अन्तर्निहित आत्मा एक है।

इतिहास के जानकारों को प्रकट है कि योरप के विगत दो युद्धों का सूत्रपात दो प्रसिद्ध व्यक्तियों की क़लम से हुआ था। सन् १८७० ईसवी का फ़रासीसी-जर्मन-युद्ध थीर्स महोदय की ओजस्विनी लेखनी का प्रतिफल था और सन् १९१४ का विश्वव्यापी समर हिनरीच व्हान ट्रिसकी के वैमनस्योत्पादक रचना से जागृत हुआ था। वर्तमान युद्ध जर्मनी के डिक्टेटर हिटलर और उसके प्रचारकों के कारण हुआ है। इस बात को चित्रित करने के लिए कि जर्मनजाति के मन में अन्य राष्ट्रों के प्रति घृणा का भाव उत्पन्न करने में लेखकों एवं व्याख्यान-दाताओं का कितना ज़बर्दस्त हाथ रहा है, एक हाल की घटना का उल्लेख करते हैं। ब्रिटिश रायल एअर फ़ोर्स के अफ़सरों ने एक जर्मन बमवर्षक उड़ाके का सम्माननीय अतिथि के रूप में सत्कार किया और उसकी निपुणता एवं साहस की सराहना की। वह बन्दी उड़ाका अपने शत्रु के दयालुतापूर्ण व्यवहार से इतना प्रभावित हुआ कि वह सँभल न सका और फूट फूटकर रो पड़ा। उसने कहा कि जर्मनी में यह प्रचार बड़े ज़ोर-शोर से होता आ रहा है कि अँगरेज़ जर्मनों से घृणा करते हैं, अतः प्रत्येक जर्मन का कर्तव्य है कि वह अँगरेज़ों से घृणा करे। निःसन्देह लेख, व्याख्यान आदि युद्ध भड़काने या शान्ति स्थापित करने के लिए मन्त्र से भी अधिक प्रभावशाली होते हैं, अतः इनका उपयोग संसार के सब लोगों में सद्भाव स्थापित करने के लिए ही होना चाहिए; युद्ध उत्पन्न करने के लिए नहीं।

यह सब जानते हैं कि हिटलर और उसके अनुयायियों की धाँधली और उद्दण्डता से वर्तमान योरपीय समर का आविर्भाव हुआ है। इतना ही नहीं, रूस को भी नादिर-शाही करने का अवसर उसी ने दिया है। युद्धारम्भ के पूर्व ब्रिटेन के प्रधान सचिव ने मानापमान की परवा न करके न्यायोचित रीति से हिटलर को सन्तुष्ट करने और वसुंधरा को निर्दोष जर्मन-प्रजा तथा अन्यान्य राष्ट्र के लोगों के रक्त से रंजित न होने देने के लिए अदम्य उत्साह से पूर्ण प्रयत्न किया था। फ्रांस और अमरीका के राष्ट्र-पतियों की ओर से भी ऐसा ही उद्योग हुआ था। परन्तु हिटलर की उद्दण्ड मनोवृत्ति शान्त होने के बजाय उत्तरोत्तर बढ़ती गई। तब विवश होकर मित्रराष्ट्रों को धधकती हुई युद्ध-ज्वाला को एक बार फिर बुझा देने के लिए समराङ्गण में आना पड़ा। यह जानी हुई बात है कि अन्त में न्याय की जीत होगी और तब हिटलर और उसके अनुयायी पापात्माओं के रूप इतिहास के पृष्ठों में नज़र आवेंगे। उस समय मित्रराष्ट्रों को अपने इस ताज़े अनुभव के बलपर ऐसी सुदृढ़ योजना करनी चाहिए, जिससे संसार की शान्ति पुनः न भंग होने पावे। उन्हें अपने राष्ट्रसंघ का पुनर्संगठन भी ऐसा करना चाहिए जिससे उसका सद्भाव-जनित शासन संसार भर के राष्ट्रों पर रहे, उससे अलग होकर या उसके नियन्त्रण की अवहेलना करके किसी भी राष्ट्र का रह सकना असम्भव हो जाय।

यह निर्विवाद सत्य है कि विश्वशान्ति के निमित्त राष्ट्रसंघ जैसी संस्था ही उपयुक्त हो सकती है। यद्यपि आज स्वार्थान्ध डिक्टेटरों के कारण उसकी महत्ता का मार्तण्ड बर्बरता की बदली से ढँक गया है, उसे जिनेवा से उठ कर पेरिस जाना पड़ा है, तथापि यह निश्चित है कि भविष्य में एक दिन ऐसा आवेगा जब युद्ध की निरर्थक आपत्तियों से त्रस्त होकर लोग आपसे आप कहने लगेंगे कि शान्ति-रक्षण के निमित्त आत्मसंयम, सद्भाव, उदारता, सत्याचरण आदि नैसर्गिक गुणों की आवश्यकता है, सैन्य-

शक्ति की नहीं। उस समय उन्हें यह सोचकर ग्लानि और पश्चात्ताप होगा कि उन्होंने अपने मूर्खतावश राष्ट्र-संघ जैसी महान् और पवित्र संस्था की उपेक्षा करके कितनी भयंकर भूल की है, कितना अकारण दुख झेला है। अपनी इस भूल को समझने में लोग जितना विलम्ब करते जायँगे, उतना ही अधिक सभ्यता का, राष्ट्र का और संसार का अनिष्ट होता जायगा। यदि अभी से लोग सचेत हो जायँ, विश्व-विनाशक युद्ध के उत्तेजक डिक्टेटरों की बातों के भावावेश में न पड़कर राष्ट्रसंघ पर विश्वास करने लग जायँ तो विश्व-शान्ति स्थापन का कार्य बहुत कुछ सरल और सीधा हो जायगा। वास्तव में राष्ट्रसंघ किसी भी धर्म-महामंडल से न्यून संस्था नहीं है। संसार में जितने प्रचलित धर्म हैं उनमें से हरएक केवल अपने अनुयायियों भर को एक सूत्र में बाँध सकता है। परन्तु राष्ट्रसंघ संसार के समस्त राष्ट्रों को एकता के बंधन में बाँधने की क्षमता रखता है। धर्म उसी दशा में अनुयायियों के निमित्त कल्याणकारी सिद्ध होता है जब उस पर उनकी अटल श्रद्धा होती है। ठीक इसी प्रकार राष्ट्रसंघ राष्ट्रों को विनाश से तभी बचा सकता है जब सब राष्ट्र और राष्ट्र के लोग उस पर ही विश्वास करेंगे। उसकी स्थापना भी तो विश्वास की नींव पर ही हुई है। अतः एकमात्र विश्वास से ही उसके महान् उद्देश्य की सिद्धि हो सकती है। आशा है कि भविष्य में सब लोग विश्व-धर्म-सदृश राष्ट्र-संघ के प्रति श्रद्धा-विश्वास प्रदर्शित करके शान्ति-फल प्राप्त करने की हृदय से कामना करेंगे और शान्ति-स्थापन के कार्य में उसकी अवहेलना करनेवालों के कारण जैसी विकट परिस्थिति उसके समक्ष आज उपस्थित हुई है, वैसा नहीं होने देंगे।

सुस्मृति की झंझा के झोंके

लेखक, श्रीयुत शिवमङ्गलसिंह 'सुमन'

अलस शिथिल पग नूपुर रंजित
अथ-इति हीन मान मद गंजित
कर पद-चापों की प्रतिध्वनि से
व्यथा-कथा अभिव्यंजित,
मुझे बाध्य करते बढ़ने को मेरा ही पथ रोके,
सुस्मृति की झंझा के झोंके।

मुझ मानव का चिर-चंचल चित
आग और पानी से विरचित
यह दिन मुझे देखने पड़ते
हो संयोग स्नेह से वंचित
हाय! जलाते हैं मुझको, मेरी ही आग सँजो के,
सुस्मृति की झंझा के झोंके।

संध्या के नव-नील गगन में
मेरे अलसाये यौवन में
बाँध प्रतीक्षा की डोरी से
आशा के चिर-सुखद स्वप्न में
मुझको ही बिछोह सिखलाते, मुझमें ही लय होके,
सुस्मृति की झंझा के झोंके।

मैं पल पल लगता हूँ तपने
एक उन्हीं की माला जपने,
उनकी वे बातें मनुहारें
बन जातीं प्रभात के सपने,
अब जागृति का पाठ पढ़ाते, मेरे उर में सो के,
सुस्मृति की झंझा के झोंके।

मैं फिर भी रोता रहता हूँ
अपने को खोता रहता हूँ
मन-मन्दिर की कालिख अपने,
दृग-जल से धोता रहता हूँ
सम्भव है उनको पा जाऊँ, अपने ही को खो के,
सुस्मृति की झंझा के झोंके।

यह पहला ही अवसर था कि लिसवैथ ने अपने व्याह के विषय में मेम साहब से कोई चर्चा की हो। वे उसकी धृष्टता को देखकर दंग रह गईं, पर कुछ न वोलीं। उस आदमी की शीघ्रातिशीघ्र दवा-दारू करना उनका प्रथम कर्त्तव्य था। चोट खाया हुआ आदमी एक अँगरेज़ नवयुवक था। चोट से उसका सिर फट गया था, जिससे वह बेहोश हो गया था। उसको बड़े ज़ोरों से साँस आ रही थी। लिसवैथ ने उसे एक पहाड़ी के नीचे चट्टान पर पड़ा हुआ पाया था।

पादरी साहब ने उसकी दवा-दारू शुरू कर दी। वे स्वयं भी थोड़ी-बहुत डाक्टरी जानते थे। लिसवैथ इस आशा में दरवाज़े पर खड़ी रहती कि शायद उसका भी कोई काम आ पड़े। उसने पादरी साहब से कहा—"धर्म-पिता, मैं इसी आदमी से अपना व्याह करना चाहती हूँ।" पादरी और मेम साहब ऐसी अनर्गल बातों को सुनकर और चुप्पी न साध सके और उन्होंने बे-सिर-पैर की बातों पर उसे बेतरह फटकारा। लिसवैथ ने धैर्य धारण कर उन दोनों की बातों को सुन लिया, पर अपना हठ नहीं छोड़ा। मेम साहब ने कहा—"पूरब की जातियों में जो असभ्यता के चिह्न पाये जाते हैं—जैसे प्रथम मिलन में ही आत्मसमर्पण—उन्हें ईसाई-धर्म भी एकाएक पूर्णरूप से नहीं मिटा सकता। लिसवैथ को आश्चर्य होता—"आखिर मेम साहब मुझे चुप रहने के लिए क्यों कहती हैं! मेरा प्रियतम मुझे मिल गया है। फिर मैं चुप्पी क्यों साधूँ? हाँ, जब तक वह पूर्ण रूप से अच्छा न हो जाये तब तक मैं व्याह करने के लिए किसी प्रकार भी वाध्य नहीं करूँगी। तब तक तो मैं उसकी सेवा-शुश्रूषा करके ही अपने को कृत्यकृत्य समझूँगी।"

यही उसका छोटा-सा प्रोग्राम था। दस-पन्द्रह दिन के पश्चात् कुछ बुखार आदि के बाद युवक अच्छा हो गया। अच्छा होने के बाद उसने पादरी साहब, मेम साहब और लिसवैथ के प्रति अपनी हार्दिक कृतज्ञता प्रकट की। उसने अपना परिचय देते हुए वतलाया कि वह विलायत से पूर्वीय देशों का भ्रमण करने के उद्देश्य से निकला था। देहरादून से वह शिमला की पहाड़ियों में कुछ जड़ी-बूटियों का अन्वेषण करने आया था। इसी कारण शिमला में उससे किसी से भी परिचय नहीं है। उसने वतलाया—"कदाचित् मैं किसी चट्टान पर ऊँचाई से गिर पड़ा और बेहोश हो गया। मेरे कुलियों ने अवश्य ही मुझे बेहोश पड़ा हुआ समझ कर मेरे माल-असबाब को अपना लिया होगा और फिर वे चलते बने होंगे।" उसने शिमला में और कुछ दिनों तक रहने की अनिच्छा प्रकट करते हुए कहा—"जैसे ही मुझमें कुछ और शक्ति का संचय हो जायगा, मैं तुरन्त यहाँ से रवाना हो जाऊँगा। अब मुझे और पहाड़ी सैर करने की बिलकुल इच्छा नहीं है।"

धीरे-धीरे युवक के निर्बल शरीर में बल का संचार होने लगा। उसने शिमला से चले जाने की कोई जल्दी नहीं दिखलाई। लिसवैथ उसका चला जाना सुनकर अधीर हो उठती। मेम और पादरी साहब की बातों से उसे तनिक भी आश्वासन न होता। मेम साहब ने जब इस अँगरेज़ नवयुवक से लिसवैथ की प्रेम की बातें प्रकट कीं तब वह हँसते हँसते लोट-पोट हो गया। उसने कहा—"हिमालय की पहाड़ी लड़कियों के प्रेम करने का ढंग भी सचमुच सुन्दर पर निराला होता है। मेम साहब इस विषय में निश्चिन्त रहिए। मैंने पहले से ही एक अँगरेज़ बालिका के पाणिग्रहण का निश्चय कर लिया है और उसने भी मुझे अपने प्रणय की भिक्षा दे दी है। पर मैं लिसवैथ से प्रेम-पूर्वक बोलता, हँसता और साथ ही साथ टहलने भी जाता हूँ, इसमें न जाने क्यों उसे एक अज्ञात आनन्द का अनुभव होता। जब प्यार के नामों से वह लिसवैथ को पुकारता तब वह आनन्दमग्न हो जाती। उसके लिए तो वह सब खिलवाड़ था, पर बेचारी लिसवैथ के लिए तो वह खिलवाड़ ही संसार में सब कुछ था। संसार में वह अपने को सबसे अधिक सुखी समझ रही थी, क्योंकि उसे एक मनुष्य ऐसा मिल गया था जिसके सामने वह निःसंकोच भाव से अपना हृदय खोलकर रख सकती थी, जिसे वह संसार में सबसे अधिक प्यार कर सकती थी। लोग सभ्यता और असभ्यता किसे कहते हैं, इसका उसे ज्ञान नहीं था। वह अपने प्रियतम से अपने भावों को तनिक भी छिपाने का प्रयत्न न करती। युवक को यह देख-देखकर मज़ा आता।

जब वह जाने लगा तब वह उसे नरकुंडा तक पहुँचाने गई। जब वह लौटी तब शोकाकुल और जर्जरित हो रही थी। मेम साहब ने जब देखा कि उसके समझाने पर

मेम साहब इन बातों को सुनकर अवाक् रह गईं। इस बात से उन्हें गहरा मानसिक आघात पहुँचा। लिसबैथ चली गई और फिर अपने पूर्वजों के देवताओं की उपासिका बन गई। फिर वह कभी न लौटी।

वह अपनी जाति के उन्हीं लोगों में मिल गई जिन्हें लोग असभ्य कहकर पुकारा करते हैं। कुछ काल के बाद उसने एक लकड़हारे से अपना ब्याह भी कर लिया, जो उसे और पहाड़ियों की तरह पीटता भी था! उसका सौन्दर्य लोप होने लगा।

कभी कभी मेम साहब कह उठतीं—"मूर्तिपूजकों के विषय में कोई भी सिद्धान्त स्थिर करना सर्वथा असम्भव है। मुझे विश्वास है कि लिसबैथ ने हृदय से खीस्ट-धर्म को कभी स्वीकार नहीं किया था।" पर क्या मेम साहब के इस कथन में सत्य का कुछ भी आधार था? जब लिसबैथ चर्च में लाई गई थी, क्या उस समय उसकी उम्र पाँच सप्ताह से भी कम नहीं थी?

लिसबैथ बहुत दिनों तक जीवित रही और जब मरने लगी तब बहुत बुड्ढी हो चुकी थी। वह खूब फर्राटे के साथ अँगरेज़ी भी बोल लेती और कभी कभी बहुत शराब पी लेती तब नशे में अपनी अतीत काल की प्रेम-कथा का सारा हाल लोगों को सुनाती।

फटे-पुराने चिथड़े पहने हुए सूखी और जर्जर लिसबैथ को देखकर क्या कोई कह सकता था कि वह खोटगढ़ मिशनवाली लिसबैथ है?

सवैया

लेखक, साहित्यशिरोमणि पंडित गिरिधर शर्मा, नवरत्न, काव्यालङ्कार

(१)

द्विजराज हुए से हुआ फल क्या
यदि ज्ञान के दीप लगाये नहीं।
धिक क्षत्रिय-जाति में जन्म लिया
यदि लोक के त्रास नसाये नहीं।
सब व्यर्थ है वैश्य के गेह हुए
यदि विश्व में वैभव छाये नहीं।
किस काम को मानव-जन्म लिया
यदि मानव-काम में आये नहीं॥

(२)

कह दो उनसे हम भारतवासी
सुधी जन हैं कुछ क्रूर नहीं।
हम वीर हैं वीरता-गाहक हैं
जग-नाशक-दानव क्रूर नहीं।
मिलना यदि हो हमसे मिल लो
हिय माते हैं आनँदपूर नहीं।
तुम हो हमसे यदि दूर नहीं
हम हैं तुमसे कुछ दूर नहीं॥

(३)

हम आर्य हैं नीति-उपासक हैं
अनरीति गहेंगे कभी कुछ ना।
हड़पेंगे नहीं हक़ और का त्यों
अपना भी तजेंगे कभी कुछ ना।
श्रम सेंत में लेंगे किसी से नहीं
धन सेंत में देंगे कभी कुछ ना।
उपकार करेंगे सदा सबका
अपकार करेंगे कभी कुछ ना॥
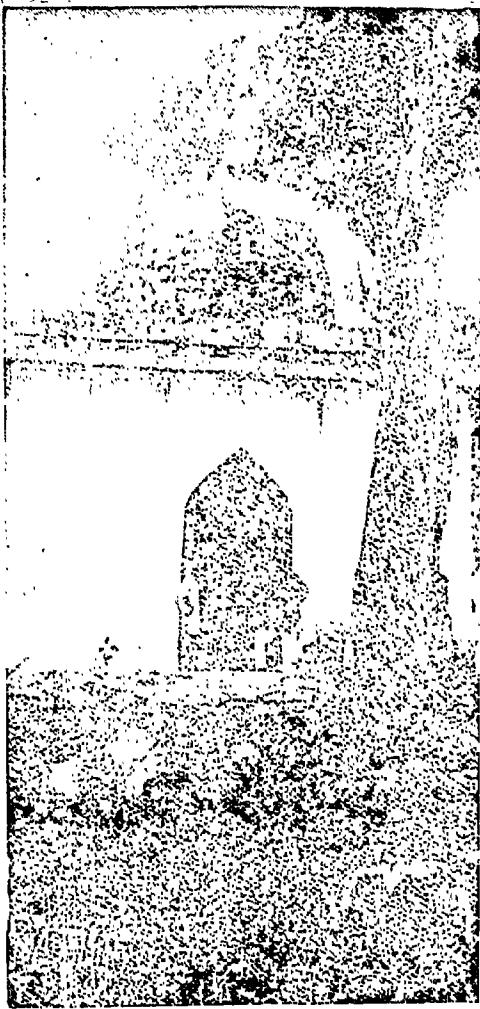
[शिला-लेखवाले मकान का बाहर से लिया गया चित्र]

भी जानता है कि अशोक सम्राट् चन्द्रगुप्त का जिसने सर्वप्रथम भारत को राष्ट्रीय एकता के सूत्र में बाँधा, पौत्र और महाराज बिन्दुसार का पुत्र था। कलिङ्ग के प्रलयङ्कर युद्ध के बाद अशोक की जीवन-धारा की गति में महान् परिवर्तन हुआ और वह राजनैतिक अथवा भौतिक विजय से उदासीन होकर बौद्ध-धर्म में प्रविष्ट हुआ तथा उसने धर्म-द्वारा संसार को विजय करने का मार्ग ग्रहण किया। भारत के कोने-कोने में उसने धर्म का डङ्का बजवा दिया और संसार के सम्मुख ऐसा ऊँचा किन्तु व्यवहार-गम्य आदर्श रक्खा जो इतिहास में अभी तक बे जोड़ है।

इस कार्य के लिए अशोक ने जो साधन ग्रहण किये उनमें सबसे अधिक उपयोगी सिद्ध हुए उसके प्रस्तर-लेख। इनमें उसने अपने धर्म-सम्बन्धी सिद्धान्तों का प्रतिपादन, धर्म की परिभाषा, अपनी प्रजा और राज-कर्मचारियों के नाम विज्ञप्तियाँ और अपने जीवन से सम्बन्ध रखनेवाली घटनाओं को सन्निहित किया है। इन लेखों में उसने अपने हृदय की उमड़ी हुई भावनाओं को इस प्रकार सत्यता और सरलता से व्यक्त किया है कि आज भी २,००० वर्षों के पहले के लिखे हुए इन लेखों को पढ़कर उस महान् आत्मा के लिए हमारा मस्तक श्रद्धा से नत हो जाता है। वास्तव में ये लेख पत्थर की लकीर के समान ही अमर हो गये हैं और आनेवाले युगों को अपनी धर्म-ज्योति की ज्वाला से सदैव प्रकाशमान करते रहेंगे।

अशोक के प्रस्तर-लेखों को तीन भागों में विभक्त किया जा सकता है--

(१) **१४ शिला-लेख**--इसी श्रेणी में लघु शिला-लेख भी शामिल हैं।

(२) ७ **स्तम्भ-लेख**--इसी श्रेणी में लघु स्तम्भ-लेख भी शामिल है।

(३) **गुफा लेख**--ये सब लेख कुछ आवश्यक फेर-फार के साथ तत्कालीन जनता की भाषा पाली तथा ब्राह्मीलिपि में अङ्कित हैं।

१४ शिला-लेख--ये लेख एक क्रम से गिनती में १४ हैं और भारतवर्ष के ७ विभिन्न स्थानों में मिले हैं। उन स्थानों के नाम ये हैं--

(१) शाहबाजगढ़ी (पेशावर-ज़िले के यूसुफ़ज़ाई-डिवीज़न में)--जनरल कोर्ट ने सर्वप्रथम इसकी खोज की थी। यह शिला २४ फ़ुट लम्बी, १० फ़ुट ऊँची और १० फ़ुट चौड़ी है। कनिंघम साहब के मत से प्राचीन बौद्धतीर्थ पोलुश इसी प्रदेश में स्थित था। सम्भवतः यह स्थान अशोक के यवन-प्रान्त की राजधानी था।

(२) मानसेहरा--यह स्थान भी आधुनिक सीमा-प्रान्त के अबूताबाद नामक नगर से १५ मील उत्तर है। अशोक के लेख यहाँ ३ चट्टानों पर खुदे हुए हैं। यह स्थान उत्तर-पश्चिम में स्थित देशों और भारतवर्ष को मिलानेवाले पथ पर स्थित है। अतएव अशोक के धर्मप्रचार के लिए उचित केन्द्र रहा होगा।

(२) प्रियदर्शी देवानांप्रिय के साम्राज्य के प्रत्येक स्थान में और वैदेशिक सामन्तों के राज्यों में भी चोल, पांड्य, सातियपुत्र और केरलपुत्र और ताम्रपर्णि (लङ्का) तक, यवनराजा अंतियक या जो उसके समीपवर्ती राजा हैं, इन सबके राज्यों में प्रियदर्शी ने मनुष्यों और जानवरों की चिकित्सा का प्रबन्ध किया है। जहाँ ओषधियाँ नहीं थीं, वहाँ वे बाहर से मँगवाकर लगवा दी गई हैं। सड़कों पर कुएँ और वृक्ष मनुष्यों और जानवरों के हित के लिए खोदे और लगवाये गये हैं।

(३) प्रियदर्शी देवनांप्रिय का आदेश है—यह लिपि मेरे राज्याभिषेक से १२ वें साल में लिखी गई। मेरे राज-कर्मचारी युक्त राजुक और प्रादेशिक मेरे राज्य में प्रत्येक ५वें वर्ष पर धर्म का प्रचार करने के लिए भ्रमण करेंगे। वे बतायेंगे कि माता-पिता का आज्ञा-पालन, मित्रों, सम्बन्धियों, परिचितों, ब्राह्मणों और श्रमणों के साथ उदारता, अहिंसा, मितव्ययता और संतोष धार्मिक कृत्य हैं।

(४) प्राचीन समय से धार्मिक कृत्यों की अव-हेलना की जा रही है, किन्तु जब से प्रियदर्शी ने धर्म का प्रचार प्रारम्भ किया है, युद्ध के ढोल की ध्वनि धर्म की ध्वनि हो गई है और सर्व जनता को विविध प्रकार के धार्मिक प्रदर्शन, जैसे विमान, हाथी, और अग्नि-समूह इत्यादि दिखलाये जाते हैं। सबसे श्रेष्ठ कार्य धर्म की शिक्षा है। मेरे बाद मेरे पुत्र, पौत्र इत्यादि प्रलयकाल तक धर्म का प्रचार करते रहेंगे।

(५) पुण्यकार्य का करना कठिन है, किन्तु मैंने इस कठिन कार्य को किया है। मैंने राज्याभिषेक के १३ वें वर्ष में धर्म महामात्रों की नियुक्ति की, जिनका कार्य धर्म-प्रचार है।

(६) पिछले समय में राज्य-कार्य करने में शीघ्रता का विचार नहीं रक्खा जाता था, किन्तु मेरा आदेश है कि आवश्यक कार्य होने पर मुझे तुरन्त ही बताया जाय, चाहे मैं कहीं भी और किसी दशा में भी क्यों न होऊँ।

(७) प्रियदर्शी आदेश करता है कि किसी भी धर्म के माननेवाले किसी भी स्थान में रह सकते हैं।

(८) प्राचीनकाल में राजाओं का विहार-यात्राओं से बहुत प्रेम था। आखेट इत्यादि उनके मनोरञ्जन थे। इसके विपरीत प्रियदर्शी ने राज्याभिषेक से १० वें वर्ष में सम्बोधि की यात्रा की और उसी का फल यह धर्म-यात्रा है, जिसमें ब्राह्मणों, श्रमणों और वृद्ध पुरुषों की सेवा की जाती है और उन्हें दान इत्यादि दिया जाता है।

(९) बहुत-से मनुष्य अनेक प्रकार के अन्ध-विश्वासजन्य उत्सवों को रोग, विवाह, जन्म इत्यादि के अवसरों पर करते हैं—विशेषकर स्त्रियाँ तो बहुत-सी व्यर्थ की रीतियाँ वर्तती हैं। वास्तव में यह सब व्यर्थ है। धर्म मङ्गल ही सर्वफलों का देनेवाला है, जिसके अर्थ अहिंसा, दान, आज्ञापालन, सेवकों से अच्छा वर्ताव इत्यादि हैं।

(१०) प्रियदर्शी धर्म को ही सबसे बड़ा यश समझता है। इसका पालन करने में एकाग्रता और परिश्रम की आवश्यकता है।

(११) धर्म से अधिक कोई दान नहीं। पिता, पुत्र, भ्राता, स्वामी, मित्र परिचित और पड़ोसी सबको सर्वदा धर्म का ही उपदेश करना चाहिए।

(१२) प्रियदर्शी सब धर्मों के अनुयायियों का सम्मान करता है। मनुष्यों को चाहिए कि अपने चित्त को वश में रक्खें और सब धर्मों का समानभाव से आदर करें।

(१३) राज्याभिषेक से ८ वें वर्ष में प्रियदर्शी अशोक ने कलिङ्ग को विजय किया। इस युद्ध में एक लाख पचास हज़ार मनुष्य बन्दी बनाये गये। एक लाख आहत हुए और इसके कई गुने अधिक मनुष्य घायल हुए। प्रियदर्शी के लिए इस युद्ध का दृश्य बहुत ही दुःख का कारण हुआ और उसके प्रायश्चित्त में उसने धर्म का प्रचार प्रारम्भ किया। अब जितने मनुष्य आहत हुए उसका सहस्रांश भी उसे अत्यन्त व्यथा का कारण होता है। प्रियदर्शी अब धर्म-विजय को सबसे महान् विजय समझता है। उसकी धर्म-शिक्षाओं का अनुसरण राज्यसीमाओं पर स्थित विभिन्न राज्यों के निवासी भी करते हैं। यह धर्मलिपि इसी अर्थ के लिए लिखवाई गई है कि मेरे उत्तराधिकारी

शस्त्र-सम्बन्धी विजय को विजय न समझकर धर्म-विजय के लिए ही सतत प्रयत्न करें।

(१४) यह धर्मलिपि-समूह प्रियदर्शी राजा देवानांप्रिय ने लिखवाया। मेरा राज्य अति विस्तृत है। बहुत कुछ लिखवाया जा चुका है और मैं अभी बहुत कुछ लिखवाऊँगा।

कहीं कहीं इन लेखों में विषय के प्रेम के कारण पुनरावृत्ति कर दी गई है और इस कारण भी कि मनुष्य उन पर आचरण करें।

लघु शिला-लेख—ये दो लेख हैं, जिनमें से पहला उत्तरी मैसूर के सिद्धपुर और ब्रह्मगिरि में, हैदराबाद रियासत के मास्की में, सहसराम (शाहाबाद-बिहार) में, रूपनाथ (जबलपुर) में तथा बैराट (जयपुर) में मिला है। दूसरा लेख केवल मैसूर की प्रतियों में शामिल है।

पहला लेख स्वर्णगिरि के महामात्राओं और आर्यपुत्र के द्वारा इसिला के महामात्राओं को प्रेषित किया गया है। अशोक का कहना है कि दो वर्ष से कुछ अधिक समय से मैं उपासक हूँ। एक वर्ष तक मैंने धर्मप्रचार का प्रयत्न नहीं किया, किन्तु एक वर्ष से कुछ अधिक हुआ है कि मैं संघ के साथ रहता हूँ और इस समय मैंने कठिन परिश्रम किया है। सर्व जम्बूद्वीप में मैंने देवताओं को मनुष्यों से मिला दिया है। यह कार्य केवल बड़े ही नहीं, किन्तु छोटे राज्य-कर्मचारियों के करने का भी है।

दूसरे लेख का विषय माता-पिता का आज्ञापालन, सर्वप्राणियों के प्रति दयाभाव, सत्य, गुरु के प्रति सम्मान इत्यादि है।—बैराट (जयपुर) में स्थित एक शिला पर अङ्कित भब्रू नामक लेख बौद्धधर्म-पुस्तकों में से उद्धरित कुछ वाक्यों की महत्ता प्रदर्शित करता है।

२ स्तम्भ-लेख—ये ७ लेख ६ स्थानों पर स्थित स्तम्भों पर पाये गये हैं। वे स्थान ये हैं—(१) तथा (२) दिल्ली में हैं। पहले ये स्तम्भ तोपरा तथा मेरठ में थे। वहाँ से फ़ीरोज़शाह तुग़लक ने उन्हें दिल्ली में मँगवा लिया—जैसा कि उसके समकालीन शम्स-ए-सिराज ने लिखा है। (३) इलाहाबाद में है। पहले यह स्तम्भ कौशाम्बी में स्थित था। संभवतः अकबर के राज्यकाल में यह इलाहाबाद के क़िले में लाया गया। (४) लौरिया अराराज में (५) लौरिया नन्दनगढ़ में और (६) रामपुरवा में हैं। ये तीनों स्थान बिहार के चम्पारन-ज़िले में हैं।

इन स्तम्भ-लेखों का विषय इस प्रकार है-

(१) धर्म का कार्य करना कठिन है, किन्तु धर्म-प्रेम, आत्म-परीक्षा और उत्साह इस कार्य को सरल बना देते हैं।

(२) धर्म, सुरुचि, दया, उदारता, सत्यता और पवित्रता का पर्याय है। मैंने मनुष्य, पशु-पक्षियों तथा सर्वजन्तुओं के हित के लिए अनेक पुण्यकार्य किये हैं। यह धर्मलिपि इसलिए अङ्कित करवाई गई है कि दूसरे लोग भी इस पर आचरण करें।

(३) मनुष्य को उचित है कि वह अपने किये हुए कार्यों की पूर्ण परीक्षा करे और कुकर्मों को सदा ध्यान में रखता हुआ उनसे बचे।

(४) प्रियदर्शी ने अपने राज्याभिषेक के २६वें वर्ष में राजुक नामक राजकर्मचारियों को सहस्रों मनुष्यों का नायक बनाते हुए उन्हें शासन के सर्वाधिकार दिये। राजुकों को उचित है कि धर्मपूर्वक न्याय करें। मृत्यु-दण्डप्राप्त बन्दियों को तीन दिन का अवकाश दिया जाता है, जिसमें वे प्रार्थना इत्यादि कर सकें और उनके सम्बन्धी लोग न्यायाधीश से विनय कर सकें कि वह मृत्युदण्ड न दे।

(५) प्रियदर्शी देवानांप्रिय के आदेश से कई प्रकार की चिड़ियाँ, चींटियाँ, कछुवे तथा अनेक भाँति के चौपाये इत्यादि वध करने के अयोग्य विज्ञापित कर दिये गये हैं। वनों में अग्नि न लगाई जाय। विशेष दिनों के अवसर पर पशुओं को दुःख पहुँचानेवाले कार्य न किये जायँ। अपने २६वें वर्ष के राज्यकाल में मैंने २५ बार बन्दियों को मुक्त किया है।

(६) प्रियदर्शी का कथन है कि अपने राज्याभिषेक के १२वें वर्ष से मैंने धर्मलिपियाँ लिखवाईं, जिससे सर्वजनों का हित हो। सर्व धर्मों को मैं विविध भाँति से सम्मानित करता हूँ, किन्तु स्वेच्छा से धर्म-परिवर्तन को मैं विशेष बात समझता हूँ।

(७) प्राचीन समय के राजाओं ने धर्म की उन्नति के लिए प्रयत्न किया, किन्तु उसका प्रचार सब मनुष्यों

में न हो सका। प्रियदर्शी ने विविध भाँति के उपाय धर्म-प्रचारार्थ किये जैसे, धर्म की शिक्षा का दान, पुरुषों और राजुकों की नियुक्ति जिनका कार्य धर्म-प्रचार है। पुनश्च मैंने धर्म-स्तम्भ स्थापित किये, धर्म-महामात्रों को नियुक्त किया तथा और भी सर्वसाधारण के हित के लिए अनेक कार्य किये।

इस लेख में अशोक ने अपने धर्मार्थ किये गये कार्यों का संक्षिप्त विवरण दिया है।

लघु स्तम्भ-लेख—इस श्रेणी के अन्तर्गत निम्नलिखित लेख हैं—इलाहाबाद के स्तम्भ के दो लेख, जिनमें पहला जो रानी का आदेश कहलाता है, अशोक की दूसरी रानी और तीवर की माता कारुवाकी की दान-वस्तुओं का वर्णन करता है और दूसरा लेख बौद्ध-संघ में विभेद उत्पन्न करनेवाले भिक्षु और भिक्षुणियों के लिए दण्ड नियत करता है। यह लेख अशोक के तत्त्वाविधान में होनेवाली बौद्ध-महासभा के उपरान्त अङ्कित करवाया गया था। इसी लेख की प्रतिलिपि सारनाथ (बनारस) और साँची (भूपाल) के स्तम्भों पर भी मिलती है। किन्तु सबसे महत्त्वशाली लघुस्तम्भ रुमिनीदइ (बस्ती ज़िले के उत्तर और नैपाल की तराई में स्थित) का है। यहाँ के लेख में अशोक अपनी बुद्ध के जन्मस्थान लुम्बिनी की यात्रा का वर्णन करता हुआ कहता है कि इसी स्थान पर शाक्यमुनि का जन्म हुआ था और इस कारण यहाँ मैंने प्रस्तर की भिति और प्रस्तर स्तम्भ बनवाये। इस लेख से बुद्ध के जन्म-स्थान का ठीक पता मिल जाता है। इस स्थान के पास ही नीगलीव ग्राम के पास एक और स्तम्भ लेख मिला है, जिसमें अशोक राज्याभिषेक के १४वें वर्ष में कोनाकमन बुद्ध के स्तूप को बड़ा करवाने और २०वें वर्ष में इस स्थान की यात्रा और स्तम्भ-निर्माण का वर्णन करता है। १९२८ ईसवी में श्री वीरेन्द्रनाथ राय को भुवनेश्वर के लिङ्गराज मन्दिर के पास कपिलेश्वर नामक ग्राम में एक पाषाण मिला, जिस पर रुमिनीदइ लेख की प्रतिलिपि अङ्कित है।

३. गुफा-लेख—ये लेख गया के समीप स्थित 'बराबर' और 'नागार्जुनी' नामक गुफाओं में प्राप्त हुए हैं। बराबर की ४ गुफाओं में से तीन पर अशोक के लेख हैं। इनमें कहा गया है कि ये गुफायें अशोक ने राज्याभिषेक के १२वें वर्ष में आजीवकों के निवास करने के लिए दान में दीं। ये लेख अशोक की धर्म-सहिष्णुता का ज्वलंत प्रमाण हैं, क्योंकि आजीवक लोग बुद्ध के धर्म के माननेवाले नहीं थे।

ऊपर अशोक के शिलालेखों का संक्षिप्त वर्णन किया गया है। कहने की आवश्यकता नहीं है कि ये लेख इस सम्राट् को केवल एक कुशल राजनीतिज्ञ ही नहीं सिद्ध करते, बरन उसको संसार के महापुरुषों और धर्मोपदेशकों में एक विशिष्ट स्थान का अधिकारी बना देने के लिए भी पर्याप्त हैं। इस ज़माने में जब संसार के प्रमत्त और लोलुप राष्ट्रों ने युद्ध, हिंसा, अस्त्र-शस्त्र और अत्याचार को एक राजनैतिक 'आर्ट' का रूप दे दिया है, अशोक की धर्म-लिपियों की मधुर ध्वनि जिसने आज से २००० वर्ष पहले सभ्य संसार को सुख और शान्ति का संदेश तथा अभयदान दिया था, एक विस्तृत स्वप्न की सुखद स्मृति-सी प्रतीत होती है। क्या यह स्वप्न कभी फिर सत्य होगा?

आवेदन

लेखिका, श्रीमती सुमित्राकुमारी सिनहा

मेरे प्यार, तनिक तो बोलो !

तारों का वितान तन हिमकर मेघ-परी से किलक रहा है,
चाँदी की रातों की बातों का रस छल छल छलक रहा है,
मन्दिर भीतर दीपक जलता, द्वार बन्द हैं आओ खेलो।
मेरे प्यार, तनिक तो बोलो !

ओ मेरे सपनों के राजा, हिय-आकाश समाये क्यों थे ?
प्राणों के प्राणों को देकर मुरझे प्राण खिलाये क्यों थे ?
मेरे गीतों में गति भरने निज स्वर की पाँखें तो खोलो !
मेरे प्यार, तनिक तो बोलो !

कसक-कण्टकों की टोली में स्वर के फूल खिला तो जाओ,
कनक-रश्मि से स्वर-सुहाग भर अंचल में बरसा तो जाओ,
पंछी थक सोया है मेरा प्राणों में मधु कलरव घोलो !
मेरे प्यार, तनिक तो बोलो !

छूम छननकर नाच उठे मेरी बेहोशी यह इतराकर,
बोलो प्राण, बिना बोले यह गीत चले कैसे इठलाकर,
इस तपती जगती में बोलो, बोलो, मलय पवन-से डोलो !
मेरे प्यार, तनिक तो बोलो !

लघु-पथ की पंथी मैं तो थी, क्यों तुमने पद-चिह्न बिखेरे ?
ले बटोर, अंचल भर, चल दी मंज़िल में ले याद बसेरे ?
किन्तु कठिन पथ घोर तमिस्रा, बोलो, किरणों का घर खोलो !
मेरे प्यार, तनिक तो बोलो !

मौन रहे तो युग युग बीते, पीते कसक, भरे क्षण रीते,
आज पिला दो स्वर का अमृत रोम रोम ध्वनि पी कर जीते,
आज गूँजती ध्वनि, प्रतिध्वनि से, तन मन, झरते स्पन्दन तोलो,
मेरे प्यार, तनिक तो बोलो !

दीर्घ मौन का आश्रय लेकर अन्तस बीच छिपोगे कब तक ?
बिन बरसे मेघों से व्याकुल मँडराते डोलोगे कब तक ?
ओ मानी, मस्तानी तानों से दामिनि की कारा खोलो !
मेरे प्यार, तनिक तो बोलो !

एक प्राचीन हिंदी-व्याकरण

लेखक, श्रीयुत कालिदास मुकर्जी, एम० ए०, एम० आर० ए० एस०

ज तक कई एक हिन्दी-व्याकरण लिखे जा चुके हैं, परन्तु उनमें सबसे प्राचीन कौन है, इसका पता लगाना कुछ हँसी-खेल नहीं है। कुछ विद्वानों की यह राय है कि बाबू हरिश्चन्द्र जी के समय में ही प्रथम हिन्दी-व्याकरण लिखा गया था, परन्तु कोई निश्चित राय इस विषय में आज तक प्रकट नहीं की गई है और अपनी राय प्रकट करना भी बला मोल लेना-सा है। पण्डित रामचन्द्र जी शुक्ल अपने हिन्दी-साहित्य के इतिहास में लिखते हैं—"यह पहले कहा जा चुका है कि भारतेंदु जी और उनके सहयोगी लेखकों की दृष्टि व्याकरण के नियमों पर अच्छी तरह जमी नहीं थी। वे "इच्छा किया," "आशा किया" ऐसे प्रयोग भी कर जाते थे और कभी कभी वाक्य-विन्यास की सफ़ाई पर भी ध्यान नहीं रखते थे। पर उनकी भाषा हिन्दी ही होती थी; मुहावरे के खिलाफ़ प्रायः नहीं जाती थी। पर द्वितीय उत्थान के भीतर बहुत दिनों तक व्याकरण की शिथिलता और भाषा की रूपहानि दोनों साथ साथ दिखाई पड़ती रहीं। ......पर जो कुछ हुआ वही बहुत हुआ और उसके लिए हमारा हिन्दी-साहित्य श्रीयुत पंडित महावीर-प्रसाद द्विवेदी का सदा ऋणी रहेगा। व्याकरण की शुद्धता और भाषा की सफ़ाई के प्रवर्त्तक द्विवेदी जी ही हैं" (पृष्ठ ४५७)। शुक्ल जी की राय से यह सूचित होता है कि द्विवेदी जी के समय से ही लोगों ने व्याकरण-सम्बन्धी नियमों पर विशेष ध्यान दिया। लेकिन क्या उस समय कोई हिन्दी-व्याकरण लिखा गया था, इस विषय में उन्होंने कुछ नहीं लिखा है। कुछ भी हो, प्राचीन पुस्तकों की खोज में मुझे एक हिन्दी-व्याकरण मिला है, जो द्विवेदी जी क्या, भारतेंदु जी के पूर्व का लिखा हुआ है। लेखक हैं एक अँगरेज़—हिन्दुस्तानी सज्जन नहीं। नीचे उस व्याकरण का परिचय दिया जा रहा है।

आलोच्य पुस्तक की लम्बाई ८·५ इंच तथा चौड़ाई ५·८ इंच है। पुस्तक में कुल ७० पृष्ठ हैं। आख्यापत्र की नक़ल यह है—पादरी आदम साहिब कर्के/रचित/बालकों के सिखाने के लिए/प्रश्नोत्तर की रीति से स्पष्ट हिन्दी-भाषा का/व्याकरण।/A/Hindee Grammar/For/The Instruction of The Young,/in the/form of easy Questions and Answers./By/The Rev. M. T. Adam./C. S. B. S./Calcutta./Printed at the School-Book Society's Press, Circular Road; and Sold at the Depository./1827./1000 Copies Sept. 1827.

इसके बाद दूसरे पृष्ठ में "सूचीपत्र" दिया हुआ है। उसकी नक़ल यह है—

इसके बाद एक पृष्ठ "शुद्धिपत्र" दिया हुआ है। इसमें छपाई की भूलें सुधारी हुई दी गई हैं।

आलोच्य पुस्तक नौ-खण्डों में विभक्त है। प्रत्येक खण्ड में कुछ पाठ दिये हुए हैं। इस प्रकार प्रथम खण्ड में पाँच पाठ, द्वितीत खण्ड में पाँच पाठ, तृतीय खण्ड में तीन पाठ, चतुर्थ खण्ड में सात पाठ, पञ्चम खण्ड में चार पाठ, षष्ठ खण्ड में केवल एक पाठ—"रचना की रीति के विषय में", सप्तम खण्ड में दो पाठ, अष्टम खण्ड में पाँच पाठ तथा नवम खण्ड में चार पाठ दिये हुए हैं। तदनन्तर 'कोष' दिया हुआ है। इस पाठ में कुछ शब्दों के अर्थ दिये गये हैं।

जैसा कि आख्यापत्र से विदित होता है, आलोच्य पुस्तक प्रश्नोत्तर की रीति में लिखी हुई है। उदाहरण-स्वरूप प्रथम खण्ड के १ पाठ का पहला प्रश्न यह है—

"प्रश्न। हिन्दी भाषा" की वर्णमाला कै प्रकार से विभाग किई गई है?

उत्तर। हिन्दी वर्णमाला में दो भाग हैं, अ आदि जो : विसर्गान्त अक्षर के स्वर कहे जाते हैं, यह एक भाग; और क आदि क्ष पर्यन्त जो अक्षर वे व्यञ्जन कहे जाते हैं, यह दूसरा भाग है।"

आलोच्य पुस्तक की भाषा का एवं लेखन-प्रणाली का भी यही नमूना है।

अब आलोच्य पुस्तक के उन पाठों का परिचय दिया जा रहा है जो रोचक हैं अथवा वे पाठ जिनका आधुनिक व्याकरण से पार्थक्य है—

२ प्र०। संज्ञा कितने प्रकारों से भेद किई जाती है?

उ०। प्रकृत नामवाचक, जातिवाचक, भाववाचक, और क्रियावाचक; इन् चार प्रकारों से संज्ञा भेद किई जाती है।

३ प्र०। प्रकृत नामवाचक किस्को कहते हैं?

उ०। प्रत्येक मनुष्य के नाम वा नगर वा देश नदी वा पर्वत इत्यादि के नाम को प्रकृत नामवाचक कहते हैं; जैसा राममोहन, पटना, कुरुक्षेत्र, गङ्गा, विन्ध्य।

७ प्र०। क्रियावाचक किस्को कहते हैं?

उ०। धात्वर्थ मात्र को क्रियावाचक कहते हैं; जैसा, कर्ना, सोना, जाना, खाना, आना, रखना, सुनना, सूंघना, देखना, बोलना इत्यादि। (दूसरा खण्ड, १ पाठ।)

२ प्र०। व्यञ्जनान्त पुल्लिङ्ग संज्ञा का कारक कैसा है?

उ०। वह इस् प्रकार का है।

एकवचन	बहुवचन
कर्त्ता, बालक	कर्त्ता, बालके
कर्म, बालक को	कर्म, बालकन् वा—कों, —को
करण, बालक कर्के	करण, बालकन् वा—कों,—कर्के
सम्प्रदान, बालक के लिये वा बालक को	सम्प्रदान, बालकन्, वा—कों के लिये, वा बालकन् वा—कों, —को
अपादान, बालक से	अपादान, बालकन् वा—कों से
सम्बन्ध, बालक का —के, —की	सम्बन्ध, बालकन् वा —कों का, —के, —की
अधिकरण, बालक में वा बालक के विषय	अधिकरण, बालकन् वा कों मे, बालकन् वा —कों के विषय
सम्बोधन, हे बालक	सम्बोधन, हे बालको

(दूसरा खण्ड ३ पा)

१ प्र०। स्वरान्त स्त्रीलिङ्ग संज्ञा में किस् प्रकार से कारकों की घटना होती है?

उ०। उस्में इस् प्रकार से घटना होती है।

एकवचन	बहुवचन
कर्त्ता, लड़की	कर्त्ता, लड़कियाँ
कर्म, लड़की को	कर्म लड़कियों वा—कीन् को
करण, लड़की कर्के	करण, लड़कियों वा —कीन् कर्के
सम्प्रदान, लड़की के लिये वा लड़की को	सम्प्रदान, लड़कियों के वा —कीन् के लिये वा लड़कियों वा —कीन को

एकवचन	बहुवचन
अपादान, लड़की से	अपादान, लड़कियों वा -कीन् से
सम्बन्ध, लड़की का, के, की	सम्बन्ध, लड़कियों वा -कीन् का, के, की
अधिकरण, लड़की में वा लड़की के विषय	अधिकरण, लड़कियों वा कीन् में वा लड़कीयां वा -कीन् के विषय
सम्बोधन, हे लड़की	सम्बोधन, हे लड़कियों

२ प्र०। आकारान्त स्त्रीलिङ्ग संज्ञा में कारकों की घटना किस् प्रकार से होती है ?

उ०। सो एकवचन में ईकारान्त शब्द के समान हैं परन्तु बहुवचन में घटना इस् प्रकार से होती है; जैसा कि माता शब्द ।

बहुवचन
कर्त्ता, माता
कर्म, मातान् को
करण, मातान् कर्के
सम्प्रदान, मातान् के लिये वा मातान् को
अपादान, मातान् से
सम्बन्ध, मातान् का, के की
अधिकरण, मातान् में वा मातान् के विषय
सम्बोधन, हे मातो

३ प्र०। अकारान्त और हलन्त स्त्रीलिङ्ग संज्ञा शब्द में कारकों की घटना किस् प्रकार से होती है ?

उ०। एकवचन में वे भी ईकारान्त की समान हैं, परन्तु बहुवचन में घटना इस प्रकार से होती है, जैसा कि बात शब्द ।

बहुवचन
कर्त्ता, बातें
कर्म, बातों को
करण, बातों कर्के
सम्प्रदान, बातों के लिये, वा बातों को
अपादान, बातों से
सम्बन्ध, बातों का, के, की
अधिकरण, बातों में वा बातों के विषय
सम्बोधन, हे बातों

(दूसरा खण्ड ४ पाठ)

३ प्र०। गुणवाचक शब्द का लिङ्ग कैसें निर्णय किया जाता है ?

उ०। नपुंसक लिङ्ग के विषें गुणवाचक शब्द से जो प्रत्यय है, मत् और वत् उसकी पुलिङ्ग में मात् और वान् होता है; जैसा कि, श्रीमात् श्रीमात्, रूपवान् । परन्तु स्त्रीलिङ्ग में मती और वती होता है; जैसा, श्रीमत् श्रीमती, रूपवत् रूपवती । और सब शब्दों का पहिले लिङ्ग की न्याई जानना; जैसा, सुन्दर, सुन्दरी, भला भली

(दूसरा खण्ड ५ पाठ)।

४ प्रश्न। कोई सर्वनाम आपस में युक्त होने सक्ता है क्या नहीं ?

उत्तर। हाँ होने सक्ता है स् प्रकार से; जैसा जो जो, जो कोई, जो कुछ् इत्यादि; और इन् से कारक की घटना कर्ने से दोनों कारकत्व को पावते हैं; जैसा, जिस् जिस्को जिस् किसी का, जिस् किस् कर्के इत्यादि

(तीसरा खण्ड ३ पाठ)।

१० प्र०। क्रिया का काल अथवा नियम किस् प्रकार से कहा जाता है ?

उ०। सो इस् प्रकार से कहा जाता है।

अकर्मक क्रिया होना
स्वार्थ नियम
वर्तमान काल

एकवचन	बहुवचन
मैं हूं	हम् हैं
तू है	तुम हो
वह है	वे हैं

अपूर्ण भूतकाल

एकवचन	बहुवचन
मैं था	हम् थे
तू था	तुम् थे
वह् था	वे थे

अद्यतन भूतकाल

एकवचन	बहुवचन
मैं हुवा हूं	हम् हुवे हैं
तू हुवा है	तुम् हुवे हो
वह् हुवा है	वे हुवे हैं

अनद्यतन भूतकाल

एकवचन	बहुवचन
मैं हुवा था	हम् हुवे थे
तू हुवा था	तुम् हुवे थे
वह हुवा था	वे हुवे थे

भविष्यत् काल

एकवचन	बहुवचन
मैं हूंगा, वा होऊंगा	हम् होंगे, वा होवेंगे
तू होगा, वा होवेगा	तुम् होगे, वा होवोगे
वह होगा, वा होवेगा	वे होंगे, वा होवेंगे

भविष्यत् भूतकाल

एकवचन	बहुवचन
मैं हो चुकूंगा	हम् हो चुकेंगे
तू हो चुकेगा	तुम् हो चुकोगे
वह हो चुकेगा	वे हो चुकेंगे

अनुमत्यर्थ नियम

२ प्र०। अनुमत्यर्थ नियम से क्या समझा जाता है?

उ०। उस्से केवल आज्ञा और बिन्ती समझी जाती है; जैसा कि, ईश्वर की आज्ञान् का पालन करो; हे प्रिय बन्धु लोगो, तुम् बुरे व्यवहारों को त्याग करो।

शक्त्यर्थ नियम।

१ प्र०। शक्त्यर्थ नियम से क्या समझा जाता है?

उ०। उससे साध्यता वा शक्ति समझी जाती है; जैसा, हम सब वहां आज पहुंचने सकें; ऐसा नहीं होने से आज हम् नहीं पहुंचने सकते।

(चौथा खण्ड, २ पाठ)

१ प्र०। कर्मणिवाच्य क्रिया किस् प्रकार से कही जाती है?

उत्तर। सो इस् प्रकार से, किया जाना।

स्वार्थ नियम

वर्तमान काल

एकवचन	बहुवचन
मैं किया जाता हूं	हम् किये जाते हैं
तू किया जाता है	तुम् किये जाते हो
वह किया जाता है	वे किये जाते हैं

अपूर्ण भूतकाल

एकवचन	बहुवचन
मैं किया जाता था	हम् किये जाते थे
तू किया जाता था	तुम् किये जाते थे
वह किया जाता था	वे किये जाते थे

अद्यतन भूतकाल

एकवचन	बहुवचन
मैं किया गया हूं	हम् किये गये हैं
तू किया गया है	तुम् किये गये हो
वह किया गया है	वे किये गये हैं

अनद्यतन भूतकाल

एकवचन	बहुवचन
मैं किया गया था	हम् किये गये थे
तू किया गया था	तुम् किये गये थे
वह किया गया था	वे किये गये थे

भविष्यत् काल

एकवचन	बहुवचन
मैं किया जाऊंगा	हम् किये जांयगे
तू किया जायगा	तुम किये जावोगे
वह किया जायगा	वे किये जांयगे

भविष्यत् भूतकाल

एकवचन	बहुवचन
मैं किया जा चुकूंगा	हम् किये जा चुकेंगे
तू किया जा चुकेगा	तुम् किये जा चुकोगे
वह किया जा चुकेगा	वे किये जा चुकेंगे

अनुमत्यर्थ नियम

एकवचन	बहुवचन
मैं किया जाऊं	हम् किये जांय
तू किया जा, वा आप किये जाइयो	तुम् किये जाओ, वा आप लोग किये जाइये
वह किया जाय	वे किये जांय

शक्त्यर्थ नियम

एकवचन	बहुवचन
मैं किया जाऊं, वा किया जा सकूं	हम् किये जांय, वा किये जा सकें
तू किया जा, वा किया जा सके	तुम् किये जाओ, वा किये जा सको

एकवचन	बहुवचन
वह् किया जाय, वा किया जा सके	वे किये जांय, वा किये जा सकें

अपूर्ण भूतकाल

एकवचन	बहुवचन
मैं किया जा सक्ता	हम् किये जा सक्ते
तू किया जा सक्ता	तुम् किये जा सक्ते
वह् किया जा सकता	वे किये जा सक्ते

अद्यतन भूतकाल

एकवचन	बहुवचन
मैं किया जा सका हूं	हम् किये जा सके हैं
तू किया जा सका है	तुम् किये जा सके हो
वह् किया जा सका है	वे किये जा सके हैं

अनद्यतन भूतकाल

एकवचन	बहुवचन
मैं किया जा सका था	हम् किये जा सकेंगे
तू किया जा सका था	तुम् किये जा सकोगे
वह् किया जा सका था	वे किये जा सकेंगे

आशंकाय नियम

वर्तमानकाल

एकवचन	बहुवचन
जो मैं किया जाऊं	जो हम् किये जावें, वा जायं
जो तू किया जाय	जो तुम् किये जावो
जो वह् किया जाय	जो वे किये जावें, वा जांय

अपूर्ण भूतकाल

एकवचन	बहुवचन
जो मैं किया जाता	जो हम् किये जाते
जो तू किया जाता	जो तुम् किये जाते
जो वह् किया जाता	जो वे किये जाते

(चौथा खण्ड, ६ पाठ)।

१ प्रश्न। नकार सहित क्रिया किस् प्रकार से कही जाती है ?

उत्तर। जिस् क्रिया के साथ नहीं, वा न, वा मत, इनका योग होय, वही नकार सहित क्रिया कहलावती है; परन्तु इन्में से मत का केवल अनुमत्यर्थ के साथ योग होता है; जैसा कि, मैंने नहीं किया, वह् न करे, तू मत कर।

(चौथा खण्ड, ७ पाठ)।

४ प्र०। किन् शब्दों को परवर्त्ती कहते हैं ?

उ०।

तले	सहित	नीचे	सह
साथ	ऊपर	लिये	पास
कारण	निमित्त	बीच	द्वारा
लग	निकट	सङ्ग	मध्य
हेतु	विना	व्यतिरेक	व्यतीत
कर्त्तृक	करणक	पूर्वक	होके
देके	कर्के	अवधि	पर्यन्त
लौं	परे	पहले	पश्चात्
आगे	ठिकाने	समीप	पीछे
विपरीत	सन्मुख	ओर	इत्यादि।

ये सब शब्द परवर्त्ती प्रसिद्ध हैं।

(पांचवां खण्ड, २ पाठ)।

जैसा कि ऊपर बतलाया गया है छठवें खण्ड में केवल १ पाठ है, उस पाठ की नकल नीचे दी जा रही है—

छठवा खण्ड

१ पाठ

रचना की रीति के विषय में।

१ प्र०। वाक्य की रचना में कर्त्ता, कर्म, क्रिया, इन्की किस् प्रकार से घटना होती है ?

उ०। इस् रीति से।

१—जो केवल कर्त्ता कर्म क्रिया से वाक्य की रचना होय, तब कर्त्ता पहिले, कर्म दूसरे, क्रिया तीसरे होय; जैसा, राजा मन्त्री को आज्ञा देता है।

२—जो बढ़ती बातें होंय, तब सब बातें कर्त्ता के आगे में कही जांय; जैसा कि, एक दुष्ट लोग राजा के आगे प्रधान मन्त्री की बड़ी निन्दा कर्ता है।

३—गुणवाचक शब्द संज्ञा के पहिले रक्खा जाय; जैसा सत् गुरु अपनी अटकल् से शिष्य को दण्ड देता है।

४—जो वाक्य की रचना लम्बी होय, अथवा नाना प्रकार की बात एक क्रिया के कर्मकारक का निर्णय करें, तब यही बड़ी बात पहिले कही जाय, पीछे इन् सबके द्वारा निर्णय हुई जो बात, वह कर्मकारक के प्राप्त होने से पीछे, क्रिया का कर्त्ता उक्त होय; जैसा, जो बालक पैठ के विद्या को सीखे और सदा विद्या के

सीखने में लगा रहै, उसको पण्डित लोग भला जानते हैं।"

अब अन्त में अन्तिम अध्याय "कोष" के विषय में लिखकर स लेख को समाप्त करना है। इस अध्याय में कुल १४८ शब्द अर्थ-सहित दिये हुए हैं, उनमें से कुछ ये हैं—

अग्रसर, जो आगे चले अर्थात् अगुवा।
अधिकन्तु, और भी, विशेष से
एवं, ऐसें, और।
कीट, कीड़ा, दिया का मैल।
गौड़, बङ्गदेश, ब्राह्मण की जाति।
घटना, रचना।
घोषणा, स्पष्ट करके कहना।
नायक, प्रापक, स्वामी।
स्वार्थ, अपना, काम।

पाठक सम्भवतः आलोच्य पुस्तक का कुछ परिचय पा चुके हैं। इस व्याकरण में कुछ त्रुटियाँ भी हैं। भाषा खड़ी बोली की प्रारम्भिक अवस्था है। उच्चारण के अनुसार शब्द लिखे गये हैं। परन्तु तनी त्रुटियाँ रहते हुए भी इस बात पर सान्त्वना होती है कि यह व्याकरण एक अँगरेज द्वारा सन् १८२७ में लिखा गया था जब कि खड़ी बोली 'प्रेमसागर' के रूप में दिखलाई पड़ रही थी, तथा भारतेन्दु जी का उदय उस समय हिन्दी-साहित्याकाश में नहीं हुआ था।

मेरी निर्बलता

लेखक, श्रीयुत श्यामबिहारी शुक्ल 'तरल'

सचमुच मैं कितना निर्बल हूँ!
प्रतिक्षण मेरा जीवन बन्दी,
प्रतिक्षण मेरा यौवन बन्दी;
बन्दी है मेरा मदिर हास,
प्रतिक्षण मेरा क्रन्दन बन्दी;
अज्ञात इंगितों पर बहनेवाला मैं निर्भर का जल हूँ!
देखो मैं कितना निर्बल हूँ!
अपना अस्तित्व न ज्ञात मुझे,
अपना अपनत्व न ज्ञात मुझे;
अपनी लघुता का—गुरुता का-
सम्पूर्ण महत्त्व न ज्ञात मुझे;
मैं सरिता के उर से निकली चीत्कारभरी ध्वनि कल-कल हूँ!
सचमुच मैं कितना निर्बल हूँ!
जीवन यह क्षण-क्षण से निर्मित,
मेरा तन कण-कण से निर्मित;
जड़ता मेरी संज्ञा, मेरा—
अपनापन त्रण-त्रण से निर्मित;
जाने किस विद्युद्धारा से फिर भी इतना मैं चञ्चल हूँ!
जग में मैं कितना निर्बल हूँ!

रिक्ता

अनुवादक, पण्डित ठाकुरदत्त मिश्र

विवाह के वाद सविता के नाना उसे वुलाने का साहस नहीं कर सके। कारण वे स्वयं उसके श्वशुर जगत वावू के समान समृद्धिशाली व्यक्ति तो थे नहीं, इस परिवार में उनकी दौहित्री का विवाह हो गया, यही उनके लिए वड़ी वात थी। परन्तु यहाँ सविता को जो उपेक्षा का जीवन विताना पड़ता था उसका हाल वह माता तथा नाना को नहीं मालूम होने देना चाहती थी। अतएव काशी-यात्रा के सिलसिले में उन लोगों ने जव उसे देखने आने की सूचना दी तो सविता ने उन्हें यहाँ आने से रोक दिया। इस कारण सविता की माता स्टेशन पर ही रुकी रहीं, केवल उसके नाना आकर उसे देख गये।

(११)

जोरों का जाड़ा पड़ रहा था। तिस पर रात भर वरावर पानी वरसता रहा। सवेरा होते होते वूँदों की झड़ी तो वन्द हो गई, परन्तु सूर्य्य भगवान् दस वजे तक मेघों की आड़ में ही छिपे रहे। इतनी देर के वाद उन्होंने ज़रा ज़रा-सी झलक भर दिखानी आरम्भ की। असमय की वर्षा के कारण सर्दी इस तरह विकराल रूप धारण करती जा रही थी कि उसका सहन करना अत्यन्त ही क्लेशकर हो उठा था। गरम कपड़े न होने के कारण जिन लोगों को आग की आँच ही सर्दी से वचने का एकमात्र आधार होती है, केवल वे दीन-दुखिया लोग ही यह अनुभव कर पाते हैं कि इस तरह के दिन कितने दुःखदायी होते हैं। या इसे वे अनुभव कर पाते हैं जिन्होंने दुःख की सृष्टि की है और इस मतलव से की है कि दुःख का आघात लगने के कारण लोग दुःखों का हरण करनेवाले का स्मरण कर सकें।

मेघों से आच्छादित इस तरह के उदास दिन में भी स्टीम भरे हुए इंजन की तरह मनुष्य की जीवन-यात्रा की गति वरावर जारी रही, परन्तु किसी भी काम में हाथ प्रायः किसी का भी तेज़ी से नहीं चल रहा था। इस प्रकार की शिथिलता—आलस्य में एक गुण और है। इसके कारण हाथ-पैर को पङ्गु वनाकर मन चावुक खाये हुए घोड़े के से वेग से किसी कल्पना-लोक को उन्मत्तभाव से दौड़ जाता है। अतीत का खोया और भूला-भुलाया हुआ दृश्य पट काले हृदय को उज्ज्वल करके जाग उठता है। पुराने वन्धु-वान्धवों की, खोये हुए शैशव की ऐसे दिन में अधिक याद आती है।

धरित्री के जलते हुए वक्ष को शीतल करके एक स्निग्ध, सुगन्धिमय श्वास वहता जा रहा था। धूम्र वर्ण की शाल से पैर तक ढँके हुए अरुण वैठा एक पुस्तक पढ़ रहा था।

गत रात्रि में जो वर्षा हुई थी उसके कारण कोई पुस्तक भींगी तो नहीं, यह देखने के लिए ही अरुण ने कमरा खोला था। परन्तु पन्ने उलटते उलटते एक किताव में वह रुक गया। शुभेन्दु ने आकर कहा— भैया, इस ओरवाली आलमारी की कुंजी ज़रा मुझे तो दे दो।

"क्यों कुंजी क्या करोगे?"

"मुझे थोड़ी-सी पुस्तकें निकालनी हैं।"

"इस समय पुस्तकें क्या होंगी?"

"होंगी क्या? पहले तुम कुंजी तो दो।"

अरुण ने ड्रार में से निकालकर कुंजी शुभेन्दु को दे दी। शुभेन्दु आलमारी खोलकर पुस्तकें छाँटने लगा।

कमरे से वाहर वरामदे के नीचे ऊपरवाले हिस्से के नल से पानी गिरता था, इससे ज़मीन कुछ कट गई थी और वहाँ पानी भर जाया करता था।

छप छप शव्द सुनकर अरुण ने कहा—कौन है वहाँ?

उत्तर आया—मैं हूँ, मैं हूँ।

"तुम कौन हो?"

"मैं हूँ पुलक वावू।"

हँसते हँसते अरुण ने शुभेन्दु को पुकारकर कहा—पटला, ज़रा निकलकर देख तो। बाबू कौन-सी बाबूगिरी कर रहे हैं। शुभेन्दु निकलकर देखा तो जूते-मोज़े के सहित पैर को जल में डुबाये हुए पुलक बड़े उल्लास से छप छप कर रहा है। शुभेन्दु को देखते ही वह खिलखिला कर हँस पड़ा।

शुभेन्दु ने कहा—तो क्या तू यही बाबूगिरी कर रहा है रे बन्दर! चल, जल्दी चला आ वहाँ से?

हँसकर मस्तक हिलाते हुए पुलक ने कहा—न, मैं तो न आऊँगा यहाँ से।

शुभेन्दु ने कहा—न अयेगा तो मार न खायगा!

पुलक ने अकड़ के साथ कहा—हुत्! मारोगे तो मैं मा से कह दूँगा।

पुलक को इसके सिवा धमकी की और कोई बात मालूम नहीं थी। परन्तु यहाँ उसकी धमकी काम न दे सकी। शुभेन्दु ने उसे पानी में से निकाल लिया और मा के पास ले जाकर कहने लगा—मा, ज़रा अपने पुलक की करतूत तो देखो।

मेनका उस समय पूजा कर रही थी। द्वार के पास खड़ी होकर सविता ने कहा—मा पूजा कर रही हैं।

"यह देखो भाभी। ज़रा अपने पुलक बाबू की करतूत देख लो। इन्होंने जूता-मोज़ा सब भिगो लिया है। बड़े भारी बाबू हैं ये।"

पुलक का भीगा हुआ जूता-मोज़ा उतारते उतारते सविता ने कहा—ऐसे दुष्ट लड़के से हम लोग कोई भी बात न करेंगे।

सविता के कन्धे पर हाथ रक्खे हुए पुलक ने कहा—तुम? भाभी जी, तुम न बात करोगी?

सविता ने कहा—नहीं।

पुलक सविता के गले से लिपट गया। वह कुण्ठित स्वर से कहने लगा—अब मैं कभी किसी प्रकार की दुष्टता न करूँगा। भाभी, कभी न करूँगा।

शुभेन्दु की नव विवाहिता वधू आशा सात दिन तक रहकर फिर अपने पित्रालय को चली गई थी। मेनका ने कहा—यह तो सविता की तरह के गये-गुज़रे घर की लड़की है नहीं। यह क्यों पिता के घर नहीं जायगी। विशेषतः ऐसी परिस्थिति में जब कि इन्हीं इतने दिनों में रो-धोकर आशा ने घर भर को परेशान कर दिया था। वह कुछ शान्त रहा करती थी केवल सविता के पास। सविता विवाह के बाद से मायके नहीं जा सकी, यह सुनकर तो वह बेचारी मारे भय के सकपका गई थी। उसे भय था कि कहीं ये लोग मुझे भी न जाने दें।

आशा को बुलाने के लिए जब आदमी आये तब मेनका की इच्छा हुई कि इसे दो-चार दिन और रोक लिया जाय। परन्तु अरुण ने कहा—उसे रोकने की क्या ज़रूरत है? नई बहू ठहरी वह। इसे रोकने से क्या लाभ? लोग बुलाने आये हैं तो जाने दो।

मेनका और कुछ नहीं बोलीं। आशा मायके भेज दी गई। सविता मन ही मन हँसी। वह सोचने लगी कि केवल मेरे ही लिए विधि-व्यवस्था और प्रकार की है। मैं इन लोगों की कृपा के द्वारा ख़रीदी गई दासी भर हूँ। क्या मेरा पावना अब एक कानी कौड़ी भी नहीं, सब विवाह के ही समय अदा हो गया?

आशा को छोड़ कर शुभेन्दु ससुराल से लौट आया था। सविता ने उससे कहा—तुमने मुझे जो किताब देने को कहा था, शुभेन्दु वह दी नहीं फिर।

शुभेन्दु कुछ लज्जित-सा हो गया। वह कहने लगा—उस दिन मैंने किताबें निकाल तो ली थीं भाभी जी, किन्तु पुलक ने गड़बड़ कर दिया। अच्छा, अब लाये देता हूँ।

लज्जित होने के कारण शुभेन्दु पुस्तकें लाने के लिए इतना उतावला हो उठा था कि एक एक छलांग में दो-दो, तीन-तीन सीढ़ियों को पार करता हुआ नीचे उतर गया। उसका आग्रह देखकर सविता हँस पड़ी।

थोड़ी-सी किताबें निकालकर शुभेन्दु आलमारी की कुंजी अरुण को देने गया। अरुण ने हँसकर कहा—इतनी पुस्तकें क्या करेगा रे? भीतर से माँग हुई है क्या?

शुभेन्दु ने उतावली के साथ कहा—हाँ। अरुण ने अवज्ञा की हँसी हँस दी, परन्तु वह कुछ बोला नहीं। वह सोचने लगा—यह शुभेन्दु का पागलपन है।

पुस्तकें देखकर सविता ने कहा—ओह! तुम ने

बहुत-सी पुस्तकें उठा ले आये। ये सब मुझे एक साथ दे दोगे तो मैं चिन्ता में पड़ जाऊँगी। ये हमारे पुलक तो जरा भी भले आदमी नहीं हैं।

शुभेन्दु ने कहा--इससे मेरा कोई मतलब नहीं। कम से कम मेरी तो तक़ाज़े से जान छूट गई।

"हाँ, तुम्हारे ऊपर तो तकाजा नहीं रहा। परन्तु क्या इन पुस्तकों के मालिक तुम्हीं हो? यदि हाँ तो भी मुझे बहुत कुछ भरोसा हो जाता।"

"मालिक कोई भी हो, आपका तो पढ़ने से ही मतलब है।"

"ऐसी बात नहीं है,--तो भी निर्भय हो सकती हूँ, यदि संयोगवश किसी पुस्तक का कोई पृष्ठ फट जाय या कहीं किसी प्रकार का धब्बा पड़ जाय।"

शुभेन्दु ने हँसकर कहा--कम से कम पुस्तकें दूसरे की नहीं हैं। आप उन्हें निर्भय होकर पढ़ सकती हैं और यदि चाहें तो फाड़ भी सकती हैं, दण्ड न देना पड़ेगा।

"तब तो ठीक है!"

नहीं, इसके लिए बिलकुल चिन्ता नहीं है।--यह कह कर शुभेन्दु चला गया।

सविता ने सोचा कि अवकाश के समय इन्हें पढ़ा करूँगी, इससे वह उठाकर उन पुस्तकों को उपयुक्त स्थान पर रखने लगी। इतने में उसने देखा कि प्रत्येक पुस्तक पर अरुण का नाम लिखा हुआ है। उसका मुँह लाल हो गया। पुस्तकों को उसने चुपचाप रख दिया।

कुछ दिनों के बाद जगत बाबू कुछ अस्वस्थ हो गये। वे मकान के भीतर लेटे हुए थे। उनकी मुखाकृति से उनके शरीर की अवस्था का भली-भाँति अनुभव नहीं हो पाता था। हृद्रोग के कारण उन्हें यदा-कदा शय्या-ग्रहण करने के लिए बाध्य होना पड़ता था। उस दिन भी वे हृदय की ज़ोरों की धड़कन के कारण व्याकुल होकर चारपाई पर पड़े थे। पास ही बैठी हुई मेनका उनके मस्तक पर हाथ फेर रही थी।

हाथ में एक टेलीग्राम लिये हुए अरुण घर में प्रवेश करते करते चिन्तितभाव से बरामदे में खड़ा हो गया। टेलीग्राम क़टक से आया था। वहाँ मेनका की माता की तबीअत बहुत ज्यादा खराब थी। काफ़ी वृद्ध भी हो चुकने के कारण उनके जीवन की आशा नहीं थी। इससे वे मेनका से अन्तिम भेंट करने के लिए बहुत व्याकुल थीं। यही बात अरुण के मामा ने संक्षेप में सूचित की थी।

परन्तु मा को यह बात इस समय बतलाना ठीक है या नहीं, अरुण इसी चिन्ता में पड़ा था।

उसी दालान के एक दूसरे कोने में बैठी हुई सविता बिस्कुट के एक ख़ाली डिब्बे में थोड़ी-सी सूखी हुई बड़ियाँ भर रही थी। वहाँ खड़े-खड़े सविता को संकुचित करने की अपेक्षा अरुण स्वयं ही अधिक संकुचित हो रहा था।

इस लड़की का विवाह हुआ था किशोर-अवस्था की सीमा में आकर। अब इसके यौवन की तीव्र और उज्ज्वल दीप्ति आँखों में लगती थी, चाहे वह अच्छी लगती रही हो या बुरी लगती रही हो। उसके ऊपर अपना कोई कर्तव्य या दायित्व है, यह अरुण किसी दिन भी न स्वीकार करता। उसके सुख-दुख से अपना किसी प्रकार का सम्पर्क है, इस बात की कल्पना तक से वह क्रुद्ध हो उठता। अत्यन्त अनिच्छा होने पर भी उसे वह विवाह करना पड़ा था। अतएव उसने निश्चय किया था कि इस विवाह को ठीक उसी तरह उड़ा दूँगा जिस तरह आदमी किसी रात को कोई बुरा सपना देखता है और फिर उसे भुला देता है। इसलिए उपेक्षा और अवज्ञा के कारण अरुण किसी दिन सविता से कोई बात तक नहीं करता था।

अरुण के मन में यह बात आया करती कि जिससे मैं किसी प्रकार की कामना नहीं करता हूँ वही मुझसे किसी प्रकार की कामना किस अधिकार से करने लगी।

सविता मस्तक-झुकाये हुए काम कर रही थी। अरुण को देखकर भी मानो उसने उसे देखा नहीं, वह बराबर अपना काम करती रही। न तो उसने किसी प्रकार का आग्रह प्रदर्शित किया और न किसी प्रकार का सङ्कोच ही प्रदर्शित किया।

अरुण को देखकर पुलक ने कहा--देखो बहू, उधर बड़े मामा खड़े हैं।

अरुण ने पुकारा--पुलक, जरा सुनो तो!

सविता की ओर बढ़ते-बढ़ते मुँह फेरकर पुलक ने कहा—क्या है ?

"मैं कहता हूँ कि इधर आओ।"

एक विज्ञ पुरुष के समान पुलक ने कहा—इतने ज़ोर से मत बोलो, नाना जी की तबीअत ख़राब है।

"अच्छा, अब ज़ोर से न बोलूँगा। तुम आओ।" घड़ियाँ भर चुकने के बाद सविता उठ गई।

मेनका ने आकर कहा—तू यहाँ खड़े खड़े क्या कर रहा है, अरुण ?

"कुछ नहीं कर रहा हूँ। एक काम है। बाबू जी क्या सोये हैं ?"

"नहीं, वे तो जाग रहे हैं।"

"कैसी तबीअत है उनकी ?"

"कहते तो हैं कि अब कुछ अच्छी है। तू जाता क्यों नहीं, देख न आ।"

अरुण ने पिता के कमरे में प्रवेश किया। तार पढ़कर उसने उन्हें सुनाया। उन्होंने स्वयं उसे लेकर एक बार पढ़ा और कहने लगे—तब उन्हें जाना ही होगा।

अरुण ने कहा—आपका शरीर अच्छा नहीं है। ऐसे समय में मैया मा जा सकेंगी ?

"जा क्यों न सकेंगी ? मेरा शरीर वैसा ख़राब नहीं है। पटला उन्हें लेकर चला जाय और वहाँ दो दिन रहकर साथ में लिये हुए फिर चला आवे। तुम उन्हें बुलाओ तो बताऊँ।"

अरुण ने कहा—पटला की अपेक्षा तो मेरा ही जाना अच्छा होगा। रास्ता आदि भी मुझे सब अच्छी तरह मालूम है।

पिता ने कर्कश स्वर में कहा—नहीं, अब वहाँ तुम्हारे जाने का कोई काम नहीं है।

अरुण का मुँह लाल हो उठा। उसने समझ लिया कि पिता ने यह बात किस अभिप्राय से कही है। इससे उसने अपने आपको बहुत अपमानित अनुभव किया। उसने सोचा कि मेरे सम्बन्ध में इस प्रकार की धारणा करना पिता का बहुत बड़ा अन्याय है, मेरे प्रति उनका यह अत्याचार है। अन्त में माता को बुलाकर उसने सारी बातें बतला दीं और यात्रा की व्यवस्था के लिए शुभेन्दु को बुला दिया, तब वहाँ से वह स्वयं खिसक गया। निश्चय हुआ कि सविता घर में रहकर गृहस्थी सँभालेगी और मेनका कटक जायँगी।

माता की बीमारी का हाल सुनते ही मेनका ने आँसू बहाना आरम्भ कर दिया। उनकी तबीअत अब ज़रा भी नहीं लगती थी। सविता को घर-गृहस्थी के सम्बन्ध की दस तरह की बातें समझाकर वे चली गईं।

मेनका जिस समय गाड़ी पर बैठ रही थीं, सविता मस्तक झुकाकर उन्हें प्रणाम करने लगी। इतने में उन्होंने उसे छाती से लगा लिया और उसके मस्तक पर हाथ रक्खा।

सास से इस तरह का कोमल व्यवहार कभी प्राप्त हो सकेगा, इस बात की सविता ने कभी कल्पना तक नहीं की थी। इससे मेनका के आज के व्यवहार से सविता को कुछ आश्चर्य हुआ। वह ज़रा कुछ दुखी भी हुई। समझ में न आया कि इसका क्या अभिप्राय है।

रुँधे हुए गले को साफ़ करके मेनका ने मृदु कण्ठ से कहा—सुनो बहू, अभी तुम सारी बातों को अच्छी तरह समझ नहीं पाती हो। अब तुम यहाँ अकेली ही रहोगी, अब ज़रा इस बात के लिए प्रयत्न करना, जिससे जीवन एकदम व्यर्थ ही न जाय। ऐसे घर में आकर भी तुम सुखी नहीं हो सकी हो, इसमें क्या हम लोगों की कम बदनामी नहीं है ? यदि तुममें ज़रा भी चतुरता आ जाती !

मेनका और भी कुछ कहने जा रही थीं, किन्तु शुभेन्दु की उतावली के कारण उन्हें मुँह बन्द कर लेना पड़ा। वह बार बार ताकीद कर रहा था कि अब समय नहीं है, जल्दी चलो, नहीं तो गाड़ी न मिल सकेगी।

सविता की समझ में कोई बात न आई। सास के हृदय में इस प्रकार की दया, सहानुभूति की इस प्रकार की बाढ़ एकाएक कैसे आगई ? वह हक्का-बक्का-सी होकर कुछ क्षण तक खड़ी रही।

गाड़ी फाटक के बाहर चली गई। सविता लौटकर अन्यमनस्कभाव से दालान में प्रवेश करने जा रही थी। इतने में जगत बाबू ने पुकारा—बहू !

सविता बहुधा श्वशुर के सामने निकलती नहीं थी, उनसे बोलती भी नहीं थी। इससे उनके पुकारने

की आवाज़ कान में पड़ते ही उनके कमरे में जाकर संकुचित भाव से वह खड़ी हो गई। जगत बाबू ने कहा—बैठो।

सविता बैठ गई। किन्तु खाली हाथ वह बैठी कब तक रहती। जाड़े के दिन थे। इससे हवा की भी ज़रूरत नहीं थी कि वह हाथ में पंखा ही लेकर बैठती। विशेषतः ऐसी अवस्था में, जब कि जाड़ा भी इधर कई दिनों से प्रचण्ड रूप धारण करके आदमी का शरीर तक गला डालने पर कटिबद्ध हो उठा था।

सूर्य्य भगवान् निश्चिन्त होकर अस्ताचल पर आसन नहीं जमा पाये थे। तभी से शीतकाल की सन्ध्या का धूसर आवरण चारों ओर फैल गया। सविता खिड़की बन्द करके कमरे से निकलने ही जा रही थी, इतनी देर तक जगत बाबू करवट बदल कर लेटे हुए थे। अब मुँह फेरकर उन्होंने कहा—कहाँ जाती हो बहू?

उनकी यह बात समाप्त भी न हो पाई थी कि अरुण ने आकर कहा—बाबू जी, डाक्टर साहब आये हैं। क्या उन्हें बुला लाऊँ?

जगत बाबू उठकर बिस्तरे पर बैठ गये। उन्होंने कहा—तबीअत तो मेरी अच्छी ही है। अच्छा, बुलाओ।

सविता कमरे से निकल गई। नौकर को बुलाकर उसने कमरे में रोशनी करने और धूप सुलगाने की व्यवस्था की और स्वयं वह पुलक की खोज में लगी।

पुलक गाते गाते सारा घर घूम आया। इधर-उधर देख-भाल चुकने के बाद उसने कहा—बहू, मा कहाँ गई?

तश्तरी में भोजन की सामग्रियाँ सजाकर सविता उसे खिलाने के लिए बैठी। तब उसने कहा—मा घूमने गई हैं भैया!

"घूमने गई हैं? कहाँ गई हैं वहू? मैं भी वहाँ जाऊँगा? तश्तरी को दूर ठेलकर पुलक उछल पड़ा। सविता ने बड़ी कठिनाई से उसे भोजन कराया और सुलाया। तब वह श्वशुर के लिए ब्यालू का सामान सजा-कर ले गई।

तबीअत ठीक न रहने पर जगत बाबू रात्रि में थोड़ा-सा कोई फल और दूध के सिवा कुछ खाया नहीं करते थे। सविता को श्वशुर की यह प्रकृति मालूम थीं। इससे वह उनकी रुचि के अनुसार ही खाद्य सामग्रियाँ ले गई थी।

थाली हाथ में लिये हुए कमरे में प्रवेश करते ही सविता ने देखा कि टेबिल पर रक्खी हुई लालटेन की ओर झुका हुआ अरुण एक पुस्तक पढ़ रहा है। जगत बाबू चुपचाप आरामकुर्सी पर लेटे हुए हैं। सारे कमरे में जो एकान्त निस्तब्धता छाई हुई है उसे भङ्ग किये दे रही है ब्रैकेट के ऊपर रक्खी हुई टाइमपीस घड़ी अपनी अविराम टिक टिकाहट से।

चारपाई के पास एक स्टूल पड़ा हुआ था। सविता ने उसी पर थाली रख दी। थाली में गरम दूध का जो कटोरा रक्खा हुआ था उसमें से उस समय भी भाफ़ निकल रही थी।

जगत बाबू ने कहा—अभी ही? क्या आठ बज गये हैं?

अरुण सीधा होकर बैठ गया। हाथ की किताब बन्द करके उसने जाँघ पर रख ली और घड़ी की ओर ताक कर बोला—हाँ, आठ बज गये हैं?

फल के दो एक टुकड़े मुँह में डालकर जगत बाबू ने कहा—तुम्हारा पुलक सो गया है न बहू?

सविता ने मस्तक हिलाकर सूचित किया—हाँ।

"इधर कुछ दिनों तक अकेले तुम्हें बड़ा कष्ट करना पड़ेगा। पुलक को बहुधा तारा के ही पास रहने दिया करो।"

सविता के मन में एक बार यह आया, कह दूँ कि नहीं, मुझे किसी प्रकार का कष्ट न होगा। परन्तु जब वह कहने चली तब उसकी जबान ही न खुल सकी। उसके करुण नेत्रों में आन्तरिक कृतज्ञता का भाव उदित हो आया। कष्ट! उसके लिए भी क्या कष्ट नाम की कोई वस्तु है!

श्वशुर के भोजन कर लेने पर सविता ने मसाले की डिबिया उनकी ओर बढ़ा दी और खाली थाली हाथ में लिये हुए वह कमरे से निकल गई। कमरे में कोई और भी बैठा है, उस ओर उसका ध्यान तक नहीं जा सका।

कवि नानालाल के रेखाचित्र का अवलोकन

लेखक, श्रीयुत सत्यव्रत

कवि अपने युग का सच्चा प्रतिनिधि होता है। ऐसे कवि के विषय में लेखनी उठाते समय विवेचक लेखक को बड़ी सावधानी रखनी पड़ती है। थोड़ी ही असावधानी से कवि के हृदय को आघात पहुँच सकता है—उसके साथ अन्याय हो सकता है।

एक और भी बात है। जब किसी एक प्रान्त के कवि का अन्य प्रान्त की साहित्य-प्रिय जनता के सामने परिचयात्मक विश्लेषण रक्खा जाता है तब तो और भी सावधानी रखने की जरूरत है। मैं यह नहीं कहना चाहता कि कवि के सिर्फ़ गुण ही गुण दिखाये जायँ और दोष हों तो छिपाये जायँ। मगर सिर्फ़ ढूँढ़ ढूँढ़कर दोषों का दिग्दर्शन कराना और वह भी अपने प्रान्त के साहित्यकारों को परिचय कराने के नाम से, बड़ी धृष्टता का काम है। ऐसा ही साहस काशी के 'हंस' में दिखाया गया है।

'हंस' का मार्च का अंक हमारे सामने है। यह अंक 'रेखाचित्रों' के नाम से विशेषांक के रूप में प्रस्तुत किया गया है। इसके सम्पादक हैं श्रीमान् श्रीपतराय जी, और इतर भाषाओं के सलाहकारी सम्पादकमंडल में तत्तत्प्रान्तीय कोई न कोई साहित्यकार हैं। उसमें सद्भाग्य से या दुर्भाग्य से गुजराती-भाषा का प्रतिनिधित्व श्री रामनारायण जी पाठक कर रहे हैं, जिनको हिन्दी का विशेष ज्ञान नहीं है।

'हंस' के उक्त अंक में श्री रामनारायण पाठक का भी रेखाचित्र छपा है। उसमें आपकी निष्पक्षपात वृत्ति का यों परिचय दिया गया है—"गुजराती साहित्यिकों-द्वारा मूकभाव से स्वीकृत किये गये अपने शब्द-प्रामाण्य के जोर पर इन पाँच व्याख्यानों में वे चाहते तो कितने ही लब्ध-प्रतिष्ठ कवियों की कमर सदा के लिए तोड़ सकते थे।" इत्यादि। आपके 'व्याख्यानपंचक' के बारे में अगर गुजराती-साहित्यिकों ने मूकभाव रक्खा है और हमारे भाई खंडेराव जी मुले उसे 'मौनं सम्मतिलक्षणम्' समझकर संतोष मानना चाहते हैं तो खुशी से सन्तोष का घूँट पी सकते हैं। परन्तु उनको हम एक बात की याद दिलाना चाहते हैं कि मौनावलम्ब में बहुधा सम्मति के बजाय उपेक्षा ही रहती है। खैर, कई लब्ध-प्रतिष्ठ कवियों की कमर तोड़ने और अज्ञात कवियों का भविष्य उज्ज्वल कर देने का जो काम हमारे पाठक जी महाराज खुले व्याख्यानों में न कर सके उसे वे बड़ी उत्तमता से 'हंस' के इस विशेषांक के द्वारा करा सके हैं। इसका हम अवश्य विश्वास दिला सकते हैं।

अभी तक तो हम यह समझते रहे कि हमारे गुजराती भाई अन्य प्रान्तीय भाइयों की अपेक्षा गांधीवाद के सत्य और अहिंसा के सिद्धान्तों को अपने जीवन में ज्यादा उतार चुके हैं, मगर हमारा यह मिथ्याभिमान ही था, ऐसा हम निःसंकोच कहते हैं। मतभेद—राजनैतिक विचार-भेद के होने से उसका बदला लेने की लालसा से प्रेरित होकर किसी को साहित्य-क्षेत्र में घसीटकर उसकी खिल्ली उड़ाना—घृणित पाप है।

श्री उमाशंकर जोशी, श्री झवेरचंद मेवाणी, श्रीमती लीला मुन्शी आदि गुजराती-साहित्य के नव-साहित्यकारों का 'हंस' के इस विशेषांक के रेखाचित्रों से 'भविष्य उज्ज्वल,

किया गया है, इसके लिए हमारे वे नव-साहित्यिक अभिनंदनीय हैं। मगर इसके साथ श्री हीरालाल गोदीवाला के द्वारा 'नानालाल दलपतराम कवि' नामक 'रेखाचित्र' प्राप्त कर उसके द्वारा गुजराती-साहित्य के वर्तमान कवि-सम्राट् नानालाल को कुत्सित रीति से हिन्दी-भाषी जगत् में नीचे गिराने की—लब्धप्रतिष्ठ कवि की सदा के लिए कमर तोड़ने की—जो अनधिकार और द्वेषपूर्ण असफल चेष्टा की गई है उसको देखकर आज गुजरात की साहित्य-लक्ष्मी उन्मना होकर आठ आठ आँसू बहा रही है। गुजराती का शिष्ट साहित्यवृन्द अपने ही भाइयों की इस कुत्सित पक्षपातपूर्ण वृत्ति को देखकर स्तंभित-सा होकर लज्जित हो रहा है!

अपने विषय पर कुछ लिखने के पूर्व हम 'हंस' के संपादक महोदय एवं श्री पाठक जी महाराज तथा नानालाल के रेखाचित्रक श्री गोदीवाले से यह पूछना चाहते हैं कि कवि श्री नानालाल के सम्बन्ध में जो लेख 'हंस' में छापा गया है उसमें आपका उद्देश्य क्या है। अगर दूसरे प्रान्त के सत्साहित्यिक का परिचय कराना है तो वह बेकार है, क्योंकि उक्त रेखाचित्र में लिखा गया है—"कवि के निकट सम्पर्क में आनन्द प्राप्त करने की आशा में जाना व्यर्थ है, अतः उनके अधिक निकट जाने में कोई लाभ नहीं।"

उक्त लेख के लेखक श्री गोदीवाला ने लिखा है—

"एक समय 'पचास पचास दीपमालायें प्रकटाओं' गाकर 'गुजरात के तपस्वी' गांधी जी का स्वागत करनेवाले नानालाल जब उसी महापुरुष को मनचाही अनघड़ गालियाँ देते हैं तब उनके अपने प्रशंसकों और महात्मा जी के विरोधियों तक को लगता है, जैसे कोई मूर्ख सूर्य के ऊपर थूकने का व्यर्थ प्रयास कर अपना ही मुँह बिगाड़ रहा हो।"

हम लेखक से पूछना चाहते हैं कि जिसने एक समय 'गुजरात का तपस्वी' कह कर गांधी जी की पचास पचास दीपमालाओं-द्वारा आरती उतारी थी और बक़ौल आपके अब वे उन्हीं को 'अनघड़ गालियाँ' दे रहे हैं उसका भी तो उनके पास कोई कारण होगा। कविवर नानालाल सनकी तो नहीं, निर्बुद्धि तो नहीं, लालची तो नहीं। फिर भी आप जैसे कुछ आदमियों को शिकायत करने का कारण तो मिला। लेकिन उसमें तो उपेक्षा ही करनी योग्य थी, क्योंकि एक हैं महान् आत्मा और दूसरे हैं महान् कवि। दोनों महापुरुष। उनके बीच का सम्बन्ध हम कैसे जान सकते हैं कि उन दोनों के बीच ऐसा गहरा मत-भेद क्यों और कैसे उत्पन्न हो गया? इन बातों की प्रसिद्धि से कोई लाभ नहीं है। उन दोनों के हृदयों तक ही ये बातें सीमित रहनी चाहिए।

भाई गोदीवाले! अगर आपने नानालाल को ऐसा ही समझा है तो ऐसे बुरे व्यक्ति का रेखाचित्र खींचने में आपने अपनी तूलिका और काग़ज़ क्यों बिगाड़े, रंग और समय क्यों नष्ट किया? मगर यहाँ तो 'गुट्ट' की बात है। सहिष्णुता, सत्य, अहिंसा, गांधी-शिक्षा आदि ताक में धरे रहते हैं। हाथी के दाँत खाने के और दिखाने के अलग अलग हुआ करते हैं! आख़िर दलबन्दी भी तो एक चीज़ है न? पर—

'किमेवमशङ्कितः शिशुकुरङ्गलोलक्रमम्।
परिक्रमितुमीहसे विरम, नैव शून्यं वनम्॥'

आपने सोचा होगा, कौन आपका हाथ पकड़ने आयगा। अतः निःशब्द होकर आपने एक सुयोग्य कवि के साथ अन्याय करके साहित्य का अपकार ही किया है और आपने अपने को ही सत्साहित्यिकों की दृष्टि में नीचे गिरा दिया है। कवि नानालाल तो आज भी वैसे ही प्रतिभावान् हैं, जैसे पहले।

किसी एक ही विचार-भेद से कवि नहीं नापा जाता है। कवि की सर्वतोगामी प्रतिभा की विवेचना से कवि का मूल्य कुछ कुछ अंकित किया जाता है। परन्तु इस विचित्र चितेरे के रेखाचित्र में कवि के दोषों के सिवा कुछ नहीं देख सकते। हाँ, कहीं एकाध जगह हठात् थोड़ा-सा गुण भी लिख दिया है। वे कवि के प्रति सद्भाव से प्रेरित होकर नहीं, किन्तु इसलिए कि आप रेखाचित्र खींचने जो चले थे, और एक भी गुण न दिखाते तो उनके लेख को 'रेखाचित्र' की मर्यादा से हाथ धोना पड़ता। इससे बचने के लिए चितेरे ने कवि के 'रेखाचित्र' की पश्चात् भूमि को घनघोर काली घटाओं से परिपूर्ण रँगकर उसमें गुण की एक विद्युल्लता भी बड़ी विवशता से खींच दी है, यथा—नानालाल की कृतियों के मधुर शब्द-संगीत से गुजराती और दूसरे प्रान्तवाले भी परिचित होंगे,

उनके गद्यगीतों की लय और गुर्जर नारियों के मधुर कंठ से गाये जानेवाले उनके रासों की गीत-ध्वनि जिसने सुनी है उसके कानों में गूंजता रहता है। इस आपकी विवशता के लिए हम आपके कृतज्ञ हैं। क्योंकि घनघोर घटाओं से तिमिराच्छन्न दिशाओं में विचरण करनेवाले पथिक को विद्युत् की एक ही छटा विमार्ग से हटाकर सन्मार्ग की ओर फेर देती है। आपके द्वारा स्वीकृत कवि नानालाल की इस काव्य-सरस्वती को सामने रखकर अब हम आपके रेखाचित्र का परीक्षण करेंगे।

नानालाल की इस भारतीयता के सम्बन्ध में श्री गोंदीवाले लिखते हैं—"जो कुछ भारतीय है, उसकी आँख मूँदकर प्रशंसा करने में, मानो भोजन पकानेवाली को देवी बना कर उसके बारे में गद्यगीत लिख डालने में भी अविवेक का अभाव ही पाया जाता है।"

देखा! कैसी सख्त चिढ़ है, मानो भारतीयता का कट्टर शत्रु ही लिख रहा है। हम अदब से पूछना चाहते हैं कि आपने इलज़ाम तो लगा दिया, मगर कोई सबूत नहीं दिया। सिर्फ़ आपने कह दिया और 'हंस' ने छाप दिया। पर इतने से आपकी बातों की सचाई तो ज़ाहिर नहीं हो सकती क्या आपने कवि की 'सारथि' रचना देखी भी है? ज़रा उसे देख लेते। अगर मान भी लें कि कवि नानालाल ने जो कुछ भारतीय देखा उसकी आँख मूँदकर प्रशंसा कर दी तो उसमें क्या पाप हो गया? अपनी संस्कृति को यदि कवि ने प्यारकर उसे अपनाया, उसे अपनी चनस्कृति से काव्य में उतारा तो यह कवि का गुण माना जाय या दोष, इसका न्याय जनता ही करे।

लेखक से हम पूछना चाहते हैं कि उनके आराध्य श्रीरवीन्द्रनाथ ठाकुर ने अपने जीवन में, रहन-सहन में और अपनी कृतियों में भारतीयता की भावनाधारा क्या नहीं बहाई है। फिर इसी बात के लिए नानालाल पर ही कोप-दृष्टि क्यों? आपको भोजन पकानेवाली को देवी बनाकर उसके बारे में गद्य-काव्य करने में नानालाल में विवेक का अभाव कैसे नज़र आता है? क्यों आपकी यह ध्रुव धारणा है कि भोजन पकानेवाली कभी 'देवी' बन ही नहीं सकती? अगर नहीं तो पूछिए कवीन्द्र रवीन्द्र से कि एक वेश्या भी श्रमण के लिए 'देवी' बन सकती है या नहीं? फिर नानालाल यदि नारी को कुलयोगिनी महादेवी पुकारकर नमस्कार करते हैं तो उनकी नारी-भावना का गौरव मानना चाहिए न कि उसमें भी विवेक का अभाव ढूँढने की कोशिश करनी चाहिए।

श्री गोंदीवाले की टीका देखकर महाकवि बिल्हण का एक श्लोकार्द्ध याद आता है—

"वाचाल भैरा पुरतः कवीनां
कान्त्या मदोऽस्य सविये सुधांशोः।"

चन्द्र के आगे जैसा कान्ति का मद होता है, वैसे ही कवि नानालाल के आगे श्री गोंदीवाले की वाचालता है!

कवि और उसका रूप-रंग

हमारे श्री गोंदीवाले को कवि नानालाल के रूप-रंग पर भी आपत्ति है, मानो आप यह चाहते हैं कि सुन्दर-कृतियों के रचयिता को सौन्दर्य-मूर्ति ही होना चाहिए, और वह सौन्दर्य-मूर्ति भी कैसी, जो आपकी कल्पना-लता में बैठ जाय! आपका एतराज भी ज़रा देखिए—

"किसी दिन तुम्हारी दृष्टि गुजराती रासों के संग्रह 'रास-कुंज' के प्रथम संस्करण के आवरण पर, गुजराती पाठशाला के मास्टर जैसी आकृतिवाले किसी सज्जन की रद्दी-सी तसवीर पर जा पड़े, तो मन में होगा—नानालाल यह?" कहिए, है न अनोखी सूझ?

रूप और सुन्दर साहित्यिक कृतियों का क्या समवाय-सम्बन्ध है? क्या यह भी कोई साहित्य-शास्त्र का अटल नियम है कि सुन्दर कृतियाँ वही कर सकता है जिसका डौल-डौल अच्छा हो या जिनकी कृतियाँ सुन्दर हों तो उनको कन्दर्प-मूर्ति ही होना चाहिए? मगर हाँ, आपकी तो बात ही और है! आपको तो श्री रवीन्द्रनाथ की ऋषि जैसी सफ़ेद दाढ़ी, नंगा सिर, लम्बा रेशमी लबादा, गौरवर्ण, सुकुमार देहयष्टि, बालों की सजावट और उनकी-सी विलास सामग्रीयुक्त कोई हो तो वह ही सुन्दर कृतियाँ करने का हक़दार है! नानालाल नहीं, जैसे कि वे श्री गोंदीवाले को दिखते हैं—"यदि उनका भाषण सुनने जाओ तो मंच पर मज़बूत शरीरवाले, शरीफ़, दुनियादार, पुराने ज़माने के ढंग के किसी मध्यवित्त व्यक्ति को लगते एक गोल काली टोपी और ढीले-ढाले लम्बे अँगरखे में सजा हुआ देखो और सोचने लगो क्या यही नानालाल हैं? तब वह व्यक्ति खड़ा हो मोटे, कर्कश और अतिशय तीव्र उच्चारण

में अपने स्वर को रसमय बनाने का प्रयत्न करता हुआ बोलने लगता है--गुजरात के रसप्रेमी नर-नारियो" ! और इसके बाद आप लिखते हैं--"और उस क्षण घड़ी-भर को बछड़े का रँभाना यादकर आपका मन वहाँ से भाग जाना चाहेगा।" आदि।

काली टोपी पहनना, ढीले-ढाले कपड़े पहनना, आवाज़ में तीव्रता का होना ये मानो कवि के अवगुण हैं! अगर यह सच भी हो तो इसमें कवि का क्या दोष? नानालाल रवि बाबू जैसे भारी ज़मींदार और श्रीमन्त नहीं, अतः वे सचमुच मध्यवित्त श्रेणी के आदमी ही हैं। जो शब्द-लक्ष्मी का धनी हो वह अगर ढीले कपड़े में ही सन्तोष का अनुभव करे तो कोई आपत्ति नहीं। अगर वह काम-मूर्ति न हो तो भी उसकी प्रतिभा में कोई क्षति नहीं आ सकती। अगर उसका स्वर भी कोकिल-कण्ठ न हो तो उसका कोई दोष नहीं! रूप और रंग, स्वर और आकार तो जन्म से मिलते हैं--"दैवायत्तं कुले जन्म मदधीनं तु पौरुषम्" क्या यह आपने सुना नहीं? मगर श्री गोदीवाले की ये बातें भी ठीक नहीं हैं। नानालाल कुरूप नहीं, प्रतिभावान् दीखते हैं। हाँ, उनका स्वर तीव्र अवश्य है, मगर वह भी आकर्षण से रिक्त नहीं। उत्सवों में जहाँ बड़ा समुदाय एकत्र होता है, वहाँ कवि का यही तीव्र स्वर श्रोतृवृन्द को आकर्षित कर उनकी बात सुनने के लिए बाध्य करता है। परन्तु श्री गोदीवाल ने तो पक्षपात का चश्मा लगाया है, अतः सिवा दोष-कालिमा के नानालाल में उन्हें और कुछ सूझता ही नहीं।

मगर नानालाल की शकल-सूरत और वेश-भूषा पर स तरह बिगड़नेवाले श्री गोदीवाले अपने आराध्य श्री रामनारायण पाठक की शकल-सूरत और वेश-भूषा के बारे में क्या कहते हैं तथा उनकी 'सौभाग्यवती' आदि रचनाओं को पढ़कर कैसी रस-मूर्ति की कल्पना करते हैं?

श्री गोदीवाले जी कहते हैं--"यदि आप कभी इनके आन्तरिक जीवन की ओर दृष्टिपात करें तो इनके जीवन में, वाणी में, नके आपसी सम्बन्धों में अवश्य ही आपको एक प्रकार की अनपढ़ता (Crudeness) और क्षुद्रता (Littleness) दीख पड़ेगी।"

ऐसे ही विचित्र और मिथ्या कथन से उद्वेलित होकर श्री सर्वदमन गहता ने 'गुजराती' साप्ताहिक के ता० ७-५-३९ के अङ्क में श्री गोदीवाले को समुचित जवाब देकर उनके समग्र लेख को 'अशिष्ट और दुष्ट असूयायुक्त' बतलाया है। उसके लचर प्रत्युत्तर में श्री गोदीवाले ने ता० १४-५-३९ के 'गुजराती' में स्पष्टरूप से स्वीकार किया है कि "कवि नानालाल के व्यक्तित्व पर टीका-आलोचना है, ऐसा स्वीकार है!" इससे साफ़ प्रकट है कि आपने रेखाचित्र के नाम से कवि के व्यक्तित्व पर आक्रमण करना ही मुख्यतम उद्देश रक्खा है! और आश्चर्य तो यह है कि आपने नानालाल के ग्रन्थों को नाममात्र का अभ्यास कर यह साहस किया है! आप स्वयं स्वीकार करते हैं--"में तो बन्ने कविओ ना ग्रंथा नो थोडो अभ्यास करी एक अभिप्राय दर्शात्योहतो।" जिसके जीवन का निकट परिचय न हो, जो उनसे घृणा-सा रखते हों, जिनके काव्य-देह का भी अच्छा परिचय न हो, ऐसा व्यक्ति अगर उस महानुभाव के बारे में क़लम-कुठार उठावे तो सिवा क्षुद्रता के क्या फल दे सकता है? निरा अन्याय और अपनी लघुता का ही प्रदर्शन कर बैठना है।

हमारी तो धारणा है कि कवि की आभ्यन्तर पवित्रता और उन्नत आदर्शयुक्त मेधा के सिवा उनकी 'जया-जयंत', 'इन्दुकुमार', 'विश्वगीता', 'चित्रदर्शना', 'वसन्तोत्सव', 'संसार-मंथन' आदि संसार के साहित्य में अमर कृतियाँ गिनी जा सकनेवाली रचनायें हैं। न रचनाओं ने पा कों के हृदय-पटल पर एक अमिट छाप अङ्कित कर दी है, जिसका स्मरण होते ही पाठक-विहग आनन्द-विभोर होकर मस्त हो झूमने लगता है, सारा मानसिक वातावरण औचित्य, शिष्टता और पावित्र्य से लबालब भर जाता है। ऐसे कवि-श्रेष्ठ के जीवन में क्षुद्रता का दर्शन करना सूर्य को छिपाने के लिए आँखें मूँद लेना है, अपनी लघुता को प्रकट करना है! हम यह भी नहीं कहते कि नानालाल सर्वथा निर्दोष हैं। वे मनुष्य हैं, और मनुष्य में कोई न कोई दो होता ही है, जैसा किसी ने ठीक ही कहा है--

दृष्टं किमपि लोकेऽस्मिन्।
न निर्दोषमनिर्गुणम्॥

मगर श्री गोदीवाले ने जो दोष-दर्शन किया है वह सर्वथा अनुचित और हेय है।

कवि की पितृ-प्रशंसा

अपने सुयोग्य पिता की प्रशंसा अगर पुत्र कर दे तो उसमें विवेक का अभाव और अतिशयोक्ति कैसे आ जाती है, यह तो समालोचक-शिरोमणि गादीवाले ही जान सकते हैं! श्रीहर्ष ने तो कहा है कि—

वाग्जन्मवैफल्यमसह्यशल्यं
गुणाद्भुते वस्तुनि मौनिता चेत्।

और पिता होने के नाते से ही उनकी प्रशंसा न करना क्या कृतघ्नता नहीं? पिता हो या पुत्र, मित्र हो या कलत्र, जो योग्य हो उसकी उचित प्रशंसा अगर कोई करे तो हमारी तुच्छ सम्मति में उसे विवेकाभाव से हम नहीं पुकार सकते। महाकवि शेली ने अपने प्रिय मित्र कीट्स की मृत्यु-गीता गाई है, कवि श्री नरसीराव ने अपने प्रिय पुत्र की 'स्मरणसंहिता' रची है। कविकुल-दिवाकर कालिदास का 'मेघदूत' भी क्या है? यक्ष के द्वारा अपने कलत्र को स्मरणांजलि ही तो दी है! महाभारत के अश्वत्थामा ने अपने पिता द्रोणाचार्य की क्या कम प्रशंसा-प्रतिष्ठा की है? वह भी आपके मिज़ाजे-शरीफ़ में क्या विवेकाभाव के तौर पर खटकता है? फिर अध्यापक साहब! नानालाल पर ही आप क्यों बरस पड़ते हैं? कवीन्द्र रवीन्द्रनाथ ने भी अपने पूज्य पिता जी के गुणों की प्रशंसा की है। वहाँ आपका कटाक्ष कुंठित क्यों हो जाता है जनाब? आँग्ल कवि शेक्सपियर ने शायद ऐसे ही मौक़े के लिए ठीक ही कहा है कि—

Beat not your furnace for your foe so hot
That is do sing youreself!

इस तरह अगर आप नानालाल का अन्तर्प्रान्तीय परिचय ही न कराते तो आपकी कृपा मानी जाती!

अब अन्त में आपकी एक और बात पर थोड़ा विचार कर इस अवलोकन को खत्म करते हैं।

संसार ने रवि बाबू की प्रशंसा की और नानालाल की क्यों नहीं की, इसमें हमें कोई ईर्ष्या नहीं। संसार ने रवि बाबू की प्रशंसा की तो एक भारतीय के नाते हमें अभिमान है। नानालाल और रवीन्द्र इन दोनों महाकवियों की तुलना करने का हमारा अभिप्राय नहीं। मगर जब आप यह लिखते हैं कि "केवल मनोविनोद के लिए किये गये अपने कुछ गीतों के अनुवाद गीताञ्जलि में दुनिया को चकित कर देनेवाले और अपने साहित्य तथा जीवन से भारतीयों के जीवन में कई धारा बहानेवाले रवीन्द्रनाथ की प्रतिभा में और एकदम बिना हास्य रसवाली, बिलकुल अवास्तविक जगत् में विचरनेवाली, आदर्शमयी, शब्द-संगीत से भरी, कई बार बिना अर्थों के शब्द-संगीत से भरी कविता रचनेवाले नानालाल की प्रतिभा में समानता नहीं हो सकती!" तब हमें विवश होकर कहना पड़ता है कि इसमें भी आपकी कम समझ है! दोनों कवियों के ग्रन्थों को थोड़ा अभ्यास कर तुलना कर देना दोनों के और अपने आपके साथ अन्याय करना है। हम तो मानते हैं कि दोनों महाकवियों के कल्पना-क्षेत्र अलग अलग हैं और दोनों अपने अपने क्षेत्र में अद्वितीय हैं। मगर जब आप 'गीताञ्जलि' को उठाकर चैलेंज देते हैं तब हम बड़े अदब से कहना चाहते हैं कि पाश्चात्य संसार ने 'गीताञ्जलि' का स्वागत इसलिए किया कि वह उपनिषद् की ब्रह्मविद्या के ज्ञान से कोरा था और उपनिषद् के तत्त्वों को अपनी गीतमाला में पिरोकर रवीन्द्र ने पाश्चात्य संसार को चकित कर दिया। मगर हमारे यहाँ उन गीतों से श्रेष्ठ उपनिषद्-विद्या विद्यमान है, अतः प्रथम प्रथम भारत ने उन गीतों का मूल्य उतना नहीं किया। बाद को पश्चिम के विद्वानों के एकमात्र अनुयायी शिक्षितों ने भारत में भी उनका प्रचार किया। मगर हम निःसंकोच कह सकते हैं कि नानालाल की 'जयाजयन्त', 'इन्दुकुमार' 'उषा', 'विलासिनी शांता' आदि कई एक रचनाओं में जो वस्तु है वह रवि बाबू में ढूँढ़ने पर भी नहीं मिलेगी! आप कहते हैं कि नानालाल की कई कवितायें बिना अर्थों के शब्द-संगीत से भरी हैं! परन्तु आप उन्हें न समझें तो इसमें नानालाल का क्या अपराध? शब्द-शास्त्र ही ऐसा है जिसमें "विद्वांसोऽपि विमुह्यन्ति वाक्यार्थगहनेऽध्वनि।" श्री हरिहर कवि ने उचित ही कहा है—

पदव्यक्तिव्यक्तीकृतसहृदयानन्दसरणी।
कवीनां काव्येन स्फुरति बुधमात्रस्य धिषणा॥

स विषय में आप अपवाद न हों तो आश्चर्य की क्या बात है?

काव्य

काव्य कैसा होना चाहिए ? कवि विद्यापति कहते हैं—

"या केवलं सरसता तदपण्डितत्वम्,
व्युत्पत्तिरेव यदि नीरसता तदा स्यात् ।
योगस्तयोस्तु घनसारकुरङ्गनाभि-
मेलापवत्परिमलं कमपि प्रसूते ॥

सरसता और व्युत्पत्ति के योगद्वारा ही काव्य-सौरभ नानालाल की सरस्वती-वाटिका में वहकता है। नानालाल के काव्यों को समझने में थोड़ा परिश्रम तो करना ही पड़ता है। मगर थोड़े यत्न के बाद जब काव्य का रहस्य खुल जाता है तब आनन्द-स्रोत बहने लगता है।

"किं तेन किल काव्येन मृथ्यमानस्य यस्य ताः ।
उदधेरिव नायान्ति रसामृतपरम्पराः" ॥

नानालाल की काव्य-प्रतिभा आदर्शमयी, शब्द-संगीत से भरी हुई होने पर भी अवास्तविक जगत् में विचरनेवाली नहीं है। कविश्रेष्ठ नानालाल का उद्देश्य तो आदर्शों को जगत् में मूर्तरूप देना है। अतः जहाँ उनकी प्रतिभा कल्पना के पंख पर आकाश में उड़ान भरती है, वहाँ उनके पैर संसार के साथ सजे रहते हैं। कोई उसे न देखे, न समझे, तो इसमें कवि का दोष नहीं है। दोष है हमारी समझ-शक्ति का। "नोलूकोऽप्यवलोकते यदि दिवा सूर्यस्य किं दूषणम् ?"

अन्तिम निवेदन

अन्त में इतने विवेचन से पाठकों को भी प्रतीत हुआ होगा कि श्री गोदीवाले का लिखा हुआ रेखाचित्र—रेखादर्शन ही नहीं है, वह तो निपट दोष-दर्शन ही है, अतः वह कविश्रेष्ठ नानालाल के साथ अन्यायकारी है। इस पुण्य (!) कार्य में 'हंस' को अपनी नीरक्षीर-वृत्ति को छोड़कर पक्षपात के दलदल में फँसा देखकर दुःख होता है। रेखाचित्र के विधायक श्री हीरालाल गोदीवाले को भट्टेन्दुराज का एक श्लोक यहाँ अर्पित करता हूँ—

"उदस्योच्चैः पुच्छं शिरसि निहितं जीर्णजटिले
यदृच्छाव्यापन्नद्विपपिशितलेशाः कवलिताः ।
गुहागर्भे शून्ये सुचिरमुषितं जंबुक सखे !
तदेतत्किं कुर्मो यदसि न गतः सिंहसमताम् ॥"

और साहित्य की दलबन्दी करनेवाले धुरन्धरों से इससे अधिक क्या कहूँ कि—

"क्रूराः ! कृताञ्जलिरयं बलिरेषदत्तः
कायो मया प्रहरतात्र यथाभिलाषम् ।
अभ्यर्थये वितथ वाङ्मयपांशुवर्षै-
र्मा मा विलीं कुरुत कीर्तिनदीं परेषाम् ॥"

उत्तर

लेखक, श्रीयुत बाबूराम पालीवाल

कैसे न कहूँ मेरे उदार ! मेरा मन करता तुम्हें प्यार ?

मैं जान रहा तुम जान इसे मुझसे दूना इतराओगे,
मुझसे मेरी मस्ती लेकर मुझको ही मूर्ख बनाओगे,
मेरी त्रुटियों का हाल जान मेरा उर-तार हिलाओगे,
मुझसे ही सुन्दरता पाकर मुझको अरूप ठहराओगे,
पर जान बूझकर भी तो मन करता कहने को बार-बार।

अलियों ने गुन गुन गुन करके कलियों से अपना प्यार कहा,
कलियों के सौरभ देने में मलयानिल का सत्कार रहा,
सरिता में मिलने से पहिले निर्झर ने कल कल नाद किया,
तारावलियों ने चमक चमककर ही रजनी से प्यार लिया,
फिर मैं मानव हूँ दुर्बल हूँ कर सकता कैसे वहन भार ?

---

१ हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर कार्यालय, बम्बई की २ पुस्तकें

(१) **शेष स्मृतियाँ**—लेखक, श्रीयुत रघुवीरसिंह डी० लिट० हैं। छपाई उत्तम, कागज बढ़िया और सजिल्द पुस्तक का मूल्य २) है। पृष्ठ-संख्या १३४ है।

सीतामऊ के महाराज कुमार डाक्टर रघुवीरसिंह हिन्दी के प्रेमी ही नहीं, उसके सुलेखक भी हैं। आपकी यह रचना हिन्दी के गद्य-काव्य की एक श्रेष्ठ रचना है। आगरा, फ़तहपुर सीकरी और दिल्ली के मुग़लकालीन ध्वंसावशेषों का एक कवि के हृदय पर जो चित्र बनता है उसी का हृदयग्राही चित्रण आपने इस पुस्तक में किया है। शब्द और भावचित्रों का यह सुन्दर संकलन हिन्दी में अपने ढंग का नया ही है। आचार्य शुक्ल जी की विद्वत्तापूर्ण भूमिका ने पुस्तक की महत्ता में और भी वृद्धि कर दी है।

(२) **रोमाञ्चक रूस में**—लेखक, डाक्टर सत्यनारायण हैं। छपाई-कागज बढ़िया, पृष्ठ-संख्या २८३ और मूल्य २) है।

रूस पर हिन्दी में कई पुस्तकें निकल चुकी हैं, पर प्रस्तुत पुस्तक अपने विषय की अनोखी है। इसमें सोवियट जनता के उस वर्ग का चित्र खींचा गया है जो रूस का भ्रमण करनेवाले अन्यान्य भारतीय लेखकों के निकट विशेष महत्त्व का नहीं रहा, और फलस्वरूप जिसकी उनके ग्रन्थों में उपेक्षा की गई। भाषा व शैली अत्यन्त रोचक है। चित्रण अत्यन्त सजीव है। रोमाण्टिक-भावनायें ही लेखक का वर्ण्य विषय हैं और इसी कारण पुस्तक में औपन्यासिकता का इतना प्राचुर्य है कि पढ़ते-पढ़ते कभी-कभी घटनाओं की यथार्थता पर सन्देह-सा होने लगता है। सोवियट जनता के प्राइवेट दैनिक जीवन के विषय में जानने की इच्छा रखनेवालों के लिए यह पुस्तक बड़े काम की है। इसके लेखक डाक्टर सत्यनारायण जी ख्यातिनामा लेखक हैं। आशा है, आपकी रचनाओं से हिन्दी-साहित्य की गौरववृद्धि होगी। और पाठक इस रचना का संग्रह कर डाक्टर साहब को हिन्दी में अन्य पुस्तकें लिखने के लिए प्रोत्साहन देंगे।

(२) **वेदना**—लेखक और प्रकाशक, श्रीयुत सच्चिदानन्द तिवारी, पंचराव-चुनार, मिर्ज़ापुर हैं। मिलने का पता, इंडियन प्रेस, लिमिटेड, बनारस-ब्रांच है। पृष्ठ-संख्या ३८ और मूल्य छः आना है। छपाई-सफ़ाई उत्तम है।

'वेदना' में व्यथित प्रेम का करुण राग है। पुस्तक के परिचय-लेखक ने लिखा है—"पढ़ते-पढ़ते कहीं कहीं ऐसा प्रतीत होगा कि किसी किसी कविता के किसी किसी चरण का कोई अंश वर्तमान काल के किसी प्रसिद्ध कवि की रचना में से उठा लिया गया है। पर इतना विश्वास के साथ कहा जा सकता है कि यह कार्य जान-बूझकर नहीं हुआ।" जिस प्रकार दूसरों के शब्द और वाक्यांश अनायास ही नवीन काव्याभ्यासियों की रचनाओं में स्थान पा जाते हैं, उसी प्रकार कतिपय भावनायें भी हिन्दी-कविता के वातावरण में कुछ ऐसी व्याप्त हो गई हैं कि नवयुवक कवि उन्हें अपनाने का लोभ सहसा संवरण नहीं कर पाते। किसी भावना-विशेष को जितना अधिक प्रकाशन मिले, वह अच्छा ही है। परन्तु इस कार्य में कवियों के स्वतंत्र व्यक्तित्व को विकास का अवकाश नहीं मिल पाता।

फिर भी हम मान सकते हैं कि 'वेदना' की वेदना कवि की स्वयं अनुभूति है। इसके विपरीत अनुमान करने का हमारे पास कोई कारण नहीं। हम आशा करते हैं कि हिन्दी के पाठक इस एक और वेदना-संगीत में अपनी अपनी व्यथायें ढूँढने का प्रयत्न करेंगे।

कविताओं की शैली सरल और स्पष्ट है।

(३) **अर्घ्य**—लेखक, श्रीयुत गौरीशंकर ओझा और प्रकाशक, साहित्य-भवन, हास्पिटल रोड, लाहौर हैं।

पृष्ठ-संख्या ७२ और मूल्य बारह आना है। पुस्तक सजिल्द है और छपाई अच्छी है।

'अर्घ्य' छोटी-बड़ी अट्ठाईस कविताओं का संग्रह है।

प्रत्येक नवयुवक कवि जो अपनी पहली रचनाओं को पाठक के सामने उपस्थित करता है, यही आशा करता है कि उसको सहानुभूति और प्रोत्साहन मिले। समालोचक को उस समय तक कवि और उसके पाठक के बीच में बाधक होने की आवश्यकता नहीं, जब तक उसे यह विश्वास हो कि कवि की अमुक कृति पाठकों की रुचि को विकृत न करेगी। यों तो हिन्दी में कविताओं की कुछ ऐसी बाढ़ है कि आये दिन एक नया कविता-संग्रह सामने आ जाता है। फिर भी इसी बाढ़ में से आगे चलकर बहुत कुछ उपयोगी सामग्री भी हाथ लग जाती है। इसलिए अर्घ्य के कवि को हम सहानुभूति और प्रोत्साहन दिये बिना नहीं रह सकते।

'अर्घ्य' की अधिकांश कवितायें भावना में उसी ढंग में की हैं जो छायावादी—रहस्यवादी के नाम से पुकारी जाती हैं, और जो आधुनिकतम यथार्थवाद एवं भौतिकवाद के प्रवाह के कारण कुछ पीछे-सा पड़ गई हैं। कवि की भावुकता संयत और कल्पना मधुर है। वे होनहार प्रतीत होते हैं। कुछ कवितायें वास्तव में सरस हैं। हम पाठकों से उनके इस पहले संग्रह को पढ़ने की सिफ़ारिश करते हैं।

४—युगवाणी—लेखक, श्री सुमित्रानन्दन पन्त और प्रकाशक, भारती-भण्डार, लीडर प्रेस, इलाहाबाद हैं। पृष्ठ-संख्या ११३ और मूल्य १।) है। छपाई-सफ़ाई तथा गेट-अप उत्तम है।

'पल्लव' के तीव्र और स्थायी 'सा' के बाद 'रे' के तीव्रता और कोमलता मिश्रित उन्मन 'गुञ्जन' को सुनकर यह आशंका होने लगी थी कि कहीं यह कवि अनुभूति के उद्गार व्यक्त कर लेने के बाद कल्पना के सुनहरे आकाश में भटक तो नहीं जायगा। यह आशंका उनके कल्पना-नाटक 'ज्योत्स्ना' ने और दृढ़ कर दी थी। परन्तु युग की पुकार सुनकर उन्होंने आकाश के बनती-मिटती नीहारिका की ओर से दृष्टि फेर ली, और अपने मन से कहा—

देखो भू को!
जीवप्रसू को।
हरित भरित
पल्लवित मर्मरित
कुंजित, गुंजित
कुसुमित
भू को!

और अपने सौन्दर्योपासक मन की सहज-वृत्ति को ही भुला देने का प्रयास आरम्भ कर दिया, और 'ताजमहल' जैसी सौन्दर्य की अभिनव सृष्टि को 'मृत्यु का अमर अपार्थिव पूजन' कहकर अपनी पुरानी कविता का 'युगान्त' कर दिया।

'युगवाणी' में कविता के नये युग की ओर बढ़ने का सन्देश है। हिन्दी के कई कवियों ने विद्रोह-मूलक कवितायें लिखी हैं, जिनमें नई संस्कृति, नये संसार और नये ढंग से वस्तुओं के मूल्यांकन के पर्याप्त लक्षण और संकेत मिल जाते हैं। परन्तु इस तैयारी के साथ सिद्धान्त को इस प्रकार समझ-बूझकर और उसकी व्याख्या करने के बाद नवीन विचार-धारा की कविता लिखने का उपक्रम पन्त जी का अपना अकेला है। कदाचित् कवि को अपने सौन्दर्य-प्रेमी मन को समझाने के लिए और उसे दूसरी दिशा में मोड़ने के लिए इस बौद्धिक उपचार की आवश्यकता अनिवार्य जान पड़ी। 'युगवाणी' गीत-गद्य है, जिसमें, कवि के ही शब्दों में, 'युग के गद्य को वाणी देने का प्रयत्न किया गया है।' अतः युगवाणी की आलोचना करते समय हम काव्य की दृष्टि को भुलाकर यह देखने का प्रयास करेंगे कि कवि युग की गद्य-भावना को व्यक्त करने में कहाँ तक सफल हुआ है और भविष्य में जिस काव्य का वह निर्माण करेगा (यदि करे तो), उसका क्या स्वरूप होगा। तुलना करके समझना मोटी अक़्ल का काम होता है, फिर भी कामचलाऊ ढंग से हम कह सकते हैं कि पन्त जी की ये रचनायें भारतेन्दु की खड़ी बोली की रचनाओं के समान कही जा सकती हैं; जिनमें काव्य के प्रकृतगुणों का अपेक्षाकृत अभाव होते हुए भी भावी कविता की ओर एक संकेत था, देश-भक्ति की कविताओं की भूमिका थी। देश-भक्तिपूर्ण राष्ट्रवाद और साम्यवाद में जो अन्तर अनिवार्य है वही अन्तर

लगभग भारतेन्दु और पन्त जी की कविताओं में है। प्रेरणा एक ही है, प्रवृत्तियाँ भिन्न हैं।

परम्पराओं का उन्मूलन---चाहे वे परम्परायें साहित्य में हों, चाहे समाज में---'युगवाणी' का सर्वव्यापी भाव है---

खुल गये छन्द के बंध,
प्राश (स?) के रजत पाश,
अब गीत मुक्त
औ' युगवाणी बहती अयास!
बन गये कलात्मक भाव
जगत् के रूप नाम
जीवन संघर्षण देता सुख
लगता ललाम
सुन्दर, शिव, सत्य
कला के कल्पित माप-मान
बन गये स्थूल,
जग-जीवन से हो एक प्राण।
मानव स्वभाव ही
बन मानव-आदर्श मुकर
करता, अपूर्ण को पूर्ण
असुन्दर को सुन्दर।

यह स्थूलता की प्रतिष्ठा ही नई दृष्टि को अभीष्ट है, क्योंकि स्थूलता में ही सत्य है, कल्पना में नहीं। जब यह बात है, तो समाज और साहित्य सभी को आदर्श और कल्पनात्मक दृष्टिकोण से न देखकर स्थूल, भौतिक दृष्टिकोण से देखना पड़ेगा। निश्चय ही यह दृष्टिकोण मार्क्स-द्वारा प्रचारित समाजवाद के दार्शनिक पक्ष, द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद का दृष्टिकोण है। मानव-जगत् से सम्बन्धित प्रत्येक प्रश्न पर इसी दृष्टिकोण से विचार किया गया है। हमारी अब तक की समाज-व्यवस्था जिसका आधार पूँजीवाद है और जिसका इतिहास वर्ग-संघर्ष का इतिहास है, काल्पनिक स्वर्ग के लोभ में जन-समूह की उठती हुई आकांक्षाओं को दबाये रही है। उस जन्नत की हक़ीक़त को जान लेने के बाद हमारा कवि महज़ दिल को खुश रखने के लिए---केवल व्यक्तिगत स्वार्थ-सिद्धि के हेतु---इस खयाल को बनाये रखना नहीं चाहता। यदि जन-समूह को अपने जर्जर शरीर के पोषण के लिए रक्त-मांस की आवश्यकता है तो वह उन्हें स्वादिष्ठ भोज्य के काल्पनिक चित्र पर खींच कर भरमाना नहीं चाहेगा, वह तो उनके लिए स्थूल खाद्य के ढूँढ़ने का प्रयत्न करेगा। 'युगवाणी' में युग की इस आवश्यकता की माँग का अनुभव किया गया है! भले ही यह माँग सभी जगह परिस्थितियों की विषमता के कारण कानों से न सुनाई दे रही हो; परन्तु उसके अस्तित्व और सत्य में तनिक भी सन्देह नहीं किया जा सकता। युग की इस मूक-भावना को समझने और उसको वाणी प्रदान करने में ही 'युगवाणी' की सार्थकता है। केवल इतने से ही हम 'युगवाणी' की सफलता घोषित कर सकते हैं।

जैसा कि पहले कहा जा चुका है, 'युगवाणी' में सिद्धान्त की बात विशेष रूप से कही गई है। यह अवश्य है कि कवि की भावुकता यत्र-तत्र बिखरकर इस सिद्धान्त-निरूपण में भी काव्य और कल्पना का संचार कर देती है---विशेषकर प्राकृतिक चित्रों के उपस्थित करने में। परन्तु ऐसा कवि ने जान-बूझकर नहीं, कदाचित् स्वभाव से विवश होकर कर दिया है। काव्य-प्रेमियों को सम्भवतः ऐसे ही स्थल-विशेष प्रिय होंगे। परन्तु कवि को इससे विशेष हर्ष नहीं हो सकता। उसे तो हर्ष तब होगा जब मनुष्य पहले भौतिकवाद को अपना ले और अपने सामूहिक सुख के लिए व्यक्तिवाद और व्यक्तिगत स्वार्थों को छोड़कर एक सम्पन्न, समृद्ध मानव-परिवार बनाने का प्रयत्न करने लगे। इतनी व्यवस्था हो जाने के बाद वह कदाचित् स्थूल भौतिकवाद को छोड़कर आत्मा और आदर्श की महत्ता को भी स्वीकार कर लेगा। संकीर्ण भौतिकवादियों से उसने स्वयं कहा है---

आत्मवाद पर हँसते हो भौतिकता का ले नाम?
मानवता की मूर्त्ति गढ़ोगे तुम सँवार कर चाम?

वस्तुवाद ही सत्य, मृषा सिद्धान्तवाद, आदर्श?
बाह्य परिस्थिति के आश्रित अन्तर जीवन उत्कर्ष?

मानव कभी भूल से भी क्या सुधर सकी है भूल?
सरिता का जल मृषा सत्य केवल उसके दो कूल?

भौतिकवाद की इतनी स्पष्ट और खरी आलोचना क्या किसी भौतिकवादी के मुख से निकल सकती है?

निम्न पंक्तियों से तो वह फिर रहस्यवाद की ओर लौटता-सा जान पड़ता है—

भौतिकता, आध्यात्मिकता केवल उसके दो कूल,
व्यक्ति-विश्व से, स्थूल-सूक्ष्म से परे सत्य के मूल।

'समाजवाद-गांधीवाद' शीर्षक रचना में तो वह इन दो विरोधी समझे जानेवाले विचारों में सामञ्जस्य करने का प्रयत्न करता है। और 'वापू!' में वह सत्य, अहिंसा, प्रेम के मधुर-स्वर्ग और आत्म-शक्ति की महिमा को स्वीकार करता है। अपनी विचार-शैली समझाने के लिए उसने लिखा है—

भूतवाद उस स्वर्ग के लिए है केवल सोपान,
जहाँ आत्मदर्शन अनादि से सयासीन अम्लान।

केवल रूप में विश्वास करनेवाले जड़वादी अपने विचारों से इस शैली का मेल नहीं मिला सकते। अनादि, आत्म-दर्शन और स्वर्ग आदि की शब्दावली में विचार करने का उनका ढंग नहीं है। उनके विचार से तो कवि ने सच्ची वात वहीं कही है जहाँ वह कहता है—

रूप रूप वन जायँ भाव स्वर,
या
आत्मा ही वन जाय देह नव
और
स्वप्न वस्तु वन जाय सत्य नव,
स्वर्ग मानसी ही भौतिक भव,
अन्तर जग ही वहिर्जगत
वन जावे, वीणापाणि, इ!
युग की वाणी!

किन्तु गीत-गद्य लिखते हुए भी कवि अपने सहज गुण को कैसे छोड़ सकता है! यदि उसे पूर्ण भौतिकवादी वनना होगा तो वह गद्य ही लिखेगा जिसका गीत होना आवश्यक न होगा। दूसरे, भारत में रह कर यदि कोई 'युगवाणी' लिखने वैठेगा तो महान् युग-पुरुष गांधी को वह कैसे भूल सकेगा? आदर्शवादी और आत्मवादी होते हुए भी क्या गांधी ने ही भूखी जनता के भौतिक सुखों की अनिवार्य माँग की पुकार विश्व के कोने कोने में नहीं गुँजा दी है?

आशा है कि हमारे लेखक और कवि इस 'युग-वाणी' को समझेंगे और अपने आख्यानों और छन्दों के माध्यम से उसे जन-जन के स्वर से उच्चरित करवाकर उसकी पुकार को अदमनीय और अपरिहार्य वना देंगे। वास्तव में 'युगवाणी' का स्वर अभी इतना ऊँचा नहीं है कि वे लोग इसको सुन और समझ सकें जिनके भावों को भाषा प्रदान करने का इसमें प्रयास किया गया है। इसकी अपील अभी कदाचित् उन्हीं लोगों से है जिन्होंने अकिंचनों के शोषण से मोटे होकर मानव-संस्कृति को 'ऊर्ध्व-मूल' वना रक्खा है। 'युगवाणी' कदाचित् उनके लिए इस वात की चेतावनी भी है कि शीघ्र ही इस वालू की भीत का भरभराकर गिर पड़ना अनिवार्य है। सम्भवतः इसके वाद स्वयं पन्त जी भी सीधे उन लोगों के समीप पहुँचकर 'युगवाणी' का सन्देश दे सकने में समर्थ होंगे जिनके सामूहिक प्रयास के विना कवि की नई मानव-सृष्टि की कामना केवल स्वप्न रह जायगी। 'युगवाणी' उस अधिक आवश्यक कार्य की तैयारी और भूमिका मालूम होती है। जनता की आकांक्षाओं, उसके उत्साह और रोष तथा विद्रोह एवं संघर्ष के वढ़ते हुए अरमानों का चित्रण करने के लिए काव्य की प्रकृत-प्रवृत्ति से संन्यास लेने की कदाचित् कोई आवश्यकता न होगी। उस समय कवि को संध्या-समय गंगा के किनारे एकांत में सौन्दर्य-सुख भोगने का क्षणिक लोभ भी नहीं होगा। क्या पंत जी विद्रोह का विगुल वजाकर 'युगवाणी' को भीड़ का कोरस गान वना सकेंगे?

व्रजेश्वर

हिन्दी का स्वरूप

लेखक, श्रीयुत सन्तराम, बी० ए०

एक समय की बात है, भाई परमानन्द जी अमरीका में थे। वे जिस अमरीकन परिवार में ठहरे हुए थे उसका एक बालक उनसे बहुत हिल-मिल गया था। एक दिन भाई जी को डाक में भारत से एक चिट्ठी मिली। उस समय वह बालक भी उनके निकट ही बैठा था। उसने भाई जी से कहा, यह चिट्ठी तनिक मुझे दीजिए; मैं देखना चाहता हूँ कि आप लोगों की लिपि और भाषा किस प्रकार की है। परन्तु चिट्ठी को अँगरेज़ी में लिखी देख उसके आश्चर्य की कोई सीमा न रही। वह चकित होकर बोला—ऐं! यह क्या? यह तो हमारी भाषा है। क्या आपकी अपनी कोई भाषा नहीं? श्री भाईजी के हृदय पर बालक के मुख से अनायास निकले इन शब्दों से भारी चोट लगी। वे कोई उत्तर न देकर चुप रह गये।

भारत में गांधी-युग के पूर्व के राजनैतिक नेता और राष्ट्रकर्मी लोग अँगरेज़ी-भाषा में ही परस्पर विचार-विनिमय किया करते थे। भारतीय राष्ट्रवादी कहलाते हुए एक विदेशी भाषा को अपनाने में उन्हें कभी लज्जा का अनुभव ही न होता था। गांधी-युग के आरम्भ में ही लोगों को इस लज्जा का अनुभव हुआ। विदेशी लोग भारतीयों से पूछते थे कि यदि भारत एक राष्ट्र है तो जैसे फ़रासीसी राष्ट्र की भाषा फ़्रैंच, जैसे जर्मन राष्ट्र की भाषा जर्मन और जैसे इटालियन लोगों की भाषा इटालियन है, वैसे आपकी राष्ट्र-भाषा कौन है? इस पर भारतीय भाषाओं में से एक ऐसी भाषा को चुनने की चेष्टा की गई जिसके बोलने और समझनेवाले लोग भारत में सबसे अधिक हों। इस प्रकार सर्व-सम्मति से 'हिन्दी' ही भारत की राष्ट्र-भाषा निर्वाचित हुई। यहाँ यह न समझा जाय कि किसी पक्षपात से या गुण-दोष की परीक्षा किये बिना ही हिन्दी को यह पद दे दिया गया। अँगरेज़ी-भाषा के आगमन से पूर्व चार धाम और सात पुरियों की यात्रा करनेवाले साधु-सन्त और भक्त यात्री इसी भाषा में एक-दूसरे से बातचीत किया करते थे। परन्तु हिन्दी को राष्ट्र-भाषा का आसन प्रदान कर देने के बाद महात्मा गांधी आदि राष्ट्र-नेताओं के सामने एक बड़ी कठिनाई आई। यद्यपि बंगाल, बिहार, उड़ीसा, मदरास, बम्बई, गुजरात, मध्यप्रदेश, सिंध और पंजाब के मुसलमान उर्दू अर्थात् अरबी-फ़ारसी के शब्दों से भरी हुई लश्करी भाषा से उतने ही अनभिज्ञ थे जितने कि उन प्रान्तों के हिन्दू, तो भी उन्होंने मुस्लिम सभ्यता और संस्कृति की रक्षा के नाम पर हिन्दी का विरोध करना आवश्यक समझा। परिणाम यह हुआ कि स्वच्छ हिन्दी को गँदला करके 'हिन्दी यानी हिन्दोस्तानी' का नाम एवं रूप देने की चेष्टा आरम्भ हुई। इस नवीन राष्ट्र-भाषा का रूप देखना हो तो श्री जवाहरलाल जी की जीवनी का हिन्दी-संस्करण, कानपुर के राष्ट्रवादी पत्र 'प्रताप' या 'स्वाधीन भारत' को देख सकते हैं। इस भाषा का प्रचार करने के लिए हिन्दी में बलात् फ़ारसी अरबी के गला-घोंटू शब्द ठूँसे जाने लगे। जैसे कोई व्यक्ति अपने को हिन्दू-मुस्लिम एकता का कट्टर भक्त प्रकट करने के लिए अपनी दाईं ओर की मूँछ और दाढ़ी उस्तरे से चट्ट कराकर बाईं ओर की मूँछ और दाढ़ी रख ले, और दाईं टाँग में धोती एवं बाईं टाँग में सिलवार पहनकर फिरने लगे, वैसे ही नमूने की यह 'हिन्दी यानी हिन्दोस्तानी' बनने लगी है। उस दिन १८ जून सन् १९३८ के 'स्वाधीन भारत' में 'फ़िरका-परस्त स्वयम्भू नेता,' 'ख़त किताबत का विवरण और क़ौम परस्ती छोड़ मुल्क का सारा हक़ ले लें' प्रभृति वाक्य देख जी मचलाने लगा। फिर एक बड़े आश्चर्य की बात यह है कि जिन लोगों को फ़ारसी-अरबी के शब्दों का कुछ भी ज्ञान नहीं वे इन शब्दों का उपयोग करके बहुत प्रसन्न होते हैं और अपने को ऐसी घिनौनी भाषा के कट्टर पक्षपाती प्रकट करते हैं। एक मित्र ने सुनाया कि ऐसी आधा तीतर आधा बटेरवाली भाषा के प्रचारक एक महाराष्ट्र सज्जन लाहौर में स्त्रियों की एक सभा में भाषण करने गये। वहाँ जाकर आप कहने लगे—"बहनो, आपको चरखा कातते देख मैं इतना ख़ुश हुआ हूँ कि आप पर आशिक़ हो गया हूँ"।

यह ठीक है कि विदेशियों के सामने कहने के लिए भारतीय राष्ट्रवादियों के पास 'हिन्दी यानी हिन्दोस्तानी' भाषा हो गई है, परन्तु यदि कोई विदेशी इनसे पूछ बैठे कि जैसे फ़्रैंच में, इँग्लिश में, रशियन में उच्च कोटि का

साहित्य है, जिसका रसास्वादन करने के लिए ही अनेक विदेशी उन भाषाओं का अध्ययन करते हैं, वैसे भारत ऐसे विशाल राष्ट्र की राष्ट्र-भाषा 'हिन्दी यानी हिन्दोस्तानी' में कौन-सा ऐसा साहित्य है, तो हमारे राष्ट्रवादी लोग उसे क्या उत्तर देंगे। हिन्दी में तुलसीदास, सूरदास, बिहारी, भूषण आदि कई ऐसे कवि और महात्मा हो गये हैं जिनकी कृतियों का आनन्द लेने के लिए अन्य भाषा-भाषी लोग भी इस भाषा का अध्ययन करने के लिए तैयार हो सकते हैं। परन्तु 'हिन्दोस्तानी' का तो इस दृष्टि से दीवाला ही निकला हुआ है। उसके पास तो इतनी भी सम्पत्ति नहीं जिसे पाने के लिए विदेशियों का तो कहना ही क्या, बंगाली, महाराष्ट्र, तेलगू, तामिल और गुजराती आदि स्वदेशी लोग भी लालायित हों। भारत के इन विभिन्न प्रान्तों की भाषाओं का साहित्य अब भी इतना उन्नत है कि 'हिन्दी यानी हिन्दोस्तानी' को उनकी बराबरी करने को सौ वर्ष चाहिए। उन लोगों को क्या आवश्यकता है कि अपनी उन्नत साहित्यवाली भाषाओं को छोड़कर एक घिनौनी-सी भाषा को अपनायें। भारत की राष्ट्र-भाषा में अपना भी कोई सहज गुण होना चाहिए, जिससे लोग उस पर प्रेम करने लगें। केवल डण्डे के डर या धींगाँ-मुश्ती से ही सब लोग उसके अनुरागी नहीं हो सकते।

आजकल एक और भी प्रवृत्ति देखने में आ रही है। उर्दू और अँगरेजी चाहे कितनी भी क्लिष्ट हों, कोई उन्हें क्लिष्ट नहीं कहेगा। परन्तु हिन्दी में संस्कृत का एक भी शब्द आ जाने पर राष्ट्रवादी लोग उसे क्लिष्ट और पंडिताऊ कहकर छिः-छिः करने लगते हैं। इन्होंने समझ रक्खा है कि हिन्दी में केवल बच्चों को सुनानेवाली कहानियाँ या मनोविनोद की बातें ही होनी चाहिए, उच्च दार्शनिक और वैज्ञानिक विषयों की पुस्तकों की हिन्दी में आवश्यकता ही नहीं। यदि आवश्यकता है तो फिर वे बतायें कि बोल-चाल की भाषा में जिसे वे 'हिन्दोस्तानी' कहते हैं, वे पुस्तकें कैसे लिखी जा सकती हैं। ये लोग समद्विभुज, त्रिकोण, समकोण, त्रिभुज या तापमापक को तो कठिन कहेंगे, परन्तु मुसल्लस मुतसावी उल-साक़ैन, मुसल्लस मुतसावी-उल जवाया, मिक्यासुल हरारत यादोजनका पर इनको कोई आपत्ति न होगी। ये पारिभाषिक शब्द

पंजाब में लोअर मिडिल के लड़कों को याद कराये जाते हैं।

पंजाब में फ़ारसी-अरबी के शब्दों का प्रचार पहले बिलकुल न था। यहाँ के लोग क़, ख़, ग़, ज़, फ़ आदि विदेशी वर्णों का ठीक ठीक उच्चारण कर ही नहीं सकते। परन्तु आरम्भ से उर्दू पढ़ाकर उर्दू कोर्सों के साथ फ़र्हङ्ग (शब्दार्थ कोष) रटाकर, हैदराबाद (दक्षिण) के सदृश यहाँ भी इनका खूब प्रचार किया गया है। अब तो अवस्था यह है कि जिनके माता-पिता संस्कृत के विद्वान् थे, जिनके कुल में सनातन परिपाटी चली आती थी, वे ब्राह्मण-बालक भी वालिद, वालिदा, हमशीरा, इल्म, मज़हब, इंसाफ़, दुआ आदि शब्द घरों में बोलते हैं, यद्यपि ग्रामीण लोग अब भी माँ-बाप, बहन, ज्ञान, धर्म, न्याय, असीस कहते हैं। पंजाबी भाषा बड़ी मीठी है। इसमें शुद्ध संस्कृत-शब्द बहुत हैं। पंजाब के मुसलमान लेखकों तक ने उनका उपयोग किया है। परन्तु उर्दू के इस बलात् प्रचार से वे शब्द धीरे-धीरे लुप्त होते जा रहे हैं। आज से कोई चालीस-बयालीस वर्ष पहले जब मैं तीसरी कक्षा में पढ़ा करता था तब हमें 'तौबातुननसूह' नाम की एक पुस्तक पढ़ाई जाती थी। उसकी भाषा का एक नमूना आगे देता हूँ—

"ज़िन्दगी के तमामतर एहतमालात ज़ुईफ़ थे। आख़िर चारोनाचार उसे समझना पड़ा कि अब मैं दुनिया में चन्द साअत मिहमान और हूँ। अव्वआने मर्ग के साथ पहला क़लक़ उसको दुनिया की मुफ़ारक़त का था। मरना वह सफ़र है जिसका इनक़ताअ नहीं, वह जुदाई है जिसके बाद वसाल नहीं, वह गुमशुदगी है जिसकी कभी बाज़ याफ़्त नहीं।

"इलाही ख़िलअते हफ़्त पार्चए हवासे ख़मसा व अक़्लो रूह से सरफ़राज़ी दी है तो मनसबे ईमानदारी भी अता कर कि ख़िताबे अशरफ़ुल-मख़लूक़ात मेरी हालत के मुनासिब हो। ख़ुदावन्दा, अपने हबीब का उम्मती बनाने से इम्तियाज़ बख़्शा है तो तक़रीबे इबादत भी नसीब कर कि अलताफ़ करीमानए शिफ़ाअत और अवातफ़े ख़ुसदवानाए रहमत की मुझ को क़ाबिलियत हो।"

तीसरी कक्षा के बच्चे के लिए जिसकी मातृ-भाषा पंजाबी हो, उपरिलिखित पाठ कितना कठिन है, इसका

अनुमान पाठक स्वयं ही करें। परन्तु रोज के प्रचार से जिस बात का अभ्यास हो जाता है वह फिर कठिन नहीं रहती। बंगाल और महाराष्ट्र में संस्कृत के जैसे सुन्दर शब्द घरों में स्त्रियाँ तक बोलती हैं वे उर्दू-आक्रान्त संयुक्त प्रान्त के पढ़े-लिखे लोगों को भी क्लिष्ट जान पड़ते हैं। ग़ालिब, मीर, ज़ौक, अनीस आदि उर्दू-कवियों का अनन्य भक्त संयुक्त-प्रान्त संस्कृत से दूर भागकर अपने पाँव पर आप कुल्हाड़ा चला रहा है। नवीन और उच्च भावों को प्रकट करने में जितनी सहायता संस्कृत से मिल सकती है, उतनी 'हिन्दी यानी हिन्दोस्तानी' से नहीं। बंगाली और मराठी में जितने उच्च कोटि के ग्रन्थ मिलते हैं, उतने हिन्दी में नहीं। इसका प्रधान कारण भी संयुक्त-प्रान्तवालों का संस्कृत का संसर्ग छोड़कर फ़ारसी-अरबी की दासता स्वीकार करना है। संयुक्त-प्रान्त हिन्दी का घर समझा जाता है। हिन्दी सीखने के लिए दूसरे प्रान्तों के लोग स्वभावतः यहाँवालों का अनुकरण करना चाहते हैं। परन्तु संयुक्त-प्रान्त की अब तक भी अवस्था ऐसी है कि वहाँ सौ पीछे दो भी वकील, मुंसिफ़ या जज ऐसे न मिलेंगे जो उर्दू के स्थान में अपना काम हिन्दी में करते हों। परमात्मा को धन्यवाद है कि अब डाक्टर धीरेन्द्र वर्मा और पण्डित बाबूराव पराडकर प्रभृति कुछ सज्जन ऐसे दृष्टिगोचर होने लगे हैं जो 'हिन्दी यानी हिन्दोस्तानी' की हानियाँ समझकर संयुक्त-प्रान्त के हिन्दी-लेखकों को सन्मार्ग पर लाने का यत्न कर रहे हैं। उर्दू-आक्रान्त संयुक्त प्रान्त के कुछ लेखकों को छोड़कर शेष सभी प्रान्तों के लेखकों की प्रवृत्ति स्वभावतः संस्कृत-बहुल हिन्दी लिखने की ओर है। कारण यह कि संस्कृत एक ऐसा भाण्डार है जिसमें से भारत की सभी भाषायें शब्दों का दान प्राप्त करती रही हैं। नीचे मैं एक बंगाली और एक महाराष्ट्र हिन्दी-लेखक के लेख का नमूना देता हूँ। इससे स्वच्छ, सुन्दर और सरस हिन्दी का संयुक्त-प्रान्त के राष्ट्रवादी लेखकों की घिनौनी एवं गँदली हिन्दी से अन्तर स्पष्ट देख पड़ेगा।

"पशु-जीवन की आलोचना करने पर यह ज्ञात हुआ है कि पशुओं में भी सामाजिक जीवन का विकास हुआ है। ऐसे विकासों के अन्तराल में किस शक्ति की लीला है, जिसके कारण प्राणियों में समकक्ष की ओर प्रभावित होने की प्रवृत्ति परिलक्षित होती है? प्रकृति के नियमानुसार संसार में अव्यवस्था से व्यवस्था की ओर, निष्प्रयोजन से प्रयोजन-मूलक कार्य की ओर, अज्ञान से ज्ञानमूलक कर्म-प्रचेष्टा की ओर प्राणियों का विकास हो रहा है।"—सितम्बर सन् १९३९ के मासिक 'विश्व-मित्र' में श्री शचीन्द्रनाथ सान्याल।

और—

"मैं गद्गद हो गया; इस कारण कि उनके मुख पर एक स्वर्गीय आलोक उदित हो उठा था। आँखों में एक पुण्यमय आभा प्रज्वलित हो गई थी। जिसे जनता 'पगली' कहकर पुकारती है, वास्तव में वह अनन्त रहस्य की एक झलक-मात्र है।"—मासिक 'विश्वमित्र' में श्री नारायण श्यामराव चिताम्बरे।

सरल और क्लिष्ट दो सापेक्ष परिभाषायें हैं। जिस शब्द को आज क्लिष्ट अथवा कठिन समझा जाता है उसका अधिक प्रचार हो जाने से वही कल सरल जान पड़ने लगता है। इसलिए हिन्दी में से संस्कृत या प्रान्तीय शब्दों को निकालकर और उनके स्थान में अरबी-फ़ारसी के शब्द बलात् ठूँसकर उसे सरल भाषा मानना भारी भूल है। मैं ऊपर कह चुका हूँ कि पंजाब में बलात् उर्दू का प्रचार किया गया है और किया जा रहा है। ग्रामीणों की पंजाबी बोली में अब तक भी ५० प्रतिसैकड़ा के लगभग शब्द संस्कृत या उसके अपभ्रंश हैं। परन्तु न्यायालयों की भाषा उर्दू होने और सभी सरकारी विद्यालयों में बच्चों को आरम्भ से ही उर्दू पढ़ने पर विवश होने के कारण बोल-चाल में फ़ारसी-अरबी के शब्दों का प्रचार दिन पर दिन बढ़ रहा है। यहाँ तक कि जो अध्यापक स्कूलों और कालेजों में संस्कृत पढ़ाते हैं वे भी हिन्दी-संस्कृत के स्थान में अपनी बोल-चाल और चिट्ठी-पत्री में अरबी-फ़ारसी के शब्दों का ही व्यवहार करते हैं। उस दिन मुझे होशियारपुर के दयानन्द ऐंग्लो वैदिक कालेज से निकलनेवाले 'आर्यकुमार' नामक विद्यार्थियों के पत्र के कुछ अंक देखने का अवसर मिला। मुझे यह देखकर आश्चर्य और दुःख हुआ कि कालेज के संस्कृताध्यापक 'आर्यकुमार' में हिन्दी को छोड़कर उर्दू में—अरबी-फ़ारसी के शब्दों से मुँहामुँह भरी उर्दू में—कविता लिखते हैं। जिन लोगों की पृष्ठभूमि उर्दू-फ़ारसी है वे संस्कृताध्यापक

हो जाने पर भी हिन्दी को कुछ लाभ नहीं पहुँचा सकते, बरन अपने आचरण से उसकी घोर हानि करते हैं। इसी 'आर्यकुमार' के जुलाई, १९३९ के अंक में ग्यारहवीं कक्षा के एक हिन्दू विद्यार्थी का उर्दू में 'तालीम मखलूत व आजादिए निसवाँ' शीर्षक का एक लेख छपा है। उसका कुछ अंश मैं नीचे उद्धृत करता हूँ—

"दुनिया की कोई क़ौम आफ़ताबे इल्म की दरख़शाँ तजल्ली से मुनव्वर हुए बग़ैर न तो जादए रास्त पर गामज़न होने के क़ाबिल होती है, न ही मंज़िले मक़सूद पर पहुँच सकती है। बे इल्म फ़र्द बशर फ़ज़ाए आलम से वाला जव्वे कायनात की फ़ज़ाओं से कमाहक़हु लुत्फ़ अन्दोज़ नहीं हो सकता। क्योंकि इन सरूर अँगेज़ तबक़ात के हदूद तक उसकी रसाई नामुमकिन है। इल्म एक ऐसा चश्मए ख़ुशगवार है जिससे मुस्तफ़ीद होकर इंसान बक़ाए दवाम हासिल कर सकता है। और आसमाने शुहरत पर मिस्ले माह व पर्वी खुरशीदे अनवर व कहकशाँ दरख़शाँ होता है।"

यह उस कालेज की मासिक पत्रिका की बात है जिसका एक बड़ा उद्देश्य हिन्दी-संस्कृत का प्रचार बताया जाता है। इस्लामिया कालेजों की पत्रिकाओं की क्या अवस्था होगी, यह पाठक स्वयं अनुमान कर सकते हैं। पंजाब के हिन्दू राष्ट्रकर्मी लोगों की भाषा एक विचित्र खुरासानी रूप धारण कर रही है। जो नवयुवक संस्कृत-हिन्दी पढ़े हैं और जो नवयुवतियाँ उर्दू पढ़ तक नहीं सकतीं वे भी अपने नेताओं की हिन्दोस्तानी भाषा का अनुकरण करते हुए ग्रामों में जाकर "हमारा नसबुल ऐन (ध्येय) कम्प्लीट इंडिपेंडेंस (पूर्ण स्वराज्य) है" और "पोलीटिकल फ़ज़ा मुक़द्दर हो रही है" प्रभृति वाक्य बोलती हैं।

परन्तु यदि बारहवीं कक्षा की हिन्दी पाठ्य-पुस्तक में कोई निम्नलिखित प्रकार की वाक्यावली आ जाय तो विद्यार्थी तो दूर, उनके एम० ए० और शास्त्री अध्यापक तक "कठिन, कठिन" कहकर चिल्ला उठते हैं—

"जहाँ महा मानव के कलरव से आकाश मुखरित हो रहा हो, जहाँ सर्वहारा नर-नारियों के वक्षस्थल को विदीर्ण करके उसके अन्तस्तल की मर्मान्तिक मर्मवाणी अनवरत समुत्थित हो रही हो, जहाँ नर-नारायण के दुःख-दारिद्रय का संग्राम चल रहा हो, वहीं महापुरुष का कार्य-क्षेत्र होता है।"—वीर-गाथा।

अथवा—

"इस सारी कविता में निखिल सृष्टि के ऊपर इसी माया कुहेलिका-द्वारा छाये हुए अन्धकारमय आवरण-पट को विदीर्ण करके चिरमुक्त आलोक में प्रवेश करने की जीवात्मा की उत्कण्ठा प्रतिध्वनित हुई है। आत्मविलास की स्वार्थमयी वासना के धूम्र-मलिन संकीर्ण हवन-कुण्ड से उदार प्रेमालोकित विश्व-मानवाकाश के चिदानन्दमय भास में उड़ान भरने की जो चिराकांक्षा मनुष्य के अज्ञात मन में सन्निहित है उसी को कवि ने इस अमर नाट्य-ग्रन्थ में प्रदर्शित किया है।"—माधुरी, जून १९३९।

इस सम्बन्ध में एक बात स्मरण रखने योग्य है। उपरिलिखित उर्दू-वाक्यों में अरबी-फ़ारसी के जो शब्द आये हैं वे भारत के लोगों के लिए चाहे कठिन प्रतीत हों, परन्तु जिन देशों में ये भाषायें बोली जाती हैं वहाँ ये कुछ भी कठिन प्रतीत नहीं होते। इसके विपरीत ऊपर दिये हिन्दी-वाक्यों में व्यवहृत संस्कृत-शब्दों का यदि इस देश में भी बहिष्कार किया जायगा तो फिर संस्कृत-शब्दों का प्रचार क्या तुर्किस्तान में होगा? आवश्यकता इस बात की है कि इनका बहिष्कार न करके अधिकाधिक प्रचार और व्यवहार के द्वारा इनको प्रचलित एवं सुबोध बना दिया जाय। यदि रामदेवी इनकी रक्षा न करेगी तो क्या फ़ातिमा और हेलन करेंगी? इस विषय में संयुक्त-प्रान्त के हिन्दी-प्रेमियों और साहित्य-सेवियों का उत्तर-दायित्व बड़ा भारी है। उन्हें इधर-उधर की बहकावट में आकर सन्मार्ग से भटक नहीं जाना चाहिए। यदि वे हिन्दी को कूड़ा-करकट से साफ़ रखने का यत्न करेंगे तो भारत के शेष प्रान्त उनके इस कार्य में अवश्य उनका अनुकरण करेंगे। उन्हें अपने पथ पर दृढ़ रहना चाहिए।

जो लोग समझते हैं कि हिन्दी को आधा तीतर आधा बटेर बनाने से हिन्दू-मुस्लिम-एकता हो जायगी वे हिन्दू-मुस्लिम-वैमनस्य के मूल-कारण को नहीं समझते। मस्जिद के सामने बाजा, गोवध, हिन्दी, सरकारी नौकरियाँ, राज-नैतिक अधिकार इत्यादि बातें झगड़े का मूल कारण नहीं। ये तो उस कारण के बाह्य कार्य या परिणाम हैं। जैसे ज्वराक्रान्त व्यक्ति को ठंडे जल में बैठा देने से उसका ज्वर शान्त नहीं हो सकता, वैसे ही उपर्युक्त बातों को रोक देने से साम्प्रदायिक वैमनस्य दूर नहीं हो सकता।

वैमनस्य का मूल कारण यह है कि जो हिन्दू लालच, भय या किसी दूसरी गिरावट से मुसलमान बनने पर विवश हुए थे उन्होंने पुनः हिन्दू होने का बहुत यत्न किया। परन्तु हिन्दुओं ने न तो उनको शुद्ध करके उनके साथ रोटी-बेटी का व्यवहार करना स्वीकार किया और न उनसे घृणा करना ही छोड़ा, वरन सामाजिक बहिष्कार से उनको मर्माहत करने में कोई कसर न उठा रक्खी। हिन्दुओं की संख्या अधिक और मुसलमानों की बहुत कम होने से मुसलमानों को भय रहता है कि ये हिन्दू कहीं हमें भी अछूत न बना दें। इसलिए भारत में हिन्दुओं के साथ स्वाभिमानपूर्वक इकट्ठे रहने का और कोई उपाय न देख उनके मन में स्वभावतः यह इच्छा होती है कि हमारी संख्या इतनी अधिक हो जाय कि फिर ये हिन्दू हमें दबा या हमसे घृणा न कर सकें। इसलिए प्रत्येक मुस्लिम बच्चे-बूढ़े, स्त्री-पुरुष का प्रयत्न ग़ैर-मुस्लिमों को जैसे भी हो मुसलमान बनाने का रहता है। अपने हीनता के भाव को दूर करने के लिए ही मुस्लिमों को छेड़छाड़ करनी पड़ती है। उधर हिन्दू भी सच्चे हैं। उन्हें एक-दूसरे को नीच और छोटा या अछूत समझने का स्वभाव-सा हो चुका है। वे अनुभव ही नहीं करते कि दूसरे को छोटा या अपवित्र कहने या उसके हाथ का अन्न-जल ग्रहण करने से इनकार करने से उसके स्वाभिमान पर आघात पहुँचता है। उनकी सारी समाज-रचना ही फूट और असमता-मूलक है। वे समता और बन्धुता जानते ही नहीं। उनमें तो जो व्यक्ति दूसरों से जितना पृथक् रहता, दूसरों के स्पर्श-मात्र से अपने को अपवित्र मानता है, उतना ही वह श्रेष्ठ और महात्मा है। हिन्दुओं में ऐसे भी अनेक नमूने हैं जो किसी दूसरी जाति के हिन्दू का भोजन करना तो दूर, जो स्वयं अपनी स्त्री के हाथ का बनाया अन्न भी नहीं खाते। ऐसी अवस्था में न तो हिन्दुओं को मुसलमानों का मनोभाव समझ में आता है और न मुसलमानों को हिन्दुओं का। यदि हिन्दू किसी प्रकार वर्ण-भेद की महाव्याधि से मुक्त हो जायँ तो लाखों मुसलमान, ईसाई, यहूदी आज भी हिन्दू होने को तैयार हैं। आर्य-समाज 'शुद्धि' अवश्य करता है, परन्तु उसकी 'शुद्धि' सिर मूँड़ने और गले में जनेऊ डाल देने तक ही परिमित है। नवागतों के साथ रोटी-बेटी-व्यवहार करने में वह वैसा ही असमर्थ है जैसा कि दूसरे कट्टर-पंथी हिन्दू। यदि वर्ण-भेद मिट जाय तो नवागतों के साथ सामाजिक सम्बन्ध स्थापित करने में कुछ भी कठिनाई न रहे और वे हिन्दू-समाज में ऐसे मिल जायँ जैसे दूध में शक्कर। जब तक ऊँच-नीचमूलक जाति-भेद है जब तक अपने वर्ण के बाहर विवाह करने को हिन्दू पाप समझते हैं, तब तक हिन्दू-मुस्लिम-एकता असम्भव है, चाहे 'हिन्दी यानी हिन्दोस्तानी' को छोड़ अरबी को ही क्यों न भारत की राष्ट्र-भाषा बना दिया जाय। क्या मुग़ल-काल में और उसके बाद भी हिन्दू अरबी-फ़ारसी नहीं पढ़ते रहे? क्या तब दोनों जातियों का ऐक्य स्थापित हो सका था? एक राष्ट्र बनने के लिए जहाँ एक भाषा की आवश्यकता है, वहाँ उसके सदस्यों में रोटी-बेटी-व्यवहार का होना उससे भी कहीं अधिक आवश्यक है परन्तु खेद है कि हिन्दू इस ओर ध्यान देकर अपनी त्रुटि को दूर करने के स्थान में अपनी अच्छी वस्तु को ही ख़राब कर रहे हैं। हिन्दी को बिगाड़कर हिन्दू-मुस्लिम-एकता कभी नहीं होगी। उसका एकमात्र उपाय वही है जो मैंने ऊपर बताया है।

चर्खा ही

महात्मा गांधी लिखते हैं—

बड़ौदा-कालेज के एक विद्यार्थी का कहना है कि यहाँ के हाई स्कूलों और कालेजों के लड़के बहुत कम खादी इस्तेमाल करते हैं। कातता तो शायद ही कोई हो। बरार के एक लगनवाले कार्यकर्त्ता यह दलील देते हैं कि "आप नहीं समझते कि आपकी खादी-सम्बन्धी शर्त सचमुच पूरी होने के लिए है तो स्वराज्य कभी मिलने-वाला नहीं ? आपकी भाईचारेवाली दूसरी शर्त भी उतनी ही असम्भव दिखाई देती है।" यह भाई खुद खादी के प्रेमी हैं, नियम से कातते हैं और सबके साथ भाईचारा बढ़ाने की कोशिश करते हैं। मगर उन्हें सचमुच यह शंका है। चर्खे के अलावा अहिंसा के विषय में भी यह सज्जन यही बात और उतने ही ज़ोर के साथ कह सकते थे। मगर शायद उन्हें इस बारे में कोई शक नहीं है कि चर्खा और भाईचारा अहिंसा की बाहरी और भीतरी निशानियाँ हैं। कालेज के विद्यार्थी और बरारवाले सज्जन दोनों को मेरा एक ही जवाब है। उन्होंने जो कुछ कहा है उससे मैं बेखबर नहीं हूँ। एक खास मियाद के भीतर इन शर्तों को पूरा कराने में जो कठिनाई है उसे मैं जानता हूँ। ऐसी मियाद बताई नहीं गई, पर समझनी तो चाहिए ही। मगर मैं भी क्या करूँ ? मैंने यूँही जिद तो पकड़ नहीं ली। सम्भव होता तो मैं और किसी वजह से न सही, अपनी नेकनामी की खातिर ही दूसरी और ज़्यादा आसान शर्तें रख देता। मगर बात यह है कि जैसे दो भाग हाईड्रोजन और एक भाग आक्सीजन मिलाने से ही पानी बन सकता है, वैसे ही चर्खा और भाईचारा अहिंसा की जरूरी शर्तें और निशानियाँ हैं। मेरा यह पक्का विचार होने के कारण मैं ज़रा भी भरोसे के साथ सामूहिक सविनय-भंग का एलान कर सकूँ, इसके पहले मुझे इन शर्तों के पूरा होने पर जोर देना ही पड़ेगा।

मेरा ईश्वर पर विश्वास है, इसी लिए जनता पर भी है। अगर उसकी मर्ज़ी होगी कि मैं एक लड़ाई और लड़ लूँ तो वह जनता के दिल भी बदल देगा। मेरी बताई हुई शर्तें ऐसी तो नहीं जो किसी तरह पूरी हो ही न सकें। लोग इरादा कर लें तो आज भी कताई और खादी को अपना सकते हैं, वे संकल्प कर लें तो सारी मानवजाति के मित्र बन सकते हैं। चमत्कारों का युग खत्म नहीं हो गया है, वे आगे भी हो सकते हैं। मगर फ़र्ज़ कीजिए कि ये शर्तें पूरी न हुईं तो क्या होगा ? तना ही न कि हिन्दुस्तान और दुनिया मुझ पर हँसेगी और मैं सेनापति के सिंहासन से नीचे उतर जाऊँगा। मगर इसमें तो मुझे खुशी ही होगी। सबसे बढ़कर सन्तोष मुझे यह होगा कि मैं अपने प्रति सच्चा रहा। इस ज़ाहिरा असफलता में मैं ईश्वर का हाथ ही देखूँगा कि ये शर्तें एक ऐसा भ्रम थीं जो उसने राष्ट्र को खड्ड में डालनेवाले युद्ध से बचाने के लिए पैदा किया था।

शुद्ध व्यावहारिक दृष्टि से देखें और मेरी शर्तों को अलग रख दें तो भी कांग्रेस का ढाँचा बिखरने के आसार दिखाई देने लगे हैं। बंगाल की कमेटी ने साफ़ तौर पर विद्रोही रुख अख़्तयार कर लिया है। उड़ीसा में दो दल हो गये हैं। कर्णाटक का हाल भी कुछ अच्छा नहीं। केरल से एक सज्जन लिखते हैं कि प्रान्तीय कमेटी की मौजूदा नीति और नेताओं पर विश्वास नहीं है और वह कार्य-समिति के कार्यक्रम की खिल्ली उड़ाकर उसका असर हर तरह कम करने की कोशिश कर रही है। पंजाब की दशा पहले से ही खराब थी। फिर भी मुझे मालूम है, बात इतनी नहीं बिगड़ी है कि बन ही न सके। मैं यह आशा रखता हूँ कि हालात सुधर जायँगे। पर न सुधरे तो ऐसी बिना अनुशासन की फ़ौज के सहारे इस शंभु-मेले को साथ लेकर मैं विजय प्राप्त नहीं कर सकता। यह कह देना आसान है कि मेरे 'युद्ध' के एलान करने भर की देर है, फिर सब अपने आप ठीक-ठाक हो जायगा। मैं स सिद्धान्त को नहीं मान सकता।

एक और विचार भी रक्खा गया है। जब इनने प्रान्तों में अनुशासन नहीं है, तब क्या यह नहीं हो सकता कि दोष कमेटियों के बजाय नेताओं का अधिक हो। मैं इस धारणा को यूँही फेंक देने को तैयार नहीं हूँ, लेकिन नेता लोग भी क्या करें? उन्हें अपनी समझ से जो ठीक लगता है वही करते हैं। जब तक एक बड़े बहुमत का उन पर विश्वास बना है तब तक वे अपनी जगह नहीं छोड़ सकते। असहयोग के शुरू-शुरू में जब मैंने जगह छोड़ने की बात सुझाई थी तब मौलाना मुहम्मदअली साहब ने कहा था कि "जब लोग हमें चाहते हैं तब हम जगह कैसे छोड़ सकते हैं? ऐसी हालत में जगह छोड़ना तो कायरता है। हाँ, निकाल दिये जाने में बहादुरी है।" मैं उनकी इस बात से उस वक्त भी पूरी तरह सहमत न था और अब भी नहीं हूँ, पर इस दलील में सार बहुत है। कांग्रेस की बागडोर हलके हाथों पकड़नी चाहिए। जरूरत होने पर उसे पल भर में छोड़ देने की तैयारी होनी चाहिए। पीछे से डोर नहीं हिलाना चाहिए। पदों से चिपटे रहने की कोशिश नहीं होनी चाहिए। कांग्रेस का संचालन कोई अफ़सरी नहीं है। यह तो सेवा का काम है। राष्ट्रपति देश के प्रथम सेवक हैं। जहाँ तक मैं कार्यसमिति के सदस्यों को जानता हूँ, मुझे विश्वास है कि इस ज़िम्मेदारी से छूट जाने पर उन्हें खुशी होगी। नये चुनाव भी आ रहे हैं। कांग्रेसवाले जिसे चाहें चुन सकते हैं। इसमें कोई रुकावट नहीं। जवान पीढ़ी के लोग आगे आकर काम सँभाल लें।

विधान-सम्मेलन और सुभाष बाबू

कांग्रेस की इस समय की माँग, विधान-सम्मेलन है। परन्तु श्रीयुत सुभाषचन्द्र वसु इसके विरुद्ध हैं। वे अपने एक लेख में लिखते हैं—

अग्रगामी नीति ग्रहण न करने के पिछले सितम्बर में दो कारण तो बताये ही गये थे। एक तीसरा कारण यह बताया गया है कि सत्याग्रह-आन्दोलन से हिन्दू-मुस्लिम दंगे होने लगेंगे। पंजाब के मजलिस-ए-अहरार ने सितम्बर में अपनी लड़ाई छेड़ दी। तब से क्या हुआ है? यदि कुछ शरारती लोग इधर-उधर साम्प्रदायिक झगड़े उत्पन्न करने में सफल होते हैं तो इससे क्या? क्या इस तरह छुटपुट दंगे १९२१, १९३० और १९३२ में नहीं होते थे? यदि इस कारण को बिना चुनौती के ही छोड़ दिया जायगा तो अग्रगामी नीति को व्यर्थ करने के लिए यह भय सदैव ही हम पर लादा जा सकता है।

सबसे विचित्र बात जो पिछले सितम्बर से हुई है वह स्वराज्य की माँग को त्याग देना और उसके बदले में तथा कथित विधान-सम्मेलन की माँग करना है। नीचे से आनेवाले जनता के दबाव को रोकने के लिए कांग्रेस हाई कमाण्ड ने चतुराई से स्वराज्य के मुख्य प्रश्न को एक कोने में रखकर एक झूठे प्रश्न को सामने खड़ा कर दिया।

पिछले सप्ताह हमने विधान-सम्मेलन के प्रस्ताव का अध्ययन किया था और कहा था कि कांग्रेस-कार्य-समिति अब जो माँग पेश कर रही है वह वास्तव में विधान-सम्मेलन नहीं है। ऐसा सम्मेलन एक साम्राज्यवादी सरकार के अन्तर्गत नहीं बुलाया जा सकता। विधान-सम्मेलन तभी बुलाया जा सकता है जब युद्ध में सफलता प्राप्त होने पर शक्ति राष्ट्रीय सरकार के हाथ में आ जाय। झगड़ा बचाने के लिए और इसलिए कि ब्रिटेन के सलाहकार कहते हैं कि ऐसी माँग पूरी कराने का और मौक़ा आनेवाला है, कांग्रेस हाई कमांड ने राष्ट्रीय माँग को ताक़ पर रख दिया है। हम आशा कर सकते हैं और प्रार्थना करते हैं कि यह माँग (विधान-सम्मेलन) ब्रिटिश सरकार-द्वारा पूरी नहीं की जायेगी, क्योंकि यदि ऐसा होता है तो कांग्रेस नष्ट-भ्रष्ट हो जायगी। सर्वप्रथम पृथक् निर्वाचन जिसको वर्किंग कमेटी ने अङ्गीकार कर लिया है, हमारे सामने है ही; विधान-सम्मेलन की बनावट भी ऐसी होगी कि वह साम्प्रदायिक शक्तियों का रणक्षेत्र बन जायगा और भारत के शत्रु उँगली दिखावेंगे कि ऐसे दुःखान्त विषय का कारण कांग्रेस ही रही है।

यदि यह विधान-सम्मेलन विधान तैयार करने में सफल भी हो जाता है तो ब्रिटिश सरकार को वह विधान भारत में न लागू करने का सदैव एक न एक बहाना मिल जायगा। यदि वर्तमान अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थिति बीच में ही सुलझ जाती है तब तो ऐसी दशा होगी ही।

हमें बड़ा ताज्जुब होता है कि हमारे बड़े नेताओं की समझ में यह नहीं आता कि विधान बनाने के लिए बैठने के पहले वे विधान बनाने की शक्ति प्राप्त करें।

हम पूछ सकते हैं कि क्या उन्होंने यह शक्ति पा ली है ? नहीं। यही कारण है कि हम कहते हैं कि असली विधान-सम्मेलन राष्ट्रीय या स्थानान्तरित राष्ट्रीय सरकार द्वारा ही बनाया जा सकता है।

हिन्दू-महासभा

हिन्दू-महासभा के सम्बन्ध में 'अमृत-बाज़ार-पत्रिका' ने जो अग्रलेख लिखा है वह 'अभ्युदय' में छपा है। उसका अधिकांश यह है—

कलकत्ते में होनेवाली हिन्दू-महासभा के अधिवेशन ने हिन्दू-बंगाल में जो उत्साह उत्पन्न कर दिया है उससे हमारे कांग्रेस-नेताओं को विचार करने का कुछ चारा मिलाना चाहिए। इसको प्रत्याघाती साम्प्रदायिक विचारों का उबाल समझकर विचार न करना बड़ी ही नादानी होगी, क्योंकि हिन्दू-बंगाल काफ़ी कांग्रेसी दृष्टि-कोण का है इस मानी में कि वह पूर्ण राष्ट्रीय स्वतन्त्रता के ध्येय में सच्चा विश्वास रखता है। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस को वैध संस्था क़रार दिये जाने से बहुत पहले बंगाल के हिन्दुओं का यह ध्येय रहा था। उन्होंने अपना जीवन देकर भी इसको अपना ध्येय घोषित किया और आज भी स ध्येय को प्राप्त करने के लिए वे हमेशा की तरह सब प्रकार का कष्ट उठाने और बलिदान करने को तैयार हैं। और न यह उत्साह जो आज हम अपने नवयुवकों में देखते हैं मुस्लिम-विरोधी पक्षपात का फल है। यद्यपि बंगाल के हिन्दू अल्पसंख्यक हैं, फिर भी उन्होंने सदा संयुक्त निर्वाचन का समर्थन किया है—यह जानते हुए भी कि यह प्रथा वैधानिक हिन्दू-हितों को क्षति पहुँचा सकती है। उन्होंने अपने लिए ख़ास रियायतों और रक्षा के आश्वासन की माँग कभी नहीं की और उन्होंने हमेशा अपनी यही राय ज़ाहिर की है कि हिन्दू और मुस्लिम जनता के बीच पृथक् निर्वाचन की जो बनावटी दीवाल खड़ी कर दी गई है यदि वही तोड़ दी जाय तो दोनों क़ौमें स्वतंत्र राष्ट्रीय जीवन के निर्माण के लिए आर्थिक और राजनीतिक क्षेत्र में एक-दूसरे से प्रेमपूर्वक मिलकर काम करेंगी।

फिर क्या कारण है कि हिन्दू-बंगाल राष्ट्रीयता का अन्यतम पुजारी होते हुए भी हिन्दू-महासभा में एकत्र होता जा रहा है, यद्यपि हिन्दू-महासभा को कांग्रेस ने साम्प्रदायिक संस्था और सच्चे राष्ट्रवादियों की निष्ठा के अयोग्य संस्था क़रार दिया है। इसका जवाब सिर्फ़ यही हो सकता है कि हिन्दू-बंगाल ने कांग्रेस के निर्णय को सही नहीं माना है। हमारे नवयुवक कहते कि हिन्दू-महासभा ने निस्सन्देह कांग्रेस के समान ही राष्ट्रीय स्वतन्त्रता को अपना ध्येय घोषित किया है और हिन्दुओं के लिए उसने उन किसी भी राजनैतिक अधिकारों की माँग नहीं की है जिनको कि वह मुसलमानों के साथ बराबरी का हिस्सा-बाँट करने को तैयार नहीं है। अल्पसंख्यक समुदाय के उसके संस्कृति, धर्म और भाषा की रक्षा के हक़ को मनाते हुए इस बात में हिन्दू-महासभा विश्वास नहीं करती कि हिन्दू और मुसमलानों में सच्चा मेल उन साम्प्रदायिक संस्थाओं की लालच को पूरा करने के लिए रियायतें पर रियायतें देने पर हो सकता है, जो संस्थायें भारतीय राजनीति में अपना अधिकार-पूर्ण स्थान बनाये रखने के लिए विदेशी साम्राज्य-वादियों की सहायता प्राप्त करना चाहती हैं। ऐसी रियायतें दूसरे सभुदायों के लिए अन्याय तो हैं ही, वे भविष्य में भारतीयों को भिन्न भिन्न साम्प्रदायिक संस्थाओं में विभाजित करने का भी काम करती हैं और राष्ट्रीय आदर्श पर, जिसका तात्पर्य संयुक्त राष्ट्र है, उलटा असर डालती हैं।

हमारे युवक यह विश्वास करने लगे हैं कि इन बातों में बहुत सचाई है और ब्रिटिश सरकार के अन्यायपूर्ण और अराष्ट्रीय साम्प्रदायिक निर्णय के सम्बन्ध में कांग्रेस ने जो रुख अख़्तयार किया है उससे उनका विश्वास और भी पक्का हो गया है। इस निर्णय ने, जैसा कि सर्वविदित है, हिन्दू-बंगाल पर बहुत सख्त चोट पहुँचाई है।

× × ×

सन्देह और निराशा के कारण ही बंगाल के हिन्दू इस निश्चय पर पहुँचे हैं कि वे अपनी ही शक्ति का संगठनकर साम्प्रदायिक या राष्ट्रीय समस्या का सन्तोषजनक हल निकालने की आशा कर सकते हैं। कदाचित् यही कारण है जिसमें यह साफ़ हो जाता है कि हिन्दू-महासभा (जो कि वर्तमान कठिनाई से निकलने का एक ज़रिया है) के लिए उनमें इतना उत्साह है।

दहेज़ के सम्बन्ध में एक विचार

लेखिका, श्रीमती एल० पी० राज़दान

आजकल स्त्रियों में दाम्पत्य जीवन के सम्बन्ध में असन्तोष फैल रहा है। जो सामाजिक कठिनाइयाँ स्त्रियों के दाम्पत्य जीवन में पेश आ रही हैं उनको दूर करना बहुत जरूरी मालूम पड़ता है। वर्तमान समय में हर एक स्त्री स्वयं को असहाय समझती है। इसका कारण केवल यही है कि आजकल के प्रचलित क़ानून स्त्रियों के सम्बन्ध में बहुत अनुदार हैं। पहले मैं एक ही क़ानून की ओर ध्यान दिलाना चाहती हूँ जो कि आजकल स्त्रियों के विरासत के सम्बन्ध में है। एक हिन्दू स्त्री के जीवन को ले लीजिए। मा-बाप लड़की के पालन और शिक्षण पर इतना धन खर्च करना नहीं चाहते जितने के वे अधिकारी होते हैं। वे उन्हें केवल प्रारम्भिक शिक्षा दिलाकर बस कर देते हैं जो कि लड़कियों के लिए बजाय फ़ायदेमन्द होने के उलटी हानिकारक है। अच्छी शिक्षा दिलवाने का खर्च बहुत बैठता है और मा-बाप सोचते हैं कि लड़की को ऊँची शिक्षा दिलवाने में जितना धन खर्च होगा वह उसके दहेज के लिए क्यों न बचा लिया जाय। पर लड़के के विषय में मा-बाप यही खयाल करते हैं कि यदि खर्च ज्यादा हो जायगा तो हम बाद में किसी अच्छे घर की लड़की से ब्याह करके सब वसूल कर लेंगे। यही सोचकर लड़के के मा-बाप शादी के समय वधू के रूप और शिक्षा की ओर कम ध्यान देते हैं और दहेज की रक़म की ओर अधिक।

[शेरकोट की रानी फूलकुमारी साहबा। आप संयुक्तप्रान्त की प्रसिद्ध महिला तथा लखनऊ-विश्वविद्यालय की सदस्या हैं।]

क्योंकि वे जानते हैं कि यदि वह अच्छा दहेज लायेगी तो हमारे घर के रुपये में जो कमी लड़के की शिक्षा के कारण हो गई है वह पूरी हो जायगी। मेरा विचार है कि इस दशा में अधिकांश लड़कियाँ भी यही
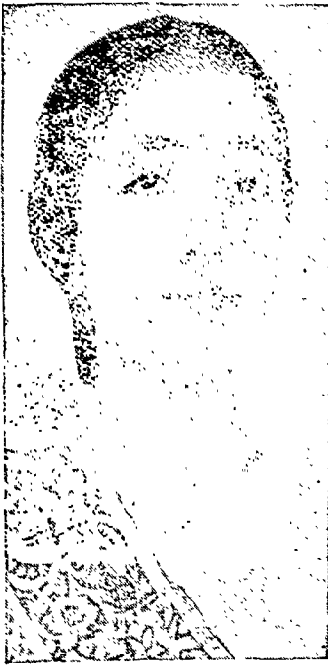
[कुमारी शेरन डी० डोंगजी, आप अमेरिका से गार्हस्थ्यशास्त्र में डिगरी लेकर भारत वापस आई हैं।]

चाहती हैं कि अगर हम किसी ग़रीब घर में व्याही जायँ तो अच्छा है जिससे हमारे मा-बाप दहेज़ के कारण कष्ट में न पड़ें। भले ही हमारी ज़िन्दगी दुःखपूर्ण क्यों न हो। वेचारी लड़कियाँ अपना ही बलिदान करना चाहती हैं; पर क्या यह लड़की के लिए अच्छी बात है? और क्या ऐसी बातें, जो कि हिन्दू समाज में हो रही हैं, सन्तोषजनक हैं? मैं देखती हूँ कि हमारी विवाहिता बहनों में से भी अधिकांश का जीवन ऐसा दुःखी रहता है कि वे रात-दिन भगवान् से मृत्यु की याचना किया करती हैं। क्योंकि दाम्पत्य जीवन की लाञ्छनाओं और वेगार-पूर्ण ज़िम्मेदारियों से छुटकारा पाने के लिए मौत के सिवा और कोई इलाज ही उनके पास नहीं है।

आजकल असेम्बलियों या काउन्सिलों में भी विल पेश किये जाते हैं कि औरतों को भी जायदाद में से हिस्सा मिलना चाहिए; या उसको अपनी जायदाद में बराबर हक़ रहे। पर देखना है कि क्या इस प्रकार के विल हमारी मौजूदा दशा में कुछ लाभदायक हो सकेंगे। मेरा ख़याल है कि यह भी मुनासिब नहीं है कि स्त्रियों को एकदम इतनी आज़ादी दे दी जाय कि वे अपने अभिभावकों के अधीन ज़रा भी न रहें। क्योंकि ऐसा होने पर पारिवारिक जीवन में सुव्यवस्था न रह सकेगी। मैं इसका भी एक हल पेश करती हूँ। सम्भव है कि मेरी कुछ बहनें, जो आज़ादी में बहुत आगे हैं, मेरे ख़याल से सहमत न हों, लेकिन मेरे समझदार और बुज़ुर्ग भाई मेरी तुच्छ सम्मति से अवश्य सहमत होंगे।

एक लड़की के दाम्पत्य जीवन को सुखी बनाने के लिए उसके मा-बाप का कर्तव्य यह नहीं है कि वे उसको उच्च शिक्षा, या जो शिक्षा कि लड़कियों को नुमायशी गुड़िया बनाने की चीज़ है, दिलायें और उसे योग्य भार्या या योग्य माता बनाने के लिए कुछ भी फ़िक्र न करें। न यही है कि लड़की की शादी पर भारी दहेज़ दे दें या जायदाद में से कुछ हिस्सा उसे दे दें। न इसी से कुछ लाभ हो सकता है कि मा-बाप के मरने पर उनकी जायदाद का कुछ हिस्सा लड़की को मिल जाय। बल्कि मा-बाप को यह ध्यान रखना ज़रूरी है कि वे लड़की की शादी ऐसे योग्य और ज़िम्मेदार लड़के के साथ करें जो रूप, गुण, चरित्र

[कुमारी मुक्ताबाई सुब्बाराव (एम० ए० आनर्स) आप निज़ाम सरकार की ओर से छात्रवृत्ति पाकर इँगलेंड में शिक्षा पा रही हैं।]

और व्यक्तिगत विशेषताओं का भूखा हो, या किसी गुण की वजह से ही ब्याह करे। इससे उसका दाम्पत्य जीवन सुख से व्यतीत होगा और यह तभी हो सकता है जब किसी क़िस्म का लालच लड़के के मा-बाप को न हो। इसी सूरत में स्त्री पति के घर में जीवन-संगिनी बन कर रहेगी। ऐसी हालत में आजकल जो घर में लड़ाई झगड़े होते रहते हैं वे भी न होंगे। अब सवाल यह है कि स्त्रियों के लिए कौन-सा ऐसा रास्ता है जिससे वे घर में मालकिन की हैसियत से रह सकती हैं? स्त्री के तमाम सुख-दुःख का साथी उसका पति है और स्त्री को पुरुष के भाग्य-अभाग्य में भाग बटाना पड़ता है। फिर क्या कारण है कि जायदाद वग़ैरह में स्त्री अपने पति से अलग कर दी जाय? एक पुरुष अगर ३०) महीना ले आता है तो स्त्री अपने भाग्य का बदा समझकर उसी पर सन्तोष करती है; लेकिन उसका पति जायदाद वग़ैरह में उसकी राय लेना केवल इसलिए फ़िज़ूल समझता है कि उसका मालिक सिर्फ़ वही है। उसमें स्त्री को राय देने का या दख़ल देने का अधिकार वह नहीं मानता। यह दोष इस प्रकार दूर हो सकता है कि स्त्री को अपने पति की जायदाद पर विवाह के दिन से ही आधे का मालिक बना दिया जाय। ऐसा नियम कर दिया जाय कि पति अपनी जायदाद को—चाहे वह पाँच रुपये ही की क्यों न हो बिना स्त्री के दस्तख़त के न रेहन रख सकता है और न बेच सकता है। अर्थात् यदि पति बेचना चाहता है और पत्नी की राय नहीं है तो वह पत्नी के आधे हिस्से को अलग करने के बाद अपने हिस्से को बेच या रेहन कर सकता है, लेकिन उसके बाद अपनी बीवी के हिस्से पर उसे कुछ भी अधिकार न हो। जब तक बीवी ज़िन्दा रहे वह उसकी मालकिन रहे। पत्नी के मरने के बाद भी उस जायदाद का मालिक पति नहीं बल्कि बच्चे होंगे लेकिन बाप की ज़िन्दगी में ही नहीं, बल्कि बाप के मरने के बाद। और अगर बाक़ी जायदाद या कुछ हिस्सा है तो उसमें से मा के हिस्से का बँटवारा होना चाहिए, या कोई पैतृक जायदाद हो तो उसका मालिक स्त्री नहीं मर्द रहेगा। लेकिन ये बातें अभी चन्द साल तक ही रहेंगी; क्योंकि जब नये क़ानून के मुताबिक़ स्त्री भी पति की जायदाद की बराबर की हिस्सेदार बना दी जायगी तब पैतृक की सूरत ही नहीं रहेगी। फिर मा-बाप की ही जायदाद कहलायेगी और उसके वारिस उन्हीं के बच्चे होंगे। प्रश्न किया जा सकता है कि अगर पत्नी फ़िज़ूल ख़र्च करे, या पति फ़िज़ूलख़र्च हो, और वह अपनी जायदाद को तबाह करने के लिए ही उसको रेहन या बेचना चाहता हो तो उसकी भी रोक-थाम ज़रूरी है। ऐसी हालत में पत्नी या पति को अधिकार होना चाहिए कि इस हिस्से को बचाने के लिए कोर्ट का दरवाज़ा खटखटाये। इसका मतलब यह है कि इस हिस्से पर उनका क़ब्ज़ा हो जायगा बल्कि वह उस हिस्से को अपने बच्चे के लिए किसी ट्रस्टी के मातहत कर सकता है। अगर दोनों ही उसको तबाह कर सकते हैं तो बच्चे की तरफ़ से कोई रुकावट डाली जा सकती है। सवाल यह है कि कोई भी हिस्सेदार यानी स्त्री या पति में से कोई भी अपने हिस्से को किसी सोसाइटी या और ही तरीक़े पर दान करना चाहे या अपने किसी सम्बन्धी को उसमें से कुछ देना चाहे तो न कर सकेगा। उस क़ानून में यह दफ़ा रखनी चाहिए कि पति या पत्नी अपनी जायदाद अपने मरने के बाद जिस तरह भी चाहें कर जायँ कोई भी इसमें हस्तक्षेप नहीं कर सकता। हर एक स्त्री फ़िज़ूलख़र्च नहीं होती और न हर एक पुरुष ही जायदाद को बढ़ाने के लायक़ रहता है। बढ़ाना तो दूर, बहुत ही कम पुरुष जायदाद को बनाये रखते हैं। अगर हम ग़ौर से आजकल के पुरुषों की दशा देखें तो हमको बहुत ही कम पुरुष अपनी जायदाद को बढ़ानेवाले नज़र आयेंगे। आमतौर पर हमारी नज़र में ऐसे ही पुरुष आते हैं जो कम-से-कम किसी भी स्त्री की राय लेना न चाहेंगे, चाहे वह उसकी बुज़ुर्ग मा ही क्यों न हो। मैं एक बात और यह कहना चाहती हूँ कि कम-से-कम स्त्रियों का हक़ उनकी ज़िन्दगी तक तो अपनी जायदाद पर ज़रूर रहना चाहिए ताकि हमारी सोहागिन और बेवा बहनें तो आराम से ज़िन्दगी बिता सकें। भविष्य की लड़कियाँ तो ख़ुद ही अपने लायक़ कोई न कोई रास्ता सोच ही निकालेंगी क्योंकि उनमें स्वतंत्रता का बीज आजकल के पुरुषों की शिक्षा ने बो गया है। भविष्य में वे किसी के अधीन होकर रह ही नहीं सकतीं।

विशेष-सूचना

वर्ग नं० ४२ की शुद्ध-पूर्त्ति में 'अनुसमन' भूल से छप गया है। इसके लिए वर्ग-सम्पादक क्षमा-प्रार्थी हैं। शुद्ध शब्द 'अनुगमन' होना चाहिए। वर्ग-सम्पादक के बाहर से लौट आने पर सरस्वती-सम्पादक ने उनके समक्ष यह मामला पेश किया। फलतः उन्होंने 'अनुसरन' और 'अनुगमन' दोनों शब्दों को शुद्ध मानने की आज्ञा दी। अतः पुरस्कार-विजेताओं की पहली सूची, जो छप चुकी थी, रद्द कर दी गई है और उसके स्थान में यह नई सूची लगाई गई है। प्रतियोगिता इसे ही ठीक समझें। इसी कारण सरस्वती इस बार कुछ लेट हो गई है। आशा हमारे उदार पाठक क्षमा करेंगे।

—सम्पादक

वर्ग नं० ४२ का नतीजा

प्रथम पुरस्कार २००) (शुद्ध पूर्ति पर)

यह पुरस्कार निम्नलिखित १८ व्यक्तियों को दिया गया। प्रत्येक को ११||) मिले।

(१) मदनगोपाल माहेश्वरी, चौक, मथुरा। (२) चनणमल, करसियाँग, दारजिलिंग। (३) सीताराम हेडमास्टर, धर्मजयगढ़, उदयपुर। (४) लोकाबाई, जासूस आफ़िस, बनारस। (५) मिसेज़ बी० आर० दुबे, रंगून। (६) आर० एस० शर्मा, जनरलगंज, कानपुर। (७) आर० के० अग्निहोत्री, पुरवा, उन्नाव। (८) हरगोपाल वर्मा, आसौदा, रोहतक। (९) शिवदत्तप्रसाद वाजपेयी, अजगैन, उन्नाव। (१०) निमादेवी, बरेली बैंक, फ़र्रुख़ाबाद। (११) मदनसिंह, बन्दरोड, इलाहाबाद। (१२) ओम्प्रकाश, बहादुरगंज शाहजहाँपुर। (१३) श्यामप्रसाद, नजीबाबाद। (१४) गंगासिंह, नजीबाबाद (१५) नरोत्तमदास अग्रवाल, मीरगंज, इलाहाबाद। (१६) पृथ्वीपाल गुप्त, कटरा, इलाहाबाद। (१७) केदारनाथ शर्राफ़, बड़ा बाजार, अलीगढ़। (१८) हरकिशनलाल अग्रवाल, पचमढ़ी।

द्वितीय पुरस्कार २००) (एक अशुद्धि पर)

यह पुरस्कार निम्नलिखित ८५ व्यक्तियों में बाँटा गया। प्रत्येक को २।=) मिले।

(१) संगम लाल, कटरा, इलाहाबाद। (२) गिरीशचन्द्र, इलाहाबाद। (३) वेदराल गुप्त, इलाहाबाद। (४) अमीचन्द चोपड़ा, लाहौर। (५) ए० चन्द्र, हथरोई जैपुर। (६) गोविन्द प्रसाद पांडे, फ़ैज़ाबाद। (७) सकलादेवी, नई दिल्ली। (८) कृष्णगोपाल, मथुरा। (९) वृजगोपाल, मथुरा। (१०) बलवीर सहाय, नवीनगर। (११) अयोध्या प्रसाद सिंह, बाँसी। (१२) रामदत्त जोशी, देवलीखेत। (१३) सूरजनारायण चौधरी कानपुर। (१४) चन्द्रमोहन सिंह, कानपुर। (१५) (१५) द्वारका प्रसाद शर्मा, गुमला। (१६) खुशीराम शर्मा, जैतू। (१७) विनायक राव भट्ट, ललितपुर। (१८) गोविनराव भट्ट, ललितपुर। (१९) श्यामकुमार सिनहा, मुज़फ़्फ़रपुर। (२०) भरतसिंह खत्री, देहली। (२१) उदयचंद, जालौर। (२२) भगवती देवी, ललितपुर। (२३) सुषमाकुमारी, बीकानेर। (२४) सीतादेवी, महम। (२५) मित्रदेव उपाध्याय, चौपखिया। (२६) लालसिंह, सोंगरा। (२७) नारायण प्रसाद सक्सेना, बाबरपुर। (२८) ठाकुरदास, अल्मोड़ा। (२९) रामगोविन्द, सहतवार। (३०) ओम प्रकाश, गांधीनगर (कानपुर)। (३१) शकुन्तलादेवी, कानपुर। (३२) द्वारका प्रसाद, शिकारपुर। (३३) रावचन्द्र मिश्र, कानपुर। (३४) कल्याण, मलहौसी। (३५) एच० एन० शर्मा, कानपुर। (३६) ओ० एच० राठौर, कोटा। (३७) प्रेमचन्द गुप्त, एटा। (३८) शारदाप्रसाद, कलकत्ता। (३९) ठाकुर शरणदास, गोरखपुर। (४०) त्रिभुवन नारायण सिंह, धौरूआ, स्टेट। (४१) सुनील कुमार, देहरादून। (४२) भगवती सिंह, कानपुर। (४३) ओमकार दास पाठक, हमीरपुर।

(४४) ठाकुर बाबूसिंह, मानपुर। (४५) श्यामा अग्रवाल, इलाहाबाद। (४६) मोतीलाल मोहन भाई पटेल, खलघाट। (४७) कुँवर वी० सिंह, आगरा। (४८) कुमारी उर्मिला, पंडितपुर। (४९) देवेन्द्र सिंह शास्त्री, मुरादाबाद। (५०) केसर सिंह मुल्तानी, नई दिल्ली। (५१) बरकत राम, पिलानी। (५२) भगवतस्वरूप, फ़िरोज़ाबाद। (६३) कुंजीलाल शर्राफ़, अलीगढ़। (५४) राजाराम श्रीवास्तव, बलुआ। (५५) जनार्दन-लाल, राँची। (५६) बलूराम नरायण, गोरखपुर। (५७) मिसेज़ पी० ए० सिन्हा, इलाहाबाद। (५८) कुमारी सावित्री देवी, कलकत्ता। (५९) गंगाशरण, खड्गपुर। (६०) श्रीनाथसाह, पुरुलिया। (६१) सी० पी० गुप्ता, खान मथुरा। (६२) मार्कण्डेय शुक्ल, इलाहाबाद। (६३) शिवबालक प्रसाद, इलाहाबाद। (६४) जयनारायण लाल, पूर्णिया। (६५) रघुनाथ प्रसाद, ज्ञानपुर। (६६) छोटेसिंह चौहान, नँदगवा। बच्चनासिंह, बनारस। (६८) बर्मेश्वरी प्रसाद, फूलपुर। (६९) रामचन्द्र अग्रवाल, भट्टकलाँ। (७०) प्रतापि-मनोहर सांडल, वृन्दावन। (७१) सुशीला, गांधीनगर, कानपुर। (७२) राजकुमार मित्तल, खुर्जा। (७३) रमाशंकर त्रिपाठी, कानपुर। (७४) आर० के० पंडित, कानपुर। (७५) सुखवासीलाल, रतननगर। (७६) इंदिरादेवी, नई दिल्ली। (७७) माधोप्रसाद, अजगैन। (७८) सुशीला देवी, फ़िरोज़ाबाद। (७९) नंदकिशोर चौबे, बेतिया। (८०) त्रिलोकसिंह, मारकुना। (८१) ब्रजकिशोर, बलरई। (८२) शंकरलाल, सरसावा। (८३) पी० सी० हालन मीरगंज। (८४) शहज़ादेलाल, कानपुर। (८५) काशीलाल, लखनऊ।

उपर्युक्त सब पुरस्कार फ़रवरी के अन्त तक भेज दिये जायँगे।

नोट—जाँच का फ़ार्म ठीक समय पर आने से यदि किसी को और भी पुरस्कार पाने का अधिकार सिद्ध हुआ तो उपर्युक्त पुरस्कारों में से जो उसकी पूर्ति के अनुसार होगा वह फिर से बाँटा जायगा।

केवल वे ही लोग जाँच का फ़ार्म भेजें जिनका नाम यहाँ नहीं छपा है, पर जिनको यह सन्देह हो कि वे पुरस्कार पाने के अधिकारी हैं।

लोचन

[पाठकों को वश में करने योग्य वेशभूषा से सुसज्जित एक प्रगतिशील कविता]

लेखक, श्रीयुत श्रीवर चतुर्वेदी

कैसे आज बताऊँ लोचन?
कमल-नयन यदि कहता हूँ
तो कहलाऊँगा दक़ियानूसी
मृग-लोचनी बताता हूँ तो
बन जाऊँगा भक्षक भूसी।
(प्रगतिशील उपमा की इच्छा
सुन्दर न, हो सत्य अलबत्ता,
यह उनका मत है हे प्रेयसि!
बसते जो कि निकट कलकत्ता!)
परवल से है उपमा कैसी?
प्रेम-रोग में अनोपान का काम सदा देती हैं आँखें,
या वे उछल हृदय पर चढ़तीं ज्यों मेढक की पिछली टाँगें।
कहो रही यह उपमा कैसी?
(बुरा मान मत जाना प्रेयसि!
मेढक अपने में महान् है।
आलोचक जो प्रगतिशील हैं
उनका यह निश्चित विधान है।)
आँख अडूसे की है पत्ती,
या वह नीम-पात से मिलती।
प्रेम-रोग जो सर्दी-जाड़ा
उसमें उनका बनता काढ़ा;
किन्तु नहीं, आलोचकगन को यह भी उपमा अरे! न भाई!
एक प्रयास और करता हूँ।
प्रिये! क्रुद्ध यदि हो जाओगी
घर में कुछ उत्पात मचाकर
फ़ायर जिन के पानी के
हौज सदृश कुछ वारि बहाकर
निश्चय है, चुप हो जाओगी।
किन्तु काव्य के आलोचकगन
मेरी इस युग की कविता में
(जिस युग में रुचि की विकृति है
जहाँ उछलना होती गति है)
उपमा रम्य* देख जो लेंगे
तो वे निश्चय बेचारी को
कर देंगे प्रवाह सरिता में।
इससे प्रिये! विवश हूँ बिलकुल
मैं दूँगा नवीन ही उपमा
जाना पड़े मुझे फिर चाहे
चहबच्चे में तजकर जमुना।
(चहबच्चा निज में महान् है!)
(अतएव)— सदृश करेला आँख तुम्हारी
वैसी कड़ुई
वैसी तीखी
वैसी नोकें प्रिये! तुम्हारी!
औ जब कभी कुपित हो होतीं
जब तुम नयन फाड़ हो देतीं
नीम चढ़े तब तिक्त करेले की उपमा पूरी कर देतीं।
यद्यपि कड़ुआ बहुत करेला
पर बनता स्वादिष्ठ करेला
तेल भुना—खट्टा नमकीन
झंकृत करता उर की बीन।
रँग की केवल एक कमी है
वैसे तो है पूरी उपमा
प्रगतिशील तुम बनकर बिल्ली,
सजनी! हरे करो निज नैना!
पुनश्च— इस कविता में तुक-बेतुक हैं।
अलंकार? वे भी ग़ायब हैं।
स-सुर नहीं, बिलकुल बेसुर है
किन्तु 'आइडिया' तो भीतर है
(पिंजड़े में जैसे तीतर है।)
बोल रहा है गला फाड़कर
संवेदन उठता पाठक उर।
वह हो जाता है मजबूर
सोचेगा सिर धर भरपूर।
इससे यह आदर्श नमूना;
और पुरानी कविताओं को
लग जावेगा इससे चूना!

ब्राडकास्ट निवेदन

काकुशील कवियों से मेरी विनती है हे कृपानिधान!
कविसम्मेलन में यह कविता पढ़कर करो लोककल्यान।'

*नोट—जनवरी की 'सरस्वती' में श्री हजारीप्रसाद द्विवेदी 'कविता का भविष्य' में लिखते हैं—"हे मेढक, तुम सूर्य से भी बड़ी हो, समुद्र से भी और मेढक से भी।" क्योंकि उसकी दृष्टि में अपनी व्यक्तिगत आसक्ति नहीं है। सूर्य और समुद्र अपने आपमें जितने महान् हैं, मेढक भी अपने आपमें उतना ही महान् सत्य है"। "यद्यपि उसकी दृष्टि में कमल का फूल और करैले के फल अपने आपमें समान भाव से सुन्दर हैं, तथापि वह अपनी प्रियतमा की आँख से कमलपुष्प को तुलनीय नहीं बनायेगा। (क्योंकि) उसे इस बात की आशंका रहती है कि पाठक पुराने संस्कारों से बद्ध होने के कारण कहीं उसके नवीन दृष्टिकोण को ग़लत न समझ लें।" "आखिर जो कविता छन्द को भी नहीं मानती, अलंकार को भी नहीं मानती, सुर को भी नहीं मानती, उसको हम कविता कहें ही क्यों? इसलिए कि कविता को जो कार्य अनादिकाल से रहा है—वह कार्य यह कविता कर रही है। वह पाठक को संवेदनशील बनाती है, उसे सोचने समझने को मजबूर करती है, कविता वही है, पाठक बदल गये हैं। इसी लिए उसने पाठक को वश में करने लायक़ वेश-भूषा धारण की है।"

भारतीय समस्या का हल

भारतीय समस्या के हल हो जाने के लक्षण अब दिखाई दे रहे हैं। बम्बई के ओरियंटल क्लब में वाइसराय महोदय ने जो भाषण उस दिन किया है उसमें स्पष्ट शब्दों में कहा है कि भारत को वही डोमीनियन पद दिया जायगा जो कनाडा आदि को दिया गया है। और वाइसराय महोदय के इस महत्त्वपूर्ण भाषण को महात्मा गान्धी ने 'हरिजन' के अपने लेख में समझौता के लिए अच्छा आधार माना है। फिर यह बात भी अखबारों में छपी है कि महात्मा जी की वाइसराय महोदय से फ़रवरी के महीने में भेंट होनेवाली है। ऐसी दशा में इस बात की पूर्ण सम्भावना जान पड़ती है कि इस बार की भेंट में कांग्रेस का ब्रिटिश सरकार से समझौता हो जाने का मार्ग बहुत कुछ खुल जायगा। वास्तव में यह नितान्त आवश्यक बात होगी, क्योंकि संसार के वर्तमान संकट-काल में भारत में भी विषम परिस्थिति का उत्पन्न हो जाना किसी भी पक्ष के लिए हितकर न होगा। और यद्यपि समझौता हो जाने की आशा का उपयुक्त वातावरण अस्तित्व में आ गया है, तथापि समस्या का हल हो जाना उतना सरल नहीं है। यह सच है कि वाइसराय महोदय ने भारत को डोमीनियन का पद दिये जाने का वचन दे दिया है, परन्तु आज कांग्रेस जो वस्तु माँग रही है उसके देने का वचन तो उन्होंने नहीं दिया है। कांग्रेस चाहती है कि भारत का शासन-विधान स्वयं भारतवासी ही बनावें। यद्यपि इस सम्बन्ध में वाइसराय महोदय ने कुछ भी नहीं कहा है, तो भी कांग्रेस की उक्त माँग डोमीनियन पद दिये जाने की बात के भीतर अपने आप ही आ जाती है। कदाचित् यही सब समझकर महात्मा जी ने वाइसराय महोदय के उक्त भाषण को समझौते के लिए वाञ्छित आधार मान लिया है। महात्मा जी के सिवा देश के दूसरे दलों के नेताओं ने भी उक्त भाषण का स्वागत किया है और कहा है कि अब झगड़े की कोई बात नहीं रह गई है। इसमें सन्देह नहीं है कि वाइसराय महोदय के उक्त महत्त्वपूर्ण भाषण से भारत को उसका साम्राज्य में उचित स्थान प्राप्त हो जाता है, अतएव कांग्रेस को आगे आकर ब्रिटिश सरकार से अब समझौता कर ही लेना चाहिए। इस समय राजनीतिज्ञता की भी यही माँग है कि कांग्रेस और ब्रिटिश सरकार में मेल हो ही जाना चाहिए।

योरपीय महायुद्ध तथा फ़िनलैंड का संकट

जर्मनी का फ्रांस और ब्रिटेन से जो युद्ध छिड़ा हुआ है उसमें इधर मार्के की कोई वैसी घटना नहीं हुई है। स्थल में तो कोई युद्ध हो ही नहीं रहा है। हाँ, कभी कभी गश्त लगानेवाले दस्तों में मुठभेड़ हो जाया करती है। दोनों ओर की सेनायें अपने अपने मोर्चों पर अवसर की प्रतीक्षा में जमी बैठी हुई हैं। इसी प्रकार जल तथा आकाश में भी यदा-कदा ही भिड़न्त हो जाया करती है। कहने का तात्पर्य यह है कि युद्ध जिसे कहते हैं वह हो नहीं रहा है। हाँ, उत्तरी समुद्र के मार्ग से जर्मनी में बाहर का माल पहुँच नहीं रहा है। उस दिशा में अँगरेज़ी जंगी बेड़े ने उसे पूर्णरूप से घेर लिया है।

परन्तु फ़िनलैंड में अलबत्ता घमासान मचा हुआ है। उस पर जल, स्थल और आकाश से रूस के आक्रमण पर आक्रमण हो रहे हैं और आश्चर्य की बात यह है कि फ़िनलैंड ने उसका वीरता से सामना ही नहीं किया है, किन्तु कतिपय क्षेत्रों में उसने उसको बुरी तरह से हराया भी है। इस प्रकार रूस का यह पहला आक्रमण विफल ही नहीं हो गया है, साथ ही उसकी प्रतिष्ठा को भी भारी ठेस पहुँची है। बात भी ठीक है। कहाँ रूस और कहाँ फ़िनलैंड! दोनों में आकाश-पाताल का अन्तर है! परन्तु यह सत्य है कि रूस आक्रमण करके फ़िनलैंड का अभी तक कुछ बना-बिगाड़ नहीं सका। इसके लिए फ़िनलैंड-वालों की जितनी भी प्रशंसा की जाय, थोड़ी होगी।

अब रूस फ़िनलैंड पर पुनः आक्रमण करने का आयोजन कर रहा है। इसके लिए उसे जर्मनी से विशेषज्ञ बुलाने पड़े हैं। उधर फ़िनलैंड को ब्रिटेन, फ़्रांस, अमरीका, इटली आदि यथाशक्य एवं यथासम्भव सहायता करने में लगे हुए हैं। यदि इन राज्यों की समुचित सहायता उसे मिलती गई तो फ़िनलैंड में महाभयानक युद्ध होगा। यह तो प्रकट ही है कि रूस के आगे फ़िनलैंड की कोई गिनती नहीं, परन्तु बाहरी मदद के मिल जाने पर वह अपने भरसक रूस का सामना डटकर करेगा, भले ही अन्त में पोलैंड की तरह उसका नाश ही क्यों न हो जाय।

मुस्लिम लीग का मिथ्या आरोप

मुस्लिम लीग ने कांग्रेसी सरकारों पर नाना प्रकार के मिथ्या दोषारोपण करके उसे बदनाम करने की कुचेष्टा की है। उसके उन अन्यायपूर्ण अभियोगों को सुन सुनकर हिन्दुओं की भी आँखें खुली हैं और उनका भी ध्यान अपनी दयनीय दशा की ओर गया है। नये शासन-विधान के प्रचलित होने पर घाटे में वस्तुतः हिन्दू ही रहे हैं। मुसलमानबहुमत प्रान्तों में उन पर जो बीती है, सो तो बीती ही है, हिन्दूबहुमतप्रधान प्रान्तों में भी कांग्रेसी सरकारों के होने से मुसलमानों को सन्तुष्ट रखने की नीति के कारण बेचारे हिन्दू ही दबाये गये हैं। इस तरह उन पर दोनों प्रकार के प्रान्तों में मार पड़ी है। परन्तु बुद्धू होने के कारण उन्होंने सब कुछ चुपचाप सह लिया और चूँ तक न की। उधर मुसलमान अधिक चतुर निकले। सोचा, कहीं उनके अनाचारों की बात लेकर हिन्दू-महासभावाले हो-हल्ला न मचावें, पहले से ही कांग्रेसी सरकारों के विरुद्ध अपना कल्पना-मूलक अभियोगों का चिट्ठा ही नहीं प्रकाशित कर दिया, किन्तु यह मिथ्या आरोप भी किया कि मुसलमानों पर हिन्दुओं का राज्य क़ायम हो गया है। भला हो बंगाल के भूतपूर्व मन्त्री श्रीयुत नलनीरंजन सरकार का जिन्होंने मुसलमानों के इस निराधार आरोप का सप्रमाण उत्तर अपनी हाल की एक लेखमाला में दे दिया है।

सरकार महोदय ने अपने उस लेख में आँकड़े देकर बताया है कि बंगाल, पंजाब, सीमा-प्रान्त और सिन्ध के जो मुस्लिम बहुमत प्रान्त हैं उन चारों प्रान्तों में २ करोड़ ९० लाख हिन्दू बसते हैं। इधर आसाम को छोड़कर शेष हिन्दू बहुमत प्रान्तों में १ करोड़ ६५ लाख मुसलमान बसते हैं। देशी राज्यों में—बड़ौदा, ग्वालियर, काश्मीर, ट्रावन्कोर, राजपूताना और मैसूर के हिन्दू-राज्यों में ५० लाख मुसलमान हैं। उधर मुस्लिम राज्य हैदराबाद में १ करोड़ २२ लाख हिन्दू हैं। ऐसी दशा में यह आरोप करना कि मुसलमानों पर हिन्दुओं का राज्य स्थापित हो गया है, सरासर झूठा ही नहीं, अन्यायपूर्ण भी है, क्योंकि इन आँकड़ों से तो उलटी ही बात सिद्ध होती है, अर्थात् मुसलमानों की अपेक्षा अधिक संख्या में हिन्दू ही मुसलमानों-द्वारा शासित प्रदेशों में हैं। परन्तु यह तो प्रचार का युग है और इस कला में मुसलमान राजनीतिज्ञ हिन्दुओं को पीछे कर चुके हैं। लाख सरकार महोदय जैसे लोग उनके आरोपों का खण्डन करते रहें, वे तो अपनी ही कहते जायँगे।

इटली और बाल्कन

इटली का क्या दृष्टिकोण है, यह अब धीरे धीरे स्पष्ट होने लगा है। वह यह नहीं चाहता कि बाल्कन के राज्यों में रूस की प्रतिपत्ति बढ़ जाय। यही नहीं, उसने रूस को एक प्रकार की धमकी भी दे दी है। उसने कह दिया है कि रूस अपनी सीमा में ही रहे। परन्तु यदि अपनी सीमा से निकलकर वह बाल्कन में अपना प्रभाव बढ़ाने का प्रयत्न करेगा तो इटली उसका मुक़ाबला करेगा। पोलैंड का एक भाग पा जाने से रूस की सीमा हंगरी से आ लगी है। यह देखकर इटली हंगरी से मैत्री बढ़ाने में संलग्न हो गया। इसी जनवरी में दोनों देशों के वैदेशिक मंत्रियों से वेनिस में गम्भीर परामर्श ही नहीं हुआ है, किन्तु उनमें इस प्रकार की सन्धि भी हो गई है कि हंगरी पर आक्रमण होने पर इटली उसकी सहायता करेगा। यह एक प्रकट बात है कि इटली को रूस फूटी आँख नहीं सुहाता है। रूस का

राजदूत रोम से चला ही गया है, अब इटली ने भी अपने राजदूत को मास्को से बुलवा लिया है। रूस से जर्मनी ने जो मित्रता कर ली है उसके फलस्वरूप इटली और जर्मनी में पहले जैसा सौहार्द अब नहीं है। तथापि इटली जर्मनी को अपनी ही ओर खींचे रहना चाहता है। इसके लिए वह इस बात का प्रयत्न कर रहा है कि जर्मनी और ब्रिटेन-फ्रांस में मेल हो जाय और सब राष्ट्र मिलकर रूस के विरुद्ध अपना एक गुट्ट बनावें। परन्तु इटली अपने इस प्रयत्न में सफल नहीं हो रहा है। इतना तो प्रकट ही है कि वह इस युद्ध में कम से कम जर्मनी का साथ नहीं देगा। हाँ, यदि बाल्कन में किसी तरह का गड़बड़ होगा तो अपना हिस्सा लेने के लिए वह भी शस्त्र ग्रहण करेगा। और लक्षणों से जान पड़ता है कि बाल्कन में गड़बड़ ज़रूर होगा। यदि ऐसा न होता तो रुमानिया को यह कहने की क्या ज़रूरत थी कि वह बेसेबेरिया प्रदेश को जो महायुद्ध के पहले रूस का था, अपने हाथ से नहीं जाने देगा। इधर रूस ने बल्गेरिया से यह माँग की है कि वह अपने समुद्री तट पर काले सागर में उसे जंगी अड्डे क़ायम करने दे। और बल्गेरिया से उसका मेल भी हो गया है। जान पड़ता है कि उत्तर की तरह दक्षिण में भी युद्ध छिड़े बिना न रहेगा और तब इटली को भी उसमें भाग लेना पड़ेगा। पर वह किसकी ओर लड़ेगा, यह कहना कठिन है।

हिन्दू-महासभा का ज़ोर

मुस्लिम लीग और हिन्दू-महासभा—दोनों संस्थायें सम्प्रदायवादी संस्थायें मानी जाती हैं, क्योंकि ये दोनों ही अपने अपने सम्प्रदायों के हितों की रक्षा के लिए ही काम करती आई हैं। इनमें मुस्लिम लीग का ही बल अभी तक बढ़ा-चढ़ा था, क्योंकि उसे मुसलमानों का प्रारम्भ से ही पूरा बल प्राप्त रहा है। रही हिन्दू-महासभा, सो हिन्दुओं की उपेक्षा के कारण वह कोरी 'सभा' की 'सभा' ही बनी रही। परन्तु इधर जब से उसको वीर सावरकर का सहयोग प्राप्त हुआ है तब से उसमें नई जान-सी आ गई है। पिछले दिनों हैदराबाद-राज्य में जो सत्याग्रह हुआ था उसमें उसने अपने बल का समुचित परिचय भी दिया था। परन्तु उसका कलकत्ते में जो २१वाँ अधिवेशन हाल में हुआ है और वह अधिवेशन जिस सफलता के साथ सम्पन्न हुआ है उसको देखते कहना पड़ता है कि हिन्दू-महासभा पहले की तरह नगण्य नहीं रह सकेगी। उसकी इस सफलता का कारण बंगाल के हिन्दुओं का सहयोग भी है। महाराष्ट्र का सहयोग तो उसे प्राप्त ही था, अब बंगाल का भी सहयोग उसे प्राप्त हो गया है। और इन दोनों प्रान्तों का विद्वत्समाज ही गत ५० वर्ष से भारत का नेतृत्व करता आ रहा है। ऐसी दशा में यदि हिन्दू-महासभा ज़ोर पकड़ जाय तो कोई आश्चर्य नहीं, क्योंकि इधर कांग्रेस ने मुसलमानों को सन्तुष्ट करने के लिए जो नीति ग्रहण की थी उससे हिन्दुओं का एक बड़ा समुदाय कांग्रेस को सन्देह की दृष्टि से देखने लगा है। यदि मुसलमानों की तरह हिन्दुओं में भी सम्प्रदायवाद ज़ोर पकड़ गया तो यह बात राष्ट्रीयतावादी भारत के लिए बड़ी भयानक होगी। चाहे जो हो, इस समय हिन्दू-महासभा ज़ोर पकड़ रही है।

चीन का आत्मबल

गत तीन वर्ष से प्रबल जापान चीन को पदाक्रान्त कर रहा है। उसके सारे समुद्रतटवर्ती प्रान्तों पर जापान का पूर्ण अधिकार हो गया है और उसका समुद्र के मार्ग से संसार के अन्य देशों से जो सम्बन्ध था वह भंग हो गया है। यह सब कुछ हो गया है, परन्तु चीन इतने पर भी अपने निश्चय पर दृढ़ है। उसके राष्ट्रपति चियांग काई-शेक अन्त में विजयी होने की आशा का सुखस्वप्न ही बैठे नहीं देख रहे हैं, किन्तु देश के भीतरी भाग की अपनी चुंगकिंग नाम की राजधानी से विजय प्राप्त करने की योजना में भी दृढ़ता से संलग्न भी हैं। उनका सैन्य-बल पूर्ववत् सुसंगठित और सुव्यवस्थित है। यही नहीं, उनके अधीनस्थ प्रान्तों में उनकी शासन-व्यवस्था भी नियमपूर्वक जारी है। इसके सिवा समुद्र-मार्ग न रह जाने से संसार के देशों से उनका जो सम्बन्ध भंग हो गया है उसके अभाव की पूर्ति के लिए भी वे ब्रह्मदेश की सीमा तक एक नया रेल-पथ बनवाने जा रहे हैं।

यह चेंगतू, चुंगकिंग और कुन्मिंग से होकर सीधा ब्रह्मदेश की सीमा तक आयेगा और इस रेल-मार्ग से ब्रह्मदेश के द्वारा चीन का संसार के दूसरे देशों से सम्बन्ध स्थापित हो जायगा। यह रेलमार्ग १५० किलोमीटर लम्बा होगा और इसके बनवाने में एक करोड़ पौंड खर्च होगा तथा इसके बनने में तीन वर्ष लगेंगे। इसका निर्माणकार्य अगले वसन्त से प्रारम्भ हो जायगा। राष्ट्र-पति चिआंग-काई-शेक ने हाल में एक और भी दूर-दर्शिता का काम किया है। उन्होंने हुनान, किआंग्सी और ऐन्ह्वेई प्रदेश की फ़सलों की बचत का अन्न ख़रीद लेने की भी आज्ञा दे दी है। इन प्रदेशों में युद्ध के कारण प्रजा की जो दुर्दशा हुई है राष्ट्रीय सरकार की इस व्यवस्था से उसकी आर्थिक अवस्था के सँभलने में सहायता मिलेगी। ६,२३,२५,००० डालर का १,२७,५०,००० पिकल गेहूँ और चावल खरीदा जायगा। और यह अन्न अगली वर्षा-ऋतु में काम आने के लिए ख़रीदा जा रहा है। राष्ट्रीय सरकार की इन तथा ऐसी दूसरी व्यवस्थाओं से प्रकट होता है कि उसका उत्साह ज्यों का त्यों बना हुआ है और युद्ध में भारी हानि उठा चुकने पर भी उसका साहस भंग नहीं हुआ है। उधर जापान की सरकार बार बार बदल रही है, जिससे प्रकट होता है कि चीन के युद्ध में वह बोल गया है। अभी हाल में वहाँ जो नई सरकार क़ायम हुई है उसने उदारनीति ग्रहण करने की घोषणा की है। आश्चर्य नहीं कि वह चीन से भी समझौता करने को तैयार हो जाय। ऐसा होने में ही उन दोनों देशों की भलाई है।

तुर्की पर महान् विपत्ति

तुर्की का दुर्भाग्य है कि इस संसार-संकट के समय वह भयानक भूकम्प के फेर में आ गया। पिछले दिसम्बर में वहाँ ऐसे ज़ोर का भूकम्प आया कि उसका एक प्रान्त का प्रान्त तहस-नहस हो गया। पिछले विहार के भूकम्प में तथा क्वेटा के भूकम्प में हमारे धनजन का जो संहार हो चुका है वह हमें भूला नहीं है। वैसी ही आपदा का इस बार तुर्की को सामना करना पड़ा है। वहाँ की सरकार का कहना है कि इस भूकम्प में २५ हज़ार आदमियों का संहार हुआ है तथा ८० हज़ार आदमी सांघातिक रूप से घायल हो गये हैं। और सम्पत्ति की तो अपार हानि हुई ही है। सैकड़ों गाँवों का चिह्न तक नहीं रहा तथा कई शहर भी ध्वंस हो गये हैं।

जब यह भूकम्प वहाँ आया था, सरकार जिस त्वरा के साथ आपद्ग्रस्तों की सहायता के लिए अग्रसर हुई थी उससे प्रकट होता है कि तुर्की आज कितना उन्नत हो गया है। और अब तो उसे संसार के भिन्न भिन्न देशों से भी आर्थिक सहायता भेजी जा रही है। हमारे भारत से भी तत्काल ही सहायता भेजी गई है।

इस समय तुर्क-सरकार सब काम पीछे डालकर भूकम्प-पीड़ित अंचल के बचे हुए लोगों की सहायता करने में व्यस्त है। इसमें सन्देह नहीं कि इस प्रकृति के कोप से तुर्की को भारी हानि सहनी पड़ी है।

सीमा-प्रान्त में क्या हो रहा है?

सीमा-प्रान्त के एक भाग में लूट-मार का बाज़ार फिर गर्म हो उठा है और वहाँ के शान्त और निःशस्त्र नागरिक स्वतंत्र इलाक़े के डाकुओं के शिकार बनाये जा रहे हैं। बन्नू-ज़िले में उन्होंने जो ऊधम मचा रक्खा है उस सम्बन्ध में लोगों को सान्त्वना देने के लिए असोशिएटेड प्रेस ने हाल में यह वक्तव्य छपवाया है कि इस ऊधम के मच जाने का मूल-कारण यह है कि सरकार ने शाबी-खेल महसूदों के साथ कुछ कड़ाई का व्यवहार किया था, और अब कुछ ही समय में वहाँ फिर शान्ति स्थापित हो जायगी। शान्ति तो स्थापित होवेगी ही, परन्तु सीमा-प्रान्त के उस अंचल में लोगों पर जो बीत रही है उसकी कथा त्रासजनक है। और वहाँ का यह अनाचार कोई नई बात नहीं है। यह तो मौसमी रोग की तरह बराबर फूटता आ रहा है। आश्चर्य है कि अँगरेज़ सरकार की महान् शक्ति वहाँ के डाकुओं को आज तक अपने वश में न ला सकी। पचीसों बार सरकार से यह निवेदन किया जा चुका है कि जब वह स्वतंत्र इलाक़े के न दुर्धर्ष डाकुओं से अपने निःशस्त्र नागरिकों की रक्षा नहीं कर पाती है तब उसे कम से कम अपने प्रजाजनों को सशस्त्र

तो कर ही देना चाहिए ताकि वे कुत्ते की तरह मारे तो न जा सकें। परन्तु सरकार उतनी उदारता दिखाने को तैयार नहीं है। हाँ, इधर अखबारों में जरूर छपा है कि उसने बन्नू में कुछ आदमियों को आत्मरक्षार्थ बन्दूकें देने की कृपा की है। इससे जान पड़ता है कि सरकार का ध्यान इस ओर अब गया है। इसमें संदेह नहीं कि सीमा-प्रान्त में जो भयानक परिस्थिति उत्पन्न हो गई है उसको सुधारने के लिए सरकार कठोर से कठोर कार्रवाई करेगी परन्तु उतने से ही काम न चलेगा। उसे अब वहाँ के प्रजाजनों को इतना समर्थ बनाना ही होगा कि संकट आ पड़ने पर वे उसका मनुष्य की तरह सामना भी कर सकें। ऐसा करने ही पर यह समझा जा सकेगा कि सरकार ने वास्तव में अपने कर्तव्य का पालन किया है। आशा है, सरकार इस बात की ओर समुचित ध्यान देने की कृपा करेगी।

हिन्दी का प्रश्न

संयुक्त-प्रान्त के निवासियों की मातृभाषा हिन्दी है, पर वहाँ वह अपने स्वाभाविक अधिकार से वञ्चित रक्खी गई है। इसका मूल कारण है वहाँ के हिन्दी-भाषियों की अकर्मण्यता और कापुरुषता। यह जरूर है कि आज से ६० वर्ष पहले जब राजा शिवप्रसाद गुप्त ने स्कूलों की पाठ्य-पुस्तकों में हिन्दी को उर्दू में परिणत करने का दूषित प्रयत्न किया था तब हिन्दी-भाषियों ने उसका जोरों से विरोध करके भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र के नेतृत्व में हिन्दी में नये प्राणों का सञ्चार ही नहीं किया था, किन्तु पंडित मदनमोहन मालवीय के नेतृत्व में इस बात का घोर आन्दोलन भी किया था कि सरकारी अदालतों में हिन्दी को उसका उचित स्थान दिया जाय। और यद्यपि तत्कालीन प्रान्तीय लाट सर एन्थानी मैकडानल ने अपनी हिन्दी-भाषी प्रजा की न्यायोचित माँग को सुनकर उसकी आंशिक पूर्ति कर देने की उदारता दिखाई, परन्तु उसके बाद सब मामला खटाई में पड़ गया। सरकारी कचहरियों से सम्बन्ध रखनेवाले हिन्दुओं ने अपनी मातृभाषा के साथ विश्वासघात किया, इधर अकर्मण्य हिन्दीभाषी अपनी तू-तू मैं-मैं में पड़ गये। इसमें सन्देह नहीं कि इस काल में हिन्दी की काफ़ी अधिक उन्नति हुई और उसका प्रचार भी खूब हुआ, परन्तु उसके अहम्मन्य नेता उसको उसका राजनैतिक महत्त्व दिलाने को भूलकर भी आगे नहीं आये। उनकी यही कर्तव्यविमुखता आज हिन्दी के बने-बनाये खेल के विनाश का कारण हो रही है। 'हिन्दुस्तानी' के रूप में आज दो वर्ष से हिन्दी की प्रगति के मार्ग में जो खाई खोदी जा रही है वह सब हमारे इन महारथियों को ज्ञात है, पर उनके कानों पर आज तक जूँ तक नहीं रेंगी। हिन्दी को खिचड़ी भाषा बनाने का, उसकी लिपि को गुजराती का रूप देने का निश्चय ही नहीं हो गया है, किन्तु वे निश्चय धीरे धीरे कार्य में परिणत किये जा रहे हैं। इतने पर भी संयुक्त-प्रान्त के हिन्दी के कर्णधार अभी चादर ताने पड़े सो ही रहे हैं। रहे वहाँ के नवयुवक साहित्यकार, सो वे या तो अनन्त की खोज में अपने को गँवा चुके हैं या सखी-सहेलियों के पीछे पागल बने फिर रहे हैं। उन्हें इसका ध्यान ही नहीं है कि मातृभाषा के प्रति उनका भी कुछ कर्तव्य है। ऐसी दशा में हिन्दी अपनी पुकार करे तो किससे करे, हिन्दीवालों के आगे यही इस समय सबसे बड़ा प्रश्न है। देखें कौन हरिश्चन्द्र या मदनमोहन फिर उसकी रक्षा के लिए इस संकट-काल में आगे आता है।

सिन्ध की सरकार और सक्खर का दंगा

सिन्ध मुस्लिम प्रान्त है, परन्तु वहाँ का मुस्लिम-प्रधान मन्त्रिमंडल मुस्लिम लीगी मन्त्रिमंडल नहीं है। वहाँ के प्रधान मन्त्री श्री अल्लाबख्श उदार विचार के व्यक्ति हैं और उनमें साम्प्रदायिकता की संकीर्णता भी नहीं है। यही नहीं, कांग्रेसी सदस्यों का सहयोग न पाकर भी वे अपने निश्चय पर दृढ़ हैं और उसी निश्चय के अनुसार वे शासन-दंड का परिचालन कर रहे हैं। परन्तु साम्प्रदायिकतावादी मुसलमान या यह कहें कि मुस्लिम लीगी उन्हें सुख की नींद नहीं सोने देना चाहते। सक्खर के मंज़िलगाह का आन्दोलन ऐसे ही लोगों का काम है। इसके द्वारा उनके मन्त्रिमंडल को बदनाम करके अपदस्थ करने का उपक्रम किया गया है। इस सिलसिले में उनकी

सरकार से मुसलमानों का जो संघर्ष हुआ उसमें बेचारे हिन्दुओं को बुरी तरह पिस जाना पड़ा। सक्खर के दंगे के फलस्वरूप दूर दूर के देहातों के हिन्दुओं पर जो बीती है उसका विवरण जानकर उन्होंने देहात के हिन्दुओं को यह सलाह दी है कि वे अपने गाँवों को छोड़कर शहर में आ बसें, क्योंकि सरकार उनकी देहातों में रक्षा करने में असमर्थ है। उन्होंने यह भी कहा है कि जो हिन्दू देहात छोड़कर शहरों में आ बसेंगे, सरकार उन्हें ज़मीन तथा दूसरी आवश्यक सहायता भी देगी। प्रधान मन्त्री की इस सलाह से उनकी सद्भावना का पता तो मिलता ही है, साथ ही इस बात का भी कि सिन्ध में ऐसे मुसलमानों की संख्या कम नहीं है जो हिन्दुओं तथा दूसरे अल्पसंख्यकों के हितों के क़ायल हैं और उनकी रक्षा भी करना चाहते हैं। यह वास्तव में आशाजनक स्थिति है। सक्खर के दंगे के सम्बन्ध में जो सरकारी विवरण अभी हाल में प्रकाशित हुआ है वह इस प्रकार है—

१० हिन्दू जीवित जलाये गये, १४२ हिन्दू क़त्ल किये गये, ५८ हिन्दू घायल हुए, जिनमें ९ मर गये।

१४ मुसलमान क़त्ल किये गये और १२ घायल हुए।

१६४ मकान जलाये गये, जिनमें अधिकांश हिन्दुओं के थे। इसमें १,४८,००० रुपये की सम्पत्ति का विनाश हुआ। ४६७ घर लूटे गये, जिसमें ६५,३७,००० रुपये का माल लुट गया।

६ हिन्दू स्त्रियाँ उड़ाई गईं जो बाद को वापस लाई गईं।

पुलिस की मुठभेड़ों में ७ डाकू मारे गये।

इस दंगे के सिलसिले में ७०० आदमी गिरफ़्तार हैं।

आगमार्का घी

अगस्त की 'सरस्वती' में आगमार्का घी पर एक सम्पादकीय नोट प्रकाशित हुआ था। वह नोट इलाहाबाद के 'लीडर' के आधार पर लिखा गया था। इसके बाद 'अमृतबाज़ार-पत्रिका' में छपा कि आगमार्का घी वानस्पतिक घी है, फलतः हमें दूसरा नोट लिखना पड़ा, जो 'सरस्वती' के सितम्बर के अंक में छपा। हमारे इस पिछले नोट पर भारत-सरकार के 'एग्रीकलचरल मार्केटिंग एडवाइज़र' का ध्यान गया और उन्होंने हमें १३-१२-३९ के पत्र में उसका प्रतिवाद करने का आदेश किया। हमने निवेदन किया कि आगमार्का घी-सम्बन्धी प्रामाणिक विवरण यदि आप भेज देने की कृपा करें तो हम उसके आधार पर एक नोट लिखकर अपने पिछले नोट की ग़लतफ़हमी दूर कर दें। परन्तु वहाँ से तो हमें कोई उत्तर नहीं मिला, अलबत्ता लखनऊ से 'प्राविंशियल मार्केटिंग आफ़िसर' का १०-१-४० का एक पत्र मिला, जिसमें उस आदेश-पत्र का हवाला देते हुए यह आदेश किया गया कि हम अपने उक्त नोट का प्रतिवाद कर दें। ऐसी दशा में हमारा यहाँ केवल यही कहना है कि पाठक हमारे सितम्बरवाले नोट को भ्रमपूर्ण समझें और आगमार्का घी के सम्बन्ध में जो नोट अगस्त के अंक में छपा है उसे ठीक समझें।

डाक्टर बलदेवप्रसाद मिश्र

हिन्दी के डाक्टरों में एक की और वृद्धि हुई है। अभी तक हिन्दी में चार ही डाक्टर थे। एक डाक्टर पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल, दूसरे डाक्टर धीरेन्द्र वर्मा, तीसरे डाक्टर रामशंकर शुक्ल 'रसाल' और चौथे राव-राजा डाक्टर श्यामबिहारी मिश्र ही थे। अब रायगढ़-राज्य के दीवान पंडित बलदेवप्रसाद मिश्र को उक्त गौरवपूर्ण पदवी नागपुर-विश्वविद्यालय ने उनके 'तुलसी-दर्शन' नामक ग्रन्थ पर प्रदान की है। मिश्र जी हिन्दी के सुलेखक ही नहीं, सुकवि भी हैं। अब तक आप कई पुस्तकें लिख चुके हैं। राजकाज करते हुए भी हिन्दी की सेवा के लिए आप जो समय निकाल लेते हैं वह आपके हिन्दी के असीम अनुराग का ही द्योतक है। ऐसी दशा में आपको जो यह गौरवपूर्ण पदवी प्रदान की गई है उसके लिए प्रत्येक हिन्दी-प्रेमी को हर्ष होगा।

ताकत
और
जवानी
को
कायम
रखने
के लिए

सचित्र मनोहर तोरणमाला

इस पुस्तक को बम्बई इलाके के शिक्षाविभागने बम्बई इलाके की प्राथमिक, माध्यमिक, कन्याशालाओं और स्रीयों के लीये ट्रेनिंग कोलेजो में और लायब्रेरीयों के लिये नं. ८०९२ ता. २३-८-३८ से मंजुर किया है. इससे आप पुस्तक की उपयोगीता समझ सकते है.

तोरन भरनेका तरीका:—कोइभी अक्षर या तस्वीर का सामने रखकर ऊपरसे भरते भरते नीचे आना तरतीब वार मोती भरते जाना, पूरा भरजाने पर तस्वीर या अक्षर बन जायगा.

हमारे यहां तोरन, चक, परदा, भरनेके मोती, सलाइयां तथा उसमें लगानेका हर एक सामान सस्ती कीमतसे मीलेगा, एकबार मंगाकर अवश्य विश्वास कीजीये.
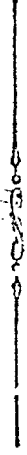
कमसे कम एक डझन बुक लेने वालेको कमीशन दीया जायगा. माल वी.पी. से रवाना कीया जायगा.
भाग पहला और दुसरा तैयार है कीमत १)

मिलनेका पता:—धी मनीयार सोप कंपनी.
ढींकवाचोकी, अहमदाबाद.

सचित्र मासिक पत्रिका

सम्पादक

देवीदत्त शुक्ल—उमेशचन्द्र मिश्र

मार्च १९४० } भाग ४१, खंड १ संख्या ३, पूर्ण संख्या ४८३ { फाल्गुन १९९६

फूल

लेखक, श्रीयुत ठाकुर गोपालशरणसिंह

मैं हूँ फूल विश्व-छवि-मूल।

चाहे मुझ पर फेंक उपल दो,
अथवा हाथों से ही मल दो,
या पैरों के तले कुचल दो,
पर तुम मानव ! अन्ध-स्वार्थ-वश
इसे कभी मत जाना भूल।
मैं हूँ फूल विश्व-छवि-मूल।

भौंरा आकर मुझे चिढ़ाता,
तीव्र वायु है धूल उड़ाता,
भीष्म ग्रीष्म है मुझे जलाता,
पर मैं मन में रोष न लाकर,
रहता हूँ सबके अनुकूल।
मैं हूँ फूल विश्व-छवि-मूल।

जो नर मुझे तोड़ ले जाता,
लता-अङ्क से दूर हटाता,
मेरा सुख-सर्वस्व मिटाता,
मैं उसको भी सौरभ देकर,
रखता हूँ निज उर में शूल।
मैं हूँ फूल विश्व-छवि-मूल।

विजयनगर की पराजय

[जैन-मन्दिर]

लेखक, श्रीयुत श्रीमन्नारायण अग्रवाल, एम० ए०

जब हम पुराने विशाल नगरों के खँडहरों को देखने जाते हैं तब हमारे मन में एक प्रकार के भय और निराशा का अनुभव होता है। हममें से बहुत-से लोग अपने दैनिक जीवन में इस तरह व्यवहार करते हैं, मानो हम अमर हैं। परस्पर ईर्ष्या, द्वेष, छल-कपट, कूटनीति का व्यवहार यह प्रकट करता है कि हम दूसरों को दबाकर और नष्ट करके खुद आनन्द भोगना चाहते हैं, मानो दूसरों के मर जाने पर हम हमेशा ज़िन्दा ही बने रहेंगे। इसी प्रकार एक राष्ट्र दूसरे राष्ट्र को पराजित करके अपना अमरत्व स्थापित करना चाहता है। किन्तु समय के विनाश-चक्र से कोई भी नहीं बचता। व्यक्तियों का नाम-निशान भी नहीं रहता; बड़े बड़े शहर धूल में मिल जाते हैं और उनके खँडहर मनुष्य के अभिमान और अमर-जीवन पाने की निष्फल आकांक्षा के स्मृति-चिह्न बन जाते हैं।

विजयनगर या हंपी के खँडहर देखकर मेरे मन में इसी तरह के विचार उमड़ने लगे। जिस जगह इतना विशाल और भव्य नगर बसा हुआ था, वहाँ आज केवल वही ज़मीन उपयोग में आती है वहाँ कोई इमारतें नहीं हैं। बड़े-बड़े महल और मन्दिर तो टूट-फूट कर क़रीब-क़रीब मिट्टी में मिल गये हैं। वहाँ की भूमि बेकार पड़ी है। किन्तु इमारतों के बीच खाली ज़मीन में आज कुछ किसान खेती करके अपनी जीविका चलाते हैं। जो नगर किसी समय मनुष्यों की चहल-पहल और हलचल से गूँजता था, वहाँ आज कुछ किसानों और नरों के सिवा कोई नहीं दीख पड़ता। क्या यह समय का मनुष्य-कृति के प्रति उपहास नहीं है?

हंपी के खँडहर होसपेट शहर के पास मदरास-प्रान्त के बिलारी ज़िले में हैं। ये खँडहर क़रीब नौ वर्गमील के अन्दर बिखरे हुए हैं। चारों ओर छोटी-बड़ी पथरीली पहाड़ियाँ हैं, जिन पर हरियाली नहीं है। पत्थरों के ऊपर दूसरे बड़े-बड़े पत्थर इस तरह रक्खे हैं, मानों वे प्रकृति के बजाय मनुष्यों के हाथों से सजाये गये हों। यह विचित्र दृश्य तो मैंने और कहीं नहीं देखा। जिस तरह छोटे बच्चे पत्थरों से खेलते हैं और उनको एक-दूसरे पर रख कर तरह तरह के टीले बनाते हैं, बिलकुल उसी तरह उन बड़े बड़े पत्थरों की व्यवस्था देखकर बहुत आश्चर्य-चकित होना पड़ा। खँडहरों के उत्तर की तरफ़ तुङ्गभद्रा नदी पहाड़ियों के बीच में से बहती है। नदी के बीच में कई मूर्तियाँ खण्डित पड़ी हुई नज़र आती हैं।

विजयनगर का इतिहास भी काफ़ी रोमांचकारी

है। चौदहवीं शताब्दी के आरम्भ में अलाउद्दीन ख़िलजी के समय में मुसलमानों का आक्रमण दक्षिण की तरफ़ ज़ोरों से होने लगा, और वहाँ के हिन्दू-राज्य की नींव ही उखड़ने-सी लगी। उसी समय मुसलमानों के आक्रमण को रोकने के लिए विजयनगर-साम्राज्य की स्थापना हुई और दो शताब्दियों तक हमले का भय न रहा।
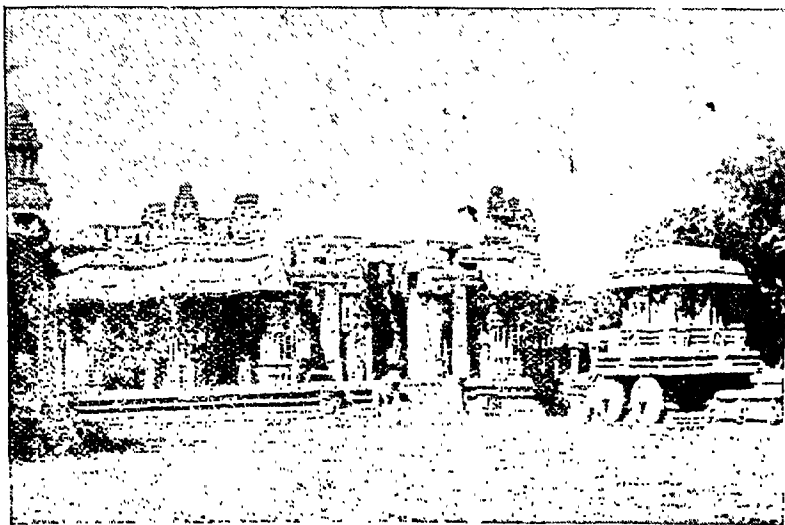
[विट्ठल-मन्दिर]

विजयनगर के सबसे वैभवशाली नरेश कृष्णदेव राय थे। उन्होंने मुसलमानों को बुरी तरह पराजित किया। किन्तु उनके बाद मुसलमानों का भी ज़ोर बढ़ता गया और अन्त में सन् १५६५ में दक्षिण के सब मुसलमान राजाओं ने मिलकर विजयनगर पर आक्रमण किया और विजयनगर के राजा को हरा दिया। पराजय के बाद मुसलमानों ने शहर को खूब लूटा और लोगों को मार-काट कर खून की नदियाँ बहा दीं। उसी समय से यह नगर बिलकुल ध्वंस हो गया और दक्षिण में हिन्दू-राज्य का अन्त हो गया।

कहा जाता है कि विजयनगर के बसने के पहले तुङ्गभद्रा नदी के पास इसी जगह रामचन्द्र जी के समय में एक शहर था, जिसका नाम 'किष्किन्धा' था। वालि और सुग्रीव दोनों भाई वहाँ के राजा थे। लड़ाई हो जाने पर वालि ने सुग्रीव को भगा दिया और सुग्रीव हनुमान् जी के साथ ऋष्यमूक पर्वत के जंगल में जाकर रहने लगा। जब रामचन्द्र जी सीता जी की खोज में लंका की ओर जा रहे थे, तब उन्हें मालूम हुआ कि सुग्रीव से सीता जी के बारे में सूचना मिल सकती है। सुग्रीव ने रामचन्द्र जी को बतलाया कि रावण सीता जी को ले गया है। सीता जी
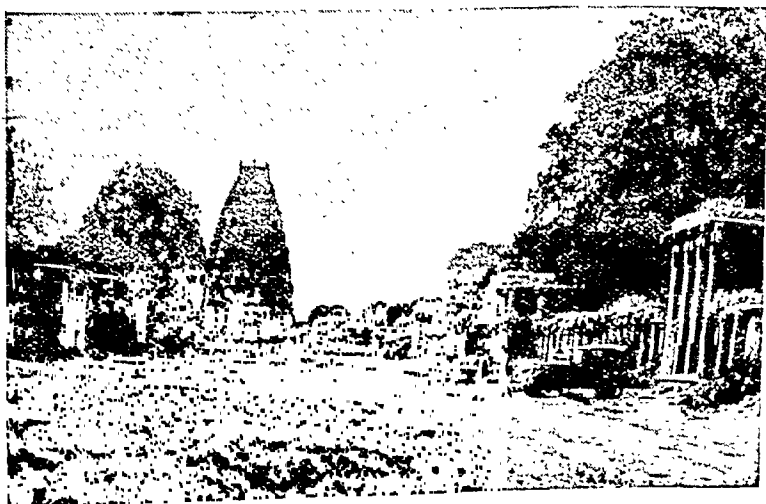
[हम्पी की प्रधान सड़क]
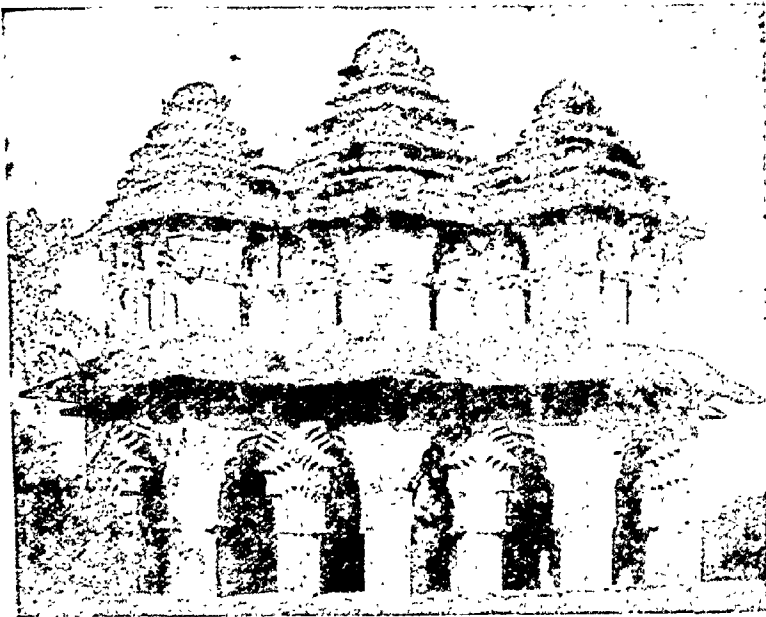
[पद्म-महल]

ने अपना एक गहना और एक वस्त्र नीचे डाल दिया था। सुग्रीव ने इनको अपनी गुफ़ा में सुरक्षित रख छोड़ा था। जिस जगह गहना गिरा था, वहाँ लोगों ने अब तक एक चिह्न बना रक्खा है। बहुत-से लोगों का विश्वास है कि किष्किन्धा नगरी उसी जगह थी, जहाँ आज विजयनगर के खँडहर हैं। खँडहरों में चारों ओर दुबले और भूखे वानरों को घूमते हुए देखकर रामायण का किष्किन्धा-काण्ड अवश्य स्मरण हो आता है। इन वानरों को उन खँडहरों में खाने के लिए बहुत कम मिलता है। और इसलिए वे अधमरे से दीखते हैं। फिर भी वे उस जगह को क्यों नहीं छोड़ भागते, यह काफ़ी आश्चर्य की बात मालूम पड़ती है! वहाँ के ब्राह्मण कहते हैं कि ये वानर बालि और सुग्रीव के वंशज हैं! यह कथन तो मज़ाक़-सा ही है। किन्तु वहाँ के वातावरण में इन वानरों की उपस्थिति कुछ विचित्र-सी अवश्य मालूम होती है।

होसपेट से विजयनगर के खँडहरों की ओर जाते हुए पहले अनन्तशयन-मंदिर दिखलाई देता है। इसका गुंबद और मूर्ति के सामने का बड़ा हाल देखने लायक़ है। रास्ते में एक विशाल और रमणीक तालाब भी मिलता है। आगे जाने पर एक पुराना बँगला मिलता है जहाँ यात्रियों के लिए ठहरने की व्यवस्था कर दी गई है। जब हम खँडहरों की ओर बढ़ते हैं, तब हमें एक पक्का तालाब मिलता है, जिसमें से पत्थर की बड़ी नाली द्वारा अन्य छोटे तालाबों और स्नान-कुंडों में पानी ले जाया जाता था। खँडहर के बीच में एक बहुत बड़ा और ऊँचा चबूतरा है, जिस पर विजयनगर का सम्राट् दरबार के समय बैठा करता था। महल के सामने हज़ारराम-मंदिर है, जिसमें चारों ओर दीवारों पर रामायण की कथा चित्रित है। पास ही रानी के महल के पास 'लोटस महल' है, जिसकी शकल कमल जैसी है। यह बहुत सुन्दर बना हुआ है। इसके पूर्व में हाथियों का हथसार है, जिसके गुम्बद देखने लायक़ हैं। महल के पास एक मंदिर है, जो ज़मीन के नीचे बना है। हम लोग नीचे गये, किन्तु पानी भरा होने के कारण मूर्ति तक न पहुँच सके। यह मंदिर शायद राजा के लिए आपत्तिकाल में पूजन करने के लिए बनवाया गया होगा।

विजयनगर के खँडहरों में हमें अधिकांश तो मंदिर ही मंदिर दीख पड़े। वीरभद्र, चंडिकेश्वर, कृष्ण, विश्वेश्वर, दत्तात्रेय, हज़ारराम, कोदंडराम, और विट्ठलराम के मंदिर विशेषरूप से उल्लेखनीय हैं। विट्ठल-मंदिर

की कला बहुत सुन्दर है और पत्थर का काम देखने योग्य है। इसमें एक पत्थर का रथ उस समय की शिल्प-कला का एक सुन्दर नमूना है। इन्हीं मंदिरों के पास नृसिंह की एक बहुत बड़ी बैठी हुई मूर्ति है, जो एक ही पत्थर की बनी है।

[हथसार]

इन सब मंदिरों और मूर्तियों को इस दशा में देखकर मेरे मन में कई विचार आये। मनुष्य किस प्रकार अपनी सांत्वना के लिए तरह तरह के मंदिर बनवाता है, उनकी मूर्तियों को बड़ी भक्ति और श्रद्धा से पूजता है। मंदिर बनवाने में लाखों रुपये खर्च करता है। किन्तु ये सब देवालय आन्तरिक साधना और तपस्या के बिना व्यर्थ ही हैं, और आखिर मिट्टी में ही मिल जाने-वाले हैं। राजाओं ने अपने साम्राज्य को विस्तृत और स्थायी बनाने के लिए भिन्न-भिन्न देवताओं के मंदिर बनवा-कर उनकी आराधना की। अपना स्वार्थ साधने के लिए मानो देवताओं को धन के बल पर खुश करने की कोशिश की। किन्तु इस प्रकार की धर्मभावना का क्या नतीजा हुआ! विशाल मंदिरों के होते हुए भी विजयनगर पराजित हो गया और सारा साम्राज्य खत्म हो गया। अगर हिन्दू राजाओं ने मंदिरों के ऊपर लाखों रुपये खर्च न करके अपने जीवन को साधनामय बनाया होता और अपनी ग़रीब प्रजा को ही दरिद्रनारायण के रूप में पूजा होता तो शायद भारतवर्ष की यह दशा न होती जो आज हमारा सिर नीचा किये है।

[आनीगोन्दा नद]

महात्मा जी के प्रति

लेखक, श्रीयुत सुमित्रानन्दन पन्त

निर्वाणोन्मुख आदर्शों के अन्तिम दीप-शिखोदय!
जिनकी ज्योति-छटा के क्षण से प्लावित आज दिगन्चल!
गत आदर्शों का अभिभव ही मानव आत्मा की जय,
अतः पराजय आज तुम्हारी जय से चिर-लोकोज्ज्वल!
मानव-आत्मा के प्रतीक! तुम आदर्शों से ऊपर
निज उद्देश्यों से महान्, निज यश से विशद चिरन्तन;
सिद्ध नहीं तुम लोक-सिद्धि के साधन बने महत्तर,
विजित आज तुम, नर-वरेण्य! गण-जन विजयी साधारण!
युग युग की संस्कृतियों का चुन तुमने सार सनातन
नव संस्कृति का शिलान्यास करना चाहा भव-शुभकर,
साम्राज्यों ने ठुकरा दिया युगों का वैभव-पाहन,
पदाघात से मोह-मुक्त हो गया आज जन-अन्तर!
दलित देश के दुर्दम नेता! हे ध्रुव धीर धुरन्धर!
आत्म-शक्ति से दिया जाति-शव को तुमने जीवन-बल
विश्व-सभ्यता का होना था नख-शिख नव-रूपान्तर
राम-राज्य का स्वप्न तुम्हारा हुआ न यों ही निष्फल!
विकसित व्यक्तिवाद के मूल्यों का विनाश था निश्चय,
वृद्ध विश्व सामन्त-काल का था केवल जड़ खँडहर,

हे भारत के हृदय! तुम्हारे साथ आज निःसंशय
चूर्ण हो गया विगत सांस्कृतिक हृदय जगत् का जर्जर!
गत संस्कृतियों का, आदर्शों का था नियत पराभव,
वर्ग-व्यक्ति की आत्मा पर थे सौध-धाम जिनके स्थित,
तोड़ युगों के स्वर्ण-पाश अब मुक्त हो रहा मानव,
जन-मानवता की भव-संस्कृति आज हो रही निर्मित!
किये प्रयोग नीति-सत्यों के तुमने जन-जीवन पर,
भावादर्श न सिद्ध कर सके सामूहिक जीवन-हित,
अधोमूल अश्वत्थ विश्व, शाखायें संस्कृतियां वर
वस्तु-विभव पर ही जन-गण का भाव-विभव अवलंबित!
सफल तुम्हारा सत्यान्वेषण मानव सत्यान्वेषक,
धर्मनीति के मान अचिर सब, अचिर शास्त्र-दर्शन-मत,
शासन, जन-गण-तंत्र अचिर, युग-स्थितियां जिनकी प्रेषक
मानव-गुण, भव-रूप-नाम होते परिवर्तित युगपत्!
पूर्ण पुरुष, तुम विकसित मानव, जीवन-सिद्ध अहिंसक
मुक्त हुए तुम-मुक्त-हुए-जन, हे जग-वन्द्य महात्मन्!
देख रहे मानव-भविष्य तुम मनश्चक्षु बन अपलक
धन्य तुम्हारे श्रीचरणों से धरा आज चिर-पावन!

तस्मादुत्तिष्ठ !

लेखक, श्रीयुत पण्डित मोहनलाल महतो

[आज का हिन्दी-लेखक परेशान हो गया है। उसकी समझ में नहीं आता कि वह आखिर 'साधना' के नाम पर कब तक आँख मूँद कर वर्ग-विशेष की आराधना करता रहे, और वह भी अपने आश्रितों के जीवन के मूल्य पर! और यदि ऐसा न भी करे तो करे क्या? इस लेख में महतो जी ने इन्हीं प्रश्नों का उत्तर देते हुए हिन्दी-लेखक के लिए उपयुक्त दिशा का निर्देश किया है।]

अपने लेखकों से—

न केवल आप ही बल्कि मैं भी एक मामूली लेखक हूँ और स्वयम् आग की एक नन्हीं-सी चिनगारी रहते हुए भी मुझे इस बात का ध्यान बराबर रहता है कि मैं भी उस महादावानल का एक अंश हूँ जो सारे संसार को क्षण भर में ही ख़ाक में मिला दे सकता है; स्वयम् एक बूंद जल रहते हुए मैं यह सदा याद रखता हूँ कि कल्लोलित प्रशान्त सागर का ही एक हिस्सा होने का गौरव मुझे भी प्राप्त है जिसके भीतर लाखों हिमालय जैसे पहाड़ पड़े हैं; जिन्हें कभी दिवाकर की कोमल किरणों का स्पर्श नसीब नहीं हुआ है। एक तुच्छ रजकण होते हुए भी मैं यह सदा याद रखता हूँ कि मैं विशाल विश्वप्रपंच का एक हिस्सा हूँ। लघुता तो विशालता का बोधक है और उसका पूरक एक अंश भी। हाँ, मैं भी आपकी ही तरह एक लेखक हूँ और मेरी क़लम जब कोरे काग़ज़ पर नाचती है तब मेरे हृदय में बैठकर कोई कहता है कि "तू विश्व का नियन्ता और संहारकर्त्ता है। ईमानदारी से अपनी क़लम चला और रोशनाई की एक बूँद भी व्यर्थ मत जाने दे। जंगल की ग़रीब लकड़ी की क़लम में विधाता ने वह शक्ति छिपा दी है कि यदि उसका उपयोग तू सचाई के साथ कर सका तो संसार का कायापलट उतनी ही देर में हो जायगा, जितनी देर में तेरी लिखी हुई अगली सतर की रोशनाई सूखेगी!"

उस समय मैं थर्रा उठता हूँ और लिखना बन्द करके अपने विषय में सोचने लगता हूँ। संसार के विषय में तो लाखों बार सोच चुका हूँ, पर अपने विषय में कुछ सोचने की फ़ुर्सत ही कहाँ मिलती है। आदत भी ऐसी नहीं है, पर सोचने लगता हूँ।

मेरे लिखने-पढ़नेवाले कमरे के सामने कोई सहन या मैदान नहीं है। कई खिड़कियाँ हैं और उन खिड़कियों से मैं दूर-दूर तक देखता हूँ। सामने बस्ती है। ऐसा लगता है कि मकानों का ढेर हो। यही लोकालय है और अपने सुख-दुःख का भार वहन करते हुए हम इन्हीं घरों में रहते हैं। ये घर न केवल प्रकृति से ही हमारी रक्षा करते हैं बल्कि इनकी आड़ में हम अपने आपको छिपाकर एक-दूसरे को धोखा भी दिया करते हैं। अपनी ग़रीबी और कष्ट के दिनों में हम अपने को इन्हीं के भीतर छिपाये रहते हैं। बाहर जब निकलते हैं तब फटी-पुरानी कथरी उतारकर, एक साफ़ कपड़ा पहनकर ही बाहर निकलते हैं। हम दुनिया को यह दिखलाना चाहते हैं कि अन्न-वस्त्र का अभाव हमारे नित्य जीवन को नहीं सताता। इन्हीं घरों की आड़ में अपनी इज्ज़त की रक्षा करते हैं।

मैंने एक रात को दूर से रोने की आवाज़ आती सुनी। रात का सन्नाटा और रोने की तीखी आवाज़, मेरा हृदय कराह उठा और आँखों से नींद ग़ायब हो गई। मुझे पता चला कि मेरे मुहल्ले के आखिरी छोर पर जो महरिन रहती है उसका जवान बेटा दम तोड़ रहा है। मरना और जन्म लेना एक साधारण घटना-मात्र है, पर इस साधारण घटना के भीतर जो असाधारणता छिपी हुई है वही है संसार। इसी 'असाधारणता' की ओर मंगल-कामना की नेक नज़र रखनेवाले महापुरुषों की दृष्टि रहती है। उस ग़रीब परिवार का अपना एक कच्चा घर है, पर घर के भीतर कुछ लाचार मानव-मूर्तियों के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है। घोर दरिद्रता का जो अन्धकार वहाँ फैला हुआ है वह उस घर के स्वामी को अन्धा बनाकर अपने भीतर भुलाये हुए है। मैं जानता हूँ कि उस परिवार को क्या चाहिए और मैं उसके लिए क्या कर सकता हूँ, पर उस परिवार की ज़रूरतें असीम हैं और ठीक इसके विपरीत मेरी शक्ति स्वल्प है। मैं एक कहानी लिखने जा रहा था। कहानी का प्रधान हीरो था करोड़पति का इकलौता, और प्रधान हिरोइन थी किसी बहुत बड़े ताल्लुक़ेदार की लाड़ली। दोनों एम० ए०

थे। इससे बढ़कर सुख और क्या हो सकता है कि पास में करोड़ों की सम्पत्ति हो, एम० ए० पास खुद हों और उठती ज़वानी हो, उस पर जो प्रेमिका मिले वह भी धन, मान, ज्ञान और रूप में बेजोड़।

जिस समय मेरी कहानी का हीरो 'रोल्सरायस मोटर' पर चढ़कर जिसकी क़ीमत शायद १ लाख तक है, अपनी प्रेयसी के विरह में रोने के लिए कलकत्ता के 'मैट्रो-सिनेमा' में जा रहा था उसी समय मेरे कानों ने रोने की दर्दभरी आवाज़ सुनी। क़लम रखकर मैं सोचने लगा कि दुनिया में केवल रोल्सरायस मोटर ही नहीं है और न एम० ए० पास करोड़पति के इकलौते हैं। कुछ लोग ऐसे भी हैं जो रोया करते हैं, रात दिन बिसूरा करते हैं और अपनी ग़रीब आँखों को नोनहले जल से धोया करते हैं, पर हम उनकी ओर ध्यान ही कहाँ देते? खुद मेरे ही यहाँ मोटर कहाँ है। एक राजा साहब ने दया करके एक गाड़ी बख्शी भी तो पेट्रोल की उस राक्षसी को बेच कर मैंने राहत की साँस ली। देखता हूँ, मेरे मित्र अपनी अपनी शानदार गाड़ियों पर हवाखोरी को निकलते हैं, पर मेरा मन नहीं ललचता। मुझे अपने इस सन्तोषी मन पर नाज़ है, यह मैं स्वीकार नहीं कर सकता। मैं जानता हूँ कि इस सन्तोषवृत्ति का परिणाम ही यह है जो अपनी कहानी के हीरो की तरह मैं भी एक दामी रोल्सरायस आज तक नहीं खरीद सका।

हम कहानियाँ लिखते हैं और उन कहानियों में ऊँचे दर्जे की अमीरी और शान-शौकत का वर्णन करते हैं। आखिर इस तरह के वर्णनों में हम क्या पाते हैं? सच बात तो यह है कि हम अपनी सुख-सम्बन्धी लालसाओं का चित्रण कहानियों के भिन्न-भिन्न पहलुओं में करते हैं या हमारे लिए रोल्सरायसवालों के अतिरिक्त दूसरा कोई स्थान ही नहीं है, जहाँ हमारी कल्पना को आगे बढ़ने की गुंजाइश हो। इस तरह हम लगातार एक ऐसा कुत्सित साहित्य [illegible]दा करते जा रहे हैं जिसका अधिकारी कोई भी नहीं है और न जिस साहित्य का अपना कोई उद्देश्य या लक्ष्य ही है।

लेखकों को यदि एक वर्ग या जाति मान लें तो एक और भी विचित्र प्रश्न हमारे सामने उपस्थित हो जाता है। मैं कभी-कभी सोचता हूँ तो मुझे आश्चर्य होता है। हमारे अधिकांश साहित्य-निर्माता मध्यवर्ग के हैं और वे ग़रीबी के बहुत निकट हैं; और इतना ही नहीं, कुछ तो सच्चे अर्थों में ग़रीब भी [illegible]। मैं दरिद्रता को निर्धनता से अलग समझता हूँ। निर्धनता है धनाभाव का द्योतक और दरिद्रता है मानसिक रिक्तता का परिचायक शब्द। हमारे साहित्य-निर्माता निर्धनता के उस वर्ग में हैं, जहाँ प्रवृत्ति तो है पर प्रगति नहीं है। यों तो मैं संसार में दो ही वर्ग मानता हूँ, पहला अमीर और दूसरा ग़रीब, पर साधारणतः हमें यह बतलाया गया है कि इन दोनों वर्गों के बीच में एक तीसरा वर्ग भी है, जिसका नाम है 'मध्यवर्ग'। यह वर्ग शायद न अमीर ही कहा जा सकता है और न ग़रीब। यदि आप विचार करें तो इस मध्यवर्ग की स्थिति और भी बुरी [illegible]। [illegible]स वर्ग की अवस्था अनिश्चित-सी है, याने यह वर्ग जितना निकट अमीरी से है, उतना ही निकट ग़रीबी से भी है।

अब मैं यह सोचने की कोशिश करता हूँ कि हमारे साहित्य-निर्माता किस वर्ग के हैं। साहित्यिकों की जो जीवनियाँ हमारे सामने हैं उनसे यह पता चलता है कि न तो शेक्सपीयर ही अमीर-वर्ग का था और न हमारे कवि चन्द बरदाई को ही कोई अमीर कह सकता है। मिल्टन की सामाजिक स्थिति चाहे जितनी उच्च रही हो, पर बाबा तुलसीदास से अच्छी स्थिति में वह अन्धकवि नहीं था। आज भी आचार्य महावीरप्रसाद जी आदि के नाम हम अदब से ले सकते हैं, पर यह तो स्वीकार करना ही होगा कि इनमें कोई करोड़पति क्या पचास-लाखपति भी नहीं कहा जा सकता। जो वर्ग भाग्य से हाथापाई करके कुछ आगे बढ़ा है उसने धन तो उतना नहीं पाया, पर समाज और संसार के भविष्य का वह निर्माता और रक्षक बनाया गया। यहीं से हम साहित्य और साहित्य-निर्माताओं का श्रीगणेश पाते हैं।

ग़रीबी में सौन्दर्य नहीं है और न ग़रीबी खुद ऐसी चीज है जो किसी कलाकार की भावनाओं में स्फूर्ति प्रदान कर सके। यह बात मैं अपनी ओर से नहीं कहता, पर मेरा जो अनुभव है वह मुझे ऐसी बात कहने को लाचार कर रहा है। मुझे विश्वास है कि यह सिद्धान्त ग़लत है, पर न जाने क्यों जब मेरी लेखनी उठती है तब वह लखपतियों और करोड़पतियों के ही चित्र बनाती

है। यह दूसरी बात है कि ऐसे चित्रों में पायदारी और असलियत की जगह पर कुछ घिनौनापन होता हो, जिसे हृदयवान् पाठक भाँप लेते हैं। उस रात को जो दिल दहला देनेवाली पतली और थकी हुई चीख मेरे कानों में घुसकर हृदय को रुला जाती थी उस चीख को अपने और उस रोनेवाली के बीच का पुल बनाकर अपनी समस्त कल्पनाशक्ति, सारी भावुकता को मैं उस व्यग्र-अन्तर तक नहीं पहुँचा सका जहाँ से करुण चीख बनकर निकल रही थी और सामने उस अभागिनी का इकलौता पड़ा दम तोड़ रहा था। दवा के नाम पर गंगाजल और चिकित्सक की जगह पर माता की शुभ-कामनायें उस मरनेवाले नौजवान के सन्तोष के लिए क्या आप पर्याप्त समझ सकते हैं?

मैं आँखें बन्द करके कल्पना के अमूल्य रत्न प्राप्त करता हूँ और उन रत्नों को अपनी कविताओं में जड़ कर संसार के सामने रखता हूँ। ऊँचे दर्जे के विलासी जीवन की रंगीनियों का चित्रण अपनी कल्पना के बल पर करता हूँ और यह भी चाहता हूँ कि मेरी कल्पना की निधि संसार के सभी धनियों को नीचा दिखलानेवाली हो। पर जैसे ही मैं अपने मन को उस रात के अन्धकार को चीर कर आनेवाली चीख की ओर ठेल-धकेल कर भेजता हूँ, वैसे ही मुझे पता चलता है कि मेरे बहुत प्रयत्न करने पर भी मैं सफल नहीं हो सका। रोल्सरायस की मुलायम गद्दियों पर मचलनेवाला मन वहाँ नहीं जाना चाहता, जहाँ खाट के नीचे एक जवान का निर्जीव शरीर पड़ा हो और उसकी माता अपनी आशाओं के खँडहर पर पछाड़ खा-खाकर गिर रही हो। उस पर तुर्रा यह कि दीआ का तेल समाप्त हो चला हो और उस घर में एक मुर्दा और जीवित मा के अतिरिक्त तीसरा कोई भी न हो। मा अपने बेटे की लाश को छोड़कर तेल लाने बाज़ार कैसे जाय और यदि जाय भी तो उसके पास पैसे कहाँ!

रात आधी बीत गई थी। चारों ओर सन्नाटा था। आकाश घटाओं से भरा हुआ था और बूँदा-बूँदी भी हो रही थी। सावन का महीना था। मैंने देखा, मेरी जीवन-सहचरी आराम से सो रही है। आज की ही लगाई हुई मेंहदी उसकी कोमल तलहथियों में चमक रही थी, जिसमें से भीनी-भीनी महक भी निकल रही थी। वह आराम की मीठी नींद सो रही थी। उसकी लम्बी और बन्द पलकों के नीचे निश्चय ही सुख-स्वप्नों का मनोरम नाटक हो रहा होगा। दूसरी ओर खुली हुई खिड़कियों से बाहर अन्धकार का जाल-सा बुना हुआ था। सामने सारा शहर निद्रामग्न था। कहीं से कुछ भी जागृति का परिचय नहीं मिलता था, पर बीच बीच में हवा में लिपटी हुई एक पतली चीख सुन पड़ती थी और मेरे शान्त कमरे के कोने-कोने में गूँज जाती थी।

मैं लेखक हूँ। मैं अपने सहकर्मियों से यह पूछना चाहता हूँ कि हम क्या लिखें? 'स्व' और 'पर' तथा 'घर' और 'बाहर' इनका जहाँ एकान्त मिलन हो जाता है, वहीं से सच्ची मानवता का आरम्भ होता है। साहित्य मानवता का एक रूप है न कि दोनों दो भिन्न-भिन्न तत्त्व हैं। हमने बहुत कोशिश करके मानवता और साहित्य का अलगाव किया है। हमारी यह चेष्टा बराबर रही है कि साहित्य मानवता से जितना दूर रह सके उतना ही अच्छा।

दुर्बुद्धि का यह अभिशाप हमारी पतितावस्था की अवधि को बढ़ानेवाला सिद्ध हुआ, यह कहते मुझे बहुत ही परिताप होता है। मुझे यह मालूम है कि मैं केवल अपनी बातें कहने का ही अधिकार रखता हूँ। उपदेश देना तो उन गुरुजनों का काम है जिन्हें अपनी सुफ़ेद मूँछों पर नाज़ हो और जो हम नये लेखकों को 'कल के बच्चे' कहकर हमारी बातें सुनने को भी तैयार न हों।

मैं एक कहानी कहूँगा। बात सच्ची है और उसकी सचाई पर मुझे कोरा नाज़ ही नहीं भरोसा भी है। मैं अपने एक बहुत बड़े धनी मित्र के साथ कपड़े की एक नामी दूकान पर गया। उन दिनों मेरा हाथ खाली था और गोकि बहुत ही ज़ोरदार सर्दी पड़ रही थी, पर मेरे बच्चे गत वर्ष के पुराने और कुछ कुछ फटे कपड़ों पर ही दिन काट रहे थे। यह दृश्य मेरे लिए दिल दहलानेवाला था और रह रह कर मेरा दिमाग़ विद्रोही की तरह गरम हो उठता था। यद्यपि मुझे अपने सूती कोट की ओर ध्यान देने का अवसर न था, तो भी बच्चों की ओर नज़र पड़ते ही हृदय विषधर की तरह फुफकार मारने लगता था। धिक्कारता था मैं अपने को कि मुझमें इतनी क्षमता

भी नहीं है कि मैं अपने प्राणों जैसे बच्चों के लिए कपड़े भी बनवा सकूँ और वे पुराने फटे गन्दे कपड़ों के भरोसे बढ़ती हुई सर्दी और पाले का कठोर सामना करने को मेरी दरिद्रता के चलते तैयार किये गये हैं। इतना ही नहीं, मेरी छोटी बच्ची के नन्हें से कोमल शरीर पर वह पुराना ऊनी कपड़ा भी नहीं था। वह खद्दर का एक मोटा 'फ़्राक' पहने हाथ पैर सिकोड़े अपने अभागे पिता के नाम पर हर घड़ी काँपा करती थी। मैं झूठी शान का जामा पहने इस दृश्य को बहुत ही बेशर्मी के साथ देखता और देखकर भी भूल जाने की कोशिश करता। कभी-कभी दिल में जो आग पैदा होती भी तो उसे एक-दो कहानियाँ लिखकर बुझा दिया करता था।

हाँ, तो अपने एक धनी मित्र के साथ मैं कपड़े की दूकान पर गया, जहाँ उन्होंने अपने एक दर्जन बच्चों के लिए कपड़े ख़रीदे। १०) गज़ से कोई कपड़ा कम क़ीमत का न था और उस पर यह शिकायत थी कि दूकानदार दामी कपड़े अब नहीं मँगवाते और लाचार होकर उन्हें रद्दी और दरबानों के योग्य कपड़े अपने बच्चों के लिए ख़रीदने पड़ रहे हैं। इतना ही नहीं, इसके बाद उन्होंने एक 'तूस' भी ख़रीदा, जो ठेठ काश्मीर का बना हुआ था और उसकी क़ीमत थी ४५)। यद्यपि उनके पास दर्जनों शाल और तूस थे, पर रंग पसन्द आजाने के कारण एक और तूस उन्होंने ख़रीद ही तो लिया। मैं हक्का-बक्का-सा बैठा यह सब देखता रहा और लाचार मुझे भी उनके पसन्द किये हुए कपड़ों पर अपनी सम्मति देनी पड़ी। यह कितना कठोर काम था। उफ़्! एक मामूली सूती कोट पहने जड़ाता-काँपता जब मैं १० बजे रात को घर लौटा तब वहाँ अपनी जीवन-सहचरी को सूट की एक अधकटी-सी नीमास्तीन पहने आग तापते पाया और देखा अपने बच्चों को कम्बल और तीन साल की पुरानी रज़ाई में लिपटकर सोते—जिस रज़ाई का उपल्ला और निचल्ला फट गया था और जगह जगह से अभागी रुई बेशर्म की तरह झाँक रही थी। उस तूस और पश्मीने की ख़रीद-बिक्री का दृश्य मैं कैसे भूलता और मैं कैसे भूलता अपने बच्चों के फटे कपड़ों को जिनसे वे बेचारे अपनी कोमल और ठिठुरती हुई देह को ढाँके किसी तरह भयानक पूस-माघ से लड़ने की तैयारी कर रहे थे।

मैं पूछता हूँ अपने लेखकों से, क्या हमारी सेवाओं का यही पुरस्कार है? और क्या यह ग़रीबी हमारे हृदय को क्षण भर के लिए भी विद्रोही नहीं बना सकती है? हम तो आसमान के मज़मून बाँधते हैं, पर हमारे चारों ओर जिस निराशा और हाहाकार का जाल-सा बुना हुआ है उस ओर हमारा ध्यान क्यों नहीं जाता? हम मध्यवर्ग के हैं और उच्चवर्ग से हमारा कोई वास्ता नहीं! निम्नवर्ग से अभी-अभी ऊपर उठकर हम दो क़दम आगे बढ़े हैं। कल तक हम निम्नवर्ग में एकाकार थे। क्या हम यह भूल गये कि उच्चवर्ग हमें अपने मनोरंजन का खिलौना समझते हैं? उन्हें साहित्य से कोई मतलब नहीं और न उन्हें हमारी लिखी जानदार चीज़ों से ही कोई वास्ता। वे अपने धन, अपने व्यसन, अपने व्यभिचार, अपनी मोटर-गाड़ी, अपने मित्र, अपनी शानदार कोठी, अपनी लूटमार, अपनी निर्दयता, अपने ओछेपन और अपने ख़ुशामदी कमीने दरबारियों से मतलब रखते हैं। वे पाख़ाने में बैठकर भी आपकी कला का रसास्वादन करने को प्रस्तुत नहीं हैं, जहाँ बैठकर वे सुबह के अख़बार पढ़ा करते हैं! उनके लिए विलायत में किताबें छपा करती हैं और उन दामी पुस्तकों की सुन्दर सुनहली जिल्दों से वे अपने कमरों की शोभा बढ़ाया करते हैं! दामी आलमारियों में आपकी काग़ज़ की जिल्दवाली मामूली काग़ज़ पर छपी हुई किताबें स्थान नहीं पा सकतीं! मैं पूछता हूँ, फिर आप किस उम्मीद में अनार समझकर सेमर के वृक्ष की सेवा कर रहे हैं? आपकी इस मूर्खता का कभी अन्त भी होगा या यह आपकी 'अनन्त-साधना' का ही एक अंग है?

मैं कहता हूँ कि अब आपको अपने विषय में कुछ सोचना चाहिए और निर्भय होकर सोचना चाहिए। आपकी लेखनी जिस ओर घूमेगी उसी तरफ़ सारा संसार घूम जायगा। ये मोटर और पश्मीनावाले जनप्रवाह को रोक नहीं सकेंगे। यदि ये आपके पैदा किये हुए तूफ़ान के विरोध में खड़े होने की हिम्मत करेंगे तो इनका ख़ाक में मिल जाना उतना ही निश्चित है जितना बारूदख़ाने में घुसकर आग की फुलझड़ियाँ छोड़ने की बेवक़ूफ़ी करनेवाले का विनाश निश्चित है।

मैं यह नहीं कहता कि दुनिया धनिकों के वैभव

को देखकर जले, मैं यह नहीं कहता कि हम ग़रीबी की मार से खुद पैदल चलते हुए उन मोटरवालों को जलती आँखों से देखें जो हमारी गुरबत पर धूल उड़ाते हुए तीर की तरह बग़ल से आगे निकल जाते हैं, मैं यह नहीं कहता कि ऊँची कोठीवालों की उन कोठियों से दुश्मनी का नाता हम रक्खें, जिनकी सुन्दर खिड़कियों में से बिजली की चमकदार रोशनी निकलती हो, जाड़े की रात को उनमें से किसी मदमत्ता के भर्राये हुए कंठ से थकी हुई संगीत-ध्वनि निकलती रहती हो। मैं किसी की अमीरी पर गरम आँसू बरसाने की बात कभी नहीं सोचता और न किसी के विलास को अपने अभिशाप से मरघट की चहल-पहल ही बनाने की कल्पना करता हूँ। जो भी हो, पर यह मैं जानता हूँ कि हमारे वे साहित्यकार उन बहुसंख्यक अमीरज़ादों से सांस्कृतिक दृष्टि में बहुत ही उच्च हैं, जो फ़क़त अपने पैसों के चलते ही लोकपूज्य हैं, वरना किसी भले आदमी के मुहल्ले में क़दम रखने भर की भी इन्सानियत उनमें नहीं पाई जा सकती। मैं सोचता हूँ कि हम साहित्यिकों और किसानों में कोई विशेष अन्तर नहीं है। यदि किसान पेट के लिए खुराक पैदा करते हैं तो हम भी तो दिमाग़ की भूख मिटाने के लिए ही मरते-खपते रहते हैं।

यहाँ मैं किसानों और साहित्य-निर्माताओं को और भी एक-दूसरे के निकट पाता हूँ जब हम दोनों को ही अनधिकारियों के लिए कठोर परिश्रम करते देखते हैं। यह बात सही है कि किसान ज़मींदारों के लिए अन्न पैदा करता है तो एक साहित्यिक ऊँची कोठीवालों के लिए ही लिखता है। किसान तो लाचार होकर अपने शोषकों के खजाने भरता है, पर हमारे सामने कोई लाचारी नहीं है। आज से हम यह निश्चय कर सकते हैं कि हम अमीरों के लिए नहीं, उनके बिगड़े दिमाग़ों के लिए नहीं, उनकी विलासपूर्ण वृत्तियों की तृप्ति के लिए नहीं बल्कि उनकी तानाशाही के विनाश के लिए लिखेंगे। उन्होंने आज तक अन्यायरूप से जो कुछ खाया है उसका कण-कण वसूल करने के लिए लिखेंगे और उन्हें मानवता की शिक्षा देने के लिए लिखेंगे तो इसमें कोई लाचारी नहीं है।

जब मैं अपने चारों ओर निर्धनता और बेबसी का घोर हृदय-विदारक रूप देखता हूँ और देखता हूँ अपने आपको उस नरक में जलता हुआ, तब आत्मा कराह उठती है और मानसिक शान्ति का अन्त हो जाता है। मैं चाहता हूँ कि 'मेघदूत' पढ़ूँ, जिसमें विरह का व्यापक प्रसार स्वर्ग से लेकर रामगिरि पर्वत तक वर्णन किया गया है। जिस कवि ने अपने छन्दों के ताल पर जड़ मेघ को भी नचाया उसकी कल्पना से अब हमारी व्यग्र आत्मा नहीं नाचती। मन की सूखी पंखुरियाँ नहीं विकसित होतीं।

'अभिज्ञानशाकुन्तल' से जी बहलाना चाहता हूँ। पढ़ता हूँ प्रेमविकल राजा दुष्यन्त शकुन्तला से कह रहा है कि—

"अंके निधाय करभोरु यथासुखं ते
संवाहयामि चरणावुत पद्मताम्रौ"

यहाँ राजा दुष्यन्त अपनी प्रेमिका के पैर दबाने का प्रस्ताव कर रहा है और उधर से श्रीमती जी ने आकर सन्देश दिया कि घर में खाने को एक दाना भी नहीं है, और आज बनिया उधार देना भी नहीं चाहता !

आप सोचिए, क्या हम इसी लिए साहित्य का निर्माण कर रहे हैं ? क्या हम संसार की संस्कृतियों की रक्षा और निर्माण इसी लिए कर रहे हैं ? क्या हम देश के भविष्य को अपने और अपने बच्चों के गरम खून से इसी लिए सींच रहे हैं कि नंगे और भूखों मर कर साहित्य-सेवा करें ? यह तो बर्दाश्त होने लायक़ बात नहीं है और सही बात यह है कि हमारी शान्त भावनाओं के साथ जी भर कर खेलवाड़ भी किया जा चुका है।

हम अपने लिए सदा कष्ट और आपदा चुनते रहे और दूसरों के लिए फूल की डाली सजाते रहे, पर अब युग पलटता है ! इस सत्य के सामने सभी कोई सिर झुकाने के लिए तैयार होगा कि युग पलटता है; जो अपना सिर झुकाना नहीं चाहेगा उसे अपने सिर के प्रति शत्रुता करने का पाप लगेगा।

मैं कहता हूँ कि—

"तस्मादुत्तिष्ठ !"
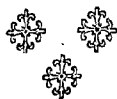
दो साथी

लेखक, श्रीयुत नरेन्द्र

मैंने देखा, मैं जिधर चला
मेरे सँग-सँग चल दिया चाँद!

(१)

घर लौट चुकी थी थकी साँझ!
था भारी मन, दुर्बल काया,
था ऊब गया बैठे-बैठे
मैं अपनी खिड़की पर आया!
टूटा न ध्यान, सोचता रहा—
गति जाने अब ले चले किधर!
ये थके पाँव बढ़ गये किन्तु
चल दिये उधर, मन हुआ जिधर!
पर जाने क्यों मैं जिधर चला
मेरे सँग-सँग चल दिया चाँद!
पीले गुलाब-सा लगता था
हलके रंग का हलदिया चाँद!

(२)

साथी था, फिर भी मन न हुआ
हलका, हो गया भार दूना!
वह भी बेचारा एकाकी—
उसका भी जीवन-पथ सूना!
क्या कहते दोनों ही चुप थे,
अपनी-अपनी चुप सहते थे,
दुख के साथी बस देख-देख,
बिन कहे हृदय की कहते थे!
था ताल एक; मैं बैठ गया
मैंने संकेत किया, 'आओ
रवि-मुकुर! उतर आओ—
अस्थिर कवि-उर को दर्पण बन जाओ!'
मैं उठा, उठा वह; जिधर चला,
मेरे सँग-सँग चल दिया चाँद!
मैं गीतों में, वह ओसों में
बरसा औ' रोया किया चाँद!

(३)

क्या पल भर भी कर सकी ओट
झुरमुट या कोई तरु-डाली,
पीपल के चमकीले पत्ते
या इमली की झिलमिल जाली?
मैं मौन विजन में चलता था,
वह शून्य व्योम में बढ़ता था;
कल्पना मुझे ले उड़ती थी
वह नभ में ऊँचा चढ़ता था!
मैं ठोकर खाता, रुकता वह;
जब चला साथ चल दिया चाँद!
पल भर को साथ न छोड़ सका
ऐसा पक्का कर लिया चाँद!

(४)

अस्ताचलगामी चाँद नहीं क्या
मेरे ही टूटे दिल-सा?
टूटी नौका-सा डूब रहा
जिसको न निकट का तट मिलता!
वह डूबा ज्यों तैराक थका,
मैं भी श्रम से, दुख से टूटा!
थे चढ़े साथ, हम गिरे साथ
पर फिर भी साथ नहीं छूटा!
अस्ताचल में ओझल होता शशि,
मैं निद्रा के अञ्चल में,
वह फिर उगता, मैं फिर जगता
घटते-बढ़ते हम प्रतिपल में!
मैंने फिर फिर अजमा देखा
मेरे सँग-सँग चल दिया चाँद!
वह मुझ-सा ही जलता बुझता
बन साँझ-सुबह का दिया चाँद!

राजमहलों की एक भावपूर्ण कहानी

अनंगलेखा

लेखक, श्री विजयबहादुर श्रीवास्तव, बी० एस-सी०, एल-एल० बी०

नंगलेखा राजकुमारी थी। ऐसे-वैसे की लड़की नहीं, काश्मीर के सार्वभौम महाराज बालादित्य की लाड़ली बेटी थी। उसकी अवस्था अभी केवल तेरह वर्ष की थी। इसलिए स्वतंत्रता-पूर्वक वह राजदरबार में उपस्थित रह सकती थी।

एक दिन राज-सभा में पण्डितों का जमघट था। श्वेत पत्थर के नक्क़ाशीदार सत्ताईस खम्भों की बनी एक बारहदरी थी। वह तीन ओर से खुली थी, चौथी ओर महल था। इसी ओर पाँच हाथ ऊँचे सिंहासन पर महाराज बालादित्य विराजमान थे। पीछे चार दासियाँ खड़ी थीं। दो चँवर डुला रही थीं; एक पानदान लिये थी और एक सुगन्धित पात्र। राजा का हाथ हर आधी घड़ी में उठता था और कन्धे तक जाता था। दासी उसके समीप पान कर देती थी। राजा उठाकर चर्वण करने लगता था।

बालादित्य के समीप ही वाम पार्श्व में अनंगलेखा बैठी थी। वह सौन्दर्य की मूर्ति और कला का केन्द्र थी। उसके गायन-नर्तन की प्रशंसा चारों ओर फैल रही थी। सब उसकी ओर देखते थे और मुग्ध हो जाते थे। 'न जाने किस बड़भागी की वह अर्धांगिनी होगी' यही सबकी निःश्वासों के साथ निकलता था।

राजसिंहासन के सामने, कुछ नीचे, एक लम्बा-चौड़ा काले पत्थर का तख़्त था। उस पर पाँच मंत्री बैठे थे; दो दायें, दो बायें और एक बीच में। बीचवाला पुरुष बहुत सुन्दर, सुडौल और चपल था। उसकी अवस्था पच्चीस वर्ष से ऊपर नहीं थी। वृद्ध मंत्री के मरने के उपरान्त उसका ही पुत्र प्रधान बना दिया गया था। यद्यपि वह अभी अल्पायु था तो भी बहुत चतुर और वाक्पटु था। राजनीति, कूटनीति, सेना-संचालन, न्याय आदि किसी भी विषय में कोई उसकी बराबरी नहीं कर सकता था।

मंत्रियों के सामने एक चौरस फ़र्श बिछा हुआ था। इस पर बहुत-से पण्डित बैठे थे। उनकी वेश-भूषा से विदित होता था कि कान्यकुब्ज, वाराणसी, अवन्ति, स्थानेश्वर, मूलस्थानपुर तथा दक्षिणपथ के अनेक पण्डित आकर इस सभा में उपस्थित हुए थे। स्थानीय पण्डितों की तो कमी ही नहीं थी।

पण्डितों के दायें-बायें सामन्त, महासामन्त तथा अन्य अधिकारिगण बैठे थे। उनके उपरान्त राजदूत तथा अन्य दरबारी थे। इस सब जनसमुदाय के आस-पास सशस्त्र सैनिक थोड़े थोड़े अन्तर से खड़े हुए थे। उनके पीछे, बारहदरी के बाहर, प्रजा के प्रतिष्ठित सज्जन विराजमान थे। तदुपरान्त अश्वारोही सैनिक सम्पूर्ण राज-सभा को घेरे हुए थे। भीतर आने जाने को तीन मार्ग थे; किन्तु बहुत जाँच-पड़ताल और परिचय के बाद व्यक्ति प्रवेश कर पाते थे।

समस्त सभामण्डप सैकड़ों प्रदीपों से आलोकित था। धूप और सुगन्ध के कारण वायुमण्डल सघन हो रहा था। सुरभित जल के फ़ारे छूट रहे थे। बीच बीच में रखे हुए पुष्प-पात्र वायु से विलोडित हो रहे थे।

घण्टों से पण्डितों का शास्त्रार्थ हो रहा था। एक के उपरान्त एक अपने मत की पुष्टि में भाषण देता था। दूसरे सब शान्ति-पूर्वक श्रवण करते थे। न 'हू-हू' होता था और न हल्ला। राजसभा का अनुशासन और प्रबन्ध आदर्श था। बाहर से आये हुए सभी पण्डित अचम्भित थे।

शास्त्रार्थ के उपरान्त ज्योतिषियों की बारी आई। आर्यभट्ट और वाराहमिहिर के सिद्धान्तों का खण्डन-मण्डन और विवेचन हुआ। पुलिश के सिद्धान्तों पर भी टीका-टिप्पणी हुई। पण्डितगण अपने मतों का प्रतिपादन ऐसे उत्तम ढंग से करते थे कि कहा नहीं जा सकता था कि किससे बढ़कर कौन है! अन्त में अवन्ति के पण्डित विश्वेशभट्ट की जीत हुई। वे सभा के रत्न घोषित किये गये।

राजा ने उनकी ओर देखा। फिर सोच समझकर अपने समीप बुलाया। उन्हें पाँचों वस्त्र और बहुत सी बहुमूल्य भेंट पुरस्कार में दी। रजतपत्र पर लिखा हुआ एक प्रमाणपत्र भी दिया गया। ब्राह्मण देवता ने राजा के आशीर्वाद और प्रशंसा में पाँच श्लोक पढ़े। फिर समीप बैठी हुई अनंगलेखा की ओर देखा। उसके अंगों और मुख-मण्डल पर अंकित चिह्नों को देखकर पण्डित को आश्चर्य हुआ। राजा ने कन्या का भविष्य बतलाने का आग्रह किया। पण्डित ने भोजपत्र पर कुछ लिखकर राजा के हाथ में दे दिया। बालादित्य का चेहरा मलिन हो गया। मुख का पान उगल दिया। राजसभा विसर्जित कर दी। एकाएक अन्तःपुर में चले गये और विश्राम करने लगे।

(२)

तीन वर्ष बीत चुके थे। अनंगलेखा षोडशी हो चुकी थी। उसके विवाह के लिए कान्यकुब्ज के महाराज ने इच्छा प्रकट की थी। अवंतीश्वर ने भी सन्देश भेजा था। थानेश्वर और पाटलिपुत्र के राजा भी प्रस्तुत थे। किन्तु न जाने क्यों बालादित्य सबको इन्कार करते गये।

यदि दूर देशों में अपनी कन्या नहीं देना चाहते थे तो पास भी तो उनके मित्रों और अधीनस्थ राजाओं की रियासतें थीं। जालन्धर, काम्बोज, गान्धार, लोहर अथवा राजपुरी किसी भी स्थान में वे अनंगलेखा को विवाह सकते थे।

मान लो ये सब बाहर के थे। यदि काश्मीर के बाहर ों जाना था तो वहाँ ही कितने ही श्रेष्ठ पुरुष मिल सकते । मह सेनापति तथा महासामन्त राज्य के अग्रगण्य प थे। यदि उनकी अवस्था अधिक थी तो प्रधान मंत्री अभी बिल्कुल नवयुवक थे। उन जैसा व्यक्ति काश्मीर ा समस्त भारत में ढूँढ़े नहीं मिलता। किन्तु न जाने जा को क्या सूझा कि समस्त संसार छोड़कर उन्हों पनी लड़की अश्वपाल कायस्थ दुर्लभवर्द्धन को ब्याह दी।

"धन्य है रे भाग्य! क़िस्मत बड़ी चीज है। बाप-ादे लम घिसते-घिसते मर गये। कभी काग़ज़ और गाही से पीछा नह छूटा। इस दुर्लभा की जिन्दगी भी ड़सालों और घास दाने का हिसाब लिखते-लिखते बीत ाती। किन्तु भाग्य की बात है। आज वह राजसभा में सिंहासन पर बैठता है। राजमहलों में पैर पुजवाता है। राजा ने अपनी लड़की का मुँह नहीं देखा। कंजूसी की। देखो तो बेचारी कितनी उदास रहती है। उसका कमल सा मुख सूखकर तुषार-कैसा मारा हो गया है।"

संसार की ये बातें थीं किन्तु इनसे क्या? कहीं ब्रह्मा के अंक झूठे पड़ सकते थे। परन्तु ब्याह हो जाने से क्या था। अनंगलेखा की प्रीति दुर्लभवर्द्धन से रत्ती भर भी नहीं थी। उसका जी तो प्रधान मंत्री खंख ने चुरा लिया था। वही उसकी आँखों का तारा, हृदय का दुलारा था। उसके दर्शन से अनंगलेखा के हृदय में अमृत-वर्षा होती थी। उसे आँखों से ओझल नहीं होने देना चाहती थीं। किन्तु दुर्लभवर्द्धन के तो नाम तक से 'फुरहरी' आती थी। रोएँ खड़े हो जाते थे।

दुर्लभवर्द्धन था कितना कुरूप! राजकुमारी की तो कौन कहे दासियाँ तक उससे घृणा करती थीं। ऊँचा पूरा, गोरा नारा, हृष्ट-पुष्ट सब था। नाक-नक्शा, आँख-भौंहें सब अच्छी थीं। हँसता मुस्कराता भी अच्छा अच्छा था। इतना होने पर भी अच्छा नहीं था। काट-छाँट तो अच्छा था पर छवि तो थी ही नहीं। उसकी चाल-ढाल चितवन, बोल-चाल कुछ भी तो अच्छा नहीं थी। और की तो बात क्या है छाया तक कुरूप थी। महाराज का भय था, इससे महलों में आ लेता था। नहीं तो अगर दासियों की चलती, तो 'दुर्लभा' को सिंहपौर के भीतर पैर न रखने देतीं। इतना डाँटती फटकारती थीं, इतने जले-कटे बोल बोलती थीं, तो भी वह सुनता रहता था। मुस्कराता रहता था। बड़ा निर्लज्ज था।

यदि कभी कोई दासी दुर्लभवर्द्धन का पक्ष ले लेती थी तो उस पर आफ़त आजाती थी। फ़ौरन वह 'जाति के बाहर; उसका हुक्का पानी बन्द।' इतना ही नहीं उसे राजकुमारी की कचहरी से कड़ा दण्ड मिलता था। इनाम-इक़राम बन्द हो जाता था। उसकी जिन्दगी किरकिरी हो जाती थी।

किन्तु खंख का हाल ही दूसरा था। वह सब गुणों का आगार, विद्या-बुद्धि का केन्द्र, धन का कुबेर और रूप का मदन था। उसे सब स्वतन्त्रता थी। जहाँ चाहे जाता, जब तक चाहे ठहरता; जिससे चाहे बोलता था और जिसको चाहता डाँटता था। वह प्रधान मंत्री था। धन और मान की वर्षा करता था। चाहे जिसको क्षण में बना

सकता था और क्षण में बिगाड़ सकता था। वैसे ही लोग उससे घबड़ाते थे फिर राजकुमारी की उस पर विशेष कृपा थी। दास-दासी, द्वार-पाल, कंचुकी, यहाँ तक कि महा-प्रतिहार तक उसके वश में थे। अन्तःपुर, महारानी का महल तथा अनंग-भवन सब उसे बराबर थे। किन्तु उसके आकर्षण का केन्द्र केवल अनंग भवन ही था। वहीं उसकी प्यास बुझती थी।

दुर्लभवर्द्धन के मार्ग में दास-दासी बात बात में आते थे। वह अनंग-भवन की ओर जाता था, तुरन्त रोक दिया जाता था। 'कुमारी जी अस्वस्थ हैं। उनकी इच्छा नहीं है कि कोई आवे।' 'उनके पास भद्र महिलायें बैठी हैं।' 'महारानी जी पधारी हैं।' 'वे शृंगार कर रही हैं।' 'स्नानागार में हैं।' 'यह उनकी पूजा का समय है।' 'वे आराम कर रही हैं।' 'कृपया फिर कष्ट उठाइए।' ऐसे ही उत्तर मिलते थे। बेचारा दुर्लभ परेशान था। यदि कभी धृष्टतापूर्वक घुस भी जाता था तो अनंगलेखा ग़ायब मिलती थी। वह रात-रात भर प्रतीक्षा करता था, किन्तु वह आती ही नहीं थी। पता चलता था 'आज महारानी बिम्बा ने रोक लिया है।' 'आज महारानी चित्रा के कक्ष में विश्राम करेंगी।' ऐसे ही ऐसे कितने ही दिन बीत गये।

(३)

एक दिन अमावस्या की रात थी। पानी रिमझिम-रिमझिम बरस रहा था। बादल छाये हुए थे। बिजली चमक चमक कर रह जाती थी। दुर्लभवर्द्धन अपने शयनागार में अकेला था। कभी बिस्तर पर लेटता था। कभी उठ बैठता था। कभी कमरे में घूमने लगता था। फिर कभी खिड़की खोलकर अन्धकार में देखने लगता था।

रात्रि के दो पहर बीत चुके थे। तीसरा भी आधा-सा जा चुका था। धीरे-धीरे किसी की पदध्वनि सुन पड़ी। दबे पैरों कोई आरहा था। दुर्लभवर्द्धन ने किवाड़ खोले। एक व्यक्ति भीतर आया। वह सिर से पैर तक ढँका था। आवरण उसका काला था। चुपचाप उसने प्रणाम किया। फिर दुर्लभवर्द्धन से कुछ कहा।

दुर्लभवर्द्धन बिना बोले अपनी सेज तक गया। उस पर बैठकर धीरे-धीरे उसने वस्त्र धारण किये। कवच पहिना। शिरस्त्राण कसा। पादत्राण भी बाँधे। एक लम्बी सी तलवार बाईं ओर लटकाई। एक कटार भी कमरबन्द में कस ली। पूर्ण सुसज्जित होकर एक काला चोगा पहिना। इससे समस्त शरीर ढँक गया।

आगे नवागन्तुक हो गया। पीछे दुर्लभवर्द्धन चला। दोनों राजमहल के पीछे एक छोटे से द्वार पर पहुँचे। दरवाज़ा खुला था। ये प्रविष्ट हो गये। स्थान-स्थान पर द्वारपाल बैठे थे। किसी भाँति उनकी दृष्टि बचाते हुए ये बढ़ते गये। अनंग-भवन के दरवाज़े पर पहुँच गये।

द्वारपाल नशे में चूर था। उसे लाँघ कर ये भीतर घुस गये। एक कमरा विशेष प्रदीप्त था। उसमें दुर्लभवर्द्धन ने प्रवेश किया। एक शय्या पर दो व्यक्ति सो रहे थे।

उनके वस्त्र अस्तव्यस्त थे। स्त्री के श्वास-निःश्वास अत्यन्त तीव्र थे। उसका वक्ष खुला था। नखाघातों में रक्तिमा दौड़ रही थी। दन्तक्षत कपोल अभी सूखे नहीं थे। दृश्य अद्रष्टव्य था। दुर्लभवर्द्धन की आँखों में ख़ून उतर आया।

वह एक क़दम पीछे हटा। झटके से हाथ मूठ पर गिरा। तलवार खिंच आई। सन्न से ऊपर गई और एक क्षण में वेग से नीचे गिरी। किन्तु यह क्या? दुर्लभवर्द्धन का चेहरा क्यों उतर गया? उसके मस्तिष्क में कौन-सी विचार धारा दौड़ रही थी? वह सोच रहा था—"हूँ! यह स्त्री मेरी है। क्यों? पिता ने इसे मुझे विवाह दिया है? किन्तु इसने मुझे क्या अधिकार दिया है? पिता को अपनी सन्तान पर इतना अधिकार है?" वह बोल उठा—ईश्वर बल दे।

एकाएक उसका हाथ रुक गया। तलवार क्रमशः म्यान की ओर गई। उसमें बन्द हो गई। उसने पुरुष के सिरहाने की ओर देखा। उसका पटुका उठाया। उसे पृथ्वी पर बिछाया। अपनी कमर से कटार निकाली। उसे अपनी तर्जनी पर रक्खा। हलका-सा धक्का मारा। रक्तधारा बह निकली। पटुके पर अपना त्याग-पत्र लिख दिया। अनंगलेखा से विच्छेद हो गया। मंत्री खंख को प्राण-दान दे दिया।

(४)

काश्मीरनरेश बालादित्य मृत्यु-शय्या पर पड़े थे। आँखों से आँसू बह रहे थे। उनके कोई पुत्र नहीं था। केवल

एक पुत्री थी। वह भी परित्यक्ता। उनके आस-पास राज्य के सभी कर्मचारी खड़े थे। वृद्ध महाराज की दृष्टि एक एक पर जाती थी। वह किसी को खोज रही थी। वह दिखता नहीं था। क्षीण स्वर में कष्टपूर्वक बोले—'दु—र्ल—भ—व—र्द्ध—न।' किन्तु दुर्लभवर्द्धन कहाँ था। वह तो विरक्त था—वैरागी था। उसे संसार से कुछ प्रयोजन नहीं था। खैर, खोज कर बुलाया गया।

राजा ने दुर्लभवर्द्धन को समीप बुलाया। बैठने का संकेत किया। उसके मस्तक पर हाथ रक्खा। उसे अपना उत्तराधिकारी घोषित किया। अनंगलेखा को समीप बुलाकर, उसके चरणों पर गिरा दिया। मंत्री की ओर देखा। उसने घुटनों को टेक कर सिर झुकाया और स्वामि-भक्ति की शपथ खाई। अब राजा के प्राण निकल रहे थे। उन्हें विरेश भट्ट के शब्द स्मरण आते थे—'तुम्हारा उत्तराधिकारी......इस.......कन्या का ..पति...होगा।'

भला रेख पर मेख कौन मार सकता है? जबर्दस्ती से ब्याह करने से क्या होता है? दुर्लभवर्द्धन के भाग्य में राज का योग था। अनंगलेखा उसकी रानी थी; किन्तु पत्नी नहीं।

बम-वर्षक वायुयान

लेखक, श्रीयुत श्रीनिधि द्विवेदी

नभ की छाती को चीर चला गति-हुङ्कारों से वायुयान,
फूँकता नगर घर-बार बड़ा भर फूत्कारें जाज्वल्यमान!
दूरी को दौड़ कुचलता-सा
विध्वंस विनाश उगलता-सा,
सुख-शान्ति और सीमाओं को—
कर चकनाचूर निगलता-सा।
सर-सर से शरमाया समीर,
छिप गये जलद जल-जल अधीर,
नभ थर्राया काँपी पृथ्वी—
खौलने लगा-सा सिन्धु-नीर।
मिटने का और मिटाने का लेकर साहस मन में महान्,
संदेश प्रलय के दुहराता आता विध्वंसक वायुयान।

खतरे का बिगुल बजा, भय से—
घर-घर से गूँज उठा घर घर,
छाती में छिपा दुधमुँहों को—
मातायें काँप उठीं थर-थर।
बम बरसे वज्राघातों-से
उत्पातों उल्कापातों-से,
गृह महल ढहे जल उठे, मार्ग—
रुक गये अग्नि-संघातों से।
हलचल, कोलाहल, उथल-पुथल, चीत्कारें, रोदन, त्राण! त्राण!
बेधता शान्ति का वक्षःस्थल आया बम-वर्षक वायुयान।

आगई बाढ़ सत्ता के मद—
वैभव के नद उफ़नाने को,
मानव ही तो कटिबद्ध हुए—
मानवता के दफ़नाने को।
बम का उत्तर गोलों से दे—
तोपों ने धधकाया विरोध;
जनता का सेना का विनाश
सत्ताधीशों का क्षोभ-क्रोध।
छोड़ता धुएँ की धारा-सी कर मुख नीचा तज धैर्य प्राण!
जुड़ गया दर्शकों का मेला गिर पड़ा टूट कर वायुयान!

विश्व में दीर्घ जीवन तथा सन्तानोत्पत्ति की समस्या

लेखक, श्रीयुत परिपूर्णानन्द वर्म्मा

संसार में उत्पत्ति अर्थात् जन-संख्या की वृद्धि किस प्रकार हो रही है और हर प्रधान देश के नागरिकों की संख्या बढ़ाने में वहाँ की मातायें कितना भाग ले रही हैं, यह सब विषय बहुत ही रोचक है और इसकी रोचकता उस समय और भी बढ़ जाती है जब हम यह तुलना करते हैं कि हमारी सन्तान तथा हमारी उम्र का औसत क्या है। हम और कितने वर्ष जीवित रहेंगे, यह प्रश्न केवल फलित ज्योति का ही नहीं है, किन्तु इसको गणितज्ञ भी हल करता है और इसके लिए उसे फलित के ज्योतिषी से ज़्यादा छान-बीन करनी पड़ती है।

ईश्वर ने सृष्टि की रचना बहुत ही अच्छे ढंग से की है। यदि मनुष्य ईश्वरीय नियमों के अनुसार चले तो उसको कभी कोई परेशानी न उठानी पड़े। लेकिन जहाँ मनुष्य ईश्वर के नियमों को भङ्ग करता है, वहीं समस्यायें उठ खड़ी होती हैं। यह तो पाठक जानते ही हैं कि आज योरप के बहुत-से देशों में पिछले महासमर के बाद से स्त्रियों की संख्या पुरुषों से कहीं ज़्यादा हो गई है, जिस कारण फ़्रांस, जर्मनी, इँग्लेंड जैसे देशों में विकट सामाजिक दुरवस्था उत्पन्न हो गई है। पर उत्पत्ति के साधारण नियम के अनुसार ईश्वर ने दोनों को आवश्यकतानुसार ही पैदा होने का नियम रक्खा है। राष्ट्र-परिषद् की रिपोर्ट के अनुसार प्रतिवर्ष ५१.५ प्रतिशत बालक और ४८.५ प्रतिशत बालिकायें पैदा होती हैं। कन्याओं की उत्पत्ति ४८.२ से ४९.१ प्रतिशत से अधिक नहीं होती। इसलिए हर एक देश की आवश्यकता पर लड़के-लड़की का हिसाब बैठ जाता है। पर अगर कोई राज्य लड़कर अपने लड़के कटा ही डाले तो फिर भगवान् क्या कर सकते हैं?

अस्तु, हिसाबों को जोड़कर निश्चित संख्या तक पहुँच जाने का काम बड़ी जोखिम का है। इस हिसाब-किताब में अमरीका की मेट्रोपोलिटन बीमा कम्पनी जैसी बड़ी कम्पनियों ने काफ़ी मेहनत की है। असल में उनके परिश्रम से अमरीका के संयुक्त राज्यों की 'जर्नल आव दि अमेरिकन स्टैटिस्टिकल असोसियेशन जैसी पत्रिकाओं ने काफ़ी फ़ायदा उठाया है और राष्ट्र-परिषद् के गणितज्ञों को भी काफ़ी परिश्रम से बच जाना पड़ा है। फिर भी हर एक देश की संख्यायें एकत्र करने का अपना नया ढंग, नया विचार है। जो अपनी जितनी ज़रूरत समझता है, उतना ही काम करता है। उदाहरण के लिए इँग्लेंड को लीजिए। वहाँ बच्चा पैदा होने पर माता की उम्र नहीं लिखी जाती। इसलिए किस उम्र की माताओं के कितने बच्चे पैदा होते हैं, इसका औसत निकालने के लिए जनगणना की रिपोर्ट से बहुत कुछ अन्दाज़ लगाना पड़ता है। जर्मनी में गर्भाधान होते ही उम्र लिख ली जाती है, पर गर्भ गिर गया या बच्चा पैदा हुआ, इसका अन्दाज़ मुश्किल से मिलता है। अमरीका के संयुक्त राज्यों में कुछ स्थानों में उम्र आदि लिखी जाती है और उसी से देश भर का अनुमान कर लिया जाता है। इस प्रकार वहाँ का हिसाब भी पक्का नहीं कहा जा सकता। बहुत-से ऐसे देश हैं, जहाँ 'उत्पत्ति' में मरा हुआ बच्चा अगर पैदा हो तो वह भी लिख लिया जाता है। कई देशों में जुड़वाँ बच्चा पैदा होने पर एक ही गिना जाता है।

आँकड़ों की भूल-चूक

इसलिए इस विषय पर क़लम उठानेवाले को पहले ही माफ़ी माँग लेनी पड़ती है। उसकी दी हुई संख्यायें रुपये में चौदह आने से अधिक सही नहीं हो सकतीं और उनमें भी कुछ छूट हो सकती है। पर इसका अर्थ यह नहीं है कि छान-बीन करने में कोई कमी की गई है या जानबूझकर किसी प्रकार की भूल रहने दी गई है। इन सभी त्रुटियों को ध्यान में रखते हुए एक निश्चित प्रणाली के अनुसार संख्यायें एकत्र की गई हैं। सभी देशों की एक

ही साल की संख्यायें उपलब्ध नहीं हैं, इसलिए यथाशक्य निकटतम वर्ष की संख्यायें लेनी पड़ी हैं। पर कहीं-कहीं तुलना में कठिनाई ज़रूर पड़ेगी।

सन्तान उत्पन्न करनेवाली माताओं की उम्र में भी भेद है। हमने उम्रों के अलग टुकड़े बाँट दिये हैं। बहुत-सी पैदायश काफ़ी बूढ़ी माताओं से अथवा निरी अबोध कुमारियों से होती है। अतएव उनकी उम्रों के आगे एक प्रश्नवाचक चिह्न (?) देकर ही उत्पत्ति की संख्या बतला दी गई है। हमने 'बीस' वर्ष तक की माताओं का जो हिसाब रक्खा है उससे तात्पर्य १५ से १९ वर्ष तक की स्त्रियों से है। पन्द्रह से पहलेवाली उम्र की मातायें ४५ से ऊपर बूढ़ी स्त्रियों के साथ शामिल कर दी गई हैं।

उत्पादन-शक्ति

नीचे कुछ देशों की माताओं की, उम्र के हिसाब से, उत्पादन-शक्ति दी जाती है, अर्थात् वे कितने बच्चे पैदा कर सकती हैं या करती हैं। हर एक उम्र की कुल १००० स्त्री पीछे औसत—

		उम्र						
देश	अवधि	२०	२०।२४	२५।२९	३०।३४	३५।३९	४०।४४	४५ X
संयुक्तराज्य (अमरीका)	१९२९-३१	४३.३	१२३.१	१२०.१	८८.२	५६.५	२१.९	२.३
जापान ..	१९३०	३१.५	२००.२	२४८.६	२१७.०	१६३.१	७१.६	१०.३
जर्मनी ..	१९३४	२६.५	१०९.०	१२७.४	८७.१	४९.८	...	११.९...
फ़्रांस ..	१९३५	२७.४	१२३.६	११८.९	७८.५	४३.७	१५.६	१.४
इटली ..	१९३५	१९.९	८४.५	१६०.४	१३८.१	१०३.७	४७.०	५.०
इँग्लेंड-वेल्स ..	१९३१	१२	७७.०	११२.०	९४.०	६१.०	२४.०	...
पोलेंड ..	१९३१-३२	२४.७	१४५.३	१८९.३	१६४.०	११७.८	५३.४	१०.४

इन संख्याओं के योग से पाठकों को दो बातें मालूम होंगी—

फ़ी १००० औरत पीछे सन्तानोत्पत्ति का योग

१—संयुक्तराज्य (अमरीका) ..	२,२७७
२—जापान ..	४,७१२
३—जर्मनी	२,०८१
४—फ़्रांस	२,०४५
५—इटली	२,७३३
६—इँग्लेंड-वेल्स ..	१,९२०
७—पोलेंड	३,५२५

पहली रोचक बात यह है कि इँग्लेंड में बच्चे बहुत कम पैदा हो रहे हैं। दूसरी बात यह कि फ़्रांस की उत्पत्ति जर्मनी से भी कम है। संयुक्तराज्य (अमरीका) के आँकड़े केवल गोरों की सन्तानों के हैं। वहाँ के कालों की उत्पत्ति का औसत २,२३९ है। पर गोरों में, ज्यों ज्यों उम्र बढ़ती जाती है, कालों की अपेक्षा उत्पत्ति बढ़ती जाती है। बीस वर्ष से कम उम्रवाली गोरी माताओं की सन्तान-उत्पत्ति का औसत ४३.३ है और ४० वर्ष से ऊपर २१.९ है। परन्तु काली माताओं की २० वर्ष से कम उम्र में उत्पत्ति का औसत ८४.९ और ४० वर्ष से ऊपर २०.१ है। इससे यह प्रकट होता है कि वहाँ काले लोगों में शीघ्र विवाह की प्रथा है। भारतवर्ष की संख्यायें हमें नहीं मिल सकीं, चीन की संख्याओं का मिलना ही असम्भव है।

ऊपर लिखे सात देशों के बारे में एक और रोचक बात जान लेनी चाहिए। जितनी सन्तानें उत्पन्न होती हैं, उनमें कितनी लड़कियाँ होती हैं जिनसे भावी सन्तान उत्पन्न होगी। इस संख्या को अँगरेज़ी में 'रिप्रोडक्शन-रेट' कहते हैं और इसकी पूरी यथार्थता के विषय में अर्थ-पंडितों में काफ़ी मतभेद है।

भावी माताओं की उत्पत्ति—फ़ी १००० माताओं-द्वारा

	सन्	
१—संयुक्तराज्य (अमरीका)	१९२९।३१	१,१०६
२—जापान ..	१९३०	२,२९५
३—जर्मनी ..	१९३४	९७९ (?)
४—फ़्रांस ..	१९३५	१,००३
५—इटली ..	१९३५	१,३६१
६—इँग्लेंड-वेल्स ..	१९३१	९३७ (?)
७—पोलेंड ..	१९३१।३२	१,७०५

जर्मनी और इँग्लैंड की संख्याओं में कुछ सौ की भूल मालूम होती है, यद्यपि रिपोर्टों में यही दिया है। जो हो, इसके पहले पूरी उत्पत्ति का जो औसत हमने दिया है उससे मिलान करने पर अधिकांश वही औसत निकलेगा जिसका हम पहले ज़िक्र कर आये हैं।

इस लेख से यह साफ़ मालूम हो जाता है कि सृष्टि के विकास के लिए क्या हो रहा है। गर्भ-निरोधक ओषधियों की बाढ़ तथा विद्वानों-द्वारा सन्तानोत्पत्ति रोकने के तरीक़ों की काफ़ी छानबीन होते रहने पर भी संसार में उत्पत्ति और उत्पत्ति करनेवाली माताओं की किस प्रकार वढ़ती हो रही है, यह पाठक अच्छी तरह समझ जायँगे।

हम कितने वर्ष तक ज़िन्दा रहेंगे ?

अब यह विचार करना है कि यदि संसार में युद्ध-जैसी कोई परिस्थिति न आ पड़े तो देश की वर्तमान परिस्थिति में वहाँ के रहनेवालों की उम्र का औसत क्या होगा। इसकी जाँच से यह भी पता चल जायगा कि कौन देश कितना स्वस्थ है या अमीर है और कहाँ की जलवायु दीर्घायु के लिए हानिप्रद और ग़रीबी दीर्घायु का शत्रु है।

इस विषय में जो सूचनायें प्राप्त हैं उनके आँकड़ों की यथार्थता के बारे में केवल इतना ही कहा जा सकता है कि उनके संग्रह करने में बड़े बड़े विद्वानों ने माथा-पच्ची की है। कुछ तो राष्ट्र-परिषद् की रिपोर्ट के आधार पर हैं, कुछ मेट्रोपोलिटन इंश्योरेन्स कंपनी (अमरीका) के आधार पर और कुछ लन्दन स्कूल आफ़ इकोनोमिक्स के डिपार्टमेंट आफ़ डिमोग्रोफी की छानबीन पर निर्भर करते हैं। अन्त में हम 'जीवन की आशा' के जो आँकड़े दे रहे हैं उनका यह तात्पर्य है कि लिखी हुई उम्र के स्त्री-पुरुष कितने समय तक और जीने की उम्मीद करें। पर इस औसत से लोग घबराकर अपनी परलोक-यात्रा की तैयारी न करने लगें। ईश्वर करे, ये संख्यायें उनके लिए ग़लत ही साबित हों।

न संख्याओं से बहुत-सी रोचक बातें मालूम होती हैं। एक वर्ष से कम उम्रवाले बच्चों की उम्र का अन्दाज़ लगाना कठिन होता है। उनके वातावरण, स्वास्थ्य-सम्बन्धी परिस्थितियों का ध्यान रखना पड़ता है। ऐसी दशा में उनकी उम्र का औसत कम बैठता है।

दूसरी रोचक बात यह है कि उम्र का अन्दाज़ लगाने से यह साफ़ ज़ाहिर होता है कि भारत को छोड़कर अन्य सभी प्रमुख देशों में स्त्रियाँ पुरुषों से अधिक दिन तक जीवित रहती हैं। स्त्रियों के दीर्घ जीवन का कारण बहुत कुछ बतलाया जा सकता है, पर यहाँ उसके लिए स्थान नहीं है। इस प्रकार यह मालूम होता है कि एक ओर युद्ध इत्यादि के कारण, दूसरी ओर प्राकृतिक नियम के अनुसार भी पुरुष कम और स्त्रियाँ अधिक होती जा रही हैं, यद्यपि लड़कियों की अपेक्षा लड़के ज़्यादा पैदा होते हैं।

तीसरी महत्त्वपूर्ण बात यह है कि भारत में बचपन से लेकर चालीस वर्ष की उम्र तक पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियाँ ज़्यादा मरती हैं। इसका कारण दरिद्रता, बच्चा पैदा होने के समय का कष्ट, कुप्रबन्ध, रोग, मकानों की गन्दगी इत्यादि ही है। लेकिन ज्यों-ज्यों बुढ़ापा आता जाता है, पुरुष ज़्यादा मरते हैं, स्त्रियाँ कम। बूढ़े से बुढ़िया ज़्यादा जीती है। इसी कारण हमारे देश में बूढ़ी विधवाओं की बहुत बड़ी संख्या है।

अब चौथी और सबसे महत्त्वपूर्ण बात सुनिए। आपके सम्मुख १४ देशों के आँकड़े हैं। उनमें दक्षिण-अफ़्रीका जैसे काले देश और आयर्लेंड जैसे टापू भी शामिल हैं। आपको यह देखकर दुःख, आश्चर्य, क्षोभ और अपने देश की दरिद्रता पर जो हमारी गुलामी का प्रसाद है, अत्यन्त लज्जित होना पड़ेगा कि सबसे कम उम्र हमारी है। इस दुर्लभ नरतन को पाकर हम उसे सबसे ज़ल्दी छोड़ देते हैं। हम जीवन का पूरा आनन्द भी नहीं ले पाते कि हमको परलोक से बुलावा आ जाता है। इधर कुछ समय से हमको अपने इस ह्रास और उसके कारणों की ओर स्वयं ध्यान देकर अपना क़दम आगे बढ़ाना पड़ा है। उसका परिणाम भी निकला है। सन् १९११ के उम्र के औसत में और १९३९ के औसत में तीन या ढाई वर्ष का फ़र्क़ पड़ गया है—वृद्धि हुई है। बच्चों की मृत्यु की तादाद भी घटी है। अगर देश में स्वास्थ्य सुधारने की धुन सवार हो जाय तो भारतमाता का बड़ा कल्याण हो।

जीवन की आशा

[नीचे की संख्यायें दशमलव में हैं। वर्ष के बाद महीना बतलाने के लिए १२ (महीने) को १०० से भाग देकर उसको '.' के रूप में दिया है।]

देश	वर्ष	स्त्री तथा पुरुष	उम्र ०	१	१०	२०	३०	४०	५०	६०	७०
मिस्र ..	१९१७-२७	पु०	३१	.	३८.०६	३९.९२	२३.८०	२२.८२	१८.०३	१३.६५	९.६३
		स्त्री	३६	.	४१.६४	३५.७३	३०.०४	२४.५३	१९.३६	१४.५८	१०.२३
दक्षिण-अफ़्रीका	१९२५-२७	पु०	५७.७८	६१.४०	५५.१७	४६.२७	३७.८७	२९.३८	२२.१७	१५.३१	९.५४
		स्त्री	६१.४८	६४.५८	५८.३३	४९.३४	४०.७७	३२.४३	२४.२८	१६.७६	१०.४२
कनाडा ..	१९३०-३२	पु०	५८.९६	..	५७.६५	४८.३४	४०.२४	३१.६०	२३.३३	१५.९६	९.७१
		स्त्री	६०.७३	..	५८.६७	४९.६६	४१.२८	३२.९२	२४.६१	१७.०५	१०.५३
*संयुक्तराज्य (अमरीका)	१९३५	पु०	६०.७२	६३.१५	५५.६५	४६.५७	३७.८७	२९.४३	२१.६१	१४.७३	९.२१
		स्त्री	६४.७२	६६.५१	५८.८१	४९.६२	४०.८०	३२.१५	२३.८५	१६.२८	१०.०६
भारत ..	१९३१	पु०	२६.९१	३४.६८	३६.३८	२९.५७	२३.६०	१८.६०	१४.३१	१०.२५	६.३५
		स्त्री	२६.५६	३३.४८	३३.६१	२७.०८	२२.३०	१८.२३	१४.६५	१०.८१	६.७४
जापान ..	१९२६-३०	पु०	४४.८२	५१.०७	४७.९३	४०.१८	३३.४३	२५.७४	१८.४९	१२.२३	७.४३
		स्त्री	४६.५४	५२.१०	४९.१८	४२.१२	३५.१८	२९.०१	२१.६७	१४.६८	८.८८
जर्मनी ..	१९३२-३४	पु०	५९.८६	६४.४३	५७.२८	४८.१६	३९.४७	३०.८३	२२.५४	१५.११	९.०५
		स्त्री	६२.८१	६६.४१	५९.०९	४९.८४	४१.०५	३२.३३	२३.८५	१६.०७	९.५८
फ्रांस ..	१९२८-३३	पु०	५४.३०	५८.६३	५२.०६	४३.३०	३५.४२	२७.६२	२०.३३	१३.७६	८.२९
		स्त्री	५९.०२	६२.५३	५५.९५	४७.४०	३९.५४	३१.३७	२३.३९	१५.९४	९.५८
इँग्लैंड और वेल्स	१९३६	पु०	६०.१३	६३.३८	५६.४५	४७.३१	३८.५४	२९.७८	२१.५५	१४.४६	८.६१
		स्त्री	६४.३९	६६.७९	५९.७४	५०.५५	४१.७५	३२.९२	२४.४१	१६.६२	१०.०८
स्काटलैंड ..	१९३०-३२	पु०	५६.०	६०.७	५४.१	४६.०	३७.४	२९.१	२१.३	१४.१	८.४
		स्त्री	५९.५	६३.१	५७.२	४८.३	३९.८	३१.४	२३.३	१५.९	९.६
सोवियट रूस (योरप में)	१९२६-२७	पु०	४१.९३	५१.४०	५१.६५	४३.२४	३५.६५	२८.०२	२०.९९	१४.८५	९.६५
		स्त्री	४६.७९	५५.४६	५५.७२	४७.३६	३९.७५	३२.१२	२४.४१	१७.०३	१०.९६
आस्ट्रेलिया ..	१९३२-३४	पु०	६३.४८	६५.४९	५८.०२	४८.८१	३९.९०	३१.११	२२.८३	१५.५७	९.६०
		स्त्री	६७.१४	६८.६३	६१.०२	५१.६७	४२.७७	३४.०४	२५.५८	१७.७४	१०.९८
इटली ..	१९३०-३२	पु०	५३.७६	५९.७१	५५.४६	४६.७५	३८.५८	३०.३९	२२.४५	१५.१६	९.०५
		स्त्री	५६.००	६१.३२	५७.१५	४८.४९	४०.४१	३२.१४	२३.८९	१६.१३	९.६१
आयर्लैंड ..	१९२५-२७	पु०	५७.३७	६१.१५	५५.२०	४६.४०	३८.३९	३०.४३	२२.६७	१५.७४	१०.०२
		स्त्री	५७.९३	६०.८३	५४.९२	४६.३६	३८.६०	३०.८३	२३.१९	१६.३६	१०.७२

* संयुक्तराज्य (अमरीका) की गणना केवल गोरों की है और उसमें कालों का टेक्सस प्रान्त नहीं शामिल है।

आधुनिक हिन्दी-कवि और प्रकृति

लेखक, श्रीयुत विश्वम्भर शांडिल्य, एम० ए०

एक समय वह था जब कभी आत्मरक्षा के लिए और कभी ऐसी नायिकाओं के लिए जिनकी बाल्यावस्था में ही शशि उनके निकट बैठकर अमृतरस पीता था, लोहा बजता था, और प्रकृति रक्त से रँग जाती थी, एक समय वह था जब 'वढ़ई' को देखकर तरुवर डोलने लगते या रोकर बारह मास गँवा दिये जाते; एक समय वह था जब गिरि बूँद-आघात उसी प्रकार सहते, जैसे खल के वचनों को संत सहते हैं या 'गुपाल' के साथ तो प्रकृति प्यारी लगती, पर बिन गुपाल के जमुना का बहना, खगों का बोलना, कमलों का फूलना, अलियों का गुंजारना व्यर्थ लगता था; और एक समय वह भी आया जब 'कीर, कमल, कोयल, कुरंग, अहि, कपि, सिंह, मराल' एक ही डाल पर लटका दिये गये। आज वह समय है जब यह माना जाने लगा है कि प्रकृति का भी अपना अस्तित्व है, उसके वस्त्रों में ही आकर्षण नहीं, हृदय में भी मधु है, वह दूती ही नहीं, अभिसारिका भी है। आज का कवि 'उषा के गाल' चूमने का साहस करता है और अपने उपवन में चंपा, कुंद, जुही, कमल के साथ डेफ़ोडिल, डेज़ी, पैंज़ी, ट्यूलिप में खिलाता है। आधुनिक हिन्दी-कविता में जो सम्मानित पद प्रकृति को मिला है, वह अपने जिस निखरे प्यारे रूप में हिन्दी-प्रेमियों के सामने आई है, उसका बहुत कुछ श्रेय निःसंदेह श्री सुमित्रानन्दन पन्त को प्राप्त है।

'पन्त' के हृदय को प्रकृति ने बड़े वेग से आकर्षित किया है। जिसका जन्म ही रम्य प्राकृतिक दृश्यों से पूर्ण-प्रदेश में हुआ हो, जो अपने शैशव से ही सुमनों, निर्झरों, बादलों, पर्वतों के साहचर्य में रहा हो, उसके उर में प्रकृति अपना सदन बनायेगी ही, वह प्रकृति के मोहक रूप से प्रभावित होगा ही। उस प्रेम के विरोध में स्रष्टा की अन्य शक्ति भी जब अपना मधुर मायाजाल लेकर खड़ी होती है, जब प्रेम में बँटवारा चाहती है, तब कवि सकुचता है। वह अपनी प्यारी वस्तु को पकड़े रहता है, नवीन आकर्षण के सम्मुख आत्म-समर्पण नहीं करता—

छोड़ द्रुमों की मृदु छाया
तोड़ प्रकृति से भी माया
बाले! तेरे बाल-जाल में कैसे उलझा दूँ लोचन।
भूल अभी से इस जग को।

[श्रीमती महादेवी वर्मा]

वर्ड्सवर्थ ने अपनी एक कविता में लूसी नाम की एक बालिका को प्रकृति की संरक्षकता में छोड़ा है। प्रकृति के संसर्ग में उसके सौंदर्य का, उसके हृदय का विकास होता है। प्रकृति अपने अकृत्रिम ढंग से उसका लालन-पालन करती है। पर्वत और मैदान, पृथ्वी और आकाश, घाटी और कुंजों के दृश्यों के साँचे में उसका मन ढालती है। फिर स्वभावतः ही—

The stars of midnight shall be dear
To her; and she shall lean her ear
In many a secret place
Where rivulets dance their wayward round,
And beauty born of murmuring sound
Shall pass into her face.

—*The Education of Nature*

[श्री सुमित्रानन्दन पन्त]

अर्थात् उस बालिका को निशीथ के नक्षत्र प्रिय होंगे। वह अनेक एकांत स्थानों में जहाँ लघु नद नृत्य करते हुए चक्कर काटते हैं अपने कान लगावेगी। उन नदों की कल-कल-ध्वनि से जो सुषमा उत्पन्न होगी वह उसके आनन में सना कर फूट निकलेगी।

पन्त जी पर भी प्रकृति का ऐसा ही स्नेह बिखरता रहा है। इसे कवि ने 'वीणा' में स्वीकार किया है।

पन्त जी ने प्रकृति को चेतना प्रदान की है। कवि ने उसके बाह्यरूप को ही नहीं, प्राणों को भी पहचाना है। उसकी प्रकृति मानवीय क्रिया-कलापों के अनुकरण की क्षमता भी रखती है। पन्त जी के पल्लव विश्व पर विस्मित चितवन डालते हैं। उनका पर्वत सुमन-दृगों से अवलोकन करता है, उनका उपवन फूलों के प्यालों में अपना यौवन भर भर कर मधुकर को पिलाता है, उनके मेघों के बाल मेमनों-से गिरि पर कुदकते हैं, उनकी लहरें किरणों के हिंडोल पर नाचती हैं, विटपी की व्याकुल प्रेयसी छाया बाँह खोलकर कवि को गले लगाने का सामर्थ्य रखती है, उनकी दृष्टि में दशमी का शशि अपने तिर्यक् मुख को लहरों के घूँघट से झुकझुककर रुकरुककर मुग्धा-सा दिखलाता है, उनका मलयानिल उर्वी के उर से तंद्रिल छायांचल सरका देता है।

पर प्राकृतिक जगत् में मानवीय भावों को भरने और उस जगत् को मानवीय क्रीड़ा-कौतूहल से पूर्ण करने में जो सफलता निराला जी को 'जुही की कली' में मिली है वह भी प्रशंसनीय है। रीतिकालीन कवियों की इस दुर्बलता को पकड़कर कि उन्होंने अपनी कविता में शृंगार की भरमार की है, समझदार से समझदार साहित्यिकों ने उनके विरुद्ध जो मन में आया, कह डाला। एक ओर 'बावरी जो पै कलंक लग्यो तो निसंक ह्वै क्यों नहिं अंक लगावती'—पर बिगड़ेंगे भी और दूसरी ओर आधुनिक हिन्दी-कविता को रूखा बतावेंगे और कहेंगे, 'साहब, आजकल की कविता में भाव तो ऊँचे होते हैं, पर पुराने कवियों का-सा रस नहीं मिलता।' नायिकाओं के वर्णन पढ़ने से उनकी दृष्टि मलिन, उर विकृत भी होगा और जो लोग बाला को छोड़ प्रकृति को पकड़ेंगे उनसे एक दिन में रस भी निचुड़वायेंगे। पर निराला जी की 'जुही की कली' चतुराई से भरी है। उन्होंने चाँदनी से धुली हुई वासन्ती निशा में स्नेह-स्वप्न-मग्न, सुहागभरी, अमल-कोमल-तनु-तरुणी जुही की कली को विजन-वन-वल्लरी पर सुला दिया। कुंज-लता-पुंजों को पारकर नायक पवन खिंच आया और अपना आगमन जताने के लिए उस कली के कपोल चूम लिये। जगाने का कितना कोमल, कितना मधुर ढंग है! पर नायिका निद्रालस-बंकिम-विशाल नेत्र मूँदे रही; बिहारी की 'मैं मिस हा सोयौ समुझि मुहुँ चूम्यौ ढिग जाइ, हँस्यौ, खिसानी, गल गह्यौ, रही गरें लपटाइ' तक बात नहीं पहुँची; अतः उस निर्दय नायक ने निपट निठुराई की, झोंके-झड़ियों से सुन्दर सुकुमार देह सारी झकझोर डाली और गोरे गोल कपोल मसल दिये। कली हँस पड़ी, खिल पड़ी। निर्जन प्रदेश में जुही की कली के साथ पवन की इस मधुर गुस्ताखी पर कौन सन्त अपने नेत्र बन्द कर सकता है? कवि ने सोमरस का नाम लेकर मदिरा पिला दी। शब्दों की तूलिका से जीते-जागते चित्र अंकित कर दिये और वर्णन में गति भरकर एक नाटकीय प्रभाव उत्पन्न कर दिया, रस दे दिया।

चित्र उपस्थित करने में पन्त जी भी सिद्धहस्त हैं। पर्वत, फूल और सरोवर तो सभी देखते हैं, पर फूल की आँखों से तालाब के दर्पण में अपने गर्वीले शरीर को निहारता हुआ पर्वत कितना महान् प्रतीत हो सकता है—अपने में पूर्ण इस दृश्य तक कम लोगों की दृष्टि जाती है—

पावस-ऋतु थी, पर्वत-प्रदेश,
पल पल परिवर्तित प्रकृति वेश।
मेखलाकार पर्वत अपार
अपने सहस्र दृग-सुमन फाड़।
अवलोक रहा है बार बार
नीचे जल में निज महाकार।
जिसके चरणों में पला ताल
दर्पण-सा फैला है विशाल!!

आधुनिक हिन्दी-कविता में प्रकृति को लेकर बहुत ही सुन्दर अलंकार-विधान हो रहा है।

'प्रसाद' जी का यह रूपक भी जिसकी चर्चा प्रायः होती रहती है, कितना स्पष्ट और पूरा उतरा है—

बीती विभावरी जाग री।
अंबर-पनघट में डुबो रही तारा-घट ऊषा नागरी ।

श्रीमती महादेवी वर्मा ने प्रकृति का वर्णन बहुत कुछ भावों की लपेट में किया है। वे अनिल के आगमन पर विभावरी को मोतियों के सुमन-कोष निछावर करने का आदेश इसलिए करती हैं कि वह देश देश घूमकर प्रिय का सन्देश लाया है। महादेवी एक अदृश्य छलिया की उपासिका हैं। उनका उपास्य मन्दिर की मूर्तियों में नहीं बँध गया, ब्रह्माण्ड में व्याप्त है, यद्यपि वह हृदय में बाँधा जा सकता है। उनके प्रियतम की स्थिति 'जिगर' मुरादाबादी की प्रेम की व्याख्या की भाँति है—सिमटे तो दिले आशक़ फैले तो ज़माना है। प्रकृति उसका ही रूप है। इधर-उधर बिखरे हुए प्रकृति के अनेक रूपों को किसी एक शक्ति के अंग-प्रत्यंग समझना मस्तिष्क की उच्च स्थिति की बात है। रवि बाबू ने 'बलाका' पुस्तक की 'चंचला' कविता में यह कल्पना की है कि एक महाशक्ति उद्दाम वेग से निरन्तर बढ़ती चली जा रही है, जिससे जग-जीवन का विकास होता है। इस कल्पना से नक्षत्रों को, अन्धकार को, हरीतिमा को, विद्युत् को, पुष्पों को दूसरा ही रूप मिला है। वह शक्ति उन्मत्त भाव से अभिसार कर रही है, अतः वक्षहार तीव्र वेग से हिल रहा है, इसी से नक्षत्रों की मणियाँ हार से अलग होकर बिखर गई हैं, अन्धकार उसी के खुले बाल हैं, बिजली उसी के कुंडल हैं, कम्पित तृण नहीं हैं—उसी का आकुल अञ्चल खिसक पड़ा है; उसी की ऋतुओं की थाली से जुही, चम्पा, बकुल, पारुल के पुष्प पथ में गिर पड़े हैं। उर्दूवाले भी कभी कभी यद्यपि उनकी दृष्टि लौकिक रहती है, अब्र में और बिजलियों की लहर में किसी को बाल बिखराते हुए और अँगड़ाइयाँ लेकर उठते हुए देखते हैं।* इसी प्रकार ये आलोक-तिमिर, यह सागर-गर्जन, यह झंझा, ये मेघ, ये रवि-शशि, ये तारक, यह चपला, यह इन्द्र-धनुष, ये हिम-कण, क्या किसी एक शरीर पर नहीं सजे हुए हैं? प्रकृति में महादेवी विराट्-स्वरूप का आभास पाकर चकित-थकित हो जाती हैं। उन्हें प्रतीत होता है मानो कोई शक्ति अप्सरा-सी नृत्य-निरत है—

[श्रीयुत सूर्यकान्त त्रिपाठी, निराला]

अप्सरि तेरा नर्तन सुन्दर!
आलोक-तिमिर सित असित चीर,
सागर-गर्जन रुनझुन मँजीर;
उड़ता झञ्झा में अलक-जाल;
मेघों में मुखरित किंकिण-स्वर!
रवि शशि तेरे अवतंस-लोल;
सीमन्त-जटित तारक अमोल;
चपला विभ्रम, स्मिति इन्द्रधनुष,
हिमकण बन झरते स्वेद निकर!

इस विराट् रूप पर महादेवी चकित ही नहीं, मोहित भी हैं, और जब वे प्रकृति को उस परमपुरुष के स्वागत के लिए सजी हुई देखती हैं तब वे अपनी सुप्त आत्मा को जगाती हैं और अभिसार के लिए तत्पर करती हैं—

शृंगार कर ले री सजनि!
नव क्षीरनिधि की उर्मियों से रजत-झीने मेघ सित;
मृदु फेनमय मुक्तावली से तैरते तारक अमित;
सखि सिहर उठती रश्मियों का
पहिन अवगुंठन अवनि!

इसी प्रकार वे अपने प्राण के दीपक को निरन्तर जलते रहने के लिए दृढ़ करती हैं और उसकी दृष्टि को प्रकृति के उन अनेक क्षेत्रों में घुमाती हैं जहाँ जलना ही जलना है। "नभ में असंख्य दीप नित्य जलते हैं, सागर का उर जलता है, बादल अपने हृदय में विद्युत् की ज्वाला लिये फिरते हैं, द्रुम के कोमलतम हरित

---

*अब्र में और बिजलियों की लहर में उठा कोई,
बाल बिखराता हुआ, अँगड़ाइयाँ लेता हुआ।
(अजीज़ लखनवी)

अंग अग्नि को हृदयङ्गम करते हैं, यहाँ तक कि वसुधा के जड़ अन्तर में भी तारों की हलचल बन्द है।

बहुत पुराने समय से अलंकारों की योजना-द्वारा कवि लोग नायक-नायिकाओं के शरीर को प्रकृति के रम्य उपादानों से विभूषित करते रहे हैं। यह ढंग कभी भी पुराना न होगा। अब भी निराला जी की शूर्पणखा के फूल-दल-तुल्य कपोल, बिजली-सी हँसी, कपोत-सा कंठ, वल्ली-सी बाहु, सरोज-से कर दिखाई देते हैं; अब भी मैथिलीशरण जी की उर्मिला के घनपटल-से केश, विधु-से वदन की झाँकी मिल सकती है; अब भी 'बच्चन' जी ने जिसके चरणों की पग-ध्वनि पहचानने का दावा किया है उसके तलुए नन्दनवन की मेहँदी से लाल, उन पर उषा की किरणों को महावर, नक्षत्र-से उन चरणों के नख हैं। उपाध्याय जी की राधा का मुख राकेन्दु-सा, दृग मृग-दृग-से हैं। अब भी 'पन्त' जिस पर मुग्ध हैं उसकी उषा-सी सुन्दर छवि, नववसन्त-सा उसका शृंगार, तारों का हार, सूर्य-शशि का किरीट, मेघों-से केश, मलयानिल जैसी मुखवास है। 'प्रसाद' जी भी इसी प्रकार कहीं देव-कामिनी के नयनों में नील नलिनों की सृष्टि कराते, कभी बालों से घिरे मुख में पश्चिम गगन में श्याम घन को भेदते हुए अरुण-रवि-मंडल की कल्पना करते हैं, पर प्रसाद जी की बुद्धि प्रकृति के क्षेत्र में कभी विचित्र रंग तैयार करती, कभी विचित्र वन में विचित्र फूल खिलाती है—

(१) चंचला स्नान कर आवे चन्द्रिका पर्व में जैसी
उस पावन तन की शोभा आलोक मधुर थी ऐसी।
(आँसू)

(२) नील परिधान बीच सुकुमार
खुल रहा मृदुल अधखिला अंग,
खिला हो ज्यों बिजली का फूल
मेघ-वन बीच गुलाबी रंग। (कामायनी)

पर प्रकृति को लेकर 'प्रसाद' जी की अपनी एक विशेषता और है, जिससे वे अन्य आधुनिक हिन्दी-कवियों से थोड़ा अलग खड़े होते हैं। उन्होंने एक अभाव की पूर्ति की है। अन्य कवियों ने प्रकृति का कमनीय स्वरूप देखा है, प्रसाद जी ने भीषण भी। रम्य रूप जितना मनोमुग्धकारी है, प्रकृति का विनाशकारी स्वरूप उतना ही महत्त्वशाली है। कामायनी के प्रारम्भ में 'प्रसाद' जी ने जो प्रलय का चित्र अंकित किया है वह एक स्मरणीय अध्याय है। प्रकृति का वह दुर्दमनीय अजेय स्वरूप देखने ही योग्य है—

उधर गरजतीं सिंधु लहरियाँ कुटिल काल के जालों-सी,
चली आ रहीं फेन उगलती फन फैलाय व्यालों-सी।

प्रकृति के प्रेमियों में गुरुभक्तसिंह जी को भूलना उनके साथ अन्याय करना है। उनका नूरजहाँ-काव्य प्रकृति का क्रीड़ा-सदन है। नूरजहाँ का कवि वह प्राणी है जो प्रकृति की प्रत्येक झलक पर मुग्ध है और वृक्ष, शाखा, लता, पुष्प, पक्षी, झरना, सरिता, पर्वत, आकाश जिसे भी देखता है, उसी से खिंच जाता है। नूरजहाँ की कथा ही फ़ारस के वसन्तोत्सव से प्रारम्भ होती है और उसका अन्त काश्मीर के रम्य शालामार उद्यान के बीच होता है जहाँ प्रकृति की सहायता से सलीम नूरजहाँ के हृदय पर विजय प्राप्त करता है।

गुरुभक्तसिंह जी के प्रकृति-वर्णन की एक विशेषता यह है कि उन्होंने प्रकृति के चिरकाल से उपेक्षित भूले अंगों का अंकन किया है। प्रारम्भ में ही काफ़िले के वर्णन में जहाँ कवि ने पर्वतों और नखलिस्तान का वर्णन किया है, वहाँ वह कँटीले झाड़, बालू के संसार, जलती आग, विकट वीरान, मटीले मैदान और वन-बिलाव को भी नहीं भूला है। उसकी दृष्टि भेद-भाव नहीं जानती। इसके अतिरिक्त गुरुभक्तसिंह जी ने 'काण्डर' के पीले पुष्पों को देखा है, नदी-किनारे पर झाऊ देखी है, उन्होंने गन्ने के रस की गन्ध से मलयानिल को मत्त किया है, रसाल-मंजरियों के मटर-कुसुम से आँखें लड़ाई हैं। उनकी दृष्टि मैदानों में बिछी हुई 'कौडिल्ला' घास पर, वनगोभी से पीले टीलों पर गई है; उनकी तितली 'मेथी' में विचरती है, 'सोये' में सोती है। वे कपास और अरहर को भी नहीं भूले हैं।

इस प्रकार इस काल के हिन्दी-काव्यों ने जो प्रकृति से अपना अनेक प्रकार का सम्बन्ध स्थापित किया है वह उनकी व्यापक दृष्टि एवं गम्भीर अनुभूति का परिचायक है। और इससे हमारी भाषा समृद्धिशालिनी हुई है।

[श्रीयुत मल्लादि अवधानि तेलगू के प्रसिद्ध लेखक हैं। यह नाटिका उन्हीं की एक सुन्दर रचना का अनुवाद है।]

सुल्ताना रज़िया

लेखक, श्रीयुत वेंकटेश्वरराव

पहला दृश्य

समय—रात का समय। चाँदनी छिटकी है।

स्थान—दिल्ली में शाही अस्तबल के समीप एक कुटिया। कुटिया के चारों ओर नीम आदि के पेड़। सामने मैदान।

लैला कुटिया से बाहर निकलकर पथरीली ज़मीन पर टहलती हुई किसी की राह देख रही है। उसकी उम्र २४ से कुछ ऊपर है। सुन्दर तो नहीं है; हाँ, असुन्दर ज़रूर है। सन्नाटा है।

...लौटकर एक चट्टान पर बैठ जाती है और अपने अंचल से दो झूमक निकालकर, हथेली में रख उनकी तरफ़ देखने लगती है। उसका चेहरा फीका है, किसी आशंका को प्रकट करता है।

जमालुद्दीन याकूब धीरे से आकर लैला के पीछे खड़ा हो जाता है। वह हब्शी है। दरबार का गुलाम, अस्तबल का मुलाज़िम और शरीर से हट्टा-कट्टा। उसका क़द ऊँचा। उम्र ३० तक। काली-काली उसकी दाढ़ी चेहरे को गंभीर बना रही है।

जमाल—(धीरे से) लैला!

लैला—(आश्चर्य और सन्देह के साथ चौंककर उठ खड़ी होती है और जमाल के गले में हाथ डालकर) ओह! आये लौटकर!...उम्मीद तो न थी!

जमाल—ख़ुदा की मेहरबानी है, लौट आया।

लैला—(उसके चेहरे पर हाथ फेरकर) यह! यह क्या? सारा चेहरा लहू-लुहान...कई घाव हैं...यह शेर की करतूत है?

जमाल—हाँ, उसने कंधों पर भी चोट की है।

लैला—बातें पीछे होंगी, पहले खा लो कुछ! बड़े सवेरे मुँह में डाले थे चार कौर, न जाने कितनी भूख लगी होगी! (जल्दी-जल्दी भीतर जाकर अँधेरे में दिया जलाती है।)

जमाल—लैला, इतनी रात गये तक तुमने दिया नहीं जलाया?

लैला—भीतर गई ही नहीं जमाल। सोचती हुई बैठ गई, याद ही न रही।

जमाल—सोच क्या रही थी?

लैला—और क्या? यही कि तुम लौटकर आओगे कि या तुम्हें वह शेर......

जमाल—(हँसकर) हुश! मुझे वह शेर!

लैला—(भोजन की तश्तरी और पानी का बर्तन लेकर आती है) देखो, तुम्हारे वास्ते कितना बढ़िया पुलाव बना रक्खा है!

जमाल—अगर मैं लौटकर न आता, इन चीज़ों का क्या करती?

लैला—(हाथ से उसका मुँह बंदकर) ऐसी बात न कहो।

जमाल—(चट्टान पर बैठा हुआ। भोजन की तश्तरी सामने रखकर, लैला का हाथ खींचकर) आओ! बैठो, तुम भी कुछ खा लो।

लैला—पहले तुम खा लो, पीछे......

जमाल—पीछे-वीछे नहीं, मेरी बात मानो। (ज़बर्दस्ती उसको पास बिठाकर मुँह में पुलाव डालता है।)

लैला—(हँसती और खाती हुई) अब बताओ। शाम को तुम गये तब क्या हुआ?

जमाल—मैं और दो दूसरे गुलाम तीनों मिलकर वहाँ पहुँचे। इसके पहले ही कहा था न कि सरकार का हुक्म हुआ है।

लैला—ठीक! तुमने कहा था, सुल्ताना साहबा कुछ गुलामों को शेर के साथ लड़ानेवाली हैं।

जमाल—मैदान में उमरा आदि जमा हो गये। तख़्त पर सुल्ताना बैठी थीं। तब कुछ नौकर अखाड़े में एक पिंजड़ा लाये।

लैला—उसी में शेर होगा!

जमाल—बातों में पड़कर तुम खाना भूल रही हो।

लैला—नहीं, बाद...

जमाल—पिंजड़े का दरवाज़ा खुला, एक गुलाम भीतर ढकेल दिया गया। शेर ने एक ही छलाँग में उसे चीर डाला।

लैला—(आँखें बंदकर) उफ़!

जमाल—सभी अफ़सर तालियाँ पीट-पीटकर खुश हो रहे थे। सुल्ताना साहबा की खुशी का ठिकाना न रहा। फिर दूसरा गुलाम भी भीतर ढकेला गया।

लैला—मेरे सामने ही, मालूम होता है, वह सब हूबहू हो रहा है।

जमाल—उसका भी वही हाल हुआ। आखिर में पिंजड़े में घुस पड़ा। बाहर से सभी तालियाँ पीटने लगे कि अब ज़रूर ही शेर मुझे खा जायगा।

लैला—अब बंद करो जमाल! मेरा कलेजा धड़क रहा है।

जमाल—औरत हो न! इतने से ही डर गई? मुझे देखते ही शेर झपटा और मेरे कंधे पर एक पंजा मारा। मैंने उसका मुँह......

लैला—(खुशी और जोश में) क्या! क्या!!

जमाल—मैंने उसका मुँह मरोड़ दिया और उसकी कोख में एक ऐसा घूँसा जमाया कि कराहता हुआ छटपटाकर मर गया।

लैला—(उसकी छाती फूल उठी और माथे पर पसीना निकल आया) शाबाश! कैसा अच्छा काम किया!

जमाल—देखो, कैसी प्यारी चाँदनी है, पेड़ के पत्तों पर कैसी चमक रही है! (पानी पीता है)

लैला—तब क्या हुआ, बताया नहीं।

जमाल—सुल्ताना साहबा ने मुझे पास बुलवाकर, मेरी ओर देख मुसकाती हुई "तुम तो बहादुर हो" कहकर अपने हाथ का सोने का कड़ा निकालकर मुझे दिया। (जेब से कड़ा निकालकर दिखाता है)।

लैला—(आश्चर्य के साथ) वाह! कैसा आबदार है! कैसा चमक रहा है!

जमाल—(लैला के हाथ में पहनाकर) कहूँ, अब तुम कैसी लगती हो?

लैला—(हँसती हुई) हाँ, कहो तो...

जमाल—ठीक सुल्ताना साहबा की तरह...

लैला—(उठकर अपने हाथ की तरफ़ निहारती हुई) मैं सुल्ताना साहबा की तरह लगती हूँ न, इसलिए उसी तरह चलूँगी। (दूर दूर पर क़दम रखती हुई चलती है)

जमाल—(ज़ोर से हँसता हुआ) ओहोहो! सुल्ताना साहबा! बहुत अच्छा चल रही है!

(लैला के चलते समय उसके आँचल से चाँदी के दो झूमक गिर पड़ते हैं। लैला की उमंग ठंडी पड़ जाती है। वह झूमक उठाकर छिपा लेना चाहती है।)

जमाल—यह क्या है?

लैला—वही झूमक।

जमाल—हाँ, भूल गया....लैला! अगर शेर के पंजे से न बचता तो तुम क्या करना चाहती थीं?

लैला—तुमने शाम को क्या कहा था?

जमाल—यह मेरी इच्छा थी कि इन दोनों को अबीसीनिया ले जाकर मेरी माँ जी को दे देती। बेचारी मेरी माँ! उसने दो बरस लगातार इन पहाड़ी मैदानों में काम करके जो कुछ बचा पाया था उससे ये झूमक बनवाकर मेरे कानों में पहना दिये थे।

लैला—मैंने पक्का इरादा कर लिया था कि आज ही रात को अबीसीनिया के लिए कूच कर दूँगी।

जमाल—फिर?

लैला—ये झूमक तुम्हारी माँ के यहाँ पहुँचाने का इरादा था। मेरा ख़याल था, इससे तुम्हारी ख्वाहिश पूरी हो जायगी।

जमाल—तब शायद लौटकर फिर हिन्दुस्तान चली आती, क्यों?

लैला—नहीं।

जमाल—(जँभाई लेकर) और क्या करती?

लैला—(गंभीर होकर) तुम्हारी ख्वाहिश पूरी करने के बाद, जो करना था....तुम जानते ही हो!

जमाल—चाहे जो हो, अब उसकी ज़रूरत नहीं! मेरी मौत नहीं हुई, मैं लौट आया। (जँभाई लेता है)

लैला—शायद नींद आ रही है, चलो, सो जाओ!

जमाल—तुम्हें?

लैला—मुझे अभी नहीं आ रही है।

(दोनों कुटिया में चले जाते हैं। थोड़ी देर सन्नाटा छा जाता है। चाँदनी छिटक पड़ती है। लैला कुटिया से निकल कर बाहर चट्टान पर बैठ जाती है और झूमक हाथ में लेकर उनकी तरफ़ एक टक देखती है। पीछे की तरफ़ देखती है। कोई एक औरत वदन ढाँके पीछे खड़ी है।)

लैला—(उठ खड़ी हो जाती है) आप कौन हैं?

औरत—तुम्हारा ही नाम लैला है?

लैला—जी हाँ, आपकी तारीफ़?

औरत—मैं..मैं..मैं..मुझे सुल्ताना ने भेजा है।

लैला—सुल्ताना साहबा ने?

औरत—हाँ।

लैला—(अचंभे में पड़कर) किस लिए?

औरत—मालूम नहीं क्यों। मगर उन्होंने हुक्म दिया है कि तुम और जमालुद्दीन याकूब दोनों कल शाम को उनके ज़नानखाने में आवें।

(लैला सोचती है।)

औरत—(अपने हाथ की अँगूठी निकालकर लैला के हाथ में रखती हुई) इस अँगूठी को पहरेदारों को दिखा देना। वे तुम दोनों को भीतर जाने से नहीं रोकेंगे।

(जमाल कुटिया से बाहर आता है।)

औरत—अब मैं जाऊँगी। (जाने लगती है)

जमाल—लैला! किससे बातें कर रही थी?

लैला—मालूम नहीं, कौन हैं।

(जमाल आगे बढ़ उस औरत का चेहरा देखकर अदब के साथ ज़मीन पर घुटने टेकता है।)

(औरत बिना उसकी तरफ़ देखे चल देती है।)

जमाल—लैला! लैला!

लैला—क्या?

जमाल—जानती हो, वे कौन हैं।

लैला—नहीं।

जमाल—वही सुल्ताना साहबा हैं।

लैला—ऐसी बा....!

जमाल—हाँ, यही सुल्ताना रज़िया हैं।

दूसरा दृश्य

समय—सन्ध्याकाल।

स्थान—शाहीमहल का अन्तःपुर। ज़मीन पर रेशमी क़ालीन बिछा है। दीवारों पर आइने टँगे हैं। जँगले के किवाड़ खुले हैं, जिनसे नीला आसमान और अभी के उगे तारे दीखते हैं। दूर पर किसी पेड़ की टहनी पर एक बुलबुल विषाद के सुर में गा रही है।

फ़िरोज़ा चाँदी सोने की दीवटों में दिये जला रही है।

रज़िया मसनद पर बैठी क़ुरान शरीफ़ पढ़ रही है। उम्र २४ की। फूल-सा मुलायम शरीर; आँखें बड़ी-बड़ी। वह रूपसी है। आज उसने अपना खूब साज-शृंगार किया है। नगीनों से जड़े कंकण और अरब से आई हुई रेशमी पोशाक पहने है। पैरों में चमकनेवाले जूते हैं। बालों के दो नाग लटक रहे हैं।

रज़िया—(धीमे स्वर में) फ़िरोज़ा!

फ़िरोज़ा—(दिये जलाती हुई) हाँ जनाब!

रज़िया—जासूस और क्या कह रहे थे?

फ़िरोज़ा—यही कि तोपखानों में, फूल के बग़ीचों में, रास्तों पर, गलियों में हर कहीं इसी की बाबत कानाफूसी चल रही है।

रज़िया—क्या तुम भी यक़ीन करती हो?

फ़िरोज़ा—नहीं जनाब!

रज़िया—(मुस्कुराकर) ठीक तो! कल रात को मैं उस ग़ुलाम की कुटी में गई थी।....क्यों, इतना ताज्जुब क्यों कर रही हो?

फ़िरोज़ा—नहीं, कुछ नहीं जनाब!

रज़िया—ठीक है फ़िरोज़ा! सुल्ताना साहबा खुद अपने एक घुड़सवार के दरवाज़े पर चली जायँ, यह क्यों न ताज्जुब की बात हो!

फ़िरोज़ा—कल आपने उस ग़ुलाम को अपना कंगन दिया था।

रज़िया—हाँ, उसने कैसी बहादुरी दिखाई थी? शेर से लड़कर उसे मार आया।

फ़िरोज़ा—जनाब....

रज़िया—क्यों, आगा-पीछा क्यों कर रही हो?

फ़िरोज़ा—आपका वह इनाम देना, सुनती हूँ, उमरा को पसंद न आया। एक ग़ुलाम को सुल्ताना का अपने हाथ का कंगन निकाल कर देना और...

रज़िया—और क्या? कहो...

फ़िरोज़ा—माफ़ कीजिए, जनाब !

रज़िया—कोई डर नहीं, बाद...?

फ़िरोज़ा—और उस हब्शी की तरफ़ मुड़कर, मुस्कुराकर यह कहना—"तुम बहादुर हो" और कल ही रात को आपका जमाल की कुटी पर पहुँचना, यह सब उमरा के मन में सन्देह पैदा करता है।

रज़िया—(चट से उठकर) सन्देह ? कैसा सन्देह ?

फ़िरोज़ा—माफ़ कीजिए, जनाब !

रज़िया—मेरे ही ऊपर यह सन्देह है क्या फ़िरोज़ा ?

फ़िरोज़ा—जनाब !

रज़िया—उस सन्देह की भी काफ़ी वजह है, फ़िरोज़ा ! (फ़िरोज़ा चकित हो जाती है)

रज़िया—(बेढब हँसी हँसकर) बटुंडा का शासक अल्तूनिया आकर मेरी एक मुस्कान के वास्ते पैरों पर गिरने को तैयार था। मगर उसे अपमानित कर हटा दिया। मगर फ़िरोज़ा ! आज अपने सारे दिल की हँसी का फौव्वारा बनाकर एक गुलाम के पैरों पर बहाने जा रही हूँ। मैं देखूँगी, यह रिआया और उमरा मेरा क्या करते हैं।

फ़िरोज़ा—सुल्ताना !

रज़िया—मैं सुल्ताना ज़रूर हूँ, मगर कुछ और भी। मालूम नहीं, यह बात रिआया क्यों भूलती है। मैं समझ नहीं पाती हूँ कि ये लोग मुझसे सिर्फ़ आदर्श ही आदर्श क्यों चाहते हैं।......(इधर-उधर टहलती हुई) कई बंधनों में जकड़ी हुई मेरे दिल की चिड़िया आज सभी बंधनों से रिहा होकर आसमान में उड़ना चाहती है। उसे बाँध रखना उमरा और रिआया से नहीं हो सकता। (आकर मसनद पर बैठ जाती है) सुनो, उधर सीढ़ियों पर कुछ आहट.........

फ़िरोज़ा—जी हाँ, जनाब !

रज़िया—वे लोग आये होंगे।

फ़िरोज़ा—कौन ?

रज़िया—जमालुद्दीन याकूब और उसकी औरत लैला।

फ़िरोज़ा—(अचंभे में) जमालुद्दीन !

रज़िया—हाँ, वही गुलाम।

फ़िरोज़ा—जनाब !

रज़िया—पहले लैला को यहाँ ले आओ। जमाल से कहो, वह वहीं सीढ़ियों पर खड़ा रहे।

फ़िरोज़ा—(सिर झुकाकर आजिज़ी के साथ) जनाब ! (चली जाती है) (रज़िया क़ुरान खोलकर दो सतरें पढ़ती है कि फ़िरोज़ा लैला को साथ लेकर आती है। लैला रज़िया को देख, आश्चर्यचकित हो खड़ी हो जाती है)।

रज़िया—लैला !

लैला—(घुटने टेककर) सुल्ताना साहबा !

रज़िया—उस क़ालीन पर बैठ जाओ।

लैला—जनाब ! (बैठ जाती है)

रज़िया—तुम किस मुल्क से यहाँ आई थी ?

लैला—अबीसीनिया से, जनाब।

रज़िया—जमालुद्दीन याकूब से तुम्हारा परिचय वहीं का था ?

लैला—नहीं जनाब, हम दोनों दो जगह के रहनेवाले हैं। हम सब गुलाम बनाकर लाये गये। वह अस्तबल में और मैं गोठ में काम करती थी। हम दोनों की पहली मुलाक़ात हुई थी जमुना के किनारे।

रज़िया—अपने वतन को लौट जाने की इच्छा है ?

लैला—है तो जनाब ! जब मैं और जमाल चाँदनी रात में चट्टान पर बैठते हैं तब सामने नीले पहाड़ नज़र आते हैं। तुरंत अबीसीनिया याद आता है। जनाब ! वे पहाड़...वे कंदरायें...कितना प्यारा वह मुल्क, जनाब ! अपने वतन का नाम सुनते ही जमाल की आँखें भर आती हैं। कहता है कि अगर हाकिम रज़ामंद हों तो हम दोनों वहीं चले चलें और वहीं रहें।

रज़िया—फ़िरोज़ा !

फ़िरोज़ा—जनाब !

रज़िया—हाथी-दाँत की वह पेटी इधर ला।

फ़िरोज़ा—जनाब ! (जाती है)

(रज़िया खामोश रहती है)

(फ़िरोज़ा पेटी लाकर रज़िया के हाथ में रख देती है)

रज़िया—(खोलकर) लैला ! देखो, इसमें क्या है ?

लैला—मोतियों के हार...

रज़िया—और ?

लैला—जवाहरात...मुहरें...

रज़िया—(पेटी बंदकर) इस पेटी को तुम ले लो।

लैला—(आश्चर्य और घबराहट से) मैं!

रज़िया—हाँ तुम!

लैला—क्यों जनाब?

रज़िया—इसको लेकर अपने वतन चली जाओ और चैन से रहो।

लैला—(खुशी के साथ पेटी लेकर) आप बड़ी मेहरबान हैं सुल्ताना!

रज़िया—वतन कब जाओगी?

लैला—आज ही रात को जनाब! इस बात को सुनकर जमाल को कितनी खुशी होगी!

रज़िया—(उठकर थोड़ी देर खामोश रहकर) सफ़र तो तुम्हें अकेले करना पड़ेगा।

लैला—(घबराकर) और जमाल!

रज़िया—जमाल यहीं रहेगा।

लैला—(आश्चर्य से) नहीं जनाब! (पेटी को रज़िया के पैरों पर रखकर) मैं अबीसीनिया नहीं जाऊँगी, सुल्ताना!

रज़िया—(हाकिमाना ढंग से) लैला!

लैला—जनाब!

रज़िया—चाहे तुम भले ही वतन न जाओ, लेकिन जमाल तुम्हारे साथ नहीं जायगा।

लैला—क्यों? बिना क़सूर के क़ैदखाने में रक्खेंगी?

रज़िया—(हँसकर) नहीं लैला! क़ैदखाने में नहीं रक्खूँगी। मेरे साथ आराम से इस महल में रहेगा।

(लैला निश्चेष्ट हो जाती है)

रज़िया—तुम उसे कभी नहीं देखने पाओगी।

लैला—जो हुक्म सुल्ताना! उसको क़ैदखाने में नहीं रखिएगा? शेर के पिंजड़े में नहीं ढकेलिएगा?

रज़िया—(हँसकर) ऐसा कुछ न होगा। वह बड़े आराम से रहेगा।

लैला—(जैसे सोते में बोल रही हो) सुना, कल आप उसकी तरफ़ मुड़कर मुस्कुराई थीं, वही मुस्कुराहट उसके दिल में बैठ गई है। यह बात मैं पहचान गई, जनाब!... सुल्ताना साहबा!... मैं एक भिखमंगिन हूँ.... मेरे पास एक ही रत्न है... उसे आपके पैरों पर धर रही हूँ।

रज़िया—(धीरे से) लैला, तुम गोया बुख़ार में बोल रही हो।

लैला—(आह भरकर) जनाब, मैं आपसे वादा करती हूँ कि कभी जमाल को देखने की भी कोशिश न करूँगी।

रज़िया—लैला! बिना देखे, अकेले तुमसे रहा जायगा?

लैला—पहले मैं अपनी कुटी में अकेली ही रहती थी, जनाब!

रज़िया—इस पेटी को ले जाओ, लैला!

लैला—नहीं जनाब! आप बड़ी मेहरबान हैं। (रज़िया के पैरों की धूल माथे में लगाकर) विदा दीजिए सुल्ताना! (जाती है)

रज़िया—मैं कैसी खुदग़र्ज़ हूँ, फ़िरोज़ा! (मसनद पर बैठकर क़ुरान के पन्ने उलटती हुई) यह मुझे माफ़ करेगा? फ़िरोज़ा! सीढ़ियों पर बेचारा जमाल अभी तक खड़ा ही होगा! उसे ले आओ।

फ़िरोज़ा—जनाब! (जाती है)

तीसरा दृश्य

समय—आधी रात।

स्थान—अन्तःपुर में रज़िया का शयनागार। चारों ओर रेशमी पर्दे पड़े हैं, हवा में हिल रहे हैं। बीच में दो बढ़िया पलंग हैं। ज़मीन पर रेशमी क़ालीन बिछा है। उसी पर मसनद लगी हुई है। कुछ दूर पर एक काँच के गोल बर्तन में दिया जल रहा है, जो तीन तरफ़ जलता हुआ नीली रोशनी कर रहा है। मसनद पर बैठी रज़िया सारंगी बजा रही है। जमाल मसनद पर बैठा अधखुली आँखों से संगीत सुन रहा है।

रज़िया—(सारंगी को रखकर) जमाल!

जमाल—सुल्ताना!

रज़िया—मैंने तो कहा था कि इस तरह मत कहो।

जमाल—जी हाँ, भूल हुई, माफ़ कीजिए।

रज़िया—(मुस्कुराकर) रज़िया नाम क्या अच्छा नहीं लगता ?

जमाल—बहुत अच्छा नाम है।

रज़िया—लेकिन एक दफ़ा भी उस नाम से मुझे क्यों नहीं पुकारते ?

जमाल—मैं गुलाम हूँ, जनाब ! आप...

रज़िया—रज़िया तो गुलाम नहीं है !

जमाल—आप कैसी बातें कर रही हैं, सुल्ताना ?

रज़िया—जब तक रज़िया सुल्ताना है तब तक जमाल भी सुल्तान है। क्यों ?

(जमाल हँसता है)

रज़िया—हँसते क्यों हो ?

जमाल—मैं जब अपने को देखता हूँ, शर्म लगने लगती है। मुझे इतनी इज़्ज़त... मेरे ऊपर आपका इतना स्नेह....एक सपना जान पड़ता है। गंदी गलियों में चक्कर लगानेवाले कुत्ते को झाड़-पोंछ कर अपनी गोद में बिठाते देख क्या लोग हँसी नहीं करेंगे ? दरअसल उस कुत्ते को ही बहुत शर्म लगेगी।

रज़िया—अब और ज़्यादा मैं नहीं सुन सकूँगी।

जमाल—सुल्ताना ! काश, मैं इस देश में न आता।

रज़िया—क्यों ?

जमाल—मैं पुच्छल तारा हूँ। मैं जब पैदा हुआ, मेरे बाप का इन्तक़ाल हुआ। दो भाई और एक बहन भी मर गये। मेरी माँ सारी मिलकियत खो जाने के बाद गुलाम बन गई।

रज़िया—पुराना क़िस्सा क्यों उठाते हो ?

जमाल—(उसी जोश में) लैला ने मुझे प्यार किया। उसकी ज़िंदगी बरबाद हो गई। आख़िर आपने मेरा आदर किया, जिसका नतीजा यह हुआ कि सारी रिआया, उमरा, यहाँ तक कि आपके भाई बैराम भी अल्तूनिया से मिल गये हैं और आपके ख़िलाफ़ साज़िश कर रहे हैं।

रज़िया—जमाल ! जमाल ! तुम्हें क्या यहाँ आराम नहीं है ? हमेशा फ़िक्रमंद ही रहते हो ? इसलिए यह मायूसी है कि लैला तुमसे अलग कर दी गई ? बोलो जमाल !...फिर लैला को यहाँ बुला लूँ ! तुम्हारी उदासी मुझसे देखी न जायगी।

जमाल—यह नहीं सुल्ताना ! छिन छिन मेरी बेकली बढ़ रही है। यह सोचकर कि मेरी वजह से आपको तकलीफ़ उठानी पड़ेगी।

रज़िया—यह पागलपन छोड़ो। (हँसकर) इधर आओ !

(जमाल कठपुतली की नाईं आकर रज़िया के नज़दीक बैठ जाता है। इतने में दोनों हाथों से रेशमी पर्दे को हटाकर तेज़ी से फ़िरोज़ा अंदर प्रवेश करती है और रज़िया के सामने घुटने टेकती है।)

फ़िरोज़ा—जनाब !...जनाब !

रज़िया—(अचानक उठकर, चोट-से गुस्से से) यही तुम्हारे आने का मौक़ा है, फ़िरोज़ा !

फ़िरोज़ा—(बातों पर बिना कान दिये) जनाब ! आते हैं...आते...

रज़िया—कौन ?...इतनी हैरानी किसलिए ?

फ़िरोज़ा—बैराम...अल्तूनिया...उमरा सभी !

रज़िया—(चौंककर) क्यों ?

फ़िरोज़ा—फ़ौज के साथ आ रहे हैं। जो भी ख़िलाफ़ बोलता है उसको मार डालते हैं। अब यहाँ पहुँचना चाहते हैं।

जमाल—फ़िरोज़ा ! (एकाएक उठ खड़े होकर) तलवार ! ढाल ! जल्दी ला !

(फ़िरोज़ा जल्दी चली जाती है)

(रज़िया अचेत-सी खड़ी रह जाती है)

जमाल—सुल्ताना !

रज़िया—(मानो नींद से अभी जगी हो)...अचानक ज़नानख़ाने पर छापा...

(फ़िरोज़ा ढाल और तलवार लाकर जमाल के हाथ में देती है)

जमाल—(ढाल एक हाथ में तलवार दूसरे हाथ में लेकर) सुल्ताना, जा रहा हूँ।

रज़िया—जमाल ! जमाल ! लड़ाई के वास्ते ?

जमाल—पहले लड़ाई में, बाद कह नहीं सकता, कहाँ जाऊँगा। लेकिन अपनी माँ को, ज़बीदीनिया को, लैला को...या आपको...सुल्ताना आपको फिर नहीं देख सकूँगा।

रज़िया—जमाल ! शेर के पिंजड़े से तुमने अपनी जान

तो बचा ली, किन्तु रज़िया के हाथ से नहीं बचा सके...(गला भर आता है)

जमाल—मैं...मैं तो गन्दी गली का कुत्ता ही ठहरा ! आप, सुल्ताना ! फ़रिश्ता हैं...मैं अपना कलेजा चीरकर अपने खून से आपके पैर धो दूँ तो भी आपका एहसान अदा नहीं कर सकता । अब विदा (चार क़दम आगे चलकर) रज़िया !

(रज़िया नजदीक आ जाती है)

जमाल—(धीमी आवाज़ में) रज़िया ! (रज़िया का हाथ अपने हाथ में लेकर बाद सिर पर हाथ फेरकर) रज़िया ! (उधर घूमकर फ़िरोज़ा को देख हिचकिचाहट के साथ) विदा ! विदा ! (ढाल पर तलवार जोर से खनकाकर एक छलांग में बाहर चला जाता है)

रज़िया—(पुतली की तरह खड़ी होकर, थोड़ी देर बाद) चला गया ? जमाल चला गया ?

फ़िरोज़ा—हाँ, जनाब !

रज़िया—तुमको देखकर पीछे हट गया । आख़िरी मर्तबा एक बार...

(फ़िरोज़ा सिर झुका लेती है)

रज़िया—मुझे तीन बार 'रज़िया—रज़िया' कहकर पुकारा तो !

फ़िरोज़ा—जनाब !

(बाहर हो-हल्ला)

फ़िरोज़ा—बाहर कैसा शोरगुल...जनाब ! जनाब ! वे आ रहे हैं ।

रज़िया—नहीं, नहीं आयगा, जमाल फिर...नहीं आयगा !

फ़िरोज़ा—दुश्मन...बाहर...लो वह आवाज़...

(कोलाहल और तलवारों की झनकार धीरे धीरे नज़दीक आती है)

रज़िया—मुझमें जितना जनानापन छिपा हुआ था, आज बाहर उमड़ा पड़ता है । जमाल.....मेरा जमाल फिर नहीं आयगा । (मसनद पर गिर पड़ती है और फूट फूटकर रोती है)

चौथा दृश्य

समय—रात ।

स्थान—क़ैदखाना । एक ही किवाड़ खुला है । बाहर घना अंधकार । गर्जन-तर्जन के साथ बारिश । बीच बीच में बौछार भीतर आ जाती है । ज़ोरदार हवा । अंदर एक छोटा सा दिया टिमटिमा रहा है । सामने रज़िया खड़ी है । उसके बाल बिखर कर कंधों पर पड़ रहे हैं । फटी पोशाक । आँखें किसी सोच में अधखुली हैं ।

दरवाज़ा खुलता है । भीतर लैला कपड़े से ढँकी हुई तश्तरी लेकर आती है ।

लैला—(धीरे से घुटने टेककर) जहाँपनाह !

रज़िया—(चौंककर) कौन है ? इस भिखमंगिन, इस ग़रीबिन, इस क़ैदी को कौन बुला रहा है ?

लैला—जनाब !

रज़िया—(हँसकर) जहाँपनाह ? जनाब ?....कहकर मुझी को पुकार रही हो ?

लैला—आपको ही सुल्ताना !

रज़िया—आज मैं अकेली हूँ । न कोई मेरा अपना है, न कोई मददगार । सिर छिपाने को भी जगह नहीं । उम्मीद नहीं, हौसला नहीं । इस भिखमंगिन को सुल्ताना कहकर दिल्लगी उड़ाने की ख़्वाहिश तुम्हें क्यों कर पैदा हुई ?

लैला—दिल्लगी नहीं जनाब ! आप हमेशा मेरे दिल में वही 'सुल्ताना' हैं ।

रज़िया—तुम पागल तो नहीं हो गई हो ?

लैला—क्यों जनाब ?

रज़िया—वर्ना इस मौक़े पर तकलीफ़ उठाकर कौन रज़िया को देखने आयगा ? आयगा भी तो कौन इस तरह बोलेगा ?

लैला—जनाब ! जनाब ! (आँसू पोछती है)

रज़िया—तुम कौन हो, जो मुझे देखकर हमदर्दी से आँखें भिगोती हो ?

लैला—मुझे नहीं पहचानतीं ?

रज़िया—रज़िया आज किसी को नहीं पहचानती । वह एक दिन में जवान हुई और उसी दिन बूढ़ी भी । एक ही रात में बुढ़ापे ने उस पर धावा बोल दिया । उसका दिल पत्थर हो गया । निगाह मंद पड़ गई । आज तो वह ख़ुद अपने को नहीं पहचानती ।

लैला—जी हाँ।

रज़िया—इसी रात को ?

लैला—जी हाँ।

रज़िया—इसी तूफ़ान में ?

(लैला अपने अंचल से चाँदी के दो झूमक निकालती है)

रज़िया—चाँदी के झूमक !...इनको मैंने कहीं देखा था...ठीक याद नहीं आता।

लैला—ये जमाल के कानों के झूमक हैं। उसकी माँ ने दो बरस तकलीफ़ उठाकर ये दो झूमक बनवाकर जमाल के कानों में पहना दिये थे। जिस दिन जमाल शेर से लड़ने जा रहा था उस वक़्त उसने मुझसे कहा था कि मैं अगर मर जाऊँ तो ये दो झूमक अबीसीनिया ले जाकर पहाड़ों में रहनेवाली मेरी माँ को सौंप देना। इसलिए सुल्ताना—

रज़िया—(सब कुछ सुनकर) सुल्ताना मैं नहीं। धन-दौलत और हुकूमत सुल्ताना बनने के निशान नहीं। मैं आज समझ गई कि हक़ीक़त में सुल्ताना कौन है। (लैला के पैरों की धूल माथे पर लगाकर) विदा, सुल्ताना !

लैला—(सकपकाकर) विदा जनाब !

(चली जाती है)

जीवन

लेखक, पंडित उदयशंकर भट्ट

यह कैसा क्या मैंने पाया ?

क्या जाने किस अनजाने में
यह कटु-कटुतर, यह मृदु-मृदुतर
सरि लहरों-सा चंचल, सुखकर
यह ओस-कणों-सा जब तब ढल
स्मृतियों की ग्रन्थि बाँध अंचल

मैं निज को बहलाने आया, क्या कैसा मैंने यह पाया ?

क्यों अनचाहा इसमें मिलता ?
औ' चाहा मिलता नहीं खूब !
मैं इसी दशा से ऊब-ऊब
आशा-सी निज आँखें पसार
कुछ ढूँढ़ रहा हूँ बार-बार !

कुछ जाना कुछ न जान पाया यह कैसा क्या मैंने पाया ?

रजनी में सरिता-सा अपार
मैं देख पा रहा एक छोर
आगे की कोई नहीं कोर
क्या जानूँ केवल वर्तमान
दिन-सा उज्ज्वल, निशि-सा अजान

मेरी सीमा-सा बन आया ! क्या कैसा यह मैंने पाया ?

मूल्याधिकार और अत्यधिक युद्ध-लाभ

लेखक, श्रीयुत अमरनारायण अग्रवाल, एम० ए०

[आज-कल हमारे देश में माल की क़ीमत बहुत बढ़ रही है। सरकार ने हस्तक्षेप करके इस प्रयत्न के रोकने की चेष्टा की है। इस लेख में इसी विषय पर प्रकाश डाला गया है।]

द्ध के समय अत्यधिक लाभ उठानेवालों की समस्या सरकार के सामने उपस्थित होती है, जिसको हल करने के लिए उसे मूल्य-निर्धारण की नीति हाथ में लेनी पड़ती है। जैसा कि सब जानते हैं, लाभ किसी वस्तु के विक्रय-मूल्य से उसके उत्पादन-मूल्य को घटा देने से मिलता है। पूँजीवादी आर्थिक प्रणाली में लाभ का ख़ास स्थान है; क्योंकि यह व्यक्तिगत जोखिम झेलनेवाले का पुरस्कार है। यदि यह पुरस्कार प्राप्य नहीं है तो कोई जोखिम ही क्यों उठावेगा? इस कारण लाभ का होना आवश्यक हो जाता है।

इस प्रकार साधारण लाभ तो आवश्यक है, पर असाधारण और अत्यधिक लाभ जो उपभोक्ताओं का गला काटकर वसूल किया जाता है, न तो ज़रूरी ही है और न क्षम्य ही। इस प्रकार के लाभ को अँगरेज़ी-भाषा में 'प्राफ़ीटियरिंग' कहते हैं। हिन्दी में इस प्रकार का कोई अधिकारी शब्द नहीं है, पर हम इसे 'अत्यधिक या अन्यायपूर्ण लाभ' कह सकते हैं। इसका अर्थ होता है अन्यायपूर्ण तरीक़ों से बहुत ज्यादा फ़ायदा उठाना। 'प्राफ़ीटियरिंग' शब्द महायुद्ध के समय गढ़ा गया था जब तत्कालीन माँग और पूर्ति की दशाओं में निर्धारित उचित लाभ से अधिक फ़ायदा उठाना खूब चालू हो गया था। अत्यधिक लाभ लेनेवाला व्यापारी समाज में सर्वदा निन्दनीय होता है।

आर्थिक नियमों के अनुसार लम्बे समय में किसी वस्तु का बाज़ार-मूल्य उसके उत्पादन-व्यय के बराबर होता है। क्योंकि यदि बाज़ार-मूल्य उत्पादन-मूल्य से अधिक है तो लाभ में वृद्धि होगी, पुराने उत्पादक अधिक तादाद में माल पैदा करना आरम्भ कर देंगे और नये उत्पादक उस क्षेत्र की ओर आकर्षित होंगे। तब माल की पूर्ति बढ़ जायगी परिणामस्वरूप बाज़ार-मूल्य गिरेगा और वह उत्पादन-मूल्य के समान हो जायगा। अब तनिक समस्या के दूसरे पहलू पर विचार कीजिए। मान लीजिए कि बाज़ार-मूल्य उत्पादन-मूल्य से कम है तो इसका फल क्या होगा। उत्पादकों को हानि होगी, कुछ उत्पादक दूसरे पेशे ग्रहण कर लेंगे, शेष कम तादाद में माल पैदा करेंगे। पूर्ति में इस प्रकार कमी हो जायगी और वस्तु के मूल्य में वृद्धि होगी और शीघ्र ही बाज़ार-मूल्य उत्पादन-मूल्य के बराबर हो जायगा। स प्रकार लम्बे समय में बाज़ार-मूल्य उत्पादन-मूल्य के बराबर ही रहता है।

अल्पकाल में ये दोनों मूल्य समान नहीं रहते। बाज़ार-मूल्य कभी तो उत्पादन-व्यय से अधिक होता है और कभी कम। यदि बहुत-से मनुष्य एक ख़ास वस्तु को ख़रीदना आरम्भ कर दें तो उसका मूल्य बढ़ जायगा। इसके विपरीत यदि उनकी माँग शिथिल हो जाय तो मूल्य घट जायगा। पर साधारण या सामान्य अवस्था और काल में यह अन्तर साधारण होता है। फलस्वरूप उत्पादकोंको हानि या लाभ जो कुछ भी होता है वह अत्यधिक नहीं होता, वास्तव में हम लोग मूल्य (बाज़ार-मूल्य) और व्यय (उत्पादन-व्यय—उत्पादन-मूल्य) की लगभग समानता के इतने आदी हो गये हैं कि ज्यों ही व्यापारी साधारण माँग और पूर्ति की दशा का लाभ उठाकर मूल्य को व्यय से बहुत ऊँचा कर देते हैं, त्यों ही हम शिकायत करने लगते हैं।

अब हम उन दशाओं या अवस्थाओं पर प्रकाश डालेंगे जिनमें व्यापारी व्यय से मूल्य को बहुत ऊँचा कर देते हैं। ऐसी अवस्थाओं में सरकार को मूल्य-निर्धारण की नीति का प्रयोग करना पड़ता है, जिससे अत्यधिक लाभ का उदय न हो।

बहुधा ऐसी दशा प्रकट हो जाती है जब माल बेचनेवाले माल की बनावटी कमी का विज्ञापन करते हैं और माल की क़ीमत बढ़ाकर उपभोक्ताओं का शोषण करते हैं। माल की बनावटी कमी या तो माल का स्टाक न

निकालने से उत्पन्न की जा सकती है और या ग़लत अफ़वाहें उड़ाने से। यदि व्यापारी अपने उद्देश्य में सफल हो गये तो इन्हें बहुत लाभ होता है। युद्ध के छिड़ने के समय से हमारे देश के अधिकांश में ऐसा ही हुआ है। ये कार्य सामाजिक दृष्टि से दोषपूर्ण हैं और सचमुच सज़ा देने योग्य हैं।

कभी कभी व्यापारी लोग अपनी पारस्परिक स्पर्धा भुलाकर संगठित रूप से माल की क़ीमत बढ़ा देते हैं और मनमाना लाभ उठाते हैं। यह संगठन या तो 'ट्रस्ट' बन जाने पर अर्थात् स्पर्धा करनेवाले फ़र्मों के एक फ़र्म में घुलमिल जाने पर होता है और या युद्ध के समय में जब सब व्यापारी यह समझने लगते हैं कि फ़ायदा उठाने का यह स्वर्ण अवसर है। ऐसे संगठन के समय आराम या भोगविलास की वस्तुओं का मूल्य आवश्यकता (या माँग-पूर्ति-निर्धारण विन्दु) से अधिक नहीं बढ़ाया जाता; क्योंकि इन वस्तुओं की माँग में लोच बहुत होती है। इसलिए जितना प्रतिशत मूल्य बढ़ाया जायगा, उससे अधिक प्रतिशत माँग में कमी होगी। यह बात आवश्यकताओं की वस्तुओं पर लागू नहीं। गेहूँ, बाजरा, नमक, सस्ता कपड़ा आदि वस्तुएँ ज़रूर ही ख़रीदी जायँगी—बिना इनके जीवन ही असम्भव है—चाहे इनका मूल्य कितना ही क्यों न बढ़ जाय। सलिए व्यापारी लोग माँग में अधिक कमी का डर ताक़ में रखकर (क्योंकि ऐसा हो ही नहीं सकता) इन चीज़ों की मनमानी क़ीमत बढ़ा सकते हैं और बढ़ाते हैं। अभाग्यवश इससे ग़रीबों को बहुत कष्ट होता है; इन चीज़ों के मूल्य में वृद्धि होना तो ज़िन्दगी पर टैक्स लगाने के बराबर है। सलिए यह प्रवृत्ति निन्दनीय है।

व्यापारियों की उपभोक्ताओं का शोषण करने की शक्ति उस हालत में और भी बढ़ जाती है जब ख़रीददारों की आमदनी में वृद्धि होती है, क्योंकि ऐसे समय में वे ज़्यादा क़ीमत देकर माल ख़रीद सकते हैं। युद्ध के समय में बहुत-से मनुष्यों की आमदनी बढ़ जाती है, जिसके फलस्वरूप व्यापारी लोग भी मूल्य बढ़ाकर उनका शोषण करना आरम्भ कर देते हैं।

अब तक हमने इस विषय के सिद्धान्त की विवेचना की है। अब हम अपने देश की वर्तमान मूल्य-समस्या पर संक्षेप में विचार करेंगे। ज्योंही युद्ध छिड़ा, त्योंही देश के व्यापारियों ने बनावटी कमी का ढोंग रचकर आवश्यकताओं की वस्तुओं की क़ीमत आसमान पर चढ़ाकर और आदमियों की आमदनी में काल्पनिक वृद्धि का लाभ उठाकर उपभोक्ताओं का शोषण करना आरम्भ कर दिया। पर प्रान्तीय सरकारों ने भारतीय-रक्षा-नियमों के ८१वें नियम को कड़े रूप से शीघ्र ही लागू कर दिया। इसके अनुसार बहुत-सी वस्तुओं के मूल्य सरकार-द्वारा निर्धारित किये जा रहे हैं। यह निर्धारण पहले तो मामूली-सा ही था, पर आज-कल यह बहुत कड़ाई के साथ किया जा रहा है। इस सामयिक हस्तक्षेप ने इस रोग को क़ाबू के बाहर होने के पूर्व ही दबा दिया है और हमारे निर्धन देशवासियों को इससे बहुत संतो मिला है।

व्यापारियों ने इस प्रकार के सरकारी हस्तक्षेप के विरुद्ध कुछ दलीलें पेश की हैं, जिन पर विचार करना आवश्यक है। वे पूछते हैं कि जब हम नुक़सान उठाते हैं तब तो सरकार कभी हमारी सहायता नहीं करती; फिर जब हमें लाभ उठाने का मौक़ा हाथ लगा है तब वह क्यों हस्तक्षेप करती है। इस दलील का पहला भाग जिस पर दूसरा भाग निर्भर है, मिथ्या है। सरकार संरक्षण, चलन पर अधिकार आदि रीतियों-द्वारा व्यापार की रक्षा करने का प्रयत्न करती है, इसके अतिरिक्त सरकार को उपभोक्ताओं का भी भला सोचना है। केवल उत्पादकों का ही नहीं। दूसरी दलील माल बेचनेवाले यह देते हैं कि साधारण लाभ का कोई माप हो ही नहीं सकता, फिर यह कैसे कहा जा सकता है कि अमुक विन्दु से असा ारण या अत्यधिक लाभ होना आरम्भ होता है। यह कथन सत्य तो अवश्य है, पर यहाँ यह समझ लेना भी ज़रूरी है कि इन मामलों में निगाह मापात्मक नहीं, बल्कि गुणात्मक होनी चाहिए। हमें केवल यह देखना है कि लाभ का उदय कैसे होता है। यह जानने के पश्चात् यदि आवश्यक हो तो हम एकदम ठीक नहीं तो जितना ठीक हो सके उतना ठीक अन्दाज़ लगाकर उचित कार्य कर सकते हैं।

चार कवितायें

(१)

सखि, जागो अब हुआ सवेरा!
विहगों का कलरव सुन पड़ता
प्राणों में नव-जीवन भरता
लाल रंग से चित्र बनाता
प्राची में वह प्रात-चितेरा!

वन-उपवन में कलियाँ हँस कर
कहती हैं प्राणों में मधु भर
निखिल विश्व अलि, सुन्दर-सुखमय
बरस रहा है प्रेम घनेरा!

कैसी बातें करतीं भोली
यह केवल दो दिन की होली
मधु से रीता होगा जब उर
दीखेगा तब जगत अँधेरा!

क्या होगा मधु मधु कहने से
मिथ्या भ्रम में नित रहने से
अरुणोदय में हँस उठ तू भी
बीती रजनी हुआ सवेरा!

(२)

गाती हूँ मैं नैन बरसते,
बहुत दूर पर उसको देखा
थी उज्ज्वल प्रकाश की रेखा
कब होगा ज्योतिर्मय उर अलि,
मेरे व्याकुल प्राण तरसते!
गाती हूँ मैं नैन बरसते!

विविध रंग से चित्र बनाती
अति तन्मय हो, रोती, गाती
रही सदा करुणा की प्यासी
किन्तु सभी जन मुझ पर हँसते!
गाती हूँ मैं नैन बरसते!

शासन किया सदा निज मन पर
व्रत पूजा की है जीवन भर
अब यह संध्या की वेला भी
बीतेगी क्या सहते-सहते?
गाती हूँ मैं नैन बरसते!

—तारा पांडे

(१)

उठ सखि! उठ जग को अपना ले!
दुनिया की हलचल में खो जा,
जग तेरा तू जग की हो जा,
इससे तुझको व्यथा मिली है पर तू इसको गले लगा ले।

आज न तेरे लिए कहीं गति!
लेकिन कर न स्वप्न की यों इति,
उठ सखि! सूखी ही क्यारी में जीवन के आधार उगा ले।

अरी! भूल जा वह बीता कल,
वर्तमान के पार निकल चल,
राग और अनुरागों से आशा का जादू-भवन सजा ले।

(२)

कैसी तेज धूप हो आई!
सुखद सुबह का अन्त हुआ जब,
दोपहरी का उदय हुआ तब,
किसी एक की अवनति में सखि! किसी एक की विजय समाई।

कितनी बाधाओं से लड़कर,
दुख से भिड़कर, आगे बढ़कर,
आज चमक उठने को नभ में इसने मधुमय घड़ियाँ पाई।

तू क्यों रो दिन खोती अपने?
चल सखि! मधुर सजा कुछ सपने,
नये दिवस के लिए देख यह नई उमंगें हैं कुछ लाई।

—रूपकुमारी वाजपेयी, बी० ए०

यह आदमी देख नहीं सकता। अनजाने ही में यह खतरे की ओर बढ़ रहा है। अपढ़ आदमी भी अज्ञान के कारण अपने को खतरे में डाल देता है —

जैसे जलते दिए से जलते दिए अनेक।
तैसे कितने नर पढ़ें अगर पढ़ावे एक।

संयुक्त-प्रान्त में साक्षरता

लेखक, श्रीयुत परशुराम श्यामपुरी

(१)

नवाब सिराजुद्दौला के अनेक गुणों में से—जैसा कि अँगरेज़ इतिहास-लेखकों का मत है—एक गुण यह भी था कि वह यह नहीं जानता था कि उसके महल के बाहर क्या है। अपने राज्य का ही एक नगर होने पर भी कलकत्ता का उसने नाम भर सुना था, उसे देखा नहीं था। यह उन दिनों की बात है जब ब्रिटिश सत्ता कम्पनी के रूप में बंगाल में अपने पैर जमा चुकी थी और धीरे-धीरे वहाँ की घरेलू राजनीति में भी दखल देने लगी थी। अँगरेज़ों के ज्ञान की मात्रा निस्सन्देह उन दिनों बहुत अधिक रही होगी, क्योंकि वे सात समुद्र पार करके इस देश में पहुँचे थे। इस घटना के एक शताब्दी से कुछ अधिक बाद जब एक दयालु गवर्नर-जनरल महोदय ने भारतीयों की मूढ़ता पर तरस खाकर डाक के मुहकमे की व्यवस्था की और उनके लिए एक पैसे व आध आने के टिकट चालू कर दिये तब युक्त-प्रान्त के एक देहाती ज़मींदार के यहाँ कलकत्ते से एक चिट्ठी आई। उस गाँव से आठ कोस की दूरी पर एक नया डाकखाना खोला गया था और उसी का पोस्टमैन अपने थैले में वह चिट्ठी रखकर लाया था। डाकिये के चारों ओर गाँववालों का घेरा लग गया और सब कौतूहल व आश्चर्यभरी दृष्टि से उस अज्ञातपूर्व वस्तु 'चिट्ठी' की ओर देखने लगे। ज़मींदार साहब के महत्त्व में इस चिट्ठी की घटना से बहुत वृद्धि होगई और घर के दास-दासियों से लगाकर प्रजा के किसानों तक में यह चर्चा बड़े आश्चर्य के साथ फैल गई कि ज़मींदार साहब सचमुच बड़े आदमी हैं! उनके पास तो कलकत्ते से "चिट्ठी" आई है।

कौतूहल की मात्रा कुछ घटने पर 'चिट्ठी' पढ़ने की कोशिश की गई। स्वयं बड़े सरकार ने अपने हाथों से लिफ़ाफ़ा खोला, उसमें से तहाये हुए काग़ज़ को निकालकर सीधा किया और उसे सिर से पैर तक एक बार देखा। फिर उसे अपने कारिन्दा के हाथ में दे दिया। कारिन्दा ने पटवारी को बुलाकर पत्र

[एक ग्राम-पुस्तकालय का भीतरी दृश्य]

दिखाया, फिर पंडित जी बुलाये गये, पर कोई उस पत्र का रहस्य न खोल सका! पत्र 'ओनामासीधं' वाली 'कैथी' में लिखा था; कारिन्दा व पटवारी 'पारसी' जानते थे; और पंडित जी थे 'मुडाग्र' के पंडित! इन मौलवियों और पंडितों को छोड़कर साधारण लोगों के लिए यह बात सचमुच उन दिनों जादूगरी ही समझी जाती होगी कि कोई एक हज़ार कोस से काग़ज़ पर कुछ काले-काले निशान करके भेज दे और दूसरा उस काग़ज़ को देखकर उसके मन की बात जान ले।

(२)

इस घटना को भी अब एक शताब्दी होने आई है। ब्रिटिश सरकार भारत में लगभग १५० वर्ष से एकच्छत्र राज्य कर रही है और प्रजा की शिक्षा व भलाई के लिए, उसकी क्रमिक बौद्धिक व सांस्कृतिक उन्नति के लिए शक्ति भर प्रयत्न करती आ रही है। हज़ार दो हज़ार नहीं, कई लाख रुपये प्रतिवर्ष 'शिक्षा' पर ही व्यय कर रही है। फलस्वरूप किसी गाँव में 'चिट्ठी' का आना अब उतने आश्चर्य की बात नहीं समझी जाती है। हाँ, वहाँ 'अख़बार' का आना अलबत्ता वैसा ही 'अद्भुत' बना हुआ है। और जो अख़बार पढ़ता है—ऐसा सौभाग्यशाली दो-चार गाँवों में एक-आध ही होता है—वह 'बहुत विद्वान्' समझा जाता है। वस्तुस्थिति यह है कि अब हमारे देश में साक्षरों की संख्या सब मिलाकर ६.१ प्रतिशत तक पहुँच गई है! और यह है लगभग १५० वर्षों के अनवरत परिश्रम का महाफल! रूस और फ़िनलैंड का संघर्ष आरम्भ हो जाने से फ़िनलैंड की ओर भी हमारा ध्यान जाने लगा है। हम पढ़ते हैं कि फ़िनलैंड में—जो बीस वर्ष पहले रूस का ग़ुलाम था—आजकल एक भी निरक्षर नहीं है और सी लिए उस ३५-३६ लाख आबादीवाले देश में ६५३ अख़बार अच्छी तरह चल रहे हैं। अपने २० साल के स्वातंत्र्य काल में ही उस

[ग्रामवासी शान्तिपूर्वक पुस्तकें पढ़ रहे हैं।]

देश का सामयिकता से इतना मेल कर लेना सचमुच हमारी दृष्टि से आश्चर्य की बात हो सकती है, क्योंकि हमारी समझ से तो १५० वर्ष के घोर प्रयत्न से भी ६.१ प्रतिशत से अधिक जनता साक्षर नहीं बनाई जा सकती।

शिक्षा-यन्त्र हमारे यहाँ कुछ ऐसे ढंग से चलता रहा है कि 'साक्षरता' का अधिक प्रचार नहीं हो पाया। हम देखते हैं कि सन् १९३५-३६ तक कुल खर्च का १३.२३ प्रतिशत शिक्षा पर व्यय होता था, और जब कि पुलिस पर १५.८ प्रतिशत व्यय होता था। इस कुल १३.२३ प्रतिशत में से हमारे सूबे में १२ प्रतिशत तो विश्वविद्यालयों पर व्यय हो जाता है और २५ प्रतिशत प्रारम्भिक शिक्षा पर व्यय होता है। चाहिए तो यह था कि साक्षरता-प्रचार के लिए प्रारम्भिक शिक्षा पर अधिक व्यय किया जाता और उच्च शिक्षा पर कम, क्योंकि ग़रीब जनता तो प्रारम्भिक शिक्षा ही पा सकती है। इसी लिए स्काटलैंड जैसे देशों में विश्वविद्यालयों पर केवल ६ प्रतिशत व्यय होता है और प्रारम्भिक शिक्षा पर ६८ प्रतिशत।

सरकार की परिस्थिति इस सम्बन्ध में स्पष्ट ही है। सन् १८१४ की ३ जून को पहले-पहल १ लाख रुपया सरकार ने भारत की जनता को शिक्षित करने के लिए स्वीकृत किया था। अब १९४० तक तो यह रक़म २६ करोड़ तक हो गई है। फिर भी यदि जनता साक्षर न हो तो इसमें सरकार का क्या दोष! बात यह है कि यहाँ की आबादी भी तो ज़रूरत से कहीं ज्यादा है। सरकार ने तो अपनी शक्ति भर किया, फिर भी वर्ष में वह प्रतिव्यक्ति १) व्यय कर सकी है तो क्या किया जाय? हाँ देशी नेता अवश्य इसके लिए कुछ आन्दोलन करते रहे हैं।

(३)

परन्तु इधर जब से कांग्रेसी सरकारों के हाथ में कतिपय सूबों के प्रबन्ध का भार आया, स दिशा

में ख़ासी चहल-पहल हो गई है। युक्तप्रान्तीय सरकार ने तो इस ओर जितनी तत्परता दिखलाई है वह प्रशंसनीय है। गत वर्ष १५ जनवरी को प्रान्त के कोने कोने में साक्षरता-दिवस बड़े समारोह से मनाया गया था। जनता व अफ़सरों ने समान-मनोयोग से उसमें भाग लिया था। १ साल के बाद गत ४ फ़रवरी को फिर साक्षरता-दिवस इस प्रान्त में मनाया गया और इसी समय सालभर के काम की एक रिपोर्ट भी प्रकाशित की गई है। इस रिपोर्ट से ज्ञात होता है कि यदि इस काम में ऐसी ही तत्परता दिखलाई जाती रही तो सचमुच जैसी कि कांग्रेसी सरकारों की स्कीम थी, ५ वर्ष में ही सूबे में फ़िनलैंड जैसी साक्षरता का अवश्य ही प्रसार हो जायगा।

वास्तव में युक्तप्रान्त की कांग्रेसी सरकार ने इस योजना को बड़े सुसंगठित रूप से चलाया है। सुविधा के लिए यह दो प्रकारों में बाँट दी गई है। एक तो निरक्षरों को साक्षर करने का प्रयत्न और दूसरा उनकी साक्षरता को बनाये रखने का प्रयत्न।

साक्षर बनाने के लिए प्रान्त भर में ९६० पाठशालायें खोली गई हैं। इनमें एक एक मास्टर हैं, जिसके ज़िम्मे पड़ोस के ८—१० ग्रामों को साक्षर बना देना है। इनके सिवा ९१५ स्कूलों को भी प्रौढ़ शिक्षा के लिए विशेष सहायता दी गई है। कारख़ानों, बैंकों, डिस्ट्रिक्ट और म्यूनिसिपल बोर्डों से भी अनुरोध किया गया कि वे अपने अपने नौकरों को साक्षर बनाने का उद्योग करें। इन्टरमीजियट, मिडिल और हाई स्कूलों से—जिनकी संख्या ११९७ है, इस योजना के अनुसार एक-एक गाँव लेकर शिक्षाक्षेत्र तैयार करने का अनुरोध किया गया और ४३७ स्कूलों ने इसमें काम भी किया है।

प्रान्त के विद्यार्थियों ने भी इस योजना में बड़ी उत्सुकता से भाग लिया है और उनके प्रयत्न से १,५३,२५१ व्यक्तियों को हस्ताक्षर करना आगया है।

'बोनस' पद्धति द्वारा भी इस योजना में बड़ी सहायता मिली है। एक निरक्षर को साक्षर बनानेवाले को १) दिया गया है। इस व्यवस्था से कुछ व्यक्ति साक्षर बनाये जा सके हैं।

जनवरी ३९ से लेकर दिसम्बर ३९ तक साक्षरता-योजना के प्रथम वर्ष में २,७९,६०४ व्यक्तियों ने साक्षरता के प्रमाण-पत्र प्राप्त किये। इसी प्रकार और सरकारी तौर पर शिक्षा प्राप्त करनेवालों की संख्या कई हज़ार हो गई है। उपर्युक्त आँकड़ों को देखकर यह विश्वास के साथ कहा जा सकता है कि साक्षरता-आन्दोलन को पहले वर्ष में आशातीत सफलता प्राप्त हुई है।

शिक्षा में लोगों की रुचि बनाये रखने तथा प्राप्त शिक्षा से फ़ायदा उठाने के लिए ७३० ग्राम-पुस्तकालयों और ३,६०० ग्राम-वाचनालयों का भी उद्घाटन प्रान्त भर में धूमधाम से किया गया है। वाचनालयों और पुस्तकालयों ने भी साक्षरता के प्रसार में एक नई जान डाल दी। गाँवों में बड़ी दिलचस्पी के साथ ये पुस्तकालय और वाचनालय अपनाये गये हैं।

प्रत्येक ग्राम-पुस्तकालय में ३०० पुस्तकें रक्खी गई, जिनमें धार्मिक पुस्तकों से लेकर हिन्दी-उर्दू के उपन्यास, कहानी-संग्रह और इतिहास तथा राजनीति-सम्बन्धी पुस्तकें भी शामिल हैं। ये ग्राम-पुस्तकालय पढ़ने-लिखने की सुविधाओं में आधुनिक पुस्तकालयों के समान ही अपने में पूर्ण हैं। इन पुस्तकालयों के अधीन पाँच से लेकर आठ मील तक के घेरे के ग्रामों में उप-पुस्तकालय खोले गये हैं, जिन्हें प्रतिमास अपने केन्द्र के ग्राम-पुस्तकालय से २० से लेकर ३० तक नई पुस्तकें प्रतिमास दी गई हैं। केन्द्रीय पुस्तकालयों के अध्यक्ष इन सब किताबों का हिसाब-किताब रखते हैं। इन उप-पुस्तकालयों-द्वारा गाँवों के लोगों को बिना किसी चन्दे के या दाम जमा कराये पुस्तकें पढ़ने को दी गई हैं; और तारीफ़ यह कि इन पुस्तकालयों की एक भी किताब पढ़नेवालों ने नहीं नष्ट की। केवल ५० पुस्तकें इस वर्ष गुम हुई थीं, जिनके दाम पढ़नेवालों ने पुस्तकालयों में जमा कर दिये हैं। इस प्रकार सारे प्रान्त में कुल मिलाकर गत वर्ष १,५८,७२१ पुस्तकें हिन्दी-उर्दू की तथा ५१,०१५ दूसरी पुस्तकें शिक्षा-प्रसार-विभाग की ओर से प्रदान की गई हैं। इन ग्राम-पुस्तकालयों-द्वारा जनवरी ३९ से दिसम्बर ३९ तक पाठकों में वितरित की जानेवाली पुस्तकों की संख्या १२,२०,१३१ रही।

इसी प्रकार ३,६०० ग्राम-वाचनालयों का प्रबन्ध भी गत वर्ष चलता रहा। प्रत्येक ग्राम-वाचनालय में हिन्दी-उर्दू के दो साप्ताहिक पत्र और हिन्दी-उर्दू का एक-एक मासिक पत्र दिया गया। आवश्यकता देखकर कतिपय

[गाँव के लोग वाचनालय में समाचार-पत्र सुन रहे हैं।]

वाचनालयों में अधिक पत्रों का भी प्रबन्ध किया गया। जिन स्थानों में शिक्षित स्त्रियाँ थीं वहाँ के वाचनालयों में विशेषरूप से स्त्रियोपयोगी पत्र-पत्रिकाओं का प्रबन्ध किया गया। प्रतिसप्ताह भेजे जानेवाले पत्रों की संख्या का क्रम न वाचनालयों में ७,२०० रहा है तथा ४,१५० मासिक पत्र भी प्रतिमास भेजे जाते रहे हैं। ग्राम-वाचनालयों में सन् १९३९ में उपस्थिति-संख्या ३९,३४,२१७, रही है। ग्राम-वाचनालयों के अध्यक्षों को अशिक्षित ग्रामवासियों को समाचार-पत्र पढ़कर सुनाने का काम भी सौंपा गया। इसके लिए एक निश्चित समय पर वाचनालय में अपढ़ ग्रामवासी समाचार-पत्र सुनने के लिए आ जाते थे और वाचनालय के अध्यक्ष उन्हें नियमानुसार समाचार पढ़कर सुनाने का कार्य सम्पादन करते रहे। इस कार्य के लिए सरकार की ओर से उन्हें प्रतिमास एक रुपया पुरस्कार दिया गया। गत वर्ष आधे करोड़ से ऊपर अपढ़ ग्रामवासियों को समाचार पढ़कर सुनाये गये।

सरकारी पुस्तकालयों के अतिरिक्त ग़ैर-सरकारी ग्राम-पुस्तकालयों और वाचनालयों को शिक्षा-प्रसार-विभाग की ओर से ३० रुपये से लेकर ९२ रुपये तक की सालाना सहायता दी गई।

इस प्रकार साक्षरता-आन्दोलन का प्रथम वर्ष सफलतापूर्वक समाप्त हुआ जिसने लाखों अपढ़ ग्रामवासियों को अशिक्षा के अन्धकार से निकालकर शिक्षा की नई ज्योति प्रदान की है। इस साल फिर साक्षरता-दिवस के साथ आन्दोलन का दूसरा वर्ष स्त्रियों में साक्षरता-प्रसार के साथ प्रारम्भ हुआ। कांग्रेस-सरकार-द्वारा प्रारम्भ किया गया यह महा प्रयास, आशा है, तब तक लगातार जारी रहेगा, जब तक प्रान्त से निरक्षरता का सर्वथा विनाश न हो जायगा।

१९३९ का क़ानून क़ब्ज़ा आराज़ी और ज़मींदार

लेखक, रायबहादुर पंडित राजनारायण मिश्र

[किसानों के नये क़ानून का परिचय गत अंक में छपा है। ज़मींदार लोग इस क़ानून को किस दृष्टि से देखते हैं, इसका दिग्दर्शन इस लेख में कराया गया है। आशा है, पाठकों को ऐसे लेखों से इस क़ानून का अधिकाधिक परिचय होगा। हम आगे के अंकों में इस महत्त्वपूर्ण क़ानून पर और भी अधिक प्रकाश डालने का प्रयत्न करेंगे]

प्रान्तीय असेम्बली के आख़िरी चुनाव के समय कांग्रेस ने काश्तकारों को यह वचन देकर वोट लिया था कि उनके प्रतिनिधि बेदख़ली बन्द करवा देंगे और लगान अगर बिलकुल बन्द न किया जा सकेगा तो कम अवश्य कर दिया जायगा। काश्तकारों ने इन वचनों की पूर्ति की आशा में कांग्रेस को वोट दिया। जब कांग्रेस ने गवर्नमेंट चलाना स्वीकार किया तब थोड़े ही दिनों के बाद एक कमिटी मुक़र्रर की गई और उसको हिदायत दी गई कि आगरे के क़ानून क़ब्ज़ा आराज़ी १९२६ व अवध के क़ानून लगान १८८६ (तरमीम किया हुआ) की जाँच करे और ऐसा विधान पेश करे जिसमें काश्तकारों का हित हो। इस कमिटी की रिपोर्ट पर गवर्नमेंट के निर्णय के अनुसार एक अफ़सर मुक़र्रर किया गया, जिसने एक बिल (क़ानून का मसविदा) तैयार किया और वह २०-३-३८ को असेम्बली में पेश हुआ और बहुत-से परिवर्तनों के बाद क़ानून बनानेवाली दोनों सभाओं से पास होकर उसने ६-१२-३९ को गवर्नर की स्वीकृति प्राप्त की।

इस क़ानून के सम्बन्ध में कांग्रेसी लोगों का कहना है कि यह पहला ही ऐसा क़ानून है जो काश्तकारों के हित के लिए बनाया गया है। उसके विरुद्ध ज़मींदारों का ख़याल है कि इस क़ानून से उनकी मिलकियत पर आघात पहुँचाया गया है, और उसमें बहुत-सी ऐसी बातें हैं जिनसे काश्तकारों का विशेष फ़ायदा न होगा वरन काश्तकार और ज़मींदार के बीच वैमनस्य पैदा हो जायगा।

इसमें कोई सन्देह नहीं कि जिन बातों में काश्तकार का फ़ायदा समझा गया है उसका विधान इस क़ानून में कर दिया गया है, लेकिन यह कहना कि इसके पहले कोई क़ानून रिआया के हित का नहीं बना, बिलकुल गलत है। सन् १७८८ में जब इस सूबे का कुछ हिस्सा कम्पनी के हाथ में था, डंकन साहब ने एक हुक्मनामा २५ जनवरी सन् १७८८ को निकाला था, जिसके अनुसार इस्तमरारी बन्दोबस्त सन् १७९५ में किया गया। इसमें काश्तकारों के हित के लिए इस क़ानून में बहुत ज़्यादा विधान किया गया था। यह दुःख की बात है कि इस्तमरारी बन्दोबस्त केवल बनारस की कमिश्नरी के ज़िलों में और आज़मगढ़ ज़िले के कुछ हिस्सों में ही हुआ। सूबे के बाक़ी भाग में बोर्ड आफ़ रेवेन्यू के विरोध की वजह से वह बन्दोबस्त न हो सका। फिर भी सन् १८८१ व १९०१ और १९२६ के जो क़ानून जारी हुए उनमें एक के बाद दूसरे में काश्तकारों के हक़ बराबर बढ़ाये गये और अब जो क़ानून होता उसमें मौरूसी हक़ सब काश्तकारों को ज़रूर दिया जाता और उसका कोई ज़मींदार विरोध भी न करता। हाँ, कांग्रेसी लोगों का कथन अवध के काश्तकारों के बारे में ज़रूर बहुत कुछ सही है और दोनों सूबों के बारे में एक ही क़ानून कर देने में कांग्रेस गवर्नमेंट ने अवध के काश्तकारों का उपकार किया है। आगरा के सूबे के काश्तकारों में जिन काश्तकारों को अपनी जोत के बेचने का अधिकार इस्तमरारी बन्दोबस्त में दिया गया था वह सुरक्षित रक्खा गया है और अवध के जिन काश्तकारों को किसी अदालती डिगरी से या सन् १८५६ ई० के ३० वर्ष पहले से लगातार जोते रहने की वजह से जो विशेष अधिकार मिल गये हैं वे सुरक्षित रक्खे गये हैं। दोनों सूबों के बाक़ी काश्तकारों को जीवनपर्यन्त ही क़ब्ज़ा रखने का जो अधिकार था वह अधिकार अब मौरूसी कर दिया गया। वारिसों की श्रेणी में अवध में तो निज के क़ानून के रूप से ज़मीन जिसको पहुँचती थी

उसको मिलती थी। परन्तु आगरे में भाई आदि के लड़के को या लड़की के लड़के को उसी दशा में ज़मीन मिलती थी जब कि वह आख़िरी पुरुष काश्तकार के साथ शामिल जोत रहा हो। इस नये विधान से सौतेली मा या आख़िरी पुरुष काश्तकार के ख़ानदान की और कोई विधवा या बिना ब्याही लड़की को एवं भाई के लड़के और चाचा के लड़कों को ज़मीन मिल जाया करेगी। इस क़ानून में एक ऐसी बात है जिसको कांग्रेस गवर्नमेंट समझती ह कि अच्छा किया, परन्तु ज़मींदारों का खयाल है कि इससे झगड़े बहुत पैदा होंगे। वह बात यह है काश्तकारों को अपने खेत में बिना किसी की इजज़त के पेड़ लगाने के अधिकार की। जो लोग देहात की स्थिति को जानते हैं उनको पूरा विश्वास है कि बहुत-से काश्तकार पेड़ अपने फ़ायदे के लिए तो लगायँगे नहीं, हाँ, पड़ोसी के खेत में मार पैदा कर देने के लिए शरारत ज़रूर करेंगे। ज़मींदारों के कहने सुनने से क़ानून में यह विधान कर दिया गया है कि अगर पेड़ों के लगाने से किसी का नुक़सान होता हो तो उसकी रज़ामन्दी ले लेनी चाहिए। लेकिन देहात में कौन रज़ामन्दी लेता है? वहाँ तो जिसकी लाठी उसकी भैंस का मामला रहता है। अभी तक जो लगान अदालत मुक़र्रर करती थी उसका हिसाब केवल इस बुनियाद पर लगाया जाता था कि उसी क़िस्म की ज़मीन के लिए और काश्तकार कितना लगान देते हैं, किन्तु नये विधान के हिसाब से अब यह देखा जायगा कि काश्तकार लोग उसी क़िस्म की ज़मीन के लिए १३०९ फ़० और १३१३ फ़० के बीच में क्या देते थे, उसी के साथ साथ पैदावार की क़ीमत जो उस समय थी और जो अब है उसका भी ध्यान रक्खा जायगा। इन सब बातों पर ध्यान रखते हुए यह विधान किया गया है कि किसी खेत का लगान उसकी पैदावार से ⅙ से ज़्यादा न होगा। ज़मींदारों को पिछली शर्त पर बहुत एतराज़ था। उनका यह ख़याल है कि किसी खेत की मामूली पैदावार जानना कठिन ही नहीं, बल्कि असम्भव है। हर एक खेत की पैदावार किसान की मेहनत व अच्छे बीज व समय पर पानी देने पर निर्भर है। अच्छे किसान के हाथ में जाने से उसी खेत में दस मन फ़ी बीघा पैदा हो सकता है और सुस्त काश्तकार के हाथ में दो मन भी नहीं पैदा हो सकता।

सैकड़ों वर्ष से इस देश का यह नियम रहा है कि लगान नियत करने के समय काश्तकार की जाति का ध्यान रक्खा जाता था। ऊँची जाति के जो काश्तकार अपने हाथ से हल नहीं जोतते हैं उनके लगान की शरह उन काश्तकारों की शरह से कम होनी चाहिए जो अपने हाथ से हल जोतते हों। नये क़ानून में इस बात का ध्यान रखने का कोई नियम नहीं है। इसका फल यह होगा कि ऊँची जाति के काश्तकार खेती करना छोड़ देंगे या अपने हाथ से हल जोतेंगे। बेदख़ली के बारे में अभी तक यह नियम था कि अगर काश्तकार किसी क़िस्त या साल का लगान न दे या कोई काम ऐसा करे जो उसके पट्टे की शर्त के शान के ख़िलाफ़ हो तो वह बेदख़ल किया जाय।

बेदखली से किसान बहुत डरते हैं। और बेदख़ली के बन्द हो जाने की आशा से ही किसानों ने इतनी तादाद में कांग्रेसवालों को वोट दिया था। परन्तु बेदखली बन्द कैसे हो? अगर बेदखली का डर जाता रहे तो लगान ही वसूल न हो, इसलिए कांग्रेस-गवर्नमेंट को बेदखली का नियम रखना ही पड़ा। हाँ, किसानों के हक़ में सिर्फ़ इतना अवश्य कर दिया गया है कि बक़ाया लगान की डिग्री होते ही अगर रुपया न अदा हुआ तो भी बेदखली न होगी बल्कि किसान को लगान अदा करने को एक साल का समय मिलेगा। वह दूसरे साल १५ मई तक अगर दोनों साल का लगान व बेदखली का ख़र्च दे देगा तो वह अपने खेतों से बेदख़ल न होगा।

अभी तक गवर्नमेंट का यह ख़याल रहता था कि ज़मींदारों को लगान वसूल करने में हर तरह की सुविधा दी जाय, परन्तु इस नये क़ानून ने न केवल वह सुविधा ही दूर कर दी है, बल्कि कहीं कहीं रुकावट भी पैदा कर दी है। कच्ची कुर्की तो बन्द ही कर दी गई है। यह सच है कि कच्ची कुर्की से काश्तकार का बड़ा नुक़सान होता था, परन्तु उसका भय उसको लगान देने पर बाध्य करता था। बाज़ बाज़ सरकश काश्तकार तो कच्ची या पक्की कुर्की तक को नहीं मानते हैं, और कुर्क हुआ माल ज़बर्दस्ती काट लेते हैं। बाद को ज़मींदार बरसों लड़ा करता है और सैकड़ों रुपया ख़र्च करने पर किसान को कभी कभी कुछ सज़ा दिला पाता है। ऐसे काश्तकारों से गिरफ़्तार

कराकर ही लगान वसूल होता था। अब इस क़ानून से वह भी बन्द हो गया है। अब लगान का रुपया तुरन्त वसूल करने का यह तरीक़ा रह गया है कि किसानों की गाय-भैंस या फ़सल कुर्क कराई जाय। गाय-भैंस तो बहुत कम काश्तकारों के पास रहती हैं। रही फ़सल सो वह भी एक चौतिहाई से अधिक कुर्क नहीं होगी और कुर्की का खर्च ५) या ६) पड़ेगा ही। कभी कभी तो ऐसा होगा कि कुर्क किये हुए माल से ख़र्च भी नहीं पूरा होगा, बल्कि घाटा ही होगा। ऐसी सूरत में ज़मींदार फ़सल को क्यों कुर्क कराने लगा? इस ऐक्ट में कोई कोई बात ऐसी भी पाई जाती है जिससे कांग्रेस की नीति का पता ही नहीं चलता है। एक तरफ़ तो काश्तकार को अपने खेत में पेड़ लगाने का अधिकार दिया जाता है, दूसरी तरफ़ बाग़ की आराज़ी ख़ाली होने पर उस जगह के लिए उसको मौरूसी काश्तकार का हक़ दिया जाता है। अभी तो बेदख़ली के डर से बाग़ नहीं कटते थे। अब धड़ाधड़ बाग़ कटेंगे।

इस ऐक्ट में इस बात की कोशिश ज़रूर की गई है कि ज़मींदार ज़मीन का मालिक न माना जाय, और हर तरह से उसके स्वत्व का अपहरण किया गया है। उसको ५० एकड़ से ज़्यादा सीर रखने का अधिकार नहीं है और किसी अन्य ज़मीन पर उसको सीर के अधिकार नहीं प्राप्त होंगे। यह सीर का अधिकार ज़मींदार के लिए बहुमूल्य था। सीर की ज़मीन पर उसको मालगुज़ारी कम से कम ≈) फ़ी रुपया कम देनी होती थी। जिस समय वह चाहता, कुछ ज़मीन अपनी जोत में ला सकता था। उन ज़मींदारों को जिनके पास ५० एकड़ से कम सीर है, अब यह अधिकार नहीं रहा कि शिकमी काश्तकार को फ़ौरन बेदख़ल करा लेवें। उनको कम से कम ५ वर्ष तो इन्तज़ार करना ही पड़ेगा।

इस नियम से और ऐसी दूसरी बातों से कि अगर ज़मींदार अपनी ज़मींदारी के किसी खेत में कुछ तरक़्क़ी करना चाहे तो उसको काश्तकार से लिखी मंज़ूरी लेनी चाहिए या अगर किसी काश्तकार की जोत से कोई खेत ज़मींदार ज़बर्दस्ती निकाल ले तो उस पर फ़ौजदारी का मुक़दमा चलना चाहिए, ज़मींदारों को यह सच्चा ख़याल पैदा हो गया है कि उनकी मिलकियत पर धक्का पहुँचाया जा रहा है। सबसे ज़्यादा ख़राब बात इस क़ानून में यह है कि तहसीलदारों को बहुत ज़्यादा अधिकार दे दिये गये हैं। इससे काश्तकार और ज़मींदार दोनों को नुक़सान ही पहुँचेगा और अगर ज़मींदारों ने ज़मीन को नीलाम कराना शुरू किया तो धीरे धीरे ज़मीनें काश्तकारों से निकलकर महाजनों के हाथ में चली जायँगी।

कवि की अन्तर्वेदना

लेखक, श्रीयुत मित्तल

आज हृदय में क्रन्दन भर लाया हूँ
आज खोल मानस को पछताया हूँ
मैं पीड़ित मधु, प्यार कहाँ से लाऊँ?
मैं आहत, मधु-गान कहाँ से पाऊँ?
मेरे पास नहीं है मादक हाला!
और ढालनेवाली सुन्दर बाला!
मैं तो सीधा सादा देहाती हूँ
मेरे स्वर में दुख-दर्दों की ज्वाला;
मैं अनन्त के गीत नहीं गाता हूँ
दूर क्षितिज के पार नहीं जाता हूँ;

मेरी छोटी दुनिया कंगालों की
उनके उर की पीर बहा लाता हूँ;
'रुन-झुन' में विश्वास नहीं करता हूँ
मधुर-मिलन की आश नहीं करता हूँ
मैं दुखियों का एक चिरन्तन गायक,
छन्दों में बस कसक, आह भरता हूँ।
सुख की दुनिया दुख में क्या पायेगी?
मेरी पीड़ा उसे न बहलायेगी।
चाहे हँस दे सुनकर सुख की दुनिया
मेरी कविता दुखियों को भायेगी।

लेखक, श्रीयुत सेठ गोविन्ददास एम० एल० ए०

(८)

पोर्चुगीज़ पूर्वीय अफ्रीका के दो प्रधान बन्दरगाह

दक्षिण-अफ्रीका में प्रवेश करने के पहले पूर्वीय अफ्रीका में हमें पोर्चुगाल-द्वारा शासित तीन बन्दरगाहों के दर्शन हुए—मौज़ंबिक, बैरा और लुरेंको मार्क्विस। लुरेंको मार्क्विस में ही जहाज़ से उतरकर हम लोग दक्षिण-अफ्रीका की राजधानी जोहान्सबर्ग के लिए रेल से रवाना होनेवाले थे।

जंज़ीबार से चलकर चार दिनों के बाद करंजा मौज़म्बिक पहुँचा। मौज़म्बिक के लोगों को मालूम हो गया कि मैं करंजा से दक्षिण-अफ्रीका जा रहा हूँ। वहाँ के कई प्रतिष्ठित सज्जन मुझसे मिलने के लिए जहाज़ पर पहुँचे और मौज़म्बिक में उतरने के लिए आग्रह करने लगे। चूँकि जहाज़ वहाँ बहुत कम ठहरता था, इसलिए मैंने उन्हें लौटते हुए मौज़म्बिक उतरने का आश्वासन दिया।

मौज़म्बिक से चलकर दो दिनों में हम बैरा पहुँचे। बैरा के अनेक प्रतिष्ठित सज्जन मेरे स्वागत के लिए जहाज़ पर आ गये और हम लोगों ने जहाज़ से उतरकर पोर्चुगीज़-राज्य की सीमा में पैर रक्खा। हमारे ठहरने की व्यवस्था श्री पूहूमल ब्रदर्स के मैनेजर श्री दयाराम के यहाँ की गई थी। ठहरने के स्थान पर जाने के बाद हम लोग बैरा देखने के लिए मोटरों पर निकले। बैरा छोटा-सा होने पर भी कितना सुन्दर बन्दरगाह था! पोर्चुगाल की एक कम्पनी का इस बन्दरगाह पर राज्य था। इस कम्पनी का मिलान भारतवर्ष की सन् १८५७ के पहले की ईस्ट इण्डिया कम्पनी से किया जा सकता है। ४८ वर्ष पूर्व इस कम्पनी को पोर्चुगीज़ सरकार से ५० वर्ष के लिए चार्टर मिला था। दो वर्ष के पश्चात् यहाँ का शासन पोर्चुगीज़ सरकार के हाथ में चला जानेवाला है। इन ४८ वर्षों के भीतर इस नगर का निर्माण हुआ है। सुन्दर मकान, सड़कें, बाज़ार, होटल, क्लब, पुस्तकालय, स्कूल, अस्पताल सभी कुछ थे। यद्यपि इस कम्पनी का ठेका दो साल के बाद समाप्त हो जायगा, तो भी उसे यहाँ की प्रजा के आराम की ओर काफ़ी ध्यान है। सड़कें सुन्दर हैं और साफ़ रक्खी जा रही हैं। यहाँ की संस्थाओं को हर तरह की मदद की जा रही है। इस कम्पनी ने ईस्ट इण्डिया कम्पनी के सदृश उस देश का व्यापार नष्ट नहीं किया है। आज भी वहाँ गोरों, गेहुँओं और कालों में कोई भेद-भाव नहीं है। हिन्दुस्तानी पोर्चुगीज़ प्रजा न होते हुए भी पोर्चुगीज़ राज्य में ब्रिटिश साम्राज्य

की अपेक्षा कहीं अधिक सुख और सम्मान के साथ रहते हैं। वे हरएक क्लब के मेम्बर हो सकते हैं, हर एक होटल में रह सकते हैं, हर एक सिनेमा में जा सकते हैं। यहाँ के यदि किसी भी क़ानून से हिन्दुस्तानियों को असन्तोष है तो वह एमीग्रेशन का क़ानून है। यहाँ कोई हिन्दुस्तानी बिना ४५० पौंड जमा किये नहीं आ सकता है। इतना ही नहीं, जमा करने की यह रक़म जमा करने पर भी पोर्चुगीज़ गवर्नर जनरल को आने के लिए दरख़्वास्त देनी पड़ती है और इस दरख़्वास्त को बिना किसी कारण के भी नामंजूर कर देना गवर्नर जनरल के हाथ में है। सुना गया है कि केवल नये आनेवालों की ही ये दरख़्वास्तें नामंजूर होती हैं। पर ऐसा ही नहीं है। जो वर्षों पोर्चुगीज पूर्वी अफ़्रीका में रह चुके हैं वे यदि भारत जाते हैं और लौटकर आना चाहते हैं तो उनके भी रास्ते में सैकड़ों रोड़े अटकाये जाते हैं। कई कई दरख़्वास्त देनेवालों को तो महीनों और वर्षों कोई उत्तर ही नहीं मिलता। पोर्चुगीज सरकार के अच्छे नाम पर इमीग्रेशन की यह सख़्ती कलंक लगाती है और इस पर उसे विचार करना चाहिए। यहाँ तो भारतीयों की संख्या क़रीब ५–६ हज़ार ही है, पर भारत में तो पोर्चुगीज प्रजा लाखों की तादाद में रहती है। पोर्चुगीज सरकार के इस प्रकार के व्यवहार के कारण यदि भारतीय सरकार भी पोर्चुगीज़ प्रजा से इसी प्रकार का व्यवहार आरम्भ कर दे तो इसमें पोर्चुगीज़ को अधिक हानि उठाने की सम्भावना है।

घूमते घूमते हम लोग एक जंगली स्थान पर पहुँचे। जब मैंने पूछा कि यह जंगल किस चीज़ का है तब मालूम हुआ कि यह काजू का जंगल है। काजू के वृक्ष लीची के वृक्षों के सदृश होते हैं। उनमें आम के सदृश बड़े बड़े फल लगे थे, जिनके मुख पर ३–३, ४–४ काजू फले हुए थे।

बैरा की सैर करने के बाद हम लोग श्री दयाराम के निवासस्थान को लौटे। जहाज़ शाम को बैरा से रवाना होने को था, पर कोई सार्वजनिक कार्यकर्ता बिना भाषण देने की रस्म को अदा किये भला कैसे जा सकता था। श्री दयाराम को इन्फ़्लुएंज़ा था। उन्हें उसी दिन इन्जक्शन दिया गया था, पर न सबकी कोई परवा न कर उन्होंने चार बजे अपने बँगले पर ही टी-पार्टी और सभा का प्रबन्ध कर डाला। बैरा के सभी हिन्दुस्तानी इकट्ठे हो गये और मैंने भाषण देने की रस्म को पूरा किया। भाषण में मैंने पोर्चुगाल की सरकार और इस कम्पनी को उनके सद्-व्यवहार के लिए धन्यवाद दिया और कहा कि यदि इस मामले में किसी को लज्जा से अपना मस्तक झुकाना चाहिए तो ब्रिटिश गवर्नमेंट को, जिसके साम्राज्य में हम उस साम्राज्य की प्रजा होते हुए भी उस सुख और सम्मान से नहीं रह सकते जिस सुख और सम्मान से उस साम्राज्य के बाहर रह सकते हैं।

संध्या को हम फिर करन्जा पर पहुँच गये और सूर्यास्त होते होते करन्जा ने बैरा छोड़ दिया।

१२ दिसम्बर के प्रातःकाल हम लूरेंको मार्क्विस पहुँचे। वार्फ़ पर मेरे स्वागत के लिए एक भारी भीड़ इकट्ठी थी। दक्षिण-अफ़्रीका की इण्डियन कांग्रेस ने अपनी ओर से दक्षिण-अफ़्रीका के प्रसिद्ध कार्यकर्ता स्वामी भवानीदयाल जी संन्यासी को मेरे स्वागत के लिए भेजा था। दक्षिण-अफ़्रीका की यूनियन गवर्नमेंट के प्रतिनिधि मेरे स्वागत को आये थे। टाबरिया में हम लोगों से जिनकी मित्रता हो गई थी, लूरेंको मार्क्विस के वे व्यापारी श्री नटवरलाल जी भी मौजूद थे। इनके सिवा वहाँ के मर्चेंट-चेम्बर के सभापति, मन्त्री तथा अनेक व्यापारी भी आये हुए थे। करन्जा से विदा माँगकर हम लोग लूरेंको मार्क्विस में उतर पड़े। हम लोग उसी दिन जोहान्सबर्ग के लिए रवाना होना चाहते थे, पर यह लूरेंको मार्क्विस के लोगों को कब स्वीकृत हो सकता था। हमारी एक न चली और तीन दिन हमें लूरेंको मार्क्विस में ठहरने का निश्चय करना पड़ा।

लूरेंको मार्क्विस में हमारे ठहरने की व्यवस्था सेठ व्रजदास के यहाँ की गई थी। ठहरने के स्थान पर होकर मैं दक्षिण-आफ़्रिकन यूनियन कौंसलेट और ब्रिटिश कौंसलेट से मिला। यूनियन कौंसलेट ने मुझे यूनियन गवर्नमेंट के वे सब हुक्मनामे बताये जिनके द्वारा हिन्दुस्तानियों पर के सभी क़ानूनों से मैं तथा लक्ष्मीचन्द बरी कर दिये गये थे। कौंसलेट ने कहा कि आपके लिए न तो किसी परमिट की ज़रूरत है और न किसी ज़मानत

की। आपके अँगूठे के निशान भी न लिये जायँगे और आप दोनों योरपियन सैलून से जोहान्सबर्ग की यात्रा कर सकते हैं। उन्होंने मुझे रेलवे तथा इमीग्रेशन आदि के अफ़सरों के नाम एक पत्र दिया, जिसमें कहा गया था कि मुझ पर वे सब क़ानून जो अन्य हिन्दुस्तानियों पर लागू होते हैं, लागू न होंगे। ब्रिटिश कौंसलेट से मेरी पोर्चुगीज़ अफ़्रीका में रहनेवाले हिन्दुस्तानियों के सम्बन्ध में बातें होती रहीं।

जब मैं ठहरने के स्थान पर लौटा तब मेरे सामने यह प्रश्न था कि अन्य हिन्दुस्तानियों पर सारे प्रतिबन्धों के रहते हुए मुझे जो सुविधायें दी जा रही हैं उनका उपयोग करना उचित है या नहीं। मेरी प्रबल इच्छा हुई कि मैं यूनियन गवर्नमेंट और सर रज़ाअली को धन्यवाद देकर इन सुविधाओं से लाभ उठाना अस्वीकृत कर दूँ और एक साधारण भारतीय के सदृश यात्रा करूँ, पर स्वामी भवानीदयाल जी तथा वहाँ के अन्य सार्वजनिक कार्यकर्त्ताओं ने मेरा यह मत स्वीकृत न किया। उन्होंने कहा कि मैं पहला ग़ैर-सरकारी यात्री हूँ, जिसके लिए ये सारे प्रतिबन्ध हटाये गये हैं। मुझे कम से कम जोहान्सबर्ग पहुँचने तक इन सुविधाओं का उपयोग कर इस बात को रिकार्ड पर ले आना चाहिए कि हिन्दुस्तानियों के लिए भी ये प्रतिबन्ध हटाये जा सकते हैं। जोहान्सबर्ग से डरबन जाते हुए मैं चाहूँ तो साधारण भारतीय के समान यात्रा कर सकता हूँ। स्वामी जी तथा अन्य सज्जनों के इस कथन में मुझे भी तथ्य मालूम हुआ और जोहान्सबर्ग तक मैंने उन सुविधाओं के उपयोग करने का निश्चय कर लिया।

अब हम लोग लुरेंको मार्क्विस देखने के लिए चले। लुरेंको मार्क्विस पर किसी कम्पनी का राज्य न होकर पोर्चुगीज सरकार का राज्य है। कितना सुन्दर और साफ़-सुथरा शहर था। मकान और सड़कें तो अफ़्रीका के अन्य नगरों के समान ही थीं, पर यहाँ का समुद्र का किनारा बहुत ही रमणीय था। समुद्र के किनारे की सड़कें क़रीब १३ मील लम्बी चली गई हैं। सड़क के एक ओर समुद्र था और दूसरी ओर हरी हरी पहाड़ियाँ। समुद्र में नहाने का बहुत सुन्दर प्रबन्ध था। यह स्नानागार काफ़ी लम्बा-चौड़ा था। स्नानागार के सामने सड़क पर एक सुन्दर होटल था। स्नान करनेवालों में गोरे, हिन्दुस्तानी और सभी वर्णों के लोग बिना किसी भेदभाव के एक साथ स्नान और जल-क्रीड़ा कर रहे थे। पुरुष, स्त्रियाँ, बच्चे सभी साथ साथ नहाते और किनारे पर लौट रेत में विश्राम करते थे। होटल में भी बिना किसी भेदभाव के सभी खाते-पीते थे।

नगर, समुद्र-किनारा और स्नानागार को देखकर हम वहाँ का प्रधान होटल पुलाना-होटल देखने गये। होटल बड़ा और सर्वथा आधुनिक ढंग से बना हुआ है। बम्बई का ताजमहल चाहे इससे बड़ा हो, पर सफ़ाई में तो वह इसके नज़दीक भी नहीं पहुँचता। लुरेंको मार्क्विस के इन सब स्थानों को हमें जिन्होंने बड़े चाव और उत्साह से दिखाया वे थे लुरेंको मार्क्विस के प्रधान हिन्दू-व्यापारी मैसर्स अमरसी गोकलदास के पार्टनर श्री भगवान जी काकूभाई। श्री भगवानजी के सदृश भले आदमी मुझे बहुत कम मिले हैं। उनका सौजन्य इस सारी यात्रा के संस्मरणों में एक खास स्थान रक्खेगा।

आज ही संध्या को वहाँ के प्रसिद्ध सिनेमा-हाउस में सार्वजनिक सभा थी। सिनेमा-हाउस में एक हज़ार आदमी आसानी से बैठ सकते थे। सभा के सभापति थे श्री नटवरलाल। श्री नटवरलाल ने पुर्तगीज़ पूर्वी अफ़्रीका के भारतीयों तथा स्वामी भवानीदयाल जी ने दक्षिण-अफ़्रीका की भारतीय कांग्रेस की तरफ़ से मेरा बड़ा लम्बा-चौड़ा स्वागत किया। मैंने यहाँ के भाषण में भी प्रायः वही बातें कहीं जो बैरा में कही थीं। और कुछ कहने को तो यहाँ था भी नहीं।

दूसरे दिन हम लोगों ने वहाँ की कई बड़ी बड़ी इमारतों को देखा। स्टेशन और स्टेशन के सामने ही पोर्चुगीज देवी की एक अत्यन्त विशाल मूर्ति देखी जो मुझे बहुत समय तक याद रहेगी। इतनी विशाल प्रतिमा इसके पहले मैंने कभी नहीं देखी थी। आज मर्चेन्ट-चेम्बर के हाल में व्यापारियों ने मुझे बुलाया था। वहाँ पोर्चुगीज़ अफ़्रीका के हिन्दुस्तानी व्यापारियों की कुछ असुविधाओं की चर्चा होती रही। मर्चेन्ट-चेम्बर के मंत्री श्री आई० ई० पटेल बड़े सच्चे और अपने कार्य में बड़े निपुण व्यक्ति जान पड़े। (क्रमशः)

रिक्ता

अनुवादक, पण्डित ठाकुरदत्त मिश्र

रूप-गुण से सम्पन्न होकर भी सविता निर्धन परिवार की कन्या होने के कारण पति के हृदय पर अधिकार करने में समर्थ न हो सकी। इधर वधू के प्रति पुत्र की इस प्रकार की उदासीनता देखकर सास मेनका ने भी उसके प्रति निष्ठुरतापूर्ण व्यवहार करना आरम्भ कर दिया। सविता के नाना स्वयं निर्धन होने के कारण इस समृद्धिशाली परिवार से यह अनुरोध करने का साहस कर नहीं सके कि सविता को कुछ दिनों के लिए अपने यहाँ ले जायँ। काशी-यात्रा के समय उसकी माता स्वयं आकर उससे मिलना चाहती थीं किन्तु सविता को आशङ्का थी कि यहाँ आने पर कहीं मेरी वास्तविक अवस्था से परिचित होकर वे दुःखी न हों इसलिए उसने उन्हें आने से रोक दिया। इससे वे स्टेशन पर ही रुकी रहीं, सविता के नाना आकर उसे देख गये। सविता भी सारा दुःख-क्लेश शान्तिपूर्वक सहन करती हुई जीवन व्यतीत करती रही। अन्त में माता की बीमारी का समाचार पाकर मेनका को कटक जाना पड़ा, गृहस्थी का सारा भार आया सविता के ऊपर—।

(१२)

कोई कोई ऐसे भी आदमी होते हैं जो ईश्वर के श्रेष्ठ दान को भी प्रकट करने में लज्जा का अनुभव करते हैं, और इस भय से करते हैं कि बाद को कहीं दुर्बलता न प्रकट हो जाय। मेनका भी इसी श्रेणी की थीं। यदि कभी उनको क्षणमात्र की करुणा किसी साँस से प्रकट हो उठती तो वे तुरन्त ही और भी कठोर हो उठतीं, सोचतीं कि कहीं कोई मुझे दुर्बल न समझ बैठे!

मेनका के इस प्रकार के स्वभाव के ही कारण उनका घर-गृहस्थी का कार्य भी उत्तमता-पूर्वक नहीं सञ्चालित हो पाता था। उनके हृदय में उदारता थी नहीं, यही कारण था कि अपनी बुद्धि की प्रेरणा से वे किसी दूसरे के भी हृदय का हाल नहीं जान पाती थीं। उनके इस प्रकार के बुद्धि-दोष का फल हुआ कि अपने मातृस्नेह की अपरिमित बाढ़ में भी अपनी सन्तानों की समस्त व्यथा, समस्त दुःख-क्लेश धोकर वे बहा नहीं पाती थीं।

जगत बाबू की तबीअत अब ठीक हो गई थी, किन्तु मेनका की माता अभी तक नहीं अच्छी हो पाई। इससे अभी तक वे लौटीं नहीं। घर-गृहस्थी का सारा भार सविता पर था। बातचीत करते करते अब श्वशुर के प्रति उसका सङ्कोच का भाव बहुत कुछ दूर हो गया था। परन्तु अरुण के प्रति उसका जो भाव था उसमें अवश्य किसी प्रकार का परिवर्तन नहीं हुआ। जहाँ तक सम्भव होता वह उसकी दृष्टि तक बचाकर चला करती थी। इन दिनों अरुण कभी सविता की छाया तक नहीं देख पाता था। देखने की उसे इच्छा भी नहीं हुआ करती थी।

जिस प्रकार अपने बन्धन का उपकरण देखकर कोई मनुष्य प्रसन्न नहीं हो पाता, उसी प्रकार अरुण ने सविता को जब से देखा है तब से कभी वह प्रसन्न नहीं हो सका। पहले वह सोचा करता था कि मैंने माता-पिता की इच्छा पूर्ण कर दी है, इतने से ही मेरे कर्तव्य की इतिश्री हो गई है। किन्तु फिर भी सविता के प्रति उसके हृदय में जो विरक्ति का भाव था वह किसी प्रकार भी दूर न हो पाता। उसके हृदय पर फूल का वह जो घाव लगा था, अभी तक सूख नहीं पाया था। यौवन के मद में वह जो फेनिल उच्छ्वास आया था उसमें भाटा आये बिना कदाचित् उसमें न्यूनता का आना सम्भव नहीं था। कोई और प्रकार की तरङ्ग आकर उस उच्छ्वास को यदि दाब देती तो चाहे भले ही वह शान्त हो जाती।

जगत बाबू अपना नियमित काम काज करते जा रहे थे। उनका यह सदा का स्वभाव था कि वे किसी ओर विशेष ध्यान नहीं देते थे, किसी से अधिक बोलते भी नहीं थे। आज भी वे प्रायः उसी ढंग से रहा करते थे। यह अवश्य था कि आजकल भोजन के समय वे दो एक बातें सविता से कर लिया करते थे। वे बातें चाहे अनावश्यक

ही होतीं, उनका किसी प्रकार का प्रसङ्ग भी न होता, किन्तु उनसे यह अवश्य प्रकट होता कि श्वसुर के हृदय में सविता के प्रति कितना स्नेह छिपा हुआ है।

उस दिन दोपहर के समय भोजन आदि से निवृत्त होकर जगत बाबू विश्राम कर रहे थे। उनके पास ही पुलक लेटा हुआ सो रहा था। उन्होंने सविता को बुलवा भेजा था। सविता ने आकर कहा—क्या पुलक को उठा ले जाऊँ?

जगत बाबू ने कहा—नहीं, उसे सोने दो। उठाने की आवश्यकता नहीं है। .... अच्छी बात है। ओ रे! अरुण को तो ज़रा बुलाना!

सविता मस्तक झुकाये लौटी जा रही थी। उसकी ओर दृष्टि जाते ही जगत बाबू ने कहा—बहू, तुम ज़रा बैठो। कुछ काम है।

सविता एक कुर्सी के सहारे खड़ी हो गई। उसे यह आशङ्का हुई कि शायद कोई अप्रिय प्रसङ्ग उठनेवाला है। इससे भय के कारण उसका हृदय ज़ोर ज़ोर से धड़कने लगा। चिन्तितभाव से वह प्रतीक्षा करने लगी, देखें, कौन-सी बात सामने आती है।

अरुण उस समय बाहर के कमरे में बैठा था। दो दिन पहले कनक की एक चिट्ठी आई थी, उसी का वह जवाब लिख रहा था। मेनका से सारी बातें सुनकर कनक ने अरुण को बहुत-सी कड़ी कड़ी बातें लिखी थीं। परन्तु अरुण पर उन बातों का कोई प्रभाव नहीं पड़ा। उसने फिर वही वेदना से भरी हुई अवहेलना की हँसी हँसी थी। अब जब वह चिट्ठी का जवाब लिखने बैठा तब यही सोच रहा था कि कौन-सी ऐसी बात लिखी जाय जिससे असल बात जो है वह तो उड़ जाय, साथ ही कनक यह भी समझ ले कि मैं काठ की कठपुतली नहीं हूँ। मेरी इच्छा के ऊपर, रुचि के ऊपर, किसी का ज़ोर नहीं चलता, यह बात मैं भली भाँति प्रमाणित कर देना चाहता हूँ। जिस समय मुँह से कहकर सीधे-सीधे में अपने मन की बात समझाने का प्रयत्न कर हा था, उस समय तो इन लोगों ने मेरी बात पर ध्यान दिया नहीं, मेरे लिए शृंखला तैयार करने में ही व्यस्त थे, ठीक वैसे ही ये लोग अब समझ लें कि जो शृंखला इन लोगों ने बनाई है उसमें ये मुझे बाँध नहीं सके। मैं एक स्वाधीन मनुष्य हूँ, मेरी स्वतंत्र इच्छा में भी कुछ बल है।

अरुण यही सब बातें सजीव भाषा में कनक को लिखने जा रहा था। इतने में पिता का बुलावा आने के कारण उसने क़लम रख दी। एक तो उस समय उसका हृदय यों ही बहुत क्षुब्ध हो उठा था, दूसरे पिता के पास पहुँचने पर जब उसने सविता को देखा तब उसके हृदय का क्षोभ और भी बढ़ गया। दृष्टि फेरकर उसने कहा—मुझे बुलाया है बाबू जी?

पिता ने तीक्ष्ण दृष्टि से उसकी ओर देखकर कहा—हाँ! उस कारख़ाने से कोई जवाब आया तुम्हारे पास?

अरुण ने उन दिनों जमशेदपुर के कारख़ाने में नौकरी के लिए एक प्रार्थना-पत्र भेजा था। जगत बाबू ने उससे कहा था कि तुम ज़मींदारी का काम-काज देखना आरम्भ कर दो। इस पर उसने कहा था कि पहले मैं कुछ समय तक नौकरी कर लूँ, बाद को यह सब काम देखूँगा। किन्तु अभी तक उसके प्रार्थना-पत्र का कोई उत्तर नहीं आया था, इससे वह बहुत व्यग्रभाव से प्रतीक्षा कर रहा था। पिता की बात के उत्तर में उसने कहा—अभी तक तो कोई जवाब आया नहीं!

"तो क्या तुम दो-चार दिन के लिए काशी हो आओगे?"

"काशी?"

"हाँ, काशी। बहू के नाना जी की तबीअत ख़राब है। इससे उन्होंने तुम्हें और बहू को देखने की इच्छा प्रकट की है। इस समय तुम लोगों का जाना बहुत आवश्यक है।"

अरुण मस्तक झुकाये हुए चुपचाप बैठा रहा। पिता ने कहा—शुभेन्दु को लिख दो कि वह उन्हें लेकर जल्दी ही चला आवे, वहाँ वह विलम्ब न करे।

सविता के वक्षस्थल में जो रक्त प्रवाहित हो रहा था उसमें तूफ़ान आ गया। उस रक्त के प्रबल उच्छ्वास के कारण उसका मुख लाल हो उठा। नाना जी का शरीर ख़राब है, वृद्ध आदमी हैं, सम्भव है कि अवस्था अधिक शोचनीय हो गई हो। यहाँ की वास्तविक स्थिति का ज्ञान तो उन्हें है नहीं, इसी लिए उन्होंने ऐसा लिखा

है। कैसे उपाय से उन्होंने कृपा की भिक्षा माँगी है।

कुछ क्षण तक चुप रहने के बाद अरुण ने कहा—कटक से लौट आने पर शुभेन्दु भी तो काशी जा सकता है।

"जा क्यों नहीं सकता। वह जा सकता है। किन्तु तेरे जाने में क्या असुविधा है? तुझे ही देखने की इच्छा तो उन्होंने प्रकट की है!"

यह बात अरुण को अधिक रुचिकर नहीं मालूम पड़ी। परन्तु पिता से निरर्थक वाद-विवाद न करके वह वहाँ से हट गया। जाते समय उसके मुख-मण्डल पर जो गम्भीर उग्रता का भाव था उसे देखकर सविता के भी उज्ज्वल नेत्र मूक कर आग हो उठे।

ज़रा देर सोच-विचार करने के बाद जगत बाबू ने कहा—तुम भी जाओ बहू। कटक के लिए एक चिट्ठी लिख दो, जिससे चिट्ठी पाते ही वे लोग चले आवें। इधर अरुण को जब तक अवकाश है तब तक वह तुम्हें काशी से घुमा ले आवेगा।

सविता मुँह फेरे हुए चुपचाप बैठी थी, इस कारण जगत बाबू ने यह अनुभव किया कि नाना की बीमारी का हाल पाकर वह भीतर ही भीतर बहुत चंचल हो उठी है। यही कारण था कि उन्होंने उसे सान्त्वना देते हुए बहुत ही स्नेहमय स्वर में कहा—तुम्हें कोई चिन्ता नहीं है बहू! मैं तुम्हें अवश्य भेजूँगा, उसकी कोई भी आपत्ति सुनने के लिए मैं तैयार नहीं हूँ।

सविता ने बहुत ही शान्तभाव से कहा—नहीं बाबू जी, इस समय मेरे जाने से काम न चलेगा। अभी रहने दीजिए। यदि हो सकेगा तो बाद को चली जाऊँगी।

जगत बाबू बड़े ही आश्चर्य में पड़ गये। वे समझ न सके कि सविता की इस बात का अर्थ क्या है। परन्तु फिर भी उन्होंने कहा—नहीं, नहीं, तुम्हें जाना ही होगा। वे कटक से जैसे ही आवें, वैसे ही तुम चली जाओ। तुम्हारे नाना जी की तबीअत खराब है। उन्हें देखने के लिए जाना बहुत ही आवश्यक है।

मलिन मुख पर भी हँसी का भाव लाकर सविता ने कहा—तबीअत अच्छी होने पर वे स्वयं आकर मुझे ले जावेंगे। इस समय जाने पर पुलक को कष्ट होगा।

"नहीं, कष्ट क्यों होगा?" यह बात शिथिल कण्ठ से निकल चुकने के बाद ही वे कुछ सोचने-से लगे। उनके प्रशान्त ललाट पर जो टेढ़ी-टेढ़ी रेखायें पड़ी थीं उनमें कालिमा आ गई।

श्वसुर के कमरे से निकलकर अपने कमरे में आने पर सविता ने उनके हृदय की वेदना का भली भाँति अनुभव किया। उसके विक्षुब्ध हृदय में बारबार जाग्रत होने लगी नाना जी की बात। सम्भव है कि वे चले जायँ और जीवन में फिर उनसे मुलाक़ात न हो। तो भी मैं जा न सकूँगी। इस प्रकार जाना मेरी शक्ति से परे है।

कुछ क्षण तक सोच विचार करने के बाद सविता के हृदय में एक बार यह बात आई कि कटक से लौट आने पर शुभेन्दु यदि मुझे लेकर जाय तो मैं अवश्य जा सकती हूँ। अन्यथा नाना जी का अन्तिम आशीर्वाद प्राप्त करना मेरे भाग्य में नहीं बदा है। किसी की इच्छा के विरुद्ध कार्य्य करने के लिए उसे बाध्य करके अपनी तृप्ति का साधन करना मैं नहीं चाहती।

अपने मन को समझाने के लिए सविता जितना ही प्रयत्न करती, उतना ही उसके नेत्रों को डुबाती हुई आँसुओं की बाढ़ आ ही जाती। एकान्त में बैठकर चुपचाप रो लेने में जो सुख मिलता है उसी का वह उपभोग करने लगी। ज़रा देर के बाद शान्तभाव से आँखें पोंछकर उसने मुँह उठाया तब देखा चौखट के पास अरुण खड़ा है। उसके पैरों में रबर की जो चट्टी थी उसकी आहट सविता को नहीं मिल सकी।

मन से रक्त का एक उफान मुख पर आया और सविता के कुम्हलाये हुए मुख पर मानो दीपक जला दिया। मस्तक पर की साड़ी ज़रा सा खींच कर वह उठ कर खड़ी हो गई। वह समझ न सकी कि मेरे कमरे में आने की स्वामी को कौन-सी आवश्यकता आ पड़ी, यहाँ वे क्यों आये हैं?

कमरे में प्रवेश करते ही दरवाज़े के बिलकुल समीप एक मोढ़ा मिलता था। अरुण जाकर उसी पर बैठ गया और उसने सारे कमरे में दृष्टि दौड़ाई। सविता मुँह नीचा किये खड़ी थी। उसकी ओर ताकते हुए अरुण ने कहा—तुमसे मैं कुछ कहना चाहता हूँ।

सविता का मुँह लाल हो गया। वह मस्तक झुकाये हुए खड़ी ही रही। हवा लगने पर कमल के फूल के समान उसके हृदयरूपी कमल के समस्त दल थरथर काँप रहे थे। स्पन्दित हृदय से स्वामी की बातें सुनने के लिए वह उत्सुक हो उठी थी।

अरुण ने ज़रा सा इधर-उधर करके कहा—हम लोगों की जीवन यात्रा और सब लोगों की तरह नहीं चल रही है, अर्थात् मैं साधारण व्यक्तियों की श्रेणी से ज़रा कुछ भिन्न हूँ, शायद तुम्हें यह समझने को अब बाक़ी न होगा। ठीक है न? इतना ही कहकर अरुण ने एक बार सविता के मुँह की ओर ताका। परन्तु उसके भावों में किसी प्रकार का परिवर्तन नहीं दिखाई पड़ा। पहले के ही समान निश्चल-निस्तब्ध हुई वह खड़ी रही। अरुण ने फिर कहना आरम्भ किया—देखो, मैं तुम्हारे किसी कार्य्य में किसी प्रकार का हस्तक्षेप नहीं करना चाहता हूँ, कभी करता भी नहीं हूँ। अपने हर एक कार्य्य के लिए तुम स्वाधीन हो। उसी प्रकार मुझे स्वाधीनता होनी चाहिए। मेरे साथ काशी जाने की जो तुम्हारी कामना है उसका तुम परित्याग कर दो।... यह मेरे लिए उचित न होगा। पिता जी से यह आग्रह तुम मत करो।

सविता ने गर्व के साथ मस्तक उठाकर देखा। उसने कहा—अच्छी बात है, ऐसा ही होगा।

अरुण सोफ़ा से उठकर खड़ा हो गया। ज़रा सी हँसी का-सा भाव दिखलाते हुए उसने कहा—ऐसा ही यदि पहले हो गया होता तो मुझे कहने के लिए आने की कोई आवश्यकता ही न पड़ती।

अब सविता का मुँह खुला। स्वामी के साथ उसकी पहले-पहल की बातचीत थी। किन्तु इस बातचीत में प्रणयभीता नववधू का सङ्कोच नहीं था। उसने कहा—यही बात बाबू जी से कह देने पर भी तो काम चल सकता था।

"वहाँ कहने से काम नहीं चला न! पिता जी मेरी अपेक्षा तुम्हारी ही बात अधिक सुनते हैं।"

अरुण चला गया। सविता इतनी देर तक मानो किसी चीज़ के नीचे दबी-सी थी। अब मुक्त होते ही बड़ी देर तक की रुकी हुई साँस को छोड़कर वह बैठ गई। स्वामी के मुँह पर वह यह न कह सकी कि वे जो कुछ कहने आये थे वह बिलकुल निरर्थक था। कोई आवश्यकता नहीं थी उन्हें इसके लिए आने की। इसके सिवा वे जो साधारण नहीं हैं, असाधारण हैं, यह क्या मुझे मालूम नहीं है। उनसे तो मैं कुछ प्राप्त कर नहीं सकती हूँ। किसी दिन आशा भी मैंने उनसे कुछ प्राप्त करने की नहीं की। किन्तु इस परिवार में आत्मत्याग करके ही मैं सार्थक होऊँगी। तब भला उस आत्मत्याग में किसी प्रकार का व्याघात क्यों आने पावे? .... कुछ प्राप्त किये बिना भी तो दिया जा सकता है। फूल सुगन्धि देता है, दीपक प्रकाश देता है, न दे सकने पर ही वह निरर्थक हो जाता है!

बड़ी देर तक बैठी हुई सविता कितनी ही बातों पर विचार करती रही। किन्तु उसके हृदय में जितने प्रकार की भी चिन्तायें उदित हो रही थीं उन सबसे अधिक क्लेशकर थी नाना की बीमारी की बात। रह रहकर उसके हृदय में यह बात काँटे की तरह चुभ रही थी कि शायद अब नाना जी से मुलाक़ात न हो सकेगी, यदि वे इस बार आरोग्य न हो सके।

(१३)

मेनका ने लिखा था कि मैं दो ही एक दिन में लौट रही हूँ। वह उनके लौटकर घर आने का दिन था। इसी लिए सविता बहुत ही व्यस्तभाव से घर के चारों ओर का प्रबन्ध देख रही थी। कहाँ कौन-सी चीज़ किस तरह रक्खी हुई है, इस बात की वह बड़ी सावधानी के साथ घूम घूम कर जाँचकर रही थी। वह चाहती थी कि चीज़ें गड़बड़ न रहें, जिससे गृहस्वामिनी के लौटकर आने पर उसे डाँटने का बहाना मिल सके। जगत बाबू भी उस समय घर में नहीं थे। ज़मींदारी के काम से वे कहीं गये थे। बाहर के कमरे में बैठा बैठा अरुण ग्रामोफ़ोन की सहायता से पुलक की हँसी का फ़ौवारा खोले हुए था। गाने-बजाने का स्वयं उसे भी अच्छा अभ्यास था। वह अपने सधे हुए गले से बसन्ती राग अलाप रहा था।

मेनका के आकर घर पहुँचने में अभी विलम्ब था। किसी कार्य्यवश सविता पासवाले कमरे में आई और गीत सुनते ही ठमककर खड़ी हो गई। उस समय

भी उसके कई कार्य्य अधूरे पड़े थे, किन्तु उस समय का गीत इतना मनोमुग्धकारी था कि कुछ क्षण तक खड़ी होकर उसे सुनने का लोभ वह न संवरण कर सकी।

सचमुच उस समय वसन्त का नया नया उदय हुआ था। फाल्गुन में खिलनेवाले पुष्पों के पराग उसे मादकता-मय बना रहे थे। अपनी चित्र-विचित्र की शोभा के कारण वह एक असीम तितली के समान श्यामल प्रकृति के वक्ष पर अपने दोनों रंगीन पंखों को फैलाये हुए बैठा था। पतझड़ का पलाश वृक्ष नीचे से ऊपर तक फूलों के कारण लाल लाल हो उठा था। लाल लाल फूलों की आड़ में छिपकर कोकिल वसन्त का स्तवगान कर रहे थे। घर के भीतर रसोई-घर के सामने ही सहजन का एक पेड़ था। वह खूब फूला हुआ था। उसे घेरे हुए भौंरे अविराम गति से गुनगुना रहे थे। फाल्गुन के अग्निस्फुलिंग मनुष्य के मन-रूपी राज्य में भी फैले बिना नहीं रहते। यदि ऐसा न होता तो तरुण वसन्त का विजय-मुकुट उठाकर उसके मस्तक पर रखनेवाला कौन था।

एक नौकरानी ने आकर कहा—बहू जी, माली बग़ीचे से तोड़कर थोड़ी-सी मटर की फलियाँ दे गया है। उन्हें कहाँ रख दूँ?

नौकरानी की यह बात सुनते ही सविता भयभीत होकर वहाँ से हट आई। भयभीत इसलिए हुई कि वह छिपकर गीत सुन रही थी।

उस कमरे से हट आने पर सविता ने फिर घर के काम-काज में मन लगाया। उसके ज़रा ही देर बाद अरुण भी कमरे से निकल पड़ा और मुँह गम्भीर किये हुए बड़ी ख़ामोशी के साथ वह अपने तिमंज़िले के कमरे की ओर चला। उसे असमय में सोने के कमरे में जाते देखकर सविता बड़े आश्चर्य में पड़ गई। बात यह थी कि दिन में अरुण उस कमरे में प्रायः नहीं जाया करता था। इससे इस घटना के कारण घर की नौकरानियों को भी कम आश्चर्य नहीं हुआ। इतनी ही देर में अरुण के मुख पर इस प्रकार की गम्भीरता का भाव क्यों आ गया, यह जानने के लिए भी सब लोग उत्सुक हो उठे। परन्तु घर में कोई भी ऐसा आदमी तो था नहीं जो यह पूछने का साहस करता कि उसे क्या हो गया है।

ज़रा ही देर के बाद मेनका के पहुँचने की बात थी। परन्तु अभी ही शुभेन्दु ने तार से यह सूचना भेजी थी कि हैज़े की दो ही घंटे की बीमारी के बाद माता जी उस देश को चली गई, जहाँ से मनुष्य फिर लौट कर नहीं आता।

हृदय में अपार व्यथा लिये हुए अरुण सोच रहा था कि पिता जी का दुर्बल हृदययन्त्र क्या यह शोक का आघात सहन कर सकेगा।

एक मोटी-सी तकिया में मुँह छिपाये हुए वह माता के लिए रो रहा था। कितने दिन कितनी छोटी-मोटी बातों के लिए उसने माता का चित्त दुखी किया था। वे ही छोटी छोटी बातें आज उसके सामने विशाल रूप धारण करके उदित हो रही थीं। मन में यह बात आने लगी, मैं इतना हतभाग्य हूँ कि माता के अन्त-समय में उनके पास रहकर जीवन के छोटे-बड़े समस्त अपराधों के लिए उनसे क्षमा तक न माँग सका। आस-पास के कुछ आत्मीय व्यक्ति यह समाचार पाकर उसे सान्त्वना देने के लिए उसी तिमंज़िले के कमरे में चले गये।

पाँच आदमियों के मुँह मुँह से यह समाचार सविता के भी कानों तक पहुँच गया। पहले तो यह समाचार पाते ही वह चौंक उठी थी, उसे एकाएक बिजली का तार छू जाने का आघात-सा लग गया था। उसने सोचा कि यह समाचार निराधार है। परन्तु अविश्वास ही वह कितने आदमियों का करती? सभी के मुँह में तो यह एक ही बात थी!

सविता को स्मरण आगया यात्राकाल का वही अत्यन्त अकस्मात् उत्पन्न हुआ स्नेह का उच्छ्वास। वे बातें अन्तिम बातें होने के ही कारण क्या उस समय उनके कण्ठ में करुणा की इस प्रकार की धारा प्रवाहित हो उठी थी? अकेली एक कोने में घुटनों के बीच में मुँह छिपाकर वह बैठ गई। सन्ध्या के मलिन अञ्चल ने जिस समय गोधूलि के धूसर प्रकाश को भी आच्छादित कर दिया, उस समय जगत बाबू के मोटर ने लाकर उन्हें घर में पहुँचाया।

सारे घर में शोक की छाया देखकर जगत बाबू आश्चर्य में आ गये। उन्होंने कहा--आज घर में इस तरह का सन्नाटा क्यों है रे? पुलक कहाँ है? वहू कहाँ हैं?

श्वशुर का कण्ठस्वर सुनते ही वह उनके सामने उपस्थित हुई। दिन भर के वे थके-थकाये थे। इससे सविता इस बात का प्रयत्न करने लगी कि जब तक यह दुःसंवाद उनके कानों तक न पहुँच पावे तभी तक जहाँ तक सम्भव हो, उनको आराम पहुँचाया जाय।

हाथ-पैर धोकर जलपान करने के बाद वे विश्राम कर रहे थे। सविता तब तक उनके पास ही पास रही। जब कभी वह किसी नौकर को मुँह सुखाये हुए आते जाते देखती तब वह हट जाती। जगत बाबू ने कहा—क्यों बहू, आज तो उनके आने की बात थी, किन्तु आईं नहीं। क्या पटला ने कोई सूचना नहीं दी?

मुँह नीचा करके सविता ने मृदु कण्ठ से कहा—यह तो मैं बतला नहीं सकती।

जगत बाबू ने अरुण को बुलवाया। लगातार इतनी देर तक आँसू बहते रहने के कारण अरुण की आँखें लाल लाल हो उठी थीं। उनमें उमड़े हुए आँसुओं के आवेग को किसी प्रकार रोकते हुए आकर वह खड़ा हो गया। साँझ हो चुकी थी, इससे उसका मुँह दिखाई नहीं पड़ा। पिता ने पूछा—क्या कटक का कोई समाचार मिला है? पटला ने क्या किसी प्रकार की सूचना नहीं दी कि वे लोग क्यों नहीं आये?

अरुण ने अत्यन्त ही भग्न और हीन कण्ठ से कहा—दिया है।

पुत्र का क्षीण और आँसुओं से रुँधा हुआ कण्ठ-स्वर सुनकर पिता चौंक उठे। वे सीधे होकर बैठ गये और बोले—क्या समाचार है? लाओ, देखें, तो वह चिट्ठी।

"चिट्ठी नहीं, तार आया है। समाचार अच्छा नहीं है बाबू जी, आप—"

अरुण का कण्ठ-स्वर फिर नहीं खुल सका। पिता ने कहा—लाओ, देखें—ओह! नहीं, नहीं, तुम्हीं पढ़कर सुनाओ, मैं तो चश्मा ले नहीं आया।

अरुण ने उस काग़ज़ को पाकेट से निकालकर हाथ में ले लिया। उस समय कमरे में अँधेरा काफ़ी हो चुका था। अक्षर दिखाई नहीं पड़ रहे थे। परन्तु उस काग़ज़ को अरुण इतने वार पढ़ चुका था कि उसमें लिखी हुई शब्दावली उसे कण्ठस्थ हो गई थी। इससे वह पढ़कर सुना गया।

जगत वाबू बैठे थे। वे एक लम्बी साँस लेकर लेट गये। आज से बत्तीस वर्ष पहले मेनका के साथ उनका विवाह हुआ था। उस समय वे एक दस वर्ष की बालिका थीं। उस समय उनका जो यह अकाट्य सम्बन्ध हुआ थ तब से लेकर आज तक यह लम्बा समय वे मुहूर्त्त भर में ही आँखें मूँदे मूँदे मानो स्वप्न के समान देख गये। जीवन-यात्रा के पथ पर जिसने इतनी दूर तक साथ दिया वह साथी बीच में ही छोड़कर ऐसे असमय में कहाँ चला गया! अब भी तो उस मार्ग का प्रायः एक तृतीयांश चलने को पड़ा ही है।

जगत बाबू के किसी भी व्यवहार से किसी प्रकार की व्याकुलतामय अधीरता का कोई लक्षण नहीं दिखाई पड़ा। प्रत्युत धैर्य्य और गम्भीरता और भी बढ़ गई।

वह रात सविता ने स्वामी और श्वशुर के प्रति बहुत ही सावधान होकर व्यतीत की। अपनी स्थिर बुद्धि के कारण वह यह नहीं भूल सकी कि श्वशुर बाहर से चाहे कितने ही शान्त क्यों न हों, किन्तु उनका हृदय विकल अवश्य है और इस प्रकार की विकलता के कारण यदि कोई सांघातिक घटना हो जाय तो इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं है। अरुण ने भी वह रात पिता के चरणों के समीप पड़कर रोते ही रोते काट दी।

दूसरे दिन नितान्त ही दरिद्र के रूप में नंगे पैर आकर शुभेन्दु खड़ा हुआ। नियमित समय पर श्राद्ध हो गया।

श्राद्ध के अवसर पर पुलक के पिता प्रभात आये थे। वे श्राद्ध के दूसरे ही दिन पुलक को ले जाने का भी विचार कर रहे थे। इस घर में यदि पुलक के अतिरिक्त और भी कोई बालक होता तो शायद वे यह पहचान ही न पाते कि दोनों में से कौन सा मेरा पुत्र है। पुलक भी इस नये आदमी को मामा लोगों के साथ साथ आठों पहर लगा रहते देखकर उनके समीप तक नहीं जा पाता था। पिता पुत्र में इस तरह का परिचय था।

प्रभात ने अरुण से कहा—मेरी मा कह रही थीं कि अब आप लोगों को बच्चे के कारण बड़ी परेशानी

होगी। इससे वे चाहती हैं कि अब वह उन्हीं के पास रहे।

अरुण ने कहा—तो ले क्यों नहीं जाते? तुम्हारा लड़का है ......।

प्रभात बीच में ही बोल उठे—नहीं, नहीं, मेरा यह मतलब नहीं है। वह क्या आप लोगों का कोई है ही नहीं?

बात क्रमशः जगत बाबू के कानों तक पहुँची। उन्होंने कहा—इसमें मुझे कुछ नहीं कहना है। परन्तु बहू रात दिन उसी के पीछे लगी रहती है, उसी ने उसे इतना बड़ा किया है। इससे उसे समझा-बुझाकर ले जाओ।

अरुण यह भार छोड़ने जा रहा था शुभेन्दु के ऊपर। शुभेन्दु को जुकाम हो गया था। इससे उसे खाँसी आ रही थी, साथ ही कुछ ज्वर भी आगया था। इससे उसकी तबीअत खराब थी। अरुण की बात के उत्तर में उसने कहा—उनके पास से पुलक को उठा ले आना! यह काम ठीक तुम्हारे ही उपयुक्त है भैया! यह कार्य्य मा भी नहीं कर सकीं और मुझसे भी नहीं होने का। उनके पास तुम्हीं जाओ, तुम अवश्य ले आ सकोगे।

अरुण इसके उत्तर में कोई बहुत कड़ी बात कहने जा रहा था। परन्तु दाँतों से होंठ दबाकर वह रह गया।

* * *

उस दिन सविता को कई दिनों के बाद अवकाश मिला था। वह बैठी हुई पुलक के लिए हल्की सी एक बनियाइन बुन रही थी। पास ही बैठा हुआ पुलक अंट-संट बक रहा था। अधिकतर बातें वह नानी के ही सम्बन्ध की कर रहा था। नानी कहाँ गई, वे क्यों न आवेंगी आदि बातों का उत्तर सविता को खोजने पर भी नहीं मिलता था।

एकाएक अरुण को देखकर सविता ने बनियाइन बुनना बन्द कर दिया और वह उठकर खड़ी हो गई। अरुण ने कहा—प्रभात पुलक को ले जाना चाहता है।

यह बात सुनते ही पुलक चिल्ला उठा। रोते रोते उसने कहा—मैं न जाऊँगा। कभी न जाऊँगा।

अरुण ने फिर कहा—तुम्हें यदि कोई आपत्ति न हो तो उसे कह दूँ, ले जाय।

सविता के मुँह का स्वाभाविक रंग बिलकुल पीलेपन में परिवर्तित हो गया। उसने पुलक को गोद में उठा लिया और बोली—क्या और कुछ दिन नहीं रहने देंगे?

"निरर्थक ममता बढ़ाने से क्या लाभ? प्रभात लेने आया है तो उसे दे दिया जाय, बस मामला खतम। उसका लड़का रखकर हम लोग क्या करेंगे?"

"तो मा के जीवनकाल में वे क्यों नहीं ले गये?"

अरुण कुछ झुँझला उठा। उसने कहा—तुम्हारे इस क्यों का उत्तर देना आवश्यक नहीं है। यह तो उसकी इच्छा की बात है। इस समय उससे क्या कहा जाय?

"मैं तो इसे छोड़ न सकूँगी।"

"अच्छी बात है, तुम्हारी जो इच्छा हो।"

अरुण कमरे से निकल गया। उसकी आकृति से यह नहीं ज्ञात हुआ कि यह अधिक क्रुद्ध हुआ है।

सविता ने शान्ति की साँस ली। उसने पुलक का मुँह चूम लिया। बाद को वह सोचने लगी—बात न मान कर मैंने कोई अपराध तो नहीं किया। ज़रा ही देर के बाद सविता के मन में आया—इस मातृहीन शिशु की कल्याण-कामना से अपराध करना भी उतना अनुचित नहीं है। मैं किसी प्रकार स्नेह का बन्धन शिथिल भी कर देती, यदि मैं यह विश्वास कर पाती कि वहाँ जाने पर पुलक अच्छी अवस्था में रह सकेगा। किन्तु वहाँ जाने पर उसकी विमाता क्या उसे यहाँ का-सा आराम दे सकेगी? कदाचित् आज से ही इस ज़रा से बालक के भाग्य में भी अशान्ति भोग करना बदा हो। इसके लिए स्वामी यदि रुष्ट ही हों तो यह उसके भाग्य दोष के अतिरिक्त और क्या हो सकता है?

सविता के इस प्रकार के आग्रह के कारण अरुण रुष्ट नहीं हुआ। वह ज़रा-सा चकित भर हुआ है सविता को अपनी बात पर इस प्रकार दृढ़ रहती देखकर। हम लोगों के मत के विरुद्ध भी वह अपने मत पर दृढ़तापूर्वक स्थिर रह सकती है, यह बात अरुण के दिमाग़ में नहीं आ सकी थी।

विवश होकर प्रभात पुलक को लिये बिना ही लौट गया। जाते समय वह कह गया कि अच्छी बात है, कुछ दिन तक और रहने दीजिए।

* * *

कुछ दिन और बीत गये। देखने में सचमुच जगत बाबू के मनोभावों में पत्नी-वियोग के कारण किसी प्रकार का परिवर्तन नहीं मालूम पड़ा। परन्तु फिर भी स्वास्थ्य उनका खराब ही होता गया। रोज़ नई नई शिकायतें पैदा होकर उन्हें दुर्बल करने लगीं। डाक्टरों ने व्यवस्था दी कि इनके लिए स्थान-परिवर्तन की आवश्यकता है।

जगत बाबू यह सुनकर हँसे। वे कहने लगे कि स्थान परिवर्तन के ही लिए तो तैयारी हो रही है। अभी यही स्थान क्या बुरा है? देखें, भाग्य कहाँ ले जाता है।

डाक्टर भी परिपक्व अवस्था के थे। जगत बाबू से उनकी बहुत दिनों की मित्रता थी। ज़ोर देकर हर तरह की बात उनसे कहने का उन्हें अधिकार था। इससे उन्होंने कहा—कम से कम थोड़े दिनों तक आप दार्जिलिंग तो अवश्य ही हो आइए।

"दार्जिलिंग! तो क्या हृदय के रोग के लिए दार्जिलिंग अच्छा पड़ेगा?"

"आपको हृदय के रोग के कारण उतना क्लेश नहीं है जितना कि मन्दाग्नि के कारण है। और मन्दाग्नि के रोगी के लिए आजकल की ऋतु में दार्जिलिंग बहुत अच्छी जगह है।"

"क्यों? बनारस जाने में क्या हानि है? वहाँ यदि मृत्यु हो गई तो काशीलाभ होगा। लड़के भी रहेंगे, बहू भी रहेगी। मेरे विचार से तो वहाँ जाना अधिक अच्छा है।"

डाक्टर ने काशी जाने की स्वीकृति नहीं दी। वे कहने लगे—नहीं, नहीं, काशी न जाइए। आजकल वहाँ बड़े ज़ोर का हैज़ा है। उससे कहीं अच्छा होगा कि आप सीधे इसी पहाड़ पर चले जाइए। आपके शरीर के लिए यह बहुत ही लाभप्रद होगा।

निराशा-भाव से जगत बाबू चुप रह गये। जाने के सम्बन्ध में उन्होंने हाँ या नहीं कुछ भी नहीं कहा। परन्तु अरुण इस बात से बहुत उत्साहित हो उठा।

दार्जिलिंग जाने के सम्बन्ध में अरुण बराबर ज़ोर देने लगा। वह पिता से कहा करता कि वहाँ मेरे बहुत से परिचित और मित्र हैं। इससे वहाँ जाने पर किसी प्रकार का कष्ट न होगा। बात यह है कि साथ में जानेवाला भी अरुण अकेला ही था। शुभेन्दु की मेडिकल कालेज की परीक्षा समीप थी। इससे अरुण सोचता था कि अभी वह कुछ दिनों तक कालेज में रह कर अपना कोर्स तैयार करने में ही दत्तचित रहेगा, इससे मुझे छोड़कर साथ में और जायगा ही कौन?

जाग्रत नारियाँ

अखिल भारतीय महिला-सम्मेलन का प्रयाग-अधिवेशन

[भारतीय महिला-सम्मेलन की स्वागताध्यक्ष श्रीमती विजयलक्ष्मी पंडित]

हमारे देश की महिलायें किस तेजी के साथ उन्नति की ओर अग्रसर हो रही हैं, इसका एक सजीव परिचय अखिल भारतीय महिला-सम्मेलन ने अपने गत प्रयाग-वाले अधिवेशन में दिया है। इस बार देश के कोने कोने से आई हुई महिला प्रतिनिधियों के रंग-ढंगों, वक्तृताओं और प्रस्तावों से ज्ञात होता है कि शताब्दियों से रूढ़ियों की चहारदीवारी में कैद रहनेवाली भारतीय महिलाओं ने अब उस जीर्ण बन्धन को तोड़ डाला है और वे आजादी के वातावरण में साँस लेने का उपक्रम कर रही हैं। साथ ही यह भी कि वे अपना कार्यक्षेत्र अब चक्की-चूल्हे और बच्चों के लालन-पालन में ही परिमित नहीं मानतीं। वे अपने को सारे संसार के साथ मिलाकर देखना और संसार की समस्त गति-विधियों पर अपने दृष्टिकोण से विचार करना चाहती हैं। इस सम्मेलन के स्वागताध्यक्ष श्रीमती विजयलक्ष्मी पंडित ने अपने भाषण में कहा है कि 'हमारा सम्मेलन अपने अस्तित्व को संसार के सामने तभी प्रमाणित कर सकेगा जब वह यह दिखा दे कि भारतीय स्त्रियाँ अब गृहस्थों की कठपुतलियाँ-मात्र नहीं रह गई हैं, प्रत्युत वे सुयोग्य और सक्षम हैं और भारतीय राष्ट्र की रक्षा के लिए प्रयत्नशील हैं।' सम्मेलन के प्रस्तावों को देखकर हमें प्रसन्नता हुई है कि भारतीय स्त्रियाँ सचमुच अब इस योग्य हो रही हैं कि वे बड़ी से बड़ी सामाजिक या राजनैतिक जिम्मेदारी को अपने ऊपर लेकर उसका सुन्दरता के साथ निर्वाह करना चाहती हैं। सम्मेलन में विविध समस्याओं पर ऐसे
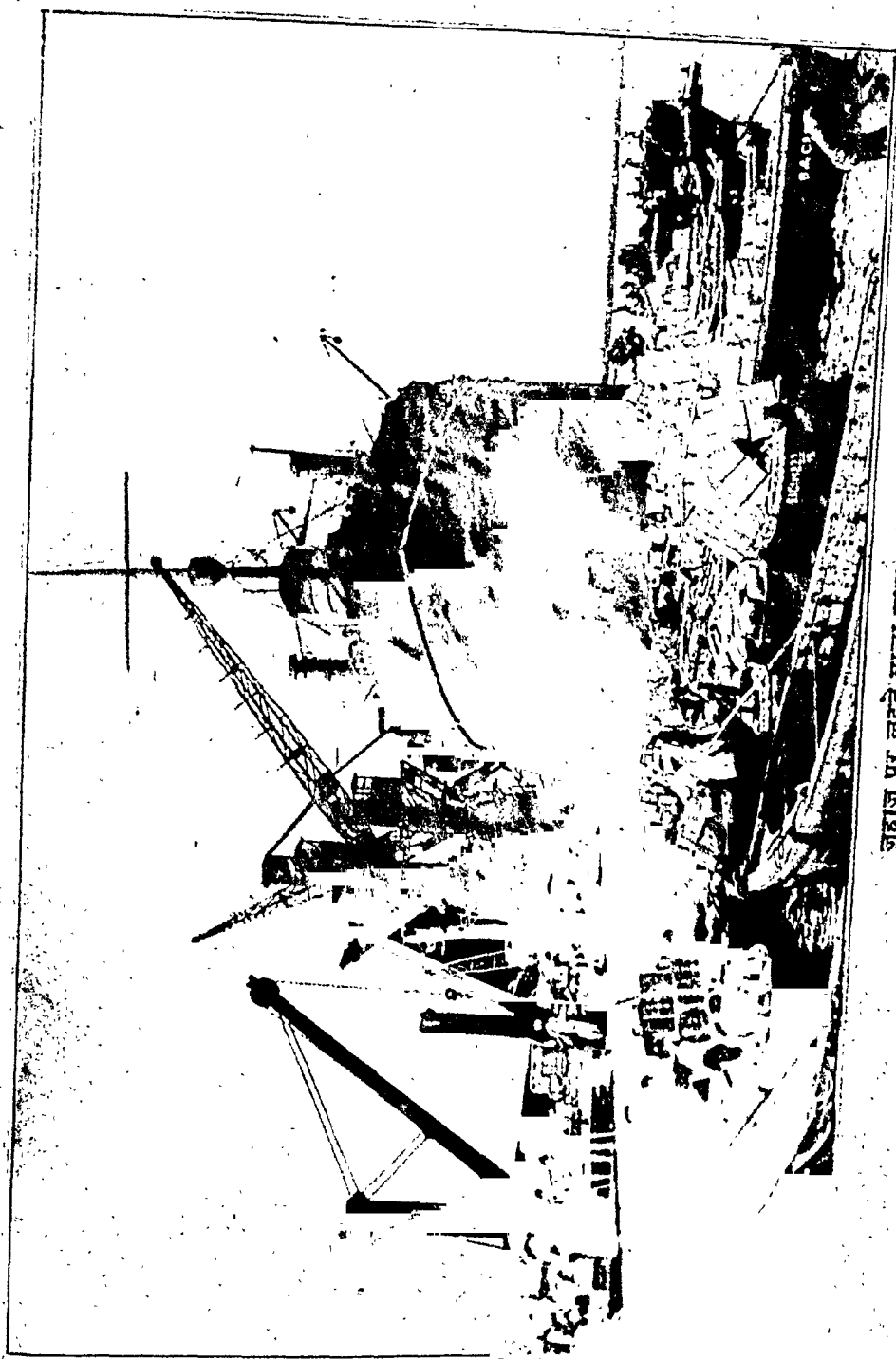
ज़हाज पर लदने वाला माल

[ग्वालियर की प्रसिद्ध महिलानेत्री श्रीमती रानी लक्ष्मीबाई राजवाड़े]

[भारतीय स्त्रियों में अग्रगण्य और प्रमुख नेत्री श्रीमती रामेश्वरी नेहरू]

[प्रयाग में होनेवाले महिला-सम्मेलन की सभानेत्री बेगम हामिदअली]

महत्त्वपूर्ण प्रस्ताव इस बार आये हैं जो भारतीय महिलाओं की सर्वतोमुखी जागृति के परिचायक हैं। 'युद्ध का प्रस्ताव' नमें सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण है। युद्ध-पीड़ित देशों की जनता के प्रति सहानुभूति प्रदर्शित करते हुए स प्रस्ताव में कहा गया है कि जब तक कोई भी देश गुलाम रहेगा तब तक संसार में शान्ति की स्थापना हो सकनी असम्भव है। ग्रेट ब्रिटेन को यह स्पष्ट कर देना चाहिए कि वह किस सिद्धान्त पर शान्ति स्थापित करना चाहता है। क्या उसमें राष्ट्र-समता और वैयक्तिक तथा राष्ट्रीय स्वतंत्रता तथा अधिकार भी सम्मिलित होंगे? भारतीय स्त्रियाँ केवल अपने देश की आज़ादी के लिए ही उत्सुक नहीं हैं, बल्कि उन सभी देशों के लिए भी हैं जिन पर जुल्म हो रहा है। इस प्रस्ताव की प्रस्ताविका डाक्टर कुमारी नटराजन ने ब्रिटेन के युद्ध-सम्बन्धी दृष्टिकोण को स्पष्ट करते हुए उसे भारतीय संस्कृति के प्रतिकूल बतलाया है। इस प्रस्ताव के समर्थन में कुमारी ज़ुल्फ़िकार अली खाँ, बेगम शाहनवाज़ और रानी राजवाड़े के भी बड़े विद्वत्तापूर्ण भाषण हुए। सबमें युद्ध के प्रति घृणा और त्रस्त राष्ट्रों के प्रति सहानुभूति के भाव प्रकट किये गये। इन सब बातों से अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में महिलाओं की बढ़ती हुई दिलचस्पी का परिचय मिलता है, जो वास्तव में एक महत्त्व की बात है।

इस युद्ध-सम्बन्धी प्रस्ताव से ही सम्बन्ध रखता हुआ एक और प्रस्ताव भी पास हुआ है, जिसमें चीन के प्रति सहानुभूति प्रकट करने के लिए एक महिला डेपूटेशन भेजने की बात कही गई है। भारतीय महिलाओं को अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति दिलाने तथा भारत और चीन के सम्बन्धों को दृढ़तर तथा आत्मीय बनाने में इस प्रस्तावित डेपूटेशन से बड़ी सहायता मिलेगी। इन दोनों प्रस्तावों से स्पष्ट हो जाता है कि युद्ध के प्रति भारतीय महिलाओं के हृदयों में क्या विचार हैं।

देशी राजनीति के सम्बन्ध में पास हुए प्रस्तावों से भी महिलाओं की समझदारी का अच्छा परिचय मिलता है। एक प्रस्ताव में कांग्रेस की अहिंसा-नीति का समर्थन किया गया है, दूसरे में मज़दूरों को उचित मज़दूरी देने की सिफ़ारिश की गई है।

राष्ट्रभाषा के सम्बन्ध में बोलते हुए बेगम हामिदअली ने जो इस अधिवेशन की सभानेत्री थीं, कहा कि 'हिन्दुस्तानी' ही एकमात्र भाषा है जिसे राष्ट्रभाषा का पद प्राप्त हो सकता है। हमें हिन्दुस्तानी से विरोध नहीं है, परन्तु बेगम साहबा ने हिन्दुस्तानी की जो परिभाषा की है उसके विरुद्ध पिछले दिनों बहुत कुछ कहा गया है, अतएव उसके विषय में यहाँ कुछ कहने की ज़रूरत नहीं है। इस दिशा में महिला-सम्मेलन की ओर से भी कोई ख़ास दिलचस्पी नहीं दिखलाई गई है। सम्मेलन में जितने भाषण हुए वे सब अँगरेज़ी में ही हुए। हम मानते हैं कि विभिन्न प्रान्तों से आई हुई सदस्यायें सब हिन्दुस्तानी नहीं समझ सकती थीं और इसी लिए अँगरेज़ी में भाषण

[भारतीय महिला-सम्मेलन की मंत्री श्रीमती एस० एन० राय।]

[सम्मेलन में प्रमुख भाग लेनेवाली राजकुमारी अमृतकौर और श्रीमती एस० एन० राय]

[श्रीमती पूर्णिमा बैनर्जी, प्रयाग में होनेवाले सम्मेलन की मंत्री]

करना अनिवार्य-सा था, फिर भी महिला-सम्मेलन को इस समस्या का हल उसी प्रकार कर लेना होगा जिस प्रकार हमारी राष्ट्रीय महासभा ने कर लिया है। जो सदस्यायें हिन्दुस्तानी नहीं जानतीं उन्हें प्रयत्न करके उसे सीखना चाहिए। माननीय पुरुषोत्तमदास टंडन जी ने भी महिला-सम्मेलन में भाषण करते हुए यही उपदेश दिया। हिन्दी-भाषा अब तक महिलाओं की कृपा से ही हमारे देश में पनपती रही है, यद्यपि पुरुषवर्ग सदैव राजभाषा के मोह में बहता हुआ उसके प्रति अपनी घृणा व उपेक्षा के भाव प्रकट करता रहा है।

साम्प्रदायिकता के विषय में महिलाओं का स्पष्ट दृष्टिकोण भी अभिनन्दनीय है। बेगम साहबा ने अपने भाषण में कांग्रेसी मंत्रि-मंडलों की बड़ी तारीफ़ की। इससे दो बातें स्पष्ट हो जाती हैं। एक तो यह कि पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों में सत्य व न्याय की मात्रा अधिक है, दूसरी यह कि मिस्टर जिन्ना की बात का उनके घर में ही कितना मूल्य है।

"अँगरेज़ सवेरे के जलपान के पहले एक प्याला चाय पीना पसन्द करता है और वह अकसर इसी से जलपान का भी काम लेता है। शाम के चार बजे लन्दन के आफ़िसों के कर्मचारी चाय की दूकानों पर टूट से पड़ते हैं। और जब मौसम अच्छा रहता है तो हाउस आफ़ कामन्स के मेम्बर चाय पीने के लिये निकल पड़ते हैं।"

१—शकुन्तला—लेखक, श्रीयुत दुर्गादत्त त्रिपाठी, प्रकाशक, गोविन्द-आश्रम, चन्दौसी हैं। छपाई-सफ़ाई अच्छी, पृष्ठ-संख्या २० और मूल्य ।) है।

अभिज्ञान शाकुन्तल के कथानक पर हिन्दी में भी दो-एक स्वतंत्र काव्य और भी निकल चुके हैं। कविवर मैथिलीशरण गुप्त जी की 'शकुन्तला' भी इन्हीं में से एक है। प्रस्तुत पुस्तक भी ऐसी ही है। इसे लेखक ने सात छोटे छोटे सर्गों में खण्ड काव्य के रूप में लिखा है और इसमें उसे काफ़ी सफलता मिली है। कथानक में थोड़ा-बहुत उलट-फेर किया गया है, पर वह सुन्दर लगता है। छन्द व भाषा मजी हुई और वर्णन सजीव हैं। एक नमूना देखिए—

सहसा चटकी एक कली
आशाओं ने आँखें खोलीं
टोली मधुपों की मचली।
सरल-सरस, मृदुता-मधुमयता—
सरलों को कुछ लगी भली—
एक अबोध कली चुनने को
बढ़ा रहा था भुजा बली
तभी किसी के आने की ध्वनि
सुरभित कुंजों से निकली
और एक गम्भीर कण्ठ ने
दोनों की मुद्रा बदली,
"दया दया इस कुसुम कली पर
खिल जाने दे निठुर अली!
उचित नहीं यह 'उतावली।"

इस भर्त्सनामय निषेध में कालिदास के—"न खलु न खलु बाणः सन्निपात्योऽयमस्मिन्" के टक्कर का कथा-वस्तु-संकेत विद्यमान है। पुस्तक पठनीय है।

२—डाक्टर महेशचरणसिंह, एम० एस-सी०, मोहम्मदअली कटरा, हाता रतनलाल लखनऊ, द्वारा लिखित व प्रकाशित दो पुस्तकें—

(१) फूकी जावा—पृष्ठ-संख्या १८६ और मूल्य २) है। छपाई व काग़ज़ साधारण है।

जापान को रूढ़ियों और अन्ध-विश्वासों के गढ़े से निकालकर नये प्रकाश में लाकर खड़ाकर देने का श्रेय जिन महापुरुषों को प्राप्त है उनमें 'फ़ूकीजावा' का नाम प्रथम आता है। इनके विचारपूर्ण परिश्रम व अध्यवसाय से जापानी-लोग जो अमेरिकनों के काले जहाज़ अपने बन्दरगाह में आये हुए देखकर घरों में घुस गये थे और उनसे बचने के लिए मिट्टी के क़िले बनाने की सोचने लगे थे अल्प-काल में ही इतने उन्नत हो गये कि उनकी गणना संसार के महान् शक्ति-सम्पन्न राष्ट्रों में होने लगी। इन्हीं महापुरुष की जीवनी व कार्य-प्रणाली का उल्लेख इस पुस्तक में हुआ है। इसके पढ़ने से ज्ञात होता है कि रूढ़ियों का ग़ुलाम और पिछड़ा हुआ कोई देश किन उपायों से सबल और स्वावलम्बी बनाया जा सकता है। हिन्दी में फ़ूकीजावा की जीवनी सम्भवतः अब तक एक भी नहीं लिखी गई थी। इस दृष्टि से भी यह पुस्तक उपादेय व आवश्यक है। शैली भी रोचक है।

(२) वनस्पतिशास्त्र—पृष्ठ-संख्या २५५ और मूल्य ३॥) है।

हिन्दी में वैज्ञानिक साहित्य की अभी तक बहुत कमी है, क्योंकि इसके पढ़नेवाले, प्रकाशक व लेखक सभी कम हैं। जब से इण्टरमीडिएट तक के पाठ्यक्रम में हिन्दी मान ली गई है तब से वैज्ञानिक विषयों की कुछ पाठ्य-पुस्तकें अवश्य हिन्दी-अक्षरों में छप गई हैं, जो आरम्भिक विषयों से सम्बन्ध रखती हैं और स्कूली विद्यार्थियों के काम की हैं। इस दशा में 'बाटनी' पर भी हिन्दी-भाषा में एक ऐसी पुस्तक रचकर डाक्टर साहब ने सचमुच उपकार का काम किया है। इसमें वनस्पति-परिचय से आरम्भ करके फलों की रचना तक—आरम्भिक वनस्पति-शास्त्र के ढँग से ही वनस्पतियों के समस्त क्रिया-कलापों का सचित्र विवेचन किया गया है। परिभाषाओं के चयन

व निर्माण में भी बुद्धिमत्ता का यथेष्ट परिचय मिलता है, यद्यपि इसके लिए संस्कृत-शब्द-शास्त्र के नियमों की कम परवा की गई है। इस विषय के पाठकों व छात्रों के लिए पुस्तक बड़े काम की है। मूल्य कुछ अधिक जान पड़ता है।

३—राका—लेखक, श्रीयुत मनमोहनलाल श्रीवास्तव एम० ए०, प्रकाशक, सरस्वती-प्रकाशन-मन्दिर, इलाहाबाद हैं। मूल्य १) है।

"माँ, क्यों डाक्टर को बुलाती हो। मुझे क्या हो गया है। मैं तो सच कहती हूँ.............जब मेरा विवाह हुआ था.....मैं ससुराल जा रही थी तो तुमने कहा था—"बेटी रोज़ रात को सोने से पहले अपने स्वामी के चरण धो कर पी लिया करना। वही तुम्हारे लिए ईश्वर हैं; भगवान् हैं, सब कुछ हैं" "यह उन्हीं का चरणामृत था..........अभाग से यह बोतल आज गिर कर टूट गई है।" सुशीला के हृदय में हमें प्राचीन आदर्शों की पुनीत भावनायें किस प्रचुर रूप से मिलती हैं, इसका अनुभव पाठक ही कर सकते हैं। समाज की दशा कितनी अधिक अँगरेज़ियत से प्रभावित है कि शम्भू ने हँसते हुए कहा—"तुम बड़ी पगली हो.......इसी मूर्खता के लिए बी० ए० पास किया था"। समाज की प्रगति कितनी शीघ्रता से भारतीयता से भाग रही है, इस विषय पर लेखक ने गम्भीर विचार किया है। कहानी के अन्तर्गत आधुनिक समय के मनोविज्ञान का पूर्ण समावेश करना आवश्यक और अनिवार्य हो गया है। लेखक ने इस दृष्टिकोण को अपने सामने रक्खा है। "मैं नहीं मानता डाक्टर दूबे बड़ा चालाक आदमी है" के द्वारा लेखक ने वयोवृद्धों का साधारण चित्र रक्खा है। लेखक ने चरित्र-चित्रण करते समय अपने पात्रों को सदैव सतर्क रक्खा है। वे एक निश्चित दृष्टिकोण को रखते हुए हमें एक संदेश देते रहते हैं।

"पिता जी! तुम यहाँ....किस लिए आये हो। धर्म को तिलांजलि देकर.... साध्वी पत्नी का त्याग करके अपनी पुत्री, मान-मर्यादा को मिट्टी में मिलाकर.. नूरुल्लाह बोला....बुराई की जड़ तू है..जिद कर मुसलमान हो जा" वासनाग्रस्त व्यक्ति अपने धन, धर्म आदर्श को किस प्रकार लात मारकर अधःपतित हो जाता है और अपने को भी भ्रष्ट करने की इच्छा रखता है, इसका यह एक उदाहरण है। लेखक के अन्तर्गत मानव कमज़ोरियों को व्यक्त करने की कला है। मानव का अधःपतन, मानव की चंचलता, जीवन की सार्थकता, भारतीय सभ्यता के सुन्दर चित्र हमें अधःपतन, अन्तर्दीप्ति, चरणामृत, विश्वासघात आदि नामक कहानियों में एक मार्मिक रूप से हमारे समक्ष आता है। इस संग्रह से हमें यह ज्ञात होता है कि लेखक के हृदय में हमें ऐसी पुस्तक देने की इच्छा थी जो बालक, वृद्ध, स्त्री, पुरुष सबके मनोविनोद की सामग्री हो और प्रकाशक ने मुख-पृष्ठ पर पुस्तक के नाम को चरितार्थ करने के हेतु एक सुन्दर राका का चित्र उतनी ही तन्मयता से बनवाया है जितनी सतर्कता से छपाई की है।

—श्री दिनेशनारायण उपाध्याय 'साहित्यरत्न'

४—कोलतार—लेखक, मिर्ज़ा अज़ीमबेग चग़ताई, रूपान्तरकार, डाक्टर बृजबिहारीलाल बी० एस-सी०, एम० बी०, बी० एस०, प्रकाशक, छात्रहितकारी-पुस्तकमाला, दारागंज, प्रयाग है। मूल्य २) है।

मानव जीवन में हास्य का एक विशेष स्थान है। कभी कभी हम दूसरों के जीवन की और अपने भी जीवन की साधारण भूलों को याद कर हँस पड़ते हैं। यही हमारे आनन्द की अभिव्यक्ति है। इस आनन्द की सृष्टि करना ही हास्यपूर्ण साहित्य का उद्देश्य है। 'कोलतार' एक हास्य पूर्ण उपन्यास है, जिसमें भिन्न भिन्न अनेक कथानक एक घटना सूत्र से सम्बद्ध किये गये हैं। सम्पूर्ण पुस्तक में एक ही पात्र के चरित्र-चित्रण की प्रधानता नहीं है। कथानक का आविर्भाव एक सुसभ्य समाज से हुआ है, अतएव हमें इसमें पश्चिमी सभ्यता के रंग में रँगे हुए नये भारतीय संस्करण की छेड़छाड़ और उछल कूदपूर्ण प्रेम लीला मिलती है। परन्तु कहीं कहीं यह उछल कूद और ओछियाँ इतनी अधिक दूर तक पहुँच जाती है कि अस्वाभाविकता की एक स्पष्ट छाप घटनाक्रम पर पड़ जाती है। हास्य-साहित्य का उद्देश्य पाठक को खिलखिलाकर हँसाना नहीं, बल्कि उसके हृदय में चुटकियों द्वारा एक आनन्द की अनुभूति उत्पन्न करना है। लेखक चित्रांकण में अधिक सफल हुआ है, संवादों में कटाक्ष-व्यंग्य और चुटकियों के कारण मनोरंजकता आ गई है। उर्दू-साहित्य

में श्रीयुत चग़ताई की भाषा सजीव तथा पुर-असर है। रूपान्तर में भी भाषा की उस सजीवता की रक्षा की गई है। हिन्दी साहित्य में इस प्रकार के हास्य-साहित्य का अभाव है, जिसकी पूर्ति में 'कोलतार' का काफ़ी हाथ होगा।

—अनन्तप्रसाद विद्यार्थी

५—स्तुति-कुसुमाञ्जलि—यह संस्कृत की एक प्राचीन प्रसिद्ध रचना है। यह अभी तक अप्राप्य भी थी। प्रसन्नता की बात है कि यह अब छप गई है और सो भी सान्वय और हिन्दी-अनुवाद सहित। इसका प्रकाशन काशी के पण्डित प्रेमवल्लभ त्रिपाठी शास्त्री ने किया है। अनुवाद भी त्रिपाठी जी ने ही किया है। पुस्तक इंडियन प्रेस में छपी है और सजिल्द है। इसका आकार मँझोला, पृष्ठ-संख्या ८०३ और मूल्य केवल ४) है। प्रारम्भ के प्राक्कथन आदि के १४-१५ पृष्ठों में इस ग्रन्थ का तथा इसके प्रणेता आदि का भी परिचय दिया गया है। आचार्य महावीर-प्रसाद द्विवेदी इस ग्रन्थ के बड़े प्रशंसक थे। उन्हें जब इस पुस्तक की कापी मिली तब लेखक को एक पत्र लिखा था। वह पत्र भी इसमें छाप दिया गया है। वस्तुतः इस ग्रन्थ का परिचय हिन्दीवालों को सबसे पहले द्विवेदी जी ने ही दिया था। कदाचित् उन्होंने 'स्तुति कुसुमांजलि' के सम्बन्ध में 'सरस्वती' में दो लेख लिखे थे जो उस समय बहुत पढ़े गये थे। उन्हीं लेखों से प्रेरणा पाकर इस ग्रन्थ के प्रकाशक त्रिपाठी जी ने इसका अध्ययन ही नहीं किया, किन्तु इसका हिन्दी में अनुवाद करके खुद ही इसे छपवा भी डाला। इतने बड़े ग्रन्थ के छपवाने के लिए शास्त्रियों के पास पैसा कहाँ हो सकता था। तथापि उन्होंने हिम्मत नहीं छोड़ी, और छपवा कर ही रहे। इस महत्कार्य को इस रूप में सम्पन्न करने के लिए त्रिपाठी जी की जितनी भी प्रशंसा की जाय, थोड़ी होगी। स्तुति-कुसुमाञ्जलि को इस रूप में प्रस्तुत करके उन्होंने वास्तव में एक पुनीत कार्य किया है। उनके हिन्दी अनुवाद से इस ग्रन्थ की स्तुतियों का अर्थ तो अवगत ही होता है, साथ ही उनके कवित्व की खूबियों का भी बोध होता है। शिव भक्तों को तो इस ग्रन्थ का संग्रह करना ही चाहिए, उन्हें भी इसका संग्रह करना चाहिए जो कवित्व के प्रेमी हैं। मिलने का पता—पण्डित केशवदत्त त्रिपाठी, शिवभक्ति-ग्रन्थमाला, नं० २४।५८ रामघाट, बनारस।

६—हमारे नये सहयोगी

(१) कमला—(मासिक) सम्पादक, श्री बाबूराव विष्णु पराड़कर और श्री शान्तिप्रिय द्विवेदी हैं। प्रकाशक, भार्गव भूषण प्रेस, गायघाट बनारस है। आकार-प्रकार सरस्वती का, वार्षिक मूल्य ५) है।

यह पत्रिका गत वर्ष से निकलने लगी है। इसमें स्त्रियोपयोगी उच्चकोटि के लेखों के अतिरिक्त साहित्यिक व अन्य सामाजिक समस्याओं पर भी विचारपूर्ण लेख व कवितायें रहती हैं। पत्रिका उन्नतिशील और सुसम्पादित है तथा उच्चशिक्षित महिलाओं के लिए आवश्यक एक हिन्दी-पत्रिका के अभाव की अच्छी पूर्ति करती है।

(२) प्रीतिलड़ी—(मासिक) यह पत्रिका जुलाई १९३९ से श्री गुरुबख्शसिंह बी० एस-सी० के सम्पादकत्व में प्रीतिनगर, अमृतसर से निकल रही है। वार्षिक मूल्य ४॥) है।

इसमें साहित्यिक, सामाजिक व राजनैतिक लेख रहते हैं। चुनाव व सम्पादन सुन्दर है। हमें विश्वास है कि यह पत्रिका पंजाबियों में हिन्दी-साहित्य का अनुराग उत्पन्न करने में शीघ्र ही अच्छी सफलता प्राप्त करेगी।

(३) तरुण (मासिक)—यह मासिक पत्र श्री कृष्णनन्दनप्रसाद के सम्पादकत्व में तरुण कार्यालय, ९४, दिलकुशा, नया कटरा, इलाहाबाद से गत जनवरी से निकलने लगा है। वार्षिक मूल्य ३) है।

समालोच्य अंक इसका प्रथम अंक है। इसकी सभी सामग्री नवयुवकों व नवयुवतियों के लिए उपयोगी व पठनीय है। कुमार, पन्त व निराला जी की १-१ कविता भी है। ठाकुर श्रीनाथसिंह जी की एक सुन्दर कहानी है। अन्तर्राष्ट्रीय महायुद्ध व ललित कलाओं पर भी सुन्दर सुन्दर लेख हैं। हम सहयोगी की उन्नति चाहते हैं।

(४) वीर बाला (त्रय मासिक)—वार्षिक मूल्य १॥), सम्पादक, प्रोफ़ेसर प्रेमनारायण माथुर और प्रकाशक, श्री राजस्थान बालिका विद्यालय, वनस्थली, निवाई, जयपुर हैं।

यह पत्रिका वनस्थली के बालिका-विद्यालय की मुख पत्रिका है और उसी संस्था से सम्बन्धित लेख प्रायः इसमें रहते हैं। सम्पादन सुन्दर है।

(५ चाँद (मासिक)—वार्षिक मूल्य ६॥) और प्रकाशक, चाँद-कार्यालय, पोस्ट बैग नं० ३, इलाहाबाद है।

'चाँद' का प्रकाशन इधर कुछ समय से बन्द था। अब श्री सत्यभक्त के सम्पादन और श्री नन्दगोपालसिंह के प्रबन्ध में फिर प्रकाशित होने लगा है। कहने की आवश्यकता नहीं कि महिलोपयोगी पत्रिकाओं में चाँद पहले जैसी प्रतिष्ठा प्राप्त कर लेगा।

(६) नई कहानियाँ—यह पत्रिका भी 'चाँद प्रेस' प्रयाग से गत जनवरी से निकलने लगी है। इसके सम्पादक हैं श्रीयुत नरसिंहराम शुक्ल और वार्षिक मूल्य ४॥) है। पत्रिका का गेट-अप, विषय-चुनाव व सम्पादन चित्ताकर्षक है। आशा है, यह यथेष्ट उन्नति करेगी।

(७ जीवन-सखा—प्रयाग में डाक्टर बालेश्वर-प्रसादसिंह का एक 'नेचरक्योर होम' है। इसमें समस्त रोगों की चिकित्सा प्राकृतिक ढंग और उपादानों से की जाती है। यह पत्र उक्त संस्था का मुख पत्र है। सम्पादक उक्त डाक्टर साहब हैं। इसमें सब लेख स्वास्थ्य और उसे देनेवाले प्राकृतिक साधनों पर रहते हैं। वार्षिक मूल्य ३) है। 'प्राकृतिक स्वास्थ्यगृह ८७ हिम्मतगंज, इलाहाबाद' के पते से मिलता है।

(८) मराल—सम्पादक श्रीयुत किशोरीदास वाजपेयी शास्त्री, वार्षिक मूल्य २) है। पता—'मराल' नमकमंडी, आगरा।

इसका प्रधान विषय है हिन्दी भाषा और साहित्य की विवेचना। अलंकार, रस और व्याकरण सम्बन्धी लेख इसमें प्रधानतः रहते हैं। पत्र उन्नतिशील है।

७—राजपूताने का इतिहास—लेखक, श्रीयुत जगदीशसिंह गहलोत और प्रकाशक, हिन्दीसाहित्य-मन्दिर जोधपुर हैं। पृष्ठ-संख्या ७११, छपाई अच्छी, काग़ज़ चिकना और सजिल्द पुस्तक का मूल्य ५) है।

राजपूताने के छोटे-बड़े कई इतिहास हिन्दी में निकल चुके हैं, फिर भी प्रस्तुत इतिहास में कुछ अपनी निजी विशेषतायें हैं। इसमें लेखक ने राजपूताने के सभी छोटे-बड़े राज्यों के सचित्र ऐतिहासिक व भौगोलिक वृत्त सरल और स्पष्ट भाषा में समझाकर लिख दिये हैं। यही नहीं, सभी राजघरानों के वंश-वृक्षों, रीति-रवाजों व परंपरागत प्रथाओं का भी उल्लेख पृथक्-पृथक् किया है। राजस्थानियों की सामाजिक, आर्थिक, शिक्षासंबंधी व राजनैतिक अवस्थाओं का वर्णन भी सुविस्तृत कर दिया है। भारत-सरकार व राजघरानों के बीच समय समय पर होनेवाले सन्धिपत्रों व अहदनामों का उल्लेख भी पाठक इस ग्रन्थ में पायेंगे। आवश्यक स्थानों व पुरुषों के चित्र भी काफ़ी दिये गये हैं। इस प्रकार राजपूताने के इतिहास से सम्बन्ध रखनेवाली समस्त उपलब्ध सामग्री का लेखक महोदय ने इस पुस्तक के लिखने में भले प्रकार उपयोग किया है, जिसमें उनके अध्ययन व मननशीलता का अच्छा परिचय मिलता है। सब मिलाकर पुस्तक इतिहास-प्रेमियों और विशेषतया राजपूताने के इतिहास में दिलचस्पी रखनेवाले छात्रों के लिए उपयोगी है।

८—जन्म-पत्री—लेखक, श्रीयुत केशवानन्द शर्मा 'जदली' हैं। प्रकाशक, सरूपस प्रेस, मेमियो बर्मा है। पृष्ठ-संख्या १०८ और मूल्य १॥) है। 'जन्मपत्री' हिन्दुओं के लिए नई वस्तु नहीं है; हाँ, इस पुस्तक के संकलन में अवश्य कुछ नवीनता और विशेषता है और वह यह है कि हमारे यहाँ की पहली जन्म-पत्रियाँ रंग-बिरंगी और लम्बी बनती थीं। जो जितनी ही अधिक दक्षिणा दे सकता था, उसके पुत्र की जन्म-पत्री उतनी ही अधिक लम्बी और रंगवाली बनती थी। पर यह जन्मपत्री पुस्तकाकार और एक रंग में सजाई गई है। शेष बातें—अनेक चक्र, कोष्ठक, ग्रहों व उपग्रहों, राशियों आदि के फल—वे ही हैं जो पुरानी जन्म-पत्रियों में हुआ करती थीं। किसी की जन्मपत्री बनाने के लिए इस पुस्तक के खाली स्थानों की पूर्ति भर कर देनी होगी और एक सुन्दर बहुमूल्य व सर्वांगपूर्ण जन्मपत्री सजिल्द पोथी के रूप में बन जायगी। इस अविश्वासपूर्ण युग में भी जिन पंडितों की आजीविका धनी-मानी लोगों की 'भार्या पुत्ररत्नमजीजनत्' पर चल रही हो, उनके लिए यह पुस्तक उपादेय है। साधारण शीघ्रबोधिये भी इसके सहारे रुपये-धेलीवाली पत्रिकायें आसानी से बनाकर दे सकेंगे, क्योंकि इस पुस्तक का दाम एक जन्म पत्री भर के लिए उपयुक्त ही है। जो अपनी पूर्ण व सटीक जन्म पत्रियाँ रखना चाहें ऐसे गृहस्थों के लिए पंडित जी का यह श्रम बड़े काम का है।

हिन्दू-संघ और मुस्लिम-संघ*

लेखक, पंडित वेंकटेश नारायण तिवारी

रस्वती' के पाठकों ने, मुझे विश्वास है, पाकिस्तान का नाम अवश्य सुना होगा। पाकिस्तान का अर्थ है पवित्र स्थान। लेकिन इस समय इसका प्रयोग एक विशेष अर्थ में होता है। भारतीय राजनीति में इसका अर्थ है भारत का वह खण्ड जिस पर मुसलमानों का, बहुसंख्यक होने के कारण, राज्य हो। इसी को वे पाकिस्तान कहते हैं। हिन्दुस्तान के कुछ मुसलमानों ने पाकिस्तान की आवाज़ को कई बरसों से उठा रक्खा है। कहते हैं कि पंजाब के प्रसिद्ध कवि, दार्शनिक और राजनीतिक नेता सर मुहम्मद इक़बाल ने इस योजना को जन्म दिया था। धर मुस्लिम लीग ने जब से ज़ोर पकड़ा तब से पाकिस्तान की चर्चा ने भी ज़ोर पकड़ा है। लीगी दोस्तों का कहना है कि इस देश के मुसलमानों की अल्प-संख्यकों में गणना न होनी चाहिए। वे तो हिन्दुस्तान में पृथक् और स्वतंत्र 'नेशन' हैं, उसी तरह जिस तरह जर्मनी में जर्मन नेशन है और इँगलिस्तान में इँगलिश नेशन है। हिन्दुस्तान में, उनका मत है, दो नेशनें हैं—एक हिन्दू और दूसरी मुस्लिम। ऐसी दशा में, उनका कहना है, मुस्लिम नेशन किसी ऐसे राष्ट्र का अंग नहीं बनेगी जिसमें उसको अल्प-संख्यक होने के कारण बहु-संख्यकों का ग़ुलाम बनना पड़े। हिन्दुस्तान अगर एक नेशन मान लिया गया तो उसमें संख्या की दृष्टि से मुसलमानों को तो एक अल्प-संख्यक समुदाय ही का पद ग्रहण करना और बहु-संख्यक हिन्दुओं की अधीनता में जनम काटना पड़ेगा। हिन्द के मुसलमानों को इसी कल्पित ख़तरे से बचाने की गरज़ से एक स्वतंत्र मुस्लिम नेशन की गढ़न की गई है। इसी लिए इस कथित मुसलमान नेशन की रक्षा के लिए यह ज़रूरी है कि हिन्दुस्तान दो भागों में विभक्त किया जाय। एक भाग में हिन्दुओं का राज्य होगा और दूसरे में हिन्दुस्तानी मुसलमानों का एक अलग संघ बनेगा। यदि सम्भव हो तो उसमें एशिया, योरप और अफ़रीका के मित्र मुसलमान राष्ट्र भी सम्मिलित कर लिये जायँगे। इस लेख में हिन्दुस्तान के इस साम्प्रदायिक बँटवारे के एकाध पहलू पर हम विचार करेंगे। आइए देखें, यदि मुसलमानों की यह माँग मंजूर कर ली जाय और हिन्दुस्तान में हिन्दुस्तानी संघ के स्थान में हिन्दू और मुस्लिम संघों के क्रम से दो स्वतंत्र संघों की स्थापना की जाय तो 'न दो संघों में क्रमशः देश के दो प्रमुख सम्प्रदायवालों का किस तरह बँटवारा होगा और भारतवर्ष के नक़शे का उस समय क्या रूप हो जायगा।

यहाँ पर प्रश्न उठेगा और उसका उठना स्वाभाविक है कि किस सिद्धान्त के आधार पर इस तरह के दो साम्प्रदायिक संघों में देश का बँटवारा किया जा सकता है। मेरी राय में एक ही सिद्धान्त मान्य हो सकता है, अर्थात जिन-जिन भाग-विशेषों में मुस्लिम बहुमत हो उन-उन प्रदेशों को मुस्लिम-संघ में शामिल करना चाहिए, और जिन-जिन प्रदेशों में हिन्दुओं की या हिन्दुओं और सिक्खों की बहुसंख्या निकले उन्हें हिन्दू-संघ का अंग मानना पड़ेगा। दो संघों की योजना इसी बुनियादी उसूल पर खड़ी की गई है कि जहाँ पर हिन्दू बहुसंख्यक हैं वहाँ पर मुस्लिम अल्पसंख्यकों के हितों और स्वत्वों की रक्षा सम्भव नहीं है। जो यह कहते हैं उन्हें यह भी स्वीकार करना पड़ेगा कि संघ के रूप में जो संरक्षण वे अपने लिए चाहते हैं उन्हीं के से संरक्षण मुस्लिम-प्रधान प्रान्तों और रियासतों में बसे हुए हिन्दुओं को भी मिलने चाहिए। साथ ही, बँटवारे में इस बात का भी ध्यान रखना उचित है कि विभाजन इस तरह से हो कि जहाँ तक सम्भव हो सके वहाँ तक दोनों ही संघों की सीमायें अखंडित रहें। छोटे-छोटे अनेक टुकड़ों में देश नहीं बँट सकता। संघों के

---

*इस लेख के लिखे जाने के कई दिन बाद मैंने जनवरी १९४० की 'सरस्वती' में इसी विषय पर एक लेख देखा। लेकिन मैंने अपने लेख में परिवर्तन करना उचित नहीं समझा, क्योंकि यह दूसरे ही पहलू से लिखा गया है।

—लेखक

स्थापन और संरक्षण तथा उनकी प्रगति के लिए समान भागों का होना आवश्यक है। अगर ऐसा न होगा तो भारतवर्ष एक साथ खंड-खंड टके हुए हरे-पीले टुकड़ों की एक बदनुमा रज़ाई बन जायगा।

बहुमत की कसौटी क्या होगी? मैंने इस लेख में जिस कसौटी को लेकर मुस्लिम और हिन्दू संघों में भारत के बँटवारे की कल्पना की है वह यह कि जहाँ की आबादी में मुसलमानों की संख्या ५० प्रतिशत से अधिक है उसे मैंने मुस्लिम संघ का अंग मान लिया है और जहाँ की आबादी में इनकी संख्या ५० से कम है उसे मैंने हिन्दू संघ में शरीक कर दिया है। तुलना के लिए मैंने पंजाब को छोड़कर दूसरे प्रान्तों में सिर्फ़ हिन्दुओं और मुस्लिम आबादियों ही को लिया है। पंजाब में हिन्दू और सिक्खों को मिलाकर रक्खा है जैसा पाठक आगे देखेंगे, मुस्लिम संघ के पश्चिमी और पूर्वी भागों में सम्मिलित होनेवाले टुकड़ों के बीच में सिर्फ़ एक को छोड़ कर कोई हिन्दू-प्रधान प्रदेश नहीं पड़ता। इसी तरह कोई मुस्लिम-प्रधान प्रदेश, एक को छोड़ कर, हिन्दू-संघ के क्षेत्रफल में नहीं आता। अपवाद हैं पंजाब की कपूरथला और पूर्वी बंगाल त्रिपुरा रियासतें। कपूरथला में मुस्लिम बहुमत है, लेकिन चारों ओर से वह अमुस्लिम क्षेत्र से घिरा हुआ है। इसी तरह पूर्वी बंगाल में त्रिपुरा हिन्दू-प्रधान होते हुए भी मुस्लिम क्षेत्र के मध्य में स्थित है। इन दो प्रदेशों को छोड़ कर, मुस्लिम-प्रधान और हिन्दू-प्रधान संघों में उसी सम्प्रदाय के लोगों की सर्वत्र प्रधानता है जिस सम्प्रदायवालों का वह संघ है। पूर्व में मुस्लिम बंगाल और सिलहट मिल कर एक समूचा खंड होगा, जहाँ मुसलमानों की प्रधानता है। पश्चिम में सिंध, सीमा-प्रान्त, बलोचिस्तान और (जम्मू को छोड़ कर) काश्मीर मिलकर एक समूचा खंड बनाते हैं, जहाँ पर मुस्लिमों की आबादी बहुसंख्यक है। जम्मू, पूर्वीय पंजाब, पश्चिमी बंगाल, दार्जिलिङ्ग और जलपाईगुड़ी आसानी से काश्मीर, पंजाब और बङ्गाल से अलग किये जा सकते हैं। ऐसा करने में न तो भौगोलिक, न साम्पत्तिक और न शासन-सम्बन्धी कोई अड़चन पड़ सकती है।

मेरी स्थिति साफ़ है। मैं साम्प्रदायिक दृष्टि से भारत के भाग्य के निबटारे की कल्पना भी करना राष्ट्रीयता के प्रति जघन्य पाप समझता हूँ। मेरे लिए भारत अखण्ड है, अखंड रहेगा। लेकिन जो लोग फ़िरक़ेवाराना चश्मे लगा कर भारतीय समस्याओं का अध्ययन करते हैं उन्हें उसके प्रतिफलों को समझाने की गरज़ से मैंने यह लेख लिखा है। उन्हीं की दलीलों को सही मानकर मैंने दोनों संघों के चित्रों का अंकन करना उचित समझा। इससे यह न समझना चाहिए कि मैं उनके कथनों या तर्कों या परिश्रमों से प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से सहमत हूँ या उनके साथ मुझे किसी भी तरह की सहानुभूति है।

(२)

इसके पहले कि इस विषय का विवेचन मैं करूँ, पाठकों की सुविधा के लिए यह आवश्यक मालूम होता है कि भारतवर्ष के भौगोलिक चित्र के विषय में एक-दो आवश्यक बातों का ज़िक्र कर दिया जाय। भारतवर्ष की बाहरी सीमा पर ध्यान दीजिए। इसके उत्तर-पश्चिम में अफ़ग़ानिस्तान और ईरान हैं; उत्तर में चीनी तुर्किस्तान तिब्बत, नैपाल, भूटान और चीन हैं; पूर्व में बर्मा और श्याम हैं। दक्षिण में लंका का द्वीप है, जो भौगोलिक दृष्टि से भारतवर्ष ही का एक अंग है, लेकिन इस समय वह भारत से जुदा इँगलैंड का एक उपनिवेश माना जाता है। अफ़ग़ानिस्तान और हिन्दुस्तान के बीच में क़बीलों का प्रदेश है जो स्वतंत्र है, लेकिन जिसके साथ भारतीय सरकार का सम्बन्ध है। क़बीलों के निवासी मुसलमान हैं और सभ्यता या संस्कृति की दृष्टि से इनकी बहुत पिछड़ी हुई दशा समझी जाती है। लूट-मार करना इनका पेशा है। भारतवर्ष और बर्मा का कुल क्षेत्रफल १८ लाख वर्ग मील है और १९३१ की मनुष्य-गणना के अनुसार आबादी ३५ करोड़ २८ लाख थी। वह १८८१ में २५ करोड़ ३९ लाख, १८९१ में २८ करोड़ ७३ लाख, १९०१ में २९ करोड़ ४४ लाख, १९११ में ३१ करोड़ ५२ लाख और १९२१ में ३१ करोड़ ८९ लाख थी। १८८१ से १९३१ तक की ५० वर्ष की अवधि में भारतवर्ष की आबादी में लगभग १० करोड़ की बढ़ती हुई। १९३७ में बर्मा हिन्दुस्तान से अलग कर दिया गया। इँगलैंड से अब उसका सीधा सम्बन्ध है। इसलिए बर्मा को छोड़कर भारत के क्षेत्रफल को १८ लाख के बजाय १५ लाख ७६

हज़ार वर्गमील और उसकी जनसंख्या को ३५ करोड़ के स्थान पर ३३ करोड़ ८२ लाख मानना चाहिए। इसी स्थान पर भारत की सीमा पर स्थित तीन देशों के रक़बों और आबादियों का भी उल्लेख कर देना अनुचित न होगा। अफ़ग़ानिस्तान का रक़बा २५,००० वर्गमील है, जिसमें ७० लाख स्त्री-पुरुष १९३१ में बसते थे। नैपाल के राज्य का विस्तार ५४ हज़ार वर्गमील है और आबादी ५६ लाख है। भूटान के राज्य का क्षेत्रफल २० हज़ार वर्गमील और जनसंख्या ढाई लाख है। भारत के क्षेत्रफलों और आबादियों के साथ कुछ विदेशों के रक़बों और आबादियों की तुलना कर लीजिए। अमेरिका के संयुक्त-राज्य का रक़बा ३१ लाख वर्गमील से अधिक है, लेकिन उसकी कुल आबादी १४ करोड़ से कुछ कम है। फ़ांस का रक़बा २ लाख १३ हज़ार वर्गमील है, लेकिन उसकी आबादी चार करोड़ से कुछ ही ऊपर है। गलैंड और वेल्स का रक़बा ९८ हज़ार वर्गमील है और आबादी चार करोड़ है। चीन का विस्तार लगभग ४३ लाख वर्गमील है और उसकी जनसंख्या ४५ करोड़ है। विस्तार की दृष्टि से संसार के देशों में भारतवर्ष का तीसरा नम्बर है और आबादी के लिहाज़ से उसका द्वितीय पद है। कुछ का कहना है कि जन-संख्या में भारत संसार में के सब देशों का अगुआ है।

(३)

इन प्रारम्भिक शब्दों के बाद, आइए, अब हिन्दुस्तान के वर्तमान राजनीतिक विभाजनों पर भी एक नज़र डाल लें। जिस प्रदेश को हम भारतव कहते हैं वह राजनीतिक दृष्टि से तीन खण्डों में विभक्त है। एक तो वह खण्ड है जिसे ब्रिटिश इन्डिया कहते हैं, अर्थात् जिस पर ब्रिटेन की खुल्लम-खुल्ला अमलदारी है। इस भाग में १३ प्रान्त हैं। इन प्रान्तों के नाम हैं—(१) आसाम, (२) बंगाल, (३) बिहार, (४) बम्बई, (५) मदरास, (६) मध्यप्रान्त और बरार, (७) सीमाप्रान्त, (८) उड़ीसा, (९) पंजाब, (१०) सिन्ध और (११) संयुक्तप्रान्त। नके अतिरिक्त अजमेर-देहली और बलोचिस्तान नामक दो और छोटे से प्रान्त हैं, जहाँ का शासनाधिकार, गवर्नरों के बजाय, चीफ़ कमिश्नर नामक प्रधान पदाधिकारियों के हाथ में है। दूसरे खण्ड में देशी रियासतें शामिल हैं। नकी संख्या ५०० और ६०० के बीच में है। इन देशी रियासतों का ब्रिटेन के सिंहासन के साथ सी । सम्बन्ध है और घरेलू शासन में इनको नाममात्र की स्वतंत्रता से लेकर प्रायः पूर्ण आज़ादी तक प्राप्त है, परन्तु वैदेशिक युद्ध-सम्बन्धी मामलों में ये ब्रिटेन के पूर्णतः अधीन हैं। तीसरे खण्ड में उन प्रदेशों की गणना है, जिनमें स्वतंत्र क़बीले रहते हैं। तीनों खण्डों के विस्तार और उनकी जन-संख्याओं पर एक नज़र डालिए। ब्रिटिश इन्डिया का विस्तार ८ लाख १८ हज़ार वर्गमील और इसकी जनसंख्या २५ करोड़ ३५ लाख है। देशी रजवाड़ों का क्षेत्रफल लगभग सात लाख वर्गमील है, लेकिन उनके निवासियों की संख्या केवल ७ करोड़ ९१ लाख है। कबीलों का प्रदेश भारत के तीनों खंडों में सबसे छोटा है। वहाँ ६८ हज़ार वर्गमील में लगभग २६ लाख प्राणी बसते हैं। प्रत्येक खंड के आँकड़ों पर यदि पाठक ग़ौर करेंगे तो उनको मालूम होगा कि सारे भारत के प्रत्येक ५० व्यक्तियों में से ४० व्यक्ति चार प्रान्तों में और १० व्यक्ति देशी रियासतों में आबाद हैं। विस्तार में यदि रियासतें ब्रिटिश भारत से कुछ ही कम हैं तो आबादी में दूसरा पहले से तिगुना बड़ा है।

अब हिन्दू और मुस्लिम संघों में भारत के बँटवारे की समस्या की ओर मुड़ आइए। पहले प्रान्तों को लीजिए। उन्हें दो श्रेणियों में आसानी से हम विभक्त कर सकते हैं। पहली श्रेणी में उन प्रान्तों की गणना होगी जिनमें हिन्दुओं की अपेक्षा मुसलमानों की संख्या अधिक है और दूसरी श्रेणी में वे प्रान्त शामिल होंगे जिनमें मुसलमानों की तुलना में हिन्दुओं की संख्या अधिक है। १३ में से ५ प्रान्त अर्थात्—(१) बंगाल, (२) पंजाब, (३) सीमाप्रान्त, (४) सिन्ध और (५) बिलोचिस्तान ऐसे हैं, जहाँ मुसलमानों की बहुत अधिक आबादी है। बाक़ी आठ प्रान्तों में मुसलमान अल्पसंख्यक हैं। पहले पाँच प्रान्तों में कितने हिन्दू और कितने मुसलमान हैं, सका ब्योरा आगे के कोष्ठक से पाठकों को ज्ञात हो जायगा—

संख्यायें लाख में

(१)

प्रान्त का नाम	हिन्दू	मुसलमान
बंगाल	२ करोड़ १६ लाख	२ करोड़ ७५ लाख
पंजाब	६३ लाख	१ करोड़ ३३ लाख
सीमाप्रान्त	१ लाख ४३ हज़ार	२२ लाख
सिन्ध	१० लाख ७७ हज़ार	२८ लाख ३१ हु०
बिलोचिस्तान	९ हज़ार	३ लाख २५ हु०

ऊपर के आँकड़े पूर्णांकों में हैं। बंगाल में हिन्दू ४३०, सिन्ध में २६०, पंजाब में हिन्दू, सिक्ख ४००, सीमाप्रान्त में हिन्दू और सिक्ख मिलाकर ९० प्रति हज़ार हैं। बिलोचिस्तान में प्रायः उनकी संख्या नगण्य है।

इन पाँच प्रान्तों को छोड़कर शेष प्रान्तों की हिन्दुओं और मुसलमानों की आबादियाँ निम्नलिखित हैं—

(२)

प्रान्त	हिन्दू	मुसलमान
आसाम	४९ लाख	साढ़े २७ लाख
बिहार	२ करोड़ ५९ लाख	४१ लाख
बम्बई	१ करोड़ ५६ लाख	१६ लाख
मध्य-प्रान्त	१ करोड़ ३२ लाख	७ लाख
मदरास	४ करोड़	३३ लाख
उड़ीसा	६५ लाख	१ लाख २९ हज़ार
युक्त-प्रान्त	४ करोड़ १० लाख	७२ लाख
अजमेर देहली-प्रांत	१० लाख	सवा ३ लाख

ऊपर के कोष्ठक में जो संख्यायें दी गई हैं उन्हें प्रतिशत के रूप में हम दोहरा देना चाहते हैं। आबादी के प्रति हज़ार में मुसलमान आसाम में ३३०, बिहार में १२०, बम्बई में ९०, मध्य-प्रान्त में ४५, मदरास में ७०, उड़ीसा में ११, युक्त-प्रान्त में १५ और अजमेर-देहली में २३ हैं। उड़ीसा में मुसलमान प्रायः उसी तरह नगण्य हैं जिस तरह हिन्दू बिलोचिस्तान में हैं। मदरास में उनकी स्थिति सीमा-प्रान्त के हिन्दुओं और सिक्खों की है। मध्य-प्रान्त में उनकी संख्या उतनी भी नहीं जितनी सीमा-प्रान्त में हिन्दू-सिक्खों की तादाद है। बिहार और युक्तप्रांत में वे क्रमशः १२८ और १५९ हैं। इससे यह बात स्पष्ट है कि आबादी के लिहाज़ से, न तो बिहार और न युक्त-प्रांत में और न अन्य छः प्रान्तों में मुसलमानों की वह स्थिति है, जो बंगाल, पंजाब और सिन्ध में हिन्दुओं और सिक्खों की है, जहाँ वे क्रमशः ४०, ३३ और २६ प्रतिशत हैं।

(४)

ब्रिटिश प्रान्तों को छोड़कर देशी रियासतों की ओर आइए। हिन्दुस्तान की सब रियासतों में सिर्फ़ ६ ऐसी रियासतें हैं, जहाँ की आबादी में मुसलमानों की संख्या ५१ या उससे अधिक प्रतिशत होगी, बाक़ी सब रियासतों में हिन्दुओं का प्रबल बहुमत है। पूर्व-कथित मुस्लिम रियासतों के नाम हैं—(१) काश्मीर और जम्मू (२) कपूरथला, (३) बहावलपुर, (४) खैरपुर, (५) लासबेला और (६) केलात। पहली दो रियासतें, केलात और लासबेला बिलोचिस्तान में हैं। खैरपुर सिन्ध में स्थित है। काश्मीर और जम्मू की रियासतें पंजाब के उत्तर में हैं। कपूरथला पंजाब की एक रियासत है। बहावलपुर पंजाब के दक्षिण में है। काश्मीर और कपूरथला के शासक क्रमशः हिन्दू और सिक्ख हैं। बाक़ी चार रियासतों के शासक मुसलमान हैं।

इन ६ रियासतों को छोड़कर हिन्दुस्तान में बाक़ी जितनी रियासतें हैं उनके शासक चाहे हिन्दू हों या मुसलमान, उनमें से प्रत्येक में मुसलमान अत्यल्प संख्यक हैं। ऐसी रियासतों में हैदराबाद, ट्रावनकोर, बड़ौदा, ग्वालियर, पटियाला, बीकानेर, मैसूर, इन्दौर, भूपाल, रामपुर और टोंक आदि सब रियासतें शामिल हैं। पहले मुस्लिम-प्रधान रियासतों को ले लीजिए। इन रियासतों के क्षेत्रफल और जन-संख्यायें निम्न-लिखित हैं, जो कोष्ठक नंबर ३ और ४ में क्रमशः दी जाती हैं।

मुस्लिम-प्रधान रियासतें
क्षेत्रफल और कुल आबादी

(३)

नाम	वर्गमील	आबादी
कपूरथला	५९८	३,१७,०००
लासबेला	७,०००	६३,०००
कलात	७३,०००	३,४२,०००
बहावलपुर	१५,०००	९,८५,०००
खैरपुर	६,०००	२,२७,०००
काश्मीर	८५,०००	३६,४६,०००
कुलजोड़	१,८९,०००	५५,८०,०००

मुस्लिम-प्रधान रियासतें
आबादी
(४)

नाम रियासत		हिन्दू	मुसलमान
कपूरथला	...	५४,०००	१,७९,०००
लासबेला	...	७,०००	६२,०००
कलात	...	११,०००	३,३१,०००
बहावलपुर	...	१,४५,०००	८,००,०००
खैरपुर	...	४०,०००	१,८७,०००
काश्मीर	...	७,३७,०००	२८,१७,०००
कुल जोड़	...	९,८८,०००	४३,७५,०००

ऊपर की ६ रियासतों में काश्मीर के साथ हमने जम्मू का हिन्दू-प्रधान भाग भी शामिल कर लिया है। इसे यहाँ शामिल करना ठीक है या नहीं, इस प्रश्न पर हम आगे चलकर विचार करेंगे। यहाँ उसे भी मुस्लिम प्रधान रियासतों ही का अंग मानकर हम नक़शे की रूप-रेखा का वर्णन करना उचित समझते हैं। हाँ, तो कुल देशी रियासतों का रक़बा ७ लाख है। उसके क्षेत्रफल से यदि हम ६ मुस्लिम-प्रधान रियासतों के रक़बे को घटा दें तो शेष हिन्दू-प्रधान रियासतों का रक़बा लगभग ५ लाख वर्गमील निकलेगा, अर्थात् मुस्लिम संघ में देशी रियासतों का लगभग एक-चौथाई हिस्सा आ जायगा। कुल रजवाड़ों की आबादी, जैसा हम ऊपर कह चुके हैं, ७ करोड़ ९१ लाख है, जिसमें ६ करोड़ १५ लाख हिन्दू और १ करोड़ ६ लाख मुसलमान हैं। यदि रजवाड़ों का मुसलमान-प्रधान और हिन्दू-प्रधान रियासतों में विभाजन हुआ तो पहली श्रेणी की रियासतों में ३ लाख २१ हज़ार हिन्दू और ३० लाख ३६ हज़ार मुसलमान प्रजा होगी। अर्थात् भारत के कुल रियासती हिन्दुओं में से ५ सैकड़ा हिन्दू और कुल रियासती मुस्लिम के ३० सैकड़ा मुसलमान मुस्लिम संघ में जायँगे। इसके विपरीत भारतवर्ष की रियासतों के ९५ फ़ी सदी हिन्दू और ७० फ़ी सदी मुसलमान हिन्दू-संघ में रह जायँगे। यह बात विचारणीय है कि मुस्लिम संघ की योजना से रियासतों में रहनेवाले ७० फ़ी सदी मुसलमानों को तो कोई लाभ नहीं पहुँच सकता, क्योंकि वे उस समय भी हिन्दू-संघ के अन्तर्गत होने के कारण अन्य मतावलम्बियों के शासन के नीचे जीवन-निर्वाह के लिए बाध्य होंगे। आर्थिक, सामाजिक या सांस्कृतिक दृष्टि से तो इन ७० फ़ी सदी मुसलमानों की वैसी ही हालत तब बनी रहेगी जैसी वह आज है। हाँ, यह होगा कि हैदराबाद, भूपाल और रामपुर आदि मुस्लिम-शासित किन्तु हिन्दू-प्रधान रियासतों में हिन्दू जनता को उस समय अधिक से अधिक स्वतंत्रता मिल जाय और उनकी मुसलमान रियाया को जो इस समय विशेषाधिकार प्राप्त हैं उनका अन्त हो जायगा। कहा जाता है कि मुस्लिम संघ का ध्येय है हिन्दुस्तान के मुसलमानों के हितों की रक्षा करना और एक ऐसे संघ-राष्ट्र का निर्माण करना जिसके द्वारा हिन्दुस्तान की अधिकांश मुसलमान जनता सुख से अपना जीवन-निर्वाह कर सके, और कर सके आज़ादी के साथ विविध दिशाओं में अपनी उन्नति का प्रयत्न। लेकिन ऊपर के आँकड़ों से तो यह बात साफ़ ज़ाहिर है कि देशी रियासतों के ७० फ़ी सदी मुसलमानों की दशा जैसी अब है वैसी ही तब भी बनी रहेगी जब मुस्लिम संघ की स्थापना भी हो जायगी। कपूरथला और काश्मीर की रियासतें अवश्यमेव मुस्लिम संघ में आ जायँगी। लेकिन हैदराबाद, भूपाल और रामपुर आदि अनेक मुसलमानी रियासतों का क्या हाल होगा? वे तो मुस्लिम संघ में किसी तरह से नहीं शामिल हो सकतीं, क्योंकि वहाँ पर हिन्दुओं का बहुमत है। यदि बहुमत के आधार पर हिन्दुस्तान के दो टुकड़े करना है तो फिर रियासतों की ७० प्रतिशत मुसलमान प्रजा को या तो मजबूरन हिन्दू-संघ के शासन में रहना होगा या मुस्लिम-संघ में बसने की ग़रज़ से हिन्दू-प्रधान रियासतों से हिजरत करनी पड़ेगी। मुस्लिम संघ की योजना बनानेवालों को चाहिए कि वे पहले हैदराबाद के निज़ाम या भूपाल और रामपुर के नवाबों से जाकर पूछें कि क्या वे हिन्दुस्तान के साम्प्रदायिक बँटवारे का समर्थन करने के लिए तैयार हैं। क्या वे और उनकी बिरादरी के दूसरे शासक कभी यह स्वीकार करेंगे कि पाकिस्तानी पतंग को उड़ानेवाले दोस्तों को महज़ खुश करने के लिए वे हिन्दू-संघ के अधीन हो जायँ? जहाँ तक देशी रियासतों का सम्बन्ध है, वहाँ तक यह स्पष्ट है कि मुस्लिम संघ की योजना के द्वारा मुसलमानों के विशेषाधिकारों को कहीं अधिक धक्का पहुँचने की सम्भावना

है और सम्भावना है इसकी भी कि हिन्दुओं को क्षति पहुँचने के बजाय आज से भी अधिक शक्ति उन्हें मिल जाय और शासन में भी उन्हें वे अधिकार प्राप्त हो जायँ जिनसे वे सदियों से वंचित हैं।

(५)

काश्मीर को मुस्लिम-प्रधान रियासत मानकर हमने ऊपर विचार किया है। लेकिन जम्मू भी काश्मीर का एक अंग है। इसमें हिन्दुओं का बहुमत है। यह प्रान्त भी साम्प्रदायिक दृष्टि से दो भागों में स्वतः विभक्त है। पश्चिमी भाग में, जिसमें पुंछ, रियासी और मीरपुर के इलाक़े हैं, मुस्लिम-प्रधान है; लेकिन पूर्वी भाग में हिन्दुओं का बहुमत स्पष्ट है। इसमें जम्मू ख़ास, ऊधमपुर, भदवार, कैथुआ और चैननी के इलाक़े हैं। काश्मीर की रियासत के ये दो भाग एक-दूसरे से बहुत विभिन्न हैं। काश्मीर-जम्मू का सम्मिलित क्षेत्रफल ८५,००० वर्गमील से कुछ अधिक है। और पूर्वी जम्मू का विस्तार-क्षेत्र है ७ हज़ार वर्गमील के ऊपर। काश्मीर और जम्मू की सम्मिलित रियासतों में हिन्दुओं की आबादी ७ लाख ३६ हज़ार और मुसलमानों की संख्या २८ लाख १७ हज़ार है। काश्मीर प्रान्त में ९५ फ़ी सदी मुसलमान हैं, लेकिन पूर्वी जम्मू में प्रत्येक ७० मुसलमान पीछे १०० हिन्दू हैं। ऐसी दशा में इस प्रश्न का उठना स्वाभाविक है कि क्या पूर्वी जम्मू काश्मीर की रियासत के साथ साथ मुस्लिम संघ में शामिल किया जाय या न शामिल किया जाय; और यदि न किया जाय तो क्यों; और यदि किया जाय तो क्यों? मुस्लिम संघ की योजना के आधार-स्तम्भों ही का यह सिद्धान्त है कि जिस प्रान्त में मुसलमानों का मताधिक्य हो उसे मुस्लिम संघ में मिला देना चाहिए, क्योंकि बहु-संख्यकों के ऊपर अल्प-संख्यकों का शासन करना बहु-संख्यकों के साथ अन्याय करना है। ऐसी दशा में पूर्वी जम्मू के हिन्दू यह कह सकते हैं कि वे मुस्लिम संघ में जाना पसन्द नहीं करते। जो एतराज़ काश्मीर के मुसलमानों को हिन्दू शासन के ख़िलाफ़ हो सकता है, तो यह मानना पड़ेगा कि वही एतराज़ पूर्वी जम्मू के बहुसंख्यक हिन्दुओं को मुसलमानी शासन के प्रतिकूल होगा। यदि न हो तो अचरज की बात होगी। पूर्वी जम्मू के रहनेवालों को आत्म-निर्णय का उसी तरह अधिकार मिलना चाहिए, जिस तरह काश्मीर के मुसलमानों को आत्म-निर्णय का अधिकार मुस्लिम संघ में सम्मिलित होने से प्राप्त हो जायगा। क्या पाकिस्तानवालों ने पूर्वी जम्मू की समस्या पर विचार किया है? अगर किया है तो उन्हें चाहिए कि वे अपने निर्णय को दलीलों के साथ प्रकाशित करने का अनुग्रह करें। उन्हें चैकोस्लोवाकिया के सुडेटनलैंड की चेतावनी को न भूलना चाहिए। पूर्वी जम्मू कोई क़स्बा नहीं, कोई छोटा या बड़ा शहर नहीं। वह तो विस्तार में कपूरथला से ११ गुना बड़ा है और आबादी में कपूरथला, लासबेला, केलात और खैरपुर मिलकर भी उसका मुक़ाबिला नहीं कर सकते। यदि कपूरथला मुस्लिम संघ के शासन में शरीक किया जाता है क्योंकि वहाँ मुसलमानों की आबादी बहुसंख्यक है तो कोई वजह नज़र नहीं आती कि पूर्वी जम्मू के साथ भी वैसा ही बर्ताव क्यों न किया जाय। मुस्लिम-संघ के समर्थन में सांस्कृतिक और धार्मिक संरक्षण की दोहाई दी जाती है। इसी उसूल पर जम्मू को पृथक् करने का भी समर्थन किया जा सकता है।

(६)

६ रियासतों और उनके साथ पूर्वी जम्मू के मसलों को तो यहीं पर छोड़कर अब आइए प्रान्तों की ओर बढ़ चलें।

ऊपर हम बता चुके हैं कि अजमेर-देहली और बिलोचिस्तान की चीफ़ कमिश्नरियों को लेकर भारत में कुल १३ प्रान्त ऐसे हैं जो ब्रिटिश अमलदारी के अंग कहे जाते हैं। इनमें से ११ प्रान्तों का शासन सन् १९३५ के गवर्नमेंट आफ़ इण्डिया एक्ट में निर्धारित विधान के अनुसार है। बिलोचिस्तान और अजमेर-देहली में अभी तक शासन के सब अधिकार और कुल उत्तरदायित्व वहाँ के चीफ़ कमिश्नरों के हाथों में केन्द्रित हैं। इन १३ प्रान्तों में से, हम बता चुके हैं कि सिर्फ़ पाँच प्रान्तों में मुसलमानों का बहुमत है। इन पाँच में से तीन प्रान्तों—सिन्ध, सीमाप्रान्त और बलोचिस्तान में मुसलमानों का न केवल मताधिक्य है किन्तु वहाँ पर आबादी का वितरण भी इस तरह से है कि कहीं पर अल्पसंख्यकों का बहुमत न मिलेगा। लेकिन पाँच मुस्लिम-प्रधान प्रान्तों में दो प्रान्तों—

पंजाब और बंगाल की दशा। इस मामले में सिन्ध, सीमाप्रान्त और बिलोचिस्तान से भिन्न है। इन दो प्रान्तों में दोनों सम्प्रदायों का वितरण इस ढंग से हुआ है कि प्रान्त के भिन्न भिन्न भागों में भिन्न भिन्न सम्प्रदायों का बहुमत हमें मिलता है। उदाहरण के लिए, यदि पंजाब के पश्चिमी हिस्से में मुसलमानों का बहुमत है तो उसके पूर्वी भाग में हिन्दू और सिक्खों का बहुमत है। इसी तरह पूर्वी बंगाल में यदि मुसलमानों का बहुमत है तो पश्चिमी बंगाल में हिन्दुओं का बहुमत है और वहाँ मुसलमान अल्पसंख्यक हैं।

पहले पंजाब को लीजिए। पंजाब में कुल मिलाकर २३ जिले हैं, जिनमें १२ जिले ऐसे हैं जिनमें मुसलमानों की संख्या ५१ प्रतिशत से कम है। नीचे के कोष्ठक में हम उन जिलों की नामावली और प्रत्येक में प्रत्येक १ हजार पीछे मुसलमानों की संख्या दे रहे हैं:—

आबादी में प्रतिहज़ार पीछे

(५)

ज़िले	मुसलमान
हिसार	२८२
रोहतक	१७१
गुरगांव	३२७
कर्नाल	३०५
अम्बाला	३११
शिमला	१५८
कांगड़ा	५०
होशियारपुर	३१८
जालन्धर	४४५
लुधियाना	३५०
फ़िरोज़पुर	४४६
अमृतसर	४७०

इन बारह ज़िलों के अतिरिक्त एक और ज़िला है गुरदासपुर का, जिसमें मुसलमानों की संख्या कुल आबादी के ५० सैकड़ा से कुछ ही ऊपर बैठती है। लेकिन चूँकि इस ज़िले में मुसलमानों का बहुमत है—वह कितना ही स्वल्प क्यों न हो—हम उसे अलग छोड़ते हैं। देशी रियासतों को छोड़कर पंजाब प्रान्त के समस्त भू-भाग का रक़बा ९९ हज़ार वर्गमील और आबादी २ करोड़ ३६ लाख है, जिसमें से ६३ लाख हिन्दू, एक करोड़ ३३ लाख मुसलमान और ३१ लाख सिक्ख हैं। यानी कुल आबादी में हिन्दू २७ सैकड़ा, सिक्ख १३ सैकड़ा और मुसलमान ५७ सैकड़ा हैं। ऊपर के १२ ज़िलों के आँकड़ों को देखिए। अमृतसर लाहौर कमिश्नरी में है, बाक़ी ११ ज़िलों में से पहले ६ अम्बाला कमिश्नरी में और पिछले पाँच ज़िले जालन्धर कमिश्नरी में शामिल हैं। इन १२ ज़िलों की कुल आबादी ९८ लाख है, जिसमें २९ लाख मुसलमान, १८ लाख सिक्ख और ४४ लाख हिन्दू हैं। इन बारह ज़िलों में हिन्दुओं के अतिरिक्त सिक्खों की भी काफ़ी आबादी है। ९८ लाख में से २९ लाख मुसलमानों को निकाल दें तो हिन्दू और सिक्ख मिलाकर इन ज़िलों में ६२ लाख हैं। अतएव इन बारह ज़िलों को आप किसी तरह से मुस्लिम संघ में शामिल नहीं कर सकते। अतएव पंजाब के २३ ज़िलों में से १२ ज़िले हिन्दू संघ में निकल जायँगे और केवल ११ ज़िले मुस्लिम संघ में जायँगे। पंजाब दो टुकड़ों, मुस्लिम पंजाब और हिन्दू पंजाब, में बँट जायगा। पाकिस्तान के हिमायतियों के हाथ पूरा पंजाब भी न आयेगा। उन्हें तो २३ ज़िलों में से सिर्फ़ ११ ही ज़िलों से अपनी साम्प्रदायिक भूख बुझाने की चेष्टा करनी पड़ेगी। मुझे मालूम है कि पाकिस्तान के नक़शे में समूचा पंजाब शामिल कर लिया गया है। (नक़शे में पूरा पंजाब शामिल करने से तो काम न चलेगा। बँटवारा तो किसी उसूल ही पर होगा। वह उसूल साम्प्रदायिक बहुमत ही का उसूल हो सकता है।) पंजाब के ये १२ ज़िले आसानी से उस प्रान्त से जुदा किये जा सकते हैं।

अब बंगाल को लीजिए। बंगाल में बर्दवान और प्रेज़ीडेन्सी कमिश्नरियों में हिन्दुओं का बहुमत है। इन दोनों कमिश्नरियों में से प्रत्येक कमिश्नरी में ६-६ ज़िले हैं। इनके अलावा जलपाइगुड़ी, दार्जिलिंग और चटगाँव हिल्स में भी हिन्दुओं का माताधिक्य है। पाठकों की सुविधा के लिए हम बंगाल के उपर्युक्त दोनों कमिश्नरियों के ज़िलों के नाम नीचे दे रहे हैं—

(अ) बर्दवान कमिश्नरी में—

(१) बर्दवान, (२) बीरभूमि, (३) बाँकुड़ा, (४) मिदनापुर, (५) हुगली और (६) हावड़ा शामिल हैं।

(ब) प्रेज़ीडेन्सी कमिश्नरी के अन्तर्गत—

(१) २४ परगना, (२) कलकत्ता, (३) नदिया, (४) मुर्शिदावाद, (५) जैसोर और (६) खुलना के ज़िले हैं।

इन बारह ज़िलों में कुल मिलाकर १ करोड़ २३ लाख हिन्दू और ६० लाख मुसलमान हैं। यद्यपि कुल बंगाल की आबादी में हिन्दू केवल ४३ और मुसलमान ५५ फ़ी सदी हैं। लेकिन उपर्युक्त पश्चिमी बंगाल के बारह ज़िलों में हिन्दुओं की संख्या मुसलमानों के मुक़ाबिले में दुगनी है। जैसा हम पहले कह चुके हैं, बंगाल की जन-संख्या ५ करोड़ है और उसका रक़बा ८३ हज़ार वर्गमील है। इन बारह ज़िलों का सम्मिलित रक़बा ३२ हज़ार वर्गमील से अधिक है, और आबादी एक करोड़ २७ लाख है। इस आबादी और रक़बे को यदि हम समूचे बंगाल की आबादी और क्षेत्रफल से निकाल लें तो मुस्लिम बंगाल में सिर्फ़ १६ ज़िले रह जायँगे, जिनका रक़बा ५१ हज़ार वर्गमील और आबादी ३ करोड़ १४ लाख होगी। चटगाँव हिल्स को मुस्लिम बंगाल से अलग करना मुश्किल होगा, लेकिन जलपाईगुड़ी और दार्जिलिंग आसानी से अलग हो सकते हैं। इस तरह वर्तमान बंगाल के २८ ज़िलों में से कुल १४ ज़िले मुस्लिम बंगाल को मिलेंगे। पंजाब ही की तरह बंगाल को भी दो हिस्सों में—हिन्दू बंगाल और मुस्लिम बंगाल में—बाँटना होगा। पूर्वी बंगाल मुस्लिम बंगाल और पश्चिमी बंगाल हिन्दू बंगाल हो जायगा। जहाँ इस समय मिस्टर फ़ज़लुल हक़ बंगाल के २८ ज़िलों पर शासन कर रहे हैं, वहाँ मुस्लिम संघ की स्थापना होने पर उनके राज्य का विस्तार सिकुड़कर आधा रह जायगा। इस समय जहाँ वे ८३ हज़ार वर्गमील पर शासन कर रहे हैं, वहाँ उनके मुस्लिम बंगाल का विस्तार सिर्फ़ ४७ हज़ार वर्गमील रह जायगा। पाँच करोड़ पर उनका शासन फिर नहीं चलेगा; उनके मुस्लिम बंगाल में केवल तीन करोड़ जनता रह जायगी, जिसमें दो करोड़ १३ लाख तो मुसलमान होंगे और ८४ लाख हिन्दू। उनके हाथ से बंगाल के दो करोड़ जनता को छुटकारा मिल जायगा, जिसमें १ करोड़ २२ लाख हिन्दू और ६२ लाख मुसलमान सम्मिलित हैं। इसलिए यह कोई अचरज की बात नहीं है अगर सर सिकन्दर हयात खाँ और मियाँ फ़ज़लुल हक़ साहब पाकिस्तान की योजना के विषय में कुछ अधिक उत्साहित नहीं दिखाई देते। वे जानते हैं कि इस योजना से हिन्दुओं को नहीं, किन्तु मुसलमानों ही को अधिक से अधिक नुक़सान पहुँचेगा।

(७)

ऊपर जितना हम कह चुके हैं, आइए, अब उस सबको भारतीय पैमाने पर रखकर हम मुस्लिम और हिन्दू संघों के नक़शों को खींचें। पश्चिम में बिलोचिस्तान, सिन्ध, सीमाप्रान्त और पंजाब के बारह पश्चिमी ज़िले मुस्लिम संघ में शामिल होंगे। ६ देशी रियासतें भी इस मुस्लिम संघ के अन्तर्गत होंगी। वे देशी रियासतें हैं पूर्वी जम्मू को छोड़कर काश्मीर, कपूरथला, बहावलपुर, लासबेला, क़िलात और खैरपुर। पूर्व में बंगाल के १४ ज़िले मुस्लिम संघ में चले जायँगे। हाँ, आसाम का एक ज़िला सिल्हट भी मुस्लिम संघ का हिस्सा होगा, क्योंकि वहाँ मुसलमानों की आबादी, हिन्दुओं की आबादी की तुलना में, कहीं अधिक है। (इसमें ११ लाख हिन्दुओं के मुक़ाबिले में १६ लाख मुसलमान हैं।) इतना ही विस्तार मुस्लिम संघ का हिन्दुस्तान की वर्तमान सीमाओं के अन्दर सम्भव है। इससे अधिक विस्तार उसका होना सम्भव नहीं। मुस्लिम संघ में ब्रिटिश इंडिया का १ लाख ८५ हज़ार वर्गमील रक़बा और कुल आबादी ५ करोड़ ४१ लाख होगी, जिसमें १ करोड़ २६ लाख हिन्दू और १४ लाख सिक्ख और ३ करोड़ ५३ लाख मुसलमान होंगे। यदि ऊपर के आँकड़ों में उन ६ देशी रियासतों के भी आँकड़े जोड़ लिये जायँ जिनमें मुस्लिम बहुमत है तो कुल मिला कर मुस्लिम संघ का रक़बा ३ लाख ६७ हज़ार वर्गमील और आबादी ५ करोड़ ८६ लाख होगी। इस जनसंख्या में एक करोड़ ३० लाख हिन्दू, १४ लाख सिक्ख और ३ करोड़ ९४ लाख मुसलमान होंगे। इसके विपरीत, हिन्दू-संघ के ११ लाख ५१ हज़ार वर्गमील के रक़बे में २८ करोड़ की आबादी होगी। इन २८ करोड़ में २२ करोड़ ६३ लाख हिन्दू, ३ करोड़ ७४ लाख मुसलमान और १८ लाख सिक्ख होंगे।

यदि पाकिस्तानवालों की राय के मुताबिक़ हिन्दुस्तान हिन्दू-मुस्लिम संघों में विभाजित कर दिया जाय तो ३

करोड़ ७४ लाख मुसलमान तो हिन्दू-संघ में आ जायँगे और ३ करोड़ ९४ लाख मुस्लिम संघ में चले जायँगे। देशी रियासतों में रहनेवालों १.०६ लाख मुसलमानों में से ४१ लाख मुसलमान तो मुस्लिम संघ के शासनाधिकार में हो जायँगे और ६५ लाख मुसलमानों को हिन्दू-संघ की हुकूमत के अन्दर आना पड़ेगा। हिन्दुस्तान के प्रत्येक ७७ मुसलमानों में से ३९ मुसलमान मुस्लिम संघ की छत्रच्छाया में चैन की बंशी बजायँगे, लेकिन उन्हीं के ३८ भाइयों को हिन्दू संघ के विजातीय (!) शासन का लोहा झेलना पड़ेगा! इतना ही नहीं, किन्तु हैदराबाद, रामपुर, भूपाल, जावरा, आदि मुस्लिम रियासतों को भी हिन्दू संघ की पराधीनता स्वीकार करनी पड़ेगी। देशी रियासतों के प्रत्येक १०६ मुसलमानों में से सिर्फ़ ४१ को यह परम सौभाग्य प्राप्त होगा कि वे मूस्लिम संघ की सुखद छाया में शान्ति-पूर्वक विश्राम कर सकें; बाक़ी ६५ मुसलमानों को तो हिन्दू-संघ का हुक्म बजाना पड़ेगा। हिन्दू संघ एक ठोस राष्ट्र होगा। अमृतसर से लेकर पूर्वी बंगाल तक और उत्तरी हिमालय से लेकर कन्याकुमारी तक उसका अबाध्य, अनवरुद्ध और अखण्डित विस्तार होगा। इसके विपरीत, मुस्लिम संघ दो टुकड़ों में विभक्त हो जायगा। पूर्वी बंगाल के मुसलमानों को पश्चिमी पंजाब के मुसलमानों के साथ सहमंत्रणा और सहयोग के लिए हिन्दू-संघ के चार प्रान्तों को पार करना पड़ेगा। सैकड़ों मील की दूरी और करोड़ों आदमियों की घनी आबादी पश्चिमी पंजाब को पूर्वी बंगाल से जुदा करेगी। मुस्लिम संघ के इन दो आकाश-पाताली अंगों में कैसे सहमंत्रणा सम्भव होगी, इस गुत्थी को शायद पाकिस्तान के उत्साहित समर्थकों ने सुलझाने की चेष्टा नहीं की। इसी लिए तो मैं कहता हूँ कि मुस्लिम संघ की योजना अव्यावहारिक, राजनीतिक दृष्टि से सर्वथा असम्भव और नैतिक दृष्टि से हेय है। मुसलमानों का इससे हित सम्भव नहीं, देश का इससे कल्याण नहीं, लेकिन लोगों को अपनी-अपनी सम्मति प्रकट करने का इस समय अधिकार है, देश को अंग-भंग करने के प्रस्ताव को पेश करने की उन्हें आज़ादी है। किन्तु जो लोग इस तरह की योजना तैयार करते हैं उनको चाहिए कि वे अपने सामने कम से कम हिन्दुस्तान के नक़्शे और इण्डियन इयरबुक को कभी कभी देख लेने का कष्ट बर्दाश्त किया करें। यदि वे ऐसा करेंगे तो मैं उन्हें विश्वास दिलाता हूँ कि उनकी योजना न तो इतनी अंड-बंड होगी और न उनके प्रस्ताव इतने उपहासजनक होंगे, जितनी अंड-बंड पाकिस्तान की योजना है और जितने निःसार इस समय के उनके प्रस्ताव हैं।

मैंने जान-बूझकर यहाँ पर उन प्रस्तावों की ओर संकेत नहीं किया जिनकी तरफ़ कभी कभी दबी ज़बान से हमारे मुस्लिम दोस्त इशारा किया करते हैं। इस बात के जवाब में कि मुस्लिम संघ की स्थापना के बाद भी ३ करोड़ ७४ लाख मुसलमान, यानी हिन्दुस्तान के मुसलमानों का ४४ प्रतिशत हिस्सा हिन्दू-संघ की हुकूमत में रहेगा, वे यह कहा करते हैं कि कोई मुज़ायक़ा नहीं, हम इन तीन करोड़ ७४ लाख मुसलमानों को मुस्लिम संघ में ले आयँगे और मुस्लिम संघ में जो हिन्दू होंगे उन्हें हिन्दू-संघ में भेज देंगे। वे यह भूल जाते हैं कि मुस्लिम संघ में सिर्फ़ एक करोड़ ४२ लाख हिन्दू रहेंगे और हिन्दू संघ में मुसलमान होंगे ३ करोड़ ७४ लाख। जिन ३ करोड़ ७४ लाख को हिन्दुस्तान के विभिन्न प्रान्तों से उखाड़कर मुस्लिम शासित प्रान्तों में ले जाने का ख्वाब हमारे लीगी भाई देख रहे हैं उनसे पूछ देखिए कि क्या वे हिजरत करने के लिए किसी शर्त पर तैयार हैं। जिस जगह को १८ हिन्दू खाली करेंगे, उसी जगह में ३७ मुसलमानों को बसाना साम्पत्तिक दृष्टि से असम्भव है, लेकिन स्थान विशेषों के साथ हमारे जो सांस्कृतिक सम्बन्ध होते हैं उनकी अवहेलना करना पल्ले दर्जे का पागलपन होगा। सदियों से या युगों से जो लोग जिस स्थान में रहते चले आये हैं उन जगहों को छोड़ने के लिए कोई भी आसानी से तैयार न होगा। जो लोग मुसलमानों की हिजरत का स्वप्न देख रहे हैं वे यह भूल जाते हैं कि बिहिश्त भी जाने के लिए इस दुनिया का छोड़ना आम आदमियों के लिए परम दुखदायी होता है। फिर यह समझना कि परिचित स्थान को छोड़कर अपरिचित स्थान में बसने के लिए हिन्दुस्तान के ३ करोड़ ७४ लाख मुसलमान तैयार हो जायँगे जो स्वभाव से पुरातनपुजारी हैं, महज़ ख़याली पोलाव है। हाँ, खिलाफ़त के ज़माने की हिजरत की कहानी को भी इस अवसर पर हमें न भूलना चाहिए। लेकिन जो घाव अब पुर चुके हैं उनको फिर से खरोचना उचित न होगा।

डच जहाज़ का भगोड़ा

लेखक, श्रीयुत भारतीय, एम० ए०

सन् १९१४ की बात है।

× × ×

लड़ाई छिड़ गई—जर्मनी और अस्ट्रिया हंगरी ने फ्रांस और रूस पर धावा कर दिया !

× × ×

कनाडा के पत्रों में जैसे यह समाचार छपा लोग भयभीत होकर अपने अपने देश लौटने के लिए आतुर हो उठे। बन्दरगाह पर विदेशियों की भीड़ योरप लौटने के लिए जहाजों के टिकट लेने के लिए धक्कमधक्का करने लगी। इसमें अधिक संख्या जर्मन लोगों की थी, क्योंकि उन्हें निश्चय था कि अब इंग्लैंड को लड़ाई के मैदान में आने में देर नहीं। ऐसी दशा में उनका कनाडा की भूमि में रहना खतरे से खाली नहीं।

बन्दरगाह पर जहाजों की कमी थी। केवल एक डच व्यापारी जहाज शीघ्र लंगर उठाने की तैयारी में था। उसका कप्तान उतनी जल्दी में न था, क्योंकि उसे निश्चय था कि उसकी सरकार अपनी तटस्थता न छोड़ेगी, चाहे संसार भर के राष्ट्र लड़ते रहें, उसके जहाज को कोई नहीं रोक सकता। जर्मनी पहुँचने के लिए आतुर मुसाफ़िर जब उससे जल्दी चलने को कहते तब कप्तान रुखाई से उत्तर देता "नहीं, बाबा मुझे माफ़ करो। जर्मन भगोड़ों के लिए मैं अपने जहाज को खतरे में नहीं डाल सकता!" कप्तान ने रास्ते में जंगी जहाजों-द्वारा पकड़े जाने के डर से अपने जहाज़ पर एक भी जर्मन यात्री को न लिया। कितने ही लोग गिड़गिड़ाते ही रह गये।

केवल तीन घंटे की समुद्र-यात्रा के पश्चात् कप्तान ने अपने जहाज़ के मल्लाहों को क़वायद के लिए डेक पर बुलाया। घंटा बजी। क़वायद की तैयारी होने लगी। इसी बीच लोगों ने देखा कि एक किनारे कन्वेस के पर्दों के बीच एक नवयुवक छिपा बैठा है।

मल्लाहों ने पकड़ कर उसे कप्तान के सामने पेश किया। निडर, निर्लज्ज, उस नवयुवक ने कप्तान की गालियाँ चुपचाप सह लीं। अन्त में क्रुद्ध कप्तान ने गरज कर कहा—"तुम्हारे जैसों का केवल एक ही इलाज है—मैं तुम्हें उठाकर समुद्र में फेंक दूंगा। तुम समझते हो, मैं तुम्हें मुफ्त में योरप पहुँचा दूंगा। तुम कौन हो ? आखिर तुम जहाज पर पहुँचे कैसे ?"

उस नवयुवक ने कोई उत्तर न दिया। अन्त में कप्तान को पिघलता हुआ न देखकर उस बीस बरस के युवक ने कहा—"कप्तान साहब, मैं आपसे एकान्त में कुछ कहना चाहता हूँ। क्या आप मुझे अपने केबिन में मिलने का मौक़ा दे सकेंगे ?"

गरजते और क्रोध से उबलते हुए कप्तान ने अन्त में कहा—"चल मेरे कमरे में। सुनें भी, तुझे क्या कहना है।"

कमरे में पहुँचते ही कप्तान ने झिड़क कर पूछा—"बोलो न, क्या कहना है। आखिर तुम मेरे जहाज़ पर कैसे पहुँचे ?"

युवक कहने लगा—"मेरे पिता जर्मनी में कर्नल के पद पर हैं। मेरे बाबा सिपाही थे। मेरे चाचा जनरल हैं। मेरे पर बाबा ब्लूचर के साथ लड़े थे, जिन्होंने नैपोलियन को हराया था। मेरे लकड़बाबा..."

"मैं यह सब पँवारा सुनकर क्या करूँगा !" कप्तान ने झल्ला कर पूछा—"मेरी बला से तुम्हारा खानदान भर फ़ौजी रहा हो। यह तो कहो, तुम मेरे जहाज़ पर छि[illegible] क्या कर रहे थे।"

"कृपा कर सुनें कप्तान महोदय ! जर्मनी ने फ्रांस और रूस से लड़ाई छेड़ दी है। गत अर्द्ध शताब्दी से जर्मनी ने शायद ही किसी युद्ध में भाग लिया हो, जिसमें रिवेन्ट्राप वंशवालों ने भाग न लिया हो। मैं सो हेतु अपने देश पहुँचना चाहता हूँ। कृपा कर मुझे वहाँ पहुँचा दें।"

कप्तान चिन्ता में पड़ गया। नवयुवक की हिम्मत

और देशभक्ति ने उसे प्रभावित कर दिया था। इस उम्र में यह उत्साह! कप्तान ने उस युवक को उसके देश तक पहुँचा देने का संकल्प कर लिया। और इधर अँगरेज़ों ने भी जर्मनी से युद्ध छेड़ दिया।

मार्ग में अँगरेज़ी जंगी जहाज़ों ने उसके जहाज़ की तलाशी ली। अच्छी तरह पूछ-ताँछ की, पर उस डच जहाज़ पर कोई भी जर्मन न पाकर वे लोग चुपचाप चले गये। आखिर रिवेन्ट्राप कहाँ छिप गया? कप्तान चिन्तित हो उठा। बहुत तलाश करने पर कोयले की कोठरी से एक धीमी आवाज़ आई, जैसे कोई बोझ से दबा कराह रहा हो। मल्लाहों ने कोयले के ढेर से खोद कर युवक रिवेन्ट्राप को मूर्छित पर जीवित दशा में बाहर निकाला। पकड़े जाने के भय से तलाशी के समय रिवेन्ट्राप कोयले के ढेर में सुरंग बना कर जा छिपा था। उसकी आयु शेष थी। वह बच गया। उसे भविष्य में जर्मनी का वैदेशिक मंत्री होना था।

१४, अगस्त १९१४ के प्रातःकाल के समय जहाज़ कुशल-पूर्वक हालैंड के बन्दरगाह में जा पहुँचा। जोकिम-वॉन-रिवेन्ट्राप आखिर अपने देश के निकट पहुँच गया। अब उसके मार्ग में कोई रुकावट नहीं थी।

हालैंड की सीमा पार कर ट्रेन जैसे ही जर्मन-सीमा में घुसी, पुलिस के सिपाहियों ने उसे घेर लिया। मुसाफ़िरों की तलाशी हो रही थी। रिवेन्ट्राप के लिए यह असह्य हो उठा।

"आख़िर यह सब क्यों?" उसने बिगड़ कर पूछा—"मैं तो कनाडा से भागा हुआ अपने देश की सहायता करने आ रहा हूँ और यहाँ मुझ पर संदेह करके मेरा स्वागत हो रहा है, मानों मैं शत्रु हूँ—भगोड़ा हूँ!"

तलाशी के चार्ज में जो अफ़सर था उसने समझाया—"भाई, यह युद्ध का समय है। कितने ही जासूस भी तो सीमा पार घुस आते हैं।"

रिवन्ट्राप से प्रमाण माँगा गया। उसने हालैंड में रहने-वाले जर्मन कौन्सिल का सार्टिफ़िकेट दिखा दिया।

उससे प्रश्न किया गया—"कितनी भाषायें जानते हो?" उसने उत्तर दिया—"अँगरेज़ी, फ़्रांसीसी, स्पेनिश, रूसी...."

"और कहाँ-कहाँ घूम चुके हो?"
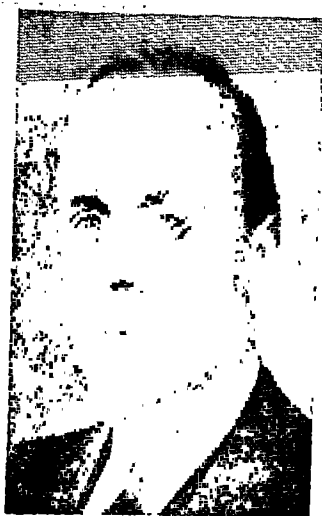
[वान रिवेन्ट्राप, जर्मनी के वैदेशिक मंत्री]

"फ़्रांस, इँगलैंड और विशेषकर कनाडा।"

अफ़सर उसे एकान्त में ले गया। उसने कहा—"देश को तुम्हारे जैसे युवकों की ज़रूरत है, जो कई भाषायें जानते हों, और जिन्हें अन्य देशों का अनुभव हो। क्या तुम सिपाही होना चाहते हो?"

"हाँ, इच्छा तो यही है।"

—"अच्छी बात है। पर तुम्हें देश के बाहर लड़ना होगा।"

"यह कैसी बात? हमारे देशवासी तो खाइयों में लड़ रहे हैं और मैं विदेश में क्या करूँगा?"

अफ़सर ने समझाया—"ख़ैर, यह आगे देखा जायगा। पर मेरी राय में तुम देश के बाहर अच्छी सेवा कर सकते हो।"

"नहीं! नहीं!" रिवेन्ट्राप ने उत्तर दिया—

"मैं सेना में भर्ती होने के लिए आया हूँ। मैं अपने वंश की परम्परा के विरुद्ध कार्य नहीं करूँगा। मैं जासूस नहीं बनूँगा!"

अफ़सर ने मुस्कराकर समझाया—"देशसेवा के कई तरीक़े हैं, और युद्ध के समय केवल देश का ध्यान रखना उचित है—जिस प्रकार भी उसे लाभ पहुँचे।"

घंटे भर के बाद रिवेन्ट्राप बर्लिन पहुँचा। नगर युद्ध

की तैयारी में दिखाई पड़ता था। साधारण वस्त्रों में नवयुवक तमाशे की चीज़ समझे जाते थे—केवल युद्ध की पोशाक में युवकों का सम्मान होता था। केवल २४ घंटे के बाद रिवेन्ट्राप सेना में भर्ती हो गया। उसे जर्मनी की प्रसिद्ध सेना—'डेथस हेड हुस्सार्स' में स्थान मिला था।

× × ×

सन् १९१५ के दिसम्बर की घटना है। बाईस वर्ष का एक नवयुवक जर्मन वाशिंगटन नगर के जर्मन-राजदूत से मिलने के लिए आया है। उसका शरीर कृश और रंग सफ़ेद है। उसकी आँखों के चारों तरफ़ झाँई पड़ी है। देखने में वह कुछ थका-सा लगता है। वह एक पखवारे में जर्मन-पनडुब्बी नाव में यात्रा करके अमरीका पहुँचा है। आख़िर ऐसी लम्बी और गुप्त यात्रा करके आने का प्रयोजन क्या है? योरपीय महायुद्ध का यह द्वितीय वर्ष है। जर्मनी के माल और जहाज़ों की रोक अँगरेज़ों ने लगा रखी है। ऐसी दशा में केवल ग़ोताख़ोर सबमेरीन द्वारा ही और वह भी ज़ोखिम उठा कर जर्मनी से अमरीका पहुँचना हो सकता है।

जर्मन-राजदूत के अर्दली ने सूचना दी, "सरकार, लेफ़्टिनेन्ट वान रिवेन्ट्राप आपसे मिलने की आज्ञा चाहते हैं।" राजदूत के साथ जर्मन जंगी सहकारी वान पेपन भी बैठे हुए थे।

उस युवक का स्वागत करते हुए वान पेपन ने कहा—"प्रियवर, तुम्हें देखकर बड़ी प्रसन्नता हुई। इस समय यहाँ ऐसे ही नवयुवकों की जरूरत है, जो मातृभूमि के लिए कुछ भी न उठा रखने के लिए तत्पर रहें।"

वान पेपन उस समय अमरीका में एक आवश्यक जंगी काम के लिए जर्मन-सरकार-द्वारा भेजे गये थे और वह आवश्यक कार्य महाभयानक कार्य था। बात यह थी कि जर्मन-सरकार ने यह भाँप लिया था कि कभी-न-कभी इस युद्ध में अमरीका को आना ही पड़ेगा और उसी आशंका में सरकार ने वान पेपन के साथ रिवेन्ट्राप को वहाँ काम करने के लिए नियुक्त किया था। इसका काम क्या था?

वान पेपन ने अपने कमरे में ले जाकर रिवेन्ट्राप से कहना आरम्भ किया—"व्यर्थ समय गँवाने का अवसर नहीं है। बात यह है कि हम लोगों को यहाँ जो करना है वह....."

रिवेन्ट्राप घबराकर कहने लगा—"उफ़! परन्तु यह बड़ा भयानक काम है। मैं सब कुछ करने को तैयार हूँ, परन्तु जासूसी का काम मैं नहीं कर सकता।"

वान पेपन ने समझाया—देश के लिए सब क्षम्य है। मैं खुद यह सब अभी तक यहाँ कर रहा था। अब मेरा यहाँ रहना असम्भव है। अमरीका की सरकार को हम लोगों पर सन्देह हो गया है। उसने हमारे राजदूत से हमें (पेपन और कप्तान बाय-एड) को यहाँ से रवाना कर देने की सलाह दी है। सम्भव है, मैं कल ही यहाँ से रवाना कर दिया जाऊँ। ऐसी दशा में यदि तुम इस कार्य को सँभालते नहीं तो देश के हित....."

वान रिवेन्ट्राप ने गंभीर होकर कहा—"यदि इसका तनिक भी भान मुझे यहाँ आने से पहले होता तो मैं कभी यहाँ आना स्वीकार न करता।"

परन्तु अन्त में वान रिवेन्ट्राप ने संयुक्त-राष्ट्र में रहकर देश-सेवा का भार अपने ऊपर लिया। २१ दिसम्बर, १९१५ को वान पेपन को विवश होकर संयुक्त-राष्ट्र छोड़ना पड़ा। यात्रा में उनका एक बाक्स लापता हो गया, और उस बाक्स में बहुत-से रहस्य-भरे काग़ज़ थे। उस बाक्स को उड़ानेवाले थे अमरीका के जासूसी विभाग के अफ़सर।

इस प्रकार प्राप्त किये गये पत्रों से सारे रहस्य का पता चल गया और अमरीका में काम करनेवाले समस्त जर्मन गुप्तचरों की पकड़-धकड़ आरम्भ हो गई। संयुक्त-राष्ट्र ने जर्मनी के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी। जर्मन-राजदूत वापस बुला लिया गया। षड्यंत्रकारियों के प्रधान कार्य-कर्ताओं में रिटलिन जेल भेज दिया गया। ट्रिबिच लिंकन की भी वही गति हुई। परन्तु रिवेन्ट्राप का पता लोगों को नहीं लगा। वह कहाँ गया?

रिवेन्ट्राप न जाने कैसे जर्मनी पहुँच गया। वहाँ पहुँचते ही उसे तुर्की से कमाण्डर वॉन पेपन का आदेश मिला कि कुस्तुन्तुनिया पहुँचो। रिवेन्ट्राप आश्चर्य में पड़ गया कि वॉन पेपन तुर्की कैसे पहुँचे!

अमेरिका से लौटने पर वॉन पेपन फ्रांस की सरहद पर युद्ध में भेज दिया गया। वहाँ खाइयों में बैठे बैठे उसने एक बड़े षड्यन्त्र की स्कीम तैयार करके अधिकारियों के पास भेजी। उसे पढ़ कर वे प्रभावित हो गये और उन्होंने वॉन पेपन को चतुर्थ तुर्की-सेना का सहकारी बना कर

कुस्तुनुनियाँ भेज दिया। उस अवसर पर स्वयं क़ैसर ने उसे 'रेड इगल' की उपाधि प्रदान की।

वॉन पेपन ने सोचा था कि समस्त मुस्लिम राष्ट्रों को संगठित करके मित्रराष्ट्रों के विरुद्ध उभाड़ा जाय और स्वेज़ नहर का मार्ग कंटकमय कर दिया जाय। उसकी इच्छा थी कि स्वेज़-नहर एकदम बारूद से उड़ा दी जाय और अँगरेज़ों के उपनिवेशों में विद्रोह करा दिया जाय। इन भीषण आयोजनों का भार वॉन पेपन ने अपने ऊपर लिया था और इस कार्य में अपने सहयोगियों को नियुक्त करने की उसे पूरी स्वाधीनता सरकार ने दे रक्खी थी। यही कारण था कि उसने अपने विश्वासपात्र सहयोगी रिबेन्ट्राप को बुला भेजा था।

रिबेन्ट्राप आज्ञा पाते ही तुरन्त तुर्की के लिए रवाना हो गया। कुस्तुन्तुनियाँ में होटेल पेरा में उसने वॉन पेपन से भेंट की। दोनों ने फिर वहाँ रहकर सारे षड्यन्त्र का संचालन आरम्भ किया। परन्तु अँगरेज़ों ने बड़ी कुशलता से उनके सब रहस्यों का पता लगा लिया और उनकी सेना जेरुसलम में घेर कर वॉन पेपन के लिए जाल डाला। यदि क्षण भर का भी विलम्ब हो जाता तो वॉन पेपन क़ैदी हो गया होता! परन्तु वह बाल बाल बच गया।

तीन बजे रात्रि को एक नवयुवक बिना रोक-टोक उसके शयनागार में जा घुसा। उसने उतावली से सोते हुए वॉन पेपन को झकझोर कर जगाया—

"ईश्वर के लिए भागो!"

नींद में माता वॉन पेपन कुछ समझ न सका। उसके सामने स्वयं रिबेन्ट्राप खड़ा उसे भागने के लिए आग्रह कर रहा था। उसने पूछा—"आखिर बात क्या है?"

"कुछ नहीं अँगरेज़ों की सेना नगर में आ पहुँची है। वह तुम्हारे पीछे है। क्षण भर विलम्ब करोगे तो बन्दी होना पड़ेगा। उठो!"

"कपड़े तो ले लूँ—कम से कम अपने गुप्त पत्र आदि तो जला दूँ।"

"नहीं! नहीं! अब समय नहीं है। चूके तो सर्वनाश हो जायगा।" रिबेन्ट्राप ने अनुरोध किया।

"कम से कम कपड़े तो पहन लूँ।" वॉन पेपन ने कहा।

"नहीं, बिलकुल नहीं। बस मेरे साथ चले चलो। समय नहीं है।"

लाचार वॉन पेपन रिबेन्ट्राप के साथ शयनागार के वस्त्र पहने चल पड़ा। उनके प्रस्थान के कुछ ही देर बाद अँगरेज़ी सेना वहाँ आ पहुँची और हाथ मल कर रह गई।

दो दिन पश्चात् दोनों मित्र आराम से मेल में बैठे हुए बर्लिन की यात्रा कर रहे थे। वान पेपन ने कृतज्ञता-भरे शब्दों में कहा,—

"रिबेन्ट्राप, तुमने मुझे बचा लिया। नहीं तो निश्चय मैं आज अँगरेज़ों का बन्दी होता।" कुछ देर चुप रह कर उसने फिर कहा—"परन्तु स्मरण रक्खो, वान पेपन तुम्हारे इस ऋण को बहुत शीघ्र अदा कर देगा। ऋणी रहने की उसकी आदत नहीं।"

इसके पश्चात् जर्मनी की दशा बिगड़ती गई। क़ैसर की नीति के विरुद्ध लोगों के भाव उभड़ने लगे। युद्ध की कठिनाइयों और मित्रराष्ट्रों-द्वारा मालबन्दी के कारण वहाँ के लोग बहुत कष्ट पाने लगे। परिणाम यह हुआ कि अब खुल्लमखुल्ला लोग युद्ध का विरोध करने लगे। अन्त में युद्ध का अन्त करना पड़ा और क़ैसर को भाग कर हालैंड में शरण लेनी पड़ी। मित्र-राष्ट्रों से सुलह करने के लिए रिबेन्ट्राप की नियुक्ति हुई। सुलह हो गई। वारसाइल के संधि-पत्र पर हस्ताक्षर हो गये। जर्मनी जर्जरित, दलित और अपंग हो गया।

× × ×

युद्ध के बाद जर्मनी की बुरी दशा हो रही थी। सारा व्यापार नष्ट भ्रष्ट हो गया था। चार वर्ष के युद्ध से ऊबे हुए जर्मन लोग सुख से खाने-पीने और मौज उड़ाने के लिए तरस रहे थे। पुरानी सरकार की खिल्ली उड़ाई जा रही थी। उस युग के बड़े लोगों का काम केवल पार्टियों में शरीक होना, उद्यान-यात्राओं का आयोजन करना और रात भर नाच रंग में समय बिताना रह गया था। रिबेन्ट्राप इस फ़न में भी उस्ताद था। कुलीन और प्राचीन घराने का वह था ही। वह युवा था, सुन्दर था, ललित व्यवहार में में कुशल भी वह था। अतः उसे ऐसे समारोहों में ान पार्ट करते विलम्ब न लगा। देखते-देखते वह सबका प्रिय-पात्र बन गया। इसी काल में उसने एक बड़े अमीर पिता

की पुत्री का पाणिग्रहण किया। इस सफलता की भी एक मनोरंजक कहानी है।

एक दिन की बात है। किसी जलसे में जर्मनी के सबसे बड़े शम्पेन मदिरा के कारखाने के मालिक ओटो हेंकिल की एकमात्र पुत्री ने एक सुन्दर, सुगठित शरीर वाले नवयुवक को देखा। वह उसकी छवि पर मोहित हो गई। उसने मित्रों से उस नवयुवक का परिचय पूछा। ज्ञात हुआ कि इस उच्च घराने के युवक का नाम जोकिन वान रिबेन्ट्राप है और इन लोगों ने उसकी सैनिक सेवाओं का परिचय दिया। परन्तु साथ ही साथ लोगों ने यह भी बतलाया कि देश के अन्य नवयुवकों की तरह वह भी इस समय बेकार है।

इसके कुछ ही समय पश्चात् एक नौकर रिबेन्ट्राप के पास एक कार्ड लेकर पहुँचा। उसमें केवल एक शब्द लिखा था—'हाउसर'। रिबेन्ट्राप तुरन्त उससे मिलने पहुँचा। उसने कहा—"मुझे दुःख है मित्र, इस समय मैं कुछ नहीं कर सकता। इस जलसे के लिए शम्पेन का आर्डर दूसरे को दिया जा चुका है।"

"परन्तु इसके लिए मैं इस समय तुम्हारे पास नहीं आया हूँ कप्तान!"

"फिर?"

क्या एक सहस्र डालर मासिक कमाना पसन्द न करोगे? एक बहुत आसान काम है, जो आप अच्छी तरह कर सकते हैं।" हाउसर ने समझाया—"बात यह है, मैं अब शम्पेन की एजेन्सी से दूर होना चाहता हूँ। परन्तु कोई ऐसा आदमी नहीं मिल रहा है जिसके सुपुर्द यह काम निश्चिन्तता-पूर्वक कर सकूँ। इसलिए तुम्हारे पास आया हूँ।"

"परन्तु मैं तो केवल शम्पेन पीना जानता हूँ, बेचना नहीं।" रिबेन्ट्राप ने उत्तर दिया।

"तभी तो यह काम तुम्हीं कर सकते हो।"

"परन्तु किसने तुम्हें यह सुझाया कि तुम मेरे पास आओ।" रिबेन्ट्राप ने पूछा।

"जिसने सुझाया है, मैं उसका नाम इस समय नहीं बतला सकता। परन्तु मैं जानता हूँ कि तुमसे अच्छा यह काम और कोई दूसरा नहीं कर सकता।" हाउसर ने आग्रह किया।

अन्त में रिबेन्ट्राप ने शम्पेन बेचने का भार अपने ऊपर ले लिया। दूसरे दिन वह हाउसर के साथ जर्मन-शम्पेन के मालिक करोड़पति हेंकिल से मिलने के लिए रवाना हुआ। इसके पश्चात् रिबेन्ट्राप शम्पेन की तारीफ़ करता फिरता। उसने इसकी बिक्री बढ़ाने के लिए फ्रांस की यात्रा की। यह उसी का काम था कि जहाँ फ्रांस की शम्पेन जर्मनी में आती थी, वहाँ उलटे फ्रांस से जर्मन-शम्पेन की माँग आने लगी। कप्तान रिबेन्ट्राप अपना राजनैतिक जीवन छोड़ कर शराबों का एजेन्ट बन गया। अब वह केवल अपने व्यापार में मग्न रहने लगा। उसने एक दिन स्वयं प्रकट किया—"मेरा यह तीसरा जीवन है। पहले मैं मारा मारा फिरा। दूसरे में सैनिक था। यह मेरा तीसरा जीवन है। बैंक में दिन पर दिन अपनी बढ़ती हुई पूँजी को देखकर मुझे अब जो प्रसन्नता होती है वह सुख मुझे पहले कल्पनातीत था!"

जिस समय कप्तान रिबेन्ट्राप अपने व्यवसाय में तल्लीन था उस समय उसके देश की बुरी दशा हो रही थी। महा-युद्ध के समाप्त हुए केवल १८ मास हुए थे। देश नेता-रहित भटका फिरता था। नित्य झगड़े फ़साद हो रहे थे। दल-बन्दियाँ हो रही थीं। आपस में द्वेष-विद्रोह, लड़ाई, मार-काट यही देखने में आ रहा था। ऐसे समय में रिबेन्ट्राप के कई साथियों ने उसे अपने दल में घसीटना चाहा, पर वह दूर ही रहा। इसी बीच उसने एक बार हिटलर और उसके पुराने साथी ठिकन को भागने में सहायता की, जिस पर प्रसन्न होकर हिटलर ने कहा था—"आपका यह ऋण मैं कभी न भूलूँगा। किसी समय मैं धन्यवाद के अतिरिक्त किसी अन्य प्रकार से इसे चुकाऊँगा।"

जुलाई १९२० में रिबेन्ट्राप का विवाह हेंकिल की एक-मात्र उत्तराधिकारिणी पुत्री से होना निश्चित हुआ। विवाह की घोषणा को छपा देखकर लोग दंग रह गये। इस करोड़पति की पुत्री के पाणिग्रहण के लिए सैकड़ों अमीर घराने के लड़के लालायित थे।

विवाह बड़ी धूमधाम से हुआ। बड़ी-बड़ी दावतें हुईं। इसी अवसर पर हाउसर ने रिबेन्ट्राप को एकान्त में ले जाकर कहा—"क्या तुम जानना चाहते हो, किसने मुझे शम्पेन की बिक्री का भार देने की राय दी थी?"

"मुझे भी तो।" उत्सुक रिबेन्ट्राप ने कहा।

"ज़रा अपनी नववधू को आने दो।" हाउसर यह

कह ही रहा था कि वह आ पहुँची। उसने स्वयं स्वीकार किया—"सच बात तो यह है जोकिम, मैंने ही उन्हें तुम्हारे पास भेजा था। और इसी लिए कि तुम मुझे मिल सको।" मारे खुशी के उसकी आँखों में यह कहते हुए आँसू झलक उठे थे।

रिवेन्ट्राप अब सुखी था—अमीर था। उसे देश के टंटों-बखेड़ों में पड़ने से क्या सरोकार? परन्तु नियति को कौन जान सकता है।

रिवेन्ट्राप आराम से अपने सुसज्जित कमरे में बैठा था। इसी बीच उसके अर्दली ने सूचना दी कि कोई आया है, और उसके सामने उसने चाँदी की तश्तरी पर एक कार्ड पेश किया। उस पर लिखा था—रुडाल्फ़ हेस। क्षण भर के लिए रिवेन्ट्राप को सोचना पड़ा। तुरन्त स्मृति जाग्रत हुई और वह भुजायें फैलाकर अपने प्रिय मित्र का स्वागत करने के लिए बाहर निकल आया। दोनों गले मिले—"रुडो! प्रिय मित्र! मुद्दतों बाद तुम्हारे दर्शन हुए।"

रुडाल्फ़ हेस रिवेन्ट्राप का युद्ध-काल का साथी था। दोनों साथ साथ खन्दकों में लड़े थे। दोनों में अभिन्न मैत्री हो गई थी। आज दस वर्ष के बाद दोनों मिले थे। इस बीच रिवेन्ट्राप लक्ष्मी का प्रिय-पात्र हो गया था। और रुडल्फ़? वह युद्ध के बाद मारा मारा फिरा। अन्त में उसे हिटलर का साथ मिल गया। और अब वह हिटलर का शरीररक्षक था, उसका प्रियपात्र था।

रुडल्फ़ हेस अपने पुराने साथी रिवेन्ट्राप से मिलने पहुँचा था। दोनों पुरानी बातों का स्मरण कर स्मृति ताजी कर रहे थे। एकाएक हेस ने अपनी घड़ी देखी और उठ खड़ा हुआ—"अरे राम! फुहरर मेरे लिए प्रतीक्षा करते होंगे। अब समय नहीं है। परन्तु रिवेन्ट्राप! मैं मतलब की बात कहता हूँ।"

उसने संक्षेप में समझाया कि फुहरर—अर्थात् हिटलर को धन की आवश्यकता है। हमारे दल के हाथ इस समय बहुत तंग हैं। यह नहीं कि हमारे सहायक नहीं हैं। ईश्वर की दया से बहुत से विदेशीय धनी व्यक्ति हमारी सहायता कर रहे हैं, पर उनके ही सहारे हमें रहना उचित नहीं।"

रिवेन्ट्राप ने रोक कर कहा—"अगर इतना ही है तो मैं तैयार हूँ। लिख लो। एक हजार मार्क तक—"

"सुनो भी। मैं यह नहीं चाहता। बात यह है कि फुहरर चाहते हैं कि तुम हमारे दल के अर्थ-मन्त्री का पद ग्रहण करो।"

"मैं?" आश्चर्य से चकित रिवेन्ट्राप ने कहा—"मैं शराब की बिक्री करनेवाला। मुझे अर्थ-संचालन से सरोकार? तुम भूल करते हो।"

"नहीं जी, यह बात नहीं है। सच तो यह है कि तुम्हारी सहायता से हमें अपने देश के धनी लोगों की सहानुभूति प्राप्त हो सकती है। उदाहरण के लिए तुम्हारे श्वशुर ही हैं। उसी तरह..."

क्षण भर के लिए रिवेन्ट्राप विचारों में पड़ गया। फिर उसने उत्तर दिया—"अच्छी बात है। जाकर हिटलर से कह देना। उनकी सेवा के लिए मैं तैयार हूँ।"

हेस प्रसन्नता से उछल पड़ा। उसने कहा—"फुहरर इस समय बर्लिन में ही हैं। और मैं कल संध्या को उन्हें तुम्हारे यहाँ ले आऊँगा।"

दूसरे दिन रुडाल्फ़ हिटलर के साथ रिवेन्ट्राप के घर पहुँचा। घंटों बातें हुईं। और अन्त में रिवेन्ट्राप हिटलर का सहकारी बन गया।

जोकिम वान रिवेन्ट्राप नेशनल सोशलिस्ट दल का राजदूत बना दिया गया। दल के कोष में धन की सरिता आ मिली। सन् १९३० में हिटलर के हाथों में राज्य-शासन आने के तीन वर्ष पहले रिवेन्ट्राप ने योरप के प्रधान नगरों की यात्रा की। बहाना यह था कि वह अपने व्यवसाय के लिए गया है, पर इसी बहाने वह टोह ले रहा था कि हिटलर के विषय में लोगों की क्या भावनायें हैं। जब वह लौट कर हिटलर से मिला और उसने सारी बातें उसे बतलाईं तब फुहरर ने उसकी पीठ ठोंकते हुए कहा—"शाबाश! प्रिय मित्र! मैं आशा करता हूँ कि बहुत शीघ्र ही हम लोगों को अपने आसपास के देशों से सम्बन्ध दृढ़ करना होगा।"

इसके पश्चात् जर्मन देश का भाग्यविधान होने लगा। ३१ जुलाई, १९३० को नया चुनाव हुआ। हिटलर के पक्ष की भारी जीत हुई। परन्तु हिन्डनबर्ग हिटलर को चांसलर नहीं बनाना चाहता था और हिटलर इससे नीचे का कोई पद ग्रहण करना नहीं चाहता था। रस्साकशी आरम्भ हुई। हिटलर के दल पर विपत्तियाँ आ पड़ीं। पैसों की कमी हो रही थी। हिन्डेनबर्ग की मदद स्वयं

वॉन पेपन कर रहा था। वही हिटलर का विरोध कर रहा था। उसने हिटलर के दल के एक प्रधान कार्यकर्ता—ग्रिगर स्ट्रेसर—को फोड़ लिया। उसने उसे चांसलर के पद के लिए खड़ा करना चाहा। हिटलर की पार्टी में फूट के चिन्ह दिखाई दिये। हिटलर इसके लिए तैयार न था। उसने स्ट्रेसर के पास आदमी भेजा कि उससे बातें करके मामला तय किया जाय। पर उसका पता ही न था।

ग्रिगर स्ट्रेसर के लापता होने पर हिटलर बड़े संकट में पड़ गया कि अब क्या हो। वह चिन्तासागर में डूब उतरा रहा था कि इसी बीच रिवेन्ट्राप उसके कमरे में दाखिल हुआ। उसने हँसते हुए कहा—"आखिर यह सब परेशानी ही क्यों? यह तो अच्छा ही हुआ। अब तो फ़ुहरर तुम्हारे चांसलर होने में अड़चन नहीं रही।" हिटलर की समझ में कोई बात न आई। उसने पूछा—"यह सब कैसे हुआ?"

रिवेन्ट्राप ने सारी कथा कह सुनाई। जैसे ही उसे पता चला कि वॉन पेपन ही हिन्डनबर्ग को उभाड़ रहा है वह तुरन्त उसके पास पहुँचा। इसके पहले कि वह वॉन पेपन से बातचीत करे उसने स्ट्रेसर से मिलना आवश्यक समझा। घंटे भर की बात-चीत में उसने उस पर न जाने क्या जादू कर दिया। स्ट्रेसर घबरा कर तुरन्त बर्लिन छोड़कर भाग खड़ा हुआ। भगोड़े की तरह उसने भागकर इटली के एक दूरस्थ गाँव में शरण ली। स्ट्रेसर को बर्लिन से भगाकर रिवेन्ट्राप वान पेपन के पास पहुँचा। उससे उसने बड़े शान्तभाव से कहा—"तुम्हारी बाजी तो खाली जायगी। पहले तो स्ट्रेसर जैसे निकम्मे आदमी को तुमने हिटलर के विरुद्ध खड़ा करना चाहा जिसका पता ही नहीं। दूसरे..."

रिवन्ट्राप ने वान पेपन को समझा बुझा दिया। उसके २४ घंटे पश्चात् हर हिटलर जर्मनी का चांसलर नियुक्त हो गया। हिटलर ने इस सहायता का बदला तुरन्त दिया। उसने अधिकार हाथ में आते ही सम्मेन के वारे कर उठा दिये।

इसके आगे रिवेन्ट्राप का अभ्युदय नाज़ी शक्ति का अभ्युत्थान है। दिनों दिन नाज़ीदल की शक्ति बढ़ती गई। थोड़े ही दिनों में रिवेन्ट्राप जर्मन राजदूत बनकर लंदन पहुँचा। इसके पश्चात् जर्मनी जापान और इटली में संधि हुई। फिर रोम बर्लिन धुरी की नींव पड़ी। फ़रवरी १९३८ में रिवेन्ट्राप वैदेशिक मन्त्री नियुक्त हुआ। दूसरे ही दिन वह वान पेपन और फ़ुहरर से मिला। आस्ट्रिया को हड़पने की तैयारी हो रही थी। इधर आस्ट्रिया का चांसलर डाक्टर शुशनिग हिटलर से मिलने पहुँचा, उधर रिवेन्ट्राप लार्ड हैलिफ़ैक्स से पत्र व्यवहार कर रहा था। दो ही दिन के पश्चात् आस्ट्रिया पर जर्मनी का अधिकार हो गया। जिस समय योरप में युद्ध के बादल घुमड़ रहे थे। युद्ध का आतङ्क सबके ऊपर छा रहा था, जिस समय म्यूनिच में चार शक्तियों की बातचीत के लिए मिस्टर चेम्बरलेन दौड़े हुए पहुँचे थे, वहाँ भी रिवेन्ट्राप ही मुस्कराते हुए उनका स्वागत करने के लिए उपस्थित थे।

जोकिम वान रिवेन्ट्राप इस समय जर्मन शासन-विभाग का प्रधान अंग है। हिटलर का वह दाहना हाथ है। उनकी सारी सफलता का रहस्य उसके मनोमोहक व्यक्तित्व और व्यवहारकुशलता में है। इस समय वह उसी महल में रहता है—उसी मेज पर काम करता है—जिसमें किसी समय बिस्मार्क रहते और काम करते थे। कौन जानता था कि डच जहाज पर छिपकर भागनेवाला नवयुवक आज वर्तमान इतिहास का प्रधान व्यक्ति होगा। आगे क्या होगा। ईश्वर ही जाने।
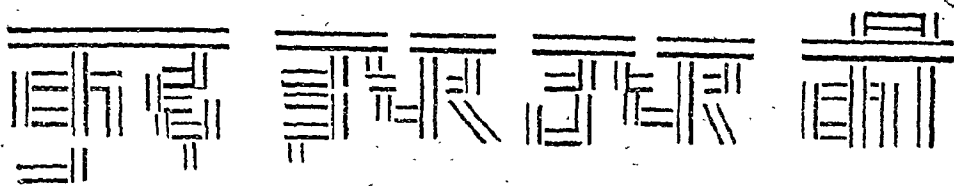
मनोरञ्जन का नया ढंग

हिन्दू देवताओं के चित्रों से विज्ञापनबाज़ी में ही अभी तक काम लिया जाता रहा है, परन्तु अ। जान पड़ता है कि वे मनोरञ्जन की बात में भी प्रयुक्त किये जायँगे। अभी अभी पिलानी में शिव जी की ऐसी एक विशाल मूर्ति स्थापित की गई है जो फ़ौवारे का भी काम देगी। स्थापक महोदय भारी शिव-भक्त निकले। वे जब चाहेंगे उस प्रतिमा की आराधना करके अपना परलोक बनाने का उपक्रम करेंगे और जब चाहेंगे, फ़ौवारे की टोंटी खोलकर वहाँ बैठकर इस लोक का भी सुख लूटेंगे। यह अच्छी रह। ! सूझ इसी को कहते हैं !

७५० लेखकों के लिए

हमें अपने एक सहयोगी मासिक पत्र में यह पढ़कर प्रसन्नता हुई कि लेखकों की असुविधाओं और आर्थिक चिन्ता को दूर करने के लिए एक 'स्कीम' फिर बनाई जा रही है। कई बार पहले भी ऐसे प्रयत्न किये जा चुके हैं। फिर भी इस नये प्रयत्न में कुछ ऐसी विशेषतायें हैं और हो सकती हैं जो दूसरे प्रयत्नों में न थीं। इस स्कीम के अनुसार हिन्दी के वर्तमान लेखकों की संख्या ७५० है। ऐसे ही इसमें काम करनेवालों में से दो एक राजाओं-महाराजाओं की सहायता की पूरी आशा रख सकते हैं। सर तेज ने जितनी आशा 'सरकार बहादुर' से अपने बेकार शिक्षितों और विशेषतः उच्च शिक्षितों के लिए सहायता पाने की की थी उससे कहीं अधिक आशा 'राजा बहादुर' से इन्हें हो सकती है। महामना मालवीय जी की हिन्दू-यूनिवर्सिटी की स्थापना में राज्यों की सहायता का जैसा हाथ रहा है उससे उनसे ऐसा भरोसा रखने का क्या इन्हें अधिकार नहीं है ? हम इसकी हार्दिक सफलता चाहते हैं। हमारी प्रार्थना इतनी ही है कि इसमें हिन्दी के साधारण लेखकों को नगण्य न समझा जाय बल्कि उनकी विशेष 'ट्रेनिंग' को भी आवश्यक समझा जाय, नहीं तो यह स्कीम एक विचित्र रूप धारण करके रह जायगी। सभी विषयों के लेखकों की सूची देखी जाय तो हिन्दी के 'उच्च' लेखकों की संख्या भी इससे कहीं अधिक है, इसलिए इस ७५० का रहस्य साधारण नहीं मालूम होता !

साहित्य में अमर

एक अन्य सहयोगी में एक ऐसे 'सज्जन' का वृत्तान्त प्रकाशित हुआ है जो 'साहित्य में अमर' हो गये हैं। उनके ये गुण बतलाये गये हैं--'उसने युद्ध में भाग लिया, 'असंख्य' रमणियों से प्रेम-लीलायें कीं, संसार में सबसे अधिक पैसेवाले पत्रकार के रूप में काम किया और वैभव एकत्र करने तथा उसे बेलौसी के साथ लुटा देने में उसके जोड़ का और कोई भी न रहा।.... तर्क करना उसने सीखा ही न था !'

ऐसा तर्कहीन अति विलासी पुरुष किन असाधारण परिस्थितियों या विचित्र कारणों से 'साहित्य में अमर' होने के योग्य हो गया, यह यदि आठ-दस पंक्तियों में भी बतला दिया जाता तो पाठकों को कुछ संतोष हो जाता ! पर उसकी 'कमज़ोरी' और रमणियों के प्रति 'भीषण' आकर्षण का वर्णन ही इस लेख में है, जिससे वे लोग जो महात्मा या कलाकार भी बनने के लिए पहले वासना के पीछे 'दीवाना' होना ज़रूरी समझने लगे हैं, अपने मत की विशेष पुष्टि कर सकते हैं ! 'अमर साहित्यकारों' के ऐसे अपूर्ण एवं सर्वथा एकांगी चित्रों का क्या ऐसा फल अनिवार्य नहीं है ? वैसे ही हमारे अधिकांश कविगण शेली और कीट का गुणगान पढ़-पढ़कर और 'विद्वानों' से उनकी, कला की प्रचुर प्रशंसा सुन सुनकर 'असंख्य' नहीं तो दो-चार के प्रति प्रेम प्रदर्शित करना जीवन और कला के विकास एवं सच्ची 'अनुभूति' की प्राप्ति के लिए आवश्यक समझने लगे हैं ! अब उनकी और भी बन आवेगी।

हिन्दी के आचार्य

हिन्दी में एक समय 'सम्राटों' की अच्छी धूम थी। परन्तु 'उपन्यास-सम्राट्' शब्द की भद उड़ते ही उसकी हवा शीघ्र ही बन्द हो गई और अब कोई भी 'सम्राट्'-पदवी का प्रयोग करते नहीं दिखाई देता। परन्तु हिन्दीवाले

ठहरे 'पदवी' के भूखे। उनके सौभाग्य से उन्हें एक दूसरी पदवी मिल ही तो गई।

पिछले दिनों हिन्दी के लेखक पण्डित महावीरप्रसाद द्विवेदी के नाम के साथ 'आचार्य' लिखने लगे थे। अब हम देखते हैं कि उस पदवी ने हिन्दी के कई नामवरों की मर्यादा-वृद्धि हो रही है। अभी तक श्री चतुरसेन शास्त्री, श्रीनरेन्द्रदेव, श्री युगुलकिशोर, पण्डित रामचन्द्र शुक्ल, श्री काका कालेलकर आदि महानुभावों के नामों के आगे ही 'आचार्य' की पदवी लगी हुई पढ़ने को मिलती थी। अब हम देखते हैं कि लाला गुलाबराय भी आचार्य हो गये हैं और पण्डित मनोरमप्रसाद दीक्षित भी आचार्य हो गये हैं। हिन्दी में इतने आचार्यों के हो जाने पर भी यदि कोई हिन्दी को पिछड़ी हुई भाषा कहने का दुःसाहस करेगा तो सचमुच अपने आप ही उपहासास्पद हो जायगा।

'आचार्य' आदि की पाण्डित्य-सूचक पदवियाँ, हम जहाँ तक समझते हैं, संस्था विशेष द्वारा ही मिला करती हैं। हिन्दी के लेखकों की भी अपनी एक विशेष संस्था है ही। तब यदि हिन्दीवाले किसी को 'सम्राट्' या 'आचार्य' बना देते हैं तो इसमें तो किसी को कुछ भी उज्र न होना चाहिए।

लार्ड जेटलैण्ड और भारत की स्वतंत्रता।
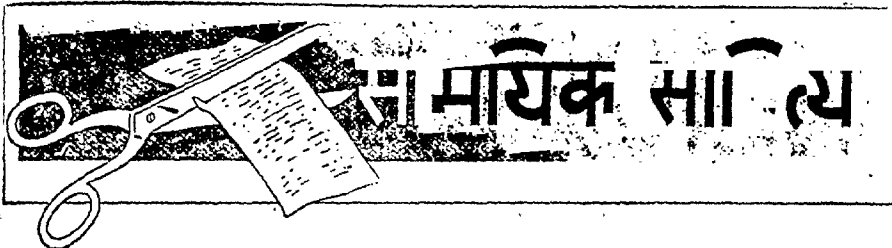
अब क्या हो ?

वायसराय महोदय से भेंट कर चुकने के बाद वर्धा जाते हुए मार्ग में महात्मा गांधी ने अपने वार्तालाप के सम्बन्ध में ६ फ़रवरी को 'अब क्या हो ?' शीर्षक जो महत्त्वपूर्ण लेख लिखा है उसे हम 'हरिजन-सेवक' से यहाँ उद्धृत करते हैं—

वायसराय और मेरे बीच समझौते की बातचीत असफल होने के कारण कांग्रेस-जनों में कोई निराशा नहीं फैलनी चाहिए। हमारी मुलाक़ात समझौते की संभावनायें निकालने के लिए हुई थी। मैंने देखा था कि वायसराय के बम्बई से दिये गये भाषण में समझौते के बीज हैं। लेकिन मैंने पाया कि वह मेरी भूल थी। वायसराय के हाथ तो बँधे थे। देश के सामने गवर्नमेंट की जो मौजूदा तजवीज इस समय है, उससे आगे जाने का उन्हें अधिकार प्राप्त नहीं था। शायद उसमें उनकी अपनी भी सम्मति थी।

लेकिन हमारी मुलाक़ात से कुछ बिगड़ा नहीं है। असफलता के बावजूद भी हम एक-दूसरे के और निकट आगये हैं। स्थिति इससे साफ़ हो गई है। अहिंसा में बड़े धीरज की ज़रूरत होती है। असफलता तो यह केवल ऊपर से दिखती है। असफलता तो हो ही नहीं सकती, क्योंकि हमारा पक्ष और उनके साधन दोनों ही उचित हैं। इस अगर अहिंसात्मक हैं तो उसे अपने हाथों को साफ़ रखना होगा। भारत को अगर अफ़्रीकनों के शोषण में साझीदार नहीं होना है और उपनिवेशों में जो हमारे देशवासियों को अपमानित किया जाता है उसमें हाथ नहीं बँटाना है, तो उसका स्वतन्त्र दर्जा होना ही चाहिए। उस स्वतन्त्र दर्जे में क्या क्या होगा, उसका रूप क्या होगा, यह सब ब्रिटेन-द्वारा बताया या निश्चित नहीं किया जाना चाहिए। इसको तो हमीं, याने राष्ट्र के निर्वाचित प्रतिनिधि, नाम उस पंचायत को चाहे जो दिया जाये, निश्चित करें। जब तक ब्रिटिश राजनेता इस मुद्दे को निश्चितरूप से स्वीकार नहीं करते, तब तक अपनी सत्ता को छोड़ने की नीयत उनकी नहीं है। भारत के स्वतन्त्र दर्जे की घोषणा के मार्ग में राष्ट्र-रक्षा या अल्पसंख्यकों अथवा देशी नरेशों या योरोपियन हितों का प्रश्न नहीं आना चाहिए। यह नहीं कि ऊपर कहीं महत्त्वपूर्ण समस्याओं पर गम्भीर विचार और तसफ़िये की ज़रूरत ही नहीं है, बल्कि वांछित घोषणा होने और उस पर जहाँ तक सम्भव हो, अमल किये जाने के बाद, ये समस्यायें उचित रूप से सुलझाई जाने पर सुलझ जायेंगी। जब तक ब्रिटेन ऐसा नहीं करता, तब तक वह यह दावा नहीं कर सकता कि जर्मनी के साथ उसका युद्ध न्यायपूर्ण है—निश्चय ही उसके स्वार्थरहित होने का दावा भी वह नहीं कर सकता।

मान लेना और फिर उससे लाभ उठाने की कोशिश करना तो ग़लत होगा। उसकी कमज़ोरी हमें शक्तिमान् या उपयुक्त नहीं बनायेगी। और यदि हम सबल हैं तो उसकी मज़बूती से हमें परेशान नहीं होना चाहिए। इसलिए हमारा धर्म तो यह है कि हम उसे अपनी शक्ति का अनुभव करायें। ऐसा हम सविनय प्रतिरोध से नहीं कर सकते; बल्कि अपने बीच सुव्यवस्था रखकर ही ऐसा कर सकते हैं। जब कि हम ब्रिटिश-सरकार-द्वारा अल्पसंख्यकों को या वैसी ही दूसरी समस्याओं को उचित कार्य में बाधक नहीं बनने देते, तो हमें इस सचाई से आँखें बन्द नहीं कर लेनी चाहिए कि ये समस्यायें भी हैं और ये हमारे हाथों ही सुलझानी चाहिए। क़ायदे-आज़म जिन्ना ने जो असंभव और एकदम राष्ट्र-विरोधी आधार ग्रहण किया है, उसे हम अपने दिमाग़ से निकाल दें। अपने ध्यान से हम मुसलमानों को परे नहीं हटा सकते। दूसरी समस्याओं के बारे में भी यही कहा जा सकता है। इन समस्याओं पर हम जनता को शिक्षित करें, अपने विचार स्पष्ट करें और समझें कि उनके सम्बन्ध में हमारी स्थिति क्या है।

कृषकों की अवनति का कारण ?

कानपुर के 'साप्ताहिक प्रताप' में ठाकुर प्रतापसिंह ने जो उपर्युक्त शीर्षक का लेख लिखा है उसका अधिकांश इस प्रकार है—

कृषकों की आय के सम्बन्ध का हिसाब लगाने पर विदित हुआ है कि प्रतिकृषक की मासिक आय लगभग २) है। इसमें से उसे वर्ष में २) भूमिकर एवं ॥) सिंचाई देना पड़ता है। इसके अतिरिक्त प्रतिवर्ष ऋण का सूद भी देना पड़ता है। सेंट्रल बैंकिंग जाँच-समिति की रिपोर्ट के अनुसार विदित हुआ है कि भारतवर्ष के कृषकों का ऋण नौ सौ करोड़ रुपया है। जाँच के बाद अत्यधिक समय व्यतीत हो गया। किन्तु अनुमानतः उक्त ऋण में वृद्धि के स्थान पर कमी नहीं हुई। यदि कृषकों की संख्या भारतवर्ष में २५ करोड़ ही समझी जाय तो प्रत्येक कृषक को औसतन ५) प्रतिवर्ष सूद देना पड़ता है। इस प्रकार कृषकों की जो २४) वार्षिक आय है उसमें से २) भूमिकर एवं जलकर के तथा ५) सूद के निकाल देने पर केवल १७) वार्षिक आय रह जाती है। इस प्रकार प्रत्येक कृषक की आय प्रतिदिन ३ पैसे से अधिक नहीं पड़ती। इस आय के द्वारा उन्हें अपना तथा अपने बाल-बच्चों का भरण-पोषण करना, विवाह-शादी आदि की समस्याओं को किसी न किसी प्रकार सुलझाना पड़ता है।

अब प्रश्न यह होता है कि कृषकों की इस दुर्दशा का कारण क्या है ?

कृषकों की अवनति का प्रथम कारण कृषिजात वस्तुओं के मूल्य में ह्रास है। सन् १९२८ और १९३४ के मध्य में कृषि-जात पदार्थों का मूल्य बहुत ज़्यादा कम हो गया है। इसके विषय में पूर्ण जानकारी सन् १९३४-३५ की ट्रेड-रिव्यू में प्रकाशित रिपोर्ट से भली भाँति प्राप्त की जा सकती है। इससे ज्ञात होता है कि भारतवर्ष में कृषि-पदार्थों के मूल्य में ५३.७ प्रतिशत कमी हो गई है। गत महायुद्ध के समय के मूल्य से तुलना करने पर ज्ञात होता है कि पदार्थों के मूल्य में और भी कमी हो गई है। इसके अतिरिक्त फ़सल के समय में कृषि-जात पदार्थों का मूल्य गत वर्ष की अपेक्षा कम ही हो जाता है। विशेषज्ञों ने जाँचकर इस बात का पता लगाया है और वे इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि प्रतिफ़सल में कृषि-जात पदार्थों के मूल्य में १५ प्रतिशत कमी हो जाती है।

इसके अलावा हमारे देश में कृषि-जात पदार्थों के बाज़ारों में मूल्य-नियन्त्रण की कोई व्यवस्था नहीं है। पृथ्वी के अन्यान्य देशों की सरकारों ने बाज़ारों के नियन्त्रण के लिए विभिन्न प्रकार की प्रणालियों का अवलम्बन किया है। इस सम्बन्ध में उन्होंने वस्तुओं का अल्पतम मूल्य निश्चित कर दिया है। इँगलैंड में सन् १९३१ में 'एबनोर्मल इम्पोर्टेशन ऐक्ट' पास किया गया है। इस ऐक्ट के अनुसार विदेशी वस्तुओं से होनेवाली आय पर ५० प्रतिशत कर लगा दिया गया है। किन्तु हमारे देश में ऐसी कोई व्यवस्था नहीं की गई है। वस्तुओं का अल्पतम मूल्य निर्धारण करना तो दूर रहा, विदेशों से आनेवाले पदार्थों के टैक्सों में भी कमी कर दी गई है। विदेशी गेहूँ पर पहले २॥) प्रतिक्वार्टर कर था, किन्तु अब वह सन् १९३६ में घटाकर १) कर दिया गया है। इसके परिणामस्वरूप भारतवर्ष में आस्ट्रेलियन गेहूँ अत्यधिक मात्रा में आने लगा है। सरकार ने ऐसा करते समय भारतीय कृषकों

की दरिद्रता की ओर तनिक भी ध्यान नहीं दिया।

दूसरा कारण यह है कि बाज़ार में वस्तुओं का जो वास्तविक मूल्य रहता है उसे भी कृषक पूरा नहीं पाते। कृषकों की दरिद्रता से एक दूसरा दल लाभ उठाता है। यह दल कुछ फ़सलों को तैयार होने के पहले ही कृषकों से खरीद लेता है। फ़सल तैयार होने पर वह माल अपने गोदाम में भर लेता है। परिणाम-स्वरूप उक्त दल कृषकों से जिस दाम में कृषि-जात पदार्थों को खरीदता है उससे दूने दाम पर उन्हें बेच देता है। गेहूँ-बाज़ार की जाँच करने के लिए जो समिति नियुक्त की गई थी उसकी रिपोर्ट से विदित हुआ है कि प्रतिरुपये गेहूँ की बिक्री में ॥--)। कृषक को और अवशिष्ट ।=)॥। व्यापारियों को मिलते हैं। जब तक कृषक स्वयं अपने हाथों से (जिस प्रकार व्यापारी बेचते हैं) अपनी उत्पन्न की हुई वस्तुओं को नहीं बेचेंगे तब तक वे अपनी वास्तविक दशा में सुधार नहीं कर सकते।

हड़तालों से हानि

योरपीय युद्ध के कारण कतिपय देशों का व्यापार बढ़ गया है, परन्तु दुःख की बात है कि हमारे देश में इस अवसर से लाभ नहीं उठाया गया, उलटा हड़तालें कर कर हानि उठाई गई है। इन हड़तालों का ब्यौरा ग्वालियर के 'जयाजी प्रताप' में इस प्रकार दिया गया है—

जैसा कि हम इन पृष्ठों में समय समय पर कह चुके हैं; यह समय ऐसा है जब कि भारतीय उद्योग-धन्धों को युद्ध-सम्बन्धी रुकावटों तथा क़ीमतें चढ़ने के कारण एक प्रकार का संरक्षण मिल गया है तथा अवसर का लाभ उठाकर कारखानेदारों को न केवल अपने क़दम जमा लेने चाहिए वरन् उद्योग-धन्धों का संगठन ऐसा कर लेना चाहिए कि फिर पाँव न उखड़ सकें। यह सब तभी हो सकता है जब कि कारखाने-दारों व मज़दूरों में सहयोग से काम हो तथा संघर्ष के मौक़े कम आवें। परन्तु यदि इसी समय या तो पूंजीपतियों-द्वारा समय को न समझ सकने के कारण या मज़दूरों की हठ तथा आग लगाकर तमाशा देखने व तापनेवाले नेताओं की बदौलत यह बहुमूल्य पर संकटपूर्ण अवसर लड़ाई-झगड़ों, हुज्जतों या हड़तालों में निकल गया तो सिवाय आर्थिक हानि उठाकर पछताने के और कुछ हाथ न लगेगा। इस प्रकार के बखेड़ों के कारण ब्रिटिश भारतवर्ष में कितना नुक़सान होता है इसका अन्दाज़ उन आँकड़ों से लगेगा जो भारत-सरकार की ओर से ही प्रकाशित हुए हैं।

केवल तीन महीने में अर्थात् जुलाई १९३९ से सितम्बर १९३९ तक ११२ औद्योगिक झगड़े हुए, जिनमें ९८,००० मज़दूर मुब्तिला थे। इन झगड़ों के कारण १७,८५,००० दिनों का नुक़सान हुआ। इसका हिसाब यह है कि यदि १ मज़दूर १ दिन काम नहीं करता तो यह माना गया कि एक दिन खराब हुआ। सन् १९३८ के इसी अर्से में १५,८०,००० दिनों का नुक़सान हुआ था तथा १,३४,००० मज़दूर बेकाम थे। इन हड़तालों में से ४३.७ फ़ी सदी रुई या सन के कारखानों में हुईं और कुल हड़तालियों में ५३.८ फ़ी सदी मज़दूर इस धन्धे में के थे। इन झगड़ों में ५२ शिकायतें वेतन के बारे में थीं, व्यक्तिगत कारणों से २६ हड़तालें हुईं। नतीजा यह रहा कि कुल ११२ हड़तालों में से १७ सफल रहीं, ४३ किसी हद तक सफल रहीं, ४४ असफल रहीं तथा ८ रिपोर्ट लिखने के समय चल रही थीं।

जिस अर्से की यह रिपोर्ट है उस दौरान में बड़ी बड़ी हड़तालों में आसाम आॅइल कम्पनी (१०,००० मज़दूर ५,६६,४०० दिन), मोहिनी मिल कुष्टिया (२, ८०० मज़दूर, १,४०,००० दिन), न्यू विक्टोरिया मिल, कानपुर (३,२४७ मज़दूर, १,८५,०७९ दिन), फ़ीरोज़ाबाद, काँच के कारखाने (८,००० मज़दूर, २,६४,००० दिन), का नाम गिनाया जा सकता है।

इस विवरण का अध्ययन करने से पता चलता है कि इन बखेड़ों के कारण व्यावसायिक दृष्टि से भारतवर्ष में ज़बरदस्त नुक़सान हो जाता है, जिसे रोकना मालिकों तथा मज़दूरों दोनों के हक़ में अच्छा ही होगा। कितनी हड़तालें सफल रहीं, कितनी असफल यह अंक बताते हैं। बहुत दफ़ा तो कारीगर भड़काये जाने पर हड़ताल कर बैठते हैं, पर परिस्थितियाँ उन्हें विवश कर देती हैं कि समझौता मान लें। इनमें से बहुत-से झगड़े तो ऐसे होते हैं जो बातचीत द्वारा तय हो सकते हैं और ब्रिटिश भारत में इस काम

के लिए एक क़ानून ट्रेड डिसप्यूट ऐक्ट है तथा कोर्ट ऑफ़ इन्क्वायरी या समझौता बोर्ड बनाने का तरीक़ा भी है। अनुभव से यही सिद्ध होता है कि यदि सद्भावना से काम लिया जाय तो काफ़ी मुआम्लों में बिना झगड़े-टण्टे या कटुता के काम निकल सकता है।

राष्ट्रपति रूज़वेल्ट और बेकारी का प्रश्न

अमरीका के संयुक्त-राज्य संसार के प्रथम श्रेणी के सम्पन्न देशों में हैं। परन्तु वहाँ भी बेकारों की समस्या है। वहाँ के प्रेसीडेंट रूज़वेल्ट ने बेकारों को सहारा देने के लिए धनवानों पर कर लगाया है। ऐसा उन्होंने क्यों किया है, इसका उल्लेख उन्होंने अपने एक लेख में किया है, जिसे 'नवयुग' ने 'रूज़वेल्ट का इक़बाल' शीर्षक में छापा है। इसके प्रारम्भ का अंश हम यहाँ देते हैं—

हमारी (अमरीका की) जन-संख्या का कम से कम एक तिहाई भाग ऐसा है, जिसके पास न तो पहिनने को अच्छे कपड़े हैं, न रहने को अच्छा मकान और न खाने को उपयुक्त भोजन। जनता का यह एक तिहाई भाग—४ करोड़ नर-नारी—दूकानों से क्या बड़ी ख़रीदारी कर सकता है? फलतः उसके पास-पड़ोस की दूकानें कल-कारख़ानों में बननेवाले सामान को लेने का कितना बड़ा आर्डर दे सकती हैं?

मेरे कुछ मित्र मेरी ये बातें सुनकर हँसा करते हैं। मैं मज़दूरों का न्यूनतम वेतन निश्चित कर देना चाहता हूँ, तो वे मेरी कोशिशों को मज़ाक़ की बात समझा करते हैं। लेकिन दूकानदार छोटा हो या बड़ा, अच्छी तरह जानता है कि उसका सामान ज़्यादा तभी बिकेगा, जब खपत करनेवालों की जेब में पैसा होगा। मैं खपत करनेवालों की क्रय-शक्ति बढ़ाना चाहता हूँ।

अधिक पैसा हो तो ग्राहकों की संख्या कैसे बढ़ जायगी?

कुछ लोग हैं—इन लोगों को मैं जुआरियों का गुट्ट कहा करता हूँ—जो आपको सब जगह मिल सकते हैं। इन जुआरियों के राजनैतिक प्रतिनिधि आपको अमरीका की धारा-सभाओं में भी मिल जायँगे।

ये लोग अपने व्यक्तिगत स्वार्थ के लिए राष्ट्र के जीवन की बाज़ी लगाने में भी नहीं हिचकिचाते; ये लोग हमारी आर्थिक व्यवस्था के टुकड़े टुकड़े करने से भी नहीं डरते—बस इनका अपना व्यक्तिगत स्वार्थ किसी तरह सिद्ध हो जाय। इनकी राय है कि सरकार व्यापार और उद्योग के मामले में हस्तक्षेप क्यों करे? अगर वह हस्तक्षेप करेगी तो ग्राहक तो फिर भी मिलते ही रहेंगे। मैंने इन लोगों को जान-बूझकर जुआरी कहा है, क्योंकि जो कुछ ये कहते हैं, उसका समर्थन आधुनिक अनुभव से नहीं होता।

दूसरे विचार के लोग मेरी तरह के हैं; और इनको आप चाहें तो दक़ियानूसी कह सकते हैं। हम दक़ियानूसी हैं, क्योंकि राष्ट्र के जीवन और सम्पत्ति को फूंक कर स्वार्थ की होली मनाना नहीं चाहते।

मैं मानता हूँ कि ऐसे व्यक्ति को जिसका अपना प्राइवेट कारोबार है, अधिकार है कि वह चाहे तो अपने कारोबार को तक़दीर के भरोसे पर रह कर बना ले या बिगाड़ ले। क्योंकि अगर उसका दिवाला भी निकल जाता है, तो भी राष्ट्रीय आर्थिक व्यवस्था को हानि नहीं होगी। लेकिन जिन लोगों के कन्धों पर १२ करोड़ अमरीकावासियों के कल्याण की ज़िम्मेदारी है, वे तो भाग्य के भरोसे बैठे रह कर राष्ट्र के जीवन से जुआ नहीं खेल सकते। अगर लाखों आदमी भूखों मरते हों, तो उनसे यह कहना कि सब्र रखो, तुम्हारी भी भगवान् सुध लेंगे, हमें शोभा नहीं देता। उनको काम चाहिए, रोटी चाहिए; और काम और रोटी उन्हें देनी होगी।

हमारे मत के विरोधी देश में घूमते फिरते हैं, खाते-पीते माता-पिताओं से कहते हैं, "देखो सरकार के सिर भारी क़र्ज़ हो गया है, तुम्हारे पुत्रों को उसे उतारना होगा।" यह बात इतनी बुरी नहीं है कि भूखों मरनेवाले माता-पिताओं से कहें, "देखिए साहब, सरकार व्यापार और उद्योग में किसी प्रकार का हस्तक्षेप करे तो सन् १९८९ ई० तक आपके और आपके बच्चों को खाना मिल जायगा।" लेकिन ये जुआरी यह बात नहीं कहते, जब कि उनकी हस्तक्षेप के विरुद्ध दी जानेवाली दलीलों का इसके सिवाय दूसरा कोई अर्थ नहीं होता।

वर्ग नं० ४३ का नतीजा

प्रथम पुरस्कार २००) (एक अशुद्धि पर)

यह पुरस्कार निम्नलिखित ५ व्यक्तियों को दिया गया। प्रत्येक को ४०) मिले।

(१) सीतानाथ गौएल, भवानीपुर, कलकत्ता। (२) ज्योतिलाल अग्रवाल, चौक, पटना। (३) रामकिशोर पाठक, सदर बाज़ार, कराची। (४) राजेश्वरीदेवी, देहलीगेट, अलीगढ़। (५) पं० सूरजनाथ दीक्षित, नयागंज, कानपुर।

द्वितीय पुरस्कार ५४) (दो अशुद्धि पर)

यह पुरस्कार निम्नलिखित ९ व्यक्तियों में बाँटा गया। प्रत्येक को ६) मिले।

(१) गौरीकान्त जौहरी, आगरा। (२) सुखलाल माथुर, मोतिहारी। (३) संतलाल राठौर, जयपुर। (४) गयाप्रसादसिंह, फ़तेगढ़। (५) रामप्रताप द्विवेदी, भरतपुर। (६) सोहनलाल कौशिक, जबलपुर। (७) वैजनाथ गुप्ता, महोबा। (८) डा० अशरफ़ीलाल, फ़र्रुखाबाद। (९) कैलाश पाण्डेय, मैनपुरी।

तृतीय पुरस्कार ४५) (तीन अशुद्धि पर)

यह पुरस्कार निम्नलिखित ३० व्यक्तियों को दिया गया। प्रत्येक को १।।) मिले।

(१) डी० एल० जगाती, अल्मोड़ा। (२) सीताराम हेडमास्टर, उदयपुर। (३) हरिराम शर्मा, अकालगढ़। (४) विद्यावती देवी, लखनऊ। (५) संतराम, इलाहाबाद। (६) कनौजीलाल शुक्ल, नयाकटरा, इलाहाबाद। (७) चन्द्रदेवी गुप्ता, अलीगढ़। (८) देवकीनन्दन त्रिपाठी, इलाहाबाद। (९) राधाकिशन गुलाबचन्द, अग्रवाल, औरङ्गाबाद (१०) यशोदादेवी पाठक, लखनऊ। (११) माधवप्रसाद शुक्ल, उन्नाव। (१२) केदारनाथ भारसनी, अलीगढ़। (१३) शिवलखनसिंह बलिया। (१४) हरकिशनलाल अग्रवाल, पचमढ़ी। (१५) मिश्रीलाल फ़र्रुखाबाद। (१६) शंकरलाल शर्मा शास्त्री, सहारनपुर। (१७) रणवीरसिंह, रायबरेली। (१८) राजकुमार मीतल, बुलन्दशहर। (१९) त्रिभुवननारायणसिंह, फ़ैज़ाबाद। (२०) पुष्पादेवी सिंहल, मारवाड़। (२१) लखपतराय श्रीवास्तव, इटावा। (२२) गोपाललाल वर्मा, पो० गोंडा (२३) राजाराम व्यास, नेमाड़। (२४) चिरंजीलाल, देहली। (२५) हाकिमसिंह, जयपुर। (२६) रामरतनलाल, निमाड़। (२७) बालकिशन शर्मा, मथुरा। (२८) बी० पी० शर्मा, मालवा। (२९) सुशीलादेवी, पौड़ी, गढ़वाल। (३०) निरंजन जोशी, जयपुर।

उपर्युक्त सब पुरस्कार ३१ मार्च तक भेज दिये जायँगे।

नोट—जाँच का फ़ार्म १६ मार्च तक आने से यदि किसी को और भी पुरस्कार पाने का अधिकार सिद्ध हुआ तो उपर्युक्त पुरस्कारों में से जो उसकी पूर्ति के अनुसार होगा वह फिर से बाँटा जायगा।

केवल वे ही लोग जाँच का फ़ार्म भेजें जिनका नाम यहाँ नहीं छपा है, पर जिनको यह सन्देह हो कि वे पुरस्कार पाने के अधिकारी हैं।

वर्ग नं० ४३ की शुद्ध पूर्ति

वर्ग नम्बर ४३ की शुद्ध पूर्ति जो बन्द लिफ़ाफ़े में मुहर लगाकर रख दी गई थी, यहाँ दी जाती है।

म	हा	वी	र		प	र	व	त	
हो	ल		स	मि	ति		ट		व
भा	त		ह		त		नं	क्त	र
र		स			पा	प			ही
त	वा	जा		चं	व	नी		ग	
	प		हं	म	न		सं	ज	गं
	साँ	था	प	न		प	त		ह
सु		खाँ	ट		जा	ला	पु		ना
हा			ना				ग		
र	जा	ई		सु	ज	न		सैं	ना

नोट—सरस्वती वर्ग नं० ४२ की दुबारा जाँच के लिए आए हुए प्रार्थनापत्रों के अनुसार जाँच करने पर ज्ञात हुआ कि द्वितीय पुरस्कार के अधिकारी एक महाशय रामप्रताप पाँडे, सब पोस्ट-मास्टर कैनिंग रोड पोस्ट आफ़िस, इलाहाबाद और हैं। अतः यह पुरस्कार प्रत्येक व्यक्ति को २।=) के बजाय २।-) दिया जायगा। —वर्ग मैनेजर

वर्ग नं० ४३ (जाँच का फ़ार्म)

मैंने सरस्वती में छपे वर्ग नं० ४३ के आपके उत्तर से अपना उत्तर मिलाया। मेरी पूर्ति

नं०...में { कोई अशुद्धि नहीं है। १,२,३ अशुद्धियाँ हैं।

मेरी पूर्ति पर जो पारितोषिक मिला हो उसे तुरन्त भेजिए। मैं १) जाँच की फ़ीस भेज रहा हूँ।

हस्ताक्षर ______________

पता ______________

____

बिन्दीदार लाइन पर काटिए

नोट

जो पुरस्कार आपकी पूर्ति के अनुसार होगा वह फिर से बँटेगा और फ़ीस लौटा दी जायगी। पर यदि पूर्ति ठीक न निकली तो फ़ीस नहीं लौटाई जायगी। जो समझें कि उनका नाम ठीक जगह पर छपा है उन्हें इस फ़ार्म के भेजने की ज़रूरत नहीं। यह फ़ार्म १६ मार्च के बाद नहीं लिया जायगा।

समालोचना की नई कसौटी

साहित्य में समालोचना का महत्वपूर्ण स्थान है। प्रसन्नता की बात है, पिछले दस वर्षों में इस दिशा में भी हिन्दी के कुछ लेखकों ने उसका उपयुक्त आदर्श उपस्थित किया है, जिसके फल स्वरूप उद्देश-विशेष से आलोचना करनेवाले हतप्रभ हो गये हैं। अच्छा होता कि उनका उन्मूलन ही हो जाता। परन्तु दुर्भाग्य से हिन्दी अभी उस पाये पर नहीं पहुँची है और ये पिछली श्रेणी के हमारे आलोचक अपनी उछल-कूद मचाये ही रहते हैं। इन्होंने अपना एक दल-सा बना लिया है और अपने दल के लोगों को आगे रखने के लिए हिन्दी के सुलेखकों की आलोचना के नाम पर आये दिन दुर्गति करते ही रहते हैं। इस दल में कुछ पुस्तक-विक्रता भी शामिल हैं, क्योंकि उनका एसे सहयोग से लाभ होता है। हिन्दी के लेखक इन आलोचकों से पीड़ित ही थे कि हाल में एक नये आलोचक ने अपना अभिनव रूप प्रकट किया है।

ये महोदय यह कहते हुए मैदान में आये हैं कि हिन्दी में समालोचक का पूर्ण अभाव रहा है और हिन्दी में पहले समालोचक हमीं हुए हैं, जो हिन्दी के वर्तमान कवियों का यथार्थ वर्गीकरण दावे के साथ कर सकते हैं। हम भी इन महानुभाव के दावे से सहमत हो सकते थे, यदि हमें कुछ अपना अनुभव न होता। हमने अपने जीवन में देखा है कि स्वर्गीय शंकर जी, हरिऔध जी, मैथिलीशरण जी, स्वर्गीय रामचरित जी, सनेही जी को उनकी रचनाओं के कारण हिन्दी-प्रेमियों ने अपना हृदय-हार बनाया है और कालान्तर में जब प्रसाद, पन्त, निराला, महादेवी का प्रादुर्भाव हुआ तब उन्हें भी उनके बराबर ले जाकर बिठा दिया। पन्त और महादेवी तो स समय हिन्दी के शृंगार हो रहे हैं। ऐसी दशा में यदि कोई यह कहता है कि पन्त और महादेवी का अन्यों की अपेक्षा निम्न स्थान है या मैथिलीशरण केवल तुक्कड़ हैं और ऐसा कथन करना ही यदि शौर्य का चिह्न है तो ऐसे शौर्य का हम बारम्बार नमस्कार करेंगे! नायिका-भेद और अलंकार की भावनाओं से विमुख होकर हिन्दी के कवियों ने साहित्य-क्षेत्र में जिन नई भावनाओं का संचार किया है वे लोकप्रिय हुई हैं और उन्हीं के आधार पर हिन्दी का नया काव्य परिपुष्ट हो रहा है। यही नहीं, सके हमारे वर्तमान कवियों का मान भी बढ़ा है। ऐसी दशा में यदि आज कोई यह दावे के साथ कहने को आग्रसर होता है कि उपर्युक्त कवि अमुक-अमुक श्रेणी के ही हैं, मान्य सलिए भी नहीं होगा, क्योंकि उन महानुभाव से भी बढ़े-चढ़े दूसरे समालोचकों ने उन कवियों को उसी रूप में ग्रहण किया है जिस रूप में वे हिन्दी-प्रेमियों में पहले से गृहीत किये गये हैं, अर्थात् वे महाकवि हैं और उन्होंने अपनी रचनाओं से हिन्दी-कविता में सुरुचि और सदाचार का निखरा हुआ रूप दिखलाया है। और यह एक ऐसी बात है जिससे हिन्दी का अन्य प्रान्तीय भाषाओं के बीच मस्तक ऊँचा हुआ है। परन्तु उक्त समालोचकप्रवर का कहना है कि सच्चा समालोचक वही है जो इन मान्य महाकवियों की कृतियों की दुर्गति करने का साहस कर सकता है समालोचना की अब साहित्य में, जान पड़ता है, यही कसौटी होगी। यह भी सही। हिन्दी को आगे बढ़ाने के लिए सभी तरह के दौरे करने पड़ेंगे। अतएव ऐसे धाकड़ समालोचक का भी स्वागत है!

समझौते का रंग-ढंग

महात्मा गांधी ७ फ़रवरी को दिल्ली जाकर वाइसराय लार्ड लिनलिथगो से भेंट कर आये, और ऐसा प्रतीत होता है कि इस बार भी कोई समझौता नहीं हो सका। वाइसराय महोदय से महात्मा गांधी की यह पाँचवीं भेंट थी और इस बार इस बात की बहुत

कुछ आशा थी कि इस भेंट से कम से कम समझौते का मार्ग तो ज़रूर ही स्पष्ट हो जायगा। परन्तु वह सब कुछ नहीं हुआ। इस सम्बन्ध में जो सरकारी विज्ञप्ति प्रकाशित हुई है उसका आवश्यक अंश इस प्रकार है—

सबसे पहले वाइसराय ने इस बात पर ज़ोर दिया कि भारत को यथासम्भव शीघ्र औपनिवेशिक स्वराज्य देने की हमारी हार्दिक इच्छा है और उसके लिए हम अपनी शक्ति भर प्रयत्न करने को प्रस्तुत हैं। इस सम्बन्ध में बड़े लाट ने कई अड़चनों की ओर गान्धी जी का ध्यान दिलाया। औपनिवेशिक स्थिति में देश की रक्षा का क्या प्रबन्ध होगा इसकी ओर उन्होंने महात्मा जी का ध्यान विशेषरूप से दिलाया। उन्होंने यह बात भी स्पष्ट कर दी कि समय आने पर सरकार सारी बातों पर देश के विभिन्न दलों और वर्गों के प्रतिनिधियों के साथ परामर्श करने के लिए भी प्रस्तुत है। सरकार इस बात के लिए भी उत्सुक है कि सन्धि-काल यथासम्भव थोड़ा रहे और सुधार में पूरा सामंजस्य रहे।

औपनिवेशिक स्वराज्य को शीघ्र लाने के लिए सरकार संघ-शासन-योजना को पुनः कार्यान्वित करने को प्रस्तुत है बशर्ते कि उससे सम्बन्धित दल इसके लिए अपनी सम्मति प्रकट करें। इससे जो बातें उत्पन्न हों उनका युद्ध के उपरान्त फ़ैसला करने के लिए भी सरकार प्रस्तुत है।

गांधी जी ने उस भावना की प्रशंसा की जिससे प्रेरित होकर उनके सम्मुख ये प्रस्ताव उपस्थित किये गये परन्तु उन्होंने स्पष्ट कर दिया कि मेरे विचार से इनसे कांग्रेसदल की सारी माँगें पूरी नहीं होतीं। गांधी जी ने प्रस्ताव किया और वाइसराय ने भी इस पर अपनी सम्मति प्रकट की कि वर्तमान परिस्थिति में जो समस्यायें उठ खड़ी हुई हैं उन्हें सुलझाने के उद्देश्य से और बातचीत करना स्थगित रखना अच्छा होगा।

उपर्युक्त उद्धरण से प्रकट होता है कि महात्मा जी ने सरकारी प्रस्तावों को अपर्याप्त पाया। साथ ही उन्होंने यह भी कहा कि वर्तमान परिस्थिति में जो समस्यायें उठ खड़ी हु ह उनको सुलझाने के लिए अभी यह बातचीत स्थगित रखनी चाहिए। फलतः फिर समझौते की बातचीत नहीं हुई। इस सम्बन्ध में महात्मा जी ने भी अपना वक्तव्य दिया है। वे कहते हैं—

मैं स्वयं तुच्छ और नगण्य व्यक्ति हूँ। यह समझा जाता है कि इन लाखों दबे हुए मूक प्राणियों पर मेरा कुछ प्रभाव है। मैं जानता हूँ कि जीवन के प्रत्येक अंग में मैं उन्हीं में से एक हूँ। मैं उनके सिवा कुछ भी नहीं हूँ। उनके बिना मैं जीना भी नहीं चाहता। उनकी ओर से मैं ब्रिटेन के साथ सम्मान-संगत समझौता चाहता हूँ और चाहता हूँ कि यह समझौता अहिंसात्मक संघर्ष के बिना ही हो जाय।

मेरे शब्दकोष में हिंसात्मक युद्ध ये शब्द ही नहीं। कल मैंने वाइसराय के सामने अपना मत विनम्र और मित्रतापूर्ण भाषा में व्यक्त किया। हमने एक दूसरे की निश्छलता पर विश्वास करते हुए मित्रों की भाँति बातचीत की। हमने एक दूसरे की बातें समझीं और दोनों ने यह अनुभव किया कि कांग्रेस के दृष्टिकोण और ब्रिटिश सरकार के दृष्टिकोण में अब भी बड़ा भारी अन्तर है।

हम दोनों मित्र की ही तरह एक-दूसरे से अलग हुए। मुझे निराशा हुई कि यह बातचीत भी असफल रही। इस असफलता का उपयोग मैं करूँगा और उसे सफलता की पहली सीढ़ी बनाऊँगा। मैं समझता हूँ कि वाइसराय भी इसकी चेष्टा करेंगे। पर यदि निकट भविष्य में हमें सफलता न मिली तो मैं केवल इतना ही कह सकता हूँ कि भारत, ब्रिटेन और संसार का कल्याण भगवान् ही करें।

वर्तमान समय की जिन नई समस्याओं के उठ खड़ी होने का संकेत ऊपर के उद्धरणों में किया गया है वे वास्तव में हैं देशी राजाओं का दृष्टिकोण तथा सम्प्रदायवादियों का दुराग्रह। सम्प्रदायवादियों में मुस्लिम लीग की माँग है कि भारत का बँटवारा कर दिया जाय। हरिजनों के एक नेता श्री एम० सी० राजा वायसराय महोदय को इस मर्म का तार देते हैं कि उनके दलितवर्ग की चोटी दया करके कांग्रेस के हाथ में न दे देना। इसी प्रकार हिन्दू-महासभावाले भी अपनी अलग माँग रख रहे हैं। राजाओं की क्या माँग है, सो तो हम नहीं कह सकते, पर हैदराबाद-राज्य के प्रधान मंत्री सर अकबर हैदरी

ने घोषित किया है कि ब्रिटिश सरकार भारत के सम्बन्ध में जो भी निश्चय करे उस सम्बन्ध में उसे पहले हैदराबाद से सलाह लेनी चाहिए। इससे जान पड़ता है कि देशी नरेश भीतर ही भीतर अपना अड़ंगा लगाये जा रहे हैं। परन्तु महात्मा जी ने इन समस्याओं के सुलझाने की बात ही नहीं की, किन्तु वे उसके लिए व्यग्र और उत्सुक भी हैं। परन्तु क्या ये इस तरह सुलझाई जा सकेंगी? लन्दन के 'टाइम्स' ने तो स्पष्ट कह दिया है कि ब्रिटेन कांग्रेस की माँग को कभी स्वीकार नहीं कर सकता। परन्तु महात्मा गांधी निराशावादी नहीं हैं। उन्हें आशा है कि बिना लड़ाई लड़े ही वे इस बार भारत के लिए स्वराज्य प्राप्त करेंगे।

कदाचित् इसी से सूरत में उस दिन सरदार पटेल ने जो भाषण किया है उसमें उन्होंने यहाँ तक कहा है कि यदि कांग्रेस की बालिग़मताधिकार के आधार पर बनी विधान बनानेवाली परिषद् की माँग इस समय न पूरी की जा सकती हो तो वर्तमान प्रान्तीय मताधिकार के आधार पर ही उस परिषद् का निर्माण किया जाय और वह परिषद् बिना बाहरी हस्तक्षेप के भारत के लिए जो विधान बनावे उसे सरकार मंजूर कर ले। यदि उसके विधान बनाते समय कोई साम्प्रदायिक प्रश्न उठ खड़ा हो तो वह प्रश्न पंचायत-द्वारा तय किया जाय और उसका निर्णय मान्य हो। सरदार पटेल के इस सुझाव अर्थात् झुकाव का हिज़ हाइनेस आग़ा खाँ ने भी समर्थन किया है। अब देखना है कि ब्रिटिश सरकार इस पर क्या कहती है। अच्छा होता कि सरकार सरदार पटेल के इस प्रस्ताव को उदारतापूर्वक ग्रहण करके कांग्रेस के साथ शीघ्र समझौता कर लेती।

जापान की प्रबलता

इस समय संसार की महाशक्तियों में जापान का नम्बर बढ़ा-चढ़ा है। एशिया का यही एक देश ऐसा निकला जिसने समय को देखकर उन्नति की ओर क़दम ही नहीं उठाया, किन्तु संसार में अपने को प्रथम श्रेणी के राष्ट्रों में गिना लिया। तो भी प्रभुता ग्रेट ब्रिटेन की ही बनी रही है और उसके डर से या लिहाज़ से जापान अपनी शक्ति का प्रदर्शन करने की हिम्मत नहीं कर सका। परन्तु महायुद्ध ने भण्डाफोड़ कर दिया और यह दुनिया पर प्रकट हो गया कि स्वयं योरप के ही कुछ देश ग्रेट ब्रिटेन के प्रभुत्व को मानने से इनकार करते हैं। इस परिस्थिति को समझकर और यह देखकर कि यदि अपना मतलब गाँठा जाय तो ग्रेट ब्रिटेन या और ही कोई उसके मार्ग का कण्टक नहीं बनेगा, जापान ने चीन पर चढ़ाई कर दी और उसके मंचूरिया प्रान्त को अपने अधिकार में कर लिया। चीन जापान से लड़ नहीं सकता था और न उसकी मदद को ही कोई तैयार हुआ। ग्रेट ब्रिटेन तथा संयुक्त राज्य—यही दो राज्य बोल सकते थे, पर वे भी केवल मौखिक विरोध प्रदर्शन करके रह गये। अधिक से अधिक यह किया कि जापान को राष्ट्र-संघ से निकाल दिया। जापान पहले से ही जानता था कि ब्रिटेन जर्मनी के डर के मारे चीन के मामले में हाथ नहीं डालेगा और यदि ब्रिटेन नहीं बोलेगा तो फिर और कोई नहीं बोलेगा। उसका अनुमान ठीक निकला। और जब उसने देख लिया कि मंचूरिया में उसकी चाल चल गई है तब उसने अपना दूसरा क़दम उठाया और बलपूर्वक सारे उत्तरी चीन पर अधिकार कर लिया। इस बार चीन की राष्ट्रीय सरकार को लड़ना पड़ा और तब से वह जापान से बराबर भिड़ी हुई है, परन्तु बारबार उसी की हार हुई है और अब तो उसे भाग कर देश के भीतरी भाग में जाकर आश्रय लेना पड़ा है। इधर समुद्र-तटवर्ती सारे प्रान्त अर्थात् मध्य-चीन तथा दक्षिण-चीन के सभी प्रान्त जापान के अधिकार में हो गये हैं। यदि इस संघर्ष-काल में चीन को रूस, ब्रिटेन, संयुक्त-राज्य आदि से शस्त्रास्त्र आदि की सहायता न मिली होती तो सारे चीन पर जापान का तभी अधिकार हो गया होता। यह चीन का दुर्भाग्य है कि किसी ने उसके पक्ष में जापान के विरुद्ध अस्त्र नहीं ग्रहण किया। कोई करता कैसे? योरप में जो गोल-माल होनेवाला था और जो अन्त में होकर ही रहा। योरप के इस युद्ध से जापान के लिए मार्ग और साफ़ हो गया है और अब वह पूर्णरूप से चीन को अपने अधिकार में करने की अपनी नीति को कार्य का रूप दे रहा है। चीन के प्रश्न को लेकर उसका ब्रिटेन, संयुक्त-राज्य और रूस से मनोमालिन्य हो गया है। रूस से तो उसके कभी कभी दो दो हाथ भी हो जाते थे। परन्तु अब वह भी

ठंडा पड़ गया है और इन दोनों में आपस में समझौता हो रहा है। अल्यूशियन द्वीपों के समुद्र में मछली मारने का उसका अधिकार रूस ने स्वीकार कर लिया है और अब मंगोलिया और मंचूरिया की सीमा के निर्धारण की बातचीत भी शीघ्र ही तय हो जायगी। हाँ, संयुक्त-राज्य ने इधर बेशक कड़ा रुख लिया है। जापान से उसकी जो व्यापारिक सन्धि थी उसकी मियाद इसी साल ख़तम हुई है, अतएव उसने प्रतिवाद-स्वरूप उस सन्धि को नये सिरे से फिर करने से इनकार कर दिया है। परन्तु जापान निराश नहीं हुआ है और वह ब्रिटेन तथा संयुक्त-राज्य से भी मेल-जोल ही बनाये रखना चाहता है, क्योंकि इसी में वह अपना लाभ देखता है। जापान ने अपने साम्राज्य के विस्तार के लिए जो योजना बनाई थी वह धीरे-धीरे कार्य में परिणत हो रही है और उसे अपने प्रयत्न में पूर्ण सफलता मिल रही है। भी से कहना पड़ता है कि जापान जहाँ पशु-बल में वहाँ कूटनीति में भी संसार के किसी भी देश से पीछे नहीं है, और उसने संसार की वर्तमान दुरवस्था से लाभ उठाकर अपनी क्षमता और शक्ति का पूरा परिचय दिया है।

जापान में जो नया मंत्रि-मंडल हाल में बना है उसके प्रधान मंत्री ने अपनी सरकार की नीति को स्पष्ट करते हुए कहा है कि जापान अपने को योरप के झगड़े से दूर रक्खेगा और वह अपनी सारी शक्ति चीन में नई व्यवस्था की स्थापना में ही लगायेगा। और उसकी नई व्यवस्था यह है कि चीन के जो समुद्र-तटवर्ती प्रान्त उसके हाथ में आ गये हैं उनमें चीनियों की कठपुतली सरकारें क़ायम करके उनकी आड़ में स्वयं शासन करना। मंचूरिया में जो नीति उसने बरती है वही अब वह यहाँ भी बरतना चाहता है। उत्तरी प्रान्तों के लिए पेकिंग में एक चीनी सरकार क़ायम हो है। अब उसी तरह की एक चीनी सरकार दक्षिणी प्रान्तों के लिए शंघाई में स्थापित करने का प्रयत्न किया जा रहा है। अपने पशुबल के द्वारा जापान ने महाराष्ट्र चीन की जो दुर्दशा की है तथा उसको भिन्न भिन्न खण्डों में विभाजित करके जो दुर्दशा अब करना चाहता है वह सब भविष्य के इतिहासकार उसके महापापों में गिनेंगे। परन्तु बल-मत्त राष्ट्रों के घर में नीति-अनीति का कब विचार रहा है? और आज जब सारे भूमण्डल में पशुबल का नग्न-नृत्य हो रहा है तब पशुबल-धर्मी जापान ही कैसे चुप बैठे रह सकता था? आज चीन का सुन्दर और धन-धान्यपूर्ण महादेश निर्बल होने के कारण उसके पैरों के नीचे लोट रहा है!

कांग्रेस और बंगाल

बंगाल की प्रान्तीय कांग्रेस-कमिटी बोसबन्धुओं के पक्ष में है। जब से सुभाष बाबू के साथ कांग्रेस की कार्य-समिति ने अनुशासन की कार्यवाही की है और उन्हें तीन वर्ष के लिए अपदस्थ कर दिया है तब से बंगाल के अधिकांश कांग्रेसी कार्य-समिति के विरुद्ध हो गये हैं। कार्य-समिति ने बंगाल की कांग्रेस-कमिटी को अपने अंकुश में रखने के लिए एक विशेष निर्वाचन-कमिटी क़ायम की है कि वह बंगाल की प्रान्तीय कांग्रेस-कमिटी का नया चुनाव करे। कार्य-समिति के इस कार्य का बंगाल के कांग्रेसियों ने विरोध किया और अब जब कार्य-समिति अपने निश्चय पर अड़ गई है तब प्रान्तीय कांग्रेस-कमिटी की कार्यकारिणी ने विद्रोह का झंडा खड़ा करके यह घोषणा की है कि प्रान्तीय कांग्रेस-कमिटी का नया चुनाव नहीं होगा, साथ ही उसने प्रान्त भर की ज़िला-कमिटियों को आदेश दिया है कि वे ११ फ़रवरी को सारे प्रान्त भर में बंगाल-कांग्रेस-दिवस मनायें और उसमें लोगों को बतायें कि कार्य-समिति बंगाल-प्रान्त के साथ कैसा व्यवहार कर रही है। निस्सन्देह यह देश के लिए दुर्भाग्य की बात है कि बंगाल कांग्रेस के विरुद्ध उठ खड़ा हो—वही बंगाल जिसने अपने महान् त्याग से कांग्रेस को महत्त्वप्रदान किया हो। परन्तु दुःख की बात है कि व्यक्तिगत कारणों से एक लम्बे समय से या यह कहें कि जब से देशबन्धुदास दिवंगत हुए हैं, बंगाल आपसी कलह का शिकार रहा है। इधर सुभाष बाबू के प्रमुखता प्राप्त कर लेने पर आशा हुई थी कि अब बंगाल फिर पहले की तरह अपनी पूर्ण शक्ति से कांग्रेस को गौरवान्वित करेगा, परन्तु कुछ ही दिनों के बाद स्वयं सुभाष बाबू का ही कार्य-समिति के सदस्यों से मतभेद हो गया। यह उसी मतभेद का फल है कि आज बंगाल को कांग्रेस के विरुद्ध विद्रोह का झंडा उठाना पड़ा है। आश्चर्य तो यह है कि यह सब उस समय हो रहा है जब देश में कांग्रेस के भीतर सबसे

अधिक एकता की जरूरत है। हम नहीं समझते कि अनुशासन के नाम पर कांग्रेस के कर्णधार देश के खरे-खरे देशभक्तों को लाञ्छित और पददलित करके क्या लाभ उठावेंगे। जिन कुछ चुने हुए लोगों के हाथ में इस समय कांग्रेस की बागडोर है वे वर्षों से उसके सर्वेसर्वा बने हुए हैं। उन्हें तो देश का बहुत गहरा अनुभव होना चाहिए। परन्तु हम देख रहे हैं कि उन्हीं के कार्यकाल में सभी प्रान्तों के कितने ही देशभक्त या तो उनसे कुण्ठित होकर स्वयं कांग्रेस से अलग हो गये हैं या उन्हीं की आज्ञा से कांग्रेस से निकाल बाहर किये गये हैं। और कहा जाता है कि यह सब प्रजातंत्र की व्यवस्था के अनुसार ही किया जा रहा है। चाहे जो हो, परन्तु यह अवस्था देश की वर्तमान परिस्थिति को देखते हुए वाञ्छनीय नहीं है। क्योंकि कांग्रेस के ये सरदार अपनी कठोर मनोवृत्ति के द्वारा निस्स्वार्थ लोक-सेवकों को उखाड़-पछाड़कर अधिक समय तक लोकप्रिय नहीं बने रह सकते। यही नहीं, उनके ऐसे कार्यों से कांग्रेस की महत्ता को ठेस लग रही है। अतएव उन्हें अनुशासन-सम्बन्धी अपना सत्याग्रह या दुराग्रह छोड़कर आत्म-परीक्षा करनी चाहिए, क्योंकि कहीं वे ही भूल न कर रहे हों।

फ़िनलैंड और रूस

फ़िनलैंड और रूस की लड़ाई के जो समाचार पत्रों म छपते हैं उनसे जान पड़ता है कि रूस की हार पर हार हो रही है, तो भी वह आक्रमण पर आक्रमण करता ही जा रहा है। रूसी भालू कहे जाते हैं। फ़िनलैंड की इस लड़ाई में वे अपने भालूपन का पूरा पूरा परिचय दे रहे हैं। चाहे जो हो, रूस के संख्याबल के आगे फ़िनलैंड युद्धभूमि में अधिक समय तक नहीं ठहर सकेगा। रूस की सेनायें फ़िनलैंड में घुस गई हैं और वहाँ वे विध्वंसकार्य में संलग्न हैं। यह सच है कि फ़िनलैंडवाले उनका दृढ़ता से सामना कर रहे हैं। इसके लिए उनको बाहर से लड़ाई का सामान ही पर्याप्त रूप से नहीं पहुँचाया जा रहा है, किन्तु स्वीडन के तथा दूसरे देशों के भी लोग स्वयंसेवक के रूप में उनका यथासम्भव लड़ाई में साथ भी दे रहे हैं। परन्तु उन सबका यह अवरोध रूस की विशाल शक्ति के आगे अधिक समय तक टिकता हुआ नहीं दिखाई दे रहा है। यदि ऐसा न होता तो वहाँ के प्रधान मंत्री बाहरी ठोस सहायता के लिए बार बार माँग न करते रहते। इस समय जरूरत थी कि राष्ट्रसंघ के शक्तिशाली सदस्य उसकी प्रकट रूप से सैन्यबल से पूरी सहायता करते। परन्तु ऐसी सहायता उसे निकटभविष्य में मिल ही जायगी, इसकी सम्भावना नहीं दिखाई देती। ऐसी दशा में यह स्पष्ट ही है कि फ़िनलैंड के भी अब गिनती के ही दिन हैं। तथापि यह तो कहना ही होगा कि फ़िनलैंड न अपने पुरुषार्थ का खासा परिचय दिया है।

रेल के तीसरे दर्जे के यात्री

बहुत दिन हुए रेल के तीसरे दर्जे के यात्रियों के कष्टों को दूर करने के सम्बन्ध में महात्मा गांधी ने आन्दोलन शुरू किया था, यहाँ तक उन्होंने उन यात्रियों के प्रति अपनी सहानुभूति प्रकट की थी कि खुद तीसरे दर्जे में ही रेल-यात्रा करने लगे थे। परन्तु शीघ्र ही उनके अधिक महत्त्व के कार्यों में लग जाने से वह आन्दोलन जहाँ का तहाँ ही रह गया। तब से आज तक और किसी लोकनेता ने उस ओर ध्यान ही नहीं दिया है, यद्यपि तीसरे दर्जे के रेल-यात्री पूर्ववत् तरह तरह के कष्टों के शिकार बराबर होते रहते हैं। और उनके वे कष्ट मेला आदि के अवसरों पर तो और भी बढ़ जाते हैं। इस सम्बन्ध में पण्डित जवाहरलाल नेहरू ने उस दिन लखनऊ में प्रयाग के माघ-मेला के यात्रियों की दुर्दशा को देखकर जो बात कही है वह हमारे उपर्युक्त आरोप का ताज़ा प्रमाण है। नेहरू जी का उक्त कथन 'आज' म इस प्रकार छपा है—

तीसरे दर्जे के यात्रियों के साथ दुर्व्यवहार करने के लिए तो भारत के रेलवे-अधिकारी बहुत दिनों से बदनाम हैं ही, पर रात को ट्रेन को ठसाठस भरा देखकर तो वास्तव में दिल दहल उठता है। इतनी बुरी तरह से लोग डिब्बों के भीतर ठुँसे रहते हैं कि इधर-उधर हिलना-डुलना और सांस तक लेना कठिन हो जाता है। २० आदमियों के सटकर बैठने के लिए जो स्थान रहता है उसमें ४० या उससे भी अधिक यात्री भरे रहते हैं।

बहुत कम कपड़े ओढ़े और पहने हुए हज़ारों आदमी इस शीत-ऋतु की रात्रि में प्लेटफ़ार्म पर गाड़ी की प्रतीक्षा में खड़े हैं तो भी रेलवे-अधिकारी यह कहकर चुपचाप टल जाते हैं कि हो सका तो रात में स्पेशल ट्रेन का

प्रबन्ध किया जायगा। हम जानते हैं कि प्रयाग में बड़ा भारी मेला है और बड़ी भीड़ वहाँ जाया करती है। रेलवे-कर्मचारी भी इस बात को जानते हैं। फिर वे यथासमय इसका प्रबन्ध क्यों नहीं करते? यह हद दर्जे की ख़राब बात है कि मनुष्यों के साथ पशुओं से भी गया बीता व्यवहार किया जाय और ये ही हैं वे लोग जिनसे रेलों को इतनी आय होती है। ऊँचे दर्जे के यात्रियों से उन्हें कोई लाभ नहीं होता।

वास्तव में तीसरे दर्जे के यात्रियों के कष्ट तभी दूर होंगे जब कोई एक नेता इसी प्रश्न के हल करने में अपना सारा समय लगावेगा। परन्तु इस समय दुःख है, इस कार्य के लिए कोई नेता उपलब्ध ही नहीं है, और न उसके भविष्य में ही उपलब्ध होने की आशा है। ऐसी दशा में इन अभागे यात्रियों को अभी अनिश्चित काल तक अपनी असमर्थता का परिणाम भोगना ही पड़ेगा। तथापि यह कम सन्तोष की बात नहीं है कि हमारे कुछ नेताओं के ध्यान में वे लोग हैं और जब उन्हें अधिक महत्त्व के कामों से अवकाश मिलेगा तब वे उनकी दशा को सुधारने के लिए अपना समय दे सकेंगे। तब तक उन्हें धैर्य धारण करना चाहिए, क्योंकि वे अकर्मण्य और कायर हैं।

बालकन के राज्यों में एकता

बालकन-प्रायद्वीप के चार राज्यों ने—यूगोस्लेविया, रूमानिया, तुर्की और ग्रीस ने अपना एक गुट बना लिया है। यों तो इस गुट का अस्तित्व बहुत पहले से है, परन्तु इधर इटली की प्रेरणा से इस गुट म नई जान आ गई है। इसी फ़रवरी में उपर्युक्त राज्यों के प्रमुख व्यक्तियों की बैठक बेलग्रेड में हुई थी, जिसमें वर्तमान योरपीय युद्ध से उत्पन्न हुई परिस्थिति पर पूर्ण रूप से विचार हुआ। यह नहीं कहा जा सकता कि उस बैठक में किन किन बातों पर विचार हुआ, पर बैठक के बाद जो विज्ञप्ति प्रकाशित हुई है उससे उक्त गुट्ट के उद्देश्यों पर अच्छा प्रकाश पड़ता है। उक्त विज्ञप्ति इस प्रकार है—

संघ के चार सदस्य सहयोग के विचार से अग्रलिखित बातों पर सहमत हैं।

१—सदस्य राष्ट्रों के सार्वजनिक हित की दृष्टि से शान्ति क़ायम रखना।

२—अपने भाग से योरप के युद्ध को दूर रखना।

३—संघ के सदस्य राष्ट्रों में गहन सहयोग रखना।

४—पड़ोसियों से मित्रता रखना।

५—सदस्य राष्ट्रों में व्यापारिक और यातायातिक सम्बन्ध बढ़ाना।

६—बालकन-सन्धि को ७ साल के लिए बढ़ा देना, और ७ फ़रवरी १९४१ में एथेन्स में होनेवाले अगले सम्मेलन तक सदस्य राष्ट्रों के वैदेशिक मंत्रियों में निकट सम्बन्ध रखना।

इस विज्ञप्ति के प्रकाशित होने के बाद तुर्की की प्रेरणा से बलगेरिया ने भी निरपेक्ष रहने की घोषणा की है। यह सब ठीक है, परन्तु लोगों को आशंका है कि बालकन के ये राज्य अधिक दिनों तक निरपेक्ष नहीं रह सकेंगे। यदि योरपीय युद्ध जल्दी ही बन्द नहीं हुआ तो वह दिन दूर नहीं जब योरप के इस भूखण्ड में भी युद्ध की आग भभकती हुई दिखाई देगी।

लाहौर का श्री विश्वेश्वरानन्द वैदिक अनुसन्धानालय का महत्कार्य

यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि वैदिक साहित्य के अनुसन्धान और उसके अनुशीलन की हमारे देश के लिए कितनी अधिक आवश्यकता है। प्रसन्नता की बात है कि लाहौर के श्री विश्वबन्धु शास्त्री के निरीक्षण में यह शुभ कार्य प्रारम्भ हो गया है। लाहौर का 'विश्वेश्वरानन्द वैदिक अनुसन्धानालय' सन् १९२४ से इस कार्य को कर रहा है। इस संस्था की रजिस्टरी भी हो गई है। इसका ध्येय अनुसन्धान-द्वारा प्राचीन भारती का संरक्षण तथा संजीवन है।

इस संस्था में वेदादि शास्त्रों के ३० योग्य विशेषज्ञ विद्वान् श्री विश्वबन्धु शास्त्री, एम० ए०, एम० ओ० एल० के निरीक्षण तथा अनुशासन में सुव्यवस्थित प्रकार से वैदिक साहित्य के अनुसन्धान का कार्य करते हैं। इसके सिवा भारत के तथा बाहर के विद्वानों की एक परामर्श-समिति भी संगठित की गई है।

पिछले १६ वर्षों में यह संस्था 'वैदिक पदानुक्रमकोष'
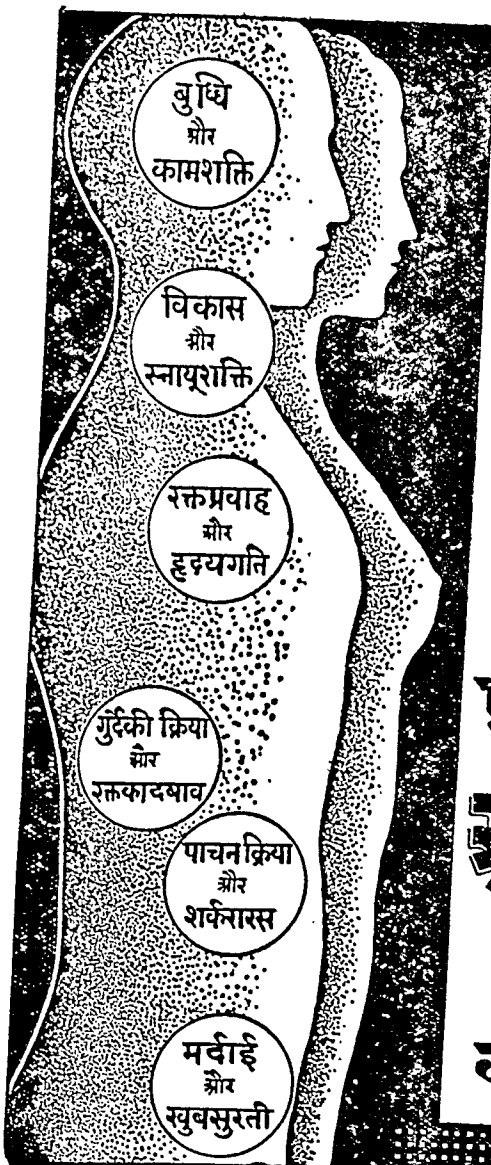
बुद्धि
और
कामशक्ति
विकास
और
स्नायूशक्ति
रक्तप्रवाह
और
हृदयगति
गुर्देकी क्रिया
और
रक्तकादबाव
पाचन क्रिया
और
शर्करारस
मर्दाई
और
खुबसुरती
मर्दाई
जवानी
और
शक्ति
प्राप्त करनेके लिये
ओकासा
तुरंत
व्यव्हार कीजिये
OKASA
HORMOPHARMA
LONDON

को तैयार करने में संलग्न है। इसमें संहिताओं, ब्राह्मणों, उपनिषदों तथा सूत्रों के लगभग ३५० ग्रन्थों के एक एक पद का व्याकरण की रीति से विश्लेषण तथा व्युत्पादन करते हुए जहाँ जहाँ और जिस जिस रूप में वह प्रयुक्त हुआ है उसका पूरा पूरा स्थल-संकेत किया गया है। हज़ारों स्थलों पर जहाँ मुद्रित ग्रन्थों में पाठ-सम्बन्धी गड़बड़ थी वह भी ठीक किया गया है। इस ग्रन्थ से वैदिक साहित्य का अनुशीलन करनेवालों का अत्यन्त उपकार होगा।

हर्ष की बात है कि उपर्युक्त अद्भुत ग्रन्थ के लिए ३० लाख शास्त्रीय संकेतों के रूप में पूर्ण सामग्री संगृहीत की जा चुकी है। इस बृहत् कार्य पर अब तक ढाई लाख रुपया ख़र्च हो चुका है। अब यह आवश्यकता है कि उपर्युक्त संगृहीत सामग्री का अन्तिम सम्पादन किया जाय तथा संस्था के निश्चयानुसार वह १० भागों में प्रकाशित की जाय। इसके लिए संस्था को कम से कम एक लाख रुपया और चाहिए। अतएव प्राचीन भारतीय तथा संस्कृति के प्रत्येक सच्चे अनुरागी को इस संस्था की पूरी सहायता करनी चाहिए ताकि वह इस कार्य को अति शीघ्र पूर्ण कर सके।

इस बारे में पत्र-व्यवहार तथा दान आनरेरी डाइरेक्टर वि० वै० अनुसन्धानालय, साभा हौस, लाहौर, के पते पर करना चाहिए।

करसियांग का पुस्तकालय

दार्जिलिंग-ज़िले में करसियांग नाम की एक जगह है। व्यापार के सिलसिले में वहाँ कुछ मारवाड़ी जा बसे हैं। प्रसन्नता की बात है कि वहाँ के मारवाड़ियों को हिन्दी से विशेष अनुराग है। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण वहाँ का 'मारवाड़ी सार्वजनिक पुस्तकालय' है जिसकी स्थापना सन् १९३१ में कुल १७) की पूँजी से हुई थी और जिसके स्थायी कोष में अब १,०५७॥)॥ जमा है और जिसका वार्षिक व्यय छः-सात सौ रुपये होता है। परन्तु इसकी मुख्य विशेषता यह है कि यह पुस्तकालय अहिन्दी-भाषियों को हिन्दी पढ़ने के लिए प्रोत्साहन देता है, ह उन्हें पढ़ने को पाठ्य पुस्तकें देता है तथा उनकी परीक्षा की भी व्यवस्था करता है। इसमें संदेह नहीं, पुस्तकालय का सञ्चालन उत्साह के साथ होता है और इसके सञ्चालक इसके लिए धन्यवाद के पात्र हैं। क्या ही अच्छा हो यदि अहिन्दी प्रान्तों में बसे हुए हिन्दी-भाषी करसियांग के आदर्श का अनुकरण कर हिन्दी-प्रचार के कार्य में हाथ बँटावें।

'मीराबाई'-नाम

उपर्युक्त शीर्षकवाला मेरा एक लेख 'सरस्वती' के भाग ४० की संख्या ३ में छपा था। उसमें 'कबीर-ग्रन्थावली' की तीन साखियों में आये हुए 'मीराँ' शब्द के प्रयोग से मैं इस परिणाम पर पहुँचा था कि यह शब्द मूल रूप में विदेशी है और उसके माने प्रभु या ईश्वर हैं। कबीर से पीछे के सन्त दादू की बानी में भी मुझे तीन स्थलों पर यह प्रयोग मिला है, जो इस बात को असंदिग्ध रूप से पुष्ट करता है, जैसा नीचे के पद्यों में आये हुए 'मीराँ' शब्द के प्रयोग से स्पष्ट है—

१—साच सपीड़ा मन करै, सतगुरु सबद सुणाइ।
मीराँ मेरा मिहर करि अंतर विरह उपाय॥ दादूबानी
भाग १ पृ० १६०।२९

२—अर्श ऊपर आप बैठा, दोस्त दाना यारवे।
खोजकर दिल कबज कर ले, दूर नैं दीदारवे।
हुशियार हाजिर चुस्त कर्दम मीराँ मिहरबान वे
दाखिले दरहाल दादू, आप हैं दीवान वे। वही भाग
२ पृ० ४२, ९५

३— एकै असनाव मेरे तूँ ही हम जाना।
जान व अजीज मेरे खूब खजाना॥
नेक नजर मिहर मीराँ बंदा मैं तेरा।
दादू दरबार तेरे खूब साहिब मेरा॥ वही भाग २,
पृ० १२३, २९०

इस बात को ध्यान में रखना चाहिए कि मीराबाई राजस्थानी थीं और दादू भी राजस्थानी थे। यह भी ध्यान देने की बात है कि अब तक मिले प्रयोगों में 'मीराँ' शब्द के साथ किसी न किसी अरबी, फ़ारसी शब्द का संसर्ग देखा जाता है। ऊपर के अन्तिम दो पद्य तो अरबी-फ़ारसी से बिलकुल लदे हैं।

—पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल

पीर पगारों की उदाराशयता

सिन्ध में जहाँ सक्खर का सा भयानक काण्ड करनेवाले मुसलमान रहते हैं, वहाँ पीर पगारों जैसे उच्चमना पीर भी हैं। कहा जाता है कि उक्त भयानक दंगे के अवसर पर उन्होंने बहुत-से हिन्दू-परिवारों को बचाया था। कदाचित् सक्खर के भयानक काण्ड से क्षुब्ध होकर ही उन्होंने अपने शिष्य-मंडल को जो संख्या में दस लाख के लगभग हैं आदेश किया है कि वे निरामिष बनें और गोवध न करें। यही नहीं, उन्होंने यह भी कहा है कि उनका जो शिष्य उनकी आज्ञा का पालन नहीं करेगा उस पर ५१) का दण्ड लगाया जायगा। उनका कहना है कि उनके आदेश के अनुसार कार्य करने से देश में साम्प्रदायिक झगड़े की जड़ ही कट जायगी। क्या ही अच्छा हो यदि मुसलमानों के बीच ऐसे पीरों का बाहुल्य हो जाय।

देहाती पुस्तकालय

संयुक्त-प्रान्तीय सरकार ने अपने यहाँ देहातों में पुस्तकालयों और वाचनालयों की जो नई योजना कार्य में परिणत की है उसमें उसे बड़ी सफलता मिली है। योजना के अनुसार गत वर्ष ७६८ पुस्तकालय तथा ३,६०० वाचनालय देहातों में खोले गये हैं। इन पुस्तकालयों में १,५८,७२१ हिन्दी की और ५१,०१५ उर्दू की पुस्तकें रक्खी गई हैं। अर्थात् प्रत्येक पुस्तकालय के लिए १९० हिन्दी की और ६६ उर्दू की पुस्तकों का औसत रक्खा गया है। इनकी पहले वर्ष की जो रिपोर्ट निकली है उससे प्रकट होता है कि इन पुस्तकालयों से लोग १२,२०,१२१ पुस्तकें पढ़ने को ले गये। धार्मिक पुस्तकों, उपन्यासों, कहानी की पुस्तकों, कविता, इतिहास, राजनीति और कृषि-सम्बन्धी पुस्तकों की ज्यादा माँग रही। पुस्तक ले जाने के लिए यद्यपि किसी तरह की फ़ीस जमा करने का नियम नहीं रक्खा गया है, तो भी केवल ५० ही पुस्तकें सारे प्रान्त में गुम हुई हैं। पुस्तकालयों की सफलता को देखकर सरकार इस वर्ष २३२ और नये पुस्तकालय खोलेगी, साथ ही १० फ़ी सदी पुस्तकों में भी वृद्धि करेगी। वाचनालयों में दो साप्ताहिक और दो मासिक पत्र, जिनमें एक उर्दू का रहता है, आते हैं। इनके सिवा इनमें पंचाङ्ग, जंत्रियाँ, कलेंडर और रेलवे टाइम टेबुल जैसी नित्य की उपयोगी सामग्री भी रक्खी जाती है। वाचनालय के लाइब्रेरियन को इस बात के लिए भत्ता भी दिया जाता है कि वह हफ़्ते में एक बार अपढ़ों को अख़बार पढ़कर सुनाया करे। वाचनालयों में पिछले साल ३२,३४,२१७ आदमी आये।

प्रवासी भारतीय

उपनिवेशों में जो प्रवासी भारतीय निवास कर रहे हैं उनके संकटों का कब अन्त होगा, यह कहना कठिन है। दूर के उपनिवेशों की बात जाने दीजिए, पड़ोस के ब्रह्मदेश तथा लंका के भारतीयों पर जो बीत रही है उससे उनका उद्धार करने को हम अपने को असमर्थ पा रहे हैं। लंका में तो भारतीयों को वहाँ से निकाल बाहर करने की योजना जोरों पर चलाई जा रही है। सिंहालियों की भारतीय-विरोधी भावना के कारण वहाँ के भारतीय मज़दूर ही नहीं, शिक्षित नौकरी पेशावाले भी अपने दिन गिन रहे हैं। इधर कलकत्ते के बन्दरगाह से १९३२ में एक भी मज़दूर विदेशों को नहीं गया। हाँ, उस बन्दरगाह से स्वदेश को १,०८३ प्रवासी भारतीय लौटे अवश्य हैं, जिनका ब्योरा इस प्रकार है—१९६ फ़ीजी से, ८३५ ब्रिटिश गायना से, ११ सुरीनाम से और २६ दक्षिणी अफ़्रीका से।

जो भारतीय दक्षिण-अफ़्रीका से आये हैं उनमें प्रौढ़ों को २०-२० पौंड और बच्चों को दस-दस पौंड दिये गये हैं, साथ ही वे अपने घरों तक दक्षिण-अफ़्रीका की सरकार के खर्च से पहुँचा भी दिये गये हैं।

जो गायना और फ़ीजी से आये हैं उनमें से ग़रीबों को वहाँ की सरकारों ने अपने खर्च से उनके घरों तक पहुँचा दिया है, साथ ही कुछ दिनों तक गुज़र-बसर करने के लिए प्रत्येक को कुछ रुपया भी दिया है। ऐसा ही व्यवहार सुरीनाम की सरकार ने भी किया है।

प्रवासी भारतीयों की जमाने में ऐसी ही दयनीय दशा है।

युद्ध की डायरी

२० जनवरी—'पजलों' (३८७३ टन) स्वीडिश जहाज़ बिना सूचना दिये तारपीडो से डुबा दिया गया। और भी अनेक जहाज़ तटस्थ-राष्ट्रों के डुबाये गये।

२१ जनवरी—ग्रेनविले नामक ब्रिटिश जहाज़ उत्तरी सागर में माइन से टकरा कर डूब गया।

२२ जनवरी—५ हज़ार इटैलियन वालन्टियर फ़िनलैंड की सहायता को रवाना हुए। 'आसामामारु' नामक जापानी जहाज़ पर से कुछ जर्मन युवक ब्रिटिश नौसेना द्वारा उतार लिये गये।

२३ जनवरी—उत्तरी पैसिफ़िक सागर में ब्रिटेन की इस हरकत के लिए जापान में क्षोभ प्रकट किया गया।

२४ जनवरी—रूसियों ने लैडोगा झील और रूसी सीमान्तवाली फ़िन लायन पर भयानक हमला किया।

२६ जनवरी—बायरलेस द्वारा जर्मन-सरकार ने रूस-फ़िन-संग्राम में अपनी तटस्थता घोषित की।

२९ जनवरी—जर्मन बमवर्षकों ने टेम्स के मुहाने से केन्टिश के तट तक ४०० मील की दूरी में ब्रिटिश जहाज़ों पर आक्रमण किया जो कि व्यर्थ कर दिया गया।

३० जनवरी—जर्मनी के हवाई हमले कई व्यापारिक जहाज़ों पर हुए।

३१ जनवरी—एक भाषण में हिटलर ने ब्रिटेन की युद्ध की तैयारियों का मज़ाक़ उड़ाया। कुह्मुनोमी के पास भयानक रूस-फ़िन-संघर्ष हुआ। ७ ब्रिटिश जहाज़ गत हमले के कारण डूब गये।

२ फ़रवरी—फ़िनों-द्वारा रूसी हवाई अड्डों पर बम-वर्षा की गई।

३ फ़रवरी—रूसी वायुयानों ने फ़िनलैंड के २० ज़िलों में बम बरसाये। जर्मनी के कई हवाई जहाज़ों ने उत्तरी-पूर्वी तट पर हमला किया। यार्कशायर समुद्र तट पर बमवर्षा की। २ हवाई जहाज़ गिराये गये। रूसियों ने मैनरहीम लायन पर धावा किया।

४, ५, ६ फ़रवरी—रूस का हवाई आक्रमण सरगर्मी से जारी रहा।

७ फ़रवरी—ब्रिटेन के पूर्वी तट पर एक सुरंग फटी। एक एस्टोनियन और एक ब्रिटिश जहाज़ डूबा।

९ फ़रवरी—सुम्मा के मोर्चे पर भयानक रूस-फ़िन संघर्ष हुआ।

१२ फ़रवरी—२०० ब्रिटिश स्वयंसेवकों का जत्था फ़िनलैंड की सहायता को रवाना हो गया। मैनरहीम लायन पर दिन भर युद्ध हुआ। एक जर्मन जहाज़ ने आत्महत्या कर ली।

१३ फ़रवरी—बरजर डिङ्क, नोदरहोल्म (नार्वे) व ओरेनिया (स्वीडन) जहाज़ डूब गये। इस सप्ताह में कुल ७ ब्रिटिश जहाज़ डूबे या नष्ट हुए।

१६ फ़रवरी—५३ क़िलेबन्द स्थान रूसियों ने जीत लिये। फ़िन फ़ौजें पीछे को हटीं।

१७ फ़रवरी—इनट्रीपिड नामक ब्रिटिश जहाज़ ने एल्टमार्क नामक जर्मन-जहाज़ को रोका और युद्ध-द्वारा उसे क़ाबू में कर लिया। उस पर से २७५ ब्रिटिश सैनिक व मल्लाह, जो कि क़ैद थे, उतार लिये। २३ क़िलेबन्द फ़िन स्थानों पर रूस का अधिकार हो गया।

१९ फ़रवरी—नार्वे-सरकार को एक रुक्का भेजकर उसमें ब्रिटिश सरकार ने 'एल्टमार्क' को क़ैद कर लेने की सिफ़ारिश की।

इस अंक के महत्त्वपूर्ण लेख

श्री दिनेश उपाध्याय, साहित्यरत्न

भारतेन्दु के कुछ निजी पत्र (सचित्र)

श्री आत्मस्वरूप शर्मा

हिन्दी के दैनिक पत्र घटिया क्यों हैं ?

श्री भक्तमोहन

परियों के देश में (सचित्र)

श्री धर्मदेव शास्त्री

क्या सभी मुस्लिम-पत्र मुस्लिम लीग के साथ हैं ?

पंडित वेंकटेशनारायण तिवारी

बिहार में हिन्दी-उर्दू द्वन्द्व

२ कहानियाँ व १ एकांकी नाटक

कविताएँ

श्री उदयशंकर भट्ट — श्री सोहनलाल द्विवेदी

श्री नरेन्द्र — श्रीमती सुमित्राकुमारी सिन्हा

विचारपूर्ण सामयिक व संपादकीय

२ रंगीन व अनेक सादे चित्र

सावित्री सत्यवान

[श्रीयुत रंजुरञ्जन मल्लिक, ४ भुवन सरकार लेन, कलकत्ता के सौजन्य से

[कांग्रेस नगर में महिला-स्वयंसेविकायें]

लेकर अँगरेज़ों को ऐसा खदेड़ते कि वे इँगलिश चैनेल के उस पार पहुँचा कर ही दम लेते। अभी सहजानन्द जी का भाषण हो ही रहा था कि हवाई जहाज़ की मज़बूत पंखियों की भिन्नाहट से वातावरण गूँज उठा। हम आकाश की ओर सिर उठाकर देखने लगे। एक बड़ा-सा हवाई जहाज़ बहुत ही नीचे मँड़राता नज़र आया।

यह हवाई जहाज़ कांग्रेस-प्रेसिडेण्ट पर सुमनवृष्टि करने आया था। मैंने घड़ी देखी तब पाँच बजने में कुछ ही मिनटों की देर थी। यही समय कांग्रेस-अधिवेशन का था। ऊँची-नीची ज़मीन पर उछलता-कूदता मैं कांग्रेस-पंडाल की ओर भागा। देखते देखते समझौता-विरोधिनी-सभा खाली-सी हो गई। काँटों से उलझता और खाई-खन्दक लाँघता हुआ कांग्रेस के पंडाल में घुसा। फाटक से लेकर भीतर घुसते घुसते तीन तीन बार टिकट की गम्भीर जाँच हुई तब कहीं जाकर निश्चित जगह पर पहुँच सका। पंडाल क्या था, एक मील लम्बा खुला मैदान था। एक छोर पर हरे रंग के चँदोआ के नीचे राष्ट्रपति का आसन था और जो धनी ५००) का टिकट खरीदने की हिम्मत रखते थे वे सभापति के आसन के निकट बैठे थे। याने ५००) देनेवाले 'स्वराज्य' के बहुत निकट बैठाये गये थे और हमारे जैसे लक्ष्मी के त्यक्त-पुत्र आध मील की दूरी से ही ताक-झाँक करके सन्तोष लाभ करने को थे। सारा पंडाल ढलवाँ था और मंच के सामने तो पूरी खाई थी, जिसमें प्रतिनिधि बैठाये गये थे। स्वयंसेवकों का दल क़तार बाँधकर घुड़-दौड़ लगा रहा था। मैं नहीं समझता कि यह घुड़दौड़ दर्शकों के मनोरंजन के लिए होती थी, या इसका सम्बन्ध राष्ट्र की जागृति से था या स्वयंसेवकों के पेट का अन्न पचाया जाता था।

राष्ट्रपति बैंड के साथ पधारे और आकाश के एक कोने से काली काली डरावनी घटायें उठीं। मुट्ठी भर फूल बरसा कर और पचासों रुपयों का पेट्रोल जलाकर हवाई जहाज़ एक ओर सीधा हो गया। धीरे धीरे घटाओं ने सारे नील गगन को भर दिया। ठंडी हवा के तेज़ झकोरे आने लगे। दूर दूर की रंगीन पहाड़ियाँ डरावनी-सी

दिखलाई पड़ने लगीं। बिजली की कड़क से दिल धड़क उठता था। भारत-विख्यात गायक पंडित ओंकरनाथ ठाकुर ने वन्दे मातरम् गाने का गौरवमय भार लिया था, पर आकाश से जो महासंगीत आरम्भ हो चुका था उसने हमारे राष्ट्रीय गान की कड़ियों को छिन्न-भिन्न कर डाला। बड़ी बड़ी बूँदों के बाद भयानक वर्षा शुरू हुई। क्षण भर के बाद हाहाकार मच गया। क़रीब एक लाख की भीड़ कांग्रेस-पंडाल में भारत के भाग्य का फ़ैसला सुनने के लिए व्यग्र बैठी थी। पाँच मिनट के बाद ही हम घुटनों तक पानी में हो गये। ऐसी वर्षा कि हाथ पसारे भी न सूझे। ढलवी ज़मीन से नदी की तरह बहकर जल वहाँ गिर रहा था जहाँ कांग्रेस-प्रतिनिधियों का स्थान था। छोटे-छोटे दुधमुँहे बच्चों की दशा दयनीय थी। स्त्रियों की दशा का वर्णन कठिन है। चारों ओर से चीख़-पुकार आने लगी! पानी की धारा में अनगनित चप्पलें, टोपियाँ और छाते बहते नज़र आये। धारा इतनी तेज़ थी कि पैर नहीं ठहरते थे। कच्ची ज़मीन में हाथ भर कीचड़ पैदा हो गई, पर वृष्टि की भीषणता बढ़ती ही जाती थी। रह रह कर बिजली कौंधती और ज़ोरदार हवा के झोंके के साथ ही धुँवाधार पानी गिरता था। आँधी-पानी का ताण्डव नर्तन हो रहा था।

लगातार पैंतालीस मिनट तक मूसलधार वर्षा हुई और सारा पंडाल एक झील के रूप में परिणत हो गया। गिरता-पड़ता मैं नाक की सीध पर भागा। चटाइयाँ ओढ़े हज़ारों व्यक्ति बेतहाशा भागे। पंडाल के फाटक पर स्वयं-सेवक भगोड़ों से बुरी तरह चटाइयाँ छीन रहे थे। यह दृश्य बहुत ही मनहूस और भद्दा था! जब मैं सड़क पर आ गया तब मुझे ऐसा लगा कि वैतरणी पार कर चुका हूँ, पर अभी नरकयन्त्रणा बाक़ी है, जो सारी रात भोगनी पड़ेगी। हमारा कैम्प तो दामोदर नद के उस पार क़रीब एक मील पर था और खद्दर की धोती और कुर्ते में कम से कम १५ सेर पानी भरा हुआ था। एक तो यों ही शरीर भार जान पड़ता था, उस पर पानी का भार! जी चाहता था कि चिल्ला कर रोऊँ, पर लज्जा के मारे मन मसोस कर जाना पड़ा। जूतों की दशा ऐसी हो रही थी कि प्रत्येक जूते में सेर सेर भर मिट्टी घुस गई थी। टोपी में जो मैंने राष्ट्रीयता की झोंक में आकर एक पैसे का ख़रीद कर तिरंगा झंडा लगा रक्खा था उसके कच्चे रंग से मेरा पूरा चेहरा तिरंगा हो गया था। इस नई शान से जब मैं अपने कैम्प में पहुँचा, तो देखता क्या हूँ कि एक बड़ा-सा बैल कैम्प के पास ही मरा पड़ा है, जो पानी के मारे फूल कर विशाल मशक जैसा दिखलाई पड़ रहा है। मेरा मन घृणा से भर गया। पर क्या करता? अपनी करनी का फल तो भुगतना ही चाहिए।

कैम्प के चारों ओर अन्धकार था। परदा उठाया और झाँक कर देखा तब रायसाहब को बैठे कराहते हुए पाया। बेचारे अकेले किसी किसी तरह पंडाल से जान बचा कर भागे थे, फिर भी उनके सारे कपड़े भीग गये थे।

इस तरह कांग्रेस-अधिवेशन का प्रथम पर्व खंडप्रलय के साथ समाप्त हुआ। हाँ, मैं यह कहना तो भूल ही गया कि कांग्रेस का खुला अधिवेशन उस तूफ़ान में भी होकर ही रहा और वह केवल १५ मिनट के लिए। लाउडस्पीकर का काम बन्द हो चुका था, फिर भी किसी न किसी तरह अधिवेशन का नाम निभा दिया गया। दूसरे दिन अर्थात् २० मार्च को झंडाचौक में दूसरा अधिवेशन होने की सूचना दे दी गई।

कर्मफल

कर्मफल तो भुगतना ही पड़ता है चाहे कोई भी उपाय कीजिए। कैम्प में घुसकर देखा कि वहाँ की ज़मीन भी कीचड़ से भरी हुई है और कोने में एक घी का दीवा जल रहा है। मैंने अनुमान किया कि रात को शायद रायसाहब घी का दीवा जला कर कोई साधना करते हैं या तूफ़ान से बच निकलने की प्रसन्नता में घी का दीवा जलाया जा रहा है। पर तत्काल पता चल गया कि पैट्रोमैक्स वग़ैरह की सारी व्यवस्था तहस-नहस हो गई है। जिस समय तूफ़ान और वर्षा का ज़ोर था, कैम्प के नीचे से धनुधारा बह रही थी। बड़ी कठिनता से बिस्तरों का बचाव हो सका। आटा-दाल जो कुछ सामान राय-साहब ले आये थे उसका तो सत्यानाश हुआ ही, सबसे बुरी बात यह हुई कि उनके मन का उत्साह विकलता के रूप में परिणत हो गया। बहुत ही खिन्न मन से

[जापानी बौद्ध भिक्षु कांग्रेस नगर में से प्रेतात्माओं को भगाने के लिए ढोल बजा रहे हैं।]

रायसाहब कहने लगे—"इस जीवन में ऐसी कुगति नहीं भोगी थी। वियोगी जी, जब भयानक वर्षा आरम्भ हो गई तब मैं पंडाल से भागा। घुटनों में दर्द है। बड़ी कठिनता से एक टैक्सीवाले को मुँहमाँगा किराया देकर यहाँ तक आया। यहाँ आकर देखता हूँ कि महानाश का दृश्य उपस्थित है। कैम्प वग़ैरह तहस-नहस हो चुका है और चारों ओर पानी ही पानी नज़र आता है......"

रायसाहब बोल रहे थे और मैं कपड़े बदल कर और अच्छी तरह कम्बल ओढ़कर आराम से 'हूँ हूँ' कर रहा था। पिछली रात जागते बीता और सारा दिन इधर से उधर दौड़ते। एकाएक नींद का ऐसा झोंका आया कि मैं कब सो गया, पता ही न चला। अचानक रायसाहब आर्तस्वर में चीख उठे—"जान बचाइए वियोगी जी।"

उनका आर्तनाद कानों में तो पड़ा, पर आँखें मानो खुलना ही नहीं चाहती थीं जैसे पलकें गोंद से चिपका दी गई थीं। जागृति और नींद से कुश्ती हो रही थी। और रायसाहब लगातार चीख रहे थे। मुझे ऐसे लगा कि मेरा सारा शरीर जकड़ गया है, एक अंग भी नहीं हिलता, मानो प्रेत ने मुझे दबा रक्खा है। मेरी दहिनी टाँग में दर्द हो रहा था, और मैंने अनुमान लगाया कि हड्डी ही टूट गई है। रायसाहब को चुप करने की गरज़ से मैं नींद की खुमारी में ही बोला—"आराम से पड़े रहिए।"

जब मेरा दम घुटने लगा तब मैंने कम्बल से सिर निकाल कर यह देखने की चेष्टा की कि मामला क्या है। बात यह थी कि भयानक वर्षा के कारण कैम्प के खूँटे ढीले पड़ गये थे और वह विशाल कैम्प हमारे सिर पर घहरा पड़ा था। हम चूहे की तरह उस भारी और भीगे हुए कैम्प के नीचे फँस गये थे। निस्तार का कोई उपाय न था, जी में तो आया कि बैग से सेफ़्टी-रेज़र का 'ब्लेड' निकाल कर कपड़ा काट डालूँ और इस तरह अपना उद्धार कर लूँ, पर कैम्प की बरबादी का ख़याल करके ज़ोर लगा कर

ही निकलने का उद्योग करना आरम्भ किया। कैम्प का भारी लट्ठा मेरी दाहनी टाँग पर गिरा था, जिससे मैं ऐसा दब गया था कि एक इंच खिसकना भी दूभर हो रहा था।

'बजरंगबली' का नाम लेकर लट्ठे से अपनी टाँग का उद्धार किया। इसके बाद छिपकिली की तरह पेट के बल रेंगता हुआ बाहर निकल आया। बाहर निकल कर मैंने मन ही मन देहात में कांग्रेस करने की कल्पना करनेवाले महानुभाव को सराहा। मैं कीचड़ से लथपथ खुले आकाश के नीचे अनाथ की तरह खड़ा था और सिर पर मूसलधार वर्षा हो रही थी। मुझे तो ऐसा लगा कि मैं युद्ध-क्षेत्र में 'मैजिनोटलाइन' के बाहर खड़ा हूँ। बिजली चमकी। मैंने देखा, वह मरा हुआ बैल फूलकर हाथी जैसा हो गया है। मैं उस वृषभदेव को भी प्रणाम करके बोला—"हे महाभाग, तुम मुझ अधम जीव से अच्छे हो। न तो तुम्हें वर्षा की चिन्ता है और न पूर्ण स्वतन्त्रता की। सुभाष बाबू क्या चाहते हैं और महात्मा जी के विचार क्या हैं, इन वाहियात झगड़ों से तुम सदा निश्चिंत रहे और आज कैम्प तथा वर्षा की फ़िक्र भी तुम्हारे अन्तर में नहीं है। आराम से टाँगें फैलाये स्थित-प्रज्ञ की तरह पड़े हो। यह अभागा मशहूर साहित्यिक रात भर छाता लगाकर प्राणरक्षा करने को विकल ही रहा था। 'निमोनिया' और 'ब्रोनकाइटिस' की भी तुम्हें चिन्ता नहीं, पर मेरे पंजरों में घंटों भीगने से जो दर्द हो रहा है और लट्ठे के पतन से दाहनी टाँग में जो टीस पैदा हो गई है वह मेरे प्राणों को विकल किये डालती है।"

एक दूसरी छोलदारी भी नौकरों के लिए लगाई गई थी। उसी में हम जड़ाते-काँपते घुसे। वहाँ क़रीब एक दर्जन जीव पहले से पड़े थे। गिरे हुए कैम्प के भीतर से बिस्तर वग़ैरह निकलवाया गया। फिर मैं सो गया। मेरे सिरहाने में कई दर्जन जूतों का एक भारी गट्ठर पड़ा था। पानी से भीग कर जूते बुरी तरह बदबू कर रहे थे। क्या करता? सारी रात उपानहस्तूप की दुर्गन्धि सूँघता रहा। उन्हें उठा कर कहाँ रखता—सिर रखने भर की जगह भी उस छोलदारी में न थी!

दिन भर धूल फांक कर, संध्या छः बजे से लेकर रात ११ बजे तक कीचड़ और पानी में लोटपोट कर, बीस मिनट तक कैम्प से कुश्ती लड़कर और शेष रात पानी से भीगे हुए बीसों जोड़े नये जूतों की बदबू सूँघ कर जब भोर को उठा तब बड़े आग्रह से रायसाहब ने कहा कि—"एकाध कविता सुनाइए!" इधर मैं सोच रहा था कि प्राणों से बढ़कर निर्लज्जता दूसरी किसी वस्तु में नहीं है। यह बेहया जान शरीर से निकलना ही नहीं चाहती, चाहे जितनी भी दुर्गति हो।

सुबह होते ही हलकी-सी सुन्दर धूप निकल आई। प्राणों का मोह बिसार कर फिर कांग्रेस-नगर की ओर चल पड़ा। नगर प्रायः ख़ाली हो चुका था और जो भागने से बच रहे थे वे अपना बोरिया-बँधना समेटे मोटर-बस की आशा में सड़क के किनारे रुआँसे-से खड़े नज़र आते थे। ज़मीन में कीचड़ और फिर फिसलन का कहीं ठिकाना न था। ज़रा-सा ध्यान इधर से उधर हुआ नहीं कि धम्म से कीचड़ में। यह हाल था। देहात में कांग्रेस के होने से जितने मर्मान्तिक अनुभव हो सकते हैं उनमें से प्रत्येक रामगढ़-कांग्रेस में हो गया। मोटरवालों की बन आई। राँची-रोड जाने का किराया जब तीन रुपया माँगा जाता था तब हद्द हो गई। कांग्रेस से राँची-रोड-स्टेशन क़रीब डेढ़ मील पर था। प्रत्येक व्यक्ति तीन रुपया किराया और वह भी डेढ़ मील का! अस्सी-नब्बे हज़ार से अधिक व्यक्ति जाने को व्यग्र थे और लारियों की संख्या थी परिमित। कांग्रेस-व्यवस्थापकों ने उदारता-पूर्वक जाने की स्वतन्त्रता सबको दे दी थी और यह एलान कर दिया गया था कि "वर्षा के कारण पानी कीचड़-मय हो गया है, अतएव यहाँ ठहरना व्यर्थ है।" पर बिना समुचित सवारी की व्यवस्था किये उस भयानक वन और पहाड़ों से होकर कोई जाय तो कैसे?

ठीक तो नहीं कह सकता, पर क़रीब ८ बजे झंडा-चौक में जिसे जवाहरचौक भी कहा जाता था, कांग्रेस का दूसरा खुला अधिवेशन आरम्भ हुआ। यह २० मार्च की बात है। कीचड़ में ही पलथी मार कर "आज़ादी के दीवाने" डट गये! अब कपड़ों के गन्दे होने का तो भय था ही नहीं, जो कुछ होना था १९ की संध्या से लेकर सारी रात हो ही चुका था। तुमुल जय-घोष के बीच महात्मा जी भी पधारे। शान्त गम्भीर रूप और एक हलका-सा ऊनी चादर ओढ़े हुए भारत का वह पुरुषश्रेष्ठ प्रकट हुआ। जवाहरलाल जी बच्चों की

तरह चंचलता करते नज़र आये और दिखलाई पड़े सरदार पटेल जो शायद अपनी हँसी घर पर ही भूल आये थे। मौलाना आज़ाद साहब कुर्सी पर बैठ गये। और पाकेट से सिगरेट निकाल कर आराम से धूम्र-पान का मज़ा लेने लगे। 'वन्दे मातरम्' की पवित्र ध्वनि के साथ यह अधिवेशन आरम्भ हुआ। पंडित जवाहरलाल जी मंच पर फुदक रहे थे, मानो कोई नौजवान विद्यार्थी हो, जिसकी बोटी-बोटी थिरक रही हो। सरोजिनी नायडू जिन्हें भारत की कोकिला कह कर पुकारा जाता है, उस दिन बीते हुए वसन्त की शेष निशानी की तरह दिखलाई पड़ीं। वृद्धता का उबा डालनेवाला भार वहन करती हुई-सी वे महात्मा जी के निकट बैठी थीं और खड़े थे सीमान्त के गांधी। मैं यह दावे के साथ कह सकता हूँ कि अब्दुल गफ़्फ़ारख़ाँ से अधिक लम्बा व्यक्ति रामगढ़ में मैंने नहीं देखा। आठ फ़ुट लम्बा शरीर और शान्त पर बच्चों जैसा सुहावना मुखमंडल खान साहब की ओर जनता को बलपूर्वक आकर्षित कर लेता है। भूलाभाई देसाई, शंकरराव देव प्रभृति सभी नेता एक एक करके जनता के सामने आ गये।

जवाहरलाल जी भारत के चिरयौवन-रूप में दिखलाई पड़े, तो मेरा हृदय नाच उठा। यदि सच पूछिए तो जवाहरलाल जी से अच्छा व्यक्तित्व शायद ही किसी नेता का हो। मैं भाषणों की चर्चा नहीं करूँगा और न राजनैतिक बालू पेर कर तेल निकालने का ही प्रयत्न करूँगा। समाचारपत्रों में आपने रामगढ़-कांग्रेस के निर्णय के सम्बन्ध में पढ़ा होगा। मुझे क्षमा करें।

आकाश फिर भी घटाओं से भरा हुआ था। झंडा-चौक में कांग्रेस का खुला अधिवेशन आरम्भ हुआ। आस-पास जो दो-चार वृक्ष थे उनकी हरएक डाल पर मौजी लोग बैठे थे और मोटरों की छतों पर तो इस तरह लोग खड़े थे कि देखते ही बनता था। रामगढ़-कांग्रेस में उमड़ती हुई भीड़ को देखकर मैं सिहर उठा। विश्वास हो गया है कि भारत की आबादी निश्चय ही बेतरह बढ़ गई है और संतानिग्रह अब आवश्यक हो गया है। जहाँ नज़र जाती, वहीं झुंड के झुंड निराश्रित भाई नज़र आते और दामोदर नद

[श्रीयुत बजाज, पण्डित नेहरू और खान ग़फ़्फ़ार ख़ाँ कांग्रेसनगर का निरीक्षण कर रहे हैं।]

के किनारे तो चूल्हों और हंडियों के मारे कहीं ठिकाना न था। ये दर्शक तमाशाई थे। इन्हें राजनीति से कोई वास्ता नहीं। ठलुए भाई को दो घड़ी मन बहलाने से मतलब। पैदल, साइकिल से, बैल-गाड़ी से और डौल लग गया तो रेल और मोटर से भी ये हज़रत तमाशा देखने उचित स्थान पर पहुँच कर वहाँ की रौनक़ बढ़ा देते हैं।

राम राम करके क़रीब १२ बजे अधिवेशन समाप्त हुआ। पण्डित ओंकारनाथ जी के वन्दे मातरम् गान के साथ। जब अधिवेशन समाप्त हो गया तब मैंने अनुभव किया कि पेट में जठराग्नि ने समुद्रमंथन का दृश्य उपस्थित कर दिया है। साथ ही रायसाहब की याद भी बुरी तरह सताने लगी, जिन्हें मैं दामोदर नद के उस पार छोड़ आया था। सबसे पहले मैंने पेट भरना आवश्यक समझा, क्योंकि मुझे ऐसा अनुभव हो रहा था कि अन्न के अभाव में अंतड़ियाँ पच रही हैं।

[आचार्य कृपलानी और सरदार वल्लभभाई पटेल]

पटना के विख्यात 'पिंटू' नामधारी होटल की एक सुन्दर शाखा कांग्रेसनगर के एक छोर पर खुली थी। वहाँ पहुँचते ही रामगढ़-कांग्रेस के सर्वेसर्वा भाई श्री अम्बिकाकान्त सिन्हा जी प्रसन्नवदन नज़र आये। उनका निखरा हुआ स्वास्थ्य देखकर मैं मन ही मन सिहाने लगा। वे थाइसिस के कभी शिकार हुए थे, पर रामगढ़-कांग्रेस के 'आफ़िसर-इंचार्ज' बनकर उन्होंने कई मास तक रामगढ़ में ही निवास किया। कांग्रेस के निर्माणकार्य में जिसमें लाखों का वारा-न्यारा हुआ, अकेले ही जुटे रहे राष्ट्र के नाम पर विहार की प्रतिष्ठा के नाम पर। परमात्मा उनकी लगन को देखकर ऐसा रीझे कि फिर क्या कहना है! रामगढ़ की हवा और पवित्र राष्ट्रीय सेवा का पुण्य, इन दोनों के मणि-सुवर्ण योग से मेरे चिर-प्रसन्न भैया अम्बिकाकान्त जी का सारा रोगताप देखते-देखते काफ़ूर हो गया और वे उस दिन मुझे पहलवान की तरह रसगुल्ला पर रसगुल्ला निगलते नज़र आये! जनता-सम्पादक भाई बेनीपुरी उछलते-कूदते आये। फिर डाक्टर लोहिया, श्री मेहरअली आदि दरिद्र किसानों और मज़दूरों के अनेक 'सेवक' भी पिंटू जैसे महँगे और शानदार होटल में टहलते दिखलाई पड़े। मैं निहाल हो गया!

अब घर जाने की धुन सिर पर सवार हुई। राजेन्द्र बाबू ने कह दिया था कि "पीने लायक़ पानी नहीं है, अतएव रामगढ़ छोड़ने में आलस्य नहीं करना चाहिए।" मैं भागता हुआ अपने डेरे पर पहुँचा तब देखता क्या हूँ कि रायसाहब गायब! उनके एक नौकर से पूछने पर पता चला कि वे चले गये और......"

मैं 'और' के मानी समझ गया। वे मुझे भी बुलाते गये। यदि रायसाहब मुझे नहीं भी बुलाते तो भी मैं रामगढ़ में ही सिर-मुँडा कर, धुनी-रमा कर रहने के लिए तनिक भी उत्सुक नहीं था। ख़ैरियत यह हुई कि रायसाहब का सारा सामान वहीं पड़ा था।

संध्या हो रही थी। नील-गगन में सुनहरी धूप चमक रही थी और दिन के साथ ही सिर पर पाँव रख कर भीड़ भाग रही थी। चारों ओर उदासी-सी नज़र आने लगी। मैं एक अनाश्रित, अनाहूत,

[रामगढ़ में दामोदर नद का एक दृश्य]

निकम्मा, वन्धु-बान्धव-रहित और उद्देश्यहीन व्यक्ति की तरह सड़क के किनारे खड़ा खड़ा वायुवेग से जानेवाली रंग-विरंगी मोटरों को देखता रहा। सोच रहा था कि गया पहुँचने का कौन सा रास्ता अच्छा होगा—मोटर से, रेल से या पैदल! पैदल लौटने में व्याघ्र-हुंकार का भय था, पर अखबारों में नाम अवश्य छप जाता और पैसे भी बच जाते।

कर्म-फल इसी का नाम है।

नक़द आलोचना

रामगढ़-कांग्रेस में सभी तरह की सुविधायें थीं, यदि पास में ज़रूरत से अधिक धन हो। यहाँ तक कि फ़ोटो लेने की इजाज़त लेने की फ़ीस थी प्रत्येक 'केरा' नक़द २५), स्वागतकारिणी के सदस्य होने की फ़ीस थी एक मुश्त २५) और एक अच्छी कुटिया का किराया था महज़ २५)! जान पड़ता है कि कांग्रेसवाले २५) से कम अंक जानते ही नहीं थे। बात बात में पैसा और क़दम क़दम पर फ़ीस। मैं कांग्रेस की निन्दा करने पर उतारू नहीं, पर मेरी ईमानदारी कहती है कि कोरे काग़ज़ पर झूठी बात न लिखी जाय। मैं कांग्रेस का प्रशंसक हूँ, पर कांग्रेस-अधिवेशनों में जो यह रोज़गार किया जाता है उसकी प्रशंसा मैं नहीं करता। राष्ट्रीय जागृति और महात्मा जी की सादगी के नाम पर यह उपद्रव जितना कम हो, उतना ही अच्छा, क्योंकि देहातों में कांग्रेस का जलसा करके ग्रामीणों में राष्ट्रीयता की आग भड़काने की बात लाखों बार कही जा रही है। मैं नहीं कह सकता कि रामगढ़ के देहातियों में यह आग भड़की या नहीं।

अकेले भाई अम्बिकाकान्त सिन्हा ने ही उजाड़ रामगढ़ को स्वर्ग वनाया, इसके लिए उन्हें धन्यवाद देता हूँ और रामगढ़ ने मेरे उक्त रोगी भाई को स्वास्थ्य-धन प्रदान किया इसके लिए रामगढ़ को भी धन्यवाद देता हुआ एक वार अपनी दुर्गति पर दो बूँद आँसू वहा लेना उचित समझता हूँ। वन्दे मातरम्।

उस पार

लेखिका, श्रीमती कुमारी शिवोलारानी 'कुसुम'

न दिन मेरे जीवन के प्रभात-काल का उदय हुआ था; किन्तु किसी को क्या पता था कि यह प्रभात दारुण दुःख-रूपी अन्धकार में सहसा आवृत हो जायगा। जीवन की सबसे बड़ी विभूति को मैंने जान-बूझ कर खो दिया। उस समय यदि मैं हठ न करती तो क्या मेरे सर्वस्व का यों सर्वनाश हो जाता?

जीवन के उस पट-परिवर्तन पर मैं जितना विचार करती जाती हूँ, उतनी ही विषादमयी चिन्ता प्रबल वेग से हाहाकार करती आती है।

संध्या माँग में सिंदूर भरे अपने प्रियतम के मिलन की उत्कण्ठा में बादलों के हल्के रंगीन पंखों पर बैठी क्षितिज के उस पार उड़ी चली जा रही थी। बसान नदी का शीतल जल मन्द-मन्द बहते पवन से अठखेलियाँ कर रहा था, जिसके कारण नदी में छोटी-छोटी लहरें लहरा जाती थीं। सूर्यदेव अभी अपने स्वर्ण-मन्दिर में प्रवेश नहीं कर पाये थे। यही सब देखने के लिए मानो प्रकृति ने खिल-खिल कर अपना घूँघट पल्टा था।

इसी नदी के तट पर खड़ी उस पार जानेवाले मनुष्यों की मैं राह देख रही थी। प्रातः से अब तक कोई तीन मनुष्य उस पार जा चुके थे। मैं और मेरे पिता उस पार नाव खे ले जाते—यही हमारा व्यवसाय था।

नदी के उस पार कई गाँव थे और धनिकों की मिलें थीं, जिनमें अधिकतर मज़दूर लोग ही काम करते थे।

मुझे नौका खेने का व्यसन-सा था। मेरे पिता मुझसे कई बार कह चुके थे—बेटी, तू लोगों को उस पार मत ले जाया कर। मैं ही उन्हें उधर छोड़ आया करूँगा।

किन्तु मैं उनके कहने पर ध्यान नहीं देती थी। हाँ, कभी-कभी वे हठात् मेरे हाथ से चप्पू ले लेते और कहते—बेटा, तू मेरी एकमात्र सन्तान है। तेरी मा के प्रतिबिम्ब को मैं तेरे में देखकर कितना प्रसन्न होता हूँ, तू क्या जाने? बेटी, हठ करना ठीक नहीं। उनके इस कथन पर कभी-कभी मुझे अत्यन्त दुःख होता और मैं उस पार नौका न ले जाती।

* * *

सुहावनी घड़ी थी। मैं सरिता-तीर पर खड़ी प्राकृतिक शोभा निहारने में निमग्न थी। सहसा किसी ने कहा—सुखदा, क्या मुझे उस पार पहुँचा दोगी?

यह मेरा परिचित स्वर था। मेरा ध्यान भंग हुआ। मैंने पीछे मुड़कर देखा—कौन? विनु?

विनु मेरा बचपन का साथी था और इस यौवन के द्वार पर वही मुझसे खड़ा मुस्करा रहा था। जब मेरी मा जीवित थीं तब विनु की मा मेरे रूप पर रीझ कर कहा करतीं थीं कि सुखदा की मा, मैं अपनी पुत्रवधू इस तेरी सुखदा को ही बनाऊँगी।

मेरी मा भी हँस कर 'हाँ' कर देती थीं।

मा को मरे आज सात वर्ष हो गये थे और तब से बराबर मेरे और विनु के विवाह-सम्बन्ध में बातचीत चल रही थी। मैं एक हठीली और अपने बाप की इकलौती सन्तान थी। जब-जब मेरे हृदय में अपनी मा की स्नेहमयी मूर्ति अंकित होती तब-तब मेरा विश्वास 'संसार नश्वर है'—बापू के इस कथन पर दृढ़ हो जाता था। मैं कहती, 'बापू मैं विवाह नहीं करूँगी।'

किन्तु कल मेरा विवाह विनु से ही होनेवाला था। मुझे न हर्ष था और न विषाद!

इस समय जब विनु ने कहा, 'सुखदा, क्या मुझे उस पार पहुँचा दोगी' तब मुझे हर्ष ही हुआ था। मैंने, आवेग में आकर कहा—"क्यों नहीं? तुम अभी उस पार पहुँचते हो। किन्तु वहाँ काम क्या है?"

उसने कहा—उस गाँव के स्वामी ने कल मेरी दूकान से कुछ वस्तुएँ ख़रीदी थीं और दस रुपये का एक नोट दिया था, जिसके शेष रुपये वे मुझसे लेने भूल गये। आज मैं रात होते-न-होते बाक़ी रुपया उनके यहाँ पहुँचा आना चाहता हूँ।

मैंने शीघ्र ही नाव खोल दी। विनु झट नौका पर

जा बैठा। मैं जैसे ही नाव खेने के लिए बैठना चाहती थी कि एक युवती ने मेरा हाथ पकड़ कर कहा,—दुर पगली, क्या यह समय किसी को भी उस पार पहुँचा देने का है ? देखती नहीं, संध्या बीत चली है और बादल घिर आये हैं। यदि बड़े ज़ोर की वर्षा होने लगे तो क्या करोगी ?

मैं उसकी बात सुनी-अनसुनी करके नाव पर चढ़ गई। युवती मेरा मुख देखती रह गई, उसको कुछ भी कहने का साहस न हुआ।

मैंने चप्पू पानी में डाल दिये।

आज मैं अपने भावी पति को 'उस पार' पहुँचाने जा रही थी।

मैं नौका खे रही थी और वे कभी मेरी ओर और कभी नदी की ओर देख रहे थे। न मालूम वे क्या सोच रहे थे। मैंने निस्तब्धता भंग करते हुए पूछा—कितनी देर में लौटोगे ? वे बोले, अभी थोड़ी देर में।

नाव किनारे पर जा लगी। वे उतर गये। उन्होंने मुझसे कहा—तुम थोड़ी देर ठहरो, मैं अभी आता हूँ। फिर हम इसी नाव से लौटेंगे।

वे चले गये। जितनी दूर मेरी दृष्टि जाती थी, मैं उनको देखती रही, किन्तु जब वे मेरी आँखों से ओझल हो गये तब मैं अनमनी हो नाव पर आ बैठी।

लो, वे लौट आये। उन्होंने कहा—चलो सुखदा, अब उधर चलो। मैं चलने को उद्यत हो गई, परन्तु उन्होंने कहा, क्या तुम सचमुच उधर ले जा सकोगी।

मैंने कहा, क्यों नहीं। जैसे मैं यहाँ तक नौका खे लाई हूँ, वैसे ही अब लौटा भी ले जा सकती हूँ।

उन्होंने कहा—बस करो। तुम बहुत साहसी हो। किन्तु तूफ़ान आने में देर नहीं। नदी अपना भयंकर रूप धारण करने ही वाली है। और हमारे पास कोई ऐसा साधन नहीं है, जिससे हम तूफ़ान और आँधी के साथ लड़ सकेंगे। एक रात यहीं ठहरो।

मैं न मानी। मैंने कहा—देखो तो हम एक ही क्षण में वहाँ पहुँच जाते हैं।

और इतना कह मैंने नाव खोल दी।

उन्होंने मेरी ओर निराशा-भरी दृष्टि से देखा। उनका स्पष्ट अभिप्राय प्रकट हो रहा था कि इस समय जाना काल के मुँह में हाथ डालना है। किन्तु मैं अपने साहस और प्रेम के आवेग में थी।

नौका चल पड़ी। और अब हम बीच धार में पहुँच गये। मैंने व्यङ्ग्य से कहा—तुम तो कहते थे कि आँधी-पानी आयेगा। अभी तो एक बूँद भी नहीं पड़ी।

उन्होंने मुस्करा कर कहा—तो क्या तुम सोचती हो कि तूफ़ान नहीं आयेगा ?

मैंने कहा—ख़ैर, जब आयेगा तब देखा जायगा। साहस के पतवार को छोड़ना हम नाविकों का काम नहीं !!

मैं नाव खे रही थी। इतने में ही रजनी ने अपने अंधकार को इस छोर से उस छोर तक फैला दिया। उस पार कभी-कभी दूर घोर जंगल में टिमटिमाते जुगनू दृष्टिगोचर होते थे और इधर मेरे हृदय में जुगनू की-सी दीप्ति-आशा चमक उठती थी।

वे मेरे निकट आकर बैठ गये और प्रेमभरी दृष्टि से मेरी ओर देखकर बोले—सुखदा ! कल ह... मा... ...रा...। आगे वे कुछ न कह सके।

मैं क्या उत्तर देती ? मेरा सिर लज्जा से झुक गया। वे बोले—तो तुम मुझे सदा उस पार ले जाया ही करोगी ?

उनके मन के भाव अभी पूर्ण रूप से प्रकट भी न होने पाये थे कि सहसा बड़े जोर से आँधी आई, बिजली चमकी और लो, बादल टूट पड़े।

वायु नदी से टकराने लगी। हमारी नौका भी अनिश्चित मार्ग की ओर बह चली।

तूफ़ान और बादल की गर्जना में मुझे उनका स्वर सुनाई पड़ा—देखो, सुखदा, मैंने कहा न था कि-आँधी-तूफ़ान आयेगा। एक रात ठहर जातीं। कल, हमारा...।

एकाएक मुझे भय लगने लगा। मेरे मुख से चीख निकल पड़ी। मैंने कहा—देखो, विनु ! वह बड़ी लहर आ रही है और हम उसमें सदा के लिए समा जायँगे। यह कह मैंने जोर से उनका हाथ पकड़ लिया।

और मृत्यु का आह्वान करती लहर आई तथा हमारी अशक्त नाव एक ही क्षण में उस अगाध जल के उदर में समा गई।

× × ×

दूसरे दिन जब वही संध्या गुलाबी साड़ी पहनकर

आई तब मैंने सचेत हो देखा कि मैं नौका पर नहीं हूँ, अपने घर में लेटी हूँ। धीरे-धीरे मुझे कलवाला दृश्य दिखाई देने लगा।

मैं बिनु को उस पार पहुँचाने गई थी। बस, वही मेरा अन्तिम 'उस पार' जाना था और ले आना था। लेकिन उस पार जाकर मैंने क्या पाया, क्या सार निकाला, जब जीवन में ही सार नहीं है?

हाँ 'उस पार' जानेवालों को मैं अब भी उसी स्थान पर खड़ी होकर देखा करती हूँ।

और कभी-कभी मुझे वही परिचित स्वर सुनाई पड़ता है—सुनदा, क्या मुझे 'उस पार' पहुँचा दोगी?

ओह! 'उस पार' जाकर भी क्या कभी कोई लौटा है? फिर यह संसार का आवागमन कैसा? उस 'उस-पार' के स्वामी की लीला विचित्र है!

पाकिस्तान

लेखक, श्रीयुत "सनेही"

(१)

विमल जहाँ बह रही सिन्धु-गंगा की धारा, वेद-ध्वनि से हुआ पूत जिसका कि किनारा।
गूँजा जहाँ 'अकालपुरुष' का निर्भय नारा, सिंहों ने है जहाँ दस्युओं को संहारा॥
'तुर्किस्तान' बने वहीं भरत-भूमि पर भार हो,
ठाकुरद्वारा और यों लहनकियों की मार हो।

(२)

तीस कोटि हो, हिन्दु-राज्य-अभिलाषा छोड़ी, 'हिन्दुस्तानी' मान, 'हिन्दवी' भाषा छोड़ी।
छोड़ी संस्कृति और धर्म-परिभाषा छोड़ी, सब कुछ छोड़ा, नहीं मेल की आशा छोड़ी॥
ज्यों-ज्यों हम समझे गये मज़हब भी अक्यून है,
मिस्टर जिन्ना का बढ़ा त्यों-त्यों और जुनून है।

(३)

अंग-बंग का अंग-भंग करके छोड़ेंगे, पूरी वे अपनी उमंग करके छोड़ेंगे।
अरब-रंग रंग, एक रंग करके छोड़ेंगे, स्वधर्मियों का अखिल संग करके छोड़ेंगे॥
जोड़ेंगे नाता नया काबुल से, तेहरान से,
चाहे 'खाकिस्तान' हो भारत 'पाकिस्तान' से।

(४)

अपनी-सी कर चुके हमारे 'क़ायदे-आज़म', छोड़ा विष से भरा हिन्द की छाती पर 'बम'।
ऐसा चरका दिया नहीं जिसका है मरहम, खीझ रहे 'आज़ाद', 'महात्मा जी' हैं बरहम॥
'मुंजे' का 'मालवी' का ठीक रहा अनुमान है,
"बिना संगठन, एकता दिन के स्वप्न समान है।"

(५)

सम्मुख है दुर्योग रहा अब काम आपका, टुकड़े-टुकड़े हो कि बचे यह धाम आपका।
बने खुदा या बना रहे यह राम आपका, दुनिया से मिट जाय या रहे नाम आपका॥
कोई चलता है अगर चाल बुरी चलने न दें,
जन्म-भूमि के गले पर तेज़ छुरी चलने न दें।

हमारी आज की समस्या

लेखक, श्रीयुत अवनीन्द्र विद्यालङ्कार

आदर्शों और विचारों का भारतीय राजनैतिक गगन में ववण्डर आया हुआ है। सात प्रान्तों से प्रान्तीय स्वायत्त शासन का अन्त होगया है। इसके बीच हमारा देश आज अपनी राह खोज रहा है। मार्ग अस्पष्ट और धुंधला है। आज हमारा जिज्ञासु मस्तिष्क पूछ रहा है, किधर और किस दिशा में हम अपना पग बढ़ायें। ये सवाल नये नहीं हैं। स्वराज्य की आकांक्षा का हमारे हृदयों में जब से उदय हुआ है तब से ये प्रश्न हमारे सामने समय-समय पर आते रहे हैं। मगर जान या अनजान में अब तक ब्रिटिश पार्लियामेण्टरी जनसत्ता-पद्धति को आदर्श मान कर हम बराबर आगे बढ़े जा रहे थे। क्योंकि अगला क़दम उठाना हमारी इच्छा के अधीन नहीं था। इसलिए ये सवाल भी दबे हुए थे। मगर योरपीय युद्ध की वायु ने इन पर पड़ी राख को उड़ा दिया है और कांग्रेस-द्वारा ब्रिटेन के सामने यह माँग रखने से कि भारत को स्वाधीन देश माना जाय और अभी से उसके साथ एक स्वाधीन देश के सदृश बर्ताव किया जाय, वे प्रश्न हमारे सामने मूर्त रूप में आ गये हैं। मालूम होता है कि जनसत्तात्मक पार्लियामेंटरी पद्धति को, जिस पर हम अब तक चलते आ रहे हैं, और जिसका चरम विकास हमारा लक्ष्य रहा है, हम छोड़ने को बाध्य होंगे। मुस्लिम लीग के तीव्र और तीक्ष्ण प्रहारों ने हममें से बहुतों का इस पद्धति पर से विश्वास डिगा दिया है और हम संशय करने लगे हैं, क्या सचमुच यह पद्धति ४० करोड़ आबादीवाले देश के लिए अनुकूल है।

राजनैतिक सिद्धान्त

स्वाधीन भारत के विभिन्न राजनैतिक आदर्शों, सिद्धान्तों और विचारों के अनुसार विभिन्न कल्पनायें इन दिनों हमारे सामने आई हैं। जहाँ एक ओर ऐसे कल्पनाशील व्यक्तियों की कमी नहीं जो सारे संसार से अलग स्वाधीन भारत की कल्पना करते हैं, वहाँ ऐसे लोगों की भी कमी नहीं जो सदा पराधीन रहनेवाले भारत की कल्पना करते हैं। अत्यन्त चरम छोर की कल्पनाओं का विचार यदि हम छोड़ दें, तो हम देखेंगे कि हमारे देश के मानसिक जगत् को प्रभावित करनेवाली विभिन्न विचार-धाराओं का स्रोत वर्गवाद, समाजवाद, राष्ट्रवाद, सम्प्रदायवाद और साम्राज्यवाद है। वर्गवाद और समाजवाद के अनेक रूप हैं और हर एक विचारक इसके अलग अलग रूप उपस्थित करता है। मगर कुछ ऐसे सिद्धान्त हैं जिनमें सबका मतैक्य है। इसके प्रचारकों का विश्वास है कि दुनिया की तमाम बुराइयाँ और संसार के सब दुःखों को दूर करने की एकमात्र रामबाण दवा वर्गवाद व समाजवाद है। राष्ट्रवाद के प्रचारक समझते हैं कि भाषण, संस्कृति, शास्त्र और सामाजिक परम्पराओं के अनुसार भारत के प्रान्तों की सीमा का निश्चय करने से आज की कठिनाइयाँ दूर हो जायेंगी। सम्प्रदायवादियों का एकमात्र धर्म से सम्बन्ध है और इसके आगे वे और कोई बात सुनने के लिए तैयार नहीं हैं। साम्राज्यवादियों का ख़याल है कि चतुर और बुद्धिमान् लोगों को अपने से कम उन्नत देशों के स्रोतों का अपने लाभ और उपयोग में लाने का स्वत्व प्राप्त है। उनका यह भी विश्वास है कि पश्चिम के कुछ देशों को परमात्मा ने शेष संसार पर राज्य करने के उद्देश्य से उत्पन्न किया है और इस 'दैवी धरोहर', संसार को सभ्य बनाने के बोझीले भार को, सुचारु रूप से उठाने के विचार से संसार को आपस में बाँट लेना चाहिए। वर्तमान योरपीय युद्ध का एक कारण प्रभाव-क्षेत्र को बढ़ाने की आकांक्षा भी है। इन चार विभिन्न विचार-धाराओं के लोग जब तक एक जगह, किसी एक कान्फ्रेंस में, कांग्रेस की परिभाषा में इसको राष्ट्रीय पंचायत (कांस्टीच्युएण्ट असेम्बली) कह सकते हैं न मिलें, तब तक भारत का अत्यधिक सम्भावित सम्मत विधान बनाना सम्भव नहीं है। मगर जब तक हमारा दृष्टिकोण स्पष्ट और हमारी दृष्टि साफ़ न होगी तब तक इस विचारों के बवण्डर में हम अपना मार्ग न बना सकेंगे। इसलिए इनकी कुछ समीक्षा विस्तार से अपेक्षित है।

वर्गवाद

हमारे देश में वर्गवादी संस्थायें ग़ैरक़ानूनी हैं। कांग्रेसी शासन में भी, उनके अनुरोध करने पर भी, उन पर से प्रतिबन्ध नहीं उठाया गया। इसके बावजूद वर्गवाद के

सिद्धान्तों का जन-साधारण में, विशेषतः उद्योग-धन्धों में काम करनेवाले मिल-मजदूरों में प्रसार हो रहा है। सोवियट रूस सदा का इनका आदर्श और प्रकाश-स्तम्भ है। यह अभी परीक्षण की अवस्था में है। रूस में भी लेनिनवाद का अन्त हो चुका है और स्टैलिनवाद ने वहाँ उसकी जगह ली है। मध्यम श्रेणी नवीन रूप में उत्पन्न हो रही है। व्यक्तिगत सम्पत्ति का भी अन्त अब पहले के उत्साह से नहीं किया जा रहा है। बल्कि एक निश्चित मात्रा में व्यक्तिगत सम्पत्ति रखने की आज्ञा मिल गई है। हाँ, उत्पादन के साधनों पर, खेती की जमीन को छोड़ कर, राष्ट्र का अधिकार है। हमारे देश में रेल सरकारी सम्पत्ति है। कराची-कांग्रेस ने स्वतंत्र भारत में कुंजी-व्यवसायों और उद्योग-धन्धों को राष्ट्रीय सम्पत्ति बताया है। इन बातों से इतना तो स्पष्ट है कि भावी भारत का विधान यदि विशुद्ध रूप में वर्गवाद या समाजवाद के सिद्धान्तों पर न हुआ तो भी उसके कुछ मुख्य सिद्धान्त अवश्य अपनाये जायँगे। कम से कम उत्पादन के मुख्य साधन सरकार के नियंत्रण में रहेंगे। क्योंकि १९३१ के बाद से संसार में आये विश्वव्यापी आर्थिक संकट ने इसकी आवश्यकता सिद्ध कर दी है। संयुक्तराष्ट्र अमरीका में प्रेज़ीडेंट रूज़वेल्ट की 'नवीन योजना' के द्वारा उत्पादन के साधनों पर अधिकाधिक सरकारी नियंत्रण स्थापित किया जा रहा है। इँगलेंड में भी मज़दूर-दल खानों और बैंक आफ़ इँग्लैंड का राष्ट्रीयकरण करने की माँग कर रहा है। इसलिए यदि हम भी किसी अंश और मात्रा में अपनी आर्थिक व्यवस्था को इसके आधार पर बनायें, तो कोई अचरज की बात न होगी।

मगर वर्गवादी और समाजवादी दृष्टिकोण विशुद्ध रूप से भौतिक हैं। यदि इसी दृष्टिकोण से हम अपनी वर्तमान कठिनाइयों को दूर करना चाहें तो दूर कर सकते हैं। इस तरीक़े से साम्प्रदायिक बाधा आसानी से दूर की जा सकती है। मगर सबसे बड़ी कठिनाई यह है कि भारतीयों का दृष्टिकोण विशुद्ध भौतिक नहीं है। उनके जीवन का दृष्टिकोण आध्यात्मिक और धार्मिक है। उनके जीवन का समस्त व्यापार इहलोक के लिए नहीं है, अपितु परलोक के लिए है। उनका चरम लक्ष्य इस जीवन और लोक को सुखी बनाना नहीं है, अपितु जीवन-मुक्ति प्राप्त करना है। यह दृष्टिकोण दूषित हो सकता है। मगर यह सत्य है कि अधिकांश भारतीयों का जीवन इससे परिचालित होता है। 'ऋणं कृत्वा घृतं पिबेत्' के आदर्श को माननेवाला भारतीय समाज नहीं है। यही कारण है कि धर्म हमारे जीवन के हर एक अंग में समाया हुआ है। समाज का हर एक क्षेत्र इसी तत्त्व से आन्दोलित होता है। जब यह उग्र रूप धारण कर लेता है, जिसको हम धर्मान्धता कहते हैं, तब साम्प्रदायिक दंगे हो जाते हैं। हमारा देश विभिन्न धर्मों, मज़हबों और मतों को माननेवालों का है। यदि धर्म केवल व्यक्तिगत रहता, देश की राजनीति और इसके सार्वजनिक जीवन से अलग रहता, तो हिन्दू-मुस्लिम फ़साद इस देश में न होते। धर्म व्यक्तिगत जीवन तक सीमित रहे, यह आज इस देश में सम्भव नहीं है। इसके अतिरिक्त हमारे समाज, विशेषतः मुस्लिम समाज की सामाजिक व्यवस्था धार्मिक ढाँचे पर खड़ी है। यह आज एकदम नहीं बदली जा सकती। उन्नति की आँधी भी इसको जड़मूल से आज उखाड़ न सकेगी।

समाजवादी सामाजिक व्यवस्था क़ायम होने में आज एक और बड़ी बाधा है। लगभग ६६० राजमुकुटों और ताजों के रहते यह सम्भव नहीं है। ब्रिटिश साम्राज्य के अस्तित्व में रहते इनका अन्त सम्भव नहीं है। यह ठीक है कि ब्रिटिश साम्राज्य का यह रूप इस लड़ाई के बाद न रहेगा, मगर उस रूप में भी जब तक ब्रिटिश साम्राज्य है, निहित स्वार्थवाला वर्ग रहेगा। जब तक हमारी सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक व्यवस्था में आमूल परिवर्तन न हो, तब तक विशुद्ध वर्गवादी राज्य की कल्पना मूलरूप में अवतरित नहीं हो सकती।

पाकिस्तान

दूसरी विचारधारा साम्प्रदायिक है। यह पाकिस्तान योजना के नाम से प्रसिद्ध है। इसका उद्देश्य यह है कि भारत दो भागों—हिन्दू-भारत और मुस्लिम-भारत—में बाँट दिया जाय।

और यह योजना ब्रिटिश भारत तक ही सीमित नहीं है, बल्कि देशी रियासतें भी इसमें शामिल हैं। इसलिए जब तक इस योजना को देशी नरेशों और ब्रिटिश भारत के शासकों का समर्थन प्राप्त न हो तब तक यह

पूर्णरूप धारण नहीं कर सकती। ब्रिटिश सरकार का दावा है कि वह भारत को एक संयुक्तराष्ट्र में परिणत करना चाहती है और उसके भारतीय शासन का यही उद्देश्य है। यही नहीं, उसको इस बात का गर्व है कि उसने भारत को एकता प्रदान की है और भारतीय राष्ट्रीयता व भारतीयता को उत्पन्न किया है। इसलिए मुसलमानों के एक वर्ग के प्रसन्न करने के लिए अपने १५० साल के लम्बे शासन के इतिहास, उद्देश्य और ध्येय को वह एकाएक नहीं छोड़ सकती।

दूसरे, देशी नरेशों में अधिकांश हिन्दू हैं। वे देश को इस रीति से बाँटा जाना सम्भवतः पसन्द न करेंगे। यदि वे इससे सहमत हुए तो उनको—हिन्दू और मुस्लिम भारत और ब्रिटिश सरकार—इन तीन शक्तियों से अलग-अलग, संधियाँ करनी पड़ेंगी।

पाकिस्तान की योजना का आधार है कि ८ करोड़ मुसलमान एक शासन के अन्दर रहें। मगर सवाल तो यह है कि क्या पंजाबी, बंगाली, मदरासी मुसलमान, कच्छी, मेमिन, बोरा, शिया, सुन्नी प्रभृति एक साथ मिल कर रह सकेंगे। तुर्की साम्राज्य का अंगभंग और खिलाफ़त का अन्त न होता, यदि अरब के देश एक दूसरे के विरुद्ध न लड़ते। यह ठीक है कि सब मुसलमान यह मानने के कारण कि खुदा एक है और हजरत मुहम्मद उनके पैग़म्बर हैं, एक सूत्र में बँधे हुए हैं। मगर यह बन्धुत्व का बन्धन तो तुर्की साम्राज्य के मुसलमानों को भी बाँध रहा था, मगर वे परस्पर लड़े और उसका जो परिणाम हुआ वह आज हमारे सामने है। पंजाबी इस्लामिया हाई-स्कूल का दिल्ली में बनाया जाना सूचित करता है कि भारतीय मुसलमान भी अरब के मुसलमानों के रोग से ग्रस्त हैं। इसलिए विभिन्न प्रान्तों के मुसलमान एक जगह, एक शासन के अन्दर शान्ति से रह सकेंगे और परस्पर लड़कर यादवी युद्ध के शिकार न होंगे, यह गारण्टी के साथ नहीं कहा जा सकता। भारत के मुसलमानी काल के शासन का इतिहास भी इसी बात की पुष्टि करता है कि मुसलमान मिलकर शान्ति से न रह सकेंगे। दिल्ली-आगरा के तख़्त पर सात आठ मुस्लिम राजवंशों का आना और जाना यही सूचित करता है। वस्तुतः इस योजना में मुस्लिम हितों की दृष्टि से भी अनेक भय हैं और भारी भय है।

साम्राज्यवादियों का कथन

हमारे प्रभुओं और उनके समर्थकों का मन्तव्य और उद्देश्य सर्वविदित है। उनकी दलीलें और बातें सब पुरानी हो गई हैं। वे यही रटते रहते हैं कि भारत-वर्ष अभी एक राष्ट्र नहीं बना है। हिन्दू-मुसलमानों में एकता नहीं है। यदि वे आज चले जायँ तो हिन्दू-मुसलमान लड़-कट कर मर जायँ। विधाता ने हमें जो ट्रस्ट और ज़िम्मेदारी सौंपी है उसके प्रति सच्चे रहते हुए हम यह नहीं छोड़ सकते। हम चाहते हैं कि भारतीय अपने देश का शासन करने योग्य बनें। हम सेना, परराष्ट्र-विभाग और सारे देश में शान्ति बनाये रखने की अन्तिम ज़िम्मे-दारी को छोड़कर देश का सारा शासन भारतीयों को देने के लिए तैयार हैं। यहीं नहीं, लड़ाई समाप्त होने के बाद भारत के कुछ चुने हुए प्रतिनिधियों से मिलकर और उनसे सलाह करके भारत का भावी शासन-विधान बनाने को प्रस्तुत हैं। मगर इस समय जब कि हम जीवन और मरण के संग्राम में लगे हुए हैं, भारत का अपनी माँग पूरी करने का आग्रह कर हमारा उधर से ध्यान बँटाना या हमें परेशान करना उसको शोभा नहीं देता। और यह उसके गौरव के भी अनुरूप नहीं है। उसके लिए तो यही उचित है कि वह अपने सारे स्रोतों और अपनी सारी शक्ति से हमारी इस लड़ाई में मदद करे, जिससे जनसत्ता के शत्रु और बाधक हिटलरवाद और स्टेलिन-वाद का अन्त हो जाय और जनसत्ता का मार्ग प्रशस्त हो।

राष्ट्रीय भारत का उत्तर स्पष्ट है। उसका कहना है कि भारत जानता है कि उसके भौतिक स्रोत तुम्हारे कमान में हैं और तुम उसका जब और जैसा चाहो उपयोग कर सकते हो। तुम भारत का नैतिक समर्थन चाहते हो। वह हम उस समय तक देने के लिए तैयार नहीं हैं, जब तक तुम अपना युद्ध-उद्देश्य, जहाँ तक उसका भारत से सम्बन्ध है, प्रकट नहीं करते और जिन सिद्धान्तों और आदर्शों की रक्षा के वास्ते योरप में लड़ रहे हो, उनको भारत से, इस समय की अवस्था के अनुकूल—लागू करने को तैयार नहीं होते। तुम्हारा यह कहना ठीक नहीं है कि इससे हिटलरवाद को अप्रत्यक्षरूप से प्रोत्साहन मिलता है। लड़ाई समाप्त होने के बाद ब्रिटिश साम्राज्यवाद जो हिटलरवाद की ही एक क़िस्म है—पिछली लड़ाई के

वाद के समान अपने प्रभुत्व का विस्तार न करेगा और अपने स्वामित्व को और अधिक दृढ़ और मज़बूत बनाने की कोशिश नहीं करेगा, इस बात की क्या गारण्टी है ? यदि योरप के छोटे राष्ट्रों के लिए स्वीकृत स्वभाग्य-निर्णय के सिद्धान्त को भारत के प्रति अविलम्ब ब्रिटेन घोषित नहीं करता तब हम यह कैसे मान लें कि वह एशियाई और अफ़्रीकन साम्राज्य को छोड़ने के लिए तैयार है और साम्राज्यवाद को तिलांजलि दे चुका है। इस अवस्था में तो राष्ट्रीय भारत विश्वास नहीं कर सकता कि ब्रिटेन लड़ाई के बाद भारत की स्वाधीनता स्वीकार कर लेगा, जब कि आज ही उसके साथ एक स्वाधीन राष्ट्र मान कर बर्ताव करने के लिए वह तैयार नहीं है। युद्ध की घोषणा करने के समय ही नहीं, अपितु हिटलर के संधि-प्रस्तावों का जवाब देते हुए भी भारत से सलाह लेना ज़रूरी नहीं समझा गया, जब कि डुमीनियनों से परामर्श करने के बाद हिटलर को जवाब दिया गया। अतः इस पराधीनावस्था में भारत-द्वारा दी गई सहायता का कोई मूल्य नहीं है। यह तो भाड़े के टट्टुओं-द्वारा दी गई मदद है। राष्ट्रीय भारत नैतिक सहायता एक ही शर्त पर दे सकता है कि भारत को स्वाधीन राष्ट्र घोषित किया जाय और उसी के अनुसार अभी से आचरण किया जाय।

राष्ट्रवाद

अन्तिम चीज़ राष्ट्रवाद व राष्ट्रीयता रह जाती है, जो पिछले ५०-६० साल से जाति, धर्म और विश्वासों के भेद को नष्ट करते हुए प्रत्येक वर्ग के भारतीय को अनुप्राणित कर रही है। यह ठीक है कि सारा देश अभी इसके रंग में नहीं रँगा है। वायसराय से हुई बातचीत और लीग-द्वारा मनाया गया मुक्ति-दिवस से प्रकट हुए अनैक्य और कठिनाई को राष्ट्रीय भारत ओझल नहीं करता। मगर साथ ही उसका विश्वास है कि यदि शक्ति का स्रोत ब्रिटिश गवर्नमेंट या पार्लियामेंट न रह कर भारतीय जनता हो जाय, तो ये मतभेद दूर हो जायँगे, क्योंकि आम जनता का हित एक है। आज की साम्प्रदायिक समस्या की विकटता और उग्रता का कारण ब्रिटिश सरकार की समय-समय पर एक विशिष्ट सम्प्रदाय से अनुग्रह व अनुकम्पा करने की नीति का फल है, इसलिए उसका विश्वास है कि जब तक तीसरी शक्ति मौजूद है, साम्प्रदायिक समस्या भी किसी न किसी रूप में बनी रहेगी।

सब देशों में राजनैतिक पार्टियाँ होती हैं। मगर शासन-सूत्र उसी के हाथ में रहता है और उसी की नीति अमल में आती है, जिसका बहुमत होता है। विरोधीदल विरोधीदल ही रहता है। इससे अधिक नहीं। हिन्दू-बहुमत एक काल्पनिक और काग़ज़ी चीज़ है। हिन्दू अनेक जातियों, उपजातियों और धर्मों में बँटे हुए हैं। अतः हिन्दू-बहुमत का हौआ काल्पनिक है और निहित स्वार्थ-वालों ने खड़ा किया है।

पार्लियामेण्टरी जनतन्त्र

यह मान लेने पर भी कि राष्ट्रवाद ठीक है और राष्ट्रीय भारत की माँग ठीक है, और पूर्ण होनी चाहिए, हमारे देश के अन्दर ही ऐसे बहुत से लोग हैं, जिनका ख़याल है कि पार्लियामेंट जनसत्ता, योरपीय व अमरीकन ढंग की जनसत्ता, इस देश के उपयुक्त नहीं है। जनसत्ता का मूलतत्त्व यह है कि जिनको शासन करने का अधिकार और कर्तव्य सौंपा जाय वे जनता के प्रति ज़िम्मेदार हों। यह ज़िम्मेदारी अत्यधिक सम्भावित व्यापक मताधिकार के आधार पर निर्वाचित प्रतिनिधि ही पूरी कर सकते हैं। यह संयुक्तराष्ट्र अमरीका के समान निर्वाचित राष्ट्रपति और निर्वाचित पार्लियामेंट के अन्दर विभाजित हो सकती है, या ग्रेट ब्रिटेन के समान अविभाजित हो सकती है। छोटे-मोटे जहाँ तहाँ हेर-फेर किये जा सकते हैं, मगर पार्लियामेंटरी जनसत्ता का और कोई प्रकार सम्भव नहीं है। इन दोनों पद्धतियों में जनता के प्रति प्रतिनिधियों की ज़िम्मेदारी उसी सीमा तक वास्तविक और प्रभावशाली होगी, जहाँ तक विभिन्न राजनैतिक व आर्थिक विचार के आधार पर पार्टियाँ संगठित होंगी। बालिग़ मताधिकार-सदृश मताधिकार जनता को मिलने पर निर्वाचन-क्षेत्र बहुत बड़े होंगे और चुनाव लड़ने का व्यय बहुत भारी होगा। ऐसे चुनावों में किसी साधारण व्यक्ति का, जिसकी जेब ख़ाली हो या जिसकी बहुत बड़ी जेब न हो, जीतना नामुमकिन है। इन चुनावों में सुसंगठित पार्टी ही विजय-लाभ कर सकती है। इसलिए प्रतिनिधिमूलक और उत्तरदायित्वपूर्ण जनसत्ता-पद्धति की सफलता के लिए संगठित राजनैतिक पार्टियों का होना आवश्यक है। सुसंगठित

राजनीतिक पार्टियों के अभाव में जनसत्ता की कल्पना करना मृगमरीचिका है। इससे स्पष्ट है कि जनसत्ता के अस्तित्व और उसके कार्य करने के लिए विभिन्न पार्टियों की सत्ता और उनका सुचारुरूप से कार्य करना मूलरूप से आवश्यक है। साथ ही भारत के लिए अविभाजित उत्तरदायित्ववाली जनसत्ता-पद्धति ही श्रेयस्कर है और ब्रिटिश पार्लियामेंटरी पद्धति का सिद्धान्ततः अनुसरण करने का मार्ग ही हमारे सामने बच जाता है।

साम्प्रदायिक-मन्त्रिमण्डल

हमारे देश में ऐसे लोगों की भी कमी नहीं, जो वर्तमान गति-अवरोध को न दूर करने के लिए और मुस्लिम लीग की अधिकार-तृष्णा शान्त करने के लिए कांग्रेस और लीग का संयुक्त मन्त्रि-मण्डल बनाने की सलाह देते हैं। वे भूल जाते हैं कि धर्म, मज़हब व सम्प्रदाय के आधार पर बनी पार्टी के साथ राजनैतिक पार्टी मिलकर मंत्रि-मण्डल नहीं बना सकती। क्योंकि दोनों के दृष्टिकोण आदर्श और प्रोग्राम में ज़मीन आसमान का अन्तर होता है। यदि उन मित्रों की सलाह मानकर पिछले ढाई सालों में कांग्रेस लीग को भी मंत्रि-मण्डल में ले लेती तो कांग्रेस एक भी लोकोपकारी कार्य न कर सकती और दोनों दलों के मंत्रियों में दृष्टिकोण के अन्तर के कारण प्रायः हरएक मुख्य प्रश्न पर मतभेद होता, और गवर्नर को हस्तक्षेप करना पड़ता या मंत्रि-मण्डल को इस्तीफा देना पडता। यदि पहली अवस्था होती, तो प्रान्तों में स्वायत्त शासन का अन्त हो जाता और शासन निर्वाचित जन-प्रतिनिधियों का न होकर गवर्नरों का होता। दूसरी बात यह है कि कांग्रेस का जब ब्रिटिश गवर्नमेंट से कोई ऐसा समझौता होगा, जिसमें भारत की स्वाधीनता स्वीकार कर ली जायगी, तब संदेह है कि कांग्रेस का यही रूप बना रहेगा। इस बात की बहुत सम्भावना है कि कांग्रेस गांधीवादी, रेडिकल, समाजवादी, आदि पार्टियों में समाज-रचना के आदर्शों और आर्थिक सिद्धान्तों की विभिन्नता के आधार पर बँट जाय। तीसरी बात यह है कि यदि किसी एक संस्था को किसी एक जाति का एकमात्र प्रतिनिधि स्वीकार कर लिया गया तो उस जाति व वर्ग में आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक विचारों और आदर्शों की विभिन्नता के कारण पार्टियों का बनना और बिगड़ना बन्द हो जायगा। यही नहीं यदि वर्तमान समस्याओं और चालू मसलों पर उसकी नीति और सिद्धान्तों तथा विश्वासों का ख़याल किये बग़ैर संयुक्त मंत्रि-मण्डल बनाया गया, तो यह वर्तमान और भविष्य में हमारे देश में जनसत्ता का फूलना-फलना असम्भव बना देगा। खेती, उद्योग-धंधों, राजस्व, व अन्य मसलों के सम्बन्ध में तात्कालिक नीति एक होने पर ही संयुक्त व गंगा-जमुनी मंत्रि-मण्डल बनना सम्भव है। आर्थिक नीति का बग़ैर ख़याल किये साम्प्रदायिक पार्टी के साथ बाधितरूप से मिलकर मंत्रिमण्डल बनाना जनसत्ता को त्यागने के समान है। इस प्रकार के संयुक्त मंत्रि-मण्डल में दोनों पार्टियों की नीति के सम्बन्ध में तीव्र मतभेद होने पर प्रथम श्रेणी का राजनीतिक संकट सदा उत्पन्न हुआ करेगा, जिसको कि मतदाताओं से अपील करके दूर न किया जा सकेगा। साम्प्रदायिक निर्वाचन-प्रणाली के अनिष्ट परिणामों को पिछले तीस सालों से हम भोगते आ रहे हैं और उससे अपना पिण्ड छुड़ाने के लिए हम उत्सुक हैं। इस अवस्था में साम्प्रदायिक व पृथक् निर्वाचन-प्रणाली से भी अधिक अनिष्टकर और राष्ट्रीयता-विघातक साम्प्रदायिक सर्वसत्ताधिकारित्व को आमन्त्रित करना बुद्धिमत्तापूर्ण न होगा और यह जनसत्ता ही नहीं स्वायत्त शासन के भी विपरीत होगा।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि वर्तमान गति-अवरोध को दूर करने का उपाय यही है कि राष्ट्रीय भारत की माँग स्वीकार की जाय और इस देश की शासन-प्रणाली का आधार ब्रिटिश नमूने की पार्लियामेंटरी जनसत्ता-प्रणाली बनाई जाय। अगला सवाल है कि भारत की पन्सद का, भारतीय अवस्थाओं के अनुकूल और वर्तमान सब कठिनाइयों को दूर करना भारत का विधान कैसे बनाया जाय। इस प्रश्न का उत्तर कांग्रेस ने दिया है कि राष्ट्रीय पंचायत बुलाकर इस समस्या को हल किया जाय।

डौंड़िया खेरे में

लेखक, श्रीयुत कुँवर चन्द्रप्रकाशसिंह

श्यामल पुण्य-अरण्य-गहन गंगा का तट है,
सम्मुख गत इतिहास और गौरव का पट है।
कण-कण में अभिमान और बलिदान भरा है,
रँगी शहीदों के शोणित से यहाँ धरा है।
रामबख़्श ने इसी भूमि पर निज बलि देकर,
किया प्रतिष्ठित देश-प्रेम जन-जन में उर-उर।
और यहीं, हाँ यहीं, वीरवर बेनीमाधव,
जगा गये हैं शक्ति, स्फूर्ति, साहस, बल अभिनव॥

पहने जिनके रक्त-अरुण गौरव की माला,
भरती है यह भूमि भुवन में दिव्य उजाला।
मरण-तीर्थ है विदित अवध की हल्दीघाटी,
दे बैसों ने देह धरा यह पग-पग पाटी।
उस शोणित—उस तप्त रक्त की स्मृति अविनश्वर,
जाग रही है बन्धु, अनल-सी इस धरती पर।
अनतिदूर शोभित मनोज्ञ यह पावन बकसर,
है जो निर्भय सिंह-कीर्ति का स्तम्भ सुदृढ़तर॥

त्यागे तृण-से प्राण, बचा अर्गल की रानी,
इनके असि की आज चल रही अमर कहानी।
स्थित हैं यहाँ प्रसिद्ध चण्डिका जय की देवी,
ये रण-सिद्ध नरेन्द्र सदा जिनके पद-सेवी।
सबके तिलक तिलोकचन्द भूपति भटमानी,
यवनों ने नित पिया खड्ग का जिनके पानी।
ऐसे अन्य अनेक वीर, किस भाँति गिनायें,
ये गंगा बह रहीं, कह रहीं यशः-कथायें!

× × × ×

भारखण्ड इस नर-केहरियों के प्राङ्गण में,
आओ, आओ बन्धु, शौर्य-साहस भर मन में।
स्वागत में—चिर शूर-रक्त-सिंचित यह धरती—
अपने गत का भाव-विभव ही प्रस्तुत करती।
पियो, पियो, फिर पियो विगत गौरव का प्याला,
सिंह-सुवन हो, जाग जगा दो जीवन-ज्वाला।
होकर सहज अभीत, बन्धनों पर जय पाकर,
वर लो कीर्ति अशेष, देश निज मुक्त बनाकर॥

अनन्त की ओर

लेखक, श्रीयुत कापालिक

उमा के हाथों से अचानक काँच का गिलास गिरकर टूट गया। वह चुपचाप खड़ी हो गई। किसी अदृश्य भय से उसका शरीर एक बार काँप गया। इतने में पास ही खेलती हुई लक्ष्मी ने चिल्लाकर कहा—देखो मा! उमा ने गिलास तोड़ दिया।

आवाज़ के समाप्त होते ही बीचवाले कमरे से एक स्त्री झट निकल आई। वह क्रोध से भरी हुई थी। आते ही गालियों का प्रवाह शुरू होगया। यह मा थी, परन्तु उमा उसको देखकर डर गई। उसने धीरे से कहा—मा! गिलास भूल से गिर पड़ा।

"हाँ! भूल से गिर पड़ा। रोज एक न एक चीज़ फोड़ती रहती है। मालूम पड़ता है, तू ही कमाकर लाती है।" यह कह उसने उमा के गाल पर एक थप्पड़ जड़ दिया।

थप्पड़ के लगते ही उमा तिलमिला उठी। उसने रोते रोते कहा—सवेरे सवेरे न मारा करो मा! मैंने जानकर तो फोड़ा नहीं।

"जानकर क्यों फोड़ेगी? तू तो बड़ी भोली है न? इतनी बड़ी हो जाने पर भी अक़्ल नहीं आई। जवाब देती है। बिना मार के तू सीखेगी कैसे?"

उमा ने मुड़कर जाते हुए कहा—हाँ मा! जब विजय सब कुछ बिना मार के ही सीख लेता है तब मैं क्या नहीं सीख सकती?

"क्या कहा री! विजय की बराबरी करने चली है। मुंह सँभालकर नहीं बोलती। ले अपने कहने का मज़ा।"

उस बारह वर्ष की बालिका पर थप्पड़ों और घूंसों के प्रहार होने लगे। यह पहला ही मौक़ा न था। उमा पर ऐसी मार प्रायः पड़ती रहती थी। परन्तु आज वह ज़्यादा मार खा गई। यही नहीं, उसकी दाहनी कलाई में काँच का एक बड़ा टुकड़ा गड़ गया, जिससे ख़ून बहने लगा।

कमरे में उमा का भाई नरेन्द्र सो रहा था। उमा का रोना सुनकर उसकी नींद खुल गई। वह दौड़ कर आया और उमा के हाथ से ख़ून बहते देखकर घबरा गया। इसी समय भीतर के कमरे से नरेन्द्र के पिता ने चिल्लाकर कहा—क्या शोर मचा रक्खा है?

उमा की सौतेली मा ने कहा—कुछ नहीं। उमा गिर पड़ी है।

नरेन्द्र ने जो अभी तक संज्ञाहीन-सा था, कातर दृष्टि से अपने पिता के कमरे की ओर देखा। उसकी आँखों में आँसू थे। मा अन्दर जाने लगी तब उसने अवरुद्ध कण्ठ से कहा—मा! उमा की जगह मुझे मार लिया करो।

मा बिना कुछ कहे ही भीतर चली गई। केवल एक बार घूमकर देख भर लिया।

नरेन्द्र उमा को अपने कमरे में ले गया और उसे दिलासा देकर उसके हाथ में पट्टी बाँध दी।

× × ×

बाबू रामकिशोर अच्छे घराने के आदमी थे। रुपया-पैसा काफ़ी था। पहली स्त्री का देहान्त हो चुका था। वह नरेन्द्र और उमा को इस संसार में छोड़कर दिवंगत हुई थी। बहूरानी उनकी दूसरी पत्नी थी। उसके भी तीन बच्चे थे। सबसे बड़ा लड़का विजय इस समय सातवीं में पढ़ता था। और उसकी दो बहनें लक्ष्मी और प्रतिभा अभी छोटी थीं। पहली स्त्री के समय रामकिशोर नरेन्द्र को बहुत प्यार करते थे। उनकी इच्छा थी कि नरेन्द्र उच्च शिक्षा प्राप्त करे, परन्तु दूसरी पत्नी के आने पर बहुत बड़ा परिवर्तन हो गया। पुत्र के प्रति जो अनुराग था, कुछ ही दिनों में सब काफ़ूर हो गया। यहाँ तक कि उसका पढ़ना-लिखना भी बन्द हो गया। पत्नी ने उनके हृदय को बन्दी बना लिया था। उसी कारण उमा को अक्सर झिड़कियाँ सहनी या मार खानी पड़ती थी। जब वह छोटी थी, खेलती फिरती। पर अब घर का सारा काम उसी को करना पड़ता। बहूरानी आराम करने के लिए पैदा हुई थी, आराम करती थी।

अब तक उमा अपने हाथ को साड़ी में छिपाये थी। धोने के लिए बाहर निकाला तब नरेन्द्र चौंक गया। पट्टी ख़ून से तर थी। अधिक काम करने के कारण ख़ून पुनः निकलना शुरू हो गया था। नरेन्द्र ने हाथ धोते हुए कहा—देख, उमा! अब काम मत करना। अधिक काम करने से कमज़ोरी आ जायगी।

पट्टी बँध चुकी थी। नरेन्द्र ने उमा को कोठरी में ले जाकर लिटा दिया, और स्वयं पिता के लिए भोजन परोस कर ले गया।

पिता ने कहा—उमा को आज क्या हो गया है?

"कुछ नहीं पिता जी! उसके....."

नरेन्द्र अभी वाक्य को समाप्त भी न कर पाया था कि बहूरानी ने कहा—बहाना करके सो रही होगी।

नरेन्द्र कुछ न बोला। नीचे सिर कर चुपचाप रसोईघर में चला आया।

× × ×

दो महीने बाद। नरेन्द्र पागल हो चुका था। वह जब कभी उमा को देखता, ज़ोर से हँस कर कहता—उमा मैं तुझे सुखी बनाऊँगा। जब वह खाना पकाती रहती, उस समय उसके पास बार बार जाकर कहता, पिता जी को खाना मैं ही खिलाऊँगा। रोज़ इसी बात को दोहराता। भोजन तैयार होने पर उमा थाली परोस कर उसके हाथों में दे देती। वह आदर से पिता को भोजन कराता। कभी अपने मुँह से एक शब्द नहीं निकालता। पिता आश्चर्य करते। थोड़े दिनों के बाद उन्होंने उसको यह कह कर डाँट दिया कि खाना मत लाया कर, तू पागल है। तब से उमा ही खिलाया करती। फिर भी जिस समय पिता भोजन करते वह दरवाज़े पर खड़ा हो जाता। घर में टँगी हुई अपनी मा की तसवीर को एकटक देखता रहता। उसके इस ढंग को देखकर उसके पिता हँसते थे, परन्तु कुछ बोलते न थे। विजय जब स्कूल से आता, नरेन्द्र उसके जूते उतारने लगता और कहता, उमा बहाना करती है, वह यहाँ न आयेगी। लक्ष्मी या प्रतिभा को उठा कर बहुत ज़ोर से हँसता और पूछता, उमा बहाना करती है न? हाँ, वह ज़रूर बहाना करती है। उसका यह प्रश्न केवल घर के जीवित प्राणियों से ही न होता। दीवार के पास जाकर भी पूछता। मेज़, कुर्सी, पलङ्ग सबों से उसका यह प्रश्न होता। परन्तु इतनी बात ज़रूर थी कि घर के जीवित प्राणियों से वह बड़े ज़ोर से हँस कर पूछता और निर्जीव से गम्भीर होकर।

उसका एक काम और था। पिता के पढ़ने के क़मरे में वह रोज़ सवेरे जाकर टँगी हुई अपनी मा की तसवीर को देखता रहता। उसके बाद वह दौड़कर उमा के पास आता और ज़ोर से बोलता—नहीं, उमा! तू बहाना नहीं करती है। मैं तुझे सुखी बनाऊँगा। ज़रूर सुखी बनाऊँगा। इस जीवन में ही सुखी बनाऊँगा, और मैं ही तुझे सुखी बनाऊँगा। तू इस सुख के लिए तैयार हो जा। जानती है, वह सुख इतना बड़ा होगा कि तू उसको सँभाल न सकेगी। वह सुख अनन्त और अनादि होगा। उसको पाकर तू कभी दुखी न होगी। और फिर बड़े ज़ोर से हँस कर कहता—लेकिन तू बहाना मत करना।

उमा अपने भाई का हाल देखती तो रो देती। कभी कभी तो वह एकान्त में बैठकर ख़ूब रोती। जीवन का एकमात्र सहारा नरेन्द्र अब पागल हो गया था। कभी अधीर होकर पुकार उठती, भैया! कहाँ हो।

और उसी समय नरेन्द्र दौड़ कर उसके पास आकर कहता—क्या फिर ख़ून निकलने लगा?

भाई को देखकर उमा और भी रोने लगती। वह उसके पैर पकड़ कर कहती—भैया! मुझे छोड़कर चले न जाना।

उस समय नरेन्द्र गम्भीर होकर उमा की पीठ पर हाथ फेरने लगता। कुछ देर शान्त होकर कहता—उमा! मा को देखोगी?

मा शब्द को सुनकर उमा के आँसू और भी वेग से उमड़ पड़ते।

× × ×

जब पिता ने नरेन्द्र की यह हालत देखी तब उसको एक कमरे में बन्द कर दिया। घर के लोग उसके पास जाने से डरने लगे। उमा ही उसको खाना खिलाने जाया करती। एक दिन नरेन्द्र ने कहा—उमा! मुझे बाहर कर दो, मैं कुछ न करूँगा। क्या पहले भी मैं कुछ करता था? और देख, यदि निकाल दिया तो मैं तुझे सुखी बनाऊँगा। सुखी!

बहुत कहने पर उमा ने उसको स्वतंत्र कर दिया। अब वह हमेशा उसी के पास बैठा रहता। जिस समय वह भोजन बनाती रहती उस समय वह चुपचाप बैठकर उसके कार्यों को देखा करता। अब उसका अपनी मा की तसवीर का देखना भी बन्द हो गया था। सारा समय उमा के पास ही बीतता। दोनों एक ही थाली में बैठकर खाते। घर में सबों से बोलना बन्द हो गया था। कभी कभी वह छोटी बच्ची प्रतिमा को उठाकर प्यार करता, परन्तु उमा को देखते ही नीचे उतार देता और पास आकर खड़ा हो जाता। शायद उसे अपनी बातों का स्मरण हो आता।

सायंकाल के समय बच्चे उछल-कूद रहे थे। उनके साथ साथ प्रतिमा भी खेल रही थी। नरेन्द्र ने प्रतिमा को गोद में उठा कर कहा—घूमने चलती है? प्रतिमा ने सम्मति-सूचक अपना सिर हिला दिया। नरेन्द्र उसको बहुत दूर ले गया। रात हो गई, फिर भी वह चलता ही रहा। जब प्रतिमा रोने लगी तब घर लौटने लगा।

इधर घर में प्रतिमा के खो जाने से शोर मच गया। जब नरेन्द्र भी घर में न दीखा तब माता-पिता का हृदय आशंका से काँप गया। चारों ओर आदमी दौड़ाये गये। पिता स्वयं घर से निकलने लगे। उन्होंने गुस्से में आकर कहा—जरा डण्डा देना। मैं भी देख आऊँ। इसी समय गोद में प्रतिमा को लिये नरेन्द्र ने घर में प्रवेश किया। प्रतिमा मा! मा! कह कर चिल्लाई। नरेन्द्र ने उसको गोद से उतार दिया। पिता का क्रोध उबल पड़ा। उन्होंने नरेन्द्र को छड़ी से मारना शुरू कर दिया।

नरेन्द्र ने गम्भीरतापूर्वक मार सहते हुए कहा—मुझे मार लीजिए, परन्तु उमा को इस प्रकार न मारिएगा। उमा वहीं खड़ी थी। उसने कातर दृष्टि से पिता की ओर देखा। पैरों पर गिरकर रोने लगी, परन्तु उनका क्रोध शान्त न हुआ। उन्होंने मारते मारते उसको बाहर निकालते हुए कहा—ख़बरदार! जो अब इस घर में पैर रक्खा। न मालूम किस दिन किसकी जान ले ले। नरेन्द्र मूर्च्छित होकर गिर पड़ा।

शुरू किया। नरेन्द्र ने करवट बदलते हुए कहा—मेरी उमा!

"क्या भैया!"

नरेन्द्र में चेतना आई। उसने बैठते हुए कहा—उमा, तू यहीं है, पगली? जा सो। घरवाले सभी सो रहे हैं।

तुम भी चलो भैया। अभी रात है। सवेरा होने पर पिता को मैं मना लूँगी। देखो, कितनी जगहों से ख़ून निकल रहा है।

अब नहीं उमा। सवेरा होता है, होने दे। उसके बाद रात होगी और फिर सवेरा। यह तो दुनिया के साथ लगा ही रहेगा। अब घर न जाऊँगा। यह कह कर वह उठने लगा।

"लेटे रहो भैया!"

"जाना ही होगा उमा!"

"इस समय कहाँ जाओगे?"

"जहाँ कहीं आश्रय मिलेगा।" यह कह कर वह चल पड़ा।

उमा ने रोते हुए कहा—भैया! मुझे छोड़ कर...

"यह भी सहना होगा उमा! दुखी मत होओ।" यह कहते हुए नरेन्द्र ने उसका कन्धा पकड़कर हिलाते हुए कहा—घबराना मत। तुम्हें सुखी बनाऊँगा।

उमा ने देखा, उसकी बाहुओं में जगह जगह चोट लगी है और उनसे ख़ून निकल रहा है। उसके पैर उमा ने कस कर पकड़ लिये, परन्तु उसने छुड़ाते हुए कहा—सब कुछ सहना होगा, सब कुछ। घरवाले मुझे पागल कहते हैं, तू भी ऐसा ही समझ लेना। मेरे लिए रोना मत! यह कह कर नरेन्द्र चलने लगा। उमा स्तब्ध खड़ी थी। उसने बिजली के प्रकाश में देखा, पैर में भी चोटें काफ़ी हैं। ख़ून निकल कर जगह जगह जम गया है। वह अधिक न देख सकी और गिर पड़ी।

और वह पागल नवयुवक उस दिन घोर अन्धकार में विलीन हो गया।

जी पर उसे बहुत गुस्सा आ जाता। मार की कल्पना उसमें क्रोध की भावना जागृत कर देती। उस दिन उसने भोजन न किया। रात को सबों को खिलाने के बाद अपने कमरे में जाकर बैठ गई। खिड़की खुली हुई थी। वह उसी से बाहर की ओर एकटक देखती हुई आँसू बहा रही थी।

अन्धकार में एक धीमी आवाज़ सुनाई पड़ी—उमा जागती है! उमा चौंकी। उसने कहा—भैया, तुम आये हो? कहाँ हो?

"यहाँ, खिड़की के बाहर।"

दौड़ कर वह बाहर निकल आई। भाई सम्मुख खड़ा था। वह पैरों पर गिर पड़ी। नरेन्द्र ने उठा कर छाती से लगा लिया।

"आज तुम कहाँ रहे भैया?"

"यों ही इधर-उधर घूमता रहा।"

"तुम भूखे मालूम पड़ते हो।"

"हाँ, उमा!"

"अच्छा अभी आती हूँ।" कह कर उमा रसोंई-घर में गई। वहाँ से सारा बचा हुआ भोजन उठा लाई। दोनों ने मिल कर खाया। खा चुकने पर नरेन्द्र जाने लगा।

उमा ने रोक कर कहा—यहीं रहो भैया! मैं कैसे जीऊँगी।

नरेन्द्र ने छाती से लगाते हुए कहा—किसी प्रकार सन्तोष कर उमा। मेरे साथ रहने से तुझे जो अभी दो-चार टुकड़े मिल रहे हैं वे भी छिन जायँगे। मैं यहाँ रात को रोज़ आया करूँगा। यह कह कर नरेन्द्र चल पड़ा।

दूसरे दिन से नरेन्द्र बराबर आता, और वह उमा के साथ भोजन कर पुनः चला जाता। अब उमा दिन भर पूरे उत्साह से काम करती। घरवालों को नरेन्द्र की कोई चिन्ता न थी। थोड़े दिनों तक तो नरेन्द्र बराबर आता रहा, परन्तु उसके बाद उसका पता न चला। उमा प्रतीक्षा में ही दिन काटने लगी। रात को घंटों जाग कर आँसू बहाती रहती। उसे विश्वास था कि नरेन्द्र अवश्य आयेगा। कभी सोचती शायद, भैया न आयेंगे। वे नौकरी करने लग गये हों। परन्तु यदि नौकरी करते तो मुझे ज़रूर साथ रखते। मालूम होता है, वे पागल हो गये हैं। उसका शरीर एकबारगी काँप उठता। इसी प्रकार सोचते सोचते वह सो जाती।

कुछ दिनों के बाद बहूरानी को उमा का घर में रहना भी अखरने लगा। उसकी छोटी लड़की प्रतिभा की मृत्यु हो चुकी थी, और उसका कारण वह उमा को ही समझती थी। उमा चुपचाप उसकी बातों को सुन लेती। बोलना उसने सबों से छोड़ दिया था। चुपचाप घर के काम में लगी रहती। मा की बातें सुनती रहती, कुछ न बोलती। उसे घरवालों से घृणा-सी हो गई थी। प्रतिभा और लक्ष्मी के साथ पहले कभी खेलती थी, परन्तु अब वह भी बन्द हो गया। विजय बहुत क्रोधी स्वभाव का हो गया था। उसके भोजन आदि में ज़रा भी देर हो जाती तो वह उमा को मार बैठता। यह भी वह सह लेती। उसने विजय को कभी कुछ न कहा। दिन भर काम करने के बाद अपने कमरे में आकर खिड़की के पास बैठी रहती, फिर सो जाती। जाड़े के दिन थे, परन्तु उमा के पास ओढ़ने के लिए काफ़ी सामान न था।

चटाई के चिथड़े चिथड़े हो गये थे। साड़ी कई जगह से फट रही थी। इसकी उसे कोई परवा न थी। पर भाई की पुस्तकों और कपड़ों को देखकर रो देती। सिसकते हुए कहती—भैया कब आओगे? ये कपड़े, ये किताबें सब पड़ी हैं। मैंने तुम्हारा क्या बिगाड़ा है? तुम कहते थे, उमा बहाना करती है। क्या इसी लिए चले गये? अब न बहाना करूँगी भैया! जो कहोगे, करूँगी। मेरा धैर्य छूटा जा रहा है। एक बार फिर आकर कहो—सब कुछ सहना होगा। हम-तुम कब एक साथ बैठ कर खायँगे। तुम कहते थे, तुझे सुखी बनाऊँगा। क्या इसी को सुख समझूँ? मैंने सुख नहीं देखा। तुमने बहुत कुछ पढ़ा-लिखा है, आकर बता दो। क्या मैं सुखी नहीं हूँ, जो तुम सुखी बनाने के लिए कहते थे।

× × ×

अचानक एक दिन विजय बीमार पड़ गया। उमा अपना कर्त्तव्य करती रही। सेवा में कोई कमी न रही, फिर भी बुख़ार बढ़ता ही गया। बहूरानी ने क्रोध से कहा—तू यहाँ मत आया कर! क्या मेरे विजय को भी खा लेना चाहती है? प्रतिभा को तो तूने ही खाया है।

उमा ने सेवा करनी छोड़ दी। रामकिशोर ने कभी

न रक्खी। बड़े बड़े डाक्टरों को बुलाया, रुपया पानी की तरह बहाया, परन्तु बुखार न उतरा। बहूरानी समझती थी कि इन सबों का कारण उमा ही है। तब उससे न रहा गया, वह उसके कमरे में गई। वह चुपचाप बैठी रो रही थी। उसने उसके केश पकड़ कर खींचते हुए कहा—इस प्रकार रोकर क्या करना चाहती है? निकल यहाँ से। तेरा रहना अच्छा नहीं। यह कह कर उसने उमा को घर से बाहर कर दिया।

उसने रोते रोते कहा—मैंने क्या बिगाड़ा है मा?

"कुछ नहीं, बस चली जा!" यह कह कर उसने दरवाज़ा बन्द कर लिया।

उस समय रात थी। उमा बहुत देर तक खड़ी रोती रही। उसके बाद वह अपने कमरे की खिड़की के पास जाकर टहलने लगी। उसका हृदय बार बार काँप उठता था। उसने उसाँस लेते हुए कहा—इतनी बड़ी हो गई। अब कहाँ जाऊँ? क्या हिन्दू-समाज मुझे स्थान देगा? मेरा जीवन-निर्वाह अब किस प्रकार होगा? संसार में अकेली रह गई, एकदम अकेली। भैया कहाँ हो? तुम्हारे रहते मेरी यह दशा। क्या इसी को सुख समझूँ? इतने दिनों तक दुःख सहती आई। घर में केवल खाना खाती थी। मा को वह भी अच्छा न लगा। अब कहाँ जाऊँ? उसके सम्मुख एक भयङ्कर नदी का दृश्य खिंच गया। दूसरे किनारे पर एक मनुष्य खड़ा उमा को बुला रहा था। उमा चौंक गई। क्या यह स्वप्न था।

परन्तु दूर पर उमा को एक आदमी आता हुआ दिखलाई पड़ा। वह उसी की ओर बढ़ता चला आ रहा था। उमा को डर मालूम हुआ। उसके मन में तरह तरह की कल्पनायें उठने लगीं। पता नहीं, कौन है। वह छिपने का उपक्रम करने लगी, परन्तु कहीं जगह न मिली। वह काँपने लगी। मूर्ति और भी समीप आ चुकी थी। वह साहस कर खड़ी हो गई, परन्तु फिर भी रोमाञ्च हो आया। इतनी भीषण रात्रि! इस तरह आप ही यहाँ खड़ी हूँ। न जाने क्या होनेवाला है। उसके मन में एक कल्पना आई। यह नरेन्द्र ही हो। तो मुझे डर क्यों मालूम हो रहा है? नहीं, वे न आयेंगे। मुझे छोड़ कर चले गये। उन्होंने जाते समय कहा था, लोग मुझे पागल समझते हैं। तू भी ऐसा ही समझ लेना। तो क्या मैं उनको पागल समझ लूँ?

मूर्ति काफ़ी समीप आ चुकी थी। उसने अब सड़क छोड़ उमा की खिड़की की ओर आना शुरू किया। उसे अत्यन्त डर मालूम हुआ। उसकी आँखें ज़ोर से बन्द हो गईं।

"क्या उमा खड़ी है?" इस शान्त अन्धकारपूर्ण रात्रि में यह मीठा वाक्य गूँज गया।

उमा ने चौंक कर आँखें खोल दीं। मूर्ति सामने खड़ी थी। वह नरेन्द्र ही था। वह उसके पैरों से लिपट कर बोली—भैया, तुम आ गये!

उमा को पकड़कर उसने ऊपर उठाते हुए कहा—पगली! यहाँ क्यों खड़ी है? क्या अब भी बहाना करती है?

उसने रोते रोते कहा—मा ने घर से निकाल दिया है भैया!

नरेन्द्र गम्भीर हो गया। थोड़ी देर के बाद बोला—पिता ने मुझे निकाल दिया और मा ने तुझे। अच्छा हुआ, चलो। बहाना करने का झगड़ा छूटा। मुझे तो पहले से ही इसका विश्वास था। तो अब तू कहाँ रहेगी?

उमा को भाई पर आश्चर्य हो रहा था। क्या अब भी पागलपन दूर नहीं हुआ? उसने अवरुद्ध कण्ठ से कहा—जहाँ तुम रहोगे भैया!

"तू मेरे साथ रहेगी। अच्छा मैं तुझे सुखी बनाऊँगा—सुखी! संसार का कोई दुःख तेरे पास फटकने न पायेगा।"

"सुख किसको कहते हैं भैया?"

"मेरे साथ चल, सब बताऊँगा। जो कुछ पूछेगी, बताऊँगा।"

उमा नरेन्द्र के साथ साथ चलने लगी। वह विचारों में लीन चला जा रहा था। उमा भी शान्त थी। कभी-कभी वह नरेन्द्र के मुख की ओर देख लेती, थोड़ी देर में ही रात्रि ने अपनी काली चादर से उन दोनों को ढँक लिया।

× × ×

उस दिन से उन दोनों का कहीं पता न चला। न मालूम वे कहाँ गये। क्या मालूम, उस पागल नवयुवक ने अपनी बहन उमा को आजीवन सुखी बनाने का प्रयत्न किया हो।

[अपने तीन छात्रों की मूर्ति रचने में लीन श्री सुधीर खास्तगीर]

खास्तगीर के चित्र

श्रीयुत सुधीर ए० खास्तगीर ने चित्रकला में कीर्ति प्राप्त की है। यहाँ उनके जो चित्र परिचय के साथ दिये गये हैं उनसे पाठकों को ज्ञात होगा कि वे अपनी कला में कितने कुशल हैं।

आँधी—इस चित्र में प्रकृति तथा संसार के एक अंग का चित्रण अपूर्व रीति से किया गया है। खास्तगीर जी की रेखाओं में अत्यधिक शक्ति भरी हुई है। ऐसा ज्ञात होता है कि ववण्डर के झोंकों में आकर नर-नारी वास्तव में व्याकुल हो रहे हैं। प्रवल वायु से रोशनी धुंधली हो गई है और सामने का पथ अस्पष्ट हो गया है। यह प्रकृति का भी और मनुष्य-जीवन का भी एक वास्तविक दृश्य है।

गोपी—पनघट की ओर एक गोपी जा रही थी। अचानक उसको बाँसुरी की ध्वनि सुनाई दी। वह इधर-उधर यह जानने को झाँकने लगी कि ध्वनि किस दिशा से आ रही है। गोपी का मनोभाव यहाँ बड़े सुन्दर रूप से दिखाया गया है। इस चित्र से प्रकट होता है कि चित्रकार

आँधी

गोपी

दरिद्र परिश्रमी

कोमल भावों का चित्रण करने में कितना कुशल है।

दरिद्र परिश्रमी—इस चित्र में खास्तगीर जी ने हिन्दुस्तान की ग़रीबी और उसके भविष्य की आशा तथा कल्पना को व्यक्त करने का सफल प्रयत्न किया है। भारतवर्ष में यह दृश्य अत्यन्त साधारण है, तो भी चित्रकार ने इसमें अपनी कला की विशेषता का निदर्शन करने में पूर्ण सफलता प्राप्त की है।

श्रीयुत खास्तगीर उच्च कोटि के चित्रकार और साथ ही साथ अन्यतम मूर्तिकार भी हैं। चित्रों से अधिक मूर्तियों में उनकी प्रतिभा का परिचय मिलता है। उनकी मूर्तियों में आश्चर्यजनक सजीवता और शक्ति पाई जाती है।

श्री खास्तगीर की आयु अधिक नहीं है। परन्तु चित्रों के विषयों से ज्ञात होता है कि उनका अनुभव प्रौढ़ और पूर्ण है। उनकी छात्रावस्था 'शान्तिनिकेतन' में बीती है। शिल्पशिक्षा को पूर्ण करने के लिए उन्होंने भारत के प्राचीन स्थानों में जाकर स्वयं प्राचीन शिल्पकला का अध्ययन किया है और भारत के स्थापत्य पर गवेषणापूर्वक विचार किया है। योरप के भी प्रसिद्ध-प्रसिद्ध स्थानों का उन्होंने भ्रमण किया है। लण्डन में उनके अपने चित्रों की प्रदर्शनी हुई थी जहाँ उनकी कला की विद्वानों-द्वारा बड़ी प्रशंसा की गई थी। उनके हृदय में सदा और अधिक देखने की, जानने की एवम् मनोभाव प्रकाशित करने की अभिलाषा बनी रहती है। यही खास्तगीर जी की सफलता का मुख्य कारण है।

अँगरेज़ों-द्वारा हिन्दी का प्रसार

लेखक, श्रीयुत कालिदास मुकरजी, एम० ए०, एफ० आर० ए० एस० (लन्दन)

प्लासी की लड़ाई शान्त हो चुकी थी। ईस्ट इंडिया कम्पनी की दृढ़ स्थापना हो जाने पर अधिकारियों ने खास विलायत से आये हुए सिविलियनों को भारतीय भाषाओं से परिचित कराना आवश्यक समझा, क्योंकि उनके भारतीय भाषाओं से अपरिचित होने से राज-काज चलाना कठिन था। अतएव सन् १८०० ईसवी में कलकत्ते में फ़ोर्ट विलियम कालेज की स्थापना की गई। इस कालेज में हिन्दी के सिवा बँगला तथा उर्दू की भी पढ़ाई होने लगी। पर एक दूसरी बला आ टपकी, वह थी पाठ्योपयोगी पुस्तकों का अभाव। अधिकारियों का ध्यान उस ओर आकृष्ट हुआ और उन्होंने भारतीय विद्वानों को पाठ्य पुस्तकों के लिखने का आदेश किया

सन् १७७८ इसवी में हैलहेड साहब ने बँगला का एक व्याकरण लिखा था सही, पर वह था अँगरेज़ी में। तदनन्तर विलकिन्स साहब ने दो बंगाली महोदयों—पंचानन तथा मनोहर—की सहायता से बँगला, नागरी तथा उर्दू के टाइप निर्मित किये। सन् १८०१ में केरी साहब फ़ोर्ट विलियम कालेज में बँगला तथा संस्कृत के शिक्षक नियुक्त किये गये तथा कुछ ही दिनों में वे उन भाषाओं के प्रधान अध्यापक हो गये। केरी साहब को बंगभाषा से बड़ी प्रीति थी, अतएव उन्होंने स्वयं उस भाषा में कुछ पुस्तकें लिखीं, साथ ही बंगाली विद्वानों को उन्होंने पुस्तकें लिखने का आदेश किया। फलस्वरूप कथोपकथनमाला, इतिहासमाला, राजावली, प्रबोध-चन्द्रिका आदि पुस्तकों की रचना बंगभाषा में हुई।

इधर हिन्दी-भाषा की ओर जॉन गिलक्राइस्ट साहब ने ध्यान दिया तथा उन्होंने स्वयं हिन्दी में लिखना प्रारम्भ किया। उनकी हिन्दी कुछ उर्दूपन लिये हुए रहती थी। इस विषय पर मैं इसी पत्रिका की जुलाईवाली संख्या (१९३९) में लिख चुका हूँ। जॉन गिलक्राइस्ट के आदेश से लल्लूजी लाल तथा सदलमिश्र ने क्रमशः प्रेमसागर तथा नासिकेतोपाख्यान लिखा। प्रेमसागर के प्रारम्भ में लल्लूजी लाल ने लिखा है—"..... औ श्रीयुत गुणगाहक गुणियन सुखदायक, जान गिलकिरिस्त महाशय की आज्ञा से संवत १८६० में श्री लल्लूजी लाल कवि ब्राह्मण गुजराती सहस्र अवदीच आगरेवाले ने विसका सार ले यामनी भाषा छोड़ दिल्ली आगरे की खड़ी बोली में कह, नाम प्रेमसागर धरा.......।"

इस प्रकार भारतीय भाषाओं में पाठ्योपयोगी पुस्तकें क्रमशः लिखी जाने लगीं। किन्तु एक दूसरी समस्या ईस्ट इंडिया कम्पनी के परिचालकों तथा अन्य अँगरेज़ों के सामने आ पड़ी। वह समस्या थी भारतवर्ष में जन-साधारण की अशिक्षित अवस्था। भारतीय जनता विद्योपार्जन का कुछ अनुराग अवश्य प्रकट करती थी, परन्तु पाठशालाओं एवं शिक्षोपयोगी पुस्तकों का सर्वथा अभाव था। इसी कारणवश अँगरेज़ों ने शिक्षा-प्रचार के लिए २४ जुलाई सन् १८१८ में कुछ भारतीय सज्जनों की सहायता से कलकत्ते में एक सभा की। इस सभा में 'कलकत्ता-स्कूल बुक-सोसाइटी' की स्थापना पर विचार किया गया, जिसके द्वारा तदानीन्तन समस्या हल हो सकती थी। पुनर्वार उसी वर्ष पहली सितम्बर को एक दूसरी सभा कलकत्ता-टाउनहाल में जे० एच० हारिंगटन के सभापतित्व में हुई। भारतीय सज्जनों ने भी उसमें योग दिया। इस सभा के फलस्वरूप 'कलकत्ता-स्कूल-बुक-सोसाइटी' की स्थापना हुई। आलोच्य सोसाइटी के बारह नियम थे वे नीचे दिये जा रहे हैं—

1. That an Association be formed, to be denominated "The Calcutta School Book Society".

2. That the objects of this Society be the preparation, publication and cheap or gratuitous supply of works useful in schools and seminaries of learning.

3. That it forms no part of the design of this Institution, to furnish religious books—a restriction, however, very far from being meant to preclude the supply of moral tracts or books of a moral tendency,

which, without interfering with the religious sentiments of any person, may be calculated to enlarge the understanding and improve the character.

4. That the attention of the Society be directed in the first instance, to the providing of suitable books of instruction for the use of native schools, in the several languages (English as well as Asiatic), which are or may be taught in the provinces subject to the presidency of Fort-William.

5. That the business of the Institution be conducted by a committee of Managers, to be elected annually, at a meeting to be held in the first week of July.

6. That the committee consist, inclusive of official Members, of 24 persons, of whom 16 to be Europeans and 8 natives.

7. That all persons, of whatever nation, subscribing any sum annually to the funds of the Institution, shall be considered Members of the Society, be entitled to vote at the annual election of Managers, and be themselves eligible to the Committee.

8. That a European Recording Secretary, a European Corresponding Secretary, two Native Secretaries, and a Treasurer, be appointed, who shall be "ex-officio" Members of the Committee.

9. That the names of the Subscribers and Benefactors, and a statement of receipts and disbursements, be published annually, with a Report of the proceedings of the Committee.

10. That the Committee be empowered to call a General Meeting of the Members, whenever circumstances may render it expedient.

11. That the Committee be likewise empowered to fill up from among the Members of the Society, any vacancies that may happen in its own number in the period between annual election of Managers and another.

12. That any number of persons in the country forming themselves into a School Book Association, auxilliary to the Society, and corresponding with it, shall be entitled to the full amount of their annual subscriptions in School-books at cost-price.

कलकत्ता-स्कूल-बुक-सोसाइटी की स्थापना हो जाने पर भर्तृपक्षों ने नियमानुसार पुस्तक-प्रकाशन का भार लिया। कई पुस्तकें देश की विभिन्न भाषाओं में प्रकाशित की गईं। उनमें हिन्दी की कुछ पुस्तकें नीचे दी जा रही हैं:—

(1) Hindi Spelling Book in Hindi character by Mrs. Rowe, Printed in July, 1822.

इस पुस्तक के चार खंड थे। सन् १८२३ में आपने कैथी भाषा में भी हिन्दी-स्पेलिंग-बुक लिखा था। उसी वर्ष आपकी प्रथम पुस्तक का द्वितीय संस्करण भी प्रकाशित हुआ था।

(2) Pearce's Geography and Astronomy. (कैथी भाषा में) Printed in 1825.

(३) मनोरंजन इतिहास सन् १८२८ में।

(4) Hindooee Primer, बालकों के लिए प्रथम शिक्षा पुस्तक; सन् १८२९ में।

(५) हिन्दी कोष, संग्रह किया हुआ, पादरी आदन साहब का।

A dictionary of the Hindi Language compiled by Rev. M. T. Adam. Printed in 1829.

इस पुस्तक का द्वितीय संस्करण सन् १८३९ में निकला था।

(६) उपदेशकथा और इँगलैंड की उपाख्यान का चुम्बक, स्टुयार्ट साहब ने किया हुआ, सन् १८३५ में।

(७) शिक्षोधक।

Hindui Reader Vol. 1 being a selection of Easy Sentences and Moral and entertaining anecdotes. *Printed in 1837.*

उपर्युक्त पुस्तकों के अतिरिक्त और भी कई पुस्तकें कलकत्ता-स्कूल-बुक-सोसाइटी द्वारा प्रकाशित की गई थीं। इनमें से कुछ का परिचय मैंने इसी पत्रिका में दिया है। इसके अतिरिक्त और भी दूसरे अँगरेज़ों ने कुछ पुस्तकें प्रकाशित की थीं, उनमें से कुछ नीचे दी जा रही हैं:—

The Hindi Story-teller or entertaining expositor by John-Gilchrist. Printed in 1806.

Hindoostanee Fables Printed in 1821 (यह पुस्तक सिरामपुर के पादरियों-द्वारा लिखी गई थी)

(३) ज्योतिष पदार्थ और पृथ्वी के स्वरूप नाना देश और नदी की वर्णना दी हुई है। इस पुस्तक का तामसन साहब ने सन् १८२२ में बँगला से अनुवाद किया था।

(4) Female Education in 1823.

(५) पाठशाला के वैठाने की और बालकन् के सिखावने की रीति का बखान।

इस पुस्तक को Rev. M. T. Adam ने कलकत्ता-स्कूल-बुक-सोसाइटी से सन् १८२४ में प्रकाशित करवाया था।

(६) उपदेश कथा सन् १८२५ में।

Hindi Grammar by Rev. M. T. Adam, Printed in 1827.

(इस पुस्तक का परिचय मैंने इसी पत्रिका में फ़रवरी सन् १९४० में दिया है।

Arithmetic by Rev. Adam, Printed in 1834.

उपर्युक्त पुस्तकों में कुछ कलकत्ता-स्कूल-बुक सोसाइटी द्वारा प्रकाशित की गई थीं। अतः यह स्पष्ट है कि कलकत्ता-स्कूल-बुक-सोसाइटी ने हिन्दी-प्रचार के लिए कुछ कार्य अवश्य किया, विशेषतः बालकों को शिक्षा देने के लिए उक्त सोसाइटी ने कई पुस्तकें प्रकाशित कीं। इन पुस्तकों में "Hindooee-Primer" बालकों के लिए प्रथम "शिक्षा पुस्तक" विशेष उल्लेख योग्य है। इसका परिचय दिया जा रहा है:—

इस पुस्तक की लम्बाई केवल ६ इंच तथा चौड़ाई ४ इंच है। इसमें १६ पृष्ठ हैं, अतः इसे पुस्तक की अपेक्षा पुस्तिका कहना ही उपयुक्त है। आलोच्य पुस्तक के प्रथम पाठ में "वर्णारम्भ वर्णमाला देवनागरी की" दी हुई है। तदनन्तर दूसरे पृष्ठ से चौथे पृष्ठ तक 'क' आदि व्यञ्जन वर्ण मात्रा-युक्त दिये गये हैं, यथा क, का, कि, की, कु, कू, के, कै, को कौ, कं, कः इत्यादि। तदनन्तर सातवें पृष्ठ तक संयुक्त-अक्षर क्य, भ्य, ज्य आदि दिये हुए हैं। आठवें पृष्ठ में "साङ्केतिक द्वयक्षर संयुक्त, संकेत से दो अक्षरों का योग" दिया हुआ है। तनन्तर नौवें पृष्ठ तक "तीन अक्षरों का योग" दिया हुआ है, उनमें से कुछ ग्ध्य, ञ्च्य, आदि हैं। तदनन्तर "चार अक्षरों का योग" दिया हुआ है। नौवें पृष्ठ से ग्यारहवें पृष्ठ तक छोटे छोटे दो अक्षरों के शब्द दिये गये हैं उनमें से कुछ नीचे दिये जा रहे हैं:—

"सब, काम, हर, चाल, लोग, और, भोर, चोर, पुल, ज्ञान, दिन, मन, शील, सुख, काया, पानी, वेला, भोला आँधी, काँटा, गर्व, मौली, मूर्ख" आदि।

बारहवें पृष्ठ से पन्द्रहवें पृष्ठ तक चार पाठ गद्य के दिये हुए हैं। सोलहवें पृष्ठ में १ से लेकर १०० तक गिनती दी हुई है। आलोच्य पुस्तक की भाषा परखने के लिए ४ थे पाठ की नक़ल दी जा रही है:—

४ पाठ

"मत् कहो कभी बुरी बातें, वा मत् जाओ बुरे मार्ग में। कहा मानो माता पिता का वा गुरु का जो तुम्को भला उपदेश देते हैं। भोर में उठो, और पढ़ने को जाओ, भूलो मत् अपने पाठ को। शिखाओ उन्को जो पाठ को भूलते हैं। ज्ञान पाओगे तब सुखी होगे, अज्ञानी बड़ा दुःख पावते हैं, वा मूर्ख कहलाते हैं। तुम् प्रार्थना करो और आशीर्वाद माँगो परमेश्वर से भली बुद्धि पावने के लिए; क्योंकि उस्की आज्ञा है तुम् माँगो और तुम्को मिलेगा, ऐसा दयावान वा दाता और कोई नहीं है जैसा ईश्वर है। मत् भूलो कभी ईश्वर को, सदा जानो अपने पास परमेश्वर को, जिसकी दिई आँखें सारे जगत् को हैं वह सदा सबको देखता है। अहो मित्र लोगो तुम् सब प्रेम के पात्र हो इस्लिए तुम्से मैं प्रार्थना कर्के कहता हूँ कि तुम् मत् गंवाओ अपने समय को कुमार्ग में फिरके, परन्तु सुख से बिताओ समय को परमेश्वर की बाट में चलके।"—यही है आलोच्य पुस्तक की भाषा, अँगरेज़ों की "अँगरेज़ी-

हिन्दी" की शैली। कुछ भी हो परन्तु मेरी धारणा तो यह है कि आलोच्य पुस्तक ही सर्वप्रथम वर्णमाला की पुस्तक है, सन् १८२९ के पहले की कोई वर्णमाला-सम्बन्धी पुस्तक मुझे देखने को नहीं मिली है। अब दूसरे अँगरेज़ों ने क्या किया था इसका पता लगाना कुछ कठिन है, क्योंकि पुराने पुर्ज़े कहाँ किस कोने में पड़े हुए हैं उनका कुछ पता नहीं है। सरकार की ओर से भी उनकी संरक्षता सन् १८९७ ई० के पहले नहीं की गई थी (देखिए सरस्वती अप्रैल १९३९)। दूसरे अँगरेज़ों के कार्य का कुछ आभास निम्नलिखित पत्र से मिलता है :—

"Relating to the want of Hindoostanee School Books.

Letter from the Reverend Mr. Rowe to the Reverend Mr. Yates, one of the Secretaries of the Calcutta School Book Society, dated Digah, August 23, 1819.

"From an assurance that the members of the Calcutta School Book Society are disposed to render what assistance they can to those who are labouring to promote the moral improvement of the natives of this country, I take the liberty of sending you a brief account of the State of our native Schools, and of soliciting a supply of Hindoostanee Books, to enable us to render them more efficient.

"My colleague (Mr. Moore) and I began these Schools about eight years ago, but owing to the great want of elementary books, we have not been able to bring them to that state of perfection we could wish. We have done what we could, living in hope of a period when our wants would be supplied, and we now trust that period is at hand.

"At present, we have eleven Native Schools. We support seven of them ourselves; two of them are supported by a benevolent gentleman in our neighbourhood; and the remaining two, one of which is for girls and the other for boys, and which are superintended by Mrs. Rowe, are supported by a few ladies who are interested in the object. The average number of scholars, the school for girls excepted, is about twenty-five in each; and their progress is as great as can be expected under present circumstances. If these schools were furnished with the necessary means of improvement, I am persuaded the number of scholars would be greatly increased.

"Our pecuniary resources are not sufficient to enable us to purchase the boards, books, etc, we need for our schools;—I hope, therefore, the Society will duly consider our circumstances, and grant us a supply gratis.

"For some time past Mrs. Rowe has been endeavouring to establish a Native Female School, but hitherto her endeavours have proved nearly fruitless. During the last three years she has obtained but about eleven females of this description. In the School for Native Females, which she superintends, there are now five Portuguese girls. If the Society would be so good as to send a few elementary books in English, adapted to this country, for the use of this school, they would be very acceptable.

"We frequently meet with intelligent natives who are desirous of becoming acquainted with the English language. Should Murray's Abridgement of his English Grammar rendered into Hindoostanee by the Reverend Mr. Corrie, be out of the press, a few copies might prove very serviceable to us.

"You will oblige me by submitting these requests to the consideration of the Committee of the Calcutta School Book Society at the earliest opportunity, as we are in immediate need of their assistance."

कलकत्ता-स्कूल-बुक-सोसाइटी की स्थापना के साथ ही साथ पादरियों की भी बन आई। उन्होंने भी धुआँधार

पाकर भारतवासियों को ईसाई-धर्म में दीक्षित करने की ठानी। कलकत्ते के पास ही सिरामपुर (श्रीरामपुर) एक छोटी-सी वस्ती है यहीं पर पादरियों का प्रधान अड्डा था। अन्य भाषाओं के साथ ही साथ उन्होंने हिन्दी भाषा में भी बाइबिल का अनुवाद करना प्रारम्भ किया। पैम्फ़लेट भी बाँटे गये। पर इन पादरियों ने जिस हिन्दी का प्रयोग किया वह ब्रजभापापन लिये हुए थी। साथ ही फ़ारसी शब्दों का सम्पूर्ण वहिष्कार तथा ग्रामीण शब्दों का अंशत: उपयोग उनकी हिन्दी में लक्षित हुआ। उदाहरण स्वरूप निम्नलिखित वाक्य देखिए—

"....परन्तु योहन यह कहके उसे वर्जने लगा कि मुझे आपके हाथ से वपतिस्मा लेना अवश्य है। और क्या आप मेरे पास आते हैं।......"

मंगलवार, २१ सितम्बर सन् १८१९ में कलकत्ता-स्कूल-बुक-सोसाइटी की एक सभा हुई थी। उस सभा के रिपोर्ट में पादरियों के विषय में यह मिलता है:—

"In the course of last year, the Serampore Missionaries prepared and printed six Elementary Hindee Tables in the Nagree character, folio and octavo size. These have undergone some revision by Major Taylor, and your Committee have ordered at the Serampore press a folio edition of 400 copies, and an octavo of 1000, all in the same character. The whole of the former and one half of the latter are to be printed on one side only of the paper to serve as tables in schools."

आगरे में भी सन् १८३३ के लगभग एक स्कूल-बुक-सोसाइटी की स्थापना हुई थी। यहाँ से भी कुछ पुस्तकें प्रकाशित की गई थीं जिनमें कथासार मुख्य है। पादरियों का सारे भारत में क्रमश: फैल जाने पर भी धीरे धीरे कुछ संस्थाओं एवं स्कूलों की स्थापना हुई तथा हिन्दी का प्रचार भी साथ ही साथ होने लगा। अँगरेज़ों ने केवल विद्या-प्रचारार्थ पुस्तकें ही नहीं लिखीं किन्तु साथ ही साथ शिक्षापद्धति की ओर भी उनका ध्यान रहा। इस विषय पर भी कई पुस्तकें लिखी गईं जिनमें उल्लिखित पुस्तक "पाठशाला के बैठाने की और वालकन् के सिखावने की रीति का वखान" भी एक है। अब नीचे उस पुस्तक का परिचय देकर मैं अपने इस लेख को समाप्त करता हूँ। परिचय कराने के योग्य यदि कोई दूसरी पुस्तक कहीं देखने को मिली तो अगले वार उसी पर कुछ लिखूँगा।

आलोच्य पुस्तक की लंबाई लगभग ८½ इंच तथा चौड़ाई ५½ इंच है। आख्यापत्र (title-Page) की नक़ल यह है:—

Substance of Dr. Bell's Instructions for Modelling and Conducting Schools, Translated into Hindooee by Rev. M. T. Adam. C. S. B. S.

पाठशाला के बैठावने की और वालकन् के सिखावने की रीति का वखान कलकत्ते में स्कुल-वुक-सोसाइटि के द्वारा छापा हुवा। स्कुलवुक सोसाइटि के छापेखाने में Calcutta Printed at the Calcutta School Book Society's Press. No. 11, Circular Road 1924.

आलोच्य पुस्तक में कुल ३५ पृष्ठ हैं। सूचीपत्र की नक़ल यह है:—

सुचि पत्र

आलोच्य पुस्तक की भाषा व्रजभाषापन लिये हुए है तथा साथ ही कुछ बँगला शब्द भी उपयोग किये गये हैं। दूसरी बात तो सूचीपत्र से ही स्पष्ट है। इस पुस्तक के कुछ पाठों की नक़ल नीचे दी जा रही है:—

"मनितर रखने का बखान

पाठशाला नियुक्त होने के पीछे बालकन् के बीच में से विद्या और अवस्था से बड़ा ऐसा एक बालक छांट ले के मनितर के काम में नियुक्त किया जायगा, जब पाठशाला प्रथम स्थापन किई जाय, और जिस् किसी समय में मनितर की अधिक आवश्यकता रहे, तब क्लास के मनितर को छोड़ के दो तीन क्लास के ऊपर एक एक मनितर नियुक्त करने होगा, पढ़नेहारो में से मनितर को छांट के बाहिर करना और तिसुके पीछे मनितर के ऊपर तदारक करना इसमें शिक्षक की सामर्थ्य अथवा असामर्थ्य जानी जाय, क्योंकि पाठशाला का भली प्रकार से शासन और पढ़नेहारों का विद्या में अभ्यास ये दोनों मनितर के परिश्रम का योग्यता के द्वारा होते हैं, इसीलिए अपनी आज्ञा के अनुवर्ती और विश्वास के पात्र ऐसे मनितरों के छांट के लेना शिक्षक को बहुत आवश्यक है. जिस् काम में जो मनितर नियुक्त किया जाय तिसमें उसकी कदाचित् अयोग्यता प्रगट होय, तब उस् काम में किसी प्रकार से उसको नहीं रखने होगा.

अपने क्लास के अधिकारी पढ़नेहारों की अपेक्षा में कदाचित् मनितर ने अधिक सीखा होय, तब शिक्षक उसके उपकार के लिए यथासावकाश और घर में बैठ के पढ़ने को कोई एक किताब उसको देगा".

"पाठ सीखने की और पढ़ने की रीति

एकादि क्रम से एक एक बालक पाठ का थोड़ा थोड़ा भाग करके आगे आगे पढ़े. इस् रीति से दुचित्ते नहीं होके सभी सब समय में सावधान वा तत्पर रहें. किसी बालक के लिये शिक्षक को कोई काम करना अथवा कुछ कहना निष्फल है, सब बालक अपनी योग्यता से जो बोलने सकें अथवा करने सकें, उसी में फल होय, शिक्षक के परिश्रम से सब मनितर ऊपर के लिखने के अनुसार निपुण होने से परिश्रम का फल यह होय कि उनके द्वारा कार्य्य की सिद्धि करते करते आप सहज में सुख से काल व्यतीत करने सकें, और तिसुके पढ़नेहारों को विद्या वा अन्तःकरण में आह्लाद जन्मे इसी रीति से पाठशाला चलने से किसी को किसी प्रकारका क्लेश नहीं होने सके ?

उपर्युक्त दो पाठों से सम्भवतः पाठक आलोच्य पुस्तक की भाषा का स्वरूप समझ गये होंगे। बँगला शैली एवं शब्दों का प्रयोग पुस्तक की रचना कलकत्ते में होने के कारण ही है।—हिन्दी-साहित्य-इतिहास-निर्माण में यदि यह छोटा-सा लेख अंशतः पूरक हो सका तब मैं अपनी प्रचेष्टाओं को सफल समझूँगा।

साई-सान-जीन

लेखक, श्रीयुत 'सलाम' मछलीशहरी

'साई-सान-जीन'—फूल—शराबीडाली—मधुरगीत...'हाँ; उसका बदन, उसकी आँखें और उसका स्वर कभी नहीं विस्मृत किये जा सकते।' चीन की पवित्र भूमि पर वह आज चलती फिरती नहीं दिखाई देती। मगर उसके गीत वायुमंडल में अब भी गूँजते हैं।

× × ×

'साई-सान-जीन' शंघाई के एक पुराने वंश में पैदा हुई थी। उसका बाप बंकिक में अब भी एक मशहूर व्यापारी है। वह अमरीका के एक कालेज में शिक्षा पाती थी, और वहीं उसकी मुलाक़ात एक जापानी लड़के से हुई, जिसका नाम ताकोमा था। वहाँ वह वायु-चालन की परीक्षा देने आया था।

× × ×

ताकोमा जापानी सेना में भर्ती हुआ और वह शंघाई के समीप एक पहाड़ी पर नियुक्त किया गया। इसी समय साई भी अमरीका से आचुकी थी। इन दोनों में गुप्त मिलन बराबर होता रहा।

यद्यपि ये मिलन केवल प्रेम-सम्बन्ध से ही होते थे, परन्तु प्रेम की अनन्त कहानी कहते-कहते वे प्रायः चीन और जापान की लड़ाई पर भी विचारविमर्श किया करते थे। उस समय यह अनुमान भी नहीं हो सकता था कि इनके प्रेम में कोई भेद-भाव हो जायगा।

× × ×

'प्रेम और देश-प्रेम—मैं देश की वेदी पर अपने प्रेम की बलि दे दूँगी।' साई अपने अस्थिर हृदय से ये बातें किया करती थी। ये गत वर्ष के जाड़े के दिन थे।

लड़ाई शुरू हो गई। साई ने अपने पिता से इस प्रेम-सम्बन्ध की चर्चा कर दी। मगर उसने यह भी कहा कि 'पिता जी, प्रेम पर देशभक्ति विजय पाती है न?'

× × ×

टीजू—साई का वंशगत इलाक़ा—जापानियों के अधिकार में हो गया। वह बहुत घबराई। ताकोमा भी समीप ही एक वायु-सेना के साथ मौजूद था। उसका बेड़ा चीनियों पर बम बरसाने और मशीनगन चलाने में इतना संलग्न था कि वह साई को (जो सामने ही की पहाड़ी पर थी) बिलकुल न देख सका।

× × ×

मेरा यह अभिप्राय नहीं है कि साई के सीने में दिल नहीं था। वह अपने प्रेमी की पूजा करती थी। उसके लिए मंगल-कामनायें करती थी। लेकिन वह एक चीनी के रूप में अपना धर्म भी जानती थी।

× × ×

ताकोमा—(धीरे से) जंग तो बहुत जल्द समाप्त हो जायगा। यह कुछ चीनियों की शरारत है, जो फ़ौरन बन्द की जा सकती है। मगर हमें तो चांग-काई-शेक को अपने अधिकार में लाना है। अगर ऐसा हो गया तो फिर हर चीज़ का खात्मा समझो।

साई—(मुस्कराने की कोशिश करके) हाँ, फिर तो सब खत्म हो जायगा!

× × ×

क्षण बीत गये; दिन चले गये—आज वायुचालक (ताकोमा) ने चाय की दूकान पर साई से मुलाक़ात की और मुस्करा मुस्करा कर अपनी प्रियतमा को गुप्तरूप से बहुत-सी बातें बतलाई।

'गुप्तचरों से मालूम हुआ है कि शंघाई का सेनाध्यक्ष रणक्षेत्र से नानकिंग गुप्त सम्मति के लिए पहुँचा है। उसकी वापसी पर मुख्य क्षेत्र का महासेना नायक भी साथ होगा। मैं उसका पीछा करूँगा।'

साई—(अपने दिल में) क्या मैं टेलीफ़ोन इस्तेमाल कर सकती हूँ। मगर उसका 'एक्सचेंज' तो जापानियों के हाथ में है। गुप्तचर-विभाग के चौकीदार की प्रतीक्षा करूँ? मगर इतना समय कहाँ? जो कुछ भी करना है, फ़ौरन करना चाहिए।

मुझे वायुयान-स्टेशन पर जाना चाहिए—'विदा ताकोमा'।

साई की कार जो बहुत तेज़ी से जा रही थी, एकाएक रुक गई। अभी दिन बाक़ी था। वह वापस हुई और आधी रात तक एक सुनसान झाड़ी में छिपी रही।

साई ने अँधेरे में चुपके-चुपके हवाई स्टेशन का रुख किया। इस समय वायुयान चुराना आसान काम न था। मगर साहस की पुतली यान तक पहुँच ही गई। वह ताकोमा के जहाज़ को अच्छी तरह पहचानती थी।

वह जहाज़ लेकर उड़ी लेकिन इतने में जगहट हो गई। जापानी यानों ने पीछा करना आरम्भ कर दिया। ताकोमा ने भी पीछा किया और गोलियाँ चलानी शुरू कर दीं। वह बड़ी बेरहमी से अपना ही जहाज़ तोड़ रहा था। बाध्य होकर साई को जहाज़ उतारना पड़ा। वह उतरी, मगर काली के रूप में—देश-प्रेम का मद पान किये हुए।

साई—(पिस्तौल को अपने प्रियतम की तरफ़ करके) तुम जहाँ हो वहीं खड़े रहो। मैं तुम्हें ज़िन्दा अवश्य देखना चाहती थी, क्योंकि मैंने तुमसे प्रेम किया है। मगर इसके ये अर्थ नहीं हैं कि मैं तुम्हें मनमाना काम करने की आज्ञा दे दूँ। अगर मैं तुमको छोड़ दूँगी तो तुम मेरे देश-वासियों को मृत्यु का ग्रास बना दोगे। और इसके लिए मैं तुम्हें समय नहीं दे सकती।..... पिस्तौल की आवाज़ आई। कोई चीज़ धम से गिर पड़ी। देश की देवी अपना काम कर चुकी थी।

× × ×

अब साई जापानी यानों से घिरी थी। वह विषैली गैसों से पहले ही मृतप्राय हो गई थी। जहाज़ चूर-चूर था।

साई संसार से विदा हो गई—प्रेम और देश के दो स्वर्णाक्षर वायु में सुन्दर परियों के हाथों अब भी उड़ते दृष्टिगोचर होते हैं।

साहस

लेखक, श्रीयुत महावीरप्रसाद त्रिपाठी, काव्यतीर्थ

शैशव का तुतला सम्बोधन, यौवन का चाञ्चल्य,
जरा-जीर्ण गालों पर आकर, मोती-सा वात्सल्य,
रोक ले यदि सैनिक! तव राह?
करूँगा मैं न ज़रा परवाह ॥१॥

निर्दयता के क्रूर करों में, तोपें औ' तलवारें,
यदि सैनिक! पथ रोकें, गोला-गोली की बौछारें,
और फाँसी-फन्दे का दाह?
करूँगा मैं न ज़रा परवाह ॥२॥

प्रबल प्रलोभन की भी सैनिक! होगी तुम पर मार,
वैभव की झंकार उधर औ' इधर ख़ून की धार,
घायलों की वह विवश कराह?
करूँगा मैं न ज़रा परवाह ॥३॥

वार रोकना ढाल नहीं नंगी छाती पर सैनिक!
ऊपर से निर्मम घातक का कर सुहलाना सैनिक!
कटीली कारागृह की राह?
करूँगा मैं न ज़रा परवाह ॥४॥

वहाँ तुम्हीं रक्षक, सेनापति, सेना और कृपाण,
तुम्हें अकेले ही बढ़ना है आगे जब तक प्राण,
उधर है सज्जित सैन्य अथाह?
करूँगा मैं न ज़रा परवाह ॥५॥

आओ, सैनिक! तुमने जाना भव का भारी भेद,
जीना जाना, मरना जाना, जाना छेद-अछेद,
अमर हो यह साहस-उत्साह! चिरंजीव यह भाव-प्रवाह ॥६॥
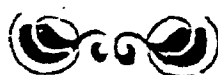
हमारा प्रधान उपनिवेश
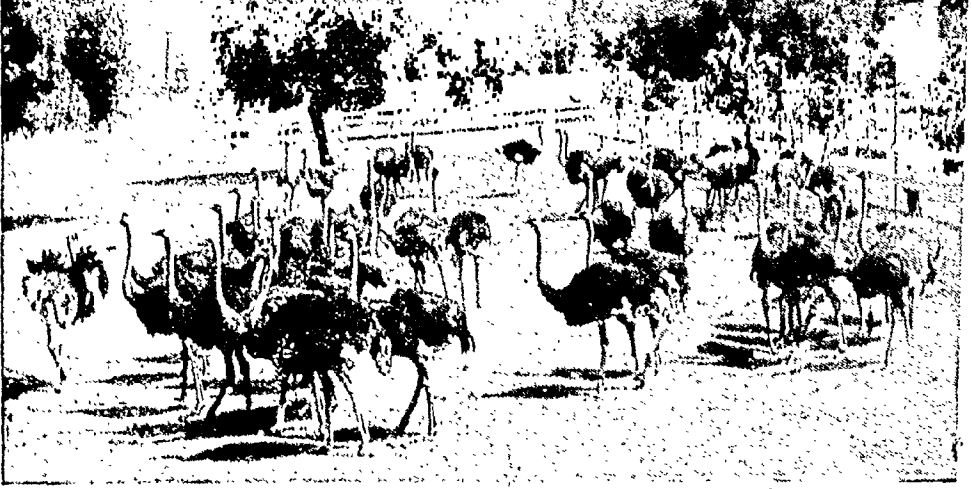
लेखक, श्रीयुत सेठ गोविन्ददास एम० एल० ए०

(११)

सबसे पहले हम लोग 'कलोनियल वार्न सेटलर्स एसोसियेशन' के सभापति, दक्षिण-अफ्रीका के एक वड़े प्राचीन सार्वजनिक कार्यकर्त्ता वैरिस्टर क्रिस्टोफर के यहाँ पहुँचे। उन्हीं के यहाँ कलोनियल वार्न सेटलर्स एसोसियेशन के अन्य पदाधिकारी और कार्यकर्त्ता भी आ गये थे। पहले ये सभी कांग्रेस की छत्रच्छाया में काम करते थे। पर सन् १९३२ की कालोनाइज़ेशन-स्कीम के आन्दोलन के समय से ये लोग कांग्रेस से अलग हो गये थे और इन्हीं ने कलोनियल वार्न सेटलर्स एसोसियेशन नाम की एक नई संस्था को जन्म दिया था। इस समय नेटाल के कार्यकर्त्ताओं में तीन दल थे—कांग्रेस, कलोनियल वार्न सेटलर्स एसोसियेशन और कुछ फुटकर कार्यकर्त्ता जिनमें अधिकांश सर रज़ाअली की शादी के कारण कांग्रेस को छोड़कर अपने अपने घर बैठ गये थे। सच्चा झगड़ा था कांग्रेस और कलोनियल वार्न सेटलर्स असोसियेशन में।

मिस्टर क्रिस्टोफर तथा उनके अन्य साथियों से मिलने-जुलने के वाद कांग्रेस तथा उनके असोसियेशन में समझौते की वात आरम्भ हुई। मुझे मालूम हो गया कि दोनों संस्थाओं के वर्त्तमान कार्यकर्त्ताओं में झगड़े का आरम्भ चाहे किसी सिद्धान्त के कारण हुआ हो, पर आज तो सारा झगड़ा व्यक्तिगत रह गया है। लम्बी-चौड़ी बातों के वाद अन्त में मिस्टर क्रिस्टोफर और उनके साथियों ने झगड़ा मिटाने की एक ही शर्त पेश की, वह थी नेटाल इंडियन कांग्रेस का नाम वदल कर कलोनियल वार्न सेटलर्स कांग्रेस कर देना।

मिस्टर क्रिस्टोफर के यहाँ से हम लोग श्री पारख के यहाँ आये। यहीं श्री सोराव जी, श्री काज़ी और स्वामी भवानीदयाल जी से भेंट हो गई। उनके सामने हमने मिस्टर क्रिस्टोफर का प्रस्ताव रक्खा। और किसी ने तो कुछ न कहा, पर श्री सोराब जी को यह प्रस्ताव स्वीकृत न हुआ। उनकी दलील थी कि कुछ लोगों ने एक जमी-जमाई संस्था से बग़ावत कर एक नई संस्था क़ायम की है। आज यदि हम इन लोगों को शामिल करने के लिए इस प्राचीन संस्था का नाम वदल देते हैं तो कल फिर कुछ लोग बग़ावत कर एक और संस्था स्थापित कर समझौता करते समय हमसे फिर नाम वदलने को कह सकते हैं और इस प्रकार नाम तो फुटवाल का स्थान ले सकता है। सोराब जी के कहने में वहुत कुछ सचाई थी। मुझे पहले दिन ही मालूम हो गया कि इन दलों का समझौता असम्भव है।

ठीक साढ़े पाँच बजे हम लोग सार्वजनिक सभा में पहुँच गये। सभा के सभापति थे डरवन नगर के अँगरेज मेयर मिस्टर क्लेमिंग जानस्टन। मेरे स्वागत के भाषणों और मुझे पुष्पहार समर्पण करने के वाद मेरा भाषण

क़रीब एक घंटे तक हुआ। महात्मा गांधी के समय के नेटल के इतिहास तथा तीन पौंडवाले टैक्स के विरुद्ध किये गये उनके महान् युद्ध का संस्मरण एवं नेटाल को गार्डन कालोनी का पद प्रदान करानेवाले परिश्रमी भारतीयों की वन्दना के बाद आज के भाषण में भी मैंने प्रायः वे ही बातें कहीं जो जोहान्सबर्ग के भाषण में कही थीं, क्योंकि दोनों स्थानों की परिस्थिति प्रायः एक-सी थी।

दूसरे दिन हम लोग दोपहर को फ़िनिक्स की तपोभूमि के दर्शन करने चले। गन्ने के पौधों से ढँकी हुई छोटी छोटी पहाड़ियोंवाली यहाँ की भूमि बड़ी रमणीय थी। महात्मा जी का आश्रम था एक छोटी-सी पहाड़ी पर। उन सब स्थानों को देखकर जहाँ वह महापुरुष रहता था, बैठता था, सोता था, उस स्थान के प्रति एक विचित्र प्रकार की श्रद्धा और भक्ति का हृदय में संचार हुआ। जब मैं उन सब स्थानों को देखकर बरामदे में एक कुर्सी पर बैठा हुआ सामने की भूमि को चुपचाप देख रहा था उस समय वहाँ के सत्याग्रह-काल के एक एक पढ़े और सुने हुए दृश्य नेत्रों के सामने घूमने लगे। उस कल्पना-संसार में मैं कुछ ऐसा तल्लीन हो गया कि कितना समय उस परिस्थिति में बीत गया इसका मुझे पता ही न लगा और मेरी यह तल्लीनता भंग हुई उस समय जब मणिलाल जी ने कहा कि भोजन तैयार है। भोजन से निश्चित हो हम लोग बैठे ही थे कि मुझे बुखार मालूम होने लगा। थर्मामीटर मँगाया गया और मालूम हुआ कि टेम्परेचर क़रीब १०१ है। हम लोग जल्दी से डरबन लौटे। जब लौट कर मैं बिस्तर पर लेटा उस समय बुखार बढ़ कर १०२ तक पहुँच गया था। इतने दिनों का लगातार घोर परिश्रम, नींद की कमी और निमन्त्रण की भरमार के कारण भोजन के अविवेक ने मेरे मज़बूत शरीर को भी गिरा ही दिया और लगातार के उपवास एवं दवा तथा इन्जेक्शन के बाद चौथे दिन इस बुखार ने छोड़ा। इन चार दिनों में बुखार की हालत में भी मुझे कुछ सभाओं में जाना तथा वहाँ बोलना भी पड़ा, क्योंकि वे सभायें पहले से निश्चित हो चुकी थीं। मेरे डरबन ठहरने के समय को हिन्दुस्तान में असेम्बली के अधिवेशन के कारण बढ़ाया न जा सकता था, और बहुत कम हिन्दुस्तानियों के हिन्दुस्तान से यहाँ आने के कारण यदि मैं इन सभाओं में जाकर कुछ न कुछ न बोलता तो यहाँ के लोगों को बड़ी निराशा होती। मुझे बुखार के सिवा और कुछ था भी नहीं, अतः मैंने भी निश्चित हुए कार्यक्रम के पालन करने का ही निश्चय कर लिया था।

आफ़्रिका की इस यात्रा में सबसे अधिक समय नेटाल के लिए रक्खा गया था, क्योंकि यहीं सबसे अधिक हिन्दुस्तानी रहते थे। यहाँ से वायुयान-द्वारा एक दिन के लिए केपटाउन जाने का विचार था, पर बीमारी के कारण उस विचार को छोड़ देना पड़ा। फिर केप-प्रान्त में हिन्दुस्तानियों की संख्या भी बहुत कम थी तथा उनकी कोई बहुत बड़ी समस्या भी न थी।

धीरे धीरे नेटाल का यह समय बीत चला। डरबन के आसपास की हिन्दुस्तानियों की बस्तियों को छोड़ नेटाल के जिन स्थानों को मैंने देखा उनके नाम हैं—

टॉंगाट, स्टेंगर, पीटर मेरिट्स बर्ग, वेरुलम और फ़िनिक्स।

डरबन के सिवा टॉंगाट और पीटर मैरिट्सबर्ग में सार्वजनिक सभायें हुईं। मैरिट्सबर्ग की सार्वजनिक सभा के सभापति भी वहाँ के अँगरेज़ मेयर थे। मैरिट्सबर्ग में हम लोगों ने एक अद्भुत कुटुम्ब देखा। यह कुटुम्ब था श्री सी० नल्लिया नायडू का। श्री नायडू की अवस्था क़रीब ७६ वर्ष की थी और इनके कुटुम्ब में लगभग १२५ आदमी थे, जिनका हिसाब-किताब नीचे लिख देना ही ठीक होगा:—

श्री नायडू की धर्मपत्नियाँ ...	३
इन धर्मपत्नियों से बच्चे ...	३३
(इनके आखिरी बच्चे का जन्म श्री नायडू की ६२ वर्ष की अवस्था में हुआ)	
श्री नायडू के पौत्र-पौत्रियाँ ...	७६
श्री नायडू के प्रपौत्र प्रपौत्रियाँ ...	७
कुल जोड़ ...	११९*

नेटाल में भी हम लोगों की बड़ी खातिर हुई। डरबन में बम्बे प्रेसीडेंसी असोसियेशन, सूरत हिन्दू असोसियेशन, जैकब इंडियन कांग्रेस और लाइफ़ सेवर्स असोसियेशन आदि संस्थाओं ने मेरा स्वागत किया।

*इनके अलावा श्री नायडू की पुत्र-वधू आदि।

अधिकांश लंच, टी पार्टियाँ और डिनर बीमारी के कारण मुझे अस्वीकृत करने पड़े, फिर भी डरबन के प्रसिद्ध ओरिएन्ट बसन तथा मि० पी० आर० पत्थर के लंच और वहाँ के प्रसिद्ध दो हिन्दू व्यापारियों—श्री बी०एन० नायक तथा एन० एल० भूला—के डिनरों को मैं अस्वीकृत न कर सका। हिन्दू व्यापारियों का डिनर रक्खा गया था १ जनवरी को। इसी दिन मेरी विदाई की सार्वजनिक सभा भी एम० के० गांधी लाइब्रेरी तथा रूस्तमजी पारसी हाल में रक्खी गई थी। इस सभा और डिनर में जो भाषण हुए थे वे मुझे बहुत समय तक स्मरण रहेंगे। सभा में तो मेरी बिदाई के भाषणों में जो करुणरस का स्रोत बहना आरम्भ हुआ उसकी धारा मेरी रवानगी तक बढ़ती ही गई। और डिनर के भाषणों में जो गरमागरम बहस हुई उसने नेटाल की इस समय की परिस्थिति पर का पालिश गला कर उसका नंगा रूप मेरे सामने रख दिया। श्री प्रागजी भाई की ओजपूर्ण वक्तृत्वशक्ति, श्री काजी और श्री मणिलाल गांधी की आपस की नोंक-झोंक, श्री सोराबजी का गर्जन, स्वामी भवानीदयाल जी का परिस्थिति का मन्थन और श्री रामदास गांधी का विदा में करुणापूर्ण कथन, सभी भाषण मुझे बहुत समय तक याद रहेंगे। मेरे भी १ जनवरी के सभा और डिनर के अभिभाषण शायद अफ्रिका की सारी यात्रा में सर्वश्रेष्ठ हुए। अब मैं अफ्रीका की सारी परिस्थिति से भली भाँति परिचित हो गया था। दूसरे दिन ही मैं वह देश छोड़नेवाला था, अतः वहाँ की परिस्थिति का संक्षेप से मैंने सिंहावलोकन कर वहाँ के लोगों को किस किस बात के सम्बन्ध में क्या करना चाहिए इस विषय में अपनी रायें दीं। डरबन का मेरा वह भाषण आफ्रीका और हिन्दुस्तान के अनेक पत्रों में पूरा का पूरा छपा। डिनर में दिया गया मेरा भाषण विदाई का भाषण था। उसकी सफलता का प्रमाण इतना ही है कि भाषण पूर्ण करते करते वक्ता का गला रुँध गया था और अनेक श्रोताओं के रूमाल उनके नेत्रों में लगे हुए थे।

दस दिन नेटाल में रहने पर भी जोहान्सबर्ग के सदृश ही डरबन को भी देखने का हमें अवकाश न मिला था, पर शहर कैसा है इसका ज्ञान अवश्य हो गया था। डरबन की आबादी थी क़रीब दो लाख। मकान और सड़कें बड़े बड़े शहरों के समान ही थीं। यहाँ की हिन्दुस्तानी आबादी यहाँ की योरपीय आबादी के बराबर थी। जोहान्सबर्ग की विशेषता यदि वहाँ की सोने की खान की निकली हुई पीली मिट्टी के टीले थे तो यहाँ की विशेषता यहाँ का समुद्र-तट था। जोहान्सबर्ग की वसुधा की चाहे डरबन बराबरी न कर सके, पर सफ़ाई में वह जोहान्सबर्ग से कहीं आगे था। जोहान्सबर्ग और डरबन में इस सम्बन्ध में उतना ही फ़र्क़ था, जितना कलकत्ता और बम्बई में है। डरबन में वहाँ की जिस चीज़ ने सबसे अधिक मेरा ध्यान खींचा वह वहाँ का टाउन-हाल था। इस हाल में कुर्सियों पर दस हज़ार आदमी बैठ सकते थे। सुन्दर हाल था और सुन्दर थी सारी इमारत। सुना गया कि सारे संसार में इससे बड़ा कोई टाउन-हाल नहीं है।

आख़िर २ जनवरी आ पहुँची। आज ही 'टकलीवा' जहाज़ से हम लोग अपनी मातृभूमि को विदा होनेवाले थे। जहाज़ एक बजे दिन को डरबन का बन्दरगाह छोड़ने-वाला था। स्वामी भवानीदयाल जी के यहाँ अनेक मित्र ब्रेकफ़ास्ट को बुलाये गये थे। स्वामी जी के कुटुम्बियों में से उस रात को शायद ही कोई आराम से सो सका हो। ९ बजे ब्रेकफ़ास्ट की तैयारी हो गई। स्वामी जी के यहाँ के लोग सारी तैयारी तो कर रहे थे, पर कोई कुछ बोलता न था। ब्रेकफ़ास्ट के लिए जो मेहमान आये वे भी चुप थे और हम लोग भी चुपचाप। बहुत थोड़े शब्दों के साथ कार्य समाप्त हुआ। अब स्वामीजी की पुत्री गायत्री देवी ने भाषण दिया। वह भाषण क्या था, करुणा का स्रोत था। मौन के बाँध को तोड़ते हुए केवल गायत्री ने नेत्रों से आँसू न बहाये, पर सभी उपस्थित मेहमानों के नेत्रों को सजल कर दिया। मैं भाषण का समुचित उत्तर न दे सका। मेरा गला रुँधा हुआ था और मुझे दो चार वाक्यों में ही अपना भाषण खत्म करना पड़ा।

अब हम लोग स्वामी जी के बँगले से विदा हुए, उस समय गायत्री बार बार पूछ रही थी—"अब आप यहाँ कब आवेंगे।' मेरी समझ में ही न आया कि मैं उसे क्या उत्तर दूँ।

डरबन के वार्फ़ पर बहुत बड़ा जनसमुदाय इकट्ठा था। वहाँ के सभी प्रतिष्ठित सज्जन मौजूद थे। हम लोग

क़रीब ११ बजे वार्फ़ पर पहुँचे। फिर एक बार वार्फ़ पर विदाई के भाषणों का करुण-स्रोत बहा और मैं फूलमालाओं से लाद दिया गया। डरबन के अनेक व्यक्तियों ने मुझे खींच खींच कर गले लगाया। न जाने मेरे प्रति उनके इस महान् प्रेम का क्या कारण था। जब मैं प्रागजी भाई देसाई और लक्ष्मीचन्द के साथ जहाज़ पर चढ़ा उस समय तो इस करुण-स्रोत की धारा का महान् रूप हो गया था।

अभी जहाज़ की रवानगी को क़रीब डेढ़ घंटा बाक़ी था। प्रखर सूर्य वार्फ़ को तपा रहा था, क्योंकि वहाँ कोई छाया न थी! पसीने की धारायें लोगों के शरीरों से बह रही थीं। मैंने जनता से बार बार जाने की प्रार्थना की, परन्तु वहाँ तो सभी ने निश्चय कर लिया था कि जहाज़ की रवानगी तक कोई भी वहाँ से न हिलेगा।

ठीक १ बजे जहाज़ ने लंगर उठाया। हमारी यात्रा सुखद हो, इस भावना से सोराबजी ने नारियल और मिश्री के तीन पुड़े समुद्र को समर्पित करने के लिए प्रागजी भाई, लक्ष्मीचंद और मुझे दिये थे। जहाज़ के लंगर उठाते ही हम तीनों ने नारियल फोड़ फोड़ कर मिश्री के साथ उन्हें समुद्र को भेंट किया। धीरे धीरे जहाज़ वार्फ़ से हटने लगा। उस समय जहाज पर से उड़ाई हुई चित्र-विचित्र रंग की काग़ज़ की डोरियाँ समुद्र-तट पर खड़ी हुई जनता और यात्रियों को सम्बद्ध किये हुए थीं। इन डोरियों के एक सिरे को यात्री पकड़े हुए थे और दूसरे सिरे को वार्फ़ पर खड़े हुए लोग। धीरे धीरे ये डोरियाँ भी टूट चलीं। इनके टूटने के साथ ऐसा मालूम होता था, मानो लोगों के हृदय टूट रहे हों। अब दोनों ओर से रूमाल फहराने आरम्भ हुए। जब तक वार्फ़ आँखों की ओट न हो गया तब तक वार्फ़ पर खड़ी हुई जनता हमें बराबर खड़ी की खड़ी और रूमाल फहराती हुई दिखती रही।

डरबन का डाक छोड़कर जब जहाज़ डरबन के पानी में प्रवेश कर रहा था उस समय हमने फिर देखा कि किनारे की ज़मीन पर मोटर से स्वामी भवानीदयाल जी सकुटुम्ब पहुँच कर रूमालों को फहरा कर हमें विदाई दे रहे हैं। जहाज़ इस समुदाय के निकट से ही निकला। सबके मुख करुणा से पूर्ण थे। करुणा की मूर्ति गायत्री के चौधारे आँसू बह रहे थे। डरबन के भारतीयों का स्नेह, उनका आतिथ्य-सत्कार, उनकी विदाई सभी अपूर्व थे।

डरबन से बम्बई

ज्यों ही डरबन हमारे नेत्रों से ओझल हुआ त्यों ही मेरा हृदय हर्ष और विषाद से भर गया। हर्ष था मातृभूमि लौटने का और विषाद था अफ़्रीका छोड़ने का। यद्यपि भारतवर्ष को छोड़े दो महीने भी न हुए थे, तो भी जान पड़ता था ज़माना बीत गया है। अतः भारत लौटने का हर्ष था। साथ ही अफ़्रीका में इतने थोड़े समय के भीतर ही जो कुछ देखा था, जो कुछ किया था, जो व्यक्तिगत सम्बन्ध स्थापित हो गये थे, वे एक एक कर याद आते थे। इनकी याद के साथ ही गायत्री देवी का बार बार पूछा गया वह प्रश्न स्मरण आता था। "अब आप यहाँ कब आवेंगे?" क्या फिर कभी अफ़्रीका आना होगा? क्या फिर कभी उस सुन्दर भूमि को देखूँगा? क्या फिर कभी इन मित्रों से मिलूँगा? "अब आप यहाँ कब आवेंगे" यह प्रश्न तो गायत्री ने किया था, पर अब तो मैं ही अपने से उपर्युक्त प्रश्न पूछने लगा। मेरे पास मेरे प्रश्नों का भी कोई उत्तर न था।

जहाज़ दूसरे दिन दोपहर को लुरेंकोमार्क्विस पहुँचा। लुरेंकोमार्क्विस में भगवान् जी नटवरलाल आदि सभी पुराने मित्र मिले। जहाज़ पर से उतर कर हम लोग अपने पुराने यजमान सेठ व्रजदास के घर पहुँचे। आज शाम को मेरी विदाई के लिए वहाँ के भारत-समाज ने सार्वजनिक सभा रक्खी थी पर मेरी तबीयत आज फिर अच्छी न थी। शाम होते होते बुख़ार मालूम होने लगा और मैं वापस जहाज़ पर आ गया। सभा में मैं न जा सका। प्रागजी भाई और लक्ष्मीचंद सभा में गये। लक्ष्मीचंद ने मेरी ओर से उपस्थित जन-समुदाय से मेरी अनुपस्थिति के लिए क्षमा माँगी। यह लक्ष्मीचंद का पहला सार्वजनिक भाषण था परन्तु मैंने सुना कि वे अच्छी तरह बोले। अपने साथ दो महीने रहने का उन पर यह असर देखकर मुझे बड़ा संतोष हुआ। प्रागजी भाई का इस सभा में ज़ोरदार भाषण हुआ।

दूसरे दिन प्रातःकाल ७ बजे जहाज़ लुरेंको मार्क्विस से चल दिया और ३ दिन चलकर ता० ७ जनवरी के मध्याह्न में पोर्तुगीज़ आफ़्रिका के तीसरे प्रधान बन्दरगाह मोज़ंबिक

पहुँचा, जो हमने अब तक न देखा था और जहाँ के लोगों को लौटते हुए ठहरने का हम वचन दे आये थे।

जहाज़ मोजंबिक पहुँचते ही जहाज़ पर मेरे लेने के लिए मोजंबिक के कई प्रधान व्यापारी आ पहुँचे, जिनमें मुख्य थे सेठ गोरधनदास बल्लभदास के मालिक सेठ पुरुषोत्तमधन जी, सेठ दामोदर आनन्द जी के मैनेजर मि० कानजी दयाभाई, सेठ गोरधनदास के खेती के मैनेजर मि० धनसुखलाल दलाल, सेठ अमरसी गोकुलदास के पार्टनर मि० बल्लभदास वसन जी। ये दुकानें आज डेढ़ सौ वर्ष से मोजंबिक में अपना काम-काज कर रही थीं। व्यापार में भारतीयों की यह दूरदर्शिता और साहस सराहनीय था। आज मेरी तबीअत ठीक थी अतः हम लोग मोटर-बोट में बैठकर किनारे को चले। जनवरी का महीना होते हुए भी मोज़ंबिक में जितनी गरमी थी उतनी गरमी का अनुभव हमें अब तक की सारी यात्रा में कभी न हुआ था। इस गरमी का मिलान भारतवर्ष में समाप्त होते हुए ज्येष्ठ अथवा आरम्भ होते हुए आषाढ़ से ही किया जा सकता है। थोड़ा-सा पानी बरस जाने के बाद बादलों के फटने और अत्यधिक उमस होने पर जैसा मौसम भारत में ज्येष्ठ-आषाढ़ में रहता है वैसा यहाँ जनवरी में था। आकाश में छोटे छोटे बादलों के टुकड़ों ने आसन जमाकर हवा पर ऐसा रोब गाँठा था कि उसकी साँस ही बन्द हो गई थी। इतने पर भी इनकी संख्या इतनी अधिक न थी कि ये सूर्य को आच्छादित कर लेते। वह अपने किरण-रूपी शरों से इस सेना को अपने चारों ओर से हटा पूर्ण प्रखरता से चमक रहा था। उसकी तप्ततम रश्मियों ने समुद्र के अथाह शीतल पानी की शीतलता को भी हरण कर लिया था। वृक्षों का एक पत्ता भी न डोलता था। शरीर से पसीने की धारायें छूट रही थीं।

जब हम किनारे पर पहुँचे तब मालूम हुआ कि मोजंबिक नगर में केवल दो मोटरें हैं। यह स्थिति सारे अफ़्रीका की स्थिति से एकदम विपरीत थी। अफ़्रीका में तो हम ने मोटरों की भरमार देखी थी। यहाँ रिक्शे चलते थे। रिक्शे भी विचित्र ही थे। एक एक रिक्शे पर दो दो आदमी बैठते थे और उन दो आदमियों को खींचता था एक सुहेली। शिमले में विवश होकर मुझे रिक्शे पर बैठना पड़ता था पर जब जब वहाँ मैं रिक्शे पर बैठता था मनुष्य की इस क्रूरता पर दुःख हुए बिना न रहता था। यहाँ तो इस प्रकार के रिक्शे पर बैठने में और भी दुःख हुआ। क्या किया जाता। यहाँ भी विवशता थी। रिक्शे पर बैठना ही पड़ा। सूर्य की किरणों से तवा के सदृश तपती हुई उस सड़क पर नंगे पैर वह सुहेली रिक्शा खींचता हुआ दौड़ चला। क्रूरता की यह सीमा थी और उसमें सहयोग देते हुए ग्लानि से मेरा हृदय भर गया।

हम लोग सेठ पुरुषोत्तमधन जी के मेहमान हुए। क़रीब चार बजे मुझसे मोजंबिक के मुसलमान व्यापारी मिलने आये जो शुक्रवार की नमाज़ के कारण जहाज़ पर मेरे स्वागत के लिए न आ सकते थे। संध्या को शहर देखना था और इसके बाद सार्वजनिक सभा थी, पर रिक्शे पर बैठकर शहर न देखने का मैंने निश्चय कर लिया था अतः हम लोग सीधे सार्वजनिक सभा में गये। मोजंबिक में केवल तीन सौ भारतीय रहते थे। मोज़ंबिक में रहनेवाला शायद ही कोई भारतीय इस सभा में न आया हो। हिन्दू मुसलमान सभी वर्गों के लोग इस सभा में मौजूद थे। हिन्दुस्तानियों के अलावा पोर्चुगीज़ भी काफ़ी बड़ी संख्या में उपस्थित थे। पोर्तुगीज़ जनता में मुझे अँगरेज़ों की अहमन्यता का सर्वथा अभाव दिखा। उन्हें मैंने स्वरूप और व्यवहार दोनों में बड़ा सरल पाया। पोर्तुगीज़ न हिन्दुस्तानी समझते थे न अँगरेज़ी। अँगरेज़ी भाषा से तो उन्हें घृणा थी वे उसे कुत्तों की ज़बान कहते थे। एक पोर्तुगीज़ ऐसा ज़रूर मिला जो पोर्तुगीज़ और अँगरेज़ी दोनों भाषाएँ समझता था। वहाँ के हिन्दुस्तानी पोर्तुगीज़ समझते थे। अतः निश्चय हुआ कि मैं अँगरेज़ी में एक एक वाक्य बोलता चलूँ और उसका अनुवाद वह पोर्तुगीज पोर्तुगीज़-भाषा में कहता चले। मुझे वहाँ के हिन्दुस्तानियों ने यह भी बता दिया था कि वहाँ के पोर्तुगीज़ भारत के संबंध में बहुत थोड़ा जानते हैं अतः वे आशा करते हैं कि मैं उन्हें भारतवर्ष की सारी परिस्थिति से परिचित करा दूँगा। सभा के सभापति थे मि० कानजी दयाभाई। मेरा भाषण क़रीब एक घंटे तक चला। आरम्भ में मैंने पोर्तुगीज़ और भारत के प्राचीन संबंध के इतिहास और पोर्तुगीज़ महान् यात्री वासकोडिगामा का जिक्र किया।

फिर पोर्तुगीज़ सरकार को उनके राज्य में भारतीयों के साथ सद्व्यवहार पर धन्यवाद दिया और इसके बाद भारतवर्ष की पाँच हज़ार वर्ष से भी अधिक प्राचीन सभ्यता का वर्णन करते हुए भारत के वर्तमान अहिंसात्मक स्वतन्त्रता के युद्ध का विवेचन कर यह बताया कि भारतीय स्वातन्त्र्य और उस स्वातन्त्र्य की प्राप्ति में अहिंसात्मक मार्ग के अवलम्बन का खून के प्यासे योरप और सारे संसार की शान्ति से कितना बड़ा संबंध है। मेरे बाद मि० प्राग जी देसाई का गुजराती में भाषण हुआ। भाषण बड़ा सुन्दर और ओजस्वी था। उन्होंने ब्रिटिश सिंह अब कितना वृद्ध हो गया है इसका बड़ा मनोरंजक वर्णन किया। पीछे से जब मुझे यह मालूम हुआ कि मेरे भाषण को यहाँ की पोर्चुगीज प्रजा ने बहुत अधिक पसन्द किया तब मुझे इस बात पर संतोष हुआ कि एक अन्य देश की जाति का भी मैं थोड़ा बहुत मनोरंजन कर सका। रात को हम लोक वापस जहाज़ पर आ गये। जहाज़ पर माल लादा जा रहा था। कभी कभी कोई कोई थैला फट पड़ता था उस समय उसकी सामग्री की समुद्र पर सुन्दर वर्षा हो जाती थी।

दूसरे दिन मध्याह्न में टकलीवा रवाना होनेवाला था। मोज़ंबिक की दो मोटरों में से एक मोटर का आज हमारे लिए मोज़ंबिक के प्रधान अफ़सर ने प्रबन्ध कर दिया था। रिक्शे पर न बैठ कर इसी मोटर पर बैठ हम मोज़ंबिक नगर और मोज़ंबिक का क़िला देखनेवाले थे। ठीक आठ बजे हम लोग जहाज़ से बन्दर पर आ मोटर पर बैठ कर रवाना हुए। ८ बजे से ही गरमी का ठिकाना न था। हवा आज भी बिलकुल बन्द थी और सूर्य अपनी पूर्ण प्रखरता से पृथ्वी को तपा रहा था।

मोज़ंबिक की आबादी ३-४ हज़ार होगी पर यह नगर लुरेंकोमार्क्विस और बेरा के ठीक विपरीत था। ये दोनों शहर थे सर्वथा नये और यह था एकदम पुराना। चौड़ी सड़कों के स्थान पर यहाँ सकड़ी गलियाँ थीं। मकान बहुत छोटे तो नहीं थे पर पतली पतली आधुनिक दीवारों की जगह दो दो और तीन तीन फ़ुट चौड़ी दीवालोंवाले प्राचीन ढंग के थे। शहर पुराना होने पर भी साफ़-सुथरा और रमणीय था।

शहर देखकर हम लोग क़िला देखने गये। क़िले के सबसे बड़े अफ़सर को यहाँ कमान्डर कहते हैं। स्वयं कमान्डर ने आकर मेरा स्वागत किया और मुझे साथ लेकर सारा क़िला दिखाया। इस क़िले का बनना १५०८ में आरम्भ और सन् १७१९ में समाप्त हुआ था। शायद धीरे धीरे बढ़ाया गया हो क्योंकि दो सौ वर्ष तो एक क़िले के बनने में न लग सकते थे। बाहर से देखने में तो क़िला बड़ा न दिखाई देता था पर भीतर से काफ़ी बड़ा था। क़िले की सफ़ील पर ५०० वर्ष की पुरानी अनेक तोपें रक्खी हुई थीं। इनका उपयोग अब केवल सजावट ही रह गया था। इनसे चलनेवाले गोलों के भी ढेर के ढेर रक्खे हुए थे जिन पर जंग चढ़ गया था। यह क़िला आज-कल पोर्चुगीज़ राज्य के आजन्म क़ैद की सज़ावाले क़ैदियों के जेल के उपयोग में आता है। मोज़ंबिक टापू पोर्चुगीज़ राज्य का अन्डमन द्वीप है परन्तु अन्डमन द्वीप की अपेक्षा यहाँ की आबोहवा बहुत अच्छी है और क़ैदियों को सुविधायें भी बहुत अधिक हैं। मैंने इस सम्बन्ध में वहाँ के क़ानून-क़ायदों को देखा। आजन्म क़ैद का अर्थ पोर्चुगीज़ क़ायदों में १४ साल की क़ैद होता है परन्तु यदि क़ैदी का व्यवहार अच्छा रहे तो वह ११ साल में छूट सकता है। इस प्रकार के हर क़ैदी को १५ महीने इस क़िले की जेल में रहना पड़ता है। फिर वह जेल से आज़ाद कर दिया जाता है। जेल से बाहर आकर वह इस टापू में नौकरी कर सकता है, रोज़गार धंधा कर सकता है। चार साल के बाद अपने कुटुम्ब को बुला सकता है या शादी कर सकता है। चार साल तक हफ़्ते में एक दफ़ा इतवार को उसे पुलिस में अपनी हाज़िरी देनी पड़ती है। चार साल के बाद सातवें साल तक महीने में एक दफ़ा और फिर ग्यारहवें साल तक छः महीने में एक दफ़ा। ग्यारह साल तक उसे टापू के अन्दर ही रहना पड़ता है। इसके बाद वह कहीं भी जाने के लिए स्वतंत्र रहता है। परन्तु इस बीच में यदि उसे कोई सरकारी नौकरी मिल जाय तो वह बाहर जाने के लिए आज़ाद कर दिया जाता है। सुना गया कि वहाँ के अनेक क़ैदियों को सरकारी नौकरियाँ मिली हैं। क़ैदियों के साथ यह मनुष्यता-पूर्ण व्यवहार देखकर मुझे बड़ा संतोष हुआ। मालूम नहीं भारतीय सरकार में इतनी मनुष्यता कब आवेगी।

इतनी गरमी में क़िला घूमते घूमते हम लोग तलमला उठे। ऊपर से सूर्य के प्रखर करों और नीचे से तपती हुई पृथ्वी द्वारा छूटते हुए तप्त शरोंने हमें विह्वल कर दिया। क़िले को देख क़िले के कमान्डर को धन्यवाद दे हम वहाँ के हिन्दुओं के एक नये बनाये हुए मन्दिर में पहुँचे। मन्दिर शिवजी का था। पर सर्वथा आधुनिक ढंग का। एक ओर यदि देव-दर्शन था तो दूसरी ओर पुस्तकालय, रीडिंग रूम और बच्चों के खेलने तथा जमनैस्टिक का मैदान। यदि इस प्रकार के मन्दिरों का हिन्दू-समाज निर्माण करे तो समाज को बड़ा लाभ पहुँचे। वहाँ के हिन्दुओं को बहुत छोटी संख्या में रहते हुए भी ऐसी सुन्दर संस्था के निर्माण पर, बधाई दे और सेठ पुरुषोत्तम धन जी के यहाँ भोजन कर क़रीब ११ बजे हम लोग टेकलीवा पर पहुँच गये। वहाँ के सभी प्रधान व्यापारी मुझे विदा करने जहाज़ पर आये।

ठीक १२ बजे टेकलीवा ने मोजंबिक छोड़ दिया। गरमी वैसी ही थी परन्तु जहाज़ के चलते ही जो ठंडी ठंडी हवा का आना शुरू हुआ उसे मैं शायद ही भूल सकूँ। लगभग २४ घंटे की तपस्या के बाद शायद इससे बड़ा और कोई वरदान न मिल सकता था।

मोजंबिक से ता० ८ को मध्याह्न में चलकर ता० १० की दोपहर को जहाज़ दारसलाम पहुँचा। मि० चितले, मि० अंजारिया आनरेबिल, मि० आदमजी—वहाँ के भी सभी पुराने मित्र—जहाज़ पर आ पहुँचे। यहाँ से ज़ंज़ीबार-वाले मुझे हवा से ज़ंज़ीबार बुलाना चाहते थे क्योंकि कालोनीज के अन्डर सेक्रेटरी आफ़ स्टेट लार्ड डफरिन ज़ंजीबार पहुँच गये थे और ज़ंज़ीबार का इन्डियन नेशनल एसोसियेशन चाहता था कि लौंग के व्यापार के सम्बन्ध में मैं लार्ड डफरिन से मिलूँ। एसोसियेशन के पदाधिकारियों ने ता० ११ को प्रातःकाल साढ़े ९ बजे लार्ड डफरिन की और मेरी मुलाक़ात का प्रबन्ध किया था। ११ बजे वे मुझे एक सार्वजनिक सभा में मानपत्र देना चाहते थे। टेकलीवा ता० ११ को साढ़े दस बजे दिन को ज़ंज़ीबार पहुँच कर उसी दिन डेढ़ बजे दिन को ज़ंज़ीबार से रवाना हो रहा था। समय बहुत कम था इसी लिए ज़ंजीबारवाले ता० १० की शाम तक ही मुझे एरोप्लेन से ज़ंज़ीबार बुला लेना चाहते थे।

दारसलाम में आज कोई छोटा एरोप्लेन ख़ाली न था। इसलिए ६ आदमियों के बैठनेवाले एरोप्लेन का इन्तज़ाम किया गया और प्रागजी भाई तथा लक्ष्मीचन्द के साथ जहाज़ से उतर चितले साहब के यहाँ लंच खाकर साढ़े तीन बजे मैं एरोड्रोम में पहुँच गया। मि० चितले आनरेबिल मि० आदमजी और सेठ मथुरादास कालीदास भी एरोप्लेन की यात्रा में दारसलाम से ज़ंज़ीबार तक हमें पहुँचाने हमारे साथ चले और छहों आदमी दारसलाम से ज़ंज़ीबार उड़कर, जिस रास्ते को ख़त्म करने में जहाज़ चार घंटे लेता है, उसे आधे घंटे में समाप्त कर, ज़ंज़ीबार पहुँच गये। जिस मशीन से आज हम उड़े यह मशीन उस मशीन से बहुत बड़ी थी जिस पर हमने पूर्वीय अफ़्रीका की ९ दिन तक यात्रा की थी अतः इस मशीन में बैठने का उससे कहीं अधिक सुभीता था। रास्ते में कोई नई बात नहीं हुई और हमें ज़ंज़ीबार में उतार कर दारसलाम के तीनों सज्जन उसी एरोप्लेन से दारसलाम वापस चले गये।

ज़ंज़ीबार एरोड्रोम पर मि० ग़ुलामअली, मि० पटेल, मि० इब्राहीम आदि सभी पुराने मित्रों से भेंट हुई पर इन मित्रों में सेठ पोपट वीर जी न थे, जिनके यहाँ मैं पहले दो बार भोजन करता था। पूछने पर मालूम हुआ कि सेठ पोपट वीर जी १६ दिन पूर्व इस संसार को ही छोड़ कर चल बसे हैं। हृदय की धड़कन रुक जाने से मि० पोपट वीर जी का ७२ वर्ष की अवस्था में देहावसान हो गया था। ज़ंज़ीबार से गये मुझे बहुत समय न हुआ था और लौट कर मैं पोपट सेठ को न देख सकूँगा यह मैं कल्पना भी न कर सकता था। इतनी वृद्धावस्था में भी उनके देहान्त से आज तो मुझे बड़ा खेद हुआ। मेरे ठहरने की व्यवस्था इस बार भी सेठ कावस जी दीनशा के बँगले पर की गई थी। अतः एरोड्रोम से सीधे हम लोग वहीं गये।

आज रात को ९ बजे इन्डियन नेशनल एसोसियेशन की एक मीटिंग रक्खी गई थी जिसमें यह तय होनेवाला था कि लार्ड डफरिन से मैं लौंग के व्यापार के सम्बन्ध में क्या बात करूँ। ठीक समय पर यह मीटिंग आरम्भ हुई और अर्द्धरात्रि को समाप्त हुई। मीटिंग में एसोसियेशन के पदाधिकारी तथा सभी मुख्य मुख्य व्यापारी

उपस्थित थे। मीटिंग में लम्बी चौड़ी बहस मुबाहसे के बाद मुझे कुछ प्रस्ताव दिये गये।

दूसरे दिन ठीक ९ बजे मैं लार्ड डफरिन से मिला। मुलाक़ात क़रीब एक घंटे तक चलती रही। अधिकांश बातचीत लौंग के व्यापार के सम्बन्ध में ही हुई पर बातें समाप्त होने के कारण उनका लिखा जाना सम्भव नहीं है फिर भी मुलाक़ात के सम्बन्ध में इतना लिखे बिना मैं नहीं रह सकता कि लार्ड डफरिन मुझसे बहुत अच्छी तरह मिले। लार्ड डफरिन का यह व्यवहार शायद इस कारण और भी अच्छा था कि उनके दादा भारतवर्ष के वायसराय लार्ड डफरन और मेरे दादा राजा गोकुलदास जी की बड़ी दोस्ती थी। लार्ड डफरन के वायसराय रहते हुए हिन्दुस्तान में डफरन फंड नामक एक बहुत बड़ा कोष स्त्रियों के इलाज के लिए इकट्ठा किया गया था जिसमें राजा गोकुलदास जी ने बहुत बड़ी रक़म चंदे में दी थी और उससे जब्बलपुर में स्त्रियों का एक अस्पताल खोला गया था। वर्तमान युवक लार्ड डफरन को यह पुराना हाल मालूम था।

ग्यारह बजे मुझे जंज़ीबार में बिदाई का मानपत्र दिया गया, जिसे पढ़ा इन्डियन नेशनल एसोसियेशन के सभापति आनरेबिल बैरिस्टर गुलामअली ने। १२ बजे हम लोग जहाज़ पर आ गये। समुद्र में तूफ़ान था। जिस मोटर-बोट पर बैठ कर हम जहाज़ तक गये वह बुरी तरह डगमगा रहा था। समुद्र की लहरें ज़ोर से मोटर-बोट से टकराती थीं और कभी कभी उनके छींटे हम लोगों पर भी पड़ जाते थे। मोटर लँच जहाज़ की सीढ़ी पर लगा पर वह इस तरह डगमगा रहा था कि उससे उतर सीढ़ी पर चढ़ना कठिन हो गया और हम मुश्किल से जहाज़ पर पहुँच सके। डेढ़ बजे टेकलीवा ने जंज़ीबार छोड़ दिया।

उसी दिन रात को ८ बजे जहाज़ टँगनीका के टांगा नामक बन्दरगाह में माल लेने को ठहरा। टांगा-निवासियों को मालूम था कि मैं टेकलीवा से भारत जा रहा हूँ। अतः टांगनीका कौंसिल के सदस्य आनरेबिल डा० वेजवा और टांगनीका यूनियन के सम्पादक मि० आचार्य के साथ वहाँ के अनेक सज्जन जहाज़ पर मुझसे मिलने को आये। उसी दिन अर्द्धरात्रि के समय जहाज़ ने टांगा छोड़ दिया और ता० १२ के प्रातःकाल हम मुंबासा पहुँच गये।

मुंबासा में जहाज़ पर आनरेबिल मि० पंड्या, बैरिस्टर पटेल, डा० कर्वे आदि आ पहुँचे और हम लोग मि० पंड्या के यहाँ चल पड़े।

मुंबासा छोड़े मुझे बहुत समय न हुआ था। जब मैंने मुंबासा छोड़ा था तब कीनयां में कोई बड़ा भारी नया राजनैतिक प्रश्न उठा हुआ न था, परन्तु इतने थोड़े समय के भीतर ही वहाँ दो नये सवाल खड़े हो गये थे—कीनिया की हाईलैंड्स के सम्बन्ध में कुछ और नई बातें तथा पूर्वीय अफ्रीका में भी गवर्नमेंट आफ़ इन्डिया के एजेंट के आने की गरम अफ़वाह। मि० पंड्या के यहाँ हम लोग इन्हीं बातों पर रात तक चर्चा करते रहे। रात को हम जहाज़ पर लौट आये। ता० १३ के मध्याह्न में ठीक १२ बजे मुंबासा से जहाज़ बंबई के लिए रवाना हो गया। जहाज़ में यहाँ से फिर वैसी ही भीड़ हो गई जैसी टायरिया में बंबई से मुंबासा तक थी।

मुंबासा छोड़ने का अर्थ अफ़्रीका छोड़ना था। मुंबासा के बाद जहाज़ कहीं न ठहरा और आते समय जिस प्रकार ९ दिनों और ९ रातों के बाद पृथ्वी के दर्शन हुए थे उसी प्रकार ९ दिनों और ९ रातों के बाद फिर से भूमि के दर्शन हुए। उस समय भारत को छोड़ अफ़्रीका की पृथ्वी देखी थी इस बार अफ़्रीका को छोड़ भारत की। इस बार की यात्रा और जाते समय की यात्रा प्रायः एक-सी थी। वैसा ही समुद्र था, वैसे ही दिन थे, वैसी ही ज्योत्स्ना-पूर्ण रातें थीं। पूर्णिमा और पूर्ण चन्द्र के भी फिर इस यात्रा में दर्शन हुए। टेकलीवा जहाज़ भी ठीक टायरिया के सदृश था। सब कुछ वैसा ही होने पर भी वह नवीनता न थी जो जाते समय थी अतः वह रमणीयता भी न थी। इस यात्रा में संस्कृत के एक श्लोक के निम्नलिखित चरण याद आये बिना न रहे :—

"पदे पदे यन्नवतामुपैति
तदेव रूपं रमणीयतायाः।"

इस यात्रा में जहाज़ पर जो ख़ास बात हुई वह दो पार्टियाँ थीं। एक ता० २० को पुरुषों की और दूसरी

ता० २१ को स्त्रियों की तथा ता० २१ की रात को डेक पैसिंजर्स की सार्वजनिक सभा। ये पार्टियां सेकिंड क्लास के मुसाफ़िरों ने मुझे दी थीं और विशेषता यह थी कि भारत के सभी प्रदेशों और समुदायों के व्यक्ति इन यात्रियों में थे। दोनों दिन की पार्टी में सभापति का आसन मि० प्रागजी भाई देसाई ने ग्रहण किया और सार्वजनिक सभा के सभापति भी वही थे। पार्टियों और सभा में मेरे भाषण तो हुए ही पर पहले दिन की पार्टी में लक्ष्मीचन्द का भी एक लम्बा भाषण हुआ। उन्होंने हमारी सारी अफ़्रीका की यात्रा और यात्रा के अनुभवों का सुन्दर वर्णन किया। यह उनका दूसरी बार सार्वजनिक भाषण था और उनके इस भाषण पर उन्हें अनेक बधाइयाँ मिलीं।

ज्यों ज्यों बम्बई नज़दीक आता जाता था मुसाफ़िरों की आतुरता बढ़ती जाती थी। ता० २१ की रात को तो यह आतुरता चरम सीमा को पहुँच गई। मुंबासा पहुँचने के पहले दिन की रात भी आतुरता की रात थी, पर उसमें और इसमें अन्तर था। वह थी ९ दिन और ९ रात के बाद पृथ्वी के देखने की, यह थी जन्मभूमि के दर्शन की। कई यात्री दो, कई चार, कई आठ और कई दस वर्षों के बाद मातृभूमि लौट रहे थे। कई ऐसे भी थे जिनका जन्म ही अफ़्रीका में हुआ था और आज पहली बार वे अपने पूर्वजों की जन्मभूमि को आ रहे थे। इनमें अनेक भारत में दरिद्र थे, दुःखी थे। अफ़्रीका जाकर इन्होंने धन कमाया था, सुखी हुए थे। मातृभूमि में इन्हें क्लेश के सिवा आनन्द न मिला था। लोगों के बीच में रहते थे जो सुख का नाम न जानते थे, अतः इनके लिए तो जन्मभूमि और जन्मभूमि का वायुमंडल दुःख का वायुमंडल था फिर भी ये मातृभूमि के दर्शन के लिए कितने व्यग्र थे। अनेक अपनी माता, अनेक पिता, अनेक भाइयों, अनेक बहनों, अनेक पुत्रों, अनेक पुत्रियों, अनेक प्रियतमाओं और अनेक प्रियतमों की भेंट के लिए उत्कंठित हो रहे थे। ता० २१ की रात जागरण की रात थी। तीन बजे से ही बम्बई की घूमती हुई बत्तियाँ दिखने लगीं। कितनी कठिनाई से पौ फटी। मालूम हुआ उसमें युग लग गये हैं। जब मन्द मन्द प्रकाश हुआ तब जहाज़ पालवा बन्दर के निकट था। जहाज़ की दाहिनी ओर पूर्व में समुद्र के छोटे छोटे टीलों पर उषा का सुनहरी आलोक पड़ रहा था। बांये ओर पश्चिम में भारत का फाटक (Gate of India) उसके निकट ही ताजमहल होटल तथा बम्बई के अनेक गगनचुम्बी प्रासाद और समुद्र में खड़े हुए जहाज़ दिख रहे थे। यह दृश्य अब भी धुँधला था। धीरे धीरे दाहिनी ओर के एक टीले से अरुण ने अरुणोदय की सूचना दी। सोने के सूर्य के दर्शन हुए। सारा दृश्य आलोकित हो उठा। सूर्य के प्रतिबिम्ब ने समुद्र में अनेक सूर्य उत्पन्न कर दिये। कितना सुन्दर और सुखद प्रभात था।

डाक्टरी परीक्षा और इमीग्रेशन का कार्य समाप्त होने पर हम लोगों को उतरने की आज्ञा मिली।

कितनी आतुरता थी, कितनी उत्कंठा थी, कितने हृदय धड़क रहे थे, कितने हृदय उछल रहे थे। हमने हृदय में मातृभूमि को साष्टांग प्रणाम किया। आज मुझे इन यात्रियों के साथ जन्मभूमि की गोद में आने पर अनुभव हुआ कि संस्कृत की निम्नलिखित पंक्ति कितनी सत्य है:—

"जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी।"

पठन-पाठन का प्रचार

लेखक, श्रीयुत कालिदास कपूर, एम० ए० एल० टी०

भारतवर्ष में पुस्तकें नहीं बिकतीं, समाचारपत्रों और पत्रिकाओं की खपत बहुत कम है, यह शिकायत सभी प्रकाशकों की है, वे देशी भाषाओं के हों या अँगरेज़ी भाषा के। अँगरेज़ी भाषा की पुस्तकों तथा समाचार-पत्रों अथवा पत्रिकाओं की जो कुछ खपत है उसका अधिकांश श्रेय योरपीय जनता को है जो अपना देश छोड़ यहाँ बसी है। जिन भारतवासियों पर अँगरेज़ी सभ्यता का काफ़ी असर पहुँच चुका है उनमें भी पुस्तकों तथा समाचार-पत्रों को ख़रीद कर पढ़ने का शौक़ है। परन्तु इसके आगे अंधकार ही अंधकार है। निरक्षरों की बात छोड़िए, उन्हें पढ़ने-पढ़ाने का शौक़ न हो तो कोई आश्चर्य की बात नहीं है, पढ़े-लिखे लोगों में भी पुस्तकों तथा समाचार-पत्रों को ख़रीद कर पढ़ने का शौक़ बहुत कम है। क्या कारण है?

पुस्तकों की कम बिक्री पढ़े-लिखे लोगों की संख्या बहुत कम होने के कारण ही नहीं है। यह ठीक है कि पुस्तक पढ़ने योग्य व्यक्तियों की संख्या यहाँ पाँच प्रतिशत से अधिक नहीं है। परन्तु भारत की जन-संख्या को देखते हुए पाँच प्रतिशत के हिसाब से भी पढ़ने-लिखने योग्य व्यक्तियों की बहुत कुछ संख्या हो जाती है। संसार में १७ करोड़ व्यक्तियों की मातृ-भाषा अँगरेज़ी है। लगभग इतने ही भारतवासी हिन्दी बोलते हैं। १७ करोड़ में लगभग एक करोड़ पढ़े-लिखे ज़रूर हैं। परन्तु पढ़ने योग्य सामग्री की बिक्री इस हिसाब से भी बहुत कम है। लगभग ७ करोड़ जापानियों के बीच प्रायः बारह सौ दैनिक पत्रों का प्रचार है। इन पत्रों में कोई ही ऐसा अभागा पत्र होगा जिसकी ग्राहक-संख्या ४,०००से कम हो, ओसका मैनिची और असाही शिम्बुन नामक दैनिक पत्र तो अपनी-अपनी ग्राहक-संख्या बीस बीस लाख से भी अधिक बताते हैं। मासिक पत्रिकाओं की संख्या लगभग५,०००होगी। इनमें राजनीति और विज्ञान जैसे गम्भीर विषयों से सम्बन्ध रखनेवाली पत्रिकाओं की ग्राहक-संख्या भी साठ-सत्तर हज़ार के ऊपर है। जन-संख्या के विचार से हिन्दी-भाषा-भाषी प्रान्तों में जापान का पञ्चांश पठन-पाठन होना चाहिए, दशांश नहीं, विंशांश भी नहीं। हिन्दी में 'कल्याण' को छोड़कर किसी भी मासिक पत्रिका की ग्राहक-संख्या ४,००० से अधिक नहीं है। दैनिक हैं कितने, तिस पर भी किसी की ग्राहक-संख्या १०,००० से अधिक न होगी।

दूसरा बहाना निर्धनता का है। कहते हैं कि भारत बहुत निर्धन है। ठीक, व्यक्तिगत आमदनी का औसत इस देश में बहुत कम है। परन्तु पाठक आश्चर्य करेंगे व्यक्ति पीछे जितना सोना-चाँदी अब भी इस देश में है उतना संयुक्त राज्य, इँगलिस्तान और फ़्रांस को छोड़कर शायद ही किसी अन्य देश में हो। फिर जो कुछ निर्धनता है, आमदनी का औसत जिन लोगों के कारण गिर जाता है उनमें से अधिकांश वेही हैं जो निरक्षर हैं। साक्षरों में निर्धनता नहीं है। उनके पास इतना अवश्य है कि खाने पीने, कपड़े और किराये का ख़र्च निकाल कर, यदि घर अपना न हो, दैनिक पत्र के लिए तो ख़र्च कर सकें। नहीं, पढ़ने की सामग्री आवश्यक चीज़ समझी नहीं जाती। पुस्तकों के लिए तभी ख़र्च किया जाता है जब लड़का लड़की को पढ़ाना अनिवार्य समझा जाता है और पढ़ाना तभी अनिवार्य माना जाता है जब उससे लड़कों की रोज़ी का सहारा हो, लड़की को अच्छा वर मिल सके। लड़के को रोज़ी मिल गई लड़की को वर मिल गया, पढ़ना ख़त्म; पुस्तकों से पिंड छूटा।

अन्य सभ्य देशों में रईस लोग पुस्तकों का आदर करते हैं। वे पढ़ें या न पढ़ें परन्तु एक अपना पुस्तकालय ज़रूर रक्खेंगे। साहित्य का ज्ञान सामाजिक जीवन का एक अलंकार समझा जाता है। नहीं पढ़ते तो बढ़िया जिल्द की पुस्तकों से अपना पुस्तकालय तो सजाये रखते हैं। यहाँ देखिए, अवध हिन्दी का केन्द्र है, कितने ताल्लुक़दार हैं, कितना रुपया मोटरों पर ख़र्च करते हैं, उन्हें मोटर का शौक़ है, अन्य शौक़ हैं, पुस्तकालय का शौक़ कितनों को है? क्यों नहीं, पुस्तकालय न रखने से उनकी इज़्ज़त में बट्टा नहीं लगता। जनता के हृदय में, सभ्य समाज के हृदय में भी पुस्तकों के प्रति, पठन-पाठन के प्रति, श्रद्धा नहीं है।

पढ़े-लिखे लोगों में भी पुस्तकों और पठन-पाठन के प्रति जो इतनी रुचि नहीं है उसके कुछ कारण

तो समझ में आते हैं। उनमें से एक यह है कि देश में निरक्षरता इतनी अधिक है कि साक्षर भी उसमें डूब जाते हैं। सौ पीछे यदि पाँच साक्षर भी हुए तो अपनी रुचि, अपने रहन-सहन को उन्हें पंचानवे निरक्षरों के ही अनुकूल तो बनाना पड़ेगा। भारतीय समाज निरक्षर है, यहाँ अन्धकार का राज्य है, इधर-उधर के दीपक टिमटिमाते ही दिखाई देते हैं, उनसे प्रकाश नहीं होता। मालूम होता है अपनी स्थिति पर वे आप ही शर्मा रहे हैं।

दूसरा कारण यह मालूम होता है कि हमारे स्कूलों और पाठशालाओं में बालक-बालिकायें पढ़ाई जाती हैं, परीक्षा के लिए। पढ़ाई का उद्देश्य यह नहीं होता कि पाठकों के हृदय में पुस्तकों के प्रति रुचि पैदा हो, उन्हें पुस्तकों में आनन्द मिल सके। पढ़ाई का अर्थ रटाई मान लिया गया है। जिसका नतीजा यह होता है कि पढ़नेवालों के हृदय में पुस्तकों के प्रति घृणा हो जाती है। स्कूल अथवा कालेज छोड़कर वे पढ़ने का नाम नहीं लेते।

किस प्रकार पढ़ने-लिखने का शौक़ बढ़ाया जाय, पुस्तकों के प्रति रुचि पैदा की जाय, साहित्य का निर्माण और प्रचार हो, लेखकों और प्रकाशकों का पोषण हो?

पहली आवश्यक बात यह है कि हम अपनी शिक्षा-प्रणाली में परिवर्त्तन करें। पढ़ाने का काम याद कराना न हो, अपितु विषय में रुचि पैदा कराना हो। परीक्षा हों परन्तु उसका उद्देश्य और ढंग दूसरा हो। शिक्षा के सम्बन्ध में हमें पूर्ण स्वराज्य प्राप्त है। विदेशी शासन का बहाना लेकर हम बैठे नहीं रह सकते। यदि सुधार न कर सकें तो इसमें हमारा ही दोष होगा।

दूसरी बात प्रचार की है। चाय कोई बहुत अच्छी चीज़ नहीं है, तो भी प्रचार-कार्य ने चाय की खपत भारत में कितनी बढ़ा दी है इसका पता इंडिया टी मार्केट एक्सपेंशन बोर्ड के आँकड़े देखने से चलता है। कोई ऐसा मेला नहीं होता जिसमें प्रचार के लिए चाय न बँटती हो। कोई ऐसा बड़ा स्टेशन नहीं जिसमें चाय का गुण बतानेवाले विज्ञापन न दिखाई देते हों, कोई ऐसा बड़ा अखबार नहीं जिसमें चाय का विज्ञापन न हो। क्या हम इस प्रकार कार्य की सफलता के लिए पुस्तक-प्रचार, साहित्य-प्रचार के पुनीत कार्य के लिए सबक़ नहीं ले सकते?

प्रस्ताव यह है कि भारत के प्रकाशक, देशी भाषाओं के हों अथवा अँगरेज़ी भाषा के, मिलकर एक केन्द्रीय संस्था बनायें, जिसका काम जनता में पठन-पाठन के प्रति रुचि पैदा करना हो। सरकार इस संस्था की आर्थिक और नैतिक सहायता करे क्योंकि रुचि बढ़ने ही पर सयाने स्वयं पढ़ेंगे और अपने लड़के लड़कियों को भी पढ़ने भेजेंगे। शिक्षा-प्रचार होगा तो उससे शासन-व्यवस्था उन्नत होगी, देश संगठित होगा, उसकी आर्थिक उन्नति भी होगी।

इस संस्था को बिना किसी कष्ट के आर्थिक सहायता मिल सकती है। यदि यह नियम बना दिया जाय कि प्रत्येक प्रकाशक और लेखक को अपनी आमदनी का निश्चित अंश सेस (Cess) के रूप में इस संस्था को देना होगा। प्रकाशकों और लेखकों के वोट से इस संस्था का चुनाव हो और निष्पक्ष भाव से यह संस्था लोगों को पुस्तकें तथा समाचार-पत्र खरीदने और पढ़ने के लिए प्रोत्साहित करे। मेलों, सभाभवनों, सिनेमागृहों, स्टेशनों, मंदिरों, मसजिदों सभी जगह नये-नये आकर्षक विज्ञापनों-द्वारा जनता के हृदय में पुस्तकों के प्रति रुचि बढ़ाई जाय। सरकारी अफ़सर और राष्ट्रीय नेता अपने व्याख्यानों में, बातचीत में पुस्तकों और पुस्तकालयों का आदर करें। जगह-जगह पुस्तकालय खोले जायँ और उनकी धूम मचाई जाय। मेलों और स्टेशनों पर लाउड स्पीकरों-द्वारा दिन में कई बार नई पुस्तकों और पत्रिकाओं की सूचना दी जाय और जनता को पढ़ने के लिए प्रोत्साहित किया जाय। प्रत्येक मेले में पुस्तकों की प्रदर्शनी हो, अन्य देशों के पुस्तक-प्रचार के आँकड़े दिखाये जायँ और दर्शकों को समझाया जाय कि पुस्तक सोने-चाँदी के गहने से कम आदरणीय आभूषण नहीं है।

इस प्रचार-कार्य के साथ-साथ सस्ते और सरल साहित्य का निर्माण भी किया जाय और उसका प्रचार किया जाय। अभी साधारण जनता में भारी ग्रन्थों के प्रति रुचि पैदा करना कठिन है। अभी उसके लिए हलकी पुस्तकों की आवश्यकता है, दाम कम हों, भाषा सरल हो, शैली मनोरंजक हो, विषय बोधगम्य हो।

इस सम्बन्ध में सरकारी सहयोग की ओर जो कुछ आवश्यकता हो, डाक-विभाग के सहयोग की बहुत आवश्यकता है। इस देश में पुस्तकों पर पोस्टेज बहुत ज्यादा

है। वी० पी० करने में पुस्तक के दाम और भी बढ़ जाते हैं। डाक-विभाग का नुक़सान न होगा और प्रचार-कार्य को सहायता मिलेगी यदि पुस्तकों पर पोस्टेज अख़बार के बराबर कर दिया जाय। हमारी सरकारें करोड़ों रुपया प्रतिवर्ष देहाती उन्नति और शिक्षा-प्रचार पर खर्च करती हैं। इस खर्च को सफल करना है। साधारण साक्षरों को साक्षर बनाये रखना है, उनकी साक्षरता को बढ़ाना है। यह सब काम पुस्तक-प्रचार से ही हो सकेगा। आशा है देश के नेता डाक-विभाग का ध्यान इस सुधार की ओर आकृष्ट करेंगे।

प्रकाशकवृन्द, यह लेख ख़ास तौर से आपके लिए लिखा गया है; इस ओर ध्यान दीजिए, संगठन कीजिए; इसमें आपका लाभ है, जनता का उपकार है, देश की सच्ची सेवा है।

कब तक पंथ चलोगे ?

लेखक, श्रीयुत चन्द्रप्रकाश वर्मा

कब तक पंथ चलोगे ?
रात अँधेरी, दुख घेरी, प्रिय! कब तक पंथ चलोगे ?

(१)

गहन अँधेरी, हाय दुख रही हैं ये आँखें मेरी,
दृष्टि विकल हो रही, चल रहा हूँ पद-ध्वनि पर तेरी।
घन-तम में लुक-छिप हे शशिमुख! कब तक मुझे छलोगे ?
रैन अँधेरी, दुख घेरी, प्रिय! कब तक पंथ चलोगे ?

(२)

रह कर पास न देखूँ तुमको छू न सकूँ मैं प्यारे!
नयन-नीर में खिले कमल तुम फिर भी न्यारे-न्यारे।
होकर पास कहो कब तक विरहानल बीच जलोगे ?
रैन अँधेरी, दुख घेरी, प्रिय! कब तक पंथ चलोगे ?

(३)

कितनी दूर तुम्हारी प्रियतम! बोलो, वह रजधानी!
जिसके द्वार खड़ी है ऊषा करने को अगवानी।
स्वर्ण-प्रात में कब आशा-तरु फूलो और फलोगे ?
रैन अँधेरी, दुख घेरी, प्रिय! कब तक पंथ चलोगे ?

समाज और व्यक्तित्व

लेखक, श्रीयुत मन्मथनाथ गुप्त

माज व्यक्तियों से बनता है, किन्तु हर एक व्यक्ति व्यक्तित्व नहीं है। इतिहास को कुछ लोग व्यक्तित्वों के इतिहास के रूप में देखते हैं, किन्तु ये व्यक्तित्व कैसे पैदा होते हैं, उनको सफलता या असफलता कैसे मिलती है, यह बहुत कुछ अंधकार में है। स्मरण रहे, हम यहाँ असफल व्यक्तियों में से उन असफल व्यक्तियों को नहीं गिन रहे हैं जो अनपढ़ रह गये इसलिए रवीन्द्रनाथ नहीं हो सके या प्रयोगशाला न पा सके इसलिए रमन न हो सके। हम सैद्धान्तिक रूप से मानते हैं कि ऐसे लोग अवश्य होंगे, किन्तु हम असफल व्यक्तित्वों से उन व्यक्तित्वों को समझते हैं जिनको मौक़ा तो मिला किन्तु इतना नहीं कि वे जीत जायँ, और वे हार गये। शहीदों को हम इसी श्रेणी में गिनते हैं। ईसामसीह जैसे व्यक्तियों को हम शेषोक्त श्रेणी का मानते हैं। ऐसे लोगों को मौक़ा कुछ तो मिला ही, पर वह इतना अधिक नहीं था कि वे सफल हो जाते। अस्तु।

इसमें संदेह नहीं कि व्यक्तित्व हमारे सामाजिक जीवन में एक बड़ा पार्ट अदा करते हैं, कम से कम मालूम ऐसा ही देता है। एक नेपोलियन, एक कैसर विलियम, एक हिटलर, एक मुसोलिनी आता है, और मालूम होता है, सारे इतिहास के प्रवाह को बन्द कर देता है, फेर देता है, उलट देता है। यदि ऐसा है, याने व्यक्तित्वों में इतनी ताक़त है कि वे इतिहास की धारा को बदल दें तो सवाल यह उठता है कि व्यक्तित्वों के पैदा होने का रहस्य क्या है। यह रहस्य कुछ हद तक साफ़ हो जायगा (या जटिल हो जायगा ?), यदि हम इस बात को देखें कि एक ही मत तथा कार्यप्रणाली के प्रतिपादन करनेवाले कई व्यक्तियों में से एक व्यक्ति व्यक्तित्व हो जाता है, बाक़ी सब व्यक्ति ही रह जाते हैं। एक व्यक्ति एक बात को उठाता है, उसका निर्भीकता से प्रतिपादन करता है, उसके लिए अधिक से अधिक त्याग करता है, किन्तु वह फाँसी पर चढ़ा दिया जाता है; दूसरा उसी चीज़ को उठाता है, नाम भी पाता है, सफल भी होता है, वाहवाही भी लूटता है। इस प्रभेद का रहस्य सफलता तथा यश के रहस्य की ही तरह सूक्ष्म है, किन्तु इस दुर्बोधता का लाभ उठाकर यदि कोई अध्यात्मवादी प्राक्तन—पूर्वजन्म की सुकृति आदि को प्रमाणित करना चाहे तो वह एक ज़्यादती-मात्र होगी। सफलता एक को मिली, दूसरे को न मिली, इसके लिए पारिपार्श्विक परिस्थितियाँ ही ज़िम्मेदार हैं, इसमें संदेह नहीं। इतिहास से एक उदाहरण लिया जाय। मुहम्मद तुग़लक ने चमड़े का सिक्का चलाना चाहा तो इस पर लोगों ने विद्रोह किया, और हमको भी स्कूल में इसके लिए उस पर हँसना सिखाया जाता है, किन्तु आज जो दुनिया की समस्त सभ्य सरकारें काग़ज़ का सिक्का चला रही हैं उसको हम बिलकुल स्वाभाविक समझते हैं, बल्कि आज यदि कोई सरकार नोट चलाना बन्द कर दे तो बहुत-से ऐसे लोग जो रोज़ हज़ारों का लेनदेन करते हैं, इसे बड़ी ज़्यादती समझेंगे। मज़े की बात है कि काग़ज़ चमड़े से सस्ती चीज़ है, किन्तु आज कोई न तो नोटों से परहेज़ करता है, न उन पर हँसता है। यह क्यों? क्या इसमें कोई आध्यात्मिक या प्राक्तन कारण है? मैं समझता हूँ, नहीं, इन उपादानों के बग़ैर भी हम इस चीज़ को समझ सकते हैं। वह यह कि आज जनता इसको अच्छी तरह समझती है कि कहीं भी इस काग़ज़ के टुकड़े को किसी भी समय कोई भी आदमी खनकते हुए रुपयों में परिवर्तित कर सकता है, रातोरात सल्तनत नहीं पलट जायगी कि नोट काग़ज़मात्र हो जाय, नोट का जाल करना क़रीब क़रीब असंभव है इत्यादि। इसके अतिरिक्त और भी उत्पादन, विनिमय, विभाजन-सम्बन्धी कारण हैं जिनकी वजह से नोट चल निकले और चल रहे हैं। इन्हीं कारणों के न होने के कारण मुहम्मद तुग़लक़ के नोट-सम्बन्धी विचार का स्वागत नहीं हुआ, न वह अर्थशास्त्र में कोई युगान्तरकारी विचारधारा या तरीक़े का प्रवर्तक माना गया, किन्तु बाद को वही तरीक़ा नोट, हुंडी, चेक आदि बीसियों तरीक़ों के रूप में पल्लवित और पुष्पित हुआ। संदेह नहीं कि इस एक ही प्रकार की योजना

का विभिन्न यहाँ तक कि बिलकुल विरुद्ध प्रकार के स्वागत का कारण यह है कि तुग़लक़ के समय परिस्थितियाँ उसके प्रतिकूल थीं और अब अनुकूल हैं। अतएव देखा गया कि केवल महापुरुष अकेला कुछ नहीं कर सकता, जब तक परिस्थितियाँ उसको ग्रहण करने के उपयुक्त नहीं हो जातीं तब तक वह महापुरुष चाहे तो एक शहीद की मर्यादामात्र पा सकता है। स्मरण रहे कि एक विचार के लिए कोई शहीद की मर्यादा भी तभी पा सकता है जब एक तगड़ी अल्पसंख्या उसके विचारों तथा कार्यों के लोहा को मान चुकी हो, नहीं तो वह केवल एक पागल यहाँ तक कि दुराचारी ही प्रतीत होगा।

लेनिन को ही लिया जाय। उनका ऐसा व्यक्तित्व है जिसके बड़प्पन का लोहा सभी मानते हैं, किन्तु हम यदि बारीकी से क्रान्तिकारी रूस का इतिहास देखें तो मालूम होगा कि लेनिन की सफलता के पीछे कितने लोगों को फाँसियाँ चढ़ना तथा पागल हो जाना पड़ा है। कौन कह सकता है कि इन फाँसी पाये हुओं में तथा पागलखाने में बन्द होनेवाले लोगों में कितने व्यक्ति लेनिन की या उससे भी अधिक प्रतिभा के थे? इस दृष्टि से यदि देखा जाय तो बड़े आदमी बहुत छोटे आदमी हो जायँगे, उनका गुण सिर्फ़ इतना रह जायगा कि उन्होंने परिस्थितियों के एक ख़ास मौक़े पर पदार्पण किया। इसके उत्तर में यह कोई पूछ सकता है कि क्या लेनिन के वैज्ञानिक नेतृत्व के बग़ैर ही रूस की क्रान्ति उसी दर्जे की सफलता तक पहुँच जाती जिस दर्जे तक वह आज पहुँची है। इस प्रश्न का हाँ या न में उत्तर देना संभव नहीं। यह मानना ही पड़ेगा कि लेनिन रूसी समाज की एक उपज हैं। जिन परिस्थितियों में वे पैदा हुए तथा पले वे भी उन्हीं परिस्थितियों के अन्तर्गत थीं। यदि वे न होतीं तो वे लेनिन ही न होते, क्योंकि बिना उन परिस्थितियों के जैसे उनके भाई का आतंकवादी आन्दोलन में फाँसी पाना, बिना उनके भाई के क्रान्तिकारियों का उन पर विश्वास होना, बिना रूस में ज़ारशाही के उस हालत में पहुँचे जिस हालत में लेनिन ने उसे पाया लेनिन का लेनिन बनना संभव नहीं था। यदि लेनिन सौ वर्ष पहले पैदा होते तो वे अवश्य ही लेनिन नहीं हो सकते, शायद ज़ारशाही की फाँसी के तख़्ते पर चढ़ करके ही अपनी जीवन-लीला समाप्त करते।

अब महात्मा जी के व्यक्तित्व को लिया जाय। १९०८ में जब महात्मा जी ने 'हिन्द-स्वराज्य' नामक पुस्तिका लिखी थी, उसी समय उन्होंने अपने सब राजनैतिक विचार परिपक्व कर लिये थे, बल्कि उससे भी पहले दक्षिण-अफ़्रीका में उन्होंने उनका प्रयोग भी किया था, किन्तु भारतवर्ष में उन्हीं विचारों तथा तरीक़ों का प्रयोग चम्पारन में पहले-पहल करने के लिए उन्हें अफ़्रीका के बाद बीस साल के क़रीब प्रतीक्षा करनी पड़ी। यदि इस बीच में महात्मा जी किसी भी प्रकार सार्वजनिक जीवन से उठ जाते तो इसका अर्थ यह कदापि नहीं कि देश उन्नति के मार्ग पर न जाता। देश में जो उन्नति की शक्तियाँ थीं वे किसी दूसरे व्यक्ति के द्वारा चरितार्थता प्राप्त करतीं। बहुत संभव है, असहयोग और सत्याग्रह देश में न होता, किन्तु और कुछ होता, जिससे देश आत्मनिर्णय की ओर बढ़ता, क्योंकि परिस्थितियाँ उसे मजबूरन उन्नति तथा अग्रगति की ओर बढ़ा रही थीं। दूसरे उन्नतिशील देशों में गांधी नहीं उपजे, कहीं रज़ाशाह, कहीं कमाल, कहीं सनयात सेन के ज़रिये इतिहास ने चरितार्थता प्राप्त की।

हम इस विचार को विशद रूप से एक उदाहरण के द्वारा व्यक्त करेंगे। रोग के कीटाणु चारों तरफ़ फिर रहे हैं। वे किसी के शरीर पर अपना असर जमा पाते हैं, किसी के नहीं, इसका कारण क्या है? इसका कारण यह है कि किसी के शरीर में जीवनीशक्ति किसी विशेष मात्रा तक क्षीण हो गई है, किसी की क्षीण नहीं हुई है। इसी प्रकार विचार चारों तरफ़ घूम रहे हैं, उनमें से जिस विचार के लिए परिस्थितियाँ परिपक्व हैं वह ले लिया जाता है, अपनाया जाता है, उसका रखनेवाला यदि फाँसी पर चढ़ता है तो शहीद होता है इत्यादि; किन्तु दूसरे विचारों को कोई दो कौड़ी को भी नहीं पूछता, उसका रखनेवाला पागल, गुमराह आदि नामों का अधिकारी होता है।

ऊपर के विश्लेषण के बाद यह कहना कि परिस्थितियाँ महापुरुषों को बनाती हैं, इस माने में सही होगा कि परिस्थितियाँ न हों तो महापुरुष या व्यक्तित्व यों ही रह जाय, उसके विचार को शायद वर्षों या सदियों तक प्रतीक्षा करनी पड़े।

यह तो हुआ, किन्तु महापुरुष या व्यक्तित्व जब एक बार व्यक्तित्व हो चुकते हैं, अर्थात् समाज का एक बड़ा हिस्सा उनकी विचारधारा या कर्मप्रणाली को मान चुकता है, उस समय वे स्वयं ही परिस्थितियों के बनाने में एक बड़े तत्त्व हो जाते हैं, वे बहुत कुछ हद तक परिस्थिति को बनाते हैं, किन्तु किसी भी हालत में परिस्थितियों को बनाने में इतना बड़ा तत्त्व नहीं हो सकता कि वह परिस्थितियों से बाहर चला जाय या उसको नाँघ जाय। नेपोलियन को ही लिया जाय। राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में फ़्रांस का अवशिष्ट प्रजातन्त्र जिस गड़बड़ का सामना कर रहा था उससे उसे निकलने के लिए फ़्रांस को नेपोलियन की सामरिक प्रतिभा की ज़रूरत थी, इसी कारण नेपोलियन हाथों हाथ लिया गया और वह एक व्यक्तित्व हो गया। जब वह एक व्यक्तित्व हो गया तब उसने उसका दुरुपयोग किया। उसने फ़्रांस की क्रान्ति को जिसने उसे बनाया था, ख़त्म करना चाहा, किन्तु बाह्य रूप से क्रान्ति को ख़तम करने पर भी समाज-व्यवस्था में क्रान्ति के फलस्वरूप सामन्तवाद की जगह जो पूँजीवाद स्थापित हो चुका उसे उलट न सका। यह उसकी शक्ति के बाहर था। वह सम्राट् हो गया, किन्तु क्रान्ति का जो मुख्य काम था, अर्थात् सामन्तवाद की जगह पूँजीवाद का स्थापन ज्यों का त्यों बना रहा।

कोई भी व्यक्तित्व चाहे वह कितना भी बड़ा हो, अपनी परिस्थितियों के बाहर नहीं जा सकता, बल्कि सच बात तो यों है कि व्यक्तित्व अपनी परिस्थितियों का ही सबसे ज्यादा फ़ायदा उठाता है। परिस्थितियों की ताक़त में तेज़ी लाना ही शायद नेता का काम है, परिस्थितियों के बाहर जाना यहाँ तक कि उसकी चिन्ता करना भी महापुरुष के वश का नहीं है। किन्तु जब वह महापुरुष के रूप में प्रतिष्ठित हो चुकता है और देश में उसकी धाक बँध जाती है उस समय वह चाहे तो परिस्थितियों में तेज़ी लाने के बजाय उसमें बाधा पहुँचा सकता है—अवश्य एक हद तक ही। इतिहास में ऐसा कई बार हुआ है। नेपोलियन, ट्राटस्की तथा यूआन शिकाई जैसों की कमी इतिहास में नहीं है। हमारे ही देश को लीजिए। महात्मा गांधी ही वे भगीरथ हैं जो हमारे राष्ट्रीय आन्दोलन को मध्यवित्त श्रेणी के स्वर्ग से उतारकर जनता के मर्त्य में ले आये और उसको पतितपावन रूप दिया, किन्तु महात्मा जी ने बार बार जन-आन्दोलन के तार्किक परिणाम तक जाने से इनकार किया और उसे सन्धिक्षणों पर रोक दिया। मज़े की बात है कि महात्मा जी ही हमारे देश में अखिल भारतीय पैमाने पर जन-आन्दोलन के प्रवर्तक हैं, और आज वे कम से कम वाम-पक्षियों के अनुसार सबसे ज्यादा जन-आन्दोलन के चलाने के विरोधी हैं। मालूम होता है, वे उसके परिणामों से घबराते हैं। वामपक्षियों का यह कहना कहाँ तक ठीक है, यह तो अगले जन-आन्दोलन में तथा उसकी परिणति में ही पता लगेगा, किन्तु यदि यह व्याख्या ठीक है तो महात्मा जी का व्यक्तित्व साधक न होकर राष्ट्रीय रथ की अग्रगति में बाधक होगा।

हम ऊपर व्यक्तित्व शब्द को एक विस्तृत अर्थ में व्यवहार करते आये हैं, किन्तु व्यक्तित्व भी मोटे तौर पर दो तरह के होते हैं—एक क्रिया के और दूसरी प्रतिक्रिया के। पुराणों में तथा कहीं कहीं इतिहास में ये दोनों तरह के व्यक्तित्व एक साथ आते हैं, जैसे राम-रावण, कृष्ण-कंस, फरऊन-मूसा। पारसियों में तो अहिमान-ओरमुज़्द नाम से क्रिया और प्रतिक्रिया की शक्ति को शाश्वत, युध्यमान तथा एक-दूसरे के बग़ल में करके दिखलाया है, किन्तु इतिहास में हर मौक़े पर दोनों तरह के व्यक्तित्व को हम आसपास नहीं देख सकते। कुछ ऐसे व्यक्तित्व भी इतिहास में हुए हैं जो पहले क्रान्ति या प्रगति की ओर थे, बाद को उसके विपरीत हो गये; जैसे नेपोलियन, यूआन शिकाई, ट्राटस्की। किन्तु इसके साथ ही ऐसे भी व्यक्तित्व हुए हैं जो प्रतिक्रियाकारी के रूप में रंगमंच पर आये, फिर प्रगतिशील हो गये; जैसे चाङ्काई शेक। प्रथमोक्त श्रेणी के व्यक्तित्वों ने परिस्थितियों का साथ न देकर उनके विरोध में अपना व्यक्तित्व लगा दिया। नतीजा यह हुआ कि नेपोलियन को सेन्ट हेलना में शेष आयु काटनी पड़ी और ट्राटस्की देश से बाहर अपने देश के एक बाग़ी के रूप में जीवित है। इसका मतलब यह नहीं कि प्रतिक्रिया कभी जययुक्त नहीं होती। अफ़ग़ानिस्तान ही को लिया जाय, बच्चासक्का ज़रूर ख़त्म हो गया, किन्तु अमानुल्ला के प्रगतिशील शासन के मुक़ाबले में वर्तमान शासन प्रतिक्रियावादी ही है, और

यह शासन वर्षों से क़ायम है और शायद आगे भी वर्षों रहे।

हिटलर योरप का शायद स्टालिन को छोड़कर सबसे बड़ा व्यक्तित्व है। वर्तमान महायुद्ध को छेड़ने की ज़िम्मेदारी उसी की बतलाई जाती है। इसमें सन्देह नहीं कि वह एक बड़ा ऐतिहासिक व्यक्तित्व है, फिर भी यह कहना ग़लत होगा कि हिटलर केवल अपनी अद्भुत संगठन-शक्ति, जनता के मन के ज्ञान, प्रतिभा तथा भाषण-शक्ति के कारण ही उस स्थान पर पहुँचा है जिसमें वह अब है। सच बात तो यह है कि हिटलर को अपना पद क़ायम रखने के लिए राष्ट्रीय साम्यवाद के मौलिक कार्यक्रम से बिलकुल हट जाना पड़ा है, नहीं तो थाईसन आदि जर्मन पूँजीवादी उसकी पीठ पर से हाथ खींच लेते। राष्ट्रीय साम्यवाद में दो तरह के कार्यक्रम थे—एक राष्ट्रीय, दूसरा अन्तर्राष्ट्रीय। किन्तु हिटलर को पूँजीवाद के दबाव के कारण राष्ट्र के अन्दर के अपने कार्यक्रम को भुला कर निरन्तर अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में कुछ न कुछ गड़बड़ की सृष्टि करनी पड़ी, जिससे लोगों को अवकाश ही न मिले कि वे देखें कि राष्ट्रीय क्षेत्र में हिटलर ने अपनी प्रतिज्ञाओं का कहाँ तक पालन किया। हिटलर की इसी परिवर्तनशीलता तथा परिस्थितियों के अनुसार बदलते रहने के कारण ही कुछ लोग लड़ाई छिड़ने के बाद से यह अनुमान लगा रहे हैं कि यदि हिटलर देखेगा कि जर्मनी पूँजीवाद से क़ायम नहीं रह सकता तो वह शायद साम्यवाद को ग्रहण कर ले। है तो यह बड़ी ही अजीब बात, किन्तु ऐसा होना असम्भव नहीं। सैकड़ों साम्यवादियों को मौत के घाट उतारनेवाला चङ्काईशेक का चीन के साम्यवादियों का एक प्रकार से पृष्ठपोषक हो जाना एक ताज़ी ऐतिहासिक बात है। चङ्काईशेक ने ऐसा परिस्थितियों से मजबूर होकर ही किया है। उसने जब देखा कि जापानी साम्राज्यवाद और चीनी साम्यवाद इन दोनों से एक साथ विरोध करने में विपत्ति है तो उसने साम्यवाद से सन्धि कर ली। संभव है, ऐसा निर्णय करते समय उसके सामने देश की स्वतंत्रता का प्रश्न मुख्य रहा हो, और वह साम्यवादियों के साथ सन्धि में ही हल हो सकता था।

इस प्रकार देखा गया कि समाज ही व्यक्तित्वों को मौक़ा देकर उन्हें बनाता है, किन्तु जब वे एक बार बन चुकते हैं तब समाज की प्रगति या प्रतिक्रिया में एक उपादान बन जाते हैं। व्यक्तित्व परिवर्तनशील चीज़ है। किन्तु अक्सर व्यक्तित्व परस्परविरोधी उपादानों से भी बने होते हैं। एक व्यक्तित्व साथ ही साथ राजनैतिक क्षेत्र में क्रान्ति का प्रतिपादन तथा पोषण कर सकता है, किन्तु सामाजिक क्षेत्र में प्रतिक्रान्ति तथा प्रतिक्रिया का आवाहक हो सकता है। हमारे देश के अधिकांश प्रख्यात व्यक्ति इसी प्रकार के हैं। सर आशुतोष मुकर्जी भारत के एक प्रख्यात शिक्षा-विशेषज्ञ हो गये हैं। शिक्षा के मामले में वे क़रीब क़रीब एक क्रान्तिकारी थे, किन्तु कहते हैं कि पुरोहिती भी कर लेते थे। यदि कोई क्रान्तिकारी हो तो हम उससे आशा करेंगे कि वह सर्वतोभावेन क्रान्तिकारी हो—राजनीति, धर्म, समाज, कला सभी क्षेत्र में। किन्तु अकसर हम वस्तुस्थिति को ऐसी नहीं पाते हैं। ऐसे क्रान्तिकारी भी देखने में आये हैं जो राजनीति में मज़दूर-किसानों का राज्य चाहते हैं, वर्गहीन समाज की बातें हाँकते हैं, किन्तु केवल वैयक्तिक जीवन में ही नहीं, सार्वजनिक रूप से कहीं स्त्री-स्वाधीनता का विरोध करेंगे, कहीं धार्मिक रूढ़ि का समर्थन करेंगे, विशेष संस्कृति पर ज़ोर देंगे। ऐसा इसलिए होता है कि अधिकतर लोग विचारधारा के क्षेत्र में उंछवृत्तिधारी हैं, उनकी कोई नींव नहीं है।

जीवन को सुभीते के लिए चाहे वह विश्लेषण की ही सुविधा हो, आप चाहे प्रकोष्ठों में बाँट लीजिए, वह एक तथा व्यावहारिक रूप से अविभाज्य है। प्रगति के लिए यह आवश्यक है कि गाड़ी के सब पहिये एक ही तरफ़ चलें।

इस प्रकार के व्यक्तित्वों का हम इस प्रकार वर्णन कर सकते हैं कि वे किसी मामले में पन्द्रहवीं सदी में हैं, किसी में ग्यारहवीं शताब्दी में हैं तथा किसी में बिलकुल बाइसवीं सदी में हैं। ऐसे लोगों से बड़ा गड़बड़ होता है जिसे कहते हैं बुद्धिभ्रंश।

जो कुछ भी हो किसी भी व्यक्तित्व को इतना महत्त्व देना बेकार है कि वह एक दूसरा ईश्वर हो जाय, और वह हमारी प्रगति का रास्ता रोक कर खड़ा हो जाय।

दीमक

लेखक, ठाकुर शिरोमणिसिंह चौहान, विद्यालंकार, एम० एस-सी०, विशारद

मक एक छोटा-सा कीड़ा होता है। जो मनुष्य-समाज को हरदम परेशान किये रहता है। उसके उपद्रवों के कारण हम लोगों को हर साल लाखों-करोड़ों रुपयों की हानि सहनी पड़ती है। वह हमारे मकान, वस्त्र, जूते, मेज-कुर्सी, खेती-वारी, पुस्तकों—यहाँ तक कि धातु की बनी वस्तुओं तक—को बरबाद करता रहता है। उसके विनाशकारी उपद्रवों के कारण हमारे सभी उन्नतिशील कार्यों और हमारी सभ्यता के विकास में भारी बाधा पहुँचती रहती है। काग़ज़ों का तो वह जानी दुश्मन है। वान हम्बोल्ट का कथन है कि जब वे दक्षिणी अमेरिका के उष्ण प्रान्तों का भ्रमण कर रहे थे तब उनके देखने में कोई ऐसी पुस्तक न आई जो पचास वर्ष से अधिक पुरानी हो; सभी दीमकों के हवाले हो चुकी थीं।

उनकी प्राचीनता और हमारी जानकारी

वैज्ञानिकों के मत में संसार में दीमकों का अस्तित्व लगभग तीस लाख वर्षों से है। मेटरलिंक की राय में उनकी उत्पत्ति मनुष्य से दस लाख वर्ष पूर्व हुई थी। इतने समय से उनके द्वारा सताये जाने पर भी हम लोगों का ध्यान उनकी ओर समुचित रूप से नहीं गया था। दस-ग्यारह वर्ष हुए, कैलीफ़ोर्निया की जनता का ध्यान उनकी तथा उनके उपद्रवों की ओर विशेष रूप से आकर्षित हुआ। वहाँ के लोगों ने देखा कि तार के लट्ठों, लकड़ी के टालों, काठ के बने घरों, मचानों, सामानों, पुस्तकों और लिखने-पढ़ने के समस्त सामानों को खुरच-खुरच और काट-काट कर वे नष्ट कर देते हैं। फलतः उन्होंने वहाँ के कीट-शास्त्रवेत्ता से उनके उपद्रवों से बचने के उपाय बताने की अपील की। फल यह हुआ कि दीमकों की खोज-बीन के हेतु वहाँ के विश्वविद्यालय के तत्त्वावधान में एक जाँच-कमिटी नियत की गई। जाँच-कमिटी ने बड़े परिश्रम से एक परम लाभदायक और विस्तृत रिपोर्ट तैयार की। रिपोर्ट में वर्णित दीमकों के उपद्रवों से बचने और उनके द्वारा बरबाद की हुई वस्तुओं की मरम्मत के उपाय बतलाये गये। उक्त रिपोर्ट इंजीनियरों, और कीट-शास्त्र के प्रेमियों के बड़े काम की है।

जातियाँ

अब तक दीमकों की लगभग पन्द्रह सौ जातियों का पता लग चुका है। इनमें से बारह सौ जातियाँ तो केवल टरमीटायडी वंश में हैं। इसी वंश में वे दीमक भी हैं जो उष्णप्रधान देशों में रहने के लिए विशाल और टीलेनुमा सुन्दर मकान निर्माण करती हैं। ये ही दर्शनीय मकान उनकी ख्याति के मुख्य कारण हैं। मास्टोटरमिटायडी वंश में अब केवल एक जाति रह गई है, जो आस्ट्रेलिया में पाई जाती है।

रहन-सहन के अनुसार हम दीमकों को नीचे लिखी श्रेणियों में पाते हैं—

(१) शुष्क लकड़ी की दीमक, (२) हरी लकड़ी की दीमक, (३) भू-निवासी, (क) भूम्यन्तरवासी, (ख) मरुभूमिवासी, (ग) क़िलेनुमा बमीठों की वासी, (घ) घोंसलों में रहनेवाली दीमक।

परिषदें

इनमें से भूमि में बाँबी बनाकर अथवा अधपच्ची लकड़ी के बमीठे बनाकर रहनेवाली दीमक ही मनुष्य-समाज को अधिक क्षति पहुँचाती हैं। जहाँ कहीं भी वे रहती हैं झुंड में और उपनिवेश बनाकर रहती हैं। एकान्तवासिनी दीमकों का सर्वथा अभाव है। प्रत्येक उपनिवेश में अपने अपने कर्तव्यों के अनुसार कई वर्गों की दीमकें पाई जाती हैं। प्रत्येक वर्ग का काम निश्चित है। वे सब अपने-अपने काम में सदा लगी रहती हैं; ऐसी बहुत कम हैं जो अपना समय बेकार नष्ट करते हों। उनके उपनिवेशों की व्यवस्था अर्थ-शास्त्र के श्रम-विभाग के तत्त्व के आधार पर होती है।

कौन क्या है?

दीमकों की संख्या के अनुसार उनके उपनिवेश छोटे-बड़े होते हैं। सौ-पचास से लेकर लाखों की आबादी के उपनिवेश पाये जाते हैं। कुछ तो आबादी में चींटियों को भी मात किये हुए हैं। उपनिवेश में प्रधानतः तीन वर्ग के दीमकें—(१) प्रजोत्पादक, (राजा-रानी), (२) सेवक और (३) सैनिक—पाई जाती हैं। हर वर्ग में नर-

और मादा प्रायः सम संख्या में होती हैं। प्रजा-वृद्धि में नर मादा दोनों ही जो राजा और रानी कहलाते हैं, भाग लेती हैं। उपनिवेश के प्रायः समस्त दीमकों की जननी रानी होती है, इस कारण उसकी बड़ी प्रतिष्ठा और आव-भगत होती है। डील-डौल में भी वह सबसे बड़ी होती है। राजा से रानी बहुत बड़ी होती है और राजा उससे बहुत भयभीत रहता है। रानी के जीवन का मुख्य उद्देश्य अंडे देना है। अंडे देने की मानो वह कल है। बमीठे की नींव के पास उसके रहने को एक अत्यन्त सुरक्षित कोठरी होती है। इसी कोठरी में रानी क़ैद रहती है, क्योंकि कोठरी का द्वार रानी के शरीर की अपेक्षा बहुत छोटा होता है। वह कोठरी के बाहर नहीं आ सकती; बस जीवन भर उसी जगह पड़े-पड़े अंडे देती रहती है।

रानी

साधारणतः रानी चार-पाँच वर्ष जीती है, पर कुछ दस वर्ष तक जी जाती हैं। जब रानी गर्भिणी होती है तब उसका पेट हज़ारों अंडों से भर कर फूल जाता है। अंडे देते समय उसके शरीर से अंडों का फ़ौवारा-सा छूटता है। प्रत्येक मिनट में वह साठ अंडे तक देती है। कुछ सेवक धात्री-विद्या में निपुण होते हैं। वे अंडों को ढोकर पास ही दूसरे कमरों में एकत्र करके उनका पालन-पोषण और देख-रेख करते हैं। वृद्धावस्था में अथवा और किसी कारण से जब रानी अंडे देना कम कर देती है तब सेवक दीमकें उसकी ख़ातिरदारी में उपेक्षा करने लगती हैं और उसके स्थान पर राज-घराने की किसी दूसरी राजकुमारी को नियत करती हैं। इस प्रकार की कुछ राजकुमारियाँ संकट के समय के लिए उपनिवेश में सदैव रक्षित रहती हैं।

राजा और मज़दूर दीमक

रानी की अपेक्षा राजा बहुत छोटा होता है और वह रानी के निकट ही किसी कमरे में उसकी आँख बचाये पड़ा रहता है। इसके पर होते हैं। सेवक नन्हें, अंधे और पंखरहित होते हैं। संख्या में ये सबसे अधिक होते हैं। उपनिवेश का प्रायः सारा काम ये ही करते हैं। बमीठे का निर्माण एवं टूटे-फूटे स्थानों का जीर्णोद्धार करना, भोजन लाना और पचा कर सबको यथास्थान देना, अंडे और नवजात शिशुओं का पालन-पोषण करना, बड़ी बड़ी गहराई तक जाकर उपनिवेश के ख़र्च भर को पानी मुहैया करना व वाटिकायें लगाना इन्हीं का काम है।

सैनिक

सैनिक दीमक उपनिवेश के रक्षक और चौकीदार हैं। उनकी दाढ़ें क़ैंची-नुमा होती हैं। विशाल खोपड़ी होने के अतिरिक्त उन पर कायटीन का आवरण होने के कारण उनके सिर बहुत ही मज़बूत होते हैं। जब कोई शत्रु उनके भवनों की दीवार को तोड़कर भीतर प्रवेश करने का प्रयत्न करता है तब वे फ़ौरन उस छेद में अपना सिर अड़ा देती हैं। लड़ते समय उनका सिर ढाल का काम देता है। यदि शत्रु घर में घुस आया है तो उससे लड़ते लड़ते बाहर चली जाती हैं तब तक सेवक दीमकें टूटे हुए भाग को बन्द कर देती हैं। इनके अतिरिक्त नसूती दीमकें भी उपनिवेश की रक्षा और चौकसी करती हैं। शत्रुओं से युद्ध करने की उनकी और साधारण सैनिकों की रीति में अन्तर है। नसूती के थूथन के अगले भाग पर एक ग्रन्थि होती है, जिसमें से एक चिपकनेवाला पदार्थ निकलता है। इसके लगने से शत्रुओं की स्पर्शेन्द्रिय और अंग-प्रत्यंग चिपक जाते हैं। यह चिपकनेवाला पदार्थ कुछ-कुछ विषैला और घुलनशील भी होता है। कुछ लोगों का मत है कि कंकड़ पत्थर तक इसके प्रभाव से नहीं बचते।

उपद्रवों की रीतियाँ

दीमकों के समस्त कार्य हम लोग देख नहीं पाते हैं। इसी कारण हमें उनके उपद्रवों और संहार का पता तक नहीं चलता। वे जितना भी हमारा नुक़सान करती हैं वह सब उनके भोजन-क्रिया में होता है। वे हमारे मकानों को भीतर-ही-भीतर खाकर पोला और जीर्ण कर देती हैं और हमें इस बात का पता तब तक नहीं लगता जब तक कि वह भसभसाकर गिर नहीं पड़ता। उनकी भोजन-क्रिया बड़ी शीघ्रता से होती है।

एक बार वर्षा-ऋतु में दीवार की खूँटी पर दो ऊनी कंबल रक्खे हुए थे। दो-तीन दिन के उपरांत किसी का धक्का लगने पर उनमें से मिट्टी झड़ी। जब वे उतार कर देखे गये तब मालूम हुआ कि दीमकें दोनों कंबलों

को खा गई हैं। दोनों कंबलों को इस प्रकार से खाया था कि उनमें ऐसा टुकड़ा भी न निकला जिससे एक आसनी तक बन सकती।

हमारी एक मेज़ में एक दरार थी। उसमें दीमकों ने प्रवेश किया। भीतर-ही-भीतर वे उसे काटती और खाती रहीं। हमें उसका पता तक न चला, बराबर बैठकर उस पर लिखते रहे। उसकी दराज़ में सफ़ेद कागज़ रक्खे हुए थे। एक बार उसे खोला तब कागज़ पर दीमकों की बीट के कण दिखाई दिये। फिर भली भाँति देखने पर ज्ञात हुआ कि मेज़ पर दीमकों की कृपा हुई है और उसका तख़्ता बिलकुल खोखला हो गया है।

मिसेज़ ली नाम की एक स्त्री पर्य्यटक थीं। एक बार अपना घर बन्द करके वे दूसरे देश में पर्यटन के लिए गईं। पर्यटन में उन्हें चार-पाँच मास लग गये। लौटने पर जब उन्होंने मकान खोला तब सारा सामान जैसा-का-तैसा पाया। उन्होंने अपना बेग एक मेज़ पर रक्खा। बेग के रखते ही मेज़ टूटकर टूक-टूक हो गई और बेग भूमि पर गिर पड़ी। मेम साहब को यह देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ। वे एक कुर्सी पर बैठना चाहती थीं, पर ज्यों ही उसकी बाँह पर हाथ रक्खा, त्यों ही कुर्सी की बाँह टूट गई। यह देखकर वे कुछ घबराईं और पास में पड़ी हुई एक आरामकुर्सी पर लेट गईं। लेटते ही मेम साहब भूमि पर आ गिरीं। अब तो वे बड़ी हैरान हुईं। कुछ समय तक इधर-उधर जाँचने पर उनकी समझ में आ गया कि उनकी अनुपस्थिति में दीमकों ने उनके सारे सामान की कैसी रखवाली की है।

उनका भोजन

लकड़ी, घास और पुस्तकों में जो सिल्यूलोज़ नामक पदार्थ होता है वही दीमकों का मुख्य भोजन है। इसे पचाना बड़ा टेढ़ा काम है। इसे पचाने के लिए उन्हें दूसरे कीटों की सहायता लेनी पड़ती है। लकड़ी आदि का खाना और उसे पचाना सेवक दीमकों का ही काम है। वे उसे पचाकर यथास्थान पहुँचाती हैं। पाचन-क्रिया में वे कुछ परसत्वादी प्राणियों की सहायता लेती हैं। ये प्राणी उनकी आँतों में बड़ी संख्या में उपस्थित रहते हैं। कुछ लोगों के मतानुसार दीमक और इन प्राणियों का अन्योन्याश्रय सम्बन्ध है; दोनों की सहकारिता परस्पर लाभदायक होती है। वास्तव में दीमकों का पाचक रस सिल्यूलोस पर तनिक भी असर नहीं करता। ये परसत्वादी प्राणी एक प्रकार का खमीर उत्पन्न कर सिल्यूलोस को तोड़-फोड़ कर पचा देते हैं। इसी पचे हुए भोजन को दीमक और ये प्राणी खाते हैं। परसत्वादी प्राणियों की इस सेवा के बदले दीमक उन्हें रहने को अपने पेट में सुरक्षित और बढ़िया मकान देती हैं।

सेवक दीमक स्वयं तो सिल्यूलोस खाती हैं पर रानी दीमक और उनके नवजात शिशुओं को बढ़िया भोजन देती हैं। दीमक के मकान तोड़ने पर उसके भीतरी भाग में स्पंज जैसा एक अजीब सफ़ेद पदार्थ भरा हुआ दिखाई देता है। ध्यानपूर्वक देखने से प्रतीत होता है कि यह पदार्थ काठ के कणों का बना है। दीमक लकड़ी को खाकर अधपची दशा में उसका उत्सर्ग कर उसे एकत्र करती रहती हैं और उसी पर एक प्रकार की फंगस उगाती हैं। यही दीमकों की वाटिकायें हैं। नवजात शिशुओं के हेतु ये वाटिकायें चरागाह के अतिरिक्त छात्रालयों का भी काम देती हैं। यही फंगस प्रजोत्पादकों तथा नवजात शिशुओं का भोजन है।

दीमक-भवन

प्रजोत्पादन, उदरपूर्ति और रक्षा—इन तीनों बातों की प्राप्ति के लिए जीव सदैव प्रयत्न किया करता है। इसमें कमी होने पर उसका निर्वाह नहीं। संतानोत्पादन में रानी दीमक बड़ी तेज़ होती है। सेवकों के प्रयत्न से उपनिवेश के सभी प्राणियों को यथोचित भोजन पहुँच जाता है। रक्षा के उद्देश्य से ही ये सदैव घरों में रहती हैं। प्रकाश से वे बहुत घबराती हैं। उनके भवन कई प्रकार के होते हैं। कुछ दीमक तो हमारे घरों की दीवारों और काठ की चीज़ों के भीतर रहती हैं। वहाँ वे शत्रुओं की नज़र से बची रहती हैं। कुछ चींटियों की भाँति भूमि के नीचे बड़ी गहराई तक बाँबियाँ बना कर रहती हैं। बाँबियाँ टेढ़ी-मेढ़ी होती हैं और बीच-बीच में उनमें रहने को कोठरियाँ, गलियाँ और अंडे-बच्चे सेने के हेतु कमरे होते हैं। कुछ दीमक भूमितल के थोड़े ही नीचे पर अधपची लकड़ी के छोटे छोटे छत्ते बनाती हैं।

भवन की काट

पर उच्च श्रेणी की दीमकों के भवन बड़े विशाल और मज़बूत होते हैं। सबसे मनोहर और आकर्षक दीमक-भवन तो वे हैं जो अफ़्रीका के चरागाहों में ऊँचे ऊँचे क़िलों, मठों और टीलों की शकल के पाये जाते हैं। सच तो यह है कि उनके ये भवन शिल्पकारी के बड़े उत्तम नमूने होते हैं। उनकी दीवारें मोटी और बड़ी मज़बूत होती हैं। उनका बाह्य स्वरूप विभिन्न होता है, किन्तु उनके सबसे भीतरी भाग में विविध प्रकार की कोठरियाँ और गैलरियाँ बनी होती हैं। मठनुमा और टीलेनुमा क़िले की बुनियाद पृथ्वी के नीचे पड़ती है और उसी पर ऊँचे ऊँचे भवन बना देते हैं। कभी कभी उनके भवनों की ऊँचाई बीस-बीस फ़ुट या इससे भी अधिक होती है। ऐसे भवनों को दीमक-पहाड़ी भी कहते हैं। ऐसे ही मठनुमा दीमक-भवन गोरखपुर के निकट कुसुमी-जंगल में अनेक हैं। गोरखपुर और उसके आसपास के ज़िलों की मिट्टी इतनी कमज़ोर होती है कि उसकी बनी कच्ची दीवारें वर्षा में नहीं ठहर सकतीं। इसी कारण वहाँ के कच्चे मकान खपरैल से छाये जाते हैं। पर दीमकों के ये भवन वर्षों से वहाँ हैं और न जाने कितनी वर्षाओं का पानी उन पर से बह गया, पर वे जैसे के तैसे खड़े हैं। इतनी कड़ी उनकी मिट्टी होती है। भवन के भीतरी भाग को जाँचने के प्रयोजन से उसके कुछ भाग को फावड़ों से तोड़ने की कोशिश की गई। भवन का तो थोड़ा ही भाग टूटा पर फावड़े दोनों टूट गये। तीसरे दिन फिर देखा तो तोड़ा हुआ भाग जैसा-का-तैसा बना पाया। कहीं कहीं उन भवनों पर वृक्ष जम आते हैं और किसी किसी पर भैंसे आदि पशु बेधड़क विचरा करते हैं और उन्हें कोई क्षति नहीं होती! कहा जाता है कि डायनामाइट से कम शक्ति तो इन मकानों को तोड़ ही नहीं सकती!

ऐसे ही विशाल और मज़बूत दीमक-भवन आस्ट्रेलिया में भी पाये जाते हैं। वहाँ कुछ दीमकों के मकान तो लम्बे, ढालू और नाममात्र को चौड़े होते हैं। लोग ऐसे भवनों को दिशा-निरूपण भवन कहते हैं; क्योंकि उनकी लम्बाई क़ुतुबनुमा की सुई की भाँति सदैव उत्तर-दक्षिण की दिशा में होती है। उनकी यह व्यवस्था दोपहर की तप्त किरणों से रक्षा के हेतु होती है; दोपहर को जलाके मकान के थोड़े ही भाग पर पड़ती हैं और इससे उन मकानों में अधिक गर्मी नहीं होती।

अफ़्रीका में एक प्रकार के और भी अद्भुत दीमक-भवन पाये जाते हैं। इनकी आकृति कुकुरमुत्ता की तरह होती है। भूमि पर डंडी होती है और उसके ऊपरी सिरे पर कुकुरमुत्ता की भाँति छत होती है। जिस प्रकार छाता मनुष्य की वर्षा और धूप से रक्षा करता है, उसी प्रकार ये छत्राकार भवन उनके निवासियों की धूप और वर्षा से रक्षा करते हैं। वहाँ के तराई प्रदेशों की कुछ दीमकों के छत्ते वृक्षों की टहनियों में अंगूर के गुच्छों की भाँति लटकते देखे जाते हैं। ये छत्ते लालारस से सनी हुई अवपची लकड़ी के गोल अथवा अंडाकार होते हैं। दीमकों के भवनों में एक विचित्रता यह है कि उनमें खुले हुए भाग अथवा द्वार नहीं होते। वे प्रकाश से घृणा करती हैं। इसी से खुले में वे बहुत कम दिखाई देती हैं; जहाँ जाना होता है, वहाँ तक अपने रास्ते पर मिट्टी का सुरंग बना लेते हैं।

दीमक-रानी की असीम संतानोत्पादनशक्ति का अन्दाज़ा पाठकों को ऊपर कराया जा चुका है। जिस उपनिवेश में एक एक दिन में अस्सी अस्सी हज़ार अंडे उत्पन्न होंगे उन सबकी उसमें कब तक गुज़र होगी, फिर उनके मकान चाहे जितने विशाल क्यों न हों! अतः प्रत्येक वर्षा-ऋतु में वे प्रवास करते हैं। वर्षा के आरम्भ की वायु जब इनके मकानों की दरारों द्वारा भीतर प्रवेश करती है तब वायु के लगने पर दीमकों के पर जम आते हैं। अधिक उमस के दिन मकानों की दीवारों में दोपहर के बाद गीली गीली चकत्तियाँ दिखाई देने लगती हैं। साँझ को अँधेरा होने से लगभग एक घंटा पूर्व उन गीली चकत्तियों में द्वार फोड़ लिये जाते हैं। फिर बमीठे में से इन्हीं द्वारों से होकर दीमकों के झुंड के झुंड बाहर निकलते हैं। उस समय अजीब दृश्य दिखाई देता है। हर द्वार से दीमकों का ताँता लग जाता है। द्वार से निकल कर सभी आकाश में विहार करने का प्रयत्न करती हैं। उस समय अनेक कीटाहारी प्राणी—कौए, चील, छिपकली, चूहे आदि—उन पर टूट पड़ते हैं। ये कीटाहारी प्राणी उनका अपार संख्या में निर्दयतापूर्वक वध करते हैं। यदि परमात्मा कीटाहारी प्राणियों द्वारा दीमकों को इस भाँति संहार की व्यवस्था न करता तो ये दीमकें कहाँ समातीं! साम्या-

वस्था में रखने के लिए उनका इस भाँति वध होना अत्यावश्यक है।

नवीन परिषद् का सूत्रपात

इन अपार दीमकों में दस बीस ही ऐसी भाग्यशालिनी होती हैं, जो कीटाहारी प्राणियों की नादिरशाही से बच जाती हैं। वे ही नवीन उपनिवेश की नींव डालती हैं। कुछ देर आकाश में उड़कर जब वे भूमि पर उतरती हैं तब उनके पर टूट जाते हैं। इस समय रानी गर्भधारण करती है। अब वे सब कुछ सेवकों के साथ किसी गिरी-पड़ी लकड़ी या चिटके हुए सामान में घुस जाती हैं और इस प्रकार नवीन उपनिवेश का सूत्रपात भी होता है और उनकी संख्या भी परिमित रहती है।

लाभ की अपेक्षा कहीं अधिक हानि

यह सच है कि दीमक केंचुए की भाँति हमारे खेतों की भूमि को खोद-खोद कर नरम और उपजाऊ बनाती हैं; उनके मकानों की मिट्टी से कहीं कहीं ईंटें, सड़कें और टेनिस कोर्ट बनते हैं; वे दवा के काम में भी आती हैं, पर उनकी यह उपादेयता उनकी संहार-शक्ति की तुलना में कुछ भी नहीं ठहरती, वे हमारे लकड़ी के सामान, कपड़े-लत्ते और पुस्तकों को ही बरबाद नहीं करतीं वरन् हमारी खेती-बारी को भी विशेष हानि पहुँचाती हैं। किसी किसी खेत से उनकी कृपा के कारण बीज तक के लौटने की नौबत नहीं आती। गन्ने के तो वे जानी दुश्मन हैं। कभी कभी उसके बीज को भीतर ही खाकर पोला कर देती हैं और वह जमता तक नहीं। जब ये कीड़े हमारे हरएक जीवन-व्यापार और उन्नतिशील आयोजनाओं में बाधा डालते रहते हैं तब हमारा भी कर्त्तव्य है कि उनके उन्मूलन के उपाय करें।

उनसे रक्षा

बग़ीचों और खेतों की फ़सल को दीमक से बचाने के हेतु एक सरल उपाय यह है कि उन्हें सींचते समय पानी की नाली में नमक और हींग की पोटली रख दे। इनकी गंध से दीमक न लगेंगे। नमक और हींग के स्थान पर क्रूड आयलइमल्शन का भी प्रयोग करते हैं। नीम की खली या नीम की पत्तों की खाद भी विशेष लाभ-दायक होती है। गन्ने के टुकड़ों को बोते समय सामेल-मिश्रण में भिगो लेना उनकी दीमकों से रक्षा करता है। छोटे-छोटे पौधों की जड़ों में सोमलखार का मिश्रण डाल देने से दीमकें भाग जाती हैं।

वस्त्रों, पुस्तकों और सामान की रक्षा का उपाय यह है कि उन्हें धूप और खुली हवा में रक्खे और बीच बीच उन्हें पलटता रहे। वस्त्रों और पुस्तकों में नेफ़थलीन की गोलियाँ रख देने से भी दीमकें तथा अन्य कीड़े नहीं लगते। अन्न के बखारों की फ़र्श पर मिट्टी कुटवाकर सीमेंट का पलस्तर कर देना चाहिए और फ़र्श पर तारकोल लगवा देने से उनका डर जाता रहता है। मकान बनाते समय लकड़ी पर तारकोल अथवा और कोई 'दीमक-संरक्षक' लेप लगा देना चाहिए।

रिक्ता
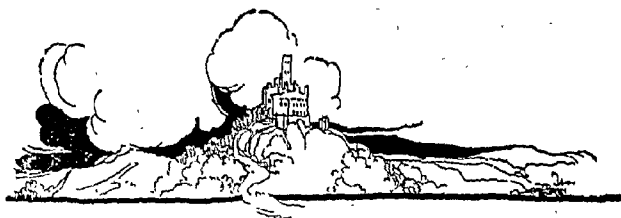
अनुवादक, पण्डित ठाकुरदत्त मिश्र

सविता के नाना इतने समृद्धिशाली परिवार में दौहित्री का विवाह करने में समर्थ हो सकने के ही कारण अपने आपको कृतकृत्य समझते थे। उन्हें इतना साहस कहाँ था कि वे उसे बुलाने का प्रस्ताव करते। परन्तु अत्यन्त ही क्षीण हो जाने पर जब उन्होंने पत्र-द्वारा इस आशय की प्रार्थना की और जगत बाबू ने उसे भेजना स्वीकार भी कर लिया तब अकस्मात् मेनका की मृत्यु हो गई। इससे उसका जाना नहीं हो सका। बाद को स्वास्थ्य-सुधार के लिए जगत बाबू को दार्जिलिंग जाना पड़ा और उनकी देख-रेख तथा सेवा-शुश्रूषा के लिए सविता तथा उसके पति को भी जाना पड़ा। यहाँ आने पर एक और बला खड़ी हो गई। एकाएक पुलक बीमार पड़ गया; जिसके कारण सविता बराबर इस परिवार की उलझनों में ही पड़ी रह गई, नाना तथा माता के सम्बन्ध में विचार करने का उसे बहुत कम अवसर मिलता था।

(१६)

अरुण भी क्या मुग्ध नहीं हो उठा था? सुख-दुःख में सदा ही जिसकी सहानुभूति उसके चारों ओर घिरी रहती थी उसकी ओर वह कब तक आँखें बन्द किये रहता? परन्तु उस समय उसकी इस प्रकार की अवस्था थी कि वह हृदय के इस प्रकार के भाव को व्यक्त नहीं कर सकता था। उसका जो हृदय इतने दिनों तक गर्व से उन्नत था, कठोर था, जो मस्तक विजय से उन्नत था उसे झुका कर नम्रता प्रकट करके हार मानने की इच्छा उसे नहीं होती थी। इस प्रकार पराजय स्वीकार करना उसकी शक्ति से परे था।

यह बात मन में ले आते समय भी उसके माथे का रक्त गरम हो उठता। सबसे पहले उसके मन में यही बात आती कि ये लोग मेरे प्रति जो अन्याय करेंगे, अन्याय के नीचे ही मस्तक झुकाने में क्यों जाऊँ?

दुनिया क्या यह समझेगी नहीं कि मेरा भी एक स्वाधीन मन है, मैं स्वयं भी एक मनुष्य हूँ। गृहस्थीरूपी कोल्हू में आँख बाँधकर जोत देने से पहले परिस्थिति पर एक बार भी विचार करने का अवसर देना क्या आवश्यक नहीं था?

'फूल की चोट' अब बहुत दूर जा चुकी थी। अरुण का ध्यान अब उसकी ओर वैसा नहीं था। परन्तु इतने दिनों से उसके हृदय पर जो अहङ्कार अपना अधिकार जमाये हुए था उसका अन्त नहीं हो सका था।

कई दिनों के बाद अरुण और कनक के साथ पुलक भी एक दिन घूमने के लिए गया था। पुलक को साथ में ले जाने का वैसा आग्रह अरुण को नहीं था। कनक ही ज़ोर देकर उसे साथ में ले गया था। पुलक के शरीर पर कोई वैसा मोटा वस्त्र नहीं था। इस कारण सविता उद्विग्न हो उठी थी, क्योंकि उस समय साँझ हो चली थी।

पुलक के लौट कर आते ही सविता ने उसे एक मोटा कोट पहनाया और भोजन कराने के लिए ले गई। परन्तु तरह तरह से मचलकर रोते-रोते पुलक ने सविता को परेशान कर डाला, अन्त में वह सो गया। उस दिन उसका भोजन नहीं हुआ। बड़ी कठिनाई से थोड़ा-सा दूध भर उसके पेट में पहुँच पाया था।

सविता रात को जब सोने के लिए गई तब उसने देखा कि पुलक का शरीर बहुत गरम हो उठा है। उस ज्वर के ही कारण उससे भोजन भी नहीं किया जा सका।

सविता का हृदय व्याकुल हो उठा। वह सोचने लगी कि पुलक को तो प्रायः कभी ज्वर होता नहीं था। इस पहाड़ी देश में आने पर उसे इस तरह का ज्वर क्यों हो आया?

सविता यह बात कहती ही किससे? श्वशुर शोक से अधीर थे, तिस पर भी उन्हें हृदय का रोग था। इतनी रात को उन्हें जगाना शायद उचित न होगा। तब?

तब क्या वह अरुण को सूचना दे? एक कमरा छोड़कर दूसरे ही कमरे में अरुण लेटा हुआ है। परन्तु क्या वे अभी तक जाग रहे होंगे?

झिलमिलों से घिरे हुए बरामदे में खड़ी होकर सविता सोच रही थी। उसकी समझ में न आया कि ऐसे समय में मैं क्या करूँ?

घर के जितने भी नौकर-चाकर थे वे सब भोजन आदि से निवृत्त होकर बाहर चले गये थे। केवल जगत बाबू का बूढ़ा खानसामा गोपी ही हाथ में एक दीपक लिये हुए जाने का उद्योग कर रहा था।

उसे देखकर सविता को ज़रा-सी आशा हुई। उसने कहा—बाबू जी सो गये हैं या जाग रहे हैं, क्या तुम्हें यह मालूम है ?

गोपी मालिक के कमरे में जाकर देख आया। उसने कहा—हाँ, बहू जी, सो गये हैं। आजकल उन्हें जल्द ही नींद आ जाती है।

सविता ज़रा देर तक सोचती रही। किन्तु और कोई भी उपाय न देखकर उसने अरुण को ही सूचना देने को कहा। घर के किसी आदमी को सूचना दिये बिना वह शान्त नहीं हो सकी। उसने सोचा कि यह ज्वर कहीं विकराल रूप न धारण कर ले, इससे सूचित कर रखना अच्छा है।

अरुण को सूचना दे देने के बाद सविता ने पुलक का टेम्परेचर लिया। ज्वर बहुत बढ़ गया था। परन्तु पुलक उस समय भी अच्छी तरह सो रहा था। गोपी आकर कह गया कि अरुण के कमरे के दरवाज़े पर धक्का देने पर भी भीतर से किसी प्रकार की आहट नहीं मिली। शायद वे भी सो गये हैं।

पुलक किसी प्रकार की भी चञ्चलता नहीं प्रदर्शित कर रहा था, इससे सविता और कुछ नहीं बोली। उसने अपनी इच्छा से ही उसके मस्तक पर भीगे हुए कपड़े की एक पट्टी बाँध दी।

गोपी से पुलक के ज्वर का हाल पाकर जगत बाबू सवेरे कमरे के दरवाज़े के पास आकर पुकारने लगे—बहू !

बिस्तरे पर से उठकर सविता द्वार की ओर बढ़ी। जगत बाबू ने पूछा—क्या पुलक को ज्वर हुआ है ?

"बड़े ज़ोर का ज्वर हुआ है। सारी रात उसने ज़रा भी आँख नहीं खोली। इस समय भी नहीं खोल रहा है।"

पुलक के मस्तक पर हाथ रख कर जगत बाबू ने ज़रा-सा चिन्तितभाव से कहा—ज्वर तो सचमुच ज़ोर का हुआ है। कब हुआ है बहू ?

"मुझे रात को दस बजे मालूम हुआ था। गोपी को मैंने आपके पास भेजा था। आप उस समय सो गये थे बाबू जी !"

जगत बाबू का मुख गम्भीर हो गया। उन्होंने कहा—हाँ मैं ज़रूर सो गया था। नई जगह ठहरी। डाक्टर बुलवाना होगा।

सविता ने कहा—आपकी ओषधि आदि—

"ख़ैर, तुम उसकी चिन्ता न करो बिटिया। हमारी ओषधि आदि का प्रबन्ध गोपी ही कर देगा। तुम तो अब इसे छोड़कर न उठ सकोगी !

गोपी पुराना और विश्वासी नौकर था। जगत बाबू की ही सेवा करते-करते उसके बाल सफ़ेद हुए थे। इसलिए श्वशुर की सेवा का भार उसी के ऊपर छोड़कर सविता पुलक की देख-रेख में लगी रही।

अब तक पुलक रोते-रोते गीले कपड़े की पट्टी खींच खींचकर फेंकने लगा था। वह बराबर माथा हिलाता ही रहता, इस कारण सविता उसके मस्तक पर गीले कपड़े की पट्टी नहीं रख पाती थी।

अरुण और कनक ने साथ ही साथ कमरे में प्रवेश किया। पुलक के पास जाकर कनक ने कहा—क्या हुआ रे पुलक ? तुझे ज्वर क्यों हो आया ?

अरुण इतने समय तक कमरे भर में दृष्टि दौड़ाकर ताक रहा था किसी स्टूल या कुर्सी की आशा से। परन्तु वह कुछ पा नहीं सका।

सविता बिस्तरे पर बैठी हुई थी। वह उठकर खड़ी हो गई। तब पुलक के पास ही अरुण और कनक दोनों बैठ गये। कनक ने कहा—इसे इतने ज़ोर का ज्वर क्यों हो आया ? कल हम लोगों के साथ घूमने गया था, इसी लिए तो इसे ज्वर नहीं हो आया।

अरुण ने कहा—ऐसा भी हो सकता है। परन्तु इतनी ही देर में कहाँ इतनी सर्दी लग गई होगी ! इसी भय से तो मैं कभी उसे साथ में नहीं ले जाता हूँ। पता नहीं, भाई, बच्चों के सम्बन्ध की कोई बात तो मैं समझता हूँ नहीं।

पुलक बड़े ज़ोर-ज़ोर से रो रहा था। इससे सविता उसे गोद में लेकर कमरे की फ़र्श पर बिछी हुई चटाई पर बैठ गई।

कनक ने कहा—तब तो मेरे लिए भाभी जी के सामने खड़ा होना भी उचित नहीं है। पुलक को जो ज्वर हो आया है, इसका कारण उन्होंने मुझे ही समझ लिया है।

रेशम की लच्छी के समान पुलक के सुन्दर सुन्दर बालों पर हाथ फेरते-फेरते सविता ने कहा—नहीं, नहीं। ऐसा क्यों समझूँगी ?

अरुण ने कहा—एक दिन के ज्वर के कारण इस प्रकार चिन्तित होने की कोई बात नहीं है। डाक्टर को बुलाने के लिए आदमी गया है। अभी ही वे आते होंगे।

इतने में नौकर ने आकर सूचना दी कि चाय तैयार है। इससे कनक उठ गया। अरुण भी उठा और चलने

का उपक्रम करते हुए कहने लगा—अब पुलक को बिस्तरे पर लिटा दो।

सविता ने कहा—हाँ, अब लिटा देती हूँ।

"लिटा क्या देती हो? कब तक लिये बैठी रहोगी गोद में? लिटा दो।"

बिस्तरे पर पुलक को लिटाकर सविता ने कहा—एक ही दिन के ज्वर के कारण इतना शिथिल हो गया है।

"हूँ, मालूम अब पड़ा है। जब तो कह रहा था कि प्रभात के साथ भेज दो तब तो बात पर ध्यान दिया नहीं गया, अब दूसरे का लड़का लेकर—"

सविता के दोनों नेत्र जल उठे। उसने कहा—बहन का लड़का क्या दूसरे का लड़का है?

"बहन का लड़का मेरा है। मैं तुम्हारे संबन्ध में कह रहा था।"

"मेरे सम्बन्ध में!"

घोर अविश्वास से सविता के दोनों नेत्र तक हँस उठे।

अरुण लज्जित होकर सविता के मुख का मौन तिरस्कार देखने लगा। कितनी व्यथा, कितने दुःख, कितने दुःख के घात-प्रतिघात में एक स्निग्ध, उज्ज्वल, महिमामय श्री उसके तरुण मुख के लावण्य को सौ गुना बढ़ा रही थी, उसके हृदय की ज्योति उसके अङ्ग-अङ्ग में प्रकाश की किरणें फैला रही थी। उसका यह स्वभाव ही था कि वह सन्ताप से धूप के समान जल जाती थी, किन्तु वितरण करती थी स्निग्ध मधुर गन्ध।

अरुण एक दृष्टि से सविता के ही मुख की ओर ताक रहा था। उसे अपनी ओर इस प्रकार ताकते देखकर सविता लज्जा से बहुत ही सकुंचित होकर बोली—तुम्हारी चाय ठंडी होती जा रही है!

हँसते-हँसते अरुण ने कहा—हो जाने दो ठंडी। कोई बात नहीं है। परन्तु तुम्हें जो गरम कर दिया है, यह काम क्या अच्छा हुआ है?

सविता ने कहा—यद्यपि मैं गरम नहीं हुई हूँ, किन्तु यदि होती तो इसमें अन्याय क्या था? हानि तो इसमें कोई थी नहीं।

"न सही, तो भी—"

सविता का मन अच्छा नहीं था। मस्तक नीचा करके उसने कहा—किन्तु बाद को तुम्हारी चाय पीने ही लायक न रह जायगी।

अरुण ने हँसकर कहा—तो क्या इसके लिए तक़ाज़ा है? अच्छा जाता हूँ।

पुलक के मस्तक पर हाथ फेर कर उसे प्यार करने के बाद अरुण चला गया। उसे देखकर कनक ने रहस्यमयी हँसी हँसते हुए कहा—क्यों अरुण मैं आशा करता हूँ कि—

अरुण ने कहा—चुप, चुप, बहुत तो हो गया है। आज! अब और क्यों?

"मुँह में मारना यदि मैं कोई बेतुकी बात कहूँ? पद की बात के कहने में भी कोई आपत्ति है?"

"अवश्य। वह मिथ्या जो होगा?"

"क्यों?"

"ठहरो भाई, पहले मुझे चाय पी लेने दो।" यह कहकर अरुण ने उतावली के साथ चाय के प्याले में मुँह लगाया। कनक चाय पीकर मसाला चबाते-चबाते टहलने के लिए बाहर चला गया।

(१७)

पुलक का ज्वर लगभग एक सप्ताह बड़ी तेज़ी पर था। बाद को धीरे धीरे वह कम हो आया। परन्तु मन्द मन्द ज्वर अब भी उसे रहा करता और वह किसी प्रकार उसका पिण्ड ही नहीं छोड़ना चाहता था। ऐसा कोई भी दिन न होता जब पुलक को ज़रा ज़रा ज्वर न हुआ करता। सविता मन ही मन बहुत ही व्याकुल हो उठी थी। परन्तु श्वशुर का शरीर अच्छा न होने के कारण वह उनसे कुछ कह नहीं पाती थी।

वह नन्हा-सा पुलक सविता के लिए सान्त्वना का बहुत बड़ा आधार था। एक प्रकार से वही उसका सब कुछ था। पुलक भी यदि न होता तो उस करुणा-हीन गृह में वह किस प्रकार दिन काट पाती, यह बात सविता बहुत सोच-विचार करने पर भी न निश्चय कर पाती। सविता को आशंका होती कि कहीं सास के साथ ही साथ पुलक को भी तो न खो बैठना पड़ेगा? हृदय में यह आशंका उत्पन्न होते ही आँखें जल से परिपूर्ण हो उठतीं।

बिस्तरे पर बैठा हुआ पुलक खेल रहा था। उसके शरीर का रंग पीला पड़ गया था। मुख पर और भी पीलापन छा गया था। हाथ-पैर सूख कर लकड़ी जैसे हो गये थे। यदि कुछ सूखी नहीं थी तो वह थी केवल उसके

मुँह की मुस्कराहट। साथ ही शरीर में शक्ति न होने पर भी इधर-उधर उछलने कूदने की इच्छा इस समय भी उसके हृदय में वर्त्तमान थी।

सविता कमरे में गई। पुलक को छाती से लगा कर उसने उसका मुँह चूम लिया। अकारण ही अकस्मात् इस प्रकार का प्यार पाकर पुलक ने कहा—क्या है बहू?

पुलक के मुँह पर हाथ फेरते हुए सविता ने कहा—कुछ तो नहीं भैया। यों ही तुम्हें ज़रा-सा प्यार किया है।

"ओह" कहकर पुलक फिर खेलने लगा। स्नेह के कारण मुग्ध हुए नेत्रों से सविता उसका खेल देख रही थी। इतने में गोपी ने आकर सूचना दी कि मालिक बुला रहे हैं।

सविता उतावली के साथ उनके पास गई। जगत बाबू अभी टहल कर लौटे थे। उन्होंने अभी तक कपड़े नहीं उतारे थे। वे यों ही बैठे-बैठे काग़ज़-पत्र देख रहे थे। इधर कई दिनों से घर जाने के लिए वे बहुत उत्सुक हो उठे थे। काम-काज छोड़कर विश्राम करते रहना उन्हें अच्छा नहीं मालूम पड़ रहा था। पुलक का ज्वर नहीं छूट रहा था, केवल इसीलिए उन्होंने अपना जाना स्थगित कर रक्खा था। वे चाहते थे कि पुलक को यह जो ज़रा ज़रा ज्वर आ जाता है वह भी यदि छूट जाता तो हम लोग घर के लिए रवाना हो जाते।

जगत बाबू घर जाने के लिए जो इस प्रकार चिन्तित हो उठे थे उसका एक कारण और था। उनकी जमींदारी के मैनेजर ने चिट्ठी लिखी थी कि यहाँ कई बहुत पेंचीदा मामले उठ खड़े हुए हैं, किसी मालिक के बिना उनका निपटारा नहीं किया जा सकता। इसलिए या तो वे स्वयं वहाँ पहुँचें या अरुण को ही भेज दें। जगत बाबू के जो पुराने मैनेजर थे उनकी मृत्यु हो चुकी थी, और एक नया मैनेजर नियत किया गया था, इससे उसके ऊपर पूर्ण रूप से निर्भर रहना उचित नहीं मालूम पड़ रहा था। सविता को देखते ही जगतबाबू ने कहा—देखो बहू, यह मैनेजर साहब की चिट्ठी है। इसे पढ़कर देख लो। इसके पढ़ने से मालूम पड़ता है कि वहाँ गये बिना किसी प्रकार भी काम न चल सकेगा। बतलाओ, अब क्या किया जाय।

सविता ने चिट्ठी पढ़ ली। परन्तु श्वशुर को वह इस सम्बन्ध में क्या परामर्श दे, यह उसकी समझ में नहीं आ रहा था। पुलक के ही कारण सारा झञ्झट था। पुलक यदि अच्छा हो जाता तो सभी लोग जा सकते थे।

सविता को चुप देखकर जगत बाबू ने कहा—अच्छा तो बहू, अभी मैं चला जाता हूँ, पुलक की तबीअत अच्छी हो जाने पर अरुण तुम लोगों को लेकर चला आवेगा।

सविता ने कहा—तुम्हारा शरीर अच्छा नहीं है, बाबू जी! यदि कहीं कुछ असंयम हो जायगा तो तुम फिर पड़ जाओगे। इससे जाने की कोई आवश्यकता नहीं है।

"यदि न जाऊँगा तो काम कैसे चलेगा, बहू? तुमने चिट्ठी पढ़ तो ली है, वसूल का समय है। इस समय यदि असावधानी की गई तो सारा रुपया मारा जायगा। तुम तो सब समझती हो। ज़रा सोचकर देखो हर एक बात को।"

सविता चुप रह गई। उसके मन में आया कि अरुण के जाने से यदि काम चल सकता है, तो उन्हीं को भेज देना अच्छा होगा। परन्तु इस बात को वह मन ही मन सोचकर रह गई। इसे कह डालने की इच्छा होते ही लज्जा ने उसका मुँह बन्द कर दिया। श्वशुर के सामने स्वामी के सम्बन्ध की कोई भी बात तो उसने कभी मुँह से नहीं निकाली थी।

जगत बाबू कदाचित् सविता के मन का यह भाव ताड़ गये। कदाचित् इसी कारण से उन्होंने कहा—मैनेजर ने अरुण को भेज देने के लिए लिखा अवश्य है, परन्तु अरुण वहाँ जाकर करेगा क्या? यह सब काम उसने कभी किया तो है नहीं। जमींदारी के सम्बन्ध की क्या एक भी बात उसकी समझ में आती है? मेरे वहाँ गये बिना किसी प्रकार भी काम न चल सकेगा।

सविता ने दुख के भाव से कहा—कितने प्रयत्न के बाद तो आपका शरीर अब ज़रा ज़रा ठिकाने पर आने लगा था। शायद अब फिर ख़राब हो जायगा। कब जा रहे हैं आप?

जगत बाबू ने कहा—सात दिन के भीतर ही भीतर मैं प्रबन्ध कर लूँगा। उसके बाद भी यदि मालूम हुआ कि अभी तुम लोगों के लौटने में विलम्ब है तो मैं फिर यहाँ चला आऊँगा। इन सात दिनों में ही शरीर कितना ख़राब हो जायगा?

"क्या साथ में गोपी जायगा?"

"हाँ, गोपी तो जायगा ही। परन्तु और किसी को नहीं लिये जा रहा हूँ। क्या करूँगा बहुत से लोगों को साथ में ले जाकर? वहाँ जो लोग हैं वे ही सारा काम चला लेंगे।"

× × ×

उसी दिन गोपी नौकर को साथ में लेकर जगत बाबू घर चले गये। अरुण ने भी साथ जाने की इच्छा प्रकट की थी, परन्तु डाँट पड़ने के कारण उसे रुक जाना पड़ा। कनक इससे बहुत ही प्रसन्न हुआ। हँसी से मुँह भरे हुए उसने कहा—अच्छा हुआ यह। बहानेबाज़ी का यह उपयुक्त पुरस्कार है! घर में जब रहेंगे तब बाहर जाने को कहेंगे और अब बाहर रहने का अवसर आया है है, तब कहते हैं कि घर जाऊँगा।

मुँह गम्भीर किये हुए अरुण स्टेशन गया और पिता को गाड़ी पर बैठाल आया। लौटते समय वह जिस रास्ते से होकर आया उस रास्ते से वह पहले आया गया नहीं था। इससे चारों ओर ध्यानपूर्वक देखता जा रहा था। रास्ते से ज़रा सा ऊँचे पर एक सफ़ेद मकान था। उस मकान पर पीले फूल की एक लता चढ़ी हुई थी। उस मकान के लम्बे बरामदे में पतले गठन की एक सुन्दरी तरुणी पाँच छः महीने का एक बच्चा गोद में लिये हुए व्यस्तभाव से उस ओर से इस ओर और इस ओर से उस ओर आ-जा रही थी। बच्चा चिल्ला-चिल्ला कर रो रहा था। तरुणी उसे किसी प्रकार भी न सँभाल पाती थी इससे वह भी रुआसी-सी हो आई थी। उसे किसी ओर भी दृष्टि डाल कर देखने का मानो अवसर ही नहीं था।

बच्चे को सँभालने में असमर्थ होने के कारण तरुणी व्यग्र होकर बरामदे भर में नाच रही थी। इतने में साहबी ठाट-बाट बनाये हुए एक तेजस्वी युवा आया और बच्चे को पीछे से ही छीन कर तरुणी को हँसा दिया।

अरुण को ज़रा सा धक्का देकर कनक ने कहा—क्यों अरुण? देखते हो?

अरुण ने कहा—देखता तो हूँ। कौन हैं ये लोग? क्या तुम इन्हें पहचानते हो?

कनक ने कहा—ये यहाँ के डिप्टी मैजिस्ट्रेट ज्ञानेन्द्र बाबू हैं और वह है ज्योति, समझ में आया आपके—जिसकी तुलना की स्त्री खोजने पर तुम्हें इस संसार में नहीं मिलती है। अब वह ज्ञानेन्द्र बाबू की स्त्री है।

मारे लज्जा के अरुण का मुँह लाल हो उठा। उसने कहा—अरे, यह क्या कह रहा है तू!—खाक-पत्थर!

"क्यों? खाक-पत्थर की चिन्ता में पड़ा रहना ठीक है। मुँह से उसे कहना ही शायद बहुत बुरा है!"

इस बीच में वे लोग उस मकान को पीछे छोड़ आये थे। कनक ने ज्योति को देखा था, किन्तु ज्योति कनक को नहीं देख पाई। देखने पर वह कनक भाई कहकर पुकारती। यह भी सम्भव है कि ज्योति ने कनक को देख लिया हो, किन्तु साथ में एक अपरिचित पुरुष होने के कारण उसने कनक को पुकारने का साहस न किया हो। अरुण जब ज्योति को नहीं पहचान सका तब ज्योति ही अरुण को किस प्रकार पहचान पाती?

कनक यही सब बातें सोच रहा था। अरुण को चुप देख-देखकर उसने हँस कर कहा—क्यों भाई, क्या हुआ तुम्हें? क्या फिर एक आघात लग गया तुम्हें?

"पागल हुए हो क्या तुम? व्यर्थ की बातें बक-बक कर तुम क्यों समय नष्ट कर रहे हो? एक लड़के के बाप हो गये हो, इसी से शायद तुम मुझसे चालीस वर्ष बड़े हो गये हो। अब बैठे-बैठे राम का नाम लो।"

"राम का नाम लो!" कनक ठहाका मार-मारकर हँसने लगा। "राम राम करूँ? किस तरह राम राम करूँ बतलाओ तो? राम राम कहो, राम राम!"

अरुण ने कहा—रास्ते के लोग पागल कहेंगे!

"किसे?"

"तुमको—और किसको, पागलपन जो कर रहे हो।"

"उस समय मैं कह दूँगा कि मैं कुछ नहीं कर रहा हूँ। ये ही सब कर रहे हैं। इनका दिमाग़ ज़रा गड़बड़ है।"

अरुण ने हँस कर कहा—वाह, भगवान् कलिकाल के इन युधिष्ठिर को जीवित रक्खें।

घर पहुँचने पर साँझ के समय का जलपान करने के बाद कनक ने कहा—ज़रा देर के लिए मुझे एक बार और बाहर जाना है। मेरे एक मित्र सेनीटोरियम में आये हैं। उनसे ज़रा-सा मिलना है।

पुलक की दासी तारा ने कहा—बहू जी कह रही हैं कि ज़रा देर तक ठहर कर जायँ। अभी डाक्टर साहब आते होंगे। पुलक को दिखलाना होगा।

अरुण के मुँह की ओर ताक कर कनक ने कहा—क्यों ? अरुण तो हैं ।

अरुण ने कहा—हाँ, मैं तो हूँ ।

"तब क्या करना है ।" यह कहकर कनक चला गया ।

अरुण सविता के कमरे में गया । वहाँ जाकर उसने देखा तो पुलक बिस्तरे पर एक बग़ल शान्त भाव से लेटा सो रहा है । कमरे के एक कोने में पीतल की एक धूपदानी रक्खी हुई थी । उसमें सुलगती हुई धूप का धुँआ अपनी मन्द मन्द सुगन्ध से वहाँ की वायु को सुरभित कर रहा था । टेबिल के ऊपर लैम्प के पास पुलक की ओषधि की शीशियाँ, ओषधि नापने का काँच का छोटा-सा गिलास, तोड़ा हुआ आधा अनार आदि आवश्यक वस्तुएँ रक्खी हुई थीं । इन सबके बीच में एक चिट्ठी भी रक्खी हुई थी । असमय में लिखी जाने के कारण वह डाक में नहीं डाली जा सकी थी ।

अरुण ने चिट्ठी हाथ में ले ली । उसने देखा कि बहुत ही साफ़ और सुन्दर अक्षरों में लिफ़ाफ़े पर आशा का नाम लिखा हुआ है । नाम के नीचे अँगरेज़ी में पता लिखा हुआ है । अँगरेज़ी के अक्षर भी बहुत साफ़ थे, किसी अशिक्षित आदमी के हाथ के से लिखे नहीं थे ।

वह चिट्ठी टेबिल पर रख कर अरुण कभी यह चीज़ और कभी वह चीज़ उठा उठाकर देखने लगा ।

सविता उस समय कमरे में नहीं थी । वह गृहस्थी के किसी दूसरे काम में लगी थी । अरुण बरामदे में गया और वहाँ रक्खी हुई एक कुर्सी पर हाथ टेककर 'गोपी', 'गोपी' कह कर पुकारने लगा ।

सविता ने बाहर आकर कहा—गोपी तो बाबू जी के साथ गया है । वह घर में नहीं है ।

अरुण ने हँसकर कहा—हाँ, हाँ, ठीक बात है । मैं भूल गया था । तो और कोई आदमी नहीं है ? तुम वहाँ क्या कर रही हो ?

"क्यों, क्या कोई काम है ?"

"नहीं, कोई वैसा काम नहीं है ।" यह कहकर अरुण ज़रा-सा खड़े-खड़े कुछ सोचने लगा । बाद को स्वयं कुर्सी उठाकर वह सविता के कमरे में ले गया और वहाँ उसको रख दिया ।

सविता ने आश्चर्य में आकर दृष्टि उठाई और एक लम्बी साँस लेकर वह तरकारी काटने लगी ।

सविता तरकारी काटती जाती थी और सोचती जाती थी कि मेरे कमरे में कुर्सी रखने की ऐसी कौन-सी आवश्यकता थी, जो स्वयं कुर्सी उठाकर ले गये हैं । यह क्या कमरे के ऊपर दया हुई है या मेरे ऊपर ?

अपनी दशा का स्मरण आते ही सविता का मन फिर बिगड़ गया । कोई भी अपराध किये बिना भी उसने कितनी लाञ्छना, कितने अत्याचार सहन किये हैं, कितने अपमान का बोझा लादे हुए आँखों से आँसुओं की झड़ी लगा-लगाकर उसने दिन काटे हैं । एक दिन नहीं, दो दिन नहीं, इस प्रकार का गम्भीर दुःख सहन करते-करते महीने पर महीने, साल पर साल उसने काट दिये हैं । उसकी उस समय की दुःखावस्था का हाल सुनकर ऐसे लोग भी जिनसे उसका किसी प्रकार का सम्पर्क तक नहीं था, आह भरे बिना नहीं रह सके । उस समय भी तो वह आज की ही तरह दया की पात्री थी । आज ही कौन-सी ऐसी बात आ गई है जो इस प्रकार की ममता प्रदर्शित की जा रही है ?

इधर का काम-काज समाप्त करके ज़रा देर के बाद सविता अपने कमरे में गई । वहाँ से झिलमिली के शीशे के पास से उसने देखा तो ख़ूब लम्बा ओवर कोट पहने हुए अरुण मन्द मन्द और मधुर सुर से गाते-गाते बग़ीचे में टहल रहा है । चन्द्रमा के धुँधले प्रकाश में बग़ीचा ख़ूब साफ़ दिखाई पड़ रहा था ।

रास्ते से होकर नैपाली कुली दल बाँधे हुए बंगाली सुर में हिन्दी-गीत गाते हुए चले जा रहे थे । ऊँचे रास्ते से जूता मर मर करता हुआ कनक बँगले में उतर रहा था । अरुण को देखते ही उसने कहा—ओह, यह क्या ? तुम सर्दी में टहल रहे हो ? डाक्टर साहब आये नहीं अभी तक ?

टहलते-टहलते अरुण ने कहा—नहीं, आज अब कब आवेंगे ?

"तो अब वे न आवेंगे । तुम चले आओ ।" यह कह-कर बरामदे में चढ़ते-चढ़ते कनक ने कहा—अब इस ठंडक में बाहर मत रहो ।

कनक की इस बात पर अरुण ने ध्यान नहीं दिया । वह चुपचाप चन्द्रमा के प्रकाश से प्रकाशमान बग़ीचे में टहलता ही रहा ।

[क्रमशः

भारतीय नारी की आर्थिक स्वतन्त्रता की समस्या और उसका हल

लेखिका, श्रीमती सुमित्राकुमारी सिनहा

रतीय नारी की आर्थिक स्वतन्त्रता और स्वाधीनता का प्रश्न उठाते ही कुछ लोग अनेकों दलीलें पेश करने लगते हैं 'कि स्त्री का दायरा घर है और वही उसका उचित स्थान है। पाश्चात्य देशों में भी स्त्रियाँ बाहर के कोलाहल से ऊब कर घरों की ओर ही लौट रही हैं। हिटलर ने जर्मनी की स्त्रियों के लिए कहा ही है कि उनका काम बच्चे पैदा करना, उनका समुचित लालन-पालन और शिक्षण कर देश के लिए बहादुर सिपाही बना देना ही है। उन्हें योग्य माता बनने के सिवा राजनीति तथा और दूसरे कामों में दखल देना उचित नहीं। जब पाश्चात्य देशों की यह हालत है तब भारत के लिए यह किसी तरह भी हितकर नहीं है कि यहाँ की स्त्रियाँ जो घर को सुचारु रूप से चलाती हैं बाहर निकलें और पुरुष के साथ ही बाहर के संघर्षों में भाग लें। जिन पुरुषों-द्वारा स्त्रियों की आर्थिक स्वतन्त्रता तथा स्वाधीनता की दुहाई दी जाती है उन्होंने न जाने कितनी स्त्रियों को गुमराह करके बेघरबार का कर दिया। और जो स्त्रियाँ आर्थिक स्वतन्त्रता और स्वाधीनता का आन्दोलन उठाना चाहती हैं उनका पारिवारिक जीवन अशान्तिमय होता है।'

सवाल बिलकुल सीधा और स्पष्ट है। जब तक किसी बात की अशान्ति का प्रत्यक्ष अनुभव नहीं होता है कोई भी आन्दोलन नहीं उठता। और अशान्ति तो समाज के अधिकांश भाग में है। निम्न श्रेणी और मध्यम श्रेणी के प्रत्येक गृह में नित्यप्रति पैसे के अभाव के कारण कलह मचा रहता है। और अधिकतर इसकी वजह से स्त्रियों को ही मुसीबत उठानी पड़ती है। क्या इससे भी कोई अनभिज्ञ है? हाँ, भले ही कुछ हमारी बहनें उन मुसीबतों का शिकार होते हुए भी अपनी ज़बान न खोलें क्योंकि वे उस परिस्थिति में रहने की अभ्यस्त हो गई हैं। यह दूसरी बात है। लेकिन कुछ पढ़ी-लिखी बहनें अशान्ति का भयंकर रूप से अनुभव करती हैं और कुछ आवाज़ उठाना चाहती हैं तो पुरुषवर्ग तरह तरह की दलीलें पेश कर अनेक बाधायें उपस्थित करने लगता है। काफ़ी शिक्षित पुरुष तक यह कहते हुए पाये जाते हैं कि स्त्रियाँ घर के बाहर की जिन्दगी के लिए किसी भी तरह सुयोग्य नहीं हैं। नारी प्रकृति के अनुकूल ऐसी है ही नहीं कि वह पुरुषों की तरह कठिन परिश्रम कर सके। उसकी तो

श्रीमती सुमित्राकुमारी सिनहा

कोमलता ही नष्ट हो जायेगी। बाहर के संघर्षों में न पड़ कर घर के अन्दर ही रहने में नारीत्व की सार्थकता है। बाहर आकर नारी नारी न रह जायेगी। हमारे भारत में अपनी पुरानी संस्कृति और सभ्यता को छोड़कर जिन्होंने नया रास्ता पकड़ा उनको कोई सफलता नहीं प्राप्त हुई। लौटकर फिर अपने पुराने स्थान का ही आश्रय उन्हें लेना पड़ा और पढ़ी-लिखी लड़कियों में से अस्सी प्रतिशत ने तो अपने जीवन में अपनी शिक्षा का कोई सदुपयोग किया ही नहीं। जिन्होंने अपनी शिक्षा के बल पर कोई कैरियर लिया भी तो उनमें से अधिक सफलता से वञ्चित ही रहीं और कैरियर त्याग शादी की शरण लेकर रहने पर भी सफल गृहिणी नहीं बन सकीं।

हमें ऊपर की पहली बातों के उत्तर में केवल यही कहना है कि पुरुष के स्वार्थ पर अपने को बलिदान करते रहने-वाला नारीत्व आज जाग पड़ा है और ज़माने की प्रगति के साथ आर्थिक स्थितियों ने आज नारी को मजबूर कर दिया है कि वह अपने क़दम आगे बढ़ाये। अब रही शिक्षा की बात, तो जब लोग इस तरह की दलीलें पेश करते हैं तब इस बात को क्यों बिलकुल भूल जाते हैं कि अभी तक जिन लड़कियों ने शिक्षा पाई है उनमें से अधिकतर उच्च श्रेणी की ही हैं। जिनके लिए जीवन में अपनी शिक्षा का सदुपयोग करने की कोई आवश्यकता ही नहीं पड़ती। वे तो केवल मनोरंजन के लिए शिक्षा प्राप्त करती हैं। यदि हम उन लड़कियों को भी लेलें जिनके माता-पिता निम्न मध्यम श्रेणी के हैं और अत्यन्त कठिनता से उन्हें मिडिल या हाई-स्कूल तक शिक्षा दिला पाते हैं—उन लड़कियों ने भी अपने जीवन-संघर्ष में शिक्षा का कोई लाभ नहीं उठाया है तो इसके भी मूल में दो कारण प्रेरणा-स्वरूप हैं।

एक तो हमारे पढ़े-लिखे नवयुवकों में जो एक बीमारी-सी फैल गई है कि उनकी पत्नी पढ़ी-लिखी हो। ताकि यदि वे कहीं बाहर किसी सभा और सोसाइटी में शरीक हों तो उनकी पत्नी एक तितली की तरह सजी-धजी उनके साथ हो और वह सभ्य समाज में गर्व से अपना मस्तक ऊँचा कर चल सकें। बस यहीं पर उनकी महत्त्वाकांक्षाओं की समाप्ति हो जाती है। वे स्त्री की शिक्षा से तो कोई लाभ उठाना ही नहीं चाहते ताकि उनके जीवन-संग्राम में सच्चे सहायक की तरह पत्नी पूरा पूरा हिस्सा ले। घर में काफ़ी आमदनी न होते हुए भी यदि स्त्री इस योग्य है कि कुछ काम कर सके तो उसे करने नहीं दिया जाता। दूसरा कारण यह है कि हमारे मध्यम वर्ग के लोग उच्च वर्ग की नक़ल करना चाहते हैं। वे इस बात को अपनी अप्रतिष्ठा समझते हैं कि उनके घरों की स्त्रियाँ जीविकोपार्जन करें। इस बात को वे भूल जाते हैं कि उच्च वर्ग उन्हीं के शोषण पर निठल्लेपन का जीवनयापन करता है। और वह इतना काफ़ी उनके श्रम का फल चूस लेता है कि उनकी स्त्रियों को काम करने की आवश्यकता नहीं महसूस होती।

अतः यह चीज़ बिलकुल स्पष्ट है कि निम्न और मध्यवर्ग को इस परम्परा की ग़लत रुढ़ि को छोड़ना होगा। अन्यथा समाज की अशान्ति नित्यप्रति विकराल

फ़ैज़ाबाद के एक ग्राम-सुधार-केन्द्र में कुछ महिलायें रेडियो सुन रही हैं।

रूप धारण करती ही जायगी। इस जटिल समस्या को हल करने के पहले हमारे मार्ग में जो बाधायें हैं उन्हें हमें गम्भीरतापूर्वक दूर हटाना है।

पहला सवाल तो होता है कर्मक्षेत्र में नारी के आगमन से उसके चरित्र-भ्रष्ट और सामाजिक व्यवस्था के छिन्न-भिन्न होने का। एक ओर नारी की आर्थिक स्वाधीनता का प्रश्न है तो दूसरी ओर स्वाधीनता से उत्पन्न होनेवाली परिस्थितियों का। कुछ लोगों का कहना है कि भारत में पाश्चात्य देशों की तरह लड़कियों को स्वाधीनता नहीं दी जा सकती। क्योंकि वे ठंडे देश हैं। भारत एक गर्म देश है। उन देशों की लड़कियों में अठारह-बीस वर्ष की आयु में सेक्स (कामचेतना) की जागृति होती है और उस अवस्था में मस्तिष्क का विकास भली भाँति होने लगता है। और इस तरह तब तक की आयु में उन्हें काफ़ी समय मिल जाता है कि वे अपने भविष्य-जीवन का पथ निश्चित कर लें। किन्तु गर्म देश में १३-१४ वर्ष की आयु में ही सेक्स की जागृति हो जाती है पर मस्तिष्क परिपक्व नहीं होता। फलतः यह आवश्यक हो जाता है कि उन्हें उसी आयु के लगभग किसी पुरुष के अधीन कर दिया जाय यदि ऐसा नहीं किया जाता और उनके स्वयं जीवनपथ निर्धारित करने की प्रतीक्षा की जाती है तो परिणाम यह होता है कि समाज अस्तव्यस्त हो जाता है। यह बात वस्तुतः विचारणीय है। इस पहलू पर प्रकाश डालना अत्यन्त आवश्यक है।

इसके लिए हमें अपनी नव-सन्तति को ही सेक्स की शिक्षा देने की ज़रूरत है। यदि समाज अपने आधे अंग को बेकार रख कर ही क़ायम रहना चाहता है तो वह दुनिया की प्रगति के साथ क़दम बढ़ाकर नहीं चल सकता और उसकी राष्ट्रीय सम्पत्ति का सदैव अभाव रहेगा। हमारे बच्चे, जो भावी राष्ट्र-निर्माता होंगे, स्कूल में जैसी शिक्षा प्राप्त करते हैं उससे उनके आचरण में कोई बहुत सन्तोषजनक परिणाम नहीं दिखलाई पड़ता। इसका कारण हमारी तालीम की ख़राबी है। हम अपनी सन्तानों को सेक्स की शिक्षा देते ही नहीं। यहाँ तक कि घर में सेक्ससम्बन्धी किसी बात का उन पर प्रकट हो जाना भी असभ्यता समझते हैं। यदि हमारे अभिभावक अपनी नव-सन्तति को सेक्स की पर्याप्त जानकारी प्राप्त करा दें तो बहुत कुछ सम्भव हो कि जो लोगों का एतराज़ है कि समाज में व्यभिचार फैल जायेगा, वह मिट जाये और हमारी एक बहुत बड़ी कमी की पूर्ति हो जाये। हमारे राष्ट्र की सम्पत्ति भी बढ़ जायेगी और नित्यप्रति का निम्न मध्यम वर्गों का आर्थिक संकट भी दूर हो जायेगा। मौजूदा हालत जो समाज की है वह सर्व-विदित है। आज हमारे लिए आवश्यकता इस बात की है कि नवीन संघर्षों और प्राचीन रूढ़ियों पर विचार करें और आवश्यकतानुसार उनमें आमूल परिवर्तन कर डालें। काफ़ी दिनों से इस पर वाद-विवाद चल रहा है लेकिन आज वह समय आ गया है कि इन महत्त्वपूर्ण प्रश्नों की उपेक्षा न कर हम इन्हें कार्यान्वित करें।

अब रही देश में बढ़ते हुए शिक्षित बेकारों के आगे शिक्षित स्त्रियों की बेकारी का प्रश्न। जब कि पढ़े-लिखे पुरुष ही बेकारी के चंगुल में फँसे हुए हैं तब स्त्रियाँ ही शिक्षित होकर क्या करेंगी? उनकी काम सीखी बढ़ती हुई तादाद के लिए नौकरियाँ तथा काम करने की व्यवस्था क्या होगी? इसके उत्तर में हमें यह ही कहना यथेष्ट है कि पहले हम ऐसी परिस्थितियाँ तो पैदा करें कि अच्छी जानकार काम करनेवाली स्त्रियाँ प्राप्त हों और फिर यदि वे बेकार रहेंगी तो चाहे जो गवर्नमेंट होगी उनके लिए काम पैदा ही करेगी, नहीं तो वे अपना प्रबन्ध स्वयं कर लेंगी।

शिक्षा में क्या मुसलमान पिछड़े हैं ?

लेखक, पण्डित वेंकटेश नारायण तिवारी

युक्त-प्रान्त में अल्पता की समस्या का एक पहलू अल्पसंख्यक जातियों की शिक्षा का प्रश्न है। सन् १९३१ की मनुष्य-गणना के अनुसार इस सूबे में—

हिन्दू ४ करोड़, १० लाख; मुसलमान ७१ लाख, ८४ हज़ार; और ईसाई २ लाख, ५ हज़ार हैं। अर्थात् इस सूबे की कुल आबादी के प्रत्येक १० हज़ार आदमियों में से हिन्दुओं की संख्या ८,४७५; मुसलमानों की १,४९०; और ईसाइयों की ३५ होगी। इस सूबे में जहाँ तक ईसाइयों की शिक्षा-सम्बन्धी प्रगति का सम्बन्ध है, वहाँ तक अन्य संप्रदायों के मुक़ाबिले में उनके पीछे होने का कोई सवाल ही नहीं उठता। ईसाइयों में शिक्षा का बहुत काफ़ी प्रचार है। उनमें साक्षरों की संख्या भी दूसरी जातियों की तुलना में काफ़ी अधिक है। ईसाइयों में शिक्षितों की संख्या-सम्बन्धी आँकड़ों को यहाँ दोहराने की जरूरत नहीं है, क्योंकि 'हमारे ईसाई भाई' शीर्षकवाले मेरे लेख में उनका सविस्तर ब्योरा पाठकों को मिल जायगा। इस लेख में तो हम केवल एक ही प्रश्न पर विचार करना चाहते हैं। अर्थात् क्या हिन्दुओं की तुलना में हमारे मुसलमान भाई कम शिक्षित हैं ?

× ×

पिछले ६०-७० साल से मुसलमान नेता, लेखक और अखबारनवीस यही राग अलापते चले आये हैं कि इस सूबे के मुसलमानों की शिक्षा-सम्बन्धी दशा बहुत ही शोचनीय है और जब तक सरकार की ओर से उन्हें विशेष सुविधायें न प्राप्त होंगी तब तक हिन्दुओं के मुक़ाबिले में दिन पर दिन वह बिगड़ती चली जायगी। क्यों बिगड़ती चली जायगी, इसका भी जवाब इन्हीं मुसलमान सज्जनों की ज़बानी सुन लीजिए। आप लोगों का कहना है कि हिन्दू मालदार हैं, लेकिन मुसलमान तुलनात्मक दृष्टि से ग़रीब हैं। एक आसानी से अपने बच्चे को पढ़ा सकता है, दूसरा अपनी ग़रीबी के कारण बच्चों की तालीम के मामले में उदासीन रहने के लिए मजबूर है। अँगरेज़ी हुकूमत ने मुसलमानों के इन दोनों ही कथनों को अनेक बार स्वीकार किया और उनमें शिक्षा के प्रचार के नाम पर उन्हें वक़्तन-फ़वक़्तन तरह-तरह की रियायतें और सहूलियतें देकर अपनी हुकूमत के प्रति उनकी राज्य-भक्ति को चिरस्थायी बनाने का एक सरल साधन ढूँढ़ निकाला। मुसलमानों की बिगड़ी हुई तालीमी हालत को सुधारने की चिन्ता प्रकटकर अँगरेजी हाकिमों ने अपने को उनका सच्चा हमदर्द और शुभ-चिन्तक सिद्ध करने की चेष्टा की। इस सहानुभूति-प्रदर्शन के पीछे चाहे कोई राजनैतिक भावना काम करती रही हो या न रही हो, लेकिन इसमें कुछ भी संदेह नहीं कि इस हरकत का मुसलमानों के ऊपर खासा असर पड़ा। एक इसका और भी परिणाम हुआ। वह यह कि हिन्दू और मुसलमान दोनों ही शिक्षा के प्रसार के मसले को साम्प्रदायिक दृष्टिकोण से देखने लगे। दोनों ही एक-दूसरे से आगे बढ़ जाने और अपने कल्पित विपक्षी को नीचा दिखाने की कोशिशें करने लगे। सूबे की जनता में शिक्षा फैल जाय, इसकी चिन्ता हमें उतनी न रह गई जितनी इस बात की चिन्ता हमें सताने लगी कि हमारे संप्रदाय-विशेष को शिक्षा की अधिक से अधिक सुविधायें प्राप्त हों, चाहे दूसरे संप्रदायवाले भले ही पिछड़े रहें। इसके अलावा मुसलमान नेता इस्लामी शिक्षा के प्रसार पर ज़ोर देकर इस बात की निरन्तर चेष्टा करते चले आये हैं और इसमें अँगरेज़ी हुकूमत ने समय समय पर उनको प्रोत्साहन दिया कि मुसलमान विद्यार्थियों के लिए इस्लामी मदरसे स्थापित किये जायें। शिक्षा के प्रबन्ध में भी भेद-भाव की आवश्यकता पर उन्होंने निरन्तर ज़ोर दिया। मुसलमानों की जितनी शिक्षा-सम्बन्धी माँगें हैं उन सबकी तह में आपको साम्प्रदायिक अलगाव की प्रेरणा विशेषरूप से सबल दिखाई पड़ेगी। राष्ट्रीय शिक्षा उनका ध्येय नहीं, उन्हें राष्ट्रीय हित की चिन्तना भी नहीं। सर सैयद अहमद की कोशिश थी कि मुसलमान हर बात में अपने को हिन्दुओं से जुदा समझें। जब तक वे जिन्दा रहे तब तक उन्होंने इसी ध्येय की सिद्धि के लिए प्रयत्न किया। उनके मरने के बाद उनके साथियों और उत्तराधिकारियों ने इसी नीति पर निरन्तर काम जारी रक्खा। हाकिमों ने उन्हें शह दी, सहानुभूति प्रकट की, और यथासम्भव उनकी इस भेद-भाव की नीति को शिक्षा के पवित्र क्षेत्र

पर भी आक्रमण करने में तरह-तरह की सहायता पहुँचाई। अलीगढ़ कालेज या विश्वविद्यालय फूट की इसी भावना का सर सैयद अहमदखाँ के ज़माने से सबसे बड़ा अड्डा बना चला आया है। मुसलमानों में जितनी राष्ट्र-विरोधिनी भावनायें आज आपको दिखाई देती हैं उन सबकी जड़ में अलीगढ़ का राष्ट्र-घातक विषैला प्रभाव है। एक मुसलमान सज्जन ने युक्त-प्रान्त की एसेम्बली में मुसलमानों की इस शिक्षा-सम्बन्धी साम्प्रदायिक नीति की उन्हीं शब्दों में व्याख्या की थी जिन शब्दों में उसकी व्याख्या आप लेख के इस अंश में पायेंगे। अप्रैल ४, सन् १९३८ को यू० पी० एसेम्बली में बोलते हुए उक्त सज्जन ने कहा था कि उनकी समझ में नहीं आता कि युक्त-प्रान्त में 'मुस्लिम शिक्षा' नामक चीज़ का क्या अर्थ हो सकता है। आगे चलकर उन्होंने पूछा—कैसे कोई होश-हवास के दुरुस्त रहते हुए इस तरह की शिक्षा की माँग कांग्रेस-गवर्नमेंट के सामने पेश कर सकता है? यह गवर्नमेंट तो राष्ट्रीय हुकूमत होने का दावा करती है। इन्हीं उक्त सज्जन ने यह भी कहा था कि जिस मुस्लिम शिक्षा की माँग यहाँ पेश की गई है वह राष्ट्र-विरोधी न हो, लेकिन उसको राष्ट्रीय शिक्षा-विधान से भिन्न स्वरूप देने की चेष्टा अवश्य की गई है। "इस बात की चेष्टा की जाती है कि मुसलमान लड़के और लड़कियों के लिए जुदा तालीम दी जाय। मुसलमान अध्यापक जुदा हों, मुसलमान लड़कों के लिए पाठ्य-क्रम जुदा हों, मुसलमान लड़कियों के लिए पढ़ाने की योजना भिन्न हो, और इन संस्थाओं के निरीक्षक भी जुदा हों।" मुसलमानों की माँगों की इस बेरहमी के साथ पोल खोलने के बाद उक्त मुस्लिम सज्जन ने कहा कि शायद मुसलमान दोस्त निकट भविष्य में यह भी प्रस्ताव लायें कि एक जुदा मुस्लिम वज़ीर हो, और मुसलमानों के शिक्षण और शासन के लिए एक जुदा मुस्लिम हुकूमत भी हो।

आइए, देखें कि हमारे सूबे के मुसलमानों की शिक्षा के मामले की वास्तविक दशा क्या है और उस दशा की तुलना करें हिन्दुओं की दशा के साथ। आगे के कोष्ठक में १९०१, १९११, १९२१, और १९३१ में प्रत्येक हज़ार मुस्लिम और हिन्दू मर्दों में साक्षरों की संख्या आपको मिलेगी—

प्रत्येक १,००० मर्दों में साक्षर

वर्ष	हिन्दुओं में	मुसलमानों में
१९०१	५६	५२
१९११	५८	५९
१९२१	६२	६५
१९३१	७०	७४

हिन्दू मर्दों में जहाँ ३० साल की इस अवधि में साक्षरों की संख्या ५६ से ७० हुई, अर्थात् जहाँ उनमें २२ प्रतिशत की वृद्धि हुई, वहाँ मुसलमानों में साक्षरों की संख्या ५२ के स्थान में ७४ हो गई, अर्थात् ४२ प्रतिशत की वृद्धि हुई। इस पर भी मुसलमानों का यह कहना है कि हिन्दुओं की तुलना में वे पिछड़े हुए हैं! जब इन आँकड़ों की ओर मुसलमान नेताओं का ध्यान आकर्षित किया जाता है तब वे बड़े तपाक से कह बैठते हैं कि हाँ जनाब, आप फ़रमाते तो सही हैं, लेकिन आप भूल जाते हैं कि हिन्दुओं में दलित जातियाँ भी शामिल हैं और इसी लिए हिन्दू-साक्षरों की तादाद कम दिखाई देती है। अगर हिन्दुओं की उच्च जातियों के साक्षर मर्दों की तुलना मुसलमान साक्षरों से की जाय तो आपको पता लग जायगा कि मुसलमान हिन्दुओं से कितने पिछड़े हैं। इसके जवाब में हमें सिर्फ़ इतना ही कहना है कि शिक्षा के मामले में यदि हिन्दुओं में पिछड़ी हुई जातियाँ हैं तो मुसलमानों में भी इसी तरह की दलित जातियों की संख्या कम नहीं है। हिन्दू-सम्प्रदाय के माननेवालों में दलितों की संख्या यदि २१ प्रतिशत है तो मुसलमानों में उनकी संख्या ५६ प्रतिशत है। हिन्दुओं की यदि उच्च जातियों के साथ मुसलमानों की तुलना करनी है तो वह तुलना होनी चाहिए मुसलमानों की सिर्फ़ उच्च जातियों के साथ। शिक्षा की दृष्टि से जैसे हिन्दुओं में वैसे ही मुसलमानों में भी उच्च और नीच जातियाँ एक-सी विद्यमान हैं। शिक्षा के प्रसार में घटती-बढ़ती का कारण साम्प्रदायिक नहीं है, किन्तु साम्पत्तिक है। शहरों और क़स्बों के रहनेवाले हिन्दू और मुसलमान मर्दों में, देहातों की तुलना में, अधिक साक्षर मिलेंगे। इसी तरह देहात में बसनेवाली हिन्दू और मुसलमान जातियों में खेतिहर जातियों की तुलना में उन जातियों में अधिक साक्षर हैं जो कारीगर हैं। इस लेख के अन्त में पाठकों को एक

परिशिष्ट मिलेगा, जिसमें हमने हिन्दू और मुसलमानों की विभिन्न जातियों में प्रतिशत साक्षरों की संख्या दे दी है। उससे हमारे उपर्युक्त कथन का समर्थन हो जायगा।

× × ×

हिन्दू पिछड़े हैं या मुसलमान—इस बात को जाँचने की साक्षरों की कसौटी के अतिरिक्त एक दूसरी भी कसौटी हमारे पास मौजूद है। वह है विश्वविद्यालयों, कालेजों और सब तरह के स्कूलों में शिक्षा पानेवाले विद्यार्थियों की तुलना।

× × ×

सूबे में मुसलमानों की कुल आबादी कुछ कम १५ सैकड़ा है। प्रारम्भिक शिक्षा पानेवाले सब विद्यार्थियों में मुस्लिम विद्यार्थियों की संख्या सन् १९१९-२० में १८, १९२३-२४ में १९, १९२७ में १७, प्रतिशत थी १९३७-३८ में। सूबे के तमाम प्राइमरी स्कूलों में पढ़नेवाले विद्यार्थियों की संख्या १२ लाख २१ हज़ार थी, जिनमें से २ लाख ४० हज़ार मुस्लिम विद्यार्थी थे, अर्थात् कुछ कम २० सैकड़ा थे। इसी तरह दर्जा ५ से लेकर दर्जा १० तक की उच्च कक्षाओं में मुसलमान विद्यार्थियों की संख्या १७ प्रतिशत थी। ३१ मार्च, १९३८ में विश्वविद्यालयों और कालेजों में मुसलमान विद्यार्थियों की संख्या १९ प्रतिशत थी; क़ानून पढ़नेवाले विद्यार्थियों की संख्या कुछ कम २३ प्रतिशत; मेडिकल कालेज में २१ प्रतिशत; ट्रेनिङ्ग कालेजों में कुछ कम ३० प्रतिशत थी। १९३८ में जितने विद्यार्थियों ने एम० ए० पास किया उनमें कुछ कम २२ प्रतिशत मुसलमान थे। इनकी संख्या एम० एस-सी० में उत्तीर्ण होनेवालों में ..., बी० ए० में कुछ कम २१, बी० एस-सी० में कुछ कम १४, बी० टी० या एल० टी० में कुछ कम ३७ प्रतिशत थी। इंटरमीडियट दर्जों में मुस्लिम विद्यार्थियों की संख्या २२ से कुछ अधिक प्रतिशत थी। इंटरमीडियट परीक्षा में उत्तीर्ण विद्यार्थियों में मुसलमान विद्यार्थियों की संख्या १८ और हाई स्कूल परीक्षा में उत्तीर्ण विद्यार्थियों में लगभग १९ प्रतिशत थी। हाई स्कूल की कक्षाओं में शिक्षा पानेवालों में २१ से कुछ अधिक प्रतिशत विद्यार्थी मुसलमान हैं।

इन आँकड़ों के होते हुए भी मुसलमानों का यह कहना है कि हिन्दुओं से वे तालीम में पिछड़े हैं। अपने कथन के समर्थन में वे एक दलील पेश किया करते हैं, जिसका यहाँ पर उल्लेख कर देना अनुचित न होगा। उनका कहना है कि मुसलमान और हिन्दू विद्यार्थियों की तुलना करने के पहले हिन्दुओं की संख्या में से दलितों की संख्या निकाल देना चाहिए।

आँकड़े पूर्णाङ्कों में (केवल मर्द और बच्चे)

	मर्द (हज़ार में)	विद्यार्थियों की संख्या (हज़ार में)	प्रतिशत
कुल आबादी	२५,४००	१,४२७	५.६
हिन्दू—	२१,५००	१,१५४	५.०
(१) दलित	५,०००	१५९	३.०
(२) अदलित	१६,५००	९८५	६.०
मुस्लिम	३,८००	२६४	७.०
ईसाई	८८	५.८	६.३

हिन्दू विद्यार्थियों में से दलितों की संख्या को निकाल देने पर भी मुसलमान विद्यार्थियों की संख्या हिन्दुओं के अदलित विद्यार्थियों की संख्या से अधिक बैठती है। जहाँ अदलित हिन्दू विद्यार्थी ५८ हैं, वहाँ मुसलमान विद्यार्थी १७ मिलते हैं। यदि मुसलमानों में से भी हम दलितों की संख्या को निकाल दें जैसा कि हिन्दुओं के विषय में हमने किया है—और कोई कारण नहीं मालूम होता कि ऐसा क्यों न किया जाय—तो हिन्दू-सम्प्रदाय की अदलित जातियों के विद्यार्थियों की संख्या मुस्लिम अदलित जातियों के विद्यार्थियों की संख्या की तुलना में और भी अधिक कम बैठेगी।

कहा जाता है कि मुसलमानों में शिक्षा का प्रसार इसलिए कम है कि शिक्षा-विभाग में मुसलमान मुलाज़िमों की तादाद थोड़ी है। कांग्रेसी मुसलमान भी इस शिकायत को सही मानते हैं और खुल्लम-खुल्ला इस बात का आन्दोलन किया करते हैं कि शिक्षा-विभाग में मुसलमानों को अधिक नौकरियाँ दी जायँ। उदाहरण के लिए युक्त-प्रान्त की एसेम्बली के सदस्य डाक्टर हुसेन ज़हीर को ले लीजिए। एसेम्बली में मुस्लिम शिक्षा-विषयक एक प्रस्ताव पर बहस हुई। ४ अप्रैल, १९३८ को इसी प्रस्ताव पर बोलते हुए आपने यह फ़रमाने की कृपा की थी। आपने कहा कि वे इस बात को तसलीम करते हैं कि शिक्षा-विभाग में मुस्लिम अध्यापकों की कमी है। इस सम्बन्ध में आपने

कुछ आँकड़े भी दिये। आपने कहा कि इंटरमीडियट कालेजों और हाई स्कूलों में मुसलमान अध्यापकों की संख्या हज़ार में सिर्फ़ २३५ है। आपकी राय में इनकी संख्या २३५ के बजाय लगभग ३८० होनी चाहिए, क्योंकि मुसलमानों की नागरिक आबादी ३८ फ़ी सदी से अधिक है। आपने यह भी कहा कि सूबे के पूर्वी ज़िलों के देहाती मदरसों में कहीं कहीं ६ प्रतिशत से भी कम मुसलमान अध्यापक हैं। डाक्टर हुसेन ज़हीर पढ़े-लिखे आदमी हैं और कांग्रेसी हैं। इसी लिए उनके मुख से इस तरह की बातों को सुनकर हमें अचरज होता है। हमारा अचरज और भी बढ़ जाता है जब हम यह देखते हैं कि उन्होंने उपर्युक्त आँकड़ों को देते हुए २१ मार्च, १९३६ के यू० पी० गज़ट का हवाला दिया है। इस गज़ट के आठवें भाग में ८२ और ८३ पृष्ठ पर शिक्षा-विभाग के तत्कालीन डाइरेक्टर ने शिक्षा-विभाग में नियुक्त मुस्लिम मुलाज़िमों की संख्या का विस्तार के साथ वर्णन किया है। डाइरेक्टर की इस रिपोर्ट को डाक्टर ज़हीर ने बोलने के पहले देखा भी था। उन्हीं के भाषण में इस बात का प्रमाण मौजूद है कि उन्होंने इस रिपोर्ट को न सिर्फ़ देखा ही था, बल्कि इसे ध्यान से पढ़ा भी था। इस सम्बन्ध में डाइरेक्टर ने जो कुछ कहा है उसका सार हम नीचे के कोष्ठक में दे रहे हैं—

शिक्षा-विभाग में मुसलमान मुलाज़िमों की प्रतिशत संख्या—

इंटरमीडियट संस्था	सौ में कितने मुसलमान हैं
(१) इंटरमीडियट कालेज और हाई स्कूल	२३.५
(२) प्राइमरी स्कूल;	
(अ) डिस्ट्रिक्ट बोर्ड	... १३.०३
(आ) म्यूनिसिपल बोर्ड	... २६.०६
(३) इंस्पेक्टर्स और असिस्टेंट इंस्पेक्टर	... ३५.३
(४) डिप्टी इंस्पेक्टर	... ३४.५
(५) सब-डिप्टी इंस्पेक्टर	... ३३

इन विभिन्न श्रेणियों में कुल मुलाज़िमों और मुस्लिम मुलाज़िमों की संख्यायें क्रमशः नीचे दी जाती हैं। (१) इंटरमीडियट कालेजों और हाई स्कूलों में कुल अध्यापकों की संख्या १,३७२ है, जिनमें से ३२२ मुसलमान हैं। देहाती और नागरिक प्राइमरी स्कूलों के ३१,७७८ अध्यापकों में ४,५३४ मुसलमान हैं। इंस्पेक्टिंग (निरीक्षण)-विभाग में मुलाज़िमों की कुल तादाद २८१ है, जिनमें ९३ मुस्लिम हैं। डाक्टर हुसेन ज़हीर साहब की माँग है कि इंटरमीडियट कालेजों और हाई स्कूलों में मुसलमान अध्यापकों की संख्या ३८ प्रतिशत होनी चाहिए, क्योंकि शहरों और क़स्बों में मुसलमानों की आबादी भी ३८ सैकड़ा है। क्या डाक्टर साहब आबादी के इस उसूल को और जगह भी लगाये जाने के सिद्धान्त को स्वीकार करेंगे? उस दशा में उन्हें यह कहना पड़ेगा कि इंस्पेक्टरों, असिस्टेंट इंस्पेक्टरों, डिप्टी इंस्पेक्टरों और सब-डिप्टी इंस्पेक्टरों में मुसलमानों की संख्या बहुत ज्यादा है और उसे घटाकर कम कर देना चाहिए। इसी तरह जिन डिस्ट्रिक्ट बोर्डों और म्यूनिसैल्टियों में आबादी के हिसाब से जिन मुसलमान अध्यापकों की संख्या अधिक है वहाँ उन्हें भी घटा देना चाहिए। शहरों और देहातों का भेद भी डाक्टर ज़हीर ने ख़ूब किया! इंटरमीडियट और हाई स्कूलों में मुसलमान अध्यापकों की संख्या १९३६ में भी १५ के बजाय २३½ थी। डाक्टर साहब को चाहिए था कि वे यह प्रस्ताव करते कि २३½ के बजाय इसे १५ कर देना चाहिए। ऐसा करना तो दूर रहा, उलटे आप यह फ़रमाते हैं कि २३½ की जगह ३८ कर देनी चाहिए! डाक्टर ज़हीर अपने को राष्ट्रवादी कहते हैं, इसी लिए हम यह कहेंगे कि उन्होंने मुस्लिम अध्यापकों की संख्या के सम्बन्ध में जो कुछ कहा, वह स के जोश में वह कह गये थे। उनकी निश्चित धारणा इतनी साम्प्रदायिक और संकीर्ण है, यह हम कदापि मानने के लिए तैयार नहीं हैं।

मुसलमानों में शिक्षा के फैलाने के लिए सरकार हर साल कई लाख रुपये की रक़म ख़र्च करती है। सन् ३७-३८ में इस मद में ४ लाख ६९ हज़ार रुपये ख़र्च हुए थे। मुसलमानों के साथ यह ख़ास रियायत है, और वह भी यह कह कर कि वे तालीम में पिछड़े हुए हैं, जब बात बिलकुल उलटी है। दलित जातियों की शिक्षा पर उसी साल में २ लाख ४१ हज़ार रुपये ख़र्च हुए, यद्यपि जन-संख्या में हिन्दू दलित मुसलमानों से कहीं अधिक हैं और शिक्षा में वे इनसे बहुत पीछे हैं। २ लाख ४१ हज़ार की रक़म भी अभी थोड़े ही दिनों से हिन्दू-दलितों में शिक्षा-प्रसार के लिए ख़र्च होने लगी है। लेकिन हिन्दू-दलितों में और

मुसलमानों में एक और भी अन्तर है। इस सूबे में मुसलमानों की माली हालत हिन्दुओं की माली हालत से कहीं अच्छी है। दलित हिन्दुओं की साम्पत्तिक दशा तो मुसलमानों की माली हालत के मुक़ाबिले में और भी अधिक ख़राब है। तालीम में हिन्दू ईसाइयों और हिन्दू दलितों से मुसलमान बहुत आगे बढ़े हुए हैं। फिर समझ में नहीं आता कि उनके साथ इस तरह की रियायतें क्यों की जाती रहीं या की जाती हैं। एक और भी प्रश्न यहाँ पर उठता है। जैसे हिन्दुओं में वैसे ही मुसलमानों में शिक्षा के मामले में पिछड़ी हुई जातियाँ मौजूद हैं। हम यह स्वीकार करते हैं कि शासन का यह अटल धर्म है कि वह पिछड़े हुए लोगों को आगे बढ़ाने की पूर्णरूप से चेष्टा करे। हमें दुःख है कि हिन्दुओं में पिछड़ी हुई जातियों के सुधार की ओर अभी थोड़े ही दिनों से जनता और सरकार का ध्यान गया है। लेकिन हमें इसका और भी अधिक शोक है कि मुसलमानों की उच्च जातियों को ख़ुश रखने के लिए अँगरेज़ हाकिम उन्हें शिक्षा के लिए विशेष सहायता तो देते रहे, लेकिन उन्होंने इस बात की कुछ भी पर्वा न की कि विशेष सहायता की रक़म मुसलमानों की पिछड़ी हुई जातियों की शिक्षा पर ख़र्च की जाती है या नहीं। मुसलमान नेता भी इस मामले में उदासीन रहे। मुसलमानों में यदि शिक्षा का अधिकाधिक प्रसार होना है तो यह तभी सम्भव होगा कि जब मुस्लिम दलित जातियों के बच्चों के पढ़ाने की ओर विशेष रूप से ध्यान दिया जायगा। मुसलमानों के नेताओं से इस सम्बन्ध में कोई आशा नहीं की जा सकती। उन्हें तो अपनी कुलीनता का नाज़ है, "रज़ीलों" से उन्हें कोई वास्ता नहीं है। जो इन "रज़ीलों" को मिलना चाहिए था, उसे य "कुलीन" बीच ही में हड़प करते रहे और उनकी यह चाल बेढंगी उस समय तक जारी रहेगी जब तक उसकी रोक-थाम का ख़ास तौर से इन्तज़ाम न किया जायगा।

हमारे मुसलमान भाई मतलब की बात को ख़ूब समझते हैं और अपना काम निकालना भी उन्हें ख़ूब आता है। अपना स्वार्थ सिद्ध करने के लिए वे तरह-तरह की माँगें पेश किया करते हैं और उन माँगों के समर्थन में हर तरह की दलीलों से काम लेने में उन्हें कभी किसी तरह का संकोच नहीं होता। इसी नीति का यह एक उदाहरण है कि वर्षों से उन्होंने सरकार और जनता को यह पाठ पढ़ाना शुरू किया कि मुसलमान तालीम में पिछड़े हुए हैं और इसलिए उनके साथ ख़ास रियायत होनी चाहिए। इसी पिछड़े होने की दुहाई देकर शिक्षा-विभाग में अधिकाधिक मुसलमानों की नियुक्ति की भी माँग बरसों से उन्होंने कर रक्खी है। शिक्षा में वे पिछड़े हों या न पिछड़े हों, यह उनके लिए एक गौण बात है। उन्हें तो फ़िक्र सिर्फ़ इस बात की है कि शिक्षा-विभाग में किस तरह मुसलमानों की संख्या बढ़े और किस तरह से अधिकाधिक परिमाण में सरकार से इमदाद के नाम पर रक़में काटी जायँ। राजनीति की चालबाज़ियों में कहते हैं, ग़लत बयानी एक बहुत ही तुच्छ दोष है।
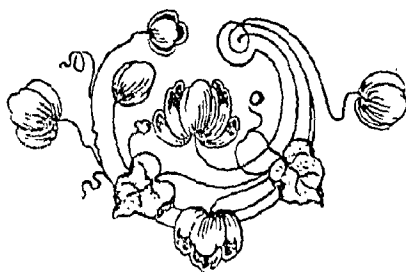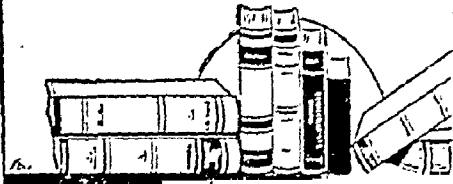
१—ज्योतिष-मीमांसा-दर्शनम्—लेखक, पण्डित ताराचन्द ज्योतिर्विद्, प्रकाशक, खेमराज श्रीकृष्णदास, श्री वेंकटेश्वर स्टीम प्रेस, बंबई हैं। पृष्ठ-संख्या ७२ और मूल्य अनिर्दिष्ट है।

इस छोटी सी पुस्तिका में लेखक महोदय ने फलित ज्योतिष के सिद्धान्तों को दार्शनिक युक्तियों-द्वारा प्रतिपादित करने का प्रयत्न किया है। मूल संस्कृत में है, जिसमें प्राचीन दार्शनिकों की सूत्रशैली का अनुसरण किया गया है। फिर प्रति सूक्त पर लेखक का स्वयंकृत संस्कृत तथा भाषा भाष्य है। ज्योतिष-शास्त्र के अनुरागी इससे लाभ उठा सकते हैं।

२–५ सस्ता-साहित्य-मंदिर-दिल्ली की ४ पुस्तकें—

(१) सप्त सरिता—लेखक, काका कालेलकर और अनुवादक, श्री हृषीकेश शर्मा हैं। मूल्य ।) और पृष्ठ-संख्या ४० है।

इसमें श्रीयुत कालेलकर के ७ निबंध हैं। सखी-मार्कण्डी, कृष्णा के संस्मरण, गंगा मैया, यमुनारानी, नदी पर नहर, सुवर्णदेश की माता और दक्षिण गंगा गोदावरी। सभी निबंध भारत की कुछ नदियों के नाम पर हैं। शैली भावपूर्ण है। काका जी की ही निकाली हुई "संशोधित वर्णमाला" के अनुसार जिसमें एक स्वर पर दूसरे स्वर की मात्रा बिना विकार या संधि हुए चढ़ाई जा सकती है—यह पुस्तक छापी गई है।

(२) सत्याग्रह क्यों, कब और कैसे?—लेखक, महात्मा गांधी, पृष्ठ-संख्या ५५ और मूल्य ३ आने है।

वर्तमान परिस्थितियों में कांग्रेस सत्याग्रह कब और किस प्रकार करेगी, इसी पर महात्मा गांधी के विचार इसमें दिये गये हैं। कांग्रेस-भक्तों के लिए पुस्तक समयानुकूल व आवश्यक है।

(३) राष्ट्रीय पंचायत—पृष्ठसंख्या ५५ और मूल्य ।) है।

इसमें "विधान-सभा" पर नेहरू जी, महात्मा जी, राजा जी, श्री आसफअली, श्री एम० एन० राय०, डा० पट्टाभि सीता रामैया व श्री सम्पूर्णानन्द के लेख व विचार संग्रह किये गये हैं।

(४) युद्ध-संकट और भारत—वर्तमान योरपीय महायुद्ध के संबन्ध में भारत का क्या कर्तव्य है, इसी पर इस पुस्तक में कांग्रेस के दृष्टिकोण से प्रकाश डाला गया है। पृष्ठसंख्या ४५, मूल्य ।) है।

६—व्यावहारिक जन्मनिरोध—लेखक, श्रीयुत ए० ए० खान, एम० एस-सी०, प्रकाशक, भार्गव पुस्तकालय, गायघाट, बनारस है। पृष्ठसंख्या ५७१ और सजिल्द पुस्तक का मूल्य ४) है। छपाई अच्छी है।

देश की ग़रीबी, संयम की कमी और जन-संख्या की वृद्धि के कारण सन्तति-निरोध का प्रश्न आज-कल अधिक-से-अधिक महत्त्व, पाता जा रहा है। पहले योरप के देशों में ही इसकी अधिक चर्चा थी, पर आधुनिक वैज्ञानिक युग ने भारत के लिए भी इसे आवश्यक बना दिया है। इस विषय पर अँगरेज़ी में अनेक सुन्दर व सर्वांगपूर्ण पुस्तकें पहले से ही मौजूद हैं। अब कुछ दिनों से उन्हीं के आधार पर हिन्दी में भी कई अच्छी-अच्छी पुस्तकें निकल रही हैं। प्रस्तुत पुस्तक भी उन्हीं में से एक है।

इसमें विद्वान् लेखक ने संतति-निरोध के इतिहास, आवश्यकता, अनिवार्यता व गुणागुणों पर वैज्ञानिक दृष्टि से प्रकाश डालते हुए उसके लिए प्राप्त व उपयुक्त साधनों का सचित्र विवेचन किया है। भारत की जो फ़र्मे सन्तति-निरोध के लिए आवश्यक सामग्री अपने स्टाक में रखती तथा बेचती हैं उनके भी पते दे दिये हैं। अँगरेज़ी में इस विषय पर जो अच्छी अच्छी पुस्तकें निकली हैं उनके नाम भी पुस्तक के अन्त में गिना दिये हैं। इस प्रकार विवेच्य विषय के संबन्ध में सभी आवश्यक सूचनाओं का समावेश इस पुस्तक में कर देने का लेखक महोदय ने पूरा प्रयत्न किया है। भाषा सर्वसाधारण की समझ में आने योग्य

है। वर्णन-शैली विशद व सुलझी हुई है। इस विषय से दिलचस्पी रखनेवालों के लिए पुस्तक संग्रहणीय है।

७—योरोप का रावण—हर हिटलर— लेखक, श्रीयुत लक्ष्मणप्रसाद भारद्वाज, प्रकाशक, नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ, हैं। पृष्ठ-संख्या २०३ और मूल्य १) है।

हिटलर के आतंक ने योरप के राष्ट्रों की नींद हराम कर दी है। यहाँ तक कि मित्रराष्ट्रों की संगठित अदम्य शक्ति भी रात-दिन इसी फ़िक्र में रहती है कि किस प्रकार यह हिटलररूसी बीमारी योरप से दूर हो सके। प्रस्तुत पुस्तक में इन्हीं हिटलर महोदय का वृत्तान्त, जैसा कुछ कि हिन्दुस्तान के हिन्दी-अँगरेज़ी के अख़बारों, पेनगूइन सीरीज़ की पुस्तकों, पंडित जवाहरलाल नेहरू के लेखों आदि से संग्रह किया जा सकता था, संग्रह करके रोचक ढँक में सजा दिया गया है। भाषा सरल और शैली रोचक है। समस्त पुस्तक पढ़ जाने के बाद हिटलर का जो चित्र हमारे मानस-पटल पर बनता है वह एक धूर्त्त, कामुक या नपुंसक, मूर्ख, दुराचारी, अन्यायी और निर्दयी राक्षस का है, जिसका जन्म ही शायद संसार भर में संकट का विस्तार करने के लिए हुआ है। इसी लिए लेखक महोदय ने उसकी तुलना रावण से की है। हमारी वर्तमान परिस्थितियों की दृष्टि से हिटलर का इस प्रकार का चित्रण उचित ही हुआ है। पूरक के ढंग पर हिटलर के पार्श्ववर्त्तियों, उसके पोलेंड तक के आक्रमण और अत्याचारों का भी विवरण दे दिया गया है। नक़शों और चित्रों के दे देने से पुस्तक की उपयोगिता और सुन्दरता की वृद्धि हो गई है।

८—भारत और संघ-शासन—लेखक डा० ब्रजमोहन शर्मा एम० ए०, डी० लिट, प्राक्कथन-लेखक, आचार्य नरेन्द्रदेव जी, प्रकाशक, अपर इंडिया पब्लिशिंग हाउस, अमीनुद्दौला पार्क, लखनऊ हैं। पृष्ठ-संख्या १०३, सजिल्द, का मूल्य १) है।

प्रस्तुत पुस्तक में संघशासन के विषय में बहुत-सी ज्ञातव्य बातें एकत्रित की गई हैं, किन्तु सारी पुस्तक में पल्लवग्राहिता के उदाहरण मौजूद हैं, जैसे लेखक ने लिख दिया है कि "रूस का संघ-विधान अन्य संघ-विधानों से निराला है" किन्तु उन्होंने यह स्पष्ट करने का कष्ट न किया कि उस विधान का निरालापन किस बात में है तथा यह निरालापन अनुकरणीय है या वर्जनीय। १९३९ में छपी हुई पुस्तक में यह लिखना यथेष्ट नहीं है कि "मिस्टर स्टेलिन ने इस विधान मेंमहत्त्व-पूर्ण परिवर्त्तन करने का आयोजन किया है।" वह महत्त्व-पूर्ण परिवर्त्तन क्या है, इसकालेखक ने कहीं इशारा नहीं किया। मैं समझता हूँ, रूस के संघ-शासन के विषय में लेखक को एक सम्पूर्ण अध्याय ही लिखना चाहिए था।

१९३७ के इंडिया-एक्ट में प्रस्तावित संघशासन का संक्षिप्त विवरण तो इस पुस्तक में है, किन्तु वह क्यों राष्ट्रीय विचार के लोगों को ग्राह्य नहीं हुआ, यह लेखक ने स्पष्ट नहीं किया। सच बात तो यह है कि लेखक का दृष्टिकोण तथा प्रतिपादन-प्रणाली न तो वैज्ञानिक ही है, न राष्ट्रीयता की पुट्युक्त ही है। लेखक ने 'किस प्रकार का संघ-शासन भारत के लिए उपादेय है' नाम से जो अध्याय लिखा है उसमें वे एक प्रतिक्रियावादी के रूप में दृष्टिगोचर हो रहे हैं। वे कहते हैं—"ऊपर के भवन में सदस्यों की संख्या २५० होनी चाहिए, जिनमें १०० देशी राज्यों के और १५० ब्रिटिश भारत के हों। देशी राज्यों के प्रतिनिधियों के बारे में, बड़े राज्यों को तो राजाओं-द्वारा नियुक्त व्यक्ति भेजने का अधिकार हो।" अन्तिम वाक्य लेखक की राय का द्योतक है। आश्चर्य है कि विद्वान् लेखक १९३९ में देशी राज्यों की प्रजा का प्रतिनिधित्व राजाओं पर छोड़ते हैं। ...... पुस्तक इस अर्थ में बड़ी गुमराहकुन है, विद्वान् लेखक के कुछ स्वतन्त्र विचार न होने के कारण पुस्तक प्राणशून्य हो गई है।

—मन्मथनाथ गुप्त

९—हिन्दुस्तानी मुहावरे—लेखक, पंडित अम्बिकाप्रसाद, वाजपेयी प्रकाशक, श्रीयुत उपेन्द्रनारायण वाजपेयी, मुक्ताराम बाबू स्ट्रीट, कलकत्ता हैं। २७४ पृष्ठ की पुस्तक का मूल्य १।) है।

मुहावरे भाषा की जान होते हैं। जो कवि या लेखक मुहावरों का प्रचुर और उचित प्रयोग नहीं करता उसकी भाषा लद्धड़ होती है। हम नित्य देखते हैं कि उर्दू ज़बान में कही हुई कोई बात जितनी चुभती लगती है, उतनी हिन्दी में कही हुई नहीं लगती, क्योंकि हिन्दीवाले मुहावरों के प्रयोग की ओर अधिक ध्यान नहीं देते।

मातृभाषा के मुहावरे तो परम्परा से ही सीखे जाते हैं, पर दूसरी भाषा के मुहावरे सीखने के लिए 'मुहावरों की पुस्तक' या मुहावरों के कोष की आवश्यकता पड़ती है। इसी आवश्यकता की पूर्ति के लिए—जैसा कि लेखक महोदय ने भूमिका में लिखा है—इस पुस्तक की रचना हुई है। इसमें हिन्दी में प्रचलित मुहावरों का संग्रह अकारादिक्रम से किया गया है, साथ में प्रत्येक मुहावरे का सरल अर्थ लिख दिया है। एक-एक प्रयोग भी दे दिया गया है। प्रत्येक मुहावरे के मुक़ाबिले का अँगरेज़ी मुहावरा भी दे देने से अँगरेज़ी पढ़े-लिखे पाठकों के लिए भी पुस्तक उपयोगी बन गई है। वे इसकी सहायता से हिन्दी-मुहावरों के अर्थ सहज ही हृदयंगम कर सकेंगे।

अन्य प्रान्तों के छात्रों के लिए तो यह पुस्तक उपयोगी है ही, हिन्दी-प्रान्तों के लेखकों के लिए भी बड़े काम की है। श्रद्धेय वाजपेयी जी अपनी वृद्धावस्था में भी पुस्तकें लिखकर हिन्दी की अमूल्य सेवा कर रहे हैं। इसके लिए हिन्दी-भाषी उनके चिर-ऋणी रहेंगे। हम ईश्वर से प्रार्थना करते हैं कि वे अभी बहुत समय तक हमारा पथ-प्रदर्शन करते रहें।

१०—वेदविज्ञान-मीमांसा—प्रकाशक, श्रीयुत कैलाश-नाथ भार्गव, भार्गव-भूषण प्रेस, काशी हैं। मूल्य ॥) है।

गोयनका-संस्कृत-महाविद्यालय, काशी, के वेदाध्यापक वेदाचार्य पंडित वेणीराम शर्मा गौड़लिखित उपर्युक्त पुस्तक संस्कृत में नवीन ढंग की है। वैदिक साहित्य के अगाध पंडितों की कमी न होते हुए भी तद्विषयक साधारण ज्ञान के लिए कोई साधन नहीं था। आशा है, यह पुस्तक संस्कृत के पंडित-समाज के लिए बहुत उपकारी सिद्ध होगी। इसमें संहिता, ब्राह्मण और उपनिषद् आदि वेद के सब विभागों का यथेष्ट विश्लेषण किया गया है। इसको पढ़कर कोई भी प्राचीन साहित्य के साथ अपना सम्पर्क बड़ी आसानी से स्थापित कर सकता है। उस पुरातन साहित्य में प्रवेश करने का ही साहस बहुत कम विद्वानों को होता है, लेकिन उनके लिए अब यह पुस्तक 'अन्धे की लकड़ी' साबित होगी। प्रेस की त्रुटियाँ बहुत रह गई हैं जो आशा है, अगले संस्करण में सुधार दी जायँगी।

—प्रसाद मिश्र

११—दुर्गा—लेखक, श्री विश्वनाथलाल 'शैदा' बी० ए०, एल-एल० बी० और प्रकाशक, श्री श्यामबहादुर-लाल, मंत्री, नगर-कांग्रेस-कमेटी, आजमगढ़ हैं। पृष्ठ-संख्या ८४ और मूल्य ॥) है।

दुर्गा की रचनाओं में एक अपनी निजी विशेषता है। इसका कवि हाला-प्यालावादी या मज़ार का उपासक नहीं है। वह सीधी-सादी और चुनी हुई भाषा में जो कुछ गाता है—वह उत्कृष्ट कोटि का न होने पर भी जन-साधारण के पढ़ने के योग्य होता है। राष्ट्र-प्रेम के रंग में रँगी होने के कारण उसकी वाणी तथा कथित 'कला' के ऊँचे आसमान से उतरकर जनभावना के सम-स्तर पर बसती है और वहीं से वह निराश मानवता को सन्देश देती है—

"क्यों हताश से पड़े हुए, हो उन्मन
झलकों से तूफ़ान उठाना सीखो।"

इसमें लेखक की २६ रचनायें हैं, जिनमें से अधिकांश कांग्रेस के जुलूसों, प्रभात-फेरियों और झण्डाभिवादन के अवसरों पर गाने योग्य हैं। जनसाधारण-द्वारा अधिक-से-अधिक गुनगुनाया जाना ही ऐसी रचनाओं की सफलता का प्रमाण होता है, क्योंकि इसी प्रयोजन से वे लिखी जाती हैं। कला के खोजियों को भले ही इनमें 'बहुत कुछ' न मिले।

१२—१९४०—लेखक, डाक्टर सत्यनारायण और श्रीयुत ज्ञानचन्द्र गौतम; प्रकाशक, काशी-विद्यापीठ, बनारस हैं। पृष्ठ-संख्या १५२ और मूल्य पन्द्रह आने है।

सन् १९४० ऐतिहासिक दृष्टि से बड़ा महत्त्वपूर्ण समझा जायगा। इस सन् में न जाने कितने स्वतंत्र राष्ट्रों के नाम केवल इतिहास के पन्नों पर रह जायँगे, संसार के नक़्शों में नहीं, और न जाने कितने नये देश बनेंगे। परन्तु ये घटनायें, जो आज हम अख़बारों में पढ़ रहे हैं, अकस्मात् घटित नहीं होतीं, इनकी बहुत बड़ी पृष्ठ-भूमि रहती है। इस पृष्ठ-भूमि का अध्ययन पूर्णरूप से किये बिना वर्तमान घटनाओं का रहस्य अच्छी तरह समझ में नहीं आता। प्रस्तुत पुस्तक इस विषय पर बड़ी उपयोगी और हिन्दी में अपने प्रकार की पहली है। इसमें लेखक महोदय ने १९१९ से लेकर १९४० तक की संसार की गति विधियों—वार्साई की सन्धि, डैन्यूब-क्षेत्र, जर्मनी-इटली संयोग, पोलैंड, पश्चिमी मोर्चे की क़िलेबन्दियाँ, उत्तर

सागर का युद्ध, स्कैंडेनेविया, वाल्टिक प्रदेश, फ़िनलैंड, वालकान प्रायद्वीप, सोवियट रूस, भूमध्य-सागर, पश्चिमी एशिया में तेल की लड़ाई, उक्रेन, लाल सागर और अरब आदि पर पूरा प्रकाश डाला है। इसे ध्यानपूर्वक पढ़ जाने से पश्चिम में आये दिन घटित होनेवाली घटनाओं का रहस्य समझ में आ जाता है। पुस्तक के उत्तरार्द्ध में भारत, चीन-जापान तथा जापान-रूस में चलनेवाले संघर्ष का भी विवेचन कर दिया गया है।

जो लोग समाचार-पत्रों को पढ़कर संसार की ताज़ी से ताज़ी जानकारी रखना चाहते हैं उन्हें यह पुस्तक अवश्य पढ़नी चाहिए।

१३—द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद, अर्थात् समाजवाद की फिलासफी—लेखक, श्री हीरालाल पालित दर्शनशास्त्री प्रकाशक, श्रीनाथ पालित विशारद, ३९ केशरी कार्यालय, कचहरी रोड, गया हैं। मूल्य १।) व पृष्ठ-संख्या २४८ है।

जैसा कि पुस्तक के नाम से ही प्रकट है, प्रस्तुत पुस्तक में समाजवाद के सिद्धान्तों का विवेचन किया गया है। भारत ही नहीं, वरन सम्पूर्ण भारत में आज-कल समाजवाद की एक लहर सी चल रही है। इस नवीन आन्दोलन के प्रवर्तक हैं मार्क्स और एंगेल्स। मार्क्सवाद का दर्शनशास्त्र है द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद। अतएव समाजवाद के सिद्धान्तों को समझने के लिए यह आवश्यक है कि द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद का भले प्रकार परिचय प्राप्त कर लिया जाय। हिन्दी की पत्र-पत्रिकाओं में इधर कुछ दिनों से समाजवाद-विषयक चर्चा हो रही है, परन्तु समय को देखते हुए समाजवाद-सम्बन्धी साहित्य का हिन्दी में अभी एक प्रकार से अभाव ही है। इस विषय की जो किताबें प्रकाशित हुई हैं उनसे समाजवाद की दार्शनिक जानकारी नहीं प्राप्त होती। प्रस्तुत पुस्तक ने हिन्दी के इसी अभाव को पूरा करने का प्रयत्न किया है। समाजवाद के भिन्न भिन्न पहलुओं पर इसमें दार्शनिक दृष्टिकोण से प्रकाश डाला गया है।

पुस्तक की भाषा अत्यन्त क्लिष्ट होने के कारण यह सर्वसाधारण के लिए सुबोध नहीं है। पुस्तक का विषय सर्वसाधारण के काम का होने के कारण यदि पुस्तक की भाषा सरल तथा बोलचाल की होती तो अधिक अच्छा था। हम यह स्वीकार करते हैं कि गूढ़ विषयों की विवेचना करने में भाषा क्लिष्ट हो ही जाती है, फिर भी पुस्तक की भाषा विषय के अनुरूप नहीं कही जा सकती। कहीं कहीं पर तो भावों की शृंखला का टूट जाना बहुत ही अखरता है। तो भी पुस्तक ज्ञानवर्धक है और राजनीति के पाठकों के निकट संग्रहणीय है।

१४—उर्मिला—लेखिका, श्रीमती शान्तिदेवी सिंहल, प्रकाशक, सद्ज्ञान-सदन, इन्दौर हैं। मूल्य ॥।) और पृष्ठ-संख्या ८८ है।

प्रस्तुत पुस्तक लेखिका का कविता-संग्रह है। हिन्दी-साहित्य को उनकी यह प्रथम देन है। इसलिए इसमें कुछ त्रुटियाँ होना स्वाभाविक ही हैं। फिर भी कविताओं से जान पड़ता है कि लेखिका के सामने एक उज्ज्वल भविष्य है। कविता-क्षेत्र में कवयित्री का यह प्रथम पग होने के कारण उसकी कोई न तो एक शैली है और न भावसामंजस्य है! एक स्थान पर कवयित्री का हृदय गा उठता है—

पहन कर परिधान कविता
का निकल दे हृदय दुःख,
आज मेरे आँसुओं में ही
छिपा है मम क्षणिक सुख।
एक दिन तुझको रुलायेंगे यही उद्गार मेरे!

परन्तु उसे विश्वास है कि—

रो चुकने पर अधिकाधिक
हँसने की वेला आयेगी।
सूख चुकी जो आशा डाली
फिर से वह हरियायेगी।

जहाँ कवयित्री ने इस प्रकार की कवितायें लिखी हैं, वहाँ वे समाज की वर्तमान दशा से भी प्रभावित हुई हैं। 'क्रान्ति के युग में', 'कृषक के प्रति', 'मज़दूर', 'अछूतों का उपालम्भ' आदि कवितायें इसी दूसरी कोटि की हैं। कविताओं में स्थान स्थान पर छन्दोदोष तथा पुनरुक्ति पाठक को खटकने लगती है। आशा है, कवयित्री जी भविष्य में हिन्दी-साहित्य को अधिक अच्छी चीज़ दे सकेंगी।

१५—हिन्दी की उत्कृष्ट कहानियाँ—सम्पादक, श्री देवव्रत व प्रकाशक, नवशक्ति-प्रकाशन-मन्दिर, पटना हैं।

मूल्य अजिल्द का ।|) व सजिल्द का ।||) है। पृष्ठसंख्या १२६ है।

इस पुस्तक में हिन्दी की १२ कहानियाँ संगृहीत हैं, जो लेखक महोदय के विचार से हिन्दी की सर्वोत्कृष्ट कहानियाँ हैं। हिन्दी के इस युग में जनता की रुचि जिस प्रकार कहानी-साहित्य की ओर बढ़ रही है उसे देखते हुए ऐसे संग्रहों की आवश्यकता से इनकार नहीं किया जा सकता। परन्तु किन्हीं कहानियों को सर्वोत्कृष्ट कह देना एक व्यक्ति के वश की बात नहीं है, क्योंकि वह अपनी व्यक्तिगत रुचि से प्रभावित हो सकता है।

श्री प्रेमचन्द की 'सुजानभगत', श्री चन्द्रधर शर्मा गुलेरी की 'उसने कहा था', कौशिक जी की 'इक्केवाला,' श्री शिवपूजनसहाय की 'कहानी का प्लाट' आदि कहानियाँ निस्सन्देह उच्च कोटि की हैं, क्योंकि उन्हें अधिकांश विद्वानों ने इसी प्रकार की माना है; पर शेष कहानियों के विषय में हमारा लेखक महोदय के साथ मतैक्य नहीं है। फिर भी पुस्तक उपादेय है और हिन्दी में इस प्रकार के अनेक संग्रह निकालने की ओर प्रकाशकों को प्रेरणा देती है।

१६—प्रेमियों के पत्र—लेखक, श्री नरसिंहराम शुक्ल और प्रकाशक, चाँद कार्यालय प्रयाग है। मूल्य १।।), पृष्ठसंख्या १५० है।

प्रस्तुत पुस्तक दो प्रेमियों के प्रेम-प्लावित हृदयों का उद्गार है, जिसे उन्होंने लेखनी-द्वारा पत्र रूप में कागज़ पर अंकित कर दिया है। पत्रों में जहाँ प्रणय की, विरह की सरिता बहती है, वहाँ उनमें देशप्रेम, पातिव्रत, वात्सल्य आदि का स्रोत भी उमड़ा पड़ता है। स्त्रियों से सम्बन्ध रखनेवाले प्रायः सभी विषयों की इसमें विवेचना की गई है।

भाषा सरल तथा प्रभाव-पूर्ण है। लेखनशैली रोचक है। पढ़ने में उपन्यास का सा आनन्द आता है। स्त्रियों के लिए यह पुस्तक उपयोगी व संग्रहणीय है।

—अनन्तप्रसाद विद्यार्थी बी० ए०

१७—साहित्यकारों की आत्मकथा—सम्पादक, श्री देवव्रत जी शास्त्री हैं। मूल्य अजिल्द का ।||), सजिल्द का १) है। पृष्ठ संख्या ११० है। पता—नवशक्ति प्रकाशन मंदिर, पटना है।

इसमें आचार्य महावीरप्रसाद जी द्विवेदी, श्री प्रेमचन्द जी, श्री अम्बिकाप्रसाद जी वाजपेयी, श्री कृष्णदत्त पालीवाल तथा श्री बालकृष्ण शर्मा की आत्मकथायें हैं। जहाँ तक हम जानते हैं, हिन्दी-क्षेत्र में यह अपने प्रकार का पहला ही प्रयत्न है कि कुछ साहित्यकारों की कथा जो उन्होंने स्वयं लिखी हों, इकट्ठी करके एक पुस्तक प्रकाशित की जायें। सबसे बड़ी कठिनाई यह है कि ऐसी आत्मकथा लिखनेवालों की संख्या अभी तक बहुत ही कम है। इस पुस्तक के सम्पादक जी को विशेष रूप से उद्योग करना पड़ा है तब वे इसमें सफलता प्राप्त कर सके हैं; श्री नवीन जी ने स्पष्टतः लिख भी दिया है "मैंने बहुत कोशिश की कि मैं उनके हत्थे न चढ़ने पाऊँ।" हम उनकी ऐसी 'नम्रता' की वास्तविकता को साहित्य-क्षेत्र के लिए लाभप्रद नहीं मान सकते। इसके सम्पादक महोदय की इच्छा और भी ऐसी पुस्तकें निकालने की है। हम चाहते हैं कि हमारे साहित्यसेवी इसमें उन्हें अपना हार्दिक सहयोग दें। अन्य भाषाओं में ऐसे साहित्य की कमी नहीं है। आचार्य द्विवेदी जी ने 'आचार्य' की पदवी के बारे में तथा अपने 'विनता के आवेग' के सम्बन्ध में जो कुछ लिखा है उससे आजकल के 'विश्व-साहित्यकार' बहुत कुछ सीख सकते हैं। श्री वाजपेयी जी की जीवनी से अब से ३८ वर्ष पहले स्वदेशी-आन्दोलन-काल की गतिविधि पर, तथा श्री प्रेमचन्द जी की आत्मकथा से शिक्षा-विभाग एवं सभी सरकारी विभागों के अफ़सरों की नीति पर एवं लेखक में देशभक्ति की जो उत्कट भावना थी उसके रहस्य पर, श्री पालीवाल जी तथा नवीन जी की आत्मकथाओं से प्रतापी 'प्रताप' के प्रारम्भिक और पूर्ववर्ती मध्यकाल पर जो प्रकाश पड़ता है वह अनुपम तथा शिक्षाप्रद है। ऐसी पुस्तकें सर्वथा अभिनन्दनीय हैं।

—विजय वर्मा

हिन्दू-मुस्लिम-उलझन

महात्मा गांधी 'हरिजन' में लिखते हैं--

बँटवारे की योजना ने हिन्दू-मुस्लिम मसले का रूप ही बदल दिया है। मैंने इसको असत्य कहा है। इसके साथ कोई समझौता हो नहीं सकता। लेकिन साथ ही साथ मैंने यह भी कहा है कि अगर ८ करोड़ मुसलमान बँटवारा चाहते हैं तो बावजूद हिंसक या अहिंसक विरोध के, दुनिया की कोई ताक़त उसे रोक नहीं सकती। सम्मानपूर्ण इक़रारनामे से यह बँटवारा नहीं हो सकता।

यह तो उसका सियासी रूप हुआ। लेकिन धार्मिक और नैतिक रूप क्या है? यह तो राजनीतिक से बढ़कर है। बँटवारे की आवाज़ की तह में तो यह मन्तव्य है कि इस्लामी भ्रातृ-भावना मुसलमानों तक ही महदूद है और हिंदू-विरोधी है। आया वह दूसरे धर्मों के खिलाफ़ भी है यह नहीं कहा गया है। अखबारों की जिन कतरनों में बँटवारे का समर्थन किया गया है उनमें हिन्दुओं को क़रीब-क़रीब अछूत बतलाया गया है। हिन्दुओं और हिन्दू-धर्म में कोई अच्छाई निकल ही नहीं सकती। हिन्दू-शासन के मातहत रहना एक पाप है। हिन्दू-मुसलमानों के संयुक्त शासन की भी शक्यता नहीं है। मज़कूर कतरनों से यह पता चलता है कि हिन्दू और मुसलमानों में अभी से लड़ाई जारी है, और उन्हें एक आखिरी फ़ैसले के लिए तैयार हो जाना है।

एक समय था जब हिन्दू समझते थे कि मुसलमान उनके स्वाभाविक दुश्मन हैं। लेकिन जैसा हिन्दू-धर्म में हमेशा होता आया है अन्त में वह अपने दुश्मन के साथ समझौता करके मित्रता क़ायम कर लेता है। यह विधि शुरू हुई थी, अभी पूरी नहीं हो पाई थी। लेकिन पापों ने मानों हिन्दू-धर्म को घेर लिया। लीग ने वही खेल खेलना शुरू किया। लीग सिखलाती है कि इन दोनों संस्कृतियों का मेल होना असम्भव है। इस सिलसिले में मैंने श्री. अतुलानन्द चक्रवर्त्ती की एक पुस्तिका अभी पढ़ी है, जिसमें यह दिखाया गया है कि जब से इस्लाम का ताल्लुक़ हिन्दू-धर्म से हुआ है तब से दोनों धर्मों के उत्तम विचार के लोगों ने एक दूसरे की अच्छाइयाँ देखने की कोशिश की है। दिखलावे की असमानताओं की बनिस्बत उन्होंने भीतरी समानताओं पर ज़ोर दिया। लेखक ने भारत के इस्लामी इतिहास का चित्र इस्लाम की तारीख से खींचा है। उन्होंने जो लिखा है वह अगर बिलकुल सच है, तो यह पुस्तिका एक नया प्रकाश डालनेवाली है और हर एक हिन्दू और मुसलमान इसे पढ़कर लाभ उठा सकता है। लेखक ने सर शफ़ात अहमद खाँ साहब से अपने पक्ष में एक दलील से भरी हुई भूमिका प्राप्त की है। बहुत-से और मुसलमानों ने भी उन्हें प्रमाणपत्र दिये हैं। अगर उसमें इकट्ठी की गई शहादत हिन्दुस्तान में इस्लाम के विकास पर सही रोशनी डालती है, तो यह बँटवारे का प्रचार इस्लाम-विरोधी है।

मज़हब तो इन्सान को ईश्वर के साथ बाँधता है, और इन्सान को इन्सान के साथ। क्या इस्लाम फ़क़त मुसलमान को मुसलमान ही के साथ बाँधता है और हिन्दू के साथ दुश्मनी पैदा कराता है? क्या पैग़म्बर साहब का शान्ति का पैग़ाम केवल मुसलमानों तक ही महदूद था और हिन्दुओं और ग़ैर-मुसलमानों के खिलाफ़? क्या ८ करोड़ मुसलमानों को यही खुराक देनी है, जिसे मैं केवल जहर ही कह सकता हूँ। जो लोग यह जहर मुसलमानों के दिलों में भर रहे हैं वे इस्लाम की बड़ी भारी कुसेवा कर रहे हैं। मैं जानता हूँ कि यह इस्लाम नहीं है। मैं मुसलमानों के साथ रहा हूँ, एक-दो दिन के लिए नहीं, क़रीब-क़रीब पूरे २० साल तक। एक भी मुसलमान ने मुझे यह नहीं सिखलाया कि इस्लाम हिन्दू-विरोधी मजहब है।

बङ्गाल की मौजूदा राजनीति

'शनिवारेर चिठी' नामक प्रसिद्ध बँगला मासिक पत्र में कविवर रवीन्द्रनाथ का एक वक्तव्य प्रकाशित हुआ है, उसे हम यहाँ 'प्रताप' से उद्धृत करते हैं—

यह है हमारा प्रदेश! यहाँ हम किस सफलता की उम्मीद करें? लाड़ले बच्चे की तरह हम हमेशा तोड़ने-फोड़ने के काम में ही लगे हुए हैं। रचने का कार्य धैर्य का है—पुरुष का है। हमसे आज तक एक भी न हुआ। बस, औरतों की तरह शिकायत करनी आती है। उन्होंने हमें यह अधिकार नहीं दिया; फिर क्या शुरू कर दो अपना रोना; छिप कर दूसरों पर ढेले फेंकना। न हम खुद कोई काम करेंगे न दूसरों को करने देंगे।

एक महान् आश्चर्य की बात हम इस बंगाल में देख रहे हैं। यहाँ जिनको नेता होने का सम्मान प्राप्त होता है, निम्न श्रेणी की औरतों की तरह घर बिगाड़ने और बिगड़वाने के खेल को ही वे उच्च राजनीति कहा करते हैं। उनके पुरुषत्व को ऐसा करने में ज़रा संकोच नहीं होता। यहाँ के लोग इसी लिए चुपचाप किसी चीज़ को बना कर तैयार करने के उद्देश्य से दल का संगठन नहीं करते। वे दल बनाते हैं बनी चीज़ को बिगाड़ने का पैशाचिक आनन्द लेने के लिए। यह बात भी शायद क्षम्य समझी जाती अगर हम यह न देखते कि इस प्रवृत्ति के पीछे व्यक्तिगत स्वार्थबुद्धि अपने बड़े-बड़े दाँत निकाले हुए मौजूद है।

यह सर्वनाशी प्रवृत्ति दिनोंदिन बंगाल में प्रबल होती जा रही है। इसलिए नहीं कि यहाँ बुद्धि का अभाव है। बल्कि इसलिए कि इसमें है दुर्बुद्धि, शैतानियत! जीवन के हर क्षेत्र में असाधुता अपनी विजय-पताका फहराने लगी है। स्वार्थबुद्धि और स्वेच्छाचार सब कल्याणों का नाश कर रहे हैं। हमारे लिए जीने का अब कोई मार्ग रह नहीं गया।

अपने दीर्घ-जीवन के लिए अब प्रायः मन में एक धिक्कार-सा उत्पन्न होने लगता है। अब यह आशा भी नहीं है कि इस नाश-क्रिया में से ही किसी दिन सृजन देवता का कार्य आरम्भ होगा। यहाँ तो वह होने का नहीं। झूठ के जञ्जाल-स्तूप को फोड़कर सत्य का अंकुर कभी जम नहीं सकता।

परन्तु ज़रा यह देखिए कि, सन् १९१७ ई० में रूस में जिन्होंने आन्दोलन आरम्भ किया था कितनी असुविधाओं के बीच में उनको कार्य करना पड़ा। उस समय वहाँ के लोगों की नैतिक, सामाजिक और आर्थिक दशा हमसे भी हेय थी। दुर्भाग्य के जिस पाताल में वे पहुँच चुके थे उसकी तो हम कल्पना भी नहीं कर सकते। परन्तु वहाँ के जननायकों ने झूठ का पेशा अख्तियार नहीं किया। इसलिए उस भयावह पंकिल गड्ढे से सारी क़ौम को निकालने में उनका अधिक समय नहीं लगा। जिस समय मैं वहाँ पर पहुँचा था उस समय उस क्रान्ति की उम्र दस वर्ष से अधिक नहीं थी। मैंने देखा देश की शक्ल बदल चुकी है, साइबेरिया के नरकस्थान से निपट कर नये स्वर्ग की रचना में वे कितने उत्साह से जुटे हुए थे। जिसके पास दैहिक या मानसिक, जो ताक़त या पूँजी थी उसे वह लगा रहा था अपने पड़ोस के लोगों की उन्नति और विकास के लिए। सर्वनाशी स्वार्थ-बुद्धि उनकी आत्माओं में केन्द्रीभूत नहीं हुई थी। इसीलिए बिलकुल रातोंरात एक समूचा का समूचा राष्ट्र अपनी कमज़ोरियों को झाड़कर उठकर खड़ा हो गया। कैसा व्यापक वह जागरण था? एक से दो, दो से तीन, तीन से चार, शिक्षा और ज्ञान के विस्तार का कार्य साथ-साथ आगे बढ़कर फैल गया देश के हर सीमान्त तक। इस प्रकार की सर्वतोमुखी उन्नति वहाँ इसी लिए सम्भव हुई कि जिन्होंने क्रान्ति का नेतृत्व किया उन्होंने बंगालियों की तरह मिथ्याचार को ही नहीं अपनाया।

बंगालियों को सुयोग मिला था। पाश्चात्य शिक्षा और सभ्यता के साथ भारतवर्ष में सर्वप्रथम परिचय उन्हीं का हुआ था। इस परिचय से लाभ उठाकर उस युग के बंगालियों ने उन्नति की और शिल्प और साहित्य में अपनी-अपनी साधना का फल प्राप्त किया। परन्तु राष्ट्र-संगठन के कार्य में बंगाली कभी आगे न बढ़ सके। कला और साहित्य व्यक्तियों के काम हैं परन्तु राष्ट्रीय कार्य एक व्यक्ति का नहीं है। उसमें सबके सम्मिलित होने की ज़रूरत है, परन्तु यह कार्य बंगालियों से न हो सका। आज सारे भारतवर्ष में बंगाल का यह अस्वास्थ्य वेदनादायक हो उठा है। समस्त भारत की ग्लानि का केन्द्र है आज यह बंगाल का प्रान्त। बंगालियों के मुँह से आज सोते-जागते यह शिकायत सुनने को मिल रही है कि ईर्ष्या और जलन से

दूसरे प्रान्तों की सम्मिलित चेष्टा आज बंगाल का गला घोंटे दे रही है। कहते हैं कि आज बंगाल का भला कोई नहीं देख सकता। इससे बढ़कर झूठी शिकायत कोई हो नहीं सकती। बंगालियों ने जहाँ कहीं भी कोई सफलता प्राप्त की है, या वे कर रहे हैं उसको स्वीकार करने में दूसरे प्रान्तवालों ने ज़रा भी संकीर्णता नहीं दिखाई, या नहीं दिखाते।

ध्वंस करने के कार्य में कोई दक्षता की ज़रूरत नहीं है। बंगाली आज इसमें पूर्णरूप से पटु हैं। वे युद्ध तो करना चाहते हैं परन्तु अनुशासन नहीं मानना चाहते। संसार में ऐसी युद्ध-नीति शायद कहीं देखने को न मिलेगी। बंगाल का युद्ध बाहर के शत्रुओं के साथ नहीं है, वह तो आपस ही में होता है। इस मनोवृत्ति से कोई कल्याण नहीं हो सकता।

योरप की भाग्यरेखा डैन्यूब

डैन्यूब योरप के पाँच देशों में होकर बहती है और इसी लिए जिसके हाथ में इस महत्त्वपूर्ण नदी के प्रमुख विभाग होंगे वह योरप में सबसे अधिक शक्तिशाली हो जायगा। गत कुछ वर्षों से नाज़ी लोग डैन्यूब और उसके सिञ्चित भूभाग को आत्मसात् करने के लिए घोर प्रयत्न कर रहे हैं। अतः इसकी ओर समस्त संसार का ध्यान आकर्षित हो रहा है। नीचे की पंक्तियों में, जिन्हें हम 'प्रताप' से उद्धृत कर रहे हैं, इस महत्त्वपूर्ण नदी पर कुछ प्रकाश डाला गया है।

योरप की बड़ी नदियों में डैन्यूब का स्थान दूसरा हो गया है। डैन्यूब सार्वदेशिक नदी कही जाती है, क्योंकि योरप की अन्य नदियाँ पूर्णतया एक या दूसरे देश की सम्पत्ति हैं, वाल्गा रूस की है, राइन जर्मन की है, किन्तु डैन्यूब आज भी जब कि आस्ट्रिया और चेकोस्लेवेकिया जर्मनी में मिला लिये गये हैं, पाँच विभिन्न देशों में होकर बहती है। विभिन्न भागों में डैन्यूब के नाम भी भिन्न हैं। इसे कहीं डोनाओ, कहीं डूना, किसी जगह पर डुनरिया तो किसी स्थान पर डुनाव कह कर पुकारते हैं। इसी प्रकार इसके और भी बहुत-से नाम हैं। हंगरी से उत्तर बाल्कन प्रदेश से होकर जानेवाली डैन्यूब पानी की एक चौड़ी धार के अतिरिक्त भी बहुत कुछ है। उक्त प्रान्तों में डैन्यूब बड़े महत्त्व की है। वहाँ का सारा कारोबार, खेती, उद्यम, आयात-निर्यात आदि डैन्यूब के द्वारा ही होता है। वहाँ बसनेवाले लाखों व्यक्तियों की जीविका का आधार डैन्यूब नदी ही है।

जर्मनी धीरे-धीरे इस महत्त्वपूर्ण नदी पर अपना प्रभाव जमाता जा रहा है। डैन्यूब पर भौगोलिक प्रभाव भी पड़ा है, किन्तु उसकी महत्ता इसी लिए नहीं गिनी जाती कि वर्तमान समय में नदी पर अधिकार जमाने के लिए घोर परिवर्तन हो रहे हैं।

दो साल पहले सन् १९३८ के प्रारम्भ में यह नदी सात विभिन्न देशों की सेवा करती थी। आज यह संख्या सात के स्थान पर केवल पाँच रह गई है, जिसमें से चार का केवल नाम-मात्र का अधिकार रह गया है।

डैन्यूब नदी का बहाव व्यापारिक क्षेत्रों की ओर से कृषि-प्रधान क्षेत्रों की ओर है। इसलिए यात्रियों का आना-जाना नदी की चढ़ाव की ओर अधिक होता है। सन् १९१४ के महायुद्ध के पहले और बाद में भी यह नदी डैन्यूब के बेसिन के सभी देशों को कच्चा माल, तेल, लकड़ी, मसाले, चारा और अनाज पहुँचाती रही है। जर्मनी और पोलैंड के बीच रेलवे लाइन के टूट जाने के कारण रूस से जर्मनी तक माल ढोने के लिए डैन्यूब की ज़रूरत कितनी बढ़ गई है, इसका अनुमान लगाया जा सकता है। जर्मनी के युद्ध-सम्बन्धी कार्य्यों के लिए डैन्यूब से माल का आना-जाना बन्द किया जा सके तो परिणामतः शायद वर्तमान जर्मन-युद्ध का निपटारा 'जर्मन पराजय' के रूप में शीघ्र हो जाय। आस्ट्रिया के मिलाने के बाद जर्मनों ने राइन-मेन-डैन्यूब नहर को बहुत ही जल्दी चौड़ा और गहरा करके उत्तर और काले सागर के बीच एक गहरा जल-मार्ग बना लिया है। मध्य और दक्षिणी पूर्वी योरप में उन सभी रास्तों पर जिनसे माल आ-जा सकता है, जर्मनी ने बहुत बड़े प्रतिबन्ध लगाये हैं। असल में जर्मनी को ये प्रतिबन्ध केवल डैन्यूब के कारण ही लगाने पड़े हैं।

डैन्यूब के बेसिन में बसे हुए बाक़ी चार देश हंगरी, रूमानिया, बलगेरिया और यूगोस्लेवेकिया बिलकुल ही कमज़ोर हैं। इन देशों को न तो प्रकृति ने ही रक्षा

का कोई साधन प्रदान किया है और न ये अलग-अलग या एक में मिलकर भी उस शक्ति का सामना करने में समर्थ हैं जो आज इन सब पर हावी हो रही है।

जर्मनी ने आज यूरोप के समानशक्ति, सिद्धान्त को बदल दिया है। पड़ोस के जन, धन, धरती और यातायात के साधनों पर जर्मनी के लगातार क़ब्ज़ा करने का अर्थ यह है कि जर्मनी समस्त योरप पर अपना फ़ौजी, राजनैतिक और आर्थिक प्रभाव रखना चाहता है। इसलिए जर्मनी को हानि पहुँचाने के लिए मित्रराष्ट्रों का डैन्यूब पर अधिकार रखना ज्यादा जरूरी है।

पश्चिमी मोर्चे की अकर्मण्यता और स्कैण्डीनेविया के युद्ध के अलावा भी एक स्थान है जहाँ से शत्रु को पंगु किया जा सकता है, वह है नैपोलियन के शब्दों में "यूरोपियन नदियों की रानी डैन्यूब"।

पठान नाशुक्रा कभी नहीं होता

२३ अप्रैल को पेशावर में 'शहीददिवस' मनाया गया था। उस अवसर पर सरहद की प्रान्तीय कांग्रेस की ओर से जो सभा हुई थी उसमें खान अब्दुल गफ़्फ़ार खाँ ने एक महत्त्वपूर्ण भाषण किया था, जिसका सारांश 'प्रताप' ने इस रूप में छापा है—

हमारा संघटन तो बिलकुल सामाजिक था, लेकिन हमारे मुख़ालफ़ीन ने समझा कि पठानों की एकता ख़तरनाक साबित हो सकती है और इसलिए हमें काफ़ी तकलीफ़ें दी गईं। फिर मजबूर होकर हमें एक राजनीतिक संस्था में तब्दील होना पड़ा। हमारे कुछ साथियों की गिरफ़्तारी के बाद हमने हिन्दुस्तान की विभिन्न राजनीतिक संस्थाओं के पास अपने दूत भेजे और उनसे मदद माँगी।

उस समय मुस्लिम लीग और मुस्लिम कान्फ़्रेंस सभी ने हमें दुतकार दिया, बल्कि ये संस्थायें हमसे नाता जोड़ने में बहुत ज्यादा घबरा गईं, क्योंकि हम आजादी चाहते हैं और हम उस समय ब्रिटिश हुकूमत से लड़ रहे थे। उस समय कांग्रेस ही ने हमारा साथ दिया। और हम कांग्रेस में शामिल हो गये। अब हम कांग्रेस कैसे छोड़ सकते हैं। हम पठान क़ौम के हैं। और पठान कभी नाशुक्रे नहीं होते। हम तो कांग्रेस के एक अंग हैं और हमेशा कांग्रेस के साथ रहेंगे।

उस समय जेल में बहुत-से सरकारी एजेंट पहुँचे और उन्होंने हमसे कहा कि अगर हम कांग्रेस से नाता तोड़ लें तो हमें रिहा किया जा सकता है। लेकिन यह हो कैसे सकता था!

राजनीति तो मेरी जिन्दगी है। मैं वही पुराना ख़ुदाई ख़िदमतगार हूँ, लेकिन इधर मैंने यह देखा कि इस आन्दोलन में थोड़ी सफ़ाई की जरूरत है, इसमें कुछ नये आदमी आ गये हैं जो अपने साथ बुराई ले आये हैं।

मैंने बहुत दिनों तक एक प्रयोग किया, लेकिन मुझे उसमें सफलता नहीं मिली, इसलिए अब मैं निःस्वार्थ कार्यकर्ताओं के साथ नया प्रयोग करने जा रहा हूँ और मुझे उम्मीद है कि मैं अपने उद्देश्य को प्राप्त करूँगा।

मैं जानता हूँ कि इस प्रान्त के लोग कामयाबी हासिल करने के लिए काफ़ी मज़बूत हैं, लेकिन मैं यह महसूस करता हूँ कि वे शान्ति के साथ अपनी मेहनत के फल को नहीं पा सकते।

इस समय अगर आप लड़ना चाहते हैं तो मुझे कोई आपत्ति नहीं है, लेकिन मैं सेनापति बनने और लड़ाई की ज़िम्मेदारी लेने के लिए तैयार नहीं हूँ। अगर मुझ पर नेतृत्व दिया ही गया तो मैं अपनी कुछ शर्तें रखूँगा जिनका पूरा होना जरूरी होगा।

हमें अफ़सोस है कि हम उन लोगों की जहरीली उम्मीद पूरी नहीं कर सकते जो यह सोचे बैठे हैं कि अब हम कांग्रेस से अलग हो रहे हैं। इन बेवकूफ़ों की नाउम्मीदी के लिए हमें बड़ी सहानुभूति है।

मुझे उम्मीद है कि इस तरह के शरारत भरे झूठे प्रचार से हमारे देशवासी भ्रम में न पड़ेंगे। वे हमें अच्छी तरह समझते हैं और उनका हमारे ऊपर विश्वास है।

योरपीय युद्ध का उग्र रूप

९ अप्रेल को जर्मनी ने डेन्मार्क और नार्वे पर आक्रमण किया था। डेन्मार्क ने तो आक्रमण होते ही आत्मसमर्पण कर दिया और उस पर जर्मनी का पूर्ण अधिकार हो गया, परन्तु नार्वे ने जर्मनी का सामना किया, यद्यपि वह कुछ कर धर नहीं सका और जर्मनी ने बात की बात में उसके समग्र दक्षिणी प्रदेश तथा अधिकांश बन्दरगाहों और महत्त्व के सामरिक स्थानों पर क़ब्ज़ा कर लिया। जर्मनी के इस अचानक आक्रमण को देखकर मित्रदल ने नार्वे की सहायता के लिए अपनी सेनायें भेजीं और वहाँ भीषण युद्ध छिड़ गया। जल, स्थल और आकाश तीनों प्रकार के युद्ध हुए, परन्तु मित्रदल जर्मनों को नार्वे से निकाल बाहर न कर सका, उलटा नार्वे के ट्रौंडहीम के युद्ध-क्षेत्र से जर्मन-सेनाओं का अधिक दबाव पड़ने पर, उसे अपनी सारी सेनाओं को वापस बुला लेना पड़ा।

नार्वे में लड़ाई चल ही रही थी कि यह सोचा जाने लगा कि डेनमार्क और नार्वे के बाद नाज़ियों का आक्रमण किस देश पर होगा, इस सम्बन्ध में तरह-तरह के अनुमान किये जा रहे थे। सबसे अधिक भय बेल्जियम और हालैंड को था। ये दोनों देश बहुत पहले से चौकन्ने हो रहे थे और अपनी रक्षा के लिए भरसक उपाय भी कर रहे थे। साथ-ही-साथ अपनी तटस्थता की नीति की पुकार भी उच्च-स्वर से बार बार करते जाते थे। दोनों देशों ने पूरी सावधानी रक्खी थी कि नाज़ियों को उन पर आक्रमण करने का कोई कारण न मिले। ७ मई को जर्मन-अखबारों में मोटे-मोटे शीर्षकों में जब यह छपा कि—"शीघ्र ही कोई भारी निश्चय होनेवाला है" तब हालैंड और बेल्जियम के भय का कारण सामने आ गया। इँगलैंड भी इस विषय में सतर्क था। उसने अपनी नाकेबन्दियाँ मजबूत कीं और जल-स्थल के सैनिकों की छुट्टियाँ रद्द कर दी। इधर वहाँ की पार्लियामेंट में मित्रराष्ट्रों की नार्वे में होनेवाली असफलता के के कारणों पर भी विचार हो रहा था और मिस्टर चेम्बरलेन के मंत्रिमंडल को बदल देने की माँग पेश की जा रही थी। इसी बीच में अचानक यह खबर मिली कि गत १० मई की रात के पिछले पहर में नाज़ी सेनायें हालैंड, बेल्जियम और लग्ज़ेमबर्ग में घुस आई हैं और जर्मन-सैनिक पेराशूटों के द्वारा इन देशों के हवाई अड्डों पर उतर रहे हैं।

लग्ज़ेमबर्ग की सरकार तो इस समाचार को सुनकर राजधानी छोड़ कर चल दी, पर डच और बेल्जियम सेनाओं ने शत्रु का डट कर मुक़ाबिला किया। मित्रराष्ट्रों से भी उन्होंने सहायता माँगी।

राजनीतिज्ञों का विश्वास था कि इस बार का युद्ध 'निर्णायक' और 'अन्तिम' होगा। क्योंकि इधर हर वान रिबनट्राप ने भी साफ़ साफ़ कह दिया है कि "इँगलैंड और फ़्रांस से अब जर्मन-सेना उसी भाषा में बात करेगी जिसे उनके शासक समझते मालूम पड़ते हैं और एक ही बार में हमेशा के लिए उनसे फ़ैसला कर लेगी।" इधर मित्रराष्ट्र भी अपनी नार्वेवाली असफलता के कारण अधिक क्षुब्ध व उत्तेजित हैं। और यह नया युद्धक्षेत्र उनके लिए जीवन और मरण का युद्धक्षेत्र है। जर्मनी का अधिकार इन देशों पर हो जाने से उसे इँगलैंड व फ़्रांस पर आक्रमण करने के लिए खुला दरवाज़ा मिल जायगा। इधर बेल्जियम का देश भी वही है जिसमें गत महायुद्ध में कैसर की महत्त्वाकांक्षाओं की समाधि बनी थी और जहाँ जर्मनों की बढ़ती हुई रणलिप्सा सँभाल कर कुचली गई थी।

यह सब समझ-बूझ कर मित्रदल ने इन दोनों देशों की सहायता करने की व्यवस्था की। परन्तु हालैंड को सहायता न पहुँचाई जा सकी और जर्मनों के भीषण आक्रमण से विनष्ट होकर हालैंड ने शीघ्र ही हार मान ली और उस पर जर्मनी का अधिकार हो गया। हाँ, बेल्जियम

मित्रदल की सहायता से आज भी डटा हुआ लड़ रहा है। तथापि उसके एक बड़े भूभाग पर जर्मनी का अधिकार ही नहीं हो गया है, किन्तु उसकी सीमा पार कर जर्मनी की सेनायें फ़्रांस में जा घुसी हैं। इस समय उस अञ्चल में कोई ४०० मील के लम्बे युद्ध-क्षेत्र में जर्मनी से मित्रदल का भीषण संग्राम छिड़ा हुआ है।

परन्तु जान पड़ता है, मित्रदल को इसी एक युद्ध-क्षेत्र में युद्ध न करना पड़ेगा, किन्तु उसे अन्यत्र भी तलवार उठानी पड़ेगी। जर्मनी चाहता है कि युद्ध और अधिक व्यापक रूप धारण कर जाय। इसके लिए वह पहले से ही प्रयत्न करता आ रहा है। और अब तो ऐसे लक्षण दिखाई दे रहे हैं कि बालकन तथा भूमध्य सागर में शीघ्र ही रण-भेरी बजनेवाली है। कदाचित् यही सब समझ-बूझकर ब्रिटेन को अपना एक जहाज़ी बेड़ा भूमध्य सागर में भेजना पड़ा है, जिसने अलेक्ज़ेंडरिया में जाकर लंगर डाल दिया है। यह भी कहा गया है कि एजियन समुद्र के एक टापू में इटली के ५० हज़ार सैनिक मौजूद हैं। इधर-युगोस्लोविया और हंगरी में तनातनी बढ़ गई है। कौन कह सकता है कि इन सब बातों के पीछे जर्मनी का हाथ नहीं है और योरप के इस ओर की यह परिस्थिति भयानक युद्ध की सूचक नहीं है? यदि बाल्कन में युद्ध छिड़ा और इटली का मित्रदल से संघर्ष हो गया तो यह युद्ध बात की बात में संसार-व्यापी हो जायगा—यहाँ तक कि जापान और अमरीका के संयुक्त राज्य को भी किसी न किसी ओर से इस भयानक लड़ाई में भाग लेना पड़ेगा। और तब आज का यह युद्ध कितना भीषण, कितना संहारक रूप ग्रहण कर जायगा, इसकी कल्पना नहीं की जा सकती है। इस समय जो लक्षण दिखाई दे रहे हैं वे इसी परिस्थिति के सूचक हैं। संसार को इस महाप्रलय से अब एक मात्र जगन्नियन्ता को छोड़कर कोई नहीं बचा सकता है। जो ब्रिटेन और फ़्रांस एवं संयुक्त राज्य अभी तक अपने को रोके-सा थे वे भी जर्मनी की क्रूरताओं से अपना धैर्य छोड़ चुके हैं। ब्रिटेन और फ़्रांस ने तो अब इस बात का पूरा इरादा ही कर लिया है कि इस बार जर्मनी के विषैले दाँत सदा के लिए तोड़ दिये जायँ। ऐसी दशा में इस युद्ध का लोक-संहारक रूप धारण कर जाना अनिवार्य होगा।

संयुक्त-प्रान्त के डिस्ट्रिक्टबोर्ड

डिस्ट्रिक्टबोर्ड और म्यूनिसिपैल्टियाँ वे संस्थायें हैं जो जनता के मनोनीत सदस्यों के द्वारा सञ्चालित होती हैं। पहले इनका सञ्चालन सरकारी अधिकारियों के तत्त्वावधान में होता था और तब इनमें वैसी अव्यवस्था नहीं थी। परन्तु ज्यों ज्यों इनका सञ्चालन लोकप्रतिनिधियों के हाथों में आता गया और ये सरकारी अधिकारियों के नियंत्रण से मुक्त होती गई, त्यों त्यों इनमें अव्यवस्था आती गई। हमारा यह आरोप अतिशयोक्ति-पूर्ण चाहे कुछ अंशों तक भले ही हो, परन्तु तथ्यहीन नहीं है। हमारे आरोप का प्रमाण स्वयं उनके सम्बन्ध की वार्षिक रिपोर्टें हैं। यदि ये अँगरेज़ी में प्रकाशित रिपोर्टें लोक-भाषा में प्रकाशित होतीं और मतदाताओं तक पहुँच पातीं तो वे जान पाते कि उनके प्रतिनिधि बोर्डों में अपने कर्तव्य का किस तरह पालन करते हैं और आगे के लिए सावधान हो जाते और कम से कम अकर्मण्य व्यक्तियों को चुनकर बोर्डों में कदापि न भेजते। परन्तु सरकारी रिपोर्टें अँगरेज़ी में छपती हैं, जो बोर्डों आदि के मतदाताओं तक पहुँच ही नहीं पाती हैं। संयुक्तप्रान्त के डिस्ट्रिक्ट-बोर्डों की १९३७-३८ की जो रिपोर्ट हाल में निकली है उससे भी यही प्रकट होता है कि बोर्ड पहले की ही तरह अस्तव्यस्त चल रहे हैं और नये शासन-विधान के अनुसार देशवासियों को आत्म-शासन का जो व्यापक अधिकार दिया गया है उसका उन पर कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ा है, अन्यथा उनमें इस तरह गड़बड़ का काम न जारी रहता।

रिपोर्ट में स्पष्ट शब्दों में लिखा गया है कि बोर्डों की प्रबन्ध-व्यवस्था रिपोर्ट के साल सन्तोष-जनक नहीं रही। भीतरी मतभेदों, दलबन्दियों आदि के कारण प्रबन्ध में भारी त्रुटि रही और ऐसा जान पड़ता है कि बोर्डों के सदस्यों ने जनता के हितों की उपेक्षा की है। और तो और, बोर्डों की बैठकों से अनुपस्थित रहना भी बहुतेरे प्रतिनिधियों ने अपना कर्तव्य-सा मान लिया है। बस्ती में ६, गोरखपुर में ३, मिर्ज़ापुर, अलीगढ़, हमीरपुर और बहराइच आदि में से प्रत्येक का एक एक सदस्य एक भी बैठक में नहीं उपस्थित हुए। और इन्हीं प्रति-निधियों ने अपने लिए वोट माँगते समय वोटदाताओं

की सेवा करने के लिए न मालूम कितने आश्वासन दिये होंगे।

रिपोर्ट के अनुसार बोर्डों की आमदनी १९४·१५ लाख रुपया हुई। बोर्ड अपना टैक्स लगाते हैं, परन्तु उसे वसूल करने में आय का २९ फ़ी सदी ख़र्च कर डालते हैं, और इतने पर भी वे सबका सब वसूल नहीं कर पाते। यह बात भी उनकी अकर्मण्यता का ही प्रमाण है।

बोर्डों का ख़र्च आमदनी की अपेक्षा बढ़ा ही रहा। रिपोर्ट के साल उन्होंने १९६·११ लाख रुपया ख़र्च किया। इसमें से ५७·१६ फ़ी सदी शिक्षा में, १०·३ फ़ी सदी दवा-दारू में, १·५ फ़ी सदी स्वास्थ्य में ख़र्च हुआ।

कितने ही बोर्डों की आर्थिक व्यवस्था भी ठीक नहीं रही है। यही नहीं, १९ बोर्डों में तो रुपया भी हड़प कर लिया गया और हिसाब-किताब भी ठीक ठीक नहीं रक्खा गया। और मज़े की बात तो यह है कि जिन्होंने बोर्ड का रुपया हड़प लिया, अपराध सिद्ध हो जाने पर भी उन्हें समुचित दण्ड देना तो दूर रहा, वे या तो बरी कर दिये गये या उन्हें नाममात्र का दण्ड दिया गया। ख़यानत के २४ मामले पकड़े गये थे, जिनमें से ६ मामले चलाये गये। बोर्डों में ऐसा ही अन्धेरखाता रहता है। हर साल उनकी इन अव्यवस्थाओं की आलोचना होती रहती है, परन्तु बोर्ड अपनी ही राह चले जा रहे हैं। ऐसी दशा में क्या कहा जाय।

युद्ध के लिए मित्रराज्यों की नई व्यवस्था

ब्रिटिश सरकार ने, और उसके साथ ही फ़्रेंच सरकार ने भी, पहले से युद्ध की तैयारी नहीं की थी। वे बराबर समझौते की नीति से ही काम लेते रहे थे। उधर जर्मनी ने चालाकी से काम लिया। वह समझौते की बात-चीत भी करता रहा, साथ ही भीतर ही भीतर युद्ध के लिए अच्छी तरह तैयार भी होता रहा। जब उसने युद्ध की आग लगा दी और अपना दौरात्म्य प्रकट करना शुरू कर दिया तब ब्रिटेन और फ़्रांस बड़े संकट में पड़ गये। वे जेकोस्लोवेकिया और पोलेंड की रक्षा न कर सके। और न नार्वे का ही उद्धार कर सके, जैसा कि उसे आश्वासन दिया गया था, इस वस्तुस्थिति ने ब्रिटेन में बड़ा क्षोभ उत्पन्न कर दिया। ब्रिटिश पार्लियामेंट की गत ९ मई की बैठक में तो इसका असर साफ़-साफ़ दिखाई पड़ा। विरोधी-पक्ष के नेता श्री एटली व श्री लायडजार्ज ने भी श्री चेम्बरलेन की सरकार की नीति की बड़ी खरी आलोचना की और नार्वे के मामले के सम्बन्ध में ब्रिटेन की अप्रतिष्ठा होने का सारा दोष उनकी अदूरदर्शितापूर्ण नीति के सिर पर मढ़ दिया। सरकारी पक्ष से सर सेमुअल होर, मिस्टर चर्चिल तथा प्रधान मंत्री ने बतलाया कि नार्वे में मित्रराष्ट्रों की सेनाओं को अधिक सफलता न मिलने का कारण जर्मनी की 'वायु-शक्ति की प्रबलता' तथा, बहुत पहले की तैयारी' थी; जिसके कारण मित्रराष्ट्रों की सेनायें उनके सामने न टिक सकीं और उन्हें परिस्थितियों से विवश होकर वहाँ से हट आना पड़ा। पर उनका यह उत्तर विरोधीपक्ष को सन्तुष्ट न कर सका। मिस्टर लायडजार्ज ने तो यहाँ तक कहा कि—"श्री चेम्बरलेन की सरकार गत कई वर्ष से भूलों पर भूलें करती आई है। यदि आज नाज़ियों की शक्ति इतनी बढ़ गई है तो इसका कारण श्री चेम्बरलेन की ग़लतियाँ हैं। यदि पहले से ही सतर्कता की जाती तो यहाँ तक नौबत न पहुँचती। यदि ब्रिटेन जेकोस्लोवाकिया की स्वतंत्रता की रक्षा करने के लिए सहायता दे देता तो उसके २० लाख उत्तम सैनिक हमारे हाथ से निकल कर शत्रु के हाथ में न चले जाते और न रूस हमारा विपक्षी बन जाता। पोलेंड, फ़िनलेंड और नार्वे को रक्षा-सहायता का आश्वासन देकर भी हम उनके लिए कुछ न कर सके। इसमें हमारी प्रतिष्ठा को भारी धक्का लगा है और अब तटस्थ छोटी छोटी शक्तियाँ हमारे आश्वासन के भरोसे नाज़ियों का मुक़ाबला करने को तैयार न होंगी।"

वोट लेने पर भी मिस्टर चेम्बरलेन के पक्ष में विरोधियों के मुक़ाबिले में कुछ ही अधिक वोट आये। इससे प्रकट हो गया कि उनमें अब ब्रिटिश नागरिकों का पहले जैसा विश्वास नहीं रह गया है।

सम्भवतः इन्हीं परिस्थितियों पर विचार करते हुए और मतभेद को अधिक न बढ़ने देने के उद्देश्य से मिस्टर चेम्बरलेन ने अपना इस्तीफ़ा सम्राट् के सम्मुख पेश

कर दिया। ऐसी परिस्थिति में उन्होंने इस्तीफ़ा देकर अपनी दूरदर्शिता का ही परिचय दिया है। योरप पर जो विपत्ति के बादल मँडरा रहे हैं उन्हें देखते हुए यह आवश्यक है कि सब ब्रिटेननिवासी संगठित व एकमत होकर इस आसन्न विपद् का सामना करें और आपस में मनोमालिन्य पैदा होने का थोड़ा-सा भी कारण पैदा न होने दें। प्रधान मंत्री के पद का भार अब मिस्टर चर्चिल पर आया है।

मिस्टर चर्चिल एक प्रसिद्ध राजनीतिज्ञ हैं। गत महायुद्ध में भी वे ब्रिटेन के मंत्री थे। इस प्रकार युद्ध की गतिविधियों का भी उनका निजी अनुभव है।

इसके अतिरिक्त मिस्टर चर्चिल के नाम से हिटलर सबसे अधिक डरते हैं—ऐसा ब्रिटिश पत्रकारों का विश्वास है। हमें आशा करनी चाहिए कि यह विश्वास सत्य प्रमाणित हो और गत मंत्रिमण्डल की शिथिलता द्वारा ब्रिटेन की प्रतिष्ठा की जो थोड़ी बहुत-सी क्षति हुई है उसकी भी पूर्ति हो जाय।

श्री चर्चिल ने अपने मंत्रिमंडल में सभी दलों के प्रतिनिधियों को लिया है। फ्रांस के मंत्रिमण्डल में भी आवश्यक फेरफार हुआ है, साथ ही वेगंड प्रधान सेनापति बनाये गये हैं। यह सारा परिवर्तन इसलिए किया गया है कि जर्मनी का गर्व खर्व किया जाय, क्योंकि उसका अनाचार अब चरम सीमा को पहुँच गया है। उसने अपने से कमज़ोर छोटे छोटे निरपेक्ष राज्यों का संहार करके अपने को अजेय समझ लिया है। अभी अभी हालेंड की चढ़ाई में उसने वहाँ के एक लाख सैनिकों को मार डाला है तथा राटरडम जैसे सुन्दर और बड़े नगर पर बमों की वर्षा करके उसे धूल में मिला दिया है। इसी तरह की लोक-संहारक लड़ाई लड़ने में जर्मनी आज संलग्न है। ऐसी दशा में यह आवश्यक है कि उसका तादृश ही सामना किया जाय। इसी लिए ब्रिटेन और फ्रांस दोनों देशों ने अपनी युद्ध-योजनाओं को अधिक कारगर और व्यवस्थित बनाने के लिए अपनी सरकारों का पुनःसंगठन किया है। उनके इस आयोजन से प्रतीत होता है कि आगे और भी भयानक युद्ध होगा। और सच पूछो तो अब जाकर जर्मनी अपने समान बल के राष्ट्रों के मुक़ाबले में आया है। अभी तक तो वह नगण्य राष्ट्रों को ही पददलित करने में लगा हुआ था। परन्तु अब उसे आटा-दाल का भाव मालूम हो जायगा।

अखिल भारतीय आज़ाद मुस्लिम कान्फ़रेंस

'हिन्दी हैं हम वतन हैं हिन्दोस्ताँ हमारा'—यह ध्वनि स्वर्गीय डाक्टर इक़बाल के कल-कण्ठ से उन दिनों निकली थी जब हिन्दुस्तान में संगठित राष्ट्रीयता की पहली लहर आई थी। निस्सन्देह इक़बाल साहब ने ये शब्द उन मुस्लिमों के प्रतिनिधि की हैसियत से कहे थे जिनके कपाल-कोटर में मस्तिष्क थे और मस्तिष्कों में सोचने-समझने की शक्ति थी। परन्तु मुसलमानों की यह जागृति उन नेताओं को कैसे सहन हो सकती थी जिनकी महत्ता का आधार किसी जाति की जेहालत होता है। उन्होंने न जाने अपने कितने व्याख्यानों और लेखों के द्वारा हिन्दी मुसलमानों के दिमाग़ में यह विचार ठूँसने का प्रयत्न किया था कि हिन्दू और मुसलमान दो पृथक्-पृथक् जातियाँ हैं, इनकी संस्कृति में इतनी भिन्नता है कि ये कभी एक साथ मिल कर नहीं रह सकतीं।

इस वैमनस्य के पौधे का बीजारोपण सर सैयद के कुशल करों से हुआ था। क़ायदे आज़म के हाथों सिंच कर वह अब बड़ा हुआ है और इस पर फूल-फल भी आने लगे हैं। इन फलों का स्वाद न केवल भारतीय, बाहर के मुसलमानों को भी चखने को मिल रहा है। पिछले दिनों तुर्की में कुछ पर्चे बाँटे गये थे। इन पर्चों में लिखा था कि "हिन्दुस्तान में हिन्दू-मुसलमान एक दूसरे के ख़ून के प्यासे हो रहे हैं। इन दोनों जातियों में किसी प्रकार की सहयोग-भावना नहीं है। हालत यहाँ तक बिगड़ चुकी है कि लोग अपने मकानों से बाहर निकलना मौत को निमंत्रण देना समझते हैं। दोनों की जानें अरक्षित और ख़तरे में हैं। ब्रिटिश गवर्नमेंट इन्हें आज़ादी देना चाहती है, पर इसलिए नहीं दे रही है कि आज़ादी पाकर ये दोनों जातियाँ कहीं एक ही दिन में आपस में मर-खप न जायँ। वहाँ कुछ हिन्दू ही ऐसे हैं जो आज़ादी चाहते हैं। अल्प-संख्यक मुसलमान तो ब्रिटेन की छत्रछाया में ही अपने को सुरक्षित समझते हैं।"

कहने की आवश्यकता नहीं कि इस पर्चे में उन्हीं शब्दों की प्रतिध्वनि थी जो क़ायदे आज़म के मुख से गत लाहौरवाले मुस्लिम लीग के अधिवेशन में निकले थे। जनाब क़ायदे आज़म ने राष्ट्रीय नेताओं को चुनौती देते हुए घोषित किया था कि हिन्दू और मुस्लिम—दो जुदी-जुदी संस्कृतियाँ हैं। इनमें किसी प्रकार का साम्य नहीं है। अतः हिन्दू और मुस्लिम एक साथ मिल कर किसी प्रकार नहीं रह सकते। और यह भी कि लीग ही ऐसी संस्था है जो भारतीय मुसलमानों के बहुमत का प्रतिनिधित्व करती है। तथा भारतीय मुस्लिम बहुमत पाकिस्तान का समर्थन करता है।

जनाब जिन्ना की इस चुनौती का उत्तर दिल्ली में गत अप्रैल में होनेवाले 'आज़ाद मुस्लिम कान्फ़रेंस' ने अच्छी तरह दिया है। इस सम्मेलन में भाग लेनेवाले मुसलमानों की संख्या लाहौर के गत मुस्लिम लीग के अधिवेशन में भाग लेनेवालों की अपेक्षा अधिक थी। इसमें लीग को छोड़कर मुसलमानों की शेष ८ जमातों ने भाग लिया था। जो भाषण हुए उनमें जिन्ना साहब की दलीलों की खूब धज्जियाँ उड़ाई गईं और उन्हें चुनौती दी गई कि वे किसी प्रकार के चुनाव-द्वारा यह प्रमाणित कर दें कि भारतीय मुसलमानों का बहुमत उनके विचारों या पाकिस्तान की योजना से सहमत है। उक्त सम्मेलन के प्रेसिडेंट खान बहादुर अल्लाबख़्श ने तो साफ़ शब्दों में कह दिया कि हिन्दी मुसलमान हिन्दुओं के साथ मिलकर ही रहेंगे, पृथक् नहीं रह सकते; पाकिस्तान की योजना निरी अव्यावहारिक तथा मूर्खतापूर्ण है, तथा मुसलमान भी भारत की आज़ादी के लिए उतने ही चिन्तित हैं जितने हिन्दू।

सम्मेलन का मुख्य प्रस्ताव इस प्रकार है—

"भारत की भौगोलिक एवं राजनैतिक सीमायें एक और अखण्ड हैं; और इस प्रकार वह जाति और वर्ण के भेदभाव के बिना उन सब जातियों का जो कि इसके स्थानों के समान रूप से अधिकारी हैं, देश है। देश इस बात की अपेक्षा रखता है कि उसके कोने कोने में मुसलमानों के घर हों—उन मुसलमानों के जो अपनी ऐतिहासिक सभ्यता और संस्कृति की रक्षा कर रहे हैं और जो उन्हें प्राणों से भी ज़्यादा प्यारी है। राष्ट्रीय दृष्टि से प्रत्येक मुसलमान हिन्दुस्तानी है। देश के निवासियों के अधिकार, एवं जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में देश के प्रति उनकी ज़िम्मेदारियाँ समान हैं। इन अधिकारों और ज़िम्मेदारियों की दृष्टि से भारतीय मुसलमान असंदिग्ध रूप से भारतीय हैं, और किसी अन्य भारतीय के समान सरकारी नौकरियों, आर्थिक क्षेत्र, शासन-प्रबन्ध एवं अन्य राष्ट्रीय क्षेत्रों में उसके भी समान अधिकारी हैं। इसी कारण अन्य भारतीयों के समान मुसलमानों पर भी यह ज़िम्मेदारी है कि वे देश की स्वतंत्रता के लिए बलिदान करें तथा प्रयत्नशील हों। यह एक स्वयंसिद्ध बात है, जिससे कोई भी विवेकशील मुसलमान इनकार नहीं कर सकता।

"यह सम्मेलन पूरे ज़ोर के साथ एक स्वर से इस बात की घोषणा करता है कि भारतीय मुसलमानों का ध्येय, अपने धार्मिक और साम्प्रदायिक अधिकारों की रक्षा करते हुए, पूर्ण स्वतंत्रता प्राप्त करना है; और वे इस लक्ष्य पर जल्दी से जल्दी पहुँचने के इच्छुक हैं। इसी से प्रेरित होकर उन्होंने पहले भी बहुत-सी क़ुर्बानियाँ की हैं और आगे भी बहुत-सी क़ुर्बानियाँ करने के लिए तैयार हैं।

"ब्रिटिश साम्राज्यवाद के दूतों एवं अन्य व्यक्तियों द्वारा भारतीय मुसलमानों पर जो यह निराधार आरोप लगाया गया है कि वे भारत की आज़ादी की लड़ाई में रोड़ा अटकाते हैं, उसका यह सम्मेलन स्पष्ट रूप से एवं पूरे ज़ोर के साथ खण्डन करता है और पुरज़ोर शब्दों में इस बात की घोषणा करता है कि मुसलमान अपनी ज़िम्मेदारियों को खूब समझते हैं और आज़ादी की लड़ाई में किसी से पीछे रहना अपनी परम्पराओं के प्रतिकूल एवं अपनी इज़्ज़त पर धब्बा समझते हैं।"

हमें पूरा विश्वास है कि 'आज़ाद मुस्लिम दल' जो अब तक कार्यक्षेत्र से कुछ हटा हुआ था, अब पूरे जोशो खरोश के साथ आगे आयगा और देश के हिन्दुओं व मुसलमानों में फिर से भ्रातृभाव का अटूट सम्बन्ध स्थापित करके देश-विरोधियों की कलुषित योजनाओं का मूलोच्छेदन करने में सफल होगा।

—

भारत की समस्या

महात्मा गांधी की अहिंसा-बुद्धि के कारण भारतीय राजनैतिक समस्या जटिल से जटिलतर नहीं होने जा रही है। सरकार से असहयोग करके भी वे उससे युद्ध करने को नहीं तैयार हैं। यही उनका इस विकट अवसर का विशेष चमत्कार है। सारे कांग्रेस-संगठन को अपने क़ाबू में रखकर वे इसी बात का सतत प्रयत्न कर रहे हैं कि कांग्रेस का सरकार से युद्ध न होकर समझौता हो जाय। और यद्यपि सरकार उनके प्रस्ताव के अनुसार कार्य करती हुई नहीं दिखाई दे रही है, तथापि ऐसे प्रयत्न बराबर हो रहे हैं कि समझौते की कोई राह निकाली जाय। प्रसन्नता की बात है कि ऐसी एक राह निकल भी आई है और 'सरस्वती' के गत अंक में हम उसका उल्लेख भी कर चुके हैं। वह है लोकनायक अणे की योजना, जिसका समर्थन एक तरह से भारत तथा ब्रिटेन दोनों जगहों में हुआ है।

उदार-दल के डाक्टर परांजपे, सर जगदीशप्रसाद, सर नलिनीरंजन सरकार आदि महानुभावों ने भी अपने-अपने ढंग से श्री अणे जी की योजना का समर्थन किया है। यही नहीं, गत २ मई को इँगलैंड की पार्लियामेंट में भी भारत-सेक्रेटरी के सहायक मिस्टर ओ नील ने प्रश्नों के उत्तर में कहा है—"प्रश्नकर्ता सम्भवतः मिस्टर गांधी के उस तार का उल्लेख कर रहे हैं जो एक अँगरेज़ी अख़बार में छपा है और जिसमें यह राय प्रकट की गई है कि पार्ल्यामेंट की एक बहस के दौरान में नेताओं की एक कमिटी निर्मंत्रित करने की जो सूचना प्रकट हुई है, वह आकर्षक है। गांधी जी की शर्त यह है कि ये निर्मंत्रित सज्जन स्वीकृत पद्धति के अनुसार चुने हुए होने चाहिए। अगर यह विचार भारत के भिन्न-भिन्न दलों को स्वीकार हो तो वाइसराय इसके लिए पूरा यत्न करेंगे।"

अस्तु, इन सब बातों से जान पड़ता है कि स्वदेश की समस्या का हल करने के लिए जल्दी ही भारतीय लोकप्रतिनिधियों की एक सभा यहाँ बैठेगी, जो भारतीय शासन-विधान की रूप-रेखा निर्दिष्ट करने का काम अपने हाथ में लेगी और यह महत्त्व का कार्य सरकार और कांग्रेस की सम्मति से करेगी। यदि बात हो गई जैसा कि विश्वास किया जाता है कि अवश्य ही होगी, तो भारत का वर्तमान राजनैतिक संकट सरलता से दूर हो जायगा। इसमें सन्देह नहीं कि यदि यह कार्य निर्विघ्न सम्पन्न हो गया तो भारतीय लोकनेता एवं भारत-सरकार दोनों का ही संसार में गौरव बढ़ेगा, क्योंकि इस कार्य के हो जाने से वर्तमान संसार-संकट के कम से कम एक महत्त्व के अंश की तो समाप्ति हो जायगी और यह इस भयानक अवसर की विशेष महत्त्व की बात होगी।

नात्ज़ी सैनिक खाते क्या हैं?

युद्ध में उतरने से पहले खाद्य पदार्थों के संग्रह का प्रश्न हल कर लेना आवश्यक होता है, क्योंकि शस्त्रास्त्रों के प्रचुर परिमाण में रहते हुए भी यदि देश में अन्न का अभाव हो जाता है तो प्रजा में विद्रोह हो जाता है और सेनायें भी भाग खड़ी होती हैं। जर्मन-सरकार के सामने भी यह प्रश्न था, क्योंकि गत महायुद्ध में उसे इसका कटु अनुभव हो चुका था। जर्मनी के कितने ही वैज्ञानिक किसी ऐसे पदार्थ की खोज में थे जो सस्ता तथा सुलभ हो, साथ ही सैनिकों के लिए पौष्टिक भी काफ़ी हो। कई वर्षों के प्रयोगों के पश्चात् वे लोग इस परिणाम पर पहुँचे कि 'सोयाबीन' ही एक ऐसा खाद्य है जिसमें उपर्युक्त सभी गुण हैं।

सोयाबीन जर्मनी में तो अधिक पैदा नहीं होता, पर रूमानिया, बलगेरिया, मंचूरिया व हंगरी में काफ़ी पैदा होता है। इन देशों से जर्मनी में यह आ सकता है और इसके आयात में मित्रराष्ट्रों के समुद्री घेरे से कोई बाधा नहीं पड़ सकती।

सोयाबीन में पौष्टिक अंश पर्याप्त होते हैं। ४० से ५० प्रतिशत तक प्रोटीन होती है, और इसके सिवा कर्बोज व वसा भी पर्याप्त परिमाण में होते हैं। इस प्रकार यह मांस, दूध, अंडा और अन्यान्य जान्तव खाद्यों की अपेक्षा कहीं अधिक उपयोगी होता है। इसका खानेवाला मांस व मक्खन आदि के खाये बिना ही पर्याप्त शारीरिक परिश्रम कर सकता है। सस्ता भी यह काफ़ी है। मूल्य में इसका आध सेर आटा आधा पाव मांस के बराबर होता है।

पर इसके आध सेर आटे में जितने पौष्टिक रासायनिक होते हैं उतने १। सेर मांस में भी नहीं मिलते। फिर यह ४–५ वर्ष तक बिगड़ता नहीं, जब कि मांस आदि शीघ्र सड़ने लगते हैं। खाद्य के अलावा सोयाबीन से कई युद्धोपयोगी विस्फोटक भी बनाये जाते हैं। इसके बीजों से तेल निकलता है जो सेना के काम आता है। शेष बची हुई खली पशुओं का श्रेष्ठ चारा बनती है। सोयाबीन खानेवाले सैनिकों में मांस खानेवाले सैनिकों की अपेक्षा फुर्ती, बल व उत्साह भी अधिक रहता है तथा उन्हें विदेशों का पानी नहीं लगता जिसमें उनमें गठिया, इन्फ्लुएंजा व फिरंग आदि रोग नहीं पाये जाते।

वैज्ञानिकों की इस सिफ़ारिश के आधार पर ही जर्मन-सरकार इस बार अपने सैनिकों को सोयाबीन खाने को दे रही है। सन् १९२८ से लेकर लगातार १० लाख टन सोयाबीन प्रतिवर्ष विदेशों से जर्मनी को आता रहा है। संभव है, युद्ध के दिनों के लिए भी इसका बड़ा स्टाक वहाँ जमा कर रक्खा गया हो।

रेडियो और हिन्दी

हिन्दी के नाम पर रेडियो-स्टेशनों से जो भाषा ब्राडकास्ट की जाती है वह अरबी-फ़ारसी शब्दों से बुरी तरह लदी रहती है। इसके उदाहरण कितनी ही बार सामने आ चुके हैं। देशवासियों की ओर से अनेक बार इसका विरोध भी किया जा चुका है और कई हिन्दी-प्रेमी इसी लिए रेडियो पर भाषण देने से इनकार करके लौट भी आये क्योंकि रेडियो के अधिकारी उनके भाषणों में प्रयुक्त साधारण शब्दों के स्थान पर अरबी-फ़ारसी के शब्द रखवाना चाहते थे। रेडियोवालों की इस हिन्दी-विरोधी मनोवृत्ति पर दया आती है। यह प्रवृत्ति तब और उपहासास्पद हो जाती है जब रेडियो-भाषण का मुख्य विषय कोई हिन्दू-त्योहार आदि होता है। पिछले दिनों रामनवमी पर जो भाषण सुनने को मिला था उसका एक नमूना देखिए—

"श्रीकृष्ण का जोशे मुहब्बत सचमुच क़ाबिले तारीफ़ था लेकिन फिर भी उनको रामचन्द्र की तरह मर्यादा पुरुषोत्तम कहलाने का फ़ख़्र हासिल नहीं हुआ। भले ही दीगर मुल्कों के लोग राम के कैरेक्टर को ख़याली चीज़ समझें, मगर जिस शायर ने राम का तसव्वुर किया वह अब भी हिन्दुओं के लिए एक बेशक़ीमती चीज़ है।"

और मज़ा तो यह है कि इस भाषण को देनेवाले थे—महामहोपाध्याय पंडित लक्ष्मीदत्त शास्त्री! महामहोपाध्याय जी को इस भाषा की प्रेरणा किस गुरु से मिली? पातञ्जलि और पाणिनि से या किसी रेडियो-डायरेक्टर से? इसका उत्तर शास्त्री जी ही दे सकते हैं। अच्छा हो यदि रेडियोवाले उस भाषा से भी न्याय करना सीखें जिसके बोलने-समझनेवालों की संख्या २२ करोड़ के क़रीब है।

डौंड़ियाखेरा में

पाठकों को इसी अंक में उपर्युक्त शीर्षक की कविता पढ़ने को मिलेगी। उसमें रचयिता ने डौंड़ियाखेरा के अतीत की अपने कवित्व-द्वारा व्यञ्जना की है। परन्तु उसका वर्ण्य डौंड़ियाखेरा आज नगण्य और अज्ञात-है। हाँ, सन् ५७ के ग़दर के पहले सदियों तक वह अवध का एक प्रख्यात 'राजस्थान' रहा है—वहाँ के बैस-नरेश उसकी तथा उसके साथ अपनी कीर्तिध्वजा बराबर उड़ाते रहे हैं। उसके इसी महत्त्व के कारण अभी हाल में उसके ध्वंसावशेषों में संयुक्त प्रान्तीय क्षत्रिय महासभा ने अपनी वार्षिक बैठक की थी। उक्त कविता के रचयिता भी वहाँ पधारे थे और इस प्रकार उन्हें उसके सम्बन्ध में अपने हृदयोद्गारों को व्यक्त करने का अवसर मिला। इसमें सन्देह नहीं है कि डौंड़ियाखेरा का अवध के इतिहास में अपना विशेष स्थान रहा है और यदि वहाँ के अन्तिम शासक राव रामबख्शसिंह ने सन् ५७ के ग़दर में अँगरेज़ों का निर्दयता से वध न किया होता तो आज भी उनका विशाल डौंड़ियाखेरा का राज्य उनके अधिकार में ही होता। परन्तु दैव को वह मंजूर नहीं था। राव साहब को उनके उस अनाचार के लिए फाँसी दी गई और उनका राज्य ज़ब्त कर लिया गया तथा वहाँ का दुर्ग व राजप्रासाद सब ढहा दिये गये। यहाँ तक कि आज उनके उत्तराधिकारी दरिद्रता का जीवन व्यतीत कर रहे हैं। अभी उस दिन बकसर में पिछले राव आदित्यनारायणसिंह की

विधवा रानी ने श्री चंडीप्रतापसिंह को गोद लिया है और उन्हें राव-घराने के वंशों ने अपना 'राव' बनाया है। परन्तु इस अवसर पर लोगों की जो उपस्थिति हुई थी उसको देख कर लोगों की आँखों में आँसू आ गये। वह इसलिए कि ऐसी गद्दीनशीनी के अवसरों पर—राजतिलकोत्सवों पर डौंड़ियाखेरा में जो महोत्सव होता था—जो विशाल जन-समुदय एकत्र होता था, वह सभी दृष्टियों से अनुपमेय होता था। परन्तु दैव के विपरीत हो जाने से वही महत्कार्य इसी डौंड़ियाखेरे के राव का तिलकोत्सव वैशाख शुक्ल ६ रविवार को वैसे ही ढंग से सम्पन्न किया गया, जैसी स्थिति में डौंड़ियाखेरा आज पड़ा हुआ है। हमारी परमात्मा से प्रार्थना है कि वह भूमिसात् डौंड़ियाखेरे का और उसके रावों की एक बार फिर सुध ले और उनका गौरववर्द्धन करे।

एक उपयोगी प्रस्ताव

बुलन्दशहर के रायबहादुर ब्रजलाल जी भाटिया का कहना है कि युद्ध के कारण विदेशी रंगों का भाव चढ़ गया है, अतएव देशी रंगों के बनाने का प्रयत्न होना चाहिए। उनका प्रस्ताव है कि नील की खेती जारी की जाय तथा ढाक आदि के फूलों का उपयोग किया जाय। इसके लिए उन्होंने देशी विज्ञान-विशारदों का भी आह्वान किया है कि वे इस सम्बन्ध में अपने परीक्षण कर देशी रंगों के बनाने की विधियाँ निर्दिष्ट करें। उन्होंने महात्मा गांधी के चर्खा-संघ का ध्यान इस ओर विशेष रूप से आकृष्ट किया है कि वह अपने यहाँ विदेशी रंगों का प्रयोग बन्द करने के लिए स्वदेशी रंगों का एक कारखाना खोले। रायबहादुर साहब का उपर्युक्त प्रस्ताव समयोपयोगी है और इस ओर कम से कम चर्खा-संघ को तो अवश्य ही ध्यान देना चाहिए। भारत में सदा रंग बनाये गये हैं और पक्के बनाये गये हैं। रंगों के बनाने के सारे साधन ही नहीं, उनके बनानेवाले भी अभी तक देश में मौजूद हैं और देशी रंग भी जहाँ-तहाँ बनते हैं। परन्तु व्यावसायिक दृष्टिकोण से उनका बनाया जाना एकदम बन्द हो गया है। ऐसी दशा में इस धन्धे को पुनरुज्जीवित करना देशवासियों का एक धार्मिक कर्त्तव्य है। राष्ट्र के धंधों को पुनरुज्जीवित करने के लिए यहाँ एक बड़ी कमिटी पहले से ही क़ायम है। परन्तु उक्त कमिटी की सजीविता का अभी तक कोई परिचय नहीं मिला है। अतएव उससे ऐसी आशा नहीं की जा सकती कि वह जल्दी ही अपनी कोई योजना कार्य में परिणत करेगी। परन्तु देश में ऐसे लोगों का अभाव नहीं है जो व्यावसायिक बुद्धि रखते हैं, साथ ही कुछ करना भी चाहते हैं। रायबहादुर साहब का रंगोंवाला प्रस्ताव ऐसे लोगों को आकर्षक और प्रोत्साहक प्रतीत होगा। इसमें सन्देह नहीं कि युद्ध के इस संकट-काल में देश के विनष्ट धन्धों का आसानी से पुनर्जीवन किया जा सकता है।

'हल्दीघाटी' पर 'देवपुरस्कार'

प्रसन्नता की बात है कि इस वर्ष 'देवपुरस्कार' 'हल्दीघाटी' नामक खड़ी बोली के महाकाव्य पर दिया गया है।

हल्दीघाटी के रचयिता पं० श्यामनारायण पाण्डेय

इस काव्य की प्रशंसा पहले से ही थी और क्षत्रिय महासभा के बिहार के अधिवेशन में भी इसके रचयिता को इसी रचना के लिए पुरस्कार दिया गया था। ऐसी दशा में इस रचना पर 'देवपुरस्कार' मिलना ठीक ही हुआ है। इसके रचयिता पण्डित श्यामनारायण पाण्डेय को हम इस सफलता के लिए बधाई देते हैं। हमें आशा है, उन्हें अपनी इस विजय से काफ़ी प्रोत्साहन मिलेगा और वे भारत की ऐसी ही ऐतिहासिक घटनाओं पर इससे भी उत्कृष्ट काव्य-ग्रन्थों का प्रणयन करेंगे।

पचास रुपये का

श्री काशीराम-पुरस्कार

इसका प्रथम पुरस्कार इस बार—**कविता**—पर दिया जायगा। नियम निम्नांकित है—

(१) हिन्दी का कोई भी कवि या कवयित्री इस पुरस्कार की प्रतियोगिता में भाग ले सकेगी।

(२) रचनायें भेजने की अन्तिम तारीख ३१ मई है।

(३) रचनायें खड़ी बोली में होनी चाहिए। छन्द-संख्या लगभग ५० के हो। केवल नई और मौलिक रचनाओं पर विचार किया जायगा।

(४) सर्वश्रेष्ठ रचना पर ५०) का पुरस्कार ३० जून को भेज दिया जायगा, और रचना 'सरस्वती' में छापी जायगी। पुरस्कार का रुपया निर्णायक भेजेंगे।

(५) रचनाओं का निर्णय 'सरस्वती'-सम्पादक पण्डित देवीदत्त जी शुक्ल करेंगे। प्रतियोगियों को अपनी रचनायें उन्हीं के नाम 'इण्डियन प्रेस लिमिटेड, इलाहाबाद,' के पते से भेजनी चाहिए।

(६) रचना पर 'श्री काशीराम पुरस्कार के लिए'—यह वाक्य अवश्य लिखा रहना चाहिए। रचना के साथ आवश्यक टिकट अवश्य होना चाहिए, अन्यथा अस्वीकृत होने पर कोई रचना वापस न की जायगी।

निवेदक

चन्द्रभूषण वैश्य, नारायणगंज (ढाका)

युद्ध की डायरी

१८ अप्रैल—नार्वे के एलवरम इलाक़े में भयानक लड़ाई हुई। ट्रॉण्डहीम खाली कर दिया गया। स्टैवेंजर पर ब्रिटिश वायुयानों ने आक्रमण किया।

१९ अप्रैल—बर्गन इलाक़े के कई टापुओं पर जर्मनों का क़ब्ज़ा हो गया। ब्रिटेन व फ्रांस की सेनायें नार्वे में सकुशल पहुँच गईं। हामर को जर्मनों से छीन लिया गया।

२० अप्रैल—नेमसेस व ओसलो पर लड़ाई हुई।

२१ अप्रैल—रात को शत्रु के कई विफल आक्रमण हुए जिसमें उसके ५ वायुयान नष्ट किये गये।

२२ अप्रैल—डेनमार्क-स्थित नाज़ी अड्डे पर ब्रिटिश वायुयानों ने आक्रमण किया। 'जुर्गन फिटज़न' नामक जर्मन-जहाज डुबा दिया गया। ब्रिटेन का एक भारी क्रूज़र डूब गया। ब्रिटिश फ़ौजें एण्डालसनेस में उतरीं।

२३ अप्रैल—ब्रिटिश वायुयानों ने डेनमार्क-स्थित वालवर्ग पर आक्रमण किया। ओसलो, क्रिस्टियनसंड और स्टैवेंजर के हल्क़ों में भयानक लड़ाई हुई। १ डच स्टीमर माल सहित समुद्र में डूब गया।

२४ अप्रैल—ओसलो प्रान्त में १७,००० ब्रिटिश फ़ौजें पहुँच गईं।

२५ अप्रैल—स्टेंकजार जर्मनों के क़ब्ज़े में हो गया। स्टैनकीर इलाक़े में ब्रिटिश व जर्मन टैंकों में घोर लड़ाई हुई। नार्विक से १८॥ मील दूर पर भी लड़ाई हुई।

२६ अप्रैल—नार्विक पर जर्मन-सेनाओं ने भयानक गोलाबारी की। जर्मन-फ़ौजें रोएरोस से ३० मील पीछे हट गईं।

२७ अप्रैल—ओस्लो पर ब्रिटिश फ़ौजों ने गोलाबारी की। स्टेवेंजर के एरोड्रोम पर ब्रिटिश वायुयानों ने गोलाबारी की। लीलेहैमर में अँगरेज़ी व जर्मन-सेनाओं का मुक़ाबिला हुआ।

३० अप्रैल—आलसंड के पास जर्मन व ब्रिटिश वायुयानों में भयानक लड़ाई हुई।

१ मई—जर्मन-सेनायें ओसलो और ट्राण्डहीम से क्रमशः बढ़ती हुई स्टोरेन के दक्षिण-पश्चिम में मिल गईं। दो ब्रिटिश पनडुब्बियाँ नष्ट हो गईं। डोम्बास और स्टोरेन पर जर्मनों का क़ब्ज़ा हो गया।

३ मई—नार्विक से जर्मन-कमाण्डर भाग गया।

४ मई—नार्विक में मित्र-सेनाओं ने भयानक गोलाबारी की। रोएरोस पर जर्मनों का अधिकार हो गया। जर्मन हवाई जहाज़ों ने नामसोस के पश्चिम में एक ब्रिटिश फ़्लैग-शिप जंगी जहाज पर आक्रमण किया। जहाज़ डूब गया। एक ब्रिटिश क्रूज़र भी डूब गया।

७ मई—जर्मन-फ़ौजें नेमसोस के उत्तर मौसजोन में पहुँच गईं।

८ मई—हालैण्ड में फोन और रेडियो के सम्बन्ध टूट गये।

९ मई—नार्विक में जर्मन-सेनायें पीछे हटीं। हालैंड और बेल्जियम पर जर्मनों ने हमला कर दिया। लक्सेमबर्ग पर भी हमला हुआ। लक्सेमबर्ग की सरकार राजधानी छोड़कर भाग गई।

१० मई—एण्टवर्प पर भारी आकाशी हमला हुआ। ब्रूसेल्स पर भी बम-वर्षा हुई। जर्मन-सेनाओं का डच व बेल्जियम सेनाओं के साथ संघर्ष शुरू हो गया। ब्रिटिश व फ्रेंच सेनाएँ सहायतार्थ पहुँच गईं।

११ मई—मित्र फ़ौजों का हालैण्ड व बेल्जियम में जोरदार स्वागत किया गया। कई जर्मन-वायुयान गिराये गये।

१२ मई—लिम्बर्ग और मास्ट्रिच्ट के इलाक़ों में शत्रु की सेनाओं को सफलता प्राप्त हुई।

१३ मई—जर्मन-सेनाओं ने अलबर्ट नदी को पार किया। १०० जर्मन-वायुयान नष्ट किये गये। हालैण्ड में आर्नहम पर जर्मनों का क़ब्ज़ा हो गया। हेग में जर्मन व डच सेनाओं में आमने-सामने की लड़ाई हुई।

१४ मई—सात हज़ार जर्मन-वायुयान आक्रमण करने को आ गये। बेल्जियम व हालैण्ड के खुले नगरों पर बम-वर्षा की गई। डच कमाण्डर-इनचीफ़ ने हालैण्ड की सेनाओं को हथियार डाल देने की आज्ञा दे दी।

१५ मई—जर्मन-सेनाओं ने फ्रांस के कुछ क़सबों पर आक्रमण किया। नार्विक पर ब्रिटेन के वायुयानों के आक्रमण जारी रहे। जर्मन-सेनाओं ने हालैण्ड की राजधानी हेग में प्रवेश किया।

१६ मई—जर्मन-सेनाओं ने सेडान से आगे बढ़ने का प्रयत्न किया, पर विफल रहीं।

फिसान

सचित्र मासिक पत्रिका

सम्पादक

देवीदत्त शुक्ल—उमेशचन्द्र मिश्र

जुलाई १९४० } भाग ४१, खंड २ संख्या १, पूर्ण संख्या ४८७ { आषाढ़ १९९७

मेरी याद

लेखक, श्रीयुत नरेन्द्र शर्मा, एम० ए०

अब तो तुम्हें और भी मेरी याद न आती होगी!

हरे-भरे होंगे वन-उपवन
बीत चुके हैं दिन पतझर के,
कहाँ याद आते होंगे अब
मेरे अश्रु-हास पल भर के!

आज तुम्हारे स्वर में स्वर भर कोयल गाती होगी!

कटहल, बेल, नीम महके हैं,
खिली कामिनी फूलोंवाली;
रँगी खड़ी सेंमल, पलाश औ'
अमलताश की डाली डाली;

सोने की गुलमोर लोचनों में छा जाती होगी!

गंध-रूप-रँग की यह दुनिया
जो अग-जग पाल-फूल रही है,
झूल झकोरों में माधव के
सब पिछले दुख भूल गई है;

आज लगे बैसाख नई अमिया गदराती होगी!

कौन देश से आवेंगे पिय
हँस-हँस कहती होंगी सखियाँ,
घेर तुम्हें आँगन में बैठीं
आमी चीर उछाल बिजलियाँ;—

तुम्हें खीझ, फिर कभी हँसी बरबस आ जाती होगी!
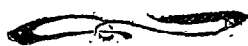
स्वर्गीय आचार्य रामदेव जी

लेखक, श्रीयुत धर्मदेव शास्त्री

आचार्य रामदेव जी के नाम के साथ स्वर्गीय शब्द लगाते हुए लेखनी रुक जाती है। आचार्य जी की आयु अभी ५८ वर्ष ही थी। इतनी थोड़ी आयु में उनका हमें सदा के लिए छोड़ जाना निर्ममता ही कही जा सकती है। परन्तु निर्ममता का शिकार उनका अपना शरीर ही अधिक था। वस्तुतः शरीर के साथ उन्होंने अत्याचार किया। कार्य करते हुए उन्होंने दिन-रात का भेद भुला दिया। पाठकों को आश्चर्य होगा कि वे मृत्यु से पूर्व १२ वरस से भी अधिक समय से नींद आने के लिए दवा का सेवन कर रहे थे। उन्हें कार्य अधिक करने और तिस पर भी अधिक स्वाध्याय और प्रवचन करने के कारण अनिद्रता का रोग हो गया था। आश्चर्य तो यह है कि जिस व्यक्ति के दिमाग में बड़ी बड़ी लाइब्रेरियाँ समा जाती थीं, उसके अपने शरीर की सुधि के लिए उसमें तनिक भी स्थान नहीं था। मैंने यह इसलिए लिखा है कि यदि आचार्य जी शरीर-यन्त्र से उतना ही कार्य लेते जितना कि वह दे सकता था तो वे अभी हमारे बीच कुछ वर्ष और रहते। परन्तु वे बिना काम किये रह ही नहीं सकते थे। जब कभी उनके स्वास्थ्य के लिए वे पढ़ने और बातचीत करने से रोके गये तब उसका उनके शरीर पर उलटा ही प्रभाव पड़ा।

शरीर इतना काम नहीं दे सकता था जितना कि आचार्य जी उससे लेते थे। वे शरीर-रूपी घोड़े को दवाइयों का चाबुक मार मारकर ही चलाये जाते थे। परन्तु यह अवस्था परिवर्तित हुई। शरीर ने जवाब दे दिया। १९३९ के दिसम्बर में जब वे लाहौर से कांगड़ी गुरुकुल (हरिद्वार) आये, रात्रि में लघुशंका के लिए कमरे से बाहर गये। हरिद्वार की तथाकथित सुतीक्ष्ण वायु (हरिद्वार में इस वायु को डाडू कहते हैं। रात के नौ बजे से प्रातः नौ बजे तक यह प्रायः चलती है) के लगते ही उन्हें लकवा हो गया—मुँह टेढ़ा हो गया और वाणी अस्पष्ट हो गई तथा आधा शरीर बेकार-सा हो गया। दूसरे रोज़ ही वे हरिद्वार से देहरादून आये। आते ही उन्होंने सबसे कहा कि डरने की बात नहीं, आठ रोज़ के भीतर ही ठीक हो जायगा। हम लोगों में से कोई यदि चिन्ता प्रकट करता तो वे उसे समझाते। देहरादून आने के दो रोज़ बाद से ही वे प्रतिदिन प्रातःकाल जब मैं पहले पहल उन्हें मिलता था, वे सबसे पूर्व यही प्रश्न करते कि मेरी आवाज़ कल से अच्छी है। मेरे उत्तर की प्रतीक्षा किये बिना ही वे कह देते थे कि अब रुपये में चौदह आने ठीक हो गया है। लकवे के कारण उनके मुँह की स्नायु इतनी कमज़ोर हो गई थी और मानसिक दशा इतनी अस्थिर हो गई थी कि हर्ष अथवा विषाद की छोटी-सी घटना को सुनकर अथवा पढ़कर वे सशब्द रोने लगते थे, आँखों से आँसुओं की झड़ी-सी लग जाती थी। यदि कोई पास बैठा हुआ व्यक्ति यह दशा देखकर चिन्तित होता अथवा समवेदनात्मक शब्द कहता तो आचार्य जी उसे यह कहकर सान्त्वना देते कि "मेरा रोग ही ऐसा है। आप चिन्ता न करें।" उनको यह विश्वास था कि वे एक बार फिर पूर्ववत् खड़े होंगे और अपना शेष कार्य पूरा करेंगे। यदि कोई मित्र अपनी लड़की अथवा लड़के की शादी के लिए चिन्ता प्रकट करता था तो वे कहते कि 'मैं अधिक से अधिक छः मास तक अवश्य स्वस्थ हो जाऊँगा तब मैं ही सब कर दूँगा, चिन्ता न करें'। वस्तुतः इसी आशा के बल पर केवल मानसिक शक्ति के कारण ही वे लकवे जैसे रोग के साथ लगातार तीन वर्ष तक लड़ते रहे। परन्तु इस लड़ाई में उनको हारना पड़ा और रोग विजयी हुआ, क्योंकि दवा के चाबुक खा-खाकर उनका शरीर इतना ढीठ हो गया था कि उसने अन्त में बिलकुल जवाब दे दिया। लकवे की हालत में भी वे उससे काम लेते रहे, लेख लिखवाना, कन्या-गुरुकुल के मुख्याधिष्ठाता-पद को सँभालना आदि कार्य तो मृत्यु से दो-चार दिन पूर्व तक वे करते रहे। आखिरकार जब शरीर ने अपनी स्थिति के लिए भी आवश्यक कार्यों को करने से इनकार कर दिया तब यह सोचकर कि जीर्ण-शीर्ण शरीर को छोड़ कर नये शरीर से नव उत्साह के साथ कार्य होगा, आचार्य जी

९ दिसम्बर १९३९ को प्रातः ५½ बजे रूढ़ितः नहीं योगतः 'स्वर्गीय' बने। यद्यपि वे थोड़ी ही आयु में स्वर्गारूढ़ हुए, तथापि उन्होंने शरीर से इतना काम लिया जितना पूरी आयु प्राप्त करके भी कोई विरला ही ले सकता था।

× × ×

यद्यपि आचार्य रामदेव जी* का कार्यक्षेत्र मुख्यतया आर्य-समाज तक ही था, तो भी वे देश के माने हुए शिक्षा-शास्त्री और सामाजिक नेता थे। स्वर्गीय स्वामी श्रद्धानन्द जी के बाद आर्य-समाज के क्षेत्र में ख्यातनामा देश-प्रसिद्ध आर्यनेता आचार्य रामदेव जी ही थे। स्वर्गीय स्वामी श्रद्धानन्द जी की प्रवृत्तियों में से गुरुकुल-काँगड़ी, कन्या-गुरुकुल, वेद-प्रचार, आर्य-प्रतिनिधि सभा (पंजाब) और सार्वदेशिक सभा (दिल्ली) आदि को उतनी ही लगन और योग्यता से सँभालनेवाले व्यक्ति स्वर्गीय आचार्य जी ही थे।

आचार्य जी की मृत्यु से आर्यसमाज को और राष्ट्र को उल्लेखनीय हानि हुई है। आर्यसमाज में तो उनका स्थान लेनेवाला कोई भी व्यक्ति नहीं दिखाई देता।

आचार्य जी आर्य-समाज में अपने ढंग के बेमिसाल व्यक्ति थे। स्वामी दयानन्द सरस्वती के बाद आर्य-समाज में दो प्रकार के नेता हुए। एक तो स्वर्गीय गुरुदत्त विद्यार्थी टाइप के जो विद्या और स्वाध्याय के कारण सर्वमान्य हुए, दूसरे स्वर्गीय स्वामी श्रद्धानन्द जी के टाइप के जो देश और जाति तथा धर्म की विविध प्रवृत्तियों में अग्रणी बनकर अपने आचार्य दयानन्द के पद-चिह्नों पर चले। आचार्य रामदेव जी में दोनों शैलियों का सम्मिश्रण था। उनके समान पढ़नेवाला व्यक्ति तो शायद लाखों में से एक ही मिलेगा। उनके सम्बन्ध में यह कहा जाता था कि वे चलती-फिरती लाइब्रेरी हैं। देश-विदेश में जब जो नई पुस्तक प्रकाशित होती थी, वे उसे मँगवाते अवश्य थे और आद्योपान्त पढ़ जाते थे। पढ़ ही नहीं जाते थे, दिमाग़ में रख लेते थे। इसलिए उनके व्याख्यान सुनने तथा उनसे बातचीत करने से पचासों पुस्तकों का सार अनायास मिल जाता था।

स्वर्गीय आचार्य रामदेव जी

पढ़ने का तो उन्हें इतना शौक़ था कि यदि कभी पढ़ने के लिए कोई पुस्तक न मिलती तो जो कुछ भी मिल जाता उसे ही आद्योपान्त पढ़ने लगते थे। इन पंक्तियों के लेखक ने एक बार आचार्य जी को अन्य पुस्तक के अभाव में रेलवे-टाइम-टेबुल का ही स्वाध्याय करते हुए देखा है।

बात बहुत बरसों की है। मेरी आयु तब १० या ११ वर्ष की रही होगी। स्वर्गीय आचार्य जी आर्य-समाज के झगड़े को निपटाने के लिए लेखक की जन्म-भूमि अलीपुर ग्राम पधारे। चार-पाँच रोज़ तक वे वहाँ ठहरे। लेखक को उन दिनों की एक घटना अब तक याद है। ग्राम की दो अच्छी लाइब्रेरियों की सब पुस्तकें जिनमें स्वामी दयानन्द का वेद-भाष्य भी शामिल है, आचार्य जी ने तीन दिनों में समाप्त कर दीं। उनके पढ़ने के लिए आखिरकार एक अच्छे वकील के निजी पुस्तकालय से क़ानून की पुस्तकें प्रस्तुत की गईं। २० साल पुरानी यात्रा में अलीपुर के जिन सज्जनों से आचार्य जी का साधारण परिचय हुआ था उनका नाम लेकर लेखक के ग्राम अलीपुर की चर्चा उन्होंने देहरादून में अनेक बार की, जिससे उनकी स्मरण-शक्ति का परिचय मिलता है।

साधारण-सी घटना का भी दिन, तारीख़, समय और कैफ़ियत उन्हें भूलती न थी। भूलने की आदत

*आचार्य रामदेव जी का जन्म बिजगड़ा ग्राम होशियारपुर-ज़िले में ३१ जुलाई १८८१ में हुआ था।

उनकी न थी सिवा एक अपवाद के और वह अपना शरीर। जूता पहना है कि नहीं, हजामत बनवाई है अथवा नहीं, रोटी खाई है कि नहीं, कमीज फट तो नहीं रही है, टोपी उलटी तो नहीं धर ली, यह सब उन्हें कभी याद नहीं आया।

शास्त्रों में सर्वमेव-यज्ञ का ज़िक्र है, जिसमें सर्वस्व की आहुति देनी पड़ती है। शास्त्रों में ही यह भी लिखा है कि पुत्रैषणा-वित्तैषणा-लोकैषणा इन तीन एषणाओं से उठ कर मनुष्य ब्रह्म-निर्वाण प्राप्त करता है। ब्रह्म-निर्वाण का यहाँ अर्थ है—जनता जनार्दन के लिए निर्वाण।

आचार्य रामदेव जी ने शास्त्र की उक्त दोनों बातों को प्रत्यक्ष कर दिखाया है। मृत्यु के समय उनके पास अपनी कहलाने के लिए एक इंच भी ज़मीन न थी और न किसी बैंक में उनका एक पैसा जमा था। यह ठीक है कि आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए उन्हें कभी चिन्ता नहीं करनी पड़ी, तो भी धन के लिए लोलुप होकर उन्होंने जीवन का एक भी क्षण व्यर्थ नहीं गँवाया। एक निःस्पृह ब्राह्मण का आदर्श उनकी जीवनी में स्पष्ट दीखता है। यदि वे चाहते तो अपने साथियों की तरह लौकिक दृष्टि के उच्च पद प्राप्त कर सकते थे। परन्तु वे इतना ही करने के लिए नहीं आये थे।

× × ×

सार्वजनिक क्षेत्र में कार्य करने की प्रवृत्ति तो उनमें बहुत छोटी आयु से ही थी। १५ वर्ष की ही आयु में मैट्रिक पास करके वे डी० ए० वी० कालेज (लाहौर) में प्रविष्ट हुए। कालेज में पढ़ते हुए भी वे सार्वजनिक कामों में भाग लेते थे। वेद-प्रचार के लिए चन्दा करने के कारण ही उनको डी० ए० वी० कालेज से पृथक् होना पड़ा, क्योंकि कालेज के तात्कालिक प्रिंसिपल स्वर्गीय महात्मा हंसराज को यह कार्य पसन्द न था, और विद्यार्थी रामदेव प्रचार के लिए चन्दा करने के कार्य को छोड़ने को तैयार न था। रामदेव विद्यार्थी कालेज छोड़ते ही अपनी योग्यता के कारण एफ़० ए० भर पास करने पर भी जालन्धर हाई स्कूल का हेडमास्टर बना दिया गया और यह कार्य करते करते उसने बी० ए० भी पास किया, और इन्सपेक्टर ने योग्यता से प्रसन्न होकर हेडमास्टर रामदेव जी को ट्रेनिंग के लिए छात्रवृत्ति देकर लाहौर भिजवाया। हाई-स्कूल की हेडमास्टरी करते हुए भी मास्टर रामदेव जी (तब आचार्य जी इसी नाम से पुकारे जाते थे) सार्वजनिक जीवन से विशेष दिलचस्पी लेते थे। इन्हीं दिनों उन्होंने 'एक आर्य-भ्रातृ-सभा' नामक संस्था बनाई थी। संस्था के नियमों में एक नियम यह भी था कि सदस्य-गण साप्ताहिक सत्संग में सपरिवार आया करें और सदस्यों की स्त्रियाँ पर्दा न करें। पर्दा न करना उन दिनों बहुत बड़ी सामाजिक क्रांति समझी जाती थी। पर्दे से स्वर्गीय आचार्य जी को विशेष घृणा थी। उन्होंने यह प्रतिज्ञा कर रक्खी थी कि "किसी ऐसे विवाह में वर-वधू को आशीर्वाद न दूँगा जिसमें विवाह-संस्कार के समय पर्दा किया गया हो।" वे अपने कई मित्रों के सम्बन्ध में कहा करते थे कि 'उनकी घरवालियों का घूँघट उन्होंने अपने हाथों उतारा है।' मित्रता के नाते इतना वे अपना अधिकार समझते थे।

× × ×

आचार्य रामदेव जी के काम इतने व्यापक और सुदृढ़ हैं, जिनके जीवित रहते उनको भी जीवित कहा जायगा। गुरुकुल (काँगड़ी) को स्वामी श्रद्धानन्द जी के बाद मजबूत बनाने का श्रेय उन्हीं को ही है।

दक्षिण-अफ़्रीका से वे गुरुकुल के लिए एक लाख रुपया संग्रह करके लाये थे। उसके लिए प्रतिवर्ष हज़ारों रुपये एकत्र करना उनका ही काम था।

गुरुकुल (काँगड़ी) को सुदृढ़ बनाकर और अपने सुयोग्य शिष्यों को सौंपकर वे कन्या-गुरुकुल (देहरादून) के लिए जुट पड़े। कन्या-गुरुकुल आज से १६ वर्ष पूर्व दिल्ली में खोला गया था। सेठ रघुमल जी की १ लाख रुपये की प्रतिज्ञा के प्राप्त होते ही दिल्ली में यह संस्था सन् १९२३ में खोली गई। दुर्भाग्यवश सेठ रघुमल जी का अचानक देहान्त हो गया और उक्त धन नहीं मिल सका। शास्त्रों में कहा है—'सर्वस्वं ब्राह्मणस्येदं यत्किञ्चिज्जगतीतले।' भूतल पर जो भी धन है वह ब्राह्मण की ही सम्पत्ति है। उन्होंने ब्राह्मण-वृत्ति से शास्त्र के इस वाक्य को चरितार्थ कर दिखाया। स्वयं ग़रीब बनकर आचार्य जी ने अमीरों की सम्पत्ति को अपनी ओर आकर्षित किया। उन्हीं की तपस्या और परिश्रम का ही फल है कि गुरुकुल (काँगड़ी) और कन्या-गुरुकुल की लाखों रुपये की सम्पत्ति है।

बाद में कन्या-गुरुकुल दिल्ली से देहरादून लाया गया। बीमारी की हालत में भी उनको कन्या-गुरुकुल की चिन्ता रहती थी। पिछले दिनों जब शिमला से लौटते हुए महात्मा गांधी दिल्ली में रुके थे तब आचार्य जी उस हालत में भी महात्मा जी से मिले और मिलते ही उन्होंने कन्या-गुरुकुल के सम्बन्ध में चिन्ता प्रकट की। वस्तुतः उनमें यह विशेषता थी कि किसी कार्य को स्वावलम्बी बनाये बिना वे उसकी चिन्ता से किसी क्षण भी मुक्त नहीं होते थे। कन्या-गुरुकुल को बनाने में उन्हें कुमारी विद्यावती सेठ बी० ए० का अनुपम सहयोग मिला। श्री विद्यावती जी संस्था की जन्म से ही आचार्या हैं। यदि विद्यावती जी कन्या-गुरुकुल की जननी हैं तो वे संस्था के कुल-पिता थे। कन्या-गुरुकुल में सब उन्हें 'पिता जी' ही सम्बोधित करते थे। कन्या-गुरुकुल को वे जिस प्रकार का बनाना चाहते थे वैसा उसके बनने से पूर्व ही उनकी मृत्यु हो गई। महात्मा गांधी जी के शब्दों में आचार्य जी की वास्तविक स्मृति कन्या-गुरुकुल देहरादून ही है। यदि देश की जनता कन्या-गुरुकुल (देहरादून) की आचार्या विद्यावती सेठ को आर्थिक दृष्टि से निश्चिन्त कर दे तो यह संस्था अमर बनकर उनको अमर रख सकती है।

× × ×

लिखने और बोलने की शक्ति समान रूप से बहुत कम व्यक्तियों में मिलती है। स्वर्गीय आचार्य जी में इन दोनों का समन्वय था। तीन भागों में विभक्त भारत का जो इतिहास उन्होंने लिखा है वह ऐतिहासिक दृष्टि से हिन्दी में मौलिक और सर्वोत्कृष्ट रचना है। आर्य-समाज के नेता होते हुए भी 'पुराणमत पर्यालोचन, नामक वृहत् ग्रन्थ के द्वारा पुराणों के उत्कृष्ट अंशों को उन्होंने जनता के समक्ष रखकर सनातन-धर्मी जनता का महान् उपकार किया है।

इन पंक्तियों के लेखक को उनके साथ रहते हुए बातचीत में उनकी विशाल हृदयता का जिसमें हिन्दू-मुसलमान का कोई भेद नहीं, परिचय मिला है। वस्तुतः वे बहुत उदार महामना व्यक्ति थे। २० वर्षों तक अँगरेजी में 'वैदिक मैगजीन' पत्रिका का सम्पादन करके उन्होंने अँगरेजी-भाषा-भाषियों तक वैदिक धर्म का जो सन्देश सुनाया है वह आदर्श है। 'वैदिक मैगजीन' अपने समय की उत्कृष्ट पत्रिका थी। महात्मा गांधी, दीनबन्धु ऐंड्रूज, कवीन्द्र रवीन्द्र, योगी अरविन्द तथा अनेक योरपीय विद्वान् उसके लेखकों में थे। बेल्जियम की राजकुमारी कारावा और महात्मा टालस्टाय जैसे व्यक्तियों के साथ व्यक्तिगत परिचय इसी पत्रिका के द्वारा ही उनका हुआ। विकासवाद पर एक आलोचनात्मक बृहत् अप्रकाशित ग्रन्थ वे छोड़ गये हैं, जो शीघ्र ही प्रकाशित होगा। अपने ढंग का वह अँगरेजी में एक नया ही ग्रन्थ होगा।

बचपन में हमें व्याख्यान सुनने का बहुत शौक़ था और 'जो व्याख्यान अच्छा दे सकता है वही बड़ा आदमी है' ऐसी हमारी धारणा थी। व्याख्यान देनेवालों को नम्बर देना ही हमारा काम था। जिसके व्याख्यान में सबसे अधिक तालियाँ पिटें वही सबसे अच्छा व्याख्याता माना जाता। इस प्रकार हमने तो आचार्य जी को शत-प्रतिशत नम्बर बचपन में दिये थे। वस्तुतः व्याख्यान देने की उनकी अपनी शैली थी, जिसका अनुसरण मेरे जैसे सैकड़ों व्यक्तियों ने किया है।

आचार्य जी में एक विशेषता यह भी थी कि वे जो कुछ कहते थे, उसे स्वयम् करते थे। उन्होंने अपने दोनों लड़कों को गुरुकुल का स्नातक बनाया है। लड़कियों में से उनकी तीन लड़कियाँ स्नातिका हैं। बड़ी दो लड़कियाँ जब पढ़ने के योग्य थीं तब कन्या-गुरुकुल की स्थापना ही नहीं हुई थी। पक्के आर्यसमाजी होने के साथ वे पक्के राष्ट्रवादी भी थे। सन् ३० में सत्याग्रह के दिनों में वे पंजाब प्रान्तीय राजनैतिक कान्फ़रेंस के अध्यक्ष बनाये गये थे। फलतः २½ वर्ष के लिए वे जेल भेजे गये थे। उनका विचार था कि समस्त आर्यसमाजियों को कांग्रेस में भाग लेना चाहिए। गुरुकुल (काँगड़ी) को राष्ट्रीय संस्था बनाये रखने के लिए उन्होंने स्वर्गीय स्वामी श्रद्धानन्द जी का अनुसरण करते हुए सरकारी सहायता लेने से इनकार कर दिया।

आचार्य जी के निकट सम्पर्क में जो भी आया उसने उनको महान् पुरुष पाया। सहृदयता, दाक्षिण्य और आकर्षण उनके सहज गुण थे। वे अपने पीछे विधवा पत्नी, दो पुत्र (श्री. यशपाल सिद्धान्तालङ्कार और श्री सत्य-भूषण योगी वेदालङ्कार), ५ पुत्रियाँ (जिनमें से ४ विवाहिता और एक कुमारी स्नातिका है) छोड़ गये हैं। उनकी सेवाओं को राष्ट्र भूल नहीं सकता।

हिन्दुओं के लिए जीवन और मृत्यु का प्रश्न

लेखक, श्रीयुत सन्तराम, बी० ए०

वैज्ञानिकों ने सजीव प्राणी के जो लक्षण माने हैं उनमें प्रधान लक्षण यह है कि सजीव जन्तु भोजन को पचाकर अपने शरीर का अंग बना लेता और बाह्य सुख-दुःख का अनुभव करता है। जब किसी जन्तु में भोजन को पचाकर हाड़-मांस में परिणत करने की शक्ति नहीं रह जाती और वह बाह्य सुख-दुःख का अनुभव करने में असमर्थ हो जाता है तब हम उसे मृत कहते हैं। जो बात व्यक्ति की है वही समाज की है। जो समाज दूसरे लोगों को अपने में पचा नहीं सकता, जो अपने दुःख-सुख के प्रति उदासीन है, वह अधिक काल तक संसार में जीता नहीं रह सकता। उसका दिन पर दिन क्षीण होकर नष्ट हो जाना अवश्यम्भावी है। इस लक्षण की कसौटी पर जब हम हिन्दू-समाज को परख कर देखते हैं तब हमें घोर निराशा होती है। हिन्दुओं की संख्या दिन पर दिन कम होती जा रही है। उनके इस भीषण ह्रास को रोकने का यत्न आर्यसमाज एवं सिक्ख-पंथ ने किया था, परन्तु उन्हें सफलता नहीं मिली। उनकी विफलता का कारण क्या है, इस पर विचार करने की आवश्यकता है।

सिक्खों और आर्यसमाजियों ने 'शुद्धि'-द्वारा ईसाई और मुसलमानों को पुनः हिन्दू-समाज में लाने की प्रथा चलाई थी। उनके प्रयत्न से कुछ विधर्मी हिन्दू बने भी थे। परन्तु हिन्दू-समाज की सदोष रचना के कारण वे बहुत दिन तक उसमें न रह सके। धीरे धीरे वे, लगभग सबके सब, जहाँ से आये थे, पुनः वहीं लौट गये। आज हम उनमें से सौ पीछे दो को भी अपने में नहीं पाते। आगे मैं कतिपय सत्य घटनायें देता हूँ जिनसे हिन्दुओं के इस ह्रास के मूल-कारण पर कुछ प्रकाश पड़ेगा।

(१)

कुछ वर्ष की बात है डसका (पंजाब) के निकटवर्ती एक गाँव का निवासी परशुराम नामक एक ब्राह्मण मुसलमान हो गया। कुछ काल के उपरान्त लाहौर की (वच्छोवाली) आर्यसमाज ने उसका मुण्डन करके उसे पुनः आर्य बना लिया। उसकी दो कन्यायें थीं। वे कन्या-महाविद्यालय, जालन्धर, में भरती करा दी गईं। परशुराम भी वैदिक पाठशाला, गुजरांवाला, में शिक्षा पाने लगा। परन्तु उसकी स्त्री के सँभालने का कोई प्रबन्ध न हो सका। उसके लिए किसी हिन्दू मुहल्ले में जगह न मिल सकी, जहाँ आर्य-समाजी अथवा हिन्दू स्त्रियाँ उसका स्वागत करनेवाली हों। उसको आर्य-समाज-मन्दिर के निकट एक मुस्लिम मुहल्ले में मकान लेकर दिया गया। परशुराम पाठशाला में पाँच-छः घंटे पढ़कर रात्रि को घर आता था। परन्तु उसकी स्त्री की शिक्षा-दीक्षा का कोई प्रबन्ध न था। एक दिन उसकी स्त्री गुरुकुल, गुजरांवाला, में गई। वहाँ उसे काँसे के बर्तन में पानी न दिया गया। उससे दुराव किया गया। इस बीच में उसका लड़का मर गया। उसके साथ समवेदना प्रकट करने के लिए मुहल्ले की मुसलमान स्त्रियाँ तो आईं, परन्तु कोई आर्यसमाजी अथवा हिन्दू स्त्री उसके पास तक न फटकी। इससे उसे बहुत रंज हुआ। उन्हीं दिनों उसके बच्चा होनेवाला था। आर्यसमाजी और हिन्दू स्त्रियों का ऐसा दुर्व्यवहार देखकर वह पति से बोली—"तुम यदि हिन्दू रहना चाहते हो तो बेशक रहो, परन्तु मैं तो हिन्दू रहकर अपनी मिट्टी खराब नहीं कराना चाहती।" परशुराम ने विवश होकर अपनी दोनों लड़कियों को कन्या-महाविद्यालय, जालन्धर, से बुला लिया और अपने गाँव में जाकर पुनः मुसलमान हो गया।

इसमें सन्देह नहीं कि अब छूत-छात और जात-पाँत का उतना जोर नहीं, परन्तु यह बात बड़े नगरों और ऊँची श्रेणी के लोगों तक ही सीमित है। गाँवों में तो अब तक भी वैसी ही छूत-छात और जात-पाँत है।

(२)

शेखूपुरा-ज़िले के अन्तर्गत शाहकोट नामक स्थान के निकट चक नम्बर १८२ नाम का एक छोटा-सा गाँव है। वहाँ मुहम्मद लक्खा नाम का एक सम्पन्न मुसलमान रहता था। वह अपने मित्र आत्मासिंह के उपदेश और संगति से सिक्ख बन गया। उसके दो लड़कियाँ और एक लड़का था। जब विवाह का समय आया तब उस

इलाक़े का कोई हिन्दू उसकी लड़कियों को लेने के लिए तैयार न हुआ। परन्तु आत्मासिंह ने दौड़-धूप करके किसी दूसरे इलाक़े के दो हिन्दुओं के साथ उनका विवाह करा दिया। कुछ काल के बाद उसका लड़का भी विवाह-योग्य हुआ। अब उसने आत्मासिंह से उसके विवाह के लिए कहा। परन्तु लाख यत्न करने पर भी उसके लड़के के लिए हिन्दू अथवा सिक्ख लड़की न मिल सकी। आत्मासिंह के अपने परिवार में विवाह-योग्य लड़कियाँ थीं। मुहम्मद लक्खा ने उससे कहा कि उनमें से एक मेरे लड़के के लिए दे दो। परन्तु आत्मासिंह को साहस न हो सका। वह घबरा गया। इससे मुहम्मद लक्खा के हृदय पर बड़ी चोट लगी। उसने अपनी दोनों लड़कियाँ ससुराल से बुला लीं और सारे का सारा परिवार पुनः मुसलमान हो गया। मुहम्मद लक्खा का वह पुत्र जिसका मुसलमानी नाम शाह मुहम्मद है, आज-कल कहीं तहसीलदार है।

(३)

कुछ वर्ष की बात है, पेशावर में मुहम्मद असलम नाम का एक सभ्य पठान रहता था। एक आर्यसमाजी की संगति से उसे 'सत्यार्थ-प्रकाश' और 'कुलियाते आर्य मुसाफ़िर' प्रभृति पुस्तकें पढ़ने का शौक़ पैदा हो गया। उनके पाठ से उसका इस्लाम के बहुत-से सिद्धान्तों पर से विश्वास उठ गया। वह 'पुनर्जन्म' का विश्वासी हो गया और स्वर्ग में पहुँचने के लिए हज़रत मुहम्मद साहब की सिफ़ारिश आवश्यक है, इसे मानने से उसने इनकार कर दिया। उसकी स्त्री और साली भी सुपठिता थीं। वह उनके साथ भी इन विषयों पर बात-चीत किया करता था। इसलिए वे उसके बदलते हुए विचारों से अनभिज्ञ न थीं। धीरे धीरे उसके मस्तिष्क पर वैदिक विचारों ने पूर्ण रूप से अधिकार जमा लिया। पहले तो वह अपने विचारों को चिरकाल तक छिपाये रहा, परन्तु जब उसके लिए उनको गुप्त रखना असह्य जान पड़ा तब उसने पेशावर-आर्यसमाज के मंत्री महाशय से नियमपूर्वक 'शुद्धि' की प्रार्थना कर दी। मंत्री महाशय उसका 'शुद्ध' होने का विचार सुनकर तो प्रसन्न हुए, परन्तु पेशावर में रहकर उसको 'शुद्ध' करने का साहस न कर सके। उन्होंने उसे लाहौर जाकर 'शुद्धि' कराने को कहा। मुहम्मद असलम ने कहा, आप डरिए-नहीं, यहाँ के पठानों के विरोध को मैं स्वयं सँभाल लूँगा, अन्त को मैं भी पठान हूँ; लाहौर में 'शुद्धि' कराने के बाद भी तो मुझे पेशावर में ही आकर रहना है। इस प्रकार डर-डर कर कैसे काम चलेगा? परन्तु मंत्री जी पेशावर में उसकी शुद्धि करने को तैयार न हो सके। विवश होकर मुहम्मद असलम लाहौर आने को सहमत हो गया।

अब उसने घर आकर अपनी स्त्री और साली से पूछा—यदि मैं इस मकान को रद्दी और अनुपयुक्त समझकर किसी दूसरे अच्छे मकान में चला जाऊँ तो क्या आप मेरे साथ वहाँ चलेंगी या इसे अपने बापा-दादा की सम्पत्ति समझकर यहीं रहना पसन्द करेंगी? स्त्रियों ने उत्तर दिया—जहाँ आप जायँगे, हम भी वहीं आपके साथ चलेंगी। तब उसने उनसे स्पष्ट कह दिया कि मेरा विश्वास इस्लाम पर से उठ चुका है और मैं आर्यसमाज में शुद्ध होने के लिए लाहौर जा रहा हूँ। यदि आप मेरे साथ रहना चाहती हैं तो लाहौर चलने की तैयारी कीजिए।

अब मुहम्मद असलम दोनों स्त्रियों-सहित लाहौर आ गया। आर्यसमाज-मन्दिर (कदाचित् अनारकली) में वे ठहराये गये और वहीं उन तीनों की 'शुद्धि' की गई। पेशावर-आर्यसमाज के मंत्री ने उससे कह रक्खा था कि शुद्धि के अनन्तर तुम कुछ महीने लाहौर में ही रहना, क्योंकि पेशावर में तुम्हारे आने से मुसलमानों के गड़बड़ करने की आशंका है। इसलिए मुहम्मद असलम ने लाहौर के आर्य-समाजियों से कहा कि आप मुझे यहाँ कोई काम ढूँढ़ दीजिए, जिससे मेरा निर्वाह हो सके। आर्य-समाजियों ने कहा, बहुत अच्छा। परन्तु आठ दिन बीत गये, दस दिन बीत गये, पन्द्रह दिन बीत गये, किसी ने उसकी कुछ सहायता न की। इस बीच में वे दोनों स्त्रियाँ समाज-मन्दिर की एक छोटी-सी कोठरी में बैठी रहतीं, आर्यसमाजी स्त्रियाँ आतीं, दूर से उनको देखतीं, और आपस में इशारों से बातें करतीं कि ये दो पठानियाँ हैं जो 'शुद्ध' हुई हैं। परन्तु कोई भी स्त्री उनके पास जाकर उनसे उनका दुःख-सुख न पूछती कि बहन, तुम्हें किसी वस्तु की आवश्यकता तो नहीं। किसी ने उनको एक जून के भोजन तक के लिए भी अपने यहाँ निमंत्रण न दिया। इस नवीन धर्म में आते ही अपना इतना कड़ा सामाजिक बहिष्कार देखकर उन्हें बड़ा दुःख हुआ। उस छोटी-सी कोठरी में अकेली बैठे बैठे वे तंग आ गईं। उन्होंने मुहम्मद असलम से साफ़ कह दिया

कि तुम्हारी इच्छा हो तो बेशक रहो, परन्तु हम तो ऐसे धर्म में अब एक दिन भी नहीं रह सकतीं। बस, उन तीनों ने बोरिया-बँधना उठाया और रेल का टिकट लेकर सीधे पेशावर आ पहुँचे। उनके सम्बन्धियों ने पूछा कि इतने दिन कहाँ रहे? तब मुहम्मद असलम ने उत्तर दिया—मेरी साली बीमार थी, चिकित्सा के लिए उसे लाहौर ले गया था। इस प्रकार वह परिवार पुनः मुसलमानों में लौट गया।

इसके विपरीत नव-मुस्लिमों के साथ मुसलमानों का व्यवहार देखिए। अभी तीन-चार वर्ष की बात है। लाहौर के निकटवर्ती देहात में बहुत-से बाज़ीगर मुसलमान हो गये थे। उन लोगों को हिन्दू रहते हुए सबसे बड़ी कठिनाई यह थी कि घूमते-फिरते जब भी ये किसी गाँव में जाते थे तब वहाँ के हिन्दू और मुसलमान उनको कुएँ से पानी न भरने देते थे। कुछ हिन्दुओं ने 'रावी के तट पर उनकी एक छोटी-सी बस्ती बसाकर उनके लिए वहाँ कुआँ खुदवा दिया था। परन्तु बाज़ीगरों का काम ऐसा है कि उन्हें महीनों एक स्थान से दूसरे स्थान पर घूमते फिरना पड़ता है। ऐसी दशा में जब तक सब कहीं उनके लिए हिन्दुओं के कुएँ खुले न हों, वे अपने पेट का पालन नहीं कर सकते। जब वे लोग हिन्दू-समाज के इस अत्याचार से तंग आकर मुसलमान हो गये तब उनके लिए सब कहीं कुएँ खुल गये। देहाती मुसलमानों ने उनका खुले हृदय से स्वागत किया। प्रत्येक मुस्लिम परिवार ने उनको काँसे का एक एक बर्तन, एक एक वस्त्र और यथाशक्ति अन्न दिया। कई दिन तक उनको भोजन के लिए निमन्त्रण आते रहे। मुसलमान स्त्रियाँ बाज़ीगर स्त्रियों से आ आकर कहती थीं—बहनो, अल्लाह ने तुमको ईमान का नूर बख्शा है; तुम अब दोज़ख की आग से बच गई हो; अब तुम सीधी बिहिश्त में जाओगी।

(४)

उज्जैन में एक महाशय हैं। कदाचित् किसी मिल के मैनेजर हैं। जन्म से मुसलमान होने और इस्लामी नाम रखने पर भी वे विश्वास से आर्य-समाजी हैं। गत बीस-पच्चीस वर्ष से वे अपने खर्च पर आर्य-समाज का वार्षिकोत्सव कराते हैं। अपनी लड़की शान्ता उन्होंने कन्या-महाविद्यालय, जालन्धर, में और लड़के काशी-विश्व-विद्यालय में पढ़ाये हैं। इतने पक्के आर्य-समाजी को जब सन्तान की ब्याह-शादी का अवसर आया तब हिन्दुओं में न लड़कियाँ मिल सकीं और न लड़का। सुना है, विवश होकर उन्हें लड़कों का विवाह मुसलमानों में करना पड़ा है। लड़की ने डाक्टर बन जाने पर भी अभी तक विवाह नहीं किया है।

(५)

ज्वालापुर (हरिद्वार) में, कुछ वर्ष की बात है, एक मौलवी साहब और आर्य-समाज के उपदेशक श्री मुरारीलाल जी का वाद-विवाद हुआ था। मौलवी महाशय इस्लाम को सर्वोत्तम धर्म बताते थे और मुरारीलाल जी वैदिक धर्म को। मौलवी साहब उपदेशक महाशय की युक्तियों की ताब न ला सके। जनता में उन पर ताली पिट गई। तब मौलवी साहब ने अपना अमोघ अस्त्र निकाला। उन्होंने कहा, पण्डित महाशय, आप कहते हैं, वैदिक धर्म सच्चा है और मैं कहता हूँ इस्लाम। लीजिए इसका निर्णय अभी हो जाता है। मैं वैदिक धर्म को अच्छा समझकर इस्लाम को छोड़ता हूँ। मेरे लड़कियाँ हैं और लड़का भी। मेरे लड़के को आप अपनी लड़की दीजिए और मेरी लड़कियों के लिए योग्य हिन्दू वर ढूँढ़ दीजिए। मैं विवाह करने को तैयार हूँ। बोलिए आप तैयार हैं? उपदेशक महाशय पर मौलवी साहब का अस्त्र काम कर गया। वे सन्न-से रह गये। पाँच मिनट तक उनसे कुछ भी उत्तर न बन पड़ा। तब मौलवी साहब ने ललकार कर कहा—पण्डित महाशय, क्या इसी बिरते पर वैदिक धर्म को सच्चा और सर्वोत्तम कह रहे थे? आप आइए इस्लाम में। आप अपनी लड़की भी न दीजिए, मेरी लड़की आपके लड़के के लिए हाज़िर है।

बस, उपदेशक महाशय की सारी विजय एक क्षण में पराजय में परिणत हो गई।

(६)

जिस वर्ष मौलाना शौकतअली और मुहम्मदअली की माता का देहान्त हुआ उसी वर्ष की बात है। श्री भाई परमानन्द जी मौलाना के पास समवेदना प्रकट करने गये थे। उस समय बात-चीत में मौलाना मुहम्मदअली ने श्री भाई जी से कहा था कि आप लोग व्यर्थ ही शुद्धि और अछूतोद्धार का रोड़ा अटकाकर इस्लाम की प्रगति

को रोकना चाहते हैं। इसमें आपको कभी सफलता नहीं हो सकती। भाई जी ने पूछा, क्यों। मौलाना ने उत्तर दिया—देखिए, यह भंगिन जा रही है। मैं इसे मुसलमान बनाकर आज ही बेगम मुहम्मदअली बना सकता हूँ। क्या आपमें या मालवीय जी में यह साहस है? मैं किसी हिन्दू को मुसलमान बनाकर आज ही अपनी लड़की दे सकता हूँ। क्या कोई हिन्दू-नेता ऐसा कर सकता है? यदि नहीं कर सकता तो फिर आप शुद्धि और अछूतोद्धार का ढोंग रचकर इस्लाम के मार्ग में रोड़ा क्यों अटका रहे हैं?

(७)

कुछ वर्ष की बात है, दरियाखाँ (सीमा प्रान्त) में एक व्यक्ति मिला। लोगों ने उसकी ओर संकेत करके कहा कि यह पहले हिन्दू था, कुछ ही वर्ष से मुसलमान हुआ है। मेरे मित्र श्री भूमानन्दजी ने उससे पूछा, क्यों भाई, तुम मुसलमान क्यों हो गये हो? वह हँसने लगा। दुबारा पूछने पर उसने अपनी आत्म-कथा इस प्रकार सुनाई—

मेरा नाम परमानन्द था। हम दो भाई थे। एक छोटे-से गाँव में हमारी दूकान थी। मैंने बहुत यत्न किया कि किसी प्रकार मेरा विवाह हो जाय। परन्तु हो न सका। कारण यह कि इस प्रदेश में हिन्दुओं की जन-संख्या बहुत कम है। यहाँ लड़कीवाले बहुत-सा धन लेकर लड़की देते हैं। मेरे पास इतना धन नहीं था। यदि धन न हो तो फिर वट्टा देकर विवाह होता है। अर्थात् मेरे ताऊ, चचा या मौसी, फूफी की कोई लड़की हो, मैं वह किसी दूसरे को दूँ तो वह अपने किसी सम्बन्धी की लड़की मुझे दिलायेगा। मेरे पास ऐसी कोई लड़की भी न थी। प्रतीक्षा करते करते मैं ३५-३६ वर्ष का हो गया। उस गाँव के मुसलमान मुझे बार-बार ताने से कहते—ओ परमे, तू बिनब्याहा ही इस संसार से चल देगा; इस जन्म में तेरा विवाह न हो सकेगा। अरे छोड़ इस हिन्दू-धर्म को जो तेरा घर भी नहीं बसा सकता। आ, क़लमा पढ़कर मुसलमान बन। कल ही तेरा विवाह हो जायगा। मैं मन में कहता, स्त्री के लिए धर्म जैसी अमोल वस्तु का छोड़ना ठीक नहीं। इसलिए मैंने कभी उनकी बात पर ध्यान नहीं दिया।

जब मेरा यौवन ढलने लगा तब मैंने अपने विवाह का विचार छोड़कर अपने छोटे भाई के विवाह के लिए यत्न करना आरम्भ किया। मैंने सोचा, यदि छोटे भाई का विवाह हो जायगा तो दोनों भाइयों को दोनों समय पकी-पकाई रोटी तो मिलने लगेगी, रोटी के लिए हाथ तो नहीं जलाने पड़ा करेंगे। परन्तु भाई का विवाह भी न हो सका। तब मुझे बड़ी निराशा और दुःख हुआ। अब मैं अपनी उस दुरवस्था को और न सहन कर सका। हम दोनों भाई मसजिद में जाकर मुसलमान हो गये। दूसरे ही दिन हम दोनों का विवाह हो गया। हमें साले, सालियाँ, सास-ससुर मिल गये। पहले हम अकेले थे, अब हम बन्धु-बान्धवओंवाले हो गये। दुर्भाग्य से एक ही वर्ष के भीतर मेरी स्त्री का देहान्त हो गया। इससे मुझे बहुत शोक और चिन्ता हुई। मुझे उदास और चिन्तातुर देख मेरे ससुर ने कहा, तुम चिन्ता क्यों करते हो। मैं पुनः तुम्हारा विवाह कर दूँगा। उसने कुछ ही दिन में अपने एक सम्बन्धी की युवती कन्या मुझे ला दी। अब हम सब बड़े आनन्द से रहते हैं। हिन्दू रहने से शायद मरने के बाद मुझे स्वर्ग मिल जाता, परन्तु जीते जी तो मैं नरक भोग रहा था। इस्लाम में आकर मैं जीवन का आनन्द ले रहा हूँ, मरने के बाद जो कुछ होगा, देख लिया जायगा।

× × ×

उपरिलिखित घटनाओं को पढ़कर किस हिन्दू के हृदय पर चोट न लगेगी, कौन हिन्दू न चाहेगा कि हमारे समाज में भी विधर्मियों को पचाने की शक्ति हो? परन्तु विचारपूर्वक देखने से पता लगेगा कि हिन्दू चाहें भी तो भी वे विधर्मियों को आत्मसात नहीं कर सकते। इसका कारण उनकी सदोष समाज-रचना है। ऊँच-नीच-मूलक वर्ण-व्यवस्था को मानते हुए हम किसी भी अहिन्दू को हिन्दू नहीं बना सकते। जाति-भेद के कारण प्रत्येक हिन्दू अपनी ही जाति के संकीर्ण क्षेत्र के भीतर व्याह-शादी करता है। जो पठान, मुग़ल, अँगरेज़, यहूदी हिन्दू बनना चाहेगा, हिन्दुओं की कोई भी जाति उसे अपने में लेने को तैयार न होगी। इसलिए वह हिन्दू-समाज में न रह सकेगा। भीलों, गोंडों और कोलों को भारत में रहते सहस्रों वर्ष हो गये। परन्तु हिन्दू उन्हें अपने समाज का अंग न बना सके। वे आज तक भी जंगली अवस्था में ही हैं। जब तक ईसाई और मुसलमान इस देश में नहीं आये थे तब तक इन भील-गोंडों की ओर से हिन्दुओं को

कोई भय नहीं था। परन्तु जब से इस्लाम और ईसाई मत ने अपना जाल इन लोगों में फैलाना आरम्भ किया है तब से वही भील-गोंड हिन्दुओं के लिए भय का कारण बनने लगे हैं। जो इस्लाम सब मोमिनों को भाई समझता है उसका सामना जन्ममूलक ऊँच-नीचवाला हिन्दू कैसे कर सकता है? किसी दूसरे व्यक्ति को अपने समाज का अंग बनाने के लिए उसके साथ रोटी-बेटी-व्यवहार का होना आवश्यक है। जिसके साथ आप खान-पान और व्याह-शादी नहीं कर सकते वह कभी भी आपका हाड़-मांस नहीं बन सकता। महात्मा गांधी को भी आज स्वीकार करना पड़ा है कि हिन्दू बहुसंख्यक दीखने पर भी अगणित अल्प-संख्याओं का असंगठित समूह है; इसी लिए मुसलमान अल्पसंख्यक होने पर भी संगठित होने से उनसे मज़बूत हैं। हिन्दू-समाज नारङ्गी की भाँति ऊपर से एक दीखने पर भी भीतर से उसकी फाँकों के सदृश पृथक्-पृथक् जातियाँ हैं। इन बहुसंख्यक जातियों और उपजातियों का, रोटी-बेटी-व्यवहार की दृष्टि से, आपस में उतना ही सम्बन्ध है, जितना चिड़िया-घर के पशु-पक्षियों का आपस में होता है।

इतना ही नहीं, इन जातियों और उपजातियों का आपस में ईर्ष्या-द्वेष भी बहुत है। इन्होंने एक-दूसरे के प्रति बड़ी बड़ी अपमान-सूचक कहावतें बना रक्खी हैं। यथा—

१. अकाल बाँगर से होत और बुरा ब्राह्मण से होत।

२. क्षत्रिय पुत्रम् कभी न मित्रम्, जब मित्रम् तब दग़ीं-दग़ा।

३. जिसका बनिया यार, उसे दुश्मन क्या दरकार?

४. सूत, सुनार, कुत्ते का, विश्वास न कीजे सोये का।

सदोष समाज-रचना के कारण ही आज हिन्दुओं में फूट का एकच्छत्र राज्य है, इसी के कारण आज अकेली दिल्ली की जामामसजिद में ही औसतन १६ हिन्दू प्रतिदिन मुसलमान और सारे भारत में प्रायः ३०० हिन्दू प्रतिदिन ईसाई होते हैं। जो जन्माभिमानी हिन्दू-संस्कृति और रक्त की पवित्रता के नाम पर वर्ण-भेद को बनाये रखना चाहते हैं उन्हें सोचना चाहिए कि यदि कोई हिन्दू ही नहीं रह जायगा तो फिर हिन्दू-संस्कृति और हिन्दू-धर्म की रक्षा कौन करेगा।

जब तक हिन्दू जाति-भेद को नहीं छोड़ते तब तक न केवल यही कि उनका आपस में संगठन होगा, वरन हिन्दू-मुस्लिम-फ़िसाद भी कभी बन्द न होंगे। इसका एक विशेष कारण है। समाज-शास्त्र का एक नियम है कि एक देश में रहनेवाले दो मनुष्य-समूह यदि आपस में खान-पान और व्याह-शादी नहीं करते तो उनमें एक-दूसरे को ऊँच-नीच समझने का दूषित भाव अवश्य उत्पन्न हो जाता है, जिसका अनिवार्य परिणाम परस्पर का विद्वेष, ईर्ष्या और वैमनस्य होता है। जिन लोगों में आपस में खान-पान और व्याह शादी होती है उनमें यदि लड़ाई-झगड़ा होता है तो वह कुछ काल के उपरान्त शान्त हो जाता है। भाई-भाई, स्त्री-पुरुष, हिन्दू-सिक्ख, अँगरेज़-जर्मन के झगड़े और फ़िसाद बरस, दो बरस, दस बरस रहकर अन्त को शान्त हो जाते हैं। कारण यह कि उनमें परस्पर खान-पान और व्याह-शादी होता है। परन्तु ब्राह्मण के पूर्वजों ने जो कहार के पूर्वजों का अपमान किया था, हिन्दू राजपूतों ने मुसलमान राजपूतों के पूर्वजों को पुनः अपने में मिलाने से इनकार करके उनका जो तिरस्कार किया था, उसे वे आज तक नहीं भूल सके और न भूलेंगे ही। इसी लिए हिन्दू-मुसलमान का फ़िसाद अनन्तकाल तक नहीं बन्द हो सकता। जो हिन्दू भय, लालच या धोखे से पतित होकर मुसलमान बने थे उन्होंने उस समय बहुतेरा यत्न किया कि वे फिर हिन्दू बना लिये जायँ, परन्तु न तो हिन्दुओं ने उनको रोटी-बेटी-सम्बन्ध-द्वारा आत्मसात् करना स्वीकार किया और न उनका तिरस्कार करना ही छोड़ा। ऐसी दशा में मुसलमान देखते हैं कि यदि हमें भारत में स्वाभिमानपूर्वक जीना है तो उसके लिए एक ही उपाय है। वह यह कि जैसे भी हो, हम अपनी संख्या को उतना बढ़ा लें कि फिर ये बहुसंख्यावाले हिन्दू हमें कुचल न सकें, हमारे साथ अछूतों जैसा दुर्व्यवहार न कर सकें। उन्हें हर वक्त भय रहता है कि यदि हम अल्प-संख्या में रहे तो जो ब्राह्मण हिन्दू शूद्र के साथ भी समता और बन्धुता करने को तैयार नहीं वह हमारे विधर्मियों के साथ समता और बंधुता का व्यवहार कैसे कर सकता है। इसी लिए प्रत्येक मुसलमान—स्त्री-पुरुष, बच्चा-बूढ़ा—के हृदय में इस्लाम को बढ़ाने—हिन्दुओं को मुसलमान बनाने की चिन्ता सदा बनी रहती है। किसी

ग़ैर-मुस्लिम को मुस्लिम बनाना प्रत्येक मुसलमान एक पुण्य कर्म समझता है। इसी लिए वह लड़की देकर और लड़की लेकर, दोनों तरह से, इस्लाम का प्रचार करने में संकोच नहीं करता । कारण यह कि इसमें उसकी आत्म-रक्षा है। मसजिद के सामने बाजा न बजाने, हिन्दी एवं वन्दे मातरम् का विरोध करने और बकराईद पर गौ का जुलूस निकालने का जो वह हठ करता है वह तो अपने भीतरी रोष को प्रकट करने का उसका केवल एक बहाना है। यदि हिन्दू और मुसलमानों के सामाजिक सम्बन्ध अच्छे हो जायँ तो मुसलमान कभी भी इस प्रकार हिन्दुओं को चिढ़ाने की कुचेष्टा न करें।

हिन्दू आपस में ही एक दूसरे को ऊँच-नीच समझकर एक-दूसरे का तिरस्कार करते हैं। एक ब्राह्मण अनुभव ही नहीं करता कि मैं शूद्र के हाथ का बना भोजन खाने से इनकार करके उसका बड़ा भारी अपमान करता हूँ। इसलिए मुसलमान की मनोवृत्ति और रोष का कारण उसकी समझ में ही नहीं आता। वह फ़िसादों का सारा दोष मुसलमानों को देता है। उधर इस्लाम "सब मोमिन भाई हैं" का उपदेश करता है। उसमें इस प्रकार की छूत-छात और ऊँच-नीच को कोई स्थान नहीं। इसलिए वह हिन्दुओं-द्वारा तिरस्कृत होना सहन नहीं कर सकता।

कांग्रेसवादी हिन्दू-मुसलमानों के दंगों का कारण रोटी का प्रश्न समझते हैं—इसलिए जिन प्रान्तों में उनकी संख्या ९–१० प्रतिशत से अधिक नहीं, वहाँ भी वे उनको ६०–७० प्रतिशत सरकारी नौकरियाँ देकर और हिन्दुओं के सामाजिक एवं धार्मिक स्वत्वों पर अनुचित प्रतिबन्ध लगाकर मुसलमानों को सन्तुष्ट करने का यत्न करते हैं। परन्तु रोग का निदान ग़लत होने से उसकी चिकित्सा भी ग़लत है। फलतः कांग्रेस की चेष्टा से हिन्दू-मुस्लिम-फ़िसाद घटने के बजाय सब कहीं बढ़े ही हैं। कांग्रेस को देखना चाहिए कि फ़िसाद करनेवाले मुसलमान किस श्रेणी के लोग होते हैं। हमने कभी किसी मुसलमान डाक्टर, जज, वकील, अध्यापक और व्यापारी को फ़िसाद करते नहीं देखा। दंगा करनेवाले लोग तो प्रायः कुँजड़े, तबंगर, लोहार, बढ़ई और मजदूर आदि ही होते हैं, जिनको न सरकारी नौकरियों की और न असेम्बली की सीटों की कुछ खबर रहती है। उनके विषय में यह कभी नहीं कहा जा सकता कि वे रोटी के लिए लड़ते हैं। "इस्लाम खतरे में है" से उनका तात्पर्य यही होता है कि इस्लाम के फैलने में बाधा न पड़ने पाये।

जो लोग कहते हैं कि हिन्दुओं को संगठित करके उन्हें इसलिए मज़बूत करना चाहिए ताकि फिर मुसलमान उपद्रव न कर सकें। उन्हें सोचना चाहिए कि शिवाजी, प्रताप और गोविन्दसिंह से बढ़कर मुसलमानों का बहिष्कार करना उनके लिए इस समय सम्भव नहीं। सर विलियम हण्टर लिखते हैं कि अँगरेज़ों ने भारत का राज्य मुग़लों से नहीं, बरन दो हिन्दू-संघों—सिक्खों एवं मराठों—से लिया है। पंजाब सिक्खों के पास था और हिन्दुस्थान मराठों के पास। इस प्रकार यद्यपि हिन्दुओं ने राजनैतिक तौर पर इस्लाम को परास्त कर दिया था, तो भी सामाजिक तौर पर इस्लाम बराबर बढ़ता रहा। वह सिक्खों के राज्य में भी बढ़ा और मराठों के राज्य में भी। इस समय भी हैदराबाद-राज्य में मुसलमान शासक के अधीन इस्लाम बढ़ रहा है और नैपाल में हिन्दू राजा के अधीन भी। कारण यह कि इस्लाम की समाज-रचना समता और बन्धुता-मूलक होने से ऊँच-नीच-मूलक हिन्दू-समाज-रचना से श्रेष्ठ और सुदृढ़ है। हिन्दुओं को मज़बूत और संगठित बनाने के इच्छुक सज्जन अपने समाज के इस दोष को दूर करने का यत्न नहीं करते। वे यह नहीं सोचते कि जिस हिन्दूत्व की रक्षा की वे दुहाई देते हैं उसके साथ द्विज को तो प्रेम हो सकता है, पर शूद्र और अछूत उसकी रक्षा के लिए प्राण देने को क्यों उद्यत हों। वे तो समझते हैं कि चाहे किसी का राज्य हो, हम तो सदा भंगी और चमार ही बने रहेंगे, हम तो कभी द्विज नहीं बन सकेंगे। यदि हिन्दू वर्ण-भेद को मिटा दें तो जहाँ उनका परस्पर संगठन दृढ़ हो जाय, वहाँ मुसलमानों का वैर-विरोध भी शान्त हो जाय। लङ्का में बहुत-से बौद्ध ईसाई हो गये थे। परन्तु बौद्धों ने उनका सामाजिक बहिष्कार नहीं किया। वे उनके साथ पूर्ववत् खान-पान करते रहे। इसका परिणाम यह हुआ कि कुछ ही वर्षों में वे सब पुनः बौद्ध हो गये। यदि हिन्दू भी मुसलमानों से भेदभाव छोड़ दें और उनसे घनिष्ठता बढ़ायें तो दोनों दलों का परस्पर प्रेम बढ़ सकता है। परन्तु जाति-भेद

को रखते हुए हिन्दुओं का न तो मुसलमानों से खान-पान करना सम्भव है और न हितकर ही। कारण यह कि हिन्दुओं को डर लगता है कि कहीं हम मुसलमान न हो जायँ, कहीं मुसलमान हमारी लड़कियाँ न ले जायँ। यदि जाति-भेद न हो तो जहाँ मुसलमान हिन्दुओं को पचा जाते हैं, वहाँ हिन्दू भी मुसलमानों को आत्मसात् कर सकते हैं। इससे दोनों जातियों का परस्पर भय और संदेह दूर हो जाय। मुसलमान यदि एक हिन्दू लड़की को ले जायँगे तो हिन्दू दस मुस्लिम लड़कियों को पचा लेंगे। आपस में विवाह-शादी भी होने लगे। जाति-भेद को रखते हुए मुसलमानों के साथ सामाजिक सम्बन्ध बढ़ाने में हिन्दुओं को भारी हानि होने का डर है। परन्तु जाति-भेद न रहने से फिर कुछ भी डर नहीं। दोनों जातियाँ भाई भाई की तरह मिल जायँगी। यदि हिन्दू-धर्म में कोई अच्छी और सुन्दर बात होगी तो मुसलमानों को उसे ग्रहण करने में कोई संकोच न होगा। इसी तरह मुसलमानों की समता और बन्धुता हिन्दुओं को लेने में लाभ ही रहेगा। मेरा विश्वास है कि यदि जाति-भेद का कोढ़ दूर हो जाय तो हिन्दू-धर्म इतना उत्तम और शान्तिदायक हो जाये कि संसार का कोई भी दूसरा धर्म इसके सामने नहीं ठहर सकता। इसे सभी लोग सहर्ष स्वीकार करने के लिए उद्यत हो जायँगे। इस समय हिन्दुओं का अपना सामाजिक दुर्व्यवहार ही मुसलमानों को उनसे मिलने नहीं देता। और इस दुर्व्यवहार का कारण उनका जाति-भेद है।

यदि हिन्दू मुसलमानों का सामाजिक बहिष्कार छोड़ दें तो जिस तरह आज मूर्तिपूजक, ईश्वरवादी, निरीश्वरवादी, पुनर्जन्म को माननेवाला और न माननेवाला सभी लोग हिन्दू हैं, वैसे ही रोज़ा, नमाज़ और क़ुरान को मानते हुए भी वे, धार्मिक अर्थों में न सही तो सामाजिक एवं राजनैतिक अर्थों में तो अवश्य हिन्दू ही कहलायेंगे। इँग्लेंड में लार्ड हेडले चाहे मुसलमान हो जाय और चाहे बौद्ध, वह ब्याह-शादी अँगरेज़ों के साथ ही करेगा; उसके बौद्ध या मुसलमान हो जाने से अँगरेज़ उसका सामाजिक बहिष्कार नहीं कर देते। मुसलमानों में यदि कुछ लोग गोमांस खाते हैं तो हिन्दुओं में भी बहुतेरे सूअर का मांस चट कर जाते हैं। मुझे तो विश्वास है कि यदि मुसलमानों का सामाजिक बहिष्कार हटा दिया जाय और जो बिछुड़ा भाई दुबारा हिन्दू-समाज में आना चाहे उसके साथ रोटी-बेटी के व्यवहार में कोई संकोच न हो तो मुसलमान गोहत्या अपने आप बन्द कर देंगे; नमाज़, रोज़ा और क़ुरान को मानते हुए भी वे भारत की सभ्यता, भाषा और संस्कृति को अपनायेंगे। इस समय वे हिन्दुओं के दुर्व्यवहार से चिढ़कर प्रत्येक राष्ट्रीय बात का विरोध करते हैं। विरोध के प्रकोप में वे क़ुरान की बात को भी नहीं सुनते। हिन्दुओं में यदि "हम एक दूसरे को मित्र की आँख से देखें" का प्रबल प्रवाह बहने लगे तो कोई शक्ति नहीं जो किसी विदेशी धर्म को भारत में खड़ा रख सके। कारण यह कि स्वयं क़ुरान इस बात की प्रतिज्ञा नहीं करता कि वह सारे संसार के लिए है। क़ुरान का अरबी रीति-रवाज और काबा की पूजा केवल अरब-निवासियों के लिए है। क़ुरान स्पष्ट शब्दों में कहता है कि अरबी रसूल और अरबी क़ुरान अरब के लिए आया है। प्रत्येक देश और जाति का अधिकार है कि उसको उपदेश और पुस्तक उसकी अपनी भाषा में आये।

"कोई जाति नहीं, को: देश नहीं, जहाँ कि हमने नबी उस देश या जाति की बोली के साथ नहीं भेजा—" क़ुरान।

क़ुरान किसी देश या जाति में फूट नहीं डालना चाहता। रसूले अरबी हज़रत मुहम्मद साहब अरब को एकता के सूत्र में पिरोने आये थे। उन्होंने अपने देश को संगठित करने के लिए योरुशलम के काबे को छोड़कर मक्का को काबा बनाया था। वे कैसे पसन्द कर सकते हैं कि भारत के अधिवासी भारत के काबे का परित्याग और अरब के काबे का स्वीकार करके आपस में सिर-फुटौवल करें? हिन्दुओं के जाति-भेद ने मुसलमानों को भारत की संस्कृति और भाषा को अपनाने से रोक दिया है। आर्य-समाज का "शुद्धि" का ढोंग सफल नहीं हो सका। किसी मुसलमान को शुद्ध करके उसके हाथ से पानी पी लेने या लड्डू खा लेने से ही वह हिन्दू नहीं रह सकता, और न अछूत जातियाँ ईसाई और मुसलमान होने से बचाई जा सकती हैं। कितने 'धर्मपाल' और 'परशुराम' आर्य-समाज में आये और उनके आने पर तालियाँ बजीं। परन्तु अब वे ढूँढ़ने से भी कहीं नहीं मिलते। सुना है,

छतारी के नवाब ने एक बार इच्छा प्रकट की थी कि मैं हिन्दू बनना चाहता हूँ; परन्तु शर्त यह है कि मेरी सामाजिक स्थिति का कोई ताल्लुक़दार अपनी लड़की मेरे लड़के को दे और मेरी लड़की के लिए भी वैसा ही कोई उचित वर दिया जाय। तब भी हिन्दू उनकी इच्छा को पूर्ण न कर सके।

जाति-भेद एक क्रमिक अछूतपन है, जिसके कारण सारा हिन्दू-समाज एक दूसरे के लिए अछूत है; अन्तर केवल अंश का है; कोई कम अछूत है और कोई ज्यादा। इस जाति-भेद के कारण हिन्दू-समाज बालू की कणिकाओं का एक ढेर बन रहा है। इन कणिकाओं को एकता के सुदृढ़ सूत्र में बाँधनेवाला कोई सीमेन्ट नहीं। डाक्टर अम्बेदकर ने कुछ वर्ष हुए हिन्दू-महासभा से कहा था कि यदि आप अछूतों को अपने साथ रखना चाहते हैं तो कम-से-कम एक प्रस्ताव के रूप में यह स्पष्ट घोषणा कर दीजिए कि यह सभा वर्ण-भेद को स्वीकार नहीं करती; वर्ण-भेद को मिटाने का काम फिर सुविधा के अनुसार धीरे-धीरे होता रहेगा। परन्तु उस सभा को आज तक भी ऐसी घोषणा करने का साहस नहीं हुआ। वह महासभा चाहे घोषणा करे चाहे न करे, परन्तु एक बात निश्चित है कि यदि हिन्दुओं ने जाति-भेद को न मिटाया तो जाति-भेद हिन्दुओं को अवश्य मिटा देगा।

विपथगा

लेखक, श्रीयुत देवीदयाल चतुर्वेदी 'मस्त'

चली विपथगा विप्लव करती, महानाश का बिगुल बजाती;
मानव का यह रक्त बहाकर, रणचण्डी का साज सजाती।
राजमहल के सपने टूटे, शाही शान बनी है रानी;
युद्ध-भूमि में महाप्रलय की चण्डी कहती आज कहानी।
मानव मानव को ही खाता, मूक बनी अब उसकी वाणी;
तोप बमों की अग्नि-शिखा में, जलती उसकी आज जवानी।
रण-चण्डी निज खप्पर भरकर आज नाचती है मुस्काती;
चली विपथगा विप्लव करती, महानाश का बिगुल बजाती ॥
रूप-राशि का वैभव जलता, ज़लती पाप-पुण्य की धारा;
रण-दीवाने चले सजाते, काल-नदी का आज किनारा!
आज विकट विस्फोट बमों का, महानाश की आग जलाता;
देख धधकती मानवता यों, मृत्युञ्जय भी अब अकुलाता।
ज़हर उगलती रण-चण्डी पर, कहाँ तनिक भी अब सकुचाती;
चली विपथगा विप्लव करती, महानाश का बिगुल बजाती ॥
निर्धनता के अभिशापों से, मानव भूख-भूख चिल्लाता;
श्वानों के तब आज उदर में, मानव-शोणित चला समाता।
बचपन, यौवन, जर्जरता सब, आज बने मरघट के वासी;
छाया जगती में सन्नाटा, दिग्दिगन्त में भरी उदासी।
मानव-शोणित-चन्दन से यह, आज विपथगा भाल सजाती;
चली विपथगा विप्लव करती, महानाश का बिगुल बजाती ॥
शिव का ताण्डव नृत्य जगा फिर, आज हिमालय भी थर्राता;
महानाश की ज्वाला में जल, सागर रह रहकर हहराता।
ज़हरीले गैसों से भरकर, नील क्षितिज भी अब धुँधआता;
तिल-तिलकर यों काल-गाल में, जलता-बलता सभी समाता।
आज अयाचित अग्नि-शिखा यों, हँसती जगती को झुलसाती;
चली विपथगा विप्लव करती, महानाश का बिगुल बजाती ॥
माया-ममता की बस्ती में, जलती मस्ती अब अकुलाती;
पाप-पुण्य की स्वर्ग नरक की, मानव-निधि भी जलती जाती।
अन्धकार की अविदित छाया, बनी दिवस में भी अधिवासी;
जीवन आज मरण से खेला, किन्तु विपथगा अब भी प्यासी।
काँप-काँपकर आज धरा भी, डगमग-डगमग हिल हिल जाती;
चली विपथगा विप्लव करती, महानाश का बिगुल बजाती ॥
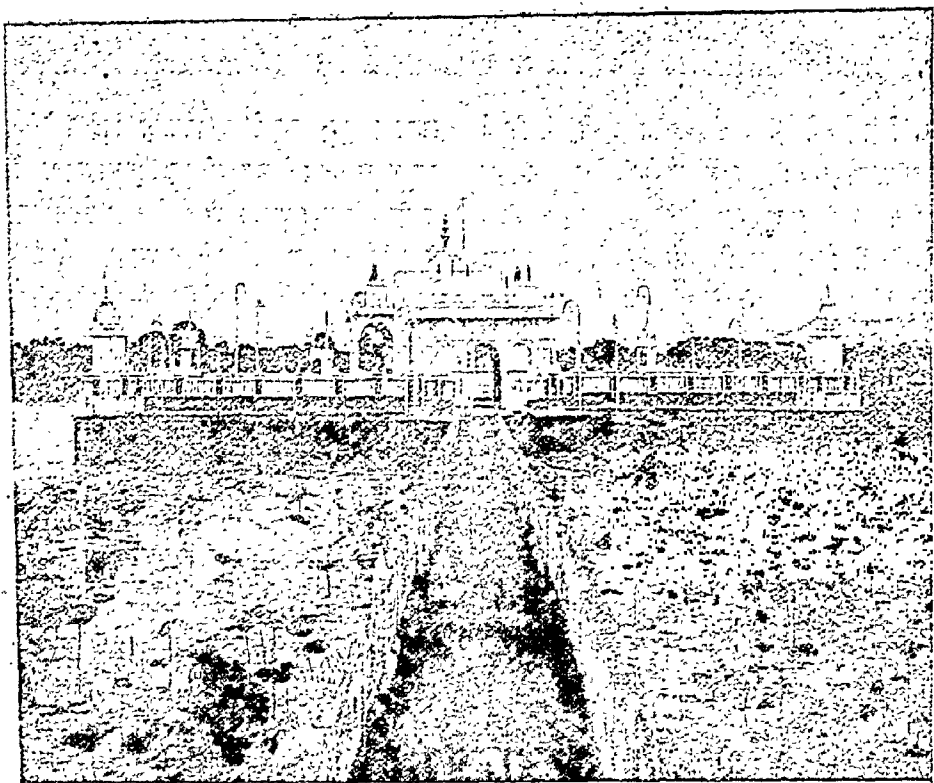
जल-मन्दिर के सामने का दृश्य

भगवान् महावीर की निर्वाण-भूमि पावापुरी

लेखक, श्रीयुत ब्योहार राजेन्द्रसिंह, एम० एल० ए०

तेरह वर्ष की प्रतीक्षा और विहार-दर्शन का वादा अब भी पूरा न कीजिएगा?” रामगढ़-कांग्रेस को समीप देखकर मित्रवर वेनीमाधव अग्रवाल ने लिखा। अग्रवाल जी जबलपुर के ही निवासी हैं और गत १५ वर्ष से बिहार शरीफ़ के नालन्दा कालेज में इतिहास के अध्यापक हैं। इस आग्रह से रामगढ़ में कांग्रेस का निश्चय होते ही बिहार-दर्शन की मेरी छिपी हुई लालसा और भी तीव्र हो उठी। जनक, बुद्ध तथा महावीर के चरणों से अंकित बिहार की पवित्र भूमि के प्रति मेरा आकर्षण रामगढ़ से भी अधिक था। सच पूछिए तो रामगढ़ के प्रति भी इसी लिए था कि इससे बिहार के पवित्र स्थलों के दर्शन का अवसर मिलेगा। इन्द्रदेव की कृपा से कांग्रेस का कार्य एक दिन पहले ही समाप्त हो गया और हम लोगों को स्वागत के साथ ही साथ विदाई भी दे दी गई। इसलिए कांग्रेस का कार्य समाप्त होते ही राजेन्द्र बाबू की आज्ञा का अक्षरशः पालन करते हुए जल्दी से जल्दी रामगढ़ से निकल भागा।

बिहार शरीफ़ पटना का एक सब-डिवीज़नल है और २६ हज़ार जन-संख्या का एक छोटा-सा सुन्दर नगर है। बख्तियारपुर राजगिरि-लाइट रेलवे पर पटना से ५८ मील की दूरी पर स्थित है। गया से मोटर-द्वारा ६० मील की यात्रा है, जो शायद अधिक सुविधा-जनक होती, किन्तु मैं पटना होकर गया था, अतः बख्तियारपुर में गाड़ी बदल कर छोटी लाइन की छोटी गाड़ी पर सवार होकर मालगाड़ी का आनन्द लेते हुए रात को १०॥ बजे बिहार शरीफ़ पहुँच गया।

रायबहादुर लक्ष्मीचन्द सुचान्ती

स्टेशन पर प्रोफ़ेसर अग्रवाल अपने विद्यार्थियों के सहित उपस्थित थे, अतः स्थान खोजने में कठिनाई नहीं हुई। रात को ही बिहार के आस-पास के ऐतिहासिक स्थल—पावापुरी, नालन्दा तथा राजगृह—देखने का कार्य-क्रम बन गया। तीनों स्थान अच्छी तरह से तीन दिन से पहले नहीं देखे जा सकते थे और मैं एक ही दिन में सबको देख लेना चाहता था। हम लोगों की कठिनाई पावापुरी क्षेत्र के सुयोग्य और उत्साही प्रबन्धक राय बहादुर लक्ष्मीचन्द सुचान्ती ने हल कर दी। वे अपने मेहमान को लेकर प्रोफ़ेसर अग्रवाल के मेहमान को (मुझे) लेने सवेरे ही मोटर लेकर आ गये। इस हर्ष के साथ आश्चर्य तब सम्मिलित हुआ जब ये दोनों मेहमान आपस में सुपरिचित निकले। सुचान्ती जी के मेहमान और कोई नहीं, रायपुर के ही हमारे मित्र श्री जसकरन जी डागा थे।

सबसे पहले हम लोग पावापुरी की ही ओर रवाना हुए। यह स्थान राँची-पटना-रोड पर बिहार से केवल आठ मील पर स्थित है। आध घंटा में हम लोग भगवान् महावीर की स्मृति से पावन उस प्राचीन पुरी में पहुँच गये। सुचान्ती जी ने प्रेमपूर्वक सब स्थान एक एक कर दिखाना प्रारम्भ किया। सबसे पहले एक मील के घेरे के विशाल तड़ाग के बीच में भगवान् महावीर की निर्वाण-भूमि के दर्शन किये। कुछ लोगों के मत से इसी स्थान पर भगवान् का निर्वाण हुआ था और अन्य लोगों के मत से उनका अग्नि-संस्कार। कहते हैं कि उस समय उनकी भस्म को ग्रहण करने के लिए इतना अधिक जनसमुदाय जमा हुआ था कि भूमि खुद गई और यह विशाल तड़ाग बन गया। जो कुछ हो इस पद्म-पूरित तड़ाग के मध्य में संगमर्मर-निर्मित जल-मन्दिर बहुत ही सुन्दर दिखता है। मन्दिर तक पहुँचने के लिए लाल पत्थर का एक ६०० फ़ुट लम्बा मार्ग बना हुआ है, जो हाल में प्रशस्त कराया गया है और जिसके दोनों ओर श्री भगवानलाल पन्नालाल जी के खर्चे से सुन्दर रेलिंग तथा बिजली के लिए स्तम्भ भी लगाये गये हैं।
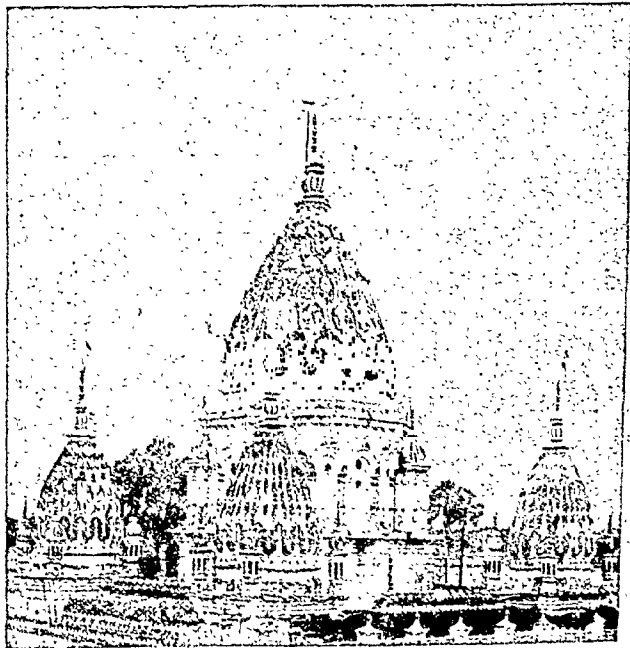
गाँव-मन्दिर का एक भव्य दृश्य
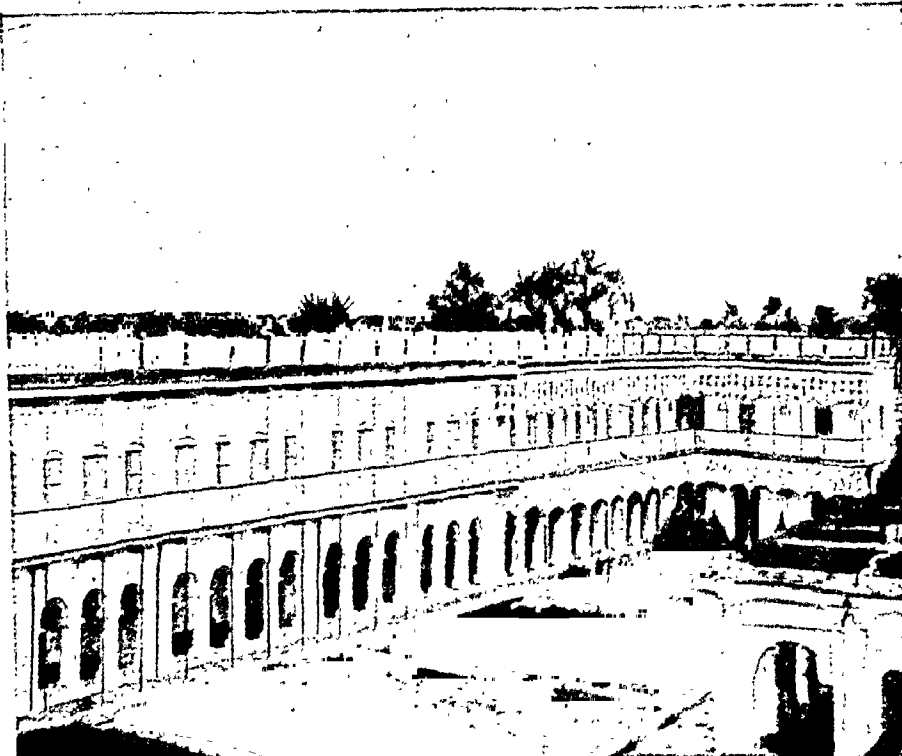
गाँव-मन्दिर-धर्मशाला

मन्दिर के चाँदी के किवाड़ भी एक दूसरे सज्जन की उदारता के द्योतक हैं। किन्तु इसमें राय साहब सुचान्ती जी का भी श्रेय है, जिनकी प्रेरणा से उक्त सज्जन ने यह कार्य किया। जल-मन्दिर का निर्माण १॥ लाख के खर्च से श्री पूनमचन्द जी सेठिया ने कराया था, जिनकी मूर्ति आज भी तालाब के किनारे उद्यान में बनी हुई है। यात्रियों के ठहरने के लिए यहाँ कई धर्मशालायें बनी हुई हैं, जिनमें भोजन, वस्त्रादि की सब प्रकार सुविधायें सुलभ कर दी गई हैं। यहाँ तक कि अलग अलग कुटुम्बों के रहने के लिए कुछ निवासगृह भी हैं।

जल-मन्दिर के भीतर कोई मूर्ति नहीं है। केवल भगवान् के चरण-चिह्न बने हुए हैं, जिसकी पूजा और स्तुति की जाती है। स्नानादि के लिए घाट भी बने हुए हैं। जैन भाइयों की अहिंसा के चिह्न-स्वरूप बड़ी बड़ी मछलियों की जलक्रीड़ा देखने को मिलती है।

जल-मन्दिर के सामने एक गोल मन्दिर है, जिसे 'समो शरण'-मन्दिर कहते हैं। इस स्थान पर निर्वाण के पूर्व भगवान् का प्रसिद्ध उपदेश तथा समवशरण हुआ था, जिसमें विरोध-भाव छोड़कर सब देव, मनुष्य तथा जीव-जन्तु सम्मिलित हुए थे। यहाँ भी चरण-पादुका बनी हुई है। यह मन्दिर सुचान्ती जी के पिता का बनवाया हुआ है। आगे चलकर दिगम्बर भाइयों का बनवाया हुआ मन्दिर तथा धर्मशाला है, जहाँ भगवान् की खड़ी हुई एक सुन्दर मूर्ति हाल में स्थापित की गई है। पास ही एक आयुर्वेदिक औषधालय भी है, जहाँ धर्मार्थ ओषधियाँ वितरण की जाती हैं। आस-पास के ग्राम-निवासियों की सुविधा के लिए एक पोस्ट-आफ़िस भी खोला गया है।

अन्त में श्वेताम्बर भाइयों का मन्दिर मिलता है, जो "गाँव-मन्दिर" के नाम से प्रसिद्ध है। यह स्थान प्राचीन

जान पड़ता है। यहाँ जो मूर्त्ति है उस पर विक्रम-संवत् ४४४ और बीच में बनी हुई चरण-पादुका पर वीर-संवत् एक पड़ा हुआ है, जिससे इसकी प्राचीनता सिद्ध होती है। "गाँव-मन्दिर" के सामने के भाग के जीर्णोद्धार में श्री निर्मल-कुमार नौलखा ने बहुत भाग लिया है। श्री पूरनचन्द जी नाहर ने "दीनशाला" का निर्माण कराया है।

भगवान् के निर्वाण का यही स्थान जान पड़ता है। चारों ओर बड़ी विशाल धर्मशाला बनी हुई है, जहाँ मेले के समय हज़ारों यात्री बड़े सुख से रहते हैं। कार्त्तिक कृष्ण अमावास्या (निर्वाण-तिथि) को तीन दिन तक मुफ़्त भोजनादि दिया जाता है।

सबसे बड़े हर्ष की बात तो यह है कि इस तीर्थ का प्रबन्ध एक संस्था के अधीन है, जो प्रतिवर्ष निर्वाण-तिथि पर अपनी वार्षिक रिपोर्ट और हिसाब पेश करती है। श्री सुचान्ती जी अवैतनिक रूप से इसके प्रबन्ध का कार्य बड़े उत्साह से करते हैं। आपको इस बात का शौक़ है कि जो भी जैन या अजैन यात्री इधर से आवे, पावापुरी के दर्शन अवश्य करे। अभी कल ही पंडित जवाहरलाल नेहरू नालन्दा देखने आये हुए थे। आपने आग्रहकर उन्हें पावापुरी के दर्शन कराये। आप स्वयं अपना समय और पैसा खर्चकर यात्रियों के साथ जाते और यह सब स्थान प्रेमपूर्वक दिखाते हुए नहीं थकते। सबसे पहले सन् १६४१ ईसवी में शाहजहाँ के राजत्वकाल में श्वेताम्बर-संघ के आचार्य जिनराज सूरि ने इस तीर्थ का पुनरुद्धार किया था। उसके बाद प्रसिद्ध लेखक और संग्राहक श्री पूरनचन्द नाहर ने इसके शिला-लेखों आदि का जीर्णोद्धार किया। सुचान्ती जी नाहर जी के पौत्र हैं और अपनी वंश-परम्परा का पूरी तरह से पालन कर रहे हैं। चित्रों के ब्लाक भी आपकी ही कृपा से प्रकाशनार्थ मिले। समाप्त करने से पहले मैं अधिकारियों का ध्यान संस्था की एक आवश्यकता की ओर दिलाना चाहता हूँ। वह है एक उत्तम पुस्तकालय की जो इस एकान्त प्रशान्त स्थान पर अत्यन्त आवश्यक है।

निष्ठुर नियम

लेखक, श्रीयुत कुँवर सोमेश्वरसिंह, बी० ए० एल-एल० बी०

बदला न बदलेगा कभी, निष्ठुर नियम संसार का।

हैं शान्ति जो जन चाहते
जग को नहीं पहचानते।
संघर्ष जीवन का नियम
हैं दूर रह सकते न हम।
बदला न बदलेगा कभी, निष्ठुर नियम संसार का।

कैसी दया, कैसी व्यथा?
है कल्पना की सब कथा।
जग स्वार्थ पर चलता रहा,
चाहे जिसे खलता रहा।
बदला न बदलेगा कभी, निष्ठुर नियम संसार का।

पत्थर नहीं पिघला कभी,
हैं जानते इसको सभी।
आँसू बहाते व्यथित-मन,
फिर भी यहाँ हैं दीन जन।
बदला न बदलेगा कभी, निष्ठुर नियम संसार का।

है शक्ति जिसके हाथ में
दुनिया उसी के साथ में।
वह जो करे सब न्याय है
बाक़ी सभी अन्याय है।
बदला न बदलेगा कभी निष्ठुर नियम संसार का।

मैं बेक़सूर था, बाबू

लेखक, श्रीयुत वी० एन० श्रीवास्तव, बी० ए०

उस दिन एक क़ैदी को फाँसी दी गई थी। फाँसी मेरे जीवन के लिए कोई अनोखी घटना न थी। जेलर-जीवन में मैंने न जाने कितनी फाँसियाँ देखी थीं। इस शुष्क, निर्मम और कठोर जीवन ने जिसमें दिन-रात चोर, ठग, डाकू, उठाईगीरे, लुच्चे, बदमाश, ख़ूनियों का ही संसर्ग रहता है, मुझे एक तरह से मनुष्य से एक प्रभावहीन हाड़-मांस के बने पत्थर के पुतले में परिवर्तित कर दिया था। मैंने कर्त्तव्यवश मनुष्य को जानवर समझना, उससे जानवरों के कठोर काम लेना और उसके साथ समय समय पर जानवरों का-सा ही बर्ताव भी करना तक सीखा था। यह न था कि मेरे स्वभाव में मानव-स्वभाव-सुलभ कोमल वृत्तियाँ नहीं थीं, पर उनका स्थान जेल की चार पुरसा ऊँची दीवारों की परिधि के बाहर ही था। उसके अन्दर मैं काठ-पत्थर-सा हो जाता। न तो किसी के आँसू मुझे पिघलाते, न किसी की सिसकियाँ मुझे आकर्षित करतीं, न किसी की वेदना-भरी आहें दिल में तूफ़ान उठातीं। न आये की फ़िक्र रखता, न गये की। घड़ी के काँटों की तरह मैंने अपना कर्म करना सीखा था। जिस तरह घड़ी अंधड़-तूफ़ान, धूप-वर्षा, जाड़ा-गर्मी का ख़याल न कर अपनी अनवरत टिक् टिक् से समय की घड़ियों के गिनने का कार्य करती है, उसी तरह मैं भी क़ैदियों को गिनने, उन्हें छोड़ने, उन्हें बन्द करने, उन्हें खिलाने, उन्हें भूखों मारने, उन्हें दवा दिलाने और उन्हें कोड़े लगाने का काम किया करता था।

तो उस दिन एक फाँसी हुई थी। फाँसी क्या है? एक सज़ा। सज़ा क्यों दी जाती है? अपराध के लिए। अपराध कोई क्यों करता है? अपने किसी व्यक्तिगत लाभ के लिए अथवा अनावश्यक उत्तेजनावश। किस बात का लाभ, किस बात की उत्तेजना? ज़न का, ज़मीन का अथवा ज़र का। सच पूछिए तो ज़न, ज़मीन और ज़र ही संसार की स्थिति रखनेवाली तीन विभूतियाँ हैं। संसार का विकास इन्हीं तीनों की उपलब्धि को लेकर हुआ है और जहाँ तक अन्दाज़ किया जाता है, शायद इसका अन्त भी इन्हीं के पीछे होगा। मनुष्य ने आदि-काल से अपने पेट को भरने के लिए—अन्न पैदा करने के लिए—भूमि पर अधिकार किया। ज़र उसी भूमि की रक्षा के साधनों को जुटाने के लिए इकट्ठा किया। इन दोनों कामों में जो मेहनत उसे करनी पड़ी, जो कठिनाइयाँ झेलनी पड़ीं, उनका दुख दूर करने के लिए उसने ज़न—नारी—पर अधिकार जमाया। इस वस्तु ने उसके कर्मशील, नीरस, शुष्क, अपूर्ण जीवन में कोमलता की सृष्टि कर उसे पूर्ण किया और तपते हुए मरुस्थल में शीतल जल की निर्झरणी प्रवाहित की। अतः ये तीनों वस्तुएँ मनुष्य के लिए उसके प्राणों के बाद सबसे प्यारी हो गईं। सभी ने इसके अधिक से अधिक और उत्तम से उत्तम अंश को अपनाना चाहा। एक ने दूसरे की जमा पर आँख गड़ाई और मौक़ा पाते ही बिना डकार के उसे हड़पकर लेने का मनसूबा बाँधने लगा। पर दूसरे को अपनी जान देकर भी उन चीज़ों से हाथ धोना गवारा न हुआ। फलतः ज़र, ज़मीन और ज़न को लेकर संसार के सारे संघर्ष, क्रान्ति, विद्रोह, युद्ध, ख़ून, ख़राबे की सृष्टि हुई।

हाँ, तो उस रोज़ फाँसी हुई थी। वही मामूली बात लेकर। एक औरत के लिए दो की जान चली गई थी—वह बीस-इक्कीस का पट्ठा था। उसकी उठती जवानी थी—मदमाती, मस्तानी, दिमाग़ में ख़ुमार पैदा करनेवाली। अपनी स्त्री पर न्यौछावर था। सोता तो उसी के सपने देखता, जागता तो उसकी छाया-सा बना रहता। पर वह वैसी न थी। किसी और के गले का हार बन चुकी थी। उसने देखा, सुना, जाना, पहचाना। उसने आँखों पर विश्वास नहीं किया, पर जब आँखों को मलकर फिर देखा तब पाया कि उसके अरमानों के नन्दन-कानन में विश्वासघात का दावानल धधक रहा है, उसके अमृत के प्याले में जिसे वह मुँह से लगाये हुए था, हलाहल छलक रहा है। तब तो उसका हवाई क़िला बवंडर में पड़े पत्ते की तरह न जाने कहाँ जा पड़ा, हृदय में भट्ठी सुलग उठी। वह विक्षिप्त-सा हो गया—मर्माहत,

संज्ञा-शून्य, विवेचना-रहित। फिर तो जिन दोनों ने उसके दिल पर ख़ंजर फेरा था उनको ख़ंजर के घाट उतार दिया, और अन्त में फाँसी के तख़्ते पर झूल गया।

अपने डेरे में बैठा उस दिन जेठ की अलस दोपहरी में मैं इन्हीं बातों को उलट-पलट कर सोच रहा था। बाहर बिलकुल सन्नाटा था। लू भी आज नहीं चल रही थी, इससे नीरवता और घनीभूत हो गई थी। और सोचते सोचते मेरे ख़याल में आया—"क्या वह क़ैदी अपराधी था?"

भीतर के मनुष्य ने कहा—"नहीं।"

बाहर की न्यायबुद्धि ने कहा—"हाँ।"

मनुष्य ने कहा—"उसने वास्तव में सच्चा मनुष्योचित कर्म्म किया, इससे वांछनीय है।"

न्यायबुद्धि ने कहा—"क़ानून के अनुसार उसने भयानक अपराध किया। ख़ून करना कौन-सी न्याय की बात है। यदि ऐसा ही था तो उसे उचित कारंवाई कर क़ानून से उस जुर्म का फ़ैसला करवाना चाहिए था।"

मनुष्य ने उत्तर दिया—"वैसा कभी युक्ति-संगत न था। क़ानून साक्षी खोजता और उसके कान, आँख और दिल शायद गवाही न दे सकते।"

मन ने भी इसमें हामी भरी। तब तो न्यायबुद्धि पीछे पड़ गई। मैं फिर सोचने लगा—"तब हमारे क़ानून ने एक बेक़सूर को फाँसी क्यों दी? अच्छा, एक बेक़सूर को सज़ा दिये जाने का यही एक उदाहरण है अथवा और भी हैं?"

दरवाज़े के पास से मानो किसी ने कहा—और भी हैं।

मैं चौंक पड़ा। कुर्सी से सिर फेर कर देखा तो एक मामूली क़द का नौजवान खड़ा था। उम्र क़रीब बीस बरस, पर चेहरा सूखा और पीला, मानो क़ब्र से उठकर आया हो। आँखें गड्ढे में धँसी हुई थीं, लाचारी और बेबसी उनसे टपकती थी। बदन पर एक मामूली कुर्ता और पायजामा—दोनों पैवन्ददार, सिर पर मैली 'फ़ेज़' टोपी, पैर नंगे। मैंने उसे ग़ौर से ऊपर से नीचे तक देखा और प्रश्न किया—"तुम कौन हो?"

"वही जो आप देख रहे हैं।"

"क्या चाहते हो?"

"और कुछ नहीं सिर्फ़ इतना कहना कि बेक़सूर भी कभी कभी सज़ा पा जाते हैं।"

"कैसे?"

"सुनिए"।

वह दरवाज़े पर खड़ा था, चौखट पर बैठ गया और अपनी रामकहानी सुनाने लगा—

"शहर में ख़ाँ बहादुर सग़ीरहुसेन एक अच्छे रईस थे। ख़ानदान पुराना था, बाप-दादों की जमा की हुई दौलत थी, इसलिए पुराने रईसी ठाट-बाट का ही दौर-दौरा था। आप ख़ुद भी बड़े दियानतदार और रिआया-परवर व्यक्ति थे। अपनी तबियतदारी, मिलनसारी और भलमनसाहत से वे शहर में एक आदर्श व्यक्ति समझे जाते थे। और तो नहीं मगर मुझे इतना याद है कि एक बार बृहस्पति के दिन किसी फ़क़ीर ने उनसे जब यह माँग की कि 'तुम अपनी सारी दौलत छोड़ फ़क़ीर बन जाओ' तब वे तुरन्त घर-द्वार छोड़कर उसके साथ जाने को तैयार हो गये। लोगों ने उन्हें हज़ार समझाया, पर किसी की नहीं सुनी। कफ़नी पहनकर जब बाहर आये और उस फ़क़ीर को बुलवाया तब उसका कहीं पता न लगा। उसी रात को स्वप्न में उन्हें दैवी आशीर्वाद मिला। ऐसे थे ख़ाँ बहादुर। यों तो लोग उनकी धाक मानते ही थे, पर जब सरकार ने उन्हें 'ख़ाँबहादुर' बना दिया तब शहर का बच्चा बच्चा उनका अदब करने लगा—उनको पूजा करने लगा। पर जहाँ गुलाब होता है, वहीं काँटों का भी ढेर होता है। उनकी सब अच्छाई के अन्दर एक बहुत ही बड़ी बुराई छिपी थी, जो टट्टी की ओट में भरपूर शिकार खेला करती। वह थी उनका भोगविलासी स्वभाव। उन्होंने पाँच शादियाँ की थीं। और इतने से भी उन्हें सन्तोष न था। उनकी बीवियों में से तीन को तो कोई बाल-बच्चा न था, मगर चौथी और पाँचवीं के एक एक लड़का था। मैं यूसुफ़ चौथी से था और मेरा सौतेला भाई यूनुस मुझसे दो साल बड़ा था।

जब तक ख़ाँबहादुर रहे, मैंने स्वर्ग में दिन काटे। मेरी मा मेरे पिता की सबसे प्यारी बीवी थी और मैं उनका प्यारा बेटा था। अब आप ख़ुद अन्दाज़ कर सकते हैं कि मेरी क्या क़द्र होती होगी। जनाब, सात साल की उम्र तक पैर ज़मीन पर नहीं रक्खा था। पर दिन सदा एक-से नहीं जाते। मेरा पन्द्रहवाँ साल लगते-लगते मा मर गई और एक दिन पिता जी भी दिल की बीमारी से स्वान

करते-करते एकाएक स्वर्गवासी हो गये। उन्होंने जायदाद का कुछ बन्दोबस्त नहीं किया था, अतएव मुसलमानी क़ानून के अनुसार वह हमारे बड़े भाई के हाथ लगी। मैं नाबालिग़ था, इसलिए वही मेरे हिस्से का मुख़्तार बनाया गया।

मेरे दुर्भाग्य का सिलसिला वहीं से शुरू होता है। यूनुस ने दौलत पाकर ऐश में उड़ाना शुरू किया। दो-चार लुच्चे-लफंगे जुटे ही रहते और शराब-क़बाब और रंडी-मुंडों का बाज़ार गर्म रहता। रियासत का काम मुलाज़िमों के हाथ में था, जो जिस तरह से चाहते लूटते। मेरी निगरानी करनेवाला कोई न था, यहाँ तक कि मुझे पढ़ाने के लिए जो एक मौलवी साहब थे वे भी समय पर वेतन न मिलने से चल दिये। मुझे निठल्ले की ज़िन्दगी अच्छी न लगती। तिस पर घर में बराबर "तू तू-मैं मैं" लगी रहती। मुझसे कोई खुलकर कुछ न कहता, पर एक-आध दफ़ा ज़ेवरों की चोरी का इलज़ाम लगाया गया जिससे यूनुस की झिड़कियाँ सुननी पड़ीं। न तो किसी को मेरे खाने की फ़िक्र रहती, न सोने की। कपड़े फट जाते तब कई बार कहने पर दूसरे मिलते। इन सब बातों से दिल ही दिल में तकलीफ़ होती। कभी-कभी अकेले में बैठकर रो भी लिया करता। अपने ही घर में मैं दुश्मन था। जो पिता के मित्र या सम्बन्धी थे वे सब यूनुस का दम भरते थे। मैं सबका दुश्मन बना हुआ था।

एक दिन मैंने बहुत सोच-विचार कर यूनुस से अपना सच्चा हाल कहने का इरादा किया। उस रोज़ वह ज़रा होश में था, मगर न जाने क्यों उससे एक अजीब डर-सा लगता था। इससे जितनी बातें कहने के लिए सोच कर गया था, सब भूल गई और सिर्फ़ इतना कह सका कि मुझे पढ़ाने को एक मास्टर रख दो। यूनुस ने मंज़ूर कर लिया, बल्कि मुझे पढ़ने-लिखने की तरफ़ ध्यान रखने की ताक़ीद की, साथ खिलाकर बिदा किया। उसके आज के बर्ताव से मेरे दिल का बोझ उतर गया, मानो मुर्दे में जान आगई और जब मास्टर पढ़ाने आने लगा तब सारा दुख भूल कर पढ़ने में मन लगाया।

मास्टर साहब बड़े अच्छे स्वभाव के जान पड़ते थे। उनकी बातें मीठी होती थीं। हमदर्दी के साथ वे मुझे पढ़ाते थे। उनकी हर एक बात पर मेरी जान में जान आ जाती थी। मैं उनकी तरफ़ बरबस खिच-सा गया और अपने दिल की सारी बातें, रियासत से लेकर अपने हक़ों तक की बात, धीरे धीरे दुहरा गया। उन्होंने मेरी दशा पर दुःख प्रकट किया और मुझे मदद देने का वादा किया। मैं उनके रंग में रंग गया और यह न देख सका कि मैं साँप को आस्तीन में घुसने का मौक़ा दे रहा हूँ।

ख़ैर, मास्टर साहब ने मुझे मदद देने का वादा किया क़सम खाकर। शाम को जब आये तब एक टुकड़ा काग़ज़ लेते आये और बोले इस पर दस्तख़त कर दो। मैंने पूछा, किसलिए। मास्टर साहब ने कहा, कलकत्ते के एक बैरिस्टर ने तुम्हारी दरख़्वास्त लिखने के लिए दस्तख़त किया हुआ काग़ज़ माँगा है। मैंने कहा, मैं सादे काग़ज़ पर दस्तख़त न करूँगा। उन्होंने कहा, क्यों। मैंने कहा, इसलिए कि उससे जाली वसीयतनामा बनाया जा सकता है। उन्होंने हँसकर कहा, अजीब बेवक़ूफ़ हो। वसीयतनामे पर दस्तख़त कचहरी में हाकिम के सामने किया जाता है न कि पहले ही दस्तख़त करके उस पर वसीयतनामा लिखा जाता है। मैंने कहा, जो भी हो, मैं सादे काग़ज़ पर दस्तख़त न बनाऊँगा। मैंने यह बात अपने पहले उस्ताद से सीखी थी। मास्टर साहब के हज़ार समझाने पर भी दस्तख़त नहीं किया।

दो दिन के बाद मास्टर साहब एक लिखी हुई अर्ज़ी लाये, जिस पर टिकट लगा था। मैंने उसे पढ़ा और मज़मून पर इतना ख़ुश हुआ कि बिना कुछ समझे-बूझे नीचे अपना दस्तख़त बना दिया। मास्टर साहब ने सिर का पसीना पोंछ कर कहा, ओफ़, आज एक बहुत बड़ा काम हो गया। मैंने यह अर्ज़ी जज साहब से ख़ुद मिलकर उनकी राय से तैयार कराई थी। तुम अगर इसमें हुज्जत करते तो मामला ही बिगड़ जाता, क्योंकि कल के सिवा साल भर में और किसी दिन ऐसी अर्ज़ियों की सुनवाई नहीं होती। मैं मुस्कुराने लगा। मास्टर ने अर्ज़ी डाक में डालने के लिए एक ख़िदमतगार को दे दी।

पाँच-सात दिन के बाद सुना कि मास्टर की तबीअत ख़राब है, वे नहीं आ सकेंगे। मैं अकेला ही घर में बैठे कुछ पढ़ रहा था कि एक नौकर ने आकर कहा, आपको बड़े बाबू बुलाते हैं। यूनुस ने मुझे क्यों बुलवाया, मैं

नहीं सोच सका। जब उसके सामने पहुँचा तब देखा कि दो-चार और लोगों के साथ मास्टर साहब भी वहाँ बैठे हुए हैं। मेरा माथा ठनका। मास्टर को बहाना कर न आने का क्या कारण ? मुझे देखते ही यूनुस ने डपट कर पूछा—क्यों यूसुफ़, मैं तुम्हें तकलीफ़ देता हूँ ?

"नहीं तो।" मैंने सकपकाकर जवाब दिया।

यूनुस (एक काग़ज़ बढ़ाकर) तब यह क्या लिखा है ?

यह वही काग़ज़ था जिस पर मास्टर ने मुझसे दस्तख़त कराया था। मैं लाल हो गया। इतनी धोखेबाज़ी ? दोस्त बन कर दुश्मन का काम किया। मास्टर की तरफ़ जलती आँखों से देखा। उसने मुँह फेर लिया। यूनुस ने टोका—उधर क्या देखते हो ? जवाब दो।

मैंने कड़क कर कहा—ठीक ही तो लिखा है। तुम मुझे कौन-सा आराम देते हो ?

यूनुस—आधी जायदाद तेरी है ?

"बेशक"।

"कैसे ?"

"ख़ाँबहादुर सग़ीरहुसेन की एक औलाद होने की हैसियत से।"

"अबे कहाँ का बाप कहाँ का बेटा ? रखनी का लड़का न होता तो और क्या करता ?"

मैं बिगड़ उठा, कहा—ख़बरदार, जो मेरी मा की शान में कुछ कहा। अगर मैं रखनी का लड़का हूँ तो तुम्हारी मा भी वैसी ही होगी।

यूनुस क्रुद्ध होकर बोला—देखते हैं आप लोग इस हराम-जादे को। हमारे ही टुकड़े पर पलता है और हमीं पर शान बघारता है।

"अजी, शान बघारना और टुकड़ों पर पलना कैसा। टुकड़ा किसी और को देते होंगे। यहाँ तो इस घर और दौलत में अपना आधा हिस्सा है। मुझे भी तुम्हारी तरह क़लिया-पुलाव खाने का पूरा हक़ है।"

"अबे, बड़ा आया है हिस्सा लेनेवाला। जाता है या कुछ और......।"

मैं तन कर खड़ा हो गया। बोला—जानेवाले की ऐसी-तैसी। जाऊँगा क्यों ? मैं तो यहीं रहूँगा और वैसे ही मालिक बन कर रहूँगा जैसे तुम रहते हो।

यूनुस ने तब तो बिगड़ कर कहा—अच्छा तो अब मैं मालिक की पूरी ख़ातिर किये देता हूँ। इतना कहकर वह उठा और मेरी गर्दन में हाथ लगाकर ऊपर सहन से नीचे ढकेल दिया। ज़रा-सा न सँभलता तो मेरी हड्डी-पसली उतने ऊँचे से गिर कर चूर चूर हो जाती। मैं बिलकुल अन्धा हो गया। दौड़ कर चाहा कि यूनुस को दो-चार हाथ जड़कर दिल का बुख़ार उतार दूँ, मगर यूनुस के लल-कारने पर नौकरों ने मुझे पकड़ लिया और ठोकना शुरू किया। जितने लोग वहाँ मौजूद थे, वे मेरे अनजाने न थे। एक ज़माने में वे पिता जी के तलवे सुहलाया करते और मेरी किसी शाहज़ादे से कम इज़्ज़त न करते थे। मगर वे भी यूनुस को समझाने के बजाय मेरे ही ख़िलाफ़ आवाज़ उठाने लगे। नतीजा यह हुआ कि ठुक, पिटकर मैंने किसी तरह अपना पल्ला छुड़ाया और रोता, गालियाँ देता और धमकाता घर से बाहर निकल गया।

बाबू, कमज़ोर आदमी को ग़ुस्सा कभी न करना चाहिए। नहीं तो उसका नतीजा सिवा बुरे के भला नहीं होता। उस दिन की मेरी बकवास और धमकी पीछे जान का घातक हो गई।

मैंने पूछा—कैसे ?

सुनिए। मार खाकर निकल जाने के बाद मैंने एक ओर का रास्ता लिया और उस वक़्त तक चलता चला गया, जब तक ग़ुस्सा ठंडा नहीं पड़ गया और पैर पूरी तरह थक नहीं गये। जब शाम का अँधेरा धीरे-धीरे बढ़ने लगा तब मैंने अपने को शहर के एक ऐसे हिस्से में पाया जहाँ कभी न आया था और जहाँ दूकानें बहुत कम थीं, ग़रीबों की बस्तियाँ ही ज़्यादातर थीं। भूख के मारे अँतड़ी जवाब दे रही थी। थकान से पैर उठते न थे, आँखें निकली पड़ती थीं। सुबह से एक दाना भी मुँह में नहीं गया था, जेब में एक पैसा न था। पोशाक भी अधूरी ही थी। अब सिवा भीख माँगने के और कोई चारा न था। पर सबके दरवाज़े पर घूम घूम अलख जगाने का हौसला ही नहीं होता था। हो तो कैसे ? कभी किसी के आगे हाथ ही नहीं फैलाये थे। घूमते घूमते यह हालत हो गई कि अब गिरूँ या तब। इतने में एक नानबाई की दूकान के सामने जाकर पहुँचा। चारों तरफ़ मक्खियाँ भिनक रही थीं। मगर शीशे के पर्दे लगे गन्दे बक्सों में

काली काली रोटियाँ आज मुझे दुनिया की सबसे बड़ी नियामत-सी नज़र आ रही थीं। मैं जाकर दूकान के पास खड़ा हो गया। नानबाई ने एक दफ़ा मुझे डाँटकर हटा देना चाहा, मगर जब देखा कि मैं टलता नहीं हूँ तब न जाने उसे क्या सूझी और एक बड़ी-सी डबल रोटी निकाल कर फेंक दी। मैंने उसे उठा लिया और जल्दी जल्दी खाता हुआ एक ओर भागा। एक नल के पास पहुँचकर सारी रोटी खा डाली और भरपेट पानी पीकर आगे बढ़ना चाहा। मगर पैरों ने आगे बढ़ने से इनकार किया। लाचार वहीं एक बरगद के पेड़ के नीचे पड़ रहा। आँखें तुरन्त झिप गईं और जब खुलीं तब देखा कि सूरज खूब ऊँचा उठ आया है।

जब नींद टूटी तब बैठकर सोचने लगा कि अब क्या करना चाहिए। दिल में आया, कहीं नौकरी ढूढ़ूँ। बाज़ार में चक्कर लगाने लगा। किसी को नौकर की ज़रूरत न थी, मगर एक परचूनवाले ने जब मैं तिबारा उसकी दूकान के पास से निकला तब पुकारा—तुम नौकरी खोजते हो?

"जी हाँ।"

"क्या क्या काम कर सकते हो?"

"मैंने पहले कभी नौकरी नहीं की है, मगर आप जो कहिएगा करूँगा।"

"चीज़ों की फेरी कर सकोगे?"

"लाइए, कोशिश करूँगा।"

"दो आने पैसे रोज़ और एक वक़्त खाना मिलेगा।"

"बहुत है।"

"मगर ज़मानत क्या देते हो?"

मैं सहमा। ज़मानत किसकी दूँ। घर से निकाला हुआ दुनिया में अकेला आदमी किसकी ज़मानत दे सकेगा। सोच में पड़ गया। मेरी चुप्पी देखकर दूकानदार ने पूछा—क्यों क्या हुआ? क्या तुम्हारे मा-बाप नहीं?

"जी नहीं।"

"तब तो मुश्किल है।" एक ग्राहक आ गया। दूकानदार उसमें लगा।

मैं लौटने की सोचने लगा। इतने में दूकानदार की आवाज़ ने मुझे चौंकाया। उसने कहा—मुझे विश्वास है, तुम बेईमानी न करोगे।

नहीं कह सकता, क्यों मेरी आँखों में आँसू आगये।

तब से मैं फेरी करने लगा। रोज़ सुबह एक छोटे-से टोकरे में सूई-तागे, आईना-कंघी, तरह तरह के सस्ते खिलौने, कुछ नक़ली घड़ियाँ, दियासलाई वग़ैरह लेकर मैं जहाँ तक जा सकता वहाँ का चक्कर लगा आया करता। अपनी चीज़ों की तारीफ़ में तरह तरह के लटके गढ़ा करता। सड़क की पटरियों पर, चौकों पर, गलियों में 'ले जा लाला एक पैसा' 'हर एक नमूना एक पैसा,' "जर्मनवाला एक पैसा', 'जापानवाला एक पैसा', 'सस्ता-बढ़िया एक पैसा' वग़ैरह कहते कहते गला सूख जाता तब कहीं चार पैसे की आमदनी होती। दूकानदार को मुझे रखने में कोई घाटा न था। जो सड़ी-गली बेकार चीज़ें दूकान में न बिकतीं उनके कुछ न कुछ पैसे आजाते थे। मुझे भी खाने भर को मिल जाता। ज़िन्दगी एक गति पर चल पड़ी। एक साल के बाद मैंने अपनी थोड़ी पूँजी कर ली और दूकानदार से अलग हो फेरी करने लगा।

कहा गया है, विपत्ति कभी अकेले नहीं आती। जब क़िस्मत खोटी होती है तब सीधी राह चलते भी ठोकर लगती है और सूखी जगह भी फिसलकर आदमी अपना सिर-पैर तोड़ लेता है। दैव को इतना भी सह्य न हुआ कि मैं ज़रा चैन से बैठकर कम से कम साग-सत्तू भी ज़्यादा दिन इस दुनिया में खा सकूँ। एक छोटी-सी घटना से ज़िन्दगी का रुख़ ही बदल गया। शहर में एक पार्क था। मैं कभी कभी उसकी पटरियों पर बैठकर चीज़ें बेचा करता। एक रोज़ शाम को अपनी चीज़ें गा-गा कर नित्य की तरह बेच रहा था कि एक गाड़ी आकर रुकी और उसले एक मर्द और एक औरत उतरकर अन्दर जाने लगे। मैंने उन्हें देखकर कहा—बाबू जी, कुछ बच्चों के लिए बड़ी अच्छी चीज़ें हैं। उन दोनों ने मेरी तरफ़ दृष्टि डाली। मैंने देखा कि मर्द तो यूनुस है, जो शराब के नशे में चूर है। औरत न जाने कौन है। उसने एक आइना उठा कर अपना मुँह देखा और कहा—क़ीमत?, "सिर्फ़ चार पैसे"। यूनुस चौंका—चार पैसे! इस सड़े आइने का दाम! बेईमान कहीं का। मैं उसे देखकर ही जल उठा था—और गुस्से में आकर बोला—मैं तुम्हारी तरह बेईमान नहीं यूनुस। अब तो उसने भी मुझे पहचाना—आँखें लाल कर बोला—चुप हरामख़ोर। मैं तैश में आ गया। डपट कर कहा—बस, ख़बरदार गालियाँ ज़बान से निकालीं

कि उसे पकड़ कर खींच लूँगा। यह तुम्हारा घर नहीं है। चले जाओ सीधे। वह बहुत बिगड़ा और गालियाँ देता हुआ मेरी ओर छड़ी उठा कर झपटा। मैंने छड़ी थाम ली। तब तो उसने ठोकर मार कर मेरी दूकान उलट दी, जिससे सब चीज़ें बिखर गईं और बहुत-सी टूट-फूट भी गईं। अब तो मैं उससे गुथ गया। उठाकर दे मारा। औरत चिल्लाने लगी। आस-पास के लोग जुट गये और मुश्किल से हमको अलग किया।

यूनुस रईस की तरह था, इससे सब लोग उसकी तरफ़ हो गये। उसने लोगों के पूछने पर कहा कि यह उसके बाप की रखेली का लड़का है। उसने इसे घर में रखने की कोशिश की थी, मगर यह भारी शैतान था, इसलिए घर से निकाल दिया। अब, उसी का बदला लेने के लिए उससे लड़ पड़ा है। मैंने लोगों को बहुतेरा समझाने की क़ोशिश की, मगर दौलत और कपड़ों का रोब दुनिया मानती है। सभी मुझी को डाँटने-डपटने लगे। पुलिस में देने की धमकी दी जाने लगी। मैं तो यह उलटपंथी देख भौंचक्का-सा रह गया। यूनुस गाड़ी पर सवार होकर चला गया, भीड़ छँट गई। माथा ठोककर मैं अपने सामान को सहेजने लगा। आधी से ज्यादा चीज़ें बरबाद हो गई थीं। आठ आँसू रो पड़ा दुनिया की हालत देखकर।

तब से पार्क कभी नहीं गया। मगर फेरी करता ही रहा। इस घटना के बाद तीसरे ही रोज़ घूमता-घूमता एक गली होकर जा रहा था कि किसी के कराहने की आवाज़ कानों में आई। आवाज़ दर्दनाक थी—ध्यान एक परनाले की ओर खिंच गया। देखा तो उसमें एक आदमी पड़ा है। पास जाकर उठाया तो देखा कि यूनुस है, कलेजे में खंजर घुसा है और ख़ून की धार बह रही है। लाख बुरा हो, यूनुस था तो भाई ही। उसे उस हालत में छोड़कर भागना मुनासिब न था। परनाले से निकाला, गोद में लेकर बैठ गया और चिल्लाने लगा—ख़ून! ख़ून! दौड़ो! दौड़ो! आस-पास से लोग जुटे। पुलिस भी आई। लाश की सिनाख़्त हुई। मैं भी पकड़ कर थाने में लाया गया। जाँच होने लगी और फिर तो पुलिस ने एक ख़ूनी पकड़ लिया।

मैंने बहुत उत्सुकता से कुर्सी पर सीधा होते हुए पूछा—कौन ?

"मैं।"

"तुम!"

जी हाँ। पुलिस ने जुर्म मेरे ही गले मढ़ा। तीन पक्के सबूतों पर—'घर को छोड़ते समय की धमकी' पार्क की मार-पीट और उस खंजर पर मेरे अँगूठे का निशान।'

"वह निशान कहाँ से आया।"

मैंने कटार उसके कलेजे से इसलिए निकालनी चाही थी कि शायद यूनुस की जान बच जाय। मगर उसी के साथ उसका भी दम निकल गया, साथ ही मेरे हाथ ख़ून में रँग गये, जिससे उसकी मूठ पर मेरी उँगलियों का निशान बन गया, जो हो, उसके साथ पुरानी अदावत साबित हुई और मुझे मौत की सजा मिली। आख़िरी दम तक मैं कहता गया कि मैंने जुर्म नहीं किया है, मगर उन लोगों को विश्वास न हुआ और फाँसी पर लटका कर ही छोड़ा। क्या करूँ, कोई माने या न माने मैं तो दुनिया को यही कहता रहूँगा कि न्याय नहीं हुआ है। मेरी जान ले ली गई, हालाँ कि मैं बेक़सूर था, बाबू।

मैं चौंक कर कुर्सी से उठ खड़ा हुआ। देखा तो न आदमी, न आदमज़ाद। तब यह कौन बोल रहा था? उस समय पास के पीपल की टहनियाँ पीली पीली नजर आ रही थीं। घड़ी ने साढ़े छः बजा दिये थे। "इवनिंग इन्स्पेक्शन" का समय हो गया था। हड़बड़ाकर उठा और दफ़्तर चला गया। फाँसी के रजिस्टरों को उलटते-पुलटते १५ वर्ष पहले की एक नत्थी देखकर मैं उछल पड़ा—एक जगह यह साफ़ लिखा था कि आज ही की तारीख़ को पन्द्रह वर्ष पहले एक यूसुफ़अली—उम्र बीस वर्ष—को यूनुसअली की हत्या के अपराध में फाँसी का दण्ड मिला था।

मैं अवाक् रह गया। क्या इसी तरह बेक़सूर आत्मायें अपनी बेक़सूरी साबित करने का मौक़ा ढूँढ़ती फिरती हैं?
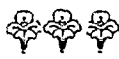
ग्रीनविच की वेधशाला

लेखक, पण्डित सूर्यनारायण व्यास

पिछले वर्ष जब मैं योरप गया था, यद्यपि मैं केवल विदेश का एक दर्शक पथिक ही बनकर रहा था, अपने 'ज्योतिषी' होने की बात प्रकट नहीं होने दी थी। क्योंकि थोड़े समय में मैं बहुत कुछ देख लेना—जान लेना चाहता था। तथापि इतना आकर्षण तो स्पष्ट ही था कि मैं इंग्लैंड की ग्रीनविच और हालैंड की प्रसिद्ध वेधशाला देखे बिना नहीं लौटना चाहता था। 'ज्योतिषी' होने का विज्ञापन न करता, तो भी मेरी वेधशाला-सम्बन्धी जिज्ञासा तो मेरे ज्योतिषी-रूप को कहीं न कहीं प्रकट कर देनेवाली ही थी।

ग्रीनविच और हालैंड की महती वेधशालाओं के दर्शन-कर उनके परिदर्शक से जब मैं कुछ प्रश्न कर बैठता तब तुरन्त पहचान लिया जाता था कि मेरा भी इस विज्ञान से थोड़ा-बहुत सम्बन्ध है। ग्रीनविच की एक घटना है। वहाँ के एक वेध-ज्ञानवेत्ता के साथ भ्रमण करता मैं उस स्थान पर पहुँचा जहाँ 'सूर्य' की गति-विधि और इस ज्योतिष्पिण्ड के तत्त्वों की खोज करनेवाला भीमकाय यन्त्र लगा था। वहाँ सूर्य के विशेष प्रकार के अनेक अभिनव फोटो रक्खे हुए थे। मैंने उस संग्रह में से दो विशाल चित्रों पर से जिज्ञासा की—

"इन चित्रों को लेकर आप अन्ततः किस नतीजे पर पहुँचे हैं?"

मेरे इस प्रश्न पर दर्शक महाशय बड़े चौकन्ने हुए। बात यह थी कि १९३७ के ८ जून को दिन में 'सूर्य-मण्डल' पर 'अरोरा बेरेलिस' के कारण विचित्र प्रकार का वातावरण आ गया था। लगभग लाखों मील तक आकस्मिक धूमिल अभ्र-पटल-सा छा गया था कि सूर्य भी ठीक नहीं दिखाई पड़ता था, न तीक्ष्ण प्रकाश ही। इसके परिणाम-स्वरूप वायरलेस, टेलिग्राफ़, रेडियो आदि बहुत देर तक व्यर्थ हो गये थे, गगनमण्डल एक विचित्र स्थिति में आ गया था। उपर्युक्त फोटोग्राफ़ उसी हाल में इस वेध-शाला में लिये गये थे। मैं अक्टूबर में लन्दन से ग्रीनविच गया था, अतएव ये फ़ोटोग्राफ़ मुझे वहाँ अध्ययनार्थ रक्खे हुए दिखाई दिये। मेरे प्रश्न से चौंककर प्रदर्शक कुछ ऐसी बातें करने लगा जो टाल-टूल की थीं। मैंने उस भलेमानुस से कहा—

"खेद है, मुझे आपके उत्तर से समाधान नहीं हुआ। आप यदि किसी योग्य वेधज्ञ से मेरी भेंट करवा दें तो उत्तम होगा।"

वह अपनी स्थिति को तुरन्त समझ गया और अपनी कमज़ोरी को स्वीकार करता हुआ एक प्रौढ़ सज्जन के निकट उसी विशालकाय भवन के अन्य कमरे में—आफ़िस में मुझे लिवा ले गया। वे सज्जन बड़े तपाक से, हाथ मिलाकर जिज्ञासा-प्रदर्शक दृष्टि से देखते हुए बोले—

"आपने इस प्रदर्शक से क्या जानना चाहा था?"

मैंने अपना वही उपर्युक्त प्रश्न दुहरा दिया। वे महाशय उसी विषय का अध्ययन कर रहे थे और दूसरे बड़े बड़े आकाश-द्रष्टा विद्वानों से पत्र-व्यवहार कर उसकी चर्चा चला रहे थे। उन्हें यह अपनी रुचि का विषय मिला था। वे सावधान हो गये और मेरी तरफ़ गम्भीर दृष्टि से देखकर कहने लगे,—"हमने अभी कोई निर्णय तो नहीं किया है। और भला ऐसे खास मामले पर शीघ्र निर्णय भी कैसे किया जाय? यह तो अनुसन्धान का विषय है। प्रथम बार ही आकाश में ऐसी घटना घटी है।" (बाद में पुनः ऐसा ही एक आक्रमण सूर्य पर हो चुका है)।

"परन्तु"—मैंने उनकी बात रोकते हुए कहा—"आपके अन्य वैज्ञानिकों का इस पर क्या मत है? वे इस घटना को किस रूप में देखते हैं?"

उन सज्जन ने पेपरों में मुद्रित अनेक विद्वानों के मतों के कटिंग मेरे सामने रख दिये। मैंने उन्हें बड़े ध्यान से देखा। उनमें विश्व के माने हुए विज्ञानाचार्य आइन्स्टीन का भी मतोल्लेखन था। उनके कथन का आशय भी यही था कि यह घटना विचित्र है, सूर्य-मण्डल में कोई परिवर्तन हो रहा है, और इस घटना की खोज होनी आवश्यक है इत्यादि। इसी प्रकार के खगोल-शास्त्रियों के और भी मत थे। मैंने इन सम्मतियों को पढ़ा और साधारण स्मित-मुद्रा से टेबल पर उन सज्जन के सामने फ़ाइल को धीरे से सरका दिया। वे ताड़ गये कि मैंने सम्भवतः

८ जून १९३७ का खग्रास सूर्य-ग्रहण
जिस पर विद्वानों में एक समस्या उत्पन्न हो गई है।

उपेक्षा-दृष्टि की है। आखिर वे अपने भाव को दबा न सके और बोल ही पड़े—"देखा न आपने ? कैसी गहन समस्या उपस्थित है ? मैं इसी में उलझा हुआ हूँ। सूर्य के चित्रों से गति-विधि की सूक्ष्म जानकारी प्राप्त कर रहा हूँ।"

मैंने पुनः पूर्ववत् साधारण स्मित करते हुए कहा—"क्षमा करें, मुझ पर इन सम्मतियों का कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ा है।"

उनकी आँखों में मैंने एक तेजी आती हुई देखी। वे मेरे चेहरे पर आँखें तीक्ष्णता से गड़ाकर चश्मा नाक पर ठीक जमाते हुए गहरी-चिन्तनशीलता से बोले—

"तो फिर आपके भारतीय शास्त्रज्ञों का इस पर क्या कोई भिन्न मत है?"

"मैं जुलाई से योरप में हूँ। पता नहीं, भारतीय विद्वानों में से पाश्चात्य नवानुसन्धान दृष्टि के सर सुलेमान ने भी कोई बात प्रकट की है या नहीं ? परन्तु मैंने इधर योरप के पत्रों में दो-चार बार इस चर्चा को पढ़ा अवश्य है, और मेरा तो यह ख़याल है कि वराह-मिहिर आदि महान् खगोल-द्रष्टा पुरातन आचार्यों ने इस तरह की बातों पर भी काफ़ी प्रकाश डाला है। चाहे उनके समय इस तरह सूर्य में कोई वातावरण उत्पन्न हुआ हो या न हुआ हो, उन्हें 'सूर्य' की इस अवस्था की भी कल्पना अवश्य है। उन्होंने इसके कारणों में से जो बातें सोची हैं वे सर्वथा मौलिक हैं और विचारणीय हैं। उन्होंने 'रिसर्च करने' की बात कहकर अपने पाठकों को अँधेरे में भटकता नहीं छोड़ा है।

"आप लोग तो आज भी इस एक ही मामले में एकमत से विचार नहीं कर रहे हैं। देखिए 'पेरु' नामक जगह से जिन लोगों ने ८ मील ऊपर जाकर फोटो लिये हैं वे कहते हैं कि सूर्य-पृष्ठ पर १० लाख मील से अधिक गहरा धूमिल वातावरण था, और सूर्य-बिम्ब के किनारों पर किरणों का जाल भी अजीब हालत में था। किन्तु अमरीका के विद्वानों ने सूर्य-पृष्ठ पर किरण-जाल का फैला देखना 'पेरु' के फोटो लेनेवालों के कैमरे का दोष ही बतलाया है, और आपके भी ये फोटोग्राफ़ तो दूषित वातावरण और धूमिल किरण-जाल का होना प्रदर्शित कर रहे हैं।

"रहा भारतीय विद्वानों का सवाल। सो बात यह है कि पहले योरप में जिस समय यह ग्रहण तथा घटना हुई है उस समय भारत में सूर्य दिखाई नहीं दे रहा था, रात्रि का निविडान्धकार था। भारतीय आपकी चर्चा से विस्मित अवश्य हुए, और अपने गर्ग, पराशर, वराहमिहिर को देखकर उन्हें मानों ऐसे प्रसंग पहले भी आये हों हैं, ऐसा ही मालूम हुआ है, अधिक विस्मय का तो कोई कारण नहीं हुआ है।"

उन महाशय के चेहरे पर विस्मय के भावों का उदय हो रहा था, वे चित्र-लिखित से मुझे देखते जा रहे थे। मैं ऊपर का वाक्य खत्म कर चुप हुआ तब मानो उनकी विचार-तन्द्रा भी भङ्ग हुई। ज़रा सावधान होकर फिर उन्होंने कहा—"लेकिन यह तो बतलाइए कि उनकी या आपकी सम्मति में यह घटना है क्या? इसमें कौन-सा प्रकृति का रहस्य निहित है?"

मैंने अपना क्रम जारी रखते हुए बतलाया—"हाँ, मैं वही तो कह रहा था। भारतीय ग्रन्थों में सूर्य-चन्द्र के ग्रहण का स्थान सूर्य-चन्द्र के भ्रमण-वृत्तों के सम्पात-स्थान के पास माना है। सूर्य का भ्रमण क्रान्ति-वृत्त में होता है और चन्द्र का विक्षेप-वृत्त में। इन दोनों वृत्तों के परस्पर दो स्थानों में सम्पात होते हैं। एक सम्पात का नाम 'राहु' है, और दूसरे का नाम 'केतु' है। कभी ग्रहण 'केतु' की समीपता में होता है और कभी राहु की। पिछला सूर्य-ग्रहण 'केतु' की निकटता में हुआ है। राहु और केतु ये दो अदृश्य किन्तु उपग्रह माने हुए हैं। 'केतु-पर्व' के समय 'सूर्य' धूम-केतु की कक्षा को निकट रखकर ही 'विवर्ण' होता है। और धूमकेतु पुच्छल-तारे का नाम है, यह बतलाने की ज़रूरत नहीं है। धूम-केतु की हज़ार शक्लें मानी गई हैं। यह कभी दृश्य होता है और कभी अदृश्य। अदृश्य में—उल्का वग़ैरह इसी का स्वरूप है, विद्युत् इसकी शक्ति है, वाष्प, रज, तम, धूम इत्यादि विकृतियाँ हैं। आकाश और भूमण्डल पर्यन्त इसी के कारण दृश्य-रूप लिया करते हैं। प्राचीन शास्त्रज्ञों ने इस महोत्पात-कारक धूमकेतु की कक्षा का ज्ञान रखना ग्रहण के समय ज़रूरी बतलाया है। स्वयं ग्रहण को एक उत्पात कहा है। उसमें फिर इस महोत्पात का प्रवेश, सूर्य-मण्डल तो ठीक, न जाने कितनी भयावह स्थितियों का उत्पादक हो सकता है। भूकम्प, प्रलय आदि भी इसी के उग्र-रूप कहे गये हैं। वराहमिहिर ने स्पष्ट रूप में कहा है कि सूर्य में इसके विविध रूप विकृति उत्पन्न करते हैं, और सूर्य-मण्डल में 'दृश्य' होते हैं।

"गर्ग और वराहमिहिर ने सूर्य-चन्द्र के ग्रस्त होने का परिणाम पवन, उल्कापात, रज, क्षिति-कम्प, दिग्दाह आदि बतलाया है। इस दृष्टि से मैं तो समझता हूँ कि इस ८ जून के सूर्य-ग्रहण के अवसर पर 'सूर्य-पृष्ठ' पर रज-राशि का ही (धूलि-पटल का ही) शायद विशाल संग्रह आ गया हो। और दूसरी बात यदि धूमकेतु के अतिरिक्त हो सकती है तो वह 'परिवेष' है। परिवेष वायु, अभ्र तथा रश्मि-संघर्ष से बन जाता है। इसी प्रकार इन दो कारणों की तरह एक बात और भी है। वह सूर्य-पृष्ठ में कम्प का हो जाना है। 'रवि-कम्प' से रवि-किरण-जाल चंचल हो जाते हैं, रविमण्डल का ताप-मान शीत-प्रभाव से, अंगारे पर शीतल छींटों के गिरने से जिस प्रकार धूमिल वातावरण बना देते हैं, उसी प्रकार यह भी हो सकता है। रवि-मण्डल रजो-राशि से या कम्प से आवृत हो धूमिल हो सकता है।"

इस तरह मैं अपना विवरण कहता गया, और अन्त में मैंने बतलाया—"मेरी यह निजी कल्पना नहीं है। यह वराहमिहिर एवं ऐसे ही अन्य प्राचीन आचार्यों का सूर्यानुसन्धान है। यहाँ मेरे पास साधन नहीं है। मैं एक दर्शक बनकर आया हूँ, स्मृति के आधार पर ही बतला रहा हूँ।"

वे सज्जन तो बहुत ही आकर्षित हुए और कहने लगे—"चाहे हम कितने ही साधनसमन्वित हों, पर आपके

इस घरू ज्ञान की समता अध्ययन-मात्र के बल पर हम नहीं कर सकते। हमारा अनुसन्धान कल्पना-आश्रित है, अन्धकार में प्रकाश की खोज है। आप किसी निश्चित मत पर दृढ़ होकर आगे बढ़ते हैं। अतएव आप जिस तथ्य पर शीघ्र पहुँच सकते हैं, अनुसन्धान का पथ निकालकर निश्चित दिशा पर जा सकते हैं; हमारा मार्ग उतनी ही सरलता से दूर है। मैं आज ऐसा समझ रहा हूँ कि सूर्य-मण्डल में बैठकर वहीं किसी वस्तु की खोज कर रहा हूँ।"

फिर तो उक्त सज्जन ने मुझे आग्रहपूर्वक चाय पिलाई और अपने फोटोग्राफर को तुरन्त बुलवाकर फोटो लिवाया। इसके बाद मुझे उन्होंने बड़े स्नेह से अपना मित्र मानने का आग्रह किया। मैंने इसे अपना सौभाग्य समझा और उस समय मेरा हृदय इसलिए आनन्द से भर गया कि अपने देश के विज्ञान पर इन्हें मैं कुछ प्रभावित कर सका। बातें बहुत-सी हुईं। परस्पर प्रेम हो जाने से स्पष्ट चर्चायें हुईं। अन्त में मुझे ज्ञात हुआ कि वे सज्जन उस महान्-वेधशाला के उप-प्रधान हैं। उन्होंने साथ घूमकर उस वेधशाला के विविध रूप की विशालता के दर्शन करवाये। अब मैंने उनसे विदा लेकर चलते समय इसी प्रकार ज्योतिष के फलादेश के अंग पर भी संक्षिप्त मधुर चर्चा छेड़ दी। वे इस पर भी मुझसे सहमत हो रहे थे। उन्होंने मुझे वहीं रोकने का बहुत आग्रह किया, परन्तु समय थोड़ा था और अभी मुझे बहुत देखना था। शीघ्र ही फ़्रांस भी जाना था, अतएव स्नेह-पूर्वक क्षमा चाही। दो रोज़ के बाद मैंने लन्दन के दो-तीन प्रमुख पत्रों में देखा, मेरी इस भेंट का विवरण वेधशाला से प्रकाशित किया गया है और उसमें अन्यान्य प्रशंसाओं के साथ यह ख़ासतौर पर बतलाया गया था कि "..आश्चर्य तो यह है कि भारतीय पंडित बड़ी से बड़ी समस्या को इतनी सरलता से हल करते हैं कि विस्मित हो जाना पड़ता है। और इसका कारण यही है कि उनके ज्ञान का आधार दृढ़ एवं महत्त्वपूर्ण है। उनके पुराने आचार्यों ने उनके लिए पथ-प्रदर्शक का काम बहुत उत्तम रीति से कर रक्खा है। उनका किसी निश्चित मत पर पहुँचना उनके निष्कण्टक पथ का ही श्रेय है। इत्यादि।"

गीत

लेखिका, श्रीमती रूपकुमारी वाजपेयी, बी० ए०

झिलमिल कैसे दीप रहे जल !
जब कि गगन में सम्भ्रम छाया,
धरती पर चिर तम की माया,
कौन क्रूर तृष्णा लौ-सी चमका चुपके से दिया अरी ! चल।
विवश पलों का बन्दी कोई,
विस्मृति-वन में अब तक खोई,
इस प्रकाश के बिखरे कण सुधि एक खोजता होगा अविकल।
कौन स्नेह में खिल मदमाते ?
जल-जल सखि ! ये जीवन पाते !
क्या न शलभ आते होंगे इन तक लेकर अपनापन निश्छल ?

भारत की आत्म-रक्षा का प्रश्न

लेखक, श्रीयुत उमाशंकर

आज सारे विश्व में उथल-पुथल मची हुई है। अन्तर्राष्ट्रीय क्षितिज पर मानवता के भक्षक दौड़ते नजर आ रहे हैं। निर्बलों की चीख-पुकार से आसमान की छाती फट रही है। विश्व त्राहि-त्राहि कर रहा है। बम और गोलों की गड़गड़ाहट से विश्व काँप रहा है। हिटलर साम्राज्य-प्रसार की राक्षसी बुभुक्षा का शिकार हो रहा है। इसलिए आये दिन अपने समीपवर्ती भू-भागों को उदरस्थ करने के लिए बहाने खोज रहा है। पोलैंड पर निर्दयता के साथ बम-वर्षा कर उसने पोलैंड की जनसत्ता का विनाश कर दिया। डेनमार्क, नार्वे और हालैंड को डकार गया है। लाखों को मौत के घाट उतार-कर उसे शान्ति नहीं हुई है। अभी भी उसकी प्यास नहीं बुझी है। प्यास बुझाने के लिए खून चाहिए और वह खून की खोज में है।

युद्ध तो योरप में हो रहा है, पर समस्त विश्व-शान्ति खतरे में है। दुनिया की इस हालत में हम अपने को खतरे से बाहर नहीं समझते। हमारे हर नेता आज यह कह रहे हैं कि इस विश्व-संकट का प्रभाव भारत पर भी पड़ सकता है। अतः हमें अपने को समझने के पहले अन्त-र्राष्ट्रीय परिस्थिति को भी समझना चाहिए।

भारत की स्वतन्त्रता की माँग के सम्बन्ध में सहानु-भूति-पूर्ण विचार प्रकट करते हुए एक अमेरिकन सज्जन ने यह प्रश्न किया है कि 'यदि ब्रिटेन भारत को पूर्ण स्वतन्त्रता प्रदान कर दे तो क्या वह बाहरी आक्रमणों से अपनी रक्षा कर सकेगा?' पिछली बार जब जवाहरलाल जी इंग्लैंड गये थे तब भारत की आत्म-रक्षा के प्रश्न को दृष्टि में रखकर इंग्लैंड के राजनीतिज्ञों ने पूछा था कि आप स्वतन्त्रता की माँग तो करते हैं, पर अगर कोई दूसरा राष्ट्र हिन्दुस्तान पर चढ़ाई कर दे तो क्या आप अपने देश की रक्षा करने में समर्थ होंगे। यह तो दुनिया जानती है कि पण्डित जवाहरलाल जी जरा मस्त आदमी हैं, इसलिए उस पुरुषसिंह ने हँसते हुए कहा था कि 'आप हिन्दुस्तान की चिन्ता न करें। यह हमारा काम है। हम इसे देख लेंगे। यह बात निश्चित है कि हम अँग-रेजों से अथवा किसी अन्य राष्ट्र से सहायता की प्रार्थना न करेंगे।'

पण्डित जी का उत्तर तो एक स्वतन्त्र राष्ट्र का उत्तर था! आज अगर १६वीं शताब्दी का भारत होता तो पण्डित जी का यही उत्तर सारे भारत का उत्तर होता। पर आज का भारत कायरों का भारत हो रहा है। १५० वर्षों की अँगरेजी हुकूमत में हमारी वीरभावना सुषु-प्तावस्था को प्राप्त हो गई है। उसकी शान्ति ने हमें अपा-हिज और निकम्मा बना दिया है। वीर मराठे और सिक्ख, राजपूत और जाट अपना वीरत्व सर्वथा भूल गये हैं और अब उनके हाड़-मांस के सूखे पुतलों की रगों में अपने वीर पूर्वजों के रक्त का जरा भी असर नहीं देख पड़ता है।

सीमान्त का खतरा

भारत एक बड़ा देश है। उसका ७,००० मील लम्बा उपकूल और हजारों मील सीमान्त भूमि है। सीमा-प्रान्त तो पहले से ही भारत के लिए खतरनाक रहा है। आज रूस और जर्मनी में अनाक्रमण सन्धि हो जाने के बाद वह और भी खतरे में पड़ गया है। एक ऐंग्लो-मुस्लिम पत्र ने यहाँ तक लिख दिया है कि भारत के उग्रवादी सोवियट रूस के एजेन्ट हैं। ये देश में दौलत खाँ लोदी और इब्राहीम लोदी के चाचा अलाउद्दीन का पार्ट अदा करना चाहते हैं! पर समाजवाद क्या है? जो जानते हैं वे इन बातों पर विश्वास नहीं रखते। किन्तु उनकी दिमाग़ी नज़ाकत पर हँसी जरूर आ जाती है। दूसरे वर्गों की सामू-हिक शक्ति को तहस-नहस कर बाजार की खोज में उप-निवेश प्राप्त करना समाजवाद का उद्देश्य नहीं है। सोवियट रूस साम्राज्य-प्रसार की राक्षसी बुभुक्षा का शिकार नहीं है। अगर वह भारत पर आक्रमण करना ही चाहता तो जर्मनी के साथ इस काम के लिए उसे संधि करने की कोई जरूरत न पड़ती। वह बग़ैर जर्मनी के सहयोग के

आक्रमण कर सकता है। काश्मीर के सीमान्त तक उसका राज्य है। वहाँ की सुन्दर भूमि में ख़ून की नदियाँ वह सकती हैं। पर सोवियट रूस ऐसा चाहता नहीं है। हाँ, जर्मनी से हमें अवश्य डर है!

तुर्की एवं जर्मनी की आर्थिक सन्धि होने के समय 'न्यूयार्क हेरल्ड ट्रिब्यून' में एक ख़बर छपी थी कि हिटलर भारत की ओर आँखें गड़ा रहा है। एक विश्वस्त ब्रिटिश राजनीतिज्ञ एवं मास्को के एक प्रमुख पत्र का कहना था कि जर्मनी बर्लिन से बग़दाद, ईरान और काबुल होकर भारत का मार्ग साफ़ कर रहा है। पर पोलैंड का युद्ध आरम्भ होते ही तख़्ता उलट गया है। तुर्की एवं जर्मनी की आर्थिक सन्धि ख़त्म हो गई है। एक तरफ़ तुर्की जर्मनी के शत्रु इँग्लेंड और फ़्रांस से सन्धि करता है, दूसरी तरफ़ जर्मनी सोवियट रूस को तुर्की पर आक्रमण करने के लिए उत्तेजित करता है और सहयोग देने के लिए तैयार है।

हिटलर छल-कपट और मेल-मिलाप से अपना उद्देश्य सिद्ध करना चाहता है। अतः पश्चिमी सीमान्त ख़तरे से बाहर नहीं समझा जा सकता। पश्चिम के समुद्री उपकूल का भी यही हाल है। अगर इटली युद्ध में भाग लेता है तो यह सम्भावना है कि ब्रिटिश जहाजों के लिए भूमध्यसागर के दरवाज़े बन्द कर दिये जायँ। पराधीन भारत की रक्षा और उसका अस्तित्व भूमध्यसागर पर निर्भर करता है। यह रास्ता बन्द हो जाने से अन्न-जल का कष्ट तो हमें उठाना न पड़ेगा, पर ग्रेट ब्रिटेन से सैनिक मदद नहीं मिल सकेगी! पश्चिम के समुद्री उपकूल पर इटली बम-वर्षा कर सकता है।

आज से १५ महीने पहले सर जान हेमिल्टन ने चीन और जापान की लड़ाई का वर्णन करते हुए कहा था कि जापानी सेना सिंगापुर की सड़क पकड़े हुए है। जापान के सम्राट् का रास्ता साफ़ है। वह हाँग-काँग, सिंगापुर, बर्मा और आसाम होते हुए बंगाल को जाता है। सर जान हेमिल्टन कोरे राजनीतिज्ञ ही नहीं हैं, वे ख्याति प्राप्त सैनिक अफ़सर रह चुके हैं। पर पोलैंड-युद्ध के आरम्भ होने के बाद से जापान ने अपने को तटस्थ घोषित किया है। पर जापान ब्रिटेन के प्रति हृदय-परिवर्तन का सबूत नहीं दे रहा है। जापान में ब्रिटेन के विरुद्ध बड़े ज़ोर-शोर से विद्वेषपूर्ण भावों का प्रसार इसलिए किया जा रहा है कि शीघ्र ही पूर्व भी युद्ध का मोर्चा बन जाय। अभी पेकिंग के समाचार से पता चला है कि जापान-नियंत्रित चीन में ब्रिटेन का विरोध पहले ही ऐसा है। उसमें कोई कमी नहीं आई है। इस तरह ब्रिटेन के प्रति जापान का रुख़ देखकर यह स्पष्ट प्रकट होता है कि जापान एशिया में भी बमों और गोलों के महानाशकारी धायँ-धायँ और सायँ-सायँ शब्द सुनाने के लिए तैयारी कर रहा है।

आज-कल पूर्वी सीमान्त की रक्षा का समुचित प्रबन्ध केवल सिंगापुर में है। ब्रिटेन के प्रति जापान का रुख़ देखकर तथा पूर्वी देशों में होनेवाली हलचल के कारण भारत के उत्तरी-पूर्वी सीमान्त के बचाव का प्रश्न विशेष महत्त्व रखता है। रक्षा का जो बजट भारत-सरकार ने हाल में तैयार किया है उसका भी अधिक ध्यान उत्तरी पश्चिमी सीमान्त की ओर गया है। सिंगापुर में ब्रिटिश फ़ौजी अड्डा रहते हुए भी हमारी उत्तरी-पूर्वी सीमा ख़तरे से बाहर नहीं समझी जा सकती। उत्तरी-पूर्वी भारत के बहुत-से नगर ख़तरे में हैं। ऐसी बात नहीं कि ब्रिटिश सरकार यह अनुभव नहीं करती। वह ख़तरे का अनुभव करती है। यही कारण है कि कलकत्ता आदि नगरों में हवाई हमले से बचने के उपाय लोगों को बताये जाते हैं। हवाई हमला-रक्षा-समिति हवाई हमलों के सम्बन्ध में विशेष सतर्क दिखाई देती है।

चेटफ़ील्ड-कमिटी ने इन्हीं बातों को दृष्टि में रखकर भारत-रक्षा के लिए विशेष सिफ़ारिशें की हैं। चेटफ़ील्ड-कमिटी की सिफ़ारिशों में सबसे महत्त्वपूर्ण चीज़ तो यह है कि चेटफ़ील्ड-कमिटी ने भारतीय सेना के भारतीयकरण पर ज़ोर दिया है, जिसके लिए ४६ करोड़ रुपये के व्यय की स्वीकृति भी की है। उसकी सिफ़ारिशों को कार्य का रूप देने के लिए ब्रिटिश सरकार ने ब्रिटिश पलटनें भारत से हटा लेने का निश्चय किया है, जिसके फलस्वरूप भारत को २०१ लाख रुपये की बचत होगी। ये ब्रिटिश सैनिक भारत में बेकार ही हैं। अँगरेज़ों के स्वभाव के अनुकूल यहाँ का जलवायु भी नहीं है और वे इस असुविधा के कारण कुछ नहीं कर सकते। कैप्टेन गीवीमोस्क ने अपनी पुस्तक 'इण्डियन डिफ़ेन्स प्राब्लेम' में इस विषय

पर विचार किया है कि ब्रिटिश सैनिकों पर जो ख़र्च होता है, बेकार ही होता है, क्योंकि बिना ब्रिटिश सेना के भी भारतीय सैनिक अपने देश की रक्षा कर लेंगे, और वह भी पूर्ण योग्यता और अपेक्षाकृत कम ख़र्च में। अभी कुछ दिन हुए मदरास के ब्रिटिश फ़ोर्स के प्रधान मेडिकल अफ़सर सर्जन जेनरल गर्डन ने कहा था कि 'इँग्लिस्तान से हिन्दुस्तान में एक बहुत बड़ी संख्या में ऐसे नौ-जवान लड़के आते हैं जो उस परिश्रम को वहन करने में असमर्थ होते हैं जो युद्ध-काल में करना पड़ता है।'

भारतीय जलसेना का नाम है रायल इण्डियन मेरीन। युद्ध के छिड़ने के पहले इसमें ५ स्लूपस, १ पेट्रोल वेसिल, १ सर्वेशिप, १ डिपोशिप और छोटे छोटे जहाज़ थे। और हमारा समुद्री किनारा प्रायः ७,००० मील लम्बा है। इतने बड़े समुद्री किनारे पर भी केवल ७ बड़े बड़े बन्दरगाह हैं और २६ साधारण बन्दरगाह हैं। अफ़्रीका की ओर से हिन्दुस्तान पर आक्रमण हो तो हमारी उपर्युक्त जलसेना कुछ भी काम न दे सकेगी। भूमध्य-सागर भी ख़तरे में है, वह कुछ भी मदद नहीं कर सकता है।

पर आज की लड़ाई तो पैदल फ़ौज तथा जलसेना से नहीं लड़ी जा रही है। आज की लड़ाई तो हवाई जहाज़ों की लड़ाई है। इटली के सेनापति जेनरल डोकटे ने कहा भी था कि हवाई शक्ति ही राष्ट्रों का भाग्य-निर्णय करेगी। इसलिए सभी देशों में काफ़ी ज़ोर-शोर से हवाई जहाज़ बनाये जा रहे हैं। जहाँ ग्रेट ब्रिटेन के शत्रु राष्ट्रों के हवाई जहाज़ों की संख्या हज़ारों में है, वहाँ भारत में युद्ध आरम्भ होने के पहले वे कुल १०० थे और एक आधा दर्जन इधर तैयार हुए हैं। युद्ध आरम्भ होने के पहले जो १०० जहाज़ यहाँ थे, वे भी ऐसे नहीं हैं कि शत्रुओं के वायुयानों का तेज़ चाल से पीछा कर सकें। वे पीछा करने के लिए रक्खे भी नहीं गये हैं। उनका कार्य तो केवल सीमान्त-प्रदेश पर बम बरसा कर सीमान्त के लोगों को भयभीत कर देना है। ब्रिटेन के शत्रु बहुत दूर नहीं हैं। उनकी दूरी भी एक चार्ट में यहाँ हम नीचे देते हैं —

मासावा	(इटली)	करांची	से	१८००.मील
मोगदिशु	,,	,,	,,	१९०० ,,
..	,,	बम्बई	,,	२००० ,,
एडिसा अबाबा	,,	,,	,,	२२५० ,,
..	,,	करांची	,,	२००० ,,
शंघाई	,,	कलकत्ता	,,	२००० ,,
चानकिंग	,,	कलकत्ता	,,	१२०० ,,

इस दूरी के चार्ट से पता लगता है कि ग्रेट ब्रिटेन के शत्रु हमारे पास हैं। करांची, कलकत्ता और बम्बई आदि नगर ख़तरे में हैं। जिस ब्रिटिश साम्राज्य में कुत्तों तक के बचाने के लिए लन्दन की भूमि में लौह-भूमि के हरम (Steel Cabin) बनाये जा रहे हैं, विषैली गैस से बचने के लिए गैस मास्क और हवाई जहाज़ों को मार गिरानेवाली तोपें तैयार की जा रही हैं, उसी ब्रिटिश साम्राज्य के अन्तर्गत भारत में क्या हो रहा है? इसका जवाब ब्रिटिश सरकार ही दे सकती है।

श्री गोस्वामी तुलसीदासचरितामृत

लेखक, श्रीयुत लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय, एम० ए०

स्वामी तुलसीदास के सम्बन्ध में अब तक जितने भी अनुसन्धान हुए हैं उनसे कितने ही ऐसे ग्रन्थ मिले हैं जिनसे गोस्वामी जी की जीवनी के विषय में ऐसी ऐसी बातों का पता चला है जिनका हिन्दी-साहित्य के विद्यार्थी को अब तक कुछ ज्ञान भी नहीं था। इस खोज के कारण हिन्दी-साहित्य के इस महान् कवि के जीवन पर यथेष्ट प्रकाश पड़ा है। परन्तु मेरे विचार में हस्त-लिखित ग्रन्थों के अतिरिक्त कुछ ऐसे प्रकाशित ग्रन्थ भी हैं जिनके अस्तित्व का हिन्दी-संसार को अब तक पता नहीं है। 'श्री गोस्वामी तुलसीदास चरितामृत' एक ऐसा ही ग्रन्थ है। इसमें गोस्वामी जी की यात्राओं का वर्णन है। यह ग्रन्थ गद्य में है और इसके निर्माण की कहानी इस प्रकार है। आरम्भ में लिखा है—

"गुरुवन्दना"

श्री अयोध्या जी में नये घाट के पास नेवास करने-वाले महात्माओं के पूज्य रामचन्द्र गुरुमंत्र शभाशद करने-वाले अैसे उत्तम पदवी रखने वाले को ज्ञान ध्यान भक्ति विद्या के सदाव्रत बाँटनेवाले श्री महाराज पण्डितराज उमापति जी शाहेब तेवारी गुरुदेव स्वामी के चरण कमलों को नमस्कार करता हूँ जिस्से अर्थ धर्म मोक्ष चारों पदार्थ और कोई मनोरथ दुर्लभ नहीं गोशाई तुलसीदास जी ने कहा है।

श्री गुरु पद नख मणिगण जोती
सुमिरत दिव्य दृष्टि हिय होती
दलन मोह तम शोष प्रकाशू
वड़े भाग्य उर आवहिं जासू

यह महात्म्य श्री गुरु जी के चरणारविन्द का श्री महाराज के ज्ञान ध्यान भक्ति विद्या में सुयस पाया इस वाइस से सवने महाराज के उपासक अपार तेज प्रताप ज्ञान वान दया आदिक सम्पूर्ण गुणों को संसार से अनूपम कहा है भुवनेश कवि असनी गोपालपुर वाले ने शिवरूप कहि कर अस्तुति की है

कवित्त

दोऊ प्रवल यस गावत सकल जग
दोऊ को शील कहि गुणगण वखानी हैं।।
दोऊ नाम धाम पूरण करत आस दोऊ
दास दारिद हरण वरदानी हैं।।
भनि भुवनेश यश विलसात देश देश
सेवत नरेश दोऊ पद जौन ज्ञानी हैं।।
उमापति जू सो उमापति सों फरक एतो
उत वाम है भवानी इत दाहिनी भवानी हैं।।

वार्ता इस तरह है उमापति की स्तुति बनायें हुए ग्रन्थों में अच्छे अच्छे पण्डितों और महात्मावों ने वहुत स्तुति करी है वह में नहीं लिख सकता हूँ पुस्तक की शुद्धता और पवित्रता के हेत इतना लिखकर अव इस पुस्तक का हाल लिखा जाता है इसका नाम गोशाईं चरित्रामृत है भवानीदास शाहव दाशों के दास ने वरजवान भाखा छपे वो लिखे ग्रन्थों में भक्तमाल श्री नाभा जी की वड़े प्रेम और भक्ति से लिखा है इसमें पहिले वन्दना श्री गणेशजी की, श्री शिवजी, श्री पारवती जी, श्री गुरुदेव स्वामी, श्री रामजी, श्री हनूमान जी और सन्त महात्मावों का है और इसके वाद सन्तों के गुण गाने का महात्म्य और महाराज रामप्रशाद जी महन्त की दया से वो आज्ञा से इसका तसनीफ़ करना लिखा है और इस पुस्तक का नाम गोशाईं चरित्रा-मृत जो रक्खा है विना आश्चर्य यह कथा अमृत है लेकिन अमृत से ज्यादा सुख देने वाली कथा है क्योंकि अमृत पीने वाले को अमर कर देता है परंतु भवसागर पार उतारने की सामर्थ्य नहीं रखता और इस कथा का पढ़ना सुनना भवसागर पार उतार देता है श्री नाभा जी ने यह दोहा कहा है

दो० अग्रदास आज्ञादई, हरि भक्तन गुण गाव
भव सागर के तरन को, नाहिन आन उपाव

इस पर गोशाई तुलसीदास जी ने कहा है

दो० सवै कहावत राम के सवै राम की आस
राम करहिं जे आपनो तेहि भजु तुलसीदास

जिसका अर्थ यह है रामदास का भजन सव भजनों से अधिक है जिसकी इच्छा गोशाई जी करते हैं और गोशाई

तुलसीदास जी का महात्म्य और राममक्ति शिरोमणि होना संसार में विदित है उनके महात्म्य को सब महात्मावों ने कहा है उसमें से स्वामी रामानंद जी महाराज जी का एक दोहा और तीन कवित्त श्री महंतप्रसाद जी के लिखे जाते हैं

दो० श्री समुद्र श्री ब्रह्मरत, जगत गुरू जगवंद
श्री गोसाइ रम राममम, श्रीमत रामानंद

कवित्त पहला

जिनको सति भाव प्रभाव सदा शुभ
रामहि को पद पंकज नीको॥
मानो विराग उपासना प्रेम को
नेम को है इनही सिर टीको॥
रति रामहि सों मति रामहि
राम सों बान धरे सिय पिय को॥
दक्ष मनोगह पूरण अज प्रतक्ष स्वरूप गोसाईंहि जी को॥१॥

कवित्त दूसरा

चात्रिकवृत्त सों सात्विक रूप मनो नभ निर्मल कातिक ही को।
पातक पुञ्ज शिरांहि विलोकत दीनदयाल विषय रस फीको॥
पूजा में अंग प्रसंग में कान सो ध्यान धरे रघुनन्दन सी को॥
चक्षु में रूप धरे हरिपक्ष प्रत्यक्ष स्वरूप गोसाईंहि जी को॥२॥

कवित्त तीसरा

वेद को विधान लय पूरण पुराण मत
मानत प्रमाण साघ सिद्ध सब ठांई के॥
प्रेम रस भीने पद परम प्रवीने काहि
दीने हैं अखेट कवि भेद जहां तांई के॥ दया पर
सावें वरसावें प्रेम पूरो जल
हियो हुलसावें जो पाहन के नांई के॥ स्वामी
जी के चरित्र और बापुरो बखानै कौन
वृत्त यह बांटे परी तुलसी गोसांई के॥३॥

प्रस्तावना

और उल्था इसका इस जबान में इस तरह हुआ कि यह पोथी लाला रामगुलाम जी तिनके पुत्र बेचूलाल जी खत्री साकिन् फतेपूर के पास वहाँ देवनागरी में थी उन्होंने मेरे ऊपर दया की निगाह देखकर मुझको दिया मैंने उसको श्री महाराज पण्डित माधोराम जी साकिन् पलिया परगने सुबेहाल जाकर बाबू जीराम जी वकील मुकाम नवाबगंज से सुन कर यह इरादा किया कि उर्दू में लिखी जावे जिसमें सुनने को कौन कहे देखने से सुख मिले और लिखना शुरू किया था इतने में मुन्शी हरचरनदास जी मुख्तयार रियासत रामनगर जिला बारहबंकी ने अपनी पोथी को जो फारसी की थी मुझको दिया कि इसको हरफ के लिखने पढ़ने की महावरा है निहायत खुशी और आसानी होगई और देखने से जो मतलब समुझ में आय श्री रामजी की दया से लिखकर पूरा किया फिरस्त चरित्रों की पहिले आदि में मिलाया है और सन् सम्वत् उसके प्रारम्भ और समाप्त का और नाम लिखने वाला का पुस्तक समाप्त में लिखा है देखने सुनने वाले साधुवों महात्मावों से यही अर्ज है कि जहाँ पर शुद्ध अशुद्ध हो मेरे खता को माफ करें और महात्मावों के चरित्र पढ़ सुनकर सुख लेवें.

ग्रंथ के अन्त में इस प्रकार लिखा है—

श्री परमेश्वर जी की दया से महीना वैसाख, सम्वत १९४३ विक्रमानुसार मई सन् १८८६ ईसवी में गोसाईं तुलसीदास जी महाराज के अपार चरित्रों से उल्था इस पोथी गोसाईं चरित्रामृत. पूरा हुआ. कलि का नाम लाल जी पिता का नाम नौनिधराय कानूनगो काकोरी, जिले लखनऊ है और तरतीब इसकी मुकाम नवाबगंज जिले बाराबंकी में हुई है.

फिर इस पुस्तक को श्री अयोध्याजी में श्री कनकभवन के समीप श्री महाराज परम उदार सुजस विस्तार श्री स्वामी श्री १०८ परमहंस सीता सरणजी के आज्ञानुकूल तुलसीराम ने उरदू से नागरी में किया इस पुस्तक को छोटेलाल लक्ष्मीचन्दजी ने श्री स्वामी श्री महाराज परमहंस जी से विनयपूर्वक इस पुस्तक को लेकर शहर बम्बई हरिप्रसाद भागीरथजी का छापने का दिया.

कहने की आवश्यकता नहीं कि इस ग्रंथ का मूलतः निर्माण भवानीदास ने किया था। लाल जी कवि ने उर्दू में इसका उल्था किया। फिर उसको अयोध्या के तुलसीराम ने नागरी में किया। मालूम होता है कि उर्दू से नागरी में करते समय तुलसीराम ने अधिक सावधानी से

काम नहीं लिया प्रस्तुत ग्रंथ खड़ी बोली गद्य में है। परन्तु गद्य शिथिल है और कहीं-कहीं ब्रजभाषा का पुट भी मिल जाता है। नाभादास और स्थान-स्थान पर रची गई स्वयं गोस्वामी जी की कविताओं के उद्धरण के अतिरिक्त बीच-बीच में इस प्रकार भी लिखा मिलता है—

श्री हनुमन्त प्रसंग शुभ, प्रथम चरित विस्तार
लह्यो गोशांईं दरस रस, विदित सकल संसार
—पृ० ३

....हिन्दी में लिखा है.

॥ छंद ॥

कहुँ दीनन को प्रतिपाल करैं॥
कहुँ साधुन को मनमोद भरैं॥
कहुँ लपनलाल के चरित बँचैं॥
कहुँ प्रेम मगन ह्वै आपु नचै॥
कहुँ रामायण सुभगान सचै॥
कहुँ उत्साह कुलाहल भौर मचै॥
कहुँ आरत जनको दुःख हरैं॥
कहुँ अज्ञान पर ज्ञान धरैं॥१॥ —पृ० ४०-४१.

......हिन्दी में लिखा है.

लागिये नाथ गोहार और बल कुछ न बिसाता॥
राखैं हरि के दास कि सिरजनहार विधाता॥
—पृ० ५२.

...हिन्दी की पोथी में लिखा है उसका मतलब यह है. महात्मा के साथें जो बुराई करता है वही बुराई उसको मार डालती है...... —पृ० ५६.

.....सोरठा लिखा है.

॥ सोरठा ॥

तुम्हहिं न व्यापै काम, अति कराल कारण कवन॥
कहिय तात सुख धाम, योग प्रभाव कि भक्ति बल॥
—पृ० ५९.

इससे ज्ञात होता है कि मूल-ग्रन्थ ब्रजभाषा-पद्य में है। उपर्युक्त उद्‌धृत अंश मूल कवि की कविता के नमूने समझने होंगे।

कवि भवानीदास[1] के परिचय के विषय में कुछ नहीं कहा जा सकता। उनके गुरु पण्डितराज उमापति[2] जी तिवारी के विषय में भी निश्चय-पूर्वक कुछ नहीं कहा जा सकता। अयोध्या के तुलसीराम के विषय में भी कुछ ज्ञात नहीं है। केवल लाल जी कवि के विषय में इतना पता चलता है कि वे काकोरी, लखनऊ, जिला के निवासी थे। उन्होंने 'लक्ष्मीनारायण कवि का जीवन-चरित' नामक ग्रन्थ की रचना की थी। इनका कविता-काल संवत् १९४५ माना जाता[3] है। प्रस्तुत ग्रन्थ के अनुसार लाल जी के पिता का नाम नौनिधिराय था। श्री गोस्वामी तुलसीदासचरितामृत का उल्था सन् १८८६ ईसवी में नवाबगंज, बाराबंकी-जिला में हुआ।

यह ग्रन्थ गोस्वामी जी के हनूमान-दर्शन से आरम्भ होता है। मूल के कवि ने इस विषय को विस्तार से नहीं लिखा, क्योंकि उनके विचार में यह 'चरित्र' संसार में विदित है। गोस्वामी जी के जन्म, जन्म-स्थान आदि के विषय में भी उन्होंने कुछ नहीं लिखा। इसकी पूर्ति उल्थाकार ने कर दी है। उन्होंने 'सरोज' और महेशदत्तकृत 'काव्य-संग्रह' (१९३० सं०) के आधार पर गोस्वामी जी को सरवरिया ब्राह्मण, उनका मुक़ाम राजापुर (प्रयाग-ज़िला), जन्म-संवत् १५८३ और काशी में संवत् १६८० में देह-त्याग होना लिखा है। यह भी कहा है कि वे षट्शास्त्री पंडित थे और 'उमर भर संसार के उपकार के वास्ते राम-चरित्र-वर्णन करते रहे'। गोस्वामी जी के स्त्री-प्रेम का भी संकेत कर दिया है। मूल के कवि ने केवल गोस्वामी जी की यात्राओं, भक्तजनों से भेंटों और उनके चमत्कारों का ही वर्णन किया है।

१—'विनोद' (भाग ३, पृ० १०९१) में एक भवानीदास नामक साधारण श्रेणी के कवि का उल्लेख है। उनका जन्मकाल संवत् १८७५ और कविता-काल संवत् १९०२ बताया गया है।

२—'विनोद' (भाग ३, पृ० १०८२) में एक उमापति त्रिपाठी उपनाम 'कोविद' का उल्लेख है। उनके विवरण के विषय में कहा गया है कि वे अयोध्या में रहते थे और संस्कृत में कविता अच्छी करते थे। 'विनोद' में उनके ग्रन्थों का भी निर्देश है। वे महात्मा ऋषियों की तरह माने जाते थे और १९२५ संवत् तक जीवित रहे। उनका कविता-काल संवत् १९०० माना गया है।

३—दे० 'विनोद' (भाग ४), पृ० २६४.

इस ग्रन्थ में गोस्वामी जी की यात्राओं आदि का वर्णन संक्षेप में इस प्रकार है—

गोस्वामी तुलसीदास हनुमान का दर्शनकर अयोध्या में आ बसे और रामचरित का वर्णन करने लगे। एक दिन नाभा उनसे मिलने के लिए आये। परन्तु सेवकों की भूल के कारण वे गोस्वामी जी से न मिल सके और थोड़ी देर बाहर ठहर कर वृन्दावन चले गये। जब गोस्वामी जी को इसका पता चला तब वे बहुत पछताये और उसी दिन नाभा जी से मिलने के लिए वृन्दावन को चल दिये। वहाँ उनकी स्तुति में नाभा जी ने 'त्रेता काव्य निबन्ध' वाला छप्पय कहा।

उसको सुनकर गोस्वामी जी ने कहा कि कृपाकर इसको गुप्त ही रखिएगा। वहाँ उनके इच्छानुसार श्रीकृष्ण ने वृन्दावन में धनुष-बाण धारण किया। उसी समय दक्षिण देश से अयोध्या जाती हुई रामजी की एक मूर्ति को एक ब्राह्मण के इच्छानुसार गोस्वामी जी ने वृन्दावन में स्थापित कराया। कृष्ण जी के धनुष-बाण धारण करने से कृष्णोपासकों को गोस्वामी जी से ईर्ष्या हुई। परन्तु गोस्वामी जी ने उनको शान्त कर दिया। वहीं कन्नौज के कनौजिया और गोस्वामी जी के गुरुभाई नन्ददास आये और कुछ दिन गोस्वामी जी के पास ठहरकर वापस चले गये। वृन्दावन के महन्त को अयोध्या का माहात्म्य सुनाकर गोस्वामी जी अयोध्या को लौट गये। वहाँ उन्होंने अपनी गीतावली राम जी के सामने नृत्य करनेवालों को दे दी, जिसके कारण वे गन्धर्वों से भी बढ़ गये। परन्तु जब उस नगरी में 'कलियुग की कुचाली हिंसा और मक्तबाधा' देखी तब वे उसे छोड़कर काशी चले गये। वहाँ उन्होंने रामचन्द्र जी का मन्दिर बनवाया और रामायण का प्रचार किया। भाषा में रचना करने के कारण काशी के पण्डित गोस्वामी जी से बहुत बिगड़े और उनका मान भंग करने के विचार से वे सब दंडिराज श्री मधुसूदन स्वामी के पास पहुँचे और उनकी सहायता माँगी। परन्तु उन्होंने काशी के पंडितों को गोस्वामी जी का माहात्म्य बतलाया और यह श्लोक पढ़ा—

परमानन्दपत्रोऽयं जंगमस्तुलसीतरुः।
कवितामंजरी यस्य रामभ्रमरभूषितः॥

यह सब सुनकर पंडितों ने जाकर गोस्वामी जी से क्षमा माँगी। काशी में रामभक्ति का प्रचार होते देखकर भैरव ने गोस्वामी जी को डराकर काशी से भगा देना चाहा। परन्तु हनूमान् जी के कारण उनका कुछ बस न चला। एक दिन कुछ चोरों ने उनके यहाँ चोरी करनी चाही, पर वे जब जिधर से घुसने का प्रयत्न करते, उधर ही राम-लक्ष्मण के दर्शन होते, जिससे वे मुक्त हो गये। गोस्वामी जी को जब इसका सारा भेद मालूम हुआ तब उन्होंने अपनी सारी सम्पत्ति लुटा दी। इसी प्रकार गोस्वामी जी ने गणिका, ज़मींदार, अनेक पंडितों और योगियों, नीच जाति के चौहड़े आदि का अपने प्रताप और उपदेशों से उद्धार किया।

गोस्वामी जी काशी से जनकपुर गये। वहाँ हनूमान् जी की दया से कुछ ब्राह्मणों का गाँव माफ़ करा दिया।

जनकपुर से वे फिर काशी लौट आये। वहाँ उन्होंने बरखण्डी नामक एक प्रेत को मुक्त किया। वह प्रेत गोस्वामी जी को लेकर नैमिषारण्य गया और उनकी सहायता से खजाना निकालकर तीर्थों के शुद्ध और पवित्र करने में लगा दिया।

काशी से गोस्वामी जी 'चनारगढ़' और विन्ध्याचल की तराई से होते हुए तीर्थराज प्रयाग में आये। वहाँ उन्होंने मुरारिदास और उनके भक्त बाबा मलूकदास जो प्रयाग से बीस कोस पर कड़ा-मानिकपुर में रहते थे, भेंट की।* वहाँ से विदा होकर गोस्वामी जी चित्रकूट पहुँचे,

* 'भाषा-काव्य-संग्रह' (सं० १९३०) के संग्रहकर्ता महेशदत्त ने लिखा है—"ये ब्राह्मण कड़ा-मानिकपुर जो कि गङ्गा जी के तट पर है वहाँ के रहनेवाले बड़े सिद्ध थे। इनके मित्र एक मुरारिदास वैष्णव जो कि कड़ा नगर से बीस कोस पूर्व दिशा में कहीं गंगा जी के निकट रहते थे माघ मास में उन्होंने एक बड़ा भारी भण्डारा किया पर मनुष्य बहुत थे इससे सामग्री न पहुँच सकी तब ईश्वरानुग्रह से यह वृत्त मलूकदास को विदित हुआ एक तोड़ा पर अपनी ओर से लिखा कि मुरारिदास के पास पहुँचे उसे ले गङ्गाजी से कहा कि हे गङ्गे इसको अभी वहाँ पहुँचा दीजिये क्योंकि मनुष्य इसको ले जाकर समय पर नहीं पहुँच सकता यह कह गङ्गा जी में छोड़ दिया उसी समय मुरारिदास अपने घाट पर स्नान करने गये थे कि तोड़ा रुपयों से भरा हुआ पाय में लगा उसे देख जाना कि मलूकदास का भेजा हुआ है सबको भोजन कराया ये मलूकदास तुलसीदास जी के समय में थे क्योंकि जब तुलसीदास अयोध्या जी से चित्रकूट जाते थे तो इनसे भेंट हुई थी ये संवत् १६९५ में वहीं मृत्युवश हुये॥"

जहाँ उन्होंने रघुनाथ जी की लीला और मृगया-विहार देखकर आनन्द प्राप्त किया। हनूमान् जी की आज्ञा से राम-घाट में पहुँचकर उन्होंने स्वामी दरियानन्द से भेंट की और रामचन्द्र जी के दर्शन किये। चित्रकूट के पास ही एक गाँव में गोस्वामी जी ने एक ब्राह्मण का दारिद्रय दूर किया और बादशाह के बुलाये जाने पर चित्रकूट से दिल्ली को चल दिये।

वहाँ बादशाह ने उनको 'करामात' न दिखाने के अपराध में जेल में बन्द कर दिया, परन्तु हनूमान् जी की कृपा से मुक्त हो गये। पुरानी दिल्ली उजड़ गई। बादशाह ने गोस्वामी जी की आज्ञा से यमुना की उत्तर-दिशा में बाँधोगढ़ में बादशाही महल बनवाये और अपने लड़के के नाम से शाहजहाँनाबाद बसाया। वहाँ से वे एक ग्वाल को माया से मुक्त करते हुए वृन्दावन चले गये। वृन्दावन से वे चित्रकूट वापस लौट गये।

सन्दीला में नन्दलाल नामक एक भक्त राम के अनन्य उपासक रहते थे। एक समय अयोध्या जी के दर्शन करने के लिए वे सन्दीला से चलकर मलिहाबाद खोटे शहर के पास पहुँचे। वहाँ पठानों ने उनको और उनके भक्तों को बहुत तंग किया। परन्तु राम जी की कृपा और अपने प्रताप से सबको परास्त-कर वे अयोध्या गये और वहाँ से लौटकर रास्ते में कड़ा-मानिकपुर में मलूकदास से मिलकर चित्रकूट में गोस्वामी जी के पास पहुँचे और उनके साथ छः महीने तक रहे। चित्रकूट में गोस्वामी जी ने बहुत-से भक्तों का भला किया।

चित्रकूट में बहुत दिन तक रहने के बाद गोस्वामी जी फिर अयोध्या पहुँचे। वहाँ अनेक व्यक्तियों का कल्याण कर वे नीमखार के लिए रवाना हो गये। पहले रवाना में जहाँ राजा मानधाता ने रावण को पराजित किया था, ठहरे। रवाना से सूकरखेत, सूकरखेत से पसका और वहाँ से सियावार नामक गाँव में पहुँचे। सियावार में कुछ दिन ठहरकर वे लखनऊ के पास हनूमान् जी के स्थान के दर्शनकर लखनऊ पहुँचे। वहाँ बासकर रामभक्तों का सत्संग किया और भक्तों पर कृपाकर लखनऊ के पास मंडियाव में लाला भीखमसिंह नामक एक अनन्य भक्त से मिलने गये। चनहट पहुँचकर उन्होंने जब यह सुना कि भीखमसिंह कानूनगो हैं और ब्राह्मण चौधरियों से उसका झगड़ा हो रहा है तब वे मलिहाबाद चले गये, जहाँ रामोपासक एक वैष्णव भाट रहता था। उसने गोस्वामी जी की बहुत भक्ति की। राम में उसका प्रेम देखकर गोस्वामी जी ने उसे अपने हाथ की लिखी रामायण दी, जिसको पाकर वह कृतार्थ हो गया। यह पुस्तक अब तक मलिहाबाद में मौजूद है। मलिहाबाद से चलकर गोस्वामी जी रसूलाबाद में कोटरा नामक गाँव में अनन्य माधव भक्त से मिले। वहाँ से विदा होकर वे श्रीगंगा जी के ब्रह्मावर्त घाट पहुँचे और वाल्मीकि जी का स्थान देखकर प्रेम से पुलकित हो उठे। ब्रह्मावर्त की प्रदक्षिणाकर वे सन्दीला पहुँचे। वहाँ भक्तों को कृतार्थकर वे पिहानी चले गये और मुकुल नामक अनन्य भक्त का सत्संग किया। पिहानी से गोस्वामी जी नीमखार होते हुए मिसरिख पहुँचे। मिसरिख से रामपुर (मथुरा) पहुँचकर वहाँ के राजा का आतिथ्य स्वीकार किया। रामपुर से वे सिद्धा हल-वाई से मिलकर अयोध्या लौट गये।

अयोध्या में कुछ दिन ठहरकर उन्होंने भक्तों का सत्संग किया और राम-भक्ति का प्रचार किया। वहाँ से वे काशी चले गये।

काशी में रहकर गोस्वामी जी आनन्द से राम-भजन करने लगे। लाला भीखमसिंह वहाँ जाकर उनसे मिले और अपने अवगुणों के लिए क्षमा माँगी। गोस्वामी जी के आशीर्वाद से उनको सच्चा वैराग्य प्राप्त हुआ। एक बार काशी में हैज़े का प्रकोप हुआ। काशी-निवासी गोस्वामी जी की शरण में आये। उन्होंने नगर की दुर्दशा को देखकर हनूमान् जी की स्तुति-द्वारा बीमारी दूर कर दी, जिससे सब लोग बहुत प्रसन्न हुए। वहीं मीराँबाई का पत्र उनको प्राप्त हुआ और कुछ दिन बाद स्वयम् मीराँ जी गोस्वामी जी से मिलने के लिए काशी पधारीं। उनकी भक्ति से गोस्वामी जी अत्यन्त प्रसन्न हुए और मीराँ जी ने काशी में रहकर जन्म का फल पाया। काशी में रह कर गोस्वामी जी बहुत-से पापियों के पातक दूरकर उन्हें भक्ति का मार्ग दिखाया। एक समय कवि गंग ने गोस्वामी जी को माला जपते देखकर एक कवित्त पढ़ा, जिसका अर्थ यह था कि हाथीं कौन माला रखता है, जिससे पेट भरता है। गोस्वामी जी ने कहा कि हम तो इसी माला

को अपना उद्धार जानते हैं। हाथी की बात तुम जानो और यह चौपाई पढ़ी—

उमा वचन जो समुझि न बोलहिं।
सुधा होई विष कर्म ते डोलहिं॥

इसके बाद कवि गंग दिल्ली गये और वहाँ कवित्त बनाकर बादशाह के सामने पढ़ा। उसमें बादशाह की बेगम का उल्लेख था, जिससे बादशाह बहुत नाराज़ हुए और गंग को हाथी के पाँव से कुचलवा डाला। महात्मा के साथ बुराई करने का फल उन्हें मिल गया। वहीं काशी में एक समय जहाँगीर बादशाह आकर गोस्वामी जी से मिला। उसने बनारस के इलाक़े का सारा रुपया गोस्वामी जी को देना चाहा। परन्तु उन्होंने स्वीकार न किया। जहाँगीर ने कहा, हमारे दरबार में चौदह रत्न थे (टोडरमल, बीरबल, खानखाना, नरहर, अहमद आदि), उनमें एक सूरदास भी थे। गोस्वामी जी ने कहा कि चौदहों में सूरदास जी को रत्न मानो। जहाँगीर ने कहा, सूरदास तो हमारा दिया हुआ धन स्वीकार कर लेते थे, आप भी कीजिए। गोस्वामी जी ने कहा, वे तो चन्द्रवंश के उपासक थे, और चन्द्रमा से जो कोई आँख मिलाता है उसकी रोशनी बढ़ती है, जिससे वह और भी चीज़ें देख सकता है। मैं तो सूर्य-वंश का उपासक हूँ। और जो सूर्य से आँखें मिलाता है उसको सूर्य के सिवा और कुछ नहीं दीख पड़ता। उसी अर्से में गोस्वामी जी के बदन में फोड़े हो गये थे। बादशाह ने कहा कि मेरे साथ 'हकीम डाक्टर अँगरेज़' बहुत हैं। उनकी तजवीज़ से कुछ दवा कर लीजिए। गोस्वामी जी ने एक कवित्त पढ़ा, जिसका अर्थ यह था कि मैंने नमकहरामी में राम जी का भजन छोड़ दिया, इसलिए वही नमक फूट-फूट कर निकल रहा है, रोग कुछ नहीं है। जहाँगीर बादशाह गोस्वामी जी के दर्शनों से तृप्त होकर वापस चला गया। एक व्यक्ति ने कहा कि महाराज इनके पिता अकबर के दरबार में बीरबल बड़े बुद्धिमान् थे। गोस्वामी जी ने कहा कि अफ़सोस, उन्होंने इतनी बुद्धि पाकर राम-भजन में न लगाई।

'श्री गोस्वामी तुलसीदासचरितामृत' में वर्णित वृत्तान्त का यही संक्षेप है। समस्त वृत्तान्त साठ 'चरित्रों' में कहा गया है। कहना न होगा कि वेणीमाधवदास-कृत 'मूल गोसाईंचरित' से इसकी अनेक बातें मिलती-जुलती हैं, जैसे, नाभादास, सूरदास, मीराँबाई, नंददास, मलूकदास, गंग, गोस्वामीजी का दिल्ली जाना, जहाँगीर का बनारस आना आदि विषय। मैं यहाँ इन विषयों की ऐतिहासिकता या प्रामाणिकता पर विचार करना नहीं चाहता, क्योंकि 'मूलगोसाईंचरित' के प्रकाश में आने के बाद इन बातों पर काफ़ी विवाद हो चुका है। मेरा कर्त्तव्य 'गोस्वामी तुलसिदासचरितामृत' से पाठकों का परिचय भर कराना है। इसमें गोस्वामी जी का भक्त की हैसियत से ही वर्णन किया गया है। उसमें अत्युक्तियाँ हों तो कोई आश्चर्य की बात नहीं। किंवदंतियों का भी यथेष्ट मात्रा में सहारा लिया गया है।

नवश्री

लेखक, श्रीयुत सोहनलाल द्विवेदी

क्यों ढल आये करुणा बनकर?

अपने उर की वेदना स्वयं
क्या तुम्हें मनाने को आई?
चल पड़े इधर चुपचाप
न तुमने भी निज पगध्वनि सुन पाई?
यह संभ्रम, मति विभ्रम क्यों कर?
क्यों ढल आये करुणा बनकर?

अनुताप हुआ, तुम सजल हुए
खिल उठे दग्ध हो करुणकांत,
पहले से तुम हो आज अधिक
लावण्य भरे सुंदर नितांत;
मनमुग्ध हुआ नवश्री लखकर;
क्यों ढल आये करुणा बनकर?

सोशलिस्ट

लेखक, श्रीयुत रहबर, बी० ए०

रेल के तीसरे दर्जे में यों तो बहुत-सी बातें देखने-सुनने की होती हैं, परन्तु मेरी यात्रा आम तौर पर पढ़ने में ही बीतती है। इस बार जब मैं लुधियाना से लाहौर को लौट रहा था, मेरे पास पढ़ने के लिए कोई पुस्तक अथवा मासिक पत्र आदि न था। पूस का महीना था। सब मुसाफ़िर अपनी अपनी सीट पर मिंचे-से बैठे थे। एक नवयुवक के पास जो ओवर-कोट और दस्तानें पहने हुए था, एक पुस्तक रक्खी थी।

"क्षमा करना। क्या मैं यह पुस्तक देख सकता हूँ?" मैंने झिझकते झिझकते कहा और पुस्तक की तरफ़ हाथ बढ़ा दिया।

"बड़े शौक़ से।" नवयुवक ने जवाब दिया।

मैंने पुस्तक उठा ली। कवर पर लिखा था--भ्रम (और दूसरी कहानियाँ), लेखक श्रीमान्... । बड़े हर्ष से कवर उलटा और विषय-सूची पर दृष्टि डाली। नियमानुसार पहला नम्बर भूमिका थी। दूसरे में "भ्रम" और तीसरे में "ग़रीबी का सुख"......

"ख़ुराफ़ात!" मेरे मुँह से अनायास निकल गया। मन की उमंग और हर्ष पर घड़ों पानी पड़ गया। तबीअत ने आगे पढ़ना पसन्द न किया। मैंने नवयुवक को धन्यवाद किया और पुस्तक लौटा दी। फिर सोचना शुरू किया। संसार कितनी तेज़ी से बदल रहा है। लोग सत्य को समझने लगे हैं और अपने अधिकारों के लिए लड़ रहे हैं। मगर हमारे साहित्य की 'वही रफ़्तार बेढंगी जो पहले थी वह अब भी है।' इस समय हमारे कवियों और साहित्यकारों का कर्त्तव्य लोगों को इन परिस्थितियों से सन्तुष्ट रहने का उपदेश करना नहीं, बल्कि इनका विरोध करने की ज़रूरत है।

ग़रीबी में सुख ढूँढ़ना आग में शीतलता ढूँढ़ने के बराबर है। अगर ईसामसीह ने ग़रीबी के गुण गाये हैं और लिखा है कि केवल ग़रीब ही स्वर्ग के अधिकारी हैं तो इसका कारण यह हो सकता है कि वे ग़रीब थे और उन्हें अमीरों से चिढ़ थी, वर्ना ईसाई-मत की पुजारी हुकूमतें अपने देशों से निर्धनता को निकाल फेंकने के लिए इतनी तत्परता से काम न लेतीं, बल्कि उसके गौरव और स्वर्ग के मधुर स्वप्न देखने-मात्र में ही सन्तुष्ट रहतीं। फिर हमीं क्यों सुन्दर भ्रमों पर मन बहलाते रहें और सोचते रहें कि निर्धनता वह आत्मीय वस्तु है जिसका बदल प्रकृति ने उत्पन्न ही नहीं किया। इस प्रकाश-युग में भी ग़रीबी के सुख का वर्णन करना उतना ही बेईमानी है जितना कि ग़ुलामी के लाभ बताना।

ग़रीबों के प्रति सहानुभूति पैदा करना अच्छी बात है, लेकिन ग़रीबी को अमीरी से अच्छा बताना बिलकुल ग़लत है, मनुष्य-जाति को धोखा देना है—कहानी को सत्य से कोसों दूर ले जाना है।

(२)

गाड़ी पूरे वेग से जा रही थी। मैं अपने इन्हीं विचारों में डूबा हुआ था कि कान में गाने की भनक पड़ी। हमारी गाड़ी दो डिब्बों में विभक्त थी। संयुक्त डिब्बे में कोई गा रहा था। आवाज़ मीठी थी। सब मुसाफ़िरों का ध्यान उधर खिंच गया। मैं भी सुनने लगा। लेकिन गाना अकस्मात् बन्द हो गया, लोग फिर बे-ख़बर-से होकर बैठ गये। उसी समय एक नौ-दस बरस का लड़का पास के दरवाज़े से हमारे डिब्बे में घुस आया। वह एक मैला— बहुत मैला कुर्ता पहने हुए था। पायजामा पाएंचों पर से फटा जाता था। सिर और पैर नंगे थे। हाथों और पैरों पर मिट्टी की मोटी मोटी तहें चढ़ी हुई थीं। मैंने विचार किया कि यही लड़का गा-गाकर पैसे माँग रहा होगा। परन्तु वह लड़का चुपचाप मेरे सामने खाली सीट पर आकर बैठ गया। उसने मुसाफ़िरों की तरफ़ देखा तक नहीं। यदि वह भीखमँगा होता तो मुसाफ़िरों पर अवश्य दृष्टि डालता, उनकी संख्या और क्षमता का अनुमान लगाता। मगर वह तो अपने आपमें ही डूबा हुआ और बे-ग़रज़ मालूम पड़ता था। उसकी बेग़रज़ी में आत्म-विलीनता की झलक थी। उसे इस प्रकार बैठा देखकर गुमान भी नहीं हो सकता था कि वह गा भी सकता है।

न जाने बैठे-बिठाये उसे क्या विचार आया कि उसने अपना कुर्ता उतार लिया। उसके गोरे शरीर पर खुश्की और सफ़ेदी-सी देख पड़ती थी, जिससे सिद्ध होता था कि उसने बहुत दिनों से नहाया तक नहीं था। उसने कुर्ते को उलट-पलटकर दो मिनट तक देखा, फिर उसे गले में डाल लिया। बटन कोई न था, इसलिए गले के दोनों सिरों को हाथ से पकड़कर मिलाया और एक भुरभुरी ली, जिसके कारण उसके रूखे-सूखे बाल हिले और एक नये ढंग से बिखर कर रह गये।

उसका हिलना-डुलना विलक्षणतापूर्ण था। कभी मुट्ठियाँ भींचता, कभी उँगलियाँ मटकाता और कभी दाँत कटकटाता था। इन सब कृतियों से वह आनन्दित होता हुआ मालूम पड़ता था। इसी बीच में उसे एक और विलक्षणता सूझी। मुँह ऊपर उठाकर भाफ छोड़ने लगा। भाफ चक्कर काटती हुई ऊपर जाती थी और विभिन्न घेरे बनाकर वायु में गुम हो जाती थी। वह भाफ की इस लीला को तल्लीन होकर देख रहा था और उसके होंठों पर हलकी हलकी मुस्कराहट खेल रही थी।

अब वह नीचे की ओर देखने लगा। रेल के फ़र्श पर 'नेवीकट' सिगरट की एक खाली डिबिया पड़ी थी। लड़के ने उसे लपककर उठा लिया और उसकी बनावट को ध्यानपूर्वक देखने लगा। खोल कर अन्दर से पन्नी निकाली। अपने कुर्ते पर लगा कर हाथ से दबाया और आश्चर्य से देखने लगा। फिर अकस्मात् मसल-कर उसे कोने में फेंक दिया। उसने एक और भुरभुरी ली और बन्दर की तरह दाँतों से डिब्बी को काटने लगा।

(३)

गाड़ी बराबर चली जा रही थी। इस बीच में वह दो-तीन स्टेशनों पर ठहर भी चुकी थी। पाँच-सात मुसाफ़िर भी उतर चुके थे और इतने ही नये मुसाफ़िर और चढ़े भी थे। लेकिन न तो उस लड़के ने ही इस बात पर ध्यान दिया और न मुझे पता चला कि गाड़ी कब ठहरी और कब चल दी। वह अपने खेल में लीन था और मैं उसे देखने में।

अब हम जालन्धर के क़रीब आ पहुँचे थे। इसी बीच टिकट देखनेवाला बाबू हमारे डिब्बे में घुस आया। उसकी नज़र सबसे पहले लड़के पर पड़ी और वह उस बेचारे पर बरस ही तो पड़ा—"सूअर, बदमाश, हरामखोर! तू बाज़ नहीं आता। वहाँ उतारा और फिर चढ़ गया।"

लड़का चुपचाप बैठा रहा, मानो वह किसी और को कह रहा हो। उसकी इस लापरवाही से टिकट-बाबू और भी चिढ़ गया। कड़क कर बोला—"अबे! सुनता है कि नहीं। अब चढ़ेगा तो सिपाही के हवाले कर दूँगा।"

लड़का खड़ा हो गया और सिर खुजलाने लगा।

बाबू ने उसका बाज़ू पकड़कर ज़ोर से हिलाया और पूछा—"बता, फिर तो नहीं चढ़ेगा?"

लड़के ने सिर हिलाकर हामी भर ली। परन्तु बाबू को विश्वास न हुआ। उसने लड़के का कान पकड़-कर मरोड़ा और एक थप्पड़ लगाकर कहा—"सिर हिलता है। ज़बान क्यों नहीं हिलती? बेशर्म कहीं का।" सब लोग इस प्रकार देख रहे थे, मानो उन्होंने बाबू के इस बर्ताव को बहुत नापसन्द किया है। परन्तु बोलने का साहस न पड़ता था, क्योंकि तीसरे दर्जे के मुसाफ़िरों से रेल-बाबू वैसे भी ऐसा सलूक करते हैं। और उसके पास तो टिकट भी नहीं था। मुझसे न रहा गया, इसलिए कह ही दिया—"बाबू जी, आपको यह बर्ताव शोभा नहीं देता। आप तो पुलिस से भी बढ़ गये।"

"और आप ही बतावें क्या किया जाय? दस जगह उतारा। फिर भी बाज़ नहीं आता। परेशान कर दिया है इसने।"

"सीधी बात है। इसके पास टिकट नहीं है। आप मेमू काट दें।"

"लेकिन मेमू काटकर इससे लेंगे क्या? ऐसा आवारा और बेशर्म लड़का है कि हमारे तो नाक में दम कर दिया है।"

"बाबू जी, माफ़ करना अगर मैं आपसे यह पूछूँ कि क्या यह पैदा ही आवारा हुआ था या इसको आवारा बनाने में किसी का हाथ है। हिन्दुस्तान में ऐसे आवारा लड़कों की संख्या क्या होगी?"

इन प्रश्नों को सुनकर बाबू हतबुद्धि-सा रह गया। वह मुझे ऊपर से नीचे तक देखकर बोला—"तो आप सोशलिस्ट हैं।"

नीति-संकट

लेखक, श्रीयुत महेन्द्रचन्द्रराय, बी० ए०, एल-टी०

हिन्दू-पुराण के दस अवतारों का मूलतत्त्व क्या है, इस विषय की चर्चा करते हुए एक लेखक ने यह इंगित किया था कि पुराणकारों ने अवतारों की कथा में जीव-जगत् में जो क्रमविकास होता आया है उसी का वर्णन किया है। मत्स्य, कूर्म आदि स्तरों को अतिक्रम करते हुए प्राण धीरे-धीरे राम, कृष्ण, बुद्ध के स्तर पर पहुँचकर और भी आगे बढ़ने की चेष्टा कर रहा है। सम्भवतः लेखक की यह कल्पना कुछ अंशों में सत्य भी है। प्राण-प्रवाह में मनुष्य का आविर्भाव आकस्मिक नहीं है। धीरे-धीरे कल्प-कल्पान्त की तपस्या के पश्चात् प्राण मनुष्य का रूप लेकर इसी पृथ्वी के प्राङ्गण पर आविर्भूत हुआ है, यह स्वीकार करना पड़ता है। प्राण की विकास-यात्रा की इस लम्बी कहानी के बारे में जब हम सोचते हैं, विस्मय से हमारा हृदय अभिभूत हो जाता है।

एकदम पशु के स्तर से प्राण जब मनुष्य के स्तर पर उपनीत हुआ था, सम्भवतः उसी युग को हम नृसिंहावतार का युग कह सकते हैं। पशुत्व और देवत्व के संगम पर ही सबसे पहले मनुष्य का दर्शन मिला था। सरल शब्दों में यह कहा जा सकता है कि मनुष्य वही है जिसमें पशुत्व की मलिनता है, फिर भी जिसके नयनों में देवत्व की पुण्य-ज्योति आ पड़ी है, चरण जिसके कीचड़ में फँसे हैं, पर गति जिसकी द्युलोक की ओर है।

तामस-लोक और द्युलोक के बीच में हमारा यह भूर्लोक है, जहाँ मनुष्यों का चलने का पथ है। यह पथ कभी तो पाताल के घनान्धकार में प्रयाण करता है और फिर कभी ज्योतिर्मय आकाश को भेदकर देवलोक की ओर यात्रा करता है। इसी लिए मनुष्य का यात्रा-पथ द्विधाग्रस्त है; कभी तो अतीत के पशु-जगत् की दुर्निवार पुकार उसे चंचल कर देती है और कभी भविष्य के स्वप्नमय, ज्योतिर्मय आनन्दलोक का निमंत्रण उसे व्याकुल कर देता है।

सुनते हैं कि मनुष्य का जीवन नृसिंह-युग को पार-कर राम-कृष्ण-बुद्ध के पास आ गया है, अर्थात् मनुष्य देव-लोक में अवतीर्ण हुआ है या शीघ्र ही होनेवाला है। मनुष्य की संज्ञा क्या है, पहले उसका आभास दिया गया है। मनुष्य देवता भी नहीं है, पशु भी नहीं; वह है पशु और देवता का द्वन्द्व-समास।

परन्तु मानवप्राण की अग्रगति पशुलोक की ओर नहीं है, देवलोक की ओर है। इसलिए मनुष्यत्व का अर्थ कभी कभी देवत्व भी किया जाता है, अर्थात् मनुष्य पशुओं का भी उत्तराधिकारी है; इस सत्य को छिपाने की निरन्तर चेष्टा हम कर रहे हैं। एक ओर जैसा हम पशुत्व के उत्तराधिकारी को अस्वीकार कर रहे हैं, वैसा ही दूसरी ओर देवत्व के ऊपर हमारा पूर्ण अधिकार है, इस बात का प्रचार करने में भी हम विमुख नहीं हैं। असल में मनुष्य ने आज अपने एक नवीन स्वरूप का परिचय, मनुष्य नाम की एक नवीन संज्ञा का आविष्कार किया है अथवा करने की चेष्टा कर रहा है। राम, कृष्ण, बुद्ध, ईसा, चैतन्य आदि महान् पुरुषों में उसी चेष्टा का प्रमाण मिलता है।

(२)

इस नवीन परिचय का पता लगाने के पहले हमारा पुराना परिचय क्या है, उसी की खोज करनी चाहिए। जिस पशुजगत् के साथ हमारा घनिष्ठ रक्त-सम्पर्क सर्व-जन स्वीकृत है उसकी ओर ताकने से हम क्या देखते हैं? पशुजगत् में व्यक्ति का अस्तित्व और उसका विकास संग्रामात्मक है; वहाँ एक व्यक्ति का अस्तित्व दूसरे व्यक्ति के विनाश के साथ अनिवार्य कार्य-कारण-सम्बन्ध से बँधा हुआ है। वहाँ विश्वप्रकृति रक्त-लोलुपा, निष्ठुरा है।

पतंगों के विनाश पर ही कुछ पक्षियों का जीवन निर्भर है; फिर उन पक्षियों के विनाश से ही बाज़ पक्षी जीवित रह सकता है। तृणों को नष्टकर भेड़ का जीवन चलता है और भेड़ को ध्वंस करने के लिए ही हिंस्र श्वापदों की सृष्टि हुई है। पशुजगत् में व्यक्ति निर्ममरूप से आत्म-सर्वस्व है; उसके सामने अपने ही सुख-सम्भोग के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है।

कोई कोई यह कहेंगे कि पशु-पक्षियों के जगत् में भी साम-यिक स्नेह-ममता का विकास देखा जाता है। परन्तु इसमें सन्देह नहीं है कि पशुजगत् में स्नेह-ममता आदि निःस्वार्थ

वृत्तियाँ स्थायी नहीं हैं; सृष्टिक्रम को अव्याहत रखने के लिए इन वृत्तियों का सामयिक प्रयोग होता है। आत्म-सर्वस्वता अर्थात् अपने भोग के लिए एकाग्र चेष्टा ही पशुओं की स्थायी वृत्ति है। इसी लिए पशुजगत् में हम जो विकट संग्राम देखते हैं उसमें स्नेह-ममता-दया का लेश भी नहीं है। पशुजगत् में आत्मरक्षा का उपाय हिंस्रता ही है और आत्म-रक्षा के अतिरिक्त और कोई धर्म वहाँ है भी नहीं।

मनुष्य पशुत्व पर अपना उत्तराधिकार कितना भी अस्वीकार करे, उस पशुत्व से वह अपने को किसी प्रकार से विच्छिन्न नहीं कर सकता। प्रत्येक शोणित-कण ने उसे पशुजीवन के साथ अच्छेद्य बन्धन से बाँध रक्खा है और उस शोणित के प्रत्येक कण में पशुजीवन की हिंस्र और निर्मम वृत्तियाँ सन्चित रहती हैं। देवत्व की कामना करते हुए काम-क्रोध आदि को रिपु कह-कर हम कितनी भी घृणा क्यों न प्रकट करें, परन्तु मनुष्य-जीवन के साथ इनका जो घनिष्ठ सम्बन्ध है उसे हम किसी प्रकार अस्वीकार नहीं कर सकते। और सच कहें तो हम इन्हें रिपु समझ कर उतनी घृणा भी नहीं करते। काम शब्द को किसी भी अर्थ में हम क्यों न समझें, निश्वास-प्रश्वास की तरह वह हमारे जीवन के साथ अविच्छेद्य है। जीवन के सब प्रकार के प्रयत्नों के मूल में काम या कामना के प्रभाव को आज मनोविज्ञान भी स्वीकार कर रहा है। और काम के साथ साथ अन्य रिपु भी हमारे अन्दर जाग्रत होते हैं, यह तो कहना ही अना-वश्यक है।

हम जितना ही अपने जीवन का विश्लेषण करते हैं, उतना ही हमारे रक्त के साथ मिश्रित पशुवृत्तियाँ कितनी व्यापक और प्रबलरूप में विराजमान हैं, हमें उसकी उपलब्धि होती है। ऐसा मनुष्य कहाँ है जिसके हृदय में असन्तोष नहीं, ज्वाला नहीं, क्रोध नहीं? क्या पग-पग पर हम अधीर और असहिष्णु नहीं होते हैं? मन में इन अनुभूतियों का स्वरूप क्या है? जब कभी हम किसी इच्छा या प्रयत्न में बाधा प्राप्त करते हैं तभी हम असहिष्णु और क्रुद्ध हो उठते हैं; हमारे अन्दर कौन हिंस्र जन्तु उन्मत्त-सा होकर सब बाधाओं को चूर्ण-विचूर्ण करने को उद्यत हो उठता है? यह जो ध्वंस करने का, प्रतिहनन करने का संकल्प है, वह जब जैसी विशेष अवस्था या परिस्थिति के विरुद्ध प्रयोजित हो सकता है, उसी प्रकार व्यक्ति विशेष के विरुद्ध भी। वास्तव में इस प्रकार के हनन-संकल्प की जड़ तो हमारे अनादि काल से परिपुष्ट पशु-प्रकृति के ही अन्दर है। हम जिसे बड़े आदर के साथ साहस, दृढ़ता इत्यादि कहते हैं, उसकी जो अन्तर्निहित शक्ति है उसकी भी जड़ हमारे आदिम हिंस्र अहंभाव के ही भीतर है।

हमारे अन्दर यह जो आत्म-प्राधान्य-प्रिय, हिंस्र जन्तु जाग्रत और जीवन विराजमान है उसके सम्बन्ध में हम सदा सचेत भी नहीं रहते, क्योंकि वह नाना प्रकार के सम्मानित छद्मरूप में अपने को छिपा रखना जानता है।

हम सभी गृही हैं, गृहस्थ लोग प्रायः शिशु शासन नामक एक कल्याण-कार्य में नियुक्त रहते हैं। दण्ड-प्रयोग के बिना शिशु का कल्याण नहीं हो सकता, इस विषय में प्रमाण की आवश्यकता नहीं समझी जाती है, वरन दण्ड के बिना भी शिशु-जीवन का सम्यक् विकास हो सकता है, यही प्रमाण की अपेक्षा रखता है। परन्तु हम शिशु को दण्ड देते हैं, सम्भवतः इस पर अधिक विचार भी नहीं करते। हमारे दीर्घ जीवन के अभ्यास के कारण कुछ बातों को हम सच और कल्याणकर समझते हैं। अगर कोई आज हमें उनके विपरीत मार्ग पर चलने को कहता है तो हम कभी चलने को राज़ी नहीं होते। अपनी शिशु-अवस्था में नियम के विरुद्ध चलने को ही हम कर्तव्य समझते हैं और अशक्त होकर दूसरों की इच्छाओं के पास आत्म-समर्पण करने में अपनी मर्यादा की हानि समझते हैं और उसे अत्यन्त कापुरुषता का काम समझते हैं। फिर वही हम जब अपने कृत्रिम नियमों के साँचे में शिशु की स्वाभाविक वृत्तियों को ढालने के लिए जबर्दस्ती करते हैं, जब शारीरिक यातना का भय दिखलाकर हम उसे कापुरुष की भाँति अपने पास आत्मसमर्पण करना सिखलाते हैं, तब हम भी जो हिंस्र पशु-सा बन जाते हैं उसका ज़रा भी ध्यान हमें नहीं होता! अनादि-काल से रक्त के कण कण में जो आत्मसर्वस्वता, जो प्रभुत्व-प्रियता संचारित होती आई है, क्या वही प्रवृत्ति शिशु-शासन में निर्मम रूप लेकर प्रकट नहीं होती? लेकिन

प्रवल होकर दुर्बल शिशु के इस ताड़न को हम कभी अन्याय नहीं समझते!

थोड़ा विचार करने पर जीवन के सभी क्षेत्रों में इस आदिम अहंभाव का परिचय मिल सकता है। और यही हमारा आदिम और पुराना परिचय है; यही हमें स्पष्टरूप में वतलाता है कि पशु-जगत् के साथ हमारा सम्वन्ध कितना घनिष्ठ है।

(३)

मानव-समाज में एक दिन वह था जव मनुष्य हिंस्रता को अनुचित नहीं समझते थे और सम्भवतः अभी तक अधिकांश मनुष्य पशुजगत् की उस नीति को ही अच्छा समझते हैं। किन्तु फिर भी स्वीकार करना पड़ेगा कि मानव-समाज में एक दूसरी अभिनव नीति का भी आविर्भाव हो रहा है। वुद्ध, ईसा, चैतन्य, गांधी जीवन पर जो प्रकाश डाल रहे हैं उस प्रकाश में जीवन की एक नवीन व्यंजना, एक नूतन अर्थ हमारी दृष्टि के सामने उद्घाटित हो रहा है, यह भी स्वीकार करना पड़ेगा। यह सच है कि समग्र मानव-जाति का मन इससे आलोकित नहीं हुआ है, तो भी इन महान् पुरुषों के जीवन में जो सत्य सम्भव हुआ है, एक दिन वह मानव-जाति के सामूहिक जीवन में भी सम्भव हो सकता है, इसमें सन्देह का अवकाश कहाँ?

इन महान् पुरुषों की ओर देखते हुए जीवन-सम्वन्धी जो नवीन मीमांसा, जो नवीन अर्थ हमारे सामने प्रकट होता है उसके साथ इतने दिनों से प्रचलित मीमांसा और अर्थ का विकट विरोध दिखाई देता है। दण्ड-नीति और प्रेम-नीति के बीच कोई सेतु नहीं है। अथ च इन महात्माओं के आविर्भाव के कारण हमारे जीवन में एक ऐसी अवस्था की सृष्टि हुई है जिसमें उन दोनों प्रकार की नीतियों का अनुसरण करने का प्रयोजन मालूम हो रहा है। दण्ड-नीति की ओर से हम पुलिस, जेल और सेना को रखना चाहते हैं और प्रेमनीति की ओर से हम उसी जेल के क़ैदी को धर्मग्रन्थ भी पढ़ाना चाहते हैं और लड़ाई में घायल हुए शत्रु को अस्पताल में पहुँचाते हैं। इससे वढ़कर उत्कट असंगति और क्या हो सकती है?

वर्तमान काल में जिनके हृदय में प्रेमधर्म की ओर आकर्षण उत्पन्न हो रहा है उनके लिए आज द्विधामुक्त होना भी सहल वात नहीं है। एक ओर इस प्रेम-धर्म के प्रकाश में एक अपूर्व आध्यात्मिक साम्यवाद हमारे विचारों को अहंभाव से मुक्त करने का प्रयास कर रहा है और दूसरी ओर युगयुगान्त की संचित भेद-वुद्धि प्रतिपद पर उस चेष्टा को व्यर्थ कर रही है। एक ओर हृदय तो मनुष्य से यह कह रहा है कि आत्मा को स्वाभाविक और सहज विकास प्राप्त करने का अधिकार दो और दूसरी ओर वही हृदय अपनी प्रवृत्ति और रिपुओं की ताड़ना से मनुष्य की स्वतंत्रता को नष्ट करने में भी संकुचित नहीं हो रहा है। केवल प्रवृत्ति की ताड़ना से विवश होकर हृदय प्रेमधर्म के पालन करने में असमर्थ हो रहा है या हम अपनी श्रेष्ठता के अभिमान के कारण दूसरों की स्वतंत्रता पर आघात कर रहे हैं, यह भी सच नहीं है। वहुधा किस रास्ते से चलना वर्तमान काल में हमारे लिए श्रेय है, यह समझने में हमारी विचार-वुद्धि द्विधाग्रस्त हो रही है।

पुराने समय का धर्म—अर्थात् अधिकांश में जिस धर्म का अनुसरण हम कर रहे हैं—वह भय पर आश्रित है। यातना के भय से, दैहिक पीड़न के द्वारा हम पशुओं का शासन करते हैं। वही एक ही नीति हमारे राष्ट्र, समाज और धर्म में भी प्रकटित है। पुलिस और जेल के भय, नाना प्रकार के दैहिक दुख और प्राण-दण्ड के भय से राष्ट्र मनुष्य को शासन करता आ रहा है। यह प्रवल के पराक्रम के द्वारा दुर्वल का शासन है। इसी प्रकार समाज में भी नाना प्रकार के निपीड़न और निग्रह का भय दिखलाकर प्रवल दुर्वल को अपने मत और पथ में चला रहे हैं। धर्म में भी वही वात है। मनुष्य को धर्माचरण क्यों करना पड़ता है? दुस्सह नरक के भय के विना मनुष्य धर्म-पथ पर चल सकता है या चलता है, यह वात प्राचीन धर्मशास्त्रों में स्वीकृत नहीं है।

परन्तु यह नवीन धर्मनीति जो उपर्युक्त महान् पुरुषों के जीवन के द्वारा घोषित हुई है, प्राचीन नीति के विपरीत दृष्टिकोण से जीवन की आलोचना करना चाहती है। नवीन धर्मनीति की भीति भीति नहीं है, प्रीति है। भय पशुजगत् का नियामक है, परन्तु देवलोक की नियंत्रण करनेवाली प्रीति है। महात्माओं ने अपने जीवन में इसी सत्य की प्रतिष्ठा करने की चेष्टा की है कि मनुष्य पशुलोक को अतिक्रमकर देवलोक में पधारेगा और मनुष्यों

के जीवन की सब भावना और कर्म प्रीति की नीति से ही नियंत्रित होंगे। महात्माओं की यही आशा, आदर्श और स्वप्न है।

मैं कह रहा था कि वर्त्तमान जगत् में मनुष्य को बड़ी दुविधा में पड़ना पड़ा है।

प्रत्येक युग का एक विशेष धर्म होता है, जो उसी युग के वातावरण में सम्भव है। उस युग की कल्पना की जाय जब हमारे आदिमतम प्रपितामह भयानक अरण्य के विशाल वृक्षों की शाखाओं पर अथवा भयंकर गुफाओं के अन्दर रहा करते थे और जब उनके चारों ओर अतिकाय भीषण प्राणी हिंसलीला में प्रमत्त रहते थे। उस समय ईसा का आविर्भाव सम्भव भी नहीं था और उस समय उनके आने की कुछ सार्थकता भी नहीं थी। उस समय के चतुष्पाश्विक क्रूरता के बीच में रहकर मनुष्य को भी उसी नीति का आश्रय करना पड़ा था, वही नीति उसके लिए ग्रहणीय थी। उस दिन अगर वह अहिंसा की नीति को ग्रहण करता तो आज पृथ्वी पर उसका कोई चिह्न भी न रहता। इसी लिए मानना पड़ता है कि प्रत्येक युग के उपयुक्त एक विशेष धर्म हुआ करता है, जो अन्य युग के लिए निरर्थक हो सकता है।

एक युग से निष्क्रान्त होकर दूसरे युग की ओर यात्रा करने का क्षण जब आसन्न होता है, उस समय किस नीति से चलना चाहिए, यह निश्चय करने की समस्या बहुत ही कठिन है। और वह युग-सन्धि-क्षण कब आसन्न होता है, कब मानवात्मा एक युग के सीमान्त को पार कर दूसरे युग की प्रारम्भ-सीमा पर पदार्पण करती है, उसका पता भी निश्चित-रूप से मिलता नहीं। ऐसा सन्धिक्षण सदा अनिश्चयता के अन्धकार से ढँका रहता है।

ऐसा मालूम हो रहा है कि हम लोग आज एक वैसी ही युगसन्धि पर उपनीत हुए हैं अथवा हो रहे हैं। इसी-लिए आज प्राचीन या नवीन किसी नीति या धर्म पर एकान्त निर्भर करना असम्भव मालूम हो रहा है। जब क्षमा-धर्म की बात सुनते हैं, अक्रोध से क्रोध को, प्रेम से हिंसा को जीतने का उपदेश सुनते हैं, उसे हम पागल का प्रलाप कहकर तुच्छ नहीं कर सकते। जीवन के किसी किसी मुहूर्त में जब हृदय में प्रेम और क्षमा की उपलब्धि होती है, उस समय हमारे हृदय में जिस ऐश्वर्य की अनुभूति होती है उसके सामने अन्य सब प्रकार का सांसारिक लाभ और सार्थकता बिलकुल निरर्थक-सा हो जाता है। परन्तु फिर भी जब देखते हैं कि हमारी निरीहता और शान्तिप्रियता का अवसर पाकर डाकू हमारे मकानों में आग लगाकर, हमारा सर्वस्व लूटकर, हँसता हुआ चला जाता है, जब देखते हैं कि क्रूरता और जबर्दस्ती के द्वारा दस्यु हमारा ही धन लेकर आराम से जीवन व्यतीत करने का उपाय कर लेता है और निरीह शान्ति-प्रियता हमको जीवित रहने के अधिकार से वञ्चित करती है, तब हृदय में प्रचण्ड संशय जाग्रत होता है। अन्तःस्तल में से कौन बोल उठता है कि प्रेम और क्षमाधर्म कितना ही महान् और श्रेष्ठ क्यों न हो, उसका भी प्रयोग करने का विशेष युग होना चाहिए।

तथापि प्रेम और मैत्री का धर्म मानव-हृदय का श्रेष्ठ धर्म है, मनुष्य की अग्रगति भी उसी की ओर है, इस संग्राम और हिंसा के बीच में रहते हुए भी हम व्याकुल होकर उस अनागत साम्य और मैत्री के युग की राह देख रहे हैं, यह भी स्वीकार करना पड़ेगा। सम्भव है कि भावी काल के सागर-गर्भ में भावी मानव का उस आदर्श समाज की सृष्टि हो रही है। परन्तु हे वर्तमान काल के मानव, तुम्हें तो केवल उसकी प्रत्याशा में दीर्घनिःश्वास ही लेना पड़ रहा है! मानव-चित्त में अभी तक पशुभाव का प्राबल्य इतना अधिक है कि पृथ्वी पर प्रेमराज्य की कल्पना कुहक-सी प्रतीत होती है।

तथापि आज जो कुहक-सी है, कल वह सत्य होगा, आज जो असम्भव है, आगामी कल वही सम्भव होगा, इतिहास इसी बात का साक्ष्य देता है। सम्भव के राज्य में असम्भव का यात्रापथ कौन निर्माण करेगा? इस युग-सन्धि की दुविधा में पड़कर जो व्यथित हृदय से प्राचीन और नवीन की असंलग्न सेवा करते हुए अपने को निःशेष कर रहे हैं उन्हीं के श्मशानों के ऊपर से एक दिन असम्भव अपना विजयरथ चलाकर सम्भव के राज्य में उपनीत होगा। आज की दुविधा में पड़कर जो मनुष्य प्रेम-देवता के पास अपनी अक्षमता और साथ ही साथ व्यग्रता को निवेदन कर हिंसा की बलिवेदी पर अपने देवत्व का बलिदान दे रहे हैं, भावीकाल के मनुष्य सम्भवतः इस करुण दृश्य की कल्पना भी नहीं कर सकेंगे।

बाबू घनानन्द

लेखक, पण्डित ज्वालादत्त शर्मा

बाबू घनानन्द अच्छे आदमी होने पर भी उससे अधिक कंजूस थे, इस दोष के कारण उनके सद्गुणों में जैसा चाहिए निखार नहीं आ सकता था। बहुत-से आदमियों का स्वभाव होता है कि वे अपना व्यवहार उससे विलक्षण दिखाया करते हैं जो वास्तव में होता है। लोभी का उदार बनना असम्भव है किन्तु प्रायः कंजूसों को अपनी उदारता का जाल बिछाते देखा जाता है। यह बात बहुत बुरी लगती है और देखनेवाले कुढ़ा करते हैं।

उनका व्रत था किसी के खर्च में १ पैसा न उठने पाये, दूसरे की चाहे चमड़ी उधड़ जाय। एक ज़मींदार महाशय दो प्रकार के बाँट रखते थे, कोई चीज़ खरीदना हो तो १७ छटाँक का सेर निकालते थे, अपना अनाज बेचना हो तो १५ छटाँक का। बाबू घनानन्द भी कुछ इसी तरह के जीव थे। धोखा देने से धोखा खाना अच्छा समझा जाता है किन्तु वे धोखा खाना ही पाप समझते थे, देने में उतना बारीक विचार करने का प्रयोजन नहीं समझते थे। ग़रीब घर में पैदा होकर मेहनत और बुद्धि के प्रताप से लाखों रुपये जमा कर लिये थे किन्तु घरवालों की भूल या उदारता से १ पैसा भी इधर-उधर खर्च हो जाता तो प्राण छोड़ने को तैयार हो जाते थे। उन्होंने धन-संग्रह की वेदी पर माया, मोह, ममता आदि समस्त पशुओं की खुटले छुरे से बलि दे डाली थी। घर में सबको उनसे असन्तोष था किन्तु सोने का अण्डा देनेवाली मुर्ग़ी को काटा नहीं जा सकता इसलिए अपना-अपना भविष्य विचार कर सब चुप थे और किसी प्रकार सहन करते थे।

घर में उनका भोजन कूने डाक्टर के मत का अलोना बिना तला-भुँजा बनता था, वही स्वास्थ्य के लिए उत्तम है इसलिए। किन्तु उनका चित्त जब किसी ऐसी वस्तु को चाहता जिसे कूने ने निषिद्ध करार दिया है तब वे सोच-विचार कर कोई अच्छा बहाना बनाकर किसी ऐसे विनाशोन्मुख घर में पहुँच जाते थे जहाँ वैसी कुपथ्य की चीज़ें खाने-खिलाने के लिए प्रायः बना करती हैं और इस प्रकार अपने दुष्ट मन की कुप्रवृत्ति को एक मूर्ख के धन से तृप्त कर लिया करते थे। उन्हें परमार्थ की चिन्ता का भी बहुत भारी व्यसन था, उनका 'पास टाइम' वेदान्त और थियासफ़ी के ग्रन्थ थे। घर के आदमियों को ग़रीबी से रहने के गुण और दूसरों को संसार के मिथ्यात्व का उपदेश देने में उनका बहुत कुछ उपयोग किया करते थे। घर में क्लेश हो जाने पर भी उनका दवा के तौर पर सेवन चलता था।

उन्होंने अपने जीवन में कभी किसी को दावत न दी और किसी की दावत न छोड़ी यह उनका बिना अपवाद का नियम था, धर्म्मान्ध लोगों की संध्या-नमाज़ की तरह इसका पालन होता था। उन्हें अपने व्यवसाय के कारण जब कभी बाहर जाना पड़ता था और उस बीच किसी दावत की क़ज़ा हो जाती थी तब उसके पैसे भी वे अपनी फ़ीस में जोड़ कर मुवक्किल से वसूल कर लिया करते थे, २५) का ३०) लेते थे। मुक़दमा और बीमारी ऐसी बुरी बलायें हैं कि जिन पर पड़ती हैं वे २)-४) के लिए अपने विश्वासपात्र वकील डाक्टर को छोड़ा नहीं करते—इसलिए उनका यह अत्याचार असह्य होने पर ग़रीब लोगों पर सह्य हो जाता था। वे मूर्ख पैसे से प्राणों का मूल्य अधिक समझते हैं। किसी किसी को आश्चर्य होता था कि २० के २५ क्यों हैं और १५ के १७॥) क्यों हैं, किन्तु उसके समाधान में बाबू साहब ३०) के २५) और २०) के १७॥) बता देते थे तो वे अपनी जान बची लाखों पाये समझ कर चुप हो जाते थे। इतना ज़रूर था कि वे दावत की योग्यता का तारतम्य विचार कर ही उसका मूल्य निरूपण करते थे, उसमें वे प्रायः ईमानदारी और उदारता से काम लेते थे। किसी बड़े घर की दावत के दाम ५) साधारण की २॥) ऐसा ही कुछ नियम उन्होंने बना रक्खा था। ऐसा कभी न करते थे कि साधारण दावत की क़ज़ा पर बड़ी दावत के दाम चार्ज कर लें, उन्हें रुपये की ज़रूरत न थी। ईश्वर का दिया बहुत था। यह तो नियम का पालन और मूर्खों का शासन था जो उनसे ऐसा कराता था!

एक बार किसी सज्जन ने उनके यहाँ दावत का कार्ड भेजा, उस दिन वह कार्ड देर से आया या जानकर देर से ही भेजा गया इस ख्याति का निर्णय तो कठिन है किन्तु

जिस दिन दावत ७ बजे शाम को थी उसी दिन ५ बजे शाम वह कार्ड उनके पास आया। यह निर्विवाद है। ख़ैरियत यह हुई कि वे उस समय मकान पर नहीं थे वर्ना कार्ड लानेवाले से १ घंटा जिरह करते और उसके प्राणों पर आ बनती। जब लौट कर आये और कार्ड मिला तो 'मार्जिन' और कम हो गया था, कोई ½ घंटा ही बाक़ी था, दावत के लिए कोई विशेष तैयारी का उपक्रम नहीं हो सकता था, कम से कम १२ घंटे का समय तो मिलना चाहिए। बाबू साहब बहुत झल्लाये। छिः-छिः यह क्या तरीक़ा है? जिस दिन दावत उसी दिन न्योता! इन लोगों को कब अक्ल आयेगी इत्यादि इत्यादि। वास्तव में उनकी झुँझलाहट का कारण यही था कि वे पहले से कुछ तैयारी नहीं कर सके थे। फिर आज दोपहर के भोजन में रविवार के कारण कुछ देर भी हो गई थी और बाजरे की मोटी रोटी का संयोग नये गुड़ के साथ करने से पेट में कुछ अच्छा फल नहीं निकल रहा था। बाबू साहब घर पर कभी शक्कर नहीं खाते थे। विटामिन गुड़ के साथ सस्ते दर में मिल जाता है इसलिए उसी का सदा प्रयोग करते थे। एक दिन पहले सूचना मिल जाने से तो काम ठीक चल जाता था, एक दिन पहले हविष्य भोजन, दूसरे दिन दिन में गुड़ का शर्बत या भुँजी हुई मकई आदि का नाश्ता, फिर शाम को विजय-यात्रा-आनन्द और उत्साह से हो जाया करती थी। किन्तु आज के कार्ड भेजनेवाले ने इन सब योजनाओं पर पानी फेर दिया। जेब में से घड़ी निकाल कर फिर देखी तो १५ मिनट बाक़ी रह गये थे। थोड़ा घर में से सोडा मँगाकर खाया, पानी पिया, चहलक़दमी की, किन्तु गुड़ के विटामिन बाजरे की रोटी में कुछ ऐसे बेतरतीब उलझ गये थे कि इन साधारण उपचारों से नहीं सुलझे। २ घंटे तक बराबर चिन्ता-मग्न टहलते रहे क्योंकि दावत का 'प्रेसटाइम' समाप्त हो रहा था और १-१ मिनट भारी गुज़र रहा था। रेचन तो हुआ किन्तु वह कुछ न हुआ जिसके लिए यह सब उपयोग हो रहा था, भीतर की गाँठ ज्यों की त्यों बनी रही। उन्हें बहुत परेशान और उदास देखकर भेदी नौकर ने कहा—एक बोतल खारी ले आऊँ? उसमें गैस भी होता है, शायद कुछ असर कर जाय और काम बन जाय। इस पर बहुत नाराज़ हुए और बोले—३ पैसे में १ पाव पानी बेचते हैं, ३ पैसे के साग से सारा घर रोटी खाता है तो भी सुबह के लिए बच जाता है; उल्लू कहीं का। मेरा दीवाला निकालने की फ़िक्र में है क्या? वास्तव में नौकर का भी विशेष अपराध नहीं था। वह जब मालिक के साथ बाहर जाता था और मालिक पेशे की बिना पर बाहर जाते थे तब दिन में १ दर्जन से कम खारी बोतल नहीं पीते थे और वह भी बढ़िया ब्रांड की, उसी प्रसङ्ग में उसने उनके श्रीमुख से इस देव-दुर्लभ द्रव्य की और उसके मुख्य अङ्गभूत गैस की वैज्ञानिक आलोचना सुनी थी। कुछ उसी संस्कार के वश उसने इस समय यह भूल की थी। फटकार सुनकर उसे अपनी भूल मालूम हुई।

यद्यपि कुछ सुभीता नहीं हुआ था किन्तु प्रेसटाइम बीता जा रहा था। अन्ततोगत्वा मजबूर होकर कोई ९॥ बजे मिस्टर वाइज़ मिस्टर फ़ूल के स्थान पर जा धमके। उस समय वहाँ घर के आदमियों की पंगत होनेवाली थी, बाहरवाले सब खा-पीकर चले गये थे। मिस्टर फ़ूल उन्हें देखकर बहुत प्रसन्न हुए और उन्होंने उनके लिए आसन लगाने को ऊँचे स्वर में अपने नौकर को नहीं बड़े लड़के को आवाज़ दी। उस पर मिस्टर वाइज़ ने कहा कि भाई मैं भोजन नहीं करूँगा, अधिक दिमाग़ी काम करने और पर्याप्त विश्राम न मिलने से मेरा स्वास्थ्य एकदम निकम्मा हो गया है, आज दिन में थोड़ा फलों का रस और अपनी अङ्गुष्ठकनिष्ठिका के चक्र के ऊपर तीन उँगलियों की त्रिजटा मुद्रा को दिखाते हुए—१ टुकड़ा डबल रोटी का दूध में भिगोकर लिया था, फिर भी भूख नहीं है, आपके प्रेम से विवश होकर या भर गया हूँ। यह सुन कर मिस्टर फ़ूल बोले—तो आप थोड़ा-सा पापड़ और सोंठ रायता खा लीजिए और ऊपर से १ गिलास जीरे का पानी पी लीजिए, देखिए कैसी तबीअत ख़ुश होती है। रस्से में छूटता देखकर मिस्टर वाइज़ ने बीच में ही बात काट कर कहा—ना भाई, मैं 'एपिटाइज़र' का व्यवहार करना उचित नहीं समझता हूँ, जैसे मेरे किसी काम का समय नहीं है वैसे ही भूख का भी हाल है। सम्भव है रात को २ बजे लग आये। मेरा नौकर आता होगा। उसके हाथ सब चीज़ें भेजना, मैं खा लूँगा। अब तुम्हारे दूसरे लड़के की शादी तक तो मैं क्या ज़िन्दा रहूँगा, मौत सिर पर नाच रही है, इसलिए इस ख़ुशी में तो शरीक़ हो लूँ—अच्छा अब मैं जाता हूँ।

बाबू जी के जाते ही उनका नौकर जैसे नाटक में एक पर्दा उठते ही दूसरा पहले से ही पड़ा तैयार मिलता है, रङ्गभूमि में प्रकट हो गया। उसके १ हाथ में टिफ़न कैरियर, दूसरे में मिठाई आदि के लिए बेंत की बुनी मुर्गीहट्टे की कंडी, कन्धे पर धुले हुए कई अँगोछे और गले में ज़ीरे के पानी के लिए जस्ते की सुराही लटक रही थी। उसके इस विचित्र वेश-भूषा को देखकर सब दंग रह गये। पहले उसने सब सामान माँग-माँग कर वर्त्तनों में भरा, फिर स्वयम् भोजन किया और एक आदमी को बेगार में पकड़ा। इस प्रकार मय सामान के कोई ११॥ बजे वह ट्रेन्ड नौकर बाबू जी के पास आ धमका।

अब तक सोडे ने गुड़ के विटामिनों को बटोर कर क़रीने से लगा दिया था और बाबू जी को भूख लग आई थी। नौकर के आने में कुछ देर हुई तो १-१ मिनट काटना मुश्किल हो गया। मकान के बाहर ही चुंगी की बिजली बत्ती थी, उसके पास कुर्सी डालकर समय काटने के लिए बाबू जी स्वामी विवेकानन्द का 'माया' पर दिया भाषण पढ़ने लगे जिससे कि भूख के साथ जिन पदार्थों का आँखों से दर्शन और नाक से खुशबू सूँघ आये थे उनका संस्कार मन को विचलित न करे और यह समय कट जाय और समाधिरूप नौकर का आगमन इस कष्ट से मुक्त कर दे।

गीत

लेखिका, श्रीमती सत्यवती शर्मा

रे क्यों हुए निष्पन्द तरुवर?

देखा जब तुमको प्रथम वार, पुलकित थी तेरी डार डार।
पत्ती पत्ती से झर पराग, भर देता उर में मधुर राग।
क्यों आज सारे अंग जर्जर?
रे क्यों हुए निष्पन्द तरुवर?

लघु लघु हिमकण का लिये भार,
प्राणों में भर कर अमित प्यार।
गिरि की गरिमा का जल बन बन,
धोता जो तेरे मृदुल चरण।
क्यों क्षीणतम वह आज निर्झर?
रे क्यों हुए निष्पन्द तरुवर?

पल्लव दल में जो लाल लाल,
इठलाता रहता विहग बाल।
मेरे सपनों के बना गीत,
मानस में भरता स्वर पुनीत।
वह खो गया खग आज सुन्दर।
रे क्यों हुए निष्पन्द तरुवर?

छिपता-सा जाता तारकदल,
नभ में छाये काले बादल।
इस सूने स्थल में अहो आज,
किससे खेलूं हे विटपराज।
तुम क्यों खड़े हो मौन सहचर?
रे क्यों हुए निष्पन्द तरुवर?

तम पूर्ण हुए अवनी अम्बर,
भय-त्रस्त हुआ मेरा अन्तर।
छेड़ा किसने यह प्रलय-गान,
करुण कितना जीवन अवसान।
हैं काँपते क्यों आज भूधर?
रे क्यों हुए निष्पन्द तरुवर?
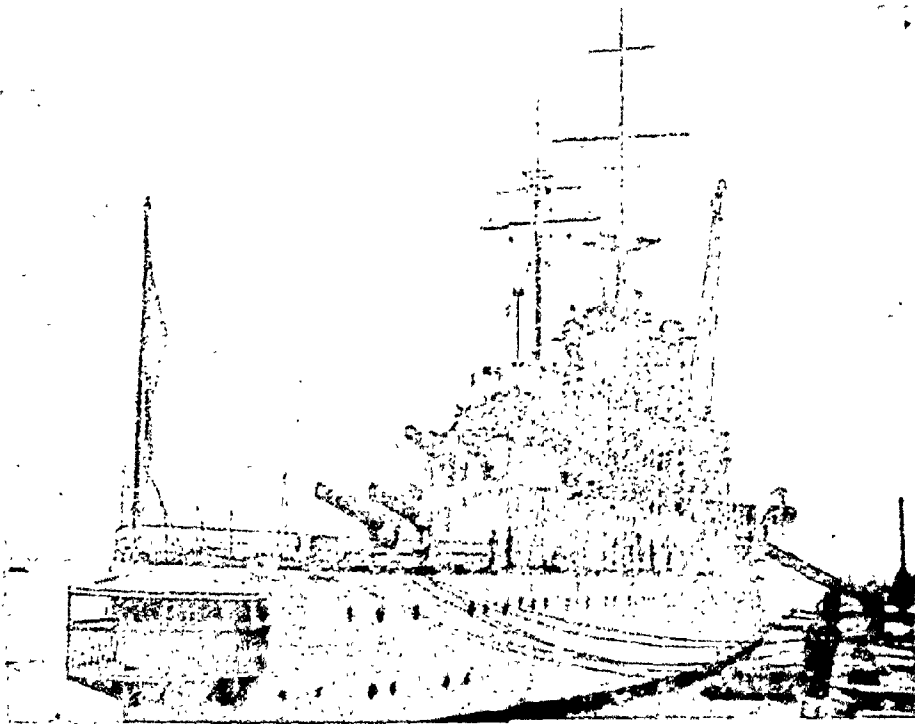
एक भयानक युद्ध पोत

हालैण्ड और बेल्जियम

लेखक, उमेशचन्द्र मिश्र, विद्यावाचस्पति

र्वे पर गिरे हुए नाज़ियों के बम अभी तक आग उगल रहे थे; नार्विक धू-धू करके जल रहा था; मित्र-राष्ट्रों द्वारा फेंके गये जल के छींटे उस दावानल को अंशतः बुझाने में भी असमर्थ प्रमाणित हो रहे थे और इसी प्रश्न को लेकर ब्रिटेन की पार्लियामेंट में खासी चखचख हो रही थी कि डच व बेल्जियम सरकारों को हिटलर की ओर से मेमोरेंडम दे दिया गया, जिसमें लिखा था—

"जर्मन-सरकार को बहुत दिनों से इंग्लैंड और फ्रांस की युद्ध-सम्बन्धी नीति स्पष्ट रूप से मालूम थी। उनकी यह नीति है कि युद्ध को अन्य देशों में फैलाना, और अपनी जनता तथा सेना का दुरुपयोग करना। उनका अन्तिम प्रयत्न यह था कि नार्वे की सहायता से वे स्कैंडिनेविया पर क़ब्ज़ा कर लें और इस तरह वहाँ जर्मनों के विरुद्ध एक नया मोर्चा तैयार करें। अन्तिम घड़ी में केवल जर्मनी की कार्रवाई के कारण ही उनका प्रयत्न निष्फल हुआ।

"इसी बीच में अँगरेज प्रधान मंत्री ने यह घोषणा की कि इंग्लैंड अब बदली हुई परिस्थितियों के कारण इस स्थिति में है कि वह अपने जंगी जहाजी बेड़े का मुख्य भाग भूमध्यसागर में भेज सके फलतः ब्रिटिश तथा फ्रेंच जंगी बेड़े एलक्जेण्ड्रिया की ओर जा रहे हैं। अँगरेजों और फ्रेंचों ने अपने आन्दोलन का केन्द्र अब भूमध्यसागर को बनाया है।

"यह इसके सिवा और कुछ नहीं है कि एक बहुत बड़े पैमाने पर तैयारी करके जर्मनी को यह धोखा दिया जाय कि आगे वे (इंग्लैंड,फ्रांस) क्या करेंगे। फ्रेंच और ब्रिटिश के सच्चे इरादे ये हैं कि पश्चिम की ओर से जर्मनी पर हमला किया जाय।

"जर्मनी ने हालैंड और बेल्जियम की तटस्थता को माना था और उसकी इज्ज़त की थी, पर इस शर्त पर कि यदि
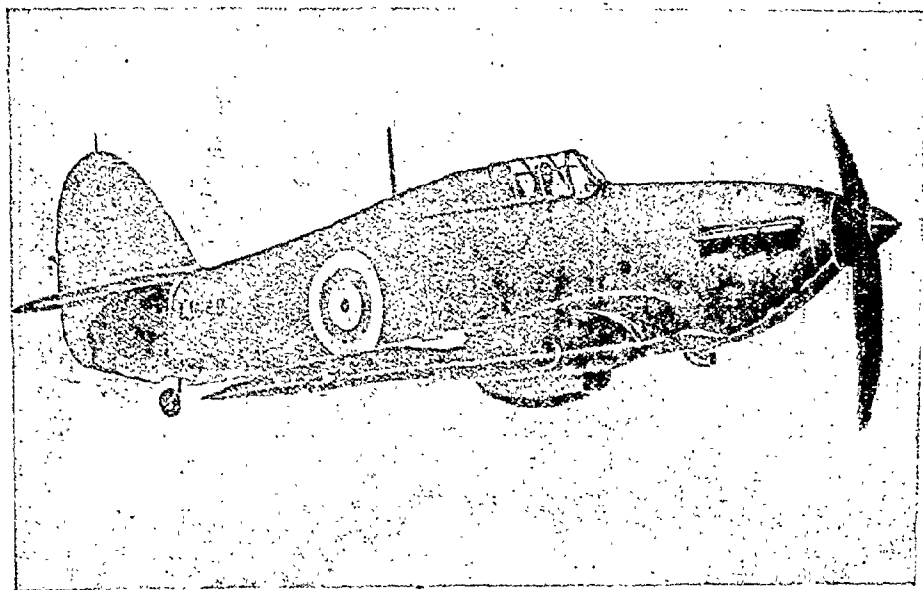
एक बमवर्षक वायुयान

जर्मनी और मित्रराष्ट्रों में कोई लड़ाई हो तो वे दोनों देश कठोरता के साथ तटस्थ बने रहें। पर बेल्जियम और हालैंड ने यह शर्त पूरी नहीं की, यद्यपि वे ऊपर से तटस्थ रहने का ढोंग कर रहे थे।"

उक्त मेमोरेंडम के भेजे जाने के दिन ही जर्मनी के ४० बम-वर्षक हालैंड की राजधानी पर मँडराते हुए दिखाई दिये। यह घटना गत १० मई के प्रातःकाल ६ बजे की है। इससे ठीक एक महीने पहले, इसी तारीख को और इसी समय डेन्मार्क तथा नार्वे पर नाज़ी-सेना का अचानक हमला हुआ था। राजनीतिज्ञों का अनुमान अवश्य था कि नार्वे के बाद हालैंड और बेल्जियम हिटलर की दाढ़ों के नीचे आयेंगे, पर यह सब इतनी शीघ्रता से—ऐसे नाटकीय ढंग से—होगा, इसका विश्वास किसी को न था।

हालैण्ड

जर्मनी के सीमावर्ती प्रान्त क्लीव्ज़ से हालैंड के दो प्रमुख नगरों—राटर्डम और एमस्टर्डम—की दूरी केवल ७५ मील है। हालैंड और जर्मनी की सीमा दो सौ मील है।

गत सितम्बर तक युद्ध और रक्षा-सम्बन्धी तैयारियों में हालैंड अपने पड़ोसी राष्ट्रों की अपेक्षा बहुत पिछड़ा था। पर म्यूनिख के बाद वह इस काम में दिलोजान से जुट गया था, और नवम्बर से तो उसने इस ओर पूरा ध्यान लगा दिया था। उसकी पूर्वी सीमा पर ऐसे कोई प्राकृतिक साधन नहीं हैं जो उसकी रक्षा के लिए सहायक हो सकें। पिछले कई महीनों से जर्मन-सेनायें हालैंड की सीमा पर जमा हो रही थीं। और उन्हें शीघ्रता के साथ मोटरों-द्वारा देश को पार करने की ट्रेनिङ्ग दी जा रही थी। ग्रोनो के निकट जर्मनों ने इसका बड़ा अड्डा बनाया था। हवाई जहाजों के अड्डे भी सीमा भर में सैकड़ों बना लिये गये थे। हालैंड की ओर से भी इस आक्रमण से बचने की तैयारी हो रही थी। टैंकों के आक्रमणों को रोकने के लिए छोटे छोटे भूगर्भ दुर्ग बनाये गये थे। पर दो सौ तीस मील लम्बे सीमान्त में इतने अल्प काल में इतने दुर्ग नहीं बनाये जा सकते थे जो टैंकों के आक्रमण को पूरी तरह से रोक सकते—हाँ, वे उन्हें अटका अवश्य सकते थे। उत्तरी-पूर्वी ज़िलों की रेतीली, कंकरीली ज़मीन, जंगलों के टुकड़े और चरागाहें शत्रु के आक्रमणों को रोकने में सहायता नहीं
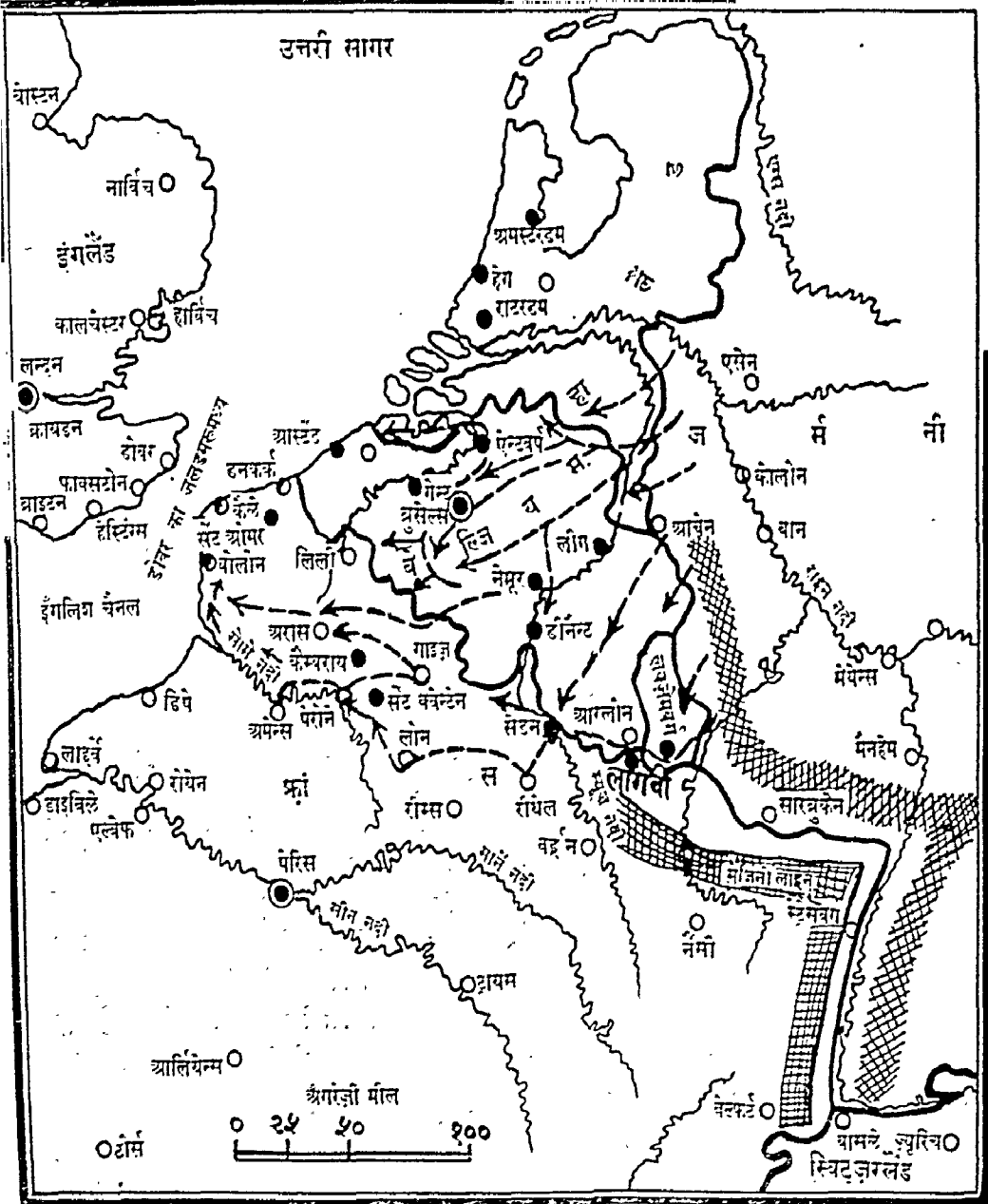
हालैण्ड और बेल्जियम

दे सकती थीं। इनसे कुछ आगे बढ़ने पर यसिल और मास नदियाँ हैं। यही पहली रक्षा-लाइन बनाई जा सकती थी और बनाई भी गई थी। मास नदी और जुलियाना नहर के बीच का भूभाग तथा ज़ूडरज़ी और मेन्स-टिह्ट्स के बीच का भूभाग जलमग्न करके भी रक्षा की जा सकती थी। ऐसे मौक़ों पर हालैंड ने अपने समुद्री बाँध तोड़ कर और देश को जलमग्न करके कई बार अपनी रक्षा भी की है। परन्तु इस बार जर्मनों का आक्रमण पैराशूटों-द्वारा हुआ और प्रत्येक सिपाही के साथ एक रबर की नाव थी, अतः

रक्षा के ये दोनों साधन भी हालैंड के हक़ में व्यर्थ सिद्ध हुए। इसके अतिरिक्त तटवर्ती तोपसेना जो डेहेल्डर में नियत थी, ज़ूडरज़ी और दूसरी क़िलेबन्दियों तथा राटर्डम और एमस्टर्डम के वन्दरगाहों का मार्ग रोके थी।

नवम्बर के महीने में जब तनातनी अधिक बढ़ गई थी, पूर्वी सीमा की रक्षा की ओर हालैंड का बहुत कम ध्यान था, परन्तु उसके बाद उसने इस ओर बहुत ध्यान दिया था। नाज़ियों के पाँचवें कालम को व्यर्थ करने के लिए डच-सरकार ने बहुत-से ऐसे लोगों को गिरफ़्तार कर लिया था जो नाज़ियों के साथ सहानुभूति रखते थे, जिससे नार्वेवाली चाल सफल न हो सके। नवम्बर की विभीषिकाओं से बचने के लिए उन्होंने अपने सब लाइट-हाउसों को बुझा दिया था और लाइटशिपों को लौटा लिया था, जिससे रात्रि के समय सम्पूर्ण हालैंड में घोर अन्धकार रह सके। डच नदियों और नहरों में भी आवागमन रोक दिया गया था। तट की रक्षा के लिए हालैंड के पास चार क्रूज़र और तीन तटरक्षक, कुछ सुरंगें विछानेवाले और निकालनेवाले, आठ विध्वंसक, आठ तारपीडो बोट और इकतीस सबमेरिन थे। इनमें से कुछ डच इस्टइंडीज़ में थे। छः सौ वायुयान थे और सात लाख सैनिक।

वायुयानविध्वंसिनी तोप

हालैंड की कुल जनसंख्या अस्सी लाख थी। पश्चिमी भाग बहुत घना बसा हुआ है और वहीं प्रसिद्ध व्यापारिक और उद्योगी नगर हैं। अटरेख्ट और एन्टवर्प के प्रसिद्ध शहर समुद्र के धरातल से नीचे हैं और इनकी रक्षा समुद्री बाँधों द्वारा होती है। देश का ढाल दक्षिण पूर्व की ओर से उत्तर-पश्चिम की ओर है और इसी दिशा में नदियाँ बहती हैं। नहरें भी वहाँ बहुत-सी हैं और यदि ठीक समय पर पुल उड़ाये जा सकते तो इससे भी रक्षा में बहुत सहायता मिल सकती थी। राइन मास और इसचेल्डिट यहाँ की प्रधान नदियाँ हैं, जो उत्तरी सागर में गिरती हैं। ४,८१७ मील की लम्बाई में नदियों और नहरों में जहाज़ चल सकते हैं। १६,००० मील लम्बी सड़कें हैं। जर्मनी, हालैंड और बेल्जियम के बीच में रेलवे लाइनों का जाल बिछा हुआ है। हालैंड की अधिक से अधिक लम्बाई १६४ मील और चौड़ाई १२० मील है। दक्षिणी भाग पहाड़ी है; शेष भाग चौरस। खेती वहाँ ख़ूब होती है और १८७० से अन्न
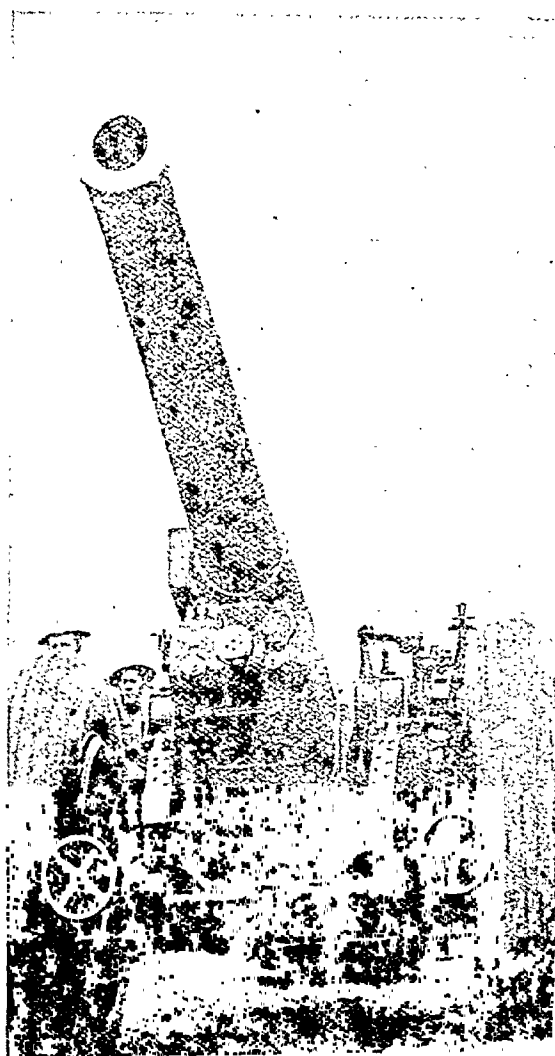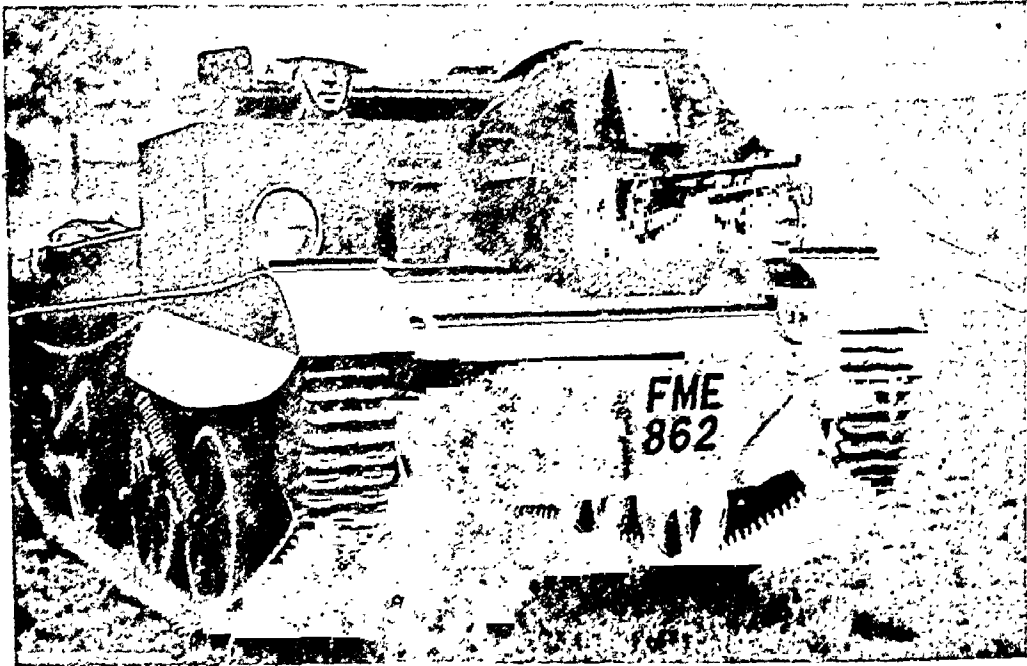
एक भयानक टैंक

और मक्खन पैदा करने में काफ़ी उन्नति की गई थी। संसार में जहाज़ों की संख्या के हिसाब से हालैंड का आठवाँ नम्बर था। हालैंड की उपज का सबसे बड़ा ख़रीदार ब्रिटेन था। राटरडम से निकटतम इँगलिश तट की दूरी १२० मील है। सन् १९१४ में बेल्जियम के साथ ही हालैंड पर आक्रमण करने का इरादा भी जर्मनी का था। पर उस बार ऐसा नहीं हो सका।

बेल्जियम का सिर गत महायुद्ध में भी सबसे पहले ओखली में पड़ा था। और पड़ता क्यों न? योरप की ३ प्रधान शक्तियों—इँग्लैंड, जर्मनी और फ़्रांस—के बीच में उसे भगवान् ने बसाया भी तो है। और इन तीनों के जो पारस्परिक सम्बन्ध गत कई शताब्दियों से रहे हैं, वे इतिहास के पाठकों को ज्ञात हैं। बेचारे बेल्जियम को इन लोह और पाहनों के बीच की रुई बनने का सौभाग्य अपने इतिहास में कई बार प्राप्त हो चुका था। फलतः इन देशों की प्रजा का इस सम्बन्ध में अनुभव भी काफ़ी था और जहाँ इस शक्ति-त्रयी में से किसी की भवों पर बल पड़े कि बेल्जियम का दिल पहले धड़कने लगता था।

गत महायुद्ध में क़ैसर की महत्त्वाकांक्षाओं के बीच में कूद पड़ने के कारण बेल्जियम बुरी तरह कुचला गया था और उसकी भूमि पर होनेवाले युद्ध-विस्फोट का धुवाँ सारे संसार में फैल गया था। पर इस बार बेल्जियम किसी के मार्ग के बीच में नहीं पड़ा। उसकी अपनी भौगोलिक परिस्थिति ही उसके युद्ध में फँसने का कारण बनी। परस्पर आक्रमणशील जर्मनी और फ़्रांस के बीच में बनी हुई भूगर्भ दुर्गों की दो प्रबल श्रेणियाँ एक को दूसरे पर चढ़ दौड़ने का सीधा मार्ग नहीं दे रही थीं। रास्ता था तो बेल्जियम होकर ही। और जर्मनी को इसी लिए फ़्रांस और इँग्लैंड पर आक्रमण करने के मार्ग में हालैंड व बेल्जियम को तबाह कर डालना आवश्यक हो गया।

बेल्जियम अपनी तटस्थता की रक्षा जी-जान से कर रहा था। फिर भी वह समझता था कि युद्ध से बच सकना उसके लिए असम्भव है। इसी लिए वह अपनी रक्षा की तैयारी भी कर रहा था, यद्यपि उसकी तैयारी जर्मनी की शक्ति के सामने कुछ हस्ती नहीं रखती थी।

फलतः उसे अपनी रक्षा के लिए मित्रराष्ट्रों की सहायता की अपेक्षा थी। यह सहायता जितनी ही प्रचुर और शीघ्रता से प्राप्त हो जाती, उतना ही इसके हक़ में अच्छा था। न तो उसके पास जर्मनी का मुक़ाविला करने योग्य सेनायें ही थीं और न उसकी भौगोलिक स्थिति ही उसकी रक्षा में सहायता दे सकती थी। वेल्जियम की कुल आवादी ८० लाख थी। सशस्त्र सेनाओं में वेल्जियम की राष्ट्रीय सेना और सरकारी सेना तथा रुआंडा-उरंडी के शासनादिष्ट क्षेत्र की सेनायें सब मिलाकर लगभग ७ लाख सैनिक थे और ६०० वायुयान थे। सेना का संगठन वहाँ 'मिलिशिया' के ढंग का था, और रिज़र्व सैनिक देश भर में भरे हुए थे। १७ से लेकर ५० वर्ष तक की आयुवाले सभी पुरुषों के लिए सैनिक सेवा अनिवार्य थी।

ख़र्च में बचत करने के उद्देश्य से १९२८ में वेल्जियम ने अपना जंगी बेड़ा तोड़ दिया था। केवल एक जहाज 'जिनिया' जो १२०० टन का था, शेष था और वह भी अब मछली-क्षेत्रों की रक्षा का काम करता था। अपने गत महायुद्ध के अनुभव से लाभ उठाकर उसने सैनिक तैयारी इस बार कुछ पहले से आरम्भ कर दी थी। उसकी ४.७ इंच मुंहवाली 'एन्टी टैंक गनों' की फ़्रांस के विशेषज्ञों ने बड़ी तारीफ़ की थी।

वेल्जियम के नरेश लीपोल्ड

गत १९१४ के युद्ध में जर्मनी का रण-कौशल 'लीज' के प्रसिद्ध क़िले के घेरे पर तुल गया था। लीज का क़िला वेल्जियम का 'हृदय' समझा जाता था। इसी क़िले से चक्राकार चलकर जर्मनों की सेनायें फ़्रांस में घुसी थीं। १९१९ में वेल्जियम ने इस दुर्ग का दुबारा नये ढंग

तटरक्षक तोप

रिक्शा

अनुवादक, पण्डित ठाकुरदत्त मिश्र

पुलक की बीमारी ने सविता को दार्जिलिंग से न जाने दिया। इधर जमींदारी के आवश्यक कार्यों के कारण जगत बाबू को कुछ समय के लिए अपने विश्वस्त नौकर के साथ घर चला जाना पड़ा। लगभग एक सप्ताह बाद पुलक का ज्वर धीरे-धीरे कम हुआ। अरुण की इच्छा भी घर जाने की थी पर जगत बाबू के आदेश के कारण पूरी न हुई और उसे मन मार कर वहीं ठहर जाना पड़ा। इधर एक सुखी दम्पति के पारस्परिक आमोद-प्रमोद को देखकर अरुण के मन में एक अभाव का अनुभव हुआ और उसका हृदय कुछ-कुछ सविता की ओर झुका। सविता विवाह से ही पति-प्रेम से वंचित रही थी। अरुण के इस मानसिक परिवर्तन पर सविता को कुछ आश्चर्य अवश्य हुआ पर उसे अपने भाग्य पर सहसा विश्वास न हुआ।

(१८)

खुली हुई खिड़की के पास बैठी सविता कुछ कपड़ों में बटन लगा रही थी। उसके बटन लगा चुकने से पहले ही संध्या का अन्धकार प्रगाढ़ हो गया और नीली साड़ी के ऊपर सलमा-सितारों के समान श्यामवर्ण के आकाश में नक्षत्र उदित हो आये। इससे सविता को सुई-तागा रख ही देना पड़ा।

पुलक का ज्वर छूट गया था। वह दूसरे कमरे में अपने छोकड़ा नौकर के साथ खेल रहा था। बीच बीच में उमङ्ग में आ आकर जब वह हँस पड़ता तब उसका कण्ठ-स्वर यहाँ तक सुनाई पड़ता। पुलक की इस हँसी के अतिरिक्त और सब निस्तब्ध था, सर्वत्र घोर अन्धकार था।

नौकर दीपक जलाने आया। तब सविता ने कहा—अभी ठहरो, जरा देर के बाद जलाना।

सविता को उस समय मानो वह प्रगाढ़ अन्धकार ही अच्छा मालूम पड़ रहा था। अपने आपको छद्मवेश की आड़ में मनुष्य चाहे कितना ही कठोर भाव से क्यों न दाब रक्खे, परन्तु ज़रा-सी साँस मिलते ही घोर अन्धकार के ऊपर भी मनुष्य के अन्तस्थल का स्वरूप विकसित हो उठता है।

दीवार के सहारे बैठ कर सविता अपने हृदय की वास्तविक अवस्था पर विचार करने लगी। अरुण चुपचाप आकर उसके कमरे के द्वार पर खड़ा हो गया। वह भीतर जा नहीं सका। ज़रा-सा इधर-उधर करके उसने कहा—ओह, इतना अँधेरा क्यों है?

सविता चौंक पड़ी। वह सीधी होकर बैठ गई और बोली—किसी वस्तु की आवश्यकता है क्या? बरामदे में आऊँ?

अरुण ने कहा—नहीं, नहीं, मुझे किसी वस्तु की आवश्यकता नहीं है। तुम्हें बाहर भी न आना होगा। परन्तु कमरे में उजाला क्यों नहीं है? नौकर सब कहाँ गये?

सविता ने कहा—नौकरों का कोई दोष नहीं है। मैंने स्वयम् ही उन्हें दीपक जलाने से रोक दिया था।

"क्यों?"

"यों ही, मुझे अँधेरे में ही अच्छा लग रहा था, इसी लिए लैम्प जलाने को रोक दिया था। क्या- जलवा दूँ?"

"मेरे लिए? नहीं, मेरे लिए कोई आवश्यकता नहीं।"

"घूम-लेक देखकर रात को दस बजे तक जो लौटने-वाले थे!"

"मैं उतनी दूर तक नहीं जा सका। रास्ते से ही लौट आना पड़ा। इसी लिए इतनी शीघ्रता से आ सका हूँ।"

सविता कमरे से निकलकर बरामदे में आ गई। अरुण के दोनों ही प्रसन्न नेत्रों की दृष्टि दगदगा कर जल उठी। दाँतों तले ओंठ दबाये हुए वह खड़ी रही।

नौकर ने आकर सविता के कमरे में रोशनी कर दी। उसके बाद तुरन्त ही अरुण कमरे में घुस गया और कुर्सी पर बैठ गया। ज़रा देर तक रुककर उसने कहा—क्यों जी, तुमने यह तो मुझसे पूछा ही नहीं कि आधे ही रास्ते से क्यों लौट आये हो?

ज़रा-सा हँसकर सविता ने मुँह नीचा कर लिया।

इसके बाद उसने कहा—क्यों? परन्तु उसके कण्ठ-स्वर से किसी प्रकार के आग्रह का भाव नहीं प्रकट हुआ।

अरुण ने कहा—इसका एक कारण तो यही है कि बाबू जी घर पर नहीं हैं। तुम लोगों को बिलकुल सूने घर में छोड़ जाना—

"इससे क्या? केवल कुछ घंटों की तो बात थी।"

"यह तो ठीक है। परन्तु इतनी ही ज़रा देर की अनुपस्थिति के लिए सम्भव है कि आने पर बाबू जी रुष्ट होते। व्यर्थ में डाँट खानी पड़ती। ठीक है न? क्या लौट आकर मैंने अच्छा काम नहीं किया है?"

"हाँ, बहुत अच्छा काम किया है।" यह कह कर सविता वहाँ से चलने लगी। पैर के ऊपर पैर रखकर जूते का फीता खोलते खोलते अरुण ने कहा—यह क्या? जाती कहाँ हो? ठहरो, एक बात सुन लो। सविता खड़ी रह गई। उसने कहा—कहो, क्या कहते हो?

"इतनी दूरी पर रहने से काम न चलेगा। ज़रा और बढ़ आओ।"

सविता मस्तक उठाये खड़ी रही। उसके हृदय में इतने दिनों से जो व्यथा सञ्चित थी वह एकाएक जाग्रत हो आई और उसके आघात के कारण कुछ तीव्र हो गये स्वर से उसने कहा—कहो न? क्या कह रहे हो?

ज़रा-सा संकुचित होकर अरुण ने कहा—मैं केवल अपना हाल तुम्हें दिखलाऊँगा। यह देखो।

सविता ने देखा तो अरुण के पैर के एक नाखून के पास कट गया था और मोजा खून से भीग गया था। यह देखकर वह काँप उठी और बोली—बाप रे, यह क्या हुआ है?

"हुआ क्या है? एक बहुत बड़ा-सा पत्थर उठाकर मैं वीरता दिखलाने जा रहा था, वही छूट कर पैर पर गिर पड़ा।"

"कपड़ा भिगोकर इसी समय इस पर पट्टी बाँध देनी चाहिए। अन्यथा पक आवेगा।"

सविता की यह बात सुनकर अरुण ने मुस्करा दिया। इतने में ही सविता ने एक साफ़ कपड़ा और जल ले आकर अरुण के सामने टेबिल पर रख दिया। अरुण ने कहा—जब इस लँगड़े पैर से इतनी दूर तक चला आया तब अब गीला कपड़ा बाँधने से क्या लाभ होगा?

"गीले कपड़े की पट्टी बाँधने से पीड़ा शायद कुछ कम हो जायगी?"

अरुण ने कहा—पीड़ा अपने आप ही दूर हो जायगी।

सविता और कुछ नहीं बोली। उसने सोचा कि इसके बाद भी यदि मैं कुछ कहूँगी तो बात कुछ देर तक जारी रहेगी। इससे वह चुपचाप सिलाई की चीज़ें उठा उठा कर देखने लगी।

इस प्रकार की असह्य निस्तब्धता अरुण को किसी प्रकार भी सह्य नहीं थी। इससे कुछ अप्रसन्न होकर अरुण उठकर खड़ा हो गया। उसने कहा—नहीं, घर पर चुपचाप बैठे नहीं रहा जाता। मैं ज़रा-सा टहल आऊँ।

सविता की ज़बान के सिरे तक आया—तब आये क्यों हो? परन्तु यह उसने कहा नहीं। ज़रा-सा हँस कर उसने कहा—पैर में चोट जो आ गई है, चल सकोगे?

"हाँ, यह तो कठिन बात है।" यह कहकर अरुण फिर कुर्सी पर बैठ गया। इतने में पुलक का रोना सुनकर सविता दौड़ पड़ी। चौखट में पैर अटक जाने के कारण वह गिर पड़ा था, इससे वह रो रहा था।

सविता ने उसे गोद में उठा लिया। परन्तु स्वामी के सामने अगड़म-बगड़म बातें बककर उसे वह तुरन्त ही नहीं शान्त कर सकी। इससे पुलक का रोना भी बन्द नहीं हुआ। क्रोध में आकर उसे डाँटते हुए अरुण बोल उठा—चुप. इतना चिल्लाता क्यों है रे? खबरदार साँस लिया तो!

डर के मारे सविता की गोद में मुँह छिपाकर पुलक चुप हो गया। अरुण ने कहा—तुमने इसे इस तरह लाड़-प्यार में डाल रक्खा है! बाद को क्या दशा होगी इसकी।

"दशा क्या होगी? बाद को पिता के पास जाने पर सौतेली माँ का प्यार प्राप्त करना क्या सम्भव न होगा इसके लिए?"

अरुण ने कहा—पिता के पास क्या जा सकेगा यह! तुम इसे छोड़कर भला रह सकोगी? काशी तक तो तुम जा नहीं सकी हो इसके कारण!

"मेरी बात जाने दो। बात तो उसके सम्बन्ध की हो रही थी!"

"तुम्हारी ही बात क्यों जाने दी जाय?"

"मेरी कोई भी ऐसी बात नहीं है जिसकी चर्चा करनी हो, या जिसके सम्बन्ध में सोच-विचार करना हो। कोई आवश्यकता भी नहीं है ऐसा करने की।"

सविता ने तेज़ दिखलाकर अभिमानपूर्वक यह बात कहने का प्रयत्न किया। किन्तु फिर भी उसके हृदय पर जो आघात लगा हुआ था उसके कारण कण्ठ-स्वर में करुणा की पुट आ ही गई। लज्जा से मुख लाल किये हुए दूसरा प्रसङ्ग छेड़ने के विचार से उसने बहुत ही सरलतापूर्वक कहा—कनक बाबू कब आवेंगे?

"दस बजे रात को!" यह कहकर अरुण उठ गया। उसके भी प्रसन्न और मुस्कराते हुए मुख पर चिन्ता या वेदना की म्लान छाया पड़ गई थी।

जिस दिन जगत बाबू फिर दार्जिलिंग लौट आये उसी दिन कनक भी कटक चला गया। जाते समय ट्रेन में बैठकर उसने कहा—ये भी कई दिन बड़े आनन्द से कट गये। ठीक है न अरुण?

अरुण हँस पड़ा। उसने कहा—तुम्हारे दिन बिना आनन्द के कब बीतते हैं?

"किन्तु मुझे ऐसा लगता है कि तुम्हारे भी दिन अब बुरी तरह से नहीं कट रहे हैं। कुछ-कुछ परिवर्तन किया है तुमने अपने मनोभावों में।"

अरुण ज़रा-सा चकित हुआ। उसके क्षण भर बाद ही उसने हँसकर कहा—पागल कहीं के! मुझमें तुझे कौन-सा ऐसा परिवर्तन दिखाई पड़ गया?

"नहीं भाई, सच सच बतलाओ। क्या ऐसी जगह आने पर भी तुम्हें कुछ स्फूर्ति नहीं आती?"

"भाड़ में जाय तुम्हारी स्फूर्ति। अब क्या स्फूर्ति आवेगी? तुम लोगों की इस स्फूर्ति के ही फेर में तो मेरा यह जीवन गया।"

"परन्तु यह तो पूर्णरूप से तुम्हारी स्वतंत्र इच्छा का ही फल है"

"बस, बस, रहने दो भाई, रहने दो। यह प्रसङ्ग अब समाप्त करो। तुम्हारी गाड़ी के चक्के अब डोल चले हैं।" यह कह कर अरुण गाड़ी का सीकचा छोड़कर हट गया। अन्त में उसने कहा—शायद अब बहुत दिनों के बाद हम लोगों की मलाक़ात होगी।

कनक उस समय भी खिड़की के पास खड़ा था। उसने कहा सम्भवतः—

ट्रेन चल पड़ी। अरुण रेलवे लाइन के पास पास ज़रा दूर तक चलने के बाद घर की ओर चला।

× × ×

घर से लौटकर आने पर जगत बाबू ने देखा कि सविता पुलक की सेवा-शुश्रूषा में जितना मन लगाती है, उससे भी अधिक मन लगाती है वह घर-गृहस्थी के काम-काज में। हाथ में वह सदा ही कोई न कोई काम लिये ही रहती थी।

वेश-भूषा के सम्बन्ध में कभी वह कुछ वैसा ध्यान नहीं देती थी, परन्तु असावधानी करके स्वेच्छा से कभी वह गन्दी भी नहीं रहती थी। परन्तु अब उसने शरीर की सफ़ाई करना भी छोड़ दिया। देखने से जान पड़ता, मानों इस विश्व-ब्रह्माण्ड की दरिद्रता पुञ्जीभूत होकर सविता पर ही आकर केन्द्रित हो गई है, इस संसार में मानो जीवन का कोई उपयोग ही नहीं है।

आज-कल सविता जब कभी साफ़ कपड़ा पहन लेती तब सचमुच उसे बड़ी लज्जा आती। कारण यह था कि सावधानी के साथ प्रयत्न करने पर भी स्वामी की दृष्टि के सामने किसी न किसी समय वह नित्य ही पड़ जाती थी। स्वामी से छिपकर रहना उसके लिए सर्वथा असाध्य हो गया था।

सविता जो वस्त्र आदि ठिकाने से नहीं पहनती थी उसका एक कारण था। वह सोचती थी कि यदि मैं ज़रा अच्छे ढंग से कपड़े आदि पहनूँ तो स्वामी कहीं कोई और बात न सोच बैठें। तब तो वह लज्जा मेरे लिए असह्य ही हो जायगी। स्वामी की बातों से व्यङ्ग्य की जो बौछार आया करती थी वह तो सविता को भली भाँति मालूम थी। वह उस वस्तु से भय भी बहुत अधिक करती थी। परन्तु श्वशुर की बात वह टाल न सकी।

सविता की दृष्टि में श्वशुर की बात का मूल्य भी बहुत अधिक था। वे एक गम्भीर प्रकृति के पुरुष थे। बहुत आवश्यक होने पर ही वे कोई बात मुँह से निकालते थे। यही कारण था कि उनकी एक एक बात को वह अलंघ्य आदेश के रूप में ग्रहण किया करती थी। इससे श्वशुर ने जब कहा कि बहू, तुम्हारे कपड़े

बहुत मैले हो गये हैं, इन्हें बदल दो, इतने मैले कपड़े न पहनना चाहिए, तब बाध्य होकर उसने धुले हुए कपड़े पहन लिये।

सविता का यह परिवर्तित रूप अरुण की दृष्टि में पड़े बिना न रह सका। हाथ में एक पुस्तक लिये हुए घर के भीतर से निकलते समय सविता को देखकर ज़रा-सा खड़े खड़े अरुण मुग्ध भाव से मुस्कराने लगा। मुस्कराते मुस्कराते उसने कहा—जान पड़ता है कि इस घर में अब धोबी का आना-जाना आरम्भ हो गया है।

मस्तक नीचा करके सविता ने मुँह फेर लिया। उसकी गोद में पुलक था। उसने कहा—नहीं बहू, तुम अच्छी मालूम पड़ रही हो, ख़ूब अच्छी मालूम पड़ रही हो।

उसी प्रकार मुस्कराते हुए अरुण ने कहा—मुझे भी तो ऐसी ही मालूम पड़ी है।

सविता ने पुलक को गोद से उतार दिया। एकाएक मुँह फेर कर उसने कहा—क्यों कैसी मालूम पड़ रही हूँ आपको ?

"यह क्या ? रुष्ट हो गई हो ? इतनी ही साधारण-सी बात पर ?"

लज्जा और क्षोभ के मारे सविता का मुँह लाल हो गया था। उसने कहा—नहीं, रुष्ट क्यों होऊँगी ? मुझे यह मालूम है कि मुझे रुष्ट न होना चाहिए। इसके सिवा मैं रुष्ट होऊँगी ही किसके ऊपर ?

"यह क्यों ? इस समय भी तो रुष्ट ही हो। समझती नहीं हो कि किसके ऊपर रुष्ट हूँ ?"

"कहती तो हूँ कि किसी के ऊपर नहीं। मैं रुष्ट नहीं हूँ।"

"कुछ न कुछ तो अवश्य हो। अच्छा, अब मैं जाता हूँ।"

साथ में पुलक को लिये हुए अरुण सीधे फाटक की ओर चला गया। ज़रा देर तक खड़ी रहने के बाद सविता भीतर चली गई।

(१९)

चार-पाँच मास दार्जिलिंग में व्यतीत करने के बाद जगत बाबू के साथ सब लोग घर लौट आये। यहाँ वे थोड़े दिनों तक रहे। बाद को पुलक के पिता प्रभात अपनी माता के सहित पुलक को लेने आये।

नानी के अभाव में सविता पुलक की इतनी सेवा करेगी और उसे इस तरह प्यार से रक्खेगी, इस बात का विश्वास प्रभात या उनकी माता को था नहीं। इसके सिवा अभी अभी वह बीमारी से उठा था, इस कारण उसका शरीर काफ़ी दुर्बल हो गया था। परन्तु इन लोगों ने यही समझा कि सेवा-यत्न के अभाव के ही कारण पुलक इस प्रकार दुर्बल हो गया है।

पुलक जिस समय बहुत नन्हा-सा था, उसके बचने तक की आशा नहीं थी, उस समय किसी ने उसकी खोज-ख़बर लेना तक आवश्यक नहीं समझा। अब वह बड़ा हो गया था, इसी लिए इन सबकी कर्त्तव्य-बुद्धि भी जाग्रत हो उठी थी। अब इन्हें इस बात का ध्यान आया कि यह अनुपम कान्तिमान् बालक हमारा अपना ही धन है। क्या वह आगे चल कर दूसरे के ही घर को अपना समझेगा ?

प्रभात ने पुलक को प्यार करते हुए पुकारा—बच्चा, ओ बच्चा।

अपना अप्रसन्न मुख टेढ़ा करके पुलक ने कहा—आहा, मानो मेरा नाम बच्चा है !

प्रभात की माता ने प्यार के साथ पुलक को गोद में लेने का प्रयत्न किया। परन्तु पुलक बाक़ायदा चिल्ला उठा। उसने कहा—ओ बहू ! बहू, जल्द आओ।

मलिन मुख से सविता ने कहा—क्या हुआ भैया ?

गम्भीर मुख से पुलक ने कहा—ये मुझे पकड़ ले जायँगी।

पुलक की मातामही ने कहा—पकड़ तो ले ही जाऊँगी। तुम मेरे कुल के दीपक हो, मेरे लाल हो, आँखों के तारा हो। तुम अपने घर न चलोगे ?

इसमें सन्देह नहीं कि इस समय इन लोगों के कुल का दीपक पुलक के अतिरिक्त और कोई था नहीं। प्रभात को इस विवाह से दो कन्यायें हुई थीं। पुत्र हो भी सकता था, किन्तु तब तक हुआ नहीं था। घर में कोई लड़का न होने के कारण पुलक के लिए इन लोगों को इतना आग्रह था।

एक बार मस्तक हिलाकर पुलक ने कहा—नहीं, मैं न जाऊँगा तुम लोगों के यहाँ ?

यह कहकर पुलक चुपचाप उनका प्यार करने का ढंग देखने लगा। इन सब माता-पुत्र के आगत-स्वागत के आयोजन के लिए सविता को जब एक क्षण के लिए भी

ड़ना पड़ता तब पुलक चिल्लाकर कहता—बहू ! री बहू कहाँ गई ?

पुलक की पितामही कहतीं—वे तुम्हारी बहू हैं? म्हें मैं तुम्हारी माँ के पास ले चलूँगी।

चारों ओर ताककर पुलक ने कहा—माँ ? माँ हाँ है ? माँ तो कटक गई हैं। माँ नहीं हैं।

सब लोगों के सुनते सुनते पुलक मेनका को ही माँ कहने गा था। इसी प्रकार वह सविता को भी मामी न कह कर हू कहा करता था। 'माँ' सुनकर उसने यही मझा कि इन लोगों का मतलब मेनका से ही है। सी लिए अविश्वास के साथ उसने कहा—माँ नहीं है।

लौट कर आने पर सविता ने देखा तो पुलक के नों हाथ बाजार से खरीद कर लाई हुई मिठाइयों से भरे । यह देखकर सविता ने व्यग्र भाव से कहा—इसकी बीअत ठीक नहीं है। यह तो ये सब चीजें खाता नहीं।

पुलक भी अभी तक अवाक् होकर उन मिठाइयों की ओर ताक रहा था। सविता को देखते ही डर के मारे उसने सारी मिठाइयाँ फेंक दीं। यह देखकर पुलक की पितामही का मुँह काला पड़ गया।

प्रभात की माता और प्रभात अरुण को साथ में लेकर जगत बाबू से आज्ञा लेने गये पुलक को ले जाने के लिए। सविता उस समय वहीं बैठी हुई श्वशुर के लिए सेनाटोजेन तैयार कर रही थी।

प्रभात की माता के उत्तर में जगत बाबू ने कहा—मुझे कुछ कहना नहीं है, परन्तु बहू शायद कुछ कहे।

कृतज्ञ भाव से सविता ने मस्तक झुका लिया। यही तो उसकी परीक्षा का समय था। पुलक को एकदम छोड़ देना उसके लिए कितना बड़ा त्याग स्वीकार करना था, यह केवल उसके अन्तर्यामी ही जान सकते थे। परन्तु यदि पुलक सचमुच ही अपने पिता के समीप, पितामही के समीप, आदर-यत्न प्राप्त कर सकता था तो सविता उसे किस अधिकार से रोकना चाहती थी। तो भी प्रभात की अनर्गल वाक्य-धारा के उत्तर में उसके दबे हुए ओंठ से केवल 'न' शब्द ही निकला।

रोष में आकर प्रभात की माँ ने अरुण की ओर ताका। उस क्षण तक सविता का समस्त मन सचेत हो उठा था। यहाँ तो उसका पराजय होना पूर्ण-रूप से ही निश्चित था। वह समझती थी कि सब जानबूझ कर भी मेरे स्वामी मेरे पक्ष में कोई बात न कहेंगे, बल्कि विपक्ष में ही कहेंगे। इन इतने आदमियों के बीच में मेरे अपमान की, मेरी लज्जा की, सीमा न रहेगी। इस संकट से, इस अपमानजनक अवस्था से परित्राण पाने के लिए हृदय-विदारक हाहाकार को, रुदन के आवेग को, रोक कर आर्तस्वर से वह चिल्ला उठी—अच्छा, अच्छा, ले जाइए आप लोग उसे। मुझे कोई आपत्ति नहीं है!

सविता के कण्ठ-स्वर और उसकी बात से आश्चर्य में आकर अरुण ने उसकी ओर ताक कर देखा। भीतर ही भीतर रुके हुए रुदन के उच्छ्वास से वह फूल रही थी, उसका मुख नहीं देखा जा सका। दोनों घुटनों के बीच में मुँह छिपाये हुए वह बैठी रही। जब तक वे लोग पुलक को लेकर चले नहीं गये तब तक सविता ने मस्तक नहीं उठाया।

बड़ी देर के बाद भी उसे ऐसा जान पड़ता, मानो पुलक के रोने का शब्द आ-आकर उसके कानों को बेध रहा है। सविता एकान्त कमरे में बैठी थी। एकाएक छूटते समय की गाड़ी की सीटी सुनाई पड़ी, जिसके कान में पड़ते ही वह भूमि पर लोट गई।

हेमन्त-ऋतु का अन्त हो रहा था। इससे जो थोड़ी-सी धूप आई थी, वह भी देखते देखते चली गई। तो भी सविता को चेतनता नहीं आई। उसे ऐसा जान पड़ रहा था, मानो सारा काम-काज ही समाप्त हो गया है! अब उस नन्हें से बालक का मचल-मचल कर झंकृत किया गया कण्ठ-स्वर गृहस्थी के कार्यों में दबाव डालकर उसे न प्रवृत्त करेगा।

एकाएक नौकरानी का कण्ठ-स्वर सुनकर वह जाग उठी और मुँह ऊपर करके बोली—कहो, क्या चाहिए।

नौकरानी ने कहा—ज़रा देर के लिए भाण्डार-गृह की कुंजी दे दीजिए।

अञ्चल के छोर से कुंजी खोलती खोलती सविता उठकर खड़ी हो गई। इतनी देर के बाद उसके मन में आया कि नाना जी ने कितनी बार यह उपदेश किया था कि हर्ष या विषाद के कारण मोह में पड़ जाना उचित नहीं है।

उसने नौकरानी ने पूछा—कुंजी का इस समय क्या होगा ?

"बड़े बाबू चाय माँग रहे हैं। चाय का डिब्बा तथा चीनी आदि सब निकालना पड़ेगा। इसी लिए कुंजी की आवश्यकता पड़ी है।"

नौकरानी कुंजी लेकर चली गई। उसी समय आकर नौकर ने सूचना दी कि धोबिन कपड़े देकर चली गई, परन्तु सरकार के बिस्तर के ऊपर का चद्दर नहीं मिल रहा है।

"चलो, खोज दे रही हूँ।" यह कह कर सविता आँखें पोंछ कर निकल पड़ी। वह जिस समय श्वसुर के कमरे की अलमारी खोल कर चद्दर खोज रही थी, उस समय उन्होंने कहा—अब छोटी बहू को बुला लूँ न बहू ? नहीं तो तुम्हें बड़ा कष्ट होगा।

सविता ने कहा—अभी उस दिन तो वह गई ही है। अभी ही उसे बुलवाओगे बाबू जी ?

"इससे क्या ? वे तो फिर भी आती-जाती रहती हैं। तुम तो एकदम से गई ही नहीं हो।"

"अब मैं भी जाऊँगी बाबू जी !"

सविता अपने हृदय की बात कह गई। परन्तु बाद को उसका मुख लाल हो उठा। उसके उत्तर में जगत बाबू ने कहा—अच्छी बात है बहू। इस बार तुम अवश्य हो आओ। परन्तु अरुण से यह आशा तो है नहीं कि वह तुम्हें पहुँचा आवे। यदि पंडित जी आकर ले जाते तो अच्छा था।

सविता के नाना अध्यापक थे और उन्हें लोग पंडित जी कहा करते थे। इससे जगत बाबू भी उन्हें पंडित जी ही कहा करते थे। सविता ने श्वसुर की इस बात का कोई उत्तर नहीं दिया। उसी दिन उसके पास माता की चिट्ठी आई थी। श्वसुर से बातचीत करने के बाद उसने माता के पत्र का उत्तर लिख दिया। उसने लिख दिया कि बाबू जी ने अनुमति दे दी है। अब मेरे आने में कोई भी बाधा नहीं है। तुम लोगों में से कोई आकर मुझे ले जा सके तभी मैं आ सकूँगी। परन्तु क्या नाना जी आ सकेंगे ? यदि वे आ सकें तो उन्हीं को भेज देना, वे आकर मुझे ले जायँगे। बाबू जी आपत्ति न करेंगे।

तीन-चार दिन के बाद ही सविता के नाना का पत्र आ गया। उन्होंने लिखा था कि तीन-चार दिन के भीतर ही मैं सविता को देखने के लिए आऊँगा। बुलाने के लिए आऊँगा, यह लिखने का साहस वे नहीं कर सके।

नाना की चिट्ठी पाकर भी सविता प्रसन्न नहीं हो सकी। उस समय उसका हृदय पुलक की चिन्ता से व्याकुल था। उस समय वह यही सोच रही थी कि पता नहीं, पुलक वहाँ कैसा है। उसका अभी तक कोई समाचार क्यों नहीं आया ?

इस घर में सविता विवाह के दिन जब आई थी तब से लेकर आज तक वह एक ही भाव से अपना जीवन व्यतीत करती आई है। उसकी रहन-सहन और मनोभाव में कोई परिवर्तन नहीं हुआ। केवल सास के अभाव में नौकर-नौकरानियों की देख-रेख करना भर वह अपना कर्तव्य समझने लगी थी। उन लोगों को बात बात के लिए सरकार के पास तक पहुँचना उचित नहीं मालूम पड़ता था, इससे उन सबकी प्रार्थनायें और शिकायतें सविता को ही सुननी पड़ती थीं। एक नौकरानी को ज्वर हुआ था। इससे वह चार-पाँच दिनों से आती नहीं थी। उसका काम सविता ने एक दूसरी नौकरानी के ज़िम्मे कर रक्खा था।

एक सात-आठ वर्ष की बालिका को साथ में लिये हुए वही नौकरानी शायद सविता के ही पास जा रही थी। किसी ने उसे पुकार कर पूछा—क्यों रे काढ़ू, मुन्नी को कहाँ लिये जा रही है ?

स्वर धीमा करके काढ़ू ने कहा—ऊपर बहू जी के पास।

"क्यों रे ?"

"इसकी माँ बहुत ही बीमार है। थोड़े से रुपये चाहिए।"

"दूर अभागी ! तो बहू जी के पास क्या रक्खा है ?" यह कह कर उसने गले का स्वर धीमा कर लिया।

तब उसने कहा—जब से वे आई हैं तब से आज तक एक पोस्टकार्ड तक तो कभी उन्हें ख़रीद देखा नहीं मैंने। भला वे क्या दान करेंगी ?

गले का सतर्क स्वर और भी धीमा करके दो-एक बात करने के बाद काढ़ू लड़की को लिये हुए ऊपर सविता के पास चली गई। लड़की का मुँह एकदम सूख गया था। कपड़े भी वह बहुत ही फटे और मैले पहने हुई थी। उसकी

दुःखमय अवस्था को देखकर सविता को बड़ी दया आई। परन्तु उसे वह कुछ दे तो सकती नहीं थी। सचमुच उसके पास कुछ नहीं था।

यह दुरवस्था सविता को मन ही मन चाहे कितना ही दुखी क्यों न करती, किन्तु एक पैसा देकर भी उसका दुख दूर करने की शक्ति उसमें नहीं थी। अपनी इस असमर्थता के कारण सविता के स्वयं अपने ही नेत्रों में जल आ रहा था।

लड़की ने पहले हाथ फैला कर रुपया माँगा। बाद को एक रुपया मिलने की आशा न देखकर कादू की शिक्षा के अनुसार उसने कहा—अच्छा, आठ ही आने दीजिए। अन्त में जब आठ आने मिलने की भी आशा न रही तब उसने कहा—अच्छा, आपकी जो इच्छा हो वही दे दीजिए।

सविता ने मलिन मुख से कहा—मैं तो कुछ दे नहीं सकती हूँ। तुम बाबू जी के पास जाओ, वे तुम्हें देंगे।

सूखे हुए मुँह से लड़की ने कहा—मुझे जो कुछ देना हो, आप ही दे दीजिए।

सविता बड़े संकट में पड़ गई। उसके यह कहने पर भी कि मेरे पास कुछ नहीं है, ये लोग विश्वास नहीं करना चाहते थे। बहुत अनुनय-विनय करने और रोने-धोने के बाद भी लड़की जब कुछ नहीं पा सकी तब उसे लेकर लौटते लौटते कादू ने अस्पष्ट स्वर में कहा—बाप रे! कितने कड़े दिल की है यह स्त्री!

क्षण भर के बाद ही कादू सविता के पास फिर लौट कर आई। उसने कहा—क्यों बहू जी, यदि कहें तो यह आपकी फटी धोती उसे दे दूँ।

सविता ने कहा—नहीं, नहीं, उसे मत दो। उसे लेकर वह क्या करेगी?

"आपके किसी काम की तो है नहीं यह?"

"न सही। परन्तु वह बहुत फटी जो है।"

जो वस्तु किसी काम की नहीं रह गई थी, उसी को देकर अपनी असमर्थता पर पर्दा डालने और अपने आपको दानी कहलाने की इच्छा उसे नहीं हुई।

कादू ने कहा—तो क्या उसे भैया साहब के पास भेज दूँ? सम्भव है कि वे कुछ दया कर सकें। इसकी माँ की दुर्गति मैं देख आई हूँ। उजाड़ घर में पड़ी है वह। चारों ओर से ठंढी हवा आती है। ऊपर से ओस भी पड़ती है। घर में मुट्ठी भर भूसी-चोकर भी नहीं है कि वही मुँह में डालकर पानी पी ले। तिस पर भी वह ज्वर के मारे अचेत है। आप लोग बड़े आदमी हैं बहूरानी। ऐसी अवस्था कभी आँख से देखी नहीं है। देखने पर दया आये बिना नहीं रह सकती। तो क्या कहती हो? भेज दूँ उसे भैया साहब के पास?

सविता ने सोचा, वे कुछ दें या न दें, उनसे यदि वह भिक्षा माँगने के लिए जाना चाहती है तो उसे मैं रोकूँ क्यों? इससे उसने कहा—तो तुम ले जा सकती हो। किन्तु कादू उस लड़की को लेकर जैसे ही सविता के सामने से हटी, वैसे ही वह मन ही मन शङ्कित होकर खिड़की के पास जाकर खड़ी हो गई। उसने सोचा, मैंने भेजा है, यह सोच कर कहीं वे बुरा न मान जायँ।

भय और लज्जा के मारे सविता का मुँह सूख गया। क्षण भर में उसे भय होता कि कहीं वे कादू को डाँट-कर लौटाल न दें।

बाहर बरामदे में बैठा हुआ अरुण अखबार पढ़ रहा था। कादू को देखकर उसने सोने के चश्मे के भीतर से हँसी से उज्ज्वल दोनों नेत्रों को उठाकर कहा—क्या है?

लड़की ने अरुण को दण्डवत् प्रणाम किया। कादू ने उसकी विपत्ति का हाल बतलाया। उसने कहा—यह कुछ भिक्षा चाहती है?

अरुण ने कहा—भिक्षा आदि मैं तो कुछ देता नहीं हूँ, मेरे पास क्यों ले आई हो इसे। इसे तुम भीतर ले जाओ।

"बहू जी ने आपके ही पास भेजा है। उन्होंने कुछ नहीं दिया। इसकी माँ ने आपके यहाँ बहुत दिनों तक काम किया है, बाबू जी! अब वह बेचारी मृत्यु के मुख में जा रही है।"

अखबार रखकर अरुण भीतर से एक रुपया ले आया और लड़की के हाथ पर रख कर उसे विदा कर दिया। बाद को वह फिर अखबार पढ़ने लगा।

कादू से यह बात सुनकर सविता ने शान्ति की साँस ली। उस लड़की की दुरवस्था के कारण उसके हृदय को जो पीड़ा हो रही थी उससे भी वह मुक्त हो गई। इसके लिए मन ही मन उसने अरुण के प्रति कृतज्ञता भी प्रकट की।

(क्रमशः)

जागृत नारियाँ

कन्याओं की एक आदर्श संस्था

लेखक, श्रीयुत सन्त निहालसिंह

जाड़े का मौसम था। सूर्य भगवान् निर्मल नील गगन में चमक रहे थे। बादल का नाम न था। सुहावनी कोमल धूप हिमालय के चरणों पर सोना बखेर रही थी। दिन ढलने जा रहा था। टीन से छाये हुए छोटे-छोटे बँगलों के सामनेवाले खुले मैदान में छायायें अपने पैर फैलाने लगी थीं। ये बँगले एक ऊँचे टीले पर बने थे, जो अधिक ऊँचा होता हुआ आगे जाकर हिमालय की उँचाई से मिल गया था। इसी उँचाई पर मसूरी के सुधा-धवल सौध आकाश में जड़े हुए गुड़ियों के महलों की तरह दिखाई देते थे।

बँगलों के आँगन में कुछ कन्यायें टहल रही थीं। इन कन्याओं की संख्या २०० से कुछ ऊपर ही रही होगी। उनमें से कुछ तो मा की गोद को कुछ ही समय पहले छोड़कर आई थीं; कुछ सयानी थीं और कुछ उस अवस्था तक पहुँच रही थीं, जब माता प्रकृति अपने चिन्ताशील बच्चों में अदम्य दाम्पत्य भावना का उद्रेक करके उन्हें गृहस्थ की कठिन जिम्मेदारियों को प्रसन्नतापूर्वक वहन करने के लिए तैयार कर देती है।

इन सब कन्याओं में एक विशेषता थी। सब-की-सब प्रसन्न दिखाई देती थीं। जीवन में प्रसन्नता—अपनी उस वयोवृद्धा शिक्षिका के चरणों में बैठकर पढ़ने में प्रसन्नता, जो अपने अनुभवजन्य ज्ञान-द्वारा कन्याओं के शरीरों, मनों और मस्तिष्कों को एकरूपता के साँचे में ढाल देने का प्रयत्न कर रही हैं। जिससे वे संसार की जिम्मेदारियों का बोझ योग्यतापूर्वक और सम्मिलित रूप से उठाने में समर्थ हो सकें।

(२)

यह एक विद्यालय था जो हिमालय की घाटी-देहरादून में छिपा हुआ था। भारतीय ऋषियों का प्रतिष्ठापात्र हिमालय इसकी उत्तरी सीमा बनाता था और दन्दानदार पर्वतमालाओंवाला शिव का प्रिय शिवालक दक्षिणी; यह विद्यालय आश्रम के रूप में था। इसका नमूना किसी अभारतीय के मस्तिष्क की कल्पना न थी। इसके संस्थापकों को इसके निर्माण की प्रेरणा उस पांडित्य से मिली थी जो हिमालय की भाँति ही धवल व पुरातन है।

इस आश्रम से केवल दो घंटे की दूरी पर रिस्पाना नामक एक बरसाती धारा के किनारे वह गढ़ा दिखाई देता है जो महाभारतकाल के सबसे बड़े गुरु द्रोणाचार्य के चरणों से बना कहा जाता है।

मानव की तृष्णा ने दून के उस वन में; जो उक्त महागुरु के नाम से अब भी पुकारा जाता है। कुछ भी शेष नहीं छोड़ा है। उन दिनों यहाँ गुरु द्रोण के चरणों में बैठकर शिक्षा पाने के लिए संसार के कोने-कोने से शिक्षार्थी आया करते थे। उनमें चक्रवर्ती के राजकुमार भी होते
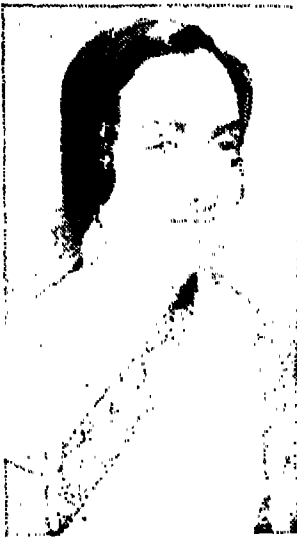
[कुमारी सरला बियाणी। आप भी माननीय बियाणी जी की द्वितीय कन्या हैं। आप इसी वर्ष मैट्रिक परीक्षा में द्वितीय श्रेणी में उत्तीर्ण हुई हैं।]

थे, मांडलिकों के पुत्र भी और साधारण भिखारियों की सन्तानें भी। प्रवेश-शुल्क के लिए वे लोग अपने हाथ से चुनी हुई समिधाओं का एक एक गट्ठा अपने-अपने कंधों पर रख कर लाया करते थे। इसका उद्देश्य यही था कि शिक्षा-प्राप्ति के दिनों में छात्रों के हृदयों में समाज या वर्ग-सम्बन्धी उत्कर्षापकर्ष न रह सके। यही गुरुकुल का प्रवेश-शुल्क था, यही शिक्षण-शुल्क। २५ वर्ष की अवस्था प्राप्त करने तक सब शिष्यगण गुरुदेव के पुत्र के रूप में रहा करते थे और उन्हें ब्रह्मचर्यपूर्वक समस्त शास्त्रों की शिक्षा देकर गृहस्थाश्रम के लिए तैयार किया जाता था।

(३)

जब कन्यायें उस बरामदे से उठकर, जहाँ वे अपने दोपहर के भोजन के पश्चात् बैठकर बातचीत कर रही थीं, खेलने के मैदान की ओर चलीं तब उनमें फ़ौजी अनुशासन का कोई लक्षण मुझे दिखाई न दिया। वे किसी ड्रिल-मास्टर के आदेश पर पंक्ति बना कर नहीं चलती थीं। वे छोटे-छोटे झुंडों में चल रही थीं। उनके हँसने-बोलने की संगीत-ध्वनि में पदचाप का शब्द छिप जाता था। उनके लिए न कोई बाधा थी, न अधिकार का मिथ्या प्रदर्शन; फिर भी किसी प्रकार की उच्छृंखलता देखने में न आती थी।

सभी कन्यायें शुद्ध खद्दर की गेरुए रंग की साड़ियाँ पहने थीं जो उनके ब्रह्मचर्य व्रत की परिचायक थीं। साड़ियाँ स्वच्छ थीं और उनसे कषाय की सुगंध आ रही थी। इन्हें देखकर मुझे गुरु द्रोण के समय की याद आगई जब कि, शायद इसी स्थान पर, सम्राटों और भिक्षुकों के पुत्र वल्कल वस्त्र पहन कर एक साथ चलते होंगे। सभी लड़कियाँ—चाहे वे सम्पन्न से सम्पन्न घरों से आई हों या कंगालघरों से—एक जैसे वस्त्र पहने थीं। कोई लड़की धनिक की है, इसलिए वह अधिक क़ीमती व सुन्दर कपड़े पहनती है और कोई लड़की ग़रीब घर की है इसलिए उसके कपड़े सस्ते हैं, इस प्रकार का कोई विभेद यहाँ नहीं था। न यहाँ कोई लड़की अपव्यय ही कर सकती थी। क्योंकि वस्त्र-भोजन आदि सभी वस्तुएँ उन्हें आश्रम की ओर से, और एक-सी ही, दी जाती थीं।

[कुमारी कमला बियाणी। आप विदर्भ प्रांतीय कांग्रेस के प्रधान श्री ब्रजलाल बियाणी की ज्येष्ठ कन्या हैं। इस वर्ष आपने मैट्रिक की परीक्षा पास की है।]

(४)

लड़कियों के भोजन की सादगी का भी मुझ पर काफ़ी प्रभाव पड़ा। शुद्ध शाकाहारी भोजन था। न वहाँ पकवानों की विचित्रता थी, न खाद्य-वस्तुओं की संख्या का बाहुल्य; चटनी आदि की तो बात ही क्या, नमक का प्रयोग भी यथासंभव अधिक नहीं किया जाता था। फिर भी, जैसा कि मुझे चखने से ज्ञात हुआ, भोजन स्वादिष्ट था। भोजन का मूल उद्देश्य यह था कि लड़कियों को ऐसा भोजन मिले जिससे उनके शरीर और मन का पूर्ण

विकास हो, पर वासनाओं को उत्तेजन या भोजन न मिले।

भोजन एक महिला की देख-रेख में बनता था। यह महिला दुःख की भट्ठी में तपकर पवित्र हो चुकी है। कुछ स्वयंसेविकाएँ इस कार्य में उनकी सहायता करती हैं। परोसने का काम कन्यायें बारी-बारी से करती हैं। भोजन की थालें प्रायः पीतल या काँसी की हैं। न चीनी मिट्टी के प्याले हैं न काँच के गिलास। न छुरी-काँटे की ही कोई ज़रूरत है। स्वाद की विभिन्नता भी नहीं दिखाई दी। पकौड़ीवाले की भी कोई दूकान पास में नहीं है।

(५)

लड़कियों के खेल एक हरे-भरे मैदान में हो रहे थे। कुछ लड़कियाँ तख्ते की ढेंकली पर झूल रही थीं; कुछ झूले पर पेंगें भर रही थीं; कुछ रस्सियाँ कूद रही थीं; कुछ फरी-गदका का अभ्यास कर रही थीं। सबसे अधिक आकर्षक छुरे का खेल था। एक लड़की दूसरी पर छुरे से वार करती थी और दूसरी हस्तलाघव दिखाकर उसकी कलाई पकड़ लेती थी। निस्सन्देह यह अभ्यास आत्मरक्षा के लिए बड़ा आवश्यक था।

अगले दिन मैंने कन्या-गुरुकुल का शिक्षालय देखा। आचार्य जी से मुझे ज्ञात हुआ कि शिक्षा यहाँ बिलकुल मुफ़्त दी जाती है। न दाख़िले की फ़ीस ली जाती है और न शिक्षा की। किताबों, कापियों, ड्राइंग की कापियों और औज़ारों के लिए भी कुछ नहीं लिया जाता। लड़की का अभिभावक प्रतिमास २५) भेजता है। इसी में छोटी बच्चियों से लेकर कालिज तक की लड़कियों का ख़र्च चलता है। शिक्षा का माध्यम हिन्दी है। सभी प्रान्तों की लड़कियाँ यहाँ तक कि दक्षिण की लड़कियाँ भी, हिन्दी ही बोलती हैं। मैंने एक तामिल लड़की को देखा जो केवल ३ महीने के अभ्यास से ही हिन्दी को ऐसी उत्तमता से बोलने लगी थी मानों वह उसकी मातृ भाषा हो।

स्वर्गीया श्रीमती मंगलादेवी बालपुरी—श्रीयुत अन्नपूर्णानन्द की पुत्री थीं। आप हिन्दी की सुलेखिका थीं।

७-८ वर्ष की लड़कियाँ इस गुरुकुल में भर्ती की जाती हैं। १६ वर्ष की आयु तक उनका स्कूल का कोर्स समाप्त हो जाता है। स्कूल का कोर्स 'अधिकारी' कोर्स कहलाता है। इसे समाप्त करने से पहले कोई लड़की अपने घर नहीं जाने पाती। उसके अभिभावक आकर उसे गुरुकुल में ही देख जाते हैं। अभिभावकों के ठहरने की यहाँ व्यवस्था कर दी गई है। क्लास प्रायः खुले मैदान में लगते हैं। अध्यापिकायें भारत के विभिन्न प्रान्तों की हैं। उनमें गुजराती, पंजाबी, युक्त-प्रान्तीय, महाराष्ट्र, दक्षिणी सभी हैं। उनको अपना विषय हिन्दी-द्वारा पढ़ाना होता है।

अन्य विषयों की आवश्यक शिक्षा के साथ-साथ संस्कृत की सभी शाखोपशाखाओं की शिक्षा यहाँ दी जाती है। काम लायक़ अँगरेज़ी भी पढ़ा दी जाती है। संसार की परिस्थितियों के विषय में यहाँ की लड़कियों की जानकारी देखकर मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ। एक कन्या से मैंने फ़िलिपाइन्स के स्वतन्त्रता के प्रयत्नों के विषय में प्रश्न किया तो उसने ऐसा अच्छा उत्तर दिया जैसी की आशा हम विश्वविद्यालयों के छात्रों से भी नहीं कर सकते थे।

भारत के प्रसिद्ध शिक्षाशास्त्री स्वर्गीय आचार्य रामदेव जी का उद्देश्य इस संस्था के स्थापन में यह था कि कन्या को भारतीय प्रणाली-द्वारा शिक्षा देकर योग्य माता और गृहिणी बनाया जा सके।

इसी अभिप्राय से पाठ्य-क्रम में जहाँ राजनीति आदि है वहाँ सिलाई, कढ़ाई, बुनाई, भोजन और शिशुपालन भी है। आचार्य जी के निधन के पश्चात् इस संस्था का सारा भार श्रीमती विद्यावती सेठ बी० ए० पर आ पड़ा है। आप आचार्य जी के सामने से ही, लगभग संस्था के आरम्भकाल से ही, इसकी प्रिंसिपल हैं। आप अवैतनिक रूप से ही संस्था की सेवा कर रही हैं। हमें आशा है कि आपके हाथों में यह संस्था दिन-प्रति-दिन उन्नति ही करती जायगी।

मुस्लिम लीग का गप्पाष्टक

लेखक, पंडित वेंकटेश नारायण तिवारी

कांग्रेस के जन्म ही से कुछ हिन्दू और मुसलमान सज्जन तत्कालीन कुछ सरकारी अफ़सरों के इशारे पर उसका विरोध करने लगे। इन विरोधियों में सर सैयद अहमद ख़ां और राजा शिवप्रसाद के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। सर सैयद ने अपने कांग्रेस-विरोधी आन्दोलन के संचालन में बहुत बड़ी सफलता प्राप्त की। कांग्रेस से मुसलमानों को अलग रखने के लिए सर सैयद अहमद और उनके अनुयायियों ने कई कपोलकल्पित बातों का प्रचार किया। और दुख के साथ हमें यह स्वीकार करना पड़ता है कि यद्यपि इन मनगढंत किंवदन्तियों का मुसलमान-समाज में बड़ी तत्परता के साथ "प्रचार हुआ है, लेकिन राष्ट्रवादियों ने उनके खण्डन या निराकरण का कोई संगठित रूप से प्रयत्न नहीं किया। इसका नतीजा यह हुआ कि मुसलमान जनता और मुसलमान नेता सर अहमद ख़ां की गप्पों को आज दिन सत्य मान कर दोहराते हैं। इन्हीं निःसार और अनर्गल गप्पों को लेकर मुस्लिम लीग ने पिछले तीन साल में सारे देश में तूफ़ान वर्षा कर दिया और राष्ट्रीय एकीकरण की प्रवृत्तियों को इतना धक्का पहुँचाया कि साम्प्रदायिक मनोमालिन्य मिटना बहुत ही कठिन और दुस्साध्य प्रतीत होने लगा।

× × ×

मुसलमान समाज में बहुत-से असत्य, सत्य के रूप में, हमें आज दिन मिलते हैं। लीग के हर जलसे में और उर्दू के हर अख़बार में इन्हीं गप्पों का प्रायः ज़िक्र आप पायेंगे। सब गप्पों की तालिका बनाना एक दुस्साध्य काम था—इसलिए मैंने उनमें से आठ गप्पों को चुन लिया है। वे ये हैं :—

१—हिन्दुस्तान में दो क़ौमें हैं—एक हिन्दू और दूसरी मुसलमान। हिन्दुस्तान में न कभी एक क़ौम थी और न कभी एक क़ौम हो सकती है।

२—मुसलमानों का इस देश में राजनीतिक महत्त्व है, क्योंकि उन्होंने हिन्दुओं पर एक हज़ार साल तक शासन किया है। शासक शासित की अधीनता को कदापि स्वीकार नहीं कर सकता। इसलिए अल्पसंख्यक होते हुए भी मुसलमानों को बहुसंख्यक हिन्दुओं के बराबर अधिकार मिलना चाहिए।

३—मुसलमानों की संस्कृति हिन्दुओं की संस्कृति से भिन्न है। उसके संरक्षण के लिए यह ज़रूरी है कि मुसलमानों को राजनीतिक क्षेत्र में विशेष अधिकार प्राप्त हों, ताकि उनकी संस्कृति पर किसी, प्रकार का हमला न हो सके।

४—सब मुसलमान एक हैं। अभी हाल ही में कांग्रेस के वर्तमान सभापति, मौलाना अब्दुल कलाम आज़ाद, ने लखनऊ में होनेवाले शिया-सुन्नियों के झगड़े को शान्त करने की ग़रज़ से एक वक्तव्य प्रकाशित किया था। उसमें आदरणीय मौलाना ने शिया-सुन्नियों को मेल करने का आदेश दिया था, यह कह कर कि मेल न करने से हिन्दुस्तान के मुसलमानों की एकता ख़तरे में आ जायगी। मुस्लिम लीगवाले भी सब मुसलमानों को लीग के झंडे के नीचे जमा होने के लिए यह कह कर उत्तेजित करते हैं कि हिन्दुओं के इस देश में सब मुसलमानों का यह फ़र्ज़ है कि वे अपने हम मज़हब का साथ दें। मुसलमानों की एक ही प्रतिनिधि संस्था है, और लीग ही एक ऐसी संस्था है जो हिन्दुस्तान के मुसलमानों की ओर से और उनके नाम पर इस मुल्क में रहनेवाले दूसरी क़ौम के साथ समझौता कर सकती है।

५—इस्लाम, प्रजासत्तात्मक है। जम्हूरियत या बहुमत, कहा जाता है, इस्लाम के नस नस में भरा हुआ है।

६—हिन्दुस्तान के प्रान्तों में कांग्रेसी हुकूमतों ने मुसलमानों पर तरह-तरह के अत्याचर किये।

७—हिन्दुओं की तुलना में मुसलमान ग़रीब हैं, इसलिए उनको आगे बढ़ाने के लिए हिन्दुओं को और प्रान्तीय सरकारों को उनके साथ विशेष उदारता का व्यवहार करना चाहिए। जितना दूसरी क़ौमों को दिया जाय उससे अधिक मुसलमानों को मिलना चाहिए क्योंकि मुसलमान दूसरों को देखते हुए ग़रीब हैं।

८—मुसलमान शिक्षा में पिछड़े हुए हैं; अतएव इनमें शिक्षा के फैलाने के लिए यह परमावश्यक है कि सरकार

मुसलमानों की तुलना पश्चिमोत्तर में रहनेवाले मुसलमानों से कीजिए, आपको प्रत्यक्ष मालूम होगा कि यद्यपि ये चारों मुसलमान सुन्नी हैं, एक ही खुदा की उपासना करते हैं, एक ही पैग़म्बर के अनुयायी हैं और एक ही धर्म-ग्रन्थ को ईश्वर का कलाम मानते हैं; लेकिन इन बातों में एकता होते हुए भी उनके दृष्टिकोणों में, उनकी मानसिक क्रियाओं और प्रतिक्रियाओं में, उनकी विचार-शैली में, उनके राग-विरागों में ज़मीन-आसमान का अन्तर है। हिन्दुस्तान के बाहर मुसलमान की स्वाधीन देशों में बसनेवाली अनेक जातियाँ भी यह दावा नहीं पेश कर सकतीं कि उन सबकी संस्कृति, बनावट एक है। ईरान, अरब, तुर्की, मंगोल, फ़िलिस्तीन, ईराक़, मिस्र, चीन और जापान के मुसलमानों का सांस्कृतिक ढाँचा एक-दूसरे से बिलकुल नहीं मिलता-जुलता। इस सूबे की संस्कृति में उतना ही मौलिक अन्तर है जितना मौलिक अन्तर हमको मिलता है योरप और अमरीका में बसनेवाली ईसाई-जातियों की संस्कृति के ढाँचों के आकार-प्रकार में। वास्तविक बात यह है कि संस्कृति के अर्थ ही को हमने अभी तक ठीक-ठीक समझने की चेष्टा नहीं की है। संस्कृति का सही अर्थ है किसी जातिविशेष का दृष्टिकोण-सम्बन्धी अनोखापन। इस अनूठेपन के सृजन में जहाँ तक धर्म का काफ़ी हाथ है वहाँ उस जातिविशेष के निवास-स्थान, उसके ऐतिहासिक विकासक्रम, उसके महापुरुषों और दार्शनिकों के आदेश-आचार। अँगरेज़ नेलसन फ़्रांस के नेपोलियन से भिन्न है। नेलसन का फ़्रांस में उत्पन्न होना असम्भव था, वैसे ही इँगलेंड में नेपोलियन का जन्म लेना असम्भव था। हिन्दुस्तान के मुसलमान तो हिन्दुस्तान ही की उपज हैं। यहीं की मिट्टी के वे पुतले हैं, इस देश के जल-वायु से उनका भरण-पोषण हुआ है। काल की गति से समान रूप से इस देश में रहनेवाले हैं। चाहे वे हिन्दू, ईसाई या मुसलमान हों एक रूप से प्रभावित परिमार्जित, परिष्कृत और विकसित होते चले आये हैं। जाति के संघर्ष और भौतिक भेद ने हम सबको समान रूप से पीड़ित और जर्जरित किया है। ऐसी दशा में यह कहना कि युक्तप्रान्त के मुसलमानों का मानसिक दृष्टिकोण युक्तप्रान्त के रहनेवाले हिन्दुओं के मानसिक दृष्टिकोण से भिन्न है, सरासर अनर्गल बात का प्रचार करना है। बंगाल के हिन्दू और मुसलमानों में इतनी व्यापक समानता है कि दोनों बंगाल से हज़ारों मील दूर क्यों न चले जायँ किन्तु वास्तव में दोनों को देख कर बरबस यह कहना पड़ता है कि दोनों एक ही देश के रहनेवाले हैं और दोनों की संस्कृति भी समान है।

इस सम्बन्ध में हम अपना खेद प्रकट किये बिना नहीं रह सकते कि रामगढ़ में होनेवाले कांग्रेस के अधिवेशन में कांग्रेस के सभापति, सम्मानास्पद मौलाना अब्दुल कलाम आज़ाद, ने मुस्लिम संस्कृति की महत्ता के विषय में जो कुछ कहा, उसको पढ़ने से मुसलमान संस्कृति की विभिन्नता की भावना को प्रोत्साहन मिलने की अधिक सम्भावना है। हमको अचरज है कि राष्ट्रवादी मौलाना ने इस तरह की अनैतिहासिक बातें कैसे कहीं। मौलाना बहुश्रुत हैं, बड़े विचारशील हैं और उनका दृष्टिकोण दार्शनिक है। यदि मौलाना साहब भी इस तरह की निर्मूल बातों को सही मानकर उनका प्रचार कर सकते हैं तो यह कौन अचरज की बात है कि हमारे अनपढ़ मुसलमान भाई इन मौलाना साहब की बात को लेकर देश में साम्प्रदायिक मनमुटाव के फैलाने का प्रयत्न करते फिरें। मुस्लिम संस्कृति के विषय में मौलाना साहब ने जो कुछ कहा, वह मि० जिन्ना के एतद्विषयक कथनों से किसी प्रकार भिन्न नहीं है। मौलाना साहब कांग्रेस के सभापति हैं। श्री पं० जवाहरलाल नेहरू भी तीन वर्ष तक कांग्रेस के सभापति रह चुके हैं। मुस्लिम संस्कृति के सम्बन्ध में इन दोनों ही आदरणीय सज्जनों की सम्मतियों को आमने-सामने रख लीजिए और आपको तुरन्त मालूम हो जायगा कि राष्ट्रीय और साम्प्रदायिक दृष्टिकोणों में कितना व्यापक अन्तर है। दोनों की प्रेरणायें भिन्न, दोनों की दिशायें भिन्न।

× × ×

मुस्लिम लीग की चौथी गप यह है कि सब मुसलमान एक हैं। यह भी एक राजनीतिक कपोलकल्पना है। जैसे हिन्दुओं में वैसे ही मुसलमानों में भी अनेक जातियाँ हैं। जैसे हिन्दुओं में वैसे ही मुसलमानों में अनेक सम्प्रदाय हैं। जैसे हिन्दुओं में वैसे ही मुसलमानों में भी स्थानभेद के साथ-साथ सामाजिक रहन-सहन में अन्तर है। ऐसी दशा में सब मुसलमानों की एकता का दावा पेश करना जानकारों की आँखों में धूल झोंकना है। लखनऊ के शिया-सुन्नियों के

झगड़े ने इस बात को अच्छी तरह से प्रकट कर दिया है कि जिस निन्दनीय निष्ठुरता का अनुभव हमें हिन्दू-मुस्लिम दंगे के दिनों में हुआ करता है उसी निन्दनीय निष्ठुरता के साथ शिया और सुन्नी भी हमें एक-दूसरे के ख़ून के प्यासे लखनऊ की गलियों में फिरते हुए दिखाई देते हैं। ऐसी दशा शोचनीय है। वह सचमुच अभागा देश होगा जो इस तरह के फ़साद को देखकर प्रसन्न हो सकता है। लेकिन इन झगड़ों से मुसलमानों की एकता का दावा एकदम से निर्मूल सिद्ध हो जाता है, और इससे यह प्रकट हो जाता है कि हिन्दू-मुसलमानों के झगड़ों से यह नतीजा निकालनेवाले ग़लती करते हैं कि हिन्दू और मुसलमान जुदा-जुदा हैं और सब मुसलमान एक हैं।

× × ×

यह भी कहा जाता है कि इस्लाम प्रजासत्तात्मक है और मुसलमान जम्हूरियत के सिद्धान्त में विश्वास करते हैं। इस्लाम के इतिहास को ले लीजिए। ख़िलाफ़त की तवारीख के पन्ने उलट जाइए, इस्लामिक देशों की कहानियों का अध्ययन कीजिए। हिन्दुस्तान ही में परदेशी मुसलमानों के शासनों को देखिए या इस मुल्क में जो मुस्लिम रियासतें क़ायम हैं उनके शासन-विधान की आलोचना कर डालिए और आपको मुस्लिम लीग के इन दावों की असत्यता का पता आसानी से लग जायगा। इस्लाम, ईसाई-धर्म और हिन्दू-धर्म के आदि प्रवर्तनों की प्रेरणायें कुछ रही हों और उन्होंने उपदेश कितने ही पावन क्यों न किये हों लेकिन मानव हिंसा और स्वार्थ, उनके उपदेशों को अपने मार्ग का रोड़ा समझ कर, उनकी अवहेलना करता और अनियंत्रित सत्ता का षड्यंत्र रच कर अपने सहवासियों को अपनी स्वेच्छाचारिता का दास बनाने से कदापि नहीं हिचकता। मुस्लिम लीग भी तो यह कहती है कि हिन्दुस्तान का जलवायु प्रजासत्ता के लिए प्रतिकूल है। यदि इस्लाम की बुनियाद जम्हूरियत के उसूल पर रक्खी गई है तो इस देश में प्रजासत्तात्मक शासन-विधान के सबसे प्रबल समर्थक हिन्दुस्तान के मुसलमानों को होना चाहिए था। लेकिन मि० जिन्ना और उनके साथी पुकार पुकार कर कहते फ़िरते हैं कि हिन्दुस्तान में प्रजासत्तात्मक राज्य की स्थापना सर्वथा असम्भव है। इन दोनों ही प्रकार के कथनों में कितना गहरा विरोध है! दौड़ते हुए भी कोई आदमी इस विरोध को देख लेगा—

मन्दिर मसजिद सबके अन्दर,
राज गुलामी करती है।
दौलत घर का नाम ख़ुदा का,
घर-घर धरना धरती है।

क्या इस्लाम और क्या हिन्दू-धर्म, क्या ईसाई-धर्म और क्या पारसी-धर्म—सब धर्म समाज के साम्पत्तिक विकास के लक्षण-मात्र हैं। साम्पत्तिक परिवर्तनों-द्वारा ही जैसे राजनीति के वैसे ही धर्म के तात्कालिक स्वरूप का निरूपण हुआ करता है। इसी लिए मध्य कालीन युग में जब जागीर-वादियों का बोलबाला था, धर्म भी मनसबदारों और जागीरदारों का पिछलगुआ बना हुआ समरथों का सेवक बना फ़िरता था। ज़ार के रूस में ईसाई-धर्म ज़ार की अन्तर्गत सत्ता का सबसे बड़ा समर्थक और रक्षक था। अष्टम हेनरी के इँगलेंड का धार्मिक विप्लव हमारे ऊपर के कथन के पक्ष में एक प्रमाण है। हिन्दुस्तान के मुसलमान उतने ही प्रजासत्तात्मक हैं जितनी हिन्दुस्तान की अन्य मतावलम्बिनी जातियाँ हैं।

× × ×

कांग्रेस-हुकूमत के अत्याचारों की भी पिछले ढाई साल से काफ़ी धूम रही। मुस्लिम लीग के भक्त, जिनमें बंगाल के प्रधान मंत्री मि० फ़ज़लुलहक़ का सबसे ज़्यादा स्थान है, सोते-जागते यह रट लगाये रहते हैं कि कांग्रेसी प्रान्तों में हिन्दुओं और हुकूमतों ने अपने प्रान्तों में रहनेवाले अल्पसंख्यक मुसलमानों के साथ तरह तरह के अत्याचार करने में कोई कोर-कसर नहीं उठा रक्खी। दिसम्बर सन् १९३९ में मि० हक़ ने मुसलमानों पर किये गये अत्याचारों की एक फ़िहरिस्त अख़बारों में प्रकाशित कराई थी। उनकी इस फ़िहरिस्त में युक्त-प्रान्त का भी ज़िक्र है। मि० हक़ ने उन ३३ स्थानों का ज़िक्र किया है जिनमें उनके अनुसार कांग्रेसी हुकूमत के ज़माने में मुसलमानों के साथ अन्याय, अत्याचार और दुर्व्यवहार किये गये थे। इन ३३सों इलज़ामों की युक्त-प्रान्त की लेजिस्लेटिव पार्टी ने दफ़्तर में जाँच की और इस जाँच के आधार पर मैं दावे के साथ यह कहने के लिए तैयार हूँ कि युक्त-प्रान्त के विषय में मि० हक़ ने जो कुछ

कहा है वह एकदम ऊलजलूल, असत्य और भ्रान्तिमूलक है। जिसका जी चाहे कांग्रेस-कमेटी के दफ़्तर में जाकर इन सब तमाम कागज़ों को देख ले। उदाहरण के लिए टाँडा के मामले को ले लीजिए। टाँडा फ़ैज़ाबाद के ज़िले में एक क़स्बा है। वहाँ के मुसलमानों ने हिन्दुओं के साथ बलप्रयोग किया और उनके क़ानूनी स्वार्थों पर नाजायज़ तरीक़े से हमला करने पर वे उतारू हो गये। ज़्यादती मुसलमानों की थी। हाकिमों ने उनको रोकने की भरसक चेष्टा की। लेकिन जब बलवाइयों ने उनकी एक न सुनी बल्कि उल्टे पुलिस पर ईंटें फेंकने शुरू किये तब आत्मरक्षा और शान्तिस्थापना की दृष्टि से पुलिस ने उन साधनों का प्रयोग किया, जिनके द्वारा ऐसे अवसरों पर दंगा शान्त किया जाता है। टाँडा के दोषी मुसलमानों के बचाने के लिए मुस्लिम अख़बारों ने एक स्वर से यह आवाज़ उठाई कि टाँडा के मुसलमानों के साथ अकथ्य अत्याचार का व्यवहार किया गया और जो लोग निरीह और निरपराधी थे उनको पुलिस ने बड़ी बेरहमी और बेदर्दी के साथ सताया। तीन अदालतों के सामने यह टाँडा का मामला गया। सफ़ाई के वकीलों ने तीनों ही अदालतों के सामने बड़ी ही योग्यता और निर्भीकता के साथ टाँडा के मुसलमानों के इस दावे को रक्खा कि वे वास्तव में निरपराधी हैं और सारा दोष सरकारी कर्मचारियों का था। लेकिन तीनों ही अदालतों ने उनके इस दावे को असत्य माना और अपने फ़ैसले में तीनों ही अदालतें यह लिखने के लिए मजबूर हुईं कि ज़्यादती टाँडा के मुसलमानों की थी जो क़स्बे के हिन्दुओं के सार्वजनिक रास्तों पर अपने धार्मिक जुलूस निकालने के सारे अधिकारों को बलात्कारपूर्वक रोकना चाहते थे। इस तरह के और कई स्थानों के साम्प्रदायिक झगड़ों के विषय में अदालतों के फ़ैसलों से मुसलमानों की ज़्यादतियों का उल्लेख मिलता है। यदि विस्तारपूर्वक इन तमाम घटनाओं का उल्लेख किया जाय तो एक स्वतंत्र ग्रन्थ रचने की आवश्यकता होगी। लेकिन इसकी यहाँ पर कोई ज़रूरत नहीं। ज़रूरत तो सिर्फ़ इस बात पर ज़ोर देने की है कि मुस्लिम लीग ने और ख़ास कर मि० फ़ज़लुल-हक़ ने जान-बूझकर सत्य का ख़ून करना अपना परम कर्तव्य समझ लिया है, जिससे कांग्रेसी सरकारें बदनाम हो जायँ और भयभीत होकर मुसलमानों के साथियों को ख़ुश करने की ग़रज़ से उनकी नाजायज़ माँगों को मानने के लिए अपने को मजबूर समझें। बदनामी करके अपना काम निकालने की प्रथा का आजकल योरप में काफ़ी मान बढ़ गया है। जिस देश पर जर्मनी ने हमला किया उसके शासकों और निवासियों को अमानुषिक अत्याचारी घोषित किया और तरह-तरह की रोमांचकारी और कपोलकल्पित घटनाओं का अख़बारों और रेडियो-द्वारा प्रकाशन शुरू कर दिया, ताकि लोकमत उत्तेजित हो जाय और नाज़ी-अत्याचार से पीड़ित देश के प्रति किसी के हृदय में नैतिक सहानुभूति का एक बूँद भी न मिले। इन्हीं उसूलों का अनुसरण मि० हक़ और दूसरे लीगी नेता कांग्रेसी सरकारों के सम्बन्ध में पिछले तीन सालों से करते चले आये हैं।

× × ×

सात और आठ के विषय में हमें कुछ विशेष कहने की ज़रूरत नहीं प्रतीत होती, क्योंकि इसके सम्बन्ध में हम दो स्वतंत्र लेखों में विस्तार के साथ लिख चुके हैं। यहाँ पर इतना ही कह देना काफ़ी होगा कि हिन्दुओं की तुलना में मुसलमानों की माली हालत ज़्यादा अच्छी है, और तालीम में भी मुसलमान हिन्दुओं से आगे बढ़े हैं। इसका अर्थ यह नहीं कि हमारे सूबे के औसत मुसलमानों की आर्थिक दशा, हमारी दृष्टि में, संतोषजनक है या उसमें सुधार की ज़रूरत नहीं है। लेकिन जैसे अमीरों में वैसे ही ग़रीबों में भी विभिन्न श्रेणियाँ हुआ करती हैं। कोई कम ग़रीब होते हैं, कोई ज़्यादा। किसी की दशा कुछ कम ख़राब होती है और किसी की कुछ अधिक। हमारे प्रान्त के औसत निवासियों की दशा योरप के समृद्धशाली देशों और अमेरिका के संयुक्त राष्ट्र के निवासियों की तुलना में बहुत ही हेय है। इसी तरह से शिक्षा के मामले में भी कमी है और मुसलमान अन्य देशों के निवासियों की तुलना में अभी बहुत पिछड़े हुए हैं। लेकिन इस अनुन्नत दशा में भी इस बात की तुलना करना सम्भव है कि दो सम्प्रदायों में से किसके अनुयायी दूसरों की तुलना में कम शिक्षित हैं। यह बात स्पष्ट है कि मुसलमानों में शिक्षा का प्रचार अधिक है और हिन्दुओं में कम।

१—झूठ-सच—लेखक, श्रीयुत सियारामशरण गुप्त, आकार डबल क्राउन १६ पेजी, पृष्ठ-संख्या २७५, मूल्य २)। पता—साहित्य-सदन, चिरगाँव, झाँसी।

श्री सियारामशरण गुप्त ने कविता लिखने में हिन्दी में अच्छी ख्याति प्राप्त की है। कविता के अलावा उन्होंने सफलता के साथ उपन्यास और कहानियाँ भी लिखी हैं। प्रस्तुत पुस्तक उनके २८ निवन्धों का संग्रह है, जो 'झूठ-सच' के नाम से प्रकाशित हुआ है।

निवन्धों का ध्येय पाठक में स्वतन्त्रता-पूर्वक सोचने की प्रवृत्ति जागृत करना है। इमर्सन के निवन्ध आज भी अमर हैं, क्योंकि उसने ऐसे विषयों को चुना है जो सब कालों और सब स्थानों के मनुष्यों को प्रिय हैं। प्रेम, कविता, इतिहास आदि विषयों पर इमर्सन ने निवन्ध लिखकर अपनी लेखनी को अमर किया है। बाबू सियारामशरण गुप्त के इन निवन्धों की इमर्सन से तुलना नहीं की जा सकती, क्योंकि इनके विषय बहुत कुछ इन्हीं के निजी अनुभवों पर अवलम्बित हैं। इस तरह के निवन्ध हालडेन ने लिखे हैं। लेकिन हालडेन के निवन्धों में भी एक प्रकार की व्यापकता है। उसने ऐसे साधारण विषय चुने हैं जिनका अनुभव किसी न किसी रूप में सब आदमियों को होता है। जैसे रोग, भूख, विज्ञान वगैरह।

यद्यपि बाबू सियारामशरण जी भी अन्य निवन्धकारों की भाँति यह स्वीकार करते हैं कि हमारे चारों ओर लोहे की जो गड़गड़ाहट हो रही है उसके बीच में गद्य का पौरुष ही खड़ा रह सकता है, तथापि वे अपने निवन्धों में इस सिद्धान्त का निर्वाह नहीं कर सके हैं। उनके कोई कोई निवन्ध जीवन-चरित और संस्मरण के चक्रव्यूह में फँस गये हैं। जैसे मुंशी जी जिसमें उन्होंने स्वर्गीय मुंशी अजमेरी का जीवन-चरित अंकित किया है। कोई कोई निवन्ध कहानी-मात्र रह गये हैं; जैसे झूठ-सच। यह एक मिस्त्री और मजदूर युवती की कहानी है, जो निवन्धकार की दृष्टि में युगल प्रेमी जान पड़ते हैं, लेकिन बाद को भाई-बहन साबित होते हैं। कहना चाहिए कि यह कहानी ही इस निवन्ध-संग्रह की जान है, क्योंकि इसी के नाम पर पुस्तक का नाम 'झूठ-सच' रक्खा गया है।

बाबू साहब ने निवन्धों के विषयों का चुनाव गम्भीरतापूर्वक नहीं किया। जब और जिस किसी बात का उनके ऊपर प्रभाव पड़ा उसी घड़ी उस पर क्षणिक उत्तेजना में वे एक निवन्ध लिख गये। अगर किसी कविता का शीर्षक उन्हें पसन्द नहीं आया तो एक निवन्ध उसी पर लिख दिया। अगर किसी अखबार में विज्ञापन छपा देखा कि मनुष्य दो सौ वर्ष तक ज़िन्दा रह सकता है तो उसे भी अपने निवन्ध का विषय बना डाला। अगर कोई अर्द्धशिक्षित ग़लत हिन्दी बोला तो उसको डाँटने के लिए भी आपने एक निवन्ध तैयार किया। अगर किसी कवि की पोशाक पर किसी कवि-सम्मेलन में किसी ने टिप्पणी कर दी तो वह भी आपके निवन्ध का विषय बना। कुछ औरतों को घूँघट निकाले चलते हुए आपने देखा तो एक निवन्ध में उनका भी पीछा किया। इस तरह इस पुस्तक में जितने भी निबन्ध संगृहीत हैं वे सब लेखक की क्षणिक उत्तेजना पर आश्रित हैं और पाठक के सामने बजाय गम्भीर चिन्तन के उथली सामाजिक समालोचना की सामग्री प्रस्तुत करते हैं। लेकिन इसका यह अर्थ नहीं है कि ये निवन्ध व्यर्थ हैं। इन पर उनके कवि-जीवन की छाप है। प्रायः सभी निबन्ध सुपाठ्य हैं, रोचक हैं, और लेखक के व्यक्तिगत जीवन पर प्रकाश डालते हैं। इसलिए मैं इस निवन्ध-संग्रह की प्रशंसा करता हूँ।

—श्रीनाथसिंह।

२—आनन्द-शब्दावली—संकलनकर्ता, श्री रामचन्द्र वर्मा और प्रकाशक, शिक्षा-विभाग, विलासपुरराज्य, शिमला हैं। मूल्य लिखा नहीं है। पृष्ठ-संख्या ८३ है।

प्रस्तुत पुस्तक 'विलासपुर-नरेश श्रीमान् महाराज आनन्दचन्द जी की आज्ञा तथा सूचनाओं के अनुसार

तैयार की गई है। इसमें कुल ७५०० शब्दों का संग्रह किया गया है। शब्दों का संकलन इस बात का ध्यान रखकर किया गया है कि सभी शब्द प्रचलित हों तथा जिनकी क्रमशः जानकारी से बालक का हिन्दी-ज्ञान क्रमशः उन्नति करता जाय। पुस्तक की एक विशेषता यह भी है कि इसमें सभी विभागों के प्रायः खास-खास शब्द ले लिये गये हैं। पुस्तक का उद्देश्य प्रारम्भिक शिक्षा की रीडरें लिखनेवाले लेखकों की सहायता करना है। बहुधा ऐसा देखा गया है कि जहाँ प्रारम्भिक पुस्तकों में कुछ कठिन शब्द आ जाते हैं, वहाँ ऊँचे दर्जों में एक प्रकार से नये शब्दों का अभाव-सा ही रहता है। परिणाम यह होता है कि बालकों को पढ़ने में तो कठिनाई पड़ती ही है, साथ ही उनके शब्दज्ञान का विकास यथेष्ट नहीं हो पाता है। हिन्दी में इस प्रकार की यह पहली पुस्तक है। आशा है, हिन्दी-रीडरों के लेखक इस पुस्तक का उपयोग करके अपनी लिखी रीडरों को अधिक क्रमविकसित व उपयोगी बना सकेंगे।

३—संतवाणी—संग्रहकर्त्ता, श्री वियोगी हरि हैं। प्रकाशक, सस्ता-साहित्य-मंडल, दिल्ली है। मूल्य ॥) है। पृष्ठसंख्या १६५ है।

संतों की रचनाओं का हिन्दी-साहित्य में प्रमुख स्थान है। तुलसी, कबीर, दादू व मीरा की रचनायें हिन्दी-भाषियों की ज़बान पर रहा करती हैं। इस पुस्तक में ऐसे ही संतों की चुनी हुई वाणियों का संग्रह कर दिया गया है। इसे पढ़ने से सन्त-साहित्य का रसास्वादन हो जाता है। साहित्य के प्रेमियों के लिए पुस्तक पठनीय है।

४—हमारा समाज—लेखक, श्री गोरखनाथ चौबे, एम० ए० हैं, प्रकाशक, चाँद कार्यालय, प्रयाग हैं। मूल्य १) व पृष्ठसंख्या १२८ है।

भारतीय समाज समस्याओं का समाज है। हमारे सामने इस समय न जाने कितनी समस्यायें हैं, जिनको हमें सुलझाना है। परन्तु हमारी सबसे बड़ी कमज़ोरी यह है कि हम उन पर प्रकाश डालना नहीं चाहते। खासकर शिक्षित समाज का इस ओर से उदासीन होना चिन्ता की बात है। यही कारण है कि इस सम्बन्ध की पुस्तकों का एक प्रकार से हिन्दी में अभाव ही है जो समाज-शास्त्र के नियमों के आधार पर रची गई हों। प्रस्तुत पुस्तक के लेखक महोदय समाज-शास्त्र के अध्ययन-शील विद्यार्थी प्रतीत होते हैं। उन्होंने इसमें संवाद के रूप में हमारे समाज की अनेक समस्याओं पर प्रकाश डाला है। शैली रोचक है। समाज की गूढ़ से गूढ़ समस्या को सरल से सरल भाषा में समझाने का प्रयत्न किया गया है।

५—ढाई हज़ार अनमोल बोल—सम्पादक, श्री हनुमान-प्रसाद पोद्दार, प्रकाशक, गीताप्रेस, गोरखपुर हैं। मूल्य ॥=) और पृष्ठ-संख्या ३४५ है।

जैसा कि पुस्तक के नाम से स्पष्ट है, इसमें सभी जातियों, सम्प्रदायों और धर्मों के सन्तों के वचनों का संग्रह है। ये वचन दुःख में धैर्य बँधानेवाले, अन्धकार में मार्ग दिखानेवाले और जीवन-लक्ष्य तक पहुँचने का उपाय बतानेवाले हैं। नवयुवकों और युवतियों को ऐसे साहित्य का अध्ययन विशेष लाभकारी हो सकता है।

६—सत्यामृत—प्रणेता, श्री दरबारीलाल सत्यभक्त संस्थापक 'सत्य-समाज', प्रकाशक, श्री सूरजचन्द सत्यप्रेमी (डांगी), सत्याश्रम, वर्धा (सी० पी०) हैं। मूल्य १) व पृष्ठसंख्या २८१ है।

प्रस्तुत पुस्तक सत्य-समाज का धर्म-शास्त्र है। इस समाज का उद्देश्य साम्प्रदायिकता से दूर रहकर सत्य और प्रेम का प्रचार करना है। इस पुस्तक में मानव-जीवन की प्रायः सभी जटिल समस्याओं को सुलझाने का प्रयत्न किया गया है। गम्भीर से गम्भीर विषय को सरस तथा सुगम्य बनाने का प्रयत्न किया गया है। पुस्तक की भाषा साधारण बोल-चाल की है। सत्य, ध्येय, मार्ग, योग और लक्षण आदि की विचार-पूर्ण व्याख्या की गई है। पारिभाषिक शब्दों को भी सरल बनाया गया है। इस प्रकार 'सत्यामृत' केवल सत्य-समाजियों के ही काम की पुस्तक न होकर सभी धर्मवालों के अध्ययन करने योग्य है।

७—आत्मविलास—लेखक, स्वामी आत्मानन्द मुनि हैं। मिलने का पता द्वारकाप्रसाद लक्ष्मनदास, सुराई रोड, करांची शहर है। पृष्ठसंख्या ३५० है।

प्रस्तुत पुस्तक में प्रवृत्ति तथा निवृत्ति दोनों मार्गों का भले प्रकार विस्तार के साथ वर्णन किया गया है। हिन्दू दर्शन-शास्त्र के अनुसार मोक्षप्राप्ति के संसार में केवल ये ही दो मार्ग हैं। प्रत्येक व्यक्ति अपनी अपनी रुचि तथा

शक्ति के अनुसार किसी भी मार्ग का अनुसरण कर सकता है। लेखक ने 'पुण्य पाप की व्याख्या' में प्रवृत्ति-मार्ग और 'साधारण धर्म' में निवृत्ति-मार्ग की पूरी व्याख्या की है। इसके अतिरिक्त 'पामर पुरुष वर्णन', 'विषयी पुरुष', 'निष्काम जिज्ञासु', 'उपासक जिज्ञासु', 'तत्त्वविचार' आदि शीर्षकों के अध्याय पठनीय तथा विचारणीय हैं। पुस्तक का मूल्य कुछ भी नहीं, केवल ।≈) का टिकट डाक-व्यय के लिए भेजकर प्राप्त की जा सकती है। भाषा सरल तथा मनोरंजक है। ऐसे शुष्क विषय को मनोरंजक बनाने का लेखक महोदय ने पूरा प्रयत्न किया है।

८—मन की मनुहार—लेखक, श्री श्यामसुन्दरलाल याज्ञिक प्रकाशक, मन्त्री, साहित्य-परिषद्, मथुरा हैं। मूल्य =) व पृष्ठसंख्या २९ है।

प्रस्तुत पुस्तक में मन के प्रति कवि की उक्तियाँ हैं। मन बड़ा सैलानी है। वह प्रत्येक पल संसार में घूमता ही रहता है; इच्छाओं का दास होकर वह सदैव न जाने कितने अच्छे बुरे कार्य करता है। कितने योगियों ने इस मन को वश में करना चाहा, पर न कर सके। इसी लिए कवि महोदय केवल मन की मनुहार करके उससे प्रार्थना करते हैं कि—

मन तो पै जेती कृपा, करी जानकीनाथ।
ताकी तोको बूझ नहिं, वृथा नचावत हाथ॥

पुस्तक अत्यन्त साधारण है और विशेष कर जब हम यह देखते हैं कि वह एक साहित्य-परिषद्-द्वारा प्रकाशित हुई है तब हमें और भी आश्चर्य होता है। हम हिन्दी-हितैषिणी परिषदों से अधिक उपयोगी साहित्य के प्रकाशन की आशा करते हैं।

—अनन्तप्रसाद विद्यार्थी, बी० ए०

× × × ×

९—अपराजिता—लेखक, श्रीयुत अंचल और प्रकाशक, छात्र-हितकारी पुस्तकमाला, दारागंज, प्रयाग हैं। पृष्ठ-संख्या १७४ तथा मूल्य २) है। छपाई और गेटअप अच्छा है।

'अंचल' की कविता की एक 'झलक' पाते ही उनकी इन पंक्तियों की सार्थकता विदित हो जाती है—

मैं नवयुग की हलचल लाया
मस्ती लाया, यौवन लाया
मेरा ज्वाला-सा वक्षस्थल
उन्माद भरा उर उच्छृंखल
किसकी मृदु पग-ध्वनि का पागल
मैं दुर्दिन का गायक आया।

छायावाद की निराकारता में छिपी हुई भोग-लालसाओं को अंचल ने मुक्त-हृदय से स्वीकार करके स्पष्ट वाणी में व्यक्त किया है। उनकी प्रेयसी कोई नक्षत्र-लोक की छायामय अपरूप सुन्दरी नहीं है, वरन इसी संसार की हाड़-मांस की बनी हुई 'सोलह साल' की नारी है, जिसे कवि ने अपनी 'जीवनसंगिनी बहिन' कहना उचित समझा है। इसी के आधार पर हम अंचल की कविता में नवयुग की 'हलचल' मान सकते हैं। कितनी स्पष्टता से कवि कहता है—

पास बैठी थीं लिये चिर शून्य आँधी-सी पिपासा
उड़ प्रखर परिमल रहा था कुन्तलों से लालसा-सा
मुक्त केशों में शमा-सी जल रही थीं रूप खोले
आज जीवन ज्वार में कितने निविड़ तूफ़ान बोले
आह! वासंती सजल संध्या सदृश घुल-घुल
तुम्हारा प्राण कहना!
भूलना मुझको न प्रियतम।

यौवन के उन्माद, प्रेम की मस्ती तथा तृष्णा की आग से धधकता हुआ हृदय इनकी लगभग प्रत्येक कविता में बोल रहा है—

वासना के गान गाते कवि चला सूनी डगर में
तम घिरे, पर एक ज्वाला दीप्त थी प्रिय के नगर में
आज दुर्दिन में सनम का उड़ रहा सावन-सलोना
आज कैसी तृप्ति, कितना है अभी उन्मत्त होना

इस वासना के गान की प्रेरक-शक्ति है प्रेयसी का विरह और दिल में मरोड़ पैदा करनेवाली उसकी स्मृति—वह 'जलती हुई निशानी, जो आज भी धू धू करके हृदय को चिता बनाये हुए है।

'अपराजिता' प्रधानतया विरह का काव्य है। जवानी की उमंगों से भरे हुए भोग-लिप्सु प्रेमी मन की अतृप्त लालसाओं को रौंदता हुआ विरह असमय ही आ धमका और उसने बरबस दो जुड़ते हुए हृदयों को विलग कर दिया। दोनों में आग थी, उद्दाम विलास की प्रबल आकांक्षा थी। हमें भय है कि यदि 'अंचल' के प्रेम की परिणति

मिलन में होती तो उनकी कविता का स्रोत सूख जाता—भोग के कर्दम में उसका रूप कलुषित हो जाता। इसलिए काव्य के लिए कवि का विरह अभिनंदनीय है। क्या मिलन में प्रेयसी के मुँह से यह 'अन्तर्गान' निकल सकता था?—

प्यास से जगती प्रभाती-सी लिये जब शेष-जीवन
जन्म-जन्मों की निरति अतृप्ति क्यों चुकता न क्रन्दन
आज-सी विश्राम-हीना लालसा उमड़ी न तन से
शान्त अंबर में चले ले शून्य आधी रात जब से
और आँखों में नमी ले रह गई एकाकिनी मैं
कौन हो तुम आज अंतर में प्रलय-सी सुधि जगाती

परन्तु 'अंचल' के विरह-गान की विशेषता यह है कि उनमें 'आँखों की नमी' ने आर्द्रता का संचार नहीं कर पाया। इसलिए जहाँ एक ओर उनमें तरलता का अभाव है, वहाँ वे एक भारी खतरे से बच भी गये हैं। उनका विरह निराशा के मेघों से आच्छन्न नहीं है, उनका रुदन न तो स्वयं आँसू बहाता है, न सुननेवालों की आँखों में आर्द्रता पैदा करता है। वास्तव में कवि रोता नहीं, चीत्कार करता है। उसका चीत्कार कभी कभी चोट खाये हुए दिल की बड़बड़ाहट-सा भले ही लगने लगे, हृदय को द्रवित करनेवाली करुणा का उसमें एकान्त अभाव-सा जान पड़ता है। विरह ने कवि की जवानी की उमंगों को खत्म नहीं कर पाया है, न उसकी वाणी का ओज ही कम हुआ है। उसकी ऐंद्रियकता इतनी प्रबल है कि उसने विरह-जन्य अपनी तृप्ति के साधनाभाव में भी हार नहीं मानी है। चाहे उसे अपनी लालसाओं को शान्त करने—अपने अरमानों को बुझाने—का कभी अवसर न भी मिले, वह मन मार कर उनसे संन्यास लेने का ढोंग नहीं रचना चाहता। वासना की ज्वाला में उसके होंठ सूख गये हैं, तालू चटख रहा है और वह अपनी चिर-तृषा से छटपटाता हुआ चिल्ला रहा है—

चुप बैठूँ भी तो मैं कब तक, गाऊँ भी तो कितना गाऊँ
सूखे होंठों में घिर आनेवाली मन की बात बताऊँ।

अपने मन की बात को कवि ने बारम्बार कई ढंग से व्यक्त करने का यत्न किया है। हृदय की जिस उच्छृंखलता को उसने स्वयं स्वीकार किया है, उसने उसकी वाणी के संयम को भी भुला दिया है। इस संयम की यत्किंचित् आवश्यकता और महत्त्व स्वयं उसे महसूस हुआ है—

काश! मैं भी मूक रहता सोख तृष्णा की अमावस
हो न पाता यह मुखर आराधना का सिंधु पावस
और खामोशी न पूछो कौन जाना मौन जीवन
शेष गीतों में कहीं यों भी हुआ जाता निवेदन
तो कदाचित् कुछ जलन में तृप्ति का आभास होता
मूक रह पाता वियोगिन! मूक भी मैं रह न पाता।

कवि की वाणी इतनी मुखर है कि जान पड़ता है कि अपनी छन्दोमय मुखरता पर वह स्वयं आसक्त हो गया है, कदाचित् इसी मुग्धता के कारण उसे अपनी वाणी की एकरसता का ज्ञान नहीं हो पाता। कवि से विविधता के लिए विविधता (variety) की फ़रमाइश करने के हम समर्थक नहीं हैं—हम उसे विभिन्न विषयों को चुन-चुन कर कविता लिखने को मजबूर नहीं कर सकते। परन्तु साथ ही हम उससे यह आशा तो कर ही सकते हैं कि अपने सीमित क्षेत्र में ही वह विषयों की नहीं, तो भावों की विविधता अवश्य दिखावे। मानव का भाव-क्षेत्र इतना संकुचित नहीं है कि हम केवल उसी के सहारे काव्य की एक रसता को, जो बढ़कर नीरसता में परिणत हो जाती है, भंग न कर सकें। प्राचीनों ने भी रस के पूर्ण परिपाक के लिए अधिक से अधिक संख्या में संचारी भावों के वर्णन का विधान किया है। कृष्ण के विरह को लेकर अनेक कवियों ने काव्य का शृंगार किया है, परन्तु सूरदास की श्रेष्ठता को जो उनमें से कोई नहीं पा सका उसका मुख्य कारण यही है कि सूरदास की भाव-भूमि अत्यन्त विस्तृत है। भावों की यह रंकता केवल 'अंचल' की ही नहीं लगभग समस्त आधुनिक हिंदी-काव्य की विशेषता है।

काव्य के इस अभाव की पूर्ति आधुनिक कवि शब्द-बहुलता तथा शैली की लाक्षणिकता से करते हैं। अंचल में भी शब्द-बाहुल्य है। कहीं कहीं तो संयम और नियमन का अभाव जान पड़ने लगता है। उदाहरण के लिए हम अनायास इन पंक्तियों को ले सकते हैं—

फिर विरह-गाथा बजी नीला पड़ा अम्बर पिपासित
दीप्त चंचल छन्द किसके कर रहे ये अंग स्वसित
आज कंकालन चले जल जल निकल बंदी भरी-सी
फिर पवन प्रतिकूल आया योग रे! लेकर विनाशी।

'श्रोत,' 'नर्क,' 'कवियों, 'हविश', 'वस्त' आदि कुछ चिन्त्य प्रयोग भी आ गये हैं। पर इनकी संख्या नगण्य है।

शब्द-प्रयोग में कवि को पक्षपात नहीं मालूम पड़ता, परन्तु संस्कृत के तत्सम शब्दों की बगल में ही बोलते हुए फ़ारसी-अरबी के शब्द सुनने में हमारे कान कुछ अनभ्यस्त-से हैं। 'विश्व के शत दल पर अम्लान', 'निर्झर से झरते सजल नयन, 'यह संध्या श्याम परी' जैसे वाक्यांश अति-प्रचलित से लगते हैं।

ऊपर हमने अंचल जी के काव्य की एकरसता का ज़िक्र किया है। यह एकरसता केवल भावों तक ही सीमित नहीं है, छन्द और शैली में भी हमें इसका आभास मिलता है। परन्तु कवि में विरह-वेदना की इतनी अत्यन्ताभिभूति नहीं है कि वह अन्य बातों के लिए अपनी संवेदना खो बैठा हो। प्राकृतिक वस्तुओं और दृश्यों पर लिखे हुए उसके गीतों में काफ़ी विविधता और अनुभूति की विस्तृति है। इन गीतों में वेदना के लम्बे चीत्कार के स्थान पर सरल भावुकतापूर्ण, क्षिप्रता और गति की मंथरता के स्थान पर चंचलता है।

'अपराजिता' का कवि सचमुच उदीयमान है। वह अपनी प्रेमानुभूति को भाव की पराकाष्ठा नहीं समझ बैठा है, उसने अपनी मस्ती और जवानी के उन्माद को ही सब कुछ नहीं मान लिया है। न केवल उसे अपने प्रेम में अतृप्ति-जन्य असंतोष है, बल्कि वह अपने काव्य से भी असन्तुष्ट है। उसका यह असंतोष हमारे हर्ष का विषय है। पुस्तक के समर्पण में उसने लिखा है कि उस जीवन-संगिनी वहन का हहराती जमुना-सा मुख न जाने कैसी मीठी मीठी आँच फूंक देता है जिसमें सारा विकार, सारा कल्मष, सारी लिप्सा स्वाहा हो जाती है।' आशा है कि अंचल जी का काव्य प्रेम की इस उच्चता (Sulclimation) का वहन कर सकेगा जिसमें उसकी ऐंद्रियक अनुभूति गहनतर होकर आत्मा में प्रवेश कर जायगी।

इस संग्रह के लिए हम अंचल जी को बधाई देते हुए पाठकों से 'अपराजिता' को पढ़ने की सिफ़ारिश करते हैं।

—व्रजेश्वर

१०—चारण (त्रयमासिक पत्र)—संपादक, ठाकुर ईश्वरदान आशिया व भँवर शुभकर्ण कविया, एम० ए०, एल-एल० बी० हैं। मैनेजर, चारण, कलोल, उत्तर गुजरात से २॥) वार्षिक मूल्य पर प्राप्त होता है।

चारणों का राजपूतों और राजपूताने की कहानियों के साथ अटूट सम्बन्ध है। न जाने कितनी बार इन जातीय कवियों ने अपने तीखे दोहों-द्वारा जात्यभिमान को उत्तेजन देकर देशों और संस्कृतियों की रक्षा में सहायता पहुँचाई है। इसी चारण-जाति का यह मुखपत्र है, जो आधा हिन्दी में और आधा गुजराती में प्रकाशित होता है। संख्या २ वर्ष की ३ री है। इसमें 'हिन्दी का चारण-ऐतिहासिक साहित्य' और 'चारण-वाणी'—ये दो लेख हिन्दी-साहित्य के विद्यार्थियों के काम के हैं। शेष लेख भी अच्छे हैं। सम्पादन सुन्दर हुआ है।

११—डाबर पञ्चाङ्ग—प्रतिवर्ष की भाँति इस वर्ष भी संवत् १९९७ का डाबर डाक्टर एस० के० बर्मन, कलकत्ता का सर्वाङ्ग सुन्दर पञ्चाङ्ग प्रकाशित हुआ है। यह सचित्र है और बिना मूल्य वितरित होता है। पञ्चाङ्ग के मुख पृष्ठ पर श्रीकृष्ण का एक नयनाभिराम रंगीन चित्र छपा है जो सुन्दर है। इस वर्ष के पञ्चाङ्ग में महाभारत की कथा और उससे सम्बन्ध रखनेवाले तीन सादे चित्र भी छपे हैं। इसमें ग्रह, उपग्रह, फल, वर्ष-फल, योगिनी-विचार, चरण-विचार आदि ज्योतिषीय बातों के अतिरिक्त प्रान्तीय विभाग से प्रधान प्रधान तीर्थ स्थानों के नाम, नीरोग रहने के सहज उपाय, स्वास्थ्य किस प्रकार खराब होता है आदि ऐसी बातों का संग्रह किया गया है, साथ ही विविध और अत्युपयोगी ओषधियों का भी वर्णन है। इन सबके होते हुए इस वर्ष के पञ्चाङ्ग में एक विशेषता और है वह यह कि प्रतिमास में होनेवाले पर्व्वों, त्यौहारों तथा महात्माओं और देश के गण्यमान्य नेताओं के जन्म-दिवस एवं स्मृति-दिवसों को उनके चित्रों-सहित अङ्कित किया है। यह पञ्चाङ्ग सभी के काम का है और प्रचार के योग्य है।

—सुरेश
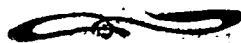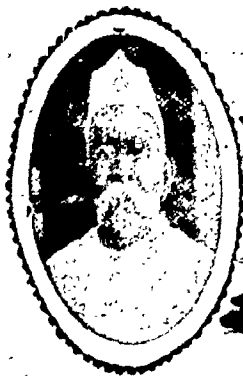
पण्डित लक्ष्मीधर वाजपेयी के नाम

(१)

दौलतपुर-रायबरेली,
३०-१-१५

श्रीमन्,

२६ का पोस्टकार्ड मिला। धन्यवाद।

दिसम्बर १५ में, ४०) महीने के हिसाब से, मैं २००) दे चुकूँगा। तब मेरा देना सिर्फ़ १,१२०) रह जायगा। यदि जनवरी १६ में किसी तरह ६००) देने से छुटकारा हो जाय तो मैं खींच-खाँच कर इतने रुपये का प्रबन्ध करने की चेष्टा करूँगा। अगले साल मुझे अपनी उपवर भानजी की शादी करना है। इस कारण मैं चाहता हूँ कि यदि बैंक का देना चुकता कर दिया जाय तो उस काम की फ़िक्र में लगूँ। मैं रिश्वत देना नहीं चाहता। बीस-पच्चीस रुपये मैं आपको खुशी से भेज दूँगा। मैं इसी को पुण्यखाते देना समझूँगा। इतने से यदि काम न चल सकेगा तो दस-पाँच और दे दूँगा। इस रुपये को आप चाहे जिसे दें और चाहे जिस तरह खर्च करें। आप अपने मित्रों से मिलकर मुझे लिखिए कि यह हो सकेगा या नहीं। यदि हाँ, तो क्या कारंवाई करनी पड़ेगी। ड्राफ्ट जैसा वे बतावें लिख भेजिए, या जो वजूहात लिखने की वे राय दें वही बता दीजिए। बड़ी कृपा होगी। मैं झूठ बोलने से डरता हूँ। यह मुझे न करना पड़े तो बहुत अच्छा हो। मैं लाहौर चला आता। मगर मेरी तन्दुरुस्ती इतनी दूर सफ़र करने योग्य नहीं। अतएव इस उपकार का भार आप ही पर छोड़ता हूँ।

सिपुर्दम ब तो मायये खेशरा
तु दानी हिसाबे कमो बेशरा

भवदीय
म० प्र० द्विवेदी

(२)

दौलतपुर, रायबरेली
४-१०-२९

नमोनमः

मुझे अपने भानजे की बहू के गर्भाशय की परीक्षा कराना है। आप जानते हों तो आप, या पं० जगन्नाथ-प्रसाद जी शुक्ल से पूछकर, किसी चतुर और सुशिक्षित लेडी डाक्टर का नाम और पता मुझे लिख भेजने की कृपा कीजिए। वह दस-पन्द्रह रोज बाद अपने पिता पं० कालिकाप्रसाद दुबे (पेंशनर) के घर प्रयाग जानेवाली है। वहीं परीक्षा कराना है। क्या आप कृपा करके उस लेडी को चौक तक ले जाने का कष्ट उठा सकेंगे? यह इसलिए पूछता हूँ, क्योंकि पं० कालिकाप्रसाद बहुत वृद्ध हैं। शायद वे इतनी खटपट न कर सकें। इन लेडी डाक्टरों की क्या फ़ीस वहाँ है?

कृपाप्रार्थी
महावीरप्रसाद द्विवेदी

(३)

दौलतपुर, रायबरेली
३१-१०-२९

नमोनमः,

२८ का पोस्टकार्ड मिला। धन्यवाद। भाई, बहू के प्रयाग जाने का अभी तक कुछ भी प्रबन्ध नहीं हुआ। घर में वहीं अकेली—मुझे दाना-पानी देनेवाली है। किसी आदमी या स्त्री की तलाश में हूँ। मिलने पर ही वह प्रयाग जा सकेगी तब तक आप भ्रमण कर आइए। आपकी इस निर्व्याज कृपा ने मुझे बहुत कृतज्ञ किया।

आपका
म० प्र० द्विवेदी

(४)

दौलतपुर, रायबरेली
१०-२-३०

नमस्कार,

मेरे फुटकर लेखों के बीस-पच्चीस संग्रह छप चुके। कुछ छप भी रहे हैं। अन्तिम संग्रह का नाम है—साहित्य-संलाप। उसमें साहित्यविषयक २० लेख हैं। इलाहाबाद में कई प्रकाशक हैं। मेरी इस पुस्तक का कापी-राइट वहाँ कोई लेना चाहे तो कृपा करके सूचना दीजिएगा। आप प्रकाशकों से परिचित होंगे, इस कारण आपको कष्ट दे रहा हूँ। इंडियन प्रेस ने ८, १० पुस्तकें निकालीं। मगर वहाँ बड़ी देर से पुस्तकें निकलती हैं। हिन्दी-प्रेस और नेशनल प्रेस ने भी कुछ पुस्तकें ली हैं। पुस्तक में २० × ३०/१६ साइज के कोई २०० पृष्ठ होंगे।

आपका
महावीरप्रसाद द्विवेदी

(५)

वाजपेयी जी!

चिट्ठी मिली। कई प्रकाशकों ने यह पुस्तक माँगी है। पर उसे पाने के मुश्तहक़ आपही हैं। लीजिए। खुशी से छापिए। पर जल्दी। पहुँच लिखिए। मेरी आँखें खराब हैं, अधिक नहीं लिख सकता।

म० प्र० द्विवेदी,
२१-२-३०

(६)

दौलतपुर, रायबरेली
१-३-३०

नमस्कार,

२४ की चिट्ठी कल शाम को मिली। मेरी दाहनी आँख खराब हो रही है। ठीक ठीक लिख नहीं सकता। माफ़ कीजिएगा।

पुस्तक का नाम साहित्य-सीकर कुछ क्लिष्ट था। इससे बदलकर साहित्य-संलाप कर दिया है। जो पसन्द हो रखिए।

कमलाकिशोर की दुलहिन को ६-७ वर्ष से गर्भ नहीं रहा। इससे आपकी सिफ़ारिश से डाक्टर पन्त को दिखाने भेजा। उन्होंने बायें अण्डाशय (Leftovary) में Congestion (सूजन) बताई। दवा एक पेटेंट—"Bynin" amara—दी। एक महीने बाद फिर देखकर उन्होंने कहा, वह शिकायत दूर हो गई। मगर एक शीशी वही दवा और पीने को कहा। कहा, इससे तन्दुरुस्ती अच्छी हो जायगी। सो वह पी रही है। इस दवा में Malted Phosphates with Quinine and Nux Vomica है। श्रीमती वृद्धा डाक्टरनी से यह सब कह दीजिएगा। डा० पन्त ने बहू के पित्ताशय (लिवर) में कोई खराबी नहीं बताई।

डाक्टरनी साहबा की तशखीस से चिन्ता हो गई है। बहू को पहले तो साल में दो एक दफ़े खाँसी-जुक़ाम हो जाता था। मगर इधर १½ वर्ष से वह भी नहीं हुआ। आक्टोबर, १९२८ में अपने साथ उसे मैं कानपुर ले गया था। तब एक डाक्टर ने उसके फेफड़ों में कोई ऐब नहीं पाया। खाने को भी वह यथासमय काफ़ी खाना खा लेती है। हाँ, कभी कभी अरुचि की शिकायत उसे ज़रूर हो जाती है। मगर चिन्ता का कारण यह है कि उसकी बड़ी बहन क्षयरोग से मर चुकी है। उसकी माँ को दमा था। उसका भाई भी दमे से पीड़ित है। कृपा करके डाक्टरनी जी को यह चिट्ठी सुनाकर उनकी सलाह लीजिए। जो पथ्य वे बतावें दिया जाय। जिस तरह रहने को कहें रक्खूँ। दवा यदि वे कोई तजवीज़ करें तो नुसखा लिखा कर भेज दीजिए। मैं मँगा लूँगा। या आपही वहाँ से लेकर कृपा-पूर्वक वी० पी० से भेज दीजिए। मैं आपका बहुत कृतज्ञ हूँगा।

कमला की लड़की को लिवर की शिकायत थी। ठीक काम न करता था। मगर शक्ति-औषधालय के शारिवादि अरिष्ट से वह शिकायत जाती रही।

आपका
म० प्र० द्विवेदी

(७)

दौलतपुर, रायबरेली
७-४-३०

प्रियवर वाजपेयी जी,

पोस्टकार्ड मिला। मुझे खेद है। मेरे पास एक भी फ़ोटो फालतू नहीं। कमरे में जो लगे हैं वही हैं। आप फ़ोटो के झंझट में क्यों पड़ें। इधर छपी हुई किसी भी

पुस्तक में मेरा चित्र नहीं। मैंने एक दफ़े छोड़कर कभी अपना फ़ोटो नहीं तैयार कराया। जो फ़ोटो आपको पसन्द है वह Rajputanaait Studio Jaipw के मालिक ताज़ीमी सरदार पं० रामप्रताप पुरोहित का लिया हुआ है। मैं जब जयपुर गया था तब उन्होंने पकड़ कर मेरा फ़ोटो ले लिया था। उनके पास निगेटिव होगा। ज़रूरत ही समझिए तो उनसे माँगिए। नहीं तो जो चित्र अब तक निकले हैं उन्हीं में से कोई दे दीजिए।

आपका
म० प्र० द्विवेदी

(८)

दौलतपुर, रायबरेली।
६–५–३०

नमोनमः,

मेरी पुस्तक छप गई हो तो दस कापियाँ भेजने की कृपा कीजिए। पूरी न छपी हो तो जितने फ़ार्म छप चुके हों उतने ही की एक एक कापी भेज दीजिए। देखूँ, छपाई कैसी है।

आशा है आप स्वस्थ और सानन्द हैं।

आपका
म० प्र० द्विवेदी

(९)

दौलतपुर, रायबरेली।
१०–५–३०

नमोनमः,

८ मई के लीडर में बाबू कवीरनरायन अग्रवाल, वकील, ३३ जार्जटौन, इलाहाबाद की एक चिट्ठी छपी है। लिखा है—हरियाने में चारे का अकाल है। गायें-भैंसें मर रही हैं। उनकी वंशरक्षा के लिए वकील साहब, लाला साँवलदास अग्रवाल, लाला रामदयाल अग्रवाल वग़ैरह, जो कि गोशाला-कमिटी के मेम्बर हैं, बहुत सी कम उम्र की गायें-भैंसें इलाहाबाद मँगवा रहे हैं। वे चाहते हैं कि लोग इन पशुओं को मोल लेकर इनकी रक्षा करें। मोल गाय का ५०) से ७५) तक और भैंस का १००) से २००) तक होगा। आप कृपा करके—ब्रह्मचारी, गोशाला, बख्शी दारागंज से या और किसी मेम्बर से मिलकर नीचे लिखी बातें दरियाफ़्त करके मुझे लिखिए—

(१) गायें आ गईं या नहीं ?
(२) आ गईं तो कितनी हैं ?
(३) उनकी उम्र क्या है ?
(४) तीन से चार वर्ष तक की भी हैं या नहीं ?
(५) कोई ऐसी भी हैं जो पहला ही हों और जल्द बच्चा देनेवाली हों ?
(६) नहीं आईं तो कब तक आवेंगी और किस किस उम्र की होंगी ?

मैं एक कलोर या जल्द ब्यानेवाली नई गाय लेना चाहता हूँ। जो बातें वकील साहब ने अपनी चिट्ठी में लिखी हैं वे सच हों तो एक कलोर का बयाना, जो देखने में अच्छी ऊँची पूरी हो और दो दाँत से कम न हो, २) या जो वे माँगें दे दीजिए। लिखा है, जिसे लेना हो वह ७५) लाला साँवलदास के पास जमा कर दे। अगर आप लिखेंगे कि पीछे से कोई झंझट न होगा तो आपकी पसन्द की हुई कलोर का दाम, जो निश्चित होगा, मैं आपको या लाला साँवलदास को पेशगी भेज दूँगा।

यह भी पूछ कर लिखिए कि एक गाय का रेलवे किराया बिंदकी रोड या कंसपुर गुगोली तक का क्या पड़ेगा? उसे लाने के लिए क्या मुझे कोई आदमी भेजना पड़ेगा या गोशालेवाले किसी के साथ उसे स्टेशन तक भेज देंगे ?

आपका
महावीरप्रसाद द्विवेदी

(१०)

दौलतपुर, रायबरेली।
२९–५–३०

नमोनमः,

साहित्य-सीकर के फ़ार्मों की कापी और आपका २६ ता० का पत्र दोनों चीज़ें मिल गईं। कवर या जिल्द लग जाने पर १० कापियाँ मुझे भेज दीजिएगा। कहीं कहीं अशुद्धियाँ रह गई हैं। पुस्तकान्त में जनवरी १९२८ की जगह ११२८ छप गया है।

ख़ूब काम कीजिए। कृष्णनिकेतन जाने की जबरन चेष्टा न कीजिएगा।

आपका
म० प्र० द्विवेदी

(११)

दौलतपुर, रायबरेली
नमस्कार, १५-६-३०

वादे के मुताबिक़ अपने "सुदामा के तण्डुलों" के दो एक कण मुझ कृष्ण को नहीं, "चौरचक्रवर्ती" को, भेज देने की उदारता दिखाइए, ज़रूरत आ पड़ी है !

मेरी आँखों में मोतियाबिन्द हो रहा है। अधिक नहीं लिख सकता।

आपका
म० प्र० द्विवेदी

सीकर की कापियाँ कब तक तैयार हो जायँगी।

(१२)

दौलतपुर, रायबरेली।
नमोनमः, ७ सितम्बर १९३०

आपका भेजा हुआ ५०) का मनीआर्डर आये ढाई तीन महीने हो चुके। आपने लिखा था कि आप फिर कुछ भेजेंगे। पर इसकी याद शायद आपको भूल गई।

मैं अब सिर्फ़ दूध और कुछ तरकारी वग़ैरह पर ही जीवन-निर्वाह कर रहा हूँ। कई गायें-भैंसे पालनी पड़ी हैं। उनको आराम से रखने के लिए एक पक्की दीवारों का वाड़ा ऊपर टीन डालकर, बनवा रहा हूँ। उसकी पूर्ति के लिए कुछ रुपया और दरकार है। तदर्थ कृपा करके जहाँ तक हो सके, इस समय आप मेरी सहायता कीजिए।

आप पर मेरा स्नेह ही नहीं, भक्ति भी है। इसी से, मैंने और प्रकाशकों की तरह आपसे कोई शर्त नहीं की। अतएव मुझे विश्वास है, आप भी मुझे अपने कृपौदार्य्य से वञ्चित न करेंगे और मेरी पुस्तक के उपलक्ष्य में जो कुछ देने का निश्चय आपने अपने मन में किया हो उसका शेषांश यह पत्र पाते ही भेज देंगे जिसमें मुझे इस विषय में फिर कभी आपको कुछ भी न लिखना पड़े।

आपका
महावीरप्रसाद द्विवेदी

(१३)

दौलतपुर, रायबरेली।
नमोनमः, ३-३-३१

आप तपोभूमि से लौट आये, यह जानकर खुशी हुई, तबीयत कैसी है।

४ फ़रवरी को मेरा भानजा कमलाकिशोर भी उसी इल्ज़ाम में ६ महीने के लिए तपस्या करने चला गया।

आपका
म० प्र० द्विवेदी।

पण्डित गौरीशंकर भट्ट के नाम पत्र

मान्यवर श्री पंडित जी,

प्रणाम।

आपके आदेशानुसार मैंने स्व० श्री द्विवेदी जी के पत्रों की तलाश की, तो केवल एक पत्र मिला जिसकी नक़ल नीचे देता हूँ और असली पत्र भी साथ भेजता हूँ। पूज्य द्विवेदी जी मुझ पर बहुत दया करते थे। सन् १९१४ ई० में सरस्वती में मेरी अक्षर रचना के ६ प्लेट छपवाये थे और साथ ही मेरा फोटो भी दिया था। मैंने जब कोई पुस्तक छपवाकर उनकी सेवा में समालोचनार्थ भेजी, तब उन्होंने उसके सम्बन्ध में कतिपय पंक्तियों में उसका मर्म सरस्वती में प्रकाशित किया था। सरस्वती का सम्पादन छोड़ने के बाद भी पत्र-द्वारा सम्मति प्रदान करते रहे। एक पत्र की नक़ल यह है—

(१)

दौलतपुर (रायबरेली)
२५—९—३०

सम्मति

पंडित गौरीशंकर भट्ट की पुस्तक लिपिसमीक्षा में की गई समीक्षा यथार्थ है।

भट्ट जी की अक्षरतत्त्व आदि पुस्तकें कलम की वैज्ञानिक करामात के उत्कृष्ट नमूने हैं।

उन्हीं की लिपिविषयक कापियाँ स्कूलों में जारी होने की सर्वतोधिक पात्र हैं क्योंकि वे शुद्ध और सर्वश्रेष्ठ हैं।

म० प्र० द्विवेदी

शोक है कि सन् १९३६ में जब मैंने 'लिपिकला' नामक पुस्तक भेजकर उनसे सम्मति माँगी तो आपने कृपा कर करुणापूर्ण शब्दों में इतना लिखा:—

(२)

दौलतपुर (रायबरेली)
नमस्कार, ८—१२—३६

पत्र मिला। पुस्तकें भी। मैं दो ढाई महीने से पड़ा खाट सेवन कर रहा हूँ। विशेष लिखने पढ़ने में असमर्थ हूँ। क्षमा चाहता हूँ।

निवेदक
म० प्र० द्विवेदी।
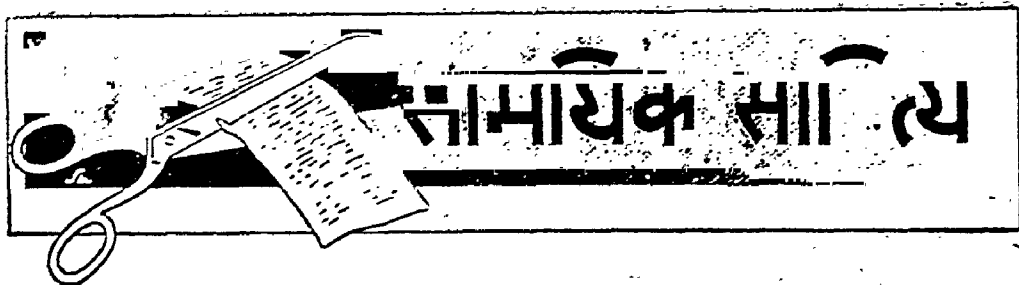
सम्मेलन का एक नया रूप

आखिर पूना में सम्मेलन का वार्षिक अधिवेशन निर्धारित समय में नहीं हो सका। यह अधिवेशन क्यों नहीं हो सका, इसका स्पष्टीकरण श्री काका कालेलकर के वक्तव्य और स्थायी समिति के एक सदस्य पण्डित सत्यनारायण पाण्डेय की उस पर की गई टिप्पणी से हो जाता है। यहां हम उन दोनों लेखों का संकलित अंश देते हैं।

श्री काका कालेलकर के वक्तव्य का सारांश यह है—

दिया हुआ आमन्त्रण वापस ले लेने के लिए कई हिन्दी-अखबारों ने मेरी कड़ी से कड़ी आलोचना की है।

जब हम बनारस गये थे तब किसी ने कल्पना तक नहीं की थी कि महाराष्ट्र की ओर से हम आमन्त्रण दे दें। वहाँ पर एक श्रद्धेय व्यक्ति की ओर से हमें प्रेरणा मिली कि हम महाराष्ट्र की ओर से सम्मेलन को अगला आमन्त्रण क्यों न दें।

यदि शंकरराव देव मेरी सलाह मानते और अखिल महाराष्ट्र राष्ट्र-भाषा-प्रचार-समिति को ही स्वागत-समिति बनाते तो कोई झगड़ा ही पैदा न होता। किन्तु उन्होंने एक नई स्वागत-समिति बनाना पसन्द किया, और महाराष्ट्र भर से स्वागत-सदस्य बनाये। जब उन्होंने सर्व-पक्ष के लोगों का सहयोग माँगा तब उनको खयाल भी नहीं था कि पूना के चन्द लोग उसी दिन सदस्य बनकर बहुमत बनाकर उनको और उनके साथियों को हटा देंगे।

सभा में जो होनेवाला था सो हो गया। शंकरराव देव और उनकी समिति स्वागत-कार्य से हट गई।

जो नई समिति बनी, वह न तो मेरी बनाई हुई थी, न वह मेरी प्रतिनिधि थी, न मैं उसका प्रतिनिधि था, और श्री टंडन जी का कहना था कि सम्मेलन के सामने मैं ही मुख्य हूँ।

करने से तो हमें कोई रोक नहीं सकता। हिन्दीवालों की संस्थाओं की बात तो अलग है। उनकी अनिच्छा होते हुए उनकी संस्था-द्वारा काम करना ठीक नहीं होगा। अभी तक सम्मेलन ने ऐसी अनिच्छा व्यक्त नहीं की है। इसलिए अपनी अयोग्यता का ख़याल होते हुए भी संस्था की ओर से कार्य करने में हम अपना गौरव मानते हैं।

इस वक्तव्य पर पाण्डेय जी ने जो टिप्पणी की है उसका मुख्यांश इस प्रकार है—

श्रीयुत काका कालेलकर ने अन्त में "अपनी सफ़ाई" दे दी। उसके पढ़ने से उनकी स्थिति स्पष्ट हो जाती है।

प्रश्न यह है कि नियमानुसार स्वागत-समिति का चुनाव हो जाने के बाद वह कौन-सा नियम है जिसके आधार पर काका कालेलकर सम्मेलन को बम्बई बुला रहे हैं, और सम्मेलन भी 'समझौते' की बातें कर रहा है? वह कौन-सी दलील है जिसके द्वारा एक नियमित चुनाव को अनियमित क़रार दिया जा रहा है और एक उपसमिति बनाकर एक प्रान्त का अपमान करने और एक व्यक्ति के आँसू पोंछने की तदबीर की जा रही है?

इसके उत्तर में कहा जा सकता है कि जो कुछ किया जा रहा है, सम्मेलन की स्थायी समिति की ओर से किया जा रहा है जिसे इस सम्बन्ध में पूरे अधिकार हैं। किन्तु प्रश्न यह है कि स्वागत-समिति की ओर से जब कोई भी अनियमित कार्रवाई नहीं हुई तो स्थायी समिति के सामने 'पुनर्विचार' या 'समझौते' का प्रश्न आ ही कैसे सकता है? क्या स्थायी समिति को यह भी अधिकार है कि वह विधान-संमत कार्य को अवैध क़रार दे सके? इसका निर्णय तो एक निष्पक्ष विधान-विशेषज्ञ अदालत ही कर सकती है।

जो कुछ हो, इस सफ़ाई से एक बात और भी साफ़ हो गई—श्री टंडन जी ही सम्मेलन हैं। वह जो कुछ लिख दें, कह दें वही सम्मेलन का मत है। स्थायी समिति टंडन जी की कठपुतली का तमाशा है। यद्यपि उसमें कुछ थोड़े से स्वाधीनचेता व्यक्ति भी हैं, पर उनकी अल्प संख्या है। बहुमत ऐसे लोगों का है जो राजनीतिक क्षेत्र के एक दलविशेष से सम्बद्ध हैं और उस दल के नेताओं के नियन्त्रण में रहते हैं। उनकी हाँ में हाँ मिलाना ही उनका कर्त्तव्य होता है। फलतः सम्मेलन के अधिवेशन का यह तमाशा श्री टंडन-कालेलकर कम्पनी का निज का तमाशा बन गया है, जिसमें हम स्थायी समिति के अल्पमतवाले सदस्य भार वहन करने, पर्दा उठाने और मूक अभिनय करने के लिए हैं। बाहर सबको यह जनाया जाता है कि सारी कार्रवाई नियमित रूप से स्थायी समिति करती है। पर स्थायी समिति का निर्माण किस ढंग से किया गया है, यह बाहरवालों को मालूम नहीं।

दो ही प्रश्न इस विषय का सारा निर्णय कर देने के लिए पर्याप्त हैं। पहला यह कि श्री कालेलकर को एक बार हार खाने के बाद दूसरी बार सम्मेलन को दूसरी जगह बुलाने का क्या अधिकार है? दूसरा यह कि प्रान्त भर की ओर से नियमानुकूल बनी हुई स्वागत-समिति की अवहेलना करके श्री टंडन जी 'समझौते' की बातचीत किस आधार पर कर रहे हैं? क्या इन दोनों कार्रवाइयों में काका कालेलकर जी की अहंमन्यता, हार खाकर बदला लेने की प्रवृत्ति, लोकतन्त्र के तिरस्कार की भावना और श्री टंडन जी का पक्षपात ज़ाहिर नहीं होता? अवश्य श्री टंडन जी के ऊपर सम्मेलन की ज़िम्मेदारी है, पर वे ऐसा क्यों मान बैठे हैं कि एक व्यक्तिविशेष ही सम्मेलन का सच्चा हितैषी है और एक प्रान्तविशेष सम्मेलन का अहित करना चाहता है? इस शंकालु प्रवृत्ति का कोई आधार हमें नहीं दीखता।

हिन्दी-प्रेमियों के सामने मार्ग स्पष्ट है। कोई कारण नहीं कि पूना में नियमानुकूल संगठित स्वागत-समिति के आयोजन में अगला अधिवेशन न किया जाय और यदि सम्मेलन के कर्णधार अनियमित कार्रवाई करने पर उतारू ही हो जायँ, तो पूना में स्वागत-समिति हिन्दी-साहित्य का सम्मेलन करे और उसमें सब हिन्दी-प्रेमी भाग लें। श्री टंडन जी और काका साहब अपना निज का सम्मेलन चाहे बम्बई और चाहे वर्धा (जहाँ काका साहब को कोई भय नहीं है) में करें।

"अपनी सफ़ाई" के अन्त में काका साहब ने एक छिपी हुई धमकी भी दी है। यदि उनका कहना न माना जायगा तो वे अलग हो जायँगे और स्वतन्त्र रूप से हिन्दी की सेवा करने से उन्हें कोई रोक नहीं सकता। उनकी यह धमकी हम सम्मेलन के प्रायः प्रत्येक अधिवेशन में सुनते

आये हैं। हिन्दी के अधिकांश साहित्यिक उनके सहयोग को कितना महत्त्व देते हैं यह बात, यदि काका साहब में वह अहंमन्यता न होती जो विनय का नाट्य किया करती है, बहुत पहले ही मालूम हो गई होती। हिन्दी-क्षेत्र में काका साहब के अवतरित होने के बहुत पहले से हिन्दी का काम हो रहा है और वे उसके साथ रहें या न रहें, हिन्दी का आन्दोलन चलता रहेगा क्योंकि वह किसी व्यक्तिविशेष की ज्योति से ज्योतित न होकर हिन्दी-भाषी जनता का आन्तरिक आन्दोलन है।

भारत की आत्मरक्षा

योरपीय युद्ध में भारत यथासम्भव सहयोग कर ही रहा है, परन्तु जैसा कि इस युद्ध ने भीषण रूप धारण किया है, इसको देखते हुए इस बात की नितान्त आवश्यकता है कि भारत समुचित रूप से सहयोग करने के सिवा, आत्मरक्षा के लिए भी भले प्रकार तैयार रहे। यह बात भारत-सरकार के भी ध्यान में आगई है। हाल में भारत के प्रधान सेनापति सर राबर्ट कैसेल्स ने अपने रेडियो-भाषण में इसका स्पष्टीकरण किया है। वह भाषण इस प्रकार है—

लोगों ने पिछले सप्ताह की घटनाओं पर दृष्टि रक्खी होगी, उन सबने यह समझा होगा कि इस समय जर्मनी का क्या इरादा है। उसने पश्चिमी रणक्षेत्र की लड़ाई का फ़ैसला कर देने के प्रयत्न का निश्चय किया है। बड़ी तेज़ी से उसने हमला करना शुरू कर दिया है।

फ़्रांस की वर्तमान परिस्थिति से यह नहीं मालूम होता कि लड़ाई बहुत दिनों तक चलेगी और उसके बढ़ने का भी स्पष्ट खतरा है, जिसका मतलब यह हो सकता है कि संभव है कि भारत जो अभी तक जर्मनकार्रवाई से मुक्त रहा, न रह जाय।

पिछले नौ महीनों में हम लोगों ने अपनी तैयारियाँ पूरी करने के लिए लगातार प्रयत्न किये हैं कि आवश्यकता पड़ने पर अपनी शक्तियाँ बढ़ाने को तैयार रहें। जहाँ तक भारत की जन-शक्ति का सम्बन्ध है, उसके लिए मुझे कोई चिन्ता नहीं है, पर मैं आप लोगों को यह अवश्य याद दिलाना चाहता हूँ कि युद्ध की नई दशाओं को देखते हुए केवल जन-बल काफ़ी नहीं है। लोग शत्रुओं का सामना करने के लिए उपयुक्त रूप से सुसज्जित रहें। आवश्यक अस्त्र-शस्त्रों का तैयार करना और उसका मुहैया करना नये प्रकार की तैयारियों की आवश्यक चीज़ है।

इसलिए लड़ाई छिड़ने के समय से ही हम इसकी तरफ़ अधिक से अधिक ध्यान देते रहे हैं। हर प्रकार के युद्ध के सामानों के तैयार करने में जो भारत में मिल सकते हैं, हमने बहुत सफलता प्राप्त की है।

इस समय आम स्थिति यह है कि हम अब अपनी सशस्त्र शक्ति बढ़ाने के योग्य हैं और उसके बढ़ाने का समय आ गया है। भारत की नियमित सेना पहले ही बढ़ाई गई है। जब से लड़ाई शुरू हुई है तब से अब तक ५३,००० लोग सब प्रकार की सेनाओं में भर्ती हो चुके हैं।

अब यह निश्चय किया गया है कि इस सेना को और अधिक बढ़ाया जाय। इनमें यांत्रिक मोटरवाले आदि दल, घुड़-सवार, पैदल तथा विशेष प्रकार के सभी सैनिक शामिल हैं और इसके लिए भरती बढ़ाने की ज़रूरत पड़ेगी। लगभग ७५,००० सैनिकों को रखना होगा, जिसके लिए एक लाख या इससे अधिक आदमी भरती किये जायँगे। टेरीटोरियल (देश में रहनेवाली) सेना पहले ही बढ़ा दी गई है। इसके अनेक दलों को सैनिक शिक्षा भी मिल चुकी है और वे नियमित सेना के साथ अपना काम कर सकते हैं।

शाही नौसेना भी लड़ाई शुरू होने के समय से बहुत बढ़ गई है। पहरा देनेवाले जहाज़ों के अतिरिक्त पनडुब्बों पर हमला करनेवाले, सुरंग हटानेवाले, गश्त लगानेवाले आदि जहाज़ बढ़ाये गये हैं और आदमी भी अब ढाईगुने बढ़ाये गये हैं।

भारतीय हवाई सेना का बढ़ाना अधिक कठिन रहा है। चालक और निरीक्षक तो काफ़ी संख्या में मिलते हैं और वे सिखाये भी जा सकते हैं, पर मैकैनिकों की कमी है। जिन लोगों के पास ये लोग नौकर हैं उनसे मेरा अनुरोध है कि वे जहाँ तक संभव हो वे उन्हें भारतीय हवाई सेना के लिए दें।

हवाई जहाज़ों का प्राप्त करना योरोप की लड़ाई की भारी माँग के कारण आसान नहीं है। पर इसके लिए

प्रयत्न हो रहा है और बढ़ाने की स्कीम तैयार की गई है। यदि सब काम ठीक ठीक चला तो भारतीय हवाई सेना चौगुनी हो जायगी।

अफ़सर का काम सिखाने के दल बेलगाम और देहरादून में स्थापित किये गये हैं। इस शिक्षा में भारतीय काफ़ी संख्या में लिये जायँगे।

भारत की रक्षा के इन सब उपायों में बहुत भारी रक़म खर्च करने की ज़रूरत पड़ेगी। फलतः भारत के भार को और बढ़ाना पड़ेगा। पर मेरा विश्वास है कि हर कोई इसकी आवश्यकता महसूस करेगा और बिना किसी शिकायत के उसे स्वीकार करेगा। भारत के प्रधान सेनापति की हैसियत से मेरी सब लोगों से अपील है कि युद्ध में विजय प्राप्त करने के लिए जितनी अधिक सहायता दे सकें, दें।

आतङ्क

योरपीय महायुद्ध की ख़बरों से यहाँ शहरों में बेमतलब का आतंक फैलाया गया है। इस सम्बन्ध में महात्मा गांधी ने 'हरिजन' में जो महत्त्वपूर्ण लेख लिखा है उसे हम यहाँ 'हरिजन-सेवक' से उद्धृत करते हैं—

आजकल अखबारों में आतंक के बारे में कई समाचार पढ़ने को मिलते हैं और इससे भी ज़्यादा बातें सुनाई पड़ती हैं। एक मित्र लिखते हैं—"एकान्त सेवाग्राम में बैठे हुए आप उन बातों और फुसफुसाहटों-अफ़वाहों की कल्पना भी नहीं कर सकते जो व्यस्त नगरों में फैल रही हैं। लोगों पर आतंक या भय छा गया है।"

आतंक सबसे ज़्यादा निःसत्त्व करनेवाली अवस्था है जिसमें कोई हो सकता है। आतंक की तो यहाँ कोई वजह ही नहीं है। चाहे जो कुछ गुज़रे, आदमी को अपना दिल मज़बूत रखना चाहिए। लड़ाई एक निरी बुराई है। लेकिन उससे एक अच्छी बात ज़रूर होती है; यह भय को दूर कर देती है और बहादुरी को ऊपर लाती है। मित्र-राष्ट्रों और जर्मनों दोनों के बीच अब तक लाखों की जानें गई होंगी। ये लोग पानी की तरह खून बहा रहे हैं। फ़्रांस और ब्रिटेन में बूढ़े आदमी, बूढ़ी और जवान स्त्रियाँ और बच्चे मौत के बीचोबीच रह रहे हैं। फिर भी वहाँ कोई आतंक नहीं है। अगर वे आतंक या भय से अभिभूत हो जायें, तो यह उनके लिए जर्मन-गोलियों, गोलों और ज़हरीली गैसों से कहीं भयंकर शत्रु बन जायेगा। हमें इन कष्ट सहनेवाले पश्चिमी देशों से शिक्षा लेनी चाहिए और अपने बीच से आतंक को निकाल बाहर कर देना चाहिए। फिर हिन्दुस्तान में तो आतंक के लिए कोई वजह ही नहीं है। अगर ब्रिटेन को मरना भी पड़ा तो वह कठिनाई से और बहादुरी के साथ मरेगा। हम पराभव के समाचार सुन सकते हैं, पर हमें पस्तहिम्मती की बात कभी सुनाई न पड़ेगी। जो कुछ घटित होगा, व्यवस्थापूर्वक घटित होगा।

इसलिए जो लोग मेरी बात पर कान देते हैं उनसे मैं कहूँगा कि सदा की तरह अपना रोज़गार या काम करते जाओ। जमा की हुई रक़मों को मत निकालो, न नोटों को नक़दी में बदलने की जल्दबाज़ी करो। अगर तुम सावधान हो तो तुम्हें कोई नया ख़तरा न उठाना पड़ेगा। अगर हममें विप्लव उठ खड़ा हो तो ज़मीन में गड़े हुए या तिजोरियों में रखे हुए धन को बैंक या काग़ज़ की बनिस्बत ज़्यादा सुरक्षित नहीं समझना चाहिए। वैसे तो इस वक्त हर चीज़ में ख़तरा है। ऐसी हालत में तुम जैसे हो वैसे बने रहना ही सबसे अच्छा है। तुम्हारा धीरज, अगर ज़्यादा लोग उसका अनुसरण करें, बाज़ार में स्थिरता लायेगा। अराजकता के खिलाफ़ वह सबसे बड़ा प्रतिबन्ध होगा। इसमें शक नहीं कि ऐसे वक्त में गुण्डई का डर रहता है। पर इसका मुक़ाबिला करने के लिए तुम्हें ख़ुद तैयार रहना चाहिए। गुण्डे सिर्फ़ बुज़दिल लोगों के बीच पनप सकते हैं। पर जो लोग हिंसात्मक या अहिंसात्मक रूप से अपनी रक्षा करने के लायक़ हैं उनसे उनको कोई रियायत नहीं मिल सकती। अहिंसात्मक आत्म-रक्षण में अपने जान-माल के बारे में साहसिकता की वृत्ति होती है। अगर उस पर दृढ़ रहा जाये तो अन्त में वह गुण्डई का निश्चित इलाज साबित होगा। लेकिन अहिंसा एक दिन में तो सीखी नहीं जा सकती। इसके लिए अभ्यास और आचरण की ज़रूरत होती है। आप अभी से इसे सीखना शुरू कर सकते हैं। आपको अपनी जान या माल या दोनों को क़ुर्बान करने को तैयार होना चाहिए। अगर हिंसात्मक या अहिंसात्मक किसी तरह से अपनी रक्षा करना आप नहीं जानते तो अपनी सारी कोशिशों के बावजूद सरकार आपको बचाने

में समर्थ न होगी। चाहे कोई सरकार कितनी ही ताक़तवर हो, जनता की मदद के बिना इसे नहीं कर सकती। अगर ईश्वर भी सिर्फ़ उन्हीं की मदद करता है जो खुद अपनी मदद करते हैं, तो नाममात्र सरकारों के सम्बन्ध में यह बात कितनी सत्य होगी। हिम्मत मत हारो और यह मत सोचो कि कल कोई सरकार न होगी और अराजकता ही अराजकता रह जायगी। आप खुद अभी सरकार बन सकते हैं और जिस आफ़त की आप कल्पना करते हैं उसमें तो आपको सरकार बनना ही पड़ेगा, नहीं तो आप नष्ट हो जायँगे।

प्रान्तों में जनता की सरकारें

भारत पर भी आक्रमण हो सकता है, इस बात को यहाँ के उच्चाधिकारियों ने बार बार कहा है। अतएव इस बात की आवश्यकता है कि भारत अपने अनुरूप युद्ध में सहायता करने एवं आक्रमण होने पर शत्रु को मार भगाने के लिए पूर्णरूप से तैयार रहे। परन्तु यह उसके लिए दुर्भाग्य की बात है कि इस अवसर पर कांग्रेस का भारत-सरकार से मतभेद है, जिससे उसके सात प्रान्तों के मन्त्रि-मण्डलों ने त्यागपत्र दे दिया है। इस समय यह अवस्था वाञ्छनीय नहीं है। यही समझकर कांग्रेस के प्रधान नेता मदरास के भूतपूर्व प्रधान मन्त्री श्री चक्रवर्ती राज गोपालाचारी ने तिनावल्ली की राजनैतिक सभा के अध्यक्ष-पद से जो महत्त्व-पूर्ण भाषण किया है वह कांग्रेस और सरकार दोनों के लिए विचार करने के योग्य है। उक्त भाषण का सारांश 'भारत' में इस प्रकार दिया गया है—

इस समय जब कि भविष्य खतरे से भरा हुआ है यदि ब्रिटिश सरकार भारतीय जनता का हित चाहती है, तो उसे शीघ्र ही समस्त प्रान्तों में मज़बूत सरकारें स्थापित करना चाहिए, जिसे जनता का समर्थन प्राप्त हो। यदि ब्रिटिश सरकार भारत की स्वतन्त्रता और आत्म-शासन के अधिकार की घोषणा कर दे तो इसमें कोई सन्देह नहीं कि सभी सम्प्रदाय संसार की वर्तमान गम्भीर परिस्थिति को देखते हुए उदारतापूर्वक परस्पर समझौता कर लेंगे। झूठ और अर्द्ध सत्य के द्वारा तथा शान्ति और व्यवस्था के दुश्मनों के द्वारा फैलाये गये सभी सन्देह दूर हो जायँगे और सब लोगों के सन्तोष योग्य बातें तय हो जायँगी।

इसे मैं असम्भव समझता हूँ कि इँग्लैंड लड़ाई से ध्यान हटा कर हमारी समस्याओं की तरफ़ ध्यान दे। फिर भी प्रत्येक राष्ट्र को अपने जीवन की देख-भाल करनी है और भारत योरप की लड़ाई में अपनी निजी समस्याओं को नहीं भूल सकता। हम अपने अधिकारों की बातें भूल कर सभ्यता की सेवा नहीं कर सकते। हम अपने को शासित राष्ट्र स्वीकार कर मित्रराष्ट्रों की सहायता नहीं कर सकते। इसके विपरीत इस प्रकार से आत्म-समर्पण करने से तो जर्मनों को और सहायता पहुँचेगी। इसलिए हम अपना यह कर्तव्य समझते हैं कि अपने इस दावे को पूरे बल के साथ पेश करें कि ब्रिटेन अपने इस संकट के समय भारत को सदा के लिए स्वतन्त्र घोषित कर दे और तब भारत भी नये मित्र के समान इँग्लैंड और फ़्रांस का पूरे बल से साथ दे।

मैं पहले भी कई बार कह चुका हूँ और अब फिर कहता हूँ कि ब्रिटिश सरकार यह समझती मालूम होती है कि निरंकुश शासन को क़ायम रखा जाय और जब तक लड़ाई चलती रहे तब तक प्रतिनिधिक सरकार न स्थापित की जाय, ताकि वर्तमान शासन-तन्त्र में कोई हस्तक्षेप न हो सके। परन्तु सरकार का यह रुख हर दृष्टि से अत्यन्त खेदजनक है। लड़ाई जीतने का तरीक़ा यह नहीं है, न्याय का यह तरीक़ा नहीं है, शान्ति और भारत की उन्नति का यह तरीक़ा नहीं है। ऐसे समय में जब कि भविष्य इतना खतरे से भरा हुआ है, यदि ब्रिटिश सरकार भारत की जनता का हित चाहती है, तो वह समस्त प्रान्तों में ऐसी और २७ (?) सरकार स्थापित करे, जिसको जनता का समर्थन प्राप्त हो। इसके लिए यह अत्यन्त उपयुक्त समय है। मुझे दल-गत सरकारों के स्थान पर राष्ट्रीय सरकारें स्थापित करने में कोई आपत्ति नहीं है, पर राष्ट्रीय सरकार के लिए जनता के अत्यधिक बहुमत का समर्थन प्राप्त होना आवश्यक है और उसके स्थायित्व को नष्ट करने की कोई धमकी को सहन नहीं किया जा सकता।

मुझको भी लय होने दो !

लेखिका, श्रीमती सुमित्रा कुमारी सिनहा

इस कविता पर प्रथम श्रीकाशीराम-पुरस्कार दिया गया है।

उत्सव है प्रकृति-वधू-घर वैभव ले ऋतुपति आया !
मदिरा से भीना पुलकित उल्लास-हास है छाया !

धीरे इठलाता मलयज आया ले अमृत-सिंचन !
नव-कनक-कुसुम-रज-रंजित-वल्लरियाँ-निरता-नर्त्तन !

मदमाती गूँजों में है अलि की उठती नूपुर-ध्वनि !
अग-जग को मुखरित करता मलयज का मुरली-निस्वन !

सुरधनु-काया ले आई तितली डाली पर चंचल
गाती मदमाती कोयल, झरने हँसते-से कल कल !

सरिता की लहर लहर में उठ गया पुलक का कम्पन !
अलसाई किरनें जागीं, हँस पड़ा विश्व का कण कण !

मतवाली माधव-यामिनि का फूटा यौवन अलसित !
उमड़ी दिशिदिशि-रस-धारा मकरन्द मधुर-मधु विलसित !

कोकिल-काकली मधुर सुन कलियों ने घूँघट खोला !
किरणों के स्वर्णिम-कर ने कमलों में परिमल घोला !

लतिका-चितवन से फूटी उन्मद फूलों की धारा !
अलि के लालस-सालस-मन की बनती मोहक-कारा !

ले मीठी-श्वास-सुरभि की मलयज मन्थर-गति आता !
तृण-तृण के उर में जीवन की लहर अबाध उठाता !

शत शत रंगों के चुम्बन-अंकित नव-फूल खिले हैं !
माधवी-लता की डालों से मधुकर गले मिले हैं !

झोली भर निधि ले भागा कुंजों से चोर समीरण !
खिलती कलियों पर उन्मन, डोला मधुपों का गुंजन !

जागा नीलम की शय्या पर मधु-पूनम का नर्त्तन !
जागा जलनिधि की लहरों में फेनिल-बुदबुद शिंजन !

ले ऊषा केसर धीरे अम्बर के मुख पर मलती !
संध्या-स्मित रंग विरंगी नभ-फूल लुटाती चलती !

तरु-तरु में हास जगा है फूटी पल्लव में लाली !
दिशि दिशि में लहर उठी है छाई छवि की हरियाली !

मेरी भी संज्ञा जागी तन्द्रा जा अलग पड़ी है !
उल्लास सचेतन होता चंचल मनुहार खड़ी है !

निस्पन्द-हृदय के पट से टकराती कोई प्रतिध्वनि !
युग युग का संयम पिघला है जाग पड़ा उर-कम्पन !

कलरव कर जाग पड़ी हैं मन-पंछी नवल-उमंगें !
तिमिरावृत-उर में हँसती फैली आलोक-तरंगें !

फूलों में खुल खुल खेलो संकेत चेतना करती,
मधुभार न यह सँभलेगा प्रेरणा नई है भरती !

हैं रहीं खोल मंजूषा उन्मद-स्वर्णिम संस्मृतियाँ !
हँस पुलकाकुल रंग रलियाँ निखरीं प्रसुप्त संसृतियाँ !

मन-धनु की चढ़ा प्रत्यञ्चा इच्छायें खींची जातीं !
सौन्दर्य सुधा से पतझर की क्यारी सींची जातीं !

नयनों में छवि की मदिरा है घोल रही बेसुधपन !
हिय में है ज्वार उठाती मृदु प्यार-धार पागलपन !

जाने किन जादू-फूलों से गूँथ गई मन-डाली !
जिससे ढुलकी पड़ती है सौरभ-मदिरा मतवाली !

अभिलाषा जीवन-मन की चुपके चुपके मुसकातीं !
ये लुकी छिपी-सी साधें घूँघट धीरे खिसकातीं !

मृदु प्यार चिरन्तन पागल नस नस में आज मचलता !
मन बार बार इस चिकने अंचल पर आह ! फिसलता !

प्रतिपल बढ़ती ही जाती लू-लपटों-सी अभिलाषा !
प्राणों में आकुल-व्याकुल-सी दुर्दमनीय पिपासा !

सिमटेंगी नहीं समेटे यह मदिर प्यार की निधियाँ !
अनजाने बिखरीं पड़तीं अल्हड़ माती गति विधियाँ !

मधु राका-छाया-नीचे मधु-गन्ध-अन्ध-मदिरालस !
बेसुध-विषाद-पंछी यह तज नीड़ उड़ा है सालस !

कामना किरन फूटी है तममय वन में जीवन के !
दुख-नीरद में सुख इच्छा चित्रित है सुरधनु बन के !

इंगित करती अभिलाषा मानस का कुसुम खिला ले !
जीवन कहता यौवन से पीले आसव के प्याले !

मलयानिल-सी उल्लासों की लहरें उठतीं मन में !
कुसुमों-सी साधें खिलतीं स्वर्णिम-सुहाग भर मन में !

अतृप्ति डूबना चाहे परितोष-सिन्धु में गहरे !
कोने से मन के उठकर लालसा-विहग नभ-छहरे !

अविराम-साधना के ये मुखरित होते पल हलके !
निर्वाण विकल पाने को उर बहा जा रहा गल के !

टूटो, तुम आज हृदय के बन्धन की निर्दय-कड़ियाँ !
रुक जाओ, आह ! नयन-घन की आकुल अविरल लड़ियाँ !

ओ जीवन की सीमाओं, पल भर को तो ढह जाओ !
ओ अन्तर की ज्वालाओ, ले ज्वलन अलग बह जाओ !

पल भर को तो जीवन से नियमों की संसृति, छूटो !
तर्कों के जाल सघनतम निर्मम नीरस, अब टूटो !

पग पग पर कसनेवाले जग के कठोर तम-बन्धन !
पल पल पर चुभनेवाली आँखों के निष्ठुर दंशन !

पद पद पर अड़नेवाले ओ शैल शृंग, झुक जाओ !
क्षण क्षण पर मत धधको अब, ओ दावानल, बुझ जाओ।

जाने दो प्रिय की नगरी कोलाहल करतीं आहें !
ओ आँखों के धुँधलेपन छोड़ो तुम प्रिय की राहें !

जग का विषमय यह जीवन पी ले पल भर आसव-कण !
शीतलता से सिंचित हो पल भर इसका तपता तन !

युग युग की सृष्टि-विनाशों में खेली हूँ जीवन-भर !
अब मधु-मंगल-वरदानों की वृष्टि भला हो पल भर !

दुख का निदाघ मर जीवन सुख-छाँह शान्त आने दो !
सब पाप ताप जल जावें निर्मल जल लहराने दो !

अभिशापों से उर जलते पाने दो शीतल चुम्बन !
शुभ रजत-पुंज-सा उज्ज्वल पावे जीवन-आलिंगन !

जीवन की चिर मावस में फूटे मधु-किरन उजाला !
शत-कल्पों से बन्दी मन ले मुक्त-श्वास मतवाला !

पल भर विषाद की जगती को अब विराम पाने दो !
जीवन-प्रवाह की धारा से जीवन सरसाने दो !

युग युग की असफलताओं को आज तृप्त होने दो !
वासन्ती-निशि-किरणों से, यह पीड़ायें धोने दो !

मेरे तमिस्र में झलकी पदचिह्न-ज्योति-प्रिय झिलमिल।
ठहरो, अर्पण करने दो जीवन-शतदल को खिल खिल !

ओ जीवन के क्षण एक जा प्रियतम से आज मिलूँगी।
प्राणों से प्राणों का अब मैं शुभ अभिषेक करूँगी !

इस मधुऋतु के उत्सव में प्राणों को दो ना रोने !
व्याकुल-अधीर-गीतों को चिर शान्त आज दो सोने !

अज्ञात-चरण-चिह्नों में प्रिय के अव्यक्त अगोचर !
युग युग के विरही-जीवन को मिल जाने दो पल भर !

जब अणु अणु प्यार लुटाते मुझको प्रिय में खोने दो !
जब जड़ चेतन सब मिलते मुझको भी लय होने दो !

एक सुप्रसिद्ध अमेरिकन मनोवैज्ञानिक डा० हेनरी नाइट मिलर ने जो हालही में इँगलैंड गये थे, मैनचेस्टर की एक सार्वजनिक सभा में भाषण देते हुए कहा कि "ब्रिटेन के लोग विश्राम के महत्त्व को समझते हैं और मैं ब्रिटिश जीवन की गति पर मुग्ध हूँ।" डा० नाइट ने कहा कि "मैं ख़ास तौर से जिस विश्राम के लिए राय देता हूँ, वह यह है कि दोपहर के बाद ४ बजे चाय पीने के लिए १५ मिनट की छुट्टी दी जाय। यह प्रथा लाभदायक है क्योंकि इससे थकावट दूर होती है।"
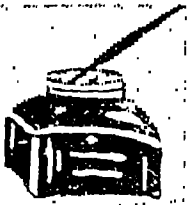
फ़्लैंडर्स का युद्ध

मई के अन्तिम दिनों में बेल्जियम में जो भीषण युद्ध प्रारम्भ हुआ था वह संसार के इतिहास में एक अभूतपूर्व महान् युद्ध के रूप में गिना जायगा। बेल्जियम की युद्ध-भूमि में जर्मन-सेनाओं का मानमर्दन करने के लिए मित्र-दल के युद्ध-विशारदों ने जो महत्त्वपूर्ण व्यवस्था की थी, दुःख की बात है, बेल्जियम के युवा नरेश महाराज ल्योपाल्ड की मनमानी से सबका सब चौपट हो गया। पाठकों को ज्ञात होगा कि जब जर्मनी ने निरपेक्ष बेल्जियम पर पिछले दिनों एकाएक चढ़ाई कर दी तब वहाँ के इन्हीं बादशाह ल्योपाल्ड की माँग पर मित्र-दल ने सहायता के लिए अपनी सेनायें तत्काल भेजकर जर्मनों से बढ़कर मोर्चा लिया था। परन्तु १८ दिन के लोक-संहारक युद्ध के बाद एकाएक बादशाह ल्योपाल्ड ने अपनी पाँच लाख सेना के साथ आत्म-समर्पण कर दिया और सो भी अपने मित्रों को अपने इस कायरतापूर्ण कार्य की पहले से सूचना दिये बिना ही। उनकी इस अक्षन्तव्य भूल का बड़ा भयानक परिणाम हुआ। विशाल जर्मन-सेना ने मित्र-दल की सेनाओं को अचानक आकर घेर लिया। अपनी इस संकटपूर्ण अवस्था को देखकर मित्र-दल की सेनाओं को पीछे हटना ही नहीं पड़ा, किन्तु उन्हें उस युद्ध-क्षेत्र को ही छोड़ देने को लाचार होना पड़ा। फ्रेंच सेनायें तो अपने देश के भीतरी भाग क. लौट गईं, उधर अँगरेज़ी सेनाओं को ब्रिटेन चला जाना पड़ा। उक्त परिस्थिति के सम्बन्ध में ब्रिटेन के प्रधान मंत्री श्री चर्चिल का जो वक्तव्य अख़बारों में छपा है उससे इसकी भीषणता का पता लगता है।

ख़ैर, मित्र-दल की सारी सेना जिसे जर्मन-सेनाओं ने चारों ओर से घेर कर एकदम दल-मल डालने का सफल प्रयत्न किया था, एक मात्र अपनी अप्रतिम वीरता और अनुपम धैर्य से बिलकुल साफ़ बच निकली—और सुरक्षित स्थानों में पहुँच गई। इस प्रकार मित्र-दल की सेनाओं के चले आने पर बेल्जियम तथा फ़्रांस के उस ओर का सारा भूभाग जर्मन-सेनाओं के अधिकार में हो गया, यही नहीं, वहाँ के सब बन्दरगाह भी उनके क़ब्ज़े में हो गये, जहाँ से जर्मनी के बम-वर्षक वायुयान सरलता से ब्रिटेन जाकर बम-वर्षा कर सकते हैं। बेल्जियम के इस पराभव से सबसे अधिक भयानक बात यह हुई है कि ब्रिटेन और फ़्रांस की सेनाओं में पहले की तरह का सहयोग भी नहीं रह गया। यह अवस्था देखकर हिटलर ने अपनी सेनाओं को फ़्रांस पर चढ़ दौड़ने का आदेश कर दिया है। फ़्रांस की सेनायें सोमे नदी के तट पर मोर्चा बाँधे पहले से ही जर्मनों की प्रतीक्षा कर रही थीं। फलतः इस क्षेत्र में फ़्रांस और जर्मनी के बीच भयानक लड़ाई छिड़ गई। फ़्रांस के प्रधान मंत्री रेनो ने कहा है कि सोमे के तट का यह युद्ध सदियों के लिए योरप के भाग्य का निर्णय कर देगा। इसमें सन्देह नहीं कि इस क्षेत्र का यह युद्ध भी ऐतिहासिक युद्ध हुआ है, परन्तु यही अन्तिम युद्ध नहीं है। कहना तो यह चाहिए कि वास्तविक युद्ध अब प्रारम्भ हुआ है, जिसमें ब्रिटेन अपने उग्र रूप का समुचित परिचय देगा। निर्णायक युद्ध तो तब होगा जब ब्रिटेन अपने सारे दलबल से जर्मन-सेनाओं के आगे समवेत होगा। और वह दिन दूर नहीं है जब जर्मनी ब्रिटेन के इस त्रासजनक रूप का दर्शन करेगा, क्योंकि वह अपनी भर सक सब कुछ कर चुका है, और अब ब्रिटेन की बारी आ रही है।

विश्वासघात और हिमाक़त

इटली भी आख़िर युद्ध में कूद पड़ा। इसे उसका विश्वासघात भी कह सकते हैं और हिमाक़त भी। विश्वासघात इसलिए कि कल तक मुसोलिनी साहब ज़ोरों से चीख़-चीख़ कर कह रहे थे कि संसार के अधिक भाग में युद्ध को न फैलने देने का श्रेय हमें है। और अब जब उन्होंने देख लिया कि फ़्रांस जो पड़ोसी होने के अलावा

गत महायुद्ध में उसका सबसे बड़ा सहायक और रक्षक था, घोर संकट में है तब उसने भी उस पर पीछे से आक्रमण कर दिया। इसे कहते हैं, पीठ में छुरा भोंकना। हिमाक़त इसलिए कि इटली अपनी शक्ति को तौले बिना ही आग में कूद पड़ा है, जिसका फल उसे भी चखने को मिलेगा। महीनों से तटस्थता की आड़ में फ़ांस, इँग्लैंड और जर्मनी से व्यापार करके इटली लाभ उठा रहा था। अब युद्ध में उतर आने से वह लाभ उठाने का अवसर भी चला गया और शान्ति-रक्षा का ढोंग भी।

इटली इस समय अचानक युद्ध में क्यों कूद पड़ा? इस प्रश्न के उत्तर कई हो सकते हैं। यह तो सबको मालूम था कि वह एक न एक दिन लड़ाई में उतरेगा, पर कब यही अनिश्चित था। अब आख़िर उसे इसके लिए कौन-सा उपयुक्त अवसर मिल गया? हम यह तो जानते ही हैं कि इटली के इस समय युद्ध में आ जाने का कोई कारण न तो उदारता है, न राष्ट्र की रक्षा की भावना। मुसोलिनी साहब जो कुछ कहते हैं—अपना स्वार्थ देखकर! उन्होंने शायद सोचा होगा कि इस समय फ़्रांस पर हमला कर देने से ब्रिटेन या फ़्रांस से कुछ न कुछ अवश्य हाथ लग जायगा। या शायद यह सोचा होगा कि इस समय यदि हम युद्ध में उतरेंगे तो संसार की ज़बान पर हमारा भी नाम आ जायगा—जो कि पिछले कुछ दिनों से लोगों को भूल-सा गया है। इसमें सन्देह नहीं कि इटली को युद्ध में घसीटने का उत्तरदायित्व मुसोलिनी साहब के शरारती और महत्त्वाकांक्षी दिमाग़ को ही है। इटली की जनता स्वभावतः शान्तिप्रिय है, उसे युद्ध से घृणा है। वह अपने ड्यूस और फ़ैसिज़्म के लिए बहुत कुछ कर चुकी है और अब शान्ति के साथ अपने देश की ख़ुशहाली के लिए प्रयत्न करना चाहती थी। वहाँ के बादशाह भी जिनके नाम से युद्ध की घोषणा की गई है, अपनी युद्ध-विरोधिनी मनोवृत्ति के लिए प्रसिद्ध हैं। पोप भी शान्ति के लिए भर सक प्रयत्न कर चुके हैं। इससे सिद्ध होता है कि निर्दोष इटली को युद्ध की लपटों में घसीटने की ज़िम्मेदारी केवल एक व्यक्ति—सीन्योर मुसोलिनी पर है।

इटली की इस शरारत का अनुमान ब्रिटिश राजनीतिज्ञों को बहुत पहले से था और वे इसके लिए काफ़ी तैयार भी थे। आश्चर्य की बात तो यह है कि इटली और जर्मनी ने भी यह कैसे सोच लिया कि इटली का भी युद्ध में शामिल हो जाना इन दोनों देशों के हित में ठीक रहेगा। वास्तव में इन देशों का लाभ तो इसी में था कि इटली तटस्थता का ढोंग किये रहता, क्योंकि उस दशा में उसे संसार के सभी देशों से व्यापार करने की आज़ादी थी। इस तरह वह अपने लिए भी माल ला सकता था और थोड़ा-बहुत जर्मनी को भी दे सकता था। अब युद्ध में शामिल हो जाने से उसका समुद्र में चलना रोक दिया जायगा। इस दशा में उसे अपने लिए ही सामान जुटाना मुश्किल पड़ जायगा। जर्मनी को कुछ दे सकने की बात ही दूर है। आजकल वह जर्मनी से कोयला ले रहा है। पर समुद्री मार्ग बन्द हो जाने पर उसने कोयले के लिए ६५ गाड़ियों को रोज़ चलाना पड़ेगा। क्या इटली इस व्यय को बर्दाश्त कर लेगा? उसकी सेना भी अच्छी नहीं है। अस्त्र-शस्त्रों का संग्रह भी अपर्याप्त है। उसके समुद्री बेड़े में बड़े-बड़े जहाज़ों का अभाव है, हाँ, सबमेरीन अवश्य काफ़ी हैं। वायुयान कुल मिला कर १,८०० उसके पास हैं। उसकी सेनायें लड़ने में अच्छी नहीं हैं, इसका प्रमाण गत १९१४-१८ के महायुद्ध, स्पेन के गृहयुद्ध और इटली-अबीसीनिया के युद्ध में मिल चुका है। फिर उसकी शक्ति का अधिक भाग अबीसीनिया, अलबानिया और लीबिया में फँसा हुआ है। इस दशा में युद्ध में शामिल हो जाना हिमाक़त के सिवा और क्या है?

फ़्रांस का युद्ध

४ जून को फ़्लैन्डर्स का युद्ध समाप्त हुआ था। उसके बाद ही जर्मनी ने पेरिस की ओर बढ़ना शुरू किया। फ़्लैंडर्स के युद्ध की हार से फ़्रांस के सैनिक अपना उत्साह खो चुके थे, तथापि उन्होंने जर्मनों का पद-पद पर सामना किया। अन्त में हटती हुई फ़्रेंच सेना ने जर्मनों का सोम नदी के तट पर डट कर सामना किया। यहाँ उनके प्रधान सेनापति फ़ील्ड मार्शल जनरल वेगाँ ने पहले से ही एक सुदृढ़ मोर्चेबन्दी बना ली थी। मोर्चों की इसी पंक्ति में जमकर फ़्रेंच सेना जर्मनों के आक्रमण की प्रतीक्षा करने लगी। परन्तु जर्मन इस

बार बहुसंख्या में और सो भी अधिक और आधुनिक ढंग के अनूठे ढंग के युद्धोपकरणों से लैस होकर आये, जिसका परिणाम यह हुआ कि थकी हुई फ़्रेंच सेना जर्मनों का सामना न कर सकी और उसे अपने मोर्चों की पंक्ति को छोड़कर पीछे हटना पड़ा। सोमतट के भीषण युद्ध ने फ़्रेंच-सेनाओं के रहे-सहे उत्साह को भी काफ़ूर कर दिया। फ़्रेंच-सरकार ने इस बात का बहुत प्रयत्न किया कि उसकी सेना की पंक्ति टूटने न पावे। परन्तु जर्मनी की सेनाओं के आगे वह ठहर न सकी और उसे बार-बार हटना पड़ा। अन्त में जब जर्मन-सेना ने पेरिस पर १७ जून को जा चढ़ी तब फ़्रेंच-सरकार ने निराश होकर पदत्याग कर दिया और उसके स्थान पर मार्शल पेताँ के प्रधान मन्त्रित्व में जो नई सरकार संगठित हुई है उसने लड़ाई बन्द कर देने की जर्मनी से प्रार्थना की। १२ दिन के भीषण युद्ध के बाद फ़्रांस का जर्मनी के आगे इस तरह नतमस्तक हो जाना—उस फ़्रांस का जिसकी अनूठी वीरता की परम्परा योरप में सदियों से क़ायम है, एक प्रकार की दैवी दुर्घटना ही कही जायगी। फ़्रांस के इस प्रकार हथियार रख देने से अब आगे क्या होगा, यह तो नहीं कहा जा सकता है। परन्तु इतना स्पष्ट है कि अब अकेले ब्रिटेन को ही जर्मनी और इटली से लड़ना पड़ेगा और ब्रिटेन इस भीषण संघर्ष के लिए पूर्ण-रूप से तैयार भी है। भगवान् उसे शत्रु को पद-दलित करने का बल दे, यह हम सबकी मनोकामना है।

भारत की आत्म-रक्षा

योरपीय युद्ध की विभीषिका का प्रभाव सारे संसार में व्यापक रूप से पड़ा है। फलतः सभी देश कम-से-कम अपनी अपनी आत्म-रक्षा के लिए कोई भी प्रयत्न बाक़ी नहीं रखना चाहते। पर भारत तो ब्रिटिश साम्राज्य का एक प्रमुख भाग होने से युद्ध में शामिल भी है। ऐसी दशा में उस पर दोहरी ज़िम्मेदारी है। एक तो उसे साम्राज्य सरकार की युद्ध में पूरे बल के साथ सहायता करना है, दूसरे बाहरी आक्रमण से अपनी रक्षा के लिए पूरी तरह तैयार रहना भी है। सहायता तो वह युद्ध के छिड़ने के समय से ही कर रहा है। आवश्यक धन और जन वह बराबर ही देता जा रहा है। अभी अभी बेल्जियम में जो ऐतिहासिक युद्ध हुआ है उसमें भारतीय सेना की टुकड़ी ने अपने असीम पुरुषार्थ का परिचय देकर अपने देश को गौरवान्वित किया है। परन्तु इस समय भारत की अपनी रक्षा का प्रश्न अधिक महत्त्व पकड़ गया है, यहाँ तक कि स्वयं भारत-सरकार का भी ध्यान उस ओर विशेष रूप से आकृष्ट हुआ है। भारत की सेनाओं के प्रधान सेनापति कैसल साहब ने अपने रेडियो के भाषण में घोषित किया है कि सरकार ने पैदल-सेना, मोटर-सेना और तोपख़ाने के बढ़ाने का निश्चय किया है। उस सम्बन्ध में उन्होंने वृद्धि-सम्बन्धी जो आँकड़े दिये हैं उन्हें देश के ग़ैर सरकारी लोग अपर्याप्त बताते हैं। लोगों का कहना है कि अधिक से अधिक भारतीयों को सेना में भी ऊँचे ऊँचे पद दिये जाने चाहिए, साथ ही 'असैनिक-जातियों' का भेद दूर कर सभी प्रान्तों के सभी जातियों के लोगों को सेना में भर्ती करके उन्हें स्वदेश की रक्षा के काम में हाथ बँटाने का अवसर देना चाहिए। सरकार जिस गति से तथा जिस व्यवस्था से भारत की रक्षा का कार्य करने जा रही है उससे यहाँ के ऐंग्लो-इंडियन भी सन्तुष्ट नहीं हैं और उनके प्रतिनिधि वायसराय महोदय से मिलकर अपने विचारों से उन्हें परिचित करा चुके हैं। इधर भारतीय नेता भी वक्तव्य पर वक्तव्य निकालकर इस बात का आग्रह कर रहे हैं कि देश की रक्षा की उपयुक्त व्यवस्था की जाय। यह प्रसन्नता की बात है कि इस महत्त्व की बात पर इस समय सारे देश का ध्यान आकृष्ट हो गया है, अतएव विश्वास है कि भारत सहायता करने के साथ साथ आत्मरक्षा की व्यवस्था करने में भी पीछे न रहेगा।

पाकिस्तान और कांग्रेस

पाकिस्तान की माँग के सम्बन्ध में महात्मा जी ने कहा था कि यदि मुसलमान हठ ही पकड़ जायँगे तो उनके इच्छा-नुसार भारत को बाँट देना पड़ेगा। वही बात कांग्रेस के प्रेसीडेंट मौलाना अबुल क़लाम आज़ाद ने भी अपने एक वक्तव्य में कही है। यह सब देख सुनकर और तो कोई नहीं, पर सिक्ख लोग चौकन्ने हुए हैं। उनके नेता सरदार

तारासिंह ने महात्मा गांधी को लिखा है कि पाकिस्तान के सम्बन्ध में मौलाना साहब ने ऐसा वक्तव्य क्यों दिया है। उनके पत्र का जो उत्तर महात्मा गांधी ने दिया है उससे सिक्खों की आशंका दूर हो गई है। महात्मा जी ने लिखा है कि आप चिन्तित न हों। जो साम्प्रदायिक मीमांसा पंजाब के सिक्खों-द्वारा स्वीकृत न होगी वह कांग्रेस-द्वारा भी स्वीकार न की जायगी। यदि ऐसी बात है तो फिर मौलाना साहब का इस आशय का वक्तव्य न निकलना चाहिए था कि 'यदि समस्त मुसलमान मिलजुल कर पाकस्तानी योजना को पसन्द करेंगे तो वह स्वीकार कर ली जायगी।' परन्तु बड़ों की बातें बड़ी होती हैं। उन पर टीका-टिप्पणी करने का अधिकार किसे प्राप्त है ?

शान्ति-रक्षा की योजना

कहा गया है कि कई प्रान्तीय सरकारें युद्ध-काल के लिए ऐसी पुलिस-सेना तैयार कराना चाहती हैं जो प्रान्तों में शान्ति और व्यवस्था बनाये रखने के काम आये। इसमें सन्देह नहीं है कि यह योजना आवश्यक तथा उपयोगी सिद्ध होगी। जर्मनी से 'हिन्दुस्तान' में जो बेरोक 'ब्राडकास्ट' अभी तक होता जा रहा है उसका प्रभाव स्थानीय गुंडों पर बुरा ही पड़ा होगा और वे अधिकारियों को असावधान पाकर शान्त और निःशस्त्र नागरिकों को सता सकते हैं। ऐसे अवसरों पर उक्त पुलिस-सेना बड़ा काम दे सकेगी। परन्तु हमारा तो कहना यह है कि उक्त पुलिस-दलों का संगठन करने की अपेक्षा यह बात कहीं अधिक सुविधाजनक होगी कि सरकार ग्रामों तथा नगरों में उन सभी लोगों को सशस्त्र कर दे जिन्हें वह हथियार रखने का अधिकारी समझे। ऐसी व्यवस्था करने से गुंडों के अनाचार की सारी सम्भावना ही दूर हो जायगी, साथ ही वह उन शस्त्रधारियों का अवसर आने पर समुचित उपयोग भी कर सकेगी। परन्तु हमारी सरकार तो नौकरशाही की पद्धति के आगे टस से मस होने को शायद ही तैयार हो।

सम्मेलन का एक नया प्रयत्न

सम्मेलन अभी तक अपनी परीक्षाओं के सम्बन्ध की ही पुस्तकें प्रकाशित करता रहा है। प्रसन्नता की बात है कि उसने अपने को अपनी उस स्थिति से ऊपर उठाया है। और वह अच्छे से अच्छे ग्रन्थ प्रकाशित करने को उत्सुक है। सुना है, उसने स्वर्गीय पण्डित बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन' की रचनायें प्रकाशित की हैं। यहाँ हम उसकी जो विज्ञप्ति छाप रहे हैं उससे प्रकट होता है कि वह दो पुराणों के अनुवाद भी प्रकाशित करना चाहता है। खेद है, सहायक मंत्री श्री नारायणदत्त पांडे एम० ए०, एल-एल० बी० ने इस विज्ञप्ति में लिखा है कि 'बहुतेरे महत्त्वपूर्ण पुराणों के ..... अनुवाद नहीं हुए हैं, साथ ही पुराणों के प्रचलित अनुवादों पर आक्षेप भी किया है। उक्त विज्ञप्ति इस प्रकार है—

बहुतेरे महत्त्वपूर्ण पुराणों तथा अन्य संस्कृत-ग्रन्थों का अभी तक हिन्दी में अनुवाद नहीं हुआ है। और जिनका अनुवाद हुआ भी है उनमें से कई एकों का शुद्ध और मुहाविरेदार भाषा में अनुवाद नहीं हो पाया है। जहाँ तक हमारी जानकारी है अभी तक अग्निपुराण तथा वायुपुराण का कोई भी हिन्दी-अनुवाद प्रकाशित नहीं हुआ है। सभी संस्कृत तथा हिन्दी के विद्वानों का ध्यान इस बात की ओर आकर्षित करते हुए हम यह सूचित करते हैं कि यदि इन दो पुराणों का हिन्दी-अनुवाद किसी सज्जन के पास हो या कोई सज्जन यह कार्य करने को उद्यत हों, तो वे हमसे लिखा-पढ़ी करें। अन्य संस्कृत ग्रन्थों का भी (जिनका अभी तक अनुवाद न हुआ हो) अच्छा अनुवाद होने पर प्रकाशित किया जा सकता है। सम्मेलन अनुवादकों को १५ प्रतिशत रायल्टी देता है। विशेष दशा में अनुवाद के लिए इकट्ठा पारिश्रमिक देने पर भी विचार हो सकेगा।

एक अपील

कुछ लोगों का कहना है कि हिन्दी में वही लोग आते हैं जिनको और कहीं ठौर-ठिकाना नहीं मिलता। यह सच हो चाहे न हो; यह ज़रूर सच है कि जो जो इसमें
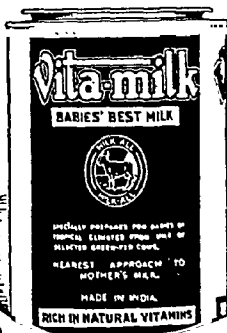
अब तक आये हैं उन सबने उसको गौरव प्रदान करने में अपना सब कुछ लगा दिया है और जब अशक्त होकर घर बैठने को लाचार हुए हैं तब उन्हें भिक्षा-वृत्ति पर ही निर्वाह करना पड़ा है। ऐसे हिन्दी के लेखकों की हम यहाँ एक लम्बी नाम-सूची दे सकते हैं। परन्तु वह न देकर हमारे लिए केवल पण्डित अमृतलाल चक्रवर्ती तथा पण्डित महावीरप्रसाद द्विवेदी जैसे हिन्दी के महारथियों का उल्लेख करना ही पर्याप्त होगा, जिन्हें अपने जीवन के अन्त में आर्थिक कष्ट भोगना पड़ा है। ऐसी दशा में हिन्दी के छोटेभैयों पर कैसी बीतती होगी, इसका अनुमान करना कठिन नहीं है। प्रसन्नता की बात है कि हमारे कुछ लोगों का ध्यान इस ओर गया है और वे अपने कर्तव्य के पालन को प्रवृत्त हुए हैं। उन लोगों ने अपना एक छोटा-सा संगठन किया है और वे हिन्दी के प्रसिद्ध पत्रकार स्वर्गीय बाबू नवजादिकलाल श्रीवास्तव के विपद्ग्रस्त परिवार की आर्थिक सहायता करने को कटिबद्ध हुए हैं। उन्होंने इस सम्बन्ध में एक अपील निकाली है, जिसका अधिकांश इस प्रकार है—

स्वर्गीय मुंशी नवजादिकलाल हिन्दी के सुप्रसिद्ध साहित्य-सेवी और पत्रकार थे। उनकी सेवाओं से हिन्दी-संसार भली भाँति परिचित है।

× × ×

अपनी अनेक विशेषताओं के कारण मुंशी जी हिन्दी-पत्रकार-जगत् के लिए एक अमूल्य विभूति हो गये। वे जिस पत्र में पहुँचते उसे ही उन्नति के शिखर पर पहुँचा देते। 'मतवाला' में उन्होंने वह काम किया जो हिन्दी-पत्रकारिता के विकास में ऐतिहासिक महत्त्व रखता है।

× × ×

ऐसे गुणी और प्रतिभासम्पन्न व्यक्ति के असमय देहावसान के जिस पहलू पर हम यहाँ आपका ध्यान आकर्षित करना चाहते हैं वह है उनके निराश्रित परिवार की आर्थिक दशा। मुंशी जी ने अपना समस्त जीवन हिन्दी की सेवा में उत्सर्ग कर दिया था। किन्तु आज उनकी विधवा पत्नी और पाँच छोटे-छोटे बच्चे निरवलम्ब हो गये हैं। उनके पास भोजन-वस्त्र और शिक्षा के लिए पैसे नहीं हैं और कन्याओं के विवाह का भार असहनीय है। इस विषय में हिन्दी के प्रेमियों का कर्तव्य स्पष्ट है। इसी लिए यह समिति स्थापित हुई है और यह सभी धनी-मानी, उदार, समर्थ, सज्जनों, संस्थाओं, हिन्दी के समस्त साहित्यसेवियों, पत्रकारों और सारी हिन्दी जनता से सहायता की अपील करती है।

जो सज्जन थोक या मासिक या अन्य किसी प्रकार की सहायता करना चाहें वे इस पते से—डा० बाबूराम सक्सेना, प्रधान मंत्री, हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन, प्रयाग—उसे भेजने या पत्र-व्यवहार करने की कृपा करें। मुंशी नवजादिकलाल-परिवार-सहायक-समिति अपने आय-व्यय का ब्यौरा नियमित रूप से प्रतिमास प्रकाशित करती रहेगी। यह एक सार्वजनिक योजना है अतएव इसका काम सार्वजनिक ढंग से होगा।

निवेदक—

बाबूराम सक्सेना,	रामनरेश त्रिपाठी,
सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला',	रामचन्द्र टंडन,
सत्यजीवन वर्मा,	नन्ददुलारेलाल वाजपेयी,

शंकरदयालु श्रीवास्तव।

समर्थ हिन्दी-प्रेमियों को उपयुक्त सहायता देकर इस पुण्य-कार्य में हाथ बँटाना चाहिए।

भारत में पैरगाड़ी का कारखाना

आखिर पटना के पास बिहार शरीफ़ में एक कारखाने में पैरगाड़ियाँ बनने ही लगीं! इस बीसवीं सदी के लगभग आधा बीत जाने पर जब संसार के छोटे-मोटे सभी देशों में 'बम-वर्षक' बनाये जा रहे हैं, बुड्ढे भारत ने सचमुच ही यह कमाल का काम किया है। कदाचित् इसी से उस कारखाने में जो पहली पैरगाड़ी बनी है उसे कारखाने के स्वामी ने स्मारक-रूप में रख छोड़ा है। यह कारखाना इसी पिछले मार्च में खोला गया है और उसकी पहली पैरगाड़ी जून के महीने में बनाकर प्रदर्शित की गई है। इस कारखाने में पैरगाड़ी के सभी पुर्जे तैयार होते हैं। हाँ, रबर की जो चीज़ें उसमें लगती हैं वह सब बाहर का ही लगाना पड़ता है। पर चिन्ता की बात नहीं है। कालान्तर में वे सब भी यहाँ बनने लगेंगी। इस कारखाने को सफल भर हो जाने दीजिए। उसके बाद तो फिर यहाँ पैरगाड़ियाँ

मर्दाई

वानी

और

क्ति

प्राप्त करनेके लिये

कासा

तुरंत

हार कीजिये

मनुष्य के शरीर में ऐसी ग्रंथियां हैं जिन पर मनुष्य की जवानी, आरोग्य और शक्ति निर्भर है। ओकासा इन ग्रंथियों की क्रिया को क़ाबू में रखता है और मनुष्य को स्वस्थ, जवान और शक्तिमान् रखता है।

३ सप्ताह ओकासा का व्यवहार कीजिए

जंग के कारण ओकासा की क़ीमतों में परिवर्तन नहीं हुआ। क़ीमत छोटी साइज ३॥।), बड़ी साइज १०); हर दवावाले से खरीदिये।

ओकासा डिपो, पार्क मेनशन, देहली गेट, देहली से मँगाइए।

के भी सैकड़ों कारखाने खुल जायँगे, जैसे शक्कर के खोले गये हैं। कहा गया है, इस कारखाने में ५० पैरगाड़ियाँ प्रतिदिन तैयार होंगी। आशा है, इस कारखाने या ऐसे कारखानों की बदौलत देश में स्वदेशी पैरगाड़ियों का व्यापक रूप से प्रचार होगा। हम इस प्रयत्न की सफलता चाहते हैं।

हिन्दी की हक़तलफ़ी

पिछले दिनों पण्डित वेंकटेशनारायण तिवारी ने हिन्दी के पक्ष का ज़ोरों के साथ समर्थन किया है। इस सम्बन्ध में उन्होंने जो महत्त्वपूर्ण लेख लिखे हैं उनका हिन्दी-प्रेमियों ने स्वागत किया है और उनकी भूरि-भूरि प्रशंसा की है। खेद की बात है कि तिवारी जी के इस प्रयत्न से हमारी हिन्दी-संस्थाओं ने कुछ भी लाभ नहीं उठाया और उनके सूत्रधार पूर्णरूप से उदासीन मनोवृत्ति धारण किये रहे। इसे हम हिन्दी का दुर्भाग्य ही कहेंगे, परन्तु सन्तोष इतना ही है कि हमारे बीच हिन्दी के प्रेमियों का अभाव नहीं हो गया है और वे तिवारी जी जैसे हिन्दी के हितचिन्तकों का प्रोत्साहन करने को सदा प्रस्तुत रहते हैं। इस सम्बन्ध में हमें जो पत्र मिलते रहे हैं उनसे हमें प्रकट हुआ है कि हिन्दी-प्रेमी हिन्दी की हक़तलफ़ी होती देखकर कितना दुखी हैं। उदाहरण के लिए हम एक पत्र यहाँ छापते हैं जो तिवारी जी के नाम हमारे पते से आया है। वह पत्र ज्यों का त्यों इस प्रकार है—

श्रीमान् मान्यवर तिवारी जी,

आपके हिन्दी-सम्बन्धी लेख 'सुधा' तथा 'सरस्वती' आदि प्रसिद्ध हिन्दी-पत्रिकाओं में पढ़कर असीम प्रसन्नता हुई और यह देखकर और भी प्रसन्नता हुई कि पंजाब में हिन्दी के पक्ष को आप जैसे विद्वानों ने अपने हाथ में लिया है। आशा है, आप इसे पूरा करके ही छोड़ेंगे। पंजाब में हिन्दी की दशा दिन प्रतिदिन बिगड़ती जा रही है। समय रहते इसको सँभाल लेना चाहिए। अन्यथा रोग असाध्य हुआ चाहता है। पंजाब में प्रारम्भिक शिक्षा उर्दू में होने के कारण यहाँ सब व्यापारी-वर्ग में भी उर्दू का प्रचार होता चला जा रहा है। लोग छोटे-छोटे नगरों में उर्दू को ही निज की भाषा मानने लग गये हैं। हिन्दुओं का कोई भी कार्य क्यों न हो, उसमें जितनी लिखा-पढ़ी होती है सबकी सब उर्दू में ही होती है। फलतः बहुत-से हिन्दू भी हिन्दी से घृणा करने लग गये हैं। इन सब बुराइयों का एकमात्र उपाय है कि पंजाब में हिन्दी ऐच्छिक कोर्ट भाषा बनवाई जावे। हिन्दी के ऐच्छिक हो जाने पर लोग स्वयं ही इसे स्वीकार कर लेंगे। भाषा ही जाति का जीवन है। हिन्दू-जाति भाषा के बारे में बहुत उदासीन रही है और है। पर अब आप जैसे विद्वानों के सजग हो जाने से जनता भी कुछ कुछ सचेष्ट हो गई है। जम्मू-काश्मीर के विषय में आपका लिखा लेख बहुत उत्तम है। क्या वहाँ (काश्मीर में) कोई नागरी-प्रचारिणी सभा नहीं है। यदि है तो उसे भी उद्बोधन करना चाहिए। इसी प्रकार पंजाब में यत्न होना चाहिए। जहाँ १३% प्रतिशत सिक्खों के २ – ३ पंजाबी के दैनिक पत्र चल रहे हैं। कई साप्ताहिक और मासिक पत्र निकल रहे हैं। उनके सामने हिन्दी के नहीं के समान हैं। अन्त में आपसे यही प्रार्थना है कि इस विषय को अधूरा न छोड़ें। किसी न किसी ठिकाने लगाने का यत्न करेंगे। बिहार में जहाँ केवल ४, ५% मुसलमान हैं और यू० पी० जहाँ मुसलमान केवल १५% के लगभग हैं वहाँ मुसलमानों की भाषा उर्दू को तो कोर्ट भाषा का वैकल्पिक पद प्राप्त हो, परन्तु पंजाब में जहाँ ३२% हिन्दू हों वहाँ हिन्दी की कोई पूछ न हो, कोर्ट और आफ़िसों में कोई स्थान न हो। कितने खेद की बात है! मेरे विचार में हमारे नेताओं की उदासीनता भी हिन्दी के लिए घातक सिद्ध हो रही है। आशा है, आप पंजाब के हिन्दू-नेताओं को भी प्रेरित करेंगे कि वे इसके लिए एक सुसंगठित आन्दोलन चलावें, जिसमें राष्ट्र-भाषा हिन्दी को पंजाब में भी सम्मानित स्थान प्राप्त हो। "अंगीकृतं तु सुकृतिनः परिपालयन्ति

—भवदीय

ब्रह्मदत्त महाजन

जफ़रवाल, स्यालकोट

(पंजाब)

क्या इतने पर भी हमारे हिन्दी के महारथी अपना कर्तव्य-पालन करने को तैयार नहीं होंगे?

तिवारी जी का एक पत्र

सम्मेलन के आगामी अधिवेशन के साथ राष्ट्र-भाषा-प्रचार-सम्मेलन की जो बैठक होगी उसके सभापति पण्डित वेंकटेशनारायण तिवारी बनाये गये हैं। इस सम्बन्ध में सम्मेलन के प्रधान मंत्री ने तिवारी जी को सूचनार्थ एक पत्र लिखा था। उसका जो उत्तर तिवारी जी ने प्रधान मंत्री को दिया है वह हमें छापने को मिला है। तिवारी जी का यह पत्र काफ़ी रोचक है। उसका अधिकांश इस प्रकार है—

आपने मुझे यह सूचना दी है कि राष्ट्र-भाषा-सम्मेलन या समिति (मुझे नहीं मालूम कि सम्मेलन के पुछल्लों को मैं किस नाम से याद करूँ) के आगामी अधिवेशन का सभापति मैं चुना गया हूँ, और आप यह जानना चाहते हैं कि क्या मुझे इस अधिवेशन का सभापतित्व स्वीकार है? निर्वाचकों का मैं अनुगृहीत हूँ कि उन्होंने मुझे इस सेवा के लिए चुनने की कृपा की, लेकिन पूना में अधिवेशन होने के विषय में जो शोचनीय परिस्थिति कतिपय राष्ट्रभाषा के हिमायतियों ने पैदा कर दी है तथा सम्मेलन की स्थायी समिति ने इस विषय में जो कुछ कार्यवाही की है, इन सबको देखते हुए मैं दुविधा में पड़ गया हूँ। मान लीजिए, कि स्थायी समिति बहुमत से यह तय करती है कि सम्मेलन का आगामी अधिवेशन पूना की जगह किसी अन्य स्थान में किया जाय। यह भी मान लीजिए कि स्थायी समिति के इस निर्णय के होते हुए भी पूना में सम्मेलन की पूर्व-निर्वाचित स्वागत-समिति यह तय करती है कि बनारस के फ़ैसले के अनुसार सम्मेलन का आगामी अधिवेशन पूना ही में हो और पूना की स्वागत-समिति मुझे राष्ट्र-भाषा-सम्मेलन के अधिवेशन में सभापतित्व के लिए आमंत्रित करती है। आप मुझे बतायें कि ऐसी परिस्थिति उपस्थित होने पर मेरी स्वीकृति का क्या अर्थ होगा? स्थायी समिति की बग़ावत का साथ देना और पूना की स्वागत-समिति के निमन्त्रण को अस्वीकार करना, या स्थायी समिति का सदस्य होते हुए भी स्थायी समिति के फ़ैसले के विरुद्ध पूना के अधिवेशन में जाकर सभापति का पद ग्रहण करना?

उपर्युक्त सम्भावनाओं को सामने रख कर मैं इस समय यही उचित समझता हूँ कि मैं अपने निर्वाचन को स्वीकार कर लूँ। पर साथ ही, यह भी मैं स्पष्ट कर दूँ कि यदि पूना की पूर्व-निर्वाचित स्वागत-समिति पूना में राष्ट्र-भाषा-सम्मेलन का अधिवेशन करने की योजना करती और मुझे उसके सभापतित्व के लिए आमन्त्रण भेजती है तो मैं अपना यह कर्तव्य समझूँगा कि पूनावाले अधिवेशन के साथ मैं पूर्णरूप से सहयोग दूँ। अधिवेशन को स्थगित करने के सम्बन्ध में स्थायी समिति का जो निर्णय है उसको मैं सम्मेलन के हित में घातक समझता हूँ। मेरी यह निश्चित धारणा है कि स्थायी समिति को बहुमत से सम्मेलन के अधिवेशन को स्थगित करने का कोई अधिकार नहीं है। व्यक्तियों की ख़ुशामद करना सम्मेलन ऐसी महती संस्था के लिए अपमान-जनक है, और हमारे जिन मित्रों ने सद्भावना से प्रेरित होकर सम्मेलन को स्थगित करने के पक्ष में सम्मति दी है, उन्होंने अनजान में सम्मेलन, हिन्दी और राष्ट्रभाषा के प्रति स्पष्टरूप से अपने कर्तव्य की अवहेलना की है।

श्री काशीराम-पुरस्कार

उपर्युक्त पुरस्कार की प्रतियोगिता में जितनी कवितायें आईं उनमें श्रीमती सुमित्रा कुमारी सिनहा की रचना सबसे अच्छी सिद्ध हुई; अतएव उस कविता पर ५०) का उक्त पुरस्कार दिया गया। श्रीमती जी की उक्त रचना इसी अंक में अन्यत्र प्रकाशित की गई है।

नीलमणि

[श्रीयुत स्वेन्द्रनाथ बनर्जी, तोता कुटीर, ६० सी० कैनुदीन निकोतिन अलीपुर, कलकत्ता के सौजन्य से

सचित्र मासिक पत्रिका

सम्पादक

देवीदत्त शुक्ल—उमेशचन्द्र मिश्र

अगस्त १९४० } भाग ४१, खंड २ संख्या २, पूर्ण संख्या ४८८ { श्रावण १९९७

दो गीत

(१)

आज मधुर मन मेरा
बोल रही कोकिल रसाल में
कैसा सुरस उड़ेला?
मेरे मन नयनों प्राणों में
लगा भाव का मेला,
रस का सरस सवेरा
आज मधुर मन मेरा
नव नव पल्लव खिले वृंत में
हरित हुई नव आशा,
शत शत छन्द मिलन के गाते
जगी प्रणय अभिलाषा,
शशि ने सागर हेरा
आज मधुर मन मेरा

—सोहनलाल द्विवेदी

(२)

मैंने पूजा की, प्यार नहीं।
दर्शन पाया, वरदान नहीं,
आशीश मिला, सम्मान नहीं,—
श्रद्धा के फूल चढ़ाये हैं—कोमल कुसुमों का हार नहीं।
मैंने पूजा की, प्यार नहीं॥
तुमने न कभी संकेत किया,
मैंने ही निज को भेंट किया,—
उर खोल सदा दिखलाया है,—अस्तित्व नहीं, अधिकार नहीं।
मैंने पूजा की, प्यार नहीं॥
पद-धूलि तुम्हारी पाई है,
गुण-गरिमा केवल गाई है,—
आंसू की अञ्जलि दे-देकर, आह्वान किया, अभिसार नहीं।
मैंने पूजा की, प्यार नहीं॥

—नर्मदाप्रसाद खरे

क्या भारत में दो राष्ट्र हैं ?

लेखक, श्रीयुत रामनारायण 'यादवेन्दु', बी० ए०, एल-एल० बी०

भारतवर्ष में सन् १९३१ की मनुष्य-गणना के अनुसार ३५ करोड़ की जन-संख्या है। इसमें ८ करोड़ मुसलमान हैं और २५ करोड़ हिन्दू हैं। भारतवर्ष में मुसलमान एक महत्त्वपूर्ण अल्पमत समुदाय माने जाते रहे हैं। यहाँ ईसाइयों, पारसियों, सिक्खों, ऐंग्लो-इंडियनों, योरपीयों आदि के भी अल्पमत समुदाय हैं, यद्यपि इनकी संख्या मुसलमानों की अपेक्षा कम है। मुस्लिम लीग के नेता श्री मुहम्मद अली जिन्ना भी मुसलमानों को भारत में एक अल्पमत समुदाय ही मानते रहे हैं और इसी आधार पर वे मुसलमानों के राजनैतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक तथा धार्मिक हितों की रक्षा के लिए आन्दोलन करते रहे हैं। जब भारत में शासन-सुधारों की जाँच के लिए सायमन-कमीशन आया तब भी मुसलमानों की ओर से धार्मिक, सांस्कृतिक, सामाजिक तथा राजनैतिक हितों के संरक्षणों की ही माँग पेश की गई। लन्दन में गोलमेज-परिषद् के अधिवेशन में भी मुसलमानों ने अल्पमत में होने के कारण विशेषाधिकारों की माँग की।

अतः सन् १९३५ के शासन-विधान में मुसलमानों को अल्पमत में स्वीकारकर उनके हितों के लिए विशेषाधिकारों की व्यवस्था की गई। अप्रैल सन् १९३७ में प्रान्तीय स्वराज्य की स्थापना हो जाने तक भी जिन्ना साहब मुसलमानों को अल्प-संख्यक जाति ही मानते रहे। परन्तु ८ प्रान्तों में कांग्रेस के मंत्रि-मंडल क़ायम हो जाने के बाद जब मुस्लिम लीग और कांग्रेस में मंत्रिमण्डलों में मुस्लिम लीग के सदस्य सम्मिलित करने के प्रश्न पर समझौता न हो सका तब श्री जिन्ना ने यह प्रचार करना शुरू कर दिया कि इस्लाम खतरे में है और हिन्दू भारत में हिन्दू-राज्य की स्थापना करना चाहते हैं। ऐसी स्थिति में मुसलमानों का ...ण हिन्दू-राज्य में नहीं हो सकता। मुसलमानों को भारत में मुस्लिम राज्य की स्थापना करनी चाहिए।

श्री जिन्ना की राष्ट्र-कल्पना

एक अल्प-संख्यक जाति भारत में मुस्लिम राज्य कैसे क़ायम कर सकती है, इसलिए अब श्री जिन्ना ने अपने वक्तव्यों और भाषणों में यह कहना शुरू कर दिया कि मुसलमान अल्प-संख्यक जाति नहीं हैं, प्रत्युत मुसलमान एक स्वतंत्र राष्ट्र हैं। मुसलमानों को एक स्वतंत्र राष्ट्र सिद्ध करने के लिए श्री जिन्ना ने सन् १९३४ की भारतीय वैधानिक सुधारों-सम्बन्धी सिलेक्ट कमिटी की रिपोर्ट के प्रथम भाग का पहला पैरा पेश किया है, जो इस प्रकार है—

"भारत में बहुत-सी जातियाँ रहती हैं।...... वे अपनी उत्पत्ति, ऐतिहासिक परम्परा और जीवन की पद्धति के सम्बन्ध में एक-दूसरे से इतनी भिन्न हैं जैसे कि योरप के राष्ट्र। दो-तिहाई भारतवासी हिन्दू-धर्मावलम्बी हैं और ८ करोड़ इस्लाम के अनुयायी हैं। इन दोनों में अन्तर केवल धर्म का ही नहीं है, बल्कि कानून और संस्कृति का भी है। ऐसा कहा जा सकता है कि वास्तव में ये दो भिन्न और पृथक् सभ्यताओं का प्रतिनिधित्व करते हैं।"

इस अवतरण की व्याख्या करते हुए श्री जिन्ना अपने एक लेख में लिखते हैं—"वास्तव में वे दो भिन्न राष्ट्र हैं। और यदि यह तथ्य संयुक्त सिलेक्ट कमिटी जैसी अधिकारी संस्था ने स्वीकार कर लिया है तो मुस्लिम जनता को ब्रिटिश सरकार की भारत पर बिना किसी मर्यादा के पाश्चात्य प्रजातंत्र-प्रणाली के लादने की बुद्धिमत्ता में संदेह करने के लिए गुंजायश है।.... इसलिए यदि यह स्वीकार कर लिया गया कि भारत में एक बड़ा और एक छोटा राष्ट्र है तो इसका मतलब यह होगा कि बहुमत के आधार पर स्थिर पार्लिमेंटरी शासन-प्रणाली में बड़े राष्ट्र का शासन होगा। अनुभव ने यह सिद्ध

कर दिया है कि किसी भी राजनैतिक पार्टी का आर्थिक और राजनैतिक कार्यक्रम चाहे जो कुछ हो, हिन्दू सामान्यतया अपनी जाति के भाई के लिए मत देगा और मुसलमान अपने सहधर्मानुयायी के लिए ।"*

अब तक श्री जिन्ना व्यक्तिगत रूप से दो-राष्ट्रों के सिद्धान्त का प्रचार करते थे। परन्तु विगत मार्च १९४० में होनेवाले मुस्लिम लीग के लाहौर-अधिवेशन में इसे मुस्लिम लीग के एक प्रस्ताव में भी स्थान देकर लीग की नीति का अंग बना दिया है।

लाहौर-अधिवेशन में श्री जिन्ना ने मुस्लिम लीग के सभापति-पद से अपने भाषण में यह कहा—

"किसी भी परिभाषा के अनुसार मुसलमान एक पृथक् राष्ट्र हैं । और उनका प्रदेश, गृह तथा राज्य होना चाहिए। हम स्वतंत्र और स्वाधीन राष्ट्र की हैसियत से अपने पड़ोसियों के साथ शान्ति और मेल के साथ रहना चाहते हैं।....

"यह समझना बड़ा कठिन है कि हमारे हिन्दू मित्र हिन्दूत्व और इस्लाम के सच्चे स्वरूप को समझने में क्यों असफल रहते हैं । सच्चे अर्थ में वे 'धार्मिक' नहीं हैं, प्रत्युत वास्तव में भिन्न और पृथक् सामाजिक व्यवस्था में हैं। और यह केवल एक स्वप्न है कि हिन्दू और मुसलमान कभी एक सामान्य राष्ट्र का विकास कर सकेंगे। एक भारतीय राष्ट्र की यह ग़लत धारणा सीमा का अतिरेक कर चुकी है और यह हमारी बहुत-सी परेशानियों का कारण बनी हुई है। अगर हम अपने विचारों में—भावनाओं में समय रहते परिवर्त्तन न कर सके तो यह भारत के सर्वनाश की ओर हमें ले जायगी। हिन्दुओं और मुसलमानों के दो भिन्न धार्मिक दर्शन-शास्त्र हैं, भिन्न सामाजिक परम्परायें हैं तथा भिन्न साहित्य हैं । वे न अन्तर्जातीय विवाह करते हैं और न अन्तर्जातीय भोज ही, और वास्तव में वे ऐसी दो भिन्न सभ्यताओं के प्रतिनिधि हैं जो मुख्यतः परस्पर-विरोधी विचारधाराओं और भावनाओं पर स्थिर हैं। जीवन के सम्बन्ध में उनकी विचारधारायें भिन्न हैं। यह तो स्पष्ट ही है कि मुसलमान और हिन्दू अपनी प्रेरणा इतिहास के भिन्न-भिन्न साधनों से प्राप्त करते हैं। उनकी वीरगाथायें भिन्न हैं; उनके वीर पुरुष भिन्न-भिन्न हैं और उनकी वीरोचित घटनावलियाँ भी भिन्न हैं। कभी कभी तो एक का वीर पुरुष दूसरे का शत्रु होता है। इसी प्रकार विजयों और पराजयों की बात है । एक राज्य के अन्तर्गत दो ऐसे राष्ट्रों का अस्तित्व जो एक संख्या की दृष्टि से बहुमत है और दूसरा अल्प-मत, ऐसे राज्य में शासन के ढाँचे का अन्तिम रूप से विनाश कर देगा।"

*Mr. M. A. Jinnah's article on the Theory of Two Nations in 'Time and Tide'.

श्री जिन्ना की यह धारणा है कि हिन्दू और मुसलमान केवल दो धर्म ही नहीं हैं, प्रत्युत वे दो परस्पर-विरोधी संस्कृतियाँ, सभ्यतायें और सामाजिक व्यवस्थायें हैं । मुसलमान एक राष्ट्र हैं।

राष्ट्र के आवश्यक तत्त्व—

राष्ट्र उस जन-समूह का नाम है जो अपने आपको स्वाभाविक रूप से एक सूत्र में बँधा हुआ अनुभव करता है। जिन शृंखलाओं में वह बँधा होता है वे इतनी मज़बूत होती हैं कि उनके प्रभाव से वह आनन्द-पूर्वक जीवन का भोग कर सकता है। जब ये शृंखलायें तोड़ दी जाती हैं तब वह समस्त जन-समूह घोर असन्तोष का अनुभव करता है।

अब हमें यहाँ यह विचार करना है कि वे कौन-सी शृंखलायें हैं जो जनसमूह को इस प्रकार बाँधे रहती हैं कि वह राष्ट्र के रूप में विकसित हो जाता है। राष्ट्र के मूलतत्त्व निम्न प्रकार हैं—

१. जातीय एकता
२. सुनिश्चित भू-खंड
३. भाषा की एकता
४. धार्मिक एकता
५. आर्थिक सामान्य हित
६. सामान्य ऐतिहासिक परम्परा
७. सामान्य शासन का नियन्त्रण

अब हमें यह देखना है कि भारतीय मुस्लिम जनता में राष्ट्र के उपर्युक्त तत्त्व या गुण कहाँ तक मौजूद हैं।

इस सत्य को सभी विद्वान् स्वीकार करते हैं कि भारत में मुसलमानों की एक बहुत बड़ी संख्या, यदि वह सबसे बड़ी संख्या कही जाय तो अतिशयोक्ति न होगी, ऐसी है

जिसके पूर्वज हिन्दू थे। इस समय ८ करोड़ मुसलमान भारतवर्ष में हैं। परन्तु इनमें ऐसे मुसलमान तो बहुत ही कम हैं जो फ़ारसवालों, अरबवालों या मुग़लों की सन्तान हों और जो बराबर अपने रक्त की पवित्रता सुरक्षित रक्खे हुए हों।

भारतीय मुसलमानों में सबसे विशाल संख्या तो ऐसे लोगों की है जो पहले हिन्दू थे और बाद में ज़बर्दस्ती मुसलमान बनाये गये अथवा जो किसी प्रलोभन से मुसलमान बन गये। इस प्रकार यह तो प्रमाणित ही है कि मुसलमानों में जातीय एकता का अभाव है। उनमें विशुद्ध मुग़लों, पठानों या अरबवालों का रक्त नहीं है। यह निर्विवाद है कि यदि ब्राह्मण, राजपूत या जाट हिन्दुत्व का परित्याग कर इस्लाम मत को ग्रहण कर लें तो इस मत-परिवर्तन से उनकी जाति में कोई परिवर्तन नहीं हो सकता। इस दृष्टि से विचार करने पर हम इस परिणाम पर पहुँचते हैं कि भारत में मुसलमानों में सबसे अधिक संख्या ऐसे स्त्री-पुरुषों की है जो आर्य-जाति से सम्बन्धित हैं। जातीय एकता के दृष्टिकोण से तो समस्त भारतीय एक जाति हैं। उनमें विविध जातियों की कल्पना करना ऐतिहासिक मिथ्यावाद होगा।

राष्ट्र के अस्तित्व के लिए दूसरा आवश्यक तत्त्व है सुनिश्चित भू-खंड पर जनता का अधिकार। यद्यपि यह सच है कि भारत अधिकांश मुसलमानों की मातृ-भूमि है। इस भूमि पर उन्होंने जन्म लिया है, पोषण प्राप्त किया है और रहने के लिए स्थान पाया है। समस्त भारत मुसलमानों की ऐसी ही जन्म-भूमि है—मातृभूमि है। उस पर जन्म लेने, पोषण पाने और जीवन का सुख भोगने का उन्हें एक भारतीय के नाते पूरा अधिकार है। परन्तु आज तक भारत में मुसलमानों का कोई सुनिश्चित भू-प्रदेश क़ायम नहीं हो सका, जिसके सम्बन्ध में यह कहा जा सके कि वह केवल मुसलमानों की भूमि है। भारत के किसी भी विशेष भू-खंड पर एकमात्र मुसलमानों का अधिकार नहीं है। इसलिए यह भी निर्विवाद है कि भारत में मुसलमानों का कोई सुनिश्चित प्रदेश भी नहीं है। बंगाल, पंजाब, सिंध और सीमा-प्रान्त के सम्बन्ध में मुसलमान यह कह सकते हैं कि इन प्रान्तों में मुसलमानों की संख्या हिन्दुओं की अपेक्षा अधिक है। परन्तु इसका यह मतलब नहीं कि सिक्खों का पंजाब में कोई अधिकार नहीं अथवा बंगाल मुसलमानों का है और उस पर हिन्दुओं का कोई अधिकार नहीं। भाषा की एकता की दृष्टि से भी यह नहीं कहा जा सकता कि भारत के समस्त या अधिकांश मुसलमान उर्दू का प्रयोग करते हैं।

यह निःसन्देह सत्य है कि भारत के समस्त मुसलमानों में इस्लाम के प्रति श्रद्धा है, इसलिए उनमें धार्मिक एकता की भावना है। परन्तु आधुनिक युग में राष्ट्र-निर्माण में धर्म एक आवश्यक शक्ति नहीं रहा है। एक युग था जब राज्य और राजनीति में धर्म का मुख्य स्थान था। धर्म के नाम पर मानव-इतिहास में बहुत-से युद्ध हुए हैं। परन्तु आज तो युग-परिवर्तन हो गया है। आज हम संसार के किसी भी देश में धर्म के नाम पर युद्ध होने की बात नहीं सुनते। वास्तव में सत्य तो यह है कि आज राज्य या राष्ट्रनीति में धर्म का स्थान अर्थ ने ले लिया है। इस आर्थिक युग में अर्थ ही समस्त राजनैतिक विचार-धाराओं की धुरी है। तुर्किस्तान ने कमाल पाशा के नेतृत्व में जो कायापलट की है उससे भी यह सिद्ध होता है कि राष्ट्र-निर्माण में धर्म आज कोई शक्ति नहीं है।

राष्ट्र के लिए जन-समूह में सामान्य आर्थिक हितों का अस्तित्व भी आवश्यक है। अब विचारणीय बात तो यह है कि क्या भारत के समस्त मुसलमानों के सामान्य आर्थिक हित समान हैं और उनका अन्य भारतीयों के आर्थिक हितों से कोई सम्बन्ध नहीं है। यदि भारत के आर्थिक जीवन का विश्लेषण किया जाय तो उसकी दो विशेषतायें स्पष्ट रूप से प्रकट होंगी। पहली विशेषता यह कि भारत में उच्च वर्ग तथा मध्यम वर्ग—जिनमें नवाब, राजा, जमींदार, ताल्लुक़ेदार, मिल-मालिक और पूँजीपति सम्मिलित हैं—का हित है सामान्य जनता का आर्थिक शोषण और निम्न-वर्ग का हित है अपनी श्रम-शक्ति को मनमाने मूल्य पर बेचकर अपना पेट भरना। इन दोनों वर्गों में परस्पर विरोध है, क्योंकि दोनों के हित सर्वथा भिन्न हैं। ये दोनों वर्ग मुसलमानों में भी मौजूद हैं। मुसलमानों में ९५ फ़ी सदी जनता निर्धन है, शोषित है, पीड़ित है। शेष ५ फ़ी सदी लोग ज़मींदार हैं, पूँजीपति हैं।

हिन्दू और मुसलमान दोनों ही समुदाय भारत के प्रत्येक भाग में बसे हुए हैं। यह बात दूसरी है कि किसी भाग में हिन्दुओं की संख्या अधिक हैं और किसी भाग में मुसलमान अधिक संख्या में हैं। जहाँ हिन्दू अधिक संख्या में हैं उसे हम हिन्दुओं के लिए सुरक्षित प्रदेश या जिस प्रान्त में मुसलमान अधिक हैं उसे हम मुसलिमों के लिए सुरक्षित प्रदेश नहीं कह सकते। इस प्रकार हम स्पष्टतः यह देखते हैं कि मुसलमानों में राष्ट्र का दूसरा आवश्यक तत्त्व भी नहीं है।

अब भाषा की एकता पर विचार कीजिए। मुसलमान उर्दू को अपनी भाषा मानते हैं, यद्यपि हमें उनके इस दावे में सन्देह है। फिर भी यदि तर्क के लिए यह मान लिया जाय कि उर्दू मुसलमानों की भाषा है तो कोई हानि नहीं। यद्यपि मुसलमान भारत के सभी भागों में बसे हुए हैं, तथापि भाषा की दृष्टि से उनमें एकता नहीं है। बंगाल प्रान्त में सब मुसलमान बँगला-भाषा का प्रयोग करते हैं। स्कूल, कालेजों और विश्वविद्यालयों में बँगला-भाषा पढ़ाई जाती है। उनका साहित्य तथा समाचार-पत्र भी उर्दू में नहीं, बँगला-भाषा में प्रकाशित होते हैं। मदरास में तामिल-तेलगू आदि भाषायें मुसलमानों-द्वारा व्यवहार में लाई जाती हैं। मध्य-प्रान्त में सब मुसलमान हिन्दी-भाषा का प्रयोग करते हैं। हिन्दी के प्रसिद्ध मुस्लिम साहित्यकार और पत्रकार अधिकतर इसी प्रान्त में हैं। सिंध के मुसलमान सिंधी-भाषा का प्रयोग करते हैं। पंजाब में उर्दू का अधिक प्रचार है, परन्तु पंजाबी भाषा ही वहाँ मुख्य है। सीमा-प्रांत में पश्तो-भाषा बोली-लिखी जाती है। उड़ीसा और बिहार में हिन्दी-भाषा का अधिक प्रयोग होता है। संयुक्त-प्रान्त में हिन्दी का अधिक प्रचार है। हिन्दी-भाषी प्रान्त होने से यहाँ हिन्दी-साहित्य और हिन्दी-समाचार पत्रों का ही आधिक्य है। परन्तु इसका यह मतलब नहीं कि यहाँ उर्दू का प्रयोग नहीं होता। उर्दू का प्रयोग जितना मुसलमानों के द्वारा होता है, उससे कहीं ज्यादा हिन्दू उर्दू का प्रयोग करते हैं। अनेक हिन्दू उर्दू के साहित्य के मर्मज्ञ हैं। ऐसी दशा में उच्च वर्गीय मुसलमानों और सामान्य मुस्लिम जनता के आर्थिक हितों में साम्य कैसे हो सकता है।

भारतवर्ष में प्रायः १५० वर्षों से अँगरेज़ी राज्य स्थापित है और हिन्दू तथा मुसलमान विदेशी शासन के अन्तर्गत १५० वर्ष से परतंत्र दशा में रहे हैं। इससे पूर्व हिन्दू-मुसलमान कई सदियों से बड़े मेल से रहते आये हैं। अँगरेज़ी साम्राज्यवाद तथा आर्थिक शोषण के कारण भारतीयों का चतुर्मुखी पतन हो गया। उनका आध्यात्मिक पतन हुआ, नैतिक पतन हुआ, आर्थिक सर्वनाश हो गया और राजनैतिक दृष्टि से भी परतन्त्र हो गये। इस प्रकार डेढ़ शताब्दी तक परतन्त्रता की बेड़ियों में जकड़े रहने के बाद भारतीयों में स्वाधीनता की भावना का उदय हुआ। यही भारत में राष्ट्रीय भावना के आविर्भाव का एक प्रमुख कारण है।

भारतीय राष्ट्रीयता का उदय

भारतीयों में भारतीय स्वाधीनता की भावना राष्ट्रीयता का द्योतक है। भारत एक राष्ट्र है। भारतीय राष्ट्रीयता के विकास में समस्त भारतीयों—हिन्दू, मुसलमान, ईसाई, पारसी, ऐंग्लो इंडियन, योरपीय, सिक्ख तथा अन्य सभी वर्गों का योग है। किसी एक सम्प्रदाय या वर्ग ने ही भारतीय राष्ट्रीयता के उदय में सहायता नहीं की, प्रत्युत सभी सम्प्रदायों एवं वर्गों ने सहायता की है। भारतीय स्वाधीनता के लिए आज तक जो जो प्रयत्न हुए हैं उनमें सभी समुदायों के देशभक्तों ने अपना बलिदान किया है। अपनी मातृभूमि के बन्धनों को तोड़ने में सभी देशभक्तों का प्रयत्न और साधना राष्ट्र के इतिहास में स्वर्णाक्षरों में लिखी जाने योग्य है, फिर चाहे उनके राजनैतिक विचार कैसे ही क्यों न रहे हों।

भारत में आज उग्र साम्प्रदायिकता का अधिक ज़ोर है और इसका एक कारण है। प्रत्येक देश में स्वाधीनता-आन्दोलन के शत्रु होते हैं। इनका काम होता है साम्राज्य-वाद के स्तम्भ बनकर स्थितिपालकता को क़ायम रखना। भारत में भी साम्प्रदायिक पंथियों का यही काम है। इसमें शक नहीं कि भारत में साम्प्रदायिकता को उग्ररूप देने में फूट डालकर शासन करने की नीति विशेष रूप से उत्तरदायी रही है। आज तक हिन्दू-मुसलमानों में समझौता नहीं हो सका, इसका कारण है भारत में विदेशी शासन का होना।

यद्यपि भारत में पृथक् मुस्लिम राष्ट्र के लिए एक भी आवश्यक तत्त्व मौजूद नहीं है, तथापि यह तो निर्विवाद रूप से प्रमाणित है कि आज भारतीय राष्ट्र के विकास के

लिए सभी आवश्यक तत्त्व मौजूद हैं। मौलाना अबुल कलाम आज़ाद ने रामगढ़-कांग्रेस के राष्ट्रपति के पद से अपने भाषण में यह स्पष्ट शब्दों में कहा है कि—

"ग्यारह सदियों के सामान्य इतिहास ने हमारे सामान्य कार्य-कलापों से भारत को सम्पन्न बना दिया है। हमारी भाषाओं, हमारी काव्य-कला, हमारी साहित्य-कला, हमारी संस्कृति, हमारे रीति-रवाज, हमारी पोशाक तथा दैनिक जीवन की अन्य अगणित घटनाओं पर हमारे संयुक्त प्रयत्न की छाप है। हमारी भाषायें भिन्न-भिन्न थीं, परन्तु हमने सामान्य भाषा के प्रयोग का विकास किया; हमारे रीति-रवाज तथा शिष्टाचार भिन्न-भिन्न थे परन्तु उनका एक दूसरे पर प्रभाव पड़ा और प्रतिक्रिया के फल-स्वरूप एक नवीन समन्वय का विकास हुआ। हमारी पुरानी पोशाक तो अब प्राचीन काल के चित्रों में ही देखने को मिल सकती है; आज उसे कोई नहीं पहनता। यह सामान्य सम्पत्ति हमारी सामान्य राष्ट्रवादिता की देन है। और हम उसे अब त्याग देना नहीं चाहते। हम अब उस युग को लाना नहीं चाहते जब कि यह संयुक्त जीवन आरम्भ भी नहीं हुआ था। यदि कोई ऐसे हिन्दू हों, जो एक हज़ार वर्ष के पहले के हिन्दू-जीवन को पुनर्जीवित करने की आकांक्षा करते हों तो वे वास्तव में स्वप्नदर्शी हैं और ऐसे स्वप्न देखना व्यर्थ है। और इसी प्रकार यदि कोई ऐसे मुसलमान हों, जो अपनी उस सभ्यता और संस्कृति का पुनर्जीवन करना चाहें जिन्हें वे एक हज़ार वर्ष पूर्व ईरान और मध्यएशिया से यहाँ लाये थे तो वे भी स्वप्न देखते हैं और जितनी ही जल्दी वे जागरूक हो जायँ उतना ही अच्छा है।"

मौलाना आज़ाद ने स्पष्ट शब्दों में यह घोषित किया है कि हमारी राष्ट्रीयता भारतीय सभ्यताओं, संस्कृतियों तथा आदर्शों की संयुक्त सम्पत्ति की देन है, इसलिए हिन्दू और मुसलमान यदि हिन्दू और मुस्लिम राष्ट्र की कल्पना कर अपने अपने स्वतन्त्र राज्य क़ायम करने का स्वप्न देखें तो यह व्यर्थ प्रयास ही होगा।

आज मुस्लिम लीग के अधिनायक श्री मुहम्मद अली जिन्ना मुस्लिम राष्ट्र बनाने और मुस्लिम राज्य की स्थापना करने का स्वप्न देख रहे हैं; उनकी इस भारतीय राष्ट्रीयता-विघातिनी नीति की प्रतिक्रिया हिन्दू-महासभा में भी दृष्टिगत होने लगी है। नागपुर के जनवरी १९३९ के हिन्दू-महासभा के २० वें अधिवेशन में वीरवर श्री विनायक दामोदर सावरकर ने अध्यक्षपद से अपने भाषण में कहा—

"अतः यह निश्चय समझकर कि भारत के मुसलमान हिन्दुओं के साथ मिलकर कभी एक राजनैतिक राष्ट्र बनाने के लिए तैयार नहीं होंगे। हम हिन्दू-संगठनकारियों को अपनी पहली ग़लती सुधार लेनी चाहिए। भौमिक एकता के सिद्धान्त पर भारतीय राष्ट्र का निर्माण करने की मृगतृष्णा में हमें नहीं पड़ना चाहिए। हिन्दू-राष्ट्र की भावना को हमें पुनर्जीवित करना चाहिए। हमें घोषित कर देना चाहिए कि वह देश जो सिंध से दक्षिणी सागर तक फैला हुआ है, हिन्दुस्तान है और हम हिन्दू उसके मालिक हैं। अगर हम उसे भारतीय राष्ट्र कहते हैं तो वह केवल हिन्दू-राष्ट्र का ही पर्याय है। हमारे लिए हिन्दुस्तान तथा भारत सब एक अर्थ रखते हैं।"

हिन्दू-महासभा के कलकत्ता के अधिवेशन (दिसम्बर १९३९) में श्री सावरकर ने अपने भाषण में अपने उपर्युक्त विचार को और भी स्पष्ट रूप से रखने का प्रयत्न किया। उन्होंने कहा—

"हिन्दुओं के लिए स्वराज्य से मतलब केवल उस राज्य से है जिसमें उनका स्वत्व, हिन्दुत्व किसी ग़ैर-हिन्दू-जनता—चाहे वह भारतीय हो या ग़ैर-भारतीय—के द्वारा आधिपत्य में रक्खे बिना अपनी अभिव्यक्ति कर सके।"

हिन्दू-महासभा के अध्यक्ष श्री सावरकर यद्यपि श्री जिन्ना की भाँति भारत को हिन्दू तथा मुस्लिम भारत में बाँट देना नहीं चाहते, प्रत्युत हिन्दू 'राष्ट्र' के लिए भारत में पूर्ण स्वाधीनता चाहते हैं। वे मुस्लिम तथा अन्य अल्पमतों के लिए धर्म, भाषा तथा संस्कृति की रक्षा के लिए अधिकार देने के पक्ष में हैं। परन्तु वे मुसलमानों का भारत में आधिपत्य नहीं चाहते।

इस प्रकार हम श्री जिन्ना की भारत-विभाजन की नीति तथा मुस्लिम राज्य की स्थापना के स्वप्न की प्रतिक्रिया हिन्दू-महासभा में प्रत्यक्ष रूप से देख रहे हैं। यदि श्री जिन्ना अपनी इस घातक नीति का त्याग कर दें तो इससे वे मुस्लिम समुदाय की भारी सेवा कर सकेंगे और हिन्दू-महासभा में उनकी इस नीति के कारण जो प्रतिफल दृष्टिगोचर हो रहे हैं उनके नाश होने में देर न लगेगी।

सन् १९१६ में लखनऊ में मुस्लिम लीग के अधिवेशन में अपने भाषण में श्री जिन्ना ने भारतीय राष्ट्रीयता और संयुक्त भारत के लिए कामना प्रकट करते हुए कहा था—

"मैं अपने सार्वजनिक जीवन में कट्टर कांग्रेसवादी रहा हूँ और साम्प्रदायिक आवाज़ों को मैंने कभी पसन्द नहीं किया। परन्तु मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि कभी कभी मुसलमानों पर पृथकता का जो दोषारोप किया जाता है वह मुझे अत्यन्त अनुचित प्रतीत होता है जब मैं यह देखता हूँ कि यह महान् साम्प्रदायिक संस्था शीघ्र ही संयुक्त भारत के जन्म के लिए एक महान् शक्तिशाली शक्ति बनती जा रही है।"

सन् १९२५ में केन्द्रीय असेम्बली में भारतीय आर्थिक बिल पर भाषण करते हुए श्री जिन्ना ने कहा था—

"मैं साफ़ दिमाग़ लेकर आपके सामने उपस्थित हूँ और मैं यह कहता हूँ कि मैं सबसे पहले राष्ट्रवादी हूँ, द्वितीय राष्ट्रवादी हूँ और अन्तिम रूप से भी राष्ट्रवादी हूँ.......मैं एक बार फिर सभा से चाहे आप हिन्दू हों या मुसलमान, यह अपील करता हूँ कि आप ईश्वर के लिए इस असेम्बली-भवन में साम्प्रदायिक मामलों पर बहस न करें और इस प्रकार उस असेम्बली का गौरव नाश न करें जिसे हम वास्तव में राष्ट्रीय पार्लियामेंट बनाने के लिए इच्छुक हैं। बाहरी दुनिया और अपनी जनता के सामने उदाहरण रखिए।"

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि सन् १९२५ में श्री जिन्ना पक्के राष्ट्रवादी थे और वे साम्प्रदायिक दृष्टकोण से विचार करना पसन्द नहीं करते थे। वे बहुत पहले से संयुक्त भारत का स्वप्न देख रहे थे। परन्तु यह कितने विषाद और आश्चर्य की बात है कि इन १५ सालों में श्री जिन्ना में इतना परिवर्तन हो गया कि वे बिना मुस्लिम राज्य की स्थापना किये मुसलमानों का कल्याण ही नहीं समझते।

हमारे कथन का सारांश यह है कि भारत में केवल एक राष्ट्र है और वह है भारतीय राष्ट्र। भारत में न हिन्दू राज्य ही श्रेयस्कर सिद्ध होगा और न मुस्लिम राज्य ही। भारतीय जनता का हित इसी में है कि समस्त भारतीय सम्प्रदाय संकीर्णता का त्याग कर व्यापक राष्ट्रीय भावना को अपने हृदय में स्थान दें और सम्मिलित प्रयत्न से भारतीय राष्ट्र और स्वाधीन भारत-राष्ट्र का विकास करने में योग दें।

गीत

लेखक, श्रीयुत लक्ष्मीप्रसाद मिश्र, 'कवि-हृदय'

मैंने तुमको गाकर पाया!

तुम छाये घनश्याम गगन में,
देख मयूरी थिरकी बन में;
जीवन-तरु से मन-चातक ने
'पिउ पिउ' का संगीत सुनाया।
मैंने तुमको गाकर पाया।

सुख-दुख, तम-प्रकाश जीवन में,
मुक्ति मिली मुझको बन्धन में;
तुमने जीवन-वीण बजाई
मैंने तुमको प्रतिपल गाया।
मैंने तुमको गाकर पाया।

तुम जब रोये, मैं भी रोया,
तुम्हें प्राणधन पाकर खोया;
नभ-दीपों के तार-तम्य ने
मेरे जग में तुम्हें लखाया।
मैंने तुमको गाकर पाया।

कबिरा, मीरा ने जो गाया,
मैंने उसको क्षण में पाया;
अमित तरंगित, बिन्दु-सिन्धु वह
मेरी उर-गागर में आया।
मैंने तुमको गाकर पाया।

कलाकार

लेखक, श्रीयुत त्रिभुवननाथ

कुछ साल पहले निर्मोला भी जवान था। उसमें उमंगें थीं, हौसला था, आशायें थीं और सबसे बढ़कर किसी का प्यार था। उसका मन सदा हँसा ही करता था, गम्भीरता उसमें जमने नहीं पाती थी। तब उसे भी रँगीले सपने आते कि वह एक बड़ा गीतकार होगा, उसकी कविता आकाश को चूमेगी और उसका वायलिन वह वायलिन बजाता था—दुनिया भर में गूंज उठेगा। पर सपने सत्य न उतरे, बाहरी दुनिया ने कुछ सुना नहीं, कलाकार की परख न हुई। अवहेलना और तिरस्कार के आघात से उसकी कला मुर्झा गई। उसके बाद जवानी की लहर निकल गई। जीवन को सींचता हुआ अभागा निर्मोला अधेड़ होने को आगया। जो निर्मोला देहाती लड़कियों की ओर देख देख रसीली तानें लगाता था वही तीस साल की उम्र में ही एक सूखा दिल लिये, एक असीम विरसता बाँधे अधेड़ लगने लगा। उसके बाल असमय पके हो चले, चेहरे पर झुर्रियाँ पड़ गईं और सब ओर से एक गाढ़ी कालिमा ने उसे ढँक लिया। जिन लड़कियों के एक धीमे स्पर्श से, एक मन्द मुसकान से वह पुलक-पुलक उठता था उन्हीं से छू जाने पर उसे ऐसा मालूम होने लगता जैसे आग की लपट से उसकी देह झुलस गई हो। सभ्य लोगों के बीच में वह अस्त-व्यस्त हो जाता, अपने को ठीक से न रख पाता। उस समय यदि वह चाय उड़ेलता तो उसका कुछ हिस्सा दूध-से सफ़ेद धुले मेज़पोश पर ज़रूर गिर जाता। कोई दो चम्मच शक्कर डालने को कहता तो चार चम्मच डाल देता, कमरे में इधर से उधर जाते वक़्त शीशे का गिलास तोड़ देता। चारों ओर की हँसी से त्रस्त होकर और भी दो-एक गड़बड़ियाँ कर डालता, और तब अपराध की मलिनता से अंकित मुँह लेकर एक कोने में जहाँ बिजली की रोशनी कुछ धीमी होकर पहुँचती, लोगों की आँखों से दूर जाकर बैठ जाता और आख़िर तक चुप बैठा रहता। किसी के कुछ पूछने पर 'हाँ' या 'नहीं' में जवाब दे देता और जब सब जाने लगते तब वह भी सबके पीछे एक अस्त-व्यस्त बेढंगा-सा नमस्कार करके चल देता। अपने पुराने भूरे रंग के ओवरकोट को अपने चारों ओर खींचता हुआ—जैसे वह अपने को सिकोड़ कर कहीं समा जाने की तैयारी कर रहा हो, वह बाहर निकल आता और दूर जाकर उसकी कुछ झुकी बेढंगी-सी देह रात के अँधेरे से मिलकर एक हो जाती। रास्ते में एक सैनिक के घर जिसकी आधी बाँह पिछली जर्मन की लड़ाई में कट गई थी, वह ठहर जाता। ऊपर के अँधेरे कमरे में दोनों पास पास की कुर्सियों पर अधिकतर चुप बैठे रहते। जब चाँद ऊपर चढ़कर कमरे का एक कोना उजेला कर देता तब उसकी ओर देखना बर्दाश्त न कर सकने के कारण वह उठकर घर आता और अपनी दिन भर की मूर्खता पर सोचता सोचता सो जाता।

वह ग़रीब था। प्रायः भूखा भी रह जाता। लेकिन दो दिन तक भूखा रह जाने के बाद उसे यह बात याद आ जाती कि उस टोले की एक टूटी-फूटी कोठरी में जो अंधी ग़रीब बुढ़िया रहती है वह शायद आज भूखी होगी। इसलिए उस बड़े वकील की लड़की को गाना सिखाने की दस रुपये की तनख़्वाह में से तीन रुपये माँगने से मिल जायें तो उस बुढ़िया को दे आना होगा, नहीं तो वह कल भी भूखी रहेगी, और दो दिन का उपवास उसकी दुबली देह के लिए दुर्वह होगा—वह ख़ुद दो दिन के बजाय तीन दिन भूखा रह जाय तो कुछ बहुत हर्ज नहीं। इसलिए बुड्ढी की भूख को दूर कर तीसरे दिन भी वह भूखा रहता, और चौथे दिन अगर वकील साहब ने बाक़ी रुपया दे दिया तो एक वक़्त तो वह ज़रूर ही खा लेता, और दूसरे वक़्त भी अगर अनमनापन उसकी भूख बन्द न कर देता तो वह खा ही लेता। यों भी वह कब खाय और कब न खाय, इसका कुछ ठिकाना न रहता, क्योंकि खाने-पहनने और ऐसी बातों के प्रति एक घोर विरक्ति से वह भरा था। इसलिए जब तक भूख विवश न करती वह न खाता, और जब तक कपड़े की चूल चूल न निकल जाती वह नया कपड़ा न लाता। और चाहे सब कपड़ों की चूल निकल जाती, लेकिन उसके मोटे भद्दे ब्राउन ओवरकोट की चूल, सालों से पहनते रहने पर भी, अब तक तो नहीं

निकली थी। और कौन जाने बिना कतरनी चलाये कभी निकलेगी भी या नहीं! इसलिए जाड़े के दिनों में किसी ने उसे दूसरा कोट पहनते नहीं देखा।

निओंसा के सिर पर बाल थे गाढ़े, भूरे, घने और उलझे। दस साल पहले वे चिकने और मुलायम थे, और रोज उन पर कंघी चलती थी। अब भी निओंसा के हाथ कभी कभी उन पर जरूर चल जाते, सो भी शायद अधिक चिन्ता के कारण, नहीं तो उनकी रूक्षता और बेढंगापन मिटाने की कोई और चेष्टा न होती। चेहरे पर बालों की खूटियाँ बढ़ आई थीं। यों तो उसकी सारी देह पर बाल ऐसे बेतुके और बेढंगे रूप में जमे थे, जैसे किसी खँडहर पर घास, और उसकी शक्ल पूरी पूरी उस क़ैदी से मिलती थी जिसने दस साल तक लगातार क़ैद की सजा भुगती हो।

लेकिन सबसे बढ़कर बेतुकी बात यह थी कि ऐसी अकलात्मक शकल का आदमी भी कला की शिक्षा देता है। मतलब यह कि निओंसा एक बड़े एडवोकेट की नौजवान लड़की को गाना-बजाना सिखाता था और जब सिखाता तब उसे सुख मिलता। तब उसके जीवन के पोर-पोर में विरमी उदासीनता न जाने कहाँ फिक जाती, उसकी जैसी राख से ढँकी आँखें अपनी मलिनता का पर्दा फाड़ कर एक-बारगी ही चमक उठतीं, और वह अपनी फटी बेसुरी आवाज में कुछ गा भी लेता, कुछ बजा भी लेता। उसका गाना मानो किसी अवरोध से रुका होता, और उसका वायलिन मानो उसके सर्दी से ठिठुरते हाथों के नीचे पड़ काँप कर चीख़ उठता।

लेकिन दो घंटों का नियत समय जैसे जैसे बीतता, उसका उत्साह ढीला पड़ता जाता, और आख़िर में वह वही बोदा, भद्दा, भूरा 'वन-मानुष'-सा रह जाता, और नीचे 'ड्राइंग-रूम' में जहाँ औरतें भी होतीं--औरतों से वह बेहद डरता था--उतर कर वह और भी बेवक़ूफ़ घबराया-सा और संकोची हो जाता। कुछ देर तक उनका 'दिल-बहलाव' और अपने पर अत्याचार कर जब वह बाहर आता तब भी उन भलेमानुसों की तीव्र हँसी खिलखिल करती उसका पीछा करती और तब तक नहीं छोड़ती जब तक वह उस हथकटे सिपाही के अँधेरे कमरे में शान्ति-संग्रह न कर लेता। दो घंटे के बाद निओंसा अपने पर एक छिपी हँसी--जिसमें अगर कोई देखे तो दो बूँद आँसू भी मिले दिखाई देते ऐसी हँसी--छोड़ कर सो जाता।

फिर भी रोशनी से जगमग उस ड्राइंगरूम में कुछ वक़्त उसे बिताना ही पड़ता। कारण उसका बेढंगापन और वैचित्र्य उनके दिलबहलाव और मनोरंजन की अच्छी सामग्री थे। यह अजीब जानवर उनकी हँसी का अच्छा ख़ासा सामान था। उसके पीठ-पीछे ऐसी बातें कही जातीं जिससे वे मुँह पर रूमाल दे अथवा खुले खुले हँसा ही करतीं। इस हँसी से तिल तिल कट कर भी उसे एक कोने में मुँह लटकाये बैठा रहना पड़ता, कारण ऐसा वह न करता तो उसका 'ट्यूशन' शायद दूसरे ही दिन छूट जाता और कुछ दिनों के बाद वह भूखों मर जाता, जो उस जैसे अभागे आदमी के लिए निश्चय ही अच्छा होता। फिर भी निओंसा मरने के लिए कुछ बहुत व्यग्र नहीं था, और अपने रोज रोज के अपमान की ओर से उदासीन हो वह अपना काम किये ही जाता था। शायद इसलिए कि उस काम में उसे सुख भी मिलता था।

× × ×

सदा का भयानक ड्राइंगरूम आज और भी भयानक लग रहा था, क्योंकि रोशनी रोज से ज़्यादा तेज थी और नई रोशनी के बेशर्म बेहया और बेहिचक बाबू और मेम साहब लोग भी रोज से कहीं ज़्यादा थे। बेबस निओंसा जैसे कुर्सी से बँधा एक कोने में निश्चल बैठा था। मुँह झुका था, आँखें ढँपी थीं। आज मशहूर ऐक्ट्रेस मिस रोज वायलिन बजायेंगी तो इससे उसे क्या? फिर वह इन रईसों के बीच--उनके बीच जिन्होंने जीवन की होड़ में हजारों ग़रीबों को कुचल कर बाजी मारी है और जिनसे उसे बेहद चिढ़ है, वह जबर्दस्ती क्यों लाया गया? सोचते सोचते जैसे उसका दिमाग़ शून्य पड़ गया, और आधी आँखें खोले बिना कुछ देख सकता हुआ मानो उसके आगे का जन-समाज और दीवारें पारदर्शक बन गई हों, और उसकी दृष्टि उनको भेद कर शून्य तक पहुँचती हो--वह जैसे एक जाग्रत तन्द्रा में पड़ गया।

मैं बता दूँ, निओंसा क्यों घसीट लाया गया था। इसलिए कि आगन्तुकों के सामने उसकी नुमाइश हो, यानी

रहा था, और निओंसा का बँटा ध्यान फिर उसी ओर एकत्र हो गया।

संगीत का वेग ज्यों ज्यों बढ़ता गया, उसका कम्पन और तेज और तीव्र होता गया, त्यों त्यों उसके अन्दर यह चेतना जोर पकड़ती गई कि गायिका के अंग की एक एक चेष्टा, उसके स्वर की एक-एक वक्रता—एक-एक खिचाव स्वयं गायिका का रूप-रंग उसकी पूरी शक्ल, उसकी दिन दिन की जानी-पहचानी है—जानी-पहचानी ही नहीं, इतनी परिचित है, मानो उसके अस्तित्व का ही एक घुलामिला अंश हो। इतने दिनों तक वह जैसे जैसे अपने को भूले सोता रहा है, और आज जैसे उसी बीते संगीत ने उसकी आत्मा को झकझोरकर जगा दिया हो। अब वह कभी नहीं सोयेगा—कभी नहीं भूलेगा।

जैसे उसका समूचा मन कानों पर आ लगा हो, इतने ध्यान से वह सुनता रहा। जैसे वह गाने की एक एक लहर को असीम स्वाद और आनन्द से पी रहा था, और वह संगीत उसके भीतर जाकर मानो वहाँ किसी सोये तार को झनकार देता—उसकी धुंधली पड़ी स्मृति को कुरेद देता।

भूत का उसके पास कुछ भी तो शेष नहीं था, सब कुछ तो वह भूल चुका था। कभी तो वह नहीं सोचता कि दस साल पहले वह था क्या। तब आज ऐसा क्यों ?.. और वह सोच रहा था !

दस साल पहले यही संगीत वह रोज सुना करता ...यही आँगिक चेष्टायें थीं, यही कम्पन, सब कुछ यही! वायलिन के उत्कर्ष पर आते ही वह सुर में सुर मिला कर गा उठता था.....दोनों साथ साथ गाते .... गाते ही रहते। जब आसमान में तारों का कोष चुकने लगता तभी चुप होते....और तब तक एक दूसरे को प्यार की नजरों से ताक कर सो रहते।

उसके बाद उसकी प्रेयसी जूनिया किस मोह में पड़ कर कहाँ चली गई, जाने किस ओर लीन हो गई। उसके अभाव में उसका संगीत सूख गया—दिल न रहा कि गाये! और अपने ठोकर लगे—टूटे निर्जीव जीवन को खींचता हुआ निओंसा अधेड़ होने को आया। उसके बाद फिर वही संगीत उसे जगाने आया है... फिर वही....।

और फिर उसके मन में हुआ कि वह वायलिन की आवाज से आवाज मिलाकर गा उठे—बीते दिनों की तरह गा उठे। जब जब गाना आरोह के सबसे ऊँचे बिन्दु पर पहुँचता, निओंसा अपनी कुर्सी से बिना प्रयास के उचक उठता, उसकी मांसपेशियाँ कड़ी पड़ जातीं, मानो वह उनमें अपनी समस्त शक्ति संचित कर रहा हो, उसके चेहरे पर एक तेज आ जाता, और ऐसा लगता कि वह जोर से गा उठेगा, अभी इसी क्षण गा उठेगा।

लेकिन इसके पहले कि वह गा उठे, गाने का स्वर धीरे धीरे कम होता-होता एक ओर लीन हो गया, और उसकी आखिरी गूंज तक निओंसा उस पर कान लगाये रहा।

सम्मोहित-सा वह उसी ओर देखता रह गया। मिस रोजा पर प्रशंसा और धन्यवाद की बौछारें पड़ रही थीं, और वह हँस हँस, एक अन्दाज से सिर हिला हिला उन्हें स्वीकार कर रही थी। छिः ! छिः ! यह रोजा उसकी जूनिया नहीं हो सकती—उसके मन में हुआ।

फिर पहले की तरह शोर-गुल, हँसी-मजाक फैल गया, और फिर निओंसा का आवेश हटता-सा लगा, उसी तल में जहाँ से वह अभी उठा था वह डूबने-सा लगा। उसकी अभी अभी जगी चेतना हाथ से छूटने-सी लगी। आशंका से निओंसा काँप उठा। और तब तेजी से मानो कोई उसका पीछा कर रहा हो, वह दरवाजे से बाहर निकल गया।

बाहर जाकर वह रुका नहीं। घर की ओर दौड़ चला—हाँ, दौड़ चला। दिन दिन का पड़ा-पटा बन्धन एकाएक रगड़ खाकर खुल गया। उसकी देह की जड़ता, अलसता, शिथिलता—सब एक क्षण में टल गई, और दस साल के बीच जो कभी जोर से चला भी नहीं वही निओंसा दौड़ पड़ा, और रोज की तरह कहीं रुका नहीं—अपने एक मात्र मित्र लूँसो सिपाही के यहाँ भी नहीं, सीधे घर पहुँच कर दम लिया। जोर के धक्के से किवाड़ खोल उसको चूँ चूँ करता छोड़ वह ऊपर चढ़ गया, दीवार से बहुत दिनों का पड़ा, पुराना धूल खाया वायलिन उतार कर खिड़की के पास बैठ गया और यह सब कुछ किया बिना कुछ जाने ही, जैसे शराब पिये मतवाला रहा हो।

वह संगीत जिसे उसने अभी सुना था, और जिसे कभी वह रोज-रोज सुना करता था, वही संगीत उसके कानों में अब भी गूंज रहा था। उसके मन में हो रहा था कि

वही उतार-चढ़ाव वही गत वह भी बजा देगा । और उसने वायलिन के तारों पर हाथ चलाया।

लेकिन हाथ चला नहीं । तारों पर रखते ही उसके जड़ हाथ मानो सिकुड़ कर बँध जाना चाहते थे । लेकिन रोज की तरह निराश होकर वायलिन उसने रख नहीं दी। उसे ऐसा लग रहा था, जैसे यह भूली तान हाथ में आती आती छूटी जा रही हो...लेकिन अन्ततः वह पकड़ में आयेगी ही।

बाहर चारों ओर अटूट निस्तब्धता और स्वर्गिक शान्ति फैली थी—मानो आकाश किसी की प्रतीक्षा में हो। सामने दूर पर जंगल अवसन्न-मूर्च्छित-सा पड़ा था। ऊपर आसमान में गर्द-गुबार से दूर साफ़ उज्ज्वल तारे छिटके थे—चाँदनी से धुँधले पड़े तारे नहीं!

देखता देखता निओंसा कुछ काँप-सा गया, ऐसा लगा कि बाहर के अँधेरे से कोई चीज बिजली की धारा-सी उसके अन्दर प्रवेश कर रही हो । उसके मुँह से अस्फुट स्वर निकला—चाँदी के तारे... जूनिया.. वैसे ही ...साफ़ उज्ज्वल ...

उसके अन्दर भावना का एक शक्तिशाली स्रोत दौड़ पड़ा, मानो उसे ज्वर हो आया, मानो रगड़ खाकर उसके अन्दर कुछ भभक उठा । आवेश से वह उद्भ्रांत-सा हो गया ।

और उसने फिर वायलिन पर हाथ चलाया। स्वर के असंख्य—टूटे हुए, असम्बद्ध टुकड़े पतझड़ की सूखी पीली पत्तियों की तरह चारों ओर बिखर चले, एक अजीब विशृंखलता लिये चारों ओर फैल गये।

लेकिन स्वरों में धीरे धीरे सम्बद्धता आई, एक राग के तार में वे टटे-सटे पिरो गये । और निओंसा का वायलिन बज चला—वैसे ही जैसे आज मिस रोजा ने बजाया था, जैसे वह सालों पहले बजाता था—ठीक वैसे ही। निओंसा खुशी से उद्भ्रांत हो गया ।

हर बार अधिक खूबी से बार-बार वह बजाता ही रहा, बार.. बार बार.. बार.. जैसे उसका बजाना कभी ख़त्म न होगा, अनन्त-काल तक जारी रहेगा। और बिना एक क्षण रुके वह बजाता ही रहा ।

उसके हाथ बड़ी तेज़ी से यहाँ से वहाँ फिसल रहे थे, उसका मुँह एक अजीब भाव से हिल-हिल पड़ता, संगीत बार-बार वही पेंगें भर रहा था, बार-बार एक आकस्मिक वेग से करुणा की एक लहर फैलाते हुए उसका गिर पड़ना, और फिर धीमे और एकरूप गति से ऊपर चढ़ना..। वह उसी तरह बजा रहा था।

घंटे के घंटे बीत चले । रात बीत कर सवेरा हुआ। चारों ओर चेतना की आहट हो चली, फिर भी निओंसा बजाता ही रहा ।

एक क्षण के लिए भी उसने वायलिन छोड़ा नहीं। डर लगता कि छोड़े, और दूसरे ही क्षण फिर वही पुरानी जड़ता, असफलता उसे दबा बैठे तो ! इसी लिए जैसे ज्वर की बेहोशी में वह बजाता ही रहा।

उसके मन में हुआ कि अब वह फिर वही सजीव निओंसा है, फिर वही आशायें हैं, फिर वही सब कुछ, फिर वह भविष्य का अमर कलाकार है। लेकिन जूनिया (और इस नाम के याद आते ही उसके वायलिन की गति मन्द हो गई).. लेकिन जूनिया.. ओफ़! वही नहीं.. शायद रोजा ही.. जरूर वही.. नहीं तो और कौन है जो वैसा गा-बजा सके। लेकिन जूनिया.. साफ़ उज्ज्वल, रोजा... फिर भी वही..दोनों एक! और उसके दिल पर एक तीव्र आघात लगा। भावों के आघात से वह और जोर से बजाने लगा।

और बजाता ही रहा। उसके हाथों की नसें तन कर कड़ी पड़ गईं, और बिना खाये-पिये उसका अशक्त शरीर सन-सन करने लगा। लेकिन वह बजाता ही रहा, और जब तक होश में रहा उसके हाथ वायलिन पर चलते ही रहे। और तब बेहोश होकर भविष्य का वह अमर कलाकार धरती पर पड़ रहा—शायद कभी न उठने के लिए पड़ रहा ।

डंकर्क में और उसके बाद

लेखक, उमेशचन्द्र मिश्र, विद्यावाचस्पति

शाम के ७ बज रहे थे। रोम की सब दूकानों में रात की दूकानदारी के लिए की जानेवाली सजावट अभी पूरी न हो पाई थी कि नागरिकों की एक भीड़ 'पेलेज़ो-बेनेज़िया' की ओर जाती हुई दिखाई दी। दूकानें बन्द होने लगीं। नौकर भीड़ के साथ हो लिये। मालिक लोग ऊपरी मंज़िलों के खास कमरों में रेडियो-मशीनों के सामने जा बैठे। चौराहों, होटलों और रेस्टोरेण्टों के आगेवाले लाउडस्पीकरों के सामने भीड़ लग गई। जिसे यहाँ जगह न मिली वह भाग कर भीड़ के साथ हो गया। ७ बजते-बजते २॥ लाख के क़रीब जनता पेलेज़ो-बेनेज़िया के सामने इकट्ठी हो गई।

आज रोम में कोई महत्त्वपूर्ण घोषणा होनेवाली थी। काली कुरतीवाले सैनिक-ड्यूस के आफ़िस के आगे परेड कर रहे थे। बैंड पर 'गियोवानेच्चा' (फ़ासिस्टों का राष्ट्रीय गीत) चल रहा था। जनता के हाथ में बड़े बड़े पोस्टर थे। इन पर लिखा था—'ट्यूनिस, नाइस, कार्सिका इटली के लिए'। जनता में अपूर्व जोश था। सबकी रगों में चौगुनी गति के साथ रक्त दौड़ रहा था।

ठीक समय पर राजप्रासाद के सामनेवाले छज्जे पर एक मानवमूर्ति प्रकट हुई। कोलाहल शान्त हो गया। खून की रफ़्तार कुछ घट गई, पर दिलों की धड़कनें बढ़ गईं। बैंड ने राष्ट्रीय नारे को सप्तम स्वर में बजा कर सलामी दी और सैनिकों ने संगीनों को ऊँचा उठाकर और फिर कुछ झुकाकर! महल के पीछे से तोप का धड़ाका सुन पड़ा। इतना सब कुछ सेकंडों में हो गया।

छज्जे पर खड़ी मानवमूर्ति कुछ हिली। दहना हाथ उठा; माथे पर शिकनें पड़ीं; भौंहें तन गईं; होठ फड़के और सीना तन गया। उसने दहना हाथ आगे बढ़ाकर काँपती हुई उच्च आवाज़ से कहा—"सम्राट् विक्टर के प्रजाजनो!" और फिर चुप हो गया।

इस सम्बोधन ने बिजली के झटके का काम किया; सहस्रों कण्ठ एक स्वर से चीख पड़े—

विव इल विक्टर! विव इल इटाली! विव इल डूच!

(विक्टर ज़िन्दाबाद! इटली ज़िन्दाबाद! मुसोलिनी ज़िन्दाबाद!) ट्यूनिस, नाइस, कार्सिका!!

मुसोलिनी ने भी दोहराया—'ट्यूनिस, नाइस, कार्सिका।' जनता की उत्तेजना दिल की दीवारें तोड़कर मानो बाहर फूटी पड़ती थी। मुसोलिनी ने कहना आरम्भ किया—

"अब वह समय आ गया है जब हम लोगों को एक निश्चय पर दृढ़ हो जाना चाहिए। हमने पश्चिम के पूँजीवादी और प्रतिक्रियावादी प्रजातन्त्रों के विरुद्ध जंग का एलान कर दिया है। ये राज्य हमारी उन्नति में बराबर रुकावटें डालते आये हैं। अब इनके कारण हमारी सत्ता भी खतरे में है।

"पिछले महायुद्ध के बाद से हमारे साथ जो व्यवहार हुए हैं उन्हें यदि संक्षेप में कहना चाहें तो कह सकते हैं कि अधूरे वायदे, झूठी धमकियाँ और इन सबसे ऊपर राष्ट्रसंघ का जाल बनाकर उसमें ५२ राष्ट्रों की गर्दनें फँसा देना।

"हमारा मस्तिष्क शान्त है। आप लोग साक्षी हैं,

सारा संसार साक्षी है कि सम्राट् विक्टर की इटली ने योरप में इस तूफ़ान को अधिक न बढ़ने देने के लिए वह सभी कुछ किया जो मानव के लिए संभव था; पर हमारे प्रयत्न व्यर्थ गये।

"मित्रराष्ट्र यदि चाहते तो युद्ध को टाल सकते थे। पिछली संधियों को यदि अनन्तकाल तक के लिए अपरिवर्तनीय न मानकर इस ढंग से सुधार किया जाता जिससे वे राष्ट्रों की अनिवार्य आवश्यकताओं की पूर्ति करती हुई उनकी रक्षा में सहायक हो सकतीं तो योरप में यह आग लगने की नौबत न आती।
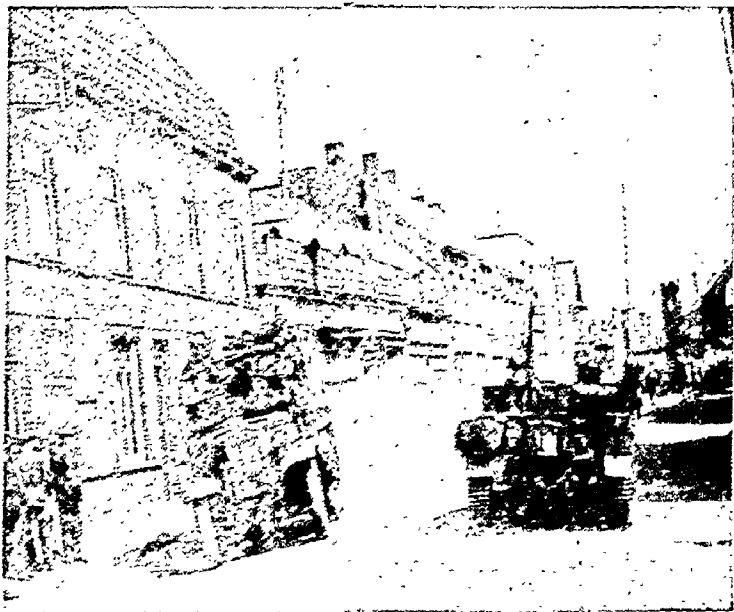
[बेल्जियम के एक शहर से ब्रिटिश टैंक जा रहे हैं]

"अमनचैन की नीति को यदि अनुचित महत्त्व न दिया जाता तो निर्बल राष्ट्रों का सर्वनाश होने से बच जाता।

"पोलैंड का अन्त हो जाने के बाद फ़्युहरर ने जो प्रस्ताव किया था, वह यदि मान लिया जाता तो वैर-भावना वहीं समाप्त हो जाती।

"परन्तु समय रहते

[फ्रांसस्थित भारतीय सैनिक]
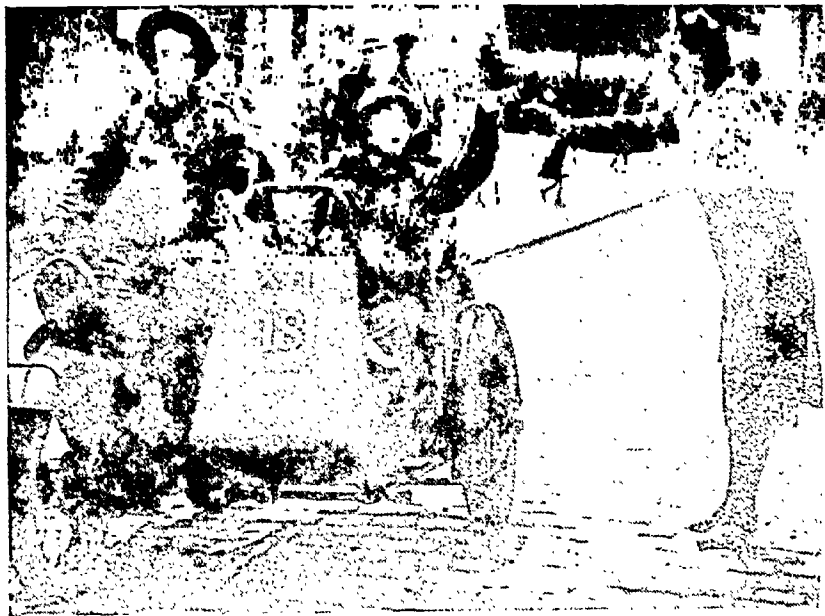
[एक बेल्जियम लड़की ब्रिटिश सैनिकों का स्वागत कर रही है]

हूँ कि हमसे हमारे समुद्री और धरातली पड़ोसियों को कोई खतरा नहीं है। इटली नहीं चाहता कि कोई तटस्थ राज्य युद्ध की आग में कूदे। स्वीज़रलैंड, युगोस्लोविया, तुर्की, मिस्र और ग्रीस को ये शब्द नोट कर लेने चाहिए। आज की इस ऐतिहासिक महत्त्वपूर्ण सन्ध्या को हम अपने उक्त विचार शाहंशाह विक्टर की सेवा

यह सब नहीं हुआ। अब वह अवसर आ गया है कि अपनी समुद्री सीमा का निर्धारण करने के लिए हम शस्त्र उठायें। हमें उन धरातली और समुद्री जंजीरों को तोड़ फेंकना है जो हमें हमारे देश में ही जकड़े हुए हैं। ४॥ करोड़ आबादी के देश को तब तक स्वतन्त्र नहीं कहा जा सकता जब तक उसके पास बाहर आने जाने के लिए खुले मार्ग न हों।

"मैं निश्छलतापूर्वक घोषणा करता
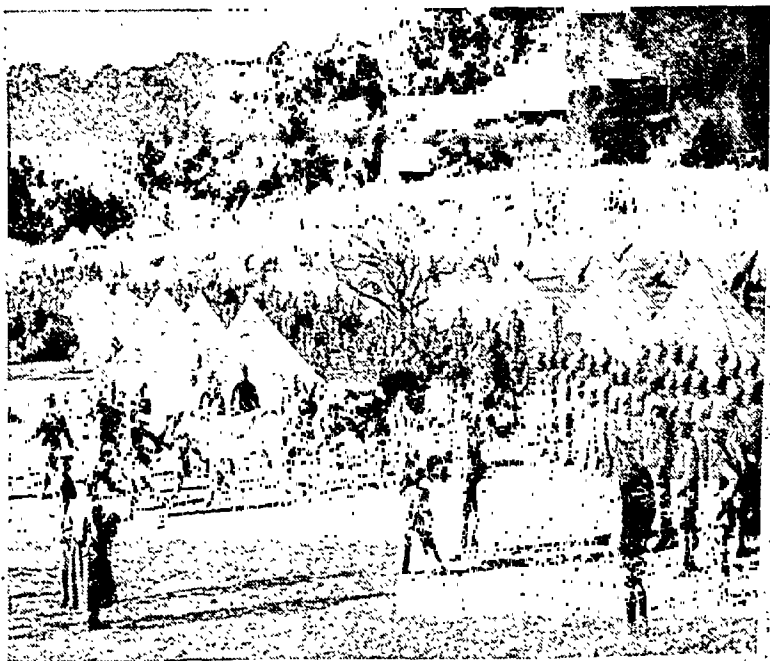
[फ़्रांस में भारतीय सैनिकों का एक पड़ाव]

[फ्रांस में एक ब्रिटिश बम-वर्षक पर युद्ध-सामग्री लादी जा रही है]

में निवेदन कर रहे हैं और इसके साथ ही साथियों में अग्रणी महान् जर्मनी को अभिवादन करते हैं।

"प्रोलिटेरियन और फ़ासिस्ट इटली अपने इतिहास में इस बार तीसरी दफ़ा अपने पैरों पर खड़ा हो रहा है। उसे अपने संगठन और शक्ति पर जितना अभिमान आज है, उतना पहले कभी नहीं था। हमारी विजय से इटली में, योरप में और समस्त संसार में दीर्घकाल के लिए न्याय की—और शान्ति की—स्थापना हो जायगी।"

भाषण १५॥ मिनट में समाप्त हुआ। शान्तिप्रिय और फ़ासिस्टों की महत्त्वाकांक्षाओं से ऊबे हुए नागरिक कलेजे थाम कर अपने अपने घर पहुँचे। उत्साही लोग विक्टर के महलों की ओर चले। संसार भर की रेडियो-मशीनों ने यह समाचार दोहरा दिया। अख़बारों में मोटे-मोटे शीर्षकों में छपा—इटली भी युद्ध में शामिल। प्रेसीडेंट रूज़वेल्ट ने सुना तो दुःखी होकर कहा—"यह तो मनुष्यता के भी प्रतिकूल है। पर एक छुरी का वार है जो पड़ोसी ने अपने पड़ोसी को जीवन-संकट में घिरा देखकर पीछे से किया है।"

उपर्युक्त घटना १० जून की है। फ़्रांस उस दिन निस्सन्देह विनाश के तट पर पहुँच चुका था। सिर्फ़ एक धक्के की कसर थी और वह धक्का उसे अपने पड़ोसी से—उस पड़ोसी से जिसके प्राणों की रक्षा फ़्रांस ने पिछले महायुद्ध में की थी—मिल गया। इस धक्के से फ़्रांस अपने को सँभाल न सका!

फ़्लैण्डर्स के बाद

ही फ़्रेंच सेनायें हतोत्साह हो गई थीं। धन-जन की जितनी हानि इस युद्ध में हुई, कहते हैं, वह संसार के इतिहास में नई चीज़ थी। इधर बेल्जियम सेनाओं

[जनरल वेगाँ]

के हथियार डाल देने से मित्रराष्ट्रों की सेनायें बड़े संकट में पड़ गई थीं। दक्षिण-पार्श्व की रक्षा का भार जो ३० मील लम्बा था—बेल्जियम की सेनाओं पर था। अब यह पार्श्व खाली था और शत्रु की सेनायें इस द्वार से घुसकर मित्र-सेनाओं का सर्वनाश उपस्थित कर सकती थीं। इस घेरे के लिए जर्मन-सेनायें जी तोड़ प्रयत्न कर रही थीं। जर्मनों ने तो स्पष्ट शब्दों में घोषणा कर दी थी कि अब मित्र-सेनायें बुरी तरह घिर गई हैं, उनका जीवन हमारी दया पर निर्भर है।

इधर ब्रिटेन की सेनाओं के लिए सचमुच जीवन और मृत्यु का प्रश्न था। तीस मील के पार्श्व को आच्छादित करने में उनका सम्बन्ध फ़्रेंच सेनाओं से टूट चुका था। जर्मन-सेनायें अँगरेज़ और फ़्रेंच सेनाओं के बीच में घुस आई थीं और इनके पारस्परिक सम्बन्ध टूट गये थे। इस विकट परिस्थिति में विजय की आशा दूर की बात थी। सबसे बड़ी युद्धचातुरी यही हो सकती थी कि किस प्रकार ४ लाख वीर सैनिक भेड़ों-बकरियों की मौत मरने से बचाये जा सकें। केवल एक उपाय था। यदि सेनायें किसी प्रकार डंकर्क के बन्दरगाह तक पहुँच सकें, जहाँ पर २२० जंगी और ६५० अन्य जहाज़ मौजूद थे, तो वे इँगलैंड पहुँचा दी जायँ। पर डंकर्क लाख कोस हो रहा था। जर्मन सभी सम्भव बाधायें डाल रहे थे। इँग्लिश चैनेल में चुम्बकीय सुरंगें बिछा दी गई थीं। सौ-सौ वायुयान एक साथ आक्रमण करके बम बरसा रहे थे। तोपें मोरचे बाँध कर दूर के निशाने पर आग उगल रही थीं, और—

ब्रिटिश सैनिक ?

वे हथेलियों पर जान लिये खुले बालू के मैदान में पड़े थे। न खाइयाँ थीं, न रक्षा के अन्य साधन। उन लोगों के पास रक्षा का केवल एक उपाय था। सैनिक जब देखते थे कि हवाई हमला होनेवाला है तब वे बालू में गड़ जाते थे। हमला ख़त्म हो जाने पर उसी बालू पर लेटे-लेटे डंकर्क की ओर सरकते थे। उधर जर्मन-टैंक शीघ्रतापूर्वक बढ़े चले आ रहे थे। यदि वे पहुँच जाते तो रक्षा

असम्भव थी। पीछे हटते समय मित्र-सेनायें टैंक आदि भारी शस्त्रास्त्र वहीं छोड़ आई थीं। आखिर एक उपाय सोचा गया। डंकर्क नहर के बाँध तोड़ दिये गये। जलधारा वह चली। मीलों का प्रदेश जलमग्न हो गया। जर्मन-टैंक रुक गये। कीचड़ में फँसकर वे जहाँ के तहाँ रह गये। हवाई जहाज़ों का आतंक फिर भी बना ही रहा।

ब्रिटिश हवाई बेड़े

ने इस बार जो मुस्तैदी दिखाई वह सचमुच ऐतिहासिक महत्त्व की है। उसने जर्मन-बम-वर्षकों को सभी प्रकार रोकने का उपाय किया। ४ जून तक डंकर्क खाली किया जा सका लगभग ३० हज़ार सैनिकों, १ हज़ार टैंकों, हज़ारों आर्मर्डकारों, मशीनगनों, तोपों तथा अन्य युद्ध-साधनों की हानि सहकर ! पर ३॥ लाख सैनिक बचकर सुरक्षित इँगलैंड पहुँच गये। सचमुच यह बड़ी सफलता थी। उधर—

फ्रेंच सैनिक

लगातार पीछे हटते जा रहे थे। सोम नदी को पार करके उसी के किनारे-किनारे १२० मील की लम्बाई में उन्होंने एक सुदृढ़ युद्ध-पंक्ति बना ली थी। इस पंक्ति का नाम वेगाँ-पंक्ति था। डंकर्क से निपटते ही शत्रु की सेनायें वेगाँ-पंक्ति की ओर बढ़ीं। घोर आक्रमण हुआ। नदी की प्राकृतिक रुकावट के अतिरिक्त टैंकों के आक्रमण को रोकने के लिए मोरचे के आगे पतली लम्बी खाइयाँ खोद दी गई थीं। इन खाइयों के किनारे दोनों ओर लकड़ी के दृढ़ खम्भे गाड़ दिये गये थे, जिन पर दोनों ओर मार करनेवाली एण्टी टैंक गनें लगी थीं। विश्वास था कि इस पंक्ति को भेद सकना जर्मन-टैंकों के लिए असम्भव होगा।

आक्रमण हुआ। मित्र-सेनाओं ने यहाँ भी ऐतिहासिक वीरता का परिचय दिया। फ्रांस का एक-एक सैनिक प्राणों का मोह छोड़कर देश-रक्षा के लिए कटने को तैयार था। ब्रिटिश सेना भी कन्धे से कन्धा मिलाये सहायतार्थ जूझ रही थी। हवाई जहाज़ बड़ी सरगर्मी दिखा रहे थे। आखिर जर्मन-टैंक पहुँचे। उनके पास पेंसिल की शक्ल के डिनोमाइट थे। इनके चलाने से खाइयों के लट्ठे टूट पड़े। तख्तों के पुलों का प्रयोग किया गया। अनेक स्थलों पर तो जर्मनों ने अन्धे होकर टैंकों को खाई में डाल दिया। कुछ टैंक ऊपर-नीचे गिर गये। खाई पट गई। पुञ्ज-सा बन गया। ऊपर से भारी टैंक निकलकर मित्र-सेनाओं पर जा धमके।

जर्मनों के हवाई जहाज़ संख्या में अधिक थे। ताज़े टैंकों की सप्लाई भी तेज़ी से हो रही थी। ताज़ी सेनायें भी दनादन चली आ रही थीं। इधर फ्रेंच सेनायें थक चुकी थीं। उनके दिल टूट चुके थे। सप्लाई का क्रम भंग हो गया था। लाचार सेनानायकों को उन्हें पीछे हटने की आज्ञा देनी पड़ी। सोम के मोर्चे के बाद फिर बड़ा मोर्चा बनाना असम्भव हो गया। फ्रेंच जनरलों के दिल टूट चुके थे। इन दिनों मित्र-सेनाओं के प्रधान सेनापति थे जनरल पेताँ, जो जनरल वेगाँ के स्थान पर चुने गये थे। जनरल पेताँ न केवल आयु से, मस्तिष्क से भी बुड्ढे हो चुके थे। उन्होंने आत्म-समर्पण करने का प्रस्ताव किया।

इस समाचार को सुनकर अधिकांश व्यक्ति जिनमें ब्रिटिश मन्त्रिमंडल के सदस्य भी सम्मिलित थे, स्तब्ध रह गये। यद्यपि ब्रिटिश मन्त्रिमंडल को कई दिनों से मालूम था कि ऐसा होने की सम्भावना है, तो भी उसने इस आशंका से इसके बारे में अपने देशवासियों से भी कुछ नहीं कहा था कि कहीं इसका अर्थ यह न लगा लिया जाय कि फ्रेंच सरकार में दृढ़ता और साहस की कमी हो गई है।

जिस समय जर्मनों ने सोम और एन को पार करके वेगाँ-लाइन पर प्रहार किया था उसी समय से फ्रेंच मन्त्रि-मंडल में किन्हीं शर्तों पर सुलह करने की प्रवृत्ति जाग्रत हो उठी थी।

रेनो का प्रयत्न

इस आन्दोलन के नेता ग़ैर-फ़ौजी नहीं, बल्कि दो फ़ौजी थे। एक तो अस्सी वर्षीय मार्शल पेताँ और दूसरे सत्तर वर्षीय जनरल वेगाँ!

मोशिये रेनो ने उन्हें विचलित न होने देने का प्रयत्न किया। उन्होंने बड़ी चेष्टा की कि मन्त्रिमंडल एकमत होकर किसी भी स्थिति में लड़ाई जारी रक्खे। उन्होंने मिस्टर रूज़वेल्ट से अपील करके फ्रेंच मंत्रिमंडल को थोड़े समय तक एक सूत्र में बाँधे रक्खा।

अमरिकन प्रेसीडेंट ने वर्जीनिया में भाषण देते हुए इस अपील का जवाब दे दिया। किन्तु वह उतना पर्याप्त न था।

नाज़ी फौजें बढ़ती जा रही थीं। मार्शल पेताँ और जनरल वेगाँ ने फिर आत्म-समर्पण की इच्छा प्रकट की।

चर्चिल का वचन

मिस्टर चर्चिल पेरिस पहुँचे। उन्होंने अँगरेज़ों की पूर्ण सहायता का फिर से वचन दिया और फ्रेंच मन्त्रिमंडल को स्मरण दिलाया कि उसने इस बात की प्रतिज्ञा कर रक्खी है कि वह अलग से कोई भी सन्धि नहीं करेगा।

जर्मन अब भी बढ़ते जा रहे थे। बृहस्पतिवार को वे प्रायः निर्विरोध बढ़ते गये। फ्रेंच-मन्त्रि-मंडल ने पाँच घंटे तक स्थिति पर सोच-विचार किया।

सारे मन्त्रिमंडल में केवल दो ही सदस्य—मो० मंडेल और मो० मारिन—अन्त तक लड़ते रहने के पक्ष में थे।

मो० रेनो ने फिर स्थिति को टालने का प्रयत्न किया जो अनिवार्य थी। इस बार फिर उन्होंने अमेरिका से एक और अपील करने की अनुमति माँगी। इससे केवल कुछ ही घंटों तक स्थिति ज्यों की त्यों रही। अमेरिका की सरकार के वश में ऐसी कोई
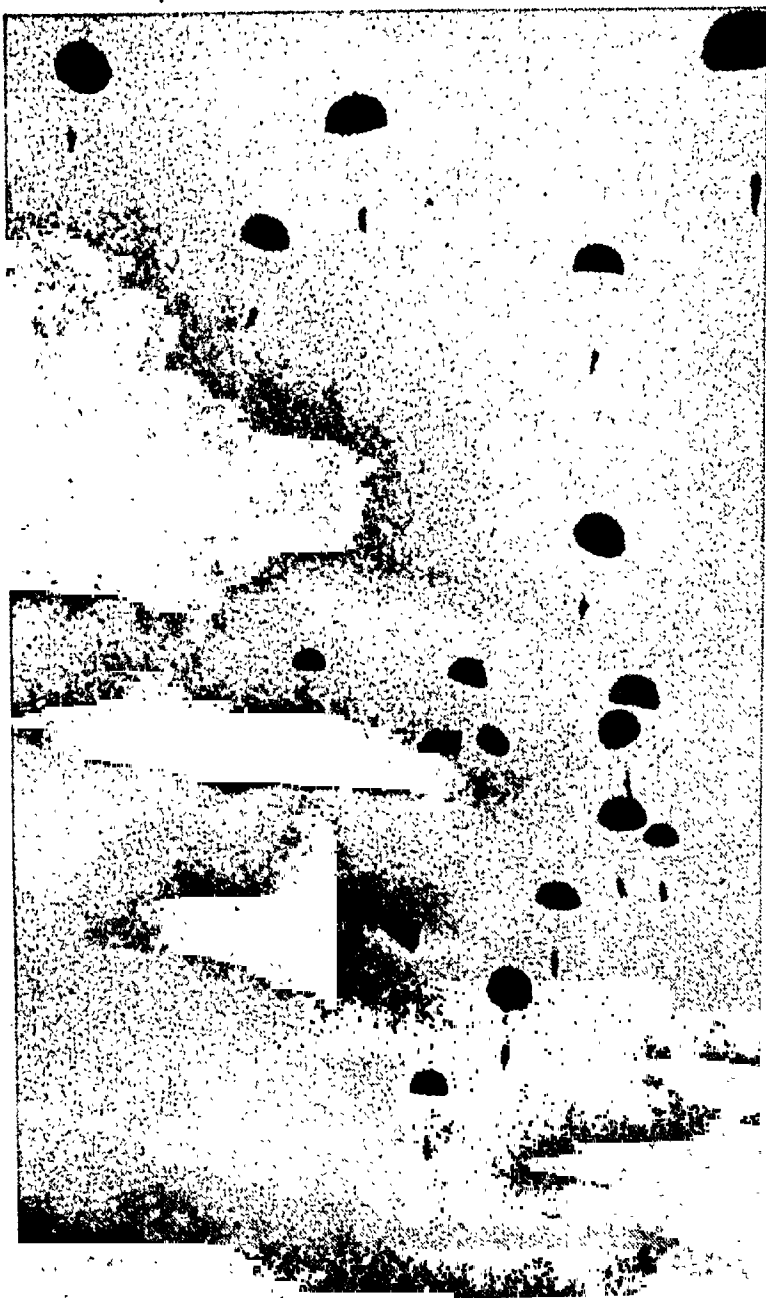
[सैनिक पैराशूटों से उतर रहे हैं]

बात नहीं थी जिससे तात्कालिक स्थिति में परिवर्तन हो जाता।

ब्रिटिश सरकार की घोषणा

ब्रिटिश सरकार ने अन्तिम प्रयत्न के रूप में एक सार्वजनिक घोषणा की कि वह फ़ांस की रक्षा के लिए अपनी सारी शक्ति लगा देगी और तब तक युद्ध से विमुक्त न होगी जब तक फ़्रांस सुरक्षित और अपने पैरों पर खड़ा न होगा। इस घोषणा में कहा गया था कि दोनों राष्ट्रों और दोनों साम्राज्यों में अभिन्न एकता स्थापित होगी।

किन्तु मार्ग तो पहले ही निर्धारित हो चुका था। जर्मनों ने पेरिस पर जिसकी जेनरल वेगाँ ने प्रधान सेनापति की हैसियत से, रक्षा न करने का निश्चय कर लिया था, अधिकार कर लिया।

मिस्टर रूज़वेल्ट का सन्देश

शनिवार को प्रेसीडेंट रूज़वेल्ट का सन्देश पहुँचा, जिसमें सैनिकों के अलावा और सब प्रकार की सहायता देने की प्रतिज्ञा की गई थी, क्योंकि सैनिक सहायता देने का निश्चय केवल कांग्रेस के वश की बात है।

ब्रिटिश सरकार ने, इस आशा से कि फ़्रांसीसी हौसले के साथ लड़ते रहें, दोनों देशों के बीच ऐसी एकता स्थापित करने का प्रस्ताव रक्खा, जिससे ब्रिटेन और फ़्रांस दो राष्ट्र न होकर केवल एक 'ब्रिटिश फ़्रांको यूनियन' बन जायें और दोनों के लिए एक ही मन्त्रिमंडल हो, जो युद्ध-सम्बन्धी नीति निर्धारित करे और सेनाओं का संचालन करे।

जर्मनों की अग्रगति जारी थी। फ़्रांसीसी सेना अब तक वीरतापूर्वक लड़ रही थी। किन्तु उसके सेनापतियों ने अब अपना विचार पक्का कर लिया था।

रविवार को बोर्डो में मंत्रिमंडल की तीन तूफ़ानी बैठकें हुई।

प्रेसीडेंट लेब्रां ने पासा ही पलट दिया। मॉ० रेनो ने अब भी सुलह करने से इनकार किया।

प्रेसीडेंट लेब्रां ने अपने अधिकारों का उपयोग करते हुए उनसे इस्तीफ़ा माँग लिया और उनके स्थान पर मार्शल पेताँ को प्रधान मन्त्री नियुक्त किया।

वृद्ध मार्शल पेताँ ने रात के साढ़े दस बजे प्रधान मन्त्रित्व का भार सँभाला।

उन्होंने तत्काल ही मैड्रिड स्थित फ़्रेंच राजदूत को टेलीफ़ोन किया कि वह जेनरल फ़्रैंको से कहे कि वे (जेनरल फ़्रैंको) बर्लिन (जर्मन-सरकार) से युद्ध समाप्त करने के उपायों पर बातचीत करने की प्रार्थना करें।

पराजय के कारण

फ़्रांसीसी प्रख्यात सैनिक हैं। मृत्यु के साथ हँस-हँस कर खेलना उनकी जातीय विशेषता है। फिर भी युद्ध में उनकी पराजय हुई। यह कम आश्चर्य की बात नहीं है। इतना विशाल और शक्तिशाली देश जो संसार में प्रथम श्रेणी का राष्ट्र था, १५ दिन में ही धूल में मिल गया। इसका कारण खोजने के लिए दूर न जाना पड़ेगा। फ़्रांस के सेनापति इसके लिए उत्तरदायी हैं और शासनतन्त्र के संचालक भी। गत शिशिर में फ़्रेंच-जर्मन-सीमा पर स्थित फ़्रेंच सैनिकों की कारगुज़ारी देखकर आश्चर्य होता था। फ़्रेंच के अधिकारियों को शत्रुओं की शक्ति का बहुत कम पता था। वे तो मेज़िनो लाइन बनाकर सुख की नींद सो रहे थे और पोलैंड में बदली हुई युद्ध-शैली को देखकर भी उनकी आँखें न खुली थीं। आक्टोबर और नवम्बर के लम्बे महीनों में मेज़िनो लाइन के पीछे ठिठुरते पड़े रहनेवाले सैनिक यह समझ गये थे कि उनका कर्त्तव्य क़िलों के पीछे हाथ पर हाथ रखकर बैठे रहना भर है। जीत इसी तरह हो जायगी। आक्रमण करने की उन्हें आज्ञा ही नहीं दी जाती थी। आक्रमण का काम तो मानो जर्मनों को सौंप दिया गया था। इसके अतिरिक्त नाज़ियों के—

प्रोपेगैण्डा

ने भी फ़्रांस की पराजय में बहुत हाथ बँटाया।

फ़्रांसीसी सैनिकों के दिलों में जर्मनों के प्रति ज़रा भी घृणा का भाव नहीं था। सातवीं सेना के जासूसी विभाग के अध्यक्ष ने हवाई शक्ति में शत्रु की अपेक्षाकृत अधिक शक्तिमत्ता को स्वीकार करते हुए 'टाइम्स' के संवाददाता से कहा था कि हवाई शक्ति पर शत्रु को जो भरोसा है वह टैंकों की कमज़ोरी से चूर चूर हो जायगा। फ़्रांसीसी जासूसी विभाग के एक अफ़सर के मुँह से ऐसी विचित्र बात निकलना आश्चर्य की बात थी। मेज़िनो-स्थित सेनाओं के जनरल से एक बार जब पूछा गया कि आक्टोबर में आप लोग पीछे हटकर फ़्रांस की सीमा पर क्यों आ गये और वह भी उन पहाड़ियों

को छोड़कर जो फ़ांसीसियों के हाथों में थीं और जिनके कारण सीमा पर उनका स्वायत्त था, तब जनरल ने उत्तर दिया कि हम लोग मेजिनो लाइन के बहुत आगे निकल गये थे इसलिए पीछे लौटना ही ठीक था। यही नहीं, कम्यूनिस्ट प्रोपेगेण्डा का प्रहार भी फ़्रेंच सैनिकों पर घर से हो रहा था। मोरचों में पड़े हुए सैनिकों की स्त्रियाँ अपने गाँवों से पतियों के नाम पत्र पर पत्र भेज रही थीं। इनमें वे लिखती थीं कि जर्मनी ने उनके साथ सुलह का प्रस्ताव किया है और उनके पतियों को फ़ौरन सुलह कर लेनी चाहिए और अगर वे ऐसा नहीं करेंगे तो उनके ऊपर बेवफ़ाई का इल्ज़ाम लगाया जायगा।

[उत्तरी फ़्रांस का नेनसो नामक शहर—जर्मन बमवर्षकों-द्वारा ध्वस्त होने के बाद]

सेना के नेताओं और विशेषकर उन वृद्ध जनों में जो पिछली लड़ाई की तरह पैदल-सेना की मुठभेड़ की इस बार भी उम्मीद करते थे, एक अत्यंत आश्चर्यजनक सन्तोष और अन्ध आत्म-विश्वास की भावना भरी हुई थी। ईंटचूने की क़िलेबन्दी पर उनको इतना भरोसा था कि महीने पर महीने गुज़रते गये और उन्होंने खाइयाँ खुदाने का कोई समुचित प्रबन्ध नहीं किया। दस मई को एक या दो दिन पहले एक फ़्रांसीसी डिवीजन के जनरल ने कहा था कि जर्मन लोगों को फ़्रांस से लड़ने की ज़रा भी इच्छा नहीं है, उनका असली उद्देश्य तो इँगलैंड से लड़ना है।

सबसे भयानक भूल

यह हुई कि जनता के दिमाग़ में यह विश्वास जमा दिया गया कि मेज़िनो लाइन इँग्लिश चैनल से लेकर भूमध्य-सागर तक फैली हुई है। फ़ौजी सेन्सर की यह बहुत बड़ी भूल थी। सच बात यह थी कि बेल्जियम की सीमा पर रक्षा का समुचित प्रबन्ध नहीं था; केवल एक पतली क़िलेबन्दी थी और वह भी म्यूज़ की घाटी के निकट सबसे ज़्यादा कमज़ोर थी। बात यह थी कि उत्तरी मैदान के लारेन-पठारों में ज़मीन के नीचे क़िले बनाना मनुष्य की शक्ति के बाहर की बात है। इस सचाई को बुरी तरह छिपाया गया। हर एक, आदमी यह समझने लगा था कि क़िलों की इस लम्बी दीवार के पीछे मैं बिलकुल सुरक्षित हूँ। परन्तु जब जर्मनों ने म्यूज़ घाटीवाली पतली क़िलेबन्दी को आसानी से तोड़ दिया और उस मार्ग से होकर हज़ारों की तादाद में घुसने लगे तब फ़्रांसीसियों का स्वप्न टूटा और उनकी आँखें खुलीं।

पिछले दिनों पुल न उड़ाने के अपराध में कुछ सेनापतियों को अलग कर देने का समाचार

पाठकों ने पढ़ा होगा। यह भी एक रहस्य था।

कुछ लोग कहते हैं कि पुलों को उड़ाने का हुक्म दिया ही नहीं गया था; क्योंकि उनके ऊपर शरणार्थियों का जमघट था और उसी भीड़ में फ़ांसीसी अफ़सरों का भेष बनाये हुए जर्मन भी मिले हुए थे। उन्हीं जर्मनों ने लोगों को अपनी जगहों से हट जाने का हुक्म दिया था।

एक कारण यह भी है कि सीमा के सबसे कमज़ोर भाग की रक्षा का भार सबसे कमज़ोर फ़ौज—नवीं सेना पर रक्खा गया था। जेनरल कोरप के पास नाममात्र सेना थी और उसके साथ जो मोटर-गाड़ियाँ थीं वे स्वयं उस स्टाफ़ के लिए भी काफ़ी नहीं थीं जो मित्र-सेनाओं में संपर्क रखने के लिए नियत था। लगभग बीस मील लम्बी सीमा केवल एक डिवीज़न के हाथ में ही थी।

सन्धि या अपमान

कुछ भी हो, यही तथा ऐसे अन्य अनेक कारण फ़ांस के पराभव के हुए। आज संसार का यह सुन्दरतम राष्ट्र पराधीन है। नाज़ियों के साथ उसकी हथियार त्यागने की सन्धि हो गई है। इस सन्धि के अनुसार पेरिस से लेकर उत्तरी फ़ांस पर जर्मनी का अधिकार हो गया है। पश्चिमी तट के सब बन्दरगाह भी नाज़ियों के हाथ में रहेंगे। उसकी सेनाओं और समुद्री तथा आकाशीय जहाज़ों का निरस्त्रीकरण कर दिया गया है। इटली के साथ होनेवाली शर्तों में फ़ांस के उपनिवेशों की सेनाओं के हथियार रख देने की शर्त हो गई है। अब फ़ांस नाममात्र को एक देश रह गया है। न उनके पास रक्षा के साधन हैं, न उसकी कोई स्वतन्त्र सत्ता है। जिस दिन जिस समय और जिस प्रकार फ़ांस के प्रतिनिधियों ने "डाइनिंगकार" में बैठकर जर्मन-प्रतिनिधियों को १९१८ में सन्धि के लिए अपनी शर्तें सुनाई थीं, उसी प्रकार, उसी दिन, उसी समय और उसी स्थान पर हिटलर ने भी फ़ांसीसियों को अपनी शर्तें सुनाईं और इसके बाद फ़ांस के 'गौरव और पराभव' का प्रतीक वह 'कार' बर्लिन के अजायबघर में रखने को भेज दिया गया। जून मास समाप्त न हो पाया, फ़ांस—सभ्यता और शृंगार का नेता फ़ांस—समाप्त हो गया और वीर फ़ांसीसी आँखों में आँसू भरे, अपने कर्णधारों के आदेश से, अपमान के इस कड़ुए घूँट को पी गये।

सोता

लेखक, श्रीयुत प्रमोद शुक्ल

जग कहता है मुझको सोता !

चिर विस्मृत दुख की आहों-सा,
दुखिया की करुण कराहों-सा।
धन पा निर्धन की चाहों-सा,
प्रेमी के अश्रु-प्रवाहों-सा—
अविरत बह कर शीतल होता।
जग कहता है मुझसे सोता।

पथ पथरीला परवाह नहीं;
मरुभूमि बहे दुःख-दाह नहीं।
समतल भू की भी चाह नहीं;
तब तक है अन्त प्रवाह नहीं—
जब तक प्रिय-मिलन नहीं होता।
जग कहता है मुझसे सोता।

मेरे कूलस्थित भव्य-भवन,
नगरों की आभा वन-उपवन।
कल, कुटी, ग्राम औ' सेतु गहन,
सबका निश्चय है अन्त निधन।
मेरा बहना अनन्त होता।
फिर भी जग कहता है सोता !

अहिंसा-सम्बन्धी कुछ विचार

अनुवादक, श्रीयुत सूर्यनारायण चौधरी

मानव-समाज की नैतिक प्रगति को भारत की एक बड़ी देन 'अहिंसा' का भाव और आदर्श है। इसका अँगरेज़ी-अनुवाद अकसर 'नान-वायलेंस' किया जाता है, किन्तु भारत का यह शब्द 'कर्म' और 'निर्वाण' के समान योरपीय भाषाओं के कोषों में जोड़े जाने योग्य है। वहुधा शब्द की व्युत्पत्ति उसके अर्थ का उतना पूर्ण द्योतक नहीं होती है, जितना अहिंसा की। 'हिन्' क्रिया 'हन' धातु का सन्नन्त रूप है, अतः इसका अर्थ 'मारने की—क्लेश या क्षति पहुँचाने की इच्छा करना है।' अहिंसा का इतिहास छांदोग्य-उपनिषद् (३.१७. ४) से आरम्भ होता है, जिसमें तप, दान, आर्जव, अहिंसा और सत्य वचन मनुष्य के नैतिक आचार बताये गये हैं। योग-सूत्र (२. ३०) के अनुसार अहिंसा योग के आठ उपायों में से पहला है। धर्मशास्त्रों में अहिंसा ब्रह्मचारी, स्नातक और संन्यासी के पवित्र जीवन का प्रथम नियम है; किन्तु मनुस्मृति (१०. ६३)* में चारों वर्णों के साधारण धर्मो में अहिंसा को प्रथम स्थान प्राप्त है। महाभारत (शान्तिपर्व) में तुलाधार दूकानदार और जाजलि ब्राह्मण की एक कथा है। जाजलि महायोगी था। एक वार वह वन में काठ के खम्भे की तरह निश्चल खड़ा हो गया। चिड़ियों का एक जोड़ा उड़ता हुआ उसकी ओर आया, उसके सिर के खुले बालों में घोंसला वनाया, अण्डे दिये, उनसे वच्चे निकले और वे उड़ गये। इस बड़ी तपस्या के बाद उसने आनन्दपूर्वक कहा—"मैंने धर्म प्राप्त कर लिया।" किन्तु आकाशवाणी हुई—"तुम बनारस के ईमानदार दूकानदार तुलाधार के बराबर भी नहीं हो।" महायोगी हतोत्साह होकर तुलाधार के यहाँ गया और पूछा—"आप धर्म का कैसे अर्जन करते हैं?" अहिंसा की व्याख्या करते हुए उसने बताया—"यह प्राचीन धर्म है, सर्व-उपकारी है, मैत्री-धर्म है। जीवन का वह ढंग जिसमें किसी जीव को कुछ भी हानि नहीं पहुँचाई जाती है या बहुत कम, वही उत्तम धर्म है। हे जाजलि, मैं इसी के अनुसार रहता हूँ...। यदि कोई व्यक्ति किसी जीव से न डरे और कोई जीव उससे न डरे, यदि उसे किसी के लिए पक्षपात न हो और वह किसी से घृणा न करे, तो वह ब्रह्म में मिल जायगा।"

बौद्ध-धर्म में और विशेषतः जैन-धर्म में 'अहिंसा परमो धर्मः' के सिद्धान्त पर सबसे अधिक ज़ोर दिया जाता है। हम जैन-धर्म-ग्रन्थों में पढ़ते हैं—"हत्या नहीं करनी चाहिए, दूसरों से हत्या नहीं करवानी चाहिए, दूसरों को हत्या करने की सम्मति नहीं देनी चाहिए। किसी भी जीवित प्राणी को कभी न मारना चाहिए, न क्लेश पहुँचाना चाहिए, न तंग करना चाहिए। सभी जीव क्लेश से घृणा करते हैं, इसलिए उन्हें न मारना चाहिए। बुद्धि का सार है 'किसी को न मारना'।" बौद्ध-सूत्रों में कहा गया है—"जैसा मैं हूँ, वैसे ये हैं; जैसे ये हैं वैसा मैं हूँ; दूसरों से अपना तादात्म्य करते हुए न किसी की हत्या करनी चाहिए और न दूसरों से ही हत्या करवानी चाहिए। बौद्ध निश्शस्त्र होकर नम्र और दयालु हो जाता है। वह सभी जीवित प्राणियों के प्रति दया दिखाता है।"

ऐतिहासिक दृष्टिकोण से अहिंसा पहले पहुँचे हुए पुरुष, तपस्वी और सन्त का गुण थी। अपनी आत्मा को पवित्र करने के लिए तथा मुक्ति के लिए तैयार होने के लिए लोग इसका अभ्यास करते थे। कालक्रम से सम्भवतः बौद्धों और जैनों के अप्रत्यक्ष प्रभाव से यह जनता का साधारण धर्म हो गई, यद्यपि इसके साधारण धर्म होने में बराबर बहुतेरे 'अगर और मगर' रहे। जिन शास्त्रों के अनुसार अहिंसा सभी जातियों का प्रथम धर्म है उन्हीं में वर्णाश्रम-धर्म की भी शिक्षा है, जिसके अनुसार क्षत्रिय का धर्म 'लड़ना और मारना' है, और एक प्राचीन धर्म-शास्त्र के अनुसार यज्ञार्थ पशुओं की 'हत्या' 'हत्या' नहीं है।' बौद्ध-कवि मातृचेत ने पत्र-द्वारा अपने मित्र महाराज कनिष्क से शिकार छोड़ने के लिए जो आग्रह किया था उसका अनोखा तर्क यों है—"जब आपने युद्ध में शस्त्र चलाने का काफ़ी अभ्यास किया है तब आप जंगली जानवरों तथा अपनी आत्मा को क्यों हानि पहुँचाइएगा?" नीति-शास्त्र के जैन लेखक तक कहते हैं—"दुराचारियों के प्रति शान्त रहना तपस्वियों को शोभा देता है, राजाओं को नहीं।"

---

*अहिंसा सत्यमस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः।
एतत् सामासिकं धर्मं चातुर्वर्ण्येऽब्रवीन्मनुः॥

ऋग्वेद में इन्द्र महायोद्धा और शत्रुघ्न हैं। महाकाव्यों में युद्ध-दृश्यों की कमी नहीं है। भीष्म केवल महात्मा और योगी ही नहीं हैं, बल्कि मनुष्यों के शक्तिशाली हन्ता भी हैं। सबसे पवित्र ग्रन्थ भगवद्गीता में 'आत्मा न कभी मारती है और न मारी जाती है' कह कर श्रीकृष्ण ने योद्धा की नैतिकता के लिए हत्या को उचित बताया है—इन बातों को स्मरण करते हुए हम देशबन्धु सी० आर० दास से सहमत नहीं हो सकते हैं, जिन्होंने क्रान्तिकारी उपायों के विरोध में एक बार कहा था—'हिंसा हमारे अस्तित्व का अङ्ग नहीं है, जैसे यह योरप का है।'

वास्तव में जैसे भारत में वैसे ही पश्चिम में हिंसा मानव-स्वभाव का अंग है। प्रत्येक जीवित प्राणी को जीते रहने का हक़ है और किसी को जीव-हत्या करने का अधिकार नहीं है, तथापि जीवन-नाश के बिना जीवन असम्भव है। मनुष्य की आँखों से देखा जाय तो प्रकृति के समान निष्ठुर और निर्दय कुछ भी नहीं है। इसमें सहज, सुन्दर, सुखद मृत्यु तो कम ही देखने में आती है, बहुधा निस्सीम पीड़ाओं और वेदनाओं के साथ धीरे-धीरे विनाश होता है। प्रकृति में जीवन-नाश का अनादि काल से सम्मिश्रण है।

यही अहिंसा का बड़ा सवाल है। एक जैन कहानी है—एक शबर अपनी स्त्री के साथ एक साधु से मिला, जिसने उन्हें अहिंसा की शिक्षा दी। एक दिन सपत्नीक शबर जंगल में एक सिंह के सामने आ गया। उसने सिंह को मारने के लिए धनुष ग्रहण किया, किन्तु पत्नी ने साधु की शिक्षा की याद दिलाई। इस पर शबर ने धनुष फेंक दिया और सिंह दोनों को निगल गया। किन्तु उसी क्षण सौधर्म स्वर्ग में चिरजीवी देवता होकर वे जनमे। विधर्मी होने के कारण हम अहिंसा के प्रश्न के ऐसे हल से सन्तुष्ट नहीं हैं।

किन्तु इस सवाल को हल करना है। यह सच है कि अपने प्राण या कोई अधिक मूल्यवान् जीवन बचाने के लिए तथा स्वजनों या मानव-जाति का कोई महान् उपकार करने के लिए हानि या क्लेश पहुँचाना आवश्यक है। किन्तु हमें अपने विवेक को तेज़ बनाना पड़ेगा, हमें अनायास ही न तो प्राण-अपहरण करना चाहिए और न किसी जीव को क्लेश ही पहुँचाना चाहिए, किन्तु अधिक से अधिक परिश्रम के साथ विचार करना चाहिए कि किसी खास जीव को हत या क्लेशित करना वास्तव में एकान्त आवश्यकता है या नहीं। ऐसी आवश्यकता होने पर ही हम अपने को अपराधी बना सकते हैं; क्योंकि जब कभी हम किसी जीव को क्लेशित करते हैं तब हम अपने ऊपर अपराध लाद लेते हैं।

यह सच है कि हिंसा और घृणा स्वाभाविक है, और यह कम सच नहीं है कि प्रेम और सहानुभूति स्वाभाविक है। प्रेम में बुद्धिमानी है, घृणा में मूर्खता है; प्रेम उत्पादक है और घृणा ध्वंसात्मक। यह शाश्वत सत्य है कि हिंसा हिंसा की जननी है, शान्ति की नहीं। एक बौद्ध कहावत है—"घृणा से घृणा का अन्त नहीं होता है, अघृणा से घृणा का अन्त होता है।"

अतः पूर्ण अहिंसा अत्यन्त दुर्लभ होने पर भी एक महान् नैतिक आदर्श है। चाहे हमें आवश्यकता के आगे झुकना पड़े और अपने को अपराधी बनाना पड़े, तो भी इस आदर्श के लिए प्रयत्न करने से हम रुक नहीं सकते। क्लेश पहुँचाने से सदा निवृत्त रहना सम्भव न हो, किन्तु 'क्लेश न पहुँचाने की इच्छा, शान्ति की इच्छा' अपने में उत्पन्न करना सम्भव है।

जब कि संसार में सर्वत्र हिंसा देवी की पूजा हो रही है और उसके आगे असंख्य जीवों का बलिदान हो रहा है, भारत में एक ऐसे व्यक्ति महात्मा गांधी हैं जो अहिंसा के प्राचीन भारतीय आदर्श का समर्थन कर रहे हैं और इसे अपना राजनैतिक कार्यक्रम बना रहे हैं। भारत की जनता में इस कार्य-क्रम के जो इतने अनुयायी हो गये हैं वह इस बात को अच्छी तरह प्रमाणित करता है कि यह प्राचीन नैतिक सिद्धान्त एक महान् राष्ट्र की आत्मा में कितना गहरा जम गया है।

कवीन्द्र रवीन्द्र ने कहा है—शस्त्र-बल मानव-दुर्बलता का द्योतक है। शान्ति सत्य है, संघर्ष नहीं; प्रेम सत्य है, घृणा नहीं। जब पश्चिम के लोग ये सत्य सीखेंगे, जब वे सीख चुकेंगे कि प्रेम और अहिंसा में केवल सत्य और बुद्धिमत्ता ही नहीं है, बल्कि शक्ति भी है, तब और तभी पाश्चात्य सभ्यता उस सर्वनाश से बचेगी जिसका आज अश्रुतपूर्व वैज्ञानिक उन्नति होने पर भी इसे भय हो रहा है।*

*प्रसिद्ध जर्मन विद्वान् स्वर्गीय श्री एम० विन्तरनिज का एक लेख।

सौग़ात

लेखक, श्रीयुत हंसराज गुप्त 'रहबर', बी० ए०

उस घने पीपल के पेड़ के नीचे शहर से बाहर उसका झोपड़ा था, जहाँ वन के पक्षी मीठी-मीठी बोलियाँ बोला करते थे। इनके सिवा रज़ीना का कोई संगी न था। और संगी होना सम्भव भी तो न था, क्योंकि वह इतनी बदसूरत थी कि सब लड़के-लड़कियाँ उसको देखकर नाक-भौं चढ़ा लेते थे। मोटे-मोटे होंठ, चपटी, नाक और काला रंग--अगर कहीं अँधेरे में नज़र आ जाय तो भूत-प्रेत का धोखा हो सकता था। वह रेल की पटरी पर से पत्थर के कोयले चुन लाती थी और उन्हें बाज़ार में बेचकर अपना पेट पालती थी।

मनुष्य जीवन की किसी अवस्था में हो, मन बहलाने की सामग्री अवश्य ढूँढ़ता है। रज़ीना बदसूरत सही, परन्तु मनुष्य थी। उसे भी इस प्रकार के सामान की आवश्यकता थी। और वह सामान था--गुड्डा और गुड़िया का पुराना जोड़ा। न जाने नानी या दादी किससे भेंट में मिला था। परन्तु यह बाल्यकाल का स्मृति-चिह्न जवानी में भी सुख-दुःख का भागी बना हुआ था। वह जब कभी अपने आपको मनोभाव की अबोध कामना से प्रभावित देखती तब इनको ले बैठती। इनका ब्याह रचाती। निरर्थक और अबोध-से गीत गाती। ब्याह के सब संस्कार पूरे करके इनको आपस में गले लिपटा देती--और अपनी तीव्र कल्पना से इस बेजान जोड़े के हृदयों में दाम्पत्य प्रेम उत्पन्न करने की असफल चेष्टा करती। परन्तु उसके इस मन-बहलाव से प्यासे मन की कामना और जवानी की लड़पती हुई अभिलाषा तृप्त होने की अपेक्षा और भी तीव्र हो जाती। तब बेचारी रज़ीना छाती के उतार-चढ़ाव को दोनों हाथों से दबाये सुनसान झोपड़े के एक कोने में जा लेटती और घंटों ठंढी आहें भरती रहती। उसका स्त्रीत्व जंगली फूल की सुगन्ध की भाँति वायुमंडल में खोया जा रहा था।

(२)

एक दिन मध्यकाल को रज़ीना बाज़ार में कोयले बेचने को गई। उसने वहाँ देखा कि एक लम्बे क़द का सुन्दर मगर अंधा जवान भिखारी भिक्षा माँगता फिरता है। वह लाठी टेक कर दो क़दम चलता और फिर सूनी आँखों को ऊपर उठाकर आवाज़ लगाता--"भई, अंधे को कोई पैसा दे।"

उसकी आवाज़ में गज़ब की लोच और बला की मिठास थी। वह शब्दों को इस प्रकार तोल-तोल कर कहता था कि वायु में संगीत की तरंगें फैल जाती थीं।

रज़ीना कितनी ही देर तक खड़ी उसे ताकती रही। अंधे की आवाज़ उसके दिल में बस गई। उसकी शक्ल-सूरत उसके हृदय-पटल पर उतर आई। वह इस धुन में इतनी खो गई कि कोयले बेचना भी भूल गई। अन्त में जब यह विचार टूटा तब उसके काले-काले गालों पर लज्जा की सुर्ख़ी दौड़ गई और उसे अनुभव हुआ कि दिन छिप रहा है, चल कर कोयले बेचूँ, नहीं तो शाम का खाना कहाँ से आयेगा। इस प्रकार पेट की चिन्ता ने सुन्दर कल्पना को फीका कर दिया और वह कोयले बेचने आगे चली।

रज़ीना कोयले बेच कर लौटी तब बिजली की बत्तियाँ जल चुकी थीं। उसकी आँखें किसी को ढूँढ़ती थीं। वह ताँगों और मोटरों की भीड़ से बचती हुई चली जा रही थी और रह रहकर इधर-उधर ताक लेती थी। आख़िर उसे वही अंधा बाज़ार के नुक्कड़ पर खड़ा दिखाई दिया। उसने झट उसके पास जाकर पूछा--

"अब तुम यहाँ खड़े क्यों हो?"

"और कहाँ जाऊँ"?--अंधे ने सूनी आँखें ऊपर उठा कर पूछा।"

"अच्छा मेरे घर चलो।"

"भई मैं अंधा हूँ। मेरे साथ मज़ाक मत करो।"

"मैंने तो कोई मज़ाक नहीं किया।"

"मज़ाक नहीं तो और क्या है? मुझे कोई अपने घर क्यों ले जायगा?"

"नहीं मैं तुमसे सच कहती हूँ"—रज़ीना ने उसकी लाठी पकड़ते हुए उत्तर दिया।

"अच्छा भई, चलो। दाता तुम्हारा भला करे। वहीं कोने में लेटा रहूँगा।"

संध्या के झुटपुटे में रज़ीना और अंधा शहर से बाहर झोपड़े की तरफ़ जा रहे थे। रज़ीना ने पूछा—

"तुम्हारा नाम क्या है?"

"रमान।"

"रमान!" रज़ीना ने इस प्रकार दुहराया जैसे मन पर अंकित कर रही हो और फिर पूछा—

"अच्छा रमान, तुम्हारा और भी कोई साथी है?

"नहीं, मैं तो बिलकुल अकेला हूँ।"

"और मैं भी अकेली हूँ।" रज़ीना ने कहा।

(३)

अब उस झोपड़े में रज़ीना और रमान इकट्ठे रहते थे, मानो वर्षों के संगी हों। संसार का एक-एक परमाणु अपने केन्द्र की ओर दौड़ रहा है। वहाँ पहुँचे बिना उसे शान्ति प्राप्त होनी असम्भव है। ये दोनों विह्वल हृदय अपने केन्द्र पर आ मिले थे। अब उन्हें सुख प्राप्त था। प्रसन्नता के झूले झूलते थे। रज़ीना बदसूरत सही, पर रमान भी तो नेत्र-हीन था। उसे रज़ीना की शक्ल नहीं—प्रेम देखना था। रज़ीना के लिए रमान अंधा भिखारी नहीं, देवता था, जिसने उसके सूने संसार को मधुर स्वप्नों का लोक बना दिया था।

इस द्वीप में बदसूरत रज़ीना और अंधा रमान प्रेम की वंशी बजाते थे। न कोई ईर्ष्या करनेवाला था, न द्वेष। उनकी मथुरा तीन लोक से न्यारी थी। फिर भी न जाने क्यों, एक दिन जब अंधा रमान भीख माँगने जा रहा था, मार्ग में स्कूल के छोटे छोटे लड़के हँसते-खेलते और भाँति-भाँति की बोलियाँ बोलते जा रहे थे। एक लड़के ने आगे बढ़ते हुए कहा—

"फूल चुनेगा माली अंधे की जोरू काली"

अंधा रमान हैरान और परेशान वहीं ठिठक गया। ज्योतिहीन आँखें फाड़-फाड़कर इधर-उधर देखने लगा। लड़के तालियाँ बजाते आगे निकल गये। एक बर्फ़ बेचनेवाला पास ही खड़ा था। उसने रमान को चकित देखा तब भाँप गया कि अंधा इस बात से चिढ़ता है। उसने भी निकट आकर कहा—"अंधे की जोरू काली।"

रमान का प्रेमपूर्ण हृदय इस चोट को सहन न कर सका। वह जानता था कि 'काली' एक अप्रिय और घृणामय शब्द है। परन्तु यह नहीं समझ सकता था कि यह शब्द उसकी रज़ीना पर भी लागू हो सकता है। वह तो निर्मल, कोमल और प्रेम की पुतली है। फिर यह बकवाद क्यों? लड़कों का तो वह कुछ नहीं बिगाड़ सकता था, परन्तु बर्फ़वाले के विरुद्ध उसने युद्ध की घोषणा कर दी।

बर्फ़वाला कान दबाकर एक तरफ़ को चल दिया। उसने सोचा कि कहीं अंधे से उलझने में बर्फ़ का थान धरा का धरा न रह जाय और लड़के बर्फ़ खरीदना ही छोड़ दें। वह चला गया परन्तु रमान पाँच मिनट तक लाठी टेक टेककर विजय-गर्व में गाता रहा।

(४)

रमान जब शाम को घर लौटा तब रज़ीना पहले से ही उसकी प्रतीक्षा कर रही थी। वह अपनी झोली में 'कुछ' छिपाये था। आते ही उसने रज़ीना से पूछा—

"बताओ मैं क्या लाया हूँ?"

"मैं क्या जानूँ?" रज़ीना ने जवाब दिया।

"नहीं नहीं, तुम्हें बताना पड़ेगा," रमान ने गर्दन हिला कर कहा।

"और अगर न बताऊँ तो?"

"मैं तुमसे रूठ जाऊँगा।"

"न भई, ऐसा न करना।"

"तो फिर बताओ?"

"ज़रूर?"

"हाँ।"

"अच्छा मेरे लिए सौग़ात लाये हो।"

"क्या?" रमान ने आगे पूछा।

"यह तो अब तुम्हीं बताओ।"

रूमान ने मुसकराते हुए सूनी आंखों को झुकाया और झोली खोल दी। चूड़ियों का एक तोड़ा सूर्य्य की अन्तिम किरणों में जगमगा उठा।

चूड़ियाँ ! चूड़ियाँ !! कहते हुए रज़ीना ने झोली में हाथ डाल दिये। रूमान ने उसके दोनों हाथों को बहुत धीमे से वहीं दबा लिया और कहा—

"लाओ पहनाऊँ।"

"अब तो शाम हो गई है, सवेरे पहनाना।" रज़ीना ने कहा।

परन्तु रूमान के लिए शाम और सवेरा केवल पारिभाषिक शब्द थे। उसे इनमें कोई अर्थ-भेद मालूम नहीं पड़ता था। इसलिए वह रज़ीना को चूड़ियाँ पहनाने लगा। और उसने गिन गिन कर दोनों हाथों में बराबर-बराबर चूड़ियाँ चढ़ाईं। फिर बायें हाथ में उसके दोनों हाथ थाम कर दाहना हाथ चूड़ियों पर फेरने लगा। कितनी ही देर तक वह उनकी मधुर ध्वनि सुनता रहा। जब इससे कुछ थक-सा गया तब रज़ीना की अँगुलियों में अँगुलियाँ डाल कर बोला—इन गोरे गोरे हाथों में ये लाल-पीली चूड़ियाँ..

उसी समय पूर्णिमा का चन्द्रमा भी वृक्षों की आड़ से सिर निकाल कर देखने लगा कि इन काले काले हाथों को जिन पर लाल-पीली चूड़ियाँ चढ़ी हुई हैं, अंधे की सुन्दर कल्पना ने किस प्रकार गोरा बना दिया है।

आई प्रिये रात

लेखक, श्रीयुत सर्वदानन्द वर्मा

आई प्रिये रात
अब तो तजो मान
बहती मलय वात।
अब तक रखी तन्वि मैंने विवश धीर
जागी हृदय में कहाँ की विसुध पीर।
पहले बुलाया निकट अब किया दूर
कब से खड़ा हूँ तृषित नेह सरि तीर
अब सह सकूँगा न आगे अधिक और
कोमल हृदय पर अदय यह पदाघात;
आई प्रिये रात।

दुनिया थकी सो रही मैं रहा जाग
तुम हो विवश मौन में हूँ लिये आग;
दे तक सकीं तुम न स्मृति-चिह्न भी एक
कैसे निकालूं कहो तृप्ति का राग ?
तुम बन प्रथम रश्मि छू लो तनिक आज
मैं खिल उठूं बन प्रणय प्रात जलजात;
आई प्रिये रात।

उस दिन बिंधा जो प्रणय का कठिन शूल
अब तक न उसको सका हूँ सुमुखि भूल
भ्रम था कि तुमने किया उस दिवस प्यार
मेरे मधुर स्वप्न बीते हुए धूल।
मेरा निवेदन अधूरा रहा किन्तु
छाई दृगों में सजल श्याम बरसात।
आई प्रिये रात।

स्वर्गीय डाक्टर जायसवाल के पत्र

संग्रहकार, पंडित मोहनलाल महतो

आज में सरस्वती के पाठकों के सामने डाक्टर जायसवाल के कुछ पत्र पेश करता हूँ। प्रत्येक पत्र के साथ उसका अपना एक इतिहास भी है। यदि मैं केवल पत्र ही प्रकाशित करवा दूँ तो सम्भव है कि आप उन पत्रों से पूरा रस न ले सकें। यों तो सोना स्वयं दामी और सुन्दर होता है, पर उस समय उसकी शोभा और भी निखर उठती है जब वह कारीगर के हाथों से सुन्दर गहना बनकर किसी ऐसी युवती के अंगों में स्थान पाता है जो अपनी लुनाई का भार सँभालने में खुद अलसाई रहती हो।

(१)

रेल में
२०.१०.३४

प्रियवर मोहन,

आर्य धर्म जिस नाम में, बसता है त्रिक्काल।
उस "श्रीराम-जुहार-यूत", मिलता जायसवाल॥

दसहरे की भेंट स्वीकृत हो। मैं मंसूरी से वापस हो रहा हूँ। मेरा पता—पटना-जंकशन के सामने, इंडियन-नेशन छापेखाने के बगल में कोठी है।

स्वदीय
काशीप्रसाद

पु० वह शिलालेख जो घर के पास है, जयपाल देव पाल वंश का है।

(२)

मेरे पास एक बहुत ही पुरानी तलवार थी। बेतिया के महाराज से मेरे नाना साहब को वह तलवार न जाने कैसे मिली थी। उस तलवार को देखकर जायसवाल जी बहुत ही प्रभावित हुए। मैंने उसे पटना-म्युज़ियम के हवाले कर दिया। इसके अतिरिक्त एक बहुत ही सुन्दर जापानी कुत्ता जायसवाल जी ने मेरी बच्ची को दिया था।

[स्वर्गीय डाक्टर काशीप्रसाद जायसवाल]

प्रेम इतना था कि उस कुत्ते को आप बार बार देखना चाहते थे। उस कुत्ते का नाम 'हिटलर' रक्खा गया था। अब आप जायसवाल जी का पत्र पढ़िए—

पटना १३.११.३५

प्रियवर मोहन,

तलवार पहुँच गई। भला बच्चे को देकर मैं क्यों मागूँगा। सिर्फ़ स्नेहवश उसे पुनर्वार देखने की इच्छा हुई। जब महीने दो महीने में आइएगा तो साथ लाइएगा। कोई जल्दी नहीं है। उसे स्यार, हुँडार आदि से और चोर आदमी से बचाइए। नाम 'हिटलर' से अगर कोई जर्मन आजाय तो उसे अकारण दुःख होगा। नाम ऐसा रखना चाहिए कि किसी को चोट न पहुँचे।

जुग जुग जीवो लाल, मोहन, मोती ही बने।
भाषा भूमि भुआल, हृदय-हरण शोभा सने॥

तुम्हारा ही
का० प्र०

(३)

जायसवाल साहब ने एक व्यंग्य-काव्य लिखा था। उसका कथानक बहुत ही सुन्दर है, जिसका परिचय मैं

उनके संस्मरण में दे चुका हूँ। "सरस्वती" के किसी अंक में वह काव्य छप गया है। उसके कुछ पद्य आपने मेरे पास भेजे थे।

पटना, मंगलवार

कविश्रेष्ठ,

पद्यों को आप व्यंग्यकाव्य न समझना। बड़े मियाँ के कहने पर लिखता हूँ। स्वर्ग से सीधे आदेश आते हैं तब क़लम उठती है। उनमें यह इसलाह कर दीजिएगा अगर छपने न भेजा हो तो और आप सहमत हों तो। भाई, तुम क़लम के धनी हो और मैं हूँ क़ानून का कीड़ा। बड़ा बेमेल तुक है।

(१) "वकील तेरे रवि, गांधि जी जभी
उठे सफ़ाई हित रो पड़े सभी", या 'भले'

(२) "असह्य तेरा मुख देखना मुझे"
क्या "मुझे" "हमें" की जगह पर जमता है?

(३) "हरो हमारी तुम तापना हरो"

"तापना" की जगह पर "खलु" बैठता है या नहीं, 'खलता' शब्द ऊपर आ गया है पर "तुम तापना" के साथ अच्छा चलता है। उत्तर शीघ्र देना। और पद्य भेजता हूँ। संशोधन करते जाना।

अभिन्न
जायसवाल

(४)

पटना, ५-१२

प्रियवर,

मैं एक इनकम टैक्स के मुक़दमे में आ रहा हूँ। ता० ७ को सवेरे सवा नौ बजे गया पहुँचता हूँ। स्टेशन पर तुम आ जाना और हिटलर साहब को भी लाना। तुम हज़ार काम छोड़कर आना।

का० प्र०

(५)

पटना, २४-१-३५

प्रियवर,

नहीं आये। अच्छा ही किया। विलायत जाने की इच्छा हो तो लिखना। कुछ चिन्ता नहीं है। बस चलना चाहो तो मैं आवश्यक इन्तज़ाम कर डालूँ। पासपोर्ट वग़ैरह मिल जायगा। मेरी इच्छा है कि तुम भी ज़रूर चलो। बड़ा सुन्दर देश है। सारा यूरोप घूमना होगा। मोहन जी, ज़रूर चलो बेटा!

उत्तर तार से देना।

तुम्हारा ही--
का० प्र०

(६)

मैंने एक कहानी लिखी थी। यह कहानी कहीं छपी थी जो जायसवाल जी की नज़रों में पड़ गई। आपने मेरे पास एक पत्र लिखा।

मोहन,

तुम्हारी कहानी में मँगरू का शब्दचित्रण देखा। क्या बढ़िया शैली है! बच्चे की नन्हीं मुट्ठियों में पितृ-हृदय का बँधना आदि, भाव और शब्द-विन्यास का हार पिरोना है। आपका गद्य हिन्दी में सबसे उत्तम है। मैं जब लिखता था ऐसा ही लिखना चाहता था, पर बनता न था। मेरी लालसा आपकी शैली से पूरी हुई। अगर मैं न लिख सका तो मोहन ने तो वैसा लिखा।

राहुल जी ५-६ दिन में आते हैं। मोहन जी, इन्दौर चलिएगा। उत्तर लौटती डाक से।

स्नेहाधीन
का० प्र०

(७)

मैंने एक शामा चिड़िया जायसवाल जी को दी थी। उस नन्हीं-सी चिड़िया को आप अपनी नज़रों से ओट होने देना नहीं चाहते थे। आपने एक पत्र में उस वन-विहंगम की चर्चा भी की थी।

पटना, रवि०

प्रिय महतो,

शामा ख़ूब बोलता है। पूँछ हिलाकर जब चहकने लगता है तो कोठी का कोना कोना आबाद जैसा हो जाता है। मेरे भाग्य में ब्राह्मणों का दान लेना ही लिखा है। महाराज दरभंगा से लेकर मोहनलाल तक, अतएव—

महाब्राह्मण
श्री काशीप्रसाद जी जायसवाल

(८)

मोहनलाल जी,

मैं इन्दौर होता बम्बई चला जाऊँगा और वहाँ से सीधे विलायत। एक सप्ताह की देर है। तुम पूरे हठी हो। चलते क्यों नहीं। मैं तो लिख रहा हूँ कि कोई चिन्ता मत करो। लिखो तो "चेक" भेज दूँ। रही जाति जाने की बात सो मैं खुद शास्त्री हूँ। पंडितों से शास्त्रार्थ करूँगा। जाति नहीं जायगी। तुम साफ़ जवाब नहीं देते। चलते हो या नहीं? विलायत जाने पर तुम भी खुश होगे। बहुत ही मज़ेदार देश है। चलो भैया; जवाब देना और खूब साफ भाषा में।

तुम्हारा
का० प्र०

२२. ३. ३५

(९)

मित्र,

मैं बहुत ही खिन्न मन से विलायत जा रहा हूँ। तुमने साथ नहीं दिया। भूलना मत। यह नोट कर लो। कभी न कभी मेरे इस पत्र को पढ़कर तुम्हें अपार कष्ट होगा। मेरा तो टिकट कट चुका वर्ना नहीं जाता। गया आकर तुम्हें मनाता और साथ लेकर जाता। अब सीधे लन्दन से लौटूँगा। तुम होते तो एक साल रहता और सारे यूरोप को नाप डालता।

"केशव, मन की मन ही रही"

काशी प्र०

इन्दौर :: गुरुवार

(१०)

जायसवाल जी ने अपना नाम "अगिन गिर" रख लिया था। इस नाम से आप खूब मज़ाक किया करते थे। लोगों को यह विश्वास हो गया था कि अगिन गिर नाम के कोई पहुँचे हुए महात्मा हैं, जिनकी चर्चा जायसवाल जी बार बार किया करते हैं। कितने ही जज और विद्वान् बाबा अगिन गिर की अलौकिक करामातों का हाल जायसवाल जी के मुँह से सुन चुके थे। इस पत्र में उन्हीं महात्मा की चर्चा है। जायसवाल जी पेट की शिकायत से तंग थे और आम खाने से बाज़ आना नहीं चाहते थे। मैंने झल्ला कर एक पत्र लिखा। उत्तर नीचे दर्ज है—

मोहन,

क्यों इतना डाँटते हो? इसमें मेरा कोई दोष नहीं है। तुम्हारे गुरु बाबा अगिन गिर जी आजकल जान देकर आम खा रहे हैं। पूछने पर कहने लगे कि "फिर जन्म से रहित हो जाने पर आगे मौक़ा आम खाने का नहीं मिलेगा।" यह उत्तर मुझे जीवनमुक्त महाराज अगिन गिर का बहुत भाया। अब आम खाने में क्या हर्ज है?

फोटोग्राफ भेज रहा हूँ। तुम्हारी माता जी सबके साथ दार्जिलिंग से आ गईं। तुम्हारी खोज हो रही है। धर्मशीला भी यहीं है। आजकल तो दो दिन मनोरंजन रहता। एक पुस्तक लिखने का विचार है। सहायता देने में कंजूसी मत करना। तुमने साथ दिया तो काम जल्दी समाप्त हो जायगा। तुम्हें तो अपने चर्खे से फ़ुर्सत ही नहीं मिलती। लिखो, आजकल साम्यवाद की कौन-सी पुस्तक पढ़ रहे हो। मुझे तो इतना समय ही नहीं मिलता, नहीं तो तुम्हारे साथ कन्धा से कन्धा भिड़ा कर पढ़ता।

बुढ़ौती से मेरा तो नाकोंदम हो गया है।

आपका गुरु
पूर्णिमा. श्रीमहात्मा अगिन गिर जी

(११)

प्रिय,

श्रीजयचन्द जी आ गये। मेरे भेजे हुए नोट भेज दो। मुझे विश्वास है कि तुम भी दोचार दिनों में आ-जाओगे। इस बार आना तो कम से कम १ मास रहना। सुबह आये और शाम को भागे यह भी कोई तरीक़ा है। मेरी पुत्रवधू और पोते-पोतियों का समाचार लिखना। इस बार गया आया तो बच्चों के लिए खिलौने लेता आऊँगा। उन्हें कह देना।

भाई, नोट जल्द भेजो। जयचन्द जी शायद कुछ दिनों तक ठहरें भी। बाबा राहुल भी आनेवाले हैं।

१०-६ का० प्र० जा०

(१२)

पटना ३.७-३६

मोहन जी,

जय राम जी की। श्री श्री राहुलाचार्य जी महाराज बहुत-से महत्तावाले ग्रन्थ जो यहाँ लुप्त हो गये थे और जो न्यायशास्त्र के सर्वोत्तम ग्रन्थ हैं, लेकर आनेवाले हैं।

अभी वह तिब्बत में ही हैं। इसमें सन्देह नहीं कि राहुल जी भारत के गत-गौरव का उद्धार कर रहे हैं।

आप कब तक आते हैं? यहाँ काफ़ी गर्मी है। दोपहर को चुपचाप स्वाध्याय करता हूँ। सच कहता हूँ, मोहन जी, गर्मी की दोपहरी मनन और अध्ययन करने की चीज़ है। आजकल आप क्या कर रहे हैं? कुछ लिख रहे हैं या साम्यवादी साहित्य पढ़ने की सनक सिर पर सवार है?

शायद १३ तारीख़ को गया आऊँ। सूचना दूँगा तो स्टेशन पर आना। बुद्धगया भी जाना चाहता हूँ।

का० प्र०

(१३)

पटना

प्रिय मोहनलाल,

तुम बीमार हो गये, आश्चर्य! तुम्हारा स्वास्थ्य तो ठोस लोहे जैसा है। फिर यह रोग कैसा? मैं आ रहा हूँ। विना देखे मन नहीं मानता। अधिक तबीअत खराब हो तो लिखो। यहीं से डाक्टर वराट् या किसी को साथ लेता आऊँ। घबराना मत। तार से उत्तर मिलना चाहिए।

प्यारी बहू को आशीर्वाद

चिन्तामग्न

सोमवार का० प्र०

(१४)

जायसवाल जी संन्यास लेने के लिए अचानक व्यग्र हो उठे। उनका यह निश्चय मुझे नहीं रुचा। मैंने उनके निश्चय का घोरतर विरोध किया। बात यहाँ तक बढ़ी कि शास्त्र के पेजों को मैं टटोलने लगा और जायसवाल जी भी कोरे तर्कों का साथ छोड़ कर शास्त्रों से संन्यास लेना सिद्ध करने लगे। उनका यह अन्तिम पत्र है, जो हमारे वादविवाद की समाप्ति पर लिखा गया था—

पटना से लिखी

१ कार्त्तिक ९२ को

श्रीमोहनलाल जी. शुभस्थाने गया तीर्थ, योग्य

बेटा,

उत्तर, संस्कृत छन्द भाषा अपनी नीचे लिखा पढ़ना जी।

लड़ी कड़ी है शुभ शब्दराशि है
कवित्वलाला मिथिलादि में पड़ा।
कवित्त तो नेक वहाँ कहाँ जुरे
कवित्वलाली तुमसे बनी रही।

तुमने प्रमाण और तर्कों की आँधी बहा दी। कहाँ कहाँ के शास्त्रीय प्रमाणों को लाकर यहाँ जमा कर दिया। धन्य हो भाई! मैं संन्यास नहीं लूँगा। हाँ, एक श्लोक लिखता हूँ।

अधीतमध्यापितमर्ज्जितं यशो
न शोचनीयं किमपीहभूतले,
अतः परं जायसवाल धीमतः
मनो मनोहारिणि जाह्नवीतटे.

॥हिन्दी॥

पढ़ा पढ़ाया लिख कीर्त्ति प्राप्त की
नहीं रही भूतल बीच शोचना,
जगी जभी जायसवाल की जरा
चला विमोही हिमवन्त की दरी।

रघुवंश के दूसरे सर्ग से आगे पाँच सर्गों तक के छन्दों में बुद्धदेव का 'महापरिनिर्वाण' या 'महानिष्क्रमण' हिन्दी में तुम लिखो। शब्द निछक्की हिन्दी के हों जैसे—"पढ़ा पढ़ाया" "अधीतमध्यापित" की जगह।

भूलना मत। तुम लिख सकोगे। अगिन गिर बाबा से उनके अल्ला मियाँ ने यह सन्देश तुम तक पहुँचाने का आग्रह किया है। उत्तर देकर सुखी करना। आशीर्वाद

का० प्र० जायसवाल

(१५)

पटना के सिनेट-हाल में एक कवि-सम्मेलन हुआ। वह कवि-सम्मेलन बहुत ही जोरदार था, क्योंकि दोपहर को डाक्टर सच्चिदानन्द सिन्हा की सदारत में मुशायरा हो चुका था। उक्त कविसम्मेलन में सभापति-पद से जो भाषण दिया गया था उसी के सम्बन्ध में जायसवाल जी ने एक पत्र में लिखा था—

बेटा,

जीते रहो। सिनेट-हाल में भाषण देने के बाद तुम ऐसे भागे कि मैं राह ताकता रह गया। गया में ऐसा कौन-सा काम छोड़ आये थे? मैं यहाँ तुम्हें एक शानदार भोज देना चाहता था, मगर तुमने अपनी सूरत नहीं दिखलाई। इस बार आये तो बिना कनैठी दिये नहीं छोड़ूँगा।...

भाषण में तुमने उर्दू-साहित्य की काफ़ी छीछालेदर कर दी। तुम्हारा कहना सही है। उर्दू के कवियों ने न जाने क्यों अपनी प्रियतमा को पुल्लिंग रूप दे दिया है। मैंने इस ओर कभी ध्यान नहीं दिया था। हिन्दी के छायावादी बहादुर भी अब अपने को स्त्री मानकर प्रियतम के लिए तड़पने लग गये हैं। यह तो बुरी बात है। तुम्हारी कविताओं में यह दोष नहीं के ही बराबर है। मैं तो तन्मय होकर तुम्हारा भाषण सुन रहा था। मेरे साथ हाईकोर्ट के जो दो विचारपति आये थे वे भी सुन रहे थे। इस बार आओ तो तुम्हें उन जजों के यहाँ ले चलूँ। वे तुम्हारे विषय में कई बार पूछ रहे थे। लिखो कब आते हो। तुम्हारी माता जी बीमार हो गई हैं। उन्हें यह जानकर बड़ा दुःख हुआ कि तुम आये और भाग गये। मातृहृदय का आदर करना चाहिए। जल्दी चले आओ और अपने साथ कुछ कवितायें भी लेते आओ।

तुम्हारा अपना

भादों :-मंगलवार

का० प्र०

(१६)

पटना २८. ११. ३५

प्रिय मोहन,

जी लगा है। अपने अनुज पन्ना के साथ किस दिन आते हो। एक चीज बहुत ही सुन्दर तैयार की गई है। बाबा अगिन गिर आजकल ख़ुदा मियाँ से बातें किया करते हैं और कवितायें लिखा करते हैं। मैं तो पुरातत्त्ववेत्ता ठहरा। रात को सोता हूँ तो चन्द्रगुप्त, स्कन्दगुप्त, कनिष्क सब मेरे चारों ओर खड़े होकर रोते हैं कि "क्यों हमारी समाधि पर बैठ कर ढोल पीटा करते हो। दुनिया हमें भुला रही है तो तुम्हें क्या पड़ी है जो रोज़ हमारे नाम पर हो-हल्ला मचाते हो।"

यदि हो सके तो इन्हें गया श्राद्ध करके उद्धार करने की कोई व्यवस्था कर दो। बेचारे बहुत रोते हैं।

का० प्र०

(१७)

पटना १५. १. ३६

प्रियवर,

मैं ता० २० को महाराजा डुमरावँ के एक मुक़दमे में गया पहुँचता हूँ। स्टेशन पर आना। यदि समय न मिले तो ३ बजे घर पर ही प्रतीक्षा करना। प्यारी बहू और पोते-पोतियों को देखना भी तो है। बहू के लिए एक चीज़ लेकर आऊँगा।

मेहतावाली पुस्तक खोज कर रखना। "हिन्दू-पोलीटी" का कितना अनुवाद हुआ है? दिखलाना।

राहुल जी आज घर आ गये। बेचारे बहुत ही कमज़ोर हो गये हैं। १५ दिन और लगेंगे तब चलने योग्य होंगे। मेरी प्यारी बहू को मेरा आशीर्वाद कहना। बच्चों को मेरी ओर से चूम लेना।

का० प्र०

(१८)

जायसवाल जी इधर साम्यवाद के समर्थकों में से हो गये थे। उन्होंने पटना के "सर्चलाइट" में ज़मींदारी-प्रथा के विरोध में एक महा भयानक लेख लिखकर छपवाना चाहा। मैंने जब उस लेख को पढ़ा तब मेरा माथा ठनका। मैं जानता था कि महाराजा दरभंगा, महाराजा डुमरावँ आदि उनके मुवक्किल हैं। उनके लेख का असर उनकी वकालत पर बुरी तरह पड़े बिना न रहेगा। मैंने एक पत्र जायसवाल जी को लिखा और प्रार्थना की कि इस तरह के लेख छपवाने का अवसर अभी नहीं आया है। उन्होंने मेरी प्रार्थना तो मान ली, पर अपना दूसरा लेख छपवाया ही। इसी सिलसिले में उन्होंने एक पत्र मुझे लिखा—

मोहन प्यारे,

बेटा, तुम्हारा पत्र आया। चाहे मुझे भूखों मरना पड़े, पर मैं सच बात बिना संकोच के कह दूँगा। तुम्हारा सम्बन्ध भी तो बड़े-बड़े हिज़-हाइनेसों से है, पर तुमने क्यों देश का साथ दिया? सच्चाई एक ओर है और रोटी का सवाल दूसरी ओर। तुम कायर मत बनो और न मुझे ही कायर बनने दो। जिसका पुत्र हिज़-हाइनेसों की परवा न करके हज़ारों की आय पर लात मार कर महात्मा जी का मन्त्र जपा करता हो उसका पिता कैसा नालायक़ होगा जो अपने व्यवसाय का मुँह जोहता हुआ कायर की तरह जीवित रहने की कोशिश करेगा!

ख़ैर, मैं तुम्हारे तर्कों से प्रभावित हुआ और मेरा जो लेख तुम्हारे पास है उसे नष्ट कर दो।

बाबा अगिन गिर को अब तो सच बोलने का शौक़ चर्राया है। राहुल जी चले गये और मैं तुम्हारे साथ मानसरोवर की प्रदक्षिणा करने जाऊँगा। अलमोड़े से जाने का विचार है। कपड़े वग़ैरह ठीक कर लो। धोती से काम नहीं चलेगा।

तुम्हारा अभिन्न
२४. ४. ३७. जायसवाल

(१९)

जायसवाल जी के संस्मरण 'सरस्वती' में छपे थे। उनके जीवन-काल में ही मेरा वह संस्मरणात्मक लेख छपा। उस लेख के सम्बन्ध में आपने लिखा था—

पटना २०. ९. ३६.

प्रियवर,

साधु-महात्माओं का हाल अखबार में नहीं लिखना चाहिए। पढ़कर सब लोगों ने बड़ा आनन्द उठाया। भूत लोगों को भी बड़ा आनन्द आया होगा। आप भूतों को झूठा मत मानें। वे नाराज़ होकर बदला भी लेना जानते हैं। बाबा अगिन गिर उन्हें सच समझते हैं। भले ही काशीप्रसाद जायसवाल का विश्वास स्थिर न हो। आपकी भाषा भी ग़ज़ब की तूफ़ानी होती है। अपने ही संस्मरण पढ़ते समय मुझे तो ऐसा लगा कि चित्रों का अल्बम देख रहा हूँ। आप जो कुछ लिखते हैं अपने शानदार ढंग से। यदि आप अँगरेज़ी में लिखते होते तो निश्चय ही संसार के उन लेखकों में आपकी गणना होती जो अमर कलाकार कहे जाते हैं। यह मेरा ही मत नहीं है। कई योग्य व्यक्तियों की यही राय है।

अधिक नहीं लिखूँगा। अब मैं भी लिखने की चेष्टा कर रहा हूँ। तबीअत में वसन्त की बयार डोल रही है। आपकी उस कहानी का अनुवाद कर रहा हूँ और किसी अमेरिकन पत्र में छपने की व्यवस्था कर ली है। आप बे मन से कभी मत लिखा करो। सम्पादकों के तक़ाज़े पर लिखने से भाषा की श्री नष्ट हो जाती है।

बहू को आशीर्वाद।

हितू
का० प्र० जायसवाल

(२०)

पटना ३०-१-३६

मोहन,

राहुल जी ता० ३ को मुंगेर वापिस आयेंगे। मैं ता० २ को शाम को मुज़फ़्फ़रपुर से आऊँगा। आप आइए। मन नहीं लगता। बेकार बैठा ऊँघा करता हूँ। अब क़ानून की किताबों से चिढ़-सी पैदा हो गई है। रात-दिन वही डफली, वही राग। ट्राटस्की की जीवनी पढ़ गया। बड़ा भयंकर मनुष्य है। हिन्दी में आप उसकी एक जीवनी लिखो। मुझे विश्वास है कि आप इस काम को कर सकते हैं। लेनिन और ट्राटस्की का आपका अध्ययन पूर्ण है। लिखते समय क़लम को बेलगाम मत छोड़ना।

का० प्र० जा०

(२१)

पटना
भरतमिलाप की एकादशी

श्रीमान् पंडित मोहनलाल जी,

जयराम जी की वंचना। अपरंच समाचार यह है कि आपका तार आया। क्यों पैसों का श्राद्ध किया? इसी प्रकार छोह बनी रहे। बेटा, तुम्हारे जैसा सुपुत्र के रहते अब मैं संन्यास ग्रहण करना चाहता हूँ। एक यही लालसा बाक़ी है। संन्यस्त उत्तराखंड में विचरता रहूँगा। दुनिया की भीड़-भाड़ से जी ऊब उठा है।

राहुल जी पराशया तक पहुँच गये, अब काबुल में होंगे। आ ही पहुँचे। चिन्ता की बात नहीं है। साम्य-वाद की ओर पुस्तकें भेजो। कार्ल-मार्क्स का "कैपिटल" बहुत ही रसहीन ग्रंथ है। धन्य है तुम्हारी खोपड़ी जो ऐसा साहित्य पढ़ते हो। मैं तो पढ़ने लगता था तो नींद आजाती थी।

तुम्हारी माता जी कुछ बीमार हो गई हैं। दवा नहीं खातीं और शायद पथ्य का भी कम ध्यान रखती हैं। किताबें कब भेजते हो? लिखो तो किसी को भेज दूँ।

उत्तर जल्द देना।
त्वदीय
श्री काशीप्रसाद

(२२)

हमारे प्रान्त के श्रेष्ठ कवि श्री दिनकर जी रजिस्ट्रार हैं और सरकारी मुलाजिमत की गुदरी अपने कन्धों पर लादकर भी आप चलती हुई भाषा में राष्ट्रीय कवितायें लिखा करते हैं। इस नाज़ का परिणाम भी वैसा ही अनोखा निकला। सरकार की भृकुटी कुछ कुछ वंक हो गई। बेचारा नौजवान कवि रोटी और कल्पना के बीच में कराहने लगा। अपने स्वतंत्र विचारों का वह साथ दे तो रोटी पर वज्रपात होता है और यदि वह सब-रजिस्ट्रारी को क़ायम रखना चाहे तो अपने उछलते हुए भावुक कलेजे का खून करना लाज़िमी हो जाता है। कवि ने जायसवाल जी को एक कार्ड लिखा और उनसे अपनी 'हिमालय' कविता के विषय में क़ानूनी राय पूछी। उन्होंने दिनकर जी का कार्ड मेरे पास भेज दिया और एक पत्र भी लिखा—

प्रिय मोहन,

दिनकर का कार्ड भेजता हूँ। तुम मज़े में हो। सरकारी नौकरी होती तो फिर क्या करते! मैं तो परमात्मा को इसलिए धन्यवाद देता हूँ कि तुमने कालेज का दरवाज़ा नहीं खटखटाया। मुझसे जहाँ तक हो सकेगा, दिनकर का साथ दूँगा। इस पनपते हुए पौधे की रक्षा करना हमारा कर्तव्य होना चाहिए और दिनकर की कविताओं की मस्ती पर आँच न आने पावे, यही उद्योग होना चाहिए।

मैं परसों गया आता हूँ। मुलाक़ात करना। मंगल की संध्या। का० प्र०

नोट—

जायसवाल जी के क़रीब-क़रीब ४० पत्र और मेरे पास हैं, जिन्हें मैं फिर प्रकाशित करवाने की चेष्टा करूँगा। मैं चाहता हूँ कि उस महान् भारतीय के पत्र जिनके पास हों वे उन्हें प्रकाशित करा दें ताकि आगे चल कर जायसवाल जी की जीवनी लिखनेवालों के लिए सहूलियत हो। मैं एक जीवनी लिख भी रहा हूँ। मेरे मित्र पंडित सोहनलाल जी द्विवेदी ने इस बार गोरखपुर में मेरा ध्यान इस ओर आकर्षित किया है। मैं समझता हूँ कि जायसवाल जी जैसे महापंडित की जीवनी कोई योग्य व्यक्ति लिखता तो अच्छा होता।

मौन

लेखक, श्रीयुत कुँअर हरिश्चन्द्रदेव वर्मा 'चातक', कविरत्न

मौन का इतिहास मैं कैसे सुनाऊँ?
मौन रवि-शशि, मौन वसुधा, और मैं क्या क्या गिनाऊँ?
मौन का इतिहास मैं कैसे सुनाऊँ?

मौन ही से प्रकट सब स्वर,
मौन है वह एक निःस्वर
मौन है भाषा दृगों की हृदय भी जिससे हिलाऊँ।
मौन का इतिहास मैं कैसे सुनाऊँ?

मौनिमा के सिन्धु से कवि
भावना-मुक्ता लसित छवि—
ढूँढ़ कर लाता; मुखरता में जिसे जग-हित लुटाऊँ
मौन का इतिहास मैं कैसे सुनाऊँ?

नवल बाला के मधुरतम—
मौन पर दे प्राण प्रियतम—
मौन हूँ मैं, मौन की महिमा न कह कर पार पाऊँ।
मौन का इतिहास मैं कैसे सुनाऊँ?
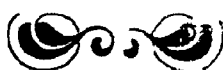
सोमेश्वर की पहाड़ियों में

लेखक, श्रीयुत महन्त धनराज पुरी

"आप तो अब पूरे।—सचमुच पूरे महन्त हुए जा रहे हैं। क्या आपकी आखेट-प्रियता समाप्त हो गई?" किसी ने पीछे से, मेरे कंधों पर हाथ रखकर, ऊपर लिखी बातें एक ही साँस में कह डालीं।

उस दिन नरकटियागंज (चम्पारन) में भूकम्प-विध्वस्त श्रीजानकी-संस्कृत-विद्यालय के भवन की नींव देने का उत्सव था। अठारह वर्षों में विद्यालय की की हुई उत्तरोत्तर उन्नति को सामने रखकर हम लोगों ने उसे कालेज बनाने का विचार किया था। नींव देने के लिए जिले के कलेक्टर महोदय आ रहे थे। उस समय मंत्री की हैसियत से लिखी हुई अपनी रिपोर्ट की भाषा पर विचार करने में मैं तल्लीन था। ऊपर लिखी बात सुनकर मैंने अपनी अकचकाई हुई दृष्टि पीछे की ओर की। देखा, चम्पारन के प्रसिद्ध मोटरबाज़ तालुक़ेदार मेरे आदरणीय मित्र राजकुमार बाबू शत्रुमर्दन शाह बी० ए० खड़े खड़े मुस्करा रहे हैं।

"डिस्ट्रिक्ट बोर्ड की चेयरमैनी से आपको छुट्टी भी है?" मैंने छूटते ही कहा और मुस्कराता हुआ उठकर खड़ा हो गया।

किन्तु वे झेंपनेवाले कहाँ थे? तुरन्त ही बोले—"अच्छा तो आज ही, इसी उत्सव के बाद, देखें शिकार के लिए कौन नहीं चलता। क्या इसके लिए शपथ भी दे दूँ?"

मैं तो बुरी तरह फँस गया! मुझे अत्यन्त आवश्यक कार्य्य से अपनी दूर की एक जमींदारी पर जाना था। जान बचाने के लिए एक राह-सा ढूँढ़ता हुआ बोला—"किन्तु यह तो बताइए जनाब। मार्च के इन अन्तिम दिनों में शिकार मिलेगा कहाँ? केवल व्यर्थ की परेशानी होगी। जायँगे और बैरंग वापस आयँगे।"

"बस, रहने दीजिए आप अपने इन दार्शनिक विचारों को। मैं आपका यह पहलू बदलना समझ रहा हूँ। शेर नहीं तो भालू, हिरन, शशक और तीतर ही सही। इन अभागों के भी न मिलने पर पहाड़ियों की एक सुखद यात्रा तो हो ही जायगी।"

मैं समझ गया कि विवाद करना व्यर्थ है। हँसता हुआ बोला—

"अच्छा, पहले आप अपने आज के कर्त्तव्य का पालन तो कर लीजिए कार्य्यकारिणी के अध्यक्ष महोदय! या आखेट के पीछे उत्सव भी स्थगित रहेगा?"

(२)

आखिर तीन या चार बजे दिन में कारतूस और राइफ़ल बन्दूकों से लैस होकर आखेटकों की हमारी ज़बर्दस्त टोली मोटर पर लद गई। विचार हुआ, आज सोमेश्वर के उन्नत गिरिशृङ्ग के नीचे मलचेंगवा या गोबर-धना में रात बिताई जाय और कल प्रातःकाल से शिकार की खोज-ढूँढ हो।

चम्पारन आर्थिक और बौद्धिक सम्पत्ति की दृष्टि से बहुत ही पिछड़ा हुआ जिला है। शिक्षा का बहुत कम प्रचार है। वाणिज्य-व्यापार का अभाव होने के कारण यहाँ के ग्रामीण नितान्त दीन-हीन और दरिद्र हैं। किन्तु प्रकृति देवी ने उसे सँवारने-बनाने में ज़रा भी कोर-कसर नहीं की है। जैसे दुर्बल और क्षीण-काय पुत्र पर माता का बलिष्ठ और उन्नत पुत्रों से अधिक प्यार और ममता होती है, मानो उसी भाँति इस दीन-हीन जिले पर प्रकृति माता ने अपनी सौन्दर्य-सम्पत्ति की वर्षा-सी कर दी है। घटना-क्रम से यद्यपि यह ज़िला भारत में विख्यात हो चुका है, परन्तु अपने प्राकृतिक सौन्दर्य के कारण नहीं, निलहे कोठीवाले साहबों के अत्याचार और लूट-खसोट के कारण। इसी अत्याचार ने भारत के वर्तमान दधीचि महात्मा गांधी का ध्यान इस ज़िले की ओर खींचा और इसी अत्याचार के कारण उस महान् तपस्वी को धूनी रमाकर इस ज़िले में तपस्या करनी पड़ी। किन्तु प्राकृतिक सौन्दर्य के कारण विख्यात होने और इस अत्याचार की वजह ख्याति लाभ करने में कितना महान् अन्तर है?

हाँ, तो इस ज़िले में प्रकृति देवी का सुन्दर आकर्षक रूप पग-पग पर दृष्टिगोचर होता है। पुण्यतोया गण्डकी हिमालय की गोद से उतरकर तीर की तरह छूटती

[सोमेश्वर का एक मार्ग]

है और संसार-विख्यात नैपाल के विशालकाय पहाड़ों को तोड़ती-काटती पहले-पहल इसी ज़िले में, सोमेश्वर की पहाड़ियों की छाती विदीर्ण कर, पदार्पण करती है। गम्भीर श्यामल जल-राशि की वह अनुपम छटा! देखने से आँखें थकती नहीं, हृदय कभी भर नहीं पाता। जेठ की लू से जब सारी देह झुलस-सी रही हो, आप सोमेश्वर की शरण में चले जायँ। पखनहवा या परेवा-दह में से कहीं भी किसी प्रान्त में जाने पर आपको सारी दुनिया बदली-सी जान पड़ेगी। उस जेठ में भी पहाड़ों से टप-टप चूती हुई पानी की बूँदें आपके कुतूहल का सामान होंगी। सूर्य की उत्तप्त रश्मियाँ न जाने किस अन्तरिक्ष के कक्ष में लीन-सी जान पड़ने लगेंगी। साखू और शीशम के चँदवे के नीचे से बहते हुए झरनों के पानी को छूते ही आपके शरीर से कँपकँपी छूटने लगेगी और जेठ की भरी दोपहरी में भी वहाँ घंटा भर बैठने के बाद आप लेहाफ़ ओढ़ने की आवश्यकता महसूस करने लगेंगे। नैपाल के प्रसिद्ध गैंडे भी कभी कभी सोमेश्वर की पहाड़ियों में आ जाते हैं। शेरों और भालुओं की तो वहाँ गिनती ही नहीं है।

मैं तो उस समय एकदम सन्नाटे में आ गया जब खाने-पीने के बाद गप्पें लड़ाते समय राजकुमार श्री मनुमर्दन शाह जी ने कहा—

"महन्त जी! इस बार आखेट का विचार छोड़ दिया जाय। क्यों न मोटर से हम लोग एक साहसपूर्ण यात्रा ही कर लें?"

"साहसपूर्ण यात्रा?"

"हाँ, साहसपूर्ण यात्रा ही! 'गर्दी' से 'हरनाटार' आज तक कोई भी व्यक्ति मोटर से जा नहीं सका है। क़सम खाने के लिए वहाँ से वहाँ तक बैलगाड़ी की एक पतली-सी लीक है। कल हम लोग वहाँ की दुःसाहसिक यात्रा करके एक नया रेकार्ड स्थापित करें। यों अगर रास्ते में चलते-चलाते कोई जानवर मिल गया तो शिकार भी कर लेंगे।"

स्टेट के मैनेजर साहब ने आपत्ति की। वे बोले—"गर्दी से हरनाटार! यह साहसिक यात्रा नहीं, जान-बूझकर आग में कूदना है। ईश्वर न करे, किसी अतल तलवर्ती खड्ड में गिरकर मोटर चूर-चूर हो जाय और..."

"कोलतार-युती सड़क पर मोटर भगा लेने से साहसपूर्ण यात्रा ही कैसे होगी! यहाँ तो नया रेकार्ड स्थापित करना है।" मैंने बात काट कर बीच में ही कहा। पर मेरे इन व्यङ्ग्य-बाणों से रुकनेवाला ही कौन था? देर तक वाद-विवाद होने के बाद कल प्रातःकाल ही यह साहसिक यात्रा करने की बात तय हो गई।

[परेवादह का झरना]

(३)

सोमेश्वर की छाती पर तीर की गति से दौड़ता हुआ मोटर जा रहा था और उसमें बैठा बैठा मैं प्रातः-समीकरण का मज़ा ले रहा था। भाँट पुष्प की गंध से यह दुर्भेद्य गहन कानन कोसों तक बसा हुआ था। लाखों मन इत्र छिड़कने पर भी सुगन्ध की वह आह्लादप्रद लपट आ नहीं सकती थी। पक्षियों की सुरीली तानें भी थीं और मोटर के पहियों के नीचे पड़नेवाले शुष्क तरुपत्रों की चरचराहट की सुमधुर ध्वनि भी। कभी कभी अनगढ़ पत्थरों पर उछलते हुए मोटर के धचकोलों से ध्यान भंग-सा हो जाता था। दस बजते बजते हम लोग गर्दी पहुँचे। यहाँ तक की यात्रा सुखद, मनोहर और नितान्त रुचिकर रही। वन के दृश्य भी रमणीक थे। सोमेश्वर की दोन में गर्दी अन्तिम गाँव है। इसके बाद यहाँ से हरनाटार तक बस्ती न गाँव, आदम न आदमजाद! गाँव में पूछने पर मालूम हुआ कि इस राह से मोटर हरनाटार नहीं जा सकता। इस रास्ते से तो बैलगाड़ी भी मुश्किल से जाती है। कुछ भले आदमी मना भी करने लगे। पर उनकी स्पीच समाप्त होने के पहले ही मोटर की स्टेयरिंग ज़रा हिली और मचलता-सा मोटर आगे निकल गया।

चढ़ते चढ़ते मोटर कभी उत्तुङ्ग शैल-शिखर पर जा चढ़ता और कभी उतरते उतरते अतल तल में घुसता हुआ-सा जान पड़ता। हम लोग दम साधे चुपचाप मोटर पर बैठे हुए थे। कुमार साहब की ड्राइविंग में न जाने कितनी बार मोटर पर बैठ चुका हूँ। किन्तु आज का उनका हस्तकौशल देखकर तो मैं दंग रह गया। पतली-सँकरी राह से जाते-जाते मोटर पल पल में खड्ड में गिरने और गगन-चुम्बी पेड़ों से टकरा जाने में बाल बाल बच जाता। हम लोगों के अरे! कहने के पहले ही वह आकस्मिक संकट-काल पलक झपकते समाप्त हो जाता। एक जगह एक अत्यन्त भयावह खड्ड से अपनी अभूतपूर्व चालक-क्षमता के द्वारा मोटर को बचाते देख कर मैंने कहा—

"आज हम लोगों की जान उस सर्वव्यापी ईश्वर के अतिरिक्त आपके भी हाथ में है।"

कुमार साहब ने मुस्कराकर कहा—"तो कुछ पलों के लिए उस अखिलेश के नाम के साथ साथ मेरा भी नाम जपते रहिए।"

[परेवादह के मार्ग की घाटी]

अ र्र र्र र्र! यह क्या? मोटर की गति एकाएक रुक गई। दोनों ओर के कटे पहाड़ों के बीच से इतनी पतली लँगोटी-सी राह थी कि उसमें से मोटर का निकलना असम्भवप्राय था। आगे के दोनों मडगार्ड पिचक गये और दोनों ओर की दूर तक की वार्निश उड़ गई। पीछे भी मोटर लौट नहीं सकता था, आगे का जाना तो असम्भव था ही। सिर से पैर तक मोटर को अपनी गोद में दबोच लेनेवाली उस संकीर्ण राह में मोटर से हम लोगों का उतरना भी कठिन था। फावड़ा न कुदाल, पहाड़ के पत्थर तोड़े जायँ तो क्यों कर?

ईश्वर की दया समझिए या हम लोगों का सौभाग्य! इस यात्रा में, जितने भी थे, सभी अट्ठाइस से पैंतीस वर्ष के भीतर की उम्र के ही थे। विशाल कलेवर और स्थूलकाय होते हुए भी मैनेजर साहब की फ़ुर्ती और साहस देखने की चीज़ थी। एक-दूसरे की पीठ और हाथ का सहारा ले लेकर सर्प की गति से हम लोग मोटर के बाहर हुए। मोटर में एक हथौड़ा और टायर ठीक करने-वाला लोहे का एक डंडा-मात्र था। उन्हें ही लेकर हम लोग पिल पड़े और डंडे-हथौड़े मार-मार कर पत्थर तोड़ने लगे।

क़रीब पैंतालिस मिनट के अथक परिश्रम के बाद मोटर के किसी तरह हिल सकने-मात्र के लिए राह तोड़ी जा सकी। हाथों में फफोले पड़ गये थे। सारी देह से पसीने की बूँदें टपकाते हुए हम लोगों ने राजकुमार साहब के ऊपर एक कातर दृष्टि डाली। वे मुस्कराकर बोले—

"सम्भव है, मोटर निकल जाय।" आगे की ओर दौड़ कर हम लोग वृक्षों के बग़ल में छिप गये। फिर भी

मन ही मन ईश्वर से अनेक प्रार्थनायें तो कर ही रहे थे। जब मोटर आगे निकल गया तब जी में जी आया। मोटर पर बैठते हुए मैंने धीरे से कहा—

"यह एक-मात्र विपत्ति थी या विपत्तियों का अभी प्रारम्भ ही है?"

(४)

द्रुतगति से मोटर आगे की ओर बढ़ रहा था और हम लोग बैठे आपस में चुहलबाजियाँ कर रहे थे। राह एक पतले-सँकरे सोते के बीच से होकर गई थी। फ़र्लाङ्ग, दो फ़र्लाङ्ग, मील, दो, मील! जगदीश! कब तक इस सोते का अन्त होगा? मोड़ और घुमाव का क्या पूछना! एक एक मोड़ में डेढ़-डेढ़, दो-दो सौ से कम न पड़ते होंगे। सोते में बालू की बड़ी मोटी तह थी। उस चाँदी की तरह चमकनेवाली अपनी प्रतिद्वन्द्विनी सैकत-राशि को पीछे की ओर फेंकता और अपने पीछे धूल का एक तूमार-सा बाँधता वह आठ सिलिण्डरवाला विशालकाय मोटर तीन या चार मील जाते जाते यों हाँफने लगा, जैसे किसी कसदार पहलवान से दो-चार मिनट ज़ोर करने के बाद ही अधकचरे लौंडे हाँफने लगते हैं।

अभी हम लोग बैठे बैठे दम भी न मार पाये थे कि एक घुमाव के पास पहुँच कर मोटर के चारों पहिये बालू की तह में धुस गये। भाग्य की अन्तिम परीक्षा की तरह एक बार मोटर ने प्रबल वेग से ज़ोर मारा, फ़ुटपाथ तक बालू में धुस गया। भगवान्, यह कैसी विपत्ति! मोटर से उतरकर हम लोगों ने उसकी चारों ओर प्रदक्षिणा की। निकालने की कोई भी स्कीम मन में जमती न थी। अन्त में पहियों के नीचे से बालू हटाकर उसमें शिला-खण्ड घुसेड़ने की बात सोची गई। हम बालू हटाने में प्रवृत्त हुए।

उस उत्तप्त बालुका से युद्ध छेड़ना—पहियों के नीचे से हटाना कुछ आसान न था। पत्थर तोड़ने से हाथों में फफोले तो थे ही। उस अग्नि-मय सैकत-राशि पर हाथ रखते ही, मानो फफोले जल-से उठे। कोसों तक पानी का पता नहीं। तालू से जीभ सट कर चट चट करने लगी।

शिकार भूल गया। साहसपूर्ण यात्रा की बात भूल गई। राइफ़ल भूल गया। केवल जीवन-रक्षा के लिए जगन्नियन्ता से प्रार्थना करने की बात-मात्र याद रह गई।

राम राम करके किसी तरह यह भी स्कीम पूरी की गई। यारों ने समझा, बला टली! किन्तु विपत्ति तो मानो एक बार की पछाड़ खाने से ताल ठोंक कर आई थी। मोटर ज़रा आगे की ओर बढ़ा ज़रूर, किन्तु फिर भी पूर्ववत् अचल-अटल-सा होकर रुक गया।

अभी हम लोग खड़े-खड़े एक-दूसरे का मुँह ही देख रहे थे कि जंगल में न जाने कहाँ से आग भी भड़क उठी! क्या मृत्यु से खेलना इसे ही कहते हैं? क्या इसी भाँति मौत अपने आलिंगन-पाश में प्राणियों को बाँध लेती है? जलता हुआ बालू! जलता हुआ जंगल! जलता हुआ आकाश!

मृत्यु से खेलना ही है तो घूट कर क्यों नहीं खेल लिया जाय? उस सूखे सोते के पास ही एक पुराना साखू का पेड़ गिरा हुआ था। उसकी डालें जगह जगह से टूट गई थीं। हम लोगों ने उसी में से दो डालें लेकर मोटर के पीछे से उसके नीचे उन्हें घुसेड़ दिया! कुमार साहब ड्राइव करने के लिए आगे बैठे। हम लोगों ने बैठ कर डालों के नीचे कन्धा लगाकर एक बार प्राणपण से ऊपर की ओर उठाया। आग बढ़ती हुई आ रही थी। जूते के भीतर भी बालू घुस घुस कर तलवों में जलन पैदा कर रही थी। कन्धे से डाल को तानते ही आँखों के आगे सरसों फूल गई! कन्धे का खून जमकर काला दाग़ पड़ गया। किन्तु विजय तो मिल ही गई। मोटर हिला और आगे की ओर चल पड़ा।

होश न था कि किसी ओर आँखें उठाता। मोटर उड़ा जा रहा था और हम लोग मुँह खोल खोलकर साँस लेते जाते थे।

रतवल पहुँच कर पवित्र जलवाहिनी गण्डकी में ग़ोते लगाने पर होश ठिकाने आये! बाबू इन्द्रासन राव जी के अतिथि-सत्कार से जब इस पिण्ड में पुनः प्राण-संचार हुआ तब मैंने हँस कर कहा—

"कुमार साहब, यह साहसपूर्ण यात्रा नहीं, दुस्साहस-पूर्ण यात्रा थी।"

कुमार साहब बोले—"पर प्राण तो बच ही गये*।"

* इस लेख के चित्रों के लिए लेखक श्रीयुत बाबू राघवशरण जी वकील, एम० ए०, बी० एल० का आभारी है।

स्वर्गीय पंडित शिवनाथ शर्मा

लेखक, श्रीयुत प्रेमनारायण टंडन

किसी युद्ध में विजय तो प्रायः सभी सैनिकों के संयुक्त प्रयत्न से होती है, परन्तु नाम सेना के लड़नेवाले सिपाहियों का न होकर, सेनापति का ही होता है। यही बात साहित्य-क्षेत्र में भी दिखाई देती है। यहाँ हमारा सम्बन्ध अन्य देशों के साहित्य से न होकर हिन्दी से है, अतः उसको लेकर ही हम कहेंगे कि हिन्दी-गद्य के विकास के प्रथम दो प्रधान युगों—मेरा आशय भारतेंदु और द्विवेदी युग से है—में यद्यपि अनेक साहित्य-सेवियों ने स्तुत्य, प्रशंसनीय और निस्वार्थ हिन्दी-सेवा की, तथापि हमें आज उनके विषय में अधिक ज्ञात नहीं है। इस अनभिज्ञता के, हमारी अरुचि, तत्सम्बन्धी साहित्य का अभाव, शिक्षा की दूषित और अनुचित प्रणाली जिसने हमारे अध्ययन-क्षेत्र को अत्यन्त संकुचित कर दिया है, आदि जो कुछ भी कारण हों, परन्तु यह बात लज्जा की अवश्य है।

स्वर्गीय पंडित शिवनाथ जी शर्मा भी ऐसे ही हिन्दी-साहित्य-सेवी थे जिनका नाम हिन्दी के हमारे नये विद्यार्थी तो शायद जानते ही न होंगे, पुराने भी भूल गये होंगे। शर्मा जी भारतेंदु-युग के अन्तिम वर्षों से लेकर द्विवेदी-युग के लगभग अन्त तक—सन् १९२० तक—हिन्दी-साहित्य की सेवा करते रहे। पंडित प्रतापनारायण मिश्र, पंडित श्रीधर पाठक, बाबू श्यामसुन्दरदास, बाबू गोपालरामजी गहमरी आदि हिन्दी के साहित्य-सेवियों से उनका काफ़ी परिचय था। मिश्र जी से तो उनकी खूब पटती थी, और वे जब (कानपुर से) लखनऊ आते थे तब शर्मा जी के यहाँ ही ठहरते थे और ये कभी कभी मिश्र जी के 'ब्राह्मण' में प्रकाशित होने के लिए लेख भी भेजा करते थे। सम्भव है, इस घनिष्ठता का कारण शर्मा जी तथा मिश्र जी दोनों का हास्य-रस का कुशल लेखक होना हो। बाबू श्यामसुन्दरदास जी के साथ तो शर्मा जी कई वर्ष तक अध्यापन-कार्य भी करते रहे थे। बात यह थी कि शर्मा जी लखनऊ के खत्री-पाठशाला के प्रधानाध्यापक थे। जब इस पाठशाला को हाई स्कूल होने का सौभाग्य प्राप्त हुआ तब बाबू श्यामसुन्दरदास जी इस स्कूल के हेडमास्टर नियुक्त हुए। शर्मा जी अपने २०० के लगभग विद्यार्थियों को साथ लेकर आये और इसी स्कूल में सहयोगी अध्यापक रहकर कई वर्ष तक काम करते रहे। अस्तु।

यों तो शर्मा जी अच्छे कवि थे और व्रजभाषा तथा खड़ी बोली दोनों में ही कविता किया करते थे, पर उनको ख्याति प्रधानतः अपने हास्य-रस-सम्बन्धी छोटे-छोटे मनोरंजक लेखों के कारण ही मिली। संस्कृत और अँगरेज़ी की सुन्दर कृतियों का अध्ययन करने के साथ-साथ हिन्दी-सेवा में संलग्न रहने में शर्मा जी को विशेष आनन्द आता था। अपने विद्यार्थी-जीवन में ही उन्होंने 'रसिकपंच' नामक एक पत्र निकाला था यद्यपि यह पत्र शीघ्र ही बन्द हो गया, तथापि निरुत्साहित न होकर उन्होंने 'वसुन्धरा' नामक पत्रिका निकाली। कुछ समय के पश्चात् इसके भी बन्द हो जाने पर सन् १९०५ में 'आनन्द' नामक पत्र का प्रकाशन आरम्भ किया। यह पत्र किसी न किसी रूप में अब तक शर्मा जी के सुयोग्य पुत्र के सम्पादकत्व में निकल रहा है।

इन पत्र-पत्रिकाओं में शर्मा जी हास्यरस तथा अन्य सामयिक, सामाजिक, धार्मिक और राजनैतिक विषयों पर लेख लिखा करते थे। हास्यरस में लिखे हुए उनके लेखों की शैली मनोरंजक, भाषा सरल और प्रचलित हुआ करती थी; उनमें कहावतों और मुहावरों का भी उचित और सुन्दर प्रयोग रहता था। शर्मा जी के सामाजिक विषयों से सम्बन्ध रखनेवाले लेखों की शैली अपेक्षाकृत गम्भीर होती थी, परन्तु भाषा सर्वत्र सरल रहती थी। विवाद-ग्रस्त तथा राजनैतिक विषयों पर लिखते समय शर्मा जी की शैली कुछ आलोचनात्मक और तीव्र हो जाती थी। इन विभिन्न

विषयों पर लिखे हुए उनके लेखों से उनकी योग्यता और अध्ययन का परिचय मिलता है। स्वयं उनके समकालीन लेखक उनकी विद्वत्ता का सम्मान करते थे। शर्मा जी की मृत्यु के पश्चात् 'प्रताप' के तत्कालीन सम्पादक श्री गणेशशंकर विद्यार्थी ने उनके सम्बन्ध में लिखा था—'आनन्द' के संचालक पंडित शिवनाथ शर्मा की विद्वत्ता और प्रवीणता के हम सदा क़ायल रहे। उनके हास्य-रस के लेखों का कितना सम्मान था, यह इसी बात से प्रकट है कि स्वर्गीय पंडित बद्रीनाथ भट्ट जी ने उनको हास्य-रस के आचार्य का पद प्रदान किया था।

अपने प्रकाशित और संचालित पत्रों के अतिरिक्त शर्मा जी कलकत्ते के 'सारसुधानिधि', 'उचित वक्ता' और 'भारतमित्र' आदि में भी लिखा करते थे। इन पत्रों में उन्होंने प्रायः हास्य-रस के ही लेख लिखे थे। सन् १९०१ में 'बूर युद्ध' तथा 'गोपाल-पत्रिका' का सम्पादन भी किया था। यों शर्मा जी कवि, लेखक, आलोचक, सभी बनकर हिन्दी-साहित्य की सेवा करते रहे। कविता में अपना उपनाम 'कमलासन' रखते थे। उनकी कविता सुन्दर है, पर उसमें प्रयास अधिक है। उनकी कविता की दो-चार पंक्तियाँ देख लीजिए—

मटक नचावत नैन हरि, हँस-हँस परसत गात।
परकीया की बात यह, परकी या में बात॥

× × ×

छबि शृंगार ललाट में, दमकत बेंदी ठाट।
नौकरशाही मैन पर, जनु यह जंगी लाट॥

× × ×

नाक में आया है दम दिन-रात झगड़े झेलते।
जिन्दगी आधी कटी है ऐसे पापड़ बेलते॥

× × ×

उसने जो मुझसे कहीं वह तो मेरे पेट में हैं।
खुशी की बात है अब तो वह जी पेट से हैं॥

उपर्युक्त पंक्तियों से हमें शर्मा जी की हास्य-प्रियता का कुछ परिचय मिल जाता है। ऐसे ही मनोरंजक और हास्य-रस के अपने १०० लेखों का संग्रह उन्होंने 'मिस्टर व्यास की कथा' के नाम से प्रकाशित कराया था। उनकी कुछ अन्य कृतियाँ भी हास्य-रस की सुन्दर रचनायें हैं। परन्तु आश्चर्य का विषय है कि हिन्दी-साहित्य में हास्य-रस की सुन्दर रचनाओं का अभाव होते हुए भी शर्मा जी की कृतियों का अधिक आदर न हुआ। हाँ, गुजराती-भाषा में उनके कुछ लेखों का अनुवाद हो चुका है।

शर्मा जी को शेक्सपियर के नाटक भी बहुत पसन्द थे और उन्होंने दो-चार का अनुवाद भी किया था। 'मछ अडू अबाउट नथिंग' नामक नाटक का अनुवाद तो उनके 'आनन्द' में प्रकाशित भी हुआ था। साहित्यिक दृष्टि से उनका चाहे विशेष महत्त्व न हो, पर इतना मानना ही होगा कि लगभग ३५ वर्ष पहले इस ओर प्रयत्न करना उनका हिन्दी के प्रति प्रेम प्रदर्शित करता है।

शर्मा जी हिन्दी-साहित्य-सभा, लखनऊ, के अधिवेशनों में भी बड़े उत्साह से भाग लिया करते थे। कुछ वर्ष तक तो वे उसके उपसभापति भी रहे थे। इससे उनका साहित्य-सेवियों में सम्मान होना स्पष्ट है।

ऊपर के परिचय से प्रकट हो जाता है कि बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भकालीन लेखकों में, हिन्दी की उन्नति में योग देनेवालों में, शर्मा जी का नाम भी सम्मान के साथ लिया जाना चाहिए। हमें हर्ष है कि उनका 'आनन्द' आज भी जीवित है। इधर ज्ञात हुआ है कि उनके सुयोग्य पुत्र पंडित योगेन्द्रनाथ जी शर्मा अपने पिता जी का विस्तृत आलोचनात्मक जीवन-चरित हिन्दी को भेंट करने का प्रयत्न कर रहे हैं। अतः शर्मा जी की साहित्य-सेवा के विषय में पूर्ण ज्ञान प्राप्त करने के लिए हमें कुछ समय तक प्रतीक्षा करनी चाहिए।
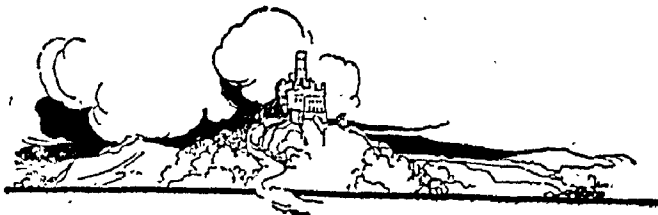
क होनी चाहिए। और यह हमारे प्रान्त की सरकार के लिए लज्जा की बात है।

यह तो हुई हरिजनों की शिक्षा के सम्बन्ध के खर्च की बात। अब यह देखें कि उनके कहाँ कितने स्कूल हैं। पहले हम संयुक्त-प्रान्त को ही लेते हैं।

यहाँ १९३६-३७ में ६६७ प्रायमिक हरिजन पाठशालायें थीं, पर १९३७-३८ में उनकी संख्या ६५५ ही रह गई, याने एक साल में बढ़ती के बजाय १२ स्कूलों की कमी हुई।

१९३६-३७ में इन प्रायमिक हरिजन-पाठशालाओं में कुल २७,७९२ बालकों ने शिक्षा पाई, पर उनमें ८,७०२ बालक हरिजन नहीं थे। १९३७-३८ में ऐसे स्कूलों में कुल २८,२५१ बालकों ने शिक्षा पाई, जिनमें ९,८०६ बालक हरिजन नहीं थे। इससे यह मालूम पड़ता है कि हरिजन-पाठशालाओं में पढ़नेवाले कुल बालकों में ३४ प्रतिशत अ-हरिजन बालक भी थे।

डी० पी० आई० महोदय का यह कहना शायद ठीक नहीं है कि "जन-साधारण की इच्छा अपने बालकों को ऐसी पाठशालाओं में पढ़ाने की है कि जिसे वे 'अपनी' कह सकें और अपनी 'जाति' के शिक्षित बालकों की संख्या से अन्य जाति के शिक्षित बालकों की संख्या से तुलना कर सकें।" इसके अर्थ यह हुए कि सवर्ण यह नहीं चाहते कि उनके बालक अछूतों के साथ पढ़ें। परन्तु उपर्युक्त आँकड़ों से तो दूसरी ही बात प्रकट होती है।

अन्य प्रान्तों के मुक़ाबिले में संयुक्त-प्रान्त में हरिजन-विद्यार्थियों को छात्र-वृत्तियाँ भी बहुत कम दी गई हैं। प्रान्त भर में प्रायमिक हरिजन-पाठशालाओं में पढ़नेवाले कुल ८,००० बालकों को छात्र-वृत्ति दी गई और वह भी इतनी कम कि छात्र-वृत्ति पानेवाले विद्यार्थियों में प्रति-विद्यार्थी को शायद ८ आना या १२ आना प्रतिमास पड़ता है। उच्च कक्षाओं में पढ़नेवाले विद्यार्थियों को कुल ४८० छात्र-वृत्तियाँ दी गईं। इस प्रकार एक ज़िले में १० छात्र-वृत्तियों का औसत पड़ता है। संयुक्त-प्रान्तीय सरकार ने छात्र-वृत्तियों पर १९३७-३८ में कुल ९१,५००) व्यय किया था, पर मदरास में जहाँ की हरिजन-आबादी संयुक्त-प्रान्त से २।३ कम है, १९३७-३८ में १,०९,८००) छात्र-वृत्तियों पर खर्च किया गया था।

यह भी एक विचारणीय बात है कि हरिजनों में शिक्षित लड़कियों की संख्या बहुत ही कम है। संयुक्त-प्रान्तीय पाठशालाओं में हरिजन-बालिकाओं की कुल संख्या ८,००० है और हरिजन-बालकों की संख्या १,६६,०००। अतएव शिक्षित हरिजन बालक-बालिकाओं का अनुपात २१ : १ है। उधर वहाँ सवर्ण बालक-बालिकाओं का अनुपात ५ : १ है। इस सम्बन्ध में मदरास में क्या हो रहा है, यह देखिए—

मदरास-हरिजन-सेवा-सदन में रहनेवाली १० अस्पृश्य बालिकाओं को १५०) प्रतिमास छात्र-वृत्ति दी जाती है, जो उन्हें तब तक मिलेगी जब तक कि वे वहाँ रहें और अध्ययन करें। इसके अतिरिक्त वहाँ हरिजन लड़कियों की शिक्षा के लिए बहुत-से सरकारी एवं गैर-सरकारी स्कूल और छात्रालय हैं। संयुक्त-प्रान्त में ऐसे छात्रालय इने-गिने हैं।

संयुक्त-प्रान्त में अनिवार्य प्रायमिक शिक्षा का परीक्षण किया जा रहा है। उसका प्रसार हो जाने से हरिजनों में शिक्षा का प्रचार हो जाने की सम्भावना थी। परन्तु शिक्षा-विभाग के डायरेक्टर महोदय लिखते हैं—

"इन्सपेक्टरों की रिपोर्टों से यह बात जानकर हमें दुःख हुआ है कि स्कूलों की कमिटियों और अध्यक्षों ने हरिजन-बालकों की हाज़िरी बढ़ाने पर ज़ोर नहीं दिया।"

ऐसे भी उदाहरण हैं, जहाँ हरिजन-बालकों के लिए प्रायमिक शिक्षा अनिवार्य नहीं की गई। यही नहीं, हरिजनों की शिक्षा के लिए बजट में जो रक़म निश्चित की गई थी, पिछले साल उसका अधिकांश दूसरे कामों में खर्च कर दिया गया। शिक्षा-विभाग की रिपोर्ट से तो यह बात भी प्रकट होती है कि इस साल हरिजनों के ऊपर तथा दूसरे कामों के ऊपर खर्च होते हुए भी कई हज़ार रुपयों की बचत हुई। यह बचत हुई ही क्यों जब कि २० लाख रुपया भी हरिजनों में शिक्षा-प्रचार के लिए काफ़ी नहीं था।

अन्त में हमें यही कहना है कि मदरास सरकार की तरह संयुक्तप्रान्त की सरकार को भी इस ओर ध्यान देना चाहिए और कम-से-कम उतना रुपया तो हरिजनोद्धार के लिए अवश्य खर्च कर देना चाहिए जितना कि वह उसके लिए बजट में पास करे।

रानी

लेखिका, श्रीमती 'क ख ग'

गाँव के लोग प्रायः शीघ्र सो जाया करते हैं। दस-ग्यारह के बाद मरभुखे खालचढ़े कुत्तों के अतिरिक्त शायद ही कोई जागता मिले।

शीत के दिन थे, कड़ाके की ठंड पड़ रही थी। सरसराती चुभती हुई ठंडी हवा हड्डियाँ बेध जाती। संध्या होते होते गाँव केवल धुंए के बड़े से ढेर में परिणत हो जाता। सम्पन्न लोग ढेरों कपड़े लाद सोते; प्रातःकाल अग्निशिखा पर दोनों हाथ फैला ठंड को जी भर कोसते और सारी रात झपकी न लगने की दुहाई दे डालते।

ऐसे ही समय में सवेरे लोगों ने देखा कि फटे-पुराने कपड़ों में लिपटी हुई ढाई-तीन साल की एक बड़ी सुन्दर बच्ची सड़क पर पड़ी हुई है। शीत से उसका शरीर ठिठुर गया था। धीमी धीमी साँस के अतिरिक्त जीवन का और कोई लक्षण न दीखता था। थोड़े ही समय में वहाँ एक भीड़ इकट्ठी हो गई। किसी ने सेंका, किसी ने गर्म दूध पिलाया। कुछ समय तक परिश्रम करने पर उसने अपनी सुन्दर आँखें खोल दीं और जनसमूह को विस्मय से देखकर वह मुस्करा पड़ी। बच्ची अभी ठीक से बोल भी न सकती थी; कठिनाई से उसने कहा—"लानी"। बस, सब उसे 'रानी' कहने लगे। सात-आठ दिन वह खूब रोई। थोड़ा-सा खा लेती, सो भी बहुत मनाने पर। धीरे धीरे वह गाँव के बच्चों से खूब हिलमिल गई। उसके मा-बाप का पता लगाने का बहुत यत्न किया गया, किन्तु कोई उसे अपनाने न आया।

गाँव में कौन ऐसा उदार था जो उसका सारा भार अपने सिर लेता? मुखिया ने आज्ञा दी कि गाँव के सब आदमी उसे बारी बारी से खाना दें, और रानी गाँव की सम्पत्ति हो गई। सबका कर्त्तव्य उसे खाना देना था। दिन भर वह खेलने में व्यस्त रहती; कभी इसके, कभी उसके यहाँ खा लेती और रात में जहाँ पाती सो जाती।

रानी के जीवन के इसी भाँति छः महीने बीत गये। अब वह क़रीब चार वर्ष की हो गई।

गाँव के बच्चों में दीनू का रानी पर बड़ा स्नेह था। जब उसकी मा उसे कोई अच्छी चीज खाने को देती, वह उसके लिए अवश्य ही बचा कर लाता। उसकी विधवा मा कूट-पीस कर निर्वाह करती थी। एक दिन शाम को वह काम से घर लौट रही थी। उसके घर के समीप ही लड़के-लड़कियाँ खेल रही थीं।

खेल में लड़ाई हो गई, किसी बच्चे ने रानी को मार दिया। उसकी नाक से रक्त बहने लगा। वह मारे भय के रोती हुई दौड़ कर आती हुई दीनू की मा बुधिया के अंचल में छिप गई। बुधिया के पास धन न था, किन्तु हृदय था। वह रानी को अपने घर ले गई। तब से वह उसी के घर में रहने लगी।

गाँव में जब कोई कहता, अरी दीनू की मा। अपना तो पेट भरता नहीं, इस नये बोझ का क्या होगा? तब वह कहती, भैया, दीनू के साथ भगवान् ने यदि एक लड़की भी दी होती तो उसे फेंक थोड़े ही देती। रानी दीनू को दादा कहती थी। उसका दादा समय मिलने पर उसे पढ़ाता, धूम मचाती तो धमकाता और दुलारता भी था।

एक-एक कर पूरे पन्द्रह वर्ष बीत गये। रानी अब पहले की रानी न थी। वह युवती थी। उसका एक एक अंग साँचे में ढला था। अब घर का काम-काज बुधिया के किये न होता था। रानी ही सारा काम देखती भालती थी। दीनू मिस्त्री का काम करता था। उस-सा सुन्दर काम आस-पास और दूसरा कोई न करता था। उसकी कमाई से सबका निर्वाह बड़ी सरलता से हो जाता।

क्वार का महीना प्रतिवर्ष काल की तरह आता है। इन्हीं दिनों गाँव के लोग मौसमी बुख़ार से पिंड छुड़ाने के प्रयास में संसार से पिंड छुड़ा लेते हैं। अब की बुधिया की बारी थी। रानी और दीनू ने शक्ति भर सेवा की, किन्तु बुढ़िया बच न सकी। शाम को दीनू

शहर से मा के लिए दवा और आवश्यक सामान लेकर लौटा। देखा, द्वार पर बड़े-बूढ़े इकट्ठे हैं। दीनू का मन आशंका से काँप उठा। उसकी मा के प्राण-पखेरू उड़ चुके थे।

संसार की नीति से अबोध रानी दौड़ कर दीनू से लिपट गई। उसने चिल्लाकर कहा—अब मैं कहाँ जाऊँगी दादा। यह कह कर वह रो पड़ी।

× × ×

समाज को यह कब सहन है कि एक अविवाहित युवक के साथ अविवाहित युवती रह सके। समाज की दृष्टि में इस स्थिति में शुद्ध प्रेम हो ही नहीं सकता। वही हुआ। बुधिया का क्रियाकर्म हो जाने पर समाज के ठेकेदारों का हृदय समाज-रक्षा के लिए उतावला हो गया। दीनू योग्य और कमाऊ था। उसकी चिन्ता सबको थी। रानी के विरुद्ध मंत्रणा होने लगी। पंचों ने उससे स्पष्ट शब्दों में कह दिया कि मा के मरने पर पराई सयानी लड़की का घर में रहना शोभा नहीं देता। पाल-पोस कर योग्य कर दिया। अब उसे अलग कर देना ठीक है। अब वह अपना निर्वाह कर सकती है। गाँव में एक से एक लड़कियाँ हैं। फिर भी यदि न मानोगे तो कोई तुम्हारा पानी तक न पियेगा।

दीनू इसके लिए तैयार न था कि रानी निःसहाय हो भटकती फिरे। उसने इन धमकियों पर ध्यान न दिया।

रानी को जब मालूम हुआ, उसने रोकर कहा—दादा, मुझे अब जाने दो। मेरे पीछे क्यों बदनामी उठाते हो?

दीनू ने हँसकर कहा—अहा! बड़ी चतुर है! रोटी-पानी का समय हो गया है। जा, भूखों मारेगी क्या? बिना मेरे कहे कहीं न जाना। नहीं तो घर-द्वार में आग लगा कर साधु हो जाऊँगा। यह कहकर वह काम पर चला गया।

कुछ असर होता न देख कर पंचों ने अपना अग्निबाण छोड़ा। रानी और दीनू के सम्बन्ध में मनमानी बातें कही जाने लगीं।

स्त्रियों को चबाव के लिए एक नई सामग्री मिल गई। हाथ मटका मटका कर वे रानी के रंग-ढंग की आलोचना करते घंटों बिता देतीं। रानी का घर से बाहर पैर रखना कठिन हो गया। एक दिन सिर से पानी की कलसी पटक कर उदासी हो दीनू के सामने जाकर वह खड़ी हो गई।

दीनू काम कर रहा था। उसने सिर उठा कर उसकी रोषयुक्त मूर्ति को देखकर और चकित होकर पूछा—क्या हो गया, रानी?

"सब मेरा अपमान करते हैं। मुझ से सहन न होगा। अब मुझे जाने दो दादा।"

"अच्छा तो कहाँ जाने का विचार है तेरा?

"कहाँ जाऊँगी? किसी ऐसे कोने में चली जाऊँगी जिससे तुम्हें मेरे कारण लज्जित न होना पड़े।"

दीनू कुछ देर तक सिर झुकाये बैठा रहा, फिर जैसे किसी निश्चय पर पहुँच गया हो, वह झटके से सिर उठा-कर बोला—देख रानी, तेरा आना-जाना न हो सकेगा। तुझसे अलग होकर मैं सुखी नहीं होने का।

दीनू ने रानी से विवाह कर लिया। अगुओं को दीनू से कम से कम ऐसी आशा न थी।

वे उस पर शक्ति भर अत्याचार करने लगे। लोगों ने उसके यहाँ आना-जाना छोड़ दिया। कोई उसे काम भी न देता। रानी को देखकर स्त्रियाँ मुँह बनातीं, ताने मारतीं। उसे अब गाँव के भीतर के कुएँ से पानी भरने की आज्ञा न थी। गर्मी की तपी दुपहरी में गाँव के बाहर के कुएँ से पानी लाने जाना पड़ता।

एक-दो खेतों से आखिर कब तक निर्वाह होता? रानी की गोद में तीन-चार महीने की एक बच्ची भी थी। दीनू निश्चय न कर पाता कि क्या करे, क्या न करे। कोई उपाय न देखकर वह कलकत्ता चला गया। हर महीने कुछ रुपये रानी के लिए भेज दिया करता। क़रीब दो महीने से दीनू ने न खर्च ही भेजा और न उसकी कुछ ख़बर ही मिली। इन दो-तीन महीनों में रानी शोक, चिन्ता के मारे सूख कर कंकाल-मात्र रह गई। आँखों के नीचे स्याही पड़ गई।

रहने का घर महाजन के हाथ चला गया। उसने सुना कि पुरोहित जी जगन्नाथ के दर्शनों को जा रहे हैं। उनसे बहुत विनती की कि उसे भी अपने साथ कलकत्ता लिये जायँ। वह वहाँ अपने पति को खोज

लेगी। पुरोहित महाराज ने देखा कि बुरे फँसे, पैसा न कौड़ी कलकत्ते जायगी। नाक सिकोड़कर बोले--भली कही बिटिया! विदेश जाकर धरम खोयेगी क्या? फिर ऐसे बड़े शहरों में हजारों आदमी रोज मोटर-गाड़ी से दबके मरते हैं। भला वहाँ किसी का पता लग सकता है ?

पन्द्रह दिनों से कला को ज्वर आ रहा है। ऐसी स्थिति में वह मजदूरी करने कैसे जाती? रात के बारह बजे होंगे। सारी बस्ती निद्रादेवी की गोद में आनन्द से विश्राम कर रही थी।

रानी की झोपड़ी में एक दिया चारों ओर अपना क्षीण प्रकाश फैला रहा था। कभी कभी वह भी ठंढी हवा के झोंके से थरथरा जाता।

रानी कला को अपनी फटी सारी में लपेटे गोद में लिये एकटक उसके सूखे चेहेरे पर दृष्टि जमाये बैठी थी। बच्ची बीच बीच में अपनी बुझती आँखों से मा की ओर देख दूध की प्रत्याशा से मुँह खोल देती। रानी उसके खुले मुँह में थोड़ा-सा पानी छोड़ देती। दूध कहाँ पाती? उसके स्तनों में रक्त की बूँद भी तो न थी।

सहसा किसी ने द्वार पर धीरे से धक्का दिया। वह भय से काँप उठी। इतनी रात गये कौन उसका द्वार थपथपा रहा है। वह हिली-डुली नहीं। किसी ने फिर जोर से दो-तीन बार धक्का दिया। वह फिर भी चुप बैठी रही। किसी ने पुकारा--रानी! रानी! अरी ओ रानी!

अरे! यह तो उसके पति की आवाज है कला को लिटा कर वह जल्दी से उठी। उसका सारा शरीर बेत की नाईं काँप रहा था। द्वार खोल कर देखा, सामने दीनू खड़ा है--वही दीनू जिसकी शारीरिक गठन देख कर युवक द्वेष करते थे। वह अस्थियों का ढांचा था--एक एक हड्डी गिनी जा सकती थी। जैसे बरसों का रोगी हो। पीले-सूखे मुख के बीच केवल दो नेत्र दरिद्रता का संदेश लिये हुए चमक रहे थे। निमेषमात्र के लिए वह अवाक् खड़ी रही, फिर चीख़ कर उसके पैरों से लिपट गई। मुंह से बिना एक शब्द बोले दीनू उसे सहारा देकर भीतर ले आया। फिर कला को गोद में उठा कर क्षण भर कभी उसकी ओर कभी रानी की ओर ताकता रहा। शायद अन्तिम बेर देख रहा था कि दोनों में कहाँ तक समानता है।

थोड़ी देर में उसे लिटा कर घूम कर दीनू ने रानी से भर्राई हुई आवाज में कहा--यह अब न बचेगी रानी! वह झोपड़ी के बाहर निकल गया।

रानी लपक कर उसका हाथ थाम कर बोली--अब कहाँ जाते हो इतनी रात में। हाथ-पैर तो धो लो।

दीनू ने उत्तर न दिया और झटके से हाथ छुड़ा अन्धकार में न जाने कहाँ विलीन हो गया। रानी चिल्लाती हुई उसके पीछे दौड़ी।

शीत-काल के दिन थे। प्रातःकाल लोगों ने देखा, रानी सड़क पर बेसुध पड़ी है। आज से अठारह वर्ष पूर्व भी वह इसी स्थान पर पड़ी मिली थी, किन्तु तब वह दुधमुँही बच्ची थी और अब संसार से ठुकराई हुई दुखिया युवती।

कुछ समय के बाद वह बड़बड़ाने लगी--अरे! तो जा क्यों रहे हो? इतने दिनों के बाद आये, फिर चले। मत जाओ कहती हूँ। जा ही रहे हो? अच्छा जाओ। मैं भी आती हूँ। उसने आँखें खोल दीं और वे खुली ही रह गईं। न जाने किसे वे देख रही थीं। मुख पर हर्ष, संतोष और आश्चर्य का भाव खेल रहा था। जन्म की दुखिया जीवन में अन्तिम और प्रथम बार शान्ति का अनुभव कर रही थी। दो महीने अस्वस्थ रहने के पश्चात् दीनू की भी मृत्यु हो गई।

उसी समय चिथड़ों के खोते से निकल द्वार से समीप झाँक कला मा की बाट देख रही थी। ईश्वर का अभिशाप! दूसरी रानी जन्म ले चुकी है।

निर्जन के तरु से

लेखक, श्रीयुत चन्द्रप्रकाश वर्मा

निर्जन पथ के तरु बतला क्यों खड़ा हुआ चुपचाप ?
मन में समा गया है तेरे यह कैसा सन्ताप ?
पत्ते झड़ जाते हैं तेरे सहसा अपने आप,
लग जाता है तुझे कौन से दुर्वासा का शाप !
तेरे नीचे आ-आकर कितनों ने किये बसेरे !
तेरे नीचे रात बिता कर जो चल दिये सवेरे;
उन पथिकों से रहे पूछते हिल-हिल पल्लव तेरे—
पल आये, पल चले, हाय ये कैसे पाहुन मेरे !

तेरे नीचे कभी किसी का उतरा होगा डोला,
तेरे नीचे कभी किसी ने शशिमुख होगा खोला;
तेरे नीचे कभी दीन भिक्षुक होगा यों बोला—
विधना ! कब तक लिये फिरूँ यह प्राणहीन-सा चोला।'
कभी चाँदनी की चादर तू ओढ़ ओढ़ मुसकाता,
कभी अमा के अन्धकार में किस भय से छिप जाता ?
कभी डालियाँ कम्पित कर इंगित-से किसे बुलाता ?
किसके पथ पर बार बार तू अपने सुमन गिराता ?

कभी कभी डालों में तेरी चाँद अटक जाता है,
जान-बूझ आता समीप या राह भटक जाता है ?
पर कमन्द किरणों का नीचे शीघ्र लटक जाता है,
झटक चन्द्र चढ़ जाता तेरा हाय झटक जाता है।
तू वसन्त में खिल जाता है सज जाता जीवन में,
सुरभि-स्नान कर आता है किस मधु-मज्जित मधुवन में;
नूतन किसलय-वसन पहन अति मधुर भाव ले मन में,
किसकी बाट जोहते हो नित निज छाया-आँगन में ?

हे योगीश्वर ! मौन तपस्वी ! अनुष्ठान यह कैसा !
केवल वायु-पान करता है उफ़ विधान यह कैसा !
अपने शीश लपेट लिया है आसमान यह कैसा !
निज तप-बल से स्वर्ग छू लिया यश महान यह कैसा !
सभी ओर तेरे रहस्य का कुहरा-सा छाया है,
तेरे इतिहासों के पन्ने कौन उलट पाया है !
जादूगर ! तेरा मरमर स्वर मन को अति भाया है,
यह सम्मोहन मंत्र बता, कब से पढ़ता आया है ?
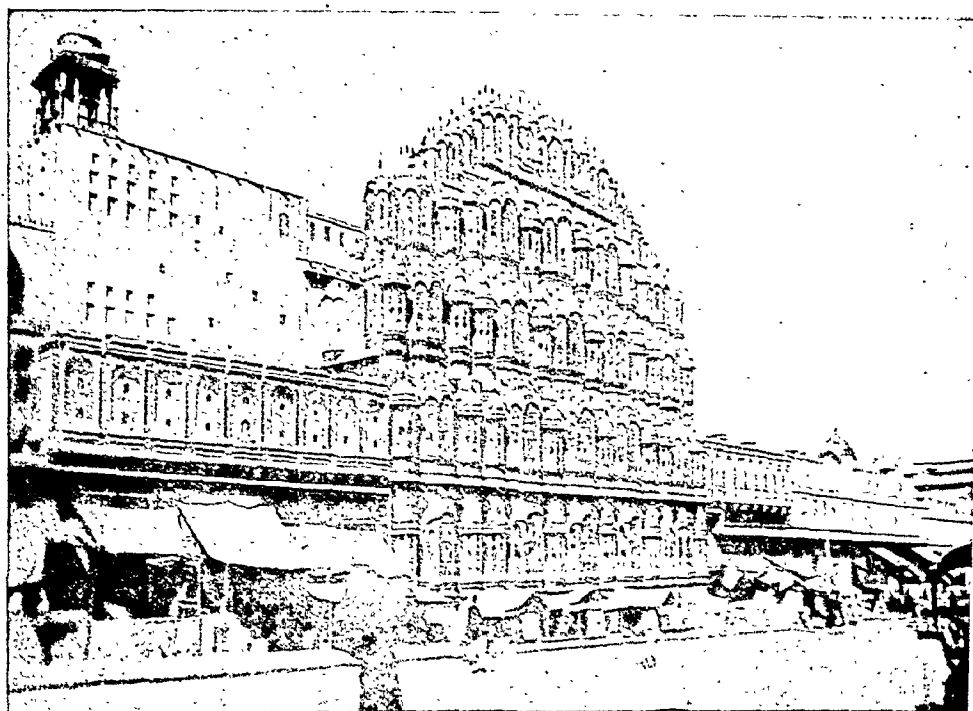
[हवामहल, जयपुर]

कला और साहित्य के क्षेत्र में जयपुर

लेखक, पण्डित हनुमान शर्मा

(१)

पर्युक्त विषय तीन भागों में व्यक्त किया जाता है । पहला भाग आमेर का स्थितिकाल, दूसरा जयपुर राजधानी का प्रादुर्भाव और तीसरा वर्तमान समय है ।

विश्वकोश आदि से विदित होता है कि विक्रम संवत् ६६०–६७० में आमेर की आबादी बहुत ज्यादा थी । वहाँ अनार के दानों की तरह आदमी भरे हुए थे; व्यापार-व्यवसाय किसी भी अंश में कम नहीं थे और कला-कौशल के काम तो बेहद बढ़े हुए थे।

वहाँ काठ, मिट्टी, पत्थर और धातुओं की विभिन्न वस्तुएँ बनती और भारत के प्रत्येक प्रान्त में जाती थीं। आमेर की बनी वस्तुओं का बाहर बहुत आदर था । हर देश के आदमी उनके लिए उत्कंठित रहते थे । विशेष कर वस्त्र, शस्त्र, आभूषण और बर्तन ज्यादा विख्यात थे। इन कामों के लिए आमेर में कई कारखाने थे और उनमें सैकड़ों श्रमजीवी काम करते थे।

उदाहरण के लिए व्यवहार्य वस्तुओं में से दो का यहाँ उल्लेख किया जाता है। उनमें एक है 'मानसिंह जी की लाठी'। वह साफ़-सुथरे और मजबूत काठ की है। सुदक्ष कारीगर ने उसपर किसी अज्ञात मसाले से प्राकृतिक सौंदर्य के चित्ताकर्षक और आश्चर्यजनक दृश्य अंकित किये हैं। उसके विषय में विश्वकोशकार ने लिखा है कि 'विश्व-सौंदर्य के आभाषित करने में परमात्मा ने जो कुछ कौशल किया है और मयूरपंख के रंगनिर्माण में जो कुछ विचित्रता दिखलाई है वही कला मान की लाठी में की गई है ।'

दूसरी है उन्हीं की एक 'तलवार' । इसे
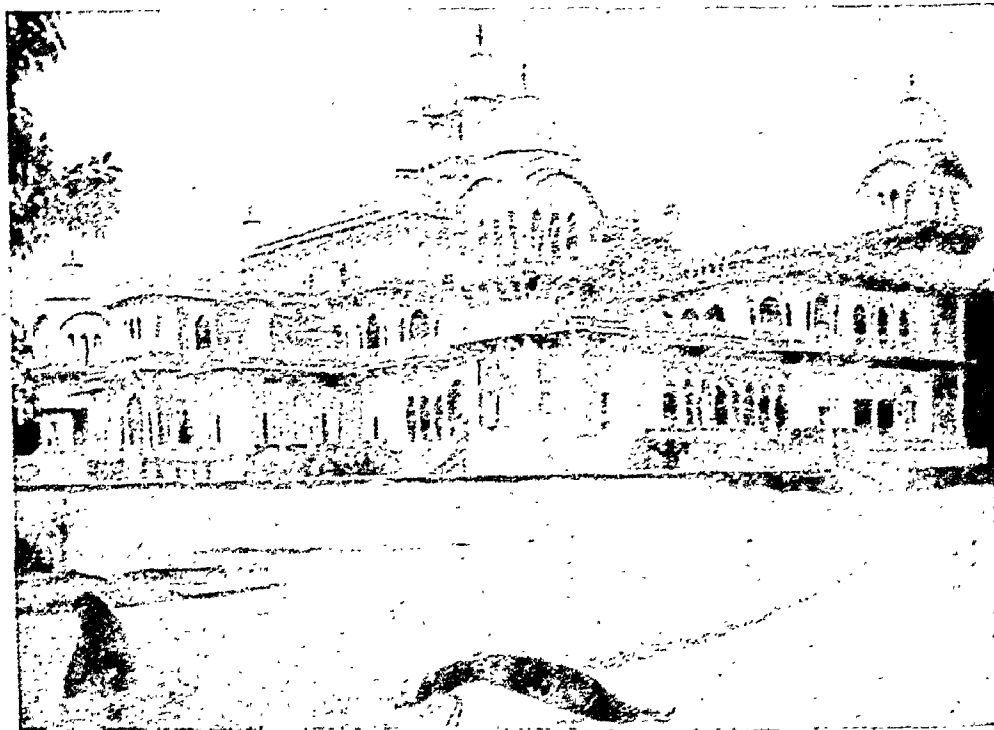
[अजायबघर जयपुर]

महाकाली का खड्ग कहा जाय तो कोई अत्युक्ति न होगी। वह वज़न में इतना भारी है कि आजकल के मामूली आदमी तो उसे उठा भी नहीं सकते। ऐसे भारी खड्ग को महाराज मानसिंह जी अपने अन्य चार शस्त्रों के साथ धारण करते और शत्रु-संहार में उसका महत्त्व दिखलाते थे। उक्त दोनों वस्तुएँ क़रीब साढ़े तीन सौ वर्ष की हैं, परन्तु उनके रूप-रंग-बनावट और उपयोग में कोई न्यूनता नहीं आई है—'यथापूर्व प्रकाशमान् है।' विदेशी विद्वान् लाठी की विचित्र रचना के लिए बारम्बार विचार करते हैं कि 'यह बनाई कैसे गई थी।'

आमेर में लगभग तेरह सौ वर्ष पहले के कई एक देव-मन्दिर हैं। उनका निर्माण केवल पाषाणमय है। अतः पत्थरों की गढ़ाई, जड़ाई, कुराई, खुदाई, सुन्दरता और मज़बूती बहुत ही आकर्षक है। उनके देखने से आमेर की 'भवन निर्माणकला' को सर्वोत्कृष्ट कहने में कोई संकोच नहीं होता। उनके सिवा मिर्ज़ा राजा जयसिंह जी का जयगढ़ और जयनिवास तथा मानसिंह जी के कई एक क़िले, परकोटे और महल इतने अधिक सुन्दर हैं कि बाहर के विदेशी यात्री आमेर के महलों को बड़े अनुराग के साथ देखते हैं और उनकी विज्ञान-पूर्ण विलक्षण बनावट से अनेक बातों का अनुभव प्राप्त करते हैं। महलों में शीश-महल, मन्दिरों में जगत् शिरोमणि और मकानों में महारानियों के निवासस्थान शिल्पकला के विचित्र नमूने हैं।

वर्तमान आमेर के पूर्वी प्रान्त में पुरानी आमेर के टूटे खँडहर पड़े हुए हैं। उनमें अधिकांश खण्ड ५-५ फ़ुट की मोटाई के हैं और ३-३ मंज़िल की ऊँचाई से नीचे गिरे हैं, परन्तु उनका चूना इतना अधिक मज़बूत है कि सौ-सौ मन वज़न के 'भवनखण्ड' चालीस हाथ ऊपर से गिर कर भी नहीं टूटे हैं। उन टूटे मकानों के ढहे हुए ढेर देखने से भी पुरानी आमेर का गौरव आँखों के आगे आ जाता है और तत्कालीन शिल्पकला की बहुत-सी बातें देखने में आती हैं। उनके सिवा नीलखाबाग़, टोरड़ी का बँधा और रणथंभौर भी स्थापत्य-कला के सजीव आदर्श हैं। किसी समय
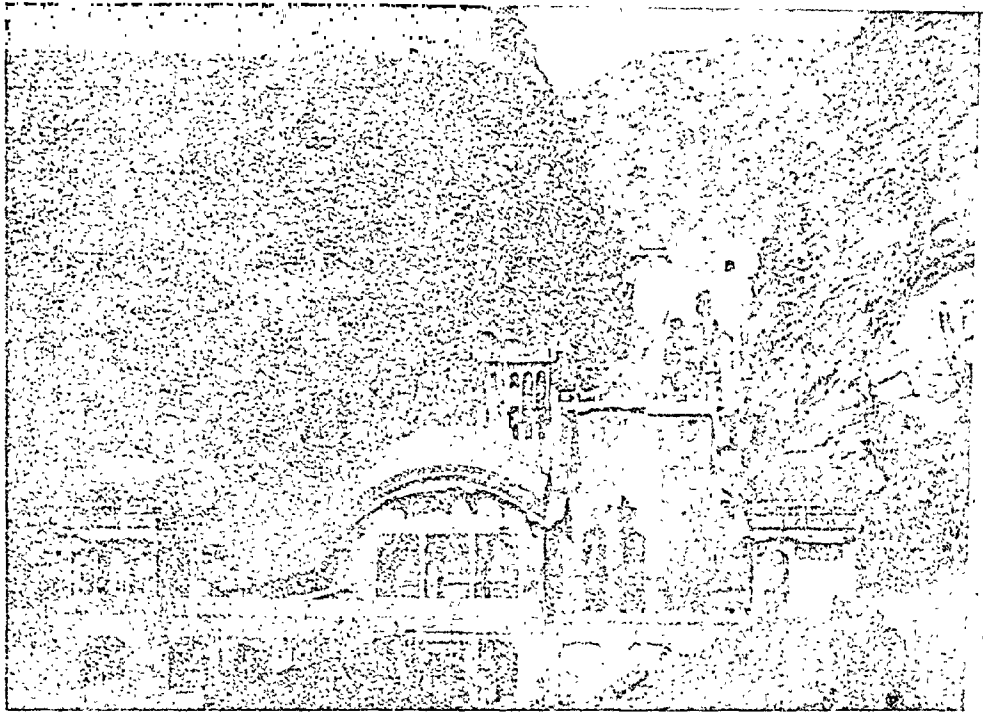
[गलता की घाटी और उसके पवित्र तालाब का एक सुन्दर दृश्य, जयपुर]

रणथंभौर में ३६ हज़ार की आबादी, दो करोड़ दाम की आमदनी, पर्वतमालाओं के परकोटे, सात तालाब, चार दरवाज़े, दो जौहरे-भौंहरे, गुप्त गंगा, चौरासी घाटी और काग़ज़ के कारख़ाने थे। सारे भारत में उनकी ख्याति थी।

साहित्य के सम्बन्ध में यह प्रख्यात है कि बिहारीदास ने आमेर में रह कर ही सौरभ-सम्पन्न साहित्य के देव-दुर्लभ सुमन भारत की भेंट किये थे। उनके रंगबिरंगे अगणित पुष्पों में एकमात्र 'बिहारी सतसई' के अवलोकन से ही प्रतीत हो जाता है कि हिन्दी-भाषा की सर्वादरणीय अद्भुत रचना में बिहारीदास जी अवश्य ही महाकवि थे। कहा जाता है कि मिर्ज़ा राजा जयसिंह जी ने बिहारी-सतसई के एक एक दोहे की भेंट में एक एक मुहर दी थी और उनको सम्मान-पूर्वक अपने समीप रक्खा था। भारत में बिहारी-सतसई का जो सम्मान है वह साहित्य-संसार से छिपा नहीं है। उसपर अब तक सैकड़ों टीकायें हो गई हैं और वह अनेक बार छप गई है। परन्तु उसके गूढ़ाशय-गर्भित दोहों का प्रच्छन्न अर्थ प्रकट करने में भारत के अधिकांश विद्वान् अब तक असमर्थ हैं। प्रत्येक संस्करण में एक से एक बढ़कर नया अर्थ प्राप्तकर महाकवि की प्रखर बुद्धि को बारम्बार सराहते हैं।

मिर्ज़ा महीप के परम अनुयायी महाराज मानसिंह जी भी ऐसे ही साहित्यसेवी थे। उन्होंने केवल आमेर के कवियों को ही नहीं, भारत के सुदूरवर्ती अनेक कवियों, विद्वानों और याचकों को उनकी साहित्य-सेवाओं के लिए 'कोड़पसाव' नाम के पारितोषिक अनेक बार दिये थे, जिनसे उनकी सत्कीर्ति सौगुनी होने के सिवा भारतीय साहित्य का परिवर्द्धन और अद्वितीय संरक्षण हुआ है। इसी निमित्त उनके किये हुए कामों को भली भाँति प्रकाशित करनेवाला अप्रकाशित 'मानभारत' कहीं नहीं मिलता है; तो भी साहित्य-सेवी उसके लिए आशा-निबद्ध हैं।

उपर्युक्त वर्णन से मालूम हो सकता है कि भारत को आमेर ने जो कुछ दिया वह उस ज़माने में दिया

था जिसमें आबालवृद्ध प्रत्येक स्त्री-पुरुष स्वदेश-सेवा के सद्भाव को हृदय में रखकर अपने यहाँ की यथोपलब्ध वस्तुओं को सानुराग अंगीकार करते थे और तत्कालीन कलाकार और साहित्यिक भी अपनी रचनाओं को सरल-सुलभ और उत्साह-वर्द्धक बनाते थे और उसमें प्रकाशित योजना के अतिरिक्त कुछ अप्रकाशित योजना भी शामिल करते थे, जिससे उसका महत्त्व स्थायी और विख्यात रहता था। वास्तव में वह 'हीरक-युग' था।

(२)

उसके बाद 'स्वर्ण-युग' आरम्भ हुआ। उसमें महाराज सवाई जयसिंह जी (द्वितीय) ने विक्रम-संवत् १७८५ के पौष में जयनगर के निर्माण का आरम्भ कर आमेर के बदले उसको राजधानी नियत किया और उसी को कला-कौशल का जीवन और साहित्य-क्षेत्र का पोषक बनाया।

जयपुर भारत के नामी नगरों में चौथा और राजपूताना के सुन्दर शहरों में पहला है। इसे अधिकांश आदमी 'भारत का पेरिस' मानते हैं। वास्तव में यह है भी वैसा ही। कारण कि महामति जयसिंह जी ने अपने यहाँ के प्रधान पण्डितों, कलाकुशल कारीगरों और मर्मज्ञ इञ्जीनियरों को संसार के सुप्रसिद्ध शहरों में भेजकर उनके नक्शे मँगवाये थे और उनमें पेरिस तथा तारातंबोल को पसन्द किया था। उन्हीं दोनों शहरों के नक़्शों में अभीष्ट परिवर्तन करके जयपुर का निर्माण करवाया।

विद्या, कला और व्यवहार में जयसिंह जी स्वयं निपुण थे। इसके प्रमाण में जयपुर की बनावट और बसावट आदर्श हैं। दूरदर्शी महाराज ने उसे भू-पृष्ठ के ऐसे भाग पर बसाया है जिसमें नगर-निवासियों के स्वास्थ्य पर सर्दी, गरमी और चौमासे का कोई बुरा असर नहीं होता। इसके सिवा नहाने-धोने या मलमूत्रादि त्यागने का गन्दा पानी प्रत्येक मकान से अदृश्य रूप में अति दूर चला जाता है। शहर के प्रत्येक प्रान्त में वायु का सुखद संचार स्वतः होता रहता है। और देखने में सारा शहर अति दूर से भी सर्वांगपूर्ण और सुन्दर दीखता है।

शहर के राज-मार्ग भव्य, विस्तीर्ण और स्वच्छतम हैं। मकानों की बनावट और उनके रंग-रूप सब इकसार हैं। सड़क, बाज़ार, गली, चौराहे और चौपड़ आदि सब व्यापक और विस्तृत होने पर भी आरम्भ से समाप्ति तक बिलकुल सीधे और बहुत चौड़े हैं और प्रधान बाज़ारों के मध्यवर्ती चौराहों पर चार चौपड़ बड़े सुन्दर और उपयोगी हैं। २५ वर्ष पूर्व इनमें कुण्ड थे। उनके बीच में फ़ौवारे और चारों ओर मीठे जल के गोमुख नाले थे। उनसे लोग जल पीते और नहाते-धोते थे। और बाहर की पटरी पर साग-सब्ज़ी, फूल-माला और सराफ़ों का जमघट जमा रहता था। अब वहाँ केवल शाम के वक़्त हवाख़ोर इकट्ठे होते हैं। इनके सिवा शहर की स्वाभाविक बनावट में कई ऐसी विशेषतायें हैं जो अन्य शहरों में कम देखने में आती हैं।

पहली विशेषता यह है कि बाहर से आये हुए राहगीर रास्ता भूलकर इधर-उधर भटक जायें तो वे उस हालत में भी प्रधान चौराहों में चले जाते हैं और वहाँ जाने पर उनका अभीष्ट मार्ग या मकान ध्यान में आ जाता है। दूसरी यह है कि प्रत्येक महल, मकान, हवेली या दफ़्तर आदि के चारों ओर गलियाँ हैं, जिनसे गन्दी हवा बाहर निकल जाती है। तीसरी यह है कि प्रधान बाज़ारों की सड़कों में सवारियों और चलने-फिरनेवालों के लिए कई जगह तीन और कई जगह ५ सड़कें हैं। उनमें दोनों ओर की दूकानों के चबूतरे और नहरें अलग-अलग हैं। चौथी यह है कि प्रधान बाज़ार के बीच ज़मीन के अन्दर एक बहुत लम्बी-चौड़ी और पलस्तर (आराश) की हुई प्रच्छन्न नहर है। उसके द्वारा जयसिंहादि के ज़माने में नगर-निवासियों को मीठा जल मिलता था। (अब वहाँ के निवासी नल का जल पीते हैं।) और पाँचवीं विशेषता यह है कि प्रत्येक प्रान्त या पंथ में मौक़े-मौक़े पर छाया के वृक्ष, विश्राम के चबूतरे, जल के कुएँ, दर्शनीय दृश्य, साग-पात, मेवे और नित्य के व्यवहार की प्रायः सभी वस्तुओं के विक्रेता बैठते हैं। इन सब साधनों के एकत्र सौलभ्य से शहर में सब बातों की सानुकूलता रहती है और इस कारण अकेले भारत ने ही नहीं, बाहरवालों ने भी आमेर और जयपुर जाकर नगर-निर्माण और नागरिकों के सुख-सम्बन्धी अनेक बातों की सुविधाओं का अनुभव प्राप्त किया है। इसके अतिरिक्त—

महाराज सवाई जयसिंह जी ने जयपुर, दिल्ली,
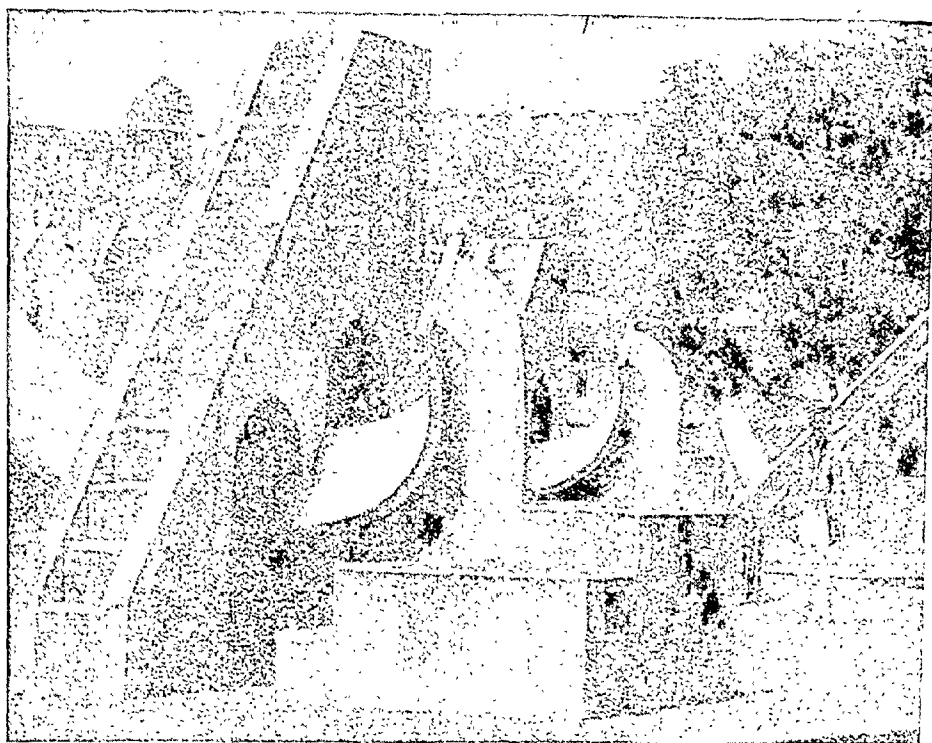
[जयसिंह की वेधशाला, जयपुर]

उज्जैन और काशी में जुदे जुदे ४ 'ज्योतिष-यंत्रालय' (अथवा वेधशाला) स्थापन करके ज्योतिर्विज्ञान के भारतीय या विलायती सभी विद्वानों का भारी उपकार किया है। उनमें सूर्यादि ग्रहों, अश्विन्यादि नक्षत्रों, मेषादि राशियों, भारद्वाजादि सप्तर्षियों और ध्रुवादि विशिष्ट तारों के स्थान, रूप, वेध और स्पष्टीकरणादि के विलक्षण साधन हैं। साथ ही क्रांतिवृत्त, विषुवद्वृत्त, नाड़ीवलय, दिक्साधन, यंत्रराज, कपाली और सम्राट्-यंत्र आदि के द्वारा कई काम ऐसे होते हैं जो गणित-द्वारा अति कठिनाई से बहुत समय में होने पर भी कई बार अशुद्ध हो जाते हैं और इनमें केवल देखने मात्र से सब कुछ स्पष्ट मालूम हो जाता है और इसपर भी विशेषता यह है कि अशुद्ध नहीं होता।

गये हैं। इनके बनाने में बुद्धि, विवेक, हस्तलाघव और शास्त्रज्ञानादि का समुचित उपयोग किया गया है। इन यंत्रों में अधिकांश यंत्र लगभग दो सौ वर्ष के हैं, परन्तु अभी तक इनमें कोई दोष नहीं आया है। इनसे आकाश की अनेक बातें ज्ञात होने के सिवा तत्काल के इष्ट-लग्न और ग्रहादि की परिस्थिति बहुत ही सरल और स्पष्ट रूप से मालूम होती है। उदाहरण के लिए सम्राट्-यंत्र के भूगर्भगत अंश में दृष्टि देने से आकाशगामी सूर्य की गति प्रत्यक्ष दृष्टि में आती है। ज्योतिर्विज्ञान के विषय में उक्त वेधशालाओं से भारत को कितना लाभ पहुँचता है, इसका अनुमान वे ही कर सकते हैं जो इनको देखते और इनसे काम लेते हैं। और लीजिए—

जी ने अपनी इसी प्रकृति की प्रेरणा से कला और साहित्य के साथ में धर्मानुराग मिलाये रहने के अभिप्राय से धार्मिक विषय का सर्वमान्य "जयसिंह-कल्पद्रुम" उत्पन्न किया था। उसके निर्माता तत्कालीन पंडित-सम्राट् जगन्नाथ जी थे। उन्होंने उक्त ग्रन्थ में वर्ष भर के हर महीने की ३० तिथियों और ७ वारों से सम्पन्न होनेवाले व्रत और उत्सवों का व्यापक बुद्धि से निर्णय किया है। और उसको सर्वमान्य करने के लिए प्राचीनतम धर्मग्रन्थों, ऋषि-वाक्यों और धर्माचार्यों के विभिन्न मत-मतान्तरों को मथकर उनके तारतम्य का निष्कर्ष सूचित किया है। इस कारण धर्मप्राण हिन्दू इस ग्रन्थ से उसी प्रकार काम लेते हैं, जिस प्रकार स्वर्ण-परीक्षा में कसौटी या रत्नज्ञान में प्रखर बुद्धि काम देती है।

उक्त महाराज के पीछे उन्हीं के वंशज ईश्वरीसिंह जी की "ईश्वर-लाट" और माधवसिंह जी (प्रथम) के "हवा-महल" भारतीय भवन-निर्माण-कला के शिरोमणि नमूने हैं। (क) जल-महलों की लड़ाई के विजयोपलक्ष्य में ईश्वर-लाट (जिसको सरगासूली भी कहते हैं) का निर्माण हुआ था। इस प्रलंब इमारत को दृढ़तम बनाने में उस ज़माने के कारीगरों ने ऐसी क्रियाओं से काम लिया है कि जिस दिन यह बनी उस दिन से अब तक अनेक बार भारी से भारी भूकम्पादि होने पर भी इसका कोई अंग जीर्ण या विदीर्ण नहीं हुआ है और सुन्दरता इतनी अधिक है कि उसको एँड़ी से चोटी तक देखने के लिए अपनी परिमित दृष्टि को आकाश तक लम्बी करने और उस अवसर में सिर के साफ़े, पगड़ी या टोपी को दबाये रखने से वह पूर्णतया दीख पड़ती है। और (२) हवा-महल—अकेली हवा का ही महल नहीं है; उसकी विज्ञानपूर्ण रचना में कुछ और चमत्कार भी भरे हुए हैं। उसमें छोटी-बड़ी अगणित खिड़कियाँ हैं। उनको यथाक्रम खोल देने से वायु का प्रवाह इस प्रकार का बन जाता है कि उसकी ध्वनि अनेक प्रकार के बाजे और राग के रूप में परिणत हो जाती है।

उस ज़माने के साहित्य-पोषकों में महाराज प्रतापसिंह जी प्रतिभासम्पन्न थे। उनके 'अमृतसागर' से आयुर्वेदोपजीवी जनता ने और उनकी 'शतक त्रय मंजरी' से साहित्य-क्षेत्र के संरक्षकों ने यथेच्छ लाभ लिया है। मंजरी की रचना मर्मस्पर्शी है और उसके छन्दों में 'ब्रज-निधि' की छाप लगाई है। उसके सर्वाधिक प्रचार से उत्साहित होकर साहित्य-सेवी सज्जनों ने हाल ही में उनकी 'ब्रजनिधि-ग्रन्थावली' का प्रकाशन किया है। इसके सम्पूर्ण ग्रन्थ एक से एक बढ़कर हैं और उनमें साहित्यिक सामग्री का मोदप्रद समावेश हुआ है, इसलिए साहित्य-सेवी उनसे अधिक प्रसन्न हैं।

साहित्य की सेवा के सिवा महाराज ने पृथ्वी के अन्दर 'प्रताप-निवास' नाम का एक महल बनवाया था। वह पृथ्वी के पेट में स्थिर किया गया है। उसकी विलक्षण बनावट में यह चमत्कार है कि उसमें सर्दी-गरमी और बरसात का कोई बुरा असर नहीं होता। उसके नाले-पनाले अथवा खिड़की-दरवाज़े आदि ज़मीन के अन्दर होने पर भी वहाँ सील, ठेठ या दुर्गंध कुछ नहीं होती। यही नहीं, उसके प्रत्येक कमरे, कोठरी और बैठक आदि में वायु का प्रवाह और सूर्य का प्रकाश किस प्रकार प्रवेश करता है और साथ ही वहाँ के नहाने-धोने या मल-मूत्रादि त्यागने का गन्दा पानी किन मार्गों से कहाँ जाता है, इसका किसी को कुछ पता नहीं। वास्तव में यह मकान विश्वकर्मा की अद्भुत विद्या का अनोखा नमूना है और अब बन्द अवस्था में स्थायी रूप से सो रहा है। कहा जाता है कि महाराज प्रतापसिंह जी 'शतरंज' के अद्वितीय खिलाड़ी थे और उसमें सदैव विजयी रहे थे। अस्तु यह "स्वर्ण-युग" यहीं समाप्त होता है।

(३)

शीर्षस्थानीय सूचना के अनुसार तीसरे भाग का आरम्भ रामसिंह जी (द्वितीय) से किया जाता है। यद्यपि पिछले दो भागों में आमेर और जयपुर की कला और साहित्य का प्रशंसनीय स्वरूप सूचित किया जा चुका है और दर्शक के रूप में गये हुए अगणित यात्रियों ने उससे ज्ञान लाभ भी किया है, तथापि जयपुर जैसे राज्य और भारत जैसे साम्राज्य के लिए यत्र-तत्र के संक्षिप्त साधनों से उतना फल नहीं हो सकता जितना होना चाहिए।

इस विचार से उदार महाराज सवाई रामसिंह जी ने अपने शासन-काल में कला और साहित्य का केवल जयपुर-राज्य में ही नहीं, सम्पूर्ण भारत में व्यापक और सार्वजनिक विस्तार करने की सद्भावना से अगणित
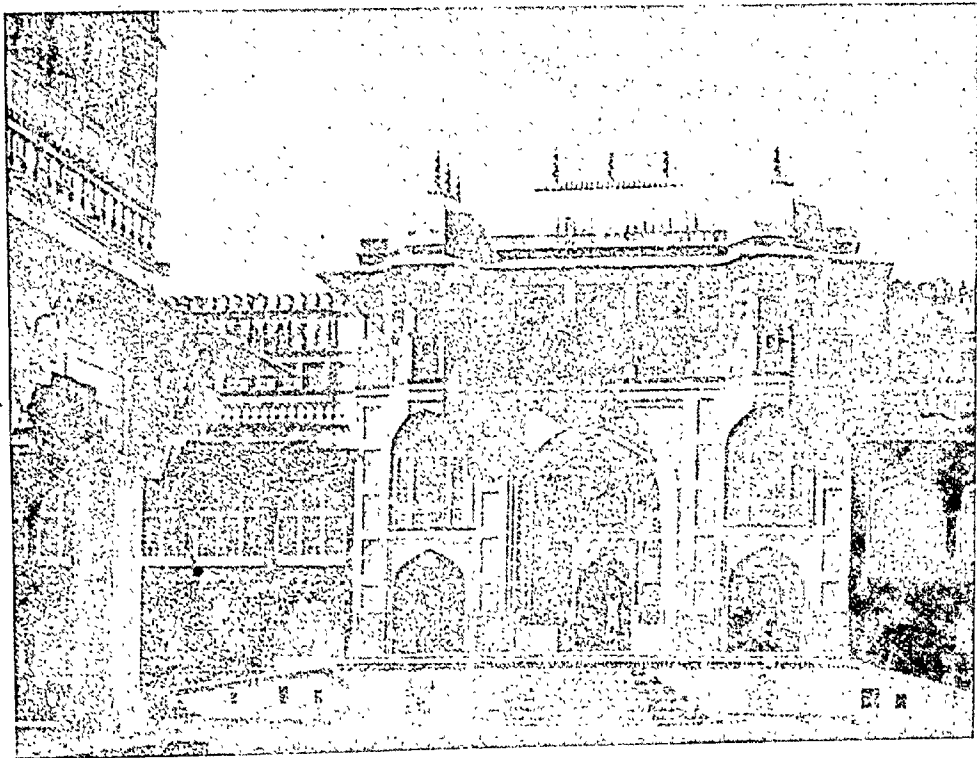
[आमेर के राजमहल का प्रवेश-द्वार, जयपुर]

आयोजन उपस्थित किये और उनके अवाध्य रूप में स्थायी रहने के विधान बना दिये।

इस काम के लिए उन्होंने देश-देशान्तर से कला-कुशल कारीगरों और शास्त्र-निष्णात विद्वानों को बुलाया, और उनकी प्रतिभा-प्रतिष्ठा, पूर्वलब्धि और योग्यता आदि का अनुसन्धान करके उन्हें अपने यहाँ से यथोचित मानसम्मान, जीविका और वेतन आदि देने का प्रवन्ध किया। इस प्रकार उनको स्वतः बंधनों में आवद्ध करके सदा के लिए जयपुर का बना लिया। इस विधान से विद्वानों को सन्तोष और विद्यालयों को सुविधा मिली।

इसके बाद महाराज ने कला और साहित्य के (अथवा विद्या-कला और व्यवसाय के) जुदे जुदे स्कूल, कालेज, मदरसे, विद्यालय, कलाभवन, आर्टस्कूल और रामनिवास-बाग़ आदि के प्रदर्शन स्थापित करके उनमें ख़ास जयपुर के और बाहर से आये हुए विद्वानों को शिक्षण-कार्य में नियुक्त कर दिया। इसके अतिरिक्त विद्यार्थियों की भर्ती वढ़ाने अथवा उनमें विद्याध्ययन का अनुराग उत्पन्न करने के लिए—

दूरदर्शी महाराज ने चार आने मासिक से चालीस रुपये मासिक तक की यथा योग्य छात्रवृत्ति तथा अधिक प्रवीण को धन और सम्मान देने आदि के समयोचित और आवश्यक प्रलोभन नियत करके विद्यावृद्धि का वर्द्धमान मार्ग प्रशस्त कर दिया। ऐसा करने से थोड़े ही दिनों में जयपुर में एक से एक वढ़कर विद्वान बनने लगे और परीक्षा आदि में उत्तीर्ण होकर ख़ास जयपुर में अथवा वाहर अपने अपने देश-गाँव या घरों में कला-कौशल और साहित्य के फलदायी क्षेत्र और लाभप्रद आयतन स्थापित करने लगे। फल यह हुआ कि—

किसी प्रकार की फ़ीस न होने और योग्यतानुसार छोटी से छोटी और वड़ी से वड़ी छात्रवृत्ति (मासिक सहायता) मिलने से जयपुर और राजपूताना के ही नहीं,

पंजाब, बंगाल, गुजरात और मदरास आदि सभी देशों के सैकड़ों विद्यार्थी आगये और विद्या, कला तथा व्यवसाय की यथा-योग्य शिक्षा ग्रहण कर दो-दो, चार-चार या दस-दस वर्ष में देखने योग्य विद्वान् बन गये। जयपुर के विद्यालयों से प्रतिवर्ष दस, बीस, पचास या इनसे न्यूनाधिक विद्यार्थी प्रतिभा-सम्पन्न बनकर बाहर निकलते हैं और अपने कार्य-क्षेत्र को फल-पत्रादि से समन्वित करते हैं

इससे बढ़कर 'कला और साहित्य' के क्षेत्र में भारत को जयपुर और क्या दे सकता है? इसे जयपुर-राज्य का देवदुर्लभ प्रसाद मानना चाहिए, जिसके प्रभाव से आज जयपुर में और बाहर हर जगह कला-कौशल के अदृष्ट पूर्व अद्भुत और मनोहर काम देखने में आ रहे हैं और साहित्य-क्षेत्र के सर्वोत्कृष्ट सुमन अथवा अनेक शास्त्रों के मर्मज्ञ विद्वान् घर घर में विराज रहे हैं। इस प्रकार की एकोत्तर वृद्धि के कारीगरों और साहित्यिकों ने किस किस दिशा और देश में क्या क्या काम किया और उनमें आरम्भ से अब तक कितने उन्नत और कितने अनुन्नत हुए अथवा कितने स्थगित हुए और कितने यथापूर्व प्रचलित हैं, इनका पूरा विवरण विदित नहीं हो सकता।

केवल एतावन्मात्र अनुमान किया जा सकता है कि वर्तमान बीसवीं शताब्दी के आरम्भ से अब तक उपर्युक्त साधन समुपस्थित रहने से हज़ारों आदमी ख़ास जयपुर के और कई हज़ार बाहर के विद्वान् होने से उनके संसर्ग और सम्पर्क में रहनेवालों तक लाखों मनुष्यों को जयपुर ने कला और साहित्य के सर्वोत्तम फल भेंट किये हैं।

आज जयपुर में, जयपुर-राज्य में और भारत साम्राज्य में ही नहीं, विलायतों तक में यथार्थ गुण रखनेवाले वस्त्र, शस्त्र, आभूषण, चित्र, मूर्ति, मकान; सवारी, खिलौने, फर्नीचर; और नामी मकानों के नक़्शे तथा खुदाई, घड़ाई, जड़ाई; और रँगाई, छपाई, सिलाई आदि के अद्भुत, मनोहर और सानुकूल काम और वस्तुयें देखने में आती हैं। ये सब महाराज रामसिंह जी की लोकोत्तर उदारता और देदीप्यमान गुणज्ञता के महाप्रसाद हैं।

उपर्युक्त आयोजनों के अतिरिक्त दयाशील महाराज ने प्रजाहित के अनुरोध से कुएँ, बाँध, नहर, रेल, तार, डाक, सड़क, सवारी, सदाव्रत, बाग़-बग़ीचे, नाटक-घर, बैठक, दरबार, जुलूस, नल, रोशनी, विद्यालय, व्रत-उत्सव और मेले आदि की अपूर्व और अद्वितीय योजना करके अपने यश, पुण्य और नाम को अमिट कर दिया। विद्या-प्रचार के निमित्त केवल स्कूल-कालेज या मदरसे स्थापन करके ही उन्होंने सन्तोष नहीं कर लिया था, किन्तु विविध प्रकार के आश्चर्यजनक भोजन बनानेवाले, कौतुक करनेवाले, बोलियाँ बोलनेवाले, शेर-शूर, भैंसे, कुत्ते, मोर, मुर्ग़े और तीतर आदि को युद्ध-विजयी बनानेवाले देश-देशान्तर की पोशाक पहनाने और पगड़ी बाँधनेवाले, आकाश में प्रकाश के साथ पतंग उड़ानेवाले, खेल-कूद, बाज़ीगरी और अनेक प्रकार के गायन-वादन और नृत्य करनेवाले आदि बहुत-सी विद्याओं के जाननेवाले आदमी उनके आश्रय में रहते थे और यथा समय अपनी विद्या-कला या खेल-कूद आदि दिखलाते थे। इस प्रकार उन्होंने विद्या, कला और साहित्य की श्रीवृद्धि की थी और उनके सुपूत उत्तराधिकारी स्वर्गीय महाराज माधवसिंह जी बहादुर ने उनका यथोचित पालन-पोषण करके उनको बढ़ाया था।

परिशिष्ट—यद्यपि चित्र-निर्माण अनोखी कला है, और श्रेष्ठ कवि की तरह चित्रकार भी अपनी रचना को मोहक और आकर्षक बना सकता है, तथापि 'मूर्ति-निर्माण-कला' का महत्त्व इससे कुछ ही घटकर है।

जयपुर में सिलावटों का एक मुहल्ला है। उसमें सिलावृत्ति करनेवाले सैकड़ों सिलावट हैं। वे विविध प्रकार के पत्थरों की, महल, मकान, मन्दिर या गृहस्थ के काम की विभिन्न वस्तुयें बनाते हैं। विशेषकर संग-मरमर (मकराना के पत्थर) की मूर्तियाँ ज़्यादा बनती हैं। हर एक सिलावट के मकान में दस, बीस, पचास ही नहीं, सौ-दो सौ मूर्तियों का मिलना सम्भव है। जयपुर की मूर्तियाँ बाहर बहुत जाती हैं। अब तक लाखों रुपये की गई होंगी। इनके सिवा छत्री, छाते, ताज, चौखटे, थली, खम्भे और खेल-खिलौने आदि का कोई हिसाब नहीं है। अस्तु इनके समीप में रहकर भारत के अगणित शिल्पी धन पैदा करना सीख गये हैं और इस प्रकार इसी एक कला से भारत को जयपुर ने बहुत कुछ दिया है।

जयपुर में मालीरामजी सिलावट भारत-विख्यात मूर्तिकार हैं। अवस्था ७५ वर्ष की है। वेश-भूषा और वार्तालाप से कोई जान नहीं सकता कि ये सर्वोत्तम शिल्पी
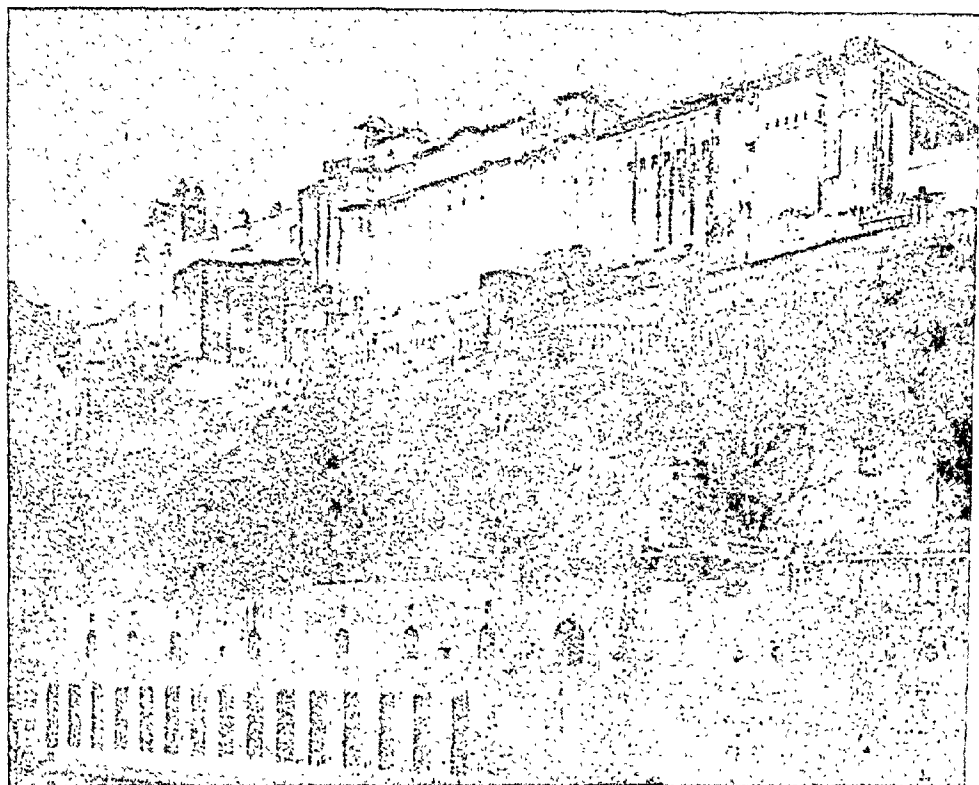
[आमेर का क़िला, जयपुर]

हैं। बूढ़े हो जाने पर भी इनके सूखे नेत्र सब काम करते हैं। चश्मे का अनुराग और बिजली का प्रकाश इनको पसन्द नहीं। ये अपने तिलतेल के टिमटिमाते हुए दीपक से रात में भी मशीन को मात करनेवाला काम कर लेते हैं। परंपरागत आकृति की मूर्तियाँ बनाने वाले अनेक हैं, किन्तु अष्ट-अष्टादशादि सशस्त्र भुजाओंकी जटिलतम वस्त्राभूषण के वेष की और विख्यात व्यक्तियों के आकार-प्रकार की तत्तुल्य मूर्त्ति बनादेना टेढ़ी खीर है। किन्तु बूढ़े मालीराम जी इन सबको कौतुक की भाँति सहज ही बना देते हैं। इन्होंने महाराज दर्भङ्गा का जयपुर में रह कर ही बीस वर्ष काम किया है। उनका इनके प्रति बड़ा अनुराग-विश्वाश और मान था। उन्होंने इनसे हजारों की लागत के कई काम करवाये थे। इनमें यह विशेष गुण है कि इनके पास किसी भी वस्तु या व्यक्ति विशेष का फोटो भेज दीजिए। उसी से ये मूर्त्ति बना लेंगे और भारत में बैठे हुए विलायत-वासी की तादृश आकृति दिखला देंगे। इन्होंने जयपुर, ग्वालियर और बीकानेर आदि के महाराजाओं की मूर्तियाँ बनाई हैं। उनके देखने से इनकी लोकोत्तर रचना पर आश्चर्य होता है। फोटो की अपेक्षा अपनी मनोगत कल्पना पर जो मूर्तियाँ इन्होंने बनाई हैं वे अवश्य ही मूर्ति-निर्माण के सर्वोत्कृष्ट नमूने हैं। इन्होंने अपनी देवदुर्लभ विद्या के दान में कभी संकोच नहीं किया है। इनके पास रहकर दो-दो से २०-२० प्रतिदिन या हजारों एक बार में लेनेवाले अनेक सिलावट भारत में सुखपूर्वक जीवन बिता रहे हैं और जयपुर की शिल्प-कला को भारत में व्याप्त कर रहे हैं। विशेषज्ञ विद्वान् इस विवरण में अनुमान कर सकते हैं कि भारत को कला और साहित्य के ही नहीं, अनेक प्रकार की कलाओं, विद्याओं या शास्त्रों के ज्ञाता अगणित आदमी दिये हैं।

स्याम का एक राष्ट्रीय गीत

लेखक, श्रीयुत सुमन वात्स्यायन

किसी भी अधःपतित जाति के पुनरुत्थान में जिन अनेक साधनों की जरूरत होती है उनमें से एक—और परमावश्यक—अंग जातीय साहित्य है। यदि किसी गिरी हुई जाति का अतीत उज्ज्वल रहा है तो वह अवश्य ही उस पुरातन गौरव को स्मरण कर अपना वर्तमान रचने में समर्थ होगी। ब्रह्मदेश से पूर्व स्याम नाम का एक स्वतंत्र देश है। यद्यपि इसका क्षेत्रफल काफ़ी बड़ा है, तो भी आबादी सवा करोड़ से कुछ ही ऊपर है। यह एक आश्चर्य की बात है कि इतनी कम आबादी का देश—एशिया का देश—दाँतों के बीच जीभ की तरह रूसी और फ़ैसिस्ट साम्राज्य-वादियों से घिरे होने पर भी अभी तक स्वतंत्र है। चीन एक स्वतंत्र राष्ट्र कहा जाता था, पर यथार्थ में वह भी योरप की महाशक्तियों का गुलाम था। पर स्याम के राजनीतिज्ञों ने अपनी नीति-कुशलता से, समय समय पर पश्चिम के साम्राज्यवादियों का भीषण प्रहार, सहते हुए भी कभी किसी की दासता स्वीकार नहीं की। स्यामवासी अपने को 'थाई' जाति का और अपने देश को 'थाई-भूमि' कहते हैं। थाई का अर्थ है 'स्वतंत्र'। यथार्थ में वे इसके अधिकारी भी हैं।

स्याम और भारत का बड़ा प्राचीन सम्बन्ध है। पूर्वीय द्वीपों पर भारतीय धर्म, संस्कृति और साहित्य तथा कला का कितना प्रभाव पड़ा है, उससे आज हम अनभिज्ञ हैं। स्याम की साहित्यिक भाषा में ५० प्रतिशत से अधिक संस्कृत के शब्द व्यवहृत होते हैं। इनमें से कुछ तो ज्यों के त्यों हैं, कुछ अपभ्रंश रूप में, अधिकांश शब्द लिखे तो जाते हैं शुद्ध रूप में, किन्तु बोलने में वहाँ के लोग अपने उच्चारणोपयोगी अवयवों के अनुकूल कर लेते हैं। उदाहरण के लिए नीचे के कुछ शब्द द्रष्टव्य हैं। शुद्धरूप में—गुरु, दुःख, शासन (धर्म के अर्थ में) आदि।

लिखते हैं	भाषा	और बोलते हैं	फासा
,,	हस्त	,,	हत्
,,	मतांग	,,	मतांग्
लिखते हैं	सम्पूर्ण	और बोलते हैं	सोम्बुन
,,	नगर	,,	नखोन्
,,	कुशल	,,	कुसोन्
,,	पुण्य	,,	बुन्
,,	अयोध्या	,,	अजुध्या
,,	चक्षु	,,	चक्सु
,,	कर्ण	,,	कन्
,,	पिता	,,	बिदा
,,	भमर (भ्रमर)		फमन्

भारतीय भाषाओं में प्रायः राजकाज-सम्बन्धी शब्द अरबी, फ़ारसी और अँगरेज़ी आदि विदेशी भाषाओं से लिये गये हैं और लिये जाते हैं। किन्तु स्यामी-भाषा में ऐसे सभी शब्द संस्कृत के हैं। सदियों की परतंत्रता ने हमें भाषा के क्षेत्र में भी परतन्त्र कर दिया है। इसी लिए तो हम पाली, प्राकृत और संस्कृत के अक्षय शब्द-कोष का सदुपयोग नहीं कर पाते हैं। स्याम में राजा, धर्माचार्य और बौद्ध भिक्षुओं के नाम और सभी सरकारी पदों तथा विभागों के नामों के लिए भी संस्कृत-शब्दों का ही प्रयोग होता है। यहाँ तक कि क्रूज़र, पैसिंजर जहाज़, माल जहाज़, हवाई जहाज़, पनडुब्बे आदि के लिए भी संस्कृत-शब्द का ही प्रयोग होता है। जैसे स्याम के जहाज़ों के नाम हनुमान, अंगद, सुग्रीव आदि हैं।

नीचे हम स्यामी-भाषा का एक राष्ट्रीय गीत उद्धृत करते हैं जिससे उस वीर जाति का भाव प्रकट होता है। साहित्य जातीय भावना का प्रतिबिम्ब कहा जाता है। इसमें कुछ संस्कृत के भी शब्द आये हैं, जिन्हें हम नीचे उद्धृत करेंगे। यह गीत बोल-चाल की भाषा में है, इसी लिए इसमें संस्कृत-शब्दों का प्रयोग कम हुआ है।

१—ऊोइ रान् ख्रोइ रुक् बाहू देन् ,याइ
याइ रोब् जोन् मुद् ञ्याइ ज्याद् दिन्
सिया चिप् लियद् लंग् लाइ जौम् सलह् सिन् हैय्
सिप् छौव् याइ सिप् सिन् छु कौ कियत् डान्

भावार्थ—अरे जब कोई हमारी मातृ-भूमि थाइ पर आक्रमण तब हमें अपने अन्तिम प्राण तक लड़ते रहना चाहिए हमें अपने रक्त और

मांस का न्यौछावर करना चाहिए। इस कार्य्य में हमारा जीवन चला जाय तो पृथ्वीतल पर हमारी कीर्ति रह जायगी।

नोट—छीव को लिखते हैं जीव, किन्तु पढ़ते हैं छीवा। इसी प्रकार कियत शब्द कीर्ति का अपभ्रंश है जो लिखा जाता है कीर्ति ही। हमने यहाँ उच्चारण के अनुसार ही लिपिबद्ध किया है।

२—हाक् सयाम् जंग् जू जंङ जीन् जोंग्
थाइ को म्हन् जू खौं छीव् दुअइ

हाक् सयाम् फिनात लौंग थाइ जू दाइ ऋ
थाइ को म्हन मौद मुअइ मोत सिन सकुल थाइ

भावार्थ—अगर स्याम जीवित है थाइ भी जीते हैं। अगर स्याम का नाश हो तो थाइ कैसे जीवें? तब थाइ और उनके वंश को भी मरे हुए के जैसे समझना चाहिए।

नोट—ऊपर की तरह यहाँ भी लिखते श्याम हैं, किन्तु उच्चारण करते हैं सयाम। इसी प्रकार विनाश को फिनात, सकुल को कुल सहित, मृतः का मुअइ (प्राकृत का आभास मिलता है)।

मैं हूँ गुलाब का फूल सखे!

लेखक, श्रीयुत शिवमंगलसिंह 'सुमन'

मेरी ही पंखड़ियों को छू
ऊषा का यौवन जागा है,
मुझमें सुरूप भी, सौरभ भी
सोने में भरा सुहागा है,
सब मुझे एकस्वर से कहते, मैं सुन्दरता का मूल सखे,
मैं हूँ गुलाब का फूल सखे!

बचपन से ही मलयानिल ने
मुझको काँटों में दुलराया
काँटों की गोदी में ही पल
मैंने मादक यौवन पाया
पर बेध नहीं पाते मुझको, मेरी डाली के शूल सखे,
मैं हूँ गुलाब का फूल सखे!

मेरी ही आभा से रंजित
नयनों की नीलम-सी प्याली,
एड़ी का बना महावर में
मैं सुघड़ कपोलों की लाली
मैं गागर में सागर हूँ, या मैं हूँ विधना की भूल सखे,
मैं हूँ गुलाब का फूल सखे!

मैं देता सौरभ दान
समझता नहीं उसे यौवन खोना,
मानव! तुम अपने दुखड़ों का
नाहक रोते रहते रोना,
देखो मैं मुसकाता रहता, यद्यपि क़िस्मत में धूल सखे,
मैं हूँ गुलाब का फूल सखे!

जीवन का अर्थ यही समझा
हँस हँस कर अर्पित प्राण करें
आओ चर अचर सभी मिल कर
नव-सुषमा का निर्माण करें
फिर तो हम तुम दोनों को ही, हो जाना है निर्मूल सखे,
मैं हूँ गुलाब का फूल सखे!

रिक्ता
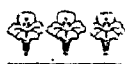
अनुवादक, पण्डित ठाकुरदत्त मिश्र

अरुण की इच्छा भी घर जाने की थी पर जगत बाबू के आदेश के कारण पूरी न हुई और उसे मन मार कर वहीं ठहर जाना पड़ा। इधर एक सुखी दम्पति के पारस्परिक आमोद-प्रमोद को देखकर अरुण के मन में एक अभाव का अनुभव हुआ और उसका हृदय कुछ-कुछ सविता की ओर झुका। सविता विवाह से ही पति-प्रेम से वंचित रही थी। अरुण के इस मानसिक परिवर्तन पर सविता को कुछ आश्चर्य अवश्य हुआ पर उसे अपने भाग्य पर सहसा विश्वास न हुआ। पुलक को लेने के लिए उसकी दादी और पिता आ गये। पुलक उन्हें पहचानता न था अतः जाने को राजी न था। सविता ने भी विरोध किया। पर उसकी बात सुनी न गई और वे लोग बलपूर्वक पुलक को ले गये। पुलक के इस तरह ले जाये जाने पर सविता को बड़ा दुःख हुआ।

(२०)

सविता के नाना जी आ गये। संध्या-पूजा से निवृत्त हुए बिना वे जल नहीं ग्रहण किया करते थे, यह बात सविता को मालूम थी। पहले वह सदा ही उनके साथ साथ पूजा के लिए फूल तोड़ा करती, स्तोत्र-पाठ किया करती। इतने ही दिनों में ये सारी बातें वह भूल नहीं गई थी।

खूब सबेरे उठकर सविता ने स्नान किया। बाद को वह नाना जी के पूजा करने के लिए सामग्री एकत्र करने लगी। ताम्र की एक छोटी-सी थाली थी। खूब माँजने पर वह सोने की तरह चमचमाने लगी। उसी थाली में फूल-चन्दन आदि सजाते सजाते छुटपन की ही तरह स्निग्ध आनन्द से उसका चित्त परिपूर्ण हो उठा।

चन्दन की स्निग्ध और भीनी भीनी सुगन्धि ने क्षण भर के लिए सविता के हृदय के उत्ताप को शान्त कर दिया था। छुटपन में यह आनन्द वह प्रतिदिन ही पाती रही है। इसके सिवा वह पाती रही है नाना जी का वही एक ही ढंग का उपदेश।

नाना जी के उपदेशों से तंग आकर ही सविता उन दिनों उनके समीप जाने की इच्छा नहीं किया करती थी। अब उसे ऐसा जान पड़ता कि उनके वे उपदेश संसार में मानो देववाणी थे, बिलकुल ही भ्रान्तिहीन थे।

सविता ने बहुत ही सबेरे शय्या त्याग दी थी। वह इस विचार से उठी थी कि श्वसुर जी के सोकर उठने से पहले ही काम-काज से निवृत्त हो जाऊँ। उस समय भी घर के नौकरों तथा नौकरानियों में से दो-एक को छोड़कर और किसी की भी निद्रा नहीं भंग हुई थी। दालान के एक किनारे पर एक चौकी रक्खी हुई थी। शय्या त्याग कर आँख मलते मलते अरुण आया और उसी चौकी पर बैठ गया। उसने मस्तक के बाल तक नहीं सँभाले थे, वे इधर-उधर बिखरे पड़े थे। अरुण को इस अवस्था में आया हुआ देखकर चकितभाव से सविता ने पूछा—मामला क्या है? यहाँ कैसे?

"क्यों? कोई हानि तो नहीं है?"

"नहीं, हानि कोई नहीं है। परन्तु इस तरह बिस्तरे पर से उठते ही और तो कभी इस ओर आया नहीं करते थे, इसी लिए पूछ रही हूँ।"

"ऐसा सोच रही हो! यदि यहाँ रहना मेरे लिए आवश्यक ही हो?"

"तो तुम प्रसन्नतापूर्वक बैठे रहो। मैं इसके लिए कोई आपत्ति तो कर नहीं रही हूँ।"

ज़रा देर तक चुप रहने के बाद अरुण ने कहा—तो क्या तुम काशी जा रही हो?

अब सविता को अरुण के यहाँ आने का रहस्य मालूम हो गया। उसने कहा—बाबू जी ने तो कह दिया है।

"किन्तु मा यदि जीवित होतीं तो वे तुम्हें जाने न देतीं। पुलक के रहने पर भी तुम्हारा जाना न हो पाता।"

सविता कुछ बोली नहीं। उसके हृदय का क्षोभ फिर नवीन हो आया। तीव्र संशय की वेदना मन में दबाये हुए वह सोचने लगी—कौन-सी ऐसी बात आ गई है जिसके कारण इस प्रकार की घनिष्ठता प्रदर्शित की जा रही है? यह क्या मुझे मिथ्या प्रलोभन देकर मनोविनोद किया जा रहा है? क्या मैं इनकी दृष्टि में केवल एक गुड़िया भर हूँ, जिससे जिस प्रकार हो उसी प्रकार खेला जा सके? सविता ने स्वामी के मुँह की ओर ताका। कोई बात वह समझ न सकी। बाद को मस्तक नीचा करके वह फिर अपने कार्य्य में संलग्न हो गई और उसको उसने समाप्त कर लिया। अब वह ज़रा कुछ उद्विग्न-सी होकर सोचने लगी कि अब मैं क्या करूँ। इस समय हाथ में कोई कार्य्य तो है नहीं, ऐसी दशा में अकारण इनके सामने बैठी किस तरह रहूँ।

अरुण ने कहा—तुम्हारा कार्य्य क्या समाप्त हो गया है?

"कुछ तो समाप्त हो गया है। बाबूजी अभी तक सोकर उठे नहीं। उठने पर उन्हें ओषधि आदि देनी होगी। इसके सिवा दिन भर में मुझे जो जो कार्य्य करने होते हैं उनमें से कुछ अभी करने को पड़े ही हैं।

"तुम्हारा काम-काज इतना बढ़ा रहता है कि वह कभी समाप्त ही नहीं होता। परन्तु तुम जब न रहोगी तब वह सब कौन करेगा? बाबू जी को ही कौन देखे-सुनेगा? बाबू जी तो और किसी की बात ही नहीं सुनते।"

अरुण के मुसकराते हुए मुख पर ज़रा-सी उद्विग्नता की काली रेखा दिखाई पड़ी। सविता के दोनों ही स्निग्ध और शान्त नेत्र उज्ज्वल हो उठे। इस घर में उसे किसी प्रकार की आकांक्षा नहीं थी, परिवार के किसी व्यक्ति से वह किसी प्रकार की आशा नहीं किया करती थी। यहाँ तक कि ज़रा-सी श्रद्धा या सहानुभूति तक की आकांक्षा उसे नहीं थी। परन्तु इतने पर भी तो उसके शून्य हृदय का भिक्षा-पात्र मानो खुला ही था। ज़ोर-ज़ोर से जो निश्श्वास चल रहा था उसके कारण उसका ओष्ठ सूखा जा रहा था। दाँतों से ओष्ठ दबाये हुए वह चुपचाप खड़ी रही, कुछ बोली नहीं।

चौकी से उठकर अरुण खड़ा हो गया। उसने कहा—सुनो सविता!

अरुण के कण्ठ-स्वर में वह स्वाभाविक सरलता नहीं थी। उस समय उसका कण्ठ-स्वर बहुत ही गम्भीर हो गया था। इस कारण उसकी इस बात से सविता काँप उठी। स्वामी के मुँह से अपना नाम उसने और कभी सुना नहीं था। इससे चकितभाव से ताकती हुई वह बोली—कहो।

"तुम ज़रा-सा मुँह सीधा करो और मैं जो कुछ कह रहा हूँ वह सुनो।"

सविता ने मुँह ऊपर किया और स्थिर दृष्टि से ही स्वामी की ओर ताकती हुई क्षोभ से तीव्र हो गये कण्ठ से उसने कहा—क्या कहना है तुम्हें? फिर वही, वही बात न? उसके सिवा और कोई ऐसी बात तो है नहीं जो तुम्हें कहनी हो? परन्तु इस तरह की बातें करने का अर्थ है व्यर्थ में मेरे हृदय पर आघात पहुँचाना! मुझे यह मालूम है कि मैं तुम्हारे—

"छिः! छिः! यह क्या कह रही हो तुम। ठहरो! मैं एक दूसरी बात कहने जा रहा हूँ।"

अरुण ने ये बातें भी स्वाभाविक स्वर से नहीं कहीं। सविता का मुँह लाल हो उठा था। उसने कहा—कहो, क्या कहते हो?

अरुण ने कहा—नहीं, इस समय वह बात सुनने के अनुकूल तुम्हारी मानसिक अवस्था नहीं है। तुम इस समय बहुत अप्रसन्न हो।

सविता हँस पड़ी। उसने कहा—तो अब कहोगे?

"नहीं, रहने दो, आज अब वह बात न कहूँगा। आज तुम दिन भर यहाँ रहोगी न?"

"जब तक आशा नहीं आ जाती तब तक तो रहूँगी ही। क्यों? क्या तुम मुझे काशी जाने से रोकते हो?"

"नहीं, मैं रोकूँगा क्यों?"

इतने में दोमंज़िले पर से जगत बाबू ने गोपी गोपी कहकर पुकारा। अरुण चौकी छोड़कर बाहर चला

गया। सविता ने मुँह उठाकर देखा तो ताँबे की थाली में खूब खिले हुए फूल ज्यों के त्यों रक्खे हैं और बाल-सूर्य्य की किरणें उन फूलों के ऊपर मानो देवता की प्रसन्नतामयी हँसी विकसित कर रक्खी है।

× × ×

कमरे की सीढ़ी के नीचे बेला के फूल खिले हुए थे। उनकी सुगन्धि के कारण मादकतामय होकर वायु झिर-झिरा कर बह रहा था। प्रेम के आवेग में आकर कबूतरों का एक जोड़ा अविराम गति से गुटुरगूँ गुटुरगूँ कर रहा था।

सविता के कानों में उस दिन अरुण का वही अपने नाम का उच्चारण कितने मधुर स्वर में झङ्कृत हो रहा था। उसका वह तुच्छ नाम इतना मधुर है, इस बात का पता इतने दिनों तक तो चल नहीं सका।

कितने दिन बीत गये थे! कितने दिन से अपना यह तुच्छ नाम भी वह किसी के मुँह से नहीं सुन पाई थी। छद्मवेश में रह कर छद्मनाम के ही द्वारा उसके दिन कटा करते थे। यहाँ वह बहू थी न! सम्भवतः वह स्वयं भी अपनी वास्तविक वस्तु को खो बैठी थी। जिस रूप में वह आई थी, जैसी वह थी, वैसी ही क्या वह आज भी रह गई थी?

सविता का हृदयरूपी यन्त्र सदा ही तो नीरव रहा है। कभी तो उसमें झङ्कार नहीं उत्पन्न हुई। किन्तु आज इस तीन अक्षर के नाम से उसके उसी चिर नीरव हृद्यन्त्र में मूर्च्छना कैसे आ गई?

दिन को दो बजते बजते आशा आकर पहुँच गई। सविता उसे सारे काम-काज समझाने लगी। आशा उस समय घबरा-सी उठी। उसने कहा—बाप रे! तुम्हारे न रहने पर मैं कैसे रह सकूँगी?

सविता ने कहा—रह क्यों न सकोगी? रहते रहते अभ्यास हो जायगा। देखो, ये सब बाबू जी की ओषधियाँ हैं। इन्हें देखकर ठीक से समझ लो। इस शीशी में सफ़ेद रंग का जो चूर्ण है उसे वे भोजन के बाद खाया करते हैं। बड़े चम्मच से एक चम्मच निकाल कर गरम जल के साथ वे खा जाया करते हैं। जल में डालने पर पहले यदि ठीक से मिश्र न किया जाय तो वह ढेला-सा बँध जाता है।

आशा ने कहा—यह सब गोपी से हो सकेगा दीदी। मुझे तो बाबू जी के सामने जाने में भी भय मालूम पड़ता है। बाद को कहीं यह सब मुझसे खराब न हो जाय। बाप रे! मेरा तो दिल धड़कने लगता है डर के मारे।

सविता ने कहा—नहीं, यह कुछ नहीं है। ये सब काम तुम्हें ही करने होंगे। तुम्हारे रहने पर ये सारे काम गोपी क्यों करने लगा? तुम यह सब दे दिया करना। डरने की इसमें कौन-सी बात है? मैं तो डरती नहीं। कभी डाँट भी नहीं खाई। देखा है तुमने मुझे कभी डाँट खाते?

"अपने साथ मेरी तुलना मत करो भाई। तुम्हारी बात अलग है। तुम मनुष्य नहीं हो दीदी!"

सविता हँसी। उसने कहा—मनुष्य नहीं हूँ तो क्या भूत हूँ? बिना मरे ही भूत हो गई?

"भूत क्यों होओगी दीदी, तुम देवता हो।"

"उलटी बात कह रही हो। मैं देवता नहीं, उपदेवता हूँ। इस शरीर पर से भूत उतर जाने पर ही सब कुछ समझ जाओगी। भूत जब तक लगा रहता है। तब तक तो कुछ मालूम पड़ता नहीं। उसके उतर जाने पर ही मनुष्य की बुद्धि ठिकाने पर आती है।

आशा ने कहा—रहने भी दो। तुम क्या कह रही हो दीदी? तुम्हारी बातें सुन कर हँसूँ या रोऊँ, यह मैं निश्चय ही नहीं कर पाती हूँ।

भोजन करते समय जगत बाबू ने कहा—देखो बहू, छोटी बहू अभी लड़की ही है। घर-गृहस्थी का सारा भार अभी केवल तुम्हारे ही ऊपर है। इससे तुम वहाँ जाकर अधिक दिनों तक न रुकी रहना। तुम्हारे बिना अधिक दिन मैं भी नहीं बचा रह सकूँगा बिटिया! कितनी आशा, कितनी आकांक्षा हृदय में लेकर मैं ले आया हूँ तुम्हें। वह सब....

सविता ने उतावली के साथ कहा—नहीं बाबू जी, मैं अधिक दिन न लगाऊँगी। जब आप कहेंगे तभी वे लोग भेज देंगे।

जगत बाबू ज़रा देर तक रुक कर सोचते रहे। कदाचित् उनके मन में यही बात आ रही थी कि जिसके न रहने पर इस परिवार की सारी व्यवस्था ही अस्त-व्यस्त हो जायगी उसे इस परिवार ने दिया क्या है।

केवल दुःख, केवल सन्ताप! परन्तु जहाँ रहने पर इसे सुख मिल सके वहीं यह क्यों न रहे? इसे यहाँ रोक रखना क्या निष्ठुरता नहीं है? मेरा पुत्र होकर अरुण मेरी अन्तरात्मा को इस प्रकार दुःखी कर सकेगा, अपने दुराग्रह के कारण इस प्रकार का अनुचित आचरण, इस प्रकार का न्याय-विरुद्ध कार्य्य कर सकेगा, इस बात को मैं कभी सोच तक नहीं सका था। हो सकता है कि अपराध मेरा ही है। परन्तु यह कैसे हृदय की स्त्री है, यह देखकर भी उसने कभी नहीं देखा! एक घर में इतने दिनों तक साथ साथ रहने पर भी ज़रा-सी घनिष्ठता नहीं उत्पन्न हुई!

जगत बाबू उस समय बड़ी ही चिन्ता में थे। उनके मन में आया—रूप! मेरा लड़का इस प्रकार तुच्छ रूप का भक्त कब से हो गया? तो भी उसके इस कार्य्य को मैं अनुचित नहीं समझता हूँ! इतना बड़ा न्याय-विरुद्ध कार्य्य हो रहा है मेरे घर में। परन्तु अब तो और कोई आदेश करने का भी मार्ग नहीं है। उसने बिना कुछ कहे-सुने चुपचाप मेरे ही आदेश का पालन किया है। तब?

श्वशुर की चिन्ता भंग करती हुई सविता बोली—पुलक का समाचार मिलने पर मुझे सूचित कीजिएगा बाबू जी! जब तक उसका समाचार न मिलेगा तब तक मुझे बड़ी चिन्ता रहेगी।

जगत बाबू ने कहा—प्रभात मुझे प्रायः चिट्ठी-पत्री तो लिखा नहीं करता। परन्तु यदि उसने मुझे कुछ लिखा तो तुम्हें अवश्य सूचित करूँगा।

सविता ने एक लम्बी साँस ली। पुलक का मुस्कराता हुआ मुँह और उसका उछलना-कूदना याद आते ही वह शोकाकुल हो उठी। पुलक उसके लिए पराया था! इस पराये घर में जो वह पड़ी थी उसके लिए भी वह पराया था! कल्पना के चित्र पर रंग फैलाकर सविता काशीवास का चित्र देखने लगी। कैसा लगता है वह चित्र? क्या वह मनोहर है? निर्धन ब्राह्मण का आडम्बर-हीन घर था। वहाँ भी हरएक बात बहुत सीधी थी, बहुत सादी थी। उस सरल और आडम्बरहीन जीवन का चित्र सविता के हृदय-पटल पर उदित हो आया। क्या वह चित्र अच्छा नहीं था?

सविता ने सोचा कि इस सुख और ऐश्वर्य्य की केंचुल बदलने पर तो कम से कम कुछ दिन तक शान्ति-पूर्वक समय व्यतीत किया जा सकेगा। साथ ही उसके मन में यह बात भी आई कि यह सुख-शान्ति है ही कितने दिन के लिए। फिर तो लौट कर आना पड़ेगा यहीं!

ज़रा ही देर के बाद सविता के मन में फिर यह बात आई—यदि ऐसी कोई परिस्थिति आ जाय और लौट कर मैं न आ सकूँ तो क्या अच्छा न होगा? इस परिवार में आकर मैंने जो हानि पहुँचाई है वह भी तो इस प्रकार पूर्ण हो सकेगी। मेरे स्थान पर किसी और को ले आकर स्वामी सुखी हो सकेंगे। सम्भव है कि वह उनकी उपयुक्त स्त्री हो सके।

सविता अपने अभाव में स्वामी के जिस प्रकार के सुख की कल्पना कर रही थी, उस प्रकार का सुख तो उसके जीवनकाल में भी उन्हें मिल सकता था। वह कोई अधिकार तो चाहती नहीं थी। भविष्य में भी उसे अधिकार-लिप्सा होने की कोई सम्भावना नहीं थी। दूसरा विवाह करने की जो बात थी वह तो वे उस समय भी प्रसन्नतापूर्वक कर सकते थे। परन्तु उन्होंने वैसा किया नहीं। यह अवश्य था कि आज-कल वे निर्लज्जतापूर्ण वाक्यों से उसका कठोर उपहास करके उसकी अन्तरात्मा को दुखी करने में ही तृप्ति का अनुभव किया करते हैं।

हाय रे! इसका बदला क्या सविता भी नहीं ले सकती थी? ले सकती थी। परन्तु यह सारी दुर्दशा वह मस्तक झुकाये हुए क्यों सहन कर लिया करती थी? विद्रोह के झकोरे के कारण मस्तक में आग जल उठने पर भी उसे वह हँसी से दबा क्यों दिया करती थी? क्षण-मात्र के लिए भी अपने अन्तस्तल में वह जिस ज्वार का अनुभव किया करती थी—वे लहरें किसकी थीं? इन लहरों में ही पड़कर तो संसार की समस्त व्यर्थता तीव्र वेग से बह जाती थी!

अन्यायी, हृदयहीन पाषाण के रूप में जिसे वह समझना चाहती थी वह विष ही अन्तःकरण के बाष्प से मधु होकर चू पड़ता था, सविता के मन को मधुमय कर दिया करता था।

सविता सोच रही थी कि पुलक अब यहाँ नहीं है, इससे मेरे जाने में किसी प्रकार की बाधा नहीं है। अब उसे मालूम हुआ कि उसकी धारणा पूर्णरूप से सत्य नहीं थी।

जाल लगा कर यह गृहस्थी उसे सिर से लेकर पैर तक जकड़ कर बाँधे हुए है।

गोधी के साथ में आकर सविता के नाना जी ने उसे पुकारा और कहा कि तुम्हारे श्वशुर से बातचीत हो गई है। अभी मैं उन्हीं के पास से आ रहा हूँ। कल साँझ की गाड़ी से चलना होगा। तुझे यदि कुछ प्रबन्ध करना हो तो कर रखना।

सविता ने कहा—तो आप शायद घर जा रहे हैं?

"हाँ! किन्तु कल ठीक समय पर आकर तुझे ले चलूँगा। बैठना न पड़े। कुछ खा-पी लेना।"

"अच्छी बात है। किन्तु क्या आप अभी ही घर जा रहे हैं?"

"विलम्ब करने से कोई लाभ तो होगा नहीं, विशेषतः ऐसी परिस्थिति में जब कि वहाँ दस आदमियों से मिलना-जुलना है। इससे इसी समय चला जा रहा हूँ।"

सविता के नाना जी की जन्मभूमि वहाँ से केवल दो कोस की दूरी पर थी। घोड़ा-गाड़ी से ही वहाँ आना-जाना होता था। सविता से भेंट करने के बाद ही वे अपने गाँव चले गये।

काशी में आने पर भी वे अपनी जन्मभूमि की ममता नहीं छोड़ सके। काशी जी में वे इस लालसा से पड़े थे कि यहाँ यदि मृत्यु हो गई तो मैं सीधे शिवलोक को चला जाऊँगा। परन्तु रह रह कर उन्हें जन्मभूमि की शस्य-श्यामल गोद भी याद आ जाया करती। उस समय वे आनन्द से विह्वल हो उठते और वहाँ पहुँचने के लिए हृदय व्याकुल हो उठता।

सविता के नाना जी गाँव में जाकर जब खड़े हुए तब उन्हें वहाँ का एक-एक तृण अमूल्य निधि-सा मालूम पड़ने लगा।

फूस से छाया हुआ एकमंजिला मकान था। उसी में निवास करते हुए उनके चार पुरुष अन्त में स्वर्गगामी हुए थे। उनकी भी ऐसी ही इच्छा थी। परन्तु एकमात्र विधवा कन्या का आग्रह ही उन्हें ठेल कर काशी ले गया था। वे मन ही मन सोचा करते कि देहत्याग करना तो अनिवार्य है। फिर भला गृहत्याग करने में ही इतना मोह क्यों मालूम पड़ रहा है? इस प्रकार के मोह को प्रश्रय न देना ही अच्छा है।

सविता के नाना जी पत्थर के बने हुए सुविशाल भवनों से युक्त पवित्रतम पुरी काशी के वक्ष पर बैठ कर भी गङ्गातट पर बसे हुए अपने छोटे से गाँव को समस्त देश का मुकुट समझ कर बहुधा गर्व किया करते थे।

दूसरे दिन सविता जानेवाली थी। शुक्ल पक्ष की रात्रि थी। परन्तु आकाश पर मोटे मेघ का आवरण पड़ा हुआ था, इससे चन्द्रमा का शुभ्र प्रकाश धुँधला पड़ गया था।

हाहा करके पवन चल रहा था। बन्द कमरे के भीतर से भी वह इस प्रकार सुनाई पड़ रहा था, मानो दीर्घ काल के विरह से व्याकुल होकर कोई रो रहा है। दक्षिण की ओर के बरामदे में टब में जो खिले हुए पौधे सजाये हुए थे उनकी डालियाँ और पत्ते पवन के वेग से झकोरे खा-खाकर सर्दी के ऊपर गिर रहे थे।

उस दिन सूर्य्यास्त के साथ ही साथ प्रगाढ़ निस्तब्धता चारों ओर व्याप्त हो गई थी। जन-मानव एकदम शान्त थे, कहीं से किसी प्रकार का हास्य-कलरव, किसी प्रकार का कोलाहल नहीं सुनाई पड़ रहा था। सभी आदमी अपने अपने घर के एकान्त कोने में आश्रय लेकर तूफ़ान और पानी की बूँदों से आत्मरक्षा कर रहे थे। बड़ी देर तक बन्द कमरे के भीतर रहने के कारण सविता का दम घुटने लगा था। उठकर जैसे ही उसने खिड़की खोली, वायु का एक झकोरा पानी की बौछार के साथ आया और उसके सामने के बालों को भिगो दिया। दो क़दम पीछे हट कर वह खिड़की बन्द करने ही जा रही थी कि एकाएक उसके मन में आया, अब इस कमरे में किसे सर्दी लगने का भय है, पुलक तो यहाँ है नहीं, अब खिड़की बन्द करने की क्या आवश्यकता है? खुली ही न रहे खिड़की! कमरे में थोड़ी-बहुत बौछार आवेगी अवश्य, परन्तु उससे वैसी हानि ही क्या होगी?

१—बृहत्तर भारत—लेखक, श्रीयुत चन्द्रगुप्त वेदालंकार और प्रकाशक, मुख्याधिष्ठाता, गुरुकुल कांगड़ी हैं। सजिल्द और सचित्र पुस्तक का मूल्य ४॥।) है। पृष्ठ-संख्या ४७८ है।

इस सचित्र पुस्तक में लेखक महोदय ने चीनी यात्रियों के उल्लेखों, संस्कृत के पुराने ग्रन्थों, ताम्रपत्रों और पुरातत्त्व की खोजों, और इस विषय पर डच और फ्रेंच लेखकों के आधार पर लिखी गई अँगरेजी पुस्तकों से संग्रह करके यह विवरण देने का प्रयत्न किया है कि बौद्धकाल में और उसके पश्चात् भारतेतर देशों में, मुख्यतः लंका, खोतन, चीन, कोरिया, जापान, तिब्बत, अरब, कम्बोज, चम्पा, स्याम और पूर्वी द्वीप-समूह में भारतीय संस्कृति किस प्रकार फैली थी और इन देशों का भारत से किस प्रकार ऐतिहासिक व सांस्कृतिक सम्बन्ध स्थापित हुआ था। पुस्तक की शैली सरल और अत्यन्त रोचक है। अनेक चित्रों और मानचित्रों ने सुन्दरता और उपयोगिता को बढ़ा दिया है। इतिहास और पुरातत्त्व में दिलचस्पी रखनेवालों के निकट पुस्तक संग्रहणीय है।

२—चन्द्रगुप्त मौर्य और एलेग्ज़ेंडर की भारत में पराजय—लेखक, प्रोफ़ेसर हरिश्चन्द्र सेठ, एम० ए०, पी० एच० डी० (लन्दन) और सेठ कैलाशचन्द्र, साहित्य-रत्न हैं। प्रकाशक, राज पब्लिशिंग हाउस, बुलन्दशहर हैं। पृष्ठ-संख्या १९२ और मूल्य १) है।

यह पुस्तक इसी विषय पर लिखे गये लेखक महोदय के कुछ अँगरेज़ी लेखों के हिन्दी-अनुवादों का संग्रह है। इसमें प्रमाण देते हुए यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया है कि प्रसिद्ध विजेता सिकन्दर पोरस से हारकर भारत से लौटा था तथा सिकन्दर ने अपनी ओर से पोरस से सन्धि का प्रस्ताव किया था। और यह भी कि, मुद्राराक्षस का पर्वतक और यूनानियों का पोरस एक ही व्यक्ति था। इन लेखों से मौर्यकालीन भारत के इतिहास पर एक नया प्रकाश पड़ता है और ऐतिहासिक चिन्ता के लिए एक नया दृष्टिकोण मिलता है जिससे सहमत और असहमत होना विद्वानों के लिए साधारण बात है। इतिहास के पंडितों व विद्यार्थियों के निकट पुस्तक विचारणीय व मननीय है।

३—योग के आधार—मूललेखक, श्रीयुत अरविन्द घोष हैं। अनुवादक, श्रीयुत मदनलाल गाडोदिया हैं। प्रकाशक, श्रीअरविन्द-ग्रन्थमाला, पांडीचेरी है। २६९ पृष्ठ की पुस्तक का मूल्य २) है।

अरविन्द बाबू भारत के ही नहीं, संसार के प्रख्यात योगियों में से हैं। उनके योग-सम्बन्धी प्रयोगों और साधनाओं की काफ़ी चर्चा है। हज़ारों उनके शिष्य हैं। अरविन्द बाबू और इन शिष्यों में योगसम्बन्धी विषयों पर पत्र-व्यवहार द्वारा चर्चा होती रहती है। शिष्यगण शंकायें करते हैं और योगिराज जी उनका समाधान। इस शंका-समाधान की चर्चा में साधना-सम्बन्धी कई गूढ़ गुत्थियाँ सुलझ जाती हैं।

अरविन्द बाबू के ऐसे ही पत्रों में से साधना-सम्बन्धी बातों को छाँट-छाँटकर प्रस्तुत पुस्तक के रूप में सजा दिया गया है। प्रारम्भ में मन से सम्बन्धित विकारों को दबाने के लिए स्थिरता, शान्ति और समता को योगशास्त्र-सम्मत व्याख्या की गई है और मन में इन गुणों को लाने के लिए साधन बतलाये गये हैं। दूसरे प्रकरण में श्रद्धा, अभीप्सा और आत्म-समर्पण की व्याख्या है। तीसरे प्रकरण में साधना-सम्बन्धी कठिनाइयों और चौथे में इच्छा, आहार और कामवासना पर प्रकाश डाला गया है। पाँचवें में भौतिक चेतना, अवचेतना, निद्रा-स्वप्न और रोग का विवेचन किया है। इस प्रकार साधना-सम्बन्धित मुख्य-मुख्य विषयों की चर्चा इसमें आ गई है।

शैली सरल और रोचक है। योग के विषय में दिलचस्पी रखनेवालों के लिए पुस्तक पठनीय, उपादेय व संग्रहणीय है।

४—अन्तर्ज्वाला—लेखक, श्री देवीदयाल चतुर्वेदी 'मस्त' हैं। प्रकाशक, साहित्य प्रेस, जबलपुर है। मूल्य १) व पृष्ठ-संख्या १७५ है।

'अन्तर्ज्वाला' मस्त जी की ९ कहानियों का संग्रह है। ये कहानियाँ मनोवैज्ञानिक सत्य के आधार पर लिखी गई हैं। लेखक महोदय पात्रों का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण करने में सफल हुए हैं। चन्द मिनटों में ही प्रत्येक पात्र का हमारे हृदय के साथ सम्बन्ध स्थापित हो जाता है; हम उनके सुख से सुखी और दुःख में दुःखी हो उठते हैं। कलाकार की यही सबसे बड़ी सफलता है। 'अमावस' इनमें सम्भवतः सर्वश्रेष्ठ कहानी है जिसमें दो हृदयों का द्वन्द्व है। 'रजनी' और 'चन्द्र' दोनों परस्पर प्रेम करते थे, परन्तु दुर्दैव की करामात के कारण उनका सम्बन्ध अविच्छिन्न न रह सका। रजनी का विवाह कृष्णप्रसाद आई० सी० एस० से हो गया और चन्द्र ने सत्याग्रह-संग्राम में प्रवेश किया। कृष्णप्रसाद को कर्तव्य से बाधित होकर चन्द्र को कारावास का दण्ड देना पड़ा। रजनी अब चन्द्र को अपना भाई समझती थी। उनका प्रेम पवित्र था। चन्द्र जेल में था तभी राखी का त्योहार आया। रजनी राखी का थाल सजा जेल में चन्द्र से मिलने के लिए गई पर उसके पहुँचने के पहले ही चन्द्र इस संसार से कूच कर गया था। इस प्रकार कहानी के अन्त में कलाकार ने वेदना की सृष्टि की है। जिससे कहानी और भी अधिक कलात्मक हो गई है। वेदना के अभाव में कहानी भी चिरप्रभावोत्पादक नहीं हो सकती थी।

'मस्त' जी की दूसरी सफलता उनके कथोपकथन की अपनी शैली में है। सभी कहानियों के कथोपकथन का आधार स्वाभाविक, वाक्यविन्यास सुन्दर तथा शैली रोचक है। *नीलम मीरा से पूछती है—*

'मेरे साथ चलोगी?'

'कहाँ बहिन?'

'श्मशान'!

'श्मशान! और इतनी रात बीते?'

'तुझे डर लगता है मीरा! इस अंधकार में और अकेली ही जाना चाहती हूँ मीरा, तभी तो तुझसे कह रही हूँ!'

'पर वहाँ जाकर करोगी क्या?'

'छोटे भैया को देखूँगी।'

और सचमुच नीलम क़ब्र से अपने भैया की लाश निकाल कर उससे लिपट गई।

'सफ़र' 'उलझन' और 'क़िस्मत' भी उच्च कोटि की कहानियाँ हैं। लेखक महोदय अपने कवित्व को कहानियों में छिपा सकने में असमर्थ हुए हैं। परन्तु उससे कहानी में कुछ लालित्य ही आ गया है, हानि नहीं हुई।

५—**प्रलापिनी**—लेखक, पंडित हीरालाल शर्मा 'नीरव' व प्रकाशक, पंडित प्रभुदयाल शर्मा, इटावा हैं। मूल्य ॥) और पृष्ठ-संख्या ७६ है। पुस्तक सजिल्द है।

'प्रलापिनी' कवि के विरहाकुल हृदय का प्रलाप है। पागल हृदय के प्रलाप का अस्पष्ट तथा दुर्बोध होना स्वाभाविक ही है इसी लिए कवि की शिकायत है कि—

मैं भग्न आत्म-विस्मृति में, कह गया समस्त कहानी।
वह प्रेमपहेली किसने कब भला कहाँ पहचानी॥

फिर भी कवि आशावादी है। वह समझता है कि उसकी 'शान्त कहानी' संसार के कहने और सुनने का विषय होगी। इसी लिए वह कहता है—

फिर लगी सुनाने जग को, जब मेरी शान्त कहानी।
आँसू का हृदय बनाना, जीवन की पीड़ा वाणी॥

कवि के इस अनुरोध से पाठक के हृदय में सहानुभूति अवश्य उत्पन्न हो जाती है। परन्तु फिर भी संसार कवि की कहानी का उतना सम्मान नहीं करता जितना उसे आशा थी। इसी लिए कवि सोचता है कि 'क्यों कर दी व्यक्त अचानक अपनी नैराश्य कहानी।' कवि अपनी कहानी कहता क्यों है, इसके सम्बन्ध में वह कहता है—

इन जलती आशाओं पर यदि पड़ जाता कुछ पानी।
रहता न शेष कहने को हो जाती अन्त कहानी॥

प्रलापिनी का यही इतिहास है। पुनरुक्ति और शब्ददोष बरसाती मेंढक की भाँति सर्वत्र बिखरे हैं। 'जागृतिपन' 'स्वर्णिक' 'छिद्य' आदि कुछ नई टकसाल के गढ़े शब्द भी मिल जाते हैं।

६—**औपनिवेशिक स्वराज्य या विधान-परिषद्**—लेखक, *श्री रामनारायण यादवेन्दु बी० ए०, एल-एल० बी०,* हैं। प्रकाशक, नवयुग साहित्य-निकेतन; राजामंडी, आगरा हैं। मूल्य ॥=) व पृष्ठ-संख्या ७६ है।

आज दिन भारत में औपनिवेशिक स्वराज्य और विधान-परिषद् शब्दों का प्रयोग बराबर होता आ रहा

है। परन्तु औपनिवेशिक स्वराज्य और विधान-परिषद् या पूर्ण स्वाधीनता क्या वस्तुएँ हैं, और उनमें परस्पर क्या सम्बन्ध है, यह सम्भवतः केवल उच्च कोटि के शिक्षित लोगों को ही ज्ञात होगा। साधारणतः लोग वेस्टमिन्स्टर को श्रेणी के औपनिवेशिक स्वराज्य को ही पूर्ण स्वतंत्रता—या कम से कम पूर्ण स्वतंत्रता के बराबर—समझते चले आये हैं। इतना ही नहीं, यह भूल देश के कुछ नेता भी करते हैं। लेखक महोदय ने प्रस्तुत पुस्तक में यही बताने का प्रयत्न किया है कि औपनिवेशिक स्वराज्य और पूर्ण स्वतंत्रता एक ही वस्तु नहीं वरन् भिन्न भिन्न बातें हैं। विधान-परिषद् क्या है और उसका पूर्ण स्वतंत्रता से क्या सम्बन्ध है, इन्हीं प्रश्नों पर इस पुस्तक में प्रकाश डाला है। यादवेन्दु जी हिन्दी के प्रसिद्ध वैधानिक विद्वान् हैं। उन्होंने अपने विचारों को नियमन तथा रेखांकन द्वारा प्रकट किया है जिससे साधारण व्यक्ति भी इन गहन शब्दों के महत्त्व को भले प्रकार समझ सकता है। परिशिष्ट में भारतीय विधान-परिषद् (श्री वेजउडवेन) आत्म-निर्णय अधिकार (श्री एच० एन० ब्रेलसफ़ोर्ड) और भारतीय माँग पर ब्रिटेन का लोकमत (सर स्टेफर्ड क्रिप्स) के विचारों को उद्धृत करके भले प्रकार पुस्तक के विषय का प्रतिपादन किया गया है। सम्पूर्ण पुस्तक एक वैधानिक निबन्ध के रूप में है। पारिभाषिक विषय होते हुए भी पुस्तक की भाषा अत्यन्त सरल तथा मुहावरेदार है। प्रत्येक भारतीय को यह पुस्तक पढ़नी चाहिए।

७—**भारत का दलित समाज**—लेखक, श्री रामनारायण यादवेन्दु बी० ए०, एल-एल० बी० हैं; प्रकाशक चाँद कार्यालय, इलाहाबाद है। मूल्य १॥), पृष्ठ-संख्या १५८ है। छपाई-सफ़ाई अच्छी है।

भारत में इस समय दलितवर्ग की समस्या प्रमुख है। दलितों की समस्या अब केवल धार्मिक या सामाजिक ही नहीं रह गई बल्कि उसने अब राजनैतिक रूप धारण कर लिया है। सन् १९३२ में 'साम्प्रदायिक निर्णय' द्वारा अछूत वर्ग को भी विशेष निर्वाचन का अधिकार दिया गया था। परन्तु महात्मा गांधी ने इस पृथक् निर्वाचन का विरोध किया था। तब से बराबर सम्पूर्ण देश में दलित वर्ग की समस्या ने विशेष महत्त्व प्राप्त कर लिया है। इस समय इस समस्या के अनेक पहलू उपस्थित हो गये हैं जिन पर विचार करना प्रत्येक राजनैतिक नेता का कर्तव्य हो गया है। प्रस्तुत पुस्तक के लेखक महोदय राजनैतिक समस्याओं के विचारक हैं। प्रत्येक समस्या के सम्बन्ध में उनका अपना मौलिक दृष्टिकोण है। इस पुस्तक में उन्होंने दलित समस्या के प्रत्येक पहलू—धार्मिक तथा राजनैतिक—पर विचार प्रकट किये हैं। अधिक महत्त्वपूर्ण भाग पुस्तक का उत्तरार्ध है जिसमें दलितों की राजनैतिक समस्या पर विचार प्रकट किये गये हैं। 'पूना पैक्ट', 'हरिजन आन्दोलन', 'प्रान्तीय सरकारों की नीति', 'सरकारी नौकरियों में स्थान' आदि अध्याय महत्त्वपूर्ण हैं। यद्यपि लेखक महोदय के सभी राजनैतिक विचारों से हम सहमत नहीं हैं—जो कि समस्या के विस्तार और महत्त्व को देखते हुए स्वाभाविक है—परन्तु फिर भी पुस्तक की उपयोगिता से इनकार नहीं किया जा सकता। सारांश में पुस्तक पठनीय होने के साथ ही साथ विचारणीय भी है।

८—**अपराधी**—लेखक, श्री पृथ्वीनाथ शर्मा बी० ए० (आनर्स) एल-एल० बी० हैं। प्रकाशक, हिन्दी-भवन, लाहौर है। मूल्य ॥) पृष्ठ-संख्या ७१ है।

हिन्दी में उच्च कोटि के तथा रंगमंच के उपयुक्त कम नाटक हैं। जो नाटक हैं भी वे या तो केवल साहित्यिक हैं, या ड्रामा कम्पनियों के लिए लिखे गये हैं। श्रीयुत पृथ्वीनाथ शर्मा हिन्दी के प्रसिद्ध नाटककार हैं। उनके बहुत-से नाटक अब तक प्रकाशित हो चुके हैं। प्रस्तुत नाटक ३ अंकों की एक छोटी-सी रचना है। नायक अशोक एक आदर्शवादी युवक है। प्रतिभावान् होते हुए भी वह आई० सी० एस० की परीक्षा के लिए दरख्वास्त नहीं देता। और जब चाचा जी से रुष्ट होकर घर से बाहर चला जाता है तब वह अपने स्वाभिमान के कारण लीला तथा रेणु के यहाँ भी नहीं जाता। जब उसे चोर के धोखे में पुलिस गिरफ़्तार कर लेती है तब भी वह अपने को बचाने के लिए कोई क़ैफ़ियत नहीं देता। संक्षेप में नाटक का प्रत्येक पात्र त्याग की भावना से प्रेरित है। 'हम सबको कभी कभी बलिदान करना ही होता है। और शायद जो आनन्द बलिदान में है वह इष्ट-सिद्धि में नहीं।' यही सम्पूर्ण नाटक का मूलमंत्र (Key note) है। यद्यपि त्याग के इस आदर्श का निर्वाह करने से नाटक

के पात्र कहीं कहीं सीमा का अतिक्रमण कर जाते हैं परन्तु फिर भी अस्वाभाविकता के क्षेत्र से वे काफ़ी दूर रहते हैं। पुस्तक की भाषा साधारण बोल-चाल की है। शैली चित्ताकर्षक तथा भावुकतापूर्ण है। नाटक रंग-मंच पर खेलने योग्य है।

९—**साहित्यकला**—लेखक, श्री विनयमोहन शर्मा एम० ए०, एल-एल० बी० हैं। प्रकाशक, नवलकिशोर प्रेस, बुकडिपो, हजरतगंज, लखनऊ हैं। मूल्य १।) और पृष्ठ-संख्या १२४ है।

जैसा कि पुस्तक के नाम से ही प्रकट है पुस्तक में साहित्य-कला पर विवेचन किया गया है। 'साहित्य में सुख-दुःख,' 'साहित्य का व्यक्तीकरण', 'कलाकार की अनुभूति', 'साहित्य में भावावेश', 'साहित्य में मौलिकता' 'कला में जातीयता' और 'काव्यपरिचय' शीर्षकों के अन्तर्गत लेखक महोदय ने साहित्य का विवेचन तात्त्विक ढंग से किया है। नियमन का अभाव होने के कारण इन निबंधों में सूत्र का अभाव मालूम होता है परन्तु फिर भी पुस्तक को आद्योपान्त पढ़ जाने के बाद साहित्य की रूप-रेखा विद्यार्थी के दिमाग़ पर खिंच जाती है। विचारधारा का आधार पश्चिमीय—विशेषकर अँगरेज़ी-साहित्य है परन्तु उसे भारतीयता के ढाँचे में ढालने का पूरा प्रयत्न किया गया है। शैली अपनी ख़ास है; रोचकता तथा मनोरंजन ही जिसका आधार है। भाषा सरल बामुहाविरा और परिमार्जित है। अन्त में 'रवि बाबू की षोडशी, में कहानीकला,' 'कहानीकार प्रसाद—आँधी में', 'नाटककार-प्रसाद—चन्द्रगुप्त में,' लेखों का पुस्तक के साथ विषय सम्बन्ध न होने के कारण उनका होना पाठक को आश्चर्य में अवश्य डाल सकता है।

१०—**विद्रोही**—लेखक श्रीयुत 'इन्दु' हैं। प्रकाशक, श्रीयुत वी० एल० श्रीवास्तव, लाल पुस्तकमाला, देवरिया गोरखपुर हैं। मूल्य ।), पृष्ठ-संख्या ५० है।

'इन्दु' जी की कविता में यौवन का एक झंझावात है। उनकी कविता की एक झलक से ही उनके कथन की सत्यता प्रकट हो जाती है। उनका हृदय वर्तमान समाज, गुत्थियों और परिस्थितियों से विद्रोह कर उठा है। इन्हीं विद्रोहात्मक भावनाओं को कवि ने छन्दोमयी वाणी में व्यक्त करने का प्रयत्न किया है। वे कहते हैं—

मैं हूँ, झंझा घोर, घोर में प्रलय बवंडर;
पाता पथ पर जिसे, चूर करता हूँ सत्वर।
मुक्त-नृत्य-रत-मत्त सतत निज ताल-ताल पर;
जीवन का आनन्द—मुक्त में—मुक्त सृष्टि भर।
महानाश साकार स्वयं भैरव उच्छृङ्खल,
मम चरणों से छिन्न भिन्न जग बन्धन शृङ्खल।

'मुक्त में मुक्त सृष्टि भर' यही कवि का जीवन-संदेश (lifes mission) है उसकी कविताओं में उत्साह की धारा परिप्लावित है। पर हाँ, 'इन्दु' जी का वीर-रस पुराने कवियों—भूषण और लाल—का वीर-रस नहीं है। उसमें आत्मानुभव विशेष मात्रा में है। हर हर शंकर!, सेनानी, विद्रोही आदि कविताओं में कवि के दिल की आग फूट कर निकली पड़ती है। लेखक महोदय का सम्भवतः यह प्रथम प्रयास है अतएव वे प्रोत्साहन के पात्र हैं। जिस शैली को उन्होंने ग्रहण किया है उसकी इस समय देश को छायावाद के निराकार पूजक कवियों की शैली से कहीं अधिक आवश्यकता है।

कवि का मिशन यद्यपि बहुत ऊँचा है परन्तु उसकी कवितायें उच्च कोटि की नहीं हैं। लगभग सभी कविताओं में शैथिल्य, पुनरुक्ति, तथा कहीं कहीं तो छन्दोभंग दोष बहुत ही खटकता है। इन सब दोषों की दलील कवि के पास एक है। वह यह कि वह मुक्त है, सारी सृष्टि मुक्त है, फिर यह बन्धन कैसा? परन्तु फिर भी हम इसके लिए कविकर्मा की प्रशंसा नहीं कर सकते।

११—**तारिका**—लेखक, पंडित ओंकारनाथ मिश्र 'स्वदेश' हैं। प्रकाशक, श्री प्यारेलाल तिवारी लखीमपुर खीरी हैं। मूल्य ॥) है। पृष्ठ-संख्या ६४ है।

'तारिका' की टिमटिमाहट केवल अन्धकार में ही सार्थक हो सकती है। इस युग में हिन्दी-कविता जिस विकास को प्राप्त हो चुकी है, वहाँ 'तारिका' के कवि की प्रतिभा व्यर्थ सिद्ध होती है। 'तारिका' का कवि किस युग का है यह बताना कठिन हो जाता है जब हम उसकी कविता की विभिन्न शैलियों तथा भाषा पर दृष्टिपात करते हैं। 'अँगना में विहाल परी अँगना कलपैं कल ना परैं एक घरी।' पढ़कर हम उसे रीतिकाल का शृंगारी कवि समझने को बाध्य होते हैं, परन्तु 'कविता मैं किया करता उनकी जिनके प्रिय देश पै प्राण गये।' पढ़ कर उसे २०वीं

शताब्दी का राष्ट्रीय समझने लग जाते हैं। भाषा भी कहीं ब्रज है, कहीं खड़ी बोली और कहीं मिश्रित। कवि ने यदि अपनी प्रतिभा का उपयोग साहित्य के किसी अन्य अंग की पूर्ति करने में किया होता तो सम्भवतः अधिक उचित होता।

पृष्ठ-संख्या तथा पुस्तक की उपयोगिता को देखते हुए मूल्य कुछ अधिक प्रतीत होता है।

१२—अभिलाषा—लेखक, श्री धर्मपाल रुस्तगी हैं। मुद्रक जयन्ती प्रेस, देहली है। मूल्य ।) व पृष्ठ-संख्या १३८ है।

रुस्तगी जी की क़लम से लिखा गया यह प्रथम उपन्यास है। प्रथम प्रयास होने के कारण त्रुटियाँ होना स्वाभाविक है ही। इसका नायक रामकृपाल एक ऐसा युवक है जो दूसरों का उपकार करने के लिए, धर्म के ठेकेदारों का विरोध करने के लिए, बराबर संघर्ष करता है। उसी के साथ साथ चलती है नारीत्व की सजीव प्रतिमा सुशीला। उसके जीवन में हिन्दू-मर्यादा तथा आदर्श का आगार है। अन्त में रामकृपाल को सफलता प्राप्त होती है और वह लोकप्रिय हो जाता है। सुशीला शिक्षा-विभाग की इंचार्ज होती है। रामकृपाल अन्त में विमला के साथ विवाह करके सफल जीवन व्यतीत करता है। उपन्यास में पात्रों का अधिक जमघट नहीं है यही विशेषता है। घटनाक्रम सरलता तथा स्वाभाविकता के साथ चलता है।

पुस्तक साधारण कोटि की है। भाषा बोल-चाल की है। कथोपकथन साधारण हैं। शैथिल्य भी प्रायः दिखाई देती है। हम लेखक से भविष्य में अधिक अच्छी रचनाओं की आशा कर सकते हैं।

—अनन्तप्रसाद विद्यार्थी, बी० ए०

१३—सफ़र—लेखक, श्रीयुत पहाड़ी और प्रकाशक, सरस्वती प्रकाशन मन्दिर, जार्जटाउन, इलाहाबाद हैं। पृष्ठ-संख्या २७१ और मूल्य १॥) है।

इस संग्रह में श्रीयुत पहाड़ी की चुनी हुई पन्द्रह कहानियाँ हैं।

लगभग समस्त कहानियों का विषय निराश प्रेम है, और उनके प्रधान पात्र और पात्रियाँ मानसिक और शारीरिक क्षय के रोगी हैं। कहानियाँ मनोविश्लेषण के आधार पर वर्णनात्मक शैली में लिखी गई हैं।

'वह शिव कुँअरि ही थी' शीर्षक कहानी का नायक कहता है—'ज़रा सोचना शुरू किया कि घटनायें फैल-फैल जाती हैं। × × × घंटों सोचना सीख गया हूँ। क्या और किस बात के लिए यह सब होता है, अनुमान से परे लगता है। उदासी हर वक्त घेरे रहती है। अकुलाहट और छटपटाहट बढ़ती जा रही है। कभी दिल करता है, ख़ूब चिल्लाऊँ,—रोऊँ। उन पागलों की तरह हाथ-पाँव मारूँ। लेकिन टटोलना ज़रूर सीखा है, आगे क़दम नहीं बढ़ाया। कुछ महीने ही यहाँ हुए हैं। रोज़ ही महसूस करता हूँ कि अब दिल की बेक़रारी अग्राह्य होती जा रही है। अकारण अपने को कमज़ोर पाता हूँ। सारी ज़िन्दादिली और उत्साह पिघल चुका है।' लगभग सभी कहानियों के प्रधान पात्रों का यही मनोविज्ञान है। सब बेबस हैं—समाज के आगे, दुनिया के आगे, दूसरे की निठुरता के आगे और दैव के आगे। इसी बेबसी में सोचते हैं। सोचते सोचते उनके मस्तिष्क के स्नायु ढीले पड़ जाते हैं, शरीर शिथिल हो जाता है और अन्त को उनका पार्थिव शरीर काल के निर्दय पृष्ठ पर एक अमिट छाप छोड़ कर विलीन हो जाता है। यही अमिट छाप श्री पहाड़ी की कहानियों की जान है। घटनाओं की विविधता उनमें न मिलेगी—घटनायें तो जैसे उनकी पालतू-सी हैं। पात्रों की विविधता भी उनमें नहीं है, क्योंकि लगभग सभी पात्र घट-बढ़ एक ही श्रेणी के हैं। शैली की विविधता भी नहीं मिल सकती, क्योंकि मनस्तत्त्व के विश्लेषण में—मानवीय मस्तिष्क की पेचीदगियों और गहराइयों को नापने में वर्णनात्मकता का प्राधान्य अनिवार्य है। इस वर्णन की कड़ियों को भी लेखक ने मनोवैज्ञानिक अध्ययन के अनुरोध से कहीं कहीं तोड़ दिया है, यद्यपि उसमें कहीं विशृंखलता नहीं आने पाई है। देश-काल की सीमा भी इन कहानियों को बहुत हलके-से छूती है। यद्यपि अधिकांश में प्रेम की निराशा समाज की रूढ़ियों से पैदा हुई है, फिर भी लेखक के सामने समाज उस ढंग से नहीं है जिस ढंग से किसी समाज-सुधारक के सामने होता है। ऊपर गिनाई गई चन्द कमियों की पूर्ति वास्तव में कहानियों के इसी कलात्मक गुण से होती है। उनकी अपील युनिवर्सल है—विश्व-मानव के हृदय को छूनेवाली है।

फिर भी टी० बी० के मरीज़ों की ये कहानियाँ कहीं कहीं बेतरह सुस्ती और ऊब से भर गई हैं। लेखक में व्यंग्य का अभाव खटकनेवाली मात्रा तक है; यही कारण है कि कहानियों के कठोर और गम्भीर वातावरण का भारीपन उसके हटाये नहीं हटता। शायद वह उसे हटाने का प्रयास भी नहीं करता। मानव के मस्तिष्क की गहराइयों को नापने में वह इतना व्यस्त है कि उसे ध्यान नहीं रहता कि वह कितना मनोविश्लेषण पाठकों के मन पर लाद चुका है और कितना लादना और बाक़ी है। इसी से कहानियों की लम्बाई काफ़ी बढ़ जाती है। संकेत और व्यंजना की जगह व्याख्या ले लेती है। भले ही अनभ्यस्त पाठकों को यह सब रुचिकर न लगे; पर 'कला' के पारखी श्री पहाड़ी जी के प्रयास को अवश्य सराहेंगे। उन्होंने इन कहानियों में काफ़ी अध्ययन भरा है—मस्तिष्क को सोचने का प्रचुर मसाला इकट्ठा किया है। साथ ही उनकी भावुकता और सहृदयता भी काफ़ी विस्तृत है।

इसी भावुकता और सहृदयता के बल पर हम कह सकते हैं कि इन कहानियों में से अधिकांश ऐसी हैं जिनमें न केवल मनोविज्ञान के विद्यार्थी बल्कि साधारण जन भी रस पा सकेंगे। 'वह तसवीर किसकी थी?' में कुतूहल, संशय, संकेत आदि कहानी के गुणों की कमी नहीं है। साथ ही उसमें नारी-जाति की उस प्रकृत-प्रवृत्ति पर प्रकाश डाला गया है जो समाज के गढ़े हुए क़ानूनों के विरुद्ध भले ही हो, है सर्वथा सत्य और शाश्वत। 'एक अध्याय', 'गेंदा', 'वह अँगूठी,' 'वह मिस शिवकुँअर ही थी' आदि कहानियों में हमें एकरसता और उबानेवाली सुस्ती लगभग बिलकुल नहीं मिलती। इनकी भाषा भी चलती हुई और साफ़ है—ख़ास तौर पर 'एक अध्या.' की। वैसे श्री पहाड़ी ने अपनी भाषा को भी एक ख़ास ढर्रे पर ढाला है, जिसमें श्री जैनेन्द्र जी की भाषा की तरह कृत्रिमता के दर्शन हो जाते हैं। एक उदाहरण 'सफ़र' शीर्षक कहानी से देते हैं—

इत्मीनान से बर्थ पर बैठकर दयाल का साथी मैं साबित हुआ। चलती उस गाड़ी में, दयाल, उस युवती और अपने को पाकर मैं परेशान था। ढेर-सी इकट्ठा बातों को निपटा, उसे सौंप देने की ठहराये हुए था।"

"इतने में दयाल एक झकोरे से उठकर मेरे पास आया। बोला था रमेश........।"

यह संग्रह की अन्तिम कहानी है। पर हमें आशा है कि श्री पहाड़ी जी की यह अन्तिम निर्धारित शैली नहीं है।

कुल मिलाकर कहानियाँ पठनीय और मननीय हैं। हिन्दी में यह संग्रह विशिष्ट स्थान प्राप्त करेगा, ऐसी हमें आशा है।

पुस्तक की छपाई-सफ़ाई अच्छी है।

—व्रजेश्वर

१४—**भिक्षु के पत्र**—लेखक, श्री आनन्द कौशल्यायन। प्रकाशक, छात्रहितकारी-पुस्तकमाला, दारागंज, प्रयाग हैं। मूल्य ।।।), पृष्ठ-संख्या १३४ है।

इस पुस्तक में कुल १८ पत्र हैं, जिनमें बौद्धधर्म के सिद्धान्तों का दिग्दर्शन कराया गया है। कौशल्यायन जी प्रसिद्ध बौद्ध भिक्षु हैं तथा उन्होंने बौद्ध-साहित्य-द्वारा हिन्दी की श्रीवृद्धि की है। प्रस्तुत पुस्तक का उद्देश्य बुद्ध-धर्म-सम्बन्धी जिज्ञासायें शान्त करना है। बौद्ध ईश्वर, आत्मा, वेद, वर्णव्यवस्था, पुनर्जन्म आदि मानते हैं कि नहीं? बौद्धधर्म का ज्ञान प्राप्त करने के लिए कौन कौन-सी पुस्तकें पढ़नी चाहिए? हिंसा, मांसाहार, चित्त की स्थिरता आदि के प्रश्नों पर लेखक ने इन पत्रों में बड़ी ही सरल भाषा में प्रकाश डाला है। पुस्तक को रोचक बनाने का पूरा प्रयत्न किया गया है। बौद्धधर्म से स्नेह रखनेवालों के लिए यह पुस्तक प्रारम्भिक पुस्तक का कार्य करेगी। सिद्धान्तों का गूढ़ विवेचन न होने के कारण साधारण पाठक भी इस पुस्तक को पढ़कर बौद्धधर्म की रूप-रेखा से परिचित हो सकता है।

जागृत नारियाँ

स्त्रियों का सत्याग्रह

अखिल भारतीय महिला-कान्फ़रेंस का अधिवेशन पिछले दिनों देहरादून में हुआ था। इस अधिवेशन में सबसे महत्त्वपूर्ण बात जिसकी ओर पठित भारतीयों का ध्यान जाना स्वाभाविक है, यह हुई कि इसकी मनोनीत अध्यक्षा श्रीमती (बेगम) हामिदअली ने अपने भाषण में भारतीय पुरुषों को एक खासी धमकी दी है। आपने कहा है कि यदि पुरुष स्त्रियों को बराबर के अधिकार नहीं देते तो हम (स्त्रियाँ) सत्याग्रह करेंगी। इसमें सन्देह नहीं कि बेगम साहिबा की यह सूझ निहायत बुद्धिमत्तापूर्ण तथा सामयिक है।

जबसे महात्मा गांधी राजनीति में आये हैं, असहयोग, सत्याग्रह और धरना आदि शब्द प्रत्येक भारतवासी की ज़बान पर नाचने लगे हैं। कोई भी धार्मिक, सामाजिक या राजनैतिक आन्दोलन ऐसा नहीं जिसमें इन तीन शब्दों का बोलबाला न सुनाई देता हो। शान्तिप्रिय, निरस्त्र और निर्बल भारतीयों के लिए सचमुच ये ही अस्त्र रह गये हैं, जिनसे कुछ काम निकल सकता है या निकल सका है। इस दशा में बेगम साहब भी सत्याग्रह या असहयोग की बात कहें तो उचित ही है।

[कुमारी मुक्ताबाई सुब्बाराव एम ए० कैम्ब्रिज से वापस आ गई हैं]

महात्मा जी ने एक स्थान पर लिखा है कि राजनैतिक क्षेत्र में असहयोग और सत्याग्रह को लाने से पहले अपने घरेलू मामलों में वे कई बार इनका सफल प्रयोग कर चुके थे। हमारे पारिवारिक मामलों में सचमुच इन अस्त्रों का प्रयोग प्रतिदिन होता आया है—खास कर स्त्रियों को तो इसी अस्त्र का बल रहा है, फिर चाहे उसकी गणना 'सत्याग्रह' में हुई हो या 'तिरिया-हठ' में। पर इसमें सन्देह नहीं कि उनके इस शस्त्र के आगे पुरुषों को सदैव अपने सब अस्त्र-शस्त्र त्यागकर आत्म-समर्पण करने को विवश होना पड़ा है—भले ही वे दशरथ-से वीर और युधिष्ठिर-से धैर्यवान् रहे हों। इस प्रकार पुरुष-जाति ने भले ही इस 'सत्याग्रह' और 'असहयोग' अस्त्र का प्रयोग

करना नया नया सीखा हो, पर स्त्री-जाति का यह पुराना और अमोघ अस्त्र रहा है।

इस बार उसके प्रयोग में एक नवीनता अवश्य है, जैसा कि बेगम साहिबा के वक्तव्य से मालूम होता है। वह यह कि उन्हें इस बार 'असहयोग' का प्रयोग संगठित और सामूहिक रूप से करना है। बेगम साहिबा तथा अन्य महिला-नेत्रियों के नेतृत्व में भारत की महिलायें अपने अपने पतियों के विरुद्ध सत्याग्रह करेंगी—एक शुभ-कार्य के लिए—सभी क्षेत्रों में उनके बराबर अधिकार पाने के लिए। यदि यह सत्याग्रह अच्छे ढंग से चलाया जा सका तो इसमें सन्देह नहीं है कि इसको सफलता वर्षों नहीं, महीनों नहीं और दिनों भी नहीं—कुछ घंटों में ही हो जायगी। स्त्री-जाति शक्ति का प्रतिनिधि है और उसके सामूहिक आग्रह या सत्याग्रह को सहन करने की क्षमता पुरुष-जाति में नहीं है।

पर यह 'सत्याग्रह' किया जायगा किस 'समान अधिकार' के लिए? इसकी कोई स्पष्ट रूप-रेखा बेगम साहिबा ने पेश नहीं की है। कान्फ़रेंस के प्रस्तावों में केवल २ अधिकारों की माँग है—

(१) पुरुषों को बहु-विवाह का अधिकार न रहे और कोई स्त्री ऐसे पुरुष से ब्याह करने को विवश न की जाय जिसके पत्नी मौजूद हो।

(२) लड़कियों को भी विरासत के अधिकार प्राप्त हों।

यदि 'समान-अधिकार' की माँग यही है तो इसमें सन्देह नहीं कि वह शीघ्र मिल जायगा। इन प्रस्तावों में दी हुई माँगों के औचित्य का समर्थन पुरुषवर्ग बहुत दिनों से करता आ रहा है और वह इसके लिए प्रयत्न भी कर रहा है। शिक्षित पुरुष लेखों व भाषणों-द्वारा बराबर इन माँगों के लिए आन्दोलन कर रहे हैं। अभिप्राय यह है कि इन दो बातों को प्राप्त करने के लिए केवल 'आन्दोलन' की आवश्यकता है और इसी से सफलता मिल जायगी। अपने-अपने घरवालों से 'असहयोग' करने की ज़रूरत न पड़ेगी। और यदि ज़रूरत पड़ेगी ही तो वे उसके लिए तैयार हैं।

परन्तु आन्दोलन करने में एक बात का ध्यान रखना होगा। भारत एक दक़ियानूसी देश है। इसकी ऐसी बहुत-सी पुरानी बातें हैं जिन्हें छोड़ने को वह एकाएक तैयार नहीं होता। विशेषतया जब संस्कृति और रूढ़ियों का

[कुमारी कार्थीबाई अम्मल, कोचीन की प्रसिद्ध वकील हैं]

प्रश्न आता है तब मामला अवश्य अटक जाता है, क्योंकि जनता का प्रबल बहुमत संस्कृति और प्रथाओं के विपरीत चलने को राज़ी नहीं होता। भारतीय समाज में स्त्री और पुरुष के कार्यों में शायद सृष्टि के आरम्भ से ही विभाजन कर दिया गया है; और वह अभी तक वैसा ही चला आता है। सामाजिक अर्थ-व्यवस्था की दृष्टि से यह व्यवस्था बड़ी अच्छी प्रमाणित हुई है। पाश्चात्य देशों में भी अब उसकी उपयोगिता स्वीकार की जाने लगी है। अतः यदि भारतीय स्त्रियाँ जीवन की प्रत्येक गति में पुरुषों की समानता पाने की चेष्टा करेंगी तो यह उनकी भूल होगी। जिन पेशों और पदों पर पुरुष काम करते हैं उन पर काम करना स्त्रियों के लिए कदापि लाभदायक न होगा। मेरी समझ में 'समानता' का अर्थ यह होना चाहिए कि स्त्रियों को अपनी प्रच्छन्न शक्तियों के विकास के लिए पूर्ण सुयोग दिया जाय जिससे वे जीवन के क्षेत्र में अपना उत्तरदायित्व निभाने में पूर्ण समर्थ बन सकें। और इसी के ओर उनका आन्दोलन केन्द्रीभूत होना चाहिए। तभी उनकी कमज़ोरियाँ दूर हो सकेंगी।

—प्रेमलता वर्मा

केशों का सौन्दर्य

स्त्री का एक विशेषण 'सुकेशी' या 'सुकेशिनी' है। इस विशेषण का आधार केशों का सौन्दर्य है। भारतीय नारी के सौन्दर्य में केशों का प्रमुख भाग रहा है। जिस महिला के केश घन-कज्जल और एँड़ीचुम्बी हों उसे ही सुकेशी कहते हैं। हमारे काव्यों में लम्बे, घुंघराले और काले केशों की प्रशंसा की गई है। लम्बे इतने कि पैर छू लें। पवन-प्रताड़ित नदी की लहरों जैसे घुंघराले और काले व घने ऐसे कि उन्हें देखने से मयूरों को बादल उमड़ आने का भ्रम हो जाय। यही भारतीय कवियों-द्वारा केशों की सुन्दरता की कसौटी है।

आधुनिक युग में जब कि शारीरिक सुन्दरता के बढ़ाने में महिलाओं में होड़-सी हो रही है, केशों की सुन्दरता की ओर भी प्रचुर ध्यान दिया जाने लगा है। खाते-पीते घरों की अनेक बहनें रात-दिन चिन्ता में रहती हैं कि किस प्रकार उनकी चोटी नाग की तरह काली चमकीली और गावदुम बन सके। जिन्हें लम्बे केशों का शौक़ नहीं है वे भी अपने केशों को रेशम की तरह मुलायम, चमकीला और मसृण करना चाहती हैं। इसी बहाने से गृहस्थों का कितना रुपया दूकानों में और देश का कितना रुपया विदेशों में जा रहा है, इसका हिसाब लगाना भी कठिन है।

कुछ दिन पहले लोगों का विश्वास था कि सौन्दर्य एक प्रकृति-प्रदत्त वस्तु है। पर आधुनिक विज्ञान ने इसे बहुत अंशों में असत्य साबित कर दिया है। इसमें सन्देह नहीं कि हम अंगों की प्राकृतिक रचना को नहीं बदल सकते, पर उपाय और अभ्यास-द्वारा उनके सौन्दर्य और आकर्षण में आश्चर्यजनक वृद्धि की जा सकती है। केशों के विषय में भी यही सत्य है। केशों की सुन्दरता का पहला आधार शारीरिक स्वास्थ्य है। शरीर में रक्त की कमी होते ही बाल झड़ने लगते हैं। यदि मिजाज में खुश्की हो तो बाल लम्बे नहीं हो पाते। क्लेश, शोक व चिन्ता आदि का भी केशों की बढ़वार पर काफ़ी प्रभाव पड़ता है। खान-पान का भी इससे सीधा सम्बन्ध है। इसके बाद प्रतिदिन की सफ़ाई, कंघी और शिरश्चर्या के मर्दन का नम्बर आता है। खोपड़ी के चर्म की मालिश से उसमें रक्त का संचार अधिक होता है और इससे केशों को शक्ति प्राप्त होती है। इसके बाद केश-तैलों व प्रसाधन के अन्य साधनों की ज़रूरत है। शारीरिक स्वास्थ्य के लिए नियमित दैनिक व्यायाम, ताज़ी हवा, सादा और पौष्टिक भोजन, पर्याप्त निद्रा की आवश्यकता है। बिना इनकी व्यवस्था हुए केशों की सुन्दरता में वृद्धि नहीं हो सकती।

केशों की वृद्धि के लिए सबसे पहले सफ़ाई की आवश्यकता है। केशों को प्रतिदिन धोना चाहिए। कुछ लोगों का कहना है कि अधिक धोने से बाल अधिक झड़ते हैं। पर यह ठीक नहीं है। सफ़ाई रखने से बालों को लाभ ही पहुँचता है, हानि नहीं। जब तक बाल पूर्णतया स्वच्छ न रहें उनको सुन्दर बनाने और बढ़ाने की आशा करनी ही व्यर्थ है।

सूखे केश जल्दी सफ़ेद होने लगते हैं, चिकने अधिक काल तक काले रहते हैं। अतः यह आवश्यक है कि केशों में शक्तिवर्द्धक तैलों का मर्दन काफ़ी किया जाय। बाज़ारों में आज-कल कई प्रकार के केश-तैल मिलते हैं। इनमें कुछ अच्छे भी होते हैं, पर अधिकांश व्यापारिक दृष्टि से बनाये जाते हैं। इन तेलों में सफ़ेद तैल आदि हानिकारक द्रव्य मिले रहने से ये बढ़ाने की जगह बालों को झाड़ने लगते हैं। कुछ दिन लगातार प्रयोग करने पर इनसे आँखों को हानि पहुँचती है और सिर में दर्द रहने लगता है।

नीचे मैं एक बढ़िया केश-तैल लिख रही हूँ। यह यद्यपि कुछ महँगा पड़ता है, परन्तु है बड़ा लाभदायक। मैं इसका व्यवहार स्वयं करती हूँ और अपनी बहनों से भी इसके व्यवहार की सिफ़ारिश करती हूँ। इसके मुक़ाबिले का केशवर्द्धक तैल बाज़ार में कोई नहीं मिल सकता।

बादाम का तेल आधा पाव, जामफल का तेल ८ बूंद, मुश्क का तेल २ बूंद, रोज़मेरी (सदाबहार) का तेल १५ बूंद और ओरां जेनम का तेल १५ बूंद। इनको एक शीशी में मिलाकर रख लेना चाहिए। एक-एक दिन के अन्तर से इस तेल में से ३ माशा लेकर सिर पर अच्छी तरह मालिश करनी चाहिए।

कुछ केशवर्द्धक मलहम की शक्ल में बने हुए भी बाज़ार में मिलते हैं। शौक़ीन स्त्रियों में इनका भी काफ़ी प्रचलन है। आगे हम इस प्रकार के एक मलहम का योग दे रहे हैं।

आधा पाव ज़ैतून का तेल लेकर आग पर गर्म करो और उसमें ½ औंस (लगभग १ तो० १०॥ माशा) ह्वेल के सिर की वसा जो स्परमेसिटी नाम से अँगरेज़ी दवा बेंचनेवालों के पास से मिलती है, मिला दो। जब दोनों अच्छी तरह मिल जायँ तब इसमें ये सुगन्धियाँ मिला दो—एसेंस आफ़ बरगेमट १५ बूँद, वरबेना का तेल ८ बूँद, रोज़मरी का तेल ८ बूँद, लैवेण्डर का तेल ८ बूँद। इसके बाद इसे चौड़े मुँह की एक शीशी में डाल दो और एक तरफ़ रख दो। शीशी को हिलाओ डुलाओ मत। जब अच्छी तरह ठंडा हो जाय, काम में लाओ। केशों की जड़ों को मज़बूत करने के लिए यह एक उत्तम दवा है।

कुछ स्त्रियों के केश स्वभावतः आवश्यकता से अधिक चिकने रहते हैं। ऐसी स्त्रियों को भोजन में सुधार करना चाहिए। ताज़े फल और खीरा इत्यादि का सेवन अधिक करना चाहिए। भोजन के बीच में सोने से पहले और रात में जागने के बाद शीतल जल पीना चाहिए। प्रतिदिन केशों को धोना चाहिए और प्रतिरात को उन पर मुलायम ब्रुश करना चाहिए। केश धोने के लिए मसालों या लोशनों का चुनाव सावधानतापूर्वक करना चाहिए। बाज़ारों में केश धोने के कई प्रकार के पदार्थ मिलते हैं। इन्हें शेम्पू कहते हैं। चिकने बालों के लिए एमोनिया और साबुन का घोल अच्छा होता है। केश धो चुकने के बाद जब तक कि केश गीले रहें, सिर पर निम्न अर्क को ज़ोर ज़ोर से मालिश करना चाहिए—

विच हाज़ल १ चाय का चम्मच भर, टिंचर आफ़ बेनज़ोइन ४ बूँद, यू-डी कोलन १ बड़ा चम्मच भर। इन्हें मिलाकर बोतल में भर ले और लगाने से पहले बोतल को अच्छी तरह हिला लिया करे। इसमें से थोड़ा-सा लेकर प्रतिरात को या दूसरी रात को मलना काफ़ी होता है। ऊपर दिये हुए परिमाण ४-५ बार को काफ़ी होंगे। यदि बालों में चिक्कणता अत्यधिक हो तो एक रात को यह योग मले और दूसरी रात को १॥ छटाँक गुलाबजल में ३० बूँद एमोनिया मिलाकर उससे धोवे।

शेम्पू भी कई प्रकार के आते हैं। शेम्पू से मतलब साबुन की एक प्रकार की लेई से है। इसे बनाने के लिए किसी अच्छे साबुन में से बड़े चार चम्मच भर चाकू से खुरच लो। इसे पत्थर के बर्तन में रख लो। इसमें खौलता हुआ पानी इतना डालो कि साबुन ढँक जाय। ठंडा होने तक इसे रक्खा रहने दो। ज़रूरत के समय इसमें से २-३ चम्मच भर निकाल लो और उसे १। सेर गर्म पानी में मिला लो। और इसे केशों पर झाग उठाते हुए मलो। इसका व्यवहार सरल है।

एक प्रकार का शेम्पू अंडों से भी बनता है। जिन्हें अण्डों के प्रयोग में आपत्ति न हो वे इससे लाभ उठा सकती हैं। इसके लिए पहले बताये हुए ढंग से साबुन की लेई बना लो। एक ताज़ा अंडा तोड़कर उसमें २ चम्मच भर साबुन की जेली मिला दो। इसे सिर में मलो और फिर गुनगुने पानी से धो डालो। केशों को शक्ति पहुँचाने में यह अद्भुत शक्तिशाली है।

जिनके बाल काले हों, पर रूखे रहते हों, उनके लिए नारियल के तेल के शेम्पू अधिक लाभदायक होते हैं। इसके लिए उपर्युक्त साबुन की लेई में गर्म पानी मिलाने से पहले एक बड़ा चम्मच भर नारियल का तेल मिला लो। जिनके बाल सुनहले या कम काले हों उन्हें कार्बोलिक शेम्पू का प्रयोग करना उचित है। इसके लिए साबुन की लेई में कार्बोलिक सोल्यूशन के २० बूँद मिला लेना चाहिए।

बालों को अच्छी तरह उपर्युक्त शेम्पुओं में से किसी से धोकर गुनगुने पानी से कई बार अच्छी तरह धो डालना चाहिए। अन्तिम बार धोते समय जिनके बाल काले हों वे पानी में १ चम्मच भर लैमनजूस और जिनके बाल कम काले हों वे १ चम्मच भर सिरका मिला लें। इसके बाद तौलिए से पोंछ कर धूप में सुखा लें। आँच के पास बैठ कर केशों का सुखाना हानिकारक है।

ऊपर दिये हुए उपायों से केश इच्छानुकूल सुन्दर और आकर्षक बनाये जा सकते हैं और इसमें अधिक व्यय भी नहीं पड़ता।

श्रीमती विद्योत्तमा मिश्र

मेरा दुःख

लेखक, श्रीयुत भदन्त आनन्द कौसल्यायन

भिक्षुओं के विनय-पिटक में लिखा है—"जिसको रुपया-पैसा ग्राह्य है, उसके लिए इन्द्रियों के सभी विषय भी ग्राह्य हैं"। संन्यासियों को सोने-चाँदी का ही नहीं, वरन धातु-मात्र का स्पर्श वर्जित है। कहते हैं—'कञ्चन-कामिनी नरक का द्वार है।' अपने जीवन में पैसा बटोरने की न कभी मेरी इच्छा हुई, न वह मुझे मिला ही। लेकिन खाने-पीने के लिए, आने-जाने के लिए कभी उसकी विशेष कमी नहीं हुई। तो भी मुझे एक बार ऐसा लगा कि संन्यासी के लिए रुपये-पैसे के सर्वथा अपरिग्रह जैसी कोई चीज नहीं। मैंने निश्चय कर लिया कि रुपये-पैसे से तनिक सरोकार न रक्खूँगा। जो मिलेगा खा लूँगा, जो प्राप्त होगा पहन लूँगा। कोई कहीं बुलायेगा चला जाऊँगा, नहीं तो अपने आसन पर बैठा पढ़ता-लिखता रहूँगा। जिस दिन यह निश्चय किया था, उस दिन मालूम होता था कि जीवन की अनेक ग्रन्थियों में से एक ग्रन्थि सुलझ गई, अनेक बन्धनों में से एक बन्धन कट गया। इस बात को आज बहुत दिन हो गये।

× × ×

लेकिन एक दिन एक सज्जन आये। उनसे पहले से परिचय न था। वे जिनके सम्बन्धी थे उनके असाधारण व्यक्तित्व के कारण तुरन्त परिचय हो गया। वे रोगी थे। सारनाथ के पास की अस्पताल की चिकित्सा से असन्तुष्ट होकर बनारस के रामकृष्ण-मिशन के 'सेवा-आश्रम' में जाना चाहते थे। सेवा-आश्रम के व्यवस्थापक महोदय को एक चिट्ठी लिख देने से वे उन्हें भर्ती कर लेंगे, ऐसी आशा थी। रोगी को सारनाथ से बनारस इक्के पर भेजना था। इक्के के लगते थे ॥) ।. मेरे पास पैसे नहीं थे। मैंने तो उन्हें 'नरक का द्वार' समझकर रखना छोड़ दिया था, लेकिन यहाँ 'सेवा-आश्रम' के द्वार तक भी पहुँचने के लिए उन्हीं की जरूरत थी। एक व्यक्ति से जिसके हाथ में कई संस्थाओं के काफ़ी रुपये रहते हैं, मैंने कहा कि इस रोगी के पास 'सेवा-आश्रम' तक जाने के लिए ॥) पैसे होते तो अच्छा था। बोले—"मेरे पास ऐसा कोई फ़ंड नहीं है जिसमें से इसे दे सकूँ।" बड़ी कठिनाई से उस रोगी के 'सेवा-आश्रम' पहुँचने की व्यवस्था हो सकी।

उन्हीं दिनों एक सिंहल-देशीय विद्यार्थी काशी-विद्यापीठ में पढ़ता था। वह मेरे पास आया, बोला—"मैं सिंहल वापस जा रहा हूँ।" मैंने पूछा, क्यों? उसका उत्तर था—"घर से पैसे नहीं आते और यहाँ तंगी हो रही है।" मैं सिंहल में काफ़ी दिन रहा हूँ। वहाँ का मुझ पर बहुत ऋण है। सिंहल का कोई विद्यार्थी भारत आये और ख़र्च की तंगी से वापस चला जाय, यह मुझे अपने लिए लज्जा की बात लगी। मैंने कहा—"ठहरो, जाने का निश्चय स्थगित रक्खो। मुझ से जो बनेगा करूँगा।" मुल्ला की दौड़ मसजिद तक। भिक्षुक का समर्थ्य किसी से माँगने तक। किसी काम से मैं उन दिनों कानपुर गया। धनीराम जी भल्ला के यहाँ ठहरा। लौटते समय भल्ला जी स्टेशन तक पहुँचाने आये। रेल-टिकट ले दिया और कुछ रुपये देने लगे। मैंने रुपये लेने से इनकार किया, लेकिन साथ ही कहा कि यदि चाहें तो उस सिंहल-विद्यार्थी के लिए एक छात्र-वृत्ति बाँध दें। एकमुट्ठी दान आसान है, रोज रोज के लिए वचन-बद्ध होना कठिन। और उन दिनों कानपुर के जूतों के कारख़ानों में हड़ताल थी, जिसका उनके मन तथा व्यापार पर स्वाभाविक प्रभाव था। उनके बहुत आग्रह करने पर मैंने उनका वह दान इसी शर्त पर स्वीकार किया कि बिना वचनबद्ध हुए भी वे उस लड़के का ध्यान रक्खेंगे। सारनाथ लौटा तब पता लगा कि वह लड़का सिंहल के लिए प्रस्थान कर गया है। मैंने भल्ला जी का दान 'सेवा-आश्रम' के उस रोगी के पास पहुँचा दिया और भल्ला जी को उस विद्यार्थी की ओर से निश्चिन्त कर दिया।

भल्ला जी के उस दान के बिना वह रोगी 'सेवा-आश्रम में बिना सुई लगवा सकने के पड़ा था। आश्रमवाले को बाजार से सुई (इन्जेकशन) ख़रीदने

के लिए बार बार कहते थे, हैरान करते थे; लेकिन वह किसे कहता ? उसे कौन खरीदकर देनेवाला था ?

× × ×

और सुनिए मैं सारनाथ की धर्मशाला के एक कमरे में रहता था। अपराह्न का समय। एक तरुण—खूब हट्टे-कट्टे मोटे ताज़े, खादी पहने—आये। शिष्टाचार के अनन्तर एक भले प्रकार परिचित व्यक्ति की भाँति बातचीत करने लगे। अपने दिमाग़ पर बहुत ज़ोर डालकर मैंने उनका पूर्व-परिचय याद करने की कोशिश की। किसी "परिचित" व्यक्ति से उसका परिचय पूछना क्या सहज कार्य है ? इधर-उधर के प्रश्नों से मामला हल करना चाहा। उलझन सुलझने की बजाय उलझती ही मालूम दी। काफ़ी बातचीत होने पर पता लगा कि आप उन ज्ञानेप्सुओं में से हैं जो किसी स्कूल अथवा डिग्री की अपेक्षा नहीं रखते और मधु-मक्खी की वृत्ति धारणकर यत्र-तत्र-सर्वत्र ज्ञानार्जन के लिए घूमते रहते हैं। आप अभी पटने से पैदल बनारस आये थे, और वहाँ से सारनाथ। आपकी इच्छा थी कि यहाँ रहकर बौद्ध-दर्शन पढ़ें। पाली के बौद्ध-साहित्य में मेरी थोड़ी गति है, संस्कृत-बौद्ध-साहित्य का मेरा अधिक ज्ञान नहीं। मैंने पूछा कि आपने राहुल जी की किताबें पढ़ी हैं। उनका उत्तर था कि वे अभिधर्मकोष, वार्तिका-लङ्कार आदि सब किताबें देख चुके हैं; अब उन्हें गुरु-मुख से पढ़ना चाहते हैं। मुझे उनकी योग्यता और ज्ञान-पिपासा ने प्रभावित किया। शाम को वे साथ सैर करने चले। आते-जाते रास्ते में कुछ हिन्दी-कवियों की चर्चा चली तब मैंने देखा कि उनकी आलोचना सारपूर्ण है। हाँ, वे स्वयं कवि थे। उन्होंने अपनी कुछ रचनायें सुनाईं भी। उनका कहना था कि वे बहुत अधिक गीत लिख चुके हैं, इतने अधिक कि उनकी संख्या पर सहसा किसी को विश्वास न हो। अगले दिन मैंने उसी नाम से जो उन्होंने अपना बताया था 'सरस्वती' में उनका एक गीत देखा। रात को वे मेरे पास रहे। अगले दिन चले गये। उनकी इच्छा थी कि उनके भोजन, निवासस्थान आदि की व्यवस्था हो जाय और वे पढ़ें। मैंने कहा—निवासस्थान का प्रबन्ध धर्मशाला में हो सकता है, पढ़ने को पाली के जो चार अक्षर मैं जानता हूँ, वह मेरे साथ रहकर पढ़ सकते हैं। लेकिन हाय रे पेट! मुझे स्वीकार करना पड़ा कि उसे दोनों शाम भरने का सामर्थ्य मुझमें नहीं। ५) ७) मासिक में उस मेधावी तरुण की इच्छा-पूर्ति हो सकती थी। मैं उसका प्रबन्ध न कर सका। वह चला गया। जाते जाते कह गया—

बड़ी महँगी होगी हे देव! इस लघु-जीवन की हार।

अभी-अभी मैंने उस भाई को रामगढ़-कांग्रेस में देखा था—एक मैले कुरते, मैली धोती पर काला कम्बल ओढ़े। मैंने पूछा—"कहिए! यहाँ भी पैदल ही पहुँचे?" "नहीं गया तक पैदल आया था, आगे रेल में।" मैंने उन भाई की शकल ऊपर से नीचे तक देखी और अधिक बातचीत कर सकने का सामर्थ्य न होने के कारण चल दिया। मेरे कानों में अब भी वह एक पंक्ति गूँज रही थी—

बड़ी महँगी होगी हे देव! इस लघु-जीवन की हार।

× × ×

और सुनिए। यहाँ के हिन्दी-मिडिल-स्कूल में दो लड़के हैं—एक ब्राह्मण, एक चमार। हमारे समाज में अकारण ब्राह्मण लड़के का ऊँचा स्थान रहता है और चमार का नीचा। तराज़ू के दो पलड़ों की कमी पूरी करने के लिए एक पलड़े में पासंग डालना उचित है। लेकिन दोनों असहाय हैं—इसमें क्या ऊँच और क्या नीच? दोनों कठिनाई में हैं और कठिनाई में पले हैं। इसी से एक-दूसरे के नज़दीकी हो गये। एक दिन रात को देखा—सर्दियों की रात थी। दोनों बरामदे में सो रहे थे। चमार लड़के के पास एक कम्बल और दरी थी, ब्राह्मण के पास केवल दरी। कम्बल की जगह पतली धोती ओढ़े सो रहा था। रात को दूसरी बार आँख खुली। देखा, ब्राह्मण और चमार दोनों एक साथ एक कम्बल में सटे पड़े हैं। इस 'छोटी सी बात' का मेरे मन पर असर पड़ा। मैं फिर उस रात न सो सका। सोचता रहा—"कड़कड़ाती सर्दी ने उस रूढ़ि पर और उस रूढ़ि तोड़ने के भय पर जो हमारे कोढ़ी समाज का हिस्सा बन गया है, विजय पा ली है। ब्राह्मण और चमार एक कम्बल ओढ़े सो रहे हैं।"

अगले दिन ब्राह्मण लड़के को एक वकील साहब की कृपा से एक कम्बल मिल गया।

चमार लड़के को छात्र-वृत्ति मिलती थी, ब्राह्मण को नहीं मिलती थी। वह कभी अपने सहपाठियों, कभी अपने अध्यापकों का आश्रित था। यह पंचायती-प्रबन्ध बीच बीच में संतोषजनक न रहता। चमार लड़के से घनिष्ठता स्थापित करने में ब्राह्मण लड़के को नफ़ा भी था, नुक़सान भी। पेट की ज्वाला ने, दोनों विद्यार्थियों के हृदय की स्वाभाविक एकता ने समाज के भय को एक ठोकर लगाई। उनका भोजन कभी कभी एक साथ बनने लगा। एक लड़के से विद्यार्थियों का दुराव था ही, दूसरे से भी हो गया। बिल्ली के भागों छींका टूटा। लड़कों ने कहा, इसने अमुक लड़के के साथ हिल-मिल कर 'अपना धर्म गँवा दिया', हम इसे 'सीधा' न देंगे। कभी कभी जो पाव भर आटा-चावल ला देते थे उससे छुट्टी मिल गई।

ब्राह्मण लड़के के पास न तो वस्त्र था, न था भोजन का प्रबन्ध। एक कम्बल तो ख़ैर वकील साहब की कृपा से मिल गया था। अब भोजन का क्या हो? एक दिन कुछ भी खाने को न रहने से वह मेरे पास आया। मूल-गन्धकुटीविहार के उत्सव के दिन थे। न काम की कमी थी, न भण्डारे में भोजन की। पाँच-सात दिन की व्यवस्था हो गई—'काम करते रहो, 'भोजन खाते रहो।' भूखे मरते ब्राह्मण बालक ने हमारे भण्डारे में दो-चार दिन भोजन क्या खा लिया—विष खा लिया। उसका रहा-सहा 'धर्म' चला गया। उसके 'बायकाट' की दीवारें पक्की हो गईं। अब वह क्या करे, कहाँ जाय? कुछ दिन ऐसे ही चला। पीछे पास के एक गाँव से कुछ 'सीधा' मिलने की व्यवस्था हो गई और बनारस के एक महाजन के यहाँ से भी। लड़का माँगता-खाता जैसे तैसे पढ़ रहा है।

अभी उस दिन वह मेरे पास आया था कि एक लैम्प की ज़रूरत है। रात को पढ़ने की अच्छी लालटैन १) या १॥) में आ जाती है। उसने कहा—रोटी तो अँधेरे में पक जाती है। लेकिन पढ़ना अँधेरे में कैसे हो? लालटैन का प्रबन्ध करने का मतलब था तेल का भी प्रबन्ध करना। मैं दोनों में से एक भी न कर सका।

पाठकगण! यह उस दिन की बात है जिस दिन सिकम के महाराज मूलगन्ध-कुटी में एक हज़ार दीपक—और वह भी घी के—जला कर पूजा में संलग्न थे।

× × ×

और सुनिए। मैं स्नान कर रहा था। किसी ने कहा—"एक आदमी गोरखपुर से आये हैं। मिलना चाहते हैं।" मैंने कहा—"उन्हें बिठाओ, मैं आया।" जाकर देखता क्या हूँ—एक आदमी हैं। सर्वथा अपरिचित। साधारण वस्त्र, मैले किन्तु ऐसे मैले नहीं कि उन्हें गन्दा कहा जा सके। गोद में एक बच्चा। उस जबानी सज्जनता का अधिक से अधिक व्यवहार करके जो हम साक्षर लोगों की एकमात्र पूँजी है, मैंने पूछा—"कहिए, भाई कैसे आये?" बोले—"मैं एक जिल्दबन्द हूँ। दो बच्चे थे। इनकी माँ मर गई। दोनों को लेकर काम न कर सकता था। एक बच्चे को बनारस-अनाथालय में दे आया हूँ। दूसरा यह गोद में है। वापस गोरखपुर लौटना चाहता हूँ। पास में पैसा नहीं। मैंने सुना है कि यहाँ पुस्तकालय है। इसी लिए सारनाथ स्टेशन पर उतर गया हूँ कि आप मुझसे कुछ काम ले लें। पुस्तकों की जिल्द बँधवा लें। किसी तरह किराये के पैसे हो जायें तो गोरखपुर पहुँच जाऊँ।" मैंने पूछा—"पुस्तकाध्यक्ष से मिले?" बोला—"हाँ मिला, वे तो कहते हैं की सब पुस्तकों की जिल्द थोड़े दिन पहले बँधवा चुके हैं। और पुस्तकें नहीं हैं।" मैंने कहा—"ठहरो मैं कोशिश करूँगा।" बहुत कोशिश की। सचमुच पुस्तकाध्यक्ष असमर्थ थे। वे कुछ न कर सकते थे। मेरी हिम्मत न हुई कि उस आदमी के पास जाकर कहूँ कि भाई, कुछ करने में असमर्थ रहा एक लड़के के जबानी कहला भेजा। उसने वापस आकर कहा—"कहता है, तो भोजन तो करा दें।" मध्याह्न का समय होने से वह सम्भव था। भोजन खाकर वह न जाने कब किधर चला गया? बहुत संभव है, बिना टिकट रेल में चढ़ गया हो, और किसी न किसी स्टेशन पर किसी टिकट-बाबू के हाथों उसकी फजीहत हुई हो।

हमारे पुस्तकालय में कई हज़ार किताबें हैं—पाली की, संस्कृत की, जर्मन की, अँगरेज़ी की, फ्रेंच की, हिन्दी की, बँगला की, सिंहली की, स्यामी की, तिब्बती की,—और न जाने किस किसकी। जिसके पास पेट भर खाने

को है उसके लिए आराम से बैठकर पढ़ने को गद्देदार कुर्सियाँ हैं—बड़ी ही नरम और मुलायम।

लेकिन जिसके पास पैसा नहीं, जिसके पास नौकरी नहीं, जिसे मानसिक भोजन से पहले पेट के लिए खाना चाहिए, उसके लिए हमारे पास भी क्या है? कुछ नहीं, कुछ नहीं।

और सुनिए। एक लड़का है। उसका नाम दे ही दूँ, उसकी जाति का परिचायक—कुल्लू। एक दिन नवम्बर की सर्दी में मेरे पास आया। खाँसी हो रही थी। छाती पकड़कर बात करता था। "खाँसी है?" "हाँ।" "इतना कम क्यों पहने हो?"—वह पहने था एक कुर्ता। बोला—"और है ही नहीं।" "रात को क्या ओढ़ते-बिछाते हो?" "पुवाल पर यह धोती ओढ़ कर सोता हूँ।" आज दो महीने से वह बीमार है। बीच बीच में उसकी बीमारी का समाचार मिलता रहा। कल उसने पिता के हाथ एक पुर्जा भिजवाई—"स्वामी जी! मुझे आकर एक बार देख जाते।" शाम को गया। देखा, लड़का सूखकर लकड़ी हो गया है। चारपाई से लगा पड़ा है। रोग चला गया है, लेकिन उचित पथ्य के अभाव में चारपाई नहीं छोड़ सकता।

पिता ने कहा—"मालिक! मेरे इस लिपे-पुते घर को देखकर लोग कहते हैं कि घर में गाड़े होगा। लड़के से भी बढ़कर कुछ है? जो था, खर्च हो गया। महाजन से कर्ज काढ़कर भी लगा दिया। अब मालिक, कुछ नहीं है।"

उस लड़के की दादी रो रोकर अन्धी हो रही थी। एक दूसरी औरत पास खड़ी कह रही थी—नसीब होगा तो बच ही जायगा। राम राम कहो, राम राम कहो।

लड़के को जरूरत थी दूध की, जो ग्वाला बिना पेशगी पैसा लिये नहीं देता था।

इस तरह की घटनायें दिन-रात होती हैं, हृदय को ठेस पहुँचती हैं, और उसे पत्थर बनाती जाती है। मैं कभी कभी दाँत पीसता हूँ और बहुधा हाथ मलकर रह जाता हूँ। मैं सोचता हूँ, किस काम का किसी साधु-संन्यासी का अपरिग्रह जब वह ऐसी परिस्थिति में किसी के भी कुछ काम नहीं आ सकता।

पपीहा

श्रीमती सावित्री दुलारेलाल, एम० ए०

'पी कहाँ-कहाँ' रटता है प्रिय, आज पपीहा वन में?
या मेरी ही अन्तर्ध्वनि गुंजित होती है मन में?
जो जिसके जी में जमता, वह उसका प्रिय बन जाता;
स्वाती की बूँदों में ही प्रिय प्रेम पपीहा पाता।
चातक तक रटता पी की जब बोली मधु में घोली,
फिर मैं भी क्यों न रटूँ प्रिय 'पी कहाँ-कहाँ' की बोली?

चातक की रटन यही है बादल गरजे या बरसे,
मेरी भी लगन यही है, जग हरषे चाहे करषे।
कब इस जीवन-सावन में प्रियतम-वसन्त आयेगा?
यह तापित तन-मन मेरा कब दरस-सुरस पायेगा?
प्रति पावस-ऋतु में चातक सुखकर स्वाती-जल पाते;
नयनों में नीर निरंतर, पर प्रियतम पास न आते!
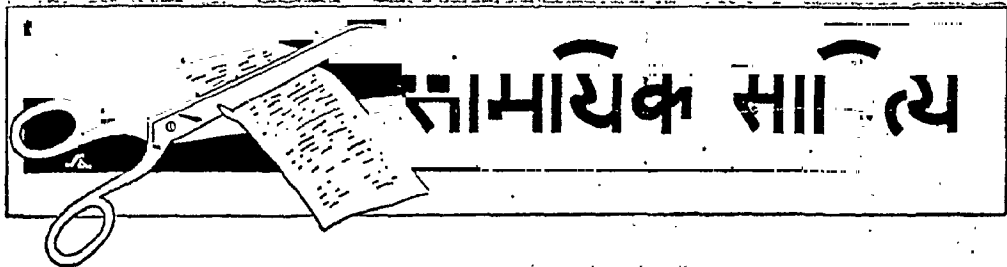
प्रसन्न और अप्रसन्न दोनों

कांग्रेस का नेतृत्व महात्मा गांधी गत २० वर्ष से कर रहे हैं। बीच में केवल एक बार उनके अनुयायियों से उनका कुछ काल के लिए मतभेद हो गया था, परन्तु जनता पर महात्मा गांधी का प्रभाव ज्यों का त्यों बना रहा। आज भी महात्मा जी का पूर्ववत् प्रभाव बना हुआ है। परन्तु अब ऐसा जान पड़ता है कि कांग्रेस का नेतृत्व उनके हाथ से निकला-सा जा रहा है। जून के अन्तिम सप्ताह में वर्धा में कार्य-समिति के निर्णय के फलस्वरूप महात्मा जी को कांग्रेस के नेतृत्व की बागडोर रख देनी पड़ी है। इस सम्बन्ध में जो महत्त्वपूर्ण लेख उन्होंने लिखा है उसे हम 'हरिजनोद्धार' से यहाँ देते हैं—

यह गत १८ तारीख की बात है कि मैंने 'हरिजन' में यह आशा प्रकट की थी कि—'यदि मेरी दलील का लोगों पर असर हुआ है, तो क्या हमारे लिए यह समय नहीं है कि हम बलवानों की अहिंसा में अपना अपरिवर्तनशील विश्वास घोषित करें और यह कहें कि हम अपनी स्वतंत्रता की रक्षा शस्त्रों के बल से नहीं करना चाहते, बल्कि उसकी रक्षा हम अहिंसा के बल से करेंगे।

परन्तु वर्किंग कमेटी ने जब इसके लिए समय आया, तो इस तरह के विश्वास को अमल में लाने में अपने को असमर्थ पाया। कमेटी के सामने इसके पहले अपने विश्वास की परीक्षा करने का कभी अवसर नहीं आया था। उसे अपनी पिछली बैठक में यह कार्य-प्रणाली निर्धारित करनी पड़ी कि यदि देश के अन्दर अराजकता फैली या बाहरी हमले का खतरा सामने आया, तो उसका मुक़ाबिला कैसे किया जाय।

मैंने कमेटी के सामने अपने मत का ज़ोरों से समर्थन किया और कहा—'यदि आप लोगों को बलवानों की अहिंसा में विश्वास है, तो उस पर अमल करने का अब समय आया है। इसकी कोई परवाह नहीं कि बहुत-से दल अहिंसा में चाहे वह बलवानों की हो और चाहे निर्बलों की—विश्वास नहीं करते। सम्भवतः कांग्रेसी लोगों के लिए परिस्थिति का मुक़ाबिला अहिंसा-द्वारा करने का यही ज़बरदस्त कारण है। क्योंकि यदि सभी लोग अहिंसावादी हो जायँ, तो कोई अराजकता नहीं हो सकती और बाहरी हमले का मुक़ाबिला करने के लिए किसी को शस्त्र ग्रहण करने का कोई प्रश्न नहीं हो सकता। चूँकि कांग्रेसी लोग अहिंसा के पक्ष का प्रतिनिधित्व करते हैं और वह ऐसे दलों के बीच में जो कि अहिंसा में विश्वास नहीं रखते, इसलिए कांग्रेसी लोगों के लिए यह आवश्यक हो जाता है कि वे यह दिखला दें कि वे अपने विश्वास को कितनी अच्छी तरह अमल में ला सकते हैं।'

परन्तु वर्किंग कमेटी के मेम्बरों ने यह महसूस किया कि कांग्रेसी लोग इस पर अमल न कर सकेंगे। यह उनके लिए नया अनुभव होगा। इसके पहले कभी उनसे इस तरह की परिस्थिति का मुक़ाबिला करने को नहीं कहा गया था। मैंने साम्प्रदायिक दंगों या इस तरह की अन्य परिस्थितियों का मुक़ाबिला करने के लिए शान्ति-रक्षक दल तैयार करने का जो प्रयत्न किया था, वह पूर्ण रूप से असफल हो गया इसलिए वर्किंग कमेटी को इस कार्य के लिए आशा नहीं हो सकी।

मेरी स्थिति भिन्न थी। कांग्रेस ने अहिंसा को सदा नीति के रूप में ग्रहण किया है। उसे यह अधिकार था कि यदि इसमें वह असफल हो, तो इसका त्याग कर दे। यदि यह राजनीतिक और आर्थिक स्वतंत्रता नहीं ला सकती, तो यह किसी काम की नहीं है। परन्तु मेरे लिए अहिंसा सिद्धान्त है। मैं तो इस पर अवश्य अमल करूँगा, चाहे मैं अकेला रहूँ और चाहे मेरे साथ अन्य लोग भी रहें। चूँकि अहिंसा का प्रचार करना मेरे जीवन का ध्येय है, इसलिए मैं तो सभी समयों में इसका अनुसरण करूँगा। मैंने यह अनुभव किया कि अब मेरे लिए यह समय उपस्थित

है कि मैं अपना विश्वास ईश्वर के सामने और मनुष्य के सामने सिद्ध करूँ। और इसी लिए मैंने वर्किंग कमेटी से अलग होने को कहा। अब तक मैं कांग्रेस की आम नीति में उसकी रहनुमाई करने के लिए ज़िम्मेदार था। परन्तु अब मैं यह नहीं कर सकता जब कि मुझे इसका पता लगा कि कांग्रेस और मेरे बीच मौलिक मतभेद है। वर्किंग कमेटी ने यह समझ लिया कि मेरा रुख ठीक है और उसने मुझे अलग रहने की आज्ञा दी। वर्किंग कमेटी ने एक बार फिर यह सिद्ध कर दिया कि जनता ने उस पर जो विश्वास रक्खा है, उसके अनुसार उसने कारवाई की। वर्किंग कमेटी के मेम्बरों में स्वतः अपने का जिनका वे प्रतिनिधित्व करते हैं, उनको यह विश्वास नहीं है कि वे अपने कार्यों में आवश्यक अहिंसा का उपयोग कर सकते हैं। इसलिए उन लोगों ने वही किया, जिसे ईमानदारी के साथ वे कर सकते थे। ऐसा करके उन लोगों ने बड़ा भारी त्याग किया है—त्याग उस मर्यादा का किया है कि जिसके लिए समस्त संसार में यह विख्यात था कि कांग्रेस का विशुद्ध अहिंसा में पूर्ण विश्वास है और साथ ही उसने अपने और मेरे बीच के बन्धन को तोड़ने का भी त्याग किया। पर हालाँकि यह सम्बन्ध-विच्छेद साधारण ध्येय या नीति के साधारण कार्य में है, किन्तु २० वर्ष की पुरानी मित्रता का भंग नहीं हो सकता।

इस नतीजे पर मैं प्रसन्न और अप्रसन्न दोनों हूँ। प्रसन्न इसलिए, क्योंकि मैं इस सम्बन्ध-विच्छेद का भार सह सका और केवल अकेला होकर खड़े रहने की शक्ति मुझमें है। अप्रसन्न इसलिए कि मालूम होता है कि मेरे शब्दों में वह शक्ति अब नहीं रह गई कि मैं उन लोगों को अपने साथ रख सकूँ, जिन्हें इतने वर्षों से मैं अपने साथ ले चल सका था। परन्तु मैं जानता हूँ कि यदि ईश्वर ने मुझे बलवानों की अहिंसा की उत्तमता प्रदर्शित करने का मार्ग दिखलाया, तो यह सम्बन्ध-विच्छेद अस्थायी होगा। यदि मार्ग न दिखाई दिया, तो उससे यह सिद्ध होगा कि वर्किंग कमेटी ने मुझे अलग होने देने का भार सहन करने का जो कार्य किया वह बुद्धिमत्तापूर्ण था। यदि मेरी इस दुःखद अशक्यता का पता मुझे लगे, तो मैं ... भी आशा करता हूँ कि मैं वही विश्वास फिर प्राप्त कर लूँगा, जो अब तक मुझमें लोगों का था और मैं यह समझ लूँगा कि मैं अहिंसा का प्रकाश ले चलने के लिए काफ़ी शक्ति नहीं रखता।

परन्तु यह दलील और सन्देह यह बात मान लेने पर आधारित है कि वर्किंग कमेटी के मेम्बर लोग अधिकांश कांग्रेसजनों का प्रतिनिधित्व करते हैं। परन्तु वे यह चाहेंगे और मेरा भी यह विश्वास है कि कांग्रेसजनों के बहुत बड़े बहुमत में बलवानों की अहिंसा है। वर्किंग कमेटी के मेम्बरों को यह जान कर अत्यन्त प्रसन्नता होगी कि उन लोगों ने कांग्रेसजनों की शक्ति को कम आँका है। परन्तु यह सम्भावना है कि ऐसे कांग्रेसजन बहुमत में नहीं बल्कि अच्छे अल्पमत में हैं, जो बलवानों की अहिंसा रखते हैं।

यह स्मरण रखना चाहिए कि यह मामला दलील उठाने का नहीं है। वर्किंग कमेटी के मेम्बरों के सामने सभी दलीलें थीं। परन्तु अहिंसा, जो कि हृदय की वस्तु है, अपीलों से दिमाग़ में नहीं धँस सकती। इसलिए आवश्यकता इस बात की है कि अहिंसा की शक्ति का चुपके से और पूर्ण निश्चय के साथ प्रदर्शन किया जाय। इसका अवसर प्रायः प्रतिदिन प्रत्येक व्यक्ति के सामने आता है। साम्प्रदायिक दंगे होते हैं, डाके पड़ते हैं और शाब्दिक युद्ध होते हैं। जो लोग सच्चे अहिंसाव्रती हैं, वे इन सब बातों में अहिंसा का प्रदर्शन करेंगे। यदि अहिंसा का प्रदर्शन काफ़ी मात्रा में किया जाय, तो इसका प्रभाव आस-पास के लोगों पर अवश्य पड़ेगा। चूँकि कांग्रेसजनों ने अपने प्रतिदिन के व्यवहारों में अहिंसा का प्रदर्शन नहीं किया है, इसलिए वर्किंग कमेटी के मेम्बर लोग इस निर्णय पर ठीक ही पहुँचे कि कांग्रेसी लोग आन्तरिक अव्यवस्था या बाहरी आक्रमण होने पर अहिंसा का उपयोग करने को तैयार नहीं हैं। हमें आक्रमण के जवाब में आक्रमण किये बिना अपनी जान देने को तैयार रहना है और अराजकता के विरुद्ध कोई दुर्भाव नहीं लाना है। यह आसानी से समझा जा सकता है कि ऐसे अवसर पर जिस अहिंसा की आवश्यकता है वह उस प्रकार की अहिंसा से बिलकुल भिन्न है, जिसे कांग्रेस ने अब तक समझा है। परन्तु वही अहिंसा सच्ची अहिंसा है और इसी प्रकार की अहिंसा से संसार सर्वनाश से बच सकता है। यदि

भारत सच्ची अहिंसा का सन्देश ऐसे संसार को नहीं दे सकता जो कि युद्धों के मार्गो से बचना चाहता है, यह विनाश निश्चित है, चाहे जल्दी हो और चाहे देर में, और देर की अपेक्षा वह जल्दी ही होगा।

पुनश्च--इतना लिख चुकने और टाइप होने के बाद मैंने पंडित जवाहरलाल का वक्तव्य देखा। उन्होंने मेरे सम्बन्ध में जो कुछ लिखा है, उसके प्रत्येक वाक्य से उनका मेरे प्रति प्रेम तथा विश्वास झलकता है। इस लेख में कुछ संशोधन करने की आवश्यकता नहीं है। अच्छा है कि पाठक यह जान लें कि हम लोगों के मन पर कमेटी के निवेदन का क्या स्वतंत्र असर पड़ा। इस जुदाई का नतीजा अच्छा ही होगा।

राष्ट्रपति मौलाना आज़ाद का भाषण

पिछले दिनों महात्मा गांधी आदि नेताओं से वाइसराय के मिलने और उसके बाद ही एकाएक दिल्ली में कांग्रेस की कार्य-समिति की बैठक होने से लोगों को आशा हुई थी कि इस बार सरकार का कांग्रेस आदि से समझौता हो जायगा। परन्तु समझौता होना तो अलग रहा यह भी ज्ञात नहीं हुआ कि भीतर भीतर क्या होता रहा और यह दौड़धूप यों ही बेकार क्यों गई। कार्य-समिति की बैठक के बाद राष्ट्रपति मौलाना अबुल कलाम आज़ाद ने दिल्ली की एक सार्वजनिक सभा में जो भाषण किया है उससे उस परिस्थिति पर थोड़ा-बहुत प्रकाश पड़ता है। वह भाषण 'हिन्दुस्तान' में छपा है, जिसका अधिकांश यह है--

मौसम की सख्ती मुझे बेबस कर रही है कि मैं आपके सामने बहुत संक्षेप से कुछ कहूँ। आप सब लोगों के दिलों में कई खयाल पैदा हो रहे होंगे। लेकिन आज मैं आप लोगों के सामने केवल तीन बातों पर रोशनी डालूँगा।

कांग्रेस-कार्य-समिति ने अपनी वर्धा की बैठक में एक अहम तजवीज़ पास की। उसमें कुछ बुनियादी मामलों का ज़िक्र था। वह सब कुछ आप लोगों के सामने आ चुका है। उसके बाद काफ़ी प्रगति हुई, उस पर विचार करने के लिए ८ जुलाई को फिर बैठक करने का निश्चय किया गया। लेकिन उस बीच महात्मा गांधी शिमले में वायसराय से मिले। इसलिए समिति की बैठक निश्चित समय से पहले बुलानी पड़ी।

समिति की बैठक हुई। उसमें क्या हुआ, इस पर कई क़यास किये गये। पर क़यास करनेवालों को यह पता न था कि समिति किन विषयों पर ग़ौर कर रही है। महात्मा गांधी ने वाइसराय से हुई मुलाक़ात (की बात) भी समिति के सामने पेश की। लेकिन समिति ने अपना सारा समय इसी चीज़ पर नहीं लगाया।

कार्य-समिति के सामने असली सवाल तो अपनी गत बैठक में स्वीकृत प्रस्ताव से उत्पन्न स्थिति की छान-बीन करना था। जिस सवाल पर समिति ने अपनी वर्धा की बैठक में विचार किया वह खुद महात्मा गांधी ने उठाया था। महात्मा गांधी के पास दुनिया के लिए अहिंसा का सन्देश है। वे २० साल से इस पर परीक्षण कर रहे हैं। अब तक अहिंसा का दायरा संकुचित रहा है; वह केवल भारत तक सीमित रही है। लेकिन अब महात्मा गांधी उसका दायरा विस्तृत करना चाहते हैं; यही चीज़ उन्होंने कार्य-समिति के सामने रक्खी।

महात्मा गांधी के कहने पर कार्य-समिति ने यह फ़ैसला किया कि जहाँ तक आज़ादी हासिल करने का सवाल है, कांग्रेस अहिंसा का पालन करती रहेगी। भारतवर्ष की २० वर्ष की उन्नति की तह में यह अहिंसा ही है। आज भारत सिर उठा कर कह सकता है कि उसकी आज की शान केवल अहिंसा के बूते पर बन सकी है। मैं पूछता हूँ, क्या अहिंसा के सिवाय भी हमारे पास कोई और हथियार था, जिससे हमारे में स्वराज्य की लगन सुलगती। इस बारे में दो रायें नहीं हो सकतीं।

कार्य-समिति ने अहिंसा को पूर्ण स्वाधीनता प्राप्त करने का साधन मान लिया। अब उसके सामने यह सवाल पैदा हुआ कि यदि आज भारतवर्ष स्वाधीन कर दिया जाय तो क्या वह आत्म-रक्षा के लिए अपने पास फ़ौज रक्खेगा या अहिंसा पर ही क़ायम रहेगा। (आज़ाद भारत में फ़ौज होगी--जनता में से आवाज़ उठी) मैं आप लोगों से नहीं पूछ रहा। मैं तो आपसे इतना ही कह रहा था कि अब तक अहिंसा हमारे लिए एक नज़री सवाल था, अमली नहीं। हालात की तब्दीली ने अब इस सवाल

को उमूल तक ही न रक्खा। आपको याद होगा, आज से दो वर्ष पहले दिल्ली में कार्य-समिति और महासमिति की बैठक हुई थी। योरप की हालत कुछ बिगड़ने लगी थी। उसी समय महात्मा गांधी ने यह सवाल उठाया कि भारत की आत्म-रक्षा के लिए अहिंसा से काम लिया जायगा या नहीं। लेकिन म्यूनिच-पैक्ट से योरप की हालत कुछ बदल गई थी, इसलिए समिति ने केवल इतना ही फ़ैसला किया था कि जब तक भारत स्वाधीन नहीं हो जाता तब तक वह लड़ाई में हिस्सा नहीं ले सकता। पर फिर यह सवाल उठा कि यदि आज भारत की बात मान ली जाय तो क्या फिर वह लड़ाई में शामिल हो जायगा। इस पर समिति विकट स्थिति में पड़ गई। महात्मा गांधी तो यह कहते रहे कि हथियार को छोड़कर हिन्दुस्तान को केवल नैतिक बल से ही काम लेना चाहिए। उन्होंने यहाँ तक कह दिया कि किसी भी सरकार को बाह्य आक्रमण का सामना अहिंसा से करना चाहिए, हथियारों से नहीं।

लड़ाई कुछ समय के लिए टल चुकी थी। कार्य-समिति ने भी उपर्युक्त सवाल को यह कहकर स्थगित कर दिया कि वह अभी दूर की चीज़ है। सितम्बर में लड़ाई छिड़ गई। गत नवम्बर में महात्मा गांधी ने हमारे सामने अपनी चीज़ फिर रक्खी। उस वक्त भी हमने यही कहा था कि अभी यह सवाल हमारे सामने पेश नहीं होना चाहिए। रामगढ़-कांग्रेस के सामने भी यह सवाल उठाया गया, लेकिन कोई फ़ैसला न किया जा सका। क्योंकि कांग्रेस या कार्य-समिति यह महसूस करती थी कि यह सवाल दूर का है; अभी सोचने का नहीं।

पिछली बार वर्धा में जब कांग्रेस-कार्य-समिति की बैठक हुई, तब महात्मा गांधी ने एक बार फिर यह सवाल उठाया कि राजनैतिक परिस्थिति दिनों दिन बिगड़ती जा रही है, क्या कांग्रेस इस स्थिति में भी अहिंसा से काम लेने को तैयार है। यदि तैयार नहीं है, तो वह मेरा रास्ता न रोके। मैं दुनिया के सामने अपना नक़्शा पेश करूँगा।

कार्य-समिति के सामने सवाल पेचीदा था। एक तरफ़ महात्मा गांधी का उमूल था और दूसरी तरफ़ था हमारा कमज़ोर हिन्दुस्तानी समाज। उसे देखते हुए समिति के लिए यह एलान करना कठिन था कि वह अहिंसा से काम न लेगी। इधर वह यह भी देख रही थी कि योरप के विभिन्न देशों में संगठित हिंसा किस तरह असफल हो रही है। जो देश अपनी रक्षा करने में अत्यन्त समर्थ थे, उनका भी ख़ात्मा हो गया। उन्हें उनकी फ़ौजें नहीं बचा सकीं। हथियार फ़ेल दिखाई देने लगे। हमने देखा कि अहिंसा के बिना मुल्कों का कोई स्थायी नक़्शा तैयार नहीं हो सकता। यह सब कुछ जानते हुए भी हम अभी से यह नहीं कह सकते कि आज़ाद भारत फ़ौज न रक्खेगा। हमारी यह कमज़ोरी महात्मा गांधी ने ख़ुद तसलीम की। अब महात्मा गांधी का रास्ता खुला है। वे दुनिया के सामने अपना पैग़ाम रख सकते हैं। कार्य-समिति अभी यह फ़ैसला नहीं कर सकती कि भविष्य में बाह्य आक्रमणों तथा आन्तरिक उपद्रवों के लिए वह अहिंसा का पालन कर सकेगी या नहीं। हमने गाँवों व शहरों की रक्षा करने का काम कांग्रेस-कमेटियों के सिपुर्द किया है। उनमें स्वयंसेवक भरती होंगे, लेकिन उनके लिए अहिंसा का पालन करना ज़रूरी होगा।

अभी कल दिल्ली में जो बैठक हुई, उसमें भी कोई नवीन चीज़ पास नहीं हुई। कांग्रेस नेशनल सरकार यानी सब पार्टियों की मिली-जुली सरकार क़ायम करने के लिए तैयार हुई; लेकिन इससे पहले शर्त यह पेश की गई कि बुनियादी सवाल पहले से ही तय कर दिये जायँ। नेशनल सरकार क़ायम करने का सवाल नया नहीं है। मैं ख़ुद बम्बई और सी० पी० में ऐसी सरकारें क़ायम कराने की कोशिश करता रहा हूँ; लेकिन उस समय भी क्योंकि बुनियादी सवाल हल नहीं हुए थे, इसलिए कांग्रेस-पार्टी दूसरी राजनैतिक पार्टियों के साथ मिलकर सरकारें क़ायम नहीं कर सकी थी।

रक्षा की समस्या

भारत की रक्षा की समस्या के सम्बन्ध में हिन्दू-महासभा के प्रमुख नेता डाक्टर बी० एस० मुंजे का एक लेख प्रकाशित हुआ है, जो 'अभ्युदय' में छपा है। वह लेख यह है—

मैंने प्रधान सेनापति का ब्राडकास्ट भाषण ध्यान से पढ़ा है और मुझे इसकी ख़ुशी है कि उन्होंने उस ख़तरे

को समझ लिया जो युद्ध के कारण भारत पर आ सकता है। हमें इस पर उन्हें धन्यवाद देना चाहिए कि उन्होंने ग़ैर-सैनिक कही जानेवाली श्रेणियों पर से रोक उठा ली, और अब उन्हें भी सेना में भरती होने का अवसर दिया गया। उन्होंने हिन्दुस्तानी कमीशन प्राप्त अफ़सरों के सम्बन्ध में भी परिवर्तन किये हैं। वे यह अनुभव करते हैं कि भारत में मनुष्यों की कमी नहीं है, पर उन्हें साधनों और उचित तैयारियों की कमी मालूम होती है। उनकी मुख्य कठिनाई विमानों के सम्बन्ध में है और वे कहते हैं कि हवाई जहाज़ों का मिलना आसान नहीं है और उन्हें होशियार मिकेनिक मिलने में भी कठिनाई मालूम होती है, यद्यपि वे यह स्वीकार करते हैं कि हिन्दुस्तानी अच्छे मिकेनिकस होते हैं, पर वे कहते हैं कि मिकेनिक को तैयार करना होगा; और इस तैयारी में समय लगता है।

यही बात मैंने लार्ड चेटफ़ील्ड से भी कही थी। अन्य बहुतेरी बातों के अतिरिक्त मैंने उनसे यह भी कहा था कि भारत में मोटर के इंजन और वायुयान के इंजन बनाने के उपाय अवश्य करने चाहिए, ताकि ब्रिटिश साम्राज्य के भीतर भी यांत्रिक युद्ध-कला में स्वावलम्बन हो जाय। यदि समय पर काम किया गया होता तो प्रधान सेनापति को आज ये कठिनाइयाँ न होतीं। यदि ऐसे आवश्यक कार्यों के लिए आप स्वयं अपनी तैयारियाँ न करेंगे तो कौन ऐसा मूर्ख देश है जो आवश्यकता पड़ने पर आपकी सहायता करेगा? कौन कौन से देश वायुयान बनाते हैं? इँग्लेंड, फ़्रांस, सोवियट रूस, इटली और अमेरिका। पर क्या इनमें से कुछ देश लड़ाई में नहीं फँसे हैं? क्या उन्हें भी यह भय नहीं है कि कहीं उन्हें भी युद्ध में भाग न लेना पड़े? भारत के पास मनुष्यों और साधनों का अभाव नहीं है, पर युद्ध में फँसने पर भारत की क्या दशा होगी? महात्मा गांधी के सिद्धान्त—चरखा, प्रेम से हमारी रक्षा न होगी।

यदि मान लो कि जर्मनी कल इँग्लेंड पर भी वैसा ही गम्भीर और प्रबल आक्रमण कर दे जैसा कि उसने फ़्रांस, बेल्जियम और हालैंड पर किया था तो यह कौन कह सकता है कि जापान समुद्र से, और रूस तथा अफ़ग़ानिस्तान उत्तर-पश्चिमी सीमा-प्रान्त से भारत पर आक्रमण नहीं करेगा? तब हमें हवाई जहाज़ कौन देगा? इँगलैंड स्वयं जर्मनी से लड़ने के लिए काफ़ी वायुयान नहीं बना सका है। वह सहायता के लिए अमेरिका की तरफ़ देख रहा है। क्या हमने समाचार-पत्रों में यह नहीं पढ़ा है कि फ़्लांडर्स के रणक्षेत्र से विदा होनेवाले वीर सैनिकों को विमानों की कैसी आवश्यकता थी? हमारी अपनी ही अदूरदर्शिता के कारण ऐसी अमूल्य जानों का क्यों बलिदान चढ़ा दिया गया? इन विदा होनेवालों में हिन्दुस्तानी सैनिक भी अवश्य होंगे, पर उनके समाचार अभी नहीं आये हैं। क्या हमारे शासक इस सम्बन्ध में हमारे भावों को समझ सकते हैं?

प्रधान सेनापति कहते हैं कि सेना के गोदामों में ४०,००० चीज़ें हैं, जिनमें से लगभग २०,००० चीज़ें भारत में बनती हैं, पर जो चीज़ें भारत में नहीं बनतीं उन्हें यहाँ कब बनाया जायगा? यदि मान लो कि कल ही भारत पर हमला हो जाय तो हमें वे चीज़ें कहाँ से मिलेंगी?

क्या सरकार यह परवाह करेगी कि भारत में भारतीयों के द्वारा मोटर के इंजन और विमानों के इंजन बनाये जायँ, और भारत की रक्षा के सम्बन्ध में जिन ज़रूरी चीज़ों का अभाव है उन्हें भी यहाँ बनाया जाय?

प्रधान सेनापति हमारे बल और चरित्र की दृढ़ता को मानते हैं, और हम भी ससम्मान अपने सब साधन उन्हें इस समय देने के लिए तैयार हैं। युद्ध-सम्बन्धी एक बोर्ड तुरन्त बनाया जाय, जिसमें अँगरेज़ और हिन्दुस्तानी दोनों रहें। इस बोर्ड को व्यापक शक्तियाँ दी जायँ ताकि हम निम्नलिखित आवश्यक कार्यों को कर सकें—

(१) विमानों के लिए २५,००० चालक तैयार किये जायँ।

(२) भारतीय सेना में भर्ती होने के लिए सैनिक और ग़ैर-सैनिक जातियों का भेदभाव तुरन्त उड़ा दिया जाय।

इसके अतिरिक्त सम्राट् के भारतीय कमीशंड अफ़सरों और वायसराय के कमीशंड अफ़सरों की उचित व्यवस्था की जाय। सम्राट् के कमीशंड अफ़सरों में अधिक हिन्दुस्तानियों को लिया जाय। और दस या पन्द्रह वर्ष के भीतर सेना का भारतीयकरण कर दिया जाय।

कवीन्द्र की सफ़ाई

बंगाल की राजनीति के सम्बन्ध में श्रीयुत रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने पिछले दिनों एक मार्मिक वक्तव्य निकाला था। उनका उक्त वक्तव्य यथासमय 'सरस्वती' में छपा है। उसे पढ़कर कुछ लोगों को यह भ्रान्ति हुई कि उसमें ठाकुर महाशय ने श्रीयुत सुभाषचन्द्र पर आक्षेप किया है। फलतः दूसरा वक्तव्य निकालकर कवीन्द्र ने अपनी सफ़ाई दी है। इसे हम यहाँ 'हिन्दुस्तान' से देते हैं—

पिछले दिनों एक वक्तव्य में मैंने अपने देश-भाइयों से हार्दिक अपील की थी। लोगों ने समझा कि शायद मेरा इशारा श्री सुभाषचन्द्र बोस की तरफ़ है। यह मेरे लिए शर्म की बात है; क्योंकि मेरी यह आदत नहीं है कि किसी व्यक्ति पर किसी आड़ में आक्षेप करूँ। लेकिन इसका यह अभिप्राय नहीं कि मैं सुभाष बाबू को उनके मुँह पर कुछ कह ही नहीं सकता। मैं ऐसा कर सकता हूँ, क्योंकि मेरे दिल में उनके प्रति प्रेम है। लेकिन अपने पहले वक्तव्य में मैंने केवल बंगाल के उन लोगों से अपील की थी जो लड़ाई-झगड़ा करने के सिवाय और कोई काम नहीं करते। वे अपनी पार्टियाँ खड़ी करके एकता को नष्ट कर देते हैं। अतीत में हमने एक बार बंगाल में जबर्दस्त जागृति देखी थी। उस समय हमने कई निश्चय किये और कई काम भी किये। लेकिन हमारी यह नव-कर्तृत्वशक्ति नष्ट हो गई, क्योंकि हम सब एक होकर कुछ भी करने में असमर्थ रहे। बंगालियों ने, अफ़सोस है, एक स्वर्ण अवसर हाथ से खो दिया। आज भी उसकी दुःखद स्मृति मेरे हृदय-पटल पर अंकित है। उस समय बंगाल दूसरे प्रान्तों का शिरोमणि था।

मुझे भय है कि आज तो छल-कपट भी हमारे चरित्र का अंग बन गया है। सीधी तरह से नाक को हाथ न लगाकर हम लोग प्रायः प्राणायाम करते हैं और इस तरह चाहते हैं कि हमारे किसी भी काम का नतीजा जल्द निकल आवे। इससे हम लोगों में वैर-भाव उत्पन्न हो जाता है और हम विनाश की ओर अग्रसर हो जाते हैं। हम एक दूसरे पर विश्वास करना छोड़ देते हैं और दूसरे की प्रगति में बाधक बन जाते हैं। अपने देश-भाइयों की यही आत्म-विनाशक वृत्ति थी, जिसके विरुद्ध मुझे आवाज़ उठानी पड़ी।

वास्तव में मैं सुभाष बाबू से प्रेम करता हूँ। मैं नहीं जानता कि उनकी नीति का चरम उद्देश क्या है, क्योंकि राजनीति मेरे अनुभव से बाहर की चीज़ हो गई है। लेकिन सुभाष बाबू का देश-प्रेम असन्दिग्ध है। और उन्होंने दूसरे देशों की राजनीति का भी अध्ययन किया है। इसलिए मैं उनसे अपील करूँगा कि वह हमारी जन्म-भूमि को ह्रास से बचायेगा, अनेकता की खाई पाटेगा और इस तरह जनता का विश्वास-पात्र बनेगा। मैं प्रभु से मंगल-कामना करता हूँ कि पार्टीबाज़ी की चोटों से पथभ्रष्ट न होंगे।

नीतशे और मनु

काशी से 'सिद्धान्त' नाम का एक साप्ताहिक पत्र कुछ दिनों से निकलने लगा है। यह एक दार्शनिक पत्र है। इसके सभी लेख गम्भीर और महत्त्वपूर्ण होते हैं। इसके हाल के एक अंक में 'एक किताबी कीड़ा' नाम के लेखक का 'नीतशे और मनु' शीर्षक लेख प्रकाशित हुआ है, जो इस प्रकार है—

नीतशे जर्मनी के एक प्रसिद्ध दार्शनिक थे। उनका जन्म एक पादरी के घर में हुआ था, पर बाद में वे ईसाई-धर्म के घोर विरोधी बन गये। सन् १९०० में उनकी मृत्यु हुई। कहा जाता है कि गत महासमर के पहले जर्मनी में जो युद्ध-प्रवृत्ति जागृत हुई उसका कारण बहुत कुछ उनके उपदेश थे। वे 'शक्ति' के सच्चे उपासक थे, मुसोलिनी और हिटलर दोनों ही उनको अपना आध्यात्मिक गुरु मानते हैं। इन्हीं नीतशे पर मनु के विचारों का कितना प्रभाव था, यह बहुतों को ज्ञात नहीं है, परन्तु उनकी कई पुस्तकों में इसके अनेक प्रमाण मिलते हैं। वे लिखते हैं कि यदि मनुष्य में सच्ची मानवता लानी है तो हिन्दुओं-द्वारा बतलाये हुए मार्ग पर चलना पड़ेगा। बाइबिल बन्द करके मनु का धर्मशास्त्र खोलना होगा। ईसाई-मत तो गुलामों का धर्म है, परन्तु मनु का धर्म शक्ति की उपासना है। अस्पतालों और जेलों के ऐसे ईसाई-वातावरण से निकल कर (मनु के) इस अधिक स्वास्थ्यप्रद, श्रेष्ठ और

विस्तृत जगत् में मनुष्य स्वच्छन्दता की श्वास लेता है। मनु के सामने बाइबिल तुच्छ जान पड़ती है। इसके चारों ओर एक प्रकार की दुर्गन्धि फैली रहती है। ईसाई-मत में पवित्र उद्देश्यों का सर्वथा अभाव है। इसी लिए उसके बताये हुए साधन मुझे नहीं जँचते। जब मैं मनु को पढ़ता हूँ, मेरी विचार-धारा पलट जाती है। यह बाइबिल से कहीं अधिक उच्च और विद्वत्तापूर्ण है। दोनों की तुलना तो दूर रही, एक साथ नाम लेना भी पाप जान पड़ता है।

इसका कारण प्रत्यक्ष है। मनु के ग्रन्थ में सूक्ष्मदर्शी मनोवैज्ञानिकों की भी बुद्धि चक्कर खाने लगती है। इसमें उच्च भाव भरे पड़े हैं। इसकी बातों में पूर्णता का आभास मिलता है। यह जीवन को व्यर्थ नहीं समझता। इसमें उसके प्रति विजय-याचना का अनुभव होता है। सारे ग्रन्थ में सूर्य का-सा प्रकाश है। स्त्री, विवाह तथा सन्तानोत्पत्ति ऐसे विषयों का, जिन्हें ईसाई-धर्म ने अश्लीलता के अथाह गर्त में ढकेल रखा है, इसमें सचाई, सम्मान, स्नेह और श्रद्धा के साथ विवेचना किया गया है। मुझे कोई दूसरा ऐसा ग्रन्थ ज्ञात नहीं है, जिसमें स्त्रियों के प्रति इतने सुन्दर और सहानुभूतिपूर्ण भाव दिखलाये गये हों। ये सफ़ेद लम्बी दाढ़ीवाले ऋषि स्त्रियों के प्रति एक अनोखी उदारता दिखलाते हैं। इनके विचारों में शताब्दियों के अनुभव भरे हुए हैं। ये त्रिकालदर्शी जान पड़ते हैं। मनु अपनी ओर से कोई समाजविभाग (वर्णव्यवस्था) नहीं बतलाते हैं, वे तो जो स्वाभाविक है, जो परम्परा से चला आ रहा है, उसी को शब्दों में प्रकट करते हैं। यह विभाग मनमाना नहीं है, इसमें कुछ भी बनावटी नहीं है। समाज-रक्षा के लिए यह नितान्त आवश्यक है। इसमें प्रत्येक मनुष्य के अधिकार तथा कर्त्तव्य निर्धारित हैं। जैसे जैसे मनुष्य ऊपर उठता जाता है, उसकी ज़िम्मेदारी बढ़ती जाती है। जीवन के प्रस्फुटित होने का जो उच्चतम मार्ग है, वास्तव में मनु ने उसको बतलाया है।

नीतशे की राय में राजनीति के सम्बन्ध में मनु दो टूक बात कहते हैं। इस दृष्टि से वे झूठे पाश्चात्य राजनीतिज्ञों से कहीं अधिक श्रद्धास्पद हैं। मनु के शब्दों में "सादगी गौरव और प्रतिष्ठा" है। धर्म केवल अपने पैरों नहीं खड़ा हो सकता, वास्तव में, जैसा कि मनु ने लिखा है, "यह दण्ड का भय है, जिससे परस्पर प्राणी अपने भोग को भोगते हैं और कोई अपने निर्धारित कर्म से विचलित नहीं होता।"

अन्तर्राष्ट्रीय नीति में नीतशे के अनुसार मनु का मत उन योरपीय राजनीतिज्ञों के मत से, जो कहते कुछ हैं और करते कुछ, कहीं अधिक मान्य है। "अपने राज्य के सीमा पर के सब राज्यों और उनके मित्रों को अपना शत्रु और उसी कारण से उनकी सीमा पर के राज्यों को अपना मित्र समझे", मनु के इस कथन में बहुत कुछ सत्य है। नीतशे ने अपने ग्रन्थों में जहाँ मनु का नाम लेकर उल्लेख किया है, उन्हीं स्थलों के कुछ वाक्यों को यथासम्भव उन्हीं के शब्दों में यहाँ उद्धृत किया गया है। पर वास्तव में उनके कितने ही विचारों पर मनु की छाप स्पष्ट दिखलाई देती है। समाज में श्रेणीविभाग और स्त्रीस्वातन्त्र्य-सम्बन्धी अपने विचारों को प्रकट करने में ऐसा जान पड़ता है कि वे मनु के शब्दों का ही अनुवाद कर रहे हैं। वे लिखते हैं कि स्त्रियों में प्रायः सत्यता का अभाव होता है। उनकी स्वतन्त्रता समाज के लिए कभी हितकर नहीं हो सकती। जिस स्त्री में पुरुष का भय नहीं उसका स्त्रीत्व नष्ट हुआ समझना चाहिए। "वास्तव में स्त्री सुन्दर पर खतरनाक बिल्ली है। उसके दस्ताने में शेर का पंजा छिपा रहता है। उसमें गर्व, चंचलता, चपलता, छल कूट कूट कर भरा है। वह पुरुष के भय से ही वश में रह सकती है। उसके प्रति पुरुष में सहानुभूति और प्रेम होना चाहिए, वह उसकी सम्पत्ति है और उसका जीवन पुरुष की सेवा के लिए ही है। वर्तमान नारी-आन्दोलन की तीव्र आलोचना करते हुए वे एक स्थान पर लिखते हैं कि "शिक्षित पुरुष गये हैं, जो स्त्रियों को राजनीति में घसीट कर उनके स्त्रीत्व को नष्ट करते हैं।"

नीतशे के विचार बड़े विचित्र हैं, भिन्न भिन्न स्थलों पर उनकी कही हुई बातों का मेल मिलाना सहज नहीं है। मनु के सम्बन्ध में उनके परस्परविरोधी विचारों का एक रहस्य जान पड़ता है। मनु ने धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष चारों का मेल बैठाया है, परन्तु नीतशे को धर्म और मोक्ष से जो वास्तव में जीवन-प्रवाह के दो कगारे हैं, कुछ भी सरोकार नहीं है। उन्हें तो केवल अर्थ और काम से मतलब है। इसका ध्यान न रहने से अनर्थ ही होता है, जैसा कि आज-कल योरप में दिखलाई पड़ रहा है।

कलियुगी गीता !

'वर्तमान' अपने मनसुखा के 'मनोरञ्जन' के लिए बहुत प्रसिद्ध है। यहाँ हम उसका एक 'मनोरंजन' उद्धृत करते हैं, जो सुरुचिपूर्ण होने के साथ साथ सामयिक भी है—

पात्र:—रूज़वेल्ट=धृतराष्ट्र। कारडिल हल=संजय। हिटलर=दुर्योधन। मुसोलिनी=शकुनि। चर्चिल=अर्जुन। गांधी=श्रीकृष्ण।

यूरोपस्य कुरुक्षेत्रे, समवेता युयुत्सवः।

कौरवाः पाण्डवाश्चैव, किमकुर्वन्त कारडिल !

रूज़वेल्ट—हे कारडिल हल, यूरोप के कुरुक्षेत्र में जमा हुए पाण्डव और कौरव, अब क्या सोच रहे हैं? युद्ध पूरे वेग से क्यों नहीं चल रहा है? क्या अस्त्र-शस्त्र चुक गये हैं?

कारडिल हल—कुछ पूछिए नहीं। आपने तो पाण्डवों को अस्त्र-शस्त्र देने का वचन देकर उलटा महाभारत कर दिया है! दुर्योधन को इसकी बड़ी चिन्ता होगई है!

* * *

हिटलर—मामा, यह समस्या तो बड़ी कठिन आ पड़ी है। इतने देशों को जीतने पर भी पाण्डवों के मोर्चे पर कैसे आक्रमण किया जाय?

शकुनि—यही तो कई दिनों से मैं भी सोच रहा हूँ। पाण्डवों के हवाई जहाज़ जर्मेनिया उजाड़ रहे हैं। मेरे जंगी जहाज़ हारकर भाग आये हैं। न हो, तो संधि का ही प्रस्ताव भेजकर देखिए!

* * *

यदा यदाहि धर्मस्य

ग्लानिर्भवति, चर्चिल !

अभ्युत्थानमधर्मस्य,

अहिंसास्त्रं सृजाम्यहम् !

गांधी जी—हे चर्चिल, पशु-बल-द्वारा लड़ने से तो फिर पशु-बल का ही उत्थान होता रहेगा। संसार के प्रजातन्त्रों को इससे कभी शान्ति नहीं मिलेगी!

चर्चिल—वाह यह अच्छी कही आपने! शत्रु को परास्त करके ही शान्ति क़ायम की जा सकती है।

गांधी जी—ज़रा विचार तो कीजिए। हिटलर की फ़ौजें जितना नाश कर रही हैं, जब तक आपकी फ़ौजें भी, उससे सवाया नाश करने पर कमर न कस लेंगी, तब तक जिसे आप विजय कहते हैं वह कैसे प्राप्त होगी?

चर्चिल—मगर इसके सिवा और कोई उपाय भी तो नहीं है।

गांधी जी—उपाय क्यों नहीं है। अहिंसा के अस्त्र का प्रयोग कीजिए, मेरे सत्याग्रह के रथ पर बैठ जाइए! हिटलर और मुसोलिनी को बुलाकर कहिए कि क्या लेना चाहते हो? अगर वे आपका द्वीप भी लेना चाहें तो भी उनको दे दीजिए!

चर्चिल—ख़ूब कही! घरबार देकर हम लोग कैनाडा या आस्ट्रेलिया चले जायँ?

गांधी जी—सब कुछ देकर भी उनकी मातहती क़बूल न कीजिए!

चर्चिल—अत्याचारी हम पर बम और मशीनगनें चलावें और हम चुप बैठे रहें, यह कैसे हो सकता है?

गांधी जी—निहत्थों पर वे जितना ज़ुल्म करें करने दीजिए। अन्त में विजय आपकी होगी। मैं इस सत्याग्रही रथ का संचालन करने के लिए तैयार हूँ! इस पर बैठ कर देखिए तो।

चर्चिल—माफ़ कीजिए! हमारी सेनाओं ने तो अपने ही अस्त्र-शस्त्रों से शत्रु को पराजित करने का निश्चय कर लिया है! आप अपना रथ ले जाइए, इस पर यहाँ कोई न बैठेगा!!
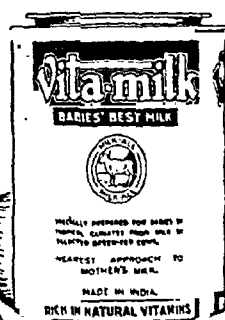
ब्रिटेन और युद्ध

फ्रांस के हथियार रख देने से युद्ध का सारा भार अब अकेले ब्रिटेन के सिर पर आ गया है। इस भीषण परिस्थिति का सामना करने के लिए ब्रिटेन अपने उसी शौर्य और धैर्य का परिचय दे रहा है जो उसके सदियों के इतिहास में स्वर्णाक्षरों में अंकित है। इसमें सन्देह नहीं कि ऐसी विषम परिस्थिति का उसे कभी नहीं सामना करना पड़ा है। इस समय शत्रु से वह तीन ओर से घिरा हुआ है, और वह दिन दूर नहीं जब शत्रु उस पर अपना भीषण आक्रमण करेगा। परन्तु अपनी स्वाभाविक निर्भयता से वह इस भीषण परिस्थिति का सामना करने की तैयारी करने में संलग्न है और उसे इस बात का विश्वास है कि वह शत्रु पर अवश्य विजयी होगा। जर्मनी को भी उस पर एकाएक आक्रमण करने का साहस नहीं पड़ रहा है। वह जानता है कि ग्रेट ब्रिटेन दूसरों की तरह निर्बल नहीं है। इसमें सन्देह नहीं कि ब्रिटेन की वर्तमान सरकार ने आत्म-रक्षा के साथ ही शत्रु पर आक्रमण करने की पूरी तैयारी कर ली है। और इस समय दोनों अपनी-अपनी घात में हैं। ऐसी दशा में जब इन दोनों का संघर्ष होगा तब वह अन्तिम और निर्णायक ही होगा।

फ्रांस की दुर्दशा

फ्रांस—संसार का प्रसिद्ध प्रजातंत्रवादी राष्ट्र—आज पददलित और ध्वस्त है। यहाँ तक कि उसका अपने घनिष्ठ मित्र ब्रिटेन से भी सम्बन्ध-विच्छेद हो गया है। बात यह हुई कि क्षणिक सन्धि की शर्तों के अनुसार फ्रांस को अपना जंगी बेड़ा जर्मनी और इटली को सौंप देना पड़ता। यह बात ब्रिटेन के लिए बड़ी जोखिम की होती। अतएव ब्रिटेन को उसके बेड़े को अपने अधिकार में कर लेने का निश्चय करना पड़ा। इसी सिलसिले में ब्रिटिश जंगी बेड़े की एक टुकड़ी से फ्रेंच जंगी बेड़े की एक टुकड़ी का अल्जीरिया के ओरन बन्दरगाह में छोटा-मोटा संघर्ष हो गया, जिसमें फ्रेंच बेड़े को भारी क्षति उठानी पड़ी। परन्तु ब्रिटेन अपनी रक्षा के विचार से लाचार है और उसके जंगी बेड़े ने अधिकांश फ्रेंच जहाजों को अपने अधिकार में कर लिया है। इस घटना के फल-स्वरूप फ्रांस की सरकार ने ब्रिटेन से राजनैतिक सम्बन्ध भंग कर लिया है। उधर फ्रांस में शासन-विधान-सम्बन्धी भारी परिवर्तन होने जा रहा है। जो फ्रांस अभी तक स्वाधीनता, समता और बन्धुत्व के सिद्धान्तों को कार्य का रूप एक लम्बे समय से दिये रहा है उसी में तानाशाही स्थापित होने जा रही है। जान पड़ता है, फ्रांस को अभी और भी भयानक परिस्थितियों का सामना करना पड़ेगा। उसके वर्तमान तानाशाह मार्शल पेताँ फ्रांस में हिटलरशाही कायम करने को उत्सुक हुए हैं। उनके फ्रांस का मोटो अब मजदूर, कुटुम्ब और देश होगा—पहले की स्वाधीनता, समता और बन्धुत्व का सिद्धान्त छोड़ दिया गया है। परन्तु उनकी यह बड़ी भारी भूल होगी। जिस राष्ट्र की नस नस में प्रजातंत्र की भावना जड़ जमा चुकी है, वहाँ तानाशाही अपने पैर कैसे जमा सकेगी, यह एक प्रश्न है। इस प्रश्न का उत्तर भविष्य में फ्रांस में भयानक क्रान्ति के रूप में ही प्राप्त होगा। आज का छिन्न-भिन्न और अस्तव्यस्त फ्रांस निस्सन्देह कुछ भी नहीं कर सकेगा, परन्तु साधारण अवस्था के आजाने के बाद फ्रेंच राष्ट्र अपने असली रूप के प्रकट करने में कदापि विरत नहीं होगा। यही उसकी परम्परा रही है।

चीन और जापान

योरपीय महायुद्ध के कारण चीन-जापान का युद्ध लोगों की निगाह में नहीं रहा। परन्तु चीन के दुर्भाग्य से वह युद्ध पूर्ववत् जारी है। अभी अभी उस दिन जापान

नोट कर लो !　　　　मत भूलो !　　　　मत चूको !

१५ अगस्त ही आख़िरी दिन है !

जो सज्जन १५ अगस्त के पहले, चिकित्सा-चन्द्रोदय ७ भाग के लिए पाँच या दस रुपया पेशगी भेज देंगे, उन्हें सातों भाग १७॥) (पौने अठारह रुपये) और पैंकिग चार्ज, रजिस्ट्री ख़र्च ।॥) कुल १८।) रु० में मिल जावेंगे। रेलवे चार्ज ख़रीदारों को देना होगा।

१५ अगस्त के बाद—

पूरी क़ीमत ३५॥)

रुपया लगेगी। पैंकिग चार्ज वग़ैरह वही १२ आने लगेंगे। अब हमारी सामर्थ्य नहीं है, जो हम इस काग़ज़ की मँहगी के समय में भी, आधी क़ीमत में ऐसी अनमोल पुस्तकें देते रहें। **अब हमेशा को पूरी क़ीमत कर दी गई है।** आगे कभी आधी क़ीमत होने की आशा न करें। ऐसी उम्मीद करने से धोखा होगा। हमारे पास अब जो ग्रन्थ बाक़ी बच रहे हैं, उन्हें ही १५ अगस्त तक आधे दामों में दे देंगे। हम जानते हैं, ३१ जुलाई तक ही इस ग्रन्थ के कई भाग घट जावेंगे। अगर कोई भाग न होगा तो जितने भाग होंगे उतने ही भेज देंगे, ख़रीदार किसी तरह की आपत्ति न कर सकेंगे।

हम ७ सालों से अपनी पुस्तकें आधी क़ीमत में देते आरहे हैं। फिर भी, अनेक ग़रीब लोग अब तक भी इस ग्रन्थ को न ख़रीद सके होंगे। जो न ख़रीद सके हों, वे अब ख़रीद लें। भूलने या देर करने से पछताना होगा!

५) पेशगी ज़रूर भेज दें। कूपन पर अपना पता, गांव, डाकख़ाना, ज़िला, रेलवे लाइन और नज़दीकी स्टेशन साफ़ हिन्दी या अँगरेज़ी में लिख भेजें।

दवाएँ आधी क़ीमत में—

ही मिलती रहेंगी, **क्योंकि हमारी** दवायें स्वदेशी हैं, कोई चीज़ मँहगी नहीं हुई है। जल्दी करो, जल्दी रुपया भेजो!!

अगर इतनी ख़बर देने पर भी आप आधी क़ीमत में चिकित्सा-चन्द्रोदय वग़ैरः न पा सकें तो हमारा क़ुसूर नहीं।

के वायुयानों ने राष्ट्रीय सरकार की वर्तमान राजधानी चुंगकिंग पर बमों की वृष्टि की थी, जिससे वहाँ के विश्वविद्यालय की सारी इमारतें धराशायी हो गईं। इस युद्ध की चीन और जापान दोनों जगहों में तीसरी वर्षगाँठ हाल में मनाई गई है। इस अवसर पर चीन की राष्ट्रीय सरकार के प्रधान राष्ट्रपति च्यांग काई शेक ने घोषित किया है कि जब तक जापान की सेनायें चीन छोड़कर चली नहीं जायेंगी, चीन-जापान का युद्ध जारी रहेगा। जापान ने इस वर्षगाँठ के अवसर पर पिछले तीन वर्ष के युद्ध में अपनी और शत्रुओं की हानि का विवरण दिया है और यह बताया है कि उसको चीन में क्या क्या मिला है तथा उसके कितने भू-भाग पर उसका अधिकार हो गया है। उसके मत से रूसियों-चीनियों की हानि का ब्योरा इस प्रकार है—

जुलाई १९३७ से जून १९४० तक चीन के ५६८ हवाई जहाज़ नष्ट किये गये। मंचूको की सीमा के संघर्ष में रूस के १,३७० हवाई जहाज़ नष्ट किये गये। लड़ाई में तीस लाख शत्रु मारे गये, घायल हुए, क़ैद हुए या भाग खड़े हुए। ८५ हज़ार जापानी मारे गये। जापान के ५७ हवाई जहाज़ चीन में और १३७ रूस की सीमा पर काम आये।

परन्तु चीन के युद्ध-मंत्री का कहना है कि जापान के १६ लाख सैनिक हताहत हुए हैं, और जापानियों की ७६० तोपें, ३,३०० मशीनगनें और ६९,००० राइफ़लें चीन के हाथ लगी हैं। इस समय चीन की सेना में ५० लाख जवान हैं।

ऐसी दशा में किसका विश्वास किया जाय? परन्तु जब तीन वर्ष से यह युद्ध छिड़ा हुआ है तब भारी हानि उभय पक्ष की हुई होगी, इसमें सन्देह नहीं है। तथापि यह तो प्रकट ही है कि जापान चीन का दमन करने में समर्थ नहीं हुआ है। यद्यपि उसने चीन में दो कठपुतली चीनी सरकारें स्थापित कर ली हैं, तो भी चीन युद्ध कर ही रहा है। बीच बीच में मंचूको की सीमा पर रूस से भी संघर्ष होता ही रहता है।

अब जापान इस प्रयत्न में है कि चीन को बाहर से युद्ध-सामग्री न मिलने पावे। यदि इस प्रयत्न में इसे सफलता मिल गई तो चीन की राष्ट्रीय सरकार को लड़ाई जारी रखने में कठिनाई का सामना करना पड़ेगा।

रूस और जापान

रूस की राजनैतिक चालों का समझना बहुत कठिन है। वह कब क्या कर गुज़रेगा, इसको कोई नहीं जान पाता। जब पोलैंड को जर्मनी पूर्ण रूप से जीत चुका था तब उसने पीछे से उस पर आक्रमण कर उसके एक बड़े भू-भाग को अपने अधीन कर लिया। उसके बाद उसने बाल्टिक के नये स्वाधीन राज्यों के आगे उनके देशों में अपने सैनिक अड्डे क़ायम करने की माँगें रक्खीं। लुथिआनिया, लैटेविया और इस्थोनिया ने तो उसकी माँगें स्वीकार कर लीं और उनमें अपनी फ़ौजें तथा जहाज़ भेजकर उसने अपने अड्डे तत्काल क़ायम कर लिये। परन्तु फ़िनलैंड ने उसके प्रस्ताव को नहीं स्वीकार किया, फलतः रूस ने उस पर चढ़ाई करके अपनी माँगों से अधिक उसके भू-भाग अपने अधिकार में कर लिये। इधर जब जर्मनी फ़्रांस को विध्वंस कर चुका तब उसने बाल्टिक के उन तीनों देशों की स्वाधीनता को नष्ट कर उन्हें अपने संरक्षण में ले लिया है। अब केवल फ़िनलैंड रह गया है, सो वह दिन दूर नहीं है जब उसे रूस की छत्रच्छाया में आना पड़ेगा। इस प्रकार रूस एक एक करके अपने उन सारे भूखण्डों पर अपना अधिकार जमा रहा है जो पिछले महायुद्ध के बाद उससे ले लिये गये थे। परन्तु वह अपनी पहले की जायदाद को पाकर ही सन्तुष्ट हो जायगा या अब वह आगे पैर बढ़ायेगा, इस सम्बन्ध में लोगों की एक राय नहीं है। यह तो स्पष्ट ही है कि बोल्शेविक रूस की दाढ़ में शिकार का ख़ून लग गया है और योरप की जो भीषण स्थिति इस समय है उससे वह लाभ नहीं उठायेगा, यह कहना मूर्खता होगी। इस समय उसकी निगाह रूमानिया पर है। उसके बेसेरबिया और बुकोविना के प्रदेश रूमानिया के अधिकार में हैं। मौक़ा पाते ही वह इन पर अधिकार करने से नहीं चूकेगा। चाहे जो हो, यह एक प्रकट बात है कि योरप के वर्तमान गड़बड़ से एक ओर रूस तो दूसरी ओर जापान अपना अपना मतलब गाँठने में संलग्न है।

सड़े हुए भोजनके टुकड़े आपकी रसोइके बरतनोंको खतरनाक बना देते हैं!

जब बरतन इत्यादि रेत से साफ किये जाते हैं तब इनमें लकीरें पड जाती हैं। और इन लकीरों में छोटे भोजन के टुकडे रह जाते हैं जो जलदी सडने लगते हैं और तमाम खुराक को जहरीला बना देते हैं। और आपके परीवारके लिये रोगदायक साबत होते हैं।

इस खतरे से बचो और तमाम बरतनोंकी सफाई के लिये विम इसतेमाल करो। विम इसी मतलबके लिये बनाई गई है के बरतनो में से भोजनके छोटे से छोटे टुकडेभी निकाल कर इनको साफ कर दे और इनको निहायत ही चमकीला बना दे। विमसे लकडी की बनी हुई चिजें, रोगन की हुई चिजे, चिलमचीयों नहाने के टब इत्यादी अच्छी तरहसे निहायत आसानी और सफाईसे और बगैर किसी आंदेशेके सफा कीये जा सकते हैं।

विम
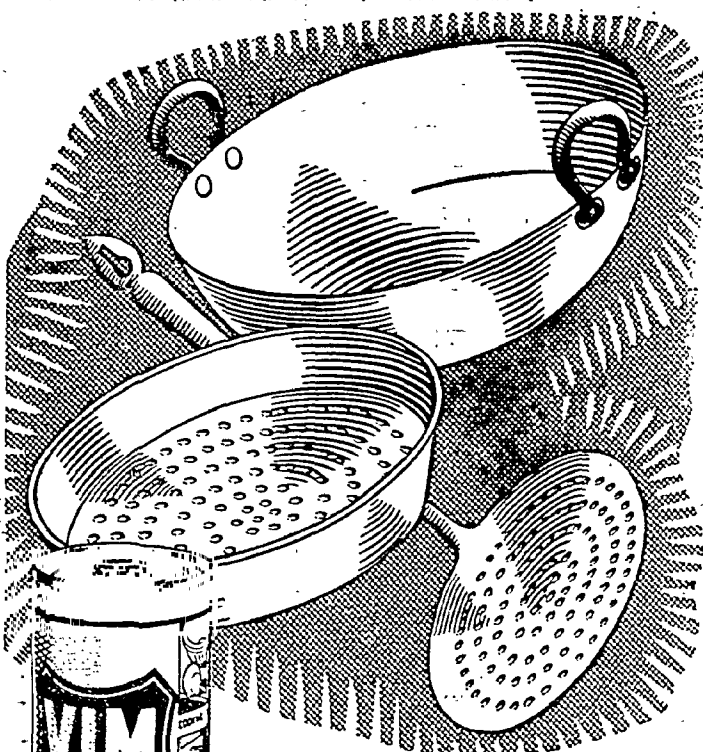
बरतनोंको सेहतके लिये निरोगी बनाती है।
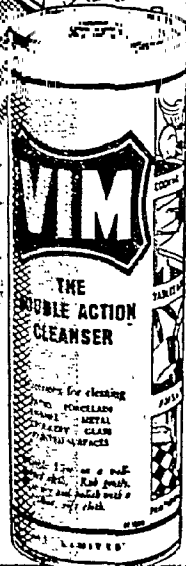
X-V 374-172 LEVER BROTHERS (INDIA) LIMITED

जापान अभी तक चुप था। परन्तु फ़्रांस का पराभव होते ही उसने अपने रंगढंग दिखाने फिर शुरू किये हैं। उसने इंडोचीन की सरहद पर अपनी फ़ौजें यह कह कर भेज दी हैं कि वहाँ से चुंगकिंग की राष्ट्रीय सरकार को शस्त्रास्त्र भेजे जाते हैं। जापान का कड़ा रुख देखकर फ़्रांस की वर्तमान सरकार ने प्रतिज्ञा की है कि भविष्य में इंडोचीन से चीन को अस्त्र-शस्त्र नहीं भेजे जायँगे। फ़्रांस की तरह उसने ब्रिटेन से भी कहा है कि ब्रह्मदेश के मार्ग से वह चीन को अस्त्र-शस्त्र न भेजे। इसके साथ ही हाँगकाँग के आस-पास उसने कड़ी नाकेबन्दी कर दी है ताकि उधर से चुंगकिंग की सरकार को अस्त्र-शस्त्र न भेजे जा सकें। वह ब्रिटेन, फ़्रांस, इटली, जर्मनी, अमरीका आदि को सूचित कर चुका है कि वहाँ की सरकारें चीन से अपना हाथ खींच लें, क्योंकि अब जापान चीन में बाहरी शक्तियों का हस्तक्षेप नहीं सहन कर सकेगा। जैसे संयुक्त राज्य दक्षिणी और उत्तरी अमरीका में विदेशी शक्तियों को पैर जमाने नहीं देता है, उसी तरह जापान चीन में दूसरे देशों को अपने स्वार्थ नहीं रखने देना चाहता। योरप की वर्तमान स्थिति से लाभ उठाकर जापान चीन में मनमानी करने पर तुल गया है।

कांग्रेस की राजनीति

कांग्रेस की राजनीति महात्मा गांधी की राजनीति रही है और वही उसके कर्त्ता, धर्ता और विधाता रहे हैं। परन्तु आज संसार में जो उथल-पथल मची हुई है उसका प्रभाव भारत पर यहाँ तक पड़ा है कि उसकी महासभा के गत बीस वर्ष के एक-मात्र नेता और उसके अनुयायियों में भारी मतभेद उठ खड़ा हुआ है। यह उसी मतभेद का परिणाम है कि महात्मा गांधी को कांग्रेस के अपने उस पद से अलग हो जाना पड़ा है जो उन्होंने रामगढ़-कांग्रेस के अवसर पर सर्वसम्मति से ग्रहण किया था। स्वाधीनता की प्राप्ति के लिए सत्याग्रह-युद्ध जारी करने के लिए रामगढ़ में वे डिक्टेटर बनाये गये थे। परन्तु चार ही महीने के बाद उन्हें अपने उस महान् पद के दायित्व को छोड़ देना पड़ा, और सो भी इसलिए कि उनका अपने उन 'सरदारों' से अहिंसा के सम्बन्ध में मतभेद हो गया है जो गत बीस वर्ष से उनके पूर्ण अनुशासन में रहे हैं। आश्चर्य की बात है कि महात्मा जी को बीस वर्ष के बाद इस बात का ज्ञान हुआ है कि उनके प्रमुख अनुयायी उनकी तरह अहिंसा को अपना धर्म मानने को तैयार नहीं हैं। ख़ैर, इतने दिनों के बाद यदि महात्मा जी को अपने शिष्य-समुदाय के सच्चे मनोभाव का पता लगा है तो इससे हानि किसी भी पक्ष की नहीं है। महात्मा जी अपने सिद्धान्तों का परीक्षण अब अपने पक्के अनुयायियों के सहारे कर सकते हैं। उधर कांग्रेस भी 'धर्म' के महाजाल से मुक्त होकर देशकाल के अनुरूप राजनैतिक गतिविधि प्रकट करने को मुक्त हो गई है। वर्धा का पिछला २१ जून का प्रस्ताव तथा दिल्ली का हाल का ५ जुलाई का प्रस्ताव उसी गतिविधि का द्योतक है। वह अपनी माँगों पर पूर्ववत् दृढ़ है, साथ ही उसने महात्मा गांधी के विरुद्ध देश की आन्तरिक व्यवस्था और बाह्य आक्रमण के लिए हिंसा के कामों को 'अहिंसा' की परिधि के भीतर ही माना है। इसमें सन्देह नहीं कि महात्मा जी के वास्तविक सहयोग से कांग्रेस वंचित हो गई है, परन्तु यह तो है ही कि उसका संचालन-सूत्र उन्हीं व्यक्तियों के हाथ में है जो पिछले बीस वर्ष से महात्मा जी के अनुशासन में रहकर देशसेवा की पूरी शिक्षा प्राप्त करने में सफल हुए हैं। तब निराश होने की कोई बात नहीं है। और कांग्रेस ने जो नया क़दम उठाया है उससे कांग्रेस का गौरव ही नहीं बढ़ेगा, किन्तु उसे अपने उद्देशों में आवश्यक सफलता भी प्राप्त होगी। उसकी कार्यसमिति ने अपने दिल्ली के प्रस्ताव-द्वारा सरकार से यह आग्रहपूर्वक कहा है कि भारत पूर्ण स्वाधीन घोषित किया जाय, केन्द्र में अस्थायी राष्ट्रीय सरकार की स्थापना हो और उत्तरदायी प्रान्तीय सरकारों से सहयोग किया जाय। इस प्रकार उसने सरकार से सहयोग करने का प्रकट रूप से प्रस्ताव किया है। अब यह सरकार का काम है कि वह आगे आकर कांग्रेस को अपने विश्वास में ले, ताकि भारत अपनी पूरी शक्ति से वर्तमान संकट-काल में अपने कर्त्तव्य के पालन में अग्रसर हो सके।

सम्मेलन की सफ़ाई

आखिर हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के प्रधान मन्त्री के कानों पर जूँ रेंग गई और उन्होंने 'सम्मेलन की सफ़ाई' देने के लिए

अब लक्स के नये बड़े आकार के पेकेट में आपको उतनी ही कीमत में ज्यादा माल मिलता है, इस लिये अपनी कोमल वस्त्रों को लक्स साबुन में चाहे जितनी बार धोइये । लक्स साबुन पक्के रंगके, ऊनी और रेशमी कपड़ों को बड़ी कोमलतापूर्वक साफ करता है । लक्स साबुन से ठंडे पानी में खूब झाग उत्पन्न होता हैं । लक्स साबुन मिले हुए पानी में अपने कोमल वस्त्रों को धीरे धीरे मलिये—उससे सारा मैल और पसीना निकल कर वस्त्र बिलकुल साफ, सुरक्षित और नये निकल आयेंगे । यदि आप के कोमल वस्त्र ठंडे पानी में सुरक्षित रहते हैं तो लक्स साबुन से धोने से सुरक्षित रहेंगे ।

जब आप लक्स का नया बड़ा पेकेट खरीदते हैं तो आपको अपनी कीमत से अधिक माल मिलता है ।

छोटे और मध्यम आकार के लक्स के पेकेट कीमत कीमतसे बहुत अधिक है

LUX

LEVER BROTHERS (INDIA) LIMITED LX. 7-172 HI

एक लम्बा-चौड़ा वक्तव्य प्रकाशित कर दिया। हिन्दी-प्रेमी और साहित्यिक सम्मेलन के सम्बन्ध में जो शिकायतें वर्षों से करते आ रहे हैं उन सबका विद्वान् प्रधान मन्त्री ने अपने इस लम्बे-चौड़े वक्तव्य में विवेचन और विश्लेषण किया है और सारी शिकायतों को निराधार और भ्रान्त बताया है। हम प्रधान मंत्री जी के इस साहस का स्वागत इसलिए करते हैं कि उन्होंने हिन्दीवालों के रोने-धोने पर ध्यान तो दिया। यह वास्तव में किसी प्रजातंत्रात्मक संस्था के लिए गौरवास्पद तो होगा ही, साथ ही हम जैसे लोगों की भ्रान्ति भी इससे दूर हो जायगी। हमने मन्त्री महोदय के वक्तव्य को रुचि से पढ़ा है और इच्छा होते हुए भी हम उसके विरुद्ध इसलिए कुछ नहीं लिखना चाहते, क्योंकि वे अब हिन्दी-प्रेमियों एवं साहित्यिकों का सहयोग चाहते हैं। इसके लिए उन्होंने सम्मेलन के सदस्य बनने का १) वार्षिक चन्दा कर दिया है और अब अनेक हिन्दी-प्रेमी उसके सदस्य बन सकते हैं। जिन्हें हिन्दी में कुछ काम करना है उन्हें बहुसंख्या में सम्मेलन के सदस्य बनकर उसका संचालन ऐसे व्यक्तियों को सौंपना चाहिए जिन्हें वे उक्त कार्य के उपयुक्त समझते हों। या फिर उन्हें कीचड़ उछालने के काम से विरत हो जाना चाहिए। सम्मेलन हिन्दी-भाषियों की सबसे बड़ी संस्था है और उसकी देख-रेख एक ऐसे व्यक्ति के हाथ में है जो इन प्रान्तों का एक प्रमुख राजनैतिक नेता है, साथ ही हिन्दी का अनन्य प्रेमी है और जो सम्मेलन के जन्मकाल से ही उसकी अब तक देख-भाल करता आया है। हिन्दी-प्रेमियों से हमारा आग्रहपूर्वक निवेदन है कि सम्मेलन के विद्वान् मन्त्री के वक्तव्य को सहानुभूति के साथ पढ़ें और अपना कर्त्तव्य-पालन करने के लिए आगे आयें।

सोवियट का नया शिकार रूमानिया

आख़िर रूमानिया पर रूस ने वार कर ही दिया। रूमानिया को आक्रान्त होने पर ब्रिटेन और फ़्रांस की सहायता करने का वचन मिला हुआ था। जब रूस ने देखा कि जर्मनी ने फ़्रांस को पस्त कर दिया है और ग्रेट ब्रिटेन अपनी आत्मरक्षा में संलग्न है तब उसने रूमानिया पर धावा बोल दिया और उन दोनों प्रान्तों पर—बेसेरेबिया और बुकोविना पर अधिकार कर लिया जो सन् १९१४ के युद्ध के पहले उसकी सीमा के अन्तर्गत थे। रूमानिया ने इसका अनुमान कर लिया था कि एक न एक दिन रूस का धावा उस पर होगा और उस समय उसके मित्र उसकी सहायता को न आ सकेंगे। फलतः उसने अपनी सरकार में ऐसा परिवर्तन करना शुरू कर दिया ताकि जर्मनी और इटली उसके पक्ष में हो जायँ और संकट आने पर उसकी रक्षा करें। परन्तु इस नीति के ग्रहण करने में उसने देरी की और उसे जर्मनी तथा इटली से कोई सहायता न मिली। उधर नीति-परिवर्त्तन से ब्रिटेन, फ़्रांस और तुर्की भी उसकी मदद करने को बाध्य न रहे। आज वह जर्मनी और इटली की कृपा प्राप्त करने को आकुल है, क्योंकि उसे हंगरी और बल्गेरिया से भी डर है। इन दोनों देशों में से प्रत्येक के भूखंड उसके अधिकार में पिछले महायुद्ध के फलस्वरूप हो गये हैं और ये दोनों देश उनकी पुनर्प्राप्ति की माँग कर रहे हैं। चाहे जर्मनी के कारण हो, चाहे इटली के, उसके इस संकट के समय उन देशों ने उस पर धावा नहीं बोला और वे चुप रहे। परन्तु उनकी माँग पूर्ववत् जारी है। रूस के इस हस्तक्षेप से बाल्कन-प्रायद्वीप में आतंक-सा छा गया है और लोगों का अनुमान है कि रूस इस क्षेत्र में अभी और हस्तक्षेप करेगा। इस बार वह काले सागर के दोनों मुहानों पर क़ब्ज़ा करने का प्रयत्न कर सकता है। और रूस की यह गतिविधि क्या इटली और जर्मनी को सह्य होगी, यह भी एक प्रश्न है।

कांग्रेस और सरकार

यह बड़े दुःख की बात है कि भारत-सरकार से कांग्रेस का इस बार भी समझौता नहीं हो सका। इस समय भारत के वाइसराय लार्ड लिनलिथगो को ब्रिटिश पार्लियामेंट ने सब कुछ करने-धरने का पूरा अधिकार दे दिया है। ऐसी दशा में जब वाइसराय महोदय ने महात्मा गांधी, मिस्टर जिन्ना और वीर सावरकर को बातचीत करने को बुलाया तब लोगों को आशा हुई थी कि इस बार समझौता हो जायगा और भारत एकमत होकर अपने कर्त्तव्य के पालन में संलग्न हो सकेगा। परन्तु देश के दुर्भाग्य से यह

निवेदन (सागर व नदी)

[श्रीयुत शैलेन्द्रनाथ दे, ११४ ए० लेकरोड कालीघाट, कलकत्ता के सौजन्य से

सचित्र मासिक पत्रिका

सम्पादक

देवीदत्त शुक्ल—उमेशचन्द्र मिश्र

सितम्बर १९४० | भाग ४१, खंड २ संख्या ३, पूर्ण संख्या ४८९ | भाद्रपद १९९७

प्रवासी का गीत

लेखक, पंडित पद्मकान्त मालवीय

(राग मलार)

बादरिया घिर आई कारी।

देख बरसते बादल, अँखियाँ बरस उठीं बरबस बेचारी।

दूर देश से पड़ा हुआ हूँ, अपना कोई पास न अपने,
कल की बातें लगतीं कल्पित, वे दिन टूट गये से सपने।
आज शूल सी चुभतीं आकर सुस्मृतियाँ जो थीं अति प्यारी।

हाल देश का जाने कैसा, कैसे हैं सब देश-निवासी,
मित्र कहाँ हैं, कैसे हैं सब, क्या वे सब भी हुए प्रवासी।
हरी-भरी है, सूख गई या मेरे गृह की वह फुलवारी॥

अन्तिम प्रहर रात्रि में कोयल, पीपल-तरु पर अब भी आती?
वैसे ही कू कू कर कोमल स्वर में सबको नित्य जगाती?
रवि-किरणों से सजती होगी क्या अब भी मेरी सुअटारी?

चलती होगी वायु सुवासित प्रातः इठलाती बलखाती,
गंगा-स्नान-हेतु कुल-वधुएँ जाती होंगी गाने गाती।
करते जाते होंगे नर भी राम राम की ध्वनि सुखकारी।

मस्जिद से अजान, मन्दिर से घंटों की ध्वनि अब भी आती?
बड़े शोर से शहनाई क्या राग भैरवी मधुर सुनाती?
दिखलाई देते हैं नभ पर कूजन करते क्या नभ-चारी?

छोटे छोटे भोले बच्चे, कभी झगड़ते, कभी मचलते।
मोतीचूर, जलेबी लेने साथ बड़ों के नित्य निकलते?
करुण स्वरों में भीख माँगते आते होंगे क्या न भिखारी?

लड़के लड़की जाते होंगे सजधज कर निज निज स्कूलों को।
मन्दिर में स्तुति करते होंगे कुछ जन ले कर में फूलों को।
कहते होंगे कुछ 'जय शङ्कर, जय प्रलयङ्कर, जय त्रिपुरारी'॥

लेखक, रायबहादुर बाबू श्यामसुंदरदास, बी० ए०

यों तो हिन्दी का जन्म-काल सम्राट् हर्षवर्द्धन का समय बताया जाता है, परन्तु जिस हिन्दी को हम जानते हैं उसका क़लम इस 'कहानी' के लेखक महोदय ने लगाया था, यही नहीं, उसे पाल-पोसकर फलद वृक्ष के रूप में भी परिणत कर दिया। उनकी यह 'आत्मकहानी' विश्वास है, प्रत्येक हिन्दी-प्रेमी ध्यान से पढ़ेगा, क्योंकि वह इसको पढ़कर जान सकेगा कि उसकी हिन्दी कहाँ से कहाँ जा पहुँची है।

(१)

वंश-परिचय और शिक्षा

बहुत दिनों से मेरी यह इच्छा थी कि मैं अपनी कहानी स्वयं लिख डालता तो अच्छा होता, क्योंकि मेरे जीवन से संबंध रखनेवाली मुख्य मुख्य घटनाओं का ज्ञान लेना तो किसी के लिये भी कठिन न होगा, पर हिंदी और विशेषकर काशी-नागरी-प्रचारिणी सभा से संबंध रखनेवाली अनेक घटनाओं का विवरण जिनका उस समय प्रकाशित होना असंभव-सा था परंतु जिनका ज्ञान बना रहना परम आवश्यक है, मेरे ही साथ लुप्त हो जायगा और ज्यों ज्यों समय बीतता जायगा मैं भी उन्हें कुछ कुछ भूलता जाऊँगा। इसलिये मेरी यह इच्छा है कि इस समय इन घटनाओं का वृत्तांत तथा अपना भी कुछ कुछ लिख डालूँ, जिससे समय पड़ने पर मैं इन बातों से काम ले सकूँ और मेरे पीछे दूसरे लोग उन घटनाओं की वास्तविकता जानकर इस समय के ऐतिहासिक तथ्य का यथार्थ निर्णय कर सकें। यद्यपि बहुत दिनों से मेरी इच्छा यह सब लिख डालने की थी और एक प्रकार से सितंबर सन् १९१३ ई० में मैंने लिखना आरम्भ भी कर दिया था, पर यह कार्य आगे न बढ़ सका। इसके कई कारण थे। एक तो कार्यों की व्यग्रता, दूसरे समय का अभाव, तीसरे गृहस्थी की चिंता और सबसे बढ़कर ग्रंथों के लिखने-लिखाने का उत्साह—इन सबने मुझे यह कार्य न करने दिया। इधर मित्रवर मैथिलीशरण गुप्त ने जोर दिया कि और कामों को छोड़कर इसे मैं पहले कर डालूँ। अस्तु, अब विचार है कि नित्य थोड़ा थोड़ा समय निकाल कर इस काम को कर चलूँ तो, यदि ईश्वर की कृपा हुई तो, समय पाकर यह पूरा हो जायगा।

मुझे अपने पूर्वजों का विशेष वृत्तांत ज्ञात नहीं है। मैंने इसके जानने का उद्योग किया, पर मुझे उसमें सफलता न प्राप्त हुई। जहाँ तक मैं पता लगा सका मेरा वंश-वृक्ष इस प्रकार है—
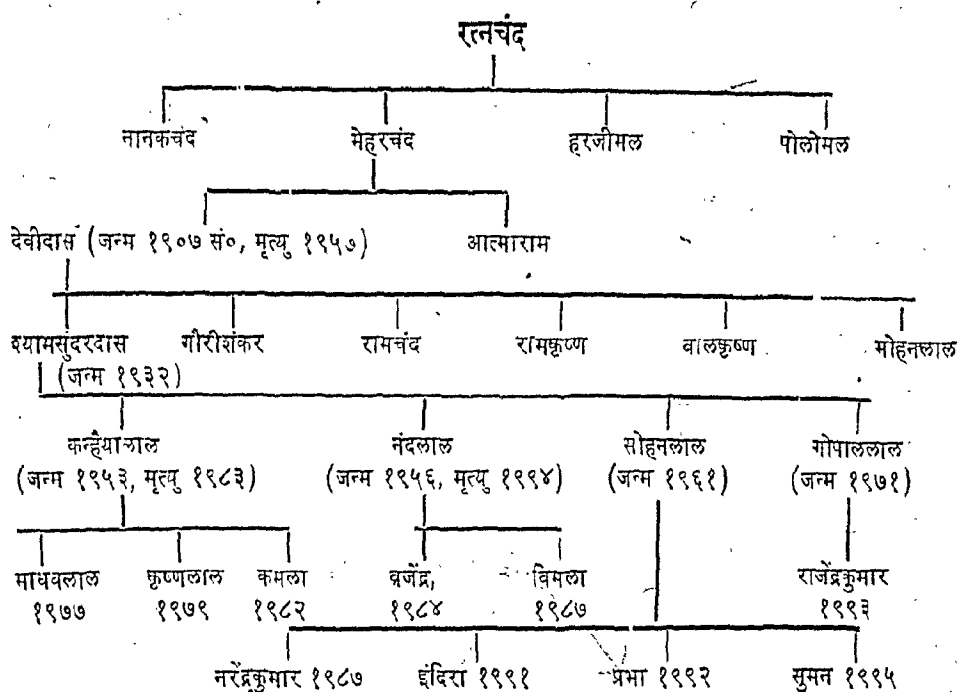
मेरे दादा लाला मेहरचंद का स्वर्गवास थोड़ी ही अवस्था में अमृतसर में हो गया था। मेरे पिता तथा उनके सहोदर लाला आत्माराम और उनकी बहिन का पालन-पोषण मेरे ज्येष्ठ पितामह लाला नानकचंद ने किया। मुझे इनका पूरा पूरा स्मरण है। इन्हें पूरी भगवद्‌गीता कंठाग्र थी और ये नित्य इसका पूरा पाठ किया करते थे। इनका स्वभाव बड़ा निष्कपट, सरल तथा धार्मिक था। ये मुझसे बड़ा स्नेह करते थे। इनकी बड़ी लालसा थी कि मैं शीघ्र ही पढ़ना-लिखना समाप्त करके किसी व्यवसाय में लग जाऊँ और खूब धन कमाकर लक्ष्मी का लाल कहलाऊँ। परंतु उनकी यह कामना पूरी न हो सकी। न तो मेरी शिक्षा उनके जीवन-काल में समाप्त हो सकी और न मुझे लक्ष्मी का लाल कहलाने का सौभाग्य ही प्राप्त हो सका। मैंने सरस्वती की सेवा की और कदाचित् ईर्ष्यावश लक्ष्मी सदा मुझसे रूठी रहीं। यह सब होते हुए भी सरस्वती की कृपा बनी रही और उन्हीं ने समय समय पर मेरे कष्टों का निवारण किया। अस्तु, लाला नानकचंद मुझसे कहा करते थे कि हमारे पूर्वज किसी समय अच्छे प्रतिष्ठित लोगों में थे। लाहौर में हमारा वंश टकसालियों के नाम से प्रसिद्ध था। हमारा प्राचीन घर अब तक 'टकसालियों का घर' के नाम से प्रसिद्ध है। मेरे दादा कहा करते थे कि इस घर में टकसाल थी और वहाँ मोहरें ढलती थीं, पर यह कब की तथा किस राजा के समय की बात थी इसका वे कुछ भी ठीक ठीक पता न दे सके। वे यह भी कहते थे कि जिस घर में टकसाल थी उसे मेरे छोटे दादा लाला पोलोमल ने, इन लोगों के काशी चले आने पर, बेंच डाला। बिक्री हो जाने के अनंतर इस घर में से बहुत-सा गड़ा हुआ धन भी मिला था, पर वह हम लोगों के अंश का न था, इसलिये हम लोगों के हाथ कुछ भी न लगा। दिनों के फेर से लाला नानकचंद अमृतसर में आकर रहने लगे। मैंने सोचा था कि यदि हरिद्वार के पंडों के यहाँ पुरानी बहियाँ मिल जायँ और उनमें मेरे पूर्वजों का कोई पुराना लेख मिल जाय तो उस सूत्र के आधार पर बहुत कुछ पता लगाया जा सकेगा, पर इस काम में भी सफलता न हुई। अस्तु, जब तक और किसी अनुसंधान से विशेष पता न लग सके तब तक यही मानकर संतोष

करना होगा कि मेरे पूर्वज पूर्व काल में लाहौर राज्य के प्रतिष्ठित व्यक्तियों में से थे तथा उस समय के संभ्रांत लोगों में उनकी गिनती थी। परंतु किसी का समय सदा एक-सा नहीं रहता। ऐसा जान पड़ता है कि किसी घोर विपत्ति के कारण उनकी अवस्था बिगड़ गई और वे लाहौर छोड़कर अमृतसर में आ बसे। यहाँ वे पुनः अपनी अवस्था के सुधारने में लगे, पर एक बार की बिगड़ी बात के बनाने में बड़ी कठिनता होती है। यदि सब कठिनाइयाँ दूर भी हो जायँ तो भी प्रायः अधिक समय की अपेक्षा रहती है। अस्तु, कई कारणों से मेरे कनिष्ठ पितामह लाला हरजीमल काशी चले आए और यहाँ व्यापार करने लगे। उन्होंने एक मारवाड़ी से साझा कर 'हरजीमल हरदत्तराय' के नाम से कपड़े की एक बड़ी कोठी खोली। यह कोठी लक्खी-चौतरे पर थी। ऊपर के हिस्से में मारवाड़ी महाशय के घर के लोग रहते थे और नीचे कोठी होती थी। इस व्यापार में उन्हें अच्छी सफलता प्राप्त हुई। दिन दिन लाला हरजीमल का वैभव बढ़ने लगा। मकान भी हो गया, नौकर-चाकर भी देख पड़ने लगे। सारांश यह कि लक्ष्मी के आने से जो खेल-तमाशे होते हैं वे सब देख पड़ने लगे। पर यह सब माया लाला हरजीमल के जीवन-काल में ही बनी रही। उनके आँख बंद करते ही सारा खेल उलट गया। लाला हरजीमल के लड़कों में फूट फैली। पहले बड़ा लड़का, जो उनकी पहली स्त्री से था, अलग होकर अमृतसर चला गया। दूसरी स्त्री से चार लड़के और एक कन्या हुई। इन लड़कों की दशा क्रमशः बिगड़ती गई और उनमें से दो का देहांत हो गया, तीसरे का पता नहीं कि कहाँ है। अस्तु, लाला हरजीमल के स्वभाव से मेरे ज्येष्ठ पितामह प्रायः असंतुष्ट रहते थे। इसका यह भी एक कारण हो सकता है कि एक धनपात्र था तथा दूसरा धनहीन। परंतु जहाँ तक मेरा अनुभव है, कनिष्ठ के कुटिल और कपटी रहने पर भी दोनों में प्रेम था। समय पड़ने पर सब लड़ाई-झगड़े शांत हो जाते थे। एक समय की बात है कि बनारस के पंजाबी खत्रियों में से कुछ लोगों ने पंचायत करके लाला हरजीमल पर अपराध लगाकर उन्हें जातिच्युत करना चाहा। जब पंचायत हुई तो हमारे सब इष्ट-मित्र तथा संबंधी एक हो गए। परिणाम यह हुआ कि जो जातिच्युत करना चाहते थे उन्हें अपनी ही रक्षा करना कठिन हो गया। ऐसी ही एक घटना मेरे साथ भी हुई। मेरे मित्र बाबू जुगुलकिशोर के छोटे भाई बाबू सालिग्रामसिंह जापान गए थे। वहाँ से लौटने पर राजा मोतीचंद के यहाँ एक दावत में हम लोग एक साथ एक टेबुल के चारों ओर बैठकर जलपान कर रहे थे। इतने में खत्रियों के एक प्रतिष्ठित व्यक्ति ने आकर मुझसे पूछा कि 'कुछ लोगे'? मैंने कहा कि 'हाँ, बरफ़ की कुलफ़ी दीजिए।' उन्होंने लाकर दे दी। दूसरे दिन पंचायत करके उन्होंने कहा कि इन्होंने विलायतियों के संग खाया है, अतएव, ये जाति से निकाले जायँ।' मैं बुलाया गया। मुझसे पूछा गया कि 'क्या तुमने विलायतियों के संग बैठकर खाना खाया है'। मैंने कहा कि 'कौन कहता है, वह सामने आवे'। लाला गोवर्धनदास ने कहा, 'हाँ, मैंने स्वयं परोसा है'। इस पर मैंने पूछा कि 'आपने क्या परोसा', तो उन्होंने कहा कि 'बरफ़ की कुलफ़ी'। इस पर मैंने कहा कि 'पंजाब में मुसलमान गुज्जरों से दूध लेकर लोग पीते हैं और उन्हें कोई जाति-च्युत करने का स्वप्न भी नहीं देखता। इन्हीं पंजाबी खत्रियों में यहाँ इसके विपरीत आचरण क्यों होता है? क्या पंजाब में किसी काम के करने पर हम निरपराध रहते हैं और यहाँ वही काम करने पर हम अपराधी ठहरते हैं? अतएव, विलायतियों के साथ बैठकर कुलफ़ी खाना, और वह भी एक खत्री के हाथ से लेकर, कोई अपराध नहीं। यदि बाबू गोवर्धनदास यह समझते थे कि मैं एक अनुचित काम कर रहा हूँ तो उन्हें मुझे वहीं रोकना था। उन्होंने तो मुझे अपराधी बनाने में मदद की। अतएव, यदि दंड होना चाहिए तो उनको, जिन्होंने जान-बूझकर मुझे गढ़े में ढकेला और अब मुझ पर दोष लगाते हैं'। यह सुनकर तो उनके साथी बड़े चिंतित हुए और हो हुल्लड़ मचाकर पंचायत समाप्त कर दी गई। इसी संबंध में एक घटना और याद आ रही है। उसे भी यहीं लिख देता हूँ। हम लोग चार घर खन्ना हैं। हमारा विवाह आदि चार घर मेहरोत्रे, कपूर और सेठों के यहाँ हो सकता है। उस समय हमसे ऊँचे माने जानेवाले ढाई घर खन्ने, कपूर,

मेहरे और सेठ होते थे। मेरे छोटे भाई मोहनलाल का विवाह ढाई घर की लड़की से हुआ। इस पर फिर जाति में हल्ला मचा कि यह काम इन्होंने उचित नहीं किया। इन्हें दंड देना चाहिए। यह बात यहाँ तक बढ़ी कि स्वयं हमारे चाचा लाला आत्माराम ने हमारे यहाँ बधाई तक देने के लिये आने का साहस न किया, पर कुछ वर्षों के अनंतर उन्होंने स्वयं अपने पोते का विवाह ढाई घर में किया। वे भीरु स्वभाव के थे। अपनी रक्षा की उन्हें बड़ी चिंता रहती थी। उनके इस स्वार्थमय स्वभाव का एक नमूना और देना चाहता हूँ। मेरे ज्येष्ठ पुत्र कन्हैयालाल का विवाह अमृतसर में होनेवाला था। मैं उस समय लखनऊ के कालीचरण हाई स्कूल का हेडमास्टर था। कुछ बराती बनारस से आए और मैं लखनऊ से उनके साथ हो गया। जब हम लोग अमृतसर पहुँचे तो स्टेशनवालों ने असबाब की तौल की बात उठाई। मैंने कहा कि सब माल तौल लो और जो महसूल हो, ले लो। मेरे चाचा साहब इस चिंता में व्यग्र हुए कि हमारा माल अलग कर दिया जाय। इस पर मैं बिगड़ गया तब वे शांत हुए।

लाला हरजीमल की अवस्था में ऐसा आशातीत परिवर्त्तन देखकर मेरे ज्येष्ठ पितामह लाला नानकचंद अपनी स्त्री तथा दोनों भतीजों को साथ लेकर काशी चले आए। मेरे पिता ने कपड़े की छोटी-सी दुकान खोली। इसमें उन्हें हरजीमल हरदत्तराय की कोठी से माल मिल जाता था। धीरे धीरे उन्होंने अपने व्यवसाय में अच्छी उन्नति की। क्रमशः व्यापार बढ़ने लगा और धन भी देख पड़ने लगा। उनकी दुकान पुराने चौक में थी। मेरे पिता का विवाह लाला प्रभु-दयाल की ज्येष्ठा कन्या देवकी देवी से हुआ था। मेरे नाना गुजराँवाला के रहनेवाले एक बड़े जौहरी थे। उनकी दुकान अमृतसर में थी। ऐसा प्रसिद्ध है कि वे एक लाख रुपये की ढेरी लगाकर और उस पर गुड़गुड़ी रखकर तमाकू पीते थे। उन्हें बड़ा दंभ था। बिरादरी में जब कहीं गमी हो जाती तब वे नहीं जाते थे। केवल अपनी दुकान की ताली भेज देते थे। जाति के लोग उनसे असंतुष्ट थे। दैवदुर्विपाक से उनके लड़के का देहांत हो गया। मुर्दा उठाने के लिये बिरादरी का कोई नहीं आया। तब उन्हें जाकर लोगों के पैर पड़ना पड़ा और क्षमा माँगनी पड़ी। पुत्र-शोक में वे अपनी स्त्री, छोटे लड़के और तीनों कन्याओं को लेकर काशी चले आए और यहाँ जौहरी की दुकान करके दिन बिताने लगे। दैवयोग से उन्होंने अनजाने में चोरी का माल खरीद लिया। इसमें वे पकड़े गए और दंडित हुए। मेरे पिता ने उनके घर की देख-भाल की और अपने साले को अपने साथ दुकान के काम में लगाया। जब तक मेरे नाना-नानी जीते रहे, मेरे मामा उन्हीं के साथ रहे। माता-पिता की मृत्यु हो जाने पर वे हमारे घर में आकर रहने लगे। मुझे अपने नाना-नानी का पूरा पूरा स्मरण है। वे प्रायः मुझे अपने यहाँ ले जाया करते और बड़ा लाड़-प्यार करते थे। खाते समय उनको लकवा मार गया और उसी बीमारी से उनकी मृत्यु हुई। मेरे मामा ने आरंभ में मेरे पिता के व्यापार में पूर्ण सहयोग दिया और काम को खूब सँभाला। विवाह होने पर उनकी स्त्री भी हमारे ही यहाँ रहती थी। यह विवाह मेरे नाना के जीवन-काल में ही हुआ था। विवाह हो जाने और माता-पिता के मर जाने पर उन्हें अपनी स्त्री को गहने देने की धुन समाई। दुकान से चुपचाप रुपया लेकर उन्होंने गहने बनवाए। यह हाल पीछे से खुल गया। इस पर वे अलग होकर अपनी दुकान चलाने और मेरे पिता के गाहकों को फोड़ने लगे। मेरे पिता का व्यवसाय दिन दिन घटने लगा और मामा उन्नति करने लगे। पिता ने चौक की दुकान उठा दी और रानी कुएँ पर दुकान कर ली। सारांश यह कि उनकी दुकान का काम दिन दिन घटने लगा और उन्हें अर्थ-संकोच से बड़ा कष्ट होने लगा। इस प्रकार जीवन के अंतिम दिनों में लकवे की बीमारी से ग्रसित होकर सितंबर सन् १९०० में उनका देहांत हो गया।

मेरा जन्म आषाढ़ शुक्ल ११ मंगलवार संवत् १९३२ (१४ जुलाई सन् १८७५) में हुआ। ज्योतिष की गणना के अनुसार मेरी जन्म-कुण्डली अग्रलिखित प्रकार की है। मेरे जन्म का इष्टकाल ३८-१६ था। नक्षत्र विशाखा और लग्न मकर। इस हिसाब से राशि वृश्चिक हुई।

मेरा बाल्यकाल अत्यंत आनंद से बीता। मैं सबके लाड़-प्यार का पात्र था, विशेषकर इसलिये कि गृहस्थी में
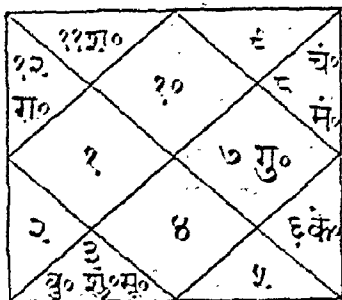
और कोई बालक न था। पहले-पहल मैं गुरु के यहाँ बैठाया गया। यहाँ जाना मुझे अच्छा न लगता था। न जाने के लिये नित्य बहाने खोजता था। मुझे खूब स्मरण है कि एक दिन न जाने की प्रबल इच्छा होने पर मैंने एक षड्यंत्र रचा। मैं दो-तीन बार पैखाने गया। बस मेरी दादी ने कहा कि लड़के की तबीअत अच्छी नहीं है, उसे दस्त आते हैं, वह गुरु के यहाँ नहीं जायगा। इस प्रकार जान बची। मैं कुछ दिनों तक गुरु के यहाँ पढ़ता रहा। यहाँ मुझे अक्षरों का ज्ञान और गिनती आ गई। यज्ञोपवीत होने पर मेरे दीक्षागुरु हरभगवान जी हुए। इनसे मैं संस्कृत व्याकरण तथा कुछ धर्मग्रंथों को पढ़ने लगा। दस ही वर्ष की अवस्था में मेरा विवाह हो गया। इसके अनंतर अँगरेजी की पढ़ाई आरंभ हुई। मेरे पिता के मित्र हनुमानप्रसाद थे, जो लँगड़े मास्टर के नाम से प्रसिद्ध थे। वे वेसलियन मिशन स्कूल में, जो नीची बाग में था, पढ़ाते थे। वहाँ मेरी अँगरेजी की शिक्षा आरंभ हुई। थोड़े दिनों के अनंतर इन मास्टर साहब की मिशनरी इंसपेक्टर से बिगड़ गई। उन्होंने स्कूल की नौकरी छोड़ दी और अन्नपूर्णा में शिवनाथसिंह की चौरी के पास अपना स्कूल खोला। इर्द-गिर्द के लड़के पढ़ने आने लगे और स्कूल चल निकला। कुछ काल के उपरांत वहाँ से हटकर स्कूल रानी कुआँ पर गया और यहाँ पर उसका नाम हनुमान-सेमिनरी पड़ा। मास्टर हनुमानप्रसाद कुछ विशेष पढ़े-लिखे न थे, पर छोटे लड़कों को पढ़ाने का उनका ढंग बहुत अच्छा था। यहीं से मैंने सन् १८९० में एँग्लोवर्नाक्यूलर मिडिल परीक्षा पास की।

बाबू गदाधरसिंह मिर्जापुर में सिरिश्तेदार थे। उन्हें हिंदी से प्रेम था। कई बँगला पुस्तकों का उन्होंने हिंदी में अनुवाद किया था। उन्होंने हिंदी-पुस्तकों का एक पुस्तकालय 'आर्य-भाषा-पुस्तकालय' के नाम से खोल रखा था। केवल दो आलमारियाँ पुस्तकों की थीं, पर नई पुस्तकों के खरीदने आदि का सब व्यय बाबू गदाधरसिंह अपनी जेब से देते थे। यह पुस्तकालय हनुमान-सेमिनरी में आया और इसी संबंध में बाबू गदाधरसिंह से मेरा परिचय हुआ। इस स्कूल में रामायण का नित्य पाठ होता था। यहीं मानो मेरे हिंदी-प्रेम की नींव रखी गई। बीच में लगभग एक महीने तक लंडन मिशन हाई स्कूल में भी मैंने पढ़ा। वहाँ मेरे पिता के एक मित्र के पुत्र बाबू दामोदरदास प्रोफेसर थे। उन्हीं की प्रेरणा से मैं वहाँ भेजा गया था। पर स्कूल बहुत दूर पड़ता था और मैं क्लास के कमजोर लड़कों में से था। इसलिये महीने डेढ़ महीने के बाद मैं फिर हनुमान-सेमिनरी में आ गया। यहाँ से मिडिल पास करने पर क्वींस कलिजियट स्कूल के नवें दर्जे में भरती हुआ। अब तक मेरी पढ़ाई की सब कमजोरी दूर हो गई थी और मैं क्लास के अच्छे लड़कों में गिना जाता था। स्कूल के सेकेंड मास्टर बाबू राममोहन बैनर्जी थे। वे चोगा पहन कर स्कूल में आते थे। इसी नवें दर्जे में पहले-पहल बाबू सीताराम शाह से मेरा परिचय हुआ और ६ वर्षों तक पढ़ाई में साथ रहा। इस प्रकार ये मेरे पहले मित्रों में से हैं। इनके द्वारा बाबू गोविंददास तथा उनके छोटे भाई डाक्टर भगवानदास से भी मेरा परिचय हुआ। बाबू गोविंददास ने मुझे सदा उत्साहित किया और सत्परामर्श से मुझे सुपथ पर लगाया। जब मैं दसवें दर्जे में पहुँचा तब मेरा परिचय बाबू जितेंद्रनाथ वसु से हुआ। ये बाबू उपेंद्रनाथ वसु तथा बाबू ज्ञानेंद्रनाथ वसु के छोटे भाई और बाबू शिवेंद्रनाथ वसु के बड़े भाई थे। इनके पिता बाबू हारानचंद्र वसु को ससुराल की संपत्ति मिली थी। ये लोग पहले बंगाल के कौन नगर में रहते थे, फिर ननिहाल में आकर रहने लगे। काशी में प्रतिष्ठित बंगाली रईस बाबू राजेंद्रनाथ मित्र थे जिनका प्रसिद्ध मकान चौखंभा में है। इनकी अतुल संपत्ति के ३ भाग हुए। एक भाग के स्वामी बाबू उपेंद्रनाथ वसु तथा उनके

भाई हुए। हारान बाबू पहले बंगाल के इंजीनियरिंग विभाग में काम करते थे। वहाँ से पेंशन लेकर वे काशी में आ बसे। मुझे इनके दर्शनों का सौभाग्य बराबर कई वर्षों तक होता रहा। अस्तु, जब जितेंद्रनाथ बसु (उपनाम मोटरू बाबू) से मेरा परिचय हुआ तब परस्पर स्नेह बढ़ता ही गया। हम लोग क्लास में प्राय: एक ही बेंच पर बैठते थे। क्रमशः गाढ़ी मित्रता हो गई। जब सन् १८९२ में मैंने इंट्रेंस पास कर लिया और साथ ही बाबू सीताराम शाह और बाबू जितेंद्रनाथ बसु भी उत्तीर्ण हुए, तब बाबू जितेंद्रनाथ बसु ने एक दिन यह प्रस्ताव किया कि यदि तुम हमारे घर पर आ जाया करो तो हम लोग साथ-ही साथ पढ़ें। मैंने पिता की आज्ञा लेकर इस प्रस्ताव को स्वीकार किया। पढ़ाई का यह क्रम चार वर्षों तक चलता रहा। जो अँगरेजी की पुस्तक आगे पढ़ाई जानेवाली होती थी उसे हम लोग पहले से बड़ी छुट्टियों (जैसे दुर्गापूजा, क्रिसमस आदि) में पढ़ लेते थे। जितेंद्रनाथ बसु के दो अध्यापक थे—एक लाजिक पढ़ाते थे और दूसरे संस्कृत। संस्कृत के अध्यापक स्वनामधन्य पंडित रामावतार पांडेय थे। ये संस्कृत के साहित्याचार्य थे। पीछे से इन्होंने अँगरेजी में एम० ए० तक पास किया था। मैं भी इन अध्यापकों से पढ़ता था। सन् १८९४ में मैंने अपने मित्रों के साथ इंटरमिडियेट परीक्षा पास की। सन् १८९६ में बी० ए० की परीक्षा के लिये हम लोग एक साथ जाकर प्रयाग में ठहरे थे। परीक्षा आरंभ होने के एक दिन पहले मुझ पर 'रेनल कालिक' का आक्रमण हुआ। जब तक इसका आक्रमण रहता, मैं छटपटाया करता और जमीन पर इधर से उधर लुढ़का करता। डाक्टर ओहदेदार बुलाए गए और उनकी दवाई से मुझे लाभ हुआ। फिर भी परीक्षा देने में एक प्रकार से असमर्थ रहा। दवाई लेकर परीक्षा देने जाता था। परिणाम यह हुआ कि उस वर्ष परीक्षा में मैं फेल हो गया। मित्रों का साथ छूट गया। अब पुराने साथियों में पंडित रमेशदत्त पांडेय और पंडित काशीराम का साथ हुआ। इसी वर्ष सर एंटोनी मैकडानेल इन प्रांतों के लेफ्टेनेंट गवर्नर होकर आए। उनकी ऐसी इच्छा हुई कि प्रयाग के म्योर सेंट्रल कालेज में विज्ञान की शिक्षा का विशेष प्रबंध हो और क्वींस कालेज में आर्ट विषयों की पढ़ाई विशेष रूप से हो। इस पर मिस्टर आर्थर वेनिस ने, जो फिलासफी के अध्यापक तथा संस्कृत कालेज के प्रिंसपल थे, बी० ए० क्लास को संस्कृत पढ़ाना प्रारंभ किया। उस समय भवभूति का उत्तररामचरित हम लोगों की पाठ्य पुस्तक थी। वेनिस साहब ने उसका पढ़ाना प्रारंभ किया। वे अँगरेजी में अनुवाद कराते और प्राकृत शब्दों की व्युत्पत्ति आदि बताते थे। हमारे क्लास में तीन विद्यार्थी ऐसे थे जिनके बिना क्लास का काम नहीं चलता था—एक पं० काशीराम, दूसरे पं० साधोराम दीक्षित और तीसरा मैं। पं० काशीराम व्याकरण में व्युत्पन्न थे, पं० साधोराम साहित्यशास्त्र में और मेरी विशेष रुचि भाषा-विज्ञान की ओर थी। जब इन तीनों विषयों के प्रश्न छिड़ जाते तब हम लोगों की सम्मति माँगी जाती। यह बात यहाँ तक बढ़ी कि जिस दिन हम तीनों में से कोई उपस्थित न होता उस दिन संस्कृत की पढ़ाई बंद रहती। अस्तु, सन् १८९७ में मैंने बी० ए० पास किया। सन् ९५ और ९६ में मैंने लॉ-लेक्चर्स भी सुने। यह पढ़ाई न थी, केवल हाजिरी ली जाती थी। दस मिनिट में क्लास समाप्त हो जाता था। बाबू जोगेंद्रचंद्र घोष लॉ-प्रोफेसर थे। इस प्रकार कालेज की पढ़ाई समाप्त हुई। इस विद्यार्थी-जीवन की दो-एक घटनाएँ मुझे याद हैं जिनको मैं लिख देना चाहता हूँ।

हमारे अँगरेजी के प्रोफेसर मिस्टर जे० जी० जेनिंग्स थे। वे बड़े विचित्र स्वभाव के थे। मानो वे नौकरशाही शासनप्रणाली के साक्षात् प्रतिनिधि थे। न किसी से मिलना और न कुछ बात करना उनका सहज स्वभाव था। लड़कों ने भी उन्हें दिक करना आरंभ किया। जब उनका मुँह दूसरी तरफ होता या नीचे होता तो दो-एक शैतान लड़के रबर के फंदे से उन पर कागज के टुकड़े फेंकते। इससे उनका चेहरा लाल हो जाता था। एक दिन बी० ए० क्लास में उन्होंने अँगरेजी-शिक्षा पर निबंध लिखने के लिये विद्यार्थियों को आदेश दिया। मैंने भी लिखा। वे विद्यार्थियों को बुलाकर अपनी चौकी पर, जिस पर उनकी कुर्सी और टेबुल रहता, खड़ा करके निबंध पढ़ाते थे। मैं भी यथासमय बुलाया

गया। मैंने निबंध अँगरेज़ी शिक्षा के विरोध में लिखा था। एक वाक्य मुझे अब तक याद है It damps the spirit of the Educated इस पर प्रोफ़ेसर साहब बहुत लाल-पीले हुए। मेरे लेख का संशोधन नहीं किया गया और न वह लौटाकर ही मुझे मिला। प्रिंसिपल साहब से मेरे विरुद्ध रिपोर्ट की गई और मैं उनके सामने बुलाया गया। उन्होंने मुझे समझा-बुझा कर मामला शांत किया; पर मिस्टर जेनिंग्स कभी प्रसन्न न हुए और मेरी ओर उनका रुख टेढ़ा ही रहा। थोड़े दिनों के बाद उनकी बदली इलाहाबाद को हो गई और हमारे अँगरेज़ी के प्रोफ़ेसर मिस्टर सी० एफ० डी० लॉ फ़ास आए। ये सज्जन शिष्ट स्वभाव के थे, पर मिलनसार न थे।

एक दूसरी घटना सुनिए। मेरा साथ कुछ उच्छृंखल लड़कों से हो गया था। शनिवार को जाड़े के दिनों में १२ बजे कालेज बंद हो जाता था और क्रिकेट का खेल होता था। कींस कालेज की अमरूद की बाड़ी प्रसिद्ध थी। अब वह उजड़ गई है और खेल के मैदान का विस्तार बढ़ा दिया गया है इसमें जाकर हम लोग अमरूद खाते और आनंद मनाते थे। एक शनिवार को कालेज के पास एक बगीचे में जो वरुणा नदी के किनारे पर है हम लोग गए। वहाँ भाँग छनी। घर आते आते मुझे खूब नशा चढ़ा। अब तो यह डर लगने लगा कि यदि पिता जी को यह बात मालूम हो गई तो खूब ठुकाई होगी। डर के मारे माँ से बहाना किया कि सिर में दर्द है। माँ ने गोदी में सिर रख कर तेल लगाना आरंभ किया, मुझे नींद आ गई। इस प्रकार मेरी जान बची। तब से अब तक फिर मैंने कभी भाँग पीने का नाम नहीं लिया।

इंटरमीडियेट की परीक्षा का एक विषय इतिहास था जिसमें रोम, यूनान और इँगलिस्तान का इतिहास पढ़ाया जाता था। मैंने इन पुस्तकों को ध्यानपूर्वक नहीं पढ़ा था, केवल साधारण बातें याद थीं। इतिहास की परीक्षा के दिन एक मित्र (प्रमथनाथ विश्वास) मुझसे प्रश्न करने लगे। उन्हें यह विषय खूब याद था। सब लड़ाइयों के सन् उन्हें याद थे। मैं उनके एक भी प्रश्न का उत्तर न दे सका। परीक्षा के हाल में जब गया और अपनी जगह पर बैठ गया तब मेरा हृदय काँपने लगा और आँखों के आगे अँधेरा छा गया। यह बात मन में उठती थी कि अब मरे। प्रश्न-पत्र मिला, उसे उलट कर रख दिया। देखने तक का साहस न हुआ। जब तबीअत कुछ ठहरी तो प्रश्न-पत्र पढ़ा। उसमें किसी लड़ाई के सन्, कारण, परिणाम आदि न पूछे गये थे। केवल देशों की साधारण प्रवृत्ति पर प्रश्न थे। मैंने खूब लिखा। परिणाम यह हुआ कि मैं पास हो गया और विश्वास बाबू हिस्ट्री में ही फेल हो गए।

कींस कालेज के लाइब्रेरियन बाबू राजेन्द्रनाथ सान्याल थे। इनके पेंशन लेने पर पंडित भैरवदत्त अग्निहोत्री जो उसके संबद्ध स्कूल में मास्टरी करते थे लाइब्रेरियन बनाए गए। ये प्रिंसपल साहब तथा उनके हेड क्लर्क बाबू ठाकुरप्रसाद के बहुत मुँह चढ़े थे। इनके विरुद्ध कोई कार्रवाई सफल नहीं होती थी। अग्निहोत्री जी बड़े कुटिल स्वभाव के थे। पुस्तकें निकाल कर देना तो इनके लिये महा कठिन काम था। सौ हुज्जत करते थे। क्या करोगे? तुम इसको समझ भी सकोगे? जब विद्यार्थी इनसे तंग आ गए तब उन्होंने इन्हें दिक करने की ठानी। एक मंडली बनी जिसमें तै हुआ कि दो विद्यार्थी इनको बातों में फँसाएँ और एक विद्यार्थी इनके जूते धीरे से खिसका ले। ऐसा ही हुआ। जूते खिसका कर छाते में रखे गए और एक विद्यार्थी उस छाते को कंधे पर रखे हुए बेधड़क हाल में से बाहर चला गया तथा कालेज के बाहर के कुएँ में उन जूतों को फेंक आया। उस दिन हम लोग कुछ देर तक यह देखने के लिये ठहरे रहे कि देखें घर जाते समय ये क्या करते हैं। जब कालेज बंद हुआ और ये घर चलने लगे तो देखते हैं कि जूते गायब। ये दौड़े हुए हेड क्लार्क साहब के पास पहुँच कर अपना रोना सुनाने लगे, पर वे क्या कर सकते थे। हम लोग हँसते हँसते घर आए। इस वर्ष टूर्नामेंट हुई। उसके प्रधान प्रबंधक ये अग्निहोत्री महाशय बने। कुछ लड़कों ने, जो क्रिकेट के खेल में निपुण थे, इन्हें तंग करने की ठानी। जब वे हुक्म देते तो एक लड़का छिपकर उनके गाल का निशाना एक अंडे से लगाता; बेचारे गाल पोंछते हुए दूसरी तरफ़ देखते तो दूसरे गाल पर अंडा पट से पड़ जाता। बड़ा होहल्ला मचा और खेल बंद हो गया।

[क्रमशः

[करांची का विशाल हवाई स्टेशन

भारतीय मुल्की हवाई प्रगति

लेखक, श्रीयुत अवनीन्द्र विद्यालङ्कार

(१)
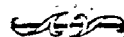
नार्वे-युद्ध और डंकर्क से ३,५०,००० ब्रिटिश सैनिकों के निष्कासन ने हवाई-शक्ति की उच्चता को सिद्ध कर दिया है। मित्रराष्ट्रों का ख़याल था कि स्कैजरक और कैटेगट जल-डमरूमध्य को वन्द करके और वाल्टिक सागर में दूर तक सुरंगें विछाकर वे जर्मनी को नार्वे में कुमक और युद्ध-सामग्री भेजने से रोक सकेंगे। मगर जर्मनी ने अपनी हवाई शक्ति के वल पर मित्रराष्ट्रों की इस योजना को विफल वना दिया। फलतः ब्रिटिश सेना को नार्वे से पीछे लौटना पड़ा। इस पराजय पर वक्तव्य देते हुए मि० चर्चिल ने कहा था कि जब तक ब्रिटिश हवाई शक्ति सर्वोपरि न होगी, तव तक उनको ऐसी अनेक विफलताओं का मुख देखना होगा। इसका अर्थ है कि राष्ट्र-रक्षा के लिए आकाश पर प्रभुत्व स्थापित करना आवश्यक है। भारत जैसे सुविस्तृत १८,००,००० वर्गमील के देश के वास्ते यह कितना आवश्यक है, यह वताने की आवश्यकता नहीं है।

जनतंत्र राष्ट्रों ने इस युद्ध से शिक्षा ग्रहण की है और वे तेजी से अपनी हवाई शक्ति वढ़ाने में लगे हुए हैं। कनाडा १९४० में १,०२८ और १९४१ में १,५८३ वायुयान वनाने का विचार रखता है। मई १९४० में उसकी हवाई सेना में लगभग १,३८९ अफ़सर और १,१०,००० वैमानिक थे। संयुक्त-राष्ट्र (अमरीका) ५०,००० विमान वनाने की योजना वना रहा है। भारत-सरकार की भी नींद टूटी है और वह भारत की हवाई शक्ति को एक स्क्वेडर्न से वढ़ाकर चार स्क्वेडर्न वनाने का निश्चय कर चुकी है। भारत का अपना हवाई वेड़ा कव होगा, यह आज तो दूर का स्वप्न मालूम होता है। भारत-सरकार ब्रिटिश सरकार का केवल एक महकमा है, अतः उसकी अपनी कोई स्वतंत्र नीति नहीं है। वह स्वतः कोई कार्य अपने इच्छानुसार नहीं कर सकती। इसका फल है कि भारत अपनी रक्षा के लिए भी ब्रिटेन का मुहताज है।

राष्ट्र-रक्षा के सम्वन्ध में जो सत्य है, वही मुल्की और नागरिक वातों के सम्वन्ध में भी है। सामुद्रिक वेड़े के लिए जिस प्रकार व्यापारिक जहाज़ों की आवश्यकता
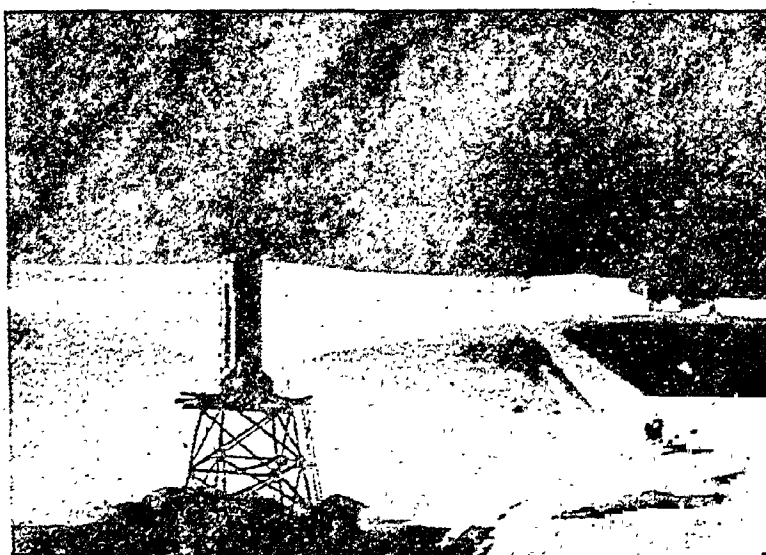
[दमदम के हवाई स्टेशन में 'फ्लड लाइट' के प्रकाश का एक दृश्य]

और हमारे देश में जो मुल्की या नागरिक हवाई प्रगति हुई है, वह उसके मार्ग को प्रशस्त बनाने के ख़याल से की गई है और हमारे आन्तरिक हवाई मार्ग उसके पूरक और सहायक हैं। भारतीय मुल्की हवाई शक्ति का कोई स्वतंत्र अस्तित्व नहीं है। हमारे देश के एरोड्रमों की व्यवस्था, सब इसी दृष्टि से की गई है। यह प्रभाव है, जो भारत सरकार-द्वारा प्रकाशित मुल्की हवाई प्रगति की रिपोर्ट को पढ़ने से मन पर सबसे पहले पड़ता है। यह अवस्था खेद-जनक है।

१९३८-३९ की भारतीय मुल्की हवाई प्रगति की रिपोर्ट कुछ मास पहले इस साल प्रकाशित हुई है। १९३८ की रिपोर्ट का १९४० में निकलना सरकार की दीर्घसूत्रता को सूचित करता है। इस साल की रिपोर्ट की एक मुख्य बात यह है कि बर्मा की हवाई प्रगति की

है, और वे रक्षा की दूसरी पंक्ति हैं, उसी प्रकार हवाई बेड़े के लिए मुल्की हवाई शक्ति रक्षा की दूसरी लाइन है। दोनों एक दूसरे के पूरक और सहायक हैं। वह समय निकट है जब जल-मार्ग और स्थल-मार्ग के समान हवाई मार्ग भी साधारण जनों के लिए सुलभ हो जायगा और जिस प्रकार आज रेलवे को बसों की प्रतियोगिता का सामना करना पड़ रहा है, उसी प्रकार विमानों की होड़ का भी उसको मुक़ाबला करना पड़ेगा, क्योंकि अनुभव बताता है कि रेल और जहाज़ दोनों की अपेक्षा हवाई यात्रा अधिक सस्ती है। मगर इस दिशा में भी सरकार की ओर से उपेक्षा ही की गई है। जब दुनिया के अन्य देशों के विमान सारे संसार का चक्कर लगाते हैं तब हमें अपनी हवाई डाक के लिए भी 'ब्रिटिश ओवरसीज़ एयरवेज़ कारपोरेशन' का मुखा-पेक्षी होना पड़ता है,
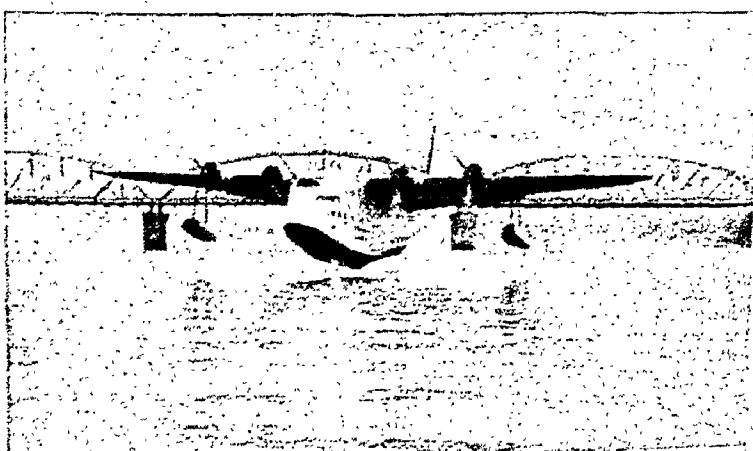
[कलकत्ता—'कुलनगाई' नामक हवाई जहाज़ के हुगली के पुल के पास उतरने का एक दृश्य।]

रिपोर्ट इसमें सम्मिलित नहीं है। सरकारी दृष्टिकोण से यह बात ठीक हो सकती है, मगर महान् भारतीय संघ-फ़ेडरेशन की कल्पना को मूर्तरूप में देखने की इच्छा रखनेवालों को इससे कुछ धक्का अवश्य लगेगा। वर्मा और भारत के रहे-सहे राजकीय सम्बन्ध का इस तरह अन्त कर दिया गया है।

एक बात और ध्यान देने योग्य है। भारतीय मुल्की हवाई प्रगति सर्वतोमुखी नहीं है —एकमुखी है। सरकार का मुख्य ध्येय लन्दन से आई डाक को जल्दी से जल्दी ठीक जगह पहुँचाना और यहाँ की डाक को लन्दन जल्दी से जल्दी भेजना ही मालूम होता है। व्यावसायिक और औद्योगिक दिशा में भारतीय मुल्की हवाई शक्ति की प्रगति नगण्य है। इसलिए यह आशा करना कि भारत में बने हवाई जहाज भारत का माल और भारत की डाक को संसार के कोने कोने में पहुँचा देंगे, अभी भविष्य का स्वप्न मालूम होता है। इस युद्ध-काल में भी इधर किसी का ध्यान नहीं है। यदि अमरीकन और जापानी विशेषज्ञों की सहायता से इस समय विमान बनाने का कारखाना खोला जाता तो भारत भी इस दृष्टि से स्वाश्रयी हो सकता था। मगर यह भी ब्रिटिश सरकार के हवाई विभाग की अनुमति के बगैर सम्भव नहीं है।

प्रगति की ओर

यदि हम अपनी कल्पना को कुछ सीमित कर लें, और अपने स्वप्न-जाल को समेट लें, और इम्पीरियल एयरवेज़ (अब इसका नाम इस साल से बदल कर ब्रिटिश ओवरसीज एयरवेज कार्पोरेशन हो गया है, मगर रिपोर्ट के साल इसका नाम यही था, अतः इस लेख में हम पुराना नाम ही व्यवहार करेंगे।) की एक शाखा होने में कुछ अपना अपमान न समझें, और तब यदि रिपोर्ट को देखें, तो मालूम होगा कि डाक ढोने और मुसाफ़िरों को ले जाने में भारत ने अच्छी प्रगति की है। नीचे दी गई तालिका से मालूम होगा कि नियमित हवाई मार्ग की उड़ान में भारत का अन्य देशों के मुक़ाबले में क्या स्थान है और भारत किस क़दर प्रगति कर रहा है—

नियमित हवाई मार्ग मीलों में

वर्ष		ग्रेट ब्रिटेन	भारत	ब्रिटिश कामन-वेल्थ आफ़ नेशन्स	संयुक्त राष्ट्र (अमरीका)	फ़्रांस	जर्मनी
१९३३	...	११,६७०	५,१८०	३२,६७०	४७,६८७	२१,४५०	७१,२२८
१९३४	...	१३,७५०	५,८३०	४१,३९०	५०,८००	२१,२९०	२३,४४०
१९३५	...	१८,७३९	६,३९५	५३,२९१	५२,४६१	२४,४५१	२२,२९१
१९३६	...	२३,७१७	६,४८३	६८,२४०	६१,५३२	३३,७९८	२३,४९४
१९३७	...	२६,६७९	७,५००	७९,८७५	६३,६५६	३८,७५०	३१,८८०
१९३८	...	२५,४७७	६,७००	८८,३०१	७१,१९९	४०,८३३	३२,७२०

यह तालिका बता रही है कि मुल्की हवाई उड़ान की प्रगति के लिए भारत में अभी कितना अवकाश है। ईरान, अफ़ग़ानिस्तान, सीलोन, वर्मा, मलाया चाहे हमारे वैमानिक न पहुँचें तब भी अपने देश में गौरीशंकर से लेकर कन्याकुमारी तक और कराची से डिब्रूगढ़ तक का आकाश अभी उनकी उड़ान के लिए काफ़ी है। वैसे तो भारत की सीमा अब अलेक्ज़ेण्ड्रिया और दूसरी ओर सिंगापुर तक पहुँच गई है, अतः यहाँ तक के आकाश पर भारतीय वैमानिकों का प्रभुत्व होना ही चाहिए। इसके अलावा जहाँ जहाँ प्रवासी भारतवासी बसे हुए हैं और बृहत्तर भारत का निर्माण कर रहे हैं, वहाँ उन तक भारत का सन्देश पहुँचाना भी इनका कर्त्तव्य होना चाहिए। इसलिए आन्तरिक हवाई प्रगति के लिए ही हमारे सामने अभी बहुत बड़ा मैदान खाली पड़ा है। यदि हम आगे न आये तो दूसरे इस जगह को भी ले लेंगे, जैसे कि जर्मनी ने १९३३ से पहले ले रक्खी थी। इस पर भी परिताप की बात है कि १९३७ की अपेक्षा १९३८ में हम पीछे हटे हैं। रिपोर्ट में कहा गया है कि संक्रमणकाल मे यह अनिवार्य है। इससे मालूम होता

है कि भारतीय हवाई सर्विस के पैर अभी जमे नहीं हैं। यह होते हुए भी भारतीय हवाई सर्विस की उत्तरोत्तर उन्नति ही होती रही है। नीचे की तालिका इस उन्नति के क्रमिक विकास पर अच्छा प्रकाश डालती है—

भारतीय नियमित हवाई सर्विस

वर्ष	उड़े मील	मुसाफ़िर ढोये	डाक ढोई टन
१९३३	१,५३,३८०	१५५	१०.५
१९३४	३,४५,७७१	७५७	२१.३
१९३५	५,५३,७५४	५५३	४३.८
१९३६	८,१६,५३१	३४९	८९.४
१९३७	६,२२,१९३	१,१३८	६१.२
१९३८	१४,१२,३३४	२,१०४	२८८.६

इस तालिका से मालूम होता है कि १९३७ की अपेक्षा भारतीय आन्तरिक हवाई सर्विस ने चौगुनी डाक ढोई, लगभग दुगने मुसाफ़िर ले गई और उड़ान में १२७ प्रतिशत की वृद्धि हुई है।

इम्पीरियल एयरवेज़ और इंडियन ट्रान्सकान्टिनेण्टल एयरवेज़ लिमिटेड समेत इससे सम्बन्धित कम्पनियों ने १९३८ में ७०,००,००० मील की उड़ान पूरी की, जब कि १९३७ में ४३,००,००० मील की उड़ान पूरी की थी, १९३९ के पहले कुछ मासों में ५५० टन डाक की चीज़ें ढोई गई। इसके आधार पर यह हिसाब लगाया गया है कि प्रतितीन मास में ५,००,००,००० पत्र साम्राज्य-सर्विस-द्वारा ढोये गये और हर एक पत्र ने औसतन ४,७५० मील का सफ़र तय किया। स्वभावतः साम्राज्य सर्विस के गौरव में हमारे लिए गौरव की कोई विशेष बात नहीं है। मगर रिपोर्ट के लेखक ने इस बात को नज़रन्दाज़ कर दिया है और इम्पीरियल एयरवेज़ की सफलता को भी भारतीय हवाई सर्विस की सफलता मान लिया है।

साम्राज्य हवाई डाक-योजना

रिपोर्ट-लेखक के अनुसार इस साल की सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण घटना साम्राज्य हवाई डाक योजना की पूर्ति है। इस योजना का पहला भाग १९३७ में शुरू किया गया था, जब कि दक्षिण-अफ़्रीका साउथेम्प्टन से सीधी डाक भेजी गई थी। इसका दूसरा भाग २३ फ़रवरी
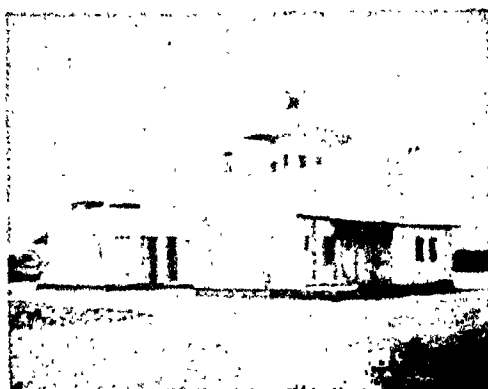
[कानपुर का नया हवाई स्टेशन]

१९३८ को प्रारम्भ हुआ जब साउथेम्प्टन से मलाया तक की डाक लेकर सामुद्रिक विमान उड़ा। २८ जुलाई १९३८ को इसका तीसरा भाग पूरा हुआ जब डाक आस्ट्रेलिया तक ले जाई गई और चौथा भाग २ सितम्बर १९३८ को पूरा हुआ जब डाक हांगकांग तक ले जाई गई, और दूसरी ओर आस्ट्रेलिया से न्यूज़ीलैंड तक ले जाई गई। डाक ले जाने के लिए सामुद्रिक विमान काम में लाये गये। इस योजना को पूरा करने में भारत के कार्य का इस बात से पता लग सकता है कि पश्चिम से भारत ५५ टन की जगह २२१ टन डाक आई। आस्ट्रेलिया तक हवाई सर्विस बढ़ जाने के कारण सर्विसों की संख्या बढ़कर सप्ताह में पाँच हो गई, जिनमें से दो पहले के समान कलकत्ता में समाप्त होती रहीं और शेष तीन आस्ट्रेलिया तक गईं।

फ़रवरी १९३८ तक एक साल के अन्दर भारत से और भारत को ४६० टन डाक आई गई, जब कि अनुमान था कि यह ३८८ टन होगी। इसमें १८.५ प्रतिशत वृद्धि हुई। इसी प्रकार पूरक सर्विस ताता सन्स लिमिटेड २२२.६ टन डाक ले गई और इण्डियन नेशनल एयरवेज़ लिमिटेड ५८.८ टन ले गई, जब कि अनुमान था कि इनको क्रमशः २१७.९ टन और ५०.८ टन ले जाना होगा। डाक के साथ साथ मुसाफ़िरों की संख्या में भी वृद्धि हुई। १,८९० के मुक़ाबिले में २,६५१ मुसाफ़िर ले जाये गये। इम्पीरियल एयरवेज़ १९३७ में ४८.६ प्रतिशत मुसाफ़िरों को ले गई थी। जब कि १९३८ में ५२.७ प्रतिशत मुसाफ़िर को ले गई। माल की आवाजाई में भी ३५.६ टन से ८९.६ टन की वृद्धि हुई। इम्पीरियल

एयरवेज़ १९३७ में मालरफ़्तनी का ७० प्रतिशत ले गई थी, जब कि १९३८ में ७६ प्रतिशत ले गई। आकाशमार्ग से आयात-निर्यात में १,०७,७०,२५८ रुपये से ३,०८,३४,४५४ रुपये की वृद्धि हुई। पिछली संख्या में दो करोड़ की स्वर्णशलाकायें और करेन्सी नोट सम्मिलित हैं।

एयरसर्विसेज़ आफ़ इण्डिया लिमिटेड ने बम्बई-क़ाठियावाड़ के बीच सप्ताह में ६ दिन की सर्विस जारी की। ५ टन से ऊपर मुसाफ़िरों को ले गई। इस कम्पनी ने कोल्हापुर-दरबार की मदद से मौसम के अन्दर बम्बई-पूना और कोल्हापुर की सर्विस भी खोली।

१५ नवम्बर से इण्डियन नेशनल एयरवेज़ लिमिटेड ने अपनी कराची-लाहौर सर्विस को दिल्ली तक बढ़ा दिया। शिमला सीज़न में यह सर्विस लाहौर, दिल्ली, कालका तक बढ़ा दी गई और कालका से शिमला मोटर-द्वारा डाक जाती रही।

साम्राज्य हवाई डाक की नई योजना चालू होने से इँग्लैंड भारत के और अधिक निकट आ गया है। साउथम्पटन से कराची २½ दिन में अब डाक आ जाती है। सर्दियों में योरप का मौसम खराब होने के कारण डाक आने में ३½ दिन लगते हैं। लड़ाई पश्चिम योरप में सितम्बर १९३९ में छिड़ी तो भी तैयारी उसकी पहले से हो रही थी और उसका प्रभाव इम्पीरियल एयरवेज़ पर भी पड़ा। इँग्लैंड-कलकत्ता हवाई सर्विस के लिए कम्पनी को 'एनसाइन, टाइप के विमान नहीं मिल सके, क्योंकि ब्रिटिश सेना की ज़रूरत पूरी की जा रही थी। सर्दियों में हवाई सर्विस के मार्ग में एक और कठिनाई आई। १६ नवम्बर से २० दिसम्बर तक १७० टन डाक इँग्लैंड से भेजी गई, जब कि साधारणतः ९५ टन भेजी जाती है। भारत की डाक इसमें ३४·५ टन थी। विमानों के लिए सब मौसम के लायक उतरने की ज़मीनों और रात की उड़ान के योग्य एरोड्रमों के न होने के कारण कठिनाई बढ़ गई।

इँग्लैंड की राष्ट्र-रक्षा की योजना का असर इम्पीरियल एयरवेज़ की सर्विसों की नियमितता पर भी पड़ा। वायुयानों की सालभर कमी रही। भारत के लिए २२९ सर्विसें निश्चित की गई थीं, इनमें ६७ देर से पहुँचीं, और दो रद कर दी गईं, जब कि पश्चिम जानेवाली २१८ सर्विसों में से २८ देर से छूटीं और एक रद करनी पड़ी। यह होते हुए भी ३५०.२ टन डाक ढोई गई। १९३७ में जहाँ ४७२ इँग्लैंड से आनेवाले और ४४८ वहाँ जानेवाले मुसाफ़िर ढोये, वहाँ १९३८ में यह संख्या क्रमशः ६०६ और ७९२ पहुँच गई। इसी प्रकार माल १९३७ में जब कि १०·० टन इँग्लैंड गया था और १५ टन वहाँ से आकाशमार्गों से आया था, १९३८ में २४·६ टन और ४१·२ टन गया और आया। इम्पीरियल एयरवेज़ सब सवारियों और माल को नहीं ले जा सकी, इसलिए नवम्बर १९३८ से विदेशी कम्पनियों को यहाँ से मुसाफ़िर ले जाने की इजाज़त दे दी गई। इससे स्पष्ट है कि ब्रिटिश कम्पनी भारतीय हवाई मार्ग पर अपना एकाधिकार समझती है। युक्तवाणिज्य द्वार की नीति का वह परित्याग कर चुकी है। इसमें एक ख़तरा है। आज भारतीय समुद्रतट का व्यापार जिस प्रकार ब्रिटिश कम्पनियों ने हस्तगत कर रक्खा है, और वहाँ से हटने से इनकार करती हैं और समानाधिकार की माँग करती हैं, जैसी कि इण्डिया ऐक्ट १९३५ में व्यवस्था भी की गई है, वही स्थिति और अवस्था समयान्तर में हवाई सर्विस में आ सकती है। इसलिए इस विषय में अभी से सावधान होने की ज़रूरत है।

इम्पीरियल एयरवेज़ की सर्विस में नियमितता और नियतकालिकता न होने के कारण ट्रान्स-इण्डियन सर्विस—भारत पार सर्विस—में भी देरी होती रही। यान्त्रिक दोषों के कारण विलम्ब होने की प्रवृत्ति बढ़ती जा रही है। मौसम खराब होने के कारण देरी बहुत कम हुई। ट्रान्स-इण्डिया सर्विस में १९३८ में रात में १०२४ घण्टे विमान उड़े।

नारी का भी अपना स्वाभिमान है। उसी का इस कहानी में लेखिका ने बड़े सरस ढंग से चित्रण किया है।

अभिमान

लेखिका, श्रीमती शेफाली मुकर्जी

मैं और साथ में छः साल की छोटी लड़की रीणा लखनऊ की पक्की सड़क पर मोटर में बैठी हुई आ रही थीं।

"देखो रीणा, यह लखनऊ का चिड़ियाखाना है"—मैं बोली? रीणा ने उत्सुक दृष्टि से उस ओर देखकर पूछा—"माता जी, क्या यहाँ शेर भी हैं? वो, जैसा सरकस में उस दिन देखा था।"

"बेटी, यहाँ कितने ही शेर रहते हैं। अवकाश मिलने पर दिखाऊँगी।"

थोड़ी ही देर में हम लोग 'बँगला हरिमति गर्ल्स स्कूल' पहुँच गये, दफ्तर में जाकर प्रधान अध्यापिका से मिले। उसने मिस घोष को जो वहाँ सहायक अध्यापिका थीं, बुलवा भेजा। मिस घोष को देखते ही मैं हर्षित हो उठी, अतीत की सारी स्मृतियाँ सम्मुख आ गईं। यह भी याद नहीं रहा कि वहाँ वह एक अध्यापिका है। हर्षातिरेक से मैंने उसका हाथ पकड़कर कहा—"मिता, तुम यहाँ हो? कितने दिन बाद आज तुम्हें देखा है मिता? ओह!"

वह मुस्कुराती हुई बोली—"लेखा, तुम तो बताओ। तुम यहाँ कब आईं? मैं तो यहाँ पाँच साल से कार्य कर रही हूँ। तुम्हारे साथ क्या यह तुम्हारी कन्या है?"

मैंने कहा—"एक सप्ताह हुआ, मैं यहाँ आई हूँ। सम्भव है, तुम्हें मेरे पति की बदली का समाचार मिला हो, एक साल इलाहाबाद में रही। वहाँ का समाज जिसमें रहा करती थी, मनोरम था। दुःख है, वहाँ अधिक नहीं रह सके। हाँ, यहाँ के डिप्टी कलक्टर मिस्टर डेविड विलायत गये हैं। उन्हीं के स्थान पर उन्हें यहाँ आना पड़ा है। अच्छा मिता, रीणा को तुम्हारे सुपुर्द किये जाती हूँ। यहीं भर्ती होगी। कृपया इसकी देखभाल करती रहना।"

टन नन्न, स्कूल की घंटी बजी। मिस घोष ने कहा—"अच्छा लेखा, फिर कभी शाम को आना। इस समय मुझे पढ़ाने जाना है।" इतना कहकर वह चलने लगी।

"जाओ रेणू" ये तुम्हारी मौसी हैं। तुम्हारी सब देखभाल कर लेंगी—इतना कहकर और रीणा को मिस घोष के पास छोड़कर मैं लौट आई।

मैत्रेयी ने प्यार से रीणा का हाथ पकड़ते हुए एक कक्षा की ओर संकेत करके कहा—"देखो न रीणा, वहाँ सब लड़कियाँ तुम्हारी ही तरह हैं। तुम भी अब उन्हीं के सम्पर्क में रहकर खेलोगी, गाओगी और नाचोगी?"

× × ×

मैं घर लौटकर आ गई। बार बार मिता का विचार ही हृदय में उठ रहा था, उसके अतीत जीवन के स्मरण से ही मन उद्भ्रान्त हो उठता था। रोम रोम में एक विचित्र प्रकार की हलचल थी। आज भी उसी मिता को देखा था जो आठ वर्ष पहले मेरी सहपाठिनी थी। कितना अन्तर था? बताया नहीं जा सकता।

मिता अपनी सहपाठिनियों से सबसे अच्छी पढ़ने-लिखने में थी; साथ ही साथ उसकी पढ़ाई केवल कक्षा की किताबों तक ही सीमित नहीं थी, वरन वह सभी बातों में सबसे अच्छी थी—अपनी अच्छी अच्छी कहानियों से, मीठी मीठी व्यङ्ग्यपूर्ण बातों से सबका मनोविनोद किया करती थी। उसकी उन सब बातों को देखकर हम लोग कह बैठते थे कि मिता, तुम्हें तो लड़का बनकर जन्म लेना चाहिए था। वह कहती थी—हाँ, ठीक है। ईश्वर की यह भूल क्षमा के योग्य नहीं है।

इतनी चंचल, सरल, प्रसन्नचित्त मिता को एकाएक स्थिर तथा गम्भीर देखकर मैं विस्मित हो गई। समुद्र की विशालता में, उसकी लहरों की चंचलता में, उसके गर्जन में जो सौन्दर्य है उसका सभी उपयोग करते हैं, किन्तु वही समुद्र यदि धीर, स्थिर और गम्भीर दिखाई दे, रजनी के गहरे सन्नाटे में कहीं उसका ओर-छोर न दिखाई दे, तो उसकी वह मूर्ति भयोत्पादक हो जाती है। जिस मिता को बार बार छेड़ा करते थे उसकी ओर अब आंख उठाकर देखने का साहस नहीं हो रहा था।

मिता अपने छात्रजीवन में एक नवीन मत की उपासिका थी। उसका कहना था कि वह और बालिकाओं की भाँति अपने जीवन को गृहस्थ-जीवन में सीमित नहीं करेगी, अपनी प्रतिभा और आकांक्षाओं को गृह-जाल में फँस कर नष्ट-भ्रष्ट नहीं करेगी, वह अपनी सारी शक्ति को परहित के लिए उत्सर्ग कर देगी। यह सब सुनकर हम लोग खूब हँसते थे। किन्तु कभी कभी जब वह दृढ़ता से अपनी बात कहती थी, हमें विश्वास भी हो जाता था।

वह कालेज में पढ़ रही थी। बी० ए० का प्रथम वर्ष था। सारी लड़कियों में अकेली उसी ने गणित लिया था। यही कारण था कि उसे लड़कों के साथ पढ़ने जाना पड़ा। एक दिन उसने आकर कहा—"अब गणित सीखने में कोई असुविधा न होगी। एक लड़का रजत चौधरी है। उसी से पूछ लिया करूँगी।" कौन जानता था कि भविष्य में यही रजत चौधरी उसके सर्वनाश का कारण बन जायगा। इसके सम्पर्क में आकर भाग्य ने पलटा खाया। मिता उन्नति करने के बदले अपनी प्रतिभा और रुचि को विध्वंस के गहरे गर्त में ले गई। तो भी किसी न किसी तरह वह तीसरी श्रेणी में बी० ए० पास होगई।

इसी बीच मेरा विवाह हो गया, परिस्थितियाँ बदल गईं। मैंने मिता के विषय में कुछ न सुना। परिस्थितियों का मानव-जीवन पर पूरा प्रभाव पड़ता है—उसकी तरह ही वह परिवर्त्तित हो जाता है। उसके ही उदाहरण-स्वरूप आज मिता कुछ और से और हो गई थी। पलक मारते ही हमारे मन्दिर और सुन्दर क्षण मन के रुदन बन जाते हैं। मिता अनुकरणीय बालिका थी।

स्मरण आता है, एक दिन फ़ोर्थइयर की उत्पला बहन ने मिता से कहा था—"मिता, तुम लड़कों के साथ पढ़ती हो, इतनी सजधज कर न आओ तो अच्छा है। बेचारे लड़के योंही तड़पते रहते हैं, नाहक उन्हें और कष्ट देती हो।" सच ही मिता का मुँह सुन्दर था, स्वभावतः वह अपनी ओर आकर्षित कर लेता था। उसकी आँखें बड़ी चंचल और तीव्र थीं। उसकी ओर देखते ही हृदय में एक गुदगुदी-सी पैदा हो जाती थी। उसको यदि हम कहतीं कि अमुक लड़का उससे प्रेम करना चाहता है तो वह फ़ौरन कह बैठती—"मेरा क्या अपराध? मैं तो उसकी ओर देखती भी नहीं हूँ।"

× × ×

रीणा, उसके पिता और मैं सब बैठे चाय पी रहे थे। रीणा बोली—"पिता जी, आपको मालूम है, मौसी जी मु[illegible] टिफ़िन में चाकलेट, मिठाई और दूध देती हैं।" र[illegible] के पिता को इन नई मौसी का हाल मालूम हो गया था। बोले—"तब क्या है? मैं भी क्या उसी स्कूल में भर्त्ती ह[illegible] जाऊँ। पढ़ने जाने से खाने को भी मिला करेगा।"

"नहीं! नहीं!" रेणू ने हँसकर कहा—"वहाँ त[illegible] केवल लड़कियाँ ही पढ़ती हैं। तुम तो लड़के हो।" यह सुनकर हम दोनों हँस पड़े। इतने में नौकर ने आकर कहा कि [illegible] महिला मिलने आई हैं। "उन्हें ड्राइंग रूम में बिठाओ।" यह कह कर मैं भी पीछे पीछे हो ली। वहाँ ज[illegible] देखा कि मिता आई है—एक सफ़ेद खद्दर की साड़ी, उस पर नीला किनारा और एक खद्दर की छींट का ब्लाउज़ वह पहने थी।

मुझे देखते ही वह कहने लगी—"तुम्हें उस दिन देखकर गत जीवन की स्मृतियाँ उमड़ उमड़कर आ गई थीं। मनोरंजन के लिए मैं यहाँ चली आई हूँ।

"अच्छा किया! आज हमारे साथ ही खाना खाओगी, बैठो, आओ।" फिर क्या था? बात पर बात छिड़ती गई। अपनी सब सहेलियों की बातें चित्रपट पर चित्र की भाँति आँखों के सामने आने लगीं। कौन कहाँ है, कैसी है, किसका विवाह हुआ, किसके बच्चे हुए, ये सब बातें हुईं।

नौकर ने आकर चाय सामने रख दी, मैंने शीघ्रता से एक प्याला उड़ेलकर मिता की ओर बढ़ाया। वह हँसकर बोली—"बहन, अब मैं चाय नहीं पीती।"

"आश्चर्य! बहन, तुमने चाय कब से छोड़ी? कालेज में तो इस प्रकार इसकी आदी थीं कि एक दिन व्रत पर जब सबने उपवास किया था, तुम बिना चाय पिये अपने बिस्तरे से नहीं उठी थीं, और दिनों का तो कहना ही क्या। अच्छा एक बात बतलाओगी मिता, देखो छिपाना नहीं। आज हम लोग उसी प्रकार की सहेलियाँ हैं, जिस प्रकार कालेज में थीं।"

मिता मेरे प्रश्न का रुख समझ गई, हँसी में बात टाल दी, वह कहने लगी—"हाँ, तब बाल्यावस्था थी। भूत और भविष्य का कुछ भान नहीं था। चाय पीने से स्वास्थ्य ठीक नहीं रहता, इसी लिए मैंने यह ठीक समझा कि इसे छोड़ दूँ।"

'कामिनिया' स्वास्थ्यवर्द्धक और पूर्ण सुन्दरता का देनेवाला है।

अपने रुपयों का ज़्यादा से ज़्यादा फ़ायदा उठाइये।

कामिनिया आइल (रजिस्टर्ड)

मुलायम और चमकीले बालों के लिए कामिनिया आयल इस्तेमाल कीजिये। यह दिमाग को हमेशा ठंडा रखता है और बालों में आकर्षक चमक पैदा करता है। दाम एक बोतल का १), तीन बोतलों का २॥=); वी० पी० का खर्च अलग।

खुशबू का राजा ओटो दिलबहार (रजिस्टर्ड)

यह रूमाल पर लगाने के लिए एक बहुत ही प्यारा इत्र है। इस बढ़िया इत्र की दो-चार बूंदें ही आपके इर्द-गिर्द स्वर्ग पैदा करने में काफ़ी होंगी। ½ औंस की शीशी की कीमत १) १ ड्राम की शीशी ।।।) वी० पी० खर्च अलग।

कामिनिया स्नो (रजिस्टर्ड)

खूबसूरती चेहरे के रंग के लिए बहुत जरूरी है इससे मुँहासे और चेहरे की दूसरी खराबियाँ दूर हो जाती हैं और चेहरे पर एक बहुत ही अजीब आकर्षण आ जाता है। एक बोतल की क़ीमत ।।।) वी० पी० खर्च अलग।

सब जगह मिल सकते हैं। मुफ्त में लीजिये।

इस कूपन को इस्तेमाल कीजिये।

कामिनिया ह्वाइट रोज़ सोप (रजिस्टर्ड)

बाजार में बिकनेवाले रोज़ाना नहाने के सभी साबुनों से अच्छा है। दूसरे क़िस्म के साबुन को भी आजमा कर देखिये। जैसे सन्दल, दिलबहार, लवेन्डर वग़ैरह। एक बक्स का दाम ।।।=) वी० पी० खर्च अलग।
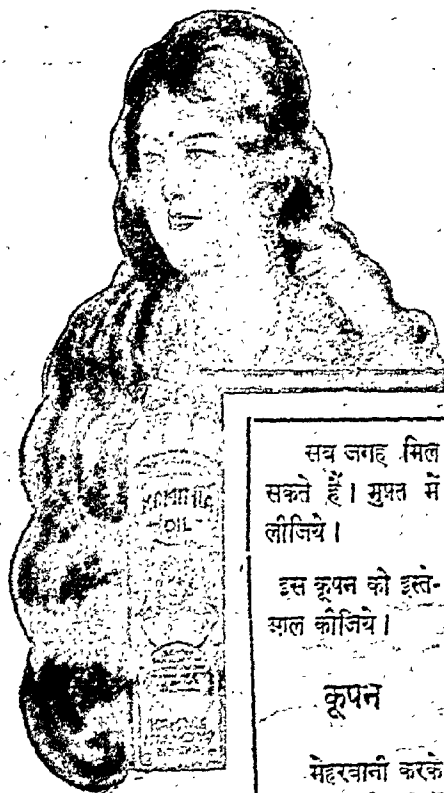
कूपन

मेहरबानी करके अपनी सारी चीजों के मुफ्त नमूने भेजिये डाकखर्च के लिए ।) के टिकट भेज रहा हूँ।

नाम

पता

सोल एजेंट—दी ऐंग्लो इंडियन ड्रग ऐंड केमिकल कंपनी, २८५, जुमा मसजिद, बंबई नं० २

इसलिए तुम्हारी सहायता चाहिए। तुम्हारा आना आवश्यक है। और अधिक लोगों को आमन्त्रित नहीं किया है।

प्यारसहित

तुम्हारी सुलेखा,

मिता ने मेरा निमन्त्रण स्वीकार कर लिया और वह मुझे सहायता देने आ गई। थोड़ी ही देर में मेरे पतिदेव अपने मित्र मिस्टर चौधरी को लेकर आ पहुँचे। मैंने अतिथि को प्रणाम किया और उनके साथ हो गई। पतिदेव मिस्टर चौधरी को ड्राइंग-रूम में बिठाने ले गये। थोड़ी दूर पर मिता रीणा को फूलदानी में रक्खे हुए रजनीगन्धा के विषय में कुछ बता रही थी। पतिदेव ने मिता का अभिवादन करके मिस्टर चौधरी की ओर संकेत करते हुए उनका उसे परिचय दिया। पतिदेव ने कहा—"आप मेरे मित्र मिस्टर चौधरी हैं। हम दोनों की मित्रता विलायत में हुई थी, यद्यपि मिस्टर चौधरी उम्र में मुझसे छोटे हैं।

मिता के हृदय में जो कोलाहल मचा हुआ था, उसका अनुभव उसके सिवा कौन कर सकता था? विस्मय और उन्माद से उसके मुँह से एक भी शब्द न निकला। बहुत कठिनाई से विकृतकण्ठ से वह कह उठी—"परिचित होकर मैं हर्षित हुई।"

इसके बाद भोजन आदि हुआ। मिता ने मुझसे आकर कहा—"सुलेखा, मुझे अब क्षमा करो। घर के काम-काज का अभ्यास न होने से मेरे सिर में दर्द हो गया है।" पता नहीं मिता के दर्द कहाँ था? चेहरे पर उदासीनता और आन्तरिक द्वन्द्व के चिह्न अवश्य प्रकट हो रहे थे। मैंने कहा—"कुछ खा-पीकर जाना बहन।"

"नहीं बहन!" उसने कहा—"मुझे भूख नहीं। सिर में बहुत दर्द है। नहीं खाऊँगी।"

और वह चली गई।

इस घटना के दूसरे ही दिन मैंने मिता को फिर बुलवाया। वहाँ से हाल मिला कि वह उसी दिन शाम को छुट्टी लेकर कलकत्ते चली गई है।

रजत चौधरी की भी उस समय कुछ और ही दशा थी। वे मेरे यहाँ मिस घोष की खबर लेने आये। कह दिया गया कि वह लखनऊ छोड़कर कलकत्ते चली गई है।

मिता के हृदय पर एक धक्का लगा, यह तो साफ़ ही था, इसलिए मन बहलाने के लिए वह अपनी मा के पास कलकत्ते चली गई थी।

इधर मिस्टर चौधरी अपनी बीती मेरे पति को सुनाने लगे। उन्होंने बताया कि फ़्लोरा से उन्होंने विवाह किया था, लेकिन प्रेम नहीं था। कृतज्ञता की भावना से उन्हें उससे विवाह करना पड़ा था। लेकिन अब तलाक़ हो गया है। इसका कारण यह हुआ कि वह भारतीय सिविलियनों के नाम से घृणा करती थी।

मेरे पति जब मिस्टर चौधरी की वास्तविक बातों का परिचय पा गये तब दूसरे दिन वे मिस्टर चौधरी को लेकर कलकत्ते को रवाना हो गये। मैं और रीणा भी उनके साथ हो लीं।

कलकत्ते जाकर मैं मिता के घर गई और उसको रजत चौधरी की सब बातें बताईं। मिता ने मेरी बातों का कुछ उत्तर न दिया। मैं विवश होकर घर लौट आई।

अब खुद रजत गया और अपने आने का सन्देश दिया।

सन्देश पाकर मिता थोड़ा घबरा-सी गई। उसने ड्राइंग-रूम का पर्दा उठाकर देखा, रजत चौधरी प्रतीक्षा में बैठे हैं। उसे देखते ही वह स्थिर हो गई। लाख प्रयत्न करने पर भी कुछ न बोल सकी।

रजत ने कहा—"क्षमा करो मिता। सम्भव है, तुम्हें अब मेरे प्रेम पर विश्वास न हो, लेकिन फिर भी आर्त दया के योग्य है। मैं कमज़ोर हूँ। तुम्हारे बिना मैं अपने जीवन का भविष्य सोच भी नहीं सकता। जो अपराध किया है उसका प्रायश्चित्त कर लेने दो। क्या तुम मुझे अवसर दोगी मिता?"

मिता ने जवाब दिया—"रजत, अब वह अवसर हाथ से निकल गया। जब समय था, सामर्थ्य था, तब प्रेम किया। अब क्या है? अब सब कुछ असम्भव है। मेरी भी एक कल्पना थी। एक अनुपम सुन्दर और मनोहर बाग़ था, लेकिन आँधी आई, बिजली गिरी, मेह बरसा और सब कुछ चला गया। मैं अकेली हूँ—अकेली ही रहूँगी।" रजत स्तब्धभाव से निराश होकर थोड़ी देर बैठा रहा, फिर धीरे धीरे चला आया।

भारतीय चित्रकला में मोलाराम का स्थान

लेखक, श्रीयुत मुकन्दीलाल बारिस्टर-एट-ला

भारतीय चित्रकला के जो नमूने अब तक प्राप्त हुए हैं उनके अनुसार भारतीय चित्रालेखन-विधि का पूरा २,००० वर्ष का इतिहास, मुझ से अब तक का, लिखा जा सकता है। भारतीय चित्रकला के सबसे आदि के चित्र जो अब तक देखने में आये हैं, हैदराबाद के 'अजन्ता' के गुफा-मंदिरों की व ग्वालियर के 'बाग' की गुफाओं की दिवारों पर के चित्र (फ्रिस्को) हैं। इनका समय प्रथम शताब्दी से सातवीं शताब्दी तक है। इस भित्ति-चित्रालेखन की चित्रांकनशैली कुछ परिवर्तन के साथ तब से अब तक चली आती है।

मुग़ल और राजपूत-चित्रकला का प्रादुर्भाव

किन्तु खेद का विषय है कि ७ वीं शताब्दी के बाद बारहवीं शताब्दी तक के चित्रों के नमूने अब तक कोई नहीं मिले हैं। १३ वीं व १४ वीं सदी के जैन-धर्म-सम्बन्धी चित्र मिले हैं। इसके बाद १५ वीं व १६ वीं सदियों में मुग़ल-काल में ईरान के मुसौवीरों के असर से और मुसल्मानी बादशाहों की रुचि के अनुसार भारतीय (हिन्दू) चित्रकारों ने 'मुग़लचित्र' बनाये। १७ वीं शताब्दी में राजपूत (पहाड़ी) चित्रकला का प्रादुर्भाव हिमालय के (पहाड़ी) प्रदेशों में हुआ।

जैसे प्राचीन चित्रों में सबसे उच्च कोटि के चित्र 'अजन्ता' व 'बाग' के भित्ति-चित्र हैं, उसी तरह आधुनिक काल में राजपूत (पहाड़ी) चित्र भारतीय चित्रकला के सर्वोच्च उदाहरण हैं।

बीसवीं सदी के आरम्भ में चित्रकला-विशारदों ने भारतीय चित्रों को दो भागों में बाँटा—'मुग़ल-क़लम' व 'काँगड़ा-क़लम'। वे उनको मुग़ल-चित्र कहते थे जो मुग़ल बादशाहों के दरबारों में बादशाह और अमीर-उमरा के मनोरंजन के लिए अंकित किये गये और जो दिल्ली, लखनऊ तथा लाहौर इत्यादि मुग़ल बादशाहों की राजधानियों में मिले। काँगड़ा-क़लम के चित्र वे कहे जाते हैं जो राजपूत राजाओं के यहाँ पहाड़ी दरबारों में बनाये गये। और क्योंकि राजपूत-चित्र पहले-पहल काँगड़ा में पाये गये इसलिए उनको काँगड़ा-क़लम के चित्र कहने लगे।

पहाड़ी चित्रकला

पहाड़ी (राजपूत) कला के आविष्कार अथवा नामकरण का श्रेय हमारे गुरु डाक्टर आनन्दकुमार स्वामी को है। इस विषय में इतना ही कहना काफ़ी होगा कि डाक्टर कुमार स्वामी के अनुसार "काँगड़ा-(स्कूल) शैली अथवा 'काँगड़ा-क़लम' में काँगड़ा व पंजाब के पहाड़ी प्रदेशों के चित्र सम्मिलित हैं। इन पहाड़ी प्रदेशों के चित्रकारों में प्रमुख चित्रकार गढ़वाल का मोलाराम है।"

मोलाराम का समय

मोलाराम का जन्म सन् १७५० के लगभग गढ़वाल की पुरानी राजधानी श्रीनगर में हुआ था। उसकी मृत्यु सन् १८३३ में हुई थी। मोलाराम एक बहुत उच्च कोटि का चित्रकार था। उसके विषय में हमने सबसे पहले पत्रों में लिखा था और अब हम मोलाराम की कविता व चित्रकला पर एक पुस्तक हिन्दी में लिख रहे हैं, जिसका बहुत-सा भाग 'हिन्दुस्तानी' में छप भी चुका है।

मोलाराम की ख्याति

भारतीय चित्रकारों में जितना विख्यात मोलाराम हो गया है और कोई चित्रकार अब तक नहीं हुआ। उसके प्रपौत्र श्री बालकराम साह ने कृपापूर्वक हमें मोलाराम के कुछ चित्र पहले-पहल दिखाये। और फिर समय समय पर हमें मोलाराम की कुछ हस्तलिखित पुस्तकें तथा अन्य चित्र भी उन्होंने देखने को दिये। इस सामग्री के प्राप्त होने पर हमको मोलाराम की कीर्ति-पताका फहराने का अवसर मिला। मोलाराम के चित्र और उसके सम्बन्ध के हमारे लेख जब भारतीय कला-प्रेमियों ने देखे तब उनके आधार पर डाक्टर आनन्दकुमार स्वामी ने जो इस समय बोस्टन (अमरीका) के अजायबघर के भारतीय विभाग के अधिष्ठाता हैं, अपनी पुस्तक 'राजपूत पेंटिङ्ग' के भाग १ के पृष्ठ २३ पर मोलाराम के विषय में यह लिखा—

"गढ़वाल के मुकन्दीलाल ने मोलाराम के विषय में अक्टूबर १९०९ के 'माडर्नरिव्यू' में जो लिखा है और जो कुछ मुकन्दीलाल से ज़बानी बातचीत करने पर मालूम हुआ है उससे मोलाराम का परिचय यह है कि मोलाराम दिल्ली से आये हुए राजपूत मुसौवरों की पाँचवीं पुश्त में हुआ।...... मोलाराम का जन्म सन् १७६०* में और मृत्यु सन् १८३३ में हुई।.... मोलाराम के बाद उसके पुत्र ज्वालाराम और नाती आत्माराम भी चित्रकार थे।"

डाक्टर कुमार स्वामी गढ़वाल-चित्रालेखन-शैली की तुलना काँगड़ा-क़लम से करते हैं। उनके विचार से (और हमारी भी यही धारणा है) काँगड़ा में राजपूत-चित्रकला पराकाष्ठा को पहुँच गई। और गढ़वाल में मोलाराम के समय तक पहाड़ी कला पतन की, और गिरने लगी थी। डाक्टर कुमार स्वामी पहाड़ी चित्रकला का क्षेत्र काँगड़ा से गढ़वाल तक मानते हैं। उन्होंने उक्त ग्रंथ के पृष्ठ १७ में साफ़ लिखा है—"काँगड़ा व गढ़वाल के बीच में मण्डी व रामपुर होकर रास्ता है। पहाड़ी चित्रकला का निवासस्थान केवल काँगड़ा ही नहीं है, वरन वह सारा पहाड़ी प्रदेश है जिसका विस्तार काँगड़ा से गढ़वाल तक है और जिसमें गढ़वाल सम्मिलित है। काँगड़ा व गढ़वाल की चित्रकला की एक ऐसी विशेष शैली है जो जम्मू आदि अन्य पहाड़ी चित्रलेखन-विधियों से भिन्न है।"

गढ़वाल स्कूल (कलम) और मोलाराम की चित्रकला के विषय में मि० फ्रेंच की राय

मिस्टर जे० सी० फ्रेंच, आई० सी० एस०, जो बंगाल की सिविल सर्विस में थे, १९३० में गढ़वाल आये। वे मोलाराम के जन्मस्थान श्रीनगर स्वयं गये और उसके प्रपौत्र बालकराम साह व तुलसीराम साह से मिले। वे हमसे भी मिलने लैन्सडौन आये और उन्होंने हमारा चित्र-संग्रह भी देखा। वे टिहरी भी गये। मिस्टर फ्रेंच पंजाब की काँगड़ा, मण्डी आदि उन सब पहाड़ी रियासतों व ज़िलों में घूमे हैं जहाँ पहले हिन्दू (राजपूत) चित्रकला का प्रचार था। उन्होंने सन् १९३१ में 'हिमालयन आर्ट' नाम की एक पुस्तक विलायत में छपवाई। उसमें उन्होंने मोलाराम व गढ़वाली चित्रकला के विषय में लिखा है—

"मोलाराम गढ़वाल का एक चित्रकार है, जिसका नाम बहुत देखने में आया है। वह एक अच्छा मुसौविर है, यद्यपि वह अपने उन समकालीन चित्रकारों से अति उत्तम मुसौविर नहीं जिनके नाम लुप्त हो गये हैं। मोलाराम का नाम रह गया है, इसी से उसका महत्त्व बढ़ गया है। मोलाराम का नाम व इतिहास इसलिए विद्यमान है कि उसके वंशज अब तक श्रीनगर (गढ़वाल) में रहते आये हैं। उन्होंने मोलाराम व अपने अन्य पूर्वजों के काफ़ी चित्र व लेख सुरक्षित रक्खे हैं, जिससे उनकी वंशावली जीवित है। और अन्य ग़रीब मुसौविर काँगड़ा के नंद की तरह केवल नाममात्र ही रह गये। मिस्टर मुकन्दीलाल जिनका हम अन्यत्र (इसी पुस्तक में) ज़िक्र कर चुके हैं और जो मोलाराम के विषय में प्रमाण माने जाते हैं, मोलाराम व उसके वंशजों के नगर-निवासी हैं। इसलिए उनको मोलाराम की चित्रकला के निरीक्षण करने का अच्छा अवसर मिला। मोलाराम अपने समकालीनों से बहुत बढ़ा-चढ़ा चित्रकार नहीं था, तथापि वह पहाड़ी (राजपूत) चित्रकला का आदर्श चित्रकार है। उसके जीवन में हिमालयन (पहाड़ी) चित्रकला के उत्थान और गति की गाथा मिलती है। मिस्टर मुकन्दीलाल के चित्र-संग्रह में मोलाराम के जो चित्र हैं वे पहाड़ी (हिमालयन) चित्रकला के अच्छे नमूने हैं।... (उन चित्रों में से एक 'मोरप्रिया' में) गढ़वाली चित्रकला की शैली काँगड़ा-क़लम से कुछ भारी मौलिक व ग्रामीण प्रतीत होती है। तथापि वह (मोर प्रिया सन् १७७५ का) चित्र सौन्दर्य का बड़ा अच्छा उदाहरण है। उसकी रेखाओं की सादगी और खाके की सुगमता में प्रारम्भिक चित्रांकण-विधि की गम्भीरता व अलौकिक रहस्य निहित है। दूसरे चित्र ('मयंकमुखी' में जो उससे बहुत समय पीछे का अंकित किया हुआ है) में काँगड़ा के आदिम चित्रों की नवीनता व लावण्य विद्यमान है। (इस मयंकमुखी चित्र) की शैली प्रौढ़, परिपक्व और सर्वांगपूर्ण है। और इसके साथ ही अति

* हमें सन् १९३६ में कुछ ऐसे प्रमाण मिले हैं जिनके आधार पर अब हमारी राय है कि मोलाराम का जन्म सन् १७५० या उससे कुछ पहले ही हुआ था न कि बाद को।

सरस, साथ ही अति लावण्यमय भी नहीं। ऐसा प्रतीत होता है कि इस (दूसरे) चित्र को मोलाराम ने अपने समकालीन काँगड़ा के राजा संसारचंद के दरबार में जाने से कुछ समय पश्चात् बनाया होगा। मोलाराम पर काँगड़ा जाने का क्या असर हुआ, यह मोलाराम के उन चित्रों से प्रकट होता है जिनको उसने वहाँ से लौटने के बाद बनाया। इनमें से कुछ मिस्टर मुकुन्दीलाल के चित्रसंग्रह में हैं। ये चित्र १८ वीं सदी के अन्त और १९ वीं सदी के आरम्भ के बने हुए हैं। ये चित्र मोलाराम के पहले के बनाये हुए चित्रों से कुछ भिन्न हैं। यह बात कौतूहलजनक और मनोहर है कि मोलाराम ने अपने समय की चित्रांकण-शैली और सभ्यता की प्रवृत्ति का अनुकरण किया। पहाड़ी चित्रकला में जो परिवर्तन व क्रमागत वृद्धि हुई, मोलाराम की चित्रकला और उसका जीवन उस शिल्पीय विकास का जीवित दृष्टान्त है।"*

मोलाराम की चित्रकला का उल्लेख करते हुए मिस्टर नाना चमनलाल मेहता आई० सी० एस० ने अपनी पुस्तक "भारतीय चित्रकला" के ९०-९१ पृष्ठ में लिखा है—

"१८ वीं और १९ वीं शताब्दी की हिन्दू-चित्रकला का शृंखलाबद्ध अध्ययन डाक्टर आनन्दकुमार स्वामी ने १५ वर्ष पहले (सन् १९१६ में) किया था। उस ज़माने में इस कला के नमूनों की प्रचुरता, विविधता और सौन्दर्य का यथार्थ ज्ञान असम्भव था। फिर भी डाक्टर आनन्द-कुमार स्वामी लिखित 'राजपूत-कला' की दो जिल्दें अभी तक अत्यन्त उपयोगी साबित हुई हैं। भारतीय परम्परा के अनुसार स्थापित चित्रकार और शिल्पी श्रमजीवी कारीगर-मात्र थे। इनके जीवन की घटनाओं के विषय में सर्व-साधारण को कोई विशेष रस नहीं था। इन कलाकारों की अपेक्षा कवि-जन अधिक भाग्यशाली थे, क्योंकि उनके व्यक्तित्व के लिए जनता के हृदय में प्रेम और सम्मान था। हिन्दू-कला के इतिहास में चित्रकारों के जीवन के व्यक्तिगत वृत्तान्तों, बल्कि उनके नामों तक का पता नहीं मिलता था।

"सन् १९२१ में श्री मुकन्दीलाल ने कवि-चित्रकार मोलाराम का पता लगाया, क्योंकि यही एक नाम उस वक्त मालूम था; और इसी से उनके चित्रों की कुछ विशेष प्रसिद्धि भी हुई। पर अब तो कई हिन्दू-चित्रकारों के नाम उपलब्ध हैं। टिहरी (गढ़वाल) के ही, और मोला-राम के समकालीन, दो चित्रकारों के नाम—चैतु और माणकु अथवा मानक—मुझे टिहरी के महाराज श्री नरेन्द्रशाह के संग्रह में सन् १९२८ में मिले। उनके कई चित्र प्राप्त हुए हैं और चित्रकला में ये मोलाराम से किसी तरह कम नहीं हैं। मोलाराम के चित्रों की विशेषता उनके चित्र और कवित्व के समन्वय में है। उसके पूर्वज, पितामह, बनवारीदास अपने पुत्र श्यामदास और हरदास को लेकर सुलेमान शिकोह के साथ टिहरी के महाराज पृथ्वीशाह (१६४०-१६६० ई०) की शरण आये थे।"*

इस लेख में हमारा ध्येय केवल मोलाराम का स्थान राजपूत (पहाड़ी) चित्रकला में दर्शाना है, इसलिए इसमें मोलाराम की कविता व चित्रों की समालोचना नहीं की गई है। चित्रकला में मोलाराम का स्थान-संकेत करना भर ही इस लेख का ध्येय है।

भारतवर्ष में चित्रकार लोग प्रायः सभी शिल्पकार होते थे

पहली बात ध्यान में रखने की यह है कि भारतवर्ष में चित्रकार लोग प्रायः सभी शिल्पी लोग होते थे। स्थापत्य-कर्म, शिल्प-कर्म, मूर्ति-निर्माण-कला, नक्काशी इत्यादि सब शिल्पीय कार्य शिल्प-कार लोग ही करते थे। अस्तु, चित्रकला व सुनार के काम का परस्पर बहुत ही घनिष्ठ सम्बन्ध है। काँगड़ा तथा पंजाब की अन्य पहाड़ी रियासतों में जहाँ जहाँ चित्रकार लोग हुए हैं, उनके वंशज बहुधा सुनार का काम अब भी करते हैं, और पहले भी करते थे। इसी तरह मोलाराम के पूर्वज व वंशज सुनार का काम करते थे और उनमें से कुछ अब तक भी करते हैं। उनके यहाँ मूर्ति व ज़ेवर बनाने के ठप्पे, सांचे व ढाँचे तथा तलवारों के दस्ते (बैंट) और म्यान, हुक्के की नली का मुँह और ज़ेवरों के नमूने कागज़ों पर बने हुए अब तक सुरक्षित हैं। ये सब मोलाराम के पितामह हीरालाल और पिता मंगतराम के अंकित किये हुए कहे जाते हैं।

---

*हिमालयन् आई आई जे० सी० फ्रेंच आई० सी० एस० पृ० १०५-०६।

*वास्तव में सुलेमान शिकोह के साथ सन् १६५८ में श्यामदास और उसके पुत्र हरदास श्रीनगर में पृथ्वीपत शाह के दरबार में आये थे, न कि बनवारीदास के साथ।

मोलाराम का जन्म सन् १७५० और मृत्यु सन् १८३३ में हुई

मोलाराम का जन्म, हमारे नये अनुसन्धान व खोज के अनुसार, सन् १७५० ई० में हुआ था। १९०९ व १९२१ और १९२८ में जो लेख हमने मोलाराम के विषय में 'माडर्न रिव्यू' 'रूपम्' और 'विशाल भारत' में प्रकाशित किये उनमें हमने मोलाराम का जन्म सन् १७६० माना था। मृत्यु तो मोलाराम की निश्चित रूप से सन् १८३३ में हुई। १९३६ में हमें कुछ सबूत मिला है, जिससे मोलाराम का जन्म सन् १७५० के बाद होना नितान्त असम्भव प्रतीत होता है।

मोलाराम अच्छा खासा कवि व सूफ़ी-विचार का दार्शनिक व देवी-भक्त था। उसके हस्तलिखित ग्रंथों से ही हमको उसकी चित्रकला व चित्रशाला का ज्ञान हुआ है। उसने अपने समकालीन राजा व राजमंत्रियों का अच्छा वृत्तान्त अपने ऐतिहासिक काव्य 'गढ़राज्य-वृत्तान्त' में दिया है, जिसे पुस्तकाकार छपवाने से पहले हम 'हिन्दुस्तानी' में प्रकाशित कर चुके हैं।

मोलाराम के जीवन का आदर्श सच्चे कलाकार का आदर्श है

मोलाराम ने चित्रकार के रूप में अपने सामने जो आदर्श वाक्य रक्खे हैं वही उसके नाम को चित्रकला में चिरस्थायी करने को काफ़ी हैं और उन्हीं के कारण उसे भारतीय चित्रकला में बहुत ही उच्च पद मिल सकता है।

मोलाराम ने अपना 'मोरप्रिया' चित्र सन् १७७५ में खींचा था। उसके ऊपर अपने हाथ से उसने लिखा है—

"कहाँ हजार कहाँ लक्ष हैं,
अर्व-खर्व-धन-ग्राम।
समझै मोलाराम तो
सरद सुदेह इनाम॥

संवत् १८३२ साल फाल्गुन सुदी ५ शुभमस्तु।"

मोलाराम के इस जीवन-आदर्श की व्याख्या करते हुए मिस्टर मेहता ने अपनी 'भारतीय चित्रकला' में ठीक ही लिखा है—"यह सच्चे कलाकार के लिए उपयुक्त बात हुई। मोलाराम को धन-सम्पत्ति और ग्राम नहीं चाहिए। वह तो ऐसे गुण-पारखी चाहता है जो उसकी कला को समझे, उसकी क़द्र करे और सच्चे मन से मुग्ध होकर अपना तन-मन उस पर निछावर कर दे"।

मोलाराम ने अपने कुछ चित्रों पर उनके भाव, लक्षण और खींचने का समय लिखा है

यह मानना पड़ेगा कि अब तक एक भी भारतीय कलाकार ऐसा नहीं मिला जो स्वयं अपने हाथ से अपने चित्रों पर उनकी रचना की तारीख़ व अपना नाम लिखकर छोड़ गया हो। किसी चित्र पर किसी नाम को लिखा पाने से ही यह सिद्ध नहीं हो सकता कि वह चित्र उसी का बनाया है जिसका उस पर नाम है। जिसकी सम्पत्ति वह चित्र है उसका वह नाम होना सम्भव है या जिसके लिए वह चित्र बनाया गया हो या जिसे वह प्रदान किया गया हो उसका भी वह नाम हो सकता है। किन्तु मोलाराम ही ऐसा एक चित्रकार हुआ है जिसने चित्र-विशेष के अंकित करने की तारीख़ और चित्र के लक्षण अपनी रची हुई कविता में अपने सुन्दर अक्षरों में लिखा है। यों तो हम मोलाराम की शैली, उसके चित्रों की चित्रांकण-विधि, रंग, वृक्ष, लता और नायक-नायिकाओं के सरस सौन्दर्य और चित्रों पर लिखे अक्षरों और कविताओं को देखकर भी बता सकते हैं कि अमुक चित्र मोलारामकृत है, तथापि तर्क करनेवालों का मुँह बन्द करने के लिए भाग्यवश हमें १९३६ में, हमारी ३० वर्ष के खोज के बाद, 'मस्तानी बेगम' नाम का एक अधूरा रेखा-चित्र मिला है, जिस पर मोलाराम ने स्वयं लिखा है—

"कवि मौलाराम मुसवर खैंची यह तस्वीर रीझाने में सम्वत् १८२८ के साल चैत्र गते १६।"

मोलाराम ने एक चित्र में अपने को स्वयं मुसौविर कहा है और कहा है और लिखा है कि उसने वह चित्र अपने मनोरंजन के लिए बनाया था

यद्यपि मोलाराम उच्च कोटि का कवि नहीं था, वह चित्रकार था, तथापि वह अपने को चित्रकार और मुसौविर नहीं लिखता था, मानो वह चित्रकार कहलाने में अपना गौरव नहीं समझता था और सदैव अपने को 'कवि' लिखता था। वह कवि कहलाने में ही अपना गौरव समझता था। किन्तु २१

वर्ष की अवस्था में, सन् १७७२ में, जब उसने 'मस्तानी बेगम' नाम का चित्र बनाया, कम से कम एक बार उसने अपने को चित्रकार कह ही डाला। यद्यपि वह चित्र अधूरा रह गया, उसमें रंग नहीं भरे गये हैं, तथापि क़लम की बारीकी व सफ़ाई तथा लावण्य और रस सब उस रेखा-चित्र में अद्भुत हैं। वह चित्र केवल कला के खयाल से ही बहुत उच्च-कोटि का नहीं, वरन उस चित्र का महत्त्व और गौरव इस बात में है कि अब तक वही एक चित्र मोलाराम का या और किसी मुसौविर का मिला है जिससे यह साफ़ प्रकट होता है कि असली कलाकार चित्र किसी दूसरे को खुश करने के लिए नहीं बनाता, वरन अपने ही मनोरंजन के लिए बनाता है और उसे करना भी यही चाहिए। इस चित्र पर मोलाराम ने साफ़ शब्दों में स्वयं लिखा है कि उसने वह तसवीर अपने ही मनोरंजन के लिए अंकित की है।

कुछ समय से हमारी यह धारणा हो रही है कि वास्तव में मुग़ल और राजपूत (हिन्दू) चित्रकला में बड़ा भेद नहीं है; और कि एक ही मुसौविर मुग़ल तथा राजपूत दोनों शैलियों के चित्र बनाता था, और बना सकता था। हमारी इस धारणा की पुष्टि मोलाराम के सन् १७७१ के 'मस्तानी बेगम' नामक चित्र से जो उसने २१वें वर्ष की उम्र में बनाया था, होती है। इस चित्र का विषय भी मुग़ल है और शैली भी मुग़ल ही है। इस चित्र के सिरे पर जो कविता मोलाराम ने लिखी है वह यह है—

"मस्तानी चाल, मस्त सरावी, बैठी अपने खाने में।
सुनै राग, झुकि झाँकि रही, सखि प्याला दे दस्ताने में॥
पिवत भर भर, फिर फिर माँगत है, तरातर दाने में।
कवि मोलाराम मुस्सवर खैंचि यह तस्वीर रिझाने में।"

'मस्तानी बेगम' चित्र का यह शाब्दिक चित्र मोलाराम के ही शब्दों में है।

मुग़ल-चित्र मानव-जीवन—विशेषकर बादशाहों व बेगमों के जीवन से सम्बन्ध रखते हैं। और राजपूत (हिन्दू) चित्र देवी-देवताओं के विषय पर या पुराण, महाभारत, रामायण आदि में उल्लिखित घटनाओं पर खींचे गये हैं। मोलाराम का एक और चित्र है, जो उसने सन् १७६२ में बनाया था। उसमें उसने अन्तःपुर में किसी रानी या बेगम को गाना सुनने में निमग्न दर्शाया है। इसका विषय मुग़ल है, किन्तु शैली की प्रगति राजपूत-कला की ओर लपक रही है। इस चित्र के पीछे मोलाराम ने अपने समकालीन दरबारियों के आचार अथवा उनकी आदतों का शाब्दिक चित्र दिया है। उन्हें झूठा, चापलूस, 'जी हजूर', राजा को धोखा देनेवाला बनाया है।

मोलाराम की चित्रशाला में अन्य प्रदेशों से भी चित्रकला सीखने को चित्रकार आते थे

मोलाराम की अपनी चित्रशाला थी, जिसमें अन्य चित्रकार चित्रकला सीखने आते थे।

सन् १९३२ में जब हमने मोलाराम की कविता और चित्रकला पर 'हिन्दुस्तानी' में लिखना आरम्भ किया था तब हमने उसमें माणकू व चैतू चित्रकार के विषय में जिनका ज़िक्र मिस्टर मेहता ने अपनी पुस्तक "स्टडीज इन इंडियन पेंटिंग्स" में किया है, लिखा था—

"चैतू का नाम एक चित्र 'यादव-महिला-हरण' पर है, जो टिहरी के महाराज के संग्रह में है। यह चित्रकार का नाम प्रतीत होता है। माणकू की तरह चैतू भी पहाड़ी नाम है। ये दोनों नाम अब भी गढ़वाल में पाये जाते हैं। 'कृष्ण व गोपों की आँख-मिचौनी' खेल तथा 'राधाकृष्ण' माणकूकृत और 'यादवमहिलाहरण' चैतूरचित चित्रों की चित्रांकण-शैली मोलाराम की चित्रकला से बहुत मिलती है। इसलिए माणकू व चैतू का मोलाराम का शिष्य होना सम्भव है।"

इसके चार वर्ष के बाद सन् १९३६ में हमें मोलाराम के प्रपौत्र श्री बालकराम ने कृपापूर्वक मोलाराम के समय के कुछ फटे व अपूर्ण रेखा-चित्रों व ख़ाकों का संग्रह देखने को दिया। उनमें हमें उक्त 'कृष्ण व गोपों की आँखमिचौनी' खेल का रेखा-चित्र मिला। मालूम होता है कि टिहरी के महाराज के चित्र-संग्रह-वाले माणकू के पूर्ण रंगीन चित्र के अंकित किये जाने से पहले मोलाराम ने अपने शिष्य माणकू को उसे बना कर दिया होगा और तब उसके आधार पर माणकू ने उक्त रंगीन चित्र तैयार किया होगा। अथवा

यह भी सम्भव है कि मोलाराम ने स्वयं अपने लिए उक्त 'माणकू की लिखी' तसवीर का रेखा-चित्र तैयार किया हो ताकि वह स्वयं उस चित्र को तैयार करे।

यह तो भारतीय चित्रकला के पारखी विद्वान् भली भाँति जानते हैं कि भारतीय चित्रकार चित्र बनाने से पहले एक खाका तैयार करते थे और तब उस पर भिन्न भिन्न स्थानों पर उन रंगों को भरते थे जिनका नाम वे रेखाचित्र पर लिखते थे। मोलाराम-संग्रह में जो 'आँखमिचौनी' रेखाचित्र हमें मिला है वह उसी कक्षा का चित्र है। और इसमें बिलकुल संदेह का स्थान नहीं कि माणकू या तो मोलाराम का शिष्य था या मोलाराम ने स्वयं माणकू के चित्र की नक़ल की। जो भी हो, इसमें तो संदेह करने की गुंजाइश नहीं कि माणकू और मोलाराम समकालीन अवश्य थे। अस्तु हमने १९३२ में जो अनुसन्धान किया था उसकी पुष्टि १९३६ में इस रेखाचित्र के प्राप्त होने पर हुई। इसलिए माणकू व चैतू का मोलाराम का शिष्य होना सम्भव है।

मोलाराम के पास देश से भी मुसौविर उनके चित्र देखने व तसवीर बनाना सीखने के लिए आते थे। देश से आनेवाले एक मुसौविर बाकरअली 'फरदाक' का ज़िक्र मोलाराम के एक फुटकर कविता-ग्रन्थ में मिला है। बाकरअली ने मोलाराम के एक चित्र की प्रशंसा में जो शेर लिखे हैं उन्हें मोलाराम ने उद्धृत किया है—

"फ़रदाक बाक़र अली दर जहाँ ने इस्म।
मुसवीर ने तसवीर खैंची रस्म ॥
वजन सबनी (ई) चुनीं रंग आव।
बैठीं सौंहीं नाजनीं माहेताब ॥"*

बाकरअली मोलाराम की चित्रकला पर इतना मुग्ध हो गया था कि उसने मोलाराम का शिष्य बनकर उसी के पास श्रीनगर में रहना चाहा।

"रहें हम हमैसै तुम्हारे ई संग।
करें मस्क तसवीर रंगीन रंग ॥"

बाक़र अली की भाँति अन्य चित्रकार भी देश से पहाड़ में, मोलाराम की चित्रशाला में चित्रकला सीखने आते थे।

मोलाराम की ख्याति गढ़वाल के बाहर पहुँच चुकी थी

पंजाब की पहाड़ी रियासतों के कई कलाकार मोलाराम के पास चित्रकला सीखने आते थे और मोलाराम भी स्वयं एक दो बार काँगड़ा गया। मोलाराम की चित्रकला की ख्याति नैपाल की राजधानी कान्तिपुर में भी पहुँच चुकी थी। जब सन् १८०३ में गोरखा गवर्नर हस्तिदल थापा मोलाराम से श्रीनगर में मिला तब उसने मोलाराम के चित्रों को देखकर कहा—

कान्तिपुर में किरति तुहारी सुनत रहे।
अब आँख निहारि चित्र विचित्र तुहारे देखे॥

देश से आये हुए मनिराम बैरागी ने संवत् १८७५ (सन् १८१८) में मोलाराम से कहा—

कीरत सुनी तुमरी कवि आये हैं मुसवरौ पास,
कानन की सुनि बात साँची ठहराये।
कहो मोलाराम खलक सारी सरनाम हो,
तुम पै गुन जेतो सो आँखन दिखाइये॥

मोलाराम अपनी चित्रशाला में ही निमग्न रहता था

अस्तु, मोलाराम एक ऐसा उच्च कोटि का कलाकार अपने जीवन-काल में ही हो गया था कि उसके पास दूर 'देशों' से भी लोग उसके चित्र देखने आते थे और उससे चित्रकला सीखते थे।

मोलाराम अपनी चित्रशाला में चित्र बनाने में व्यस्त रहता था। राज्य-कार्य में भाग नहीं लेता था। एक बार तत्कालीन गढ़नरेश जयकृत शाह (सन् १७८०—८५) महाराज अपने विद्रोही फ़ौजदार घमण्ड-सिंह इत्यादि बाग़ियों से पीड़ित हुए। उस सम्बन्ध में मोलाराम ने लिखा है—

"महाराज अति दुखित भयो।
चित्रसाल आई हमको कह्यो॥
मोलाराम काम तजि जावो।
चित्रशाल नाहक ही बनावो॥

---

* फ़रदाक बाक़र अली कहता है ऐ मुसौविर मोलाराम, तुम दुनिया में (अपनी चित्रकला के लिए) प्रख्यात हो। यह तसवीर तुमने चित्रकला के नियमों के अनुकूल उपयुक्त रंगों में एक चमक-दमकवाली सुन्दरी की खींची है। मानो चन्द्रमा स्वयं अलंकारों से भूषित शोभायमान हो।

चित्रशाल लिखी तुम का पायो।
हमको दुष्टन आन दबायो॥

जयकृत शाह मोलाराम को सिरमौर के राजा जयप्रकाश के पास सहायता के लिए भेजना चाहता था। मोलाराम स्वयं तो अपनी चित्रशाला को छोड़कर सिरमौर नहीं गया, किन्तु उसने एक चित्र बनाकर जयप्रकाश के पास सिरमौर जयकृत शाह की ओर से, सहायता की याचना में भेजा—

कीच के बीच में हाथी फँसैं,
तब हाथी को हाथ दै हाथी निकारै।
इहैं छन्द हम दियो बनाई,
चित्र सहित लिख दियो पठाई॥

मोलाराम एक आदर्श चित्रकार हुआ है, जिसने आजन्म अपना सारा समय चित्र लिखने में लगाया

इन सब बातों से यह सिद्ध होता है कि चित्रकला के पारखी और चित्रकला-रसज्ञ मोलाराम के चित्रों को राजपूत (पहाड़ी) चित्रों में सबसे ऊँचे दर्जे के भले ही न बतायें, तथापि यह सबको मानना पड़ेगा कि मोलाराम ही एक ऐसा भारतीय कलाकार हुआ है जिसमें चित्रकार के सब गुण पाये जाते हैं और जिसने बाल्य-काल से मृत्यु-पर्यन्त चित्रालेखन किया।

मोलाराम का एक ७३ वर्ष की उम्र का चित्र उसके पुत्र ज्वालाराम का बनाया हुआ है, जिसमें मोलाराम के समीप चित्र-लेखन का सामान व चित्रों के बस्ते व पुस्तकें (कवि-सूचक) रक्खी हैं।

मोलाराम ने कई सहस्र चित्र बनाये हैं, जिनमें से सैकड़ों तो मोलाराम के विक्षिप्त प्रपौत्रों (हरिराम व तोताराम) ने नष्ट कर डाले। कुछ अज्ञानवश मिट्टी में मिल गये और हज़ारों चित्र गढ़राज-परिवार के पास रहे। जब से हमने मोलाराम के विषय में लिखना शुरू किया तब से मोलाराम के कुछ चित्र अमरीका व इँगलैंड भी चले गये। इसके अतिरिक्त मोलाराम की मृत्यु के पश्चात् उसके पुत्र ज्वालाराम के द्वारा—जो स्वयं भी चित्र बनाता था और जो सर रामजे कमिश्नर के दफ़्तर में नौकर हो गया था, मोलाराम के हज़ारों चित्र अलमोड़ा, पटना, बनारस इत्यादि शहरों में पहुँचे। वर्तमान गढ़ (टिहरी) नरेश के संग्रह में मोलाराम के कई चित्र अब भी विद्यमान हैं। मोलाराम के अधिकांश रंगीन व रेखाचित्र जिन पर मोलाराम ने अपने हाथ से अपना नाम, समय और चित्रों के लक्षण व भाव लिखे हैं, हमारे संग्रह में हैं।

गढ़वाल क़लम की विशेषता

उपसंहार में हम यहाँ मिस्टर अजित घोष की सम्मति जिन्होंने पहाड़ी चित्रकला का बहुत अच्छा मनन किया है और जिनके पास मोलाराम के कुछ चित्र हैं, यहाँ देते हैं। इससे पाठकों को मोलाराम व गढ़वाल-चित्रालेखन-शैली का कुछ ज्ञान होगा। घोष महाशय लिखते हैं—

"गढ़वाल-चित्रकला की शैली काँगड़ा-क़लम का अनुकरण करती है। उसके भाव, सरसता, प्रेरणा काँगड़ा की चित्रकला से मिलती है। किन्तु गढ़वाल के मुसौविर सजावटी और आलंकारिक सौन्दर्य की बारीक़ी को विस्तार-पूर्वक दर्शाने में और प्राकृतिक सौन्दर्य-प्रेम तसवीरों में दिखाने में अन्य राजपूत-चित्रकारों से बहुत आगे बढ़े हुए हैं। वास्तव में अधिकांश पहाड़ी चित्र जिनमें प्रकृति के सुन्दर दृश्य सविस्तर बड़ी बारीक़ी, सरसता, सरलता और लावण्य के साथ दर्शाये गये हैं, गढ़वाल-चित्रकला के ही उदाहरण हैं। विशेषकर वे चित्र जिनमें वृक्ष व लताओं पर छोटे छोटे गुलाबी और सफ़ेद पुष्प खिले हुए दर्शाये गये हैं, गढ़वाल-कला (गढ़वाल स्कूल) के हैं। काँगड़ा के जो चित्रकार जम्मू में आ बसे थे उनकी प्राकृत सौन्दर्य को अंकित करने की विधि उसी शैली की है जो गढ़वाली क़लम में पाई जाती है। राजपूत-चित्र-कला का उल्लेख बिना मोलाराम की चित्रकला की प्रशंसा किये नहीं हो सकता। इसमें कोई सन्देह नहीं कि गढ़वाली चित्रकला में मोलाराम के चित्रों में सबसे अच्छा और सबसे अधिक व्यक्तित्व मोलाराम के चित्रों में ही पाया जाता है।

जर्मनी की आत्मा—तलवार

लेखक, श्रीयुत सन्तराम बी० ए०

आज संसार को जिस जर्मनी का सामना करना पड़ रहा है वह मरने-मारने के लिए उतना ही तैयार है जितना कि सन् १९१४ में था; वह उतना ही आज्ञानुवर्त्ती नियमनिष्ठ और सशस्त्र है जितना कि वह सन् १९१४ में था। परन्तु अब और तब में एक बड़ा अन्तर है। तब वह एक समृद्धिशाली, परिश्रमी और आविष्कार-कुशल राष्ट्र था। तब वह उद्धत और गर्वित होते हुए भी मिलनसार था। इसलिए उस समय जर्मनों को लड़ाई में ढकेलने के लिए यह कहने की आवश्यकता थी कि तुम पर आक्रमण किया जा रहा है। इसके विपरीत, आज जर्मन अनुभव करते हैं कि हम बलवान् हैं, परन्तु संसार हमें भूल से दुर्बल समझ रहा है; हमारा जन्म शासन करने के लिए हुआ है, परन्तु धोखे से हम विजय से वंचित किये गये हैं। जर्मन आज सन् १९१४ की अपेक्षा अधिक भयानक हैं। क्योंकि जिसे वे प्रतिष्ठा कहते हैं आज वे उसकी रक्षा के लिए नहीं वरन उसे पुनः प्राप्त करने के लिए लड़ रहे हैं। आज जर्मनी शस्त्रों की झंकार करता हुआ संसार के सामने बदला लेने की माँग कर रहा है।

कारण यह कि जर्मन लोग कच्चा माल या उपनिवेश या रूस के अनाज के खेत नहीं चाहते। वे कोई ऐसी वस्तु चाहते हैं जो इससे बहुत अधिक काल्पनिक है। वे अपने तेल के कुएँ खोदने या अपनी कपास बोने के लिए युद्ध में प्रवृत्त नहीं हुए हैं। वे विजय चाहते हैं।

गत युद्ध में जर्मनी ने चार वर्ष तक वीरतापूर्वक सामना किया था; जर्मनी का आधुनिक विज्ञान, उसके जलयान, वायुयान, ग्रन्थकार, संगीत-विशारद, रसायनशास्त्री और जीवनतत्त्वविशारद बहुत बढ़िया हैं; संसार से इतनी ही प्रशंसा पाकर वह सन्तुष्ट नहीं रहना चाहता। जर्मनों की सैनिक-जाति इसे अपनी प्रतिष्ठा नहीं समझती। उनके कोश में प्रतिष्ठा का अर्थ है शस्त्रों से विजय प्राप्त करना। अँगरेज जब क्रिकेट या फ़ुटबाल प्रभृति खेल खेलते हैं तब हार-जीत का भाव छोड़ कर खेलते हैं। परन्तु जर्मन लोगों के खेल में भी यह विरक्ति नहीं, वे खेल भी जय-पराजय के भाव से ही खेलते हैं।

जर्मन उसी वस्तु से सन्तुष्ट होंगे जिसे वे समझौते या बातचीत से नहीं, वरन विजय-द्वारा लाभ करेंगे। डेनज़िग लेने के बाद उन्होंने पोलैंड पर पंजा मारा। डेनमार्क, हालैंड, बेल्जियम और फ़्रांस दबाने के बाद अब वे इँगलैंड पर दाँत लगाये बैठे हैं। हिटलर का ऐसा ही कार्यक्रम है।

जर्मन विजय चाहते थे, और वह विजय केवल पेरिस में ही प्राप्त हो सकती थी। उनके सिर पर वर्सलाई का अपमान किसने रक्खा था? फ़्रांसीसियों ने। कोई भी जर्मन यह नहीं कहता कि विगत युद्ध में जर्मन-सेनाओं ने जितना प्रदेश अपने अधीन कर लिया था उसे अपने अधीन रखने का जर्मनी का निश्चय था और उसने पराजित रूसियों एवं रूमानियों पर बड़े विकट नियम लगाये थे।

ईमिल लुडविग नाम का एक जर्मन लेखक है। उसने नेपोलियन, बिस्मार्क और कैसर के जीवन-चरित भी लिखे हैं। वह आजकल जर्मनी से निर्वासित होकर अमेरिका में रहता है। उसने वर्त्तमान युद्ध आरम्भ होने के कोई डेढ़ वर्ष पहले अमेरिका के अन्तर्गत बोस्टन नगर से प्रकाशित होनेवाले 'दि एटलाण्टिक मन्थली' नामक मासिक पत्र की फ़रवरी १९३८ की संख्या में जर्मनी पर एक लेख लिखा था। उस लेख की बहुत-सी बातें आज बिलकुल सत्य प्रमाणित हो रही हैं। उसमें एक जगह वह लिखता है—

"स्कूल जानेवाले प्रत्येक जर्मन बच्चे की आत्मा में जो बात गर्म लोहे से दाग कर अंकित कर दी गई है वह वर्सलाई के दर्पण भवन का दृश्य है, जहाँ 'सिंह' ने बैठकर जर्मनों को एक ऐसी सन्धि पर हस्ताक्षर करने के लिए बाध्य किया था जिसने उनको निःशस्त्र कर दिया! यही हृदय उन्हें नवीन युद्ध के लिए उत्तेजित कर रहा है। इसने जर्मनों में निकृष्टता का भाव उत्पन्न कर दिया है। इस भाव से वे किसी भी क़ीमत पर छुटकारा पाना चाहते हैं।"

हम देखते हैं कि फ़्रांस से 'क्षणिक सन्धि' करते समय हिटलर का हृदय तब तक शान्त नहीं हुआ जब तक उसने

उसी वन में, उसी ट्रेन के उसी डिब्बे में बैठकर फ़्रांसीसी सरकार के राजप्रतिनिधियों को उसी प्रकार अपमानित नहीं कर लिया, जिस प्रकार विगत युद्ध में उसी वन में, उसी ट्रेन के उसी डिब्बे में फ़्रांसीसियों ने जर्मन-राजप्रतिनिधियों से संधि पर हस्ताक्षर कराये थे। इतना ही नहीं, उसने वर्सलाई के संधिपत्र को अग्नि देव की भेंट चढ़ाकर इस महारण-यज्ञ की ज्वाला को प्रज्वलित किया।"

हिटलर जर्मनी नहीं है, ऐसा समझना भारी भूल है। अपनी वक्तृताओं में वह उन सब प्रेरणाओं को इकट्ठा कर देता है जो जर्मनों को क्रोध से पागल बना देती हैं। वह कहता है, जिस जाति में अपने अपमान का बदला लेने का भाव नहीं वह प्राणहीन है। वह ऐसी बातों का संकेत करता है जिनसे समूची जर्मन-जाति उसके विचारों में बहने लगती है। मत विश्वास कीजिए कि यह किसी एक दल का राज्य है। यद्यपि लाखों लोग असन्तुष्ट हैं, तो भी परिवर्तन लाने का यत्न करने का साहस उनमें से एक में भी नहीं। वे मँहगी, दूध घी के अभाव, कम वेतन, भाषण की स्वतन्त्रता न होने की शिकायत तो करते हैं, परन्तु इसका अर्थ राज्य-क्रान्ति नहीं।

जो जाति स्वतन्त्रता की अपेक्षा व्यवस्था से अधिक प्रेम रखती है वह विद्रोह नहीं किया करती। नियमन जो जर्मनों पर पुनः उतरा है, अनुबद्ध स्वतन्त्रता की अपेक्षा उनको कहीं अधिक अनुकूल है। सन् १९३७ की पहली मई को हिटलर ने अपने भाषण में 'जेवोर्सम' (आज्ञापालन) शब्द को तीन बार दुहराया था। इस शब्द का जिस हर्ष के साथ जर्मन-जाति ने स्वागत किया था उसे रेडियो ने ब्राडकास्ट द्वारा प्रकट किया था। आज्ञापालन, जिसका फ्रांस में तिरस्कार है, जर्मनी में पूजित है। नारी-स्वातन्त्र्य के नाम पर फ्रांस में जो भारी विलासिता फैल रही थी, और जिसका प्रचार भारत में भी लिटरेरी लोगों और कला एवं साहित्य-गोष्ठियों के परदे में किया जा रहा है, जर्मनी में एक दम रोक दी गई है। स्त्रियों के बहुत अधिक सम्पर्क के कारण हमारा युवकसमाज पतित और निस्तेज हो गया है, इस अनुभव के होते ही हिटलर ने जर्मन-स्त्रियों को चूल्हा चौका सँभालने और सन्तानोत्पत्ति में लगने का आदेश किया। विलासिता एवं स्त्रैणता को छुड़ाकर उसने जर्मन युवकों में वीरता, आत्मत्याग और साहस प्रभृति उत्तम गुण भरने पर ज़ोर दिया।

गम्भीर से गम्भीर अर्थ में हिटलर की शासनप्रणाली जर्मनी की अत्यधिक बहुसंख्या के अनुकूल है। ३०० वर्ष से जर्मन-जीवन पर फ़ौजी वर्दी शासन करती आ रही थी। सजावटें, परेडें और झंडे जर्मन लोगों की शोभा बने हुए थे। किसी नागरिक ने कभी सैनिक शासन के विरुद्ध विद्रोह नहीं किया; योरप में जर्मनी ही एक ऐसा देश है जिसमें जनता की ओर से कभी कोई प्रकृत राज्यक्रान्ति नहीं हुई।

विगत महायुद्ध के बाद जर्मनी में प्रजातन्त्र-शासन हो गया था। इस १४ वर्ष के प्रजातन्त्रात्मक शासन में वर्दियों और झंडों का सारा दिखावा अन्तर्धान हो गया; क्योंकि प्रजातन्त्र के नेताओं में कल्पना का अभाव था। जब ब्रैण्ड बाजे और सैनिक पताकायें पुनः लौट आईं, जब प्रत्येक बाल सँवारनेवाले को लोहे का जोद और प्रत्येक चिमनी साफ़ करनेवाले को फ़ौजी बूट पहनना पड़ा, तब इस योद्धा जाति के हर्ष की कोई सीमा न रही। इन लोगों ने अपना आज्ञापालन का अधिकार जिससे ये वंचित कर दिये गये थे, पुनः प्राप्त कर लिया। सन् १९२० में एक बहुत बड़े जर्मन-समाज-शास्त्री ने कहा था—"मित्रराष्ट्रों ने हमारी आत्मा—हमारी तलवार ले ली थी!"

यदि अँगरेज़ और फ़्रांसीसियों ने उपरिलिखित जर्मन-चरित्र का भली भाँति अध्ययन किया होता तो सम्भव था कि युद्ध होने ही न पाता, अथवा, कम से कम आज अवस्था ऐसी बुरी न होती। इँगलैंड और अमरीका का भय बढ़ते बढ़ते अन्धविश्वास का रूप धारण कर चुका था। जर्मन विजय के लिए युद्ध चाहते थे। यदि तीन प्रजातन्त्री राज्य संयुक्त होकर निश्चय करते और डिक्टेटरों को स्पष्ट शब्दों में बतला देते कि हम तीनों मिलकर तुम्हारा विरोध करेंगे तो बहुत सम्भव था कि हिटलर को उपद्रव करने का साहस ही न होता।

चाहे जो हो, आज हिटलर बदला लेने के लिए युद्ध में प्रवृत्त है, और उसमें उसे आंशिक सफलता भी मिल चुकी है। परन्तु अब उसका विजय का छकड़ा आगे नहीं बढ़ सकेगा, क्योंकि उसके इस अन्यायपूर्ण लोकसंहारक युद्ध के विरुद्ध सारा सभ्य संसार उठ खड़ा हुआ है।
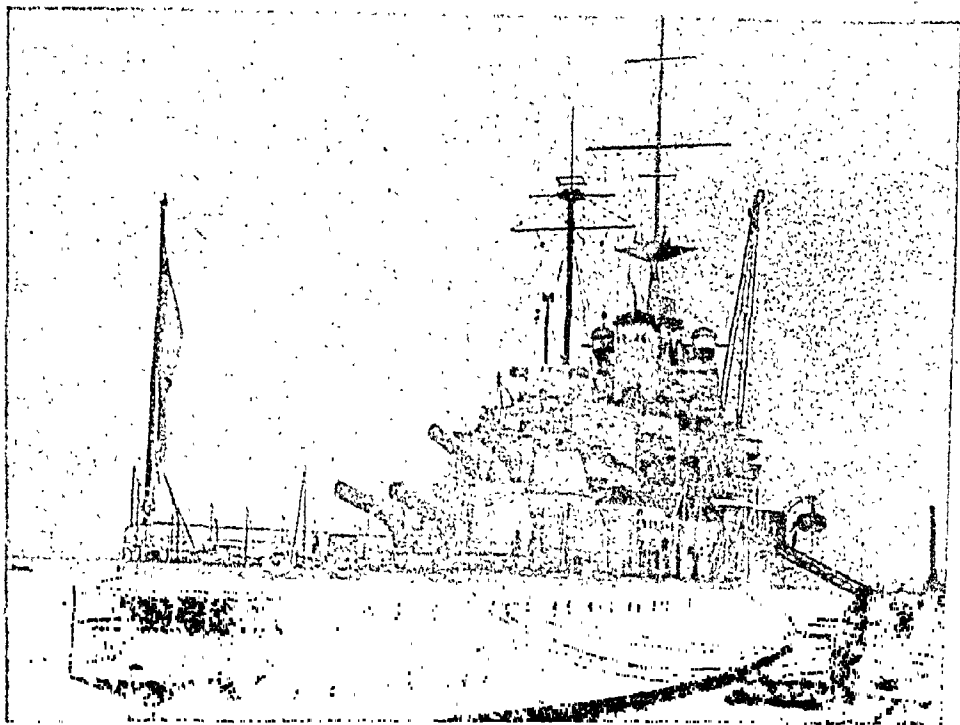
[ब्रिटेन का एक युद्धपोत

युद्ध के आधुनिक शस्त्रास्त्र

लेखक, श्रीयुत अनन्तप्रसाद विद्यार्थी, बी० ए०

मानव-जाति आदि काल से प्रभुत्व की भूखी रही है। प्रभुत्व प्राप्त करने की प्रवल लिप्सा अथवा अपने वल के द्वारा दूसरे को अपने वश में रखने की इच्छा ही युद्ध का कारण है। प्रकृति की गोद में पलनेवाली जातियों से लेकर सभ्यता की चरम सीमा तक पहुँचे हुए राष्ट्र भी आपसी झगड़ों का निपटारा करने के लिए युद्ध का ही आश्रय लेते हैं। यही कारण है कि ज्यों-ज्यों सामाजिकता का विकास हुआ त्यों-त्यों युद्ध भी वैयक्तिक के स्थान पर सामूहिक रूप धारण करता गया। जब तक युद्ध वैयक्तिक रहा तब तक लड़नेवालों को हथियारों की इतनी जरूरत प्रतीत नहीं हुई थी; परन्तु ज्यों-ज्यों मस्तिष्क का विकास हुआ और युद्ध ने व्यापक रूप धारण किया, त्यों-त्यों शत्रु को मारने के लिए नये-नये उपाय सोचे गये। इसी से अस्त्र-शस्त्रों का जन्म हुआ। ऐतिहासिकों का मत है कि पुराने काल के शस्त्रास्त्रों में धनुष-बाण सबसे महत्त्वपूर्ण था। धीरे-धीरे अस्त्र-शस्त्रों में और भी उन्नति होती रही। यहाँ तक कि आज यह समझा जाने लगा है कि जिस राष्ट्र के पास जितने अधिक घातक अस्त्र-शस्त्र होंगे उसकी विजय उतनी ही निश्चित होगी। इस धारणा का फल यह हुआ कि प्रत्येक राष्ट्र युद्ध की सामग्री, अस्त्र-शस्त्र तथा अन्य प्रकार की वस्तुएँ तैयार करने के लिए अपनी सम्पूर्ण वैज्ञानिक शक्ति खर्च कर देने को तैयार रहता है। सम्भवतः इस समय युद्ध की तैयारी, शस्त्रीकरण तथा नये और अधिक घातक अस्त्र-शस्त्रों के आविष्कार पर जितना धन व्यय किया जाता है उतना राष्ट्र के अन्य उपयोगी कार्यों पर मिला कर भी नहीं किया जाता। युद्ध की उपयोगिता या अनुपयोगिता के सम्बन्ध में हमें यहाँ कुछ नहीं कहना है। यहाँ हम केवल अस्त्र-शस्त्रों का ही उल्लेख करेंगे। आजकल प्रत्येक राष्ट्र ऐसे गुप्त अस्त्रों की खोज में रहता है जिससे

[एक रूसी टैंक]

जानता कि किसके पास कैसा 'गुप्त अस्त्र' है।

वर्तमान युद्ध में अभी तक ऐसे किसी गुप्त अस्त्र का प्रयोग किसी ने नहीं किया जो चमत्कारों की श्रेणी में रक्खा जा सके। हाँ, यह ज़रूर दिखाई दिया है कि इस बार युद्ध में मशीन से अधिक काम लिया गया है—ग्रोली-बारूद से कम। वस्तुतः अब युद्ध अधिकाधिक वैज्ञानिक, अतः अधिकाधिक लोकसंहारक, हो गया है। वर्तमान युद्ध में कैसे कैसे आयुधों से काम लिया जा रहा है, इनका यहाँ संक्षेप में परिचय दे देना आवश्यक है।

पहले हम बमों को लेते हैं।

बमों का निर्माण भिन्न-भिन्न तरीक़ों पर होता है। अधिक ताक़त के बम इमारतों या क़िलों को नष्ट करने के लिए काम में लाये जाते हैं। कुछ बमों के फूटने पर बहुत-सी गोलियाँ निकलती हैं, गैसवाले बमों से विषैली गैस निकलती है। बम का विस्फोट उसमें लगे हुए 'फ्यूज़' के द्वारा होता है। बम भी कई प्रकार के होते हैं। कुछ तो स्थान विशेष पर धक्का लगने से फूटते हैं और कुछ कहीं भी धक्का लगने से फट जाते हैं। बम में धक्का लगते ही फ्यूज़ में आग लग जाती है। बमों के निर्माण का यह सिद्धान्त है कि

वह अन्य राष्ट्रों पर अचानक विजय प्राप्त कर सके। वर्तमान काल में अस्त्र-शस्त्र सैनिक रहस्य समझे जाते हैं तथा सरकारें उनको जहाँ तक हो सकता है अत्यन्त गुप्त रखती हैं। साथ ही प्रत्येक राष्ट्र की कोशिश दूसरे राष्ट्रों के अस्त्र-शस्त्र-सम्बन्धी आविष्कारों का रहस्य मालूम करने की ओर रहती है, इसके लिए असंख्य धन पानी की भाँति बहाया जाता है। इसका कारण यह है कि आधुनिक शस्त्रीकरण कला और विज्ञान की दृष्टि से अपनी चरम सीमा को पहुँच गया है। कितने ही वैज्ञानिक अपनी सम्पूर्ण शक्ति नये शस्त्रास्त्रों के आविष्कार में खर्च करते रहते हैं। विज्ञान की सबसे अधिक उन्नति शस्त्रास्त्रों के निर्माण में हुई है।

यहाँ हम कुछ प्रमुख अस्त्र-शस्त्रों के निर्माण के सिद्धान्तों का वर्णन करेंगे। यद्यपि शस्त्रास्त्रों में बहुत कुछ नये निकले हुए हैं फिर भी सबका सिद्धान्त मूल में एक ही है। जर्मनी ने शस्त्रास्त्रों के निर्माण में बड़ी उन्नति की है। उसने अपने सम्पूर्ण साधन समस्त विज्ञान तथा पूरी शक्ति अपनी सामरिक योग्यता बढ़ाने में ही लगा दी है। यही कारण है कि आज वह अपने 'गुप्त अस्त्र' की धमकी दे रहा है। परन्तु यदि सच पूछा जाय तो गुप्त अस्त्र केवल उसी के पास नहीं है, प्रत्येक राष्ट्र गुप्त अस्त्रों की खोज में रहा है और कोई नहीं

[पनडुब्बी]

[लड़ाकू वायुयान]

गति में रुकावट पड़ते ही वे फट जायँ। कुछ बम ऐसे भी होते हैं जो निश्चित दूरी पार करने पर या गतिमान् होने के निश्चित समय के बाद फट जाते हैं।

एक नये प्रकार के बमों का भी प्रयोग किया गया है। ये बहुत छोटे होते हैं। इनमें थर्मिट नाम का एक पदार्थ होता है जिससे आग उत्पन्न हो जाती है। इस प्रकार के छोटे बम में दो पौंड तक थर्मिट होता है। कुछ ऐसे छोटे बम भी होते हैं जिन्हें हाथ द्वारा फेंकते हैं या बन्दूक पर रख कर चलाते हैं।

तोप तथा मशीनगन

वर्तमान युद्ध में बमों का बहुत अधिक प्रयोग हो रहा है। जर्मनी तथा मित्र-राष्ट्र दोनों एक दूसरे के नगरों पर हवाई जहाजों द्वारा बमवर्षा करके शत्रु को हराने के प्रयत्न में हैं। परन्तु फिर भी केवल बमों द्वारा युद्ध में विजय नहीं प्राप्त की जा सकती। आज भी स्थल-युद्ध में तोपों और मशीनगनों का स्थान बे-जोड़ है। आज भी सेना के बढ़ाने के लिए तोपों की गोला-बारी आवश्यक है।

तोपों का निर्माण बारूद के आविष्कार के साथ ही साथ हुआ। यह १३वीं शताब्दी की बात है, परन्तु तब से अब तक तोपों और मशीनगनों का बहुत अधिक विकास हो चुका है। तोप बनानेवालों के सामने सबसे बड़ा प्रश्न ऐसी धातु खोजना था, जिसके द्वारा तोप बनाई जा सके, साथ ही जो बारूद के धड़ाके को सहन भी कर सके। पुरानी तोपों की पहुँच बहुत दूर तक न होती थी परन्तु आधुनिक तोपों की पहुँच पचासों मील तक होती है। आजकल तोप 'मज़ल' या 'मुसका' द्वारा भरी जाती हैं। और इसके निर्माण का सिद्धान्त भी प्रायः अधिक जटिल है। हर तोप के लिए एक भिन्न नली की ज़रूरत होती है, इस नली के अन्दर एक लाइनर होता है। तोपों के चलने पर यह लाइनर ही घिसता है। अतएव यह ऐसा बना होता है कि घिस जाने पर निकाला जा सके तथा गोले की गति में रुकावट भी न डाले। तेज़ चलनेवाली तोपों, ख़ासकर वायुयान-संहारिणी तोपों का लाइनर ढीला होता है। जब गोला दागा जाता है तब लाइनर कड़ा हो जाता है। एक चाभी भी लाइनर को उलटने-पलटने से रोकने के लिए लगी रहती है। तोपों के निर्माण में छोटी छोटी बातों का भी पूरा ध्यान रक्खा जाता है। साधारण-सी भूल हो जाने पर सारा काम बिगड़ सकता है। तोप दागने का तरीक़ा बिलकुल सरल है। इसके बाहर थोड़ी-सी बारूद में आग लगा दी जाती है जो छेद द्वारा अन्दर पहुँचती है। परन्तु विस्फोटक के आविष्कार के बाद अब तोप में आग लगाने की ज़रूरत नहीं रही।

टैंक

तोपों को युद्ध-क्षेत्र में एक स्थान से दूसरे स्थान को ले जाना आसान काम नहीं है क्योंकि एक तो

[ब्रिटिश विध्वंसक]
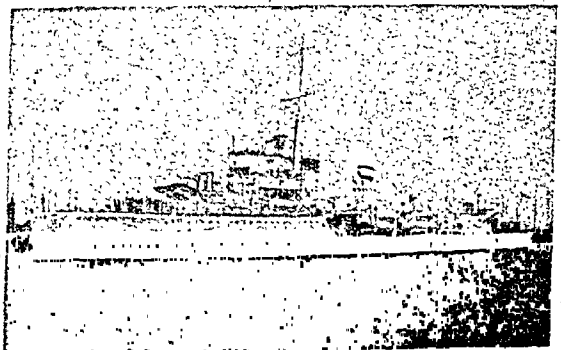
[विध्वंसक तोप]

से भारी होती हैं दूसरे यदि वे खुले रूप में ले जाई जायँ तो शत्रु के हवाई जहाजों की बम-वर्षा का भय रहता है। अतः वैज्ञानिक ऐसे उपाय की खोज में थे जिसके द्वारा सेना सशस्त्र तथा सुरक्षित रूप में आगे बढ़ सके। 'टैंक' के आविष्कार के द्वारा यह समस्या हल हो गई।

आज-कल युद्ध में टैंकों का प्रयोग बहुत अधिक किया जाता है। फ़ांस पर जर्मनी ने टैंकों-द्वारा ही विजय प्राप्त की। अब तक हमने टैंक के सम्बन्ध में कुछ नहीं लिखा। टैंकों का आविष्कार अभी हाल में हुआ है इनका प्रयोग गत महायुद्ध से ही शुरू हुआ। टैंक एक प्रकार की सवारी है जो सैनिकों के काम आती है। इसे वे सुरक्षित चलता फिरता क़िला समझते हैं। इसमें तोपें लगी रहती हैं जिन्हें चलाता हुआ टैंक शत्रु-सेना की ओर बढ़ता जाता है। टैंकों की गति बहुत अधिक होती है और वे ऊँचे नीचे धरातल पर भी आसानी से चल सकते हैं। जर्मनी ने ऐसे टैंक भी बनाये हैं जो पानी पर भी चल सकते हैं। आग उगलनेवाले टैंकों का भी फ़्रांस के युद्ध में प्रयोग किया गया था। टैंकों को बनाने में सुदृढ़ लोहे का प्रयोग किया जाता है ताकि लौहवेधक गोलियों और बमों का इन पर कुछ असर न हो। टैंकों की लड़ाई केवल नगरों या साफ़ मैदानों में ही हो सकती है। इनसे बचने के लिए लोहे की छड़ें गाड़ कर रास्ता बन्द किया जाता है क्योंकि ऐसे मार्ग पर टैंकों का चलना असम्भव है।

सामुद्रिक युद्ध

स्थल की अपेक्षा जल-युद्ध का महत्त्व अधिक समझा जाता है। ब्रिटेन के विस्तृत साम्राज्य का एक-मात्र कारण उसकी प्रबल नौ-शक्ति ही समझी जाती है। वर्तमान युद्ध में यद्यपि जर्मनी ने स्थल-युद्ध में फ़्लैंडर्स की-सी विजय प्राप्त की है किन्तु ब्रिटिश नौ-शक्ति का सामना करने का साहस उसको भी नहीं होता। युद्ध में अन्तिम विजय उसी की होगी जिसकी सामुद्रिक शक्ति अधिक होगी। इसी आधार पर यह आशा की जाती है कि चाहे जर्मनी अभी कितनी ही विजय क्यों न प्राप्त कर ले परन्तु अन्त में विजय ब्रिटेन की ही होगी।

सामुद्रिक युद्ध में सबसे प्रमुख युद्धपोत होता है। यह एक प्रकार का तैरता हुआ कारखाना कहा जा सकता है।
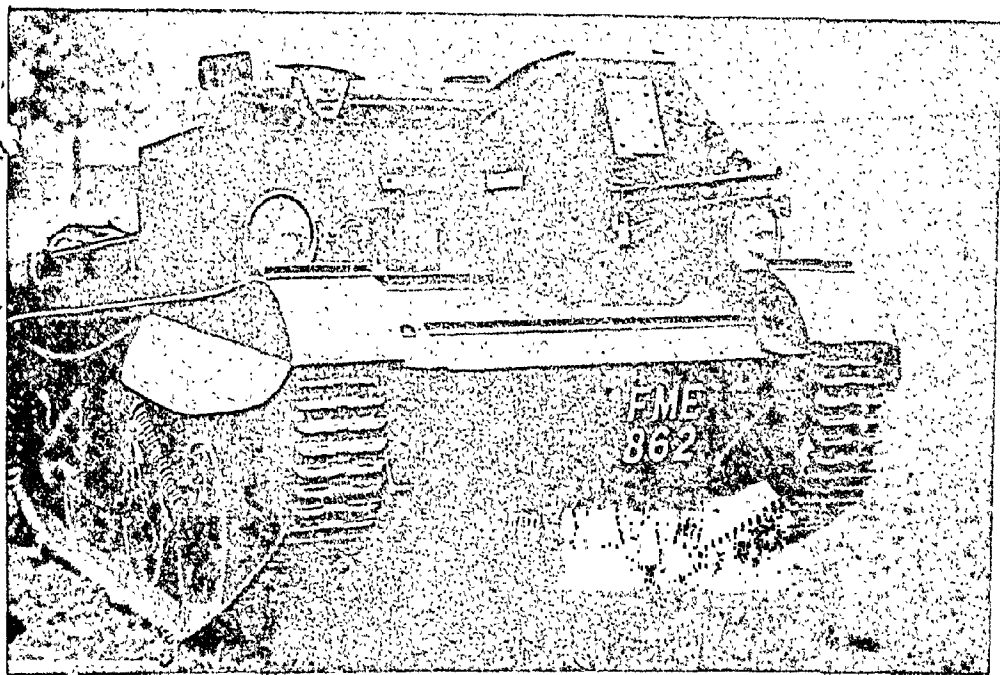
[एक टैंक]

पहले युद्धपोत लकड़ी के बनते थे, परन्तु धीरे धीरे उनमें उन्नति की गई और वे लोहे के बनने लगे। सबसे पहला लौह युद्धपोत ब्रिटेन ने बनाया था। परन्तु जब १९वीं शताब्दी में लौह-भेदक गोलियों का आविष्कार हुआ तब जहाज़ ढले हुए लोहे पर स्टील चढ़ा कर बनाये जाने लगे। जहाज़ की दीवारें भी मोटी की जाने लगीं। अमरीका के वैज्ञानिक हार्वे ने स्टील में कार्बन मिलाकर लोहे को और अधिक कड़ा करने का आविष्कार किया।

समुद्री जहाजों में तोपें चढ़ाना भी एक समस्या थी। पहले तोपें खुली जगह में रक्खी जाती थीं, परन्तु अब जहाजों में बुर्ज और कँगूरे बनने लगे और तोपें भी उन्हीं में रखी जाने लगी हैं। इससे तोप चलानेवाले अधिक सुरक्षित रह सकते हैं।

समुद्री जहाजों में 'ड्रेड नाट' सबसे बड़ा जहाज़ है। इसका निर्माण सबसे पहले १९०५ में हुआ था। इसकी गति और जहाजों से अधिक थी और इसमें १२ इंची तोपें थीं। ड्रेड नाट का वज़न १७,९०० टन था, उसकी चाल २१ नाट थी। नया ड्रेड नाट 'किंग जार्ज पंचम' ३५,००० टन का है, इसमें दस १४ इंची तोपें हैं। युद्धपोत पर जितना सामान होगा उसी हिसाब से उसकी गति भी होगी; अतएव उसकी गति घटा कर हथियारों की संख्या बढ़ाई जा सकती है। हवाई जहाज़ों से बचने के लिए अब इनमें वायुसंहारिणी तोपें भी लगाई जाती हैं। हर बड़े जहाज़ के साथ क्रूज़र और विध्वंसक जहाज़ रहते हैं। ये छोटे जहाज़ हैं, जिनकी गति बहुत तेज़ होती है। क्रूज़र बड़े जहाज़ को शत्रु के आक्रमण से बचाते हैं। विध्वंसक आक्रमण करने तथा शत्रु के जहाज़ों को विध्वंस करने के काम आते हैं। इसके अतिरिक्त छोटी मोटर-बोटों का भी प्रयोग किया जाता है।

आधुनिक युद्धपोतों की विशेषता यह है कि वे अपने साथ शत्रु के जहाज़ का पता लगाने के लिए हवाई जहाज़ भी रखते हैं। पहले बड़े जहाज़ पर एक या दो हवाई जहाज़ रखते थे, परन्तु अब ब्रिटेन ने एक ऐसा जहाज़ बनाया है जिसे हम चलता-फिरता एयरोड्रोम कह सकते हैं। यह वायुयान-वाहक कहलाता है। इनमें केवल बैटरियाँ होती हैं, जिनसे बम गिरानेवाले या टारपीडो फेंकने-वाले शत्रु पर आक्रमण किया जा सकता है। असल
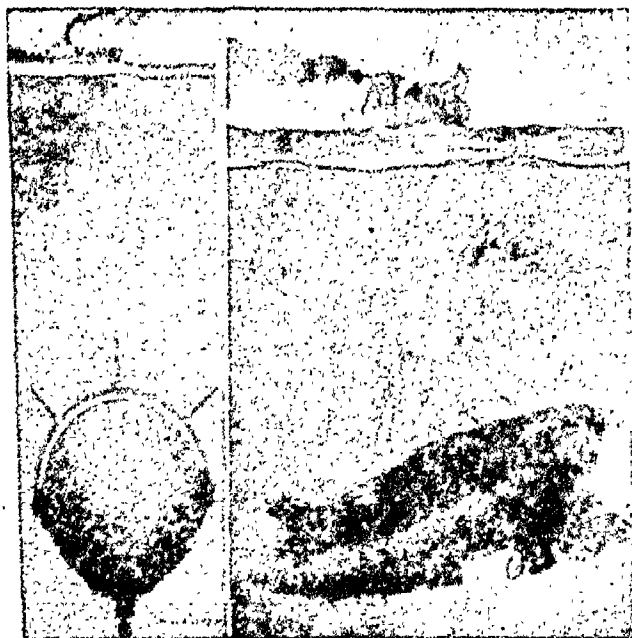
टारपीडो

पनडुब्बियों-द्वारा शत्रु के जहाज़ को डुबाने के लिए जिस अस्त्र का प्रयोग किया जाता है उसे टारपीडो कहते हैं। चार या पाँच टारपीडो एक जहाज को डुबाने के लिए काफ़ी होते हैं। एक टारपीडो की तैयारी में हज़ारों रुपये ख़र्च होते हैं अतएव उनका प्रयोग बड़ी ही सावधानी से किया जाता है ताकि निशाना अचूक बैठे और शत्रु के जहाज़ की अधिक से अधिक हानि हो।

टारपीडो एक प्रकार का बहुत बड़ा बम कहा जा सकता है। इसका आविष्कार राबर्ट फ़ुल्टन ने किया था। तब यह जल-सुरंगों के रूप में था। आधुनिक टारपीडो राबर्ट ह्वाइट का आविष्कार है। उसने दबाई हुई हवा-द्वारा टारपीडो को गति प्रदान की। सबसे पहला टारपीडो सन् १८६४ में तैयार हुआ था। उसकी गति छः नाट थी। आधुनिक टारपीडो की गति चालीस नाट है, अर्थात् वे तीन मील तक मार कर सकते हैं। पहले टारपीडो बन्दूक़ों की भाँति चलाये जाते थे और वे पानी पर फिसलते हुए अपने निशाने की ओर बढ़ते थे, लेकिन आज-कल उनको चलाने के लिए दबाई हुई हवा या गैस का प्रयोग किया जाता है। टारपीडो का प्रयोग समुद्री जंगी जहाज़ या पनडुब्बियाँ करती हैं। पनडुब्बियों में एक ट्यूब होता है जिसका बाहरी मुँह पहले बन्द कर दिया जाता है। फिर उसमें टारपीडो रख कर भीतरी मुँह भी बन्द कर दिया जाता है। इसके बाद बाहरी मुँह को खोल कर टारपीडो को दबाई हुई हवा-द्वारा छोड़ देते हैं। टारपीडो में एक इंजिन होता है, जिसे जलती हुई हवा तथा ईंधन से शक्ति मिलती है। इसके दोनों तरफ़ एक एक प्रोपेलर होता है, जिससे टारपीडो सीधा चलता है। टारपीडो के साथ गेरस्कोप नाम का एक यंत्र होता है, जिससे टारपीडो सीधा या तिर्छा चल सकता है। एक मील सफ़र करने में उसे १॥ मिनट लगता है। पेंडुलम की गति उसे पानी के भीतर बनाये रहती है। पर अब तो टारपीडो फेंकने में बेतार की तारबर्की का प्रयोग
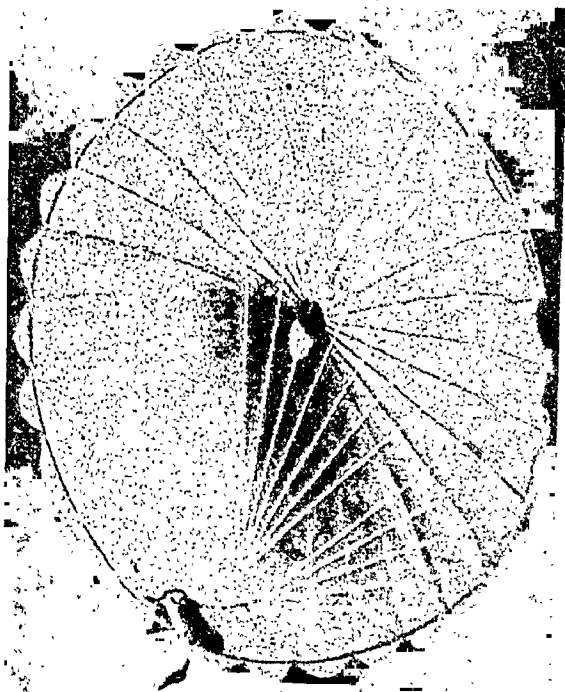
[पैराशूट]

किया जाने लगा है। इससे वह जहाजों का बहुत दूर तक पीछा कर सकता है। मोटरबोट के टारपीडो इस प्रकार के होते हैं कि वे जहाज़ की ओर आकर्षित होते हैं। उनकी गति ५० मील तक होती है। अतएव मोटरबोटें टारपीडो फेंक कर तुरन्त वापस आ सकती हैं।

जल-सुरंगें

समुद्र में चलनेवाले जहाज़ों को दूसरा ख़तरा जल-सुरंगों का होता है। इनका आविष्कार नया नहीं है। क्रीमिया के युद्ध के समय भी इनका प्रयोग किया गया था। परन्तु उस समय ये लकड़ी की छड़ की भाँति होती थीं, जिनमें बारूद भरी होती थी। जब वे किसी जहाज़ से टकराती थीं तब एक धड़ाका होता था। परन्तु आधुनिक जल-सुरंगों का विकास टारपीडो के साथ ही साथ हुआ है। पहले वे तट पर एक लाइन में बिछा दी जाती थीं और उनका सम्बन्ध तार-द्वारा तट से रक्खा जाता था। अतएव आवश्यकता पड़ने पर कुल की कुल या किसी ख़ास सुरंग का विस्फोट किया जा सकता था। साथ ही जब कोई मित्र जहाज़ तट से गुज़रने लगता तब ये सुरंगें

हटा ली जाती थीं। परन्तु गत महायुद्ध में सुरंगों का प्रयोग अधिकता से हुआ। ये सुरंगें दो प्रकार की होती हैं। एक स्थिर सुरंगें और दूसरी बहती हुई सुरंगें। स्थिर सुरंगें जिस स्थान पर लगाई जाती हैं, वहीं रह सकती हैं। इनमें तार-द्वारा विस्फोटक पदार्थ पानी के नीचे लटका रहता है। ऊपर के भाग में टक्कर लगते ही विस्फोटक फूट जाता है। बहती हुई सुरंगों का सिद्धान्त भी यही है। अन्तर केवल यह है कि वे समुद्र में बराबर बहती रहकर शत्रु-मित्र दोनों के जहाज़ों को हानि पहुँचा सकती हैं। आज-कल चुम्बकीय सुरंगों का प्रयोग अधिक किया जाता है। ये सुरंगें जहाज़ के आकर्षण-क्षेत्र में आते ही स्वयं उसकी ओर बढ़ती हैं। जहाज़ों के लिए सुरंगें अधिक घातक सिद्ध होतीं, परन्तु उनको हटाने के लिए उपाय खोज निकाला गया है। स्थिर सुरंगों के तार को काट कर उन्हें बन्दूक का निशाना बनाकर नष्ट कर देते हैं। चुम्बकीय सुरंगों को हटाने के लिए एक यंत्र होता है, जो दो नावों के बीच में बाँध कर पानी के अन्दर जहाज़ के आगे आगे चलाया जाता है। इससे सुरंगें स्वयं यंत्र से टकरा कर फूट जाती हैं।

हवाई-युद्ध

आधुनिक युद्ध में हवाई जहाज़ का स्थान बहुत ऊँचा है। हवाई शक्ति ही आधुनिक युद्ध में निर्णय का कार्य करेगी। आधुनिक सैनिक हवाई जहाज़ यथार्थ में व्यावसायिक हवाई जहाज़ ही हैं जो स्थिति के अनुकूल सैनिक हवाई जहाज़ में परिवर्तित कर लिये गये हैं। गत महायुद्ध के बाद अनेक प्रकार के लड़ाकू हवाई जहाज़ों का निर्माण हुआ है। कुछ बम गिराने, और कुछ केवल निरीक्षण करने तथा शत्रु की महत्त्वपूर्ण स्थितियों के चित्र लेने के काम में आते हैं। परन्तु सबके निर्माण का सिद्धान्त एक ही है। हवाई युद्ध में दो प्रकार की तोपों का प्रयोग किया जाता है; एक स्थायी और दूसरी बढ़नेवाली स्थाई तोपें केवल सीध में ही गोले बरसा सकती हैं। परन्तु जहाज़ों का पीछा करनेवाले हवाई जहाज़ों के लिए ऐसी तोपों की ज़रूरत पड़ती है जो घट बढ़ सकें। हवा से बचाने के लिए ऐसी तोपों के चलानेवाले को एक पर्दे के पीछे रक्खा जाता है। गोला दगने के बाद तोपें पिछड़ती हैं। इसे दूर करने का भी हवाई जहाज़ में प्रबन्ध होता है। हर वायुयान में एक दूरबीन होती है जिससे मीलों ऊँचाई पर से वह अपने शिकार को देख लेता है।

पैराशूट

आधुनिक युद्ध में जर्मनी के पैराशूट-द्वारा सैनिकों को उतारने के समाचार से लोगों को आश्चर्य हुआ होगा, परन्तु यथार्थ में यह एक पुरानी बात है। पहले पैराशूट का प्रयोग वायुयान के टूटने पर उतरने के लिए किया जाता था परन्तु अब उनका प्रयोग शत्रु की सीमा में अपनी सेना उतारने के लिए किया जाता है। 'रायल एयर फ़ोर्स' में 'इर्विन पैराशूट' का प्रयोग किया जाता है। यह रेशमी कपड़े का एक छाता-सा होता है जिसका व्यास २४ फ़ुट होता है। इसमें २४ लाइनें होती हैं जिनकी लम्बाई १६ फ़ुट होती है। ये डोरियाँ पैराशूट पहननेवाले की कमर तथा पीठ से लगी रहती हैं। रेशमी कपड़े के बीच में एक छेद होता है ताकि हवा न भर सके। पैराशूट में एक पाइलट पैराशूट लगा है जो पहले खुलता है। पैराशूट १४५ मील की गति से नीचे उतरता है। ज़मीन पर पहुँचने पर पैराशूटवाला थोड़ी ऊँचाई पर से कूद पड़ता है, अतएव उसे चोट नहीं पहुँचती।

विषैली गैस

प्राचीन काल में युद्ध का उद्देश्य अधिक से अधिक नर-हत्या करना नहीं था। परन्तु आधुनिक युग में अधिक संख्या में नर-संहार करना ही युद्ध का उद्देश्य समझा जाता है। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए विषैली गैसों का प्रयोग किया जाता है। विषैली गैसों का प्रयोग सर्व-प्रथम जर्मनी ने किया था। यद्यपि हेग के समझौते के अनुसार सभी राष्ट्रों ने विषैली गैस प्रयोग न करने की प्रतिज्ञा की है, परन्तु फिर भी कहा जाता है कि पोलैंड पर जर्मनी ने एक प्रकार की पीली गैस का प्रयोग किया था। परन्तु वर्तमान युद्ध में विषैली गैसों का इतना भय नहीं रह गया, क्योंकि आधुनिक युद्ध में इस प्रकार की गैसों से बचने के लिए गैस से बचानेवाले नक़ाबों का आविष्कार हो गया है। गत महायुद्ध में वैज्ञानिकों ने कम से कम ३,००० विषैली गैसों की परीक्षा की थी; जिनमें केवल एक दर्जन गैसें ही शायद ऐसी हैं जिनका प्रयोग युद्ध में किया जाता है। सभी विषैली गैसों पर प्रकाश डालना

असम्भव है परन्तु सबका सिद्धान्त एक ही है। अतएव हम केवल उनके सिद्धान्त का ही वर्णन यहाँ करेंगे।

विषैली गैसों के निर्माण के लिए सबसे जरूरी बात यह है कि वह सस्ती से सस्ती चीज़ों से तैयार हो सके। और वह पदार्थ भी इष्ट स्थान पर प्राप्त हो सके। गैस में रंग या सुगंध न हो ताकि शत्रु पर आफ़त गिराने में पूरी सफलता मिल सके। प्रत्येक गैस का प्रभाव भिन्न-भिन्न प्रकार से पड़ता है। कुछ का असर आँख और दिमाग़ पर पड़ता है, कुछ प्राणघातक होती हैं। फेफड़ों को हानि पहुँचाने के लिए कार्बन आक्सीजन और क्लोरीन से तैयार होनेवाली 'फासजीन' नाम की गैस का प्रयोग किया जाता है। जर्मनी ने एक ऐसी गैस का भी प्रयोग किया है जिसमें संखिया का भाग अधिक रहता है। अतएव यह गैस नक़ाब के अन्दर से भी फेफड़ों तक पहुँच ही जाती है। सरसों से एक ऐसी गैस का निर्माण किया जाता है जो शरीर में जलन पैदा कर देती है।

विषैली गैसों के प्रयोग के तीन तरीक़े हैं। पहला नलों में गैस भर कर जब हवा शत्रु की ओर बहे तब गैस छोड़ देना, परन्तु यह तरीक़ा अब पुराना पड़ गया है। दूसरा तरीक़ा हवाई जहाज़ों-द्वारा है। हवाई जहाज़ ज़मीन से थोड़ी ऊँचाई पर से गैस छोड़ देते हैं। हवा से भारी होने के कारण यह शीघ्र ज़मीन की ओर बढ़ती है और पहुँचते पहुँचते हवा में घुल मिल जाती है। तीसरा तरीक़ा बमों-द्वारा है। आज-कल इसी तरीक़े का अधिक प्रयोग किया जाता है।

गुलाब

लेखक, श्रीयुत लक्ष्मीप्रसाद मिश्र 'कविहृदय'

मैं हूँ गुलाब खिल खिल झरता!

कितने अतृप्त अरमान लिये!
सपनों के मीठे गान लिये
कब से प्रिय-चरणों पर चढ़ने
ये सजल नयन छविभान लिये?
शूलों का झूला झूल झूल!
प्रतिपल खिलने को झर गिरता!
मैं हूँ गुलाब खिल खिल झरता!

तम-पूरित जीवन-डाली पर!
मधु-ऋतु में चिर पावस, पतझर!
वेदना-गीत, घन श्याम बने,
मावस में भी उठते ऊपर!
तारों की कभी कभी जुगनू—
की ज्योति अधर में हूँ चरता!
मैं हूँ गुलाब खिल खिल झरता—

घन-अलकों में, प्रिय-हारों में!
जीवन-धन की मनुहारों में!
मेरा निवास, हिमपात कभी
सूची कंटक की धारों में!
कुछ हास-रुदन के मधुर गीत
प्रिय गंध पवन में हूँ भरता!
मैं हूँ गुलाब खिल खिल झरता!

ये खुले-अधखुले नयन कभी!
यह मधु-स्मृतियों का चयन कभी!
सुख-स्वप्न-पँखुरियाँ बिखराकर
मलयानिल करता शयन कभी!
प्रिय-मिलन, और बिछुरन के क्षण;
दो अश्रु दृगों से हूँ ढरता!
मैं हूँ गुलाब खिल खिल झरता!

क्या हमारी औसत आमदनी बढ़ रही है?

लेखक, श्रीयुत परिपूर्णानन्द वर्मा

भारतीयों की औसत आमदनी क्या है, यह प्रश्न विवादास्पद है। इसका कोई सन्तोषजनक उत्तर नहीं दिया जा सकता कि हिन्दुस्तानियों की औसत आय वास्तव में क्या हो सकती है। इसका प्रधान कारण यह है कि विदेशों की तरह—खासकर पश्चिमीय देशों की तरह—हमारे यहाँ इस पर बहुत कम ध्यान दिया गया है। पश्चिमीय देशों में इसका पता लगाने के लिए बहुत ही दक्ष, अनुभवी, विज्ञ कर्मचारी-मंडल होता है, जो स्थायी रूप से केवल यही जानकारी प्राप्त करने की चेष्टा करता रहता है। हमारी सरकार को यह जानने की फ़िक्र ही नहीं है कि हम गरीब हो रहे हैं या अमीर, इसलिए वह ऐसे कामों में अपना वक़्त नहीं खराब करती है।

राष्ट्रीय विचार के भारतीयों का—नेताओं तथा अर्थ-शास्त्रियों का—यह निश्चित अनुमान है कि हमारी ग़रीबी बढ़ रही है और हमारी औसत आमदनी घट रही है। महात्मा गांधी का कथन है कि हमारी औसत आमदनी छः पैसा रोज़ यानी ३॥।) मासिक है। इसलिए गांधी जी अपना ख़र्च छः पैसे रोज़ के हिसाब से रखते हैं। समाज-वादियों का विचार है कि हमारी आय दो रुपया मासिक या २४) साल है। इसके विपरीत प्रोफ़ेसर के० टी० शाह ऐसे भारतीय अर्थशास्त्री लिखते हैं कि "भारतीयों की औसत आमदनी ५) मासिक, यानी ६०) वार्षिक है।" क्या यह सत्य है?

भारतीयों की औसत आमदनी निकालने का प्रथम प्रयास स्वर्गीय दादाभाई नौरोजी ने किया था। सन् १८७० में उनके हिसाब से वह बीस रुपया वार्षिक मात्र थी। १८८२ में लार्ड क्रोमर ने हिसाब लगाकर बताया था कि वह २७) वार्षिक है। भारतीय इतिहास के प्रसिद्ध विद्वान् मिस्टर डिग्बी ने १८९९ में हिसाब लगाकर बतलाया कि भारतीयों की औसत आमदनी १८.९ रुपया वार्षिक है। सन् १९०० में लार्ड कर्ज़न ने कहा था कि वह ३०) वार्षिक है। ब्रिटिश सरकार के खैरख़्वाह सर वी० एन० शर्मा ने सन् १९११ में लिखा था कि हिन्दुस्तानी की औसत आमदनी बढ़कर ८६) साल हो गई है। पर उसी वर्ष प्रसिद्ध अर्थशास्त्री फ़िंडले शिराज़ ने प्रमाणित कर दिया कि ५०) वार्षिक से अधिक नहीं है। १९२०-२१ में प्रोफ़ेसर के० टी० शाह ने ४६) वर्ष का अनुमान लगाया था। साइमन-कमीशन सबसे आगे बढ़ गया और ब्रिटिश शासन की महत्ता बतलाने के लिए उसने वार्षिक आय ११०) सिद्ध की। सर एम० विश्वेश्वरैय्या का कहना है कि हमारी वार्षिक आय ६०) है। सन् १९३९ में, इंडियन इकोनोमिक कमिटी, पटना, के सामने सरदार पी० एस० सोखवंश ने कहा था कि "हमारी औसत आमदनी ४५) वार्षिक है।" लाला लक्ष्मीपत सिंहानिया ने तृतीय अखिल भारतवर्षीय मारवाड़ी-सम्मेलन के स्वागताध्यक्ष की हैसियत से व्याख्यान देते हुए सन् १९४० में कहा कि "हमारी औसत आमदनी दो रुपया मासिक है।"

इस बात को यहीं छोड़कर अब ज़रा पश्चिमीय देशों की औसत आमदनी को देखिए—

१. संयुक्त राज्य (अमेरिका)	...	१०७०) वार्षिक
२. ग्रेट ब्रिटेन	...	७५०) "
३. कनाडा	...	७५०) "
४. फ़्रांस	...	५७८) "
५. जर्मनी (१९३३)	...	४५०) "
६. भारतवर्ष	...	२४) से ४०)"

इससे स्पष्ट है कि भारत का स्थान कितना गिरा हुआ है। ऊपर हमने यह दिखलाया है कि भिन्न भिन्न विद्वानों की सम्मति में भारत की औसत आमदनी क्या है। किन्तु प्रश्न यह है कि क्या दादाभाई नौरोजी के समय के बाद से हमारी ग़रीबी घटी है जिससे हमारी औसत आमदनी में वृद्धि हुई हो।

क्या भारतीयों की आमदनी बढ़ी है?

तो क्या हमारी आमदनी बढ़ी है? इस विषय पर सर एम०डी० पी० वेब, सी० आई० ई० ने अपने एक ग्रन्थ में बड़ा सुन्दर विवेचन किया है। भारतीयों की—ख़ासकर किसानों की—बढ़ती हुई दरिद्रता के लिए ब्रिटिश सरकार

की भर्त्सना करने के बाद वे लिखते हैं—"भारतवर्ष में हमारी कठिनाइयाँ राजनैतिक असन्तोष से अधिक आर्थिक संकट से उत्पन्न हुई हैं।" मिस्टर ए० सी० बौले एस-सी० डी० और एम० एच० हाग एम० ए० ने अपने एक ग्रन्थ में यह प्रमाणित कर दिया है कि इँगलैंड ऐसे धनी समझे जानेवाले देश में भी ग़रीबी बढ़ी है। तब भारत में वह घटी है, यह कहना ग़लत है। मिस्टर (अब सर) ट्रेसी गैबिन जोन्स ने कानपुर के सम्बन्ध में इंडिया चैम्बर आफ़ कामर्स के सामने एक लेख पढ़ा था, जिसमें विगत महायुद्ध के बाद के ब्रिटेन के अर्थ-संकट का अच्छा चित्र खींचा था। इँगलैंड ने अपनी ग़रीबी दूर करने के लिए भारत को किस प्रकार निचोड़ा है, यह पाठक जानते हैं। अतः यह कहना कहाँ तक उचित है कि ग़ुलाम भारत युद्ध के बाद धनी हुआ है और उसकी आमदनी बढ़ी है?

राष्ट्रीय आमदनी

भारत की औसत आमदनी क्या है, हमारे देश के केवल ९ प्रतिशत निवासी व्यवसायी-रोज़गारी हैं, ९० प्रतिशत किसान हैं, एक प्रतिशत नौकरी पेशा हैं। पर आमदनी आँकने के लिए क्या उपाय करना चाहिए? विगू के अनुसार देश के प्राकृतिक साधनों-द्वारा श्रम और पूँजी से उत्पन्न वस्तुओं का मूल्य ही वास्तविक राष्ट्रीय आमदनी, राष्ट्रीय 'बँटवारा' या औसत आमदनी है। मार्शल नामक प्रसिद्ध अर्थशास्त्री का भी यही कथन है। इससे यह स्पष्ट है कि राष्ट्रीय आमदनी जानने के लिए देश की हर प्रकार की उत्पत्ति का द्रव्य में मूल्य आँकना चाहिए।

इस दिशा में अन्तिम प्रयत्न १२ वर्ष पूर्व प्रोफ़ेसर शाह और खम्बाता ने किया था। पर उनको भी यह मानना पड़ा था कि भारत के लिए कोई बात अधिकार-पूर्वक नहीं कही जा सकती है। सन् १९२४ में टैक्स की जाँच करनेवाली कमिटी ने भी यह स्वीकार किया था कि "भारतीयों की टैक्स अदा करने की क्षमता का अन्दाज़ लगाना कठिन है।" हिन्दुस्तान में ऐसी जाँच के लिए कोई निश्चित या नियमित योजना है ही नहीं। हर एक को अपने दृष्टिकोण से एक अन्दाज़ लगाना पड़ता है। उत्पत्ति बढ़ सकती है। पर भारतीय खेतों से इतना अधिक काम लिया जाता है कि पृथ्वी की उत्पादक शक्ति का निरन्तर ह्रास होता जा रहा है। औद्योगिक उत्पत्ति बढ़ी है। पर इनका द्रव्य के रूप में मूल्य बढ़ा है। रिज़र्व बैंक का कहना है कि भारत में मुद्रा-चलन बढ़ रहा है। पर क्या द्रव्य की क्रय-शक्ति भी बढ़ी है? रुपया ज़्यादा होना दूसरी बात है और रुपये की ख़रीदने की ताक़त का बढ़ना दूसरी बात है। अधिक रुपया अधिक सम्पत्ति का ही द्योतक नहीं होता। चारों ओर मन्दी है, बेकारी है। रोज़गार चौपट होता जा रहा है। किसान की ग़रीबी बढ़ रही है। तब आमदनी बढ़ी कहाँ? प्रसिद्ध अँगरेज़ विद्वान् डाक्टर जानसन एक बार 'स्काइज़' के टापू गये। वहाँ उनसे बताया गया कि यहाँ एक पैसे में बीस अण्डे मिलते हैं। इस पर उन्होंने जवाब दिया—"इसका यह मतलब नहीं है कि यहाँ अण्डे ज़्यादा हैं, बल्कि पैसे कम होंगे।" इस उदाहरण से वास्तविक स्थिति का पता लग सकता है।

इसलिए अगर हमारे किसान अपने पूर्वजों का सुनहरा समय याद करके रोते हैं तो कोई आश्चर्य की बात नहीं। सन् १९२९ के ज़माने से और आज के ज़माने में जब बहुत फ़र्क़ हो गया है तब १८७० में देहात के 'सुखी जीवन' और आज के 'नरकमय जीवन' में कितना भेद होगा? यहाँ फिर यह बहस छिड़ जाती है कि क्या भारत की ग़रीबी बढ़ रही है कि घट रही है। लेकिन हम इस प्रश्न को यहीं छोड़कर औसत आमदनी निकालने की प्रणाली पर पहले विचार करेंगे।

औसत आमदनी निकालने के तरीक़े

दादाभाई नौरोजी ने एक सरल रीति-द्वारा औसत आमदनी निकाली थी। उन्होंने १८६७-७० तक के सरकारी आँकड़ों को इकट्ठा किया। फिर एक प्रान्त की सबसे अधिक उत्पत्ति के आँकड़े ले लिये। एक एक ज़िले की समूची खेती और उसकी उत्पत्ति का हिसाब लगा लिया। उसके बाद चीज़ों का दाम कूत कर उन्होंने यह हिसाब लगाया कि भारत की समूची उत्पत्ति का मूल्य लगभग १५,५०,००,०००) हुआ। ६ प्रतिशत बीजों के लिए घटा दिया। इस तरह अच्छी ऋतु में उत्पत्ति का मूल्य ३,९०,००,००,०००) कूता। इसमें २५,५०,००,०००) नमक, अफ़ीम, कोयला तथा व्यापार के मुनाफ़े के रूप में

शामिल कर दिये गये। मछली, दूध, मांस वग़ैरह का दाम भी इतना ही मान लिया गया। ४५,००,००,०००) भूल-चूक के लिए रख लिये गये। सब मिलाकर लगभग ३,४०,००,००,०००) हुआ। तत्कालीन ब्रिटिश भारत की आबादी १७,००,००,००० थी। उससे भाग देने से २०) फ़ी व्यक्ति की आमदनी निकल आई।

दादाभाई ने सरकार-द्वारा जेलों में दिये जानेवाले भोजन-वस्त्र का हिसाब लगाया तब ३४) वार्षिक व्यय फ़ी क़ैदी पीछे निकला। अतः उन्होंने यह सिद्ध कर दिया कि एक भयंकर अपराधी के लिए भी जितने वस्त्र और भोजन की ज़रूरत पड़ती है उसका आधा ही एक भारतीय गृहस्थ को मिल पाता है।

दादाभाई ने अपनी गणना में 'नौकरी पेशा' लोगों की आमदनी नहीं शामिल की थी। उनका कहना था कि वे उत्पादित पदार्थ में से ही अपना मूल्य प्राप्त करते हैं। दादाभाई की यह राय थी कि केवल समूची भौतिक उत्पत्ति का मूल्य निकाल लेने से ही राष्ट्रीय आमदनी निकल आती है।

इसी आधार पर प्रोफ़ेसर के० टी० शाह और खाम्बाता ने नौकरीपेशा और ग़ैर उद्योगी समुदाय का हिसाब नहीं लगाया। पर जायर और बेरी ने इसका विरोध किया है। उनका कथन है कि "इनमें से बहुत-से अपना श्रम द्रव्य लेकर बेचते हैं, अतएव उन्हें जितनी क़ीमत दी जाय उसका हिसाब छोड़ देना अनुचित है।" नौकर या नौकरियाँ मानवीय इच्छा की पूर्ति करती हैं, अतएव उनका आर्थिक महत्त्व नहीं भूलना चाहिए। हाँ, जहाँ भौतिक या ठोस उत्पत्ति का ही अनुमान लगाना हो, वहाँ तत्सम्बन्धी नौकरियों का हिसाब छोड़ दिया जा सकता है। प्रोफ़ेसर शाह और खाम्बाता ने एक और भूल की। उन्होंने देशी रियासतें तथा ब्रिटिश भारत के आँकड़े मिला दिये। दोनों में महान् अन्तर है। अतएव ६०) वार्षिक आय के जिस नतीजे पर वे अन्त में पहुँचे हैं वह ग़लत है।

लार्ड क्रोमर और सर (उस समय मि०) डेविड बार्बर ने सन् १८८२ में भारतीय कृषि की आय ३,५०,००,००,०००) कूती थी। कृषि के अतिरिक्त आय १,७५,००,००,०००) कूती थी। यानी ब्रिटिश भारत की समूची आमदनी ५,२५,००,००,०००) निकाली गई, जो १९,५३,९०,००० ब्रिटिश भारतीयों में बाँटने पर २७) वार्षिक फ़ी व्यक्ति पड़ी। इन आँकड़ों में सबसे रोचक बात यह है कि खेती से सबसे ज़्यादा आमदनी बंगाल की थी, यानी १,०३,५०,००,०००) और दूसरा नम्बर उत्तरी-पश्चिमी-सीमान्त-प्रदेश और अवध, यानी संयुक्त-प्रान्त का था, जिसकी आमदनी ७१,७५,००,०००) थी।

डिग्बी ने १८९८-९९ में स्वयं हिसाब लगाकर यह परिणाम निकाला कि भारत की कुल आमदनी ४२८ करोड़ है, जो २४·५ करोड़ जनता में विभाजित होने पर भारतीयों की औसत आमदनी १७॥)॥ के लगभग होती है। पर १९०१ की मर्दुमशुमारी के मुताबिक़ आबादी २३·१ करोड़ ही सिद्ध हुई, अतएव आय का औसत १८ रु० ८ आना ११पा० का पड़ा। 'लार्ड कर्ज़न के नाम खुले पत्र' में श्री रमेशचन्द्र दत्त ने डिग्बी के आँकड़ों की मिसाल दी थी। पर कर्ज़न साहब चुप रहनेवाले जीव न थे। उन्होंने अपने ढंग से हिसाब लगाकर साबित कराया कि औसत आमदनी ३०) वार्षिक है। डिग्बी ने फिर यह साबित कर दिया कि असल में उनका पहला हिसाब भी ग़लत था। भारतीयों की औसत आमदनी १७) वार्षिक ही थी और १८९९-१९०० के अकाल के समय केवल १२।=) मात्र थी। इससे यह साफ़ प्रकट होता है कि दादाभाई नौरोजी के समय से यानी १८७० के मुक़ाबिले १९०० में भारतीयों की हालत ज़्यादा ख़राब हो गई थी।

सन् १९१३-१४ में वाडिया और जोशी ने हिसाब लगाया कि भारत की राष्ट्रीय आमदनी लगभग १,०८७,२७,९७,०००) है। ब्रिटिश भारत की २४,५१,८९,७१६ जन-संख्या से विभाजित करने पर औसत आमदनी ४४।-)॥ पड़ी। शाह और खाम्बाता ने इसका यह हिसाब बनाया है—

सन् १९००-१४—औसत आमदनी ३६) वार्षिक
सन् १९१४-२२— " " ५८॥) "
या सन् १९००-२२— " " ४४॥) "
सन् १९२२-२३— " " ७४) "

और इसके बाद, हर तरह के हिसाब के बाद, वे इस नतीजे पर पहुँचे कि हमारी औसत आमदनी ६७) वार्षिक है।

राष्ट्रीय सम्पत्ति का अन्यायपूर्ण बँटवारा

पाठकों को यह स्पष्ट हो गया होगा कि इतना मत-वैभिन्य होने के कारण किसी निश्चित परिणाम पर पहुँच सकना कितना कठिन है! हिसाब लगाने के तरीक़ों में काफ़ी मतभेद है, इसलिए अनुमान में अन्तर है। फिर क्या यह सत्य नहीं है कि सन् १९१३-१४ का ४५) सन् १९२१-२२ के ८१) के बराबर नहीं हो गया था? ऐसी दशा में अगर सन् १४ में २॥) आमदनी थी तो सन् २२ में वह देखने में ५) भले ही मालूम पड़े, पर है २॥) ही। फ़िन्डले शिराज ने भी भारतीय आमदनी का अनुमान लगाया था और उनका तरीक़ा अधिक वैज्ञानिक भी था। उन्होंने पेशेवर लोगों का भी मूल्य आँक लिया था। शिराज़ के तरीक़े के हिसाब से सन् १९२१-२२ में भारतीय खेती से १,५२९ करोड़ रुपये की तथा अन्य साधनों-द्वारा ५५० करोड़ रुपये की आमदनी हुई थी। शाह के तरीक़े से यही आय क्रमशः १,९८३ करोड़ और ८८९ करोड़ रुपये की माननी चाहिए। इस तरह शाह के अनुसार ६७ रुपया और शिराज़ के अनुसार ५१) औसत वार्षिक आमदनी साबित हुई।

यह भी पता लगाना चाहिए कि राष्ट्रीय आय का बँटवारा किस प्रकार हुआ है। जाथर और बेरी ऐसे विद्वानों का कहना है कि राष्ट्रीय आय जानने के लिए खाद्य-पदार्थ का मूल्य आँकना चाहिए। यह तो हम स्वयं देख रहे हैं कि हमारे चारों ओर खानेवाले बढ़ रहे हैं--खाना घट रहा है। खाने का सामान दिन प्रतिदिन कम होता जा रहा है। तब राष्ट्रीय आय कैसे बढ़ी समझी जाय? असल बात यह है कि जो कुछ आमदनी बढ़ी है वह इतने कम लोगों की मुट्ठी में है कि अत्यधिक लोग उसका कोई लाभ नहीं उठा सकते। एक तरफ़ ग़रीबी बढ़ी है, दूसरी ओर घटी है, इससे पलड़ा ज्यों का त्यों रहा। शाह और खाम्बाता के अनुसार भारतीय राष्ट्रीय आमदनी का बँटवारा इस प्रकार है--

१. एक लाख रुपये से अधिक आमदनीवाले ६,००० व्यक्ति आपस में साठ करोड़ रुपया बाँट लेते हैं और उससे केवल तीस हज़ार प्राणियों का भरण-पोषण होता है।

२. २,३०,००० आदमी औसतन १) आमदनी करते हैं और ११,५०,००० आदमियों का ही भरण-पोषण करते हैं। ये दो लाख तीस हज़ार व्यक्ति सरकारी इनकम-टैक्स देते हैं।

३. २,७०,००० आदमी ऐसे हैं जो इनकम-टैक्स के दायरे में आते हैं पर उससे बच निकलते हैं, यद्यपि उनकी आमदनी ५,०००) फ़ी व्यक्ति वार्षिक है। ये आपस में १,३५,००,००,०००) हज़म कर जाते हैं और कुल १२,५०,००० आदमियों का भरण-पोषण करते हैं।

४. १०००) वार्षिक की औसत आमदनी-वाले २५,००,००० व्यक्ति ढाई अरब रुपया सवा करोड़ आदमियों के भरण-पोषण में व्यय करते हैं।

५. साढ़े तीन करोड़ व्यक्ति २००) वार्षिक आय करके सत्तर करोड़ में दस करोड़ प्राणियों का भरण-पोषण करते हैं।

शेष की आमदनी ५०) वार्षिक से कम है और ८२५ करोड़ रुपये में अपना निर्वाह करते हैं। इसका स्पष्ट परिणाम यह निकला कि देश की एक तिहाई सम्पत्ति का उपभोग समूची जनसंख्या का एक प्रतिशत ही करता है या उनके नौकर-चाकर मिला कर आबादी का ५ प्रतिशत ही एक-तिहाई सम्पत्ति खा जाता है। शेष दो-तिहाई सम्पत्ति ९५ प्रतिशत आदमियों के हिस्से में पड़ती है। ऐसे असामञ्जस्य में औसत आमदनी का ठीक हिसाब मिलना कितना कठिन है?

कठिनाइयाँ

संक्षेप में राष्ट्रीय आमदनी निकालने में हमारे सामने निम्नलिखित कठिनाइयाँ हैं। हिसाब लगाने के तीन ही तरीक़े हैं—

(१) इनकम-टैक्स के आँकड़े।

[पर इससे अमीरों की आमदनी का ही पता चलेगा, इसलिए इससे कोई लाभ नहीं होगा।]

(२) पेशा और व्यवसाय की गणना।

[उप-पेशे, घरेलू पेशे इत्यादि का हिसाब बिलकुल अधूरा है, इसलिए इससे भी काम नहीं चलेगा।]

ठक्कर बापा और उनका कार्य-क्षेत्र

लेखक, श्रीयुत चन्द्रकिशोर मालवीय

रत की भील-वस्तियों में ठक्कर बापा आज देवता की तरह पूजे जाते हैं। महात्मा गान्धी के बाद यही एक महापुरुष हैं जो सच्चे हरिजन-सेवक हैं। स्वयं महात्मा गान्धी ने ठक्कर बापा के बारे में कहा है—

"मैं अस्पृश्यों के इस पुरोहित से ईर्ष्या करता हूँ। हम दोनों समवयस्क हैं, पर जिस काम को करने के लिए मैं अपने स्वास्थ्य को कोसता हूँ, ठक्कर बापा उसी काम को सरलता से कर लेते हैं। यदि हम यह सिद्ध करना चाहते हैं कि भील तथा अन्य अस्पृश्य जातियाँ हमारे ही अंग हैं तो हमें ठक्कर बापा के जीवन से शिक्षा लेनी चाहिए। ठक्कर बापा को अपाहिजों और अछूतों में रहने का व्यसन है। जब तक वे उनके साथ नहीं रहते, उनकी शान्ति उनके साथ नहीं रहती। यहाँ-वहाँ भीलों की सेवा के लिए घूमना ही उनका चरम ध्येय है, यही उनके ईश्वर की पूजा है—यही उनका भोजन है।"

ठक्कर बापा का नाम श्री अमृतलाल विट्ठलदास ठक्कर है। उनका जन्म सन् १८६७ में गुजरात के एक लोहाना परिवार में हुआ था। भावनगर में उन्होंने अपनी स्कूली शिक्षा पाई। मेट्रिक पास करने के बाद भावनगर के सामलदास-कालेज में उन्होंने इन्टरमीडिएट पास किया और इन्जीनियरिङ्ग पढ़ने के लिए गुजरात के इन्जीनियरिङ्ग-कालेज में प्रविष्ट हुए। १८९२-९३ ईसवी में उन्होंने इन्जीनियरिङ्ग पास किया और काठियावाड़ की रियासतों में, अफ्रीका की उगण्डा-रेलवे में और काठियावाड़ की जी० पी० रेलवे में इन्जीनियर का काम किया। १९१४ में बम्बई-म्युनिसपैल्टी की सड़कों के वे इन्जीनियर नियुक्त हुए।

परन्तु वे इन्जीनियर होने के लिए ही यहाँ नहीं आये थे। उन्हें तो इस देश के पददलितों को उठाकर खड़ा करना था। अतएव उन्होंने अपनी अर्थप्रद नौकरी छोड़ दी और लोक-सेवा करने के लिए वे सर्वेंट आफ् इण्डिया सोसायटी के सदस्य हो गये।

इस अवसर पर उन्होंने अपने भाई को लिखा था—

"मैंने बम्बई-म्युनिसपैल्टी की नौकरी छोड़ दी है, क्योंकि मैं सर्वेंट्स आफ इण्डिया सोसायटी का सदस्य बन गया हूँ। मुझे लगता है जैसे मैंने अपनी आत्मा की आज्ञा मान ली है।"

इसी समय उनका परिचय स्वर्गीय विट्ठलभाई पटेल से हुआ, जिन्हें 'प्राथमिक एवं अनिवार्य शिक्षा-बिल' बनाने में उन्होंने बड़ी मदद दी।

इसके बाद कुछ ठोस सेवा-कार्य करने को वे प्रवृत्त हुए। रानीपरज के भीलों की सेवा करने के लिए उन्होंने 'भील-सेवामण्डल' की स्थापना की। उन्हें अन्य उत्साही कार्यकर्ताओं का भी सहयोग प्राप्त हो गया। यह उन्हीं के प्रयत्नों का सुपरिणाम है कि पंचमहाल की ऊबड़-खाबड़ भूमि में आज हम जगह जगह आश्रमों, पाठशालाओं, छात्रावासों और डिस्पेन्सरियों को देख सकते हैं, जहाँ हज़ारों भीलों को मानवता की शिक्षा-दीक्षा दी जा रही है।

१९२१–२३ में पंचमहाल में बड़ा भयानक अकाल पड़ा। हजारों भील भूख से तड़प तड़प कर काल-कवलित होने लगे। उनके दुखों को देखकर ठक्कर बापा से न रहा गया। वे उनकी सेवा करने को उनके बीच पहुँच गये। उनके साथ श्री इन्दुलाल याज्ञिक तथा श्री सुखदेव त्रिवेदी भी गये। इन तीनों आदमियों ने भीलों के कष्टों को दूर करने का प्रयत्न किया और वहाँ भी भील

थी। ७,००० किसानों को ३,६०० मन अनाज बोने के लिए बाँटा गया और ४०,००० डोल बाँटे गये। मण्डल की ओर से उपर्युक्त बातों के लिए कुल ५२,०००) खर्च किये गये थे।

१९३६-३७ के अकाल में भील-सेवा-मण्डल, गुजरात प्रान्तीय कांग्रेस कमिटी और बम्बई की ह्यूमैनिटेरियन लीग की ओर से सस्ते अनाज-घर खोले गये, जिनमें १७५००० मन अनाज और १३,००० मन बीज सस्ते दामों में बेचा गया और ३,००० मन बीज मुफ़्त बाँटा गया। इन सब पर कुल ३६,०००) खर्च हुआ। १६,०००) के मवेशी खरीद कर बाँटे गये, जिनके लिए २० मवेशीखाने विभिन्न स्थानों में खोले गये। ५,००० भूखे पशुओं को चारा दिया गया, जिन पर मण्डल की ओर से १०,०००) खर्च किया गया। इस तरह मण्डल ने कुल ६७,०००) इन निरीह भीलों पर खर्च किया। इसके अतिरिक्त विभिन्न स्थानों में पौसलायें और चरहियाँ बनाई गईं। ५० भीलों के बैल चारे के अभाव में मर गये थे। उन्हें बैल दिये गये।

केवल बम्बई-प्रान्त की १५,००,००० जंगली आबादी में ५,३६,००० भील हैं, जिनमें से अधिकांश पंचमहाल, पश्चिमी खानदेश और नासिक में रहते हैं। २,७६,००० भील महीकण्ठ और रेवाकण्ठ की रियासतों में रहते हैं। बम्बई-प्रान्त के भीलों की संख्या इस प्रकार है—

दोहाद, आलोद एवं पंचमहाल के इलाक़ों में	१,०३,५१३
पश्चिमी खानदेश में	... १,८७,६६४
नासिक में	... ७०,४८८
कुल	... ३,६१,६५५

और बाक़ी १,७४,३४५ भील पूर्वी खानदेश और भड़ोच के इलाक़ों में फैले हुए हैं।

भीलों की आर्थिक दशा सुधारने के लिए मण्डल की ओर से ६ अनाजघर खोले गये हैं, जिनमें २,००० मन अन्न भरा रहता है। मण्डल के जीवन-पर्यन्त सदस्य और स्वयंसेवक कोआपरेटिव संस्थाओं को खोलने में दत्तचित्त हैं। दोहाद और झालोद के इलाक़ों में ९३ कोआपरेटिव संस्थायें खुल गई हैं, जिनके ४,००० सदस्य हैं। १९३९ में वहाँ एक खरीद-बिक्री-विभाग भी खोला गया है। ग़रीबों और विधवाओं के हाथ की बनी वस्तुएँ यहाँ विक्रयार्थ रक्खी जाती हैं। गत वर्ष इस विभाग से ३,०००) की आमदनी हुई थी।

मण्डल का औसत खर्च लगभग २२,०००) प्रतिवर्ष है।

यह है संक्षिप्त विवरण उस ठोस कार्य का जिसे श्री अमृतलाल ठक्कर ने एकमात्र सेवा-भाव से छेड़ा था और जिसे लगन के साथ करके वे आज सारे भारत में 'ठक्कर बापा' के नाम से लोकमान्य हो रहे हैं। परन्तु ठक्कर बापा ने तो अपने को यहीं तक सीमित नहीं रक्खा, उनके हृदय में भी देशभक्ति की गहरी भावना थी, जिसे अवसर मिलने पर उन्होंने बार बार व्यक्त किया।

× × ×

कालीपरज, रानीपरज और पंचमहाल के भील क़र्ज़ से लदे हुए थे। ज़मींदारों ने उनके जीवन को नरक बना रक्खा था। नवसारी के कुछ उत्साही समाज-सेवकों ने एक सेवक-संघ बनाकर उनकी गिरी दशा को सुधारना चाहा। डाक्टर सुमन्त मेहता उनके नेता थे। मगर वे असफल रहे। ठक्कर बापा को मालूम हुआ। वे बड़ोदा-राज्य के प्रधान मंत्री और ज़िले के कलेक्टर के पास गये और क़र्ज़ के लिए किश्तबन्दी की विज्ञप्ति निकालने को कहा। पर अधिकारियों ने इनकार कर दिया। तब सत्याग्रह छिड़ गया। रियासत की ओर से सभा करने की मनाही कर दी गई, मगर सत्याग्रहियों ने अधिकारियों की नाक में दम कर दिया। अन्त में कलेक्टर बदल दिया गया, रोकें उठा ली गईं और माँगें स्वीकार की गईं। यह १९२१-२३ की बात है।

असहयोग का ज़माना था। भावनगर प्रजा-परिषद् और काठियावाड़ राजकीय परिषद् का सम्मिलित जलसा भदुवा नामक स्थान में होने जा रहा था। सब उत्साही कार्यकर्ता जेल जा चुके थे। कौन प्रबन्ध करे? ठक्कर बापा ने प्रबन्ध का भार अपने ऊपर लिया और उसे पूरा करके दिखा दिया। अखिल भारतीय राज्य-प्रजा-परिषद् की आयोजना में ठक्कर बापा का जितना बड़ा हाथ था, इसे इने-गिने ही लोग जानते हैं।

१९३० में फिर असहयोग-आन्दोलन का आह्वान हुआ। देश की आर्त पुकार पर उन्होंने अपने को उत्सर्ग कर देना चाहा, पर भील-सेवा-मण्डल का क्या होगा, यही चिन्ता उन्हें दिन-रात सताने लगी। उनके अधिकांश सहयोगी जेल जा चुके थे। वे बड़े चिन्तित थे। दोहाद में असहयोग हो रहा था। एक विदेशी कपड़े की दूकान पर सत्याग्रही धरना दे रहे थे। ठक्कर बापा दूर खड़े सब देख रहे थे। पर पुलिस ने उन सत्याग्रहियों के साथ साथ उन्हें भी गिरफ़्तार कर लिया। सर्वेन्ट्स आफ़ इंडिया सोसाइटी के सभापति श्री देवधर ने मुक़दमा लड़ने की राय दी, पर उन्होंने इनकार कर दिया। उन्हें सज़ा होगई और वे साबरमती-जेल में बन्द कर दिये गये।

'पूना-पैक्ट' में भी ठक्कर बापा का बहुत बड़ा हाथ था। इसी पूना-पैक्ट के फल-स्वरूप 'अखिल भारतीय हरिजन-सेवक-संघ' का प्रादुर्भाव हुआ था। बड़ी तत्परता से ठक्कर बापा ने हरिजन-सेवक-संघ के उत्थान के लिए उसे सुचारु-रूप से चलाने का भार अपने ऊपर ले लिया। इसके लिए उन्हें 'भील-सेवा-मण्डल' भी छोड़ना पड़ा, जिसका सारा भार उन्होंने अपने प्रिय सहयोगी श्रीकण्ठ जी को सौंप दिया। तब से आज तक वे भारत के कोने कोने में 'हरिजन-सेवा' की दुन्दुभी बजाते रहे हैं। हरिजनोत्थान के लिए उन्होंने स्कीमें सोचीं और युक्त-प्रान्त, मध्य-प्रान्त, बिहार और उड़ीसा की कांग्रेसी सरकारों के सामने उन्हें पेश किया, जो स्वीकृत हुईं।

शुद्ध खादी की धोती, शुद्ध खादी का कुरता और शुद्ध खादी की टोपी जिनका धवल परिधान है, असम्भव को सम्भव कर देने की इच्छा जिनके मन में विद्यमान है, ग़रीबों के ताने-बाने में जिन्होंने अपने जीवन को झोंक दिया है, जिनके मुख पर सौम्यता थिरकती रहती है, पददलितों के उद्धारक ठक्कर बापा निस्सन्देह भारत के एक महापुरुष ही हैं।

चिरस्मृति

लेखक, श्रीयुत आरसीप्रसादसिंह

मुझे भूल जाने में, जाने,
तुम्हें कौन-सा सुख मिलता है?

फूले बेल, अनार भरे,
कचनार-लीचियों में रस आये;
झुकीं डालियाँ जामुन की,
कटहल फल गये, आम गदराये!
एक फूल भी यहाँ नहीं क्या ऋतु के उत्सव में खिलता है?

केकी करते नृत्य, कोकिला
वन-वन में निज कलरव भरती;
गरज-गरज बादल घिर आते,
कुंज-कुंज में हवा सिहरती!
क्या न एक पत्ता भी तेरे उपवन में प्रेयसि, हिलता है?

यहाँ चली सुकुमार चरण धर
अपना मेरे उर-पल्लव पर;
छाले पड़े जीभ में, ज्यों ही
बोली नाम किसी का लेकर!
यहाँ नहीं काँटों के पथ में क्या कोमल तलवा छिलता है?

एक मनोवैज्ञानिक कहानी

खेल का आधार

लेखक, श्रीयुत 'पहाड़ी'

(उ)स राजिव की धारणा को ग़लत साबित करने के लिए मैंने बार बार दलील पेश की थी। वह कभी माना नहीं। मोटी किताब हाथ में लिये पढ़ता हुआ ही मिलता। किताब के कई पन्नों पर कुछ लाइनें लाल लाल पेन्सिल से चिह्नित थीं, और किताब के बाहर सावधानी से मोटे अक्षरों से लिखा हुआ था—'क्षय'।

इस रोग की ओर राजिव उत्साहित था। अपने प्रति उदासीन रह कर, बार बार भारी निराशा का हेतु बनकर कह देता—"क्यों मेरे जीवन को लोभ से तोलना चाहता है रे ?"

"क्या राजिव ?"

"तुझे तो बार बार मौत से डर लगता है।"

"किसे ?"

"तुझे ! तुझे ही क्या, सारी दुनिया इसे भय मानती चली आई है। तू ही पहला दार्शनिक नहीं। आदिकाल से यह मीमांसा का हेतु रहा और आख़िर तक कोई निपटारा कैसे हो सकता है।"

"लेकिन मैं कहता हूँ .....।"

"ठीक दो बातें। अफ़सोस ज़रूर होता है। मैंने कहीं पढ़ा है, मौत के बाद प्राणों को बहुत दुःख होता है। वे उस हड्डी-मांस के लोथड़े के पास बार-बार मोहवश आ जाते हैं। किन्तु वहाँ फिर टिक नहीं सकते। यही है इस दुनिया का हाल !"

"तो राजिव, तुम सन्देह को उठा व्यक्ति की क़ीमत क्यों मिटाना चाहते हो ? यह तो अनुचित ही है।" मैं झुँझला उठता।

"मैं ! तब देख न यह।" यह कह राजिव चटपट उठकर मेज़ से एक्स-रे के कई फोटो ले आता। हर एक को दिखलाकर वह साबित कर देना चाहता था कि वह रोगी है। उसका दाहना फेफड़ा व्यर्थ है। उसे यदि गतिहीन भी कर दिया जाय, तो भी वह जीवित नहीं रह सकता। कारण, बाँया भी तेज़ी के साथ रोग की वजह से ख़राब होता जा रहा है।

और तत्काल ही वह अपनी छाती से कपड़ा हटा और उसे बजा-बजा कर साबित करता कि रोग असाध्य है। उसके हाथ कोई बात नहीं। कर्ता के साथ कब तक वह लड़ेगा। इसी तरह चार दिन की यह ज़िन्दगी है, जिसके लिए शोक करना निरर्थक है। वह घाववाली जगह ढूँढ़ कर कह देता कि भारी पीड़ा वहीं होती है। जो अब असहनीय है। वह मजबूर है। किसी तरह उसका निवारण होना संभव नहीं है। तभी कठोर बनकर मैं हँसने लगता था। मज़ाक में कह ही डालता—"इसमें घबराहट का सवाल नहीं आता। बड़ी सरल प्रकृति का आदमी है तू। आदमियत को ज़रा-ज़रा बात में पिघला देना सही जीवन का तोल नहीं। कर्तव्य अपना हर एक को करना चाहिए। इस तरह जीवन असार्थक होकर सड़ नहीं जायगा।"

सुशीला कमरे के भीतर आती। बहुत-सा जीवन फैलाकर कहती—"क्या हो रहा है डाक्टर ? क्या किसी आपरेशन पर राय ली जा रही है ? तुम लोगों का और कुछ भी काम नहीं। जीवित आदमी की चीर-फाड़ करते हो। क्लोरोफ़ार्म के सहारे अपना रोज़गार निभा लेते हो। और जो वाहवाही मिलती है वह अलग।"

"क्यों सुशीला ?" यह कहकर राजिव अपनी पैनी आँखों से सुशीला के हृदय को छेड़ देता। सुशीला मुरझा जाती। वह स्थिर खड़ी रह जाती। तब मैं परिस्थिति को सँभाल लेता। कहता—"तुम झूठा आदर बटोर लेती हो भाभी। मैं तो कुछ भी नहीं करता हूँ। यदि राजिव क्लोरोफ़ार्म सावधानी से न दे तो फिर मेरे वश की कोई भी बात न रहे। यह सब तो उसका आधार है।"

सुशीला फिर भी नहीं चेतती थी। मैं अन्दाज कर फिर कहता—"बेबी कहाँ है ?"

"ओफ़!" सुशीला के मुँह से अनायास निकल जाता, वह चटपट बाहर भाग जाती, नौकरानी से बेबी को लेकर अपनी छाती से सटा लेती।

मुझे राजिव के अन्याय पर दुःख होता। क्यों वह अपनी पत्नी से भी ठठोली करने में नहीं चूकता है। यही क्या उसका पुरुष-न्याय है? समाज ने पति के सहारे नारी को टिका दिया है। अकेली वह खड़ी नहीं रह सकती। उस सुशीला का राजिव के अलावा और अपना कुछ भी नहीं है। जब यह सुशीला राजिव की गृहस्थी में आई थी, तब उसे बहुत संकुचित रहने की आदत थी। अब वह अच्छी तरह घर की व्यवस्था को सँभालने में प्रवीण है। वह बेबी भी उनके जीवन का एक सहारा है। पति-पत्नी उसे लेकर अपना अपना मन बहला लेते हैं।

सुशीला चली गई। लौटी नहीं। गृहस्थी के झंझटों के मारे उसे फ़ुर्सत कम मिला करती थी। राजिव ने फिर वही मोटी पोथी उठा ली। उसने कहा—"मौत अनिवार्य है। मैं किसी तरह ज़िन्दा नहीं रह सकता।"

मुझे गुस्सा चढ़ा। बोल बैठा—"तुम बड़े कठोर हो, राजिव! नारी की कोमलता को कुचल डालना ही अब तुम्हारा धन्धा बाक़ी रह गया है।"

"नहीं रे! सुशीला सब जानती है।"

"वह जानती है?"

"हाँ, जानती है।"

"क्या ख़ाक-पत्थर!"

"वह जानती है, मैं मर जाऊँगा।"

"झूठ! झूठ! यह सारा फ़रेब तुम्हारा अपना बनाया हुआ है। झूठ है सारी बात!"

"सारी सच बोलनेवाली विद्या तुझे किस गुरु ने सिखला दी?" वह सुशीला मेरे फेफड़े के एक-एक घाव की गहराई जानती है। बड़ी-बड़ी रात मैंने अपनी छाती पर स्थेटेस्कोप लगा, उसके कानों को भी इतना तेज़ बना दिया है, कि वह भूल नहीं कर सकती। अपनी उँगलियों से वह उन घावों को छूकर रोज़ सहलाया भी करती है। उस सारी पीड़ा को समझ कर, आँसू बहाना भी अब उसको बाक़ी नहीं बचा है। वह दृढ़ बन गई है। उसका नारीत्व अब साधारण भावुकता के साथ विद्रोह नहीं करता....।"

"लेकिन यह बौद्धिक डकैती है।" भारी आवाज़ के साथ, बात चटपट मैंने काट डाली।

"डकैती! तर्क करने का कौन-सा तरीक़ा तुम ग्रहण कर रहे हो?" राजिव ने सँभलकर कहा।

"नहीं तो तुम इस तरह सुशीला को डराना कैसे सीख जाते। वह माँ है। पति और बेबी के बीच ही उसका अपना निजी जीवन है। वहाँ तुम रुकावट डालकर उसे ठग लेने को तुले हो। यही क्या तुम्हारा उत्तरदायित्व है?"

"फिर तू भूल कर रहा है। सुशीला बच्ची नहीं है। वह मुझे अब ख़ूब पहचान गई है। वह सलोनी गुड़िया बनकर, मुझे मोह लेने का दावा नहीं करती। आज अब वह बात-बात में रूठेगी भी नहीं। मेरी हर बात उसे मान्य है। और जब मैं आख़िरी बार उसे सुझा कर कि मेरी मौत आ गई, मर जाऊँगा तब उसे आश्चर्य नहीं होगा। मुझे मुर्दा देखकर वह चकित नहीं होगी। उसका मुझ पर पूरा-पूरा विश्वास है।"

अधिक बात न सहकर मैं उठ खड़ा हुआ। बहाना बनाकर बात कही—"उस 'गैंगरीन' के मरीज़ का आपरेशन जल्दी ही करना ठीक होगा। बड़ी आफ़त है, निराश होकर, रोगी को लोग हमारे अस्पताल में दाख़िल कर देते हैं।"

"तेरी परीक्षा लेने के लिए।" राजिव मुस्कराया। उस वक़्त मैंने देखा कि मानों एक भारी घृणा सारी मनुष्य-जाति के लिए उसके दिल में फैल गई हो।

× × ×

राजिव को एक अरसे से जानता हूँ। अनायास ही एक दिन लाहौर में उससे मेरी मुलाक़ात हुई थी। मेडिकल कालेज की अन्तिम परीक्षा का नतीजा लेकर वह आया था। उससे पहले कभी उसे देखा तक नहीं था। बड़ी सुबह एक दिन चाय पीकर कमरे में टहल रहा था। तभी देखा, काला ओवरकोट पहने, मोटे काँच का चश्मा लगाये कोई दरवाज़े पर खड़ा है। कुछ क्षण उस आगन्तुक की आँखों की ओर मैं देखता ही रह गया। वह ख़ुद ही बोला—"क्या मुझे भीतर आने की इजाज़त मिल सकती है?"

"हाँ! हाँ!-आइए।"

वह बेतक़ल्लुफ़ी से सोफ़े पर बैठ कर बोला—"बहुत जल्दी में चला आया हूँ। कुछ चाय-वाय, अंडा-केक का इन्तज़ाम तो कर लो। भूख बहुत लगी है।"

जब वह खा चुका तब स्वस्थ होकर बोला—"हो तुम भले आदमी। जितनी तारीफ़ सुनी थी उससे कुछ रत्ती अधिक ही मिले। आदमी का तोल फिर हो भी नहीं सकता है। अच्छा ख़ाली तो हो न। तुम्हारी 'इन्गेजमेंट-बुक' तो एकदम कोरी है। अच्छे वक़्त तुमको पकड़ा है। बहुत दिनों से चाहता था कि तुमसे मिल लूँ, आज मौक़ा मिला तब सुनाने आया हूँ—तुम अव्वल नम्बर में पास हुए हो। तुम्हारी इस छपी तसवीर के आगे कई वार सुवह से माथा झुका चुका हूँ।

मैं कोई वात फिर भी न कर सका। अख़वार उसके हाथ से ले लिया। सरसरी तौर पर पास-शुदा लड़कों के नाम पढ़े और अख़वार वहीं मेज पर रख दिया। चुपचाप अपने में ही न जाने क्या क्या सोचने लगा। जितना ही अपने भीतर कुरदता उतना ही अपने को व्यर्थ पाता था।

आगे चलकर वह राजिव फिर पक्का दोस्त वन गया। उसने मुझे एक मिनट नहीं छोड़ा। वह भी डाक्टरी की उच्च शिक्षा लेने आया था। उसका विचार था कि हिन्दुस्तान में लाखों लोगों को डाक्टरी इलाज सुलभ नहीं है फिर भी उनकी रक्षा राष्ट्र की उन्नति के लिए ज़रूरी है; वह अपना ध्येय बनाना चाहता था—ऐसे लाखों अपाहिजों की रक्षा करना। इसके लिए वह एक कुशल व्यवसायी की तरह ढांचा तैयार करता, अस्पताल की इमारत की ज़रूरतें व औज़ारों की सूची बनाता। पैसे का मोहताज वह था नहीं। इसी लिए लौटकर सफलतापूर्वक उसने अपना रोज़गार आरम्भ कर दिया था। उस राजिव को पाकर मैंने फिर उसका साथ नहीं छोड़ा। अपने ध्येय को सफलता से निभाया।

और एक यह है सुशीला! राजिव जो कहता उसके विरुद्ध राय कभी मैंने नहीं दी। विवाह और नैतिकता पर बहुत-सी दलीलें देकर वह इस नतीजे पर पहुँचता था, कि चरित्र ग़लत चीज़ है। इसी चरित्र के कारण कई लोग सफल नहीं हो पाये हैं। चरित्र को व्यक्ति से ऊपर उठाने का पक्षपाती वह इसी लिए कभी नहीं रहा। जब मैं विरोध में कुछ कहता, वह सुनकर हँस देता और कहता—"कालेज की परीक्षा और जीवन के अनुभव अलग अलग चीज़ें हैं।"

मैं अधिक तर्क करता भी नहीं था। एक रात को वह आकर मेरे कमरे का दरवाज़ा खट-खटाने लगा। आधी रात थी। वह बोला—"तेरे लिए भाभी तलाश करके ले आया हूँ मैं।"

"कहाँ है वह।"

"यहीं खड़ी है। रोशनी वोशनी तो कर ले। क्या वह भी समझेगी। राह भर तेरी तारीफ़ करता करता चला आया हूँ। वह भी तुझे पहचानती है।"

"मुझे!"

"हाँ! हाँ! तुझे ही। एक दिन एक ग़रीब वुढ़िया की लड़की को मैंने अस्पताल में दाख़िला करवा देने से इनकार किया था। मैं उसकी आरज़ू-मिन्नत पर पिघल नहीं सका। वह दुवली-पतली लड़की अपनी माँ की ओट में छिपी खड़ी थी। तुमने उनको आश्रय दिया था। उसके 'टान्सिल' का आपरेशन सफलतापूर्वक कर, अपनी सहानुभूति से उवार लिया। दो साल वाद अपने उस आश्रयदाता के पास वह लड़की आई थी। तुम वाहर चले गये थे। उसकी माँ वीमार पड़ गई। वह घवरा गई थी। लेकिन वुढ़िया वची नहीं। उस लड़की को अपने साथ में ले आया हूँ।"

ठीक तरह रोशनी कर मैंने देखा कि वह सुशीला ही थी।

अव वह माँ है। उस वेवी का नाम उसने कृष्णा रक्खा है। और कृष्णा की तुलना जव मैं सुशीला से करता हूँ, तव वहुत ख़ुशी होती है। समीप से मैंने उस सुशीला को देखा है। एक मेहमान की हैसियत से उनके परिवार में हूँ। पहले और आज की सुशीला में भारी अन्तर पाता हूँ। अव वह वहुत कम वातें करती है। गम्भीर और चिन्तित लगती है। उसने पति की ओर ताकना फिर शुरू कर दिया है। कृष्णा की आदतों में कुतूहल है। समूचे रूखे वातावरण के वाद उससे खेलने में वड़ा आनन्द आता है। वह तुतलाकर वोलती है। उसे प्यार करते-करते मन थकता नहीं है।

फिर यह राजिव!

वही वड़ी मोटी क्षय की पोथी है। इन्जेक्शन लेगा। कई वार अपने थूक और ख़ून की परीक्षा करेगा और दौड़ा-दौड़ा पहुँचेगा सुशीला के पास। उसे माइक्रस्कोप में कीटाणुओं को दिखाता हुआ समझावेगा—"वे हैं न गुलावी-गुलावी कीटाणु। वे ही क्षय के हैं। साफ़-

साफ़ दीख पड़ते हैं न ? उनको मैंने काफ़ी कठिनाई से रँगा है।"

फिर किताब का कोई अध्याय खोलकर, प्रोफ़ेसर की तरह उसकी व्याख्या कर, अनर्गल बोलता चला आयगा। सुशीला को इस सबका बहुत ज्ञान नहीं है। फिर भी वह सुनेगी। या एकबारगी घबरा कर मेरे पास चली आयेगी। मैं दिलासा दूँगा। फिर भी उसका डर नहीं हटेगा। भला उसके पति को झूठ बोलने से मतलब ही क्या है ?

राजिव के ऊपर मुझे बहुत गुस्सा आता है। वह चाहता क्या है ? मैं कुछ कहता नहीं। सहमी सुशीला, कृष्णा को गोद में लेकर निर्भय हो जाती है।

× × × ×

उस दुपहरी को राजिव मेरे पास आया था। आकर तपाक से बोला—"आज मैंने अपने फेफड़ों का एक्स-रे फ़ोटो लिया है।"

"क्या ज़रूरत पड़ गई थी ?"

"ऐसे ही एक सनक सवार हो गई। और तुम्हें सुनकर आश्चर्य होगा, कि मैं क्षय का रोगी हूँ।"

"तुम रोगी हो।" अचरज में मैंने पूछ डाला।

"हाँ, नहीं तो ये घाव भला क्यों होते ?"

फ़ोटो देखकर मैं अवाक् रह गया। फिर कहा—"वहम है तुम्हारा। इतने स्वस्थ तो हो। और क्या चाहिए ?"

राजिव चुप उदास रहा।

मैंने अपने मन में सोचा, अज्ञानता ज्ञान से भली है। समझदार होकर हम निराशा बटोर लेते हैं, अन्धकार में, जहाँ अपनी कुरूपता व त्रुटियों को पहचानते देर लगती है—वही है साध्य।

आगे राजिव के प्रति मेरा मोह बढ़ता चला गया। उसकी बातें सुनकर मैं कुछ जवाब नहीं देता था। उसके आगे मेरा दिल कोमल पड़ गया। वह किताब पर लिखी बातें सुनाया करता। यह भी कहता, कि क्यों वह कुछ बातों से सहमत नहीं है।

× × ×

राजिव मर गया। सारी दुनिया भ्रम की तरह रह गई। वही जो रोज़ अपने नज़दीक था, खो गया। सुशीला लुटी-ठगी-सी, स्तम्भित खड़ी थी। जो झूठ था, उसे अब विवेक से तोल लिया करता हूँ। फिर सुशीला तो अब रोकर थक गई है। लेकिन कृष्णा उसी तरह हँसती है। वही बच्चोंवाली आदत आज भी बनाये हुए है। कुछ भी बदली नहीं मिलती। अनजान होना कितना सुखद है।

उस क्षय रोग की मोटी पुस्तक की ओर आँख उठाकर देखता हूँ। लगता है, राजिव उस पर लिख गया है—यह तो एक इम्तहान था तेरा !

अपने जीवन, सुशीला के दुःख और कृष्णा के जीवन का आधार क्या निरा एक खेल ही था ?

दो गीत

लेखिका, श्रीमती रूपकुमारी वाजपेयी

(१)

सखि ! भूले अतीत के युग में।
हरी हुई मेरी फुलवारी,
फूल उठी थी क्यारी-क्यारी,
पर तूफ़ान उठा कलियाँ झकझोर फेंक आया वन-पथ में
"मिट मिट बनने, बन मिटने का,
खेल एक बस री ! जीवन का,"
कुछ ऐसी ध्वनि एक उठी थी बोल ओस-कणिका के जग में
तब फिर क्यों अवसाद मरूँ मैं ?
बस अपनेपन आज भरूँ मैं,
ओ दुखिया ! चल पड़ें आज एकाकी हम तुम आशा-मग में

(२)

कौन सजनि, तन्द्रा-सा आया ?
खड़े प्रहरियों से तरु निश्चल,
देख ! एक रहा सरि-कोलाहल,
सजग प्रकृति की बँधी पड़ी नीरवता-बन्धन में मृदु काया।
उतर रजतमय रश्मि-पंख से,
जिसके मादक गीतों की लय,
आ प्राणों में भर भर जाती दुख-सुख की कौतुकमय माया
सन्ध्या के पहले बिहाग में,
सखि ! उसके पादुक-पराग में,
चिर-सुहाग की सीमा पा लें, छू लें यदि हम उसकी छाया।

लेखक, परिडत ज्वालादत्त शर्मा

सर्वः स्वार्थं समीहते

संसार में ३ शक्तियाँ प्रधान समझी जाती हैं, उनके सर्व-सम्मत नाम १ ब्रह्मा, २ विष्णु और ३ महेश हैं, यह वैदिक क्रम है। आगम में अतिम पहले आद्य अन्त में गिने जाते हैं, काली, लक्ष्मी और सरस्वती। इन शक्तियों में ब्रह्मा जी का काम बहुत थैंकलेस (प्रशंसा न पानेवाला) है। वे एक बार सृष्टि का क्रम चलाकर निकम्मे-से हो जाते हैं। फिर उनसे किसी का कुछ वास्ता ही नहीं पड़ता। क्या इसी लिए उनकी मान्यता कम है? उनसे प्रायः सभी को शिकायत है, ऐसा बनाया, ऐसा बनाना चाहिए था। वेदान्तियों का और ब्राह्म लोगों का ब्रह्म दूसरी चीज़ है। उसका सृष्टिकर्ता चतुर्मुख ब्रह्मा से कुछ वास्ता नहीं। वेदान्तियों से भी उसे कुछ नहीं मिलता, वहाँ तो 'आपै आप' का मामला है, 'सो मेरो है आत्मा काहूँ करों प्रनाम'। ब्राह्म लोग उसकी स्तुति-उपासना अवश्य करते हैं, जर्मनी के किसी कार्टूनिस्ट ने चेम्बरलेन की ऊँची टोपी और छतरी का व्यङ्ग्य चित्र बनाया था, एक लम्बे डंडे पर टोपी—एक दूसरे डंडे में छतरी—बस इतना ही। ब्राह्म लोग भी उस ब्रह्म के सिर-पैर से ही वास्ता रखते हैं, हाथ-पाँव का नाम लेने से उसकी मूर्ति बन जाने का डर है। शान्ति-निकेतन में कोई पशु नहीं मारा जा सकता, हिंसा का भय है, न कोई हवन कर सकता है। मूर्त्ति-पूजा का तो ज़िक्र ही क्या? उसने तो सब तबाह ही किया है, 'नानवेजीटेरियन किचन' बड़े ज़ोर-शोर से चलता है और आर्ट गैलरी में भी सब कुछ है, किन्तु वह सब कला है, उससे धर्म का सम्बन्ध होने से उत्पात का भय रहता है। वायसराय, गवर्नर आदि अपना कार्यकाल समाप्त करके चले जाते हैं, उनकी मान-मर्यादा के लिए यह नियम बहुत अच्छा किसी विचारशील की खोपड़ी से निकला है, वर्ना हमारे ब्रह्मा की तरह उनकी भी कोई बात न पूछता। विष्णु और महेश इस मामले में बहुत भाग्यशाली हैं। उनका काम ही ऐसा है, उनसे सबका काम अड़ा हुआ है, इसी लिए उनकी पूजा-अर्चा और मान्यता का कुछ अन्त नहीं है। मन्दिर पर मन्दिर, भोग पर भोग, ग्रन्थों पर ग्रन्थ, काव्यों पर काव्य! इनके सामने बेचारे ब्रह्मा जी तो हमारे निःशक्त बूढ़े बाबा की तरह या तो खाँसते रहते हैं या कुढ़ते रहते हैं या कभी ध्यान आया तो हरिनाम की माला फेर लेते हैं। वास्तव में यहाँ जिससे किसी का मतलब नहीं निकलता या जो किसी के काम नहीं आता उसके लिए स्थान नहीं है। भले घर की बहू-बेटियाँ भी कभी कभी बड़े-बूढ़ों की जीवनी-शक्ति पर आश्चर्य प्रकट करते देखी गई हैं। भर्त्सना और तिरस्कार का उपहार तो उन्हें दिन में कई बार मिल जाता है, किन्तु मोटी पेंशन पानेवाला आदमी कभी बूढ़ा नहीं होता, उसकी लम्बी आयु के लिए तो बहुत सावधानी से काम लिया जाता है, मानो उन्हीं के लिए 'पिता धर्मः पिता स्वर्गः' की कल्पना किसी ने की थी। अपनी अवस्थिति और रोग की विवशता से जो घर के कोने का कूड़ा बने हुए हैं उनके लिए तो जैसा व्यवहार प्रायः देखने में आता है उससे कोई दूसरी कल्पना ही मन में उठती है। संसार के बाबा ब्रह्मा का प्रतिनिधित्व करने के कारण तो इनकी यह दुर्दशा नहीं हो रही है?

इस स्वार्थमय संसार में जो कुछ निःस्वार्थ भाव है वह ईश्वरीय है, यहाँ का नहीं है, यहाँ के लिए तो कोई कह गया है—

> भाग इन बुर्दा फ़रोशों से कहाँ के भाई
> बेच ही डालें जो यूसुफ़ सा बिरादर पायें

बहुत थोड़ा अन्तर है

गोस्वामी तुलसीदास जी ने तो कवि के विचार से सभा और असभा को बादरायण-सम्बन्ध के कारण एक ही ठहरा दिया है, क्योंकि दोनों से एक ही चीज़ हाथ लगती है, अन्तर इतना ही है—

> मिलत एक दारुण दुख देहीं, बिछुरत एक प्रान हर लेहीं।

ज्ञानी-अज्ञानी में भी बड़ा अन्तर नहीं है। एक कल्पना में आलस्य का सुख लेता है, दूसरा कर्म में सुख ढूँढ़ता है, एक वस्तु के नष्ट हो जाने पर उसके लिए हाय हाय करता है, दूसरा उसकी विद्यमानता में उसका पूरा लाभ उठाया

करता है। नष्ट होने पर उसके लिए वह चीज़ बेकार हो जाती है, कभी ध्यान भी नहीं आता। अज्ञानी को जब तक मिली हुई है बेकार है, न उसका उपयोग करता है और न ठीक तरह संरक्षण, वह मिली हुई का वीतराग है। दूसरा नष्ट हो जाने पर विरक्त बनता है। जब तक सन्तान है, न उसकी शिक्षा है न दीक्षा, न उसे योग्य बनाने की चिन्ता है न उसकी उन्नति के लिए कोई स्वार्थ-त्याग है। वियोग हो जाने पर फिर पड़ोसियों की कमबख्ती आ जाती है, कई रातें उन्हें उसका अनर्थपूर्ण शोक, कोलाहल सुनने में नष्ट करना पड़ती हैं। जिनके नेत्र अच्छे हैं उन्हें उनकी कोई चिन्ता नहीं। जब रोग घेर लेता है तब पानी की तरह रुपया बहाया जाता है—अच्छी हालत में ठंडे पानी से धोने में भी आलस्य था।

किसी वस्तु का सदुपयोग ही उसका असली संरक्षण है। एक सज्जन ने सुना था कि अधिक व्यवहार करने से टार्च के सेल शीघ्र प्रकाशहीन हो जाते हैं। उस दिन से उन्होंने अपनी टार्च को सन्दूक में बन्द कर दिया, अँधेरे में भी वे उससे काम न लेते थे। उन्होंने सोचा, जब कभी बाहर जायँगे, ले जायँगे, किन्तु उनके बाहर जाने से पहले ही सेल का बिजली का मसाला सूख गया। कम काम लेना और बिल्कुल काम न लेना, इनमें बहुत अन्तर है।

बहुत-से कमज़ोर आदमी शारीरिक बल-वृद्धि के लिए व्यायाम किया करते हैं, उन्हें यह मालूम नहीं, कि कमज़ोर आदमी के लिए पहले आहार-विहार, विश्राम और आवश्यकता होने पर कुछ औषध लेने से पहले शरीर में उतना बल लाना पड़ता है जो व्यायाम के कष्ट से शरीर को बचा सके, वर्ना व्यायाम का यह फल होता है कि कुछ दिनों के बाद उनका शरीर साधारण काम करने के योग्य भी नहीं रहता और कभी कभी कोई बड़ा उत्पात खड़ा हो जाता है। जिनके शरीर में यथेष्ट बल है उन्हें भी कोई बड़ा लम्बा-चौड़ा व्यायाम अधिक हितकर नहीं होता, जब उसका क्रम छूट जाता है तब शरीर ढीला पड़ जाता है। सबसे श्रेष्ठ मार्ग यही है कि हम अपने नित्य के कामों में ही शरीर का पूरा संचालन कर लें और यदि हमें कोई ऐसा काम मिल गया है जिसके कारण बैठे रहना हमारे लिए अनिवार्य है तो शुद्ध वायु में घूमना, बैठकर लम्बी साँस लेना या १०-२० दंड-बैठक कर लेना ही यथेष्ट है। एक दिन कोई १० सेर दूध पीने से बलिष्ठ नहीं बन सकता, बीमार तो आसानी से बन जाता है; किन्तु नियमपूर्वक आध सेर दूध भी बहुत बल दे सकता है। इन सब बातों को हम खूब मज़बूती से पकड़ लें और वे नियम हमारे लिए भार-रूप नहीं, 'वर्कऐज़ प्लेज़र' बन जाय तभी शरीर, मन और आत्मा का सम्भूय-समुत्थान होता है। अज्ञानी सोचता रहता है, जानकार समझ-सोच कर जिसे पकड़ लेता है उसे निबाहता है और अपनी खेती की भारी भारी फ़सलें काटता है।

बीज में वृक्ष, फल-फूल सब कुछ हैं, किन्तु बीज को वृक्ष बनाना आवश्यक है। उस क्रिया में ही फूल और फल का उत्कर्ष भरा हुआ है और उसे वृक्ष तक पहुँचाना ही पहला और आवश्यक काम है। फिर तो फलों की डाक खुल जायगी, खाओ, खिलाओ और बेचो, किन्तु अमुक नर्सरी का यह उत्तम कोटि का बीज है, यह बीजत्व फल लाने में बड़ा हेतु नहीं है, रास्ते से चलना और दौड़ना नहीं सबसे सुन्दर रीति है और उसी से बाज़ी जीती जाती है।

झूँगा लेने की आदत

लाला निर्मलचन्द जब एक पैसे का साग लेते उसे सवाया तुलवाने का प्रयत्न करते, ग़रीब बाग़वान कहता, सरकार वैसे ही बहुत सस्ता है, एक पैसे का सवा सेर मिलता है, और अधिक लेकर ग़रीब का पेट न काटिए तब उसे उसके माता-पिता के सम्बन्ध का व्यङ्ग्य से उच्चारण करते हुए फटकार बताते और उत्तर देते, साग सवाया ही तुला करता है और भाव पर नमक, टोकरी में से थोड़ा और भी अँगोछे में डाल लेते। ग़रीब हाय हाय करता रह जाता और वे एक पैसा उस पर फेंक कर मानो उसे भिक्षा दे रहे हों—चले जाते। इसमें न निर्मलचन्द का दोष है, न पेंटूराम का है। यह तो इस देश की चाल है।

एक सज्जन लाटरी में धन की तरह रेल में नौकरी पा गये, तनख्वाह बढ़ते बढ़ते ५००) होगई। १५) मासिक तलब पानेवाले पिता की मैट्रिक पास सन्तान का इससे अधिक और क्या अभ्युदय हो सकता था? कमबख्ती आई तब तबादला कलकत्ते को होगया, ट्राम में ही आफ़िस आते-जाते थे, साथियों ने समझाया, आप टैक्सी में जाया कीजिए, उसमें कौन बड़ी रक़म बनती है, ॥), ॥=)।

किन्तु उनकी समझ में नहीं आई। वे अपनी आवश्यक दिनचर्या में खुर्च खुर्च कर आठ-दस आने नित्य बचा लेते थे और रात को भोजन से पहले 'रोज़ारम' का एक पेग ले लिया करते थे—उसी के लिए उनका यह सब उद्योग था। उन्होंने किसी से सुना था कि अँगरेज़ रात को रोज़ शराब पीते हैं इसी लिए उनका स्वास्थ्य अच्छा रहता है और लम्बी उम्र तक क़दम क़दम पहुँच जाते हैं। तभी से उन्होंने यह नियम बना लिया था, घर में जाकर छिप-छिपा कर दवा की एक ख़ुराक़ मुँह में डाल लिया करते थे। उधर तनख्वाह के साथ हर्निया रोग भी ग्रेड के साथ बढ़ रहा था। डाक्टरों ने सलाह दी, छुट्टी लेकर इसका किसी विशेषज्ञ के हाथ से आपरेशन करा दो, किन्तु वे सदा कविराज जी की दवा का सेवन करते रहे। वास्तव में कविराज जी अपने साले को उनके दफ़्तर में नौकर कराना चाहते थे और इसी लिए शाम को उनके यहाँ रोज़ आते और कभी आसव और कभी अरिष्ट के नाम से 'श्वेताश्वतर' (ह्वाइटहार्स) या शुक्ल यजुर्वेद (ह्वाइटलेवेल) की कोई ऋचा औषध के रूप में उसमें मिला देते थे इसलिए उन्हीं की एकमात्र दवा उन्हें अनुकूल पड़ती थी। उन्होंने न आपरेशन कराया, न ट्राम पर चढ़ना छोड़ा और न कविराज जी की दवा का सेवन जिसमें ९० प्रतिशत भयंकर अलकोहल होता था। कविराज जी अँगरेज़ी दवाओं को आयुर्वेद के प्रतिष्ठित नामों के साथ व्यवहार करने में अपना सानी नहीं रखते थे। अन्ततः एक दिन ऐसा आ गया कि ट्राम पर चढ़ने में बाबू साहब से कुछ भूल हो गई, पाँव फिसल गया, डंडा हाथ से नहीं पकड़ा गया, धड़ाम से गिरे, हर्निया का प्राकृतिक आपरेशन होगया और भवबन्धन से मुक्ति मिल गई। जेब के काग़ज़-पत्रों से पता लगाकर पुलिस ने लाश को घर पर लाकर डाल दिया।

मुंशी चिरौंजीलाल ने अपने भाई की मृत्यु के बाद उनके लड़कों को नौकरी दिलाने में रूख से काम लिया। किसी आदमी के कहने पर किसी बड़े हाकिम ने उनके एक भतीजे को नौकरी देने का वचन दे दिया था। उन्होंने दोनों भतीजों को सामने लाकर खड़ा कर दिया। मेथी का साग तो सवाया तुलता ही है उन्होंने इस काम में अमृत-तुल्य दुर्लभ नौकरी जैसे महार्घ रत्न को दुगुना झपटना चाहा। हाकिम भी उनका ताऊ था। इतनी सी बात पर ही कुढ़ गया। उसने बड़े को भी नौकरी न दी। मुंशी जी की चालाकी का विष लड़के के मन में अदृष्ट बनकर बैठ गया, वह भी अपने साथियों से नौकरी मिलने की पूरी सम्भावना बता गया था। जब वहाँ से खाली हाथ लौटा तब घर आने की हिम्मत न हुई, मार्ग में किसी कुएँ की शरण ले ली। कई दिन बाद उस ग़रीब की लाश का पता चला।

गीत

लेखक, श्रीयुत जितेन्द्रकुमार

मैं किसी की स्मृति लिये हूँ!
आज सूने लोचनों में—
स्वप्न की संसृति लिये हूँ!
मैं किसी की स्मृति लिये हूँ!

पूर्णिमा वह चिर-पुरातन,
आज उतरी उर-क्षितिज पर
गहन तम-संकुल अमा बन
इस अँधेरे में प्रभा की—
क्षीण-धुंधली स्मृति लिये हूँ!
मैं किसी की स्मृति लिये हूँ!!

उर-निकुञ्जों में मनोहर,
गूंज कर नीरव हुई जो
प्रेम की वंशी निमिष-भर
आज मानस में उसी की
मैं सजल, झंकृति लिये हूँ!
मैं किसी की स्मृति लिये हूँ!!

कांग्रेस का प्रस्ताव

बनाम

भारत व ब्रिटेन की सामान्य समस्या

लेखक, श्रीयुत शिवकुमार विद्यालंकार

कांग्रेस—अहिंसाप्राण कांग्रेस अहिंसा को विकल्प कर बैठी है। वर्तमान राजनैतिक परिस्थिति ने उसकी २० वर्ष की पुरानी विचारधारा को डांवाडोल कर दिया है। अहिंसा ब्रिटिश साम्राज्यवाद का सामना करने एवं स्वाधीनता प्राप्त करने का उपकरण हो सकती है; किन्तु आन्तरिक उपद्रवों किंवा बाह्य आक्रमणों के लिए वह ढाल नहीं बन सकती। इसके लिए तो बन्दूक, तोप और तलवार हाथ में लेनी होगी। 'कण्टकेनैव कण्टकम्' का आश्रय लेना पड़ेगा। अहिंसा नैतिक अस्त्र है। वह नैतिकता के पुजारी ब्रिटिश साम्राज्यवाद से लोहा क्यों ले सकता है और अनैतिक आक्रमणों के सामने उसकी प्रखर ज्योति क्यों मंद पड़ सकती है—यह एक ऐसा प्रश्न है, जिसका उत्तर नीरस तर्क-शक्ति नहीं दे सकती। इसका उत्तर पाने के लिए तो अन्तर्राष्ट्रीय घटना-क्रम की प्रयोगशाला में परीक्षण करने होंगे—साहस और धैर्यपूर्वक। पर कांग्रेस अपने आपको इस परीक्षण की भट्टी में नहीं झोंकना चाहती। वह अहिंसा की विजय-वैजयन्ती लेकर दिग्विजय करने का स्वप्न नहीं देख रही है। आज से पहले उसे किसी साम्राज्यवादी युद्ध में बलात् नहीं घसीटा जा सकता था; उसका खयाल था कि इससे भारत का वर्तमान शोषण जारी रहेगा। जो कांग्रेसजन युद्ध-कार्य चलाने में जन, धन एवं युद्ध-सामग्री के द्वारा सहायता करने में असमर्थ थे वे ही आज युद्ध में ब्रिटिश सेनाओं के साथ साथ मार्च करने को उत्सुक दीख रहे हैं। सहसा यह परिवर्तन क्यों?

सामान्य समस्या

कांग्रेस अनुभव करती है कि इस समय भारत और ब्रिटेन के सामने कुछ एक ऐसी समस्यायें पैदा हो गई हैं जो दोनों के लिए सामान्य हैं। उनका हल निकालने के लिए कांग्रेस ने यह सुझाव पेश किया है कि भारत को अविलम्ब स्वतंत्र घोषित कर दिया जाय। इतना ही नहीं, इस घोषणा को कार्यान्वित करने के चिह्न-स्वरूप केन्द्र में ऐसी अस्थायी सरकार स्थापित कर दी जाय जिसे केन्द्रीय असेम्बली के निर्वाचित सदस्यों का पूर्ण विश्वास प्राप्त हो। भारत और ब्रिटेन के सामने वे कौन-सी समस्यायें हैं जिनका दोनों को मिलकर हल निकालना है, अब हमें ज़रा इस पर विचार कर लेना चाहिए।

ब्रिटिश साम्राज्य की रक्षा

वर्तमान समय में ग्रेट ब्रिटेन की प्रधान समस्या अपने विशाल साम्राज्य की रक्षा करना है; उसे हिटलर मुसोलिनी के खूनी पंजों से बचाना है। ब्रिटिश साम्राज्य की आबादी लगभग ५६ करोड़ है, जिनमें से क़रीब ४८ करोड़ लोग मध्यपूर्व में और हिन्द-महासागर के चारों ओर आबाद हैं। साम्राज्य के प्रति ७ आदमियों में से ६ पूर्व में आबाद हैं। ४८ करोड़ में से केवल दो करोड़ अर्थात् २ प्रतिशत से कुछ अधिक योरपीय हैं। मध्यपूर्व व हिन्द-महासागर के तटवर्ती प्रदेशों के बाहर केवल ८ करोड़ लोग रहते हैं, जिनमें से ६ करोड़ अर्थात् ७५ प्रतिशत योरपीय हैं। ये लोग ब्रिटिश द्वीप-समूह, कैनाडा और न्यूफ़ाउन्डलैन्ड में बसे हुए हैं। इनके कंधों पर बड़ा ज़बर्दस्त बोझ आ पड़ा है। इस समय ब्रिटिश द्वीप-समूह शेष योरप से पृथक् कर दिया गया है। यदि आज योरप-महाद्वीप पर तानाशाहों का स्थायी आधिपत्य स्थापित हो जाय तो ब्रिटेन को भीषण संकट का सामना करना पड़ेगा। विगत ४०० वर्षों से उसकी यह नीति रही है कि ग्रेट ब्रिटेन के सामने के तटवर्ती प्रदेशों पर किसी दूसरी शक्ति का प्रभुत्व क़ायम न होने पावे। इसी बात को लेकर उसकी स्पेन के फ़िलिप (द्वितीय), फ्रांस के १४ वें लुई

व नैपोलियन तथा जर्मनी के कैसर विलियम (द्वितीय) के साथ रण-भूमि में तलवारें खनकी थीं। इस परम्परा के अनुसार ब्रिटेन कभी नहीं चाहेगा कि नार्वे, डैन्मार्क, हालैण्ड, बेल्जियम, फ्रांस, स्पेन और पुर्तगाल पर हिटलर या मुसोलिनी का आधिपत्य क़ायम हो जाय। इन सब राष्ट्रों की स्वाधीनता पर ही ब्रिटिश द्वीप-समूह की सुरक्षा निर्भर है।

ब्रिटेन के पूर्वी साम्राज्य तक पहुँचने का छोटे-से छोटा मार्ग भूमध्यसागर और लालसागर से होकर जाता है। ब्रिटेन इन दोनों समुद्रों को तानाशाही प्रभाव से मुक्त रखना चाहता है। यदि आज तुर्की, सीरिया, फ़िलस्तीन, मिस्र, ट्यूनीशिया, अलजीरिया और मोरक्को इटली के अधीन हो जायँ तो ग्रेटब्रिटेन के लिए जीना दूभर हो जायगा। भूमध्यसागर अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के लिए खुला रहे, इसके लिए सबसे पहली शर्त यह है कि उक्त सातों राष्ट्र स्वाधीन रहें; उन पर किसी और का आधिपत्य न रहे। इसलिए ब्रिटेन की यह कोशिश है कि अटलान्टिक और भूमध्यसागर के तटवर्ती तमाम राष्ट्र स्वतंत्र रहें।

ब्रिटिश साम्राज्य के जो प्रदेश अमरीका में हैं उनकी रक्षा के लिए ब्रिटेन को अधिक चिन्ता करने की आवश्यकता नहीं। उनकी रक्षा का भार अमरीका ने अपने कंधों पर ले लिया है। हवाना-कान्फरेंस के द्वारा उसने यह घोषणा कर दी है कि वह योरपीय युद्ध को अमरीका तक नहीं फैलने देगा। अगर हर हिटलर अमरीका को युद्ध से पृथक् रखना चाहता है और चाहता है वह भी खून की होली में अपने हाथ न रँगे तो उसे अमरीका से छेड़खानी नहीं करनी चाहिए; उसे अपनी साम्राज्यवादी आसुरी लालसा का शिकार नहीं बनाना चाहिए; वहाँ के ब्रिटिश प्रदेशों को सर करने के लिए अपनी वीरवाहिनी सेनायें भेजने का उपक्रम नहीं बाँधना चाहिए। ब्रिटिश द्वीपसमूह की रक्षा के लिए ग्रेट ब्रिटेन ही नहीं, प्रत्युत कैनाडा व न्यूफ़ाउन्डलैन्ड की जनशक्ति अलम् होगी। किन्तु यदि यह समूची जनशक्ति ब्रिटिश द्वीप-समूह की रक्षा में ही जूझ पड़ी तो हिन्दमहासागर-तटवर्ती उसके साम्राज्य की रक्षा कैसे होगी? यदि आज भूमध्यसागर अथवा सिंगापुर की ओर से इस साम्राज्य पर आक्रमण हो जाय तो ब्रिटेन उसका सामना कैसे करेगा, यही समस्या है, जिसका उसे हल निकालना है।

भारत की समस्या

हमने देख लिया कि इस समय ब्रिटेन की समस्या क्या है। अब हमें देखना है कि भारत के सामने कौन-सी समस्या उपस्थित है।

ब्रिटिश साम्राज्य के १५ या १६ राष्ट्र हिन्द-महासागर के चारों ओर बसे हुए हैं। इनकी आबादी लगभग ४५ करोड़ है; इनमें भी अकेले भारत की जन-संख्या ४० करोड़ के लगभग है। भौगोलिक दृष्टि से भारत हिन्द-महासागर के केन्द्र में स्थित है। इसी लिए सेना-विशेषज्ञों की सम्मति में भारत की सीमा पश्चिम में डूरंड-लाइन तक तथा पूर्व में रंगून तक ही सीमित नहीं है। यदि हम जापान, रूस, जर्मनी अथवा इटली के सम्भावित आक्रमण से भारत की रक्षा करना चाहते हैं तो हमारी प्रथम सुदृढ़ रक्षा-लाइन पश्चिम में ईराक, फ़िलस्तीन, स्वेज़ और मिस्र में से होकर जायगी। पूर्व में हमें सिंगापुर और ईस्टइंडीज़ में ही अपने शत्रु को रोक रखना होगा। यदि भारतवर्ष जर्मन-आक्रमण से अपनी रक्षा करना चाहता है तो उसकी सेनायें मिस्र, फ़िलस्तीन और ईराक में तैनात कर दी जानी चाहिए। आस्ट्रेलिया और न्यूज़ीलैन्ड के साथ मिलकर उसे ईस्ट-इंडीज में अपनी रक्षा का सुप्रबन्ध करना होगा। इस तरह भारत न केवल अपनी, अपितु कैनाडा, न्यूफ़ाउन्डलैन्ड और ब्रिटिश द्वीप-समूह को छोड़कर शेष समूचे ब्रिटिश साम्राज्य का प्रहरी बनकर उसकी रक्षा करेगा। अतएव भारत की रक्षा और ब्रिटिश साम्राज्य की रक्षा में कोई अन्तर नहीं है। यह एक ही सवाल है जो भारत और ब्रिटेन दोनों के लिए सामान्य है। यही वजह है कि अपनी जिम्मेदारी को समझते हुए भारत-सरकार ने एक सप्लाई डिपार्टमेन्ट क़ायम कर दिया है, शस्त्रास्त्र तैयार करने के पुराने कारखाने बढ़ा दिये हैं, रेलवे वर्कशापों तक में युद्ध-सामग्री तैयार करवा रही है। कुछ एक प्राइवेट कारखाने भी खुल गये हैं। भारत की एक प्रसिद्ध फ़र्म बैंगलोर में वायुयान तैयार करने का ठेका लेने को उद्यत है। युद्ध-सामग्री की दृष्टि से भी भारत को किसी क़िस्म की कमी नहीं। ९७ फ़ी सदी रबर मलाया, ईस्टइंडीज़, सीलोन और भारत में तैयार होता है। एलुमीनियम तैयार करने

की कच्ची धातु बाक्साइट कटनी, खेराद (ज़िला गुजरात) भावनगर, मध्यप्रान्त, काश्मीर और राँची (बिहार) में मिल सकती है। इसी तरह ऐन्टीमनी धातु बर्मा, स्याम, पंजाब व मैसूर में पाई जाती है। निकल धातु जयपुर, त्रावणकोर और सिन्ध में पाई जाती है। भारत में प्रतिवर्ष साढ़े तीन टन निकल खानों से निकाली जाती है। लोहे की तो असंख्य खानें हैं, जिनमें से प्रतिवर्ष २० लाख टन लोहा निकाला जाता है। बर्मा व अटक आदि पैट्रोल के अटूट भांडार हैं। भारतवर्ष में जितना पैट्रोल ख़र्च होता है उसका आधा हिस्सा बर्मा और भारत के दूसरे प्रदेश मुहय्या करते हैं, अथवा आसाम आदि स्थानों से आता है। भारत में प्रतिवर्ष २ करोड़ टन कोयला तैयार होता है। इस तरह यदि भारत चाहे तो टारपीडो, पनडुब्बियाँ, अग्नि-प्रसारक बम, तोप के गोले, टैंक को छेद देनेवाली गोलियाँ, मोटरकार, आर्मर्डकार और भीमकाय टैंक तैयार करने की समस्त सामग्री उसे भारत-भूमि से ही मिल सकती है। भारतवर्ष बड़ी आसानी से ब्रिटेन के पूर्वी साम्राज्य का एक महत्त्वपूर्ण शस्त्रागार हो सकता है।

जनता का हाथ

प्रचुर युद्ध-सामग्री होते हुए भी यदि भारत की जनता अपने राष्ट्र की रक्षा में उत्साह नहीं दिखाती तो भारत और उसके साथ साथ ब्रिटेन के पूर्वीय साम्राज्य की रक्षा नहीं हो सकती। आज भारत की अधिकांश जनता के लिए सेना में प्रवेश करने का द्वार एकदम खोल देना चाहिए। अभी तो 'मार्शल' यानी सेना में लेने लायक़ जातियाँ सेना में भर्ती की जा सकती हैं, 'नान मार्शल' नहीं। जब विश्व के अनेक राष्ट्र अपने यहाँ बाधित सैनिक सेवा जारी कर रहे हैं, तब भारत में यह सैनिक छुआछूत क्यों? केवल ढाई करोड़ लोगों को सेना में लेकर बाक़ी ३३ करोड़ को सैनिक-सेवा से वंचित क्यों रक्खा जाता है? अगर राष्ट्र-रक्षा की दृष्टि से ब्रिटेन और भारत की समस्या में कोई अन्तर नहीं तो ब्रिटिश सरकार को यह भेदभाव अविलम्ब दूर कर देना चाहिए। इसके बिना भारतीय जनता में अपने राष्ट्र की रक्षा के लिए वास्तविक भावना नहीं पैदा हो सकती। अपने देश के नाम पर मर मिटने की जो भावना ब्रिटिश जनता में है, हममें तो उसका पासंग भी नहीं। आवश्यकता इस बात की है कि भारतीय जनता में भी अपने राष्ट्र की रक्षा के लिए अदम्य उत्साह हो, साहस हो। और उसके लिए सब कुछ होम देने की भावना हो। भावना सदैव अन्तःप्रेरणा से उद्बुद्ध हुआ करती है। उसकी क़लम नहीं लगाई जा सकती। परिस्थितियों से वे अंकुरित हुआ करती हैं। जो काम स्वेच्छा से होता है, सफलता भी उसी में मिलती है। लाठी से काम लेने का ज़माना लद गया। इँग्लैंड को अच्छी भाँति समझ लेना चाहिए कि आज वह युग नहीं रहा, जब योरप के शक्ति-शाली सम्राट् स्विट्ज़रलैंड के वीर सैनिकों को किराये पर लेकर विजय-यात्रा करने निकला करते थे। आज का युग सेनाओं के राष्ट्रीयकरण का है। भाड़े के टट्टुओं से इँग्लैंड का काम न चलेगा। उनमें देशभक्ति जैसी ऊँची भावना होती ही नहीं। इस दृष्टि से वे कोरे होते हैं, दम्भी होते हैं। १८वीं सदी के अन्त में फ़्रांस में राष्ट्रीय सेना तैयार की गई थी। योरप के दूसरे राष्ट्र फ़्रांस की स्वाधीनता पर एक के बाद एक हमला कर रहे थे। भ्रातृ-भाव, स्वाधीनता और समानता के उसके तमाम उदात्त सिद्धान्त धूलि में मिलने को थे। इन सबकी रक्षा की केवल राष्ट्रीय सेना ने। बाद को स्पेन और प्रशिया की सेनाओं में अपनी मातृ-भूमि के लिए अपना सब कुछ न्योछावर कर देने की भावना पैदा हुई। उन्होंने नैपोलियन की सेनाओं से लोहा लिया। नैपोलियन के किराये पर ख़रीदे सैनिकों के पैर उखड़ गये। साम्यवादी रूस पर पूँजीवादी राष्ट्रों के कितने आक्रमण हुए, पर रूस की सत्ता अपनी देशभक्त सेनाओं की वजह से आज भी बनी हुई है। सचमुच जिन सैनिकों का दिलो-दिमाग़ भी रणभूमि में साथ देता है, विजयश्री उन्हीं के चरण चूमा करती है। ग़ुलाम सैनिक की अपेक्षा स्वतंत्र सैनिक हज़ारगुना अच्छा है। भारत और ब्रिटेन के सामने बाह्य आक्रमण से अपनी रक्षा करने का महत्त्वपूर्ण प्रश्न उपस्थित है। आवश्यकता इस बात की है कि भारतीय जनता में उत्साह पैदा किया जाय। उसे समझाया जाय कि अपने दुर्दमनीय शत्रु की प्रगति को रोकने के लिए उसे कितना त्याग करना है।

स्वाधीन भारत

किन्तु भारत के ग़ुलाम रहते हुए जनता में उत्साह पैदा नहीं हो सकता। इसी लिए कांग्रेस ने यह माँग की है कि भारत को स्वाधीन कर देने की निश्चित घोषणा

कर दी जाय। पूर्ण स्वराज्य प्राप्त करना ही कांग्रेस का ध्येय है। हम नहीं समझ सकते कि ब्रिटिश सरकार को इसे स्वीकार करने में कौन-सी आपत्ति है? एक तरफ़ राष्ट्र-रक्षा का प्रश्न है और दूसरी तरफ़ भारत को स्वाधीन कर देने का प्रश्न है। दूसरे प्रश्न के हल होने पर यदि पहला प्रश्न स्वयमेव हल हो जाता हो तो इसे स्वीकार करने में ननु-नच करने की क्या आवश्यकता है? यदि आज भारत को स्वाधीन घोषित कर दिया जाय तो कांग्रेस-नेता भारत के एक छोर से दूसरे छोर तक घूम जायँगे और जनता तक यह सन्देश पहुँचा देंगे—"ब्रिटिश सरकार ने हमारे पूर्ण स्वाधीनता के ध्येय को स्वीकार कर लिया है। वह आज जीवन-मरण के संग्राम में जूझ रही है। हमें उसकी प्राण-पण से सहायता करनी चाहिए।" क्या इससे जनता में उत्साह की लहर न दौड़ जायगी?

कांग्रेस की पूर्ण स्वाधीनता की माँग का यह अभिप्राय नहीं कि वह फ़ौरन से पेश्तर ब्रिटेन से अपना सम्बन्ध-विच्छेद कर लेगी? आज २०वीं सदी है। आज तो कोई बड़े से बड़ा राष्ट्र भी सर्वतंत्र स्वतंत्र होने का गर्व नहीं कर सकता। भारत को यदि पूर्ण स्वाधीन कर भी दिया जाय तो भी वह अपनी पृथक् सत्ता क़ायम न रख सकेगा। ब्रिटिश साम्राज्य के स्वशासित उपनिवेश भी आज पूर्ण स्वाधीन कहाँ हैं? आन्तरिक शासन की दृष्टि से वे स्वाधीन भले ही हों, लेकिन राष्ट्र-रक्षा व विदेशी मामलों में उन्हें पराये का पल्ला पकड़ना ही पड़ता है। इस पर भी उपनिवेशों की जनता अपने आपको ग़ुलाम महसूस नहीं करती। कैनाडा, न्यूज़ीलैंड, आस्ट्रेलिया और दक्षिणी अफ़्रीका को जिस तरह की स्वाधीनता प्राप्त है, क्या भारत को वैसी स्वाधीनता नहीं दी जा सकती?

राष्ट्रीय सरकार

कांग्रेस ने माँग पेश की है—केन्द्र में ऐसी अस्थायी राष्ट्रीय सरकार क़ायम की जाय। जिसे केन्द्रीय धारा-सभा के सदस्यों का विश्वास प्राप्त हो। इस माँग से वायसराय की वर्तमान कार्यकारिणी भंग हो जाती है। फिर वायसराय भी अपनी कार्यकारिणी को बनाये रखने का मोह क्यों करें? क्या वे यह महसूस नहीं करते कि युद्ध-कार्य चलाने में जनता के प्रतिनिधि ज़्यादा काम कर सकते हैं? नवीन कार्यकारिणी जो भी बनेगी उसमें केवल कांग्रेस के प्रतिनिधि ही न रहेंगे। वह तो केन्द्रीय धारा-सभा के समस्त दलों का प्रतिनिधित्व करेगी। लिबरल व योरपीय दल के प्रतिनिधि भी उसमें शामिल होंगे।

यदि कांग्रेस की उक्त सब माँगें स्वीकार कर ली गईं तो वह भारतीय राष्ट्र की रक्षा के लिए गोरी पलटनों के साथ साथ कंधे से कंधा भिड़ाकर चलेगी। सरदार पटेल, राजा जी और नेहरू जी लोगों को युद्ध में सहायता देने को ललकारेंगे। इस बात को लेकर उनका महात्मा गांधी से मतभेद हो गया है। कांग्रेस ने कुछ समय के लिए गांधीवाद को तिलाञ्जलि दे दी है। 'अहिंसा परमो धर्मः' के मंत्र को राष्ट्र-रक्षा की बलिवेदी पर बलिदान कर दिया है। आज वह ब्रिटिश सरकार से 'असहयोग' के स्थान पर 'सहयोग' करने चली है। उसने ब्रिटिश सरकार के सामने मैत्री का हाथ बढ़ाया है। क्या इसे भी ठुकरा दिया जायगा?

सावन-झूला

लेखक, श्रीयुत चन्द्रप्रकाश वर्मा 'चन्द्र', बी० ए० ऑनर्स

(१)

आज डाल ही दिया डाल में तुमने सावन-झूला,
हैं सकाल ने सुमुखि तुम्हारा तन-मन फूला-फूला;
बादल, बिजली, बुंदियाँ, वर्षा, समाँ अजब, मत भूला,
हरियाली बन उभर पड़ी क्या थल की कोमल धूला ?

(२)

आज वायु की लोल लहरियों में तुम रम जाओगी,
और शून्य में भर उड़ान पल भर को थम जाओगी;
तुम समीर-सागर में तिरने तिनके सम जाओगी,
इतना अपने हलके भारीपन में कम जाओगी।

(३)

है झूला पुष्पक विमान-सा, यह कैसी तैयारी !
चलीं आज क्या तुम अनन्त का अन्त खोजने नारी !
लट लहरा, पट फहरा, कटि कस, मन उमङ्ग भर भारी,
लो, तुम तो उड़ चलीं मगन मन, कैसी लगन तुम्हारी !

(४)

नभ-पृथ्वी के बीच तीसरा लोक तुम्हारे द्वारा—
आज बस रहा है, जो बिलकुल भूमंडल से न्यारा;
वन प्रवासिनी भूल न जाना यह संसार हमारा,
मेघ-वायु-किरणों से हम पूछेंगे हाल तुम्हारा।

(५)

उफ़ ! कितनी ऊँची उड़ान, मन मेरा घबराता है,
धीरज धर मन, देख झूलना नीचे को आता है;
हाँ आया ! आगया ! अरे ! यह क्या ? वह फिर जाता है,
शायद भटक रहा, नभ-पथ का पता नहीं पाता है।

(६)

भला हुआ जो यहीं तुम्हारा यान रुक गया, रानी !
भू-गंगा ! तुम क्या करतीं, पी नभ-गंगा का पानी;
तुम आकाश-मार्ग भूलीं पर जग के जन अज्ञानी,
पृथ्वी पर ही भूल-भूल पथ, भटक रहे, कल्याणी !

रिक्का

अनुवादक, पण्डित ठाकुरदत्त मिश्र

रूप-गुण-सम्पन्न होने पर भी सविता पति को अपनी ओर आकर्षित करने में समर्थ नहीं हो पाई थी। परन्तु इस उपेक्षित अवस्था में भी सदा ही प्रसन्न रहा करती थी। उसे इस बात का भय था कि कहीं मेरी इस उपेक्षित अवस्था का पता मेरी माता को न चल जाय। बहुत दिनों तक मायके जाने का उसे अवसर नहीं मिल सका, इससे उसे संतोष था, परन्तु एकाएक जब उसके श्वशुर की अनुमति पाकर उसके नाना जब उसे बुलाने के लिए आगये तब सविता की यह चिंता और भी प्रबल हो उठी और वह सोचने लगी कि मा के सामने मैं अपनी वास्तविक अवस्था को कैसे छिपा पाऊँगी।

(२१)

खिड़की खुली ही रह गई। सविता कमरे की फ़र्श पर एक चटाई बिछा कर लेट गई। लेटे लेटे वह सोचने लगी कि इतने काल तक यहाँ रहने के बाद जब मैं माता के समीप लौटकर जाऊँगी तब उनकी ममता ज़ोरों से उमड़ पड़ेगी और वे तरह तरह के प्रश्नों की झड़ी लगा देंगी। उस अवस्था में उनके समस्त प्रश्नो के उत्तर देते हुए भी अपने इस दुर्भाग्य की बात मैं किस प्रकार छिपा सकूँगी? यदि मैं वास्तविक रहस्य को छिपाने में समर्थ न हो पाई और मा को यहाँ का सारा हाल मालूम हो गया तो कितना आघात पहुँचेगा उनके हृदय को। माता के तेजस्वी स्वभाव का हाल वह जानती थी। वह सोच रही थी कि आघात सहन करने के कारण कदाचित् वे और कठोर हो उठेंगी।

नारंगी रंग के एक ऊनी चदरे से मस्तक तक ढँके हुए अरुण आया और कहने लगा—यह क्या? इस तरह लेटी हो? क्या तबीअत कुछ खराब है?

सविता उठकर बैठ गई। उसने कहा—नहीं, तबीअत क्यों खराब होगी?

"न खराब हो तो अच्छा ही है। परन्तु इतनी सर्दी है। तिस पर भी खिड़की खोले हुए भूमि मे पड़ी हो। इस तरह निमोनिया हो जाने का भय है।"

"निमोनिया मेरा कुछ नही कर सकता।"

"तुम्हारा वह कुछ न कर सके तो अच्छा ही है। खैर, जाने दो वह बात। क्या तुम मुझे ज़रा-सा यूकैलिप्ट्स दे सकती हो? क्या वह है तुम्हारे कमरे में?"

"हाँ, है तो। क्या सर्दी हो गई है?"

"कुछ मालूम तो ऐसा ही पड़ता है। एक रुमाल में जरा-सा यूकैलिप्ट्स लगाकर दे दो मुझे तो मैं यहाँ से भाग जाऊँ। तुम्हारे कमरे में तो इतनी अधिक सर्दी है कि यदि जरा देर तक और रहना पड़ा तो मेरा शरीर बर्फ हो जायगा। ओह! कैसे रहा जाता है तुमसे यहाँ?"

सविता उठकर खड़ी हो गई। पहले उसने खिड़की बन्द कर ली। बाद को आलमारी खोलकर जरा-सा इधर-उधर करने के बाद उसने कहा—रुमाल! क्या रुमाल तुम्हारे पास है?

जेब मे हाथ डालकर अरुण ने कहा—रुमाल? मेरे पास तो रुमाल नही है। तुम्हारे पास यदि कोई रुमाल हो तो तुम्ही न कुछ समय के लिए दे दो।

अरुण हँस रहा था। सविता ने कहा—मेरा रुमाल? अच्छा, ठहरो देती हूँ। यह बात उसने इस भाव से कही, मानो उसने अरुण की ओर दृष्टि ही नहीं डाली।

अरुण ने कहा—खिड़की जो तुमने इस तरह उतावली के साथ बन्द कर ली!

रूमाल में यूकैलिप्टस लगाते लगाते सविता ने कहा—तुम्हें सर्दी लग रही थी, इसी लिए बन्द कर ली। यह लो रूमाल।

नाक से रूमाल लगाकर अरुण ने कहा—तो क्या कल ही तुम्हारे जाने का निश्चय हुआ है?

"हाँ।"

"साँझ को जाना होगा न?"

"हाँ, साँझ को ही जाऊँगी। परन्तु तुम्हें यह जानने की क्या आवश्यकता पड़ गई?"

"कुछ नहीं। अब मुझे क्या आवश्यकता है? यों ही पूछ रहा हूँ।"

"तुम्हारे इस यों ही का क्या कोई अर्थ नहीं है?"

"नहीं। अर्थ इसका क्या होगा? इतना व्याकरण कोष आदि हाथ में लेकर तो मैं बातें करता नहीं हूँ!"

रूमाल नाक के पास रखकर सूँघते सूँघते अरुण चला गया। उत्सुकतामयी दृष्टि से चारों ओर ताकते ही ताकते वह गया। वह सोच रहा था कि इस तूफ़ान और पानी की रात में मुझमें यह जो दुर्बलता आ गई है उसे किसी ने देख तो नहीं लिया। अपने मन के ऊपर उसे सविता के सामने भी ज़रा-सा क्रोध हो आया था। परन्तु लज्जा का उसे अधिक अनुभव हुआ लौटते समय।

सविता फिर उसी चटाई पर पेट के बल लेट गई। अकारण व्यथा के कारण उसके नेत्रों से जल की धारा हाथों की साँस में बहने लगी। हृदय के भीतर उसने जो बन्धन बाँध रक्खा था उसे भी तो उसने रक्तवाही शिरा से ही बाँधा था। चञ्चल रक्त के प्रवाह से शायद इसी लिए सारा बन्धन ही अस्त-व्यस्त होकर खुल गया था।

सविता सोच रही थी कि जिसके साथ इतना भी हृदय का योग नहीं है, जो अयोग्य है, उपेक्षित है, उसके प्रति इस प्रकार की व्यथा प्रदर्शित करने का अर्थ क्या है? केवल दया ही न? जिसके दुःख में सहानुभूति नहीं है उसके प्रति दया ही क्या की जा सकती है? तो क्या यह कुछ क्षण का खेल है? यह हो सकता है।

सविता के नेत्र जल उठे। चेहरा तमतमा आया। वह सोचने लगी—यह कैसा सर्वनाश है? सब कुछ खो बैठने पर भी मैं केवल अपने हृदय के ज़रा से बल का ही भरोसा किये बैठी थी। हे सर्वहारी दुर्ग्रह! क्या तुम उसका भी अपहरण कर लेना चाहते हो? वह तो खिलौना है नहीं।

खुले हुए बालों को हाथ में लेकर सविता ने उन्हें खूब कस कर बाँध लिया। बाद को मस्तक पर साड़ी खींच कर वह दीपक के पास जाकर बैठ गई। दुर्बलता के कारण सविता को जो लज्जा आई थी उसे उसने आँखें पोंछ कर दूर कर दिया था। घर के जितने आदमी थे वे सभी भोजन आदि से निवृत्त होकर सो गये थे। केवल सविता के ही ऐसे तन्द्राहीन नेत्र थे जिनमें निद्रा नहीं थी।

सविता की दृष्टि घड़ी की ओर गई। रात्रि अधिक व्यतीत हो चुकी थी। रोशनी खूब कम करके वह शय्या पर पड़ रही। उसने इस विचार से रोशनी कम कर दी कि अन्धकार में बहुत शीघ्र ही निद्रा आ जायगी। परन्तु निद्रा के स्थान पर हू-हू करके चिन्ता का ही प्रवाह आया और सविता को शोकाकुल कर दिया।

दूसरे दिन काम-काज में दो पहर बीत गये। अरुण का दर्शन सविता को नहीं हुआ। पता नहीं, किस बीच में अवसर पाकर वह भोजन कर गया था। यह बात सविता ने नौकर के मुँह से सुनी थी। भोजन करके वह कहाँ चला गया, यह किसी को मालूम नहीं था।

आशा अकेली किस प्रकार रह सकेगी, यही सोच सोचकर सविता उसके आस-पास चक्कर काट रही थी। आशा के मुँह से बार बार एक बात निकलती—मैं अकेले किस तरह रह सकूँगी दीदी?

आशा को सान्त्वना देती हुई सविता बोली—जैसे मैं रहती हूँ, वैसे ही तुम भी रहना। मैं वहाँ रहूँगी ही कितने दिन तक?

शुभेन्दु ने कहा—परन्तु यह बात याद रखना, काशी जाकर सब भूल न जाना भाभी!

"यदि मैं भूल भी जाऊँ तो तुम ज़रा-सा खोदकर सचेत कर देना, मुझे स्मरण करा देना। इतना तो कर सकोगे न?"

"ऐसी बात है?" यह कहकर शुभेन्दु ने कुण्ठितभाव से मुख नीचा कर लिया।

बाद को सविता ने स्वयं ही हँसकर कहा—नहीं, नहीं, मुझे खोदने या स्मरण कराने की कोई आवश्यकता न

होगी। मैं अपने आप ही आ जाऊँगी। जो भी हो, मालूम पड़ता है कि अब मैं भी एक सार्थक मनुष्य हो गई हूँ।"

"ओह! तो शायद यह बात इतने दिनों के बाद तुम समझ पाई हो? जब पुलक हमारे यहाँ था तब नहीं समझ पाई हो? अच्छा भाभी ज़रा प्रभात बाबू की कृतज्ञता तो देखो! पत्र के उत्तर में एक कार्ड लिखकर ज़रा-सा पुलक का हाल तक वे नहीं दे सके। यही सब नवाबी देखकर तो भैया क्रुद्ध होते हैं। पुलक को न भेजा गया होता तभी बल्कि अच्छा था।

"भला भेजते क्यों न? उन लोगों का लड़का है वह, उन्हीं का तो ज़ोर है उस पर।"

"ज़ोर है! तो अच्छी बात है। अदालत में दावा दायर करते वे लोग हमारे खिलाफ़। इसके सिवा और क्या कर सकते थे वे?"

"उस दशा में तो दस आदमी हमीं लोगों को पागल कहते। चिट्ठी-पत्री नहीं लिखी तो न सही, पुलक सकुशल हो, बस इतने से ही हमारा मतलब है। परन्तु यदि कोई चिट्ठी-पत्री आवे तो मुझे भी सूचित करना। मुझे भी तो चिन्ता लगी रहेगी!"

"अच्छा मान लो कि कोई चिट्ठी-पत्री न आकर यदि पुलक स्वयं आ पहुँचे तब क्या किया जायगा? ज़रा यह तो बतलाओ।"

सविता हँसी। उसने कहा—इस तरह के आकाश-कुसुम की कल्पना करने की आवश्यकता नहीं है। मैं पुलक को नहीं चाहती। केवल उसका समाचार भर पा जाऊँ, इसी से मुझे सन्तोष है।

"और यदि पुलक आ ही जाय तो?"

"उस दशा में उसे लेकर जो कोई आवे उसी के साथ उसे वापस भेज देना। कहना कि यहाँ इसकी मा या नानी कोई नहीं है। कौन इसकी देख-रेख करेगा?"

"ऐसा अवसर मिल जाता तो अच्छा ही था। उनकी बात का उत्तर देने की सुविधा होती।"

सविता ने कहा—यदि कभी तुम्हारी कल्पना सत्य निकले तो तुम ऐसा करना। तो यही बात पक्की रही।

"अच्छा, उस समय यदि घर पर मैं न होऊँ, तुम्हीं लोग होओ तो क्या करोगी? किन्तु सच सच बतलाना भाभी।"

सविता ज़रा देर तक सोचती रही। बाद को उसने कहा—पहले से कुछ कहा नहीं जा सकता। परन्तु पुलक का अपराध क्या है?

शुभेन्दु हँस पड़ा। उसने कहा—खूब! पुलक का कोई अपराध नहीं है, इतना कह देने पर तो सारा झगड़ा ही दूर हो जाता है।

"झगड़ा बना रहने की अपेक्षा उसका दूर हो जाना क्या अच्छा नहीं है? झगड़ा चाहे कैसा ही क्यों न हो, वह मुझे अच्छा नहीं लगता। सदा से ही मैं झगड़े से डरती आई हूँ।"

"अच्छी बात है, परन्तु तब तो हमारा आकाश-कुसुम सूख ही गया। खैर, इस समय जो कुछ करना हो वह सब कर लिया जाय। साँझ का समय समीप आ रहा है!"

सविता ने जब यह सुना कि साँझ का समय समीप आ रहा है तब वह नाना जी के लिए कुछ जलपान की सामग्री तैयार करने चली। वह सोच रही थी कि साँझ के समय वे सन्ध्या-वन्दन आदि करने को बैठेंगे, उसके बाद ही गाड़ी का समय आ जायगा। तब और कोई कार्य करने का अवसर ही न रहेगा। बाद को गाड़ी में बैठ जाने पर वे जल-स्पर्श तक न करेंगे।

आने पर सविता के नाना जी ने सूचित किया कि गाँव के लोगों ने ही मुझे बहुत खिला-पिला दिया है। अब मुझे कुछ खाने की इच्छा नहीं है। मैं केवल सन्ध्या-पूजा भर करूँगा।

आसन बिछाकर सविता ने सारी व्यवस्था कर दी तब उसके नाना जी पूजा करने के लिए बैठे।

सविता ने सोचा कि इसी बीच में मैं ज़रा-सा स्वामी से बिदा ले आऊँ। इस विचार से वह अरुण की खोज करने लगी। भीतर-बाहर कहीं भी उसकी आहट नहीं मिल सकी। एक बार उसने सोचा, क्या वे अभी तक लौट कर आये ही नहीं।

ऊपर बहुत लम्बी-चौड़ी छत थी। उस छत पर, तिमंज़िले पर, एक बड़ा-सा नया कमरा बना था। अरुण आजकल उसी कमरे में सोया करता था। एक तो वह कमरा नया नया बना था, दूसरे अरुण ने उसे विशेष रूप से अपना शयनागार बनाया था, इसलिए उसने उसे यथासम्भव बहुत ही अच्छी तरह से सजाया था। बग़ीचे

में जितने प्रकार के भी फूल के पेड़-पौधे थे, उन सबमें से अरुण को जो जो अच्छे लगते थे वे सब यदि टब या गमले में लगाने के योग्य होते तो उन्हें वह उठवा कर तिमंजिले में ले जाता। एक एक करके उसने इतने पौधे वहाँ ले जाकर एकत्र कर रक्खा था कि उसका कमरा एक उठाऊ बगीचे से घिर गया था। वहाँ सभी पौधे ऐसे नहीं थे जिनमें कुछ न कुछ फूल फूलते ही रहे हों। कुछ तो ऐसे भी पौधे थे जिनकी सूखी डंठल ही गमले में खड़ी थी।

सविता धीमे पद से जाकर छत पर खड़ी हुई। वहाँ जाकर उसने देखा कि नीली और पीली सर्सी को भेद कर सन्ध्याकालीन सूर्य्य की अन्तिम किरणें अरुण की खाट पर बिछे हुए बिस्तरे पर पड़ी हुई हैं। पहले वह अरुण को वहाँ नहीं देख पाई। बाद को उसने उसे देखा। हाँ, खाट पर पड़े पड़े अरुण एक मोटी-सी पुस्तक लिये हुए पढ़ रहा है। दूर से इसके अतिरिक्त और कुछ भी न दिखाई पड़ सका।

सविता जिस समय स्वामी से मिलने के लिए आई थी, उस समय वह बिलकुल स्वच्छन्दभाव से ही आई थी; उसके मन में किसी प्रकार सन्देह का भाव, किसी प्रकार की दुर्बलता नहीं थी। किसी प्रकार के जटिल संशय का लेशमात्र भी उसके हृदय में उदय नहीं हो पाया, अकारण दीनता या मलिनता-द्वारा उसका हृदय कोमल नहीं हो पाया। परन्तु सविता ने जब दूर से ही अरुण के कमरे की ओर ताका तब जरा-सा शिष्टाचार, जरा-सी कोमलता ही उसे मानो असह्य कङ्गालपन के रूप में मालूम पड़ने लगी। जोर से एक लम्बी साँस लेकर सविता लौट पड़ी।

लौटते लौटते भी सविता के मन में यह बात आई कि शायद स्वामी की कौतुक से प्रफुल्लित दृष्टि का वाण मेरी पीठ को भेद कर हृदय पर आ रहा है और उसे भेद रहा है। किसी प्रकार आँख-कान मूँदे हुए वह तिमंजिले से भागकर जब नीचे की मंजिल की दालान में आकर खड़ी हुई तब मानो उसने शान्ति की साँस ली।

यात्रा के समय सविता के नाना जी ने एक बार अरुण की खोज की। जगत बाबू ने कहा—जरा अरुण को तो बुला के आ!

लौटकर आने पर गोपी ने कहा—वे घूमने गये हैं, घर में कहीं भी नहीं हैं।

"तिमंजिले पर देखा है? नहीं हैं वहाँ?"

"जी नहीं, मैंने देख लिया है, वहाँ वे नहीं हैं। अभी ही बाहर गये हैं।"

सविता के नाना जी जरा-सा क्षुब्ध हुए। किन्तु फिर भी वे अत्यन्त ही आनन्द का अनुभव कर रहे थे सविता को देखकर। सविता यहाँ आकर अपार सुख प्राप्त कर सकी है, इसमें उन्हें लेशमात्र भी सन्देह नहीं था। पास-पड़ोस के दस पाँच आदमियों से उन्होंने उसके सम्बन्ध की कुछ अप्रिय बातें सुनी थीं अवश्य, परन्तु उन्होंने उन बातों को नितान्त ही निराधार और कपोल-कल्पित समझ लिया।

घर के सभी लोगों ने आँखों में आँसू भरे हुए सविता को विदा किया। अगणित नर-नारियों से भरे हुए स्टेशन पर जिस समय वह पहुँची उस समय बत्ती जल चुकी थी। अस्ताचलगामी सूर्य्य की लालिमा का जो कुछ प्रकाश अवशेष था वह यथेष्ट नहीं हो रहा था।

स्टेशन के सामने की खिड़की बन्द करके सविता विपरीत दिशा की ओर ताकने लगी। उसने देखा कि थोड़े से सूखे फूस की ढेरी लगी है। उसके पास किसी मरे हुए जन्तु की हड्डी लाकर एक कुत्ता उसे चबाने की कोशिश कर रहा है। जरा-सी ही दूरी पर एक टूटा हुआ झोपड़ा है, जिस पर फल कर कुछ देशी कुम्हड़े सूख गये हैं। उस झोपड़े के पूर्व में ही सुवर्ण के बहुत बड़े गोलक के समान पूर्णिमा का चन्द्रमा उदय हो रहा था।

खिड़की के ऊपर हाथ रक्खे हुए सविता यही सब देख रही थी। एकाएक हाथ के ऊपर दूसरे हाथ का स्पर्श पाकर चकितभाव से उसने दृष्टि फेरी। चकितभाव से उसने देखा तो अरुण था। आश्चर्य में आकर उसने कहा—तुम हो?

"हाँ, तो क्या तुम आश्चर्य में आ गई हो? टहलते टहलते इसी ओर निकल आया था, सोचा कि जरा-सा मुलाकात करता चलूँ। घर पर तो मुलाकात हुई नहीं आज!"

सविता के मुँह पर यह बात आई कि तुम्हारी इस दया से मैं कृतार्थ हो गई हूँ। परन्तु उसने यह कहा

नहीं। अपने आपको सँभालकर उसने कहा—नाना जी ने तुम्हारी खोज की थी। तुम घर पर नहीं थे।

ज़रा-सा मुस्कराकर अरुण ने कोमल स्वर से कहा—अच्छा तुम्हीं बताओ, उस घर में क्या अब रहा जाता है। मा तक तो ज़रा-सा बातचीत करने के लिए रह नहीं गई हैं। केवल चुपचाप—

उस समय भी उसी खिड़की के ऊपर अरुण के सबल हाथ के नीचे सविता का हाथ दबा हुआ था। और कोई बात न कहकर सविता ने पहले-पहल अपना हाथ ही खींचने का उद्योग किया। किन्तु अरुण के निश्चेष्ट हाथ को हटा नहीं सकी।

अरुण ने भी यह समझ लिया। परन्तु इस प्रकार का भाव प्रदर्शित करते हुए वह बोला, मानो उस ओर उसने भ्रूक्षेप तक नहीं किया। उसने कहा—अच्छा, मुझे तुमसे वही एक बात कहनी है। सुनोगी न?

"यहाँ?—इस समय? अच्छा, कहो, सुनती हूँ। परन्तु—"

सविता ने अरुण के हाथ के नीचे से ज़ोर से अपना हाथ खींचने का उद्योग किया। परन्तु उसका प्रयत्न व्यर्थ होते देखकर अरुण ज़रा-सा हँसा।

वह कैसी अस्वाभाविक मतवाले की-सी हँसी थी! सविता के लज्जा से लाल हो गये मुख और मस्तक पर पसीने की बूँदें दिखाई पड़ने लगी।

स्टेशन के सामनेवाली खिड़की से गाड़ी पर चढ़ते चढ़ते सविता के नाना जी ने अरुण को देखकर प्रसन्न मुख से कहा—बहुत ही सुखी हुआ हूँ भाई, बहुत ही सुखी हुआ हूँ। मैं सोच रहा था कि आते समय तुमने ज़रा-सी मुलाक़ात भी नहीं की।

झटपट सविता के हाथ पर से अपना हाथ हटाकर अरुण ने किसी प्रकार उन्हें एक बार प्रणाम किया और सामनेवाली ही खिड़की से वह उतर पड़ा। उस ओर स्वयं उसके पिता खड़े थे, परन्तु उन्होंने कुछ भी नहीं कहा।

अरुण एक ओर हटा गया। सविता भी अपनी लज्जा से अभिभूत दृष्टि उठाकर किसी ओर देख ही नहीं सकी।

(२२)

पुण्यतीर्थ काशीधाम की एक गली में एक छोटा-सा दोमंज़िला मकान था। उसी में सविता के नाना जी रहा करते थे। उस मकान के जो मालिक थे, वे बहुत दिनों से विदेश में वास कर रहे थे। इसी से वह मकान किराये पर दिया जाता था। मकान के आस-पास थोड़ी-सी खुली जगह थी, इससे बिलकुल गली में होने पर भी उसमें इतना अन्धकार और सील नहीं थी।

मकान के पास जो खुली हुई ज़मीन थी उसे देखने पर मालूम पड़ता था कि किसी समय में वह एक बहुत सुन्दर बग़ीचा था। परन्तु आजकल उसमें घास-फूस उगी थी। तो भी कभी कभी उन प्रायः सूख गये वृक्षों में भी दो-एक जूही, बेला या गुलचाँदनी के फूल खिलकर वृक्षों की शोभा बढ़ाया करते थे। मैदान के ठीक बीच में एक बहुत पुराना बेल का पेड़ था, जिसका आधा हिस्सा गिर गया था। वह पेड़ झुका हुआ खड़ा था। सविता बैठी हुई पुस्तक पढ़कर मा को सुना रही थी। दीवार से टेक लगाये हुए एक आसन पर बैठी हुई वे एकाग्र मन से उसी को सुन रही थीं। एक-आध बार वे तीक्ष्ण दृष्टि से पाठिका के हृदय की अवस्था का अध्ययन करने का भी उद्योग कर रही थीं। परन्तु सतर्क पाठिका ने उसी समय पुस्तक बन्द करके कहा—शायद तुम सुन नहीं रही हो मा।

"सुनती तो हूँ। तुम पढ़ो न!"

"ख़ाक सुन रही हो। तो मेरे मुँह की ओर क्यों ताक रही हो?"

एक लम्बी साँस लेकर ज़रा-सा हँस कर मा ने कहा—अच्छा, अब नहीं ताकूँगी, तुम पढ़ो।

सविता फिर पढ़ने लगी। परन्तु बीच में रोककर मा ने फिर कहा—तूने अपने श्वशुर की उस चिट्ठी का जवाब दिया है न रे? शायद अभी तक नहीं दिया है।

"दिया तो है। उसी दिन तो जवाब लिख दिया था। क्यों?"

"कोई बात नहीं है, यों ही पूछ लिया, तू पढ़!"

"इस तरह भी कहीं पढ़ा जाता है? दो पंक्ति भी न पढ़ पाऊँगी कि फिर तुम बात छेड़ दोगी। पुस्तक समाप्त कैसे हो सकेगी? तुम्हें जो कुछ कहना हो वही पहले याद करके कह डालो।"

माता के हृदय का एक द्वैविध्य उस समय भी नहीं दूर हो सका। सविता को काशी आये तीन मास हो गये,

परन्तु इस बीच में एक भी चिट्ठी अरुण को नहीं आई। इसका कारण क्या है? उसे स्त्री का समाचार प्राप्त करने की इच्छा क्यों नहीं हुई? सविता भी तो किसी प्रसंग से भूलकर भी स्वामी की ज़रा-सी चर्चा तक नहीं करती। आखिर बात क्या है? उसके सम्बन्ध की मैं जैसे ही कोई बात छेड़ने लगती हूँ, वह तरह की बातें बनाकर वह उस बात को दबा देती है और ज़ोर देकर हँसने का प्रयत्न करती है, इसका कोई तो कारण होना चाहिए!

सविता ने पुस्तक बन्द करके रख दी। उसने कहा—मा, साँझ तो हो चली, परन्तु नाना जी अभी तक नहीं लौटे। रात्रि में वे क्या खायेंगे? क्या वे कुछ कह गये हैं?

मा ने हँसकर कहा—इसके लिए तुम इतनी चिन्ता क्यों कर रही हो? मैं तो अभी यह सब करने को तैयार ही हूँ। तुम तो मेरे घर की चार दिन की मेहमान हो!

सविता उठकर खड़ी हो गई। उसने कहा—मेरी आदत ही ऐसी हो गई है मा! मैं समझती हूँ कि घर में किसी को जो भी असुविधा या क्लेश होगा उसका उत्तरदायित्व मेरे ही ऊपर होगा।

"तुम यहाँ यह सब क्यों किया करती हो?"

सचमुच सविता की ऐसी ही आदत हो गई थी। इतने बड़े घर का हर प्रकार का प्रबन्ध उसी के हाथ में था। घर के एक एक आदमी की सुख-सुविधा का प्रबन्ध करते-करते ही उसका दिन व्यतीत हुआ करता था। यही कारण था कि यहाँ आने पर जब उस पर किसी प्रकार के काम-काज का उत्तरदायित्व नहीं रह गया था तब उसके दिन बड़े से भी बड़े हो उठे थे।

पुस्तक उठाकर रखने के लिए सविता ऊपर गई। पुस्तक रखकर उसने दो-एक छोटे-मोटे काम भी कर लिये। तब वह नीचे आई। आने पर उसने देखा कि मा ने अपनी सिल्क की चादर ओढ़ ली है। उसने पूछा—कहीं जा रही हो क्या मा?

मा ने कहा—हाँ, यहीं पड़ोस में ही एक आदमी के यहाँ जाना है। उसकी बहू आई है। शायद वह बहुत बीमार है। जाऊँ, ज़रा देख आऊँ। उससे हम लोगों का बड़ा उपकार हुआ है। पिता जी और मैं, जब दोनों ही आदमी बीमार पड़ गये थे तब उन्होंने ही हम लोगों की सेवा-शुश्रूषा करके हमें अच्छा किया था।

"मुझे भी ले चलो न मा! मैं भी ज़रा देख आऊँ।"

"पिता जी से पूछे बिना मैं तुम्हें ले चलूँ! यदि वे रुष्ट होवें?"

"रुष्ट क्यों होंगे? तुम ज़रा देर तक खड़ी रहो, मैं उनसे पूछे आती हूँ। वे तो लौट कर आगये हैं। मैंने देखा है उन्हें आते।"

सविता के नाना जी ऊपर के कमरे में बैठे थे। सामने बड़े आकार की एक बहुत बड़ी पुस्तक रक्खी हुई थी। एक पुराने कोष का पन्ना खुला था। वे एकाग्र मन से पुस्तकों में ही ग़ोता लगाये हुए थे, यह देखकर उनका चित्त दूसरी ओर फेरने में सविता आगा-पीछा करने लगी।

एकाएक उन्हें पेंसिल की आवश्यकता पड़ी। इससे उन्होंने जब मुँह उठाया तब उनकी दृष्टि सविता पर पड़ी। उसे देखकर उन्होंने कहा—सन्दूक के ऊपर मेरी पेंसिल रक्खी है। ज़रा दे तो दो बच्ची!

पेंसिल नाना जी के हाथ में देकर सविता ने कहा—मुझे भी एक बात पूछनी है नाना जी; मा के साथ मैं ज़रा-सा घूमने जाना चाहती हूँ। घूम आऊँ?

"घूमने जाओगी? कहाँ जाओगी?"

"यह तो मैं नहीं जानती हूँ। परन्तु मा कहती थीं कि बीमारी के समय जिन्होंने आप लोगों की सेवा की थी उन्हीं के यहाँ वे जा रही हैं।"

"ओह, भोलानाथ बाबू के यहाँ? अच्छा, जाओ।"

सविता ने आकर कहा—चलो मा, नाना जी ने आज्ञा दे दी है।

"तू भी चलेगी?"

"नाना जी ने तो कह दिया है। फिर क्यों न चलूँ?"

"कह दिया है तो क्या इसी वेश में चलेगी? जाओ, कपड़ा बदल आओ, मैं खड़ी हूँ।"

"फिर कपड़ा बदलना होगा?" यह कहकर सविता कपड़ा बदलने के लिए कमरे में गई। एक धुली हुई साफ़ साड़ी पहनकर वह माता के साथ साथ चली।

मा ज़रा-सा मुस्कराई। उन्होंने कहा—देखती हूँ कि वस्त्र आदि के सम्बन्ध में तुम्हारी रुचि ज़रा भी नहीं परिवर्तित हुई है।

सविता ने समझ लिया कि मेरी यह वेश-भूषा माता जी को पसन्द नहीं आई। उसने कहा—अब कपड़े

बदलने की आवश्यकता नहीं है। चलो, उनके यहाँ भी उस बहू को देख आवें।

घर के ठीक सामने जो गली थी उसे पार करते ही वह घर मिलता था। बाहर के बरामदे में आठ-दस मास का एक बच्चा हाथ में रबर की एक गुड़िया लिये हुए नौकरानी के पास खेल रहा था।

उस बच्चे को सविता ने गोद में ले लिया और घर के भीतर प्रवेश किया। बच्चा रोया नहीं, अवाक् होकर वह सविता के मुँह की ओर ताक रहा था।

घर के भीतर प्रवेश करके सविता ने देखा कि एक बड़े-से कमरे के भीतर तृतीया के क्षीण चन्द्रमा के समान एक सुन्दरी लेटी हुई बार-बार करवटें बदल रही है और पास ही खड़ी परिपक्व अवस्था की एक सधवा महिला उसके मस्तक पर हाथ फेर रही है।

सविता आदि को देखते ही उन परिपक्व अवस्था की महिला ने आदर-पूर्वक बुलाकर बैठाला। सुन्दरी शय्या पर पड़े ही पड़े इन माता-पुत्री की ओर ताकती रही। अपरिचित होने के कारण इनके सामने उसको किसी प्रकार की चञ्चलता नहीं दिखाई पड़ी।

सविता रोगिणी की शय्या के पास बैठ गई। उससे दो ही चार बातें करके उसने मालूम कर लिया कि यह उसकी ससुराल है और यह जो परिपक्व अवस्था की स्त्री है उसकी सास है। जब वह दार्जिलिंग में थी, तभी से उसे ज्वर हो आया है और तब से वह बराबर बीमार ही रहा करती है। इसलिए वायु-परिवर्तन के लिए लोग इसे यहाँ ले आये हैं।

सविता ने कहा—तुम भी दार्जिलिंग में थीं? हम लोग भी तो थे वहाँ इतने दिनों तक। वहाँ निवास करते समय तो मैंने यह सुन्दर मुँह किसी दिन देखा नहीं!

लज्जित होकर बहू ने कहा—हाँ, बड़ा सुन्दर तो है यह मुँह!

बहू के दोनों हाथ दाबकर सविता ने कहा—नहीं, सचमुच सुन्दर है यह। परन्तु इसे मेरा दुर्भाग्य ही समझना चाहिए कि आरोग्यता की अवस्था में मैं इसे देख न सकी। क्या तुम यह बतला सकती हो कि कितने दिनों में आरोग्य होकर चलने-फिरने के योग्य हो जाओगी?

"कैसे कहूँ कि कितने दिन में चलने-फिरने लगूँगी? मेरे मन में तो यह बात आती है कि कटक जाने पर ही मेरी तबीअत ठीक होगी। शायद मायके गये बिना कभी रोग नहीं दूर होता?"

"तो कटक में शायद मायका है तुम्हारा। जान पड़ता है कि वहाँ सुन्दरियाँ बहुत हैं।"

"गई हैं आप कभी कटक?"

"नहीं, मैं वहाँ कभी गई नहीं। कटक में मेरे ममेरे ससुर रहते हैं। ममेरे देवर कनक से कटक का कुछ-कुछ हाल मैंने सुना है।"

"कनक? कालीपद बाबू के लड़के? कालीपद बाबू मेरे भैया के श्वशुर हैं।"

"हाँ, वे मेरे ममेरे ससुर हैं।"

उस बहू का मुँह हँसी से भर गया। उसका शरीर क्षीण होकर चारपाई से लग गया था। केवल अस्थि-पंजर ही अवशेष था। तो भी उस मुख पर अपरिमित लावण्य-राशि वर्तमान थी। प्रायः समस्त रक्त सूख जाने के कारण शरीर का रंग पत्थर के समान सफ़ेद हो गया था। तो भी उसमें इतना सौन्दर्य था, उसकी हँसी में इतनी मधुरता थी कि सविता मुग्ध दृष्टि से देखती रह गई।

बहू ने कहा—तो एक सम्बन्ध निकल आया। ख़ैर, परदेश में जितना लाभ हो जाय, उतना ही अच्छा है। एक तो मैं बीमार हूँ, दूसरे बहू हूँ। परन्तु जब हमारा-तुम्हारा परिचय हो गया है तब मेरे न जा सकने पर भी तुम्हें कभी कभी आना पड़ेगा।

"मैं जब तक यहाँ हूँ तब तक आती रहूँगी। परन्तु मैं भी तो एक प्रकार से अकेली ही हूँ। अच्छा, यह तो बतलाओ कि मैं तुम्हें क्या कह कर पुकारूँ?"

"तो पहले यह बतलाओ कि मैं तुमसे छोटी हूँ या बड़ी हूँ।"

सविता हँसी। उसने कहा—तुम्हारा नाम यदि मुझे मधुर मालूम पड़ा तो मैं तुम्हारा नाम लेकर ही पुकारूँगी, चाहे तुम मुझसे बड़ी ही क्यों न होओ।

"तो तुम मुझे ज्योति कह कर पुकारो। मेरा नाम है ज्योतिर्मयी।"

सविता निमेष भर चकित होकर ताकती रही। बाद को उसने कहा—कैसा अच्छा नाम है! इतना उत्तम नाम

होने पर भी भला और कुछ कहकर पुकारने की इच्छा हो सकती है किसी को?

"और मैं? मैं तुम्हें क्या कहकर पुकारूँ भाई? मेरी भौजाई की तुम फुफेरी भौजाई हो। तब? तब?"

सम्बन्ध की चर्चा छेड़कर ज्योति कुछ न कुछ निर्णय कर लेने का प्रयत्न कर रही थी। परन्तु वह यह न स्थिर कर सकी कि सविता को क्या कहकर पुकारे। उसकी इस असमर्थता पर दोनों ही हँस पड़ीं। हँसते-हँसते सविता ने कहा—अच्छा, अच्छा, खूब कहा। तो, तो, न हो तो तुम मुझे भी सीधा सीधा नाम लेकर ही पुकारो।

ज़ोर से मस्तक हिलाकर ज्योति ने कहा—नहीं, नहीं, नाम लेकर पुकारने में मुझे सुविधा न होगी। मैं तो ठीक से उठकर खड़ी नहीं हो पाती हूँ, नहीं तो दिखला देती कि मैं तुमसे कितनी नाटी हूँ, कितनी छोटी हूँ। तो अवस्था में ही मैं क्यों बड़ी होने लगी?

"तो भी तो तुम एक बच्चे की मा हो?"

"ओह, यह तो सच है। परन्तु बच्चा गया कहाँ भाई! तुम्हारी ही गोद में तो था वह! मेरी बीमारी के कारण कितना क्लेश हो रहा है उसे। दिन-रात वह केवल रोता ही रहता है। एक तो उसका रोने का स्वभाव है, दूसरे मैं पड़ी हूँ!

सविता ने कहा—तुम्हारी सास उसे दूध पिलाने को ले गई हैं।

"ओ मा! तब तो हो चुका। उन्हें वह परेशान कर डालेगा। नौकरानी ही उसे बहलाकर दूध पिला सकती है। मा का अभ्यास कितने दिन से छूट गया है। वे घबरा उठती हैं। परन्तु शौक के मारे उसे वे दूध पिलावेंगी ही।"

सविता ने कहा—कोई भी उसे दूध पिलावे, इससे तुम्हारा क्या मतलब है? तुम्हारे लड़के का पेट भर जाना चाहिए। तुम लेटे लेटे घबराती क्यों रहती हो?

"नहीं, अब मैं न घबराऊँगी। घबराने की मेरी आदत-सी पड़ गई है। यह मेरे स्वभाव का दोष है। इसके लिए मैं कितनी डाँट खाती रहती हूँ। घबरा घबरा कर स्वयं तो क्लेश सहती ही हूँ, साथ ही दूसरों को भी क्लेश देती हूँ।

सविता ने हँसकर कहा—तुम स्वयं भी तो एक छोटी-सी बच्ची हो।

"सचमुच भाई, मैं सदा ही बच्ची की बच्ची बनी रह गई। मेरा लड़का तक मुझसे ज़रा भी नहीं डरता। खूब लम्बा और मोटा ताज़ा शरीर हो, साथ ही चेहरा भी यदि ज़रा भड़कीला हो तभी बच्चे डरते हैं। ठीक है न?"

सविता ने कहा—इस बात की जानकारी मुझे भी वैसी नहीं है। मेरा भी चेहरा ऐसा नहीं कि देखकर लड़के मुझसे डरें। परन्तु शरीर यदि ज़रा-सा और मोटा होता तो शायद डरते भी।

"हुँस! यह क्या कह रही हो? इस तरह का सुन्दर पतला-सा लता के समान कोमल चेहरा देखकर तो डर लगता ही है। मेरा लड़का किसी की गोद में तो नहीं जाता। उसे यदि कोई ज़रा भी प्यार करने लगता है तो वह चिल्ला चिल्लाकर घर तक माथे पर उठा लेता है! किन्तु भाई, तुम्हारे मुँह की ओर ताककर वह सी नहीं रोया। कैसा शान्त होकर वह चुपचाप बैठा रहा!

ज्योति की सास एक कटोरी में कोई हलकी किन्तु पौष्टिक खाद्य सामग्री लिये हुए जैसे ही कमरे में गई, वैसे ही वह मस्तक हिलाकर कहने लगी नहीं, इस समय खाने से मुझे तुरन्त ही वमन हो जायगा। मैं खाऊँगी नहीं।

सास ने स्निग्ध कण्ठ से कहा—दो घंटे के स्थान पर चार घंटे बीत चले हैं बिटिया! न खाओगी तो और भी दुर्बल हो जाओगी। किस तरह अच्छी होओगी तुम?

सविता ने कहा—क्यों? खाने में इस तरह की आपत्ति क्यों होती है तुम्हें?

ज्योति ने कहा—ज़रा सा खाकर तो देखो पहले! कैसा लगता है यह खाने में? पहले खाकर देख लो तब कहना मुझे खाने को। दूध दो तो मैं अभी पी लूँ। परन्तु यह चीज़ तो मुझसे जबान पर भी नहीं रक्खी जाती।

ज्योति की सास ने कहा—दूध तुम्हें पच न सकेगा, नहीं तो दूध ही देती।

(क्रमशः)

जाग्रत नारियाँ

जापानी महिलायें

लेखिका, श्रीमती प्रेमलता

चीन-जापान-युद्ध ने जापानी महिलाओं की आँखें खोल दी हैं। वे घर के घेरे से निकलकर सार्वजनिक क्षेत्र में आ गई हैं और उन्होंने अपनी ३-४ वर्ष की कार्य-शीलता से प्रमाणित कर दिया है कि देश की समृद्धि बढ़ाने के लिए सार्वजनिक क्षेत्रों में महिलाओं का योग अनिवार्य है। इस लेख की विदुषी लेखिका ने प्रमाणित आँकड़ों के साथ इसी विषय पर प्रकाश डालने का प्रयत्न किया है।

स्त्रियों के सम्बन्ध में जापान के विचार अब से कुछ ही दिन पहले तक लगभग वैसे ही थे जैसे भारत के रहे हैं। बात यह है कि जापानी संस्कृति पर भारत की छाप है। हमारे देश की भाँति जापान में भी कन्यायों को ज्यों ही वे कुछ सयानी हुई, घर के बन्धन में डाल दिया जाता था। भारतीय स्मृतिकारों के आज्ञानुसार स्त्री स्वतंत्र नहीं रह सकती। उसे शैशव में पिता के, यौवन में पति के और वृद्धावस्था में पुत्रों के अधीन रहना चाहिए। जापानी कन्याओं को भी इस त्रिविध शासन की शिक्षा आरम्भ से ही दी जाती थी। युवती कन्याओं को अपना जीवन-संगी चुनने के लिए स्वयं कष्ट करने की आवश्यकता नहीं थी। यह काम उनके लिए अभिभावक और कुटुम्बी मिलकर कर दिया करते थे। जब तक विवाह तय न हो जाय और उसकी सब रस्में पूरी न हो जायँ, लड़की अपने पति से एकान्त में नहीं मिल सकती थी।

विवाह के पश्चात् स्त्री को 'पतिदैवत' बनने के लिए बाध्य किया जाता था। पति के सम्बन्ध में उसकी कोई शिकायत नहीं सुनी जा सकती थी। यदि उसे अपना पति पसन्द न हो तो उसके पास इसका कोई इलाज न था। भाग्य ने जैसा कुछ दिया मिल गया, यही अटल विश्वास रखने के लिए स्त्रियाँ बाध्य थीं। तलाक़ या पुनर्विवाह का स्त्री की ओर से प्रश्न तक न उठ सकता था। जापान में इस सम्बन्ध में एक कहावत प्रचलित थी—'स्त्री का विवाह पति के साथ नहीं, गृह के साथ होता है।'

विवाह की रस्में पूरी हो जाने के बाद 'नव-वधू' को गृहप्रवेश कराया जाता था। गृहप्रवेश के समय उसे 'कुलपति' की मूर्ति के समक्ष घुटने टेक कर प्रतिज्ञा करनी पड़ती थी कि वह उस कुल में प्रवेश कर रही है, अतः उसकी रीतियों का पालन करेगी। इसके बाद वह उस गृह की सदस्या समझी जाती थी।

गृह में स्त्री की मालिकी नहीं चलती थी। यदि पति पत्नी से प्रेम न करे तो इसमें दोष स्त्री का ही माना

[पेट्रोल देनेवाली एक लड़की]

जाता था और उसे पति को प्रसन्न करने के लिए बड़े-से बड़ा त्याग करने को तैयार रहना पड़ता था। पति यदि चाहे तो एकाधिक विवाह कर सकता था। यह बात अवश्य थी कि घर में प्रधानता प्रथम स्त्री की रहती थी। स्त्री पति को बाहरी स्त्रियों से प्रेम-सम्बन्ध स्थापित कर लेने से भी रोक नहीं सकती थी।

अनिवार्य शिक्षा का प्रचार हो जाने पर भी जापान-सरकार ने विवाहिता को उससे छूट दे दी थी। स्त्रियों के लिए साधारण सिलाई, कताई, बुनाई और भोजन पकाने का ज्ञान होना पर्याप्त समझा जाता था। बहुत थोड़ी स्त्रियाँ ऐसी थीं जो साधारण लिख-पढ़ सकती थीं। धनवान् घरों की स्त्रियाँ जिन्हें अवकाश अधिक रहता था, अपना समय फूल सजाने, चाय-पार्टी में जाने तथा छोटे-छोटे गीत बनाने में व्यय किया करती थीं।

[बसों की टिकेट-कलेक्टर एक जापानी लड़की]

[जापानी-लड़की गोल्फ़ खेलने जा रही है]

आज से १०-१५ साल पहले तक यही हाल था। जापानी लड़कियों में उस समय तक 'स्वतंत्रता' का प्रश्न ही नहीं उठा था, न उन्हें उसकी आवश्यकता का ही अनुभव हुआ था। उनका घर ही उनका क्रियाक्षेत्र था और उसके बाहर क्या है—इसे जानने की न उन्हे ज़रूरत थी, न इच्छा।

हाँ, शिक्षा की ओर लड़कियों का झुकाव अवश्य होने लगा था, जिससे उनके अभिभावको की चिन्ता बढ रही थी। यदि २० साल की आयु पार करने के बाद भी वहाँ कोई लड़की कुमारी रहती थी तो उसके कारण न केवल माता-पिता को, पड़ोसियों को भी चिन्ता होती थी। उन दिनों जापानी वरों को भी पढ़ी-लिखी दुलहन के लिए कोई आकर्षण नही था। सन् १९१९ के बाद से जापानी-महिला-मण्डल में जागृति के लक्षण दिखाई दिये।

[एक लड़की जो वकीलों को नशीले पेय पहुचाने का काम करती है।]

[द्वारपाल का काम करनेवाली एक लड़की]

['एलीवेटर' को चलाती हुई एक जापानी लड़की]

[जापान के पुराने शौल का एक चित्र]

[जापानी लड़की स्नान की पोशाक में]

उन्हीं दिनों इशीमोतो नाम की एक उच्च घराने की महिला ने 'सन्तति-निरोध' के लिए एक संस्था खोली। इसके कुछ ही दिन बाद श्रीमती इचूगरी और श्रीमती शों ने अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति के लिए एक संस्था स्थापित की। पर इन महिलाओं का प्रचार-क्षेत्र चाय-पार्टियों तक ही सीमित था।

१९२० में श्रीमती इशीमोतो स्टेनोग्राफ़ी का अध्ययन करने अमेरिका गईं। वहाँ उनकी भेंट प्रख्यात महिला-आन्दोलिका 'केरी चैम्पियन काट' से हुई। श्रीमती काट की शिक्षाओं का इशीमोतो पर बड़ा प्रभाव पड़ा। अमेरिका से लौटकर श्रीमती इशीमोतो ने तोकियो के बीच बुने हुए कपड़ों की एक दूकान खोली। एक उच्च घराने की महिला का इस प्रकार खुले-आम बीच बाज़ार में दूकान पर बैठना जापान के लिए एक अभूतपूर्व घटना थी, अतः उनका खासा विरोध किया गया। परन्तु श्रीमती इशीमोतो को पूरी-पूरी सफलता मिली और उनकी देखा-देखी कई अन्य धनिक महिलाओं ने भी दूकानें खोलीं। उस समय से महिलाओं का सड़कों पर चलना-फिरना जापान के लिए अद्भुत बात नहीं रह गई। वर्तमान चीन-जापान-युद्ध ने महिलाओं की जागृति में बहुत योग दिया। पुरुष युद्ध पर चले गये और कल-कारखानों में उनके स्थान रिक्त हो गये। यही अवसर था जिसकी प्रतीक्षा महिलायें कर रही थीं। उन्होंने इस अवसर से लाभ उठाने में ढिलाई नहीं की। फल यह हुआ कि पुरुषों के छोटे-से-छोटे से लेकर बड़े-से-बड़े कार्यक्षेत्रों में लड़कियों की भरमार दिखाई देने लगी। गोल्फ़ में 'केडीज़' का काम लड़कियाँ करती हैं। बड़े-बड़े फ़र्मों में सेक्रेटरी भी वे ही हैं; वे ही कमसरियट के आफ़िस में काम करती हैं; होटलों में यात्रियों का सामान उठाती-रखती भी वे ही दिखाई देती हैं, वे ही 'झूला' चलाती हैं, टिकट बाँटती हैं; और दूकानों का काम करती हैं। यही नहीं, जापानी आल्प्स की हिमाच्छादित चोटियों पर और कावाना के गोल्फ़-मैदानों

[जापान की महिलायें कुछ वर्ष पहले गृहस्थी के काम में सब समय दिया करती थीं]

में तो सचमुच आजकल जो दृश्य दिखाई देता है वह जापान के इतिहास में अनोखी बात है। स्त्रियाँ वहाँ गोल्फ़ खेलती और अपने पतियों के साथ 'स्किटिंग' का रस लेती हैं। युवतियाँ समुद्रों और तालावों में स्नान करती भी दिखाई देती हैं। स्नान के समय वे ठीक अमेरिकन स्त्रियों की तरह का एक टुकड़ेवाला वस्त्र पहनती हैं। दोपहर के बाद सिनेमा-घरों के मेटिनी-शो में महिला दर्शिकायें ही नज़र आती हैं।

नौकरियों में भी महिलाओं की संख्या बढ़ रही है। आजकल वहाँ लगभग तीस लाख स्त्रियाँ विभिन्न स्थानों पर काम कर रही हैं। इनमें से ४० हज़ार मछलियों के व्यापार का, एक लाख खानों का १५,८०,००० मशीनों का, १०,००,००० व्यापार का, ६०,००० माल के निर्यात का, तीन लाख सरकारी दफ़्तरों का और १,९०,००० अन्यान्य धन्धों का काम कर रही हैं। जापान में स्त्री-संख्या कुल ३,४५,२०,०१५ है। इसे देखते हुए नौकरी करनेवाली महिलाओं की संख्या किसी भी राष्ट्र की स्त्रियों के लिए स्पर्धा योग्य हो सकती है।

जापान के मध्यवर्गीय समाज की एक विशेष चिन्ता महिलाओं की इस उन्नति के कारण बहुत कुछ कम हो गई है। आज से तीस वर्ष पहले जापानी लड़कियाँ सड़क पर निकलने में अपार लज्जा का अनुभव करती थीं, पर आज वे किसी भी मजदूरी को करना और उसके द्वारा अपनी शादी के लिए धन बचा लेना अपने लिए गौरव की बात समझती हैं। इसी लिए अब उनके अभिभावकों को उनकी शादी के लिए कम-से कम ५०० येन जुटाने की चिन्ता नहीं करनी पड़ती। इससे भी महत्त्वपूर्ण बात यह हुई है कि स्त्रियों के सम्बन्ध में जापानियों के दृष्टिकोण में परिवर्तन हो गया है। वहाँ अब १०० येन प्रतिमास पानेवाली और ३० येन प्रतिमास

पानेवाली लड़कियाँ समान सम्मान के साथ देखी जाती हैं और देश की व्यापारिक उन्नति के लिए उनका होना आवश्यक समझा जाता है।

यद्यपि लड़कियों को अपेक्षाकृत कम वेतन मिलता और अधिक घंटों तक काम करना पड़ता है, फिर भी वे अपने इस नवयुग से सन्तुष्ट हैं। २० प्रतिशत लड़कियाँ अब योरपीय ढंग के वस्त्र भी पहनने लगी हैं। उन्हें अनुभव हो गया है कि काम-काजी लड़कियों के लिए 'किमोनो' की अपेक्षा योरपीय ढंग के पहनावे अधिक सुविधा-जनक हैं।

फिर भी 'पूर्ण स्वतंत्रता' जैसी कोई भावना अभी तक जापानी स्त्रियों में नहीं पाई जाती। वे विश्वविद्यालयों में नहीं जाने पातीं, रात्रि के समय सिनेमाओं और रेस्टॉरेन्टों में भी अकेले नहीं जाने दी जातीं, तलाक़ नहीं दे सकतीं और न राजनीति के मामलों में दख़ल दे सकती हैं।

जागृति का इतना स्वाद पा जाने के बाद, सम्भव है, निकट भविष्य में ही जापानी महिलाओं का ध्यान 'पूर्ण-स्वतंत्रता' की ओर आकर्षित हो। कुछ शिक्षित स्त्रियाँ इस प्रकार का आन्दोलन कर भी रही हैं। पर आजकल का वायुमण्डल उनके अनुकूल नहीं पड़ रहा है। चीन-जापान-युद्ध की समाप्ति के बाद एक बार वहाँ ऐसी लहर अवश्य आवेगी जब स्त्रियाँ भी राजनैतिक मामलों में सम्मति दे सकने के अधिकार की माँग संगठित और सामूहिक रूप से उपस्थित करेंगी और यदि उन्हें सफलता मिल गई तो इसमें सन्देह नहीं कि जापान को अपनी आक्रामक और लड़ाकू नीति में अवश्य परिवर्तन करना पड़ेगा, क्योंकि जापानी महिलाओं को युद्ध से स्वाभाविक घृणा है।

[जापानी लड़की अपनी आधुनिक चुस्त पोशाक में]

गीत

लेखक, श्रीयुत नर्मदाप्रसाद खरे

बुझ गया दीपक महल का।

निशा के अन्तिम चरण में,
शून्य जीवन - आवरण में
एक तारा दीपता था—साथ दे पाया न कल का;
बुझ गया दीपक महल का।

आँसुओं से प्राण धोकर,
गगन पर रङ्गीन होकर—
स्वप्न चमका चंचला बन,—प्यार था, पर एक पल का;
बुझ गया दीपक महल का।

शून्यता लेकर हृदय पर;
जुगनुओं को गोद में भर—
चाहता था मैं सुधा-रस, पर मिला प्याला गरल का;
बुझ गया दीपक महल का।

१—हिंदी के कवि और काव्य (दूसरा भाग)—लेखक, श्रीयुत गणेशप्रसाद द्विवेदी एम० ए०, प्रकाशक, हिन्दुस्तानी एकेडेमी, इलाहाबाद है। ३२४ पृष्ठ की पुस्तक का मूल्य ३।।) है।

हिन्दुस्तानी एकेडेमी हिन्दी के कवियों और उनकी रचनाओं के इतिवृत्तात्मक-संग्रह का प्रकाशन कर रही है। प्रस्तुत पुस्तक इसका दूसरा भाग है। इसमें कबीर से लेकर धर्मदास तक २४ सन्त कवियों की जीवनियाँ उनकी रचनाओं के प्रकरणबद्ध उद्धरणों के साथ दी गई हैं। इस प्रकार इस भाग में हिन्दी के सन्त-साहित्य के अधिकांश का संग्रह हो गया है। काव्य के प्रेमियों के बड़े काम की है।

२-३-साहित्यसेवा-सदन बनारस की दो पुस्तकें—

(१) पद्यरत्नावली—संकलनकर्ता, अखौरी श्री गंगा-प्रसादसिंह हैं। पृष्ठ-संख्या २५३ और मूल्य १) है।

यह एक संग्रह-पुस्तक है, जो दिव्यालोक, पुण्यस्मृति, घर का आँगन, हर्ष-विषाद, प्रकृति-दर्शन, मणि-मुक्ता, नीहारिका, और सूक्तिरत्नावली—इन ८ प्रकरणों में विभक्त है। प्रत्येक प्रकरण में उसी में फबनेवाली विभिन्न कवियों की कई कई रचनाओं का संकलन कर दिया गया है। इस प्रकार यह संग्रह एक नये ढंग और नये दृष्टिकोण से किया गया है। कविताओं का चुनाव सुन्दर तथा सुरुचिपूर्ण हुआ है। पुस्तक पाठ्यपुस्तकों में चुनी जाने योग्य है।

(२) तुलसी-चिकित्सा—संकलनकर्ता, श्री भगवत-शरण हैं। पृष्ठ-संख्या ५६ और मूल्य ।) है।

'तुलसी' भारतवर्ष का प्रसिद्ध पौधा है। इसी के औषधीय गुणों पर इस पुस्तक में प्रकाश डाला गया है। 'तुलसी' के सम्बन्ध में कुछ विदेशी वैज्ञानिकों के विचार भी संगृहीत कर दिये गये हैं। गृहस्थों के लिए पुस्तक उपयोगी है।

४—साइन्स की कहानियाँ—लेखक, श्रीयुत उमाशंकर हैं। पृष्ठ-संख्या ९६ और मूल्य ।।।) है।

साइंस जैसा रूखा विषय कहानियों के रूप में इस पुस्तक में उपस्थित किया गया है। शैली रोचक है। इसकी सहायता से घर बैठे ही भौतिक विज्ञान की अनेक बातों की जानकारी प्राप्त हो सकती है।

५—एकांकी-नाटक-निकुंज—लेखक, श्रीयुत कैलाश-नाथ भटनागर एम० ए०, प्रकाशक, अतरचन्द कपूर एण्ड संस, लाहौर हैं। पृष्ठ-संख्या २०४ और मूल्य ।।।) है।

इस पुस्तक में लेखक महोदय के ६ एकांकी नाटकों का संग्रह है, जिनका कथानक संस्कृत के प्रख्यात नाटकों से लिया गया है—'मध्यम व्यायोग' भास के इसी नाम के नाटक से, शकुन्तला की विदा का अभिज्ञान शाकुन्तल से, और शेष का भवभूति, दिङ्नाग, श्रीहर्ष और भट्ट नारायण के नाटकों से। सभी नाटक अभिनेय और सुन्दर हुए हैं। नाटकों के आरम्भ में परिचायिका दे देने से पुस्तक की उपयोगिता और भी बढ़ गई है। आशा है, भटनागर जी की ये कृतियाँ हिन्दी के एकांकी नाटकों में विशेष स्थान प्राप्त करेंगी।

६—गुड़-पाक-विज्ञान—लेखक, श्रीयुत माताप्रसाद गुप्त और प्रकाशक, नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ हैं। पृष्ठ-संख्या ८६ और मूल्य ।।) है।

गन्ना हमारे देश की प्रधान खेती है। जब से प्रान्तीय सरकारों ने शक्कर के व्यवसाय की उन्नति की ओर ध्यान दिया है तब से गन्ने की खेती और उसके रस से बने हुए पदार्थों के परिमाण में काफ़ी वृद्धि हुई है, और इस सम्बन्ध में लोगों को दिलचस्पी भी होने लगी है। इस पुस्तक में गन्ने की खेती की विधि और उसके रस से गुड़ तथा विभिन्न प्रकार की मिठाइयाँ बनाने की विधि अच्छे ढंग से समझाई गई है। परिशिष्ट में पूड़ी-कचौड़ी और तरकारियों के बनाने की विधियाँ भी लिखी हैं। लेखक महोदय इस विषय के जानकार हैं, अतः पुस्तक की उपयोगिता और प्रामाणिकता असन्दिग्ध है।

नीति संसार का सुख-संग्रह करके एकान्त में जा छिपने की है। वह संसार को उसके भाग्य पर छोड़ कर स्वयं अनवच्छिन्न सुख का भोग चाहता है।

'विहगकुमार' और 'पावस' रचनायें इस संग्रह में मुझे सबसे अधिक पसन्द आई। उन्मुक्त छन्द में—

इन्द्रधनु सतरंगा
बच्चे जब नभ में लख हर्ष से उछलते हैं,
करगत करने को मा-सम्मुख मचलते हैं,
तब वह कहती बेटा नभ में है स्वर्गंगा
जिसका कि पुल है यह;
इसको हम मध्य लोकवाले न पाते हैं,
दूर है बड़ा ही वह
देख देख इसको हम यों ही ललचाते हैं।

पावस का स्वाभाविक दृश्य उपस्थित करता है। भागते हुए बादलों को देखकर कालिदास की अमर-रचना मेघदूत की सहसा याद आ जाती है—

नभ में बादल जब
पंक्तिबद्ध हो होकर दौड़-सी लगाते हैं
देखा करता जग सब
तब मैं कवि के मृदु-मानस में कह देती हूँ—
'मेघदूतवाले कवि
कालिदास का ये सन्देश लिये जाते हैं।'

—व्रजेश्वर

९—**भारतीय सभ्यता का विकास**—लेखक, श्रीयुत कालिदास कपूर, एम० ए०, एल० टी० हैं। प्रकाशक, नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ है। पृष्ठ-संख्या ८३ और मूल्य ।।) है।

इस पुस्तक में आर्यों के भारत में आगमन और उनके द्रविड़ों के साथ संघर्ष करने से लेकर वर्तमान समय तक के भारतवर्ष के इतिहास का विहंगावलोकन किया गया है। कई उपयोगी चित्र भी दिये गये हैं। जिन लोगों के पास बड़े बड़े पोथे पढ़ने के लिए समय नहीं है वे इसके द्वारा भारतीय इतिहास के विषय में बहुत कुछ जानकारी हासिल कर सकते हैं। भाषा और वर्णनशैली रोचक तथा सरल है।

१०—**अतृप्त मानव**—लेखक, श्री ब्रजेन्द्रनाथ गौड़, प्रकाशक, रत्नमन्दिर, उर्मिला कार्यालय, लखनऊ हैं। ७४ पृष्ठ की पुस्तक का मूल्य ।।) है।

"मैं उस लड़की को अक्सर देखता हूँ।
वह भीख माँगती है।
लेकिन उसका व्यापार भी है कुछ...।
वह कुछ बेचती भी है।

पर मुझे न व्यापारी बनना है, न खरीदार, मैं तो कलाकार बनूँगा।

परन्तु वही 'कलाकार' (?) जो इन पाँच ठिठुकते हुए वाक्यों में 'भिखारिन की लड़की' की कहानी का उपसंहार करता है, पतंगवाले की दूकान मे भीतर, सुनसान हहराती हुई ग्रीष्म की दोपहरी में जाकर उसकी १५ मिनट की वीभत्स लीला देख आता है; और उस जघन्य कर्म के शुल्करूप एक पैसे की प्राप्ति की भी ठीक रिपोर्ट करता है। यद्यपि वह जानता है कि लड़की के इस क्रय-विक्रय में 'कला' नहीं है; न सुरुचि है; 'सत्य' भले ही हो।

"बोलिए न, क्यों नहीं आते आप?"

'शहर के बाहर एक बँगले में रहनेवाली' का अचानक आफ़िस में पहुँचकर यह प्रश्न कर बैठना, और वह भी आँखों मे आँसू भर कर, बेचारे पत्रकार को संकट में डाल देता है। ६००) मासिक पानेवाले साहब पत्र-द्वारा कलाकार जी को अपने घर जाने से मना करते हैं, पर उनकी नवोढ़ा, साहित्यिक और शहर की सर्वश्रेष्ठ सुन्दरी पत्नी? वह किसी योग्य गुण-ग्राहक की ओर क्यों न आकृष्ट हो? क्या धनोपार्जन ही जीवन का एक ध्येय है? क्या ५-६ सौ माहवार लाकर हाथ पर रख देने से ही नारी के प्रति कर्त्तव्य की पूर्ति हो जाती है? फिर 'कलाकार' जी और 'बँगले की रानी' की यदि कविता की इस पंक्ति को—ओ विवाह तू मिट जाता तो हम निज मिलन अनन्त बनाते।—अपना 'मोटो' बनायें तो अनुचित क्यों है?

मानव की इच्छायें कभी तृप्त नहीं हो सकतीं, किसी जीव की नहीं हो सकतीं; फिर वे कभी 'कुमुद' की भाँति अगर धनराशि की पोटली काँख में दबाकर और बरसाती ओढ़कर भादों की अँधेरी रात में घर से निकल पड़ती हैं या चिड़िया की भाँति चीख मारकर अनन्त नभ के चक्कर लगाने लगती हैं; कभी बंगाली लड़कियों के रूप में "सरकारी लाइब्रेरी के पीछे सात बजे के बाद अवश्य दर्शन दीजिए" अभ्यर्थना करती है। और मानव की इसी

प्रतिदिन की अनुभूति में कलाकार को क़लम चलाने का मसाला मिल जाता है। अपने इस दुस्साहस के लिए वह उन युवतियों की मा की सौ-पचास गालियाँ भी सुनने को तैयार रहता है।

संग्रह में कुल १२ कहानियाँ हैं जो यथार्थवाद के आधुनिक आदर्श पर लिखी गई हैं। सबमें हृदय के एक अभाव, उस अभाव की पूर्ति के लिए प्रयत्न और उसमें असफलता होने के कारण चिरस्थायी अतृप्ति का चित्रण किया गया है। शैली स्वाभाविकता तथा रोचकता लिये हुए है।

—ब्रजेश्वर

११—प्रवासी की कहानी—लेखक, श्रीयुत भवानीदयाल संन्यासी, प्रकाशक, कलकत्ता पुस्तक-भण्डार, १७१ ए० हरिसन रोड, कलकत्ता हैं। मूल्य २॥) और पृष्ठ-संख्या २७९ है।

साहित्य में आत्म-कथा का विशेष स्थान है। महापुरुष आत्मख्याति के लोलुप नहीं होते, इसलिए वे अपनी जीवन-गाथा को पुस्तकाकार नहीं लिखते। इसका परिणाम यह होता है कि समय के प्रवाह में उनके जीवन-वृत्त खो जाते हैं और जनता उनसे लाभ उठाने में असमर्थ हो जाती है। भारतीय साहित्य में आत्म-कथा का बिलकुल ही अभाव है। बड़े-बड़े महापुरुषों ने अपने जीवन को सदैव ही छिपाये रखने का प्रयत्न किया है। परन्तु इधर कुछ दिनों से कुछ व्यक्तियों का ध्यान आत्म-कथा लिखने की ओर आकर्षित हुआ है। महात्मा गांधी की 'आत्मकथा' ही हिन्दी की सम्भवतः सर्वप्रथम उल्लेखनीय आत्म-कथा है। उसके बाद पंडित जवाहरलाल नेहरू की 'मेरी कहानी' ने काफ़ी ख्याति प्राप्त की। स्वामी भवानीदयाल संन्यासी भारत की उन विभूतियों में हैं जिन्होंने अपना सम्पूर्ण जीवन प्रवासी भारतीयों के लिए अर्पित कर दिया है। प्रस्तुत पुस्तक में उन्होंने अपनी कहानी अत्यन्त रोचक शैली में वर्णन की है। भाषा आकर्षक तथा परिमार्जित है। पुस्तक पढ़कर दक्षिण-अफ्रीका के गोरों-द्वारा प्रवासी भारतीयों पर होनेवाले अत्याचारों की, प्रवासी भारतीयों के दुःखमय जीवन की, उनके संक्षिप्त इतिहास की एक झाँकी प्राप्त हो जाती है। यह पुस्तक स्वामी जी की आत्मकथा नहीं, बल्कि प्रवासी भारतीयों के पशुवत् जीवन की सजीव तसवीर है। कथा का निर्वाह ऐतिहासिक ढंग से किया गया है। प्रत्येक राष्ट्रप्रेमी के निकट पुस्तक पठनीय है।

१२—कुकड़ूँ कूँ—लेखक श्री 'कुटिलेश', प्रकाशक, श्री जी० एल० शर्मा, मुस्कान-मंदिर, ७-१ बाबूलाल लेन, कलकत्ता हैं। मूल्य १), पृष्ठ-संख्या १०४ है। छपाई-सफ़ाई और गेटअप अच्छा है।

पुस्तक में एक ताम्रचूड़ की कुकड़ूँ कूँ ही है, जिसके अन्तर में मुस्कान और व्यंग्य का कुछ 'डाइनामाइट' सुरक्षित है। पुस्तक में उसी 'डाइनामाइट' के कुछ कण दृष्टिगोचर होते हैं। हिन्दी-साहित्य में हास्य-रस की चुटकियों का एक प्रकार से अभाव ही है। 'बेढब' बनारसी, महाकवि 'चोंच' आदि लेखक भी इस प्रकार की चुटकियाँ लिखते हैं, परन्तु कुटिलेश जी की शैली सबसे भिन्न है। 'बेढब' बनारसी की भाँति कुटिलेश जी के छीटों में निम्न श्रेणी का हास नहीं है। व्यक्तिगत आक्षेप और व्यंग्य उनकी हँसी के आधार नहीं हैं। उन्होंने घटनाओं की विचित्रता और काकु व वक्रोक्तियों के द्वारा ही पाठकों को गुदगुदाने का प्रयत्न किया है। रचना गद्य-पद्यमय है। 'ससुराल की चौंवली' और 'ब्रेडू सरदार' की राजनीति-पटुता पढ़कर बरबस हँसी अधरों पर खिंच आती है। लेखक महोदय 'पैरोडी' लिखने में अधिक सफल हुए हैं। 'अपटूडेट साखी', 'दिव्य दोहावली', 'गड़बड़ रामायण', 'मधुशाला', 'भाभी महिमा' आदि मज़ेदार रचनायें हैं। 'मधुशाला' का एक उदाहरण देखिए—

धुमिकार में चढ़ी मिलेगी अगर कहीं कोई बाला,
आते नीचे देख पड़ेगी उसे हमारी मधुशाला।
पंडित पंडे और पुरोहित व्यर्थ जपेंगे क्यों माला,
अगर बताई किसी दोस्त ने उन्हें हमारी मधुशाला।

और देखिए—

ज्यों तिरिया पीहर बसै, सुरति रहै प्रिय माँहि;
सम्पादक 'ठकसैक्ट' यों 'ऐक्ट' बिसारे नाँहि।

× × ×

ब्याह-चिंता टुटपुँजी, नाम छपे से काज,
'रहिमन' मूत बुझाइए, कैसहु मिटै अनाज।

× × ×

समय जान गुरु आयस पाई।
वायस्कोप चले दोउ भाई॥

पुस्तक पाठकों का मनोरंजन करने में समर्थ होगी।

१३—**वीर वालि**—लेखक, श्री गुरुनारायण सुकुल, विशारद; प्रकाशक, भार्गव-पुस्तकालय, गाय-घाट, काशी हैं। मूल्य ॥), पृष्ठ-संख्या ८० है। छपाई-सफ़ाई सुन्दर है।

वालि की कथा विस्तारपूर्वक कही नही मिलती। केवल वाल्मीकि-रामायण में ही कुछ विस्तार से है। प्रस्तुत पुस्तक में वाल्मीकि-रामायण के आधार पर वालि की जीवन-गाथा दी गई है। कुशल लेखक ने यत्र-तत्र कल्पना की सफ़ेदी से कहानी को और भी आकर्षक बना दिया है। शैली वर्णनात्मक होने के कारण पढ़ने मे उपन्यास का-सा मजा आता है। वालि के चरित्र को लेखक ने अत्यन्त प्रभावशाली बनाने के लिए 'दोषी कौन' शीर्षक अध्याय में उसके सभी दोषों का परिष्कार कर दिया है। जब वालि रामचन्द्र जी का वाण खाकर गिर पड़ा तब उसमें उठने की शक्ति न थी, परन्तु साहस फिर भी शेष था। उसने छिपकर मारने के लिए रामचन्द्र को बुरा-भला कहा। रामचन्द्र जी ने कहा—"वानर! अर्थ, धर्म, काम और लौकिक आचार को बिना जाने तुम मेरी निन्दा करते हो.........यह समस्त पृथ्वी इक्ष्वाकुओं की है। अतएव पशु-पक्षी तथा मनुष्यों को दया और दण्ड देने का उन्हे अधिकार है।........तुम्हारा वध शास्त्र की आज्ञा से धर्म की रक्षा के लिए हुआ है। ......दण्ड पाने से आपका पाप दूर हो गया और......आपने अपनी धर्मगति पाई।" इस प्रकार लेखक ने वालि-वध को धार्मिक कृत्य सिद्ध करते हुए रामचन्द्र को निर्दोषी बताने का प्रयास किया है। भाषा परिमार्जित है।

१४—**पाञ्चजन्य**—लेखक, पंडित ज्वालाप्रसाद ज्योतिषी बी० ए०, 'कमलेश', प्रकाशक, मास्टर बलदेवप्रसाद, पुस्तकप्रकाशक एवं विक्रेता, सागर (म० प्र०) हैं। मूल्य ॥), पृष्ठ-संख्या ६८ है।

'पाञ्चजन्य' के कवि के हृदय मे राष्ट्रीयता का तूफ़ान है; वह संसार में एक महाक्रान्ति ला देने को उत्सुक है। अपनी गुलामी के विरुद्ध उसका हृदय विद्रोह कर उठा है—

महाक्रान्ति के अग्रदूत हम,
खतरों की मंज़िल के राही,
पाञ्चजन्य के एक नाद पर
मिटनेवाले वीर सिपाही।

इन्हीं चार पंक्तियों में कवि की सारी कविता निहित है। आत्म-विश्वास और दृढ़ निश्चय मे पला हुआ उसका हृदय कहता है—

जो भी हो, हमको विधान ये
आज पलट करके जाना है।

परन्तु इसके बदले में वह ससार से कुछ पाने का इच्छुक नही। वह कहता है—

हमें मोह है कब श्रद्धा की
अंजलियाँ जग से पाने का।

और ठीक भी है। अपनी आज़ादी के लिए कुछ करनेवाले को यश की चिन्ता होना कहाँ तक उचित है? सम्पूर्ण पुस्तक में कुल १२ कवितायें है। सभी मे एक ही उद्देश्य, एक ही पुकार और एक ही आकांक्षा है। जिस वीर-रस का कवि महोदय ने परिपाक करने का प्रयत्न किया है उसके उपयुक्त ओजस्वी भाषा नहीं है। फलतः भावों में यत्र-तत्र शैथिल्य आगया है। कहीं-कही तो केवल तुकबंदी-मात्र है। 'मेरे लल्ला', 'सिपाही' और 'सांध्य पथ पर' कवितायें अच्छी है। मूल्य कुछ अधिक है।

—अनन्तप्रसाद विद्यार्थी, बी० ए०

सम्मेलन क्यों मर रहा है ?

लेखक, पंडित वेंकटेश नारायण तिवारी

न्दी-साहित्य-सम्मेलन की आज दिन बुरी दशा है । हिन्दी-भाषी उससे निराश हो चुके हैं । उस पर लोगों की न तो अब श्रद्धा रह गई है और न उसके संचालकों की कार्यशीलता में किसी को विश्वास ही है । इसका कारण प्रत्यक्ष है । सम्मेलन में नये भावों और नवीन विचारों का अभाव है । उसके प्राण-पखेरू वर्षों पहले उड़ गये । अब तो पुरानी लकीरों पर लढ़िया किसी तरह से डगर-मगर घिसट रही है; और घिसट रही है इसलिए कि कोई संस्था रूढ़ि के चंगुल में फँसकर निर्जीव हो जाने पर भी बहुत दिन तक पूर्व-संस्कारों की संचालन-प्रेरणा से येन-केन प्रकारेण पूर्व-परिपाटी की परिक्रमा किया करती है। सम्मेलन की क्यों यह दशा हुई? इसके लिए कौन-से कारण जिम्मेदार हैं ? और सम्मेलन को फिर से जिलाने के लिए किन साधनों की आवश्यकता है? इन्हीं आवश्यक विषयों पर मैं इस लेख में विचार करना चाहता हूँ।

इस विषय पर लिखने के पहले एक-दो बातों का कह देना जरूरी है, जिससे अनुचित भ्रांति के फैलने की सम्भावना तक न रह जाय । पहली बात तो यह है कि यदि इस लेख में किन्हीं सम्मानित व्यक्ति-विशिष्टों का जिक्र करूँ या उनकी नीति की आलोचना करना ही विषय के प्रतिपादन के लिए मुझे आवश्यक जान पड़े तो इसका अर्थ पाठक यह कदापि न लगायें कि उन सज्जनों के प्रति, उनके वैयक्तिक गुणों के कारण, मेरे हृदय में श्रद्धा नहीं है । उन्होंने अनेक क्षेत्रों में अनेक समयों पर अनेक बार प्रशंसनीय कार्य किये हैं । लेकिन इसका मतलब यह कदापि नहीं हो सकता कि उन्होंने कभी कोई भूल नहीं की या सम्मेलन के सम्बन्ध में उन्होंने जिस नीति का अनुसरण किया है वह सदोष नहीं हो सकती । सम्मेलन के परिमित क्षेत्र तक ही मेरी आलोचना सीमित है । इस सम्बन्ध में पाठकों को एक और भी बात पर ध्यान रखना चाहिए। वह यह है कि मेरा असंतोष किन्हीं व्यक्ति-विशेषों से नहीं है, मतभेद है केवल उनकी नीति से । हिन्दी और सम्मेलन के प्रति उनकी अगाध श्रद्धा और बहुमूल्य सेवाओं को मैं मुक्तकण्ठ से स्वीकार करता हूँ । मेरी यह कदापि नीयत नहीं है कि सम्मेलन के वर्तमान संचालकों और पदाधिकारियों में कोई उलट-फेर हो । मेरी तो इच्छा है कि जो सज्जन इस समय जिस पद को सुशोभित कर रहे हैं वे ही सज्जन इन पदों को अनन्त-काल तक सुशोभित करते रहें। मुझे यह लिखते हुए खुशी है कि जहाँ तक मुझे मालूम है, कहीं किसी के हृदय में भी किसी व्यक्ति-विशेष को सम्मेलन से हटाने या निकालने की भावना विद्यमान नहीं है । हिन्दी-जगत् में कार्यकर्ताओं की यों ही कमी है। इसलिए जो सज्जन स्वेच्छा से इस काम के लिए अपना अनमोल समय देने की कृपा करते हैं उनका मुझे कृतज्ञ होना चाहिए। मैं चाहता हूँ कि मेरे लेख को सम्मेलन के पदाधिकारी सद्भावना से पढ़ने और उस पर शांत चित से मनन करने की कृपा करें । सम्भव है कि मेरी बातें भ्रान्ति-मूलक और सदोष हों ।

कम-से-कम मैं अपने सम्बन्ध में केवल इतना ही कहना चाहता हूँ कि हिन्दी के प्रति मेरी अगाध श्रद्धा है और जब से मैंने १९१० में प्रयाग-विश्वविद्यालय छोड़ा तब से आज तक हिन्दी की सेवा में मेरा उत्साह न तो क्षीण हुआ और न कभी राजनीतिक लाभालाभ की दृष्टि से अपने भाषा-सम्बन्धी ईमान के सौदा करने के प्रलोभन का शिकार ही बना । मेरा लक्ष्य हिन्दी का उत्थान रहा है। इसी ध्येय की सिद्धि में मैंने न बांकीपुर और न वर्धा के संकेतों पर आँख मूँद कर चलना ही सीखा, क्योंकि मेरा अटल विश्वास है कि भाषा के सम्बन्ध में अस्थायी समझौते से काम कभी निभ नहीं सकता । सम्मेलन के प्रतिष्ठित पुजारियों का यद्यपि मैंने सदा आदर किया है, लेकिन मेरा यह दुर्भाग्य है कि उनकी नीति का मैं हर मौक़े पर प्रशंसक न रह सका, यद्यपि इसकी इच्छा सदा मेरे हृदय में मौजूद थी ।

आइए, अब मुख्य विषय पर उतर आयें। सम्मेलन के वर्तमान प्रधान मंत्री के पद को सुशोभित करनेवाले सज्जन का नाम डाक्टर बाबूराम सकसेना है। आप बड़े

ही सज्जन हैं, धुरन्धर विद्वान् हैं, और आर्य-संस्कृति में आपकी अपूर्व निष्ठा है। इन तीनों ही गुणों के कारण आपके व्यक्तित्व के प्रति मेरे हृदय में पूर्ण श्रद्धा है। तीन साल से आप सम्मेलन के प्रधान मंत्री के पद को सुशोभित कर रहे हैं। हाल ही में आपने समाचार-पत्रों में सम्मेलन की सफ़ाई मे एक लम्बा-चौड़ा वक्तव्य प्रकाशित किया है। वक्तव्य है सम्मेलन की सालाना रिपोर्टों का कोरा संक्षिप्त विवरण। लेकिन यह केवल संक्षिप्त विवरण-मात्र ही नहीं है। इसमे सम्मेलन के आलोचकों की व्यक्तिगत आलोचना है; श्री पुरुषोत्तमदास जी टंडन की भूरि-भूरि प्रशंसा है; उनकी तपस्या की चर्चा और लोकमत में उनकी श्रद्धा का बखान है; और है खुद डाक्टर साहब के 'उच्चस्वर से' पक्षपातरहित 'सोचने' की प्रवृत्ति का अभूतपूर्व उदाहरण !

'आपन मुख निज आपन करनी,
भाँति अनेक बार बहु बरनी।'

डाक्टर बाबूराम साहब के इस वक्तव्य के पढ़ने के बाद बाइबिल की प्रारम्भिक पुस्तक के पहले अध्याय की बरबस याद आ जाती है। उसमें लिखा है कि खुदा ने एक के बाद एक वस्तु की सृष्टि की और उसी सृष्टि को देखकर खुदा प्रसन्न हुआ और उसने कहा, 'यह अच्छी है। यही हाल हमारे डाक्टर बाबूराम सक्सेना का है। जिस ललक से बाबूराम सकसेना ने सम्मेलन के विभिन्न कार्यों का जिक्र किया है उससे बाइबिल के खुदा की याद आ जाती है। उस खुदा ही की तरह डाक्टर साहब अपने कार्य्य को देखकर कह पड़ते हैं कि यह भी अच्छा है, वह भी अच्छा है।

यदि सभी अच्छा ही अच्छा है तो फिर क्या कारण है कि सम्मेलन के प्रति जनसाधारण की उदासीनता दिन प्रतिदिन बढ़ती ही जाती है और क्या कारण है कि कोई भी कार्यशील पुरुष या तो उसके पास नही फटकना चाहता या यदि भूले से वहाँ तक पहुँच भी गया तो जल्द से जल्द वहाँ से भाग निकलने ही में अपनी बचत सोचता है ? क्या कारण है कि सम्मेलन के विषय मे सन् १९१० में लोगों को जो जोश था वह अब ठंडा हो गया है और क्या कारण है कि धरातल पर अशान्ति और असन्तोष की भावनायें जोर पकड़ती जाती है ? क्या सम्मेलन को जनता से उसी प्रचुर परिमाण में दान पिछले साल भी मिला, जिस प्रचुर परिमाण में उसके प्रारम्भिक वर्षो में उसे मिला करता था ? क्या कारण है कि हिन्दी के ऊपर जब सबसे बड़ा संकट आया उस समय हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन निश्चेष्ट पड़ा रहा; सब कुछ देखते हुए भी उसने देखने से इनकार किया; सब कुछ सुना लेकिन सबको अनसुना कर दिया; सब जाना लेकिन जानते हुए भी अनजान बना रहा। क्या डाक्टर बाबूराम सक्सेना सम्मेलन की वर्तमान कार्य-पद्धति से सन्तुष्ट हैं ? क्या वे यह नही समझते कि सम्मेलन-पथ भ्रष्ट हो रहा है और अपने कर्तव्य से मुख मोड़ने के कारण वह लोगों के उपहास और तिरस्कार का लक्ष्य बन गया है? माना कि आदरणीय निराला जी, डाक्टर बाबूराम सकसेना की निगाह में, केवल अव्यावहारिक कलाविद् हैं और कलाकार होने के कारण वे 'निरंकुश जीव' भी हैं। लेकिन व्यावहारिक होना एक बात है और व्यापारी होना दूसरी बात। विचारणीय बात तो यह है कि जिनके हाथ में वर्षों से सम्मेलन के संचालन की बागडोर है क्या वे केवल व्यावहारिक हैं या अपने सार्व-जनिक स्वार्थ-हितों के कुशल व्यापारी हैं? व्यापारी भी तो व्यावहारिक होने की सदा दोहाई दिया करता है, लेकिन उसके आदर्श संकीर्ण और सकुचित होते हैं। उसकी स्वार्थ-परता बहुत परिमित होती है, उसका दृष्टिकोण बहुत सीमित होता है, और उसकी कार्यशैली भौतिक लाभालाभ की भावनाओं से संचालित और प्रेरित हुआ करती है।

डाक्टर बाबूराम सकसेना ने 'वीणा' के सम्पादक को खरी-खोटी सुनाने की भी कृपा की है, क्योंकि 'वीणा' के सम्पादक की राय में सम्मेलन 'हिन्दी-साहित्यिकों की अवहेलना' करता है और 'राजनीतिकों को आश्रय देता है।' डाक्टर साहब ने इसके उत्तर मे जो बात कही है उसे पढ़कर श्री राजेन्द्रप्रसाद, श्री पुरुषोत्तमदास टंडन या श्री सम्पूर्णानन्द जी कभी सुखी न होंगे। आप लिखते हैं, 'साहित्यिक और उनके अनुयायी तो जानते हैं कि सम्मेलन का सभापति-पद एक ऐसा फल है जो इच्छा करने-मात्र से ही उनके मुँह में गिर पड़ना चाहिए। दूसरी ओर राजनीतिक कार्यकर्ता सार्वजनिक प्रजा-सत्तात्मक संस्था का अनुभव रखता है। जो बात वह थोड़ा ही हाथ पैर हिला लेने से नसीब कर लेता है वह साहित्यिक को नसीब नही होती। सम्मलेन सार्वजनिक संस्था है और उसमे वही सब गुण-अवगुण वर्तमान

हैं जो सार्वजनिक लोकमत पर चलनेवाली संस्था में होते हैं। फिर खीझना बेकार है।'

क्या डाक्टर साहब यह कहते हैं कि यदि श्री राजेन्द्र-प्रसाद, श्री पुरुषोत्तमदास टंडन या सम्पूर्णानन्द जी सम्मेलन के सभापति चुने गये तो वे इसलिए चुने गये कि उन्हें 'सार्वजनिक प्रजासत्तात्मक संस्था का अनुभव' था, अतएव 'थोड़ा ही हाथ पैर' हिलाकर उन्होंने इस पद को प्राप्त कर लिया? मुझे यह वाक्य पढ़कर आश्चर्य हुआ। मैं यह कभी मानने के लिए तैयार नहीं हूँ कि श्री पुरुषोत्तमदास जी, श्री राजेन्द्रप्रसाद जी या श्री सम्पूर्णानन्द जी ने अपने को सम्मेलन के सभापति चुनने के लिए किसी प्रकार की भी प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष चेष्टा की हो। सम्मेलन के सम्मानित सभापतियों पर इस तरह का सर्वथा निन्द्य और निस्सार लाञ्छन लगाने का अधिकार श्री बाबूराम सकसेना को, सम्मेलन के प्रधान मंत्री होने की हैसियत से भी, किसी प्रकार प्राप्त नहीं हो सकता। इस तरह का आक्षेप इन व्यक्तियों के प्रति घोर अन्याय है। लेकिन 'समरथ को नहिं दोष गोसाईं'। यह ठीक है कि डाक्टर साहब संस्कृत के धुरन्धर विद्वान् हैं। यह भी ठीक है कि लोग उन्हें शब्द-शास्त्री भी समझते हैं; लेकिन डाक्टर साहब 'राजनीतिक' नहीं हैं और न उन्हें 'सार्वजनिक प्रजासत्तात्मक संस्था का अनुभव' ही है। इसलिए शब्दशास्त्री होते हुए भी यदि वह शब्दों का उचित प्रयोग नहीं कर सकते तो कम से कम मुझे तो इसमें कुछ भी अचरज नहीं होता। सकसेना साहब भी वैसे ही 'डाक्टर' हैं जैसे 'डाक्टर' अलीगढ़ के डाक्टर जियाउद्दीन अहमद साहब या सर सफ़ाअत अहमद हैं। 'डाक्टर' बाबूराम सकसेना यदि शब्दों का उचित प्रयोग करना जानते होते तो वह इन तीनों आदरणीय व्यक्तियों के प्रति इस तरह के घृणित आरोप लगाने की धृष्टता कदापि न करते। लेकिन उनकी इस बेजा हरकत पर, डाक्टर बाबूराम सक्सेना ही के शब्दों में 'खीझना बेकार' है। वह कहते हैं, और दावे के साथ कह सकते हैं, 'सैंया भये कोतवाल, अब डर काहे का'। जब तक अपने सैंया में उनकी मनसा, वाचा, कर्मणा अटल भक्ति है तब तक उनका सोहाग बर क़रार बना रहेगा, और वह चाहे जो अपराध करें और चाहे जिस भले आदमी पर कीचड़ फेंकें या उसकी पगड़ी उछालें, उनसे कोई कुछ कहनेवाला नहीं है। कहने की बात तो दूर रही, कोई उनकी ओर नज़र उठाने की भी जुर्रत नहीं कर सकता। लेकिन यदि श्री बाबूराम सक्सेना की करतूतों को देखकर 'खीझना बेकार' है तो क्या हम श्री टंडन जी से यह नहीं पूछ सकते कि क्या उनके प्रधान मंत्री ने सभापति के निर्वाचन के सम्बन्ध में जो कुछ लिखा है उसे वह ठीक समझते हैं? क्या वह यह कहने को तैयार हैं कि 'उदाहरण के लिए श्री सम्पूर्णानन्द जी ने अपने को सभापति चुनाने के लिए दौड़-धूप की, क्या थोड़ा-सा भी हाथ-पैर हिलाया? मुझे मालूम है कि वह सभापति के झगड़े में पड़ना भी नहीं चाहते थे, बहुत मुश्किल से वह इस बात के लिए राजी हुए थे कि वह सभापति चुने जाने पर इस पद को अस्वीकार न करें। जो श्री सम्पूर्णानन्द जी के विषय में ठीक है वही बात श्री पुरुषोत्तमदास जी टंडन के सम्बन्ध में भी ठीक है। दिवंगत गणेशशंकर विद्यार्थी पर भी डाक्टर बाबूराम सक्सेना के इस निस्सार और घृणित लांछन का छींटा पड़ता है, क्योंकि वह भी 'राजनैतिक' थे और दुर्भाग्य (!) से उन्हें भी गोरखपुरवाले सम्मेलन में सभापति के आसन को सुशोभित करने की जिम्मेदारी स्वीकार करनी पड़ी थी। मैं पूछता हूँ कि डाक्टर बाबूराम सक्सेना का यह कहना ठीक है—'राजनैतिक कार्यकर्ता' सम्मेलन के सभापति के पद को प्राप्त करने के लिए 'हाथ-पैर हिलाता' है? सम्मेलन की स्थायी समिति को चाहिए कि वह अपने प्रधान मंत्री से इस कथन को सप्रमाण सिद्ध करने को कहे या सम्मेलन के 'राजनैतिक' सभापतियों से माफ़ी मँगवाये।

आगे चलकर डाक्टर साहब फ़रमाते हैं कि यह धारणा कि सभापति-निर्वाचन अथवा अन्य निर्वाचन में सम्मेलन के प्रधान मंत्री आदि अपना प्रभाव डालकर हस्तक्षेप करते हैं, निर्मूल है। जहाँ तक डाक्टर साहब का तअल्लुक़ है वहाँ तक उनके इस आश्वासन को सहर्ष स्वीकार करने को तैयार हूँ कि ऐसे मामलों में वह तटस्थ रहते हैं। लेकिन यह समझ में नहीं आता कि उन्होंने श्री पुरुषोत्तमदास टंडन की ओर से सफ़ाई देने का कष्ट क्यों उठाया। टंडन जी यदि चाहते तो खुद अपनी सफ़ाई अपने शब्दों में दे सकते थे। साथ ही डाक्टर बाबूराम सक्सेना को यह न भूलना चाहिए कि सम्मेलन के कई भूतपूर्व मंत्री प्रयाग ही में रहते हैं। क्या डाक्टर सक्सेना

ने उनसे भी इस विषय में कभी बातचीत करने का कष्ट उठाया है ? हाँ यदि श्री टंडन जी चाहें तो हमें वह यह बताने की कृपा कर सकते हैं कि उन्होंने कभी ऐसे मामलों में खुद हस्तक्षेप किया या दूसरों को हस्तक्षेप करने के लिए प्रेरित किया है या नहीं। कम से कम मैं तो उनके कथन को निस्संकोच भाव से स्वीकार कर लूँगा; लेकिन यहाँ पर उनके नाम को घसीटने की क्या जरूरत थी, यह मेरी समझ में नहीं आता है। मेरी समझ में आये या न आये, इससे किसी को क्या सरोकार? हाँ, टंडन जी यदि चाहें तो डाक्टर सक्सेना से वह भले पूछताछ कर सकते हैं। वास्तव में क्या यह सही है कि टंडन जी की अनुमति से डाक्टर बाबूराम सक्सेना ने अपनी सफ़ाई के साथ ही साथ उनकी ओर से भी सफ़ाई देने की कृपा की है ?

टंडन जी की प्रशंसा डाक्टर बाबूराम सक्सेना ने अपने वक्तव्य में जगह-जगह पर की है। (जो इस प्रशंसा का पात्र बनाया गया है उसे अपने नादान दोस्त की इस वफ़ादारी से पीड़ा ही पहुँची होगी।) एक जगह आप लिखते हैं कि वह 'सार्वजनिक लोकमत के पक्के पोषक हैं और लोकमत के अनुकूल झुकते हैं'। दूसरी जगह आपने लिखा है कि 'सम्मेलन श्री पुरुषोत्तमदास टंडन के सारे जीवन की तपस्या' का फल है। उनको यह संस्था 'सन्तान-वत् प्रिय' है और 'वह सदा इसका ध्यान रखते हैं'। दूसरी जगह डाक्टर साहब फ़र्माते हैं, 'उन्होंने यह संस्था बनाई है'। श्री टंडन जी ने एक बार भी नियमों का उल्लंघन नहीं किया। नियमानुकूल सदस्यों को साथ लेकर चलते हैं। ऐसी दशा में डाक्टर बाबूराम सक्सेना साश्चर्य पूछते हैं—'सम्मेलन पर 'डिक्टेटरशिप' का लाञ्छन करना' क्या अनुचित नहीं है ? (चलते हुए क्या मैं यह पूछ सकता हूँ कि 'लाञ्छन करना' ठीक है या लाञ्छन लगाना ?)

टंडन जी की प्रशंसा श्री सक्सेना जी के मुखारविन्द से सुनकर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई। स्तुति यद्यपि गद्यमय है परन्तु है वह पद्यात्मक गद्य में। जिस किसी को गद्य में पद्य की रचना की सार्थकता में अविश्वास हो, उसे इस स्तोत्र को पढ़कर अपनी शंका का समाधान कर लेना चाहिए। स्तुति पद्यात्मक गद्य में है। अतएव यदि उसमें डाक्टर साहब ने अतिशयोक्ति से काम लिया है तो इसे तो सफल कवि की कला का एक सहज अलंकार-मात्र ही समझना चाहिए। श्री टंडन जी को श्री बाबूराम मुबारक और श्री बाबूराम जी को बाबू जी मुबारक, और दोनों को सम्मेलन मुबारक और दोनों सम्मेलन को मुबारक। इस त्रिमूर्ति के 'जंगम जोगू' को देखकर हिन्दी-जगत् तो हतबुद्धि हो गया है। इसी लिए डाक्टर साहब को यह रोना पड़ता है कि उन्हें 'हिन्दीवालों की उदासीनता देखकर क्षोभ और ग्लानि होती है।' उदासीनता तो नितान्त अक्षम्य है। ग़ालिब का शेर है—

'क़ता तअल्लुक़ न कीजिए हमसे,
कुछ नहीं है तो अदावत ही सही'।'

डाक्टर साहब शिकायत करते हैं कि 'हिन्दी जनता चुप बैठकर अपनी और अपनी संस्था की कमज़ोरी दिखाती है।' सम्मेलन, श्री टंडन जी और डाक्टर बाबूराम सक्सेना—इस त्रिमूर्ति की मनोहर झाँकी देखने के लिए जनता का ठट्ठ नहीं लगा रहता, यही क्या कम अचरज की बात है। डाक्टर साहब, व्यथित हैं, खिन्न हैं और परेशान होकर पूछते हैं कि सम्मेलन क्या करे और क्या न करे। उन्हें 'क्षोभ' और 'ग्लानि' होती है। हमें उनके इस मानसिक व्यथा पर उनके साथ पूर्ण सहानुभूति है। कितने दुःख की बात है कि एक रुपया वार्षिक चन्दा देने के लिए भी हिन्दीवालों में उत्साह नहीं दिखलाई देता है—उस पर सम्मेलन पत्रिका मुफ़्त में! हाय, मुफ़्त पत्रिका के इस प्रलोभन से भी हिन्दीवाले अपनी टेंट से एक रुपया निकालकर सम्मेलन की मेम्बरी ख़रीदना पसन्द नहीं करते! ठीक है, डाक्टर बाबूराम सक्सेना को यह सब देखकर 'क्षोभ और ग्लानि' होनी ही चाहिए। डाक्टर सक्सेना का-सा प्रधान मंत्री पाकर भी हिन्दीवाले यदि सम्मेलन के कोष में तड़ातड़ रुपये फेंकना शुरू नहीं करते तो विस्मय और अचरज अवश्य होना ही चाहिए। हम भी हिन्दीवालों से प्रार्थना करते हैं कि वे जल्द से जल्द अपनी टेंट से एक रुपया निकाल करके सदस्यता के परम पद को प्राप्त कर लें ताकि सहज ही में सम्मेलन के मन्दिर में जाकर लोकमत की आराधना में लीन और बाबूराम जी तथा इन्हीं के-से अन्य साथियों-द्वारा अर्चित 'तपस्वी' की अपूर्व झाँकी का सहज ही में दर्शन लाभ कर अपने को कृतकृत्य कर सकें।

सन् १९१० में सम्मेलन की स्थापना हुई थी। तब से अब तक ३० साल बीत चुके। इस सुविस्तृत अवधि के अधिकांश में टंडन जी और उनके साथियों की सम्मेलन में तूती बोलती चली आई है। उनकी सत्ता अविरोध रही, उनकी प्रभुता के आतंक के सामने दूसरे या तो चुप रह गये या बाहर जा कर तमाशा देखने लगे। उन्होंने टंडन जी की 'तपस्या' में किसी प्रकार की विघ्न-बाधा नहीं डाली, क्योंकि ऐसा करना उन्होंने संस्था और हिन्दी के हित में उचित नहीं समझा। फिर क्या कारण है कि यद्यपि सम्मेलन टंडन जी की 'तपस्या' का फल है और उन्होंने अपनी जिन्दगी के तीस साल उसकी सेवा में लगा दिये तो भी आज दिन डाक्टर साहब को हिन्दीवालों की उदासीनता देखकर क्षोभ और ग्लानि से व्यथित होना पड़ता है? कितना कारुणिक डाक्टर साहब का क्रन्दन है कि भाई, उदासीनता तो छोड़ दो, सहयोग करो या न करो, कम से कम हमें इतना जलील तो न समझो कि हमसे किसी तरह की अदावत तक करने को भी अपने लिए अपमान-जनक समझने लगो! जिस शासन का यह परिणाम हो उस शासन की नग्न असफलता को प्रकट करने के लिए अधिक शब्दों के कहने की ज़रूरत नहीं रहती। टंडन जी की 'तपस्या' सम्मेलन को उसी तरह फली, जिस तरह अमरबेलि की तपस्या आम के पेड़ को फलती है। टंडन जी की 'तपस्या' के नाम पर यदि डाक्टर बाबूराम सक्सेना हिन्दीवालों से सम्मेलन के साथ सहानुभूति की भिक्षा माँगना चाहते हैं तो वे भारी भूल कर रहे हैं। डाक्टर साहब आर्य्य हैं, उन्हें सत्यार्थप्रकाश के द्वारा 'तपस्या' की भिन्न भिन्न परिभाषाओं का ज्ञान है। लक्ष्यहीन, ध्येय-वंचित 'तपस्या' निष्फल और अकारथ होगी। सम्मेलन की दुर्गति का कारण है उसके संचालकों की यही कथित 'तपस्या'। उनके पास हिन्दी के उत्थान के लिए न तो कोई सार्थक नीति है और न कोई कार्य-क्रम है। हिन्दी के मामले में भी वे १९४० में वहीं खड़े हैं, जहाँ वे १९१० में खड़े थे। युग बदला पर वे टस से मस न हुए। उदाहरण के लिए एक कथा मैं विस्तार के साथ नीचे सुनाता हूँ।

१९१० में सम्मेलन की नींव पड़ी थी। श्री टंडन जी उसके प्रधान मंत्री चुने गये थे। तब से आज तक सम्मेलन को चलाने में विशेष रूप से टंडन जी का हाथ रहा है। १९१० में टंडन जी की वकालत का आरम्भिक युग था। अदालत में हिन्दी के प्रवेश की चर्चा उन दिनों काफ़ी थी। इसी कार्यक्रम को लेकर टंडन जी उठे। समय समय पर अड़ोस-पड़ोस के ज़िलों का दौरा भी टंडन जी ने उन दिनों किया। वकीलों से भी मिले और उनसे मेल-जोल भी बढ़ाया। १९३९ के अन्त में श्री टंडन जी ने मुझे और श्री चन्द्रबली पाण्डे को इसी १९१० के इसी वकालती लटके को उठाने का 'सत्-परामर्श' दिया। मैंने उनसे उस अवसर पर जो कहा था उसे आज मैं फिर यहाँ पर ज़ोर के साथ दोहरा रहा हूँ— "ज़रूरत है हिन्दी-भाषियों में भाषा-सम्बन्धी चेतना को उत्पन्न करने की। इस काम में सफलता तभी हो सकती है जब संगठित रूप से जनता को जगाने के लिए आन्दोलन किया जाय।" लेकिन टंडन जी और टंडन जी की संरक्षता में काम करनेवाले लोग खुल कर आन्दोलन करने से हिचकते हैं। सम्मेलन तो गुप्ताचारियों का अखाड़ा है। यही कारण है कि प्रयाग की म्युनिसिपैलिटी तक में टंडन जी ने हिन्दी को वह स्थान दिलाने की कभी चेष्टा नहीं की, जिस पर उसका जन्मसिद्ध अधिकार है, यद्यपि श्री टंडन जी इस म्युनिसिपैलिटी के कभी चेयरमैन थे और वर्षों तक उनके साथियों का इस बोर्ड में बोल-बाला रहा। यही कारण है कि बर्धा और वर्धा ने क्या बाँकीपुर ने समय-समय पर हिन्दी के मामले में अनीतिपूर्ण मन्तव्यों को स्वीकार कर लिया, क्योंकि सम्मेलन के अधिष्ठाताओं ने लोकमत को जगाने और संगठित करने की कभी चेष्टा नहीं की। उत्तरी भारत के कांग्रेसी प्रान्तों में विशेषकर युक्त-प्रान्त और विहार में कांग्रेसियों ने हिन्दी के मामले में दृढ़तापूर्वक सम्मेलन के कार्यक्रम को कार्यान्वित करने में कोई विशेष उत्साह नहीं दिखाया। विहार की 'हिन्दुस्तानी कमेटी' कांग्रेसी बहुमत की देन है। नरेन्द्रदेव कमेटी की भाषा और लिपि-सम्बन्धी शिफ़ारिसें कांग्रेसियों की करुणा के कण हैं। लेकिन टंडन जी शुरू ही से राजनीतिक कशमकश के फेर में पड़कर अकर्मण्य बने रहे और उनकी राजनीतिक उलझनों के कारण सम्मेलन के पदाधिकारियों ने भी चुप रहने ही में हिन्दी का हित समझा। पदाधिकारियों की स्वामिभक्ति की, ऐसी दशा में, जितनी प्रशंसा

की जाय, वह थोड़ी है। बेचारे टंडन जी करते क्या? वह तो लोकमत के—डाक्टर बाबूराम सक्सेना के सुन्दर शब्दों में—पक्के पोषक हैं और उन्हें लोकमत के अनुकूल झुकने की सदा से आदत पड़ी है। काश्मीर में हिन्दी के साथ जो अनर्थ हुआ है उसके ख़िलाफ़ यदि सम्मेलन ने चूं तक न की तो इसके लिए कौन ज़िम्मेदार है? सम्मेलन, श्री बाबूराम जी सक्सेना या श्री टंडन जी। जब डाक्टर बाबूराम सक्सेना के पास और कुछ कहने के लिए नहीं रह गया तब लगे ज़ोर-ज़ोर से टंडन जी की 'तपस्या' की दोहाई देने। यह वह 'तपस्या' है, जिसने सम्मेलन को अपाहिज बना दिया और निकम्मा करके छोड़ा जिसके हाथ-पैर में लकवा मार गया, निश्चेष्ट पंगु की तरह पड़ा हुआ वह लोगों के हृदयों में ग्लानि और क्षोभ उत्पन्न करता है, क्योंकि उसने करोड़ों हिन्दी-भाषियों की आशाओं, तमन्नाओं और अरमानों पर अपनी अकर्मण्यता से पानी फेर दिया। जो जनता का दुलारा था, वही आज गुट्टबाज़ों का बन्दी हो गया है। ख़ुद टंडन जी का विकास १९१० के बाद रुक-सा गया। इस मानसिक पक्षाघात ने सम्मेलन की सफलता को नष्ट कर दिया। वह तो स्वयमेव इसी बीमारी का मरीज़ बन गया है। दूसरे यदि सम्मेलन को निर्जीव कहते हैं तो सम्मेलन के प्रधान मंत्री, डाक्टर बाबूराम सक्सेना, इस हद तक तो जाने को आज तैयार नहीं हैं लेकिन वे भी इतना मानने से इनकार नहीं करते कि सम्मेलन यदि 'निर्जीव' नहीं तो उसमें जीवन की कमी तो है।

श्री टंडन जी ने सम्मेलन में किस स्वेच्छाचारिता से काम किया, हिन्दी-विद्यापीठ की कहानी से इस पर ख़ासी रोशनी पड़ती है। सम्मेलन ने इस संस्था को आज से बहुत पहले स्थापित किया था, लेकिन १९३० में सम्मेलन ने इसे एक ट्रस्ट के हवाले कर दिया। ट्रस्ट में श्री टंडन जी का बोलबाला है। कई हफ़्ते हुए मैंने श्री टंडन जी को एक पत्र लिखा कि मुझे हिन्दी-विद्यापीठ की वार्षिक रिपोर्ट और आय-व्यय के चिट्ठे भिजवा दीजिए। उत्तर में श्री टंडन जी ने मुझे सूचना दी कि हिन्दी-विद्यापीठ के मंत्री श्री लालबहादुर शास्त्री के पास उन्होंने मेरी प्रार्थना को उचित कार्यवाही के लिए भेज दिया है, लेकिन आज (अगस्त १४, १९४०) तक न तो श्री टंडन जी ने और न श्री लालबहादुर जी ने ही विद्यापीठ की कोई रिपोर्ट या उसके आय-व्यय का चिट्ठा मेरे पास भेजने की कृपा की है। सुनने में आया है कि अभी कुछ दिन हुए पाँच साल के बाद ट्रस्ट का जलसा हुआ था। ट्रस्ट सार्वजनिक संस्था है। हज़ारों रुपया अब तक इस पर ख़र्च हो चुका है। मैंने भी किसी समय इस विद्यापीठ को डिस्ट्रिक्ट-बोर्ड और संयुक्त-प्रान्त की सरकार से धन की सहायता दिलवाई थी। इस सार्वजनिक संस्था को 'लोकमत के पक्के पोषक' जिस तरह से चलाते हैं उसी से यह बात स्पष्ट है कि कहाँ तक श्री टंडन जी सार्वजनिक संस्था के संचालन में लोगों के प्रति अपने उत्तरदायित्व का आदर करने के लिए तैयार हैं। डाक्टर बाबूराम सक्सेना आपको 'लोकमत का पक्का पोषक कहते हैं', लेकिन यदि दूसरे यह कहें कि डाक्टर बाबूराम सक्सेना को 'लोकमत' का सही अर्थ नहीं मालूम तो ऊपर के उदाहरण को देखने के बाद किसी को किसी प्रकार के मतभेद की गुंजाइश नहीं रह जाती। जिनको डाक्टर साहब लोक-सत्ता कहते हैं वह वास्तव में लोकसत्ता नहीं अनियंत्रित है। अनियंत्रित सत्ता को ही डिक्टेटरशिप कहते हैं। हम सादर डाक्टर बाबूराम सक्सेना से पूछना चाहते हैं कि हिन्दी-विद्यापीठ के सम्बन्ध में टंडन जी के कार्य को वे क्या प्रजासत्तात्मक समझते हैं या स्वेच्छाचारी?

सम्मेलन को स्वेच्छाचारिता से मुक्त करना यही हमारे सामने बड़ा काम है। मानसिक पक्षाघात से मुक्त करना हमारा दूसरा काम है। हिन्दी-भाषियों को भाषा-चेतन बनाना हमारा तीसरा काम है। जब हम इन तीनों बातों को कर लेंगे तभी हम सम्मेलन को एक सच्ची संस्था बना सकेंगे। व्यक्ति की उपासना को छोड़कर सिद्धान्तों के पीछे चलने का हमें अपने आपको अभ्यस्त बनाना चाहिए। कोरी 'तपस्या' के दिन लद गये। सम्मेलन को बुद्धों की ज़रूरत नहीं, सम्मेलन को ज़रूरत है परोपकारी बोधिसत्वों की। मुझे अकर्मण्यों की ज़रूरत नहीं, मुझे तो ज़रूरत है सबल कर्मठों की। मौखिक उत्साह की ज़रूरत नहीं, ज़रूरत है सजग विवेक की और अटल लगन की। इसलिए सम्मेलन को ऐसे लोगों के हाथों से मुक्त करना चाहिए, जो उसे सीढ़ी बनाना चाहते हैं गुरुडम की गद्दी तक पहुँचने के लिए। आत्म-समर्पण, साहस, निर्भीकता, कार्यकुशलता और निःस्वार्थ सेवा की भावना जिस माई के लाल में हो, जिसमें हिन्दी को राष्ट्रभाषा बनाने की एकमात्र महत्त्वाकांक्षा हो उसके हाथ में हमें सम्मेलन की बागडोर सौंपनी है। ३० साल तक राजनीतिक बहुधन्धियों का वह खिलौना बना रहा। अब यदि हमें सम्मेलन को चलाना है तो हमें वैयक्तिक ममता को छोड़ देना चाहिए। हिन्दी की शक्ति अजेय है, अमर है, क्योंकि उसकी शक्ति का वही स्रोत, जो जनता की शक्ति का स्रोत है। भाषा तो जनता की आत्मा का प्रतिबिम्ब है और जाति की प्रतिभा उसको कभी मरने न देगी। जिस सपूत में इस शक्ति के अपनाने का सामर्थ्य हो उसे आगे बढ़ कर इस संस्था का नेतृत्व करना चाहिए।
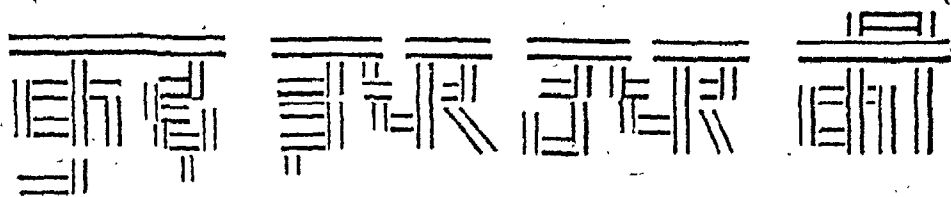
'कलाकार'

हिन्दी में आज कला और कलाकारों का युग है। जहाँ देखो वहीं उनकी चर्चा होती रहती है। जहाँ नहीं होती है, वहाँ हमारे कलाकार अपने आप जा धमकते हैं और बलपूर्वक अपनी चर्चा करवा लेते हैं।

× × ×

कला और कलाकारों की यह चर्चा सुनकर कितने ही हिन्दी-प्रेमियों को भारी सन्तोष होता होगा। और हो क्यों नहीं ? हिन्दी में रवीन्द्र और शरद् के जन्म हो चुके हैं, इसे जानकर किसे खुशी न होगी।

× × ×

परन्तु आश्चर्य तो यह जानकर होता है कि इस कला और कलाकारों के युग का देश के इतिहासकार नाम तक नहीं लेते और जो लेते भी हैं वे या तो उपेक्षा के साथ या व्यंग्यपूर्वक। यह वास्तव में बहुत बड़ा अन्याय है।

× × ×

इस अन्याय के प्रतीकार की जरूरत है, क्योंकि इससे हिन्दी के गौरव को भारी ठेस पहुँचती है—कलाकारों को तो पहुँचती ही है। अतएव हिन्दी-प्रेमियों को ऐसी उथल-पुथल मचा देनी चाहिए कि या तो भारतीय इतिहास के लेखक जल्दी से जल्दी अपने रचित इतिहास-ग्रन्थों में हिन्दी के वर्तमान युग का विश्लेषण करें या उनकी ये अधूरी पुस्तकें ही कालेजों में न पढ़ाई जायें जिनमें हिन्दी के कालिदासों, रवीन्द्रनाथों और शरच्चन्द्रों का सम्यक् परिचय नहीं दिया जाता है।

× × ×

प्रोपेगेंडा

हिन्दी में प्रोपेगेंडा का बाजार-सा लगा हुआ है। जिसे देखो वही अपना प्रोपेगेंडा करता हुआ दिखाई दे रहा है। कोई किसी से पीछे नहीं रह जाना चाहता। अभी तक इसके फेर में कुछ नवयुवक ही थे, पर अब इसका चसका बड़ों बड़ों को लग गया है। एक ऐसे ही सज्जन अपने मित्र की एक रचना की सूचना देते हुए लिखते हैं—

"पर यहाँ पर हम यह लिखना आवश्यक समझते हैं कि जो लेखक और कवि चौबीसों घंटे परलोक, वेदों के पुरातत्त्व थोथे अध्यात्मवाद अथवा गंदे लेखों के लिखने में लगे रहते हैं, अथवा जो यथार्थवाद के नाम पर कुत्सित कृत्यों को जनता के सामने रखते हैं वे सब या तो अजायबघर में शोभा पाने के योग्य हैं या फिर किसी नजरबन्द कैम्प के लायक हैं।"

बहुत ठीक ! परलोक, वेदविद्या जैसे विषयों के लेखक अजायबघर में बन्द कर देने के लायक हैं। और आप जो इस तरह अपने मित्र का प्रोपेगेंडा कर रहे हैं, कहाँ रक्खे जायँगे, यह बताने की कृपा नहीं की।

× × ×

'वीणा' का कर्कश स्वर

हम यही जानते रहे हैं कि वीणा की झनकार मधुर होती है, परन्तु इन्दौर के कुसुमाकर जी ने अपनी 'वीणा' से ऐसा कर्कश सुर निकाला है कि हमारी पहले की जानकारी का भ्रम तत्क्षण दूर हो गया। हम समझ गये कि मधुरता या कर्कशता यंत्र पर नहीं, कलावन्त पर निर्भर करती है। वह जैसा बजायेगा, वैसी चीज बजेगी।

× × ×

सो इन्दौर की वीणा कर्कश ही नहीं, मौक़े बेमौक़े भी बजती है। आगरे के 'सैनिक' के 'संहार' पर भी उसमें सहानुभूति का सुर नहीं निकला और जो निकला वह कटु और तीखा ही निकला।

× × ×

'वीणा' के सौभाग्य से 'सैनिक' के न रह जाने पर उसे बेचारा 'विचार' मिल गया और उसे नतजानु करने के लिए उसने इस बार जो रागिनी छेड़ी है उसे सुनकर लखनऊवाले भी झेंप गये हैं। विन्ध्यवासिनी वीणा से आशा ही और क्या की जा सकती है ? 'विचार' से हमारा अनुरोध है कि वे कर्कशा 'वीणा' को उसके उसी रूप में ग्रहण करें। आखिर वह दुधारु गाय ही तो है।

'क्ष+त्र+ज्ञ'
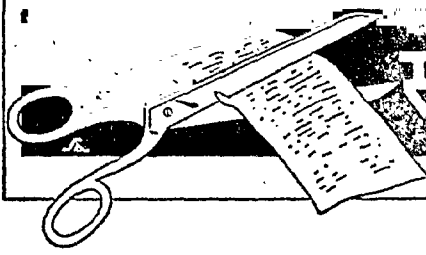
पूना में वायसराय का भाषण

ब्रिटिश सरकार की इच्छा है कि उससे इस संकट-काल में भारत भी अपने पूरे बल के साथ सहयोग करे। इसके लिए भारत के वायसराय लार्ड लिनलिथगो देश के भिन्न भिन्न दलों के नेताओं से उनका सहयोग प्राप्त करने के लिए भेंट-मुलाक़ात कर रहे हैं तथा ब्रिटिश सरकार भारत को क्या राजनैतिक अधिकार देगी, इसका भी अवसर मिलने पर अपने भाषणों में खुलासा करते रहते हैं। अभी हाल में पूना में आपने एक ऐसा ही भाषण किया है, जिसे हम यहाँ 'आज' से उद्धृत करते हैं--

'अत्याचार और आक्रमण के विरुद्ध संसार में जो युद्ध हो रहा है उसमें अपनी शक्ति भर अपना भाग पूरा करने तथा हमारे समान आदर्शों की विजय के लिए यथाशक्ति सहायता करने के लिए भारत में जो उत्सुकता है, वह स्पष्ट है। उसने इस दिशा में अब तक महती सहायता प्रदान की है। वह और भी अधिक सहायता प्रदान करने के लिए उत्सुक है।

सम्राट् की सरकार की यह हार्दिक इच्छा है कि भारतीय राष्ट्र की यह इच्छा जिसके सम्बन्ध में सभी एकमत हैं, जल्द से जल्द पूर्ण होनी चाहिए ताकि वह जो करना चाहता है उसे करने में समर्थ हो। वह समझती है कि अपने इरादों के सम्बन्ध में यदि वह अपने विचार और स्पष्ट करे तो उससे उपर्युक्त एकता की वृद्धि हो सकेगी। इसी आशा के वशीभूत होकर उसने मुझे यह घोषणा प्रकाशित करने का अधिकार प्रदान किया है।

गत आक्टोबर में सम्राट् की सरकार ने पुनः यह स्पष्ट कर दिया कि भारत को औपनिवेशिक पद प्रदान करना उसका लक्ष्य है। उसने यह भी घोषणा की कि वह इस बात के लिए तैयार है कि गवर्नर जेनरल की शासन-परिषद् विस्तृत कर दी जाय जिसमें राजनीतिक दलों के प्रतिनिधि सम्मिलित किये जा सकें। उसने यह प्रस्ताव भी किया कि युद्ध के सम्बन्ध में एक सलाहकार कमेटी स्थापित की जाय ताकि शान्तिपूर्ण सहयोग का मार्ग प्रशस्त हो। यह स्पष्ट है कि केन्द्र में इस प्रकार की व्यवस्था के लिए यह आवश्यक था कि प्रान्तों में बड़े बड़े दलों में किसी हद तक इस सम्बन्ध में समझौता हो जाय।

दुर्भाग्य से इस प्रकार का समझौता न हो सका, फलतः उक्त स्थिति में इस वर्ष के पूर्वार्ध में इस सम्बन्ध में अधिक कुछ नहीं किया जा सका। फिर भी विभिन्न राजनीतिक दलों को निकट लाने का प्रयत्न मैंने जारी रक्खा। गत कुछ सप्ताहों में मैंने पुनः भारत के प्रसिद्ध राजनीतिक नेताओं तथा नरेन्द्रमण्डल के अध्यक्ष से बातचीत शुरू की। इस बातचीत का जो परिणाम निकला उसकी सूचना मैंने सम्राट् की सरकार को दे दी। सम्राट् की सरकार ने कांग्रेस-कार्य-समिति, मुस्लिम लीग तथा हिन्दू-महासभा-द्वारा स्वीकृत प्रस्तावों को भी देखा है।

यह स्पष्ट है कि जो मतभेद आरम्भ में था और जिसके कारण राष्ट्रीय एकता की प्राप्ति में बाधा पहुँची, आज भी वैसे ही मौजूद है। सम्राट् की सरकार यद्यपि इन मतभेदों पर खेद प्रकट करती है फिर भी वह समझती है कि इन मतभेदों के कारण वायसराय की कौंसिल के विस्तार तथा सलाहकार समिति की स्थापना की बात को अब और अधिक टालना उचित नहीं है। तदनुसार उसने मुझे अधिकार दिया है कि मैं कुछ प्रतिनिधियों को आमंत्रित करूँ कि वे मेरी कौंसिल में सम्मिलित हों। उन्होंने मुझे युद्ध के सम्बन्ध मे सत्याग्रह-समिति स्थापित करने का अधिकार भी दिया है जो थोड़े थोड़े दिनों के बाद नियमित रूप से अपना अधिवेशन करती रहेगी।

नेताओं की मुझसे जो बातचीत हुई उससे, तथा विभिन्न संस्थाओं ने जो प्रस्ताव स्वीकार किये हैं उनसे, यह स्पष्ट होता है कि कुछ क्षेत्रों में अब भी भारत के भावी शासन-विधान के सम्बन्ध में सरकार के इरादों के प्रति अथवा होनेवाले वैधानिक परिवर्तनों में अल्प-संख्यकों की स्थिति और सुरक्षा के सम्बन्ध में सन्देह मौजूद है। इन दोनों प्रश्नों से दो मुख्य बातें प्रकट होती हैं। सम्राट् की सरकार यह चाहती है कि मैं उसकी स्थिति उपर्युक्त प्रश्नों के सम्बन्ध में साफ़ कर दूँ।

पहली बात भावी वैधानिक परिवर्तन के समय अल्पसंख्यकों की स्थिति के सम्बन्ध में है। यह स्पष्ट किया जा चुका है कि गत अक्टोबर की मेरी घोषणा न तो सन् १९३५ ईसवी के भारतीय विधान के किसी भाग को और न उस नीति अथवा योजना को जिस पर वह आश्रित है, विचार-क्षेत्र से बाहर करती है। सम्राट् की सरकार यह भी कह चुकी है कि जो भी परिवर्तन किया जायगा उसके सम्बन्ध में अल्पसंख्यकों के विचारों को उचित महत्त्व प्रदान किया जायगा। आज भी सम्राट् की सरकार अपनी उसी बात पर अटल है। वह भारत में शान्ति और सुव्यवस्था बनाये रखने की अपनी ज़िम्मेदारी को किसी ऐसी शासनप्रणाली को समर्पित करने की कल्पना भी नहीं कर सकती जिसे देश के बड़े बड़े तथा शक्तिसम्पन्न वर्ग स्वीकार न करते हों और न वह किसी ऐसी योजना में शरीक ही हो सकती है जिसके द्वारा वे वर्ग उक्त प्रकार की शासन-व्यवस्था के सामने सिर झुकाने के लिए ज़बर्दस्ती बाध्य किये जायँगे।

आम दिलचस्पी की दूसरी बात यह है कि यथासमय ब्रिटिश राष्ट्रमण्डल में नई वैधानिक योजना बनाने के लिए कौन-सी व्यवस्था की जाय। इस बात पर बहुत ज़ोर दिया गया है कि यह योजना बनाने का भार मुख्यतः भारतीयों पर ही होना चाहिए और जीवन के आर्थिक, सामाजिक तथा राजनीतिक संघटन के विषय में भारत के विचारों तथा आदर्शों से उसका ढाँचा बनना चाहिए। बादशाह की सरकार को इस आकांक्षा के साथ सहानुभूति है और इसे पूर्णतम व्यावहारिक अभिव्यक्ति देना चाहती है। पर इस शर्त के साथ कि भारत के साथ लम्बे सम्बन्ध के कारण ब्रिटेन पर जो ज़िम्मेदारियाँ आ गई हैं और बादशाह की सरकार तत्काल जिनसे अपने को मुक्त नहीं कर सकती, वे ठीक तौर से पूरी की जा सकें।

युद्ध के बाद विधान-सम्मेलन

ब्रिटिश राष्ट्रमण्डल आज जीवन-मरण के संग्राम में लग रहा है। और यह स्पष्ट है कि ऐसे विषम काल में विधान के मौलिक प्रश्नों का पक्का निर्णय नहीं किया जा सकता। पर बादशाह की सरकार मुझे यह घोषणा करने का अधिकार दे रही है कि युद्ध-समाप्ति के बाद, जितनी जल्दी हो सके, नये विधान का ढाँचा बनाने के लिए ऐसा सम्मेलन या परिषद् बनाई जाय जो भारत के राष्ट्रीय जीवन के सब मुख्य अंगों का प्रतिनिधि हो, इस बात को वह बड़ी ख़ुशी से मंज़ूर करेगी, और इस सिलसिले में उठनेवाले सभी प्रश्नों का जल्दी से निबटारा हो जाय इसके लिए जो कुछ भी सहायता वह कर सकती है, करेगी।

इस बीच विभिन्न वर्गों के प्रतिनिधि भारतीय अपनी ओर से आपसी समझौते का आधार प्राप्त करने के लिए जो जो सच्ची और अमली कोशिश करेंगे उनका वह स्वागत करेगी और हर सम्भव प्रकार से उनमें सहायता देगी। यह समझौता इन दो बातों के सम्बन्ध में होना चाहिए— (१) युद्धसमाप्ति के बाद स्थापित होनेवाली प्रतिनिधि संस्था का रूप और कार्यविधि क्या हो, और (२) विधान के मूल सिद्धान्त तथा ढाँचा क्या होना चाहिए।

बादशाह की सरकार को विश्वास है कि युद्धकाल के लिए मेरे बताये प्रकार से केन्द्रीय सरकार का पुनः संघटन और विस्तार हो जाने तथा युद्ध-परामर्श-समिति की सहायता मिलने पर देश के सभी दल, समुदाय और वर्ग इस युद्ध में, जो सारी दुनिया की लड़ाई है, विजय-प्राप्ति के लिए भारत की ओर से उल्लेखनीय सहायता दिलाने में सहयोग करेंगे। उसको यह भी आशा है कि इस सहयोग से दोनों देशों के बीच एकता और मेल के नये बन्धन उत्पन्न होंगे और इससे ब्रिटिश राष्ट्रमण्डल में भारत के वह स्वाधीनता और बराबरी की हिस्सेदारी हासिल करने का रास्ता साफ़ होगा जो बदस्तूर सम्राट् और ब्रिटिश पार्लियामेंट की घोषित तथा स्वीकृत नीति है।

साम्प्रदायिक समस्या

मदरास के प्रसिद्ध भूतपूर्व कांग्रेसी नेता श्री श्रीनिवास आयंगर अब कांग्रेस में नहीं हैं, तथापि समय समय पर वे देश के महत्त्वपूर्ण प्रश्नों पर अपने विचार व्यक्त करते रहते हैं। हाल में साम्प्रदायिक समस्या की मीमांसा के सम्बन्ध में अपना जो प्रस्ताव एक लेख-द्वारा किया है उसे हम 'हिन्दू' से यहाँ उद्धृत करते हैं—

इस युद्ध में निस्सन्देह हमारी सहानुभूति इँगलैंड और फ्रांस के साथ है और रही है तथा हम जर्मन-विचार-धारा के विपक्ष में रहे हैं। तथापि युद्ध ने हमारे समक्ष उन गहन और गूढ़ अन्तर्राष्ट्रीय खाइयों में प्रकाश कर दिया है जिनका हमें स्वप्न में भी ध्यान न आया था। अब हम पुरानी और जीर्ण-शीर्ण बातों को जीवित भी नहीं रख सकते।

उफ़, उफ़....

मैं बदहज़मी से बहुत पीड़ित थी। मैं घर में उदास घूमा करती थी और बाल-बच्चों की कोई परवाह न करती थी। मेरी दशा इतनी ख़राब हो गई थी कि मेरी समझ में न आता था कि क्या करना चाहिए।

हा हा, हा!

जब से मैंने क्रूशेन साल्ट सेवन करना शुरू किया तब से सारी बातों में परिवर्तन हो गया है। मेरी पुरानी बदहज़मी बिलकुल दूर हो गई है और मुझमें काम करने तथा बच्चों के साथ खेलने की पूरी शक्ति आगई है। मेरा जीवन अब अच्छा है। क्रूशेन को धन्यवाद।

क्रूशेन साल्ट शरीर को तन्दुरुस्त रखने का प्राकृतिक साधन है। इसमें पित्ताशय तथा गुर्दों को ठीक हालत में रखनेवाले छः प्रकार के आवश्यक नमक हैं। क्रूशेन साल्ट शरीर के भीतरी भाग को ख़राबियों से बचाता है तथा शरीर की सारी व्यवस्था को ठीक रूप में रखता है। इसकी एक साधारण मात्रा प्रत्येक के लिए प्रतिदिन आवश्यक है।

क्रूशेन साल्ट आपको सभी बाज़ारों तथा औषधि-विक्रेताओं के यहाँ मिलेगा।

क्रूशेन साल्ट को धन्यवाद

KRUSCHEN SALTS

K.A. 7

इस युद्ध ने हमारे उन राष्ट्रीय सिद्धान्तों को भी सर्चलाइट में रख दिया है जिनके द्वारा आज तक हम आत्म-प्रवंचना करते रहे हैं और जिनमें फँस कर आज तक हमने यह नहीं सोचा कि इस युद्ध के अतिरिक्त हमारे सम्मुख इस विश्व में कोई नवीन युग भी आ सकता है। आज-कल तो हमें अपने सभी पुराने पक्षपात, कट्टरता और दृढ़ धारणाओं को परे रख भारत के वर्तमान और भविष्य को निष्पक्ष होकर बनाने का यत्न करना चाहिए।

हमें न औपनिवेशिक स्वराज्य पर झगड़ना चाहिए और न पूर्ण स्वराज्य के विषय में ही वाद-विवाद करना चाहिए; न कान्स्टीटयूट असेम्बली और न पाकिस्तान पर ही कुछ बहस करना उचित है। हमें तो अपनी राष्ट्रीयता के मूलतत्त्व की ओर जाना है और अपनी स्टेट अथवा राष्ट्रीय संस्था उसी राष्ट्रीय आधार शिला पर खड़ी करना है। साधारण बुद्धि रखनेवाले मनुष्य को भी, इसलिए, यह ज्ञात हो जाना चाहिए कि हिन्दू और मुसलमान इस देश में राष्ट्रीयता के नाते दो पार्टियाँ या दो संस्थायें नहीं रह सकतीं, हाँ, यह स्वीकार किया जा सकता है कि धार्मिक दृष्टि से ये दोनों वर्ग पृथक् समझे जा सकते हैं। इस भावना को कि हम दो भिन्न भिन्न जातियाँ हैं, कभी भी हमें अपने भीतर नहीं आने देना चाहिए। शायद मुसलमान यह अनुभव करते हैं कि क्योंकि हिन्दू जन-संख्या और आर्थिक अवस्था में बहुत बढ़े-चढ़े हैं इसलिए राष्ट्र में उनका प्रभाव बहुत होगा और मुसलमान पीछे रह जायँगे। हिन्दू भी यही अनुभव करते हैं कि मुसलमान राष्ट्रीयता को न अपनाते हैं और न राष्ट्र के आन्दोलन में कुछ भाग ही लेते हैं। साथ ही मुसलमान भारत के बाहर के कुछ एक मुस्लिम-राज्यों पर अभिमान करते हैं और हिन्दुस्तान के प्रति उदासीनता। इसी लिए प्रत्येक सम्प्रदाय यही समझता है कि दूसरा उसके विरुद्ध है। हिन्दू मुस्लिम-राज्य से डरते हैं और मुस्लिम हिन्दूराज्य से डरते हैं।

फिर भी समस्या इतनी जटिल नहीं है जितनी कि समझी जा रही है। दोनों सम्प्रदायों का धार्मिक भेद और उसी के कारण भाषा और वैयक्तिक क़ानून का भेद है जो रुकावट डालता है। अन्यथा भारत की संस्कृति तो एक मिश्रित संस्कृति है। न इसे शुद्ध हिन्दू और न शुद्ध मुस्लिम संस्कृति कह सकते हैं। पार्टी पालिटिक्स ने इन साधारण भेदों को बड़ा मानकर खड़ा कर दिया है। इसलिए मैं तो यह कहूँगा कि भारत में पार्टी पालिटिक्स पर विश्वास नहीं किया जा सकता। यह न तो नेशनल सरकार बना सकती है और न नाजुक अवसर पर देश-रक्षा के लिए ही उपयोगी सिद्ध हो सकती है।

इसी लिए प्रान्तीय सरकारें तथा केन्द्रीय सरकारें पूर्णतया राष्ट्रीय सरकारें होनी चाहिए। इनमें वे व्यक्ति आने चाहिए जो अच्छी सैनिक मनोवृत्तिवाले हों। साथ ही इस बात को ध्यान में रखते हुए कि देश भर में हिन्दू-मुस्लिम समस्या का प्रभाव है, हमें प्रत्येक प्रान्त में और केन्द्र में भी मंत्रिमण्डल में हिन्दू-मुस्लिम संख्या बराबर बराबर रखनी चाहिए। हाँ, विशेष अल्पसंख्यक जातियों के प्रतिनिधित्व को भी दृष्टि में रखा जा सकता है। हमने भली भाँति देख लिया है कि पश्चिमी देशों में बहुसंख्यक सरकार के शासन का तात्पर्य क्या है? शायद ही कभी बहुसंख्यक शासन का हाथ ऊँचा रहा हो। सचाई इसके विपरीत ही है। प्रायः अल्पसंख्यकों का ही शासन रहा है।

मैं यह भी कहूँगा कि प्रतिनिधित्व के अनुपात में गड़बड़ करने या मतदाताओं के सम्बन्ध में कुछ हेर-फेर करने से हमारे जीवन-वृक्ष को नष्ट करनेवाले इस कीटाणु का नाश नहीं हो सकता चाहे नौकरियों का सम्बन्ध हो अथवा राष्ट्रीय अधिकारों का सम्बन्ध हो। यह बराबर बराबर का प्रतिनिधित्व ही हिन्दू-मुसलमानों में पारस्परिक विश्वास उत्पन्न कर सकता है। हिन्दू मंत्रियों का चुनाव धारासभाओं के हिन्दू-सदस्यों-द्वारा और इसी प्रकार मुस्लिम मंत्रियों का निर्वाचन मुस्लिम सदस्यों द्वारा हो। मैं निश्चय से सम्मिलित निर्वाचन के ही हक़ में हूँ और यह उपर्युक्त योजना सम्मिलित निर्वाचन के साथ अत्यन्त सुगमता और सन्तोष के साथ पूरी हो सकती है।

मुस्लिम इस बात के लिए आतुर और उतावले प्रतीत होते हैं कि उन्हें कम से कम केन्द्र में समान प्रतिनिधित्व दिया जाय। यह प्रश्न फिर कुछ नहीं रह जाता जब कि केबीनेट नेशनल लाइन पर बनाया जायगा। यह सभी झगड़े-रगड़े और उलझनें तभी तक हैं जब तक हम पार्टी पालिटिक्स के दलदल में फँसे हैं। यह बन्द होते ही सब कुछ ठीक हो जायगा। यह केबिनेट उसी अवस्था में भंग हो सकेगी जब कि धारा-सभा का $\frac{2}{3}$ भाग उसमें अविश्वास प्रकट करे। यह $\frac{2}{3}$ भाग हिन्दू और मुसलमान सदस्यों को पृथक् पृथक् दिया जायगा।

केन्द्रीय कार्यकारिणी में समान प्रतिनिधित्व का सिद्धान्त इस प्रकार का सिद्धान्त है जो सभी वर्तमान तथा भविष्य

की कठिनाइयों को दूर कर सकेगा। मुझे संख्या के अनुपात से धारा-सभाओं में प्रतिनिधि लिये जानेवाले नियम में कुछ भी विश्वास नहीं है। इससे भेद-भाव का नासूर खुला ही रहता है और झगड़ों का अन्त नहीं हो पाता।

इसलिए आज तो इस बात की आवश्यकता है कि हिन्दू मुसलमान यह भूल जायँ कि वे दो राष्ट्र या दो जातियाँ हैं और स्वदेश की राष्ट्रीय सरकार में विश्वास उत्पन्न करना सीखें। इसके लिए न पाकिस्तान की योजना चाहिए और न किसी जातिविशेष का वटेज चाहिए।

महात्मा जी का आत्मविश्वास

महात्मा गांधी के अहिंसा-सिद्धान्त का मख़ौल उड़ाने में ही आज-कल कुछ लोग अपनी देशभक्ति की पराकाष्ठा समझते हैं। ऐसे ही एक सज्जन ने उनसे यह तक कहने की ढिठाई की है कि जब आप अपने लड़के को ही अपने साथ नहीं रख सके तब यह ज़्यादा अच्छा होता कि आप अपने घर को ही सँभालने में लगते। इसका जो उत्तर महात्मा जी ने दिया है, वह यह है—

यह एक ताना माना जा सकता है। मगर मैं इसे ताना नहीं मानता। क्योंकि यह सवाल किसी के दिल में उठे, उससे पहले मेरे ही दिल में उठ चुका था। मैं पूर्व-जन्म और पुनर्जन्म को मानता हूँ। सब सम्बन्ध पूर्व के संस्कारों का फल होते हैं। ईश्वर का क़ानून अगम्य है। वह अखण्ड शोध का विषय है। उसका पार कोई नहीं पा सकता। अपने पुत्र के बारे में मैं जो समझता हूँ वह यह है—मेरे घर में कुपुत्र जन्म ले, तो उसे मैं अपने पाप का ही फल मानूँगा। मेरे पहले पुत्र का जन्म केवल मूर्च्छित दशा का फल है। फिर, वह बड़ा भी उस ज़माने में हुआ, जब कि मैं बन रहा था। उस समय मैं अपने-आपको कम पहचानता था। आज भी पूरी तरह से अपने-आपको पहचानने का दावा नहीं करता, मगर मैं मानता हूँ कि उस समय की बनिस्बत आज अपने को अधिक पहचानता हूँ। यह पुत्र लम्बे अर्से तक मुझसे अलग रहा। उसे गढ़ने का काम तब मेरे हाथ में नहीं था। इसलिए उसका जीवन 'ततोभ्रष्ट ततोभ्रष्ट' जैसा हुआ। उसकी मेरे ख़िलाफ़ यह शिकायत रही है, कि मैंने भूल से जिसे परमार्थ माना है, उसमें उसकी और उसके भाइयों की आहुति दे दी है। इस प्रकार का आरोप दूसरे पुत्रों ने भी कम या अधिक मात्रा में, संकोच करते हुए मुझ पर किया है। मगर, उन्होंने उदार हृदय से मुझे क्षमा कर दिया है। बड़े लड़के ने तो मैंने जो जीवन में फेरफार किये उनका प्रत्यक्ष अनुभव किया है। इसलिए उसने जो मेरे अपराध माने हैं, उन्हें वह भूल नहीं सका। ऐसी स्थिति में मैंने उसे खोया है। इसका कारण मैं खुद हूँ, यह समझकर शान्त होकर बैठ गया हूँ। लेकिन तो भी मेरा यह वाक्य सही नहीं है। क्योंकि मेरी प्रभु से सदा यह प्रार्थना रहती है कि वह उसे सद्‌बुद्धि दे, और उसकी सेवा करने में मुझसे जो कमी रह गई हो उसके लिए मुझे क्षमा करे। मेरा यह दृढ़ विश्वास है कि मनुष्य-स्वभाव ऊर्ध्वगामी है। इसलिए मैंने बिलकुल आशा नहीं छोड़ दी है कि वह अपनी इस अज्ञान-निद्रा से न जागेगा। इसलिए जैसे सारा संसार है, वैसे ही वह भी मेरी अहिंसा के प्रयोग के लिए एक क्षेत्र है। सफलता कब मिलेगी, इसकी मैं कभी चिन्ता ही नहीं करता। मुझे सन्तोष देने के लिए इतना काफ़ी है कि मुझे जो कर्तव्य सूझे, उसे पूरा करने में मैं शिथिल न रहूँ। "मनुष्य का अधिकार कर्त्तव्य पर है, फल पर नहीं," गीता के इस वाक्य को मैं कुन्दनरूप समझता हूँ।
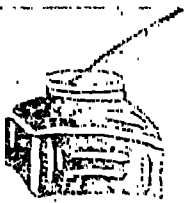
मैसूर-नरेश का स्वर्गवास

भारत के देशी राज्यों में मैसूर की अपनी निजी विशेषता है। इस बात में नहीं कि वह भारत का एक प्राचीन ऐतिहासिक राज्य है या वह भारत के सबसे चार बड़े राज्यों में एक है, किन्तु इस बात में कि वह सभी बातों में प्रगतिशील रहा है और उसके शासक आजीवन अपनी प्रजा की भलाई के कामों में ही लगे रहे हैं। दुःख की बात है कि मैसूर-राज्य के आदर्श-नरेश महाराज श्री कृष्णराव वादियार बहादुर की ३ अगस्त को हृद्‌रोग से मृत्यु हो गई। यद्यपि उनका नश्वर शरीर अब इस लोक में नहीं रहा, तथापि उनका यशः शरीर अवश्य यहाँ विद्यमान रहेगा। उन्होंने अपने शासन-काल में अपने राज्य की जो बौद्धिक, आर्थिक एवं राजनैतिक उन्नति की है वह आदर्श-रूप है और उसके लिए मैसूर की देश-देशान्तर में भूरि-भूरि प्रशंसा हुई है। दिवंगत महाराज अपने पिता की मृत्यु के बाद १ फ़रवरी १८९५ को गद्दी पर बैठे थे। उस समय वे १० वर्ष के थे। १९०२ में उन्हें शासन के पूर्ण अधिकार प्राप्त हुए। तब से जीवनान्त तक उन्होंने अपने राज्य-शासन का ऐसे ढंग एवं लगन के साथ संचालन किया कि मैसूर-राज्य सभी क्षेत्रों में अभूतपूर्व उन्नति कर गया। शिक्षा के प्रसार और जनता की सामाजिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए स्कूलों, अनाथालयों, मातृगृहों आदि को जगह-जगह खोल कर उपयोगी आयोजन किये गये सो तो किये ही गये, सबसे अधिक महत्त्व के आयोजन किये गये कृषि और गृह-उद्योगों की उन्नति के। आश्चर्य तो यह है कि स्वर्गीय महाराजा बहादुर प्राचीन हिन्दू-संस्कृति के परम उपासक थे, फिर भी उन्होंने अपने प्रजा-जनों के लिए पश्चिमी सभ्यता की सभी लाभदायक बातों को सुलभ कर देने का ही उपक्रम किया है। ऐसे आदर्श-नरेश का केवल ५६ वर्ष की आयु में एकाएक दिवंगत हो जाना एक ऐसी राष्ट्रीय क्षति है जिसके लिए किसे न दुःख होगा। अभी हाल में ही आपके युवराज की मृत्यु हो गई थी। कदाचित् उसी के आघात को महाराज भी नहीं सह सके। परमात्मा ऐसे महान् नरेश को परम शान्ति प्रदान करे।

स्वर्गीय महाराजा मैसूर

वत
पिछ
ों एक
१२

बंगाल में साम्प्रदायिकता की बाढ़

हिन्दुओं के हितों को पैरों के नीचे रौंदने में, जान पड़ता है, बंगाल पंजाब को अपने बहुत पीछे डाल देगा। कलकत्ते में २५ जुलाई को हिन्दुओं की जो सार्वजनिक सभा हुई थी उसकी कार्यवाही से तो यही प्रकट होता है। इस अवसर पर के व्याख्यानों से जान पड़ता है कि बंगाल की वर्तमान सरकार वहाँ मुस्लिम-राज क़ायम करना चाहती है। वह अब तक ऐसे तीन क़ानून बना चुकी है जिनसे हिन्दुओं के हितों को भारी चोट पहुँची है। अभी हाल में उसने यह निश्चय किया है कि यदि बंगाल में नौकरियों में नियुक्त करने के लिए उपयुक्त मुसलमान न मिल सकें तो दूसरे प्रान्तों के मुसलमान लाकर नियुक्त किये जायें। यही सब बातें देखकर बंगाल के हिन्दू-नेता चौंकन्ने हुए हैं और वे प्रान्तीय सरकार की इस संकुचित नीति का विरोध करने को उठ खड़े हुए हैं। परन्तु बंगाल में ही क्या, जब से यह नया शासन-विधान जारी हुआ है तब से सारे देश में साम्प्रदायिक भावना ज़ोर पकड़ गई है। कोई भी प्रान्त एवं देशी राज्य ऐसा न होगा, जहाँ साम्प्रदायिक विष का प्रभाव न प्रकट हुआ हो। बंगाल के हिन्दू सजग हैं और समर्थ भी हैं, इसलिए वे अपने प्रान्त की सरकार की साम्प्रदायिक अनीति का डट कर विरोध करने को कटिबद्ध हो गये हैं। देखना है कि ये लोग अपने प्रयत्न में कहाँ तक सफल होते हैं, क्योंकि यह किसी एक प्रान्त का प्रश्न नहीं है, वह तो सार्वदेशिक प्रश्न है। यदि बंगाल के हिन्दू-नेता उसे इस दृष्टि से नहीं देखेंगे तो उनके अपने प्रयत्न में सफल मनोरथ होने की कम ही सम्भावना है।

कांग्रेस की नीति

कांग्रेस के कर्णधार अभी तक बैठकबाज़ी में लगे हुए हैं। वे समझते हैं कि बैठकबाज़ी से ही उनके उद्देश्य की पूर्ति हो जायगी। यह सभी जानते हैं कि वर्तमान समय संसार की सबसे अधिक नाज़ुक परिस्थिति का समय है। परन्तु हमारे नेता समझते रहे हैं कि इस महान् विकट समय में भी वे देश की राजनीति का बेड़ा अपनी बैठकबाज़ी से पार कर ले जायेंगे। उनके इस सत्साहस के लिए अनेक साधुवाद। उनकी पूना की बैठक भी राज़ी-ख़ुशी हो गई। दिल्ली की पिछली बैठक से महात्मा गांधी ने एक प्रकार से कांग्रेस-सम्बन्ध-विच्छेद ही कर लिया, यद्यपि उसके प्रति विशेष अनुराग होने के कारण अब भी वे उसके सम्बन्ध में पूर्ववत् अधिकारपूर्वक लिखते जाते हैं। पूना में जो हुआ है उससे यह नहीं प्रकट होता है कि वास्तव में कांग्रेस क्या करना चाहती है। पूना में सर्वभारतीय समिति ने दिल्लीवाले प्रस्ताव को ४७ के विरुद्ध ९५ के बहुमत से पास किया है। इस अवसर पर ४० सदस्य तटस्थ रहे। दिल्ली की कार्य-समिति में भी वह प्रस्ताव बहुमत से पास हुआ था। इससे प्रकट होता है कि कांग्रेस में अब अहिंसावादी अल्पमत में हो गये हैं, और बहुमत इस विचार का है कि देश की रक्षा के लिए शस्त्र का आश्रय लेना 'उचित' नीति है। साथ ही वह सरकार से इस शर्त पर सहयोग करने को तैयार है कि सरकार भारत को एक 'स्वाधीन' देश मान ले। आज कांग्रेस की यही स्थिति है। वह बारबार अपनी नीति की घोषणा करने के काम में ही लगी हुई है। चाहे कोई उसे सुने, चाहे न सुने, उसने अब इसी एक बात को अपना अन्तिम कर्तव्य मान लिया है। इसके सिवा और कोई राह भी तो नहीं है। देश में इस समय नाना दलों के संघटित हो जाने तथा स्वयं कांग्रेस के नेताओं में भी एकता का अभाव होने से कोई एक निश्चित मार्ग भी तो निर्धारित नहीं किया जा सकता है। देश की सबसे अधिक कमज़ोरी आपस की फूट है। जहाँ आज एकता की सबसे अधिक ज़रूरत थी, वहाँ आज जिधर देखो उधर ही फूट का विराट दृष्टिगोचर हो रहा है। औरों की जाने दीजिए, स्वयं कांग्रेसी-नेता भी एकमत नहीं हैं। ऐसी दशा में क्या कहा जाय? यही न कि इस देश का रक्षक भगवान् ही है।

जापान का कैनोई-मंत्रिमण्डल

जापान में प्रिंस कैनोई के नेतृत्व में जो नया मंत्रिमंडल पिछले महीने संगठित हुआ है वह, जान पड़ता है, अपनी अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति की उग्रता में पिछले मंत्रिमण्डलों से भी बढ़ा-चढ़ा है। प्रिंस कैनोई और उनके सहयोगी स्पष्ट शब्दों में घोषित कर रहे हैं कि वे चीन, मंचूको के सिवा इन्डोचीन, डच ईस्टइन्डीज़ तथा चीन के समुद्र के परे दक्षिणी समुद्र को भी अपनी 'नई व्यवस्था' के अन्तर्गत लाने का निश्चय कर चुके हैं। यही नहीं, ... इन्डीज़

अब उन टापुओं का दोहन नहीं होने देगा और इसके लिए संयुक्त-राज्य (अमरीका) से संघर्ष हो जाने की भी उसे परवा नहीं है। जापान के शासन की बागडोर आज जिन लोगों के हाथों में है वे सभी ऐसे ही उग्र विचार रखते हैं। यदि ऐसा न होता तो जापान में हाल में ही ढूँढ़-ढूँढ़ कर प्रतिष्ठित अँगरेज़ों की गिरफ़्तारी न की जाती। यह कौन नहीं जानता कि अँगरेज़-सरकार ने जापानियों की उद्दण्डता को बारबार तरह ही नहीं दी है, किन्तु उनकी अनुचित माँगों को भी पूरा किया है। अभी हाल में ही उसने जापान के आग्रह पर चीन-ब्रह्मदेश का मार्ग तीन महीने के लिए बन्द कर दिया है। इसके पहले वह तिन्तसिन की बैंकों में चीन की जो चाँदी जमा थी वह भी जापानियों को दे चुकी है। इतने पर भी जापान अँगरेज़ों के साथ ऐसा व्यवहार करता जा रहा है जो मित्रोचित नहीं माना जायगा। उसके ऐसे ही मनोभाव के कारण उसका संयुक्त राज्य से मनोमालिन्य हो गया है, यहाँ तक कि संयुक्त राज्य की सरकार जापान के साथ होनेवाले व्यापार में धीरे धीरे प्रतिबन्ध पर प्रतिबन्ध लगाती जा रही है, जिसका परिणाम अन्त में बुरा ही होगा।

चाहे जो हो, जापान का शासक-मण्डल महत्त्वाकांक्षी है, साथ ही मूर्ख भी है। क्योंकि चीन से उसका अभी तक छुटकारा नहीं हो पाया और वह अब ब्रिटेन तथा संयुक्त-राज्य जैसे महाशक्तिशाली राष्ट्रों से उलझने जा रहा है। 'विनाशकाले विपरीत बुद्धिः' इसी को कहते हैं।

योरप की राजनीति

इसमें सन्देह नहीं कि योरप का वर्तमान युद्ध प्रलयङ्कारी सिद्ध होगा। युद्ध-संलिप्त राष्ट्र तो संकट में हैं ही, पर जो युद्ध में शामिल नहीं हैं वे भी उनकी अपेक्षा कम संकट में नहीं हैं। जर्मनी, इटली, रूस और जापान—ये चार राष्ट्र, जान पड़ता है, सारे संसार को आपस में बाँट लेना चाहते हैं। जर्मनी और इटली तो योरप और अफ़्रीका में अपनी प्रभुता क़ायम करने के लिए इस समय संहार के कार्य में संलग्न हैं ही। इधर रूस और जापान भी अपने अपने दाँव में हैं। कदाचित् यही रंग-ढंग देखकर अमरीका के संयुक्त-राज्य के कान खड़े हुए हैं और उसने जुलाई के पिछले सप्ताह में हवाना में विभिन्न राष्ट्रों की एक सभा इसलिए की है कि योरप का युद्ध उनके अमरीका में न पहुँचने पावे। अमरीका के दोनों महाद्वीपों के कुछ प्रदेशों पर तथा अटलांटिक महासागर के अमरीका के पास के कुछ टापुओं पर अँगरेज़ों, फ़्रेंचों और डच लोगों का अधिकार है। और इस युद्ध में जर्मनी ने फ़्रेंचों और डचों को हरा दिया है, अतएव वह अमरीका के उनके देशों को भी जीत लेने का दावा कर सकता है। इस सम्भावना को पहले से ही समझकर संयुक्त-राज्य की सरकार ने उक्त सभी की ओर उसमें गम्भीरतापूर्वक विचार करके निश्चय किया गया कि उन प्रदेशों को अमरीकावाले अपने अधिकार में कर लें। अमरीका की यह आत्म-रक्षा की नीति स्वयं उसके लिए ही हानिकर सिद्ध होगी। इस अवसर पर तो उसका एक मात्र कर्तव्य यह था कि आगे आकर वह ब्रिटेन की नाज़ीवाद का उन्मूलन करने में पूरी सहायता करता। परन्तु वह अपनी ही रक्षा के फेर में पड़ा हुआ है। ऐसी दशा में भविष्य में कदाचित् संसार में इने-गिने ही प्रधान राज्य रह जायँगे, जिनकी अधीनता में संसार के सभी छोटे-बड़े देशों को अपना मन मार कर रहना पड़ेगा। प्रजातंत्रवाद, साम्यवाद आदि वाद स्वार्थवाद के आगे बाद हो गये हैं। भविष्य में संसार की क्या गति होगी, यह बात स्पष्ट होती जा रही है।

अरब के हिन्दू

अरब में सदियों से एक भूखण्ड में आज भी हिन्दुओं का एक समूह निवास कर रहा है। उसके सम्बन्ध में पहले भी, कुछ वर्ष हुए, 'केसरी' में एक लेख छपा था। अब 'मरहठा' में मदरास के श्री टी० एस० विनायकराव ने फिर एक छोटा-सा नोट छपवाया है। उनका कहना है कि वहाँ के हिन्दुओं के उक्त समाज का वह भूखण्ड अर्द्ध स्वतंत्र है। पिछले महायुद्ध के पहले उसपर तुर्की की प्रभुता थी। अब सीरिया में होने के कारण वह फ़्रांस की अधीनता में है। वहाँ के लोग अरबी बोलते हैं और अपने को 'दुर्जा' कहते हैं। अरबी-भाषा में वे 'देविल उल दुरुज' कहलाते हैं। इसका अर्थ है 'दुरुजा के लोग'। इस राज्य का शासक 'अथरस' (वृद्ध) कहलाता है। वहाँ के लोग दो श्रेणियों में विभक्त हैं। एक वे जो शिखा रखते हैं, दूसरे वे जो शिखा नहीं रखते। शिखा-विहीन श्रेणीवाले संख्या में अधिक हैं। ये लोग शिव और गणेश की मूर्तियों की पूजा

हो सकता है आपके भोजनके बरतनों पर किसी किसमकी बिमारीके किड़े हों !

, खाना खानेवाले बरतन रेत या राखसे पूरी तरह सफा नहीं हो सकते—इन तरीकोंसे साफ किये हुए बरतनोंकी चमक खराब हो जाती है। और लकीरों पड़ जाती हैं जिनमें भोजनके छोटे टुकड़े रह जाते हैं यह खतरनाक और रोगदायक है। क्योंके यही छोटे टुकड़े जल्दी सड़ने लग जाते हैं और उस भोजनको जो पे इन बरतनोंमें खानेके लिये होता है ज़हरोला बना देते हैं।

इसलिये अपने परिवारको सड़े हुए भोजनके रोगदायक असरसे बरतनोंको विमसे सफा करके बाचाओ। विम छोटेसे छोटे भोजनके टुकडोंको भी बरतनमें से सफा कर देती है और इनको नया जैसा बना देती है—लकड़ीकी चिज़ों, रंगीन चिज़ों चिलमची, नहानेके टब और फरशकी टाइलों और इत्यादि चिज़ोंको निहायत सफाईसे सफा कर देती है बीर किसी किसमके खरचनेके।
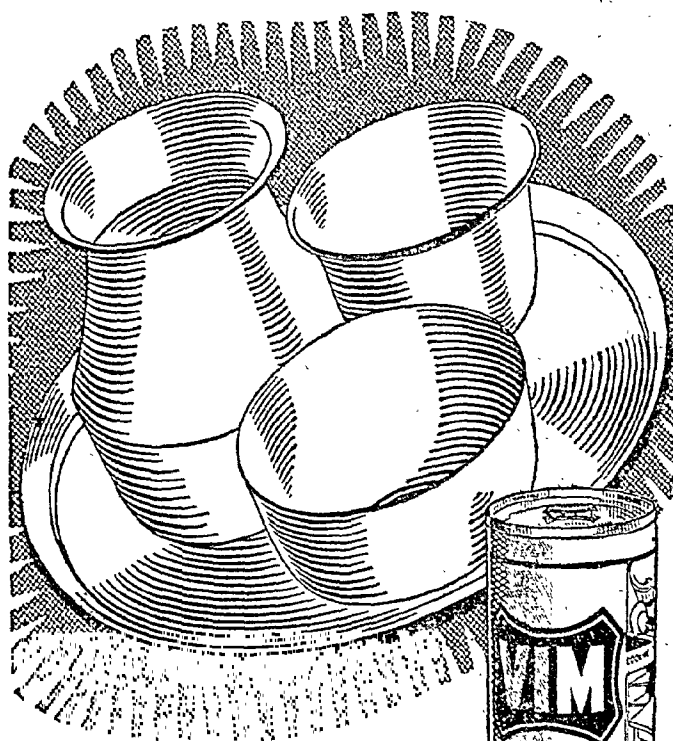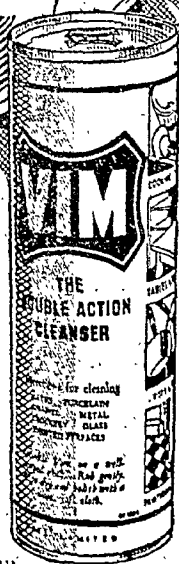
को हम मीटरों से भाग दें तो हमें मेगा साइकिल मिल जायँगे। इसका यह अर्थ है कि मेगा साइकिल × मीटर = ३००·०६८। अतएव मेगा साइकिल = $\frac{३००·०६८}{मीटर}$

और मीटर = $\frac{३००·०६८}{मेगा साइकिल}$।

संयुक्त-प्रान्त की पुलिस

अभी हाल में संयुक्तप्रान्त के पुलिस-विभाग की सन् १९३७ ईसवी की रिपोर्ट प्रकाशित हुई है, जिससे ज्ञात होता है कि उस वर्ष जनता के प्राणों तथा उसकी सम्पत्ति की रक्षा करने में पुलिस को बहुत ही निराशाजनक रूप से असफलता मिली है, यद्यपि सरकार ने इस विभाग के अधिकारियों तथा कर्मचारियों को पुरस्कृत करने के सम्बन्ध में उदारतापूर्ण नीति का ही अवलम्बन किया है। सन् १९३७ ईसवी में इस विभाग के चार कार्यकर्त्ताओं को 'किंग्स पुलिस मेडल' तथा सात कार्यकर्त्ताओं को 'इंडियन पुलिस मेडल' प्रदान करके सम्मानित किया गया है। दो कार्यकर्त्ताओं को रायबहादुर तथा कइयों को रायसाहब और खाँ साहब की उपाधियों से विभूषित होने का भी सौभाग्य मिला है। इसके अतिरिक्त १,०५,७४८) नक़द पुरस्कार के रूप में भी इस विभाग में वितरित किये गये हैं। किन्तु खेद है कि इतना अधिक प्रोत्साहन प्राप्त करने पर भी प्रान्त की शान्ति और सुव्यवस्था की रक्षा करने में प्रान्त की पुलिस कोई वैसी कार्यशीलता प्रदर्शित करने में समर्थ नहीं हो पाई। सन् १९३६ में प्रान्त में डकैतियों की संख्या जहाँ २९४ थी, वहाँ वह बढ़कर १९३७ में ४८५ तथा १९३८ में ६६६ हो गई! इनके अतिरिक्त कितनी ही ऐसी डकैतियाँ भी हुई हैं जिनमें बन्दूक-पिस्तौल आदि चले हैं और कितने ही व्यक्तियों को अपने प्राणों से हाथ धोने पड़े हैं। इन डाकुओं का दमन करने में पुलिस ने किस प्रकार की तत्परता प्रदर्शित की है, इसका पता केवल इसी एक बात से लग जाता है कि इस प्रकार के अपराधियों में से केवल १५ प्रति सैकड़ा को ही अदालतों से उचित दण्ड दिलाने में वह समर्थ हो पाई है। डाका डालने के लिए आवश्यक हथियारों बन्दूक-तमंचों आदि की चोरी भी इधर बहुत बढ़ गई है। सन् १९३६ में जहाँ प्रान्त भर में बन्दूकों और तमंचों की कुल ४८ चोरियाँ हुई थीं, वहाँ सन् १९३७ में १०७ तथा १९३८ में १३७ चोरियाँ हुईं, जिनमें से केवल ४६ खोये हुए हथियारों का पता चल सका है। साम्प्रदायिक उपद्रवों तथा हत्या की घटनाओं आदि की भी संख्या में इन दो वर्षों में बहुत ही अधिक वृद्धि हुई है जो भयावह है। आशा है कि भविष्य में प्रान्त की पुलिस इन अपराधों का अन्त करके यहाँ सुख-शान्ति की व्यवस्था करने के लिए अधिक से अधिक तत्परता के साथ कार्य करेगी।

अध्यापक रामरत्न का स्वर्गवास

आगरा के अध्यापक रामरत्न जी का इसी १५ अगस्त को स्वर्गवास हो गया। अध्यापक जी हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के हितैषियों में थे। पंडित रामजीलाल शर्मा के मंत्रिमंडल में उन्होंने परीक्षा-मंत्री का कार्य बड़ी लगन के साथ किया था। उनका हिन्दी के प्रति विशेष अनुराग था। स्वभाव के सरल और व्यवहार के खरे थे। उनके निधन से हिन्दी का एक सजग सेवक उठ गया। हम परमात्मा से अध्यापक जी की मृतात्मा के लिए शान्ति की प्रार्थना करते हुए उनके कुटुम्बियों से अपनी हार्दिक समवेदना प्रकट कर रहे हैं।

भूल-सुधार

अगस्त के अंक में 'नानी' नाम की जो कहानी छपी है उसकी लेखिका श्रीमती गिरिजा वर्मा हैं। उसमें १४१ पृष्ठ की २८-२९ पंक्तियों को पाठक इस तरह पढ़ें—

"दो महीने अस्वस्थ रहने के पश्चात् दोनू की मृत्यु हो चुकी थी..."

पचास रुपये का

श्री काशीराम-पुरस्कार

इसका तृतीय पुरस्कार इस वार —कविता— पर दिया जायगा। नियम निम्नांकित है —

(१) हिन्दी का कोई भी लेखक या लेखिका इस पुरस्कार की प्रतियोगिता में भाग ले सकेगी।

(२) कविता भेजने की अन्तिम तारीख ३१ अक्टूबर है।

(३) कविता ५० पद्यों की हो। केवल नई और मौलिक कविता पर विचार किया जायगा।

(४) सर्वश्रेष्ठ कविता पर ५०) का पुरस्कार ३० नवम्बर को भेज दिया जायगा और कविता 'सरस्वती' में छापी जायगी। पुरस्कार का रुपया निर्णायक भेजेंगे।

(५) कविताओं का निर्णय 'सरस्वती'-सम्पादक पण्डित देवीदत्त जी शुक्ल करेंगे। प्रतियोगियों को अपनी कवितायें उन्हीं के नाम 'इंडियन प्रेस लिमिटेड, इलाहाबाद' के पते से भेजनी चाहिए।

(६) कविता पर 'श्री काशीराम-पुरस्कार के लिए'—यह वाक्य अवश्य लिखा रहना चाहिए। कविता के साथ आवश्यक टिकट अवश्य होना चाहिए, अन्यथा अस्वीकृत होने पर कोई कविता वापस न की जायगी।

निवेदक

चन्द्रभूषण वैश्य, नारायणगंज (ढाका)

युद्ध की डायरी

१५ जून—पेरिस पर जर्मनी का क़ब्ज़ा हो गया। अमेरिका के पेरिसस्थित राजदूत पेरिस में सिर्फ़ इसी लिए ठहरे रहे ताकि खून खराबी हुए विना ही सरकार एक हाथ से दूसरे हाथ में चली जाय। रीस के दक्षिण पूर्व फ़ौलादी जर्मन दस्तों ने मैजिनों लाइन और जनरल वेगाँ की सेना को अलग अलग कर दिया। शैम्पेन के मोर्चे पर जर्मन-फ़ौज रोमिली और सेण्ट डिजियर की ओर बढ़ी। मान्टमेडी के समीप मैजिनों लाइन और ब्रिटिश चैनल के बीच फ्रांसीसी सैन्य-पंक्ति को छिन्न-भिन्न कर दिया गया।

उत्तरी अफ़्रीका के टैन्जियर के अन्तर्राष्ट्रीय प्रदेश पर स्पेन की फ़ौजों ने क़ब्ज़ा कर लिया।

इटली के हवाई जहाज़ों ने दक्षिणी पूर्वी फ्रांस पर हमला किया। ब्रिटिश सुमालीलैंड के वेरवेरा नामक स्थान पर भी हवाई हमला किया गया।

१६ जून—फ्रांस की सरकार टुअर्स को छोड़ कर किसी अन्य स्थान को चली गई। सोवियट सरकार ने लियूनिया की सरकार को अल्टीमेटम दिया; लियूनिया की सरकार ने मंजूर कर लिया। सोवियट फ़ौजें लियूनिया की सीमा पार कर गईं। लियूनिया की सरकार ने इस्तीफ़ा दे दिया।

फ्रांसीसी बेड़े ने कैप्टेन औलियर की अध्यक्षता में वेनिस पर बमवर्षा की जिससे तेल के हौदों में आग लग गई। फ्रांसीसी जहाज़ों ने इटली के समुद्र-तटवर्ती कारखानों तथा रेलवे लाइनों पर भी बम फेंके।

१७ जून—जर्मन-सेनायें राइन के पार हो गईं। लैङ्ग्रेस प्लेटो पर जर्मन हमले हुए।

१८ जून—मोशियो रेनो ने इस्तीफ़ा दे दिया। मार्शल पेताँ ने नई सरकार बनाई। फ्रांस के नये प्रधान मंत्री ने राष्ट्र के नाम रेडियो पर सन्देश सुनाया कि जर्मनी और फ्रांस के बीच लड़ाई बन्द करने का निश्चय किया गया है।

१९ जून—इटली-स्थित जर्मन राजदूत तथा काउन्ट सियानो के साथ सिन्योर मुसोलिनी हिटलर से मिलने के लिए रोम से रवाना हो गये। हर हिटलर भी म्यूनिख में फ़ौज के सदर दफ़्तर में पहुँच गये। इन दोनों ने एकान्त में मार्शल पेताँ के ब्राडकास्ट अथवा जर्मनी और फ्रांस के बीच सम्मान-जनक समझौते के विषय में बहुत देर तक मशविरा किया।

जर्मन-सेनायें अट्रुन के आगे तक बढ़ गईं। बर्गेंडी में वे डिजोन में घुस आईं। फ्रांस कामटे में जर्मन लोग डूब तक पहुँच गये और उनकी हथियारबन्द मोटरें जूस में जा धमकीं। जर्मन-फ़ौजों ने बेलफोर्ड, डिबोब तथा हथियार बनाने के एक खास कारखाने क्यूसोवर्क पर क़ब्ज़ा कर लिया।

जर्मन-फ़ौजें फ्रांसीसी क़िलेबन्दियों को तोड़ कर नार्मण्डी और ब्रिटेनी के अन्दर दूर तक घुस गईं। आगे चलनेवाली फ़ौजी टुकड़ियाँ शावर्ग और टानेज तक पहुँचीं। लायर के बीच में जर्मनों ने नदी को पार करने के लिए चन्द छोटे छोटे पुल बना लिये और लायर तथा बासजेस के बीच जर्मन-फ़ौजें जूस नामक स्थान की ओर बढ़ीं। अलसास और लारेन में लड़ाई हुई।

२० जून—फ्रेंच प्रतिनिधि सुलह की वार्ता के लिए रवाना हुए। बोर्डो पर हवाई हमला हुआ जिसमें १०० जर्मन वायुयानों ने भाग लिया।

२१ जून—इँगलैंड के दक्षिणीतट के एक नगर पर ३५ मिनट तक हवाई लड़ाई हुई। ब्रिटिश हवाई जहाज़ों ने दुश्मन के फ़ौजी इलाक़ों पर भीषण हमले किये।

२४ जून—इटालियन राजदूत ने ब्रिटेन छोड़ दिया।

२५ जून—फ्रांस और इटली की सुलह की शर्तें प्रकाशित हो गईं।

अभिसारिका

[चित्रकार—श्रीयुत बी० सरकार, ४० सी० विलिंग्डन स्ट्रीट, कलकत्ता

सचित्र मासिक पत्रिका

सम्पादक

देवीदत्त शुक्ल—उमेशचन्द्र मिश्र

आक्टोबर १९४० } भाग ४१, खंड २ संख्या ४, पूर्ण संख्या ४९० {आश्विन १९९७

दो गीत

(१)

स्वर अलसित है, गीत पुराना,
है उदास मन बहलाने का केवल एक बहाना।
चुप हो जा गायक, कुछ गाके
ढीले पड़े तार वीणा के
झीना और तुनुक है इन तानों का तानावाना।
हैं विभोर-से प्राण हमारे
रूठ गये कुछ गान हमारे
खोजें कहाँ मीत, सुख-दुख का है यह देश अजाना।
बेबस नयनों के चितवन में
और खोजना कुचले मन में
लिपट सो रहे हों कसकन से तो तुम चूम जगाना।
हँसी-रुदन का नीड़ सलोना
छान थके हम कोना-कोना
आशा ने सीखा प्रदीप से चुपके से बुझ जाना।
स्वर अलसित है, गीत पुराना।

—मोहनलाल महतो

(२)

चिर जलन मेरी कहानी
मैं अतिथि खाली हृदय हूँ
गुरु पराजय की विजय हूँ
जागरण संग्राम मेरा स्वप्न जीवन की जवानी
चिर जलन मेरी कहानी
तुम्हारा लेकर सहारा
पा सकूँगा यदि किनारा
तो तिमिर सब रवि बनेगा, मूक स्वर वरदान वानी
दिया सब वह जो लिया था
बिना इच्छा के जिया था
दिव्य आशा के सहारे प्राण ने पगधूल छानी
चिर जलन मेरी कहानी।

—उदयशंकर भट्ट

लेखक, रायबहादुर बाबू श्यामसुंदरदास, बी० ए०

यों तो हिंदी का जन्म-काल सम्राट् हर्षवर्द्धन का समय बताया जाता है, परंतु जिस हिंदी को हम जानते हैं उसका कलम इस 'कहानी' के लेखक महोदय ने लगाया था, यही नहीं, उसे पाल-पोसकर फलद वृक्ष के रूप में भी परिणत कर दिया। उनकी यह 'आत्मकहानी' विश्वास है, प्रत्येक हिंदी-प्रेमी ध्यान से पढ़ेगा, क्योंकि वह इसको पढ़कर जान सकेगा कि उसकी हिंदी कहाँ से कहाँ जा पहुँची है।

इस प्रकार खेल-कूद और पढ़ाई-लिखाई में कालेज का काम समाप्त हुआ। यहाँ इतना और कह देना चाहता हूँ कि इसी विद्यार्थी-जीवन में मेरा स्नेह महामहोपाध्याय पंडित सुधाकर द्विवेदी के ज्येष्ठ पुत्र पंडित अच्युतप्रसाद द्विवेदी तथा बाबू इंद्रनारायणसिंह के भतीजे बाबू गुरुनारायणसिंह से हो गया। हम लोग प्रायः मिला करते और टेनिस आदि का खेल खेलते।

इस तरह पढ़ाई समाप्त हुई। वेनिस साहब बहुत चाहते थे कि मैं संस्कृत में एम० ए० पास करूँ, पर मेरी रुचि उस ओर न थी। इसी वर्ष लखनऊ में टीचर्स ट्रेनिंग कालेज खुला था। मैंने उसमें भरती होने की अर्जी दी और मुझे एक स्कालरशिप भी मिली। मैं लखनऊ गया और सेठ रघुवरदयाल के मकान पर बाबू कृष्णबलदेव वर्म्मा के साथ ठहरा। ट्रेनिंग कालेज के प्रिंसपल मिस्टर केम्स्टर थे। उनके दाहिने हाथ, पंजाब के एक महाशय, मुंशी प्यारेलाल थे। बोर्डिंग का सब प्रबंध इन्हीं के हाथ में था। मैं चाहता था कि अलग बाबू कृष्णबलदेव के साथ रहूँ पर लाख उद्योग करने पर भी मेरी बात न मानी गई और एक महीना वहाँ रहकर मैं काशी लौट आया। अब चंद्रप्रभा प्रेस में मुझे ४०) रुपया मासिक पर लिटरेरी असिस्टेंट का काम मिला। कई महीने तक मैंने वह काम किया पर वह मुझे अच्छा न लगता था। उसे भी मैंने छोड़ दिया। फिर २० मार्च सन् १८९९ को हिंदू स्कूल में मुझे मास्टरी मिली। मैंने वहाँ १० वर्षों तक काम किया।

(२)

नागरी-प्रचारिणी सभा

सन् १८९३ की बात है। मैं उस समय इंटरमीडियेट के सेकेंड इयर में था। उन दिनों हम लोगों के कई डिबेटिंग क्लब थे, पर उनका कालेज से कोई संबंध न

था। छोटे दर्जे के विद्यार्थियों ने भी अपनी अलग डिवेटिंग सुसाइटी बनाई थी। इसका अधिवेशन प्रतिशनिवार को १२ वजे नार्मल स्कूल में होता था। गर्मी की छुट्टियों में यह काम बंद हो गया। ९ जुलाई सन् १८९३ को इस सुसाइटी का एक अधिवेशन बाबू हरिदास बुआसाव के अस्तबल के ऊपरी कमरे में हुआ। इसमें आर्यसमाज के उपदेशक शंकरलाल जी आए और उन्होंने एक व्याख्यान दिया। पीछे से ये दक्षिण-अफ्रिका में स्वामी शंकरानंद के नाम से प्रसिद्ध हुए। इनका व्याख्यान बड़ा जोशीला होता था। हम लोग इस व्याख्यान से बड़े उत्साहित हुए। यह निश्चय हुआ कि अगले सप्ताह में १६ जुलाई को फिर सभा हो। उसमें यह निश्चय हुआ कि आज नागरी-प्रचारिणी सभा की स्थापना की जाय। मैं मंत्री चुना गया और सभा के साप्ताहिक अधिवेशन होने लगे। उस समय जो लोग उसमें संमिलित हुए उनमें से पंडित रामनारायण मिश्र, ठाकुर शिवकुमारसिंह और मैं अव तक इस सभा के सभासद बने हुए हैं, और लोग धीरे-धीरे अलग हो गए। अतएव उदार जनता ने हमीं लोगों को सभा का संस्थापक तथा जन्मदाता मान लिया है।

भारतेंदु हरिश्चंद्र जी का स्वर्गवास हो चुका था। प्रयाग में हिंदी के लिये कुछ उद्योग हुआ था, पर हमारी आरंभ-शूरता के कारण दो ही तीन वर्षों में वह स्थगित हो गया। इस समय हिंदी की बड़ी बुरी अवस्था थी। वह जीवित थी यही बड़ी वात थी। राजा शिवप्रसाद के उद्योग तथा भारतेंदु जी के उसके लिये अपना सर्वस्व आहुति दे देने के कारण उसको जीवन-दान मिला था। हिंदी का नाम लेना भी इस समय पाप समझा जाता था। कचहरियों में इसकी विलकुल पूछ नहीं थी। पढ़ाई में केवल मिडिल क्लास तक इसको स्थान मिला था। पढ़नेवाले विद्यार्थियों में अधिक संख्या उर्दू लेती थी। परीक्षार्थियों में भी उर्दूवालों की संख्या अधिक रहती थी। वही विद्यार्थी अच्छा और योग्य समझा जाता था जो अँगरेजी फर्राटे से बोल सकता था और उसी का मान भी होता था। हिंदी बोलनेवाला तो गँवार कहा जाता था। वह बड़ी हेय दृष्टि से देखा जाता था। इस अपमान की अवस्था में लड़कों के खिलवाड़ की तरह नागरी-प्रचारिणी सभा की स्थापना हुई। किसी ने स्वप्न भी न देखा था कि यह हिंदी की उन्नति कर सकेगी और उसकी पूछ होगी। मैं तो इसे ईश्वर की प्रेरणा ही समझता हूँ कि वह इतनी उन्नति कर सकी और देश की प्रमुख संस्थाओं में महत्त्वपूर्ण स्थान पर विराज सकी। प्रारंभ में तो यह लड़कों का खिलवाड़ ही थी। प्रतिरविवार को लोग इकट्ठे होते और व्याख्यान देते। पहले-पहल भारतजीवन पत्र के संपादक बाबू कार्तिकप्रसाद ने इसे आश्रय दिया और अपना वरद हाथ इसके सिर पर रखा। प्रत्येक बात में वे इसके फ्रेंड, फिलासफर और गाइड हुए। पहले ही वर्ष में जिन कार्यों का सूत्रपात हुआ वे समय पाकर पल्लवित और पुष्पित हुए तथा उनमें फल लगे। सभा के इस बाल्य-काल का स्मरण कर और सन् १९३९ में उसकी उन्नति देखकर परम संतोष, उत्साह और आनंद होता है। हमारी आरंभ-शूरता के पाप को इसने धो वहाया। आरंभ में तो हिंदी के प्रमुख लोग इसमें संमिलित होने में बड़ी आना-कानी करते थे, यहाँ तक कि बाबू राधाकृष्णदास भी कई महीनों तक इससे संबंध करने में हिचकिचाते रहे। उनका अनुमान था कि यह बहुत दिनों तक न चल सकेगी और व्यर्थ हम लोगों की बदनामी होगी। पर बहुत जोर देने पर वे ६ महीने बाद संमिलित हुए और इसके प्रथम सभापति चुने गए। उनके संमिलित होते ही यह उन्नति के मार्ग पर अग्रसर हुई। उन्होंने अपने मित्रों तथा हिंदी के प्रमुख व्यक्तियों को एक छपी चिट्ठी भेजी। अव तो बहुत-से लोग क्रमशः इसके सभासद बनने लगे। बाबू राधाकृष्णदास ने सभा की अमूल्य सेवा की है। पहले ही वर्ष में सभा ने कोश, व्याकरण, हिंदीभाषा, हिंदीपत्र तथा उपन्यासों का इतिहास, यात्रा, हिंदी के विद्वानों के जीवन-चरित्र तथा वैज्ञानिक ग्रंथों के लिखवाने और अन्य अनेक बातों का सूत्रपात किया, जो सब कार्य समय पाकर सफल हुए। इसका पहला वार्षिकोत्सव ३० सितंबर १८९४ को कारमाइकेल लाइब्रेरी में मनाया गया। अब तक सभा के कार्यालय का कोई स्थान न था। उसका कार्यालय मेरे ही घर पर था। यह विचार हुआ कि प्रथम वार्षिकोत्सव का सभापति

किसको बनाया जाय। बाबू राधाकृष्णदास तथा बाबू कार्तिकप्रसाद ने मिलकर परामर्श किया। सोचा गया कि राजा शिवप्रसाद ने हिंदी की बड़ी सेवा की है। उन्हीं के द्वारा उसकी रक्षा हो सकी है, नहीं तो हिंदी का कहीं नाम भी न रह जाता। वे ब्रिटिश गवर्नमेंट के बड़े भक्त थे, सिक्ख-युद्ध में उन्होंने जासूसी भी की थी। पीछे वे स्कूलों के इंसपेक्टर बनाए गए। उन्होंने विरोध को कम करने के लिये केवल नागरी अक्षरों के प्रचार के बने रहने पर जोर दिया। भाषा वे मिश्रित चाहते थे। जो हो, उस समय उनकी नीति ने बड़ा काम किया। यह सब स्मरण करके यह निश्चय किया गया कि वे ही सभापति बनाए जायँ। बाबू राधाकृष्णदास, बाबू कार्तिकप्रसाद और मैं उनसे मिलने गए। उन्होंने कहा कि मैंने कलम तोड़ दी है, मेरी दावात सूख गई है, मैं अब किसी झंझट में नहीं पड़ना चाहता। मुझे भूल जाइए। बाबू राधाकृष्णदास ने बहुत जोर दिया, तब कहीं जाकर उन्होंने स्वीकृति दी। अस्तु, निमंत्रण-पत्र बाँटे गए और उत्सव का आयोजन किया गया। जब इसकी खबर कांग्रेस-भक्त नवयुवकों को लगी तो वे कहने लगे कि यदि राजा साहब सभा में आवेंगे तो हम लोग उनकी बेइज्जती करेंगे और उन्हें सभापति न होने देंगे। बड़ी कठिन समस्या उपस्थित हुई। कुछ समझ में न आता था कि क्या किया जाय। अंत में यह निश्चय हुआ कि राजा साहब को सभा में आने से रोका जाय और किसी दूसरे सभापति की खोज की जाय। ऐसा ही किया गया। चंद्रप्रभा प्रेस के मैनेजर पंडित जगन्नाथ मेहता ने इस समय बड़ी सहायता की। वे गए और रायबहादुर पं० लक्ष्मीशंकर मिश्र को सभा में ले आए। पंडित लक्ष्मीशंकर मिश्र, पंडित रामजसन मिश्र के ज्येष्ठ पुत्र थे। इन पंडित रामजसन ने पहले पहल जायसी की पद्मावत छपाई थी। इनके चार पुत्र पंडित लक्ष्मीशंकर मिश्र, पंडित रमाशंकर मिश्र, पंडित उमाशंकर मिश्र और पंडित ब्रह्मशंकर मिश्र थे। सभी एम० ए० पास थे और अच्छे अच्छे ओहदों पर थे। पं० लक्ष्मीशंकर मिश्र 'काशी पत्रिका' निकालते थे। वे पहले क्वींस कालेज में गणित के प्रोफ़ेसर थे। इस समय स्कूलों के Assistant Inspector थे। ई० ह्वाइट साहब इन दिनों इस प्रांत के डाइरेक्टर आव पब्लिक इंस्ट्रक्शन थे। वे मिश्रजी को बहुत मानते थे। यह संयोग सभा के लिये शुभ फलप्रद हुआ। उत्सव पंडित लक्ष्मीशंकर मिश्र के सभापतित्व में आनंदपूर्वक मनाया गया और उक्त पंडित जी अगले वर्ष के लिये सभापति चुने गए। इन दिनों में सभा कुछ विशेष उद्योग न कर सकी। मन के लड्डू खाती और आकाश-पुष्प की कामना करती थी। दरभंगा के महाराज लक्ष्मीश्वरसिंह को सभा ने लिखा था कि यदि आप सहायता करें तो सभा एक हिंदी का कोश तैयार करे। महाराज ने १२५) सहायतार्थ भेजकर लिखा कि इस समय मैं क्यडिस्ट्रल सर्वे में फँसा हुआ हूँ। सभा काम करे, मैं फिर और सहायता देने पर विचार करूँगा। इसके पहले काँकरौली के महाराज गोस्वामी बालकृष्ण-लाल के यहाँ, जो उन दिनों काशी में आए हुए थे और गोपालमंदिर में ठहरे थे, हिंदी-कवियों का दरबार लगता था। एक दिन बाबू जगन्नाथदास रत्नाकर मुझे अपने साथ ले गए और महाराज से सहायता देने की प्रार्थना की। कई दफ़े दौड़ने पर १००) मिला। यह पहला दान था जो सभा को प्राप्त हुआ। उन दिनों डुमराँव के मुंशी जयप्रकाशलाल की बड़ी धूम थी। उनको बराबर एड्रेस मिलते थे और वे सबकी सहायता करते थे। बाबू रामकृष्ण वर्मा ने संमति दी कि सभा उन्हें एड्रेस दे तो कुछ सहायता मिल सकती है। सभा तैयार हो गई। बाबू रामकृष्ण वर्म्मा ने एड्रेस की पांडुलिपि तैयार की। पीछे यह विदित हुआ कि बाबू रामकृष्ण ने मुंशी जी से ठहराव कर लिया है कि हमको इतना रुपया (कदाचित् ५००) दो तो हम एड्रेस दिलवावें। हम लोगों को डर हुआ कि कहीं हम लोग कोरे ही न रह जायँ इसलिये निश्चय किया गया कि एड्रेस न दिया जाय।

इसी पहले वर्ष में सभा ने हिंदी-पुस्तकों की खोज का सूत्रपात किया। उसने भारत-गवर्नमेंट, संयुक्त-प्रदेश की गवर्नमेंट, पंजाब की गवर्नमेंट तथा बंगाल की एशियाटिक सुसाइटी से प्रार्थना की कि संस्कृत-हस्तलिखित पुस्तकों के साथ हिंदी-पुस्तकों की भी खोज की जाय। संयुक्त-प्रदेश की गवर्नमेंट ने बनारस के संस्कृत-कालेज

में रक्षित हस्तलिखित हिंदी-पुस्तकों की एक सूची बनवाकर भेजी। भारत और पंजाब गवर्नमेंटों ने कुछ नहीं किया। बंगाल की एशियाटिक सुसाइटी ने दो वर्ष तक यह काम कराया। पीछे से उसे बंद कर दिया।

दूसरे वर्ष (१८९४—९५) के प्रारंभ में कायस्थ कांफ्रेंस का वार्षिक अधिवेशन काशी में हुआ था। सभा ने यह समझा कि कायस्थ जाति के लोग अधिकतर दफ्तरों में काम करते हैं। वे यदि हिंदी को अपना लें तो उसके प्रचार में विशेष सहायता पहुँच सकती है। लखनऊ के बाबू श्रीराम इस अधिवेशन के सभापति हुए थे। वे संस्कृत के ज्ञाता थे। इससे और भी अधिक आशा हुई। एक डेपुटेशन भेजा गया और हिंदी को अपनाने की प्रार्थना की गई। कांफ्रेंस ने निश्चय भी इस प्रार्थना के समर्थन में किया पर परिणाम कुछ भी न निकला। यदि कायस्थ और काश्मीरी लोग हिंदी के पक्ष में हो जायँ, तो हिंदी के प्रचार में बहुत कुछ सहायता पहुँच सकती है। पर जहाँ काश्मीरी पंडितों में ऐसे व्यक्ति भी हैं जो उर्दू को अपनी 'मादरी जबान' मानने में अपना अहोभाग्य समझते हैं, वहाँ क्या आशा की जा सकती है? वहाँ, यदि आशा है तो कायस्थों और काश्मीरियों के स्त्री-समाज से है जो हिंदी को आग्रह से ग्रहण कर रहा है और उसके पठन-पाठन में दत्तचित्त है।

इसी वर्ष तीन महत्त्वपूर्ण कार्यों का भी आरंभ हुआ। सभा ने प्रांतिक बोर्ड आव रेवेन्यू से निवेदन किया कि सन् १८८१ और १८७५ के एक्ट नं० १२ और १९ के अनुसार सम्मन आदि नागरी और फारसी दोनों अक्षरों में भरे जाने चाहिएँ, पर ऐसा नहीं होता है। इस नियम का पालन होना चाहिए। जब बोर्ड से कोई उत्तर न मिला तब सभा ने गवर्नमेंट को लिखा। इसका परिणाम यह हुआ कि बोर्ड ने आज्ञा दी कि आगे से दोनों फार्म भरे जायँ, पर इस आज्ञा का भी कोई परिणाम नहीं हुआ।

इसी वर्ष सभा के पुस्तकालय की नींव पड़ी। खड्गविलास प्रेस तथा भारत-जीवन आदि से कुछ पुस्तकें प्राप्त हुईं। इसी से नागरी-भंडार का आरंभ हुआ।

हिंदी-हस्तलिपि पर पुरस्कार देने का सभा ने पहले ही वर्ष में निश्चय किया था, पर शिक्षा-विभाग से लिखा-पढ़ी करने में देर हुई, इसलिये दूसरे वर्ष में इसका आरंभ हुआ।

सन् १८९४ में मैंने पहले पहल हिंदी में एक लेख लिखा। मेरी पाठ्य पुस्तकों में उस समय एक पुस्तक Help's Essays written in the intervals of business थी। इसमें एक निबंध था Aids to contentment। मैंने इसके आधार पर एक लेख "संतोष" नाम से लिखा जो बाँकीपुर के एक मासिक पत्र में छपा। अब उस लेख की प्रति मेरे पास नहीं है और बहुत उद्योग करने पर वह अब तक प्राप्त न हो सकी।

इसी वर्ष पहले-पहल बाबू कार्तिकप्रसाद, बाबू माताप्रसाद और मैं सभा के सभासद बनाने के लिये प्रयाग तथा लखनऊ गए। अनेक प्रतिष्ठित व्यक्ति सभासद बने। इसी यात्रा में मैं पहले-पहल पं० मदनमोहन मालवीय, पंडित बालकृष्ण भट्ट, बाबू कृष्णबलदेव वर्मा, मुंशी गंगाप्रसाद वर्मा आदि से परिचित हुआ। यह यात्रा बड़ी सफल रही।

तीसरे वर्ष (सन् १८९५-९६) में सभा ने कई महत्त्वपूर्ण कार्यों का आरंभ किया। अब हरिप्रकाश प्रेस में एक कमरा ४) रु० महीने पर किराये पर लिया गया और कुछ टेबल, कुर्सी, बेंच आदि का प्रबंध किया गया। जिस दिन सभा का कोई अधिवेशन होता उस दिन मुझे ही सब काम करना पड़ता था, यहाँ तक कि कभी कभी झाड़ू भी अपने हाथ से देना पड़ता था। पर इसके करने में न मुझे हिचकिचाहट होती थी और न लज्जा ही आती थी। मैं नहीं कह सकता कि क्यों सब कामों के करने में मुझे इतना उत्साह था।

इसी वर्ष नागरी-प्रचारिणी पत्रिका निकालने का प्रबंध किया गया। सभा की तीसरी वार्षिक रिपोर्ट में इस संबंध में यह लिखा है—

"सभा की कोई सामयिक पत्रिका न होने के कारण उसकी निर्णीत बहुत-सी बातें सर्व-साधारण में प्रचारित होने से रह जाती थीं और सभा के बहुतेरे उद्योग सरोवर में खिलकर मुरझानेवाले कमलों के समान हो जाते थे। दूसरे बहुतेरे भावपूर्ण उपयोगी

लेख सभा में आकर पुस्तकालय की आलमारियों को ही अलंकृत करते थे जिससे उसके सुयोग्य लेखक हतोत्साह हो जाते थे और सुरसिक उत्साही पाठक जन प्यासे चातक की भाँति बाट जोहते ही रह जाते थे। इन्हीं बातों का विचार कर और हिंदी में भाषातत्त्व, भूतत्त्व, विज्ञान, इतिहास आदि विद्या विषयक लेखों और ग्रंथों का पूर्ण अभाव देख सभा ने नागरी-प्रचारिणी पत्रिका निकालना प्रारंभ किया है।"

आरंभ में यह पत्रिका त्रैमासिक निकलने लगी और मैं उसका प्रथम संपादक नियत हुआ।

चौथे वर्ष (१८९५-९६) में कई काम हुए। इस वर्ष में यह बात प्रचलित हुई कि गवर्नमेंट अदालतों में फारसी अक्षरों के स्थान पर रोमन अक्षरों का प्रचार करना चाहती है। इस सूचना से बड़ी खलबली मची। अतएव विचार किया गया कि इस अवसर पर चुप रहना ठीक न होगा। यदि एक बार रोमन अक्षरों का प्रचार हो गया तो फिर देवनागरी अक्षरों के प्रचार की आशा करना व्यर्थ होगा। आंदोलन करने के लिये सभा के पास धन नहीं था। अतएव, यह निश्चय हुआ कि मैं मुजफ्फरपुर जाऊँ और वहाँ से कुछ धन प्राप्त करने का उद्योग करूँ। मैंने सभा की आज्ञा शिरोधार्य की। वहाँ मैं बाबू देवीप्रसाद खजाँची के यहाँ ठहरा और उनके साथ बाबू परमेश्वरनारायण मेहता तथा बाबू विश्वनाथप्रसाद मेहता से मिला और उन्हें सब बातें बताईं। वे दोनों महाशय अत्यंत विद्यारसिक और उदार थे। वे १२५), १२५) रु० देकर सभा के स्थायी सभासद बने और रोमन के विरुद्ध आंदोलन करने के लिये दोनों महाशयों ने मिलकर ५०) दान दिया। यह धन लेकर मैं काशी लौटा तो उत्साह से भरा हुआ था। निश्चय हुआ कि इस संबंध में एक पैम्फ्लेट छपवाया जाय। बाबू राधाकृष्णदास ने उसके नोट तैयार किये। मैंने पैम्फ्लेट अँगरेजी में लिखा और पंडित लक्ष्मीशंकर मिश्र ने उसका संशोधन और परिमार्जन किया। यह पैम्फ्लेट The Nagari Character नाम से सन् १८९६ में प्रकाशित किया गया और इसकी प्रतियाँ चारों ओर बाँटी गईं। आनंद की बात है कि २७ जुलाई सन् १८९६ की गवर्नमेंट की आज्ञा नं० ३-१४४१-७ सी० में कहा गया कि गवर्नमेंट ने रोमन अक्षरों के प्रचार का प्रस्ताव अस्वीकृत कर दिया है।

इस वर्ष के नवंबर मास में सर एंटोनी मैकडानेल साहब जो इस प्रदेश के लेफ्टिनेंट गवर्नर थे, काशी पधारे। सभा ने उनको एक अभिनंदन-पत्र देने का विचार कर उसके लिये आज्ञा माँगी। कोई उत्तर न मिला। जब सर एंटोनी साहब काशी पहुँच गए तो मैं नदेसर की कोठी में जहाँ वे ठहरे थे, बुलाया गया। बनारस के कमिश्नर के सिरिश्तेदार ने मुझसे कहा कि यदि तुम्हारी सभा अभिनंदन-पत्र देना चाहती है तो जाओ डेपुटेशन लेकर अभी आओ। मैंने कहा कि संध्या हो चली है। लोगों को इकट्ठा करने में समय लगेगा। यदि कल या परसों इसका प्रबंध हो सके तो हम लोग सहर्ष आकर अभिनंदन-पत्र दे सकते हैं। उन्होंने कहा, यह नहीं हो सकता। मैं लौट आया और मुख्य मुख्य सभासदों से सब बातें कहीं। निश्चय हुआ कि अभिनंदन-पत्र डाक से भेज दिया जाय और सब बातें लिख दी जायँ। ऐसा ही किया गया। उसके उत्तर में लाट साहब के प्राइवेट सेक्रेटरी ने निम्नलिखित पत्र भेजा।

His Honour has read the Address with interest. The substantial question referred to, *i. e., the substitution of Hindi for* Urdu as the official language of the court is one on which His Honour cannot now express an opinion. He admits, however, that your representation deserves careful attention and this he will be prepared to give to it at some future suitable time.

इसके अनंतर प्रयाग में भारतीभवन के वार्षिकोत्सव पर जसटिस नाक्स ने जो उस उत्सव के सभापति थे, कहा कि यह अवसर है कि तुम लोगों को अदालतों में नागरी-प्रचार के लिये उद्योग करना चाहिए। तुम्हें सफलता प्राप्त होने की पूरी आशा है। गवर्नर के ऊपर दिये उत्तर तथा जसटिस नाक्स के कथन का प्रभाव पड़ा और पंडित मदनमोहन मालवीय ने इस काम को अपने हाथ में लिया। कई वर्षों के परिश्रम के अनंतर

उन्होंने Court Character and Primary Education नाम से एक पुस्तिका लिखकर तैयार की और वे एक डेपुटेशन भेजने का विचार करने लगे। इस पुस्तिका के तैयार करने में उनके मुख्य सहायक पंडित श्रीकृष्ण जोशी थे, जो बोर्ड आफ़ रेवेन्यू में नौकर थे। इस आंदोलन का विवरण आगे चलकर दूँगा।

इसी वर्ष महाराज रीवाँ ने निज राज्याभिषेक के समय अपने राज्य में नागरी-प्रचार की आज्ञा दी और १०० रु० सभा को दान दिया।

चौथे वर्ष नागरी-प्रचारिणी पत्रिका में मेरे दो लेख प्रकाशित हुए। वे दोनों लेख ये थे।

(१) भारतवर्षीय आर्य-देश-भाषाओं का प्रादेशिक विभाग और परस्पर संबंध। यह डाक्टर ग्रियर्सन-लिखित एक लेख का अनुवाद है जो Calcutta Review में छपा था।

(२) नागर जाति और नागरी-लिपि की उत्पत्ति। यह Asiatic Society के जरनल में छपे हुए एक लेख का अनुवाद है।

यहाँ पर कुछ विशेष घटनाओं का उल्लेख कालक्रम के अनुसार उचित जान पड़ता है।

सभा की उन्नति और विशेष कर मेरी ख्याति से चंद्रकांता उपन्यास के लेखक बाबू देवकीनंदन खत्री को विशेष ईर्ष्या उत्पन्न हुई। वे पंडित रामनारायण मिश्र को शिखंडी बनाकर भाँति भाँति के आक्रमण तथा दोषारोपण मुझ पर करने लगे। इससे मैं बहुत खिन्न हुआ। चौथे वर्ष के आरंभ में जो कार्यकर्त्ताओं का चुनाव हुआ, उसके लिये बाबू देवकीनंदन ने बहुत उद्योग किया और मैं उदासीन था। अतएव, वे मंत्री चुने गए। पर उनके मंत्रित्वकाल में सभा की प्रगति स्थगित रही। बाहरी सभासदों की संख्या गत वर्ष की अपेक्षा अवश्य बढ़ी पर आय में बहुत कमी हुई। विशेष चंदा तो कहीं से प्राप्त ही न हुआ। सभासदों के बढ़ने पर भी उनके चंदे की आय ३३९) से घटकर २२७) हो गई। कोई नया कार्य इस वर्ष नहीं हुआ, यहाँ तक कि सभा के अधिवेशन भी बहुत कम हुए। सच बात तो यह है कि मंत्रित्व पाने का उद्योग सभा की शुभ-कामना से प्रेरित नहीं था। वह तो ईर्ष्या-द्वेष के भावों से प्रभावित था। कुछ महीनों तक यह क्रम चला। पर जब सभा के टूट जाने की आशंका हुई तो बाबू राधाकृष्णदास, बाबू कार्तिकप्रसाद, पंडित जगन्नाथ मेहता आदि ने मिलकर बाबू देवकीनंदन से कहलाया कि या तो आप मंत्रित्वपद से त्याग-पत्र दे दीजिए या हम लोग सभा करके दूसरा मंत्री चुनेंगे। बाबू देवकीनंदन खत्री ने त्याग-पत्र देने में ही अपनी प्रतिष्ठा समझी। अस्तु, अब बाबू राधाकृष्णदास मंत्री चुने गए। मंत्रित्व से मेरा कोई साक्षात् संबंध न रहने पर भी मैं बाबू राधाकृष्णदास की निरंतर सहायता करता रहा।

एक काम जो इस वर्ष में हुआ वह उल्लेख योग्य है। मेरे उद्योग से बाबू गदाधरसिंह ने, जो अब पेंशन लेकर काशी आ गये थे, अपना आर्यभाषापुस्तकालय सभा के नागरी-भंडार में संमिलित कर देने का निश्चय किया। इसके लिये एक उपसमिति बनाई गई जिसके स्थायी मंत्री बाबू गदाधरसिंह चुने गए। अब सभा का कार्यालय नेपाली खपरे से उठकर बुलानाले पर आया और पुस्तकालय नित्य निश्चित समय पर खुलने लगा।

इस वर्ष मेरा पहला मौलिक लेख शाक्यवंशीय गौतम बुद्ध के नाम से नागरी-प्रचारिणी पत्रिका में प्रकाशित हुआ। अब तक जो लेख छपे थे वे अनुवाद थे।

इस वर्ष के अंत और पाँचवें वर्ष के आरंभ में २८ जुलाई १८९७ को सभा का वार्षिकोत्सव मनाया गया। इसके सभापति काशी के कलक्टर मि० काब थे। इन्होंने अपने अंतिम भाषण में नागरी-अक्षरों की बड़ी निंदा की। यह मुझसे न सहा गया। मैंने उन्हें धन्यवाद देते हुए उनके कथन का खंडन किया। किसी ने यह समाचार जाकर मेरे चाचा साहब को दिया। वे बहुत घबराए। सभा में आने का तो उनका साहस न हुआ पर घर पर जाकर वे बहुत बिगड़े। कहने लगे कि यह लड़का अपने मन का हुआ जाता है। किसी दिन यह आप तो जेल जायगा ही हम लोगों को भी हथकड़ी-बेड़ी पहना देगा। उस समय की स्थिति कुछ ऐसी ही थी। लोग अँगरेजों से बड़े भयभीत रहते थे। उनकी बात का खंडन करना तो असंभव बात थी। पर अब स्थिति में बड़ा परिवर्त्तन हो गया है। [क्रमशः

शहनाई

लेखक,
श्रीयुत हरिनन्दन, बी० ए०

यह कितनी मोहक तान सखे,
दुनिया सोती सुध-बुध खोकर।
सित चन्द्र-परी है उतर पड़ी
दूर्वों पर विलसित-सी होकर।
मैं एकाकी परदेशी हूँ—
सुख के सपने में विचर रहा!
कुछ सोने की तसवीर बना
मैं सोच रहा तन्द्रिल सोकर।
यह शहनाई ढोलक-पिपही
निशि-नीरवता में नाद मधुर।
औचक ही गूँज उठा नभ में
मुखरित होकर आह्लाद मधुर।
कुछ दर्द प्रवासी के उर में,
फिर कसक उठे हैं प्राण सखे।
किसकी शहनाई गूँज उठी—
यह कैसी मोहक तान सखे॥

पाया पायल के सिञ्जन में
मनु ने पहला अभिसार लगन।
जब काम-दुन्दुभी सजग हुई
पनपा शिव-उर में मादकपन।
सागर-उर से थी लिपट गई
सरिता जिस दिन कलनाद किये।
अलियों ने चूम कली का मुख
गाया मन-ही-मन में गुनगुन।
उस दिन कूलों को लहरों ने
चूमा गर्जन में स्वर भर कर।
रजनी मदमाती विहँस उठी—
'प्रियतम चन्दा कितना सुन्दर'।
यह आदि सृष्टि से मधुर मिलन
है मुखर हुआ कल गुंजन में।
कुछ भूली-सी है याद लगी
जाकर पायल के सिञ्जन में॥

नन्दन-वन का अवदात कुसुम
डाली पर आ हँस-खेल खिला।
यौवन-वेला में किरणों ने
मादकता की दो घूँट पिला।
चूमता अधर को अलस पवन
भावों की रानी सिहर उठी।
वसुधा के कण कण में विकसित
प्रियतम का प्रणय-हुलास मिला।
डाली पर कोयल कूक उठी
फिर हूक उठी अन्तस्तल में।
छुई-सी चरणों में होती
खोई-सी उन्मन पल-पल में।
यह शहनाई इंगित-स्वर है
आते होंगे दिलदार सनम।
कैसा कुसुमित, कितना प्रमुदित,
नन्दन-वन का अवदात कुसुम॥

कितने प्राणों का प्यार लिये
आई है यह मधु-लग्न घड़ी।
नव यौवन का वरदान विमल
ले प्रेम डगर में मग्न खड़ी—
संध्या से विकल, विमुग्ध वधू
थी हेर रही प्रियतम का पथ।
आँखें रह-रह हँस उठती थीं,
सुलझाती जातीं प्रेम-लड़ी।
कब से सपनों को पाल रही
अज्ञात-यौवना सुकुमारी।
वह सपना अब अपना होकर
गूँजा बन शहनाई प्यारी।
क्षणभर में कोई आयेगा
जीवन में जीवन-सार लिये।
दो दिल मिल एक तरह होंगे
कितने प्राणों का प्यार लिये॥

सुख के ये क्षण आते-जाते
दिल में कुछ कसक-व्यथा लेकर।
यह शहनाई का मादक स्वर
आता है प्रणय-कथा लेकर।
मैं तोड़ काल की अवधि अटल
क्षण छोड़ जगह की सीमा को।
उड़ जाता हूँ परियों के घर
अमरों की प्रेम-प्रथा लेकर।
मैं अभिशापित मानव जग में
इसकी मुझको परवाह नहीं।
बन्धन का हूँ मैं जीव, मगर
इस बन्धन की है चाह नहीं।
पलकें हैं बन्द पड़ीं, लेकिन
आँखों में अग जग छा जाते।
स्वर्णिम स्वप्नों से छन-छनकर
सुख के ये क्षण आते जाते॥

भारतीय राष्ट्र का आदर्श—प्रजातंत्र

लेखक, श्रीयुत रामनारायण 'यादवेन्दु', बी० ए०, एल-एल० बी०

भारत के सभी राजनीतिक दल इस बात में सहमत हैं कि भारत में प्रजातंत्र-राज्य ही सबसे श्रेष्ठ और उपयुक्त है। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने जो भारत की सबसे महान् और शक्तिशाली राष्ट्रीय संस्था है, अपना लक्ष्य भारत में पूर्ण स्वाधीनता और प्रजातंत्र-राज्य घोषित किया है। अखिल भारतीय मुस्लिम लीग ने लखनऊ-अधिवेशन (अक्टूबर, १९३७) में अपना लक्ष्य 'पूर्ण स्वतंत्रता' की प्राप्ति स्वीकार किया है। इस अधिवेशन में अध्यक्ष-पद से श्री मुहम्मदअली जिन्ना ने बड़े ओजस्वी शब्दों में मुस्लिम लीग का ध्येय घोषित करते हुए कहा—"मुस्लिम लीग भारत के लिए पूर्ण राष्ट्रीय प्रजातंत्रात्मक स्वराज्य चाहती है।" सिक्ख भी प्रजातंत्र के आदर्श को स्वीकार करते हैं। अप्रैल १९४० में संयुक्त प्रान्तीय प्रथम सिक्ख-सम्मेलन के सभापति-पद से शिरोमणि-गुरु-द्वारा-प्रबन्धक-कमिटी के अध्यक्ष मास्टर तारासिंह ने अपने अभिभाषण में कहा—

"अब जब कि प्रजातंत्रात्मक शासन-प्रणाली की देशवासी इच्छा करते हैं और जो सर्वश्रेष्ठ शासन-प्रणाली प्रतीत होती है, तब जो सिक्ख सिक्ख-शासन चाहता है वह स्वार्थी है; इस प्रकार वह महान् गुरु के उच्चादर्श से पतित होकर अपने समुदाय को कमजोर बनाता है।"

भारतीय ईसाई प्रजातंत्र के समर्थक हैं। हिन्दू-महासभा तथा लिबरल दल भी प्रजातंत्र के आदर्श में विश्वास करते हैं। इस प्रकार यह निर्विवाद है कि सम्पूर्ण भारत प्रजातंत्र के आदर्श को स्वीकार करता है।

आज की स्थिति में जब कि संसार में अधिनायक-तंत्र संसार में हाहाकार मचा रहा है, यह भारत के हित में ही होगा कि भारतीय जन संयुक्त रूप से इस आदर्श-प्रणाली की प्रतिष्ठा का प्रयत्न करें।

प्रजातंत्र केवल एक राजनीतिक सिद्धान्त और प्रणाली ही नहीं है, प्रत्युत वह एक सजीव सामाजिक सिद्धान्त और प्रणाली भी है। इसलिए राजनीतिक क्षेत्र में प्रजातंत्र के प्रयोग की सफलता उसकी समाज-क्षेत्र में की सफलता पर निर्भर है। सारांश यह है कि प्रजातंत्रात्मक शासन-प्रणाली की सफलता उसी राज्य में हो सकती है जिसके समाज में जनता ने प्रजातंत्र के सिद्धान्त को अपना जीवन-सिद्धान्त स्वीकार कर लिया हो।

राजनीतिक अर्थ में प्रजातंत्र का अर्थ यह है कि राज्य की शासन-सत्ता किसी वर्ग या समुदाय-विशेष में निहित न होकर सम्पूर्ण राष्ट्र—सम्पूर्ण जनता—में निहित होती है। प्राचीनकाल में यूनान में राज्य के आकार-प्रकार वर्तमान छोटे छोटे नगरों के बराबर होते थे। वे नगर-राज्य कहलाते थे। उनका शासन प्रत्यक्षतः समस्त नागरिकों-द्वारा होता था। जिस राज्य में समस्त नागरिक प्रत्यक्ष रूप से शासन-कार्य में भाग लें, उसी राज्य में प्रत्यक्ष प्रजातंत्र की प्रतिष्ठा सम्भव है। परन्तु वर्तमान स्थिति में जब कि राज्यों का आकार अत्यधिक विशाल है, प्रत्यक्ष प्रजातंत्र की स्थापना किसी प्रकार भी सम्भव नहीं। इसी कारण आधुनिक समय में प्रतिनिधि-सत्तात्मक प्रजातंत्र-प्रणाली का प्रचार है। राज्य के नागरिकों को अपने निर्वाचित प्रतिनिधियों-द्वारा राज्य के शासन-संचालन का अधिकार दिया गया है।

अतः भारत में जो एक सुविशाल देश है और जिसकी जन-संख्या सन् १९३१ की मनुष्य-गणना के अनुसार ३५ करोड़ है, प्रत्यक्ष प्रजातंत्र की प्रतिष्ठा केवल एक स्वप्न है। भारत में केवल प्रतिनिधि-सत्तात्मक प्रजातंत्र ही व्यावहारिक आदर्श हो सकता है।

प्रतिनिधि-सत्तात्मक प्रजातंत्र के लिए मताधिकार और निर्वाचन अत्यन्त आवश्यक हैं। इन दोनों के अभाव में प्रतिनिधि-संस्थायें वास्तविक अर्थ में समस्त नागरिकों की प्रतिनिधि नहीं हो सकतीं। सन् १९३५ से पूर्व भारत में स्वेच्छापूर्ण ढंग से शासन-संचालन किया जाता था। सन् ३५ के भारतीय शासन-विधान ने भारत के ११ प्रान्तों में प्रजातंत्रात्मक शासन-प्रणाली की स्थापना की है। भारतीय शासन-विधान के दो अंग हैं—प्रान्तीय शासन-भाग और संघ-शासन-भाग। इनमें से प्रान्तीय भाग का आधार तो प्रजातंत्र है, यद्यपि यह पूर्ण प्रजातंत्र

नहीं कहा जा सकता। विधान का संघ-शासन-भाग किसी प्रकार भी प्रजातंत्र माना नहीं जा सकता। संघ-शासन के अन्तर्गत रियासतों और प्रान्तों को सम्मिलित किया गया है। रियासतें सर्वथा स्वेच्छाचारी राज्य हैं। उनमें प्रजातंत्र का लेशमात्र भी नहीं है। दूसरी ओर प्रान्तों में सन् १९३५ का विधान प्रजातंत्रात्मक शासन की स्थापना करता है। इसके अतिरिक्त संघ-शासन में उत्तरदायित्व का भी अभाव है।

सन् १९३७ की पहली अप्रैल से भारत के ११ प्रान्तों में प्रान्तीय स्वराज्य की स्थापना हो चुकी है। तब से प्रजा-द्वारा चुने हुए प्रतिनिधियों-द्वारा बनाई गई सरकारों-द्वारा प्रान्तों में शासन-कार्य हो रहा है। अनुभव ने यह सिद्ध कर दिया है कि प्रजातंत्र भारत में पूर्णतः उपयुक्त प्रणाली सिद्ध हो सकती है, यदि उसके लिए उपयुक्त अवस्थायें और उपयुक्त वातावरण तैयार कर दिया जाय।

सन् १९३७ में प्रान्तीय चुनाव सबसे प्रथम बार राजनीतिक दलों की ओर से खड़े किये गये उम्मीदवारों-द्वारा लड़े गये। इससे पूर्व भी राजनीतिक दल थे। परन्तु वे न तो इतने संगठित थे और न उनका जनता पर प्रभाव ही था। श्री चित्तरंजनदास ने 'स्वराज्य-दल' की स्थापना कर इस दिशा में प्रयास किया था। परन्तु वह अधिक समय तक नहीं चला। लिबरल दल तो आज २० वर्षों से भारत में स्थापित है। इन प्रान्तीय चुनावों में सबसे अधिक संघर्ष मुस्लिम लीग और राष्ट्रीय कांग्रेस में रहा।

कांग्रेस की इन चुनावों में आशातीत विजय हुई और मुस्लिम लीग उन प्रान्तों में भी बहुमत प्राप्त न कर सकी जिनमें मुसलमानों की जन-संख्या बहुमत में है। कांग्रेस ने मदरास, बम्बई, संयुक्त-प्रान्त, मध्य-प्रान्त, बिहार, उड़ीसा, आसाम और सीमा-प्रान्त में अपने मंत्रि-मंडल बनाकर शासन-संचालन किया। दूसरी ओर बंगाल में श्री फ़ज़लुल हक़ ने जो प्रजा-दल के नेता थे, अपना मंत्रि-मंडल बनाया। श्री हक़ ने चुनाव में मुस्लिम लीग-दल के नेता को हरा कर शानदार विजय प्राप्त की थी। पंजाब में सर सिकन्दर हयात ख़ाँ यूनियनिस्ट दल के नेता हैं और उन्होंने यूनियनिस्ट-दल की सरकार पंजाब में स्थापित की। सिंध में भी मुस्लिम लीग की सरकार न बन सकी।* प्रान्तीय चुनावों के बाद मुस्लिम लीग और कांग्रेस में सम्मिलित रूप से प्रान्तों में काम करने के लिए कुछ नेताओं में विचार-विनिमय हुआ।

फ़रवरी १९३७ के अन्त में वर्धा में कांग्रेस-कार्यसमिति का अधिवेशन हुआ, जिसमें धारा-सभाओं में कांग्रेसी सदस्यों के लिए कार्यक्रम और नीतियाँ निर्धारित की गईं। कार्य-समिति ने धारा-सभाओं में कांग्रेस-दलों को स्पष्ट शब्दों में यह आदेश किया कि वे कार्य-समिति की आज्ञा के बिना धारा-सभाओं के अन्य दलों के साथ मेल न करें।

कांग्रेस इस शर्त पर मुस्लिम लीग से समझौता करना चाहती थी कि मुस्लिम लीग के सदस्य कांग्रेस के प्रतिज्ञा-पत्र पर हस्ताक्षर कर दें और कांग्रेस का जो प्रोग्राम है उसे स्वीकार कर लें। मुस्लिम लीग ने इसे पसन्द नहीं किया। अतः दोनों में कोई समझौता नहीं हो सका। कांग्रेसी प्रान्तों के मंत्रि-मंडलों में मुस्लिम लीग के सदस्य नहीं लिये गये।

परन्तु प्रत्येक कांग्रेसी प्रान्त में कांग्रेस-मंत्रि-मंडलों में कांग्रेसी मुस्लिम सदस्य नियुक्त किये गये। इससे श्री मुहम्मद अली जिन्ना को घोर विषाद और निराशा हुई। वास्तव में वे उन प्रान्तों में जिनमें मुसलमानों का बहुमत है, मुस्लिम लीग के मंत्रि-मंडल भी स्थापित न करा सके।

---

* प्रान्तीय धारा-सभाओं में मुस्लिम लीग के सदस्यों की संख्या निम्न प्रकार सन् १९३७ में थी—

प्रान्त		कुल मुस्लिम सदस्य	लीग के सदस्य
मदरास	...	२८	११
बिहार	...	३९	—
बम्बई	...	२९	२०
संयुक्त-प्रान्त	...	६६	२७
बंगाल	...	११७	—
मध्य-प्रान्त	...	१४	—
पंजाब	...	८४	—
सीमा-प्रान्त	...	३६	—
उड़ीसा	...	४	—
आसाम	...	३४	—
सिंध	...	३३	—

यह उनके लिए सबसे अधिक निराशाजनक बात हुई। ऐसी दशा में उनके पास अपनी कमज़ोरी छिपाने के लिए दूसरों पर दोषारोपण करने के सिवा और कोई उपाय ही न था। हम श्री जिन्ना से यह पूछते हैं कि यदि वास्तव में मुस्लिम लीग का बंगाल, पंजाब, सिन्ध और सीमा-प्रान्त में मुसलमानों पर प्रभाव है तो आज तक वे विशुद्ध मुस्लिम लीग की सरकारें उन प्रान्तों में स्थापित क्यों न कर सके। क्या इन प्रान्तों में कांग्रेस ने मुस्लिम लीग की सरकारें स्थापित होने में बाधा डाली थी? स्पष्ट है कि कांग्रेस का इसमें कोई दोष नहीं।

ऐसी स्थिति में जब कि श्री जिन्ना की पंजाब और बंगाल, सिन्ध तथा सीमा-प्रान्त में करारी हार हुई तब उनके पास अपनी लीडरी को क़ायम रखने के लिए इसके सिवा और साधन ही क्या था कि कांग्रेस-मंत्रि-मंडलों-द्वारा शासित प्रान्तों में मुसलमानों पर हिन्दुओं-द्वारा किये जाने-वाले अत्याचारों की मिथ्या गाथाओं को लेकर प्रोपैगेंडा करें जिससे कांग्रेसी सरकारों के काम में बाधा पड़े। इस साधन का श्री जिन्ना ने अवलम्बन लेकर इस बात का घोर मिथ्या प्रचार किया कि कांग्रेस-राज्य में मुसलमानों पर हिन्दुओं-द्वारा भीषण अत्याचार हो रहे हैं, मुस्लिम सभ्यता, संस्कृति, धर्म, और उर्दू-भाषा ख़तरे में है। इस प्रकार के प्रचार से भारत में साम्प्रदायिक वातावरण अत्यन्त ही विषैला बन गया और प्रत्येक कांग्रेसी प्रान्त में साम्प्रदायिक उपद्रवों की बाढ़-सी आ गई।

इस प्रकार इस घोर निराशा और असन्तोष के अन्धकार में श्री जिन्ना को यह बोध हुआ कि भारत के लिए प्रजातंत्र-शासन उपयुक्त और अनुकूल नहीं है। परन्तु ऐसी घोषणा करते समय उन्हें यह ध्यान नहीं रहा कि लखनऊ में १ अक्टूबर, १९३७ में वे यह भी घोषणा कर चुके हैं कि मुस्लिम लीग का ध्येय भारत के लिए पूर्ण राष्ट्रीय प्रजातंत्रात्मक स्वराज्य की स्थापना करना है। श्री जिन्ना ने मुस्लिम लीग के इस घोषित लक्ष्य को त्याग-कर सहसा प्रजातंत्र पर आघात करना शुरू क्योंकर दिया? क्या भारत वास्तव में प्रजातंत्र के लिए उपयुक्त नहीं है।

श्री जिन्ना ने यह अनुभव किया है कि भारत में प्रजातंत्र के अन्तर्गत मुस्लिम-राज्य की स्थापना असम्भव है। इसलिए सबसे पहले यह घोषित करना चाहिए कि प्रजातंत्र भारत के लिए उपयुक्त नहीं है। जब ऐसा प्रमाणित हो जायगा तब उसका स्वाभाविक परिणाम होगा—भारत में पृथक् मुस्लिम-राज्य का विकास या स्थापना।

यह तो निर्विवाद है कि भारत में सबसे अधिक संख्या हिन्दुओं की है। २५ करोड़ हिन्दू हैं और ८ करोड़ मुसलमान हैं। ऐसी दशा में यह तो निश्चय ही है कि भारत की शासन-व्यवस्था में हिन्दुओं का प्रतिनिधित्व अधिक होगा। मुसलमान ८ करोड़ हैं; वे अल्पमत में हैं। इसलिए भारतीय धारा-सभा में भी वे अल्पमत में होने चाहिए। परन्तु किसी भी समुदाय के अल्पमत में होने का मतलब यह नहीं है कि वे शासनाधिकार से वंचित रहें या शासन-संस्थाओं में उनका उचित प्रतिनिधित्व न हो।

श्री जिन्ना ने इँग्लेंड के प्रसिद्ध पत्र 'मैनचेस्टर गार्जियन' में अपने एक वक्तव्य में यह लिखा है—

"मैं यह जानता हूँ कि अँगरेज़ों ने अपने देश में पार्लिमेंटरी शासन-पद्धति का विकास किया है इसलिए वे जिस प्रणाली का सदियों से परीक्षण करते आये हैं इसी को वे संसार के दूसरे देशों के लिए आदर्श मानते हैं। परन्तु उन्हें अपने दिमाग़ से उन परीक्षणों को दूर कर देना चाहिए जो कनाडा और आस्ट्रेलिया में किये गये हैं, जहाँ सरकार के आधार जनता की प्रतिभा के उपयुक्त हैं जो अधिकांश में अँगरेज़ी जाति से सम्बन्धित हैं।" इसका मतलब तो यही हुआ कि प्रजातंत्र सिर्फ़ अँगरेज़ों के लिए है और उसका प्रयोग संसार के और देशों में नहीं किया जा सकता, क्योंकि अँगरेज़ों की प्रतिभा के लिए प्रजातंत्र अनुकूल है। ऐसा प्रतीत होता है कि श्री जिन्ना मुस्लिम राज्य के स्वप्न में इतने डूब से गये हैं कि उन्हें भारत का इतिहास भी विस्मरण हो गया है। श्री जिन्ना को चाहिए कि वे सुविख्यात इतिहास-लेखक स्वर्गीय डाक्टर काशीप्रसाद जायसवाल बैरिस्टर के 'हिन्दू-राजतंत्र' को पढ़ने का कष्ट करें। इसके अध्ययन से उन्हें यह स्पष्ट रूप से ज्ञात हो जायगा कि प्रजातंत्र भारतीय जनता तथा भारत के लिए कोई नया सिद्धान्त नहीं है। प्राचीन काल में हिन्दू-भारत में प्रजातंत्रात्मक राज्य थे। मौर्य्यकाल में प्रजातंत्र का

जैसा विकास हुआ वैसा तो शायद आज भी इस बीसवीं शताब्दी में नहीं हुआ।

इसलिए यह तर्क कि प्रजातन्त्र भारतीय प्रतिभा के अनुकूल नहीं है—सर्वथा निराधार और असंगत है।

यदि श्री जिन्ना साहब विषैली साम्प्रदायिकता का परित्याग कर राष्ट्रीय-नीति का आश्रय लें तथा चुनाव-प्रणाली को साम्प्रदायिक आधार से हटा कर राजनीतिक तथा आर्थिक कार्यक्रम पर स्थिर करना स्वीकार करें तो मुस्लिम अल्पमत और हिन्दू बहुमत की बात ही न रहे।

इसके लिए सबसे उत्तम उपाय तो यही है कि धर्म को राज्य से अलग कर दिया जाय। धर्म के आधार पर राष्ट्र का विभाजन कृत्रिम ही नहीं, अनावश्यक भी है। संसार के किसी देश में धर्म के आधार पर अल्पमत नहीं है। अल्पमत, अन्तर्राष्ट्रीय अर्थ में, केवल जातीय आधार पर ही माने जाते हैं। परन्तु जातीय आधार पर अल्पमत दूसरे देशों में प्रजातंत्र में बाधक नहीं होते। स्विट्ज़रलैंड योरप का एक प्राचीन प्रजातंत्र है।

स्विट्ज़रलैंड में तीन जातियाँ हैं—फ्रांसीसी, जर्मन, और इटैलियन। तीन विभिन्न जातियाँ इस राज्य में बसी हुई हैं। परन्तु इन तीनों ने प्रजातंत्र का विकास ऐसे आदर्श ढंग से किया है कि उनका मुक़ाबिला संसार का कोई देश नहीं कर सकता। फ्रांसीसी, जर्मन और इटैलियन मिलकर चुनाव करते हैं और स्विट्ज़रलैंड की पार्लमेंट में तीनों भाषायें प्रयोग की जाती हैं। परन्तु जातीय भेदभाव वहाँ किसी प्रकार भी प्रजातन्त्र में बाधक नहीं है। इसी प्रकार कनाडा में भी दो जातियाँ हैं—फ्रांसीसी और अँगरेज़। परन्तु वहाँ भी प्रजातंत्र-शासन-प्रणाली है।

भारत में तो जातीय भेदभाव का कोई प्रश्न ही नहीं है। मुसलमानों में बहुत कम संख्या ऐसी है जिनका सम्बन्ध अरबों व मुग़लों आदि से है। अधिकांश मुसलमान तो हिन्दुओं में से शुद्ध करके बनाये गये हैं।

निर्माणकर्ता से

लेखक, श्रीयुत श्यामबिहारी शुक्ल 'तरल'

पूछता हूँ मैं, बता दो आज इतना और?

है अभी कितनी प्रतीक्षा?
क्या न होगी पूर्ण दीक्षा?
क्या न दृढ़ता की हुई पूरी
विषम मेरी परीक्षा?
है अभी मुझमें प्रकृति का दोष कितना और?

पत्थरों पर पिस चुका हूँ,
पी हलाहल विष चुका हूँ;
रूप-रंग सुधारने को,
निज कलेवर घिस चुका हूँ;
क्या नुकीले रेत-पर है शेष रितना और?

तुम तपाकर लाल कर लो, कूट, तन कंकाल कर लो;
या मुझे टेढ़ा बनाकर, चोट दे करवाल कर लो;
आज कर लो कर सको निर्माण जितना और?

तीन दृश्यों में एक एकांकी नाटक

ईद और होली

लेखक, श्रीयुत सेठ गोविन्ददास

पात्र—राम—एक बच्चा (उम्र ४ वर्ष)

हमीदा—एक बच्ची (उम्र ४ वर्ष)

रतना—राम की मा (उम्र ४० वर्ष)

खुदावख़्श—हमीदा का बाप (उम्र ४५ वर्ष)

स्थान—एक नगर।

पहला दृश्य

स्थान—एक गली

समय—सन्ध्या

[सँकरी-सी गली का एक हिस्सा दिखाई देता है, जिसके दोनों तरफ़ एकमंज़िले और दोमंज़िले छोटे छोटे मकानों के बाहरी भाग दृष्टिगोचर होते हैं। गली के एक तरफ़ सबसे नज़दीक खुदावख़्श के एकमंज़िले मकान के सामने का कुछ हिस्सा दीख पड़ता है। मकान में जाने-आने का एक छोटा-सा दरवाज़ा है। गली के दूसरी तरफ़ सबसे नज़दीक रतना के दोमंज़िले मकान के सामने का कुछ भाग दिखाई देता है। इस मकान में जाने-आने का एक बड़ा-सा दरवाज़ा है। खुदावख़्श और रतना के मकान एक-दूसरे के ठीक सामने हैं और बीच में गली है। हमीदा खुदावख़्श के मकान के भीतर से निकलकर गली में आती है। हमीदा क़रीब चार वर्ष की छोटी-सी बालिका है। रंग गेहुँआ है और देखने में साधारणतया सुन्दर है। छोटे छोटे फैले हुए बाल हैं। एक गुलाबी रंग का रेशमी पाजामा और हरे रंग का रेशमी कुरता पहने है। कानों में चाँदी की बालियाँ हैं। हमीदा के हाथों में पत्ते का दोना है और उसमें मैदे की बनी हुई सिवइयाँ हैं।]

हमीदा—(रतना के मकान के नज़दीक जाकर ज़ोर से) आम! ओ आम!

[रतना के मकान से राम निकलता है। उसकी उम्र भी हमीदा के बराबर ही है, पर क़द में वह हमीदा से कुछ ऊँचा और शरीर में भी कुछ मोटा है। रंग गेहुँआ है और देखने में बुरा नहीं है। एक सफ़ेद जाँघिया पहने है और उसके ऊपर वैसा ही कुरता।]

राम—(हमीदा को देखकर) ओ, हम्मू।

हमीदा—हाँ, आम। आद ईद, ईद। (सिवइयाँ दिखाते हुए) जे।

राम—जे त्या हैं, हम्मू?

हमीदा—ईद ती छिमइयाँ।

राम—ईद ती छिमइयाँ।

हमीदा—हाँ, आम, ईद ती छिमइयाँ। मीथी, मीथी।

[दोनों रतना के मकान के नज़दीक गली के एक किनारे पर बैठ जाते हैं।]

हमीदा—हम-तुम दोनों धाँय।

राम—दोनों घाँय।

हमीदा—(सिवइयाँ राम के मुँह की तरफ़ ले जाते हुए) हाँ, आम, दोनों धाँय।

[हमीदा राम को अपने हाथ से सिवइयाँ खिलाती है, फिर खुद खाती है। रतना अपने मकान के बाहर निकलती है। वह क़रीब ४० साल की गेहुँआ रंग की साधारण उँचाई और शरीर की स्त्री है। वेश-भूषा से विधवा जान पड़ती है।]

रतना—(ज़ोर से) राम! ओ राम!

राम—(उसी तरह बैठे हुए सिवइयाँ खाते खाते) हाँ, मा।

रतना—(राम के नज़दीक आते और राम तथा हमीदा को क्रोध से देखते हुए) फिर उस मलेच्छा के साथ खा रहा है। भिष्ट कहीं का।

राम—अले, मा, छिमइयाँ हैं। छिमइयाँ मीथी, मीथी। ईद ती हैं, ईद ती, मा।

[रतना नज़दीक पहुँचकर राम का हाथ पकड़ती है, हमीदा बैठी बैठी खाती रहती है। खुदावख़्श अपने मकान के बाहर निकलता है। उसकी उम्र क़रीब ४५ वर्ष की है। रंग साँवला है। वह ऊँचा-पूरा, मोटा-ताज़ा व्यक्ति है। ईद के कारण धुला हुआ सफ़ेद पाजामा और चिकन का कुरता तथा उस पर हरे रंग की रेशमी सदरी पहने है।

सिर पर हरे रंग का ही बड़ा-सा रेशमी साफ़ा बाँधे है।]

रतना—(खुदाबख्श को न देख हमीदा की तरफ़ क्रोध से घूरते हुए गरजकर) हरामजादी, सौ बार कहा मेरे लड़के के साथ न खेला कर! अपना छुआ, अपना जूठा खिलाती है, मलेच्छा कहीं की।

(हमीदा पर रतना की घुड़की का कोई असर नहीं पड़ता और उसका खाना जारी रहता है)

खुदाबख्श—(उसी तरफ़ नजदीक आते हुए) बस, बहुत हुआ! बहुत हुआ! खबरदार! अगर जबान चूकी तो!

रतना—(खुदाबख्श की तरफ़ देखते हुए) बाम्हन का धरम भिष्ट कराता है और कहता है, खबरदार, जबान चूकी तो। उल्टा चोर कोतवाल को डाँटे।

खुदाबख्श—(हमीदा को गोद में उठाते हुए) मैं औरत के मुँह नहीं लगना चाहता। काफ़िर कहीं की।

रतना—औरत भी तेरे मुँह नहीं लगना चाहती। (राम को गोद में उठाते हुए) अपनी शाहजादी को अपने बस में रख।

खुदाबख्श—क्यों तेरा लड़का भरष्ट होता है?

रतना—मेरा लड़का तेरे घर नहीं गया था। तेरी लड़की आई थी।

खुदाबख्श—(हमीदा को गोद में उठाये अपने घर की तरफ़ जाते हुए) अब कभी पेशाब करने भी न आयेगी।

रतना—(राम को गोद में उठाये अपने घर के अन्दर जाते हुए) बड़ा अच्छा है, धरम तो बचा रहेगा।

खुदाबख्श—(घर में जाते जाते घृणा से) काफ़िर और मजहब।

रतना—(भीतर से) मलेच्छ! मलेच्छ।

(दोनों अपने अपने बच्चों के साथ अपने अपने घरों के अन्दर चले जाते हैं। नेपथ्य में "मारो मारो" कोलाहल होता है। खुदाबख्श बाहर आता है। गली में कुछ मुसलमान लाठियाँ लिये दौड़ते हुए आते हैं।)

खुदाबख्श—क्या हुआ, बिरादरान?

एक आगन्तुक—झगड़ा।

खुदाबख्श—हिन्दू-मुसलमानों में?

दूसरा आगन्तुक—हाँ, हाँ। और किसमें होगा?

[आगन्तुक दौड़ते हुए दूसरी तरफ़ चले जाते हैं। खुदाबख्श जल्दी से घर के अन्दर जाता है और एक लाठी लेकर आता है तथा उसी तरफ़ चला जाता है जिस तरफ़ दूसरे मुसलमान गये थे। नेपथ्य में कोलाहल बढ़ता है। हमीदा अपने घर से निकलती है और रतना के मकान के भीतर जाती है। नेपथ्य में कोलाहल होता रहता है। खुदाबख्श एक हाथ में तेल से भीगे हुए चिथड़े और दूसरे हाथ में एक मशाल लिये हुये आता है। रतना के मकान के इधर-उधर वे चिथड़े रख मकान में आग लगाने का प्रयत्न करता है।]

खुदाबख्श—(क्रोध से दाँत पीसते हुए) मलेच्छ! मलेच्छ! हम मलेच्छ! ले, गालियों का नतीजा ले। तेरा राम, तेरा मकान, तेरा सब कुछ खाक में मिला दूँ तब तो मेरा नाम खुदाबख्श। जा, दोजख में जा, सब खान्दान और दौलत ले जा, काफ़िर कहीं की।

[नेपथ्य का कोलाहल और बढ़ता है।]

यवनिका-पतन।

दूसरा दृश्य

स्थान—रतना के मकान की छत।

समय—रात्रि।

[लम्बी छत है। पीछे की तरफ़ मकान की दीवार है और सामने की तरफ़ ईंट-चूने की रेलिंग। रेलिंग के नीचे भी दीवार है। दाहने और बायें तरफ़ से आग की लपटें और धुआँ उठ रहा है। बीच बीच में दाहनी और बाईं तरफ़ से आग के कुछ कण छत पर आते हैं। छत पर राम और हमीदा खड़े हुए बात कर रहे हैं। नेपथ्य में बीच बीच में कोलाहल सुनाई देता है।]

हमीदा—ईद ते बादे बदने है, आम।

राम—(आग की लपटों की ओर इशारा कर) औल ईद ते छाय होली बी दल रही है हम्मू।

हमीदा—हाँ, और होली ता दाना बी हो लहा है, आम।

राम—ईद ते बादे बद लहे है, होली ता दाना हो लहा है।

हमीदा—मैंने तो तुझे ईद तो छिमइयाँ खिलाई थी। अ तू मुझे होली की मिथाई नई खिलायदा?

राम—होली दल दाने पर मेरे घल में मिथाई बनेदी, हम्मू।

(आग की लपटें धीरे धीरे नजदीक आने लगती हैं।)

राम—अले होली तो पाछ पाछ आती जाती है।

हमीदा—अंछी अच्छी, लाल लाल, पीली पीली।

(आग की चिनगारियाँ और नजदीक आने लगती हैं।)

हमीदा—(चिनगारियों के पकड़ने का प्रयत्न करते हुए) जुदनू, आम, जुदनू।

राम—नहीं, छोना, हम्मू, छोना।

(नेपथ्य में ज़ोर से "हम्मू! हम्मू!" शब्द होता है।)

हमीदा—अब्बा पुताल लहे हैं, आम, अब्बा।

(नेपथ्य में ज़ोर से "राम! राम!" शब्द होता है।)

राम—मा बुला रही है, हम्मू, मा।

(नेपथ्य में फिर ज़ोर से "हम्मू! हम्मू!" शब्द होता है।)

हमीदा—(ज़ोर से) हाँ, अब्बा!

नेपथ्य से—अरी कहाँ है, हम्मू, कहाँ?

हमीदा—(मुस्कराकर राम से) आम, अब्बा मुधे धूंध रहे हैं।

नेपथ्य से—(ज़ोर से) राम! राम!

राम—(ज़ोर से) हाँ, मा।

नेपथ्य से—(ज़ोर से) अरे कहाँ है, राम, कहाँ?

राम—(मुस्कराकर हमीदा से) हम्मू, मा मुधे धूंध रहीं हैं।

नेपथ्य से—(ज़ोर से घबराहट के स्वर से) हम्मू! हम्मू! कहाँ है, बोल तो।

हमीदा—(ताली बजाकर नाचते हुए ज़ोर से) आम ती छत पल! अब्बा, आम ती छत पल।

नेपथ्य से—राम! राम! कहाँ हैं? छत पर है?

राम—(हमीदा के साथ ताली बजाकर नाचते हुए) हाँ, मा, छत पल ही तो हूँ।

नेपथ्य से—या खुदा।

नेपथ्य से—हे भगवान्!

[राम और हमीदा उसी तरह ताली बजाकर नाचते रहते हैं। आग की लपटें और नजदीक आती हैं। सामने की दीवार पर दीवार की कारनिस पकड़ कर कठिनाई से खुदाबख्श चढ़ता हुआ दीख पड़ता है। धीरे धीरे खुदाबख्श छत पर पहुँचता है।]

हमीदा—(खुदाबख्श को देखकर हर्ष से चिल्ला कर उसकी तरफ़ आते हुए) ओ! अब्बा! अब्बा!

खुदाबख्श—(क्रोध से) कम्बख्त! तू यहाँ क्यों आई?

हमीदा—(मुस्कराती हुई) थेलने तो, अब्बा, आम ते छात थेलने तो।

खुदाबख्श—(अपने साफ़े को उतार रेलिंग से बाँधते हुए घृणा से) मरने को, बेशऊर।

[खुदाबख्श साफ़े को रेलिंग से बाँध हमीदा को गोद में उठाता है।]

हमीदा—औल आम तो इछती अम्मा ले दायदी।

राम—मैं अपने पैलों थे छीदी छे उतलते आता हूँ।

[राम छत की दाहनी तरफ़ जाने लगता है, जिधर से आग की लपटें आ रही हैं।]

खुदाबख्श—हाँ, जा, अपने पैरों से सीढ़ी से उतरकर आ जा।

[राम उसी तरफ़ बढ़ता है।]

खुदाबख्श—(उसी तरफ़ देखते हुए ज़ोर से) ठहर! राम! ठहर।

[राम, जो आग की लपटों के बहुत ही नज़दीक पहुँच गया है, रुक जाता है। खुदाबख्श दौड़कर उस तरफ़ जाता है और उसे दूसरी गोद में उठा रेलिंग में बँधे हुए अपने साफ़े के नज़दीक आकर हमीदा और राम को अपनी दोनों भुजाओं से अपने दोनों तरफ़ के पसवाड़ों में दाब हाथों से साफ़े को पकड़ नीचे उतरने का प्रयत्न करता है। दोनों तरफ़ से आग की लपटें खुदाबख्श के नज़दीक पहुँच जाती हैं]

यवनिका-पतन।

तीसरा दृश्य

स्थान—गली

समय—प्रातःकाल

[दृश्य वैसा ही है जैसा पहले दृश्य में था। अन्तर इतना ही है कि रतना के मकान का बहुत-सा हिस्सा जल गया है। आग अब बुझ गई है। रतना के मकान के नज़दीक ही गली के एक किनारे पर राम और हमीदा बैठे हुए हैं। दोनों के बीच में मिठाई का एक दोना रक्खा है और दोनों उस दोने से मिठाई खा रहे हैं। खुदाबख्श और रतना का प्रवेश।]

खुदाबख्श—(दोनों बच्चों को मिठाई खाते देख मुस्कराकर रतना से) बहन, राम फिर भ्रष्ट हो रहा है।

रतना—(मुस्कराती हुई) नहीं, भाई, सच्चा धरम सीख रहा है।

खुदाबख्श—शर्त यही है कि बड़े होने पर भी इसी मज़हब को माने।

[दोनों कुछ देर चुप रहकर एकटक बच्चों की तरफ़ देखते हैं। बच्चों की पीठ उनकी तरफ़ रहने के कारण बच्चे उन्हें नहीं देख पाते। कुछ देर निस्तब्धता रहती है।]

रतना—भाई, तुमने राम की जान बचाकर जो जस मुझ पर किया है उसे मैं......

खुदाबख्श—(बीच में ही) मैंने ? नहीं, बहन, मैंने तो राम की जान लेने के लिए ऐसी कोई बात नहीं जो उठा रक्खी हो। उस परवरदिगार ने उसकी जान बचाई है। (रतना की तरफ़ देखते हुए) बहन, जब मैं छत पर उसे छोड़ और हमीदा को लेकर आने का इरादा कर रहा था, बल्कि राम को आग से खाक होते हुए जीने से उतरकर आने की सलाह देकर हमीदा को ले उतरने का इरादा कर रहा था उस वक़्त ... उस वक़्त ... बहन ... (चुप हो जाता है।)

रतना—(खुदाबख्श की तरफ़ देखते हुए) हाँ, उस वक़्त भाई ?

खुदाबख्श—उस वक़्त ... उस वक़्त ... मैं ऐसा कर ही न सका। जैसे किसी ने मुझे ऐसा न करने के लिए मजबूर कर दिया। ... बहन ... बहन ... यह खुदा का पैग़ाम था, खुदा का पैग़ाम।

[खुदाबख्श चुप हो जाता है। रतना उसकी तरफ़ देखती रहती है। कुछ देर निस्तब्धता रहती है।]

खुदाबख्श—(कुछ ठहर कर) खुदा ने राम को मेरे हाथ से बचवाकर तुम्हारे मकान जलाने के मेरे गुनाह को माफ़ कर दिया।

रतना—मलेच्छ ने काफ़िर का मकान जलाया था। भाई खुदाबख्श ने बहन रतना का नहीं।

खुदाबख्श—इन बच्चों ने, बहन, इन बच्चों ने हमें मलेच्छ और काफ़िर से भाई और बहन बना दिया।

रतना—बच्चे कदाचित् मैली आत्माओं को पवित्र करने की भगवान् की देन हैं।

(राम और हमीदा जो अब मिठाई खा चुके हैं, उठते हैं और खुदाबख्श और रतना की तरफ़ घूमते हैं।)

राम—(रतना को देखकर उसी तरफ़ दौड़ते हुए) मा! मा!

हमीदा—(खुदाबख्श को देखकर उसी ओर दौड़ते हुए) अब्बा! अब्बा!

(राम को खुदाबख्श और हमीदा को रतना गोद में उठाते हैं।)

रतना—क्यों बेटा, हम्मू को मिठाई खिलाई ?

राम—हाँ, मा, इछने मुझे ईद ती छिमइयाँ खिलाई थीं, आद मैंने इछे होली ती मिथाई खिलाई है।

(खुदाबख्श और रतना हँस पड़ते हैं।)

यवनिका-पतन

समाप्त

मानव-जीवन

गद्य काव्य

लेखिका, कुमारी शकुन्तला, विशारद

अन्धकारमय अर्धरात्रि के निर्जीव वातावरण में एक मधुर हवा का झोंका सनसनाकर कह गया—

"मानव-जीवन क्या है ? क्षण-भंगुर! निरा कच्ची मिट्टी का घड़ा।"

हठात् कल्पना उड़ी और वह कह रही थी—"यदि क्षण-भंगुर ही होता तो इतना आनन्द देखने को कहाँ मिलता ? देखो न ये रागरंग, चहल-पहल कितने मनोहर और आनन्ददायक हैं ?"

परन्तु हृदय के आन्तरिक विभाग से प्रतिध्वनि गूँज उठी और उठा हृदय में एक वेदनामय प्रश्न—

"क्या यही वास्तविक सुख है ? और क्या इसी को कहते हैं पवित्र मानव-जीवन ? "

भारतवर्ष की सीमायें

लेखक,
श्रीयुत अनिल

[सिंगापुर में भारतीय सैनिकों की छावनी]

युद्ध छिड़ने के पूर्व भारतवर्ष के नेताओं के विभिन्न मत थे। कुछ नेताओं को जापान के आक्रमण का भय था, कुछ को सोवियट-राज्य का। परन्तु कांग्रेसी नेताओं—विशेषकर पंडित जवाहरलाल—का मत था कि भारत को किसी भी बाहरी आक्रमण का भय नहीं।

इधर युद्ध ने योरप का मानचित्र ही बदल दिया है। ब्रिटेन को छोड़कर लगभग सारा पश्चिमी योरप नात्सी-फ़ासिस्ट शक्तियों की छत्रछाया में आ गया है। अफ़्रीका जहाँ युद्ध की कोई आशा न थी—समराङ्गण बन गया है। फ़िलिस्तीन के जाफ़ा और अदन पर बम बरस चुके हैं। अर्थात् युद्ध का प्रभाव पश्चिमी एशिया पर भी पड़ा है।

उधर सुदूर पूर्व में चीन-जापान-युद्ध चल ही रहा है। परन्तु अधिक महत्त्व की बात तो यह है कि जापान अपने 'सुदूर पूर्व' को और भी विस्तार देना चाहता है। परन्तु जापान तो इण्डोचीन, स्याम, पूर्वी द्वीप-समूह—और बाद में आस्ट्रेलिया, न्यूज़ीलेंड और फ़िलीपाइन द्वीप, चीन-सागर के आगे के समग्र दक्षिणी सागर को अपने प्रभाव में लेकर अपने 'सुदूर पूर्व' में एक 'नई व्यवस्था' अर्थात् अपना साम्राज्य स्थापित करना चाहता है।

और रूस के पोलेंड, फ़िनलेंड, बाल्टिक राज्य और बसरेबिया आदि के सोवियट-राज्य में शामिल कर लेने पर अनेक राजनीतिज्ञों का मत है कि सोवियट-राज्य भी साम्राज्यवादी नीति का अवलम्बन कर रहा है और इस बात की सम्भावना है कि अवसर आने पर वह बल्कान-राज्य, तुर्की या ईरान की ओर बढ़ेगा। प्रधान मंत्री मोलोटोव ने हाल के अपने भाषण में इसका संकेत भी किया है।

कहने का तात्पर्य यह है कि यद्यपि इटली और जर्मनी अथवा जापान या रूस के भारत पर आक्रमण करने की किसी भाँति की सम्भावना नहीं दिखती है, तो भी संसार की जो परिस्थिति इस समय है उसको देखते इस बात की नितान्त आवश्यकता है कि भारत की सीमायें पूर्ण रूप से सुरक्षित रहें।

हम जानते हैं कि हिमालय की उत्तुंग पर्वतमाला भारत के उत्तर में दुर्भेद्य है, साथ ही वहाँ के नैपाल, भूटान और तिब्बत आदि राज्य भारत के मित्र हैं। अतएव उत्तर की ओर से भारत को कोई भय नहीं है।

चीन-जापान-युद्ध में योरपीय और अमरीकन राज्य तटस्थ होने के कारण दोनों ही देशों से व्यापार करते थे। चीन से उनका व्यापार बर्मा और इण्डोचीन के स्थल-मार्गों से होता था। कुछ व्यापार शंघाई, तीनत्सिन, हांगकांग आदि ब्रिटेन और अमरीका आदि के चीनी बन्दरों-द्वारा होता था।

इन मार्गों को बन्द करने के लिए जापान ने फ़्रांस और ब्रिटेन की सरकारों पर ज़ोर दिया कि वे इन मार्गों को बन्द कर दें। फ़्रांस की वर्तमान सरकार ने जापान के दबाव में आकर इण्डोचीन देश के चीन जानेवाले मार्गों को जापान की पुलिस के सुपुर्द कर दिया है। कहा जाता है कि इण्डोचीन एक प्रकार से जापान के प्रभाव में आ गया है। उसने ब्रिटिश सरकार पर भी दबाव डालकर बर्मा-चीन के मार्ग को भी बन्द करा दिया है। अन्य मार्ग (जिनमें हांगकांग, तित्सिन, शंघाई आदि सम्मिलित हैं) भी बन्द कर दिये गये हैं, यद्यपि ब्रिटेन और जापान का यह समझौता केवल तीन मास के लिए हुआ है।

हाँ, काश्मीर-राज्य की सीमा चीन के सिंगकियांग प्रान्त की सीमा से मिलती है और सिंगकियांग-प्रान्त पर इस समय रूस का अबाधित प्रभाव है। परन्तु काश्मीर के गिलगित में ब्रिटिश सरकार ने अपना हवाई अड्डा बनाकर उस अञ्चल को सुदृढ़ता प्रदान कर दी है।

अब रही भारत की पूर्वी और दक्षिणी सीमाओं की सुरक्षा की बात, सो इन दिशाओं में भी वैसी कोई आशंका नहीं है, क्योंकि जापान चीन में तथा अपनी नई व्यवस्था में उलझा हुआ है। तथापि हमें देखना है कि जापान की क्या अवस्था है।

फ़्रांस की पराजय और ब्रिटेन के युद्ध में व्यस्त रहने के कारण जापान ने स्याम की ओर दृष्टि फेरी है। कहते हैं कि चार शर्तों का एक अल्टीमेटम दिया गया है। मित्रता स्थापित करने के लिए जापान को स्याम की सरकार ने एक मिशन भी भेजा है। इस प्रकार जापान मलाया द्वीप-समूह और सिंगापुर-बन्दरगाह के समीप आता जा रहा है।

युद्ध के आरम्भ में जापान ने दक्षिणी अमरीका की ओर दृष्टि फेरी थी। उसका यह कहना था कि युद्ध के कारण जापान का व्यापार पश्चिमी-उत्तरी योरप से

प्रायः बन्द हो गया है, अतएव उसको नये बाज़ार चाहिए। योरपीय देशों के युद्ध में संलग्न होने के कारण ये बाज़ार केवल दक्षिणी अमरीका में मिल सकते थे।

परन्तु संयुक्त-राष्ट्र (अमरीका) ने अपनी जल-शक्ति का प्रशान्त महासागर में प्रदर्शन किया, जिसके कारण जापान ने दक्षिण-अमरीका के बाज़ार ले लेने का विचार छोड़ दिया। और अब तो संयुक्त-राष्ट्र ने दक्षिण के देशों को (साथ ही कनाडा आदि को भी) अपनी मनरो-नीति के अधीन कर लिया है, साथ ही जापान के साथ की गई व्यापारिक सन्धि का अन्त करने की भी धमकी दी है।

फलतः जापान ने अपनी वक्र-दृष्टि पूर्वी द्वीप-समूह आदि की ओर फेरी है और कहना आरम्भ किया है कि चीन-जापान-युद्ध के कारण जापान को युद्ध-सामग्री की आवश्यकता है; क्योंकि अमरीका इन सामग्रियों को न देने की धमकी दे रहा है, और क्योंकि ये सामग्रियाँ केवल मलाया प्रायःद्वीप, इण्डोचीन और पूर्वी द्वीप-समूह आदि से मिल सकती हैं, अतएव उसका इन स्थानों पर आर्थिक (जिसके अर्थ हैं राजनीतिक भी) अधिकार होना चाहिए।

वस्तुतः जापान अपने को अधिक शक्तिशाली समझता है। जापानी जनरलों का भी कहना है कि हमारी जल-शक्ति अभी तक अक्षुण्ण है। इस सम्बन्ध में अमरीका के एडमिरल स्टार्क ने अमरीका की नौ-शक्ति की भावी योजनाओं की तुलना करते हुए कुछ आँकड़े इस प्रकार दिये हैं—

	संयुक्त-राष्ट्र	जापान
लड़ाके जहाज़ ..	८	८
(हवाई जहाज़ ले जाने-वाले जहाज़) कैरियर।	२	४
क्रूज़र ..	६	८
डेस्ट्रॉयर (पोतध्वंशक)	३९	३२
पनडुब्बी ..	१९	२०

इन आँकड़ों को देते हुए एडमिरल ने कहा था कि इन आँकड़ों के बारे में निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता। जापान अमरीका की अपेक्षा तेज़ी से अपनी सैनिक शक्ति बढ़ा रहा है। वहाँ सबसे बड़े चार लड़ाके जहाज़ (४३,००० टन प्रत्येक) बनाये जा रहे हैं।

एक जापानी पत्र अपनी जल-शक्ति इस प्रकार प्रकट करता है—

लड़ाके जहाज़ ..	.. ९+८
अन्य जहाज़ ..	.. ३८

[मिस्र में भारतीय सेना]

पोतभंजक	१७
पनडुब्बियाँ	५३
हवाई जहाज ले जानेवाले जहाज ..	१२

कुल जल-शक्ति १२ लाख टन।

जापानी विशेषज्ञों का कहना है कि विस्तार के कम होने के कारण हमारी समुद्री शक्ति अधिक सफलता प्राप्त कर
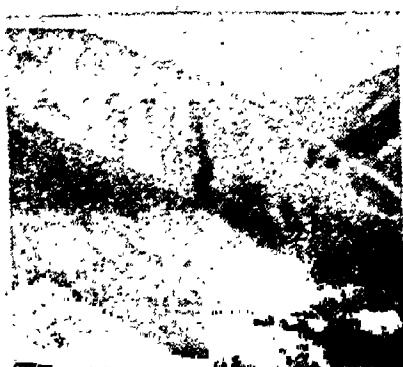
[बर्मा-चीन की सड़क का पहाड़ी मार्ग]

सकेगी। हमारी समुद्री शक्ति ब्रिटेन की भाँति उत्तरी समुद्र, भूमध्य-सागर, लाल सागर, हिन्द महासागर, अटलान्टिक और प्रशान्त महासागरों, अथवा अमरीका की समुद्री शक्ति की भाँति प्रशान्त और दक्षिणी तथा उत्तरी अटलान्टिक महासागरों में बँटी हुई नहीं। उसको केवल चीन सागर में या उसके आस-पास के सीमित भागों में जाकर अपना प्रभाव स्थापित करना है, अतएव थोड़ी समुद्री शक्ति भी अधिक प्रभावशाली होगी। इसके अतिरिक्त हमारे जहाज नये ढंग के और बहुत मज़बूत हैं।

परन्तु जापान की यह जल-शक्ति भारत की पूर्वी और दक्षिणी सीमाओं से बहुत दूर है। यही नहीं, ब्रिटेन का सिंगापुर का जहाज़ी अड्डा बड़ा मज़बूत है और उसको पराजित करना खेल नहीं। इसी कारण जापान ने पूर्वी द्वीप-समूहों को अपने अधीन करने का अब तक साहस नहीं किया है। अतएव हमारी पूर्वी और दक्षिणी सीमाओं पर भी किसी तरह का भय नहीं है।

ब्रिटिश सुमालीलैंड से ब्रिटेन के हट जाने से इटली अभी हमारे पश्चिम में भारत की ओर बढ़ नहीं सकता,
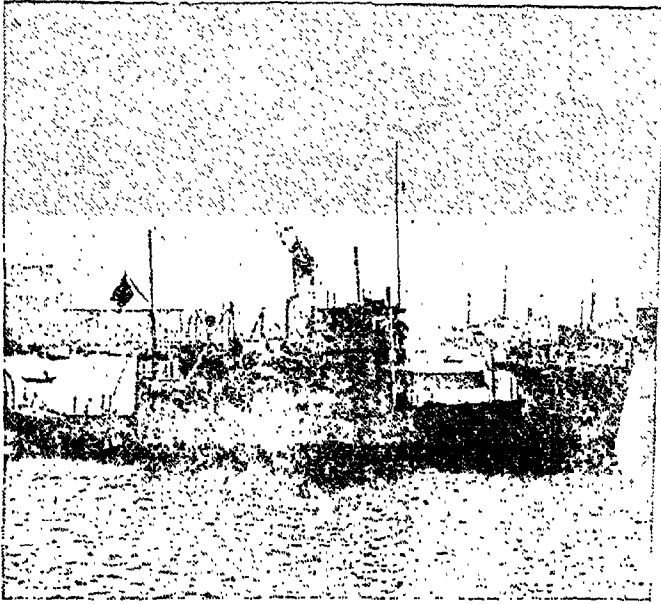
[सिंगापुर में माइनें हटानेवाला एक ब्रिटिश जहाज़]

क्योंकि अफ़्रीका में उसके बग़ल में मिस्र भाले की तरह घुसा हुआ है।

जर्मनी के पूँजीपति क़ैसर के समय से ही बर्लिन-बग़दाद रेलवे बनाने की योजना तैयार करते रहे हैं। हिटलर का भी झुकाव पूर्व, मध्य-पूर्व और निकटपूर्व के एशिया की ओर है। सम्भव है कि बर्लिन-रोम-धुरी के राष्ट्र एक बार फिर बग़दाद पहुँचने का प्रयत्न करें।

परन्तु तुर्की, अरब, ईराक़, ईरान और अफ़ग़ानिस्तान ब्रिटेन के साथ हैं। तुर्की और ईरान ने जर्मनी से व्यापारिक समझौता कर लिया है; अफ़ग़ानिस्तान ब्रिटेन का मित्र रहते हुए भी तटस्थ रहना चाहता है और जर्मनी और ब्रिटेन—दोनों से ही अपना व्यापारिक सम्बन्ध किये हुए है। फिर इन सब तक पहुँचने में जर्मनी को पहले बाल्कन के राष्ट्रों से निपटना पड़ेगा। ऐसी दशा म भारत के अरब-सागर में अभी किसी तरह की आशंका नहीं है।

भारतवर्ष और अफ़ग़ानिस्तान की उत्तरी-पश्चिमी सीमाओं से मिला हुआ देश सोवियट-प्रजातंत्र है। सोवियट-राज्य के तीन प्रान्त—सोवियट तुर्किस्तान, उज़बेकिस्तान और तजदिकस्तान भारतवर्ष अथवा अफ़ग़ानिस्तान की सीमाओं से मिले हुए हैं।

एशियाटिक एसोसिएशन में अपना एक निबन्ध पढ़ते हुए सर पर्सी साइक ने जो भारत में ब्रिगेडियर जनरल रह चुके हैं और जिनका अफ़ग़ानिस्तान और रूस से सम्बन्ध रहा है, सोवियट-राज्य और अफ़ग़ानिस्तान के सम्बन्ध में कुछ मनोरंजक और महत्त्वपूर्ण बातें बतलाई हैं। उनका कहना है कि अफ़ग़ान जाति अपनी स्वतंत्रता

[बर्मा-सीमान्त पर बर्मा-चीन रोड]

भारत के पश्चिमी पड़ोसी—अफ़ग़ानिस्तान, ईरान और रूस
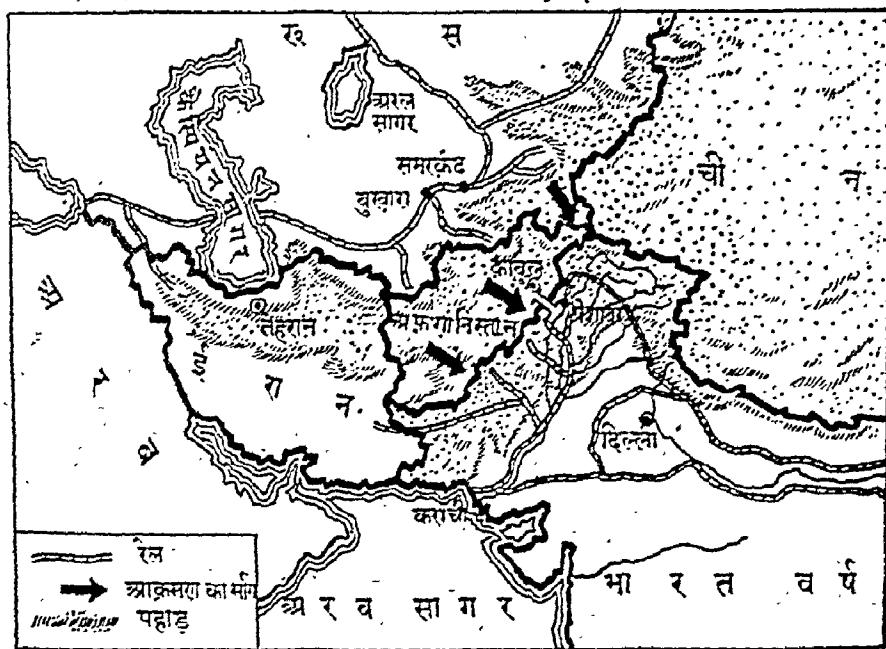
के लिए लड़ेगी। उसके पास ६०,००० शान्ति के समय में और ५ लाख युद्धकाल में सैन्य रहती है। यदि सोवियट ने आक्रमण किया और यदि फ़ारस ने अफ़ग़ानिस्तान को सहायता दी तो रूस का आक्रमण असफल हो सकता है।

तुर्की, ब्रिटेन और फ़्रांस का मित्र है। परन्तु रूस नहीं चाहता कि वह इस युद्ध में भाग ले। और वह रूस के विरुद्ध कोई भी कार्यवाही न करेगा, यह एक पक्की बात है।

ईराक़ और ईरान—यही दो देश सोवियट आक्रमण के रास्ते में बाधक हो सकते हैं। परन्तु ईरान का जर्मनी और रूस दोनों से ही व्यापारिक सम्बन्ध है। कहा जाता है कि वहाँ लगभग १५ हज़ार जर्मन, नार्वेजियन और सोवियट विशेषज्ञ विभिन्न कारखानों में काम करते हैं। ब्रिटिश विशेषज्ञ कदाचित् बहुत कम हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि युद्ध के समय ईरान तटस्थ रह सकता है, परन्तु सोवियट के विरुद्ध किसी भाँति नहीं जा सकता।

अकेला ईराक़ सोवियट सेनाओं का मुक़ाबिला कर सकेगा, यह संदिग्ध है। सम्भव है कि युद्ध के समय तुर्की ईराक़ को भी युद्ध में आने से रोके।

अफ़ग़ानिस्तान तो ब्रिटेन का मित्र ही है और ब्रिटिश सरकार अफ़ग़ानिस्तान को प्रतिवर्ष कुछ रुपया देती रही है, जिसमें अफ़ग़ानिस्तान में अमन-चैन क़ायम रहे। अफ़ग़ानिस्तान का व्यापार भी ब्रिटेन से है। इस युद्ध में अफ़ग़ानिस्तान ने तटस्थ रहने की घोषणा की है।

परन्तु मार्के की बात यह है कि हाल में ही अफ़ग़ानिस्तान और रूस की एक व्यापारिक सन्धि हुई है। इस सन्धि के अनुसार रूस अफ़ग़ानिस्तान को लगभग चार करोड़ रुपये का सामान देगा, जिसमें तेल और लोहे की मशीनें एक बड़ी मात्रा में अफ़ग़ानिस्तान को दी जायँगी। इस सामान के आवागमन के लिए जो मार्गों की आवश्यकता होगी उनके बनाने का ठेका कदाचित् सोवियट सरकार ले रही है। अतएव अफ़ग़ानिस्तान और रूस के बीच रेल की पटरियाँ बिछा दी जायँगी। परन्तु यह सब अभी दूर की बातें हैं।

रूस को भारत पर आक्रमण करने में रेल-सड़कों आदि का पूरा अभाव है। काकेशिया अथवा मास्को से भारतीय सीमायें लगभग ढाई हज़ार मील की दूरी पर हैं। और उज़बेकिस्तान आदि में लड़ाई का सारा सामान मौजूद नहीं। इसके सिवा ट्रांस काकेशियन

रेलवे हिरात से ८० मील की दूरी तक आती है (मर्व से न्यूकुश्क तक) और हिरात से कन्धार २०० मील की दूरी पर है। दूसरी तर्क-सिब रेलवे लाइन है जो ट्रांस साइबेरियन रेल से मिली हुई है। इसके अतिरिक्त यूराल पहाड़ियों के बीच औद्योगिक और व्यापारिक केन्द्र बन गये हैं।

[हांगकांग में भारतीय सैनिक]

हाँ, रूस के हवाई अड्डे भारत की सीमा के उसके प्रान्तों में स्थित हैं। साथ ही मास्को और काबुल के बीच भी एक वायुयान-मार्ग रूस के अधिकार में है।

अतएव कहा जा सकता है कि एक शक्तिशाली सोवियट राष्ट्र भारत की पश्चिमी सीमा के निकट है। और इस राष्ट्र की सैनिक शक्ति के सम्बन्ध में दो मत नहीं। आक्सफ़र्ड पुस्तक में लिखा है कि सोवियट सैनिक शक्ति किसी भी राष्ट्र की सैनिक शक्ति से दुगुनी है। विशेष कर स्थल और वायु-शक्ति।

सर पर्सी साइक ने माना है कि रूस को अपनी सीमा से आक्सस नदी की घाटी में होते हुए अफ़ग़ानिस्तान के अन्दर दो सौ मील तक आने में कोई कठिनाई न होगी। देखना यह है कि शेष दूरी के पार करने में हम सोवियट सेना के सामने कितनी कठिनाइयाँ उपस्थित कर सकते हैं?

फिर अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति डाँवाडोल की स्थिति में है। सम्भव है कि शीघ्र ही बाल्कन-राज्यों में समर छिड़ जाय और रूस, इटली और जर्मनी परस्पर लड़ना शुरू कर दें। इटली को अभी अफ़्रीका और फिर बाल्कन राज्यों के झगड़ों से कदाचित् ही समय मिले। जो जर्मनी १५ अगस्त को लन्दन पर अधिकार स्थापित करना चाहता था उसका तानाशाह हिटलर शायद आज भी जर्मनी की सीमाओं के पीछे छिपा हुआ है। और जापान की सदैव ही एक आँख अमरीका की ओर लगी रहती है। अमरीका यह कब सहन कर सकता है कि जापान प्रशान्त अथवा हिन्द महासागर में एक भी पैर आगे बढ़ाये? इस प्रकार अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थिति भी भारत के ही पक्ष में है। फिर हांगकांग, सिडनी, सिंगापुर, अदन और अफ़्रीका के उत्तमआशा-अन्तरीप पर ब्रिटिश सरकार के बड़े शक्तिशाली समुद्री अड्डे हैं। ऐसी दशा में ब्रिटिश जल-शक्ति के भय से कौन भारत की ओर आँख उठा सकता है?

भारतीय सरकार ने भी भारतीय रक्षा के लिए कोई बात उठा नहीं रक्खी। लाखों की फ़ौज की भर्ती, वायु-सेना का जुटाना, जल-शक्ति का बढ़ाना सभी योजनायें भारत-सरकार ने हाथ में ले रक्खी हैं। और भारत-सरकार ने सैनिक-शक्ति-वर्द्धन में कितनी सफलता प्राप्त की है, यह भारतीय समाचार-पत्रों के पाठकों से छिपा नहीं है।

में चारपाई पर पड़ रही। बड़े दादा भूखे-प्यासे मेरे सिरहाने बैठे रहे। जब उन बातों की याद आती है तब आँखों से आँसुओं की धारा बहने लगती है।"

विलासचन्द्र की आँखें डबडबा आईं। उन्होंने रुद्ध कंठ से कहा—"क्या करूँ बाई, कुछ सूझता नहीं। मुझे उसका ज़रा भी विश्वास नहीं है।"

त्रिवेणी ने रुककर कहा—"एक काम करो भैया। मुझे आज ही रात की गाड़ी से रवाना कर दो। तुमसे मिल-भेंट चुकी। जीवन को भी खेला लिया। बस अब जाना ही अच्छा है। न मैं यहाँ रहूँगी, न किसी के मनोमालिन्य का कारण बनूँगी। काँसे का सुर काँसे ही में रहेगा।"

विलासचन्द्र ने उत्तर दिया—"तुम ठीक कहती हो, पर त्योहार के दिन मैं तुम्हें कैसे जाने दूँ? लोग क्या कहेंगे?"

त्रिवेणी ने मुस्कराकर कहा—"तब मैं बड़े दादा के यहाँ कजलियाँ देने अवश्य जाऊँगी।"

विलासचन्द्र कुछ न बोले, चुपचाप बाहर चले गये।

(४)

बड़े दादा विशालचन्द्र को इन सब बातों का पता लग गया। वे दूसरे दिन सवेरे ताँगा लेकर आ पहुँचे। आवाज़ पहचान कर त्रिवेणी बाहर निकल आई। विशालचन्द्र ने दौड़कर चरण छुए और कहने लगे—"त्रिवेणी, तुम मेरे यहाँ क्यों नहीं आई? बड़े दादा को बिलकुल ही भुला दिया क्या?"

सरला त्रिवेणी का हृदय गद्गद हो उठा। आँखों में आँसू भर आये। लज्जा और संकोच-भरे भाव से सिर झुकाकर बोली—"दादा, तुम पिता के समान हो। तुम्हें कैसे भूल सकती हूँ? मैं तो आज आप ही चली आती। तुमने काहे को कष्ट किया?"

विशालचन्द्र ने प्रसन्न होकर कहा—"लो चलो, ताँगा तैयार है।"

त्रिवेणी ने उत्तर दिया—"भैया घर में नहीं हैं। उनसे पूछ लेना अच्छा था।"

विशालचन्द्र ने हँसकर कहा—"तुम इसकी चिन्ता न करो। छोटे दादा कुछ न कहेंगे। मैं इसका ज़िम्मा लेता हूँ।"

त्रिवेणी कुछ न कह सकी। चुपचाप ताँगे पर बैठ गई विशालचन्द्र भी जा बैठे। ताँगेवाले ने घोड़े की पीठ पर चाबुक जमा दिया।

जीवन बाहर खेल रहा था। जीजी को जाते देखकर रोता हुआ ताँगे के पीछे दौड़ा। विशालचन्द्र ने ताँगा खड़ा करवा के उसे ऊपर चढ़ा लिया।

(५)

दमयन्ती रूठ गई। उस दिन उसने चूल्हा तक नहीं सुलगाया। विलासचन्द्र के आते ही किवाड़ बन्द करके कोठे में जा पड़ी। विलासचन्द्र ने पुकारा—"जीवन"! किसी ने कोई उत्तर न दिया। शायद खेलने को चला गया हो, इस विचार से वे बाहर आकर उसे ढूँढ़ने लगे। त्रिवेणी भी उन्हें न दिखलाई दी। दासी दालान झाड़ रही थी। उसने क्षीण कंठ से कहा—"बड़े दादा ताँगा लेकर आये थे। बाई जी जीवन के साथ वहाँ गई हैं। मानता नहीं था, रोता हुआ ताँगे के पीछे दौड़ता गया। बहूजी को बुरा लग गया। इससे कोठे में रिसानी पड़ी हैं।"

विलासचन्द्र ने उत्तर दिया—"अच्छा रिसाना है। बहूजी के लिए बेचारी अपने भाइयों को छोड़ दे? तुम्हीं बतलाओ इसमें बुरा मानने की कौन-सी बात है।"

दमयन्ती के कानों में भनक पड़ गई। बड़बड़ाकर बोली——"भाइयों को काहे को छोड़े? मैं सबको बुरी लगती हूँ, इससे आप ही छूटी जाती हूँ।"

विलासचन्द्र ने कुछ उत्तर न दिया। चुपचाप बाहर चले गये।

(६)

दमयन्ती समझती थी कि विलासचन्द्र उसे मनाकर रसोई बनाने के लिए लिवा ले जावेंगे। पर जब वे न आये तब उसका माथा ठनक उठा। उसने दासी को उनका पता लगाने के लिए भेजा। उसने आकर कहा कि वे बड़े दादा के यहाँ चले गये हैं। उनके इस अपमान ने उसका सारा दर्प चूर्ण कर दिया। वह अकेली बैठी बैठी बड़ी देर तक रोती रही।

कुत्सित स्त्रियाँ पति की सरलता का दुरुपयोग करने लगती हैं। उनका दिमाग़ बहुत ऊँचा हो जाता है और वे अपने सभी कुटुम्बियों को तिनके के समान तुच्छ समझ लेती हैं। दमयन्ती भी उसी कोटि की स्त्री थी।

भारतीय करेंसी की वर्तमान स्थिति

लेखक, प्रोफ़ेसर प्रेमचन्द्र मलहोत्र

जर्मनी की प्रारम्भिक विजयों ने आर्थिक तथा व्यावसायिक क्षेत्रों में आतंक उत्पन्न कर दिया है। हमारे देश में हुंडी-पर्चे के बाज़ारों को सरकारी हुक्म-द्वारा बन्द करना पड़ा, क्योंकि जब लोग आतंकग्रस्त हों तब औद्योगिक शेयरों तथा सरकारी पर्चों के मूल्य पूर्ति और माँग के नियम पर निर्धारित नहीं हो सकते और उनकी क़ीमतें असाधारण तौर से गिरती जाती हैं। इस दशा से केवल कुछ सट्टेबाज़ ही लाभ उठाते हैं और जनता तथा व्यवसायियों को सरासर हानि ही होती है।

काग़ज़ी नोट तब तक ठीक काम देता है जब तक जनता का सरकार पर तथा करेंसी चलानेवाली संस्था पर पूरा पूरा विश्वास हो। साधारण तथा शान्ति के समय में तो लोग रुपयों को जेब में रखना बोझ ढोना समझते हैं और काग़ज़ के करेंसी नोट को धातु के सिक्के की अपेक्षा सुविधाकारक समझते हैं। किन्तु युद्ध के समय स्थिति असाधारण होती है। इसी कारण लोगों ने धड़ाधड़ नोटों को रुपयों में परिवर्तन करना शुरू कर दिया। बैंकों तथा डाकखाने से रुपया निकलवाकर उनके चाँदी के रुपये भुनवा कर रुपयों का गाड़ना शुरू हो गया। रिज़र्व बैंक तथा भारतीय सरकार के पास चाँदी तथा चाँदी के रुपये पर्याप्त अंश में थे, किन्तु धातुकोष नोटों के अनुपात में शत प्रतिशत नहीं था। किसी भी देश की करेंसी में धातु-कोष काग़ज़ की करेंसी का कुछ अंश ही होता है। युद्ध के शुरू होने के बाद से ३ सितम्बर और २१ जून की अवधि में ४१ करोड़ रुपये रिज़र्व बैंक से निकलकर लोगों के घरों में दबाये गये। छोटे छोटे क़स्बों और गाँवों में नोट बट्टे पर चलने लगे और कई आदमी तो नोटों और रुपयों का व्यापार ही करने लगे। सरकार ने इस स्थिति पर क़ाबू पाने के लिए आर्डिनेन्स जारी किया, जिसके अनुसार नोट को अस्वीकार करना तथा नोट के बदले में पूरे रुपये न देना क़ानून के विरुद्ध ठहराया गया। और अब तो चाँदी के रुपयों का आवश्यकता से अधिक रखना तथा उनका गाड़ना भी क़ानून के विरुद्ध घोषित किया जा चुका है। यहाँ यह बताना प्रसंगरहित न होगा कि रुपये में खोट की मिलावट के कारण चाँदी १६ आने के मूल्य से कहीं कम होती है।

लोगों की रुपये के लिए असाधारण माँग निराधार थी। काग़ज़ के नोट कोष के आधार पर छापे जाते हैं। यह कोष कई रूपों में होता है, जैसे कि सोना तथा सोने के सिक्के, चाँदी तथा चाँदी के सिक्के, स्टर्लिंग सिक्यूरिटियाँ, रुपी सिक्यूरिटियाँ। स्टर्लिंग सिक्यूरिटियों से तात्पर्य है वह रक़म जो भारतीय सरकार ने इँग्लैंड की सरकार के ऋण में लगाई हुई है। १५ जून १९४० को २६२ करोड़ रुपये के नोट छप चुके थे। उसके आधार के लिए कोष में ८५ करोड़ रुपये का सोना तथा सोने के सिक्के, ४० करोड़ रुपये के चाँदी के सिक्के, १२९½ करोड़ रुपये की स्टर्लिंग सिक्यूरिटियाँ और ४८½ करोड़ रुपये की रुपी सिक्यूरिटियाँ थीं।

अब हम १९१४ के महासमर और वर्तमान युद्ध की करेंसी-स्थिति की तुलना करते हैं। ३१ जुलाई १९१४ को पेपर करेंसी रिज़र्व (काग़ज़ के नोटवाले कोष) में केवल ३३.९४ करोड़ रुपये थे। ३१ अगस्त १९३९ को रिज़र्व बैंक के कोष में ७५.८७ करोड़ रुपये थे। इसके अतिरिक्त केन्द्रीय सरकार के पास ३८ करोड़ रुपये की चाँदी तथा चाँदी के रुपये थे।

अब चाँदी के मूल्य का तब और अब में अन्तर देखिए। आज विश्व के बाज़ार में चाँदी की कुछ कमी नहीं है। चाँदी का मूल्य (२० जुलाई, १९४० को) २२½ पेंस प्रति औंस था। गत महासमर में चाँदी की क़ीमत चढ़ाव पर थी। और दिसम्बर १७, १९१९ को ७८ पौंड प्रति-औंस तक पहुँच चुकी थी। रुपये की वर्तमान विनिमय-दर (१ शिलिंग ६ पेंस) से जब तक चाँदी की क़ीमत ४८ पेंस प्रतिऔंस न हो, रुपये में चाँदी १६ आने से कमती की होती है।

क्योंकि कोष में पर्याप्त रुपये नहीं थे, भारतीय सरकार को लन्दन और अमरीका से चाँदी मोल लेनी पड़ी थी। चाँदी की क़ीमत बहुत तेज़ होने के कारण भारतीय

सरकार को चाँदी ख़रीदने में हानि हुई थी। जिस भाव पर चाँदी अप्रैल २३, १९१८ को भारतीय सरकार ने अमरीका से ली थी (१०१½ सेंटस प्रति औंस) वह चाँदी के आजकल के भाव से तिगुना था।

ऊपर लिखी हुई बातों से हम इस निर्णय पर पहुँचते हैं कि (१) वर्तमान युद्ध में रुपये और चाँदी का कोष गत समर की अपेक्षा कहीं अधिक है, (२) यदि चाँदी के कोष में वृद्धि करने की आवश्यकता पड़े तो चाँदी मामूली दर पर पर्याप्त अंश में बहुत सुविधा से मिल सकती है।

आवश्यकता केवल इसी बात की है कि जनता की रुपयों के लिए व्यावसायिक आवश्यकता बिना कठिनाई के पूरी हो जाय। और करेंसी की स्थिति के ठोस तथा मज़बूत होने की विस्तृत सूचना दी जाय। लोग सरकारी काग़ज़ की क़ीमत से सरकार की आर्थिक दशा को भाँपते हैं। इसलिए यह परमावश्यक है कि सरकारी काग़ज़ (तथा गिल्ट एजड्) का मूल्य गिरने से रोका जाय।

अब हम सरकार की वर्तमान करेंसी-नीति के कुछ आपत्तिजनक पहलुओं पर दृष्टि डालते हैं। भारतीय व्यावसायिक संघ ने सरकार का इन बातों की ओर ध्यान आकर्षित किया है। युनाइटेड किंगडम के विनिमय-दर-नियंत्रण करने से डालर-स्टर्लिंग की दर स्थापित हो गई। न्युयार्क में मुक्त बाज़ार स्थापित होने के कारण स्टर्लिंग डालर के बदले में बट्टे पर चलने लगा। स्टर्लिंग की विनिमय-दर ३.०५ डालर तक गिर गई। सरकारी डालर-स्टर्लिंग की विनिमय-दर स्थापित रखने के प्रयत्न में भारतीय सरकार ने हाल में ही यह घोषित कर दिया है कि भारत से अमरीका को माल भेजनेवालों के पास जितनी डालर के रूप में करेंसी जमा हो वह रिज़र्व बैंक को स्टर्लिंग के बदले में ४.०२ तथा ४.०४ डालर प्रति स्टर्लिंग की दर पर बेच दें। सरकार का इससे तात्पर्य यह था कि ग्रेट ब्रिटेन की सरकार के पास डालर के रूप में करेंसी जमा हो जाय, जिससे डालर-स्टर्लिंग की सरकारी दर रखने में सहायता मिले। किन्तु इससे भारतीय उत्पादकों को हानि हुई। उनको जहाँ ३.०५ डालर देकर एक स्टर्लिंग मिल सकता था, वहाँ सरकारी दर पर ४ डालर से अधिक देकर एक स्टर्लिंग मिला। भारतीय सरकार को भी हानि उठानी पड़ी, क्योंकि नियंत्रित दर पर डालर के बदले में उन्हें कम स्टर्लिंग मिले। और यह सब नियंत्रित डालर-स्टर्लिंग की दर को स्थापित रखने के लिए किया गया।

यदि रिज़र्व बैंक भारत के लोगों से डालर ख़रीद कर एक पृथक् डालर-कोष की स्थापना कर देता और इस डालर-कोष का अमरीका से सोना ख़रीदने में उपयोग किया जाता तो भारतीय करेंसी के सोने के कोष में वृद्धि होती। ऐसा करना देश के हित के लिए श्रेयस्कर होता।

करेंसी की नीति में एक आपत्ति इस बात की भी है कि भारत से सोना बाहर को ढोया जा रहा है और इस पर कोई प्रतिबन्ध नहीं लगाया जाता। संसार के सब देश अपने सोने को सुरक्षित रख रहे हैं। केवल भारतीय सरकार ही इस विषय में उदारता दिखला रही है! अप्रैल १९३९ से जनवरी १९४० तक लगभग ४० करोड़ रुपये का सोना बाहर भेजा जा चुका था। भारत में अर्थशास्त्री तथा देश के प्रमुख नेता चिल्ला-चिल्लाकर थक गये हैं कि देश से सोना बाहर ढोना अहितकर है, किन्तु सरकार की करेंसी-नीति तो जनता की माँगों से अप्रभावित रहती आई है और जब तक आर्थिक शासन की बागडोर जनता के मत से प्रभावित न होगी, ऐसा ही होते रहने की सम्भावना है।

सितम्बर १९३९ से जुलाई १९४० की अवधि में काग़ज़ की करेंसी २१७ करोड़ रुपये से २५५ करोड़ रुपये बढ़ गई। इसी अवधि में पेपर-करेंसी के धातु के कोष में काग़ज़ी कोष (स्टर्लिंग तथा रुपी सिक्यूरिटियाँ) की अपेक्षा कमी होती गई है। काग़ज़ी कोष ४८ प्रतिशत से ७१ प्रतिशत बढ़ गया है।

करेंसी-नीति का सबसे उत्तम परखने का तरीक़ा क्या है? लोगों का करेंसी-नीति पर पूर्ण विश्वास होना चाहिए। यदि लोगों का करेंसी-नीति पर विश्वास उखड़ जाय तो काग़ज़ी मुद्रा का चलना असाध्य ही हो जाय। खेद है कि भारत-सरकार की मुद्रा तथा करेंसी की नीति अभी तक लोगों तथा देश के हित की अवहेलना करती रही है।

राष्ट्रभाषा-प्रचार और हमारी समस्या

लेखिका, श्री कुमारी मैनावती माटे 'साहित्यरत्न'

दक्षिण में हिन्दी के प्रचार का कार्यभार सम्मेलन ने वर्धा की राष्ट्रभाषा-प्रचार-समिति को सौंप दिया है। उक्त समिति दक्षिण में कैसी हिन्दी का प्रचार कर रही है, इसका परिचय श्रीमती कुमारी मैनावती माटे ने अपने इस लेख में दिया है। कुमारी जी महाराष्ट्र के 'हिन्दी-प्रचार-संघ' की एक सदस्या हैं।

ष्ट्र के राष्ट्रत्व तथा उत्थान के लिए जिन बातों की परम आवश्यकता होती है उनमें भाषा अपना एक स्वतंत्र और महत्त्वपूर्ण स्थान रखती है। हमारा सौभाग्य है कि भौगोलिक एकता, सांस्कृतिक एकता आदि जो बातें राष्ट्रत्व के लिए आवश्यक होती हैं वे हमारे यहाँ मौजूद हैं। परन्तु इसके साथ ही दुःख की बात यह है कि और सब बातों के रहते हम एक-दूसरे को समझ नहीं सकते, क्योंकि हम बहुभाषी हैं। अतएव अपने प्रान्त को छोड़कर और प्रान्तवासियों के लिए हम और हमारे लिए और प्रान्तवासी गूँगे हैं। यदि भविष्य में हिन्दुस्तान को सचमुच राष्ट्र बनाना है तो हमारी पहली आवश्यकता है एक राष्ट्रभाषा की।

मैंने कई बार सुना है कि हमें केवल व्यवहार के लिए एक बोध-भाषा-मात्र की आवश्यकता है। इससे अधिक गहराई में जाने की हमें कोई आवश्यकता नहीं। हमारी प्रान्तीय भाषाओं में भाव, साहित्य आदि सब कुछ वर्तमान है। उसके लिए दूसरी किसी भाषा का साहित्यिक ज्ञान पाना अनावश्यक है। पर मेरी तुच्छ सम्मति में यदि केवल यही प्रयोजन है तो गत ४०-५० बरस तक, किसी तरह भी क्यों न हो, हमारी राष्ट्रीय सभा ने कार्य किया और जनता उसे, पराई भाषा-द्वारा ही क्यों न हो, समझती ही गई। फिर यह आग्रह सभी दलों के लोग क्यों करते हैं कि वह बोधभाषा भारतीय ही हो? जहाँ हमारा आत्माभिमान हमसे इस बात को कहलाता है वहीं उस भाषा का केवल बोधभाषापन लोप हो जाता है और उसका स्थान राष्ट्रभाषापन पकड़ लेता है। वह भाषा केवल इसलिए नहीं है कि यदि दो भिन्न भाषा-भाषी सब्जी-मण्डी, स्टेशन, बाज़ार आदि स्थानों पर मिलें तो एक-दूसरे से मोल-तोल की बातें करें। राष्ट्रीय भावों के वहन करने की शक्ति जिसमें हो वही हमारी राष्ट्रभाषा है।

राष्ट्रभाषा-प्रचार में और एक बात भी बार-बार दुहराई जाती है, वह है 'नाम में क्या रक्खा है?' पर वास्तव में यह अपने आपकी वंचना है। सब जन अपने अन्तर्मन में जानते हैं कि हर नाम के पीछे अलग-अलग भाव रहता है। नहीं तो भाषाओं में जो शब्द-संपत्ति होती है उसको व्यर्थ ही मानना पड़ेगा। एक कमल-पुष्प के लिए संस्कृत में सैकड़ों शब्द मिलते हैं। उनमें हर एक अपना निराला भाव प्रकट करता है। वही बात और बातों में भी होती है। 'राष्ट्रभाषा' शब्द में जो सजीवता, उमंग तथा आत्मीयता है वह 'साधारण भाषा', 'सबकी बोली' आदि रूखे शब्दों में कहाँ?

अब यह बात बहुत कुछ विवादातीत हो चुकी है कि हिन्दुस्तान के लिए एक राष्ट्रभाषा की अत्यन्त आवश्यकता है। इसके बाद की सीढ़ी है कि वह कौन-सी है? वास्तव में यह प्रश्न भी विवाद के परे हो चुका था, पर दुर्भाग्यवश यहाँ भी झगड़ों का बीज बोया गया, जिसने नाक में दम कर दिया है। वास्तव में यह बात सूर्य-प्रकाश जैसी स्पष्ट है कि हिन्दुस्तान की राष्ट्रभाषा-समस्या बिलकुल भाषा-सम्बन्धी समस्या है न कि जातीय या राजनैतिक। उसको हल करते समय जातीयता या राजनीतिकता के फेर में पड़ना बड़ी भारी भूल है। हिन्दुस्तान की प्रान्तीय भाषायें स्वयं पूर्ण हैं, जिनकी अपनी अपनी लिपियाँ भी वर्तमान हैं। इन सारे भाषा-भाषियों को राष्ट्रीय एकता के लिए एक नई भाषा तथा लिपि को सीखना है। इनके सामने केवल यही महान् कार्य नहीं है कि इसी भाषा को जीवन भर सीखते रहें। इसलिए हमें राष्ट्रभाषा के नाते भारतीय भाषाओं में से ऐसी एक भाषा को अपनाना था जो पहले से ही बहुत कुछ प्रसरित हो, साथ ही जो थोड़े से थोड़े समय में सीखी जा सके। फलतः हिन्दी ने राष्ट्रभाषा का सम्मान पाया, क्योंकि उसमें उपर्युक्त सब बातें हैं। हमारी आवश्यकताओं को पूर्ण करने की शक्ति उसमें और किसी भी भारतीय भाषा से अधिक है। सबसे पहली बात ह

हिन्दीभाषियों की संख्या, जो किसी भी प्रान्तीय भाषा के बोलनेवालों की संख्या से अधिक है। दूसरी बात यह है कि उसके संस्कृत-कुलजा होने के कारण वह कई संस्कृत-कुलजा भाषाओं की सगी बहन और संस्कृत से प्रभावित और भाषाओं के लिए बहुत ही निकटवर्तिनी है। तीसरी बात बड़ी महत्त्वपूर्ण है, वह यह कि वह प्रधानतः ऐसी लिपि में लिखी जाती है जो कई भारतीय लिपियों के लिए निकट है और संसार की समस्त लिपियों में अपनी वैज्ञानिकता के लिए विख्यात है।

उपर्युक्त अन्तिम पंक्तियों को पढ़ते ही कई लोगों की आँखों के आगे यह वाक्य नाचने लगेगा कि 'हिन्दीभाषा, देवनागरी और उर्दू, दो लिपियों में लिखी जाती है।' पर जिन कारणों से नागरी राष्ट्रलिपि मानी गई है उनमें एक भी उर्दू-लिपि के लिए लागू नहीं होता। पहली बात है कि उर्दू-लिपि अभारतीय है, अतएव उसमें 'राष्ट्रलिपिपन' ही नहीं है। दूसरी बात नागरी की तुलना में उर्दू इतने थोड़े लोगों-द्वारा लिखी जाती है कि इन मुट्ठी भर लोगों को राष्ट्रलिपि के नाते नागरी अनिवार्य करने के बदले उनकी लिपि को बहुजन-समाज पर लादना अन्याय और अयुक्त होगा। फिर वह इतनी अवैज्ञानिक और अपूर्ण है कि प्रचार के लिए सर्वथा निरुपयोगी है। यदि वह अनिवार्य हो जाय तो कानड़ी, गुरुमुखी आदि जितनी और लिपियाँ भारत में हैं वे सब अपने राष्ट्रलिपि होने का दावा करेंगी, क्योंकि उन्हें उर्दू से कहीं अधिक अधिकार है।

उपर्युक्त कारणों से और प्रान्तीय भाषाओं ने समझौते की दृष्टि से हिन्दी को राष्ट्रभाषा तथा नागरी को राष्ट्रलिपि के रूप में अपनाना आरम्भ कर दिया। बहुत कुछ यह समस्या हल हो चुकी थी। पर गत बीस-बाईस बरस से हमारे राष्ट्रीय जीवन के हर एक पहलू को एक विपाक्त परदा बुरी तरह ढँके हुए है, जिसने इस बात को भी नहीं छोड़ा। एक विशिष्ट जाति के समाधान के लिए 'हिन्दी' के आगे 'याने हिन्दुस्थानी' ये दो शब्द और जोड़ने पड़े। मानो हिन्दी कोई ऐसा कठिन या अपरिचित शब्द हो जिसके अर्थ की स्पष्टता किये बिना वह किसी की समझ में नहीं आ सकता। फिर 'हिन्दी याने हिन्दुस्थानी' में से पहले दो शब्द एकदम एक दिन न जाने कैसे उड़ गये, अर्थात् रह गया एक शब्द, 'हिन्दुस्थानी।' फिर एक दिन वह भी अपने भीतर एक अक्षर को बड़ी अर्थपूर्णता के साथ बदल कर सामने आया, अर्थात् 'हिन्दुस्थानी' के बदले 'हिन्दुस्तानी' हो गया। फिर कई व्यक्तियों-द्वारा कई स्थानों पर यह समझाया गया कि 'हिन्दुस्तानी अर्थात् सिम्पल उर्दू।' इस बात को देखते ही जो चौंके उन्हें समझाया गया कि 'न भाई, घबराने की बात नहीं, उर्दू, हिन्दी और हिन्दुस्तानी एक ही भाषा की शैलियाँ हैं।' यह भी कोई राष्ट्रीयता है कि सीधे लोगों की आँख में इस प्रकार धूल झोंकी जाय। चाहे औरों का इस विषय का ज्ञान कितना भी तुच्छ क्यों न हो, वे इस बात को जानते हैं, अनुभव भी करते हैं कि उर्दू ने अभारतीय शब्द-सम्पत्ति का आश्रय लिया है और अपने व्याकरण का ढाँचा भी अभारतीय ही ग्रहण किया है।

जब उपर्युक्त बातें सुनाई जाती हैं तब 'हिन्दुस्तानी'-वाले सज्जन बग़लें झाँकने लगते हैं सो बात नहीं, राष्ट्रभाषा तो अभी बननेवाली है। उसमें मराठी के भी शब्द आयेंगे, गुजराती के भी आयेंगे, वैसे ही हिन्दुस्तानी या उर्दू के भी आयेंगे और इन सबके मेल-मिलाप से हमारी राष्ट्रभाषा बनेगी। परन्तु जो हो ही नहीं, भविष्य में बननेवाली है, वह आज ही अनिवार्य कैसे की जा सकती है? इसमें राष्ट्रभाषा-प्रचार के मूलभूत हेतु को ही भुला दिया गया है कि जो है उससे हमें लाभ उठाना है। तभी थोड़े से थोड़े समय में हमारा कार्य हो सकता है और आज ही उसका आरम्भ हो सकता है। जो न हो उसका आरम्भ कैसे हो सकता है?

इस बात को सभी जानते हैं कि भाषा का स्वभाव ही है बदलना। उसके अनुसार वह फैलते फैलते और शब्द अपनी आवश्यकता के अनुसार लेगी ही। पर उसकी इस स्वाभाविकता का हौवा बनाकर दूसरों को डराना तथा भूलभुलैया में डालना और उसका अस्तित्व ही भुलाते हुए यह कहना कि वह 'होगी' 'बनेगी' या तो नासमझी है या यहाँ दाल में कुछ काला है।

'हिन्दुस्तानी' के नाम पर जिस भाषा का प्रचार किया जा रहा है उसकी शब्दावली का—जिसमें जान-बूझ कर अरबी-फ़ारसी के शब्द ठूँसे जाते हैं—विरोध करते ही विरोध के मूल-हेतु की उपेक्षा करके उसकी हँसी उड़ाई जाती है कि अब तो 'स्टेशन' के लिए 'अग्निरथ-विराम-स्थान' का उपयोग करना पड़ेगा। पर वास्तव में बहुतांश

विरोधियों का सच्चा विरोध रूढ़ शब्दों को चुनचुन कर निकाल बाहर करने के हेतु से नहीं है। वह है जानबूझ कर विशिष्ट दृष्टि से जो नये शब्दों की भरमार की जा रही है उससे।

दुर्भाग्यवश हमारे नेता और अधिकारी लोग इस विषय में 'यह भी ठीक है,' 'वह भी ठीक है' 'यह भी हो सकता है,' 'वह भी हो सकता है,' 'नाम से क्या काम,' 'चाहे जो नाम हो हम कार्य करें'—इस तरह की ऊटपटाँग बात सुना कर समय-असमय पर सामान्य जनता का बुद्धिभेद करते हैं। और सबसे मार्के की बात तो यह है कि इनमें वे ही लोग हैं जिन्होंने पहला नाम बदल कर आप ही झगड़ा खड़ा किया है। ये कभी जनता को निश्चित मार्ग का दर्शन नहीं कराते। मीठी बातों की भूलभुलैया में डालकर उसको दुविधा में डालते हैं।

इस सारी परिस्थिति का परिणाम हमें यह भुगतना पड़ रहा है कि राष्ट्रभाषा के बहाने हमारे बच्चों के सिर पर एक ऐसी भाषा लादी गई है कि जो है ही नहीं! यदि है तो बहुत ही नगण्य है, उसका बाल्यकाल है। वह २-३ रीडरों के आगे नहीं जाने पाई है। उसका कोई निश्चय नहीं है कि वह 'राष्ट्रभाषा' है या 'सबकी बोली' या 'हिन्दुस्तानी' है। उसमें किसी तरह का साहित्य नहीं, जिससे वह राष्ट्रीय-भाव वहन करने के लिए समर्थ हो। जो भाषा साहित्य-सृजन के लिए असमर्थ हो वह राष्ट्रीय भावों के आदान-प्रदान का भार कभी उठा नहीं सकती। यदि राष्ट्रभाषा के द्वारा राष्ट्रीय-भाव वहन करना हमारा उद्देश्य नहीं है तो राष्ट्रभाषा की आवश्यकता ही क्या है? क्या यही कि बाज़ार, स्टेशन आदि की प्राथमिक आवश्यकताओं को पूर्ण करने का काम उससे चल जाय? सारे भारत को सिर पर उठा लेने की उसे क्या पड़ी है?

पर यह 'अपूर्व' भाषा केवल यहीं तक नहीं पहुँची है। अपनी नई और 'मिलापी' शब्दसम्पत्ति के कारण इसे शब्दसम्पत्ति की जड़ तक जाने की आवश्यकता उत्पन्न हुई, क्योंकि इस आवश्यकता के समर्थकों ने कभी यह पाठ पढ़ा था कि 'भाषा के शिक्षक को उसका मूलग्राही ज्ञान होना जरूरी है। उसके बिना वह कभी अच्छा शिक्षक नहीं हो सकता।' इसके साथ ही यह बात है कि शब्दसम्पत्ति के मूल में जाने के लिए मूल-लिपि को भी जानना चाहिए। अर्थात् उर्दू-लिपि को जाने बिना राष्ट्र-भाषा का शिक्षक कभी योग्य नहीं हो सकता। आज हमारे प्रान्तों में केवल हर राष्ट्रभाषा-शिक्षक के लिए ही यह बड़ी हास्यास्पद बात है कि ट्रेनिंग कालेजों के हर एक शिक्षक के लिए उर्दू-लिपि जानना अनिवार्य है, मानो वहाँ का प्रत्येक शिक्षक राष्ट्र-भाषा का ही शिक्षक होनेवाला हो।

और भी एक बड़ी विलक्षण अनिवार्यता हमारे गले में मढ़ दी गई है, जिस पर हँसते ही बनता है और बधाई देने को जी चाहता है। जो बी० टी०, एस० टी० सी० आदि शिक्षा-शास्त्र की उपाधियाँ लिये हुए हैं और राष्ट्रभाषा-कोविद, विशारद आदि उपाधियाँ भी जिन्होंने प्राप्त की हैं उनको भी 'हिन्दुस्तानी-शिक्षक' बनना और 'उर्दू-लिपि' का जानना अनिवार्य है। मानो हिन्दुस्तानी पढ़ाना कोई ऐसा गहन कार्य है जो बी० टी० आदि के क्षेत्र में न आता हो!

उर्दू-लिपि की इस ज़िद का कारण पूछें तो कहा जाता है 'कि यदि कोई मुसलमान विद्यार्थी कहे कि मुझे उर्दू-लिपि आती है उसी में मैं पढूँगा तो शिक्षक कैसे पढ़ायेगा?' क्या राष्ट्रीय लिपि किसी जाति का खिलौना है कि चाहे तो ले ले और न चाहे तो फेंक दे? जिस कारण और भाषाओं ने अपनी लिपियाँ छोड़ नागरी को लिया उसी कारण हिन्दुस्तान में रहनेवाले प्रत्येक मनुष्य को राष्ट्रलिपि के नाते नागरी को ही लेना पड़ेगा, फिर वह मुसलमान, हिन्दू, पारसी, ईसाई चाहे जो हो। हम किसी एक का पक्षपात नहीं कर सकते। पर यह अन्याय हमारे ऊपर किया गया है और उसके फल-स्वरूप हमारे बच्चों तथा शिक्षकों पर एक अनधिकारी भाषा और लिपि का ज़ुल्म हो रहा है। यदि राष्ट्र-भाषा के बहाने हमारे गले में यह 'अनेकरूपा', 'मेलेच्छु', 'बननेवाली' और 'अभारतीयता की ओर दौड़नेवाली' भाषा मढ़ी जा रही है तो यह अँगुली पकड़ने के बाद पहुँचे को भी ग्रहण करने-वाली भाषा हमें नहीं चाहिए। वह जहाँ कहीं हिन्दुस्तानी के प्रेमी हों उन्हें ही मुबारक हो।

हिन्दी-भाषा-भाषियों के सामने भी यह समस्या है, पर आज हमारे लिए वह कहीं अधिक दाहक हो रही है।

स्वयं हिन्दी-साहित्य-क्षेत्र के लोगों को इस ओर ध्यान देना चाहिए। इस आन्दोलन को राजनीतिकता तथा जातीयता के चंगुल से छुड़ाने का कार्य उनका है। यदि अधिकारिणी और प्रचार-नुकूल हिन्दी-भाषा और नागरी-लिपि हमारी राष्ट्रभाषा और राष्ट्र-लिपि नहीं है तो हमारी अपनी भाषायें ऐसी क्षुद्र, दरिद्र और साहित्यहीन नहीं हैं, हमारी प्रान्तीय लिपियाँ इतनी अनधिकारिणी और अवैज्ञानिक नहीं हैं कि उनको छोड़कर हम एक नयी की भाषा तथा अभारतीय और सर्वथा अयथार्थ लिपि को अपनाने में अपना बहुमूल्य समय यों ही नष्ट कर दें, अपने बच्चों के कोमल मस्तिष्कों पर यह असहनीय भार यों ही डालें।

कण्डीवाला

लेखक, प्रोफ़ेसर धर्मदेव शास्त्री

"अरे कण्डी? कण्डी कितने में बेचोगे?"

"बाबू जी, आप ही बता दीजिए"।

'नहीं देखो सुबह का वक़्त है, न तुम झूठ बोलो और न मुझे झूठ बोलना पड़े। तुम्हीं ठीक ठीक एक दाम बता दो, बिलकुल ठीक।

"बाबू जी! झूठ की बात पूछें तो पौने दो होंगे, सच पूछें तो डेढ़ रुपया होगा।"

"नहीं, तुमसे सौदा नहीं होगा, कण्डी छोटी है, कोयला भी कच्चा है, दो बोरी भी नहीं भरेगी।"

"नहीं बाबू जी! गुन का कोयला है, पक्का। दो बोरी से कम नहीं होगा।"

+ + +

बाबू जी और कोयलेवाले में आख़िरकार लड़-झगड़ कर सवा रुपया तय हुआ।

घर आकर बाबू जी ने गृहिणी से कहा—लो यह कण्डी लाया हूँ। दो बोरी कोयले होंगे। सवा रुपये में सस्ते हैं। लेकिन देखना दो बोरी से कम हों तो पैसे कम कराने की कोशिश करना। पहले बात न करना, बोरी में डलवाकर बात कहना।

"कोयले तो कम हैं"—बबुआइन ने कहा।

'अच्छा लो पैसे' कह कर उसके हाथ में बारह आने के पैसे रखते हुए बोलीं—कोयला तो बहुत ख़राब है। इतने पैसे के योग्य भी नहीं, पर ग़रीब समझ कर तुम्हें दे रही हूँ।

"माई जी! यह क्या? बाबू जी सवा रुपया तय कर के आये हैं।"

"जा जा मैं और नहीं दूँगी। बाबू जी क्या जानें; मैं हमेशा कोयला लेती हूँ।"

"माई जी! ग़रीब पर दया करो। सारा दिन पीठ पर लादे-लादे कोयले की कण्डी बेचकर कहीं हमें रोटी मिलती है। इतने पैसे तो ठेकेदार के भी पूरे नहीं होंगे। दया करो। भगवान् का नाम मानो।"

"देख बहुत बक बक मत कर। अन्दर बाबू जी पूजा कर रहे हैं नाराज़ होंगे, जा जा!"

"अच्छा तो माई जी! इसे भी रख लो।"

"फेंक दे या ले जा। तेरी इच्छा। मैं तो जो देना था दे दिया।"

+ + +

बाँस की छोटी-छोटी टुकड़ियों को रस्सी में बाँध और पीठ पर डाल कर जब कण्डीवाला बाबू जी के घर से निकला तब मैंने पूछा—क्यों भाई? लड़ाई का क्या नतीजा निकला?

"बाबू जी! माई जी ने बहुत धोखा दिया।" यह कर उसने एक फटे हुए कपड़े की गाँठ खोली। उसमें कुल बारह आने के पैसे थे।

"क्या करें बाबू जी हम ग़रीबों का कोई नहीं। गांधी बाबा भी तो हमारे लिए कुछ नहीं करता।"

मैंने गांधी-टोपी पहन रक्खी थी।
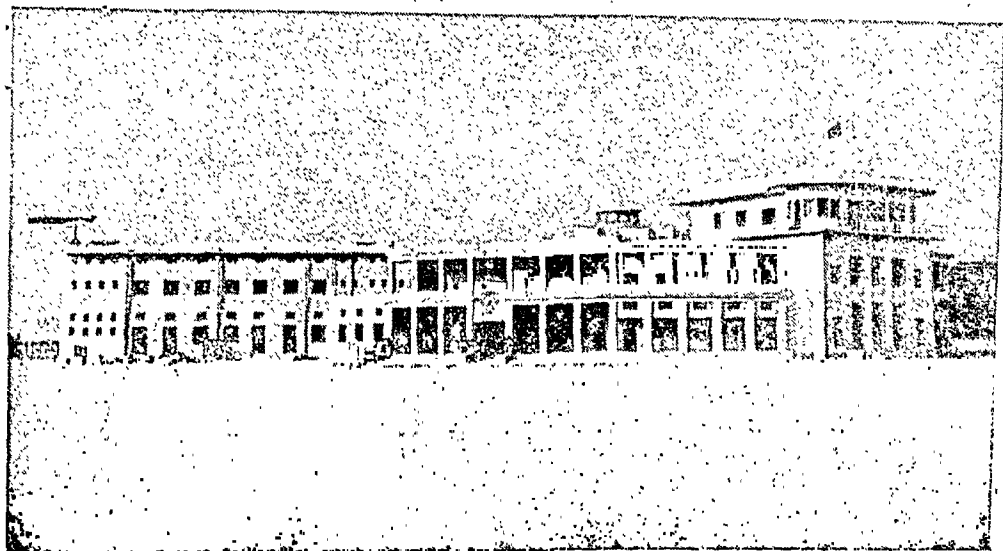
[कराची का विशाल हवाई स्टेशन

भारतीय मुल्की हवाई प्रगति

लेखक, श्रीयुत अवनीन्द्र विद्यालङ्कार

(२)

विदेशी हवाई सर्विसें

१९३८ में भी डच कम्पनी के. एल. एम. और एयर-फ़्रांस भारत में काम करती रहीं। डच हवाई सर्विस अमस्टर्डम से बटेविआ तक जारी रही। विशेष बात यह हुई कि अक्टूबर से डच सर्विस सिडनी तक जाने लगी। के. एल. एम. के विमानों ने रात में ट्रान्स-इण्डिया विभाग में ३२७ उड़ानें मारीं। एयरफ़्रांस ने भी अपनी सर्विस सईगाँव से हांगकांग तक बढ़ा दी। इसके मार्ग में भी कुछ परिवर्तन हुआ। मार्सैल से अब एयरफ़्रांस का मार्ग ट्यूनिस, बेलहासी और अलेक्जेण्ड्रिया होकर जाता है। विदेशी हवाई सर्विसों ने माल और मुसाफ़िरों के लाने-ले जाने का कितना काम किया, इसका तुलनात्मक चित्र नीचे दिया जा रहा है—

	१९३७	१९३८
भारत के यात्री...	४८८	५८६
भारत से यात्री...	४८२	६६७
	(टनों में)	(टनों में)
भारत को माल आया ...	७·६	१३·६
भार से माल गया ...	३..	७·१

देशी कम्पनियाँ

१९३८ में निम्न देशी कम्पनियाँ काम कर रही थीं—

नाम	सर्विस
इंडियन ट्रान्स काण्टिनेन्टल एयरवेज़ लि०	करांची-कलकत्ता सप्ताह में दो बार।
ताता सन्स लिमिटेड	(i) करात्री-बम्बई, मद्रास-कोलम्बो सप्ताह में पाँच बार।
	(ii) बम्बई-कन्नूर-त्रिवेन्द्रम, त्रिचनापली—साप्ताहिक (मौसमी)
	(iii) बम्बई-इन्दौर, भोपाल-ग्वालियर, दिल्ली—सप्ताह में दो बार (मौसमी)।
इंडियन नेशनल एयरवेज़ लिमिटेड	कराची-लाहौर—सप्ताह में पाँच बार। लाहौर-दिल्ली—सप्ताह में तीन बार।

नाम	सर्विस
एयर सर्विसेज़ आफ़ इंडिया, लिमिटेड	बम्बई-भावनगर-राजकोट जामनगर-पोरबन्दर—सप्ताह में छः बार (मौसमी)। बम्बई, पूना, कोल्हापुर, सप्ताह में तीन बार (मौसमी)।
इंडियन एयर सर्वे एन्ड ट्रान्सपोर्ट	हवाई सर्वे, आकाशीय परामर्श
इंडियन एविवेशन डेवलपमेंट लिमिटेड	आकाशीय परामर्श

ताता सन्स लिमिटेड—यह कम्पनी सदा के समान प्रगतिशील रही। कराची-मद्रास सर्विस को एक दिन में पूरा करने का इसका विचार है। इसके १४ पाइलटों (चालकों) में से १३ भारतीय हैं। वायरलेस आपरेटर सबके सब भारतीय हैं। ५१ इंजीनियरों और मिस्त्रियों में से ४७ भारतीय हैं, प्रबन्ध-विभाग में ४० में से ३८ भारतीय हैं।

कराची-कोलम्बो के बीच कम्पनी फ़रवरी १९३८ के बाद से पाँच हवाई सर्विस करती रही। यह मार्ग दो दिन में पूरा किया। रात में कम्पनी के विमान हैदराबाद में विश्राम करते रहे। कम्पनी १९३८ में, १०८·३ टन दक्षिण की ओर और ८३·७ टन उत्तर की ओर—डाक ले गई जब कि १९३७ में ४५·५ टन ले गई थी। इसी प्रकार १९३७ में जहाँ १०९ यात्री ले गई थी, रिपोर्ट के साल ५१४ यात्री ले गई। फलतः कम्पनी ६८,११५ से ३,१७,५९५ मुसाफ़िर—मील उड़ी। डाक का काम कम्पनी ठेके पर करती है। १९३७ में इसके लिए उसको ८,१८,१८५ मील की दूरी पूरी करनी पड़ी थी मगर १९३८ में ९,३०,००० मील उड़ने तय किया। नियमितता में कम्पनी का स्टैंडर्ड शतप्रतिशत रहा—अर्थात् सब निश्चित सर्विसें पूरी कीं। कराची में डाक देर से पहुँचने के कारण दक्षिण जानेवाली ६७ सर्विसों में देरी हुई। इसके अतिरिक्त और दो सर्विसें ३ घंटे देर से इंजिन में ख़राबी हो जाने के कारण पहुँचीं। उत्तर की ओर की एक को छोड़कर शेष सब सर्विसें ठीक समय पर पूरी हुईं।

कम्पनी की बम्बई-त्रिवेन्द्रम-त्रिचनापली सर्विस अक्टूबर से अप्रैल सन् १९३९ तक जारी रही। ४९,३०० मील की उड़ान भरी ७६ पौंड डाक, ३८ यात्री और ७६ पौंड माल ले गई, जब कि इससे पिछले साल ३८५ पौंड डाक, ५१ मुसाफ़िर और १७९ पौंड माल ले गई थी।

कम्पनी ने बम्बई-दिल्ली सर्विस भी नवम्बर से मई १९३९ तक जारी रक्खी और ४८ पौंड डाक, ८५ यात्री और २४४ पौंड माल ले गई जब कि इससे पिछले साल १६१ पौंड डाक, १०३ यात्री, ५४ पौंड माल ले गई थी।

इंडियन नेशनल एयरवेज़ लि०—यह भारत में इम्पीरियल एयरवेज़ और इंडियन ट्रान्स काण्टिनेन्टल एयरवेज़ की एजेंट है। कराची-लाहौर सर्विस इसी की है। कम्पनी ने अपनी यह सर्विस दिल्ली तक बढ़ा दी है। कराची-लाहौर के बीच कम्पनी ने ४३९ सर्विसें कीं। १९३९ में कम्पनी १५·५ टन डाक ले गई थी, मगर १९३८ में ५२·३ टन ले गई। यात्रियों की संख्या बढ़कर १३ से १९ हो गई। कराची-लाहौर विभाग में कम्पनी ने ३,२२४६५ मील की उड़ान पूरी की। नियमितता १०० प्रतिशत रही। इसके मुक़ाबिले १९३७ में ३,५१,२५२ मील उड़ी और नियमितता ९९ प्रतिशत रही थी। इम्पीरियल एयरवेज़ की वजह से हुई देरी को छोड़कर कम्पनी की सर्विसें उत्तर की ओर १२ बार और दक्षिण की ओर ७ बार देर से पहुँचीं। कम्पनी के स्टाफ़ में ९४·५ प्रतिशत भारतीय हैं।

कम्पनी द्वारा दिल्ली तक हवाई सर्विस जारी कर देने से दिल्ली से कराची अब ७½ घंटे का रास्ता रह गया है। इसने ४० उड़ानें भरीं और ५५ यात्रियों को ले गई। १८ अप्रैल १९३९ से यात्रियों की कमी की वजह से कम्पनी सप्ताह में माँग पर एक सर्विस करती है।

एयर सर्विसेज आफ़ इंडिया लिमिटेड—बम्बई-काठियावाड़ की हवाई सर्विस के अलावा १ जनवरी १९३९ से कम्पनी ने बम्बई-पूना-कोल्हापुर सर्विस भी जारी की है। कम्पनी का हवाई इंजीनियरिंग की शिक्षा देने का स्कूल नवानगर चला आया है। नवानगर रियासत ने हैंगर, व्याख्या-भवन और वर्कशाप की जगह की व्यवस्था की

है। कम्पनी की पूँजी ५ लाख रु० है। इसको काठियावाड़ की रियासतों और कोल्हापुर से सहायता मिलती है।

कम्पनी की बम्बई-काठियावाड़ हवाई सर्विस १० अक्टूबर १९३८ से जारी हुई। १९३८-३९ में रविवार को छोड़कर प्रतिदिन दोनों ओर कम्पनी के विमान चलते रहे। बरसात में १५ जून से सर्विस स्थगित कर दी गई थी और अक्टूबर १९३९ से पुनः चालू हो गई। ४२६ सर्विसों में से केवल दो को मौसम खराब होने के कारण रद्द करनी पड़ी। कम्पनी को किसी सर्विस में दो से अधिक घंटे की देरी नहीं हुई। १३३१ पौंड डाक, २,१७५ मुसाफ़िर और ८९,९१७ पौंड माल ले गई जब कि १९३७-३८ में ९३३ यात्री और २५७ पौंड माल लेगई थी।

बम्बई-कोल्हापुर सर्विसें ५ जनवरी १९३९ को शुरू हुईं। ८८ सर्विसें निश्चित की गई थीं, जिनमें से ८४ नियत समय पर पूरी हुई। एक सर्विस रद्द कर दी गई और एक २४ घंटे देर रही। दोनों का कारण मैशीन की खराबी थी। भार न होने के कारण दो पूना में समाप्त हो गईं। १९३९ में ७९ यात्री ले जाये गये।

हवाई सर्वे

इंडियन एयर-सर्वे एण्ड ट्रान्सपोर्ट लिमिटेड ने ८६७ घंटे की उड़ान पूरी की, जिसमें से ८०० घंटे सर्वे-कार्य के लिए उड़ान किया। कलकत्ता फ़्लाइंग स्कूल का संगठन भी इसी कम्पनी को सौंपा गया। यह स्कूल अलीपुर में अप्रैल १९३९ में खुला। हवाई सर्वे बर्मा से बिलोचिस्तान तक किया गया, । १३,००० वर्गमील का सर्वे किया। इनमें से अधिकांश भाग का फ़ोटो लिया गया। भूगर्भ की खोज, शहर-निर्माण-योजना, बन्दरगाह में उन्नति, सिंचाई, और नदीनियन्त्रण के उद्देश्यों से हवाई सर्वे की गई। उज्जैन की फ़ोटोग्राफ़ी का काम समाप्त हो गया। ग्वालियर और ओरछा के लिए भी मानचित्र तैयार किये। आसाम, बंगाल और बर्मा में नया सर्वे का काम लिया गया। इस कारण बर्मा के अन्दर श्वेबो, मींजे और नोंकतिला में उतरने के नये स्थान बनाये गये।

अन्य क्षेत्रों में

कम्पनियों और उड़ान क्लबों द्वारा किये गये उड़ान पर सामने तालिका प्रकाश डालती है—

कम्पनी व संस्था	यात्रायें	उड़े घंटे	उड़ान मीलों में	मुसाफ़िर ढोये
ताता सन्स लि०	—	१,१७५	१,३८,८४१	७९
इंडियन नेशनल एयर वेज़।	५०	२९१	३०,३१७	१२६
एयर सर्विस आफ़ इंडिया।	२७	१४५	१७,००४	७७
इंडिया एयर सर्वे एण्ड ट्रान्सपोर्ट।	—	६३	६,३००	१७
उड़ान क्लबें	६६	३३९	३०,०२६	८६
योग १९३८ का	१४३	२,०१३	२,२५,४८८	३८५
योग १९३७ का	१२४	२,०९१	२,०९,५६७	४०१

मनोरञ्जन उड़ान

इंडियन एवियेशन डेवलपमेंट कम्पनी लिमिटेड के क्रियाकलापों में कमी आ जाने के कारण मनोरंजन उड़ान में बहुत कमी आ गई है।

१९३८ की तालिका इस प्रकार है—

कम्पनी व संस्था	उड़ान	उड़े घंटे	मुसाफ़िर ढोये
इंडियन नेशनल एयरवेज़ लि०	१२०	३०	२५४
एयर सर्विस आफ़ इंडिया लि०	१६३	२७	५४८
इंडियन एवियेशन डेवलपमेंट कम्पनी लि०	३०१	७८	८६६
उड़ान क्लबें ...	—	२८९	२,८६४
योग १९३८ का ...	५८४	४२४	४,५३२
योग १९३७ का ...	१,४६३	५०८	७,५६४

इसके अतिरिक्त बंगाल-सरकार के अपने विमानों ने १२९ घंटे की उड़ान पूरी की।

हवाई जहाज़ का आयात

हवाई प्रगति जानने का एक साधन हवाई जहाज़ों और उसके पुर्ज़ों के आयात को भी देखना है। १९३८ में २२ वायुयान आये जब कि १९३७ में २९ आये थे। अमरीका से ९ वायुयान (१,४८,६३० रु०) तीन हवाई

इंजिन (२३,६४० रु० के) और ६६,७५० रु० क़ीमत के सहायक कल-पुर्ज़े आये। नीचे की तालिका से चार सालों की आयात की गति-विधि पर अच्छा प्रकाश पड़ेगा—

वर्ष	आयात वायुयान संख्या	आयात वायुयान मूल्य	वायुयान के कल-पुर्ज़ों का आयात	कुल वायुयानों व उसके भागों व पुर्ज़ों का आयात
१९३५	२५	३,१३,१३१	५,०३,४७३	८,१६,६०४
१९३६	३०	६,४३,५५०	८,०६,४०८	१४,४७,९५८
१९३७	२९	३,०६,६७५	९,५९,७२९	१६,६६,४०४
१९३८	२२	५,१२,००५	१६,८३,७१४	२१,९५,७१९

उड़ान क्लबें

हैदराबाद, जोधपुर और जयपुर के अतिरिक्त सरकारी सहायताप्राप्त उड़ान क्लबें बंगाल, बम्बई, दिल्ली, कराची, मद्रास, उत्तरी भारत और युक्त-प्रान्त हैं। इसके अतिरिक्त दिल्ली में हवाई शिक्षा देने के लिए एक कम्पनी भी है। १९३८ के अन्त में इनके सदस्यों की कुल संख्या १,५९४ थी, जब से कि १९३७ में १,६३२ और १,९३६ में १६४५ थी। इनमें अनुक्रम से ब्रिटिश भारत में १,४०५ रियासतों में १८९ रही, जब कि १९३७ में १५०६ और १२६ थी और १९३६ में १,५५५ और ९० थी। इससे स्पष्ट है कि क्लबों की रियासतों में अच्छी प्रगति हो रही है। इनका १९३८ में कुल उड़ान १२,५०४ घंटे रहा, जब कि १९३७ में १३,४०३ और १९३६ में १०,१८१ घंटे थे। ब्रिटिश भारत के सातों क्लब १९३८ में १,३१५ घंटे कम उड़े क्योंकि उनकी कुल उड़ान ९,३६८ घंटे रही जब कि १९३७ में १०,६८३ घंटे हुई थी। कम उड़ान के घंटों का कारण यह है कि ए० लाइसेन्स चाहनेवाले प्राइवेट पाइलाटों की संख्या घट गई। १९३८ में यह घटकर ५६ रह गई, जब कि १९३७ में ६४ और १९३६ में ७३ थी। बी० लाइसेन्स के पाइलाटों की संख्या बढ़ी है। मगर नौकरी का प्रश्न आने पर इनमें भी कमी आनी अनिवार्य है। रायल फ़ोर्स ने आठ अफ़सरों और ६ इंडियन कमीशंड अफ़सरों को प्रारम्भिक शिक्षा देने का काम इन क्लबों को सौंपा। इस साल युद्ध की वजह से भारत की हवाई शक्ति ४ स्क्वेडर्न की जा रही है और नये भरती होनेवालों की प्रारम्भिक शिक्षा का काम भी इन्हीं क्लबों को दिया गया है।

शिक्षा

ए० लाइसेन्स की शिक्षा पानेवाले बालकों की संख्या में कमी हुई। १९३७ में इनकी संख्या ८२ थी, जब कि १८३८ में ६९ ही रह गई। बी० लाइसेन्स पानेवालों की संख्या १४ से १९ होगई। ए० लाइसेन्स पुनः जारी करानेवालों में पिछले साल से १७ की बढ़ती हुई। इसका श्रेय हैदराबाद स्टेट एयरो क्लब को है। १९३८ के अन्त में बी० लाइसेन्स प्राप्त २६ बेकार थे और २८ शिक्षा पा रहे थे। आशा करनी चाहिए कि लड़ाई के कारण हवाई सेना का विस्तार करने के सरकारी निर्णय से इन युवकों का संकट दूर हो गया होगा।

सरकार के अतिरिक्त ताता सन्स, इंडियन नेशनल एयरवेज़ और एयर सर्विस आफ़ इंडिया अपने ख़र्च पर हवाई शिक्षा देने का कार्य करते रहे।

गवर्नमेंट ने शिक्षा देने के लिए फ़रवरी १९३९ में कराची एयरो क्लब को लिंक ट्रेनर दिया है। यह एक ज़मीन की मशीन है जो आकाश में उड़ रहे वायुयानों का नियन्त्रण और उनके नौकानयन का बेतार के तार द्वारा और आन्तरिक मशीनरी द्वारा नियन्त्रण करता है। इसके द्वारा चालकों को सब प्रकार के मौसम में वायुयान चलाने की शिक्षा दी जाती है। इस पर सीखने की फ़ीस १५ रु० प्रतिघंटा है। इस पर कुल ख़र्च २९,२३४ रु० आया। १९३८ में ४८ भूमिइंजीनियरों ने लाइसेन्स प्राप्त किया। अधिकांश ने 'ए' और 'सी' श्रेणी के स्टैंडर्ड तक शिक्षा ली। इनमें से २३ ने केवल 'ए' या 'सी' श्रेणी की ही शिक्षा ली। प्रान्तीय सरकारों में, केवल पन्त मंत्रि-मंडल ने १० 'ए' लाइसेन्स चालकों के वास्ते ५,००० रुपया छात्र-वृत्ति में दिये थे। इसके अतिरिक्त रतन ताता ट्रस्ट, डोराब जी ट्रस्ट, सर होमी मेहता और इम्पीरियल एयरवेज़ लि० ने भी पाइलटों की शिक्षा के लिए छात्र-वृत्तियाँ प्रदान कीं।

निजू उड़ान

एरो क्लब आफ़ इंडिया एण्ड बर्मा में देश के सब क्लब सम्मिलित हैं। एरो क्लब ने ५ दिसम्बर १९३८ को कराची में पहली अ० भा० हवाई रैली का संघटन किया। सासून ट्रॉफ़ी और वाइसराय कप कराची एरो क्लब और इसके एक सदस्य श्री एन० आर० गोगटे ने जीता।

रेकर्ड तोड़ने की दृष्टि से किसी भारतीय का उड़ान उल्लेखनोय नहीं हुआ है। मगर तीन उड़ान ध्यान देने योग्य हैं। एक दो सीटवाले विमान में एक व्यक्ति एक मुसाफ़िर के साथ बटेविया गया। बटेविया में दो दिन देखने में लगाये और एक दिन सिंगापुर में ठहरा। इनको मिलाकर उसको आने-जाने में केवल १४ दिन लगे। यदि जहाज़ से यह यात्रा की जाती तो एक मास लगता।

एक व्यक्ति लाहौर से श्रीनगर गया और वापस आया। उसका विमान अपना और एक इंजिन का था। पीरपंजाल पर्वतमाला को पार करने के लिए उसको १९,००० फ़ीट ऊँचे उड़ना पड़ा।

एक अन्य व्यक्ति निजू काम से उत्तरीय बिहार से रंगून गया और वहाँ से वापस आया। रंगून वह ८३/४ घंटे में पहुँचा, जब कि गाड़ी और जहाज़ में ४ दिन लगते। आने-जाने की यात्रा में उसका पेट्रोल में १३० रु० व्यय हुआ। साथ में एक और साथी गया था अतः ६५ रु० ही उसका व्यय हुआ। गाड़ी और जहाज़ से ४५० रु० व्यय होता।

३१ दिसम्बर १९३८ को भारत में रजिस्टर्ड निजू विमान ६५ थे, जब कि १९३७ में ६४ थे।

अन्तर्राष्ट्रीय उड़ान

१९३८ के साल २१ अन्तर्राष्ट्रीय उड़ानें विदेशी विमानों को भारत से गुजरीं। रायल एयर फ़ोर्स के दो विमान इस्माइलिया (मिस्र) से डारविन (आस्ट्रेलिया) बिना कहीं ठहरे गये। उन्होंने ७,१२६ मील ४८ घंटे में, अर्थात् १४९ प्रतिघंटे की चाल से पूरा किया। एक भारतीय विमान ने भारत तक की उड़ान की। एक जर्मन चालक ने बेनछाजी (ट्रिपोली) से गया तक की उड़ान की। लगभग ४,००० मील की यात्रा बीच में बिना कहीं ठहरे पूरी की। मगर उस चालक का मद्रास में हवाई दुर्घटना में देहान्त हो गया।

एरोड्रम

विमानों के नये नये डिज़ाइन बनने से अधिक अच्छे एरोड्रमों की माँग बढ़ रही है। भारत के वर्तमान एरोड्रमों में से कुछ को छोड़कर एक भी प्रथम श्रेणी का एरोड्रम नहीं है। इनको प्रथम श्रेणी का बनाने के लिए भारत-सरकार ने ८७.९३ लाख रुपया स्वीकार किया है। १९३८-३९ में ६२,२१,००० रु० व्यय हुआ।

सामुद्रिक विमानों के उतरने के लिए राजसमन्द (उदयपुर) में एरोड्रम बनाने का निश्चय किया गया। मई १९३८ से इम्पीरियल एयरवेज़ के सामुद्रिक विमानों ने ग्वादुर से जिवानी में उतरना शुरू किया। फलतः यहाँ एरोड्रम बनाया जा रहा है। ब्रिटिश हवाई विभाग ने इसके बनाने में कुछ मदद दी है।

रात को एरोड्रमों पर निरन्तर प्रकाश की आवश्यकता बढ़ गई है। सूर्यास्त और सूर्योदय के बीच १९३८ में जहाँ कराची में नियमित हवाई सर्विस १९३ आई थी, वहाँ १९३८ में बढ़कर ७४३ हो गई। रात में उतरने की अति-रिक्त फ़ीस से जहाँ १९३७ में ३,०४१ रु० आमदनी हुई थी वहाँ १९३८ में ३,५८१ रु० हुई। हवाई डाक के ठेके-दारों को दी गई मुफ़्त सुविधा का मूल्य १९३७ में जहाँ २,६४३ रु० था वहाँ १९३८ में वह बढ़कर ४,६५३ रु० हो गया। लरकाना और नवाबशाह में अस्थायी रूप से प्रकाश की व्यवस्था टूट गई थी। इसके अलावा सब जगह रोशनी का इन्तज़ाम बराबर ठीक रहा। दमदम और प्रयाग के एरोड्रमों में फ़्लड लाइट की व्यवस्था की गई। दिल्ली, प्रयाग, कानपुर, बम्बई और हैदराबाद (सिन्ध) में एरोड्रमों की सीमा-रेखा सूचित करने के लिए लाल की जगह नारंगी रोशनी की व्यवस्था की गई।

हवाई वायरलेस सर्विस का इस समय अहमदाबाद, प्रयाग, बम्बई, कलकत्ता, चटगाँव, दिल्ली, गया, हैदराबाद (दक्खन), जोधपुर, कराची और मद्रास में प्रबन्ध है। ग्वालियर, राजसमन्द और जिवानी में ब्रिटिश हवाई विभाग की ओर से वायरलेस का प्रबन्ध रहा। विमान और एरोड्रम के बीच १९,००० से ४०,७०० सन्देश दिये गये, जब कि एरोड्रमों के बीच परस्पर १९३७ में १,४०,००० और १९३८ में २२,७,००० सन्देश दिये गये।

हवाई प्रगति में मीटीओरोलोजिकल डिपार्टमेंट (अन्तरिक्ष ज्ञानविभाग) ने मानसून की रिपोर्ट देने की व्यवस्था की। मौसम की रिपोर्ट देने के लिए अन्तर्राष्ट्रीय कोड अपनाया गया है। १९३८ में ८,१९९ हवाई भविष्य-वाणी की गई। इसमें से ४,५३६ कराची से, १,६१९ कलकत्ता से और २,०४४ पूना से प्रकाशित की गई। १९३८ में बी० लाइसेन्स के १४ उम्मीदवारों को अन्तरिक्ष-विद्या की शिक्षा दी गई।

हवाई विभाग का प्रबन्ध

डाइरेक्टोरेट आफ़ सिविल एवियेशन पर १९३६-३७ में २१,७७,५२० रु० (इसमें बर्मा का ख़र्चा भी शामिल है) १९३७-३८ में २१,६४,८३५ रु० और १९३८-३९ में लगभग २८,४२,६१३ रु० हुआ। १९३८-३९ के लिए यद्यपि बजट में ३२,७१,००० रु० स्वीकार किया गया था और १९३९-४० के वास्ते ३९,६२,५०० रु० बजट में स्वीकार हुए।

डाइरेक्टोरेट द्वारा नियुक्त स्टाफ़ का बहुत दूर तक भारतीयकरण किया गया। ४८ अफ़सरों में से ३३ भारतीय हैं। सब एरोड्रोम अफ़सर और असिस्टेंट एरोड्रोम अफ़सर भारतीय हैं। १८ विमान इन्स्पेक्टरों, असिस्टेन्ट इन्स्पेक्टरों और निरीक्षकों में ११ भारतीय हैं। सारे स्टाफ़ में ९४.१ भारतीय हैं।

अन्तर्राष्ट्रीय कर्मीगन हवाई नौकानयन का २६वाँ अधिवेशन मई और जून १९३८ में हुआ और भारत की ओर से उसमें मि० जे० ए० शिलिडी आई० सी० एस० उपस्थित हुए। इस अवसर के लिए भी सरकार को कोई उपयुक्त भारतीय नहीं मिला।

लाइसेन्सप्राप्त व्यक्तियों की संख्या १९३६ में ३८७, १९३७ में ४४३ और १९३८ में बढ़कर ५८४ हो गई। लाइसेन्सप्राप्त भारतीयों का प्रतिशत १९३६ में ५८.५, १९३७ में ५४ और १९३८ में ६७.७ प्रतिशत रहा। विस्तृत विवरण निम्न तालिका से मालूम होगा—

लाइसेन्स की श्रेणी	योरपियन	भारतीय	अन्य राष्ट्रों के	भारतीयों का प्रतिशत
पाइलट 'ए' लाइसेन्स	८५	१५३	८	६२.२
,, एम० ,,	२१	५	२	६२.५
,, बी० ,,	२४	६०	१	७०.६
नेवीगेटर ...	३	५	—	६२.५
पाइलट इन्स्ट्रक्टर लाइसेंस	९	११	—	५५.०
वायरलेस आपरेटर लाइसेंस।	४	११	—	७३.३
ग्राउंड इंजीनियरिंग लाइसेन्स	३१	११०	१	७७.५
३१ दिसम्बर को जारी कुल लाइसेंसों का योग।	१९७	३९५	१२	६७.७

भारत में १९३७ के अन्त में १४७ और १९३८ के अन्त में १५९ रजिस्टर्ड वायुयान थे। इनकी शक्ति में २७,६०० से ३२,६५८ अश्व-शक्ति में कमी हुई। १९३८ में १९,०६२ अश्व-शक्ति के ३४ विमान रजिस्टर्ड हुए थे, जब कि १९३८ में १७ विभिन्न टाइपों के ४,११९ अश्व-शक्ति के २५ रजिस्टर्ड हुए। इनमें १६ ब्रिटेन के और ९ अमरीका के बने हुए थे।

चुंगी और स्वास्थ्य-संघ

करांची हवाई बन्दर का चुंगी का काम निरन्तर बढ़ता जाता है। अब हवाई सर्विस बन्द हो जाने के कारण इसकी प्रगति सहसा बन्द हो गई है। १९३७ में ६४१ विमानों से आने-जाने पर चुंगी-विभाग ने चुंगी ली थी जब कि १९३८ में ९९८ विमानों से ली। भारत से और भारत को १९३७ में १,८९० और १९३८ में २,४०२ मुसाफ़िर आये-गये और १,०५,५१,७५९ रु० के विरुद्ध ३,०७,६३,८३१ रु० की चीज़ों का आयात-निर्यात हुआ। १९३८ में कोई भी संक्रामक बीमार का रोगी नहीं आया। स्वास्थ्य-विभाग की सेवा निम्न तालिका से जानी जा सकती है—

	करांची सामुद्रिक हवाई बन्दर		कलकत्ता सामुद्रिक हवाई बन्दर	
पश्चिम की ओर	(१९३८)	(१९३७)	(१९३८)	(१९३९)
विमान	४९६	२८३	११५	१७
मल्लाह	२११९	१०७१	६०१	१००
मुसाफ़िर	२३७४	१४२५	५७६	८६
पूर्व की ओर				
विमान	५०१	३१७	११९	१९
मल्लाह	२२८९	११५८	६००	११४
मुसाफ़िर	२०३२	१३६६	४५७	१११

दुर्घटनायें

१९३८ के साल २४ वैमानिक महत्त्वपूर्ण दुर्घटनायें हुईं। १९३८ में व्यावसायिक विमान १८,०५८ घंटे और २०,४४,००० मील उड़े। इसमें से १४,३९७ घंटों की उड़ान में ६ दुर्घटनायें हुईं, जिनमें से एक चालक ज़ख़्मी हुआ, मगर ज़ख़्म मामूली था और कोई मल्लाह या मुसाफ़िर

ज़ख्मी नहीं हुआ। १९३५-३८ में ५५,००,००० से अधिक मीलों की उड़ान भारतीय व्यावसायिक विमानों ने की और एक भी मुसाफ़िर को चोट नहीं आई। इसकी ग्रेट ब्रिटेन और संयुक्त राष्ट्र से तुलना कीजिए। १९३५-३७ में ग्रेट ब्रिटेन की हवाई ट्रान्सपोर्ट कम्पनियाँ ८,४६,१४७ मील उड़ीं और एक मुसाफ़िर ज़ख्मी हुआ या मरा। इसी अर्से में अमरीका के विमान १९,०९,२८८ मील उड़े और एक मुसाफ़िर मरा और १४,६५,६५९ मील प्रतिमुसाफ़िर-मरा या बुरी तरह घायल हुआ। इसके मुक़ाबिले १९३६-३८ में भारतीय विमान ७२,५०,००० मील उड़े और कोई दुर्घटना नहीं हुई। यह वैज्ञानिकों और विमानों में लगी सामग्री की श्रेष्ठता को सूचित करता है।

दुर्घटनाओं की प्रकृति

भारतीय हवाई दुर्घटनायें किस क़िस्म की होती हैं, इसका तुलनात्मक चित्र नीचे दिया जाता है—

श्रेणी दुर्घटना की प्रकृति	१९३८	१९३७	१९३६	१९३५
पूरी उड़ान में विमान से टक्कर।				१
बी० पूरी उड़ान में विमान के सिवाय और किसी चीज़ से टक्कर।	२	२	६	२
डी० इंजिन के बिना बिगड़े गति के न होने से संतुलन बिगड़ जाने से या थक जाने से।	४	—	१	२
ई० बाध्य होकर ज़मीन पर उतरने से।	४	—	६	३
एफ० उतरते हुए दुर्घटना होना	१०	५	१०	४
जी० उड़ना प्रारम्भ करते हुए दुर्घटना।	३	३	५	२
एच० —	२	१	१	१
आई हवा में आग लग जाने से	—	१	—	—
एन० बनावट में ख़राबी	—	—	—	१
वाई० अनिश्चित और सन्दिग्ध	—	१	—	१
	२३	१४	२८	१९

रियासतों की हवाई प्रगति

रियासतों ने इस दिशा में अच्छी प्रगति की है। रियासतों में इस समय अच्छी अवस्था में एरोड्रम या विमानों के उतरने की ५८ जगहें हैं। जोधपुर में १८ हैं। हैदराबाद रियासत ने एरोक्लब को ५६,२०१ रु० सहायता देने के अतिरिक्त १,५४,३३१ रु० ख़र्च करने का निश्चय किया है और हवाई शिक्षा देने के वास्ते वायुयान ख़रीदने के लिए २०,००० रु० दिये हैं। २,२०,००० रु० ज़िलों के हेडक्वार्टरों में एरोड्रम या विमान उतरने के स्थान बनाने के लिए स्वीकार किये गये हैं। रायपुर, गुलबर्गा, औरंगाबाद बीदर, महबूबनगर और वारंगल में एरोड्रम बनाने का निश्चय किया गया है, और संकट-काल में उतरने के लिए उसमानाबाद, अदीलाबाद, देवरकोन्दा और कोलापुरम में स्थान बनाने का निश्चय किया गया है। जयपुर में ७ एरोड्रम के उतरने के अच्छी अवस्था में स्थान हैं। बीकानेर ने जनमंगल कार्यों के लिए विमान का उपयोग किया है। लोहारू-रेवाड़ी रेलवे का दोहाँ नदी पर बना पुल इसका उदाहरण है। नदी पर पुल कहाँ बनाया जाय और नदी की गहराई किस जगह कम है, इसका पता विमान-द्वारा ही लगाया गया। इसी प्रकार १९३३ में बीकानेर के आगरा ज़िले में भयंकर बाढ़ आई। नवीन नदी के स्रोत का पता लगाने के लिए वायुयान की सेवा ली गई। मालूम हुआ कि नवीन नदियों ने भाजनेर और कोलआत में रेतीली पहाड़ियों द्वारा मार्ग बनाया है। यह भी मालूम हुआ कि उनमें से एक ४० मील लम्बी और कई जगह १००० फ़ीट से अधिक चौड़ी है। विमान से ही बम गिरा कर उनकी दिशा बदलने का निशान लगाया गया। मगर यह हवाई प्रगति केवल २४ रियासतों में ही हो रही है।

हिन्दी-भाषा-भाषी पीछे हैं

अन्य देशों की तुलना में भारत हवाई प्रगति में पीछे है। मगर दुःख की बात है कि हिन्दी-भाषा-भाषी प्रान्त इसमें भी पीछे हैं। पटना में इस साल एयरोक्लब खोलने का निश्चय किया गया है। यू० पी०, सी० पी० और बिहार की आबादी लगभग १२-१३ करोड़ है। इस बड़ी आबादी के बीच कानपुर में एक एयरोक्लब है, वह भी सम्भवतः इसलिए कि वहाँ कुछ यूरोपियन व्यवसायी र[illegible]

[illegible] रहस्य

हिन्दी-भाषा-भाषी जनों के साहसिक जीवन पर एक नीय टीका है।

इस युद्ध ने वैमानिक शिक्षा की उपयोगिता सिद्ध कर है। मगर हमारे गिनती के एयरोक्लब सर्वसाधारण लिए सुलभ नहीं हैं। जब तक वैज्ञानिक शिक्षा लेए अखाड़ों के समान हर शहर, कस्बे और गाँव क्लब न हों, तब तक हम अपने विशाल विस्तृत देश की रक्षा नहीं कर सकते। इसमें का बड़ा सवाल है। यदि हवाई जहाज इसी देश में लगे और श्री वालचन्द हीराचन्द का प्रयत्न सफल हो गया, तो हर गाँव में नहीं तो प्रत्येक नगर में हवाई क्लब बनाना सम्भव हो जायगा। हवाई शिक्षा की फ़ीस भी कम होनी चाहिए। यह भी सम्भव है, यदि हमारे करोड़-पति और लखपति इधर ध्यान दें। यूनीवर्सिटियों और स्कूलों में भी हवाई शिक्षा की व्यवस्था होनी चाहिए। देश को हवाई मनोवृत्ति का बनाने के लिए यह आवश्यक है। आज हमारे देश के युवक और युवतियाँ विमान पर चढ़ना असाधारण घटना माने हुए हैं। यह जब मामूली और दैनिक जीवन की घटना हो जायगी, तब हमारे देश के युवक भी निडर और साहसी होंगे।

चिन्ता

लेखिका, श्रीमती 'प्रेम'

अब तो उन्हें और भी मेरी याद सताती होगी।

लगे असाढ़ घुमड़ घन आये,
सन-सनन चलती पुरवाई
मेरे आँगन में भी आली,
तूफ़ानी बदली घिर आई।
क्यों सखि, दूर-देश में भी यों ही घहराती होगी?

कोयल के कातर स्वर में सखि,
मैं भी अपना कण्ठ मिलाऊँ?
और पपीहे की बोली में
पी-पी-पी की रटन लगाऊँ?
गाऊँ? पर, उनके हिय में बोली गड़ जाती होगी!

लता मिल रही है डाली से,
बेलें तरु से लिपटी जातीं,
बहुत भुलाती हूँ, पर उनकी
सुधि रह रह कर आ ही जाती।
मेरी भी सुधि उनके नैनों में घिर आती होगी?

आह, निकलना मत अन्तर से,
निठुर आँसुओ, टुक रुक जाना।
उर की पीर, अरी चुप सो जा
अब न ज़रा भी शोर मचाना।
तेरी प्रतिध्वनि उनके उर में शोर मचाती होगी!

इस सावन में सखि, साजन ने
दूर देश में लिया बसेरा।
रहे सलोना, जिनको हो, है
सूखा-सूखा सावन मेरा।
एक यही बस आस, प्रेम की पाती आती होगी।

हाफ़िज़ की कविता

लेखक, श्रीयुत शालग्राम श्रीवास्तव

हिन्दी जाननेवालों को फ़ारसी-कविता के रसास्वादन के लिए पहले दो-एक मोटी मोटी बातों को हृदयस्थ कर लेना चाहिए। फ़ारस या ईरान में मुसलमानों के आगमन से पहले आमोद-प्रमोद की सामग्री में शराब का विशेष स्थान था। जगह जगह बड़े-बड़े शराबख़ाने खुले हुए थे, जिनको 'मैक़दा' वा 'ख़राबात', उनके अध्यक्ष को 'पीरेमग़ाँ', और उनमें काम करनेवाले लड़कों को 'मग़बचा' कहते थे। लोगों को शराब पिलाने का काम एक विशेष पुरुष के सुपुर्द होता था, जो 'साक़ी' कहलाता था। शराब बड़े बड़े मटकों में भरी रहती थी, जिसको 'ख़ुम' कहते थे। बोतलों का नाम 'शीशा', 'मीना' और पीने के पात्र का नाम 'प्याला', 'साग़र' या 'जाम' था। लाल रंग की शराब बड़ी उत्तम समझी जाती थी, जो 'मये अर्ग़वानी', 'मये गुलगूँ' वा 'मये गुलरंग' कहलाती थी। मुसलमानों के आक्रमण से सारा देश मुसलमान होगया, और मुसलमान-धर्म में सुरापान का घोर निषेध था। परन्तु जनता के परम्परागत संस्कारों का बल-पूर्वक एकदम से मिटा देना असम्भव था। इसलिए कुछ लोग लुक-छिप कर पीते रहे और जो नहीं पी सकते थे वे अपनी कविता के द्वारा ख़याली व कल्पित शराब के प्याले पर प्याले, नहीं, नहीं, ख़ुम के ख़ुम उड़ाते रहे। इतना ही नहीं, किन्तु मस्जिद में बैठकर पीने और मुसल्ला (नमाज़ के आसन) को शराब में रँगने तथा यदि मुल्ला, ज़ाहिद अथवा इस्लामी धर्मशास्त्र का कट्टर पक्षपाती आजाय तो शराब से उसकी डाढ़ी रँगने और उसको शराब पिलाने के लिए तत्पर रहे। वहाँ के कवियों में इस प्रणाली का इतना प्रचार हुआ कि शृंगार-रस की कविता के अतिरिक्त आध्यात्मिक काव्य अथवा संतबानी में भी शराब का ही रूपक बँधता रहा, जैसे शराब से 'इश्क़ हक़ीक़ी' (परमात्मा की भक्ति या उसका प्रेम) और साक़ी से 'पीर मुर्शिद' (सत-गुरु) का तात्पर्य माना गया।

इस प्रकार की सबसे श्रेष्ठ कविता उमर ख़ैय्याम की है। उनके पीछे यदि किसी प्रसिद्ध कवि ने उक्त प्रणाली का अनुसरण करके शराब के छींटे उड़ाये हैं तो वे हाफ़िज़ शीराज़ी हैं। यहाँ हम उन्हीं कवि-शिरोमणि की कविता की कुछ छटा इस लेख में दिखलाना चाहते हैं।

हाफ़िज़ का पूरा नाम शम्स उद्दीन महम्मद ख़्वाजा था, जिनकी मृत्यु सन् ७९१ ई० (हिजरी १३८८) में ईरान के प्रसिद्ध नगर शीराज़ में हुई थी। यद्यपि इनकी कविता शराब से इतनी सराबोर नहीं है, जितनी उमर ख़ैय्याम की है, फिर भी जहाँ-तहाँ बहुत हैं।

(१)

पहले हम हाफ़िज़ की शराब-सम्बन्धी कविता के कुछ नमूने दिखलाते हैं और साथ ही अन्य कवियों से उसकी तुलना भी करते जायँगे। देखिए वे शराब को अमृत बतलाते हैं—

(१) "यदि तुमको अमृत की खोज है तो राग-रंग के साथ शराब को ढूँढ़ो।"

(२) "शराब पियो कि इसी से अमर होना है, अन्यथा संसार तो नश्वर है ही।"

इसी से मिलता-जुलता उमर ख़ैय्याम के एक शेर का अर्थ इस प्रकार है—

"शराब पियो कि वह अमृत है तथा यौवन-काल के आनन्द का भाण्डार है।"

(३) फिर हाफ़िज़ कहते हैं—

"यही उत्तम है कि पिछली वासनाओं को भूलकर शराब से चित्त प्रसन्न करें।"

ख़ैय्याम इसी को इस प्रकार कहते हैं—

"साक़ी कल के प्रतिद्वन्द्वियों के लिए तू क्या चिन्ता कर रहा है? प्याला ला क्योंकि रात बीती जाती है।"

(४) हाफ़िज़ का कथन है—

"मित्र के साथ बैठकर शराब और प्याला मँगाओ।"

ख़ैय्याम कहते हैं—

"मित्र के साथ शराब का प्याला सबसे उत्तम और है।"

इस प्रसंग को हाफ़िज़ के दो शेरों का अर्थ देकर समाप्त करते हैं—

"मैक़दा में शराब पीकर मुँह लाल करो। कुटिया में न जाओ। वहाँ तो पाखण्डी रहते हैं।"

(५) लोग प्रायः शाम को सूर्यास्त के पश्चात् शराब पीकर आनन्द मनाते हैं, क्योंकि दिन काम-काज करने के लिए है। इस भाव को कवि ने इस प्रकार व्यक्त किया है—

"जैसे ही सोने का प्याला-रूपी सूर्य छिपा, साक़ी की भौं ने जो नये चन्द्रमा के सदृश थी, शराब की ओर संकेत किया।"

फ़ारसी के कवि प्रायः भौं की उपमा द्वितीया के चन्द्रमा के साथ देते हैं। सूर्यास्त के पश्चात् नये चन्द्र का दर्शन स्वाभाविक है।

हाफ़िज़ की इस प्रकार की बहुत-सी कविता है। उन्होंने साक़ीनामे लिखे हैं, जो शराब-सम्बन्धी कविता से भरे हुए हैं। टीकाकारों ने इन सबको आध्यात्मिक अर्थ में घटाने का उद्योग किया है, पर वे इसमें कहाँ तक सफल हुए हैं, इसको राम ही जानें।

हिन्दी की सन्तबानी में भी कबीर के बीजक में थोड़ी-सी ऐसी छटा देख पड़ती है। कबीर कहते हैं—

"संतो मते मात जन रंगी।
पीवत प्याला प्रेम सुधारस, मतवाले सतसंगी॥
अर्द्ध उर्द्ध लै भाठी रोपी, ब्रह्म अगिनि उदगारी।
मूँदे मदन कर्म कटि कस्मल संतत चुवै अगारी॥
× × ×
कबीर भाठी कलाल की बहुतक बैठे आय।
सिर सौंपे सोई पिवै, नहिं तो पिया न जाय॥
× × ×
हरि रस पीवा जानिये कबहुँ न जाय खुमारा।
× × ×
नौकर करै अर्गारस निकरै, तिहि मदिरा बलि छाका॥"

(२)

अब हम हाफ़िज़ के कुछ ऐसे पद्यों के अनुवाद देते जिनमें उन्होंने ईरानी शैली के अनुसार कवित्व का दिखला—

(१) रात को जब चित्त एकाग्र होता है, प्रियतम की सुन्दर अलक और कपोल याद आते हैं, जिससे रात भर हृदय विकल रहता है, मानो उसका सुख और चैन कोई लूट ले जाता है। इस भाव की व्यंजना कवि ने इस प्रकार की है—

"तेरी अलक तेरे कपोल के प्रकाश की सहायता से रात भर हमारे हृदय को लूटती रहती है। देखो तो वह कैसा (ढीठ) चोर है कि हाथ में दीपक लेकर अपना काम करता है।"

अलकों का दिव्य कपोल के निकट होना मानो उसका हाथ में दीपक लेना है।

(२) पक्षी को जाल में फँसाने के लिए लोग दाने बखेरते हैं। कवि प्रियतम के मिलन को पक्षी मानकर कहता है—

"हे! हाफ़िज़! नेत्रों से आँसू के दाने बखेरते जाओ। शायद मिलन-रूपी पक्षी (उन दानों के लालच से) तुम्हारे फँदे में आ जाय।" अर्थात् सम्भव है, तुम्हारे रोते रोते प्रियतम का हृदय पसीजे और वह तुमसे आ मिले।

(३) वास्तविक अग्नि क्या है, इसकी विवेचना सुनिए—

"आग वह नहीं है जिसकी शिखा पर दीपक हँसता है, अर्थात् जिससे दीपक जलता है, बल्कि वास्तविक अग्नि वह है जो पतंगे के खलियान-रूपी समूह पर टूट कर गिरती है और उसको जलाकर भस्म कर देती है;" क्योंकि वह प्रेम की अग्नि है, जिस पर पतंग दौड़कर गिरता है। दीपक निर्जीव है। उसको अग्नि से कोई कष्ट नहीं होता। पतंगा जीवधारी है, अग्नि की ज्वाला से तड़प-कर मर जाता है। इसलिए जिसके व्यापार से पतंगा की ऐसी दशा हो जाती है वही तो सच्ची अग्नि ठहरी।

(४) फ़ारसी के शायर प्रियतम के मुख की सूर्य से भी उपमा देते हैं। हाफ़िज़ माशूक़ के मुँह को असली सूर्य इस प्रकार बतलाते हैं—

"सूर्य उसके मुख के सामने से आड़ में हो गया। सच है, सूर्य के सम्मुख छाया आड़ में हो जाया करती ही है।" मानो प्रियतम का मुख असली सूर्य ठहरा और यह मामूली सूर्य उसके आगे छाया-मात्र है।

(५) ईरानी शायरी में बुलबुल और गुल (गुलाब के फूल) का वही सम्बन्ध है, जो यहाँ भ्रमर और कमल का है। वहाँ के शायर फूल के खिलने को प्रायः उसका हँसना कहते हैं। हाफ़िज़ कहते हैं—

"इधर तो बेचारा बुलबुल प्रेम से पीड़ित होकर हाय-हाय कर रहा है, उधर फूल खिलखिला कर हँसता है। भला क्योंकर प्रेमी का दिल न जले, जब कि दिलवर (हृदय ले जानेवाला=प्रियतम) स्वयं उसमें (व्यंग्य-रूपी) आग लगा रहा है।

(६) केवल मनुष्य ही एक ऐसी जाति है जो बुद्धि और ज्ञान के द्वारा परमात्मा के प्रेम और भक्ति को अपने अन्तःकरण में धारण कर सकती है। हाफ़िज़ इस भाव को इस प्रकार वर्णन करते हैं—

"आकाश उसके बोझ को नहीं सँभाल सका तब हम मनुष्यों के सिर मढ़ा गया।"

इसी को एक दूसरे कवि ने जो लिखा है उसका पद्य-बद्ध अनुवाद सुनिए—

"तीन लोक माँ नाहिं समानो, जोती अखंड अपार तुम्हारी।
भक्तन हृदय वास किहिं कीन्हों, महिमा अपरम्पार तुम्हारी॥"

एक उर्दू शायर ने भी ऐसा ही कहा है—

"अर्जो समाँ कहाँ तेरी वसअत को पा सके,
मेरा हि है वह दिल कि जहाँ तू समा सके।"

अर्थात् आकाश-पाताल तेरे विस्तार को कहाँ पा सकते हैं, यह तो मेरा ही हृदय है जहाँ तू समा सकता है।

(३)

(क) मृत्यु अनिवार्य है, उससे कोई बच नहीं सकता। हाफ़िज़ कहते हैं—

"चाहे फ़ौलाद और लोहे के चूर्ण से क़िला बनाकर रहो, पर जब समय आ जायगा, मृत्यु पहुँचकर उसका दरवाजा खटखटायेगी।"

उमर खैय्याम कहते हैं—

"चाहे मक्का के जमज़म नामक कुँवा का पवित्र जल और चाहे अमृत पी लो, पर अन्त में यही होता है कि मिट्टी के नीचे छिप जाओगे।"

(ख) हाफ़िज़ कहते हैं—

"जिसका शयनागार अन्त में दो मुट्ठी मिट्टी (क़ब्र) है, उससे कह दो कि क्यों गगनस्पर्शी भवन बनवाते हो।"

खैय्याम इसी भाव को इस प्रकार वर्णन करते हैं—

"वह अट्टालिका जो आकाश की बराबरी करती थी और जिसकी ड्योढ़ी पर बादशाह लोग अपना मत्था टेकते थे, उसी के कँगूरे पर मैंने देखा कि एक फ़ाख़ता पक्षी बैठकर कू-कू कू-कू रट रहा था।"

इसमें एक अर्थालंकार भी है। 'कू' का अर्थ कौन है। अर्थात् वह पक्षी पूछता है कि बतलाओ तो वह कौन है जिसका यह ऊँचा महल है।

(ग) हाफ़िज़ का कथन है—

"जो इस शब्दमय संसार में आया है उसको अन्त में एक दिन क़ब्र में जाना होगा।"

कबीर ने इसी को इस प्रकार कहा है—

"जो उग्या सो आथवै, फूल्या सो कुम्हलाइ।
जो चिणियाँ सो ढहि पड़े, जो आया सो जाइ॥"

(घ) शरीर नश्वर है, इस पर हाफ़िज़ की यह चेतावनी है—

"चेत करो! आयु का धागा बाल के सदृश सूक्ष्म है। दुनिया की चिन्ता क्या है? अपनी चिन्ता करो।"

रहीम ने इसी को इस प्रकार कहा है—

"रहिमन गठरी धूरि कै, रही पवन ते पूरि।
गाँठ युक्ति कै खुल गई, अन्त धूरि कै धूरि॥"

मुसलमान लोग शरीर को स्थूल होने से खाकी—मिट्टी का अथवा पार्थिव कहते हैं। इसी से रहीम ने शरीर को धूल की गठरी बतलाया है।

उस्मान कवि कहते हैं—

"कौन भरोसा देह का, छाड़हु जतन उपाय।
कागद की जस पूतरी, पानि परे घुल जाय।"

(च) संसार की असारता पर हाफ़िज़ का कहना है—

"इस संसार में क्या आनन्द मनाया जाय जब प्रतिक्षण कूच का घंटा बजकर सचेत कर रहा है कि चलने के लिए तैयार रहो!"

रहीम ने ठीक इसी को इस प्रकार कहा है—

"सदा नगारा कूच का, बाजत आठों जाम।
रहिमन या जग आइ के, को कर रहा मुक़ाम॥"

(छ) संसार क्या है, हम लोग कहाँ से आये और कहाँ जायँगे, इत्यादि ऐसी गूढ़ बातें हैं जिनका रहस्य

अब तक सामान्यतया किसी को मालूम नहीं हुआ। इसके विषय में हाफ़िज़ कहते हैं—

"आनन्द मनाओ और संसार का भेद जानने का उद्योग न करो, क्योंकि आज तक किसी ने विज्ञान-द्वारा इस रहस्य का उद्घाटन नहीं किया और न कोई अब करता है।"

ख़ैय्याम ने भी यही बात कही है—

"आयु व्यतीत हो गई, पर कुछ पता न लगा।"

रहीम कहते हैं—

"रहिमन बात अगम्य है कहन-सुनन की नाहिं।"

(ज) संसार कंटकमय है, इस विषय में हाफ़िज़ कहते हैं—

(१) "वह मनुष्य बिलकुल मूढ़ है, जो संसार में आनन्द ढूँढ़ता है।"

(२) "फूल की मुस्कान में विशुद्ध प्रेम और स्नेह लेशमात्र नहीं है। हे बुलबुल, तू चिल्ला कि यह दोहाई देने की बात है।"

(३) "तेरे मार्ग में तमाम कुयें खुदे हुए हैं, अतः सिर झुकाकर (बिना देखे) न चल। तेरे प्याले में विष है, बिना चक्खे (परीक्षा) न पी।"

कबीर ने भी ऐसा ही कहा है—

"दुनिया भाड़ा दुःख का भरी मुहामुँह भूष।"

(झ) इसलिए जहाँ तक हो सके हँसी-ख़ुशी के साथ जीवन व्यतीत करो। हाफ़िज़ कहते हैं—

(१) "शोच न करो, आनन्द से जियो, क्योंकि संसार परिवर्तनशील है।"

(२) "संसार का व्यापार कभी एक अवस्था में नहीं रहता, कोई मार्ग ऐसा नहीं है जिसका अन्त न हो, अतः (वर्तमान अवस्था यदि दुःखमय है तो) चिन्ता न करो।"

(३) "आनन्द का सन्देश मिला कि सोच न करो, संसार की व्यथा स्थिर न रहेगी, क्योंकि जब वह (सुख की) अवस्था न रही तब यह (वर्तमान दुःख की) अवस्था क्योंकर स्थिर रहेगी? अर्थात् जैसे वह दशा व्यतीत होगई, वैसे ही यह भी व्यतीत हो जायगी।"

फ़ारसी-भाषा के आदि कवि रोदकी ने भी ऐसा ही कहा है—

"काली नेत्रवाली सुन्दरियों के साथ आनन्द से जीवन व्यतीत करो, क्योंकि संसार नश्वर है, जीवन का कोई ठिकाना नहीं है।"

उमर ख़ैय्याम ने भी ऐसा ही कहा है—

"उठो और जगत् की चिन्ता न करो, ख़ुश रहो और एक क्षण आनन्द के साथ व्यतीत करो।"

ख़ैय्याम ने और भी कहा है—

"अपने दिन-रात आनन्द के साथ बिताओ, क्योंकि तुम तो न रहोगे, पर ऐसे दिन-रात बहुतेरे होते रहेंगे।"

(४)

जान पड़ता है, दुनिया में सदा से यह अन्धेरखाता रहा है कि सामान्यतया भले आदमियों को तो कोई पूछता नहीं और बुरे आदमियों का आदर होता है। हाफ़िज़ इसकी शिकायत इस प्रकार करते हैं—

"मूर्ख लोग तो गुलाब और मिश्री का शर्बत उड़ाते हैं और बेचारे विद्वान् अपने कलेजे का लहू पीते हैं। अरबी घोड़ा तो पालान के नीचे घायल हो रहा है और गदहा सोने का कंठा पहनता है।"

गोस्वामी तुलसीदास भी ऐसा ही कहते हैं—

"तुलसी पावस के समय, धरी कोकिलन मौन।
अब तो दादुर बोलि हैं, हमें पूछिहैं कौन॥"

रहीम ने भी कुछ शब्दों के परिवर्तन के साथ बिलकुल यही कहा है—

"पावस देखि, रहीम, मन, कोइल साधो मौन।
अब दादुर वक्ता भये, हम कँह पूछत कौन॥"

(५)

जो परमात्मा की भक्ति में लीन हो जाते हैं वे साधारण लौकिक मर्यादा की परवा नहीं करते। हाफ़िज़ कहते हैं—

"यद्यपि बुद्धिमानों के निकट यह बदनामी की बात है, पर हम सांसारिक नेकनामी नहीं चाहते।"

मीराबाई का एक पद्य कुछ इसी से मिलता-जुलता है—

"सन्तन सँग बैठ बैठ लोक-लाज खोई।
अब तो बात फैल गई जानत सब कोई॥"
मेरे तो गिरधर गोपाल....."

(६)

अब हम हाफ़िज़ की कुछ साधारण नैतिक उक्तियाँ और उद्धृत करना चाहते हैं—

(क) जीवन थोड़े दिनों का है, अतः बहती गंगा में हाथ धो लो। इसको हाफ़िज़ इस तरह कहते हैं—

"संसार का दस दिन का मोह निर्मूल और मिथ्या है, अतः हे मित्र! लोगों के साथ नेकी करना ग़नीमत जानो।"

इसको रहीम ने इस प्रकार कहा है—

"सौदा करो सो कर चलो, रहिमन याही हाट।
फिर सौदा पैहो नहीं, दूर जान है बाट।"

(ख) तृष्णा कभी पूरी नहीं होती, इस पर हाफ़िज़ कहते हैं—

"प्राण होंठों पर आगये, पर वासना पूरी न हुई। आशा का अन्त हो गया परन्तु तृष्णा का अन्त न हुआ।"

खैय्याम का वचन है—

"कपाल-रूपी प्याला (मस्तिष्क) कभी कामनाओं से नहीं भरता। भला जो पात्र औंधा हो वह कैसे भर सकता है?"

अलोहजों ने कहा है—

"संसार में तेरी तृष्णा का दाँत इतना तीक्ष्ण है, यद्यपि मृत्यु तेरे पीछे मुँह बाये खड़ी है।"

(ग) विद्या बिना बुद्धि और निरीक्षण के व्यर्थ हैं। हाफ़िज़ कहते हैं—

"पाठशाला तथा विद्या-सम्बन्धी तर्क-वितर्क इत्यादि सब व्यर्थ हैं, यदि मनुष्य में बुद्धि नहीं है और उसकी दृष्टि निरीक्षण करनेवाली नहीं है।"

इसी को सादी ने इस प्रकार कहा है—

"यदि विद्या के अनुसार कार्य न करोगे तो उससे क्या लाभ है? आखिर आँखें इसी लिए तो हैं कि उनसे देखा जाय।"

(घ) सत्संग के लाभ के सम्बन्ध में हाफ़िज़ कहते हैं—

"जिसके प्रतिबिम्बमात्र से कलुषित हृदय स्वर्ण के समान दिव्य हो जाता है वह रसायन साधुओं का सत्संग है।"

कबीर कहते हैं—

"कबीर संगत साध की कहे न निरफल होइ।
चन्दन होसी बावना, नींब न कहसी होइ॥"

(च) इसलिए अच्छे आदमियों की संगत करनी चाहिए और बुरे लोगों से दूर रहना चाहिए। हाफ़िज़ कहते हैं—

"सज्जनों के पास जाओ और (यदि वे कहें तो) गला खोलकर उनके सामने कर दो, पर दुर्जनों से बचकर रहो।"

खैय्याम ने कहा है—

"पवित्र आचरणवालों तथा बुद्धिमानों से संसर्ग करो और नालायक़ों से हज़ार कोस भागो।"

सादी कहते हैं—

"मूर्ख से तीर के समान दूर भागो, उसके साथ दूध और खाँड की तरह न मिलो।"

हाफ़िज़ कहते हैं—

"मूर्ख के साथ क्षण भर रहने की अपेक्षा सौ वर्ष तक बन्दी-गृह में रहना अच्छा है।"

अलोहजों ने कहा है—

"इससे बढ़कर कोई यंत्रणा नहीं हो सकती कि एक मूर्ख के बराबर एक विद्वान् बैठाल दिया जाय।"

(छ) सन्तोष पर हाफ़िज़ ने लिखा है—

"स्वतंत्रता से एक कोने में सन्तोष से बैठ रहना ऐसी निधि है जो तलवार के बल से भी बादशाहों को प्राप्त नहीं होती।"

सादी कहते हैं—

"हे सन्तोष, तू मुझे धनवान् कर क्योंकि तुझसे बढ़कर कोई पदार्थ नहीं है।"

(ज) बगुलाभगतों और पाखण्डियों की खबर हाफ़िज़ ने इस प्रकार ली है—

"ये पाखंडी उपदेशक जो मस्जिद की वेदी पर विराजमान होते हैं जब एकान्त में जाते हैं तब कुछ और ही (विपरीत) काम करते हैं।"

खैय्याम ने कहा है—

"तुम डींग मारते हो कि हम शराब नहीं पीते, पर सैकड़ों ऐसे कर्म करते हो जो शराब पीने से बदतर हैं।"

कबीर का वचन है—

"कर में तो माला जपैं हिरदै बहै डँडूल।"

तथा—"कर पकरे अँगुरी गिनैं, मन धावै चहुँ ओर।"

मौलाना रूम ने भी ठीक यही बात कही है—

"हाथ में तो माला है और मन में इधर-उधर की ऊटपटाँग तरंगें उठ रही हैं तो इस प्रकार माला जपने से क्या लाभ है?"

(ख) मनुष्य को पहले अपने ही गुण-दोष का निरीक्षण करना चाहिए, इस विषय में हाफ़िज़ ने कहा है—

"तुम अच्छे हो या बुरे, यह अपनी अन्तरात्मा से पूछो। क्यों दूसरा तुम्हारी परीक्षा करे?"

ऐसा ही कबीर ने भी कहा है—

"सो जानी आप विचारै।"

कहाँ तक बढ़ाया जाय। हाफ़िज़ की ऐसी अनेक उक्तियाँ हैं। दो-एक और ज्ञातव्य बातें लिखकर इस लेख को समाप्त करेंगे।

(७)

(१) यह एक विलक्षण बात है कि हाफ़िज़ की एक रुबाई (चतुष्पदी) कुछ शब्दों के हेर-फेर के साथ उमर ख़ैयाम की रुबाई से बिलकुल मिल जाती है। इस्लाम-धर्म के अनुसार स्वर्ग का जो चित्र है उस पर हाफ़िज़ व्यंग्य के साथ कहते हैं—

"कहते हैं, ऐसा स्वर्ग होगा जहाँ शराब और हूरें (अप्सरायें) होंगी। फिर यदि हम यहाँ शराब और माशूक़ (प्रियतम) को ग्रहण करें तो क्या डर है, क्योंकि अन्त में यही तो होना है?"

उमर ख़ैयाम ने भी बहुत पहले बिलकुल यही कहा था—

"कहते हैं, बहिश्त में हूरें मिलेंगी और वहाँ निर्मल शराब और शहद मिलेगा। यदि हम मदिरा और माशूक़ का सेवन करें तो ठीक ही है, क्योंकि अन्त में यही तो मिलना है।"

(२) एक बात और ध्यान देने योग्य है। जैसे संस्कृत में "शाहन शाहि" का शब्द मिलता है (देखो प्रयाग के अशोक-स्तम्भ पर समुद्रगुप्त के लेख की २३वीं पंक्ति), वैसे ही हाफ़िज़ यद्यपि ईरान के शायर थे और कभी हिन्दुस्तान में क़दम तक नहीं रक्खा था, तो भी उन्होंने एक संस्कृत-शब्द का प्रयोग बड़ी सफ़ाई के साथ किया है। अपने बादशाह की प्रशंसा में वे लिखते हैं—

"न केवल योरपवाले तुझे कर देते हैं, बल्कि अफ़्रीका के "महराज" भी तुझे कर भेजते हैं।"

यह "महराज" शब्द ईरान में क्योंकर पहुँचा, इसका ठीक पता नहीं चलता, पर हम देखते हैं कि हाफ़िज़ से बहुत पहले हकीम असदी तूसी ने भी 'गुरशास्प-नामा' में इस शब्द का प्रयोग किया है। उन्होंने लिखा है—

"भारत में "महराज" नाम का एक बादशाह था, जो प्रत्येक कार्य में निपुण था।"

कुछ भी हो, इससे इतना अवश्य मालूम होता है कि भारत और ईरान का सम्बन्ध बहुत पुराना है।

चीन-जापान-युद्ध के पीछे छिपी शक्ति

लेखक, पण्डित जगदीशकृष्ण जोशी

यह भली भाँति विदित है कि जापान पिछले तीन वर्ष से चीन में जो युद्ध छेड़े हुए है उसका केवल कारण साम्राज्य-लिप्सा ही नहीं है, यद्यपि जापान के उच्च अधिकारियों का ब्रिटिश साम्राज्य के समान समस्त संसार में फैले हुए एक साम्राज्य के अधीश्वर होने का स्वप्न बहुत पुराना है। चीन एक विस्तृत उपजाऊ मैदान का देश है, जिसकी अधिकांश प्राकृतिक सम्पत्ति जहाँ की तहाँ पड़ी हुई है और जिसे अभी तक किसी ने छुआ तक नहीं है। जापान अपने धन और परिश्रमी मनुष्यों के द्वारा उसका भली भाँति उपयोग कर सकता है। कम से कम एक मनुष्य जापान में ऐसा है जिसकी दृष्टि में चीन का केवल यही उपयोग है और उसी की उद्देश्यपूर्ति के लिए जापान ने चीन के साथ यह युद्ध छेड़ा है।

उस मनुष्य का नाम बैरन टैकाकिमी मित्सुई है और वह अपने आठ मित्सुई खानदानों का प्रधान व्यक्ति है। इसी खानदान के हाथ में आज जापान की आधी से अधिक सम्पत्ति है। इन लोगों के पास कितनी सम्पत्ति है, इसका कुछ अन्दाज़ नहीं किया जा सकता। कुछ लोगों का कहना है कि राकफ़ेलर, पीयररवाइंट मार्गन, नुफ़ील्ड, फ़ोर्ड तथा इम्पीरियल कैमिकल्स की सम्पत्तियों को मिलाकर इनकी सम्पत्ति से तुलना की जाय तो भी इस वंश की सम्पत्ति अधिक निकलेगी। अकेले बैरन मित्सुई ही वर्ष में ८,००,००० पौंड आय-कर देते हैं, जब कि आय-कर की दर ४ प्रतिशत है।

संसार का कोई उद्योग-धन्धा ऐसा नहीं है जिसको बैरन मित्सुई न करते हो। न उनकी निजी रेलगाड़ियाँ और जहाज़ी कम्पनियाँ जिनके द्वारा वे सारे संसार में व्यापार करते हैं, चलती हैं, बल्कि उनके शस्त्र बनाने के कारखाने, जहाज़ बनाने के कारखाने, गेहूँ और चावल के खेत, लोहे और कोयले की खानें, फ़ौलाद तैयार करने के कारखाने, कैमिकल कारखाने, कपड़े की मिलें तथा अन्य बीसियों प्रकार के कारखाने भी धड़ल्ले से चल रहे हैं।

मित्सुई खानों से लोहा निकलता है, मित्सुई फ़ैक्टरियाँ उसका फ़ौलाद बनाती हैं, मित्सुई कारखानों में उससे बन्दूकें तैयार की जाती हैं, मित्सुई रेलगाड़ियाँ उनके कारखानों का माल बन्दरगाहों तक ले जाती हैं और मित्सुई जहाज़ उस सबको यथास्थान पहुँचाते हैं। जब फ़ौज के सिपाही खाते-पीते हैं तब उनके सामने मित्सुई गेहूँ की रोटियाँ, मित्सुई चावल तथा मित्सुई शराब ही रक्खी जाती है। इन्हीं बैरन महोदय की शक्ति चीन-जापान-युद्ध के पीछे अपने हाथ की सफ़ाई दिखा रही है।

ऐसा नहीं है कि केवल युद्ध में ही बैरन मित्सुई की शक्ति काम कर रही हो, किन्तु जापान के आन्तरिक विभागों में भी सर्वत्र उनके धन की शक्ति काम करती दिखाई देती है। संसार के किसी भी देश में एक मनुष्य के हाथ में वे साधन नहीं हैं जो इस मनुष्य के पास हैं। जापानी जीवन का कोई भाग ऐसा नहीं है जिसमें मित्सुई का हाथ न हो। यदि कल अमरीका की फ़ोर्ड-कम्पनी फ़ेल हो जाय तो अमरीका के साधारण नागरिक जीवन पर उसका कोई विशेष प्रभाव न पड़ेगा। इसी प्रकार यदि इँगलैंड की इम्पीरियल केमिकल कम्पनी फ़ेल हो जाय तो अँगरेज़ जनता के लिए कोई भय की बात न होगी। इँगलैंड और अमरीका में, तथा योरप के अन्य देशों में भी बड़ी-बड़ी कम्पनियों की बहुतायत है। इसी लिए वहाँ एक-दो का फ़ेल हो जाना राष्ट्र के लिए खतरे की बात नहीं होती। किन्तु जापान के बारे में यह नहीं कहा जा सकता। मित्सुई कारखानों के फ़ेल होने से जापान को ऐसा धक्का पहुँचेगा कि वह उसे नहीं सह सकेगा। इसी से मित्सुई का जापान पर अधिक प्रभाव है। यदि बैरन मित्सुई अपने देशवासियों की रक्षा का प्रश्न, चाहे वे घर पर हों अथवा युद्ध-क्षेत्र में लड़ रहे हों, अपने हाथ में लेते हैं तो अपने ही लाभ के लिए। यदि चीन जापानी माल खरीदने के लिए बाध्य किया जा सके तो सारा लाभ मित्सुई की जेबों में ही जायगा, साथ ही जापानी कारीगरों और मज़दूरों को भी लाभ पहुँचेगा, क्योंकि वे लाखों की संख्या में मित्सुई के कारखानों में काम करते हैं।

अब यह बात आसानी से समझी जा सकती है कि चीन-जापान-युद्ध में मित्सुई का स्वार्थ कहाँ तक है। जैसे

ही जापानी-सेना-द्वारा चीन-युद्ध का सफलतापूर्वक अन्त होगा, मित्सुई की आर्थिक विजय पूर्ण हो जायगी।

इस युद्ध का वास्तविक कारण है जापानी आर्थिक नियन्त्रण का चीनियों-द्वारा विरोध। जापानियों ने कई अवसरों पर कहा है कि उनका उद्देश्य चीन में राज्य-विस्तार करना नहीं है, वे केवल चीन की आर्थिक नीति का संचालन अपने हाथों में रखना चाहते हैं। युद्ध उसी क्षण समाप्त हो जायगा जब चीन उनकी इस माँग को स्वीकार कर लेगा।

चीन जानता है कि सबसे बड़ी गुलामी आर्थिक गुलामी होती है, इसी लिए वह यथाशक्ति जापानी सेना का विरोध कर रहा है। निःसन्देह कोई भी स्वाधीनता-प्रिय देश अपनी आर्थिक नीति का संचालन दूसरों के हाथों में नहीं जाने देगा। उधर जापानी यह कहते हैं कि वे एक उन्नतिशील राष्ट्र हैं। उनके देश में उनकी वृद्धिगत जनसंख्या के लिए स्थान नहीं है, इसलिए उन्हें मजबूर होकर चीन की तरफ़ बढ़ना पड़ रहा है। इस प्रकार हम देखते हैं कि चीन और जापान की तीन साल से चलनेवाली वर्तमान लड़ाई मुख्यतः आर्थिक है। और जापान की आर्थिक नीति के एकमात्र कर्ता-धर्ता बैरन मित्सुई हैं। अपने देश के आर्थिक जीवन में प्रमुख स्थान रखने के कारण उन्होंने जापान-सरकार के युद्ध-ऋण का समस्त बोझ अपने ऊपर ले लिया है। यह भी उनकी आर्थिक शक्ति का एक प्रमाण है।

मित्सुई की इस उन्नति का कारण भाग्य नहीं है। इस परिवार के लोग अनेक पीढ़ियों के परिश्रम के उपरान्त अपनी वर्तमान अवस्था को पहुँचे हैं। लगभग तीन शताब्दी पूर्व मित्सुई-परिवार धान की खेती करनेवाला एक किसान-कुटुम्ब था। मित्सुई ने सबसे पहले जापान में बैंक खोलकर जापान को पश्चिमी शक्तियों के बराबरी में पहुँचाया है।

बीस वर्ष पूर्व जब जापान हर प्रकार से सामरिक उन्नति कर रहा था और सरकार ने स्वयं अपने जहाज़ निर्माण करना प्रारम्भ किया था उस समय बैरन मित्सुई ने गवर्नमेंट से कहा था कि वे सरकार से कम खर्च में उत्तम कोटि के जहाज़ बना सकते हैं। सरकार ने उनकी बात स्वीकार कर ली। मित्सुई ने न केवल विशाल सरकारी कारखाने खरीद लिये, बल्कि करोड़ों येन लगाकर उनकी उन्नति की।

जापान की कितनी ही सार्वजनिक संस्थायें मित्सुई-परिवार के ही दान से चलती हैं। कुछ समय पूर्व बैरन मित्सुई ने जापान के नेशनल फ़ंड में ७०,००,००० पौंड दिये थे।

चीन के युद्ध में जापान का धन पानी की तरह व्यय हो रहा है। इसका कारण यही है कि उसे मित्सुई की मदद का पूरा भरोसा है। बैरन भी जानते हैं कि चीन की आर्थिक विजय उसके और जापान के लिए कितनी लाभ-दायक है।

रिक्ता

अनुवादक, पण्डित ठाकुरदत्त मिश्र

माता के यहाँ जाने से पहले सविता की इच्छा एक वार अरुण से मिलकर बिदा माँगने की हुई, पर अरुण उसे घर में कहीं न मिला। अतः वह उसके कमरे में ऊपर गई। अरुण पुस्तक पढ़ रहा था। सविता यह देखकर दूर से ही लौट आई। पर अरुण अकस्मात् स्टेशन पर पहुँच गया। वहाँ उसने चलते समय सविता से कुछ बातचीत की। इससे सविता के मन को कुछ सन्तोष हुआ। सविता काशी आ गई। इसे तीन महीने बीत गये। पर अरुण ने एक भी पत्र न भेजा। यह देखकर सविता की मा को बड़ा आश्चर्य हुआ। एक दिन मा के साथ सविता अपने पड़ोस की एक बहू को देखने गई। बहू बीमार थी। उससे सविता की बातचीत हुई और दोनों में परिचय के साथ ही स्नेह-संबंध स्थापित हो गया।

सविता ने ज्योति की सास के हाथ से कटोरी अपने हाथ में ले ली। तब उसने ज्योति से कहा—कम से कम इतना तो मेरे हाथ से खाकर मेरे मन को सन्तुष्ट कर दो तो मैं कल भी आऊँगी और समस्त दिन तुम्हारे साथ बातचीत करने में ही व्यतीत करूँगी।

"तो यह ठीक रहा। सच-सच तो कह रही हो न?"

"सच सच नहीं तो क्या झूठ कह रही हूँ। अब तुम प्रसन्न मन से ज़रा-सा खा लो।"

"खाने में तो यह बहुत खराब मालूम पड़ता है।"

"फिर वही बात!"

"अच्छा, ले आओ, देखें शायद तुम्हारे हाथ से अच्छा मालूम पड़े।"

बातचीत करते-करते सविता ने ज्योति को खिला दिया। तब मुँह धुलाकर उसने कहा—आज अब मैं चल रही हूँ।

सविता का हाथ अपने हाथ में लेकर ज्योति ने अपने मस्तक पर जोर से दबाया और वह कहने लगी—तो कल फिर आओगी न? इसी लोभ से आज वह खाक-भस्म जो भी दिया वह मैंने खा लिया। परन्तु यदि तुम मेरी आशा भंग करोगी तो बड़ा पाप होगा।

सविता ने हँसते हँसते कहा—नहीं भाई, भला कोई पाप-संचय करने के लिए काशी आता है? कल फिर आकर पुण्य-संचय कर जाऊँगी।

"तो याद रहेगा न?"

"खूब याद रहेगा।"

बरामदे में खड़ी होकर ज्योति की सास कह रही थी कि बड़ी अच्छी है लड़की तुम्हारी दीदी, मेरी बहू को तो उसने इस तरह मोह लिया है, मानो उस पर जादू कर दिया हो।

सविता ने मस्तक झुकाकर उनके चरणों में प्रणाम किया और माता के साथ वह घर लौटी। उस समय आस-पास के सभी घरों में दीपक जल चुका था। मन्दिर-मन्दिर में आरती हो रही थी और घंटा-शङ्ख की ध्वनि सुनाई पड़ रही थी।

(२३)

इन कुछ ही दिनों में ज्योति का शरीर बहुत कुछ अच्छा हो चला। इसमें सन्देह नहीं कि सविता के कुशल हाथों की सेवा से उसे बहुत लाभ हुआ, परन्तु सबसे अधिक लाभ उसे इसलिए हुआ कि आज-कल उसका चित्त बहुत ही प्रसन्न रहा करता था। सविता का सदा ही प्रसन्न रहने-वाला मुख देखकर ज्योति यह सोचती कि शायद मेरे ही समान सविता को भी जीवन में दुःख की आँच कभी नहीं सहन करनी पड़ी है।

प्रतिदिन दो-ढाई बजे सविता प्रसन्नता से मुख दीप्यमान किये हुए आती और ज्योति की शय्या के पास खड़ी होकर कहती—क्या हो रहा है जी?

मुँह फेरकर हँसते हँसते ज्योति कहती—घड़ी की सुइयाँ गिन रही हूँ। और क्या कर रही हूँ ?

"ऐसी बात है?"

"हाँ भाई, सच कहती हूँ। अकेले चौबीस घंटे बिस्तरे पर पड़ा रहना कितना क्लेशकर है, यह मैं कैसे बतलाऊँ ? रोज़ इसी समय तुम्हारी आशा से टकटकी लगाये रास्ता देखती हुई पड़ी रहती हूँ।"

एक तकिया की झालर हिलाते हिलाते सविता ने कहा—आहा, कितने दिनों में तुम्हारा यह दुःख कटेगा, मैं भी यही सोचती रहती हूँ।

"तुम ? तुम्हारी तो जिस दिन तलबी हुई, उसी दिन तुम्हें प्रस्थान कर देना पड़ेगा। तुम्हें क्या चिन्ता ?"

"यदि मैं न आग्रह करूँ तो ज़ोर देकर मुझे कोई न ले जायगा, यह बात मेरी जानी हुई है।"

"हुन ! यदि मालिक की ही आज्ञा आ पहुँची ?"

एकाएक सविता का मुख आभाहीन हो गया। किन्तु क्षण भर के बाद ही शिथिल कण्ठ से उसने कहा—नहीं, वे ऐसा नहीं करेंगे।

"तब तो वे सुजन व्यक्ति हैं! मेरे ही भाग्य में कैसी प्रकृति के व्यक्ति लिखे थे! उन्हें यदि कहीं पता चल जाय कि अब मुझमें उठकर बैठने की शक्ति आ गई है तो वे फिर मुझे खींचकर उसी पहाड़ पर ले जायँ।"

सविता ने कोई उत्तर नहीं दिया। वह ज़रा-सा मुस्कराकर रह गई।

ज्योति ने फिर कहा—देखो न, मेरे पिता जी ने कितनी बार कटक भेज देने को लिखा, किन्तु इन लोगों ने अस्वीकार कर दिया।

सविता ने कहा—ऐसी अवस्था में किस तरह जाओगी ? तबीअत अच्छी हो जाय तब जाना। यह कहकर वह मन ही मन ज़रा-सा हँसी। वह कहने लगी—तुम जब चली जाओगी तब भी शायद कुछ दिन तक बहुत सूना-सूना मालूम पड़ेगा।

"ऐसा दिन यदि न हुआ तभी शायद तुम प्रसन्न होओगी। मैं भी यदि कहूँ कि तुम्हारे चले जाने पर मेरी भी ऐसी ही अवस्था होगी।"

"मैं पूजा से पहले तो जाऊँगी ही नहीं! बहुत दिन के बाद लौटकर मायके आई हूँ।"

ज्योति के बच्चे को गोद में लिये हुए उसकी सास कमरे में आई। सविता के हाथ फैलाते ही बच्चा उसकी गोद में कूद पड़ा।

फूल के गुच्छे की तरह के उस बच्चे को नचा नचाकर और हिला-झुलाकर सविता खेला रही थी। उसे खेलाने में वह इस प्रकार व्यस्त थी कि उसका दम तक घुटने लगा। ऐसा ही पुलक भी था, जिसे वह निमेष-मात्र के लिए भी दृष्टि की आड़ में नहीं रख सकती थी। अफ्रीका की सुप्रसिद्ध मरुभूमि सहारा के ही समान सविता के अत्यन्त शुष्क जीवन में पुलक अमृत के एक झरने के समान था। उसके अदृष्ट की कितनी रूढ़ता थी कि उस पुलक को भी उसे छोड़ देना पड़ा, उसका ज़रा-सा समाचार तक प्राप्त करने का उसे कोई साधन नहीं रह गया। ज्योति के बच्चे को छाती से लगा लेने पर उसके जी में आया कि आँखें बन्द करके यही अनुभव करूँ, मानो यह स्वयं पुलक का ही है।

ज्योति ने कहा—क्या सोच रही हो? एकदम मौन हो गई हो तुम तो!

"नहीं, कोई ऐसी बात तो नहीं सोच रही हूँ!"

"बतलाओ चाहे न, परन्तु कुछ तुम सोच अवश्य रही हो। क्या कोई गोपनीय बात है?"

"नहीं बात कोई वैसी नहीं है। मैं क्या सोच रही हूँ जानती हो? पहले-पहल जब मैं ससुराल गई तब मुझे संसार का कुछ वैसा परिचय नहीं था। परन्तु उस घर में पैर रखते ही मेरा स्नेह हो गया इसी तरह के एक छोटे से प्राणी से। इसी लिए आज इसे गोद में लेने पर मुझे उसी की गोद याद आ गई। इधर उसका कोई समाचार भी नहीं मिला है।"

"क्यों? शायद वह घर का नहीं है?"

"नहीं। उस बच्चे को छोड़कर ननद ने स्वर्ग की राह ली। तब वह सास के पास आया। अब उसके पिता आकर ले गये हैं। परन्तु जिस तरह पहले वे कभी उसकी खोज-खबर नहीं लेते थे, वैसे ही वे अब उसकी खबर देते भी नहीं।"

"वे लोग तो आदमी बुरे नहीं हैं।"

"बुरे आदमी क्यों हैं? परन्तु वे लोग यह नहीं समझते कि यहाँ भी कोई उसे स्मरण करनेवाला है।"

ज्योति की सास ने कहा—यह बात कोई नहीं समझता भाई! प्राण देकर दूसरे के लड़के का पालन-पोषण करने के समान क्लेश और किसी बात में नहीं है।

इस बात के उत्तर में सविता कुछ बोली नहीं। पुलक का पालन-पोषण करना तो उसके लिए क्लेशकर था नहीं। इसके विपरीत वही उसके आनन्द का एकमात्र आधार था। यदि वहाँ उसे पुलक न मिल गया होता तो शायद वह पागल ही हो गई होती। ऐसा भी एक समय था जब उस पाषाणपुरी में सविता से स्नेह करनेवाला केवल पुलक ही था। केवल पुलक के ही कारण दूसरे लोग यह समझा करते थे कि परिवार में यह भी कुछ न कुछ एक उपयोगी जीव है।

सविता आज-कल स्वामी के समीप भी शायद कुछ कोमल ही व्यवहार प्राप्त कर रही थी। स्वामी.....! सविता न जाने कैसे अन्यमनस्क-सी हो गई! मन के मध्य में कैसी एक नव-वसन्त की मादकतामय हवा बह गई! उसने कहा—अच्छा, तो अब चलूँगी भाई!

"अभी! हूँ! क्यों? पराये लड़के का स्मरण हो आने के कारण शायद मन दुःखी हो गया!"

"ऐसा ही होगा!" यह कहकर सविता ने ज्योति के बच्चे को उतार दिया और वह स्वयं चलने को उद्यत हुई। परन्तु बच्चा उसे छोड़ने को तैयार न हुआ; वह रोने लगा। ज्योति ने कहा—यह लो। वह तुम्हें जाने न देगा।"

"यह उसकी माता की ही दुष्टता है।"

"वाह! कौन कहे कि मैंने उसे सिखा दिया है ऐसा करने को!"

"मा के मन का इशारा समझ कर चल रहा है यह।"

"तो तुम इसे लिये जाओ, नौकरानी के साथ भेज देना!"

"नहीं, नहीं, दो दिन के लिए इतनी ममता बढ़ाने की आवश्यकता नहीं है।"

"तब फिर जाओ नहीं, बैठो।"

ज्योति हँसने लगी। अनेक प्रयत्न करके सविता ने बच्चे को नौकरानी की गोद में दिया। बाद को ज्योति की ओर ताक कर उसने कहा—अच्छा तो अब चलती हूँ।

"इतनी उतावली कर रही हो आज तुम जाने में, मानो घर में दर्जनों लड़के-लड़कियाँ रो रोकर आकाश-मंडल को गुंजायमान कर रहे हैं।"

सविता ने ज़रा-सा हँस दिया।

(२४)

पूर्व-दिशा अभी-अभी ही साफ़ हो पाई थी; किन्तु उषा के पाण्डुर ललाट पर उस समय भी सूर्य्य की किरणों की छटा नहीं दिखाई पड़ रही थी। दीपावली की प्रदीप-माला के समान एक-एक तारा क्रमशः प्रभाहीन होकर अस्त होता जा रहा था।

प्रभात-काल बिलकुल समीप था। स्निग्ध मधुर वायु द्वार-द्वार पर धक्का देती फिर रही थी। ज़मींदार के घर के पिछवाड़े की ओर एक पक्का तालाब था। तालाब के पश्चिम की ओर तीन-चार कोठ बाँस और एक बड़ा-सा केले का बगीचा था। तालाब से बिलकुल लगे हुए जो नींबू और इन्द्रबेला के वृक्ष थे उनके फूल की अत्यन्त ही मधुर सुगन्धि घाट को मादकतामय किये हुए थी।

घाट पर बैठे हुए अयोध्या-ज़िले के निष्ठावान् ब्राह्मण पाँड़े जी गा रहे थे। देहात के चिट्ठीरसा ने आकर कुछ चिट्ठियाँ और समाचार-पत्र आदि पाँड़े जी के हाथ पर रखकर कहा—प्रणाम महाराज!

चिट्ठीरसा को प्रसन्न मुख से जीवित रहने का आशीर्वाद देकर पाँड़े ने उससे कुशल-क्षेम का हाल पूछा। चिट्ठीरसा पुराना आदमी था। ज़मींदार की ही रियासत में रहा करता था। उसने कहा—क्यों पाँड़े जी, इस बार तो पूजा का कोई आयोजन दिखाई नहीं पड़ रहा है। होगी न?

पाँड़े ने कहा—अरे पूजा न होगी तो और क्या होगा? पूजा तो होगी ही।

"बड़ी बहू क्या आ गई हैं?"

चारों ओर ध्यान से ताक लेने के बाद गले का स्वर धीमा करके कहा—नहीं, बाबू लोग कोई न तो जाते हैं और न वे अकेली आती हैं। अरे भैया, बड़े आदमी की बात ठहरी!

डाक का थैला कन्धे पर रखकर चिट्ठीरसा ने कहा—क्यों? हमारे बड़े बाबू तो बहुत अच्छे आदमी हैं! फिर?

"अरे, अच्छे तो हम लोगों को लगते हैं, बाक़ी"—इतना कहकर पाँड़े महराज ने न जाने क्या सोचा, बाद को वे चुपके से कहने लगे—"क्या जाने भैया, उन लोगों के घर की बात!"

चिट्ठीरसा ने समझ लिया कि मालिक के परिवार से सम्बन्ध रखनेवाली बातों की चर्चा करने की इच्छा अब पाँड़े को वैसी नहीं है। वे अपनी ही धुन में जोर-शोर से गा-गाकर पूर्ववाली ऊँची अटारी की ओर ताक-ताककर देखने लगे कि कोई उठा है या नहीं। वे सोच रहे थे कि यदि कोई उठा हो तो उसी के द्वारा डाक भेजकर मैं निश्चित हो जाऊँ। चिट्ठीरसा भी बातचीत बन्द करके दूसरे लोगों की चिट्ठियाँ देने चला गया।

उस समय अरुण घर के समीप खुदे हुए तालाब पर खड़ा था। पैरों में उसके एक जोड़ा स्लीपर था और कमर में वह धोती लपेटे हुए था। इसके अतिरिक्त शरीर पर उसके और कोई वस्त्र नहीं था। परन्तु फिर भी उदयाचल पर वर्तमान अरुण के ही समान वह कान्तिमान् मालूम पड़ रहा था। तालाब पर से ही उसने पुकारा—पाँड़े!

पाँड़े उतावली के साथ उठकर खड़े हो गये। सम्मान-पूर्वक मस्तक झुकाकर सलाम करते हुए वे ज़रा आगे बढ़े और सारे चिट्ठी-पत्र उन्होंने अरुण के हाथ पर रख दिये।

चिट्ठियों के शिरोनामा पर दृष्टि दौड़ा दौड़ाकर अरुण ने एक बार देख लिया और बाद को उसने कहा—ठहरो पाँड़े, ये सब चिट्ठियाँ ले जाकर बाबू जी के दफ़्तर-वाले कमरे में रख न आओ।

सन्तोष के मुख पर न जाने कैसा एक असन्तोष का भाव अस्पष्ट रूप से दिखाई पड़ रहा था। अपने नाम की चिट्ठियाँ लेकर उसने बाक़ी चिट्ठियाँ लौटाल दीं।

अरुण को कोई काम-काज था नहीं। वह हाथ पर हाथ रक्खे हुए समस्त दिन बैठा रहता। इससे उसकी तबीअत बिलकुल जमती ही नहीं थी। परन्तु कोई उपाय तो था नहीं। उसके पिता का शरीर इतना खराब था, उनके हृदय की अवस्था इतनी सन्देहजनक थी कि उन्हें छोड़कर वह कहीं भी नहीं जा सकता था। घर में अकेली आशा थी। वह अभी एक प्रकार से लड़की ही थी। इसके सिवा घर-गृहस्थी का कोई काम-काज वह वैसा समझती भी नहीं थी। यही कारण था कि केवल अपना जी बहलाने के लिए कहीं बाहर जाने की इच्छा वह पिता के सम्मुख प्रकट करने का साहस नहीं कर सकता था। परन्तु आज-कल रह रहकर उसे सविता की याद आया करती थी। वह सोचा करता कि पुलक को छोड़कर तो वह जा नहीं सकी थी, परन्तु वह इस तरह निश्चिन्त होकर क्यों बैठी है? ज़रा-सा लिख भेजने पर ही सम्भव है कि वह आ जाय, परन्तु लिखे कौन?

अरुण सोचने लगा—आह, सविता के आ जाने पर हम लोग किस तरह निश्चिन्त हो जाते। पिता जी ने तो उसे यह कहकर भेजा था कि शीघ्र ही चली आना। परन्तु उसे बुलाने के सम्बन्ध में वे सबसे अधिक निर्लिप्त हैं, सबसे अधिक उदासीन हैं। उसे वे इस तरह भूल गये हैं, मानो वह कभी घर में थी ही नहीं।

ज़रा-सा इधर-उधर टहलने के बाद अरुण ने चिट्ठी पढ़ी। वह चिट्ठी प्रभात की थी। पुलक का हाल यह था कि जब से वह गया था तब से बराबर बीमार ही रहा, इससे वह बहुत दुर्बल हो गया है। प्रभात ने लिखा था कि इसे अब हमारे यहाँ रखना ठीक नहीं है। यहाँ यदि यह अधिक समय तक रहा तो शायद जीवित भी न रह सकेगा, इससे मेरी इच्छा है कि इसे अब आपके यहाँ भेज दूँ।

यदि और कोई समय होता तो इस प्रकार की चिट्ठी मिलने पर अरुण कदाचित् क्रोध के मारे जलकर आग हो जाता। परन्तु आज उसे क्रोध नहीं आया। क्रोध के स्थान पर उसे ममता ही हुई। वह सोचने लगा कि इस अवस्था में तो पुलक को ले ही आना आवश्यक है।

जगत् बाबू उस समय हाथ-मुँह धोकर दवा खाने जा रहे थे। दवा का सारा अनुपान सजाकर उनके सामने रक्खा था। उनका खानसामा गोपीनाथ एक-एक चीज़ उठाकर देने के लिए खड़ा मालिक की आज्ञा की प्रतीक्षा कर रहा था। उसी समय अरुण भी जाकर वहाँ खड़ा हुआ। गोपीनाथ आज-कल कितनी ग़लतियाँ किया करता था। जगत् बाबू शान्तभाव से ही उनके लिए उसे क्षमा कर दिया करते थे। पहले का-सा उनका उद्दण्ड स्वभाव नहीं था, वे बहुत नम्र हो गये थे।

अरुण ने कहा—प्रभात की एक चिट्ठी आई है।

जगत् बाबू का ध्यान उस समय दूसरी ओर था। उन्होंने कहा—क्या कहा तुमने? किसकी चिट्ठी आई है?

"प्रभात की।"

"ओह !"

जगत् बाबू ने फिर यह नहीं पूछा कि प्रभात ने क्या लिखा है। अरुण ज़रा देर तक तो प्रतीक्षा करता रहा, बाद को उसने कहा—पुलक की तबीअत बहुत ख़राब है। प्रभात की इच्छा है उसे यहाँ भेज देने की। वहाँ वह बहुत ही निर्बल हो गया है।

"निर्बल हो गया है? यह तो होना ही था।" यह कह कर कुछ देर तक सोचने के बाद जगत् बाबू ने कहा—इस चिट्ठी का जवाब देने की कोई आवश्यकता नहीं है।

आश्चर्य में आकर अरुण ने पूछा—जवाब न दूँ? जगत् बाबू ने कहा—तुम्हें लिखी है न चिट्ठी प्रभात ने?

"हाँ!"

"शिष्टाचार की रक्षा के लिए यदि जवाब देना ही हो तो यह लिख दो कि आपके अनुरोध की रक्षा करना अब हमारे लिए असाध्य है। इतने दिनों तक उनके लड़के का जिसने पालन-पोषण किया था, केवल वे ही उसकी रक्षा कर सकती थीं, किन्तु वे तो यहाँ हैं नहीं।

अरुण चुप रहा। एक बार उसके जी में आया, यह पूछ लूँ कि उनके आने पर भेज देने को लिख दूँ या नहीं। परन्तु पिता के सामने मुँह खोलने का साहस अरुण को तो कभी होता नहीं था; इससे वह चुप ही रहा।

सच बात तो यह थी कि उस समय जगत् बाबू का मनोभाव बिलकुल ही परिवर्तित हो गया था। जिस समय सविता समीप थी उस समय उसके न रहने पर कितनी असुविधा होगी, यह जगत् बाबू के लिए भावी चिन्ता का विषय था। अब उसके जाने के बाद जब इतने दिन बीत गये तब उन्होंने सारी असुविधायें सहन कर लीं, वे एक प्रकार से अब किसी प्रकार के क्लेश का अनुभव करते ही नहीं थे। वे यह अनुभव किया करते थे कि इतने दिनों तक हमने सविता को अकारण ही क्लेश दिया है। अब वह कुछ समय तक इस गृहस्थी के झंझट से मुक्त होकर सुख से रहे। उनके मन में कदाचित् एक बात और थी जिसके कारण वे आज-कल सविता की कोई खोज-खबर नहीं लेते थे। उसके पास वे अपना भी कोई समाचार नहीं भेजते थे। साथ ही उसे बुलाने की भी बात कभी मुँह में नहीं आने देते थे। बातचीत से उनकी बल्कि इसी प्रकार का भाव प्रकट होता था, मानो किसी काल में भी अब इस घर में उसके आने की सम्भावना नहीं है। सम्भव है, जगत् बाबू यह देखना चाहते रहे हों कि मेरी स्वाधीन इच्छा के अतिरिक्त उसका जो अपना आसन है वह उसे आह्वान करके ले आता है या नहीं।

और और विषयों की दो-चार बातें करके अरुण अपने पढ़नेवाले कमरे में जाकर घुसा। प्रातःकाल की स्वच्छ धूप से कमरा भर गया था, किन्तु अरुण को कोई काम-काज नहीं था।

अरुण काम में यदि भिड़ना चाहता तो ज़मींदारी का ही काम इतना था कि उसे एक क्षण के लिए भी समय न मिल सकता। परन्तु यह काम अरुण को न तो कभी अच्छा लगा है और न आज ही अच्छा लगता था। जिस दिन जगत् बाबू का शरीर अधिक ख़राब होता उसी दिन बही-खाता आदि अरुण के कमरे में जाता था; अन्यथा जगत् बाबू स्वयं सब देखते-सुनते थे।

हज़ारों बार के पढ़े हुए एक अँगरेज़ी उपन्यास के दो-चार पन्ने उलटने के बाद जब उसका मन नहीं लग सका तब अरुण अस्तबल से घोड़ा निकलवाकर टहलने के लिए निकल पड़ा।

सूर्य्यदेव उस समय पूर्व-दिशा का किनारा छोड़कर बहुत ऊपर चढ़ आये थे। परन्तु गाँव का रास्ता छाया से शीतल था; इससे धूप अधिक नहीं लगती थी। घोड़ा दौड़ाते हुए अरुण घर से बहुत दूर जा निकला। उस समय चारों ओर काम-काज की खलबली मची थी।

अरुण बहुत दिनों से इस रास्ते से नहीं आया था। फिर भी उसे आस-पास की हरएक वस्तु परिचित-सी मालूम पड़ रही थी। पास ही एक पुराना देहाती स्कूल था। एक लड़का बाहर था, उसने चिल्लाकर कहा—अरे, यह तो पण्डित महाशय के नति-दामाद हैं।

इतनी देर के बाद अरुण को यह स्मरण आया कि मैं विवाह करने के लिए एक दिन इस गाँव में आया था इसी लिए यह स्थान परिचित-सा मालूम पड़ रहा है।

सड़क के किनारे पर बाड़ घिरा हुआ फूल का एक बग़ीचा था। उसमें रंग-बिरंगे फूल खिले हुए थे। उस बग़ीचे के किनारे पर पहुँचकर अरुण ने घोड़े का मुँह फेरा। चार मील का रास्ता इतनी ही ज़रा देर में के समय में तय किया जा सका, इसका अरुण को पता ही नहीं चल सका।
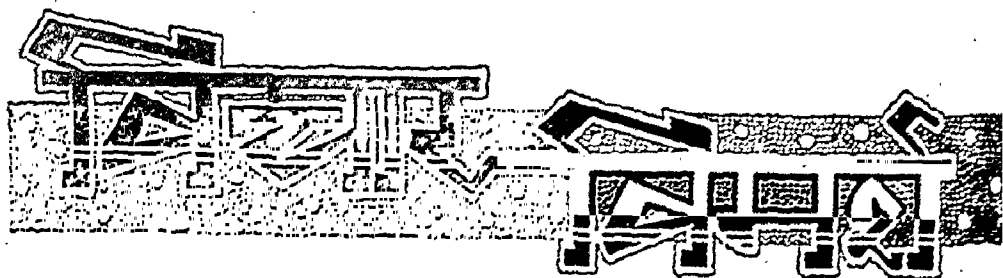
ब्रह्मसूत्र के शाक्ति-भाष्य का परिचय

लेखक, पंडित काशीनाथ रा० तिलक

'स'रस्वती'-संपादक की कृपा से अथवा किसी शक्ति की प्रेरणा से पूज्यपाद श्री पंचानन तर्करत्न भट्टाचार्यविरचित ब्रह्मसूत्र के 'शक्ति-भाष्य' के दर्शन करने का सौभाग्य मुझे प्राप्त हुआ, साथ ही सम्पादक-प्रवर का इस विषय पर एक विस्तृत लेख लिख देने का आग्रह भी ग्रहण किया। यद्यपि इस दायित्वपूर्ण विषम कार्य का भार उठाने की शक्ति मेरे समान व्यक्ति में नहीं है, तथापि सम्पादक महोदय के अनुरोध को लाचार होकर शिरोधार्य करना पड़ा। 'शक्ति-भाष्य' को देखकर किस शाक्त को, मा के भक्त को, हर्ष न होगा। श्री रामानुजाचार्य आदि वैष्णव आचार्यों के वेदान्त-दर्शन के भाष्यों में यह कथन देखकर मन कुछ उद्विग्न-सा हो जाता है कि श्रीकृष्ण अथवा नारायण ही ब्रह्म-सूत्र में 'ब्रह्म' पद से व्यंजित किये गये हैं, न कि रुद्रादि अन्य देव। वे लोग अपने इस कथन को एक उपनिषद्-वाक्य के आधार पर प्रमाणित करने का प्रयत्न करते हुए देखे जाते हैं, यद्यपि उनके इस कथन के विरोध में अन्य श्रुति-वचन—"एकएव रुद्रो न द्वितीयाय तस्थौ"—उपस्थित करना कुछ कठिन नहीं है। इधर 'शक्ति-भाष्य' के अन्तर्गत नारायण, कृष्णादि नामों का उल्लेख करने में किसी प्रकार का संकोच या द्वेष नहीं दिखाया गया है, वरन् ब्रह्म-सूत्र के "अदृश्यत्वाधिकरणम्" में श्रीकृष्ण आदि की उपासना करने का उल्लेख उदारतापूर्वक किया गया है; क्योंकि अद्वैत-सिद्धान्त के अनुसार जिस किसी भी रूप की उपासना की जाय वह उपासना 'शक्ति' की ही उपासना है।

इस भाष्य में ब्रह्म-सूत्र की व्याख्या शक्तिपरक की गई है, अर्थात् शाक्त दर्शन का विकास श्रुति के आधार पर प्रदर्शित किया गया है। यह कार्य रोचक होने के साथ-साथ महत्त्वपूर्ण और अमूल्य भी है। संसार को ब्रह्म-सूत्र का शक्तिपरक भाष्य प्रदान करने का श्रेय प्रथम-प्रथम श्री दुर्गा की कृपा से पूज्यपाद भट्टाचार्य जी को प्राप्त हुआ है। इस महान् कार्य का सम्पादन उनके समान अद्वितीय विद्वान् के अनुरूप ही हुआ है। इस भाष्य में स्थान स्थान पर उनकी प्रखर प्रतिभा, पांडित्य, तार्किकता, विषय-प्रतिपादनशैली आदि गुणों का परिचय मिलता है, जिसको देखकर दाँतों तले अँगुली दबानी पड़ती है। भाष्यकार ने बड़े कौशल के साथ 'पूर्व-मीमांसा' और 'उत्तर-मीमांसा' को एक सूत्र में पिरो दिया है। प्राचीन मतावलम्बी विद्वान् पूर्व-मीमांसा और उत्तर-मीमांसा को वेद के कर्मकांडात्मक और ज्ञानकांडात्मक उभय भागों के प्रतिपादक बतलाते हैं। पर भाष्यकार इस मत से सहमत नहीं हैं। उनका कहना है कि उक्त दोनों भाग शक्तिपरक हैं, अर्थात् शक्ति की ही उपासना का प्रतिपादन करते हैं। पूर्व-मीमांसा में जिसका दूसरा नाम धर्म-मीमांसा है, धर्म तथा उसके साधन द्रव्य, देवता और मंत्र का विचार किया गया है। ये धर्मादिक महाशक्ति के विभूति-रूप खण्ड-शक्तियाँ हैं, क्योंकि श्रुति-विहित प्रोक्षणादि क्रियाओं के द्वारा यज्ञीय द्रव्यों में शक्ति-विशेष ही उत्पन्न की जाती है। ब्रह्म-स्वरूप यज्ञ के साधक अग्नि की सप्त जिह्वाओं के रूप में सप्त शक्तियों का ही उल्लेख मुण्डकोपनिषद् के एक मंत्र में किया गया है—"काली कराली च मनोजवा च सुलोहिता या च सुधूम्रवर्णा स्फुलिंगिनी विश्वरुची च" (मुण्डक १-२-४)। इन खण्ड शक्तियों

का विचार अतिशय, अपूर्व, संस्कारादि नामों के अन्तर्गत पूर्व-मीमांसा में क्रिया गया है। पर उन सबकी नियंत्री महाशक्ति का विचार पूर्व-मीमांसा में प्रदर्शित नहीं हुआ है। उसका और उसके उपासना-वैचित्र्य का प्रतिपादन उत्तर-मीमांसा में ही किया गया है। अतएव चतुर्दश विद्या के अन्तर्गत परिगणित मीमांसा के ये दो भाग 'पूर्व-मीमांसा' और 'उत्तर-मीमांसा' के नाम से संसार में प्रसिद्ध हैं।

मीमांसाद्वय का समन्वय

प्रश्न हो सकता है कि केवल उपासनापरक होने से विभिन्न मुनि-रचित ये दो ग्रन्थ एकशास्त्रत्व को कैसे प्राप्त कर सकते हैं। भाष्यकार ने इसका उत्तर दिया है कि पूर्व-मीमांसा के अन्तिम अधिकरण के "स्मृतेर्वा स्याद् ब्राह्मणानाम्" सूत्र में स्थित ब्राह्मण-शब्द ही दोनों की जोड़नेवाली कड़ी है, क्योंकि ब्राह्मण-शब्द का बहुवचन में प्रयोग हमारे दृष्टि के सामने तीन वस्तुओं को उपस्थित करता है। ये तीनों वस्तुएँ हैं—ब्राह्मण-जाति, वेद और परमात्मा। "ब्रह्म जानातीति ब्राह्मणः" इस निरुक्त के अनुसार ब्राह्मण-शब्द का अर्थ वेद और परमात्मा है। ऐसा न मानने पर ब्राह्मण-शब्द का बहुवचन में निर्देश व्यर्थ हो जायगा। न यहाँ 'ब्राह्मणानाम्' पद से ब्राह्मण-जाति का सामान्य रूप से ऋत्विज् होना विधान किया गया है और न एकमात्र तीन ब्राह्मणों का ही; क्योंकि यज्ञ में पतित, अनृत्विज्, जपादिरत ब्राह्मणों का ऋत्विज्-रूप में वरण करने का निषेध किया गया है, और तीन के स्थान में सत्रह अन्य व्यक्तियों का ऋत्विज्-रूप में वरण करना वेद में विहित है। इसलिए श्रुति-स्मृति के प्रमाणों से यह सिद्ध किया जा सकता है कि ब्राह्मण-कुल में उत्पन्न वेदज्ञ और ब्रह्म-ज्ञानी ब्राह्मण का ही ऋत्विज् बनाना यज्ञ में विशेषता रखता है। इस कारण ब्रह्म-शब्द के ब्राह्मण-जाति और वेद इन दो अर्थों का ज्ञान रखनेवाले बुद्धिमान् शिष्य के मन में पूर्व-मीमांसा के अन्तिम अधिकरण को पढ़ते समय ब्रह्म-शब्द के अन्य अर्थ के संबंध में जिज्ञासा उत्पन्न होना कुछ असम्भव नहीं है। उस जिज्ञासा की पूर्ति के लिए उत्तर-मीमांसा में ब्रह्म का निरूपण किया गया है। यही कड़ी दोनों में संबंध स्थापित करती है।

समयि-मत

अब यहाँ समयि-मत का संक्षेप में विवरण देना कुछ अप्रासंगिक न होगा, क्योंकि भाष्य में ब्रह्मसूत्र के प्रथमाध्याय के प्रथम पाद के सूत्रों के साथ इस मत का संबंध स्थापित किया गया है। यद्यपि शक्ति-भाष्य में भगवान् शङ्कराचार्य के शारीरिक भाष्य में प्रदर्शित मत का खंडन स्थान स्थान पर किया गया है, तथापि यह भाष्य "उन आर्य चरणों के मत का विरोधी नहीं है।" यह कथन ऊपर से देखने में कुछ अटपटा-सा प्रतीत होता है, पर भाष्यकार ने अपने पूर्वोक्त कथन की पुष्टि में जिन प्रबल युक्तियों को उपस्थित किया है वे ये हैं—"शारीरिक भाष्य निवृत्ति-धर्म का पालन करनेवाले संन्यासियों को लक्ष्य में रखकर रचा गया है, क्योंकि शंकराचार्य के समान लोकोत्तर गुरुजन शिष्य का अधिकार देखकर उपदेश करते हैं। उनका किसी एक मत के साथ विशेष पक्षपात नहीं होता है। दूसरे बौद्ध विद्वानों के शून्यवाद, क्षणिक विज्ञान अथवा विज्ञानवाद के आधार पर उद्घोषित अद्वैत-सिद्धान्त के चक्कर में कुछ ब्राह्मण विद्वान् भी आ गये थे, उनको उसमें से निकालना भी उसका एक उद्देश्य था।" अतएव जब हम देखते हैं कि सौन्दर्य-लहरी में भगवान् शंकराचार्य ने गृहस्थाश्रम में रहनेवाले जनों के लिए मोक्ष का उपदेश किया है तब भाष्यकार के उपर्युक्त कथन में तिलमात्र भी शंका करने का अवसर नहीं मिलता है। समयि-मत एकाश्रम अर्थात् गार्हस्थ्य का पक्षपाती है। गृहीजन स्वाधिकारानुसार प्रवृत्ति अथवा निवृत्ति धर्म का पालन करने में स्वतंत्र हैं। उनका संन्यास गीतोक्त संन्यास है। जब निष्काम कर्मों के सम्पादन-द्वारा उनका चित्त शुद्ध हो जाता है तब ज्ञान के उत्पन्न हो जाने से उनके मोक्ष प्राप्त करने के मार्ग में कोई विघ्न या बाधा नहीं रहती है। समयि-मत के गृहस्थ "श्रीचक्र" की उपासना करते हैं। इस उपासना का प्रचार भगवान् शंकराचार्य की शिष्य-परंपरा में पूर्णरूप से आज भी पाया जाता है। उस 'श्रीचक्र' का उल्लेख भाष्यकार ने यथास्थान किया है।

यह शक्ति भाष्य नव वादों का आकर है, हमारा यह कथन अत्युक्तिपूर्ण नहीं है। इसमें स्थान स्थान पर श्रुति के विवरण में किं वा सूत्र के विवरण में नवीनता का ही परि-

चय मिलता है। यह बात दूसरी है कि भाष्यकार के विवरण से कोई सहमत हो या न हो, पर विषयप्रतिपादनशैली और प्रदर्शित तर्कों पर मुग्ध होकर वह आनन्द में सिर न हिलाने लगे तो उसके विषय में यही कहावत चरितार्थ होगी कि 'स वै मूर्खोऽथवा पशुः' । इस भाष्य में अनर्गल युक्ति देखने को नहीं मिलेगी । ज्ञान की वृद्धि करनेवाली प्रचुर सामग्री इसमें विद्यमान है । इसको पढ़ते समय चित्त में उद्विग्नता भी नहीं उत्पन्न होती है, साथ ही इस भाष्य-समुद्र में डुबकी लगाने पर कोई न कोई अमूल्य रत्न अवश्य ही हाथ लग जायगा ।

'जन्माद्यस्य यतः' सूत्र वेदान्त के चतुःसूत्री के सूत्रों में से एक सूत्र है। जहाँ तक हमें मालूम है, इस सूत्र के भाष्य में शक्ति-भाष्यकार के अतिरिक्त अन्य भाष्यकारों ने भगवान् शंकराचार्य के प्रदर्शित पथ का ही अनुसरण किया है। इस सूत्र में ब्रह्म का लक्षण-निरूपण किया गया है। पूछा जा सकता है कि उपर्युक्त सूत्र में कौन-से ब्रह्म का लक्षण कथन किया गया है, क्योंकि ब्रह्म-नाम के अनेक पदार्थ हैं। ब्रह्म का एक अर्थ तो ब्राह्मण-जाति है, जैसा कि कठोपनिषद् के इस वचन से सिद्ध होता है—"यस्य ब्रह्म च क्षत्रञ्च उभे भवत ओदनः" । दूसरा अर्थ वेद है, जिसकी पुष्टि 'ब्रह्मयोनिम्' पद कर रहा है। तीसरा अर्थ ब्रह्मा या हिरण्यगर्भ है, जैसा कि "ब्रह्मा देवानां प्रथमः संबभूव" इस वेद-मंत्र से द्योतित हो रहा है । चौथा अर्थ सबका कारणस्वरूप परमात्मा है, जैसा कि तैत्तरीयोपनिषद् की श्रुति कह रही है कि "जिससे कि ये सब भूत उत्पन्न होते हैं वह ब्रह्म है" (तैत्त० ३।१) । ऐसी दशा में उक्त प्रश्न के उत्तर में यह निवेदन किया जा सकता है कि सूत्र-निर्दिष्ट लक्षण परमात्मा-परक है, न कि वह ब्राह्मण, वेद या ब्रह्मा पर घटित हो सकता है। इस सूत्र में समास-रहित तीन पद हैं—जन्म, आद्यस्य, यतः। आद्य पद से ब्रह्मा का ग्रहण किया गया है, क्योंकि ब्रह्मा की उत्पत्ति देवों से प्रथम वेद में कही गई है। जब ब्रह्मा ही सबसे प्रथम उत्पन्न हुआ है और वह विश्व का कर्ता है तब ब्राह्मण-जाति या वेद से ब्रह्मा की उत्पत्ति मानना असंगत है और ब्रह्मा भी अपनी उत्पत्ति के प्रति स्वयं कर्ता नहीं हो सकता है, इसलिए पूर्वोक्त लक्षण में ब्रह्म का ही निरूपण किया गया है; और ब्रह्म-शब्द से देवात्म-शक्ति अथवा सबका कारण परमात्मा का ही ग्रहण किया गया है। आद्य ब्रह्मा की जन्मदात्री शक्ति है। इस विषय में ये वचन प्रमाण हैं—जो ब्रह्मा को पहले उत्पन्न करती है, जो त्रिमूर्ति की उत्पत्ति होने के पूर्व विद्यमान है, और जिसने ब्रह्मा, विष्णु और शिव को उत्पन्न किया है।" यदि कोई यह कहे कि फिर ब्रह्म-शब्द से ब्राह्मण, वेद किंवा ब्रह्मा का ग्रहण क्यों किया गया है? अर्थात् ब्रह्म-शब्द से उनका उल्लेख क्यों किया जाता है ? तो इसके उत्तर में यह निवेदन है कि उस ब्रह्म के सम्बन्ध से ही उनका तन्नाम से उल्लेख होता है। ब्रह्म को देखनेवाला अथवा जानने की योग्यता सम्पादन करनेवाला जातिविशेष व्यक्ति ब्राह्मण ब्रह्म नाम से पुकारा जाता है । यद्यपि वेद उस परमात्मा के निश्वास हैं, तथापि उनके ब्रह्म के तुल्य होने किंवा सृष्टि के कारण होने से उनके लिए भी ब्रह्म शब्द की प्रवृत्ति देखने में आती है । ब्रह्मा, ब्रह्म को जानने के कारण, ब्रह्म हो गया ।

यदि कोई यह कहे कि—'संबभूव'—क्रिया की अतीत सत्ता का बोधक होने से वर्तमान सत्ता का व्याघात होता है; तो इसके उत्तर में यह कहा जा सकता है कि त्रिकालाबाधित सत्ता रखनेवाली वस्तु को कालभेद से सत्ता-भेद का कथन करने पर उसकी वर्तमान सत्ता में व्याघात नहीं होता है । इसलिए 'देवों के पहले था' इस अर्थ के स्वीकार करने पर देवों की उत्पत्ति के पूर्व-काल का सम्बन्ध अतीत से होने पर प्रकृत में अर्थात् उसकी वर्तमान सत्ता में कोई बाधा नहीं उपस्थित होती । इस प्रकार उत्तरस्थ विश्वकर्ता-पद की उपपत्ति भी अबाधित रहेगी; अन्यथा उसके—ब्रह्मा के—उत्पत्तिशील मानने पर वह अपना कर्ता स्वयं नहीं हो सकता है; क्योंकि विश्व के अन्दर उसका भी समावेश है। इस अर्थ के स्वीकार करने पर प्रथम पद की उपपत्ति में भी कोई बाधा नहीं आती है, क्योंकि ब्रह्मा के उत्पत्तिमान् मानने पर उसके उत्पन्न करनेवाले को प्रथम कहना युक्तियुक्त ही है। तत्पूर्वपक्षी की शंका के उत्तर में यह कहा जा सकता है कि 'संबभूव' क्रिया का 'था' अर्थ न कर 'उत्पन्न हुआ' अर्थ करना ही युक्तिपूर्ण है, क्योंकि श्रुति में 'शक्ति ब्रह्मा को उत्पन्न हुआ देखती है'—यह कथन विद्यमान है। दूसरे, विश्वकर्ता से अभिप्राय जगत्-स्रष्टा से है। तब ब्रह्मा के

उत्पत्तिमान् होने पर भी उसका जगत् के अन्तर्गत समावेश विवक्षित न होने पर उसके विश्व-कर्तृत्व में यत्किंचित् बाधा नहीं आती है। तीसरे, देवों से प्रथम उत्पन्न होने के कारण उसके सम्बन्ध में प्रथम का निर्देश अनुपपन्न नहीं है, क्योंकि 'उत्पतिमान् देवताओं ने देवों को उत्पन्न किया', इस श्रुति के आधार पर उसकी परमात्म-शक्ति से उत्पत्ति स्वीकार करने पर भी उसकी प्रथमता में कोई बाधा नहीं आती है। इस पर फिर पूर्वपक्षी कहता है कि 'जिससे जगत् का जन्म, स्थिति और भंग है', इस श्रुति-संगत अर्थ की उपेक्षा करना ठीक नहीं है, क्योंकि 'यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते' आदि इस श्रुति-वचन में जगत्-सम्बन्धी पूर्वोक्त तीनों बातों का कथन किया गया है। तब इस आक्षेप के उत्तर में सिद्धान्ती कहता है कि यह सूत्र पूर्व-प्रदर्शित श्रुति का अनुगमन नहीं करता है, क्योंकि श्रुति में 'इमानि' पद 'भूतानि' का विशेषण है, और 'भूतानि' पद का अर्थ जीव है, जिसकी पुष्टि उत्तर-वाक्यस्थ 'जीवन्ते' पद कर रहा है। सूत्र में 'अस्य' पद जगत्-अर्थ का बोधक है, और जगत् में प्राणि-अप्राणि दोनों का समावेश है। तब इस दशा में सूत्रस्थ 'अस्य' पद श्रुतिस्थ 'इमानि' पद के अर्थ का अनुगमन नहीं करता है और न उसका पदान्तर है, किन्तु स्वतंत्र है। इसके अतिरिक्त एक बात और है कि सूत्रस्थ 'जन्मादि' पद यदि 'जन्मस्थित भंग' का निर्देश करता है तो वह श्रुति का अनुगमन नहीं करता है, क्योंकि श्रुति के उत्तर-वाक्य में 'जीवन्ते' पद पड़ा हुआ है। स्थिति तो जड़-चेतन दोनों प्रकार के प्राणियों के लिए साधारण है, पर 'प्राणन' जीवन का पर्यायवाची शब्द तो प्राणि-मात्र का धर्म है। यदि यह कहा जाय कि 'भूतानि' पद जगत्परक है तब 'जीवन्ते' पद का इस स्थल पर 'स्थिति' ही अर्थ होता है, तो इसके उत्तर में निवेदन है कि पूर्वोक्त कथन और विवरण का परस्पर विरोध होता है। अन्न से भूत पैदा होते हैं, अन्न से उत्पन्न होने पर जीते हैं, इस प्रथम विवरण से यह सिद्ध है कि अन्न से जनन और जीवन प्राणियों का ही होता है न कि अप्राणियों का। दूसरे उसी तैत्तरीय श्रुति में प्राण से ये भूत पैदा होते हैं, और उत्पन्न हुए प्राण से जीते हैं, यह कहा है तब प्राण से जीवन प्राणियों का ही लोकप्रसिद्ध है। इसलिए विवृत अर्थ को त्यागकर 'भूतानि' पद का जगत्-परत्व अर्थ की कल्पना करना अयुक्त है।

दूसरे 'जन्मादि' पद में 'आदि' पद किस अर्थ में प्रयुक्त हुआ है, इसका भी अवधारण करना अशक्य है। तीसरे श्रौत पद 'यतः' भी श्रुति का अनुधावन नहीं करता है, क्योंकि श्रुति में "यतः, येन, यत्" ये तीन पद व्यवहृत हुए हैं, पर सूत्र में एक पद 'यत.' आया है। यदि कोई कहे कि 'तसिल्' प्रत्यय का प्रयोग सब विभक्तियों में किया जा सकता है तो इसके उत्तर में यह निवेदन है कि समस्त जन्मादि पद के शब्दार्थ के सामुदायिक रूप में होने से प्रत्येक के साथ उसका सम्बन्ध नहीं हो सकता। यदि यह कहा जाय कि श्रुति के तात्पर्य को ग्रहण करके यह लक्षण कहा गया है, तो इसके उत्तर में निवेदन है कि इस दशा में हम दोनों का पक्ष समान है, क्योंकि "जिससे आद्य का जन्म है"— इस व्याख्यान में श्रुति के तात्पर्य का ही अनुगमन किया गया है, यह ऊपर दिखाया जा चुका है। यदि यह कहा जाय कि व्याख्यान में अपादानत्व नहीं दिखाया गया है, वरन जन्म, तो इसके उत्तर में यह कहना है कि जिस प्रकार माता पुत्र को पैदा करती है, अथवा माता से पुत्र पैदा होता है, इन दोनों वाक्यों के अर्थ में ऐक्य है, इसी प्रकार 'जो ब्रह्मा को पैदा करता है' इस श्रुतिवाक्य और 'जिससे आद्य का जन्म है' इस सूत्र के अर्थ में ऐक्य है। यदि यह कहा जाय कि ब्रह्मा कहाँ से पैदा होता है अथच नहीं होता है, इस विषय में दो विरुद्ध कथन पाये जाते हैं; तो इसके उत्तर में निवेदन है कि वह न पैदा होता हो, किन्तु विश्वकर्ता के रूप में प्रथम प्रथम सुना गया है, जिस प्रकार विश्व है या नहीं है, इस विरुद्ध वचन में भले ही विश्व न हो, पर प्रथम सुना जाने से वह है यही मानना पड़ता है। और यदि उसका उत्पत्तिवाला कथन स्वीकार किया जाय, तो उसका जनयिता अवश्य ही होगा, यह मानना पड़ेगा। क्योंकि यदि पुत्र पैदा हुआ है यह माना जाय तो उसका पिता कोई न कोई अवश्य होगा, यह तार्किकसम्मत न्याय मानने के अतिरिक्त गत्यन्तर नहीं है। ऊपर के विवेचन में जन्मस्थितिभंगवाला पक्ष भगवान् शंकराचार्य का है। तब ऊपर के भाष्य को पढ़कर उसका नवीनत्व सिद्ध होता है। इसमें तिलमात्र भी सन्देह नहीं है।

सादि सृष्टिवाद

प्रायः सभी आचार्यों ने जगत् की सृष्टि करते समय परमेश्वर पर तार्किकों की ओर से लगाये गये वैषम्य और नैर्घृण्यसम्बन्धी आक्षेपों का निरसन अनादि पक्ष लेकर किया है, पर शक्ति-भाष्यकार सादि सृष्टि स्वीकार करके भी उक्त दोषों का परिहार करने में समर्थ हुए हैं।

नास्तिक कहते हैं कि सादि सृष्टिवाद स्वीकार करने पर जीवों के किसी प्रकार के पूर्व-कृत कर्मों के न होने से उनको उत्तमाधमावस्था में उत्पन्न करनेवाला परमेश्वर वैषम्य और नैर्घृण्य दोषों से मुक्त नहीं हो सकता है। इस आक्षेप का निरसन यह कह कर किया जा सकता है कि इस पक्ष में भी आश्रय की योग्यता स्वभावनाम्नी शक्तिविशेष से सम्पादित हो जाती है। वह दो प्रकार की है। एक प्राक्तन धर्माधर्ममूला और दूसरी अनागतावस्थ परिणामनिमित्ता। आश्रय से तात्पर्य अधिष्ठान और उपाधि से है। अनागतावस्थ परिणाम से यह तात्पर्य है कि "इसका यह परिणाम होगा" यह बात परमेश्वर के ज्ञान में अनभिव्यक्त रूप में बनी रहती है, और परिणाम गुण का वृत्त है। ब्रह्म के नित्य सम्बन्ध चित् और अचित् अंश हैं। जिस प्रकार परमेश्वर के चित् अंश के परिणायन के अभाव में भी उसकी सर्वशक्तिमत्ता में कोई व्याघात नहीं होता है, उसी प्रकार अपने अचित् अंश-सम्बन्धी गुणों के परिणामविशेष की आवश्यम्भाविता का ज्ञान रखनेवाले उसके सर्व-शक्तिमत्ता में कुछ बाधा नहीं आती, क्योंकि अपने चिदचित् रूप में विरोध का होना शक्ति का स्वभाव है। इस प्रकार सादि सृष्टिवाद में भी परमेश्वर की योग्यता प्रतिपादित की जा सकती है। अधिष्ठानभूत मूल अचित अंश के स्वभाववश महदादि अचेतन पदार्थों की सृष्टि होती है; और वह परमेश्वरकृत मानी जाती है, क्योंकि वह प्रकृति के स्वभाव का संगी है, साथी है। जिस प्रकार जीव में निद्रागत तम के हटने पर भी जागृति के प्रथम क्षण में किसी विशेष वस्तु का प्रत्यक्ष ज्ञान सम्भव नहीं है, क्योंकि उसके उपाधिभूत अन्तःकरण या लिंग-शरीर में सम्यक् प्रकार से चित्-अंश का प्रतिबिंब पड़ना असम्भव होता है, उसी प्रकार प्रकृति के विषम परिणाम होने पर भी क्षीयमाण तामस वर्ग के अनन्तर वृक्ष की सृष्टि होने पर उसमें तम का कुछ अंश विद्यमान रहता है, इसलिए वृक्षों का अन्तःसंज्ञत्व—तम के लेश में चित्-अंश का प्रतिबिंब न पड़ने के कारण पूर्ण संज्ञा का अभाव रहता है—परमेश्वर का ही सृजन किया हुआ है, क्योंकि परिणाम पाने वाली अधिष्ठानभूत प्रकृति का वह संगी है; और परिणाम की अनागत अवस्था भी वहीं योग्यता के पेट में पड़ी रहती है। यदि यह कहा जाय कि चातुर्वर्ण की सृष्टि में तो वैषम्य का परिहार नहीं हो सकता है, तो इसके उत्तर में यह कहा जा सकता है कि उस भेद के दो कारण हैं—एक तो अनागतावस्थ परिणाम है और दूसरा परमेश्वर के मुख, बाहु, उरु और पाद के जो चातुर्वर्ण्यान्तर्गत ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य, शूद्र के क्रमशः अधिष्ठान हैं, परिणाम हैं। यदि यह कहा जाय कि इस दशा में अनादित्ववादिनी विष्णुस्मृति कुपित हो सकती है, क्योंकि वहाँ तो यह वर्णन किया गया है कि दिव्य दो सहस्र युग का ब्रह्मा का एक दिन-रात होता है, ब्रह्मा के दिन में सृष्टि होती है और रात में प्रलय हो जाता है। इस प्रकार ब्रह्मा के शत वर्ष की आयु में अनेक अवान्तर सृष्टि-प्रलय होते रहते हैं। उसके बाद महाप्रलय हो जाता है। तब फिर सृष्टि होती है। इस प्रकार सृष्टि का अनादि और अनंत प्रवाह चलता रहता है और उन सृष्टियों का सम्बन्ध एक जीव में नहीं रहता है, क्योंकि समस्त जीवों की मुक्ति के साथ हिरण्यगर्भ का लय हो जाता है, फिर पुनर्वार अन्य ब्रह्मा के सृष्टि करने पर दूसरे जीवों का आविर्भाव हो जाता है। तब इसके उत्तर में यह कहा जा सकता है कि सादि सृष्टि-पक्ष में भी यह व्यवस्था घटित हो सकती है, क्योंकि अचित् के जिस प्रदेश में साम्यावस्था होती है उसी प्रदेश में प्रलय रहता है। असंस्कारा और ससंस्कारा भेद से वह साम्यावस्था दो प्रकार की है। अचित् के जिस प्रदेश में "यह विषम परिणाम न होगा" यह बात परमेश्वर की बुद्धि में रहती है, तो उस प्रदेश की साम्यावस्था निःसंस्कारा कहलाती है, और अचित् के जिस प्रदेश में "यह परिणाम होगा" यह बात परमेश्वर के ज्ञान का विषय रहती है, तो वहाँ की साम्यावस्था ससंस्कारा नाम से कहलाती है। एक सृष्टिवाद में अचित्-अंश के एक ही प्रदेश में विषम परिणाम का होना दिन है और सम परिणाम का रहना रात है। इस प्रकार

यह पर्यायक्रम ब्रह्मा को सत्तान्ति में नियत रूप से चलता रहता है। फिर महाप्रलय के अनन्तर अचित् के दूसरे प्रदेश में सृष्टि पूर्वोक्त-क्रम के समान विषम परिणाम से आरम्भ होकर सम परिणाम में अन्त को प्राप्त करती है। यदि यह कहा जाय कि पूर्व-सृष्टि के मुक्त जीवों का उसके अनन्तर होनेवाली सृष्टि में आविर्भाव हो जावे तो उसके उत्तर में यह कहा जा सकता है कि उस मुक्त जीव के उपाधिभूत अंतःकरण के अत्यंत लय को प्राप्त हो जाने से निःसंस्कारात्मक साम्यावस्था की दशा हो जाती है, और उसके अनन्तर अचित् के प्रदेशान्तर में परिणाम होने से ईक्षणादिपूर्वक पुनः सृष्टि के प्रारम्भ होने पर पूर्वतन अंतःकरण-रूपी उपाधि के अनाविर्भाव से पृथक् उपाधि में प्रतिबिम्बित जीव मुक्त जीव से भिन्न है। ससंस्कारा साम्यावस्था में अंतःकरण का अत्यंत लय नहीं होता है। जिसने सृष्टि के अन्तर तत्त्वज्ञान को प्राप्त कर लिया है उसकी मुक्ति हो जाती है, और उसके उपाधि अंतःकरण के अत्यंत लय हो जाने से फिर उसके उद्भव का अभाव हो जाता है। क्योंकि कार्य की निःसंस्कार कारणावस्था में स्थिति अत्यंत लय के नाम से निर्दिष्ट हो सकती है। 'यह अंतःकरण व्यक्ति फिर न उत्पन्न होने के लिए कारणभाव को प्राप्त हो गया है,' यह बात परमेश्वर के ज्ञान का विषय होने के कारण वह दशा निःसंस्कार कारणावस्था के रूप में उपदिष्ट हो सकती है। अतएव सादि सृष्टि-पक्ष में भी सापेक्षता का प्रतिपादन किया जा सकता है।

यदि यह कहा जाय कि अनागतावस्था की निमित्तता की उपलब्धि नहीं हुई है तो इसके उत्तर में यह कहा जा सकता है कि जिस प्रकार चतुर वैद्य पूर्वरूप लक्षण के परिज्ञान से अनागतावस्थ रोग का निर्णय कर रोग की योग्यतापेक्षा से रोगी को औषधादि सेवन करने के लिए प्रवृत्त करता है उसी प्रकार यहाँ भी समझना चाहिए। केवल लोक में ही नहीं वरन शास्त्रों में भी यह बात पाई जाती है। जैसे भविष्य में सूर्य के संक्रमण से पूर्ववर्ती कालविशेष की पुण्यता सिद्ध होगी और ग्रहण पड़ने के समय कालविशेष भोजन के अयोग्य हो जाता है, तो जैसे उपर्युक्त दशा में पूर्व निमित्त के न होने पर भी स्नानादि कार्य के प्रति कर्ता को उसकी अपेक्षा रहती है उसी प्रकार भविष्यत्-काल-संबंधी धर्माधर्म की अपेक्षा से परमेश्वर चातुर्वर्ण्य की सृष्टि करता है। अतएव जीव के किसी विशेष कर्म के न होने पर भी सादि सृष्टि-पक्ष में वैषम्य और नैर्घृण्य दोष परमेश्वर को दूषित नहीं करते हैं। यदि यह कहा जाय कि इस प्रकार तो करुणासागर भगवान् की कारुणिकता का व्याघात हो जायगा तो इसके उत्तर में यह कहा जा सकता है कि यह उत्कृष्टतर उपाधिवाले जीवों के शुद्ध ज्ञान को, उत्कृष्ट उपाधिवाले जीवों का तरतमभाव से सुखा-तिरेक को, निकृष्ट उपाधिवाले जीवों का तरतमभाव से दुःख मोह को वस्तुस्वभाव से ही आकलन करनेवाले परमेश्वर की करुणा तो इस बात से सिद्ध है कि उसने दुःख, मोह को निराकरण करनेवाले उपायों को दर्शानेवाली श्रुति को संसार में प्रकट कर दिया है।

अब आगे पूर्व निराकृत वैषम्य और नैर्घृण्य दोषों की, इष्टापत्ति के रूप में, सप्रयोजनता सिद्ध की जाती है। क्योंकि चिदचिदात्मक ब्रह्म में सविरुद्ध और अविरुद्ध धर्मों का समावेश अयुक्त नहीं है। उदाहरणार्थ, कहीं वह निर्गुण तो कहीं वह सगुण कहा गया है, कहीं वह अकर्ता तो कहीं कर्ता के रूप में उसका वर्णन मिलता है। इस प्रकार श्रुति और स्मृति विरुद्ध प्रतीत होनेवाले समस्त धर्मों का ब्रह्म में प्रतिपादन करती हैं। ब्रह्म चिदचिदात्मक यानी उभयरूप है इसलिए उसके एक अंश में एक प्रकार के और दूसरे अंश में उसके विरुद्ध दूसरे प्रकार के धर्म ब्रह्म में कहे गये हैं। वैषम्य और प्रयोजन गुण के धर्म हैं और साम्य और निष्प्रयोजन चित् के धर्म हैं। इस प्रकार यह निःसंकोच रूप से कहा जा सकता है कि निरीश्वर-वादियों के आक्षेपों का खण्डन सादि सृष्टिवाद की दृष्टि से भी किया जा सकता है।

(अपूर्ण)

सृष्टि की संचालिका

लेखक, पण्डित मोहनलाल नेहरू

क्या वास्तव में स्त्री और पुरुष का कार्यक्षेत्र अलग अलग है ? कुछ लोगों की राय है कि परमेश्वर या प्रकृति ने तो केवल एक ही कार्यक्षेत्र बनाया था, परन्तु समाज ने उसे नीचा दर्जा देकर उसके वास्ते अलग कार्य-क्षेत्र बना दिया। दूसरे लोग कहते हैं कि यह बात नहीं है, हमने तो उसे गृहलक्ष्मी बनाया है, उसे देवी का पद दिया है, जिसकी हम रात-दिन आराधना करते हैं और उसी के साथ रक्षा भी करते हैं। उसके बदले में वह संतुष्ट होकर हमें पेट भर भोजन खिला दे तो कौन-सी बेजा बात है ? दोनों तरफ़ से ऐसी ही दलीलें दी जाती हैं, जो हमें चक्कर में डाल देती हैं।

अच्छी से अच्छी बात का दुरुपयोग हो जाता है। इसका सबसे अच्छा उदाहरण है हिन्दुओं का चौके का धर्म। हमारे जिन पूर्वजों ने बहुदेववाद में सामञ्जस्य लाने के लिए ब्रह्मा, विष्णु, महेश को परमात्मा की तीन शक्तियाँ बनाकर एक कर दिया था उनके कभी यह ध्यान में भी न आया होगा कि आगे चलकर चार तो क्या, हिन्दू-जाति हजारों जातियों में बँट जायगी, जो एक-दूसरे की जड़ काटने पर तत्पर रहेंगी। हमारे पूर्वजों ने जिन्होंने हमें स्वास्थ्य के खयाल से साफ़-सुथरी जगह में भोजन पकाने खाने का आदेश किया था, कभी

[कुमारी बुलबुल मित्रा, एम० ए० । नागपुर-विश्वविद्यालय से इतिहास लेकर एम० ए० करनेवाली आप सर्वप्रथम बंगाली महिला हैं]

यह न सोचा होगा कि बस, वहीं से हमारे धर्म का ख़ातमा हो जायगा और हिन्दू-धर्म सिर्फ़ चौके का धर्म रह जायगा।

कहा जाता है कि शुरू में चार वर्ण केवल भिन्न भिन्न प्रकार के काम करनेवालों के थे और हमने महाभारत इत्यादि ग्रन्थों में जो धर्म-ग्रन्थ समझे जाते हैं, ऐसे दृष्टान्त पढ़े भी हैं कि एक ही माता के पुत्रों में एक

[श्रीमती दीवान। आप बम्बई-महिला-विश्वविद्यालय की रजिस्ट्रार नियुक्त हुई हैं]

[कुमारी अंबिका धुरन्धर। आप रायल आर्ट सोसायटी लंदन की फ़ेलो चुनी गई हैं]

ब्राह्मण है तो दूसरा क्षत्री। कार्यक्षेत्र बाँट लेना बुरा नहीं, मगर उसका दुरुपयोग तो देखिए। चार से शायद चार हज़ार 'वर्ण' बन गये हैं, जो एक-दूसरे से ऐसी घृणा करते हैं जैसी साँप से नेवला। जिसे देखो वही अपने खास हक़ माँगने की दरख्वास्त लेकर सरकार बहादुर की सेवा में उपस्थित हो जाता है और हमारी गुलामी की मियाद बढ़ाता है।

ऐसा ही कुछ दुरुपयोग स्त्री और पुरुष के आपस के सम्बन्ध का भी हुआ जान पड़ता है। प्रकृति ने स्त्री का एक कार्यक्षेत्र पुरुष से ऐसा भिन्न बनाया है, जिससे समय समय पर उसे सहायक की ज़रूरत पड़ जाती है। यह ऐसी कमज़ोरी है जिसने शायद सभ्य होने पर उसे घर का काम अपने ऊपर लेने को राज़ी किया होगा। घर के कार्यक्षेत्र के जब यह मतलब नहीं थे कि बाहर के कामों में वह भाग न ले सके तब वह उस अपने अधिकार को पूरी तरह काम में लाती थी। एक दम्पति शास्त्रार्थ में उपस्थित थे, जहाँ पतिदेव परास्त हो गये और उनका विपक्षी अपना पुरस्कार माँगने की खुशी मना रहा था कि स्त्री गरज उठी कि अभी तू आधे अंग से ही जीता है, मैं तो अभी बाक़ी हूँ। शास्त्रार्थ फिर से जारी हुआ, जिसमें स्त्री सफल हुई।

सभ्य समाज में बिलकुल स्वतंत्र न स्त्री रह सकती है, न पुरुष। वे घर के कार्यक्षेत्र में एक-दूसरे के वैसे ही आश्रित हैं, जैसे सामाजिक कामों में समाज के अंग। अगर प्रत्येक नागरिक अपनी अपनी मर्ज़ी पर काम करने लगे और दूसरे की रोकथाम न हो तो जंगल का क़ानून ही नगर में जारी हो जायगा। उसी तरह अगर घर में स्त्री-पुरुष में सहयोग न हो तो घर में हरदम कलह और उपद्रव रहेगा। सहयोग हमेशा खुशी से नहीं दिया जाता, कभी कभी मजबूरी से भी दिया जाता है। मजबूरी केवल आर्डिनेन्सों-द्वारा ही नहीं होती। घर में उपद्रव बचाने की चाहना भी तो एक प्रकार की मजबूरी है। कभी पुरुष और कभी स्त्री उस उपद्रव के बचाने को दब जाते हैं तो घर में शान्ति रहती है। अगर एक ही तरफ़ दबना है तो वास्तव में वह शान्ति नहीं भय है। पुराने ज़माने में स्त्रियों में सहनशक्ति अधिक रही होगी और शान्ति की

[कुमारी कनक। आप कलकत्ता-विश्वविद्यालय की मैट्रिकूलेशन परीक्षा में सर्वप्रथम उत्तीर्ण हुई हैं]

चाहना भी अधिक रही होगी। इसी से उन्होंने पतिदेव तथा उनके कुटुम्बियों में शान्ति से रहने के वास्ते अपनी सहनशक्ति से या डर से ज्यादा काम लिया होगा। यहीं उसकी ही नहीं, उसकी लड़की और लड़की की लड़की इत्यादि की आदत हो गई और यों कहिए कि उसकी प्रकृति ही कहलाने लगी। इसका लाभ पुरुषों ने काफ़ी उठाया। यहाँ तक की स्त्री की सहनशक्ति के वास्ते नियम तक गढ़ दिये और उसे सहचरी नहीं, जन्म-जन्मान्तरों की अपनी दासी बना लिया। जो काम उसने किसी ज़माने में सहयोग देने को अपने ऊपर लिया होगा वह अब उसके वास्ते अनिवार्य हो गया। उसकी इच्छा कोई चीज़ ही नहीं रही।

पुरुष-समाज इतना बेवक़ूफ़ न था कि वह यह न जानता हो कि देर-सबेर स्त्री बग़ावत करेगी। इससे काग़ज़ पर उसने स्त्री का दर्जा ऊँचा कर दिया। उसे देवी का पद प्रदान किया गया। शीशे के टुकड़ों या पीली-सफ़ेद धातुओं के आभूषणों से उसकी पूजा की जाने लगी, यद्यपि वे धातुओं के टुकड़े तक उसका स्त्री-धन नहीं समझे गये। सारे कुल की शोभा स्त्रियों के भूषित होने पर ही कही जाने लगी (मनुस्मृति अ० ३ श्लोक ६२)। पिता, भाई, देवर और पति सभी को उसके भूषित करने का फल बताया जाने लगा (मनु० अ० ३ श्लोक ५५)। फिर क्या था? देवी जी फूल उठीं। पत्थर की देवियाँ तो फूल-फलों से संतुष्ट हो ही जाती थीं, जीती-जागती देवी कैसे हीरे-सोने-चाँदी से संतुष्ट न होगी? वह फँस गई और उस दशा को पहुँची, जहाँ से उभरने के वास्ते वह आज छटपटा रही है और ग़लत या सही सच्चे-झूठे इलज़ाम पुरुष-समाज पर लगा रही है। अब वह जान गई है कि उसको भूषित करना उसके आदर-सत्कार के वास्ते नहीं था, वरन इस वास्ते था कि यदि वह शोभित न होगी तो पति को हर्षित नहीं कर सकती (मनु० ३, ६१)।

ऐसा नहीं है कि उनमें से कुछ पहले भी बाग़ी न हो चुकी हों और आज भी न हो रही हों। मगर इतनी कम संख्या में बाग़ी हुईं और इतनी हलकी उनकी बग़ावत रही कि उसे हम नहीं के बराबर कह सकते हैं। ऐसा भी नहीं कि ऐसे पुरुष न हुए हों और आज भी न हों

[मिस मालती बाई शिर्के। आप गत दिनों मरहठा-महिला-कान्फ़्रेंस की सभानेत्री सर्वसम्मति से चुनी गई थीं]

[श्रीमती सुशीला बाई सप्तर्षि, बी० ए० । आप अहमदनगर के स्कूल बोर्ड की अध्यक्षा निर्वाचित हुई हैं]

जो ईमानदारी से स्त्री को बराबर का दर्जा या अपने से बड़ा दर्जा देने को तैयार न रहे हों। मगर उन्हें पुरुष-समाज जोरू का गुलाम कहकर अपमानित करता है। ऐसी स्त्रियाँ भी हुई और हैं जिन्होंने या तो बग़ावत के द्वारा या पुरुषों की राज़ी-खुशी से ऊँचा दर्जा पाकर स्वयं पतियों को दबाने की चेष्टा की और सफल हुईं। इन्हीं के उदाहरण देकर कुछ लोग स्त्रियों की स्वाधीनता का विरोध करते हैं। मगर ये सब मिसालें देखते हुए भी हमें यह मानना ही पड़ता है कि पुरुष-समाज के पास ही सारी ताक़त अभी अटकी है।

कोई भी ताक़तवर व्यक्ति अपनी ताक़त में घटती नहीं देख सकता। कांग्रेस का ज़ोर बढ़ते देखकर १९१० में हमारी सरकार बहादुर के अफ़सरों ने मुस्लिम-लीग खड़ी करा दी और कुछ दिन बाद मुस्लिम-लीग और कांग्रेस के मेल के भय से हरिजनों को उभार दिया। क्यों? इसी वास्ते कि एक-दूसरे की आड़ में जब तक भी हो सके, ताक़त बनाये रहें। प्रकृति ने हमें यही बताया है और आदमी की बुद्धि ने उसे पुष्ट किया है। समाज या उसका कोई व्यक्ति, स्त्री हो या पुरुष, अपनी ताक़त—अपना अधिकार छोड़ने को तैयार नहीं, चाहे उससे दूसरों का कितना ही हक़ मारा जाय।

कुछ लोग कहते हैं कि स्त्रियों का कार्यक्षेत्र घर के भीतर है। स्वयं परमात्मा ने उन्हें पुरुषों से भिन्न बनाया है। वे सृष्टि की संचालिकायें हैं, पुरुषों की मातायें हैं। उनके ऊपर पुरुषों के पालन-पोषण का बड़ा भारी भार है। वे क्यों दुनिया के धक्कों में पड़ें और हमारे कार्यक्षेत्र में दख़ल दें, जब हम उनके कार्यक्षेत्र में दख़ल नहीं देते? ईश्वर ने गर्भधारण करने को स्त्रियों को रचा और संतान पैदा करने को पुरुषों को रचा, ऐसा मनु महराज ने वेद के आधार पर कहा है (मनु० अ० ९ श्लोक ९६)। ये क्षेत्र तो उस समय से चले आये हैं जब से सृष्टि रची गई है। मनु जी के समय के बाद इन कार्यक्षेत्रों में न मालूम कितनी वृद्धि हो चुकी है, मगर अब भी हमारे समाज में करोड़ों ऐसे सज्जन मौजूद हैं जो स्त्रियों के वास्ते सभी क्षेत्र बन्द रखने पर तुले रहते हैं। हरदम उन्हें यही सोच रहता है कि किस तरह स्त्रियों को अपनी जगह से उठने न दें और जो जो क्षेत्र उसके वास्ते उन्होंने बनाये हैं उनके आगे वह न जाने पावे। मगर यह कितने दिन हो सकता है? दुनिया किस तेज़ी से चली जा रही है? ज़रूरत क्या स्त्री, क्या पुरुष, सभी को ऐसा काम करने पर मजबूर कर रही है जो कुछ दिन पहले वे स्वप्न में भी न करते।

इँग्लेंड में थोड़े ही दिन पहले स्त्री को उतने भी अधिकार न थे, जितने हिन्दू-स्त्री को मनु महराज तक दे चुके थे। उसे धनोपार्जन का अधिकार न था और यदि विवाहिता स्त्री धनोपार्जन करे तो वह उसके पति का हो जाता था। पर गत साठ वर्ष में उसने सारे ही अधिकार प्राप्त कर लिये, कुछ तो पुरुषों की राज़ी-खुशी, कुछ बहुत कुछ सत्याग्रह

करके। गत महायुद्ध में हमारे शासकों को युद्ध-क्षेत्र में स्त्रियों से काम लेने की ज़रूरत पड़ी। बस, उन्हें बराबरी का अधिकार मिल गया। कहते हैं, इसी तरह के कुल अधिकार जर्मन-स्त्रियों ने भी प्राप्त किये थे, मगर वे क़ायम न रख सकीं, क्योंकि वहाँ वर्तमान युद्ध के वास्ते बीस वर्ष से तैयारी हो रही थी और स्त्रियों को जन-संख्या बढ़ानी थी। उसके वास्ते वही प्राकृतिक कार्यक्षेत्र नियत किया गया और अधिक संतानें पैदा करनेवाली स्त्री को बड़े बड़े पुरस्कार मिलने लगे। जहाँ एक तरफ़ गोला-बारूद ज़ोरों से बन रहे थे, वहाँ दूसरी तरफ़ बच्चे उसी ज़ोर से पैदा हो रहे थे, जो आज विपक्षी के गोलों से भूने जा रहे हैं।

चीन में भी कुछ काल पहले स्त्री वैसी ही परतंत्र थी जैसी भारत में। पर्दे में लड़कियाँ रक्खी जाती थीं। पैरों में लोहे के जूते पहनाये जाते थे कि अपने पैरों बिना सहारे चल तक न सकें। मगर अब वे बिलकुल स्वाधीन हैं, वैसी ही जैसे पुरुष। यहाँ तक कि वायुयान उड़ाती हैं और सैनिकों में भर्ती होकर चीन के शत्रुओं को रणचंडी बनकर संहार करती हैं। जापान की स्त्री अभी वैसी स्वाधीन नहीं। वह अब भी अपना कार्यक्षेत्र घर में ही सीमित समझती है। उसने कोई आन्दोलन नहीं किया, न पुरुष-समाज को लड़ाई के वास्ते उसकी सेवाओं की ही ज़रूरत पड़ी।

भारतवर्ष में उलटी गंगा बही। यहाँ एक समय था जब स्त्री बिलकुल स्वाधीन थी। ऐसा राजा पाण्डु ने कुन्ती से कहा था। न जात बिरादरी का झगड़ा था, न अपनी मर्ज़ी के अनुसार विचरने में रोक-थाम। उसी भारतवर्ष में आज रोकथाम की सीमा नहीं रही। यही क्या कम है जो उसके बाक़ी बचे अधिकार जिनमें एक स्त्री-धन भी है, नहीं छीन लिये गये। कम से कम काग़ज़ पर यह अधिकार बाक़ी है और कोई भी समझदार स्त्री उससे लाभ उठा सकती है। वह खुद अपने तई माँ-बाप पर बोझा समझने लगी है, क्योंकि अपनी मर्ज़ी से पति बना लेना उसके वास्ते निन्दनीय बात है। वह तो उसके पिता को ही ख़रीदना है। जहाँ वह शास्त्रार्थ में अपने पति के विपक्षियों को परास्त कर सकती थी, वहाँ वह शास्त्रार्थ के मंच के पास तक नहीं फटक सकती और यदि हिम्मत करके ऐसा किया भी तो उसके तरफ़ उँगली उठाई जाती है। इससे ज़्यादा कुछ करने का अधिकार समाज तक को नहीं रह गया है। इस पर भी हमारे कुछ सज्जन 'उलझन' में ही पड़े रहते हैं कि वह हाथ से निकली जा रही है। कौन सा ऐसा काम है जो पुरुष करते हैं और स्त्री नहीं कर सकती सिवा उसके कि जो प्रकृति ने एक-दूसरे के वास्ते अलग अलग बनाया है। वे स्त्रियाँ जिन्हें पैदा होने के समय से अब तक यही शिक्षा दी गई है कि वे अबला हैं, कोई हलका बोझ तक नहीं उठा सकतीं, इस वास्ते नहीं कि वे कमज़ोर हैं, वरन इस वास्ते कि उन्हें वैसी शिक्षा दी गई है। स्त्रियाँ ही क्यों? हमारे धनी-मानी अधिकतर अपने हाथ में छोटे से छोटा पारसल तक उठाने में सकुचाते हैं। हालाँकि जिस कुली से उठवाते हैं उससे पैसे पैसे पर झगड़ा करते देखे गये हैं। यह तो सिर्फ़ आदत की बात है। हम तो पुरुष-समाज को यह सलाह देंगे कि दोनों हाथों में हिम्मत लेकर स्त्रियों को कुल क्षेत्रों में बराबरी का अधिकार दे दें और उससे पहले दें कि जब उन्हें अपने ही नहीं वरन हमारे भी अधिकार छीन लेने की ताक़त हो जाय। अगर अँगरेज़-सरकार की तरह रो-रोकर थोड़ा थोड़ा देना चाहेंगे तो परिणाम बुरा हो सकता है। याद रहे कि जो भी अधिकार अभी तक स्त्री को मिल चुका है वह पुरुष-सुधारकों की ही शिक्षा का नतीजा है। अब स्त्रियों का भी आन्दोलन शुरू हो चुका है, उसे बुरी तरफ़ न जाने देने का एक ही तरीक़ा है, और वह यह है कि उनकी उचित माँगें पूरी की जायँ। खाली मज़ाक उड़ाने से काम न चलेगा।

यौवन-व्यथा
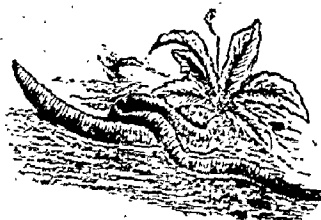
[श्रीयुत शैलेन्द्रभूषण दे, ११४ ए० लेक रोड कालीघाट, कलकत्ता के सौजन्य से
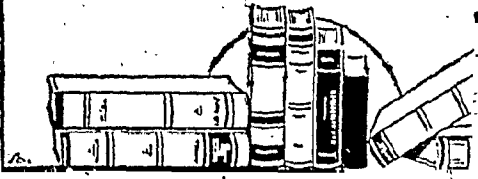
१—ग्राम्या—लेखक, श्री सुमित्रानन्दन पंत और प्रकाशक तथा विक्रेता, भारतीभंडार लीडर प्रेस, प्रयाग हैं। पृष्ठ-संख्या १०८ और मूल्य १।) है। छपाई और गेट-अप सुन्दर और आकर्षक है। ग्राम्या में 'युगवाणी' के बाद की रचनायें दी गई हैं, जिनका रचना-काल दिसम्बर १९३९ से फ़रवरी १९४० तक है।

"युगवाणी' में कवि ने अपने काव्य के विषय में कुछ सिद्धान्त स्थिर किये थे, जिनके अनुसार रचना करके वह एक नये युग की मूक भावनाओं को वाणी प्रदान करने का आयोजन कर रहा था। उस सैद्धान्तिक तैयारी के बाद कवि वास्तविक काव्य की सृष्टि करेगा, यह आशा करना स्वाभाविक था।

'युगवाणी' के सम्बन्ध में कहा गया था कि श्री सुमित्रानन्दन पंत सुकुमार प्रवृत्तियों के कवि हैं, उनका मन सौन्दर्य, कोमलता और मधुरता में सहज रूप से रमता है। इसीलिए गाँव के नीरस और कठोर वातावरण में आकर उनका कवि अपने को परदेशी-सा पाता है। पिछले दिनों की याद करके वह कसकते हुए दर्द के साथ कहता है—

यहाँ न 'पल्लव' वन में मर्मर,
यहाँ न मधु विहगों में 'गुंजन,'
यहाँ धरा का मुख कुरूप है,
कुत्सित गर्हित जन का जीवन।

× × ×

सुलभ यहाँ रे कवि को जग-में,
युग का नहीं सत्य शिव सुन्दर।

वास्तव में यह हर्ष की बात है कि कवि ने 'सत्य, शिव, सुन्दर' का मोह त्यागकर इस नये पथ का अनुसरण किया है। इसकी कठिनाइयों से अब तक उसका अधिक परिचय नहीं रहा है; परन्तु फिर भी उसमें कल्पना, संवेदना और सहानुभूति की कमी नहीं है। वास्तव में 'ग्राम्या' की रचना ग्रामीणों के प्रति कवि की सहानुभूति का ही परिणाम है। अपनी कल्पना और संवेदन-शक्ति के बल पर उसने 'कुरूप' गाँवों के 'कुरूप निवासियों के कुत्सित और गर्हित' जीवन को चित्रित करने की कोशिश की है। इन चित्रों में गाँवों के नर-नारी, पशु-पक्षी, खेत-मैदान, पेड़-पौधे सभी आ गये हैं। कुछ चित्र देखिए—

गाँव के सामान्य वातावरण का एक चित्र है—

आता मौन प्रभात अकेला, संध्या भरी उदासी,
यहाँ घूमती दोहपरी में स्वप्नों की छाया-सी।

× × ×

झाड़-फूस के विवर,—यही क्या जीवन शिल्पी के घर?
कीड़ों से रेंगते कौन थे? बुद्धि प्राण नारी नर?
यह रवि-शशि का लोक,—जहाँ हँसते समूह में उडगण,
जहाँ चहकते विहग, बदलते क्षण-क्षण विद्युत् प्रघन।

× × ×

यहाँ वनस्पति रहते, रहती खेतों की हरियाली,
यहाँ फूल हैं, यहाँ ओस, कोकिला, आम की डाली!

× × ×

प्रकृति धाम यह तृण तृण, कण कण जहाँ प्रफुल्लित जीवित,
यहाँ अकेला मानव ही रे चिर विषण्ण जीवन्मृत!!

× × ×

ग्रामयुवती—

पनघट पर
मोहित नारी नर!
सब जल से भर
भारी गागर
खींचती उबहनी वह, बरबस
चोली से उभर उभर कसमस
खिंचते सँग युग रस भरे कलश;—
जल छलकाती,
रस बरसाती,
बल खाती वह घर को जाती,
सिर पर घट
उर पर धर पट

× × ×

वीथियों का नृत्य—

वह काम-शिखा-सी रही सिहर
नटकी कटि में लालसा भँवर,
कँप-कँप नितंब उसके थर-थर,
भर रहे घंटियों में रतिस्वर
लो छन छन छन छन
छन छन छन छन
मत्त गुजरिया हरती मन!

× × ×

गाँव के लड़के—

मिट्टी से मटमैले तन,
अधफटे कुचैले, जीर्ण वसन—
ज्यों मिट्टी के हों बने हुए
ये गँवई लड़के—भू के धन!

× × ×

टहनी-सी टाँगें, बड़ा पेट,
टेढ़े मेढ़े, विकलांग घृणित।

× × ×

संध्या के बाद—

माली की मँड़ई से उठ,
नभ-के-नीचे-नभ-सी धूमाली।
मन्द पवन में तिरती,
नीली रेशम की-सी जाली।
बत्ती जला दुकानों में,
बैठे सब क़स्बे के व्यापारी,
मौन मन्द आभा में,
हिम की ऊँघ रही लम्बी अँधियारी।

इस प्रकार के और भी चित्र 'ग्राम्या' में मिल सकते हैं।

यद्यपि कवि 'मुझे रूप ही भाता' कहकर हमें बता चुका है कि उसने सूक्ष्म और 'स्वप्निल' भावनाओं का चित्रण छोड़कर स्थूलता को अपनाया है, फिर भी अन्तर्जगत् के अस्तित्व को उसने स्पष्ट रूप से स्वीकार किया है, और उसके चित्रण को भी उसने सर्वथा तिलांजलि नहीं दे दी है। वास्तव में ग्राम्या की सफलता को हम गाँवों की आत्मा को सच्चे रूप में चित्रित पाकर ही घोषित कर सकते हैं—इसी से हम जान सकेंगे कि कवि में ग्रामीण भावनाओं की अनुभूति कितनी गहरी है। परन्तु इस ओर ध्यान देने के पहले हमें कवि का 'निवेदन' पढ़ लेना चाहिए, जिसमें वह कहता है 'इनमें पाठकों को ग्रामीणों के प्रति केवल बौद्धिक सहानुभूति ही मिल सकती है। ग्राम-जीवन में मिलकर, उसके भीतर से, ये अवश्य नहीं लिखी गई हैं। ग्रामों की वर्तमान दशा में वैसा करना केवल प्रतिक्रियात्मक साहित्य को जन्म देना होता।'

इसी प्रतिक्रियात्मक साहित्य से बचने के लिए उसने गाँवों को दूर से ही देखने का निश्चय किया है। किसी ग़रीब बुड्ढे को देखकर वह कहता है—

भूखा है; पैसे पा, कुछ गुनगुना!
खड़ा हो जाता वह धर,
पिछले पैरों के बल उठ,
जैसे कोई चल रहा जानवर!
काली नारकीय छाया निज,
छोड़ गया वह मेरे भीतर,
पैशाचिक-सा कुछ दुःखों से,
मनुज गया शायद उसमें मर!

'कठपुतले' शीर्षक में वह कहता है—

× × ×

ये मनुजाकृति ग्रामिक अगणित!
स्थावर, विषण्ण, जड़वत्, स्तंभित!
किस महारात्रि तम में निद्रित
ये प्रेत?—स्वप्नवत् संचालित!
किस मोह मंत्र से ओ कीलित
ये दैवदग्ध, जग के पीड़ित!!

× × ×

ये मानव नहीं जीव शापित,
चेतनाविहीन, आत्मविस्मृत!

यदि कवि के हृदय में उनके प्रति करुणा न होती तो वह उनकी ओर देखता ही क्यों? सचमुच इस कुरूपता को देखकर उसे अत्यन्त ग्लानि होती है। यदि उसका बस चलता तो वह इस ओर एक बार भी दृष्टिपात न करता। परन्तु जो चीज़ दिन-रात आँखों के सामने रहे उनकी ओर से आँखें मूँद लेना कहाँ तक संभव है? सच तो यह है कि—'सारा भारत है आज एक रे महाग्राम!' और

इस सचाई को कवि ने क्रियात्मक रूप से स्वीकार किया है। यह दूसरी बात है कि वह ग्रामीणों को केवल अपनी बौद्धिक सहानुभूति दे सका; उसकी स्थिति में कोई दूसरा कवि जिसका ग्रामीण जीवन से—उसकी आत्मा—से गहरा परिचय होता, संभव है, उन पिशाचरूप ग्रामीणों में 'मनुष्यत्व' के ही नहीं, देवत्व के भी थोड़े-बहुत मूलतत्त्व ढूँढ़ सकता, संभव है, उसे उनके 'कुत्सित' जीवन में भी कुछ ऐसी प्रवृत्तियाँ मिल जातीं जिन्हें उभाड़कर वह उनके भीतर नवीन युग की नवीन संस्कृति के बीज बो सकता। प्रस्तुत कवि की प्रगति-शीलता ग्रामीणों को केवल मानव-सामग्री के ढेर के रूप में देखती है; वह केवल इतना मानता है—

मनुष्यत्व के मूल तत्त्व ग्रामों में ही अंतर्हित,
उपादान भावी संस्कृति के भरे यहाँ हैं अविकृत।

जो 'जन-जीवन' आज उसे प्रिय लगा है उसका कुछ भी आभास उसे गाँवों में न मिला; जिन 'कठपुतलों' में वह चेतना और यह महदाकांक्षायें संचारित करना चाहता है उनमें उसे कोई ऐसी प्रवृत्तियाँ न दिखाई दीं जिनका वह उपयोग कर सकता। हम नहीं जानते कि ग्रामीणों में सच्चे प्रेम, सच्चे त्याग, सहानुभूति, सहकारिकता आदि भावनाओं का चित्रण करके कोई कवि क्यों प्रतिक्रियावादी कहलायेगा? यह ठीक है कि हमें एक नये जीवन का, नई संस्कृति का निर्माण करना है, परन्तु कोई भी संस्कृति हो, कोई भी समाज हो, उसकी नींव आकाश में नहीं पड़ सकती। जिस ज़मीन में वह नींव डाली जायगी, जिन उपकरणों से उसकी दीवार बनाई जायगी, उनको भीतर से—विश्लेषण करके—परखना पड़ेगा। 'ग्राम्या' के कवि ने ऐसा करने की आवश्यकता नहीं महसूस की। इस प्रकार 'ग्राम्या' हमारे गाँवों का पूरा पूरा परिचय नहीं देती। ऐसा परिचय देने के लिए 'ग्राम-जीवन' में मिलकर, उसके भीतर से लिखना आवश्यक था।

'ग्राम्या' ग्रामीणों के लिए भी नहीं लिखी गई है; क्योंकि जो 'कर्दम में पोषित जन्मजात' हैं वे इस 'नवीन संदेश' को कैसे सुनें और समझ सकेंगे? स्पष्ट ही ये कवितायें उन लोगों के लिए लिखी गई हैं जिनके ऊपर शायद नई संस्कृति के निर्माण और प्रसार का उत्तरदायित्व है। संभवतः वे लोग बौद्धिक मध्यम वर्ग के व्यक्ति हैं। उन्हीं से कवि कहता है—

इनमें विश्वास अगाध, अटल,
इनको चाहिए प्रकाश नवल,
भर सके नया जो इनमें बल!

परन्तु यह मध्यम वर्ग तो 'शिक्षा के सत्याभासों से पीड़ित है; उसकी आधुनिकता के लिए कवि ने 'मार्जारी' की उपमा दी है। फिर भी उसे सिद्धान्त-प्रतिपादन तो करना ही है, और ग्राम्या की अधिकांश कविताओं में सिद्धान्त की बातें कही गई हैं। इस सिद्धान्त के विषय में 'युगवाणी' के संबंध में बहुत कुछ कहा जा चुका है। कवि में द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद के प्रति प्रेम भी है, महात्मा गांधी के प्रति श्रद्धा भी है, चर्खे की प्रशस्ति भी उसने गाई है और उसने यह भी कहा है—

'राजनीति का प्रश्न नहीं रे आज जगत के सन्मुख,
अर्थ साम्य भी मिटा न सकता मानव-जीवन के दुख
× × ×
आज विकट सांस्कृतिक समस्या जग के निकट उपस्थित।

बात असल में यह है कि श्री सुमित्रानंदन पंत कवि हैं; जिन संस्कारों में उनके कवि-जीवन का निर्माण हुआ है उन्हें वे नवीन सिद्धान्तों के बोझ से दबा नहीं सकते। उनका सौन्दर्य-प्रेमी मन बरबस 'सुन्दर' की ओर खिंच जाता है। 'ग्रामश्री', 'रेखा चित्र', 'स्वीट पी' 'खिड़की से' आदि कवितायें हमारे कथन की पुष्टि करती हैं। उनका 'वर्ग-हृदय' गाँवों में जाकर ग्रामश्री पर तो मोहित हो गया, पर गाँवों की आत्मा से उसका परिचय न हो सका। घोषणा तो उन्होंने सकल 'विश्व को ग्रामीणनयन से' देखने की और 'जीवन पर जन मन से' सोचने की की है, पर कदाचित् उन्हें इस दुस्तर कार्य में पर्याप्त सफलता नहीं मिल सकी है। फिर भी 'ग्राम्या' नई दिशा में एक स्तुत्य प्रयोग है।

प्राकृतिक सौन्दर्य के दृश्य अंकित करना पंत जी की एक विशेषता है। 'ग्राम्या' में ऐसे चित्र प्रचुर संख्या में हैं। 'गुंजन' में प्रकाशित 'नौका विहार' काफ़ी पसन्द की गई थी, इस संग्रह में भी 'गंगा' का चित्र है; परन्तु कवि को अब उससे संतोष नहीं होता, क्योंकि वह जान गया है कि—

इस जड़ गंगा से मिली हुई—
जन-गंगा एक और जीवित!

हमें आशा और विश्वास है कि कवि भविष्य में 'जन-गंगा' की लहरों को, उनके ऊपर नौका-विहार करके नहीं, बल्कि उनके भीतर गोता लगाकर, समझने की कोशिश करेगा; और उन लहरों में एक तीव्र आन्दोलन, एक गहरी हलचल पैदा कर सकेगा। परन्तु हमें कवि का संस्कार-जन्य स्वभाव देखकर कुछ शंका अवश्य होती है, क्योंकि 'ग्राम्या' में भी वह 'दिवास्वप्न' देखता हुआ कहता है—

वहीं कहीं जी करता मैं जाकर छिप जाऊँ,
मानव-जग के क्रन्दन से छुटकारा पाऊँ।
प्रकृति-नीड़ में व्योम-खगों के गाने गाऊँ,
अपने चिर स्नेहातुर उर की व्यथा भुलाऊँ!

फिर भी हमें आशा करनी चाहिए कि ऐसा नहीं होगा। हिन्दी-जगत् को 'ग्राम्या' का स्वागत करना चाहिए।

—व्रजेश्वर

२—पड़ोसी—लेखक, ठाकुर श्रीनाथसिंह, प्रकाशक, नेशनल लिटरेचर कम्पनी, १०५ काटन स्ट्रीट, कलकत्ता हैं। पृष्ठ-संख्या १६८, मूल्य १।=) है।

पड़ोसी में लेखक की १२ चुनी हुई कहानियाँ संगृहीत हैं। सभी कहानियाँ देहाती जीवन की मधुर घटनाओं पर किसी न किसी विशेष उद्देश्य से लिखी गई हैं। आधुनिक कहानियों के पात्रों और पात्रियों की भाँति ठाकुर साहब के पात्र प्रेम और रोमांस के सागर में डूबकर अपने को खो नहीं देते। वे घटनाओं के वश में न होकर उन पर ही विजय प्राप्त करने का साहस रखते हैं, उनमें आत्म-विश्वास, साहस और त्याग की भावना है; अपने अपकारियों से वे बदला लेने का विचार न रखकर विशाल-हृदयता के साथ उन्हें क्षमा कर देते हैं। लगभग सभी कहानियों का मनोविज्ञान यही है। वे अपकार, घृणा और तिरस्कार का उत्तर प्रेम, उपकार, और उत्सर्ग से देते हैं। ठाकुर साहब की कहानियों की यही फ़िलासफ़ी है। कहानियाँ कोरी मनोवैज्ञानिक नहीं हैं, फिर भी जिस मनस्तत्त्व का विश्लेषण उनमें किया गया है वह लेखक को पाठक के हृदय तक पहुँचा देता है। ग्रामीण-जीवन की सरलता, सौम्यता और निश्छलता में पलनेवाले पात्रों की अवतारणा से लेखक अपने उद्देश्य की पूर्ति में भले प्रकार सफल हुआ है। पड़ोसी कहानी में साम्प्रदायिक विभिन्नता होने पर भी मिर्ज़ा जी अपने पड़ोसी रानी को उसी प्रकार पालते और उसका विवाह करते हैं जैसे एक पिता कर सकता है। 'क्या वह ख़ूनी था', 'बच्चा किसका है?' 'भोली', 'खेत की चुड़ैल' और 'गाँव की लड़की' संग्रह की श्रेष्ठ कहानियाँ हैं। प्रत्येक कहानी में लेखक एक भिन्न वातावरण, भिन्न उद्देश्य, और नई समस्या लेकर उपस्थित होता है। हर कहानी अन्त में पाठक के हृदय में एक चीज़ छोड़ जाती है, उसके लिए विचार करने का मसाला उपस्थित कर देती है और पाठक कहानियों के पात्रों के काल्पनिक जगत् में सत्य जगत् का अनुभव करने लगता है। लेखक गाँवों की श्रेष्ठता का प्रचारक है। वह अपनी कहानियों के द्वारा दुनिया से कहना चाहता है कि यदि ईमानदारी, सचाई, सरलता और प्रेम कहीं है तो केवल गाँवों में। यही एक स्वर सभी कहानियों में एक-रूप से व्याप्त है। गाँव की लड़की हाई-कोर्ट के जज के लड़के के साथ ब्याही जाकर कितनी शीघ्र उच्च कोटि के घर में हिलमिल जाती है कि फिर उसमें गाँव के वे चिह्न ही नहीं मिल सकते। साथ ही जज साहब केवल एक साधारण-सी बात के लिए उस ग़रीब की लड़की से अपना लड़का ब्याह देते हैं। 'बच्चा किसका है' कहानी में वृद्ध पिता की और शायद लेखक की भी एक जिज्ञासा है—'जीवन क्या है सत्य को छिपाना या उसका प्रकट कर देना।' और इसी लिए उसने, आवश्यकतानुसार, अपनी कहानियों में सत्य को छिपाया और प्रकट किया है।

ठाकुर साहब की भाषा रोज़मर्रा की, साफ़ और मँजी हुई है। उसमें साहित्यिक क्लिष्टता का एक प्रकार से बिलकुल ही अभाव है। कथानकों, पात्रों और भाषा का सामंजस्य बहुत ही अनुरूप हुआ है। कहानी-साहित्य में ठाकुर साहब की अपनी एक शैली है, जिसमें उनका कोई प्रतिद्वन्द्वी नहीं है। ग्रामीण-जीवन की सच्ची और अनुभूति-पूर्ण झलक देने में ही उनकी सफलता है। सभी कहानियाँ पठनीय हैं। लेखक ने हिन्दी-साहित्य को अपनी एक ख़ास चीज़ प्रदान की है, जिसका हिन्दी-जनता स्वागत करेगी!

अनन्तप्रसाद विद्यार्थी, बी० ए०

इस कहानी पर द्वितीय काशीराम-पुरस्कार दिया गया है।
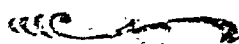
धरना*

लेखक, श्रीयुत इक़बाल वर्मा, 'सेहर'

(१)

११ नवम्बर सन् १९३० ई० एक बजे दिन। नित्या ने अभी दोपहर का खाना अकेले ही खाकर अपने दूध-पीते बच्चे को सुलाते हुए स्वयं नींद में तनिक आँखें बन्द की थीं कि स्थानीय कांग्रेस-कमिटी के डिक्टेटर श्री, उमानाथ ने सहसा घर में प्रवेश किया। पति महोदय के आने की आहट पाकर नित्या अपनी झपकी हुई आँखों को खोलकर उठने को तैयार हुई कि बच्चा उससे और भी चिमटकर उसे रोकने का प्रयत्न कर चला और वह ज्यों की त्यों पड़ी रह गई। उमानाथ ने कुछ कड़े और व्यंग्य-भरे स्वर में कहा—तुम्हारे लिए तो सदा जेठ-वैसाख ही बना रहता है। जब देखो वही सोना, सोना, सोना! न जाने इस घर में कहाँ की नींद फट पड़ी है।

नित्या (उसी स्वर में)—ठीक है। मैं सदा सोती ही रहती हूँ और तुम्हारी गृहस्थी का सब काम आपसे आप सदा हो जाता है। तनिक बच्चे को लेकर लेटी कि आफ़त आ गई।

"बस, जब देखो, वही बच्चे का बहाना! जब बच्चा नहीं था तभी तुम कौन बड़ी जागनेवाली थीं?"

"तो मैं आदमी नहीं हूँ क्या? आदमी काम ही के लिए तो नहीं बना, उसे काम के लिए आराम भी चाहिए।"

"और मैं भी तो मनुष्य हूँ, जो पैसे के लिए दिन-रात मारा मारा फिरता हूँ।"

"पैसे के लिए कि स्वराज्य के लिए?"

"पैसा स्वराज्य से ही होगा।"

"मैं तो अभी से स्वराज्य का सुख भोग रही हूँ। कभी-कभी इस घर में दिन-रात अकेले ही पड़े पड़े बीत जाता है, खासकर जब से महात्मा का यह हालवाला आन्दोलन शुरू हुआ।"

"अभी क्या? तुम पूरा सुख तभी भोगोगी जब मैं जेल में होऊँगा!"

"अच्छा बेकार की बकवास ठीक नहीं। अब खा-पीकर थोड़ा आराम करो। मुझे तो वह बच्चा अभी उठने न देगा। तुम्हारी बक-बक से तो जैसे इसकी नींद और उचट-सी गई है।"

"इसके यह मानी कि मुझे खुद रसोई-घर जाना पड़ेगा। खैर, खाना तो अपने हाथों है ही, परोसना भी अपने हाथों सही।"

"तो मैं कब तक तुम्हारी राह देखा करूँ? तुम्हारे आने-जाने का कभी कुछ ठीक भी रहता है।"

"आज तो किसी खास काम से बाहर भी नहीं गया था। कुछ मित्रों में ही बातचीत हो रही थी।"

उमानाथ ने चलताऊ स्नान किया और तुरन्त ही रसोई-घर में जाकर खाना शुरू कर दिया। इधर नित्या अपने लाडले बेटे को सुलाते-सुलाते स्वयं भी सो गई। पति-पत्नी में वैसी बातें प्रायः नित्य ही हुआ करती थीं, अतः न तो उनके दिलों पर कोई विशेष प्रभाव ही पड़ता था और न किसी मनमुटाव की सूरत ही पैदा होती थी। दोनों अपने-अपने मार्ग पर दृढ़ थे, कोई तनिक भी डिगना न जानता था।

अधिनायक महोदय भोजन से निवृत्त हो उठे तब उन्हें फिर वही निद्रा का निस्तब्ध दृश्य दिख पड़ा। पत्नी को हिलाते हुए बोले—अरे, फिर सो गई। तुम्हारी इस नींद की बलिहारी! रोज़ के कहते न तो अब मुझमें ग़ैरत बाक़ी है, न तुममें।

पत्नी जी की निद्रा में पुनः विघ्न पड़ा तब कुछ बिगड़ उठीं। बोलीं—न जाने तुम्हें मेरे आराम से क्या चिढ़ है कि मुझे ज़रा अपनी कमर भी सीधी करना मुश्किल हो जाता है। अब कौन-सा काम बाक़ी रह गया कि फिर मेरे सिर पर सवार हो गये? घूम-फिर आये, खा-पी चुके अब ज़रा आराम करो और मुझे भी आराम की साँस लेने दो।

उमानाथ (कुछ बिगड़कर)—फिर वही आराम आराम की रट! तुम्हें आराम बदा है सो आराम करो।

*कहानी कहानी ही है, फिर भी कुछ सच्ची घटनाओं के आधार पर लिखी गई है जिन्हें सदाशयतापूर्वक ही कहानी का रूप दिया गया है। —लेखक

मेरे भाग्य में आराम कहाँ? (कुछ नर्म पड़ते हुए) सुनो, आज कांग्रेस की एक बड़ी ज़रूरी मीटिंग है। उसमें मुझे इसी समय जाना है।

"तो क्या मुझे भी अपने साथ ले चलोगे? जाना है तो चुपके-से चले जाओ। मुझे क्यों छेड़ते हो?"

"अच्छा तो कृपाकर मेरे खद्दरवाले ज़रूरी कपड़े निकाल दो और फिर निश्चिन्त होकर सो रहो। तुम जानती हो कि ऐसी सभाओं में रोज़ के कपड़े पहनकर जाना एक कांग्रेसी अधिनायक के लिए ठीक नहीं।"

निर्मला (उठते हुए)—ख़ैर, कपड़े तो मैं निकाले ही देती हूँ, पर जैसा मैं कई बार कह चुकी हूँ, मुझे यह तुम्हारी दुरंगी चाल कभी पसन्द नहीं। खद्दर को अच्छा समझते हो तो हर वक़्त उसे ही क्यों नहीं पहनते?

"इतना पैसा कहाँ से आये?"

"इतने-उतने पैसे का क्या ज़िक्र? ख़ुद कातो, बुनो और पहनो।"

"यह काम भी तुम्हीं कर दिया करो।"

"जी हाँ! तो मेरे माथे कांग्रेस के अधिनायक बनने चले हो? मुझे चौका-चूल्हा, चक्की-झाड़ू से ही फ़ुर्सत कहाँ कि और धन्धा लेकर बैठूँ? (कपड़े देते हुए) लो, यह अपना सामान, भेष बदलो और अपने काम पर जाओ।"

उमानाथ (ग्लानि-मिश्रित क्रोध से)—तुम हो औरत, अक्ल से ख़ाली! दुनिया के सारे काम इसी तरह चलते आये हैं और चलते रहेंगे।

"ठीक"!

(२)

उसी दिन तीन बज रहा है। कांग्रेस की एक बड़ी सभा हो रही है। उमानाथ कुछ ग्रामीण नेताओं-सहित एक लम्बे-चौड़े तख़्त पर बैठे हुए हैं, जिसके पास ही एक ऊँचे बाँस से लगा हुआ कांग्रेस का तिरंगा झंडा काफ़ी ऊँचाई पर हवा में लहरा रहा है। बाक़ी लोग नीचे फ़र्श पर बैठते जा रहे हैं। अच्छा जमाव है, फिर भी आनेवाले अभी तक आते जा रहे हैं। इने-गिने खद्दरधारियों को छोड़कर कुछ लोग तो आधे कपड़े मिलों के पहने हुए हैं और अधिकतर पूरे के पूरे। हाँ, जिह्वा पर 'महात्मा गांधी की जय' वाली ध्वनियाँ और हाथों में छोटी छोटी तिरंगी झंडियाँ अवश्य दिख रही हैं। देहातों में इन्हीं दोनों का तो महत्त्व ही है और देहातियों की दृष्टि में यही दोनों काफ़ी भी समझी जाती हैं। आगन्तुकों के शरीर और वस्त्रों में साधारण स्वच्छता का भी अभाव है, जिसे राह की धूल और जाड़े की ख़ुश्की ने कुछ अधिक बढ़ा दिया है। पर उत्साह का यह हाल है कि ग़रीब देहातियों के मुरझाये हुए चेहरों पर भी सजीवता दिख रही है।

उमानाथ बोलने के लिए खड़े हुए। सुननेवाले सँभल बैठे। तालियाँ बजीं और व्याख्यान शुरू हुआ—"भाइयो! यह तो आप देख ही रहे हैं कि इस समय हमारा आन्दोलन किस वेग से आगे बढ़ रहा है और हम सब किस शीघ्रता से स्वराज्य के समीप पहुँच रहे हैं। नौकरशाही बेहाल है और अब उसका दम निकलने में थोड़ी ही कसर है! उसके घोर दमन का असर हम पर तो है ही, पर हमसे ज़्यादा ख़ुद उसी पर पड़ रहा है। यह सब आप ही लोगों की बदौलत है। परन्तु एक बात मैं बड़े ज़ोरों से कहूँगा कि सबको व्यवस्था और नियम का पूरा ख़याल होना चाहिए। देखिए, आज ही एक बजे दिन से ही सभा शुरू होने की सूचना दी गई थी और आपने यहाँ आते-आते तीन बजा दिये। (ज़रा जोश से) मैं तो आप लोगों के लिए दिन-रात मरा जा रहा हूँ और आप हैं कि आराम से खाने-पीने और शायद कुछ सो लेने के बाद ही मानो एक फ़ाज़िल से काम के लिए घर से रवाना होते हैं। ऐसा तो न होना चाहिए। दूसरी बात यह कि मैं आप लोगों के बदन पर बराबर मिलों के ही कपड़े देख रहा हूँ। यह ठीक है कि खद्दर महँगा मिलता है, पर आपसे चढ़े मोल लेने को कौन कहता है? ख़ुद सूत कातिए, खद्दर बुनिए और फिर उसी को पहिनिए। स्वराज्य कोई ऐसी-वैसी चीज़ नहीं कि बिना परिश्रम और कष्ट-सहन के ही मिल जाय। तीसरी ख़ास बात सच्ची अहिंसा की है, जो कांग्रेस-मैनों के लिए बहुत ही ज़रूरी है। (जोश में कुछ अकड़कर) संक्षेप में यदि मुझसे कहा किया जाय तो आप लोगों का सारा जीवन मेरा जैसा ही होना चाहिए! (कुछ सँभलकर) मानों आपमें से हर एक में अधिनायक बनने की योग्यता हो। अब देर हो रही है। आप लोगों को घर वापस जाना है और मुझे भी कुछ ज़रूरी प्रोग्राम पूरा

करता है, अतः सभा भंग की जाती है। सब ठीक समय पर आगये होते तो कुछ और निवेदन करता। अस्तु!"

सभा विसर्जित हुई। लोग महात्मा गांधी का जय-घोष करते वापस चल पड़े। केवल उमानाथ कुछ प्रमुख नेताओं के साथ मंच पर पुनः बैठ गये।

सारंगधर—आज तो आपने अच्छी डाँट बताई।

उमानाथ—अरे भाई! ये देहाती कौवे इसी तरह मानते हैं। थोड़ी तारीफ़ कर दी, थोड़ी लानत-मलामत। सब खुश भी रहे और अपना रोब भी बना रहा। अच्छा बताओ, उस बजाज से जुर्माने की रक़म वसूल हुई या नहीं जिसने कांग्रेसमैनों के प्रति, बाजार में धरना देते समय, गाली-गलौज की थी?

"बड़ी मुश्किल से वसूल हुई। जब उसके घर के चारों ओर स्वयंसेवकों का घेरा डाल दिया गया और स्त्रियों का बाहर-भीतर आना-जाना तक बन्द हुआ तब कहीं जाकर काम चला।"

"ये बदमाश इसी तरह तो राह पर आते हैं।"

रामटहल—आज एक और सूचना मिली। निमहा गाँव के दमड़ी किसान ने अपना एक बूढ़ा बैल क़साइयों के हाथ बेच डाला है। हमारे स्वयं-सेवक मना करते रहे, पर उसने एक न सुनी।

सारंगधर—वाह, तो इसमें कांग्रेस के प्रति क्या अपराध?

उमानाथ—भाई! तुम सोच-समझ कर बात नहीं कहते। अपराध तो है ही! कांग्रेस ने अहिंसा का व्रत ले रक्खा है,। जब छोटी-छोटी बातों में उसका ख़याल न होगा तब बड़ी में हो चुका! भाई रामटहल! उस पर जुर्माना कीजिए—बैल की क़ीमत भर सही।

रामटहल—"उचित ही है। और फिर काफ़ी पैसा न होगा तो वह इक्का-घोड़ा कैसे रक्खा जा सकेगा, जो हम लोगों के दौरे के लिए बहुत जरूरी है और जो हमारी कमिटी में पास भी हो चुका है?"

सारंगधर—बहुत ठीक! अच्छा अब उस चरस-भंग के ठेकेदार का क्या हो जो अपनी हरकतों से बाज़ नहीं आ रहा है?

उमानाथ—यह क़स्बे का मामला है। ठेकेदार के प्रति ऐसी कोई कार्यवाही न होनी चाहिए जिससे हमारी बदनामी हो, गाहकों को समझा-बुझाकर तोड़ा जाय।

"समझाने बुझाने का कोई प्रभाव हो तब तो।"

"तो चरखा सेवावाली तरकीब से काफ़ी काम लिया जाय।"

सबके सब हँस पड़े।

उमानाथ (कुछ सोचकर)—क्यों भाई गंगासरन! उस सलीम मियाँ की भी कुछ खबर है जो महीनों पहले कांग्रेस का सदस्य बना था? पीरपुर तो तुम्हारे गाँव के निकट ही है।

गंगासरन—अच्छा, वह फ़क़ीर-सा आदमी! सुना, बड़ा विकट कार्यकर्ता है—जैसा एक कांग्रेसमैन को वाक़ई होना चाहिए। दो-एक बार तो हमारी सभा में दिख पड़ा है, पर आपको ख़याल न होगा। सुना, वह हमारी सभाओं से सन्तुष्ट नहीं।

"अच्छा, यह बात है!"

"सुनता यही हूँ। यों कभी हू-बहू बातचीत की नौबत नहीं आई। पर हम लोगों के प्रति उसकी उदासीनता भी वैसा ही प्रकट करती है।"

अधिनायक जी सोच में पड़ गये।

(३)

१२ नवम्बर सन् १९३० के प्रातःकाल। पलटूराम अपनी दूकान खोले हुए चरस की गोलियाँ तौल-तौलकर बिक्री के लिए तैयार कर रहे हैं। आप क़स्बे में चरस-भंग-अफ़ीम के ठेकेदार हैं। लोगों में पर्याप्त प्रतिष्ठा है। बड़े सीधे-सादे और ईमानदार आदमी हैं। जो कुछ ठेके से मिल जाता है उसी में अपने परिवार का पेट पालते हैं। इधर कांग्रेस के धरने से बिक्री में कमी के कारण हानि भी हो रही है, पर आपने बार बार उकसाये जाने पर भी पुलिस में रिपोर्ट तक देना पसन्द न किया और अपने भाग्य के भरोसे ही बैठे रहे।

आज सवेरे ही सवेरे सारंगधर अपने कुछ स्वयंसेवकों-सहित कांग्रेस की तिरंगी झण्डियाँ लिये दूकान की ओर आते दिख पड़े तब ठेकेदार ने कहा—कहिए, कुशल तो है? आज तो बड़ी जल्दी आने का कष्ट किया, पर दूकान तो दोपहर से खुलती है।

सारंगधर—और यदि आप सबेरे से ही बेच चलें तो रोकनेवाला कौन होगा?

"वही सरकारी क़ानून, जिसे आप लोग तो मानते नहीं, पर हम ग़रीबों का माने बिना कल्याण कहाँ?"

"अनुचित क़ानूनों का न मानना ही उचित है। आप दूकान खोलना ही छोड़ दें तो न हमें कष्ट उठाना पड़े, न आपको।"

"पर खायें क्या और बाल-बच्चों को खिलायें क्या? कोई काम आप ही दीजिए।"

"काम तो हमारे यहाँ बहुत है पर उसमें पैसे की गुंजाइश नहीं।"

पल्टूराम (व्यंग से)—पैसे बिना तो आपका या आपके स्वयं-सेवकों का ही गुज़र हो सकता है, मेरा या और किसी का नहीं।

सारंगधर (कुछ कड़े स्वर में)—तो हम भी देखेंगे कि आप किस तरह पैसा कमाते हैं।

पल्टूराम (नम्रता से)—आप हमारे भाग्य-विधाता तो नहीं। यह कहकर वे अपनी गोलियाँ बनाने में फिर लग गये। सारंगधर स्वयं-सेवकों-सहित बरामदे की एक ओर खड़े होकर इधर-उधर ताकने लगे।

१० बजते-बजते पल्टूराम ने दूकान बन्द की और ताला लगाते हुए कहा—अच्छा, अब मैं तो जा रहा हूँ स्नान-भोजन के लिए।

सारंगधर—और हम लोग?

"आप सब यहीं दूकान की रखवाली करें। इसी लिए तो आप आये हैं न?"

"इस रखवाली के लिए कुछ चाहिए भी तो! आज तो सबेरे से ही आना हुआ है। जल-पान की भी नौबत नहीं आई।"

"शर्बत भिजवा दूँ?"

"जाड़े में शर्बत?"

"ठंड-वंड की चिन्ता नहीं। दोपहर की गरमी, और उससे भी अधिक ख़ून की गरमी! अच्छा, थोड़ा दूध भी मिला दूँगा। हाँ, पर एक बात है। मेरी आमदनी तो वही नशे की बिक्री ही वाली है! बोलिए!"

"ख़ैर, कोई मुज़ायका नहीं। अतिथि-सत्कार का प्रेम उसे पवित्र कर देगा।"

१२ बजे दोपहर के लगभग ठेकेदार ने आकर अपनी दूकान खोली तब देखा कि सारंगधर एक गाहक को यों समझा रहा है—देखो भाई! कांग्रेस जो कुछ कह रही है उसमें देश की भलाई तो है ही, पर यदि तुम्हें देश का ख़याल न भी हो तो तुम्हारी ही भलाई क्या कम है? चरस पीना छोड़ दो तो स्वास्थ्य भी नष्ट न होगा और पैसे भी बचेंगे।

गाहक—यह सब मैं समझता हूँ, पर बहुत दिन की आदत धीरे ही धीरे तो छूटेगी। कल आपके कहने से लौट गया था। दिन-रात बड़ी बेचैनी रही। अब आज आपको रोकने का कोई हक़ नहीं है। कल आपकी बात मान ली तो आज आपको हमारी बात माननी चाहिए।

"मित्र! यहाँ कोई शर्तनामा नहीं होता। हम तो बराबर लोगों को नशा लेने से रोकते ही रहेंगे।"

"पर आपने कहा ज़रूर था कि आज लौट जाओ, सो मैंने आपकी बात मान ली थी।"

"ख़ैर, कल की बात तो कल के साथ गई, अब आज फिर वही कहता हूँ।"

"सो ऐसा न होगा। एकदम से अपनी जान न देते बनेगी।"

"जान देने की तो कोई बात नहीं। हमारा कहना आपको मानना ही पड़ेगा।"

"हमारा नाम अटलसिंह है। आज बिना चरस लिये टलेंगे नहीं। (ठेकेदार से) अरे, तुम पहर भर से इनका-उनका मुँह क्या ताकते हो? यह लो पैसे और लाओ चरस!"

सारंगधर (ज़रा ज़ोर से)—स्वयंसेवको! अब ख़ुशामद से काम न चलेगा, सेवा के लिए तैयार हो जाओ।

उधर ठाकुर ने हाथ में चरस ली, इधर स्वयं-सेवकों ने लपककर उसके एक एक पैर पकड़ लिये। ठेकेदार मुस्करा पड़ा।

ठाकुर (कुछ लजाते हुए)—अरे, यह पाँव-पाँव दाब...... (एकदम क्रोध से पैर झटकता और चिल्लाता हुआ) अरे हत्यारो! यह पाँव दाबना है कि पाँव भर का मांस नोच लेना है?

सारंगधर (अपनी हँसी रोकता हुआ आगे बढ़कर)—हाय, यह क्या?

स्वयंसेवक रुके, ठाकुर फटककर अलग जा खड़ा हुआ, अपनी लाठी उठाई और सारंगधर की ओर देखता हुआ कड़ककर बोला—यह सब तुम्हारी कारस्तानी है (लाठी ज़ोर से पटकता हुआ) चलो, अब देखता हूँ कि कौन मर्द चरस ले जाने से रोकता है? यही गनीमत समझो कि गम खाकर चला जा रहा हूँ। वाह रे कांग्रेस और वाह रे सेवा! (पैरों की ओर देखता हुआ) देखो तो, दोनों पैर कैसे खुना आये हैं। यह सेवा है कि जानलेवा? बाप रे बाप! पाँव भर के रोयें उचर गये हैं। कहीं बल-तोड़ हो जाय तो महीनों खाट सेनी पड़े और पाँव बेकाम हो जायँ तो कोई ताज़ुब नहीं।

ठाकुर बड़बड़ाता हुआ चल पड़ा।

सारंगधर—अरे ठहरिए, ज़रा सुनिए तो ठाकुर साहब!

ठाकुर—सब सुन चुका और देख चुका तुम्हारी करतूत! मैं भी कांग्रेस को मानता रहा हूँ। इस बैसाख की फ़सल में भी कोई बीस मन अन्न दिया है, अब हमसे एक दाने की आशा न रखना।

सारंगधर और उनके अनुचर सब सन्न हो गये। 'अरे! यह तो वही बरुहागंजवाला अटलसिंह है, जो कांग्रेस का बड़ा पुराना सहायक है!'

× ×

कोई दो घंटे बाद फिर एक आदमी दूकान पर आ खड़ा हुआ। रंगढंग से कोई भला आदमी जान पड़ता था। यहाँ सारंगधर पहले से ही जले-भुने बैठे थे, पर ज़ब्त किया और आगे बढ़कर बोले—क्या काम है?

आगन्तुक (नम्रता से)—मुझे थोड़ी अफ़ीम चाहिए।

"आप जानते हैं कि इस दूकान पर कांग्रेस का धरना है।"

"जानता हूँ, पर लाचारी है।"

"लाचारी क्यों? आप सूरत से तो अफ़ीमची भी नहीं मालूम होते।"

"दवा के लिए बड़ी ज़रूरत है।"

"किसी वैद्य-हकीम का सार्टिफ़िकेट?"

"देहात में वैद्य-हकीम कहाँ? मुझी को वैद्य-हकीम समझ लीजिए।"

"तो आपको असफल होकर लौट जाना पड़ेगा।"

"ऐसा तो होने का नहीं। मैंने कह दिया कि रोगी का काम ठहरा।"

"पर प्रमाण बिना मैं इजाज़त न दूँगा।"

"आपसे इजाज़त लेता कौन है? ठेकेदार! लो, चार पैसे की अफ़ीम तो देना।"

ठेकेदार (अफ़ीम देता हुआ)—यह पुड़िया लीजिए। पर यहाँ की सेवा से सावधान रहिएगा।"

"सो क्या?"

सारंगधर (बीच में बोलते हुए)—बात यह है कि जब आप कहने-सुनने से नहीं मानते तो स्वयंसेवकों-द्वारा पैर दबा दबा कर आपको मनवाया जायगा। अब भी बेहतर है कि अफ़ीम लौटा दीजिए।

"यह तो न करूँगा।"

इतना सुनना था कि तभी के चिढ़े हुए स्वयं-सेवक बड़ी फ़ुर्ती से दौड़कर उसके पैरों से लिपट गये और लगे तेज़ी से बाल उखाड़ने! ग्राहक दृढ़, मौन और शान्त था!

धरना का दृश्य देखने कुछ दर्शक ही आ जाते थे। इस समय भी आ गये थे। जब कुछ मिन्टों तक यों ही रोयें उखाड़े जाते रहे और गाहक टस से मस न हुआ तब उनसे यह अत्याचार देखा न देखा गया। सारंगधर को धिक्कारना शुरू किया। चिढ़े हुए धरना-संचालक पर कोई तात्कालिक प्रभाव पड़ता न देख कुछ लोग दूकान पर चढ़ गये और किसी तरह बीच-बचाव कर गाहक को भी अपनी राह लगाया और धरनावालों को भी।

पलटूराम के मुख पर प्रसन्नता की झलक दिख पड़ी। आज की बाज़ी में उसने अपनी ही जीत समझी।

(४)

उसी दिन। लगभग ४ बजे शाम। उमानाथ जी अपने दरवाज़े पर बैठे हुए स्वामी स्वरूपानंद से कुछ बातें कर रहे हैं। स्वामी जी कांग्रेस के प्रसिद्ध कार्य-कर्ता हैं और बड़े बेलौस आदमी कहे जाते हैं।

रामटहल आते हुए दिखाई दिये। उनके पीछे कुछ फ़ासिले पर फटे-पुराने वस्त्र पहने एक ग़रीब अधमरा-सा आदमी भी चला आ रहा था। उमानाथ की आँखें किसी आशा की ज्योति से चमक उठीं। अभिवादन का यथोचित उत्तर देते हुए बोले—कहो भाई रामटहल, यह एकाएक

कैसे आना हुआ? जान पड़ता है, बैलवाले जुर्माने के रुपये वसूल कर लाये।

रामटहल (कुछ व्याकुलता की दशा में)—हाँ, रुपये वसूल हो गये, पर रुपये देने के लिए आने की तो ऐसी कोई जल्दी न थी। बात यह है कि इस बम्बख्त (पीछे आते हुए आदमी की ओर संकेत कर) ने रुपये तो जिस दिक्कत से दिये वह तो दिये ही, पर साथ ही मुझे उस समय से और भी दिक्कत में डाले हुए है।

"क्यों अब क्या चाहता है?"

"यही कि वे रुपये लौटा दिये जायें। कहता है, बड़ा गरीब आदमी हूँ, बाल-बच्चे भूखों मर जायेंगे। मेरा नाकों दम था। सोचा कि आप ही के पास चलूँ और फिर जैसा आप चाहें, ये रुपये खुद ले लें या वापस करा दें।"

"दंड की वापसी का क्या सवाल?"

रामटहल (रुपये देता हुआ)—तो यह लीजिए, अब अपराधी जाने और आप।

दमड़ी किसान हाथ जोड़े सामने आकर खड़ा हो गया।

स्वामी (उत्सुकता से)—यह बैल का जुर्माना कैसा?

उमानाथ ने सब हाल कह सुनाया।

स्वामी—तो इसमें कांग्रेस को दखल देने का क्या अधिकार? ऐसा तो सभी जगह होता रहता है।

दमड़ी (दीनता से)—भगवान् आपका भला करें, महाराज! आपने न्याय की बात कही। यही तो मैं भी कहता था, पर हम गरीब की कौन सुनता है? महाराज! बड़ा गरीब हूँ। मर जाऊँगा। अब की फसल में कुछ अन्न भी नहीं हुआ। खाने-पीने का ठिकाना नहीं, ऊपर से चिन्ता यह है कि जमींदार का लगान कहाँ से आये? हिन्दू होकर हम खुद ऐसा न करते, पर लाचारी में सब करना ही पड़ता है।

स्वामी (दमड़ी से)—ठहरो। (उमानाथ से) मेरी बात का उत्तर?

उमानाथ—यह हिन्दू है।

'यह तो वह खुद कहता है, पर मैं पूछता हूँ कि कांग्रेस के लिए हिन्दू-मुसलमान का क्या प्रश्न? कुछ नहीं, ये रुपये लौटाइए! धनवान् को सताना किसी सीमा तक क्षम्य हो सकता है, पर जो आप ही मर रहा है उस पर बेजा दबाव डालना बहुत ही बुरा है।"

उमानाथ (दबते हुए)—तो यदि आप इसे बेजा समझते हैं तो मैं रुपये अभी लौटाये देता हूँ।

स्वामी—ठीक! आप कोई भी राष्ट्रीय कार्य करते समय यह सदा ध्यान में रखा करें कि आप हिन्दू-सभा के अध्यक्ष नहीं, कांग्रेस जैसी विस्तृत संस्था के अधिनायक हैं, जो हर हिन्दू-मुसलमान को केवल भारतीय समझकर दोनों से एक-सा ही बर्तती है। (दमड़ी से) अपने रुपये पा गये, अब उजाले उजाले घर की राह लो।

दमड़ी—बाबा जी! आपने बड़ी दया की, और तो मैं अपने अपराध पर बहुत लज्जित हूँ।

वह सबको एक बार फिर हाथ-जोड़ कर चल दिया। उसके जाते ही स्वामी जी और रामटहल भी रवाना हो गये। अब उमानाथ भी घर जाना चाहते ही थे कि सारंगधर ने आते ही आते कहा—यह तो आपने मुझे अच्छे झंझट में डाल दिया। अब मैं इस धरने के काम पर कभी न जाऊँगा।

उमानाथ (कुछ हँसते हुए)—अरे यार! कुछ कहोगे भी तो कि क्या हुआ या यों ही बेपर की उड़ाते चले जाओगे।

"हुआ क्या? मेरी जिल्लत हुई, फजीहत हुई, और क्या हुआ?"

"धरना तो सफल रहा?"

"वाह री आपकी उलटी समझ! धरना सफल होता तो फिर रोना ही काहे का था?"

"तो तुमने सेवा से ठीक काम न लिया होगा।"

"अरे, उस सेवा के कारण ही तो यह सारी खराबी हुई।"

"तो तुम समय देखकर ठीक काम न कर सके होगे।"

"बस सारा दोष मेरा ही है। यों भी मुश्किल और त्यों भी मुश्किल। काम करो तो बुराई और न करो तो बुराई! इसी से तो मैं कहता हूँ कि अब आगे मुझे इस काम से क्षमा ही किया जाय।"

"आखिर हुआ क्या?"

"हुआ यह कि एक कांग्रेस का पुराना सहायक तो मरने-मारने पर आमादा हो गया और अंत में बिगड़कर चला गया और चरम भी ले गया...."

"और ?"

"और दूसरा ग्राहक हमारी उस सेवा पर भी शान्त खड़ा रहा, यहाँ तक कि दर्शकों ने तरस खाकर उसे भी दूकान से हटा दिया और हमें भी। वह भी अफ़ीम लेकर ही टला। दोनों मामलों में हमारी ही बदनामी हुई—दूसरे में पहले से भी अधिक, क्योंकि पहले में वैयक्तिक सम्बन्ध था और दूसरे में सार्वजनिक।"

"तो आज दुर्घटनाओं और असफलताओं का ही दिन है, पर हमें सब कुछ सहना ही होगा। अच्छा, यह कांग्रेस का पुराना सहायक कौन है?"

"वही बरुहागंजवाला ठाकुर अटलसिंह जो हमें मनों अन्न देता था।"

"अरे, वह तो झक्की आदमी है, थोड़ा मनाने से फिर राह पर आ जायगा। और वह दूसरा अफ़ीमवाला ग्राहक?"

"उसे मैं स्वयं नहीं जानता। चाल-ढाल से कोई भला आदमी मालूम होता था .... अरे देखिए, वह तो स्वयं ही इस ओर आ रहा है।"

उमानाथ (उधर देखते हुए)—अच्छा है, आने दो। बचा जी शिकायत करने आ रहे होंगे।

आनेवाला बात की बात में वहीं आकर खड़ा हो गया और सारंगधर को पहचानकर बोला—क्या कांग्रेस के डिक्टेटर उमानाथ साहब का मकान यही है?

उमानाथ (कुछ आगे बढ़कर अभिवादन करते हुए)—मेरा ही नाम उमानाथ है। कहिए, क्या आज्ञा है।

"आज्ञा-वाज्ञा कुछ नहीं, सिर्फ़ धरना के बारे में आपसे दो बातें करनी हैं। इसे शिकायत भी न समझिएगा, क्योंकि शिकायत करना मेरी आदत में दाख़िल नहीं।"

"कहिए-कहिए, क्या बात है?"

"कहना मुझे सिर्फ़ यह है कि आप नशों की दूकान पर अपने स्वयं-सेवकों से ग्राहकों के पैर दबवाते हैं कि उनके पैरों के बाल नुचवाते हैं?"

उमानाथ (आश्चर्य के भाव से)—बाल नुचवाता हूँ! यह भला कैसे हो सकता है?

"हो सकता है कि हुआ! ख़ुद मेरे साथ हुआ! अब कुछ अँधेरा हो गया है, ज़रा रोशनी मँगाइए ... नहीं रहने दीजिए, मेरी जेब में टार्च है (निकालकर अपने पैरों पर प्रकाश डालता हुआ) यह देखिए!"

"तो यह हमारे स्वयंसेवकों की नालायक़ी है। आख़िर देहाती ही तो ठहरे!"

"देहाती हैं, इसी लिए तो उनकी नालायक़ी नहीं है। वे बेचारे ऐसी शरारतें क्या जानें।"

"आपका मतलब?"

"मेरा मतलब यह है कि यह आपके नेता जी की लायक़ी है जो यहाँ बैठे हुए हैं, और अगर मुझे माफ़ किया जाय तो आपकी भी।"

"मेरी?"

सारंगधर जो भरे बैठे थे अब और ज़ब्त न कर सके। उत्तेजित होकर बोले—और किसकी? क्या आप धरने का सारा इलज़ाम मुझी पर रखना चाहते हैं?

उमानाथ (कृत्रिम रोष से)—तो क्या मैं आपके साथ वहाँ मौजूद था?

"आप न थे, पर आपकी प्रेरणा तो वहाँ मौजूद थी ही।"

आगन्तुक (शान्त स्वर में)—आप लोग आपस में न लड़िए। यह बहुत बेजा है। मैंने पहले ही कह दिया है कि मैं आपसे कोई शिकवा-शिकायत करने नहीं आया हूँ। मुझे किसी और से भी कुछ कहना-सुनना नहीं है। जो होना था, हो चुका। मैं सब्र और बर्दाश्त से काम लूँगा। पर आपको भी वैसा ही करना होगा, अगर आपको अपने आन्दोलन पर कुछ भरोसा है। ऐसी ओछी हरकतों से तो आप अपने सबसे बड़े नेता महात्मा गांधी की, अपने देशभाइयों की और आख़िर में सारी दुनिया की हमदर्दी खो देंगे। यह पक्की बात जानिए। मुझे आप लोगों के इन कायरता के कामों पर तरस ही आता है, क्रोध नहीं। अच्छा, आगे होशियार! अब मैं चला। सलाम!

अब तक अधिनायक जी लज्जावश मौन धारण किये सुन रहे थे, पर उसे जाता देख कुछ साहस बटोरकर बोल उठे—आपका शुभ नाम?

"वह आपको जल्द मालूम हो जायगा।" उसने जाते हुए कहा और शीघ्रता से रात के अँधेरे में गायब हो गया।

(५)

१३ नवम्बर सन् ३० की शाम को उमानाथ कहीं बाहर से लौटे और घर में जाकर बाहर के कपड़े उतारते

हुए घरेलू वस्त्र पहनने लगे तब उनकी स्त्री नित्या ने कहा—देखो, उसी जगह कागज़-पत्रवाले ताक़ पर एक लिफ़ाफ़ा रक्खा है। आज ही कोई दे गया है और यह भी कह गया है कि बहुत ज़रूरी है।

उमानाथ—मैं कहाँ कहाँ से तो दिन भर के बाद थका-माँदा आ रहा हूँ। इसका तुम्हें बिलकुल ख़याल नहीं, पर लिफ़ाफ़े का ख़याल अवश्य है।

"तुम्हें तो मेरी भली बात भी बुरी लगती है। अभी उसी दिन तो एक पत्र शीघ्र न देने पर तुमने मुझे डाँट बताई थी और आज शीघ्र सूचना देने के लिए फिर वही डाँट-फटकार सुननी पड़ती है। यह तो मुझसे न-जाने कितनी बार कह चुके हो कि आज-कल अकसर बड़े ज़रूरी पत्र आते रहते हैं, अतः तुरन्त सूचना मिलनी चाहिए।

"सच है, श्रीमती जी! चलो! अब चुप भी रहो। बात न बढ़ाओ। मुझसे ख़ता हुई। माफ़ करो।"

उमानाथ ने कपड़े बदलकर पत्र और लालटेन हाथ में लिया और बाहर जाने लगे तब नित्या ने कहा—यहीं पढ़ लो न!

उमानाथ—बाहर सारंगधर जी बैठे हुए हैं। वहीं पत्र पढ़ूँगा और उन्हें विदा करके अभी आता हूँ।

उमानाथ बाहर निकले तब उनके साथी ने पूछा—यह हाथ में क्या लिये हो?

उमानाथ—कोई ज़रूरी पत्र है, देखूँ तो बताऊँ। (बैठकर जेब में हाथ डालते हुए) पर ऐनक तो उसी कुरते में रह गई। ख़ैर, लो तुम्हीं पढ़ दो। कोई प्राइवेट पत्र तो जान नहीं पड़ता। और प्राइवेट ही हुआ तो क्या?

सारंगधर ने पत्र लेकर पढ़ना शुरू किया—

जनाब डिक्टेटर साहब, तसलीम!

मुझे कांग्रेस का मेम्बर बने अभी थोड़ा ही अर्सा हुआ, पर अफ़सोस कि जिस उम्मीद को लेकर मैं मेम्बर बना था वह पूरी होती ही नहीं नज़र आ रही है। आजकल हमारे हलक़े में धरना का काम बड़े ज़ोरों से हो रहा है, पर इसमें भी ज़रूरी पाबन्दियाँ नहीं के बराबर हैं। सत्य और अहिंसा की पूरी छीछालदर हो रही है। मैं कानों पर उतना एतबार नहीं करता जितना आँखों पर। फिर भी तरह तरह की बातें सुनते सुनते दिल डावाँडोल हो गया। सोचा, ख़ुद देखकर ठीक राय क़ायम करूँ। आख़िर कल मैंने अपना भेस बदला। मुसलमान से हिन्दू बना, और ख़ुद धरने पर गया। वहाँ मुझ पर जो कुछ बीती वह सब आपको मालूम ही है। आपकी बातों से भी मुझे इतमीनान न हुआ। इसलिए फ़िलहाल सहयोग से लाचार हूँ और एक बार फिर वही कल रातवाली चतावनी दुहराते हुए दिली रंजो-मलाल के साथ कांग्रेस की मेम्बरी से इस्तीफ़ा देता हूँ। उम्मीद है, किसी बेहतर वक्त में आप और हम फिर मिलकर काम कर सकेंगे। कल आपने मेरा नाम पूछा था। उसे भी बतला दूँ। मैं हूँ आपका

ख़ैरख़्वाह,

सलीम

उमानाथ (पत्र सुनकर)—यार! यह तो बड़ा चतुर निकला। हमारे भी कान कतर लिये। कैसा उल्लू बना कर चलता बना। मेरी तो उस समय जैसे ज़बान ही बन्द हो गई थी। कुछ मंत्र-यंत्र जानता होगा। फ़क़ीर है न।

सारंगधर—मेरा जी तो तभी खटका था जब उसने अन्त में सलाम किया। बोलने का ढंग भी कुछ इस्लामी था। पर सोचने पर भी मैं कुछ जान न पाया।

"जान कैसे पाते? पहले का कोई वैसा परिचय भी तो न था।"

"अच्छा, अब क्या होगा?"

"होगा क्या? कुछ नहीं। वह किसी से कुछ कहे-सुनेगा थोड़े।"

"शायद नीयत बदल जाय?"

"तो अकेला चना भाड़ थोड़े फोड़ सकेगा।"

"पर इसमें सन्देह नहीं कि आज हमने एक अच्छा कार्यकर्ता खो दिया।"

"तो जाकर मना क्यों नहीं लेते?"

फ्रांस का भविष्य

लेखक, श्रीयुत मधुसूदनदास चतुर्वेदी, एम० ए०, बी० एस-सी, विशारद

स संसार की सात महान् शक्तियों में गिना जाता था। वर्तमान योरपीय समर में उसकी हार और उससे उत्पन्न हुई परिस्थिति विचारशील हृदयों में उसके प्रति सहानुभूति उत्पन्न किये बिना नहीं रहती। संसार को स्वतंत्रता का संदेश आधुनिक युग मे फ़्रांस से ही मिला था। आज वही फ़्रांस परतंत्र होकर स्वतंत्रता के युद्ध के विरुद्ध खडा हो रहा है। क्या यह अद्भुत एवम् आश्चर्यजनक नहीं हे?

फ़्रांस ने समर के आरम्भ में अँगरेजों के साथ ही साथ दूसरों की स्वतंत्रता की रक्षा के निमित्त हथियार उठाये थे। उसकी पराजय ने उसे जिन लज्जाजनक शर्तो को स्वीकार करने पर विवश किया है, वे उसके स्वाभिमान को गहरी ठेस पहुँचानेवाली है। इस परिस्थिति में पड़कर उसके पास दूसरा कोई उपाय था या नहीं, इसको समझना अभी कठिन है; परन्तु यह निश्चय है कि जिस दैन्य दशा में फ़्रांस को हम आज देख रहे हैं वह बहुत दिनों तक नहीं रह सकती।

इतिहास से स्पष्ट है कि फ़्रांस में इस प्रकार की हार और उसकी जीत तथा उनमे सम्बन्धित उलट-फेर सदैव ही चलते रहे हैं। कभी फ्रांस ने और देशों को अपने अधीन किया है तो कभी उसे दूसरे देशों के समक्ष नतमस्तक होना पड़ा है। परन्तु पराधीनता की दशा में फ़्रांस अधिक दिनों तक कभी नही रहा।

फ़्रांस बहुत प्राचीन देशों में से है। आधुनिक युग से तीस हजार वर्ष पूर्व के भी मनुष्यों के अस्तित्व के चिह्न यहाँ पाये जाते हैं। ईसा से ४०० वर्ष पूर्व गाल जाति का फ़्रांस पर अधिकार था और इसी जाति ने हनीबाल के नेतृत्व में फ़्रांस साम्राज्य की स्थापना की और रोम तक अपनी विजय-पताका फहराई। ईसा के जन्म के समय रोमन-साम्राज्य ने फ़्रांस को हड़प लिया। प्रारम्भ में रोमन-साम्राज्य प्रजातंत्र-वादी था, परन्तु जब उसमें दासता की प्रथा ने नागरिक स्वतंत्रता का अपहरण किया तब रोमन-साम्राज्य को भी छिन्न-भिन्न होते देर न लगी।

स्वतंत्र फ्रांस पर ४५१ ई० मे हूणवंशीय एटिला ने धावा किया। यद्यपि उत्तर के नगरों को ध्वंस करने में हूणों को कठिनाई न हुई, तथापि अंतिम विजय फ्रांस के हाथ रही। छठवीं शताब्दी में राजा क्लोविस ने जागीर की प्रथा का आश्रय लेकर फ़्रांस को संगठित किया। इन्ही के वंशज चार्ल्स मार्टर ने सन् ७३२ ई० में आक्रमणकारी अरबों को पोइस्टर्स की लड़ाई में हराया। ७६८ ई० में चार्ले-मेन बड़ा प्रतापशाली राजा हुआ। इसने रोम और इँग्लेंड सभी को अपने साम्राज्य में मिला लिया।

चार्लमेन की मृत्यु के पश्चात् १०१६ ई० में इँग्लेंड स्वतंत्र हो गया। सन् १५१५ ई० मे फ़्रांसिस (प्रथम) ने योरप में शक्ति-सामञ्जस्य के लिए युद्ध छेड़ा तब जर्मनी की सेनाओं ने फ़्रांस को रौंद डाला। केवल मार्सलीज शेष रह गया था। मार्सलीज से हताश होकर जर्मन-सेनाये इटली की ओर मुड़ गई और फ़्रांसिस ने अपने देश को पुन संगठित कर लिया। सन् १६३४ ई० से सन् १७१५ ई० तक फ़्रांस के सम्राट् लुई (चतुर्दश) की योरप में अच्छी धाक रही। पोलेंड का राज्य इसी की सहायता के बल पर सुदृढ़ बना था।

सन् १७९३ ई० में स्वतंत्रता की लहर फ़्रांस में बड़े वेग से फैली, जिसके कारण राजा और रानी का बलिदान हुआ और प्रजातत्र की स्थापना हुई। फ्रांस के नेता दूसरे देशों को प्रजातंत्रवादी बनाने के लिए प्रयत्नशील रहने लगे। नेपोलियन-युग के आरम्भ मे फ़्रांस की सहायता से हालैंड, बेल्जियम, स्विटजरलैंड, इटली और जर्मनी में प्रजातंत्र राज्यों की स्थापना हुई। जब नेपोलियन को साम्राज्य बनाने की कामना हुई तब १८१२ ई० में उसे भी मुँह की खानी पड़ी।

सन् १८७० ई० में जर्मनी ने फ्रांस पर हमला किया। फ़्रांस युद्ध के लिए तैयार न था। सन् १८७१ ई० में जर्मनी ने पेरिस ले लिया। फ्रैङ्कफ़ोर्ट की सन्धि के अनुसार अधिकांश उत्तरी फ्रांस पर जर्मनी का अधिकार हो गया। फ़्रांस अपनी हार को भूला नहीं। उसने रूस से मित्रता कर ली। जर्मनी ने आस्ट्रिया से मित्रताकर अपना प्रभुत्व क़ायम रक्खा। जर्मनी ने जब समुद्र मे पैर फैलाये तब

जापान, इँग्लैंड व अमेरिका भी इससे चौकन्ने हुए। सन् १९१४ ई० का महासमर इन्हीं कारणों को लेकर हुआ था। पहले धावे में जर्मन लोग पेरिस से ४० मील दूर तक आ गये थे, परन्तु अन्त में सन् १९१८ ई० में मित्रराष्ट्र विजयी हुए और वार्सलीज़ की सन्धि में फ़ांस की सीमा पुनः पूर्ववत् हो गई।

आधुनिक युद्ध के कारण सन् १९१८ ई० की सन्धि से ही प्रारम्भ होते हैं। निष्पक्ष आलोचकों का कथन है कि पराजित जर्मनी को अधिक परेशान करने की नीति ने ही उसमें प्रतिहिंसा के भाव जाग्रत कर दिये। योरप में वार्सलीज़ की सन्धि ने जिन हदों को बाँधा था, विजयी जातियाँ उनकी रक्षा के लिए प्रयत्नशील रहीं। लड़ाई की विजय से इँग्लैंड और फ़्रांस ने बहुत लाभ उठाया। इटली, यूनान, और जापान को कुछ न मिला। समस्त देशों ने मिलकर अन्तर्राष्ट्रीय लीग की स्थापना की ताकि भविष्य में सभी झगड़े लीग-द्वारा सुलझाये जा सकें।

इँग्लैंड और फ़्रांस के विद्यार्थियों को पढ़ाया जाता था कि लीग न्याय की मूर्ति है, परन्तु इटली और जापान उसको भङ्ग करने को प्रयत्नशील थे। सन् १९२० ई० के पश्चात् मि० पोइनकेर के मंत्रित्व-काल में फ़्रांस ने जर्मनी को कई बार अनुचित रीति से परेशान किया। परिणाम-स्वरूप मृतवत् जर्मनी में विद्रोह की आग भड़क उठी। सन् १९३३ ई० में हिटलर जर्मनी का चान्सलर बना। उसने देश से यहूदियों को निकालकर नाज़ी-संगठन सुदृढ़ किया। उसका कहना था कि जर्मनी हारा नहीं है, यहूदियों ने उसे धोखा दिया है।

जर्मनी ने छुपे छुपे प्रारम्भ में अपनी सामरिक तैयारियाँ की थीं, क्योंकि १९१९ ई० की सन्धि संसार में शान्ति स्थापित कर देगी, ऐसी सबको आशा थी और निश्चय हुआ था कि सभी देश सन् १९३० ई० तक अधिक हथियार बाँधना छोड़ देंगे। लीग का कर्तव्य था कि सब देशों पर पूरी पूरी दृष्टि रक्खे। उसी की अध्यक्षता में एक निरस्त्रीकरण कान्फ़्रेंस का आयोजन भी हुआ था। इस कान्फ़्रेंस की कई बैठकें हुईं, परन्तु हथियार छोड़ने को कोई भी देश तैयार न था, क्योंकि १९३० ई० तक ही कई घटनायें ऐसी घटित हो चुकी थीं जिनके कारण लीग पर पूर्ण विश्वास करना असम्भव था।

रूस में बोल्शेविक-संघ-शासन की स्थापना हो जाने से प्रजातंत्रवाद को एक नवीन शक्ति मिल गई और इँग्लैंड व फ़्रांस विश्वास करने लगे कि रूस सदैव ही उनके साथ रहेगा। अमेरिका, रूस व इँग्लैंड का सहयोग पाकर फ़्रांस अपनी स्थिति के सम्बन्ध में निश्चिन्त था। विश्व में कहाँ क्या हो रहा है, इसमें उसे हस्तक्षेप करने की आवश्यकता न थी।

सन् १९१९ ई० में जब वार्सलीज़ की सन्धि के पश्चात् अन्तर्राष्ट्रीय लीग की स्थापना हुई थी तब लोगों का अनुमान था कि विश्व में सदैव के लिए शान्ति स्थापित हो गई। सन् १९३० में जब निरस्त्रीकरण-समिति के प्रयास निष्फल प्रतीत होने लगे तब भावी समर की आशंका ज़ोर पकड़ गई। जर्मनी ने अपनी सामरिक तैयारी में सारी शक्ति लगा दी, मगर मित्रराष्ट्र अपनी कूट राजनीति के भरोसे कुछ बेमन से सेना-संगठन में लगे। इटली-अबीसीनिया-युद्ध व चीन-जापान-युद्ध भी इनकी निद्रा भंग न कर सका। सन् १९३० से १९३९ तक योरप में दल बढ़ाने के प्रयत्न चलते रहे। स्पेन के गृह-युद्ध में इटली और जर्मनी ने खुले आम फ़्रांको की सहायता की। योरप के तानाशाह सभी देशों में तानाशाही देखने को उत्सुक थे ताकि उनकी शक्ति प्रजातंत्रवादी देशों से कम न रहे।

जर्मनी ने पैर फैलाना प्रारम्भ किया और बिना अस्त्र-प्रहार के आस्ट्रिया पर अधिकार कर लिया, प्रजातंत्रवादी राष्ट्र देखते ही रह गये। इनका विश्वास था कि लड़ाई में भाग लेने से सिवा हानि के लाभ कुछ न होगा। इनके नेता पदों के लालच में पड़ चुके थे। उन्होंने पद कमाने के प्रलोभन में अपने देशवासियों को जर्मनी की तैयारियों के पूरे पूरे समाचार तक न दिये। जब जर्मनी ने फ़्रांस और इँग्लैंड की सम्मिलित धमकी की अवहेलनाकर ज़ेकोस्लोवेकिया का भाग लेना चाहा तब चेम्बरलेन ने बीच में पड़कर म्यूनिच-पैक्ट पर हस्ताक्षर कर अपने अपमान को शान्ति-प्रियता के आवरण से ढँकने का प्रयास किया। वास्तविक कारण तो यह था कि फ़्रांस और इँग्लैंड का सैन्य-संगठन जर्मनी की तुलना में कम था, परन्तु संसार में चेम्बरलेन को शान्ति-स्थापक का नोबेल-पुरस्कार दिया जाने का विचार होने लगा।

जर्मनी ने अपने विकास की एक विचित्र योजना तैयार कर ली थी। उसके अनुसार थोड़ा थोड़ा करके वह मध्य-योरप का पूरा स्वामी बनना चाहता था और तदनन्तर अफ़्रीका-स्थित अँगरेजी और फ़्रांसीसी उपनिवेशो को हथियाना था। फ़्रांस जानता था कि अफ़्रीका मे उसके ऊपर विपत्ति अँगरेजों के साथ ही साथ आवेगी। इसी कारण उसने अपनी विदेशी नीति इँग्लैंड के अधीन कर दी। लण्डन में जो चैम्बरलेन का वक्तव्य होता, पेरिस से वही डालेडियर की घोषणा होती।

जब जर्मनी का दाँत मध्य-योरप के अन्तिम निवाले पोलैंड पर लगा तब अँगरेजों और फ़्रांसीसियों के दिल दहलने लगे। उनका विश्वास हो गया कि अब बिना लडाई किये अफ़्रीका के उपनिवेशों का कुशल नहीं है। उन्होंने प्रजातंत्र की दुहाई दी। उनका विश्वास था कि संसार उनकी इस पुकार पर बलिदान होगा। जर्मनी को बाहरी सामान की आवश्यकता होगी और हम अपने जहाजी बेड़े से उसका मार्ग रोक देंगे। वे सोचते थे कि प्रजातंत्र का सुदृढ़ गढ़ रूस कभी भी जर्मनी का साथ न देगा।

पिछले वर्षों की घटनाओं ने ससार की आँखें खोल दी थी। रूस भी सजग हो गया। जर्मनी ने उसको ब्लैंक-चेक दे दिया। बस रूस और जर्मनी की सन्धि हो गई। अब जर्मनी की अधिकाश कठिनाइयाँ सुलझ गई और उसने पोलैंड पर धावा बोल दिया। ३ सितम्बर सन् १९३९ से मित्र-राष्ट्रों ने उसके विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी।

युद्ध एक ऐसे ढंग से प्रारम्भ हुआ कि लोग देखते ही रह गये। रूस के दूसरे दल मे मिलते ही इँग्लैंड और फ़्रांस को सुदृढ़-सेना-संगठन की आवश्यकता स्पष्टरूप से दृष्टिगोचर होने लगी। परन्तु यह एक-दो दिन का काम नही था। अतएव दोनो देशों ने तीन साल तक युद्ध जारी रखने का कार्यक्रम बनाया। आरम्भ मे हवाई जहाजों-द्वारा सैनिकों में पर्चे बँटवाकर उनमे विद्रोह फैलाने के प्रयत्न किये गये। पोलैंड की विजय के पश्चात् जर्मनी ने मित्र-राष्ट्रों के जहाज डुबाना प्रारम्भ किया। कुछ दिन तक धमकियाँ देने के पश्चात् मित्र-राष्ट्रों ने भी जर्मन-जहाजों को घेरना प्रारम्भ किया।

जर्मनी ने नार्वे पर हमला किया तब सारे योरप में आतङ्क फैल गया। डेनमार्क, हालैंड और बेल्जियम धीरे-धीरे सभी का पतन हुआ। इँग्लैंड और फ़्रांस अपनी रक्षा में इतने संलग्न रहे कि किसी की भी भरपूर सहायता न कर सकें।

अब फ़्रांस की बारी आई। फ़्रास अपने को मेजिनो-लाइन-द्वारा सुरक्षित समझता था। परन्तु जर्मन-सेनाये बेल्जियम होकर फ़्रास में घुस गईं। यहाँ मित्र-राष्ट्रो की सेना का अच्छा सगठन था, परन्तु जर्मन-सेनायें पेरिस की ओर अग्रसर न होकर बन्दरगाह कैले की ओर बढ़ी। कैले से इँग्लैंड समीप है। चिन्तित होकर इँग्लैंड ने आत्म-रक्षा के निमित्त अपनी सेनाये फ़्रांस से वापस बुला ली। अकेली फ़्रांसीसियों की सेनाये कई दिन तक वीरता-पूर्वक शत्रु से लड़ती रही। अन्त मे पेरिस के छिनते ही मार्शल पेताँ ने जर्मनी से अत्यन्त अपमानजनक शर्त कर ली।

लड़ाई का कैसा भीषण परिणाम है? आज १२५ वर्ष के बाद फ़्रास जो इँगलैंड का सच्चा मित्र था उसके शत्रुओं के साथ है। जर्मनी ने दो-तिहाई फ़्रांस पर अधिकार जमा लिया है। मार्शल पेताँ की सरकार शेष फ़्रांस पर अपना आधिपत्य जमाये है। सेना के कुछ सदस्य इँग्लैंड मे फ़्रांस की सरकार बनाये है। फ़्रांस की यह नीति लडाई के दौरान मे ठीक हो सकती है, परन्तु लडाई के पश्चात् उसकी क्या दशा होगी, इसका निर्णय कठिन है। जर्मन-विजय फ़्रांस को बिना पंगु बनाये न छोड़ेगी। यदि फ़्रांस का भविष्य उज्ज्वल हो सकता है तो केवल इँग्लैंड की पूर्ण विजय से ही।

जर्मनी अपनी विजय से योरप मे जर्मन-साम्राज्य कभी भी स्थापित नही कर सकता। जिन देशों पर उसने विजय प्राप्त की है वे सभी उसके कट्टर शत्रु है। वर्तमान दशा मे वे सिवा जर्मन-आधिपत्य स्वीकार करने के और कुछ नही कर सकते। परन्तु ब्रिटिश-विजय के साथ ही ये सब भी ब्रिटिश के साथ होकर अपनी स्वतंत्रता पुन प्राप्त करेंगे। फ़्रांस के धनिकों ने अपने धन की रक्षा के लिए मार्शल पेताँ को मंत्री बनाकर सुलह स्वीकार कर ली, ऐसा बहुतों का विश्वास है। फ़्रांस का जनमत जर्मनी के विरुद्ध है। वह स्वतंत्रता चाहता है। ऐसी दशा में एक न एक दिन मार्शल पेताँ का पतन अवश्यम्भावी है।
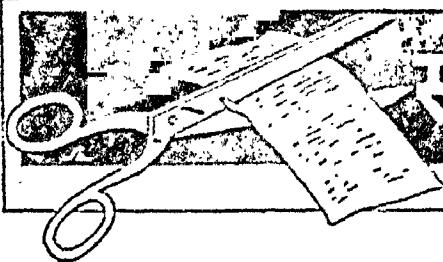
पाठकों से

महात्मा गांधी ने 'हरिजन-सेवक' के १४ सितम्बर के अंक में उपर्युक्त शीर्षक में जो लेख लिखा है उससे उनकी भाषा-सम्बन्धी भावधारा पर तो प्रकाश पड़ता ही है, साथ ही उनके भविष्य के प्रोग्राम पर भी। उक्त लेख यह है :—

'हरिजन-सेवक' का प्रथम अंक जो पूना से प्रकाशित हुआ, उसमें काफ़ी छपाई की ग़लतियां रह गई हैं। पाठकगण क्षमा करेंगे। पूना में हिन्दुस्तानी जाननेवाले कम मिलते हैं। यूँ तो गुजराती जाननेवाले भी कम ही हैं। 'हरिजन' किस हालत में शुरू हुआ यह पाठक जानते हैं। 'हरिजनबंधु' पूना से प्रकाशित करने में बहुत आपत्ति न आई, क्योंकि मेरे पास गुजराती काम करनेवाले साथी मौजूद थे। हिन्दुस्तानी काम करनेवाले जगह जगह बिखरे हुए हैं। लेकिन मैं आशा करता हूँ कि 'हरिजन-सेवक' की छपाई जल्दी ठीक हो जायगी और ग़लतियाँ कम होती जायँगी। 'हरिजन-सेवक' की भाषा में रस लेनेवाले अगर अपनी टीका मुझे भेजेंगे तो उनका उपकार होगा।

सम्पादक रहना वियोगी जी ने तार से स्वीकार तो कर लिया था, लेकिन वे लिखते हैं कि उनको मुक्ति मिलने से ज्यादा सन्तोष होगा। बिना ज़िम्मेदारी के सम्पादक रहने में वे नैतिक दोष मानते हैं। वे ऐसा भी कहते हैं कि उन्हें लिखने की फ़ुरसत भी कम मिलेगी। उनका दृष्टि-बिन्दु मैं समझता हूँ। उसकी मेरे नजदीक क़ीमत भी है। इसलिए उनको मुक्ति दी है। प्यारेलाल ने मेरी बात मान ली और सम्पादक होना स्वीकार किया। उनका स्वभाव जानते हुए मैं उन्हें मुक्त रखना चाहता था। लेकिन मेरे निकटवर्ती साथियों में से वही सम्पादक-पद ग्रहण करने योग्य हैं। वह उर्दू अच्छी तरह जानते हैं, हिन्दी का भी अभ्यास है। इसलिए हिन्दुस्तानी सम्पादक की ज़िम्मेदारी उठाने की उनमें शक्ति है। 'यंग-इंडिया' के सम्पादक रह चुके हैं। यह सब होते हुए भी पाठकों की उदारता की और टीका के रूप में उनकी मदद की मुझे जरूरत रहेगी।

मुख्य वस्तु हेतु-सिद्धि है। 'हरिजन-सेवक' प्रकाशित करने का हेतु तो यही है कि हिन्दुस्तानी जाननेवाली जनता के सामने सत्याग्रह के सब पहलू रखे जायँ। सत्याग्रह का अर्थ सिर्फ़ सिविल-नाफ़रमानी नहीं। उसमें कईगुना महत्व की वस्तु तेरह तरह का रचनात्मक कार्यक्रम है। उसके सिवा सिविल-नाफ़रमानी कोई चीज नहीं। यह तेरह अंगोंवाला कार्यक्रम क्या है, कैसे चलाया जा सकता है, उसकी प्रगति कैसे हो रही है, यह सब 'हरिजन-सेवक' द्वारा बताने की चेष्टा की जायगी। पहले भी कार्य तो यही था, लेकिन मेरी सीधी देखभाल में नहीं होता था। अब यथासम्भव मेरी देख-भाल रहेगी। 'हरिजन-सेवक' का मूल उद्देश्य—हरिजन-सेवा—कभी भूला नहीं जायगा, क्योंकि छुआछूत का भूत जब तक हममें भरा है तब तक स्वराज्य आकाश-पुष्प-सा रहेगा।

अब पाठक समझेंगे कि भाषा को मैंने क्यों गौण पद दिया है। भाषा की कोई स्वतंत्र क़ीमत नहीं है। भाषा न शब्द-जाल है, न शब्दाडम्बर। विचारों को प्रकट करने का एक बड़ा साधन अवश्य है। विचार में कुछ शक्ति होगी, कुछ कहने लायक़ बात होगी, या लेखक के पास पाठकों के लिए कुछ उपयोगी सूचना या सन्देशा होगा तो भाषा कैसी भी हो, पाठक के हृदय में वह अवश्य प्रवेश करेगी।

तेरह प्रकार का कार्यक्रम

उपरोक्त कार्यक्रम नीचे दिया जाता है—

(१) हिन्दू-मुस्लिम या क़ौमी एकता
(२) अस्पृश्यता-निवारण
(३) मादक पदार्थों का त्याग
(४) चर्खा व खादी
(५) दूसरे ग्राम-उद्योग
(६) ग्राम-सफ़ाई
(७) नई या बुनियादी तालीम
(८) प्रौढ़-शिक्षण
(९) स्त्री-जाति की उन्नति

(१०) आरोग्य और स्वच्छता की तालीम
(११) राष्ट्रभाषा (हिन्दुस्तानी) का प्रचार
(१२) स्वभाषा या मातृभाषा का प्रेम
(१३) आर्थिक समानता।

स्वराज्य के मार्ग के रोड़े

पूना के प्रसिद्ध वयोवृद्ध लोकनेता श्रीयुत नरसिंह चिन्तामणि केलकर ने 'स्वराज्य के मार्ग के रोड़े, शीर्षक एक लेख लिखा है। इस लेख का हिन्दी-अनुवाद काशी के 'गृहस्थ' में छपा है। यह लेख कई अंशों में विभक्त है। ९वें अंश का उपशीर्षक है—आपस में समझौता नहीं हो सका। इस अंश में श्री केलकर जी ने मुसलमानों और हरिजनों की माँगों को स्वराज्य के मार्ग का रोड़ा बताया है। इसका अधिकांश इस प्रकार है—

राष्ट्रीय भावनाओं के कारण वै० जिना का उत्कर्ष हुआ, परन्तु उनकी जब यह दशा है, तब जो मुसलिम नेता प्राणपन से श्रद्धापूर्वक धर्मान्ध हो रहे हैं, उनका तो कहना ही क्या है! सन् १९२४ में दिल्ली के विधिमंडल में पंडित मोतीलाल नेहरू ने स्वराज्य-पक्ष की स्थापना की; जिसके 'ह्विप' का काम मुझे सौंपा गया था। सहायक 'ह्विप' विहार के एक मुसलमान सदस्य थे। दो वर्ष में ही उन्होंने स्वराज्य-पक्ष से इस्तीफ़ा दे दिया और वे अपने प्रान्त के कट्टर मुसलमानों के नेता बन गये। डा० अनसारी, वै० शेरवानी, हकीम अजमलखान, मौलाना आजाद जैसे ३-४ मुसलमानों को छोड़कर मुझे एक भी ऐसा मुसलमान नहीं देख पड़ा, जिसने अन्त तक राष्ट्रीय वृत्ति से मुँह न मोड़ा हो, या हिन्दू-मुसलमानों के प्रश्न का अड़ङ्गा न लगाया हो। उक्त राष्ट्रीय वृत्ति के लोग भी साम्प्रदायिकता से अछूते नहीं रह गये हैं। डा० अनसारी और मौलाना आजाद के आग्रह से ही कांग्रेस 'कम्युनल अवार्ड' का स्पष्ट निषेध नहीं कर सकी। आरम्भ में डा० अनसारी स्वराज्य की माँग के सम्बन्ध में कांग्रेस के साथ थे, परन्तु आगे चलकर साम्प्रदायिक वोटरों के संघ के सम्बन्ध में उनकी नीति वै० जिना की नीति से मिलती-जुलती हो गई। जो मुस्लिम नेता कांग्रेस अथवा गांधी जी से सहमत थे, वे अधिक से अधिक वोटरों के संयुक्त संघों की योजना को मान लेते, परन्तु नेहरू-रिपोर्ट के चुनाव की अन्य योजनाओं को कदापि स्वीकार न करते।

नेहरू-योजना में भाषाओं के आधार पर प्रान्तों की रचनाकर मुसलमानों के लिए जनसंख्या के अनुपात से स्वतन्त्र स्थान सुरक्षित रखने की बात थी। वोटरों के संयुक्त संघों द्वारा ही ये स्थान उन्हें मिलनेवाले थे। इसके अतिरिक्त सर्वसाधारण चुनाव में निर्वाचित होकर अधिक स्थान प्राप्त करने का भी मुसलमानों को सुभीता कर दिया गया था। परन्तु नेहरू-रिपोर्ट को मुसलमानों ने कभी माना ही नहीं और आज वै० जिना अपनी १६ माँगों पर डटे हुए हैं। यही नहीं, अब आप 'पाकिस्तान' की योजना लेकर और भी आगे बढ़े जा रहे हैं। इसी से अनुमान किया जा सकता है कि यदि हिन्दू-मुस्लिम नेता स्वेच्छा से या बलात् भावी राज्य-घटना का निर्णय करने के लिए एकत्र बैठें, तो क्या होना है? प्रयत्नवादी चाहें तो प्रयत्न करके ही देख लें।

गत २५ वर्षों में राजनीतिक क्षेत्र में जो अनेक चमत्कार देख पड़े, उनमें सबसे बड़ा चमत्कार यह है कि हिन्दू नेताओं ने मुसलमानों को समझाने-रिझाने का जितना अधिक प्रयत्न किया, उसका परिणाम उतना ही अधिक विपरीत होता गया। कहा जाता है और वह सत्य भी है कि मुसलमानों को समझाने का उपक्रम सन् १९१६ की लखनऊवाली कांग्रेस में लोकमान्य तिलक ने किया; परन्तु लखनऊ के समझौते में मुसलमानों को उनकी जनसंख्या के अनुपात से अधिक जो प्रतिनिधित्व (प्रतिनिधि चुनने का अधिकार) दिया गया था, उसकी अवधि केवल दस वर्ष की थी, यह बात ध्यान में रखनी चाहिए। उस अवधि के उपरान्त मुसलमानों का क्या रुख है, यह देखने के लिए यदि लोकमान्य जीवित रहते, तो मैं समझता हूँ कि वे समझौते के प्रयत्न को त्याग देते; गांधी जी जैसे मुसलमानों को कोरा चेक देने को कदापि प्रस्तुत न होते। कोरे चेक का यह अर्थ होता है कि चेक देनेवाला उस पर हस्ताक्षर कर देता है और लेनेवाला अपने हाथ से इच्छित रकम का आँकड़ा भर लेता है। परन्तु मजे की बात यह है कि गांधी जी ने मुसलमानों को जो कोरा चेक दिया, उसका दोहरा अनादर हुआ। हिन्दूसमाज कहने लगा कि 'इस प्रकार का चेक देने का गांधी जी को अधिकार ही क्या है? राज्याधिकार के बँटवारे का भाग या हिस्सा गांधी जी को

प्रकाशक हिन्दी-साहित्य से अनभिज्ञ थे, फलस्वरूप इस संग्रह में भूषण के अतिरिक्त अन्य कवियों के छन्द भी संगृहीत हो गये हैं। जो छन्द शिवाजी की प्रशंसा के थे उनके अतिरिक्त इसमें ऐसे छंद भी रक्खे गये हैं जो उनकी प्रशंसा में न होकर अन्य नरेशों की प्रशस्ति में हैं। प्रकाशकों को इतिहास का भी ज्ञान न था, इसलिए उन्होंने शिवाजी को 'सुलंकी' समझ लिया, जैसा कि शिवसिंह-सरोज में लिखा है। इसलिए किसी 'सुलंकी' और अवधूतसिंह सुलंकी की प्रशंसा के छंद भी उसमें जुड़े हुए हैं। साहू की प्रशंसा के छन्द इसी लिए 'शिवाबावनी' में मिलते हैं कि प्रकाशकों ने इस बात का विचार बिना किये ही 'शिवाबावनी' नामक संग्रह प्रकाशित किया कि 'शिवाबावनी' में शिवाजी की ही प्रशंसा के छंद होने चाहिए।

× × × ×

मैं निश्चित रूप में हिन्दी-संसार को यह सूचित करना चाहता हूँ कि सं० १९४७ के पूर्व शिवाबावनी की हस्त-लिखित प्रति तो क्या, यह नाम भी किसी प्रामाणिक ग्रन्थ में नहीं मिल सकता। यह नाम तक प्रकाशकों का दिया हुआ है।

उस संग्रह के अनन्तर सन् १८९३ में 'शिवराज-बावनी' के नाम से वही संग्रह दूसरे स्थान से दक्षिण में प्रकाशित हुआ। फिर उत्तर-भारत में इसके संस्करण निकलने लगे। मिश्र-बन्धुओं ने जो 'शिवाबावनी' अपनी 'भूषण-ग्रन्थावली' में सबसे पहले छापी उसमें कुछ परिवर्तन कर दिया है। इसलिए मिश्र-बन्धुओं की 'शिवाबावनी प्राचीन काल से प्रचलित 'शिवाबावनी' से भिन्न हो गई है।

'शिवाबावनी' के समस्त रहस्यों का उद्घाटन करने के लिए तो बड़े विस्तार की आवश्यकता है, इसलिए संक्षेप में ही उसकी कुछ बातें नीचे दी जाती हैं। इसके लिए दीक्षित जी की 'शिवाबावनी' को ही आधार बनाता हूँ।

दीक्षित जी की 'शिवाबावनी' में सबसे पहला छंद छप्पय है। पाठकों को जानना चाहिए कि पूर्वोक्त प्राचीन काल से प्रचलित 'शिवाबावनी' में यह छप्पय नहीं है। मिश्र-बन्धुओं ने शिवाबावनी में जो परिवर्तन किया है, उसमें यह छंद उन्हीं की 'शिवाबावनी' में सबसे पहले रक्खा गया है। शिवाबावनी के आरम्भ में कोई मंगला-चरण का छंद नहीं था, इसलिए उन्होंने 'शिवराजभूषण' से यह छप्पय उठाकर शिवाबावनी के आदि में रख दिया।

'शिवाबावनी' का आठवाँ छंद लीजिए। यह छंद सरदार कविकृत 'शृंगार-संग्रह' (जिसके अन्त में वीररस के छंदों का भी संग्रह है) में 'गंग' कवि के नाम पर दिया हुआ है और 'दानशाह' की प्रशंसा में है—

बाने फहराने घहराने घंटा गजन के
नाहीं ठहराने रावराने देसदेस के।
नग भहराने अरु नगर पराने सुनि,
बाजत निसाने दानसाह जू नरेस के॥
कुकुभ के कुंजर कसमसाने 'गंग' भनै,
भौन के भजाने अलि छूटे लट केस के।
दल के दरारन तें कमठ करारे फूटे,
केरा के से पात बिहराने सिर सेस के॥

शिवाबावनी में दूसरे चरण के उत्तरार्ध के स्थान पर 'बाजत निसाने सिवराज जू नरेस के' पाठ है। ध्यान देने की बात है कि इस छन्द का जो पाठ 'शिवाबावनी' में गृहीत है उसमें 'भूषण' का नाम भी नहीं है।

इसी प्रकार 'शिवाबावनी' का दसवाँ छंद 'ऊँचे धौल मन्दिर के अन्दर रहन वारी' 'शिवसिंह-सरोज' में 'इन्दु' कवि के नाम पर दिया हुआ है। 'बावनी' के छन्द में मुख्य अन्तर यह है कि इसके तृतीय चरण के पूर्वार्द्ध के स्थान पर उसमें 'भूषन सिथिल अंग भूषन सिथिल अंग' है और चौथे चरण के पूर्वार्द्ध के स्थान पर 'भूषन' भनत सिवराज वीर तेरे त्रास।'

शिवसिंह जी ने इसे किसी पुराने संग्रह से उठाकर रक्खा है। इससे स्पष्ट है कि यह 'इन्दु' के नाम पर पहले से प्रसिद्ध रहा है।

'बावनी' का उन्नीसवाँ छन्द है—'डाढ़ी के रखैयन की डाढ़ी सी रहत छाती'। यह छन्द 'शृंगार-संग्रह' में निवाज कवि के नाम पर छत्रसाल की प्रशंसा में मिलता है। 'बावनी' के छन्द में 'कहत निवाज' के स्थान पर 'भूषन भनत' और 'छत्रसाल' के स्थान पर 'सिवराज' पाठ है, और कोई अन्तर नहीं है।

'बावनी' में एक सवैया 'कैतिक देस दले दल के बल' भी है। ठीक ऐसा ही सवैया दत्त कवि का भी मिलता है। उन्होंने इस छंद के चतुर्थ चरण की समस्या पर कई सवैये लिखे हैं। ऐसी स्थिति में यह सवैया किसका माना जाय?

'बावनी' के छंद से भेद इतना ही है कि प्रथम पंक्ति के 'धराधर' के स्थान पर वहाँ 'दक्षिण' है और तीसरा चरण यों है—

माँ ! देखिये यह वही मित्र है . . .
. . जिसकी बहुधा आवश्यकता पड़ती है

बच्चे खेलते खेलते अक्सर गिर पड़ते हैं और उनको छोटे छोटे घाव हो जाते हैं या रगड़ लग जाती है। आपको एक विश्वसनीय तथा इस प्रकार के चोट को शीघ्र अच्छा कर देनेवाले मलहम की आवश्यकता है। क्यूटीकूरा मलहम (Cuticura Ointment) का एक डिब्बा अपने पास तैयार रक्खें। इससे आप हमेशा चोट या रगड़ का मुक़ाबला कर सकेंगे।

ज़ख़म को तुरन्त अच्छा करने के लिए तथा जलन को मिटाने के लिए क्यूटीकूरा मलहम (CUTICURA OINTMENT) का व्यवहार करें अगर आप इसे घाव, रगड़ अथवा फोड़े-फुन्सी पर लगायेंगे तो सड़न न आने पायेगी। क्यूटीकूरा मलहम (Cuticura Ointment) आग या गरम पानी से जले हुए के लिए भी बहुत ही लाभदायक है। इससे जलन तथा दर्द दूर हो जाती है और छाले नहीं पड़ते। इसके अतिरिक्त और भी चर्मरोग के लिए यह बहुत ही उपयोगी है। भयंकर खुजली भी इसके लगाते ही दूर हो जाती है। सख़्त से सख़्त फोड़े भी क्यूटीकूरा मलहम (CUTICURA OINTMENT) से अच्छे हो जाते हैं। अपने यहाँ के औषधि-विक्रेता से एक टिन ख़रीद लें।

क्यूटीकूरा मलहम (CUTICURA OINTMENT) लगाने से खारिस, फोड़ा, फुन्सी, नासूर, अपरस ज़हरीले ज़ख़म, घाव, कटा हुआ या रगड़ वग़ैरह हर तरह के चर्म सम्बन्धी रोग दूर हो जाते हैं।

क्यूटीकूरा मलहम
CUTICURA OINTMENT

पूछे जाते हैं। सुधार की दृष्टि से हमारे सामने सीधा सवाल है कि आज परदा-निवारण आवश्यक है या नहीं? और उसका भी उत्तर यही है कि वर्तमान समय में परदा-निवारण की शीघ्रातिशीघ्र आवश्यकता है।

घूँघट का उद्देश्य क्या है? उससे लाभ क्या है? व्यवहार में वह किस प्रकार अमल में लाया जाता है आदि आदि बातों पर यदि हम थोड़ा-सा विचार करें तो हमारी यह घूँघट की प्रथा अनुपयोगी, लाभहीन, तत्त्वहीन, एवं हास्यास्पद मालूम होगी। हमारी स्त्रियाँ भी घरों में परदा नहीं करती, ससुराल में ही करती हैं। हमारी स्त्रियाँ घरवालों से परदा करती हैं, बाहरवालों और अपरिचितों से परदा नहीं करतीं। स्त्रियाँ नौकरों से बराबर बोलती हैं, हँसती हैं और परदा भी नहीं करतीं, लेकिन पति, दोस्त, जेठ, ससुर या कहीं कहीं अपनी सास तक से परदा करती हैं। यदि स्त्रियों को अपने घर पर कोई बात पूछनी पड़ती है तो वहाँ भी नौकर टेलीफ़ोन का काम करता है और यदि नौकर न हो तो भीतर से बात कर उसकी प्रतिध्वनि से हमारी महिलायें अपना काम कर लेती हैं। जिन बड़े बूढ़े और गुरुजनों की संगति का लाभ अधिकाधिक उठाना चाहिए उनके सामने तक बहुओं का आना मना है, परन्तु जिन लोगों से यथाशक्ति दूर रहना चाहिए उनसे बात करने में आपत्ति नहीं समझी जाती। यदि वह बीमार हो जाय तो डाक्टर को दिखाते समय अलग रूप बना लिया जाता है। वह को कपड़े से ढाँक कर एक पुलिन्दा बना दिया जाता है, और डॉक्टर को जो कुछ पूछना हो वह घरवालों से ही पूछ सकता है।

भवाल-संन्यासी-मुक़दमा

बंगाल के इस प्रसिद्ध मुक़दमे की भारत में समाप्ति हो गई है और दुर्गापूजा की छुट्टियों के बाद उसका निर्णय हाईकोर्ट से हो जायगा। श्रीयुत अमलानन्द ने उसका परिचय 'समाजसेवक' में दिया है, जिसे हम यहाँ 'हिन्दुस्तान' से उद्धृत करते हैं—

क़ानून के इतिहास में शायद ही कोई मुक़दमा—भवाल-संन्यासी-केस के समान विशाल, रोचक और सनसनीदार हुआ है। यह मुक़दमा पहले-पहल ढाका की छोटी अदालत में २४ अप्रेल १९३३ को दायर हुआ था। उनकी सुनवाई २७ नवम्बर १९३३ को शुरू हुई थी और १९३६ तक मुक़दमा चलता रहा था। फ़ैसला २४ अगस्त १९३६ को सुनाया गया था। इस फ़ैसले में वादी की जीत हुई थी और तब प्रतिवादी ने १४ नवम्बर १९३८ में हाईकोर्ट में अपील की थी। अपील की सुनवाई १४ नवम्बर १९३९ को शुरू हुई और १४ अगस्त १९३९ को ख़तम हुई थी। हाईकोर्ट के तीन न्यायाधीशों के फ़ैसले २० अगस्त १९४० से लेकर २९ अगस्त १९४० तक सुनाये गये। अन्तिम निर्णय पूजा की छुट्टियों के बाद सुनाया जायगा। हाईकोर्ट के तीन न्यायाधीशों में से जस्टिस लाज ने अपना फ़ैसला प्रतिवादी के पक्ष में दिया है और जस्टिस विश्वास तथा कॅस्टेलो ने वादी के पक्ष में फ़ैसला दिया है। इस मुक़दमे में दोनों पक्षों की ओर से कम से कम २० लाख रुपया ख़र्च हुआ है और केवल काग़ज़ात में ही ८८ हज़ार रुपये गये।

इस मुक़दमे में वादी हैं एक संन्यासी जिसने अपने आपको बंगाल की प्रसिद्ध रियासत भवाल-राज्य का स्वर्गीय कुमार रमेन्द्रनारायण राय घोषित किया है। प्रतिवादिनी हैं श्रीमती विभावती देवी राय धर्मपत्नी स्व० रमेन्द्रनारायण राय।

द्वितीय कुमार रमेन्द्रनारायण राय के सम्बन्ध में कहा जाता है कि उनकी मृत्यु ८ मई १९०९ को हो चुकी थी। उनका श्राद्ध भी किया जा चुका था, किन्तु कुछ ही सालों के बाद पड़ोस के ज़िलों में यह अफ़वाह फैलने लगी थी कि कुमार जीवित हैं और वे संन्यासियों के किसी संघ के साथ घूम रहे हैं। १९२१ को वसन्त-ऋतु में ढाका नगर के बकलेण्ड-बन्द स्थान पर एक संन्यासी दिखाई दिया और कुछ लोगों को मालूम हुआ कि वही है भवाल-राज्य का राजकुमार। लोग उसे भवाल ले गये और उसे पहचाना गया। इस पर दो पक्ष हो गये। एक पक्ष कहता था कि वह भवाल कुमार है, दूसरा कहता था कि फ़र्ज़ी बदमाश है।

इसके बाद ही ४ मई १९२१ से संन्यासी ने अपने आपको कुमार घोषित कर दिया और रियासत से कर वसूल करना शुरू कर दिया। कुमार की पत्नी और कुछ लोगों ने उसे कुमार मानने से इनकार कर दिया। इस पर झगड़े हुए। ज़िलाधीश ने संन्यासी से मुलाक़ात की और कहा कि वह कुमार नहीं है। अन्त में २४ अप्रेल १९३० को संन्यासी ने मुक़दमा दायर कर दिया। छोटी अदालत में मुक़दमा २७ नवम्बर १९३३ को शुरू हुआ और वादी गवाहों की गवाही ६ फ़रवरी १९३५ को ख़तम

अब लक्स के नये बड़े आकार के पेकेट में आपको उतनी ही कीमत में ज्यादा माल मिलता है, इस लिये अपनी कोमल वस्त्रों को लक्स साबुन में चाहे जितनी बार धोइये। लक्स साबुन पक्के रंगके, ऊनी और रेशमी कपड़ों को बड़ी कोमलतापूर्वक साफ करता है। लक्स साबुन से ठंडे पानी में खूब झाग उत्पन्न होता हैं। लक्स साबुन मिले हुए पानी में अपने कोमल वस्त्रों को धीरे धीरे मलिये—उससे सारा मैल निकल कर वस्त्र बिलकुल साफ, सुरक्षित और नये निकल आयेंगे। यदि आप के कोमल वस्त्र ठंडे पानी में सुरक्षित रहते हैं तो लक्स साबुन से धोने से सुरक्षित रहेंगे।

जब आप लक्स का नया बड़ा पेकेट खरीदते हैं तो आपको अपनी कीमत से अधिक माल मिलता है।

छोटे और मध्यम आकार के लक्स के पेकेट भी कीमत कीमतसे बहुत अधिक है

LEVER BROTHERS (INDIA) LIMITED LX. 7-172 HI
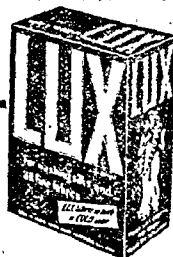
हुई। प्रतिवादी के गवाह ६ फ़रवरी १९३५ से आने शुरू हुए और १२ फ़रवरी १९३६ तक चलते रहे। इसके बाद वादी के विशेष गवाह पेश किये गये। वादी के कुल मिलाकर १,०३१ गवाह पेश किये गये, जिनमें से ३० के लिए कमीशन बैठाना पड़ा। प्रतिवादी ने ४७९ गवाह पेश किये, जिनमें ४८ कमीशन-द्वारा जाँचे गये। सबूत के लिए जो चीज़ें लाई गई उनकी संख्या २००० थी। इनमें क़रीब १०० फ़ोटो थे।

प्रतिवादी के वकील ने अपनी बहस १३ फ़रवरी १९३६ से लेकर ३१ मार्च १९३६ तक की। वादी के वकील ने अपनी बहस उसी दिन आरम्भ की और २० मई १९३६ को ख़तम की। इसके बाद छोटी अदालत के जज श्री पन्नालाल बोस ने अपना फ़ैसला सुनाया। इसी मुक़दमे के वक़्त मि० बोस अतिरिक्त दौरा-जज बना दिये गये थे। वह फ़ैसला वादी के पक्ष में हुआ।

इस मुक़दमे में जो गवाह आये उनमें सब तरह और सभी उमरों के लोग थे। कोई था २१ साल का युवक तो कोई था १०० वर्ष का बुड्ढा। उनमें सभी जातियों और धर्मों के लोग थे—हिन्दू, मुसलमान, पारसी, सिख, ईसाई, नागा, संन्यासी, बंगाली, हिन्दुस्तानी, मारवाड़ी, पंजाबी, भूटानी, अँगरेज़ और दूसरे भी पहाड़ी लोग गवाहों में थे। उनमें सईस, मछवों और वेश्याओं से लेकर पंडित, बैरिस्टर, ज़मींदार अर्थात् नीची से नीची और ऊँची से ऊँची श्रेणी तक के लोग थे। इस मुक़दमे और गवाही के कारण पूरा का पूरा भवाल राज्य और उसका पड़ोसी विभाग दो पक्षों में बँट गया था। एक ही घर में यदि बाप वादी का पक्ष करता था तो बेटा प्रतिवादी का। उदाहरणार्थ ताल्लुक़ेदार शिवचन्द्र मिश्र ने प्रतिवादी की तरफ़ से गवाही दी और उनके पुत्र प्रफुल्लकुमार मिश्र ने वादी के लिए गवाही दी। अजोमचन्द्र और उनके पुत्र का भी यही हाल हुआ। प्रतिवादिनी की एक बहन ने उसका पक्ष लिया और दूसरी ने संन्यासी की तरफ़ से गवाही दी।

जिस वक़्त मुक़दमा होता था, अदालत भीड़ से भर जाती थी और बीच-बीच में परस्पर विरोध में चीत्कारें होती थीं। सारा ढाका नगर दो दलों में बँट गया था और घर-घर विवाद होते थे। मुक़दमे के समय चार छोटे-छोटे दैनिक अख़बार बंगाली भाषा में निकलने लगे थे। ये अख़बार 'भवाली दैनिक' कहलाते थे। कलकत्ते के पत्रों में 'आनन्द बाज़ार पत्रिका' (बंगाली) में जिस दिन छोटी अदालत का फ़ैसला छपा था, उस दिन उसके विशेष अंक की १,०७,००० प्रतियाँ बिकीं और दूसरे दिन के कारण साधारण अंक की ११,८०० प्रतियाँ बिकीं। यह भारतीय पत्रकार जगत् में एक ऐतिहासिक रिकार्ड है।

वादी का कहना है कि वह दार्जिलिंग में बीमार तो पड़ा लेकिन मरा नहीं। बीमारी के वक़्त उसे ज़हर खिला दिया गया और वह उसके आवेश से बेहोश हो गया। इस पर उसे मुर्दा मान लिया गया और श्मशान-भूमि को पहुँचा दिया गया। यह घटना ८ मई १९०९ को हुई। श्मशान में अचानक तूफ़ान और मेघ आये और अर्थी के साथ आये हुए लोगों में भगदड़ मच गई। वे लोग अर्थी को छोड़ कर भाग गये। जब वे लौटे तब उन्हें अर्थी में कोई मृतक शरीर नहीं मिला। जब वादी को चेतना हुई तब उसने अपने आपको नागा संन्यासियों के झुंड में पाया। इन संन्यासियों ने उसकी सेवा-शुश्रूषा की और उसे फिर से स्वस्थ बनाया। इसके बाद वह एक स्थान से दूसरे स्थान तक जगह जगह संन्यासियों के साथ घूमता-फिरता रहा। अन्त में नैपाल के ब्रह्म-छत्र स्थान में उसने संन्यासियों का साथ छोड़ दिया और भिन्न भिन्न स्थानों में घूमता हुआ १२ वर्ष बाद ढाका पहुँचा।

कथित मृत्यु के समय कुमार रियासत के तृतीय अंश का हिस्सेदार था।

सम्पादकीय नोट
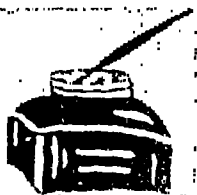
ब्रिटेन की महत्ता

१८ जुलाई को फ़्रांस ने हथियार डाल दिये थे। तब से आज तक जर्मनी ब्रिटेन पर आक्रमण करने का प्रयत्न कर रहा है। नार्वे से उसने इँगलैंड पर चढ़ाई करने की योजना बाँधी थी, पर उसे साहस नहीं हुआ। केले से बलोन तक लम्बी मार की तोपें लगाकर उसने इँगलिश चैनल को अपने अधिकार में कर ब्रिटेन पर धावा करने का मंसूबा बाँधा था सो वह भी हवा हो गया। रह गया वायुयानों से अरक्षित और रक्षित नगरों पर बम बरसाना, सो जर्मनों का यह अमानुषिक दुष्कृत्य अवश्य जारी है। परन्तु ब्रिटेन की हवाई सेना ने शत्रु का उसके इस क्षेत्र में डटकर मुक़ाबिला ही नहीं किया है, किन्तु उसने भी जर्मनी तक जाकर वहाँ भिन्न भिन्न फ़ौजी अड्डों तथा बर्लिन पर गोले बरसाये हैं। यह उन्हीं की वीरता के कार्यो का सुपरिणाम है कि जर्मन ब्रिटेन की ओर बढ़ने का साहस नहीं कर सके हैं। कहाँ कहा यह जाता था कि १५ सितम्बर को हिटलर लन्दन में ही चाय पियेंगे, कहाँ आज उन्हें अपना मुँह छिपाना पड़ रहा है। इसमें सन्देह नहीं कि ब्रिटेन ने अपनी महत्ता का पूरा परिचय दिया है और उसके नाम के साथ जो 'ग्रेट' (महान्) शब्द लगाया जाता है वह सार्थक हो गया है। जिन जर्मन-सेनाओं ने प्रायः सारे योरप को पददलित कर डाला है—पोलैंड, डेनमार्क, नार्वे, बेल्जियम तथा प्रबल फ़्रांस की स्वाधीनता को मिट्टी में मिला दिया है वही विजयी जर्मन-सेनायें ग्रेट ब्रिटेन के पुरुषार्थ के आगे हतप्रभ हैं और उनके किये कुछ नहीं हो रहा है। ब्रिटेन का जंगी बेड़ा उत्तरी सागर और इँगलिश चैनल में गर्व से मस्तक उठाये डटा हुआ है। क्या मजाल कि जर्मन-जहाज अपने रक्षा-स्थानों से निकलकर समुद्र की हवा खा सकें।

अँगरेज़ों ने इस प्रकार गत दो महीनों के भीतर जर्मनों की सारी क्षमता भले प्रकार देख ली है। उन्होंने पूरी तरह समझ लिया है कि जर्मनी में कितना दम है। फलतः अब वे खुद जर्मनी पर चढ़ाई करने की योजना बना रहे हैं और तब सचमुच जर्मनी की आँखें खुल जायँगी कि उसमें कितना दम्भ रहा है। यही नहीं, जो अनाचार उसने किया है, उस अवसर पर समुचित दण्ड मिलने पर, इसका भी उसे बोध हो जायगा। इसमें सन्देह नहीं कि यह सब कुछ कर सकने का सामर्थ्य ब्रिटेन में है, आवश्यकता केवल उसके प्रदर्शन करने भर की है। आज ब्रिटेन का एक एक आदमी अपने भरसक शत्रु को परास्त करने के लिए कुछ बाक़ी नहीं छोड़ना चाहता। उदाहरण के लिए हम भारत के वायसराय महोदय की पुत्र-वधू का उदाहरण यहाँ दे सकते हैं। उनके पति महोदय तो जर्मनी में युद्ध के क़ैदी हैं और वे यहाँ भारत में अपने बाल-डाँस के द्वारा युद्ध के लिए धन-संग्रह के काम में संलग्न हैं। जिस जाति के छोटे-बड़े जब अपनी स्वाधीनता के लिए इस तरह कार्य-तत्पर हैं तब उनकी विजय क्योंकर न होगी?

फ़्रेंच उपनिवेशों का विद्रोह

फ़्रांस ने युद्ध में एकाएक हथियार क्यों डाल दिये, जान पड़ता है, इसमें भी कोई रहस्य है, क्योंकि हम देख रहे हैं कि फ़्रांस के जनरल गाल ब्रिटेन से अपनी वर्तमान फ़्रेंच-सरकार के विरुद्ध अपने फ़्रांस की स्वाधीनता की लड़ाई जारी किये हुए हैं। यही नहीं, हम यह भी देख रहे हैं कि धीरे धीरे एक एक करके फ़्रांस के उपनिवेश अपनी वर्तमान फ़्रांस-सरकार के विरुद्ध जनरल गाल का पक्ष ले रहे हैं। चाड, कैमरून, कांगो, इन्डोचीन, सीरिया आदि की फ़्रेंच-सरकारों ने गाल का पक्ष खुल्लमखुल्ला ले लिया है। फ़्रांस की वर्तमान सरकार के पक्ष में यदि कोई उपनिवेश रह गया है तो वे उत्तरी अफ़्रीका के उसके अधिकृत देश भर हैं। कहने का मतलब यह है कि फ़्रांस के साम्राज्य का एक बड़ा अंश जर्मनी से लड़ने के ही पक्ष में है। तब फ़्रांस के वर्तमान सूत्रधारों ने हथियार रख देने की कायरता क्यों दिखलाई है, इसका उचित समाधान नहीं मिल रहा है। चाहे जो हो, इस समय फ़्रांस बड़ी दयनीय दशा को प्राप्त है। उसके एक बहुत बड़े अंश पर शत्रु का अधिकार है। जो अंश उसकी अपनी सरकार के

हाथ में है उसकी सरकार की शिखा जर्मनों के हाथ में है। ऐसी दशा में यदि उसके साम्राज्य के भिन्न भिन्न भाग अपनी नपुंसक सरकार के विरुद्ध विद्रोह का झंडा खड़ा करें और अपनी तथा अपने फ़्रांस की स्वाधीनता के लिए अँगरेज़ों के साथ रहकर नाज़ियों से लड़ाई घोषित किये रहें तो यह बात उनके लिए सर्वथा स्वाभाविक भी होगी, और हो भी वैसा ही रहा है। इस अवस्था से विदित होता है कि फ़्रांस की वर्तमान सरकार के हथियार रख देने से फ़्रेंच लोग अपने को हारा हुआ नहीं मान रहे हैं और वे अपनी स्वाधीनता के लिए जर्मनों से युद्ध करने को तैयार हैं। उन्हें विश्वास है कि जनरल गाल के नेतृत्व में वे अपने देश की स्वाधीनता की रक्षा करने में अवश्य सफल-मनोरथ होंगे। उपनिवेशों के विद्रोह का यही रहस्य है।

इटली की महत्त्वाकांक्षा

इटली के मुसोलिनी बहुत दिन से भूमध्यसागर को अपनी झील कहते आये हैं। यही नहीं, उनके पिट्ठू यह भी कहा करते थे कि इँग्लेंड बूढ़ा हो गया है और उसके जंगी जहाज़ पुराने पड़ गये हैं, जो उनकी नई बहुसंख्यक पनडुब्बियों का सहज शिकार हो जायँगे। परन्तु लोगों ने तभी इन कथनों को कोरी डींगें समझा था। और आज इटली के जर्मनी की ओर से युद्ध में कूद पड़ने पर उन्हें अपनी सूझ-बूझ का प्रमाण भी मिल गया है, क्योंकि हम देखते हैं कि भूमध्यसागर में अँगरेज़ों का जंगी बेड़ा पहले की ही तरह अपना गर्जन-तर्जन कर रहा है और इटली के जंगी जहाज़ तथा उसकी बहुसंख्यक नई पनडुब्बियाँ न मालूम कहाँ जाकर छिप रही हैं। यद्यपि यह सब कुछ हो चुका है और आज भी हो रहा है, तथापि अँगरेज़ आत्मरक्षा की भावना के कारण उसके सब प्रकार के आक्रमणों का वारण करने में ही सफल नहीं हुए हैं, किन्तु प्रायः उन्हें मार भगाने में भी सफल हुए हैं। यही कारण है कि माल्टा में आज भी ब्रिटिश झंडा उड़ रहा है और अँगरेज़ों के जहाज़ भूमध्यसागर में तथा लाल सागर में मज़े में आते-जाते रहते हैं। लाख प्रयत्न करके भी इटली उनके मार्ग में बाधा नहीं डाल सका है। यही क्यों, जिन जिन स्थलों में उसकी अँगरेज़ों से आमने-सामने की मुठभेड़ हुई है, वहाँ भी उसने मुँह की खाई है। और अब तो ऐसा जान पड़ता है कि उसके 'साम्राज्य' का भी अंग भंग हो जायगा, क्योंकि अबीसीनिया के भूतपूर्व सम्राट् हेल सेलासी इँग्लेंड से सूदान आ पहुँचे हैं, जहाँ से वे अबीसीनिया पर फिर से अपना अधिकार क़ायम करने का प्रयत्न करेंगे। यह सच है कि पिछले दिनों इटली ने अरक्षित ब्रिटिश सुमालीलेंड पर अधिकार कर लिया है और उसकी सेनायें केनिया में भी घुस गई हैं। इधर वह मिस्र पर भी आक्रमण करने का उपक्रम कर रहा है। परन्तु ऐसे इधर-उधर के युद्धों से तो कुछ होगा नहीं, इनसे भूमध्यसागर पर उसका अधिकार थोड़े ही हो जायगा।

रूमानिया का अन्त

ब्रिटेन के योरप के राजनैतिक क्षेत्र में अकेला पड़ जाने से जर्मनी और इटली बाल्कन-राज्यों में अपना अपना उल्लू सीधा कर रहे हैं।

का प्रान्त लौटा देना स्वीकार कर लिया। परन्तु हंगेरी की माँग को उसने स्वीकार नहीं किया। इस पर दोनों देश लड़ने को तैयार हो गये। लड़ाई छिड़ती देखकर जर्मनी और इटली बीच में कूद पड़े और उन्होंने रूमानिया को आदेश किया कि ट्रांसल्वेनिया का अधिकांश वह हंगेरी को दे दे। फलतः रूमानिया को उनका यह फ़ैसला स्वीकार करना पड़ा। यह भी कहा जाता है कि रूमानिया को जर्मनी ने अपने प्रभाव-क्षेत्र में ले लिया है। यह तो प्रकट ही है कि उसकी रूस से मिली हुई सीमा की रक्षा करने के लिए जर्मनी और इटली की सेनायें भेज दी गई हैं। इस प्रकार रूमानिया के राज्य का अंगभंग ही नहीं हो गया है, किन्तु वहाँ के बादशाह कैरोल को सिंहासन छोड़कर स्वदेश छोड़कर भाग जाना पड़ा है और रूमानिया में तानाशाही का बोलबाला हो गया है। चाहे जो हो, रूमानिया को अँगरेज़ों का साथ छोड़ देने का फल मिल गया।

परन्तु बाल्कन की कथा यहीं से समाप्त नहीं होगी यूनान से इटली की खटपट शुरू हो गई है, क्योंकि यूनान को ब्रिटेन की संरक्षता प्राप्त है। फिर रूमानिया के बँटवारे ने भी वहाँ के राज्यों की आँखें खोल दी हैं। तुर्की और जुगोस्लाविया यह सब देखकर चिन्तित हो गये हैं। लक्षणों से जान पड़ता है कि बाल्कन के इन राज्यों की भी स्वाधीनता को धक्का अवश्य पहुँचेगा। जर्मनी और इटली अपने भरसक उन्हें कभी स्वाधीन नहीं रहने देंगे।

हरप्पा की खोदाई

मोहेंन जो दड़ो की तरह हरप्पा ने भी अपने प्रागैतिहासिक महत्त्व के लिए ख्याति प्राप्त की है। यह स्थान पंजाब के मान्टगुमरी-ज़िले में रावी नदी से कुछ हट कर स्थित है। इसके पास कुछ प्राचीन टीले थे, जिन्हें कनिंघम साहब ने उन मल्ल लोगों की राजधानी का ध्वंसावशेष बताया था जिन्होंने सिकन्दर से युद्ध किया था। बीस वर्ष पहले पुरातत्त्व-विभाग ने यहाँ खोदाई शुरू की थी। उस खोदाई से वहाँ जो वस्तुएँ प्राप्त हुई उनका विवरण दो बड़ी बड़ी जिल्दों में छपकर अब प्रकाशित हुआ है। मोहेंन जो दड़ो की खोदाई से सिंध की प्राचीन सभ्यता पर जो प्रकाश पड़ा है उसकी पुष्टि हरप्पा की खोदाई से प्राप्त वस्तुओं से भले प्रकार होती है, इसके सिवा और नई बातें भी प्रकाश में आती हैं। हरप्पा का उक्त प्राचीन स्थल मोहेंन जो दड़ो की अपेक्षा अधिक बड़ा है और उसका इतिहास भी उसकी अपेक्षा पहले से शुरू होता है तथा अधिक लम्बे समय तक जाता है। उसकी कुछ वस्तुएँ ईसा से ३,२५० वर्ष पहले की निकली हैं। इस प्रकार हरप्पा और मोहेंन जो दड़ो की खोदाई से सिंध की घाटी के प्रागैतिहासिक काल के इतिहास पर अच्छा प्रकाश पड़ा है। उस काल में वहाँ के लोग पत्थर, ताँबा या काँसे का प्रयोग करते थे, लोग शहरों में रहते थे और खेती तथा व्यापार करते थे, खेती गेहूँ, जौ और छुहारे की होती थी। लोग तरह तरह के पशु पालते थे—सम्भवतः घोड़े और बिल्ली नहीं पाले जाते थे। धातुओं का—मूल्यवान् धातुओं का—उपयोग भी वे जानते थे। बुनने की कला में निपुण थे। वे योद्धा भी थे। उनको लिखने का ज्ञान था, परन्तु उनकी लिपि विचित्र थी। वे आमिष-भोजी भी थे। वहाँ ऐसी भट्ठियाँ भी मिली हैं, जिनसे जान पड़ता है कि लोग उद्योग-धंधे भी करते थे। वहाँ मिले हुए आभूषणों, मुहरों, घड़ों, बर्तनों, हथियारों आदि का भले प्रकार अध्ययन करने से उस काल के इतिहास पर अच्छा प्रकाश पड़ता है, जिसका विवरण विस्तार के साथ उपर्युक्त जिल्दों में किया गया है। इतिहास-प्रेमियों को इन पुस्तकों से लाभ उठाना चाहिए।

भारतीय इतिहास की रचना

पण्डित जयचन्द विद्यालङ्कार 'भारतीय इतिहास' के 'विशेषज्ञ' हैं, उन्हें उसका असाधारण ज्ञान है। वर्षों से उनकी इच्छा रही है कि भारत का एक 'प्रामाणिक' इतिहास लिखा जाय। परन्तु ऐसे प्रयत्न के लिए बड़े आयोजन की ज़रूरत है। और साधनों का अभाव होते हुए भी वे अपनी सदिच्छा की पूर्ति के प्रयत्न में बराबर लगे रहे। प्रसन्नता की बात है कि उन्हें अपने प्रयत्न में काफ़ी अधिक सफलता मिली है। उन्हें कुछ ऐसे महानुभावों का सहयोग प्राप्त हो गया है जिनकी सहायता से भारतीय इतिहास के लिखने की व्यवस्था हो गई है। काशी जी में इस कार्य के लिए एक संस्था की स्थापना की गई है, जिसका संचालन विद्यालङ्कार जी के तत्त्वावधान में होगा। उन्होंने अलीगढ़-विश्वविद्यालय की उस संस्था का भी सहयोग प्राप्त

कर लिया है, जो स्वयं अलग एक भारतीय इतिहास तैयार करने जा रही थी। जयचन्द जी के प्रयत्न से अब ये दोनों संस्थायें परस्पर मिलकर उक्त इतिहास-ग्रन्थ तैयार करेंगी। प्राचीन भारत का इतिहास काशीवाली संस्था अलीगढ़ की संस्था के सहयोग से तैयार करेगी और उसके बाद के माध्यमिक युग के भारत का इतिहास अलीगढ़वाली संस्था काशी की संस्था के सहयोग से लिखेगी। इस प्रकार यह इतिहास-ग्रन्थ बीस जिल्दों में निकलेगा। परन्तु यह प्रगट नहीं हुआ है कि यह किस भाषा में निकलेगा। चाहे जिस भाषा में निकले, इस बात की नितान्त आवश्यकता है कि एक प्रामाणिक भारतीय इतिहास-ग्रन्थ जल्दी से जल्दी लिखा जाय।

भारतीय स्त्रियाँ—क्रांति के पथ पर

भारतीय स्त्रियों में—विशेषकर हिन्दू स्त्रियों में अभिनव जागरण हुआ है। यही नहीं, अब वे बाहर आकर अपने अधिकारों की माँग कर रही हैं, क्योंकि वे अपनी वर्तमान अवस्था से सन्तुष्ट नहीं हैं। यह सच है कि वर्तमान युग में, समय के प्रभाव के कारण, उन्हें जो स्वाधीनता प्राप्त हुई है उससे उन्हें पर्याप्त लाभ पहुँचा है और उनमें आत्म-सम्मान का भाव जाग्रत हुआ है। इसी से आज वे समाज की उन प्रथाओं को उच्छिन्न करने को प्रयत्नशील हैं, जिन्हें वे अपने महत्त्व का विघातक समझती हैं। कलकत्ते में उनकी पर्दाविरोधिनी सभा का जो जलसा सितम्बर के दूसरे सप्ताह में हुआ है उसकी धूमधाम से यह बात अनायास ही जानी जा सकती है कि पर्दा की प्रथा का उन्मूलन करने को वे कितना उत्सुक हैं। इसका जो शानदार जुलूस उस दिन कलकत्ते की सड़कों पर निकला था तथा सभा का अधिवेशन जिस धूमधाम से हुआ था वह सब अपने ढंग का एक अभूतपूर्व सफल प्रयत्न था और इसके लिए उसका प्रबन्ध करनेवाली महिलाओं की जितनी भी प्रशंसा की जायगी वह थोड़ी होगी। अतएव उनके इस प्रयत्न का कोई भी सहृदय पुरुष बड़ी प्रसन्नता से स्वागत करेगा। परन्तु इसके साथ ही लखेरी (धौलपुर) में सर्वभारतीय राजपूत-स्त्रियों की सभा की जो बैठक हुई है और उसमें जो क्रान्तिकारी भाषण हुए हैं वे चौंकानेवाले हैं। हम नहीं समझ पाते कि उस सभा की कार्यवाही में हमारी अपनी संस्कृति का कितना प्रभाव है। उस सभा में स्त्रियों ने इस बात की माँग की है कि उन्हें पतिवरण की पूर्ण स्वाधीनता प्राप्त होनी चाहिए। उनकी यह माँग कहाँ तक समुचित है, इस पर इस स्थिति में हमारा कुछ कहना बेकार है। तथापि इतना तो कहना ही पड़ेगा कि उनकी ऐसी माँग हिन्दू-समाज में विशृंखलता, चाहे भले ही उत्पन्न कर दे, उनके समाज को लाभान्वित नहीं करेगी। चाहे जो हो, इतना तो अब स्पष्ट ही हो गया है कि देश की शिक्षित स्त्रियाँ अपनी वर्तमान अवस्था से असन्तुष्ट हैं, यहाँ तक कि वे क्रान्ति के पथ पर अग्रसर हो रही हैं। ऐसी दशा में पुरुष-समाज का भी कुछ कर्तव्य है और समय रहते उसके पालन के लिए उसे यत्नवान् होना ही चाहिए।

हिन्दी पर संकट

यह हम लोगों की भ्रान्त धारणा नहीं है कि महात्मा गांधी ने किसी समय 'हिन्दी' को 'राष्ट्रभाषा' माना था, यही नहीं, दक्षिण में अपने पुत्र श्री देवदास गांधी को भेजकर उसका प्रचार भी करवाया था। परन्तु आज हम उस बात को भ्रान्त धारणा इसलिए कहने को लाचार हुए हैं कि महात्मा गांधी ने २४ अगस्त के 'हरिजन-सेवक' में इस बात को स्पष्ट कर दिया है कि वे राष्ट्र-भाषा किसे कहते हैं। वे लिखते हैं—

"कांग्रेस ने राष्ट्रभाषा हिन्दुस्तानी को माना है। हिन्दुस्तानी वह भाषा है, जो उत्तर में हिन्दू-मुसलमान बोलते हैं और देवनागरी या उर्दू-लिपि में लिखते हैं। मेरी कोशिश ऐसी हिन्दुस्तानी में लिखने की रहेगी।"

'उत्तर' में हम भी रहते हैं, पर आज तक हमारी जानकारी में "हिन्दुस्तानी" नाम की ऐसी कोई भाषा नहीं आई जो देवनागरी या उर्दू में लिखी जाती हो। खैर, जब उसके अस्तित्व का साक्ष्य महात्मा जी देते हैं तब हमारे लिए चुप रहना ही ठीक होगा। यहाँ हम केवल यही कहना चाहते हैं कि हमारे हिन्दी-प्रेमी अपनी इस धारणा को ठीक कर लें कि 'हिन्दी' भारत की राष्ट्र-भाषा है। हम पहले भी अपने पाठकों से निवेदन कर चुके हैं कि वे हिन्दी को राष्ट्रभाषा बनाने का मोह छोड़ दें और केवल उसे उन प्रान्तों में उसका नैसर्गिक स्थान दिलाने का प्रयत्न करें जहाँ वह बोली और लिखी-पढ़ी जाती है, क्योंकि महात्मा गांधी के उपर्युक्त वक्तव्य से तो 'हिन्दी' का कोई अस्तित्व ही

शायद आपके पानीके बरतनमें जरम्स (बीमारीके कीड़े) और पानी हों

क्या आप अपने पानीके बरतनोंको राख या रेतसे साफ करते हैं? अगर ऐसा करते हैं तो इनमें बिमारीके कीड़े आनेका अंदेशा है। क्योंकि इन चीजोंसे बरतनोंमें लकीरें पड़ जाती हैं और इन लकीरोंमें मैल जमा हो जाता है। और इस मैलमें आसानीसे बिमारियोंके कीड़े पैदा हो जाते हैं। अगर यह बरतन साफ भी किये जाते तो भी इनमें राख या रेत रह ही जाती है।

इन तमाम खतरोंसे बचनेके लिये विमसे ही साफ किये हुए बरतन बिलकुल साफ होते हैं और मैलका नाम तक नहीं रहता कि जिसमें किसी किस्मकी बिमारीके कीड़े पैदा भी हो सकें जिससे आपके पानीके बरतन आगे से ज़ियादा खूब चमकेंगे। विम सबसे अच्छी चीज़ है जिससे और किसी किस्मके खतरेके, रंगीन काम, लकड़ीकी चीज़ें, चिलमची नहानेके टब, टाइलें इत्यादि साफ हो जाती हैं।
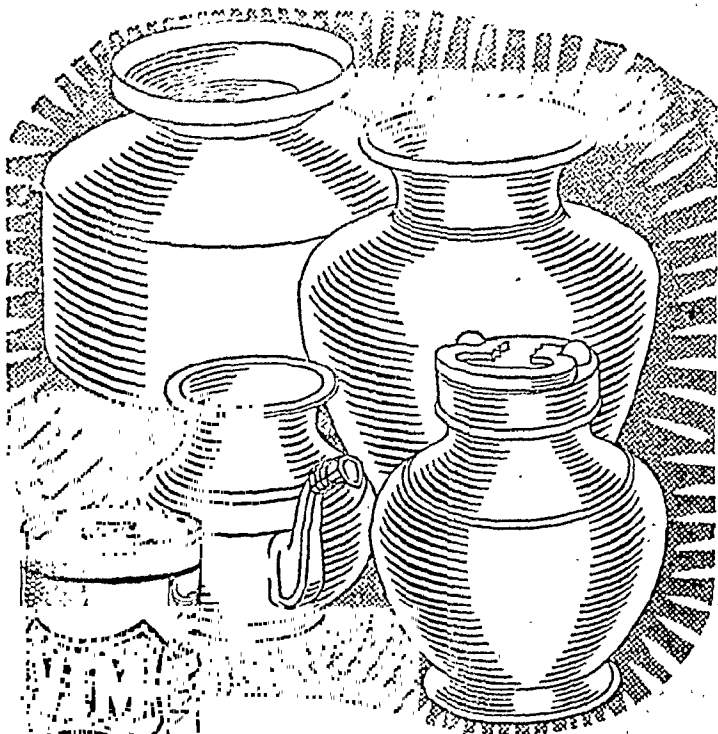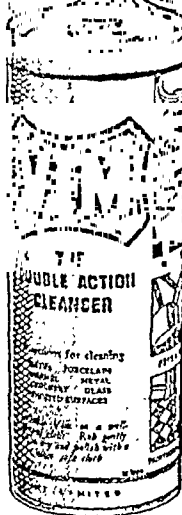
X-V 376-172—HI LEVER BROTHERS (INDIA) LIMITED

नहीं है। हम बरसों से कह रहे हैं कि यह हिन्दी का संकट-काल है। हिन्दी-भाषियों को चाहिए कि वे अपनी मातृ-भाषा की अस्तित्व-रक्षा के लिए सजग हो जायँ।

पण्डित शालग्राम शास्त्री

लखनऊ के प्रसिद्ध वैद्य पण्डित शालग्राम शास्त्री का ३ सितम्बर को स्वर्गवास हो गया। आप संस्कृत के पूर्ण पण्डित तथा आयुर्वेदीय चिकित्सा के विशेषज्ञ थे। और यद्यपि उन्हें अपने व्यवसाय से उतना अवकाश नहीं मिलता था, तो भी साहित्य-चर्चा से उन्हें विशेष अनुराग था और हिन्दी से भी प्रीति रखते थे। उनका आचार्य द्विवेदी जी से घनिष्ठ सम्बन्ध था और कदाचित् उनकी प्रेरणा या आग्रह से शास्त्री जी हिन्दी में प्रायः लिखा करते थे। उनके लिखने की शैली जोरदार थी। खेद है कि वे हिन्दी को अपना अधिक समय नहीं दे सके। तो भी उन्होंने जो कुछ लिखा है वह उनकी कीर्ति के लिए कम नहीं है। निस्सन्देह उनके निधन से हिन्दी का एक जोरदार विद्वान् लेखक उठ गया। भगवान् उनकी आत्मा को सद्गति प्रदान करें।

रणमत्त संसार

संयुक्त-प्रान्त के शिक्षा-प्रसार-विभाग से उपर्युक्त पुस्तक हमें समालोचनार्थ मिली है। इस पुस्तक के लेखक पण्डित वेंकटेश नारायण तिवारी हैं और प्रकाशक इंडियन प्रेस है। इसमें सन्देह नहीं कि इस युद्ध-काल में यह पुस्तक बड़ी उपयोगी निकली है। इसकी सहायता से युद्ध की गति-विधि का अध्ययन बड़ी सुगमता से साथ किया जा सकता है। पुस्तक में संसार के सभी देशों की विशेषकर युद्ध-लिप्त देशों की सामरिक शक्ति का प्रामाणिक आँकड़ों और मानचित्रों के द्वारा परिचय दिया गया है। साथ में संसार के दो मानचित्र दिये गये हैं, जिनसे युद्ध-क्षेत्रों का और युद्ध-लिप्त राष्ट्रों की गति-विधि का परिचय मिल सकता है। प्रत्येक पढ़े-लिखे आदमी के पास यह पुस्तक होनी चाहिए, क्योंकि ऐसा कौन होगा जो वर्तमान युद्ध के सम्बन्ध में प्रामाणिक रूप से न जानना चाहता होगा।

भूल-सुधार

पिछले जून की सरस्वती में ५९६ पृष्ठ पर 'टौंटियाग्रेन' में, शीर्षक जो नोट छपा है उसमें भूल से यह लिख गया है कि राव आदित्यनारायणसिंह जी की विधवा रानी ने गोद लिया है—रानी ने नहीं, उनकी पुत्र-वधू ने गोद लिया है। पाठक इस भूल का सुधार करने की कृपा करें।

नागपुर की एक प्रसिद्ध कपड़े की मिल के अधिकारी इस बात पर ज़ोर दे रहे हैं कि काम के बीच में जो छुट्टी दी जाती है उसमें मिल-मज़दूरों को चाय पिलाने से ज़्यादा माल तैयार हो सकता है।

"रात में काम करनेवाले हमारे सभी मज़दूर इस बात को स्वीकार करते हैं कि वे रात को बिना एक प्याला चाय पिये नहीं रह सकते। हम खुद यह महसूस करते हैं कि इस हलका उत्तेजक—चाय से आगे चलकर हमारे माल के उत्पादन में बहुत फ़ायदा पहुँच सकता है"।

पचास रुपये का

श्री काशीराम-पुरस्कार

इसका तृतीय पुरस्कार इस बार—कविता—पर दिया जायगा। नियम निम्नांकित है —

(१) हिन्दी का कोई भी लेखक या लेखिका इस पुरस्कार की प्रतियोगिता में भाग ले सकेगी।

(२) कविता भेजने की अन्तिम तारीख ३१ अक्टूबर है।

(३) कविता ५० पद्यों की हो। केवल नई और मौलिक कविता पर विचार किया जायगा।

(४) सर्वश्रेष्ठ कविता पर ५०) का पुरस्कार ३० नवम्बर को भेज दिया जायगा और कविता 'सरस्वती' में छापी जायगी। पुरस्कार का रुपया निर्णायक भेजेंगे।

(५) कविताओं का निर्णय 'सरस्वती'-सम्पादक पण्डित देवीदत्त जी शुक्ल करेंगे। प्रतियोगियों को अपनी कवितायें उन्हीं के नाम 'इंडियन प्रेस लिमिटेड, इलाहाबाद' के पते से भेजनी चाहिए। —

(६) कविता पर 'श्री काशीराम-पुरस्कार के लिए'—यह वाक्य अवश्य लिखा रहना चाहिए। कविता के साथ आवश्यक टिकट अवश्य होना चाहिए, अन्यथा अस्वीकृत होने पर कोई कविता वापस न की जायगी।

निवेदक

चन्द्रभूषण वैश्य, नारायणगंज (ढाका)

युद्ध की डायरी

२६ जून—आर्नहेम और बोकुम के हवाई अड्डों पर जोर के हवाई हमले किये गये। डच-सीमा के पास लिंग्जैन में एक रेलवे पुल उड़ाया गया।

२७ जून—माल्टा पर ५ बार हवाई आक्रमण किया गया।

२८ जून—रूमानिया की सरकार ने इस्तीफ़ा दे दिया।

२९ जून—शत्रु के जहाज़ों ने इँग्लैंड के पूर्वी तट पर रात में हमला किया। १ वायुयान गिराया गया। उत्तरी व उत्तरी-दक्षिणी मिडलैंड पर शत्रु ने कुछ बम गिराये। पर विशेष हानि नहीं हुई।

१ जुलाई—इँग्लैंड और वेल्स पर शत्रु के हवाई हमले हुए। आधी रात के बाद शत्रु के कई वायुयानों ने इँग्लिश चैनेल को पार किया। ब्रिस्टल की खाड़ी के क्षेत्र में भी हमला हुआ। शत्रु के ८ वायुयान गिराये गये। जर्मन फ़ौजें चैनल-द्वीपों में उतरीं। अबीसीनिया की सीमा के निकट ब्रिटिश मोयले पर इटैलियन सेनाओं ने आक्रमण किया। बेसराबिया पर रूस ने अधिकार कर लिया।

२ जुलाई—ब्रिटिश हवाई सेना ने जर्मनी पर कई हमले किये। जर्मन जंगी जहाज़ शार्नहर्स्ट पर भी भयानक बम-वर्षा की गई। २० जर्मन वायुयान नष्ट हुए।

३ जुलाई—ब्रिटिश वायुयानों ने मोयले में इटली के रक्षा-साधनों पर हमला किया।

४ जुलाई—जर्मन नजरबन्दों से भरा हुआ एक ब्रिटिश जहाज़ शत्रु के तारपीडो से नष्ट हो गया।

५ जुलाई—पोर्टलैंड में शत्रु के विमान ने एक जहाज पर बम-वर्षा की, जिससे उसमें आग लग गई। ब्रिटिश वायु-सेना ने आदेन, दिकोदी और नानविले के हवाई अड्डों पर बम गिराये। जिब्राल्टर पर पहला हवाई-आक्रमण हुआ।

६ जुलाई—एक फ्रांसीसी जहाज और एक विध्वंसक तारपीडो ने डुबाये गये। शत्रु का एक वायुयान मार गिराया गया। यह दक्षिणी-पूर्वी इँग्लैंड पर बम-वर्षा करने आया था।

७ जुलाई—वरगन में जर्मन के तेल-गोदामों पर हमला किया गया। इँग्लैंड के दक्षिणी तट पर कई हवाई आक्रमण हुए। काउन्ट सियानो और हिटलर में बातचीत हुई।

९ जुलाई—इँग्लैंड के कई जिलों पर शत्रु ने आक्रमण करके गोले बरसाये। कुछ लोग हताहत हुए।

१० जुलाई—भयानक हवाई लड़ाई हुई जिसमें १५० विमानों ने भाग लिया। १० जर्मन विमान मार गिराये गये।

११ जुलाई—मार्शल पेताँ ने फ्रांस के राष्ट्रपति होने की स्वयं रेडियो-द्वारा घोषणा की। अलेक्जेंड्रिया पर शत्रु के विमानों ने गश्त लगाये। दक्षिणी ब्रिटेन पर शत्रु का जोरदार हमला हुआ, जिसमें उसके २२ वायुयान नष्ट हुए।

१२ जुलाई—जर्मनी पर भयानक हमला किया गया। ब्रिटिश बमवर्षक दूर तक गया।

१३ जुलाई—मोयेल पर आक्रमण जारी रहे। ब्रिटेन ने बर्मा के रास्ते चीन को सामान न भेजने की जापान की शर्त मान ली।

१६ जुलाई—जापानी मंत्रिमंडल ने पदत्याग कर दिया।

१८ जुलाई—जिब्राल्टर पर शत्रु के विमानों ने बम गिराये। इँग्लैंड के दक्षिणी-पूर्वी हिस्से पर भी शत्रु ने बम गिराये।

१९ जुलाई—भूमध्यसागर में सिडनी नामक ब्रिटिश क्रूज़र दो इटालियन क्रूज़रों से भिड़ा। एक इटालियन क्रूज़र डूब गया और दूसरा भाग गया। इँग्लैंड के दक्षिणी-पूर्वी तट पर दो लड़ाइयाँ हुईं। १२० बमवर्षकों ने इनमें भाग लिया। शत्रु के २० से अधिक वायुयान गिराये गये।

२२ जुलाई—दक्षिणी-पूर्वी स्काटलैंड के एक कस्बे पर भयानक आग लगानेवाले बम गिराये गये। शत्रु के २ विमान मार गिराये गये। दुश्मन के हवाई हमले के परिणाम-स्वरूप ब्रैजने नामक एक ब्रिटिश युद्धपोत डूब गया। ८० जर्मन-वायुयानों ने ब्रिटिश जहाज़ों पर आक्रमण किया।

२५ जुलाई—सैकड़ों ब्रिटिश और जर्मन-वायुयानों ने इँग्लिश चैनेल पर बड़ी देर तक संग्राम हुआ। २ जर्मन जहाज मार गिराये गये।

२९ जुलाई—डेरस पर रात्रि के समय बम-वर्षा हुई। शत्रु के ८ बमवर्षक और ७ युद्ध-वायुयान गिरा दिये गये। ब्रिटिश बमवर्षकों ने गेल्बर्ग की तेल-टंकियों पर हमला किया।

३० जुलाई—इटालियन विमानों ने अदन पर बम गिराये।

सचित्र मासिक पत्रिका

सम्पादक

देवीदत्त शुक्ल—उमेशचन्द्र मिश्र

नवम्बर १९४० } भाग ४१, खंड २ संख्या ५, पूर्ण संख्या ४९१ {कार्तिक १९९७

विनाश

लेखक, श्रीयुत हितैषी

मम अंश में सृष्टि के आदि से एक
अज्ञान महा दुखदायी पड़ा ।
नव ज्ञान विज्ञान का कोष तो
भाग में मेरे नहीं इक पाई पड़ा ॥

जिसको जगती ने विकास कहा
इस दृष्टि को ह्रास' दिखाई पड़ा ।
मुझको महानाश का श्वास-
प्रश्वास में भी पद-चाप सुनाई पड़ा ॥

पल मारे विना रहीं पद्मिनियाँ तकती
न प्रभाकर रोके रुका ।
न दिवापति की निशि-वाम के धाम
सकाम सुधाकर रोके रुका ॥

सुमनों के वनों वनों अग्नि लगी
पै नहीं कुसुमाकर रोके रुका ।
तब जाकर ही जग से रहे,
कौन यहाँ पर आकर रोके रुका ?

लेखक, रायबहादुर बाबू श्यामसुंदरदास, बी० ए०

यों तो हिंदी का जन्म-काल सम्राट् हर्षवर्द्धन का समय बताया जाता है, परंतु जिस हिंदी को हम जानते हैं उसका कलम इस 'कहानी' के लेखक महोदय ने लगाया था, यही नहीं, उसे पाल-पोसकर फलद वृक्ष के रूप में भी परिणत कर दिया। उनकी यह 'आत्मकहानी' विश्वास है, प्रत्येक हिंदी-प्रेमी ध्यान से पढ़ेगा, क्योंकि वह इसको पढ़कर जान सकेगा कि उसकी हिंदी कहाँ से कहाँ जा पहुँची है। इस अंश में बाबू साहब ने अदालतों में नागरी-लिपि के प्रचार-सम्बन्धी अपने प्रारम्भिक प्रयत्नों का वर्णन किया है।

(३)

अदालतों में नागरी

पाँचवें वर्ष से सभा उन्नति के मार्ग पर अग्रसर हुई। सन् १९०० तक पहुँचते पहुँचते उसने कई उपयोगी कार्य आरंभ कर दिये और बहुत कुछ प्रतिष्ठा तथा सम्मान प्राप्त किया। सबसे महत्त्व का कार्य अदालतों में नागरी अक्षरों के प्रचार का उद्योग था। पंडित मदनमोहन मालवीय ने Court Character and Primary Education in the N.-W. Provinces and Oudh. और परिश्रम तथा प्रशंसनीय लगन के साथ तैयार कर लिया था। इसका संक्षेप मैंने 'पश्चिमोत्तर प्रदेश तथा अवध में अदालती अक्षर और प्राइमरी शिक्षा' नाम से लिखा था जो नागरी-प्रचारिणी पत्रिका में छपा और जिसकी अलग प्रतियाँ छाप कर बाँटी गईं। मालवीय जी ने इस संक्षेप को देखकर अपनी प्रसन्नता प्रकट की थी और सुंदर वाक्यों में हम लोगों का उत्साह बढ़ाया था। अब मेमोरियल देने की तैयारी हुई। एक डेपुटेशन बनाया गया जिसमें प्रांत भर के प्रमुख प्रमुख १७ व्यक्ति थे। इस डेपुटेशन के द्वारा २ मार्च सन् १८९८ को इलाहाबाद के गवर्नमेंट हाउस में सर ऐंटोनी मेकडानेल को मेमोरियल दिया गया। मेमोरियल में मुख्यतः यह बात कही गई थी कि अदालतों में नागरी अक्षरों का प्रचार न होने से प्रजा, विशेषकर ग्रामीण प्रजा, को बड़ी असुविधा और कष्ट होता है तथा आरंभिक शिक्षा के प्रचार में बाधा उपस्थित होती है।

उत्तर में सर ऐंटोनी ने विषय की गुरुता को स्वीकार करते हुए कहा कि "आप लोग जिस परिवर्त्तन के लिए प्रार्थना करते हैं वह वास्तव में उस भाषा का परिवर्त्तन नहीं है जो हमारी अदालतों और सरकारी कागजों में बरती जाती है। आप लोग उन अक्षरों के

परिवर्त्तन के लिए प्रार्थना करते हैं जिनमें वह भाषा लिखी जाती है। वह भाषा जो हमारी अदालतों और सरकारी कागजों में लिखी जाती है कठिन और फारसी शब्दों से पूर्ण हो सकती है और उसके सरल करने का उद्योग आवश्यक हो सकता है, पर वास्तव में वह भाषा हिन्दी है, जिसे इन प्रांतों की प्रजा का बहुत बड़ा अंश बोलता है। परंतु यदि हमारी अदालतों की भाषा हिंदी है तो जिन अक्षरों में वह लिखी जाती है वे फारसी हैं और आप लोगों का यह प्रस्ताव है कि फ़ारसी के स्थान पर नागरी अक्षरों का (आप लोग कैथी अक्षरों को पसंद नहीं करते) जिसमें हिंदी साधारणतः लिखी जानी चाहिए, प्रचार किया जाय। इसमें कोई संदेह नहीं कि इस प्रस्ताव के पक्ष में बहुत कुछ कहा जा सकता है। इन प्रांतों में चार करोड़ सत्तर लाख मनुष्य बसते हैं और जो अनुसंधान-प्रसिद्ध भाषातत्त्व-वेत्ता डाक्टर ग्रियर्सन प्रत्येक जिले में भाषाओं की जाँच के संबंध में कर रहे हैं, उससे यह प्रकट होता है कि इन चार करोड़ सत्तर लाख मनुष्यों में से चार करोड़ पचास लाख मनुष्य हिन्दी या उसकी कोई बोली बोलते हैं। अब यदि चार करोड़ पचास लाख मनुष्य उस भाषा को लिख भी सकते जिसे वे बोलते हैं तो निस्संदेह फारसी के स्थान पर नागरी अक्षरों का प्रचलित किया जाना अत्यंत ही आवश्यक होता, पर इन चार करोड़ पचास लाख मनुष्यों में से तीस लाख से कुछ कम लोग लिख और पढ़ सकते हैं और इन शिक्षित लोगों में से, यदि मैं उन्हें ऐसा कह सकूँ, तो एक अच्छा अंश मुसलमानों का है जो उर्दू बोलते और फारसी अक्षरों का व्यवहार करना पसंद करते हैं।" इसके पश्चात् प्राइमरी शिक्षा के बढ़ाने और उसके साथ ही नागरी या कैथी जाननेवालों की संख्या के बढ़ाने तथा सरकारी कर्मचारियों के नागरी जानने की आवश्यकता का उल्लेख करके श्रीमान् ने कहा, "मेरे इस कहने से आप लोग समझ सकते हैं कि यद्यपि मैं नागरी-अक्षरों के विशेष प्रचार के पक्ष में हूँ, पर मैं इस बात का कह देना उचित समझता हूँ कि जितनी आप लोग समझते हैं उससे अधिक आपत्तियाँ इसके पूर्ण प्रचार की अवरोधक हैं।" विहार में कैथी अक्षरों के प्रचार में जो कठिनाइयाँ पड़ी थीं उनका वर्णन करके उन्होंने कहा—

"मेरा सिद्धांत यह है कि यद्यपि मैं यह समझता हूँ कि हमारे सरकारी कागजों में नागरी-अक्षरों के विशेष प्रचार से लाभ होगा और समय भी इस परिवर्त्तन के पक्ष में है पर मैं ऐसा कोई आवश्यक या उचित कारण नहीं देखता कि क्यों हम लोग शीघ्रता करें अथवा क्यों न हम लोग विचारपूर्वक और उन लोगों के हित और भावों पर, जो इस परिवर्त्तन के विरोधी हैं, उचित ध्यान देकर इस कार्य को करें। मुसलमान लोग, जैसा कि आप लोग अनुमान करते हैं, इस परिवर्त्तन का विरोध करेंगे और अभी तक आप लोगों ने उन लोगों का विरोध दूर करने और उन्हें अपने पक्ष में लाने के लिए कोई ऐसा कार्य नहीं किया है जिससे यदि वे आपके विचारों से सहमत न हों तो कम से कम वे आपस में निपटारा तो कर लें। इसमें और उन बातों में, जिनमें परस्पर विरोध है हम लोगों को दूरदर्शिता पर ध्यान देकर यह देखना चाहिए कि कोई ऐसा बीच का उपाय हो सकता है या नहीं जिससे दोनों ओर का विरोध दूर हो जाय। इस अवसर पर इस विषय में अपनी नीति को प्रकाशित किये बिना अथवा किसी विशेष शैली के अनुसार कार्य करने की प्रतिज्ञा किये बिना मैं यह कहना चाहता हूँ कि हम लोगों का संबंध तीन प्रकार के कागजों से है। एक तो वे कागज हैं जिन्हें प्रजा गवर्नमेंट की सेवा में उपस्थित करती है। दूसरे वे जिन्हें गवर्नमेंट प्रजा के लिये निकालती है और तीसरे वे जिनमें सरकारी कार्रवाइयाँ लिखी जाती हैं और जो सरकारी दफ्तरों में रक्षित रहते हैं। तीसरे प्रकार के कागज अर्थात् वे कार्रवाइयाँ जो सरकारी दफ्तरों में रक्षित रहती हैं, और पहले दो प्रकार के कागजों से कुछ भिन्न हैं। निस्संदेह प्रजा का संबंध उन अक्षरों से है जिनमें वे कार्रवाइयाँ लिखी जाती हैं, क्योंकि उनको ऐसी कार्रवाइयों की नकल लेनी पड़ती है जो बहुधा स्वत्व और दावों के प्रमाण होते हैं, परंतु इनका काम वकीलों की सम्मति के साथ विशेष अवसरों पर पड़ता है। प्रतिदिन के कार्यों के अंतर्गत वे नहीं आते। इसलिए इन कागज़ों के विषय में निश्चय करना उतना आवश्यक नहीं है जितना दूसरे दो प्रकार के कागजों के विषय में है। इस अवसर पर इस बात पर मैं अपनी सम्मति नहीं प्रकाशित करूँगा कि किन अक्षरों में इन

कागजों को लिखा जाना चाहिए किन्तु मैं यह कह देता हूँ कि मुझे इन कागजों को लिखने के लिए रोमन अक्षरों के व्यवहार के विरोध करने के लिए कोई उचित कारण नहीं देख पड़ता। दूसरे दो कागजों के विषय में मेरा यह विचार है कि यह उचित नहीं है कि ऐसा पुरुष जो नागरी लिख सकता हो गवर्नमेंट के पास भेजने के लिए अपने आवेदन-पत्र या मेमोरियल को फारसी अक्षरों में लिखवाने का कष्ट सहन करे। यह भी अनुचित जान पड़ता है कि एक ऐसी सरकारी आज्ञा जो ऐसे गाँवों के लिए निकाली जाय जहाँ के रहनेवाले हिंदी बोलते हों, फारसी अक्षरों में लिखी हो, जिसे उस गाँव में कोई भी न पढ़ सके। ऐसे प्रबंध का करना असंभव न होना चाहिए जिसमें हिंदी या उर्दू बोलनेवालों में से सबको अपने आवेदन-पत्रों को गवर्नमेंट तक पहुँचाने में तथा गवर्नमेंट की इच्छाओं को जानने में सुभीता हो और किसी प्रकार का कष्ट या व्यय न सहन करना पड़े। इस प्रकार के प्रबंध से (यदि हो सके तो) यद्यपि वे सब बातें प्राप्त न होंगी जिन पर आप लोगों का तथा इस मेमोरियल के दूसरे सहायकों का लक्ष्य है। तथापि उनसे कुछ बातें प्राप्त होंगी और गवर्नमेंट को उस बात को पूर्णतया निश्चित करने का उपाय सोचने का समय मिलेगा। इस बात को समझ लेना चाहिए कि ३०० वर्षों से जो कार्य होता आ रहा है वह एक दिन में नहीं हट सकता। मैं समझता हूँ कि बादशाह अकबर के पहले भारतवर्ष के इस भाग में सब राजकीय तथा घरेलू कामों में हिंदी भाषा और नागरी अक्षरों का व्यवहार था।" अंत में श्रीमान् ने अकबर के समय से फारसी के प्रचार का उल्लेख करके (यद्यपि यह कार्य अधिकांश लोगों के सुभीते का ध्यान करके नहीं किया गया था।) कहा—"हम लोगों को जो कुछ करना है वह पूरी जाँच और विचार करके ही करना चाहिए।"

इस मेमोरियल के साथ में लगभग ६० हजार हस्ताक्षर १६ जिल्दों में बाँध कर दिये गये थे जिन्हें सभा के एजेंटों ने मिर्जापुर, गाजीपुर, बलिया, गोरखपुर, गोंडा, बहराइच, बस्ती, फैजाबाद, लखनऊ, कानपुर, बिजनौर, इटावा, मेरठ, सहारनपुर, मुजफ्फरनगर, झाँसी, ललितपुर, जालौन, काशी, इलाहाबाद आदि नगरों में घूम घूम कर प्राप्त किया था।

यहाँ पर मैंने सर एंटोनी के उत्तर का अधिकांश भाग उद्धृत किया है। इसका मुख्य कारण यह है कि अदालतों में नागरी-प्रचार के लिए बहुत वर्षों से उद्योग हो रहा था। भारतेंदु हरिश्चंद्र ने हंटर कमिशन के समय में इस कार्य के लिए उत्कट प्रयत्न किया था, पर उन्हें सफलता प्राप्त नहीं हुई थी। इस उद्योग में अब की सफलता का बीजारोपण हो गया। इसलिए इस युग-प्रवर्त्तक घटना का पूरा उल्लेख हो जाना आवश्यक है। इस उद्योग के संबंध में कुछ और बातें हैं जिनका अभी तक कहीं उल्लेख नहीं हुआ है। अतएव, उनको यहाँ संक्षेप में कह देना उचित जान पड़ता है।

जब इस मेमोरियल के देने की तैयारी हो रही थी तब मैंने डाक्टर ग्रियर्सन से पत्र-द्वारा यह प्रार्थना की थी कि वे किसी प्रसिद्ध समाचार-पत्र में नागरी-प्रचार के पक्ष में अपनी सम्मति प्रकाशित कर दें। उन्होंने उस समय तो कोई उत्तर नहीं दिया पर सर एंटोनी के उत्तर दे लेने पर उन्होंने लिखा कि "यद्यपि सामाचार-पत्र में नागरी के पक्ष में कुछ लिखने की तुम्हारी प्रार्थना को मैं स्वीकार न कर सका, पर अब तुमको मालूम हो गया होगा कि परोक्ष रूप से मैंने तुम्हारे पक्ष का समर्थन किया है जिसका प्रभाव समाचार-पत्र में लेख लिखने की अपेक्षा कहीं अधिक होगा।"

जिस दिन मेमोरियल दिया गया उस दिन बाबू राधाकृष्णदास की तथा मेरी प्रबल इच्छा थी कि गवर्नमेंट हाउस में जाकर इस दृश्य को देखें। मुंशी गंगाप्रसाद वर्मा की कृपा से हम लोगों को प्रेस-पास मिल गये और हम लोग जा सके।

वहाँ से लौटने पर बाबू राधाकृष्णदास ने त्रिवेणी में स्नान करके यह मनौती मानी कि यदि अदालतों में नागरी का प्रचार हो गया तो मैं आकर तुम्हें दूध चढ़ाऊँगा। इस मनौती को उन्होंने यथा-समय पूरा किया। इससे उनके धार्मिक भाव तथा नागरी और हिंदी के लिये उत्कट प्रेम का परिचय मिलता है।

जब डेपुटेशन भेजने की तैयारी हो रही थी तब उसमें सभा के भी एक प्रतिनिधि के सम्मिलित करने का

निश्चय हुआ। सभा ने बाबू राधाकृष्णदास को अपना प्रतिनिधि चुना। पर पंडित मदनमोहन मालवीय को यह स्वीकार न था। सभा के और मालवीय जी के विचार में बड़ा अंतर था। सभा यह चाहती थी कि जिसने काम किया है उसे ही सम्मान देना चाहिए, पर मालवीय जी के हृदय में दूसरे भाव थे। उनका डेपुटेशन राजाओं, रायबहादुरों और प्रसिद्ध रईसों का था। मालवीय जी के जीवन पर एक साधारण दृष्टि डालने से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि उनके हृदय में राजाओं, रईसों आदि के लिये अधिक सम्मान का भाव रहा है। यही कारण है कि उन्हें हिंदू-विश्व-विद्यालय की स्थापना में इतनी सहायता मिली कि वे अपने स्वप्न को प्रत्यक्ष रूप दे सके।

अस्तु, समस्या सामने उपस्थित थी, उसके हल करने का एक-मात्र उपाय यही था कि स्वयं मालवीय जी को सभा का प्रतिनिधि बनाया जाय। ऐसा ही किया गया और इसका परिणाम यह हुआ कि मालवीय जी ने नागरी-प्रचार के लिये जो अथक परिश्रम और प्रशंसनीय उद्योग किया था उसका बहुत कुछ श्रेय काशी-नागरी-प्रचारिणी सभा को उनके प्रतिनिधित्व स्वीकार करने से प्राप्त हो गया।

नवंबर १८९८ की बात है जब बाबू राधाकृष्णदास और मैं मालवीय जी से परामर्श करने के लिये प्रयाग गए थे। बातों ही बातों में मालवीय जी ने कहा कि सर एंटोनी मैकडानेल इस प्रांत के पश्चिमी जिलों का दौरा करनेवाले हैं और ऐसा पता लगा है कि वे नागरी-प्रचार के प्रश्न पर जनता की वास्तविक सम्मति जानने के इच्छुक हैं। अतएव, यह आवश्यक है कि कोई आदमी इन जिलों की यात्रा करके वहाँ नागरी-प्रचार के पक्ष में जनता का बहुमत प्राप्त करने का उद्योग करे। बहुत विचार के अनंतर यह निश्चय हुआ कि मैं कल ही इस यात्रा पर चला जाऊँ और लखनऊ से बाबू कृष्ण-बलदेव वर्मा को ले लूँ। बाबू कृष्णबलदेव को तार दिया गया और मेरी यात्रा की तैयारी होने लगी। बाबू राधाकृष्णदास ने अपना नौकर और एक रजाई मुझे दी और भारतीभवन के संस्थापक बाबू ब्रजमोहनलाल से १००) रु० उधार लेकर यात्रा-व्यय के लिये मुझे दिया गया। मैं लखनऊ के लिये चल पड़ा। स्टेशन पर बा० कृष्णबलदेव वर्मा मिले, पर उन्होंने जाना स्वीकार न किया। उस रात को मैं लखनऊ ठहर गया और वर्मा जी को समझाता और उत्साहित करता रहा। अंत में वे तैयार हो गए और दूसरे दिन हम लोग शाहजहाँपुर के लिये चल पड़े। वहाँ से बरेली, मुरादाबाद, सहारन-पुर, मेरठ, मुजफ्फरनगर, अलीगढ़, आगरा, मथुरा होते हुए कोई एक महीने में घर लौटे। सब स्थानों में हम लोग प्रमुख प्रमुख व्यक्तियों से मिले, अपना उद्देश्य बताया और नागरी के प्रचार और संरक्षण के लिये एक संघटन स्थापित किया। यह यात्रा बड़ी सफल हुई। जिस उद्देश्य से हम लोग गए थे वह पूरा हुआ।

इस स्थान पर मैं पंडित केदारनाथ पाठक की सेवाओं का संक्षेप में उल्लेख करना चाहता हूँ। ये हिंदी के बड़े पुराने भक्तों और सेवकों में थे। इन्होंने सभा के पुस्तकालय का कार्य अनेक वर्षों तक बड़ी लगन के साथ किया था। वे सच्चे हृदय से सभा की शुभ कामना करते थे। नागरी के आंदोलन के समय इन्होंने अनेक नगरों में घूमकर मेमोरियल के समर्थन में सर्वसाधारण जनता के हस्ताक्षर प्राप्त किए थे और उस कार्य में उन्हें पुलिस की हिरासत में भी रहना पड़ा था। पाठक जी का परिचय बहुत-से हिंदी-लेखकों से था। यदि वे अपने संस्मरण लिख जाते तो वे बड़े मनोरंजक होते।

यह आंदोलन दो वर्षों तक चलता रहा। अंत में गवर्नमेंट ने यह निश्चय किया कि (१) सब मनुष्य प्रार्थना-पत्रादि अपनी इच्छा के अनुसार नागरी या फारसी अक्षरों में दे सकते हैं, (२) सब समन, सूचना-पत्र और दूसरे प्रकार के पत्रादि जो सरकारी न्यायालयों या प्रधान कर्मचारियों की ओर से देश-भाषा में प्रचारित किए जाते हैं फारसी और नागरी अक्षरों में जारी होंगे और इन पत्रों में उस भाग की खानापूरी भी नागरी में उतनी ही होगी जितनी फारसी अक्षरों में की जाय और (३) ऐसे दफ्तरों को छोड़कर जहाँ केवल अँगरेजी में काम होता है कोई मनुष्य इस आज्ञा के पीछे न नियुक्त किया जायगा यदि वह हिंदी और उर्दू दोनों न जानता होगा और जो इस समय के बीच में नियुक्त किया जायगा और इन दोनों भाषाओं में से केवल एक को जानता होगा दूसरी को नहीं, उसे नियुक्त होने की

तारीख़ के एक वर्ष में दूसरी भाषा को जिसे वह न जानता होगा भली भाँति सीख लेना होगा।

इस प्रकार उद्योग में सफलता प्राप्त हुई। गवर्नमेंट ने तो अपना कर्त्तव्य पूरा कर दिया पर हम लोगों में जो शिथिलता और स्वार्थ-परता भरी हुई है उसके कारण हम इस आज्ञा से यथेष्ट लाभ अभी तक नहीं उठा सके हैं। इसमें संदेह नहीं कि कुछ वकीलों, रईसों, जमींदारों तथा अन्य लोगों ने अपना सब काम नागरी में करने की अपूर्व दृढ़ता दिखाई है, और कुछ राजों ने अपने राज्य के दफ़्तरों और कचहरियों में नागरी का पूर्ण प्रचार करके प्रशंसनीय कार्य किया है, पर अभी बहुत कुछ करने को बाकी है। इस समय तो हम अपने घर की सुध भूल कर मद्रास और आसाम तक दौड़ लगाने का प्रयत्न कर रहे हैं पर जब तक चिराग तले अँधेरा बना रहेगा तब तक स्थिति के पूर्णतया सुधरने की बहुत कम आशा है।

जैसा कि मैं पहले लिख चुका हूँ, मार्च सन् १८९८ में मेरी नियुक्ति सेंट्रल हिंदू स्कूल में हुई। पहले मैं असिस्टेंट मास्टर हुआ। कुछ दिनों पीछे असिस्टेंट हेड मास्टर बनाया गया। मुझे भली भाँति स्मरण है कि एक दिन प्रातःकाल बाबू सीताराम शाह अपने बड़े भाई बाबू गोविंददास का यह संदेशा लेकर आए कि यदि हिंदू स्कूल में काम करना चाहते हो तो आरंभ में ४०) रु० मासिक वेतन मिलेगा और आज तुम इस काम को आरंभ कर सकते हो। मैंने इस प्रस्ताव को धन्यवाद के साथ स्वीकार किया और उस दिन जाकर कार्य-भार ले लिया। इस स्कूल के पहले हेड मास्टर मिस्टर हैरी बैनबरी हुए। वे दक्षिण-अफ्रिका से भारतवर्ष में आए थे। वे अपने कार्य में दक्ष थे पर उनकी शिष्टता और संस्कृति अफ्रिका के डच बुअरोंन्सी थी और इससे वे लोगों का स्नेह और संमान अर्जन न कर सके। धीरे धीरे यह बात प्रबंध-कमेटी पर भी प्रकट हो गई और उसने उद्योग करके उन्हें लखनऊ के गवर्नमेंट जुबिली हाई स्कूल की हेड मास्टरी दिला दी। इसके अनंतर मिस्टर जी० एस० आरनडेल हेड मास्टर नियत हुए। वे एक संभ्रांत स्काच कुल के संपन्न व्यक्ति थे। शिष्टता और सदाचार तथा संस्कृति के विचार से वे आदर्श कहे जा सकते हैं। आजकल वे मदरास में रहते हैं और थियोसोफ़िकल सोसाइटी के प्रेसिडेंट हैं। इनके कार्य-काल में स्कूल ने बड़ी उन्नति की और उसका यश चारों ओर फैल गया है। मिस्टर आरनडेल ने मुझसे स्पष्ट कह दिया था कि मेरा काम पढ़ाना-लिखाना नहीं है और न स्कूल का प्रतिदिन का कार्य करना है। यह सब तुमको करना होगा और मैं केवल इस उद्योग में लगा रहूँगा कि भारतीयों के हृदय में मेरे तथा ब्रिटिश जाति के लिये स्नेह और संमान हो। ऐसा ही हुआ। वे भारतीयों के अपमान को नहीं सह सकते थे और सदा उनका समर्थन करने को उद्यत रहते थे। इस कार्य में गवर्नमेंट के अधिकारियों से उनकी मुठभेड़ भी हो गई। अस्तु, स्कूल का सब काम मेरे अधिकार में रहा। इसमें कई कठिनाइयाँ भी हुईं पर वे सुलझती गईं। इस प्रकार कई वर्षों तक काम चलता रहा।

सन् १८९८, ९९ और १९०० में सभा ने कई महत्त्वपूर्ण कार्यों का श्रीगणेश किया जिनका वर्णन मैं यहाँ करना चाहता हूँ। इनमें मुख्य मुख्य बातें ये हैं—हिंदी-लेख और लिपि-प्रणाली पर विचार, वैज्ञानिक कोष, रामचरितमानस, सरस्वती और हस्तलिखित हिंदी-पुस्तकों की खोज। इन सब कामों का श्रीगणेश १९०० से पहले ही हो चुका था और इनका स्पष्ट रूप सन् १९०० में प्रकट हुआ। अब मैं पुनः सभा का मंत्री हो गया था। सन् १९०० के पहले सभा ने इंडियन प्रेस के लिये भाषा-पत्रबोध, भाषा-सार-संग्रह भाग १ और २ तथा खेती विद्या की पहली पुस्तक तैयार की। यहाँ एक बात का उल्लेख कर देना कदाचित् अनुचित न होगा। जब भाषा-सार-संग्रह तैयार हुआ तब मेरी बड़ी उत्कट कामना थी कि इस पुस्तक पर और लोगों के साथ मेरा भी नाम रहे। पर इंडियन प्रेस के स्वामी ने इसे स्वीकार न किया। पुस्तक पर किसी का नाम न दिया गया। लेखक के स्थान पर केवल 'सभा के पाँच सभासदों-द्वारा-रचित' लिखा गया। इसके बहुत वर्षों पीछे वह समय भी आया जब प्रकाशकों ने केवल मेरा नाम छापने की अनुमति देने के लिये मुझे बहुत कुछ लालच दिया। यह समय का प्रभाव है कि जब किसी वस्तु के प्राप्त करने की लालसा होती है तब वह नहीं प्राप्त होती, पर जब लालसा नष्ट हो जाती है तब वह सहसा प्राप्त हो जाती है। [क्रमशः

प्रतिहिंसा

लेखक, श्रीयुत ज्योतिदेव वेहार 'प्रकाश'

रामू ने देखा लल्लन को और.....! भला सा नाम था उसका—लल्लन। वह ताँगावाला था। रोज़ स्टेशन से सवारी लाना उसकी दिनचर्या थी, जीविका थी।

लोहित रंग का उसका भड़कीला घोड़ा बड़ी तेजी से भागता था। गाड़ी आने के समय लोग नित्य-प्रति उसके गले की घंटी की आवाज़ सुना करते थे। मज़दूर अपनी छुट्टी का अन्दाज उसी घंटी की आवाज से लगा लिया करते थे।

लल्लन युवक था—अहीर-जाति का। वह सदैव हँसमुख रहता था। शिष्टाचार उसके चेहरे से फूटा पड़ता था। "बाबू जी, ताँगा होगा" कहता हुआ वह स्टेशन के दरवाज़े पर खड़ा रहता। रोज़ उसे कोई न कोई सवारी मिल जाती। उसके लिए और उसके प्यारे घोड़े के लिए इतना ही बस था।

रामू लल्लन का पड़ोसी था। लल्लन का मस्त रहना उसकी आँखों में खटकता था। कठिन परिश्रम करने पर भी वह उतना नहीं कमा पाता था, जितना लल्लन मज़े से एक ही फेरे में मार लेता था।

संध्या-समय लल्लन के घर साग छौंकने की 'छनछन्' अथच सुगन्ध रामू को व्याकुल कर देती और वह आप ही आप बड़बड़ा उठता—ज़िन्दगी का मज़ा तो लल्लन ही उठाता है!

रामू सुबह से उठता और पास की मिल में काम करने चला जाता। दिन चढ़ते तक वह चावल ढोने का काम करता। यही उसका नित्य का काम था, पास के स्टोर-घर में एक एक बोरा चावल ले जाकर रखता।

यथासमय लल्लन आता, घोड़े को पुचकारता हुआ "चलो प्यारे, थोड़ी दूर और!" रामू देखता लल्लन की ओर लल्लन देखता पसीने से लथपथ रामू को! परन्तु रामू की आँखों से ईर्ष्या की चिनगारियाँ फूटती थीं तो लल्लन के चेहरे से सहानुभूति टपकी पड़ती थी। एक क्षण में घोड़ा आगे निकल जाता और लल्लन आँखों से ओझल हो जाता। विक्षिप्त होकर रामू कराह उठता—वाह रे लल्लन!

रामू घर लौटता पर रास्ते भर लल्लन की मस्ती से जलता हुआ। सोचता था, बेटे को ताँगे का गुमान है, ऐंठ दिखाता है। मेरी ओर देखता क्या है, अपने को हाकिम समझता है। ठहर बे...! वह मज़ा चखाऊँगा कि जन्म भर मज़दूरी करनी पड़े। रामू का चेहरा पैशाचिक भाव से भर जाता।

लल्लन को रामू की अवस्था से समवेदना थी, क्योंकि उसे भी वही काम करना पड़ता, लेकिन उसका वह घोड़ा! वह अपने प्यारे घोड़े को सहलाने लगता, अत्यन्त प्यार से। फिर वह अपने को तथा रामू को भूल जाता था। घोड़े को ही अपना सर्वस्व समझने लगता था। फिर वह अपने दादा की बुद्धिमानी को सराहता कि उसने क्या ही उत्तम रोज़गार उसके लिए छोड़ गया है। नहीं तो? रामू का लथपथ शरीर बोरा लादे हुए उसके दिमाग़ में घूम जाता। वह मुस्का उठता, शायद अभिमान से।

× × ×

गाड़ी ने सीटी देकर स्टेशन छोड़ दिया। सवारी, ताँगा, एक्का सब एक एक कर मिल के नज़दीक से गुज़र गये। पर अभी लल्लन नहीं आया था। मज़दूर घंटी की आवाज़ सुनने के लिए उत्सुक थे। परन्तु यह क्या? मज़दूरों की छुट्टी हो गई। लल्लन नहीं आया। मज़दूरों में हलचल मची थी, 'भाई, लल्लन को क्या हो गया है आज?' भूखे मज़दूर इससे ज्यादा और क्या कह सकते थे। उन्हें भूख लगी थी न? वे सीधे चले गये—अपनी राह!

रामू आज खुश था। आज उसे अपने परिश्रम से दुःख नहीं था; अपनी दशा का भान नहीं था। उसके ख़याल में तो सिर्फ़ एक ही बात आती थी और वह था लल्लन का कल्पित मज़दूर-रूप बोझा ढोते हुए!

लल्लन के घर के पास....

रामू ने देखा लल्लन को और लल्लन ने देखा रामू को! आँख से आँख मिली, परन्तु लल्लन की अश्रुयुक्त आँखें रामू की उल्लासपूर्ण आँखों से कुछ पूछ रही थीं।

"लल्लन!" रामू ने अनजाने से पूछा—"क्यों, चुप कैसे बैठे हो?"

लल्लन रो पड़ा। रोते रोते कहा—"रामू! न जाने कैसे आज मेरा घोड़ा चल बसा!

"हा भगवन्! क्या कहा लल्लन, घोड़ा चल बसा? कैसे? ओह! हम ग़रीबों के भगवान् भी नहीं होते हैं।" रामू ने हृदय की प्रसन्नता दबाते हुए पड़ोसी के नाते कहा।

रामू ढाढ़स बँधाकर चला गया। घर में जाकर 'बासी' निकाला और प्याज़ के साथ खाने लगा। फिर भी, आज उसे बेहद ख़ुशी थी।

लल्लन का हाथ घोड़े पर था, और वह रो रहा था। लल्लन आज खाना-पीना भूल गया। क्यों न भूले! उसकी प्यारी चीज़ खो जो गई थी!

रामू ने सोचा था—लल्लन अब मज़दूरी करेगा। परन्तु उसने जब लल्लन को रिक्शा दौड़ाते हुए देखा तब उसका जी 'धक' से रह गया। लल्लन ने ताँगा बदल कर रिक्शा ले लिया। उसकी घंटी फिर बजने लगी। पर अब रिक्शे के साथ घोड़े के स्थान पर लल्लन ही दौड़ता था।

लल्लन का रिक्शा मिल के पास पहुँचा। 'टन टन' घंटी बजी और रामू ने देखा लल्लन को और लल्लन ने देखा रामू को!

परन्तु रामू लल्लन की ओर नहीं देख सका। झट उसने सिर नीचा कर लिया। लल्लन चला गया 'बाज़ प्यारे' कहता हुआ।

एक महीने के बाद—

रामू बीमार पड़ा। पश्चात्ताप कमज़ोरी की अवस्था में ही आक्रमण करता है। रामू के हृदय ने उसे धिक्कारना शुरू किया। शरीर तवे की भाँति गरम था। साँसें रह रहकर चल रही थीं। रामू को मालूम पड़ा, अब वह न बचेगा। रामू ने अपने एक मित्र मज़दूर को लल्लन को बुला लाने के लिए भेजा।

लल्लन भौंचक्का-सा आया। टूटी-सी खाट पर कपड़े से ढँके हुए रोगी को देखा।

"रामू! लल्लन आ गया।" मज़दूर ने मुँह पर से चादर सरकाते हुए कहा। रामू ने आँखें खोल दीं, और लल्लन को देखा। लल्लन ने रामू को देखा। रामू की आँखें क्षीण थीं, धँसी हुई थीं, मानो वे कुछ प्रार्थना-सी कर रही थीं। लल्लन आशा-भरे नेत्रों से रामू के दुबले शरीर को देख रहा था। रामू ने अस्फुट शब्दों में कहा—

"लल्लन! माफ़ कर दो....तुम्हारा....घोड़ा ....मैंने..." इससे आगे वह कुछ न कह सका। केवल अन्तिम बार सिर उठाकर उसने लल्लन को देखा।

लल्लन रो पड़ा। उसे जितना दुःख घोड़े की मृत्यु से हुआ था, उससे कई गुना दुःख इस समय हुआ। उसने ईश्वर से प्रार्थना की, वह रामू की आत्मा को शान्ति दे। फिर आँसू पोंछते हुए रामू की ओर देखा—और देखा रामू का अचल कलेवर!

रामू अब भी लल्लन को निर्निमेष दृष्टि से देख रहा था! लल्लन ने चादर से रामू का मुँह ढँक दिया।

गीत

लेखक, श्रीयुत नर्मदाप्रसाद खरे

जग-जीवन सपनों का मेला।

विधु-हाथों मानो दीप जला,
हतभाग्य पवन से गया छला,
पर रूप-ज्वाल से प्रीति पाल,
हँस शलभ प्राण पर तो खेला।
जग-जीवन सपनों का मेला।

नव कलिका ने घूँघट खोला,
मधु-सौरभ उपवन में डोला,
जा बिंधी कली प्रिय-माला में
रह गया मधुप-दल अलबेला।
जग-जीवन सपनों का मेला।

तृण-पात नीड़ के टूट चले। आशा के मधु-घट फूट चले।
रह गई संगिनी मौन खड़ी—आ गई बिछुड़ने की बेला।
जग-जीवन सपनों का मेला।

धर्म और समाज

लेखक, श्रीयुत शचीन्द्रनाथ सान्याल

श्रीयुत सान्याल महाशय एक गम्भीर विचारक भी हैं। इस लेख में उन्होंने एक महत्व का प्रश्न उठाकर उसका प्रमाण-सहित समाधान भी कर दिया है। आशा है, विचारवानों का ध्यान उनकी इस नई समस्या की ओर आकृष्ट होगा।

रत के तथा योरप के भी इतिहास में एक ऐसा समय आया था जब संन्यास-आश्रम के प्रभाव से धार्मिक भावना और साधना, धार्मिक विचार और आचार कुछ विशेष सम्प्रदायों के व्यक्तियों में ही सीमित हो गये थे। इतिहास के उस मध्ययुग में धार्मिक आदर्श सामाजिक आदर्श से भिन्न होने लगा था। धार्मिक भावनाओं से अनुप्राणित होकर समाज के श्रेष्ठ व्यक्ति समाज से अलग होकर संन्यास-आश्रम का आश्रय लेने लगे थे। धीरे-धीरे समाज में यह धारणा फैलने लगी थी कि धार्मिक जीवन-यापन करने के लिए समाज में रहना पाप है। लोगों के मन में धीरे-धीरे यह भावना बद्धमूल होने लग गई थी कि विवाह करना, सामाजिक जीवन के सुख-दुखों के साथ सम्बन्धित हो जाना धार्मिक जीवन के लिए घातक है। समाज के श्रेष्ठ व्यक्ति जब समाज से अलग होकर रहने लगे तब समाज की अवनति अनिवार्य हो गई। अन्त में समाज से धर्म का विच्छेद होने के कारण धार्मिक और सामाजिक दोनों जीवनों में द्रुत गति से अवनति होने लगी।

उस अवनति के युग में जब समाज के श्रेष्ठ व्यक्ति समाज से अलग होकर अपार्थिव आदर्शों के पीछे चलने लगे तब ऐहलौकिक विषयों की उन्नति रुक गई और समाज की अवनति होने पर संन्यास-आश्रम की भी दुर्गति होने लगी। इसका कारण यह था कि जब अवनत समाज से अपेक्षाकृत अनुन्नत व्यक्ति सन्यास-आश्रम में जाने लगे तब उस आश्रम की भी अवनति अनिवार्य हो गई।

इस प्रकार धर्म और समाज में विच्छेद होने के कारण सामाजिक मानव धीरे-धीरे धार्मिक विषयों के प्रति पहले उदासीन होने लगा और बाद को वह उसका विद्वेषी बन गया। क्रमशः धर्म का ऐहलौकिक ज्ञान-विज्ञान, काव्य-कला, संगीत आदि सामाजिक आचार-व्यवहारों के साथ घोर द्वन्द्व होने लगा। समाज के विकास में ऐसा भी एक समय था जब सामाजिक और धार्मिक आदर्शों में पूर्ण सामञ्जस्य था, किन्तु कुछ ऐतिहासिक कारणों से उस सामञ्जस्य में विपर्यय उपस्थित हो गया। इस सामाजिक विपर्यय का एक विस्तृत इतिहास है। इस स्थान पर उस इतिहास के प्रति हम अधिक ध्यान नहीं देना चाहते। यहाँ केवल इतना ही कहना हमारे लिए पर्याप्त होगा कि मध्यकालीन युग के रूपान्तरित होने पर वर्तमान युग के प्रारम्भ में समाज के श्रेष्ठ व्यक्ति धार्मिक आदर्श तथा संन्यास-आश्रम के प्रति विद्रोही हो गये और आधुनिकता का यह एक महत्त्वपूर्ण लक्षण बन गया। आधुनिक युग में मानव का मन कविजनों के मृदुल गुंजन से इतना सम्मोहित होने लगा है, कलाकार की तूलिका के विमोहनकारी वर्ण-चातुर्य से उद्‌भासित नाना प्रकार के चित्रों को देखकर इतना आत्म-विस्मृत होने लगा है, संगीत की अपूर्व मूर्च्छना से इतना विह्वल होने लगा है और प्रकृति पर अद्‌भुत विजय प्राप्त करके आज आनन्द-लीला का ऐसा मधुर स्पर्श अनुभव कर रहा है कि उसके लिए सामाजिक जीवन को छोड़कर संन्यास-आश्रम का ग्रहण करना असम्भव तथा अनावश्यक-सा हो गया है। आधुनिक मानव देह के आवेदन के साथ आत्मा की पुकार को एक ही रूप में, समन्वय से युक्त एक ही विधि-व्यवस्था में, एक ही पूर्ण या अभिव्यक्ति में देखना चाहता है। इन सब बातों को देखते हुए इँग्लेंड के सुप्रसिद्ध कवि श्री ईट्स ने यह प्रश्न किया है कि मध्य-काल के विख्यात संत बार्नार्ड के साथ हमारा कैसे मेल खा सकता है, जब हम यह देखते हैं कि स्वीज़रलेंड के पर्वत-परिवेष्टित चित्त-विमोहनकारी झीलों को देखकर उन्होंने अपनी आँखें मीच ली थीं ताकि प्राकृतिक सौन्दर्य में उनका

मन त.लीन न हो जाय। कवीन्द्र रवीन्द्र की गीताञ्जलि की भूमिका में ईट्स महोदय ने आधुनिक मानव की कामना को इसी प्रकार व्यक्त किया है।

मध्यकालीन संन्यास-आश्रम की भावना के विरुद्ध विद्रोह की भावना को लेकर, धार्मिक आदर्श के प्रति विद्वेषभाव रखते हुए, योरप का आधुनिक युग प्रारम्भ होता है। इस प्रतिक्रिया के आधार पर अठारहवीं और उन्नीसवीं शताब्दियों में योरप की सभ्यता का विकास होता है। उस विकास का अत्यन्त प्रबल प्रभाव आज भारतवासियों के जीवन पर भी दिखाई देने लगा है।

ऐसी प्रतिक्रिया के आधार पर जिस सभ्यता का विकास हुआ उसके परिणाम में समाज में दो विशिष्ट धारायें प्रवाहित होने लगीं—एक व्यक्तित्ववाद की और दूसरी जड़वाद की। फिर अति आधुनिक युग में इस प्रतिक्रिया की भी प्रतिक्रिया आरम्भ हो गई है। व्यक्तित्ववाद के विरुद्ध समूहवाद और जड़वाद के विरुद्ध एक ओर 'गतिमूलक द्वन्द्वात्मक जड़वाद' की सृष्टि हुई है और दूसरी ओर 'आदर्शवाद' अथवा 'अद्वैत-अध्यात्मवाद' के गुंजन से आधुनिक वैज्ञानिकों में चंचलता की सृष्टि होने लगी है।

भारतवासी आज योरप का अनुकरण करने में अपनी श्लाघा समझते हैं। योरप की नवीनतम धाराओं से वे परिचित नहीं हैं और विदेशी शिक्षा-पद्धति के सम्मोहन में आकर भारतवासी अपनी प्राचीन धाराओं से भी भली भाँति परिचित नहीं हो सके हैं। इसके अतिरिक्त भारतवर्ष की प्राचीन धाराओं में भी भिन्न-भिन्न रुचि, संस्कार और अलग अलग साधना के मार्गों के होने के कारण भी कम उलझनों की सृष्टि नहीं हुई है।

जिस युग में भारत का समाज सजीव और शक्तिशाली था उस युग में धार्मिक और सामाजिक जीवनों में कोई विरोध नहीं था। आधुनिक युग की समस्याओं की भाँति प्राचीन युग में भी कर्म-जीवन और संन्यास में गम्भीर विरोध की सृष्टि हो जाने के कारण कम उलझनों की सृष्टि नहीं हुई थी। श्रीमद्भगवद्गीता का रहस्य भी उन उलझनों के सुलझाने की ओर में ही निहित है। जब-जब भारतीय इतिहास की धारा में जटिल उलझनों की सृष्टि हुई है तब-तब उन उलझनों को सुलझाने के लिए भी समन्वय-युक्त दार्शनिक और सामाजिक सिद्धान्तों की सृष्टि हुई है। श्री मद्भगवद्गीता इसका एक ज्वलंत दृष्टान्त है। गीता में इसका स्पष्ट उल्लेख है कि युग-युग में भारत-इतिहास के संकट-कालों में गीता-धर्म का बार बार प्रचार हुआ है। (देखिए—चतुर्थ अध्याय श्लोक १, २, ३)।

धर्म और समाज के सम्बन्ध को समझने के लिए गीता-धर्म को समझना अत्यन्त आवश्यक है। समग्र समाजशास्त्र और धर्मशास्त्र की जड़ में जो महान् तत्त्व छिपा हुआ है उसका स्पष्ट निर्देश गीता में प्राप्त होता है। जहाँ तक मुझे स्मरण है, न तिलक महाराज ने इस तत्त्व के प्रति विशेष ध्यान दिया है और न श्री अरविन्द ने ही। इसका अर्थ यह नहीं है कि उनके और मेरे दृष्टिकोणों में कोई महान् अन्तर है, परन्तु 'सामाजिकता' का जैसा स्पष्ट निर्देश गीता में हमें प्राप्त होता है उसके प्रति जितना ध्यान देना आवश्यक है उतना ध्यान आज तक किसी ने नहीं दिया। गीता की व्याख्याओं में बड़े से बड़े मत-भेद दिखाई देते हैं; परन्तु उसमें ऐसे स्पष्ट निर्देश भी हैं जो सामाजिकता के आदर्श से ही समझे जा सकते हैं, अन्य किसी प्रकार नहीं। गीता के तृतीय अध्याय के २१वें श्लोक से २४वें श्लोक तक इस निर्देश को हम प्राप्त करते हैं। उन श्लोकों का भावार्थ यह है—श्रेष्ठ पुरुष जो जो आचरण करता है, अन्य पुरुष भी उसके अनुसार ही बर्तते हैं। वह पुरुष जो कुछ प्रमाण उपस्थित कर देता है, और लोग भी उसी के अनुसार आचरण करते हैं। (२१) इसलिए हे अर्जुन, यद्यपि मुझे तीनों लोकों में कुछ भी कर्तव्य-कर्म नहीं है तथा किंचित् भी प्राप्त होने योग्य वस्तु मुझे अप्राप्य नहीं है; तथापि मैं कर्म में ही रत रहता हूँ। (२२) क्योंकि यदि मैं सावधानी से कदाचित् कर्म में रत न रहूँ तो हे अर्जुन दूसरे मनुष्य भी सब प्रकार से मेरे ही आचरण का अनुसरण करेंगे। (२३) इस प्रकार यदि मैं कर्म न करूँ तो मैं इस संसार का नष्ट-भ्रष्ट करनेवाला बन जाऊँगा। (२४)

इस स्थान पर स्वभावतः ही यह प्रश्न मन में उदय होता है कि यदि संसार नष्ट-भ्रष्ट हो जाय तो किसको क्या हानि है। श्रीकृष्ण का यह कहना है कि

संसार को बचाये रखने के लिए वे कर्म किया करते हैं। इसके अतिरिक्त संसार के कार्यों में लिप्त रहने में उनका कोई दूसरा उद्देश्य नहीं है। संसार नष्ट न हो, वह जीता-जागता सुन्दर मंगलमय बना रहे, श्रीकृष्ण के कर्म करने का यही एकमात्र उद्देश्य है। इसी सिद्धान्त के आधार पर विश्व के समस्त धर्मशास्त्र और समाज-शास्त्र निर्मित हुए हैं। बड़े से बड़े आध्यात्मिक मर्म भी इस सामाजिक आदर्श के विरुद्ध टिक नहीं सकते।

जिस संसार के मंगल के लिए स्वयं भगवान् अवतार के रूप में इस मर्त्यधाम में अवतीर्ण होते हैं, जिस समाज के छोटे से छोटे जीव के दुःख को दूर करने के लिए स्वयं ईश्वर मानव-रूप में अवतरित होते हैं, उस संसार की उपेक्षा कोई भी धार्मिक सम्प्रदाय कैसे कर सकता है? पीड़ित मानव के दुःख दूर करने के लिए ही इस संसार में अवतारी पुरुष का आविर्भाव होता है। हम फिर कैसे आध्यात्मिक साधना की दुहाई देकर साधारण नर-नारियों के सामाजिक और व्यक्तिगत सुख-दुःख के प्रति उदासीन रह सकते हैं? इसी कारण वैष्णवों के निकट मोक्ष से भी बढ़कर पंचम पुरुषार्थ के आदर्श ने एक महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त कर लिया है। इस पंचम पुरुषार्थ का अर्थ है—मोक्ष-प्राप्ति के पश्चात्, ईश्वरानुभूति के अनन्तर इस तत्त्व का भी अनुभव कर लेना कि यह अभिव्यक्त संसार भी ईश्वर का ही स्वरूप है, ईश्वर ही मायाश्रित होकर इस परिदृश्यमान जगत् के रूप में प्रकटित हुए हैं, यह संसार उनका लीला-क्षेत्र है। इस लीला-रहस्य का ही रसास्वादन करना पंचम पुरुषार्थ का मर्म है। तान्त्रिक साधना का भी रहस्य इसी मर्मकथा में निहित है। तान्त्रिक साधक भी इस मृण्मय धाम को चिन्मयधाम के रूप में देखना चाहता है। गृहस्थाश्रम की उपेक्षा करके नहीं, वरन गृहस्थाश्रम में रहकर ही, पारिवारिक और सामाजिक बन्धनों से लांछित होते हुए भी तांत्रिक साधक इसी मर्त्यधाम में अमृत-लोक की किरणों को विकीर्ण करना चाहता है। तांत्रिक साधक इसलिए साहसपूर्वक यह कह सकता है कि "यत्करोमि जगन्मातस्तदेव तव पूजनम्।" गीता का कर्मयोगी भी सांसारिक संघर्षों में लिप्त रहकर ही निर्लिप्त मुक्तपुरुष बन जाने की साधना करता है। जब धार्मिक भावनाओं से ओत-प्रोत होकर सामाजिक आदर्श का निर्माण होता है तभी संसार का कल्याण है, अन्यथा नहीं। समाज के कल्याणकामी को भी इस बात का निर्णय करना पड़ेगा कि किस बात में समाज का कल्याण है और किसमें अकल्याण। इस बात का निर्णय केवल जड़-विज्ञान की सहायता से नहीं हो सकता। इसी स्थान पर धर्म-विज्ञान की आवश्यकता पड़ती है। धर्म की सहायता लिये बिना सामाजिक प्रश्नों का भी यथार्थ उत्तर नहीं दिया जा सकता। इस कारण समाज-विज्ञान की स्थापना के लिए धर्म, समाज और आधुनिक जड़-विज्ञान के परस्पर के सम्बन्ध पर गम्भीर रूप से विचार करने की आवश्यकता है।

गीत

लेखक, श्रीयुत रामानुजलाल श्रीवास्तव

आज प्रातःकाल ही से हो रही है एक हलचल,
काँपते हैं प्राण दुर्बल।

एक तो कुटिया पुरानी दूसरे प्राणी अकेला।
और सिर पर लग रहा है बादलों का एक मेला—
कौंधती हैं बिजलियाँ, दिखला रहे तूफ़ान दल-बल।
काँपते हैं प्राण दुर्बल।

साँस गिन-गिन रात काटी, तब हुआ बैरी सबेरा।
कौन फिर से गा उठा—जग रैन ही भर का बसेरा।
नीड़ से बेपीर हो जाये न यह सुन कीर चंचल!
काँपते हैं प्राण दुर्बल।

आह, कैसे वक़्त पर नादान चकवा हँस रहा है,
काल से छूटा अभी वह, जाल में फिर फँस रहा है!
दिन अगर कट भी गया तो रात कैसे आयगी कल?
काँपते हैं प्राण दुर्बल।

क्या ठिकाना है कि आज प्रभात ही से रात आए
और, फिर, उन्माद में मुँह से निकल कुछ बात जाये!
इस चिरन्तन पतन-भय से मुक्ति दे, अब जल्द ले चल;
काँपने दे प्राण दुर्बल।

काम भी वे उतना ही दत्त-चित्त होकर करते हैं, जितना बड़ी फ़ीस देनेवाले का। फ़ीस की रक़मों के छोटी होने पर भी वे दिन भर में मिला-जुला कर काफ़ी रुपये कमा लेते हैं। हाल में उन्होंने शहर में एक सुन्दर मकान अपने रहने के लिए बनवाया है। उनका देहात का मकान हरपुर के पड़ोस के गाँव में है, इसलिए हरपुर के एक एक व्यक्ति को वे पहचानते हैं। हरपुर के ग़रीब किसान तो उन्हें अपना प्राणदाता ही समझते हैं।

रविवार का दिन था। जगत बाबू अपने बरामदे में कुर्सी पर बैठे टेबुल पर पैर फैलाये अखबार के पन्ने उलट रहे थे। हीरामन ने आकर झुककर सलाम किया।

"क्यों हीरामन, रुपये दाख़िल करने की कल तारीख़ है न?"

"जी क्या कहें!" बड़ी ही धीमी और स्थिर आवाज़ में हीरामन ने कहा, मानो महीनों की बीमारी के कारण उसके कलेजे में ताक़त न रह गई हो।

"क्या?"

"बाबू जी, तारीख़ तो बृहस्पति को ही थी, लेकिन मनीआर्डर नहीं पहुँचा।"

"सब चौपट हो गया!"

"बाबू जी, बचाइए। शनिवार को मनीआर्डर ढाई सौ रुपये का आ गया। बच्चा बेचारा क्या करता? उसने लिखा है कि जिस सेठ के पास कलकत्ते में उसने अपने रुपये जमा किये थे वह कोठे पर से अपने लड़के के गिर जाने की ख़बर पाकर दूकान बन्द कर ढाका चला गया था। मजन को इसकी कोई ख़बर पहले से नहीं थी। सेठ के लौटते ही मनीआर्डर मेरे पास आया है।"

"अरे, अब तो समय टल गया। क़ानून थोड़े ही बदल जायगा।"

"बाबू जी, सुनते हैं, हाकिम ग़रीब पर बड़ा ख़याल रखते हैं। एक बार उनसे विनती कीजिए।"

"पागल हो गये हो? हाकिम क्या कर सकता है?"

"एक बार उससे कहिए।"

"न। हाकिम क्या समझेगा? क्या हम भी तुम्हारी तरह देहाती हैं?"

लाख अनुनय-विनय करने पर भी वकील साहब जब हाकिम के सामने खड़े होने को तैयार न हुए तब हीरामन ने अपनी बात स्वयं हाकिम के दरबार में पेश करने की ठानी। इस मुक़दमे के कारण ही उसे हाकिम का इजलास देखने का पहले-पहल अवसर प्राप्त हुआ था। वह जानता था कि उसके ऐसे मैले-कुचैले कपड़ेवालों को चपरासी वहाँ से गर्दन में हाथ डालकर निकाल बाहर कर देता है, फिर भी अपने प्यारे खेत को बचाने के लिए वह सभी मुसीबतों को बरदाश्त करने को तैयार था।

दूसरे दिन सोमवार को वह सवेरे कचहरी पहुँचा। इजलास का कमरा भरा हुआ था। सामने की कुर्सियों पर बैठा वकील-समुदाय हाकिम के आने की प्रतीक्षा कर रहा था। हाकिम ने सामने के दरवाज़े से ऊँचे इजलास पर पैर रक्खा। सभी उठकर खड़े हो गये। हीरामन ने खड़े खड़े झुककर सलाम किया। लेकिन उसे इस बात का पता नहीं चला कि जन-समूह के इस अभिनन्दन में उसके तुच्छ सलाम की स्वीकृति हाकिम के यहाँ हुई या नहीं।

हाकिम के बैठते ही वकीलों ने अपना अपना सवाल पेश करना शुरू कर दिया। एक की बात समाप्त होते न होते दूसरा खड़ा होकर बोलने लगता था। हीरामन ने सोचा था कि हाकिम के पूछने पर कि तुम यहाँ क्यों आये हो वह अपनी सारी बात कह डालेगा। परन्तु उसने देखा कि हाकिम तो उसी से बात करता है जो उससे बात शुरू करता है। उसने कुछ देर तक इन्तज़ार किया और जब देखा कि इस तरह खड़े खड़े दिन बीत जायगा किन्तु अपनी बात वह हाकिम तक नहीं पहुँचा सकेगा तब उसने अपना मुँह खोलना ही ठीक समझा। एक वकील साहब एक मामले में मोहलत का सवाल पेश कर रहे थे। उनकी बात समाप्त नहीं हुई थी कि इसी बीच हाकिम को सम्बोधन करते हुए हीरामन बोला—"हुज़ूर"! कमरे भर के लोगों की नज़र उसकी ओर दौड़ गई। चपरासी चौंक पड़ा। लपककर उसने हीरामन का हाथ पकड़ा। वह उसे ढकेलकर बाहर करना ही चाहता था कि हाकिम ने कहा—"ठहरो, उससे पूछो तो क्या कहता है।" हीरामन की मानो मुर्झाई हुई आशा-लता पनप उठी। हाथ जोड़ते हुए बोला—"दुहाई सरकार की, हमारा खेत बचाइए। रुपये ले आया हूँ।" उसके हाथ में इश्तहार नीलामी का काग़ज़ था। हाकिम की दृष्टि उस पर पड़ी।

हाकिम ने अधिक बातें न कर पेशकार को उससे काग़ज़ माँग लेने का इशारा किया। पेशकार के संकेत पर चपरासी ने हीरामन के हाथ से काग़ज़ लेकर पेशकार के हवाले किया। पेशकार ने काग़ज़ उलटा। उलटते ही उसे सारी बात याद आ गई। हाकिम की ओर काग़ज़ बढ़ाते हुए बोला—"हुज़ूर, गत बृहस्पतिवार को ही डिक्री और तावान के रुपये जमा करने की आखिरी तारीख़ थी। मदीउन ने रुपये जमा नहीं किये। नीलाम पक्का हो गया।"

हाकिम ने हीरामन को सम्बोधन करते हुए कहा—"जाओ, अब कुछ नहीं हो सकता है।"

"सरकार मा-बाप हैं। सब कुछ कर सकते हैं" गिड़गिड़ाते हुए हीरामन ने कहा। किन्तु उसकी बात शुरू भी नहीं होने पाई थी कि इसके पहले ही हाकिम अपना सिर मोहलत का सवाल पेश करनेवाले उपर्युक्त वकील की ओर फेर चुका था। वकील ने फिर से अपनी बहस शुरू कर दी थी।

सतर्क चपरासी ने हीरामन का हाथ धीरे से दबाते हुए कमरे से बाहर चले जाने का इशारा किया।

(४)

मर्माहत हीरामन ने एक बार फिर जगत बाबू का दरवाज़ा खटखटाया। जगत बाबू ने सलाह दी कि किसी तरह महाजन को राज़ी करने की कोशिश करो, इसी में तुम्हारा कल्याण है।

दोपहर का समय था। जीवन साह अपने गोले में बैठे अपने मुनीम से हिसाब समझ रहे थे। चश्माधारी मुनीम लम्बी-सी बही खोले पन्ने उलट उलटकर उन्हें हिसाब सुना रहा थ.। हीरामन ने आकर राम राम की। वह हाथ जोड़कर बोला—"मालिक, दया कीजिए; एक ग़रीब का उद्धार कीजिए।"

"भजन ने रुपये भेजे थे न? रुपये क्यों नहीं दाखिल किये?"

"रुपये आये लेकिन देर करके। मालिक की दया चाहिए। देर होने ही से क्या?"

जीवन साह थे महाजन। पैसा कसकर वसूल करना जानते थे, किन्तु दया की भावना से एकदम रहित हों, ऐसी बात नहीं थी। हीरामन के म्लान मुख को देखकर उन्हें रूखा बनने का साहस न हुआ। बोले—"देखो हीरामन, तुम्हारे पास रुपये हैं तो खेत बहुत मिलेंगे। हमारे खेत का चकला ख़राब हो रहा था, वह दुरुस्त हो जायगा। तुम अब व्यर्थ परेशान मत हो।"

इस नेक सलाह की चोट को हीरामन सह न सका। जिस चौकी पर जीवन साह बैठे हुए थे उस ओर बढ़कर उसने जीवन साह का पैर पकड़ लिया। डबडबाती हुई आँखों से महाजन के मुँह को निहारते हुए वह बोला—"बापदादे की कमाई हुई ज़मीन है, मालिक। इसे बनाने में लहू को पसीना ऐसा बहाया है। दया की भीख दीजिए।"

"हैं, हैं, यह क्या कर रहे हो?" कहते हुए जीवन साह ने अपने पैर समेटने की कोशिश की। हृदय में करुणा का भाव एक बार फिर जाग्रत हो उठा, किन्तु वह वाणी-द्वारा प्रकट भी न हो पाया था कि मोह ने फिर उसे धर दबाया। जीवन साह ने गम्भीर भाव जतलाते हुए कहा—"हीरामन तुम समझदार आदमी हो। ज़मीन किसी एक की न आज तक हुई, न आगे होगी। छोड़ो इस झमेले को।" स्वामी की इस बात की पुष्टि करते हुए मुनीम जी बोले—"जो हो गया सो हो गया। रुपये दिये या उसके बदले में ज़मीन दी—एक ही बात है।"

हीरामन ने एक नहीं, अनेक दिन महाजन के यहाँ घंटों दरबार किया, मगर महाजन के कान पर जूँ तक न रेंगी।

(५)

तीन महीने बाद। दोपहर बीत चुका था। किसान अपने हल-बैल के साथ खेतों से वापस आ चुके थे। हीरामन अभी तक अपने खेत में बैठा उगी हुई दूब को खुरपी से साफ़ कर रहा था। बदन पर क़मर से नीचे एक फटी धोती और सिर पर एक मैला अँगोछा था। वह दाहने हाथ से खुरपी चलाता जाता था और बायें हाथ की तर्जनी से बीच बीच में ललाट पर के जमे पसीने की बूँदों को पोंछता जाता था। उसका छोटा लड़का बिहारी दो बार उसे खाने के लिए बुलाने आया, मगर दोनों ही बार उसने उसे थोड़ी देर ठहर जाने का आदेश किया। दो-तीन धुर ज़मीन साफ़ करने को बाक़ी थी। उसका इरादा था कि उसे समाप्त करके ही वह वहाँ से हटे। अचानक घंटी की आवाज़ और पैरों की आहट से उसे ऐसा मालूम हुआ कि किसी का बैल

जापान किधर ?

लेखक,

श्रीयुत उमाशंकर

[राष्ट्रीय चीन की महिलायें घायल सैनिकों की मरहमपट्टी कर रही हैं]

आज विश्व के रंगमंच पर अशान्ति ताण्डव नृत्य कर रही है। अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र के कोने-कोने में जो राजनैतिक और आर्थिक संघर्ष चल रहा है वह किस क्षण कैसा रूप धारण कर लेगा, यह नहीं कहा जा सकता। परिवर्तन वहुत तेज़ी के साथ हो रहा है। अतः परिवर्तन के सम्वन्ध में कोई भविष्यवाणी करने का साहस नहीं कर सकता और यदि कोई करे भी तो यह उसकी धृष्टता ही होगी। चीन की छाती पर होनेवाले जापानी साम्राज्यवाद के पैशाचिक नृत्य को देखने का जिन्हें अवसर मिला है वे वताते हैं कि पूर्व में जापान भीषण नृशंसता और वर्वरता का प्रदर्शन करना चाहता है, जो पश्चिमी राष्ट्रों को पूर्वी एशिया से दूर रहने की चेतावनी दे रहा है।

जापान की आकांक्षा और परराष्ट्र-नीति

रेडियो पर भाषण करते हुए उस दिन श्री अरीता ने स्पष्ट शब्दों में कहा था कि जापान पूर्वी एशिया में नई व्यवस्था स्थापित करना चाहता है। उसने यह संकल्प कर लिया है कि जनरल चियांगकाई शेक को सहायता पहुँचाने की सव तरह की कार्रवाई वन्द कर देने में कोई वात उठा न रक्खी जाय। कुछ दिन पहले अमरीका को भी जापान-सरकार ने चेतावनी दी थी। एक जापानी पत्र ने भी लिखा था कि योरप में युद्ध छिड़ जाने से अमरीका अपने को पूर्वी एशिया का संरक्षक समझता है और प्रशान्त सागर में अपना मज़वूत जहाज़ी अड्डा रखकर जापान पर आर्थिक दवाव डालना चाहता है। यदि जापान के प्रति अपने रुख में अमरीका सुधार न करेगा तो प्रशान्त सागर भी रण-क्षेत्र वन जायगा।

जापान में राजतंत्र शासन प्रणाली है। वहाँ राजा की वहुत अधिक प्रतिष्ठा है। वह ईश्वर के तुल्य माना जाता है। भोली-भाली जनता को यह समझा दिया जाता है कि राजा ईश्वर का अवतार है और वह इस फ़िक्र में लगा हुआ है कि सारी दुनिया पर जापानियों का राज्य हो। जिस दिन ऐसा हुआ, उसी दिन जापानियों का दुःख-दारिद्र्य दूर हो जायगा। ऐसी ऐसी वातें केवल भोली-भाली जनता को ठगने के लिए ही नहीं होतीं, उनकी वातों में तथ्य भी रहता है। लगभग दस वर्ष पूर्व तत्कालीन जापानी प्रधान मंत्री वैरन तनाका ने सम्राट् के सामने एक मेमेरण्डम उपस्थित किया था। तनाका की वह घोषणा तो पहले गुप्त रही, पर अव संसार को उसका पता चल गया है। वह योजना वास्तव में विश्व-विजय की योजना थी। उसे कार्यान्वित करने के प्रयत्न में जापान वरावर लगा हुआ है। वैरन तनाका ने वताया है कि विश्व-विजय के

[जापान के भूतपूर्व वैदेशिक मंत्री श्री अरीता]

लिए सबसे पहले एशिया पर जापान को अधिकार जमाना होगा।

जापान की नई सरकार ने जापान की पर-राष्ट्र-नीति के विषय में वक्तव्य देते हुए १ अगस्त को कहा था—"दुनिया के इतिहास की गति की दिशा बदलने का समय उपस्थित है। यह अत्यन्त आवश्यक है कि हम इतिहास की गति की दिशा को जानें, जिस गति को कोई रोक नहीं सकता। यह भी बहुत ही ज़रूरी है कि हम राष्ट्र की रक्षा के लिए राज्य के संघटन को सम्पूर्ण बनाने का यत्न करें। जापान की नई राष्ट्रीय नीति का पहला कार्य है वृहत्तर पूर्वी एशिया में एक नई व्यवस्था का निर्माण और इस व्यवस्था का आधार है जापान, मंचूको और चीन का ऐक्य। जापानी परराष्ट्र मंत्री ने अपने वक्तव्य में कहा है कि जापान की परराष्ट्र-नीति का इस समय लक्ष्य है पूर्वी एशिया में एक क्षेत्र की स्थापना, जिसके भीतर के देश समान मार्ग से अपनी उन्नति करेंगे। उस क्षेत्र में मुख्य जापान, मंचूको तथा चीन रहेंगे, पर फ्रेंच इंडोचीन, हालैंड का ईस्ट इंडीज और दक्षिणी समुद्र के टापू भी इसमें रहेंगे।

जापान की यह परराष्ट्र-नीति आज की नहीं है, वह तो 'एशिया एशियावालों के लिए' की पुकार बहुत दिनों से कर रहा है। गत २५ वर्ष से उसके प्रायः प्रत्येक कार्य का लक्ष्य एशिया के नेतृत्व की अभिलाषा की पूर्ति ही रहा है। सन् '३४' में जापान ने स्पष्ट रूप से यह घोषणा की थी कि एशिया से योरपीय शक्तियों का प्रभाव दूर कर एशिया में अपना प्राबल्य स्थापित करना उसका लक्ष्य है। जापान के 'मनरो-सिद्धान्त' का सूत्रपात भी प्रायः यहीं से होता है।

योरपीय युद्ध के आरम्भ होते ही जापान ने अपने को तटस्थ घोषित कर दिया। पर फ्रांस को जर्मनी से पराजित होते देखकर जापानी अधिकारियों ने ज़ोरों से युद्ध की तैयारी शुरू की है। वे आज फ्रांस की विवशता एवं ब्रिटेन की परेशानी से लाभ उठाकर एशिया पर अपना अधिकार स्थापित करना चाहते हैं। गत योरपीय युद्ध के समय भी ब्रिटेन, फ्रांस आदि को युद्ध में फँसा देखकर जापान की सरकार ने सन् १९१५ के शुरू से ही चीन के सामने अपनी २१ माँगें रक्खी थीं। उस समय उसका शान्तुंग तथा मंचूरिया पर अधिकार भी हो गया था। वह अपनी गत योरपीय युद्धवाली नीति को क़ायम रखना

[जापान के युद्ध-कार्य में योग देनेवाली एक जापानी महिला]

चाहता है। उसने इस बार भी इंडोचीन की सरकार के सामने ऐसी माँगें रक्खी हैं जिनके स्वीकृत हो जाने पर उसे एशिया पर एकाधिपत्य स्थापित हो जाने में सहायता मिलेगी।

फ्रेंच इण्डोचीन पर दबाव

फ्रेंच इण्डोचीन के अन्तर्गत कोचीन चीन, कम्बोडिया, अनाम, लाओस और टान्किन तथा पट्टे-द्वारा प्राप्त क्वाङ्ग चाऊवान नामक एक बन्दरगाह माने जाते हैं। फ्रांस के सब उपनिवेशों से इंडोचीन की जनशक्ति अधिक शक्तिशाली है। वहाँ की भूमि भी बहुत उपजाऊ है। खनिज द्रव्य भी बहुत है। विशेषत: रबर, चूना आदि प्रचुर मात्रा में वहाँ प्राप्त होता है।

केवल एशिया पर अपना एकाधिपत्य स्थापित करने के मतलब से जापान इंडोचीन पर आँखें नहीं गड़ाये हुए है। यह बात तो ज़रूर है कि साम्राज्य-विस्तार-योजना के मतलब से जापान के लिए इंडोचीन का सैनिक महत्त्व बहुत अधिक है। थोड़ी देर के लिए मान लिया जाय कि इंडोचीन पर उसका प्रभुत्व स्थापित हो जाय तो क्या यह नहीं कहा जा सकता है कि जापान के लिए दक्षिण में सिंगापुर तथा पश्चिम में ब्रह्मदेश पर हमला कर देना अधिक आसान हो जायगा, कारण इंडोचीन से सटा हुआ श्याम देश है। साम्राज्य-विस्तार-योजना को पूरा करने के लिए जापान ने श्याम देश (थाईलैंड) के सामने १७ अगस्त को ४ माँगें पेश की हैं—(१) थाइलैंड में सेना के हवाई और समुद्री अड्डे बनाना, (२) रेलों का उपयोग करने की अनुमति, (३) पारस्परिक सहायता का समझौता कर लेना और (४) जापान और थाईलैंड की स्थल-सेना और समुद्री सेना में निकट सहयोग। जापान के इस रुख से प्रत्यक्ष रूप से पता चलता है कि उसकी भारत पर भी निगाह है।
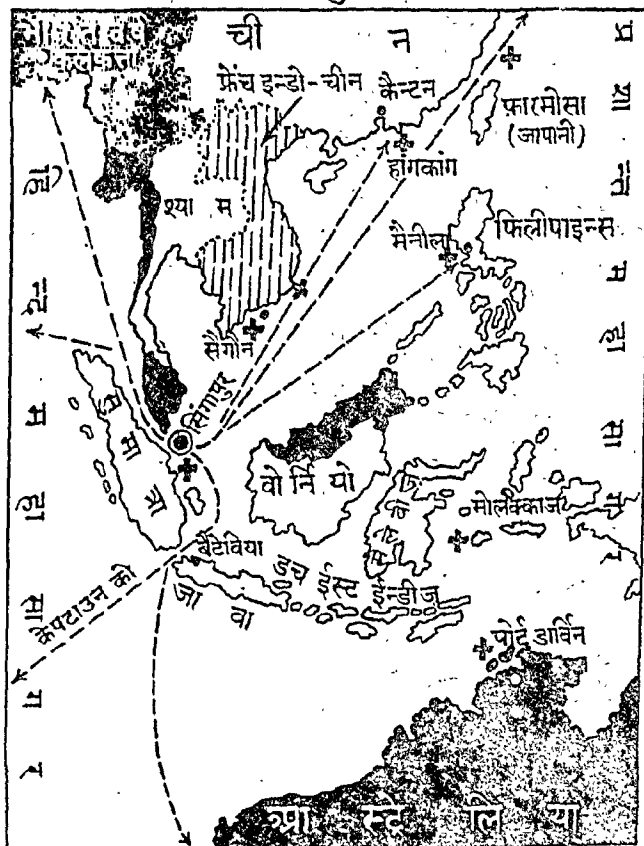
[सुदूर पूर्व का वह महत्त्वपूर्ण क्षेत्र जिस पर जापान की दृष्टि लगी हुई है]

जापान से युद्ध अनिवार्य

इसमें कोई सन्देह नहीं कि फ़िलहाल ब्रिटेन ने ब्रह्मदेश के रास्ते चीन को युद्ध-सामग्री न जाने देने की जापान की माँग मंजूर कर रक्खी है और शंघाई से अपनी फ़ौज भी हटा ली है, पर अब यह अनुमान किया जाता है कि ब्रिटेन जापान के सामने और नहीं झुकेगा। यदि जापान नहीं मानता तो उसका सामना करने के लिए चीन के इधर-उधर से ब्रिटिश सेना हटाकर उसे शक्ति-प्रदर्शन करने के लिए एक स्थान पर एकत्र करने की भूमिका बन रही है। याद रखना चाहिए कि जापान ने बहुत पहले ही यह राय ज़ाहिर की थी कि शंघाई में तथा उत्तर-चीन में विदेशियों

[अजेय चीन के राष्ट्रपति चियांग काई शेक]

[राष्ट्रपति चियांग काई शेक की पत्नी, जो राष्ट्रीय भावना जाग्रत किये रहने में निरन्तर संलग्न रहती हैं]

की जो सेनायें हैं उनकी गणना जापान प्रतिभू के रूप में करता है, इससे आज यह विश्वास बढ़ता जाता है कि प्रतिभू के रूप में रहनेवाली इस सेना को हटाकर ब्रिटेन उस सम्भावना का मुक़ाबिला करने की तैयारी कर रहा है जो जापान की नई नीति के कारण उत्पन्न हो गई है।

फ्रेंच इंडोचीन में अमरीका का भी स्वार्थ है। इंडोचीन पर जापान का अधिकार होना उसे सहन न होगा। अमरीका ने संघर्ष के लिए तैयारी शुरू कर दी है। यों तो वह युद्ध मोल लेना नहीं चाहता, पर यदि संघर्ष उसके लिए अनिवार्य हो जायगा तो वह लड़ भी सकता है। उसी उद्देश्य से रूस के साथ समझौता कर लेने का वह प्रयत्न कर रहा है। इधर मास्को-रेडियो पर बताया गया है कि सोवियट और संयुक्त राष्ट्र (अमरीका) में व्यापारिक सन्धि हो गई है। चीन भी जापान की इस चाल से उदासीन नहीं है। चीनियों ने फ्रेंच सरकार को चेतावनी दे दी है कि फ्रेंच इंडोचीन में यदि जापान को अड्डे बनाने की अनुमति दी जायगी तो हम सैनिक कार्रवाई करेंगे। चीनी पत्रों में छपा है कि चीनी सेनायें फ्रेंच इंडोचीन की सीमा की ओर बढ़ रही हैं और रक्षा का दृढ़ प्रबन्ध किया जा रहा है।

जापान की भीतरी हालत

जापान-सरकार ने चीन से युद्ध शुरू करने के पहले ही कहा था कि चीन एक वर्ष में ले लिया जायगा, पर अब तक चीन नहीं लिया जा सका। जनता का दुःख और दारिद्र्य दूर नहीं हुआ। उलटे इस युद्ध के कारण उसे अपना माल सरकार को सस्ते मूल्य में देना पड़ता है। ऊपर से युद्ध-कर का भार है ही। किसानों में से परिश्रमी और कर्मठ नवयुवकों को जापानी सेना में काम करने के लिए जाना पड़ता है। इस युद्ध के कारण जापानी किसानों का दुःख इस हद तक पहुँच गया है कि कहीं-कहीं जापानी कुमारियों को अपने परिवार की सहायता करने के लिए अशोभन वृत्ति तक का सहारा लेना पड़ता है।

जापान का शासन-सूत्र सैनिक-अफ़सरों के हाथ में है। सेना की इच्छा के विरुद्ध कार्य करनेवाले राजनीतिज्ञों को सदा ही अपनी जान हथेली पर लेकर घूमना पड़ता है। इसका प्रमाण हमें इस बात से मिलता है कि लगातार चार-चार क्रान्तिवादी प्रधान मंत्री वहाँ मारे जा चुके। बीसवीं शताब्दी के आरम्भ में कूटो की सरकार के शासन-काल से ही जापान में सैनिक शासन की परिपाटी चली आ रही है। विगत महायुद्ध के बाद विश्व की राजनैतिक विचार-धारा में जो उथल-पुथल मची और योरप में गणतंत्र की एक व्यापक लहर फैली उसकी गूँज जापान में भी सुनाई दी। बैरन हागगूचि के अधिनायकत्व में गणतंत्र क़ायम करने का आन्दोलन आरम्भ हुआ, पर जापान के मंचूरिया हड़पने के साथ ही साथ उसका अन्त हो गया और सैनिक-

शासन का ही बोल-बाला रहा। 'नेशनल मोबिलिजेशन ऐक्ट' के अनुसार सैनिकों को युद्ध के निमित्त लोगों की सम्पत्ति ज़ब्त करने, ज़बरन हड़ताल बन्द कराने और देश की उपज तथा वाणिज्य पर नियंत्रण करने का अधिकार है। सैनिक सरकार के विरुद्ध प्रचार करने पर जेल की हवा खानी पड़ती है। जापान की उठती हुई समाजवादी पार्टी तथा मज़दूरपार्टी के गण्यमान नेता और काम करनेवाले नवयुवक जेलों में सड़ रहे हैं, फिर भी समाजवादियों ने अपना काम नहीं छोड़ा है। आज भी उनका प्रधान कार्य है—श्रमिकों और किसानों की हड़तालों का संचालन करना, युद्ध के विरुद्ध प्रचार करना और जापान की फ़ैसिस्ट सरकार को सदा के लिए अन्त कर देना। वे अपने विभिन्न पत्रों में यों लिखते हैं—

"चीनवाले क्या हमारे दुश्मन हैं? नहीं। हमारे दुश्मन हैं हमारे देश के शोषक-सम्प्रदाय। ये सब रण-देवता और पूँजीपति अपनी स्वार्थ-सिद्धि के लिए चीन की छाती पर डाकुओं की तरह नृशंस अत्याचार कर रहे हैं। चीन-वासियों के ख़िलाफ़ युद्ध करने में तनिक भी देश-प्रेम नहीं। किसानों और मज़दूरों की हालत सुधारने के लिए जो लोग प्रयत्नशील हैं वे ही सच्चे देशभक्त हैं। तुम युद्ध में अपने प्राण दे रहे हो, पर जो तुम्हें युद्ध-क्षेत्र में भेजते हैं वे ही तुम्हारे घरवालों का खून चूसकर विलास में मग्न हैं।" वे जनता से कहते हैं—"ऐ जापानी भाइयो, आओ, आज हम सब एक होकर जापानी साम्राज्यवाद के इस नर-मेघ के ख़िलाफ़ सिर उठायें। हम अपने हथियारों से जापानी पूँजीपतियों, ज़मींदारों और शोषकों का अन्त करें।

एक जापानी राजनीतिज्ञ के शब्दों में—"युद्ध में सम्पत्ति के ख़तरे में पड़ जाने की आशंका होती है। यही कारण है कि जापानी जनता आज कर के बोझ से दबी जा रही है। मज़दूरों की आमदनी पहले से १८ प्रतिशत कम हो गई है और भोजन का मूल्य पहले से २५ प्रतिशत बढ़ गया है। सन् १९३० में जापान पर ६ अरब येन क़र्ज़ था, जो सन् १९३८ में बढ़कर १६ अरब हो गया और १९३९-४० के बजट के अनुसार उसका परिमाण बढ़कर २० अरब हो गया। सन् १९४०-४१ के बजट के अनुसार अब उसके ३० अरब हो जाने की सम्भावना है।

यों तो पहले से ही जापान के किसानों की हालत अच्छी नहीं थी, इधर युद्ध के समय आर्थिक शोषण होने के कारण उनकी हालत और भी बिगड़ गई है। मज़दूरों की स्थिति भी अत्यन्त शोचनीय है। जापानी कारखानों में उन्हें प्रतिदिन दस घंटे काम करना पड़ता है। जापान के पूँजीवादी सस्ता माल तैयार कर अन्य देशों के बाज़ारों पर क़ब्ज़ा करना चाहते हैं। इसके लिए उन्हें अपने देश के श्रमिकों का शोषण करना पड़ता है। शोषण के फलस्वरूप वहाँ के मज़दूरों में अत्यधिक असन्तोष फैला हुआ है। श्री आर० बी० सी० बाडेल ने अपने 'जापान के मज़दूरों का रक्त-शोषण' शीर्षक लेख में लिखा है—"जापान-सरकार के परराष्ट्र-विभाग के दफ़्तर में सूर्योदय से सूर्यास्त के बीच चाहे जिस समय भी कोई जाय, कर्मचारियों को काम करते पायेगा। जल-पान के समय भी यह देखा गया है कि वे खाना मेज़ पर रखकर जल्दी-जल्दी खाते और काम करते जाते हैं। कितने लोग तो जल-पान में भी समय नष्ट नहीं करना चाहते हैं, वे सिर्फ़ एक प्याला कहवा पीकर सन्तोष कर लेते हैं।"

इस शोषण के फल-स्वरूप जापान में असन्तोष की अग्नि प्रज्वलित हो रही है। इसकी ज्वाला से बचने के लिए जापान की सैनिक-सरकार युद्ध की शरण लेना चाहती है। एक सैनिक-अफ़सर का कहना भी है कि हमें या तो विदेशियों से लड़कर मरना होगा या घर में ही। उन्हें श्रेणी-जाग्रति का भूत साफ़-साफ़ दिखाई पड़ रहा है। अगर चीन-जापान का युद्ध बन्द हो जाय तो उनका अनुमान है कि जापान में विप्लव का होना अवश्यम्भावी है। यही कारण है कि जापान-सरकार हर प्रकार से चीन-जापान-युद्ध जारी रखने की चेष्टा कर रही है।

पण्डित मोठूमल

लेखक, डाक्टर रघुवरदयाल

(१)

पंडित मोठूमल कपड़े उतारकर रसोई-घर में भोजन करने को जा रहे थे कि नीचे से किसी ने द्वार खटखटाया। पंडिताइन त्योरी चढ़ाकर बोली—"लो, तुम्हारे मित्रों ने तो नाक में दम कर रक्खा है, न समय देखते हैं न कुसमय। अब ठीक भोजन के समय कोई आ मरा। मैं तो बे-मौत मरी आज। मैंने केवल दो जनों के लिए खीर और मालपुये बनाये हैं। इसको खिलाना पड़ गया तो मैं तो भूखी मरी। चुप रहो, आप थोड़ी देर में झक मारकर चला जायगा!"

पंडित जी कुछ जवाब न दे पाये थे कि आगन्तुक ने इतना गुल मचाया और द्वार पर इतनी लातें मारीं कि सारी गली काँप गई और मोठूमल जी को उतरते ही बना। वे जलते-भुनते फिर कपड़े पहनकर नीचे उतरने लगे। चलते-चलते पंडिताइन से बोले—तुम मत घबराओ। मैं अभी कमबख्त को टरकाकर आता हूँ। और यदि वैसा ही कोई जाना-बूझा निकल आया और खाना खिलाना ही पड़ गया तो दाल-रोटी परोस देना। खीर-पुये साँझ के लिए रख देना। यह कहकर पंडित जी जल्दी जल्दी सीढ़ियाँ उतरने लगे, पर पंडिताइन चीत्कार करती हुई बोली—"अरे सुनो तो! मैंने आज दाल-रोटी कहाँ बनाई है?"

"अररर! यह तुमने बड़ा गजब कर डाला। अच्छा, देखो क्या होता है?" कहते-कहते मोठूमल नजरों से ओझल हो गये। पंडिताइन सिर पकड़कर बैठ गई।

नीचे आकर द्वार खोलते ही आगन्तुक का हाथ बड़े प्रेम से दबाते हुए पंडित जी बोले—"ओहो! तुम भगतराम! कहाँ रहे इतने दिन?"

"क्या बताऊँ पंडित जी! दिनों का फेर है। महीना भर से कष्ट पर कष्ट झेल रहा हूँ।"

"हैं! हैं! खैर तो है! क्या हुआ? सुनूँ तो।"

"कहीं बैठो तो बताऊँ। यों गली में खड़े-खड़े कैसे कहूँ?"

मोठूमल बैठक का द्वार खोलते हुए बोले—"मेरी सुनो। पहले खाना खा लो, फिर मजे में बातें करेंगे।"

"खाना तो मैं खा आया हूँ।"

मोठू० (दिल में प्रसन्न होकर)—"झूठ, मैं न मानूँगा। खाना तुमको खाना पड़ेगा।"

"फिर किसी दिन खा लूँगा पंडित जी। आज पेट भरा है, जरा भी भूख नहीं।"

"अरे भाई, मैंने तो जलपान भी नहीं किया है और तुम रोटी भी खा आये हो। अच्छा थोड़ी खीर खा लो और कुछ न सही।"

"भाई, तुम इतनी ज़िद करते हो तो खैर थोड़ी खा लूँगा। भूख वैसे मुझे ज़रा भी नहीं है।"

मोठूमल घबराये परन्तु तत्काल सँभाल कर बोले—"बड़ी जल्दी खा लेते हो यार। अच्छा करते हो। खैर, तो ऐसा करो कि तुम यहाँ आराम करो, मैं अभी खा-पीकर आया।"

पत्नी ने थाली परोसते हुए पूछा—"जब उसने एक बेर नाहीं कर दी थी तब तुम खाने के लिए उसके पीछे क्यों पड़ गये?"

मोठू०—"तो भी कुछ लल्लोपत्तो तो करना ही चाहिए।"

"वाह! यह अच्छा रहा, आ बैल मुझे मार। मेरे तो प्राण सूखे जा रहे थे।"

"और इस बात में मेरी तारीफ़ न करोगी कि जब उसने हाँ कर दी तब मैंने कैसा चकमा दिया, सुनी अनसुनी कर दी।"

"क्या बताऊँ? यही सोच रही थी कि यदि वह कहीं हाँ कर बैठा तो फिर चूल्हा फूँकना पड़ेगा। दाल-रोटी बना देती। यह खीर-पुये तो कभी न देती।"

मोठूमल ने खीर से भरी उँगलियाँ चाटते हुए प्रशंसा-भरी दृष्टि से पत्नी के मुख की ओर देखते हुए कहा—"तुम बहुत सयानी हो।"

पंडिताइन प्रफुल्लित होकर बोली—"अच्छा, थाली देखकर खाओ। कहीं मक्खी-वक्खी न निगल जाना।"

पन्द्रह-बीस मिनट के पीछे जब मोठूमल खूब तनकर उतरे तब कमरे में आकर पलँग पर लेटकर टाँगें फैलाते हुए बोले—मित्र, कहो क्या बात थी।

भगत०—पन्द्रह दिन हुए, हमारी गली के किशनप्रसाद व हमारे पड़ोसी फ़तहचंद किसी बात पर झगड़ पड़े।

मोठू०—जहाँ दो आदमी रहेंगे, झगड़ेंगे हँसेंगे। इसमें अचरज क्या है?

भगत०—अजी सुनो तो। बीच में बात न काटो। मैं पास खड़ा था।

मोठू०—फिर कहोगे, बात न काटो। मुझसे तो बिना बोले रहा नहीं जाता। कहते हो, पास खड़ा था। अरे भाई, जब गली में पास रहनेवाले लड़ पड़ेंगे तब पास खड़ा होना ही पड़ता है।

भगत०—खैर, तो भाई, मैं पास खड़ा था। पाँच-छः मिनट तक तो वे बकते-झकते रहे, फिर गुत्थम-गुत्था हो गये, नौबत यहाँ तक पहुँची कि दोनों के सिर फूट गये।

मोठू०—सिर फूटेंगे ही, लड़ाई थी, प्रेमालिंगन तो था नहीं।

भगत०—इसके बाद दोनों थाने दौड़े। वहाँ पुलिस-वालों ने दोनों को दुत्कार दिया, बोले, जाओ, यह पुलिस के हस्तक्षेप का केस नहीं। दावा करना हो तो कचहरी में जाकर कर दो।

मोठू०—पुलिस को मुट्ठी गरम न की होगी।

भगत०—भगवान् जाने। फिर दोनों कचहरी को भागे और एक-दूसरे पर दावा कर दिया।

मोठू०—तो और क्या करते? पुलिसवालों ने जब कुछ न किया तब दावा भी न करते?

भगत०—मैं कब कहता हूँ, न करते। पर मैंने और दूसरे गलीवालों ने बहुतेरा समझाया कि जाने दो, फ़साद बढ़ाने से क्या फ़ायदा।

मोठू०—भाई, तुमने तो भले आदमियों का ही व्यवहार किया। कोई माने तो अच्छी बात, नहीं तो जाय भाड़ में।

भगत०—पर कौन किसी की सुनता है। ज़िद में थे। नहीं माने।

मोठू०—नहीं, मार खाकर और इज़्ज़त गँवाकर चुप-चाप बैठे [illegible] तो कायरता है।

भगत०—दावा करके कम्बख़्तों ने दोनों ने मुझे गवाही में लिखाया है।

मोठू०—लिखाना ही था। कुछ तुम पर एहसान तो नहीं किया, पास जो खड़े थे।

भगत०—अजी पास तो खड़ा था ज़रूर, पर मैं अब बड़े असमंजस में हूँ। सच बोलूँ तो फ़तहचंद फँस जाय। दोष उसी का था।

मोठू०—अजी मित्र का पक्ष लेना चाहिए। ऐसी की तैसी में गया सच। सच बोलने को क्या कचहरी ही है?

भगत०—और जो यदि मित्र के लिए झूठ बोलता हूँ तो निन्दा होगी।

मोठू०—निन्दा होगी ही। मित्र परलोक में तो साथ न देगा। तुम जैसे भले आदमी यदि झूठ बोलने में हिचकें तो इसमें अचम्भा नहीं।

भगत०—बस साहब, मैंने तय कर लिया है। किसी की भी गवाही न दूँगा।

मोठू०—बहुत अच्छा सोचा है। बचाव की और राह भी नहीं।

भगत०—पर अदालत से सम्मन जारी हो गये हैं।

मोठू०—सम्मन जारी कैसे न होते? तुम कोई लाट तो नहीं हो।

भगत०—सोच-विचार कर मैंने सम्मन ले लिया।

मोठू०—अच्छा किया। नहीं तो वारंट आता।

(२)

भगत०—जब नियत समय पर कचहरी पहुँचा तब क्या देखा कि भले आदमियों के बैठने का कोई प्रबन्ध नहीं। बड़ी देर तक बुलावे की राह देखनी पड़ी।

मोठू०—सो होना ही था। पैरों में बल चाहिए। तभी आदमी २-४ घंटे खड़ा रह सकता है।

भगत०—मैंने चपरासी को आवाज़ देकर पूछा तब वह घृणा से मुँह मोड़कर चला गया।

मोठू०—ठीक ही किया। यों ये लोग हर एक से बात करने लगें तो सिर खोखला हो जाय। सैकड़ों गवाह जूतियाँ चटखाते फिरते रहते हैं।

भगत०—फिरते होंगे, पर मुझे तो उसका ढंग अच्छा नहीं लगा।

मोठू०—अच्छा कैसे लगता? जब १०) का चपरासी भले आदमी से दुर्व्यवहार करेगा तब जी जल ही जाता है।

भगत०—ख़ैर, मैंने ज़ोर से पुकार कर कुर्सी माँगी। उसने मेरी बात मखौल में उड़ा दी।

मोठू०—तो और क्या करता? हर गवाह को कुर्सी देने लगे तो फ़रनीचर की दूकान भी काफ़ी न हो। उसने ठीक ही किया।

भगत०—आपके ख़याल में ठीक किया, पर मुझे बड़ा क्रोध आया।

मोठू०—आना ही चाहिए था। तुम्हें कुर्सी दे ही देता तो क्या हर्ज था?

भगत०—ख़ैर साहब भला हो तुम्हारा, जब वह ज़रा आगे बढ़ा तब मैंने एक ख़ाली कुर्सी देखकर खींच ली और उस पर बैठ गया।

मोठू०—बहुत ठीक किया। चपरासी की गुस्ताख़ी का इलाज भी यही था।

भगत०—मगर साहब चपरासी यह देख गुस्से से लाल हो मेरी तरफ़ लपका और मुझे धक्का देकर कुर्सी छीन ली।

मोठू०—तो और क्या करता? वह भी सच्चा था। यदि इस तरह हर एक का लिहाज़ करने लगे तो काम कैसे चले?

भगत०—काम चले या न चले भाई, मेरा तो ख़ून उबलने लगा और मैंने गर्दन से पकड़कर चपरासी को नीचे गिरा दिया।

मोठू०—ख़ून क्यों न उबलता? यह बात सुनकर मेरा ही ख़ून उबलने लगा है, तुम्हारे साथ तो बीती थी। तुमने ख़ूब बदला लिया, बहुत अच्छा किया।

भगत०—उसे गिरता देख रीडर और दो-चार आदमियों ने दौड़कर उसे छुड़ाया और मुझे बहुत लानत की।

मोठू०—करनी ही थी। सरकारी आदमी पर हाथ डाला, यह क्या अच्छा काम था?

भगत०—अच्छा-बुरा तो मैं जानता नहीं, पर एक वकील ने मेरा पक्ष लेकर रीडर से झगड़ना शुरू कर दिया।

मोठू०—आख़िर दुनिया भले आदमियों से ख़ाली तो नहीं हो गई है। चपरासी को भी समझ आ गई होगी कि इज़्ज़तदार आदमियों पर हाथ डालना हँसी-खेल नहीं है।

(२)

भगत०—अभी यह हंगामा जारी था कि डिप्टी साहब आ गये।

मोठू०—आते कैसे न? क्या सरकारी नौकर नहीं हैं, तलब नहीं लेते हैं?

भगत०—अजी सुनो तो। बात बात में अड़चन डालते हो। पंडित जी न जाने कैसी आदत है आपकी!

मोठू०—आदत पूछते हो हमारी? हमारी आदत? हैं! अच्छा फिर बतावेंगे। पहले तुम आपबीती सुना लो।

भगत०—बस, आते ही पूछा, क्या मामला है। पहले चपरासी ने अपना बयान दिया। सुनते ही मजिस्ट्रेट मेरी तरफ़ घूरा।

मोठू०—घूरता क्यों नहीं? उसके चपरासी का अपमान उसका अपना अपमान था।

भगत०—मैंने भी झट अपने पक्ष का बयान कर दिया।

मोठू०—अच्छा किया। डर जाते तो काम बिगड़ जाता।

भगत०—डिप्टी साहब थोड़ी देर में बोले, क़ुसूर तुम्हारा है, चपरासी से माफ़ी माँगो।

मोठू०—भई, वाह! कैसा नादिर फ़ैसला किया। असल में क़ुसूर तो तुम्हारा ही था। डिप्टी भी फ़ौरन असलियत को भाँप गया।

भगत०—इधर वकील ने मेरे कान में कहा, माँग लो माफ़ी।

मोठू०—कान में न कहता तो क्या डंके की चोट पर कहता। अदालत सुन लेती तो कहती तुम गवाह को सिखा-पढ़ा रहे हो।

भगत०—अजी, अभी गवाह कहाँ बना था, अभी तो अपना ही झगड़ा था। ख़ैर साहब, मैं सोच में पड़ गया।

मोठू०—अच्छा किया, अक्लमन्दी सोच-विचार कर काम करने में ही है।

भगत०—आख़िर जँगले पर ज़ोर से हाथ मारकर मैं चिल्लाकर बोला, नहीं, मैं माफ़ी न माँगूँगा, क़ुसूर सरासर चपरासी का है।

मोठू०—भई वाह! ख़ूब किया! राम जी की सौगन्ध, तबीअत यह सुनकर ख़ुश हो गई। मरता तो [illegible] ही बेर है, फिर डरने से लाभ?

भगत०—मेरी यह हरकत उस मेरे पक्षपाती वकील को भी न भाई, बोला, यह ज़िद तुम्हें ख़राब करेगी।

मोठू०—ठीक कहा। ऐसी भी ज़िद क्या? इस ज़िद ने बड़ों बड़ों को ख़राब किया है। तुम्हारी क्या हैसियत है।

भगत०—मेरा रंग-ढंग देखकर डिप्टी क्रोध में आकर बोला, जल्दी माफ़ी माँगकर मामला ख़त्म करो, नहीं तो मैं तुम्हें दंड दूँगा।

मोठू०—माँग लेते माफ़ी, क़िस्सा खत्म हो जाता।

भगत०—क्यों माँग लेता? मैंने उसमें अपना अपमान समझा और साफ़ इनकार कर दिया।

मोठू०—वाह मेरे यार! खूब किया। ठीक वही किया जो ऐसे अवसर पर मैं करता।

भगत०—मेरे तीसरी बार इनकार करने पर डिप्टी तैश में आगया।

मोठू०—आया ही चाहे। तुमने उसे क्रोध दिलाने में कसर छोड़ी कुछ?

भगत०—और मुझ पर दस रुपया जुर्माना कर दिया।

मोठू०—चलो सस्ते छूटे।

भगत०—मैंने दस रुपये का नोट मैजिस्ट्रेट की मेज़ पर फेंका और झट बाहर निकल आया।

मोठू०—अच्छा किया। अन्दर ठहरते तो जेल की हवा खानी पड़ती।

(४)

भगत०—जब मैं बाहर निकला तब क्या देखता हूँ कि किशनप्रसाद व फ़तहचंद राज़ीनामा लिखवाकर अन्दर जा रहे हैं। मुझे बड़ा नागवार गुज़रा।

मोठू०—गुज़रना ही था। जिनकी ख़ातिर इतना अपमान सहा, दस रुपये खोये, उन्होंने भी क़द्र न की, बड़ी नालायक़ी की। और कुछ नहीं तो तुम्हारी गवाही तो होने देते, फिर चाहे राज़ीनामा दे देते!

भगत०—पर इतनी अक्ल किसके घर से लाते? और जब यह बात मैंने कही तब मुझसे लड़ने को उतारू हो गये। चार पासवाले भी मुझे ही बुरा-भला कहने लगे।

मोठू०—तो और क्या तुम्हारे पैर पूजते? जो आदमी मुक़दमाबाज़ी बढ़ाने की चेष्टा करेगा, लोग तो उसे बुरा ·· चाप बैठे।

भगत०—आख़िर सबका रुख अपने विरुद्ध देखकर मैं चुप हो गया।

मोठू०—अच्छा किया, नहीं तो जूतियाँ खाते!

भगत०—पंडित जी आपकी, भी तो उम्र मुक़दमेबाज़ी में ही गुज़री है।

मोठू०—नहीं तो क्या हम सारी उम्र भाड़ झोंकते रहे हैं।

भगत०—तो यह तो बताओ जो मैं १०) के लिए किशन पर दीवानी दावा कर दूँ तो वसूल हो जायँगे?

मोठू०—वसूल कैसे न होंगे? दिये नहीं १०) उनके मुक़दमे में, मैजिस्ट्रेट की गवाही लिखवा देना कि झगड़ा किशनवाले मुक़दमे में हुआ।

भगत०—तो कर दूँ दावा।

मोठू०—ज़रूर कर दो। पर एक बात है, वकील करना पड़ेगा, ५) और ख़र्च करो। मैं अच्छा-सा नामी वकील कर दूँगा। तब मुक़दमा जीता पड़ा है।

भगत०—अच्छी बात है। ये लो ५) और सब काम आपके ज़िम्मे रहा।

मोठू०—बेफ़िक्र रहो। बस, चल दिये। अरे भाई, सवेरे का खाना तो तुमने खाया नहीं, पर अब यदि सन्ध्या का भोजन यहीं करके जाते तो मुझे बड़ी खुशी होती।

भगत०—कृपा है आपकी पंडित जी। भोजन फिर कभी सही। अब तो यह काम बना दो तो बड़ा यश मानूँ।

(५)

भगतराम के जाने पर मोठूमल आराम करने को लेट गये। मन में प्रसन्न थे कि बैठे-बिठाये पाँच की रक़म हाथ लग गई। किसका मुक़दमा, कहाँ का वकील, थोड़ी-सी ढिठाई और ५) हज़म! साढ़े चार बजे तीसरे पहर का समय था। पंडित जी ने गिलौरी मुँह में दबाई ही थी कि कचहरी के चपरासी ने आकर सलाम किया।

मोठूमल उछल कर बोले—सलाम मियाँ हशमत। आओ भाई, आज किधर से आना हुआ? बैठो बैठो। खड़े क्यों हो? कहो कैसे आये?

हशमत—अजी क्या बताऊँ पंडित जी। सीधा कचहरी से चला आ रहा हूँ। सुना था, भगतराम आपसे मेरी कुछ शिकायत कर गया है और मुझ पर दावा करनेवाला है।

मोठू०—तो भाई पहले खाना खा लो, फिर आराम से बातें करना। तुम्हारा क़िस्सा लम्बा मालूम होता है।

हशमत—अजी हुज़ूर, भला हम ग़रीबों के खाने का यह कौन-सा वक़्त है।

मोठू०—नहीं भाई, मैं बुलाता हूँ नौकर को। समझे?

हशमत—जी नहीं, ग़रीबपरवर माफ़ करें। मेरी एक अर्ज़ है।

मोठू०—क्या कहा, एक अर्ज़? अरे भाई तुम्हारी तो सौ भी अर्ज़ें हों तो इनकार नहीं। जान हाज़िर है। तुम्हारी नेकियाँ क्या मैं भूल सकता हूँ?

हशमत (फूलकर कुप्पा हो गया और बोला)—भगतराम आपसे मेरी शिकायत कर गया है?

मोठू०—कौन भगतराम? कैसी शिकायत?

हशमत—अजी वही किशनप्रसाद की गली में जो रहता है। उसके मुक़दमे में गवाह भी था। लोग तो भगतू कहते हैं, पर वह अपने आपको भगतराम कहता है।

मोठू०—होगा कोई। बात यह है भाई हशमत, जब कचहरी-दरबार का काम किया, ख़ूब धड़ल्ले से किया, लाट तक से नहीं डरे, पर अब जब यह काम छोड़ दिया तब कभी ध्यान नहीं दिया कि कौन लड़ता है, कौन गवाही देता है, कौन कहाँ रहता है।

[illegible] गया है।

मोठू०—ताज्जुब तो होगा ही। विश्वास के आदमी से [illegible] सुना है।

हशमत—और आप कहते हैं, वह आया ही नहीं।

मोठू०—अब इन झगड़ों में पड़ना छोड़ दिया है मियाँ हशमत। ऐसी की तैसी में जायँ ये झगड़े।

हशमत—तो किशनप्रसाद व फ़तहचंद की लड़ाई का हाल तो आपको मालूम ही होगा।

मोठू०—मालूम कैसे न होता? अब भी हम शहर की सब ख़बर रखते हैं।

हशमत—और यह भी मालूम होगा कि इस मुक़दमे में भगतू गवाह था।

मोठू०—भला मैं क्या भगतू के यहाँ रसोई जीमने गया था? मुझे क्या पता कि मुसरा कहाँ कहाँ झक मारता है?

हशमत—और, मुझसे सुनिए न। गवाह यह था और कचहरी पहुँचा।

मोठू०—सम्मन गये होंगे तो पहुँचा होगा। तुम पर कुछ एहसान किया क्या?

हशमत—अजी एहसान की बात नहीं पंडित जी। मैं यह कह रहा था, पहुँचा और कुर्सी के मामले पर मुझसे लड़ पड़ा।

मोठू०—गधा होगा कोई। इसमें लड़ने की क्या बात थी? चवन्नी तुम्हारे हाथ पर रखता, बस चाहे दो-दो कुर्सियाँ तोड़ता।

हशमत—आपका बेटा जिये पंडित जी, पर इतनी अक्ल कहाँ से लाता। आख़िर सोचिए, हमारा पेट भी खाने को माँगता है। बारह रुपल्ली में क्या बनता है?

मोठू०—बात यह है मियाँ हशमत। बने या न बने, यह तुम जानो या सरकार। भगतू तुम्हें पैसे क्यों देता? उसने ठीक किया जो इनकार कर दिया।

हशमत—ठीक किया? और यह जो १०) सरकार में भरा है!

मोठू०—पूछो बेवक़ूफ़ से। सुना नहीं तुमने मियाँ हशमत कि जाट गन्ना न देगा, गुड़ की भेली देगा।

हशमत—और हुज़ूर, वहाँ एक वकील थे जो उसकी [illegible] लगे।

मोठू०—अजी बाज़ आदमी ही निकम्मे होते हैं। योंही दूसरों की फटी चादर में पैर अड़ाते फिरते हैं।

हशमत—उसकी शह पाकर भगतू और भी शेर हो गया, रीडर साहब को भी आँखें दिखाने लगा।

मोठू०—जिस वकील ने भगतू का पक्ष लिया, बड़ा ही नेक होगा। बेमतलब मदद करना किसी माई के लाल का ही काम है।

हशमत—अभी तो आप उसे बुरा कह रहे थे पंडित जी, अब कहते हैं, मदद करके अच्छा किया।

मोठू०—मियाँ हशमत, हम किसी का दिया तो खाते नहीं कि डर जायँ। हम किसी को अपनी राय के अनुसार अच्छा भी कहेंगे और जब बुरा करेगा, बुरा भी कहेंगे। समझे?

मियाँ हशमत समझे-वमझे तो ख़ाक नहीं, पर बात बढ़ाना न चाहते थे, सावधान होकर बोले—मेरा यह

मतलब न था हुजूर। आप तो नाराज़ हो गये। खैर, आगे सुनिए।

मोठू०—सुन तो रहा हूँ मियाँ हशमत। सुनाओ। मैं बहरा नहीं हूँ।

हशमत—डिप्टी साहब जब पहुँचे तब हमारा झगड़ा ख़त्म नहीं हुआ था। उन्होंने शोरगुल का सबब पूछा तब मैंने सारा हाल सच सच कह दिया।

मोठू०—अच्छा किया। साँच को आँच नहीं।

हशमत—फिर उससे पूछा तब उसने भी सब हाल सच सच कह दिया।

मोठू०—बेवक़ूफ़ था, पागल था, वर्ना सारा दोष तुम्हारे सिर थोप देता।

हशमत—बस, साहब ने फ़ैसला दिया कि मुझसे भगतू माफ़ी माँगे।

मोठू०—ऐसा न करता तो लोग तुम्हारा जीना दूभर कर देते।

हशमत—पर वह अकड़ गया और बोला माफ़ी न माँगूँगा।

मोठू०—बहुत ठीक किया। तुम जैसे टुटपुँजियों से माफ़ी माँगना बड़ा अपमान था।

हशमत—चलो जी। न माँगी, न सही। १०) जुर्माना तो भरा। मालूम होता है, किसी बुरे का मुँह देखकर आया था।

मोठू०—और क्या कोई ब्राह्मण माथे लगा होगा!

हशमत ने डरते डरते पूछा—क्यों पंडित जी, ब्राह्मण का मुँह देखना क्या बुरा होता है?

मोठू०—बहुत बुरा। मनहूस माना जाता है।

हशमत—पर पंडित जी, आप भी तो ब्राह्मण हैं।

मोठू०—अरे मियाँ हैं तो सही, पर सब एक-से तो नहीं होते।

हशमत—तो आपका मुँह देखने से काम नहीं बिगड़ता पंडित जी?

मोठू०—बिगड़ता क्यों नहीं? सोलह आने बिगड़ता है। हम कुछ घटिया मेल नहीं हैं, न किसी साले से कम हैं। हम सबसे दो अंगुल ऊंचे रहकर चलनेवाले हैं। और आप कहते हैं, हमारा मुँह देखे से काम नहीं बिगड़ता। वाह मियाँ हशमत!

हशमत—खैर, पंडित जी नाराज न हों। मुझे इन बातों का इल्म नहीं। पर हुई भगतू के साथ उस दिन बहुत बुरी।

मोठू०—अरे मियाँ! जब ब्राह्मण का मुँह देखा था तब और जो भी गुज़रती, थोड़ी थी। अभी सस्ता छूट गया। कोई टुटपुँजिया-सा ब्राह्मण माथे लगा होगा। हम जैसों का सामना हो जाता और फिर ऐसा सस्ता छूट आता तो टाँगतले से निकल जाते। समझे?

हशमत—पर सुना है, मुझ पर मुक़दमा करने जा रहा है। मैं ग़रीब आदमी, मुझमें मुक़दमा लड़ने की हिम्मत कहाँ!

मोठू०—अजी करने दो मुक़दमा। सौ-पचास खर्चेगा कि योंही मुक़दमा हो जायगा। होने दो खराब। तुम्हारा क्या बिगाड़ेगा? समझे?

हशमत—जी, समझा तो, पर यह बार बार पेशी जो भुगतनी पड़ेगी। मेरा तो बड़ा नुक़सान होगा। छुट्टी लेनी पड़ेगी और आप तो जानते हैं, पंडित जी, आपसे कुछ पर्दा तो है नहीं। एक दिन की छुट्टी में डेढ़-दो का नुक़सान हो जाता है।

मोठू०—तुम दस रुपये मेरे हवाले करो और मजे से बेफ़िक्र हो जाओ। नामी-सा वकील करके सब भुगतान करा दूँगा। तुम अपना मज़े से दनदनाते रहना। किसी को कानों कान भी खबर न होगी कि मुक़दमा हुआ है। समझे?

हशमत—आपका बेटा जिये पंडित जी। बचा दिया। ५) तो यह लीजिए, ५) फिर ३-४ दिन तक दे जाऊँगा। तो मैं बेफ़िक्र रहूँ?

मोठू०—ऐसे जैसे क़ब्र में मुर्दा। पर याद रखना, ५) भूलना मत, जल्दी ही पहुँचा देना। मैं कल ही वकील के पास जाऊँगा। समझे?

हशमत—भूलूँगा नहीं सरकार। सलाम हुज़ूर।

मोठू०—सलाम भई, सलाम, सलाम मियाँ हशमत सलाम, खुश रहो।

वर्सेले की संधि पर अंतिम कुठाराघात

लेखक, श्रीयुत दिल्लीरमण रेग्मी, एम० ए०, एम० लिट

रूमानिया के वियना-एवार्ड की शर्त के अनुसार ४५,००० वर्ग किलोमीटर भूमि हंगरी के सुपुर्द कर देने से रूमानिया की स्थिति आज २५ वर्ष पीछे पहुँच गई है। गत १० वर्ष से वर्सेले-संधि का जो विनाश-कृत्य हो रहा है, वियना-एवार्ड ने उस संधि का आखिरी पन्ना भी फाड़ कर फेंक दिया है।

इस प्रकार योरप से वर्सेले-संधि का नाम शेष हो गया है। २५ वर्ष पहले रूमानिया का जो रूप था, यदि उसी से वह अपने को सन्तुष्ट रखता तो उसको लड़ाई से चिन्तित होने की जरूरत न होती। परन्तु आज योरप के राजनैतिक वातावरण में छोटे राष्ट्रों का कुशलपूर्वक रहना मुश्किल है। इधर तो वहाँ मत्स्यन्याय के अनुसार बड़े राष्ट्र छोटों को एक एक करके हड़प रहे हैं। और अब तो मत्स्यन्याय भी नहीं रहा, क्योंकि जितने छोटे राष्ट्र हैं, सभी ने अपने भाग्य को पड़ोसी बड़े राष्ट्र के साथ मिला दिया है। वहाँ के छोटे राष्ट्रों का नियन्त्रण बड़े राष्ट्र ही करते हैं।

सन् १८७८ में रूमानिया-राज्य की स्थापना हुई थी। बर्लिन की संधि के अनुसार तुर्की से मोलडेरा और वेलेचिया नाम के दो प्रान्त लेकर रूमानिया का निर्माण किया गया था। सन् १९१८ के बाल्कन-समर के बाद रूमानिया को डोब्रूजा का भी प्रान्त मिल गया। इन तीनों प्रान्तों के रूमानिया-राज्य ने ४० वर्ष के भीतर बड़ी उन्नति कर ली। किन्तु उसकी यह उन्नतावस्था ज़्यादा दिन न रह सकी। १९१४—१८ के महासंग्राम में उसको गहरी चोट लगी। रूमानिया अँगरेजों के पक्ष में हो गया था, अतः जर्मन-सेना का भयानक आक्रमण उस पर हुआ। रूमानिया जर्मनी का सामना न कर सका। वह युद्ध में हार गया और उसके कई जिले ले लिये गये। बल्गेरिया को भी डोब्रूजा मिल गया।

[रूमानिया के बादशाह किंग कैरोल]

अन्त में महायुद्ध में जर्मनी हार गया और वर्सेले की संधि के अनुसार रूमानिया को हंगरी का ट्रांसिल्वेनिया मिल गया, वनात और बुकोविना भी उसके सुपुर्द कर दिये गये। रूस की कमजोरी से फ़ायदा उठाकर बेसराबिया पर भी उसने क़ब्ज़ा कर लिया। इस प्रकार वर्सेले की संधि से रूमानिया को ज्यादा लाभ हुआ। महायुद्ध के पहले जो रूमानिया एक साधारण राज्य था, वर्सेले के बाद वही एक प्रभावशाली राष्ट्र हो गया।
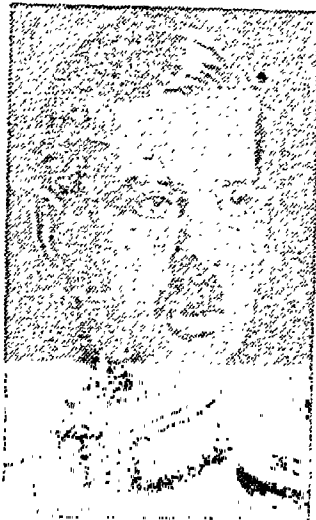
वर्सेले-संधि के फलस्वरूप रूमानिया की शक्ति और क्षमता बढ़ गई। १९१९ के बाद तुर्की ने बाल्कान पर के अपने सारे दावे छोड़ दिये, इसलिए तुर्की से उसको कोई भय न रह गया। आस्ट्रिया और हंगरी दोनों स्वयं कमजोर थे—उनसे भी भय न था। रहा रूस, सो परन्तु १९३३ के बाद रूस के राष्ट्र-संघ में आ जाने से उसको भी रूमानिया शंका की दृष्टि से नहीं देखता था। १९३४ में रूस के साथ अनाक्रमण संधि करके वह रूस से एकदम निश्चिन्त हो गया। इस संधि से रूस ने बेसराबिया पर के अपने स्वत्व को भी छोड़ दिया था। बाल्कान के अन्य राष्ट्रों के साथ भी ऐसी ही अनाक्रमण संधियाँ करके रूमानिया निर्भय हो गया था। साथ ही रूमानिया ने भीतरी सुधार करके अपनी भौतिक और सामरिक स्थिति बहुत अच्छी कर ली थी।

लोग समझते हैं कि रूमानिया का पतन अल्पसंख्यक जाति के सवाल से हुआ है, परन्तु यह ग़लत धारणा है। अन्य मुल्कों के सदृश रूमानिया में किसी भी प्रान्त में अल्पसंख्यक जाति अधिक संख्या में नहीं थी। यों तो हंगरी और रूस दोनों रूमानिया के प्रान्त लेने के लिए अल्पसंख्यक जाति के प्रश्न को ही अपना साधन बना रहे थे। परन्तु अल्पसंख्यक जाति की दृष्टि से ही देखा जाय तो

हंगरी और सोवियट के कार्य न्यायपूर्ण नहीं मालूम होते। वेसराविया को ही लो, यहाँ रूमानियन ही बहुसंख्यक हैं। कुल जन-संख्या का ५६·२ प्रतिशत रूमानियन का है। रूसी और उक्रेनियन दोनों मिलकर यहाँ २३·३ प्रतिशत हैं। पहले चाहे जैसा व्यवहार किया गया हो, १९३८ के बाद से वेसराविया के रूसियों को रूमानियनों के-से ही अधिकार दिये गये थे। वूकोविना रूमानिया को आस्ट्रिया से मिला था। यहाँ भी रूमानियन ४६·५ प्रतिशत हैं और उक्रेनियन २७·७ प्रतिशत हैं। ट्रांसिल्वेनिया की भी क़रीब क़रीब यही हालत है। हंगरी के किनारे का प्रदेश छोड़ दिया जाय तो वहाँ भी रूमानियन ही बहुसंख्यक हो जाते हैं। हाल में समाचार-पत्रों से मालूम हो गया है कि लौटाये गये ट्रांसिल्वेनिया के भाग में सिर्फ़ १० लाख ही जर्मन हंगेरियन थे। इन हंगेरियनों को राष्ट्रसंघ की शर्तों के अनुसार काफ़ी राजनैतिक और सामाजिक अधिकार मिल गये थे। अगर अल्पसंख्यक जातियों का ही सवाल होता तो हल किये जाने का यह रास्ता भी था कि दोनों राष्ट्र अपनी अपनी जाति के लोगों को अपने मुल्क में बुला लेते। आखिर यह राह फिर पकड़नी ही पड़ी है, क्योंकि रूमानिया की सरकार को वेसराविया, बुकोविना और ट्रांसिल्वेनिया के रूमानियनों को सम्पत्ति के साथ रूमानिया में बुलाकर आश्रय देने का अधिकार मिला है। किन्तु उन प्रान्तों के निकल जाने से रूमानिया को जो हानि सहनी पड़ी है वह अकथनीय है।

रूमानिया

वर्सेले की संधि सदोष हो सकती है, परन्तु रूमानिया के सम्बन्ध में उसको दोष नहीं दिया जा सकता। फिर भी उसका फल रूमानिया को भोगना पड़ा है। हंगरी के सदृश यदि रूमानिया भी रोम-बर्लिन-धुरी का सहकारी होता तो उसे शायद ज़्यादा न खोना पड़ता। किन्तु यह बात उसे तब सूझी जब वेसराविया लेने के लिए रूस उसके दरवाज़े पर धक्का देने लगा।
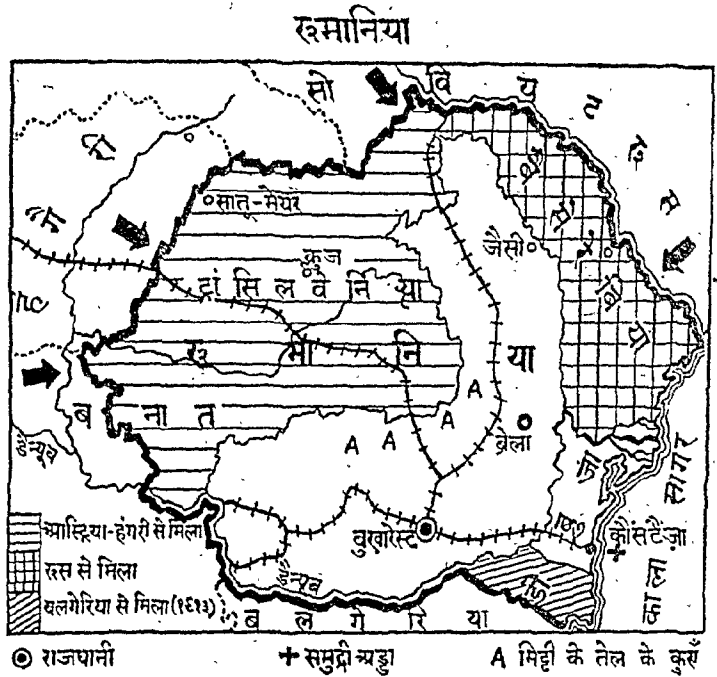
रूमानिया को ट्रांसिल्वेनिया क्यों खोना पड़ा, यह एक सवाल है। वह अपने अधिकार पर डटा रह सकता था। हंगरी की तुलना में वह अधिक शक्तिशाली था। ट्रैनान की संधि के कारण हंगरी को फ़ौज रखने का निषेध था, पर रूमानिया के लिए वैसी कोई रोक-टोक नहीं थी। अभी तक उसके पास ३ लाख सुसज्जित सिपाही थे। साथ-साथ कई टैंक, आर्मर्ड कार और मेशीनगन भी थे। १००० वायुयान के रहते हंगरी को रूमानिया का अकेला मुक़ाबिला करना सम्भव नहीं था। फिर भी रूमानिया हंगरी के आगे झुक गया। हंगरी को धुरी के राष्ट्रों की सहानुभूति और समर्थन मिला हुआ है, इसलिए वह चेकोस्लोवेकिया से, अपने से कई गुना बली होने पर भी, रुथेनिया ले सका। आज भी उनके बल से उसको रूमानिया को छिन्न-भिन्न करने का मौक़ा मिला। अख़बारों से पता चलता है कि हंगरी की माँगें पूरी कर देने के सिवा रूमानिया के आगे दूसरा चारा ही न था। अगर रूमानिया न करता तो

[धुरी शक्तियों का नया खिलौना रूमानिया का राजकुमार मिकाइल]
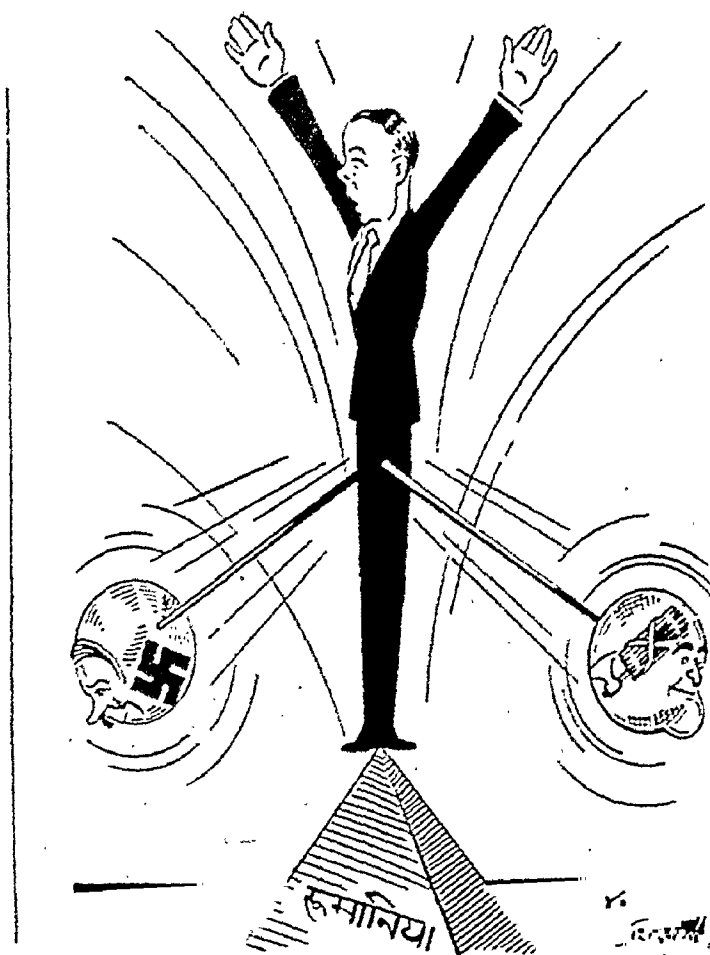
धुरी के राष्ट्र उसके विपक्षी हो जाते। यही नहीं, अल्टीमेटम के रूप में धुरी-राष्ट्रों का जो प्रस्ताव रूमानिया को मिला उससे मालूम होता था कि धुरी के राष्ट्र बाल्कान के युद्ध को रोकने के लिए जितने इच्छुक थे, वही इच्छा उनको समर छिड़ जाने पर उसे जल्दी ख़त्म करने को बाध्य करती और शायद वे स्वयं उसमें शामिल होकर बाल्कान की चिनगारी को बुझा देते। फिर भी यह दूसरी सम्भावना इतनी भयावह थी कि उससे धुरी के राष्ट्रों का कल्याण न होता। बाल्कान में रूस की भी दृष्टि है। इसलिए बाल्कान की कमज़ोर परिस्थिति से वह भी फ़ायदा उठाने का प्रयत्न कर सकता था। ख़ासकर पूर्वी पोलैंड के बाद जिस तरह बेसराबिया और बुकोविना उसको रूमानिया से लेना पड़ा, रूमानिया के दूसरे राष्ट्र के पंजे में पड़ जाने से काले-सागर पर उसको कड़ी निगाह रखनी पड़ती। यही नहीं, बल्गेरिया और युगोस्लाविया के साथ उसका जो निकटतम सम्बन्ध हाल में क़ायम हुआ है उससे भी बाल्कान में उसका प्रभाव कम हो जाने से शायद कुछ परिवर्तन न होता। इसी आशंका से रूस ने बल्गेरिया को दक्षिण डोब्रूजा के दिलाने की कोशिश की थी। परन्तु धुरी के राष्ट्रों की चाल से रूस बाल्कान के सवाल में पीछे पड़ गया। रूमानिया को भी हारना पड़ा, क्योंकि वह

रूस-जर्मन के ध्येय की विभिन्नता से फ़ायदा न उठा सका।

रूमानिया में बेसराबिया के समर्पण के बाद रूस के खिलाफ़ क्षोभ उत्पन्न हो गया था। पहले रूमानिया रूस का साथ नहीं दे सका था तो भी ट्रांसिल्वेनिया को बचाने के लिए वह अपने को रूस के साथ कर सकता था। परन्तु ब्रिटेन की संरक्षता को त्याग कर उसने धुरी के राष्ट्रों की शरण ली। वह समझता था कि वे राष्ट्र उसकी हर हालत में रक्षा करेंगे। रूस पर उसका अविश्वास था—और धुरी के राष्ट्रों को वह रूस के ध्येय का प्रतिपक्षी समझता था। यही कारण है कि रूस के आश्वासन देने पर भी वह धुरी को ही सब कुछ समझने लगा। किन्तु धुरी के राष्ट्र तो बाल्कान से वर्सेले की संधि का प्रभाव दूर करने में लगे थे। उनके आगे हंगरी को खुश रखने का सवाल भी कम महत्त्वपूर्ण नहीं था। फिर रूस को बाल्कान से पृथक् रखने का भी ध्येय था। इसलिए रूमानिया के ट्रांसिल्वेनिया का एक भाग बलि-वेदी पर चढ़ा दिया गया। युद्ध रोकने के लिए यही एक उपाय था।

यहाँ यह प्रश्न उठता है कि क्या हंगरी और रूमानिया में अब पूर्ववत् सम्बन्ध क़ायम रह सकेगा। अल्पसंख्यक जाति का प्रश्न एक प्रकार से रूमानिया में अब नहीं रह गया है। परन्तु ट्रांसिल्वेनिया का जो भाग रूमानिया के अधिकार में है उस पर हंगरी की निगाह है। क्लुज शहर तक हंगरी का क़ब्ज़ा होने से यद्यपि बहुत-सी आर्थिक महत्त्व की भूमि रूमानिया के हाथ से निकल गई है, फिर भी जो बचा है उसमें और बनात में तेल की खानें होने से रूमानिया के आर्थिक जीवन पर वैसी गहरी चोट नहीं पहुँची है। हंगरी के साथ इटली की सहानुभूति होने पर भी जर्मनी यह नहीं चाहता है कि तेल की खानें हंगरी के अधीन चली जायँ। शायद इसलिए कि उससे रूस कहीं नाराज़ न हो जाय। रूस के प्रभाव में रूमानिया आ सकता था यदि रूमानिया हंगरी के साथ लड़ाई लड़ने को बाध्य होता। फिर इटली के साथ भी वस्तुतः हंगरी के सवाल पर जर्मनी का शंकित व्यवहार रहा है। सम्पूर्ण ट्रांसिल्वेनिया के चले जाने से इटली का नियन्त्रण बढ़ जाता। इसी से उसका कुछ हिस्सा बच गया है। किन्तु मालूम होता है कि वियना-एवार्ड म्युनिक के समझौते की तरह कुछ दिन का है। धुरी के राष्ट्रों की पराजय होने से तो इसका अन्त स्वतःसिद्ध है।

वियनाएवार्ड से अच्छा लाभ हंगरी का हुआ है। जितनी माँगें उसने पेश की थीं, सब मिल गई हैं। रूमानियन सरकार का इस्तीफ़ा, राजा केरोल का भागना, एन्टोनेस्कू का राजदण्ड ग्रहण करना—ये ऐसी घटनायें हैं जो हंगरी के खिलाफ़ रूमानिया को नहीं ले जा सकतीं। हंगरी का सीमान्त अब पूर्व की ओर भी प्राकृतिक क़िलेबन्दी से रक्षित है, *अर्थात् ट्रांसिल्वेनियन,* आल्प्स के रहने से उसे प्रकृत्या सुरक्षित सीमान्त मिल गया है। साथ साथ जर्मनी और इटली भी खुश हैं, क्योंकि बाल्कान से रूस का अब प्रभाव प्रायः हट गया है। जनरल एन्टोनेस्कू रूस का मित्र नहीं है।

रूमानिया की छिन्न-भिन्न होने की घटना चेकोस्लोवेकिया के बाद दूसरी है। न जाने, रूमानिया का खात्मा ही हो—जैसा चेकोस्लोवेकिया का हुआ था। यह भी सम्भव है कि अब धुरी राष्ट्रों की आँखें यूगोस्लोविया पर पड़ सकती हैं, क्योंकि केवल वही वर्सेले की संधि के अनुसार संगठित राज्य उस ओर रह गया है।

खेती की कुछ समस्यायें

लेखक, प्रोफ़ेसर शङ्करसहाय सक्सेना, एम० ए०, एम० काम०

छले सौ वर्ष से इस देश में जन-संख्या बढ़ रही है। इधर भारतवर्ष के उद्योग-धंधे भी उसी के साथ जिस तरह नष्ट हुए हैं, यह किसी से छिपा नहीं है। फलतः उनमें लगी हुई जनसंख्या को खेती का आश्रय लेना पड़ा इससे देश के आर्थिक संगठन का संतुलन भी ध्वस्त हो गया। अधिकाधिक लोगों के खेती पर ही निर्भर हो जाने पर खेती की भूमि की मांग अत्यधिक बढ़ गई और खेती के योग्य भूमि का अकाल पड़ गया।

जनसंख्या के अधिकाधिक खेती पर निर्भर रहने के तीन भयंकर परिणाम हुए—(१) अधिकांश किसानों के पास इतनी कम भूमि रह गई कि उसपर खेती करने से लाभ नहीं हो सकता। (२) गाँवों में क्रमशः एक वर्ग ऐसा उत्पन्न हो गया जिसके पास खेती के लिए भूमि नहीं है, वरन वह मज़दूरी करके अपना पेट पालता है। (३) जो भी थोड़ी-बहुत भूमि किसानों के पास है वह भी एक चक में न होकर बिखरी हुई है, जिससे खेती की उन्नति नहीं हो सकती।

बे-मुनाफ़े की खेती—कल्पना कीजिए कि एक किसान के कुटुम्ब में छोटे-बड़े मिलाकर पाँच प्राणी हैं और उनकी सहायता से वह चालीस बीघा भूमि जोत सकता है। इसके अतिरिक्त उसको प्रत्येक दशा में बैलों की एक जोड़ी तो रखनी ही होगी। यदि मान लें कि बैलों की एक जोड़ी से ४० बीघा खेती की जा सकती है तो उस किसान के पास कम से कम ४० बीघा खेती तो होनी ही चाहिए। यदि उसके पास केवल दस बीघा खेती ही है तो प्रति-बीघा बैलों को रखने का खर्च चौगुना पड़ेगा, साथ ही किसान भी बेकार रहेगा। दूसरे शब्दों में १० बीघा भूमि पर खेती करना लाभदायक नहीं होगा। अस्तु, प्रत्येक किसान के पास इतनी भूमि तो कम से कम होनी ही चाहिए जिस पर उसके घरवालों तथा बैलों को पूरा काम मिल सके। जब तक किसान के पास काफ़ी भूमि नहीं होगी तब तक खेती करने में मुनाफ़ा नहीं हो सकता। दुर्भाग्यवश भारतवर्ष में अधिकांश किसानों के पास इतनी कम भूमि है कि उस पर खेती करने से लाभ हो ही नहीं सकता। सरकारी जाँच के अनुसार भिन्न-भिन्न प्रान्तों में प्रत्येक किसान के पास नीचे लिखे अनुसार भूमि थी—

संयुक्त-प्रान्त	... २·५ एकड़
आसाम	... ३ एकड़
बिहार	... ३ एकड़
बंगाल	... ३ एकड़
मदरास	... ४·५ एकड़
मध्यप्रान्त	... ८·५ एकड़
पंजाब	... ९ एकड़
बम्बई	... १२ एकड़

ऊपर दी हुई तालिका से यह स्पष्ट हो जाता है कि अधिकांश प्रान्तों में प्रतिकिसान औसत जोत पाँच एकड़ से कम है। यह ध्यान में रखने की बात है कि अधिकांश किसानों के पास इससे भी कम भूमि है। इतनी कम भूमि पर खेती करके किसान लाभ नहीं उठा सकता। यदि हम चाहते हैं कि किसान की आर्थिक स्थिति सुधरे तो हमें यह समस्या हल करनी होगी। किन्तु इस समस्या का हल करना सरल नहीं है। अभी तक जितने भी उपाय किये गये हैं वे असफल हुए हैं। इसका एक ही हल है, और वह है देश की औद्योगिक उन्नति। यदि देश में औद्योगिक उन्नति हो तो कुछ जनसंख्या उद्योग-धंधों में काम पा जायगी और भूमि पर जनसंख्या का जो अत्यधिक भार है वह हलका हो जायगा। वैसे भी भारतवर्ष का वर्तमान आर्थिक संगठन अत्यन्त दोषपूर्ण है। तीन-चौथाई जनसंख्या का केवल खेती पर निर्भर रहना खतरे से खाली नहीं है। खेती अनिश्चित धंधा है, किसी भी प्राकृतिक कारण से फ़सल नष्ट हो सकती है, जिसका परिणाम यह होता है कि देश का सारा आर्थिक ढाँचा हिल उठता है और असंख्य जनसंख्या के भूखों मरने की नौबत आ जाती है। यदि किसी वर्ष फ़सल नष्ट हो जाती है तो असंख्य जनसंख्या की क्रय-शक्ति नष्ट हो जाती [illegible] और देशी मिलों के माल की बिक्री कम हो [illegible] के दिलाने की व्यापार भी कम हो जाता है। भारतवर्ष [illegible] राष्ट्रों की को विदेशों में भेजता है, अतएव फ़सल के [illegible] पीछे पड़ निर्यात-व्यापार भी कम हो जाता है। रेलवे, क्योंकि वह

के लिए कम माल मिलता है और गाँव का रहनेवाला तीर्थयात्रा तथा मेलों में कम जाता है। सरकार को माल-गुज़ारी में छूट देनी पड़ती है, वजट में घाटा होता है और यदि अभाग्यवश किसी भाग में अकाल पड़ गया तो करोड़ों रुपया राजकोष से अकाल-पीड़ितों की सहायता के लिए व्यय करना पड़ता है। सारांश यह कि भारतवर्ष का सारा आर्थिक ढाँचा ही खेती पर अवलम्बित है। यह स्थिति किसी भी प्रकार वाछनीय नहीं है। इसका अर्थ यह कदापि नहीं है कि खेती को प्रोत्साहन न दिया जाय। खेती भविष्य में भी भारतवर्ष का प्रमुख धंधा रहेगा, किन्तु भूमि पर जनसंख्या का इतना अधिक भार है कि भूमि इसको सहन नहीं कर सकती। भारतवर्ष में खेती के योग्य जितनी भी भूमि है यदि उसका जनसंख्या में बँटवारा करें तो प्रतिमनुष्य दो-तिहाई एकड़ भूमि का औसत आता है। संसार का कोई भी देश इतनी कम भूमि के द्वारा एक प्राणी का पालन-पोषण नहीं कर सकता।

किसी भी देश में कच्चे पदार्थ (अर्थात् खेती की पैदावार, जंगल की पैदावार, खनिज पदार्थ तथा मछलियाँ) उत्पन्न करनेवाले धंधों और पक्का माल तैयार करनेवाले धंधों की साथ-साथ उन्नति होनी चाहिए। इन दोनों प्रकार के धंधों की यदि एक साथ उन्नति नहीं होगी तो न तो दोनों की पूरी पूरी उन्नति हो सकेगी और न देश का आर्थिक ढांचा सुदृढ़ बना रह सकेगा। इसी प्रकार यदि केवल पक्का माल तैयार करनेवाले धंधों की ही उन्नति की जाय तो वह भी लाभदायक सिद्ध नहीं होगा। दोनों प्रकार के धंधों का ठीक ठीक संतुलन ही देश की आर्थिक उन्नति के लिए आवश्यक है।

ऊपर के विवेचन से यह स्पष्ट हो गया कि भारतवर्ष में औद्योगिक उन्नति की नितान्त आवश्यकता है। देश में उद्योग-धंधों की केवल इसी लिए आवश्यकता नहीं है कि उससे देश की निर्धनता का प्रश्न हल होगा, किन्तु इसलिए भी कि उसके बिना खेती की उन्नति नहीं हो सकती।

दुष्परिणाम यह हुआ कि गाँवों में एक वर्ग ऐसा उत्पन्न हो गया जिसके पास खेती के लिए भूमि नहीं है और जो इधर-उधर मज़दूरी करके अपना जीवन-यापन करता है। ऐसा अनुमान किया जाता है कि ऐसे मज़दूरों की संख्या पिछले पचास वर्ष में वढ़ते वढ़ते लगभग ६ करोड़ पहुँच गई है। वास्तव में इस वर्ग की दशा अत्यन्त दयनीय है। जुताई और कटाई के समय इन मज़दूरों को गाँव में मज़दूरी मिल जाती है, अन्यथा ये लोग समीपवर्ती शहरों और क़स्बों में घास, लकड़ी और कंडे बेंचकर अथवा मज़दूरी करके अपना पेट पालते हैं। इन लोगों को कभी भरपेट भोजन नहीं मिलता और न इनको वस्त्र ही नसीव होता है। यह वर्ग देश के लिए भविष्य में एक भयंकर खतरा सिद्ध होगा, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है। दुर्भाग्यवश इस वर्ग की संख्या ज़ोरों से वढ़ रही है। और यही कारण है कि देश में फ़क़ीरों, साधुओं, संन्यासियों और वेश्याओं की संख्या भी इस वर्ग के साथ साथ वढ़ती जा रही है। इस वर्ग का तेज़ी से बढ़ना ही देश की वढ़ती हुई निर्धनता का प्रमाण है। इस वर्ग की हीन दशा का परिचय तो इसी से मिल जाता है कि इसमें क़र्ज़दार वहुत कम हैं। इसका कारण यह नहीं है कि इसकी आर्थिक स्थिति अच्छी है, वरन यह है कि इसकी आर्थिक दशा इतनी शोचनीय है कि सहकारी साख-समिति अथवा महाजन कोई भी इसे इस योग्य नहीं समझता कि इसको क़र्ज़ दिया जाय। ऐसी दशा में यदि देश में ऐसे लोगों की संख्या वढ़ती जा रही है जो दूसरों की भिक्षा पर निर्वाह करते हैं तो आश्चर्य ही क्या है।

भूमि-रहित मज़दूरों की समस्या को हल करने का भी एकमात्र उपाय देश की औद्योगिक उन्नति ही है। औद्योगिक उन्नति से केवल यही अभिप्राय नहीं है कि देश में केवल कारखाने ही स्थापित किये जायँ। जव कभी देश के उद्योग-धंधों की योजना तैयार की जायगी उस समय गृह-उद्योग-धंधे भुलाये नहीं जा सकते। हाँ, गृह-उद्योग

बिखरे हुए खेतों की समस्या—भूमि पर जनसंख्या के बढ़ते हुए भार का तीसरा परिणाम यह हुआ है कि खेतों के छोटे-छोटे टुकड़े हो गये हैं और प्रत्येक किसान के पास की सारी भूमि एक ही स्थान पर न होकर दूर-दूर पर छोटे-छोटे खेतों में बँट गई है। इन बिखरे हुए खेतों की समस्या ने आज देश में उग्र रूप धारण कर लिया है। यदि किसी किसान के पास पन्द्रह बीघा भूमि है तो वह एक ही स्थान पर न होकर भिन्न-भिन्न स्थानों पर छोटे-छोटे टुकड़ों में विभाजित है। कहीं कहीं तो ये बिखरे हुए खेतों के टुकड़े इतने छोटे रह गये हैं कि उन पर खेती करना असम्भव हो गया है। बम्बई तथा पंजाब में कहीं कहीं खेत केवल तीन या चार वर्ग गज़ के रह गये हैं, और ऐसे भी खेत पाये जाते हैं जो मील भर लम्बे और कुछ गज़ चौड़े हैं। इससे यह न समझ लेना चाहिए कि ऐसे खेत यथेष्ट संख्या में पाये जाते हैं। वास्तव में ऐसे खेत संख्या में बहुत थोड़े हैं, किन्तु इससे यह पता चलता है कि यह रोग कितना भयंकर है। यद्यपि ऊपर दिये हुए उदाहरण कम ही हैं, तथापि छोटे-छोटे टुकड़ों की तो इतनी बहुतायत है कि अधिकतर खेत बहुत छोटे छोटे रह गये हैं। बम्बई-प्रान्त के पीपला सौदागर ग्राम की आर्थिक जाँच करने पर प्रसिद्ध अर्थशास्त्री डाक्टर हैराल्ड मैन ने लिखा है कि १५६ किसानों के पास ७२९ टुकड़े थे, जिनमें ४६३ एक एकड़ के थे और २११ टुकड़े तो केवल चौथाई एकड़ के ही थे। कहने का तात्पर्य यह है कि किसान के पास अधिकतर छोटे-छोटे टुकड़े होते हैं, जो दूर दूर पर बिखरे होते हैं।

खेतों के बिखरे होने से खेती की उन्नति असम्भव हो जाती है। किसान के समय, परिश्रम तथा पूँजी का इतना अधिक अपव्यय होता है कि यह आशा करना कि खेतों के बिखरे होने पर भी वैज्ञानिक ढंग से खेती हो सकेगी, केवल स्वप्न है।

बिखरे हुए खेतों से निम्नलिखित हानियाँ होती हैं—

(१) किसान सिंचाई के लिए कुआँ नहीं बना सकता, क्योंकि हर एक छोटे छोटे टुकड़े पर कुआँ खोदना सम्भव नहीं है। यदि सब खेत एक ही स्थान पर हों तो वह एक ही कुएँ से सारी भूमि की सिंचाई कर सकता है।

(२) किसान का बहुत-सा समय एक खेत से दूसरे खेत पर जाने में नष्ट हो जाता है। खेतों पर रास्ते नहीं होते, अतएव किसान को दूसरों के खेतों में होकर अपने टुकड़ों पर जाना पड़ता है, जिससे झगड़े होते हैं और मुक़दमेबाज़ी होती है।

(३) बिखरे हुए खेत होने के कारण किसान अपनी फ़सल की रखवाली नहीं कर सकता। यदि उसके सारे खेत एक स्थान पर ही हों तो वह सबकी रखवाली कर सकता है। यही नहीं, छोटे छोटे खेतों की बाड़ भी लगाना सम्भव नहीं होती और उसका परिणाम यह होता है कि पशु खेती को नष्ट कर डालते हैं।

(४) छोटे छोटे बिखरे हुए खेतों की मेड़ें बनाने में बहुत-सी भूमि नष्ट हो जाती है।

(५) छोटे छोटे और बिखरे हुए खेतों का एक दुष्परिणाम यह भी होता है कि किसान को अपने पड़ोसियों की पद्धति से ही खेती करनी पड़ती है। जो चीज़ पड़ोसी बोता है, वैसा ही उसे भी बोना पड़ता है, क्योंकि यदि पड़ोसी जल्दी तैयार होनेवाली चीज़ बोता है तो वह फ़सल पहले काट लेगा। इसका परिणाम यह होगा कि उसके खेत पर पशु चरने लगेंगे और देर से तैयार होनेवाली फ़सल को नष्ट करेंगे। यही नहीं, यदि पड़ोसी लापरवाह है तो उसके खेत में उत्पन्न होनेवाली घास अच्छे किसान के खेत में भी फैल जायगी।

(६) खेतों के बिखरे होने से किसान अपने खेत पर नहीं रह सकता, अतएव वह खेतों की अच्छी तरह देख-भाल नहीं कर सकता। संक्षेप में हम कह सकते हैं कि बिखरे हुए खेतों के कारण साधारण खेती तो दुर्दशा को प्राप्त ही है, वैज्ञानिक ढंग से तो खेती हो ही नहीं सकती।

खेतों के बिखरे होने का मुख्य कारण यह है कि हिन्दू और मुस्लिम दायभाग के क़ानून के अनुसार प्रत्येक पुत्र को अपने पिता की सम्पत्ति में बराबर बराबर हिस्सा मिलता है। इसका परिणाम यह होता है कि यदि किसी के पास चार चार एकड़ के पाँच खेत हैं और उसके चार लड़के हैं तो उसकी मृत्यु के उपरान्त वे पाँच खेत २० छोटे छोटे खेतों में बँट जायँगे। क्योंकि हर एक लड़का प्रत्येक खेत में से एक चौथाई भाग पावेगा। बात यह है कि हर एक

खेत एक-सा उपजाऊ नहीं होता इस कारण प्रत्येक भाई हर एक खेत का हिस्सा लेना चाहेगा। जैसे जैसे पश्चिमी सभ्यता का प्रभाव भारतवासियों पर पड़ता गया है वैसे ही वैसे यहाँ की सम्मिलित कुटुम्ब-प्रणाली नष्ट होती गई है। इस कारण पैत्रिक भूमि का बँटवारा अनिवार्य हो गया और किसानों के खेत छिन्न-भिन्न होते गये।

प्रत्येक विचारवान् व्यक्ति बिखरे हुए खेतों के दुष्परिणामों को समझता है, किन्तु इसको रोकने का समुचित उपाय कोई भी नहीं बता सका। यदि यह नियम बना दिया जाय कि पैत्रिक सम्पत्ति का स्वामी ज्येष्ठ पुत्र ही होगा तो यह कठिनाई उपस्थित होगी कि छोटे भाई क्या करेंगे। साथ ही हिन्दू अथवा मुसलमान अपने दायभाग के क़ानून में इस प्रकार का परिवर्तन कभी नहीं स्वीकार करेंगे। कुछ वर्ष हुए बम्बई-प्रान्त में सरकार ने इस सम्बन्ध में एक क़ानून (स्माल होल्डिंग्स एक्ट) बनाने का प्रयत्न किया था। उस प्रस्तावित क़ानून के अनुसार प्रत्येक ज़िले में एक निश्चित भूमि को 'आर्थिक जोत' निर्धारित कर दिया जाता और कोई भी व्यक्ति जिसकी भूमि उस आर्थिक जोत के बराबर हो उसकी रजिस्ट्री करा सकता था। रजिस्ट्री करा देने के उपरान्त भविष्य में उसका बँटवारा नहीं हो सकता था। किन्तु इस प्रस्तावित क़ानून का इतना विरोध हुआ कि सरकार को अपना प्रयत्न छोड़ना पड़ा। कुछ लोग यह प्रस्ताव करते हैं कि बड़ा भाई छोटे भाइयों के हिस्सों को खरीद ले। किन्तु इसमें भी दो कठिनाइयाँ हैं। (१) बड़े भाई के पास इतनी पूँजी कहाँ से आयेगी? दूसरे यदि यह मान भी लिया जाय कि वह ऋण लेकर छोटे भाइयों को उनके हिस्से का दाम दे देगा तो छोटे भाई करेंगे क्या? वास्तविक समस्या तो यह है कि जब तक देश में उद्योग-धंधे नहीं पनपते तब तक इस प्रकार का क़ानून भी नहीं बनाया जा सकता।

बिखरे हुए खेतों की समस्या को हल करने का एक अस्थायी उपाय ढूँढ़ निकाला गया है। बिखरे हुए खेतों की चकबन्दी करके प्रत्येक किसान को उसकी भूमि एक चक में देने का प्रयत्न किया जाता है। सर्व-प्रथम पंजाब में सहकारिता-विभाग ने सहकारी चकबन्दी-समितियाँ स्थापित करके भूमि की चकबन्दी करना आरम्भ किया था। पंजाब का अनुकरण करके संयुक्त-प्रान्त, सीमा-प्रान्त-काश्मीर तथा बड़ौदा-राज्य में भी सहकारिता-विभाग ने चकबन्दी-आन्दोलन का श्रीगणेश किया है। किन्तु जितनी अधिक सफलता पंजाब में मिली, उतनी अन्य प्रान्तों तथा देशी राज्यों में नहीं मिली।

सहकारिता-विभाग का कर्मचारी गाँवों में जाकर किसानों को बिखरे हुए खेतों से होनेवाली हानियाँ तथा चकबन्दी के लाभ समझाता है। यदि वह समझता है कि अधिकांश गाँववाले चकबन्दी के लिए तैयार हैं तो वह एक चकबन्दी-समिति स्थापित करता है और खेतों के मालिकों को उसका सदस्य बनाता है।

प्रत्येक सदस्य को यह सिद्धान्त मानना पड़ता है कि चकबन्दी करने के लिए बिखरे हुए खेतों का नया बँटवारा आवश्यक है। यदि किसी योजना को दो-तिहाई सदस्य स्वीकार कर लेंगे तो वह बँटवारा प्रत्येक सदस्य को स्वीकार करना होगा। नये बँटवारे के अनुसार वह अपने खेतों को सदा के लिए छोड़ देगा और नये खेतों को ले लेगा।

यद्यपि समिति के नियमों के अनुसार यदि दो-तिहाई सदस्य किसी योजना को स्वीकार कर लें तो वह हर एक को मान्य होगी, तथापि यह नियम काम में नहीं लाया जाता; और जब तक सब सदस्य अपने बिखरे हुए खेतों को देकर नये खेत लेना स्वीकार नहीं करते तब तक यह योजना सफल नहीं होती। कभी कभी एक-दो सदस्यों के हठ से महीनों का प्रयत्न व्यर्थ हो जाता है। समिति की पंचायत सहकारिता-विभाग के कर्मचारी की सहायता से एक नक़शा बनवाती है, जिसमें नया बँटवारा दिखलाया जाता है। जब सदस्य नक़शे को स्वीकार कर लेते हैं तभी वह लागू होता है, अन्यथा दूसरा नक़शा बनाया जाता है।

किन्तु इस प्रकार भूमि की चकबन्दी करने में कुछ कठिनाइयाँ उपस्थित होती हैं। नये बँटवारे के लिए प्रत्येक किसान को राज़ी करना होता है। हर एक किसान अपनी पैत्रिक भूमि को अच्छी समझता है, वृद्ध किसान कोई परिवर्तन नहीं चाहता। छोटे किसानों को चकबन्दी से अधिक लाभ नहीं दिखलाई देता, क्योंकि उनके पास एक या दो खेत ही होते हैं। मौरूसी किसान समझता है कि यदि उसने अपने खेत को बदल लिया तो उसके अधिकार नष्ट हो जायँगे। फिर गाँव का पटवारी भी चकबन्दी को नहीं चाहता, इसलिए वह गाँववालों को भड़काता है।

इस योजना में किसी की हानि नहीं होती, किसी को भी पहले से कम भूमि नहीं मिलती। किन्तु यह न भूल जाना चाहिए कि चकबन्दी-आन्दोलन से भविष्य में भूमि का लड़कों में बाँटा जाना नहीं रोका जा सकता। चकबन्दी-समितियों ने बिखरे हुए खेतों की संख्या घटा कर पहले से दशांश तक कर दी है। चकबन्दी के दो लाभ तो स्पष्ट देखने में आये हैं। जिन गाँवों में चकबन्दी हो चुकी है, वहाँ कुएँ अधिक संख्या में खोदे गये हैं और जो भूमि पहले जोती नहीं जाती थी उस पर अब खेती होने लगी है।

सहकारी-समितियों के द्वारा चकबन्दी करने में देर बहुत लगती है, अतएव कुछ विद्वानों का कहना है कि क़ानून बनाकर चकबन्दी करने से सफलता शीघ्र मिल सकती है। सर्व-प्रथम मध्य-प्रान्त में क़ानून बनाकर चकबन्दी की व्यवस्था की गई। क़ानून के द्वारा रेवेन्यू-विभाग को यह कार्य सौंप दिया गया है। यदि किसी गाँव की भूमि के स्वामी चकबन्दी करने की प्रार्थना करें तो रेवेन्यू-विभाग बँटवारे की एक योजना बनाता है। यदि उस योजना को दो-तिहाई भूमि के मालिक स्वीकार कर लें तो वह शेष भूमि के स्वामियों को माननी होती है। कुछ समय हुआ पंजाब में भी इस प्रकार का क़ानून बन गया है। संयुक्त-प्रान्त के कार्यकर्ता भी एक क़ानून की आवश्यकता का अनुभव करते हैं।

चकबन्दी-आन्दोलन लाभदायक है, इसमें तनिक भी संदेह नहीं। किन्तु भारतवर्ष जैसे विशाल देश में समस्त भूमि की चकबन्दी करना कितना कठिन कार्य है, यह भी किसी से छिपा नहीं है। फिर चकबन्दी-आन्दोलन से बिखरे हुए खेतों की समस्या स्थायी रूप से हल नहीं होती। भविष्य में खेत फिर बिखर सकते हैं। अतएव कतिपय विद्वानों की सम्मति में भारतवर्ष में सामूहिक खेती की प्रथा लाभदायक सिद्ध होगी। पिछले दिनों में रूस की सामूहिक खेती की आश्चर्यजनक सफलता ने लोगों का ध्यान इस ओर आकर्षित भी किया है।

सामूहिक खेती का अर्थ यह है कि किसान एक साथ मिलकर खेती करें। रूस में गाँव अथवा दो-तीन गाँव सामूहिक खेत में परिणत कर दिये जाते हैं। सदस्यों-द्वारा निर्वाचित प्रबन्ध-कारिणी समिति सामूहिक खेत का करती है। खेत पर कौन-सी फ़सल कितने क्षेत्रफल में उत्पन्न की जायगी, इसका निर्णय प्रबन्ध-समिति सरकार के औद्योगिक तथा कृषि-विभाग की राय से करती है। सरकारी फ़ैक्टरियाँ प्रत्येक सामूहिक खेत को कच्चे माल के लिए पहले से ही आर्डर दे देती हैं। प्रत्येक सदस्य को खेत पर काम करना पड़ता है। सदस्यों की टुकड़ियाँ बना दी जाती हैं, जो अपने नायक की अधीनता में निश्चित कार्य को करती हैं। सदस्यों को एक निश्चित दर से मजदूरी मिलती है। स्थान-स्थान पर कृषिविभाग ने यन्त्र-भांडार स्थापित कर रक्खे हैं, जिनसे ये सामूहिक खेत यंत्र किराये पर लेते हैं। इन भांडारों में कृषि-विशेषज्ञ भी रहते हैं, जो सामूहिक खेतों को कृषि सम्बन्ध में आवश्यक सलाह देते हैं। किन्तु इसके लिए खेतों को भांडार को विशेषज्ञ की फ़ीस देनी होती है। बीज, खाद, यंत्र, औज़ार तथा पशु सब सामूहिक खेत के होते हैं। सदस्यों को उनकी मजदूरी योग्यता के अनुसार दी जाती है। सरकारी टैक्स, भांडार की फ़ीस तथा सदस्यों को नक़द मजदूरी देने के लिए सामूहिक खेत औद्योगिक कच्चा माल उत्पन्न करते हैं और उसे सरकारी फ़ैक्टरियों को बेच देते हैं। कुछ भूमि पर वे गाँव के आवश्यकतानुसार अन्न इत्यादि उत्पन्न करते हैं, जो सदस्यों को बराबर बराबर बाँट दिया जाता है। रूस में ९० प्रतिशत खेत सामूहिक हैं और उनके द्वारा वहाँ की पैदावार बहुत बढ़ गई है।

यद्यपि रूस की तरह की सामूहिक खेती के बहुत से लाभ हैं, परन्तु वह यहाँ तभी सफल हो सकती है जब सरकार का पूर्ण सहयोग मिले, साथ ही कारखानों से भी खेतों का सीधा सम्बन्ध हो, जिससे फ़सल के बेचने में कठिनाई न हो। भारतवर्ष में छोटे रूप में इसका प्रयोग किया जा सकता है। होना यह चाहिए कि जिन-जिन किसानों के खेत पास पास हों वे मिलकर अपनी खेती करें। सब किसान उस खेत पर काम करें तथा अपनी पूँजी तथा अपने औज़ारों को इकट्ठा कर लें। प्रत्येक किसान को मेहनत तथा भूमि के अनुपात से पैदावार में हिस्सा मिलना चाहिए। इस प्रकार सामूहिक खेती से यह लाभ होगा कि बढ़िया औज़ार, अच्छे बीज तथा सिंचाई की सहूलियतें अनायास ही मिल जायँगी। खेत की साख अच्छी होने के कारण रुपया भी उचित सूद पर मिल जायगा। इस पद्धति से आर्थिक लाभ तो होगा ही, एक लाभ यह भी

होगा कि किसान संगठन-शक्ति को समझेंगे, वे अपनी फ़सल को उचित दामों पर बाज़ार में बेच सकेंगे और अपने बच्चों की शिक्षा का प्रबन्ध कर सकेंगे। उनका भविष्य आशाजनक हो जायगा। जिन छोटे-छोटे खेतों से आज कोई लाभ नहीं हो रहा है वे भी बड़े खेत का अंग होकर ज्यादा पैदावार देने लगेंगे।

यदि देश में सामूहिक खेती का प्रचार किया जा सके तो खेती में बहुत कुछ सुधार हो सकता है और खेतों के बिखरे होने से जो हानियाँ हैं वे दूर हो जायँगी। किन्तु इसके लिए किसानों में शिक्षा, विश्वास तथा संगठन की आवश्यकता होगी।

सामूहिक खेती के विरुद्ध एक आक्षेप किया जा सकता है। यदि देश में सामूहिक खेतों का संगठन किया जायगा तो कुछ किसान बेकार हो जायँगे। किन्तु यदि सामूहिक खेतों पर खेती के अतिरिक्त दूध, मक्खन, शहद, अंडा, गुड़, शक्कर, रेशम, फल तथा अन्य सहायक धंधों का संगठन किया जाय तो कुछ किसान इन धंधों में काम पा सकते हैं। सामूहिक ढंग से खेती करने से एक बड़ा लाभ यह होगा कि किसानों को जो व्यापारी, ज़मींदार, तथा रेवन्यू विभाग के कर्मचारी लूटते हैं उनकी लूट समाप्त हो जायगी, क्योंकि सामूहिक खेतों का प्रबन्ध सहकारी समितियों के द्वारा होगा।

किन्तु यह सब कुछ होते हुए भी खेती की पूर्ण उन्नति के लिए यह आवश्यक है कि देश में औद्योगिक उन्नति हो, जिससे आवश्यकता से अधिक किसान तथा भूमिरहित मज़दूर उद्योग-धंधों में काम पा सकें। देश में इस विषय पर काफ़ी चर्चा चल रही है कि गृह-उद्योगों की स्थापना की जाय अथवा बड़े-बड़े कारख़ाने स्थापित किये जायँ। वस्तुतः देश के आवश्यकतानुसार दोनों प्रकार के धंधों को प्रोत्साहन देना चाहिए। कुछ धंधे ऐसे हैं जो छोटी मात्रा में सफलतापूर्वक चलाये जा सकते हैं। हर्ष की बात है कि कांग्रेस-द्वारा बिठाई हुई औद्योगिक योजना-कमिटी इस सम्बन्ध में एक योजना उपस्थित करेगी। जब उद्योग-धंधों और खेती का संतुलन फिर से स्थापित हो जायगा तभी देश के ग़रीब किसानों की आर्थिक स्थिति सुधरेगी।

गीत

लेखक, श्रीयुत मनोरंजनसहाय श्रीवास्तव

स्वप्न मिटे, पर प्यास न मिटती!

अपने ही जग में मर-मर कर,
सीखा मैंने ज्ञान भुलाना;
किन्तु हाय! सीखा न आज,
उर का जलता अंगार बुझाना!
छोड़ी माया, छोड़ा सुख, पर एक शेष अभिलाष न मिटती!
स्वप्न मिटे, पर प्यास न मिटती!

जीवन के पहले प्रभात में,
आई थीं तुम किरणें बनकर;
मैं मलयानिल चूम चला, हो
मुग्ध तुम्हारी कोमलता पर!
संध्या आई, अस्त हुई तुम, पर मिलने की आस न मिटती!
स्वप्न मिटे, पर प्यास न मिटती

अब दिन बीत चले, आई है,
आज अमा की रजनी काली;
किन्तु सुरभि वह बची हुई है,
जो तुमसे थी आई आली!
टूट रहे हैं तार हृदय के, पर निर्दय यह साँस न मिटती!
स्वप्न मिटे, पर प्यास न मिटती!

तुम्हारी याद

लेखक, श्रीयुत कुञ्जविहारी चौबे

अब भी रह-रह आ जाती है, ओ मधुर! तुम्हारी याद मुझे!
क्यों आज विकल कर देता है कल का भला उन्माद मुझे?

थी रजत रात, बनकर मयङ्क,
तुम करते थे नभ में विलास।
छिटके थे आस-पास तारे,
वह अनुपम हर्षोल्लास-हास!
छवि देख तुम्हारे आनन की,
तुम पर थे मेरे नेत्र गड़े!
फिर मेरे हृदय-सरोवर में—
तुम चुपके-चुपके उतर पड़े!
तुम नभ में थे तुमको पाने की—
मन में व्याकुल आशा थी!

तुमको अपनाने की उर में,
कितनी अधीर अभिलाषा थी?
सौन्दर्य-सुधा का प्याला मैं—
जब तुमको आज पास पाया।
युग-युग की तृष्णा उमड़ पड़ी,
आँखों में अन्धकार छाया!
मेरे ये प्यासे अधर तुम्हारे—
मधुर अधर को छू न सके!
तुम हँसकर कहीं विलीन हुए,
मेरी न समझ में कुछ आया!

सहसा नभ से तारा टूटा, दे गया मूक संवाद मुझे।
फिर तिमिर घिरा, वह घड़ी आज भी है ज्यों की त्यों याद मुझे।

ऊपर देखा, तारे मुझको—
थे झाँक रहे झिलमिल-झिलमिल!
पर वहाँ तुम्हारा पता न था—
मैं दग्ध हो उठा दिलही दिल!!

अब ज्ञात हुआ, सच समझा था—
जिसको वह केवल सपना था!
बेगाना था जिसको धोखे से—
समझा मैंने अपना था!!

समझा था जिसको चन्द्र अरे—
वह उसकी उज्ज्वल छाया थी!
क्या वह मेरा मीठा भ्रम था—
या तेरी निष्ठुर माया थी!!

वह भ्रम सच-सा ही लगता है, इतने दिवसों के बाद मुझे!
वह सचमुच भ्रम ही था, तो क्यों आती है उसकी याद मुझे?

थी मधुरसुधा की प्यास, किन्तु विष से कटु मिला विषाद मुझे।
तिस पर भी क्यों आ जाती है ओ निठुर! तुम्हारी याद मुझे?

रिक्ता
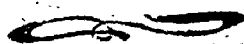
अनुवादक, पण्डित ठाकुरदत्त मिश्र

माता के यहाँ जाने से पहले सविता की इच्छा एक बार अरुण से मिलकर विदा माँगने की हुई, पर अरुण उसे घर में कहीं न मिला। अतः वह उसके कमरे में ऊपर गई। अरुण पुस्तक पढ़ रहा था। सविता यह देखकर दूर से ही लौट आई। पर अरुण अकस्मात् स्टेशन पर पहुँच गया। वहाँ उसने चलते समय सविता से कुछ बातचीत की। इससे सविता के मन को कुछ सन्तोष हुआ। सविता काशी आ गई। इसे तीन महीने बीत गये। पर अरुण ने एक भी पत्र न भेजा। यह देखकर सविता की मा को बड़ा आश्चर्य हुआ। एक दिन मा के साथ सविता अपने पड़ोस की एक बहू को देखने गई। बहू बीमार थी। उससे सविता की बातचीत हुई और दोनों में परिचय के साथ ही स्नेह-संबंध स्थापित हो गया।

(२५)

साँझ के समय प्रभात का एक तार आया। उसने सूचित किया था कि वह पुलक को लेकर रवाना हो चुका है, प्रातःकाल की गाड़ी से पहुँच जायगा। तार मिलने पर जगत् बाबू कुछ क्षण तक गम्भीर भाव से बैठे रहे, बाद को उन्होंने कहा—गोपी, अरुण को ज़रा बुला तो दो।

अरुण के आने पर जगत् बाबू ने कहा—क्या प्रभात की चिट्ठी का जवाब दिया नहीं गया?

"नहीं, आपने तो रोक दिया था न।"

"रोक दिया था? नहीं, बड़ी बहू यहाँ नहीं हैं, यह लिख देने को मैंने कहा था।"

"पहले-पहल तो आपने रोका ही था, इसलिए मैंने उत्तर नहीं दिया।"

"तुमने अच्छा काम नहीं किया है। उत्तर दे दिया होता तो सारा झञ्झट ही दूर हो जाता। अब प्रभात पुलक को लिये आ रहा है। अब क्या किया जायगा? एक तो वह बीमार लड़का ठहरा!"

छोटी बहू तो घर में हैं ही। वह किसी न किसी प्रकार पुलक को सँभाल लेगी। इसके सिवा अब पुलक बड़ा भी हो चला है।

"छोटी बहू!" जगत् बाबू ने ज़रा-सा हँस दिया। उन्होंने कहा—वह पुलक को बिलकुल ही न सँभाल पायेगी। इसके सिवा अब वह बड़ा हो गया है, विशेष रूप से इसी लिए और सावधान रहने की आवश्यकता है।

अरुण के जी में एक बार आया, कह दे कि काशी से वह बुला भी तो जा सकती है। परन्तु पिता के सामने वह इस सम्बन्ध में मुँह तक खोलने का साहस कर ही नहीं सका। इससे वह चुप ही रह गया। जगत् बाबू भी मन ही मन कुछ सोचने लगे। उन्होंने कहा—तो क्या अन्त में पुलक के लिए बहू को आना ही पड़ेगा? यह भी एक झंझट ही रहा। अच्छी बात है। तब तक के लिए क्या तुम पुलक का भार ले सकते हो? इसी बात की देख-रेख करनी है कि कहीं नौकर लोग असंयम न कर दें।

अरुण ने कहा—मैं तो कुछ समझता नहीं हूँ, देखूँ, सँभाल पाता हूँ या नहीं।

"तुम्हारे सँभाले यदि वह सँभल न सके तो तुम्हीं जाकर उसकी आजी के पास छोड़ आना। जो कुछ व्यवस्था करनी हो, तुम्हीं करो। इस झमेले में मुझे मत घसीटना। घर-गृहस्थी के ये सारे झमेले मेरे सँभाले नहीं सँभलते। यह सब करने का मेरा कभी का अभ्यास तो है नहीं।

जगत् बाबू ने वास्तव में सदा बाहर के काम-काज में ही अपना समय व्यतीत किया था। अन्तःपुर से वे केवल इतना ही सम्पर्क रखते थे कि दोनों समय जाकर भोजन कर आते थे। गृहिणी की मृत्यु के बाद भी उनका यह नियम चलता रहा। किन्तु सविता को भेज देने के बाद से अवश्य झमेला बढ़ गया था।

अरुण चुप ही था। पिता की सहायता करने में उसे सचमुच कोई आपत्ति नहीं थी; किन्तु माता ने इतने लाड-चाव से अपने दोनों लड़कों का पालन किया था कि घर-

गृहस्थी के किसी भी काम की जानकारी उन्हें बिलकुल ही नहीं हो पाई।

रात का समय था। ज़मींदारी के सम्बन्ध का काम-काज सँभालनेवाला मुख्तार आम मालिक से बड़े ज़ोर की डाँट खा आया था। उसने अरुण से कहा—बड़े बाबू, आज सरकार का मिज़ाज बहुत गरम है। इस तरह की झक-झक तो वे और कभी नहीं करते थे। काग़ज़-पत्र आदि सब फेंक कर कमरे में बिखेर दिया है।

अरुण उस समय खिदमतगारों के दो आदमियों के साथ ताश खेल रहा था। उसने कहा—इतना चिढ़ गये थे? कारण क्या है इसका?

"कोई वैसी बात तो नहीं मालूम पड़ती। एकाएक ही सरकार मुझसे चिढ़ गये।"

"काम-काज के समय शायद तुम तनख्वाह बढ़ाने के सम्बन्ध में झाँव झाँव करने लग पड़े थे। जानते तो हो तुम उन्हें। एक बात बार बार कहने से उनसे कोई लाभ नहीं होता। समय आने पर वे स्वयं ही—"

"नहीं हुज़ूर, यह बात क्या मुझे मालूम नहीं है? तनख्वाह आदि के सम्बन्ध में मैंने कुछ नहीं कहा।"

"तो क्या वे अकारण ही चिढ़ गये? यों ही बे मतलब?"

"हाँ, यों ही। काग़ज़-पत्र हाथ में लिये हुए मैं जैसे ही उनके समीप पहुँचा, वे देखते ही चिढ़ उठे। मेरी तो ज़बान तक न खुल सकी। मैंने सोचा कि शायद किसी कारण से क्रोध हो आया है उन्हें आपके ऊपर, उतारा उसे उन्होंने मेरे सिर।"

"वाह! मैंने क्या किया है?"

"हुज़ूर, हम सब यह क्या समझ सकेंगे? परन्तु पहले-पहल मेरे मन में बात यही आई थी। उन्हें तो अधिक क्रोध आदि आना अच्छा भी नहीं है। देखिएगा, कहीं तबीयत न उनकी ख़राब हो जाय।

"यह बात तो है। मुझे तो ऐसा जान पड़ता है कि उनका स्वभाव क्रोधी है, इसी लिए उन्हें हृदय का रोग हो गया है। अच्छा, गोपी कहाँ है? जानते हो तुम?"

अरुण की यह बात समाप्त भी न हो पाई थी कि गोपी आकर पहुँच गया और अरुण से बोला—बड़े बाबू, आपको सरकार बुला रहे हैं। उस समय अरुण को ताश खेलने का होश नहीं था। उसने कहा—सुनो, सुनो, गोपी, बाबू जी नाराज़ क्यों हैं रे?

गोपी बहुत पुराना नौकर था। अरुण के इस प्रश्न से ज़रा-सा झुँझलाकर उसने कहा—इस तरह की चिन्ताओं की ज्वाला से रह रहकर वे गरम हो उठा करते हैं। बहू रानी थीं, वे फिर भी ज़रा-सा माया-ममता के साथ उन्हें देखती-सुनती थीं। अब वे भी नहीं हैं।

अरुण ने कहा—हम सभी लोग तो हैं। कोई भी काम हो, हम सब कर दे सकते हैं। ज़रा-सा कहने भर की देरी होगी।

गोपी ने कहा—तो जाइए न बाबू जी, काशी से बहू जी को बुला न ले आइए। अब पुलक आ रहा है, अब तो बहू जी का आना आवश्यक ही हो गया है।

अरुण के दोनों साथी हाथ में ताश लिये हुए बैठे थे। उन दोनों ने खूब हँसकर कहा—वाह, बहुत अच्छी बात तो कह रहे हो गोपी! बहुत अच्छी बात कह रहे हो।

अरुण के सिकुड़े हुए माथे पर पसीने की बूँदें दिखाई पड़ने लगीं। परन्तु फिर भी ज़ोर देकर हँसने का प्रयत्न करते हुए उसने कहा—कैसे बुला ले आऊँ? ऐसा करने के लिए भी तो आज्ञा नहीं मिल रही है।

गोपी ने अरुण को गोद में खिला खिलाकर बड़ा किया था। उसके बड़ी से कड़ी बात भी कह डालने पर कोई उससे बुरा नहीं मानता था। उस एक ही घर में नौकरी करते करते उसने बाल पका दिये थे। वह एक विश्वासी और सीधा नौकर था। अरुण की बात का उसने कोई उत्तर नहीं दिया; दाँतों-तले ओंठ दबाये हुए वह चला गया। साथ ही साथ अरुण भी उठा। उसने कहा—ज़रा देख आऊँ, बाबू जी अब क्या कहते हैं। उनके क्रोध से जितना मैं डरता हूँ, उतना ही सब लोग उसे मेरे ही मत्थे मढ़ा करते हैं। पटला सचमुच भाग्यवान् आदमी है!

जगत् बाबू आरामकुर्सी पर लेटे हुए कुछ सोच रहे थे। क्रोध के बाद मनुष्य की आकृति पर जो क्लान्ति और कातरता का भाव उदित होता है वह उनके मुख-मण्डल पर भी वैसे का वैसा ही दिखाई पड़ रहा था। अरुण की ओर दृष्टि फेर कर उन्होंने कहा—तुम्हें इस समय कोई काम तो नहीं है?

"जी नहीं।"

"तो जाओ, मुख्तार आम के पास जितने ज़रूरी काग़ज़ हों, उन्हें लेकर देख लो। उन्हें शायद इसी समय देख लेना आवश्यक है।"

अरुण ने कहा—तो क्या आज रात को ही वे काग़ज़ मुख्तार आम को लौटाल देने होंगे?

"हाँ, रात में ही देखकर लौटाल दो।"

"अच्छी बात है!" यह कहकर अरुण ज़रा-सा रुक गया।

उस समय वह यह पूछना चाहता था कि आपकी तबीअत ठीक है या नहीं। परन्तु इस भय से कि कहीं वे फिर न रुष्ट हो जायँ, वह कुछ बोला नहीं। जगत् बाबू ने स्वयं भी कुछ नहीं कहा। परन्तु उनके चिन्ता से सूख गये मुख ने अरुण के मन को भी न जाने कैसे ख़राब कर दिया।

मुख़्तार आम ने आकर अपना बही-खाता तथा काग़ज़-पत्र सब अरुण के सामने बढ़ा दिया। वह सब देखते देखते अरुण को रात को आठ नौ बजे तक अवकाश मिल सका।

अपराध मुख़्तार आम का ही था। कारण वे सब काग़ज़-पत्र बहुत ही आवश्यक थे और उसे चाहिए था कि वह उन्हें दिन में ही पेश कर देता। परन्तु उसकी बुद्धि में यह बात आई नहीं, इसलिए उन्हें लेकर वह रात में पहुँचा। जो भी हो, इन काग़ज़ों को देखकर अरुण ने शान्ति की साँस ली। उसने कहा—मैं कभी जमींदारी का काम सँभाल सकूँगा, यह बात मेरी कल्पना से भी परे थी। अब देखता हूँ कि मैं ये सभी काम कर सकता हूँ।

काग़ज़ों को समेटते समेटते मुख़्तार आम ने कहा—इतनी इतनी परीक्षायें पास कर आये बाबू जी। ये ही काम आपकी समझ में न आ सकेंगे?

अरुण हँसा। उसने कहा—बाबू जी का शरीर यदि इतना ख़राब न होता तो मैं इस काम में हाथ ही न लगाता।

रात्रि में अरुण जब बिस्तरे पर पहुँचा तब कैसी एक व्यर्थ की वेदना से हृदय उसका परिपूर्ण हो उठा। दुःख और चिन्ता में ग़ोते लगाते रहना अरुण को ज़रा भी पसन्द नहीं था। तो भी तो कैसा एक क्षोभ उसके यौवन से स्फीत हृदय में क्लान्ति का भाव उत्पन्न किये दे रहा था।

अरुण शय्या पर पड़े पड़े सोच रहा था—पिता जी का हृदय चिन्ता के भार से दबा हुआ है। परिवार में किसी का भी मन हलका नहीं है, किसी का चित्त प्रसन्न नहीं है। अत्यन्त ही आवश्यक न होने पर कोई ज़बान तक हिलाने की इच्छा नहीं करता। यह सब शायद मेरी ही भूल के कारण हो रहा है.. ...किन्तु यह क्यों?

अरुण का मन फिर उग्र विद्रोह की आँच में तपकर गरम हो उठा। उसने सोचा—क्यों? मैंने क्या किया है? एक तो मैं घर भर में किसी से किसी प्रकार की आकांक्षा नहीं करता हूँ! दूसरे मुझे सुख ही किस बात का है? या सुख प्राप्त करने का इच्छा ही मैंने कब की है? देखो न, इतने दिनों से मैं इसी घर के एक मनहूस कोने में चुपचाप पड़ा हूँ। किसी प्रकार का सुख नहीं है, आनन्द नहीं है! इतने पर भी मेरे कारण यदि कोई असुविधा का अनुभव करता है तो मैं क्या करूँ? मनुष्य और कितना सहन कर सकता है? एकाएक स्मरण आया—किन्तु वह? इतने दिनों के बाद ही शायद अरुण ने सविता की सहनशक्ति की मन ही मन प्रशंसा की।

प्रातःकाल की गाड़ी से पुलक के आने की ख़बर थी। किन्तु स्टेशन जाने का समय हो जाने पर भी अरुण की निद्रा भंग नहीं हुई। गोपी ने जाकर जगाया। उठते ही अरुण ने घड़ी पर दृष्टि डाली। तब गोपी ने कहा—सरकार स्टेशन जाने को कह रहे हैं।

अरुण ने क्रोध में आकर कहा—यदि और ज़रा देर के बाद जगाये होते तो क्या न ठीक होता! गाड़ी तो आ गई!

उतावली के साथ हाथ-मुँह धोकर अरुण स्टेशन चला!

पुलक घर आ गया। पहले-पहल वह नाना के पास पहुँचा। पहुँचते ही उसने कहा—क्यों? बहू कहाँ गई? मेरी बहू?

गोपी की ओर ताककर जगत्बाबू ने कहा—इसे भीतर ले जाओ।

पुलक बार बार कहने लगा—वाह रे! बहू नहीं है!

अरुण ने कहा—जाओ, छोटी बहू है।

मुँह फुलाकर पुलक ने कहा—होंगी छोटी बहू! बहू कहाँ गई, बतलाओ तो।

"वे घूमने गई हैं, अपनी मा के पास।"

"मा के पास गई हैं? आवेंगी नहीं?"

"आवेंगी क्यों नहीं?"

पुलक ने कहा—मैं भी वहीं जाऊँगा।

"वहाँ न जाना चाहिए।"

"जाना चाहिए। मैं बहू के पास जाऊँगा।"

अब पुलक ने बाक़ायदा चिल्ला-चिल्लाकर रोना आरम्भ किया। बच्चों का रोना अरुण को बिलकुल ही सह्य नहीं था। इससे स्वभावतः उसने पुलक को उसके पिता के पास भेज दिया और स्वयं वह कहीं खिसक गया।

पुलक का रोना सुनकर प्रभात ने कहा—यहाँ पहुँचकर भी तुम चीं चीं क्यों लगाये हुए हो?

ज़रा-सा हँसकर अरुण ने कहा—बहू जो इसकी खो गई है।

(२६)

सवेरे का समय था। आठ बज रहे थे। सविता की मा स्नान करके पूजा करने के लिए बैठी थी। पंडित जी उस समय भी गंगा जी से लौटकर नहीं आये थे। उन्हें लौटने में बहुत विलम्ब हुआ करता था। स्नान करने के बाद बहुत दूर-दूर तक घूमकर देवदर्शन करने के बाद वे लौटकर स्थान पर आया करते थे। इसमें लौटने में अधिक समय लग ही जाया करता था।

सविता उस समय और और कार्य समाप्त करके रसोई का प्रबन्ध कर रही थी। पूजा पर बैठने से पहले माता ने उसे विशेष रूप से सावधान कर दिया था कि तुम रसोई मत चढ़ाना। उन्हें इस बात का भय होता कि कार्य के भार के कारण लड़की के शरीर को कहीं हानि न पहुँचे, क्योंकि अब वह पराई वस्तु थी।

नौकरानी जनकिया बाज़ार करके लौट आई। उसने कहा—आज भोला बाबू के लड़के आये हैं—वही जो हाकिम हैं।

सविता ने कहा—ऐं! ठीक ठीक जानती है?

"मैं अपनी आँख से देखे आ रही हूँ। इसके सिवा उनके यहाँ की नौकरानी भी कह रही थी।"

"तब तो वे अब ज्योति को ले जायँगे!"

"ले तो जायँगे ही। सम्भव है कि शीघ्र ही किसी दिन आकर दामाद बाबू अब तुम्हें भी ले जायँ।"

सविता के नेत्रों में अभी तक किसी प्रकार का भी संकोच का भाव नहीं था। वह स्वाभाविक भाव से ही ताक रही थी। परन्तु माता के कमरे की ओर फिरते ही उसकी दृष्टि संकोच से झुक गई। वह जानती थी कि यह बात कितनी असम्भव है। जो एक घर में वास करते हुए भी अपनी इच्छा से मेरी कभी खोज-ख़बर नहीं लेते थे वे भला मेरे लिए यहाँ दौड़े आवेंगे!

मस्तक नीचा करके वह माता के लिए खीर बनाने बैठी। उसे आशंका हो रही थी कि कहीं मा भी इसी तरह की कोई बात न छेड़ बैठें। जनकिया कहने लगी—शायद ज्योति के जाने का समाचार पाकर बिटिया रानी दुखी हो रही है।

बात-चीत का प्रसंग बदल जाने के कारण सविता ने हँसकर कहा—तू ठीक कह रही है जनकिया, अब तूने पते की बात कही है!

जनकिया ने कहा—हमारे देश की तो सभी लड़कियाँ ससुराल जाते समय इस तरह चिल्ला-चिल्लाकर रोती हैं कि देखने के लिए पास-पड़ोस के लोगों की एक अच्छी भीड़ हो जाती है।

सविता ने हँसकर कहा—मैं तो नहीं रोती।

अब तक सविता की माता की पूजा समाप्त हो चुकी थी। आसन से उठकर वे खड़ी हो गई और कहने लगीं—क्या बातें हो रही हैं तुम दोनों में?

सविता ने कहा—अच्छा मा, मैं तो ससुराल जाते समय नहीं रोती हूँ न?

मा ने इस बात का उत्तर नहीं दिया। पता नहीं, क्या सोचकर मुख मलिन किये हुए वे वहाँ से हट गईं।

दिन भर में जो कुछ कार्य करने हैं उन्हें समाप्त करने के बाद अवकाश का जो समय मिलेगा वह किस प्रकार व्यतीत किया जाय, सविता यही सोच रही थी। इतने में एक नौकरानी ज्योति की एक छोटी-सी चिट लेकर पहुँच गई। ज्योति ने लिखा था—

"दीदी रानी, आज के दिन तो ज़रा-सा दर्शन दे जाओ भाई! मैं आज ही पिछली रात में यहाँ से चली जाऊँगी। मैं स्वयं यदि आ पाती तो आकर ही मुलाक़ात कर जाती!"

सविता की मा उस समय एक चटाई पर लेटी हुई कोई पुस्तक पढ़ रही थीं। सविता ने उनके पास जाकर कहा—मा, ज्योति आज चली जा रही है। ज़रा देर के लिए चलोगी उनके यहाँ?

मा के हाथ में जो पुस्तक थी उसे मोड़कर उन्होंने कहा—आज ही चली जा रही है? अभी तो वह बहुत ही निर्बल है!

"लिखा तो उसने यही है कि आज पिछले पहर की रात में जाऊँगी।"

"तो चलो, उससे मिल आऊँ।"

बरामदे में एक कुर्सी पर ज्योति अपनी सास के पास बैठी हुई थी। उसकी सास एक छोटी-सी पथरी में अनार का रस तैयार कर रही थी। सविता ने जाकर कहा—क्यों जी आज ही तैयारी कर दी? जा सकोगी तुम?

मस्तक नीचा किये हुए ज्योति ने लज्जित मुख से हँस दिया। उसकी सास ने कहा—लड़के की सनक तो है बिटिया, नहीं तो शरीर की इस प्रकार की अवस्था में कोई स्थान छोड़ता है?

"कहाँ जाना होगा?"

"पुरी। माता-पिता इनके वहाँ गये हैं। उन्होंने इन्हें भी भेज देने को लिखा है, इसी लिए—"

सविता ने हँसकर कहा—पुरी। तब तो यह खुश हो जाने की बात है।

अनार का जो रस तैयार हुआ था उसे पीकर ज्योति ने कहा—किन्तु इसी लिए इस तरह की उतावली के साथ आज ही मैं नहीं चली जाना चाहती।

"तो रहो न दो दिन और!"

"कैसे रहूँ? छुट्टी जो उनकी बीत जायगी।"

सविता ने कहा—यदि कुशलतापूर्वक पहुँच सकीं तो वहाँ तुम्हारा शरीर बिलकुल आरोग्य हो उठेगा।

"यह बात तो है। आरोग्य तो हो जाऊँगी मैं वहाँ।"

दो-चार बातें और हुई। अन्त में ज्योति ने सविता से पूछा—तुम कभी कभी मुझे याद तो कर लिया करोगी न?

सविता मुस्करा उठी। उसने कहा—जिस समय मैंने तुम्हें देखा नहीं था, हमारी तुम्हारी जान-पहचान नहीं हुई थी, उस समय भी मैं तुम्हें जानती थी, चौबीसों घंटे तुम्हे याद किया करती थी। और अब तो—"

"उस समय भी मुझे जानती थी? कैसे जान पाई हो भाई?"

सविता ने बात सँभाल ली। उसने कहा—मन ही मन। कनक आदि से तुम्हारे सम्बन्ध में मैंने कुछ-कुछ सुना भी था।

"तो अब तुम मुझे अधिक अधिक स्मरण किया करना।"

"कह नहीं सकती। मन की कैसी इच्छा—"

"हुस! अब ऐसा कहोगी?"

सविता की मा ने कहा—चलो सविता, अब साँझ हो चली है।

ज्योति के बच्चे को बहुत प्यार से चुमकारने के बाद सविता ज्योति की ओर मुँह फेरकर खड़ी हुई। उसने कहा—तो अब चलती हूँ ज्योति। कल इस समय तक तुम कितनी दूर पहुँच जाओगी?

ज्योति मस्तक नीचा करके खड़ी हो गई।

× × ×

लौटकर सविता माता के साथ-साथ घर आई। मन ही मन उसने अपने आसन पर ज्योति को बैठाला। तब कल्पना में वह देखने लगी—इस आसन पर यह कितनी अच्छी मालूम पड़ रही है! सविता सोचने लगी—यह आसन यदि ज्योति को मिल गया होता तो पतिदेव सुखी होते, परिवार भी सुखी होता। परन्तु अब तो इसके लिए कोई उपाय ही नहीं रह गया है। मैं यदि मर भी जाऊँ तो भी तो पतिदेव की यह आकांक्षा पूर्ण न हो सकेगी। मैंने कैसे अशुभ मुहूर्त्त में जन्म ग्रहण किया है!

सविता की मा उस दिन सवेरे से ही उद्विग्न होकर न जाने क्या सोच रही थी। रात्रि में सविता को बड़ी देर तक निद्रा नहीं आ सकी। अन्त में ज़रा-सा आँखें लिपट ही रही थीं कि एकाएक चौंक कर वह जाग पड़ी, सुना टन टन करके तीन बज रहे हैं। झट उसे स्मरण हो आया कि तीन ही बजे ज्योति आदि की यात्रा का समय है। करवट बदलकर उसने देखा कि मा भी जाग रही हैं। हाथ में वे जो नन्हा-सा पंखा लिये हुए थीं वह डोल रहा था। सविता ने कहा—तुम जाग रही हो मा?

मा ने धीमे स्वर से उत्तर दिया—हाँ।

सविता ने समझ लिया कि आज मा का चित्त प्रसन्न नहीं है। क्षणभर के बाद मा ने पुकारा—सविता!

"क्या है मा?"

"क्यों री, तू कहीं उन लोगों से लड़-झगड़ करके तो नहीं आई है?"

सविता ज़रा कुछ चकित हुई। उसने कहा—नहीं तो मा!

"तो इतने दिन बीत गये, अरुण ने तुझे एक चिट्ठी तक क्यों नहीं लिखी? बात क्या है जो वे लोग इस तरह चुप होकर बैठे हैं? इसका मतलब?"

"यह मैं किस तरह जान पाऊँगी?"

"हूँ! पिता जी कह रहे थे कि सविता के बिना उन लोगों का घर का काम-काज एक क्षण भी नहीं निभ पाता। परन्तु कहीं तो नहीं, इसका तो मुझे कोई भी लक्षण नहीं दिखाई पड़ रहा है!"

सविता ने समझ लिया कि मा को भुलावे में डाल रखना अब आसान काम नहीं है। स्वामी का जो उपेक्षा का व्यवहार मेरे प्रति है उसके सम्बन्ध में अब इन्हें सन्देह हो गया है। परन्तु इस दुर्भाग्य के कारण सविता के हृदय पर जो आघात लगा था, हृदय कड़ा करके उसे उसने सँभाल लिया और कहने लगी—बहुत दिनों के बाद आ पाई हूँ, शायद इसी लिए बाबू जी ने ज़रा-सी चुप्पी साध ली है। लौटकर जाने पर फिर शीघ्र आना भी तो न हो सकेगा!

"तो इसी लिए कोई एक चिट्ठी तक नहीं लिखता! यह भी कहाँ का तरीक़ा है भैया, मेरी समझ में कुछ तो आता नहीं! और अरुण? उसने आज तक ज़रा-सा हाल क्यों नहीं लिया?

सविता की पीठ पर मानो किसी ने सट सट करके कटीले चाबुक से कई बार मारा। उसका मुख-मण्डल आभाहीन हो गया। वह चुप रह गई।

बाद को दुःखी भाव से मा ने कहा—हम लोग गरीब हैं, इसी लिए न अरुण हमारी इस तरह अवज्ञा और उपेक्षा किया करता है!

सविता के मुख से और आँखों से मानो आग की लपटें निकल रही थीं। गरम गरम उसासों से ओष्ठ और अधर जल रहे थे। मा जितने दोष उसके पति पर लाद रही थीं, उनमें दोषी वे नहीं हैं, इस बात का सविता को विश्वास था।

घोर वर्षा के समय किसी किसी दिन जिस प्रकार सारे आकाश पर छाये हुए काले काले बादलों के स्तूप को ठेलकर अन्धकार के वक्ष के रूप में दगदगाता हुआ एक चन्द्रमा उदित होकर प्रकृति के मुरझाये हुए मुख को प्रसन्नता से विकसित कर देता है, उसी प्रकार सविता के मन के दर्पण में स्वामी की अमृतमय स्निग्ध कान्ति उदित हो आई।

सविता की मा फिर कर्कश स्वर से बोली—चुप क्यों है री सविता? मुझे भी तू नहीं बतला सकती कि असल बात क्या है?

सविता स्थिर भाव से उठकर बैठ गई। उसने कहा—तुम जो कुछ जानना चाहती हो मा, वह बात मुझसे पूछो, मैं बतलाती हूँ। मैं समझ ही नहीं पाती कि तुम्हारा क्या आशय है?

अब सविता ने मा को ज़रा-सा झंझट में डाल दिया। वे ज़रा-सा इधर-उधर करने लगीं। अपनी सन्तान के सामने इस प्रश्न को स्पष्ट करके किस प्रकार उपस्थित करें, यह वे नहीं ठीक कर पाती थीं। कुछ क्षण के बाद उन्होंने कहा—वहाँ सब लोग तुझे चाहते हैं?

"यह कैसे बतला सकती हूँ माँ।"

"श्वसुर स्नेह करते हैं या नहीं, यह बात क्या तू नहीं समझ पाती? सास तो तेरी सुना है कि तुझे फूटी आँखों भी नहीं देख सकती थीं!

"बाबू जी मुझसे स्नेह करते हैं। सास भी अब स्वर्ग में हैं। परन्तु वे मुझसे बिलकुल ही स्नेह नहीं करती थीं, ऐसी बात नहीं थी।"

"परन्तु सुनने में तो आया है कि माता-पुत्र ने मिलकर बड़ा उपद्रव खड़ा कर रक्खा था। वे कहते थे कि बहू पसन्द ही नहीं है!"

"वह विवाह के समय की बात है। वह सब मुझे स्मरण नहीं है। परन्तु तुम ये सब बातें क्यों पूछ रही हो मा?"

"यों ही! मन में न जाने कैसी एक आशंका उत्पन्न हो रही थी इसी लिए।"

सविता ने आँखें मूँद लीं। करवट बदलकर वह लेट रही। सबेरा होने में अब अधिक विलम्ब नहीं था। रात्रि की घनी अन्धकार-राशि क्रमशः धुँधली होने लगी थी। उठने की इच्छा करते ही करते सविता सो गई।

सोने से पहले सविता के मस्तिष्क में स्टेशन का ही चित्र अंकित था। उस समय उसके मन में यह बात आई थी कि ज्योति आदि स्टेशन पहुँच गये होंगे। इसी लिए स्टेशन के सम्बन्ध की बातें उसके चित्त पर चढ़ी थीं। यात्रियों की भीड़-भाड़, उनकी दौड़-धूप, धक्कम-धक्का, कुलियों का शोर-गुल आदि पर विचार करते करते वह सो गई। इससे सुप्तावस्था में भी वह स्टेशन का ही स्वप्न देखती रही।

वही स्टेशन है! जिस स्टेशन पर अपने स्वभाव के प्रतिकूल आचरण करके अरुण आया। उसकी वह कौन-सी ऐसी बात थी जिसे मुँह से निकालते निकालते भी नहीं निकाल पाया। अपने दोनों सबल हाथों से मानो वह उसी प्रकार सविता का हाथ दबाये हुए है और कह रहा है—अच्छा सुनो, अब मैं कहता हूँ।

कौन-सी बात थी वह?

(२७)

रात का समय था। ग्यारह बज चुके थे। सुमेन्दु का कालेज बन्द था, इस कारण उस दिन वह घर आया था। परन्तु ज्वर हो आने के कारण उसने सन्ध्या होते ही शय्या ग्रहण कर ली थी।

पुलक को छोड़कर प्रभात अपने घर चला गया था। जब तक वह किसी नौकर या नौकरानी के पास रहता तब तक तो किसी प्रकार शान्त रहता, बाद को अपने नाना तथा अरुण को परेशान करके ही छोड़ता।

लगातार बहुत दिनों तक रुग्ण रहने के कारण पुलक के शरीर की अवस्था बहुत ही चिन्ताजनक हो गई थी। इसके सिवा वह रात-दिन एक न एक उपद्रव खड़ा ही किये रहता। बात बात के लिए वह मचल पड़ता और चिल्ला-चिल्लाकर घर भर की तबीअत ठिकाने ला देता। इस कारण जगत बाबू बहुत उद्विग्न हो उठा करते, परन्तु फिर भी वे बहुधा चुप ही रह जाया करते।

अरुण को बच्चों का पालन-पोषण करने का अभ्यास नहीं था। इससे उसमें इतना धैर्य्य नहीं था कि वह पुलक के सब प्रकार के उपद्रव शान्तिपूर्वक सहन कर लेता। परिणाम यह होता कि क्रोध में आकर वह प्रायः दो-एक चपत उसे जमा देता।

कभी कभी पुलक जब किसी चीज के लिए मचल पड़ता तब उसे लिये बिना वह किसी प्रकार भी शान्त न होता, स्वास्थ्य के लिए वह चीज़ चाहे कितनी ही हानिकर क्यों न होती। अपना पिण्ड छुड़ाने के लिए पथ्यापथ्य का विचार छोड़कर लोगों को प्रायः उसकी इच्छित वस्तु देनी ही पड़ती। इधर बराबर कुपथ्य होते रहने के कारण पुलक के स्वास्थ्य में महीने भर में भी सुधार का कोई लक्षण न दिखाई पड़ा। घर में जितने आदमी थे, उन सभी की नाक में दम आगया।

रात्रि में पुलक आशा के पास किसी प्रकार भी न रहता। सविता के कमरे में वह अपनी आया के पास सोया करता। रात को ग्यारह बजे उसकी आया तारा सो रही थी। उसी समय पुलक चुपके से उठ खड़ा हुआ और एक साँस में दौड़ता हुआ वह जगत बाबू के कमरे की ओर चला।

दालान में उस समय अन्धकार था। साथ ही पुलक का शरीर भी बहुत ही निर्बल था। इससे वह सँभलकर चल न सका, ठोकर खाकर वह मुँह के बल गिर पड़ा।

अरुण उस समय सो गया था। उसके पिता को कभी गम्भीर निद्रा तो आती नहीं थी, इससे वे जाग पड़े। स्वयं जाकर उन्होंने पुलक को गोद में ले लिया। उस समय उसका शरीर इतना शिथिल हो गया था कि उससे रोया तक नहीं जाता था।

जगत बाबू पुलक को उठाकर अपने कमरे में ले गये। उन्होंने उसे खाट पर लिटा दिया और लालटेन की बत्ती बढ़ाकर वे देखने लगे। मुख से लेकर छाती तक रक्त बह रहा था। सामने के दोनों नरम नरम दाँत टूट गये थे। शरीर पर उसके एक कुर्ता तक नहीं था।

जगत बाबू खीझ उठे। मन ही मन उन्होंने कहा—दुर्भाग्य है मेरा भी। नहीं तो इतनी असाध्य साधना करके भी बेचारी बहू को पद पद पर दुःख ही क्यों सहन करना पड़ता? उसने स्वयं अपने ऊपर कितना भार रख छोड़ा था, यह बात आज मैं भलीभाँति अनुभव कर रहा हूँ। आज घर में उसे छोड़कर सभी तो हैं?

पुलक को गोद में लिये हुए जगत बाबू अरुण के कमरे के पास गये। कमरे का द्वार बन्द था। इससे वे धक्का देने लगे। अरुण की निद्रा भंग हो गई। पिता के जूतों की आहट पाते ही उसने उतावली के साथ द्वार खोल दिया।

अरुण के बिस्तरे पर पुलक को लिटाकर जगत बाबू ने कहा—इसे अपने पास रक्खो। हृद्-रोग के वे रोगी थे। अकस्मात् निद्रा भंग हो जाने के कारण उन्हें बड़ी यन्त्रणा हुई और साँस ज़ोर ज़ोर से चलने लगी। हाँफते-हाँफते उन्होंने कहा—देखो, यदि किसी प्रकार रक्त बहना बन्द हो सके।

अब अरुण ने चकित भाव से पुलक की ओर ताकते हुए कहा—इतना रक्त कैसे बहने लगा।

दाँत टूटने से जो स्थान खाली हो गया था, उसे पुलक ने स्वयं अपने हाथ से दिखला दिया!

जगत बाबू के शरीर पर जो बनियान थी उसमें भी रक्त लग गया था। इससे उसे उतारकर उन्होंने रख दिया और वे वहाँ से चले गये।

अपूर्ण निद्रा भंग हो जाने के कारण अरुण को इतना क्लेश मालूम हुआ कि मारे क्रोध के उसका शरीर जल उठा। मन में उसने कहा—इतना पाजी है यह लड़का! इसका यही हाल होना चाहिए। नाक में दम कर रक्खा है इसने!

उस समय पुलक भयभीत होकर हाथ-पैर समेटे हुए चुपचाप पड़ा था। नौकर-नौकरानियाँ, आशा तथा शुभेन्दु आदि घर में जितने भी आदमी थे, उस समय अरुण को उन सभी पर क्रोध आ रहा था।

पुलक के शरीर में जो रक्त लगा हुआ था उसे धोते धोते अरुण मन में यह निश्चय कर रहा था कि अब शुभेन्दु को घर में छोड़कर मैं कलकत्ता चला जाऊँगा और वहीं कुछ दिन रहूँगा। यह सारी हाय-हत्या तो नहीं सही जाती मुझसे।

पुलक कुछ देर तक सिसक सिसककर रोता रहा, बाद को वह अरुण के पास लेटे लेटे सो गया।

आकृति से पुलक बहुत कुछ माता के समान ही था। उसके सो जाने पर अरुण की दृष्टि एकाएक उसके मुख पर पड़ी और दिवंगता भगिनी की स्मृति जाग्रत हो उठी। इससे अरुण का शुष्क हृदय दयार्द्र हो उठा।

× × ×

प्रातःकाल निद्रा भंग होने पर जब आशा ने देखा तब बिस्तरे पर पुलक नहीं था। उसने तारा को पुकार कर पूछा कि पुलक कहाँ है ?

तारा खूब निश्चिन्त होकर सो रही थी। आँखें मलते मलते वह बोली—क्यों ? क्या वह बिस्तरे पर नहीं है ?

"नहीं, वह तो नहीं है !"

"तब फिर वह गया कहाँ ?"

खाट के नीचे, अलमारी के पास तथा और भी इधर-उधर कई जगह देखने के बाद तारा ने कहा—गया कहाँ वह ? कहीं भी तो नहीं दिखाई पड़ता। कितना दुष्ट है भाई यह लड़का !"

आशा ने घबराहट के साथ कहा—ओ मा ! अब ऐसा कहोगी तुम ? रात को तुम्हारे ही पास तो था वह। कहाँ गया तुम्हारे पास से लड़का।

तारा आशा से जरा भी नहीं डरा करती थी। इसके सिवा तारा को इस बात का भी विश्वास था कि जो कार्य मैं किया करती हूँ वह दूसरे की शक्ति से परे है। इसलिए उसने बहुत ही स्पर्द्धा के साथ कहा—तो मैं क्या करूँ ? सारी रात जागते जागते मैं उसके लिए पहरा तो देती न रहूँगी।

आशा ने कहा—यह तो ठीक है। परन्तु पुलक जब खाट पर से नहीं उतर पाता तब इससे भिड़ाकर यह स्टूल क्यों रख छोड़ा है ? यहाँ स्टूल न होता तो वह उतर नहीं सकता था।

जगत बाबू उठे। डर के मारे आशा उनसे कुछ कह नहीं सकी। उनका मन खराब था, इससे वे भी कुछ नहीं बोले, मुँह धोकर बाहर चले गये।

अरुण के पास पुलक के होने की सम्भावना है, इस बात की कल्पना तक करने का साहस आशा को नहीं हो रहा था। कारण उसे यह मालूम था कि छोटे बच्चों को वे जरा भी पसंद नहीं करते। परन्तु फिर भी अरुण को जगाने का साहस उसे हो रहा था। श्वशुर के रुष्ट होने का उसे जितना भय था, उतना जेठ के रुष्ट होने का नहीं था।

बहुत दिन चढ़ आने के बाद अरुण उठा। द्वार खोलकर पुलक को गोद में लिये हुए जैसे ही वह दालान में आया, तारा ने दौड़कर उसे लेने के लिए हाथ बढ़ाया। अरुण ने उसे डाँट दिया। उसने कहा—रहने दो। तुम लोगों को अब इसे न लेना होगा।

तारा डरती डरती वहाँ से हट गई।

(अरुण पुलक को लिये हुए शुभेन्दु के कमरे में गया। वह कहने लगा—कैसी है तबीअत तुम्हारी ? ज्वर तो नहीं मालूम पड़ रहा है ?

शुभेन्दु ने कहा—तबीअत हलकी सी है। शायद इस समय ज्वर भी नहीं है।

"बाबू जी क्या सबेरे इस ओर आये थे ?"

"इधर तो वे नहीं आये। गोरी कह रहा था कि बाबू जी ने डाक्टर साहब को बुलवाया है।"

"डाक्टर साहब तो पुलक को देखने के लिए प्रति-दिन ही आया करते हैं। बाबू जी ने शायद आज तुम्हें देखने के लिए उन्हें बुलाया है।"

शुभेन्दु ने कहा—कैसा है पुलक ?

"अच्छा तो है। देखो न इसके मुँह का क्या हाल है ?"

"यह तो गड़बड़ है ! मुँह में इसके सूजन आ गई है ! अब क्या हो गया है इसे ?"

इस बात का उत्तर न देकर अरुण ने कहा—पटला, क्या तुम्हें स्मरण है कि कमला भी एक बार नाना जी के यहाँ घाट पर गिर पड़ी थी और उसका भी दाँत टूट गया था ?

"स्मरण क्यों नहीं है। मा ने बाद को उन्हें मारा भी था। इससे नाना जी ने मा को बहुत डाँटा था।"

"देखो, ठीक वही दशा पुलक के मुँह की भी हुई है। बिलकुल सामने के ही दोनों दाँत इसके भी टूटे हैं।"

"ओह ! यह तो भयंकर बात हुई। कैसे टूटे इसके दाँत ?"

"यह तो मैं नहीं जानता। इन लोगों में से कोई इसे सावधानी से नहीं रखता। आधी रात का यह मामला है। बाबू जी इसे ले जाकर मेरे पास छोड़ आये थे।"

अरुण के मुख पर क्रोध का आभास पाकर शुभेन्दु चुप हो गया।

तीसरे पहर की बात है। अरुण किसी कार्य से पिता के कमरे की ओर जा रहा था। उस समय वे अपने साथी एक वृद्ध डाक्टर से किसी बात के उत्तर में कह रहे थे—दुष्ट है, पूरा दुष्ट है। पढ़-लिखकर भी मनुष्य इस प्रकार की दुष्टता कर सकता है, यह मैं नहीं जानता था पहले ! इस दशा में भला भगवान् को मैं क्या दोष दूँ ? मेरे परिवार में जैसी लक्ष्मी आनी चाहिए थी, वैसी ही भगवान् की कृपा से मिल भी गई। परन्तु इस अभागे ने हाथ की लक्ष्मी

को पैर से ठेल दिया। अणुमात्र भी वुद्धि यदि इसे होती।

अरुण के कानों में यह बात पड़े विना नहीं रह सकी। उसने समझ लिया कि यह सब मुझे ही लक्ष्य करके कहा जा रहा है। माता की मृत्यु के बाद इस प्रकार की तिरस्कारमय वाणी आज तक उसे और कभी नहीं सुनने को मिली थी।

बाद को एक बार उनके परिवार के उन शुभचिन्तक महोदय ने अरुण को एकान्त में बुलाकर कहा—तुम तो बुद्धिमान् लड़के हो, अरुण, देखो भैया, एक तो तुम्हारे पिता का शरीर खराब है, ऊपर से तुम भी उन्हें व्यर्थ के क्लेश दिया करते हो।

उक्त सज्जन के मन का भाव अरुण की समझ में न आ सका। इससे जिज्ञासामयी दृष्टि से ताकते हुए उसने कहा—मैं उन्हें क्लेश देता हूँ? यह कैसे?

"पारिवारिक शान्ति की आशा तो अब वे तुम्हीं लोगों से किया करते हैं। तुम लोगों को भी अब वही कार्य करना चाहिए जिससे उनके मन को किसी प्रकार का क्लेश न हो।"

"यह तो ठीक है! परन्तु मुझे कब क्या करना चाहिए, यह कुछ कभी वे बतलाते भी तो नहीं।"

"उनका कहना है कि शायद तुम बहू जी के साथ ज़रा भी अच्छा व्यवहार नहीं किया करते हो। साथ ही वे जब से यहाँ नहीं हैं तब से तुम्हारे घर की कितनी अव्यवस्था है, यह भी तुम देख ही रहे हो!"

कुछ झुँझलाहट के साथ अरुण ने कहा—अव्यवस्था जो कुछ हो रही है वह पुलक के कारण। इससे बाबू जी की यदि आज्ञा हो तो मैं उसे ले जाकर प्रभात के पास छोड़ आऊँ।

"पुलक को प्रभात के यहाँ न भेजकर काशी से बहू जी को ही क्यों नहीं बुला लाते? उनके यहाँ आ जाने पर सभी प्रकार की अव्यवस्था दूर हो जायगी।"

"वे बुलवा भी तो सकते हैं।" अप्रसन्न भाव से यह कहकर अरुण चुप हो गया। उसके मन में यह बात आ रही थी कि बाबू जी का यह कैसा अनुचित क्रोध है, मानो मैं ही उसे काशी पहुँचा आया हूँ। जितना मैं दूर रहना चाहता हूँ, उतनी ही अशान्ति बढ़ जाती है।

शुभेन्दु पिता को बहुत डरता था। अन्यथा उसे कई बार इच्छा हुई थी कि काशी जाकर भाभी जी को बुला लावे। परन्तु उसमें इतना साहस कहाँ था कि वह मुँह फोड़कर अपनी यह इच्छा उनके सामने प्रकट करे। शुभेन्दु को मालूम था कि पिता की ऐसी इच्छा नहीं है, अन्यथा वे स्वयं कहते।

और भी कई दिन व्यतीत हो गये।

एक दिन पुलक को चारपाई पर लिटाकर शुभेन्दु उसके रोग की परीक्षा कर रहा था। अरुण एक कुर्सी पर बैठा हुआ डाक्टरी की एक पुस्तक के पन्ने उलट रहा था। शुभेन्दु के मुँह की ओर ताककर उसने कहा—क्या देखा?

"वही जो सब लोग कहा करते हैं। लिवर इसका बहुत बढ़ गया है। एक तो अभी छोटा-सा बच्चा है। बहुत सावधानी के साथ इसकी चिकित्सा करने की आवश्यकता है।"

"अब और कितनी सावधानी की जा सकती है?"

"सावधानी ही क्या की जा रही है?"

"तो तू कलकत्ते ले जाकर इसका वज़न करवा ले और वहीं इसकी सेवा-शुश्रूषा तथा चिकित्सा की व्यवस्था करना।"

"मेरी यदि चलती तो मैं तो इसे सीधे भाभी जी के पास ले जाकर छोड़ आता।"

"क्यों? तू स्वयं अपने पास नहीं रख सकता? मैं तो रखता हूँ।"

"और मेरी जो वहाँ ड्यूटी रहती है। काम कौन कर देगा मेरी जगह पर?"

"ओह, बड़ी कड़ी ड्यूटी देनी पड़ती है न। चौबीस घंटे तो ड्यूटी रहती नहीं।"

"हाँ, हाँ! क्यों नहीं। वह तुम्हारा 'ला' कालेज नहीं है न! मेडिकल कालेज में इतना कस कर परिश्रम करना पड़ता है कि दिमाग़ ठिकाने आ जाता है।"

"कौन कहता है कसकर परिश्रम करने को? छोड़ क्यों नहीं देते पढ़ना?" अरुण हँस रहा था। शुभेन्दु ने कहा—पढ़ना क्यों छोड़ दूँ? नौकरी-चाकरी यदि न की जाय तो भी डाक्टरी-विद्या निरर्थक नहीं होती। इस समय पढ़ना छोड़ देने पर तो तुम्हारे समान घर में बैठा रहना पड़ेगा।"

"वाह! तुम सदा बाहर बाहर रहा करोगे और मैं ज़मींदार का बही-खाता आदि उलटता रहूँगा? मुझसे यह सब नहीं होने का।"

"ऐसा कह देने से तो काम चलेगा नहीं! हम-तुम दोनों ही आदमी यदि बाहर रहेंगे तो घर का काम कौन देखेगा?"

"घर का काम! घर का काम देखने का अर्थ है बन्दी होकर रहना! अब मुझे यह अच्छा नहीं लगता। इस सब दुनिया भर के झगड़ा-झंझट के कारण आदमी का दिमाग़ ख़राब हो जाता है।"

तरह तरह की असुविधाओं का सामना करते करते और भी कई दिन व्यतीत हुए। इसके बाद पुलक की देख-रेख का अधिकांश भार अरुण पर आया। अरुण जो कुछ स्वेच्छा से न करता था वह विवश होकर उसके पिता किया करते। इससे अरुण सावधान हो गया और वह कोई भी ऐसा अवसर न आने देता कि पुलक के कारण पिता को किसी प्रकार का कष्ट हो।

अब अरुण की अवस्था सचमुच एक बन्दी की-सी हो गई। एक तो लड़कों-बच्चों का झमेला वह कभी पसन्द नहीं करता था, दूसरे मातृहीन तथा रुग्ण पुलक को सँभालना बहुत ही कष्टकर हो उठा था। नौकरों में से किसी के पास पुलक रहना नहीं चाहता था। अरुण के पास भी वह बराबर चिल्ला-चिल्लाकर रोता ही रहता। इससे अरुण की तबीअत बहुत ही ऊब गई।

बहुत ही खीझकर अरुण ने पिता से यह प्रस्ताव किया कि प्रभात का लड़का जाकर प्रभात के हवाले कर आना चाहिए। पिता ने तुरन्त ही अनुमति दे दी। किसी प्रकार का भी मोह-ममता का भाव प्रदर्शित किये बिना ही उन्होंने पुलक को अपनी गोद से उतार दिया और स्वयं वे कमरे के भीतर चले गये!

लगातार रोग की यन्त्रणा सहन करते करते सूखकर काँटा हो गये उस बालक से जगत बाबू को कम ममता नहीं थी। चाहे वे दिवंगत सन्तान की स्मृति समझकर उससे स्नेह करते रहे हों या उनके स्नेह का कोई और कारण रहा हो, किन्तु पुलक के प्रति उनका स्नेह बहुत ही प्रगाढ़ था। पुलक को इस प्रकार विदा कर देने में उनके हृदय पर आघात भी कम नहीं लगा। परन्तु जगत बाबू ने इस बार सारा आघात नीरव भाव से ही सहन कर लिया।

गाड़ी पर बैठने के बाद पुलक ने शान्त भाव से ही कहा—बड़े मामा! हम लोग कहाँ चल रहे हैं? बहू जी के पास?

"नहीं, तुम्हारे बाबू जी के पास।"

"नहीं मामा जी, मैं बहू जी के पास चलूँगा, मुझे बहू जी के पास ले चलो।"

पुलक के शिशु-कण्ठ से जो दीनता तथा अनुनय-पूर्ण स्वर निकला, उससे अरुण कुछ विचलित हो उठा। उसने कहा—अच्छी बात है।

शरद्-ऋतु के निर्मल आकाश पर उदित होकर भगवान् चन्द्रदेव अपनी किरणों से भूमण्डल को धवलित कर रहे थे। खिन्नतापूर्ण दृष्टि से उनकी ओर ताककर अरुण कुछ सोचने-सा लगा। नीरव हृदय के स्वर में मानो चन्द्रमा की किरणें भी स्पन्दित हो उठीं।

प्रकृति ने अपनी सोने की सलाई से स्पर्श करके तालाब के सड़े हुए कीचड़ में भी कमल खिला दिया था। जलाशयों में कुमुद के बड़े बड़े फूल खिले हुए थे। उनके पल्लवों पर शरद्-लक्ष्मी का पद्मासन देखते ही बनता था। प्रकृति की रंग-बिरंगी छटा, स्थान स्थान पर खिले हुए फूलों की मादकतामय सुगन्धि तथा जीव-जन्तुओं का आनन्द-कलरव, सभी विचित्रतामय था! कहीं ज़रा भी बेसुरापन नहीं मालूम पड़ रहा था।

निद्रा ने समस्त रात्रि अरुण के नेत्रों का स्पर्श तक नहीं किया। वह बराबर खिड़की की राह से ताकता ही रहा। सबेरा होने पर उसने गाड़ी बदली।

× × ×

दिन को आठ बज गये। तो भी सविता की निद्रा भंग नहीं हुई। उसकी माँ बहुत पहले ही उठ गई थी। दो-एक कार्य करके स्नान के निमित्त वे गङ्गा जी की ओर चलीं। घर से निकलने से पहले वे सविता को जगाने के लिए गईं। सविता उस समय सो रही थी। उसके बिस्तरे के पास जाकर उन्होंने कहा—उठो बेटी, बहुत देर हो गई है।

आँख खोलकर सविता ने ताका। वह कहने लगी—मुझसे उठा नहीं जाता है माँ, मस्तक में बड़े ज़ोर की पीड़ा हो रही है।

"मस्तक में पीड़ा हो रही है? बाप रे! कहीं ज्वर तो नहीं हो आया! तुम बिटिया अवश्य कहीं सर्दी खा गई हो।

करवट बदलकर सविता फिर सो गई। उसकी माँ उस दिन फिर नहीं स्नान करने जा सकीं। घर पर ही उन्होंने कूप-जल से स्नान किया। बाद को वे पुत्री के पास आकर बैठ गईं।

सविता के नाना जी ने आकर देखा तो कहने लगे—ज्वर तो हो आया है।

डाक्टर बुलाने के सम्बन्ध में परामर्श होने लगा। तब सविता ने कहा—मेरे लिए इतनी चिन्ता करने की आवश्यकता नहीं है माँ! मुझे इस तरह का

ज्वर कितना होता है और फिर अपने आप चला जाता है।

सविता का ज्वर तीन-चार दिनों तक समान भाव से ही रुका रहा। डाक्टर ने देखकर कहा—इसे छुड़ाने में अभी समय लगेगा।

सविता मन ही मन सोचने लगी—मेरे भाग्य से ही वहाँ रहते समय कभी इस प्रकार का ज्वर नहीं हुआ। ओह! यदि कभी वहाँ ऐसा ज्वर हुआ होता तो कितनी विडम्बना सहन करनी पड़ती मुझे।

सात-आठ दिन बीत जाने पर भी जब सविता का ज्वर न छूटा तब चिन्तित भाव से उसके नाना ने कहा—अब क्या किया जाय? क्या इसके श्वशुर को सूचना दे दूं? यदि कहीं वे बाद को हमें दोषी ठहराने लगें?"

यह बात सुनकर सविता ने स्वयं ही आकुल भाव से कहा—नहीं, नहीं, ऐसा न कीजिएगा। उन्हें घबराहट में डालने से क्या लाभ?

"तो भी एक बार सूचना दे देना अच्छा ही है। अरुण घर पर है। चाहे तो वह भी आ सकता है।"

पहले की ही तरह मस्तक हिलाकर सविता ने इस बार भी उन्हें रोका। [क्रमशः

कवि की चाह

लेखक श्रीयुत ल० ठा०

मैं हूँ लेखक बिना लगाम, भारत भर में मेरा नाम

नई ज्योति का दीपक हूँ, भाव-भेप का दीमक हूँ
हूँ कवि, लेखक और चितेरा, कथाकार भी है मन मेरा
ग्रन्थ लिखे गहरे में डूब, ललकारा दुनिया को खूब
सबको अपनी बात सुनाता, और बहस में उन्हें हराता
युवकों का मैं प्यारा हूँ, किन्तु अभी तक क्वारा हूँ
हैं साथी बच्चों के बाप, इससे है मुझको संताप
नहीं किया मैंने कुछ पाप, फिर भी मिला मुझे है शाप
इससे व्याह न होता है, मुफ्त नाम बद होता है
सूख रहा है कविता स्रोत, हुई छीन आँखों की जोत
छोड़ी कानों ने भी कान, हुए नहीं पूरे अरमान
नहीं कहानी लिखते बनती, क्वारे की है क़लम न चलती
रहे नहीं पैसे भी पास, संगी-साथी हुए उदास
छायावादी कायावादी, मायावादी सब बरबादी
बटुआ-सी दुलहिन जो आवे, सभी कष्ट मेरा मिट जावे
सरल सुन्दरी बी० ए० पास, करे नहीं गहनों की आस

घर के हों उसके खुशहाल, रक्खें सारी साज सँभाल
बीबी ढूंढ़ी रानीखेत, किसी मित्र ने मेरे हेत
चित्र पत्र व्यवहार समेत, हुआ—हरा मम मन का खेत
हुआ भेंट का फिर सामान, पहुँचा मैं चढ़ हवा विमान
फाँक-फाँक सुरती मन मार, चश्मे को भी दूर उतार
देखी दुलहिन जैसे-तैसे, काबुल का गदहा हो जैसे
रंग साँवला तन था छीन, मुँह पर बजते साढ़े तीन
मुझे चाहिए सुन्दर रूप, और द्रव्य का भी हो कूप
जो हो बिलकुल ही देहाती, ऐसी मुझे न दुलहिन भाती,
करो कोई मेरा यह काम, मिले ज़िन्दगी में आराम
लिख लिख करके ग्रन्थागार, मर जाऊँगा बिना अहार
तब पीछे पछताओगे, करनी का फल पाओगे,
जो मर जाऊँ निस्सन्तान, तो पुरखों को कष्ट महान
वंश लोप तब हो जावेगा, नाम न मेरा रह जावेगा
तर्पण-श्राद्ध करेगा कौन, इससे मैं रोता हूँ मौन
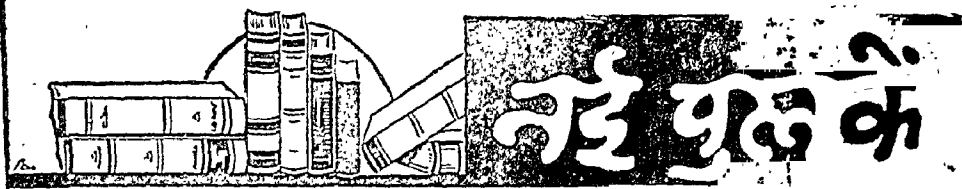
१—महात्मा विदुर—लेखक, श्रीयुत शान्तनुविहारी द्विवेदी, प्रकाशक गीता-प्रेस, गोरखपुर हैं। मूल्य ॥≈) और पृष्ठ-संख्या ५७ है।

पाण्डवों के सच्चे हितैषी महात्मा विदुर बड़े ही स्पष्ट-वादी और नीति-निपुण थे। दुर्योधन के आश्रित होकर भी उन्होंने कभी उसकी अनुचित बातों का समर्थन नहीं किया। प्रस्तुत पुस्तक में लेखक महोदय ने उन्हीं महात्मा विदुर का चरित महाभारत और श्री मद्भागवत के आधार पर सरल तथा ओजस्विनी भाषा में वर्णन किया है। पुस्तक में विदुर के जीवन की सभी प्रमुख घटनाओं का उल्लेख है। साथ ही उनकी नीति का भी आकलन करके लेखक ने पुस्तक को अधिक उपयोगी तथा रोचक बना दिया है। पुस्तक शिक्षा-प्रद है।

२—बलिदान—प्रथम भाग-लेखक, श्रीयुत 'नरवरी', प्रकाशक, सार्वदेशिक सभा, बलिदान-भवन, दिल्ली हैं। मूल्य ॥) और पृष्ठ-संख्या १५३ है।

'बलिदान' में लेखक की १३ कहानियाँ संगृहीत हैं। इन कहानियों का सम्बन्ध आर्यसमाज की उन स्वर्गीय आत्माओं से है जिन्होंने अपने धर्म के लिए अपने प्राणों की आहुति दी है। यथार्थ में लेखक उन्हीं महापुरुषों के जीवन-चरितों को कहानी के रूप में वर्णित किया है जिनके चरित्रों पर अच्छा प्रकाश पड़ सकता है।

कहानियों में लेखक की कल्पना यत्र-तत्र बिखरी हुई है। कहानियों-द्वारा उपदेश देना अधिक प्रभावोत्पादक होता है। प्रस्तुत पुस्तक की अधिकांश कहानियाँ ऐसी हैं, जिनका सम्बन्ध हिन्दू-मुस्लिम-समस्या से है, परन्तु लेखक ने कहानियों की साम्प्रदायिकता के दलदल तक पहुँचने से बचाने का पूरा प्रयत्न किया है। पाठक इससे मनोरंजन के साथ ही साथ कुछ प्राप्त भी कर सकेंगे, ऐसी हमें आशा है।

३—भक्त सौरभ—संपादक, श्री हनुमानप्रसाद पोद्दार, प्रकाशक, गीता प्रेस, गोरखपुर हैं। मूल्य ।=) और पृष्ठ-संख्या ११० है।

इस पुस्तक में पाँच भक्तों की सरस कथायें हैं। भक्त श्री व्यासदास जी ओरछा के राज-पुरोहित थे, पर बाद में श्री जी की शरण पाकर श्रीकृष्ण की भक्ति में बह गये। इनके विरचित पद आज भी वृन्दावन और ओरछा में प्रसिद्ध हैं। महात्मा श्री प्रयागदास जी उच्चकोटि के भावुक और प्रेमी थे, पर उनका विहारस्थल आत्मा था। भक्त शंकर पंडित, भक्त प्रतापरुप और भक्त गिरधर भी श्रेष्ठ भक्त थे। सभी भक्तों का जीवन भगवद्भक्ति से परिप्लावित है। पुस्तक विशेषकर धर्म-भक्तों के लिए उपयोगी है। पुस्तक की भाषा परिमार्जित है, संस्कृत शब्दों को अधिक स्थान मिला है।

४—सती अनसूया—लेखक, श्री वेणीराम त्रिपाठी 'श्रीमाली' प्रकाक, भार्गव श पुस्तकालय, बनारस है। मूल्य ॥), पृष्ठ-संख्या १३२ है।

सती अनसूया भारत की श्रेष्ठ महिला-रत्नों में एक हैं। उन्होंने वनवास में श्री सीता जी को जो उपदेश किया था वह प्रत्येक भारतीय नारी के लिए अमूल्य है। इस पुस्तक में उनकी जीवन-गाथा को लेखक ने आख्यान का रूप दिया है। लेखक की कल्पनाशीलता में अनसूया का चरित्र उपन्यास-सा बन गया है, फिर भी उसके गौरव की रक्षा का पूरा प्रयत्न किया गया है। शैली पुरानी है। बीच बीच में कविताओं के आने के कारण पुस्तक की स्वाभाविकता नष्ट हो गई है। भाषा साधारण कोटि की है। पुस्तक स्त्रियों के काम की है।

५—मानव—लेखक, श्री श्यामविहारी शुक्ल 'तरल', प्रकाशक, साहित्यनिकेतन कानपुर हैं। मूल्य ॥); पृष्ठ-संख्या ६६ है।

'मानव' में खड़ी बोली के सवैया छन्दों-द्वारा जीवन के अनेक पहलुओं पर कवि की अनुभूति अंकित है। बल्कि ऐसा कहना अधिक उचित होगा कि कवि के मनस्तत्त्वों का यह एक संग्रह है। कहीं कवि 'व्योम को छूने चला कभी तो गिरि-शृंखला से टकरा गया' है, क्योंकि 'प्यार को या परिताप को पुण्य या पाप को जान सका नहीं मानव' तो कहीं वह 'पूर्णता जीवन को कर प्राप्त कभी अभिमान किया करता है।' निराशा और मानसिक क्षीणता की ही ध्वनि एक रूप से पुस्तक भर में व्याप्त है। कवि महोदय कहते हैं—

जा चुकी जो कुचली पदों से ये वही मृत आश लिये फिरता है।
पूर्ण न हो सकेगी जो कभी ये वही अभिलाषा लिये फिरता है।
प्रेम का है प्रतिकार ये एक नई परिभाषा लिये फिरता है।
जो पढ़ी जा न सके कभी ये उसी भाग्य की भाषा लिये फिरता है।

अपने सम्पूर्ण जीवन में कवि केवल 'आँसू उलीचता ही रहा।' पर अब शायद उसे प्रेम का संसार अच्छा नहीं लगता, वह किसी अन्य दिशा की ओर बढ़ने को उत्सुक है, लेकिन प्रेम-पाश में जकड़ा हुआ छूटता कठिनता से है। इसी लिए वह कहता है—

'आज ये बन्धन खोलने को वे बड़ी बड़ी बाहें निकाल लो प्यारे।'

क्योंकि—

'आज तो मृत्यु से प्रेम है प्रेयसि जीवन से न मुझे अनुराग है।'

बस, सम्पूर्ण पुस्तक में इसी प्रकार रोना है, जिससे कवि के मानसिक क्षय की चाहे वृद्धि हो, पर पाठक को कुछ न प्राप्त होगा।

६—**हवाई युद्ध**—लेखक, डाक्टर सत्यनारायण पी-एच० डी०, प्रकाशक, पुस्तक-मन्दिर, १७९ हरिसन रोड, कलकत्ता हैं। मूल्य ॥); पृष्ठ-संख्या ५८ है।

आधुनिक युद्ध वायुयानों का ही युद्ध कहा जा सकता है। इस युद्ध में वायुयान ही हार-जीत का निर्णय करेंगे, ऐसा विश्वास किया जाता है। प्रस्तुत पुस्तक में हवाई युद्ध-सम्बन्धी समस्त बातों का सविस्तर उल्लेख है। किस राष्ट्र के पास कितनी हवाई शक्ति है तथा हवाई अस्त्र का भविष्य क्या होगा आदि विषयों का परिचय देकर लेखक महोदय ने पुस्तक को और भी उपयोगी बना दिया है। लेखक महोदय स्वयं भी एक बार युद्ध-क्षेत्र में रह चुके हैं, इसलिए उनके वर्णन में सजीवता और सचाई है। इस पुस्तक से हिन्दी में युद्ध-साहित्य के अभाव की पूर्ति किसी अंश में हो सकेगी। भाषा सरल और परिमार्जित है। यदि पुस्तक में एक हवाई आक्रमण का वर्णन भी कर दिया गया होता तो पाठक के लिए अधिक उपयोगी होता।

७—**हमारी नाट्यपरम्परा**—लेखक, श्रीयुत दिनेशनारायण उपाध्याय 'साहित्यरत्न' प्रकाशक, श्रीयुत रामनारायणलाल, पब्लिशर और बुकसेलर, इलाहाबाद हैं। मूल्य १) पृष्ठ-संख्या १२३ है।

जैसा कि पुस्तक के नाम से ही प्रकट है, इसमें भारतीय नाट्य-शास्त्र का विवेचन किया गया है। पुस्तक के प्रारम्भिक अध्यायों में संस्कृत-ग्रन्थों के आधार पर नाट्य-शास्त्र की प्रणाली बताई गई है। अन्तिम तीन अध्यायों में हिन्दी-नाटकों पर प्रकाश डाला गया है। हिन्दी-नाटकों को कालानुसार तीन भागों में विभाजित किया गया है। प्रथम उत्थान (१९१३-१९५७ सं०) में महाराजा विश्वनाथसिंह से लेकर पंडित दामोदर शास्त्री तक सोलह प्रमुख नाटककारों की रचनाओं और शैली पर प्रकाश डाला गया है। द्वितीय उत्थान में बाबू गोपालराम गहमरी, बाबू सीताराम, पंडित सत्यनारायण कविरत्न, रायदेवीप्रसाद 'पूर्ण' और पंडित रूपनारायण पांडेय हैं। तृतीय उत्थान में श्री 'प्रसाद' श्री प्रेमचन्द, श्री 'उग्र', श्री गोविन्दवल्लभपंत, पं० माखनलाल चतुर्वेदी, पं० बद्रीनाथ भट्ट, श्री लक्ष्मीनारायण मिश्र श्री 'मिलिन्द', बाबू मैथिलीशरण गुप्त, श्री जी० पी० श्रीवास्तव, सुदर्शन और प्रोफ़ेसर रामकुमार वर्मा को स्थान दिया गया है। इस युग के प्रत्येक नाटककार के सम्बन्ध में अलग अलग विचार किया गया है। पुस्तक विद्यार्थियों के विशेष काम की है और हिन्दी-नाटकों की पूरी जानकारी प्रदान करती है फिर भी हिन्दी के कुछ लेखकों का ज़िक्र न होना पुस्तक की अपूर्णता प्रदर्शित करता है। उदाहरण के लिए श्री सुमित्रानन्दन पंत हैं। कुल मिलाकर पुस्तक विद्यार्थियों के लिए 'क्लासनोट' का काम करेगी।

८—निबन्ध-मंजरी—लेखक, श्री मीनाराम रंगा एम० ए०; प्रकाशक, श्री मक्खनलाल दम्माणी, पुस्तक-विक्रेता, बीकानेर हैं। मूल्य १), पृष्ठ-संख्या ८८ है।

प्रस्तुत पुस्तक में लेखक के लिखे हुए ९ विविध-विषयक लेख हैं। सभी लेख विचार-गाम्भीर्य और मनन-शीलतापूर्ण हैं। 'जातीय इतिहास की आवश्यकता' और 'शिक्षाप्रचार की आवश्यकता' शीर्षक लेखों में लेखक महोदय ने भारत की दो प्रमुख समस्याओं का राष्ट्रीय दृष्टिकोण से विवेचन किया है। जातीय इतिहास की आवश्यकता पर ज़ोर देते हुए वे कहते हैं—'इतिहासविहीन पराजित जाति क्रीतदास की भाँति केवल विजयिनी जाति के कार्यों का सम्पादन करना ही अपना लक्ष्य मानती... कालान्तर में विलीन हो जाती है।' इन पंक्तियों को पढ़कर हमें आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी की 'साहित्य की महत्ता' शीर्षक लेख की पंक्तियाँ याद आ जाती हैं। 'शक्तिवाद और विकासवाद' शीर्षक लेख में लेखक महोदय ने एक सामाजिक प्रश्न की विचारपूर्ण आलोचना की है। 'समालोचना' और 'भारतेन्दु हरिश्चन्द्र' में लेखक की साहित्यिक सूझ-बूझ का परिचय मिलता है। समालोचना के सम्बन्ध में लेखक महोदय के अपने विचार हैं; उन्होंने प्रत्येक प्रश्न पर अपनी मौलिक राय देने की चेष्टा की है। भारतेन्दु जी के सम्बन्ध में लेखक के विचार मनन-योग्य हैं। भाषा और शैली विषयानुकूल है। पुस्तक उपयोगी है।

९—कथाकुंज—लेखक, बाबू शीतलासहाय बी० ए० प्रकाशक नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ हैं। मूल्य १।) और पृष्ठ-संख्या २०२ है।

इस पुस्तक में लेखक की 'स्वराज्यसिंह', 'नीला', 'वनजारिन', 'यात्रा की डायरी', 'नव-वधू', 'प्रभा' और 'तस्मै-नमो भगवते कुसुमायुधाय' शीर्षक सात कहानियाँ हैं।

स्वराज्यसिंह कहता है—"साहित्य में उद्देश्य होना चाहिए... साहित्य राष्ट्र के उत्थान का भी साधन हो सकता है।... साहित्यज्ञ, कलाकार, लेखक और पत्रकार अगर संगठित होकर काम करें तो दस वर्ष में देश और समाज में इच्छानुकूल परिवर्तन पैदा कर सकते हैं।"

यही लेखक महोदय ने किया भी है। उनकी प्रत्येक कहानी का कुछ न कुछ उद्देश्य है। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए वे कला की परवा किये बिना पाठक को अपने विचारों से अवगत कराने का प्रयत्न करते हैं। हो सकता है कि कला-प्रेमियों का इन कहानियों से अधिक मनोरंजन न हो, परन्तु जनता में राष्ट्रीय-भावना उत्पन्न करने के लिए इस प्रकार के साहित्य की आवश्यकता है। 'नीला' एक रूसी कहानी का छायानुवाद है। अन्तिम कहानी में लेखक महोदय ने अपने उद्देश्य को कुशलता से निबाहा है। भाषा सरल, बोल-चाल की है। शैली वर्णनात्मक है। पुस्तक की हिन्दी-साहित्य में क़द्र होगी ऐसी हमें आशा है।

१०—पद्य-रत्नावली—संकलनकर्ता, अखौटी; गंगा-प्रसादसिंह, प्रकाशक 'साहित्य-सेवा-सदन, काशी हैं। मूल्य अजिल्द का १), सजिल्द का १।) है। पृष्ठ-संख्या २५३ है।

यह आधुनिक हिन्दी कवियों की चुनी हुई कविताओं का संग्रह है। दो-एक पुराने कवि—जैसे तुलसीदास—भी इसमें स्थान पा गये हैं। संकलनकर्ता ने कविताओं को 'दिव्यालोक', 'पुण्यस्मृति', 'घर का आँगन', 'हर्ष-विषाद', 'प्रकृति-दर्शन', 'मणि-मुक्ता', 'नीहारिका' और 'सूक्ति रत्नावली' शीर्षक स्तम्भों में विभाजित किया है। लगभग सभी प्रतिष्ठित कवियों की रचनाओं को पुस्तक में स्थान मिला है साथ ही कुछ निम्न कोटि के अप्रसिद्ध कवियों की रचनायें भी संकलित की गई हैं, जिससे संग्रह का महत्त्व नष्ट हो जाता है। फिर भी कुल मिलाकर संग्रह उपयोगी है। चयन सुरुचिपूर्ण है।

११—लेखन-कला—लेखक, पंडित किशोरीदास वाजपेयी, प्रकाशक, भागीरथी प्रेस, कनखल (यू० पी०) हैं। मूल्य।≈) और पृष्ठ संख्या ६४ है।

यह पुस्तक लेखक के कथनानुसार एक बड़े ग्रन्थ की उपक्रमणिका मात्र है, जो छात्रों के लिए सुलभ और सुगम है। पुस्तक के नाम से ही प्रकट है कि पुस्तक का उद्देश्य आधुनिक हिन्दी भाषा के दोषों का दिग्दर्शन कराना है। शास्त्री महोदय ने आचार्य की गद्दी पर आसीन होकर हिन्दी के लेखकों के दोषों पर अपना फ़तवा दिया है। 'आज', 'हिन्दुस्तान' आदि पत्रों के उदाहरण देते हुए उन्होंने भाषा और व्याकरण-सम्बन्धी भूलें बताई हैं। इसमें संदेह नहीं कि इससे मिडिल और हाई स्कूल के विद्यार्थियों को भाषा-सम्बन्धी दोषों का ज्ञान हो जायगा। पर साथ ही वाजपेयी जी जिस

प्रकार की भाषा चाहते हैं वह हिन्दी-साहित्य को वर्षों पीछे खींच ले जायगी। इसके अलावा वाजपेयी जी स्वयं भाषा-सम्बन्धी उन्हीं दोषों के शिकार हैं, जिनसे वे हिन्दी को बचाना चाहते हैं। उदाहरण के लिए देखिए—

'परन्तु जो भाषा पर पूर्ण अधिकार रखता है वह सीधे सादे ढंग से, सरल भाषा में भी, ऐसी बात कह जायगा जिसका अचूक असर सुननेवाले पर होगा।'

उपर्युक्त उदाहरण में ज़ोर 'अचूक असर' पर होने के बजाय 'सुननेवाले' पर हो गया, जो कि शायद लेखक को अभीष्ट न था। इसी प्रकार बीभत्स और कुरुचिपूर्ण शब्दों का प्रयोग भी लेखनकला की दृष्टि से अनुचित है। पर वाजपेयी जी—लेखन-कला के महन्त होकर भी लिखते हैं—

"जिस स्त्री के हाथ-पैर पर अंगुल अंगुल भर मैल जमा है, जिसके नाक बह रही है; जिसकी आँखो में कीचड़ बजबजा रहा है, वह कितने ही बढ़िया वस्त्रों से क्यों न चमका दी जाय कभी भी आकर्षक न हो सकेगी।'

इस चित्र-द्वारा वाजपेयी जी ने लेखन-कला के किस अंग की पुष्टि की है, यह वे ही जान सकते हैं।

यही नहीं, अश्लीलता दोष का भी आपने एक ऐसा ही उदाहरण प्रस्तुत किया है, जो सभ्य समाज के धरातल से बहुत नीचे का है। यदि इस प्रकार के दोषों को खोजा जाय तो वाजपेयी जी की सम्पूर्ण पुस्तक परिपूर्ण मिलेगी। वाजपेयी जी निकट भविष्य में ही इसी विषय पर एक बड़ी पुस्तक लिखनेवाले हैं। हम उनसे अनुरोध करेंगे कि वे इस प्रकार अपनी शक्ति का दुरुपयोग न करके उसे किसी उपयुक्त कार्य में लगायें।

अनन्तप्रसाद विद्यार्थी, बी० ए०

१२—कविदर्शन—लेखक श्रीयुत वेनीमाधव शर्म्मा बी० ए०, बी० टी०, प्रकाशक, पंडित प्रभुदयालु शर्म्मा, शर्मन प्रेस, इटावा हैं। पृष्ठ-संख्या ९२ और मूल्य ।।) है।

'भूखों मरा जा रहा हूँ। रात भर जाड़े से ऐंठ गया। किसी ने एक पैसा न दिया कि अपनी भूख शान्त कर लेता! भगवान्, इस जीने से तो मर जाना अच्छा है।

'अरे भाई लो इसे ओढ़ लो' और 'लो इसे भी लो और उसे भी लो।' जाड़े के ब्राह्ममुहूर्त्त में गंगा-स्नान के लिए जाते हुए एक भिखमंगे को अपना क़ीमती शाल और जो कुछ जेब में था वह दे डालना आज भी हमें भारत के उस 'पूर्ण इन्दु' की स्मृति दिला देता है। यदि वे—वाह हनूमान, ज़रा फिर से तो पढ़ो, बड़ी सुन्दर रचना है, कहते हुए एक-एक छन्द को बीस-बीस बार न पढ़वाते और पढ़नेवाले पर अपने गले का क़ीमती दुशाला उतार-कर न फेंक देते तो निस्सन्देह हमारी हिन्दी आज वहाँ न होती, जहाँ पर दिखाई दे रही है। यह उसी गुणग्राहक की सपत्ति के व्यय का फल है; भले ही आज का अर्थशास्त्री उसे अपव्यय समझे।

'पग पग भुइयाँ भारी
लखन कहँ छोड़ि आयो जनक दुलारी,

पर्वस्नान के लिए जाती हुई ग्रामवधूटियों के मुख से यह पद सुनकर और इसमें रामचन्द्र के धीरोदत्त नायकत्व की चरम-अभिव्यक्ति को लक्ष्यकर गद्गद हो जानेवाले उपाध्याय जी ने किस कोटि का रसज्ञ हृदय पाया है, इसका पता इसी से लग जाता है।

इस पुस्तक में लेखक महोदय ने कुल १२ कवियों के दर्शनों (इन्टरव्यू) का सजीव भाषा में उल्लेख किया है। चुनाव ऐसे मार्मिक ढंग से हुआ है कि पढ़ने पर वर्णित कवियों का पूर्ण व्यक्तित्व सामने आ जाता है। शैली भी रोचक है। हिन्दी में इन्टरव्यू-सम्बन्धी पुस्तकों के अभाव की आंशिक पूर्त्ति इस रचना से हो सकती है।

१३—नहुष—लेखक, श्रीयुत मैथिलीशरण गुप्त और प्रकाशक, साहित्य-सदन, चिरगाँव (झाँसी) हैं। ५४ पृष्ठों की पुस्तिका का दाम छः आने है। छपाई साफ़ सुथरी है।

देव सदा देव तथा दनुज दनुज हैं,
जा सकते किन्तु दोनों ओर ही मनुज हैं।

'नहुष' काव्य के कुशल कवि ने यही दिखाने का प्रयत्न किया है कि मनुष्य किस प्रकार देवत्व और दानवत्व के बीच संघर्ष करता हुआ अपनी मानवीय शक्तियों और दुर्बलताओं के कारण कभी इस ओर और कभी उस ओर खिंच जाता है। 'नहुष' के रूप में हमें उस मानव के दर्शन होते हैं, जो प्रयत्नों से देवत्व ही नहीं, वरन देव-राजत्व के पद को प्राप्त कर लेता है और स्वयं अपनी ही दुर्बलता के वश पतित होकर जड़त्व में फेंक दिया जाता है। परन्तु

फिर भी वह निराश नहीं होता; उसे अपनी शक्तियों में विश्वास है और इसी विश्वास के साथ वह दृढ़तापूर्वक कहता है—

गिरना क्या उसका उठा ही नहीं जो कभी?
मैं ही तो उठा था आप, गिरता हूँ जो अभी।
फिर भी उठूँगा और बढ़के रहूँगा मैं,
नर हूँ, पुरुष हूँ मैं, चढ़के रहूँगा मैं।

इसमें केवल मानवत्व का ही उत्थान नहीं, किन्तु उस देवत्व का भी उत्थान होगा जिसके, सर्वोच्च पद को प्राप्त करके भी 'नहुष' उत्थान-पथ से विरत करनेवाले प्रलोभनों से छुटकारा नहीं पा सकता था। इसी लिए वह कहता है—

उठना मुझे ही नहीं एक मात्र रीते हाथ,
मेरी देवता भी और ऊँची उठे मेरे साथ।

मनुष्य के इस उच्च आदर्श को घोषित करनेवाले इस छोटे से काव्यग्रन्थ में गुप्त जी ने यह दिखाने का यत्न किया है कि अपनी स्वाभाविक दुर्बलताओं के होते हुए भी मानव-जीवन कितना श्रेष्ठ और सम्पन्न तथा देवत्व से भी अधिक स्पृहणीय है। मानव के अभावों को दूर करने की उत्सुकता में इन्द्रासनासीन नहुष चाहता है कि किस प्रकार पृथ्वी पर ही मानवों के लिए वे समस्त सुख-वैभव जुटाये जा सकते हैं जिन्हें भोग करने का अधिकार वही अकेला प्राप्त कर सका है; परन्तु उर्वशी कहती है—

किन्तु अमरत्व क्या इसी से नर पा लेंगे?
उलटी मनुष्यता भी अपनी गवाँ देंगे।

× × ×

होगा वह क्या बड़ा जो विघ्नों से नहीं लड़ा?
यों तो मुखी शान्त वही, जो जड़ हुआ पड़ा।

× × ×

सूर्य ही उगें क्यों, मेघ छाया जो किया करें?
कि वा वे जियें ही क्यों, मरे सो जिया करें?

× × ×

यदि न तपेगी धरा ठंढी पड़ जायगी,
उर्वरा क्या होगी, सील पाके सड़ जायगी।

इसलिए

सूर्य तपें अग्नि जलें, वायु चलें, वृष्टि हो,
देहधारियों की निज धर्म में ही दृष्टि हो।

देवता भी तो मनुष्यत्व की प्रशंसा करते हैं—

मान्य विबुधों को भी यथार्थ मनुष्यत्व है,
उसमें परम तप-त्याग तथा तत्त्व है।

और मानव की भूमि भी कैसी रमणीय है—

मेरी भूमि तो है पुण्य भूमि वह भारती,
सौ नक्षत्रलोक करें आके आप आरती।
नित्य नये अंकुर असंख्य वहाँ फूटते,
फूल झड़ते हैं फल पकते हैं, टूटते हैं।
सुरसरिता ने वहीं पाई है सहेलियाँ,
लाखों अठखेलियाँ, करोड़ों रंगरेलियाँ!
नंदन विलासी सुरवृंद वह वेशों में,
करते विहार हैं हिमाचल-प्रदेशों में।

पृथ्वी का सुख सुलभ नहीं है और यही कारण है कि वह इतना प्रेय और मधुर है।

मनुष्य अपनी मनुष्यता खोकर जब देवत्व के सुखोपभोग की आकांक्षा में अपने नर-धर्म को भूल जाता है तभी तो उसका पतन होता है। शची स्वयं कहती है—

त्यागो शची-कान्त बनने की पापवासना,
हर ले नरत्व भी न काम-देवोपासना!

काम भी एक देवता है; जिसकी उपासना करके नर अपना नरत्व खो बैठा।

इसलिए मनुष्य को सदैव अपने धर्म-पालन का ही प्रयत्न करते रहना चाहिए और यही करके वह उच्च से उच्च पद प्राप्त कर सकता है। देवत्व या देवराजत्व उसका चरम अभीष्ट नहीं है। देवराजत्व पाकर तो वह देवताओं की ईर्ष्या का पात्र बन जाता है। किन्तु देवताओं की ईर्ष्या उसे अपने उत्थान-पथ से विरत नहीं कर सकती, भले ही आज वह स्वर्ग-भोग से वञ्चित कर दिया जाय। किन्तु समय आयेगा जब वह देव-दुर्लभ-पद का अधिकारी होगा—

आज मेरा भुक्तोज्झित हो गया है स्वर्ग भी,
लेके दिखा दूँगा कल मैं ही अपवर्ग भी।

वह जानता है कि उसके मार्ग में विघ्न-बाधायें हैं, किन्तु उसमें साहस की कमी नहीं है—

क्यों कर हो मेरे मन-मानिक की रक्षा ओह!
मार्ग के लुटेरे काम-क्रोध, मद, लोभ, मोह।
किन्तु मैं बढ़ूँगा राम,—
लेकर तुम्हारा नाम;
रक्खो बस तात, तुम थोड़ी क्षमा, थोड़ा छोह।

—ब्रजेश्वर

जाग्रत नारियाँ

महिला-संरक्षण-गृह क्यों ?

लेखिका, श्रीमती प्रेमलता वर्मा

हिन्दुओं का वैवाहिक जीवन शताब्दियों से, युगों से, एक ही ढर्रे पर चला जा रहा है। इस ढर्रे में कभी कहीं कोई अड़चन पड़ जाती है तब समाज के ठेकेदार नाक-भौं सिकोड़कर, मुँह फुलाकर कुछ बड़बड़ा देते हैं, अधिक हुआ तो कुछ स्मृतियों के पन्ने उलट गये और उनसे कोई व्यवस्था निकल पड़ी, बस, फिर सब शान्त हो गया और सब लोग उस बात को भूल गये। ठीक उसी तरह जिस तरह गंगा में कुछ गिर जाने पर एक शब्द होता है; स्वाभाविक प्रवाह में थोड़ा-सा व्यतिक्रम हो जाता है, और फिर सब शान्त हो जाता है। केवल एक धुँधली स्मृति रह जाती है—आगे आनेवाली घटनाओं की 'नज़ीर' बनने के लिए। इससे अधिक न इसकी उपयोगिता समझी जाती है और न किसी को उस पर सोचने का अवकाश है।

परन्तु हम अपनी आँखें अधिक समय तक बन्द नहीं रख सकते। इस शताब्दी में तो यह सम्भव भी नहीं है। हमें चारों ओर देखना पड़ता है। चाहे देखने की हमें इच्छा हो या न हो !

उस दिन एक 'महिला-संरक्षण-गृह' देखने का मुझे अवसर मिला। मन में स्वाभाविक जिज्ञासा हुई कि ये महिलायें अपने-अपने घरों से भागकर यहाँ क्यों आई ? गृहस्थाश्रम स्वर्ग का दूसरा रूप माना

[प्रयाग-महिला-विद्यापीठ में छात्रायें चित्रकला का अभ्यास कर रही हैं]

[कुमारी ताराबाई, लाहौर। आपको नृत्यकला के लिए प्रथम पुरस्कार दिया गया है]

गया है—कम से कम हिन्दू स्मृतिकारों के शब्दों में; फिर संरक्षण-गृहों में ऐसी कौन-सी मिठास है जो भले-भले घरों की महिलाओं को अपनी ओर आकर्षित करती है। मैंने 'संरक्षण-गृह' की महिलाओं से बातचीत करना और काग़ज़-पत्र देखना आरम्भ किया।

एक वर्ष के भीतर प्रवेशार्थिनियों के सैकड़ों प्रार्थनापत्र आये थे। पर स्थान अपर्याप्त था, इसलिए केवल ३१ महिलाओं का दाख़िला किया गया था। इन ३१ महिलाओं में से १४ तो ऐसी थीं जिन्हें उनके पतियों या अभिभावकों ने घरों से निकाल दिया था और १७ ऐसी थीं जो स्वयं पति का घर छोड़कर चली आई थीं।

आगे कौतूहल बढ़ा। पिछला रेकर्ड देखा। सन् १९३४ में कुल २० महिलाओं का प्रवेश हुआ था जिनमें ९ को पतियों ने छोड़ दिया था और ११ पतियों को छोड़कर आई थीं। १९३५ में ४० स्त्रियों ने प्रवेश-लाभ किया था, इनमें से १५ पतियों द्वारा त्यागी हुई और २५ पतियों को छोड़कर भागी हुई थीं। १९३६ में ५७ महिलायें प्रविष्ट हुईं—२० पतियों-द्वारा निकाली हुई और ३७ स्वयं घर छोड़कर आई हुई! १९३७ में ४२ दाख़िले हुए। इनमें से १४ निकाली हुई और २८ घर छोड़कर भागी हुई थीं।

ये आँकड़े हैं एक संरक्षणगृह के केवल ५ वर्ष के; देश में और भी कई संरक्षण-गृह हैं तथा कुछ ऐसी भी जातियाँ बसती हैं जो हिन्दुओं के घरों को लावारिस माल समझती हैं।

इन आँकड़ों से एक बात स्पष्ट हो जाती है—घर छोड़कर निकलने-वाली महिलाओं में से पतियों-द्वारा छोड़ी जानेवालियों की अपेक्षा पतियों को छोड़कर चली जानेवालियों की संख्या अधिक होती है। इसका कारण क्या है? आखिर हमारे घरों में महिलाओं को क्या परेशानी है, जो वे इतनी बड़ी संख्या में प्रतिवर्ष घर छोड़कर भाग खड़ी होती हैं और या तो विधर्मियों के घरों में या—यदि सौभाग्यवश ऐसा सुयोग मिल गया तो—महिला-संरक्षण-गृहों में, या अगत्या बाजार के छज्जों पर आश्रय लेती हैं। क्या बूढ़े मनु और पाराशर ने या उनकी व्यवस्थाओं के ठेकेदारों ने इसका कोई हल निकाला है?

[कुमारी रोवा राव। दिल्ली के इन्द्रप्रस्थ गर्ल्स कालेज के उद्घाटन के अवसर पर आपने 'गगरीनृत्य' दिखलाया था।]

लगे हाथ योरपीय देशों की इन संख्याओं पर दृष्टि डालना उचित होगा। योरप में 'डिज़र्शन' के जितने मामले दायर होते हैं उनमें से ९० प्रतिशत ऐसे होते हैं जिनमें पति व्यापार या किसी अन्य कारणवश पत्नियों को छोड़कर चले जाते हैं और फिर बहुत समय तक उनकी खबर नहीं लेते। इन मामलों का अभिप्राय दूसरा है। ऐसे पतियों के लौट आने पर पत्नियाँ उन्हें स्वीकार कर लेती हैं। पर हमारे देश की समस्या कुछ दूसरे प्रकार की है। यहाँ या तो पति पत्नियों को निकाल देते हैं या वे घर छोड़कर भाग जाती हैं। अवश्य ही इसकी तह में कोई गहरी पारिवारिक या सामाजिक त्रुटि है, जो स्त्रियों को वैवाहिक सम्बन्ध को इस बुरे ढंग से तोड़ फेंकने के लिए विवश करती है।

आश्रम की महिलाओं में एक लड़की भी थी।

[प्रयाग-महिला-विद्यापीठ के ट्राइंग क्लास का एक दृश्य ।]

आयु १८ वर्ष की रही होगी। शरीर से, बातचीत से और उसके कहने से भी वह संपन्न परिवार की ज्ञात होती थी। उसके विवाह में मा-बाप ने दिल खोलकर व्यय किया था; दहेज भी अच्छा दिया गया था। परन्तु उसने जिस दिन अपनी ससुराल में क़दम रक्खा उसी दिन से सास उसकी दुश्मन बन गई। पति महाशय कुछ पुराने विचारों के 'मातृदेव-पितृदेव आचार्यदेव' के उपासक थे। पत्नी पर होनेवाले दैनिक अत्याचारों के विरुद्ध आवाज़ उठाना उनके लिए असम्भव था, क्योंकि इससे मातृभक्ति में बाधा आती थी।

एक दिन सवेरे ही सास ने बहू को इस अपराध पर कि वह घर का काम-काज मन लगाकर नहीं करती है, मारा-पीटा, उसके गहने छीन लिये और उसे घर से बाहर निकाल दिया। अपने नव-जात शिशु को साथ ले जाने की आज्ञा भी उसे नहीं दी गई। पति देवता आफ़िस से ५ बजे के बाद आते थे। इधर घर का द्वार बन्द हो गया। और कोई मार्ग न था। केवल अज्ञात दिशा की ओर—जिधर को मुँह उठे—चला जाना था।

वह सड़क के किनारे किनारे जा रही थी। भाग्यवश एक दयालु पारसी महिला मिल गई। उसने उसे कृपा करके बम्बई का टिकट ख़रीद दिया और लाकर इस आश्रम में भर्ती करा दिया।

हिन्दू-परिवार के लिए यह उदाहरण अकेला नहीं है। इस जाति में बहू का विवाह वर के साथ नहीं होता पूरे परिवार के साथ होता है। उसे सास ही नहीं देवरानी, जेठानी, ननँद, ससुर, देवर सभी की ख़ातिर करनी होती है। पल-पल पर उसकी सहिष्णुता की अग्नि-परीक्षा होती रहती है। फिर यदि पतिदेव धर्म-भीरु हुए, अपने को 'स्त्री का ग़ुलाम' के लांछन से बचाने के प्रयत्नशील हुए, तो बेचारी बहू का निर्वाह असम्भव हो जाता है। तलाक़ की प्रथा है नहीं। अन्ततोगत्वा उसे उसी मार्ग को पकड़ना पड़ता है जिसे गँवारू भाषा में 'भाग जाना' और अदालती भाषा में 'डिज़र्शन' कहते हैं। यह 'डिज़र्शन' होता योरप में भी है, पर बहुत थोड़ा। वहाँ तलाक़ का चलन है, अतः यह केवल ग़रीब पति-पत्नियों तक जो तलाक़ के लिए अदालत तक नहीं पहुँच पाते, सीमित रहता है।

इस बुराई पर आमूलतः विचार करने पर जो परिणाम मैंने निकाला है वह यह है कि संयुक्त परिवार की प्रथा में सामाजिक दृष्टिकोण से, भले ही हज़ार गुण हों, पर नव वधू के लिए वह कारागार से कम

[श्रीमती कृष्णाबाई पटेल जो शोलापुर में होनेवाली कर्नाटक महिला-कान्फ्रेंस की सभानेत्री निर्वाचित हुई थीं।]

भयानक नहीं है। एक पति को प्रसन्न रख सकना कठिन नहीं है। पर इसके लिए अवसर मिले तब न! पूरा समय और पूरी शक्ति तो परिवार के शेष व्यक्तियों की टहल करने में खर्च हो जाती है। ये लोग अपनी टहल भी करवाते हैं और ऊपर से धमकी भी देते हैं, शिकायत भी करते हैं और चुग़ली भी खाते हैं। इन शिकायतों, चुग़लियों और आरोपों का ९९ प्रतिशत मामलों में एक-तरफ़ा फ़ैसला होता है। परिणाम यह होता है कि रात की वे इनी गिनी घड़ियाँ, जो पतिदेवता की सहानुभूति प्राप्त करने के लिए किसी प्रकार मिलती हैं, उनकी भर्त्सना सुनने, ठुकने-पिटने और रोने धोने में ही व्यतीत होती हैं। इस दशा में और मार्ग ही क्या है? भले ही भविष्य अन्धकारमय हो, भले ही आगे खंदक हो, पर आसन्न संकट से बचने के लिए घड़ी-घड़ी की ख़ैर मनाने से ऊबकर उसी ओर भागना पड़ता है। यहाँ न पंच सहायता करते हैं, न परमेश्वर!

यदि हमारे समाज में भी तलाक़ का चलन होता, यदि हमें भी संयुक्त परिवार में रहने के लिए विवश न किया जाता या यदि स्त्रियों को भी पुनर्विवाह की उतनी ही स्वाधीनता प्राप्त होती जितनी कि पुरुषों को प्राप्त है तो और चाहे कुछ होता, हमारी बहनें विधर्मियों की दृष्टि में लावारिस माल न बनतीं और न इन 'महिला-संरक्षण-गृहों' की आवश्यकता ही होती! क्या हिन्दू-समाज संघटित रूप से कभी इस समस्या पर भी विचार करेगा?

विस्मृति! तुम्हीं बता दो मैं हूँ कौन कहाँ से आया हूँ

लेखक, श्रीयुत पद्मकान्त मालवीय

समझ न पाता कुछ भी ऐसा अपने में भरमाया हूँ।
विस्मृति! तुम्हीं बता दो मैं हूँ कौन कहाँ से आया हूँ॥

देखूँ किसे, पुकारूँ किसको और किधर को मैं जाऊँ?
भग्नाशाओ! मुझे छोड़ दो आज बहुत घबराया हूँ॥
पतझड़ हो या हो वसन्त मुझको क्या मैं तो हूँ बन्दी।
खिलना नहीं मुझे है मैं तो फूल एक मुर्झाया हूँ॥
कफ़न बीच मुख मलिन छिपाये क्यों चुपचाप न चल दूँ मैं।
भरे सदन से, सबके सम्मुख, गया आज उठवाया हूँ॥

कहने को साधारण जन हूँ, पर मुझसे ही दुनिया है।
ईश बनाये हैं मेरे, मैं स्वर्ग धरा पर लाया हूँ॥
जिसे वायु है बुझा न पाई, घृत जिसका कम हुआ नहीं।
मन्दिर में दीपित नन्दा-दीपक की मैं प्रतिछाया हूँ॥
नव प्रयत्न हिन्दी में है यह किन्तु 'पद्म' क्या हो अभिमान।
चुन चुनकर के फूल बाग़ से औरों के मैं लाया हूँ॥

गिरिधर कविराय

लेखक, पण्डित चन्द्रकिशोर मिश्र, एम० ए०

यद्यपि पाण्डित्य के द्वारा कवित्व-शक्ति को अपने पथ पर अग्रसर होने में पर्याप्त सहायता मिलती है, तथापि पाण्डित्य के द्वारा कोई मनुष्य कवि-पद को प्राप्त कर सकता है, ऐसा नहीं कहा जा सकता। कवि की प्रतिभा ईश्वर-प्रदत्त होती है, जो उसके हृदय में बीज-रूप से वर्तमान रहती है; सहृदयता तथा ज्ञान की वृद्धि के साथ साथ उसका विकास अवश्य होता है; अतएव यह निश्चय है कि कवि उत्पन्न होते हैं, बनाये नहीं जाते। सहृदयता के साथ वर्तमान बीज-रूप प्रतिभा निरन्तर प्रयास-द्वारा सिञ्चित होकर निश्चय ही एक विशाल वृक्ष का रूप धारण कर सकती है, किन्तु इस प्रयास में कुछ साधना की आवश्यकता है। मानव-जीवन तथा प्रकृति का भिन्न-भिन्न दृष्टि-कोणों से अध्ययन कवि की साधना का एक मार्ग है। इस अध्ययन के द्वारा वह जीवन की सच्ची परिस्थितियों का ज्ञान प्राप्त करके अपनी कविता-द्वारा लोक-हित-साधन करने में सफल होता है; कवि-कर्म के अनेक लक्ष्यों में एक लोक-हित भी है।

कविवर गिरिधर कविराय ऐसे ही कवियों में से एक हैं। ये पण्डित नहीं हैं, इनका पुस्तक-ज्ञान यद्यपि बहुत सीमित है, तथापि अपने अनुभव-ज्ञान तथा सहृदयता की सहायता से इन्होंने बड़ी सुन्दर कविता की है। सामाजिक समस्याओं को सुलझाने के लिए इन्होंने जो कुण्डलियाँ लिखी हैं वे वास्तव में सिद्धान्त-वाक्यों का काम दे सकती हैं—जन-साधारण के भावों और भाषा का समावेश होने के कारण इनकी कविता बड़ी ही स्वाभाविक हो उठी है। इनकी लोक-प्रियता का सबसे बड़ा कारण इनका लोक-भाषा का प्रयोग है।

गिरिधर के समय और जन्मस्थान आदि के विषय में हमको विशेष पता नहीं चलता। 'सरोजकार' ने इनका जन्म-संवत् १७७० विक्रमीय लिखा है और मिश्र-बन्धु तथा रामचन्द्र शुक्ल ने इसका समर्थन भी किया है, अतएव इतना तो निश्चित ही जान पड़ता है कि विक्रम की १९ वीं शताब्दी में ये वर्तमान अवश्य थे।

इनके निवास-स्थान का कोई विशेष पता नहीं चलता। 'सरोजकार' ने इनको 'अन्तर्वेद'-निवासी कहा है, जो गंगा-यमुना के मध्य-भाग का नाम है। परन्तु [illegible] भाषा शुद्ध अवधी है। रायबरेली, लखनऊ [illegible] में प्रयुक्त होनेवाली भाषा में ही इनकी कविता मिलती है। अतएव इनके निवास-स्थान का निर्णय भाषा के आधार पर किया जाना चाहिए, जो वास्तव में अवधी है और इस कारण इनका अवध-निवासी होना यथार्थ जान पड़ता है।

गिरिधर ने न तो बहुत अधिक कविता ही की है और न उस कविता को इन्होंने ग्रन्थ का रूप दिया है। प्रायः इनकी कविता हमको सर्वसाधारण के मुँह से सिद्धान्त वाक्यों के स्थान पर प्रयुक्त होती हुई श्रवणगोचर होती है। मिश्रबन्धुओं का कथन है कि उनके पुस्तकालय में गिरिधर की ९१ कुण्डलियों का एक संग्रह वर्तमान है। सं० १९६९ वि० में बम्बई के खेमराज श्री कृष्णदास ने अपने वेंकटेश्वर प्रेस से गिरिधर की कविता का एक संग्रह प्रकाशित किया था। इस संग्रह में लगभग ४५० [illegible] हैं किन्तु यदि हम ध्यान-पूर्वक देखें तो यह कुण्डलि[illegible] [illegible] है कि उपर्युक्त संग्रह में २ प्रकार की स्पष्ट हो [illegible] तो प्रारम्भ की लगभग ८८ कुण्डलियाँ कवितायें हैं। एक [illegible] के नीति का विषय अवधी-भाषा है, जिसमें साधारण [illegible] क्षेप ग्रंथ जिसमें पंजाबी-मिश्रित में कहा गया है और दूसरा [illegible] [illegible] विवेचन है। प्रथम विभाग भाषा में दार्शनिक विचारावली का [illegible] [illegible] र अन्तिम भाग की की भाषा प्राञ्जल तथा सुगठित है [illegible] —यह नहीं प्रतीत भाषा बड़ी ही शिथिल तथा क्लिष्ट है [illegible] के लिखे हुए होता कि ये दोनों विभाग एक ही कवि [illegible] हैं। उपर्युक्त संग्रह किन्हीं साधु [illegible] का 'नुक़सान' के संशोधित भी है। सम्भव है, स्वयं उन्होंने [illegible] बेचारी बहू का दूसरे गिरिधर नामक कवि ने शेष कवि[illegible] की प्रथा है जोड़ दी हो। जो कुछ भी हो; गिरि[illegible] पकड़ना पड़ता है इसमें लगभग उतनी ही है जितनी मिश्र[illegible] और अदालती में; और प्रायः इतनी ही कविता इनकी प्र[illegible] यह 'डिजर्शन'

गिरिधर की कविता का विषय निरा[illegible]। वहाँ तलाक़ समय के साधारण कवियों के समान वे शृंग[illegible] पति-पत्नियों तक करने में नहीं तल्लीन थे, वरन उनके नेत्र [illegible] नहीं पहुँच पाते, की साधारण घटनाओं के प्रति खुले [illegible] घटनेवाली घटनायें, नित्य प्रति व्यवहृत [illegible] र करने पर जो परिणाम वस्तुएँ और प्रकृति—ये ही कवि की [illegible] संयुक्त परिवार की किन्तु कवि ने वास्तव में नीति का [illegible] भले ही हज़ार गुण सब वस्तुओं के द्वारा किया है। [illegible] वह कारागार से कम आलम्बन के रूप में किया गया [illegible] कथन के लिए अन्योक्ति का भी [illegible]

कवि ने अपनी कविता के लिए जो छोटे छोटे विषय चुने हैं उनमें से निम्नलिखित दो-एक यहाँ पर दिये जाते हैं—

भारतवर्ष में तम्बाकू खाने और पीने की प्रथा काफ़ी पुरानी हो चुकी है। देहात में विरला ही किसान होगा जिसके घर में हुक्क़ा न हो—यहाँ तक कि जिनको हुक्क़ा नहीं सुलभ है वे भी केवल चिलम से ही अपना काम चला लेते हैं, पर हुक्क़ा या चिलम किसी एक का होना अनिवार्य है। बहुत-से लोग तो इसके इतने व्यसनी होते हैं कि अपना काम-धन्धा भी भूल बैठते हैं और समय-कुसमय जभी देखिए, धुँआ उड़ाते रहते हैं। कवि ने ऐसे ही 'हुक्क़ेबाज़' के ऊपर एक चुटकी ली है—

"हुक्का बाँधो फेंट में, नैगहि लीन्ही हाथ।
चले राह में जात हैं, लिये तमाखू साथ।
लिये तमाखू साथ, गैल को धंधा भूल्यो।
गइ सब चिन्ता भूलि, आगि देखत मन फूल्यो।
कह गिरिधर कविराय जो जमकर आयो रुक्का।
जिय लै गयो जो काल हाथ में रहिगा हुक्का॥"

इस प्रकार गिरिधर छोटे छोटे विषयों-द्वारा अपना इष्ट-साधन करते हैं। नित्य व्यवहार के ऐसे विषय होने के कारण उनकी कविता हमको अधिक सत्य तथा अपने निकट प्रतीत होती है। हुक्क़ा, कमरी, लाठी आदि ग्राम्य जीवन की सहचरी के समान हैं, और ये इतनी साधारण वस्तुएँ हैं कि इन पर कविता करने का विचार एक प्रकार से उपहासास्पद समझा जा सकता है, किन्तु गिरिधर [illegible]लता से उक्त विषयों में कविता का निर्वाह [illegible]ए कमरी के विषय में आप क्या कहते हैं—

[श्रीमती कृष्णाबाई [illegible]रे दाम की, आवै बहुतै काम।
कान्सोंस [illegible]ल बाफता, उनकर राखै मान।
[illegible] मान, बुन्द जहँ आड़े आवै।
किरस्तू [illegible] मोट, राति को झारि बिछावै।
[illegible] कविराय, मिलति है थोरे दमरी।
[illegible]वै साथ बड़ी मरजादा कमरी॥"

[illegible]र तो आप देखिएगा कि कोई भी मनुष्य [illegible] डंडा अवश्य हाथ में रखता है। उसके देखूँ किसे, पुकारूँ [illegible]हाथ-पैर से रहित समझता है। भग्नाशाओ! मुझे[illegible]से बड़ा रक्षक मानता है। गिरिधर पतझड़ हो या हो[illegible]द इस प्रकार करते हैं—

खिलना नहीं मुझे [illegible]बहुत हैं सदा राखिए संग।
कफ़न बीच मुख मलिन[illegible] जहाँ, तहाँ बचावै अंग।
भरे सदन से, सबके स[illegible] झपटि कुत्ता कहँ मारै।
दुश्मन दावागीर, होयँ तिनहूँ को झारै।
कह गिरिधर कविराय, सुनो हो धूर के बाठी।
सब हथियारन छाँड़ि, हाथ महँ लीजै लाठी॥

इसी प्रकार गिरिधर ने जुगनू, मकड़ी, चूहे आदि पर भी कविता की है। लोक-भाषा का प्रयोग गिरिधर की विशेषता है और उस लोकभाषा में नित्यप्रति व्यवहृत होनेवाले साधारण विदेशी शब्दों का बहिष्कार नहीं किया गया है।

पिता और पुत्र में किसी बात पर झगड़ा हुआ है। पुत्र कहता है कि मुझे तुम्हारे साथ रहना मंजूर नहीं, मुझे अलग कर दो। इस झगड़े के लिए गिरिधर जी ने सर्वसाधारण-द्वारा प्रयुक्त एक वाक्यांश का व्यवहार किया है। वे कहते हैं—

"लटापटी होने लगी, मोहि जुदा करि देहु।"

'लटापटी होने' का तात्पर्य है इस प्रकार की बातचीत करना जिसमें एक-दूसरे की बातें स्पष्ट रूप से समझी न जा सकें। एक आदमी बोल रहा है; दूसरा भी उसी बीच में बकने लगा। इससे किसी की भी बात समझ में नहीं आती और एक अजीब अव्यवस्था उठ खड़ी होती है। इसी गड़बड़ के लिए गिरिधर जी ने लटापटी शब्द का प्रयोग किया है। 'जुदा करना' भी लोक-भाषा का प्रयुक्त शब्द है, जिसका तात्पर्य बँटवारा करने से है। आगे पुत्र फिर कहता है—

"लेहौं घर अरु द्वार करौं मैं फ़जीहत तेरी।"

बुरी तरह से डाटने-फटकारने और बुरा भला कहने के लिए उपर्युक्त 'फ़जीहति करना' प्रयुक्त होता है; ग्रामीण जन इस वाक्य का अब भी बाहुल्य के साथ प्रयोग करते हैं।

कभी कभी अपनी भूल का अनुभव करने पर मनुष्य स्वयं अपने ऊपर क्रोधित होने लगता है और अपने ही को बुरा-भला कहने लगता है। इस क्रिया के लिए 'झीखना' शब्द का प्रयोग बहुत ही उपयुक्त है। अवधी में इसी 'झीखना' का रूप 'झंखै' है। एक माता अपने पुत्र से आजिज़ आ गई है। ऐसा पुत्र जो सदैव ससुराल में ही विराजमान रहता हो, भारतीय समाज में लज्जा का कारण है। माता निपुत्र रहना स्वीकार करती है, किन्तु ऐसा पुत्र उसे प्रिय नहीं जो पिता से झगड़ा करके ससुराल में जा रहे—

"कह गिरिधर कविराय मातु झंखै वहि ठाईं।
असि पुत्रिनि नहिं होय बाँझ रहतिऊँ वरु साँई॥"

बकरे का सिर जिस समय काटा जाता है उस समय वह 'मिमियाने' का शब्द करता है। 'मारने पर मिमियाने' का यही तात्पर्य है; किन्तु गिरिधर कवि उस स्त्री के विषय

में कह रहे हैं जो बड़ी ही 'मायामयी' है। उनके कहने का तात्पर्य है कि ऐसी स्त्री के 'काटे का मन्त्र' नहीं है। सिर काटने पर बकरा तो एक बार मिमियाता भी है, किन्तु ऐसी स्त्री के चक्कर में पड़ा हुआ मनुष्य इतना शीघ्र समाप्त होता है कि उसके मुँह से एक बार शब्द भी नहीं निकलता। माया करनेवाली के लिए "मक्करवाली" शब्द बहुत उपयुक्त है—

"मक्करवाली नारि का मारा ना मिमिआइ।
सरिता बोलै मोर सों जियत भुवंगै खाइ॥"

सुन्दर वाणी-वाली फ़ैल मचानेवाली स्त्री जीवित सर्प तक भक्षण कर सकती है। उसका विष असीम है, हाँ, देखने में और बोल-चाल (वाणी) में वह मयूर के समान आकर्षक अवश्य है।

फूहड़ स्त्री के वर्णन में गिरिधर ने हास्य और वीभत्स का बड़ा सुन्दर वर्णन किया है। देखिए; भोजन परोसते समय का हाल—

"काली रोटी कुचकुची, परसी माछी वार।
फूहर वही सराहिए, परसत टपकै लार।"

यद्यपि इस कुण्डलिया में आगे इससे भी अधिक वीभत्सता है, किन्तु इतना उद्धरण पर्याप्त प्रतीत होता है। अन्त में

"कह गिरिधर कविराय, फूहर के याही बैना।
कजरौटा बर होय लुकाठन आँजै नैना॥"

'बैना' शब्द बिलकुल 'लोक-भाषा' का है। इसका तात्पर्य है 'विचित्र चरित्र।' फूहड़ का गुणानुवाद करने के लिए गिरिधर ने इसका उपयुक्त प्रयोग किया है। 'लुकाठा' अधजली लकड़ी को कहते हैं—काजल के स्थान पर अधजली लकड़ी का कोयला प्रयुक्त करना फूहड़पन की पराकाष्ठा है, जिसे गिरिधर की सूक्ष्म पर्यवेक्षण दृष्टि ने देखकर समयानुकूल प्रयोग करने के लिए मस्तिष्क के एक कोने में रख छोड़ा था।

किसी प्रकार दुर्भाग्य के दिन काट देने के लिए अवधी में 'गई कर जाना' वाक्य का प्रयोग होता है। गिरिधर जी ने इसका सफल प्रयोग एक स्थान पर किया है। एक सिंह और मृग में युद्ध ठन गया। दुर्भाग्य से दैव के विपरीत होने के कारण सिंह को भागना पड़ा। वह अपने मित्र अरण्य से कहता है—

"कह गिरिधर कविराय, सुनो हो मेरे अरना।
आजु गई करि जाय, सकारे मैं की हरना॥"

आज तो किसी प्रकार दिन काट देना है, क्योंकि जब विधि ही विपरीत है तब विजय की क्या आशा है? हाँ, प्रातःकाल या तो मैं ही रहूँगा या हरिण ही। वह अन्तिम प्रयोग भी कवि ने बड़े सुन्दर ढंग से किया है। कवि का भाग्यवाद भी उपर्युक्त पंक्तियों से स्पष्ट है—दुर्दिन में सिंह को भी हरिण के सम्मुख से पलायित होना पड़ता है।

जब हम किसी नवीन वस्तु को देखकर कुछ आश्चर्यान्वित होते हैं तब उस वस्तु के विषय में प्रायः प्रश्न करते हैं कि भाई, यह कौन जन्तु है। इसी प्रश्न का अवधी-रूप है "कौन जनारो आय?"

एक स्त्री का पति पुलिस का सिपाही था; उसको इस बात का बड़ा गर्व था; वह केवल अपने पति को ही सबसे बड़ा अफ़सर समझती थी; किन्तु एक दिन ऊँट पहाड़ के नीचे आया; उसे कप्तान साहब के दर्शन हुए। कप्तान साहब अपने सब साज-सामान से दुरुस्त थे। तोशदान, बन्दूक़, पथरकला आदि बन्दूक़ चलाने की सब सामग्री उनके पास थी—उनकी वर्दी आदि भी ठाठदार थी। उस स्त्री ने जब कप्तान को देखा तब उसकी आँखें खुलीं! वह नहाने जा रही थी, रास्ते में कहीं कप्तान साहब दिखलाई पड़ गये—क़वायद हो रही थी। संयोग से उसी के सामने उसके पतिदेव पर दो-एक फटकारें भी पड़ीं—फिर भी उसकी समझ में न आया कि आखिर यह है कौन, जो इतने बड़े आदमी मेरे पति—को डाट बतला रहा है! कप्तान उसे बन्दर जैसे ही जँचे! देखिए—

"सैंया भये सिलंगवा, बाँहर चली नहाय।
देखि डरी कप्तान कह, कौन जनारो आय?
कौन जनारो आय, काह दहुँ पहिरे बाटै।
बिन गुनाह तक्सीर, सैंया को ठाढ़े डाटै।
कह गिरिधर कविराय नवै जस बन्दर भल्ला।
तोसदान बन्दूक हाथ माँ पत्थरकल्ला॥"

बावली के लिए 'बाँहर' प्रयोग अवधी का अपना है, इसी प्रकार 'धौं' (ब्रजभाषा) के लिए अवधी में 'दहुँ' का प्रयोग होता है। उपर्युक्त प्रयोग बहुत ही सामयिक हैं।

एक 'मूषक महोदय' सैर करने (घूमने) निकले। रास्ते में कहीं एक बिलाव पर जब दृष्टि पड़ी तब प्राण बिगड़ उठे। वह रास्ते में क्यों पड़ा? क्या उसे ज्ञात नहीं था कि मूषक जी घूमने निकले हैं? मान लो कहीं मूषक जी का धक्का ही उसे लग जाय उसकी क्या दशा होगी? सिवा कुचल जाने के और कुछ हाथ न आयगा—

"हम निकसत हैं सैर को, तुम बैठ्यो हौ गैल।
तुम बैठ्यो हौ गैल कचरि धक्कन माँ जैहौ।

'कवर जाना' सर्वसाधारण-द्वारा प्रयुक्त वाक्य है, जिसका प्रयोग यहाँ गिरिधर ने हास्यपूर्ण व्यंग प्रदर्शित करने के लिए किया है।

चुगुलखोर के लिए गिरिधर ने गाली चुनी है वह शुद्ध भारतीय है। 'ससुर' शब्द का गाली के तात्पर्य में प्रयोग अवधी में विशेष रूप से होता है। कवि कहता है—

"चुगुल चौकसीदार, 'ससुर' कब हूँ नहिं चूकै।"

इसी प्रकार अपने साथ विश्वासघात करनेवाले के लिए 'घटिता' शब्द का प्रयोग अवधी में होता है। कवि ने चातक को किसी विरहिणी के प्रति घटिहा बनाया है वह कहता है—

"पपिहा त्वहिका मारि हौं, छाँड़ि देहु मम गाँव।
अर्द्धरात को बोलते, लै लै पिउ को नाँव।
लै लै पिउ को नाँव, ठाँव हमरो नहिं भूलै।
कठिन तुम्हारो बोल, जाइ हिरदे में शूलै।
कह गिरिधर कविराय, सुनो हो निर्दय पपिहा।
नेकु रहन दे मोहिं चोंच मूँदे रहु घटिहा॥"

एक जुगनू महाशय की आत्मश्लाघा सुनिए। उनका विचार है कि सूर्य और वे स्वयं बस संसार में प्रकाश के ठेकेदार केवल यही दो हैं। दिन में सूर्य तो रात में जुगनू जी। अगर वे न होते तो रात अँधेरी ही रहती। दिन में सूर्य चाहे जो कुछ थोड़ा बहुत काम चला लेता! पृथ्वी पर प्रकाश के प्रतीक केवल जुगनू जी ही हैं। ऐसे अपने आपमें मस्त रहनेवाले जीवों का नाम गिरिधर 'मन के मगनू" रखते हैं जिस प्रकार ऐंठ ऐंठ कर जुगनू जी बात करते हैं, उसके लिए उन्होंने 'ऐंडि ऐंडि' वाक्य का प्रयोग किया है—

"कह गिरिधर कविराय, सुनो हो मन के मगनू।
ऐंडिऐंडि बतलाहि, सूर्य के सम्मुख जूगनू॥"

उपर्युक्त प्रयोग कितने सफल हैं, यह स्पष्ट ही है। कहीं कहीं 'लोकभाषा' का अधिक आदर करने के कारण ऐसे प्रयोगों में अश्लीलता की भी झलक आ गई है, किन्तु वह ग्राम्य जीवन की प्रधानता होने का कारण भावों के ऊपर दृष्टिपात करने पर हमको यह विदित होता है कि गिरिधर की अन्योक्तियाँ ही सर्वश्रेष्ठ हैं। इन अन्योक्तियों में उन्होंने बड़ी सहृदयता का प्रदर्शन किया है। यद्यपि अन्योक्तियों के विषय भी बहुत ही साधारण हैं—कल्पना की ऊँची उड़ान अथवा गहरी सूझों का समावेश उनमें नहीं है, प्रकृति अथवा (मनुष्य) जीवन की साधारण घटनाओं को लेकर कवि ने नीत्युपदेश करने की चेष्टा की है, फिर भी भावुकता के साथ सरसता का उनमें सुन्दर समावेश है—मर्मस्थल को स्पर्श करने की उनमें विलक्षण शक्ति है।

गिरिधर की कविता से यह स्पष्ट है कि वे भाग्यवादी थे। उन्होंने दुर्दिन और 'समय के फेर के' विषय में बहुत-सी बड़ी सुन्दर अन्योक्तियाँ लिखी हैं। विधि के विपरीत होने पर मनुष्य को किस प्रकार काल-यापन करना चाहिए इस पर भी उन्होंने बहुत-से उपदेश किये हैं। मनुष्य को अपने दुःखों को धैर्यपूर्वक सहन करना चाहिए, यही उनके विचार से सर्वश्रेष्ठ उपाय है। विधि की प्रबल शक्ति के सम्मुख अपना सिर झुका देने के अतिरिक्त और कोई उपाय नहीं है। जब तक सौन्दर्य-पूर्ण केतकी का पुष्प विकसित नहीं होता तब तक भ्रमर को पत्र-पुष्प-हीन करील की छाया पर ही सन्तोष कर लेना उचित है—

"भौंरा वह दिन कठिन है, सुख-दुख सहै शरीर।
जब लग फूलै केतकी, तब लग बैठु करीर॥"

मनुष्य समाज का जीव है। दुर्दिन में जो अवलम्ब उसके सम्मुख आता है वह उसी का आश्रय ले लेता है—ऐसे समय में उसका एक विपत्ति से दूसरी में जा पड़ना कुछ कठिन नहीं है। एक तो वह विपत्ति का मारा है, दूसरे सहानुभूति की खोज में यदि किसी दुर्जन से उसका पाला पड़ गया तो फिर वह कहीं का न रहेगा—अवश्य ही उसकी चिकनी-चुपड़ी बातें उसका सर्वनाश कर देंगी। गिरिधर ऐसे विपद्ग्रस्तों को किन शब्दों में सावधान करते हैं? देखिए—

"रहिए लटपट काटि दिन, बरु घामें माँ सोय।
छाँह न वाकी बैठिए, जो तरु पतरो होय।
जो तरु पतरो होय, एक दिन धोखा देहै।
जा दिन बहै बयारि, टूटि तब जर से जैहै।
कह गिरिधर कविराय, छाँह मोटे की गहिए।
पाता सब झरि जाय, तऊ छाँहै माँ रहिए॥"

उपर्युक्त कुण्डलिया में 'मोटे' शब्द का प्रयोग बहुत उपयुक्त है। मोटा वृक्ष जल्दी नष्ट नहीं होता और उधर शक्तिशाली धनवान् मनुष्य को भी 'मोटा असामी' कहते हैं। इस थोड़े से श्लेष ने कथन की सुन्दरता को बढ़ा दिया है।

दावाग्नि के कारण वन जल रहा है। एक अगर का वृक्ष भी उसमें अपना शरीर नष्ट कर रहा है। शरीर के नष्ट होने का तो उसे विशेष दुःख नहीं है, क्योंकि वह

तो आज न सही, कल नष्ट होता; दुःख यही है कि उसकी सुगन्धि का कोई आदर करनेवाला उसे न मिला ! उस निर्जन वन में उसके गुण का ग्राहक एक भी नहीं दृष्टिगोचर होता—गीदड़ और हिरन भला क्या उसके गुण को समझेंगे ? वन की निर्जनता इस समय उसे बहुत खटक रही है, क्योंकि उस स्थान पर किसी के आने की भी सम्भावना नहीं है जो कम से उसकी राख को ही कुछ आदर देता कि हाँ, यह महासुगन्धित अगर का अवशेष है। किन्तु वहाँ तो अकौआ (मदार) और अगर की राख का एक में मिलकर नष्ट हो जाना अवश्यम्भावी है, फिर भला, अगर क्या आशा करे ?

"साँई अगर उजारि में जरत महा पछिताय।
गुण गाहक कोऊ नहीं जाहि सुवास सुहाय।
जाहि सुवास सुहाय सून वन कोऊ नाहीं।
कै गीदर कै हिरन सु तो कछु जानत नाहीं।
कह गिरिधर कविराय बड़ा दुख यहै गुसाईं।
अगर आक की राख भई मिलि एकै साँईं॥"

हीरा कितनी बहुमूल्य वस्तु है, यह सभी जानते हैं। खान से निकलने पर हीरे को आशा थी कि संसार उसकी चमक-दमक, गुण और मूल्य के कारण उसका आदर करेगा किन्तु दुर्भाग्यवश जौहरी ने उसको एक ऐसे स्थान पर बेच दिया जहाँ उसके महत्त्व को समझनेवाला कोई न था। उसे खरीदनेवाले ने उसमें एक छेद करके उसे कमर में बाँध लिया। छिन्न-भिन्न शरीर के हो जाने कारण और जरा भी आदर-मान न पाने के कारण हीरा कितना दुखी है, यह कोई ऐसा ही मनुष्य समझ सकता है जो गुणवान् पंडित होने पर भी दिनों के फेर से मूर्खों के बीच में जा फँसा हो ! उसे बार बार अपने देश की याद आती है, जहाँ उसी के समान अनेक गुणी विद्यमान हैं—

"हीरा अपनी खानि को, बार बार पछिताय।
गुण कीमत जानै नहीं, तहाँ बिकानो आय।
तहाँ बिकानो आय, छेद करि कटि में बाँध्यो।
बिन हरदी बिन लोन, मांस ज्यों फूहर राँध्यो।
कह गिरिधर कविराय, कहाँ लगि बरिये धीरा।
गुण कीमति घटि गई, यहै कहि रोयो हीरा॥"

एक तो हल्दी-नमक की कमी थी ही, दूसरे फूहड़ के हाथ से मांस का रंधन हो गया ! बस, सब मामला चौपट हो गया। एक तो दिन वैसे ही बुरे, दूसरे शरीर पर भी आघात ! फिर यदि हीरा न रोवे तो आश्चर्य की बात है ! हीरे के रोने ने उसकी करुणपूर्ण दशा को स्पष्ट कर दिया है।

हंस ने अब तक जिस सरोवर में रहकर बड़े आदर-मान से अपने दिन व्यतीत किये थे, उसके दुर्भाग्य से वह सरोवर अब सूख गया है—उसका आश्रयदाता अब कोई नहीं है इसलिए उसको उस स्थान पर रहना अब श्रेयस्कर नहीं जान पड़ता है। अब जब वह निराश्रित है, निश्चय ही नीच बगुले उसको अपमानित करने की चेष्टा करेंगे। उसका वह आदर अब नहीं हो सकता जो पहले था और यह देखकर संसार अवश्य अब उसकी हँसी उड़ायेगा। अतएव ठीक यही है कि अब इस स्थान का त्याग किया जाय। मान की कमी अभी से हो गई है; अब इससे भी घट जायगी तब क्या होगा—इसकी शंका हंस के हृदय में अभी से व्याप्त है।

"हंसा हिर रहिए नहीं, सरवर गये सुखाय।
कालिह हमारी पीठि पै, बगुला धरिहैं पाँय।
बगुला धरि हैं पाँय, इहाँ आदर नहिं ह्वै हैं।
जगत हँसाई होय, बहुरि मन में पछितैहैं।
कह गिरिधर कविराय, दिनो दिन बाढ़े संसा।
याहू से घटि जाय, तबै का करिहैं हंसा॥"

'कालिह' शब्द कवि ने निकट भविष्य के अर्थ में प्रयुक्त किया है। जनसाधारण में प्रयुक्त होनेवाला यह एक बड़ा ही व्यंजनात्मक शब्द है, इसके द्वारा भविष्य की गम्भीर परिस्थिति का आभास मिलने में हमें देर नहीं लगती।

अधिकारीवर्ग का अत्याचार प्रसिद्ध ही है। पुलिस-चौकीदार जिस प्रकार की मनमानी देहातों में करते हैं वह सभी जानते हैं। ऐसे ही किसी 'चौकीदार' का चित्र कवि ने एक कुण्डलिया में खींचा है—

"पगड़ी सूही बाँधिकै, भयो सिपाही लोग।
घास बेंचिकै खात हैं, भयो गाँव में रोग।
भयो गाँव में रोग, पूँछ नौकरी देखावहु।
मन में बड़े हो छैल, राग पनघट पर गावहु।
कह गिरिधर कविराय, हीन सुनते है चूहीं।
नये सिपाही, आनि बाँधि कै पगड़ी सूही॥"

देहात में रहनेवाले उपर्युक्त चौकीदारों को बहुत कम वेतन मिलता है और इस कारण प्रायः वे खेती आदि करके अपना जीवननिर्वाह करते हैं। गिरिधर के सिपाही महोदय घास बेंचकर अपना निर्वाह करते हैं। किन्तु इस हीनतम जीविका का आश्रय लेकर भी वे अपनी शान गाँठने से नहीं

चकते हैं—गाँव में 'रोग' के समान हैं—सभी उनसे भयभीत रहते हैं; पर वास्तव में वे निकृष्टतम प्राणी हैं, यदि उनसे हीन कोई प्राणी खोजा जाय तो सम्भवतः चुहिया के अतिरिक्त और कोई न मिलेगा। कवि ने बड़ी ही उपयुक्त छींटेबाज़ी की है।

बाबा तुलसीदास के समान गिरिधर के भी विचार स्त्रियों के प्रति उच्च नहीं हैं। इनके विचार से पिता पुत्र के वैमनस्य का प्रमुख कारण स्त्रियाँ ही हुआ करती हैं। इसी कारण आपस में बँटवारा भी हो जाता है;

"बेटा बिगरो बाप सों करि तिरियन को नेह।
लटापटी होने लगी, मोंहि जुदा करि देहु।"

साधारण समाज में ही नहीं, रामायण और महाभारत के युद्धादि का प्रमुख कारण ये स्त्रियों को ही मानते हैं—कैकेयी और द्रौपदी के कारण हीं उपर्युक्त कालों में दुख का सृजन हुआ था—कैकेयी के विषय में ये कहते हैं—

"रही न रानी कैकयी, अमर भई यह बात।
कवन पुरबुले पाप ते, वन पठयो जगतात।
वन पाठयो जगतात; कन्त सुरलोक सिधारेउ।
तेहि सुतकाजे मरेउ, राउ नहिं वदन निहारेउ।
कह गिरिधर कविराय, भई यह अकथ कहानी।
यश अपयश रहि गयेउ, रही नहिं केकयि रानी।।"

वास्तव में केवल कर्मों के द्वारा यश और अपयश का उपार्जन ही संसार में रह जाता है। कैकेयी की दुर्बुद्धि ने उसके लिए अपयश अर्जित किया, जो आज तक संसार में विद्यमान है। एक स्त्री की दुर्बुद्धि का कितना बड़ा परिणाम हो सकता है, यही कवि के दिखलाने का तात्पर्य है। इसी प्रकार कवि द्रौपदी को कौरव-पाण्डव-कुलों का नाश करनेवाली बतलाता है। किन्तु ऐसा अवश्य प्रतीत होता है कि गिरिधर स्त्रियों को स्वतन्त्रता और आवश्यकता से अधिक शक्तिमती नहीं देखना चाहते। वे उनकी शक्ति को मारकर उनको बन्दी बना रखना चाहते हैं।

"नारी अतिबल होत हैं, अपनी कुलहिं विनाश।
कौरव-पाण्डव-वंश को, कियो द्रौपदी नाश।
कियो द्रौपदी नाश, कैकयी दशरथ मारेउ।
राम लषण से पुत्र, तेउ बनवास सिधारेउ।
कह गिरिधर कविराय, सदा नर रहैं दुखारी।
सो घर सत्यानाश जहाँ, हैं अतिबल नारी।।"

और भी—

"नारी पर घर जाइ, अरे यह भला न मानो।
जो घर रहे निदान, चाल भाषा पहिचानै।
भाषाचाल पिछानि, बहुरि उतपात न होई।
जो कुछ लागै दोष, अरे सुन आवै रोई।
कह गिरिधर कविराय समय पर देत हैं गारी।
मरा पुरुष जिय जान, जबै पर घर गई नारी।।"

गिरिधर स्त्री को घर से भी नहीं निकलने देना चाहते—उनका उसके ऊपर अणुमात्र भी विश्वास नहीं है—यहाँ तक कि उनको इस बात का भय है कि यदि स्त्री दूसरों के घर गई, तो फिर पति की ख़ैर नहीं है! सम्भवतः ये सब बातें गिरिधर ने एक ऐसे समाज के विषय में कही हैं जिसमें स्त्रियाँ सम्पूर्ण रूप से अशिक्षिता और अपनी जिम्मेदारी से नासमझ हैं, क्योंकि उच्च, शिक्षित समाज के विषय में तो न ये बातें कही जा सकती हैं और न निम्नलिखित फूहड़ का उदाहरण ही खोज निकाला जा सकता है—

"काली रोटी कुचकुची, परती माछी बार।
फूहर वही सराहिए, परसत टपकै लार।"

अतएव उनके उपर्युक्त स्त्रियों के प्रति निश्चित सिद्धान्त को हम केवल एक समाजविशेष के ऊपर ही लागू समझते हैं।

ऐसी बात नहीं है कि गिरिधर अपने समय के प्रभाव से बिलकुल ही अछूते हों। उन्होंने शृंगाररस और प्रेम के विषय में भी थोड़ा-बहुत दखल दिया है और थोड़ा होने पर भी वह सुन्दर है। किन्तु अपने विषय को वे वहाँ भी नहीं भूले हैं—समाज को प्रेम के विषय में जितना सावधान रहना चाहिए उसकी शिक्षा भी वे साथ ही साथ देते चलते हैं। पहली बात जो वे सिखलाते हैं वह 'सन्तोष' है। मनुष्य को सन्तोषी होना चाहिए। यदि उसमें उपर्युक्त गुण वर्तमान है तो उसका पारिवारिक जीवन भी सुखमय होगा।

अन्त में हम देखते हैं कि यद्यपि गिरिधर की कविता विद्वत्ता अथवा पाण्डित्यपूर्ण नहीं है, तथापि उसमें भावुकता तथा सहृदयता का पुट पर्याप्त मात्रा में विद्यमान है। वे हमारे सम्मुख अपने समय के जनसाधारण के प्रतिनिधि के रूप में आते हैं और उस जनसाधारण के मनोभावों और प्रवृत्तियों को व्यक्त करने में वे पूर्णतया सफल हुए हैं। साहित्य का एक बहुत बड़ा अंग जनसाधारण की संस्कृति-द्वारा निर्मित होता है और इस दृष्टि से गिरिधर का स्थान साहित्य-निर्माण-कर्ताओं में अपना निज का महत्त्व रखता है।

ब्रह्मसूत्र के शक्ति-भाष्य का परिचय

लेखक, पंडित काशीनाथ रा० तिलक

सिद्धान्त

पीछे शक्ति-भाष्य-सम्बन्धी कुछ विशेषताओं का उल्लेख कर चुके हैं। इसके अनन्तर उन सिद्धान्तों का उद्घाटन यहाँ किया जायगा, जिनका विकास भाष्यकार ने अपने भाष्य के अन्तर्गत किया है। प्रायः प्रत्येक भाष्यकार ने अपने सिद्धान्तों का ब्रह्मसूत्र के आधार पर प्रतिपादन किया है, अथवा ब्रह्मसूत्र को स्वकीय सम्प्रदायसम्मत सिद्धान्त पर सिद्ध किया है। उदाहरणार्थ, जिस प्रकार भगवान् शङ्कराचार्य ने अपने शारीरिक भाष्य में केवलाद्वैत ब्रह्म का, विशिष्टाद्वैतवादी श्री रामानुजाचार्य ने अपने श्री-भाष्य में सूक्ष्म चिदचिद् विशिष्ट ब्रह्म का, पुष्टिसम्प्रदाय के आचार्य श्री महाप्रभु वल्लभाचार्य ने अपने अणुभाष्य में शुद्धाद्वैत का, श्री निम्बार्काचार्य ने भेदाभेदवाद का और श्री मध्वाचार्य ने द्वैतवाद का प्रतिपादन किया है, उसी प्रकार शक्तिभाष्यकार ने समयिमत के सिद्धान्तों का निरूपण ब्रह्मसूत्र के आधार पर किया है।

नित्य संबंध चिदचिद्रूपात्मक ब्रह्म

इस परिदृश्यमान जगत् का उपादान कारण क्या है, इस विषय में अनेक वाद प्रचलित हैं। जर्मन-देश-निवासी पंडितवर हेकल के समान अज्ञेयवादी विद्वान् जड़ प्रकृति को इस जगत् का कारण प्रतिपादन करते हैं; केवलाद्वैतवादी चिन्मात्र ब्रह्म को जगत् का कारण कथन करते हैं; सांख्य अनित्य सम्बन्ध रखनेवाले प्रकृति पुरुष को जगत् का कारण बतलाते हैं; कणाद निस्सम्बन्ध ईश्वर और परमाणु से जगत् की उत्पत्ति का विधान करते हैं; पर समयिमतानुयायी विद्वान् जगत् के कारण के सम्बन्ध में नित्य सम्बन्ध-चिदचिदात्मक शक्ति की ओर निर्देश करते हैं।

जड़ाद्वैतवादियों के प्राकृतिक कारण का खंडन यह कहकर किया जा सकता है कि चैतन्य के सम्बन्ध के बिना एक मात्र केवल अचित् का कर्तृत्व सिद्ध नहीं किया जा सकता है, क्योंकि संसार में जहाँ जहाँ जड़ में क्रिया होती जाती है, वहाँ-वहाँ चैतन्य का सम्बन्ध भी देखने में आता है; उदाहरणार्थ 'रथ चलता है' इस वाक्य में रथ की गति का आधार स्वयं रथ नहीं है, वरन चैतन्य पशु या सारथी है। कणाद के निस्सम्बन्ध परमाणु और ईश्वर के कारणवाद का खंडन यह कहकर किया जा सकता है कि सम्बन्ध के बिना ईश्वर परमाणु में गति उत्पन्न नहीं कर सकता है; और न किसी प्रकार का सम्बन्ध सर्ग के आदि में कल्पित किया जा सकता है। अचेतन परमाणु में ज्ञान नहीं, जिसका कि सम्बन्ध क्रिया के साथ होना आवश्यक है; इसलिए यह वाद भी तर्क की कसौटी पर कसने पर सच्चा नहीं उतरता है। प्रकृति पुरुष में अनित्य सम्बन्ध माननेवाले सांख्य का खंडन यह कहकर किया जा सकता है कि विशेषण अनित्य मानने पर विशिष्ट की अनित्यता भी स्वीकार करनी पड़ेगी।

सत्ता किस पदार्थ का नाम है ?

सत्ता पदार्थ दो प्रकार का है, अनित्य सत्ता और नित्यसत्ता। घटपटादि पदार्थों से साधारण्य रखनेवाली सत्ता अनित्य और असंख्य है, क्योंकि उसके आश्रय अनन्त हैं। नित्यसत्ता तीन प्रकार की है—अपरिणामिनी, समपरिणामिनी और प्रकृतिपुरुषोभयवृत्तिरूपा। समपरिणामिनी सत्ता का दर्शन विषम परिणाम के द्वारा होता है; किन्तु विषमपरिणामिनी सत्ता विषम परिणाम विशिष्ट में पर्यवसान करनेवाली नित्य नहीं है, क्योंकि प्रलयावस्था में उसका अभाव हो जाता है। पहली चिन्मात्ररूपा, दूसरी अचिन्मात्ररूपा और तीसरी चिदचिन्मात्ररूपा है। सत्ता कालसम्बन्ध की अपेक्षा रखती है, और विशेषण भेद के प्रयोग से उसमें भेद हो जाता है। काल अभिमानवाली त्रिगुणात्मिका प्रकृति के रजोगुण का अंश है। उभयात्मक ब्रह्म और पुरुष में कालसम्बन्धिनी विशेषरूपा

सत्ता नित्य ही है; पर केवल प्रकृति में वह नित्य सत्ता और अनित्य सत्ता भेद से दो प्रकार की हो जाती है, क्योंकि विषमपरिणामविशिष्ट सत्ता की अनित्यता पूर्व में प्रतिपादित की जा चुकी है। महत् से लेकर स्थूल कार्य पर्यन्त सत्ता अनित्य ही है। क्योंकि उनके कारणावस्थापन्न होने पर कारण सत्ता से ही उनकी सत्ता मानी जाती है। यद्यपि सम्बन्ध और सम्बन्धी रूप से परस्पर दोनों का भेद स्वीकृत हुआ है, तथापि अन्ततोगत्वा सम्बन्ध सम्बन्धी से अतिरिक्त नहीं है।

यदि यह कहा जाय कि "असद्वा इदमग्र आसीत्"—पहले यह सब असत् था—और "नासदासीन् नो सदासीत्"—न सत् था और न असत् था—ये दोनों श्रुतियाँ व्यर्थ हो जावेंगी, क्योंकि सत् सदा सर्वत्र विद्यमान है। तब इसके उत्तर में यह कहा जा सकता है कि सत्ता के त्रिविधात्मक होने पर एकविधसत्तावाले पदार्थ का भी अन्य सत्ता का वियोग लक्ष्य रखकर कहीं असत् पद से प्रतिपादन हुआ है। क्योंकि प्रकृति-पुरुष-साधारणभूता जो एक सत्ता है वही चिदचित् को परस्पर सम्बन्धित करती है। यह सम्बन्ध भी उसी प्रकार नित्य है जिस प्रकार कि नित्य संयोगवादियों के मत में दो विभु पदार्थों का संयोग नित्य है। यद्यपि प्रकृति नित्य सत्तावती है तथापि उपर्युक्त अनित्य सत्त्व से कहीं असती कही गई है, और एक मात्र जड़ सत्ता के विरह से ब्रह्म भी कहीं असत् रूप में कहा गया है, जैसा कि यह श्रुति प्रतिपादन करती है—"असद् वा इदमग्र आसीत्।" इसलिए नासदीय सूक्त के उपर्युक्त मन्त्र का यह भाव है कि ब्रह्म न केवल सत् है और न केवल असत् है।

दूसरे नासदीय सूक्त में सत् पद अपरिणामी सत्ता का और असत् परपरिणामी सत्ता का बोधक है। "सदेव सौम्येदमग्र आसीत्"—इस श्रुति में 'एवकार' पद से सत्ता-मात्र विवक्षित हुई है, पर वह सत्ता परिणामी या अपरिणामी है इसकी अवगणना की गई है। "असद्वा-इदमग्र आसीत्" इस श्रुति में 'वा' पद के 'एव' के समानार्थक होने से असत् पद का अर्थ अनित्य सत्ता भाव है। "ततो वै सदजायत" इस श्रुति में सत् पद अनित्य सत्ता का बोधक है। इसलिए "असद् वा इदमग्रआसीत्" इस श्रुति-वाक्य से असत् पद का भी सत्त्व प्रतिपादित हुआ है। क्योंकि अनित्य सत्ता भाव वाले पदार्थ का कारण रूप में कथन उसको नित्य सत्त्व प्रदान करता है। यदि यह बात न स्वीकार की जावे तो आसीत् पद का स्वारस्य नष्ट हो जायगा।

"तद्ध्येक आहुः; असदेवेदमग्र आसीत्" यह परमत का अनुवाद करनेवाली श्रुति एक मात्र निपट असत्, गगन कुसुमादि के समान वस्तु से सत् का जन्म कथन करती है, और "कथमसतः सज्जायेत" यह श्रुति उसके अपादानत्व का निषेध करती है न कि सदसत् स्वरूप ब्रह्म से सत् के जन्म का निषेध करती है। "नासदासीन्नोऽसदासीत्" यह मन्त्र सदसत् स्वरूप ब्रह्म का प्रतिपादन करता है। ब्रह्म के रूप दो प्रकार के हैं—मूर्त और अमूर्त अथवा मर्त्य और अमृत (बृह० २-३) एक देव हर क्षराक्षर का ईश है, अथवा संयुक्त क्षराक्षर स्वरूप ईश व्यक्ताव्यक्त विश्व को धारण किये हुए है, यह वेद बार बार पुकार पुकार कर कह रहे हैं। इसलिए सदसत् अथवा चिदचित् का नित्य सम्बन्ध सिद्ध है। वही उपयुक्त चिदचित् स्वरूप ब्रह्म आद्य का जन्मदाता और वेद की योनि है। वह ब्रह्मशक्ति ही है। प्रपंचसार नामक ग्रन्थ में भगवान् शंकराचार्य ने इसी सिद्धान्त को प्रदर्शित किया है। क्योंकि प्रलय के अन्त में पहले प्रधान से ब्रह्मा, विष्णु और हर की उत्पत्ति हुई है। ये तीनों मूर्तियाँ भिन्न-भिन्न गुणों के आधार पर जगत् की रचना, पालन और संहार करती हैं। प्रधान का दूसरा नाम अक्षर है, जैसा कि अपने जन्म-सम्बन्धी कथा को पूछनेवाले ब्रह्मादिकों के प्रति श्रीकृष्ण के वचन से इसी ग्रंथ में सिद्ध होता है—"सृष्टि, स्थिति और संहार के कारण भूत तुम लोग अक्षर से उत्पन्न हुए हो"—तब ब्रह्मा ने श्रीकृष्ण से पूछा—"अक्षर क्या है, कहाँ से उत्पन्न हुआ है और उसका स्वरूप क्या है? इसके उत्तर में भगवान् कृष्ण ने कहा—

"मूल मन्त्र और उनके विकृत मन्त्र ये सर्व अक्षरात्मक हैं। अक्षर से तात्पर्य नित्य सम्बन्धित प्रकृति पुरुष से है। उनका सम्बन्ध काल के द्वारा घटित हुआ है। काल प्रकृति का रजोअंश विशेष है। उसकी शक्ति बल नाम की है। काल का पृथक् ग्रहण इसलिए किया गया है कि वह दम्पति स्वरूप प्रकृति पुरुष का, बाहु के समान अंगभूत, उन दोनों को परस्पर में सम्बन्धित करता है। उस अक्षर से ब्रह्मादि देवों की उत्पत्ति हुई है। फिर भी उसका अतिवर्त्तनीयत्व सिद्ध है। यदि कोई यह शंका करे कि प्रधान पद से यहाँ सांख्य शास्त्र में कही हुई अक्षर नाम की जड़ प्रकृति ही ली गई है तो उसके समाधान में यह कहा जा सकता है कि वह स्वयं अपनी ज्ञाता है और न कि अन्य के द्वारा ज्ञेय है। इस वचन से

उसका निरतिशय सर्वज्ञत्व प्रतिपादित हुआ है। आदित्य आदि सकल ज्योतियों का वह स्वरूप है—इस कथन ने उनकी स्वप्रकाशता सिद्ध है। क्षरण से शून्य होने पर वह अक्षर है। यह अक्षर पद की निरुक्ति उसकी नित्यता प्रकट करती है। वह शक्तित्व से एक होने पर भी प्रकृति, पुरुष और काल रूप से पृथक् पृथक् कथन की जाने से तीन प्रकार की है। श्रुति स्मृति आदि ग्रन्थों में शक्ति ही ब्रह्म, परमात्मा, अक्षर इत्यादि अनेक नामों से उपदिष्ट हुई है। यदि कोई यह शंका करे कि नीर-क्षीर-संयोग के समान काल सम्बन्ध से प्रकृति पुरुष को सावयवत्व प्राप्त हो जायगा तो इसके उत्तर में यह कहा जा सकता है कि जिस प्रकार दिक्कालादि विभु पदार्थ न्याय शास्त्र के मतानुसार सम्बन्धित होने पर भी सावयव नहीं होते हैं, उसी प्रकार काल सम्बन्ध के कारण प्रकृति पुरुष को सावयवत्व न प्राप्त होगा, क्योंकि वे दोनों विभु हैं।

यह ही सम्बन्ध सत्ता विशेष रूप है, यह पूर्व में कथन किया जा चुका है। यदि कोई यह शंका करे कि सर्वकाल सम्बन्धरूपा सत्ता की दिग् आकाशादि पदार्थों से विशेषता न रहने से उनका ऐक्यापत्य हो जायगा। तो इसके उत्तर में यह कहा जा सकता है कि उनके मत में सम्बन्ध और सम्बन्धियों का परस्पर भेद स्वीकार किया गया है। कार्य-भेद से ही सत्ताभेद की सिद्धि व्यक्त है। संसार में जितने कार्य देखे जाते हैं उनमें चिदचित् स्वरूप अथवा सदसत् स्वरूप प्रकृति पुरुष का साहित्य देखा गया है। यह सदसत् सम्बन्ध सृष्टि के बाद भी प्रत्यक्ष दृष्टिगोचर हो रहा है। क्योंकि आज भी छिलकेवाले चने में ही अंकुर की उत्पत्ति देखने में आती है, न केवल असत छिलके और न केवल सत् चना से। चना की अंकुरोत्पत्ति में चिदचित् शक्ति का अनुमान करना ठीक है। इसलिए नित्य सम्बन्ध चिदचित् स्वरूपा शक्ति, ब्रह्मा की जन्मदात्री, और वेदवक्तृ होने से ब्रह्म है, यह बिना किसी संकोच से कहा जा सकता है।

परिणामवाद

शाक्तमत में यह जगत् शिव-शक्ति के सम्मेलन का ... है, इसलिए यह जगत् सत्य है, मिथ्या नहीं। जिस प्रकार दूध दही में परिणत हो जाता है, उसी प्रकार चित् चिदात्मक शक्ति जगत् रूप में परिणत हो जाती है। चित्-रूप में अपरिणामी रहने पर भी उसके अचित् अंश में परिणाम होता है। भगवान् शंकराचार्य ब्रह्म से जगत् की उत्पत्ति की उपपत्ति देते समय विवर्त्तवाद का आश्रय लेते हैं। पर इस मत का खंडन शक्तिभाष्य में अनेक स्थानों पर किया गया है। इसका कुछ आभास पूर्व में दिया जा चुका है। संसार में रज्जु में सर्प उत्पन्न होता है न कि रज्जु से सर्प उत्पन्न होता है, इस वाक्य का व्यवहार विवर्तवाद के अनुसार ब्रह्म के जगत् का उपादान कारण होने में बाधक है। जब सदसत् विलक्षण माया नाम के किसी पदार्थ की सिद्धि ही नहीं हो सकती है, तब ब्रह्म से उसका अभेद या भेदाभेद किसी प्रकार का सम्बन्ध स्थापित नहीं किया जा सकता है। इतना ही नहीं, निर्गुण ब्रह्म माया का अधिष्ठाता नहीं हो सकता है, और न असत् माया जगत् की उपादान हो सकती है। यदि अप्रत्यक्ष और अनुपादानात्मक इन्द्रियों के अधिष्ठाता जीव के समान ईश्वर नाम से अभिहित, मायोपाधिक ब्रह्म, माया में अधिष्ठित हो सकता है, तो जीव के समान उसको सुखदुःखात्मिक भोगों की प्राप्ति हुए बिना न रहेगी। यदि यह कहा जाय कि ब्रह्म के प्रकाश रूप को तिरोधान करनेवाली विशुद्ध सत्त्वप्रधान माया के सम्बन्ध से वह उपाधिमान हो सकता है; तो इसके उत्तर में यह कहा जा सकता है कि उक्त स्वरूप तिरोधान विद्यमान प्रकाश का नाश है, अथवा मेघाच्छन्न सूर्य के समान उसकी शक्ति का आवरण है? प्रथम पक्ष स्वीकार करने पर स्वरूप के नाश से ब्रह्म का विनाश हो जावेगा, और द्वितीय पक्ष के स्वीकार करने पर ईश्वर असर्वज्ञता दोष से दूषित हो जावेगा। सारांश यह है कि शक्तिभाष्य में इस प्रकार की युक्तियों के बल पर विवर्त्तवाद का खंडन किया गया है।

एक जीववाद

भगवान् शंकराचार्य के समान तन्मतानुयायी विद्वान् जीव को ब्रह्म से अनतिरिक्त मानते हैं। जिस प्रकार एक सूर्य का अनेक जलपूर्ण घटों में प्रतिबिम्ब पड़ता है, उसी प्रकार प्रकृति के प्रथम विकार बुद्धि में प्रतिबिम्बित ब्रह्म ही जीव संज्ञा को प्राप्त होता है। सांख्यादि शास्त्र जीव की अनेकता किंवा नानात्व के प्रतिपादक हैं। पर प्रतिबिम्बवाद के आधार पर वेदान्तदर्शन के कर्ता महर्षि व्यास एक जीववाद के प्रतिपादक प्रतीत होते हैं। जिस प्रकार अनेक घटगत सूर्य प्रतिबिम्बों को देखकर सूर्य के नानात्व का प्रतिपादन करनेवाला जीव संसार की दृष्टि में अपने को उपहासास्पद बनाता है, उसी प्रकार उक्त शास्त्रकारों की भी दशा है। जिस प्रकार एक घटगत जल के कम्पित होने पर उसमें प्रतिबिम्बित सूर्य कंप की

प्राप्त होता है पर आकाशस्थ सूर्य पर उसका कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ता है, उसी प्रकार उपाधिगत दोष से ब्रह्म में किसी प्रकार की संकरता नहीं उत्पन्न होती है। वास्तव में जीव एक है, पर उपाधिभेद से वह नानात्व को प्राप्त हो सकता है, यह मत सर्मयसिद्धान्त के अनुकूल है। दूसरे जीव के नानात्ववाद मानने पर एक वस्तु के विज्ञान से सब वस्तुओं का विज्ञान हो सकता है; यह श्रुतिप्रतिपादित प्रतिज्ञा भंग हो जायगी। क्योंकि परमात्मा नामक आत्मविशेष के ज्ञान होने पर भी उससे भिन्न अन्य आत्माओं का ज्ञान न होने से वह प्रतिज्ञा अधूरी रहेगी। इसलिए आत्मा परमात्मा से भिन्न नहीं है, इस आश्मरथ्य नामक आचार्य के मत को माने बिना गत्यन्तर नहीं है। वह एक जीववाद के पक्ष में है।

जीव विभुवाद

विशिष्टाद्वैत प्रवर्त्तक वैष्णवादि आचार्यगण जीव को अणु परिमाणवाला मानते हैं। पर समयिमत जीव को ब्रह्म के समान मानता है। इस शक्तिभाष्य में भगवान् शंकराचार्य के समान जीव का विभुत्व प्रतिपादन किया गया है। वैष्णवादि आचार्यों का मत इसके विरुद्ध है। वे पहले जीव का अणुत्व प्रतिपादन कर अन्त में उसके विभुत्व का खंडन करते हैं। पर प्रायः यह देखा जाता है कि ग्रंथकार पहिले पूर्व पक्ष का स्थापन कर बाद को उसका खंडन करता है और अन्त में अपने सिद्धान्त की स्थापना करता है। इसलिए वैष्णवादि आचार्यों का "उत्क्रान्ति गत्यधिकरणम्" के सूत्रों का व्याख्यान उपर्युक्त सिद्धान्त के विपरीत है, अतएव वह त्याज्य है। दूसरे ऐतरेय उपनिषद् के अनुसार ब्रह्म ही या आत्मा ही पुरुषरूपी पुतले के भीतर प्रवेश कर गया है। इसलिए जब आत्मा सर्वव्यापक है तब जीव भी सर्वव्यापक है, जैसा कि गीता कहती है :—"नित्यः सर्वगतः स्थाणुरचलोयं सनातनः"। शास्त्र में कहीं जीव का जो अणुत्व प्रतिपादन किया गया है, वह उसके बुद्धि उपाधि के कारण है, जैसा कि ब्रह्म भी कहीं कहीं अणुरूप में प्रतिपादन किया गया है; पर वास्तव में वह विभु है।

ब्रह्म-विद्या में स्त्रियों का अधिकार

एक पक्ष का कहना है कि श्रुति-स्मृति पुराणादि वचनों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि ब्रह्मविद्या में स्त्रियों को अधिकार प्राप्त नहीं है। नृसिंहतापिनीय श्रुति का वचन है कि "सावित्री, प्रणव, वेद और लक्ष्मी स्त्री शूद्र की चाहना नहीं करती है।" दूसरे पक्ष का कथन है कि श्रुति में ब्रह्म विद्या के ज्ञाताओं में गार्गी, मैत्रेयी आदि नामों का उल्लेख होने से स्त्रियों का अधिकार ब्रह्म-विद्या में सिद्ध होता है। इस पर प्रथम पक्ष का कहना है कि गार्गी, मैत्रेयी अपवादस्वरूप हैं। और श्रीमद् भागवत के इस वचन के अनुसार—"स्त्री शूद्र और द्विज बन्धुओं को वेद पढ़ना वर्जित है"—सामान्य रूप से ब्रह्म-विद्या में स्त्रियों का अधिकार नहीं है। इस पर दूसरा पक्ष कहता है कि तान्त्रिकोपासना में जिसकी परिगणना ब्रह्मविद्या के अन्तर्गत की जाती है, स्त्रियों का अधिकार निर्बाध रूप से है। इस पर प्रथम पक्ष का कहना है कि जब स्त्री स्वतन्त्र नहीं है यह मनु भगवान् का उसके लिए आदेश है, दूसरे उसके लिए पृथक् यज्ञ, व्रत अथवा उपवास का विधान नहीं किया गया है, पति की सेवा ही उसका एक मात्र धर्म है, तीसरे श्रुति ही स्त्रियों का मूल्य निर्धारित कर उनके क्रेयत्व का विधान करती है—"सुन्दर अथवा कुरूपा कन्या का मूल्य सौ रथ है—शतमधिरथं शोभानां शोभनां वा कन्यां प्रति" यह वचन शबर स्वामी ने अपने पूर्व मीमांसा के भाष्य में उद्धृत किया है (६-१-१५), जब कि तान्त्रिक उपासना धनसाध्य है और न स्त्री क्रीत होने से धन की स्वामिनी है और न उसे कर्म करने की स्वतन्त्रता है, तब उक्त उपासना में भी उनका अधिकार सिद्ध नहीं होता है। क्योंकि क्रीत, अक्रीत में भेदबोधक शास्त्रों के अभाव में अक्रीत नारी के सम्बन्ध में उसके अधिकारबोधक विधि वाक्य की सिद्धि नहीं हो सकती है। तब इस कथन का निरसन यह कह कर किया जा सकता है कि श्वशुर-गृह में उपहार में प्राप्त धन की स्वामिनी स्त्री है। स्मृति में वह उसका 'स्त्रीधन' कहा गया है। उस धन का त्याग वह अदृष्ट फल देनेवाले कार्यों में करने में स्वतन्त्र है। शास्त्रों में यज्ञ को अदृष्ट फलदाता कहा है। इसलिए स्त्रियों का वैदिक यज्ञ में अधिकार है। इस बात की पुष्टि जैमिनि ने भी अपने पूर्वमीमांसा के एक सूत्र में की है। वह सूत्र यह है—"जातिं तु बादरायणोऽविशेषात् (जैमिनि सू० ६-१-८)। इसमें जाति शब्द साधारण है, इसलिए जाति के अन्तर्गत स्त्री-जाति का भी समावेश प्रतीयमान हो सकता है। "तमेतं वेदानुवचनेन ब्राह्मणा विविदिषन्ति यज्ञेन" यह श्रुतिवचन भी उपर्युक्त मत की पुष्टि करता है। इसलिए ब्रह्म-विद्या में स्त्रियों का अधिकार है।

तान्त्रिकोपासना की औपनिषदता

तान्त्रिक श्रुत्युक्त उमादि मन्त्रों की उपासना ब्रह्म-विद्या के रूप में शक्तिभाष्य की विशेषता है। क्योंकि "एतद्वै-तदक्षरं" इस मन्त्र से तान्त्रिक मन्त्र दुर्गाबीज का उद्धार पीछे दिखाया जा चुका है। "तदेतत्त्र्यक्षरं हृदयम्" इस श्रुति मन्त्र में स्थित त्र्यक्षरात्मक हृदयम् पद से मायाबीज 'ह्रीं' का उद्धार नीचे दिखाया जाता है—हृदयं=ह+ई+ॐ=ह्रीं। यदि कोई यह कहे कि बीच में 'द' आ जाने से माया बीज ह्रीं की सिद्धि नहीं हो सकती है। तो इसके उत्तर में यह निवेदन है कि यहाँ पर मायाबीजादि के 'त्र्यक्षर' से दुर्गाबीज का वेधन कराया गया है। क्योंकि दकार का एकाक्षर दुर्गाबीज का उपस्थापक है तब इसका आन्तरत्व बोधन कराने के लिए यहाँ उसका अंतर में निवेशन युक्तियुक्त है। इतना ही नहीं वरन वर्णरूप और मन्त्रभाव दोनों प्रकार से वैदिक और तान्त्रिक श्रुतियों की समानता है।

निर्विशेषता

भगवान् शंकराचार्य के समान शक्तिभाष्यकार को निर्विशेष ब्रह्म भी मान्य है। यदि कोई यह शंका करे कि नित्य सम्बन्ध चिदचित् ब्रह्म की निर्विशेषता कैसे सिद्ध की जा सकती है, क्योंकि अचित् अंश के नित्य सम्बन्धित होने के कारण उसकी सविशेषता सिद्ध है, तो इसके उत्तर में यह कहा जा सकता है कि जब प्रलय में प्रपञ्च के प्रविलीन हो जाने से असत् तुल्य त्रिगुणात्मक अचित् की पृथक् विभाव्य मानता नहीं रहती है, और चित् अंश ही साधारणतया व्यस्त रहता है, तब चिदचिदात्मक ब्रह्म के निर्विशेष मानने में कौन-सी आपत्ति हो सकती है? अर्थात् कोई नहीं।

गृहस्थों की मुक्ति

जहाँ भगवान् शंकराचार्य का यह कथन है कि मुक्ति के लिए संन्यास का ग्रहण करना आवश्यक है अर्थात् कर्म संन्यास किये बिना मुक्ति प्राप्त करना शक्य नहीं है। कर्म करने का विधान गृहस्थाश्रमियों के प्रति विहित है, पर संन्यासियों के लिए मन्वादि शास्त्रों में किसी प्रकार के कर्म करने का विधान नहीं बताया गया है। समयिमत के अनुसार यदि गृहस्थ निष्काम कर्म का आचरण करनेवाला है, इसने कर्म का संन्यास मन से किया है न कि शरीर से, तब उपर्युक्त कर्म के प्रभाव से कालान्तर में उसके मन के शुद्ध हो जाने पर उसमें ज्ञान के उदय होने में कोई बाधा नहीं है। ज्ञान के बिना मुक्ति नहीं है। यह कथन दोनों—गृहस्थ और संन्यासी—पर घटित हो सकता है। यदि संन्यास लेने पर ज्ञानोदय नहीं हुआ है तो उसकी मुक्ति भी उपर्युक्त श्रुतिवचन से रुकी हुई है। और यदि गृहस्थ के मन में ज्ञान का उदय हो गया है तो उसके मुक्ति के मार्ग में कौन-सी बाधा रह जाती है? ब्रह्म साक्षात्कार ही मुक्ति का कारण है, जैसा कि गीता के इस वचन से प्रकट होता है—

"तस्मादसक्तः सततं कार्यं कर्म समाचर।
असक्तो ह्याचरन्कर्म परमाप्नोति पूरुषः॥"

अर्थात् आसक्ति त्याग कर कर्म करनेवाले पुरुष को परम गति प्राप्त होती है। वशिष्ठादि ऋषि इस विषय में प्रमाणरूप में उपस्थित किये जा सकते हैं। क्योंकि इन लोगों ने गृहस्थ में रहकर ही ब्रह्मज्ञान का सम्पादन किया है और उनके ब्रह्मज्ञानी होने में आज तक किसी ने शंका नहीं की है।

शंकर और शक्तिमत के सिद्धान्तों को विहङ्गम दृष्टि से दिखाने के प्रयोजन से नीचे एक चक्र दिया जाता है जिसमें दोनों की समता और विषमता युगपद् दृष्टिगोचर हो सकती है—

समयिमत	शंकरमत
अद्वैत सिद्धान्त मान्य है।	अद्वैत सिद्धान्त मान्य है।
ब्रह्म चिदचिदात्मक है।	ब्रह्म केवल चिन्मात्र है।
जगत् सत्य है।	जगत् मिथ्या है।
परिणामवाद मान्य है।	विवर्तवाद मान्य है।
जीवैकवाद।	जीवैकवाद॥
जीवविभुवाद।	जीवविभुवाद॥
कर्मयोग से मुक्ति है।	कर्मसंन्यास से मुक्ति है।
जीव ब्रह्म का ही स्वरूप है।	जीव ब्रह्म का ही स्वरूप है।
ब्रह्मात्मैक्य से मुक्ति है।	ब्रह्मात्मैक्य से मुक्ति है।
सायुज्य मुक्ति में आवागमन नहीं है।	सायुज्य मुक्ति में आवागमन नहीं है।

ऊपर के विवेचन से सिद्ध है कि वैष्णवादि आचार्यों के मत से शक्तिभाष्य का बहुत कुछ मत-विरोध है। शक्ति-भाष्यकार शांकरमत का खंडन करते हुए भी विवर्त-वादादि का अनुमोदन करते हैं। वे शांकरमत के इतने निकट हैं कि दोनों को एक कहने में किसी प्रकार का संकोच नहीं होता। सौंदर्यलहरी के आधार पर यह कहा जा सकता है कि शंकर से बढ़कर

कोई शक्त नहीं है। वे स्वयं कहते हैं कि शक्तिविहीन शिव शव है। अर्थात् शक्ति से रहित होकर ब्रह्म किसी प्रकार की रचना नहीं कर सकता।

उपसंहार

ऊपर के लेख में शक्तिभाष्य का संक्षेप परिचय दिया गया है। उसकी कुछ विशेषतायें प्रदर्शित की गई हैं। भाष्य में मीमांसाद्वय की संगति "स्मृतेर्वास्याद् ब्राह्मणानाम्" इस सूत्र के द्वारा मिलाई गई है। दोनों ही भाष्य-शक्तिपरक हैं। पूर्व में शक्ति की विभिन्न विभूतियों का प्रतिपादन हुआ है तो उत्तर में उन सबकी नियन्त्री जगदम्बिका का विशद रूप से प्रतिपादन किया गया है। श्री चक्र जो कि ब्रह्मांड और पिंड का प्रतीक है—की उपासना का सम्बन्ध ब्रह्मसूत्र के प्रथम अध्याय के प्रथम पाद के सूत्रों के साथ स्थापित किया गया है। उमा और ॐ में कुछ भी भेद नहीं है वरन् वर्ण और अर्थ दोनों में समानता है। उस महाशक्ति की—ब्रह्म की—पूजा उमा सती आदि नामों के द्वारा की जाती आगमों के द्वारा सिद्ध है। मातृ भाव से उपासना अन्य भावों की उपासना से प्रकृष्टतम है, इसका विवेचन ऊपर किया जा चुका है। तन्त्र के अनेक बीजमन्त्र जो कि उपनिषदों में गूढ़रूप से स्थित हैं उनका उद्धार भाष्य में किया गया है। भगवान् शंकराचार्य के सिद्धान्तों के साथ समयिमत के सिद्धान्तों की कितनी समानता है इस पर भी प्रकाश डाला गया है। वैष्णवादि आचार्यों से भी भाष्यकार का विरोध ऊपर प्रदर्शित किया गया है। अद्वैत सिद्धान्त की दृष्टि से वैष्णवादि आचार्य, भगवान् शंकराचार्य से जितने नीचे हैं, उतने ही नीचे वे शक्तिभाष्यकार से हैं। चिदचिदुभयात्मक ब्रह्मस्वरूप का दिग्दर्शन ऊपर कराया गया है। वह न केवल चित् और न केवल अचित् है; परन्तु नित्य सम्बन्ध चिदचिदात्मक है। चिदचिदात्मक ब्रह्म ही शक्ति, परमात्मा, दुर्गा, सती आदि नामों से कथन किया गया है। जीव ब्रह्म का ही प्रतिबिंब है। अतएव जो कुछ भेद है वह उपाधिगत है; वास्तव में नहीं। वस्तुतः वह ब्रह्म के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। शक्ति-उपासना से उपासक को भुक्ति और मुक्ति दोनों ही प्राप्त होती हैं। ऊपर के विवेचन से यह भी सिद्ध है कि यह शक्तिभाष्य नववादों का आकर है। भाष्य की भाषा प्रसाद-गुणपूर्ण है, विषय प्रतिपादनशैली दुरूह न होकर बोधगम्य है। भाष्यकार के पाण्डित्य के विषय में कुछ कहना सूर्य को दीपक दिखाने के समान है। सम्भव है कि ऊपर के विवरण को पढ़कर पाठकों के मन में शक्तिभाष्य के सम्बन्ध में विशेष बातें जानने की जिज्ञासा उत्पन्न हो, पर संस्कृतज्ञ पाठक तो अपनी जिज्ञासा देववाणी में प्रकाशित शक्तिभाष्य को पढ़कर निवृत्त कर सकते हैं; संस्कृत भाष्य योग्यतम व्यक्ति को, अपनी योग्यता सिद्ध करने पर बिना मूल्य देने की उदारता भाष्यकार ने दिखाई है। पर हिन्दी भाषाभिज्ञ पाठकों को तब तक प्रतीक्षा करनी चाहिए जब तक महामाया किसी प्रकाशक के मन में इसे हिन्दी में प्रकाशित करने की प्रेरणा न करे। कुछ दुर्घट नहीं है।

पपीहा 'पी कहाँ' ना बोल !

लेखक, श्रीयुत भैरवप्रसाद गुप्त 'विशारद'

पपीहा 'पी कहाँ' ना बोल !

टेर रहा तू जीवन-धन को,
नवल-सजीले-श्यामल घन को,
पीड़ा-सी छाये उर-नभ पर वे, अन्तर-पट खोल !
पपीहा 'पी कहाँ' ना बोल !

संचित रख यह विरह-वेदना,
प्रिय-सुहाग का सुन्दर सपना,
अर्पित करने को प्रिय-पद पर ये मोती अनमोल !
पपीहा 'पी कहाँ' ना बोल !

उच्छ्वासों की घटा हृदय पर—
घिरे, विकम्पित चंचु सभय, पर—
मौन साधना कर रे पंछी ! दुख से मुंह ना खोल !
पपीहा 'पी कहाँ' ना बोल !

तेरी कठिन परीक्षा है यह,
पीर न, प्रीति-समीक्षा है यह,
हिले न चंचु याचना-हित, हो उच्च प्रेम का बोल !
पपीहा 'पी कहाँ' ना बोल !

प्रीतम-रूप-भरी छवि पीकर,
रोम-रोम पुलकित, छक-छककर,
नयन मूंद प्रति मूक श्वास से पी की बोली बोल !
पपीहा 'पी कहाँ' ना बोल !

'सुन्दर-सुन्दर जग-जीवन है,'
कहते—मधु जीवन-कण-कण है,
तू इनके जीवन-मधु-घट में विष का कण ना घोल !
पपीहा 'पी कहाँ' ना बोल !
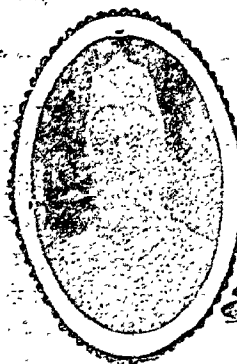
पण्डित पद्मसिंह शर्मा के नाम

(१)

जुही, कानपुर
२७—१—९

प्रणाम,

कृपाकार्ड मिला। प्राचीन लिपि की बात ज्ञात हुई। पं० भगवानदीन जी कहाँ हैं? लिखिए, उन्हें हम पत्र भेजें तो किस पते पर। हम नालिश करने के ही इरादे से शीघ्र घर से लौट आये हैं। अनुवाद तैयार है। "बी प्रूफ़" तैयार है। दो-चार दिन और ठहरे हैं। कृपा करके पंडित जी को लिख दीजिए। जो कुछ करना हो शीघ्र करें।

भवदीय
म० प्र०

(२)

जुही, कानपुर
१४—२—९

प्रणाम,

कृपाकार्ड मिला। आज बी० एन० शर्मा जी यहाँ पधारे हैं। मुख्य मुख्य पत्रों में क्षमा माँगने जा रहे हैं। मसविदा ले लिया है। अब "आर्यमित्र" वालों का शीघ्र फ़ैसला हो जायगा। यह क्षमापत्र छपते ही शीघ्र नालिश कर देंगे। अच्छी बात है ज्वालापुर पधारिए। ईश्वर आपको इस नये काम में साफल्य प्रदान करे। किसी समय हम भी वहाँ आपके दर्शनार्थ आने की चेष्टा करेंगे। पं० गौरीदत्त के भाई आजकल काशी में हैं। खेद है, सरस्वती का सितम्बरवाला अंक कोई फ़ालतू नहीं। स्वास्थ्य अभी हमारा पूर्ववत् चला जाता है। दया करके उक्त प्राचीन लिपि को लौटा दीजिए। अब तक नहीं पढ़ी गई कब पढ़ी जायगी। उसकी ज़रूरत क्यों पड़ी। और कुछ हमें भी सुनाइएगा।

भवदीय
म० प्र०

(३)

जुही, कानपुर
२४—२—०९

प्रणाम,

उज्जैन से भेजा हुआ पत्र आया। आपके जो जो जी में आता है लिखा करते हैं। यहाँ तक कि हमारी नवनीत पर भी क़ब्ज़ा कर लेते हैं। हम जो हँसी की भी कोई बात लिख देते हैं तो आपको "वेदना" होती है। वाह! अच्छी आपकी वेदना है। आप अपने पत्र में हमारे और हमारे लेख आदि के विषय में जो लिखते या छापते हैं, उसे हम सुनते नहीं तो क्या करते हैं। सिर्फ़ देखकर ही नहीं रह जाते। याद होगा हमने तो खुद ही आपको लिखा था कि आप जो चाहिए लिखिए हम चुपचाप सुनेंगे। फिर आपको बुरा क्यों लगना चाहिए। हमारी तन्दुरुस्ती अभी तक खराब है। २ महीने के लिए हम कहीं बाहर विश्राम करने जाना चाहते हैं। ज्वालापुर पहुँच कर कोई ऐसी जगह हमारे लिए तजवीज कीजिए जहाँ हम एकान्त में आराम से सस्त्रीक रह सकें। प्राकृतिक दृश्य अच्छा हो। भ्रमण करने के लिए सड़कें या साफ़ रास्ते हों। खाने-पीने का सामान सब मिलता हो। रहने के लिए भी जगह आराम की हो। ज्वालापुर ही में अपने पास रखने की चेष्टा न कीजिएगा। हमारे स्वास्थ्य का ख़्याल करके कोई अच्छा स्थान दूर हो या निकट तजवीज कीजिएगा। फ़ोटो ओझा जी से लेकर ज़रूर लौटा दीजिएगा। बी० एन० जी की क्षमा-प्रार्थना भारतमित्र में छप गई। आर्य्यमित्र ने अभी नहीं छापा। पं० भगवानदीन ने आर्य्यमित्र में आर्य्यमित्र-वालों की तरफ़ से भी क्षमा-प्रार्थना का मज़मून भेजा है। मसविदा ठीक न था इससे हमने दूसरा भेजा है। उज्जयिनी का हाल पढ़कर हमारे भी मन की अजब हालत हुई। हम तो उज्जैन के बहुत पास से निकल गये। पर वहाँ न जा सके। अफ़सोस रहा।

भवदीय
म० प्र०

ज्वालापुर पहुँच कर पत्र भेजिएगा।

(४)

जुही, कानपुर
२८—३—०९

प्रणाम,

२५ का कृपाकार्ड मिला। ज्वालापुर पहुँचकर वहाँ का हाल लिखिएगा। हम, यदि कोई विघ्न न हुआ तो ५ एप्रिल सोमवार को सुबह ६ बजे के लगभग ज्वालापुर पहुँचेंगे—सस्त्रीक। बहुत करके एक दिन के लिए गौरीदत्त भी आवेंगे। और शायद हमारे मित्र बाबू सीताराम भी दो-एक दिन के लिए आवें। बाबू सीताराम को ज्वालापुर के पोस्टमास्टर और स्वामी स्वरूपानन्द जानते हैं। ठहरने का प्रबन्ध कर रखिएगा। स्थायी प्रबन्ध वहाँ आकर करेंगे।

भवदीय
म० प्र०

(५)

जुही, कानपुर
१—४—०९

प्रणाम,

यदि कोई विघ्न न हुआ तो ५ एप्रिल सोमवार को प्रातःकाल ज्वालापुर पहुँचेंगे। ३० मार्च का कृपा-कार्ड मिल गया।

भवदीय
म० प्र०

(६)

जुही, कानपुर
१५—५—०९

प्रणाम,

कृपा कार्ड मिला १३ ता० की शाम को यहाँ आ गये। स्वास्थ्य वैसा ही है। कल से जल-चिकित्सा शुरू की है। मन्ना मजे में है। यदि आपका कुछ काम निकले तो विद्यालय देखने आदि का हाल आप अपने पत्र में दे सकते हैं। श्लोक भी आप दे सकते हैं। कोई बात बढ़ाकर न लिखी जाय। पहले ही पहल दो अंक एक साथ निकालना अच्छा नहीं लगता। प्रबन्ध की त्रुटि जाहिर करता है। वैशाख से न सही जेठ से सही। कौन बड़ा अन्तर है। यों आपकी इच्छा। पूनेवालों का पता ढूंढ़ेंगे। मिलने पर लिखेंगे। उस श्लोक में और भी कई पाठान्तर हो सकते हैं। यथा—

१—निशम्यतां लेख ललाम मालिका
सञ्चय

२—प्रकाशने यस्य विशेष निश्चयः
येन कृतो ऽति निश्चयः
येन कृतो विनिश्चयः

यदि दूसरी लाइन से "विशेष" शब्द निकाल डाला जाय तो तीसरी लाइन इस तरह हो सकती है:—

३—गृहीत सद्धर्म्मविशेष-सञ्चयः—
समूह
विचार

४—चकास्ति सोऽयं भुवि भारतोदयः
विभाति सोऽयं
स शोभतेऽसौ

इनमें से जो पाठ आपको अच्छा लगे रख लीजिए।

भवदीय
म० प्र०

(७)

जुही, कानपुर
१—६—०९

प्रणाम,

भारतोदय अच्छा निकला। हमारी बड़ी तारीफ़ आपने कर दी। उसके हम मुस्तहक़ नहीं। बीमारी के विषय में इतना न लिखना था। आप शायद देहली का जलसा देखने गये हैं। वहाँ भी सुनते हैं, मारपीट हुई है। झालरापाटन से पत्र आया है। पर उस बात का ज़िक्र नहीं। शायद उतना वेतन देना उन्हें मंजूर नहीं। याद दिलाना हम मुनासिब नहीं समझते। कविता-कलाप के कुछ चित्र अभी तक तैयार नहीं हुए। इसी से निकलने में देरी हो रही है। कल घर (दौलतपुर) जाने का विचार है। महीना-पन्द्रह दिन वहीं रहेंगे। स्वास्थ्य का वही हाल है। यहाँ फिर ज्वर आ गया। इससे और भी कमजोर हो गये हैं। भारतोदय के पहले अंक की एक एक प्रति नमूने की इन लोगों को भी भेज दीजिएगा—

(१) पं० श्यामबिहारी मिश्र, (२) बा० श्यामसुन्दर दास, (३) पं० कामताप्रसाद गुरु, (४) बा० मैथिलीशरण गुप्त, (५) पं० गौरीनारायण मिश्र।

भवदीय
म० प्र०

(८)

कानपुर

२९—६—९

प्रियवर,

कार्ड मिला। आपके हाथ पकने और फोड़ों का हाल सुनकर रंज हुआ। आप तो बहुत घबरा से गये जान पड़ते हैं। अजी रोग और क्लेश से न घबराना चाहिए। ईश्वर चाहेगा तो आप फिर पूर्ववत् शीघ्र ही भले-चंगे हो जायँगे।

पुस्तक जो आपने लौटाली मिल गई।

विनीत

म० प्र० द्वि०

(९)

दौलतपुर, भोजपुर, रायबरेली

प्रणाम, २२—७—९

कृपाकार्ड मिला। २ पुस्तकें भी आईं। धन्यवाद! एक हफ़्ते से आँखें दुखती हैं। अच्छी होते ही पढ़ेंगे। नींद पहले से अधिक आने लगी है। विश्राम से आराम मिलता है। ३ अगस्त तक कानपुर जाने का विचार है।

भवदीय

म० प्र० द्वि

(१०)

जुही, कानपुर

९—८—०९

प्रिय मित्र,

५ ता० का पत्र मिला। शिमले से भेजे गये आपके पत्र का उत्तर दे चुके हैं। चक्कर में डालनेवाले चित्र का उत्तर ठीक है। इस विषय की हज़ारों चिट्ठियाँ हमारे पास आ चुकी हैं। नाकों दम है। अब यह प्रबन्ध आगे न चल सकेगा। वर्षा-विषयक दोहे एक नवयुवक नवीन कवि के हैं। स्वर्गसहोदर सचमुच ही उत्तम कविता है। कई लोगों ने तारीफ़ की है। सूरदासवाले पद के विषय में फिर कभी पूछेंगे। अभी हम चक्कर में पड़नेवालों के उत्तर से घबराये हुए हैं। प्रतिबिम्बवाले लेख की अशुद्धियों के कारण हम लज्जित हैं। हमने गत २ महीने कुछ काम नहीं किया। सरस्वती निकल रही है, यही ग़नीमत है। दौरे से पत्र भेजते रहिएगा। हो सके तो एक-आध लेख भी भेजिएगा। बड़ी ज़रूरत है।

भवदीय

म० प्र० द्वि०

(११)

जुही, कानपुर

१४—१०—०९

प्रियवर,

कृपाकार्ड मिला। सरस्वती में "खूब" की सामग्री तो अब राम का नाम ही रहता है। यह आपकी कृपा है, जो उसे वैसा समझते हैं। आपके डेपुटेशन को खूब कामयाबी हुई; सुनकर हम बहुत प्रसन्न हुए। औरों को हसद हुआ है। स्वास्थ्य ठीक नहीं। जनवरी से विश्राम करेंगे।

सरस्वती को किसी और को सौंपेंगे।

भवदीय

म० प्र० द्वि०

(१२)

जुही, कानपुर

१६—१०—०९

प्रिय मित्र,

प्रणाम, आपका १४ तारीख़ का तार आज १६ को मिला। इसके पहले ही हम आपके कार्ड का उत्तर दे चुके हैं। पहुँचा होगा। इसी से आपके तार का उत्तर तार से नहीं देते। आपकी समवेदना और सहानुभूति के लिए अनेकानेक धन्यवाद। आपकी इस कृपा ने हमारे मानसिक और शारीरिक कष्टों को बहुत कुछ कम कर दिया है। जो अपने होते हैं वही आपत्ति में साथ देते हैं। वही आत्मीय जनों के दुःख को अपना समझते हैं। आप इसके प्रत्यक्ष उदाहरण हैं। ज्वर तो हमारा जाता है। नींद की शिकायत बनी हुई है। जनवरी से पूर्व विश्राम करने का विचार है।

भवदीय

म० प्र० द्वि०

(१३)

जुही, कानपुर

३०—१०—०९

प्रणाम,

रावलपिण्डी से भेजा हुआ कृपाकार्ड मिला। आशा है अब आप ज्वालापुर लौट आये होंगे। तबीअत हमारी वैसी ही पसपस चली जाती है। कृपा करके अब कभी आप हमारे शिक्षासरोज और दूसरी रीडर्स को किसी ऐसे सज्जन को न दीजिएगा जो पाठ्य पुस्तकें बनाना चाहता हो। वे पुस्तकें बाक़ायदा प्रकाशित नहीं हुईं।

बाबू भवानीप्रसाद ने उनकी कई कवितायें अपनी पुस्तकों में रख दी हैं। इस बात को आप भी जानते होंगे।

आर्य्यभाषा पाठावली प्रथम भाग की कापी हमारे पास आई है। उसमें आपके किये हुए संशोधन हैं।

भवदीय

म० प्र० द्वि०

(१४)

जुही, कानपुर

प्रणाम, ११—११—०९

कृपा-पत्र मिला। लाला भवानीप्रसाद का पत्र भी उसके साथ मिला। आपके वे आन्तरिक मित्र हैं। आप उनके काम को "कविता चुराना" कह सकते हैं; हम नहीं। कवि का नाम देने पर चोरी का इलज़ाम नहीं लगाया जा सकता। इच्छा-विरुद्ध काम करने से जबरदस्ती अलबत्ते कही जा सकती है। खैर, कुछ भी हो। हमने मुख्याधिष्ठाता जी को लिख दिया है कि जो कवितायें लाला भवानीप्रसाद ने रक्खी हैं रहने दी जायें। पर इंडियन प्रेस की रीडरों से चित्र न नक़ल किये जायें।

भवदीय

म० प्र० द्वि०

(१५)

जुही, कानपुर

प्रणाम! ९—३—१०

कृपाकार्ड मिला। तबीअत कुछ अच्छी होने लगी थी कि फिर एकाएक खराब हो गई। एक हफ़्ते से बहुत कम नींद आई है। कारण ज्ञात नहीं। प्रूफ़ वग़ैरह देखते रहे हैं। शायद इसी से हो। क्षमा कीजिए। हम ज्वालापुर आने योग्य नहीं। यदि तबीअत अधिक खराब न हो गई तो १८ मार्च को दौलतपुर जाने का विचार है। वहाँ महीना-पन्द्रह रोज चुपचाप पड़े रहेंगे। बाद कानपुर आवेंगे। कविरत्न जी ने दर्शन नहीं दिये। शिक्षा की एक कापी प्रयाग से आपके पास आवेगी। वे चाहते हैं कि किसी अखबार में आप उसकी बाबत कुछ लिख भेजें।

भवदीय

म० प्र० द्विवेदी

(१६)

कानपुर

प्रणाम! १६—३—१०

आपका भेजा एक फ़ाम और एक पेज पढ़ा। मुँहतोड़ जवाब है। भारतोदय आने पर उसे भी पढ़ूँगा। हस्त-पत्र को मैंने पढ़ा, सख़्त वाक्यों पर निशान लगाया। फिर उन्हें राय साहब को सुनाया। उनकी राय में पकड़ की कोई बात नहीं। पर बेहतर होगा, अगले एडिशन में अधिक सख़्त बातें कुछ नरम कर दी जायें। हस्तपुस्तक लौटाता हूँ। राय देवीप्रसाद की राय उसकी पीठ पर देखिए। कल आपकी हस्तपुस्तक और प्रूफ़ पढ़ा। दो-एक अखबार भी पढ़े। इतने ही से दिमाग़ में विशेष खराबी पैदा हो गई। कल रात को बिलकुल ही पलक नहीं लगी। मेरा तो यह हाल है। पं० देवीप्रसाद सरस्वती में लिखने जाते हैं कि मैं अच्छा हो गया। वे शायद आपके मेले में आवें। उन्हीं को मेरा प्रतिनिधि समझिए। पत्र आपका फाड़ डाला।

भवदीय

म० प्र० द्विवेदी

(१७)

जुही, कानपुर

प्रणाम, २७—५—१०

कृपा-पत्र मिला। कृतार्थ किया। तबीअत मेरी अभी तक सुधरी नहीं। कुछ आराम जरूर है, पर इतना नहीं कि लिख-पढ़ सकूँ। इस कारण अभी सरस्वती के विषय में कुछ नहीं कह सकता। १ जून को २ महीने के लिए दौलतपुर जाने का विचार है। वहाँ भी यही करना होगा। इस हफ़्ते का "भारतोदय" अवश्य मनोरञ्जक है। कुछ पढ़ लिया। बाक़ी को भी पढ़ूँगा। "शिक्षा" की समालोचना के लिए धन्यवाद। खूब है। पढ़कर चित्त प्रसन्न हुआ। पर आपका माफी माँगना अनुचित हुआ। स्पेन्सर उस शिक्षा को शिक्षा कहते हैं जिस से जीवन अच्छी तरह सार्थक हो सके। तदनुसार उनकी राय में (मेरी में नहीं) संस्कृत पढ़ने की तादृश जरूरत नहीं। स्पेन्सर ने धर्म, कर्म्म, आर्य्यता, अनार्य्यता के खयाल से नहीं, किन्तु अपने किये हुए शिक्षा के लक्षण को ध्यान में रखकर वैसा लिखा है।

भवदीय

म० प्र० द्विवेदी

(१८)

दौलतपुर

प्रणाम, २४—६—१०

कृपाकार्ड मिला। हाँ, शायद ग़ालिब से भी ज्यादह। प्रायः आम ही खाते हैं। आमों ही की फ़िक्र में रहते हैं। और आम ही ढूँढ़ा करते हैं। इससे हमारा क़ब्ज़ रफ़ा रहता है और नींद भी काफ़ी लगती है। दिन को भी कुछ देर सो जाते हैं। और रात को भी ४—५ घण्टे। स्वास्थ्य

पहले से बहुत अच्छा है। "सतसई संहार" में मुग्धादीपिति पर आपकी आलोचना में मारटिनी हेनरी का काम किया है। रघुवंश में है:—

एकान्तविध्वंसिषु मद्विधानां
पिण्डेष्वनास्था खलु भौतिकेषु।

वहाँ एक पण्डित जी की पोथी में इसका पाठान्तर है:—

"एकान्तविध्वं सिषुमद्विधानां
पिण्डेष्वनास्था खलु भौति केषु।"

कहिए कौन पाठ शुद्ध और बेहतर है। पाठान्तर में कोई व्याकरण-दोष तो नहीं?

भवदीय
म० प्र० द्विवेदी

(१९)

दौलतपुर
प्रणाम, १-५-१०

२७ का कार्ड पहुँचा। विद्यावारिधि जी के मित्र पं० नन्दकिशोर शर्म्मा काव्यभूषण परसों मिलने आये थे एक मित्र के साथ। उनका गाँव हमारे से १४ मील है। वहाँ से। संहार के कारण आप पर सख्त नाराज़ थे। हमने उनका समाधान कर दिया। सब तरह से आपको निर्दोष साबित कर दिया।

भवदीय
म० प्र०

(२०)

जुही, कानपुर
प्रणाम, २०-९-१०

कृपाकार्ड मिला। स्वास्थ्य अभी तक ठीक नहीं! इसी से लिखना-पढ़ना नहीं होता। और कोई कारण नहीं। काशी जाने का विचार है। पर दशहरा बाद। सरस्वती के विषय में अभी तक कोई निश्चय नहीं। अपराध का नाम कभी ज़ुबान पर न लाइए। पूर्ववत् कृपा बनाए रखिए।

भवदीय
म० प्र० द्विवेदी

(२१)

काशी
प्रणाम, १२-१०-१०

कृपाकार्ड आया। मैं यहाँ सम्मेलन में शरीक होने नहीं किन्तु एक मित्र से मिलने आया हूँ। भारतोदय मिला। वे दोनों लेख पढ़े। बड़ा मज़ा आया। आप कभी-कभी गजब करते हैं। जैमिनी जी की अच्छी खबर ली। प्रदर्शनी जाते समय आपको कानपुर ठहरना होगा।

भवदीय
म० प्र० द्विवेदी

(२२)

जुही, कानपुर
प्रणाम, २१-१०-१०

१५ ता० का कृपाकार्ड मिला। नाथङ्क से विलज्जते था—
में आपकी कौन भूल है? छापेखाने के भूतों ने भूल की होगी। उसके लिए क्या चिन्ता है? सम्मेलन में मैं नहीं गया। रहा तो फीका ही पर सभा को रुपया कुछ मिल गया। अच्छा हुआ। मुझे आज दिन से ज्वर, कफ, खाँसी आदि तंग कर रहे हैं। आज कुछ आराम है। काशीवास की इच्छा हो तो माक़ूल तनख्वाह पर सभा के कोष का काम दिलवा दें।

भवदीय
म० प्र०

(२३)

जुही, कानपुर
प्रणाम, ३-११-१०

आपको एक बात कल लिखना भूल गये। जनवरी से सरस्वती का पाश फिर हमारे गले में कुछ समय के लिए पड़ेगा। हमारी तबीअत ठीक नहीं, लिख-पढ़ नहीं सकते। आप हमारे संकट को कम कीजिए। दो-एक लेख भेजिए। शीघ्र। हीला-हवाला न कीजिएगा। "आपद्गतं न च जहाति"। यही समय सहायता का है। कालिदास की कविता की खूबियाँ दिखलाइए। लिखिए क्यों उसकी इतनी प्रशंसा है। सोदाहरण। उसकी उपमाओं पर कुछ लिखिए। या जो आपके जी में आवे।

भवदीय
म० प्र०

बाल-जीवन की एक रूसी कहानी —

हठ

[अनुवादक—श्रीयुत ओम्प्रकाश शर्मा, एम० ए०]

अपनी हठ पर अड़ा हुआ मिशा बिलकुल चुपचाप था। उसको बोलने की कुछ भी इच्छा न थी। जब वह खाना खाने के लिए बुलाया गया तब उसने साफ़ इनकार कर दिया—"मुझे कुछ........."

जब वह चाय पीने के लिए बुलाया गया तब उसने धीरे से अपनी हठीली आवाज में कहा—"चाय, क़हवा या जो कुछ भी हो, तुम्हीं पिओ, मुझे अकेला ही रहने दो। मैं कुछ नहीं चाहता—"

इस जवाब पर मिशा की बड़ी बहन एक अस्वाभाविक हँसी हँस पड़ी और कहा—"तुम क्या यह सोचते हो कि कोई तुम्हारी परवा करता है। अगर तुम चाहो तो अपना खाना-पीना सभी छोड़ सकते हो, तुमसे कोई कुछ न कहेगा।" इतना कहकर वह पीछे के दरवाजे से चुपचाप निकल गई।

अपने उस उपेक्षापूर्ण उत्तर में भी मिशा को कुछ सहानुभूति की बात दिखाई दे गई। उसने मन में कहा—वास्तव में वह मुझको विश्वास दिलाने का बहाना कर रही थी कि माता और पिता मेरे चाय न पीने और खाना न खाने की कुछ भी परवा नहीं करते। वे सब मेरी फ़िक्र करते हैं और इसी बात को सोचते रहते हैं कि कोई ऐसा रास्ता निकल आये जिससे मैं खाना खा लूँ और चाय पी लूँ। .... उनको फ़िक्र करने दो—यह उन्हीं का अपराध है.... लेटिन में सिर्फ़ १ नम्बर लाना इतना बुरा नहीं था, जितना हर एक के सामने मेरा अनादर करना कि मैं सिर्फ़ जूते बनाने के क़ाबिल हूँ... चमार बनने के लिए हाँ....मुझे कुछ परवा नहीं है...। फिर भी वह खाना खाने नहीं गया।

ड्राइंग-रूम में बैठा हुआ मिशा एक मैगज़ीन पढ़ रहा था और बराबरवाले कमरे की बातों को सुन रहा था। वे सब उसके खाने-पीने के बारे में बातचीत कर रहे थे और यह भी कह रहे थे कि वह होशियार और समझदार लड़का है।

उसने अपनी मा को कहते सुना—"माइकिल कहाँ है? क्या अभी तक मुँह फूला हुआ है?"

निना ने जान-बूझकर धीरे से कहा—"वह नाराज़ है।"

मिशा ने अपने पिता को तेज़ आवाज़ में कहते हुए सुना—"हमें उसके लिए कुछ-न-कुछ खाने को छोड़ देना चाहिए।"

"आह! मेरे लिए कुछ छोड़ दो, जैसे कि मुझे कुछ ज़रूरत है।" मिशा बड़बड़ाया—"जूता बनानेवाले के लिए क्यों छोड़ते हो?"

उसके पिता ने आवाज़ दी—'माइकिल।'

मिशा चुप रहा। उसके पिता ने फिर आवाज़ दी। अपनी मैगज़ीन के ऊपर कुछ झुकते हुए मिशा ने वहीं से कहा—"कहिए।"

"यहाँ आओ ... इतना मुँह फुलाना ठीक नहीं।"

"मुँह कहाँ फुलाये हूँ। मैं तो पढ़ रहा हूँ। क्या जूता बनानेवाले के लिए वहाँ आकर बैठना ठीक होगा।"

"मूर्ख।"

"अच्छा, मैं मूर्ख ही सही।" मिशा ने ज़ोर से कहा और फिर धीरे से कहा—"मूर्ख से कुछ सुनेंगे?"

"वह नाराज़ है।" उसकी बहन ने ज़ोर से कहा।

"मूर्ख चुप रह।" मिशा बड़बड़ाया और उसे अपनी बहन के प्रति घृणा हुई। उसकी बात का वह बदला लेना चाहता था... मगर पिता जी वहाँ थे.... वह बीच में क्यों बोली? किसी ने उसकी राय नहीं पूछी थी। वह गुस्से से गुर्राया, मैगज़ीन को मेज़ पर पटक दिया और जेब में हाथ डालते हुए पेंसिल निकाली। उसने एक तसवीर निकाली। एक नवयुवक एक लड़की के साथ था—और उसने लिखा—"यह निना और वोलोडका पिट्यूश को—दो मूर्ख"—मैगज़ीन का वह पृष्ठ उसने खुला रहने दिया। जिससे हर कोई देख सके। और वह अपने कमरे में चला गया। मेज़ पर पड़े हुए निना के टोप को उसने ज़मीन पर गिरा दिया।

"अपनी मेज़ पर इस कूड़े को मैं नहीं रहने दूँगा।" उसने चिल्लाकर कहा, हालाँकि वहाँ कोई सुननेवाला न था। मिशा हर एक को शत्रु समझने लगा। उसे ऐसा मालूम होता था, मानो वह घर दो दलों में बँटा हुआ है। उनमें से एक में वह स्वयं था और दूसरे में घर के सब आदमी

थे। ऐसे ही जब घर की नौकरानी कमरे में आई तब उसने उससे रूखा व्यवहार किया।

"माइकिल पेवलिच!"

"निकल जाओ।"

"आपसे कोई मिलने आया है।"

"मैं कहता हूँ, निकल जाओ।"

"खाना नहीं खाया है न? इसी वजह से आप नाराज़ हैं।"

मिशा अच्छी तरह जानता था कि नौकरानी उसके पास भेजी गई है। उसको कुछ खेद हुआ और क्षमा माँगने का मन में विचार उठा। ...... अब वह निरा बच्चा ही नहीं है... वे हैरान होते रहें। ....लेकिन मैं तो भूखा हूँ। क्या मैं नीचे रसोई में चला जाऊँ? .. नहीं। वहाँ जाना ठीक नहीं। रसोई बनानेवाला नौकरानी से ज़रूर कह देगा। वह माता-पिता से कह देगी और उन्हें कुछ सन्तोष हो जायगा।

मुझको भूख सहनी मंजूर है। यदि माता या पिता कोई आते और कहते—"क्रोध मत करो मिशा! .. तुम जानते हो, अगर तुम नहीं खाओगे-पियोगे तो बीमार पड़ जाओगे। इससे हमें कष्ट होगा। ... मुझे दुःख है कि ऐसा हुआ। अब ऐसा न होगा।"

तब मैं मान जाता और उसी समय खाना खाने चला जाता। उन लोगों ने मेरे लिए कुछ-न-कुछ तो छोड़ा ही होगा। उस दिन चुकन्दर का रस बना था। मुँह की राल को घुटक कर दरवाज़े की तरफ़ जाते हुए मिशा ने अपनी माँ के पैरों की आवाज़ सुनी। पिता तो आते नहीं, परन्तु उसे विश्वास था कि उसकी माँ ज़रूर आयेगी और अपना दुःख प्रकट करेगी।

लेकिन माँ नहीं आई और उसे भूख लग रही थी। जिसके आने की आशा थी उसके बदले फालस्टाफ़ (कुत्ता) दरवाज़े पर दिखाई पड़ा। दबे पाँव से वह कमरे के भीतर गया। मिशा को सूँघा और पूँछ हिलाई। कुत्ता पिता का मुँहलगा था और उसकी जगह पिता के पढ़ने के कमरे की मेज़ के नीचे थी। वह यहाँ क्यों आया? उसको अपने मालिक के पास जाकर पूँछ हिलानी चाहिए।

कुत्ते को लात मारते हुए क्रोध में मिशा ने कहा—"बाहर जाओ!" इस पर कुत्ता थोड़ा कराहा, नाराज़ होकर पूँछ हिलाई और बाहर भाग गया। मिशा को भूख लगी। ठीक है...

मिशा अपनी पिछले साल की किताबें बेच सकता था और उन पैसों से 'पेस्टरी' खरीद सकता था—वह दूध की दूकान पर भी जा सकता था... मगर यहाँ वे हैरान होंगे... उनको हैरान और दुखी होना ही चाहिए। यह उन्हीं का अपराध है... अब वे मेरे साथ अच्छा व्यवहार करेंगे।

अपनी अल्मारी से उसने देखकर एक पतली-सी किताब निकाली। "मुझे शायद इसकी ज़रूरत पड़े—लेकिन अभी नहीं... उस समय तक वे इसको भूल जायँगे और मुझे नई खरीद देंगे।" मिशा ने सोचा और अन्त में उसे बेचने का पक्का इरादा कर लिया।

वह खाने के कमरे से होकर नहीं जाना चाहता था ... सब लोग वहीं हैं। सोचेंगे कि अब माफ़ी माँगने आया हूँ। लेकिन दरवाज़े से न होकर भी मैं जा सकता हूँ।....

खिड़की से चढ़कर वह बाहर निकला। किताब कमीज़ के अन्दर छिपाई और बाज़ार को चल दिया। शाम होती जा रही थी—दूकानें जल्दी ही बन्द हो जायँगी, इसलिए जल्दी करना ज़रूरी था। मिशा हवा की तरह तेज़ भागा। कुछ टूटे-फूटे मकानों के बीच से उसने छोटा-रास्ता काटने की कोशिश की। उसका नतीजा यह हुआ कि उसके जूते में एक बड़ा छेद हो गया। और किसी समय अगर ऐसा होता तो उससे बहुत परेशानी होती; जूते उसे नये दिलाये गये थे, और वह भी इस शर्त पर कि वे जल्दी फटें नहीं इसकी परवा उसने नहीं की। वे अब यह ज़रूर कहेंगे कि मैं चमार की तरह नंगे पैर घूम सकता हूँ। साथ ही वह यह भी समझता था कि उसे नये खरीद दिये जायँगे। एक वकील का लड़का फटे जूते पहने, यह बदनामी की बात है।

इतने में एक चौड़े मुँह, मोटी नाक का किसान नाक की आवाज़ से चिल्लाया—"गरमागरम मटर"। उसने मिशा की ओर देखा और कहा—

"क्या मटर लोगे?"

"किस चीज़ के बने हुए हैं?" मिशा ने पूछा।

"मुझसे लीजिए—उसके पास ठंडे हैं; मेरे पास गर्म हैं"—एक किसान औरत ने बीच में कहा।

"मेरे पास अभी तो समय नहीं है, परन्तु थोड़ी देर में ज़रूर खरीदूँगा।" मिशा ने कहा और वह भीड़ को चीरता हुआ वहाँ पहुँचा जहाँ पुरानी किताबवालों की दूकानें थीं। बड़ी घबराहट के साथ वह एक दूकान पर पहुँचा। वह दूकानदार बड़ी आशा में रुपये गिनने के तख्ते के पास

खड़ा था। वह बूढ़ा दूकानदार एक प्रोफ़ेसर की तरह लग रहा था। स्कूल के लड़के को देखकर वह किताब पढ़ने का बहाना करने लगा।

"क्या आप किताबें ख़रीदते हैं?"

"आपके पास बेचने के लिए क्या है?"

"एशिया, अफ़्रीका और अमेरिका—बिलकुल नई।" मिशा ने हाँफते हुए कहा।

"स्मरनोव्ज़ की?"

"जी हाँ।"

"ऐसी तो बहुत-सी हैं। यदि योरप की होतीं तो मैं शायद ख़रीद लेता।" मिशा के हाथ से किताब लेते हुए दूकानदार ने कहा।

"यह तो पुरानी छपी हुई है.. मैं इसके लिए आपको दस कोयेक दे सकता हूँ।" किताब के सफ़े पलटते हुए दूकानदार ने फिर कहा।

"मुझे तो बीस से कम में बेचने को नहीं कहा गया है।" मिशा ने हिचकते हुए कहा।

दूकानदार ने जम्हाई ली और मिशा को किताब लौटा दी।

"अच्छा पन्द्रह.. यह बिलकुल नई है।"

दूकानदार ने कुछ जवाब नहीं दिया।

"अच्छा तो मैं दस कोयेक ले लूँगा।"

"आप अच्छा सौदा कर रहे हैं।" दूकानदार ने कहा और जम्हाई लेते हुए दस कोयेक 'काउन्टर' पर रख दिये। फिर किताब को लापरवाही से अलमारी में पटक कर अपनी किताब पढ़ने में लग गया।

"मैं योरप भी ले आऊँ?" मिशा ने जेब में पैसे रखते हुए कहा।

"ज़रूर... क्या वह भी ऐसी ही है? और किसी तरह की हुई तो दस कोयेक भी नहीं मिलेंगे। अपने अन्य मित्रों को भी यहीं भेजिएगा। मैं औरों से अच्छा मूल्य दूँगा।

"भेज दूँगा।"

दूकान से बाहर निकल कर मिशा खाने की चीज़ों को देखने लगा। मटर तक पहुँचने के पहले हलुवा देखकर उसके मुँह में पानी आ गया। उसने तीन कोयेक का थोड़ा-सा ख़रीदा और बड़े स्वाद से खाकर मटर बेचनेवाली के पास पहुँचा।

"कौन-कौन-सा मटर है?"

"गाजर, कुकुरमुत्ता और मांस का।"

"कैसे दिया?"

"पाँच कोयेक की दो।"

"मुझे गाजर की नहीं चाहिए। एक तो कुकुरमुत्ते की और एक मांस की दो।"

दोनों खाने के बाद उसे प्यास लगी.. बचे हुए कोयेकों से उसने दो गिलास शरबत पिया। लेकिन वह कठिनाई से दूसरा गिलास पी सका। मीठा था, इस कारण छोड़ भी न सका।

दूसरा गिलास पी चुकने पर मिशा के मुँह से उफ़! निकला। "क्या हुआ? क्या दिमाग में पहुँच गया।" शरबतवाले ने कहा। फिर उसने वही आवाज़ दी—

'ताज़े मीठे शरबत।'

घर पहुँचने पर मिशा ने अपनी मेज़ पर ठंडे मांस की तश्तरी, गिलास भर दूध और तीन चपातियाँ रक्खी पाईं। चपातियों का उसे लालच लगा, क्योंकि वे उसे बहुत प्रिय थीं। परन्तु गर्मी के मारे उसने नहीं खाया। अगर उसे इस बात का विश्वास होता कि जो चपातियाँ वहाँ रक्खी हुई हैं उनको किसी ने गिनतीकर नहीं रक्खा है तो शायद वह एक खा लेता। फिर भी तीनों की पपड़ी निकालकर वह खा गया, दूध भी एक घूँट उसने पिया—इच्छा होते हुए भी वह और न ले सका।

खाने को तो वह इतनी इतनी चीज़ें खा गया, पर पेट में गड़बड़ मच गया। उसने क्रोध से 'उफ़' किया और बार बार थूकने लगा।

"कहाँ हो आये?" निना ने दरवाज़े से निकलते हुए पूछा।

"यह मेरा काम है। मैं तो तुमसे कभी नहीं पूछ-पाछ करता, तुम कहाँ जाती हो।

जाते जाते निना ने एक निगाह मिशा के खाने पर डाली, जो अभी तक छुआ भी नहीं गया था।

निना ने कहा—"मांस खाओगे?"

"मैं नहीं खाऊँगा। मैं तो मूर्ख और चमार हूँ। आप लोग बड़े आदमी हैं। आपको मूर्खों से क्या मतलब?"

"जैसी आपकी इच्छा?"

"अच्छा, अब आप अपने पितृशकों के साथ घूमने जा सकती हैं। मुझे अकेला ही रहने दीजिए।"

"मूर्ख, गँवार।" निना ने क्रोध से कहा और वह भाग गई।

मिशा ने सोचा था, अगर मैं खाना न खाऊँगा तो अपने शत्रुओं पर विजय पा लूँगा। कुकुरमुत्ते और मांस की टिकिया, हलुवा आदि सब उसके शत्रु थे।

शायद उसका यही ढंग आगे भी जारी रहता अगर बीच में ही आपस के खिंचे हुए नातों को जोड़ देनेवाली एक घटना न हो जाती। मिया के पेट में दर्द शुरू हुआ, और वह धीरे धीरे बढ़ने लगा। दर्द के कारण उसको मुँह नीचा करके बिस्तरे पर लेटना ज़रूरी होगया। वह अपनी स्थिति को बिगाड़ना नहीं चाहता था, इसी से अपने को सँभालने के लिए तकिये के गिलाफ़ के अन्दर ही वह कराह रहा था। कुकुरमुत्ते की टिकिया और शरबत ने अपना असर दिखलाया। वह ज़ोर-ज़ोर से कराहने और तकिये पर हाथ, पटकने लगा।

"कैसा दण्ड है!"—दर्द के मारे बार बार हाथ-पैर पटक कर वह कहने लगा। उसके सब मित्र उसके पास दौड़े हुए आये। लगभग सभी सिवा उसके पिता के जो शायद उस समय क्लब में था। मा ने बुख़ार देखा। मिना थूकने का बर्तन लाई। नौकरानी डाक्टर को बुलाने दौड़ी। यहाँ तक कि कुत्ता भी रोगी को देखने आया। और मिया की ओर सहानुभूति की निगाह से देखने लगा।

"तुमने यह क्या कर लिया?" मा ने घबराती हुई आवाज़ में पूछा। मन ही मन वह डर रही थी कि कहीं उसने ज़हर तो नहीं खा लिया है—उसने कई बार ऐसी ही चेतावनी भी दी थी।

"क्या तुमने कुछ खा लिया है? बताओ मिया। जल्दी बताओ।"

"मम्मी! ओ...मम्मी! मैंने एशिया, अफ़्रीका, अमरीका बेच कर कुकुरमुत्ते की टिकिया खाई है।"

"क्या बात है मिया? या परमेश्वर यह बेहोश है! जल्द से पिता को बुलाओ। हे परमेश्वर!"

उसकी मा मिया के ऊपर झुकी हुई थी। अपना हाथ उसके माथे पर रखा और उसके गाल चूमे। उसकी बहन आँसू-भरी आँखों से कमरे में घुसी और खिड़की से झाँककर डाक्टर के आने की प्रतीक्षा करने लगी। डाक्टर आगया था।

"अच्छा बच्चे, कहाँ दर्द है?....उल्टा होना तो।"

मिया ने उल्टी करवट ले ली। डाक्टर ने उसे देखा।

"तुमने आज क्या खाया है?"

"डाक्टर साहब, उसने तो आज कुछ भी नहीं खाया है। स्कूल से आने के बाद उसने एक कौर भी नहीं तोड़ा।"

"न...न, फिर बच्चे! तुमने कुछ न कुछ खाया ज़रूर है। साफ़ साफ़ बताओ।"

"हाँ, मैंने कुकुरमुत्ते की टिकिया खाई है। मैंने एशिया, अफ़्रीका बेचा है।"

"क्या बात है?" पिता ने बग्घी पर से उतरते हुए पूछा। फ़िक्र के मारे वह 'रबर' छोड़कर भाग आया था।

घंटे भर बाद। सब लोग शान्त होगये। मिया के पेट पर पुलटिस बँधी हुई थी और वह बिस्तरे पर लेटा हुआ था। उसके मा-बाप उसके पास बैठे हुए थे।

दर्द बन्द था और मिया धीरे धीरे ठीक हो चुका था।

रुदन

लेखक, श्रीयुत श्रीकुमार

होती है बरसात सहेली!

धुँधला अँधियाला उभरा है—
भावों का टूटा पहरा है—
श्याम व्योम से तारे गिर उर में करते उत्पात सहेली!
होती है बरसात सहेली!

चमकी पलभर बिजली तुम-सी
घन की चेतनता गुम-सुम-सी
तितर-बितर हो बिखर रही है, तरल भावना-पात सहेली!
होती है बरसात सहेली!

समझो क्रन्दन में न सरसता!—
हृदय तुम्हारा नचता-हँसता!—
आह, वेदना कितनी भारी—
तू से जोड़ा नात सहेली!
होती है बरसात सहेली!

१—हिन्दी और हिन्दुस्तानी

श्री सरस्वती-सम्पादक, प्रयाग।

महाशय,

सरस्वती के पिछले* अंक में 'हरिजन-सेवक' से कुछ भाग उद्धृत करके आपने जो टिप्पणी लिखी थी उसे देखकर मैंने महात्मा जी को एक पत्र लिखा और यह शङ्का प्रकट की कि उससे यह बात निकलती है कि उनकी सम्मति में हिन्दुस्तानी में उर्दू की प्रधानता होगी और हिन्दी की गौणता। इसके उत्तर में उनका जो उत्तर आया है उसका मुख्यांश नीचे उद्धृत करता हूँ। आशा है, आप उसको तथा मेरे पत्र को अगले अंक में स्थान देने की कृपा करेंगे।

भवदीय,

सम्पूर्णानन्द।

महात्मा जी के पत्र का अंश

हिन्दी या हिन्दुस्तानी ही मेरे सामने है। लेकिन इसमें उर्दू का बहिष्कार नहीं है। तीनों की जड़ तो एक ही है और तो हम अपनी मूर्खता पर हँसेंगे कि हमने क्यों इस बारे में झगड़ा किया। इस भूमिका से हरिजन-सेवक का लेख जिस बारे में आपने लिखा है, पढ़ना चाहिए।

प्यारे लाल की उर्दू की तारीफ़ मैंने इस कारण की कि मेरे पास दूसरे उर्दू के जानकार नहीं हैं। और हिन्दुस्तानी भाषा बनाने के लिए उर्दू का ज्ञान होना चाहिए। प्यारे-लाल की हिन्दी और उर्दू का भेद मैंने सिर्फ़ वस्तुस्थिति बताने के कारण किया। उसमें से आपने जो अर्थ घटाया है वह मेरे मन में कभी नहीं था।

२—सहायक ग्रन्थों की आवश्यकता

श्रीमान् सम्पादक जी!

सादर वन्दे। मैं आपकी प्रसिद्ध मासिक पत्रिका 'सरस्वती'-द्वारा हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन की परीक्षाओं के परीक्षार्थियों की एक वास्तविक कठिनाई की ओर हिन्दी-जगत का ध्यान आकर्षित करना चाहता हूँ। सम्मेलन की प्रथमा, मध्यमा और उत्तमा, तीनों परीक्षायें अब काफ़ी सर्वप्रिय हो चली हैं और प्रतिवर्ष पर्याप्त संख्या में विद्यार्थी इनमें सम्मिलित होते हैं। पाठ्य-क्रम में भी हिन्दी-साहित्य के श्रेष्ठ ग्रंथों को स्थान मिलता है और परीक्षाओं का स्टैण्डर्ड भी ऊँचा है। यह सब हिन्दी-प्रेमी जनता के सन्तोष का विषय है।

परीक्षाओं में अधिकांश विद्यार्थी प्राइवेट पढ़कर ही सम्मिलित होते हैं, क्योंकि पढ़ाई के लिए विद्यालयों का कोई व्यापक प्रबन्ध नहीं है। अतएव परीक्षार्थियों को बाहरी सहायता न्यून मात्रा में ही उपलब्ध होती है और वे स्वावलम्बन पर ही निर्भर रहते हैं। ऐसी स्थिति में यह परमावश्यक है कि परीक्षार्थियों के सहायतार्थ पाठ्य-पुस्तकों के सहायक ग्रंथ प्रकाशित किये जायँ। यह बड़े दुःख की बात है कि जहाँ हाईस्कूल और कालेजों की साधारण से साधारण पुस्तकों के सहायक ग्रंथों की भरमार रहती है, वहाँ सम्मेलन की परीक्षाओं की उच्च कोटि की पाठ्य-पुस्तकों के भी सहायक ग्रंथ प्राप्य नहीं हैं। स्कूल-कालेज के छात्रों की तरह सम्मेलन के दीन परीक्षार्थियों को विद्यालयों की शिक्षा तो मिलती नहीं। उनका एक मात्र अवलम्बन यही सहायक ग्रंथ हो सकते हैं, सो उनका भी प्रायः अभाव है। बेचारे विद्यार्थियों को एक महान् कठिनाई का सामना करना पड़ता है। उदाहरणार्थ, इस वर्ष मध्यमा परीक्षा के पाठ्य-क्रम में स्व० बाबू जयशंकर 'प्रसाद' कृत 'कामायनी' महाकाव्य निर्धारित है। इस ग्रंथ की भाषाशैली कितनी क्लिष्ट और भाव कितने गूढ़ हैं इससे हिन्दी के विद्वान् अपरिचित नहीं।

हिन्दी के विद्वानों और विशेषकर हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के पदाधिकारियों का यह परम कर्त्तव्य है कि वे प्रकाशकों और योग्य लेखकों के सहयोग से उच्च कोटि की पाठ्य-पुस्तकों के सहायक ग्रंथ यथाशीघ्र प्रकाशित करवा कर परीक्षार्थियों के सहायक सिद्ध हों। इससे साहित्य की वृद्धि तो होगी ही, परन्तु साथ में जनता को भी परीक्षाओं में सम्मिलित होने में प्रोत्साहन मिलेगा।

भवदीय

महेशदत्त पांडे (एक परीक्षार्थी)

* सरस्वती-पृष्ठ ३८७ देखिए।
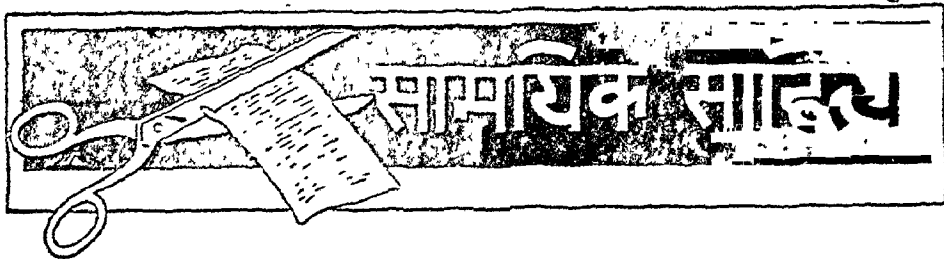
वार्ताभङ्ग के सम्बन्ध में

अभी हाल में महात्मा गांधी ७वीं बार वायसराय से शिमला जाकर मिले थे। इस बार भी महात्मा जी को अपने प्रयत्न में सफलता नहीं मिली। शिमला से लौटने पर महात्मा जी ने जो वक्तव्य दिया है उससे कांग्रेस की वर्तमान परिस्थिति पर अच्छा प्रकाश पड़ता है। वह वक्तव्य साप्ताहिक 'आज' में इस प्रकार छपा है—

लार्ड लिनलिथगो दूसरों की दलीलें उतने धैर्य और ध्यान से सुनते हैं जितना धैर्य और ध्यान मैंने पहले किसी वायसराय या बड़े पदाधिकारी में नहीं देखा था। वे अमद्रोचित बात नहीं कहते और न कभी उनकी शान्ति भंग होती है। इन सब गुणों के होते हुए भी उन्हें उनके निश्चय से हटाना सहज नहीं है। उन्हें अपनी निर्णय-शक्ति में आश्चर्यजनक विश्वास है। हम दोनों अभिन्न मित्र होगये हैं—आपस के मतभेद कितने ही बड़े क्यों न हों। वायसराय के प्रति ऐसी भावना रखते हुए मुझे भंग हुई हाल की बातचीत के विषय में अपनी यह राय प्रकट करते समय दुःख होता है कि ऐसा होना एकदम अनिवार्य नहीं था।

प्रतिनिधि तथा मित्र की हैसियत से मैंने ब्रिटिश सरकार की कुछ कार्रवाइयों के सम्बन्ध में अपनी शंकायें उपस्थित कीं। कोई खास रुख अख्तियार करने के लिए इन शंकाओं का दूर होना जरूरी था। मैंने महसूस किया कि कांग्रेस की माँग को मुस्लिम लीग, देशी नरेश तथा दलित वर्ग के प्रश्न को बीच में खड़ाकर अस्वीकार करना वायसराय तथा भारत-सचिव का कांग्रेस और भारतीय जनता के साथ अधिक अन्याय है।

मैंने वायसराय से कहा कि उक्त तीनों वर्गीय अथवा साम्प्रदायिक हितों का प्रतिनिधित्व करते हैं, पर कांग्रेस किसी वर्ग-विशेष की प्रतिनिधि नहीं है। वह विशुद्ध राष्ट्रीय संस्था है, जो सम्पूर्ण भारत का प्रतिनिधित्व करने के लिए यत्नशील है; और इसी लिए कांग्रेस का सदैव यह कथन रहा है कि विस्तृत मताधिकार के आधार पर निर्वाचित राष्ट्रीय सभा के निश्चय को मानने के लिए वह तैयार है। कांग्रेस यह भी घोषित कर चुकी है कि मुसलमानों के विशेष अधिकारों के सम्बन्ध में वह पृथक् मुस्लिम निर्वाचन के आधार पर दिये गये मुस्लिम मत को स्वीकार करने के लिए तैयार है। इसलिए यह कहना गलत है कि कांग्रेस के खिलाफ़ मुस्लिम हितों की रक्षा के लिए विशेष संरक्षण की जरूरत है और यही युक्ति सिखों के मामले में भी लागू होती है।

वर्तमान रजवाड़ों को अपने स्वार्थ-साधन के लिए ब्रिटिश सरकार ने ही बनाया था। इस तर्क के जवाब में कि देशी रजवाड़ों के साथ ब्रिटिश सरकार विशेष सन्धियों से बँधी हुई है, मैंने कहा कि कांग्रेस नहीं चाहती कि ब्रिटिश सरकार उक्त सन्धियों की शर्तों की अवहेलना करे। मैंने कहा कि उक्त सन्धियों को केवल भारतीय प्रगति में बाधक न होना चाहिए। पर यह आशा करना बिल्कुल ग़लत है कि कांग्रेस देशी नरेशों के साथ राजीनामा तय करके दाखिल करे। यदि ब्रिटिश सरकार देशी राज्यों की प्रजा के हितों के लिए भी उतनी ही चिन्तित रहती, जितनी कि वह सन्धियों के सम्बन्ध में हुई है, तो सम्भवतः प्रजा की आज इतनी दयनीय दशा न होती। ब्रिटिश सरकार-द्वारा इस कर्त्तव्य की उपेक्षा के सम्बन्ध में मैंने कई उदाहरण भी पेश किये।

विवाद के अन्दर दलित वर्ग के मामले के लाने में ब्रिटिश सरकार का कथन और भी बनावटी सिद्ध हुआ है। ब्रिटिश सरकार जानती है कि कांग्रेस को इस वर्ग के लिए विशेष चिन्ता है और उसके हितों की रक्षा करने के लिए कांग्रेस ब्रिटिश सरकार से अधिक योग्य है। दलित वर्ग में से कोई एक जाति उसकी अन्य तमाम जातियों का सफलतापूर्वक प्रतिनिधित्व नहीं कर सकती।

मैंने वायसराय से यह जानने के लिए भेंट की थी कि ब्रिटिश तर्क के मेरे इस जवाब में कोई कमजोरी तो नहीं है। किन्तु जो भी बातें मैंने उठाई उनका मुझे सन्तोष-जनक उत्तर न मिला।

अपने साथियों की चेतावनी के बावजूद भी मैंने उन्हें यह आशा दिलाई थी कि इस लौह-प्राचीर का भेदन कर प्रत्यक्ष सत्य का दर्शन करा दूँगा। लेकिन साम्राज्यवादी

ब्रिटेन-निवासी अपने आसन से टस से मस नहीं हो सकते। फिर भी मैं हार नहीं मानूँगा। मैं ब्रिटिश जनता से इस सत्य को स्वीकार कराने की अवश्य कोशिश करूँगा कि भारत की आज़ादी की मुख्य बाधा कांग्रेस या किसी भी अन्य दल के समझौता करने की अयोग्यता में नहीं, बल्कि यथार्थ बात को स्वीकार करने की उसकी अनिच्छा में है।

इस बात में हम दोनों सहमत थे कि युद्ध के लिए चन्दा देने को लोग मजबूर न किये जायँ। उन्होंने वचन दिया कि मैं सब कठिनाइयों के बारे में जाँच करूँगा। मेरा उद्देश्य यह था कि ग़लतफ़हमी के लिए कोई गुंजाइश न रक्खूँ और यदि लड़ना ही पड़ा तो निश्चित बातों के लिए और बिना किसी कटु भाव के लड़ूँ। मैं इस आशा से लड़ना चाहता हूँ कि हमारी लड़ाई का औचित्य लोगों को यह बात मानने के लिए मजबूर करेगा कि ब्रिटेन को ही नहीं बल्कि सब राष्ट्रों को भारत से अधिक अच्छा बर्ताव करना चाहिए।

मैंने वायसराय से साफ़ साफ़ कह दिया है कि कांग्रेस किसी भी राष्ट्रीय दल आदि को नुक़सान पहुँचाकर अधिकार प्राप्त करना नहीं चाहती। यह बात मैंने इसलिए कही कि यह न कहा जा सके कि कांग्रेस इसलिए लड़ रही है कि उसे अधिकार नहीं मिला। मैंने उनसे कहा कि यदि आप विभिन्न दलों के प्रतिनिधियों का मंत्रि-मण्डल बनालेंगे तो कांग्रेस इसका विरोध न करेगी। युद्धोद्योग के बारे में, और जब तक सरकारी यंत्र को साम्राज्यवादी स्वार्थों के लिए काम करना है तब तक कांग्रेस को विरोध पक्ष में रहने में ही सन्तोष है। इस समय उपस्थित प्रश्न स्वतंत्रता का नहीं है। इस समय जीने का प्रश्न अर्थात् भाषण-स्वतंत्र्य के अधिकार का प्रश्न उपस्थित है। यह अधिकार कांग्रेस अपने ही लिए नहीं बल्कि सबके लिए चाहती है। इस अधिकार की शर्त अहिंसा रहेगी।

कौटिल्य और नाज़ीवाद

काशी के 'सिद्धान्त' में महत्त्व के लेख प्रकाशित होते हैं। उनमें भी 'किताबी कीड़ा' नामधारी सज्जन के लेख सदैव सुपाठ्य होते हैं। उनका 'कौटिल्य और नाज़ीवाद' शीर्षक लेख इस बार विशेष रोचक निकला है। उसका अधिकांश इस प्रकार है—

जर्मनी के श्रीबर्नहार्ड ब्रिलोयर समाज-शास्त्र के अच्छे पण्डित हैं। आपने इस पर कई ग्रन्थ लिखे हैं, भारत के सम्बन्ध में भी 'भारत में भूमि-सम्पत्ति' (लैंडेड प्रापर्टी इन इंडिया, १९२७), 'प्राचीन भारत में राज्य-शासन' (एडमिनिस्ट्रेशन आफ़ स्टेट इन ऐंशेन्ट इंडिया, १९३४) आदि भी तीन-चार ग्रन्थ हैं। इनमें आपने यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया है कि नाज़ीवाद के वास्तव में आदि प्रवर्तक आचार्य कौटिल्य हैं। आपने लिखा है कि यह मैं प्रचार की दृष्टि से नहीं कह रहा हूँ, यह मेरा दृढ़ मत है। 'आर्य्य' होने के नाते से आपने ग्रन्थ के प्रारम्भ में आचार्य कौटिल्य का अभिवादन भी किया है। आप लिखते हैं कि कौटिल्य कोई साधारण व्यक्ति नहीं था, वह एक शक्तिशाली राजनीतिज्ञ था, उसने भारत के लिए वही काम किया जो बिस्मार्क ने जर्मनी के लिए। उसने एक ऐसे शासक को सिंहासन पर बिठलाया, जिसने यूनानी सेना को भारत से निकाल बाहर किया। इससे भी बढ़कर उसका कार्य 'अर्थ-शास्त्र' की रचना है। इस ग्रन्थ को देखने से ही पता लगता है कि वह कितने विश्वास के साथ लिखा गया है। काल्पनिक अवस्थाओं को लेकर कोई ऐसा नहीं लिख सकता। इस तरह यह मानना पड़ेगा कि वह राजनीति-शास्त्र का कोरा पंडित ही नहीं बल्कि सुचतुर, दूरदर्शी व्यावहारिक राजनीतिज्ञ था।

श्री ब्रिलोयर लिखते हैं कि हिन्दू-शासन का जो उद्देश्य था उससे यूरोपीय विद्वानों के भाव बहुत कुछ भिन्न हैं, विशेषकर उन लोगों के जिनका आर्थिक स्वतंत्रता में विश्वास है, अर्थात् जो लोग श्री ऐडम स्मिथ, रिकार्डो, कैसेल आदि अर्थशास्त्रियों के मतानुसार यह समझते हैं कि आर्थिक जीवन में राज का हस्तक्षेप उचित नहीं है। इसके प्रतिकूल 'आर्थिक योजना' (एकानामिक प्लैनिंग) का भाव है, जो रूस, इटली, जर्मनी आदि में प्रचलित है और जिसका प्रभाव अमरीका में रूज़वेल्ट की 'नवीन व्यवस्था' (न्यू डील) पर भी प्रकट हो रहा है। श्री ब्रिलोयर का कहना है कि 'आर्थिक योजना' या 'योजनात्मक अर्थनीति' (प्लैंड एकानमी) उन भारतीयों के लिए नई नहीं है जो पूर्वीय देशों की स्थिति समझते हैं, और जो 'उदार' कहे जानेवाले यूरोपीय विचारों से अन्धे नहीं हो रहे हैं। 'योजनात्मक आर्थिक नियंत्रण-द्वारा राज के हितों का संरक्षण' इस ओर यूरोपीय विद्वानों का पहले ध्यान ही नहीं गया। यह बात तो उन्हें अब सूझी है, जिसे आचार्य कौटिल्य ने हज़ारों वर्ष पूर्व ही निश्चित कर लिया था। 'अर्थशास्त्र' वास्तविक स्थिति का ध्यान रखते हुए इसी का व्यावहारिक विवेचन विस्तृत रूप से किया गया है।

जैसी परिस्थिति में जर्मनी में 'योजनात्मक अर्थनीति' का प्रादुर्भाव हुआ, भारत में भी उस समय प्रायः वैसी ही परिस्थिति थी। जर्मनी पहले कई छोटे छोटे राज्यों में विभक्त था, परन्तु प्रुशिया के उत्थान ने उन सबको मिलाकर एक सुदृढ़ साम्राज्य स्थापित कर दिया। वैसे ही भारत में भी पहले मगध का उत्थान हुआ और विशाल मौर्य-साम्राज्य की स्थापना हुई। गत महायुद्ध के परिणाम-स्वरूप जर्मनी में घोर बेकारी फैली हुई थी, भारत भी सम्राट् चन्द्रगुप्त के समय में एक भीषण दुर्भिक्ष का शिकार बना था। उसके राजनैतिक तथा आर्थिक उत्थान को दृष्टि में रखकर ही 'अर्थशास्त्र' में एक व्यावहारिक योजना का निरूपण किया गया। राजकुमारों को पढ़ाने के लिए यह केवल नियमों का संग्रह नहीं है।

इस योजना में कौटिल्य ने आर्थिक साधनों के राज की ओर से संग्रह पर ज़ोर दिया है। व्यापार में वस्तुओं के अदल-बदल की उपयोगिता बतलाई है। बाज़ारों पर राज का पूरा नियंत्रण रक्खा है। इसमें 'योजनात्मक अर्थनीति' के सब आवश्यक अंग आ जाते हैं और आर्थिक जीवन में राज का हस्तक्षेप अनिवार्य हो जाता है। परन्तु इसमें यह ध्यान रक्खा गया है कि राज का पूरा नियंत्रण होने पर भी निजी व्यापार का उत्साह भंग न हो। उस समय की परिस्थिति में यही व्यावहारिक उपाय देख पड़ा। पाश्चात्य देशों में ऐसी परिस्थिति इधर ही उपस्थित हुई। इस योजना का प्रधान उद्देश यह था कि भारत के करोड़ों निवासियों को आवश्यक रोटी-कपड़े की कमी न रहे और अन्न पैदा करने के लिए देश की भूमि का समुचित प्रबन्ध रहे। राज के हाथ में सर्वाधिकार सुरक्षित रखनेवाली अर्थनीति (नेशनल इकानमी), केन्द्रित शासन-व्यवस्था और सुसंगठित सेना, इनके द्वारा राज के पूरे नियंत्रण का प्रबन्ध किया गया। नीति को काम में लाने तथा कर्तव्यों का पालन करने के लिए राज को एक मूक जन-समूह पर नहीं, बल्कि एक सजीव सुसंगठित समाज पर निर्भर रहना पड़ता था, जिसको राष्ट्र कहा जा सकता है। इस समाज में प्रत्येक व्यक्ति का 'स्वधर्म' निश्चित था, जिसका पालन ही राष्ट्र-सेवा थी। ब्रिलोयर के मतानुसार 'अर्थशास्त्र' में राज के हस्तक्षेप के जो उपाय रक्खे गये हैं वे सरल तथा मनोवैज्ञानिक हैं। इसके साथ 'लोकहित' का सिद्धान्त लगा हुआ है और राज के हाथ में अर्थनीति का संचालन तथा पथ-प्रदर्शन है, परन्तु यह वर्गवाद से सर्वथा भिन्न है।

यह पथ-प्रदर्शन 'आर्थिक निरीक्षण तथा नियंत्रण' में है, जिसके लिए अनिवार्य उपायों को भी ग्रहण करना पड़ता है। परन्तु, राज स्वयं व्यापारी बनने के लिए उत्सुक नहीं है। किसी विशेष व्यापार का पूरा ठेका या सर्वाधिकार राज-द्वारा अपने हाथ में ले लेने की व्यवस्था अवश्य है, परन्तु वह लोकहित की दृष्टि या सामग्रियों की अधिकता ही होने पर। ब्रिलोयर की राय में इस योजना में दो बातों का बड़ा ध्यान रक्खा गया था। एक तो दुर्भिक्ष के अवसरों पर सर्व-साधारण को तथा हर समय सरकारी कर्मचारियों और सेना को भोजन पहुँचाने के लिए खाद्य सामग्रियों का पूरा संग्रह और दूसरे सिंचाई का पूरा प्रबन्ध। भारत की विशेष जलवायु के कारण सिंचाई की सुव्यवस्था नितान्त आवश्यक है। इस तरह कौटिल्य ने 'अर्थशास्त्र' में नाज़ीवाद के प्रधान सिद्धान्त 'योजनात्मक अर्थनीति' का दिग्दर्शन कराया, ब्रिलोयर का संक्षेप में यही मत है।

आचार्य कौटिल्य नाज़ीवाद के प्रथम प्रवर्तक चाहे रहे हों या न रहे हों, इतना तो अवश्य ही मानना पड़ता है कि नाज़ीवाद के आचार्यों ने 'अर्थशास्त्र' का खूब अध्ययन किया है और उससे पूरा लाभ भी उठाया है। उनकी आर्थिक नीति, प्रचार-कार्य, खुफ़िया-विभाग, अस्त्र-शस्त्रों के प्रयोग और युद्ध-संचालन आदि में 'अर्थशास्त्र' की छाप स्पष्ट दिखलाई पड़ती है। जिस देश का यह शास्त्र था उसने तो उसे भुला दिया, पर विदेशियों ने उससे बहुत कुछ शिक्षा ग्रहण की। साथ ही यह भी मानना पड़ेगा कि जो इसकी मूल शिक्षा है, जो वास्तव में इसका प्राण है, उसे वे न समझ सके। तभी तो वे आज भीषण नरसंहार में प्रवृत्त हैं। वह शिक्षा है 'अपने धर्म का पालन करना' स्वर्ग तथा मोक्ष-प्राप्ति का साधन है।

हिन्दी और उसकी रचना

बम्बई के हिन्दी विद्यापीठ के उपाधि-वितरणोत्सव में शान्तिनिकेतन के प्रसिद्ध विद्वान श्रीयुत क्षितिमोहन सेन शास्त्री, एम० ए०, ने जो दीक्षान्त भाषण किया है वह महत्त्वपूर्ण है और उसकी ओर हिन्दी के महारथियों का ध्यान जाना चाहिए। उस भाषण का कुछ अंश इस प्रकार है—

राज्य-प्रबन्ध में नाना प्रदेश के नाना भाँति का व्यवहार आवश्यक होता है। इसके बिना राज्य-प्रबन्ध नहीं हो सकता।

आपके बच्चे का चर्म इतना कोमल है कि इसके लिए केवल अच्छे से अच्छे मरहम या बुकनी की आवश्यकता है। क्यूटीकूरा टैलकम (CUTICURA TALCUM) बहुत ही बारीक तथा विशुद्ध है। इसमें कुछ दवा का भी असर रहता है। यह बच्चों के कोमल चर्म को ठंढक तथा आराम पहुँचाता है और उसे सुगन्धित तथा स्वस्थ रखता है। नहाने के बाद थोड़ा-सा अपने बदन पर डाल दीजिए जिससे किसी प्रकार की रगड़ न लग सके।

दुनिया के सारे डाक्टर तथा नर्सें क्यूटीकूरा टैलकम (CUTICURA TALCUM) को बच्चों के कोमल चर्म के लिए शिफ़ारिश करती हैं। स्त्रियों को भी नहाने के बाद या बदन में पीड़ा होने पर इसे लगाने से बड़ी प्रसन्नता होती है। पसीने को जल्दी दूर करता है तथा चर्म को नरम तथा सुगन्धित बनाता है। अपने यहाँ के दवाफ़रोश से आज ही खरीदिए।

बच्चों के लिए

क्यूटीकूरा टैलकम बुकनी

CUTICURA TALCUM POWDER

आपके यहाँ कर्नाटक, महाराष्ट्र, कोंकण, गुजरात, मलाबार, उत्तर-भारत आदि नाना प्रदेशों के सुधीजन अपना प्रेमोपहार लेकर उपस्थित हुए हैं। परन्तु इस उपहार को रख सकने का पात्र कहाँ है? सांस्कृतिक उपहार का पात्र है भाषा। आप उसी वाङ्मय-पात्र की रचना में दत्तचित्त हैं। विना इस वाङ्मय-पात्र के राजसूय सफल नहीं होगा। आदर्श और साधना की एकता मनुष्य को एकता जरूर देती है, परन्तु भाषा की भिन्नता मनुष्य की इस एकता को जाग्रत नहीं होने देती। योरपीय प्राचीन कथा में सुना जाता है कि भाषा की विभिन्नता के कारण ही 'टावर ऑफ़ बैबल' टूट पड़ा था, और वही मनुष्य जो इस महती साधना के लिए दिन रात एक कर रहे थे, भाषा की विभिन्नता के कारण आपस में ही लड़ने लगे थे और उन्होंने अपनी ही निर्माण की हुई वस्तु को स्वयं ही गिरा दिया था।

किन्तु भाषा यद्यपि एकता का प्रधान वाहन है, परन्तु वही एक मात्र ऐक्य-विधायक उपादान नहीं है। और भी वस्तुएँ हैं, जो एकता को बनाये रखने में या नष्ट कर देने में महत्त्वपूर्ण भाग लेती हैं। इतिहास में एक भाषा-भाषी लोगों का झगड़ना दुर्लभ घटना नहीं है। अमेरिका और इँग्लैंड में जो लड़ाई हुई थी वह भी एक ही भाषा के होते हुए भी। महाभारत की लड़ाई क्या भिन्न भाषा-भाषियों में हुई थी? हमें भाषा की साधना करते समय इन अन्य महत्त्वपूर्ण वस्तुओं को भूल नहीं जाना चाहिए। आज अगर आप खुली नज़रों से देखें तो आपको इस बात में कोई सन्देह नहीं रह जायगा कि एक भाषा की आवाज़ उठाते हुए भी हममें प्रादेशिकता और साम्प्रदायिकता प्रवेश कर रही है और दिन दूनी रात चौगुनी बढ़ रही है, क्योंकि भाषा ही एक मात्र एकता का हेतु नहीं है और भी बहुत-सी बातें हैं। उनकी उपेक्षा करने से हम 'एक भाषा' की प्रतिष्ठा करने में भी पद-पद पर बाधा का अनुभव करेंगे। फिर भी इसमें कोई सन्देह नहीं कि भाषा एक प्रधान और महत्त्वपूर्ण सेतु है। भाषा की सहायता के बिना हम अपने अत्यन्त निकटस्थ व्यक्ति को भी नहीं बुला सकते।

सभ्यताओं के इतिहास के अध्येताओं ने लक्ष्य किया है कि प्रायः प्रत्येक प्राचीन सभ्यता एक एक नदी का आश्रय करके विकसित हुई है। ठीक भी है। नदी अपने प्रवाह से नाना प्रदेशों को युक्त करती है किन्तु भाषा और भी जबर्दस्त योग-विधायक है। नदी तो केवल बाह्य-सभ्यता विकास में सहायता पहुँचाती है, परन्तु भाषा तो जीवन्त प्रवाह है, जो अन्तर-अन्तर में योग-स्थापन करती है। यहाँ भाषा से मेरा उद्देश्य यह नहीं है कि जिस किसी ज़माने की भाषा या जिस किसी देश की भाषा योग-स्थापन का कार्य करती है, नहीं: योग विधायिनी भाषा वही हो सकती है जो सर्वसाधारण की अपनी हो, अपने काल की और अपने देश की। कबीरदास ने भाषा अर्थात् बोली जानेवाली भाषा की इसी लिए 'बहते नीर' से उपमा दी है और संस्कृत की 'कूप-जल' से!

आज हम केवल राजनीतिक दासता के बन्धन से ही जकड़े हों, ऐसी बात नहीं है। इससे भी भयंकर बन्धन हमारे अपने तैयार किये हुए हैं, जो भीतर के हैं, बाहर के भी हैं। हमें उन सबसे मुक्त होना है। अपनी इस मुक्ति के लिए हमें उपयुक्त तीर्थ-स्थान खोज निकालना होगा। जहाँ दो नदियों का समागम होता है वह संगम-क्षेत्र इस देश में बहुत पवित्र माना जाता है; जहाँ और भी अधिक नदियों का संगम हो वह तीर्थ और भी श्रेष्ठ होता है। तीन नदियों के संगम से प्रयाग का माहात्म्य इतना अधिक है कि वह तीर्थराज कहलाता है। काशी में छोटे छोटे नालों के संगम का भी जहाँ अधिक समावेश हुआ है उस पवित्र पंचगंगा घाट को अशेष-पुण्यदाता माना गया है। अपनी मुक्ति के लिए भी हमें साधनाओं और संस्कृतियों का संगम ढूँढ़ निकालना होगा। भाषा को केवल भाषा मानकर हम चुप नहीं रह सकते। हमें उसे संस्कृतियों, विद्याओं और कलाओं का महान् संगम-तीर्थ बना देना होगा। अँगरेज़ी भाषा की महिमा इसलिए नहीं है कि वह हमारे मालिकों की भाषा है, बल्कि इसलिए कि उसने संसार की समस्त विद्याओं को आत्मसात् किया है। अँगरेज़ न भी रहेंगे तो भी उनकी भाषा का आदर ऐसा ही बना रहेगा। हिन्दी को भी यही होना है। उसे भी नाना संस्कृतियों, विद्याओं और कलाओं की त्रिवेणी बनना होगा। बिना ऐसा बने भाषा की साधना अधूरी रह जायगी। आप लोग जो आज इस साधना के लिए व्रती हुए हैं, यह बात न भूलें। भाषा हमारे लिए साधन है, साध्य नहीं; मार्ग है, गन्तव्य नहीं; आधार है, आधेय नहीं।

हमारे देश में जिस भाषा को माता कहा गया है उस मातृभाषा की गोद में ही तो हम सबने जन्म लिया है। उसी माता ने हमारे चिन्मय स्वरूप की सृष्टि की है। वह माता मिथ्या कैसे हो सकती है? वस्तुतः जब वह माता हमारे चिन्मय स्वरूप की सृष्टि करती रहती है तब सच्ची ही होती है; किन्तु जब हम उस माता की सृष्टि

अब आप अपनी नाजुक चीज़ोंको लक्सकी हिफ़ाजतका फ़ायदा और अधिक दे सकते हैं। लक्सके एक नये बड़े पैकिटसे आपको अपने रुपयेके बदले कहीं ज्यादा लक्स मिलता है। ठंडे पानीमें लक्ससे खूब अच्छी तरह फेन उठतो है। लक्सके घने फेनको अपने कोमल वस्त्रोंके भीतर दबाकर निचोड़ डालिये। और फिर उन्हें सुखानेके लिये फैला दीजिये। याद रखिये—अगर आपके कपड़ोंको पानीमें कोई नुक़सान नहीं पहुंचता तो वह लक्समें भी सुरक्षित हैं।
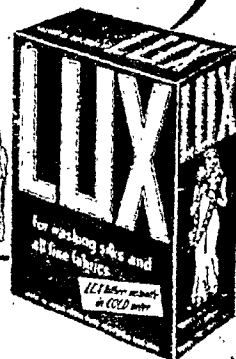
दरमयाना और छोटा साइज़ दोनों दामोंके
लिहाज़से बहुत सस्ते हैं।

LEVER BROTHERS (INDIA) LIMITED LX.9-172 HI

करने का ध्यान करने लगते हैं तब वह निश्चय ही मिथ्या हो उठती है। माता को सन्तान नानाविध अलंकारों और महनीय वस्त्रों से अलंकृत करे—यह तो उचित है; बल्कि सन्तान का यह कर्तव्य ही है कि वह माता को अधिकाधिक समृद्ध और तृप्त करता रहे, पर स्वयं वह माता को ही बनाने लगे, यह तो एकदम समझ में आनेवाली बात नहीं है। हम भाषारूपी माता को नाना भाव से—कला-साहित्य-विज्ञान से समृद्ध और अलंकृत कर सकते हैं, पर उसे काट-छाँट, गढ़-छोल कर नई माता बनाने का प्रयत्न करना नितान्त दम्भ मात्र है।

सावरकर का वक्तव्य

भारत के वायसराय महोदय इस बात के प्रयत्न में हैं कि भारत के भिन्न भिन्न दलों में किसी तरह का समझौता हो जाय ताकि वे युद्ध का कार्य सुचारु रूप से संचालित कर सकें। परन्तु मुस्लिम लीग आदि की ओर से ऐसी शर्तें पेश की गई कि वे अपने प्रयत्न में सफल नहीं हो सके। मुस्लिम लीग की शर्तों के मुक़ाबिले में हिन्दूसभा ने जो शर्तें पेश की हैं उनका कुछ आभास वर्तमान सभापति बैरिस्टर सावरकर के वक्तव्य से लग जाता है। वह वक्तव्य इस प्रकार 'अभ्युदय' में छपा है—

मुस्लिम लीग ने जो बढ़ बढ़कर माँगें पेश की हैं उनके विरुद्ध वायसराय से अपने दृष्टिकोण को रखते हुए डा० मुंजे निश्चय ही इतना जोरदार प्रतिवाद करेंगे जितना कि चाहिए। मदरास, पंजाब, बंगाल, बम्बई तथा सिंध की प्रान्तीय सभाओं ने सार्वजनिक रूप से लीग के प्रस्तावों की निन्दा की है और बतलाया है कि मिस्टर एमरी का भाषण ही इस बात के लिए जिम्मेदार है कि अल्पसंख्यक मुसलमान ऐसी असम्भव माँग पेश कर रहे हैं।

मुसलमानों की हिन्दू विरोधी माँगें, ब्रिटिश सरकार की चाणक्य की-सी नीति तथा कांग्रेस-नेताओं के मुसलमानों को सब कुछ दे देने के प्रस्ताव चाहे जैसे हों, हिन्दू-महासभा किसी भी अवस्था में अल्पसंख्यक मुसलमानों के प्रतिनिधित्व के लिए जनसंख्या के अनुपात के अतिरिक्त और किसी भी सिद्धान्त को स्वीकार नहीं करेगी।

यदि वे सभी हिन्दू जो इस वक़्त भी मौजूद हैं अपने को हिन्दू समझें, चाहे वे कांग्रेस में हों या उसके बाहर हों, हिन्दुओं के रूप में संगठित होकर एक हो जायँ और यह माँग करें कि बहुमतवाले हिन्दुओं को भी अपने वैध अधिकारों की रक्षा करनी है तो कोई भी उन्हें जनसंख्या के आधार पर प्रतिनिधित्व मिलने से वंचित नहीं कर सकता सिर्फ़ इस कारण कि वे संयोग से बहुसंख्यक जाति के हैं। न कोई मुसलमानों के साथ यह समझकर कि वे कष्ट सहन करनेवाले साधु हैं, पक्षपात ही कर सकता है। सभी हिन्दुओं को घोषित कर देना चाहिए कि मुसलमानों ने अल्पसंख्या में होकर हिन्दुओं के साथ कोई भलाई या अनुग्रह नहीं किया है। हिन्दू अगर बहुमत में हैं तो उसका कारण सिर्फ़ यह है कि राष्ट्रीय जीवन के लिए उन्हें जिनके साथ संघर्ष करना पड़ा और रहना पड़ा है उनकी अपेक्षा अधिक संख्या में *जीवित बचने के योग्य अपने को सिद्ध किया है।* वास्तव में जनसत्ता की ओर से हिन्दुओं को बिना किसी विरोधी के शासन करने का आश्वासन मिलना चाहिए, क्योंकि वे बहुमत में हैं। किन्तु समझौते की भावना भी इससे आगे नहीं जा सकती कि व्यवस्थापिका सभाओं आदि में जनसंख्या के आधार पर प्रतिनिधित्व अदा न करने का सिद्धान्त स्वीकार किया जाय।

हिन्दुओं को यह निश्चय समझ लेना चाहिए कि अगर हिन्दू लोग रियासतों के साथ मिलकर संगठित हो जायँ और एक अखिल हिन्दू-मोर्चा संगठित कर लें जो हिन्दुओं के अधिकारों की रक्षा करने के लिए दृढ़ हो तो हिन्दू बहुत जल्द अपने को भारतीय राजनैतिक जीवन में सबल पावेंगे। अल्पसंख्यक मुसलमानों को जितना मज़बूत होने की मिस्टर एमरी कल्पना करते हैं उससे भी अधिक मज़बूत हिन्दू बन जायँगे और अन्त में ब्रिटिश लोग मुसलमान अल्पसंख्यकों से भी अधिक हिन्दुओं को प्रसन्न करने के लिए बाध्य होंगे।

भारत की स्वाधीनता और एकता, जनसंख्या के आधार पर प्रतिनिधित्व की व्यवस्था तथा योग्यता के आधार पर सरकारी नौकरियों में नियुक्ति ये तीन मौलिक सिद्धान्त हैं, जिनके आधार पर हिन्दू महासभा शुरू से खड़ी की गई है। भविष्य में भी वह इससे एक इंच भी पीछे नहीं हटेगी, चाहे जो कुछ भी हो जाय।
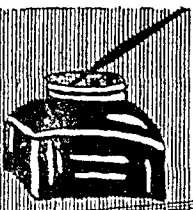
राजनीति का कुचक्र

जर्मनी, इटली और जापान की पहले की गुटबन्दी है। जब यह युद्ध शुरू नहीं हुआ था उसके पहले से इन तीनों राष्ट्रों में गहरी घनिष्ठता थी। और जब जर्मनी और इटली का रूस के विरुद्ध एक समझौता हुआ था तब बाद को जापान ने भी उस पर अपनी सही कर दी थी। इस प्रकार उक्त समझौते से इन तीनों राष्ट्रों ने संसार को यह बताया था कि वे रूस के विरुद्ध हैं और अवसर आने पर वे तीनों मिलकर उसको धूल में मिला देंगे। परन्तु इस युद्ध के प्रारम्भ होने के पहले एकाएक एक दिन लोगों को ज्ञात हुआ कि जर्मनी ने रूस से अनाक्रमण सन्धि कर ली है। इस बात से इटली और जापान दोनों ने अपना मौखिक विरोध प्रकट किया। परन्तु जर्मनी को तो रूस की मित्रता की जरूरत थी, अतएव उसने इटली और जापान को समझा-बुझाकर राज़ी कर लिया। यहाँ तक कि जब इटली ने देखा कि जर्मनी ने फ़्रांस को भी अपने क़ाबू में कर लिया है तब वह भी जर्मनी की ओर से युद्ध में शामिल हो गया। और अब जब जापान ने देखा कि उसके प्रभाव-क्षेत्र में अमरीका और ब्रिटेन अड़ंगे लगाने की कौन कहे, अपने अपने स्वार्थों की रक्षा के लिए परस्पर मिलकर जापान का विरोध करना चाहते हैं तब उसने जर्मनी और इटली से दस वर्ष की एक सन्धि कर ली है। इस सन्धि के अनुसार जर्मनी और इटली ने जापान को पूर्वी एशिया का 'प्रभु' मान लिया है और जापान ने इन दोनों को योरप का 'प्रभु' माना है। यही नहीं, यदि कोई दूसरा राष्ट्र उनमें से किसी एक पर आक्रमण करेगा तो शेष दोनों उसकी धन-जन से सहायता करेंगे। इस सन्धिपत्र से प्रकट होता है कि संसार के ये तीनों बलशाली राष्ट्र क्या करने को तुले हुए हैं। इतना तो स्पष्ट प्रकट ही होता है कि ये तीनों अमरीका से भयभीत हैं, क्योंकि अब अमरीका प्रकट रूप से ब्रिटेन की सहायता करने को तैयार हो रहा है। उक्त सन्धि के होने का एक यह भी कारण है। इसी प्रकार जर्मनी, जान पड़ता है, स्पेन पर भी दबाव डाल रहा है कि वह भी जर्मनी का पक्ष लेकर युद्ध में शामिल हो जाय। हाल में स्पेन के प्रधान राजपुरुषों का जर्मनी में जो स्वागत-सत्कार हुआ है वह सब इसी बात का संकेत है। चाहे जो हो, इस समय अकेले ब्रिटेन ने युद्ध का मोर्चा जिस दृढ़ता के साथ लिया है उससे जर्मनी के दाँत खट्टे हो गये हैं और वे अब ब्रिटेन पर चढ़ दौड़ने का विचार छोड़कर युद्ध का प्रसार दूसरे क्षेत्रों में करना चाहते हैं।

भारतीय समस्या की उलझन

भेंटों पर भेंटें होती रहीं, पर कोई परिणाम नहीं निकला। उस दिन हिन्दू-सभा की ओर से डाक्टर मुंजे वाइसराय महोदय से शिमला में मिले। क्या बातचीत हुई, यह तो नहीं प्रकट हुआ, पर बम्बई से हिन्दू-महासभा की कार्यकारिणी में जो वक्तव्य प्रकाशित हुआ है उससे यही प्रकट होता है कि डाक्टर मुंजे की नहीं सुनी गई और वे खाली हाथ लौट आये। आशा थी कि मुस्लिम लीग की बात शायद मान ली जाय और उसके सर्वेसर्वा जिन्ना साहब इसी आशा से शिमला गये भी थे। वायसराय महोदय से उनकी क्या बातचीत हुई, यह नहीं प्रकट हुआ, पर दिल्ली से मुस्लिम लीग की कार्यकारिणी ने जो घोषणा की है उससे विदित होता है कि वायसराय महोदय ने लीग की माँगें नहीं स्वीकार कीं। अन्त में महात्मा गांधी स्वतन्त्र भाषण की माँग करने को गये। परन्तु उनकी भी बात नहीं मानी गई और वे भी विफलमनोरथ होकर लौट आये और वे अब सत्याग्रह करने जा रहे हैं। यह सब क्या हो रहा है—भीतर ही भीतर भिन्न-भिन्न दलों के नेता सरकार के आगे अपनी अपनी ऐसी क्या माँगें रख रहे हैं कि समस्या अधिकाधिक उलझती जा रही है? क्या उनकी मतभिन्नता ही सबसे बड़ी बाधा है, जिससे सरकार भिन्न-भिन्न दृष्टिकोणों में सामञ्जस्य लाने में समर्थ नहीं हो रही है या यह कि सरकार का अपना भी एक भिन्न मत है? यह सच है कि वह इस समय प्रचलित शासन-प्रबन्ध में किसी तरह का परिवर्तन नहीं करना चाहती है, उसका एकमात्र लक्ष्य युद्ध-कार्य का सुव्यवस्थित रीति से सञ्चालन करना है और इसी एक क्षेत्र में वह इस समय लोक-नेताओं का सहयोग चाहती है। रही बात शासन-सुधारों की, सो स्पष्ट शब्दों

में घोषणा कर दी गई है कि युद्ध के बाद भारत को डोमीनियन स्टेटस दे दिया जायगा। सारी उलझन का मूल कारण सरकार की यही निश्चित नीति है। इसी से वायसराय महोदय लोकनेताओं का सहयोग प्राप्त करने में असमर्थ हो रहे हैं, क्योंकि उनके सामने लोगों ने अपनी ऐसी विभिन्न माँगें रख दी हैं जिनकी सरकार तद्वत् पूर्ति नहीं कर सकती है।

अमरीका का उग्र रूप

आख़िर को अमरीका के संयुक्त राज्यों का भी धैर्य छूट गया। नाज़ी जर्मनी योरप में नृशंसता का जो ताण्डव नृत्य कर रहा है वह कितने दिन तक सह्य होता। फिर वहाँ के निवासियों में अधिकांश अँगरेज़ी-भाषी अँगरेज़ लोग ही तो हैं। अपने सजातियों को संकट में देखकर वे उनकी मदद को कैसे आगे न आयें! फलत: उसने भी अब अपना उग्र रूप प्रकट किया है। उसने देख लिया है कि वह दिन दूर नहीं है जब उसे एक ओर जर्मनी से तो दूसरी ओर जापान से लड़ना पड़ेगा। अतएव वह अटलांटिक और पैसेफ़िक दोनों क्षेत्रों में लड़ाई की तैयारी करने में लग गया है। इसके साथ ही वह ब्रिटेन की पूरी सहायता करने का भी वचन दे चुका है! उसके इसी उग्र रूप को देखकर जर्मनी और जापान दोनों भयभीत हुए हैं और उन्होंने तीन राष्ट्रों की जो सन्धि हाल में की है वह इसी भय का परिणाम है।

जापान से उसका, चीन के युद्ध के कारण, पहले से ही मनोमालिन्य था, परन्तु उक्त संधि के कारण उस मनोमालिन्य ने और भी भीषण रूप धारण कर लिया है। यद्यपि अभी इन दोनों राष्ट्रों में वैसा संघर्ष नहीं हुआ है, तो भी यह एकदम स्पष्ट हो गया है कि उनका संघर्ष अनिवार्य है। हवाई टापुओं में अमरीका के नौबल में इधर जो वृद्धि की गई है तथा ब्रिटेन का सहयोग प्राप्त कर सिंगापुर में तथा डच ईस्ट इंडीज़ में उसकी जो सैनिक गतिविधि दिखाई दे रही है वह सब उस भयानक परिस्थिति का ही सूचक है। अमरीका ने रिज़र्व नौबल के २३ बटालियनों को युद्ध के लिए तैयार होने के लिए हाल में ही आदेश किया है। एंटी एयर क्रैफ्ट रेजिमेंट के १२,००० जवान हवाई द्वीपों को भेजे जा रहे हैं। वहाँ २४ हज़ार फ़ौज पहले से ही मौजूद है। यह सब हो रहा है, परन्तु इतने पर भी प्रश्न उठता है कि क्या वह जापान से लड़ जायगा, क्योंकि जापान तो उससे भिड़ने का भाव नहीं व्यक्त कर रहा है, वह तो केवल चीन, इंडोचीन तथा उनके पास के द्वीपों पर अपना प्राधान्य क़ायम करने की ही बात कर रहा है। किन्तु उसकी इस प्रकार जो सत्ता बढ़ जायगी उससे अमरीका की निस्सन्देह हितहानि होगी, क्योंकि उन सभी अञ्चलों में अमरीका की करोड़ों रुपये की पूँजी लगी हुई है तथा व्यापार आदि के लिए तरह तरह की उसे सुविधायें भी प्राप्त हैं। और ये सब ऐसी बातें हैं जिन्हें अमरीका के धनकुबेर यों ही हाथ से नहीं निकल जाने देंगे, अर्थात् वे अपनी सरकार को बाध्य करेंगे कि वह जापान का उन क्षेत्रों में अपना प्राधान्य न क़ायम करने दे। परन्तु जापान तो इस मार्ग पर बहुत दूर तक बढ़ आया है और अभी तक न तो ब्रिटेन ने, न अमरीका ने ही किसी तरह की उसके मार्ग में बाधा डाली है, उलटा उसे बढ़ने का ही अवसर दिया है। और जब उसने देखा कि उसका और आगे बढ़ना इन दोनों राष्ट्रों को सह्य न होगा तब उसने चुपके से जर्मनी और इटली से एक महत्त्वपूर्ण सन्धि कर ली है। इस सन्धि को अमरीका और ब्रिटेन दोनों अपने हितों की विघातिनी समझते हैं। फलत: इन दोनों राष्ट्रों में अधिकाधिक सहयोग बढ़ता जा रहा है, जिसे जर्मनी और जापान दोनों सन्देह की दृष्टि से देख रहे हैं और यही वह बात है जो अन्त में प्रशान्त महासागर में भीषण युद्ध का मुख्य कारण होगी। चाहे जो हो, अब संयुक्त राज्य भी काफ़ी आगे बढ़ आये हैं और वे अमरीका के समग्र राज्यों को अपने साथ लेकर अत्याचारियों का दृढ़ता से सामना करेंगे।

प्रसाद-परिषद्

काशी की 'प्रसाद-परिषद्' हिन्दी में अपने ढंग की एक आदर्श संस्था है। इसकी स्थापना काशी के प्रसिद्ध साहित्यकार स्वर्गीय जयशंकरप्रसाद की स्मृति में गत वर्ष की गई थी। इसका दूसरा अधिवेशन ३० सितम्बर को पण्डित सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' के सभापतित्व में सफलतापूर्वक हो गया। इस अवसर पर परिषद् की ओर से श्री निराला जी को एक मानपत्र दिया गया था तथा कतिपय कवियों का कविता-पाठ भी हुआ था। हम देखते हैं कि हिन्दी में साहित्यिकों के संगठनों का अभाव है। यदि उक्त परिषद् जैसी संस्थायें बड़े बड़े नगरों में स्थापित हो जायें तो साहित्यिकों को परस्पर विचार-

विनिमय करने तथा प्रेम-भाव बढ़ाने का खासा अवसर मिल सकता है। काशी ने उक्त परिषद् की स्थापना करके जिस मार्ग का निर्देश किया है वह अनुकरणीय है। आशा है, हिन्दी के प्रेमी इस दिशा में भी यत्नवान् होकर अपनी प्रगति का परिचय देंगे।

जर्मनी का नया क़दम

जब जर्मनी के नाज़ियों ने देख लिया कि वे ब्रिटेन का बाल बाँका नहीं कर सकते हैं तब उन्होंने अपना मुँह बाल्कन की ओर किया है और वहाँ के छोटे-छोटे राज्यों को पददलित कर अपना पुरुषार्थ प्रकट करना चाहते हैं। पाठकों को मालूम होगा कि अभी हाल में हिटलर और मुसोलिनी में ब्रेनर-पास में गुप्त बातचीत हुई थी। कदाचित् इसी बातचीत में यह तय हुआ है कि बाल्कन में उपद्रव खड़ा किया जाय। फलतः हम देखते हैं कि रूमानिया में २० हज़ार जर्मन-सेना आ पहुँची है। कहा तो यह जा रहा है कि वह रूमानिया की सेना का जीर्णोद्धार करने आई है। परन्तु बात वास्तव में ऐसी नहीं है। रंगढंग से ऐसा प्रतीत होता है कि यह सेना और आगे बढ़ेगी। इस बात की भी सम्भावना है कि बल्गेरिया और यूनान पर अधिकार करने के बाद जर्मन-सेनायें फ़्रांस के सीरिया की ओर बढ़ने का प्रयत्न करें। उस दशा में उनका तुर्की से अवश्य संघर्ष होगा। और इस समय तुर्की में बीस लाख सेना युद्ध के लिए तैयार है। परन्तु इस ओर बढ़ने के सिवा जर्मनी के लिए कोई दूसरा उपाय भी तो नहीं है। ब्रिटेन पर वह आक्रमण कर नहीं पा रहा है। तब उसकी प्रतिष्ठा की कैसी रक्षा हो? उसका कहना है कि उसके हवाई जहाज़ ब्रिटेन का संहार करने में लगे ही हैं, इधर हम तब तक ब्रिटेन के साम्राज्य को ही लाओ विनष्ट कर डालें। जर्मनी के सूत्रधारों की ऐसी ही सूझ है। बेचारे बुरी तरह दलदल में फँस गये हैं।

ब्रिटेन भी जर्मनी की इन सब चालों को जानता है। इसी से उसने भी जर्मनी में हवाई जहाज़ों-द्वारा वही संहार-लीला करनी शुरू कर दी है जिसका जर्मनी को बड़ा गर्व है। इसके सिवा उसके एशिया की ओर बढ़ने पर उसे उसी तरह रोक देने का वह प्रयत्न करेगा जैसा कि उसने इटली को मिस्र में रोकने का किया है।

सिन्ध की परिस्थिति

सिन्ध के सक्खर-ज़िले में हिन्दुओं पर जो कुछ बीती है उसका थोड़ा-बहुत परिचय यथासमय समाचार-पत्रों में प्रकाशित हो चुका है और उसके पुनरुल्लेख करने की ज़रूरत नहीं है; तथापि यह बड़े दुःख के साथ लिखना पड़ता है कि अभी तक वहाँ के हिन्दुओं का जान-माल पूर्ववत् जोखिम में है। अभी अभी पिछले मास में उस ज़िले में १२ हिन्दू जान से मार डाले गये, जैसा कि वहाँ की प्रान्तीय हिन्दू-सभा के वक्तव्य से प्रकट होता है। हम जानते हैं कि प्रान्तीय सरकार हत्यारों का दमन करने के काम में यथासम्भव यत्नवान् है और अब तक ९०० आदमियों के लगभग वह गिरफ़्तार कर चुकी है, जिन्हें उसने शान्ति का विघातक समझा है। परन्तु कदाचित् उसकी इस उग्रनीति का वहाँ के आततायियों पर कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ता दिख रहा है, क्योंकि वे अपने दुष्कृत्यों से विरत नहीं हो रहे हैं, और यह सब अनाचार उस सरकार की छत्रच्छाया में हो रहा है जो 'अपनी' सरकार कही जाती है। और चाहे जो हो, सिन्ध और उसके साथ ही बंगाल की मुस्लिम सरकारों ने अपने कुछ वर्षों के शासन-काल का जो उदाहरण उपस्थित किया है वह पूर्णतया निराशाजनक है। और हमें भविष्य के लिए सावधान हो जाना चाहिए। इसके साथ ही हमारा एक और भी कर्त्तव्य है और वह यह है कि हम इस संकट के अवसर सिन्ध और बंगाल के संकट-ग्रस्त अपने भाइयों की उपयुक्त सहायता करने के लिए अपने को योग्य भी बनावें।

प्रान्तीय हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन

हिन्दी के प्रेमियों में यह त्रुटि प्रारम्भ से ही रही है कि उन्होंने पहले से सोचकर उसकी प्रगति का काम कभी नहीं किया है। हाँ, जब हिन्दी पर संकट का पहाड़ टूटते देखा है तब जरूर उन्होंने उसका वारण करने का दृढ़ता से अपनी कमर कसी है। परन्तु उस संकट के दूर होते ही वे फिर अपनी स्वाभाविक अकर्मण्यता के फेर में पड़कर आलस्य में अपना समय बिताते आये हैं। यदि ऐसा न होता तो आज सभी हिन्दी-भाषी प्रान्तों में प्रान्तीय साहित्य-सम्मेलन जीवित संस्था के रूप में अपने अस्तित्व का परिचय देते होते। हमने बिहार, मध्य-प्रान्त और संयुक्त-प्रान्त के साहित्य-सम्मेलनों के वार्षिक अधिवेशनों

के होने के विवरण पत्रों में जरूर पढ़े हैं, परन्तु उनके प्रान्तीय संगठनों के होने की बात हम कभी नहीं जान पाये हैं। अब सुना है कि राजपूताने के प्रान्तीय साहित्य-सम्मेलन का अधिवेशन उदयपुर में होने जा रहा है। परन्तु इससे क्या? आवश्यकता तो इस बात की है कि प्रत्येक हिन्दी-भाषी प्रान्त के प्रान्तीय-सम्मेलन संगठित संस्था के रूप में अपने अस्तित्व का परिचय दें। और इस समय तो उनके ऐसे अस्तित्व की कहीं अधिक आवश्यकता इसलिए भी है कि यह हिन्दी का संकट-काल है। अकेले सर्वभारतीय हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन या काशी की नागरी-प्रचारिणी सभा के भरोसे बैठे रहना आत्मघात करने के समान होगा। हिन्दी की ये दोनों प्रमुख संस्थायें हिन्दी का वर्तमान संकट दूर करने में लगी हुई हैं अवश्य, पर यह महत्कार्य केवल उन्हीं दोनों के किये नहीं होगा। इसमें सिद्धि तभी प्राप्त होगी जब सभी हिन्दी-भाषी यथाशक्ति अपने अपने ढंग से यत्नवान् होंगे।

प्रान्तीय महिला-सम्मेलन

स्त्रियों को प्रगति के मार्ग पर अग्रसर होते देखकर किस पुरुष को प्रसन्नता न होगी। पिछले दिनों काशी में श्रीमती लक्ष्मी मेनन की अध्यक्षता में प्रान्तीय महिला-सम्मेलन का जो अधिवेशन हुआ था वह सफलता के साथ सम्पन्न हुआ। इस अवसर पर कई महत्त्वपूर्ण प्रस्ताव पास हुए हैं जिनमें से कुछ संक्षेप में इस प्रकार हैं—

(१) शहरों में प्रमुख महिलाओं की कमेटियाँ बनें जो परित्यक्त स्त्रियों को उनके पति से क़ानूनी हक़ दिलाने तथा विधवा-विवाह का प्रचार करने का काम किया करें।

(२) प्रान्त में स्त्रियों में साक्षरता के प्रचार का आयोजन हो।

(३) लोकल बोर्डों का चुनाव स्त्री-पुरुषों के भेद के बिना बालिग़ मताधिकार के आधार पर हो जिसमें स्त्रियों को भी नागरिक जीवन में हर तरह भाग लेने का मौक़ा मिले।

(४) सारदा ऐक्ट के बावजूद भी होनेवाले बाल-विवाहों को समझा-बुझाकर तथा क़ानूनी कार्रवाई कर रोकने के लिए प्रान्त में उपसमितियों की स्थापना की जाय।

(५) प्रान्त में भाषणों और नुमाइशों-द्वारा घरेलू काम-धन्धों को प्रोत्साहन देना चाहिए तथा ऐसे धन्धों को स्त्रियों को सिखाने के केन्द्र खुलने चाहिए।

(६) सम्मेलन की ओर से मिशनरी की तरह घूम-घूमकर स्त्रियों को शिक्षा देनी चाहिए।

परन्तु यह प्रस्ताव पास करने का युग नहीं है, काम करने का युग है। आशा है कि महिला-सम्मेलन की संचालिकायें उपर्युक्त प्रस्तावों को कार्य का रूप देने को यत्नवान् होंगी।

संयुक्त प्रान्त में अपराधों की वृद्धि

अभी हाल में संयुक्त-प्रान्त की सरकार ने अपने पुलिस-विभाग का सन् १९३९ ईसवी का कार्य्य-विवरण प्रकाशित किया है। उस कार्य्य-विवरण के पढ़ने से ज्ञात होता है कि इस एक वर्ष में प्रान्त में अपराधों की काफ़ी वृद्धि हुई है और अपराधियों का पता लगाकर उन्हें समुचित दण्ड दिलाने में पुलिस को आशानुसार सफलता नहीं मिल सकी है, यद्यपि वह प्रान्त में शान्ति तथा सुव्यवस्था क़ायम रखने तथा प्रान्त के धन-जन को सुरक्षित रखने के लिए दिन-रात एक करके चोटी का पसीना एँड़ी तक बहाती रही। प्रान्त में हत्या के १,३४७ मामले पुलिस के रजिस्टर में दर्ज हुए। इनके अतिरिक्त ८६ डाके के ऐसे मामले दर्ज हुए हैं जिनमें डाकुओं की गोलियों तथा उनके भालों या फ़र्सों का निरीह तथा अस्त्र-हीन प्राणियों को शिकार होना पड़ा है और ७२ आदमियों ने दूसरों की हत्या करने के बाद पुलिस के त्रास से सुरक्षित रहकर सीधे यमराज की कचहरी में अपने कुकृत्य का दण्ड स्वीकार करने के विचार से आत्महत्या के द्वारा मृत्यु का आश्रय ग्रहण किया। इस प्रकार प्रान्तवासियों की एक काफ़ी बड़ी संख्या को मनुष्य की हिंसा-वृत्ति का शिकार होकर अकाल में ही काल के गाल में चला जाना पड़ा। इन सब हत्याओं के अपराध में पुलिस ने जितने आदमियों का चालान किया है उनमें से केवल ३८ प्रतिसैकड़ा अपराधी प्रमाणित होकर दण्ड के अधिकारी हुए हैं। परन्तु डकैती के अपराधियों को दण्ड दिलाने में तो पुलिस को इतनी कम सफलता मिली कि १,०७९ मामलों में से जो प्रान्त के समस्त थानों में दर्ज हुए हैं, केवल २७६ मामले अदालत में भेजे जा सके हैं, और इस प्रकार के मामलों में से केवल पन्द्रह प्रतिसैकड़ा अपराधियों को दण्ड मिल सका है।

भोजनको बरतनोंमें सड़ने ना दो!

अपने खाना पकानेके बरतनोंको
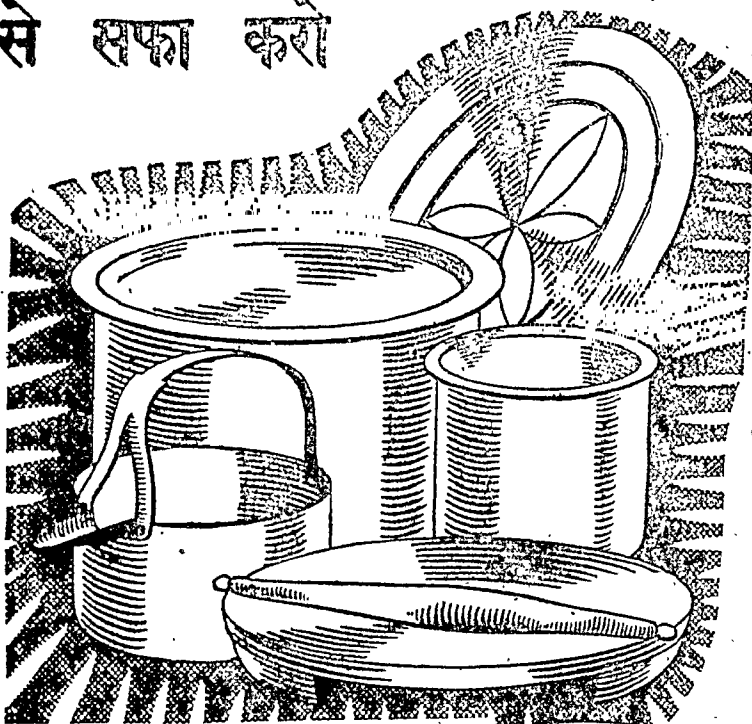
से सफा करो

जब रेत या राख बरतन साफ करनेके लिये इस्तेमालकी जाती है तो यह बरतनोंमें लकीरें डाल कर इनको खुदरा बना देती हैं जिनमें कि भोजनके टुकड़े सफा करते वक्त रह जाते हैं। और भोजनके छोटे टुकड़े जल्दी सड़ने लग जाते हैं और सब भोजनको ज़हरीला बना देते हैं। अपने परिवारकी सेहतके लिये बरतनोंको विमसे साफ करके हिफाज़त करो—विम बरतनोंको निहायत अच्छी तरहसे साफ कर देती है और इनको नया जैसा चमका देती है। इसमें एक और खुबी यह है के विम लकड़ीकी चीज़ों, रंगीन चिज़ें, चिलमची, नहाने के टब, टाईलों और इत्यादि चीज़ोंको बहुत अच्छी तरहसे साफ कर देती है।

बरतनोंको सेहतके लिये निरोगी बनाती है।

VIM
THE ... ACTION CLEANSER
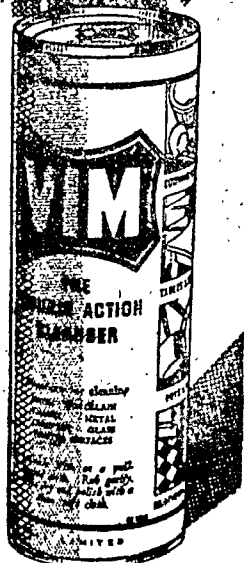
X-V 377-172—HI LEVER BROTHERS (INDIA) LIMITED

संयुक्त-प्रान्त में सन् १९३९ ईसवी में नक़बज़नी तथा चोरी की भी बहुत अधिक घटनायें हुई हैं, और इस विषय के अपराधियों का पता लगाकर उन्हें दण्ड दिलाने में पुलिस कहाँ तक सफल हुई है, इस बात का अनुमान इसी से लग जाता है कि नक़बज़नी के केवल १० प्रतिसैकड़ा तथा चोरी के १७ प्रतिसैकड़ा अपराधों में अपराधियों को दण्ड दिलाया जा सका है। साल भर में ३,२८७ साइकिलें चोरी गईं, जिनमें से कुल ५१४ पुलिस खोज ले आई, जिसके लिए इस विभाग के अधिकारियों को गर्व है कि उन्होंने इस विषय में उन्नति की ओर पैर बढ़ाया है। अदालत में पहुँचनेवाले मामलों में दंड पानेवाले अपराधियों की संख्या सबसे अधिक रही केवल गहरी चोट पहुँचाने के मामलों की। इस प्रकार कुल ६२३ मामले अदालतों में पहुँचे हैं, जिनमें से ५५३ मामलों में अपराधियों को दण्ड स्वीकार करना पड़ा है। साल भर में लूट के ६३० मामले हुए हैं और कुल १७२ मामलों में अभियुक्तों को दण्ड मिला है।

पुलिस-विभाग के इस कार्य्य-विवरण के द्वारा यह जानकर बड़ा दुःख होता है कि प्रान्तवासियों में चरित्र-सम्बन्धी निर्बलता बहुत अधिक बढ़ रही है। प्रान्त में स्त्रियों को धोखा देकर भगाने के सम्बन्ध में कुल ९७२ मामले पुलिस के रजिस्टर में दर्ज कराये गये थे, जिनमें से कुछ तो झूठे बतलाये जाते हैं और कुछ के सम्बन्ध में यह कहा जाता है कि स्त्रियाँ स्वेच्छा से ही अपने प्रेमियों के साथ भाग निकली हैं, क्योंकि वे पति से सन्तुष्ट नहीं थीं। यह बात और भी शोचनीय है कि इस वर्ष भर में पुलिस के यहाँ २१ ऐसे पशुता का आचरण करने-वाले व्यक्तियों के विरुद्ध रिपोर्ट लिखाई गई है, जिन्होंने अपनी बालिका-पत्नी पर बलात्कार करके अपनी कुप्रवृत्ति का परिचय दिया है, जिनमें से पाँच आदमियों को अदालत से दण्ड मिला है।

सन् १९३९ में उपद्रवों की संख्या ३,२९३ तक बढ़ गई है, जिनमें से १,१२७ उपद्रव साम्प्रदायिक बतलाये जाते हैं। इन साम्प्रदायिक उपद्रवों को शान्त कराने तथा उन्हें निर्मूल करने के लिए पुलिस ने अपनी शक्ति काफ़ी बढ़ाई है। कितने ही उच्च कर्मचारियों के अति-रिक्त बहुत-से नये सिपाही नियुक्त किये गये हैं। वर्ष के अन्त में डिप्टी इन्स्पेक्टर जनरल का एक स्थान बढ़ा दिया गया है, अर्थात् तीन के स्थान पर चार डिप्टी इन्स्पेक्टर जनरल कर दिये गये हैं।

जनता की धन-सम्पत्ति तथा उसके जीवन की रक्षा करने में पुलिस-विभाग के अधिकारियों तथा कर्मचारियों को जो कुछ सफलता मिली है उसके पुरस्कार के रूप में सरकार ने सम्मान-सूचक उपाधियों तथा पदकों के अतिरिक्त उनमें ८९,४३४) नक़द भी वितरित किया है। परन्तु इसके साथ ही आचरण ठीक न रख सकने के कारण ४८३ उच्च कर्मचारियों तथा सिपाहियों को इस विभाग के अधिकारियों की ओर से दण्ड भी मिला है, जिनमें से कुछ तो नौकरी से हटा दिये गये हैं और कुछ का पद या वेतन घटा दिया गया है। २६ व्यक्तियों को अदालतों से भी दण्ड मिला है।

अपराधों को रोक अपराधियों को खोज करने तथा उन्हें दण्ड दिलाने में पुलिस को जो इतनी कम सफलता मिली है उसका कारण इस कार्य्य-विवरण में कह दिया गया है कि *उत्तेजनापूर्ण आन्दोलनों के कारण एक तो पुलिस* की प्रतिपत्ति जनता की दृष्टि में बहुत कम हो गई है, दूसरे जनता में सार्वजनिक हित की इतनी भावना नहीं है कि वह अपराधियों की खोज करने में पुलिस का सहयोग कर सके। यह आक्षेप कहाँ तक उचित है, यह विचारणीय है।

सम्मेलन का लेख

सितम्बर की 'सरस्वती' में साहित्य-सम्मेलन के सम्बन्ध में एक महत्त्वपूर्ण लेख छपा है। हमें आशा थी कि उसका उत्तर छापने को मिलेगा। परन्तु जिन महानुभाव को उसका उत्तर देना चाहिए था उन्होंने उस लेख की उपेक्षा ही की। हाँ, सम्मेलन के दफ़्तर से हमें एक लेख ज़रूर मिला था, जिसमें प्रस्तावों की नक़लें थीं और जो सरस्वती के उस लेख का उत्तर नहीं था, अतएव हमने उसको नहीं छापा। इसका यह मतलब नहीं है कि 'सरस्वती' किसी एक ही पक्ष के मत का प्रकाशन करती है। वास्तव में 'सरस्वती' ने दोनों पक्षों के विचारों का सदैव प्रकाशन किया है और आज भी वह अपनी उस नीति पर चल रही है। यदि सम्मेलन के उत्तरदायी व्यक्ति उस लेख का खण्डन लिखकर भेजते तो वह भी आदर के साथ 'सरस्वती' में छापा जाता, क्योंकि दोनों पक्षों के मतों से अपने पाठकों को परिचित कराना 'सरस्वती' अपना कर्त्तव्य समझती है। यह निवेदन इसलिए किया गया है कि हमारे पाठक वास्तविक स्थिति से परिचित हो जायँ।

इस अंक में पढ़िए--

टोकियो-निवासी श्रीयुत श्यामसुन्दरलाल गुप्त :—

जापान में कृषक-जीवन (सचित्र)

प्रोफ़ेसर फूलदेव सहाय वर्म्मा :—

आग पर चलना

सेठ गोविन्ददास, एम० एल० ए० :—

हमारा प्रधान उपनिवेश

श्रीयुत अवनीन्द्र विद्यालंकार :—

सीलोन और भारत

पंडित हजारीप्रसाद द्विवेदी, शान्ति-निकेतन :—

महिला कहानी-लेखिकायें

पंडित वेंकटेशनारायण तिवारी, एम० एल० ए० :—

क्या उर्दू राष्ट्र-भाषा हो सकती है ?

कवितायें

श्री नरेन्द्र शर्म्मा, एम० ए०, श्रीमती सुमित्राकुमारी सिनहा,
श्रीयुत सोहनलाल द्विवेदी, एम० ए०,
सुन्दर कहानियाँ, एकांकीनाटक, सामयिक-साहित्य और विचारपूर्ण
व सामयिक सम्पादकीय टिप्पणियाँ ।

सचित्र मासिक पत्रिका
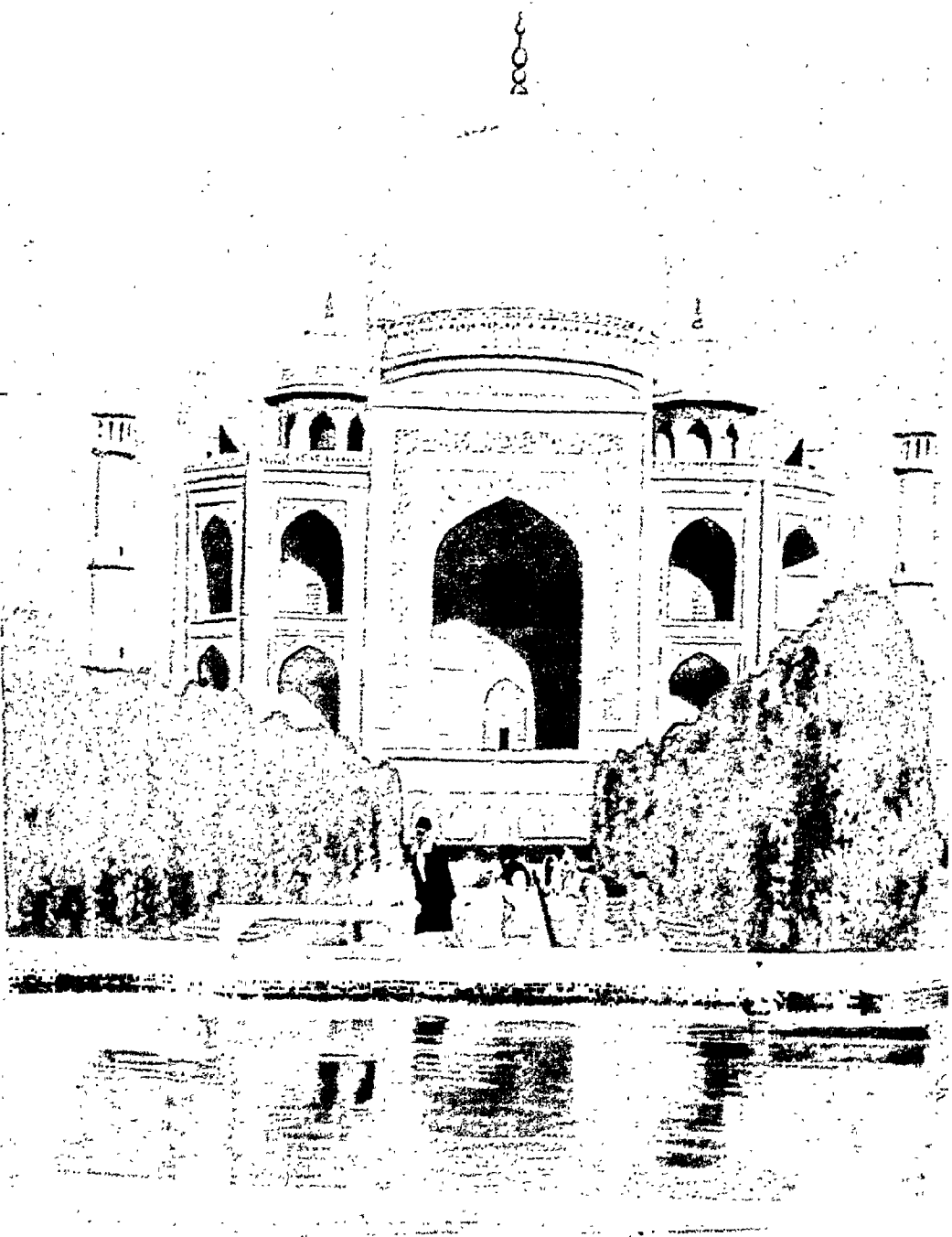
सम्पादक

देवीदत्त शुक्ल—उमेशचन्द्र देव

दिसम्बर १९३९ } भाग ४०, खंड २ संख्या ६, पूर्ण संख्या ४८० { मार्गशीर्ष १९९६

रूप-शिखा

लेखक, श्रीयुत नरेन्द्र

तुम दुबली-पतली, दीपक की लौ-सी सुंदर!
मैं अंधकार,
मैं दुर्निवार,
मैं तुम्हें समेटे हूँ सौ-सौ बाँहों में, मेरी ज्योति प्रखर!

आपुलक गात मैं मलयवात,
मैं चिर-मिलनातुर जन्मजात,
तुम लज्जाधीर, शरीर-प्राण,
थर थर कंपित ज्यों स्वर्ण-पात,
कँपती छायावत् रात, काँपते तम-प्रकाश आलिङ्गन भर!

आँखों से ओझल ज्योति-पात्र;—
तुम गलित स्वर्ण की क्षीण धार,
स्वर्गिक सुषमा उतरीं भू पर,
साकार हुई छवि निराकार,
तुम स्वर्गङ्गा, मैं गंगाधर, उतरो, प्रियतर, सिर आँखों पर!

नलकी में झलका अंगारक,
बुंदों में गुरु-उशना तारक,
शीतल शशि-ज्वाला की लपटों-से,
वसन—दमकती द्युति चम्पक,
तुम रत्न-दीप की रूप-शिखा, तन स्वर्ण-प्रभा, कुसुमित अम्बर!
तुम दुबली-पतली, दीपक की लौ-सी सुंदर!

मुंशी सदासुख राय

लेखक, श्रीयुत भुवनेश्वर गौड़

[मुंशी सदासुख राय वर्तमान हिन्दी के प्रथम लेखक माने गये हैं, पर उनका पूरा साहित्य अब तक अप्राप्त है, अतः उनके विषय में हिन्दी के पाठकों को बहुत कम ज्ञात है। प्रस्तुत लेख के लेखक महोदय मुंशी जी के वंशज हैं। उन्होंने मुंशी जी के सम्बन्ध में पर्याप्त अनुसन्धान किया है और उनके सम्बन्ध में कई नई बातों की जानकारी प्राप्त की है। उनमें कुछ का दिग्दर्शन इस लेख में कराया गया है।]

हिन्दी के गद्य के चार आचार्य माने गये हैं। वे हैं मुंशी सदासुख राय, इंशा अल्ला खाँ, सदल मिश्र और लल्लूलाल। इन चारों में सर्व-प्रथम लेखनी उठानेवाले मुंशी सदासुख राय हैं। पहले कुछ लोगों की धारणा थी कि कलकत्ते के 'फोर्ट विलियम कालेज' के अध्यक्ष जान गिल क्राइस्ट ने ही सर्व-प्रथम देशी भाषा की पुस्तकें लिखाई थीं और इस तरह से उनकी प्रेरणा से लल्लूलाल और सदल मिश्र ने अपनी हिन्दी के गद्य में सर्व-प्रथम पुस्तकें लिखी थीं। किन्तु यह सत्य नहीं है। यह निर्धारित किया जा चुका है कि मुंशी सदासुख राय ने ही सर्व-प्रथम अपनी लेखनी उठाई थी और सो भी न तो किसी की प्रेरणा से और न किसी विशेष परिस्थिति के कारण, अपितु स्वान्तःसुखाय ही लिखना प्रारम्भ किया था। मुंशी जी की भाषा भी अपने समय के उक्त आचार्यों की अपेक्षा कहीं अधिक साधु, सुगठित, संस्कृत के तत्सम शब्दों से युक्त और उसके आधुनिक स्वरूप के अनुकूल है; अतएव वे ही आधुनिक हिन्दी के प्रथम प्रतिष्ठापक हैं। उन्होंने पुस्तकें भी बहुत-सी लिखी हैं। अँगरेज़-लेखक चासर की भाँति यदि हम मुंशी जी को 'हिन्दी-गद्य के पिता' की उपाधि दें तो कोई त्रुटि न होगी।

खेद है कि हमें अपने इन महान् आचार्य और 'हिन्दी के प्रतिष्ठापक' के सम्बन्ध में भी अत्यन्त कम बातें ज्ञात हैं।

भाषा-साहित्य के इतिहास में उनके सम्बन्ध में लिखा है कि मुंशी जी ने श्रीमद्भागवत का 'सुख-सागर' नाम से हिन्दी में अनुवाद किया है। यह भी लिखा है कि उन्होंने मुंतखबुत्तवारीख़' नाम की एक और पुस्तक लिखी है और वे फ़ारसी, संस्कृत और उर्दू के अच्छे विद्वान् थे। मुंशी जी हमारे पूर्वज थे। उनकी एक प्रस्तर-मूर्ति हमारे यहाँ आज भी सुरक्षित है। इस मूर्ति पर यह इस तरह खुदा हुआ है—

॥व्यास अवतार मुंशी॥	श्री संवत् १८८१ ॥
॥सदासुखराय कायस्थ गौड़॥	को वैकुण्ठवास

मूर्ति-निर्माता ने उन्हें 'व्यास-अवतार' कदाचित् इसी लिए लिखा है कि उन्होंने श्रीमद्भागवत का हिन्दी में भाषान्तर किया था।

मुंशी जी कायस्थ थे, भगवद्भक्त थे और अन्तिम दिनों में प्रयाग में आकर रहे थे। उक्त मूर्ति में भी "गौड़ कायस्थ" स्पष्ट लिखा है। वे भक्त की भाँति कंठी पहने, पैर मोड़े और हाथ जोड़े हुए बैठे हैं। वैष्णव-सम्प्रदायवालों की भाँति उनके मस्तक पर तिलक भी लगा है। साथ ही उनका स्वरूप भी ध्यानस्थ-सा है। इस मूर्ति से स्पष्ट व्यक्त होता है कि वे वैष्णव-विचार के थे। मुंशी जी के पिता स्वयं एक बड़े भारी भक्त थे। और उन्होंने भी सचित्र और भक्ति-परक अनेक पुस्तकें लिखी हैं। हिन्दी के इतिहास में मुंशी जी की मृत्यु तिथि संवत् १८८१ बताई गई है। उक्त मूर्ति में भी यही तिथि दी हुई है।

सभी लेखकों ने मुंशी जी का उपनाम 'नियाज़' बताया है, किन्तु उनके लेखों और मूर्ति में उनका उपनाम 'निसार' लिखा है। ('नियाज' लिखने का कारण यह ज्ञात होता है कि अरबी-लिपि में 'नियाज' और 'निसार' एक ही प्रकार से लिखा जाता है)। प्रथम अनुसन्धानक को सम्भवतः कोई फ़ारसी-लिपि की पुस्तक मिली होगी अतः उन्होंने 'निसार' पढ़ने के स्थान पर 'नियाज' पढ़ लिया होगा। उनकी फ़ारसी-रचनाओं में 'निसार' उपनाम का होना ही ठीक जँचता है। इसी प्रकार एक प्राप्त

[मुंशी सदासुख राय की प्रस्तर-मूर्त्ति]

नोट-बुक में उनकी लिखी फ़ारसी की एक रुबाई है :—

"तसनीफ़ रुबाइयात अस्तवे 'निसार',
हैं तरह जदीद व नौ चो बाग़े फ़रखार।
देखे जो कोई सखुनवर अज चश्म करम्।
लाज़िम है कि इस्लाह से दे उसको बकार॥"

इस तरह की अन्य सभी रुबाइयों और रचनाओं में 'निसार' आया है। अरबी-लिपि के कारण यह 'नियाज़' भी पढ़ा जा सकता है, परन्तु दूसरे चरण में 'फ़रखार' आया है, जिसका तुक 'निसार' से ही बैठता है, यदि नियाज़ हो तो तुक नहीं मिलता। अत: 'निसार' पढ़ना ही ठीक है। और जैसा कि उक्त मूर्ति से भी प्रकट होता है, यही उनका उपनाम है।

मुंशी सदासुख राय के पूर्वज और उनके पिता गाज़ीपुर ज़िले के सैदपुर नामक स्थान के रहनेवाले थे। मुंशी जी के पिता का नाम मुंशी शीतलचन्द और पितामह का नाम भाईराम था। वे बादशाह मुहम्मदशाह के दरबार में पाँचसदी मनसबदार थे। मुंशी जी के पिता के पूर्वज दिल्ली में ही रहते थे।

मुंशी सदासुख राय का जन्म संवत् १८०३ में हुआ था। सरकारी नौकरी के सिलसिले में वे गाज़ीपुर से दिल्ली गये और वहाँ रहने लगे। शाही दरबार में उनकी अच्छी प्रतिष्ठा थी। इसके बाद वे ईस्ट-इंडिया कम्पनी की नौकरी के सिलसिले में चुनार आये। इन्हीं दिनों उन्होंने उर्दू और फ़ारसी में बहुत-सी पुस्तकें लिखीं और काफ़ी शायरी और हिन्दी-रचनायें भी कीं। चुनार में वे कम्पनी-सरकार के तहसीलदार थे। यों तो उनको अपनी नौकरी के कारण भिन्न भिन्न स्थानों में रहना पड़ा, किन्तु ज्यादातर वे चुनार में ही रहे। ६५ वर्ष की आयु में नौकरी छोड़कर वे चुनार से प्रयाग में आकर रहने लगे। प्रयाग में रहकर वे अपने जीवन का शेष भाग हरि-भजन में व्यतीत करना चाहते थे। यहाँ उनकी ससुराल थी। ससुराल से मुंशी जी के रहने को एक मकान मिला था, जो बाद को उन्हें दे ही दिया गया। दिल्ली में मुंशी जी के पास बहुत-सा शाही सामान तथा विलासिता की वस्तुएँ और धन था, जो अहमदशाह दुर्रानी के आक्रमण के समय सबका सब लुट गया था। प्रयाग में उनके पास पिछले दिनों की कमाई का ही धन था। प्रयाग आकर वे एक साधु की भाँति अपना जीवन व्यतीत करने लगे।

मुंशी सदासुख राय ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तकें—'मुंतखबुत्तवारीख़' तथा 'सुखसागर' संवत् १८७५ तक समाप्त कर दी थीं। इसके बाद वे गीता का अनुवाद तथा अन्य पुस्तकें लिखते रहे। उन्होंने उर्दू और फ़ारसी की शायरी के अतिरिक्त ब्रजभाषा में कवितायें और भजन भी बनाये लिखे हैं। ये भजन और कवितायें अधिकतर ईश्वर-सम्बन्धी या अध्यात्म-विषयक हैं। उन्होंने कई पुस्तकें और कवितायें लिखी हैं, किन्तु वे सभी अब अप्राप्य हैं, न उनका पता ही मिल रहा है। उनके हाथ की लिखी एक 'नोट-बुक' प्राप्त है, जो पद्य में लिखी है।

मुंशी जी ने श्रीमद्भागवत के कुछ स्थलों को हिन्दी के 'कड़खा' इत्यादि छन्दों में लिखा है। ऐसी रचनाओं में उन्होंने उर्दू-शब्दों का प्रयोग भी किया है। गोवर्द्धन-

सीलोन और भारत

लेखक, श्रीयुत अवनीन्द्र विद्यालंकार

मस्त भारत ने बड़े क्षोभ के साथ इस समाचार को सुना कि सीलोन से १,००० भारतीय वापस भेज दिये गये हैं और अप्रैल १९३४ के बाद से वहाँ सरकारी महकमों में दिहाड़ी पर काम करनेवाले और लगभग २०,००० भारतीय २,५०,००,००० रुपया खर्च करके शीघ्र वापस भेज दिये जायँगे। कांग्रेस ने इनको बेरोजगारी से बचाने का भरसक प्रयत्न किया, अपने एक प्रतिनिधि पण्डित जवाहर-लाल नेहरू को वहाँ भेजा, मगर वह भी इनकी रक्षा न कर सकी। इस घटना ने सीलोन और भारत के सम्बन्ध को नये रूप में हमारे सामने उपस्थित किया है। एक समय तामिलों ने सिंहालियों को विजय किया था और आज सिंहाली तामिलों को भगा रहे हैं। इतिहास अपने को दोहराता रहता है। अतः इस प्रश्न पर भौगोलिक, ऐतिहासिक, सांस्कृतिक और आर्थिक दृष्टि से विचार करना आवश्यक है। सीलोन से भारत का नवीन व्यापारिक समझौता भी होनेवाला है और इस विषय की बातचीत नवम्बर में शुरू हो गई, अतः इन बातों की समीक्षा करना लाभकर होगा।

केवल २४ मील दूर

सीलोन भारतीय अन्तरीप के पैरों के नीचे एक मसा के समान लटका हुआ है। यह रामायण-प्रसिद्ध रावण का देश लंका है, यह विवादास्पद है। मगर ऐतिहासिक और सांस्कृतिक दृष्टि से यह देश भारत से चिरकाल से सम्बन्धित है। धनुष्कोटि से तालगईमानर २४ मील दूर है और इस अन्तर को पार करने में लगभग ६ घंटे लगते हैं। धनुष्कोटि से तालाईमानर जाते हुए बीच समुद्र में पाक स्ट्रेट में पुराण-प्रसिद्ध रामसेतु के पत्थर दिखाई देते हैं। समुद्र यहाँ ज़्यादा उथला और सतह से ज़्यादा ऊँचा है।

इस बात को जाने भी दें, तो भी यह इतिहास-द्वारा स्वीकृत तथ्य है कि सीलोन के वर्तमान निवासी सिंहाली मूलतः भारतीय हैं। राजा विजय ने सीलोन को विजय किया और उसके वंशजों ने ३०० ईसवी तक वहाँ राज्य करके इस देश को सभ्य और सुसंस्कृत बनाया। इस सिलसिले में सम्राट् अशोक-द्वारा बौद्ध-धर्म-प्रचारार्थ अपने पुत्र और पुत्री महेन्द्र और महेन्द्री को सीलोन भेजने की बात हम कैसे भुला सकते हैं। सीलोन का इतिहास दो भागों में बाँटा जा सकता है। पहला सिंहाली महावंश—(५०० ई० पूर्व से ३०० ई० तक) और दूसरा सुलुवंश—३०० ईसवी से आगे। पहला भाग सभ्यता के विस्तार की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है। २५० ई० पूर्व यहाँ बौद्ध-धर्म आया और सारा द्वीप उस धर्म में दीक्षित हो गया। दूसरा भाग दक्षिण में भारत के तामिल, पाण्ड्य, चोल नरेशों से संघर्ष का है। उस काल में प्रसिद्ध नरेश पराक्रमबाहु (११५३ से ११८६) के समय को छोड़कर सिंहाली कभी विजयी नहीं हुए। बहुत देर तक लड़ने के बाद तामिलियों ने उत्तरीय सीलोन में अपनी बस्ती बसा ली; यह प्रदेश जाफ़ा के नाम से प्रसिद्ध है। इस देश की तम्बाकू प्रसिद्ध है और त्रावनकोर सरकार ने अपने नारियल-व्यापार की रक्षा की ख़ातिर जाफ़ा की तम्बाकू पर ही कर लगाया है। इसके फलस्वरूप सिंहाली दण्डित न होकर तामिल ही दण्डित हुए हैं।

१६०० ई० के बाद से सीलोन का इतिहास विदेशी लोगों के उस देश में आबाद होने का है। सर्व-प्रथम पुर्चगीज़ आये और अपने साथ कैथोलिक धर्म लाये। इसके बाद डच आये और वे रोमन-क़ानून अपने साथ लाये। इनके बाद मूर आये और इन्होंने सीलोन का सामुद्रिक व्यापार बढ़ाया। सबके अन्त में वहाँ अँगरेज़ आये। सीलोन १७९६ से लेकर १८०२ तक मद्रास-प्रान्त का भी हिस्सा रहा है। मगर अदन के समान सामरिक दृष्टि से इसको भी भारत से अलग कर दिया गया। सीलोन आज सब जातियों—सब धर्मों का देश है। वहाँ आप हर एक नस्ल का और हर एक भाषा बोलनेवाला व्यक्ति पा सकते हैं।

भारतीयों की बस्ती

सीलोन समशीतोष्ण देश है। पर्याप्त वर्षा होती है। तापमान न अधिक गरम और न अधिक ठंडा है।

दिये गये हैं। सीलोन में पूंजीपतियों का अभाव-सा है। मज़दूरों की शिक्षा और मनोरंजन का कोई प्रबन्ध नहीं है। उनकी आय का अधिकांश द्वीप में ही भोजन और वस्त्रों में ख़र्च हो जाता है और वे भारत ग़रीबी की हालत में ही लौटते हैं।

व्यापार

सीलोन की सम्पत्ति चाय के कारण है, और यह वैभव भारतीय श्रम का फल है। यदि चाय की पत्तियाँ कुछ नष्ट हो जायँ और एक आना प्रतिशत नुक़सान हो जाय तो सीलोन की चाय से होनेवाली १५ करोड़ रुपये की आमदनी भी उसी अनुपात में कम हो जायगी। चाय के बाद महत्त्व-पूर्ण चीज़ें रबड़, नारियल की चीज़ें, कोको, दारचीनी, इलायची और तम्बाकू हैं। इससे स्पष्ट है कि सीलोन अपनी खेती और बाग़ों की आमदनी पर निर्भर है। इसके बदले वह तैयार माल और खाद्य-सामग्री लेता है। निर्यात-व्यापार का विश्लेषण करने से मालूम होता है कि चाय ५७½ प्रतिशत (१५ करोड़ रुपया), रबड़ १६½ प्रतिशत (३·८ करोड़ रुपया) नारियल का तेल और खोपड़ा १०·८ प्रतिशत (३·५ करोड़ रुपया) है। १९३६ की सरकारी वार्षिक-रिपोर्ट के अनुसार सीलोन का निर्यात-व्यापार २६·८ करोड़ रुपये का था।

महत्त्व की दृष्टि से आयात-व्यापार में १० करोड़ रुपये की खाद्य-सामग्री, ८ करोड़ रुपये का तैयार माल, ३ करोड़ रुपये की अधूरी तैयार हुई चीज़ें हैं। १९२६ में कुल आयात-व्यापार २१·८ करोड़ रुपये का था। खाद्य-सामग्री में चावल ५ करोड़ रुपये का और मछली १ करोड़ रुपये की थी। इनके अलावा अन्य महत्त्व-पूर्ण चीज़ें खाण्ड, प्याज़ और इमली हैं। लगभग २ करोड़ रुपया का द्रव ईंधन आता है। १९३६ में इतनी ही क़ीमत का कपड़ा आया था।

१९३२ को छोड़कर, जब कि क़ीमतों के गिर जाने से सीलोन के व्यापार को गहरा धक्का लगा था, १९२५ से पिछले बारह साल में व्यापार का संतुलन सीलोन के अनुकूल रहा है और इस काल में ५३ करोड़ रुपया उसने कमाया है। अकेले १९३६ में ५·८ करोड़ रुपया उसने अर्जित किया था।

भारत की स्थिति

सीलोन की पैदावार के मुख्य ख़रीदार इँगलैंड (१२ करोड़ रुपया) संयुक्त-राष्ट्र अमरीका (४ करोड़ रुपया) ब्रिटिश भारत (१.१७ करोड़ रुपया) आस्ट्रेलिया और कनाडा (हर एक १ करोड़ रुपया) हैं। सीलोन को मुख्य रूप से बेचनेवाले ब्रिटिश भारत (५·०९ करोड़ रुपया) ग्रेट ब्रिटेन (४·५ करोड़ रुपया) बर्मा (३ करोड़ रुपया) जापान, ईरान और श्याम हर एक (१ करोड़ रुपया) हैं। इससे स्पष्ट है कि जहाँ सीलोन को माल देनेवालों में भारत का स्थान पहला है, वहाँ ख़रीदारों में भी उसका स्थान महत्त्व-पूर्ण है।

५·०४ करोड़ रुपये के माल में से भारत ने १९३८-३९ में ४३ लाख रुपये की चाय और रबड़ सीलोन की राह भेजी। भारत से भेजी जानेवाली चीज़ों में क़ीमत की दृष्टि से महत्त्व-पूर्ण चीज़ें हैं—चावल, वस्त्र, मछली, कोयला फल और सब्ज़ी, मसाले, खली और खाद। महायुद्ध से पहले सीलोन भारत से ८ करोड़ रुपये का माल लेता था। यद्यपि भारत उस अवस्था पर अभी तक नहीं पहुँचा है, मगर १९३५ से अवस्था सुधरी है। नीचे की तालिका भारत के निर्यात-व्यापार की कुछ मुख्य चीज़ों पर अच्छा प्रकाश डालती है—

नाम माल	युद्ध से पहले का औसत (करोड़ रु० में)	१९३७-३८ (करोड़ रुपये में)	१९३८-३९ (करोड़ रुपये में)
चावल ...	४·७	१·२	१·१७
सूती वस्त्र ...	०·४	०·९३	०·७९
मछली ...	०·२४	०·३७	०·३६
फल व सब्ज़ी ...	०·१४	०·२२	०·२३
कोयला और कोक	०·४३	०·३६	०·२६
मसाले ...	०·१	·११	०·११

१९३८-३९ में भारत का सीलोन का निर्यात-व्यापार ५९ लाख रुपये कम हो गया और सीलोन का निर्यात ४९ लाख रुपया कम हो गया।

सीलोन ने भारत में आनेवाले माल में मुख्य करके नारियल का तेल, खोपड़ा, मसाला, चाय और रबड़, चमड़ा और खाल और 'प्लमबेगो' हैं। आगे की तालिका सीलोन से भारत आनेवाले माल के परिमाण पर प्रकाश डालती है—

नाम वस्तु	युद्ध से पहले का औसत (करोड़ रुपये में)	१९३७-३८ (करोड़ रुपये में)	१९३८-३९ (करोड़ रुपये में)
खोपड़ा ...	०·०१	०·८८	०·६१
नारियल का तेल	०·००५	०·३३	०·१४
मसाला (सुपारी)	०·२३	०·०९	०·०८
चाय ...	०·०७	०·०३३	०·०२
चमड़ा और खाल	०·०३	०·०४	०·०२
रबड़ ...	०·००१	०·०५	—

राष्ट्रीय आत्मनिर्भरता असम्भव है?

सीलोन के भारतीय—निर्यात को देखने से स्पष्ट हो जायगा कि यदि भारत प्रयत्न करे तो वह अपना काम उपर्युक्त वस्तु के बग़ैर चला सकता है और अपने यहाँ उनको पैदा कर सकता है। खोपड़ा और नारियल के तेल का व्यापार तो अपेक्षा यही करते हैं कि सीलोन से यह माल ही इस देश में न आने दिया जाय। अन्य चीज़ों के बारे में भी यही बात है। मगर सीलोन भोजन-सामग्री, कोयला, वस्त्रों, खनिज तेलों के लिए सदा पराश्रित रहेगा। इसलिए सीलोन का राष्ट्रीय दृष्टि से स्वाश्रयी और आत्म-निर्भर राष्ट्र बनना असम्भव है। उसकी श्री और सम्पत्ति चाय, रबड़ और नारियल पर आश्रित है और इन चीज़ों में उसका एकमात्र एकाधिकार नहीं है। इसलिए उसे अपनी चीज़ों के लिए भारत में स्थान पाने के लिए भारतीयों से दुर्भाव न करना चाहिए। १९३२ में ओटावा पैक्ट पर सही करने से सीलोन को भारतीय बाज़ार में तरजीह मिली थी और उसकी अवस्था सुधर गई थी, यह बात उसे नहीं भूलनी चाहिए।

तरजीह

ओटावा-पैक्ट के परित्याग कर देने से और भारत-ऐंग्लो व्यापारिक समझौते के स्वीकृत हो जाने से सीलोन के माल को भारतीय बाज़ार में अब तरजीह न मिलेगी, यदि छः मास के अन्दर दोनों देशों में नया समझौता न हो गया; जिसमें अब केवल ३ मास ही बाक़ी रह गये हैं। भारत-ब्रिटेन-समझौते की एक धारा है कि भारत शीघ्र ही सीलोन से व्यापारिक बातचीत करेगा और इस समय से जो ६ मास से अधिक न होगा, सीलोन की चीज़ों पर १० प्रतिशत से कम तरजीह न देगा। यदि इस साल के अन्त तक दोनों देशों के बीच कोई व्यापारिक समझौता न हुआ तो ब्रिटिश सरकार भारत-सरकार की सलाह से सीलोन की ओर से पैक्ट करेगी। भारत और सीलोन के बीच व्यापारिक पैक्ट होने में बड़ी बाधा सीलोन-सरकार की भारत-विरोधी नीति है। इसी कारण सीलोन का व्यापारिक मण्डल अभी तक दिल्ली नहीं बुलाया गया था। अब भारत-सरकार ने इस शर्त पर बुलाना स्वीकार कर लिया है कि भारतीय श्रमियों की अवस्था पर भी विचार किया जायगा।

राजनैतिक अयोग्यता

सीलोन और भारत के बीच सब दृष्टियों से इतना अधिक घनिष्ठ सम्बन्ध होते हुए भी राजनैतिक दृष्टि से सीलोन में भारतीय अछूत ही बने हुए हैं। भारतीय अन्य जातियों के समान मताधिकार चाहते हैं। इससे अधिक वे और कुछ नहीं चाहते। यद्यपि द्वीप की सारी आबादी में वे पञ्चमांश हैं, तो भी ५० सदस्यों की धारा-सभा में दो तीन से ज़्यादा आसन वे नहीं प्राप्त कर सके हैं। प्रारम्भ में सीलोनी मंत्रि-मंडल में एक भारतीय मंत्री था, मगर पिछले पाँच-छः साल से एक भी भारतीय मंत्री नहीं हुआ।

डोनोमोर-कमीशन ने सिफ़ारिश की थी कि सब ब्रिटिश नागरिकों को मताधिकार दिया जाय। पाँच साल तक वहाँ का अधिवास इसके लिए पर्याप्त माना गया था। मगर सिंहालियों के विरोध के कारण यह नहीं माना गया। पैनफ़ील्ड-विधान के अनुसार भारतीयों को तभी मताधिकार मिल सकता है जब वे सिद्ध कर दें कि वे सीलोन के निवासी हैं। और निवासी का क़ानून इस तरह व्यवहार में लाया जाता है, जिससे भारतीय मतदान का हक़ न पायें।

ग्राम्य-पंचायत से अलग करने की कोशिश

१९३४ में वहाँ विलेज कम्यूनिटी आर्डिनेन्स बनाया गया। इसका उद्देश्य यह था कि गाँव स्वायत्त शासन युनिट हो जायँ। मगर इसमें संशोधन करके ग्राम-पंचायतों से भारतीयों को सर्वथा अलग करने की कोशिश की गई और वे मताधिकार से वंचित रक्खे गये। सरकार की ओर से कहा गया कि उसने कोई विभेदजनक बर्ताव नहीं किया है, क्योंकि भारतीय और सिंहाली श्रमी एक

ही कोटि में रक्खे गये हैं। मगर यह बात नहीं है। भारतीय श्रमियों की संख्या लगभग ५,००,००० है, वहाँ सिंहाली मज़दूरों की संख्या ९१,००० ही है, जिनमें से २८,००० निवासी हैं और ४३,००० ग़ैर निवासी हैं, ९,००० नियमित रूप से ठेकेदार हैं और ११,००० आकस्मिक ठेकेदार हैं। इससे स्पष्ट है कि इस्टेटों में काम करनेवाले अधिकांश सिंहाली मज़दूर वहाँ के अनिवासी हैं और वोट देने में उनके मार्ग में कोई बाधा नहीं है।

चावल का नियन्त्रण

भारत से सीलोन को चावल सबसे अधिक मात्रा में जाता है। उसको नुक़सान पहुँचाने के लिए 'एसेन्सशियल कन्डिशन्स रिज़र्व आर्डिनेन्स' नं० ५, १९३९ बनाया गया। इसके अनुसार चावल आवश्यक चीज़ क़रार दी गई और इसका व्यापार करने के लिए लाइसेन्स लेना जरूरी कर दिया गया। इसके अलावा—

(क) आयात करनेवाला एक निश्चित समय के अन्दर और एक निश्चित मात्रा से कम नहीं आयात करे।

(ख) आयात करनेवाला अपने पास हमेशा रिज़र्व स्टाक में एक निश्चित मात्रा में चावल रक्खे।

(ग) आयात करनेवाला इस आर्डिनेन्स के अन्दर विहित हिसाब की किताब और रेकर्ड अपने पास रक्खे।

(घ) आयात करनेवाला विहित रिज़र्व स्टाक से अधिक उस अवस्था में बढ़ा सकता है यदि वह विहित न्यूनतम मात्रा से अधिक मात्रा में चावल का आयात करे।

इस अन्यायपूर्ण क़ानून का उद्देश्य स्पष्ट है। युद्ध और संकट-काल के लिए सुरक्षित कोष रखना गवर्नमेंट का कार्य है, अतः इसका ख़र्च सरकार को उठाना चाहिए था। या यह कार्य उसके लिए जो व्यापार करें उनके बढ़े ख़र्च को वह पूरा करे। मगर सीलोन-सरकार इस न्यायोचित बात को भी मानने के लिए उद्यत नहीं है।

नये क़ानून

भारतीयों को तंग करने के लिए और नये क़ानून बनाये जानेवाले हैं। इनके मुताबिक़ ग़ैर सीलोनी को सीलोन आने का अपना उद्देश्य बताना होगा। उसको पासपोर्ट के अलावा परिचय-कार्ड दिया जायगा, जिसमें उसकी अँगुलियों की छाप होगी। इसकी एक प्रति अधिकारी के पास रहेगी। पहले तीन मास तक उसको हर मास अपनी रिपोर्ट देनी होगी। कोई ग़ैर-सिलोनी तीन मास से अधिक सीलोन में रहने न दिया जायगा। इस्टेट मज़दूरों के कार्ड पर इस्टेट मज़दूर लिखा होगा और वे उसके सिवाय और कोई काम न कर सकेंगे। यदि किसी व्यापारी से सीलोनी व्यापारी को प्रतियोगिता का भय होगा या कोई सीलोनी बेरोज़गार होगा तो ग़ैर-सिलोनी को व्यापार करने की इजाज़त नहीं दी जायगी।

६० करोड़ रुपया

भारत का सीलोन-व्यापार भारत के अनुकूल है, इस पर भी इस देश में यह मत प्रबल हो रहा है कि सीलोनी माल का बहिष्कार किया जाय। सीलोन को यह न भूलना चाहिए कि भारत का ६० करोड़ रुपया सीलोन में लगा हुआ है। अनेक सीलोनी भारत में नौकरियों में लगे हुए हैं। अनेक आई० सी० एस० हैं। यदि भारत बदला ले तो ये सब बेरोज़गार हो जायँगे।

राजनैतिक शक्ति

सिंहालियों के सारे आन्दोलन के पीछे राजनैतिक शक्ति पाने की लालसा के सिवा और कुछ नहीं है। बेरोज़गारी का बहाना लेकर सिंहाली आज तामिलों को सीलोन से समय रहते निकाल देना चाहते हैं। तामिलों की बुद्धि और श्रम के आगे वे पराजय स्वीकार कर चुके हैं। वे अपने देश को ही अनजाने में ग़रीब बना रहे हैं। चाय और रबड़ के बाग़ों में सीलोनी काम नहीं कर सकते, व्यापारियों और प्लान्टरों की माँग है कि भारतीय श्रमी बुलाये जायँ। सिंहाली इस माँग की उपेक्षा नहीं कर सकते। दूसरी ओर भारत अपने पुत्रों को अछूत की हालत में सीलोन भेजने के लिए तैयार नहीं है। फलतः सीलोन को झुकना पड़ेगा और वह दिन दूर नहीं जब सीलोन एक बार फिर फ़ेडरल भारत का एक प्रान्त होगा। यदि सीलोन की सरकार ने बुद्धिमत्ता और दूरदर्शिता से काम लिया तो आशा है, यह समस्या सरलता से सुलझ जायगी और सीलोनी माल के बहिष्कार करने का दुःखदायी प्रसंग न आयेगा। सारे भारत की यह हार्दिक इच्छा है।

भूल सकूँगी कैसे तुमको !

लेखिका, श्रीमती सुमित्राकुमारी सिन्हा

भूल सकूँगी कैसे तुमको भूल सकूँगी कैसे !
चन्द्र भूल कब सकी चकोरी, चातकि पी-पी भूली ?
कब शशि ज्योत्स्ना को भूला, कब तट को तटनी भूली।
कब ऋतुपति को भूल सकी पिक, अनिल पुष्प-पाटल को !
भूल सका कब दीप-शिखा को शलभ, अली शतदल को !

जीवन-बन्दी स्मृति-बन्धन से मुक्त करूँ मैं कैसे ?

दूर रहोगे छाँह तुम्हारी यह पथ में डोलेगी।
निद्रा की रसाल-डाली पिक सपनों की बोलेगी।
चन्द्र तुम्हारी किरण-श्वास से कुमुदिनि विहँस उठेगी।
लघु-उर में पुलकित रत्नाकर की नव लहर उठेगी।

दूरी कैसी ! हम तुम जब हैं काया-छाया जैसे !

जब कि तुम्हारे स्मृति-आँगन में स्वर-संसार यह फूले।
स्वप्न-स्पर्श पा प्राणों के डाले फूलों से फूले।
चित्रित मेरे अणु अणु में जब हुई तुम्हारी छाया।
यह प्रवंचना फिर क्यों ! जब खो निज को, तुमको पाया।

प्राण-मुकुर प्रतिबिम्ब बिना कब शून्य रहेगा कैसे ?

यहाँ एक क्षण हँसना ही है जीवन भर का रोना।
यहाँ एक पल के अमृत का विषमय कोना कोना।
किन्तु फूल का दूर कहाँ अस्तित्व यहाँ शूलों से।
हैं प्रकाश के अलक भीगते रहते तम-कूलों से।

मुक्त-हृदय से बन्धन का अभिमान मिटाऊँ कैसे ?

जली जहाँ पहिचान न बुझती नयन-सिन्धु के जल से।
मिले जहाँ युग-हृदय पलक में पलते सुधि के पल से।
उस स्मित में पलकों की प्याली धोई थी बस पल भर।
तरुण अरुणिमा मधुवन की जीवन में बिखरी गल कर।

जिस पथ बद्ध हो गये पद हैं खींच सकूँगी कैसे ?

तेरी स्मृति-आभा से उज्ज्वल जीवन-तम-पथ दुर्गम।
रोम रोम जब प्राणों का है तेरी सुधि का उद्गम।
पलकों के यह शूल बिछे जब स्मृति-फूलों के पथ पर।
जब तुम ही आते जाते हो निःश्वासों के रथ पर।

तार तार में बाँध तुम्हें फिर तोड़ सकूँगी कैसे !

जीवन की चिर तृप्ति शून्य है यहाँ सजग तृष्णा बिन।
परिमल सिंचा प्रदेश वनों का शून्य मधुप वीणा बिन।
मिला न आग भरा चुम्बन जिसको ज्वाला-आलिंगन।
काली निशि में हो न सका जिसके दिन का उन्मीलन—

व्यर्थ ! प्रकृति की शाश्वत गति में वह रुक जाऊँ कैसे !

बुझ तम में तो दुख ही दुख सुख उज्ज्वल जल कर पल भर।
क्यों न निमिष भर नहा ज्वाल लूँ भर प्रकाश से अन्तर।
क्यों न लिपट तम अंचल में विद्युत-सा जल जल खेलूँ।
क्यों न विश्व से जलने का वरदान सहज में ले लूँ।

जग के विष को दो पल मधु से सिक्त करूँ ना कैसे !
भूल सकूँगी कैसे तुमको भूल सकूँगी कैसे !

कारागार में मुक्ति

लेखक, श्रीयुत योगेन्द्रनाथ शर्मा, बी० ए०

पात्र-परिचय

तैलप—तैलंगाना का राजा।
मुंज—मालव का युवराज।
मृणाल—तैलंग-कुमारी।
निष्ठा—मृणाल की समवयस्का सहेली।
तैलंगराज के सचिव, सेनाधीश, दंडपति, नायक तथा प्रहरी।
समय—विक्रम की दसवीं शताब्दी का मध्य।

प्रथम दृश्य

[युवराज मुंज तैलंगाना पर आक्रमण करता है। संग्राम में तैलंगपति को भयंकर आघातों से आहत करके भी अन्त में पराजित होता है। लौह-शृंखला में बद्ध तैलंगाने के राज-मन्दिर के सम्मुख लाया जाता है, व्रणों से आच्छादित तैलप राज-सिंहासन पर आसीन हैं, क्रोध में लोहित नेत्रों से चिनगारियाँ फूट रही है।]

सेनाधीश—(नतमस्तक) महाराज की....

तैलप—(सक्रोध) जय-पराजय का सन्देश नहीं चाहिए। शत्रु कहाँ है?

सेनाधीश—(बाहर की ओर अंगुलि-संकेत) वहाँ, लौह-कड़ियों से जकड़ा हुआ।

तैलप—खींच लाओ, सामने।

(सेनाधीश बाहर जाता है, नायक को आदेश देता है, नेपथ्य में कड़ियों की खड़-खड़, शत्रु-नृप का प्रवेश।)

तैलप—(अपने शरीर पर दृष्टि डालते हुए) सारा अंग चलनी की भाँति जर्जरित हो उठा है। (मुंज की ओर) इसका प्रतिकार तुम्हें किस रूप में मिले?

मुंज—इस प्रश्न से मुझे सिकन्दर महान् की स्मृति आती है। तुच्छ मनुष्य किसी महद्-व्यक्तित्व का अनुकरण जब आचरण में नहीं कर सकता तो केवल उसके शब्दों का नाटच करता है।

तैलप—(सक्रोध) अभिप्राय यह कि मैं तुच्छ हूँ!

मुंज—नहीं, आप महान् सिकन्दर से भी महान् हैं।

तैलप—इतनी धृष्टता! शस्त्रों ने शरीर को छेदा और ये व्यंग्य सीधे हृदय पर आघात करते हैं।

मुंज—(सस्मित) हृदय भी तो शरीर का ही अवयव है।

तैलप—(सरोष) जितने क्षत मेरे शरीर में हैं, उतने ही इस उच्छृङ्खल शत्रु के शरीर में भालों की नोक से किये जायँ।

मुंज—और यदि एक भी अधिक हुआ, तो उसका मूल्य?

तैलप—मूल्य! उसका मूल्य कारागार होगा।

मुंज—इसकी अवधि भी है या आजन्म?

(सचिव तर्जनी को ओष्ठ पर लगाकर मुंज को शान्त होने का निर्देश करता है।)

सचिव—(तैलप की ओर) महाराज! यदि प्रतिशोध सन्धि की प्रतिज्ञाओं के रूप में लिया जाय तो राजनीति की मर्यादा भी रह जायगी।

तैलप—मंत्रिवर, सन्धि की स्वानुकूलता से ये व्रण नहीं जुट सकते। इन्हें भरने के लिए या तो शत्रु का नया रक्त या मालव-कुमारी की कोमल उँगलियाँ—ये ही दो उपचार हैं।

सचिव—(मुंज की ओर) यदि मालव की राजकुमारी तैलंग-राज से व्याह दी जाय तो आप कारागार से मुक्त हो सकते हैं।

मुंज—(विनोद-मिश्रित रोष) और यदि तैलंग-राजकुमारी की कृपा-कटाक्ष मुझ पर हो जाय तो मैं कारागार में भी मुक्ति पा सकूँगा।

तैलप—(उठता हुआ) जकड़ दो सारी देह को। (लौह-कड़ियों को स्वयं खींचना चाहता है) इस उद्दंड शत्रु को वन्दीगृह का कीट बना दो, आँखों में सूआ चुभो दो, कानों में सीसा भर दो और नखों में खपचारें ठोंक दो।

(दंडनायक मुंज को खींचता हुआ ले जाता है।)

(यवनिका)

निष्ठा—(कृत्रिम आश्चर्य) सत्य ?

मृणाल—अब तक तुमने एक कहानी सुनी थी; आज प्रत्यक्ष..... (पिटारे से चित्र निकाल कर निष्ठा को देती है ।)

निष्ठा—यह मिला कहाँ ?

मृणाल—कहानी की राजकुमारी को तो कहीं से मिला था। इसे मैंने स्वयं बनाया है।

निष्ठा—कल्पित ?

मृणाल—नहीं; एक बार मैं मकर-पर्व पर प्रयाग गई थी। वहाँ अपूर्व सौन्दर्य के एक व्यक्ति .... कदाचित् किसी राजकुमार ने मेरे हृदय में स्थान बना लिया।

निष्ठा—तब ?

मृणाल—उसी हृदयस्थित रूप को मैंने स्मृति के सहारे इस चित्र में उतारा। और अब उसी का एकाधिपत्य इस हृदय पर रहे—यह मैं निश्चय कर चुकी हूँ ।

निष्ठा—(चित्र को दीप-प्रकाश में देखती हुई) अरे ! यह तो उसी विजित युवराज का चित्र है जिसकी धृष्ठता से रुष्ट होकर महाराज ने उसे कारागार का दण्ड दिया है !

मृणाल—(साश्चर्य) क्या उसका, जिसने आघातों से महाराज को मरणोन्मुख कर दिया था ?

निष्ठा—हाँ, उसका;.....उसी का; निश्चय।

मृणाल—का-रा-गा-र ! (निःश्वास से एक एक वर्ण पर रुकती है) केवल बन्दी-जीवन, या इस दण्ड में कुछ और भी विधान है ?

निष्ठा—युवराज को क्षमा-याचना के लिए एक छोटी-सी अवधि प्रदान की गई है। इसके भीतर ही यदि उसने मालव-कुमारी का विवाह महाराज के साथ स्वीकार किया तब तो मुक्ति नहीं तो आजन्म कारागार।

मृणाल—बस ?

निष्ठा—और कदाचित् यह बन्दी नृप-कुमार नेत्र-विहीन और कर्ण-शून्य कर दिया जाय !

मृणाल—(सरोष) यह प्रतिशोध राजनीति से बहुत दूर है; आयु के अन्तिम चरण में विवाह-लिप्सा, और इसकी अस्वीकृति में एक राजकुमार को आजीवन कारागार ! सन्धि में विजित देश का भूमि-भाग लिया जा सकता है, या अर्थ-दंड का विधान हो सकता है। भला ऐसा बेमेल सम्बन्ध किसी राजकुमार को कैसे स्वीकृत हो सकता है।

निष्ठा—यदि नहीं, तो दण्ड का भोग।

मृणाल—(सोत्साह) मैं उसे बन्दी-जीवन से मुक्त करूँगी। जिसके चित्र को रेशम के पिटारे में बन्द करते हुए मैं क्षुब्ध हो उठती हूँ, नित्य वक्षःस्थल से लगाये रहने की इच्छा होती है, उसे कारागार की कठोरता कितनी भयंकर होगी !

निष्ठा—और यदि उस नृप-कुमार का अनुराग तुम्हारे प्रति न हुआ तो ?

मृणाल—मुझे इसकी चिन्ता नहीं; यदि उसने मेरा अपमान किया तो भी मेरे लिए सम्मान होगा।

निष्ठा—(सतर्क) यदि महाराज को यह बात ज्ञात हुई तो ?

मृणाल—मुझे भी वन्दीगृह; इससे अधिक क्या हो सकता है ?

निष्ठा—आपके इस व्यापार से अपने को अमर्यादित होते देख यदि महाराज स्वयंवर की व्यवस्था करें तो ?

मृणाल—मैं अपना स्वयंवर कर चुकी।

निष्ठा—हैं ? यह क्या।

मृणाल—(माला चित्र को पहनाती है) मैं इस युवराज को वरण कर चुकी।

निष्ठा—यदि केवल चित्र ही से सन्तोष करना हुआ तो ?

मृणाल—इसकी चिन्ता नहीं; जैसे कोई आजीवन बन्दी रह सकता है, वैसे मैं आजीवन कुमारी रह सकती हूँ ।

निष्ठा—बड़ी कठिन प्रतिज्ञा है !

मृणाल—फिर भी कारागार की बेड़ियों से कठोर नहीं है। निष्ठा, ये बातें कहीं खुलने न पावें, मुझे तुम्हारा विश्वास है।

निष्ठा—इस भेद का परिणाम प्रकट होना ही है; परन्तु मैं इसे गुप्त रक्खूँगी।

(निष्ठा जाती है, मृणाल चित्र को पिटारे में रखती है ।)

(पटाक्षेप)

तृतीय दृश्य

(तैलंगाना के राज-कारागार में एक प्रकोष्ठ; हथकड़ी और पैरकड़ी से आवद्ध मुंज भूखे सिंह की भाँति

प्रहरी—और यदि मृणाल ने आपके इस अज्ञात प्रेम-उत्सर्ग के प्रति उपेक्षा प्रकट की तो ?

बन्दी—यदि मेरी आराधना में शक्ति होगी, तो पत्थर भी हिल उठेगा, मृणाल तो नाम से ही कोमल है।

प्रहरी—यदि आपको राजकुमारी की प्राप्ति निश्चय हो जाय तो क्षमा-याचना करके सन्धि कर लेंगे ?

बन्दी—क्षत्रिय के लिए क्षमा-याचना नितान्त हेय है।

प्रहरी—इस बन्दीगृह में सड़ने से क्षत्रियत्व की कौन-सी मर्यादा बढ़ती है ? सन्धि से तो गौरव पर आघात नहीं पहुँचता, यह तो इतिहास की युद्ध-परम्परा में चली आती है।

बन्दी—किन्तु सन्धि की स्वीकृति सन्धि की प्रतिज्ञाओं पर निर्भर है। प्रत्येक कार्य की सीमा होती है। कल्पना करो प्रहरी ! कि तुम किसी राज्य की राजकुमारी हो—शरीर में यौवन मुकुलित होते हुए सकुच रहा है। तुम्हारे भ्राता युवराज के सम्मुख सन्धि की शर्त है कि यदि राजकुमारी ऐसे नृप को वरण करे जो चौथेपन में भी वन का मार्ग न ले विवाह का स्पृहालु है, तब तो युवराज का छुटकारा, नहीं तो आजन्म कारागार। यहाँ तुम्हारे भ्राता का धर्म क्या होगा ?

प्रहरी—भ्राता का धर्म होगा मृत्युपर्यन्त बन्दीगृह की यातना सहकर भी मुझ जैसी राजकुमारी का सम्बन्ध तुम्हारे जैसे युवराज के साथ स्थापित करे न कि संन्यास की अवस्था में पहुँचे हुए वृद्ध नृप से।

बन्दी—यही धर्म-संकट मुझ पर आ पड़ा है। फिर भी जिस सन्धि से मेरी प्रणय-सुन्दरी मुझे नहीं मिलती उस सन्धि से बन्दीगृह कहीं अच्छा है। अब जीवन में कोई दूसरी अभिलाषा नहीं है।

प्रहरी—(सक्रोध) तैलप की यह अनीति असह्य है। (उबलता हुआ) मैं आपको बेड़ियों से मुक्त करूँगा। छूटकर आप मालव की सेना संगठित कीजिए और अपनी तपस्या की देवी का वरण कीजिए।

बन्दी—किन्तु भोले प्रहरी, तुम्हारे लिए इसका परिणाम विषाक्त होगा। इस प्रवंचना के लिए राज्य तुम्हें मृत्यु का दंड देगा। तुम्हारी मृत्यु से अपनी मुक्ति क्रय करना मुझे स्वीकार नहीं।

प्रहरी—यदि मेरे तुच्छ जीवन के उत्सर्ग से दो राजकुमारियों और एक राजकुमार का जीवन सुखमय हो सके तो मरने का इससे अच्छा अवसर फिर मुझे न मिलेगा।

(ताली से द्वार खोल प्रहरी भीतर जाता है, टाँकी और हथौड़े से बेड़ियों पर प्रहार करता है।)

बन्दी—(रोकता हुआ) हठ मत करो प्रहरी। मेरे सुख के लिए अपने सारे परिवार को मृत्यु का आहार न बनाओ।

(टाँकी और हथौड़ा छीनता है)

प्रहरी—मेरे कर्तव्य में आप बाधक कौन हैं ? मैं अपने संकल्प से विचलित नहीं हो सकता।

(हथियारों की पुनःप्राप्ति के लिए बन्दी से संघर्ष)

बन्दी—मैं भी अपने मन्तव्य से विचलित नहीं हो सकता।

(प्रहरी को बाहु-क्रोड़ में कसता है, प्रहरी का अंग शिथिल होता है, शीश बन्दी के कन्धे पर लटकता है, कर्ण-टोप भुजा के आघात से नीचे गिरता है, सर्पिणी की भाँति कुंडलित वेणी सरसराती हुई एड़ियों तक पहुँचती है)

बन्दी—(सविस्मय भुज-बन्धन को खोलता हुआ) अरे ! यह क्या ? राजकुमारी—प्रहरी—मृणाल—प्रहरी !

मृणाल—प्रहरी के वेश में मृणाल।

(बेड़ी-बद्ध पैरों पर गिरती है, मुंज उसके शीश को हाथों पर टेकता है।)

मृणाल—मैं इन लौह-कड़ियों को काटती हूँ, हम लोग मुक्त होकर चलें, मैं प्रहरी को मिलाकर आपसे मिलने के बहाने आपको मुक्त करने आई हूँ।

मुंज—किन्तु इसका अन्तिम परिणाम प्रहरी और उसके परिवार के मृत्युदंड के रूप में होगा।

मृणाल—हुआ करे, आप इसकी चिन्ता छोड़िए। मैं बेड़ियों को काटती हूँ।

मुंज—तुम्हें मेरी शपथ, ऐसा नहीं हो सकता।

मृणाल—तब ?

मुंज—चारों ओर से कर्तव्य ने घेर लिया है। क्या करें, क्या न करें, कुछ समझ में नहीं आता। जीवन की

केवल एक कामना थी वह आज पूर्ण हुई, कारागार में रहना ही सबसे उचित मार्ग दिखाई देता है।

मृणाल—(लबादे के भीतर से पुष्पमाला निकाल कर मुंज को पहनाती हुई) चित्र का राजकुमार मुझे सजीव रूप में मिला। (वक्षःस्थल में छिपके चित्र को निकालती है)।

मुंज—मुझे वरण कर तुमने अपना जीवन बन्दी-जीवन से भी दुःखमय बना लिया।

मृणाल—फिर भी मेरे हाथ-पाँव बेड़ियों से मुक्त हैं। मेरे लिए अब केवल यही मार्ग शेष है कि प्रहरी के वेष में नित्य कारागार में आऊँगी, लोगों के जान में आजन्म कुमारी रहूँगी; अपनी तथा आपकी दृष्टि में विवाहिता! (आँखें भर आती हैं)।

मुंज—अपने कोमल स्पर्श से इन लोह-कड़ियों को भी तुमने मृणाल बना दिया। नेत्र-विहीन होकर भी मैं तुम्हारे विशाल नेत्रों से देखूँगा और इस कारागार के कृत्रिम घेरे में अपने को स्वच्छन्द और मुक्त समझूँगा।

(मृणाल की ओर आर्द्र पलकों से देखता है।)

(पटाक्षेप)

विस्मृति-गीत

लेखक, श्रीयुत सोहनलाल द्विवेदी, एम० ए०

मेरे मानस के मौन प्यार!
मत सुधि बन आओ बार बार!

गत सुख की आहुति डाल डाल,
मत धधकाओ फिर ज्वाल-जाल,
खींचो अपना अंचल अछोर,
दृगपट से पीतांबर विशाल;
बढ़ता ही जाता व्यथा-भार,
मत सुधि बन आओ बार बार!

रहने दो यों ही बँधी बीन,
छेड़ो न आज फिर स्वर नवीन,
अब फिर न बजाओ वह हमीर
हो चुका काल में जो विलीन;
खोलो न पुनः वह बंद द्वार,
मत सुधि बन आओ बार बार!

सुख का कारण भी प्रबल मोह,
दुख का कारण भी प्रबल मोह,
किस भाँति बनूँ फिर वीतराग,
जब कठिन मोह का है विछोह;
है बँधा मोह से सृष्टितार
मत सुधि बन आओ बार बार!

दृग में छाओ साकार रूप,
प्राणों के कण कण में अनूप,
रह जाय न कोई भेद-भाव,
तुम और रूप, मैं और रूप;
विस्मृति बनकर छाओ उदार!
मत सुधि बन आओ बार बार!
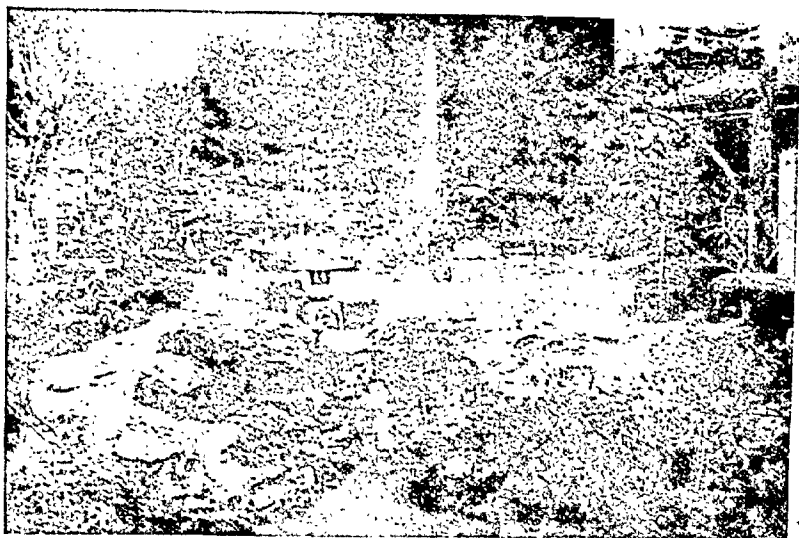
[एक क्रीड़ा-उपवन (शोजो-शिन-इन)]

जापान में कृषक-जीवन

लेखक, श्रीयुत श्यामसुन्दरलाल गुप्त

सन्त की छुट्टियों में सोच रहा था कि क्या करूँ। एक दिन बाज़ार में तोमोदा घूमते हुए मिल गये। बड़ी पुरानी जान-पहचान थी। कई वर्ष पहले एक बार गाड़ी में मिले थे। तोक्यो आते तो बिना मिले कभी न लौटते। पर उनके बारे में मैं इससे अधिक और कुछ शायद ही जानता था कि वे एक मामूली किसान हैं। मौसम बहुत ही अच्छा था। निश्चय किया कि उनके यहाँ चलकर धरना देंगे। मेरा निश्चय जानकर वे बहुत ही खुश हुए, बोले, मैंने तो कई दफ़ा कहा था। मैंने कहा, चलो, अब सही।

उनके ग्राम में पहुँचे तब रात के ग्यारह बजे थे। सारा शरीर थका हुआ था। सोचा कि स्नान करें तो थकावट दूर हो जाय। वास्तव में हुआ भी ऐसा ही, गर्दन तक गहरे गरम पानी से भरे संगमरमर के हौज़ में १५ मिनट बैठकर, नहाकर जब बाहर निकला तब शरीर मानों फिर ताज़ा हो गया। इसमें कुल छः पैसे व्यय करने पड़े।

जापान में लगभग सभी लोग पब्लिक-स्नानगृहों में जाते हैं और ऐसे स्नानगृह लगभग सभी जगहों में मिलते हैं। दोपहर से लेकर रात के बारह बजे तक किसी भी वक़्त जाइए, कितनी भी देर तक नहाइए और कितना भी ठंडा या गर्म पानी खर्च कीजिए। अपना छुरा ले जाइए और वहीं बाल बनाइए। अपनी उँचाई नापिए, वजन करिए, गर्मी हो तो बिजली के पंखे की हवा खाइए और इस सबके लिए कुल खर्च कीजिए छः पैसे।

घर पहुँचे। श्रीमती जी ने साष्टांग दंडवत् किया। जापान चाहे कितना ही आधुनिकता का पुजारी हो गया हो, पर उसके प्राचीन रीति-रवाज अब भी वही हैं जो सौ वर्ष पहले थे। यहाँ मेहमान के सामने घर की स्त्री घुटनों के बल ज़मीन पर बैठकर, ज़मीन पर झुककर, माथा टेककर और बाद में कई दफ़ा सिर झुकाकर स्वागत न करे तो शायद उसका हृदय

[जापान की वन-श्री ।]

एक छोटी-सी आलमारी के द्वार खोले घुटनों के बल बैठे हुए थे। वे हाथ जोड़े हुए थे और उनका सिर झुका हुआ था। थोड़ी ही देर में मैं सब समझ गया। घर का मन्दिर था और उसकी पूजा का समय।

अब तोमोदा ने अपना कृपाण निकाला। उसे अपने दोनों हाथों में लेकर इस भाँति बैठे मानो उसे भगवान् के अर्पण कर रहे हों या अपने पूर्वजों के सामने कृपाण को साक्षी कर कोई प्रतिज्ञा कर रहे हों। कई सेकेंड तक वे

प्रसन्न ही नहीं होता। यही यहाँ की प्रथा है और यही हुआ भी। आवभगत के बाद घर में गये। दो बच्चे सोये हुए थे। १ लड़का १४ वर्ष का, दूसरी लड़की १८ वर्ष की थी। बस यही परिवार था।

आये पाँच मिनट मुश्किल से बीते होंगे कि श्रीमती जी जापानी चाय ले आईं। १ इंच मोटी चटाई पर, जो जापानी-घर में फ़र्श का काम देती है, और छोटी-सी चौकी, जो जापानी-घरों में खाना खाने के लिए काम में लाई जाती है, के चारों ओर चार छोटे छोटे गद्दे बिछे हुए थे। सारा काम फ़ुर्ती से हो गया। तीनों बैठे, चाय पी।

रात को सो गये।

(२)

प्रातःकाल करतल-ध्वनि ने मुझे जगा दिया। अभी अँधेरा ही था। नीचे चटाई पर बिछे अपने बिस्तरे पर से मैंने सिर घुमाकर देखा। अँधेरे में मोमबत्ती का प्रकाश हो रहा था। तोमोदा लकड़ी की बनी

इसी प्रकार बैठे रहे। बाद में उन्होंने कृपाण उठाकर रख दी, करतलध्वनि की, मोमबत्तियाँ बुझाईं और उठकर बिजली का बटन खोल दिया। कमरा प्रकाश से भर गया। मैं सोच रहा था कि तोमोदा जापान का साधारण श्रेणी का एक कृषक है।

यद्यपि अपने घर पर मैं इतनी शीघ्रता से नहीं

[गर्मी में जापान का प्रकृति-[illegible]।]
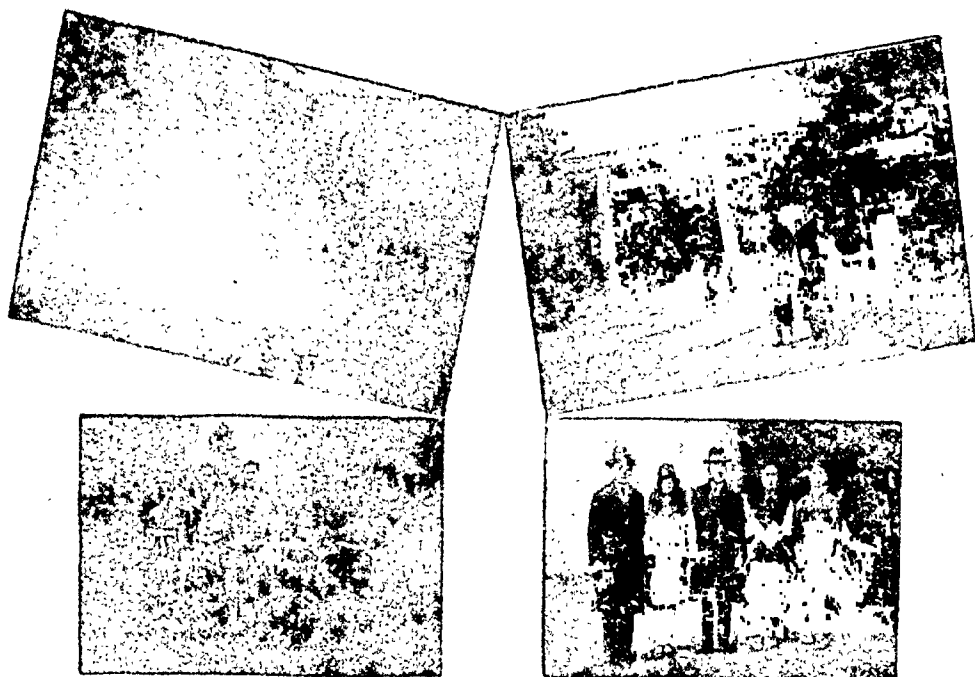
ऊपर (१) जापान का एक वाष्पपूर्ण तप्तकुंड। (२) जापान के एक बौद्ध-मन्दिर का द्वार।
नीचे (१) किमोनो और खड़ाऊँ। (२) जापान का पुराना और नया पहनावा।

उठता था, तो भी बिजली का खोलना इस बात का प्रत्यक्ष संकेत था कि उठो। मैं उठा।

हाथ-मुंह धोकर लौटा तब देखा कि जो कमरा पहले विश्राम-गृह बना हुआ था, अब भोजन-गृह हो गया है। चटाइयों पर बिछे बिस्तरे आलमारी में लग गये थे और भोजन करने की छोटी चौकी व गद्दे बिछे हुए थे। रसोई-घर से भोजन की सुगन्ध आ रही थी। एक गद्दे पर बैठ गया। सारे मकान की सफ़ाई हो चुकी थी। चटाइयाँ रगड़-रगड़ कर कपड़े से साफ़ की जा चुकी थीं। कमरे के बाहर का लकड़ी का फ़र्श चमक रहा था। वह भी भीगे हुए कपड़े से रगड़-रगड़ कर साफ़ किया जा चुका था। किवाड़, शीशे और दीवारें सभी झाड़-पोंछकर ठीक कर दी गई थीं। नित्य ही प्रातःकाल उठने के बाद यह सफ़ाई काफ़ी समय ले लेती है। जापान में घर में स्त्री को प्रातःकाल अपने पति के उठने के पहले यह कार्य तो करना पड़ता है, पर इससे घर की सुन्दरता बहुत ही बढ़ जाती है। बिस्तरों का उठाना, मकान का साफ़ करना और प्रातःकाल का भोजन तैयार करना ये काम एक गृहपत्नी का काफ़ी समय लेकर भी उसके पति और बच्चों के लिए इतना समय छोड़ देते हैं कि वे खाना खाकर ठीक समय पर अपने काम पर और पाठशाला में पहुँच सकें।

चौकी पर धीरे-धीरे श्रीमती तोमोदा खाना लगाने लगीं। भाफ़ निकलते हुए गर्म गर्म चावल चमकते हुए श्वेत चीनी के प्याले के अन्दर, लकड़ी के लाल रंग के प्यालों में गर्म गर्म जापानी शोरआ जिसमें हरी हरी दो-तीन पत्तियाँ तैर रही थीं, मूली का पीला और अदरक का लाल लाल अचार, मीठे सोयाबीन, लम्बी तश्तरी में भुनी हुई मछलियाँ और सबसे महत्त्वपूर्ण गर्म गर्म चाय। पानी का नाम नहीं। प्रत्येक के लिए दो गोल गोल लम्बी चोपस्टिक जिनसे वह खाना खाले। सब खाना खाने बैठे। श्रीमती जी उल्टे घुटने कर जो कि अन्य जनों के प्रति आदर का चिह्न है—आवभगत के लिए बैठ गईं। लड़के ने सारा प्याला चावल उन दो लकड़ियों

[एक जापानी बौद्ध भिक्षु।]

(चोपस्टिक) की सहायता से पेट में रख लिया। उसे प्याले में दुबारा चावल दिया गया और लड़की को थोड़ा।

लड़के ने रेडियो खोल दिया। तोक्यो से प्रातःकाल के व्यायाम का समाचार था। मैंने हँसकर लड़के इशीदा से पूछा—"तुम व्यायाम नहीं करते?"

"स्कूल में करता हूँ।"—शीघ्रता से खाना खाकर दोनों पाठशाला चले गये। हम खाते ही रहे।

खाने में एक भी वस्तु ऐसी नहीं थी जो तोमोदा के खुद के खेत की न हो। यहाँ तक की मछलियाँ भी पास के तालाब से खुद की पकड़ी हुई थीं। खाना बड़ा अच्छा और स्वास्थ्यप्रद था। यदि कोई खट्टी चीज़ थी तो मूली का अचार और चरपरी अदरक। अन्य सब वस्तुएँ नमकीन थीं। मीठी सोयाबीन थी। आलू भुने हुए थे। सादा खाना था। क़ीमत में सस्ता, और स्वास्थ्य के लिए अनुपम!

मैंने पूछा—"आपकी खेती कितनी बड़ी है?"

"दो एकड़।"

"दो एकड़?"

चार मनुष्यों का परिवार और एक मज़दूर नौकर और इन सबका निर्वाह दो एकड़ खेत से! मैं चकित रह गया। अच्छा खाना, रेशमी कपड़े (अपने रेशम से श्रीमती जी के बनाये हुए) बिजली, रेडियो, बाइसिकिल, मामूली गृहस्थ जैसा मकान, चारों ओर बाग़, बच्चों के पढ़ने का व्यय—और साथ में शौक़ के लिए मछली पकड़ने का सामान, मेंह के लिए रबड़ के जूते—यह सब दो एकड़ की कमाई पर! मैं आश्चर्य में पड़ गया।

मैंने पूछा—"यह सब कैसे चलाते हो?"

तोमोदा गम्भीर हो गये। वे बोले—"हमें करना पड़ता है। जापान का किसान मुसीबत का मारा हुआ है।"

जापान की १५ प्रतिशत भूमि ऐसी है जो खेती के काम में लाई जा सकती है। और इस इतनी भूमि पर वहाँ की विशाल आबादी का निर्वाह मुश्किल से होता है। इसी से वहाँ आपको ऐसी जगह नहीं दिखाई देगी जिस पर जापानी किसान का हाथ लगा हुआ न मिलेगा। छोटी-छोटी पहाड़ियों को काट काटकर बड़ी बड़ी सीढ़ियाँ जैसी बना कर उन पर खेती की गई है। ढालों पर छोटे-छोटे कोनों में, नदी-नालों के किनारे पर, जहाँ भी वश चला है, वहाँ खेत बनाये गये हैं और बीच बीच में मकान हैं। और फिर सब मकानों में—चाहे वे तोक्यो में हों चाहे दूर जंगल में, रेडियो, बिजली और पानी का उत्तम प्रबन्ध है। फ़र्श पर चटाई, छत पर खपरैल, चारों ओर बाग़, हरे भरे पेड़ हैं।

एक बात और भी अधिक महत्त्वपूर्ण है। जापान की जनसंख्या में प्रतिवर्ष १० लाख की वृद्धि हो रही है।

और इस सबका परिणाम यह हुआ है कि जापानी कृषक के पास औसतन दो एकड़ भूमि है, और वह भी जनसंख्या की वृद्धि के कारण, नित्यप्रति कम होती जा रही है।

तोमोदा महोदय ने कहा—"मेरा नाम कितना उपयुक्त है? तोमोदा का अर्थ है "भूमि के साथ।" यह कह कर उन्होंने अपने पितामह की तसवीर की ओर संकेत किया जो दीवार पर लटक रही थी। वह सामुराई

वेश में एक नवयुवक का चित्र था। उन्होंने कहा—"मेरे पितामह बड़े मालदार जमींदार थे। जागीरदारी प्रथा का अन्त हुआ (१८६७) तब सारी जमीन छिन गई। मेरे पिता के पास ८ एकड़ बचे और उन्होंने उसे अपने चार पुत्रों में बाँट दिया। मुझे दो एकड़ मिले। मेरे यदि दोनों पुत्र जीवित होते तो उनके भाग में एक एक एकड़ आता। सबसे बड़ा लड़का दो महीने हुए, चीन में युद्ध-क्षेत्र में लड़ते लड़ते मरा। आपने वह तलवार देखी है। उसने युद्ध-क्षेत्र से वह तलवार भेज दी है। आपने वह मन्दिर देखा है। उसी मन्दिर में वह तलवार रक्खी रहती है। हम शक्ति की आराधना करते हैं। वह तलवार सारे घर की निधि है। वह अपने साथ अतीत की कितनी ही ऐतिहासिक गाथायें लिये हुए है। अभी साठ-सत्तर वर्ष पहले वर्तमान जापान की स्थापना के हेतु जो गृहयुद्ध हुआ था उसमें मेरे पितामह उसे लेकर ईश्वर-स्वरूप सम्राट् के लिए लड़े थे। जापान-रूस युद्ध में मेरे पिता ने उसका प्रयोग किया। पहले चीन-जापान-युद्ध में मेरा भाई उसे हाथ में लिये समरक्षेत्र में वीरगति को प्राप्त हुआ। और अब तुंगचाऊ के युद्ध-क्षेत्र में मेरा पुत्र उसे हाथ में लिये वीरगति को पहुँचा। और अभी क्या? अभी मेरे अन्य लड़के उसे लेकर लड़ेंगे। जापान की स्थिति अत्यन्त भयंकर है। बताओ क्या करें?" तोमोदा की आँखें चमक रही थीं।

सारी बातें चित्रपट की नाईं मेरी आँखों के सामने गुजर रही थीं।

तोमोदा ने कहा—"हम लोग बात अधिक नहीं करते। हमें प्रचार करना भी नहीं आता। राजनैतिक वार्तायें और सभायें करनी नहीं आतीं। हमें आता है तलवार लेकर मार देना और यदि वह नहीं मरा तो अपने पेट में वही कृपाण भोंक कर मर जाना। यही हमारा धर्म और यही हमारी सभ्यता है। यही 'बुरीदो' और 'हाराकीरी' हमारा जीवन है।"

जापान में केवल यही एक किसान ऐसा कहता हो, सो बात नहीं है। यहाँ तो बच्चे बच्चे को सैकड़ों वर्ष से यही शिक्षा रही है। बलिदान का अनुपम उदाहरण

[दो जापानी कुमारियाँ।]

और मान का महत्त्व—इन्हीं दो बातों ने जापानियों को इतना बड़ा बनाया है।

तोमोदा ने कहा—"अब मैं इस खेत को अपने लड़कों को देकर समर में जाऊँगा।"

लड़का बोला—"मैं यहाँ रहकर खेत पर काम नहीं करूँगा। मैं तो टोक्यो जा रहा हूँ। पढ़ूँगा, लिखूँगा और चीन जाकर एक विशाल चीनी राज्य बनाऊँगा। हम जापानियों को चीन को एक विशाल देश बनाने की आवश्यकता है।"

लड़की बोली—"और मैं भी।" उसके स्कूल के द्वारा लड़की को किसी सूती मिल में नौकरी दिलाने की बातें हो रहीं थी।

जब जोतने के लिए भूमि ही न हो तो जापानी बेचारे क्या करें? भूमि अपने को बड़ा नहीं करेगी, पर शिल्प-कला और उद्योग-धन्धे कर लेंगे और से वहाँ की बढ़ती हुई जन-संख्या को अपने में खपा सकेंगे।

तोमोदा ने कहा—"बताओ, इसके अतिरिक्त किस तरह अपनी आवश्यकताओं को पूरा करें।"

अब धीरे-धीरे मेरी समझ में आया कि प्रातःकाल तलवार की पूजा क्यों की गई थी। क्या युद्ध ही जापान के जीवन का विधाता है? क्या युद्ध इतना आवश्यक है कि एक मामूली-से-मामूली किसान भी उसमें अपनी आहुति डालने और अपने पुत्रों को उसके लिए प्रेरित करने को तैयार है? वह युद्ध जिसमें उसका पिता मारा गया, स्वयं लड़कर लौट आया, जवान पुत्र मर गया, फिर भी वह कहता है कि अभी मेरे लड़के लड़ेंगे और मरेंगे। जापान में एक मामूली किसान भी इस निर्णय पर पहुँचा हुआ है।

किसी भी निर्णय पर पहुँचने में दिमाग़ की आवश्यकता होती है। और जापानी किसान वह दिमाग़ रखता है। शहर से कोसों दूर होने पर भी तोमोदा नित्य तीन दैनिक संस्करण पढ़ता है—प्रातःकाल का संस्करण और सन्ध्या का प्रथम व द्वितीय संस्करण। रेडियो उसे योरप की राजधानियों में हो रहे नित्यप्रति के निर्णयों को दिन में तीन बार सुनाता रहता है और घर में मासिक स्त्रियों का पत्र, बच्चों के मासिक, साप्ताहिक पत्रिकायें इत्यादि की भी कमी नहीं थी। ऐसे मनुष्य भेड़-बकरी नहीं होते।

श्री तोमोदा ने मुस्कराते हुए कहा—"हम किसान चाहते हैं कि जापान भी दुनिया में कोई शक्ति बने। हम इसे एक शिल्प-प्रधान देश बनाकर इसकी स्थिति को विश्व के मामलों में महत्त्वपूर्ण बनाना चाहते हैं ताकि हमारे लड़कों को ४ एकड़ के खेतों पर अपनी आँखें न लगानी पड़ें।"

यह कहकर तोमोदा उठ खड़ा हुआ। उसने हँस कर कहा—"मैं कहाँ का झगड़ा ले बैठा। मेरे लिए देश का भाग्य का निर्णय करने का सबसे ठीक रास्ता अपना खेत बोना है।"

उसने दराज से एक चीनी पंचांग निकाला—दीवार से नहीं। जापानी मकान की दीवारों पर तसवीरें इत्यादि नहीं होतीं। हाँ, कमरे की सजावट के लिए कपड़े अवश्य टँगे होते हैं।

तोमोदा ने पंचांग देखा। अच्छे प्रकार देख-भाल कर बोला—"हूँ! बड़ा अच्छा दिन है। आज महा-शान्ति-दिवस है। बोने के लिए बड़ा अच्छा दिन है।"

आश्चर्य की बात है कि इतना आधुनिक होकर भी एक जापानी किसान अन्ध-विश्वासों में फँसा हुआ है। आज भी कोई जापानी किसान अपने पत्र में लिखे 'बुत्सोमेत्सु' (उसागी) के दिन बीज बोने की हिम्मत नहीं करता। क्योंकि 'उसागी' उसी अक्षर से आरम्भ होता है जिससे 'उरेई' (उदासीनता)।' गाय' के दिन यदि शकरकन्द बोई जाय तो वह गाय के सींग के बराबर की होगी। 'आत्मविस्मृति' के दिन कुछ भी नहीं बोना चाहिए। उस दिन तो आनन्द से पड़े रहना चाहिए। 'शुभारम्भ दिवस' पर जो कार्य प्रातः किये जायँगे उनमें सफलता होगी और 'दुरारम्भ' दिवस पर इसका उल्टा होगा।

'महाशान्ति-दिवस' पर हमारे 'तोमोदा' साहब ने बोने की तैयारी आरम्भ कर दी। बोने के बीज में भी कुछ विशेषता होनी चाहिए। इसके लिए भी प्राचीन अन्ध-विश्वास काम देता है।

वसन्त के आरम्भ में एक विशेष क्रिया की जाती है। इसे "कौआ को उड़ाने" का दिवस कहते हैं। इसमें भिन्न-भिन्न प्रकार के चावल ज़मीन पर बिखेर दिये जाते हैं और जिस क़िस्म के चावल को सबसे पहला कौआ आकर उठा लेता है वही चावल बोने के लिए सबसे अच्छा माना जाता है। भिन्न-भिन्न वस्तुओं में भिन्न-भिन्न प्रकार की क़िस्म की आवश्यकता होती है। एक कृषक मौसम की भविष्यवाणी नहीं कर सकता, पर कौआ कर सकता है, यही उनकी धारणा है।

आज के जापान में और ऐसे कार्यों में कितना महान् अन्तर है।

मुझे आश्चर्य था कि इतने उन्नतिशील तथा अपनी तलवार पर विश्वास करनेवालों के हृदयों में इन अन्ध-विश्वासों की जड़ें कैसे बची रह गई।

जैसे-जैसे दिन बढ़ता गया, घाटी में तोमोदा का करामाती खेत दूर से ही चमकने लगा। तोमोदा बोला—"हमें अपनी पाठशाला में पढ़ाया गया है कि जिस चीज़ की किसान को ज़रूरत है उसे पैदा करना चाहिए।"

उसी ने नहीं और सबने भी वैसा ही किया था। हमारे सामने ज़रा-सी भूमि में एक 'मॉडल प्लाट' जैसी चीज़ थी। गेहूँ, जौ, गोभी, मूली, गाजर (जो ज़मीन में दो-दो फ़ुट बढ़ती हैं), बाँस की जड़ें, सोरामामे (एक
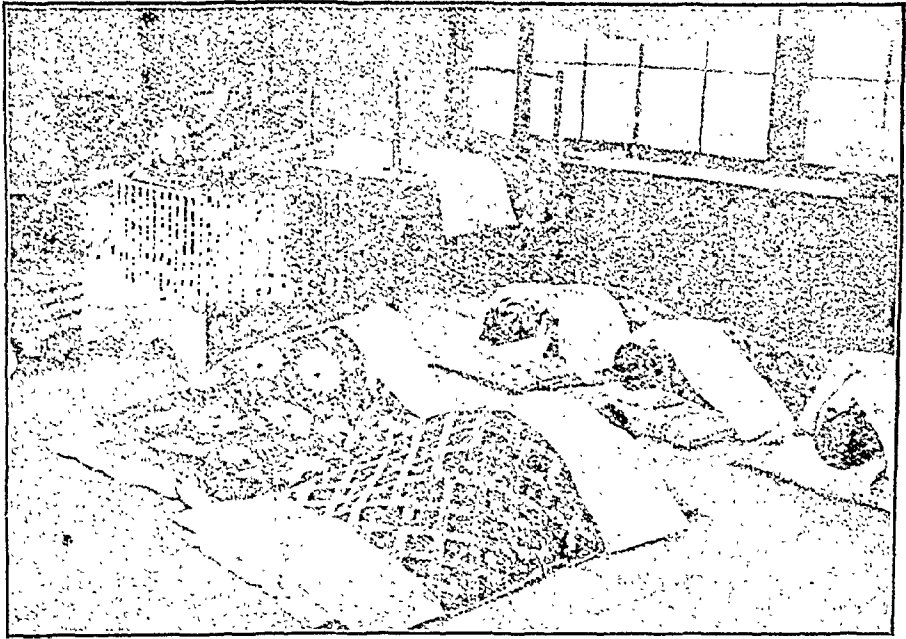
[जापानी लोगों का शयनागार ।]

प्रकार की दाल इतनी बड़ी जितनी कि छोटी-छोटी सुपारियाँ), शकरकन्द, तीन प्रकार के आलू (आठ सिर-वाला आलू, मीठा आलू और 'आयरिश' आलू) और फलों के कुछ पेड़—इस प्रकार काटे हुए कि लकड़ी अधिक न बढ़े और फल पैदा करें आदि सभी कुछ था। और सबसे सुन्दर जापान का प्रसिद्ध 'साकुरा' था, जिसके फूलों के लदने के दिनों की जापानी साल भर तक प्रतीक्षा करते हैं, परन्तु जो केवल एक सप्ताह ही रहता है और जिसके बिना जापानी प्रेम, नाटक, बाग़, सड़क, कहानी, बड़ी बड़ी इमारतें सभी कुछ अधूरी रहती हैं। इसके फलों का कोई मूल्य नहीं, पर फूलों की सुन्दरता—जिनमें सुगन्ध बिलकुल नहीं होती—के लिए यह सभी जगह जापान में समादृत है। और यहाँ इस पर छोटे छोटे काग़ज़ों पर तोमोदा साहब की बनाई हुई कवितायें झूल रही थीं।

मुझे मालूम हुआ कि तोमोदा साहब को काव्य का भी अच्छा शौक़ है।

एक ही खेत में खाना, सुन्दरता और अपना शौक़ सब कुछ पूरा हो गया।

और कपड़े? उनके लिए शहतूत के छोटे छोटे पेड़ों का छोटा-सा ज़मीन का टुकड़ा भी था। यहाँ रेशम के कीड़े पाले जायँगे और श्रीमती तोमोदा तथा उनकी सुयोग्य पुत्री अपने सुन्दर हाथों से किसी प्रकार—सारे कपड़े तैयार कर लेंगी! श्रीमती जी को आधुनिक 'मोगा' अर्थात् नये फ़ैशन की लड़कियों के रंग-ढंग पसन्द नहीं आते। उन्होंने कहा—"न काम, न काज, बस बनी-ठनी फिरती रहती हैं। उन्हें बाज़ारों में घूमने भर से काम रहता है। हमारी तरह आकर काम करें तो पता चले।" आनन्द के पीछे घूमनेवाले जापान के 'मोगा' और 'मोबो' (नये ढंग के लड़के) इन मेहनती आदमियों की दृष्टि में बेकार वस्तुएँ हैं। तोमोदा खड़ा खड़ा हँस रहा था।

मैं बोला—"आप अपनी पुत्री को भी "मोगा" बना दें।" शाम को हम दोनों पहाड़ियों की सैर करके आये तब वे बोलीं—"मोगा, होने में तो कोई हर्ज नहीं है, पर तोक्यो की 'मोगाओं' को देखो! तोमोदा अब भी खड़ा हँस रहा था। इतने में श्रीमती जी अपनी पिटारी

से कपड़े का एक टुकड़ा ले आईं। मुझे दिखाकर बोलीं—"देखो। इसमें तीन सौ प्रकार के बुने हुए कपड़ों के नमूने लगे हुए हैं। यह पुराना संग्रह है और सारे ग्राम के लिए नमूने का काम देता है। ग्राम की स्त्रियाँ उन सबको बुन सकती थीं।" अब मेरे ध्यान में आया कि इनमें और मोगाओं में क्या अन्तर श्रीमती जी समझती थीं।

और जूते? जापानी खेत में जूतों का भी पेड़ होता है। 'कीरी' इसी लिए बढ़ाया जाता है। जहाँ 'कीरी' पर लकड़ी आई कि लड़के ने उसका 'गेता' (जापानी खड़ाऊँ) बना लीं। जितने दिनों में वह खराब होगी, दूसरी के लिए लकड़ी पैदा हो जायगी।

यही नहीं, लकड़ी के अतिरिक्त मकान बनाने में और सारी वस्तुएँ भी इसी खेत से गई थीं। छत, चटाई, काग़ज़ के किवाड़—सरकनेवाले—सब कुछ यहीं से गये थे। जिस 'कोज़ू' के पल्प से कागज बनाते हैं वह यहाँ बड़ी जल्दी पैदा होता है।

इस प्रकार जापानी किसान अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति अपने खेत से ही करता है और इसके लिए वह खेत को ख़ूब ही जोतता है।

परिश्रम करने में जापानी किसान अन्धविश्वासी नहीं है। बोने के पश्चात् वह प्रकृति पर सब कुछ न छोड़कर अपने बाहुबल पर भरोसा रखता है। वह यह नहीं सोच बैठता कि बो दिया, अब भगवान् और माता धरती पैदा करेंगे। नहीं। वह तो एक एक पेड़, एक एक पौधे को भले प्रकार निराकर और खाद देकर ठीक करता रहता है। सारा खेत ज्योमेट्री की शकल-सा दिखेगा। मेड़ों के बीच में ख़ूब अच्छी निराई हुई मिट्टी दिखेगी। कहीं भी सूखी हुई या जमी हुई मिट्टी नजर नहीं आयेगी—सब एक-सी, भुरभुरी खाद दी हुई। सारे खेत में कहीं भी घास या बेकार पत्तियों का नाम तक नहीं।

जापान में खाद बहुत अधिक मात्रा में प्रयोग में लाई जाती है—इतनी अधिक कि पास से गुजरनेवालों को भी दूर से ही उसका पता चल जाता है। तीन पीढ़ियों में ही आस्ट्रेलिया की अच्छी भूमियों की पैदावार गिर गई है। परन्तु जापानी उसी भूमि को २० शताब्दियों से जोत रहे हैं और पैदावार ख़ूब होती है।

पानी का प्रयोग भी बड़े अच्छे ढंग से किया जाता है। जापान में पहाड़ियाँ हैं। पहाड़ियों के ऊपर जहाँ तक खेती हो सकी है, काट काट कर खेत बनाये गये हैं। सबसे ऊपर बड़े-बड़े गढ़े बना दिये गये हैं। वर्षा के दिनों में इनमें ख़ूब पानी भर जाता है जो सिंचाई के काम में आता है। छोटे-छोटे नदी-नालों से भी खेतों को मनचाहा पानी मिल जाता है। जहाँ यह सम्भव नहीं है, नीची सतह में बहती हुई नदियों से पानी लाया जाता है। चीन, जापान और कोरिया में नदी-नहरों की लम्बाई सारे संयुक्तराज्य अमरीका की रेलवे लाइनों की लम्बाई से अधिक है।

जापान के कृषकों के लिए फूस बहुत ही मूल्यवान् वस्तु है। मैंने अपने देश में फूस को जलाते हुए देखा है, पर जापान में मैंने मूर्तियों के सामने नोट तो जलते देखे हैं, पर मूल्यवान् फूस नहीं।

जापान के खेतों में जानवर नहीं मिलेंगे। थोड़े बैलों के सिवा और शायद ही कोई जानवर दिखाई दे। भेड़ें तो इतनी कम हैं कि उसके गाँव में आ जाने पर बच्चों के लिए खास तमाशा हो जाता है।

सूर्य्य निकला। तोमोदा और उनके पुत्र ने मन्दिर के सामने खड़े होकर सिर झुकाकर ताली बजाई और अपने अपने काम पर चले। श्रीमती तोमोदा, उनकी पुत्री और एक नौकर घर का कार्य्य समाप्त कर खेत में पहुँचे। कीए-द्वारा चुने गये चावल की क़िस्म लगभग १२ फ़ुट चौड़े और २० फ़ुट लम्बे टुकड़े में बोई गई। पहले तो मेरी समझ में ही नहीं आया कि ये सब इसे शौक़िया कर रहे हैं या सचमुच किसानी कर रहे हैं। एक छोटे-से टुकड़े पर पाँच आदमी!

जौ के खेतों का कार्य्य समाप्त होने पर तम्बाकू की फ़सल का कार्य्य आरम्भ हो जायगा। एक खेत में एक साल में ३ फ़सलें पैदा की जाती हैं। कभी कभी एक साल में पाँच पाँच फ़सलें भी होती हैं। खाद की क़ीमत देकर इसी जमीन से ५०० येन से कम का लाभ नहीं होता! और सब इसी दो एकड़ से।

यहाँ की सघन खेती को देखकर आश्चर्य कर रहा था कि तोमोदा ने कहा—"चलो मचान पर बैठ कर खाना खायें। क्या आप अपने देश में भी जगह बचाने

[जापानी लड़कियाँ खेल कूद कर रही हैं।]

के लिए मचान बनाते हैं।" वे मुझे पास ही बहते हुए नाले के पास ले गये। नाले को वहाँ चौड़ा बनाकर तालाब जैसी शकल दे दी गई थी। वे बोले—"जगह की बहुत कमी है और खानेवाले ज़्यादा हैं। हमारा जापानी गांधी—कागावा—कहता है कि खड़ी खेती करो। मेरी यह खड़ी खेती है।"

पहली मंज़िल पर स्ट्राबेरी और अन्य तरकारियाँ हैं। दूसरी पर फलों के पेड़ों को बोने के लिए जड़ों के बनाने का प्रबन्ध है, तीसरी में 'वालनट' और चौथी में शहद की मक्खियाँ पली हुई हैं। और नीचे देखिए। तालाब में एक सतह ऊँची है एक नीची है। इसमें दो प्रकार की मछलियाँ पली हुई हैं। इस प्रकार मेरी यह छः मंज़िल की खड़ी खेती है।"

ऊपर बैठकर खाना खाया। श्रीमती तोमोदा प्रत्येक मंज़िल की थोड़ी चीजें लाई थीं। शायद वे यह दिखाना चाहती थीं कि प्रत्येक मंज़िल वास्तव में लाभप्रद है। दो प्रकार की मछलियाँ, ताज़ी तरकारियाँ, फल, वालनट, और शहद।

सारी दोपहरी भर वे पाँचों जन उस दो एकड़ के टुकड़े से लड़ते रहे।

ज़मीन की इसी लड़ाई में जापान आज का 'जापान' बना है। यहाँ इन खेतों में उसे अपने 'बुशिदो' की जड़ें मिली हैं जो कहता है कि "कर्तव्य-पालन करो और यदि न कर सको तो पेट काटकर वहीं मर जाओ।"

रात को मैंने देखा कि तोमोदा महोदय तलवार लिये मन्दिर में मोमबत्ती जलाये पूजा कर रहे हैं। उन्होंने तलवार उठाई और अपने पूर्वजों से तथा अभी-अभी चीन के समरक्षेत्र में मारे गये अपने प्राण-प्यारे पुत्र की आत्मा से बातें कीं। मोमबत्तियाँ बुझाईं, ताली बजाई और झुककर मन्दिर के दरवाज़े बन्द किये।

मुझे ऐसा लगा, मानो यह तलवार आज सारे दिन उनके साथ खेत पर रही हो।

जापानी अपने देश को खून से सींचता और तलवार से जोतता है!

और इतने कठिन परिश्रम के पश्चात् भी जापानी किसान के लड़ने के लिए अन्य कितनी ही कठिनाइयाँ रहती

हैं। भूकम्प, तूफ़ान, बाढ़, आँधी, समुद्र की बाढ़! और ये सब विपत्तियाँ केवल दो एकड़ के खेत के लिए!

पर जापानी किसान को भूकम्पों का रत्ती भर डर नहीं। भूकम्प क्या करेगा? मकान हिला देगा, पृथ्वी हिला देगा। लकड़ी का मकान और खेत हिल कर रह जायेंगे। पर नहीं, यहीं तक नहीं है। सारे जापान में ५८ ज्वालामुखी हैं जो अग्नि-राशि को अपने विशाल गर्भ में संचित किये हुए समय-समय पर उगलते रहते हैं। आसामा पहाड़ के पास यदि कहीं बेचारे का खेत हुआ तो उसे पता नहीं कि न मालूम उसके जीवन की अवधि कब तक है। न मालूम कब पहाड़ फट पड़े, और सारा गाँव केवल प्राचीन काल की गाथाओं की भाँति एक गाथा बन कर रह जाय। आज जहाँ खेत है उसके सौ फ़ुट ऊपर लोग घूमते हुए केवल यही स्मरण करेंगे कि यहाँ कभी खेती होती थी।

और यही नहीं, यदि अन्दर की अग्नि शान्त रहती है तो इन्द्र का प्रकोप होता रहता है। दक्षिणी जापान में सूखे से तो उत्तरी में वर्फ़ से सारी फ़सलें खराब होती रहती हैं। एक आपत्ति हो तो भुगता जाय। ज़रा-सी पृथ्वी के पीछे हर समय विनाश के मुँह पर उसे खड़ा रहना पड़ता है।

अभी पिछले वर्ष वहाँ तूफ़ान आया था।

बेचारा किसान रात को ठीक प्रकार सो गया। रात्रि में एक बजा था। भूचालों ने आतंक जमा दिया। लगातार बड़े बड़े धक्के लगे। उसके बाद आँधी आई और तूफ़ान गर्म गर्म हवा को अपने साथ बड़ी तेज़ी से लाने लगा। मकानों की खपरैल उड़ गई। सारे मकान में रेत भर गया और इतना अधिक शोर कि कुछ सुनाई ही न पड़ता था। सिवाय इसके कि प्रातःकाल की प्रतीक्षा करे और कोई मार्ग नहीं था।

वह उठकर पासवाले कमरे में गया। स्त्रियाँ और लड़कियाँ चुपचाप सो रही थीं। जापान में रोना उतना नहीं होता। वहाँ स्त्रियाँ पति के लिए भार नहीं हैं, जीवन-संगिनी हैं। सब शान्तभाव से सोई हुई थीं। यही उनकी शिक्षा, यही उनकी प्रथा, यही उनका जीवन और यही उनका आदर्श है और प्रातःकाल! उसकी सारी जमा-पूँजी—उसका ढाई एकड़ का खेत—जलमग्न हो गया था। न मेंह था, न बाढ़ थी। यह समुद्री प्रकोप था। पृथ्वी को शक्तिहीन पाकर विशाल जलनिधि ने उस पर राज्य करने की सोची। बहाव उलटा था। जल वापस जा रहा था।

दो सप्ताह में यदि पृथ्वी निकल भी आई तो उसे दुबारा खेती योग्य बनाने के लिए वर्षों चाहिए! सारी भूमि में समुद्री रेत और नमकीन पानी हो गया था।

लड़कियाँ प्रातःकाल का खाना बनाने लगीं। उसने कहा कि खाना बनाने की चिन्ता मत करो। अब तो एक जून ही खाना बनेगा। और वह दोपहर को बना लेना। बेचारे को यह भी पता नहीं था कि एक जून भी अधिक दिन नहीं बन सकता। सारे गाँव में सबसे मालदार आदमी के पास डेढ़ येन—लगभग १ रुपया था। यह एक उदाहरण है। जापान में किसान का ऐसा ही कठिन जीवन और उस पर प्रकृति की मार है। पर जापानी किसान में सहन-शक्ति भी अपूर्व है। ऐसे अवसर पर वह यह कहकर धीरज धरता है कि 'शिकाता गा नाई' अर्थात् हमारे वश की बात नहीं है, क्या करें।

इतना कठिन परिश्रम करने पर भी प्रकृति पर उसका वश नहीं चलता। फिर भी वह उससे लड़ता रहता है।

इसका परिणाम होता है ऋण। आज प्रत्येक जापानी किसान के सिर पर औसतन १ हज़ार का ऋण है। धनी के सूद की दर उसे और भी मारे डालती है। जिस भाग में प्रकृति का प्रकोप हो गया, वहाँ तो सर्वनाश ही सर्वनाश है और यह सब जापानी किसान चुपचाप सहता है। क्यों? क्योंकि राष्ट्र का प्रश्न उसके लिए इन सबसे बड़ा है। वह पढ़ा-लिखा है, समझदार है, सारी दुनिया उसकी परखी हुई है। उसके लिए इसके अतिरिक्त कौन-सा मार्ग है कि वह तलवार लेकर युद्ध-क्षेत्र में लड़ मरे। वास्तव में तलवार ही उसका जीवन है। तलवार से ही वह पृथ्वी जोतता है और नहीं—उसी से वह प्रकृति से लड़ता है। और यही कारण है कि वह आज विश्व जीतने को निकला है।

किसकी भूल

लेखक, श्रीयुत हरवंश वर्मा, बी० ए०

सावन समीर में लहलहाते खेत अपना अमर गान गा रहे थे। एक ओर सरी के पेड़ का आश्रय लिये एक युवक और एक तरुण बालिका खड़ी थी। युवक था कोई बीस वर्ष के लगभग। उसके सुगठित अंग और उसका तेजस्वी मुख उसकी जवांमर्दी के अस्फुट पुल बांध रहे थे, परन्तु उसकी धीमी-धीमी मुस्कराहट में विषाद की एक रेखा भी भलक मार रही थी। बालिका देहाती बाने में सुसज्जित थी। उसकी बड़ी-बड़ी गोल गोल आँखें, उसके कोमल कपोल, घुंघराले बाल तथा ऊँचा क़द उसकी छवि को बढ़ा रहे थे। 'धरतीमाता' की 'गौरी' की तरह उसकी आकृति भोली-भाली तथा वयस केवल १७ साल था। वे दोनों धीमे-धीमे बात-चीत कर रहे थे।

"हूँ, तो तुम आ गई!" युवक ने निस्तब्धता को तोड़ते हुए कहा।

"हाँ तो। क्यों? देखते नहीं....।" बालिका ने आँखें तरेरते हुए कहा।

"ऊँ-हूँ; तुम मेरा आशय नहीं समझ सकीं। मेरा मतलब था कि तुम्हारे यहाँ इस समय आने में किसी ने बाधा तो नहीं उपस्थित की।"

"कुछ भी नहीं। सुजान अभी चौपाल से नहीं लौटा; और मैं—मैं मा की नजर बचा कर यहाँ दौड़ी दौड़ी आई। किसी को खबर नहीं।"

"खूब! तेज, जानती हो मैंने तुम्हें आज इस जगह क्यों बुलाया है?" युवक धीमे स्वर में बोला।

"जानती हूँ। यही कहने के लिए न कि आज मैंने अफ़जल को पछाड़ दिया अथवा खेत की रपट काटते हुए लहनू को. ...।" और तेज खिलखिला कर हँस पड़ी।

"छोड़ो भी इस बालकपन को। ये भी कोई कहने योग्य बातें हैं। मैं तुमसे एक जरूरी बात कहना चाहता हूँ। क्या सुन सकोगी?"

"ऐं! जरूरी बात! भला मुझसे कौन-सी जरूरी बात कहोगे? अच्छा कहो। मगर देखना अगर कोई अनुचित बात कहोगे तो मैं अपने भाई से कह दूँगी।"

"पहले बात तो सुन लो। अपने भाई से क्या कहोगी? सभी बातें क्या हर एक से कही जाती हैं? तेज, नहीं जानता अब हमें एक-दूसरे से कितनी देर के लिए जुदा होना होगा।"

"क्यों? सच-सच कहो।"

"मैं लाम पर जाऊँगा"

तेज ने मुंह उठा कर पूछा—"लाम पर! मगर कब?"

"कल ही तो। दादा को कल उनके पुराने दयालु साहब की चिट्ठी मिली। वे पुरानी खिदमतों की तरह अब भी हमसे मदद चाहते हैं। मैं जरूर जाऊँगा। तुम जानती हो.......।"

कुछ विस्मित होकर तेज ने उसकी बात काटते हुए कहा—"मगर मैंने तो इसकी बाबत कुछ नहीं सुना।"

"तुम कैसे सुन सकोगी? आज दोपहर तक तो यह बात मेरे और दादा में ही सीमित थी। मा के कान में तो केवल अभी अभी डाल कर आया हूँ।"

"तो तुम अवश्य जाओगे?"—तेज ने कुछ भर्राई हुई आवाज में कहा।

"हाँ तेज, अपनी इच्छा न होते हुए भी मुझे जाना ही होगा। जानती हो, हमें लोग क्यों टेढ़ी नजर से देखते हैं, क्योंकि हमारे पास उनके जितनी जमीन नहीं, बैल नहीं। तुम्हीं देखो, तुम्हारे पिता हमारे सम्बन्ध को.....।"

"कृपया इन बातों को रहने दीजिए। अच्छा, अगर जाओगे ही तो अब और कब देख सकूँगी?" बात काटते हुए तेज ने कहा।

"ठीक ठीक नहीं कह सकता। चाहे कहीं भी होऊँ, तुम्हारी याद सदा मुझे सताती ही रहेगी; तुम्हें देखने की तृष्णा अभी मिटेगी नहीं।"

यह सुन तेज, सिर नीचा किये शान्त हो गई। मन ही मन में कहा—"मेरे लिए इतना ही काफ़ी; इससे अधिक आशा करना व्यर्थ है।"

इतने में ही दूर से किसी के 'तेज, तेज' पुकारने की आवाज़ आई। दोनों चौंक पड़े। यह सुजानसिंह की आवाज थी, जो अपनी बहन को ढूंढता हुआ इधर ही आ रहा था।

"शेरा, अब मैं जाऊँगी।"—तेज ने काँपते हुए स्वर में कहा।

शेरा ने उसके कपोलों पर से होंठों को उठाते हुए कहा—"तेज इतने दिनों में मुझे भूल न जाना।"

तेज का दिल बड़ा कमज़ोर था। इस अन्तिम वाक्य को सुनकर उसके आँसू कपोलों पर छलक आये। उसने आह के साथ कहा—"मैं कभी नहीं भूलूँगी, शेरा।" यह कह कर उसने शेरा को एक गम्भीर आलिङ्गन दिया और तुरन्त ही वह एक ओर को चली गई।

दूसरे ही दिन पंजाब इन्फ़ैन्ट्री के साथ शेरसिंह कराची स्पेशल में सवार हो गया।

* * *

अस्ताचल की ओर तेजी से बढ़ते हुए सूर्य की सुनहरी किरणों में खेमे चमक रहे थे। इन्हीं में से एक छोटे-से खेमे में जमादार सरदार शेरसिंह कुछ उन्मना-सा बैठा था। आज कई दिनों से वह बराबर किसी बात को सोचता रहता, परन्तु किसी प्रकार भी वह यह स्थिर करने में सफल नहीं हुआ कि उसकी आशा कितनी और निराशा कितनी है। वह कई अटकलें लड़ाता, परन्तु अन्त में वही ढाक के तीन पात।

इसी समय खेमे की झालर को उठाकर किसी ने प्रवेश किया। शेरसिंह चौंक पड़ा। उसने कहा—"कौन? तुम! नौहरसिंह।"

"जी हाँ, क्या इसमें भी कुछ शक है?"—नौहर ने चुटकी लेते हुए कहा।

"ऊँहूँ। इतने दिन तो शक्ल न दिखाई, आज किधर से टूट पड़े?"—शेरसिंह ने हँसने की चेष्टा करते हुए कहा।

"शक्ल दिखाने योग्य होती तो दिखाते। इतने दिनों मुँह काला करके भटकते रहे और आज जब बरसे तो बस आपके खेमे में टूट पड़े।"—नौहर मुसकराते बोला।

शेरसिंह भी हँस पड़ा और बोला—"अरे यार, मेरा यह आशय कदापि नहीं था। मैं पूछता हूँ कि आज महाराज का कैसे आना हुआ?"

"यों ही। जब जीभ में खुजलाहट हुई तब यहाँ चला आया।"

"तो क्या आपने हमें खुजलाहट की दवा समझ रक्खा है? ख़ैर, तुम आये तो! बताओ, आज-कल कैसे गुज़रती है।"—शेरसिंह ने प्रश्न-सूचक दृष्टि से नौहर को देखते हुए कहा।

"गुज़रती है बहुत मज़े से। पेट भरते हैं और खाटें तोड़ते हैं। बस, तीसरा काम नहीं।"

"मगर भाई मुझे तो यह ज़रा भी अच्छा नहीं लगता। हाथ पर हाथ धरे मक्खियाँ .....।"

"और घर में कौन नाढूखाँ थे आप, जो यहाँ जमादारी से ऊब गये। मुझे तो आपके यह चोंचले ज़रा पसन्द नहीं।"—नौहर ने बात काटते हुए कहा।

"तुम तो बनाते हो बात का बतङ्गड़—निकालते हो उसका कचूमर। भला मैंने कब नाढूखाँ या नाढूखाँ का साला होने का दावा किया है? मेरा मतलब तो था कि गाँव में कैसे सुखपूर्वक दिन गुज़रते थे; वह यहाँ कहाँ? नौहर, मैं तो जल्दी ही छुट्टी लेकर घर जाऊँगा।"—शेरसिंह ने कुछ गम्भीरता से कहा।

शेरसिंह ने अपनी बात समाप्त की ही थी कि नौहर बोल उठा—"हाँ तो शेरा, मैं तुमको एक बात बताना भूल ही गया था।"

"क्या बात?"—शेरसिंह ने बड़ी उत्सुकता से पूछा।

"कोई खास नहीं, मामूली गाँव की बाबत है। तुम जानते हो न उस तेज को?"

"कौन तेज?"

"वही-वही, सुजान की बहन; आपके गाँव..."

"हाँ! हाँ! उसको क्या हुआ? जल्द कहो।"—शेरसिंह ने बात काटते हुए एक विशेष भावभंगी में नौहर से पूछा।

"आज भाभी का पत्र आया है। लिखा है कि तीन महीने हुए वह एक अँगरेज के साथ भाग गई है। अभी तक कोई पता नहीं। न मालूम क्या गोलमाल है।"

शेरसिंह चुप सुनता रहा।

नौहर ने फिर कहा—"और तो और, हजारासिंह आजकल एक अजब मुसीबत में हैं। उसकी हालत ठीक उस बनिये जैसी है जो दूकान लुट जाने पर पुलिस के पंजे में फँस जाय। एक तो बेचारे की लड़की खो गई है, दूसरे लोगों ने उँगलियाँ उठा उठा कर उसका गाँव में रहना तक दूभर कर रक्खा है।........"

अभी नौहर अपनी बात समाप्त भी न कर पाया था कि किसी के भागते हुए आने की आवाज सुनकर दोनों चौंक पड़े। उसी समय एक सिपाही ने खेमें में प्रवेश किया और बड़े अदब से फ़ौजी सलाम करके अर्ज की—"जमादार साहब, आपको साहब ने याद किया है। अभी!"

"ए-ओ" जमादार ने सिपाही की ओर देखकर कहा। उसने यह उत्तर पा फिर सलाम किया और लेफ़्ट-राईट करता बाहर निकल गया। शेरसिंह अपने कपड़ों को ठीक करने लगा, परन्तु उसके मन में कोई बात खटक रही थी।

"तो यह बेवक़्त की शहनाई कैसी?"—नौहर ने कुछ अचम्भे से पूछा।

"क्या जाने भाई? तभी तो कहते थे न कि तीसरा काम नहीं है। अब तो बात कहने का भी अवकाश नहीं। खैर, शायद मेरी शान्ति का ही कुछ उपाय हो जाय। शेरसिंह ने गम्भीरता से कहा।

"शान्ति? मतलब।"

"समय आने पर जान लोगे, अभी उसकी विशेष आवश्यकता नहीं।"—यह कहकर शेरसिंह खेमे से बाहर निकल गया।

* * *

खेमा गैस के तेज लैम्प की रोशनी में चमक रहा था। चारों ओर चटाई पर भिन्न भिन्न अस्त्र-शस्त्र बड़े क़रीने से रक्खे थे। बीच में गोलाकार मेज रक्खी थी और उसके चारों ओर थीं कुर्सियाँ। अधेड़ उम्र का एक अँगरेज एक कुर्सी पर बैठा मेज़ पर पड़ी किसी चीज को ध्यान से देख रहा था और कभी-कभी उस पर अपनी पेंसल भी फेरने लगता।

"हुज़ूर, जमादार शेरसिंह हाजिर है।"—एक सिपाही ने सेलूट करते हुए उस अँगरेज से कहा।

"आने दो।"—यह कहकर वह अँगरेज़ फिर अपने काम में लग गया।

शेरसिंह ने खेमे के अन्दर प्रवेश किया। वह अँगरेज़ अफ़सर बड़े तपाक से उससे मिला।

"गुड ईवनिंग सर।"—जमादार शेरसिंह ने विनीत-भाव से कहा।

"गुड ईवनिंग। हाऊ गोज़ दि वर्ल्ड विद यू?"

शेरसिंह के होंठ हिलकर रह गये। वह मूक खड़ा रहा। चारों ओर निस्तब्धता का राज्य था।

"वेल शेरसिंह!" अँगरेज़ अफ़सर ने कहा—"हम तुम्हारी पिछली बहादुरी से बहुत खुश हैं। इस बार भी क्या.............."

"हुज़ूर का हुक्म और बन्दे का सिर हाज़िर है।"

"शाबाश! हमें तुमसे ऐसी ही उम्मीद थी। देखो, हमारा डिटैचमेंट इस वक़्त बहुत ख़तरे में है, दुश्मन चारों तरफ़ घिर रहे हैं। स्मिथ की टुकड़ी के यहाँ पहुँचने तक बचने का अगर कोई उपाय है तो सिर्फ़ एक.........."

"फ़रमाइए।"

"इधर देखो।" साहब ने शेरसिंह की दृष्टि मेज पर पड़े हुए नक़्शे की ओर आकर्षित करते हुए कहा—"यह है हिल नं० ७४, हम हैं हिल नं० ७२ पर। यह है बर्फ़ानी पानी से लबलबाता हुआ बर्फ़ानी नाला। समझे?"

"जी हाँ।"

"अब बात यह है कि दुश्मन की एक टुकड़ी ने किसी तरह दरिया पार कर इस पुल पर क़ब्ज़ा कर लिया है और इस वक़्त उसको अच्छी तरह से 'गार्ड' कर रही है। उनका 'मेन डिटैचमेंट' पीछे आ रहा है। कुछ देर के लिए अगर 'सेफ़' रहने का तरीक़ा है तो एक, यानी,.."

"इस पुल को उड़ा देना होगा।"

"बहुत ठीक। तुम मेरा मतलब समझ गये। सोच लो, बहुत मुश्किल काम है। कर सकोगे?"

"क्यों नहीं? जान हथेली पर रख कर जाऊँगा।"

"शाबाश शेरसिंह। यही तो तुम्हारी क़ौम की बहादुरी है।"

शेरसिंह चुप रहा; मगर उसके मस्तिष्क में यह

विचार ज़रूर उठा कि और दो घंटे पहले नहीं बताया, तभी न।

इतने में मन में कुछ स्थिर करके वह अँगरेज़ अफ़सर उठकर जमादार के पास खड़ा हो गया और उसने धीरे से उसके कान में कुछ कह दिया।

"समझे?"

"जी हुज़ूर।"

"वेल! तो वह पड़ा है तुम्हारा सामान। सवेरा होने तक।"

शेरसिंह ने सिर झुका दिया। फिर इंगित गठरी को उठाकर उसने साहब को सलाम किया और धीरे-धीरे खेमे से बाहर हो गया।

कालिमा का आवरण चारों ओर फैल चुका था; समस्त दिग्मंडल अन्धकार में आच्छादित था। इस कालिमा के पर्दे पर अपने आपको साकार बनाते हुए वृक्ष भयावह रूप धारण कर रहे थे। मृदुल साँय-साँय अथवा टर्र-टर्र की ध्वनि ही उस निस्तब्धता को क्रमशः छेदती प्रतीत हो रही थी। हाँ, कभी कभी धाँय-धाँय का शब्द भी कर्णगोचर हो जाता था। ऐसे ही समय में एक पथिक बग़ल में गठरी दबाये बेधड़क बढ़ता चला जा रहा था। उसके मन में विचार-धारा का तूफ़ान उठ रहा था, इसी से वह कुछ छटपटाता-सा जान पड़ रहा था। वह सोचता था—"तो तेज एक अँगरेज के साथ भाग गई! यह असम्भव है।"

"असम्भव है। क्यों? क्या वह तुमसे इतना ही प्रेम करती थी? हो सकता है, ढोंग हो। और फिर इस बात का पता भी तो नौहर की भाभी ने भेजा है। भला उसको ठट्ठा करने से मतलब? न तो नौहर का ही तेज से कुछ सम्बन्ध है और न वह हमारे सम्बन्ध में ही कुछ जानती है।

"लेकिन उसका प्रणय तो अटल-अचल प्रतीत होता था। भाव के आवेश में छलछलाती हुई आँखों से कहे हुए उसके अन्तिम वाक्य तो साफ़ साफ़ उसका मेरी ओर झुकाव ही दिखा रहे थे। फिर!

"फिर क्या? आदमी का मन बदलते कुछ देर थोड़े ही लगती है। तुम्हें गाँव से आये अब दो साल हो गये, शायद.........। और हाँ, स्त्री-जाति का पैसे को देखकर फिसल जाना भी तो जगत्-प्रसिद्ध है। सम्भव है तुम संसार को भूल गये हो। आख़िर तुम्हारे पास है ही क्या? रूखी-सूखी का भी तो ठिकाना नहीं। वह ठहरा अफ़सर, मालदार। अब वह अफ़सरानी होगी; दासी होने के बजाय हुक्म किया करेगी।.......

"तेज, मुझे आशा भी न थी कि हमारे प्रणय का यह अन्त होगा। नया सम्बन्ध जोड़ते समय मेरे भग्न हृदय का कुछ तो ख़याल किया होता।.....लेकिन नहीं, संसार का ढंग ही ऐसा है। मनुष्य मनसूबे बाँधता है, सोचता है, तोड़ देता है। कहीं ऐसा न हो जाये, कहीं ऐसा न हो जाये। आख़िर हुआ तो ऐसे ही। ख़ैर शेरा, अब इस जीवन-संग्राम से क्या मतलब? जिसके लिए तूने इतने बड़े बड़े मनसूबे बाँधे थे, अगर उसी से तुझे निराश होना पड़े तो फिर इस जीवन में क्या है कुछ सार? चल, आज ही चल। क्या स्वर्ण-संयोग है सामने। जान पर खेल कर आज यह काम कर दे, और फिर जीवन-विमुक्त....।"

परन्तु शेरसिंह की विचार-धारा ने पलटा खाया। सोचने लगा—"जीवन-विमुक्त! मगर क्यों? किस लिए? केवल उसके लिए! कदापि नहीं। आख़िर मेरा उससे सम्बन्ध ही क्या था? मेरा उस पर हक़ ही क्या था? वे लैला-मजनू, हीर-राँझा तथा शीरीं-फ़रहाद के क़िस्सों के ज़माने लद गये। आजकल है बीसवीं सदी—आज़ादी का ज़माना। हर एक को स्वतन्त्रता—आज़ादी चाहिए।

"आज़ादी! हाँ, आज़ादी ने ही तो उसे मेरी ओर झुका दिया था। समय-समय पर मिलने की स्वतन्त्रता दी थी। अगर आज़ादी न होती तो वह घर में ही न गलती-सड़ती होती। मैंने भी इसी आज़ादी के भाव में ही तो प्रेम-प्रणय किया। अब इस आज़ादी के लिए प्रायश्चित्त करूँगा—प्रायश्चित्त!

"तेज, मुझे तुमसे कोई शिकायत नहीं। परन्तु जानती हो जले दिल की आह को! यदि तुम जानती!.... हो सके तो अभागे को कम-से-कम इस जीवन में तो मुँह न दिखाना। न जाने क्या कर बैठूँ!......

"कर बैठूँ! आख़िर क्या? कुछ भी तो नहीं...। नहीं नहीं, मैं खुद ही उसका मुँह कभी न देखूँगा—कभी नहीं।........"

सहसा शेरसिंह को शब्द सुनाई पड़ा—'हू गोज़ देअर ?' वह स्तब्ध खड़ा हो गया। उसकी विचार-धारा टूट गई। अनमने में उसे कोई सुध-बुध न रही।

"हू गोज़ देअर ?" पुनः शब्द हुआ।

शेरसिंह सँभला। बड़ी गम्भीरता से जवाब दिया—"मी, ट्रम्प फ़ाईव।"

फिर कोई आवाज़ न आई। वह आगे ही आगे बढ़ता गया—खाइयों को कूदता-फाँदता हुआ घोर तिमिर में आँखों से ओझल हो गया।

चारों ओर था पुनः नीरवता का साम्राज्य। कोई एक घंटे के बाद एकाएक एक धमाका हुआ। इधर-उधर खलबली मच गई।

× × ×

कंदरा के घोर तिमिर को जलाते हुए लैम्प अपनी सत्ता का परिचय दे रहे थे। चारों ओर कराहने की आवाजें ही आवाजें थीं। वार्डर लोग तथा नर्सें इधर-उधर चक्कर काटते हुए घायल सिपाहियों का निरीक्षण कर रहे थे; फिर भी मूषक-मण्डली अपना काम जोरों से कर रही थी। एकाएक गले में स्टैथस्कोप लटकाये कुछ डाक्टरों ने कन्दरा में प्रवेश किया और पलंग नं० ५ के चारों ओर खड़े होकर अपना सामान ठीक करने लगे। कुछ देर तक निरीक्षण करने के बाद एक बोला—

"घाव तो कुछ उतना गहरा नहीं है, परन्तु खून के बह जाने के कारण इसकी नाड़ी धीमी पड़ रही है।"

"और 'शाक' ?"—दूसरे ने प्रश्न-सूचक दृष्टि से उसकी ओर देखते हुए कहा।

"शाक का असर है तो सही, लेकिन विशेष नहीं। सिंह सूरमा पक्के दिल का मालूम होता है।"

"फेफड़ों को तो चोट नहीं आई है ?"

"बिलकुल नहीं। हाँ, रक्त के बह जाने का असर सिर पर जरूर हुआ है। सहसा क्षोभ सहन न कर सकेगा।"

यह कहते कहते उस डाक्टर ने घाव को साफ़ कर उस पर मरहम लगाया। फिर छाती पर अच्छी तरह रूई रख कर उसने पट्टी बाँध दी। सामान इकट्ठा करते-करते उसने कहा—"नं० १५।"

"जी हाँ।"—इसका उत्तर मिला, और साथ ही एक नर्स भागती हुई वहाँ आ पहुँची।

"देखो" इसे थोड़ी-सी गर्म चाय पिलाओ और फिर बारी बारी से माथे पर गर्म और ठंडे पानी की गद्दी रक्खो। समझी ?"

नर्स एक अजब अवस्था में खड़ी थी। उसकी एक टक मरीज़ के मुंह पर जाती तो दूसरी डाक्टर पर, मगर होंठ फड़फड़ा कर रह जाते। अन्त में जब डाक्टर जाने को हुआ तब उसके मुंह से सहसा निकल गया—"लेकिन डाक्टर साहब, इनकी तबीअत कैसी है ?"

"बहुत खराब नहीं। ठीक ठीक उपचार होने से जल्दी अच्छा हो जाने की सम्भावना है। मगर 'सडन एक्साईटमेंट' से 'कोलेप्स' भी हो सकता है।"

यह कह कर डाक्टर चला गया। वह कुछ देर वैसे ही अस्थिर खड़ी रही। कभी पास ही मेज़ पर पड़े छोटे से प्याले पर हाथ डालती, परन्तु न जाने क्यों तुरन्त ही उसे छोड़ देती। फिर उँगली दो दातों में पिसती नज़र आती।

सहसा नर्स की आकृति में तबदीली आई, मुख पर गम्भीरता के चिह्न दृष्टिगोचर होने लगे। अगले ही क्षण वह रोगी के उपचार में लग गई। निरन्तर दो घंटे की सेवा-शुश्रूषा के बाद रोगी ने मुख खोला—"पानी!"

नर्स ने उठ कर चाय के प्याले की नली रोगी के मुंह से लगा दी। थोड़ी देर के बाद रोगी ने आँखें खोल दीं और छापू—"मैं कहाँ हूँ ? क्या—क्या ?"

"अस्पताल में। अब तुम बहुत अच्छे हो।"

"हैं! कौन ?"—रोगी ने दाईं ओर को सिर झुकाते हुए कहा—फिर आँखें मलने लगा—"क्या तुम ? तुम—तेज ? सचमुच........"

"हाँ, मैं ही हूँ—तेज।" उसने अँगूठे पर आँचल बाँधते हुए कहा।

"तुम! तुम यहाँ कैसे ? तुम तो साह—हब के साथ.......। क्या देख रहा हूँ ? क्या सुना था ?..... "

"हाँ, ठीक कहते हो। सुन ...।"

"सुनूँ क्या ? खाक!"—रोगी ने चारपाई से उठने की चेष्टा करते हुए कहा—"जब ठीक ही है तब मुझे

अपना काला मुँह दिखाने क्यों आई? जले पर नमक छिड़कोगी? मुझे मुँह न दिखाओ! जाओ!!—जा....ओ!!!"—यह कहते कहते वह मूर्छित होकर गिर पड़ा।

नर्स भयभीत मृगी-सी वहाँ सहमी खड़ी थी। उसके मस्तिष्क में विचारों का बवंडर-सा उठ रहा था; परन्तु स्थिर कुछ भी न हो पाता था। रोगी के शब्द उसके कानों में गूँज रहे थे। अन्त में धीरज धर कर उसने रोगी को ठीक करके बिस्तर पर लिटा दिया और यथापूर्व उपचार करने लगी, परन्तु अब उसके हाथों में शिथिलता-निर्बलता का साम्राज्य था। जब रोगी निद्रा-मग्न कुछ स्थिर होकर लेट गया तब वह उठ कर वहाँ से चली गई।

दूसरे दिन शेरसिंह की मूर्च्छा जाती रही थी। वह पहले से स्वस्थ प्रतीत होता था। परन्तु उसकी अवस्था अजब थी—अनमना-सा इधर-उधर हाथ-पाँव फेंकता रहता। न जाने क्या बात, क्या विचार—क्या घटना उसके मस्तिष्क को कुरेद रही थी। मानसिक तर्क-वितर्क में वह आस-पास पड़ी चीज़ों को खिसका दिया करता, गिरा देता न उसे अपनी खबर थी, न पास में पड़े हुओं की। इसी कशमकश में उसका हाथ तकिये पर जा पड़ा। उसने उसे खींच लिया। सिर नीचे गिरा और एक धीमी सी कर्र-र्र ध्वनि हुई। तकिया उसके हाथ में ही रह गया। सिर उठा कर देखा, वहाँ एक लिफ़ाफ़ा पड़ा था। मन में आकांक्षा, कौतूहल, खलबली मच गई। तकिये को वहीं रख पत्र उठा लिया और उलट-पलट कर देखने लगा। एक ओर लिखा था—

"जमादार शेरसिंह के लिए।"

इसका मतलब वह कुछ भी न समझ सका। सोचने लगा—"अगर किसी ने भेजा होता तो पूरा पता तो होता।" फिर विचार उठा—"इस अटकल से क्या? आखिर है तो मेरा ही; पता चल जायगा।" और उसने लिफ़ाफ़े को फाड़ डाला। एक पत्र निकला। पहले कुछ शब्द पढ़ कर वह क़हक़हा मार कर हँसने लगा—"क्या खूब सूझी है। प्यारे—प्या.....रे कितनी चतुर है? फिर फँसा लेगी क्या मुझको?...." परन्तु सहसा उसकी प्रकृति में परिवर्तन आ गया। वह गम्भीरता से पत्र पढ़ने लगा। वह इस तरह लिखा था—

"प्यारे (?) शेर,

इस प्रश्नसूचक चिह्न को देखकर न जाने क्या विचार कर बैठो। मेरा आशय तो निजी है। आज के आपके व्यवहार ने न जाने मेरे मन में कौन-सा तूफ़ान खड़ा कर दिया है। नहीं जानती कि आपके मन में मेरे लिए वही स्थान है जब आपने कहा था, 'इतने दिनों में मुझे भूल न जाना' या उसमें परिवर्तन आ गया है अथवा बिलकुल ही निर्दिष्ट स्थान मुझे मिला है। बस, इसी कारण यह चिह्न है।

तुम नहीं जान सके मुझे कौन कौन-सी उमंगें—कौन-सी उम्मीदें यहाँ खींच लाई थीं। मगर आज वे सब धूल-धूसरित होती नज़र आईं। जब से आपके कठोर शब्द सुने हैं, मैं एक निन्द्य प्राणी की तरह सन्तप्त हूँ; आपके पूर्वगत विचारों को सोच चली जा रही हूँ। तुमने मुझे दीवाना बना रक्खा था, बना रहे हो, बनाते रहोगे। आशा नहीं कि फिर कभी आपको देख सकूँ; लेकिन जाने के पहले मैं आपके मन से भ्रमात्मक विचारों को दूर हटाने का प्रयत्न करते हुए यह अन्तिम पत्र लिख रही हूँ। शायद अपने काम में सफल हो सकूँ।

"आपकी बातचीत से प्रतीत हुआ कि मेरा टामवर्थ के साथ भाग आना ही आपके मन में खटक रहा है। पर मैं आपके विचारों को ठीक ठीक नहीं भाँप सकी। ख़ैर, ठीक ठीक हाल संक्षेप में लिखे देती हूँ; जैसा मन में आवे समझना।

"आपको गाँव से आये एक वर्ष हो चुका था। इस बीच में आपका एक—केवल एक पत्र मिला; और वह भी आपके जाने के एक मास बाद ही, तत्पश्चात् नहीं। यह आपका पत्र न मिलना मुझे खटका; न जाने क्या क्या विचार मन में आने लगे। यदि आप जानते नारी-हृदय को! विचार होता, चलूँ आपके घर से ही आपका हाल पूछ आऊँ; मगर रास्ते में ही जाकर रह जाती। सोचती, न जाने आपके पिता क्या विचार करें! और लौट आती। दो-एक बार डाकिये को भी बुलाया, मगर आपके पत्र की बाबत उसने भी कुछ पूछने का साहस न हुआ।

गाँव में किसी से पूछने से डरती कि कहीं बात का बतंगड़ न बन जाय। सुजान से तो मैं पहले से ही काँपती थी। भला उससे क्या कहती—क्या पूछती? इसी तरह एक, दो, तीन.... पूरे बारह मास व्यतीत हो गये।

एक दिन यही मेजर टामवर्थ गाँव में भर्ती करने के लिए आया। गाँव के बाहर उसने अपना तम्बू लगवाया। लहनू, फौजी, बुद्धू आदि गुथलियों के लालच में धड़ाधड़ अपना नाम लिखवाने लगे। मेरे दिल में भी उत्सुकता पैदा हुई। भर्ती का मेला देखने के बहाने एक रोज सायंकाल मैं मेजर टामवर्थ से मिली और आपका समाचार पूछा, मगर विशेष उत्तर न पा सकी। आखिर उससे मैं पूछ ही तो बैठी, क्या औरतों की भर्ती नहीं होती?

"भला लड़ाई में औरतों का क्या काम?"—उसने मुस्कराते हुए कहा—"मगर हाँ, नर्सों की पल्टन उनके लिए है।"

"मतलब?"

"मतलब यह कि घायल सिपाहियों की देख-भाल के लिए उनकी भर्ती की जाती है।"

"तो हिन्दुस्तानी नर्सें कहाँ भेजी जाती हैं?"—मैंने मेजर से पूछा।

"जहाँ हिन्दुस्तानी सिपाही हों।"

मेरे दिल में कुछ आशा की झलक हुई। मैंने तुरन्त ही गुप्त तौर पर अपना नाम नर्सों की पल्टन में लिखवा दिया। चौथे दिन मैं बिना किसी से कुछ कहे मेजर टामवर्थ के साथ चली आई। दिल्ली में मैं मिस मयूर के 'ब्रिगेड' में रक्खी गई और मैं नियमपूर्वक उपचार-विधि सीखने लगी।

× × ×

इस कैम्प में आये मुझे एक सप्ताह हो चुका था। फ़ौजियों की अनुक्रमणिका से मुझे पता चला कि आप यहीं हैं। मगर मुझे आपके पास आने का साहस न हुआ। न जाने कौन-सी शंका मेरे दिल में घर किये थी। जान-पहचान किसी सिपाही से थी नहीं, लेकिन फिर भी आपकी खबर ज़रूर रखती थी। आज—आज...। खैर, जो बीत चुकी सो बीत चुकी। अब इसकी याद सताये क्यों?

यह है इतने दिनों की मेरी संक्षिप्त कहानी। अब इस हत-भागिनी को आपसे मिलने की आशा नहीं। हो सके तो मुझे क्षमा करना।

आपके अन्तिम दर्शनों की अभिलाषिणी,
तेज।

पत्र पढ़कर शेरसिंह की अवस्था अजब हो गई। मुख पर एक रंग आता और एक जाता। उसने उठने की चेष्टा की, परन्तु छाती में एक टीस उठी। वह फिर लेट गया। तकिया उसके मुख-पर था।

* * *

आज शेरसिंह तीन वर्ष के बाद लाम पर से लौटा था। अब वह खेतों की आड़ों में कूदने-फाँदनेवाला शेरा नहीं था; अब था वह 'विक्टोरिया क्रास' से सजा हुआ सूबेदार सरदार शेरसिंह। उसके वे शोचनीय संकट के दिन कट गये थे और शीघ्र ही उसे एक जागीर मिलनेवाली थी। परन्तु उसके मन में वह शान्ति, वह प्रसन्नता न थी जिसकी तीन साल पहले उसको आशा थी। उसको चारों ओर सर्वथा शून्य ही दृष्टिगोचर होता था। किसी से मिलने-जुलने में उसे प्रसन्नता न थी; किसी के साथ हँसने में शरीक होना उसको सुहाता न था। न मालूम कौन-सी उसको घोर चिन्ता अन्दर-ही-अन्दर जलाती रहती थी?

प्रातःकाल गाँव के बहुत-से लोग उससे मिलने के लिए आये। जेलदार साहब और उनके पुत्र सुजानसिंह भी थे। आते आते गाँव की बहुत-सी लड़कियों ने भी गाँव के फाटक पर अथवा खिड़कियों की आड़ों से उसका स्वागत किया था। परन्तु उसे तेज कहीं नज़र न आई। एक-दो बार उसने किसी किसी से पूछना भी चाहा, लेकिन साहस न कर सका। सोचता, किसी से उसकी बाबत पूछने का मेरा अधिकार ही क्या है। न तो वह मेरी सगी है, और न मँगेतर ही! है भी तो वह जेलदार की बेटी। लोगों के मुंह में क्यों आऊँ? और.....।

"शेरा!"—किसी ने आवाज़ दी।

"आया बेबे जी,"—शेरसिंह ने विचारों का तार तोड़ते हुए अपनी माता को उत्तर दिया। फिर पाँव में जूता ठीक कर वह दालान में उतर गया। वहाँ उसकी मा थाल परोसे बैठी थी। उसने आसन लेकर भोजन करना आरम्भ कर दिया।

मा ने भी बातों का सिलसिला चलाते हुए कहा—"तुमने सुना । तेज भी लौट आई है ।"

"कब ?"—उसने विस्मय से पूछा ।

"पाँच मास ही तो हुए । कहती थी, मैंने भी बहुत-सी लड़ाइयों के मैदान देखे हैं । मगर जब से आई है, खाट से नाता जोड़ रक्खा है ।"

"क्या रोग है ?"

"मैं क्या जानूं ?—सारा दिन बकती रहती है—'मुझे तुम्हीं खींच ले गये,' 'मैं बिल्कुल निर्दोष हूँ,' 'केवल एक बार दर्शन दे दो;' 'आखिरी समय क्षमा तो कर देना—इसी में मुझे शान्ति मिलेगी' इत्यादि । कोई कहता है, उसे क्षय-रोग हो गया है । कोई बोलता है, वह पागल हो गई है । हजारासिंह तो आजकल सदमे में घुला जा रहा है ।"

शेरसिंह अब वहाँ न बैठ सका । जल्दी से पानी पी चुपचाप उठ खड़ा हुआ ।

"क्यों ? रोटी बीच में ही छोड़ दी ?"—उसकी मा ने विस्मय से पूछा ।

"भूख नहीं है ।"—शेरसिंह ने कुछ गम्भीरता से कहा और फिर जल्दी से घर के बाहर हो गया । तेजी से पाँव उठाता वह जैलदार हजारासिंह के दरवाजे पर जा पहुँचा । तेज की मा वहीं खड़ी थी । बड़ी नम्रता से कुछ धीमी-सी हँसी के साथ उसने कहा—"आओ बेटा ! अब हम गरीबों को तो न भूल जाओगे ।" और उसे अन्दर लिवा ले गई ।

कमरे के भीतर एक चारपाई पड़ी थी । उस पर कपड़ों के एक ढेर के सिवा कुछ दिखाई न देता था । सिर तक तो चादर के पल्ले के नीचे दबा हुआ मालूम होता था । चारपाई के पास पहुँच कर सुजान की मा ने धीमे स्वर में कहा—

"तेज ! ओ तेज ! देख तो शेरा तुमसे मिलने आया है ।" और फिर शेरसिंह की ओर दृष्टि कर बोली—"देखो बेटा, हमारे भाग्य फूट गये । न जाने इसको क्या हो गया है ? किसी ने क्या जादू कर दिया है ? किसको अपना रोना सुनाऊँ ?"—यह कहते कहते उसकी आँखों से दो गोल गोल आँसू टपक पड़े । वह बाहर चली गई ।

इतने में बिस्तरे में कुछ स्पन्दन हुआ । अगले ही क्षण उसे तेज का चेहरा नज़र आया; मगर इतना बदला हुआ, इतना थका-माँदा-टूटा हुआ, इतना कमज़ोर कि उसे पहचानते न बनता था । न उस चेहरे पर वह मुस्कराहट थी, न वह तेज ही ।

आवेग में आई हुई तेज ने बहुत कठिनता से साँस ली और दोनों हाथ बाहर की ओर फैंकती हुई बोली—'शेरा !—शेरा !! क्या तुम्हीं हो ? मैं स्वप्न तो......'

"हाँ तेज, मैं ही हूँ ।" शेरसिंह ने अपने आपको क़ाबू में रखते हुए उत्तर दिया ।

"शेरा ! क्या मुझ अभागिनी को क्षमा कर दोगे ? अन्तिम समय पर मेरी एक छोटी-सी भूल पर ...." तेज कहते कहते रुक गई । उसकी आँखों से बिन्दु-माला झर-झर झरने लगी ।

शेरसिंह आपे में न रहा । आवेग में आ उसके पाँव पकड़ लिये और बड़े विनीतभाव से बोला—"तेज, अपराधी मैं हूँ । भूल मेरी है—मैं ही तुम्हारी बात ठीक ठीक न समझ सका; तुम तो देवी हो । इस अभागे को—नहीं, नहीं, अपराधी को क्षमा कर दो । इसी में मुझे शान्ति मिलेगी । कर दो !—कर दो !!"—वह एकदम रुक गया । उसके सामने तेज शान्त, स्थिर पड़ी थी । उससे न रहा गया । सिर उसके पाँव पर रख दिया ।

सारे गाँव में कोहराम मच गया ।

आग पर चलना

लेखक, प्रोफ़ेसर फूलदेवसहाय वर्मा

(१)

गत मई मास में जब मैं गरमी की छुट्टियाँ राँची में बिता रहा था, राष्ट्रपति डाक्टर राजेन्द्रप्रसाद भी राँची में आये हुए थे। वहाँ की ऊराँव और मुंडा जातियों के कुछ व्यक्तियों ने एक अवसर पर निमंत्रित कर आपको आग पर चलने की क्रिया दिखलाई। उसका वर्णन राष्ट्रपति जी ने मुझसे इस प्रकार किया था—उन लोगों ने प्रायः १२ फ़ुट लम्बा और डेढ़ फ़ुट चौड़ा एक गड्ढा बनाया था। उस गड्ढे में लकड़ी जलाकर दहकते अँगारे बनाये थे। चलने के पहले उन अङ्गारों को सूप से धौंककर राख को हटाकर आग को और तेज़ कर लिया था। फिर कुछ पूजा-पाठ और मंत्र इत्यादि पढ़कर स्नानकर अनेक आदमी उस आग पर से चले गये और उनके पैर नहीं जले और न पैरों में कोई छाले ही पड़े। डाक्टर राजेन्द्रप्रसाद जी का एक नौकर भी उस आग पर से चला गया और उसके भी पैर नहीं जले। ऐसा क्यों होता है, यह प्रश्न साधारणतया पूछा जाता है। इसकी वैज्ञानिक व्याख्या क्या हो सकती है, यह प्रश्न भी वैज्ञानिकों से पूछा जाता है। डाक्टर राजेन्द्रप्रसाद जी ने भी ऐसा ही प्रश्न पूछा था। अनेक वर्षों से वैज्ञानिकों ने आग पर चलने के रहस्य के जानने की चेष्टा की है और उसके फलस्वरूप जो कुछ वैज्ञानिकों को मालूम हो सका है वह इस लेख में पाठकों के सामने रक्खा जाता है।

आग पर चलने की प्रथा इस देश में बहुत पुरानी है और जहाँ जहाँ भारतवासी गये हैं—जैसे दक्षिण-अफ़ीका, नेटाल, मारिशस, ट्रिनीडाड इत्यादि जगहों में—वहाँ वहाँ यह प्रथा प्रचलित हैं। फ़िजी, हवाई इत्यादि पोलीनिशिया के टापुओं में तप्त पत्थरों पर चलने की प्रथा विद्यमान है। जापान में भी आग पर चलने की प्रथा प्रचलित है। इन घटनाओं को योरप और अमेरिका के निवासियों ने अनेक बार देखा है और पाश्चात्य देशों के पत्रों में इनका वर्णन किया है। इस कारण इसकी ओर पाश्चात्य देश के वैज्ञानिकों का ध्यान आकर्षित हुआ और उन्होंने आग पर चलने पर पैर के न जलने के कारणों को ढूँढ़ निकाला है।

आग पर चलने के लिए साधारणतया ६ से १२ फ़ुट लम्बा गड्ढा खोदा जाता है। कभी कभी गड्ढा इससे भी अधिक लम्बा होता है। यह गड्ढा प्रायः डेढ़ फ़ुट गहरा और प्रायः डेढ़ ही फ़ुट चौड़ा होता है। गड्ढे में लकड़ियाँ जला दी जाती हैं। जब लकड़ियों के जल जाने पर उनकी लहर बुझ जाती है और लाल लाल अंगारे बन जाते हैं तब चलनेवाले उन पर खाली पैर धीरे-धीरे चलते हैं। इससे उन्हें कुछ कष्ट नहीं होता और उनके पैर नहीं जलते और न उनमें छाले ही पड़ते हैं। क्या इस आग पर चलनेवाले मनुष्य में कोई दैवी शक्ति है?

अमेरिका के प्रोफ़ेसर लांग्ले ने तप्त पत्थर पर चलने की क्रिया सोसायटी टापू के रैटिया नामक स्थान में देखी थी। २१ फ़ुट लम्बा, ९ फ़ुट चौड़ा और प्रायः डेढ़ फ़ुट गहरा एक गड्ढा खोदा गया था। उसमें लकड़ी डालकर उस पर पत्थर के २०० टुकड़े जिनकी तोल प्रायः २० से ४० सेर होगी, रखकर लकड़ी जलाई गई थी। चार घंटे में सब पत्थर लाल हो गये थे। उनके भड़कने से तेज़ आवाज़ें हो रही थीं। चलनेवाले उन दहकते हुए पत्थरों पर चले और उनके पैर नहीं जले। उन पत्थरों में से एक को निकालकर प्रोफ़ेसर लांग्ले ने बाल्टी के पानी में रक्खा। वह पानी १२ मिनट तक खौलता रहा। उस पत्थर को वे वाशिङ्गटन ले गये और वैसा ही गरम कर उसका तापक्रम नापा तब वह प्रायः १२०० डिगरी फ़ारेनहाइट हुआ।

परसीवल लोवेल ने जापान में अंगारों पर चलने की क्रिया का वर्णन किया है। १२ से १८ फ़ुट लम्बा एक गड्ढा खोदा गया था। उसमें कोयले रखकर जलाये गये थे। जब वे कोयले जलकर लाल हो गये तब पुजारियों ने उन पर फूँककर कुछ मंत्र पढ़े, फिर खाली पैर उन पर चले गये। उनके पैर को कोई नुक़सान नहीं पहुँचा। लोवेल ने इस घटना की व्याख्या यह की है कि

उनके तलवे के चमड़े बड़े मोटे और कड़े थे। साधारणतया पूर्व-देश के निवासियों के पैर के चमड़े उतने कोमल नहीं होते और उनके अति-आह्लाद और मानसिक उन्नतावस्था के कारण उनके पैर नहीं जलते।

भारतवर्ष से एक अँगरेज़ ने आग पर चलने का अँगरेज़ी-पत्रों में वर्णन किया है। वह घटना चिंगलपेट-ज़िले के पालावरम गाँव में हुई थी। उसमें १८ वर्ष की उम्र से ६५ वर्ष की उम्र तक के १८ आदमी सम्मिलित हुए थे। १८ फ़ुट लम्बे, १२ फ़ुट चौड़े और ४ फ़ुट गहरे गड्ढे में छः घंटे लकड़ी जलाकर आग तैयार की गई थी। ये अठारहों आदमी कमर में केवल कौपीन पहने हुए थे। आग पर चलने के तुरन्त पहले इन लोगों ने कौपीन पहनकर स्नान किया और भीगे कौपीन को पहने हुए ही कुछ मंत्रों को उच्चारण करते हुए आग पर चले गये। दूसरी बार ५५ आदमी उस आग पर चले और उनमें केवल एक आदमी के पैर कुछ जले और उन पर छाले पड़े थे। यदि ये सब बातें धोखा होतीं तो एक ही आदमी के पैर क्यों जलते? उस अँगरेज़ दर्शक का मत था कि ये लोग अङ्गारे पर चलने के पहले—कुछ मिनट व घंटे व दिन पहले—पैरों में कोई प्रबल रस लगा लेते हैं, जो धोने पर भी नहीं छूटता है; उसी के कारण उनके पैर नहीं जलते। आग पर चलने के पहले स्नान करने का तात्पर्य दूसरों को यह दिखलाना होता है कि उनके पैरों में कुछ लगा हुआ नहीं है।

दक्षिण-अफ़्रीका के नेटाल-प्रान्त में जो भारतवासी हैं उनमें भी आग पर चलने की प्रथा प्रचलित है और इस प्रथा का वर्णन हौले विलियम्स नामक एक व्यक्ति ने एक स्थान पर किया है। यह कार्य वहाँ धार्मिक पवित्रता के लिए किया जाता है। आग पर चलनेवाले पाप से मुक्त हो जाते हैं और भविष्य में भी पाप-कर्म करने से बचते हैं। वे दस दिन पहले से इसकी तैयारी करते हैं। इस बीच वे मांस-मदिरा और स्त्री-प्रसंग से परहेज़ करते हैं। प्रतिदिन दो बार स्नान करते हैं। देवताओं के सामने प्रार्थना और अर्चना करते हैं। वे किसी ओषधि का सेवन नहीं करते और न चमड़े पर कोई रस ही लगाते हैं। पर जूता न पहनने के कारण अधिकांश भारतीयों के चमड़े कड़े होते हैं। जिस दिन आग पर चलना होता है उस दिन पुजारी की आज्ञा से नज़दीक की किसी नदी में स्नान करते हैं। उस समय स्त्रियाँ पीला कपड़ा पहनकर गाती और नाचती हैं। युवक-मण्डली बाजे-गाजे के साथ उन्हें मन्दिर में ले जाती है, जहाँ वे २० फ़ुट लम्बे, १० फ़ुट चौड़े और डेढ़ फ़ुट गहरे गड्ढे में तैयार की हुई आग के लाल लाल अंगारों पर चलते हैं। सबसे पहले पुजारी चलता है। फिर दो-दो व तीन-तीन की पंक्ति में भक्त लोग चलते हैं। उनमें कुछ तेज़ी से चलते हैं और कुछ धीरे धीरे। कुछ लोगों का विश्वास छूट जाने से गड्ढे के बग़ल से भाग निकलते हैं और कुछ थोड़ी देर के लिए बग़ल में रक्खी घास पर स्थिर हो फिर चलना शुरू करते हैं, पर किसी को कोई हानि नहीं होती। दो योरपीय भी इस अवसर पर इस कार्य में सम्मिलित हुए थे। उन लोगों ने भी दस दिन की उक्त तैयारी की थी। उनमें एक तो बिना किसी नुक़सान के आग पर से चला गया, पर दूसरे के अँगूठे में एक छोटा फफोला पड़ गया था। ईश्वर पर विश्वास रखना और पवित्र रहना ही न जलने का कारण बतलाया जाता है।

एक अँगरेज़ दर्शक ने इस घटना की व्याख्या इस प्रकार की है। आग पर चलनेवाले जब आग पर चलते हैं तब उनके पैर भीगे रहते हैं। उनके वस्त्र से भी पानी टपकता रहता है। पानी की बूँदें अंगारों पर पड़कर वाष्प बनती हैं। इससे अंगारे और पैर के तलवे के बीच वाष्प का एक गद्दा बन जाता है, जो पैर को जलने से बचाता है। द्रव वायु को हाथ की हथेली पर रखने में कष्ट का अनुभव नहीं होता, इसका कारण भी हाथ की हथेली और द्रव वायु के बीच वाष्पीय वायु का रहना है। द्रव पदार्थों की उपगोल अवस्था से प्रायः सभी वैज्ञानिक परिचित हैं। पर यह व्याख्या ठीक नहीं जँचती।

सनफ़्रांसिस्को के रिचार्ड मार्टिन नामक व्यक्ति ने अपनी आँखों देखी आग पर चलने की घटना का वर्णन किया है। उसकी राय में इसमें कोई रहस्य नहीं है। यह घटना दक्षिणी प्रशान्त महासागर के टाहिटी टापू में हुई थी। १८ फ़ुट लम्बा, १२ फ़ुट चौड़ा और ३ फ़ुट गहरा एक गड्ढा खोदा गया था। इस गड्ढे के पेंदे में १२ इंच से १४ इंच व्यास के झाँवे रक्खे हुए थे। इन झाँवों पर लकड़ी के कुन्दे जल रहे थे। इनकी लहरें ६ फ़ुट

तक ऊँची जाती थीं। जब जलकर लकड़ी की लौ बुझ गई तब उन लोगों ने लकड़ी की लग्गी से चलाकर अंगारों को झाँवे से नीचे कर दिया। इससे झाँवों के ऊपर के आधे हिस्से के तल का ललापन दूर हो गया, पर निचला आधा भाग लाल ही रहा। अब वहाँ के छः आदमी घुटनों तक सूती वस्त्र पहने वहाँ आये। वे अपने हाथों में पत्तों का एक लम्बा गुच्छा लिये हुए थे। गड्ढे के निकट पहुँचकर गुच्छों से उन्होंने गड्ढे को स्पर्श किया, आकाश की ओर मुंह करके कोई दो दर्जन शब्द ज़ोरों से बोले और फिर झुककर तप्त झाँवों को तीन बार हाथ के गुच्छों से मारकर बिना किसी हिचकिचाहट के शान्ति-भाव मे नंगे पैर उन तप्त झाँवों पर चल कर १८ फ़ुट पार कर गये, दूसरे किनारे पहुँचकर फिर उसी रास्ते से वापस लौट आये। ज्योंही उनका चलना समाप्त हुआ, मार्टिन साहब भी उन पर चलने के लिए तैयार हो गये। पहले उन्होंने अपने नंगे पैर को एक झाँवे पर रखकर जल्दी से हटा लिया। उनके पैर में कोई तकलीफ़ नहीं हुई। इसके बाद वे उस पर चले और १८ फ़ुट तय कर उसी राह लौटे। वे वहाँ के आदमियों से कुछ अधिक तेज़ चले थे। उन्होंने अपने पैर की परीक्षा करके देखा। उनमें कोई चोट न पहुँची थी। इसके दो मिनट बाद वे फिर चार बार उन पर चले। इस चार बार के चलने से उनके पैर में एक छोटा छाला पड़ गया था। इस बार तप्त झावा कुछ अधिक गरम मालूम हुआ था, पर असहनीय नहीं था।

(२)

अब लण्डन-विश्वविद्यालय के कुछ वैज्ञानिकों ने आग पर चलने के रहस्य के अन्वेषण का काम हाथों में लिया। दस सदस्यों की एक कमिटी बनी, जिनमें चार प्रोफ़ेसर थे। इन लोगों ने पत्रों में आग पर चलनेवालों के लिए विज्ञापन दिया। अनेक व्यक्ति लण्डन पहुँचे, जिन्होंने आग पर चलने की घटना देखी थी। पर उनमें कोई स्वयं आग पर चलने के लिए तैयार न हुआ। अन्त में भारत का एक जादूगर खुदाबख्श लण्डन गया और आग पर चलने के लिए तैयार हो गया। इसकी तैयारी लण्डन में होने लगी। हैरी प्राइस के शब्दों में इस प्रयोग का उद्देश्य यह देखना था कि आग पर चलने से खुदाबख्श का पैर जलता है या नहीं। यदि जलता नहीं है तो क्यों? क्या आग पर चलने में कोई कपट-व्यवहार है? क्या कोई भी आदमी आग पर चल सकता है? क्या आग पर चलनेवाला अपने पैरों में कुछ लगाता है। क्या दूसरे के पैर आग पर चलने से नहीं जल सकते? क्या वह अपने पैर को फिटकरी, नमक, साबुन और सोडे की लेई से ढँक लेता है जैसा कि कुछ लोग कहते हैं? क्या उनका विश्वास व अति आह्लाद उन्हें जलने से बचाता है? क्या वे कोई अन्य शून्यकारक ओषधि अपने परों में लगाते हैं? क्या आग के ऊपर राख़ की जो तह रहती है वह जलने से बचाती है? क्या चलनेवाला जल्दी चलकर अपने पैरों को जलने से बचाता है या बहुत धीरे धीरे चलकर जलने से बचाता है? क्या वह अपने को किसी मानसिक व शारीरिक रीति से कुछ ऐसा बना लेता है कि उससे उसके पैर नहीं जलते? खुदाबख्श का कहना था कि उसका विश्वास ही उसे जलने से बचाता है और वह औरों को भी आग पर चला सकता है।

लण्डन में २५ फ़ुट लम्बा, ३ फ़ुट चौड़ा और एक फ़ुट गहरा गड्ढा खोदा गया। उसमें ३ टन (एक टन प्रायः २७ मन का होता है) लकड़ी डाली गई और एक निश्चित तिथि को जलाई गई। डेढ़ घंटे के बाद उसमें कोयला डाला गया ताकि उसका तल अधिक गरम अधिक स्वच्छ और चिकना रहे। साढ़े तीन घण्टे में लकड़ियाँ जलकर दहकते हुए अंगारे बन गई। उनकी तह प्रायः ३ इंच मोटी थी। खुदाबख्श के मतानुसार अंगारों की मोटाई कम से कम ९ इंच होनी चाहिए। ऐसा क्यों होना चाहिए, इसका उत्तर वह ठीक प्रकार से न दे सका। चलने से पहले आक्सफ़ोर्ड के डाक्टर विलियम कोलियेर ने खुदाबख्श के पैर की परीक्षा की। उन्होंने बताया कि उसके पैर सामान्य हैं। पैर की पोछन ली गई और उसकी परीक्षा हुई। उसमें भी कोई विशेष बात न पाई गई। उसका एक पैर धो डाला गया ताकि यदि उसमें कुछ लगा हो तो वह दूर हो जाय।

उस गड्ढे के एक छोर पर खड़े होकर खुदाबख्श ने क़ुरान से कुछ प्रार्थनायें पढ़ीं और तब वह उस आग पर चार क़दम रखकर—हर क़दम पर दो बार आग को छूता—चला गया। वह दौड़ा तो नहीं, पर कुछ

तेज़ी से उधर चला और बग़ल में हट गया और कहा कि आग की मोटाई कम है। इसके बाद वह तीन बार और चला। उसके पैरों की फिर परीक्षा हुई। उनमें कोई चोट नहीं थी। ३० मिनट के बाद तक भी उसके पैरों में फफोले नहीं पड़े। उसे चलने के लिए फिर कहा गया, पर उसने यह कहकर इनकार कर दिया कि आग उसके इच्छानुकूल नहीं है। अब किसी वैज्ञानिक के कहने पर लकड़ी के जूते में कपड़ा बाँधकर उस कृत्रिम जूते को उस आग पर चलाया गया। कुछ सेकंड में ही वह कपड़ा झुलस गया और २½ सेकंड में अनेक जगहों पर वह जल गया।

सेंट बार्थोलोमियू हास्पिटल जर्नल के सम्पादक डिग्बी मोयनाथ ने स्वयं आग पर चलने का विचार किया और अपने नंगे पैर को अंगारे पर रक्खा। उनके पैर में कुछ देर तक रुखलाहट नहीं। फिर वे दो क़दम चले और यह कहते हुए उछल निकले कि "गरम है"। ३० मिनट में उनके पैर में फफोले निकल आये। खुदाबख्श की अपेक्षा वे अधिक तेज़ी से आग पर चले थे। उनकी तौल १६८ पौंड थी। खुदाबख्श की तौल केवल १२० पौंड थी। शायद जल्दी चलने से उनके पैर में छाले पड़ गये अथवा हो सकता है कि हल्का मनुष्य भारी मनुष्य की अपेक्षा अधिक सुभीते से आग पर चल सकता है।

फिर दूसरी बार खुदाबख्श के साथ प्रयोग हुआ। इस बार क़रीब ८ टन नलावटन ओक के कुन्दे और लकड़ी के कोयले जलाये गये। ९ इंच गहरा और ६ फ़ुट चौड़ा गड्ढा बना। २५ फ़ुट की एक लम्बाई के स्थान में ११-११ फ़ुट के दो गड्ढे बने और उनके बीच में ३ फ़ुट का स्थान मिट्टी से भरा रहा। पहले प्रयोग के आठ दिन के बाद यह दूसरा प्रयोग हुआ। लकड़ियाँ जला दी गईं। और कुछ घण्टों के बाद गड्ढा दहकते हुए अंगारों से भर गया। सुबह में लकड़ी का जलना शुरू हुआ और क़रीब १ बजे दिन में दहकते हुए लाल अंगारे तैयार हो गये। उनसे जो गर्मी निकलती थी उसका अनुभव ६५ फ़ुट की दूरी तक से हो सकता था। हवा तेज़ चल रही थी। अंगारे प्रायः सफ़ेद गरम हो गये थे और उनसे राख निकल रही थी। उस पर फिर लकड़ी का कोयला डाला गया। २० मिनट में वे लाल हो गये। चार प्रोफ़ेसरों और वैज्ञानिकों ने खुदाबख्श की परीक्षा की। उसके तलवे की परीक्षा करके वैज्ञानिकों ने बताया कि उसके तलवे में कोई विशेषता नहीं है। तलवे का चमड़ा कोई विशेष मोटा नहीं था। वह साधारणतया कोमल था। छूने से पैर ठंडा मालूम होता था। तापमापक से पैर का तापक्रम ९३.२ डिगरी था। चमड़ा बिलकुल सूखा था। पैर को धोकर खूब पोंछ डाला गया ताकि उस पर आग का असर आसानी से देखा जा सके।

लकड़ी जलाये जाने के ७ घण्टे के बाद खुदाबख्श उस पर चला। पहले ११ फ़ुट लम्बे गड्ढे को चार क़दमों में ४ सेकंड में पार कर गया। उसका प्रत्येक क़दम स्पष्ट, एक-सा और अपेक्षाकृत कुछ तेज़ था। वैज्ञानिकों की गणना से प्रत्येक पैर प्रायः आधा सेकंड अंगारों के संसर्ग में था। चलने के बाद खुदाबख्श के पैर का तापक्रम ९३ डिगरी था। चलने से पहले की अपेक्षा कुछ कम। आग पर चलने के बाद खुदाबख्श कुछ क़दम घास पर चला था। उसके पैर में कोई चोट नहीं थी। वह फिर एक बार चार क़दम आग पर चला। उस समय व ४८ मिनट के बाद तक उसके पैरों में कोई फफोला न पड़ा। उस आग के तापक्रम के जानने की वैज्ञानिकों को उत्सुकता हुई और जाँच से मालूम हुआ कि उसके पृष्ठ-भाग का तापक्रम ४३० डिगरी शतांश व ८०६ डिगरी फ़ारेनहाइट था। स्वयं आग का तापक्रम १४०० डिगरी शतांश व २५५२ डिगरी फ़ारेनहाइट था। इस तापक्रम को श्वेत ताप का तापक्रम कहते हैं। वास्तव में यह इतना ऊँचा तापक्रम है कि इसके निम्नतापक्रम पर ही इस्पात गलकर द्रव हो जाता है। हवा के तेज़ चलने से इतना ऊँचा तापक्रम हो गया था। जब तीसरी बार खुदाबख्श से इस आग पर चलने के लिए कहा गया तब उसने पहले तो कुछ समय माँगा, पर पीछे चलने से इनकार कर दिया और कहा कि "मेरी हिम्मत टूट गई है। मेरा विश्वास हट गया है। यदि मैं अब चलूँ तो जल जाऊँगा।" वह चिन्तित और घबराया हुआ मालूम हुआ। इससे फिर तीसरी बार चलने के लिए उस पर ज़ोर नहीं दिया गया।

डिग्बी मोयनाथ जिन्होंने ८ दिन पूर्व के प्रयोग में आग पर चलने की कोशिश की थी, इस बार भी दो क़दम चले और कूद निकले। उनके पैर की परीक्षा से मालूम हुआ कि उनके तलवे में अनेक फफोले पड़ गये थे। दूसरी

चेष्टा में और भी छाले पड़ गये। उनके चमड़े खुदाबख्श के चमड़े से कुछ अधिक भींगे थे। हो सकता है, इसी से उनके तलवे में अधिक छाले पड़ गये हों। वे खुदाबख्श से अधिक तेज़ी से चले भी थे। तलवे भींगे होने के कारण उसमें एक अंगारा सटा हुआ था। इससे उपगोलावस्था के सिद्धान्त का पूर्ण रूप से खण्डन होता है। तेज़ चलने से ज़रूर यह होता है कि पैरों पर अधिक दबाव पड़ता है। इस कारण नौसिखिए के लिए यह बात बहुत आवश्यक है कि वह चलने में जल्दी न करे। उसे अपेक्षाकृत धीरे धीरे एक-सा शान्तभाव से चलना चाहिए। यह अनुभव से ही जाना जा सकता है कि चाल कैसी होनी चाहिए। न वह तेज़ होनी चाहिए और न बिलकुल धीमी। इसके पश्चात् एक दूसरे अँगरेज़ मौरिस चैपीन ने आग पर चलने की कोशिश की। वे दो क़दम तेज़ी से चले। उनके तलवों में छाले पड़ गये और तीन जगहों से खून बहने लगा। वे जल्दी से गड्ढे से भाग निकले। उनकी तोल १६३ पौंड थी। आग पर इन चलनेवालों का वेग जानने के लिए चल-चित्र लिया गया था, जिससे स्पष्ट मालूम होता था कि ये दोनों अँगरेज़ खुदाबख्श की अपेक्षा अधिक तेज़ चले थे। इस प्रयोग से प्राइस ने अनुमान किया कि अंगारे की राख की ताप-चालकता का इससे कोई सम्बन्ध नहीं है, क्योंकि प्रत्येक बार चलने के पहले सावधानी से राख हटा ली जाती थी। प्रत्येक बार पैर आधे सेकंड से अधिक अंगारे के संसर्ग में नहीं रहा।

इसके कुछ वर्षों के बाद आग पर चलने का फिर प्रयोग हुआ। इस बार एक दूसरा मुसलमान जादूगर अहमद हुसेन था, जो अनेक बार भारत में आग पर चल चुका था। अहमद हुसेन स्वयं आग पर चलने के लिए ही तैयार न हुआ, बरन वह एक अँगरेज़ को भी आग पर चलाने के लिए तैयार हो गया। अँगरेज सज्जन चाहते थे कि आग पर चलने का रहस्य उन्हें मालूम हो जाय। इसके लिए विज्ञापन दिया गया। ४० अँगरेज़ आग पर चलने को तैयार हो गये। ये साधारण अँगरेज़ थे। सब क़िस्म के पेशेवाले थे। उनमें कैगी, मार्शल, बोल्ड, चेज़ने और ऐडकौक जिनकी तोल क्रमशः १४३, १४५, १२४, १७७ और १५७ पौंड थी, चुने गये। अहमद हुसेन की तोल १२६ पौंड थी। प्रोफ़ेसर पानेट और न्यूकोम्ब ने उन लोगों के पैर धोये और सावधानी से उन्हें सुखाया। अहमद हुसेन के आदेशानुसार १२½ फ़ुट लम्बा ४ फ़ुट चौड़ा और १५ इंच गहरा गड्ढा खोदा गया। फिर उसमें आग सुलगा दी गई। उसके तल का तापक्रम ५७५ डिगरी शतांश व १०६७ डिगरी फ़ारेनहाइट पाया गया। आग के अन्दर का तापक्रम ७०० डिग्री शतांश व १२९२ डिगरी फ़ारेनहाइट था। यह तापक्रम कैम्ब्रिज की यंत्र बनानेवाली कम्पनी-द्वारा बने उग्र ताप-मापक से नापा गया था।

प्रार्थना करने के पश्चात् अहमद हुसेन आग पर चला। तीन तेज़ क़दमों में १.३ (प्रायः सवा) सेकंड में वह पार कर गया। उसका पैर नहीं जला। अब अहमद हुसेन ने दूसरे अँगरेज़ों को चलने के लिए कहा। कैगी, मार्शल और बोल्ड एक पंक्ति में खड़े होकर अहमद हुसेन के पीछे हो लिये। इनमें कैगी अहमद हुसेन की पेटी पकड़े हुए था। मार्शल और बोल्ड क्रमशः कैगी और मार्शल के हाथ पकड़े हुए थे। वे १.५ सेकंड में गड्ढे को पार कर गये। उनके पैर बहुत कम जले। उनमें केवल एक व्यक्ति को जिसके पैर में एक छोटा अंगारा सटा हुआ था, कुछ कष्ट हुआ। इसके बाद ऐडकौक अकेले चला और १.४ सेकंड में तीन क़दमों में पार कर गया। उसके बाद चेज़ने उस पर चला। उसके भी पैर बहुत कम जले। उन सबके चलने से मालूम हुआ कि यदि क़दम नियमित नहीं हैं तो जलने की अधिक सम्भावना रहती है।

अब अहमद हुसेन कितनी ही दूरी तक आग पर चलने के लिए तैयार हो गया। पर जब उसे उसी आग पर आगे और पीछे चलने के लिए कहा गया तब उसने कहा कि वह आगे ही चल सकता है, पीछे नहीं। दूसरे दिन गड्ढा २० फ़ुट लम्बा बनाया गया। उस दिन आग के बाह्य तल का तापक्रम ७४० डिगरी शतांश व १३६४ डिगरी फ़ारेनहाइट था। प्रार्थना करने के बाद वह चला और २.३ सेकंड में ६ क़दमों में पार कर गया। इस बार उसने कहा कि उसके पैर जल गये हैं। देखने पर उसके एक पैर में पाँच छाले दिखाई दिये। दूसरा पैर लाल हो गया था। अब उसने चलना अस्वीकार कर दिया और कहा कि उसका विश्वास हट गया है।

अब ऐडकौक उस पर चार क़दम चला और उसका

अवश्य ही जल सकता है और उस पर छाले पड़ सकते है । यह सम्भव है कि जो लोग बिना जूता पहने घूमते-फिरते हो जैसे हिन्दुस्तान के अधिकांश लोग करते है तो ऐसे लोगो के पैर में आग का प्रभाव और कम पड़े। यह भी सम्भव है कि सम्मोहन (हिप्नोटिज्म) के द्वारा आग पर चलने मे पैरकष्ट कुछ कम हो, पर वास्तव मे आग पर चलने के लिए इन बातो की आवश्यकता नही।

इन प्रयोगो का अन्तिम परिणाम यह निकला कि आग पर चलना एक बिलकुल भौतिक घटना है। थोड़े काल के लिए आग और पैरों का संसर्ग, कुछ ही कदम चलना और अङ्गारों की अत्यल्प चालकता ही पैरों को जलने से बचाती है। कोई भी मनुष्य बिना किसी यंत्र, मत्र और पूर्वतैयारी के बिना जले उपर्युक्त अवस्थाओ मे आग पर चल सकता है।

परिचय

लेखक, श्रीयुत 'अंचल'

मूक उत्तर मैं तुम्हारा तुम अधीर पुकार
बन्धनों की मस्तियों में जागती-सी लालसा तुम
पूर्ति मैं—फिर भी असंमत चिर अतृप्त मदालसा तुम
एक व्रण मैं चिर हरा जो तुम सतत चीत्कार

दूर रह देती तसल्ली तुम दिगन्तर की सहेली
मैं महासागर जलन का क्षुब्ध लहरों की पहेली
एक सीमा में बँधा मैं तुम अशेष अपार

एक दुर्दिन स्वप्न मैं तुम सत्य की आश्वास वाणी
एक चुभता व्यंग मैं तुम जलभरी तृष्णा-कहानी
मौन तुम चिर मौन पर चिर मुखर मेरी हार

जो न कटती रात वह तुम दीप जिसका स्नेह रीता
मैं मरण की अंजली-सा दिन न जो फिर शान्त बीता
तुम सृजन की वन्दना विच्छेद, मैं संहार

धरती का राजा

लेखक, श्रीयुत ठाकुर मोहनसिंह सेंगर

खें मलते हुए कन्हैया उठ बैठा। अँगड़ाई लेकर उसने इधर-उधर नज़र दौड़ाई। कहीं कुछ भी नहीं था। ऊपर आकाश की ओर उसने देखा—वहाँ भी कुछ नहीं था। उसकी उदास आँखें जैसे अनन्त आकाश के सूनेपन को एक ही घूंट में पीकर फिर इधर-उधर कुछ ढूंढ़ने लगीं। पर कहीं कुछ भी दिखाई न दिया।

सहसा सामने खड़े हुए वृक्षों की क़तार के ऊपर एक काली बदली उठती हुई दिखाई दी। कन्हैया ने आँखें फाड़ फाड़कर उसे देखा। ज्यों ज्यों वह ऊपर उठ रही थी, कन्हैया का भूख और चिन्ताओं से व्याकुल चेहरा प्रसन्नता से दिपदिपा रहा था। जब वह काफ़ी ऊपर उठ आई तब कन्हैया की प्रसन्नता का ठिकाना न रहा। वह उछलकर खड़ा हो गया और जल्दी-जल्दी अपने सिर से पगड़ी लपेटते हुए पागलों की तरह चिल्ला उठा—"गौरी, ओ गौरी, देख, वह देख, ज़रा सामने तो देख। बादल आ रहे हैं। मालूम होता है हमारी महीनों की तपस्या आज फलवती हुई। अब हम भूखों नहीं मरेंगे, गौरी। अरी जल्दी उठ, इधर तो आ, अपने मेघराजा की पूजा करें। मालूम होता है, हमारी दया से आज राजा इन्द्र का हृदय पसीजा है।

अब तक बदली और भी ऊपर आ चुकी थी। कन्हैया की दोनों आँखें उसी पर लगी थीं और उसके पाँव अनायास उस तरफ़ बढ़ रहे थे, जिधर से कि बदली आ रही थी। वह प्रसन्नता से पागल होकर गाने और नाचने लगा। प्रभात का बढ़ता हुआ प्रकाश अब कुछ धुंधला पड़ा और चारों तरफ़ से धूल उड़ाती हुई ज़ोरों की हवा चलने लगी। कन्हैया की प्रसन्नता का वारापार न रहा। और भी ज़ोर से वह चिल्ला उठा—"गौरी, ओ गौरी, अरी ज़रा देख तो बादल आये हैं। पुरवैया चलने लगी। अब तो वर्षा ज़रूर होगी—कोई उसे रोक नहीं सकता।"

गौरी की नींद टूटी। न मालूम कितने दिनों के बाद आज वह अच्छी तरह सोई थी। भूख के कारण कमज़ोरी बढ़ जाने से उसका अंग-अंग टूट रहा था। उसने थोड़ी-सी अफ़ीम ले ली थी। उसी से ज़रा नींद भी आगई थी। करवट बदल कर उसने देखा—कोई २०-२२ क़दम के फ़ासले पर उसका पति उछल-कूद कर रहा है। आधी पगड़ी उसकी सिर से लिपटी है और आधी खुलकर पाँवों में लिथर रही है। उसने अपने स्तन से मुँह लगाये लेटे हुए बच्चे को सँभाला और कुछ घबराई हुई-सी उठ बैठी। आँखें फाड़ फाड़ कर वह कन्हैया की तरफ़ देखने लगी, पर बात क्या है, यह उसकी समझ में कुछ भी नहीं आया।

कन्हैया ने ज़ोर से ताली पीटी और उछलता-कूदता गौरी की तरफ़ आता हुआ बोला—"गौरी, देख न, बादल आये हैं। आज तो वर्षा ज़रूर होगी—कोई उसे रोक नहीं सकता।"

गौरी अब भी चुप थी। कन्हैया पास आया। उसका हाथ खींच कर उठाने की कोशिश करता हुआ बोला—"अरी, बैठी हुई क्या देख रही है? चल न, मेघराज का पूजन करें। आज वर्षा ज़रूर होगी।"

झटका देकर पति के हाथ से अपना हाथ छुड़ाते हुए गौरी ने कहा—"पागल मत बनो। कहाँ हैं बादल? यह तो एक छोटी-सी बदली है। इससे कहीं वर्षा होगी?"

"हाँ, हाँ, होगी और ज़रूर होगी। अगर तुझे विश्वास न हो तो सौ-सौ रुपये की शर्त लगा देख। मैं कहता हूँ वर्षा आज ज़रूर होगी।"

"लेकिन सौ रुपये हैं किसके पास?"

"न हों, पर मैं जो कुछ कहता हूँ, वह सोलह आने सच है। तू भले ही मेरी बात पर विश्वास न कर।"

"विश्वास कैसे करूँ? तुम तो रोज़ वर्षा होने की भविष्य-वाणी करते हो, लेकिन वह होती कब है? यह क्या कोई नई बात है?"

"मुझे पागल मत बना गौरी पहले की बातें छोड़, पर आज मैं जो कुछ कह रहा हूँ, वह सोलह आने सत्य है।"

इस बार गौरी कुछ नहीं बोली। कई दिनों की

भूख के कारण उसका शरीर अत्यन्त दुर्बल हो गया था। वह फटे हुए बोरे के टुकड़े पर लेट गई और बच्चे को स्तन-पान कराने लगी। पर बिना आहार के उस सूखे कंकाल में दूध कहाँ से आता? स्तन से मुंह हटाकर बच्चा रोने लगा। गौरी ने चुप करने के लिए उसे और भी ज़ोर से छाती से चिपटा लिया। दूसरे दोनों बच्चे अभी तक सो रहे थे।

कन्हैया को आज इधर ध्यान देने की फ़ुर्सत ही कहाँ थी? उसकी आँखें तो आकाश मे उठनेवाली उस बदली पर गड़ी थीं जो उसकी सारी आशाओं और अरमानों की गठरी सिर पर धरे धीरे-धीरे सफलता की ओर बढ़ रही थी। आज वह भूख-प्यास सब कुछ भूल गया था। उसे ऐसा जान पड़ रहा था, मानो आज उसके भाग्य की लाटरी खुलनेवाली है और इनाम उसे ज़रूर मिलेगा। न मालूम कितने घंटे उसने इसी तरह आकाश की ओर टकटकी लगाये ही बिता दिये? कब धूप निकली और कब कम हो गई, उसे नही मालूम हुआ। पुरवैया कब रुक गई, यह भी उसे नही मालूम हुआ। अपनी पगड़ी सँभालने का भी उसे ध्यान नहीं रहा।

बदली अब बीच आकाश में आ चुकी थी और क़रीब करीब उसके खेत के ऊपर से धीरे-धीरे आगे बढ़ रही थी। अब वह काली और छोटी नहीं रह गई थी। उसका आकार फैल कर बड़ा हो गया था और कालापन भूरेपन में बदल गया था। अब कन्हैया का मन आशा और निराशा के बीच झूल रहा था। इसी समय उसके ललाट पर आये हुए पसीने की एक बूँद बाईं कनपटी और गाल पर होती हुई उसके पाँव पर आ गिरी। झटके के साथ कन्हैया की गर्दन नीचे झुकी और उसकी आँखों ने धूल जमे हुए पाँव पर उस बड़ी-सी बूंद का निशान देखा। अब तो उसके आश्चर्य और प्रसन्नता का कोई ठिकाना नहीं रह गया। खुशी से उसका चेहरा लाल हो गया। वह दौड़ कर गौरी के पास आया और चिल्ला कर बोला—"गौरी, देख, मेरे पाँव पर तो देख—कितनी बड़ी बूँद पड़ी है! तुझे मेरी बात पर विश्वास नहीं होता था। पर ले, अब अपनी आँखों से देख—यह वर्षा की बूंद नहीं तो और क्या है?"

कमजोरी से गौरी का सिर चकरा रहा था। बिना आँखें खोले ही उसने कहा—" अच्छी बात है। वर्षा आई है तो आने दो। मुझे तो तुम्हारी बात पर अब भी विश्वास नहीं होता। न जाने, कितनी बार हमने इसी तरह धोखा खाया है।"

इस बार जैसे कन्हैया की आँखों में खून उतर आया। अगर गौरी की हालत बुरी न होती तो वह ज़रूर आज लात-घूँसों से उसकी पूजा करता, इतना अविश्वास वह कैसे सहन कर सकता था? ग़म खाकर कन्हैया फिर खेत में आ गया और टकटकी लगाकर आगे बढ़ती हुई बदली की तरफ़ देखने लगा।

(२)

दूसरे दिन गौरी की आँख ज़रा जल्दी खुल गई थी। अभी पौ नहीं फटी थी। कन्हैया की तरफ़ ज्यों ही उसने करवट ली तो देखती है कि वह न मालूम कब से उठकर बैठा हुआ है और कुछ सोच रहा है। झुटपुटे में भी उसकी आँखों का पानी साफ़ चमक रहा था। गौरी ने फीकी मुस्कराहट के साथ कहा—"क्या आज फिर कोई बदली उठी है? आज वर्षा कब होगी? बोलो, चुप क्यों हो?"

कन्हैया कुछ न बोला। बादलों के साथ आज उसे गौरी पर भी क्रोध आ रहा था कि उसने उसकी बात पर विश्वास क्यों नहीं किया? उसके न बोलने का कारण गौरी ठीक ठीक नहीं समझ सकी। उसने कन्हैया का हाथ पकड़ कर हिलाते हुए कहा—"यों मुँह बन्द कर लेने से वर्षा थोड़े ही हो जायगी या पेट थोड़े ही भर जायगा? हाथ-पाँव तो आखिर हिलाने ही पड़ेंगे।"

कन्हैया अकस्मात् झल्ला उठा—"बस चुप रह। ज़्यादा बकवाद मुझे अच्छी नहीं लगती। वर्षा हो कैसे? जब तेरा ही मुझ पर विश्वास नहीं तब मेघ मेरी बात पर क्यों विश्वास करने लगे? कलमुँही कहीं की।"

अभी तक गौरी हँसी कर रही थी, पर कन्हैया के स्वर में गरमी देखकर वह जरा सहमी और कुछ क्षण चुप रहने के बाद बोली—"लेकिन इस तरह बिगड़ने से क्या होगा? हाथ-पाँव हिलाये बिना तो पेट की आग नहीं बुझ सकती।"

"न बुझे—मैंने उसके बुझाने का कोई ठेका थोड़े ही लिया है?"

"क्या मतलब इसका?"

उपचार-सा लगा, जिसका उत्तर देने कीउसने कोई आवश्यकता नहीं समझी। अपने जीवन का, अपनी उम्र का, एक दिन और वह बिता चुका था। पर क्या उम्र की इस वृद्धि के साथ ही साथ उसका ज्ञान और अनुभव भी बढ़ गया था? शायद।

सामने से गौरी आती हुई दिखाई दी। उसका चेहरा तो अँधेरे के कारण साफ़ साफ़ दिखाई नहीं दे रहा था, पर उसकी चाल में कुछ दृढ़ता और तेज़ी थी। कन्हैया ने अनुमान किया कि अवश्य वह सफलता प्राप्त करके लौट रही है। आज मुझे नीचा देखना पड़ेगा। उसके मस्तिष्क में तरह तरह की आशंकायें उठने लगीं।

अब तक गौरी पास आ चुकी थी। कन्हैया ने उसके चेहरे पर विजय का गर्व और सफलता की ख़ुशी देखी। वह बराबर उसकी ओर देखता रहा। गौरी ने अपने आँचल में बँधी हुई मोटी मोटी तीन रोटियों को उसके सामने पटकते हुए कहा—"यह लो! देखते क्या हो? मैं तुम्हारी तरह खाली हाथ लौटनेवाली नहीं।"

"यह तो मैं पहले से ही जानता था। तुममें इतना आत्म-विश्वास है और मैं उसे संकट के इस समय में खो चुका हूँ।" कन्हैया ने रुँधे हुए स्वर में कहा।

"बातें करने को सारी रात पड़ी है, पहले आओ पेट-पूजा कर लें।" रोटी देखकर भूख जैसे अपनी सीमाओं को तोड़ डालना चाहती है। न जाने कितने दिन के बाद आज रोटी देखने को मिली है। एक एक हम दोनों खा लेते हैं और एक बच्चों के लिए छोड़ देते हैं। उन्हें जगा लें या वे फिर जागने पर ही खा लेंगे।"

"वे तो अभी अभी रोटी के लिए रोकर सोये हैं। अच्छा है, एक नींद निकाल लेने दो, फिर देर से खायेंगे तो सुबह जल्दी रोटी नहीं माँगेंगे।"

गौरी झोंपड़ी के अन्दर से दो छोटी छोटी हँड़ियाँ निकाल लाई, जिनमें से एक में नमक था और दूसरे में मिर्च। उसने एक रोटी पर थोड़ा-सा नमक-मिर्च रक्खा और उसे कन्हैया के आगे बढ़ा दिया। दूसरी रोटी पर उसने अपने लिए नमक-मिर्च रख लिया।

दोनों हँड़ियाँ अन्दर रखकर जब गौरी लौटी तब कन्हैया ने एक टुकड़ा तोड़कर मुँह में रखते हुए कहा—"पर गौरी, तुम्हें आज कुल कितने पैसे मिले?"

"पैसे? पैसे कैसे? ये तीन रोटियाँ मिली हैं।"

"अच्छा, तो आज-कल मजदूरी भी पैसों के बजाय रोटियों में मिलने लगी। यह दिन भर की मजदूरी के बदले सिर्फ़ ये तीन रोटियाँ—वे भी सहायता, सहानुभूति और एहसान के नाम पर!"

गौरी कुछ सहमी—पर चुप रही। कन्हैया ने मुँह का कौर निगलते हुए कहा—"और तुमको काम क्या करना पड़ा, गौरी?"

गौरी रोटी का दूसरा टुकड़ा तोड़ ही रही थी। उसका हाथ वहीं रुक गया और आँखें झुक गईं। सहसा कन्हैया विस्मित और शंकित होकर गरज उठा—"जवाब क्यों नहीं देती, गौरी? मैं पूछता हूँ, तुझे क्या मज़दूरी करनी पड़ी? इसमें भी क्या कुछ छिपाने की बात है?"

गौरी इस बार भी चुप रही?

अब तो कन्हैया की आशंका और भी बढ़ गई। उसके मस्तिष्क में एक साथ कई तरह के सन्देह उत्पन्न होने लगे। उसका कुम्हलाया हुआ-सा पीला चेहरा आज बहुत दिनों के बाद आवेश से तमतमा उठा। मुँह का कौर उसने थूक दिया और अपनी, गौरी की तथा बच्चों के लिए रक्खी हुई रोटियों को दूर फेंकते हुए बोला—"समझा! तुमने अच्छी कमाई की, गौरी! तो अब हमें इस तरह पेट भरना पड़ेगा? सचमुच यह 'मज़दूरी' मुझसे कैसे हो सकती थी? तुम सब कुछ कर सकती हो। किसी ने सच कहा है, कि त्रियाचरित्र कोई नहीं समझ सकता।"

गौरी की आँखों में उमड़ा हुआ पानी टप्-टप् आँसू बनकर गिरने लगा। वह सिसक सिसक कर रोने लगी। उसके दिल पर इस समय क्या बीत रही थी, इसे शब्दों में व्यक्त करना कठिन है। वह चाहती थी कि कुछ बोले, अपनी सफ़ाई में कुछ कहे और अगर पत्नी होने के नाते कन्हैया की ज़बान न खींच सके तो कम से कम उसका मुँह तो बन्द कर ही दे। पर वह अपने आपमें ऐसा करने का साहस ही नहीं पा रही थी।

सहसा उसे ख़याल आया कि चुप रहकर तो वह कन्हैया की आशंका को और भी बल दे रही है और अपने लांछन को सत्य साबित कर रही है। ज्यों ही उसने कुछ कहने को मुँह उठाया, यह देखकर उसके आश्चर्य

और दुःख का ठिकाना न रहा कि कन्हैया वहाँ नहीं था। उसने इधर-उधर नज़र दौड़ाई, पर कहीं वह दिखाई न दिया। अँधेरा बढ़ रहा था। आज उसने दिया भी नहीं जलाया था।

गौरी उठी और सामने की पगडंडी पर चल पड़ी। कुछ दूर जाकर उसे बच्चों का ध्यान आया। वह रुक गई। आँखें फाड़ फाड़ कर वह चारों ओर देखने लगी। कन्हैया उसे कहीं भी दिखाई नहीं दिया। ज़ोर ज़ोर से उसने दो-एक आवाज़ें भी दीं, पर कोई उत्तर नहीं मिला। उसे ऐसा लगा, मानो बढ़ता हुआ अँधेरा उसके कन्हैया को सदा के लिए उससे छीन कर लिये जा रहा है। अगर उसकी आँखें कन्हैया को देख पातीं तो शायद वह मौत के मुँह से भी उसे छुड़ा लाने का प्रयत्न करती। पर वह था कहाँ? उसकी आँखों के आगे अँधेरी आगई और दोनों हाथों से अपना सिर थाम कर वह वहीं बैठ गई।

(४)

चिलम झाड़ कर गंगू ने चारपाई के सिरहाने रक्खी और लेटने ही वाला था कि किसी ने आकर कहा—"राम राम काका।"

गंगू ने नज़र ऊपर उठाई। देखा, सामने कन्हैया खड़ा है। इस समय उसे कन्हैया के आने की आशा नहीं थी। सहसा आश्चर्यचकित होकर उसने कहा—"अरे, यह कौन? कन्हैया? तू इस समय यहाँ कैसे आया रे?"

"यों ही चला आया काका। आज काम की तलाश में ज़रा रामनगर चला गया था। लौटा गाँव दूर है, रात यहीं बिताऊँ। तुम्हें कोई तकलीफ़ तो न होगी।"

"क्यों नहीं, बड़ी तकलीफ़ होगी। अरे इतनी बढ़ बढ़ कर बातें करना कहाँ से सीखा? यह भी क्या कोई दूसरा घर है? पहले यह बता कि खाने-पीने का क्या होगा? खा आया है या कुछ बन्दोबस्त करना होगा?"

"नहीं काका, खाने-पीने का अब कुछ बन्दोबस्त नहीं करना होगा। मैं वहाँ से खाकर चला था। दिन भर के काम से ज़रा थकान ज्यादा हो गई, इसलिए सोचता हूँ कि रात यहीं बिता लूँ।"

"अच्छा तो है। मैं भी तुमसे मिलना चाहता था।"

गंगू उठा और भीतर से दूसरी चारपाई उठा लाया। कन्हैया को उस पर बैठने को कहते हुए उसने पानी का लोटा उठाया और बोला—"पानी तो पीना होगा। आज गर्मी कितनी ज्यादा है? और बारिश का कहीं नाम भी नहीं।"

लोटा थामते हुए कन्हैया बोला—"आज-कल तो पानी दूध से महँगा हो रहा है। कोसों तक नहीं मिलता। इतना भयंकर अकाल तो काका पहले कभी नहीं पड़ा होगा?"

"पड़ने को तो इससे भी भयंकर अकाल पड़े हैं, कन्हैया, पर अब तो लोगों की नीयत ही ऐसी हो गई है कि कुछ कहने में नहीं आता। दूध-दही की नदियाँ कभी हमारे देश में बहती थीं, यह तो हमने नहीं देखा,—पर आज जो कुछ हो रहा है उसे देखकर तो आँखें पथरा जाती हैं। चार आने में बच्चे बिक रहे हैं। इतनी सस्ती तो कभी भेड़ें या तीतर-खरगोश भी नहीं हुए। एक ओर कई कई दिनों से लोगों ने रोटी नहीं देखी है और दूसरी ओर अनाज की बखारियाँ भरी हैं। उसका भाव इतना चढ़ गया है कि हम तुम तो उसके लेने का खयाल भी नहीं कर सकते।"

"इसका कुछ इन्तज़ाम नहीं हो सकता, काका?"

"हो क्यों नहीं सकता, पर हम लोगों के पास इन्तज़ाम करने की ताक़त कहाँ है?"

दोनों कुछ क्षण चुप रहे। फिर गंगू ने कहा—"हाँ, एक बात याद आगई। देख, उस बेचारी गौरी को तू काम-काज के लिए ज्यादा न भेजा कर। भूख के कारण उसके शरीर में जान तो रह नहीं गई है और तू ऐसी हालत में भी उसे मजदूरी के लिए भेज देता है।"

कन्हैया कुछ सहमा। उसे ऐसा लगा कि शायद गौरी के बारे में वह कोई नई बात सुनेगा। अपनी उत्सुकता को दबाते हुए उसने कहा—"मैं उसे कब भेजता हूँ, काका? और वह मजदूरी कर भी क्या सकती है? आज बड़ी ज़िद करके वह खुद ही कहीं चली गई। बोली कि काम कैसे नहीं मिलता, देखो मैं जाती हूँ काम ढूँढ़ने।"

"उसके कहने की भली कही। तुझमें तो अक्ल है। तूने उसे क्यों जाने दिया?"

"लेकिन काका आज उसने बड़ी ज़िद की। और कभी तो मैंने उसे कहीं नहीं भेजा।"

"मैं भी तो आज ही का ज़िक्र कर रहा हूँ। मुख्तार से मिलने मैं रामनगर गया था। देखा उस चिलचिलाती हुई धूप में बेहाल हुई वह काम की तलाश में इधर-उधर घूम रही थी। चेहरे पर हवाइयाँ उड़ रही थीं। पाँव लड़खड़ा रहे थे।"

"अच्छा, फिर क्या हुआ काका?"

"होता क्या? मैं उसे बड़ी मुश्किल से यहाँ लिवा लाया। आ ही नहीं रही थी। बड़ी ज़िद्दिन है। मैंने शाम को चार रोटियाँ बनाई थीं। बहुत कहा कि खा ले, खा ले, पर उसने भूख से बेहाल होते हुए भी एक टुकड़ा तक मुँह में नहीं डाला। बोली मुझे भूख ही नहीं है। बड़ी मुश्किल से क़सम दिलाने पर तीन रोटियाँ साथ ले गई कि बच्चों के काम आजायँगी। लेकिन औरत क्या है, देवी है, कन्हैया। इसे तेरे पूर्व जन्म का पुण्य ही कहना चाहिए कि तुझे ऐसी लक्ष्मी स्त्री मिली।"

कन्हैया कुछ न बोला। उसका सारा संशय-संदेह एक क्षण में दूर हो गया। अपनी नीचता और संकीर्णता पर उसे बड़ी लज्जा और घृणा हो रही थी। जी में आया कि अभी दौड़ कर जाय और गौरी के पाँव में अपना सिर रख कर उससे क्षमा माँगे। पर गंगू से वह रात बिताने को कह जो चुका था। सारी बात गंगू पर प्रकट करने के लिए वह तैयार नहीं था। ग्लानि से वह गड़ा जा रहा था। पुरुष कितना कुटिल, अदूरदर्शी और वहमी हो सकता है, इसका उसे आज कुछ अनुभव हुआ।

गंगू ने एक-दो बार कन्हैया को सम्बोधित कर कुछ कहना चाहा, पर वह अपने विचारों में इतना तल्लीन था कि कोई जवाब ही नहीं दे सका। गंगू ने समझा कि वह सो गया है। करवट लेकर वह सो रहा।

कन्हैया अजीब भँवर में पड़ा था। उसे नींद नहीं आ रही थी। मस्तिष्क पर आज वह एक बहुत बड़ा बोझ अनुभव कर रहा था। उसकी आँखों के सामने गौरी का पीला चेहरा और सजल आँखें बार बार आ रही थीं। वह उन्हें देखना नहीं चाहता था। पर आँखें मूंद लेने से भी उनका दिखना बन्द थोड़े ही हो सकता था! फिर गौरी के हाथ से रोटी छीन कर फेंक देने की बात को याद करके तो उसकी छाती जैसे फटना चाह रही हो। उसने जले पर और नमक डाल दिया था।

(५)

दूसरे दिन पौ फटने से पहले ही कन्हैया अपने गाँव के लिए चल पड़ा। आज उसके पाँव जल्दी जल्दी इस तरह उठ रहे थे, मानो शेष शरीर से पहले ही गौरी के पास पहुँच जाना चाहते हों। मार्ग में उसे कौन मिला और कौन नहीं, इसका उसे कुछ भी पता नहीं। वह आकर रुका अपनी उस झोंपड़ी के द्वार पर जो मूर्तिमान् अभाव बनी निर्जीव निश्चलता के साथ मौन खड़ी थी। यह देखकर कन्हैया को जैसे काठ मार गया कि गौरी वहाँ नहीं थी! उसका एक पाँव झोंपड़ी के दरवाज़े में और दूसरा बाहर था। बच्चों के सूखे हुए चेहरों को देखकर उसने बाहर नजर डाली। कहीं भी गौरी नहीं दिखाई दी। वह समझ नहीं सका कि आखिर वह गई कहाँ? उसे खयाल आया कि कहीं उसने आत्महत्या तो नहीं कर ली? फिर ध्यान आया, नहीं, बच्चों को छोड़ वह इतनी आसानी से मर नहीं सकती। ये उसकी जीवन की आशा और अरमानों की निधि हैं। तो फिर वह आखिर गई कहाँ? उसकी समझ में कुछ भी नहीं आया।

आँखें फाड़ फाड़ कर वह इधर-उधर देखने लगा। सामने की झाड़ी के पीछे उसे एक लाल कपड़ा हवा में उड़ता हुआ दिखाई दिया। कन्हैया दौड़ कर उधर गया। देखा—गौरी अर्धविक्षिप्त-सी धूल में पड़ी है। कन्हैया काँप उठा। गौरी की कलाई अपने हाथ में लेकर वह नब्ज़ देखने लगा। नब्ज़ ठीक चल रही थी। उसे उठाते हुए कन्हैया बोला—"गौरी, गौरी, कैसी तबीअत है?"

गौरी ने एक अँगड़ाई ली और अधखुली आँखों से कन्हैया की ओर देखते हुए कहा—"तबीअत तो ठीक है।"

"फिर यहाँ क्यों लेटी है? कन्हैया बोला।

"हैं, कहाँ?"—कहते हुए गौरी अपनी सिर पर की ओढ़नी खींच कर और इधर-उधर देखकर एक फीकी हँसी हँस कर बोली—"ओह! मुझे तो कुछ सुधि ही नहीं रही। तुम्हारी तलाश में इधर-उधर भटकी। तुम जब नहीं मिले तब घर की तरफ़ लौट रही थी। पर थक इतनी गई थी कि पाँव शरीर का बोझ नहीं सँभाल सके। यहाँ बैठ गई थी कि जरा सुस्ता लूँ, पर न मालूम कब नींद आ गई? बच्चे तो अच्छे हैं?"

"अच्छे ही होंगे"—कहते हुए कन्हैया ने एक ठंडी साँस छोड़ी और काँपते हुए ओठों से कहा—"चलो। तुम्हें बहुत तकलीफ़ हुई।"

दोनों झोंपड़ी की तरफ़ चल पड़े। कन्हैया ने कहा—"गौरी, कल की बात के लिए मुझे क्षमा कर सकोगी? मैंने व्यर्थ ही तुम्हारा दिल दुखाया। न मालूम मुझे क्या हो गया था?"

"मेरा तो दिल-विल कुछ नहीं दुखा। दिल दुखने की उसमें बात ही क्या थी? पुरुष स्वभाव से ही वहमी होता है। जब राम तक सीता पर सन्देह कर सकते हैं तब तुम्हें क्या दोष दिया जा सकता है? चलो अच्छा हुआ, जल्दी ही तुम रास्ते पर आ गये।"

कन्हैया एक क्षण चुप रहा। फिर बोला—"पर गौरी, हम इस घर और गाँव को छोड़ क्यों न दें? अब तो तुमने भी देख लिया न कि यहाँ काम-वाम कहीं कुछ भी नहीं है। फिर भूखों मर कर प्राण दे देने में क्या बड़ाई है?"

"बड़ाई न हो, पर एक सन्तोष और सुख तो है। तुम तो दिन भर काम पर रहते थे। तुम्हें नहीं मालूम कि कितनी मेहनत से मैंने इस झोपड़ी को बनाया है। कितने प्रेम से इसका फ़र्श लीपा है, किन किन आशाओं से खेत की यह मुँडेर बाँधी है? यह झोंपड़ी हमें क्या महल से कम सुखदायिनी रही है? और यह खेत—क्या इनसे हमारा कोई सम्बन्ध ही नहीं, जो इन्हें छोड़ कर अन्यत्र चले चलें? खेत और झोंपड़ी से तो हमारा जीवन-मरण का सम्बन्ध है, पर ये पेड़ भी तो हमें कम प्यारे नहीं हैं। मुझसे तो ये सब छूटने मुश्किल हैं।"

"यह बात तो नहीं है गौरी कि मैं निरा पत्थर ही हूँ। हृदय मेरे भी है। पर सच मानो, हृदय से भी पेट की ज्वाला बड़ी है।"

गौरी कुछ नहीं बोली। दोनों अभी झोपड़ी के पास पहुँचे ही थे कि पीछे से ज़मींदार के ५-६ लठैत आ खड़े हुए। उनमें से एक ने कहा—"अरे कन्हैया, आज-कल तो आँखें पीछे हो रही मालूम होती हैं। कब का दादा था और अभी तक तूने सूरत भी नहीं दिखाई। यही है न तेरी शराफ़त?"

"क्या बताऊँ दादा, आने की फ़ुर्सत ही नहीं मिली। यहाँ तो पेट भरना भी....."

बात काटते हुए वह आदमी बोला—"हाँ रे, बड़ा लाट साहब का बच्चा है न, तुझे भला फ़ुर्सत क्यों मिलने लगी? इसी लिए तो हम आ गये हैं। अब तुझे तकलीफ़ नहीं उठानी पड़ेगी। बस आज से तुझे फ़ुर्सत ही फ़ुर्सत रहेगी।"

"क्या मतलब दादा?"

"अहः हःहः, मतलब? अरे सब कुछ अभी समझ में आ जायगा। सरकार ने हुक्म दिया है कि लगातार तीन साल तक जिसने लगान न दिया हो उसका घर-खेत ज़ब्त कर लो।"

"तो क्या आप ज़ब्ती के लिए आये हैं?"

"हाँ, और नहीं तो क्या पीले चावल लाये हैं?"

कन्हैया चुप रहा। गौरी की आँखें भर आईं। आगन्तुक बाज़ की तरह झोंपड़ी पर टूट पड़े और उसमें पड़े बर्तन भांडे समेटने लगे। कुछ एक टूटी हुई-सी चारपाई बाहर खींच कर उस पर बैठ गये। मुखिया ने कन्हैया की ओर लापरवाही से देखते हुए मुस्कराकर कहा—'अब तू जहाँ तेरा जी कहे, जा सकता है।'

कन्हैया ने कोई जवाब नहीं दिया। एक बच्चे को कन्हैया ने अपनी पीठ पर बाँधा और दूसरे को कन्धे से लगा लिया। सबसे छोटे बच्चे को गौरी ने छाती से चिपटा लिया। कुचले हुए साँप की-सी चाल से दोनों चल पड़े। दोनों के पाँव लड़खड़ा रहे थे। कुछ क़दम चल कर गौरी ने पीछे मुड़कर देखा। उसे ऐसा लगा, मानो झोंपड़ी बड़ी तेज़ी से उसकी ओर दौड़ी चली आ रही है। उसका नीम और बबूल जैसे उड़ कर उसके पास आ रहे हैं। उसने ज़ोर से पलकों के बीच में आँखों को इस तरह दबा लिया जैसे मचले हुए साँप को डलिया में दबा लिया जाता है। कन्हैया ने शायद यह सब कुछ नहीं देखा। उसकी आँखें बह रही थीं।

भर्राये हुए कण्ठ से गौरी ने पूछा—"कहाँ चल रहे हो?"

"जहाँ यह दुर्भाग्य ले जाय।"

लड़खड़ाते पाँवों से दोनों चले जा रहे थे—न मालूम कहाँ?

लेखक, श्रीयुत सेठ गोविन्ददास एम० एल० ए०

(६)

पूर्वी अफ़्रीका का प्रधान नगर नैरोबी

क़रीब ४०० मील का सफ़र ३ घंटे में खत्म कर १ बजे हम लोग नैरोबी पहुँच गये। नैरोबी में हम लोगों के ठहरने की व्यवस्था डाक्टर पटवर्धन के यहाँ की गई थी। मिसेज़ पटवर्धन भी कंपाला की मिसेज़ पटेल के सदृश टायरिया में ही हमारे साथ हिन्दुस्तान से लौटी थीं। हमें डाक्टर पटवर्धन के यहाँ घर का-सा आराम मिला। नैरोबी में आज ही संध्या को सार्वजनिक सभा थी। सभा का इन्तज़ाम किया गया था पटेल-ब्रदरहुड के हाल में। नैरोबी की यह संस्था वहाँ के सभी समुदायों के काम आती है। एक सुन्दर लाइब्रेरी है और एक बहुत बड़ा हाल है, जिसमें कुर्सियों पर क़रीब १,००० आदमी बैठ सकते हैं। पटेल-ब्रदरहुड की इस संस्था का यह भवन दर्शनीय है। सभा के समय से पहले ही हाल भीड़ से खचाखच भर गया था। सभा के सभापति थे इंडियन एसोसिएशन के प्रेसीडेंट मिस्टर ठाकुर। यद्यपि पूर्वीय अफ़्रीका की इंडियन कांग्रेस में आज-कल मतभेद हो कर दो पार्टियाँ हो गई थीं और आनरेबिल डाक्टर डिसौज़ा तथा आनरेबिल मिस्टर ईसरदास कांग्रेस के मेम्बर नहीं रह गये थे, जिसके अन्तर्गत इंडियन एसोसिएशन था, तथापि मतभेद इतना बढ़ा हुआ न था कि ये लोग सभा में न आयें। अतः इनकी पार्टी भी सभा में मौजूद थी और मिस्टर ईसरदास ने तो सभा में भाषण देकर मेरा स्वागत भी किया। मैं क़रीब १॥ घंटे बोला। सन् १९१४ के महायुद्ध के बाद नैरोबी में एक अर्द्ध-सरकारी इकनामिक कमीशन और एक ग़ैर-सरकारी योरपियन एसोसिएशन का कन्वेशन बैठा था। इन दोनों की रिपोर्टें उस समय निकली थीं जब सन् १९१८ में मैं विद्यार्थी-जीवन समाप्त कर सार्वजनिक जीवन में प्रवेश करने का विचार कर रहा था। इन दोनों रिपोर्टों में भारतीय जाति के विरुद्ध जो कुछ कहा गया था उसे मैं अब तक न भूला था। भारतीय जाति के चरित्र के विरुद्ध जिन दो शब्दों "नैतिक अधःपतन" का उपयोग किया गया था वे शब्द तो गत २० वर्षों में मुझे न जाने कितनी बार स्मरण आये थे। आज नैरोबी में नैरोबी की ही इस २० वर्ष पहले की घटना का मुझे स्मरण आ गया। मैंने अपने भाषण के आरम्भ में कहा—

"आज मुझे एक ऐसी घटना का स्मरण आता है जो मेरे सार्वजनिक जीवन के प्रवेश और आपके नगर नैरोबी से सम्बन्ध रखता है। विद्यार्थी-जीवन समाप्त

कर जब मैं सार्वजनिक जीवन में प्रवेश कर रहा था उसी समय आपके नैरोबी में बैठे हुए इकनामिक कमीशन और योरपियन एसोसिएशन के कन्वेकेशन की रिपोर्टें निकली थीं। उन रिपोर्टों में भारतीय जाति के चरित्र के सम्बन्ध में "नैतिक अवःपतन" का दोषारोपण किया गया था और इसी लिए कहा गया था कि भारतीय इस देश में रहने योग्य नहीं हैं। योरपीय महायुद्ध उसी समय समाप्त हुआ था। आश्चर्य तो यह है कि जो भारतीय योरपीय महायुद्ध में बेल्जियम और फ़्रांस की खन्दकों में फ़्रांसीसी और अँगरेज़ सिपाहियों की बराबरी में खड़े होकर ब्रिटिश साम्राज्य और उनके झंडे—यूनियन जैक की रक्षा में अपनी जानें क़ुर्बान करते समय फ़्रांसीसी और अँगरेज़ों के बराबर माने जाते थे, उन्हीं में लड़ाई के ख़त्म होते ही 'नैतिक अवःपतन' आ गया। लड़ाई में मदद देने का बदला भारतीयों को तो तत्काल मिला, भारत में जलियाँवाले बाग़ का क़त्लेआम और भारतीयों के इस प्रधान उपनिवेश में इस नैरोबी के इकनामिक कमीशन और योरपियन एसोसिएशन के कन्वेकेशन की रिपोर्टें। इसके बाद यहाँ जितनी आपत्तियाँ आईं, कीनिया के हाइलैंड्स के सम्बन्ध में अथवा और कोई भी, इन सबके बीज यथार्थ में इसी कमीशन और कन्वेशन ने बोये थे।"

ये बातें हृदय में चुभ जानेवाली सिद्ध हुईं। मुझे भी इन बातों के कहते कहते जोश आ गया। फिर तो डेढ़ घंटे का सारा भाषण उसी जोश में हुआ। अनेक बातों पर जनता ने तालियों की कड़कड़ाहट और अनेक बातों पर शेम शेम के नारे लगा कर बड़े भारी जोश और उत्साह से मेरे भाषण में कही हुई बातों का समर्थन किया। जब मैंने अपना भाषण पूर्ण किया उस समय मुझे मालूम हुआ कि मैं पूरे डेढ़ घंटे तक बोल चुका था। श्रोताओं को भी इसका शायद बोध न हुआ था कि कितना अधिक समय बीत गया। अनेक व्यक्तियों ने तो यह तक कह डाला कि नैरोबी में आज तक कभी भी ऐसा हिन्दुस्तानी भाषण न हुआ था। जो कुछ हो, मुझे भी अपने भाषण से पूरा सन्तोष था और शायद मैं उसे और न सुधार सकता था।

दूसरे दिन सारा समय नैरोबी घूमने में बीता। वह एक सुन्दर शहर है। हर बात में किसी भी देश के बड़े से बड़े नगर का मुक़ाबिला कर सकता है। ऊँची-ऊँची इमारतें, चौड़ी-चौड़ी सड़कें, बस-मोटरों की भरमार। यह सुना गया कि वहाँ के हर तीसरे आदमी के पास मोटर है और आबादी के हिसाब से यदि मोटरों की संख्या का मिलान किया जाय तो संसार में न्यूयार्क के बाद नैरोबी का ही नम्बर आता है। इतने बड़े शहर में हमें एक भी घोड़ा या बैल की सवारी न दिखी। मालूम हुआ कि वहाँ इन जानवरों का उपयोग न तो सवारी के काम में आता है और न खेती के काम में ही। इतनी सुन्दर आबहवा होते हुए भी घोड़े तो वहाँ जी ही नहीं सकते। कोई घोड़ा वहाँ लाया जाय उसे एक ख़ास तरह की बीमारी हो जाती है और वह चार-छः महीने में मर जाता है। खेती ट्रैक्टरों और आदमियों से होती है। बैल का उपयोग बोझा ढोने या खेती के किसी काम में आज तक किसी ने समझा ही नहीं। साँड़ तथा दूध के लिए गायें रखकर बछड़े क़साईख़ाने में दे दिये जाते हैं। नैरोबी का सार्वजनिक बाग़ मैं कभी भी भूल न सकूँगा। एक जंगली स्थान में यह बाग़ लगाया गया है। बीच में दूब के कुछ मैदान और फूलों से भरी हुई क्यारियाँ हैं और चारों तरफ़ जंगली वृक्षों के समूह हैं, जिनमें बड़ी टेढ़ी सड़कें घूमने के लिए बना दी गई हैं। आजकल अर्थात् नवम्बर-दिसम्बर में अफ़्रीका में गरमी पड़ती है, पर नैरोबी के समुद्रतल से पाँच हज़ार फ़ुट ऊपर होने के कारण यहाँ तो वसन्त छाया हुआ था और वह अपनी सारी सेना के साथ इस उपवन में निवास कर रहा था। रंग-बिरंगे पुष्पों से लदे हुए वृक्षों में से चलती हुई शीतल मन्द सुगन्धित वायु पुष्पों की वर्षा कर रही थी। आम के वृक्ष बौरों एवं फलों से ढँके हुए थे और कभी कभी कोयल कूक कर वसन्त के साम्राज्य के सन्देश सुना देती थी।

आज संध्या को आनरेबिल डाक्टर डिसोज़ा ने मुझे 'एट होम' दिया था। डाक्टर साहब के बँगले पर एक छोटा-सा सभ्य समाज एकत्र था। जब एट होम में मेरे लिए 'टोस्ट' का प्रस्ताव हुआ तब लोगों ने हिन्दुस्तानी में भाषण देना आरम्भ किया। मालूम हुआ कि नैरोबी में यह एक नई बात थी। मेरे कल के भाषण के बाद

कई हिन्दुस्तानियों ने निश्चय किया था कि हिन्दुस्तानी जल्सों में अब वे हिन्दुस्तानी में ही भाषण करेंगे। डाक्टर डिसोज़ा की पत्नी मिसेज़ डिसोज़ा भी डाक्टर हैं। डाक्टर डिसोज़ा ने मिसेज डिसोज़ा को ही अपने सारे सार्वजनिक जीवन का श्रेय दिया। वे बोले--

"सेठ गोविन्ददास! मैं आपको एक गुप्त बात बताये बिना आज नहीं रह सकता। मैंने आज तक जो सार्वजनिक सेवा की है उसका सारा श्रेय मेरी पत्नी मिसेज डिसोज़ा को है। इन्हीं की प्रेरणा और इन्हीं के उत्साह से मैं थोड़ी-बहुत सेवा कर सका हूँ। जिस सेवा-पथ को आपने अपने भाषण में कल इतना महत्त्व दिया था उस पर मुझे मिसेज़ डिसोज़ा ने ही चलाया है।"

मिसेज़ डिसोज़ा की यह प्रशंसा डाक्टर साहब ने हृदय से की थी। उनके गद्‌गद स्वर ने मुझे गद्‌गद बना दिया और मैंने बड़ी श्रद्धा एवं भक्ति से उन देवी को प्रणाम किया जो डाक्टर डिसोज़ा के सदृश कीनिया के सार्वजनिक सेवक को इस सेवा-पथ में चलानेवाली कर्णधार थीं। डाक्टर डिसोज़ा का कीनिया के सार्वजनिक जीवन में सेवा एवं त्याग की दृष्टि से बड़ा ऊँचा स्थान था और जिसकी प्रेरणा से डाक्टर ने इस स्थान को प्राप्त किया था उस मानवी को श्रद्धा और भक्ति से देवी मान लेना एक स्वाभाविक बात थी।

तारीख ३ की दोपहर को हम लोग नैरोबी के निकट ठीका नामक स्थान को चपड़ा कमाने की एक खास चीज़ बनाने के कारखाने के देखने के लिए गये। कारखाने के मालिक श्री प्रेमचन्द-रामचन्द ने ठीका में हमारी बड़ी खातिर की। आज ही रात को नैरोबी में ८ बजे सार्वजनिक डिनर था। डिनर का इन्तज़ाम पटेल-ब्रदरहुड के ही हाल में था। नैरोबी का सारा भारतीय सभ्य-समाज इस अवसर पर इस हाल में मौजूद था। डिनर के बाद के भाषण हिन्दुस्तानी में ही हुए। यहाँ तक कि इंडियन एसोसिएशन के सभापति मिस्टर ठाकुर भी हिन्दुस्तानी में ही बोले। मुझे इस बात पर न जाने कितनी बधाइयाँ दी गई कि मैंने हिन्दुस्तानियों की राष्ट्र-भाषा हिन्दुस्तानी की एक ही दिन में इतनी गहरी जड़ नैरोबी में जमा दी। किसी बात की जड़ का नैरोबी में जमना सारे पूर्वीय अफ़्रीका के अँगरेज़ी पढ़े-लिखे सभ्य-समाज में जमना माना जाता है। जिस प्रकार योरप में फ़ैशन का आरम्भ पैरिस नगर से होता है, उसी प्रकार पूर्वीय अफ़्रीका के अँगरेज़ी पढ़े-लिखे समाज में हर नई बात का आरम्भ नैरोबी से होता है। किसी चीज़ का नैरोबी में ठीक ढंग से आरम्भ होने का अर्थ होता है सारे पूर्वीय अफ़्रीका के इस सभ्य-समाज में उसका प्रचार हो जाना। नैरोबी के इस समाज में हिन्दुस्तानी में भाषणों के आरम्भ का यह श्रेय मुझे मिला है, यह देख कर मैंने अपने को धन्य माना।

तारीख ४ को हम लोग नैरोबी से ज़ंज़ीबार को उड़नेवाले थे। तारीख ३ की रात को ही मेरे पास फिर से नैरोबी आकर पूर्वीय अफ़्रीका की कांग्रेस के क्रिसमस में होनेवाले अधिवेशन का सभापतित्व स्वीकार करने का प्रस्ताव आया। कई वर्षों के बाद कांग्रेस का यह अधिवेशन हो रहा था। दो बार इसके अधिवेशनों की सभानेत्री श्रीमती सरोजनी नायडू हो चुकी थीं और एक बार पंडित हृदयनाथ कुंजरू। मेरे पास समय न था। दक्षिण-अफ़्रीका का दौरा समाप्त कर क्रिसमस में फिर से नैरोबी लौटना मेरे लिए असम्भव था। अतः मैं इस महान् सम्मान को स्वीकार न कर सका।

ता० ४ को प्रातःकाल ८ बजे लक्ष्मीचन्द के साथ मैं नैरोबी से अपने एरोप्लेन में फिर से ज़ंज़ीबार के लिए रवाना हो गया।

भारतीय उद्योग और रेलवे के भाड़े की नीति

लेखक, प्रोफ़ेसर प्रेमचन्द मलहोत्रा

सब देशों में विदेशी व्यापार पर अधिक से अधिक ध्यान दिया जाता रहा है। इसी कारण अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार देश की आर्थिक सम्पत्ति का चिह्न समझा गया है। भारत में विदेशी व्यापार को विशेष महत्ता दी गई है। भारतीय सरकार विदेशी व्यापार के साथ देशी व्यापार की अपेक्षा सदैव पक्षपात करती रही है, क्योंकि हमारे देश को प्रतिवर्ष इंगलैंड को गृह-कर (होम चार्जेज़) देना पड़ता है तथा अन्य अदृश्य आयात जैसे कि जहाज, बीमा और बैंकिंग कम्पनियों के दाम चुकाने होते हैं। इस कारण भारत के लिए व्यापार की अनुकूल विषमता अत्यावश्यक है।

विश्व-व्यापार में १९१८ के बाद एक क्रान्तिकारी परिवर्तन हो चुका है। १९२९ से संसार में अर्थ-चक्र की मन्दी से विदेशी व्यापार ने एक नया रूप धारण कर लिया है। देश की आर्थिक स्वेच्छाचारिता एक नई और कठोर नीति बन गई है। फलस्वरूप विश्व-व्यापार और अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार अब भिन्न भिन्न हैं। विश्व-व्यापार अब भिन्न भिन्न देशों के व्यापारों का एक समूह है।

देश के आर्थिक विकास और उसके साथ विदेशी व्यापार का सम्बन्ध सन्दिग्ध है। हमारा देश इस कथन का दृष्टान्त है। भारत जैसे विशाल और जनपूर्ण देश के लिए देशी व्यापार उसके विदेशी व्यापार की अपेक्षा अधिक महत्त्व रखता है। परन्तु इंगलैंड जैसे छोटे देश का सारा धन और सम्पत्ति उसके विदेशी व्यापार पर ही निर्भर है।

भारत में जैसे जैसे उद्योगों की वृद्धि होगी, वैसे वैसे विदेशी आयात की माँग घटती जायगी। भारत के निर्यात में भी कमी होगी। इसके दो कारण हैं। एक तो हमारा कच्चा माल घर में ही खपता जायगा और दूसरे यदि आयात कम हो जाय तो निर्यात भी कम हो जायगा। भारत में उद्योगों की उन्नति होने से हमारा विदेशी व्यापार घट जायगा। कई और भी कारण हैं, जिनसे यह सिद्ध होता है कि आर्थिक दृष्टि से भी प्रगतिशील भारत को अपने देशी व्यापार को अधिक प्रोत्साहन देना पड़ेगा। अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का गला तो कई एक युक्तियों से घोटा जा रहा है; जैसे विनिमय-नियन्त्रण, आयात-निर्यात-कर, इत्यादि, इत्यादि। भारत अपने उद्योगों को संरक्षित करने की नीति पर वचन कर चुका है। विदेशों में कृषि-क्रान्ति के कारण कच्चा माल सस्ता पैदा होता है और अन्य देश कृषि का संरक्षण कर रहे हैं। इन सब बातों से यह सिद्ध होता है कि आर्थिक उन्नति की इच्छा-पूर्ति भारत के विदेशी व्यापार की चेतना से होनी कठिन है। हमें अपने आन्तरिक व्यापार को उभारना चाहिए और इसी पर हमारी भविष्य की आर्थिक उन्नति निर्भर है।

रेलवे-भाड़े की नीति भी उद्योग की प्रगति और आन्तरिक व्यापार की वृद्धि का एक अनिवार्य साधन बन सकती है। यदि यातायात की नीति अहितकारी हो तो संरक्षण की नीति शक्तिहीन हो जाती है। अपने ही हित के लिए रेलवे को अपनी भाड़े की नीति का संशोधन करना उचित है। रेलवे की आर्थिक दशा स्वस्थ नहीं है। देश में व्यापार और उद्योगों की उन्नति से रेल की भी भलाई है, क्योंकि रेल की आमदनी का सम्बन्ध व्यापार से है।

गत वर्षों में रेलवे के भाड़े की नीति भारतीय उद्योगों के लिए निराशाजनक रही है। रेलवे के भाड़े बन्दरगाह के व्यापार के पक्ष में थे। इससे बन्दरगाहों पर ही बहुत-से उद्योग एकत्र हो गये। इंडस्ट्रियल-कमीशन ने सिफ़ारिश की थी कि रेलवे आन्तरिक और बन्दरगाही व्यापार पर समान भाड़ा रक्खे। फ़िस्कल-कमीशन से भी व्यापारियों ने यही शिकायत की थी कि रेलवे के भाड़े की नीति आन्तरिक व्यापार के लिए अहितकर है।

यदि हम रेलवे के भाड़े की समुद्रतटीय और आन्तरिक व्यापार से तुलना करें तो हमें रेलवे के भाड़े की नीति का अन्याय प्रत्यक्ष हो जायगा। कपड़े का रेल-भाड़ा बम्बई से किसी स्थान के लिए कम है, पर उसी फ़ासले का भाड़ा देश के एक स्थान से दूसरे स्थान के लिए अधिक है।

रेलवे के भाड़े की नीति का एक और दोष यह है कि सम्पूर्ण यात्रा का भाड़ा लगाने के लिए रेलवे भिन्न-

भिन्न समझी जाती हैं। यह रीति व्यापार के लिए हानिकारक है। क्योंकि सम्पूर्ण यात्रा यदि एक यात्रा ही समझी जाय तो लम्बी यात्रा होने से किराया घटता जाता है। परन्तु यदि ८०० मील की यात्रा तीन भिन्न भिन्न रेलवे से हो और हर एक रेलवे अपने अपने भाग की यात्रा पर भाड़ा लगाये तो कुल भाड़ा अधिक होगा, जब कि प्रसिद्ध रेलवे सरकार के अधीन हैं (जैसे ई० आई० आर०; जी० आई० पी०, एन० डब्ल्यू० आर०) तब कम-से-कम यदि सम्पूर्ण यात्रा इन तीन रेलों से हो तो सम्पूर्ण यात्रा पर घटती हुई दर से भाड़ा न लगाना बहुत अन्याय है।

पोरबन्दर से अहमदाबाद को सीमिन्ट भेजने का भाड़ा अधिक है और बम्बई से अहमदाबाद को सीमिन्ट भेजने का भाड़ा कम है। क्योंकि सीमिन्ट पोरबन्दर, गौंडल और भावनगर की रेलों से होकर वाधवा पहुँचता है जहाँ से कि बी० बी० ऐंड सी० आई० रेलवे उसे अहमदाबाद के लिए मिलती है। बम्बई से अहमदाबाद तो केवल बी० बी० ऐंड सी० आई० रेलवे से ही सीमिन्ट भेजा जाता है इसी तरह बंगाल से अमृतसर को कोयला ई० आई० आर० और एन० डब्ल्यू० आर० के द्वारा जाता है और इसलिए एक सम्पूर्ण यात्रा के ये दो भिन्न टुकड़े समझे जाते हैं और रेल का भाड़ा अधिक देना पड़ता है।

यदि हम कागज़ के उद्योग की ओर दृष्टि डालें तो रेलवे के भाड़े की नीति में शुभ परिवर्तन दिखाई देता है। कागज़ के कारख़ानों से बड़े बड़े शहरों को कागज़ भेजने के लिए रेलवे विशेष दर से भाड़ा लगाती है और यह रिआयत विदेशी कागज़ को रेलवे बड़े संकोच से देती है। ये सुविधायें कागज़ के उद्योग को उचित सहायता देती हैं और इससे संरक्षण की नीति को सहायता मिलती है। यह परमावश्यक है कि अन्य उद्योगों के हित में भी रेलवे अपनी भाड़े की नीति में ऐसा ही परिवर्तन करे।

वैजवुड-जाँच-कमिटी (१९३७) के सामने कई एक व्यवसाय-समितियों ने शिकायत की थी कि रेलवे की भाड़े की नीति भारत की संरक्षण-नीति से सहयोग नहीं करती और ऐसी नीति से आयात और निर्यात व्यापार को उत्तेजना मिलती है और भारतीय उद्योगों की हानि होती है। रेलवे की भाड़े की अनुचित नीति संरक्षण-नीति को शक्तिहीन बना सकती है। इस कारण रेलवे के भाड़े की नीति का समुचित संशोधन करना सरकार का धर्म है।

रेलवे के भाड़े की परामर्श-कमिटी इस महान् कार्य को सिद्ध करने में असमर्थ रही है। कुछ व्यवसाय-समितियों का यह मत है कि रेलवे की भाड़े की परामर्श-कमिटी का पुनर्निर्माण किया जाय, और उसे टैरिफ़ बोर्ड तथा आयात-निर्यात-कर निर्णय करनेवाली परिषद् का रूप दिया जाये। वैजवुड-कमिटी ने रेलवे-परामर्श-कमिटी के पक्ष में निर्णय किया और उसके सम्बन्ध में निम्नलिखित सिफ़ारिशें कीं :—

(क) कमिटी को जाँच और सिफ़ारिशें बिना विलम्ब के करनी चाहिए।

(ख) जाँच के लिए सरकार के पास जो भी प्रार्थना-पत्र आये वह तुरन्त ही कमिटी को सौंप दिया जाय।

(ग) जो सिफ़ारिशें कमिटी ने सरकार को भेजी हों उनकी सूचना प्रार्थी को दी जाय।

(घ) सरकार का कमिटी की सिफ़ारिशों पर फ़ैसला प्रकाशित किया जाय।

ऊपर लिखित सिफ़ारिशों को व्यवहार में लाने से रेलवे के भाड़े की परामर्श-कमिटी की उपयोगिता तो बढ़ जायगी, परन्तु यह कमिटी उद्योग और व्यवसाय को ठीक रूप से प्रोत्साहन तथा सहायता देने में असफल रहेगी।

देश की आर्थिक गति के लिए रेल के भाड़े की प्रगतिशील तथा समुत्साहक नीति परमावश्यक है। अभी तक तो रेलवे की नीति देश के उद्योग के हित में उदासीन ही रही है। रेलवे न केवल माल को ढोये बल्कि उसकी नीति नये व्यापार तथा व्यवसाय को उत्तेजित करने का साधन बने।

यह खेद की बात है कि रेलवे की वर्तमान व्यवस्था ने अपने भाड़े की नीति में उचित परिवर्तन करना आवश्यक नहीं समझा। रेल का जो बजट केन्द्रीय व्यवस्थापक सभा में इस साल पेश किया गया था उसमें भाड़े की नीति जैसे परमावश्यक विषय के सम्बन्ध की कोई भी चर्चा नहीं थी।

जैसा कि हम पहले कह चुके हैं कि रेलवे के भाड़े की नीति का संशोधन करना न केवल देश के हित के लिए ही उपयोगी होगा, अपितु वह रेल की बिगड़ी हुई आर्थिक दशा को भी सँभाल देगा।
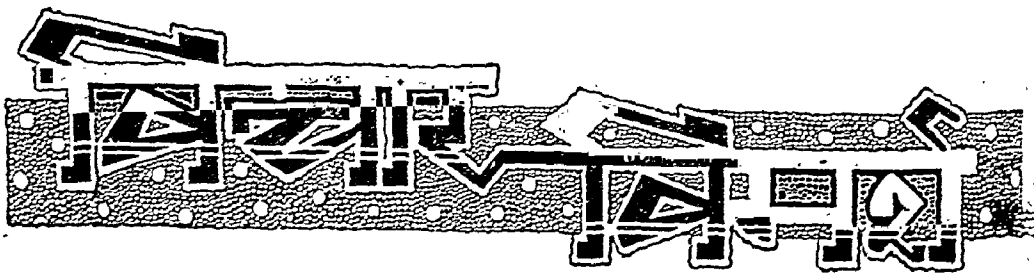
महिलाओं की लिखी कहानियाँ

लेखक, पंडित हजारीप्रसाद द्विवेदी, शास्त्री, शास्त्राचार्य

श्रीमती शिवरानीदेवी की 'कौमुदी', श्रीमती सुभद्राकुमारी चौहान की, 'बिखरे मोती', श्रीमती कमलादेवी चौधरी की 'पिकनिक' तथा श्रीमती होमवतीदेवी की 'निसर्ग' नामक पुस्तकों की प्रसंगप्राप्त चर्चा।

(१)

प्रचलित विश्वास यह है कि स्त्री को स्त्री ही ठीक-ठीक समझ सकती है और वही उसको ठीक व्यक्त कर सकती है। इसके साथ जो अनुमान अपने आप उपस्थित होता है उसे प्रायः भुला दिया जाता है। वह अनुमान यह है कि पुरुष को पुरुष ही समझ सकता है और वही उसे व्यक्त कर सकता है। स्पष्ट ही यह अनुमान सत्य से बहुत दूर है और इसी लिए उसकी अनुमापक प्रतिज्ञा भी उतनी ही असत्य है। यह विचार कि स्त्री ही स्त्री को समझ सकती है और पुरुष स्त्री को नहीं समझ सकता, किसी बहके दिमाग़ की कल्पना-मात्र है। वस्तुस्थिति कुछ और है। उसका कारण पुरुष और स्त्री के सहयोग के विकास से समझा जा सकता है।

कहते हैं सभ्यता का आरम्भ स्त्री ने किया था। वह प्रकृति के नियमों से मजबूर थी; पुरुष की भाँति वह उच्छृङ्खल शिकारी की भाँति नहीं रह सकती थी। झोपड़ी उसने बनाई थी, अग्नि-संरक्षण का आविष्कार उसने किया था, कृषि का आरम्भ उसने किया था; पुरुष निरर्गल था, स्त्री सुशृंखल। पुरुष का पौरुष प्रतिद्वन्द्वी के पछाड़ने में व्यक्त होता था, स्त्री का स्त्रीत्व प्रतिवेशिनी की सहायता में। एक प्रतिद्वंद्विता में बढ़ा, दूसरी सहयोगिता में। स्त्री पुरुष को गृह की ओर खींचने का प्रयत्न करती रही, पुरुष बन्धन तोड़ कर भागने का प्रयत्न करता रहा। सभ्यता बढ़ती गई, स्त्री और पुरुष का सम्बन्ध ऐसा ही बना रहा। पुरुष ने बड़े धर्म-सम्प्रदाय खड़े किये—भागने के लिए। स्त्री ने सब चूर्ण-विचूर्ण कर दिया—माया से। पुरुष का सब कुछ प्रकट था, स्त्री का सब कुछ रहस्यावृत्त। पुरुष जब उसकी ओर आकर्षित हुआ तब उसे ग़लत समझ कर, जब उससे भागा तब भी ग़लत समझ कर। उसे स्त्री को ग़लत समझने में मजा आता रहा, अपनी भूल को सुधारने की उसने कभी कोशिश ही नहीं की। इसी लिए वह बराबर हारता रहा। स्त्री ने उसे कभी ग़लत नहीं समझा। वह अपनी सच्ची परिस्थिति को छिपाये रही। वह अन्त तक रहस्य बनी रही। किसी ने कहा है कि दुनिया का अन्तिम शास्त्र मानव-मनोविज्ञान होगा और उस शास्त्र की अन्तिम समस्या स्त्री होगी। रहस्य बनी रहने में उसे भी कुछ आनन्द मिलता था। इसी लिए जीतती भी रही और कष्ट भी पाती रही। अचानक व्यावसायिक क्रान्ति हुई, कृषिमूलक सभ्यता पिछड़ गई, परिवार और वर्ग की भावना ह्रास होने लगी, नगर स्फीत होने लगे, और वैयक्तिक स्वाधीनता जोर मारने लगी। इस बार सत्य के अनुसन्धान की आँधी बही। स्त्री रहस्य रहे, यह बात इस युग को पसन्द न आई, न पुरुष को, न स्त्री को। पुरुष ने भी स्त्री को समझने की कोशिश की और स्त्री ने भी इस कार्य में उसे सहायता पहुँचाई और साहित्य नये सुर में बजने लगा। पुरुष ने भी स्त्री को समझा पर वह अपने हजारों वर्ष के संस्कार से लाचार था, उसने उसमें कल्पना का पुट लगा दिया।

ग़लत समझने में उसे मज़ा आता था, हालाँकि समझने में उसने ग़लती नहीं की। स्त्री भी अपने संस्कारों से मजबूर थी, उसने अपने को थोड़ा-सा रहस्य में रखना उचित समझा, हालाँकि इस रहस्य को समझाने में उसने हमेशा ग़लती की। इसी लिए पुरुष का जब स्त्री-चित्रण पढ़ा जाय तो उसकी कल्पनात्मक प्रवृत्ति से सदा सतर्क रहना चाहिए और स्त्री का जब स्त्री-चित्रण पढ़ा जाय तो उसकी रहस्यात्मक प्रवृत्ति से भी सावधान रहना चाहिए। यह ग़लत बात है कि स्त्रियाँ पुरुष को नहीं समझ सकतीं और पुरुष स्त्रियों को नहीं समझ सकते, पर यह और भी ग़लत बात है कि स्त्री वस्तुतः वैसी ही है जैसी स्त्री के द्वारा चित्रित है, या वैसी नहीं है जैसी पुरुष-द्वारा कल्पित है।

स्त्री का हज़ारों वर्ष का अनुभव है कि पुरुष उसे ग़लत समझता है, इसलिए साहित्य में उसका प्रयत्न सदा स्त्री की वस्तुस्थिति को स्पष्ट करने का होता है, पर वह स्त्री को चूँकि अनजान में कुछ अज्ञात रखना चाहती है, इसलिए स्वभावतः ही स्त्री के प्रति होनेवाले अविचारों के विषय में उसका रुख अधिकतर शिकायतों के रूप में प्रकट होता है। कभी वह समाज-व्यवस्था पर, कभी पुरुष जाति पर, कभी बाह्य घटनाओं पर दोषारोपण करती है। यह एक लक्ष्य करने की बात है कि स्त्री का चित्रित दुःखित स्त्री-पात्र शायद ही कभी अपने आन्तरिक विकास के कारण दुःखी होता हो। उसके दुःखी होने का कारण भीतर नहीं, बाहर हुआ करता है। अगर लेखिका की कल्पना किसी और समाज-व्यवस्था का सृजन कर सके तो निश्चित है कि स्त्री-पात्र कभी दुःखी न होंगे!

वैयक्तिक स्वाधीनता के प्रवेश ने स्त्री-साहित्य में एक नया अध्याय जोड़ा है। अधिकांश स्त्री-चरित्र का चित्रण दुःखी के रूप में न होता यदि व्यक्तिवाद स्त्री लेखिकाओं का सर्वाधिक ज़बर्दस्त सुर न होता। अधिकांश स्थलों पर जहाँ स्त्री-चरित्र के दुःख-पूर्ण होने का कारण समाज-व्यवस्था या पुरुष की स्वार्थान्धता होती है वहाँ स्त्री के भीतर वैयक्तिक स्वाधीनता का ज़बर्दस्त प्रभाव होता है। पर इस विषय में पुरुष लेखकों से बहुत कुछ सीखना है। मनुष्य के दो प्रधान संस्कार हैं, व्यक्तिगत सुख-लिप्सा और सामाजिक सहयोग भाव। यदि वन्य-जन्तुओं की भाँति पुरुष व्यक्तिगत रूप से स्वच्छन्द होकर घूमता रहता तो निश्चय ही जीवन की लड़ाई में हार गया होता। वर्गरूप में रह कर ही उसने संसार के हिंसक जन्तुओं से मोर्चा लिया है और विजयी हुआ है। पुरुष-लेखक में जब वैयक्तिकता का ज़ोर पूरी मात्रा में होता है तब वह दूसरी प्रवृत्ति को बुरी तरह मसल देता है, पर स्त्री सदा संयत रही है। स्त्री साहित्य का सबसे बड़ा दान आधुनिक साहित्य में यही है। उसने वैयक्तिकता के मुंहज़ोर घोड़े को सामाजिकता के कठोर लगाम से संयत किया है। इन बातों को ध्यान में रख कर ही हम आगे की विवेचना में उतरें तो अच्छा रहे।

(२)

श्रीमती शिवरानी देवी की क़ौमुदी को छोड़ दिया जाय तो आलोच्य पुस्तकों में से अधिकांश की कहानियों का मूल उपादान मध्यवर्ग के हिन्दू-परिवार की अशान्तिकर अवस्था है। कौमुदी में भी यह बात है पर उसको हमने अलग इसलिए रखा है कि उसकी लेखिका इन बातों को छाँटते समय ठीक वही बातें नहीं सोचती हुई जान पड़तीं जो बाक़ी पुस्तकों में स्पष्ट हुई हैं। सास, जेठानी और पति के अत्याचार, स्त्री की पराधीनता, उसे पढ़ने-लिखने या दूसरों से बात करने में बाधा इत्यादि बातें ही नाना भावों और नाना रूपों में कही गई हैं। सुभद्रादेवी के 'बिखरे मोती' इस विषय में सर्वप्रथम हैं। 'पिकनिक' और 'निसर्ग' में ये बातें कुछ गौण-स्थान अधिकार करती हैं। ऐसे प्रसंगों पर सर्वत्र एक दुःख पूर्ण स्वर कहानी का परिणाम होता है जो चरित्र के भीतरी विकास से नहीं बल्कि सामाजिक बाह्य परिस्थितियों के साथ दुःखी व्यक्ति के असामंजस्य के कारण होती है। अधिकतर लेखिकाओं की सहानुभूति सदा वधुओं की ओर रहती है, वह पति-पत्नी में पत्नी की ओर, सास-बहू में बहू की ओर, जेठानी-देवरानी में देवरानी की ओर जाती है। इस प्रकार स्पष्ट है कि लेखिकाओं का पक्षपात आधुनिकाओं के ऊपर है। इसका कारण उनके मन में का आदर्श-घटित द्वन्द्व है। वैयक्तिक स्वाधीनता के इस युग में वैयक्तिकता का आदर्श अपेक्षाकृत तरुण युवक-युवतियों में अधिक प्रतिष्ठित हुआ है। सुभद्रा देवी के चरित्रों में इस आदर्श की जो रूप-प्राप्ति

हुई है वह अच्छा उदाहरण हो सकती है, इसलिए उनके सम्बन्ध में अपनी बात कुछ विस्तार के साथ कहने का प्रयत्न किया जाता है।

सुभद्रा जी की कहानियों में से अधिकांश जैसा कि ऊपर ही कहा गया है, बहुओं के विशेषकर शिक्षित बहुओं के दुःखपूर्ण जीवन को लेकर लिखी गई हैं। निःसन्देह वे इसकी अधिकारिणी हैं। उन्होंने किताबी ज्ञान के आधार पर या सुनी सुनाई बातों को आश्रय कर के कहानियाँ नहीं लिखीं वरन् अपने अनुभवों को ही कहानियों में रूपान्तरित किया है। निःसंन्देह उनके स्त्री-चरित्रों का चित्रण अत्यन्त मार्मिक और स्वाभाविक हुआ है फिर भी जो बात अत्यन्त स्पष्ट है वह यह है कि उनकी कहानियों में समाज-व्यवस्था के प्रति एक नकारात्मक घृणा ही व्यंग्य होती है। पाठक यह तो सोचता रहता है कि समाज युवतियों के प्रति कितना निर्दय और कठोर है पर उनके चरित्र में ऐसी भीतरी शक्ति या विद्रोह-भावना नहीं पाई जाती जो समाज की इस निर्दयता-पूर्ण व्यवस्था को अस्वीकार कर सके। उनकी पाठक-पाठिकायें इस कुचक्र से छूटने का कोई रास्ता नहीं पातीं। इन कहानियों में शायद ही कहीं चरित्र की वह मानसिक दृढ़ता मिलती हो जो प्रतिकूल परिस्थितियों में भी उसे विजयी बना सके, जो स्वेच्छा-पूर्वक समाज की बलि-वेदी पर बलि होने का प्रतिवाद करे। इसके विरुद्ध उनके चरित्र अत्यन्त निरुपाय-से होकर समाज की बहिशिखा में अपने को होम करके चुपके से दुनिया की आँखों से ओझल हो जाते हैं। स्पष्ट ही यह दोष है। परन्तु इस अवस्था के साथ जब सचमुच की परिस्थिति की तुलना करते हैं तो स्वीकार करना पड़ता है कि अधिकांश घटनायें ऐसी ही हो रही हैं। सुभद्रा जी की कहानियों में जो बात सबसे अधिक आकर्षक जान पड़ती है वह है उनकी सहानुभूतिपूर्ण दृष्टि। अपने प्रिय पात्रों के अन्तस्तल में वे बड़ी आसानी से पहुँच जाती हैं। सुभद्रा जी के पात्रों की सहजबुद्धि विहार की अपेक्षा परिहार की ओर, जूझने की अपेक्षा भागने की ओर, क्रिया की अपेक्षा निष्क्रियता की ओर, अधिक झुकी हुई है। मनोविज्ञान के पंडित इसको निगेटिव कैरेक्टर या नकारात्मक चरित्र के लक्षण बताते हैं। अभी हाल में एक समाज-शास्त्री का विश्वास था कि स्त्री का हृदय नेगेटिव या नकारात्मक होता है और पुरुष का हृदय पाजिटिव या धनात्मक होता है। समाज-शास्त्र के अभिनव प्रयोगों से यह विश्वास जाता रहा है पर इस बात में कोई सन्देह नहीं कि स्त्री का हृदय अधिकांशतः नेगेटिव या नकारात्मक है। जहाँ स्त्री-शिक्षा का अभाव है, पुरुष और स्त्री की दुनिया अलग-अलग है, वहाँ तो निश्चित रूप से स्त्री में नकारात्मक चरित्र की प्रधानता होती है। और समाज स्त्री के लिए जिन सुरूप रूप आदर्शों का विधान करता है उनमें एकान्त निष्ठा, व्रीड़ा, आत्मगोपन और विनय-शीलता आदि नकारात्मक गुणों की प्रधानता होती है। इस दृष्टि से सुभद्रा जी की कहानियों में भारतीय स्त्री का सच्चा चित्रण हुआ है। वे भारतीय स्त्रीत्व की सच्ची प्रतिनिधि बन सकी हैं। ऊपर जिस दोष का उल्लेख किया गया है वह सच्ची परिस्थिति के चित्रण रूप-गुण से प्रक्षालित नहीं हो जाता क्योंकि उसमें लेखिका की वह असफलता प्रकट होती है जो भारतीय स्त्री की यथार्थता के साथ वैयक्तिक स्वाधीनता के आदर्शों के सामंजस्य न कर सकने के कारण हुई है।

आदर्शगत सामंजस्य जो उपस्थित किया जा सकता है इसका उत्तम उदाहरण शिवरानी जी की कौमुदी की कई कहानियाँ हैं। 'आँसू की दो बूँदें' एक टिपिकल उदाहरण है। सुरेश की बेवफ़ाई कनक के विनाश का कारण नहीं हो जाती। वह अपने लिए दूसरा रास्ता खोज निकालती है। वह रास्ता सेवा का है। अगर उसका प्रेम नकारात्मक होता, अर्थात् उसमें लोभ की जगह विराग होता, क्रोध के स्थान पर भय का प्रादुर्भाव होता, आश्चर्य की जगह सन्देह का उदय होता, सामाजिकता की अपेक्षा एकान्त-निष्ठा का प्राबल्य होता, संगेच्छा की जगह व्रीड़ा का प्राबल्य होता तो शायद आत्मघात कर लेती। स्पष्ट ही भारतीय-स्त्री नामक पदार्थ उसमें कम है। भारतीय-स्त्री आदर्श के अनुकूल चरित्र में वही गुण होने चाहिए जो कनक में नहीं पाये जाते। इसी लिए कनक भारतीय स्त्री-समाज की प्रतिनिधि हो या न हो, उस आधुनिक आदर्श की प्रतिनिधि ज़रूर है, जो व्यक्ति-स्वाधीनता और सामाजिक-मंगलबोध के सामंजस्य में से अपना रास्ता निकालता है। सुभद्रा जी

उन वस्तुओं की प्रतिनिधि हैं जो उनकी कहानी की उपादान हैं, शिवरानी जी उस आदर्श की प्रतिनिधि हैं जो इस जाति की कहानियों की जान है।

कमलादेवी का 'पिकनिक' और होमवतीदेवी का 'निसर्ग' इन दोनों के बीच की चीज़ हैं। कमलादेवी अपने चरित्रों, उनकी क्रियाओं और उनकी परिणति की ओर जितनी सयत्न हैं उतनी उन रूढ़ विधियों की ओर नहीं जो इन चरित्रों, क्रियाओं और परिणतियों का नियमन करती हैं। निसर्ग में होमवती देवी इस ओर अधिक झुकी हैं। इसी लिए कमलादेवी में जहाँ वैयक्तिक स्वाधीनता के प्रति पक्षपात का स्वर प्रधान हो उठा है वहाँ होमवती देवी में रूढ़ियों की प्रधानता का स्वर। शायद यही कारण है कि कमलादेवी अपने चरित्रों में अनुभव के द्वारा काट-छाँट (विश्लेषण) करती हैं और होमवती-देवी कल्पना के द्वारा उन्हें मांसल करने की चेष्टा करती हैं।

(३)

प्रायः सभी कहानियों में जीवन को समझने का प्रयत्न किया गया है पर रास्ता सर्वत्र प्रायः एक ही है। यह रास्ता सामाजिक विधि-निषेधों के भीतर से होकर निकाला गया है। प्रत्येक चरित्र की परिणति और प्रत्येक घटना का सूत्रपात किसी सामाजिक विधि-निषेध के भीतर से होता दिखाया गया है। सम्भवतः यही हमारी बहनों का विशेष दृष्टिकोण हो। परन्तु उपहासच्छल से, आनुषंगिक रूप से या प्रतिषेध्य रूप में भी जीवन तक पहुँचनेकी तत्तद् विभिन्न दृष्टियों की कोई चर्चा नहीं पा सन्देह हो सकता है कि उन्होंने या तो जान बूझकर या अनजान में जीवन को अपने समस्त अंशों में, सब पहलुओं से देखने की उपेक्षा की है। इस विशेष बात में भी शिवरानीदेवी की कौमुदी कुछ कुछ अपवाद है। शेष तीन ग्रन्थ भी कभी-कभी विशेष दृष्टिकोण उपस्थित करते जान पड़ते हैं, प्रसंग आने पर उनकी चर्चा की जायगी।

मनुष्य चरित्र जिस रूप में आज परिणत हुआ है उसके कई कारण हैं। कई मनीषियों ने कई रूप में इसे समझने या समझाने की चेष्टा की है। अपनी विशेष दृष्टिकोण का समर्थन तब तक नहीं किया जा सकता जब तक पूर्ववर्ती दृष्टिकोण से इसकी श्रेष्ठता न प्रमाणित की जाय। इस प्रकार पूर्व मत के निरास-पूर्वक अभिनव मत को स्थापन करने का नियम है। कहानीकार दार्शनिक पंडित की भाँति ऐसा नहीं करता पर जीवन के प्रति उसका जो विशेषकर दृष्टिकोण है उसे वह कौशलपूर्ण ढंग से स्थापित करते समय अनभिप्रेत दृष्टिकोण की ओर उपेक्षा का भाव पैदा कर देता है। यह कार्य वह बहुत कौशल के साथ और बड़ी सावधानी के साथ करता है। हिन्दी में इस कला के सबसे बड़े उस्ताद प्रेमचन्द हैं। उनकी कहानियों में जीवन को समझने के बीसियों दृष्टिकोण बड़ी ख़ूबी से व्यक्त हुए हैं और उन सबके भीतर से अपनी अभिमत भंगी की ओर वे बड़ी कुशलता से इशारा कर देते हैं। अपने जीवन में उन्होंने जीवन को समझने के दृष्टिकोण बदले भी हैं, पर पुरानी दृष्टियों का खोखलापन दिखा कर। 'कफ़न' नामक कहानी एक उत्तम उदाहरण है। उसके पढ़ने से जीवन की कई व्याख्याओं की निःसारता प्रकट हो जाती है। जान पड़ता है कि लेखक ने अपने सामने इन व्याख्याओं को रख कर ही कहानी लिखी है। धार्मिक व्याख्या यह है कि भगवान् संसार को एक सामंजस्य पूर्ण विधान में रखने के लिए सतत प्रयत्नशील हैं। जो कोई जीव जहाँ कहीं भी जिस किसी रूप में दिख रहा है वह वहाँ उसी रूप में आने को बाध्य था। उसका वहाँ न रहना किसी महान् अनर्थ का कारण होता। सब कुछ भगवान् की ओर से निर्दिष्ट है, पाप और पुण्य, धर्म और कर्म, ऊँच और नीच। दूसरी व्याख्या नास्तिकों की है। प्रसिद्ध फ़्रेंच दार्शनिक टेन इस मत का पोषक है। जो कुछ भी जहाँ कहीं जिस किसी रूप में दिख रहा है वह तीन कारणों से हुआ है—जातिगत विशेषता के कारण, भौगोलिक, राजनीतिक, सामाजिक आदि परिस्थिति के कारण, ऐतिहासिक विकास-परम्परा के भीतर से आने के कारण। इन तीनों को अलग-अलग दृष्टि के रूप में स्वीकार करके भी जीवन की व्याख्यायें की गई हैं। एक प्रकार के पंडित हैं जो स्वीकार करते हैं कि भौगोलिक परिस्थिति ही हमारे समस्त विधि-निषेध, आचार-विचार, दर्शन-काव्य के मूल में है; एक दूसरे पंडित समस्त सद्गुण और असद्गुणों के कारण आर्थिक परिस्थिति में देखते

हैं। उनके मत से (मार्क्स इसके आचार्य हैं) आर्थिक सुविधा और असुविधा ही सामाजिक, धार्मिक और मानसिक विधान-शृंखला के वास्तविक मूल में हैं। 'कफ़न' में इस दृष्टिकोण की ही प्रधानता है। धार्मिक और सामाजिक दृष्टिकोण के प्रति उसमें कौशलपूर्ण प्रतिवाद भाव है। आर्थिक दृष्टिकोण की प्रधानता कुछ इस प्रकार उपस्थित की गई है कि मध्यम वर्ग के बहुविघोषित प्रेम और करुणा की कोमल भावनाओं का कोमलपन अत्यन्त खोखला हो कर प्रकट हुआ है। आलोच्य कहानियों में सामाजिक दृष्टिकोण और मध्यमवर्गीय कोमलता का भाव प्रबल तो जरूर है, (असल में वे मानों मध्यमवर्ग की कोमल भावना के प्रति न्याय-विचार की अपील हैं) पर अगर अविश्वासी चित्त इस अपील में विश्वास खो दे तो उनके पास कोई उत्तर नहीं रह जाता। कमलादेवी और सुभद्रादेवी की कहानियों में भी कभी कभी अप्रत्यक्ष रूप से भौगोलिक व्याख्या की ओर प्रवृत्ति दिखाई देती हैं, वे भारतीयस्त्री में एक खास विशेषता देखती हैं जो अनेक मानसिक परिणतियों की ज़िम्मेवार हैं और होमवतीदेवी में कभी वह भाव भी पाया जाता है, जिसे स्त्री और पुरुष की भेद-विधायक व्याख्या कह सकते हैं, और जिसके अनुसार स्त्री-चरित्र में कुछ खास गुण ऐसे हैं जो पुरुष-चरित्र में नहीं हैं और यही खास गुण अनेक परिणतियों के लिए जवाबदेह हैं। पर इन दृष्टिकोणों को कहीं भी परिस्फुट करके व्यंग्य करने का यत्न नहीं किया गया। कौमुदी में मनुष्य के व्यक्तित्व की प्रधानता स्वीकार की गई है। यह व्यक्तित्व परिस्थितियों को आत्म-समर्पण नहीं करता, प्रतिकूलपरिस्थितियों में अपना रास्ता निकाल लेता है, काल और समाज के प्रभाव से प्रतिहत नहीं होता। इस प्रकार इस विशेष दृष्टिकोण की प्रबलता के कारण शिवरानीदेवी की कहानियों में सामाजिक और पारिवारिक अवस्था के कारण जो लोग जीवन को सदा क्लान्त-क्लिष्ट देखते हैं उनका प्रतिवाद बड़े कौशल से हो गया है। यहाँ भी शिवरानीदेवी और सुभद्रादेवी का विरोध स्पष्ट हो उठता है। सुभद्रा जी के चरित्रों का व्यक्तित्व समाज के कठोर नियमों के कारण दब जाता है और शिवरानीदेवी के चरित्रों का व्यक्तित्व [illegible] के नियमों की कठोरता को प्रायः दबा देने में समर्थ हो जाता है। एक ने जीवन तक पहुँचने के लिए जो रास्ता बनाया है उसमें समाज के काँटेदार बेड़े पद पद पर बाधा पहुँचाते हैं, दूसरी ने इन बेड़ों को रौंद कर अपने मार्ग का निर्माण किया है।

देवियों के इस विशेष दृष्टिकोण का अर्थ क्या है?

(४)

आलोच्य कहानियाँ मध्यम श्रेणी के जीवन के उस मार्मिक द्वन्द्व और समस्याओं पर अवलंबित हैं जो पद पद पर समाज की गति निर्धारित कर रही हैं। किसी ने कहा है कि कोई कहानी तभी महत्त्वपूर्ण कही जा सकती है जब कि उसकी नींव मजबूती के साथ उन वस्तुओं पर रखी गई हो जो निरन्तर गम्भीर भाव से और निर्विवाद भाव से हमारी सामान्य मनुष्यता की कठिनाइयों और द्वन्द्वों को प्रभावित कर रही हों। महत्त्वपूर्ण कहानी केवल अवसर विनोदन का साधन नहीं होतीं। इस दृष्टि से ये कहानियाँ महत्त्वपूर्ण तो हैं ही, पर कहानीपन के अतिरिक्त भी इनके द्वारा हम अपनी सामाजिक समस्याओं की कुछ ऐसी गुत्थियों के सुलझाने का मार्ग क्या पा जाते हैं जो आसानी से समझ में नहीं आतीं?

हमने देखा कि ऊपर जिन कहानियों की आलोचना की गई है उनमें से अधिकांश की शिकायत है कि स्त्रियों के प्रति अन्याय हो रहा है। क्यों? क्योंकि समाज का संगठन अन्यायपूर्ण है। समाज का ऐसा संगठन क्यों हुआ? इस प्रश्न पर महिलाएँ कुछ प्रकाश नहीं डालना चाहतीं। स्पष्ट ही हम इस विषय के संशोधन की इच्छा रखते हुए भी हम उनकी सहायता से वंचित हैं। अँगरेज़ी कहावत है कि डिस्क्राइब् (वर्णन) करना सहज है, प्रेस्क्राइब् (उपाय निर्देश) करना कठिन। आलोचक महिलाओं की प्रवृत्तियों को यथा मति डिस्क्राइब् कर गया, वह प्रेस्क्राइब् क्या करे? मंथन से अमृत भी निकला, गरल भी निकला, तो क्या हुआ? इसका विनियोग कहाँ हो?

छूटते ही जो बात पाठक को लगती है वह यह है कि आलोच्य कहानियों की लेखिकायें परिवार और समाज (एक शब्द में 'समूह') पर से अपनी चिन्ता हटा नहीं सकतीं। इस एक बिन्दु पर ही उनका सारा ध्यान केंद्रित है। ये लोग निश्चय ही हमारे समाज के बहुत

ही महत्त्वपूर्ण आधे हिस्से की प्रतिनिधि हैं, इसलिए यह कहने में कोई संकोच नहीं कि स्त्री का समूचा ध्यान परिवार और समाज पर है। जब कि पुरुष इस व्यावसायिक युग के दुर्निवार्य प्रवाह में बह कर नाना घाटों में जा लगा है, जब कि व्यक्ति स्वाधीनता ने पुरुष की सौ महत्त्वाकांक्षाओं को नितरां उत्तेजित कर दिया है, जब कि आर्थिकचक्र के भीमवेग आघूर्णन ने कुटुम्ब की भावना को ही पीस डाला है, जब कि स्फीतकाय नागरिक सभ्यता ने पुरुष की कोमलता को एकदम कुचल डाला है, स्त्री परिवार, कुटुम्ब और समाज से और भी ज़ोर से चिपट गई है। उसके स्वभाव में ही समूह के प्रति निष्ठा है, उसने अपने रक्त से समाज में दलबद्धता पैदा की है, वह जीवशास्त्रियों-द्वारा निर्दिष्ट उस श्रेणी का जन्तु है जो दल बाँधकर ही रह सकते हैं, जो ग्रिगेरियस (Gregarious) हैं। उसने सहानुभूति के भीतर से ही अपने को बचाया है, अपनी रक्षा की है, आज भी सहानुभूति पर ही उसका विश्वास है। शरीर बल से जो पशु की सम्पत्ति है, वह हार चुकी है, न्याय और सद्भावना पर उसका विश्वास इसी लिए और भी दृढ़ हो गया है।

आधुनिक सभ्यता का सर्वाधिक कठोर वज्रपात स्त्री पर हुआ है। उसने स्त्री को न केवल स्थानच्युत किया है, उसको केंद्र से दूर फेंक दिया है, बल्कि उसमें विकट मानसिक द्वंद्व भी ला दिया है। हमारी आलोच्य कहानियों में केंद्रच्युति की ओर से कोई शिकायत नहीं की गई है, स्पष्ट ही हमारी देवियों ने इस महान् अनर्थ को महसूस नहीं किया है, जो व्यक्ति स्वाधीनता का पुछल्ला होकर आता है, ठीक उसी प्रकार, जिस प्रकार व्यावसायिक-क्रान्ति के पीछे व्यक्ति-स्वाधीनता आती है। परन्तु दूसरी बात को हमारी देवियों ने महसूस किया है। रुढ़ि-समर्पित आदर्श स्त्री और व्यक्ति स्वाधीनता से प्रभावित आधुनिक-स्त्री का द्वन्द्व हमारी आलोच्य कहानियों में पदे पदे दिखाई देता है। यह एक अद्भुत विरोधाभास है कि इन कहानियों में एक ही साथ व्यक्ति स्वाधीनता और समाज-निष्ठा दोनों को स्वीकार कर लिया गया है, मानों इनमें कोई विरोध ही न हो, मानों वे दोनों एक ही चित्र के दो पहलू हों। पर हम अगर इन विरुद्धाभासित कोटियों में सामंजस्य खोजना चाहें तो हमें ज्यादा देर भटकना नहीं पड़ेगा। आधुनिक-शिक्षा ने स्त्री में भी पुरुष की भाँति महत्वाकांक्षा के भाव भर दिये हैं, वह भी पुरुष के साथ प्रतिद्वंद्विता के लिए निकल पड़ी है, परन्तु पुरुष की भांति उसकी स्वाधीनता में लापरवाही नहीं है। वह वर्तमान परिस्थितियों के साथ समाज का सामंजस्य चाहती है। वह जो कुछ नया करने जा रही है उसके लिए समाज की स्वीकृति चाहती है। वह उस नई समाज-व्यवस्था को गढ़ने के लिए व्याकुल है जो स्त्री की महत्वाकांक्षा का विरोधी न हो। स्त्री की वैयक्तिकता समाज की स्वीकृति चाह कर समाज की प्रधानता को स्वीकार कर लेती है। आलोच्य कहानियों में इसी स्वीकृति का प्रयत्न है।

समाज को स्त्री ने जन्म दिया था। दलबद्धभाव से रहने के प्रति निष्ठा होने के कारण वह उसी (समाज) की अनुचरी हो गई। पुरुष यहाँ भी आगे निकल गया। वह समाज से भागना चाहता था। स्त्री ने अपना हक़ त्याग कर उसे समाज में रखा, उसके हाथ में समाज की नकेल दे दी। पुरुष समाज का विधायक हो गया। इतिहास उलट गया। ज़माने के साथ ग़लतियों की मात्रा बढ़ती गई; पुरुष अकड़ता गया, स्त्री दबती गई। आज वह देखती है कि उसी के बुने हुए जाल ने उसे बुरी तरह जकड़ डाला है। वह उसे प्यार भी करती है, वह उससे मुक्त भी होना चाहती है। यही द्वंद्व है। यही समस्या है। यही विरोधाभास है। वह फिर एक बार इसे अपने हाथों खोल कर फिर से बुनेगी? उचित तो यही था, पर हमारी देवियाँ इस विषय में मौन हैं।

क्या उर्दू राष्ट्रभाषा हो सकती है ?

लेखक, पंडित वेंकटेश नारायण तिवारी

सन् १९३८ के अन्तिम सप्ताह में 'पीरपुर-रिपोर्ट' नाम की एक पुस्तिका आल-इंडिया-मुस्लिम लीग के देहलीवाले आफ़िस से प्रकाशित हुई थी। इस 'रिपोर्ट' को मुस्लिम लीग की कौंसिल द्वारा नियुक्त जाँच-कमिटी ने तैयार किया था। जाँच का विषय था 'कांग्रेसी सूबों में मुसलमानों की शिकायतें'। इस रिपोर्ट में लगभग १०० पृष्ठ हैं। आकार है इसका रायल अठपेजी। यह तीन भागों में विभक्त है, और सब मिलाकर इसमें १७ अध्याय हैं। इसमें कांग्रेसी प्रान्तों के मुसलमानों की जिन कथित शिकायतों का उल्लेख है उनका समूल खण्डन विभिन्न प्रान्तों की कांग्रेसी सरकारों ने तत्काल ही कर दिया था। इस लेख में 'पीरपुर-रिपोर्ट' में संगृहीत कपोल-कल्पित लांछनों का निराकरण हमारा ध्येय नहीं है। हमें तो इससे भी कोई सरोकार यहाँ नहीं है कि उसमें जो कुछ कहा गया है वह ठीक है या ग़लत। इस लेख में तो हम अपने पाठकों का ध्यान उसके ११वें अध्याय में कही गई कुछ बातों की ओर दिलाना चाहते हैं। इस अध्याय का शीर्षक है 'भाषा और संस्कृति' अथवा 'ज़बान और तमद्दुन।' रिपोर्ट अँगरेज़ी-भाषा में लिखी गई है।

भाषा के सम्बन्ध में 'पीरपुर-कमिटी' का कहना है कि इस शताब्दी के आरम्भ से साम्प्रदायिक विद्वेष फैलने लगा, जिसका परिणाम यह हुआ कि जो उर्दू उस समय तक भारत की राष्ट्र-भाषा मानी जाती थी वह केवल मुसलमानों की ज़बान कही जाने लगी। आगे चलकर कमिटी यह भी फ़र्माती है कि मुसलमानों ने उर्दू को अपनी मादरी ज़बान बनाने का निश्चय कर लिया और उसे दत्तचित्त होकर अपना लिया। उनका समस्त साहित्य-भांडार—ज्ञान-विज्ञान की सब शाखाओं से संबंध रखनेवाला साहित्य—का निर्माण इसी भाषा में हुआ है। इसी लिए मुसलमान अरबी-लिपि में लिखी हुई उर्दू के संरक्षण को इतना महत्त्व देते हैं। उर्दू-साहित्य में मुसलमानी संस्कृति या कल्चर निहित है। पीरपुर-कमिटी का यह भी कहना है कि भारतवर्ष में मुसलमानों के कल्चर के नाम की एक संस्कृति विद्यमान है।

इस लेख में पीरपुर-कमिटी के उपर्युक्त दो कथनों में से एक को मैं जाँच की कसौटी पर कसने की चेष्टा करूँगा। वे दोनों कथन इस प्रकार हैं—(१) क्या उर्दू हिन्दुस्तान की राष्ट्र-भाषा है या थी या हो सकती है? (२) क्या हिन्दुस्तान में मुसलमान-कल्चर नाम की कोई संस्कृति विद्यमान है और यदि है तो उसका वास्तविक स्वरूप क्या है? इन दोनों बातों की जाँच-पड़ताल के बाद मुझे आशा है कि सब पाठक मुझसे इस बात में सहमत हो जायँगे कि उर्दू-साहित्य इस्लाम-विरोधी और अराष्ट्रीय है। अतएव उर्दू-साहित्य को मुसलमानों के कल्चर का स्वरूप मानना जितना ही ग़लत है, उतना ही इस्लाम और हिन्द के प्रति विश्वासघात करना है। पहले प्रश्न पर विचार हम इस लेख में करेंगे, दूसरे प्रश्न का उत्तर विस्तार-सहित जनवरी की 'सरस्वती' में निकलेगा।

क्या उर्दू-भाषा राष्ट्र-भाषा कभी थी या हो सकती है? राष्ट्र-भाषा का लक्षण क्या है? क्या हिन्द की वह भाषा राष्ट्र-भाषा हो सकती है जिसमें स्वदेशी शब्द छूत माने जाते हों और उनके स्थान में परदेशी शब्दों को आदर के साथ अपनाने की प्रबल प्रवृत्ति हो? हिन्दी के पाठकों को शायद यह मालूम न हो कि उर्दू के अहले ज़बानों, उर्दू-भाषा के आचार्यों, ने उर्दू के जन्म-काल ही से मतरूकात के उसूल—छूत के सिद्धान्त—की घोषणा कर दी और आज दिन तक उसी नियम का पालन करते जा रहे हैं। मतरूकात का यह नियम क्या है? संक्षेप में इसका अर्थ है निषेध का नियम। उर्दू के आचार्यों की सम्मति में हिन्दी और संस्कृत के शब्द उर्दू-भाषा के लिए त्याज्य हैं, अतएव उनका प्रयोग करना निषिद्ध है। इसी लिए उर्दू की पुस्तकों में अव्ययों, सर्वनामों और क्रिया-पदों को छोड़कर बाक़ी सब शब्द परदेशी मिलते हैं। उर्दू को राष्ट्र-भाषा कहनेवाले लोग इस तरह की साहित्यिक तंगदिली और राष्ट्र-विरोधी मनोवृत्ति से काम क्यों लेते हैं? बात अचरज की है अवश्य, लेकिन साथ

ही यह सत्य भी है कि उर्दू के मौलवियों ने आरम्भ ही से इस नीति का अवलम्बन किया है। उर्दू के आदि-कवि वली कहे जाते हैं। वली के साहित्यिक जीवन के दो भाग हैं—पूर्व-काल और उत्तर-काल। पूर्व-काल की उनकी कविताओं में हिन्दी के शब्द काफ़ी मात्रा में मौजूद हैं, लेकिन बाद में शाह शाद उल्लाह गुलशन की नसीहत ने उनकी कायापलट कर दी। शाह साहब ने वली से फ़र्माया—

"ई हमः मज़ामीन फ़ारसी कि बेकार उफ़्तादह अन्द दर रेख़तः बकार बबर। अज़ तू कि महासिबः ख्वाहिद गिरफ़्त ॥"

"ये इतने सारे फ़ारसी के मज़मून जो बेकार पड़े हैं उनको अपने रेख़ते में इस्तेमाल कर। कौन तुझसे जायज़ (हिसाब) लेगा ?"

ऊपर के उद्धृत वाक्य के अन्तिम अंश को ग़ौर से देखिए। शाह साहब ने वली से फ़र्माया है—"कौन तुझसे जायज़ (हिसाब) लेगा ?" इस पराधीन ग़ुलाम-देश में देशी को लतियानेवाले और परदेशी को अपनानेवाले से कौन, कब और कहाँ हिसाब माँगता है ? वली के समय से उर्दू-भाषा और साहित्य में परदेशीपन का नक़ली मुलम्मा चढ़ाना शुरू हुआ। शाह हातिम और शाह हातिम के बाद इन्शा और इन्शा के बाद नासिख़ हुए। और इनमें से हर एक ने देशी शब्दों को निकालने और परदेशी शब्दों के अपनाने पर ज़ोर दिया। हर ज़माने में, उसके पूर्व के ज़माने की तुलना में, हिन्दी और संस्कृत के शब्दों को निकालकर अरबी और फ़ारसी के शब्दों के प्रति अनुराग बढ़ता गया। नासिख़ का फ़तवा साहित्यिक और राष्ट्रीय दृष्टि से बड़े महत्त्व का है। मैं चाहता हूँ कि प्रत्येक हिन्दी के घर में यह काले अक्षरों में छापकर टाँग दिया जाय। इससे लोगों को पता लगेगा कि एक गिरी हुई क़ौम के अहले ज़बान, भाषा-विशारद, किस तरह अपनों को ठुकराते और ग़ैरों को अपनाते हैं और इसी में अपना बड़प्पन समझते हैं। पतित जाति का पूरा पतन तभी होता है जब वह अपने से घृणा करने लगती है और अपने से उसकी घृणा इस हद तक बढ़ जाती है कि वह पराये के नक़ली जामे को पहनकर अपने पतन की लज्जा को भुलाने की चेष्टा करने लगती है। नासिख़ का कथन नीचे उद्धृत किया जाता है—

"जिस लफ़्ज़ हिन्दी में अहले-उर्दू ने तसर्रुफ़ करके लफ़्ज़ बना लिया है उसमें सिवा हिन्दी लफ़्ज़ों का इस्तेमाल जायज़ नहीं और जिस लफ़्ज़ में तसर्रुफ़ न हुआ हो उसको इस्तेमाले फ़सहा के मुताबिक़ बाँधना चाहिएं।" और "चूंकि इसमें हर शख़्स को दख़ल देना मुश्किल था, इसलिए उसूल इसका यह रक्खा कि फ़ारसी और अरबी अल्फ़ाज़ जहाँ तक मुफ़ीद माने मिलें हिन्दी अल्फ़ाज़ न बाँधो।"

नासिख़ के इस फ़तवे का उर्दू नस्र पर (गद्य) क्या असर हुआ, इसका पता 'जलवये ख़िज़्र' के लेखक के शब्दों में आप पढ़ लीजिए—

"बाद ग़दर के अहले-लखनऊ की सुहबतों ने तमाम हिन्द में उसूले-ज़बाने-लखनऊ को जारी कर दिया और देहली ने भी अपनी पुरानी गुदड़ी में नये नये पैवन्द लगाये और बहुत सी पुरानी तरकीबों और पुराने मुहाविरों को छोड़कर लखनऊ की तरकीब अख़्तियार कर ली।... नस्रवालों ने नस्र और नज़्मवालों ने नज़्म (पद्य) की दुरुस्ती की। सरकारी स्कूलों में बावजूद 'क़वायद गिलक्रिस्ट' और 'दरिया-ए-लताफ़त' के नई किताब क़वायद उर्दू में नासिख़ के उसूल पर लिखवाई गई। अहले-अख़बारों ने अपने अपने मुक़ाम पर इबारत का ढंग दुरुस्त किया। ग़रज़ सब एक ही रंग में डूब गये।"

पीरपुर-कमिटी के सदस्य इस तरह जबरन बनाई गई ज़बान को हिन्दुस्तान की राष्ट्र-भाषा कहते हैं, जिसमें आँख की जगह 'चश्म' और कान की जगह 'गोश' दिखाई देने लगते हैं ! नासिख़ का तो दावा था कि उसने लखनऊ को अस्फ़हान बना दिया।

"बुलबुले शीराज़ को है रश्क नासिख़ का सुरूर।
इस्फ़हान उसने किये हैं कूचः हाये लखनऊ॥"

लखनऊ को आपने इस्फ़हान बनाने का दावा किया और हिन्दुस्तान को फ़ारस क़रार दिया। मौलाना आज़ाद ने अपने 'आबेहयात' में कहा है कि "नासिख़ की ज़बान" "दवाओं का प्याला है" जिसका जी चाहे पिया करे"। उसकी सादगी और शीरीं अदाई

तो खाक में मिल गई।" हिन्दीपन से उसने तो हाथ धो लिया। डाक्टर मौलाना अब्दुल हक़ ने भी एक जगह यह स्वीकार किया है—"हमारे शोअरा (कवियों) ने हिन्दी लफ़्ज़ मतरुकात (निषिद्ध) और यही नहीं बल्कि बाज़ अरबी-फ़ारसी अल्फ़ाज जो ब तग़ैयुर हैयत या बे तग़ैयुरर लफ़्ज़ उर्दू में दाखिल हो गये थे, उन्हें ग़लत क़रार देकर दूसरी सूरत में पेश किया और उसका नाम इस्लाह ज़बान में रक्खा।" यह है उर्दू-भाषा। इसी को हमारे मुसलमान भाई भारतवर्ष की राष्ट्र-भाषा कहते हैं! लखनऊ के 'अहले ज़बान' जिस ज़बान को बोलते हैं उसे वे बंगाल, महाराष्ट्र, गुजरात, राजस्थान और मदरास की राष्ट्र-भाषा के नाम पर चलाने का ख़्वाब देख रहे हैं। संस्कृत के जिन अनेक तद्भव और तत्सम शब्दों का देश में अनन्त काल से चलन है उनका प्रयोग निषिद्ध माना जाता है और उनके स्थान पर अरबी और फ़ारसी के शब्दों का चलन है। यह क्यों? सिर्फ़ इसी लिए न कि मुस्लिम लीग के कुछ दीवाने चाहते हैं कि नासिख़ की तंग चहारदीवारी के बाहर अगर राष्ट्र-भाषा निकल गई तो उनके फ़िरक़े-वाराना दिलों को ठेस लगेगी?

उर्दू का असली दुश्मन वह नहीं है, जो हिन्दी की हिमायत करता है और जो हिन्दी-हिन्दुस्तानी का पक्षपाती है, किन्तु सच्चे दुश्मन वे हैं जो उसे परदेशी बनाने की धुन में रात दिन पागल हो रहे हैं। उर्दू को मारनेवाले, उसका गला घोटनेवाले वे लोग हैं जिन्होंने वली से लेकर नासिख तक के उर्दू-शायरों के द्वारा प्रतिपादित निषेधवाद—मतरुकात के क़ायदे—की कठोर रस्सी से कसकर उर्दू ज़बान की नैसर्गिक वृद्धि और विकास को मार दिया। उन्होंने अपने साथ अन्याय किया। आत्महत्या करने का उन्हें पूर्ण अधिकार है। अपनी प्रतिभा के साथ वे विश्वासघात करें या न करें, इससे हमें कोई सरोकार नहीं। लेकिन एक प्रान्तिक भाषा के नैसर्गिक विकास को इन घातक मित्रों ने इन नादान दोस्तों ने सदा के लिए इस बेरहमी और बेदर्दी से, इस अदूरदर्शिता से, खत्म करने की जो बेजा हरकत की या कर रहे हैं, उसे देखकर किस सहृदय साहित्य-सेवी का हृदय न भर आयेगा? इसी भाषा के सम्बन्ध में 'पीरपुर-कमिटी' के सदस्यों ने यह भी रोना रोया है कि उर्दू पहले ही से हिन्दुस्तान की राष्ट्र-भाषा मानी जाती थी। उसे इस बीसवीं सदी के आरम्भ से लोगों ने सिर्फ़ मुसलमानों की भाषा कहना शुरू कर दिया! उन्हें क्या याद न रहा अपने अहले ज़बानों का यह फ़तवा—"हिन्दुओं की मोशल हालत उर्दू-ए-मुअल्ला को उनकी मादरी ज़बान नहीं होने देती।" सर सैयद अहमदखाँ ने भी तो उर्दू को महज़ मुसलमानों की ज़बान स्वीकार किया है। उनका कहना है—"चूँकि यह ज़बान खासतौर से बादशाही बाज़ारों में मुरव्वज थी, इस वास्ते इस ज़बान को उर्दू कहा करते थे और बादशाह, अमीर, उमरा इसको बोलते थे। गोया हिन्दुस्तान के मुसलमानों की यह ज़बान थी।" इसी तरह मौलाना हाली तक ने यह स्वीकार किया है कि उर्दू के कोष का लिखनेवाला शरीफ़ मुसलमान हो सकता है "क्योंकि ख़ुद देहली में भी फ़सीह उर्दू सिर्फ़ मुसलमानों की ज़बान समझी जाती है।" ठीक ही हमारे दोस्त श्री चन्द्रबली पाण्डेय ने कहा है—"उर्दू को हम कैसे और किस न्याय से मुल्क की राष्ट्र-भाषा मान लें! वह तो मुसलमानों की भी नहीं, बल्कि एक जत्थे की बनावटी ज़बान है, जो आज अदबी ज़बान के रूप में मुल्क में फल-फूल कर फैल गई है। .... उसमें हिन्दू-मुस्लिम एकता नहीं, बल्कि अरबियत और फ़ारसियत की बनावट है। उर्दू-भाषा मुसलमानों के पतन और हिन्दवी के बहिष्कार का इतिहास है।"

उर्दू में अरबी और फ़ारसी के इस्तेमाल पर क्यों इतना ज़ोर दिया जाता है? इस दुर्बलता, इस साहित्यिक कमज़ोरी, की तह में क्या छिपा है? क्यों उर्दूवाले दूसरे की जूठन को महाप्रसाद समझते हैं? एक जगह मौलाना अब्दुल हक़ ने स्वीकार किया है कि "तुर्कों ने अपनी ज़बान से ग़ैर ज़बान के लफ़्ज़ निकालना शुरू कर दिया है। ईरान में भी यही कोशिश हुई, लेकिन नाकामयाब हुई, लेकिन वे फिर तुर्कों की तरह ग़ैर ज़बान के लफ़्ज़ निकाल देने पर आमादः नज़र आते हैं।" तुर्क भी मुसलमान हैं, और ईरानी भी मुसलमान हैं। पहले अगर अरबी और फ़ारसी अल्फ़ाज अपनी ज़बान से निकाल देते हैं और दूसरे अरबी-शब्दों का बहिष्कार करते हैं तो हिन्दुस्तान के किसी मुसलमान को यह जुर्रत नहीं होती कि वे तुर्कों और ईरानियों को इस्लाम-द्रोही या मुस्लिम कलचर का संहारक कहें! ईरानवाले

आज़ाद हैं, तुर्क भी आज़ाद हैं, इसलिए दोनों अपनी-अपनी ज़बान से परदेशी लफ़्ज़ों को निकाल फेंकना चाहते हैं। लेकिन ग़ुलाम हिन्दुस्तान के ग़ुलाम मुसलमान "हुर्रियत (स्वतन्त्रता) का ताज सर से उतार कर ग़ुलामी का तौक़" पहनना पसन्द करते हैं। इसी लिए उनको अपनी हर चीज़ ज़लील मालूम होती हैं; इसी लिए "ग़ैर ज़बान के लफ़्ज़ उनकी निगाह में निहायत शानदार और अरफ़ा हो जाते हैं और अपनी ज़बान का लफ़्ज़ हक़ीर और मुब्तज़ल मालूम होता है।"

हम भी साश्चर्य पूछते हैं कि क्या उर्दू गिरी हुई क़ौम की निशानी है या पतन और निराशा की पुकार है। उर्दू हिन्द-राष्ट्र की भाषा कभी भी न थी। सर सैय्यद अहमद के शब्दों में "इसको बादशाह, अमीर-उमरा बोलते थे"। मुसलमानी दरबारों की यह भाषा अवश्य थी, लेकिन जनता को न तो इससे कोई सरोकार था और न इसको जनता से कोई सरोकार था। मुसलमानी दरबारों की इस कृत्रिम भाषा को राष्ट्र-भाषा का पद देना साम्प्रदायिक संकीर्णता ही को राष्ट्रीयता समझ लेना है। हिन्द की राष्ट्र-भाषा वह होगी जिसकी शब्द-परम्परा और अर्थ-परम्परा भारतीय हो—जिसकी प्रेरणा-शक्ति का स्रोत भारतीय आत्मा में हो और जो अपने उत्थान, विकास और वृद्धि के लिए परदेशी ज़बान और साहित्य की भिखारिणी न बने। उसका बोल अपना बोल हो। उसमें जो तेज़ हो वह ईश्वरीय देन हो। उसका चमत्कार नैसर्गिक हो। अपनी प्रतिभा के जादू से वह अपने बोलनेवाले को सक्रिय और सजीव बनाने में समर्थ हो। उर्दू की उन्नति तो उसी दिन लुप्त हो चुकी, जिस दिन शाह शाद उल्लाह गुलसन के इशारों पर वली ने फ़ारसी मज़ामीनों और फ़ारसी और अरबी के लफ़्ज़ों और मुहाविरों को अपनाया। उसी घड़ी से उर्दू हिन्द की ज़बान न रह गई।

पंडित रामचन्द्र शुक्ल के एक निबन्ध से हम नीचे कुछ अवतरण दे रहे हैं जिनमें उन्होंने राष्ट्र-भाषा होने की क्षमता रखनेवाली भाषा का सच्चा चित्र खींचा है—

"साहित्य की अखण्ड दीर्घ परम्परा सभ्यता का लक्षण है। यह परम्परा शब्द की भी होती है और अर्थ की भी। शब्द-परम्परा भाषा को स्वरूप देती है और अर्थ-परम्परा साहित्य का स्वरूप निर्दिष्ट करती है। ये दोनों परम्परायें अभिन्न होती हैं। इन्हें एक ही परम्परा के दो पक्ष समझिए। किसी देश की शब्द-परम्परा अर्थात् भाषा कुछ काल तक चलकर जो अर्थ-विधान करती है वही उस देश का साहित्य कहलाता है। कुछ काल तक लगातार चलते रहने से शब्द-परम्परा या भाषा को भी एक विशेष स्वरूप प्राप्त हो जाता है और अर्थ-परम्परा या साहित्य को भी। इस प्रकार दोनों के स्वरूपों का सामंजस्य रहता है। इस सामंजस्य में यदि बाधा पड़ी तो साहित्य देश की प्राकृतिक जीवन-धारा से विच्छिन्न हो जायगा और जनता के हृदय का स्पर्श न कर सकेगा। यदि अर्थ-परम्परा का स्वरूप बनाये रखकर शब्द-परम्परा का स्वरूप बदला जायगा तो परिणाम होगा "कोयल का नग़मा" और "महात्मा जी के अलफ़ाज़"। यदि शब्द-परम्परा स्थिर रखकर अर्थ-परम्परा या वस्तु-परम्परा बदली जायगी तो आपके सामने "स्वर्ण अवसर" आयगा, "हृदय के छाले" फूटेंगे और "दुपट्टे फाड़े जायँगे।"

"भाषा या साहित्य के विशिष्ट स्वरूप प्राप्त करने का अभिप्राय यह नहीं है कि उसमें बाहर से आये हुए नये शब्द और नई नई वस्तुएँ न मिलें। उसमें नये नये शब्द भी बराबर मिलते जाते हैं और नये नये अर्थों या वस्तुओं की योजना भी होती जाती है, पर इस मात्रा में और इस ढब से कि उसका स्वरूप अपनी विशिष्टता बनाये रहता है। हम यह बराबर कह सकते हैं कि वह इस देश का, इस जाति का और इस भाषा का साहित्य है। गंगा एक क्षीण धारा के रूप में गंगोत्तरी से चलती है; मार्ग में न जाने कितने नाले, न जाने कितनी नदियाँ उसमें मिलती जाती हैं, पर सागर-संगम तक वह 'गंगा' ही कहलाती है, उसका 'गंगापन' बना रहता है।........

"हमारा गर्व यह सोचकर और भी बढ़ जाता है कि यह परम्परा इतनी प्रबल और शक्तिशालिनी सिद्ध हुई कि इधर सौ वर्ष से —अर्थात् अँगरेजी राज्य के पूर्णतया प्रतिष्ठित हो जाने के पीछे—इसे बन्द करने के तरह तरह के प्रयत्न कुछ लोगों के द्वारा समय समय पर होते आ रहे हैं, पर यह अपना मार्ग निकालती चली आ रही है। इस विरोध का मूल हमारे उन मुसलमान भाइयों की निर्मूल आशंका है जो अपनी भाषा और अपने साहित्य को

विदेशी साँचे में ढालकर अपने लिए अलग रखना चाहते हैं। यदि वे अपनी भाषा और अपने साहित्य की एक अलग परम्परा रखना चाहते हैं तो हमारे लिए यह प्रसन्नता की बात है। इधर अपनी भाषा की छटा, अपने साहित्य की विभूति हमारे सामने रहेगी, उधर उनके साहित्य के चमत्कार से भी हम अपना मनोरंजन करेंगे। यही मौक़ा उन्हें भी रहेगा। मनोरंजन के क्षेत्र एक से दो रहें तो अच्छी बात है। यही स्थिति मुसलमानी अमलदारी में रही है। दिल्ली और दक्खिन के बादशाह फ़ारसी-कविता का भी आनन्द लेते थे और परम्परागत हिन्दी-कविता का भी। फ़ारसी के स्थान पर जब उर्दू की शायरी होने लगी तब भी यही बात रही। अनेकरूपता का नाम ही संसार है। सौंदर्य्य की विभूति अनेक रूपों में प्रकट होती है। सहृदय उन सबमें आनन्द का अनुभव करते हैं। अकबर की बात छोड़ दीजिए जो आप कभी कभी हिन्दी में कविता करता था; औरंगज़ेब तक के दरबार में जाकर हिन्दी-कवियों का कविता सुनाना प्रसिद्ध है। रहीम, रसखान, गुलाम नबी इत्यादि का नाम हिन्दी के अच्छे कवियों में है।"

पंडित रामचन्द्र जी शुक्ल ने राष्ट्र-भाषा के सम्बन्ध में जो कुछ कहा है उसकी तुलना उर्दू-भाषा के साथ कीजिए। उसका तो दायरा ही निराला है। आपको तुरन्त यह मालूम हो जायगा कि उर्दू कदापि राष्ट्रभाषा नहीं हो सकती। उसने तो मुस्लिम दरबारों की राजभाषा फ़ारसी का स्थान ग्रहण किया। इसीलिए वह फ़ारसी-भाषा की हिन्दवी प्रतिलिपि है। देश से उसका कोई संबंध नहीं, सम्पर्क नहीं। "उस दायरे से", शुक्ल जी ही के शब्दों में, "जगत, चंचल, नार, गुन, अकास, धरम, धन, करम, दया, बीर, बली ऐसे शब्द एकदम निकाल बाहर हुए। इसी प्रकार वस्तुओं में न कमल और न भौंरे रह गये, न वसन्त और कोकिल, न वर्षाऋतु रह गई, न सावन की हरियाली न भीम और अर्जुन रह गये, इस प्रकार उसकी परम्परागत भाषा के आधे हिस्से से और परम्परागत साहित्य के सर्वांग से अर्थात् देश के सामान्य जीवन से उर्दू दूर हटा दी गई। जबरदस्ती जान-बूझकर हटाई गई, आपसे आप नहीं हटी। उर्दू के इस रूप में आने का परिणाम यह हुआ कि अपना प्रसार करने की स्वाभाविक शक्ति उसमें न रह गई, वह अपने को बनाये रखने के लिए मकतबों और सरकारी दफ़्तरों की मोहताज हो गई।"

समाधान

लेखिका, कुमारी रूपकुमारी वाजपेयी बी० ए०

किसने कब सब कुछ है पाया ?
तरु-गोदी में सुख से बढ़कर,
देव-गणों के मस्तक चढ़कर,
सबका प्रिय रह चुका कभी जो फूल वही जाता ठुकराया।

शान्ति-निराशा के सखि! रेले,
एक समय प्रभु ने भी झेले,
हँसी और आँसू में जीवन,
क्यों केवल दुख गले लगाया ?

आशा-दीपक पर परवाना,
बनकर री! मन का मँडराना,
खेल सदा यह होनेवाला,
खेल सदा यह होता आया।

रिक्ता

अनुवादक, पण्डित ठाकुरदत्त मिश्र

सविता एक डिप्टी कलक्टर की कन्या थी। छुटपन में ही पिता की गोद से बिछुड़ जाने के बाद समृद्ध और साधन-सम्पन्न पितृव्यों से उपेक्षित होने के कारण उसे माता के साथ अपने धनहीन किन्तु सम्मान-प्रिय एवं धर्मप्राण नाना के ही यहाँ आश्रय लेना पड़ा। इसलिए शिक्षा और सदाचार से युक्त होने पर भी ऊपरी तड़क-भड़क से वह वञ्चित रही, और यही कारण था कि अपने सुशिक्षित और रूप-गुण सम्पन्न पति के प्रिय न हो सकी। फल यह हुआ कि सविता घर में दासी का-सा जीवन व्यतीत करने को बाध्य हुई और अरुण उसके कारण घर से दूर दूर रहने लगा।

(९)

मेनका ने कहा—जब जाना होगा तब तू भी चला जायगा, मुझे क्या पड़ी है कि मैं उनसे कहने जाऊँ!

"कहोगी नहीं तब क्या जाने देंगे खाक? अच्छा दार्जिलिंग न सही, तो कटक ही हो आऊँ। वहीं जाने के लिए कह दो। कहोगी न ?

मेनका का हृदय दुखी हो उठा था। उन्होंने कहा—अच्छा जब जायगा तब देखा जायगा।

सविता का भी चित्त उस दिन बहुत ऊब रहा था। समस्त दिन रह रह कर केवल यही बात उसके मन में आती रही कि यदि नाना जी आते और एक बार मुझे अपने यहाँ ले जाते तो चार दिन अपने इस सन्तप्त हृदय को शीतल कर आने का अवसर मुझे मिल जाता। परन्तु संभव है कि सास जी मुझे जाने ही न दें। वे वहाँ भेजने में बड़ी आपत्ति करेंगी। इसके सिवा पुलक!

सविता को यदि नाना के यहाँ जाने का अवसर मिल जाता तो वह शान्ति की साँस ले पाती, एक प्रकार से उसका बन्धन कट जाता। परन्तु यहाँ उसका जो कर्त्तव्य था उसके कारण उसका हृदय जाने के लिए ज़रा भी नहीं तैयार हो पाता था। पुलक के ऊपर उसके स्नेह का अधिकार चाहे कितना भी रहा हो, किन्तु कर्त्तव्य का दायित्व उसकी अपेक्षा कहीं अधिक था। इस कर्त्तव्य-पालन के निमित्त अपने स्वार्थ का बलिदान करने की अपेक्षा उसके लिए कोई दूसरा रास्ता नहीं था।

इस परिवार में सविता का पावना चाहे कितना ही कम क्यों न हो, किन्तु देने का जितना अधिकार है, उतना दिये बिना वह कैसे रह सकती थी? इस सम्बन्ध में तो परिवार के लोग ज़रा भी त्रुटि नहीं सहन कर सकते थे। वे लोग तो इतना भर जानते थे कि हम जब हाथ फैलायें तब भर दिया जाय। उनसे इस बात से मतलब नहीं कि भाण्डार में हमने जमा कितना किया है! या देने की क्षमता तुममें कितनी है।

दोपहरी में पुलक को सुलाकर सविता बैठी हुई सिलाई का कोई काम कर रही थी। इतने में एकाएक मेनका ने आकर कमरे में प्रवेश किया। आश्चर्य में आकर सविता एकाएक उठ कर खड़ी होगई।

मेनका ने कहा—बहू, लिफ़ाफ़ा या पोस्टकार्ड तुमने कुछ मँगा रक्खे हैं?

सविता ने कहा—हैं तो मा। दूँ आपको?

दीवार की ओर ताकती हुई मेनका एकाग्रभाव से कुछ सोचती रहीं। ज़रा देर के बाद वे कहने लगीं—मुझे आवश्यकता नहीं है। तुम ज़रा एक काम करो। अरुण को अच्छी-सी एक चिट्ठी तो लिख दो।

लज्जा और क्षोभ के मारे सविता का मुंह लाल हो उठा। वह मस्तक झुकाये हुए सिलाई के काम में मन लगा रखने के लिए समस्त शक्ति से प्रयत्न करने लगी। परन्तु सिलाई उसके चित्त को अपने अधिकार में कर न सकी।

लज्जा और विक्षोभ के कारण सविता के मुखमण्डल पर किस प्रकार की असमर्थता की रेखा उदित है इस ओर मेनका ने ज़रा-सा दृष्टिपात तक न किया। वे बराबर कहती गईं—ज़रा खूब मुलायमियत के साथ लिखना। समझती हो न? तुम ज़रा अच्छी तरह चिट्ठी लिख दोगी तो वह आ भी सकता है।

मेनका जो बार बार इस प्रकार की बात कह रही

थीं, इसके उत्तर में क्या कहना चाहिए, यह बात सविता की समझ में नहीं आ रही थी। परन्तु चिट्ठी लिखने में वह असह्य अपमान का अनुभव कर रही थी। वह सोचने लगी—मैं चिट्ठी किनको लिखूँ और क्यों लिखूँ? साँझ का प्रकाश पड़े हुए कमल के समान अपनी दोनों आँखें उसने ऊपर उठाई और बोली—मुझसे यह न होगा।

सविता की यह बात सुनते ही मेनका तो एकदम सन्नाटे में आ गई। उन्होंने यह एक ऐसी बात सुनी जिसकी उन्हें कभी सम्भावना नहीं थी। ज़रा देर तक चुप रहने के बाद उन्होंने कहा—इसमें न हो सकने की कौन-सी बात है? एक चिट्ठी तो लिखनी है। लिख क्यों नहीं देती हो?

सविता ने इस बार भी बहुत ही दृढ़ कण्ठ से कहा—मुझसे यह न होगा।

मेनका गरज उठीं। उन्होंने कड़क कर कहा—होगा कैसे नहीं? ज़रा सुनूँ तो! वाह रे अहङ्कार! बहुत बड़ा अहङ्कार हो गया है आजकल तुमको! तुमसे यदि यह न होगा तो तुम्हें लेकर हम क्या करेंगी, ज़रा बतलाओ तो!

सविता ने चुपचाप सुन लिया। वह कुछ बोली नहीं। इधर मेनका अपनी धुन में बकती ही गई—"ऐसी लड़की को लेकर जो इस तरह अपने अहङ्कार में चूर रहे, क्या मैं गृहस्थी चला सकती हूँ? चूल्हे में जाय। जो मन में आवे, करे। इस तरह की करनी का ही तो यह फल है कि भाग्य ने इस तरह जोर बाँध रक्खा है।"

इस प्रकार तीव्र तिरस्कार की चिनगारियाँ उड़ाती उड़ाती तिनतिना कर मेनका कमरे से निकल गईं। यह जो आग की तेज़ आँच उन्होंने फैलाई थी वह कुछ कुछ स्वयं मेनका को भी लग गई थी। सविता के ऊपर से जब उनका क्रोध कुछ कम हुआ तब वे स्वयं ही अरुण को चिट्ठी लिखने बैठीं।

मेनका एक बहुत ही विशेष प्रकार की स्नेहपरायण माता थीं। सन्तानों के प्रति उनका इस प्रकार का अन्ध-स्नेह था कि उसके फेर में पड़कर वे उचित-अनुचित का ज्ञान खो बैठती थीं। अपनी किसी भी सन्तान के मुरझाये हुए मुख पर ज़रा-सी मुस्कराहट देखने के लोभ से जिस प्रकार वे दूसरे की सन्तान के वक्ष पर पैर रख कर खड़ी होने में ज़रा भी आना-कानी नहीं किया करती थीं, उसी प्रकार स्वयं अपनी भी बहुत-सी हानि स्वीकार कर सकती थीं। इस विषय में उनकी दृष्टि में न्याय-अन्याय या उचित-अनुचित कुछ था ही नहीं। परन्तु इस विवेक-शून्यता के कारण अत्यन्त स्नेह होने पर भी बड़े होने पर उनका कोई लड़का माता का अनन्यभक्त न हो सका। वे लोग माता की बात मानते थे अवश्य, किन्तु सोच-विचार कर लेने के बाद मानते थे। लड़के जब छोटे छोटे थे उन्हें तब पढ़ाने के लिए घर पर मास्टर आया करता था। वह किसी तरह की भूल हो जाने पर प्रायः लड़कों को डाँट दिया करता था, कभी कभी मार भी बैठता था। परन्तु जिस दिन इस तरह की बात होती उस दिन वे रोष के मारे उपवास कर डाला करती थीं। परन्तु मालिक का स्वभाव इसके विपरीत था। यही कारण था कि इन सब बातों का कोई दुष्परिणाम नहीं होने पाया। कभी कभी तो लड़के ही मा को समझा-बुझा कर शान्त किया करते थे। वे तरह तरह से प्रमाणित किया करते थे कि मास्टर के मारने से हमें लगता नहीं। तब कहीं जाकर वे शान्त होती थीं।

मेनका में साधारणतः बुद्धि की अपेक्षा स्नेह ही अधिक था। इसलिए वह के ऊपर क्रुद्ध होकर वे स्थिर भाव से रह न सकीं। उन्होंने स्वयं ही अरुण को चिट्ठी लिखकर उसे घर आने का आदेश किया। परन्तु पत्र लिखने से ज़रा ही देर पहले उन्हें सविता पर क्रोध हो आया था इस कारण उनका मिज़ाज बहुत गर्म था। यही कारण है कि उनका हृदय स्नेह से आर्द्र होने पर भी चिट्ठी नरम न होकर बहुत ही कड़ी हो उठी। कोमल अनुरोध ही कड़े आदेश के समान हो उठा। परन्तु ऐसा झोंक में ही हो गया। मेनका इसे समझ नहीं सकीं। चिट्ठी डाक में भेज कर वे निश्चिन्त होकर बैठीं। वे सोचने लगीं कि मेरी चिट्ठी पाकर भी क्या अरुण आये बिना रह सकता है?

सुनेन्दु के विवाह का मुहूर्त्त स्थिर हो गया था। इस बार अरुण किसी प्रकार की आना-कानी नहीं कर सका। वह भी घर आया। विशेषकर परीक्षा उसकी समाप्त हो चुकी थी। अब कौन-सा ऐसा बहाना था, जिससे वह मा को धोखा दे सकता।

अरुण जिस दिन घर आया, उसी दिन से कहने लगा कि मुझे किसी काम की तलाश में साकची जाना है। परन्तु साहस करके पिता से यह बात वह कह नहीं सका। उस समय उसके पिता की तबीअत खराब थी, इससे डाक्टरों ने सबको सावधान कर दिया था कि इन्हें किसी प्रकार की उत्तेजना न होने पावे।

घर आ जाने पर भी अरुण को पहुँचते ही शान्ति का स्थान मिल गया। परन्तु सविता के लिए कोई वैसी बात नहीं हुई। उसके सम्बन्ध में तो यही बात लागू थी कि अन्धे के लिए जैसे दिन वैसे रात, सब समान है!

इधर कई दिनों तक दूर दूर रहकर भी स्वामी को जितना वह देख पाई, उतने से ही उनके सम्बन्ध में उसकी जो कुछ धारणा थी वह बदल गई।

सविता के मन में पहले यह बात आई थी कि शायद कम बोलने का इनका स्वभाव ही है, ये एक गम्भीर प्रकृति के व्यक्ति हैं। परन्तु अब उसे अपनी यह धारणा निराधार मालूम पड़ी। देखने पर मालूम हुआ कि उसके स्वामी के मुख पर सदा हँसी की रेखा वर्तमान रहती है। बातचीत भी वे किसी से कम नहीं करते। इस घर के सभी लोगों के स्नेह और प्रीति की स्निग्ध धारा सूख जाती है केवल एकमात्र सविता की बारी आने पर!

सविता बहुत ही शान्त और सहिष्णु थी। उसके हृदय पर जो ये आघात हो रहे थे और उसे जो मानसिक व्यथायें सहन करनी पड़ रही थीं उन्हें वह भीतर ही भीतर दबा लेती। सूखे हुए मुँह पर भी वह खींचकर हँसी ले आती और छद्म-वेश में ही घूमा करती। वह किसी पर भी यह न प्रकट होने देती कि कितनी अगाध व्यथा से परिपूर्ण है हृदय उसका।

इस घर के जितने नियम-क़ायदे थे वे सब सविता को मालूम हो गये थे। इससे अब वह सदा ही सतर्क रहा करती थी। काम-काज के बहाने से उसे तंग करने का अवसर अब मेनका को भी प्रायः नहीं मिलता था। फिर भी वे कोई न कोई दोष निकाल ही लेतीं और साधारण-सी बात को बहुत बढ़ाकर किसी कारण से या अकारण ही समय समय पर जो गर्जना किया करतीं, अरुण के आ जाने पर उसकी तीव्रता में बहुत कुछ धीमापन आ गया था। सविता को भी इससे बहुत कुछ शान्ति मिली थी। इसके लिए वह मन ही मन अरुण के प्रति कृतज्ञता प्रकट किया करती थी। इतने दिनों के बाद सविता ने साहस करके माता तथा नाना को पत्र लिखा। पत्र में उसने लिखा कि मैं अच्छी ही हूँ।

सविता कितनी अच्छी है, इसका पता तो जो अन्तर्यामी हैं उन्हीं को रात-दिन चला करता था। तो भी जिन लोगों को इस सम्बन्ध में कुछ मालूम नहीं था, यह सब बतलाकर वह उन सबको क्यों जलाने लगी?

दो दिन के बाद ही माता की चिट्ठी का उत्तर आ गया। विवाह के बाद पहले-पहल माता की यही चिट्ठी उसे मिली थी। उस चिट्ठी में कितना आग्रह था, कितना आनन्द था, इसका अनुभव करनेवाला इस घर में कौन था? माता ने लिखा था—

"बेटी मेरी, तुम्हारी चिट्ठी मिली। यदि तुम अच्छी तरह हो तो इतने दिनों तक चिट्ठी न भेजकर मुझे इस तरह क्यों चिन्तित करती रही हो? तुम्हारी कोई चिट्ठी मिली नहीं, इससे साहस करके मैं भी कोई चिट्ठी नहीं लिख सकी। पिता जी श्री काशी-धाम की यात्रा करनेवाले हैं। साथ में मैं भी जाऊँगी।

"बहुत दिनों से तुम्हें देखा नहीं है। सोचती हूँ कि काशी जाते समय रास्ते में ज़रा-सा रुककर तुम्हें ज़रा-सा देखती जाऊँ। घर पर काली-पूजा कर लेने के बाद ही हम काशी के लिए यात्रा कर देंगे। भैया अरुण तब तक घर पर रहेंगे या नहीं, सूचित करना। अपने घर में किसी दिन दामाद को बुला सकूँगी, यह दुराशा मैं नहीं कर सकती। परन्तु वहाँ आने पर भी यदि मैं उन्हें न देख पाऊँगी तो मुझे बड़ा क्षोभ होगा। पूजा के दो दिन बाद यात्रा करने पर यदि उनसे मुलाक़ात होने की सम्भावना न हो, तो हम लोग पहले ही चल देंगे। तुम लोग मेरा आशीर्वाद ग्रहण करना। माननीय समधी जी तथा समधिन महोदया को प्रणाम कहना। पत्र का उत्तर देने में विलम्ब न करना बेटी। मैं प्रतीक्षा में बैठी हूँ। तुम्हारा पत्र मिल जाने पर हम लोग यात्रा का दिन स्थिर करेंगे।"

आशीर्वादिका—

तुम्हारी माता

माता की चिट्ठी पढ़कर सविता चिन्ता में पड़ गई। इन सब बातों का वह क्या उत्तर देती? वह सोचने लगी—

वे कब तक रहेंगे और कब जायँगे, इसका पता कैसे चल सके कि मैं माता को सूचित कर सकूँ। इसके सिवा इस घर में यदि वे आगई तो कोई भी बात उनके लिए अज्ञात न रह जायगी।

सविता को एक बात की चिन्ता और थी। वह सोच रही थी कि यहाँ के ही लोग उनके सम्बन्ध में क्या विचार करेंगे। इसके सिवा यहाँ आकर जब वे देखेंगे कि इस राजपुरी में जहाँ जो कुछ होना आवश्यक है वह सब वर्तमान है, ज़रा-सी जीवन की रेखा के स्पर्श के अभाव के ही कारण वह सब हमारी कन्या के लिए व्यर्थ हो रहा है, तब क्या यह उन्हें सह्य होगा !

सविता ने निश्चय किया कि इन बातों का कोई उत्तर न दूँ, यही अच्छा है।

सविता श्वशुर के लिए दूध औट रही थी। यह चिट्ठी उसी समय आई थी। उठने पर दूध कहीं ख़राब न हो जाय, यह सोचकर चिट्ठी हाथ में लिये ही लिये वह दूध में आँच लगाती रही।

मेनका ने आकर कहा—चिट्ठी किसकी लिये हो बहू? देखूँ तो।

सविता ने कहा—यह तो माता जी की चिट्ठी है मा।

"ओ मा, तभी तो! देखूँ, देखूँ क्या लिखा है तुम्हारी मा ने? इतने दिनों के बाद एकाएक उमड़ आया है माता का स्नेह।"

सविता ने हाथ बढ़ाकर चिट्ठी मेनका को दे दी। वह चिट्ठी पढ़कर मेनका का मुख अवज्ञा की हँसी से परिपूर्ण हो उठा। उन्होंने व्यंग्य के स्वर में कहा—और क्या चाहिए! काशी-यात्रा के अवसर पर रास्ते में ज़रा-सा रुककर अब हम लोगों को भी कृतार्थ कर दिया जायगा।

सविता का मुख रक्त के प्रबल उच्छ्‌वास से आग हो उठा। उसने फिर भी शान्तभाव से ही कहा—नहीं, मैं लिख दूँगी। वे लोग नहीं आवेंगे।

मेनका गरज उठीं। वे कहने लगीं—लिख क्यों न दोगी? माता को और नाना को बुद्धि और परामर्श देनवाली लड़की तुम्हीं तो हो। हमारे घर की निन्दा और अकीर्ति का प्रचार किये बिना तुम्हारा निर्वाह कैसे होगा?

सविता चुपचाप रह गई। अरुण को छोड़कर मेनका ने घूम-घूमकर घर के सभी लोगों से कह दिया कि सविता की माता और नाना यहाँ आनेवाले हैं। किस मतलब से आ रहे हैं और कितने समय तक के लिए आ रहे हैं, यह बात गुप्त ही रह गई। हतबुद्धि सविता ने इस बात का प्रतिवाद करके सास के रोष को और नहीं बढ़ाया।

शुभेन्दु के विवाह में आये हुए बारातियों के साथ अरुण भी जिस दिन चला गया, उस दिन बाहर के एक नौकर ने आकर सूचना दी कि सविता के नाना आये हैं।

मेनका ने गाल भर हँस कर कहा—आये हैं तो कौन-सी ऐसी बात हो गई? कौन ऐसे माननीय पुरुष हैं जो नहीं आ सकते थे? कौन गया था ख़ुशामद करने के लिए?

रुदन के प्रबल उच्छ्‌वास के कारण सविता अपने आपको सँभाल नहीं पाती थी। वह मन ही मन सोचने लगी—हाय, मेरा नीरव इंगित क्या मा या नाना कोई भी नहीं समझ पाये? अथवा मुझे एक बार देख लेने के लोभ से वे लोग सब कुछ समझते हुए भी नहीं समझ पाये? तो क्या अब इन सब सुई के समान नुकीली बातों की यन्त्रणा वे सहन कर सकेंगे? वे तो वास्तव में बड़े ही स्वाभिमानी पुरुष हैं?

मेनका ने नौकर से पूछा—क्यों रे, उन्होंने कुछ कहा भी है।

नौकर ने कहा—कुछ नहीं। आज एकादशी है और जो आये हैं वे कहते थे कि मैं एकादशी को कुछ खाता नहीं हूँ।

सविता ने ज़रा-सी शान्ति की साँस ली। उसके मन में यह बात आई—ख़ैर, मेरे नाना के लिए इन लोगों को किसी प्रकार का आयोजन तो न करना पड़ेगा।

[क्रमशः

जाग्रत नारियाँ

महात्मा गांधी और स्त्रियाँ

लेखिका, कुमारी कान्ति मिश्र

पश्चिमी सभ्यता के अनुसार सार्वजनिक जीवन और प्राइवेट जीवन बिलकुल अलग अलग होते हैं, और किसी को यह अधिकार न होना चाहिए कि किसी के प्राइवेट जीवन की बातों का उल्लेख करके उसके सार्वजनिक जीवन पर कीचड़ उछाले। सच्ची बात यह है कि कोई भी व्यक्ति पूर्ण नहीं है, कुछ न कुछ दोष प्रत्येक में होते ही हैं। ऐसी दशा में हमें उन लोगों का कृतज्ञ ही होना चाहिए जो अन्य दोष या दोषों के होते हुए भी सार्वजनिक क्षेत्र में आकर वहाँ की कठिनाइयों का सामना करते हैं, किन्तु वे लोग जो या तो इस कार्य की कठिनाइयों को समझ नहीं पाते या अपनी ईर्ष्या और क्षुद्रता पर किसी तरह विजय नहीं पा सकते, उन व्यक्तियों पर भी कीचड़ उछालने का दुस्साहस किया करते हैं जो करोड़ों आदमियों की दीनहीन दशा बदलने के लिए अपने सर्वस्व और अपने आपको क्रान्ति-पथ पर लगा देते हैं। कैसा अच्छा हो यदि वे एक बार अपनी वास्तविक अवस्था देखने की शक्ति पा जायँ।

इस देश में भी 'आप्त' पुरुषों की बातों को 'असंदिग्ध' कहते हुए भी ऐसे अनेक 'मुनियों' और 'ऋषियों' के बार बार पतन की कथायें कदाचित् इसी कारण लिख दी गई हैं, जिससे हम इस सत्य को समझ लें कि कोई मानव प्राणी, चाहे वह जितना उच्च हो जाय, 'पतन-प्रूफ़' नहीं हो सकता। इसी लिए प्रत्येक के लिए प्रत्येक दशा में संयम और तप की आवश्यकता बतलाई गई है। फिर भी इस देश में सार्वजनिक जीवन और निजी जीवन सर्वथा भिन्न कभी नहीं माने गये। पश्चिमी शिक्षा-दीक्षा से जब

[स्वर्गीया श्रीमती कमला नेहरू जिनकी स्मृति में इलाहाबाद में बनाये जानेवाले कमला-नेहरू-अस्पताल, की नींव गत १९ नवंबर को महात्मा गांधी ने डाली है।]

हम भी ऐसे विभागों की ओर जा रहे थे तभी महात्मा गांधी ने यह घोषणा की कि ऐसा करना हमारी सभ्यता और संस्कृति के विरुद्ध है एवं यह सर्वथा अनुचित है—हमारे जीवन में ऐसी कोई दीवार न होनी चाहिए। वस्तुतः गांधी जी ने जिन महान् आदर्शों को पुनर्जीवित किया है उनमें से सबसे महान् यही है, क्योंकि इसके अनुसार जीवन दर्पण की तरह स्वच्छ होता जाता है और हम लोग उसे निरन्तर सत्य, शिव, सुन्दर बनाने की ओर प्रेरित हुए बिना नहीं रह सकते।

किन्तु जब पश्चिमी साम्राज्यवाद के हामी किसी व्यक्ति को उसका भयंकर विरोधी पाते हैं तब अपने सब उच्च सिद्धान्तों को भूलकर उसके निजी जीवन पर भी नीच से नीच आक्रमण करने में वे नहीं चूकते। पराधीन देश में विभीषणों की, दासत्व को ही स्वर्ग समझनेवालों की और थोड़े से चाँदी-सोने के टुकड़ों के लिए अपनी आत्मा को भी बेंच देनेवालों की कुछ न कुछ विशेष संख्या रहती ही है। कठिन ईर्ष्या और वैसे ही अज्ञान से प्रभावित मन की उच्छृङ्खलता रखनेवाले लोगों की तो कहीं कमी नहीं। अतः ऐसे सब लोग इन साम्राज्य-वादियों का ऐसा साथ देते हैं कि एक बार वे स्वयं

[महात्मा जी की प्रिय शिष्या कुमारी मीराबेन]

[श्रीमती कस्तूर बा गांधी]

आश्चर्य में आ जाते हैं। इस समय हमारे देश में कुछ ऐसा ही लज्जाजनक दृश्य कई जगह दिखलाई देता है। वह सब हमें विलायत के लोगों की ऐसी कार्रवाई का इसी प्रकार का अनुकरण और अनुसरण जान पड़ता है।

इतिहास लिखकर प्रसिद्धि पानेवालों में मिस्टर टाम्सन का भी नाम है। उन्होंने इस देश में आकर बतलाया कि अँगरेज़ों के देश में इस समय यह भी प्रचार किया जा रहा है कि महात्मा गांधी अब (इकहत्तर वर्ष की अवस्था में) वासना के शिकार हो जाने से 'सन्त' नहीं रह गये हैं। स्वयं महात्मा जी के अनेक लेखों के अंशों को उद्धृत करके इस देश में भी कुछ लोगों ने यह दिखलाना चाहा है कि महात्मा जी अपने पतन को कई बार स्वीकार कर चुके हैं। एक बार हिन्दी के एक प्रसिद्ध लेखक ने गोस्वामी तुलसीदास जी के बारे में कहा था कि जब वे अपने लिए स्वयं कहते हैं कि मेरे समान "कुटिल और कामी" कोई नहीं है तब या तो जो लोग उन्हें सच्चरित्र साबित करना चाहते हैं वे सब झूठे हैं या फिर गोस्वामी जी ही झूठे हैं। ऐसे लोगों से तर्क करना या उन्हें इस तरह के स्वाभाविक 'नम्र निवेदनों'

[कुमारी प्रतिभामोदक कलकत्ता को नृत्य-प्रदर्शन पर कई पदक प्राप्त हुए।]

[कुमारी रेणुका साहा। आपने सम्मेलन में संगीत का प्रदर्शन किया था।]

[कुमारी दीप्ति सान्याल कलकत्ता के नृत्य-प्रदर्शन में पदक प्राप्त किये थे।]

का रहस्य समझाने का प्रयत्न करना पत्थर पर सिर पटकने के समान है। जब वे यह निश्चित कर चुके हैं कि 'हम किसी की कुछ न सुनेंगे, क्योंकि वैसा करना हमारे स्वार्थ का विरोधी होगा' तब वे ऐसी बात पर कान क्यों देने लगे? फिर भी जनता के प्रति अपने महान् उत्तरदायित्व के कारण महात्मा गांधी ने इस नीचतापूर्ण आरोप का उत्तर अपने पत्र 'हरिजन' में दे दिया है। उसमें उन्होंने यह भी बतलाया है कि जिन मीरा बहन (मिस स्लेड) को देखते ही उन्होंने कहा था 'आज से तुम मेरी पुत्री की तरह रहोगी' उनके बारे में भी जब वे गांधी जी के साथ राउंड टेबिल कान्फ़रेंस के अवसर पर विलायत गई थीं, अँगरेज़ी के पत्रों में ऐसी ही निन्दात्मक बात लिखी गई थी। जब साम्राज्यवादी शक्ति मिस मेयो को यहाँ भेजकर सम्पूर्ण भारतवर्ष की मनमानी निन्दा करवा सकती है और प्रत्येक भारतीय माता को अपने पुत्र को कामी बनानेवाला कहला सकती है तब उसके लिए अपने समाचार-पत्रों और अपने गुरगों के द्वारा गांधी जी की निन्दा करानी कौन कठिन है? अफ़सोस तो हमें अपने ही देश के उन लोगों पर होता है जो ऐसी शक्ति का इस कार्य में भी तरह तरह से साथ देते हैं।

'सरस्वती' के पिछले अंक में ही एक लेखिका, श्री विद्यावती वर्मा श्यामपुरी ने यह दिखलाया था कि किस तरह से भारतीय विधवाओं और विशेषतः बाल-विधवाओं की मनमानी संख्या का दुनिया भर में ढिंढोरा पीटकर, हमारी कुरीतियों और हमारे अंधविश्वासों को प्रमाणित करने का पूर्ण प्रयत्न कर, यह दिखलाया जाता है कि हम स्व-शासन के अयोग्य हैं। जो लोग ऐसा कर सकते हैं उनके लिए हमारे नेताओं को बदनाम करना तो बहुत ही ज़रूरी जान पड़ता है। किन्तु महात्मा गांधी ने स्त्रियों के साथ कैसा अच्छा व्यवहार किया है और उनमें किस नवीन शक्ति का संचार कर दिया है, यह अब सहस्रों स्थानों पर प्रत्यक्ष देखा जा चुका है और शीघ्र ही फिर दिखलाई देगा। गांधी जी के पहले भारतीय स्त्रियों का क्षेत्र गृह-धर्म तक ही परिमित था। झाँसी की रानी आदि के कार्य अपवादरूप ही थे। किन्तु महात्मा गांधी ने स्त्रियों को राजनैतिक क्षेत्र में कार्य करने का पूरा अवसर दिया और इसके लिए उन्हें अपनी पूरी शक्ति से प्रेरित किया। 'यदि तुम्हारा भाई या तुम्हारा पति देश का विरोधी है तो तुम्हें उससे भी असहयोग करने और अपने को स्वदेश-सेवा में लगाने का अधिकार है।' इस उच्च सिद्धान्त को व्यावहारिक बना देने का श्रेय महात्मा गांधी को ही है। पति, भ्राता तथा पुत्र के साथ काम करनेवाली स्त्रियों की संख्या तो बहुत थी ही, किन्तु इस प्रकार असहयोग करनेवाली स्त्रियों की संख्या भी यथेष्ट हो गई

[कुमारी सुशीला दत्तात्रेय राव, ने प्रयाग-विश्व-विद्यालय के गाने में प्रथम पुरस्कार पाया।] [कुमारी प्रतिभानन्दन और कुमारी उर्मिलानन्दन बनारस। आप दोनों बहनों ने सम्मेलन में नृत्य-प्रदर्शन के लिए अनेक पदक प्राप्त किये हैं।]

है, उसमें निरन्तर बढ़ती ही होगी। जिन लोगों को कभी पूरी शक्ति के साथ सार्वजनिक काम करने का सुअवसर नहीं मिला वे यदि यह न समझ सकें कि अपने को इस तरह के कार्य में पूरी तरह लगा लेने पर हमारी सारी इन्द्रियों की शक्ति एक ही ओर लग जाती है और हमें किसी निम्नतर आनन्द की आवश्यकता नहीं होती तो वे असभ्य नहीं कहे जा सकते। किन्तु यह बात व्यक्तिगत दृष्टि से ही कही गई है। राजनैतिक एवं सम्पूर्ण देश की दृष्टि से वे किसी तरह सभ्य नहीं हो सकते। महात्मा गांधी ने स्त्रियों को जो कुछ दिया है वह और कोई नहीं दे सका, यह इतिहास स्वयं ही प्रमाणित कर देगा। अब तक उनके जीवन का विकास एकांगी एवं अपूर्ण था, महात्मा ने ही उसके पूर्ण विकास का रास्ता खोल दिया है। यह रास्ता अब किसी तरह बन्द नहीं होगा, इसके लिए चाहे जिसे जितना बदनाम करने का प्रयत्न किया जाय, आसमान पर थूकने से वह थूक थूकनेवाले के ऊपर ही गिरता है, वही दशा इन निन्दक महाशयों की अवश्यम्भावी है।

'स्त्रियों को बन्दिनी बनाकर पुरुषगण स्वयं बन्दी हो जाते हैं", यह भारतवर्ष में पूर्णतया देखा गया है। अब समय आगया है कि ऐसे पुरुष लोग यह समझ लें कि इस बार स्त्रियाँ तो बन्दिनी नहीं बनाई जा सकतीं, वरन बेहूदा 'अति संघर्ष' से उन्हीं के बन्दी बने रहने की पूरी सम्भावना है।

मेन्चेस्टर-गार्जियन के हाल के अङ्क में एक समाचार प्रकाशित हुआ है। महायुद्ध के समय चाय का पानी गर्म करने के लिये मशीनगन चलानेवाले एक सरल तदबीर काम में लाते थे। वे अपनी बंदूकों की आन्द इसीलिये छोड़ा करते थे कि ठंडा पानी उबल जाय। फिर वे उस पानी को अपनी चाय बनाने के काम में लाते थे।

१—**चित्रपटी**—चित्रकार, श्रीयुत भवानीप्रसाद मित्तल, ओरियण्टल आर्ट गेलरी, मेरठ हैं। मूल्य १।।) है।

यह श्रीयुत मित्तल के ८ चित्रों का संग्रह है—(१) सुदामा जी सोच में, (२) मोहिनी वंशी, (३) जनक की पुष्प-वाटिका में, (४) वृन्दावन की राह में, (५) देवी-पूजन, (६) सुदामा के चावल, (७) जटायु की मृत्यु और (८) तन्मयता।

कहने की आवश्यकता नहीं कि उक्त आठों चित्रों का कथानक हिन्दू-साहित्य से लिया गया है और प्रत्येक चित्र अपनी पृथक् एवं पूर्ण कहानी रखता है, जो चित्र के देखते ही मस्तिष्क में प्रकट हो जाती है। यही कलाकार की सबसे बड़ी सफलता है। ये सभी चित्र प्राचीन भारतीय कला के सुन्दर नमूने हैं, जिनमें मन में पवित्र भावों की सृष्टि व उत्तेजन के लिए देवी-देवताओं के चरित्रों को ही चित्रित किया जाता था। आशा है, मित्तल जी को इस क्षेत्र में काफ़ी प्रोत्साहन प्राप्त होगा।

२—**नीला लिफ़ाफ़ा**—लेखक, श्रीयुत लक्ष्मीचन्द्र वाजपेयी और प्रकाशक, श्रीयुत सत्यभक्त, सतयुग आश्रम, इलाहाबाद हैं। छपाई-सफ़ाई अच्छी, क़ाग़ज़ मोटा और सजिल्द पुस्तक का मूल्य एक रुपया है।

यह श्रीयुत वाजपेयी जी की १२ कहानियों का संग्रह है।

"उसे कमी ही किस बात की है? नैनीताल में सुन्दर बँगला है। मकान हैं, किराया आता है, धनोपार्जन की चिन्ता से मुक्त! हरी हरी लताओं से आवेष्ठित, सुरम्य पहाड़ी पर अवस्थित, उसका बेजोड़ बंगला, एक भव्य कार, नौकर उसके संकेत पर नाचते हैं, सोफ़े हैं, कुरसियाँ हैं। जिन वस्तुओं से जीवन, जीवन कहलाता है, वे सभी तो उपलब्ध हैं उसे।"

पर इस उपलब्धि में भी एक अभाव है जिसे या तो ज्ञानदा जानती है या कलाकार की तीव्र-दृष्टि; इस ऐश्वर्य की लक़दक में भी हृदय-पक्ष को वह भुला नहीं सका; यही कलाकार की और जन-साधारण की दृष्टि में अन्तर है। वह अभाव एक स्थायी टीस है जिसे 'अलमारी के दो घूँट' कुछ देर के लिए भुला भले ही दें, पर वह मिट नहीं सकती।

धनिकवर्ग में मानव-सुलभ संवेदना का लेखक ने गहरा अध्ययन किया है, और ज्ञानदा अपने अध्ययन में भले ही असफल होकर स्वयं को 'मायाविनी चपला' समझने लगे, पर कलाकार की दृष्टि में अवश्य ही वह 'नारी' है जिसने जीवन का मधुर-कटु अनुभव किया है। और जो 'प्रियदर्शन' को अपने उर की सन्ताप मिटाने भर को देख लेना चाहती है, पर सुरेश को पागलखाने में पाकर बेहोश भी हो जाती है। "ज़हर पिला दो, मैं तुम्हें भूल नहीं सकता, ज्ञानदा"—सुरेश का पूरा चित्रण करने को यह वाक्य काफ़ी है।

"नीला लिफ़ाफ़ा" में रूढ़ियों की भयानक चिता धधक रही है, जो एक ओर तो नीलिमा को खा जाती है और दूसरी ओर प्रियनाथ को चौपट कर देती है। यह वह अग्नि है जिसकी आँच में प्रोफ़ेसर मल्लिक की जीवन-फिलासफ़ी मन्द पड़ जाती है और जिसमें नीलिमा का सारा अपनत्व भस्म हो जाता है।

"कालिन्दी" में यह ज्वाला और भी प्रखर हो जाती है। इसका नायक कुछ अनोखी प्रकृति का है। एक ओर तो वह कालिन्दी पर कृपा करना चाहता है और उस पर किये गये अत्याचारों को देखकर उसे अपार क्रोध आता है, पर दूसरी ओर वह शिथिल भी हो जाता है। यह है मानसिक प्रवृत्तियों की क्रिया-प्रतिक्रिया, जो हमें मन में ही फँसाये रहती हैं, प्रकट कुछ करने नहीं देती, भले ही हममें कुछ कर गुज़रने की पूर्ण क्षमता हो। कालिन्दी का चरित्र पूर्ण विकसित नहीं हो पाया; उसके प्रति हमारे हृदय में कुछ जिज्ञासा रह जाती है। अत्याचारों के निर्देश में भी थोड़ी-सा अतिरंजना हो गई है। वैसे कहानी का अन्त अत्यन्त प्रभावशाली है और कालिन्दी के अन्तिम शब्द तो मानो

समाज के लिए एक खुली चुनौती है। "आँसू गिरे" में लेखक को पूरी सफलता मिली है। "हिमाद्रिजा" की जीत में हार और हार में जीत का चित्रण बड़ी कुशलता से हुआ है। भारतीय हृदय पाश्चात्यता को पूर्णतया ग्रहण कर लेने पर भी दाम्पत्य जीवन में कितना सहिष्णु हो सकता है, इसके चित्रण में लेखक ने बड़ी कुशलता का परिचय दिया है।

"झुकि आये बदरवा," "जीवित शव" और "सितारा की आँखें" उसी वायुमण्डल में पली हैं जिसमें 'जीवन के भावों में अभावों की कल्पना खोज निकालनी पड़ती है।' तब भी लेखक के वर्ग-विशेष के गम्भीर अध्ययन की हम दाद दिये बिना नहीं रह सकते। "सितारा" का संवेदन-स्थल कुछ हल्का पड़ गया है। एकाएक उसका मंच से लापता हो जाना हृदय को उलझन में छोड़ देता है।

"फाँसी होगी" सुन्दर मनोवैज्ञानिक कहानी है। "प्रगति के पथ पर" का प्लाट संकुचित है और इसमें मनोवैज्ञानिक चित्रण का भी कम अवकाश मिला है। "चोर" पूर्ण और सफल कहानी है "बिट्टो बीमार है" भी इसी टक्कर की है। इनमें निर्धनवर्ग की मनोभावनाओं का चित्रण बड़ा सुन्दर बन पड़ा है।

सब मिलाकर पुस्तक अच्छी है। लेखक महोदय के पास एक स्थायी सन्देश है—'रूढ़ियों के प्रति विद्रोह', फिर वे रूढ़ियाँ चाहे सामाजिक हों या साहित्यिक; और इसमें वे काफ़ी सफल हुए हैं। भूमिका-भाग की तुक मूल ग्रन्थ से नहीं मिलती है।

३—द्विवेदी-मीमांसा—लेखक, श्रीयुत प्रेमनारायण टंडन, प्रकाशक, इंडियन प्रेस, प्रयाग हैं। पृष्ठ-संख्या २९६; मूल्य १।।) है।

आधुनिक हिन्दी-साहित्य और भाषा की प्रगति किस ओर है, यह समझने के लिए हमें हिन्दी के पिछले ४०-५० वर्ष का इतिहास जानना आवश्यक है। बीसवीं शताब्दी के उदय से हिन्दी-भाषा और साहित्य की प्रगति को समझ कर ही हम उसके भविष्य का अनुमान कर सकते हैं। यों तो इस प्रगति में सैकड़ों साहित्यिकों का हाथ है, परन्तु यदि कोई दो साहित्यिक इस साहित्यिक युग के प्राण कहे जा सकते हैं तो वे हैं पण्डित महावीरप्रसाद जी द्विवेदी और बाबू श्यामसुन्दरदास। एक स्वर्गीय हो चुके, दूसरे विश्रान्ति में हैं। अपने साहित्यिक जीवन में दोनों की एक-दूसरे से नोक-झोंक रही सो उचित ही था; मतभेद होना साहित्यिक जीवन को पूर्णांग बनाने के लिए आवश्यक था। दोनों इस युग में आचार्य रहे—द्विवेदी जी परोक्षरूप में और श्यामसुन्दरदास जी प्रत्यक्षरूप में। दोनों का साहित्यिक जीवन गंगा-यमुना की भाँति प्रयाग ही में मिलता है और साहित्यिक सेवा का पुण्य लूटनेवालों का कर्तव्य इन दोनों साहित्यिकों की सम्मिलित साहित्यिक सेवा का अध्ययन ही रह जाता है।

इस परिचय के लेखक को अपने साहित्यिक जीवन में दोनों महारथियों की सेवा करने का सौभाग्य प्राप्त है। पहले उसका परिचय हुआ श्यामसुन्दरदास जी से उनके सहयोगी अध्यापक की हैसियत से। हिन्दी की थोड़ी-बहुत सेवा करने की लगन उसी समय से प्रारम्भ हुई, परन्तु उस समय हिन्दी मैट्रिकुलेशन के लिए भी पर्याप्त विषय थी और उसके ऊपर तो उसके लिए कोई स्थान ही न था। इसलिए जो कुछ हिन्दी सीखी थी वह हिन्दी की पत्रिकाओं-द्वारा ही, जिनमें 'सरस्वती' का प्रमुख स्थान था। द्विवेदी जी को अपने कुछ शिष्यों का पता तो था, उनसे चिट्ठी-पत्री और मेल-मुलाक़ात भी थी; किन्तु इस लेखक जैसे कुछ शिष्य भी थे जिन्हें न द्विवेदी जी के आचार्यत्व का पता था, न अपने शिष्यत्व का; परन्तु तो भी था दोनों में आचार्य-शिष्य का सम्बन्ध ही और यह सम्बन्ध तभी प्रत्यक्ष हो सका जब सन् १९१८ में लेखक ने 'सरस्वती' में लिखना प्रारम्भ किया।

द्विवेदी जी के सन् १९२१ से विश्रान्ति लेने पर लेखक ने बहुत कुछ चाहा कि अपने साहित्यिक आचार्यों की सेवा के बहाने वह हिन्दी के आधुनिक काल का इतिहास लिख सके, परन्तु इस कार्य के लिए जिस तैयारी की आवश्यकता थी वह उसे नसीब न हो सकी। हाँ, उसके सौभाग्य से उसे प्रस्तुत पुस्तक के लेखक के व्यक्तित्व में एक ऐसा उत्साही शिष्य अवश्य मिल गया जिसने अपने गुरु के ऋण को अपने ऊपर ही लेने का साहस किया है।

प्रस्तुत पुस्तक में शिष्यवर प्रेमनारायण टंडन ने द्विवेदी जी के साहित्यिक जीवन पर कालक्रम से अधिक प्रकाश नहीं डाला है; इसलिए यह पुस्तक द्विवेदी जी का जीवन-चरित नहीं कही जा सकती। लेखक ने केवल अपने

आराध्य साहित्यिक महापुरुष के प्रौढ़ साहित्यिक रूप का विविध पहलुओं से चित्र खींचा है। लेखक ने यह तो बताया कि द्विवेदी जी ने हिन्दी-साहित्य की क्या सेवा की है, परन्तु यह भी बताना आवश्यक था कि उनका भारतीय भाषाओं के साहित्य में क्या स्थान है। हिन्दी को अब राष्ट्र-भाषा के पद पर पहुँचाने का जो प्रयत्न हो रहा है उसमें उनका कहाँ तक हाथ था, इस पर भी प्रकाश डालना आवश्यक था। यों द्विवेदी-मीमांसा के पश्चात् द्विवेदी-साहित्य की इति श्री नहीं हो जाती, परन्तु इसमें कोई सन्देह नहीं कि बड़े बड़े साहित्यिकों के रहते हुए भी इस उदीयमान लेखक ने द्विवेदी जी की साहित्यिक स्मृति को जिस पुस्तक में परिणत किया है वह हमारे लिए आदर की वस्तु है।

प्रत्यक्ष आचार्यत्व की व्याख्या करना उतना कठिन नहीं है, जितना परोक्ष आचार्यत्व की और वह भी किसी भाषा के ऐसे काल में जब उसके पोषकों के साथ-साथ वह दासता के बन्धनों में जकड़ी हो। द्विवेदी जी ने भारतेन्दु जी की भाषा को जो परिमार्जित रूप दिया वह भी स्थायी नहीं है और उसे राष्ट्र-भाषा बनाने का जो उद्योग हो रहा है उसके कारण उसका रूप अभी और भी बहुत कुछ बदलेगा। ऐसी दशा में यह अनुमान करना कठिन है कि आगे चलकर द्विवेदी जी की सेवा का राष्ट्र-भाषा पर कितना प्रत्यक्ष प्रभाव रह सकेगा। परन्तु इसमें सन्देह नहीं कि 'सरस्वती' में लगभग प्रत्येक विषय पर लेख लिखकर या लिखा कर उन्होंने हिन्दी को इस योग्य बना ही दिया कि उसके द्वारा प्रत्येक विषय पर गम्भीर से गम्भीर विचार प्रकट किये जा सकें। विश्वविद्यालयों में हिन्दी को स्थान मिलना द्विवेदी जी ही की सेवा का फल था और फिर विश्वविद्यालयों-द्वारा हिन्दी-साहित्य की किस प्रकार श्रीवृद्धि हो, इसकी योजना करना उनके प्रतिद्वन्द्वी श्यामसुन्दरदास जी का काम था। द्विवेदी जी के सरस्वती-स्कूल के स्नातकों का समय पूरा हो रहा है और उनकी जगह श्यामसुन्दरदास जी के शिष्य ले रहे हैं। प्रस्तुत पुस्तक के लेखक ने ऊँची कक्षाओं में हिन्दी-शिक्षा प्राप्त करके ही यह पुस्तक लिखी है। इसलिए परोक्ष रूप में वह श्यामसुन्दरदास जी द्वारा ही द्विवेदी जी के ऋणी हैं। द्विवेदी-मीमांसा हिन्दी के इन्हीं वयोवृद्ध आचार्य को समर्पित है। प्रेमनारायण जी जैसे लेखक, हिन्दी की भावी आशा हैं। हम प्रस्तुत पुस्तक का हार्दिक स्वागत करते हैं और आशा करते हैं कि वह और उनके समकालीन उमंगशील साहित्यिक, आर्थिक प्रोत्साहन की परवा न करते हुए हिन्दी-साहित्य के विविध अंगों की पूर्ति करते रहेंगे। स्वर्गीय द्विवेदी जी की पूज्य स्मृति की यही सच्ची सेवा है।

—कालिदास कपूर*

४—**परित्यक्ता**—लेखक, श्रीयुत अक्षयकुमार जैन और प्रकाशक, सरस्वती-मंदिर, विजयगढ़, यू॰ पी॰ हैं। पृष्ठ-संख्या ९४ और मूल्य बारह आना है। काग़ज़ और छपाई सस्ती और साधारण है।

'परित्यक्ता' की कहानियाँ रोचक और कुतूहल-वर्द्धक हैं। स्वयं 'परित्यक्ता' एक सामाजिक कहानी है, जिसमें एक ठुकराई हुई भारतीय नारी के जीवन-उत्सर्ग की कथा है।

'विश्वास' कहानी प्रेम की व्यथा-कथा है। बेचारी नसीम की साधना को सलीम जैसे उच्चता के अभिमानी क्या समझ सकते हैं। 'नूरे' की निराशा से नसीम के चरित्र को और भी चार चाँद लग गये। यह एक सफल कहानी है। 'उपहार' भी एक कुतूहलवर्द्धक और विस्मय उत्पन्न करनेवाली कथा है। 'आशा' की कथा अत्यन्त साधारण और अरोचक है। 'अज्ञात' में कैलाशचन्द्र के अन्तर्द्वन्द्व का चित्रण सफल है। 'नीलाम' में भी कुँवर जी का चरित्र कुशलतापूर्वक अंकित है। रोचकता अन्त तक बनी रहती है।

इस प्रकार इस संग्रह की अधिकांश कहानियाँ कहानी-कला की दृष्टि से सफल कृतियाँ हैं। शैली भी उनके उपयुक्त है, यद्यपि भाषा का शैथिल्य और अँगरेज़ी के तत्समशब्दों का प्रयोग यत्र-तत्र खटकता है। लेखक का ध्यान अधिकतर कहानी के संवेदन-स्थल पर रहता है और इसमें वातावरण उपस्थित करने की क्षमता

* पाठकों को यह जानकर कौतूहल होगा कि मेरा यह नामकरण द्विवेदी जी की लेखनी ने ही किया है। पहले मैं अपना नाम "कालीदास" लिखा करता था।

—लेखक

में कमी हो जाती है। कथोपकथन भी साधारण है। कथानकों में यथार्थता की रक्षा करने की चेष्टा की गई है।

कुल मिलाकर पुस्तक रोचक और पठनीय है। काग़ज़ कुछ और अच्छा लगता तो पुस्तक के कलेवर की शोभा बढ़ जाती।

५—टर्की का शेर—लेखक, श्रीयुत विद्यावाचस्पति गणेशदत्त शर्मा गौड़ 'इन्द्र' और प्रकाशक गुप्त ब्रादर्स, बनारस सिटी हैं। १९३ पृष्ठों की सजिल्द पुस्तक का मूल्य १।।) है, परन्तु काग़ज मैला और सस्ता है। छपाई अच्छी है।

प्रस्तुत पुस्तक में कतिपय अँगरेज़ी तथा हिन्दी-उर्दू की पुस्तकों की सहायता से कमाल अतातुर्क की जीवनी का वर्णन है। पुस्तक जीवनी-लेखन-कला की दृष्टि से नहीं, बल्कि कमाल की जीवन-घटनाओं से परिचय कराने की दृष्टि से लिखी गई है। हिन्दी में अभी जीवनी-लेखन-कला का विकास नहीं हुआ है।

'टर्की का शेर' अपने उद्देश्य में सफल हुआ, और उसका लेखक भी। शैली रोचक, भाषा सरल और सुबोध है। एक ही पुस्तक में कमाल के जीवन की प्रायः सभी घटनाओं का सुन्दर संकलन कर दिया गया है।

६—बुद्ध-चरित्र—लेखक, साहित्य-भूषण, हिन्दी-प्रभाकर पं० खुशीराम शर्मा विशारद और प्रकाशक, अनेकानेक उपाधिधारी पं० राधेश्याम कथावाचक, अध्यक्ष—श्री राधेश्याम पुस्तकालय बरेली हैं। पृष्ठ-संख्या ३२ और मूल्य चार आना है।

पंडित राधेश्याम कथावाचक को हिन्दी-साहित्य में कोई स्थान नहीं मिल सका। परन्तु जनता ने उनका जितना स्वागत-सत्कार किया, उतना हिन्दी के किसी कलाविद् कवि को भी प्राप्त नहीं हो सका। प्रस्तुत पुस्तक राधेश्याम-द्वारा नहीं, परन्तु उनकी शैली में लिखी गई है। प्रथम बार २,००० छपी है और इसके अनेक संस्करण होंगे, यह निश्चय है। साहित्यिकों से यदि पूछा जाय तो उनका यही निर्णय होगा कि राधेश्याम और राधेश्यामी तर्ज़ ने हिन्दी-साहित्य के साथ अक्षम्य अपराध करने का दुस्साहस किया है। परन्तु हम तो समझते हैं कि इसमें दोष हमारे साहित्यिक कवियों का भी है, जो केवल स्वान्तः सुखाय या मित्र-मंडली या कालेज के विद्यार्थियों के लिए लिखते हैं। हिन्दी-प्रदेश का एक विशाल जनसमूह उनकी कृतियों के सुस्वादु से वंचित रह जाता है।

उसे अपनी साहित्य की चिर-तृषा शान्त करने के लिए यदि निम्नकोटि के साहित्य का आसरा लेना पड़ता है तो इसमें उसका क्या दोष? और इस प्रकार का साहित्य उपस्थित करनेवालों का भी कोई विशेष अपराध नहीं। 'राधेश्यामी' तर्ज़ तो फिर भी ग़नीमत है, इसमें धार्मिकता का बेजा फ़ायदा अवश्य अधिक उठाया गया है, स्वाभाविक कुरुचि का उतना नहीं। परन्तु इससे कहीं अधिक दूषित सामग्री हमारी अधिकांश जनता—स्त्री और पुरुषों की साहित्यिक प्यास को शान्त करने में प्रयुक्त हो रही है, जो उल्टे उस पर विषैला प्रभाव डालती है। साहित्यिकों के लिए यह चिन्त्य विषय है।

—ब्रजेश्वर

गुजराती

७—श्री तुकाराम-गाथा—(प्रथम-ग्रन्थ) अनुवादक, श्री सेवानन्द मु० शिकियारी, प्रकाशक, सस्तु साहित्य-वर्धक कार्यालय, अमदावाद और मुंबई नं० २; मूल्य २।), पृष्ठ-संख्या ८३२+६४ है।

श्री भिक्षु अखण्डानन्द के सम्पादन में विविध-ग्रन्थमाला के २८ वें वर्ष (१९९५ वि०) के ३१७ से ३२० अङ्क में इस पुस्तक का प्रकाशन हुआ है और यह माला का द्वितीय-ग्रन्थ है। मराठी-भाषा में—'सार्थ तुकाराम की गाथा' शीर्षक ग्रन्थ है, जिसके मूल-संग्रहकार श्री केशव भिकाजी ढवले हैं और उसी के आधार पर इस पुस्तक का भावानुवाद किया गया है। प्रस्तावनापूर्ण रूप से मूल-ग्रन्थ की ही है जो कि मूल-पुस्तक के सम्पादक श्री विष्णु नरसिंह जोग-द्वारा लिखी गई है। पुस्तक में संत तुकाराम का संक्षिप्त जीवन-चरित्र और सद्ग्रन्थों की महिमा का भी समावेश किया गया है। जीवन-चरित्र के यशस्वी लेखक श्री लक्ष्मण रामचन्द्र पांगारकर हैं।

(१)

प्रिय सम्पादक जी,

'सरस्वती' का जो अङ्क अभी आया है उसमें पंडित वेङ्कटेशनारायण जी तिवारी के लेख में मेरा उल्लेख किया गया है और मुझसे पूछा गया है कि मैंने बिहार की "हिन्दुस्तानी कमिटी" का सदस्य बना रहना क्यों स्वीकार किया है जब कि उसकी नीति से हिन्दी की हानि हो रही है। मेरा नम्र निवेदन यह है कि मैं इस कमिटी का कभी सदस्य था ही नहीं।

"हिन्दुस्तानी" मुश्तरका भाषा के मुतअल्लिक़ मेरा विचार जो कुछ है उसे मैं कई बार कई जगह पर प्रकट कर चुका हूँ। संक्षेप में मैं केवल यह कहूँगा कि देश की एकता के बहाने इससे हिन्दी और उर्दू दोनों की क्षति हो रही है और एक कृत्रिम भाषा तैयार की जा रही है जिससे साहित्य का बड़ा अनुपकार होगा। भवदीय

८-११-३९ अमरनाथ झा

(२)

नवम्बर की सरस्वती में "हिन्दुस्तानी की ओट में उर्दू" के "प्रचार" पर मेरा एक लेख है जिसमें प्रमादवश श्री नरेन्द्रदेव जी के बजाय मैंने श्री अमरनाथ झा का उल्लेख किया है। श्री झा महोदय बिहार की हिन्दुस्तानी कमिटी के सदस्य नहीं हैं। अतएव जो कुछ मैंने उस लेख में श्री झा महोदय के सम्बन्ध में लिखा है उसे पाठक श्री नरेन्द्रदेव जी के विषय में समझें। श्री अमरनाथ जी से मैं क्षमा का प्रार्थी हूँ। प्रसंगवश मैं अपने उस हर्ष का उल्लेख भी यहाँ कर देना चाहता हूँ जो मुझे उनके प्रतिवाद को पढ़ कर हुआ। इतने बड़े समर्थ विद्वान् के सहयोग का स्वागत मैं बड़ी विनम्रता और सम्मान के सहित करना चाहता हूँ क्योंकि उनका प्रगाढ़ पांडित्य, उनका महत्त्वपूर्ण-पद, उनकी शक्तिशालीनी लेखनी और उनकी ओजस्विनी वाग्मिता—यह सब ऐसे दुर्लभ साधन हैं जो दुस्तर कार्य को भी सरलता से सुगम बना सकते हैं। और कौन ऐसा हिन्दी-हितैषी है जो हिन्दी की वर्तमान विषमावस्था को देखकर हिन्दी की रक्षा को आसान समझता हो?

(१४-११-१९३९) वेंकटेशनारायण तिवारी

(३)

श्रीयुत सरस्वती-सम्पादक महोदय,

मेरे बार्हस्पत्य जी पर आक्टोबर की सरस्वती में छपे नोट पर उनके सुपुत्र श्रीमान् बाबू प्रतापचन्द्र जी, एम० ए०, एल-एल० बी० ने अपने ७ आक्टोबर के पत्र में निम्नलिखित संशोधन भेजे हैं, आप कृपा करके उन्हें 'सरस्वती' के किसी अगले अङ्क में यथासम्भव शीघ्र प्रकाशित कर दीजिए।

(१) बार्हस्पत्य जी सुपरिंटेंडिंग इंजीनियर के पद से रिटायर हुए थे।

(२) बार्हस्पत्य जी ३० वर्ष की अवस्था में ही संस्कृत के प्रकाण्ड पण्डित थे, १९०७ में उनका लगध मुनि प्रणीत ज्योतिषशास्त्र पर पाण्डित्यपूर्ण ग्रन्थ प्रकाशित हो गया था, जिसकी डाक्टर थीबो ने बहुत प्रशंसा की थी। १९०६ में उनके लेख हिन्दुस्तान रिव्यू में निकलने लगे थे।

(३) ७ जून १९३८ तक वे पूर्ण स्वस्थ थे। ३१ आक्टोबर १९३८ तक उनके मस्तिष्क पर बीमारी का तनिक भी प्रभाव नहीं पड़ा था। जून ३८ तक तो वे पूर्ण स्वस्थ थे और अपने स्वास्थ्य का बहुत ही ध्यान रखते थे। ३१ आक्टोबर को उन्हें जो दौरा पड़ा उससे उनके दिमाग़ की हालत खराब हो गई थी, उसमें भी वे समझाने-बताने से बात को समझ लेते थे। उन्होंने गणित-शास्त्र पर अँगरेज़ी में एक बहुत ही महत्त्वपूर्ण निबन्ध लिखा था। उसे उनके सुपुत्र शीघ्र प्रकाशित करने का विचार प्रकट करते हैं।

—ज्वालादत्त शर्मा

१८-१०-३९

(४)

पंडित किशोरीदास वाजपेयी लिखते हैं—

द्विवेदी जी के पत्र नं० १७ में यह छपा है:—"जिसने लघुकौमुदी के भी दर्शन नहीं किये उसे आप वाक्यों का तारतम्य समझाते हैं।" यहाँ "वाक्यों" के स्थान पर "वाच्यों" चाहिए। हिन्दी-व्याकरण के 'वाच्यों' के सम्बन्ध में एक छोटा-सा विवाद चल पड़ा था, उसी के सम्बन्ध में यह पत्र है।

योरपीय युद्ध में भारत को सहयोग देना चाहिए या नहीं, इस प्रश्न पर निर्णय देने के लिए कांग्रेस की कार्यसमिति ने १४ सितम्बर को अपना युद्ध-सम्बन्धी पहला वक्तव्य निकाला था। इस वक्तव्य में मुख्य बातें ये थीं—

योरोप में जो विषम स्थिति उत्पन्न हो गई है उस पर कार्यसमिति ने सावधानता से विचार किया। लड़ाई छिड़ने से भारत को किस सिद्धान्त के अनुसार चलना चाहिए इसका निरूपण कांग्रेस बहुधा कर चुकी है। और अभी हाल में ही ब्रिटिश सरकार-द्वारा भारत में अधिकार और भी परिमित एवं संकुचित होगया। इसलिए कार्यसमिति का कर्तव्य हो जाता है कि इन विषयों पर अति गम्भीरता से विचार करे।

फ़ासिस्टवाद और नात्सीवाद के सिद्धान्तों और कार्यों से कांग्रेस तनिक भी सहमत नहीं, इसकी घोषणा वह बार बार कर चुकी है। फ़ासिस्टवाद और नात्सीवाद दोनों में कांग्रेस को उसी साम्राज्यवाद के सिद्धान्त दीख पड़ते हैं जिसके विरुद्ध इतने दिनों से भारत लड़ता आ रहा है।

अतएव नात्सी जर्मनी ने पोलैंड पर जो आक्रमण किया उसकी निस्संकोच निन्दा कार्यसमिति करती है और जो लोग उस हमले का मुकाबिला कर रहे हैं उनके प्रति सहानुभूति प्रकट करती है।

स्वतन्त्रता और लोकतंत्र के प्रति भारत की पूरी सहानुभूति है। परन्तु जब भारत को ही स्वतन्त्रता नहीं मिलती है और जो कुछ उसे अधिकार मिला था वह भी छीन लिया गया, तब वह उस पक्ष की ओर से युद्ध नहीं कर सकता जो सिर्फ़ नाम को लोकतन्त्र की दोहाई देता हो।

कार्यसमिति जानती है कि ब्रिटेन और फ़्रांस की सरकारों ने यही घोषित किया है कि हम लोकतन्त्र एवं स्वतन्त्रता की रक्षा और अत्याचार का अन्त करने को लड़ रहे हैं, परन्तु १९१४-१८ वाले महासमर में प्रतिज्ञा और आचरण में बड़ा अन्तर देख पड़ा।

यदि इस युद्ध का यह उद्देश्य हो कि साम्राज्यवादियों का प्रभुत्व ज्यों का त्यों बना रहे, तो भारत को ऐसे युद्ध से कोई मतलब नहीं। हां, यदि इस युद्ध का यह उद्देश्य हो कि लोकतन्त्र के आधार पर दुनिया में सुव्यवस्था स्थापित हो तो भारत को भी उसमें गहरी दिलचस्पी हो सकती है।

यदि ब्रिटेन लोकतन्त्र की रक्षा और विस्तार के लिए लड़ता है तो यह आवश्यक है कि वह अपने अधीन देशों से साम्राज्यवाद का अन्त कर दे और भारत में पूर्ण लोकतन्त्र की स्थापना करे। फिर स्वतन्त्र और लोकतान्त्रिक भारत सहर्ष अन्य स्वतन्त्र देशों से मिलकर अत्याचार का निवारण भी करेगा और अर्थ-नैतिक सहयोग भी।

* * *

सरकार की ओर से उक्त वक्तव्य का जवाब न मिल सकने पर कांग्रेस की कार्यसमिति से ९ अक्टोबर को वर्धा में एक बैठक की। उसमें उसने निम्न शब्दों में अपने वक्तव्य को फिर दोहराया—

यह कमिटी १४ सितम्बर १९३९ को कांग्रेस-कार्यसमिति-द्वारा युद्ध के सम्बन्ध में जारी किये गये वक्तव्य को स्वीकार करती है और उसमें ब्रिटिश सरकार को अपने युद्ध और शान्ति उद्देश्यों को स्पष्ट करने का जो निमन्त्रण दिया गया है, उसे फिर दोहराती है। फ़ासिस्टवाद और नात्सी हमले की निन्दा करते हुए कमेटी का यह विश्वास है कि शान्ति और स्वतन्त्रता तभी क़ायम और उनकी रक्षा की जा सकती है जब कि साम्राज्यान्तर्गत तमाम देशों को स्वाधीनता दे दी जाय और वहाँ साम्राज्यवादी नियन्त्रण हटाते हुए आत्म-निर्णय के सिद्धान्त पर अमल किया जाय।

खासतौर से भारत को अवश्य स्वाधीन राष्ट्र घोषित कर दिया जाय और इस पर अभी जहाँ तक हो सके अधिक-से-अधिक विस्तृत रूप में अमल शुरू कर दिया जाय।

कांग्रेस-महासमिति को यह विश्वास है कि ब्रिटिश सरकार अपने युद्ध और शान्ति के उद्देश्यों के बारे में जो भी कोई वक्तव्य देगी, उसमें यह घोषणा कर देगी।

कांग्रेस-महासमिति नये सिरे से यह घोषणा कर देना चाहती है कि भारतीय स्वतन्त्रता का आधार प्रजातन्त्र और एकता तथा सभी अल्पसंख्यकों के अधिकारों का संरक्षण होना चाहिए, जिसके लिए कि कांग्रेस ने सदा अपने को वचनबद्ध किया है।

* * *

कांग्रेस के उक्त वक्तव्यों के उत्तर में वायसराय महोदय ने युद्ध और भारत के भविष्य के सम्बन्ध में ब्रिटेन की नीति की घोषणा करते हुए जो वक्तव्य दिया उसका मुख्य अंश इस प्रकार है—

मैं पहले पहली बात के सम्बन्ध में कहना चाहता हूँ। सम्राट् की सरकार ने अब तक लड़ाई लड़ने का उद्देश्य तफसील से निश्चित रूप में व्यक्त नहीं किया है। इस तरह की परिभाषा लड़ाई के मध्य में हो सकती है और वह किसी एक ओर से न होगी बल्कि मित्रराष्ट्रों की ओर से होगी। लड़ाई समाप्त होने से पहले हमारे सामने विद्यमान परिस्थितियों में बहुत परिवर्तन हो सकते हैं और यह उन परिस्थितियों पर निर्भर है, जिनमें युद्ध समाप्त होगा और इस अर्से में लड़ाई चलेगी।

ब्रिटिश सरकार का इरादा यह है और जैसा कि गवर्नर-जनरल के नाम जारी किये गये हिदायत से भी स्पष्ट है कि ब्रिटिश साम्राज्य के अन्तर्गत रहते हुए भारतवर्ष युनाइटेड-किंगडम का हिस्सेदार बन जाय; ताकि उसका भी बड़े बड़े उपनिवेशों में स्थान हो जाय। लेकिन अब मैं एक बार फिर यह साफ़ कह देना चाहता हूँ कि लड़ाई के बाद ब्रिटिश सरकार भारतीय विधान में निहित योजना में भारतीय लोकमत की दृष्टि से तरमीम करने को तैयार हो जायगी। लेकिन इसके साथ में इतना और कह दूँ कि पिछले दिनों विभिन्न नेताओं के साथ बातचीत करते हुए अल्पसंख्यक जातियों के नेताओं ने मुझसे साफ़-साफ़ आश्वासन माँगा था कि भविष्य में तरमीम करते हुए उनके विचारों का पूरा पूरा खयाल रखा जायगा, लेकिन मैं अब केवल इतना ही कहूँगा कि इस चीज़ का ब्रिटिश सरकार गोलमेज परिषद् आदि के समय हमेशा खयाल रखती रही है। भविष्य में भी वैसा न किया जायगा यह तो किसी को खयाल भी न करना चाहिए।

आज से एक महीना पहले मैंने केन्द्रीय असेम्बली में भाषण करते हुए एकता स्थापित करने के लिए अपील की थी। आज मैं उस अपील को फिर दोहराता हूँ। यह ठीक है कि मैंने कुछेक बातों के सम्बन्ध में यह आश्वासन नहीं दिया, जिसका राजनैतिक क्षेत्र स्वागत करते; लेकिन फिर भी मैं यह महसूस करता हूँ कि अभी यह मौक़ा नहीं कि एक खास शब्द-रचना की चट्टान पर भारत की एकता को छिन्न-भिन्न किया जाय। अतएव हमारी कोशिश यह रहनी चाहिए कि छोटे बड़े मतभेद रहते हुए भी भारत की एकता क़ायम रहे। हमारे सामने अनेक महान् आदर्श उपस्थित हैं। हमारी सभ्यता ख़तरे में है। ब्रिटिश कामनवैल्थ के दूसरे राष्ट्रों की तरह भारत भी उससे अछूता नहीं। हमारे महान् आदर्श भारत के लिए भी बहुमूल्य हैं। इस नाजुक घड़ी में केवल यही अपील होनी चाहिए कि हम युद्ध में सहयोग दें।

* * *

वायसराय की उक्त घोषणा का स्पष्टीकरण भारत-मन्त्री लार्ड ज़ेटलेंड ने अपने २३ आक्टोबर के वक्तव्य में किया, जिसका मुख्य अंश यह है—

युद्ध के दौरान में, जब कि हम मृत्यु व जीवन की लड़ाई में संलग्न हैं, भारतीय प्रजा के लिए कोई प्रयत्न करना अव्यावहारिक होगा और इससे भारत को कोई लाभ नहीं पहुँचेगा एवं वहाँ भारी विवाद खड़ा हो जायगा। हमें जिस काम के लिए कोशिश करनी है वह उन साम्प्रदायिक विरोधों को हटाना है, जिनसे कि अभी तक भारत की राजनैतिक एकता में रुकावट पैदा हो रही है। आप इन्हें केवल इनके प्रति आँखें बन्द करके दूर नहीं कर सकते। आपको इनका मुक़ाबिला करना होगा और उन शक्तियों को दूर करना होगा, जिनकी वजह से ये क़ायम हैं। अन्त में मैं भारतीयों से फिर अपील करता

हैं कि वे वर्तमान संकट में हमारे मित्र बनकर संगठित रूप से शत्रु का मुक़ाबिला करें।

* * *

वायसराय तथा भारतमंत्री के वक्तव्यों का निष्कर्ष यही था कि युद्ध-काल में तो कांग्रेस या भारत की किसी राजनैतिक संस्था की माँगों पर विचार नहीं किया जा सकता; हाँ, युद्ध समाप्त हो जाने के बाद एक गोलमेज़ परिषद्-द्वारा इसका निर्णय किया जायगा कि भारत को डोमेनियन स्टेट्स के अधिकार कब और किस रूप में दिये जायँ। इन घोषणाओं को असन्तोषजनक बतलाते हुए कांग्रेस-कार्य-समिति ने २२ आक्टोबर को यह प्रस्ताव पास किया—

कार्यसमिति की राय है कि उसने युद्ध के उद्देश्य के सम्बन्ध में और ख़ास करके उसके भारत में प्रयोग करने के सम्बन्ध में ब्रिटेन से स्पष्ट घोषणा करने का जो अनुरोध किया था उसके जवाब में वायसराय का दिया हुआ वक्तव्य बिलकुल असन्तोषजनक है और वह समझती है कि वह वक्तव्य उन सब लोगों में नाराज़ी पैदा करनेवाला है जो हिन्दुस्तान की स्वाधीनता प्राप्त करने के लिए उत्सुक और दृढ़प्रतिज्ञ हैं। वायसराय के वक्तव्य में पुरानी साम्राज्यवादी नीति दोहराई गई है। वक्तव्य में अनेक दलों के मतभेदों का ज़िक्र सिर्फ़ इस मतलब से किया गया है कि समिति ने हिन्दुस्तान के सम्बन्ध में ब्रिटेन की नेकनीयती की परीक्षा के लिए युद्ध-सम्बन्धी उद्देश्य की जिस घोषणा के लिए कहा था उसमें ग्रेट ब्रिटेन का इरादा चतुराई के साथ छिपाया जाय। विरोधी दलों और गरोहों के रुख़ के रहते हुए भी कांग्रेस सदा से अल्पसंख्यकों के अधिकारों के लिए काफ़ी से काफ़ी गारंटी की समर्थक है। कांग्रेस का दावा सिर्फ़ कांग्रेस या किसी ख़ास गरोह या सम्प्रदाय के लिए नहीं बल्कि राष्ट्र के लिए और हिन्दुस्तान के उन सभी सम्प्रदायों के लिए है, जो उस राष्ट्र को बनाने में लगें। इस स्वाधीनता की स्थापना और समष्टि रूप में राष्ट्र की इच्छा के निरूपण का एकमात्र उपाय लोकतन्त्रात्मक प्रणाली है जो सबको पूरा अवसर देती है। इसलिए समिति वायसराय के वक्तव्य को हर तरह से शोचनीय समझती है। इस परिस्थिति में समिति के लिए यह सम्भव नहीं है कि वह ग्रेट ब्रिटेन का किसी प्रकार समर्थन करे क्योंकि इस समर्थन का मतलब होगा साम्राज्यवादी नीति को स्वीकार करना, जिसका कि कांग्रेस हमेशा से ख़ात्मा करना चाहती है।

इस सम्बन्ध में पहले क़दम के तौर पर समिति कांग्रेसी मन्त्रि-मंडलों से कहती है कि वे इस्तीफ़ा दे दें।

* * * *

श्री जिन्ना की बहक

परन्तु मुस्लिम लीग ने कांग्रेस की इस माँग और निर्णय का घोर विरोध किया। इस सम्बन्ध में मि० जिन्ना ने अपना वक्तव्य मैन्चेस्टर गार्जियन में इस प्रकार छपवाया—

मुसलमानों ने भारत के अन्दर प्रजातन्त्र विधान की स्थापना को हमेशा से ख़तरनाक समझा है। नवीन प्रान्तीय स्वायत्त शासन के प्रारम्भ होने तथा कांग्रेस हाई कमाण्ड की कार्यवाहियों से यह भली भाँति ज्ञात हो गया है कि कांग्रेस का उद्देश्य अन्य प्रत्येक संस्था को नष्ट करना तथा फ़ैसिस्ट संस्थाओं जैसा संगठन करना है।

इस विधान ने यह भली भाँति स्पष्ट कर दिया है कि इस देश में एक प्रजातान्त्रिक सरकार की स्थापना असम्भव है।

भारत में प्रजातंत्र के अर्थ हिन्दू-राज की स्थापना के हैं। इस सत्ता को मुसलमान कभी स्वीकार नहीं कर सकते? अतएव मुस्लिम लीग इस नतीजे पर पहुँची है कि भारत के भावी विधान के सम्बन्ध में नये सिरे से विचार होना चाहिए और बिना मुस्लिम लीग की सलाह तथा सहमति के ब्रिटिश सरकार-द्वारा कोई घोषणा नहीं की जानी चाहिए।

कांग्रेस का यह ज़ोर देना कि वह और केवल वह ही भारत का प्रतिनिधित्व करती है, न केवल निराधार है वरन् भारत की उन्नति के लिए घातक भी है। वह सारे भारत का प्रतिनिधित्व तो क्या करेगी सम्पूर्णतया हिन्दुओं का प्रतिनिधित्व भी नहीं करती। उत्तरी भारत में करांची से कलकत्ता तक मुसलमान बहुमत में हैं। यदि कांग्रेस होश में नहीं आवेगी और वास्तविकताओं का मुक़ाबिला नहीं करेगी तो भारत की उन्नति के मार्ग में बाधक बनी रहेगी। और जब तक कांग्रेस अपनी फ़ैसिस्ट मनोवृत्ति

का परित्याग नहीं करती, भारत में शान्ति स्थापित नहीं होगी।

*   *   *

मुस्लिम लीग की इस मनोवृत्ति को आधार मानते हुए ३ नवम्बर को लार्ड सेलिसबरी ने निम्न वक्तव्य दिया; जिसमें उन्होंने बतलाया कि ब्रिटिश सरकार अल्पसंख्यकों की रक्षा के लिए वचनबद्ध है; अतः जब तक ये लोग सन्तुष्ट न हो जायँ स्वराज्य की कोई योजना कार्यरूप मे परिणत नहीं की जा सकती :—

हमारे दिलों में जो सबसे अधिक बात खटकी है वह यह है कि भारतीय नेताओं ने स्व-शासन के प्रति क़दम बढ़ाने के लिए अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति से लाभ उठाना ठीक समझा है।

यह हमारे लिए आश्चर्य की बात नहीं है। दोनों हाउसों की सिलेक्ट कमेटी में हमने बार बार पहले से ही इस बात को कहा था कि सरकारों के इस्तीफ़े की धमकी का और अधिक राजनैतिक स्वराज्य प्राप्त करने के लिए प्रयोग किया जायगा। मुझे भारतीय लोगों से किसी तरह का द्वेष नहीं है। मैं भी भारत में परिवर्तन होते हुए देखना चाहता हूँ, मगर वह बहुत सोच-विचार और एहतियात के साथ होने चाहिए। निस्सन्देह, ब्रिटिश सरकार कई बार औपनिवेशिक स्वराज्य देने की अपनी इच्छा की घोषणा कर चुकी है और इस प्रकार की घोषणा होना ही काफ़ी वजन रखती है।

स्थिति कुछ भी क्यों न हो, जरूरी समस्यायें वैसी ही बनी हुई हैं। आदिकाल से चली आ रही जातियों के बारे में आप क्या करेंगे? दलित जातियों के लिए क्या होगा? अल्पसंख्यकों के सम्बन्ध में आप क्या करेंगे? आप "औपनिवेशिक स्वराज्य", "औपनिवेशिक स्वराज्य" चिल्ला सकते हैं जब तक कि आपका गला न बैठ जाय, मगर ये कठिनाइयाँ बनी ही रहेंगी। इससे मेरा यह मतलब नहीं है कि कुछ अर्से में तथा वक़्त आने पर उनके लिए कोई हल तलाश नहीं किया जा सकता।

मुसलमानों की ओर अधिक ध्यान दिया जाय। हम उनकी रक्षा के लिए वचन-बद्ध हैं। वर्तमान अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों को देखते हुए मुस्लिम जाति के हितों की उपेक्षा करना ब्रिटिश सरकार का एक तरह का पागलपन होगा। शायद अन्तर्राष्ट्रीय संघर्ष का तमाम प्रश्न संसार की मुस्लिम जाति के निश्चय पर ही निर्भर करता है।

यह देश विविध जातियों और अल्प-संख्यकों के साथ किये गये अपने वायदों को पूरा करेगा और देशी राजाओं के साथ हुई सन्धियाँ भी किसी हालत में भंग नहीं की जा सकतीं।

*   *   *

भारत-मन्त्री का लार्ड-सभा में वक्तव्य

लार्ड-सभा में ७ नवंबर को भारतीय परिस्थिति के विषय में भारत-मंत्री लार्ड ज़ेटलेण्ड ने निम्न वक्तव्य दिया :—

कांग्रेस की यह माँग है कि अँगरेज़ सरकार पहले भारत को एक स्वतंत्र देश घोषित करे, और भारतवासी भविष्य में अपने लिए जो विधान बनायें उसमें अँगरेज़ सरकार कोई हस्तक्षेप न करे, और वह विधान एक विधान-सम्मेलन के द्वारा बनाया जाय। कांग्रेस की दृष्टि में भारत की साम्प्रदायिक और धार्मिक समस्याओं का कुछ महत्त्व नहीं है, और कांग्रेस का सदा यही रुख रहा है कि भारतीयों द्वारा बनाये विधान से अल्पसंख्यक सम्प्रदायों के लिए ऐसे संरक्षण दिये जायँगे जो उन्हें स्वीकार होंगे।

सम्राट् की सरकार के लिए यह स्थिति स्वीकार करना असम्भव है। ब्रिटेन का सम्बन्ध भारत से इतने दीर्घ काल तक रहा है कि वह वहाँ के विधान बनाने के सम्बन्ध में उपेक्षा का भाव नहीं रख सकती। गवर्नर-जनरल ने हाल में भारत के सभी राजनैतिक दलों से परामर्श करके यह जाना है कि जिस तरह की घोषणा ब्रिटेन से चाही जा रही है उसे अधिकांश भारतीय जनता स्वीकार न कर सकेगी।

*   *   *

इन घोषणाओं तथा वक्तव्यों का महात्मा गांधी ने ८ नवम्बर को वर्धा से निम्न उत्तर दिया :—

अब तक भारत में या ग्रेट ब्रिटेन में जो घोषणायें की गई हैं वे सब उसी पुराने ढंग की हैं और स्वाधीनता-प्रेमी भारत उन्हें सन्देह की दृष्टि से देखता और उन पर अवि-श्वास करता है। यदि साम्राज्यवाद मर चुका हो तो प्राचीन

परम्परा स्पष्ट रूप से टूटनी चाहिए, नवयुग के अनुकूल भाषा का व्यवहार होना चाहिए। इस मूल सत्य को स्वीकार करने का समय यदि अभी न आया हो, तो मैं अनुरोध करूँगा कि समस्या हल करने के लिए और प्रयत्न करना स्थगित कर दिया जाय।

इस सम्बन्ध में मैं ब्रिटिश राजनीतिज्ञों को स्मरण दिलाना चाहता हूँ कि ब्रिटेन, भारत की इच्छाओं का कोई विचार न करते हुए भारतीय नीति-सम्बन्धी अपने इरादे की घोषणा करे। गुलामों का जो मालिक गुलामी उठा देने का निश्चय कर चुका हो, वह अपने गुलामों से इस सम्बन्ध में परामर्श नहीं करता कि वे स्वतंत्रता चाहते हैं या नहीं।

भारत को गुलामी से, धीरे धीरे नहीं, तुरन्त मुक्त कर देने की घोषणा एक बार कर दी जाय फिर तो परिवर्तन काल की समस्या हल करना आसान हो जायगा और अल्पसंख्यकों के हितों का संरक्षण सरलता से हो जायगा; चढ़ा-ऊपरी बन्द हो जायगी। अल्प-संख्यक संरक्षण के अधिकारी हैं, पर यह धीरे-धीरे थोड़ा-थोड़ा करके नहीं एक ही बार में और पूरा पूरा होना चाहिए। स्वतंत्रता की ऐसी कोई सनद तो ध्यान देने योग्य भी न होगी जिससे अल्पसंख्यकों को भी उतनी ही स्वतंत्रता न मिलती हो जितनी बहुसंख्यकों को।

विधान तैयार करने में अल्पसंख्यक पूरी तरह भाग लेंगे, यह किस प्रकार हो सकता है? यह तो उन प्रतिनिधियों के विवेक पर निर्भर रहेगा जिन पर विधान तैयार करने का पवित्र कर्तव्य हो। ब्रिटेन ने अब तक तथोक्त बहुसंख्यकों के विरुद्ध अल्पसंख्यकों को खड़ा करके अपने हाथ में अधिकार रक्खा है—किसी भी साम्राज्यवादी व्यवस्था में यह अनिवार्य है—और इस प्रकार इन दोनों में समझौता होना लगभग असम्भव कर दिया गया है। अल्पसंख्यकों के संरक्षण का उपाय ढूँढ़ने का भार इन दोनों पक्षों पर ही छोड़ दिया जाना चाहिए। जब तक ब्रिटेन इस भार को वहन करना अपना कर्तव्य मानेगा तब तक उसे भारत को अधीन राज्य बनाये रखने की आवश्यकता भी प्रतीत होती रहेगी और भारत के उद्धार के लिए उतावले देशभक्त, यदि उनका पथ-प्रदर्शन मैं कर सका तो, अहिंसामय रीति से, और यदि मैं असफल हुआ और इस प्रयत्न में मर मिटा तो हिंसामय प्रकार से, ब्रिटेन से लड़ते रहेंगे।

* * * *

यह तो हुआ भारत के भविष्य के विषय में भारतीय तथा ब्रिटिश राजनीतिज्ञों का रुख़, परन्तु इस मसले पर संसार के सर्वप्रसिद्ध राजनीतिज्ञ डाक्टर कीथ का यह मत है :

स्वाधीनता मान लेने की माँग यह बताकर मंजूर कर लेनी चाहिए कि औपनिवेशिक पद में हिन्दुस्तान का यह अधिकार भी शामिल है कि वह उचित समय पर बाध्यता के प्रश्न का निर्णय कर ले, यह साफ़ बात है कि इस घड़ी वह वैसा नहीं कर सकता। सन् १९३५ के विधान के अनुसार परामर्श बिलकुल नाकाफ़ी है। उस विधान में यह मौलिक त्रुटि है कि वह ब्रिटिश सरकार के साथ रियासतों के शासकों को मिलाकर ऐसा सामन्तशाही शासन बनाये रखना चाहता है जिसमें कि कट्टरपन्थी व्यवस्थापकमंडल और ऐसा शासनमण्डल बने जिसको पर-राष्ट्र विषय और स्वदेश-रक्षा जैसे अत्यावश्यक मामलों में कुछ भी असली अधिकार नहीं। ब्रिटिश भारत को, जहाँ प्रान्तीय उत्तरदायी शासन चल रहा है, यह आश्वासन पाने का अधिकार है कि लड़ाई खतम हो जाने पर ऐसा विधान बनाया जायगा जो सच्चा उत्तरदायी शासन देगा। रियासतों को उन शर्तों के अनुसार शामिल होने की इजाजत दी जाय जिनको नई सरकार तय करे और भारतीय पार्लमेण्ट मंजूर करे। उस पार्लमेण्ट में निस्सन्देह राज्यों के भी प्रतिनिधि होंगे जो न सिर्फ़ राजाओं के, बल्कि रियासती जनता के भी प्रतिनिधि होंगे। उस विधान से कनाडा में प्रचलित पद्धति के ढंग पर अदालतों-द्वारा अल्पसंख्यकों के अधिकार की रक्षा की पूरी व्यवस्था होनी चाहिए।

तात्कालिक व्यवस्था के रूप में वायसराय की शासन-परिषद् में व्यवस्थापक सभाओं के बड़े दलों के प्रतिनिधि भी शामिल किये जा सकते हैं ताकि हिन्दुस्तान को उस अत्यन्त आवश्यक उद्देश्य की पूर्ति में तुरंत उनकी सलाहवाली सहायता मिले—जिस पर कि उसकी स्वाधीनता निर्भर करती है—यानी जर्मनी का आक्रमण व्यर्थ करना।
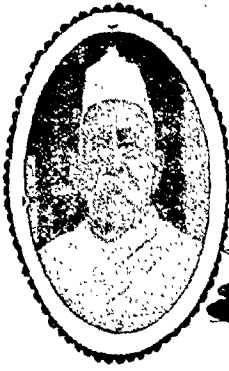
पंडित ज्वालादत्त शर्मा के नाम

(१) जुही, कानपुर

प्रणाम, १६-५-०८

सहानुभूति-सूचक पत्र मिला। इस कृपा के लिए अनेक धन्यवाद। प्रकृति हमारी सुधर चली है। नींद थोड़ी थोड़ी आने लगी है। जल-चिकित्सा कर रहे हैं। उसी से यह लाभ हुआ है। इस चिकित्सा के कारण अभी बाहर नहीं जा सकते। यदि उस तरफ़ आना हुआ तो अवश्य आपके दर्शन करेंगे। कृपा पूर्ववत् बनाये रखिए।

विनीत

म० प्र०

(२) ज्वालापुर,

प्रणाम, २९-४-०९

कृपाकार्ड मिला। हम बीमार हैं। इससे यहाँ जल-वायु-परिवर्तन के लिए आये हैं। यहाँ से देहरादून और फिर मंसूरी जाना है। अभी कोई महीने डेढ़-महीने यहाँ रहने का विचार है। साथ में घर के लोग भी हैं। इस दशा में मुरादाबाद आने में कितनी असुविधा होगी, इसका विचार आप ही कर लीजिए। तथापि हम आपको इस आमंत्रण के लिए बहुत बहुत धन्यवाद देते हैं।

विनीत

महावीरप्रसाद

(३)

जुही, कानपुर

प्रणाम, २१-५-०९

कृपा-कार्ड मिला। जब से आये, बीमार हैं। ज्वर आता था। कल से छूटा है। कमज़ोरी बेहद है। और क्या लिखें। कृपा पूर्ववत् रखिए।

विनीत

म० प्र० द्विवेदी

(४) जुही, कानपुर

२५-१२-११

महोदयवर,

आपके उत्साहदायक वचनों का मैं हृदय से अभिनन्दन करता हूँ। धन्यवाद।

उस लेख में कुछ युक्ति थी—निरा युक्ति-रहित न था—इससे प्रकाशित कर दिया। आप जो कुछ लिखना चाहें उसके खण्डन में लिख सकते हैं। मैं उसे भी प्रकाशित करने को प्रस्तुत हूँ। कुछ आपको अगली संख्या में मिलेगा भी।

विनयावनत

महावीरप्रसाद द्विवेदी

(५)

निवेदन, ७-३-१२

जिस जीवनी पर से वह नोट मैंने लिखा वह इस समय मेरे पास नहीं। खेद है। इससे आज्ञापालन नहीं कर सकता।

म० प्र० द्विवेदी

(६)

जुही, कानपुर

१३-११-१२

महाशय,

आप सोऽहं स्वामी का संक्षिप्त चरित, सरस्वती के तीन-चार कालम के बराबर, चित्र-सहित भेज दीजिए। मैं देखकर आपसे निवेदन करूँगा कि वह सरस्वती में निकल सकेगा या नहीं।

भवदीय

म० प्र० द्विवेदी

वर्ग नं० ४० का नतीजा

प्रथम पुरस्कार ३००) (शुद्ध पूर्ति पर)

यह पुरस्कार निम्नलिखित २५ व्यक्तियों में बाँटा गया। प्रत्येक को १२) मिले।

(१) मार्कण्डेय शुक्ल, नया कटरा, प्रयाग। (२) रेखा श्रीवास्तव, दारागंज, प्रयाग। (३) श्रीमती एल० पी० सक्सेना, ६१९ सिविल लाइन्स, आगरा। (४) तिलकराज, जैन गुरुकुल, गुजराँवाला। (५) श्रीमती रामदेवी श्रीवास्तव, मथुरा कैन्ट। (६) छोटेलाल मिश्र, विसवाँ, सीतापुर। (७) श्यामसुन्दरलाल चौरसिया, वीरभूमि, महोबा। (८) वंशगोपाल भूजा, गंगाराम गली, १४५ कलकत्ता। (९) भोलाराम भूजा, गंगा रामगली १४५, कलकत्ता। (१०) हरी किशोर, ८ लायन्स रेंज, कलकत्ता। (११) झरीराम, ८ लायन्स रेंज, कलकत्ता। (१२) गोविन्दराव भट्ट, c/o विनायकराव भट्ट, सब-पोस्टमास्टर, ललितपुर। (१३) लक्ष्मणप्रसाद, श्रीनगर, हमीरपुर। (१४) शिवदत्तप्रसाद वाजपेयी, अजगैन, उन्नाव। (१५) माधवलाल याज्ञिक, एस० आर० के० इंटर कालेज, फ़ीरोज़ाबाद, आगरा। (१६) गोविन्द-प्रसाद, पोस्ट आफ़िस, बनारस कैंट। (१७) वालगोविन्द मिस्त्री, २३१ फ़ैथफ़ुलगंज, कानपुर। (१८) रामकृष्ण, पुरवा, उन्नाव। (१९) शकुन्तलादेवी, c/o कृष्णदत्त भारद्वाज, माडर्न हाई स्कूल, नई दिल्ली। (२०) राम-निरंजन, विसाऊ जयपुर। (२१) किशनसिंह टीचर, स्टेट स्कूल, रेनी (बीकानेर)। (२२) देवसहायलाल तृतीय, पो० सूर्यगढ़ा, मुंगेर। (२३) ओंकारनाथ, बेनीपुरा, बनारस। (२४) शंतसिंह चन्द्रावत, मिडिल स्कूल, पिट-लोदा, (Central India)। (२५) अमरनाथ, मधुपुर।

द्वितीय पुरस्कार ७२) (एक अशुद्धि पर)

यह पुरस्कार निम्नलिखित ८ व्यक्तियों में बाँटा गया। प्रत्येक को ९) मिले।

(१) बुद्धूराम, गंगाराम गली १४५, कलकत्ता। (२) मिस रमा श्रीवास्तव, कराची। (३) वेनीमाधव मिश्र, देहली। (४) नर्मदाप्रसाद, जोधपुर। (५) शम्भूनाथ, अमरकोट, राजपूताना। (६) रामलाल, बाग़ बाज़ार, कलकत्ता। (७) सीताराम, हेडमास्टर, उदयपुर। (८) सीतलासहाय, बालासोर, (उड़ीसा)।

तृतीय पुरस्कार १३०) (दो अशुद्धियों पर)

यह पुरस्कार निम्नलिखित ५२ व्यक्तियों में बाँटा गया। प्रत्येक को २।।) मिले।

(१) शिवलखनसिंह, बलिया। (२) मार्कण्डेय शुक्ल, इलाहाबाद। (३) अमरचन्द, जयपुर। (४) रामसजीवनलाल, अजैगढ़। (५) उमाशंकर, अलीगढ़। (६) लखनलाल साह, पटना। (७) चन्द्रभान वाजपेयी, चाईबासा। (८) मिसेज़ मदनमोहन टंडन, मुरादाबाद। (९) प्रकाशवती, लखना, इटावा। (१०) शैलेन्द्रकुमार, लखना, इटावा। (११) डी० एल० जगाती, बागेश्वर, (अल्मोड़ा)। (१२) लक्ष्मीदत्त, फ़रीदपुर, (बरेली)। (१३) लीलावती, फ़रीदपुर, (बरेली)। (१४) हरि-नारायण अग्रवाल, लखनऊ। (१५) रामलखन शर्मा, गुलाब बाड़ी, फ़ैज़ाबाद। (१६) श्री मंदरदास जैन, अलीगंज, एटा। (१७) डा० अशरफ़ीलाल सक्सेना, फ़र्रुख़ाबाद। (१८) रघुनाथप्रसाद, ज्ञानपुर, (बनारस स्टेट)। (१९) रामकुमार मित्तल, हनुमानटीला, खुरजा। (२१) विनायकराव भट्ट, ललितपुर। (२१) भगवती देवी, ललितपुर। (२२) बच्चूलाल, ३३ कैलाश, कानपुर। (२३) मंगलसिंह, सयाना, बुलन्दशहर। (२४) प्रमिला, हिन्दी-सेवा-सदन, धौलपुर। (२५) अमीचन्द, चोपड़ा, लाहौर। (२६) रामभरोसे बिश्नोई, औरैया, (इटावा)। (२७) ओ० एच० राठौर, कोटा, (राजपुताना)। (२८) एम० ओ० राठौर, कोटा, (राजपुताना)। (२९) द्वारकाप्रसाद शर्मा, गुमला, (राँची)। (३०) रामशंकर, पुरवा, (उन्नाव)। (३१) महावीरप्रसाद, मिश्र, पुरवा, (उन्नाव)। (३२) कृष्णगोपाल माहेश्वरी, चौक बाज़ार, मथुरा। (३२) बरकतराम टीचर, पिलानी, जयपुर। (३४) कुसुमलता, रतननगर, बीकानेर। (३५)

पी० एम० झुंझुनूवाला, बिसाऊ, जयपुर। (३६) कैलाशी देवी गुजराती, कुरावली, मैनपुरी। (३७) ब्रजगोपाल माहेश्वरी, चौक बाज़ार, मथुरा। (३८) श्री गोपाल माहेश्वरी, चौक बाज़ार, मथुरा। (३९) ज्ञानचन्द्र शास्त्री, लोअरमाल, लाहौर। (४०) प्यारेलाल, गांधीनगर, कानपुर। (४१) कन्हैयालाल शर्मा, बाँदा। (४२) राधादेवी वर्मा, लीडर प्रेस, इलाहाबाद। (४३) रामनारायण शर्मा, नई बस्ती, दिल्ली। (४) बैजनाथ गुप्त, महोबा, हमीरपुर। (४५) बी० आर० पाठक, सिविल मैजिस्ट्रेट, लखनऊ। (४६) वृजकिशोर शर्मा, बकेवर, इटावा। (४७) मु० शरीफ़ मास्टर, मैनागढ़ गञ्ज, (सी० पी०)। (४८) प्रयागनारायण सिनहा, इलाहाबाद। (४९) पुष्पा श्रीवास्तव, दारागंज, इलाहाबाद। (५०) पुरुषोत्तम हरिभाऊ मुकाती, धन्नपुरी (धार स्टेट)। (५१) छोटेसिंह चौहान, बहादुरपुर, एटा। (५२) नारायण देवी, फ़ैज़ाबाद।

चतुर्थ पुरस्कार ॥) (तीन अशुद्धियों पर)

यह पुरस्कार निम्नलिखित १ व्यक्ति को दिया गया। जिसे ॥) का कूपन मिला।

(१) वेदपाल गुप्त, ३८५ कटरा, प्रयाग।

उपर्युक्त सब पुरस्कार दिसम्बर के अन्त तक भेज दिये जायँगे।

नोट—जाँच का फ़ार्म ठीक समय पर आने से यदि किसी को और भी पुरस्कार पाने का अधिकार सिद्ध हुआ तो उपर्युक्त पुरस्कारों में से जो उसकी पूर्ति के अनुसार होगा वह फिर से बाँटा जायगा।

केवल वे ही लोग जाँच का फ़ार्म भेजें जिनका नाम यहाँ नहीं छपा है, पर जिनको यह सन्देह हो कि वे पुरस्कार पाने के अधिकारी हैं।

उससे फ़ायदा नहीं उठा सके, उल्टा देश को उन्होंने संकट में डाल दिया है—उस देश को, जिसे वे ख़ुद कहते थे कि वह लड़ाई के लिए तैयार नहीं है।

हम जानते हैं कि कांग्रेस में क्षमता है, उसमें शक्ति है, जिसका परिचय वह बार बार दे चुकी है। फिर देश का अधिकांश उसके प्रत्यक्ष प्रबन्ध में आ जाने से तो उसकी शक्ति में अपार वृद्धि हो गई थी। अतएव वह इस अवसर से तद्वत् लाभ भी उठा सकती थी। परन्तु उस ओर ध्यान नहीं दिया, और यह उसकी निर्बलता मानी जायगी।

कांग्रेस की माँग है कि ब्रिटिश सरकार इस बात की घोषणा कर दे कि भारत को 'डोमीनियन' का पद युद्ध के बाद दे दिया जायगा। परन्तु ब्रिटिश सरकार वचन-बद्ध होने को तैयार नहीं है। उसका कहना है कि पहले राजाओं को और मुसलमानों को राजी कर लो तब इस तरह की माँग करो। और राजा लोग तथा मुस्लिम लीग दोनों ही कांग्रेस से भड़के हुए हैं। फलतः कांग्रेस संयुक्त माँग, प्रयत्न करने पर भी, नहीं पेश कर सकी। ऐसी दशा में अब क्या होगा, यही जटिल प्रश्न है।

परिस्थिति का निराकरण

भारत की राजनैतिक परिस्थिति का निराकरण क्या हो गया? वायसराय महोदय ने अपना जो निर्णय दिया है उससे तो उसकी मीमांसा और भी गुठल हो गई है। उन्होंने कहा है कि कांग्रेस सारे भारत का प्रतिनिधित्व करने का जो दावा करती है वह ठीक नहीं है। कदाचित् देश के जिन ५२ महान् व्यक्तियों से उन्होंने हाल में भेंट-मुलाक़ात की है उनके मतवैभिन्न्य से ही उनकी यह धारणा हुई है अथवा अपनी या साम्राज्य-सरकार की ऐसी धारणा की पुष्टि के लिए उन्होंने मतभेदों का संग्रह करके अपनी उक्त घोषणा की है। चाहे जो हो, उससे परिस्थिति विषम से विषमतर हो गई है और कांग्रेस जैसी देश की महान् संस्था की इस प्रकार अवहेलना करना और सो भी ऐसे संकट के समय साम्राज्य-सरकार के वर्तमान सूत्र-धारों की राजनीतिज्ञता की महत्ता का परिचायक नहीं है।

कांग्रेस भले ही समग्र भारत का प्रतिनिधित्व न करती हो, परन्तु इतना तो प्रकट ही है कि पिछले चुनाव में जिसमें उसने प्रसन्नता से भाग नहीं लिया था, वह पूर्णरूप से विजयी हुई है, यहाँ तक कि ग्यारह में से आठ प्रान्तों में उसका बहुमत हो गया। शेष रहे तीन प्रान्त सो उनमें भी उसका दल नगण्य नहीं रहा और उनमें मुस्लिम मंत्रि-मण्डल तभी अस्तित्व में आ सके जब मुस्लिम-दल मंत्रि-मण्डल बनाने के स्वार्थवश परस्पर तथा अन्य दलों से मिल गये। आज जो मुस्लिम लीग भारत के मुसलमानों का प्रतिनिधि होने का दावा करती है वह उन तीन प्रान्तों में भी अपना बहुमत नहीं प्राप्त कर सकी। पंजाब में संयुक्त दल ने मुस्लिम लीग को हराया था और बंगाल में तो खिचड़ी मंत्रि-मंडल है ही। सिन्ध की मुस्लिम सरकार प्रकट रूप से मुस्लिम लीग के विरुद्ध है। ऐसी दशा में मुस्लिम लीग का देश की राजनीति में जो स्थान है वह सब पर प्रकट है। यह बात दूसरी है कि अपना उल्लू सीधा करने के लिए उसको महत्त्व दे दिया जाय।

इसी प्रकार कांग्रेस का भी महत्त्व सब पर प्रकट है। यह बात सारा संसार जानता है कि भारत में कांग्रेस ही वह संस्था है जो देश की राजनीति पर विशुद्ध राष्ट्रीय दृष्टिकोण से विचार करती है।

साम्प्रदायिक निर्णय

साम्प्रदायिक निर्णय ब्रिटेन के भूतपूर्व प्रधान मंत्री श्री राम्से मैक्डानल की देन है। उसके फल-स्वरूप भारत जिस दुर्दशा को प्राप्त हुआ है वह प्रत्यक्ष है। भारत के हिन्दू-मुसलमान आज एक-दूसरे से जितना दूर दिखाई देते हैं उतना पहले कभी नहीं थे। अतएव देश की भलाई के लिए इस समझौते को रद ही कर देना चाहिए। परन्तु न वह समझौता रद होता दिखाई देता है, न हिन्दू-मुसलमानों में आपस में ही कोई समझौता होता नज़र आ रहा है, यद्यपि उसके लिए परस्पर बातचीत पहले भी हुई है और आज भी हो रही है। महात्मा जी तो कहते हैं कि कांग्रेस अल्पसंख्यकों की माँगें पूरी करने को तैयार है। तब अल्पसंख्यक अपनी माँगें क्यों नहीं पेश करते? वायसराय महोदय के सामने कांग्रेस और लीग के प्रधान व्यक्तियों में, जान पड़ता है, दिल खोलकर बातें नहीं हुई हैं। इसी से वाञ्छित परिणाम नहीं निकला और अब यही दिखाई देता है कि भारत में भी भारी संकट

उपस्थित होगा और इस बार कांग्रेस को अपने अस्तित्व तक के लिए लड़ना पड़ेगा।

यह तो एक प्रकट बात है कि पिछले ४० वर्ष का राजनैतिक आन्दोलन व्यर्थ नहीं गया है। यही नहीं, महात्मा जी के असहयोग-आन्दोलन से तो देश की जनता में अभूतपूर्व जागृति हो गई है और उसमें स्वराज्य के पाने की लालसा ही नहीं पैदा हो गई है, किन्तु उसकी प्राप्ति के यत्न में उसका पूरा सहयोग भी है। कांग्रेस और महात्मा गांधी ऐसी ही जनता के नेता हैं, और यह बात भारत-सरकार, देशी नरेश, मुस्लिम लीग और हिन्दू-सभा आदि आदि सभी भले प्रकार जानते हैं। आश्चर्य है कि ऐसी जानकारी के होते हुए भी आज फिर भारत में राजनैतिक संकट उपस्थित हो गया है। परन्तु यह सन्तोष की बात है कि कांग्रेस की बागडोर अभी महात्मा गांधी सँभाले हुए हैं और उनके नेतृत्व में भविष्यत् के संघर्ष में एक बार फिर भारत के राष्ट्रीयतावाद को विजय प्राप्त होगी।

वायसराय महोदय की संधि-वार्ता

दिल्ली में पिछले दिनों वायसराय महोदय के यहाँ जो बातचीत हुई है उसमें दो बातें स्पष्ट हो गई हैं। एक तो यह कि ब्रिटिश सरकार इस बात पर अड़ी हुई है कि पहले आपस में मेलजोल कर लो और एकमत हो जाओ तब भारत को डोमीनियन का दर्जा दिया जाय, अर्थात् जब तक राजा लोग और मुस्लिम लीग कांग्रेस को सन्देह की दृष्टि से देखते रहेंगे तब तक सरकार उनके हितों की रक्षा के विचार से भारत को डोमीनियन का पद नहीं दे सकती। दूसरी बात यह है कि मुस्लिम लीग कांग्रेस को हिन्दू-सभा समझती है और भारत में प्रजातांत्रिक शासन का जारी होना हिन्दुओं का राज्य क़ायम होना मानती है। आश्चर्य है कि ये दोनों विचार ऐसे लोगों ने व्यक्त किये हैं जो राजनीतिज्ञों के समाज में भी विशेष रूप से जानकार माने जाते हैं। परन्तु बात ऐसी नहीं है। मुस्लिम लीग न तो मुस्लिम समाज की एकमात्र प्रतिनिधि संस्था है, न कांग्रेस हिन्दुओं की।

इँगलैंड के राजनीतिज्ञ इस बात को जानते थे कि युद्ध-काल में उन्हें भारत का सहयोग अनिवार्य होगा। उन्हें यह भी मालूम था कि अपने हरिपुरा के प्रस्ताव के अनुसार कांग्रेस युद्ध में ब्रिटेन की सहायता करने को तैयार नहीं होगी। यही नहीं, भारत-रक्षा-क़ानून पेश होने के समय केन्द्रीय असेम्बली का बायकाट करके उसके प्रतिनिधियों ने उसके मनोभाव का स्पष्ट संकेत कर भी दिया था। परन्तु ब्रिटेन के राजनीतिज्ञों ने इन सब बातों की उपेक्षा की। वे समझते हैं कि उनके साथ राजा-रईस लोग तथा मुस्लिम लीग तो हैं। और यही उनकी भूल है, क्योंकि राजा-रईस और मुस्लिम लीग के मुसलमान ही सारा भारत नहीं हैं, हाँ वे उसका एक अंश अवश्य हैं और सो भी लोकप्रिय नहीं।

इधर कांग्रेस के साथ जनता है। हिन्दू-जनता ही नहीं, मुसलमान-जनता, ईसाई-जनता और अछूत-जनता भी है। क्योंकि कांग्रेस किसी जातिविशेष की संस्था नहीं है, किन्तु वह भाव-विशेष की संस्था है। और वह भाव है राष्ट्रीयतावाद, जिसका देश के सभी श्रेणी के लोगों में प्रचार हो चुका है। कांग्रेस ऐसे ही लोगों की प्रतिनिधि-संस्था है। आश्चर्य है, उसके इस महत्त्व को जानते हुए भी ब्रिटेन के राजनीतिज्ञ उसकी उपेक्षा कर रहे हैं और मुस्लिम लीग और राजाओं की बात उठाकर कांग्रेस को असन्तुष्ट करने में ही अपनी बुद्धिमानी समझ रहे हैं। उनको चाहिए तो यह था कि वे मुसलमानों की तथा राजा-रईसों की माँगों पर विचार करते और उनका कांग्रेस की विचारप्रणाली से सामञ्जस्य करके कोई ऐसा मार्ग ढूँढ़ निकालते कि सबके सब उस मार्ग पर चल सकते। दुःख है कि राजनीतिज्ञता के महान् पण्डित अँगरेज लोग भी इस अवसर पर चूक गये और अपनी भूल से भारत में अवाञ्छनीय परिस्थिति पैदा कर दी। तथापि प्रसन्नता की बात है कि वायसराय महोदय ने अभी अपनी आशा का त्याग नहीं किया है और वे कोई ऐसा उपाय ढूँढ़ने में लगे हुए हैं कि कांग्रेस, मुस्लिम लीग और राजाओं के प्रतिनिधि एक साथ मिलकर ब्रिटिश सरकार की उसके संकट-काल में पूर्णरूप से सहायता करें।

युद्ध की प्रगति

पोलैंड से छुट्टी पाकर जर्मनी ने अपनी सारी शक्ति पश्चिमी युद्ध-क्षेत्र में लगा दी है और फ़्रेंच सेना ने जर्मनी में घुसकर उसके जिस भूखण्ड पर अधिकार कर लिया

था वह फिर उसके हाथ आ गया है। फ़रासीसी सेनाओं ने जर्मनों की विशेष गतिविधि को देखकर अपनी सीमा के भीतर ही लौटकर पंक्तिबद्ध हो जाना उचित समझा और वे समय रहते ही कुशलता-पूर्वक अपने देश को चली भी गईं। इससे जर्मनों को स्थान खाली मिला और उनकी सेनाओं ने बढ़कर अब फ्रेंच-सीमा पर मैगनोलाइन के सामने जाकर अपना मोर्चा लगा दिया है। इसके सिवा पिछले दिनों और कुछ नहीं हुआ है। परन्तु यदि इस क्षेत्र में युद्ध आरम्भ होगा तो वह निस्संदेह अति भीषण होगा। यहाँ मैगनोलाइन के पीछे फ़्रांस और ब्रिटेन की पूरी शक्ति लगाई गई है और वह जर्मनी से टक्कर लेने को उत्सुक है। परन्तु उसने अभी तक वार नहीं किया है। कदाचित् उसकी इसी विरति के कारण लोग कहने लगे हैं कि वह पश्चिमी युद्ध-क्षेत्र में नहीं लड़ेगा और इसके स्थान में वह ब्रिटेन पर आक्रमण करेगा। परन्तु अभी तक वह आक्रमण भी नहीं हुआ है। हो भी कैसे? ब्रिटेन पर आक्रमण करना सम्भव कहाँ है? हाँ, जहाज़ों के डुबने की लड़ाई अवश्य हो रही है और हो रही हैं बातों की। और यह पिछली लड़ाई बड़े महत्त्व की है।

इस समय युद्ध की ऐसी ही अवस्था है और एक प्रकार की शान्ति का यह वातावरण सिर्फ़ इसी बात का संकेत करता है कि भयानक तूफ़ान आनेवाला है। जर्मनी शक्तिशाली है, इसमें सन्देह नहीं। परन्तु ब्रिटेन और फ़्रांस भी कम शक्तिशाली नहीं हैं, साथ ही कहीं अधिक क्षमताशाली हैं। अतएव जब इनकी मुठ-भेड़ होगी तब वह असाधारण रूप से भीषण ही होगी।

महायुद्ध के संबंध में रूस का रुख़

रूस के वैदेशिक मंत्री श्री मोलोटोव ने जो भाषण किया है उससे इस बात का थोड़ा-बहुत आभास मिल जाता है कि वह जर्मनी का पक्ष लेकर युद्ध में शामिल नहीं होगा और न पूर्व में वह जापान से लड़ने को इच्छुक है, परन्तु ख़ुद सुरक्षित और शक्तिसम्पन्न बना रहना वह ज़रूर चाहता है। इसी से बाल्टिक के राज्यों को अपने प्रभावक्षेत्र में लाकर और उनके तट के द्वीपों तथा बन्दरों पर अपने सैनिक अड्डे क़ायम कर वह अपने ईर्षा भाव को कार्य का रूप दे रहा है। फ़िनलेंड को उसका प्रस्ताव अभी तक स्वीकृत नहीं हुआ है और उधर तुर्की ने भी उसके प्रस्ताव को नहीं स्वीकार किया। तुर्की से यह प्रस्ताव था कि लड़ाई होने पर वह अपनी जल-प्रणालियों से होकर कृष्ण सागर में किसी के बेड़े को न आने दे। लोगों का अनुमान है कि वह रूमानिया से अपना बेसेबेरिया-प्रान्त वापस माँगेगा और यदि वह नहीं दिया जायगा तब रूस उसे बलपूर्वक लेगा। उस दशा में उसकी ब्रिटेन और फ़्रांस से भी लड़ाई हो जायगी। यही एक बात रूस के दुस्साहस को रोके हुए है। और वह अपनी रक्षा के लिए चिन्तित ज़रूर हो उठा है।

तिब्बत के दलाई लामा

तिब्बत बौद्धों का देश है। वहाँ के प्रधान शासक वहाँ के सर्वप्रधान धर्माचार्य होते हैं, जो दलाई लामा कहलाते हैं। लोगों का विश्वास है कि दलाई लामा का अवतार होता है। पिछले दलाई लामा की मृत्यु हो जाने से उनका सिंहासन वर्षों से खाली था। परन्तु तिब्बतियों के सौभाग्य से उस बच्चे का पता लग गया है जिसमें दलाई लामा की आत्मा का प्रवेश हुआ है। यह बच्चा ५ वर्ष का एक चीनी बालक है और इसमें दलाई लामा के अवतार के सब चिह्न पाये गये हैं। अतएव तिब्बत के प्रधान राज-कर्मचारियों की मण्डली ने उस बच्चे को १४वें दलाई लामा के रूप में ग्रहण कर लिया है।

यह चीनी बालक तिब्बत और चीन के कंसू प्रदेश की सीमा के कोकोनोर प्रान्त में प्राप्त हुआ है। स्वर्गीय दलाई लामा ने अपनी विल में जो शर्तें लिखी थीं वे सब इस लड़के में पाई गई हैं। पिछले दलाई लामा की मृत्यु १९३३ के दिसम्बर में हुई थी। उनकी मृत्यु के समय जिन बालकों का जन्म हुआ था उन्हीं में उनके नया अवतार लेने की बात थी। फलतः ऐसे बच्चों की जाँच-पड़ताल शुरू हुई। पाँच वर्ष के परिश्रम के बाद लासा से पाँच सौ मील दूर यह लड़का मिल गया। इसका जन्म एक धनवान् चीनी परिवार में हुआ है। इसका भाई पड़ोस के एक मठ में लामा के पद पर है। अब यह भाग्यशाली बालक सारे तिब्बत का धर्मगुरु तथा प्रधान शासक घोषित किया गया है।

विश्वकर्मा जी का स्वर्गवास

जबलपुर के नवयुवक लेखक श्रीयुत मंगलप्रसाद विश्वकर्मा अब इस संसार में नहीं रहे। १७ अक्टोबर को क्षयरोग से उनकी मृत्यु हो गई। वे एक प्रतिभाशाली लेखक थे—गद्य और पद्य दोनों के। उनकी कहानियाँ और कवितायें जिन्होंने पढ़ी हैं वे हमारे कथन का अक्षरशः समर्थन करेंगे। इधर कुछ समय से वे 'शुभचिन्तक' नामक पत्र का सम्पादन करने लगे थे। हमने समझा था कि इस क्षेत्र में भी वे अपनी प्रतिभा का सम्यक् रूप से परिचय देंगे। परन्तु हिन्दी के दुर्भाग्य से वे ३७ वर्ष की उम्र में ही काल कवलित हो गये। उनकी मृत्यु से हिन्दी को क्षति पहुँची है। भगवान् उनकी आत्मा को शान्ति प्रदान करें।

एक विश्व-पर्यटक के अनुभव

एक डच महाशय विश्व-भ्रमण को निकले हैं। वे इस समय २६ वर्ष के हैं। नाम निचलास मोज़ेज़ है। ३ मार्च १९३७ को अपनी यात्रा पर हालैंड से रवाना हुए थे। बेलजियम, फ्रांस, स्पेन, स्वीजलैंड, इटली, युगोस्लेविया, बल्गेरिया, यूनान, तुर्की, सीरिया, पैलेस्टाइन, इराक़, ईरान, बलोचिस्तान तथा भारत की यात्रा करते हुए कलकत्ते पहुँचे हैं। उन्होंने अपनी यात्रा के अनुभवों का जो वर्णन किया है उसका संक्षेप 'पत्रिका' में छपा है। उसका सारांश इस प्रकार है—

मिस्टर मोज़ेज़ स्पेन में उस समय पहुँचे जब वहाँ गृह-युद्ध छिड़ा हुआ था। लेरीडा में उन्हें भी गोली लग गई और एक महीना तक अस्पताल में पड़ा रहना पड़ा। बार्सीलोना और मैड्रिड के हवाई हमले भी उन्हें देखने को मिले। इटली में विदेशी होने के कारण इन्हें जेल की हवा खानी पड़ी, क्योंकि मुसोलिनी को ट्रीस्ट में जहाज़ी बेड़े का निरीक्षण करना था। स्वीजलैंड के बाद बेलग्रेड के प्राकृतिक दृश्य उन्हें बहुत पसन्द आये।

तुर्की में उन्हें वृद्धों में जो परिवर्तन दिखाई दिया उससे उन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ। वहाँ के जवान लोग अपने देश में महान् परिवर्तन करने में संलग्न हैं। सीरिया में बेदुइन लोगों ने उन्हें लूट लिया। पैलेस्टाइन वे गुप्त रूप से गये। उस समय वहाँ अरबों के दो दलों में आपस में तथा यहूदियों और अँगरेज़ों से उनमें से एक की मार-काट जारी थी। वहाँ यहूदियों की उपनिवेश क़ायम करने की योजना को देखकर उन्हें चकित रह जाना पड़ा।

पैलेस्टाइन से निकाल बाहर किये जाने पर सीरिया की मरुभूमि में उन्हें बड़ा कष्ट उठाना पड़ा। इराक़ उन्हें अप्रगतिशील दिखाई दिया। वहाँ के लोगों को अभी अपनी बन्दूकों पर ही विश्वास है।

ईरान के लोग उन्हें बड़े अतिथिसेवी और सरस मिले। वहाँ उन्नति की गति ज़ोरों पर दिखाई दी। ईरान और तुर्की ये दोनों देश भारत की अपेक्षा कहीं अधिक पाश्चात्य आदर्शों में द्रुतगति से ढलते जा रहे हैं। परन्तु उत्तरी ईरान की तरह दूर के प्रान्तों की व्यवस्था उतनी ठीक नहीं है। बलूचिस्तान आते समय मार्ग में ईरान में वे लूट लिये गये और लूटा प्रजा के लोगों ने ही नहीं, किन्तु पुलिसवालों ने भी।

उन्होंने उत्तरी और दक्षिणी भारत का भ्रमण किया है और वे भारतीयों की प्रशंसा करते हैं। हिमालय का परिदर्शन कर आसाम होकर वे ब्रह्म देश जायँगे। वहाँ से चीन और जापान। तब अमरीका। अमरीका का भ्रमण कर स्वदेश जायँगे। वर्तमान योरपीय युद्ध को लक्ष्य कर उन्होंने कहा—मुझे अभी वर्षों तक घूमना पड़ेगा। मैं नहीं कह सकता कि लौटने पर मैं योरप को किस स्थिति में देखूँगा।

स्वर्गीय कुँवर राजेन्द्रसिंह

मीनापुर-ज़िले के टिकरा-राज्य के स्वामी श्रीमान् कुँवर राजेन्द्रसिंह जी का गत नवम्बर में पक्षाघात के आक्रमण से लखनऊ में स्वर्गवास हो गया। कुँवर साहब एक सुशिक्षित और सुसंस्कृत रईस ही नहीं थे, किन्तु वे सार्वजनिक जीवन से भी अनुराग रखते थे। वे लिबरल दल के एक सम्माननीय सदस्य थे तथा इन प्रान्तों की सरकार के कृषिमन्त्री भी नियुक्त हुए थे, जिस पद को उन्होंने सायमन-कमीशन के विरोध में छोड़ दिया था।

कुँवर साहब की हिन्दी से विशेष अनुराग था और जब पण्डित वेंकटेश नारायण तिवारी 'भारत' के सम्पादक थे तब वे उसमें मिनिस्टर और कनिस्तर की डायरी के

ओकासा खाइये

जीवन का आनन्द

इन्सान मर्द हो या औरत तभी जीवन का पूरा आनन्द प्राप्त कर सकता है जब उसकी ताक़त और जवानी कायम हो। ज्यों उम्र बढ़ती जाती है इन्सान की हर ताक़त अमूमन जिन पर जीवन के आनन्द का दारोमदार है कम होती जाती है औरत बुड्ढी होती जाती है और मर्द कमज़ोर। साइन्स की जदीद तहक़ीक़ात से कुदरत के वह गुप्त राज मालूम हो गये हैं जिनसे आप अपनी जवानी और ताक़त को अर्सा दराज तक कायम रख सकते हैं। जर्मनी के मशहूर डाक्टर लाहोजन ने इसके लिए एक मशहूर और बे नजीर दवा ईजाद की है जिसको **ओकासा** कहते हैं। ओकासा के इस्तेमाल से आप तमाम उन मरकजों पर जिन पर कि आपकी ताक़त और जवानी का दारोमदार है ताक़त पहुँचेगी। ओकासा कोई गर्मी पैदा करनेवाली दवा नहीं है वह जिस्म के अन्दर के ग्लांडस (Glands) के लिये गिज़ा है। आज ही से ओकासा खाना शुरू कर दीजिये।

सावधान

ओकासा की क़ीमत में कोई ज़्यादती नहीं हुई है। १०० गोलियों की क़ीमत १०) और ३० गोलियों की क़ीमत ३।।।)। अगर कोई भी दूकानदार इससे ज्यादा मांगें तो सीधे

ओकासा कम्पनी लिमिटेड, पोस्टबक्स ३९६, बम्बई से मँगवाइये।

स्वर्गीय कुँवर राजेन्द्रसिंह

शीर्षक में प्रायः हास्यपूर्ण राजनैतिक लेख लिखा करते थे। हमारे विशेष अनुरोध पर उन्होंने 'सरस्वती' में भी लिखना शुरू किया था और अपने जीवन के अन्त तक वे 'सरस्वती' में बराबर लिखते रहे। उनके दो लेख आज भी हमारे पास हैं, जिन्हें हम 'सरस्वती' के अगले अंकों में छापेंगे।

कुँवर साहब सुलेखक ही नहीं, कविता के भी मर्मज्ञ थे और अपने लेखों में भक्ति की सूक्तियों का प्रयोग करने में कभी नहीं चूकते थे। दुःख है कि उनका ४९ वर्ष के ही वय में निधन हो गया। उनसे प्रान्त को, साथ ही हिन्दी को बहुत कुछ आशा थी। हम कुँवर साहब के परिवार के साथ हार्दिक संवेदना प्रकट करते हुए ईश्वर से उनकी दिवंगत आत्मा के लिए शान्ति के प्रार्थी हैं।

पाँच प्रश्न और उनके उत्तर

जापान में वहाँ की स्त्रियों की एक सुप्रसिद्ध पत्रिका में ऊँची कक्षाओं में पढ़नेवाली नवयुवतियों—विवाहिता, अविवाहिता दोनों—से पाँच प्रश्न पूछे गये थे। उनके उत्तर आ गये हैं और वे भी प्रकाशित हो गये हैं। ये मनोरंजक प्रश्न और उनके उत्तर नीचे दिये जाते हैं—

१—क्या आप लोग यह चाहती हैं कि बच्चों का लालन-पालन घर पर न किया जाय, बल्कि गवर्नमेंट के द्वारा हो?

इसके उत्तर में सौ में छिहत्तर ने गवर्नमेंट के द्वारा बच्चों का लालन-पालन किये जाने का विरोध किया, केवल चौबीस ने समर्थन किया।

२—क्या तुम्हें वे स्त्रियाँ पसन्द हैं जो अपने माता-पिता के साथ की अपेक्षा अकेले रहना अधिक ठीक समझती हैं?

सौ में तीस ने ही इन एकान्त इच्छुक स्त्रियों का साथ देना चाहा। शेष सत्तर ने माता-पिता के साथ रहने को ही श्रेष्ठतर बताया।

३—यदि आप माता हों, तो क्या आप यह ठीक समझेंगी कि अपनी लड़कियों को उन युवकों के साथ बाहर घूमने जाने दें जिनकी वे प्रशंसक हैं और जिनका उन्हें विश्वास है?

सौ में पचहत्तर लड़कियों ने लिखा कि वे ज़रूर जाने देंगी। अब लड़कियाँ अपनी रक्षा करने और आत्म-सम्मान समझने में समर्थ हैं।

(४) विवाहयोग्य स्त्रियों को काम-शास्त्र की शिक्षा देनी चाहिए या नहीं?

इसके उत्तर में क़रीब क़रीब एक-सी संख्यायें दोनों ओर रहीं। फिर भी शिक्षा न देने का समर्थन करनेवालियों की संख्या कुछ अधिक थी।

(५) क्या आप अपने पति में व्यावहारिक ज्ञान के अतिरिक्त और कुछ योग्यता भी चाहती हैं?

सौ में केवल तैंतीस स्त्रियाँ ऐसी निकलीं जिन्होंने व्यावहारिक ज्ञानवाले पति से पूरा सन्तोष पा लेने की आशा की। शेष सड़सठ ने साहित्य, कला, खेल आदि में भी विशेष योग्यता पसन्द की।

यदि यहाँ के विश्वविद्यालयों में पढ़नेवाली लड़कियाँ अपने मन की बात लिख सकें तो सम्भवतः इन प्रश्नों पर उनके उत्तर भी इसी अनुपात में होंगे। किन्तु यहाँ उत्तर पाना ही असम्भव है।

विजय वर्मा

युद्ध की डायरी

२३ अक्टोबर—एक पनडुब्बा अटलांटिक समुद्र में ब्रिटिश हवाई जहाजों-द्वारा बम बरसाकर डुबा दिया गया। स्काटलैंड के तट पर जर्मनों का हवाई हमला हुआ।

२४ अक्टोबर—मोसले के पूरब में फ्रांसीसियों ने आक्रमण किया। फ़ोर्टवाच के पश्चिम एक गाँव पर जर्मनों ने हमला किया, किन्तु असफल रहे। रूस और जर्मनी में यह समझौता हुआ कि रूस जर्मनी को १० लाख टन अनाज और चारा देगा। वारन्ट जङ्गल के दक्षिण-उत्तर में फ्रेंच तथा जर्मन-सैनिकों में लड़ाई हुई। दो ब्रिटिश जहाज डुबा दिये गये। एक ग्रीक जहाज भी डुबाया गया।

२५ अक्टोबर—मोसले के पास फ्रेंच सेना ने जर्मन-सेना की एक टुकड़ी को पीछे हटा दिया। दो ब्रिटिश जहाज डुबा दिये गये।

२६ अक्टोबर—ब्रिटिश जहाज-द्वारा एक जर्मन पनडुब्बा डुबा दिया गया। जर्मनी और तटस्थ देशों के बीच टेलीफ़ोन का सम्बन्ध तोड़ दिया गया।

२७ अक्टोबर—अमेरिका की सीनेट ने शस्त्रों के निर्यात से रोक उठा दी। जर्मनी के जङ्गी जहाज प्रशान्त महासागर के लिए रवाना हो गये। ब्रिटेन के युद्ध-विभाग ने घोषणा की कि २२ और ३५ वर्ष की अवस्था के बीच की उम्र के स्वयंसेवक भर्ती किये जायँगे। दक्षिणी रोडेशिया में भी अनिवार्य भर्ती की आज्ञा दे दी गई।

२८ अक्टोबर—स्काटलैंड की फ़र्थ की खाड़ी पर जर्मन हवाई जहाजों ने फिर हमला किया। पश्चिमी युद्ध-क्षेत्र में लड़ाई ज़ोर पकड़ गई। रात भर तोपों की गोलावारी होती रही। जाँच-पड़ताल करनेवाले दोनों ओर के हवाई जहाजों में भी मुठभेड़ हुई।

२९ अक्टोबर—नार्वे का एक स्टीमर उत्तरी सागर में डुबा दिया गया।

३० अक्टोबर—दो ब्रिटिश जहाज और डुबा दिये गये।

३१ अक्टोबर—जर्मन-सीमा पर मित्र-राष्ट्रों और जर्मन हवाई जहाजों में युद्ध हुआ। मित्र-राष्ट्रों के चार हवाई जहाज गिरे। रूसी सेनायें लटविया में पहुँच गईं। ब्रिटिश जहाज 'केरसोना' डुबा दिया गया।

१ नवम्बर—पश्चिमी मोर्चे पर जर्मनों ने फ्रेंच क़िलेबन्दी तथा मार्गों पर गोले बरसाये। ४००० टन का एक ब्रिटिश स्टीमर पनडुब्बे-द्वारा डुबा दिया गया।

२ नवम्बर—एक जर्मन टैंकर जहाज ने कारवियन समुद्र में ब्रिटिश जहाज-द्वारा पकड़े जाने के भय से अपने आपको डुबा दिया। अटलांटिक सागर में एक ब्रिटिश स्टीमर 'एग्वा' पर पनडुब्बे ने आक्रमण किया, किन्तु बच गया।

४ नवम्बर—एक फ्रेंच जहाज डुबा दिया गया। एक नार्वे का और एक डेनमार्क का जहाज जर्मन पनडुब्बों ने डुबा दिया। ८० हज़ार रूसी सैनिक फ़िनलैंड की सीमा पर पहुँच गये।

५ नवम्बर—जर्मन-माल-जहाज़ को फ्रेंच-पनडुब्बे ने डुबो दिया। उत्तरी फ्रांस में जर्मनी का हवाई हमला हुआ। पश्चिमी मोर्चे पर कई एक स्थानों पर दोनों ओर से गोलावारी हुई।

६ नवम्बर—पश्चिमी मोर्चे पर फ्रेंच व जर्मन हवाई जहाजों में युद्ध हुआ। ९ जर्मन हवाई जहाज गिरा दिये गये। जर्मनों ने लटविया का जहाज पकड़ लिया।

७ नवम्बर—ब्रिटिश हवाई जहाजों की उत्तरी सागर में कई वार जर्मन हवाई जहाजों से लड़ाई हुई। 'रीटा' नामक स्टीमर जर्मनों ने पकड़ लिया।

८ नवम्बर—एक जर्मन जहाज पकड़ लिया गया। पश्चिमी मोर्चे पर गोलावारी हुई। उत्तरी सागर के ऊपर ब्रिटिश व जर्मन वायुयानों में युद्ध हुआ। दो जर्मन वायुयान नष्ट हुए। पश्चिमी रणस्थल में एक ब्रिटिश वायुयान जर्मनों ने छीन लिया।

९ नवम्बर—एक ब्रिटिश जहाज उत्तरी सागर में डुबा दिया गया।

१३ नवम्बर—एक ब्रिटिश विध्वंसक जहाज़ नष्ट कर दिया गया। एक और ब्रिटिश जहाज 'पोनजानो' को जर्मन पनडुब्बे ने डुबा दिया। पश्चिमी मोर्चे पर जर्मनी के ३० लाख से अधिक सैनिक जमा हो गये हैं। सिंगापुर में एक जहाज सुरङ्ग से टकरा कर डूब गया।

१४ नवम्बर—नार्वे के दो जहाजों को जर्मन-पनडुब्बों ने डुबा दिया। दो ब्रिटिश जहाज और डुबा दिये गये। एक ब्रिटिश स्टीमर भी डुबा दिया गया। ब्रिटिश जंगी जहाजों ने जर्मनी के दो जहाज डुबाये। एक जर्मन हवाई जहाज को फ्रेंच हवाई जहाजों ने नष्ट कर दिया।

१५ नवम्बर—एक ब्रिटिश स्टीमर डुबा दिया गया। बाल्टिक सागर में लिथुआनिया के दो और जहाज डुबा दिये गये। ब्रिटिश जंगी जहाजों ने एक जर्मन-पनडुब्बे को डुबा दिया।

१६ नवम्बर—एक ब्रिटिश जहाज और डुबा दिया गया। मित्र-राष्ट्रों ने अमेरिका से हवाई जहाज ख़रीदे। फ्रांस पर जर्मन-वायुयानों ने चक्कर लगाया।

१८ नवम्बर—एक जर्मन स्टीमर पकड़ा गया। ब्रिटिश सरकार ने ४०० हवाई जहाज मँगाने का आर्डर अमेरिका को दिया। लटविया का एक माल-जहाज सुरङ्ग से टकरा कर डूब गया। जर्मनों ने अपना एक जहाज पकड़े जाने के भय से स्वयं छेद कर डुबा दिया।

१९ नवम्बर—पूर्वी तट के समीप जर्मन-सुरङ्ग से टकरा कर तीन और जहाज डूब गये। ये तीनों जहाज स्वीडिश, ब्रिटिश और इटैलियन थे।

२० नवम्बर—ब्रिटेन के तीन जहाज़ और एक ट्रालर और डुबा दिये गये।

२१ नवम्बर—५ जहाज़ और डूब गये। इनमें ३ ब्रिटिश, १ जापानी और एक यूगोस्लाविया का था।

卐 सरस्वती 卐

सचित्र

मासिक पत्रिका

भाग ४०, खण्ड २

जुलाई से दिसम्बर

१९३९

सम्पादक

देवीदत्त शुक्ल

उमेशचन्द्रदेव

प्रकाशक

इंडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग

वार्षिक मूल्य साढ़े चार रुपये

लेख-सूची

चित्र-सूची

(रंगीन चित्र)

स्वर्गीय द्विवेदी जी की उत्तमोत्तम कृतियाँ

प्राचीन चिह्न—इस पुस्तक में इसके लेखक आचार्य्य पण्डित महावीरप्रसाद द्विवेदी ने ऐसे लेखों का संग्रह किया है, जिनमें पुराने नगरों, मन्दिरों और स्थानों आदि का संक्षिप्त विवरण देकर उनकी प्राचीन उन्नत अवस्था का उल्लेख किया गया है। इसे पढ़ने से हृदय में अपनी प्राचीन सभ्यता के प्रति अनुराग उत्पन्न होता है और इन सबकी रक्षा के लिए प्रेरणा उत्पन्न होती है। मूल्य ॥।)

❀ ❀ ❀

कुमारसम्भव—महाकवि कालिदास का कुमारसम्भव नामक काव्य इतना उत्तम और प्रसिद्ध है कि संसार की सभी उन्नत भाषाओं में इसके एक नहीं, कई-कई अनुवाद प्रकाशित हुए हैं। यह उसी जगद्विख्यात महाकाव्य का अनुवाद है और इसके अनुवादक हैं स्वर्गीय आचार्य्य द्विवेदी जी। पुस्तक की उत्तमता के सम्बन्ध में इतना ही पर्य्याप्त है। मूल्य १)

❀ ❀ ❀

चरित-चर्य्या—इस पुस्तक में देश के कितने ही ऐसे परोपकारपरायण तथा अध्यवसायशील व्यक्तियों के जीवन-चरितों का संग्रह किया गया है, जिन्होंने अपने अनवरत उद्योग और अपरिमित उद्योग और अध्यवसाय से जीवन के भिन्न भिन्न क्षेत्रों में सफलता प्राप्त की है, साथ ही लोक-सेवा के लिए भी बहुत कुछ त्याग स्वीकार किया है। मूल्य ॥।=)

❀ ❀ ❀

पुरावृत्त—यह आचार्य द्विवेदी जी के बारह ऐतिहासिक लेखों का संग्रह है। ये लेख ऐसी रोचक और आकर्षक शैली में लिखे गये हैं कि पढ़ने में उपन्यास का-सा आनन्द आता है, बीच बीच में ऐसी उत्तम उत्तम सूक्तियाँ भर दी गई हैं कि वे अनायास हृदय में घर कर लेती हैं। मूल्य केवल ॥।=)

❀ ❀ ❀

हिन्दी-महाभारत—यह महाभारत का मूल आख्यान है। इसमें संक्षेप में महाभारत के अठारहों पर्वों की कथा का वर्णन बहुत ही मधुर और सरस भाषा में किया गया है। मूल्य ४)

❀ ❀ ❀

जल-चिकित्सा (सचित्र)—जर्मनी के विख्यात जल-चिकित्सक लुई कुने के सिद्धान्त के अनुसार जल से ही सब रोगों की चिकित्सा करने की विधि इसमें बताई गई है। मूल्य ।=)

कोविद-कीर्तन—इस पुस्तक में भारत के १२ अर्वाचीन महापुरुषों और विद्वानों का चरित्र, उनकी कृति तथा जीवन-सम्बन्धी अन्य ज्ञातव्य बातें बड़ी ही रोचक भाषा में लिखी गई हैं। मूल्य केवल १)

❀ ❀ ❀

अध्यात्मिकी—सृष्टि की रचना, जन्म-मरण और आत्मा-परमात्मा-सम्बन्धी कोई भी ऐसी बात नहीं है, जिस पर इसमें प्रकाश न डाला गया हो। मूल्य केवल १)

❀ ❀ ❀

शिक्षा—अपने बालक-बालिकाओं को हम किस तरह सुशिक्षित तथा सदाचारी बना सकते हैं, यह बात इस पुस्तक में विस्तृत रूप से लिखी गई है। इसके मूल-लेखक हैं सुप्रसिद्ध दार्शनिक हर्बर्ट स्पेंसर तथा अनुवादक आचार्य द्विवेदी जी। मूल्य ३॥)

❀ ❀ ❀

आलोचनाञ्जलि—इस पुस्तक में द्विवेदी जी के चनात्मक लेखों का संग्रह है। अधिकांश लेखों में साहित्य के कई प्राचीन और प्रतिष्ठित ग्रन्थों [illegible] दिया गया है। दो-एक लेख इसमें ऐसे भी [illegible] तथा मराठी भाषाओं के आधुनिक साहि[illegible] रखते हैं। पुस्तक की विशेषता इसी [illegible] आचार्य द्विवेदी जी की लिखी हुई है।

❀ ❀

नाट्य-शास्त्र—इसमें रूपक, [illegible], यवनिका, भाषा, रचना-चातुर्य्य, वृत्तियाँ, [illegible] आदि नाटक-वेष-भूषा, दृश्य-काव्य का [illegible] सम्बन्धी सभी बातों का वर्ण[illegible] ।) ...त्र-कल्पना,

❀ ❀

कुमारसम्भवसार—[illegible] सार है। द्विवेदी जी ने कालिदास के 'कुमार-सम्भव' के काव्य का [illegible] इसे अपनी सरल, स[illegible] ।) कविता में लिखा है [illegible] और प्रभावशालिनी

❀ ❀ ❀

किरातार्जुनी[illegible] कवि भारवि का यह वही काव्य [illegible]त-साहित्य में सैकड़ों वर्षों से मची है जिसकी [illegible]नीति, धर्मनीति आदि कूट-कूट कर भरी हुई है। [illegible] पुस्तक अनुपम है। पृष्ठ-संख्या चार सौ से ऊप[illegible] मूल्य ?)

ऐसा ...ों के ...ई हैं ...न्द एक ...मे- ...में ...कों ...ही ...से ...ौर ...र ...ी ...के ...र ...प ।

सचित्र मासिक पत्रिका

सम्पादक

देवीदत्त शुक्ल—उमेशचन्द्र मिश्र

अप्रैल १९४० | भाग ४१, खंड १ संख्या ४, पूर्ण संख्या ४८४ | चैत्र १९९७

दो गीत

(१)

हो गया यह हास मेरा सब कहीं उपहास क्यों?
मैं तिमिर में खोजता हूँ हृदय का उल्लास क्यों?

मुक्त तारक निलय ऊपर,
ढूँढ़ता क्या उतर भू पर?
तू धरा पर दीप बन जल चाहता आकाश क्यों?
हो गया यह हास मेरा सब कहीं उपहास क्यों?

बूँद-सा अधिकार मेरा
चमक लघु, पर गुरु अँधेरा
मन अँधेरे में उजेले की रहा कर आस क्यों?
हो गया यह हास मेरा सब कहीं उपहास क्यों?

मैं हृदय की कह न पाया
ओस-सा ढल मुसकराया
फेंक पहले दूर जग से फिर बुलाता पास क्यों?
हो गया यह हास मेरा सब कहीं उपहास क्यों?

—उदयशंकर भट्ट

(२)

क्या नहीं मैं पास आया?

खोल तुमने द्वार प्रतिपल,
किसे देखा विकल चंचल?
कौन दृग में भर गया जल?
शुष्क अधरों पर तुम्हारे, कौन बन कर हास छाया?

हुआ नीरव जगत का वन,
सुना तुमने किन्तु गुंजन,
क्या न मैं आया मधुप बन,
हृदय तारों के मुखर पर क्या न बनकर लास छाया?

हुए जब मुद्रित पलकदल,
खोल किसने नील उत्पल,
कर किरण से घोल परिमल
प्राण के शत शत दलों पर कौन बन मधुमास छाया?

मैं मिला, बन याचनायें
मैं मिला बन कामनायें
प्रणय की शत कल्पनायें
मृदुल पलकों पर मनोरम स्वप्न बनकर क्या न छाया?

—सोहनलाल द्विवेदी

भारतेन्दुकाल के कुछ निजी पत्र

लेखक, श्रीयुत दिनेशनारायण उपाध्याय, साहित्यरत्न

रतेन्दुकाल वर्तमान हिन्दी के अभ्युदय-काल का प्रारम्भ-काल है। तत्कालीन लेखकों के निजी पत्र उस काल की साहित्यिक प्रगति पर अच्छा प्रकाश डाल सकते हैं। इसी विचार से हमने इस लेख में कुछ पत्रों को उद्धृत करके इस सम्बन्ध की चर्चा की है।

पहले हम भारतेन्दु जी के पत्रों का उल्लेख करेंगे। उनके पत्रों की भाषा सरल तथा बोलचाल की है। वे राजा कृष्णदेवशरणसिंह की तरह आधे पत्र में संस्कृत और फ़ारसी और अन्त में हिन्दी नहीं लिखते थे। उनकी रसिकता उनके शब्द-चयनों से प्रमाणित होती है। बहुत-से लोग अपने पत्रों में तरह तरह की सूक्तियाँ उद्धृत करते हैं। भारतेन्दु बाबू भी इस पद्धति के कुछ पक्षपाती थे। जीवन के अन्तिम दिनों में उनकी आर्थिक दशा शोचनीय हो गई थी, तो भी वे यही कहते थे कि "गर मर्द है तू कुछ भी, कौड़ी न रख कफ़न को।" इस समय के उनके पत्रों में उनके साहस का, साथ ही विनम्रता का अच्छा परिचय मिलता है। ८ अप्रैल, १८७८ ईसवी के एक पत्र में वे पंडित बदरीनारायण चौधरी को लिखते हैं—

प्रियवरेषु—

आपका कृपा-पत्र आया। यह संसार दुःख का सागर है और अपनी अपनी विपत्ति में सब फँसे हैं, पर मैं सोचता हूँ कि जितना मैं चारों तरफ़ से दुःख में जकड़ा हूँ, इतना और कोई कम जकड़ा होगा पर क्या करूँ खैर चला ही जाता है। बाबू जी* का यह तुक बहुत ही ठीक है—"है संसार का यह मज़ा, घन सरिस दुख नहिन सम सुख मोह छादन छजा।" इन्हीं झंझटों से आज-कल पत्र नहीं लिखा। क्षमा कीजिएगा। चित्त वैसा ही है। इसमें सन्देह न कीजिएगा। "सौ युग पानी में रहै, मिटै न चकमक आग" और सब कुशल है—आपका भी पचड़े में फँसना सुनकर बड़ा दुःख होता है। ठीक है—खैर न वह रही न यह रहेगी।

भवदीय

हरिश्चन्द्र

भारतेन्दु के इस पत्र में उनकी मस्ती और धैर्य का पूरा परिचय मिलता है। उन्हीं की तरह एक दूसरे महानुभाव भरतपुर के निर्वासित नरेश राजा कृष्णदेवशरणसिंह थे। आपको भी साहित्य से उतना ही अनुराग था, जितना भारतेन्दु जी आदि को था। पर सब था 'स्वान्तःसुखाय' ही। आपके टक्कर का क्लिष्ट गद्य का लेखक भारतेन्दु-काल में दूसरा नहीं था। हिन्दी, संस्कृत, फ़ारसी, अँगरेज़ी के आप विद्वान् थे। आपके पत्रों से तथा 'आनन्दकादम्बिनी' में प्रकाशित 'स्वप्न' आदि लेखों से आपकी महत्ता लक्षित होती है। उदाहरणार्थ आपका एक पत्र यहाँ उद्धृत है—

"सुहृद्वरेषु,

समय क्या है घोड़दौड़ी घोड़ा है, इंजन है, हवा है, ख़याल है, कि पलों के हेर-फेर में वह देर हो जाती है कि जिस काम को अभी करना चाहते हैं होते होते मुद्दतें गुज़र जाती हैं, कल परसों की बात है कि आपकी ओर का एक परचा बसीट पहुँचा मुझसे बेकार फ़ालतू, आदमी के लिए सुबह से सुबह तलक और शाम से शाम तलक सिवा फ़ुरसत के कोई काम नहीं अगर जी पर रखता, आपकी बसीट के दो टप्पे जवाब की तो क्या असल हैं हिकायत, शिकायत और मज़मून दास्तानों का इतना ढेर लगा देता कि रेल की मालगाड़ियों में भी शायद ही गुंजाइश होती, मगर अब लिखता हूँ। इसी टाल-मटाल में आख़िरकार ख़याल जो पड़ा तो देखता हूँ कि हफ़्ते से भी ज़्यादा अरसा गुज़रता है मगर हनोज़ जवाब की नौबत न पहुँची—बेसाख़्ता चौंक कर मुस्तैदी को राह देता हूँ और आपके ख़ते मुबारक का जवाब जिसे मैं बसीट के नाम से मशहूर करता हूँ, पैदा करने की कोशिश में मसरूफ़ हूँ अगर कुल

लाहौल वलाकूवत गया छींकते शुरुआत की थी कि इसी क़दर लिखने की नौबत पहुँची थी कि वो फ़ुरसत ने रुख़सत ली और एक ऐसे झमेले में पड़ गया कि अपना क़ौल पूरा न कर सका, पस आपके घसीट के जवाब को किसी दूसरे मौक़े पर मौक़ूफ़ करके इस वक़्त इसी क़दर लिखकर फ़ुराग़ पाता हूँ कि मैं इस दुनियां के आपरा (Opera) में अपने लाइफ़ (Life) के सीजन Season तक एक महाघोर दारुण परिणामशून्य करुण प्रहसन के लिए इङ्गेज (Engage) हो चुका हूँ, कि मुझको क्षण-मात्र भी अवकाश नहीं कि आपके कलम की कारीगरी तथा अमुक पत्रिका की रचना को दत्तचित्त होकर देखूं भी, नाटक और नाटककार से बहुत बीच है। किमपि रसावलम्बी नाटक है। आप लोगों को उससे उतने ही काल-पर्यन्त सम्बन्ध है जब तक लेखनी और मसि से संयोग है। और मैं जो खेलता हूँ तो उस तन्मयता को प्राप्त होता हूँ कि जिससे अब यह याद नहीं है कि आपको क्या लिख रहा हूँ—अतएव क्षमा

राही

श्रीकृष्णदेवशरणसिंह

भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र

यह पत्र किस तिथि का है, यह निश्चित रूप से ज्ञात नहीं है। पर नाटक के विषय में होने से ज्ञात होता है कि यह प्रेमघन जी के 'भारत-सौभाग्य' के लिखने के समय आया होगा। और 'भारत-सौभाग्य' सन् १८८९ ईसवी, २५ दिसम्बर को समाप्त हुआ था। अतएव राजा साहब का पत्र १८८९ ईसवी की जनवरी या फ़रवरी में लिखा गया होगा।

पंडित प्रतापनारायण मिश्र भारतेन्दु-युग के प्रमुख स्तम्भों में थे। वे बैसवाड़े के निवासी थे। उन्होंने 'भारत-सौभाग्य-नाटक' के सम्बन्ध में प्रेमघन जी को अपनी बैसवाड़े की बोली में एक पत्र लिखा था। इस पत्र में भी तिथि नहीं लिखी गई है। अतएव यह पत्र भी सम्भवतः सन् १८८९ ईसवी का ही होगा। मिश्र जी का उक्त पत्र इस प्रकार है—

प्रियवरेषु,

चिठी पाय कै करेजु जुड़ाय गवा, काकरतेन हम जाना भूलिगयो तेहेंते माँगे का परा, पोथ्यू दीखि बड़ी नीकि

भारतेन्दुकाल के कुछ निजी पत्र

लेखक, श्रीयुत दिनेशनारायण उपाध्याय, साहित्यरत्न

रतेन्दुकाल वर्तमान हिन्दी के अभ्युदय-काल का प्रारम्भ-काल है। तत्कालीन लेखकों के निजी पत्र उस काल की साहित्यिक प्रगति पर अच्छा प्रकाश डाल सकते हैं। इसी विचार से हमने इस लेख में कुछ पत्रों को उद्धृत करके उस सम्बन्ध की चर्चा की है।

पहले हम भारतेन्दु जी के पत्रों का उल्लेख करेंगे। उनके पत्रों की भाषा सरल तथा बोलचाल की है। वे राजा कृष्णदेवशरणसिंह की तरह आधे पत्र में संस्कृत और फ़ारसी और अन्त में हिन्दी नहीं लिखते थे। उनकी रसिकता उनके शब्द-चयनों से प्रमाणित होती है। बहुत-से लोग अपने पत्रों में तरह तरह की सूक्तियाँ उद्धृत करते हैं। भारतेन्दु बाबू भी इस पद्धति के कुछ पक्षपाती थे। जीवन के अन्तिम दिनों में उनकी आर्थिक दशा सोचनीय हो गई थी, तो भी वे यही कहते थे कि "गर मर्द है तू कुछ भी, कौड़ी न रख कफ़न को।" इस समय के उनके पत्रों में उनके साहस का, साथ ही विनम्रता का अच्छा परिचय मिलता है। ८ अप्रैल, १८७८ ईसवी के एक पत्र में वे पंडित बदरीनारायण चौधरी को लिखते हैं—

प्रियवरेषु—

आपका कृपा-पत्र आया। यह संसार दुःख का सागर है और अपनी अपनी विपत्ति में सब फँसे हैं, पर मैं सोचता हूँ कि जितना मैं चारों तरफ़ से दुःख में जकड़ा हूँ, इतना और कोई कम जकड़ा होगा पर क्या करूँ खैर चला ही जाता है। बाबू जी* का यह तुक बहुत ही ठीक है—"है संसार का यह मजा, घन सरिस दुख तड़ित सम सुख मोह छाजन छजा।" इन्हीं झंझटों से आज-कल पत्र नहीं लिखा। क्षमा कीजिएगा। चित्त वैसा ही है। उसमें सन्देह न कीजिएगा। "सौ युग पानी में रहै, मिटै न चकमक आग" और सब कुशल है—आपका भी पचड़े में फँसना सुनकर बड़ा दुःख होता है। ठीक है—"वैर न वह रही न यह रहेगी।

भवदीय

हरिश्चन्द्र

भारतेन्दु के इस पत्र में उनकी मस्ती और धैर्य का पूरा परिचय मिलता है। उन्हीं की तरह एक दूसरे महानुभाव भरतपुर के निर्वासित नरेश राजा कृष्णदेव-शरणसिंह थे। आपको भी साहित्य से उतना ही अनुराग था, जितना भारतेन्दु जी आदि को था। पर सब था 'स्वान्तःसुखाय' ही। आपके टक्कर का क्लिष्ट गद्य का लेखक भारतेन्दु-काल में दूसरा नहीं था। हिन्दी, संस्कृत, फ़ारसी, अँगरेज़ी के आप विद्वान् थे। आपके पत्रों से तथा 'आनन्दकादम्बिनी' में प्रकाशित 'स्वप्न' आदि लेखों से आपकी महत्ता लक्षित होती है। उदाहरणार्थ आपका एक पत्र यहाँ उद्धृत है—

"सुहृद्वरेषु,

समय क्या है घोड़दौड़ी घोड़ा है, इंजन है, हवा है, ख़याल है, कि पलों के हेर-फेर में वह देर हो जाती है कि जिस काम को अभी करना चाहते हैं होते होते मुद्दतें गुज़र जाती हैं, कल परसों की बात है कि आपकी ओर का एक परचा घसीट पहुँचा मुझसे बेकार फ़ालतू, आदमी के लिए सुबू से सुबू तलक और शाम से शाम तलक सिवा फ़ुरसत के कोई काम नहीं अगर जी पर रखता, आपकी घसीट के दो टप्पे जवाब की तो क्या असल है हिकायत, शिकायत और मज़मून दास्तानों का इतना ढेर लगा देता कि रेल की घोलगाड़ियों में भी शायद ही गुंजाइश होती, मगर अब लिखता हूँ। इसी टाल-मटाल में आख़िरकार ख़याल जो पड़ा तो देखता हूँ कि हफ़्ते से भी ज्यादा अरसा गुज़रता है मगर हनोज़ जवाब की नौबत न पहुँची—बेसाख़्ता चौंक कर मुस्तइदी को राह देता हूँ और आपके ख़ते मुबारक का जवाब जिसमें घसीट के नाम से मशहूर

लाहौल वलाक़ूवत क्या छींकते शुरुआत की थी कि इसी क़दर लिखने की नौबत पहुँची थी कि वी फ़ुरसत ने रुख़सत ली और एक ऐसे झमेले में पड़ गया कि अपना क़ौल पूरा न कर सका, पस आपके घसीट के जवाब को किसी दूसरे मौक़े पर मौक़ूफ़ करके इस वक़्त इसी क़दर लिखकर फ़ुराग़ पाता हूँ कि मैं इस दुनियाँ के अपरा (Opera) में अपने लाइफ़ (Life) के सीज़न Season तक एक महाघोर दारुण परिणामशून्य करुण प्रहसन के लिए इङ्गेज (Engage) हो चुका हूँ, कि मुझको क्षण-मात्र भी अवकाश नहीं कि आपके कलम की कारीगरी तथा अमुक पत्रिका की रचना को दत्तचित्त होकर देखूँ भी, नाटक और नाटककार से बहुत बीच है। किमपि रसावलम्बी नाटक है। आप लोगों को उससे उतने ही काल-पर्यन्त सम्बन्ध है जब तक लेखनी और मसि से संयोग है। और मैं जो खेलता हूँ तो उस तन्मयता को प्राप्त होता हूँ कि जिससे अब यह याद नहीं है कि आपको क्या लिख रहा हूँ—अतएव क्षमा

राही
श्रीकृष्णदेवशरणसिंह

भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र

यह पत्र किस तिथि का है, यह निश्चित रूप से ज्ञात नहीं है। पर नाटक के विषय में होने से ज्ञात होता है कि यह प्रेमघन जी के 'भारत-सौभाग्य' के लिखन के समय आया होगा। और 'भारत-सौभाग्य' सन् १८८९ ईसवी, २५ दिसम्बर को समाप्त हुआ था। अतएव राजा साहब का पत्र १८८९ ईसवी की जनवरी या फ़रवरी में लिखा गया होगा।

पंडित प्रतापनारायण मिश्र भारतेन्दु-युग के प्रमुख स्तम्भों में थे। वे बैसवाड़े के निवासी थे। उन्होंने 'भारत-सौभाग्य-नाटक' के सम्बन्ध में प्रेमघन जी को अपनी बैसवाड़े की बोली में एक पत्र लिखा था। इस पत्र में भी तिथि नहीं लिखी गई है। अतएव यह पत्र भी सम्भवतः सन् १८८९ ईसवी का ही होगा। मिश्र जी का उक्त पत्र इस प्रकार है—

प्रियवरेषु,

चिठी पाय कै करेजु जुड़ाय गवा, काकरतेन हम जाना भूलिगयो तेहेते मागे का परा, पोथ्यू दीजि बड़ी नीकि

दया से कार्य नहीं है। और जो दूसरों का दुख नहीं देख सकते वे शूर भी हो नहीं सकते क्योंकि उनके कार्य का परिणाम दूसरों को दुख देना है।

जो आप लिखते हैं कि "शूर अम्ब न मार हीं" इस उदार नीति ने पृथ्वीराज को शहाबुद्दीन के हाथों हलाल कराया, रामायण और महाभारत आदिक सद्ग्रन्थों में अनेक प्रमाण भरे पड़े हैं और इसी लिए विशुद्ध वीरों के लिए उदार नीति के स्थान पर कूटनीति और दया-धर्म के स्थान पर शूर-धर्म श्रेयस्कर है जैसा की वालि, भीष्म, द्रोण के वध की कथा बतलाती है। इसी लिए दया का विशेष संचार वीर के लिए वर्जित है। महाराज रामचन्द्र आदिक का निरपराध मृगा और शूकरों का मारना प्रमाण है।

अश्वमेधादि यज्ञ और रंगभूमि में रुण्ड मुण्ड नर्तन आदिक जिन्हें कष्टकर होंगे उनसे फिर वह धम्म कैसे साधित होगा, मुसलमान क्रिस्टान और हिन्दुओं की खूँखार और कीचड़ दशा इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है। वे कुर्बानी करते और मांस के टुकड़े काटते और वीर के साहस का पालन करते और तनिक उत्तेजना को पाकर भी मरने से नहीं डरते और हमारे क्षत्री इसी दया धर्म के प्रभाव से फूक फूक कर क़दम धरते और दिन भर माला हिलाते और चौका लगा डाला और अब दासवृत्ति भोग कर रहे हैं।

पंडित बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन'

क्या यह दीन दशा किसी स्वदेशाभिमानी से सह्य हो सकती है और अब आप न्यायपूर्वक इसको विचार करेंगे तो इसे सत्य समझेंगे। मैं न मांस खाता हूँ और न इसको उचित समझता हूँ। वरंच उस हृदय को देख जो दया का उद्रेक चित्त में हुआ था, इन्हीं विचारों ने उसे दूर किया और इसी लिए वह लेखनी से भी उबल पड़ा, जिस पर आपको इतना रुष्ट होना कदापि उचित नहीं है; क्योंकि अपनी दीन दशा देख हाय हाय करना ही पड़ता है। वरंच यहाँ तक चित्त में अमर्ष का उद्गार होकर उचित बोध होता है कि यदि भारतीय पुरुष अन्य पुरुषों ही को खाने लगते तो भी कदाचित् इसका उपकार होता, किन्तु शोक से कहना पड़ता है कि दया-धर्म से कदाचित् इसका उद्धार होना नहीं सम्भव है। इसके अतिरिक्त यदि पूर्ण विचार से देखा जाय तो दया

आत्मघात

लेखक, श्रीयुत गंगानाथ

प्रिय बन्धु क्लेमिन,

मैं अब न-स्क नामक पड़ाव पर हूँ । ग्लिबो को गाड़ी की खोज में गये हुए लगभग चार घंटे हो चुके हैं । यह स्थान बहुत छोटा है और मैं इस समय बिलकुल अकेला हूँ । किसी प्रकार समय व्यतीत करना ही है। अतः अभी थोड़ी देर पहले तक मैंने दीवारों पर लगे हुए, क्रान्ति से पूर्व के, महायुद्ध से भी पहले के विज्ञापनों तथा घोषणा-पत्रों को पढ़कर अपना मनोरंजन किया है । आधुनिक जीवन के ये नितान्त अनुरूप हैं। मैंने एक अत्यन्त चित्ताकर्षक यात्रा-सम्बन्धी पोस्टर भी देखा । तदनन्तर मैं घूमता हुआ स्थानीय 'शेका-विभाग' में जा पहुँचा। वहाँ क़लम-दावात देखकर मेरे हृदय में सहसा यह प्रबल इच्छा उत्पन्न हुई कि मैं उन भावों को जिन्होंने कुछ काल से मेरे अन्तस्तल में भीषण उथल-पुथल मचा रक्खी है, निष्कपट रूप से पत्र-द्वारा आप पर प्रकट कर दूँ। मैं अपने हृदय के गूढ़तम भाव आप ही को क्यों बताना चाहता हूँ, मुझे पूर्ण विश्वास है कि आप इस बात को पूरी तरह समझ जायँगे।

आपको स्मरण होगा कि कुछ काल पहले जब मैं किसी भी दल में सम्मिलित न हुआ था, आप न--स्की-डिवीजन के राजनैतिक विभाग में, नवीन दल के अत्यन्त अनुभवी सदस्य तथा डिवीजनल कमाण्डर होते हुए भी मुझसे घंटों बातचीत किया करते थे। मैं उस समय एक स्वमताभिमानी तथा धूर्त नवयुवक था, जिसके मस्तिष्क में शिक्षित-वर्ग के सभी मिथ्या विचार कूट कूटकर भरे हुए थे। परन्तु आप मेरी ऊल-जलूल दलीलों को कितने धैर्य्य तथा सहनशीलता के साथ सुना करते थे। अतः एक दिन आश्चर्यजनक चतुरता के साथ आपने मेरे निरर्थक सिद्धान्तों की पोल मुझ पर खोल दी और मार्क्स के सिद्धान्तों की ओर मुझे आकृष्ट किया। फिर धैर्य्य-पूर्वक साम्यवाद तथा वर्गद्वेष के मूल-सिद्धान्त मुझे हृदयङ्गम कराये। कदाचित् आप नहीं जानते कि इस सबके लिए मैं आपका कितना आभारी हूँ। यद्यपि मैं कुछ समय पश्चात्—सेना में प्रविष्ट होने के उपरान्त—आपके 'दल' में सम्मिलित हुआ, तथापि वास्तव में आपने ही मुझे साम्यवादी बनाया था।

जब सेना का अग्रभाग भंग कर दिया गया तब आपका तबादला शेका-विभाग में हुआ और मैं आपके पास काम करने लगा। आपके ही नेतृत्व में मैं एक उत्कट क्रान्तिकारी और कम्यूनिस्ट बना। इसी कारण मैं अपनी माता या किसी मित्र को (जो मुझसे प्रेम करते हैं) यह पत्र नहीं लिख रहा हूँ। चूँकि आप मेरे गुरु और नेता हैं और बिना आज्ञा के काम के घंटों में मैं आपके पढ़ने के कमरे में प्रवेश नहीं कर सकता, अतः मैं इस पत्र-द्वारा अपना हृदय आपके सामने खोलकर रख देने का कठिन प्रयास करता हूँ।

मेरी मृत्यु हो जाने के बाद ही यह पत्र आपको मिलेगा। मुझे इस भावी घटना की अनिवार्यता में कोई सन्देह नहीं प्रतीत होता। और यह मेरे लिए अच्छा ही है, क्योंकि मुझे अपना जीवन निस्सार मालूम होता है—क्योंकि मैं अब मनुष्य नहीं हूँ—केवल एक निरर्थक मांस-पिंड मात्र हूँ। मेरी आत्मा नितान्त शून्य हो गई है। अब मेरी यही हार्दिक इच्छा है कि मेरी मृत्यु से साम्यवाद को कुछ लाभ हो।

गत वर्ष, चारों ओर अनेक षड्यंत्रों का भेद खुलने के अनन्तर, एक दिन हम पाँच अफ़सरों को गोली मारने के लिए जंगल की ओर चले। जाड़ों की रात थी। बर्फ़ पड़ रही थी। चन्द्रमा मण्डलावेष्टित था, जिससे उसकी सुन्दरता में चार चाँद लग गये थे। विमल ज्योत्स्ना में राजमार्ग के परिष्कृत पृष्ठ पर हमारी लारी दनदनाती हुई चली जा रही थी। लिज़ेविन हमारे साथ था। वह गोली मारने का दृश्य पहली बार देखने जा रहा था। अतः वह हृदय को वश में रखने के लिए अस्वाभाविक प्रसन्नता का ढोंग रच रहा था। वह बड़ी सजीवता

धर्म का निर्वाह इस संसार में परम असम्भव है। गर्मी की लू में कुली से कमरे के बाहर से पंखा हिलवाने में आपकी दया कहाँ रहती है।"

स्थानाभाव के कारण उपर्युक्त पत्र सबका सब नहीं दिया गया है। उसका यह आवश्यक अंश भर यहाँ दिया गया है। इस पत्र से प्रेमघन जी के भावप्रकाशन की शक्ति तथा उनकी भाषा की प्रौढ़ता का परिचय मिलता है। यद्यपि उनके वाक्य बहुत लम्बे हैं, तथापि वाक्यों में तथा उप-वाक्यों में इतना अच्छा मेल रहता है कि लेखक की रचना-प्रौढ़ता प्रत्यक्ष रूप से दिखाई देती है।

भारतेन्दु-काल में लोग पद्य में भी पत्र लिखा करते थे। भारतेन्दु-काल के अन्तिम चरण में श्रीधर पाठक का नाम अधिक प्रसिद्ध हुआ। पाठक जी ने प्रेमघन जी को अपनी पुस्तकें भेजी थीं। उसी के धन्यवादार्थ प्रेमघन जी ने पाठक जी को पद्य में पत्र लिखा था। उसका उत्तर पाठक जी ने भी पद्य में ही दिया। वे दोनों पत्र इस प्रकार हैं—

(१)

प्रेमघन जी का पत्र

परम प्रिय पाठक! तुमहिं प्रनाम।
प्राचीनन मँह बचे एकही अहो मीत अभिराम॥
श्रीधर-कृपा पाय चिर दिन लौं करहु देस-हित काम।
ऐसैं हीं निज भाषा जननी सेवहु चरन मुदाम॥
पठई पाँच पुस्तकनि जिन इन मोहिं अमोल इनाम।
तिन कहँ लै लखि लह्यो हर्ष अति अवलोकत गुनग्राम॥
करहु उछाहित देस-निवासिन निज बच आठौ याम॥
उन्नत भारत करैं "प्रेमघन" सह बनाय सुख-धाम॥

बदरीनारायण चौधरी प्रेमघन

(२)

पाठक जी का उत्तर

'प्रेमघन' कविवर परम सुजान।
पत्री मिली कृपा सों पूरित कोमल-कला-निधान॥
भारतेन्दु मीतन मँह तुमसम या छिन कोउ न आन।
पुरातन रतनन बिच राजत कोहनूर-प्रमान॥
जद्यपि वृद्ध तदपि तुम्हरे हिय भासति जोति जवान।
पूरन रसिक सुहृद, सहृदयवर, जानत जिनहिं जहान॥
अभिनन्दन मम करिय ग्रहन प्रिय अहो अमित गुनखान।
द्विजवर श्रीबदरीनारायन मिरजापुर प्रधान
प्रेमघन कविवर परम सुजान

श्रीपद्मकोट $\frac{१५-२}{२३}$ ११-१७ श्रीधर पाठक

भिन्न भिन्न समय के ऐसे पत्रों से हम तत्कालीन साहित्य में प्रचलित वाद-विवाद, भाषा के रूप, आलोचना की गति तथा आपस के सम्बन्धों का पूर्ण ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं। इस दृष्टि से साहित्य में निजी पत्रों का अपना एक विशेष स्थान है। आशा है, हिन्दी के प्रेमी इस ओर भी ध्यान देने की कृपा करेंगे, जिससे प्रमुख साहित्यिकों के निजी पत्र संग्रह किये जा सकें।

दो चित्र

लेखक, श्रीयुत विनय कुमार

(१)

जैसे सुना कि तुम आते हो,
मैं हो उठा प्रसन्न!
किन्तु दूसरे ही क्षण जी में,
सोच रह गया सन्न!!
इस सीमित गृह में असीम का,
कैसे होगा वास?
प्राण! हृदय ने कहा कि—
जैसे पुतली में आकाश!!

(२)

जैसे सुना कि तुम आते हो,
मैं हो गया उदास!
स्वागत कैसे आज करूँगा,
यहाँ न जब कुछ पास!!
किन्तु हृदय ललकार उठा,
करते हो क्या नादानी!
अरे, नहीं है क्या धोने को—
चरण दृगों में पानी?

आत्मघात

लेखक, श्रीयुत गंगानाथ

प्रिय बन्धु क्लेमिन,

मैं अब न-स्क नामक पड़ाव पर हूँ। ग्लिवो को गाड़ी की खोज में गये हुए लगभग चार घंटे हो चुके हैं। यह स्थान बहुत छोटा है और मैं इस समय बिलकुल अकेला हूँ। किसी प्रकार समय व्यतीत करना ही है। अतः अभी थोड़ी देर पहले तक मैंने दीवारों पर लगे हुए, क्रान्ति से पूर्व के, महायुद्ध से भी पहले के विज्ञापनों तथा घोषणा-पत्रों को पढ़कर अपना मनोरंजन किया है। आधुनिक जीवन के ये नितान्त अनुरूप हैं। मैंने एक अत्यन्त चित्ताकर्षक यात्रा-सम्बन्धी पोस्टर भी देखा। तदनन्तर मैं घूमता हुआ स्थानीय 'शेका-विभाग' में जा पहुँचा। वहाँ क़लम-दावात देखकर मेरे हृदय में सहसा यह प्रबल इच्छा उत्पन्न हुई कि मैं उन भावों को जिन्होंने कुछ काल से मेरे अन्तस्तल में भीषण उथल-पुथल मचा रक्खी है, निष्कपट रूप से पत्र-द्वारा आप पर प्रकट कर दूँ। मैं अपने हृदय के गूढ़तम भाव आप ही को क्यों बताना चाहता हूँ, मुझे पूर्ण विश्वास है कि आप इस बात को पूरी तरह समझ जायँगे।

आपको स्मरण होगा कि कुछ काल पहले जब मैं किसी भी दल में सम्मिलित न हुआ था, आप न—स्की-डिवीज़न के राजनैतिक विभाग में, नवीन दल के अत्यन्त अनुभवी सदस्य तथा डिवीज़नल कमाण्डर होते हुए भी मुझसे घंटों बातचीत किया करते थे। मैं उस समय एक स्वमताभिमानी तथा धूर्त नवयुवक था, जिसके मस्तिष्क में शिक्षित-वर्ग के सभी मिथ्या विचार कूट कूटकर भरे हुए थे। परन्तु आप मेरी ऊल-जलूल दलीलों को कितने धैर्य्य तथा सहनशीलता के साथ सुना करते थे। अतः एक दिन आश्चर्यजनक चतुरता के साथ आपने मेरे निरर्थक सिद्धान्तों की पोल मुझ पर खोल दी और मार्क्स के सिद्धान्तों की ओर मुझे आकृष्ट किया। फिर धैर्य्य-पूर्वक साम्यवाद तथा वर्गद्वेष के मूल-सिद्धान्त मुझे हृदयङ्गम कराये। कदाचित् आप नहीं जानते कि इस सबके लिए मैं आपका कितना आभारी हूँ। यद्यपि मैं कुछ समय पश्चात्—सेना में प्रविष्ट होने के उपरान्त—आपके 'दल' में सम्मिलित हुआ, तथापि वास्तव में आपने ही मुझे साम्यवादी बनाया था।

जब सेना का अग्रभाग भंग कर दिया गया तब आपका तबादला शेका-विभाग में हुआ और मैं आपके पास काम करने लगा। आपके ही नेतृत्व में मैं एक उत्कट क्रान्तिकारी और कम्यूनिस्ट बना। इसी कारण मैं अपनी माता या किसी मित्र को (जो मुझसे प्रेम करते हैं) यह पत्र नहीं लिख रहा हूँ। चूँकि आप मेरे गुरु और नेता हैं और बिना आज्ञा के काम के घंटों में मैं आपके पढ़ने के कमरे में प्रवेश नहीं कर सकता, अतः मैं इस पत्र-द्वारा अपना हृदय आपके सामने खोलकर रख देने का कठिन प्रयास करता हूँ।

मेरी मृत्यु हो जाने के बाद ही यह पत्र आपको मिलेगा। मुझे इस भावी घटना की अनिवार्यता में कोई सन्देह नहीं प्रतीत होता। और यह मेरे लिए अच्छा ही है, क्योंकि मुझे अपना जीवन निस्सार मालूम होता है—क्योंकि मैं अब मनुष्य नहीं हूँ—केवल एक निरर्थक मांस-पिंड मात्र हूँ। मेरी आत्मा नितान्त शून्य हो गई है। अब मेरी यही हार्दिक इच्छा है कि मेरी मृत्यु से साम्यवाद को कुछ लाभ हो।

गत वर्ष, चारों ओर अनेक षड्यंत्रों का भेद खुलने के अनन्तर, एक दिन हम पाँच अफ़सरों को गोली मारने के लिए जंगल की ओर चले। जाड़ों की रात थी। बर्फ़ पड़ रही थी। चन्द्रमा मण्डलावेष्टित था, जिससे उसकी सुन्दरता में चार चाँद लग गये थे। विमल ज्योत्स्ना में राजमार्ग के परिष्कृत पृष्ठ पर हमारी लारी दनदनाती हुई चली जा रही थी। लिज़ेविन हमारे साथ था। वह गोली मारने का दृश्य पहली बार देखने जा रहा था। अतः वह हृदय को वश में रखने के लिए अस्वाभाविक प्रसन्नता का ढोंग रच रहा था। वह बड़ी सजीवता

के साथ पहले आपसे और फिर मुझसे गपशप लड़ाता रहा। आपने उसके प्रश्नों के निश्चयात्मक एवं व्यावहारिक ढंग से उत्तर दिये, किन्तु आपके स्वर में इस बात का सूक्ष्म आभास मिलता था, मानो आप कह रहे हों—'लड़के' बनो मत। मैं भली भाँति जानता हूँ कि तुम्हारे होश-हवास ठीक नहीं हैं। मैं उसके प्रश्नों के उत्तर में केवल 'हाँ' 'न' करता रहा। बातचीत करने की मेरी इच्छा ही नहीं थी। दिन भर काम करने के बाद मैं बहुत थका हुआ था। मैं उस मनोहर नीली तुषारमयी रजनी की शान्ति में सानन्द विश्राम कर रहा था। हाँ, यदा-कदा मैं पीछे मुड़कर लारी के अन्तर्भाग में बैठे हुए अपराधियों की ओर दृष्टिपात कर लेता था। उन नवयुवकों की व्यथित मुद्रा देखकर मेरी आँखों के सामने भावी घटना का चित्र आ जाता था। तथापि इस प्रकार के दृश्य देखने का मेरा यह प्रथम अवसर नहीं था।

कुछ समय के पश्चात् हम एक वन में पहुँचे। उसके मध्य में एक प्राचीन कैथोलिक मठ के खँडहर थे। चारों ओर असंख्य हिमसिक्त तरुपंक्तियाँ थीं। रात्रि में यह ऐंद्रजालिक दृश्य एक अनन्त दुःस्वप्न-सा प्रतीत होता था। ऐसा जान पड़ता था, मानो यमदूत पैशाचिक नृत्य कर रहे हों। कहीं कहीं वृक्षश्रेणियों के मध्य में रिक्त स्थान भी थे, जहाँ से मनोहर नीलवर्ण वनवीथियाँ दृष्टिगोचर होती थीं।

हम एक पगडंडी से होकर एक गुल्म में पहुँचे। यहाँ एक पुरानी, त्यक्त, पत्थर की खान थी। यह रिक्त पाषाण-आकर हिमबद्ध होते हुए भी एक काफ़ी गहरा अन्धकूप था।

चारों ओर निस्तब्धता छाई हुई थी।

अपराधी भी शान्तिपूर्वक मृत्यु की प्रतीक्षा कर रहे थे।

मैंने एक तटस्थ निरपेक्ष मनुष्य की भाँति उनके अन्तिम भावों पर कुछ ध्यान नहीं दिया। जिस दिन मैंने 'चेका' में पदार्पण किया था उसी दिन से मैंने ऐसे दृश्यों को अनिवार्य-सा स्वीकार कर लिया था। मैं यह पहले से ही जानता था कि मेरे जीवन में ऐसे अवसाद-पूर्ण अवसर अवश्य आवेंगे जब कि हम लोगों को अनाथ शस्त्रहीन लोगों को अपनी गोलियों का शिकार बनाना पड़ेगा। परन्तु मैं अभी तक यही समझ रहा था कि गोलियों की एक घनी बाढ़ छूटेगी और सारा झंझट समाप्त कर देगी। निकटवर्ती भूर्जवृक्षों से हिमकण धूलिसम उड़ेगा और पाँच निर्जीव मानवशरीर उस अन्धकारमय गर्त में विलुप्त हो जावेंगे। तत्पश्चात् हम लोग कालरात्रि का भीषण मूक गान सुनते हुए घर लौट आवेंगे।

परन्तु जैसा मैं सोच रहा था, वैसा हुआ नहीं।

"कपड़े उतारो, नागरिको।" धीमे स्वर में आपने कहा।

अपराधियों ने आश्चर्य से एक-दूसरे की ओर दृष्टि डाली।

उनमें से एक ने अपनी समूर की खाल की जाकट उतार डाली। दूसरों ने भी उसका अनुकरण किया।

"यह नहीं, सब कपड़े उतारने होंगे।" आपने कहा—"बिलकुल नग्न दशा में तुम्हें गोली मारी जायगी।" मानो हमारी जानकारी के लिए आपने दृढ़ता एवं स्पष्टता-पूर्वक कहा।

हमारे सभी साथी विकट मौन धारण किये हुए खड़े थे, मानो वे आपके आदेश को भले प्रकार समझते और उससे सहमत थे, और नग्न मनुष्यों को उस भीषण शिशिर की दारुण रात में व्यग्रता के साथ गोली से उड़ा देने को उतावले हो रहे थे। चारों ओर सन्नाटा छाया हुआ था—केवल हमारी लारी के इंजन का मन्द स्वर दूर से सुनाई पड़ रहा था।

अपराधियों ने इस आज्ञा का निषेध करना आरम्भ कर दिया। क्या आपको इसका स्मरण है? एक ने कहा था कि मरण-यंत्रणा को कम से कम कर देना चाहिए; दूसरे ने कहा था कि यह एक उपहास है। उनमें से एक वृद्ध स्कूलमास्टर था। वह यह आज्ञा सुनकर सहसा शिशुसम क्रन्दन करके कहने लगा—"नग्न करना बुरा है। मुझे जूड़ी आती है!" उसका कद लम्बा था, उसकी दाढ़ी सफ़ेद थी। उसके कन्धे ढलवाँ थे। मैं जानता था कि वह एक गुप्तचर है, अपने शिष्यों के भेद खोलकर उसने उन्हें दंडित कराया था और साम्राज्य की इस सेवा के पुरस्कार-स्वरूप उसको सम्मानपत्र तथा पदक मिले थे। मैं यह भी जानता था कि वह हमारा जानी दुश्मन है। फिर भी उसके रोने पर मेरा शरीर कम्पित

हो उठा, मानो मुझे ही नग्न होना हो। तत्पश्चात् लेज़विन ने अवरुद्ध स्वर में आपसे कहा—"बन्धुवर क्लेमिन, आपको ऐसा करना उचित नहीं है। आपको उनका उपहास करना शोभा नहीं देता। आखिर आप क्यों ...?" उसका स्वर अश्रुपूर्ण था।

हमारे एक साथी ने क्रुद्ध होकर उसको गालियाँ भी दीं।

"कपड़े इस प्रकार नष्ट नहीं होने दिये जायँगे।" आपने कहा—"वे प्रजातंत्र के काम आयँगे। एक ही क्षण पश्चात् इन लोगों को उनकी आवश्यकता न रह जायगी।" आपने लेज़विन से अत्यन्त मन्द स्वर में कहा—"आज्ञा-उल्लंघन को प्रोत्साहन न दो। जाओ, लारी पर जाकर हमारी प्रतीक्षा करो।"

अब अपराधी समझ गये कि कपड़े उतारने ही होंगे। उन्होंने ठिठुरे हुए वृक्षों के ठूँठों पर बैठकर जूते, विरजिसें आदि सभी कपड़े उतार डाले। भूर्जवृक्षों की हरित पारदर्शी छाया में उनके शरीर पांडु-हरित-से दिखाई दे रहे थे, मानो वे किसी मनोहर झील के विमल जल में झलक रहे हों। चाँदनी में अन्य लोगों के शरीर नील-श्वेत वर्ण के प्रतीत होते थे।... ओह! यह कैसा घोर अचिन्त्य, विकराल, मूक दृश्य था! कैसा भयानक अप्रतिम दुःस्वप्न! मानवात्मा को भस्मीभूत कर देनेवाला नारकीय दृश्य!

ग्रीष्म-ऋतु में कितनी ही बार मैंने इस स्थान को देखा था। देवदारु के उस पुराने और फटे हुए वृक्ष को मैं पहले से ही जानता था। उसकी डाली डाली से परिचित था। उसकी जड़ पर जो कुल्हाड़ी के गहरे आघात थे, मैं उनको भी खूब पहचानता था।

बात यह थी कि मुझे उस वृद्ध से कुछ प्रेम-सा हो गया था। परन्तु उस रात को न-जाने क्यों वह मुझे एक अपरिचित तथा वैरी-सा प्रतीत हो रहा था। इस अपरिचितता एवं द्वेष के साथ मेरे मन में माता-सम्बन्धी एक दुःस्वप्न सम्बद्ध है। वह भयावह क्षण जब कि स्वप्न-जगत् में मैं माता के साथ खड़ा था और घोर विपत्ति में मेरे हाथ फैला-फैलाकर सहायता माँगने पर भी मेरी निर्मम माता शान्त तथा तटस्थ भाव से मेरी दुर्दशा देखती रही.... तुषार-वृष्टि के मध्य इन अपराधियों के कपड़े उतारने ने मेरी आँखों के सामने गर्मी के दिनों में झील में स्नान करने का चित्र ला उपस्थित किया। यह एक विषम संसर्ग था और मैं समझता हूँ कि मेरे विचार भ्रान्त थे। अतः यह अच्छा ही हुआ कि गोलियों की एक बाढ़ ने मेरी कल्पनाओं का सदैव के लिए अन्त कर दिया।

क्या आपको स्मरण है कि मैं इस हत्याकाण्ड से पूर्व कैसा था? क्या आपको याद है, मैं कैसे अदम्य उत्साह के साथ शेका का कार्य करने को लालायित रहा करता था और उस पर मुझको कितना गर्व था? अनुसन्धान के रजिस्टर में कारावास-सम्बन्धी फ़ार्मों पर मैं कैसे प्रसन्न-चित्त से हस्ताक्षर कर देता था और मृत्युदण्ड के वारण्टों को कैसा बेधड़क होकर सम्पादित किया करता था! यह क्यों? इसी लिए कि मेरा यह पूर्ण विश्वास था और अब भी है कि रुधिर की नदियाँ प्रवाहित किये बिना उस विषम स्थिति का अन्त न हो सकेगा जिसमें आज समस्त संसार जकड़ा हुआ है। इसी लिए कि मुझे जनता की दुर्दशा पर दया आती थी, मैं उसकी पीड़ा से पीड़ित था। किन्तु मैं यह भी जानता था कि क्रान्ति के शत्रुओं का विनाश ही साम्यवाद के मार्ग को अकंटकाकीर्ण कर सकेगा। यही मेरी बाह्य निष्ठुरता का वास्तविक कारण था। और मेरा पूर्ण विश्वास है कि प्रत्येक साम्य-वादी पर यह सत्य लागू होता है।

मुझे आशा है कि शीघ्र ही वह समय आयेगा जब यह महान् मानवीय समवेदना संसार के प्राणियों को सुखी तथा उनके समस्त जीवन को आलोकित करेगी। उस समय मनुष्य एक-दूसरे की पीड़ा से वस्तुतः पीड़ित होंगे। एक दिन ऐसा होगा अवश्य। परन्तु इस समय तो उस महान् उद्देश्य की पूर्ति के लिए ही दया को द्वेष का रूप धारण करना होगा। और उस रात्रि के वध तक मैं ऐसा करने में समर्थ भी रहा।

परन्तु उस दिन उन लोगों का रुधिर मानो मेरे हृदय में आकर भर गया। मैं उनको किसी भी प्रकार विस्मृत नहीं कर सकता—चाँदनी में उनके कपड़े उतारने को, उनकी कपकपी, उनके नग्न शरीरों को, गोलियों की आवाज़ और उनकी कराह को—वह दृश्य मैं कदापि भूल नहीं सकता!... पत्थर की खान को प्रतिध्वनित करनेवाला वह उनका आर्त्तनाद! चाहे आप उसको

कायरता ही क्यों न समझें, किन्तु आप यह समझ लीजिए कि उनके कपड़े उतारते समय मैं यही अनुभव कर रहा था कि मैं स्वयं कपड़े उतार रहा हूँ, मेरे ही शरीर पर पाला पड़ रहा है, मेरे ही स्नायु तथा हड्डियों को गोलियाँ छेद रही हैं—और वह भीषण हृदय-विदारक चीत्कार मेरी ही आहत अन्तरात्मा से निकल रहा है!

तदनन्तर मृत्यु-दण्ड-आज्ञा-पत्र पर हस्ताक्षर करने में मैं इतना कुशल नहीं रहा। मेरी दृष्टि अपराधियों की आँखों, उनके हाथों और मुख की झुर्रियों पर घूमा करती थी। मेरे सम्मुख मेरे शत्रु खड़े होते थे, किन्तु यह सोचे बिना मैं न रह सकता था—"क्या मेरा ही हाथ इनका प्राणान्त करेगा?"

अब मेरी घृणा का अन्त हो गया है। फिर भी मैं चेका को छोड़ नहीं सकता, क्योंकि मैं समझता हूँ कि चेकिस्ट का कार्य वास्तव में क्रान्तिपूर्ण तथा आधुनिक काल में अपरिहार्य है।

अतः मेरा मर जाना ही उत्तम है, और जब मैं अन्तिम शान्ति से पूर्व मृत्यु-यंत्रणा में छटपटाऊँगा तब मैं यही समझूँगा कि मैं उन अगणित प्राणियों का स्मरण कर रहा हूँ जिनका यंत्रणा देकर वध मैंने स्वयं किया है।

कदाचित् यह केवल क्षणिक दुःख ही हो! सम्भव है कि जो कार्य मेरे सामने है उसमें लग जाने पर मैं पुनः कठोर, दृढ़ एवं बलवान् हो जाऊँ। इसी बात पर मेरा जीवन-मरण निर्भर होगा।

साम्यवादी के लिए प्रत्येक दिवस एक जटिल समस्या, एक घोर परीक्षा है। हम सभी में अभी तक प्राचीनता की ओर एक प्रबल झुकाव विद्यमान है। हम नवयुवक साम्यवादियों का तो कहना ही क्या, कुछ इने-गिने व्यक्तियों को छोड़कर इस मार्ग पर अविचल रहना अनुभवी सदस्यों के लिए भी, यदि असम्भव नहीं तो अत्यन्त दुःसाध्य अवश्य है। हममें से अधिकतर की प्राचीन प्रवृत्तियाँ कभी न कभी द्रवीभूत कर ही लेती हैं, जिसके परिणाम-स्वरूप हमारी आँख और कान बहक जाते हैं और हमारे मस्तिष्क स्तम्भित हो जाते हैं। अतः हर एक साम्यवादी को फूँक-फूँक कर क़दम रखना होगा, जिससे वह सत्पथ से विचलित न हो जाय अथवा भ्रष्ट होकर विपरीत आचरण न करने लग जाय। मैं टाल्स्टाय के अश्रुमुखी मनस्वी वर्ग में सम्मिलित होना नहीं चाहता। ... अतः मैं तीव्र शारीरिक तथा मानसिक यातना, सम्भवतः घोरतम मृत्यु-यंत्रणा के द्वारा अपनी परीक्षा करूँगा। ऐसा करने से या तो मेरा पुनरुत्थान होगा और मैं पुनः शक्तिशाली हो जाऊँगा अथवा...

कदाचित् दुर्बलता के कारण मैं रणक्षेत्र से चिर-विश्राम ग्रहण कर लूँ। फिर भी मैं यह जानता हूँ कि आप, दल के मूलाधार एवं प्राण, अपने पर ध्रुवसम अविचल रूप से खड़े हैं और यह कि संघर्ष बराबर चला जा रहा है। अन्त में साम्यवाद की विजय अवश्य होगी और उसका प्रचार सारे संसार में होगा।

आप दीर्घजीवी हों और कार्य कुशलता-पूर्वक करते रहें।

शुभ कामनाओं के साथ,
आपका
एस० मुराको

(एक रूसी कहानी का भावानुवाद)

भारत में दूध तथा घी की सहकारी समितियाँ

लेखक, श्रीयुत शंकरसहाय सक्सेना, एम० ए०, बी० काम०

भारतवर्ष में दूध और घी का खाद्य-पदार्थ की दृष्टि से कितना महत्त्व है, यह किसी से छिपा नहीं है। अधिकांश भारतवासी मांस तथा अंडा नहीं खाते और जो खाते भी हैं उन्हें यथेष्ट मास और अंडे खाने को नहीं मिलते। अतएव भारतवासियों के स्वास्थ्य के लिए दूध नितान्त आवश्यक खाद्य पदार्थ है। यही कारण है कि हिन्दू गाय के प्रति इतनी अधिक भक्ति प्रदर्शित करते हैं। किन्तु भारतवर्ष में आज शुद्ध घी और शुद्ध दूध मिलना लगभग असम्भव हो गया है। एक बात ध्यान में रखने की है। जहाँ दूध में शरीर और मस्तिष्क को पुष्ट करने के अद्भुत गुण मौजूद हैं, वहाँ अशुद्ध दूध और मिलावटी घी में मनुष्य के जीवन के क्षीण करने के भयंकर दुर्गुण भी विद्यमान हैं। भारतवर्ष में जो आज क्षय-रोग तथा अन्य भयंकर रोगों का भीषण प्रकोप है उसका एक मुख्य कारण मिलावटी घी और अशुद्ध दूध भी है। संसार के अन्य देशों में दूध और मक्खन कितना उत्तम और शुद्ध मिलता है, सकी हम भारतवासी जो गन्दे दूध के पीने और मिलावटी घी के खाने के अभ्यस्त हैं, कल्पना भी नहीं कर सकते। डेनमार्क, स्वीडन, फ़िनलैंड, हालैंड, आयरलैंड, स्विटज़रलैंड, कनाडा, आस्ट्रेलिया तथा न्यूज़ीलैंड में जो दूध और मक्खन का धंधा अत्यधिक उन्नत दशा में है उसका बहुत कुछ श्रेय वहाँ की डेयरी-सहकारी समितियों को है। डेयरी-सहकारी-समितियों के प्रयत्न का ही यह फल है कि इन देशों में आवश्यकता से अधिक दूध और मक्खन उत्पन्न होता है और इन देशों का मक्खन अन्य देशों के बाज़ारों में अच्छे दामों पर बिकता है। डेनमार्क का तो यह मुख्य धंधा ही है।

किन्तु भारतवर्ष जहाँ के भोजन में दूध और घी अत्यन्त आवश्यक खाद्य पदार्थ हैं, वहाँ अभी तक इस धंधे की उचित व्यवस्था करने की ओर किसी ने भी ध्यान नहीं दिया। पशुओं की गणना के अनुसार भारतवर्ष में संसार के प्रत्येक देश से अधिक दूध देनेवाले पशु हैं। डाक्टर एन० सी० राइट ने पशु तथा दूध के धंधे की उन्नति के सम्बन्ध में जो रिपोर्ट तैयार की थी उसमें उन्होंने हिसाब लगाया था कि भारतवर्ष में वर्ष भर में ८० करोड़ मन दूध उत्पन्न होता है, जिसका मूल्य लगभग ३०० करोड़ रुपया होता है। संसार में केवल संयुक्त-राज्य (अमरीका) ही ऐसा देश है, जहाँ भारतवर्ष से अधिक दूध उत्पन्न होता है। डेनमार्क में जो संसार में अपने मक्खन के लिए विख्यात है, भारतवर्ष का एक चौथाई दूध उत्पन्न होता है। परन्तु इससे यह समझ लेना भूल होगी कि भारतवर्ष में दूध की बहुतायत है। भारतवर्ष में प्रतिमनुष्य प्रतिदिन दूध की उत्पत्ति ३½ छटाँक के लगभग होती है जब कि डेनमार्क में १४८ पौंड, और न्यूज़ीलैंड में २४४ पौंड प्रतिमनुष्य प्रतिदिन दूध उत्पन्न होता है। ऊपर दिये हुए आँकड़ों से यह स्पष्ट हो जाता है कि भारतवर्ष में प्रतिमनुष्य दूध की उत्पत्ति का औसत बहुत ही कम है।

यह तो पहले ही कहा जा चुका है कि भारतवर्ष में प्रतिवर्ष दूध की उत्पत्ति लगभग ८० करोड़ मन है, परन्तु इससे यह अनुमान लगा लेना कि यह ८० करोड़ मन दूध भारतवासियों को पीने को मिल जाता है, भूल होगी। इसी ८० करोड़ मन दूध में घी तयार होता है, खोया, रबड़ी, दही तथा अन्य पदार्थ बनते हैं। शेष पीने के काम में आता है। मोटे हिसाब से भारतवर्ष में प्रतिवर्ष २ करोड़ ३० लाख मन घी उत्पन्न होता है, और २ करोड़ ३० लाख मन घी उत्पन्न करने के लिए लगभग ४० करोड़ मन दूध की आवश्यकता होगी। खोया, रबड़ी और दही बनाने में कितना दूध खर्च हो जाता है, इसके प्रामाणिक आँकड़े हमारे पास नहीं हैं, किन्तु अनुमान से १५ करोड़ मन दूध इन पदार्थों के बनाने में ज़रूर लगता होगा। अतएव भारतवासियों को पीने के लिए वर्ष में केवल २५ करोड़ मन दूध शेष रहता है। अर्थात् प्रतिदिन प्रतिमनुष्य एक छटाँक दूध का औसत आता है। वास्तव में यदि देखा जाय तो मिलिटरी छावनियों तथा शहरों में ही दूध पीने के काम में आता है। गाँवों में दूध पिया नहीं जाता। निर्धन किसान दूध, घी या खोया

पर्वतपुर सहयोग-समिति के मवेशियों का दूध दुहने के बाद तौला जा रहा है

जब तक ऊपर लिखी हुई समस्यायें हल नहीं होतीं तब तक इस धंधे की दशा सुधर नहीं सकती। हमारे देश में किसानों के लिए यह धंधा बहुत महत्त्वपूर्ण है। यह उनका मुख्य सहायक धंधा है। इससे वे खेती से होनेवाली आमदनी की कमी को पूरा करते हैं। अतएव इस धंधे की ओर हमारी दृष्टि बहुत पहले ही जानी चाहिए थी। खेद की बात है कि हमारे देश में इस धंधे को सहकारी समितियों के द्वारा संगठित करके उन्नत करने का प्रयत्न नहीं किया गया।

डेनमार्क, न्यूज़ीलैंड, आयरलैंड तथा अन्य देशों में भी एक समय उपर्युक्त समस्यायें उपस्थित थीं, परन्तु सहकारी-डेयरी-समितियों की स्थापना से वे समस्यायें सफलतापूर्वक हल कर ली गईं और आज वहाँ दूध और मक्खन का धंधा बहुत उन्नत अवस्था में है। कुछ वर्षों से भारत के कुछ प्रान्तों में सहकारिता-विभाग का ध्यान इस धंधे की ओर गया है और थोड़े से दूध-सहकारी-यूनियन स्थापित भी हुए हैं। इसके अतिरिक्त संयुक्त-प्रान्त में घी-सहकारी-समितियों की स्थापना की गई है। अभी यह इस दिशा में प्रारम्भिक प्रयोग हैं, फिर भी इनका महत्त्व कम नहीं है।

बेच कर अपना निर्वाह करता है। उसको तथा उसके बच्चों को तो दूध देखने को भी नहीं मिलता। हाँ, छाँछ वह अवश्य अपने खाने के काम में लाता है।

भारतवर्ष में दूध तथा घी के धंधे की उन्नति करने के लिए निम्नलिखित समस्याओं को हल करना होगा—

(१) दूध देनेवाले पशु अर्थात् गाय और भैंस की नस्ल का सुधार करना होगा, जिससे गायों और भैंसों से अधिक दूध उत्पन्न किया जा सके।

(२) दूध तथा घी उत्पन्न करनेवालों (अर्थात् किसानों) को दूध तथा घी के व्यापारियों की आर्थिक दासता से बचाना होगा। इस समय इस धंधे की दशा अत्यन्त शोचनीय है। दूध तथा घी के व्यापारी किसानों को भैंस अथवा गाय लेने के लिए कुछ क़र्ज़ दे देते हैं और उसके फलस्वरूप मनमाने दामों पर उनका दूध और घी लेते हैं। इस क़र्ज़ पर व्याज नहीं लिया जाता। यदि किसान इनके क़र्ज़दार न भी हों तो भी उन्हें बहुत सस्ते दामों पर अपना दूध या घी इन व्यापारियों के हाथ बेचना पड़ता है।

(३) दूध तथा घी में मिलावट को रोकना होगा। अशुद्ध दूध तथा मिलावटी घी ने शुद्ध दूध तथा शुद्ध घी के बाज़ार को चौपट कर दिया है।

भारतवर्ष की प्रमुख दूध-सहकारी समितियाँ

भारतवर्ष में कलकत्ता-सहकारी दूध-समिति सबसे बड़ी और महत्त्वपूर्ण दूध-सहकारी समिति है। कलकत्ता जैसे विशाल नगर में प्रतिवर्ष लगभग १३ लाख मन दूध की खपत होती है। कलकत्ता के समीपवर्ती गाँवों से ही यह दूध आता है। पेशेवर घोसी जिनका मुख्य धंधा गाँववालों से दूध लेकर शहर में बेचना है, कलकत्ता-निवासियों को दूध देते हैं। किन्तु दूध पीनेवाले तथा दूध उत्पन्न करनेवाले किसानों दोनों के लिए ही ये एक अभिशाप के समान हैं। दूध उत्पन्न करनेवाले किसान तो इन घोसियों के आर्थिक दास होते हैं। साथ ही ये लोग

जिस गन्दे ढंग से दूध को कलकत्ता ले जाकर वेचते हैं तथा उसमें जो मिलावट करते हैं उसके कारण दूध अत्यन्त दूषित और रोग-कीटाणु-युक्त हो जाता है। प्रातःकाल कलकत्ते के समीपवर्ती स्टेशनों पर देखिए। ये घोसी पीतल के बड़े बड़े कलसों में वह दूषित दूध लिये हुए ट्रेन की प्रतीक्षा में खड़े दिखाई देंगे।

आज से लगभग २० वर्ष हुए, बंगाल के तत्कालीन रजिस्ट्रार श्री जे० टी० डोनोवन और राय बहादुर जे० एम० मित्र ने कलकत्ता के समीपवर्ती गाँवों का सहकारी समितियों का संगठन करने के उद्देश्य से भ्रमण किया था, किन्तु उन्हें कुछ भी सफलता न मिली। अपने उस दौरे में वे एक दिन एक ऐसे गाँव में पहुँचे जहाँ के किसानों ने अपने घोसी का इसलिए वहिष्कार कर दिया था कि वह गाँववालों के बहुत प्रार्थना करने पर भी उनके भोज में सम्मिलित नहीं हुआ था। गाँव के किसानों ने घोसी का वहिष्कार तो कर दिया था, किन्तु दूध की निकासी का उन्हें कोई भी उपाय नहीं सूझ रहा था। श्री डोनोवन महोदय ने इस अनुकूल अवसर को हाथ से जाने देना उचित नहीं समझा और शीघ्र ही वहाँ एक दूध-सहकारी समिति की स्थापना कर दी। क्रमशः समीपवर्ती अन्य गाँववालों ने जब देखा कि समिति की स्थापना से दाम अच्छे मिलते हैं तब सहकारिता-विभाग ने उन गाँवों में भी सहकारी-दूध समितियाँ स्थापित कर दीं। अभी तक इन समितियों का दूध कलकत्ते में फुटकर विकवाया जाता था, किन्तु अधिक समितियाँ स्थापित हो जाने पर कलकत्ते में एक दूध-सहकारी समिति-यूनियन की स्थापना की गई, जो गाँवों की दूध-समितियों के दूध की बिक्री का प्रबन्ध करती है तथा अपने से सम्बन्धित दूध-समितियों की देखभाल करती है। आज इस यूनियन से १२३ ग्राम-समितियाँ सम्बन्धित हैं, जिनके लगभग ८,००० सदस्य हैं। इस समय यह यूनियन प्रतिवर्ष लगभग ४०,००० मन दूध कलकत्ता नगर में बेचता है। प्रतिदिन के दूध का औसत लगभग १०३ मन है। यूनियन प्रत्येक गाँव में अपना एक कर्मचारी रखता है, जिसकी देख-रेख में दूध दुहा जाता है। समीपवर्ती कई गाँवों में एक दूध-डिपो है, जहाँ यूनियन का डिपो-मैनेजर रहता है। वह दूध की परीक्षा

मेम्बरों को दूध का मूल्य दिया जा रहा है

करता है। फिर वह उस दूध को भाफ के द्वारा शुद्ध किये हुए वर्तनों में कलकत्ता भेज देता है। कलकत्ता में यूनियन की डेयरी है, जहाँ दूध की फिर जाँच होती है। यूनियन का निज का Pastervrising Plant (दूध गरम करने का प्लांट) है, जिसमें दूध आध घंटे तक (१४६० फ़ै०) गरमी में रक्खा जाता है और फिर शीघ्र ही ४०० फ़ै० की गरमी तक ठंडा करके बोतलों में भर दिया जाता है। इस प्रकार गरम किये हुए दूध में रोग-कीटाणु नहीं रहते, साथ ही दूध में पाये जानेवाले पदार्थ बिल्कुल नष्ट भी नहीं होते।

उक्त दूध-सहकारी यूनियन सम्बन्धित समितियों के सदस्यों को पशु खरीदने के लिए ऋण भी देता है। वह पशुओं की उन्नति करने के लिए अच्छे नस्ल के साँड़ मोल लेकर गाँवों में रखता है। प्रान्तीय सरकार ने एक पशु-चिकित्सक यूनियन को दे रक्खा है। यह पशु-विशेषज्ञ किसानों के पशुओं की देखभाल करता है। पशुओं को किस प्रकार पालना चाहिए, उन्हें रोगों से

श्री—गोलावटी की पंचायत मेम्बरों से भी इकट्ठा कर रही है

किस प्रकार बचाना चाहिए और उनका दूध किस प्रकार बढ़ाना चाहिए, इत्यादि आवश्यक बातों का वह समितियों के सदस्यों में प्रचार करता है तथा समितियों के सदस्यों के पशुओं का निरीक्षण करता रहता है। यूनियन ने पशुओं के लिए शुद्ध जल की व्यवस्था करने के उद्देश्य से उन गाँवों में कुएँ खुदवाये हैं जहाँ जल का अभाव था।

इस प्रकार सहकारी समितियों का संगठन करने का यह फल हुआ है कि दूध लेनेवालों तथा दूध उत्पन्न करनेवालों दोनों को लाभ हुआ है। जब दूध-सहकारी यूनियन की स्थापना हुई थी उस समय कलकत्ते में १६ रुपया मन दूध बिकता था। यूनियन की स्थापना से दूध का भाव १० रुपया मन हो गया है। यही नहीं कि यूनियन ने दूध के मूल्य को घटाया है, वरन यूनियन शुद्ध तथा उत्तम दूध भी देता है। इसके अतिरिक्त दूध उत्पन्न करनेवाले किसानों को अपने दूध का पहले से अधिक मूल्य मिलता है। घोसी को बीच से हटा देने से दूध लेनेवालों और दूध उत्पन्न करनेवालों दोनों का लाभ हुआ है।

यूनियन अपनी दूध की गाड़ियों के द्वारा दूध बेचता है। व्यक्तिगत खरीदारों के अतिरिक्त यूनियन सरकारी अस्पतालों तथा कारपोरेशन के शिशु-गृहों को दूध देता है। यह ध्यान में रखने की बात है कि अभी तक यूनियन कलकत्ता शहर की केवल ३ प्रतिशत माँग को ही पूरा कर पाया है, अतएव उसे भविष्य में अपने कारबार को बढ़ाने का अपरिमित क्षेत्र है। किन्तु जब तक कारपोरेशन पानी मिले हुए घोसियों के दूध की बिक्री को कड़ाई के साथ नहीं रोकता तब तक यूनियन के लिए कलकत्ता नगर की सारी माँग को पूरा कर सकना कठिन है।

मदरास-सहकारी-दूध यूनियन

मदरास-सहकारी-दूध यूनियन से २० दूध-सहकारी समितियाँ सम्बन्धित हैं, जो मदरास के उत्तर के समीपवर्ती गाँवों में स्थापित की गई हैं। यूनियन प्रतिदिन मदरास शहर में अपने ३३ दूध-भांडारों से लगभग १५० मन दूध बेचता है। इन भांडारों के अतिरिक्त यूनियन अपने नौकरों के द्वारा घरों पर भी अपने ग्राहकों को दूध देता है। प्रातःकाल गाँवों में यूनियन की मोटरलारियाँ समितियों का दूध लेकर आती हैं। प्रत्येक गाँव में एक प्रबन्धक अपने सामने सदस्यों के पशुओं को दुहवाता है। दूध दुह चुकने के उपरान्त उसे तुरन्त ही साफ़ से साफ़ किये हुए बर्तनों में रखकर मुहर लगा दी जाती है और मोटरलारी के द्वारा मदरास भेज दिया जाता है। मदरास में यूनियन के दूध गरम करने के प्लांट में वह दूध शुद्ध किया जाता है और बोतलों में बन्द करके बिकने के लिए भेजा जाता है।

मदरास-दूध-सहकारी यूनियन यद्यपि अपने दूध को शहर के घोसियों की अपेक्षा सस्ता तो नहीं बेच सका है, तो भी वह उनकी तुलना में बहुत अच्छा और शुद्ध दूध देता है। हाँ, किसानों को अब जो दूध का दाम मिलता है वह उससे कहीं अधिक है जो दूधवाले उन्हें देते थे। यूनियन को अपने कारबार के बढ़ाने के लिए अपरिमित क्षेत्र है, क्योंकि अभी तो वह शहर की ५ प्रतिशत माँग को ही पूरा कर पाता है।

नागपुर की तलिन खरी-सहकारी डेयरी-समिति

यह समिति कलकत्ता और मदरास की भाँति गाँव की दूध-समितियों का यूनियन नहीं है, वरन एक बड़ी दूध-समिति है। इस समिति के सदस्यों के पास लगभग ३५० पशु हैं और समिति लगभग २५ मन दूध प्रतिदिन नागपुर में बेचती है। समिति ने सरकार से चरागाह-

भूमि का पट्टा ले लिया है, जिसमें पशु चरते हैं। वे पशु सरकारी कर्मचारियों की देख-रेख में दुहे जाते हैं। समिति मुहर लगे हुए वर्तनों में दूध ग्राहकों के घरों पर पहुँचाती है।

लखनऊ-दूध-सहकारी, यूनियन

लखनऊ के समीपवर्ती गाँवों में कुछ वर्ष हुए सहका ताविभाग ने दूध सहकारी समितियाँ स्थापित की थीं। लखनऊ से १५ मील दूर बख्शी का तालाब नामक ग्राम के आस-पास के गाँवों में २२ दूध-समितियाँ हैं, जिनका दूध यूनियन लखनऊ नगर में बेचता है। क्रमशः अधिकाधिक समितियाँ स्थापित की जा रही हैं। इस समय यूनियन लगभग ३० मन दूध प्रतिदिन बेचता है। यूनियन के पास अपनी लारी है, जो गाँवों से दूध लाती है। यूनियन ने अपने सदस्यों के लिए हिसार की गायें खरीदी हैं। इस सहकारी-यूनियन के संगठन से गाँववालों को बहुत लाभ हुआ है।

इन चार प्रमुख दूध सहकारी संगठनों के अतिरिक्त प्रत्येक प्रान्त में कुछ न कुछ दूध-सहकारी-समितियाँ स्थापित हो चुकी हैं। बंगाल में कलकत्ता के अतिरिक्त ढाका, दार्जिलिंग, चटगाँव और नौगाँव की, मदरास में कोयम्बटूर की तथा बम्बई की सात दूध-सहकारी समितियाँ उल्लेखनीय हैं। परन्तु ऊपर वर्णित चार प्रमुख दूध-सहकारी-संगठनों के अतिरिक्त शेष या तो सफल नहीं हुईं अथवा वे प्रारम्भिक अवस्था में ही हैं।

संयुक्तप्रान्त की घी-सहकारी समितियाँ

यह तो पहले ही कहा जा चुका है कि भारतवर्ष में लगभग २ करोड़ ३० लाख मन घी प्रतिवर्ष उत्पन्न होता है। मोटे हिसाब से प्रतिवर्ष भारतवर्ष का किसान घी बेचकर एक अरब रुपया कमाता है। डाक्टर राइट ने अपनी रिपोर्ट में लिखा है कि बाजार में शुद्ध घी मिलना कठिन हो गया है। भारत-सरकार के स्वास्थ्य-विभाग के कमिश्नर ने लिखा है कि भारतवर्ष में दूध और घी सर्वत्र मिलावट का मिलता है। सरकारी कर्मचारियों के द्वारा घी और दूध की जाँच की गई है और उसमें ७३ प्रतिशत घी में और ५९ प्रतिशत दूध में मिलावट

रिफ्रेक्टो द्वारा घी की शुद्धता की जाँच

पाई गई है। इस पर भी किसानों को घी का उचित मूल्य नहीं मिलता है। अनुसंधान से ज्ञात हुआ है कि घी के व्यापारी किसान को बाजार-भाव से ३० से २५ प्रतिशत मूल्य कम देते हैं।

संयुक्त प्रांत के पश्चिमी ज़िलों (इटावा, टा, मैनपुरी, आगरा, अलीगढ़, मेरठ और बुलन्दशहर) में घी बहुत उत्पन्न होता है। यहाँ से घी कानपुर, कलकत्ता तथा रंगून इत्यादि बड़े बड़े व्यापारिक केन्द्रों को भेजा जाता है। कुछ वर्ष हुए संयुक्त-प्रांत के सहकारिता-विभाग ने घी-सहकारी समितियों की स्थापना करना आरम्भ किया। इस समय प्रान्त के उपर्युक्त ज़िलों में लगभग ४०० घी-सहकारी समितियाँ स्थापित की जा चुकी हैं। इन समितियों ने पिछले वर्ष ५,५०० मन घी बेचा।

घी-समितियों का संगठन इस प्रकार है—प्रत्येक गाँव में एक घी-समिति स्थापित की जाती है। जिस किसान के पास गाय अथवा भैंस हो वह उसका सदस्य बन सकता है। समिति के सदस्य अपने में से एक पंचायत का चुनाव करते हैं, जो सहकारिता-विभाग के प्रवन्धक की सहायता से कार्य-संचालन करती है। जैसे ही समिति के किसी सदस्य की भैंस ब्याई, समिति उससे सौदा कर लेती है कि वह १ या २ मन घी (जैसी भी भैंस हो) समिति को प्रति भैंस देगा। समिति सदस्य को सारे घी का रुपया पेशगी दे देती है और घी का मूल्य बाजार-

घी के यूनियन में शुद्ध घी को मोल लेनेवालों की भीड़

भाव से ८ से १२ रुपया मन कम निश्चित किया जाता है जब कि घी के व्यापारी उन्हें १५ से २५ रुपया प्रतिमन कम देते हैं। किन्तु वास्तव में किसान को बाज़ार-भाव से केवल ५ से ७ रुपया मन कम मूल्य मिलता है, क्योंकि वर्ष के अन्त में प्रत्येक किसान को ४ या ५ रुपया प्रतिमन बोनस दिया जाता है। बाज़ार-भाव से किसान को जितनी क़ीमत कम मिलती है उसमें पेशगी दिये हुए रुपये पर सूद, समिति का ख़र्च इत्यादि शामिल रहता है। घी-समिति ज़िला-सहकारी बैंक से ऋण लेती है।

प्रत्येक क्षेत्र की ग्राम-समितियों का घी-यूनियन बनाया गया है। निश्चित दिनों पर यूनियन का घी ले जानेवाला कर्मचारी आता है और प्रत्येक सदस्य सरपंच के सामने अपना घी तौलता है। जो घी ख़राब समझा जाता है वह नहीं लिया जाता। यूनियन घी को गर्म तथा साफ़ करके पीपों में भरकर अपनी मुहर लगा देता है। इनके उपरान्त घी मंडियों में आढ़तियों की दूकानों पर बिकने के लिए भेज दिया जाता है। यदि देखा जाय तो यह व्यवस्था दोषपूर्ण है। होना यह चाहिए कि घी आढ़तियों को भी न देकर शहरों में घी-भांडार खोलकर उनके द्वारा जनता के हाथ सीधा बेचा जाय।

ऊपर के विवरण से पाठक यह न समझ लें कि दूध तथा घी की सहकारी समितियों का संगठन बहुत सरल है और उनके सामने कोई कठिनाइयाँ नहीं आती हैं। सफल सहकारी संगठनों के जो भी उदाहरण दिये गये हैं उनके पीछे बहुत-से असफल प्रयत्नों का इतिहास छिपा हुआ है। और एक दृष्टि में ये समितियाँ भी व्यापारिक दृष्टि से पूर्ण सफल नहीं कही जा सकतीं। इन समितियों को सफल बनाने के लिए तथा उनकी देखभाल करने के लिए जो प्रबन्धक नियुक्त हैं उनका वेतन प्रान्तीय सरकार देती है, साथ ही अन्य कार्यों के लिए भी सरकार सहायता देती है। दूध तथा घी की समितियों की प्रारम्भिक अवस्था में इतना प्रोत्साहन तथा सहायता आवश्यक है, इसको कोई अस्वीकार नहीं कर सकता।

किन्तु डेनमार्क, न्यूज़ीलैंड तथा आयर्लैंड की भाँति यह आन्दोलन भारतवर्ष में तभी सफल हो सकता है जब मिलावट की समस्या किसी तरह हल की जाय। यदि हम चाहते हैं कि किसान को अपने दूध और घी का उचित मूल्य मिले और जनता को शुद्ध दूध और

सोसाइटी का घी बैलगाड़ियों में यूनियन को लाया जा रहा है

घी खाने को मिले तो मिलावट की समस्या को हल करना ही होगा। सहकारी दूध और घी की समितियाँ उन व्यापारियों की प्रतियोगिता में किस प्रकार सफल हो सकेंगी जो भैंस के दूध में पानी मिलाकर तथा घी में अन्य पदार्थ मिलाकर सस्ते दामों पर बाज़ार में बेचते हैं। आज यह बात किसी से छिपी नहीं है और सरकारी विशेषज्ञ भी इस बात को स्वीकार करते हैं कि बाज़ार में बिना मिलावट का दूध और घी मिलना अन्यन्त कठिन है। साथ ही विशेषज्ञों का यह भी कहना है कि मिलावट का दूध और घी क्षय-रोग का मुख्य कारण हैं। फिर यह समझ में नहीं आता कि अभी तक प्रान्तीय सरकारों तथा म्यूनिसिपेल्टियों ने कड़ाई के साथ इसको रोकने का प्रयत्न क्यों नहीं किया। यदि किसी भी प्रान्त को लें तो ज्ञात होगा कि मिलावट करने के अपराध में इने-गिने व्यापारियों का ही वर्ष भर में चालान होता है और वे भी थोड़े से रुपये जुर्माने के रूप में देकर छूट जाते हैं। आवश्यकता इस बात की है कि मिलावट के रोकने के लिए प्रत्येक प्रान्त में कठोर क़ानून बनाये जायँ और वे कठोरतापूर्वक लागू भी किये जायँ।

मक्खन

भारतवर्ष में मक्खन की माँग बहुत कम है। अधिकांश जनता घी का ही उपयोग करती है। किन्तु योरपीय ढंग से रहनेवाले भारतीय उसका उपयोग करते हैं। क्रमशः मक्खन की माँग भारतवर्ष में बढ़ रही है। यद्यपि मक्खन बनाने का धंधा शहरों में थोड़ा-बहुत दिखाई पड़ता है, तथापि अभी तक उसका सहकारिता के आधार पर कहीं भी संगठन नहीं किया गया है। बात यह है कि मक्खन के धंधे के लिए भारतवर्ष में अनुकूल परिस्थिति नहीं है। एक तो भैंस के दूध से बहुत अच्छा मक्खन तैयार नहीं होता। दूसरे देश में जब तक 'शीत भांडार-रीति' की व्यवस्था नहीं होती तब तक यहाँ की अधिक गर्मी के कारण मक्खन तैयार करने में कठिनाई होगी। तीसरी मुख्य कठिनाई मक्खन निकले हुए दूध की है। यदि देश में मक्खन बनाने का धंधा व्यापक रूप से फैले तो इस दूध का क्या उपयोग हो? डेनमार्क तथा अन्य देशों में जहाँ मक्खन का धंधा उन्नत दशा में है, वहाँ साथ साथ सूअर पालने का धंधा भी चलता है। मक्खन निकला हुआ दूध सूअरों को मोटा करने के काम में आता है। भारतवर्ष में धार्मिक कारणों से सूअर पालने का धंधा प्रचलित नहीं है। अतएव मक्खन निकले हुए दूध की खपत कैसे होगी? ऐसी दशा में मक्खन का धंधा यहाँ महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त कर सकेगा, इसमें सन्देह है।

परिचय

लेखक, श्रीयुत मित्तल

दिल ने दिल, पहिचान लिया है।

सुख आता है, बह जाता है,
दुख में दिल ही ढह जाता है;-
सच्चा गायक दूर जगत से—
सूने में गाने गाता है।
दिल से निकला गान किसी ने, अनजाने ही जान लिया है।
दिल ने, दिल पहिचान लिया है।

पक्षी जिसके पंख कटे हों,
एक चाहता सूनी डाली;
जहाँ बना हो नीड़ और—
खाने को फल हों, हो हरियाली
आहत को वह वृक्ष मिला है, सुख से रहना ठान लिया है।
दिल ने, दिल पहिचान लिया है।

मैं परदेसी, राह विकट है,
बहुत दूर—मेरी मंजिल है;
मुझे बढ़ाये चलना भाई—
साहस पास, बड़ा-सा दिल है
एक भरोसा है तुम पर ही, दिल में अपना मान लिया है।
दिल ने, दिल पहिचान लिया है।

हिन्दी के दैनिक पत्र घटिया क्यों हैं ?

लेखक, श्रीयुत आत्मस्वरूप शर्मा

हिन्दी के दैनिक पत्रों के सम्बन्ध में कुछ लिखने से पूर्व मैं यह बता देने में कोई हर्ज नहीं देखता कि मेरा केवल पंजाब के 'एकमात्र' सफल हिन्दी दैनिक पत्र के साथ सम्पादक-रूप में उसके जन्म दिन से ही सम्बन्ध चला नहीं आ रहा है, बल्कि मैंने अपने सम्पादकीय जीवन के आठ-दस वर्ष पंजाब के कई चोटी के उर्दू-दैनिक समाचार-पत्रों के साथ सम्बन्धित रहकर भी व्यतीत किये हैं। लाहौर में उर्दू के जो हिन्दू-पत्र मुख्य माने गये हैं और जिनके मालिक आज स्वर्ग में लोटते हैं उनके साथ एक या दूसरे समय में काम करने का मुझे सौभाग्य प्राप्त हुआ है। इसलिए मैं तुलनात्मक अध्ययन के आधार पर हिन्दी के दैनिक पत्रों से सम्बन्धित कितने ही विषयों और समस्याओं पर अपने मत के अनुसार प्रामाणिक रूप में कुछ कह सकने की अवस्था में हूँ—ऐसा मैं समझता हूँ; यद्यपि मैं जानता हूँ कि मेरे ऐसे दावे पर कुछ लोगों को ग़लतफ़हमी भी हो सकती है।

ख़ैर, मेरा अध्ययन यह बताता है कि हिन्दी के दैनिक पत्रों का भविष्य बहुत उज्ज्वल नहीं और मेरे ऐसा समझने के जो प्रधान कारण हैं उन्हें मैं नीचे देता हूँ।

व्यापारिक आधार

हिन्दी के दैनिक पत्र प्रायः व्यापारिक आधार पर नहीं चलाये गये हैं, बल्कि उनके द्वारा हिन्दी का प्रचार ही मुख्य उद्देश्य रहा है। इस भावना ने हिन्दी-पत्रों को उन्नत होने तथा लाभ का साधन बनने नहीं दिया। हिन्दी-पत्र-सञ्चालकों के भीतर इस प्रकार घटियापन का विचार धीरे-धीरे खूब उन्नत हुआ है और वे स्वावलम्बी नहीं होने पाये। मेरा सङ्केत किसी पत्र-विशेष की ओर नहीं, पर मैं इतना जानता हूँ कि सारे देश में एक-दो को छोड़कर हिन्दी के सब दैनिक समाचार-पत्र अपने स्वामियों अथवा हिन्दी-प्रेमी-समाज पर भार-स्वरूप हैं और इसी लिए गत चौथाई शताब्दी में हिन्दी-पत्रों के आदर और मान में कोई विशेष वृद्धि नहीं हुई। ख़ैरात अथवा दान पर जीवित रहनेवाले पत्र लोक-दृष्टि में मान नहीं प्राप्त कर सकते और मैं तो यहाँ तक समझता हूँ कि किसी व्यक्ति को भी हमेशा घाटे पर जानेवाले किसी पत्र का आर्थिक बोझ लगातार सहन न करना चाहिए। ऐसा करना मेरी दृष्टि में उतना ही अपराध है जितना कि भीख माँग कर अख़बार चलाना। जो समाचार-पत्र एक निश्चित काल तक चलते रहने के बाद यह अनुभव करते हैं कि वे अपना मार्ग-व्यय अदा नहीं कर सकते उनके लिए आप-से-आप अपना अस्तित्व लोप कर देना ही भला है। ऐसे पत्रों को जीवित रहने का कोई अधिकार नहीं और उन्हें जीता रहने के लिए व्यर्थ की ज़िद भी न करनी चाहिए। यदि हिन्दी-समाचार-पत्रों में यह दृढ़ विचार पैदा हो जाय कि हम जियेंगे तो अपने पैरों पर खड़े होकर नहीं तो जीवित नहीं रहेंगे, तो इससे केवल वही पत्र जीते रहकर अपना और हिन्दी-भाषा का मुख उज्ज्वल रक्खेंगे जो अपने भीतर प्राण से ज़िन्दा रहने की ताक़त रखते हैं। पंजाब के उर्दू के दैनिक पत्र इस समय देशी भाषाओं के समाचार पत्रों में कम-से-कम पंजाब में काफ़ी नाम, प्रभाव और रोब रखते हैं। उनके फलने-फूलने और उन्नति करने का मुख्य कारण यही है कि उनके मालिकों ने उन्हें अपनी आजीविका का एकमात्र साधन बनाया है और व्यापारिक उद्देश्य से वे अपने पत्रों को बढ़ाकर कहीं का कहीं ले गये हैं। यदि हिन्दी के हमारे सहयोगी बुरा न मानें तो मैं कहूँगा कि आज हिन्दी-समाचार-पत्र समाचार-पत्रों के समाज में एक अछूत का दर्जा रखते हैं और यह इसी कारण कि उनकी आर्थिक दशा हीन है। मुझसे पूछा जाय तो मैं कहूँगा कि देश में हिन्दी के दैनिक पत्र केवल उतने ही रहने चाहिए जो अपने पैरों पर खड़े हो सकते हों और जिनके विषय में यह प्रमाण मिल चुका हो कि जनता उनके अस्तित्व की आवश्यकता स्वीकार करती है।

दूसरों को खींचना

हिन्दी के दैनिक पत्रों का स्टैन्डर्ड लोक-दृष्टि में ऊँचा नहीं किया गया और न अँगरेज़ी-भाषा के पत्र पढ़ने-

वालों की रुचि को देशी भाषा के समाचार-पत्र पढ़ने की ओर मोड़ा गया है। इतने वर्षों के अनन्तर भी हिन्दी के दैनिक पत्र यह नहीं कह सकते कि उन्होंने अँगरेज़ी पत्रों के पाठकों की भारी संख्या में से किसी अंश को अपनी ओर खींचा है। मैं ऐसा कहते हुए केवल हिन्दी के दैनिक पत्रों का ही ज़िक्र करता हूँ—मासिक और थोड़े से इने-गिने साप्ताहिक पत्रों का नहीं। हिन्दी के दैनिक पत्रों के सम्बन्ध में आज भी यही समझा जाता है कि इन्हें पढ़नेवालों में मुख्यतः स्त्रियाँ, बच्चे, केवल हिन्दी जाननेवाले दूकानदार और दरिद्र श्रेणी के वे लोग हैं जो अन्य भाषाओं के पत्र या तो पढ़ नहीं सकते या उनके पास इतने पैसे नहीं कि वे महँगे अखबार ख़रीद सकें। हिन्दी के दैनिक पत्रों के सम्बन्ध में ऐसे ख़याल के फैलने तथा इस ख़याल के एक हद तक ठीक होने ने भी हिन्दी के दैनिक पत्रों के बारे में लोकमत को बहतर होने नहीं दिया। यह एक खुली सचाई है कि हिन्दी के दैनिक अपने भीतर ऐसी सामग्री नहीं रखते जिससे अँगरेज़ी-भाषा जाननेवालों की तृप्ति हो सकती हो। हिन्दी-भाषा के वर्तमान दैनिक अँगरेज़ी दैनिकों की बहुत भद्दी नक़ल हैं। सारे हिन्दुस्तान में गिनती के दो-एक पत्र ही ऐसे हैं जो ख़बरों की कुल सर्विसों अर्थात् रूटर, एसोशिएटेड प्रेस और यूनाइटेड प्रेस के तार लेते हैं। हिन्दी-पत्रों की आर्थिक स्थिति ही ऐसी है कि वे इतनी विशाल न्यूज़ सर्विस नहीं ले सकते और फिर उनके यहाँ स्थान का भी अभाव है कि वे इस सारी सर्विस को लेकर उसका पर्याप्त उपयोग कर सकें। जब हम झोंपड़ों में रहते हैं तब हमें ऊँचे भवनों के स्वप्न देखने का कोई अधिकार नहीं। मुझे यह लज्जा की बात प्रतीत होती है कि हिन्दी-क्षेत्र में एक भी ऐसा दैनिक नहीं जिसे सच्चे अर्थों में 'अप-टु-डेट' पत्र कह सकें। हिन्दी-पत्रों के मुक़ाबिले में उर्दू के दैनिक पत्रों ने विशेषकर उर्दू-पत्रों के प्रधान केन्द्र लाहौर में चमत्कारपूर्ण तरक़्क़ी की है। लाहौर में एक भी उर्दू का दैनिक पत्र नहीं है जो रूटर, एसोशिएटेड प्रेस और यूनाइटेड प्रेस के तार न लेता हो। केवल इतना ही नहीं, ये पत्र सैकड़ों रुपये मासिक अपने संवाददाताओं पर ख़र्च कर रहे हैं। उर्दू के दैनिक पत्रों के उन्नति करने का काल हिन्दी के दैनिक पत्रों की अपेक्षा लम्बा नहीं। मेरे देखने की बात है कि बीस वर्ष पूर्व उर्दू-पत्रों की न केवल पृष्ठ-संख्या कम थी, बल्कि वे सीधे तार भी नहीं लेते थे। एकाएक एक-दो पत्रों ने साहस किया तब युग-परिवर्तन हो गया। पंजाब में समाचारपत्रों के क्षेत्र में क्रान्ति पैदा करनेवाला पहला उर्दू का दैनिक पत्र स्वर्गीय लाला लाजपतराय का 'वन्दे मातरम्' था। उस पत्र ने जन्म लेते ही फ़ुल न्यूज़-सर्विस ली, बड़े बड़े वेतनों पर कर्मचारी रक्खे और पृष्ठ-संख्या दूसरे अख़बारों से अधिक कर दी। काल के थपेड़ों से वह पत्र आप तो मर गया, और लोग आज तक कहते हैं कि वह पत्र अपनी फ़िज़ूल-ख़र्चियों के कारण आत्म-हत्या कर गया, पर उसने पंजाब में उर्दू-पत्र-कला के स्टैण्डर्ड एकदम को इतना ऊँचा कर दिया कि आज उर्दू-पत्रों को उसका ऋणी और आभारी होना चाहिए। स्वर्गीय लाला जी के पत्र से पूर्व पत्रकारों के वेतन यही ५०-६० रुपये मासिक होते थे। इसी पत्र ने वेतनों को सैकड़ा से ऊपर किया। हिन्दी के दैनिक पत्र जब तक दरिद्र रहेंगे और उन्हें दरिद्रता से हृदयगत घृणा नहीं होगी तब तक उनकी दशा उन्नत नहीं हो सकती। हिन्दी-पत्रों का आदर्श है—"जैसे-तैसे निर्वाह करना"—शान से जीना और सुख से निर्वाह करना नहीं। हिन्दी दैनिक पत्रों के आदर्श और ध्येय में जब तक मानसिक परिवर्तन नहीं आता और इसके साथ ही उनके क़दम उच्च आदर्श की ओर तेज़ी से नहीं बढ़ते तब तक उनकी हालत के सुधरने की आशा दूर प्रतीत होती है। सन्ताननिग्रह के नियम की तरह हमें संख्या के पीछे न जाकर केवल उन पत्रों को ही जीवित रखना चाहिए जो जीवित रहने के अधिकारी हैं—जो 'अप-टु-डेट' रहने की तौफ़ीक़ रखते हों और जिनमें दूसरी भाषाओं के पत्रों के मुक़ाबिले पर छाती तानकर खड़े होने का भीतरी बल हो।

कम क़ीमत

वर्तमान अवस्था में हिन्दी के दैनिक पत्रों की क़ीमत बहुत कम है, मानो आध आना इनकी क़ीमत पेटेंट हो चुकी है। मेरे विचार में हिन्दी के दैनिक पत्रों को 'आध आना' के चक्कर से शीघ्र निकालना चाहिए। पर यह कार्य एक-दो पत्रों के करने का नहीं, बल्कि सबके संयुक्त होकर करने का है। भारत भर के हिन्दी के दैनिक पत्रों को 'एका' कर अपनी क़ीमत एक आना कर लेनी चाहिए जैसा

कि अँगरेज़ी तथा उर्दू के दैनिकों ने कर रक्खी है। पर इस मूल्य-वृद्धि को अपने नफ़े का साधन न बनाकर यह अतिरिक्त आध आना पाठकों के ही लाभार्थ खर्च होना चाहिए। हिन्दी के दैनिक पत्रों की पृष्ठ-संख्या बढ़नी चाहिए, उनका आकार बँगला के दैनिक पत्रों जितना हो जाना चाहिए और फिर पूरी खबरों के साथ अन्य सामग्री में हिन्दी के पाठकों को उतना ही मिलना चाहिए जितना कुछ कि अँगरेज़ी के पाठकों को मिल रहा है। हमें हिन्दी के पाठकों की रुचि को उन्नत करना तथा उन्हें कितनी ऐसी बातों का चस्का डालना चाहिए जिनसे वे अब तक बिलकुल अनभिज्ञ तथा वंचित हैं। हमने इतने वर्षों में हिन्दी-पत्रों के पाठकों को प्रायः वहीं अटका रक्खा है जहाँ वे कभी थे। समाचार-पत्र की लाइन में पाठकों की आवश्यकताओं को बढ़ाना तथा उनमें नई नई बातों के लिए शौक़ पैदा करना पत्रों का ही काम है—जो अन्य भाषाओं के पत्र तो कर रहे हैं, पर हिन्दीवाले इस पहलू में एकदम उदासीन हैं। हमने हिन्दी के पाठकों को अपनी दरिद्रता और कई पहलुओं में असमर्थता से 'कुएँ का मेढक' बनने के लिए विवश किया है। यह कोरा अन्याय और अपने दोष के लिए दूसरे को दण्ड देने के तुल्य है।

'न्यूज़' और 'व्यूज़'

हिन्दी के दैनिक पत्रों में न्यूज़ (खबरों) की अपेक्षा 'व्यूज़' अर्थात् विचारों को अधिक महत्त्व दिया जाता है। मेरे खयाल में दैनिक पत्रों को शुद्ध रूप से 'न्यूज़-पेपर' ही रहना चाहिए और यत्न होना चाहिए कि हमारे पत्रों में भी अन्तिम क्षण तक की खबरें उसी प्रकार प्रकाशित हों जिस प्रकार कि अन्य भाषाओं के पत्रों में होती हैं। अब पत्र-पाठकों के विचारों का अधिक नेतृत्व करने की आवश्यकता नहीं। पाठकों का अभ्यास इस युग में, राजनैतिक आन्दोलनों के कारण, काफ़ी उन्नत हो चुका है। वे किसी विषय पर अपने विचार बना सकें, इसके लिए उन्हें दो-दो और तीन-तीन कालम के लम्बे अग्र-लेख पढ़ने की आवश्यकता नहीं। किसी पत्र का किसी विशेष विषय पर क्या मत है, यह तो बहुधा किसी खबर पर दिये हुए शीर्षकों से ही मालूम हो जाता है। मुझे तो कई बार ऐसा प्रतीत हुआ है कि हम अपने सम्पादकीय विचारों से पाठकों की साधारण बुद्धि का निरादर करते हैं। ऐसा करने का हमें कोई अधिकार नहीं। कुछ बारीक़ विचार से मैंने यह भी देखा है कि सम्पादक कई हालतों में पाठकों के लिए नहीं बल्कि अपने मन की शान्ति के लिए विचार प्रकट करते हैं। 'सम्पादकीय विचार' सम्पादक की अपनी प्रतिदिन की दिमाग़ी कसरत है। सम्पादक के मस्तिष्क में जो कुछ भर जाता है उसे पाठकों के सामने उगलने के लिए वह बेचैन रहता है और उसे तब तक शान्ति नहीं प्राप्त होती जब तक वह उसे उगल नहीं लेता। अग्र-लेख लिखने की एक शैली-सी चल पड़ी है, पर इतनी बात विशेष रूप से नोट करने लायक़ है कि जहाँ एंग्लो-इंडियन तथा विलायती समाचार-पत्रों का रुख़ अग्र-लेखों की लम्बाई को छोटा करने की ओर है, वहाँ भारतीय पत्र आज भी पाठकों पर बराबर लम्बे अग्र-लेख ठूँसने का दुःसाहस करते दिखाई देते हैं। सम्पादक को यदि अपने विचार प्रकट करने के लिए अवसर न मिले तो वह पागल हो जाय! फिर, क्या यह सत्य नहीं कि कभी कभी ठिकाने का विषय न मिलने पर भी अपनी इच्छा के विरुद्ध सम्पादकीय स्तम्भों के लिए कुछ न कुछ लिखना पड़ता है—चाहे हम अपने लेख में कोई मौलिकता और नवीनता पैदा कर सकते हों या न कर सकते हों। जब तक हिन्दी-समाचार-पत्रों में स्थान थोड़ा है, बल्कि स्थान होने पर भी, संक्षेप से सम्पादकीय विचार लिखने का दस्तूर जारी होना चाहिए। हमें याद रखना चाहिए कि कुछ सर्वमान्य तथा विशेष व्यक्तियों को छोड़कर दुनिया किसी के विचार जानने के लिए लालायित तथा व्याकुल नहीं—विशेषतः जब कि पाठक किसी अखबार के सम्बन्ध में पहले ही से जानते हैं कि वह किसी दल-विशेष से सम्बन्धित होने के कारण किस प्रकार के विचार प्रकट करेगा। प्रत्येक पत्र के अपने विशेष, निश्चित तथा श्रेणीगत विचार हैं। मोटा क़ायदा तो यह मालूम होता है कि अखबार साधारणतः बहुमत के साथ चलते हैं। और यह बात सब जानते हैं। इसलिए पाठक सम्पादकीय विचारों से यदि कोई आनन्द उठाते भी हैं तो केवल पढ़नेमात्र का। यह सन्देह की बात है कि पाठकों की एक बड़ी संख्या सम्पादकीय विचार पढ़ती है और फिर इससे भी अधिक सन्देह की बात यह है कि

पाठकों की कोई गिनती योग्य संख्या इन विचारों से वास्तविक लाभ उठाती है। सम्पादकीय विचार पढ़ना क्षणिक आनन्द से अधिक कुछ नहीं। इसलिए मेरे कथन का सारांश यह है कि हिन्दी-दैनिक पत्रों को 'व्यूज़-पेपर' से अधिक 'न्यूज़-पेपर' बनने का यत्न करना चाहिए। हमें कोई नैतिक अधिकार नहीं कि हम अपने विचार प्रकट करने के लिए पाठकों के क़ीमती स्थान पर प्रतिदिन छापा मारकर उनके साथ अन्याय किया करें।

बाज़ार में साख

कितने ही हिन्दी-समाचार पत्रों की कई एक प्रत्यक्ष कारणों से बाजार में कोई साख नहीं। इसने उन्हें बहुत हद तक बदनाम कर लोक-दृष्टि में गिरा रक्खा है। बाज़ार में बिलों का समय पर अदा न होना, नौकरों को कई कई मास वेतन न मिलना और कार्यालय में टुटपुंजिया सामान रखकर दुनिया के सामने अपने दिवालियापन का प्रदर्शन करना भी हिन्दी के दैनिक पत्रों को बहुत घटिया बना रहा है। पत्र-मालिकों को याद रखना चाहिए कि इस ज़माने में बाहर की टीम-टाम का भी किसी पत्र पर गहरा प्रभाव पड़ता है। हिन्दी के दैनिक पत्रों के दफ़्तर प्रायः टूटी-फूटी इमारतों में नज़र आते हैं, जिनमें सामान भी वैसा ही धरा रहता है। फिर थोड़ा थोड़ा वेतन पानेवाले मरियल तथा अप्रसन्न सम्पादकों को ऐसे स्थानों में बैठा देखकर बहुत ही बुरा प्रभाव पड़ता है। हम बड़ी बड़ी विदेशी फ़र्मों को विज्ञापन भेजने के लिए लिखते समय चिट्ठियों में अपनी पोज़ीशन के बारे में कई प्रकार की डींगें हाँकते हैं। यदि कोई मनचली फ़र्म अपने किसी प्रतिनिधि को इन पत्रों के कार्यालयों में आमने-सामने बातचीत के लिए भेज दे तो हमारा उनके सामने क्या रूप बनेगा ? मेरा यह दृढ़ मत है कि हिन्दी के दैनिक पत्रों को यदि और किसी ख़याल से नहीं तो तिजारती दृष्टि से अपने कार्यालयों तथा उनमें काम करनेवालों को अच्छी अथवा कम-से-कम देखने योग्य अवस्था में रखना चाहिए। हिन्दी-पत्रों के सम्पादकीय विभाग के कर्मचारियों के वेतनों का स्टैण्डर्ड बहुत घटिया है। यह कम-से-कम इतना ऊँचा होना चाहिए कि कर्मचारी अपने सामाजिक दर्जा को माध्यम हद तक रखकर जनता पर अपनी रहन-सहन से अच्छा प्रभाव डाल सकें। इस बात का भी किसी अख़बार की स्थिति पर गहरा प्रभाव पड़ता है कि उसके कर्मचारी क्या पाते हैं। मैंने देखा है कि देशी भाषाओं के समाचार-पत्रों में काम करनेवाले कई सज्जन जब किसी अँगरेज़ी-पत्र में काम करने लगे तब उनका कलेवर ही बदल गया और वे देखते-ही-देखते जहाँ ख़ुशहाल हो गये वहाँ समाज में उनका आदर और सत्कार भी बढ़ गया। कर्मचारियों का आदर और मान बढ़ने से अख़बारों को प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष दोनों ही प्रकार से लाभ होता है। क्या हम अपने प्रतिदिन के व्यवहार में नहीं देखते कि एक अँगरेज़ी अख़बार का चुस्त और चालाक प्रतिनिधि किसी बड़े अधिकारी अथवा व्यक्ति के पास आज़ादी से पहुँच जाता है ? उतनी आज़ादी से हमारे किसी हिन्दी-पत्र का ढीला-ढाला प्रतिनिधि नहीं पहुँच सकता। जिन लोगों को पेट भर खाने को ही नहीं मिलता और जो हमेशा क़र्ज़ तले दबे रहते हैं वे भला समाज में अपनी पोज़ीशन क्या रख सकते हैं ? हमारे यहाँ प्रधान सम्पादकों को कई हालतों में अँगरेज़ी अख़बारों के प्रूफ़-रीडरों जितना भी वेतन नहीं मिलता। ऐसी खेदजनक दशा में हम यह आशा कैसे रख सकते हैं कि हिन्दी-पत्रों का मान बढ़ेगा और हम कभी अँगरेज़ी-पत्रों की बराबरी करने के योग्य हो सकेंगे। इसी के साथ हम यह आशा भी नहीं कर सकते कि हमारे पत्रों की बाज़ार में साख बढ़ सकेगी।

पत्रों की भाषा

हिन्दी के दैनिक पत्रों की भाषा भी परिवर्तन चाहती है। मैं जानता हूँ कि कितने ही लोग हिन्दी-पत्रों को इस कारण पढ़ना पसन्द नहीं करते कि उनकी भाषा या तो क्लिष्ट होती है या उनमें ख़बरों का अनुवाद इतना भद्दा होता है कि पढ़नेवाले के पल्ले कुछ नहीं पड़ता। हिन्दी के दैनिकों को बोल-चाल की साधारण भाषा का प्रयोग करना चाहिए और अनुवाद की अवस्था में इस बात का विशेष यत्न होना चाहिए कि बनावटी तथा उलझा हुआ उल्था न देकर पाठकों को स्वाभाविक तथा सुलझी हुई भाषा दी जाय। हिन्दी-पत्रों में ख़बरें पढ़ते समय पाठकों पर साधारणतः यह असर नहीं पड़ना चाहिए कि वे अँगरेज़ी से खींची गई कोई चीज़ पढ़ रहे

हैं। हमारे दैनिकों की भाषा सुगम, सरल तथा यथा-सम्भव स्वाभाविक होनी चाहिए।

एक उपाय

मोटे तौर पर यह है मेरा अध्ययन उन कारणों के विषय में जो हिन्दी के दैनिक पत्रों का भविष्य उज्ज्वल होने नहीं दे रहे हैं और जिन्होंने उन्हें घटिया बना रक्खा है। अब मैं बहुत संक्षेप में यह बताना चाहता हूँ कि वर्तमान दुर्दशा में उनकी हालत किस प्रकार बेहतर बनाई जा सकती है। प्रश्न के इस पहलू पर सोचने में मैंने काफ़ी समय व्यतीत किया है और बहुत विचार के बाद मैं अब तक एक ही उपाय सोच सका हूँ। मेरी तजवीज़ है कि एक केन्द्रीय संस्था के अधीन बड़े विशाल पैमाने पर प्रत्येक प्रान्त में एक एक अप-टु-डेट हिन्दी-दैनिक पत्र जारी किया जाय। इस केन्द्रीय संस्था का प्रबन्ध बहुत ईमानदार तथा सच्चे हिन्दी-हितैषियों के हाथों में दिया जाय, जो कम से कम ख़र्चकर अधिक से अधिक उपयोगिता की अवस्था पैदा कर सकें। प्रत्येक प्रान्त में जारी होनेवाला हिन्दी का यह दैनिक पत्र इतना मज़बूत और साधन-सम्पन्न हो कि वैयक्तिक मिलकियत में चल रहे अन्य डावाँडोल पत्र या तो समझौते से मुख्य पत्र में विलीन हो जायँ या उनकी मौत हो जाय। इस प्रकार हिन्दी के दैनिक पत्रों की दुनिया में एक नवीन युग का प्रारम्भ हो और मैदान आदर्शहीन तथा दुर्बल अख़बारों से एकदम साफ़ हो जाय। इस अत्यावश्यक तथा वाञ्छनीय सफ़ाई के बाद हिन्दी-प्रेमियों के संयुक्त उद्योग से जो नई सृष्टि होगी वह दीर्घ आयु प्राप्त करने के योग्य होगी और इस दृष्टि के साथ दूसरों के सामने अपने आपको घटिया समझकर हम किसी प्रकार लज्जा का भी अनुभव न करेंगे।

मैंने विचारों की कल्पना से यह केवल एक ढाँचा ही पेश किया है। अधिक विचार से हमारे सामने कितने ही नये पथ और मार्ग खुल सकेंगे।

अज्ञात

लेखिका, श्रीमती सुमित्रा कुमारी सिनहा

ले किसकी सुधि की साँसें जी फिर से उठी समीरण?
फिर कलियों में मुस्काई यह किसकी पलकें उन्मन?

यह भ्रमर-भीर मँडराई किसकी अलकावलियाँ बन?
वल्लरियों की बाँहों में यह किसका फूलों-सा तन?

किंशुक के वन में मचला किसका सोने का यौवन?
किसके पद की लाली ले हँस पड़ा गुलाबों का मन।

नीले कमलों की आँखों में किसके मन का बन्धन?
अग-जग ज्योतिर्मय करने आये किसके दर्शन-क्षण?

किस स्वर का भार लिये फिर कूकी रसाल पर कोयल?
फूटा-मंजरियों में फिर-किन रोमों का मधु-परिमल?

यह किसकी मिलन-घड़ी को फिर गूँज उठी शहनाई?
किन चिन्हों पर लुटने को तृण तृण हरियाली छाई?

पा परस-पवन के झोंके उन्माद-हिंडोले डोले!
सोये सपनों की किरणों के तार तार फिर बोले?

फिर किसका दीप सजाकर शशि राह दिखाने आया?
तृष्णा को कौन पिपासा ने जी भर फिर नहलाया!

एकांकी नाटक

माता

लेखक, श्रीयुत प्रेमनारायण टण्डन

न—दुर्ग से एक मील की दूरी पर एक छोटा-सा मकान। पगडंडी उसी के पास से होकर जाती है।

समय—छठी शताब्दी का अन्त। हूणों के आक्रमण हो चुके हैं। विजयी हूण विद्रोहियों के नेताओं की हत्या करने में पाशविक क्रूरता दिखा रहे हैं।

मकान में—बाहर का कमरा बन्द है। उसी में सरला बेचैनी से घूम रही है। कभी वह दरवाज़े की दरार से बाहर की ओर देखती है, कभी एक तख़्त पर उदास बैठी हुई स्त्री की ओर देखती है।

मकान का कमरा घरवालों की दरिद्रता का परिचय देता है। सजाने का सामान तो दूर, बैठने के तख़्त पर भी बिछाने को कुछ नहीं है। सड़क की तरफ़ इसमें एक दरवाजा और दो खिड़कियाँ हैं। बाईं तरफ़ एक छोटी-सी खिड़की और सामने एक दरवाजा घर में जाने के लिए है।

सरला युवती है, बड़ी सुन्दर, पर दरिद्रता की सताई हुई। बड़ी बेचैनी से वह बाईं दीवार की खिड़की से बाहर की ओर छिपकर सतर्कता से देखती और फिर टहलने लगती है।]

सरला—कैसी भयंकर रात है बाहर!

स्त्री—क्या अब भी पानी पड़ रहा है?

सरला—हाँ, बड़े ज़ोर से। और अन्धकार तो इतना घना है कि आगे कुछ दिखाई ही नहीं देता।

स्त्री—(ठंडी साँस लेकर) यह तो अच्छा है अपने लिए।

[सरला फिर अनमनी होकर इधर-उधर टहलती है। अन्त में, व्याकुल होकर रुक जाती है और स्त्री की ओर देखने लगती है।]

सरला—(शीघ्रता से) क्या मैं बत्ती जलाकर खिड़की में रख दूँ?

स्त्री—अभी से क्यों? अभी तो कोई खटका हुआ नहीं मालूम पड़ता। (कुछ उत्सुकता और आवेश में आकर) क्या कोई सङ्केत तुझे मिला है?

सरला—(निषेध-सूचक सिर हिलाती हुई) नहीं, परन्तु खिड़की का प्रकाश उन्हें बतला देगा कि यहाँ सब ठीक है।

स्त्री—(कुछ सोचती हुई) नहीं, नहीं। प्रकाश हमें उसी समय करना चाहिए जब संकेत मिल जाय; पहले नहीं।

सरला—परन्तु ऐसी भयंकर रात में जब मूसलधार पानी पड़ रहा हो, घंटों कोई संकेत किया करे, तो क्या सुनाई भी देगा?

स्त्री—(बड़े स्नेह से सरला की ओर देखती हुई) नहीं बेटी। इतनी उतावली मत बन। हमें वही करना है जो वह कह गया है। अँगीठी में कुछ कोयला डाल दे और यहाँ मेरे पास आकर बैठ।

सरला—(अधिक व्यग्र होकर) नहीं, मैं नहीं बैठूँगी। (आवेश में) मेरे अन्दर जैसे कोई मुझे जता रहा है कि आज, आज रात को हम पर जैसे वज्र गिरेगा। आह! यह सनसन बहती हुई हवा, जान पड़ता है, घर के चारों ओर सिसकियाँ लेती फिर रही है। मुझे लग रहा है जैसे कोई निरीह प्राणी मेरे द्वार पर आया हो और मैं उसे शरण में लेने से इनकार कर रही हूँ।

स्त्री—(स्नेह से झिड़कती हुई) यह क्या बक रही है? जो मैं कहती हूँ वह कर। पहले आग में कोयला डाल दे थोड़ा-सा।

सरला—(अँगीठी की ओर बढ़ती हुई) जब से मैं... (कुछ सुनकर) यह क्या हुआ?

(दोनों साँस रोककर क्षण भर सुनती हैं और एक-दूसरे की ओर देखती हैं।)

स्त्री—कुछ नहीं; हवा थी। (धीरे से) जो बाहर हैं उनके लिए कितनी दुःखद होगी यह रात!

(सरला चुपचाप अँगीठी में कोयला डालती है, कोई उत्तर नहीं देती।)

स्त्री—(कुछ याद करके) क्या तूने दिन में इधर से आदमियों को जाते देखा था आज?

सरला—सवेरे तो कुछ लोग इधर से गये थे, पर नौ बजे के बाद फिर कोई नहीं गया। हाँ, चार बजे एक घुड़सवार इधर से घोड़ा दौड़ाता हुआ गया था।

स्त्री—और कोई नहीं?

सरला—(सिर हिलाकर 'नहीं' का संकेत करती हुई) नहीं, भयानक श्मशान-सा सुनसान इधर रहा है। (उत्सुकता से स्त्री की ओर देखती हुई) क्या तुम समझती हो, वे आयेंगे अवश्य?

स्त्री—यह मैं कैसे कह सकती हूँ? मैं तो केवल इतना ही जानती हूँ कि पाँच दिन हुए, जब वह यहाँ भोजन करने और उन लोगों को जो बाहर छिपे हुए हैं, लेने के लिए आया था। तब से पाँच दिन और पाँच रातें बीत गईं, मुझे कोई पता नहीं मिला। केवल अनुमान से कहा जा सकता है कि आज रात को वह अवश्य आने का प्रयत्न करेगा। परन्तु आज दिन भर इधर से किसी का न आना...समझ नहीं पड़ता... कुछ तो पता लगना चाहिए था।

(सहसा एक आवाज़ होती है। दोनों कान लगाकर सुनने लगती हैं।)

स्त्री—(बड़ी प्रसन्नता से) बेटी, शीघ्र ही प्रकाश का प्रबन्ध करो।

सरला—(शंका करती हुई) परन्तु यह शब्द तो घर के पीछे की तरफ़ हुआ है। इधर से तो....

स्त्री—(उसे रोककर) जो मैं कहती हूँ सो कर। सम्भव है, दूसरी ओर शत्रुओं का भय हो।

(बत्ती जलाकर खिड़की पर रख दी जाती है। सरला शीघ्रता से दरवाज़े के पास जाकर खड़ी हो जाती है और उसे खोलने लगती है।)

स्त्री—(दरवाज़ा खोलने से रोककर) अभी नहीं, अभी नहीं। क्या इस बत्ती को बिजली की तरह चमकती हुई छोड़कर तू दरवाज़ा खोल देना चाहती है, जिससे एक मील पर खड़ा हुआ मनुष्य भी हमें देख ले। कौन जानता है, शत्रु घात में लगे हों? बत्ती बुझा दे पहले और आग भी ढँक दे।

[सरला शीघ्रता से बत्ती बुझाती है, आग ढँकती है। कमरे में अंधकार-सा हो जाता है। तब सरला धीरे से दरवाज़ा खोलती है। एक युवक अन्दर आता है। दरवाज़ा फिर बन्द कर दिया जाता है। सरला युवक से सटकर खड़ी हो जाती है।]

सरला—सतीश! मेरे प्यारे तुम भीगे हुए हो? सर्दी खा रहे हो?

सतीश—पुल पर पहरा था; नदी तैर कर आया हूँ।

[स्त्री ने इतने समय में बत्ती जला दी और आग भी खोल दी।]

स्त्री—पुल! पहरा क्या?

सतीश—हाँ, ज़बरदस्त पहरा। और....

स्त्री—तब तुम्हारे साथी कहाँ छिपे हैं?

सतीश—वे सब पहाड़ी के उस पार बाईं ओर के जंगल...

स्त्री—(जैसे चेतकर सरला की ओर इशारा करके उसकी बात काटती हुई) हाँ, तो.....

सतीश—(उसकी शंका समझकर) माँ! तुम...

स्त्री—[फिर बात काटकर] हाँ, बेटी सरला, भोजन इसके और इसके साथियों के लिए शीघ्र ले आ।

[सरला आँगनवाले दरवाज़े से होकर भीतर चली जाती है।]

सतीश—माता जी! मुझे तो तुम्हारी बातों पर आश्चर्य होता है! तुम सरला पर विश्वास नहीं करतीं? हमारी बातें वह कभी किसी से नहीं कह सकती, नहीं कह सकती।

स्त्री—अभी वह लड़की है, उसके धैर्य की अभी परीक्षा नहीं हुई है। कौन जाने, उससे क्या पूछ लिया जाय?

सतीश—परन्तु डरने की तो कोई बात नहीं थी, क्योंकि मैं तुम्हें बता रहा था कि मैंने अपने साथियों को कहाँ छोड़ा है। वे कहाँ मिलेंगे, यह थोड़े ही बताता!

स्त्री—वे कहाँ हैं और तुझे कहाँ मिलेंगे?

[सतीश धीरे धीरे समझा देता है। स्त्री कुछ चिन्तित हो जाती है]

स्त्री—ये बातें सरला को बताने की नहीं हैं। उसे मत बताना।

[सतीश आग के पास बैठकर तापने लगता है। उसकी माँ भी उसी के पास बैठ जाती है।]

सतीश—(एक साँस लेकर) ऐसी भयानक रात में यदि तापने के लिए आग हो और शान्तिपूर्वक रहने के लिए एक मकान तो कितना सुख मिले!

स्त्री—क्या तू रात भर रुक नहीं सकता ?

सतीश—(फिर सांस लेकर) सवेरा होने से पहले ही मैं यहाँ से मीलों दूर पहुँच जाऊँगा ?

[सरला आती है]

सरला—इतनी दूर तुम आये और (आश्चर्य से) किसी ने देखा नहीं ?

सतीश—कौन कह सकता है किसी ने देखा या नहीं; चारों तरफ़ तो शत्रु फैले हुए हैं।

[सरला तख्त पर भोजन सजाती है। बड़े प्रेम से वह सतीश की ओर देखती है और माता की आँख बचाकर सतीश उसकी ओर। बूढ़ी मा जैसे किसी चिन्ता में है। सहसा ज़ोर से कोई दरवाज़ा पीटता है और कहता है—खोलो, खोलो]

माता—(चौंककर) बेटा! उस कोने में घास पड़ी है। छिप जा उसी के नीचे। जल्दी से मेरे बेटे!

(खटखटाना बढ़ जाता है। कोई ज़ोर से कहता है—खोलो। फ़ौरन सतीश की माता उसकी सब चीजों को छिपा देती है। सतीश छिप जाता है। माता दरवाज़े के पास जाती है।)

माता—(ज़ोर से) कौन है? क्या चाहते हो ?

आवाज़—दरवाज़ा खोलो।

[माता दरवाज़ा खोलती है। तीन-चार सशस्त्र व्यक्ति घुस आते हैं। सबसे आगे विद्रोही सेनापति है।]

एक व्यक्ति—(चारों ओर देखकर) अरे, चिड़िया उड़ गई!

दूसरा—(उपेक्षा की हँसी हँसता हुआ) नहीं भाई! (भोजन की ओर इशारा करके) जान पड़ता है, हम लोगों ने उनके भोजन में बाधा डाली है। यहीं कहीं होंगे महाशय! ढूँढ़ लो जल्दी से।

माता—(दृढ़ स्वर में) इस मकान में मैं ही अकेली रहती हूँ और मैं ही भोजन करने जा रही थी। आप चाहते क्या हैं ?

[सेनापति केवल "हूँ" कर देता है। सिपाही इसी समय सरला को पकड़ लाते हैं। उसके हाथ में भोजन का पात्र है।]

माता—देख लीजिए। यह मेरे भाई की लड़की है और मेरे लिए भोजन ला रही थी।

सेनापति—(उपेक्षा से गर्दन हिलाता हुआ) मैं सब देख रहा हूँ।

[सिपाही खोजकर सतीश को पकड़ लाते हैं।]

सेनापति—(स्त्री से) कहिए श्रीमती जी! यह शायद आपकी बहन का लड़का है! (ज़ोर से) याद रक्खो, मैंने कच्ची गोलियाँ नहीं खेली हैं और किसी को छोड़ना तो मैं जानता ही नहीं हूँ। और यदि यह मेरे प्रश्नों का ठीक ठीक उत्तर नहीं देगा तो अवश्य मैं इसे फाँसी पर चढ़वा दूँगा।

[सतीश ज़मीन पर बैठाया जाता है। दो सिपाही उसके पास खड़े होते हैं। एक सिपाही दरवाज़े पर पहरा देता है। विद्रोही सेनापति तख्त पर बैठ जाता है। तख्त के एक कोने पर उसका कर्मचारी बैठता है।]

सरदार—मुझे पता लगा है कि मेरे विरोधी जहाँ छिपे हैं उस स्थान का पता तुम्हें है। ठीक है न?

[सतीश कोई उत्तर नहीं देता।]

सरदार—देखो, तुम भी कान खोलकर सुन लो और इस घरवाले भी कान खोलकर सुनें कि यदि तुम मेरे प्रश्नों का समुचित उत्तर दे दोगे तो तुम्हें किसी तरह का कष्ट नहीं दिया जायगा।

[सतीश कोई उत्तर नहीं देता]

सरदार—(धीरे से) देखो, सतीश, हमारा काम कर देने से तुम्हारा बड़ा लाभ होगा। सोने-चाँदी से तुम लाद दिये जाओगे, ऊँचा पद भी मिलेगा।

[सतीश फिर चुप रहता है।]

सरदार—(आवेश में ज़ोर से) काट लो इस गधे की जीभ।

सतीश—(शान्त स्वर में) मैं इस सम्बन्ध में कुछ नहीं कह सकता।

सरदार—(शान्त होकर) देखो, दुनिया में इस तरह की नादानी से काम नहीं चलता। केवल इतना बता देने से ही तुम मुक्त कर दिये जाओगे।

(सतीश चुप रहता है।)

सरदार—सतीश! तुम्हें मुझसे डर तो नहीं लग रहा है, जो इस तरह चुप हो ?

सतीश—(घृणा से थूककर) डर!

सरदार—(क्रुद्ध होकर) नीच, तेरी यह मजाल!! ले

जाओ इसे बाहर। दूसरी तरह इससे पेश आना होगा।

[सतीश को सिपाही बाहर ले जाते हैं]

सरदार—मैंने दुनिया देखी है। जीवन का अनुभव भी मुझे अधिक है। परन्तु ऐसा मूर्ख युवक मैंने कभी नहीं देखा। यह तो सरासर मूर्खता है। (सिपाहियों से) लाओ उस बुढ़िया को।

[सतीश की माता सतीश की जगह पर बैठा ली जाती है।]

सरदार—देखिए श्रीमती जी, यदि आप अपने पुत्र का कल्याण चाहती हैं तो मेरी बातों का उत्तर ठीक-ठीक दें। आप मेरा विश्वास रक्खें। आपके पुत्र का जीवन मेरे हाथ में है। मेरा विश्वास रक्खें। प्रश्नों का उत्तर मिल जाने पर मैं आपके पुत्र को छोड़ दूँगा। मेरा विश्वास रक्खें।

माता—मैं किसी का विश्वास नहीं करती।

सरदार—परन्तु मेरा विश्वास तो करना ही होगा। (धीरे से) अपने पुत्र के प्राण बचाने के लिए तुम मेरे प्रश्नों का उत्तर दे दो।

[माता चुप रहती है। सरदार आश्चर्य से उसकी ओर देखता है। फिर घृणा से पुत्र की ओर इशारा करके माता को इस तरह देखता है जैसे उसे धिक्कार रहा हो। अन्त में कुछ सोचता हुआ क्रोध में कहता है।]

सरदार—शायद तुझे यह मालूम हो गया होगा कि तेरी यह मक्कारी पुत्र के लिए कितनी हानिकर होगी। (अपने कर्मचारी से) देखते हो, कैसी मा है यह जो अपने बच्चे के प्राणों की परवा नहीं करती! (हँसता है) कैसी मूर्ख है! जिसको दूध पिलाकर पाला है उसी के प्राण हर रही है!! पागल!!!

[सरदार हँसता है। एक बार अपने कर्मचारी की ओर देखकर सतीश की माता की ओर देखता है, जैसे अपने शब्दों का प्रभाव जमाना चाहता है।]

सरदार—(कोमल स्वर में) याद हैं तुझे वे दिन जब सतीश बच्चा था और अँधेरे से डरकर तेरी ओर हाथ फैलाकर भागता था और तू उसे अपनी छाती में छिपा लेती थी। आज इसी रात को उसके सामने भयंकर अंधकारपूर्ण मार्ग है, परन्तु तुझे उसकी चिन्ता नहीं?

[वह फिर चुप होकर सतीश की माता की ओर देखता है।]

सरदार—(अपने कर्मचारी से) जानते हो जब सतीश गोद का बच्चा था तब इसने उसे सर्दी-गर्मी से बचाने के लिए कितने प्रयत्न किये थे? जब वह पैरों चलने लगा था तब यह कितने यत्न से उसे रखती थी? परन्तु आज यदि यह अपने उसी इकलौते बच्चे को इस प्रकार मृत्यु के मुँह में छोड़े दे रही है तब इसने बचपन में उसकी रक्षा ही क्यों की थी? आज इसे अपने एकमात्र पुत्र की, अपने जीवनाधार पुत्र सतीश की कोई चिन्ता नहीं! उसे स्वयं ही धधकती हुई आग में झोंक रही है!!

सतीश की माता—आह! मेरा बच्चा!! मेरा बच्चा!! मेरे बच्चे ने तुम्हारा क्या बिगाड़ा है?

[सरदार अपने कर्मचारी की ओर देखता है।]

कर्मचारी—उसने हमारे शत्रुओं की सहायता की है और हमारी आज्ञा का उल्लंघन किया है।

सरदार—यही नहीं, सबसे बड़ा उसका अपराध यह है कि वह अपना भला-बुरा भी नहीं देखता। (अपने कर्मचारी) आइए अब.....(सरदार उठने लगता है, और बाहर की ओर इशारा करता है।)

माता—मेरे पुत्र को तुम उँगली से भी नहीं छू सकते, उसको नहीं मार सकते।

कर्मचारी—और जब वह स्वयं ही मरना चाहता हो तो?

माता—(उत्तेजित होकर) देखो, मेरे बच्चे को मत छूना। यदि उसका बाल भी बाँका हुआ तो याद रखना मेरी आह शाप बनकर तुझे भस्म कर देगी। मेरे पुत्र को छूते ही ईश्वर तुझे पुत्र-रहित कर देगा। अभागे! नीच!! याद रख कोई तेरे भी ऊपर है हत्यारे!

सरदार—चुप। (सिपाहियों से) ले जाओ इसे यहाँ से बाहर।

[सिपाही सतीश की माता को ले जाते हैं। कमरे में अब सरदार और उसका कर्मचारी रह जाता है। सरला एक कोने में खड़ी है।]

सरदार—तुम जाओ! सतीश को तलवार के घाट उतार दो।

कर्मचारी—(काँपकर) मैं? नहीं, क्षमा करें।

सरदार—मैं आज्ञा देता हूँ—जाओ, और उसे मार दो।

कर्मचारी—आह! सुना था आपने उसकी माता का शाप! उसकी आह शाप बनकर भस्म कर देगी! देखा था आपने उसका भयंकर रूप?

सरदार—(जैसे भयानक स्वप्न देखकर काँप उठा हो) हाँ, मनुष्य किसी सशस्त्र व्यक्ति का सामना कर सकता है, पर भयानक स्वप्न नहीं देख सकता। ऐसी ही भयानक थी उसकी मूर्ति। पर जाओ। शीघ्र अपना काम करो।

[कर्मचारी धीरे-धीरे जाता है। सरदार कुछ सोचने लगता है।]

सरला—(जैसे सोते से जागकर) हाय! हाय! क्या मार ही डालोगे उसे?

सरदार—(चौंककर) क्या हुआ?

सरला—क्या मार ही डालोगे उसे?

सरदार—(गम्भीर होकर) अभी, देखो खिड़की से दिखाई देगा तुम्हें वह। अभी मरेगा नीच।

सरला—(जल्दी से) मैं तुम्हें बता दूँगी।

सरदार—(आश्चर्य से, अचकचाकर) क्या?

सरला—जो तुम जानना चाहते हो, मैं तुम्हें सब बता दूँगी।

सरदार—मैं तो यह चाहता ही हूँ। बताओ, बताओ जल्दी।

सरला—पहले प्रतिज्ञा करो कि उसे तुम मारोगे नहीं।

सरदार—मैं प्रतिज्ञा करता हूँ; क़सम खाता हूँ।

सरला—तुम उसे मुझे सौंप दोगे?

सरदार—हाँ, तुम्हें सौंप दूँगा।

सरला—सुनो।

[सरदार पास जाता है। सरला को जितना मालूम था वह बता देती है।]

सरला—अब तो उसे छोड़ दोगे?

सरदार—(उसकी बात पर ध्यान न देकर) बड़ा काम किया इसने। जाते कहाँ हैं अब नीच।

सरला—अब तो उसे छोड़ दोगे तुम?

[सरदार कोई उत्तर नहीं देता और चुपचाप मकान के बाहर चला जाता है। "खट" की ज़ोर से आवाज़ होती है। फिर शान्ति हो जाती है। सरला व्याकुल होकर खिड़की से झाँकती है और चीख पड़ती है। इसी समय सतीश की मा कमरे में आती है। सरला दौड़कर उसके गले से लिपट जाती है।]

माता—सुना, बेटी! तेरा सतीश....

[सरला रोने लगती है। सतीश की माता उसको छाती से चिपटा लेती है। अभी आँखों में भी आँसू आ जाते हैं।]

माता—रो ले बेटी मेरी! सतीश तेरा चला गया। परन्तु मैं अपनी आँख में आँसू की एक बूँद नहीं आने दूँगी। कल तक मैं एक साधारण युवक की माता थी, परन्तु इस समय में एक ऐसे शहीद की माता हूँ जिसकी गिनती संसार के महान् पुरुषों में होगी। सारे विश्व में लोग उसकी कीर्ति का गान गाते फिरेंगे। मातायें अपने पुत्रों के सामने उसका आदर्श रक्खेंगी। अमर कहानियों की तरह उसका नाम अमर होगा। (कुछ गम्भीर होकर) महापुरुष जन्म लेते हैं, अपने गौरव का उन्हें ध्यान रहता है, गौरव की तरह वे जीते हैं; मृत्यु उनके भी साथ रहती है। मेरा सतीश तो अभी बालक ही था। उसके सामने सारा संसार खुला था, जीने के लिए सैकड़ों वर्ष थे। हत्यारे कहते थे—एक बार बोल दे; संसार का वैभव तुझे मिल जायगा। परन्तु उसने सब ठुकरा दिया। ऐसा था वह! उन नरक के कीड़ों की धमकियाँ अब भी गूँज रही हैं। सरला, बेटी, संसार में मृत्यु से बढ़कर भी कुछ है। बच्चे ही मृत्यु पर आँसू बहाते हैं।

[सरला वैसे ही रोती रहती है। सतीश की माता उसके सिर पर हाथ फेरती है।]

माता—बेटी, चल, उसे अन्दर ले आवें। बाहर छोड़ना ठीक नहीं।

(पर्दा गिरता है।)

नोट—श्री जे० ए० फ़र्गुसन के एक एकांकी नाटक के आधार पर। भारतीय समाज के अनुकूल बनाने के लिए कथानक और पात्रों के नामों में परिवर्तन किया गया है।

डाक्टर जायसवाल का काव्य

लेखक, पंडित मोहनलाल महतो

स्वर्गीय डाक्टर काशीप्रसाद जायसवाल साहब ने एक काव्य भी लिखा था, जो आज मैं आपके सम्मुख उपस्थित कर रहा हूँ। आप संस्कृत-छन्दों को पसन्द करते थे और आज-कल हमारे कविवरों की टोली जिन अनाम-अरूप छन्दों को काम में लाती है उनकी भरपेट निन्दा करते थे। आपके काव्य का कथानक यों है—एक दिन 'जनता'-सम्पादक श्री रामवृक्ष बेनीपुरी, बिहार के कविश्रेष्ठ श्रीदिनकर, विख्यात पंडित बाबा राहुल जी, स्वयं जायसवाल साहब और इस नोट का लेखक, यह दल परमात्मा के निकट उनसे हुज्जत करने गया। हम लोगों ने देखा कि परमात्मा लम्बी दाढ़ी रखाये, ललाट पर चन्दन खौरे, मिर्जई और पैन्ट पहने शान से डटे हैं और अम्बरी तम्बाकू पी रहे हैं। उनके सामने पतले धागों में बँधे हिटलर, मुसोलिनी, स्टालिन, महात्मा जी आदि खिलौने की तरह लटक रहे हैं। उनके अतिरिक्त संसार के सभी विख्यात पुरुष भी लटक रहे हैं— धागों में बँधे। जब जी चाहता है, एकाध महापुरुष को तोड़-मरोड़ कर परमात्मा बड़े आराम से पान की तरह अपने विशाल मुँह में रख लेते हैं और आँखें बन्द करके चबाने लगते हैं।

हमारा दल यह तमाशा कुछ समय तक देखता रहा। अन्त में दलपति के रूप में जायसवाल साहब ने अपनी बहस आरम्भ की जो कवितावद्ध रूप में नीचे दी जाती है—

॥ अथ अग्निगिर को वेदत्र लिख्यते ॥

दोहा

नर नारायण बीच भई एक दिन बतकहीं।
खरी ऊँच त्यों नीच कड़ी बड़ी बातें कहीं।

॥ परमात्मा उवाच ॥

नर, मैंने क्या क्या किया आँख खोल तू देख।
रचना विश्व विचित्र की और तुम्हारा भेख॥

॥ जायसवाल उवाच ॥

आप बड़े, या नर बड़ा, पापों में अति पाप।
"एक एव निष्पाप हूँ", जी, अपने मुख आप॥

* * *

गुनाह तेरा प्रभु, जो बता, कहूँ
हटे अँधेरा भव-ताप भी मिटे
पड़े सुखों की सब नींद सो रहे
तभी चलाया निज चक्र क्रूर हो।

* * *

प्रहार "क्वेटा" पर जो किया, अरे,
जवाब देते तुम से बने, कहो?
वकील गांधी तब ठाकुरादि जो
खड़े सफाई हित रो पड़े सभी॥

* * *

हुआ अदा तू उस लोन से नहीं
जिसे खिलाया नित हिन्द ने तुझे।
भगा फिरा तू निज धर्मवाक्य से
अवाक्य सारी यह कर्मभू हुई॥

* * *

असह्य तेरा मुख देखना हरे,
स्वकर्म काला वह और भी हुआ।
पड़े रहे क्षीर-समुद्र में सदा
निकम्म से काम यहाँ कहाँ चले॥

* * *

सँभाल लेंगे नर, लोक आप ही
न पाप भागी नर, आप हैं यथा।

* * *

किया महापातक आपने प्रभो,
दिया मुझे जन्म स्वजन्म-भूमि में।
जहाँ हमारी न स्वतन्त्रता रही
न तथ्य या पंथ बता सका खुले॥

* * *

न ब्रह्म ही प्राप्ति रहा रहीम ही
न भूमि भिक्षाटन योग्य ही रही।
विडम्बना "वोट" अछूत-भूत भी
जहाँ भरी वेद विदा हुए वहीं

* * *

धरा तुम्हारी प्रभु, पींजरा बनी
गृहस्थ चारा हित रो जहाँ रहा।
पुकार "अम्बेदकरी" जहाँ पड़ी
वहाँ कहे क्या यह "अग्नि भप्करी"॥

हमारी ओर से जब अग्निगिर नामधारी जायसवाल जी ने परमात्मा को यह खरीखोटी सुनाई तब बेचारे बहुत ही व्यग्र हुए और उसका वर्णन आगे की पंक्तियों में पढ़िए—

निरी करारी यह बात बाण सी
लगी उन्हें साँस भरी तथा कहा:—
"अखेल खेला खल को क्षमा करो
हरो मनुष्यो मम तापना हरो।"

* * *

॥ भगवान् कथित तथ्य गीता लिख्यते ॥

* * *

न साथ देना उनका कभी नरो,
पड़े भरोसे मम आश जो रहे।
लडूँ बड़ा सैनिप और ही सदा
कदापि भूले न कदर्य साथ दूँ॥

* * *

जरा हमारा इतिहास देख लो
भगे जभी क्रिश्चय "सेन्ट-सोफिया"।
किया विजेता महमूद तुर्क को
हलाल निःशंक किये वहाँ कई॥

* * *

सहस्र नारी नर पुत्र, पुत्रिका
छिपे पड़े देवल जान सुस्थ थे।
दिया न मैंने शरणागतत्व भी
दिया किया साथ समर्थ का सदा॥

* * *

दिया न साँगा नृप संग सीकरी
लड़ा किया बाबर-तोप आड़ में।
पुकार शूली पर की सुनी नहीं
न ईसु आँसू तक पोंछने उठा॥

* * *

लड़ें, करें जो निज कर्म साधना,
वही करें, मैं कुछ भी करूँ नहीं।
तटस्थ, निष्कर्म टिका रहूँ सदा
सुनो यही प्रांजल तथ्य गीतिका॥

तथ्य गीता सुन लेने के बाद:—

* * *

माया मिटी, नयन ओट हटी, प्रभू की
वाणी रहस्य गहरी सुन तथ्य गीता

स्वर्गीय डाक्टर काशी प्रसाद जायसवाल

सोरठा—

नर नारायण नीत रोष-ताप-सरवर सुफल।
जाय भारती-भीत कभी न हो वाणी विफल॥

* * *

बिना एक शब्द इधर-उधर किये स्वर्गीय जायसवाल जी का यह काव्य मैंने प्रकाशित करा दिया है। वे छन्द लिख लिख कर मेरे पास भेजते जाते थे और मैं उन्हें जमा करता जाता था। संशोधन का भार मुझपर था, पर जब अचानक जायसवाल जी बीमार पड़कर जीवन्मुक्त हो गये तब मैंने अपनी क़लम के स्पर्श से इस छोटे से काव्य को अछूता रक्खा। संशोधन कर देने से इसकी वह खूबी अब जाती रहेगी जो है। एक महान् पुरातत्त्ववेत्ता और पंडित के विचारों का जैसा उज्ज्वल प्रदर्शन ऊपरवाले छन्दों में हुआ है उसकी रक्षा करते हुए मैंने काट-कूट करना उचित नहीं समझा। जायसवाल जी की और भी कवितायें मेरे पास हैं, जिन्हें मैं 'सरस्वती' के इन्हीं कालमों में प्रकाशित कराने का प्रयत्न करूँगा।

(केवल "सरस्वती" के लिए—लेखक)

खुली हवा में

लेखक, श्रीयुत नरेन्द्र

(१)

खुली हवा है, खिली धूप है,
दुनिया कितनी सुन्दर, रानी!
आओ सारस की जोड़ी से
निकल चलें हम दोनों प्राणी!

उड़े चलें खेतों के ऊपर,
नीचे कोमल नरम खूँद है,
जहाँ शरद के मुक्त-हास मिस
हँसी ओस की बूँद बूँद है!

उड़ें और आगे, देखो वह—
कब से हमको पास बुलाते,
अलग-अलग, फिर एक साथ सब
वन के तरु सो शीश हिलाते!

फैली यों मैली धोती-सी
वन में जो बरसाती नदियाँ,
लगतीं अब मरकत-महलों के
बीच छिकीं चाँदी की गलियाँ!

ज्यों उन्मुक्त हृदय स्वागत में,
लेटे कहीं शान्त निर्मल सर!
मुग्धा के निर्दोष दृगों-से
अपलक बाट देखते दिन भर!

नगर-ग्राम, बन जंगल के भी
आगे दृष्टि जहाँ तक जाती,
देखोगी वह ठाँव जहाँ पर
सृष्टि गर्व से शीश उठाती!

सटे खड़े हिम नीले नभ के
इन्द्रनील घन के घर पर्वत,
हों हाथों में चन्द्रहार ज्यों
रजत स्फार-से निर्झर निःसृत!

चलो, उड़ चलें दूर देश हम,
वन-पर्वत करते अगवानी!
खुली हवा है, खिली धूप है
दुनिया कितनी सुन्दर रानी!

(२)

कर अस्ताचल पार, दीखता
निद्रित नग्न प्रशान्त हिम-शिखर,
रवि-शशि शोभित मुकुट बाँधती
दिवा निशा नित नई ज्योति भर!

विजयहार बनकर स्वर्गंगा
लिपटी उससे ललक पुलककर,
उसके आगे दृष्टि न जाती।
चारों ओर अगम नीलाम्बर!

गंगा के सँग लौट पड़ेंगे
तुरत चाँदनी-भरी रात में
पूनों साथ चलेगी भरकर
मोती चाँदी की परात में!

शरत्-पूर्णिमा में देखोगी
भरता और भरे में ईश्वर!—
निमिष निमिष सुन्दरतर होगी
निशि सब सुन्दरता समेट कर!

टूट पड़ें हम पों पूछेंगे
बड़ी बड़ी बूँदों से तारे,
चाँद उतर आवेगा भूपर
देखोगी तुम नदी किनारे!

चल देंगे फिर नई शक्ति भर
बहला मन गंगा के तट पर,
चन्द्रहास की नाव बहा कर
वारि-वीचियों की तलवट पर!

फैला अनायास पंखों को
धीरे धीरे चढ़ अम्बर पर,
बढ़ धीरे धीरे गृह-पथ पर
रात रहे आजायेंगे घर!

आज धूप-सी खिली चाँदनी
दुनिया कितनी सुन्दर, रानी!
निकल चलें हम खुली हवा में
दिवा-निशा से दोनों प्राणी!

प्रेम की एक रोचक कहानी

विश्वास का खेल

लेखक, श्रीयुत पृथ्वीनाथ शर्मा, एम० ए०

क दिन सहसा उसकी दूकान पर एक लारी आकर खड़ी हुई। लारी के दूकान पर ठहरते ही वह एक दूध सी सफ़ेद पतलून और ट्विल की कमीज़ पहने बाहर निकल आया। सदा बिखरे रहनेवाले उसके बाल आज अच्छी तरह कटे-छँटे और कंघी किये हुए थे। उसके चेहरे पर प्रसन्नता के साथ साथ कुछ उत्तेजना भी खेल रही थी। उसके आदेशानुसार मज़दूरों ने किताबें उठा उठाकर लारी में रखनी आरम्भ कर दीं। बाज़ार-वालों के आश्चर्य का ठिकाना न रहा।

"अरे! यह क्या हो रहा है?" दूकानदारों ने उत्सुकता से प्रश्न किया।

"इन्हें भिन्न भिन्न पुस्तकालयों में भेज रहा हूँ।"

"पुस्तकालयों में? क्या दूकान छोड़ रहे हो?"

"हाँ।" उसने जवाब दिया और उनसे मुँह मोड़कर मज़दूरों को आज्ञा देने लगा।

उसे दूकान आरम्भ किये अभी कठिनता से आठ-दस वर्ष ही हुए थे, तो भी उसकी दूकान ख़ूब चल निकली थी। उसे काफ़ी आय थी। यह सब कुछ होते हुए भी वह उसे आज बन्द कर रहा था।

"आप ऐसा कर क्यों रहे हैं?" उनमें से एक-दो ने फिर प्रश्न किया।

पहले तो वह थोड़ा खीझ उठा, फिर ज़रा मुस्कराकर उसने अपने चमकते हुए बड़े बड़े नेत्रों से प्रश्नकर्ताओं का आधे क्षण तक निरीक्षण किया और ज़रा तेज़ी से कहने लगा—"इसलिए कि मेरी अन्तरात्मा की यही आज्ञा है। परन्तु आप लोग यह सब क्यों पूछ रहे हैं? क्या मुझे कभी आपने किसी के मामले में दख़ल देते देखा है?"

बात बिलकुल ठीक थी। उसने सचमुच वहाँ अपना एक अलग संसार बना रक्खा था। वह सदा पुस्तकों और अपने भावों में ही उलझा रहता था।

यह मीठी झिड़की देकर वह खुलकर मुस्कराया। उसके प्रश्नकर्ता लज्जित और निरुत्तर-से हो गये, लेकिन उनमें से एक ज़रा साहस करके कहने लगा।

"परन्तु—"

"परन्तु-वन्तु कुछ नहीं।" वह शान्त पर दृढ़ स्वर में बोला। फिर उनसे मुँह मोड़कर पास पड़ी हुई कुर्सी पर बैठ गया।

मैं भी कुछ देर से खड़ा यह सब कुछ देख रहा था। लोगों के इधर-उधर होते ही मैं आगे बढ़ा। मैं उसका बहुत पुराना ग्राहक था।

"आइए पंडित जी।" उसने प्रेम से मेरा स्वागत करते हुए कहा—"देखा तमाशा आपने।"

"हाँ।" मैंने जवाब दिया—"यह उनकी अनधिकार चेष्टा है।"

"आप तो सब कुछ जानते हैं।" वह कहने लगा—"कोई इनसे पूछे कि किसी के मदान्ध यौवन की एक कहानी को सुनकर ये लोग क्या लेंगे?"

उसके ठीक सामने मेज़ पर एक पुराना-सा चित्र पड़ा था, जिसमें एक चांद-सी सुन्दर स्त्री के हाथ में एक ज्योति-शिखा थी और उस शिखा के चारों ओर शलभ मँडरा रहे थे। उसके नेत्र एकाएक चित्र पर जा अटके। शायद वह चित्र भी उस कहानी का स्मृति-चिह्न हो। उस चित्र की ज्योति-शिखा ने भी शायद कभी उसके हृदय में प्रज्वलित ज्वाला से स्नेह का नाता जोड़ा हो, उसे सहानुभूति प्रदान की हो। वह कई क्षणों तक एक-टक चित्र की ओर देखता रहा। फिर सहसा उधर से मुँह हटाकर वह गम्भीर और निश्चयात्मक स्वर में बोला—"न! मैं उन्हें कभी नहीं बताऊँगा।"

"क्या मैं बता सकता हूँ?"

"आप!" उसने मेरी ओर ग़ौर से देखा और मुस्करा कर बोला—"आप लाख रोकने पर भी रुकने के नहीं। मैं तुम लेखकों को ख़ूब समझता हूँ। इसलिए केवल एक निवेदन है कि आप अपनी कहानी में मेरा नाम न दें।"

"बहुत अच्छा--" मैंने प्रसन्नता से कहा।

(२)

इस कहानी में मैं उसको रूपकिशोर कहूँगा। यह उन दिनों की बात है जब रूपकिशोर के स्वप्न सुनहरे होते थे और उमङ्गें रंगीन। बादलों में अप्सरायें नृत्य करती थीं और पवन में खेलती थी एक अनूठी मादकता। अर्थात् उसने यौवन के झिलमिलाते संसार में अभी ही प्रवेश किया था।

उन दिनों वह कालेज के तीसरे साल में था, लेकिन कालेज की पढ़ाई से पूर्णतया विमुख। सारा दिन किसी बाग के एकान्त कोने में लेटकर कविता पढ़ता और स्वप्न सृष्टियाँ रचता रहता था। एक बूढ़ी दादी के सिवा घर में और कोई न था जो उसे डाँटता-डपटता। मरते समय उसके पिता उसके लिए दो मकान छोड़ गये थे। उनकी आय से उसका गुज़र मजे में चल रहा था। इस कारण कमाने की चिन्ता से भी मुक्त था। इसलिए उसका यह कार्यक्रम निर्विघ्न चलता जा रहा था।

उस दिन सवेरे घूमता हुआ वह नदी के उस पार पहुँच गया। वहाँ एक छोटी-सी वाटिका थी, जिसमें विविध भाँति के फूल खिले हुए थे। उनसे और उन पर के चमकते हुए ओस-कणों से अठखेलियाँ करते एक अद्भुत महक से ओत-प्रोत पवन के झोंके राह चलनेवालों से छेड़छाड़ कर रहे थे। रूप को उन झोंकों ने पूर्णतया बाँध लिया। उसके पग अनायास उस वाटिका की ओर बढ़ते हुए उसे अन्दर ले पहुँचे। छोटी-छोटी लाल-पीली इधर-उधर फुदकती हुई चिड़ियों के तीखे पर मीठे स्वर के सिवा वहाँ पूर्ण शान्ति थी। इधर-उधर लता-कुंजों में अवछिपी दो-चार बेंचें पड़ी थीं। उन्हीं में से एक पर वह बैठ गया। कुछ क्षण तो वह पुष्पों पर थिरकती हुई सूर्य की सुनहरी किरणों के खेल देखता और कल्पना के रंगीन तारों से अपने भविष्य के स्वप्नों को उधेड़ता-बुनता रहा, फिर उसे हलकी हलकी झपकी आने लगी और अर्द्ध-सुषुप्ति की अवस्था में उसकी आँखें मुँद गईं। उसे इस तरह बैठे कुछ ही देर हुई थी कि वाटिका में बिखरे पड़े सूखे पत्तों में खड़खड़ाहट हुई और किसी की पग ध्वनि से उसने हड़बड़ाकर अपनी आँखें खोल दीं। सामने एक सोलह वर्षीय लड़की खड़ी उसकी ओर देखकर मुस्करा रही थी। वह एक अंगूरी साड़ी पहने थी। रंग चमेली सा गोरा और आस-सा निर्मल, आँखें कुछ भूरी कुछ नीली और सागर-सी गहरी थीं। काली अलकें इधर-उधर बिखर रही थीं और दाँतों में थी बिजली की चमक। रूपकिशोर अवाक् रह गया। वह बेंच से उठकर खड़ा हो गया—"देवी, तुम कौन हो? क्या अभी आकाश से उतर रही हो?" उसके मुँह से अनायास निकल गया।

"आकाश और पाताल का झगड़ा तो पीछे देखा जायगा।" लड़की ज़रा तीव्र स्वर में बोली—"पहले आप यह बतायें कि इस वाटिका में आप किसकी आज्ञा से आये हैं।"

"आज्ञा से?"

"हाँ।"

"तो क्या फुलवारियों में जाने के लिए भी आज्ञा की आवश्यकता होती है?" रूप अब तक बिलकुल सँभल चुका था। वह ज़रा मुस्कराकर बोला—"पर यदि ऐसा है तो मैं लौटा जाता हूँ।"

यह कहकर वह चल पड़ा। लेकिन अभी कठिनता से दो ही गज बढ़ा होगा कि मधुर संगीत-सी ध्वनि उसके कान में पड़ी—"अरे! आप तो सचमुच भाग चले। सुनिए तो।"

"कहिए?" वह जहाँ का तहाँ घूमकर खड़ा हो गया।

"यह तो बतायें जायँ कि आप कौन हैं।"

"मैं!" उसने लड़की के पतले-लम्बे शरीर को सिर से पाँव तक देखा, उसके ओठों पर शरारत से भरी एक मुस्कान खेल उठी—"मैं राह भूला एक पथिक हूँ।" यह कह कर वह द्रुतगति से उस फुलवारी से बाहर हो गया। लड़की चकित-सी उसकी ओर देखती ही रह गई।

वह थोड़ी ही देर में सड़क पर जा पहुँचा और घर की राह ली। चल तो वह दिया, पर उसे ऐसा प्रतीत हो रहा था, जैसे उसके हृदय को कोई चिनगारी छू गई हो। उसके पग बहुत ढीले उठ रहे थे। यहाँ तक कि नदी के पुल पर पहुँचकर उसके पाँवों ने आगे बढ़ने से इनकार कर दिया। वह वहीं खड़ा हो गया और नदी के उमड़ते हुए वेग और उठती हुई तरंगों की ओर देखने लगा।

न मालूम वह कितनी देर वहाँ खड़ा रहा। जब उसने फिर घर का रास्ता पकड़ा तब सूर्य की किरणें सीधा उसके सिर पर आक्रमण कर रही थीं।

(३)

दोपहरी के ढलते तक उस चिनगारी ने उसके हृदय में एक अग्नि-शिखा प्रज्वलित कर दी। बेचैनी के डग भरता हुआ वह घर के अपने कमरे में इधर से उधर घूमने लगा। परन्तु शान्ति कहाँ? इसी उधेड़-बुन में लगभग शाम हो गई। वह फिर घर से बाहर निकल पड़ा। पग सुबह के रौंदे हुए पथ पर चल पड़े।

जिस समय वह उस वाटिका के बाहर तक जा पहुँचा होगा, सूर्य अपनी अन्तिम किरणें समेट चुका था।

"रुक क्यों गये ?" चमेली की चार-पाँच कलियाँ इकट्ठी तोड़कर अपनी फूलों से भरी झोली में डालते हुए वही लड़की ज़रा हँस कर बोली—"आप अभी तक पथ के लिए ही भटक रहे हैं क्या ?"

"पथ के लिए तो नहीं, पर अब कुछ और ढूँढ़ता हुआ इधर आ निकला हूँ।" वाटिका में घुसते हुए उसने ज़रा गम्भीर स्वर में जवाब दिया।

लड़की खिलखिलाकर हँस पड़ी—"मृग कस्तूरी के लिए तो नहीं भटक रहा है?"

'कस्तूरी के लिए तो नहीं, पर किसी मृगनयनी ने उसे पागल अवश्य बना दिया है,' यह उत्तर उसकी जिह्वा पर आकर लौट गया, बाहर आने का साहस न पकड़ सका, इसलिए उसने प्रत्युत्तर में थोड़ा मुस्करा भर दिया, और वहाँ पड़ी हुई एक बेंच पर जाकर बैठ गया।

"ख़ूब वाटिका है आपकी।" कुछ ही देर के अनन्तर वह बोला—"पुष्पों, लता-कुंजों और वृक्षों का इतना अद्भुत सम्मिश्रण मैंने और कहीं नहीं देखा। वाटिका क्या है, कला की अद्वितीय चीज़ है।"

"क्यों न हो? इसका सृजन भी तो एक कलाकार की देख-रेख में हुआ था।" लड़की कहने लगी—"वाटिका के एक एक पौधे को उनकी कलामय कोमल उँगलियों की याद अभी तक न भूली होगी। इनके कानों में उनकी स्नेहमयी मधुरवाणी अभी तक गूँज रही होगी।" यह कहकर वह थोड़ी देर के लिए रुक गई, फिर एक दीर्घ निःश्वास छोड़कर बोली—"परन्तु हम सबको छोड़कर वे एक दिन चल ही तो दीं।"

"वे देवी कौन थीं?"

"मेरी माता!" लड़की का गला भर आया। पर वह शीघ्र ही सँभल गई और ज़रा मुस्कराकर कहती चली गई—"जाते समय यह वाटिका वे मुझे सौंप गई थीं, इसलिए आज-कल मैं ही इसकी देख-भाल करती हूँ।"

वाटिका के एक कोने में लताओं में उलझा हुआ पत्थर का एक छोटा-सा बहुत ही सुन्दर मकान था। उसकी ओर संकेत करके रूपकिशोर ने प्रश्न किया—"आप वहाँ रहती हैं क्या?"

"हाँ।"

"पिता के साथ?"

"नहीं। वे तो माता से भी कुछ पहले स्वर्ग सिधार गये थे। मैं अपने चाचा और चाची के साथ रहती हूँ। सहजू चाचा भी प्रायः इधर ही रहते हैं।"

"सहजू चाचा कौन?"

"वे मेरे चाचा के मित्र हैं।" लड़की ने जवाब दिया।

इतने में किसी ने ज़ोर से पुकारा—"मेनका, किधर है तू?"

"अब आप जायँ।" लड़की ज़रा उत्तेजित स्वर में बोली—"मेरी चाची मुझे बुला रही हैं।"

वह उतावली से उठा। एक बार फिर जी भरकर लड़की की ओर देखा और उड़ता हुआ वाटिका से बाहर हो गया।

कुछ ही दूरी पर रावी नदी चाँद और कहीं कहीं से फूटते हुए तारों की किरणों से अठखेलियाँ करती हुई बहती चली जा रही थी। उसी के किनारे वह रेत पर जाकर बैठ गया। नदी के उस पार मल्लाहों की झोंपड़ियों का क्षीण प्रकाश कहीं कहीं पानी में झिलमिला रहा था। सैर के लिए आये हुए लोगों की दो-चार नावें तीव्रता से लौट रही थीं। वह कुछ क्षणों तक उनकी ओर देखता रहा, फिर उठकर ज़रा बेचैनी से उस बालू पर टहलने लगा।

मेनका! स्वर्गीय अप्सरा! इतना रूप, इतना यौवन! उसके हृदय की धड़क उत्तरोत्तर बढ़ रही थी। उसने अपने आप पर प्रभुत्व पाने का बहुत प्रयत्न किया, पर व्यर्थ। इतना परास्त तो आज तक वह कभी नहीं

ने साफ़ इनकार कर दिया, बोलीं कि सब कष्ट वे स्वयं सह लेंगे, पर अपनी फूलों से भी कोमल बिटिया का नन्हा-सा हृदय कभी न दुखायेंगे।" यह कहकर वह चुप हो गया।

उसके चाचा और चाची में इतनी महत्ता है, यह ऊँचाई है, यह जानकर मेनका का हृदय प्रफुल्लित और द्रवित हो उठा! उफ़! वह उनके साथ कितना अन्याय करती चली आ रही है। वह प्रभावित स्वर में बोली—"मैं स्थिति से बिलकुल अनभिज्ञ थी, इसलिए ज़िद कर रही थी।"

उसके नेत्रों में स्नेह का जल छलक रहा था। वह पूर्णतया जीती जा चुकी थी।

"भला तुम्हीं बताओ," अपनी विजय को निश्चित करने के लिए सहजू ने अन्तिम वार किया—"आज इतना झगड़ा करने पर भी तुमने इस विषय का क्या एक भी शब्द इनके मुख से सुना?"

"झगड़ा करना मेरी भूल थी।" मेनका ने पश्चात्ताप-भरे स्वर में स्वीकार किया। फिर अपनी चाची की ओर जिसने अब तक पता नहीं कहाँ से लाकर अपने नेत्रों में जल का एक स्रोत इकट्ठा कर लिया था, देखकर बोली—"मैं क्षमा चाहती हूँ।"

चाची ने आगे बढ़कर उसे छाती से चिपटा लिया—"मेरी रानी बेटी! जाओ रूप बहुत देर से तुम्हारी प्रतीक्षा में बैठा होगा।"

वह चुपके से उठकर मकान से बाहर हो गई। उसके चाचा ने आगे बढ़कर विजयोन्मत्त सहजू की पीठ ठोंकी।

"यह चतुरता कहाँ से सीखी है तुमने?" बुढ़िया ने प्रशंसात्मक स्वर में कहा। फिर उठकर द्वार की ओट से वाटिका की ओर देखने लगी।

(५)

रूप को मनाने में मेनका को कुछ भी चेष्टा न करनी पड़ी। वह तो जैसे पहले से ही माना हुआ बैठा था। उन रसभरे ओठों से आज्ञा पाकर तो वह अपना जीवन तक अर्पण कर सकता था। यहाँ तो केवल दस-बारह हज़ार रुपये के दो मकानों के ही खोने का डर था। उस स्वर्गीय प्रेम के जादू में उलझे हुए मन के प्रति उन मकानों का मूल्य ही क्या था?

इससे अगले दिन ही काग़ज़ रजिस्ट्री हो गया। शहर के प्रसिद्ध महाजन शामू शाह ने रूपकिशोर की ज़मानत मिलने पर बिना किसी हिचकिचाहट के लाला दामोदरदास—मेनका के चाचा—को बीस हज़ार रुपया क़र्ज़ दे दिया। और फिर वह हुआ जो रूप ने भूल कर भी न सोचा था। एक मास के अनन्तर एक दिन जब वह वहाँ पहुँचा तब वाटिका के चारों ओर लोहे का जँगला लग रहा था। एक अजनबी कान में एक टूटी-फूटी पेंसिल लगाये और हाथ में एक पुरानी-सी पाकेट-बुक लिये मज़दूरों की देख-रेख कर रहा था। उसका एक एक हावभाव प्रदर्शित कर रहा था कि वह किसी साहूकार का मुंशी है। रूप उसी के पास पहुँचा।

"लाला दामोदरदास को यह क्या सूझी है?" वह मुंशी की ओर देख कर बोला।

"यह नये मालिक की आज्ञा से हो रहा है।" मुंशी ने बेपरवाही से जवाब दिया।

"नये मालिक? और दामोदरदास कहाँ गये?"

"इसे बेच गये हैं। उन्हें इसे बेचे हुए आज दो सप्ताह होने को आये हैं।"

"दो सप्ताह?" रूप ने आश्चर्य से कहा—"अरे परसों तो वे यहीं थे।"

"हाँ, हमने कल ही क़ब्ज़ा लिया है।"

"क्या आप जानते हैं, वे कहाँ गये हैं।" रूपकिशोर ने फिर प्रश्न किया।

"नहीं।"

"ज़रा अपने मालिक से तो पूछिएगा। शायद वे जानते हों।"

"वे भी नहीं जानते।" मुंशी ने बात ख़त्म करने के ढंग से जवाब दिया।

रूप वहाँ से लौट पड़ा। वाटिका के अड़ोस-पड़ोस में इधर-उधर पूछ-ताछ की, पर व्यर्थ। कोई भी कुछ नहीं जानता था। वह कई दिनों तक खोज करता रहा, पर कुछ पता न चला। ऐसा प्रतीत होता था, जैसे वे सबके सब अदृश्य पवन में विलीन हो गये हों। आख़िर थककर उसने खोज बन्द कर दी, और कुछ दिन घर में बैठकर ही आहें भरने का निश्चय कर लिया। परन्तु इसका भी उसे अधिक दिन तक अवकाश न मिला।

अभी एक मास ही और गुज़रा था कि उसे अदालत से सम्मन आ पहुँचा। महाजन ने अपने रुपये का दावा कर दिया था। दामोदरदास का कहीं पता न था और चूँकि क़ानून की दृष्टि में ज़मानत देनेवाले का उत्तरदायित्व क़र्ज़ लेनेवाले के बराबर ही होता है, कुछ ही दिनों के अनन्तर रूपकिशोर के विरुद्ध सूद और अदालत का खर्च मिलाकर कोई तेईस हज़ार की डिक्री हो गई। डिक्री होते ही महाजन ने रूपकिशोर के दोनों मकान नीलाम करवा दिये, जिनका मूल्य लगभग तेरह हज़ार उतरा। बाक़ी रुपये के लिए महाजन ने उसे जेल की धमकी दी। बहुत ही अनुनय-विनय करके इस प्रतिज्ञा पर कि वह ज्यों-ज्यों कमाता जायगा, ऋण उतारता चला जायगा रूपकिशोर ने महाजन से पिंड छुड़ाया और एक छोटी-सी किताबों की दूकान खोल कर बैठ गया।

(६)

लगभग दस वर्ष बीत गये, परन्तु मेनका तथा उसके घरवालों का कुछ पता न चला और न रूपकिशोर को अपनी हृदय की देवी मेनका की याद ही भूली। उसे यह पूर्ण विश्वास था कि उन लोगों के ग़ायब होने में मन्द-भाग्य के सिवा किसी का भी दोष नहीं। कभी कभी उसके मन में सन्देह के बीज का आरोपण अवश्य हो जाता, परन्तु उसके अंकुरित होने से पहले ही वह उसको मसल डाला करता था।

क्या मालूम वे सब कहाँ कहाँ मारे मारे फिर रहे हैं? विधि के विधान ने उन बेचारों को कैसी बुरी तरह ग्रसा है। प्रायः प्रतिदिन ऐसे ऐसे विचारों से उसका कोमल हृदय उन सबके प्रति सहानुभूति से लबालब भर उठता था। पिछले दस वर्षों से लगातार उनका लादा हुआ ऋण का बोझ उतारते हुए भी उनके प्रति उसके मन में कठोर भावना न प्रवेश पा सकी। ऋण को तो वह अपना सौभाग्य समझता था, क्योंकि इससे उसकी आदर्शवादिता को एक अलौकिक सन्तोष मिलता था। क्या वह अपनी प्रेमिका के लिए त्याग नहीं कर रहा था? उसका वश चलता तो वह आज भी ऋण के अतिरिक्त अपनी मेनका के चरणों में सोने-चाँदी के टुकड़ों का ढेर लगा देता। उसकी मेनका! उसके लिए अब भी वह क्या नहीं कर सकता था। आज भी उसका हृदय मेनका के लिए उसी तरह तड़प रहा था। इसलिए वह अब भी प्रायः उस वाटिका के निकट जिसके साथ उसकी प्रियतमा की मधुर स्मृतियाँ बँधी थीं, जा बैठा करता था।

जिस स्थल से यह कहानी आरम्भ होती है उससे एक दिन पहले की बात है। दो-चार दिन से सख्त गर्मी पड़ रही थी। उस दिन शाम के समय आकाश में बादल घिर आये और ठंडी हवा बहने लगी। कुछ देर तो रूपकिशोर उन उलझते-उड़ते हुए मेघों को देखता रहा। फिर एकाएक उठकर नदी की ओर चल दिया और कुछ ही देर में बड़े पुल से नदी पार करके वह अपनी चिर-परिचित वाटिका के निकट जा पहुँचा।

कुछ देर खड़ा वह नये खिले हुए और मुर्झाये हुए फूलों को, लोहे के जँगले से उलझी और कहीं कहीं से लू-द्वारा झुलसी हुई लताओं को तथा इधर-उधर वृक्षों पर फुदकते हुए पक्षियों को देखता रहा। फिर उसने नदी की ओर मुँह किया। उससे कुछ ही दूरी पर खजूर के वृक्षों का एक झुण्ड था। उनके मध्य में फटे-पुराने कपड़े पहने एक मनुष्य खड़ा था। उसकी अधपकी दाढ़ी काफ़ी बढ़ी हुई थी। चेहरे पर मलिनता थी। रूप को उसकी सूरत ज़रा परिचित-सी जान पड़ी। उत्सुकता से वह उसकी ओर बढ़ने लगा।

"चले आओ रूपकिशोर।" उस मनुष्य ने मुस्करा-कर उसका स्वागत किया।

"सहजू चाचा तुम!" रूपकिशोर आश्चर्य से बोला—"तुम कहाँ से आ निकले?"

"मैं आज सुबह की गाड़ी से उतरा हूँ। कहीं ठिकाना न था, इसलिए पग इधर ही खींच लाये। तब से यहीं बैठा हूँ।"

"पर तुम इतने दिन रहे कहाँ?"

"बम्बई।"

"क्या मेनका और वे सब लोग भी तुम्हारे साथ थे?" उसने धड़कते हुए दिल से पूछा।

"हाँ।"

"क्या अब भी वहीं हैं?" उसका गला भर आया।

"हाँ।"

"कैसी अवस्था में हैं?"

"जैसी में यहाँ थे। रहने को मकान है, नौकर हैं, खेल हैं, तमाशे हैं।"

"खूब।" रूपकिशोर ने सन्तोष की एक सांस ली और सहानुभूति से ओत-प्रोत स्वर में बोला—"लेकिन आरम्भ में तो बेचारों को बहुत कष्ट झेलना पड़ा होगा। यदि ऋण से इतना दब न जाते तो उन्हें यों मारे मारे तो न फिरना पड़ता।"

"कष्ट! ऋण!" सहजू व्यंग्य से बुझे हुए स्वर में कहने लगा—"होश में तो हो? कैसा ऋण? ऋण की बातें तुम जानो और शामू शाह जाने। अरे पगले! उन्होंने कोई ऋण नहीं लिया था। तुम्हारे जैसे भोले-भाले असामी को शामू शाह के पंजे में फँसाने का दाम छः-सात हज़ार उन्हें अवश्य मिला था।"

रूप अवाक् रह गया। इतनी बेईमानी! इतना धोखा! उसके विश्वास के साथ यह खेल खेला जायगा, उसने स्वप्न में भी न सोचा था। उसका एक एक रोम उन सबके प्रति ग्लानि से तड़प उठा। क्या इस सब कुछ के लिए वह अभी तक कोल्हू के बैल की भाँति पिसता रहा, वह पहाड़-सा ऋण उतारता रहा? क्या इस आदर्श के लिए वह इतना बड़ा त्याग कर रहा था? उसका आदर्श बालू के कणों से भी सूक्ष्म होकर छिन्न-भिन्न हो गया। खेद से भरे हुए स्वर में बोला—"खूब उल्लू बनाया उन्होंने मुझको।"

यह अवस्था देखकर सहजू उसके निकट सरक गया और उसकी पीठ पर हाथ फेरता हुआ बोला—"भैया, इसमें खेद करने की कोई बात नहीं। अनजाने पथ पर चलने में चतुर से चतुर भी ठगे जाते हैं। परन्तु मेरी ओर तो देखो! उन्हीं के खेल का बेजोड़ खिलाड़ी हूँ, फिर भी पग पग पर उनसे परास्त हो चुका हूँ। चला था उनकी थैली में हाथ डालने और लौटा हूँ अपना सर्वस्व समर्पण करके।"

यह कहकर वह थोड़ा रुका। रूप ने कुछ जवाब न दिया। सिर नीचा किये बैठा था, वैसे ही बैठा रहा।

"और यदि वह लड़की" सहजू फिर कहने लगा—"छिपाकर मुझे कुछ रुपये न दे देती तो शायद मैं आज बम्बई में भीख माँगता होता।"

रूप का सिर तेज़ी से ऊपर को उठा—"लड़की कौन मेनका?"

"हाँ।"

"क्या वह उनके षड्यन्त्रों में शामिल नहीं?" उसने ज़रा उत्सुकता से पूछा।

"बिलकुल नहीं।"

"सहजू चाचा!" रूप आधे क्षण के लिए रुका। परन्तु फिर उसने साहस करके धड़कते दिल से पूछ ही तो लिया—"क्या मेनका को कभी मेरी याद भी आई?"

"भैया, क्षमा करना! अपने झगड़े में मैं तुम्हारी बात बिलकुल भूल रहा था।" सहजू अपराधियों के-से स्वर में बोला—"मेनका को तो तुम्हारी याद एक क्षण के लिए भी नहीं भूली। वह तो अभी तक तुम्हारे वियोग में आँसू बहा रही है।"

"सच कहते हो?" रूप का चेहरा आनन्द से खिल उठा। हृदय और भी ज़ोर से धड़कने लगा।

"बिलकुल सच। उसके चाची-चाचा ने तुम्हारे विरुद्ध कई कल्पित कथायें गढ़कर उसे सुनाईं, परन्तु तुम्हारे प्रति उसके भावों के दुर्ग में ज़रा-सा छिद्र भी करने में सफल नहीं हो सके। दामोदरदास और उसकी पत्नी के द्वारा प्रेरित अनेक नवयुवक अपना रूप, यौवन और सर्वस्व उसके चरणों में अर्पित करने के लिए आगे बढ़े, परन्तु उसने सबको ठुकरा दिया। अपने हृदय को तुम्हारे लिए सँभाले अभी तक बैठी है।"

सहजू का एक एक शब्द रूप को अमृत से ओत-प्रोत प्रतीत हो रहा था, उसे एक अनूठे मद से उन्मत्त कर रहा था। उसकी मेनका अभी तक उसकी है, यह जानकर वह आनन्दातिरेक से बच्चों की तरह उछल पड़ा और आग्रह करके सहजू से बोला—"चाचा, मुझे वहाँ ले चलो। जल्दी ले चलो। क्या चल सकोगे?"

"क्यों नहीं?"

"कब?"

"जब तुम चाहो!"

"तो कल ही चलो।" रूपकिशोर व्यग्रता से बोला—"अपनी दुकान का सामान मैं कल तक इधर-उधर कर दूँगा, क्योंकि लाहौर तो लौटकर मैं आऊँगा नहीं।"

"बहुत अच्छा।"

इससे अगले दिन ही सहजू को साथ लेकर रूप अपनी वियोगिनी मेनका से मिलने के लिए चल दिया।

लेखक

परियों के देश में

लेखक,
श्रीयुत भक्त मोहन

किलमर्ग की पहाड़ी पर हमारी पार्टी स्केटिंग कर रही है (Photo by B. M.)

केसर, कामिनी और शिकारों का काश्मीर आज तक न जाने कितने परदेशियों को आनन्द-विभोर कर चुका है। न जाने कितना इसपर लिखा गया होगा फिर भी यह ब्रह्मा की अज्ञात सृष्टि ही बना हुआ है। जो यहाँ एक बार हो आता है वह सहस्रमुख होकर इसकी स्तुति करके भी सन्तुष्ट नहीं होता। कोई इसे 'ज़मीन का फ़िरदौस' कहता है तो कोई 'यहि अमरन की ओक यहीं कहुँ बसत पुरन्दर' कहकर इसे इन्द्रपुरी बतलाता है। सारे संसार के मनचले खिच-खिच कर हज़ारों की संख्या में प्रतिवर्ष यहाँ आया करते हैं। मैं भी इस बार उन्हीं हज़ारों में से एक था। गत अप्रैल और मई के महीने मैंने इसी स्वर्ग में व्यतीत किये थे। उनकी स्मृति जीवन भर को मेरे हृदय-पटल पर अंकित हो गई है।

सबसे पहले मैं जाकर श्रीनगर में ठहरा; समुद्रतल से ७००० फुट ऊँचे मनोरम जलवायु-वाले इस स्थान ने जो चारों ओर से हिमावृत चोटियोंवाली पर्वत-श्रेणी से आवेष्टित है, मेरे हृदय के परीलोक की कल्पना को साकार रूप दे दिया। झेलम नदी इस नगर के बीच से निकल गई है, जिसके किनारे पर चनार के घने वृक्ष पंक्तिबद्ध खड़े हैं। यहाँ हवाखोरी के लिए लोग जाया करते हैं। यह भाग नगर की सुन्दरता में चार चाँद जोड़ देता है। झेलम के दोनों तटों को मिलाने के लिए सात पुल बने हुए हैं। इन पुलों पर बाज़ार बने हुए हैं। नदी के किनारे पर छोटी-छोटी सुसज्जित नौकायें खड़ी रहती हैं, जिन पर मख़मली कामदार उछलनेवाली गद्दियाँ लगी रहती हैं। 'डल' नाम की प्रसिद्ध झील इसी शहर की शोभा बढ़ाती है। इसके स्वच्छ जल में तैरते हुए कमल नेत्रों को अपार आनन्द देते हैं। डोंगियों पर
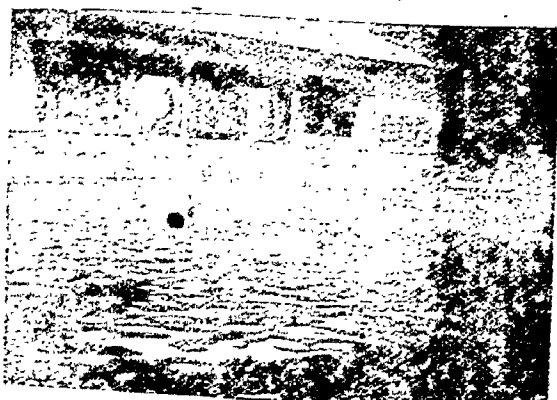
शालीमार बाग़ का प्रवेशद्वार (Photo by B. Mohan)

बैठकर इस झील में सूर्यास्त का दृश्य देखने योग्य होता है।

जम्मू होकर काश्मीर जाने में बीच में 'वेरीनाग' नामक एक प्रसिद्ध बाग़ मिलता है। इस बाग़ में विविध-प्रकार के गुलाबों की अनोखी छटा है। जब आकाश पर बादल छाये हों तब इस बाग़ में खड़े होकर आप इसका दृश्य देखिए। पर्वतों पर उगे हुए पाइन के वृक्ष और आकाश के मेघ आपको एक ही लगेंगे। यहाँ हमने झेलम का थोड़ा सा जल पीने के लिए हाथ बढ़ाया तब ज्ञात हुआ कि वह बर्फ़ से भी ज्यादा ठंडा है।

श्रीनगर से १०-१२ मील की दूरी पर कई सुन्दर- सुन्दर बाग़ हैं। निशात बाग़, शाही चश्मा, शालीमार बाग़ अपने लोकोत्कर्ष के लिए मुग़ल-काल से प्रख्यात हैं। रविवार की छुट्टियों में इसकी मुलायम मखमली घास पर छुट्टी का उपभोग करनेवाले सैलानियों का जमाव देखने योग्य होता है।

शालीमार बाग़ के पास ही एक सुन्दर झरना भी दिखाई देता है, जिसके किनारे पर पाइन के सुन्दर वृक्ष खड़े हुए हैं। झरने के दोनों किनारों पर फूलों की क्यारियाँ भी बनाई गई हैं। यहीं हरवान है, जो श्रीनगर का वाटरवर्क्स कहा जाता है। यहाँ एक बड़ा जल-संग्रहालय है। इसी स्थान पर पाँच फूल बाग़ भी हैं।

निशात बाग़ और चश्माशाही बाग़ लगभग एक से ही हैं। निशात बाग़ में फलों के वृक्ष हैं। यहाँ भी लोग हवा सेवन करने के लिए आते हैं, पर यहाँ की ज़मीन गीली रहती है, अतः लोग यहाँ अधिक देर नहीं ठहरते।

श्रीनगर और गुलमर्ग में २७ मील का अन्तर है। यह अन्तर पैदल चलकर भी तय किया जाता है और टट्टुओं पर भी। साधारणतया लोग टट्टुओं पर ही चला करते हैं। गुलमर्ग का जलवायु श्रीनगर की अपेक्षा अधिक ठंडा

शालीमार बाग़ और उसके झरनों का एक दृश्य (Photo by B. M.)

निशात बाग़ का एक दृश्य (Photo by B. M.)
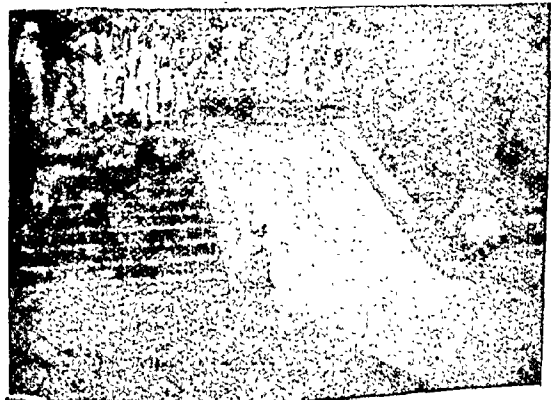
निशात बाग़ का दूसरा दृश्य। इसके झरनों का दृश्य बड़ा मनोहर है (Photo by B. M.)
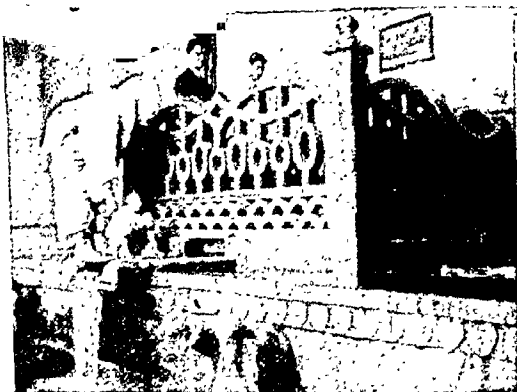
शाही चश्मा का एक दृश्य (Photo by B. M.)

है। यह स्थान पहाड़ियों से घिरा हुआ है। इन पहाड़ियों का दृश्य बड़ा ही सुन्दर है, विशेषतः जब इन पर वर्फ़ रहती है तब इनकी शोभा दर्शनीय हो जाती है। गुलमर्ग से ३½ मील के अन्तर पर एक स्थान खिलमर्ग है। यह बहुत ठंडा है। इसकी सड़क भी बड़ी भयानक है। बारिश के समय इस पर बड़ी बिछलन हो जाती है और कभी-कभी टट्टू बड़ी ऊँचाई से फिसल पड़ा करते हैं।

जब हम लोग यहाँ पहले पहुँचे तब सब स्थान हिमाच्छादित थे। कहीं कहीं पर, जहाँ वर्फ़ नहीं थी, चरवाहे अपनी भेड़ों को लिए हुए घूम रहे थे। यहाँ हमने स्केटिंग के लिए स्लेज मोल लिये। मुझे वर्फ़ पर चलना और स्केटिंग करना बहुत रुचिकर है। यद्यपि स्केटिंग करते हुए स्लेज पर क़ाबू रखना बड़ा कठिन होता है, पर इसमें आनन्द सचमुच अनोखा आता है।

पहलगाँव काश्मीर में सबसे अधिक स्वास्थ्यप्रद स्थान है। इसका चित्रोपम सौन्दर्य देखते ही बनता है। यह श्रीनगर से ५० मील दूर है। जो लोग बाहर से स्वास्थ्य सुधारने के लिए काश्मीर आते हैं वे अपनी छुट्टियों का अधिकांश यहीं व्यतीत करते हैं।

अमरनाथ जी की गुफा पहलगाँव से २० मील की दूरी पर है। इस गुफा का मार्ग गर्मियों में बड़ा संकटापन्न है, विशेषतः उस समय पर जब कि वर्फ़ जमी हो। यहाँ पहुँचने में पूरे ४ दिन लग जाते हैं। यह १६,००० फ़ुट की उँचाई पर है। सड़कें भी ख़राब हैं। कहीं पर तो ऐसी दशा है कि घोड़े पर चढ़कर जाने का साहस ही नहीं होता। जब हम वर्फ़ीली चट्टानों पर चलते थे और वे हिलती थीं तब ऐसा लगता था कि शायद अब हम लौट कर घर न पहुँचेंगे।

हम लोग काश्मीर से लौट आये और उसे एक साल होने भी आया पर मस्तिष्क अभी तक वैसा ही ताजा है और काश्मीर की छटा नेत्रों में वैसी ही घूम रही है, मानो उससे हमारा जन्म-जन्मान्तर का अटूट संपर्क रहा हो। काश्मीर ऐसा ही मनोहर और आकर्षक है।

झूला-पुल के दो स्तम्भ (Photo by B. M.)

क्या सभी मुस्लिम पत्र मुस्लिम लीग के साथ हैं ?

लेखक, श्रीयुत प्रोफ़ेसर धर्मदेव शास्त्री

मारे देश की स्थिति आज बड़ी दयनीय-सी हो गई है। ऐसा लगता है कि हिन्दू-मुस्लिम-समस्या हमारी उन्नति के मार्ग में पहाड़ बनकर आ खड़ी हुई है। वस्तुतः हिन्दू-मुस्लिम-समस्या आज इसलिए अपने पूरे बल से आई है क्योंकि अब उसका अन्त आगया है। वस्तुतः देश इतना आगे बढ़ गया है कि अब उसके हित की दृष्टि से प्रगति-विरोधी हितों के सर्वनाश का दिन समीप आ गया है। इसलिए हमारा तो दृढ़ विश्वास है कि कुछ समय तक भूल जाना चाहिए कि हिन्दू-मुस्लिम-समस्या भी कोई चीज़ है, क्योंकि इस समस्या को सदा सबसे आगे लाना और इस प्रकार अपना काम करना ही साम्प्रदायिक मनोवृत्ति की रीढ़ है।

जनता गतानुगतिक होती है। जैसा उससे बार बार कहा जाता है, वैसा ही वह मानने लगती है। आज ऐसा ही एक प्रभाव हम पर यह भी पड़ा हुआ है कि मुस्लिम लीग ही मुसलमानों की प्रतिनिधि संस्था है। कांग्रेसी नेता और गवर्नमेंट दोनों पर यह प्रभाव है कि मुस्लिम लीग का मुसलमानों पर अक्षुण्ण प्रभाव है। आजकल 'प्रेस' का बहुत महत्त्व है। गवर्नमेंट आफ़ इंडिया पर जिस प्रकार पंजाब का मुसलमान छाया हुआ है, इसी प्रकार पंजाब का मुस्लिम प्रेस हिन्दुस्तान पर हावी हो गया है। यह समझा जाता है कि पंजाब के मुसलमान ही मुसलमानों के वास्तविक नेता हैं। और तो और, पंजाब के साम्प्रदायिक मुसलमानों का रोब कांग्रेस पर भी कम [illegible] है।

साम्प्रदायिक मुसलमानों के प्रोपेगण्डा का यह प्रभाव हुआ है कि गवर्नमेंट और कांग्रेस दोनों मानने लगे हैं कि मुसलमान मुस्लिम लीग के साथ हैं। गवर्नमेंट के तो मानने का सवाल ही नहीं उठता, क्योंकि उसी की वरद छाया में यह संस्था पली है। आश्चर्य तो यह है कि कांग्रेस भी ऐसा ही मानने लगी है। इसका एक परिणाम यह हुआ है कि साम्प्रदायिक मुसलमानों का दिमाग़ आसमान पर चढ़ गया है। इसका दूसरा परिणाम यह हुआ है कि राष्ट्रीय मुस्लिम प्रेस अपने को अनाथ की हालत में अनुभव करता है।

हिन्दुस्तान में ऐसे मुस्लिम समाचार-पत्र हैं जो जोखिम मोल लेकर मुस्लिम लीग का विरोध कर रहे हैं। कलकत्ता के एक प्रसिद्ध उर्दू मुस्लिम पत्र 'हिन्द' के निम्न अवतरण को पढ़िए—

"तो क्या हम ग़रीब मुसलमान इसलिए पैदा हुए हैं कि बे मगज़ (निर्बुद्धि) 'सरों' और फूलों की सेज पर सोनेवाले नवाबों की वज़ारत (मन्त्रिपद) के लिए मुसीबत झेलें। अगर कोई हम ग़रीबों के वजूद (सत्ता) का यह मक़सद (उद्देश्य) समझता है तो वह ग़लती पर है—मुतलिक़ (नितान्त) ग़लती पर। हम मुस्लिम लीग के ख़िलाफ़ बग़ावत करेंगे और मुस्लिम लीग के मज़हब से भी। सिर्फ़ मिस्टर जिन्ना मुस्लिम लीग के डिक्टेटर होते तो मुस्लिम लीग ऐसी भयानक ग़लतियाँ न करती। लेकिन वह "सर सिकन्दर" हैं और इनके साथी जिन्होंने मुस्लिम लीग को इस शर्मनाक पोज़ीशन में डाल दिया है। सर सिकन्दर के सामने सिर्फ़ एक ही ख़याल है—"हिन्दुस्तान की दायमी (स्थिर) गुलामी।"

'हिन्द' अपने एक दूसरे लेख में तुर्की के पुनर्निर्माता कमाल अतातुर्क के प्रति श्रद्धाञ्जलि समर्पित करता हुआ उनका मुक़ाबिला मुस्लिम लीग के लीडरों से करते हुए लिखता है—

"कमाल की मौत पर सबसे ज़्यादा आँसू उन लोगों ने बहाये जो कमाल के हर अमल के मुख़ालिफ़ हैं। ये मुस्लिम लीगिये थे। हालाँकि मुस्लिम लीग जो कुछ चाहती है, कमाल उसका दुश्मन था और कमाल ने जो कारहाये-नुमायाँ (शानदार काम) दिखाये, मुस्लिम लीग उनकी

दुश्मन है। कमाल अपने वतन की आज़ादी चाहता था, मुस्लिम लीग न हिन्दुस्तान को अपना वतन समझती है, न हिन्दुस्तान के लिए आज़ादी चाहती है। कमाल जमहूरियत (प्रजातन्त्र) का आशिक़ (प्रेमी) था। मुस्लिम लीग जमहूरियत को सबसे बड़ा कुफ़ बता रही है। कमाल रोमन लिखाई का हामी था, मगर मुस्लिम लीग फ़रसूदा उर्दू लिखाई की हामी है। कमाल औरतों की आज़ादी का क़ायल था, मगर मुस्लिम लीग औरतों को घरों में क़ैद रखने की क़ायल है। कमाल मर्दे मजाहिद (धर्मयुद्ध करनेवाला) था, मगर मुस्लिम लीग अमल सिर्फ़ बसोरना रोना, कोसने देना गालियाँ देना है। कमाल अजनबी इक़्तदार का दुश्मन था मगर मुस्लिम लीग ने तो अपनी ज़िन्दगी ही अजनबी इक़्तदार से वाबस्ता कर रक्खी है। ख़ुदारा कोई बताये कि कमाल और मुस्लिम लीग में कहीं से भी कोई रिश्ता मौजूद है। कमाल के नाम के साथ जिनाह और सिकन्दर का नाम ले लें तो मेरे ख़याल में इतना बड़ा गुनाह होगा कि ताज्जुब नहीं कि आसमान फट पड़े।"

'हिन्द' ने जिस प्रकार मुस्लिम लीग को स्पष्ट शब्दों में डाँटा है, कोई राष्ट्रीय पत्र इससे अधिक क्या लिख सकता है? इतने पर भी यदि यह समझा जाये कि सभी मुस्लिम पत्र मुस्लिम लीग के साथ हैं तो यह कितनी बड़ी ग़ल्ती है। और भी सुनिए इसी 'हिन्द' ने अन्यत्र एक अंक में 'अगर हिन्दोस्तान हमारा वतन नहीं है तो?' शीर्षक से एक अग्रलेख लिखा है, जिसका निम्न अंश विशेष रूप से ध्यान देने योग्य है—

"मुस्लिम लीग की उसूलियत यह है कि वह हिन्दोस्तान को सिरे से मुसलमानों का वतन नहीं समझती। मुस्लिम लीग के ख़िलाफ़ फ़र्माते रहे हैं कि मुसलमान का सिरे से कोई वतन ही नहीं, क्योंकि सारी दुनिया इसका वतन है। अगर "मुस्लिम हैं हम वतन है सारा जहाँ हमारा", यह नारा सही है तो मुसलमानों के लिए हिन्दोस्तान और इंग्लिस्तान बराबर हैं। लेकिन क्या मुसलमान इंग्लिस्तान में भी वही हक़ तलब कर सकते हैं जिनका मुतालबा वे हिन्दोस्तान में कर रहे हैं? नहीं। हालाँकि इंग्लिस्तान भी बक़ौल आपके आपका वतन है, हिन्दोस्तान आपका वतन नहीं है। फिर आप किस मुँह से इस मुल्क में अपने किसी हक़ का दावा करते हैं? मुस्लिम लीग हक़ूक़ का दावा तो करती है, मगर इस एलान के साथ कि 'मुसलमानों का वतन हिन्दोस्तान नहीं है।' इस एलान के साथ मुसलमानों का हिन्दोस्तान में कोई हक़ भी बाक़ी नहीं रहता।"

इधर मिस्टर जिन्ना ने यह स्पष्ट कर दिया है कि हिन्दुस्तान एक राष्ट्र नहीं है, वह तो कई राष्ट्रों का समूह है। इस प्रकार उनकी दृष्टि में हिन्दुस्तान मुसलमानों का वतन नहीं। 'हिन्द' ने इसी का कैसा युक्तियुक्त उत्तर दिया है? इतने पर भी जो लोग यह समझते हैं कि मिस्टर जिन्ना की हर भली-बुरी बात का सभी मुस्लिम पत्र समर्थन करते हैं—उनके लिए यदि यह कहा जाय कि 'पश्यन्नपि न पश्यति' देखते हुए भी नहीं देखते, तो यह अनुचित नहीं होगा। कलकत्ते के एक प्रतिष्ठित मुस्लिम पत्र की मुस्लिम लीग के सम्बन्ध में क्या सम्मति है, यह 'हिन्द' के उपरि उद्धृत अंशों से भली भाँति विदित हो सकता है। अब ज़रा मिस्टर जिन्ना के निवासस्थान बम्बई के एक प्रतिष्ठित मुस्लिम पत्र का भी मुलाहिज़ा कीजिए—

बम्बई के 'हलाल' के सम्पादकीय में मिस्टरअली बहादुर ख़ाँ लिखते हैं—"मुख़्तलिफ़ असेम्बलियों में जंग व आज़ादी के रेज़ूलेशन पर जो तरमीमें मुस्लिम लीग की तरफ़ से पेश की गई, इसमें जम्हूरियत को बाशिन्दगाने हिन्द की फ़ितरत (स्वभाव) और मिज़ाज के यकसर मनाफ़ी (विरोधी) क़रार दे दिया गया था। मगर इस तरमीम में सिर्फ़ कांग्रेसी जम्हूरियत पर ही एतराज़ होता तो और बात थी, लेकिन यह तो सिरे से जम्हूरियत को ही हिन्दोस्तान की आबहवा के नामुवाफ़िक़ क़रार दे दिया गया है। कांग्रेस ने जो मुतालबा पेश किया है इसमें बर्तानिया से तक़ाज़ा किया गया है कि वह हिन्दोस्तान की आज़ादी का इस शर्त के साथ एलान कर दे कि जो दस्तूर हिन्दोस्तानी बनायेंगे अगर उसे नुमायाँ अक़्लियतों की ताईद हासिल हो तो बर्तानिया उसे मंज़ूर कर लेगा। अगर मिस्टर जिन्ना और उनकी मुस्लिम लीग—हिन्दोस्तान की आज़ादी की राह में संगेराह नहीं बनना चाहते तो इस आम मुतालबे में कांग्रेस का साथ दें। ऐसे सुलेमाफ़ और सादा मतालबा

में बर्तानिया के मुक़ाबिला में कांग्रेस का साथ न देना वतन के साथ खुली ग़द्दारी है।"

बम्बई के ही एक दूसरे मुस्लिम पत्र 'इन्क़लाब' के निम्न शब्दों पर ध्यान दीजिए--

"हमें उम्मीद है कि मिस्टर जिन्ना अब इन्तक़ाम (ईर्ष्या) और ग़ुस्सा को दिल से निकाल कर कांग्रेस की 'नाइन्साफ़ियों' पर रवायती ग़म व ग़ुस्सा का इज़हार नहीं करेंगे बल्कि यह समझते हुए कि 'सदियों की बरबादियों नाकामियों और महरूमियों के बाद हिन्दुस्तान की बदबख़्ती को दूर करने का वक्त आ गया है। और कि इसका वाहिद रास्ता हिन्दू-मुस्लिम-एतक़ाद (विश्वास) है, अपनी जिम्मेवारी को महसूस करें।"

ऊपर हमने तीन माने हुए मुस्लिम पत्रों के कुछ अंश उद्धृत किये हैं जिनसे मालूम हो सकता है कि मुस्लिम पत्र मिस्टर जिन्ना और लीग के कितने विरोधी हैं, इसलिए यह समझना कि सारे मुस्लिम पत्र लीग और जिन्ना के साथ हैं, सरासर ग़लत है।

यह ठीक है कि हिन्दू-मुस्लिम एकता के बिना देश स्वतन्त्र नहीं हो सकता, परन्तु एकता के नाम पर उन्हीं साम्प्रदायिक विद्वेष फैलानेवाले व्यक्तियों को महत्त्व देना जिनके कारण यह समस्या सुलभ नहीं रही है, समस्या को उलझाये रखना है।

यदि कांग्रेस जैसी कि अब उसकी स्थिति और नीति है मिस्टर जिन्ना को भूल जाय और वह अपना ऐसा भाव कुछ दिनों तक बनाये रहे तो मुस्लिम जनता में अन्दर ही अन्दर जो विद्रोहाग्नि सुलग रही है वह एकदम प्रकट हो जायगी। मिस्टर जिन्ना की ख्याति और प्रतिष्ठा के कारण स्वयं कांग्रेस के ही नेता बन रहे हैं।

हम तो सम्प्रदायवाद के तथा साम्प्रदायिक संस्थाओं और उनके नेताओं सबके समानरूप से विरोधी हैं, और इनकी उपेक्षा करने के पक्ष में हैं। साम्प्रदायिकता बुरी है, परन्तु साम्प्रदायिकता से डरना भी अच्छा नहीं है।

प्रश्न

लेखिका, श्रीमती सत्यवती शर्मा

क्यों बादल जल बरसाते हैं?

जब सीपी का उर सूना हो,
अवनी का हो संतप्त हृदय।
चातक के स्वर में क्रन्दन हो,
लतिका में कुम्हलाते किसलय।
तब इनके दृग भर आते हैं।
क्यों बादल जल बरसाते हैं?

जब लहरों में कलगान न हो,
सरिता का मिटता हो यौवन।
जब नर्तन को तरसें मयूर,
खग कूजन बिन नीरव कानन।
तब उमड़-घुमड़ घन आते हैं।
क्यों बादल जल बरसाते हैं?

जब जीवन में अवसाद भरे,
सपनों में भी पाऊँ रोदन।
जब श्वासों से ज्वाला निकले,
हो प्राणों में भय की सिहरन।
वे ही आँसू बन आते हैं।
क्यों बादल जल बरसाते हैं?

मेरी तो पागल करुणा भी,
अज्ञात दिशा में लीन हुई।
उर मरुथल से भी सूखा है,
जीवन-सरिता गति हीन हुई।
अब क्यों अस्तित्व मिटाते हैं।
क्यों बादल जल बरसाते हैं?

लेखक, श्रीयुत सेठ गोविन्ददास एम० एल० ए०

(१)
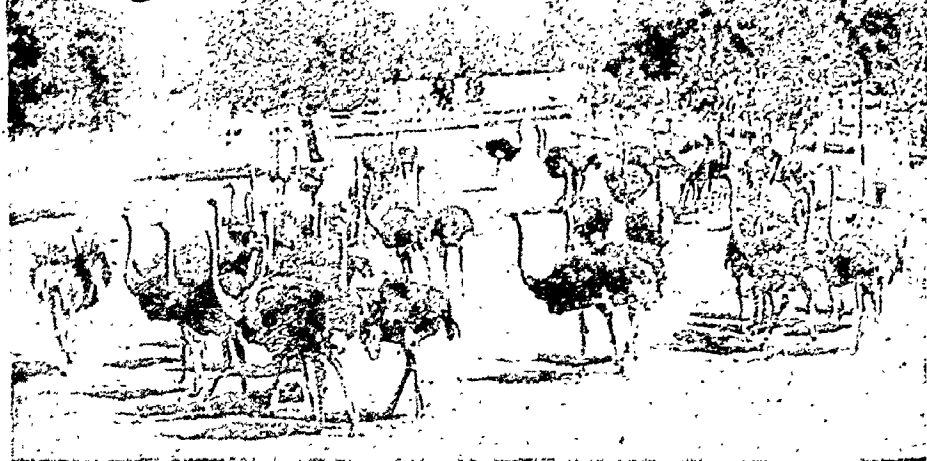
१५ दिसम्बर को हम लोग लुरेंको मार्क्विस से जोहान्सबर्ग के लिए रवाना होनेवाले थे। रेल चार बजे जाती थी। अफ्रीका में रेल से यह पहली यात्रा थी। यहाँ की रेलवे हिन्दुस्तान की ब्राड गेज से कुछ छोटी और मीटर गेज से कुछ बड़ी थी। रेल के डिब्बे बम्बई और पूना के बीच जो ट्रेनें चलती हैं उनके सदृश थे। अर्थात् रेल में यात्री एक सिरे से दूसरे सिरे तक चल सकते थे, फ़र्क़ इतना ही था कि बम्बई और पूना के बीच चलनेवाली गाड़ियों में सोने का स्थान नहीं रहता, पर इन डिब्बों में सोने का स्थान था। योरपीय डिब्बों में हिन्दुस्तानी नहीं बैठ सकते थे। हिन्दुस्तानियों के लिए जो डिब्बे थे उनपर रिज़र्व्ड का लेबिल लगा हुआ था जैसा कि हिन्दुस्तान में बड़े बड़े अफ़सरों के सैलूनों पर रहता है। पर रिज़र्व्ड लेबिलवाले ये डिब्बे सैलूनों की श्रेणी के न होकर साधारण योरपीय डिब्बों से भी कहीं नीची श्रेणी के थे। रिज़र्व लेबिल शायद हिन्दुस्तानियों का मज़ाक उड़ाने के लिए इन डिब्बों पर लगाया गया था। हब्शियों के लिए अलग डिब्बे थे। उनमें सिर्फ़ हब्शी ही यात्रा कर सकते थे। फ़र्स्ट और सेकेंड क्लास के टिकट योरपियों और हिन्दुस्तानियों को मिलते थे। हिन्दुस्तानी थर्ड क्लास से यात्रा न कर सकते थे। थर्ड क्लास सिर्फ़ हब्शियों के लिए था। लक्ष्मीचन्द का और मेरा बर्थ योरपीय डिब्बे के फ़र्स्ट क्लास में रिज़र्व था। और हमारे नौकर का रिज़र्व्ड डिब्बे के सेकेन्ड क्लास में। स्टेशन पर बड़ा भारी जन-समुदाय इकट्ठा था। वहाँ भी भाषण हुए, हार पहनाये गये, हुर्रे बोला गया। जब हम लोग योरपीय डिब्बे में सवार हुए तब खिड़कियों में से सिर निकाल निकालकर योरपीय यात्रियों तथा प्लेटफ़ार्म पर खड़े हुए योरपियन समुदाय ने घूर घूरकर हमें देखना शुरू किया। उनके लिए किसी हिन्दुस्तानी का उस डिब्बे से यात्रा करना एक नई बात थी। इस नई बात को देखकर अनेक क्रोध और क्षोभ से तिलमिला उठे थे और अनेक आश्चर्य से भौचक्के हो गये थे।

ट्रांसवाल में एक सप्ताह

लुरेंको मार्क्विस से जब हम लोग दक्षिण-अफ़्रीका के लिए रवाना हुए तब अनेक प्रकार की भावनाओं से मेरा हृदय भर गया। सबसे पहले तो विद्यार्थी-जीवन के वे दिन मुझे स्मरण आये जब मैंने महात्मा गांधी के सत्याग्रह-आन्दोलन के समय दक्षिण-अफ़्रीका का नाम सुना था। जिस देश में भारत की इस महान् विभूति

ने सर्वप्रथम अपने कठिन तप का आरम्भ और उसकी सिद्धि प्राप्त की थी उस देश के प्रति हृदय में एक अद्भुत प्रकार की श्रद्धा उत्पन्न हुई। भारत के लिए वह देश एक तीर्थ है। प्रत्येक सच्चे भारतीय के लिए उस तीर्थ के लिए श्रद्धा का होना एक स्वाभाविक बात है। मैंने भक्तिपूर्ण हृदय से उस भूमि को नमस्कार किया। परन्तु थोड़ी देर के बाद ही हृदय में एक दूसरी ही भावना जाग्रत हो उठी। इस देश में भारतीयों के साथ गोरों का जैसा व्यवहार है, भारतीयों को पग पग पर जिस प्रकार के अपमानों को सहना पड़ता है, उस देश को क्या भारतीय तीर्थस्थान मान सकते हैं? चित्त ग्लानि से भर गया।

इस प्रकार के अपमानजनक क़ानून मुझ पर लागू न होंगे। क्यों? इसीलिए न कि मैं एक बड़ा आदमी माना जाता हूँ। परन्तु यह मेरा सम्मान था या और घोर अपमान? मेरे देश-निवासियों पर अभी भी ये क़ानून उसी प्रकार लागू थे और मुझपर से हटाकर क्या यह मुझे एक प्रकार की रिश्वत नहीं दी गई थी? इन क़ानूनों से मुझे बरी कर देने का यह उद्देश्य तो न था कि मैं भारतीय सरकार और यूनियन गवर्नमेंट की तारीफ़ कर दूं? मेरी ज़बान पर ताला लगाने की कोशिश तो न की गई थी? इस प्रकार की न जाने एक पर एक कितनी बातें उस समय मेरे मन में उठीं। मैंने महसूस किया कि इस तोहफ़े को मंज़ूर करके मैंने ग़लती की है। मेरा सच्चा सम्मान तब तक नहीं हो सकता जब तक कि मैं अपने ही देश निवासियों के बीच में न बैठूं। उनको यदि अपमान सहना पड़ता है तो उनके बीच बैठकर मुझे भी अपमान सहना चाहिए। इस सम्मान की अपेक्षा उस अपमान के सहने में मेरा अधिक मान था। मेरी इच्छा उस योरपीय डिब्बे को छोड़कर तत्काल उस रिज़र्व डिब्बे में जाने की हुई जिससे हिन्दुस्तानी यात्री यात्रा कर रहे थे। मैं उस डिब्बे की ओर रवाना हुआ, पर जब वहाँ जाकर देखा कि उसके सब बर्थ रिज़र्व हो चुके हैं, तब वापस अपने उसी डिब्बे में आकर अनेक विचारों में ग़ोते लगाने लगा।

मेरे चित्त की उद्विग्नता लक्ष्मीचन्द से न छिप सकी। वे मेरे साथ काफ़ी समय तक रह चुके थे, अतः वे मेरी भावनाओं से भी परिचित हो गये थे। वे जान गये कि मैं इस समय बेचैन हूँ। उन्होंने मेरा मन दूसरी ओर खींचने के लिए मुझसे खिड़की के बाहर के प्राकृतिक सौन्दर्य को देखने के लिए कहा। ट्रेन भप भप करती हुई अफ़्रीका के हरित प्रदेशों, गिरिशृंगों, मैदानों, जंगलों और खेतों को पार करती हुई चली जा रही थी। उसकी लाइन टेढ़ी-मेढ़ी होकर गई थी। रास्ता सीधा न था। अँधेरा हो चला था और चतुर्दशी का प्रायः पूर्णचन्द्र आकाश में चमक रहा था। उस समय ट्रेन एक युकलप्टिस के जंगल के बीच से जा रही थी। युकलप्टिस के ऊँचे ऊँचे वृक्षों के मस्तकों पर चाँदनी पड़ रही थी। वायु के वेग में डोलते हुए उनके छोटे छोटे पत्ते हरे होने पर भी चाँदी के हो रहे थे। वृक्षों की पंक्ति के समीप ही एक छोटी-सी नदी बह रही थी, जिसमें उठती हुई छोटी छोटी लहरें उस चाँदनी में चमककर युकलप्टिस के पत्तों से स्पर्द्धा कर रही थीं। नदी के उस पार एक बड़ी-सी आग जल रही थी। उसका गोल गोल सुनहरा प्रतिबिम्ब नदी में पड़कर चाँद पर हँस रहा था, मानो वह कह रहा था कि तुम तो चाँदी के हो, पर मैं तो हूँ सोने का।

लक्ष्मीचन्द ने मेरा ध्यान इस प्राकृतिक दृश्य की ओर आकर्षितकर सचमुच मुझ पर बड़ा उपकार किया। उस दृश्य को देखकर मैं दुनिया की इस उधेड़-बुन से ऊपर उठ कल्पना-क्षेत्र में विहार करने लगा। न जाने कितना समय उस रमणीय दृश्य के देखने में बीत गया। आँखें उस पर से हटीं उस समय जब ट्रेन ट्रांसवाल की सीमा के कमाटीपोर्ट-स्टेशन पर जाकर खड़ी हो गई। ट्रेन के खड़े होते ही इमीग्रेशन अफ़सर आ पहुँचा और हम लोगों के पासपोर्ट इत्यादि देखकर उसने अपना काम पूरा किया। इसके बाद पहुँचे ट्रेन के गार्ड और ट्रेन का चीफ़ स्टुअर्ट। हम लोगों को यात्रा में किसी प्रकार का कष्ट न हो इसके लिए इन सबको यूनियन गवर्नमेंट की ख़ास हिदायतें आई थीं। हमारे बिस्तर, हमारे खाने आदि सभी बातों का बड़ा अच्छा इन्तज़ाम किया गया। शाम का खाना हम लोगों ने क़रीब ९ बजे खाया और फिर थोड़ी ही देर के बाद हम लोगों ने बिस्तर की शरण ली। जब प्रातःकाल हम लोगों की नींद खुली उस समय हम जोहान्सबर्ग के निकट थे। जल्दी से नित्यकर्म से निवृत्त होकर हम लोग कपड़े पहन अपनी

सीटों पर बैठे ही थे कि ट्रेन जोहान्सबर्ग स्टेशन पर पहुँच गई।

जोहान्सबर्ग-स्टेशन पर बड़ी धूम-धाम थी। ट्रान्सवाल की इण्डियन कांग्रेस ने मेरे स्वागत का बड़ा भारी आयोजन किया था। स्टेशन पर भारतीयों का एक बहुत बड़ा समुदाय पुष्पहारों और गुलदस्तों के साथ मेरे स्वागत के लिए उपस्थित था। गवर्नमेंट आफ़ इण्डिया की ओर से सर रज़ाअली के अँगरेज़ सेक्रेटरी मिस्टर रिडली, आई० सी० एस०, भी मुझको लेने के लिए स्टेशन पर आये थे। स्टेशन पर उतरते ही ट्रान्सवाल-इन्डियन-कांग्रेस के मंत्री श्री नाना ने उपस्थित सज्जनों का परिचय दिया।

स्टेशन से हम लोग डाक्टर दादू के मकान पर लाये गये, जहाँ हमारे ठहरने की व्यवस्था की गई थी। ठहरने का इन्तज़ाम पहले तो जोहान्सबर्ग के सबसे बड़े योरपीय होटल 'कार्लटन' में किया गया था, जहाँ हिन्दुस्तानी नहीं ठहर सकते थे, पर चूँकि मैंने होटल में ठहरने से इनकार कर दिया था इसलिए डाक्टर दादू के यहाँ प्रबन्ध किया गया था। डाक्टर दादू मुसलमान थे। वे ट्रान्सवाल के नेशनलिस्ट नेता थे और अविवाहित थे। डाक्टर दादू के यहाँ पहुँचते ही कुछ ही घंटों में हमारा उनका ऐसा सम्बन्ध हो गया मानो, हम एक-दूसरे को वर्षों से जानते हों। डाक्टर दादू का घर हमें अपना ही घर-सा जान पड़ा।

डाक्टर दादू के यहाँ ब्रेकफ़ास्ट कर हम लोग निश्चिन्त हुए ही थे कि जोहान्सबर्ग के मुख्य अँगरेज़ी दैनिक पत्र 'स्टार,' 'डेलीमेल' और 'सन्डेस्टेंडर्ड' के प्रतिनिधि आ पहुँचे। उनके पास कैमरे भी थे। मेरा इन्टरव्यू लिया, तस्वीरें भी उतारीं। इन्टरव्यू में जब मुझसे पूछा गया कि इन्डियन नेशनल कांग्रेस का ध्येय क्या है तब मैंने साफ़साफ़ कह दिया कि पूर्ण स्वतंत्रता और ब्रिटिश साम्राज्य से सम्बन्ध-विच्छेद। पत्रों में मेरा इन्टरव्यू जैसा का तैसा छप गया और ब्रिटिश साम्राज्य से सम्बन्ध विच्छेद की बात पर तो वहाँ बड़ी हलचल मची।

पत्र-प्रतिनिधियों से मिलने के बाद हम लोग 'संधेम होटल' में सर रज़ाअली से मिलने गये। कौंसिल आफ़ स्टेट के मेरे इन पुराने मित्र ने मेरा बड़े उत्साह और सम्मान के साथ स्वागत किया और अपनी नई हिन्दू पत्नी लेडी अली से मिलाया। इसके बाद तो जब तक मैं जोहान्सबर्ग में रहा तब तक सर रज़ाअली प्रायः मेरे साथ ही रहे। मेरे सम्मान में जितने लंच, जितनी पार्टियाँ, जितने डिनर दिये गये सभी में सर रज़ाअली मौजूद थे और सभी में उन्होंने मेरी प्रशंसा में कुछ न कुछ अवश्य कहा। इन सारे भाषणों में सर रज़ा ने राजनैतिक चर्चा भी की। उत्तर में जब जब मैं बोला, मेरे प्रति सद्व्यवहार के लिए मैंने उन्हें धन्यवाद दिया और उनके राजनैतिक मतों का तीव्र विरोध किया। सर रज़ाअली के और मेरे इस पारस्परिक प्रेम और विरोध का यह विचित्र सम्मिलन था। जोहान्सबर्ग के सारे पत्र उस सप्ताह इन समाचारों से भरे रहे।

जोहान्सबर्ग में पहले दिन का लंच था श्री वी० के० पटेल के यहाँ और डिनर था महात्मा गांधी के प्रसिद्ध जर्मन यहूदी शिष्य मिस्टर कैलन बैक के यहाँ। मिस्टर कैलन बैक के डिनर को तो मैं कभी न भूलूँगा। कितने सुन्दर स्थान पर मिस्टर कैलन बैक का बँगला है। एक ऊँचा टीला है, जिसके दोनों ओर आधा आधा जोहान्सबर्ग बसा हुआ है। इसी टीले पर उनका यह सुन्दर बँगला है। उनका धंधा इमारतों का निर्माण है। इसी लिए वह बँगला शिल्पकला का एक उत्तम नमूना है। सादगी में सौन्दर्य का कितना अच्छा सम्मिलन यहाँ दिखाई दिया। बँगले पर से बिजली की अगणित बत्तियों से आलोकित जोहान्सबर्ग का कितना सुन्दर दृश्य दिखाई देता था। उनका बँगला महात्मा गांधी की मूर्तियों और चित्रों से भरा हुआ है। उनका सारा जीवन भी महात्मा गांधी के विचारों से निमग्न रहा है। इन धनवान् जर्मन यहूदी के जीवन में भी भारत की उस महान् आत्मा ने कैसा परिवर्तन कर दिया है। उन्होंने मांसाहार छोड़ दिया है और विपुल संपत्ति रहते हुए भी उनका रहन-सहन अत्यन्त सादा है। दक्षिण-अफ़्रीका के सत्याग्रह-संग्राम में वे भी जेल-यात्रा कर चुके हैं। अस्तु।

हम लोग मिस्टर कैलन बैक के यहाँ श्री प्रागजी देसाई के साथ गये थे। देसाई जी दक्षिण-अफ़्रीका के उन इने-गिने कार्यकर्ताओं में से हैं जिन्होंने अपना सब कुछ देश-सेवा पर बलिदान कर दिया है। वे महात्मा गांधी के अफ़्रीका-निवास के समय से देश-सेवा में तत्पर रहे हैं

और महात्मा गांधी के दक्षिण-अफ़्रीका-सत्याग्रह-आन्दोलन में ७ बार जेल-यात्रा कर चुके हैं। भारत के सत्याग्रह-आन्दोलन में भी दो बार जेल हो आये हैं। वे ट्रान्सवाल इंडियन कांग्रेस के मन्त्री और महात्मा गांधी के पत्र इंडियन ओपीनियन के संपादक भी रह चुके हैं। आज से देसाई जी का हमारा जो साथ हुआ वह फिर बम्बई पहुँचकर ही छूटा, क्योंकि वे हरिपुरा-कांग्रेस में सम्मिलित होने के लिए भारत आ रहे थे। देसाई जी ने मिस्टर कैलन ब्रेक से हम लोगों का परिचय कराया। इसके बाद मिस्टर कैलन बैक ने अपनी माता, भानजी और भानजी की पुत्री से हम लोगों को मिलाया। ये जर्मन महिलायें भी मिस्टर कैलन बैक के सदृश ही अपना जीवन व्यतीत करती हैं। इनसे मिलने के बाद में मिला महात्मा गांधी के तीसरे पुत्र श्री रामदास गांधी से, जो स्वास्थ्य-सुधार के लिए दक्षिण-अफ़्रीका आये हुए थे और मिस्टर कलन बैक के यहाँ ही रहते थे। रामदास जी से मैं इससे पहले कभी न मिला था। मिलते ही उनके लिए मेरे हृदय में अत्यधिक स्नेह की उत्पत्ति हो गई और यही बात उनके हृदय में मेरे लिए हुई। फिर तो डरबन से २ जनवरी को रवाना होने तक रामदास जी का और मेरा साथ एक दिन के लिए भी न छूटा और इस स्नेह में नित्यप्रति वृद्धि ही होती गई। जब २ जनवरी को हम लोग एक दूसरे से विदा हुए तब कितना दुःख हुआ मुझे और कितना उन्हें, इसके उल्लेख की यहाँ ज़रूरत नहीं है।

मिस्टर कैलन बैक के डिनर से मिस्टर कैलन बैक, उनकी भानजी की पुत्री और रामदास जी के साथ हम लोग सीधे पाटीदार-हाल को चले, जहाँ मेरे स्वागत के लिए आज ही सार्वजनिक सभा थी। हाल में तिल रखने को भी जगह शेष न थी। बहुत बड़ा जनसमुदाय हाल के बाहर खड़ा था और सुना गया कि स्थानाभाव के कारण बहुत लोग लौट भी गये। जोहान्सबर्ग के सभी वर्गों के प्रतिष्ठित व्यक्ति सभा में उपस्थित थे। सर रज़ा और लेडी अली भी सभा में पहुँच चुके थे। सुना गया कि श्रीमती सरोजिनी नायडू के आगमन के बाद जोहान्सबर्ग में इतनी बड़ी सार्वजनिक सभा कभी नहीं हुई थी। सभा के सभापति थे ट्रान्सवाल-इंडियन कांग्रेस के स्थानापन्न प्रेसीडेंट मिस्टर डबल्यू अर्नेस्ट। पहले जोहान्सबर्ग की अनेक संस्थाओं की ओर से मुझे पुष्पहार पहनाये गये। फिर मेरे स्वागत में सर रज़ाअली, मिस्टर कैलन बैक, श्री रामदास जी गांधी, श्री प्रागजीभाई देसाई, श्री सुलेमान नाना, डाक्टर यूसुफ़ मुहम्मद दादू, रेवरेन्ड सिंगामनी आदि अनेक सज्जनों के भाषण हुए। मेरी इतनी स्तुति की गई कि प्रसन्न होकर 'वरं ब्रूहि' कहना तो दूर रहा, लज्जा से उलटा मैं दब गया। सर रज़ाअली ने दक्षिण-अफ़्रीका में मेरा स्वागत भारतीय सरकार की ओर से किया। उन्होंने अपने भाषण में जो कुछ कहा उसमें मेरी प्रशंसा के अतिरिक्त निम्नलिखित बात सार्वजनिक दृष्टि से महत्त्व की थी। उन्होंने कहा—

'सन् १९१२ में मिस्टर गोपालकृष्ण गोखले के बाद सेठ गोविन्ददास पहले आदमी हैं जो सेंट्रेल लेजिस्लेचर के मेम्बर होते हुए ग़ैर-सरकारी हैसियत से इस देश में हिन्दुस्तानियों की हालत की जाँच करने आये हैं। अनेक भारतीय भारतवर्ष से यहाँ और यहाँ से भारतवर्ष सरकारी डेलीगेशन्स में आये और गये हैं। उनका भी महत्त्व है, परन्तु ग़ैर-सरकारी व्यक्तियों के आने-जाने का महत्त्व उनसे कहीं अधिक है। इस देश में भारतीयों के खिलाफ़ जो क़ानून हैं वे किसी से छिपे नहीं हैं। इन क़ानूनों का रद्द होना बहुत दूर तक एक समाज से दूसरे समाज के अधिकाधिक सम्बन्ध पर निर्भर है और इस प्रकार के आवागमन से इस सम्बन्ध की बहुत कुछ वृद्धि हो सकती है।"

मैंने आज अपना भाषण हिन्दुस्तानी और अँगरेज़ी दोनों ही भाषाओं में करने का निश्चय कर लिया था, क्योंकि एक तो सभा में कुछ योरपीय तथा तामिल भाषाभाषी सज्जन थे, जो हिन्दुस्तानी नहीं समझते थे, दूसरे कई मुसलमान तथा गुजराती भाषाभाषी सज्जन थे जो अँगरेज़ी अच्छी तरह नहीं समझते थे। मेरा भाषण क़रीब डेढ़ घंटे चला। मैंने अपने भाषण में महात्मा गांधी के सन् १९०६ से आरम्भ किये गये ट्रांसवाल के सत्याग्रह-आन्दोलन के कारण हिन्दुस्तान में दक्षिण-अफ़्रीका के लिए जो एक प्रकार की पूज्य भावना है उसका वर्णन कर यहाँ के भारतीयों के विरुद्ध क़ानूनों के कारण इस देश के प्रति जो घृणा है उसका उल्लेख किया। मैंने यहाँ के योरपीयों को बताया कि इस प्रकार के विचित्र

क़ानूनों से यदि भारतीयों को चोट पहुँचती है तो संसार के सभ्य समाज में वहाँ रहनेवाली योरपीय जाति की भी कम बुराई नहीं है। फिर मैंने यह भी कहा कि किसी भी देश में किसी भी जाति के विरुद्ध इस प्रकार के क़ानून सदा क़ायम नहीं रक्खे जा सकते और भारत स्वतन्त्र होने के बाद देख लेगा कि ये क़ानून किस तरह क़ानून की किताब पर क़ायम रह सकते हैं। इसके बाद मैंने विस्तारपूर्वक भारतीय स्वतन्त्रता के संग्राम का वर्णन कर यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया कि वह समय बहुत दूर नहीं है जब भारत पूर्ण रूप से स्वतन्त्र हो जायगा। डेढ़ घंटे के लम्बे समय तक भी श्रोताओं ने मेरे भाषण को बड़े ध्यान से सुना।

रेवरेंड मिशनरी मेरे स्वागत में भाषण करते हुए यह कह गये थे कि भारत उसी प्रकार स्वतन्त्र होना चाहता है जिस प्रकार जापान या इटली है, अतः मेरे भाषण के समाप्त होते ही सर रज़ाअली ने मुझसे खड़े होकर पूछा—

"क्या इंडियन नेशनल कांग्रेस का ध्येय भारत को जापान और इटली के सदृश बनाना है?"

मैंने उत्तर दिया—

"हर्गिज़ नहीं। यद्यपि कांग्रेस भारत को पूर्ण रूप से स्वतन्त्र बनाना चाहती है, पर आततायी नहीं। कांग्रेस की नीति तो सदा आततायियों के विरुद्ध रही है। इटली और अबीसीनिया के युद्ध के समय कांग्रेस की सहानुभूति अबीसीनिया के साथ थी। आज जापान और चीन की लड़ाई में कांग्रेस की सहानुभूति चीन के साथ है और पैलेस्टाइन में उसकी सहानुभूति है अरबों के संग। कांग्रेस का ध्येय साम्राज्यवाद का विरोध करना रहा है, आज भी है और भविष्य में भी रहेगा।"

—(क्रमशः)

शोषिता

लेखक, श्रीयुत 'अंचल'

दिल में किसका दीप जलाये मौन खड़ी है यह पनघट पर?

(१)

साँझ हुई पथ देख रही है किसका भरे दृगों की गगरी,
कहीं पेट की आग बुझाने गये पिया तज इसकी नगरी!
बीते कितने वर्ष इसे यों पथ पर अपनी रैन बिछाते
और खुली आँखों में इसकी अब तो कोई स्वप्न न आते।
इसकी भी आई थी आमों सी बौराती प्रखर जवानी
किन्तु गई चुपचाप ज़मींदारों के भय की छोड़ कहानी;
उन ज़ुल्मों की याद न पूछो जल उठता प्रतिरोम सिहरकर
दिल में किसका दीप जलाये मौन खड़ी है यह पनघट पर?

(२)

अपमानों औ' अरमानों की है यह भय से पूर्ण निराशा
खड़ी जोहती बाट उसी की अब न जिसे पाने की आशा
काली गँदली क्षीण नदी-सी बहती जीवन के मरघट में
मुख झुलसती जो घट पर प्रज्ज्वलित चिता की लपट लपट में
किन्तु न केवल आँच विरह की, कैसे भरे पेट हत्यारा
बीच डगर पर छोड़ गया जब जीवन का सर्वस्व सहारा?
खड़ी हुई छल दिन भर रोती बरस जाय यदि मेघ घड़ी भर
दिल में किसका दीप जलाये मौन खड़ी है यह पनघट पर

(३)

और कई बच्चों की माँ आ रही उधर से अन्न बटोरे
आँचल में कुछ लिये चबाती कुछ, बिखरे खेतों के डोरे
नहीं देखती पेड़ तले यह खड़ी मानवी सी कृश जर्जर
देती बाँध फटे दामन में थोड़े से दाने अकुलाकर
किन्तु खड़ी रहती वह जड़ पत्थर निज निर्मोही की प्यासी
घर के बिकते तो बीतेंगी पेड़ तले फिर रातें बासी।
दबे कण्ठ से रोती पछुआ बीती रजनी अभी प्रहर भर;
दिल में किसका दीप जलाये मौन खड़ी है यह पनघट पर?

फल-संरक्षण

लेखक, श्रीयुत कुँवर वीरेन्द्रनारायण सिंह, बी० एस-सी०

'फल-संरक्षण-कला' के आविष्कार का श्रेय पाश्चात्य वैज्ञानिक निकोलस एपर्ट साहब को दिया जाता है, जिन्होंने सन् १७५० के लगभग यह प्रकाशित किया था कि 'फल एवं शाकों को नष्ट होने का मूल कारण वायु में पाये आनेवाले कीटाणु हैं और यदि वे वायु के सम्पर्क से वंचित कर दिये जायँ तो फल आदि बहुत काल तक सुरक्षित रक्खे जा सकते हैं।' निसन्देह 'फल-संरक्षण' के क्षेत्र में यह विचार एक नूतन प्रकाश था। किन्तु यदि कहा जाय कि अठारहवीं सदी से पूर्व यह कला अज्ञात थी तो हम भारतीयों के साथ अन्याय होगा। कारण कि उस समय से बहुत पूर्व हमारे देश में फलों को विभिन्न रूपों में सुरक्षित रखने की विधि भली भाँति प्रचलित थी। हाँ, आधुनिक वैज्ञानिक प्रयोग का उन दिनों प्रचार न था यह यथार्थ है। ताज़े फल दो-चार दिन के पश्चात् नष्ट हो जाते हैं, उनमें से दुर्गन्ध निकलने लगती है और वे खाने के काम के नहीं रह जाते, अतएव उनको अधिक काल तक सेवन करने के योग्य बनाये रखने के लिए 'फल-संरक्षण-कला' अस्तित्व में लाई गई।

सुरक्षित करने की विधियाँ

'फल-संरक्षण' की विभिन्न विधियाँ काम में लाई जाती हैं। सुरक्षित करने की विधियों को हम दो बड़े भागों में विभाजित कर सकते हैं। पहली विधि के द्वारा फल एक सप्ताह से लेकर ८-१० सप्ताह तक सुरक्षित रक्खे जा सकते हैं एवं दूसरी के द्वारा फल दो-तीन वर्ष या अधिक समय तक सुरक्षित रक्खे जा सकते हैं।

छाँटकर—फलों को सुरक्षित रखने की सबसे सरल विधि उनको छाँटकर रखना है। फल पूर्णरूप से पकने के पहले ही तोड़ लिये जाते हैं। कठोर एवं कोमल फलों को अलग करके उन फलों पर जिन पर कीटाणुओं का प्रभाव हो चुका होता है, अलग कर दिये जाते हैं। प्रत्येक दूसरे दिन इस प्रकार फलों को छाँटकर रखने से वे महीनों तक सुरक्षित रक्खे जा सकते हैं। हमारे देश में फल-विक्रेता अधिकतर इसी विधि को काम में लाते हैं।

ठंडे में रखकर—फलों एवं शाकों को ठंडी जगह में रखने से वे अधिक समय तक सुरक्षित रक्खे जा सकते हैं। तापक्रम शून्य ० अथवा उससे भी कम होना चाहिए। इस तापक्रम पर फलों को नष्ट करनेवाले कीटाणु निश्चेष्ट हो जाते हैं। स कार्य के लिए 'रेफ़ीजेरेटर' नामक यंत्र बनाये गये हैं, जिनसें वातावरण का तापक्रम शून्य से भी कम होता है। इन यंत्रों में फलों को रख देने से वे सड़ने से बचे रहते हैं। पाश्चात्य देशों में इस यंत्र का अधिक प्रचार है। वहाँ इस प्रकार के ठंडे गोदाम बने होते हैं जिनमें फल, तरकारियाँ एवं अन्य भोज्य पदार्थ कई सप्ताह तक सुरक्षित रह सकते हैं। रेलगाड़ियों एवं जहाज़ों में भी ऐसे डिब्बे अथवा कमरे बने रहते हैं जिससे एक जगह से दूसरी जगह आने-जाने में फलों के नष्ट होने की सम्भावना जाती रहती है।

गैस-द्वारा—फलों को कारबोनिक एसिड गैस में रखकर भी सुरक्षित रक्खा जा सकता है। पूर्ण रूप से बढ़ जाने के पहले ही फल तोड़कर कृमि-रहित पतले काग़ज़ में लपेटकर आलमारियों में रख दिये जाते हैं एवं उस कमरे में उक्त गैस भर दी जाती है। बात यह है कि फल ज्यों ज्यों परिपक्व होते हैं, उनमें से कारबोनिक एसिड गैस निकलती है, अतः उसी के वातावरण में रखकर फलों को शीघ्र परिपक्व होने से वंचित कर देते हैं। कच्चे फलों में खटास की मात्रा एवं उनके कठोर होने के कारण उन पर कीटाणुओं का शीघ्र प्रभाव नहीं होता, अतः उक्त वायुमण्डल में रखने से फलों के नष्ट होने की आशंका नहीं रहती। कभी कभी उक्त वातावरण में रखने के अतिरिक्त उस कमरे का तापक्रम भी शून्य पर कर दिया जाता है। इन दोनों विधियों के सम्मिश्रण से फल कई मास तक सुरक्षित रक्खे जा सकते हैं। फलों का रस एवं सोडावाटर का मीठा जल भी इसी गैस-द्वारा सुरक्षित रक्खे जाते हैं।

गरम करके—समूचा फल, उसका गूदा अथवा उसका रस यदि १७० डिग्री (फ़०) पर प्रायः बीस मिनट तक गरम किया जाय तो इस तापक्रम पर अधिकांश कीटाणु मर जाते हैं और कुछ निश्चेष्ट हो जाते हैं। इस कारण

भी इसी काम में आते हैं, जिनका हमारे घरों में अधिकतर व्यवहार होता है। ये सभी वस्तुएँ कीटाणु नाशक होती हैं एवं स्वास्थ्य के लिए उतनी हानिकारक भी नहीं हैं।

फलों के रस को सड़ाकर सिरके के रूप में भी सुरक्षित रखते हैं। किन्तु इस विधि-द्वारा फल का स्वाद सर्वथा भिन्न हो जाता है। और यथार्थ तो यह है कि फलों के कार्यालयों में फलों के बेकार टुकड़े, छिलके आदि जो फेंक दिये जाते हैं उनको एक पचनशील भोज्य-पदार्थ में परिणित कर देने का यह एक अच्छा साधन है। उन सभों को एकत्र कर, उबालकर उनका रस निचोड़ लिया जाता है फिर उनको लकड़ी के बड़े बड़े पीपों में भर देते हैं। तत्पश्चात् उनमें 'ईस्ट' डाल देते हैं, जिससे कुछ दिनों के बाद समस्त रस मदिरा में परिणित हो जाता है। उसको छानने के पश्चात् उसमें थोड़ा-सा तेज़ सिरका डाल दिया जाता है, जिससे वह मदिरा सिरके में परिणित हो जाती है। तैयार होने पर सिरके को १७० डिग्री तापक्रम पर गरम करते हैं, जिससे उसके कीटाणु नष्ट हो जाते हैं।

फल एवं तरकारियों को सुरक्षित रखने का अन्तिम उपाय उनको सुखाकर रखने की विधि है। यों तो हमारे देश में फलों के सुखाने की विधि बहुत प्रचलित है और आम, अंगूर, खजूर, गोभी, साग आदि फल और तरकारियाँ विभिन्न रूपों में सुखाकर दूसरे ऋतु में सेवन करने के लिए रक्खे जाते हैं और उनका थोड़ा-बहुत व्यापार भी होता है, किन्तु उनमें कई बातों की न्यूनता होती है, जैसे सूखने पर काले पड़ जाना, सिकुड़न आ जाना, स्वाद बदल जाना और फिर शीघ्र ही नष्ट हो जाना आदि हैं। किन्तु यदि सुखाने के पहले फलों एवं शाक-भाजियों को उबलते हुए जल में तीन-चार मिनट डालकर फिर ठंडे पानी में डाल दें, तत्पश्चात् उनको गंधक का धुवाँ दिखलाकर सुखाया जाय तो उक्त बातें अधिक अंशों में दूर हो जाती हैं। विदेशों में फलों को सुखाने के लिए 'डीहाईड्रेटर' नामक यंत्र काम में लाये जाते हैं, जिसमें फल शीघ्र ही सूखने के अतिरिक्त धूप में सुखाने की अनेक असुविधायें दूर हो जाती हैं।

आज हमारा देश 'फल-संरक्षण' के इन सभी आधुनिक विधियों से प्रायः वंचित है। केवल इने-गिने दो-चार छोटे छोटे कार्यालय हैं, जो अधिकतर चटनी, अचार और थोड़े-बहुत फलादि सुखाते हैं, जो कुछ अंशों में विदेश भी भेजे जाते हैं जैसा कि निम्न आँकड़ों से विदित है—

सन्	चटनी, अचार आदि रुपये
१९३१-३२	७,७९,०९५
१९३२-३३	८,६८,९५२
१९३३-३४	८,२३,०४०
औसत प्रतिवर्ष	८,२४,०२६

परन्तु विदेशों से भारत में आनेवाले ताजे एवं सुरक्षित फलों का मूल्य इसका सात गुना अधिक है, जो इस प्रकार प्रतिवर्ष औसत में आते हैं—

	रुपये
सुरक्षित फलों का मूल्य	२४,२२,२६०
ताज़े फलों का मूल्य	३०,८६,५८९
औसत प्रतिवर्ष	५५,०८,८४९

इतने पर भी भारतीय सुरक्षित फलों की विदेशों में अधिक माँग है, किन्तु हमारा देश उसको पूरा करने में असमर्थ है। कारण यह है कि हमारे पास उनको सुरक्षित करने के लिए कोई विशेष साधन नहीं है, अतः फल-संरक्षण की विभिन्न विधियों को भारत में बड़े परिमाण में करने की अत्यन्त आवश्यकता है।

रिक्ता

अनुवादक, पण्डित ठाकुरदत्त मिश्र

वह बड़े ही धैर्य और तत्परता के साथ घर के सारे काम-काज चलाती रही। किन्तु एकाएक काशी से एक पत्र आया कि सविता के नाना जी की तबीयत खराब है और सम्भव है कि वे जीवित न रहें, इससे वे सविता तथा अरुण को एक बार देखना चाहते हैं। इससे जगत बाबू ने अरुण, को सविता को लेकर काशी जाने का आदेश किया। किन्तु अरुण को इस आदेश के पालन करने में आपत्ति थी। इधर सविता भी यह नहीं चाहती थी कि अनिच्छा होने पर भी वह उसके साथ जाने के लिए बाध्य किया जाय। इससे उसने श्वशुर से कह दिया कि आपकी तबीयत खराब है इसलिए मैं अभी नहीं जाना चाहती। परन्तु जगत बाबू सविता के नाना की इस इच्छा को अपूर्ण नहीं रहने देना चाहते थे, और वे उसे भेजने की ही चिन्ता में थे। इतने में एकाएक कटक में अरुण की माता का देहान्त हो गया, इससे इस ओर ध्यान देने का किसी को अवसर ही नहीं रह गया। श्राद्ध आदि से निवृत्त होने के बाद नियमित रूप से परिवार का काम काज चलने लगा। परन्तु जगत बाबू का स्वास्थ्य उत्तरोत्तर खराब होता जा रहा था। इससे स्वास्थ्य सुधारने के लिए उन्होंने दार्जिलिङ्ग जाने का निश्चय किया।

(१८)

बहुत दिनों से मायके की कोई भी चिट्ठी-पत्री न पा सकने के कारण सविता मन ही मन बहुत उद्विग्न हो उठी थी। उसके नाना की बीमारी की चिट्ठी जब आई थी तब से फिर और कोई भी समाचार नहीं आया। वे अच्छे हुए या नहीं, एक कार्ड के द्वारा इस बात की भी सूचना देकर नाना ने उसे निश्चिन्त नहीं किया। इस कारण मन ही मन वह मा से बहुत चिढ़ रही थी।

नाना का जो पत्र आया था उसके द्वारा उन्होंने उसे देखने की इच्छा प्रकट की थी। केवल उसी को देखने की नहीं, उनकी इच्छा तो और भी आगे बढ़ गई थी। उसके बाद यहाँ यह दुर्घटना हो गई।

इस परिवार के सभी लोग शोक से व्याकुल हो उठे। इससे अपने सम्बन्ध की बातों पर विचार करने का अधिक अवसर सविता को नहीं मिलता था। घर में जितने आदमी थे उन सभी के शोक की कालिमा तो उसने अपने ही अञ्चल से पोंछी थी। किसकी मानसिक अवस्था ऐसी रह गई थी जिससे वह अपने नाना का हाल लेने के सम्बन्ध में कुछ कह सकती?

सविता एक तो यों ही चिन्तित थी, तिस पर उसने उस दिन डाक्टर साहब से यह सुन लिया कि काशी में बड़े जोर का प्लेग है। तिल को ताड़ बनाकर वह अपनी चिन्ता का जाल बुनती ही गई। कदाचित् वे कोई भी न जीवित हों—कुल दो ही तो आदमी थे!

सविता का हृदय जोर जोर से धड़कने लगा। हाय रे! उससे दो बातें करनेवाला भी कोई नहीं रहा, जिससे दो-चार बातें करके वह अपने हृदय का भार हलका कर लेती। यह भी उसके भाग्य का ही दोष है! यदि ऐसा न होता तो श्वशुर काशी जाने को कह ही रहे थे।

दोपहर का समय था। उस समय सविता को थोड़ी देर तक के लिए अवकाश था, इससे वह अपने कमरे में बैठी हुई यही सब बातें सोच रही थी। शायद उसने इस चिन्ता को स्वेच्छा से अपने हृदय में स्थान नहीं दिया। किसी ओर से कोई छोटा पाकर ही यह चिन्ता आ पहुँची और सविता को घर दबाया।

एक दूसरे कमरे में आभा पुलक को लिये हुए खेल रही थी। मचल मचलकर और रो रोकर पुलक उसे

परेशान कर रहा था। पुलक की आया तारा ने उससे कहा—आप भला क्या ऐसे उपद्रवी लड़के को सँभाल सकेंगी! उसे बड़ी मामी जी के पास छोड़ आइए, भाभी। बस, वह अपने आप ठीक हो जायगा।

आशा इस घर में अभी नई नई आई थी। उसने डरते डरते कहा—परन्तु जीजी तो भीतर चली गई हैं। वहाँ मैं कैसे जाऊँ?

"ओह! मा, जाओगी कैसे भाई!" यह कहकर आशा हँस पड़ी।

आशा ने सङ्कोच के साथ कहा—वहाँ जेठ जी के सामने न पड़ जाऊँ कहीं?

"हाय! राम, वे क्या किसी काल में भी उस कमरे में पैर रखते हैं? वे तो उनका नाम सुनकर जल जाते हैं। यह बात शायद आपने छोटे बाबू से नहीं सुनी है।"

आशा अवाक् होकर सुनती रही, वह कुछ बोली नहीं। उसके लिए यह बात कितनी भयंकर थी! वह सोचने लगी कि रात-दिन जिसके हास्यमय मुख के मधुर प्रकाश से सारा घर देदीप्यमान रहता है, यह प्रकाश क्या उनके आनन्द की दीप्ति नहीं है, हृदय का धुआँ है?

आशा मन ही मन काँप उठी।

आया को भी आगे कहने को प्रोत्साहन मिल गया।

वह बराबर कहती ही गई—सब जानते हैं। छोटे भैया जी सब जानते हैं। उनसे पूछिएगा तो वे सब बतला देंगे। हमारी मालकिन थीं। वे भी इन्हें नहीं चाहती थीं। ये जब आई थीं तभी से उनका मिज़ाज बहुत टेढ़ा हो उठा था।

आशा ने ज़रा सा इधर-उधर करके कहा—क्यों, कौन सी ऐसी बात है? क्या ये आदमी ठीक नहीं हैं?

"पता नहीं। और यह सब मैं जानते ही कैसे लगी भाभी? लेकिन बड़े आदमी का ख़याल ही तो है।"

"जाने दो इन बातों को आया। ये सब बातें सुनने में मुझे अच्छी नहीं लगतीं।" यह कहकर आशा ने पुलक को गोद में ले लिया और वह जाकर सविता के पास खड़ी हो गई। सविता ने आँखें पोंछकर मुँह फेर लिया। फिर हँसती हुई वह बोली—कहो आशा, क्या तबीअत ऊब रही है?

लज्जिता आशा ने मुँह लाल करके कहा—नहीं भाई, मेरी तबीअत नहीं ऊब रही है।

"तो क्या नींद आ रही है? आओ, तुम्हें सुला दूँ।"

पुलक ने चिल्लाकर कहा—मुझे बड़े ज़ोर की नींद आ रही है वहू!

सविता हँस पड़ी। उसने कहा—तुम्हें नींद आ रही है? और तो इस समय तुम कभी नहीं सोते। क्या आशा की ईर्ष्या के मारे तुम्हें नींद आने लगी?

"नहीं बहू, मुझे सचमुच नींद आ रही है। लेटते ही सो जाऊँगा। क्या लेट जाऊँ?"

सविता ने विस्तरे पर पुलक को लिटा दिया। उसने कहा—तो अब राजा बेटा होकर सो जाओ।

आशा ने कहा—दीदी, तारा कह रही थी कि हम लोगों को शायद दार्जिलिंग जाना होगा। क्या यह सच है?

सविता ने कहा—सुनती तो मैं भी हूँ। सच है या झूठ, यह ठीक ठीक बतला नहीं सकती। अभी तक इस सम्बन्ध में मैंने बाबू जी से कुछ पूछा नहीं।

ज़रा देर तक चुप रहने के बाद आशा ने पूछा—यदि जाना ही हुआ तो क्या हम लोग भी जायँगी?

"यदि ले जायँगे तो जा सकती हैं। क्यों? क्या बात है?"

"यदि ले जाते तो अच्छा ही था दीदी! मैंने कभी पहाड़ नहीं देखा। एक बार देख लेती। तुम ज़रा-सा जेठ जी—"

आशा रुक गई। जेठ के सम्बन्ध की जो अप्रिय बातें वह तारा से सुन आई थी उनके कारण सविता से और कुछ कहने को उसका मुँह नहीं खुलना चाहता था। अन्यथा वह कहती कि सविता दार्जिलिंग जाने के सम्बन्ध की बातें अरुण से ही क्यों नहीं पूछ लेती।

आशा की इस अधूरी बात के ही कारण सविता का मुँह लाल हो उठा था, तो भी उसने हँसते हुए कहा—अच्छा तो मैं अभी बाबू जी से कहूँगी कि तुम जाना चाहती हो। यह सुनते ही वे तैयार हो जायँगे।

आशा ने व्यस्त भाव से कहा—नहीं, नहीं दीदी, उनसे कहने का कुछ काम नहीं है। एक तो यों ही शरीर

अच्छा न होने के कारण उनकी तबीअत ठिकाने में नहीं रहती, तिस पर हम भी उनके सामने एक झंझट खड़ा करें! सम्भव है, इससे वे अप्रसन्न हों।

"नहीं, वे अप्रसन्न न होंगे।" यह कहकर सविता कमरे की फ़र्श पर बिछी हुई चटाई पर लेट गई। वह लेटी थी यह भाव प्रदर्शित करते हुए, मानो उसे आलस्य आ रहा है। उसका क्लान्त और मुर्झाया हुआ मुख और भी आभाहीन मालूम पड़ रहा था। रुलाई की जिस राशि को वह इतनी देर तक हँसी के नीचे दबाये हुए थी वह अब आँधी की तरह हा हा करके उठ रही थी। वह अब मानो दबी रहना नहीं चाहती थी।

दिन प्रायः व्यतीत हो चला। सविता ने एक लम्बी साँस ली। इस साँस के साथ ही साथ उसने अपनी सारी शिथिलता, सारी व्यग्रता दूर कर दी। मन की जो न्यायोचित माँग है, उसके साथ कर्तव्य को यदि तोला जाय तो मनुष्य को मनुष्यता को तिलाञ्जलि दे देनी पड़ती है।

इस समय भी श्वशुर की औषधि आदि को सजाकर सविता उनके कमरे में ले गई।

कमरे भर में ज़मींदारी के काग़ज़-पत्र फैले हुए थे। पिता का शरीर अच्छा न होने के कारण उनके आदेश के अनुसार अरुण ही सब लिख-पढ़ रहा था। बीच बीच में उन्हें देख देखकर वे सुधारते जाते थे। ये काग़ज़ विशेष रूप से आवश्यक थे, और उन्हें ठीक किये बिना जगत बाबू कहीं जा नहीं सकते थे, इसी लिए उन्हें ठीक कर देने की इतनी उतावली थी।

अरुण पीले रंग की लम्बी लम्बी बहियों को देखकर एकदम घबरा उठता था। परन्तु उस समय उन्हें लिये हुए किसी प्रकार कार्य को समाप्त करने का प्रयत्न कर रहा था। एक तो पिता का आग्रह था, दूसरे दार्जिलिंग जाने का उसे बड़ा आग्रह था, इसलिए भी वह उस काम को हाथ में ले सका था। परन्तु उतावली के कारण वह प्रायः कार्य्य में त्रुटि कर रहा था, इससे जगत बाबू रुष्ट हो रहे थे।

सविता ने मस्तक झुकाये हुए कमरे में प्रवेश किया। कार्य्य के समय मिथ्या संकोच करने का उसका स्वभाव नहीं था। इस प्रकार का संकोच जगत बाबू को पसन्द भी नहीं था। हाथ में वे जो काग़ज़ लिये हुए थे उन्हें उन्होंने रख दिया और बोले—शायद दवा ले आई हो। आओ, ले आओ।

आयुर्वेदिक औषधि खरल की पिसी हुई थी। उसे खाकर उन्होंने कहा—बहू, ज़रा देर के बाद एक बार फिर आना तो। तुमसे कुछ काम है।

उस समय पता नहीं, अरुण के दिमाग़ में कौन सी ऐसी बात आई कि उसने मुँह उठाया और सविता की ओर देखा। सविता ने एकाएक लज्जित होकर और भी मस्तक नीचा कर लिया। अरुण भी तुरन्त ही दूसरे काग़ज़ पर झुक पड़ा।

कुछ देर के बाद श्वशुर की आज्ञा के अनुसार सविता फिर उसी कमरे की ओर जा रही थी। उस समय भी कमरे में अरुण की आहट पाकर वह उसके भीतर नहीं गई। वह दालान में खड़ी रही। उसने सोचा कि इनकी बातें समाप्त हो जायँ तो मैं जाऊँ।

लम्बे दालान के बीच में ही फूल के तीन पेड़ थे। साँझ प्रायः हो चली थी। उन पेड़ों पर अगणित फूल खिलकर तीव्र सुगन्ध से सारे घर को मादकतामय बना रहे थे। एक नौकर लालटेन जलाये हुए गृहस्वामी के कमरे में रखने जा रहा था। उसे देखकर सविता हटकर रेलिंग के पास जाकर खड़ी हो गई। आध घंटा बीत गया, फिर भी अरुण पिता के कमरे में बैठा बातें करता ही रहा।

उधर पुलक आशा को परेशान कर रहा था। सविता भीतर गई और उसे ले आई। श्वशुर के कमरे की ओर जाती जाती वह बोली—देखना, उस कमरे में जाकर दुष्टता के कारण शोर मत मचाना।

पुलक ने कहा—क्यों? नाना जी की तबीअत ख़राब है इसलिए?

"हाँ, दुष्टता करोगे तो वे अप्रसन्न होंगे, तुम्हें डाँटेंगे।"

"ऊँ! नाना जी अच्छे हैं, नाना जी डाँटते नहीं। बड़े मामा जी अच्छे नहीं हैं, वे डाँटते हैं।"

"इस विषय में शायद किसी को कोई सन्देह ही नहीं है। है न?"

पीछे अरुण की बात सुनकर सविता ज़रा सा रुक-कर खड़ी हो गई। अरुण ने हँसते हँसते कहा—क्यों रे पुलक! क्या कह रहे थे तुम लोग! शायद मेरी निन्दा कर रहे थे?

सविता के मुख पर प्रसन्नता की एक रेखा उदित हो आई। किन्तु वह कुछ बोली नहीं, बग़ल से होकर निकल जाना चाहती थी। अरुण ने उससे कहा—जाओ, तुम्हें बाबू जी बुला रहे हैं।

"जाती हूँ।" यह कहकर सविता श्वशुर के कमरे की ओर चली। पुलक ने मचलकर उसे पकड़ लिया। वह कहने लगा—यह फूल मुझे तोड़ दो बहू!

"फूल तोड़ने से खराब हो जाता है। तू क्या करेगा फूल तोड़कर ?"

"नहीं, ख़राब नहीं होता। बड़े मामा जी भी तो तोड़ रहे हैं। मैं भी लूँगा।"

सविता ने देखा, सीढ़ी के ऊपर खड़े खड़े अरुण फूल की एक डाली खींच रहा है और मुस्कराता हुआ कह रहा है—वाह ! कैसी बढ़िया खुशबू आ रही है।

"तो जाओ, तुम फूल ले आओ।" यह कह कर सविता ने पुलक को छोड़ दिया और वह श्वशुर के कमरे में चली गई। उस समय वे मसनद के सहारे बैठे हुए दार्जिलिंग से आई हुई चिट्ठी-पत्री उलट रहे थे। सविता को देखते ही उन्होंने कहा—देखो बहू, दार्जिलिंग जाने का ही निश्चय हुआ है। अब यह बताओ कि वहाँ जाना किसे किसे होगा।

सविता चुप रही। एकाएक वह कोई उत्तर न दे सकी। श्वशुर ने फिर कहा—तुम तो चलोगी ही। क्या छोटी बहू भी चलेगी ?

सविता ने कहा—आशा की तो वहाँ जाने की बड़ी इच्छा है। वह कहती है कि मैंने कभी पहाड़ नहीं देखा है।

"तो ठीक है। अब केवल पटला के चलने के सम्बन्ध में ही सोच-विचार करना है। उसकी परीक्षा समीप आ गई है।"

सविता का चित्त उस दिन प्रसन्न नहीं था। उसके मन पर न जाने कैसा भार-सा मालूम पड़ रहा था। इससे वह साहस करके मुँह से कोई वैसी बात नहीं निकाल रही थी। कुछ क्षण तक सोच-विचार करने के बाद श्वशुर ने फिर कहा—तो अब यात्रा का दिन स्थिर कर लिया जाय।

सविता ने मृदु कण्ठ से कहा—कब तक चलने में सुविधा होगी ?

"कब चलना चाहिए? यह मास तो व्यतीत ही हो चला। शायद आज २७वीं है।"

"हाँ।"

"तो वैशाख की दूसरी-तीसरी तक यात्रा कर दी जाय। अच्छा, मैं उन लोगों से भी एक बार पूछ लूँ।"

श्वशुर से और दो-एक बातें करने के बाद सविता कमरे से निकल आई। उसने देखा, उस समय भी अरुण एक एक फूल तोड़ तोड़कर पुलक को भुलाये हुए है।

लौंग के समान छोटा छोटा एक एक फूल पाकर बालक प्रसन्न न होकर क्रोध के मारे कूदने लगता था। उसे इस प्रकार क्रुद्ध होते देखकर अरुण और भी चिढ़ा चिढ़ाकर हँस रहा था।

एक निमेष भर उन दोनों की ओर देखकर सविता दूसरे कमरे में चली गई।
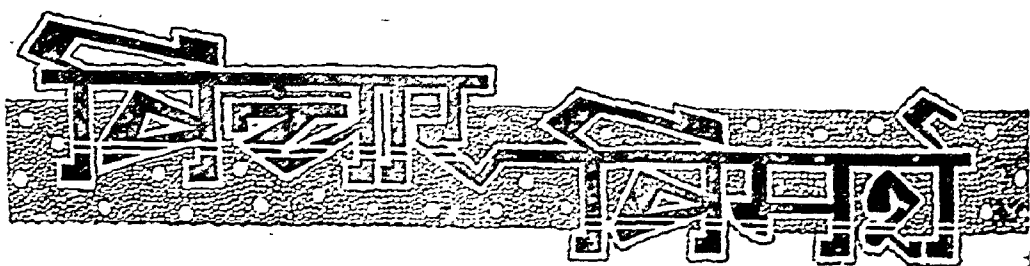
स्तुति-कुसुमाञ्जलि का परिचय

लेखक, श्रीयुत साहित्याचार्य पंडित केशवमणि शर्मा दाधिमथ

'स्तुति कुसुमांजलि' संस्कृत का एक प्राचीन काव्य है। इसमें कविवर जगद्धर भट्ट की रची हुई शिव-स्तुतियाँ हैं। इन स्तुतियों में काव्य का भी चमत्कार पर्याप्त मात्रा में विद्यमान है। अभी तक यह पुस्तक अप्रकाशित थी। पिछले दिनों पण्डित केशवदत्त त्रिपाठी ने इसका प्रकाशन किया है। 'शिवभक्ति-ग्रन्थमाला २४।५८ रामघाट बनारस' से यह मिल सकती है।

प्रस्तुत लेख में लेखक महोदय ने इसी पुस्तक के काव्य-कौशल का दिग्दर्शन-मात्र कराया है।

सृष्टि के आरम्भ से ही देखा जाता है कि प्रायः प्रत्येक प्राणी के जीवन में एक रागात्मिका प्रवृत्ति भी होती है। अन्य मनुष्यों पर सरस भाषा में उसके अभिव्यक्त करने का साधन साहित्य ही है। वह सभी भाषाओं में उपलब्ध है। भारत के आदर्श महात्मा और विद्वान् महाकवि भर्तृहरि ने बड़ी सरल भाषा में कहा है—"जो मनुष्य साहित्य और सङ्गीत को नहीं जानता, वह पशु है। पशु ही नहीं, निरा पशु है।"

साहित्य की अनूठी उक्तियाँ यदि सङ्गीत का पुट देकर सुनाई जायें तो श्रोता का चित्त बरबस बेक़ाबू हो जाता है। वह एक अद्भुत सुख के सागर में डूबने-उतराने लगता है। किसी रसिक ने कहा है—

> "उद्भट श्लोक-सङ्गीत-बालकीला प्रकामनैः।
> मनो न भिद्यते यस्य स योगी ह्यथवा पशुः॥

इसी लिए सभी भाषाओं में-विशेषकर संस्कृत-भारती में पद्य-साहित्य की बहुलता है। सुतराम् दोनों का योग सोने में सुगन्ध के समान है। परन्तु कवि और गायक सभी नहीं होते। वे तो विरले ही भाग्यवान् होते हैं।

कवि और उसका कर्म देश के लिए सदा नवीन-जीवन देता रहता है। कवि पाञ्चभौतिककाय से जगत् में न रहकर भी यशःकाय से सबका मङ्गल-विधान करता रहता है। वैदिक आचार्यों का तो सिद्धान्त है कि ईश्वर ही संसार को सन्मार्ग दिखाने के लिए कवि के रूप में अवतीर्ण होता है। वैदिक साहित्य में 'क्रान्तदर्शी' का नाम कवि है। सबसे ऊँची बात देखना और जानना ही साधारणतया क्रान्तदर्शीपद का अर्थ होता है।

कुशल कवि लौकिक सामग्रियों को ही दिखाकर कुछ ऐसी रचना कर देता है जिससे सहृदय-वर्ग संसार को सर्वथा भूलकर एक अलौकिक तत्त्व का समास्वादन करता है। यही रस है। इस प्रकार की रचनाओं को ही काव्य कहते हैं।

काव्य से धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष तक में प्रीति या तत्प्राप्ति आदि बतलाई गई है। इसमें मोक्ष तक पहुँचाना भाव-काव्य का ही काम अधिक संगत जँचता है। लोक में ऐसे काव्य और उनके कवि अमर हो गये हैं।

'स्तुति-कुसुमाञ्जलि' के रचयिता कविवर जगद्धर भट्ट ऐसे ही महापुरुषों या महाकवियों में हो गये हैं। संसार के कवि प्रायः रसिकों को ढूँढ़ा करते हैं और विधि से प्रार्थना किया करते हैं कि वह उन्हें अरसिकों से बचाये।

कवि जगद्धर भट्ट को ऐसी प्रार्थना करने का अवसर ही नहीं आया। उन्होंने पहले ही बुद्धिपूर्वक ऐसे श्रोता या आश्रयदाता को चुना है जिससे समस्त रसों और भावों की उत्पत्ति होती है अथवा जो स्वयं रस-स्वरूप—आनन्दस्वरूप है। कवियों की कवितायें प्रायः यश, अर्थ, यद्वा

व्यवहार-वेदन आदि के निमित्त हुआ करती हैं। पर आपकी कविता का उद्देश्य इनमें से एक भी नहीं है। वाग्देवताऽवतार आचार्य 'मम्मट' के शब्दों में आपका काव्योद्देश्य 'शिवेतरक्षति' है। *शिव से—सुख से, इतर की—दुःख की* क्षति—नाश हो जाने पर शिव अपने आप मिल जाता है अथवा शिव के मिल जाने पर दुःख का अपने आप नाश हो जाता है। अतएव बुद्धिमान् कवि ने अपनी कविता का विषय शिव को ही चुना है। आपने सोचा होगा यदि किसी अन्य देव को चुनता हूँ तो वह एकदेशी होगा, किन्तु शिव-तत्त्व सर्वदेशी है। वह ब्रह्मादि देव और रावणादि दानवों का समान पूज्य है। अतएव महादेव है, ईश्वर है। दूसरे आशुतोष हैं। तीसरे सृष्टि संहारकर्ता होने के कारण स्वयं अविनाशी हैं, अजर हैं, अमर हैं। इसलिए कवि ने शिव की ही स्तुति की है। साथ ही उस अजर और अमर की स्तुति करके आप भी यशःकाय से अजर और अमर हो गये हैं।

जगद्धर भट्ट का स्थितिकाल सन् १३४० के लगभग माना जाता है। आप काश्मीर के कवि थे। काश्मीर देश कविता, केसर और कामिनी की सुन्दरता के लिए प्रसिद्ध है। पहले काश्मीर भारत की प्रधान शारदा-पीठ था। कोई भी नई रचना जब तक उस पर काश्मीर के कवि और श्री शारदा की दृष्टिमुद्रा नहीं हो जाती थी, भारत के पण्डितमण्डल में आदर न पाती थी। काश्मीर कविता की जन्मभूमि है। न केवल कविता ही की, अपितु प्रकाण्ड पाण्डित्य की जननी होने का भी उसे गर्व रहा है। वाग्देवतावतार मम्मट और प्रतिभाशाली वैयाकरणों में अग्रपूज्य कैयट जैसे मानव-रत्नों का प्रादुर्भाव वहीं हुआ है। उसी आकर ने कविवर जगद्धर को जन्म दिया है।

काव्य की प्रशंसा में संस्कृत में कुछ सूक्तियाँ प्रचलित हैं। अनुभव करके देखने पर जगद्धर की कृति उन कसौटियों पर सोलह आने खरी उतरती है। अगर आपका मन उनके सुनने के लिए उत्सुक है तो उन्हें सुन भी लीजिए और 'स्तुति-कुसुमाञ्जलि' के एक-एक सूक्ति को उन पर परख लीजिए। पहली सूक्ति है—

"किं-कवेस्तस्य काव्येन धानुष्कस्य शरेण वा।
परस्य हृदि संलग्नं न घूर्णयति यच्छिरः॥

अर्थात् कवि की कविता और धन्वी का बाण वही उत्तम गिना जाता है जो भावुक और शत्रु के हृदय में पहुँचते ही उसके शिर को घुमा दे। दोष-रहित, गुण-रहित, *अलङ्कारयुक्त, रस-भावादि-सम्पन्न काव्य* को सुनकर अलौकिक आनन्द में मग्न—श्रोता का शिर वाहवाही के शब्दों के साथ विना हिले कभी न रहेगा। यही हाल बाण का भी है। खूब पैना तीर दुश्मन के कलेजे को छेदकर वेहोशी के साथ उसके शिर को घुमा ही देता है। दूसरी सूक्ति भारवि की है—

"अविदितगुणापि सत्कविभणितिः
कर्णेषु वमति मधुधाराम्॥"

कविता का आस्वाद-आनन्द उसके मतलब समझने पर ही आता है। यह बात प्रायः सभी के अनुभवगम्य है। परन्तु महाकवि भारवि, इससे कुछ आगे की बात कहते हैं। सत्कवियों की कृति में यह नियम लागू नहीं। उनकी कृति तो अर्थ आदि के बिना समझे ही केवल सुन लेने भर से अपूर्व आनन्द देती है।

अस्तु, जगद्धर भट्ट ने अपनी पुस्तक का नाम रक्खा है 'स्तुति-कुसुमाञ्जलिः'—स्तुतिरूप कुसुमों की अञ्जलि। कवि ने पुष्पों की अञ्जलि नहीं तैयार की, किन्तु शिव की स्तुति की, प्रशंसा या तारीफ़ की अवबोधिका एक पद्यसंहति तैयार की है। यह कृति मुक्तकबन्ध है।

भगवद्भक्तों का नियम है कि वे जब अपना इष्ट-आराधन करने लगते हैं तब पहले अपने मन को एकाग्र करते हैं; इसके लिए लोगों को बहुत बहुत अनुष्ठान करने पड़ते हैं। परन्तु कवीश्वर जगद्धर भट्ट का निराला ही ढङ्ग है। उन्हें इस बात की कोई परवा नहीं। वे अपनी कृति में उलटी गंगा बहा रहे हैं। आप पुस्तकारम्भ में गणेश, गौरी या गुरु को नमस्कारादि करने के सम्प्रदाय में न पड़कर पहले अपनी काव्य-सरस्वती को भगवान् शङ्कर के मन का निरोध करने में समर्थ सिद्ध कर रहे हैं। आपने स्तुति की प्रस्तावना को लेकर एक पद्य-पञ्चक इसी बात पर रच दिया है कि वह काव्य की समस्त विशेषताओं से सम्पन्न सरस्वती स्वामी के मन को मुग्ध करने में, उनके चित्त में प्रवेश कर जाने के लिए, उनसे अभीष्ट वर प्राप्ति के लिए, समर्थ हो।

आगे महाकवि ने अपने उपास्य स्वरूप की रूपरेखा खींची है। इसमें पाठक यह भी देखते चलें कि उसका उपास्य शिवतत्त्व भङ्ग-भवानी का गोला गटककर, छप्पन करोड़ की चौथाई देनेवाला ही है, अथवा इससे परे का कोई अन्य विलक्षण तत्त्व है। जरा ध्यान से सुनिए—

"कीचकादिकहरेष्विवाम्बरं बिम्बमम्बरमणेरिवोर्मिषु ।
एकमेव चिदनित्स्वनेकधा यच्चकास्ति तदुपास्महे महः।।'
१ स्तो० ८ श्लो० ९ पृष्ठ

आप कहते हैं, जो एक ही परम ज्योति-तत्त्व अनेक तरह से जड़ और चेतन सबमें प्रकाशित हो रहा है, व्यापक है, हम उसकी उपासना करते हैं। प्रकृत सूक्ति में बताया गया है कि जैसे एक ही व्यापक आकाश, अवकाश, एक प्रकार के पोले बाँसों में बैठकर उनकी अनेकता से वंशाकाश, घटाकाश आदि उपाधि से कई तरह का-सा प्रतीत होता है, अथवा एक ही सूर्य जल की लहरों में प्रतिबिम्बित होकर जैसे अनेक प्रकार का-सा दीखता है, उसी भाँति जो वह महः-ज्योति, ब्रह्मतत्त्व आकार, प्रकार, रूपादि से रहित है, किन्तु एक विलक्षण अनिर्वचनीय अस्तित्व को अवश्य रखता है, उसका हम ध्यान करते हैं।

इस उक्ति से सिद्ध हो जाता है कि कवि अद्वैत-सिद्धान्त का भक्त रहा है। इसके अतिरिक्त इस कथन से यह संशय भी हो सकता है कि जब वह एक ही ईश्वर सबमें व्यापक है तब कवि भी उससे अछूता नहीं। फिर क्या ईश्वर ही ईश्वर की उपासना करता है ? ऐसी स्थिति में यह विवाद उपस्थित हो जाता है—

"तुम्हीं हो मूरती में भी तुम्हीं फूलों में व्यापक हो !
भला भगवान् पर भगवान् को क्यों कर चढ़ाऊँ मैं॥"

अद्वैत-सिद्धान्त में जीव और ब्रह्म एक ही हैं। इस सिद्धान्त में जीव की सबसे ऊँची उन्नति अभेदाध्यवसान में—जीव-ब्रह्म की एकता के निश्चय में, है। यह निश्चय शत शत वेदान्तशास्त्र श्रवण-मनन निदिध्यासन-जन्य परिपक्व ज्ञान के बिना हो नहीं सकता! वह ज्ञान विधिवत् श्रौतस्मार्त-वेदस्मृति प्रतिपादित कर्म के करने से होता है। इसमें ही उपासना भी आ जाती है।

हमें सूक्ति के 'उपास्महे' पद पर कुछ कहना है जैसा कि विद्वान् व्याख्याकार ने इस पद्य के अर्थ के अतिरिक्त—वक्तव्यांश में वेदान्त की ठोस बात सुझाई है। 'उपास्य' कहने से भेद की प्रतीति होती है। उपासक, उपासना और उपास्य आदि बातें 'उपास्य' में घुली पड़ी हैं। प्रकृत में, कवि की वेदान्त परिनिष्ठित काव्योक्ति में, वेदान्त मार्गानुसार अभेद किंवा एकत्व-प्रसङ्ग में, एक ही पूर्ण परब्रह्म में वस्तुतः उपास्य और उपासक भाव बन नहीं सकते। अतः यहाँ 'त्वम्' पदार्थ 'जीव' तथा 'तत्' पदार्थ 'परमेश्वर की एकता'—अभेदज्ञान ही उपासना है। और यही 'महः' आदि अव्यक्त के से द्योतक पद देकर तथा वंशाकाश और जल-सूर्य-बिम्ब आदि उदाहरण देकर कवि ने स्फुट कर दिया है। इसी बात को आगे के श्लोक में भी बताया है—

तर्ककर्कशगिरामगोचरं स्वानुभूति समयैकसाक्षिणम् ।
मीलिताखिलविकल्पविप्लवं पारमेश्वरमुपास्महे महः ॥

अर्थ सरल है—जो महामहिमाशाली ईश्वर का 'महः' तर्क की कठोर वाणी से नहीं जाना जा सकता, जिसके अस्तित्व में एकमात्र आत्मा का—अपना अनुभव ही साक्षी है—गवाह है और जिसका ज्ञान हो जाने पर 'यह यह है या यह' आदि रूपात्मक समूचे विकल्प-जालों का विप्लव—उपद्रव एकदम नष्ट हो जाता है, अथवा जो—समस्त रूप रसादि की उपाधि से विवर्जित है—विशुद्ध निराकार स्वरूप है, हम उसकी उपासना करते हैं।

यों कई सूक्तियों में महाकवि ने बड़ी ओजःपूर्ण पदावली से चमत्कृत भावों के साथ हम किसकी उपासना करते हैं—बताया है। इसके आगे कवि ने स्तुति के 'विषय' और 'आश्रय' आदि को बड़े सुन्दर विरोधाभासालङ्कारों तथा कई प्रकार की विच्छित्तियों से गहरे विचार के साथ निर्दिष्ट किया है। कवि की इस उपासना के प्रसङ्ग की एक और भी हृदयङ्गम उक्ति हम सहृदय पाठकों के समक्ष रखने के लोभ को नहीं छिपा सकते! श्लोक नहीं, भाव ही सुनाते हैं। संसार में अँधेरे को दूर करनेवाली वस्तु उजाला है। यह तीन ही चीजों से हमें मिलता है। उनमें एक अग्नि, दूसरा चन्द्रमा और तीसरा सूर्य है। आश्चर्य है कि हृदय के अन्धकार को दूर करने में ये तीनों ही असमर्थ हैं। परन्तु ऐसे महा महाभाग्यशाली भी संसार में हैं, जिनका वह हृदयान्धकार, कवि के शब्दों में—'भानु', 'तुहिनभानु' और 'बृहद्भानु' से भी न दूर होकर किसी विलक्षण ही वस्तु से दूर होता है और क्षण मात्र में दूर

होता है। बस, हम उसी सर्वतेजोतिशायी 'महः' की उपासना करते हैं।

इसी प्रसङ्ग में एक जगह कवि ने अपने चित्त को बड़े हृदयगाही शब्दों से भगवान् शिव की ही स्तुति करने का उपदेश दिया है। ज़रा उस पादान्तयमक और सरस भावार्थसम्पन्न सूक्ति को भी पढ़िए—

यं भूपयन्ति कमनीयमहीनभोगाः
स्तुत्वा भवन्ति कृतिनो यमहीनभोगाः।
चित्तोचित तमपहाय महीनभोगाः
कर्त्तुं परत्र धृतसंयम ही न भो गाः॥

१ स्तो० २७ श्लो० २०वाँ पृष्ठ।

कितनी श्रवण-सुखद शब्द योजना है और कैसा अनायास सिद्ध यमक, साथ ही हृदय में एक साथ ही घर कर लेनेवाला मधुर अर्थ और भाव भी। इस जड़ क़लम में वह शक्ति कहाँ जो इस सूक्ति के माधुर्य को सोलहो आने पाठकों के सामने रख सके। फिर भी धृष्टता करके थोड़ा-सा भावार्थ प्रस्तुत कर देते हैं। कवि अपने संयमशील चित्त को समझाता है—हे चित्त! देख, जिस स्वभाव सुन्दर शिव को वासुकि आदि सर्पगण अपने शरीर से विभूषित करके-सजाके अपने जन्म को सफल कर रहे हैं। कृती, कुशल या पुण्यात्मा लोग जिसकी स्तुति करके इस लोक और परलोक के सब सुखों को प्राप्त करते हैं, उस सदाशिव को छोड़कर साधारण पुरुषों की झूठी तारीफ़ों से आकाश और पाताल के कुलावे भिड़ाना क्या ठीक है? अब नमस्कारात्मक द्वितीय स्तोत्र की भी एक वानगी देखिए। अनुभव कीजिए—शब्दालङ्कारगत वृत्त्यनुप्रास की कैसी छटा है—

"नमः समस्त सङ्कल्प-कल्पना-कल्पशाखिने।
विकासि-कलिकाकान्त-कलापाय स्वयंभुवे॥२॥

कैसे एक के बाद एक नाचते हुए नपे-तुले शब्द हैं—समस्त सङ्कल्प कल्पना कल्पशाखिने, और कितना कोमल है आलाप—विकासि कलिकाकान्त कलापाय, मानो कवि की शब्द भरी सुधा को अनायास ही जीतकर हँस रही है। अर्थ की बात कौन कहे, शब्द-योजना ही सुनकर दिल की कली खिल जाती है। यह समस्त स्तोत्र ऐसे ही नमः और नमस्ते से भरा पड़ा है।

कविवर जगद्धर बड़े मनमौजी मालूम होते हैं। एक बार आपसे किसी ने मुहूर्त पूछा। ब्राह्मण तो थे ही—गिनने लगे अश्विनी, भरणी-कृत्तिका। इसी प्रसङ्ग में आपको ख़याल बँध गया—क्यों न एक स्तुति अपने 'सदाशिव' की भी नक्षत्रमाला से कर दें। फिर क्या था। जुड़ने लगे शब्द—

श्रीकण्ठस्य सकृत्तिकार्त्तभरणी मूर्त्तिः सदारोहिणी
ज्येष्ठा भद्रपदा पुनर्वसु-युता चित्रा-विशाखान्विता
दिश्यादक्षतहस्त-मूलघटिताषाढा मघा लङ्कृता
श्रेयो वैश्रवणाश्रिता भगवतो नक्षत्रपालीव वः॥३॥

इन विशेषताओं से युक्त भगवान् शङ्कर की मूर्त्ति नक्षत्रों की पंक्ति की तरह आपकी रक्षा करे। इसके प्रतिपद का अर्थ आदि पुस्तक में ही देखने का प्रयास उठावें। तृतीय स्तोत्र में तथा अन्यत्र भी (आशीर्वादात्मक) ऐसी अनेक सूक्तियाँ हैं।

अब हम आपको कवि की एक 'विरोधाभास'-योजना का भी नमूना दिखा देना चाहते हैं। कवि नशे में जैसे मस्त है और ऐसे नशे में जो जीवन में जब से आया अन्त तक उतरा ही नहीं। उस नशे की—भक्ति के नशे की उड़ान पर सवार होकर कविवर ने तीनों लोकों के एकमात्र सम्राट् सदाशिव के दरबार में एक नालिश ठोक दी—

त्वां नीतिमान् भजति यः स भवत्यनीति-
मुक्तः स यो हि भवता हृदयान्न मुक्तः।
यस्ते रतोऽपचितये ऽपचितिं स नैति
तत्त्वां श्रितोऽस्मि भवमस्म्यभवो न कस्मात्॥११॥

इसके भावार्थ को भी ज़रा ध्यान से पढ़िए। आप कह रहे हैं—जो नीतिमान् आदमी आपका भजन करता है वह अनीति-नीति से रहित याने बदनीयत हो जाता है और जिसे आप अपने हृदय से नहीं मुक्त करते वह मुक्त हो जाता है तथा जो आपकी पूजा में लगा है वह कभी पूजा को प्राप्त नहीं होता—दुनिया में उसकी इज़्ज़त नहीं होती। यहाँ तक तो हुई औरों की बातें या मिसालें। अब जिस बात पर नालिश हुई है—ख़ास-दरबार में जिस पर दावा किया गया है—वह कहते हैं, तब बताइए मेरे साथ भी यही बर्ताव क्यों नहीं हुआ, मैं भव यानी संसार अथवा उसके कारण का आश्रय लेकर भी अभव-संसार आदि से हीन क्यों नहीं हो रहा? ठीक ही है,

जब आपके यहाँ अन्वेरखाता ही चल रहा है, तब वह पूरा उतरना चाहिए और मेरे साथ भी वही होना चाहिए!

इन उक्तियों में आपाततः—ऊपर से देखने पर विरोध की प्रतीति होती है। जैसे मीठी चीज़ कड़वी नहीं हो सकती, वैसे ही जो 'नीतिमान्' है वह नीतिरहित कैसे हो सकता है? और जो अमुक्त (बद्ध) है वह मुक्त कैसे गिना जा सकता है तथा पूजा करनेवाले की—भक्त की कभी दुर्गति नहीं हो सकती! इसी आधार पर भव में—संसार में लगा रहनेवाला कभी उससे हीन नहीं हो सकता। परन्तु जब इन शब्दों पर गम्भीर दृष्टिक्षेप होता है तब फिर विरोध नाम लेने को भी नहीं रह जाता। जैसे नीतिमान् उसका नाम है जो करने लायक़ और न करने लायक़ कामों को विचार कर न्याय से करता है। फिर तो ठीक ही है कि वह ऐसा पुरुष 'अनीति' है—ईति से रहित है, अर्थात् उपद्रवों से—मुसीबतों से ख़ाली रहता है। ऐसे ही जिस महान् पुण्यशाली को भगवान् हृदय से नहीं त्यागते वह आत्यन्तिक दुःखों से रहित हो जाता है और जो अपचिति—पूजा, भगवदाराधनादि श्रेष्ठ कार्य करता है उसकी अपचिति—अपचय-दुर्गति कभी नहीं होती—

एक सूक्ति 'दीनाक्रन्दन' स्तोत्र की भी सुन लीजिए—

"कामस्त्वयीव मयि निष्फलता मवाप
क्षिप्तो मयापि विफलो भवतेव कालः।
विध्वस्तधाम मम देव वपुस्तवेव
कष्टं शिवस्त्वमशिवस्तु विविक्ततोऽहम्" ॥११॥

भक्त-कवि की और एक सीनाज़ोरी देखिए! बराबरी भी करता जा रहा है और दीन भी बनता जा रहा है। कहता है—देवाधिदेव! आपकी ही तरह काम (मन्मथ और अभिलाषा दोनों का नाम है) मेरे विषय में भी निष्फल ही रहा। चाहे आपने उसे भस्म करके निष्फल बनाया और मैंने अपनी कङ्गाली से। पर जीत दोनों की रही! और आपने शरणागत की रक्षा के लिए काल (विष) को या यमराज को विफल बना दिया, मैंने भी अपने काल (समय) को खो दिया। मैं दोनों बातों में आपसे रत्तीभर नहीं हटा। तीसरी बात और सुनिए। आप 'विध्वस्तधाम' हैं तो मैं भी विध्वस्तधाम हूँ। भले ही आप अपने शरीर में विधु (चन्द्रमा) के तेज को धारण करके अथवा अपना घरबार कहीं न होने से विध्वस्तधाम हों और मैं भी दुनिया में एक टूटी कुटी के भी न होने के कारण अथवा—तेज से हीन होने के कारण ही सही 'विध्वस्तधाम' हूँ। तभी तो आप भी श्मशानों में—गश्त लगाते फिरते हैं और मैं भी गली गली मारा फिरता हूँ। मैं सब तरह आपके बराबर हूँ। फिर भी आप शिव हैं, सत्य हैं, सुन्दर हैं, और मैं? हाय! मैं तो दुर्दैववश फूटी तक़दीर से अशिव हूँ, जड़ हूँ, दीन हूँ।

देखा! कैसी टेढ़ी-मेढ़ी किन्तु सरस बातें बनाकर भक्त कवि, अपने भगवान् को वश में कर रहा है। धन्य हो कविराज! आपकी काव्य-सरस्वती ने उस स्थाणु में भी अवश्य ही प्रसादात्मक विकार उत्पन्न किया होगा। इस पद्य के अलङ्कार निर्णय को हम पाठकों पर ही छोड़ देते हैं। वे देखें कि इसमें 'जतुकाष्ठ' न्याय से या 'एक वृन्तगत फलद्वय' न्याय से शब्दश्लेष है या अर्थश्लेष! साथ ही यह भी देखें कि यहाँ शब्द शक्त्युद्भव या अर्थ शक्त्युद्भव अलङ्कारध्वनि क्या है। ऐसी समानता बोधक अनेक सूक्तियाँ हैं। समानता ही नहीं, बल्कि—'मैं तुम्हारा हूँ' और 'तुम मेरे हो' ऐसे दृढ़ विश्वासयुक्त आत्मीय सम्बन्ध की भगवान् भूतनाथ के साथ की गई तल्लीनता में भाव की पराकाष्ठा के शिखर पर आरूढ़ कवि ने साक्षात् उस ब्रह्मतत्त्व को 'निष्कृप' और 'निष्ठुर' आदि तक कह दिया है।

कहाँ तक लिखें, कवि की ऐसी मनोहर काव्य-चातुरी और भावपूर्ण सूक्ति से पुस्तक भरी पड़ी है। कवि ने अपने निश्छल 'दीनाक्रन्दन', 'करुणाक्रन्दन' और 'कृपणाक्रन्दन' आदि स्तोत्रों की एक से एक बढ़ रही सूक्तियों को साम्ब-शिव की सेवा में रखकर सहृदय-साहित्य-सेवियों के सामने कविता का आदर्श स्थापित कर दिया है।

हमारी इच्छा और भी कई सरस सूक्तियों पाठकों की सेवा में रखने की थी, पर कहाँ तक रखते! आख़िर आठ सौ तीन पृष्ठों, उन्तालीस स्तोत्रों और एक हज़ार चार सौ एकतालीस फुटकर सुभाषितों की पुस्तक में से कितना प्रस्तुत करते! अतः इसे यहीं समाप्त करते हैं।

बिहार में हिन्दी-उर्दू का द्वन्द्व

लेखक, पण्डित वेङ्कटेश नारायण तिवारी
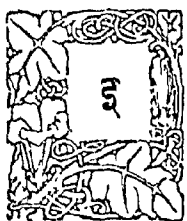
इस लेख के शीर्षक में प्रयुक्त हिन्दी-उर्दू शब्दों की व्याख्या कर देना सुविधाजनक प्रतीत होता है। 'हिन्दी' से संकेत है हिन्दी भाषा और लिपि का; और 'उर्दू' से 'उर्दू ज़बान और फ़ारसी रस्मेख़त का। जहाँ केवल हिन्दी लिपि की ओर संकेत होगा, वहाँ मैं नागरी-लिपि या नागराक्षर शब्द का प्रयोग करूँगा। जहाँ मुझे सिर्फ़ उर्दू-लिपि कहनी होगी, वहाँ उसे मैं फ़ारसी लिपि लिखूँगा। जिस लिपि में उर्दू लिखी जाती है, उसके कई नाम हैं। कुछ लोग उसे उर्दू-लिपि कहते हैं; कुछ उसे फ़ारसी-लिपि या ख़त के नाम से पुकारते हैं; और उसका तीसरा नाम अरबी-ख़त भी है।

हिन्दी-उर्दू के झगड़े के विभिन्न ऐतिहासिक पहलुओं को यदि हम सुलझाना चाहते हैं तो हमें इस द्वन्द्व के इतिहास को बिहार-प्रान्त में जाकर अध्ययन करना चाहिए, क्योंकि वहाँ इसकी क्रम-बद्ध गति का निरीक्षण आसानी से हो सकता है। सब क्रमगत तिथियाँ भी मिल जाती हैं। एक और भी कारण है, जिसकी वजह से युक्तप्रांत की तुलना में बिहार को, इस द्वन्द्व के विभिन्न पहलुओं की दृष्टि से, विशेष महत्त्व प्राप्त है। वह यह है कि अँगरेज़ी अमलदारी की बुनियाद बिहार में १७६५ में डाली गई थी। लेकिन युक्तप्रान्त में सन् १८५७ के बाद ही पूर्णरूप से अँगरेज़ी शासन का स्थापन मानना चाहिए। ९० वर्ष के इस अन्तर के कारण हिन्दी-उर्दू के मसले को ठीक ठीक समझने के लिए युक्तप्रान्त से बिहार कहीं अधिक व्यापक रूप में हमारे लिए उपयोगी सिद्ध होगा। इसी लिए, आइए, बिहार चले चलें और वहीं की पवित्र भूमि पर बैठकर हिन्दी-उर्दू की समस्या के विस्तृत इतिहास की मुख्य मुख्य घटनाओं पर निगाह दौड़ायें। यह याद रखने की बात है कि भारतीय इतिहास में बिहार का पद बहुत दिनों से अद्वितीय रहा है।

बिम्बसार, अजातशत्रु, चक्रवर्ती मौर्य्य, गुप्तवंश आदि ने अपने प्रताप और पराक्रम से बिहार-प्रान्त के नाम को सदियों तक भारतवर्ष के कोने-कोने में और, भारत के बाहर अनेक देशों में उजागर कर रक्खा था। वहीं बुद्ध भगवान् ने बुद्धत्व को प्राप्त किया, और जैन-धर्म के प्रवर्त्तक महावीर का जन्म वहीं हुआ। इन दो पुण्यात्माओं ने राज्यभाषा संस्कृत के स्थान में लोक-भाषा को अपनाया। भारतीय संस्कृति के निर्माण में बिहार ने जो काम किया है, वह जितना विस्तृत है, उतना ही अपने प्रभाव में चिर-स्थायी भी है। लोक-भाषा को राष्ट्रीय जीवन में महत्त्व देने और दिलाने में भी बुद्ध और महावीर के समय से बिहार ही को विशेष रूप से श्रेय प्राप्त है। उन्नीसवीं और बीसवीं शताब्दियों में भी हिन्दी-उर्दू की समस्या का अन्तिम निपटारा इसी बिहार प्रान्त की पवित्र भूमि पर हुआ और होगा। इस दृष्टिकोण से हम अपने पाठकों से यह विनम्र निवेदन करेंगे कि वे हिन्दी-उर्दू के मसले पर विचार करते समय बिहार के महत्त्व की उपेक्षा न करें। युक्तप्रान्त में उतना नहीं जितना बिहार का इस समस्या से सम्बन्ध है। गंगा-यमुना के तट पर नहीं, किन्तु शोण और गंगा के तटों पर हिन्दी-उर्दू की अन्तिम लड़ाई होगी और यदि बिहार में हिन्दी की हार हुई तो निश्चय जानिए कि हम युक्तप्रान्त में भी बाज़ी हार जायँगे। पंजाब और बिहार के दो पाटों के बीच में युक्तप्रान्त चक्की के दो पाटों के बीच चने के समान है। दोनों पाट जब चाहें तब चने को कुचल सकते हैं। इसी तरह पंजाब और बिहार की ठेलम-ठेल को युक्त प्रान्त अधिक समय तक सह न सकेगा वह भी इन दो पड़ोसी प्रान्तों की उर्दू-सेनाओं के पैरों के नीचे रौंद जायगा।

× × ×

पहली तिथि जिसे हमें इस संबंध में याद रखना चाहिए, सन् १७६५ ईसवी है। इसी साल दिल्ली के तख़्त से बंगाल प्रान्त की दीवानी का फ़रमान अँगरेज़ों को प्राप्त हुआ था। उस समय दिल्ली के सिंहासन पर शाह आलम आसीन थे। दीवानी का फ़रमान तो अँगरेज़ों को मिला, लेकिन एक शर्त के साथ। शर्त यह थी कि अँगरेज़ राज-काज में फ़ारसी भाषा और फ़ारसी-लिपि का व्यवहार ज्यों का त्यों बनाये रक्खेंगे। इसी लिए ईस्ट इंडिया कम्पनी ने बंगाल-

प्रान्त में फ़ारसी-भाषा और लिपि के पुराने पद को राज-काज में बहाल रक्खा। (यहाँ पर पाठकों की जानकारी के लिए यह कह देना चाहिए कि १७८५ में बंगाल-प्रान्त की दीवानी में आजकल के बंगाल, बिहार, उड़ीसा और असम का अधिकांश शामिल थे।) लेकिन अँगरेज़ों ने साथ ही साथ हिन्दी भाषा और लिपि को भी अदालती कामकाज में स्थान दिया ताकि, ईस्ट इंडिया कम्पनी की एक "आईन" के शब्दों में, 'तमामी आदमी' के 'बुझने' के वास्ते सुविधा हो। नीचे के उद्धरणों को कृपा-पूर्वक ध्यान से पढ़ जाइए और उनके उन अंशों को जिन्हें मैंने रेखाङ्कित किया है, सदा अपने सामने रखिए :—

(१) 'अदालत के वकील लोग और आदमी भी हजूरी आईन से वाकिफ हो सकते रहे इस वासते उस आईनों के छापे का कीताब में फारसी वो देसी भाखे वो अछर से उसका तरजमा फिहरीसत के ठेकाने से जीलद बनदी हो के छोटे वो बड़े के पढ़ने के वासते हरी एक अदालत के कचहरी में मौजूद रहेगा।'—अँगरेज़ी सन् १८०३ साल, १० आईन, ५ दफा।

(२) 'जीस वखत इंगलीसतान बादसाह वो उनके कौंसल के साहेब लोग के हजुर में मोकदीमे का अपील सदर दीवानी अदालत के साहेब लोग मनजुर करही चाहीऐ के उस मोकदीमे के बाबत के तमामी कएैदाद वो डीकरी ईआ हुकुम में गवाही लोग के जवानबनदी वो दसतावेजात का दो नकल अगर देसी जबान में रहै अँगरेजी जबान मे तरजमा कराऐ कै तैआर करावही,—अँगरेजी सन् १८०३ साल, ५ आईन, ३४ दफा।

(३) 'जो सीटामप समके दावे वो जवाब वगैरह कागज के उपर किया जाऐगा उसके ऊपर नीचे का मजमून फारसी भाखे वो अछर वो हीनदवी जूबान वो नागरी अछर मो खोदा जाऐगा।'—अँगरेजी सन् १८०३ साल ४३ आईन १३ दफा ३ तफसील।

(४) 'सुपरिनटनडंट साहब को लाजिम है के सीटामप कीआ हुआ कागज सब अदालत वगैरह के दफ़्तर के साहेब लोग ईआ जो कोई के तलब करने का अखतीयार रखे उसके पास सरबराह देने के आगे सरकारि खाजाने के ऊपर अँगरेजि जुबान वो हरफ मे टेरेजोरी वो खजाने आमरे का बात फारसी वो बंगला वो हिन्दी भाखे वो अछर मे खोदा जाएगा।'—अँगरेज़ी सन् १८०३ साल, ४३ आईन, १९ दफा।

(५) 'किसी को ईस बात का उजुर नहीं होऐ के उपर के दफेका लीखा हुकुम सभ से वाकीफ नहीं है हरी ऐक जिले के कलीकटर साहेब को लाजीम है के इस आइन के पावने पर ऐक ऐक केता इसतहारनामा निचे के तरह से फारसी वो नागरी भाखा वो अछर मे लीखाये कै अपने मोहर वो दसतखत से अपने जिला के मालीकान जमीन वो ईजारेदार जो हजुर मे मालगूजारी करता उन सभो के कचहरि में वो अमानि महाल के देसि तहसीलदार लोग के कचहरी लटकावही'—अँगरेजी सन् १८०३ साल, ३१ आईन, २० दफा।

ऊपर के अवतरणों को हमने श्री चन्द्रबली पांडेय-द्वारा लिखित और काशी नागरी प्रचारिणी द्वारा प्रकाशित दो पुस्तकों से लिया है। एक पुस्तक का नाम तो है 'कचहरी की भाषा और लिपि' और दूसरी का नाम है 'बिहार में हिन्दुस्तानी।'

ऊपर जो रेखांकित वाक्य हैं उनसे कम से कम दो बातें सिद्ध होती हैं। एक, फ़ारसी-लिपि के साथ-साथ कम्पनी की अदालतों में या दूसरे सार्वजनिक कामों में नागरी-लिपि का बेरोक-टोक प्रयोग होता था, केवल बेरोक-टोक प्रयोग ही नहीं होता था, बल्कि उसके प्रयोग के लिए कम्पनी की ओर से विशेष रूप से हिदायत भी की जाती थी। दूसरी बात जो सिद्ध होती है, यह है कि 'उर्दू-ए-मुअल्ला' के स्थान में देश की चलती ज़बान अर्थात् 'हिन्दी' का विशुद्ध प्रयोग होता था। उसमें फ़ारसी के जो शब्द आपको मिलते हैं उन्हें देखकर पाठकों को भड़क न जाना चाहिए, क्योंकि फ़ारसी उस समय की राज-भाषा थी। कई सौ बरस से हिन्दुस्तान के शाही दरबारों ने उसे हिन्दुस्तान में वही पद दे रक्खा था जो कुछ वर्षों पहले अन्तारराष्ट्रीय जगत् में फ्रेंच भाषा को प्राप्त था। इसलिए यह स्वाभाविक था कि उन अदालतों के अमले जिनमें फ़ारसी का चलन था, यदि फ़ारसी के शब्दों को भी हिन्दी विज्ञप्तियों आदि, में प्रयोग करते। फिर हिन्दी-भाषा का हम कोई संकुचित अर्थ नहीं लगाते। उर्दू के विपरीत हिन्दी तो सभी भाषाओं

के शब्दों को सदा से अपनाती रही है। उर्दू को तो उसके अहले-ज़बान एक अत्यन्त संकुचित ढाँचे में ढालने को सदा लालायित रहे हैं। यही कारण है कि उर्दू कभी लोक-भाषा न हो सकी। वह तो केवल इम्तियाज़ी लोगों के जत्थे की ज़बान समझी जाने लगी। जब हम हिन्दी-भाषा का नाम लेते हैं, उस समय हम उसके शब्द-भाण्डार में उन शब्दों को भी शामिल कर लेते हैं जो परदेशी हैं। किन्तु उर्दू-वालों ने कभी यह न किया कि वे स्वदेशी हिन्दी और संस्कृत के शब्दों को भी अपनी ज़बान के शब्द मानें। वे तो इसी को सिद्ध करने की उधेड़-बुन में लगे रहे हैं कि उर्दू कुलीन मुसलमानों या तवायफ़ों की ज़बान बनी रहे, जिसे उसे हिन्दू या साधारण मुसलमान बोल भी न सके। परिणाम यह हुआ कि हिन्दी लोक-भाषा के रूप में पैदा हुई और वह राष्ट्र-भाषा हो गई। इसके विरुद्ध, उर्दू देहातों से कोसों दूर भागती रही। बड़े-बड़े शहरों के चन्द मुसलमानों के मज़ाक की वह चीज़ हो गई। आज दिन भी उर्दू और हिन्दी में यही भेद है। उत्तरी भारत का राह-चलता आदमी हिन्दी बोलता है। उर्दू का परमित क्षेत्र सिर्फ़ शहरों और क़स्बों के पढ़े-लिखे मुसलमानों के बैठक-खानों की चहारदीवारियों तक ही सीमित है। ऊपर दिये हुए अवतरण नं० (५) को देखिए। उसमें साफ़ तौर से कहा गया है कि 'नागरी भाखा वो अछर' का प्रयोग होना चाहिए।

*　　*　　*

सन् १७६५ ईसवी के बाद, उपर्युक्त अवतरणों से सिद्ध है, बिहार में फ़ारसी-भाषा और लिपि के साथ साथ हिन्दी-भाषा और नागरी-लिपि का सरकारी राज-काज में समान रूप से चलन था। यहाँ पर फिर दोहरा देना चाहिए कि उस समय के बंगाल-प्रान्त में आज-कल का बिहार भी शामिल था। इस आधुनिक बिहार-प्रान्त का जन्म आज से तीन साल पहले हुआ है। अब आइए, ७२ साल की अवधि को लाँघकर, सन् १८३७ ई० में आ जायँ, क्योंकि इस साल का हमारे मसले से घनिष्ठ सम्बन्ध है। इसका विशेष महत्त्व भी है, क्योंकि इसी वर्ष बोर्ड-आफ़ डाइरेक्टर्स ने भारत में गवर्नर-जनरल को यह आदेश दिया कि बंगाल, बिहार, उड़ीसा और युक्तप्रान्त में फ़ारसी भाषा और लिपि का प्रयोग बन्द कर दिया जाय, और सरकारी राज-काज देशी भाषा में हो, ताकि जनता सरकारी और अदालती मामलों को आसानी से समझ सके। बोर्ड आफ़ डाइरेक्टर्स की आज्ञा का अनुवाद देना यहाँ पर अनावश्यक है। इसका सार यह था कि फ़ारसी-भाषा सरकारी भाषा के पद से हटा दी गई और उसका स्थान अँगरेज़ी तथा भारतवर्ष की प्रान्तिक भाषाओं को दिया गया। इसी लिए मैंने ऊपर कहा है कि सन् १८३७ ईसवी एक परम महत्त्व-पूर्ण वर्ष है। इसी साल फ़ारसी-भाषा का इस देश से क़ानूनन बहिष्कार हुआ और उसका स्थान मिला प्रान्तिक भाषाओं को——लेकिन महज़ काग़ज़ पर। "प्रभु सोची नहीं होत है, गण सोची बलवान"। गण का यहाँ अर्थ है अमला। सरकारी आज्ञा का पालन सिर्फ़ बंगाल-प्रान्त में हुआ। वहाँ पर बँगला-भाषा और बँगला-अक्षरों को फ़ारसी-भाषा और फ़ारसी-लिपि का स्थान मिल गया। उस समय के बंगाल-प्रान्त के अन्तर्गत बिहार और उड़ीसा में फ़ारसी का स्थान बिगड़ी हुई फ़ारसी अर्थात् उर्दू को मिल गया और फ़ारसी-लिपि ज्यों की त्यों पूर्ववत् चालू रही। न उड़ीसा से और न युक्तप्रान्त ही से इस समय हमारा यहाँ कोई सम्बन्ध है। इस लेख का सम्बन्ध केवल बिहार से है। अतएव, वहीं की बात हम यहाँ कहेंगे। जिस बिहार में सन् १८३७ ईसवी के पहले 'नागरी भाखा वो अछर का राज-काज में निर्विघ्न प्रयोग होता था, वहाँ सन् १८३७ के बाद 'नागरी भाखा वो अछर' का बहिष्कार कर दिया गया, यद्यपि आज्ञा हुई थी देश निकाले की फ़ारसी-भाषा और लिपि के लिए! अमला ने सरकारी आज्ञा की अवहेलना की और अवहेलना की जान-बूझ कर, क्योंकि फ़ारसी-लिपि का उसको अभ्यास था। फिर वह हिन्दी-लिपि को क्यों अपनाने लगा? फ़ारसी-भाषा का भी उसे ज्ञान था, इसलिए उसने नागरी-भाषा के स्थान में हिन्दी के अव्ययों, क्रियापदों और सर्वनामों को छोड़कर बाक़ी सब शब्द फ़ारसी-भाषा से उधार लेकर चालू कर दिये। नतीजा क्या हुआ? इसकी यदि आप खोज करना चाहते हैं तो सन् १९०७ के एक गवाह के नीचे दिये हुए मुचलके की भाषा की तुलना आज-कल की अदालती भाषा के नमूनों से कर ली लीजिए।

(अ) सन् १८०७ ईसवी के आईन ९, दफ़ा १५, तफ़सील ३ में दिये हुए गवाह के मुचलके की अर्ज़ी—

'मैं फलाना रहनेवाला फलानी जगह का हूँ जो फलाना फरयादी रहनेवाला फलानी जगह का फलाने आसामी रहनेवाले फलानी जगह के नाम में नालिश की अरजी गुजरानी और मुझको अपने मोकद्दमें का गवाह मोकर्रर किया है इसलिए एकरार करता हूँ वो मोचलका लिख देता हूँ के फलानी तारीख फलाने जिले या शहर के मजिसटरट साहब के हुजूर में हाजिर होकर गवाही दूँगा और जिस सूरत में के हाजिर न हूँ जेतना डाँड मुकरार ठहरे जिसके देने का हुक्म मजिसटरट साहब की तरफ से हो और जेतना खरच के मेरी गैरहाजिरी से सरकार की तरफ से पाया जावे वह सब अपने जिममे पर लाजिम समझूँ इसलिए यह दसतावेज मुचलके के तौर पर लिख दी के वक्त पर काम आवे। लिखा तारीख फलानी सन फलाना मोताबिक फलाने का'।

(ई) आजकल की अदालती भाषा के नमूनेः—

(१) नोटिस बनाम नाबालिग मुद्दालेह और वली बनिस्बत दर्खास्त वास्ते बहालाबली की वली वगरज़ मोकदमे के।

(२) वही रोज़ वास्ते इन्फ़ेसाल नातिक मुकदमा हाज़ा के मुऐयन है।

(३) कुरकी कब्ले तजवीज साथ हुक्मे तलबी जमानत वास्ते अदाय डिगरी के।

(४) जिनको एतराज़ बनिस्बत क़िस्म या तायदाद हक़ीयत जो दावी किये हुए मजकूर मुवाफ़िक़ तफ़-सील ज़ैल के हो उसको चाहिए कि बयान तहरीरी अपने उज्रों का दे।

(५) आइन्दा वास्ते समायत मोक़दमे के मोकर्रर की गई लेहाजा बजरिए इसके इश्तेहार दिया जाता है कि शख्से मोतवफ़ा का अगर दूसरा कोई शखस वारिस हो या दूसरा कोई शखस उसके मैतरके का मुस्तहक़ हो या अगर कोई शखस साऐल का इस्तदोआए पर एतराज़ करना चाहता है तो वह तारीख मोकर्रर मजकूर में खुद या बजरिए वकलाए के हाजिर होकर एतराज़ अपना पेश करे और तारीख मजकूर पर अपना दस्तावेज़ और गवाहान जो वह अपने एतराज़ की ताईद में पेश करना चाहता हो पेश करने पर आमादे रहे।'

× × ×

ऊपर दिये हुए अवतरण (अ) और (ई) इस बात के प्रमाण हैं कि सन् १८३७ ई० के बाद यद्यपि १०३ साल बीत गये किन्तु फ़ारसी-भाषा का बहिष्कार बिहार की अदालतों से आज तक न हो सका और न प्रान्त की हिन्दी को वह पद ही मिल सका जो उसे सन् १८३७ ईसवी की आज्ञा के अनुसार १०३ वर्ष पहले मिल जाना चाहिए था या जो उसे सन् १८३७ ईसवी के पहले बिहार में प्राप्त था। कवि ने ठीक ही कहा है कि हरि से हरिजन का पद बड़ा है, और यह भी ठीक ही है कि देवी से कहीं बड़ा स्थान है उसके पुजारी का। कहने को तो लोग कहते हैं कि राजा करे सो न्याय। लेकिन हम आज राह चलते यह देखते हैं कि यह बात ग़लत है। राजा के गण अर्थात् उसके मातहत नौकर-चाकर जो चाहते हैं वही होता है। यही बात बिहार में हिन्दी के सम्बन्ध में भी ठीक उतरती है। राजा चिल्लाता ही रहा, पर उस बेचारे की किसने कब सुनी! इसी लिए उर्दू के रूप में फ़ारसी-भाषा और फ़ारसी-लिपि सन् १८३७ के बाद बिहार की राज-भाषा और लिपि बनी रहीं।

* * *

अब तीसरी तिथि को लीजिए। सन् १८३७ ई० के बाद सन् १८७१ ईसवी में आ जाइए। इस साल बंगाल के लेफ़्टिनेंट गवर्नर, सर जार्ज कैम्पबेल, ने निम्न घोषणा की—

'फ़ारसी भाषा जो हिन्दुस्तान के पुराने अधिकारियों की भाषा थी, समष्टि रूप से त्याग दी गई है। सरकारी भाषा के पद से (बंगाल के लेफ़्टिनेन्ट गवर्नर के पद पर) हिन्दुस्तान में आने से पूर्व, यह भाषा त्याग दी गई थी ....। मेरी धारणा थी कि यह भाषा बिलकुल निषिद्ध हो चुकी है और हमें ऐसा करने में सफलता प्राप्त हुई है। लेकिन पिछले दिनों जब मुझे बिहार जाने का अवसर मिला तब मुझे यह देखकर ताज्जुब हुआ कि यह दोगली (फ़ारसी-मिश्रित उर्दू) भाषा फल-फूल रही है और हमारे क़ानूनों में उसके शब्दों का प्रयोग होता है और मदरसों में भी उसकी शिक्षा का प्रबन्ध है.........। लेकिन बिगड़ी हुई अरबी और बिगड़ी हुई फ़ारसी के मेल से जो भाषा गढ़ी गई है......जिसे उर्दू कहते हैं, कदापि इस योग्य नहीं कि उसकी शिक्षा

दी जाय। .....मैंने ऊपर जो कुछ आदेश दिये हैं उनका पालन सरकारी कर्मचारियों पर लागू है, जिसमें वह इतने दफ़्तरों में प्रचलित भाषा के अतिरिक्त दूसरी भाषा का प्रयोग न होने दें।......मुझे आशा है कि हाईकोर्ट भी इस मामले में हमारा हाथ बँटायेगी।"

फिर भी कुछ सुनवाई न हुई। छोटे लाट जितना जी चाहा चिल्लाते रहे, लेकिन सरकारी दफ़्तरों के कर्मचारियों ने किया वही जो उनके मन भाया। सन् १८७४ ईसवी और सन् १८७५ ईसवी में ये आज्ञायें दोहराई गईं और आज्ञा दी गई कि सम्मन, सूचनायें, विज्ञप्तियाँ हिन्दी में हों; सरकारी काग़ज़ पत्र हिन्दी में रक्खे जायँ; अर्ज़ीदावे हिन्दी या उर्दू अक्षरों में फ़रियादी की इच्छा के अनुसार लिये जा सकते हैं और हिन्दी लिपि का ज्ञान होना पुलिस के मातहत अफ़सरों के लिए अनिवार्य कर दिया जाय। परन्तु फिर भी कोई सुनवाई न हुई। अतएव, सन् १८८० ईसवी के मध्य में बंगाल के तत्कालीन लेफ़्टिनेंट गवर्नर, सर ऐशले ईडन, ने आज्ञा निकाली कि पटना और भागलपुर की कमिश्नरियों में जनवरी १ सन् १८८१ से सिर्फ़ नागरी अक्षरों ही का प्रयोग होगा और यह भी आज्ञा दी कि किसी और लिपि का प्रयोग अदालतों में न होगा। इस तरह सन् १८८१ ईसवी से उर्दू भाषा और फ़ारसी-लिपि के स्थान में हिन्दी भाषा और कैथी-लिपि को विहार में स्थान मिल गया।

* * *

अब आइए, सन् १९२९ ईसवी को लें। इस साल बिहार की प्रान्तीय हुकूमत ने एक घोषणा निकाली कि १३ साल के लिए पटना-कमिश्नरी की सिर्फ़ दीवानी कचहरियों में उर्दू लिपि का प्रयोग, परीक्षा के तौर पर, किया जाय। लेकिन इससे उर्दूपरस्त सन्तुष्ट न हुए। वे निरन्तर इस बात की कोशिश करते रहे कि प्रान्त भर की दीवानी और फ़ौजदारी अदालतों में उर्दू-लिपि का प्रचार हो जाय। इसके बाद हुआ क्या? डाक्टर अब्दुल हक़ के अख़बार की ज़बानी पाठकों को इसकी कहानी हम सुना देना चाहते हैं।

हक़ साहब लिखते हैं—

'मई सन् १९३७ ई० में हुकूमत ने इन मुतालबों को किसी कदर तरमीम के साथ मंज़ूर कर लिया और यह क़रार पाया कि अर्जियाँ और बयानात तहरीरी वग़ैरह उर्दू हिन्दी दोनों ख़तों में दाखिल किये जायँ याने यह कि अगर अर्ज़ी उर्दू में है तो उसकी नक़ल हिन्दी में, और अगर हिन्दी में हो तो उसकी नक़ल उर्दू में हो। अल्बत्तः संथाल परगनः और क़िस्मत छोटानागपुर को यह रिआयत हासिल न हुई।

'हामियान हिन्दी की तरफ़ से इसकी बड़ी मुख़ालिफ़त हुई और हुकूमत ने दूसरा एलान शाया किया जिसकी रू से एलान साबिक मंसूख़ हो गया और यह हुक्म जारी हुआ कि उर्दू रस्मख़त कुल अदालतों और सरकारी दफ़्तरों में जहाँ जहाँ पहले कभी रायज था, इख़्तयारी रस्मख़त होगा। क़िस्मत छोटानागपुर और संथाल परगनः इस हुक्म से मुस्तसना हैं।

'इसके चन्द रोज़ बाद ही हुकूमत की तरफ़ से एक एलान शाया हुआ कि अगर कोई अर्ज़ी या तहरीर बयान उर्दू में दाखिल हो तो फ़रीक़ मुख़ालिफ़ के मुतालिबे पर उसे उसकी हिन्दी नक़ल मिलनी चाहिए। इसका मतलब आम तौर पर यह समझा गया कि यह रिआयत सिर्फ़ हिन्दीवालों के लिए हैं, उर्दूदाँ इससे महरूम रहेंगे। इस ग़लतफ़हमी को रफ़ा करने के लिए १३ जुलाई सन् १९३७ ई० को एक और एलान शाया हुआ, जिसका मंशा यह था कि यह रिआयत सिर्फ़ हिन्दीदाँ फ़रीक़ ही के लिए नहीं, बल्कि इसमें उर्दूदाँ भी शामिल हैं। लेकिन यह मामलः हुकूमत के तय करने का नहीं है। हाईकोर्ट इसका फ़ैसला करेगा, जिसकी तवज्जह इस तरह मुतातिफ़ कराई गई है। (उर्दू, जुलाई सन् १९३७ ई०, पृ० ६५४–५)

जिन पाठकों ने इस लेख को यहाँ तक पढ़ने की कृपा की है उनसे कुछ अधिक कहने की ज़रूरत नहीं दिखाई देती। बिहार में मुसलमानों की जन-संख्या लगभग १२ फ़ीसदी है। वहाँ की अदालती भाषा के रूप में बिगड़ी हुई फ़ारसी का चलन है। फ़ारसी-लिपि के भी प्रचार के लिए ज़मीन-आसमान के कुलावे एक कर दिये गये और अन्त में उनका वैकल्पिक चलन स्वीकृत हो गया। इसी तरह युक्तप्रान्त को लीजिए। यहाँ की मुस्लिम आबादी लगभग १५ फ़ीसदी है। उर्दू का यहाँ सरकारी दफ़्तरों में बोलबाला है। सन् १९०० ईसवी से हिन्दी-लिपि के वैकल्पिक प्रयोग की आज्ञा हो गई है। लेकिन अमलों की कृपा से वह आज्ञा महज़ काग़ज़ी आज्ञा है। बिहार और युक्तप्रान्त से पंजाब की तुलना कीजिए। पंजाब के सब सम्प्रदायों की भाषा पंजाबी है, उर्दू नहीं। सिक्ख और हिन्दू गुरुमुखी और नागरी-लिपिओं को अपनी लिपियाँ मानते हैं लेकिन वहाँ पर केवल उर्दू-भाषा और फ़ारसी-लिपि का सरकारी दफ़्तरों में चलन है। पंजाब में अल्पसंख्यकों की भाषा और लिपि के संरक्षण की किसी को कोई चिन्ता नहीं है। युक्तप्रान्त में बहुसंख्यकों की भाषा और लिपि को सरकारी दफ़्तरों में कोई स्थान नहीं है। बिहार में अल्पसंख्यकों की भाषा समस्त प्रान्त की भाषा मान ली गई और उनकी लिपि को वैकल्पिक अधिकार मिल गया है। इसके बाद 'हिन्दुस्तानी' के नाम से हिन्दी की हत्या का कांड वहाँ रचा गया। उसका ज़िक्र यहाँ पर करना ठीक नहीं है। आज के लिए इतना ही क़िस्सा काफ़ी है।

कथा विसर्जन होत है,
सुनो वीर हनुमान।

जाग्रत नारियाँ

भारतीय स्त्रियाँ किस आदर्श पर चलें ?

लेखिका, श्रीमती कमला श्रीवास्तव

वैसे तो विलायत की स्त्रियों में जागृति उन्नीसवीं शताब्दी के आखिर में शुरू हो गई थी किन्तु जन-साधारण पर उसका कोई विशेष प्रभाव न पड़ा। राजनैतिक क्षेत्र में तो स्त्रियों का कोई अधिकार नहीं था। यही हालत बीसवीं सदी के प्रारम्भ में भी रही; मगर सन् १९१४ में योरपीय महासमर छिड़ जाने के कारण परिस्थिति बहुत कुछ बदल गई। उस युद्ध में भीषण जन-संहार हुआ, जिसके फलस्वरूप पुरुषों की कमी योरप के क़रीब सभी देशों में भीषण हो गई। सबसे अधिक इसका प्रभाव फ्रांस पर पड़ा। युद्ध-काल ही में बहुत-से काम, जो उसके पहले केवल पुरुष लोग ही किया करते थे, अब स्त्रियों के सिर आ पड़े। यद्यपि उसके पहले स्त्रियों ने वैसी ज़िम्मेदारी का कार्य कभी नहीं किया था फिर भी जिस मुस्तैदी के साथ उन्होंने अपना कर्त्तव्य पालन किया उसकी सराहना सारे संसार ने की।

आगरा की कुमारी वेदकुमारी अरोड़ा संगीत के भातखंडे विश्वविद्यालय की 'संगीत-विशारद' परीक्षा में द्वितीय उत्तीर्ण हुई हैं।

युद्ध के समाप्त होने पर स्त्रियों की माँग स्वाधिकारों के लिए प्रबल हो गई और उनकी माँगों की अवहेलना पुरुष लोग अधिक न कर सके। इस तरह से यह कहना पड़ेगा कि नारीसमाज के उत्थान के लिए एक वृहत् योरपीय महायुद्ध की आवश्यकता पड़ी। किन्तु जब उनकी विजय हुई तब पूरी तरह से हुई। शुरू में औरतें केवल वोट देने का अधिकार चाहती थीं मगर जब उन्हें वोट देने का अधिकार प्राप्त हुआ, तब अन्य राजनैतिक और सामाजिक क्षेत्रों में भी उनकी विजय-पताका फहरा उठी। जो कुछ भी रुकावटें उनके मार्ग में थीं, एक एक करके दूर होने लगीं। बहुत-सी नौकरियाँ और पेशे जिनमें, पहले औरतें नहीं सम्मिलित हो सकती थीं, अब उनमें उनके जाने के लिए कोई बाधा न रह गई। उन्हें अधिकार मिल गया

कि वे पुरुषों की बराबरी करती हुई किसी भी क्षेत्र में पुरुषों से होड़ कर सकती थीं। इन अधिकारों को प्राप्त कर स्त्रियाँ चुपचाप नहीं बैठीं। उन्होंने उसका पूरा फ़ायदा उठाया और आज दिन हम लोग देखते हैं कि डाक्टर, वकील, उपदेशक, पुलिस, खज़ांची, टाइपिस्ट, गाइड, सिक्रेटरी, शोफर तथा अन्य विभागों में स्त्रियाँ काम कर रही हैं। अभी हाल ही में हंगरी में एक फाँसी देनेवाले की जगह ख़ाली हुई थी। उस जगह को भरने के लिए विज्ञापन निकाला गया था। जो दरख्वास्तें आई थीं उनमें दो औरतों की भी थीं।

फ़ैज़ाबाद ज़िले की सहकारी कान्फ़्रेन्स के सिलसिले में होनेवाले 'चर्ख़ा-दंगल' का एक दृश्य।

इन सब बातों पर विचार करने से यह कहना पड़ेगा कि स्त्री-समाज ने काफ़ी तेज़ी के साथ आगे की ओर क़दम बढ़ाया है। योरप में औरतों की स्वतन्त्रता देखकर भारत में भी पढ़े-लिखे स्त्री-समाज में काफ़ी चहल-पहल हो उठी है। यहाँ भी औरतें अपने 'हक़ों' की माँग ज़ोरों से पेश कर रही हैं।

आशा भी है कि हिन्दुस्तान, जो आजकल के ज़माने में पश्चिमीय देशों की नक़ल करने में बहुत आगे बढ़ा हुआ है, शीघ्र ही औरतों की बहुत-सी माँगों को पूरा ही करेगा। ऐसा लिखने के यह माने कदापि नहीं हैं कि स्त्रियों की सब माँगें अनुचित हैं। किन्तु यह बताना आवश्यक है कि जब भारतवर्ष की स्त्रियाँ पश्चिमी देशों को दृष्टि में रखते हुए अपनी माँगें पेश करें उस समय उन्हें चाहिए कि पश्चिमीय देशों की औरतों का इस समय पर क्या हाल है इसका भी ध्यान अवश्य रक्खा करें।

विलायत के समाज में हर तरह से पुरुषों के बराबरी का हक़ प्राप्त करके वहाँ की स्त्रियों का क्या हाल हुआ है यह किसी से भी छिपा नहीं है। उन हक़ों के मिलने के पहले स्त्रियों को वोट देने और हर जगह नौकरी करने का अधिकार भले ही न रहा हो मगर घर के अन्दर उनका अधिकार पूर्ण था। वे बराबरी का दावा करते-करते अपना पुराना कर्त्तव्य भी भूल गईं। फल यह हुआ कि वे घर की स्वामिनी न बनी रह सकीं। यानी एक अधिकार प्राप्त किया तो दूसरी तरफ़ हज़ारों वर्ष का प्राप्त किया हुआ अधिकार खो बैठीं।

सबसे पहले हमें वहाँ की उन अविवाहिता स्त्रियों के बारे में देखना चाहिए जिन्हें समाज ने दूसरों की नौकरी करने की आज़ादी दे दी है। इसमें शक नहीं है कि स्त्रियों को कहीं भी नौकरी करने में समाज उसे बुरा नहीं समझता मगर समाज अपने को अभी इस योग्य नहीं बना सका है कि जिससे वे बेचारी नौकरी करनेवाली औरतें अपना निजी जीवन सुखपूर्वक व्यतीत कर सकें। औरतों को नौकरी मिलती तो अवश्य है मगर जो काम उन्हें दिया जाता है वह मातहती का होता है। उनको ऐसा काम नहीं सौंपा जाता जिसमें अपनी ज़िम्मेदारी पर वे अपनी योग्यता का पूर्णरूप से परिचय दे सकें। यद्यपि स्त्रियों को वही काम सौंपा जाता है जो कि अन्य किसी पुरुष को, तब भी स्त्रियों को तनख़्वाह पुरुष से कम ही दी जाती है। यह तो अकसर देखा जाता है कि ऊँची शिक्षा प्राप्त की हुई युवतियाँ सैकड़ों की तादाद में काम सीखने के लिए कारख़ानों का चक्कर लगाया करती हैं कि उन्हें किसी तरह थोड़ी ही तनख़्वाह पर काम करने का मौक़ा दिया जाय। इन कारख़ानों के स्वामी तथा संचालकगण प्रायः ऐसे लोग होते हैं जो शिक्षा, दुनियादारी और बुद्धि में उन औरतों में से

कुमारी कमला गुल्टी (बाईं ओर) और कुमारी करुणा स्याल को फ़िरोज़पुर के आर० एस० डी० कालेज की हिन्दीविवादप्रतियोगिता में क्रमशः प्रथम और द्वितीय पुरस्कार मिले हैं।

कितनों ही से गये बीते होते हैं। समाज की इन ज़्यादतियों से स्त्रियों में निराशा का भाव आजाना स्वाभाविक है।

दस साल पहले वहाँ की हर एक युवती की यह इच्छा रहती थी कि वह घर छोड़कर अपने जीविका-निर्वाह के लिए कहीं कोई नौकरी कर ले—चाहे वह होटल की वेटरेस् या टायपिस्ट ही की जगह क्यों न हो; लेकिन आजकल जीवन में ठोकरें खाने के बाद उनमें से बहुत-सी ऐसी हैं जो मानती हैं कि इससे तो अच्छा यही था कि वे घर का काम-काज देखतीं और एक सुघड़ गृहिणी की तरह अपने घर की स्वामिनी बनी रह कर अपने पति और बच्चों की देख-भाल में अपना जीवन व्यतीत करतीं। जीविका उपार्जन करने के लिए दूसरों की नौकरी करने से घर की मालकिन बनना लाख दर्जे अच्छा था। दफ़्तर की गुलामी से रसोईघर पर हुकूमत करना कहीं अच्छा था। ऐसे विचार केवल ख़याली पुलाव ही नहीं हैं। इधर कुछ दिनों से कारख़ानों और दफ़्तरों में नौकरी करने के लिए आनेवाली दरख़्वास्तों में स्त्रियों की दरख़्वास्तें बहुत कम दिखाई पड़ने लगी हैं।

मगर घर की ओर फिर से लौटना भी वहाँ की स्त्रियों के लिए एक विकट समस्या हो उठी है। घर अब वे घर ही नहीं रह गये जिन्हें बीसवीं शताब्दी की आधुनिकता की धुन में वे लोग छोड़ कर चली गई थीं।

इस बीस साल के अन्दर उनके घरों के वातावरण में एक प्रकार की क्रान्ति-सी हो चुकी है। उस क्रान्ति के फलस्वरूप मामूली और औसत दर्जे के घरों में गृहिणी का आर्थिक दृष्टि से स्थान एक हिसाब से सर्वथा लोप हो चुका है। पहले तो स्त्रियाँ पुरुष के जीवन का एक अंग समझी जाती थीं। उनका घर में अपना एक विशेष स्थान था जिसका आर्थिक और सामाजिक दृष्टि से एक बड़ा महत्त्व था। लेकिन समय के फेर ने, आधुनिकता ने, बराबर का दर्जा देते देते औरतों को इस जगह पर पहुँचा दिया कि घर में स्त्रियों का दर्जा गृहिणी का न रह कर कुछ और ही हो गया है।

महिला-ट्रेनिङ्ग-कैम्प की स्काउटिंग-शिक्षा-प्राप्त कुछ महिलायें अपनी झोपड़ियों के बाहर खड़ी हैं।

घर चलाना पहले एक तरह का हुनर समझा जाता था। उन्नीसवीं शताब्दी में गृहिणी का क़रीब-क़रीब सारा दिन और उसकी सारी शक्ति, घर के काम-धंधे के संचालन में व्यतीत हो जाती थी। किन्तु उसके विपरीत कुछ तो वैज्ञानिक आविष्कारों ने और कुछ वातावरण के परिवर्तन ने घर का संचालन बिलकुल आसान कर दिया है। अब गृहिणी को न चूल्हा फूँकने की ज़रूरत है और न कमरों को साफ़ करने की। गरमी के लिए गैस-कम्पनी से गैस मिल जाती है, रोशनी का काम बिजली के बटन दबाने से चल जाता है। पानी म्युनिसिपैलिटी के नल से आता है। अगर वह किसी होटल या 'सर्विस फ़्लैट' में नहीं रहती तो खाना बनाने के बजाय दूसरों के पकाये हुए भोजन टीन के डब्बों में भरे हुए मिल जाते हैं जिन्हें गरम करके या ठंडा ही खाया जा सकता है। अब अधिकांश स्त्रियाँ पहले की तरह अचार-मुरब्बे इत्यादि भी नहीं बना सकतीं। ये सब चीज़ें बाज़ार से बनी-बनाई आसानी से मिल जाती हैं और उन्हीं को घर में प्रयोग किया जाता है। जिन कामों में कुछ ही साल पहले स्त्रियाँ, अपना सारा दिन व्यतीत किया करती थीं, अब एक एक करके उनसे ले लिये गये हैं और अब समाज में उनका स्थान केवल एक दवा के रूप में रह गया है। स्त्रियाँ अपना एक क़दम घर के बाहर निकाल कर दूसरा क़दम बाहर दुनिया में जमा नहीं सकीं। अगर वे थोड़े-समय के लिए कोई नौकरी चाहती हैं तो यह कहकर दुतकारी जाती हैं कि वे उनके योग्य नहीं हैं; अथवा यह कह कर कि उनके पास अपना जीवन सुखपूर्वक निर्वाह करने का सहारा है और इसलिए उन्हें किसी ग़रीब वेतन ही पर निर्भर करनेवाली अबला के मुख से रोटी छीनने का कोई अधिकार नहीं है।

समाज के इस व्यवहार का यह फल हुआ है कि साधारण शहर के आस-पास के रहनेवाली औसत दर्जे की औरतों और लड़कियों को ज़रूरत से ज्यादा छुट्टी रहती है और उनका फ़ालतू समय व्यर्थ ही नष्ट हुआ करता है। न उन्हें अपनी योग्यताओं का परिचय देने का अवसर मिलता है और न उनके कौशल या कार्य-कुशलता का विकास ही हो पाता है। उन्हें अपने जीवन में अकेलेपन का अनुभव होता है। वे पुराने तरीक़े के जीवन से अलग कर दी जा चुकी हैं मगर उनका समाज के आधुनिक जीवन में कोई स्थान नहीं है। शहर की स्त्रियों में आपस में एक दूसरे से बहुत कम जान-पहचान है। वे अपने पड़ोसियों को नहीं जानतीं और उनके पास इतने साधन नहीं हैं कि शहर में आकर पूरे तरह से शहरी-जीवन ही व्यतीत कर सकें।

इन सब कठिनाइयों को किस तरह दूर किया जाय? एक दूसरे से मिल कर काम करें? ऐसा हो नहीं सकता। स्त्रियाँ मिलकर काम या तो कर ही नहीं सकतीं या ऐसी स्त्रियाँ मिलेंगी नहीं। वे अपनी-अपनी रागिनी भले ही अलापा करें मगर सब मिल कर एक सुन्दर गार्हस्थ्य जीवन व्यतीत करने की कभी न सोचेंगी। विलायत में शहर के समीप रहनेवाली स्त्रियों के बारे में लिखते हुए एक अँगरेज़ी

डाक्टर का कहना है कि वहाँ की रहनेवाली स्त्रियाँ एक प्रकार से अपने जीवनक्रम से हताश-सी हो चुकी हैं। अगर शीघ्र ही उनकी शक्तियों का उचित उपयोग नहीं किया जायगा तो वह शक्ति निश्चय ही किसी एकाग्री रूप में परिणत होकर समाज का अनिष्ट कर सकती है।

जर्मनी में नाज़ियों के प्रभुत्व के पहले वहाँ की स्त्रियों का भी क़रीब वही हाल था, बल्कि यह कहना चाहिए कि उससे भी कहीं आज़ादी थी जितनी की आजकल ग्रेट ब्रिटेन में स्त्रियों को है। नाज़ी क्रान्ति के पहले वहाँ के चुनाव में स्त्रियों ने पुरुषों से कहीं ज़्यादा तादाद में हर हिटलर के लिए वोट दिये थे। और जैसे जैसे हिटलर की शक्ति बढ़ती गई उसे वोट देनेवालों में स्त्रियों की संख्या भी बढ़ती ही गई। यहाँ तक कि सन् १९३३ में नाज़ीपार्टी के लिए एक लिपज़िग शहर में प्रत्येक १०० पुरुष के मुक़ाबिले में ११४ औरतों ने वोट दिये थे। अन्ततः जब हिटलर का एकाधिपत्य हो गया उस समय जर्मनी की स्त्रियाँ उसको देवता-समान समझ कर पूजने लगीं। उसके चारों ओर औरतों की भीड़ लगने लगती। कोई उसका हाथ चूमने के लिए व्याकुल होतीं तो कोई उसका कपड़ा ही पकड़ कर रो उठती। हिटलर को वे अपना उद्धारक समझती थीं।

यह तो पुरानी कहावत है कि बेकारों के दिमाग़ में शैतान रहता है। शायद यह उसी शैतानी का परिणाम था कि औरतों ने हिटलर और नाज़ीपार्टी को अपने वोट दे देकर उसे इस पद तक पहुँचा दिया कि जिसके कारण आज सारा संसार परेशान-सा हो उठा है। यह भी सम्भव है कि अन्य जगहों में हिटलर जैसे लोग अपना प्रभुत्व बेकार स्त्रियों ही की मदद से शायद जमा सकेंगे। यह तो इतिहास बार बार स्मरण दिलाता ही है कि जिन लोगों को अधिक आज़ादी मिली वे निश्चय ही उस आज़ादी का दुरुपयोग करते हैं, जो आगे चल कर आज़ादी के नाश का कारण होती है। फिर इस ख़तरे से बचने का उपाय क्या है? यह कहा जाता है कि हिटलर ने तानाशाह बनने के बाद जर्मनी की औरतों को सुखी बनाने का उपाय सोच निकाला। उसने उनको उनके पतियों के पास फिर से भिजवा दिया। उसने उन्हें घर का काम-काज करना, बच्चों की देख-रेख करना तथा अन्य काम जो कि एक गृहिणी को करने चाहिए, करने के लिए बाध्य किया। और यह भी कहा जाता है कि इससे जर्मनी की स्त्रियों का जीवन काफ़ी सुखी और शान्तिमय हो गया।

अगर स्त्रियाँ अपनी स्वतंत्रता का पूरा लाभ उठाना चाहती हैं तो यह अच्छा हो कि वे लोग पिछले २० साल की बरबादी और मुसीबतों को ध्यान में रक्खें। उनको अपने आप वही करना चाहिए जिसे कि जर्मनी में हिटलर ने वहाँ की स्त्रियों के लिए किया। समाज की निगाह में वे बराबरी का हक़ तो अवश्य प्राप्त करें मगर वे अपने दायरे को न भूलें।

सन्तान-उत्पत्ति और उनकी देख-रेख करना ही उनका प्रधान काम है। घर का काम चलाना तथा उसी सम्बन्ध की अन्य बातें ही स्त्रियों के लिए प्रकृति का नियम है। उस नियम को तोड़ना उच्छृंखलता है। अगर वे अपना जीवन प्राकृतिक नियमानुसार व्यतीत करेंगी तो अवश्य ही उनका जीवन शान्त और सुखमय होगा। अपना कर्तव्य पालन करने में एक प्रकार का विशेष स्वर्गीय आनन्द प्राप्त होता है जो प्रकृति के नियम भंग करने से कभी नहीं प्राप्त हो सकता। उस शान्तिमय जीवन का परिणाम यह होगा कि वर्तमान समय में आधुनिकता का राग अलापनेवाली स्त्रियाँ जो अपने जीवन को भार समझ बैठी हैं और जिन्हें जीवन को सुखी बनाने के लिए भाँति-भाँति के आमोद-प्रमोद की आवश्यकता प्रतीत होती है सचमुच सुखी हो जायँगी।

इधर कुछ दिनों से भारतवर्ष में भी आधुनिकता की लहर ज़रा ज़ोरों से बहनी शुरू हो रही है। उस लहर को फैलाने का श्रेय कुछ महानुभावों और देवियों को है। आधुनिकता की लहर फैलानेवालों में अधिकांश का समाज में क्या स्थान है? उनका पारिवारिक जीवन कैसा रहा है? उनका बालकपन और युवावस्था कैसी रही है? इसके बारे में यदि ज़्यादा प्रकाश न डाला जाय तभी अच्छा है।

इसमें सन्देह नहीं कि भारतवर्ष में स्त्रियों के साथ समाज ने बहुत-से मामलों में उचित और न्यायपूर्ण व्यवहार नहीं किया है। मगर इसके यह माने नहीं हैं कि उन बुराइयों को दूर करने के लिए समाज में एक क्रान्ति उत्पन्न कर दी जाय और अपनी सदियों की सभ्यता का

बाढ़पीड़ित स्त्रियों में चरखे का प्रयोग

तहस-नहस कर डाला जाय। हमारा आदर्श भारत की प्राचीन सभ्यता है न कि योरपीय देशों की नक़ल। जैसा कि ऊपर दिखाया जा चुका है योरप में स्त्रियों की दशा दयनीय हो रही है। इस समय युद्ध छिड़ जाने के कारण वहाँ की स्त्रियाँ भले ही कुछ समय के लिए फिर से नौकरियाँ पा जायँ मगर युद्ध के समाप्त हो जाने पर वहाँ की दशा पहले से भी ज़्यादा शोचनीय हो जायगी। यह भी सम्भव है कि अपने पिछले कटु अनुभव के कारण वहाँ का स्त्री-समुदाय इस बार ज़रा फूँक फूँक कर पैर आगे को बढ़ाये। किन्तु प्रश्न है कि इस समय हमारा क्या कर्तव्य है? कर्तव्य तो साफ़ और सीधा है—कुरीतियों को दूर करते हुए सुघर गृहिणी और गृह-स्वामिनी बनना। इसी में भारतीय नारीसमाज का कल्याण है और इसी में देश की भलाई है। हमारा मुल्क अभी आज़ाद नहीं है। इसलिए यह और भी आवश्यक है कि यहाँ की स्त्रियाँ अपने को इस योग्य बनायें कि वे भी राष्ट्र के उत्थान और पुन-निर्माण में सहायता पहुँचा सकें। इसके लिए यह ज़रूरी नहीं है कि वे घर में कलह उत्पन्न करके ऐसे सभी काम करने को लालायित हो उठें जिन्हें अब तक केवल पुरुष ही किया करते थे। स्त्रियाँ भविष्य में पुरुषसमुदाय के मार्ग में रोड़े अटकानेवाली न होकर उन्हें साहसी, वीर और निर्भीक बनायें। यही हमारी प्राचीन सभ्यता थी; इसी सभ्यता के सहारे आज दिन तक भारतवर्ष अपना सिर संसार में ऊँचा रख सका है और इसी मार्ग पर चल कर भविष्य में भी भारत संसार के अन्य देशों का पथ-प्रदर्शक रहेगा।
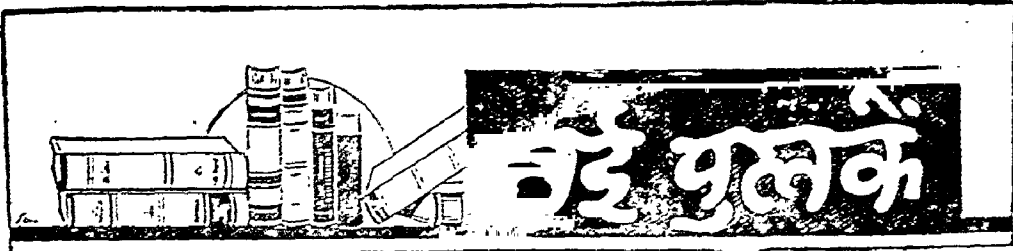
१—भारतीय राजनीति के ८० वर्ष—लेखक, डाक्टर सी० वाई० चिन्तामणि, डी० लिट०, प्रधान सम्पादक 'लीडर', प्रयाग, अनुवादक, श्रीयुत केशवदेव शर्मा प्रकाशक, हिन्दुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद हैं। पृष्ठ २०४ और मूल्य १) है।

सन् १९३५ में आन्ध्र-विश्वविद्यालय के निमंत्रण पर सर सी० वाई० चिन्तामणि महोदय ने सन् ५७ के बाद के भारतीय राजनीति पर चार व्याख्यान दिये थे। ये चारों व्याख्यान १९३७ में पुस्तकाकार प्रकाशित हुए। इसी का यह अनुवाद है। अनुवादक महोदय हिन्दी के चिर परिचित लेखक और दैनिक 'भारत' के भूतपूर्व सम्पादक हैं। ग्रन्थकर्त्ता के प्रति उनके हृदय में अगाध श्रद्धा है। मैं शर्मा जी को उनके इस प्रयत्न पर बधाई देता हूँ और इस पुस्तक-द्वारा हिन्दी पाठकों की जो ज्ञान-वृद्धि होगी उसके लिए उनके प्रति अपनी कृतज्ञता भी प्रकाशित करता हूँ।

इस समय हिन्दी में शायद ही कोई दूसरा व्यक्ति ऐसा मिले जो भारतीय राजनीति के विभिन्न पहलुओं का इतना बड़ा जानकार निकले जितने जानकार चिन्तामणि महोदय हैं। उनका अगाध पाण्डित्य, उनकी वाग्विदग्धता, उनकी अपूर्व लगन, उनकी सिद्धान्तनिष्ठा और ध्येय की सिद्धि में निष्काम आत्म-समर्पण की अपूर्व क्षमता—ये उनके ऐसे गुण हैं जिनके लिए भारतवर्ष को अभिमान होना चाहिए। जो राजनैतिक मामले में लेखक महोदय का दृष्टिकोण है, उस दृष्टिकोण से पुस्तक के महत्त्व और उसकी उपयोगिता को स्वीकार करते हुए मुझे परम हर्ष होता है।

प्रथम परिच्छेद में अँगरेज़ों के समय से पहले काल की भारतीय राजनैतिक परिस्थिति का सिंहावलोकन है। दूसरे अध्याय में अँगरेज़ों के प्रथम २० वर्ष का परिणाम और इस युग के प्रमुख राजनैतिक प्रवृत्तियों का विश्लेषण है। तृतीय परिच्छेद में उसके बाद के चालीस वर्ष का इतिहास है। चतुर्थ परिच्छेद में १९११ से १९२५ तक की चतुर्दशवर्षीय अवधि का विस्तृत वर्णन और एक दृष्टिकोण विशेष का उल्लेख है। पाँचवें परिच्छेद में उपसंहार है।

इस पुस्तक की जितनी प्रशंसा की जाय वह थोड़ी है। मुझे आशा है कि हिन्दी के पाठक अधिक से अधिक संख्या में इस पुस्तक को पढ़कर अवश्य लाभ उठावेंगे।

—वेंकटेशनारायण तिवारी

२—सुधांशु—लेखक, श्रीयुत हरिनारायणसिंह, बी० ए०, और प्रकाशक श्रीयुत मोहनप्यारे, बी० एस-सी०, एल० एल० बी०, बनारस हैं। मूल्य ॥≈) है।

प्रस्तुत पुस्तक लेखक के सामाजिक विचारों का प्रवाह है। 'ग्राम-सुधार', 'आशा', 'अशरण शरण', 'विवाह' आदि रचनाओं में लेखक ने अपने सामाजिक मनोभावों को प्रकट करने का सफल प्रयत्न किया है। 'विवाह' के सम्बन्ध में लेखक के विचार मनन करने योग्य हैं। अपने विचारों को कहानी का रूप देकर लेखक ने उन्हें और भी रोचक बना दिया है। 'ग्राम-सुधार' में गाँवों के प्रति सहानुभूति तो उत्पन्न होती ही है, साथ ही हमारे देश के गाँवों की ग़रीबी और बुराइयों का सजीव चित्र हमारे सामने उपस्थित हो जाता है। भाषा सरल, बोलचाल की तथा प्रभावशाली है। रचना साधारण होते हुए भी पढ़ने योग्य है।

—अनन्तप्रसाद विद्यार्थी, बी० ए०

३—संयुक्तप्रान्तीय इंडियन मेडिसन ऐक्ट-१९३९ का सटिप्पणी हिन्दी अनुवाद—अनुवादक, कविराज पंडित दयानिधि शर्मा आयुर्वेदाचार्य हैं। मूल्य ॥) है। मिलने का पता—वैद्यराज पंडित प्रेमनिधि शर्मा आयुर्वेदाचार्य, सुदर्शन-औषधालय, बुलन्दशहर।

यह उक्त ऐक्ट का संक्षिप्त हिन्दी-अनुवाद है। यद्यपि देशी वैद्यों व हकीमों के काम की इसमें बहुत-सी बातें आगई हैं, फिर भी कुछ ऐसी खास बातें रह गई हैं जिनके

संबन्ध में जानने की उत्कण्ठा बनी ही रहती है। रजिस्टर्ड देशी चिकित्सकों को क्या अधिकार हैं और वे उनका उपयोग किस अवस्था में कर सकते हैं, इसका उल्लेख इस पुस्तक में साफ़ साफ़ नहीं किया गया है। फिर भी जब तक दूसरा अनुवाद प्राप्त न हो, देशी चिकित्सकों के लिए यह पुस्तक पथप्रदर्शक का काम दे सकती है।

४—माननीया श्रीमती पंडित—लेखक, श्रीयुत दुर्गाप्रसाद रस्तोगी 'आदर्श' और प्रकाशक, रस्तोगी-प्रकाशक-भवन, दारागंज, प्रयाग हैं। मूल्य १॥) है, पृष्ठ-संख्या २५६ है। पुस्तक सजिल्द है।

स्वर्गीय त्यागमूर्ति पंडित मोतीलाल की पुत्री श्रीमती विजयालक्ष्मी पंडित का सार्वजनिक क्षेत्र में महत्त्व-पूर्ण स्थान है। उन्हीं का जीवन-चरित लेखक महोदय ने इस पुस्तक में १७ चिट्ठियों के रूप में लिखने का प्रयत्न किया है। पुस्तक पढ़ने पर माननीया जी के जीवन, सार्वजनिक कार्यों, व्याख्यानों तथा लेखों आदि के विषय में ज्ञातव्य बातें प्राप्त होती हैं। सामग्री एकत्र करने में पंडित जवाहरलाल नेहरू जी की 'मेरी कहानी' तथा अन्य पत्र-पत्रिकाओं से सहायता ली गई है। इसके लिखने में क़ैंची से काम लेते हुए भी टिप्पणियाँ कहीं-कहीं पर साधारणतः कुछ अच्छी बन पड़ी हैं।

चिट्ठियाँ पति की ओर से पत्नी को लिखी गई हैं। यदि लेखक महोदय ने इसका उलटा किया होता तो शायद अधिक उपयुक्त होता। ऐसा न होने के कारण कुछ स्थलों पर लेखक का व्यर्थ उत्साह झलकने लगता है। इस उत्साह ने पुस्तक के साधारण गाम्भीर्य में बाधा डाल दी है। पुस्तक के प्रारम्भिक और अन्तिम भाग भी सुरुचिपूर्ण नहीं मालूम पड़ते हैं।

इतना होते हुए भी पुस्तक काफ़ी सुन्दर है। श्रीयुत रस्तोगी जी और श्रीमती रस्तोगी जी के साथ नेहरू-परिवार के कुछ व्यक्तियों के चित्रों से पुस्तक की सुन्दरता में वृद्धि हुई है। अन्त में कुछ पृष्ठ डायरी के रूप में रिक्त भी छोड़ दिये गये हैं।

—यज्ञदत्त शर्मा, बी० ए०

५—अपराधी—लेखक, श्रीयुत नारायणप्रसाद 'बेताब' और प्रकाशक, श्री वेदभानु माटुंगा, ५२०, भानु-भवन बम्बई हैं। पृष्ठ-संख्या ५१ और मूल्य ।) है।

श्री नारायणप्रसाद 'बेताब' की "६ अपराधी" नाम की छोटी-सी पुस्तक देखी। 'बहुविवाह'-दोष पर यथेष्ट प्रकाश डाला गया है और समाज से, रोचक भाषा में, इसे दूर करने की अपील की गई है। वर्तमान भारतीय समाज में स्त्री का दर्जा पुरुष से कम है, यही इस कुप्रथा की जड़ है। इस जड़ को उखाड़ फेंकने में ही कल्याण है।

आशा है, 'बेताब' जी की इस रोचक पुस्तक द्वारा समाज का उपकार होगा।

—बाबूराम सक्सेना

६—सन्ताननिग्रह-विज्ञान—लेखक, डाक्टर रामचन्द्र मिश्र, एम० बी० बी० एस०, प्रकाशक, अरुण-कार्यालय, मुरादाबाद हैं। पृष्ठ-संख्या लगभग १५० और सजिल्द पुस्तक का मूल्य १) है।

हमारे देश की बढ़ती हुई आबादी ने सन्तान-निग्रह के प्रश्न को उचित महत्ता दे दी है। प्रस्तुत पुस्तक भी इसी विषय पर लिखी गई है और इस विषय पर निकली पुस्तकों में सम्भवतः सबसे अच्छी है, क्योंकि इसके लेखक महोदय इस विषय पर लिखने के अधिकारी हैं। इसमें सामाजिक, धार्मिक तथा राजनैतिक दृष्टियों से सन्तान-निग्रह के प्रश्न पर विचार करते हुए उसकी आवश्यकता का प्रतिपादन किया गया है और उसके लिए अब तक जितने विधान प्रचलित हैं उनकी उपयोगिता तथा अनुपयोगिता पर वैज्ञानिक दृष्टिकोण से प्रकाश डाला गया है। अन्त में लेखक का इस विषय में निजी मत क्या है, यह भी साफ़-साफ़ बतला दिया गया है। देशी व विदेशी प्रयोग भी प्रचुर-मात्रा में दिये गये हैं। इस प्रकार यह पुस्तक अपने विषय की सर्वांगपूर्ण हो गई है।

७—जागृति—लेखिका, श्रीमती तोरन देवी 'लली' 'साहित्य-चन्द्रिका', प्रकाशक, श्री रत्नावली पुस्तक-भण्डार, कानपुर हैं। मूल्य नहीं लिखा है।

'जागृति' 'लली' जी की कविताओं का संग्रह है, जिसमें उनकी सभी प्रकार की कविताओं का पाँच ज्योतियों के अन्दर समावेश किया गया है। 'दिव्य ज्योति' में—

पलक उठाते ही जगती में—
तुम्हीं दीखते हो सब ओर,
हे करुणामय ! हे चितचोर !
मैं क्या जानूँ तुम किस ओर?

और कवयित्री सृष्टि के इस अखिल ब्रह्माण्ड के उस चितचोर को खोजने का प्रयत्न नहीं करती. वह तो उसे सृष्टि के कण-कण में देखती है। फिर भी बिना उस अज्ञात के दर्शन के कवयित्री के हृदय को शान्ति नहीं। उसकी यह अमर 'अभिलाषा' कितने साधकों की अभिलाषा है—

मुझसे मिल जाना इक बार।
कहाँ, कहाँ, मैं ढूँढ़ रही हूँ,
कबसे रही पुकार।

उसकी खोज निरन्तर जारी है, परन्तु उसके सामने 'जीवन-ज्योति' है। और—

जननी फिर आज पुकार उठी,
तू जाग अरी, अब जाग अरी!!
सोने पर भी थी जाग रही,
तू चित्रित लिखित कहानी-सी,
फिर कैसा यह आसव ढाला,
हो रही आज दीवानी-सी।

सचमुच कवयित्री अपनी जन्म-भूमि के प्रेम में दीवानी हो उठी है और तभी तो वह कहती है—

मैं बन्दी कैसे हूँ जननी!
तू परतंत्र कहाँ थी!

'लली' जी के इन राष्ट्रीय गीतों में प्राणों में उत्साह और देश-प्रेम की आग फूक देने की शक्ति है। 'रत्न-ज्योति' के 'सर्जन', 'कैसा प्यार तेरा' और 'आज फिर किस हेतु री वह जगा विस्मृत गान' से गीत हमें श्री महादेवी वर्मा के अमर गीतों का स्मरण दिलाते हैं। वे जीवन से थकित और निराश नहीं हैं। उनका हृदय गाता है—

नाविक रहने दे इसी पार!

'लली' जी की सबसे बड़ी सफलता उनकी सरल, परिमार्जित प्रांजल किन्तु स्वाभाविक भाषा है। गत तीस वर्षों के अपने कविता-काल में उन्होंने अपनी एक अलग शैली बना ली है। वे छायावादी कवियों की भाँति अगम्य नहीं हैं। उनकी भावना जनता की भावना है, उनकी कविता सबके हृदय की निधि है। अपने इसी गुण के कारण वे हिन्दी-साहित्य में सदैव सजीव, सदैव नई और सदैव स्फूर्तिदायक बनी रहेंगी। पुस्तक की छपाई-सफ़ाई भी सुन्दर है।

८—**विचित्र त्याग**—लेखक, श्रीयुत यज्ञदत्त शर्मा, प्रकाशक, चाँद-कार्यालय, प्रयाग हैं। मूल्य २) है।

चन्द्रभानु ने मुस्कराते हुए कहा—'क्या धन से कभी प्रसन्नता प्राप्त हो सकती है? धन में संसार शान्ति ढूँढ़ता है। कितना बड़ा भ्रम है। दोनों एक-दूसरे के विपरीत भावनायें हैं। देखो न; हमारी झोंपड़ी का द्वार सर्वदा खुला रहता है। हमेशा निमन्त्रण देता रहता है अतिथियों को। इस झोंपड़ी का हृदय बिलकुल भी तो संकुचित नहीं। कितनी विस्तीर्णता है इसकी प्रत्येक वस्तु में।' और विश्व बन्धन से मुक्त होकर विचरना ही जीवन का आनन्द है। इसी में जीवन की शान्ति है।'

चन्द्रभानु अपने लगन का पक्का युवक है। धन के प्रलोभन उसे कर्तव्य-पथ से भ्रष्ट नहीं कर सकते। वह आठ रुपये माहवार में सन्तुष्ट है। लेखक ने चन्द्रभानु के त्याग और उत्साह का सजीव चित्रण किया है। सम्पूर्ण उपन्यास ज़मींदारों के अत्याचारों और मज़दूर-आन्दोलन की समस्या पर लिखा गया है। मज़दूर-हड़ताल, उसकी सफलता, मज़दूर आन्दोलन की शक्ति से पूर्ण इस उपन्यास को पढ़कर पाठक के हृदय में एक क्रान्ति की भावना जाग्रत् हो उठती है।

यज्ञदत्त जी अब तक एक कवि के रूप में ही हमारे सामने आये हैं। सम्भवतः उनकी उपन्यास क्षेत्र में यह पहली ही कृति है, फिर भी उन्हें जो सफलता इस रचना में मिली है उसे देखकर हमें उनसे और भी अधिक अच्छी कृतियों की आशा होती है। लेखक का ज्ञान पड़ता है ग्रामीण जनता, ज़मींदारों के अत्याचारों और मज़दूर-आन्दोलन का स्वयं का अनुभव है। पुस्तक की सफलता का यही रहस्य है।

विचित्र त्याग का लेखक कवि है, इसलिए उपन्यास लिखते समय भी स्थल-स्थल पर उसका कवित्व फूट पड़ता है। चरित्र-चित्रण में लेखक को अधिक सफलता मिली है। कानन और चन्द्रभानु का चरित्र जिस सफलता के साथ चित्रित किया गया है उससे लेखक की पैनी मनोवैज्ञानिक दृष्टि का आभास मिलता है।

पुस्तक की भाषा सरल तथा प्रांजल है, परन्तु स्थल-स्थल पर अँगरेज़ी शब्दों की ठूँस जैसे स्ट्राइक, इंटरप्राइज़िंग नेचर, ट्रेड का सेंटर, पैम्फ़लेट, मिल ओनर्स आदि अनावश्यक

प्रतीत होता है। हम हिन्दी में उन विदेशी शब्दों के प्रयोग के विरोधी नहीं हैं जो आम तौर पर बोले जाते हैं, परन्तु जबर्दस्ती अँगरेज़ी-शब्दों का प्रयोग भाषा को शिथिल बना देता है। फिर भी पुस्तक सुपाठ्य है। छपाई सफ़ाई भी अच्छी है।

९—गुलेरी जी की अमर कहानियाँ—सम्पादक व प्रकाशक, श्री शक्तिधर गुलेरी, ओरियन्टल डिपार्टमेंट प्रयाग-विश्वविद्यालय हैं। मूल्य ॥) है।

गुलेरी जी की 'उसने कहा था' कहानी हिन्दी-साहित्य की सर्वश्रेष्ठ कहानी समझी जाती है। उनकी अन्य कहानियों का पता नहीं था। प्रस्तुत पुस्तक में दो अन्य कहानियाँ 'सुखमय जीवन' और 'बुद्धू का काँटा' तथा 'उसने कहा था' संगृहीत हैं। ये तीनों कहानियाँ भिन्न-भिन्न परिस्थितियों के सजीव चित्र उपस्थित करती हैं। 'सुखमय जीवन' का नायक अविवाहित होने पर भी 'सुखमय जीवन' ऐसी पुस्तक केवल अपने विद्याबल पर लिख डालता है। परन्तु जब वह कमला से प्रेम-प्रस्ताव करता हुआ पकड़ा जाता है और वृद्ध बाबू साहब उसकी लानत-मलामत करते हुए कहते हैं—'सुखमय जीवन के कर्ता होकर...'तब वह खीझ कर कहता है, क्या सुखमय जीवन के कर्ता ने यह क़सम खा ली है कि जन्म भर क्वारा ही रहे। तब कमला के चाचा को पता लगता है कि "पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियाँ अधिक पहचान सकती हैं कि कौन अनुभव की बात कह रहा है और कौन गपें हाँक रहा है।"

और 'बुद्धू का काँटा' तो और भी मनोरंजक दृश्य उपस्थित करता है। रघुनाथ ने 'प्रयाग के बोर्डिंग की रोटियों की कृपा से जन्म भर कुएँ से पानी न खींचा था।' सारी डोर कुएँ पर बखेर दी, पर लोटे में फाँसा न लगा सका। पानी भरनेवालियों में टीका-टिप्पणी आरम्भ हुई। एक ने कहा—पटवारी है। पैमाइश की जरीब फैलाता है। दूसरी बोली—न, बाजीगर है, हाथ-पैर बाँधकर पानी में कूद पड़ेगा और सूखा निकल आयेगा।

और फिर——

'कहाँ जाओगे?'

लड़की—(बीच ही में) शिकारपुर, वहाँ ऐसों का गुरुद्वारा है।

सम्पूर्ण कहानी रघुनाथ की अनुभवहीनता पर भगवन्ती की चुटकियों से हँसाती रहती है। परन्तु संयोग कि वही मूर्ख रघुनाथ भगवन्ती का पति हो गया।

'उसने कहा था' के विषय में कुछ लिखना व्यर्थ है।

१०—आधुनिक स्त्रीधर्म—लेखक, श्री नरसिंहराम शुक्ल, प्रकाशक चाँद कार्यालय, प्रयाग हैं। मूल्य १।) है।

आजकल की स्त्रियाँ किधर जा रही हैं उनका धर्म अब इस युग में क्या होना चाहिए इसी विषय को लेकर कुशल लेखक ने यह पुस्तक लिखी है। यह समय युग-परिवर्तन का है जो धर्म शताब्दियों पीछे स्त्रियों के लिए उपयोगी था वही आज भी उपयोगी हो यह कैसे हो सकता है? समय के साथ साथ स्त्रियों के कर्तव्य में भी परिवर्तन होना स्वाभाविक ही है। प्रस्तुत पुस्तक में आधुनिक स्त्री के धर्म का नये दृष्टिकोण से विवेचन किया गया है। नारी का आदर्श, दाम्पत्य जीवन, सार्वजनिक जीवन में स्त्रियाँ आदि महिला-उपयोगी सभी विषय । इस छोटी-सी पुस्तक में लेखक ने रोचक ढंग से समझाया है। शैली रोचक तथा चित्ताकर्षक है। भाषा सुगम तथा परिमार्जित है जिससे प्रत्येक स्त्री इसे पढ़कर समझ सकती है। हिन्दी-संसार में ऐसी पुस्तकों का नितान्त अभाव है। एक नहीं, इस विषय की अनेक पुस्तकें नये दृष्टिकोण से लिखी जानी चाहिए। हम इस सुन्दर पुस्तक को प्रत्येक स्त्री के हाथों में देखना चाहते हैं।

११—मधुवन—रचयित्री, श्रीमती हीरादेवी चतुर्वेदी, प्रकाशक, साहित्य प्रेस, जबलपुर हैं। मूल्य ॥) है।

मोहन की वंशी से निःसृत, सम्मोहन सा स्वर आली;
राधा को कर आज विमोहित बना गया री, मतवाली।

और कवयित्री मतवाली होकर गा उठी। उसके इन गानों में करुणा है कि एक चंचल एवं जिज्ञासु बालिका की भाँति वे सजीव सृष्टि की संस्थापना करने में मस्त हैं। जहाँ कवयित्री के हृदय में हर्षातिरेक है, उल्लास है, वहाँ उसकी वेदना भी सरल सोते की भाँति बहती है। उसे आश्चर्य होता है कि—

मेरे आँसू की भी सरिता मिटा सकी कब जग की प्यास?
तब क्या सघन घनों के आँसू मिटा सकेंगे इसकी प्यास?

'चललहरों से खेलने की इच्छा करनेवाली' इस दुनिया की 'धूपछाँह' में राष्ट्र की दूती बनकर भी आती

है। परन्तु उसके राष्ट्रगीत में तेजी नहीं है। अच्छा होता यदि कवयित्री केवल अपने सुख-सपनों के ही गीत गाती रहतीं। निराशा का उत्साह और वीरता के साथ सीधा सम्बन्ध नहीं है।

हीरादेवी जी की सबसे बड़ी सफलता उनकी सरल तथा बोधगम्य भाषा है जिसमें वे अपने भावों को व्यक्त करने में सफल हो सकी हैं। 'आज उनसे बात करूँगी न' 'मैंने सुन्दर सपना देखा' 'कोयलिया फिर बोली' आदि गीत अच्छे बन पड़े हैं।

पुस्तक की छपाई सफाई सुन्दर है। पुस्तक कविता-प्रेमियों का कुछ हद तक मनोरंजन कर सकेगी।

१२—घूँघट—लेखक, श्री भगवतस्वरूप जैन "भगवत" हैं। प्रकाशक, श्री भगवतभवन पुस्तकालय, एत्मादपुर आगरा हैं मूल्य ।) है।

'घूँघट' लेखक का एक सामाजिक हास्यपूर्ण प्रहसन है जिसमें पर्दाप्रथा का औचित्य सिद्ध करने का प्रयत्न किया गया है। भाषा और शैली पुरानी नाटक-कम्पनियों की है। यद्यपि हम लेखक के विचारों से सहमत नहीं हैं परन्तु फिर भी हमें दिलफड़क महोदय के नई सभ्यता के प्रेम को देखकर हँसी आये बिना नहीं रहती। पुस्तक साधारण कोटि की है।

—अनन्तप्रसाद विद्यार्थी, बी० ए०

१३—कायाकल्प—लेखक तथा प्रकाशक, श्री बुद्धदेव विद्यालङ्कार, गुरुदत्तभवन, लाहौर हैं। पृष्ठ संख्या १६२ है। छपाई सफ़ाई अच्छी और मूल्य १।) है।

प्रस्तुत पुस्तक में 'वर्णव्यवस्था'-सम्बन्धी विचार प्रकट किये गये हैं। इसमें प्राचीनों में स्वामी दयानन्द जी और अर्वाचीनों में आचार्य रामदेव जी से लेखक को सहायता मिली है। लेखक ने अपनी जान में प्रमाणित किया है कि मार्क्सवादी समाज व्यवस्था से वर्णव्यवस्था अच्छी है, विषय अवश्य रोचक है, किन्तु मार्क्सवाद के विषय में लेखक का ज्ञान पल्लवग्राही होने के कारण उनकी पुस्तक एक कालेज के विद्यार्थी के निबन्ध से उच्चतर सतह पर न जा सकी। लेखक लिखते हैं "सबको समान लड्डू देना साम्यवाद है, और सबको भूख के अनुसार लड्डू देना वर्णव्यवस्था है।" साम्यवाद के सम्बन्ध में आम ग़लत-फ़हमी है कि सबको बराबर मजदूरी साम्यवाद है। सच बात यह है कि न ऐसा साम्यवाद का उद्देश्य है, न रूस में ऐसा है। रूस में १ से १५ का प्रभेद है। हाँ कम्युनिज़्म का ध्येय है "सबसे उतना काम लिया जाय जितना वह कर सके, और हरएक को उतना मिहनताना दिया जाय जितने की उसे आवश्यकता है।" वर्णव्यवस्था के सम्बन्ध में उड़ान भरते समय लेखक ने, ज्ञात होता है, वर्णव्यवस्था के वर्तमान चरित्र को सम्पूर्ण रूप से भुला दिया है। लेखक ने यत्र-तत्र बड़ी ग़लतबयानियाँ की हैं; जैसे "ईश्वर भक्तों ने सदा दुःखपीड़ित प्रजा का साथ दिया, अत्याचारियों को सन्मार्ग दिखलाया है।" इतिहास इस बात की गवाही नहीं देता; रूस में धर्म का विरोध क्रान्तिकारियों के कार्यों का एक मुख्य अंग इसलिए हो गया कि वहाँ के पादरी-मण्डल हर प्रकार से ज़ार के समर्थक थे; यहाँ तक कि जासूस का काम करते थे।

लेखक की भाषा शिथिल है; शक्ति-प्रतिभान और क़लीब आदि शब्द इस पुस्तक में अधिकता के साथ हैं। पुस्तक आर्यसमाजी उपदेशकों के ही काम शायद आ सके।

—मन्मथनाथ गुप्त

मौलाना आज़ाद का भाषण

कांग्रेस का ५३वां वार्षिक अधिवेशन इस बार बिहार के रामगढ़ नामक स्थान में मार्च के तीसरे सप्ताह में हुआ। इस अधिवेशन के सभापति मौलाना अबुलकलाम आज़ाद बहुमत से मनोनीत हुए थे। सभापति के रूप में उन्होंने अपना जो महत्त्वपूर्ण भाषण किया है उसका एक अंश हम यहाँ उद्धृत करते हैं--

मैं मुसलमान हूँ और गर्व के साथ अनुभव करता हूँ कि मुसलमान हूँ। इस्लाम की तेरह सौ वरस की शानदार रिवायतें मेरी पैत्रिक संपत्ति हैं। मैं तैयार नहीं हूँ कि इसका कोई छोटा से छोटा हिस्सा भी नष्ट होने दूँ। इस्लाम की तालीम, इस्लाम का इतिहास, इस्लाम के इल्म और फ़न और इस्लाम की तहज़ीब मेरी पूँजी है और मेरा फ़र्ज़ है कि उसकी रक्षा करूँ। मुसलमान होने की हैसियत से मैं अपने मज़हबी और कल्चरल दायरे में अपना एक खास अस्तित्व रखता हूँ और मैं बरदाश्त नहीं कर सकता कि इसमें कोई हस्तक्षेप करे। किन्तु इन तमाम भावनाओं के अलावा मेरे अन्दर एक और भावना भी है जिसे मेरी ज़िन्दगी की 'रिएलिटीज़' यानी हक़ीक़तों ने पैदा किया है। इस्लाम की आत्मा मुझे उससे नहीं रोकती, बल्कि मेरा मार्ग प्रदर्शन करती है। मैं अभिमान के साथ अनुभव करता हूँ कि मैं हिन्दुस्तानी हूँ। मैं हिन्दुस्तान की अविभिन्न संयुक्त राष्ट्रीयता (नाक़ाबिले तक़सीम मुत्तहिदा क़ौमियत) का एक अंश हूँ। मैं इस संयुक्त राष्ट्रीयता का एक ऐसा महत्वपूर्ण अंश हूँ, उसका एक ऐसा टुकड़ा हूँ जिसके बिना उसका महत्व अधूरा रह जाता है। मैं इसकी बनावट का एक ज़रूरी हिस्सा हूँ। मैं अपने इस दावे से कभी दस्तबरदार नहीं हो सकता।

हिन्दुस्तान के लिए प्रकृति का यह फ़ैसला हो चुका था कि इस सर ज़मीन में मनुष्य की मुख्तलिफ़ नसलों, मुख्तलिफ़ सभ्यताओं और मुख्तलिफ़ धर्मों के क़ाफ़िले का सम्मिलन हो। अभी मानव-इतिहास का प्रभात भी न हुआ था कि इन क़ाफ़िलों का यहाँ आना शुरू हो गया और फिर, एक के बाद एक, सिलसिला जारी रहा। हिन्दुस्तान की विशाल सर ज़मीन सबका स्वागत करती रही और इस उदार भूमि की गोद में सबको जगह मिली। इन्हीं क़ाफ़िलों में एक आख़िरी क़ाफ़िला हम मुसलमानों का भी था। यह भी पिछले क़ाफ़िलों के पदचिह्नों पर चलता हुआ यहाँ पहुँचा और हमेशा के लिए बस गया। यह दुनिया की दो अलग अलग क़ौमों और तहज़ीबों की धाराओं का मिलन था। यह गंगा और जमुना की धाराओं की तरह पहले एक दूसरे से अलग अलग बहते रहे, लेकिन फिर प्रकृति के अटल नियम के अनुसार दोनों को एक ही संगम में मिल जाना पड़ा। इन दोनों का मेल इतिहास की एक ज़बरदस्त घटना थी। जिस दिन यह घटना हुई उसी दिन से प्रकृति के छिपे हुए हाथों ने पुराने हिन्दुस्तान की जगह एक नये हिन्दुस्तान के ढालने का काम शुरू कर दिया।

हम अपने साथ अपनी पूँजी लाये थे और यह सर ज़मीन भी अपनी पूँजी से मालामाल थी। हमने अपनी दौलत उसके हवाले कर दी और उसने अपने ख़ज़ानों के दरवाज़े हम पर खोल दिये। हमने उसे इस्लाम की पूँजी की वह सबसे ज़्यादा क़ीमती चीज़ दे दी जिसकी उसे उस समय सबसे ज्यादा ज़रूरत थी। हमने उसे जम्हूरियत और इनसानी मसावात यानी जनतंत्र और मानव-एकता का सन्देश पहुँचा दिया।

इतिहास की पूरी ११ सदियाँ इस घटना पर बीत चुकी हैं। अब इस्लाम भी इस सर ज़मीन पर वैसा ही दावा रखता है जैसा दावा हिन्दू-धर्म रखता है। अगर हिन्दू-धर्म कई हज़ार साल से इस सर ज़मीन के बाशिन्दों का धर्म रहा है तो इस्लाम भी एक हज़ार वरस से इसके बाशिन्दों का मज़हब चला आता है। जिस तरह आज एक हिन्दू अभिमान के साथ कह सकता है कि वह हिन्दुस्तानी है और हिन्दू मज़हब का माननेवाला है, ठीक उसी

तरह हम भी अभिमान के साथ कह सकते हैं कि हम हिन्दुस्तानी हैं और इस्लाम-मज़हब के माननेवाले हैं। मैं इस क्षेत्र को इससे भी ज़्यादा बढ़ाऊँगा। मसलन मैं एक हिन्दुस्तानी ईसाई का भी यह अधिकार स्वीकार करता हूँ कि वह आज सर उठाकर कह सकता है कि मैं हिन्दुस्तानी हूँ और हिन्दुस्तान के बाशिन्दों के एक मज़हब यानी ईसाई मज़हब का माननेवाला हूँ।

हमारे ११ सदियों के मिले-जुले इतिहास ने हमारी हिन्दुस्तानी ज़िन्दगी के एक एक कोने को अपने तामीरी सामानों यानी अपनी रचनात्मक सामग्री से भर दिया है। हमारी भाषायें, हमारी शायरी, हमारा साहित्य, हमारा सामाजिक जीवन, हमारी रुचि, हमारे शौक़, हमारा लिबास, हमारे रस्म-रवाज, हमारे दैनिक जीवन की बेशुमार हक़ीक़तें, कोई कोना भी ऐसा नहीं है जिस पर इस संयुक्त जीवन की छाप न लग चुकी हो। हमारी बोलियाँ अलग-अलग थीं मगर हम एक ही ज़बान बोलने लगे। हमारे रस्म-रवाज एक दूसरे से जुदा थे, मगर उन्होंने मिलजुलकर एक नया साँचा पैदा कर लिया। हमारा पुराना लिबास इतिहास के पुराने चित्रों में देखा जा सकता है, मगर अब वह हमारे बदन पर नहीं मिल सकता। यह तमाम मिली-जुली पूँजी हमारी संयुक्त राष्ट्रीयता की एक दौलत है और हम इसे छोड़कर उस ज़माने की तरफ़ लौटना नहीं चाहते जब हमारी यह मिली-जुली ज़िन्दगी शुरू नहीं हुई थी। हममें यदि ऐसे हिन्दू मस्तिष्क मौजूद हैं जो चाहते हैं कि एक हज़ार साल पहले का हिन्दू-जीवन वापस ले आयें तो उन्हें मालूम होना चाहिए कि वे एक स्वप्न देख रहे हैं, जो कभी पूरा होने वाला नहीं है। इसी तरह अगर ऐसे मुसलमान दिमाग़ मौजूद हैं जो चाहते हैं कि अपनी उस बीती हुई तहज़ीब और समाजी ज़िन्दगी को फिर ताज़ा करें जो वह एक हज़ार साल पहले ईरान और मध्यएशिया से लाये थे तो मैं उनसे भी कहूँगा कि इस स्वप्न से वह जितनी जल्दी जाग जायें बेहतर है, क्योंकि यह एक अप्राकृतिक कल्पना, एक ग़ैर क़ुदरती तख़य्युल है और इस तरह के ख़यालात वास्तविकता की ज़मीन में नहीं उग सकते। मैं उन लोगों में हूँ जिनका विश्वास है कि पुरानी चीज़ों को फिर से ताज़ा करने की, यानी रिवाइवलिज़्म की, ज़रूरत मज़हब के मैदान में है, लेकिन समाजी ज़िन्दगी में रिवाइवलिज़्म का मतलब तरक़्क़ी से इनकार करना है। हमारे इस एक हज़ार साल के मिले-जुले जीवन ने एक संयुक्त राष्ट्रीयता, एक मुत्तहिदा क़ौमियत का साँचा ढाल दिया है। इस तरह के साँचे बनाये नहीं जा सकते, वह प्रकृति के छिपे हुए हाथों से सदियों में ख़ुद बख़ुद बना करते हैं। अब साँचा ढल चुका और भाग्य की मुहर उस पर लग चुकी। हम पसन्द करें या न करें, मगर अब हम एक हिन्दुस्तानी क़ौम और अविभक्त यानी नाक़ाबिले तक़सीम हिन्दुस्तानी क़ौम बन चुके हैं। पृथक्ता की कोई बनावटी कल्पना हमारे इस एक होने को दो नहीं बना दे सकती। हमें प्रकृति के फ़ैसले पर रज़ामन्द होना चाहिए और अपने भाग्य की तामीर में लग जाना चाहिए।

आज हमारी सारी कामयाबियों का दारमदार तीन चीज़ों पर है, हमारी सफलता इन्हीं पर निर्भर है—

इत्तहाद यानी एकता, डिसिप्लिन यानी अनुशासन, और महात्मा गांधी के नेतृत्व, यानी उनकी रहनुमाई पर पूरा भरोसा। यही एकमात्र नेतृत्व है जिसने हमारे आन्दोलन का पिछला शानदार इतिहास तामीर किया है और केवल इसी से हम एक विजयी भविष्य की आशा कर सकते हैं।

हमारी परीक्षा का एक नाज़ुक समय हमारे सामने है। हमने सारी दुनिया की निगाहों को नज़ारा देखने की दावत दे दी है। कोशिश कीजिए कि हम इसके योग्य साबित हों।

लड़ाई कब ?

कांग्रेस की कार्य-समिति ने पटना की बैठक में जो महत्त्वपूर्ण प्रस्ताव पास किया है उससे लोगों का अनुमान है कि अब सरकार से कांग्रेस का संघर्ष हो जाना अनिवार्य है। इसी को लक्ष्य करके महात्मा गांधी ने 'हरिजन' में एक लेख लिखकर कांग्रेस की भावना को स्पष्ट किया है। वह लेख इस प्रकार है—

सब लोग मुझसे सवाल कर रहे हैं, यह नहीं कि मैं देश को सविनय-भंग के लिए आमंत्रित करूँगा या नहीं, बल्कि यह कि आह्वान कब करूँगा। इन जिज्ञासुओं में

कुछ तो निहायत संजीदा साथी हैं। उनके खयाल में पटना के प्रस्ताव का यही अर्थ है कि लड़ाई छिड़ने का सवाल तो दिनों की बात है। इससे साबित होता है कि देश या देश का वह हिस्सा, जिसने अब तक आजादी की लड़ाई में भाग लिया है, इन्तज़ार और आशा करते-करते उकता गया है। यह सोचकर उत्साह बढ़ता है कि देश में आज़ादी हासिल करने की खातिर कितने भी त्याग को कुछ न गिननेवाले लोग मौजूद हैं।

इसलिए जहाँ मैं सवाल करनेवालों के जोश की सराहना करता हूँ, वहाँ मुझे यह चेतावनी भी देनी पड़ेगी कि वे अधीर न हों। प्रस्ताव में ऐसे विश्वास के लिए कारण नहीं है कि सविनय-भंग की घोषणा करने के लिए अनुकूल वातावरण है। जब खुद कांग्रेस के भीतर ही इतनी अनुशासन-हीनता और हिंसा भरी है, ऐसे वक़्त में सविनय-भंग का एलान कर देना आत्म-हत्या करना होगा। कांग्रेसी लोग मेरे शब्दों को पूरा महत्त्व न देंगे तो सख़्त ग़लती करेंगे। जब तक मुझे यह भरोसा न हो जायगा कि कांग्रेस के सिपाहियों में काफ़ी अनुशासन और अहिंसा नहीं आ गई है तब तक मैं न सविनय-भंग शुरू कर सकता हूँ और न करूँगा। रचनात्मक काम याने कताई और खादी-बिक्री के बारे में जो उदासीनता दीख रही है वह अविश्वास की साफ़ निशानी है। ऐसे हथियारों से लड़ना हार ही मोल लेना है। ऐसे लोगों को यह जान लेना चाहिए कि मैं उनके काम का आदमी नहीं हूँ। जितने अनुशासन और अहिंसा की ज़रूरत है, उतना पैदा होने की आशा न हो तो मुझे नेतृत्व से हट जाने देना बेहतर होगा।

यह साफ़ समझ लेना चाहिए कि ढकेलकर मुझसे जल्दबाज़ी में लड़ाई नहीं छिड़वाई जा सकती। जो लोग यह सोचते हैं कि गरम कहलानेवालों की उकसाहट में आकर मैं सविनय-भंग की घोषणा कर सकता हूँ वे भारी भूल करते हैं। मेरी नज़र में नरम और गरम का ऐसा कोई भेद नहीं है। मेरे दोनों ही साथी और मित्र हैं। कोई नरम और गरम के बीच निश्चित अन्तर बता सके तो यह धृष्टता ही होगी। कांग्रेसी और ग़ैर-कांग्रेसी सभी को समझ लेना चाहिए कि सारा देश मेरे खिलाफ़ हो जाय तो भी समय आने पर मैं अकेला ही लड़ूँगा। औरों के पास अहिंसा के सिवा कोई दूसरे हथियार हैं या होंगे। मेरे पास तो यह एक ही शस्त्र है। चूँकि राजनैतिक क्षेत्र में अहिंसात्मक कला को मैंने ही जारी किया है, इसलिए मुझे भीतर से प्रेरणा अनुभव होगी तो लड़ना मेरा धर्म हो जायगा।

उस कला में यह प्राकृतिक विशेषता है कि मुझे पहले से यह कभी मालूम नहीं पड़ता कि किस समय क्या करना है। पुकार किसी भी वक़्त हो सकती है। इसे यूँ कहने की जरूरत नहीं कि पुकार ईश्वर की तरफ़ से आई है। 'भीतरी प्रेरणा' शब्द आम तौर पर प्रचलित है और आसानी से समझा जाता है, सभी लोग कभी-कभी भीतरी प्रेरणा से काम करते हैं। ऐसा आचरण हमेशा सही हो, यह ज़रूरी नहीं। मगर कुछ आचरण ऐसे होते हैं जिनके लिए और कोई कारण ही नहीं दिया जा सकता।

अकसर मुझे ख़याल आता है कि मैं कांग्रेस को भूल जाऊँ तो अच्छी बात हो। कभी-कभी ऐसा भी लगता है कि जीवन के बारे में मेरे अजीब विचार होने से मैं कांग्रेस में जँचता नहीं। मुझमें जो भी विशेषतायें होंगी और कांग्रेस और देश के लिए उनका कुछ भी उपयोग हो सकता हो तो शायद उनसे अधिक लाभ उस हालत में उठाया जा सकता है जब मैं कांग्रेस से बिलकुल सम्बन्ध तोड़ लूँ। लेकिन मैं जानता हूँ कि यह सम्बन्ध-विच्छेद ज़बान से या बलात्कार से नहीं हो सकता। ऐसा होना ही है तो समय पर अपने-आप होगा। बात इतनी ही है कि कांग्रेसियों को मेरी मर्यादायें समझ लेनी चाहिए और मेरी दृढ़ता या अटलता को देखकर उन्हें आश्चर्य या दुःख नहीं करना चाहिए। उन्हें मेरे इस कथन पर विश्वास करना चाहिए कि सामूहिक सविनय-भंग जारी करने के लिए जो शर्तें मुक़र्रर कर दी गई हैं उनके पूरा हुए बिना कोई कार्रवाई करने की मुझमें शक्ति नहीं है।

सर मिर्ज़ा की नेक सलाह

मैसूर के दीवान सर मिर्ज़ा इस्माइल ने 'टाइम्स एंड टाइड' नामक पत्र में एक लेख छपवाया है। उसमें उन्होंने ब्रिटिश सरकार को यह सलाह दी है कि भारत को सन्तुष्ट करने के लिए कोई उपयुक्त

कार्यवाही जल्दी करनी चाहिए। अधिक सतर्कता से काम लेने से ग़लतफ़हमी के फैलने की ही सम्भावना होगी, उस लेख का सारांश दिल्ली के 'हिन्दुस्तान' में छपा है जो यहाँ उद्धृत किया जाता है—

ब्रिटिश सरकार को मेरी यह निश्चित सलाह है कि वह अनेको दलों व स्वार्थों के परस्पर मतभेदों के दूर होने तक प्रतीक्षा न करे, अपितु फ़ौरन ही कुछ ऐसा विधेयात्मक क़दम उठाये जिससे सब निष्पक्ष लोगों को संतोष हो। बहुत सतर्कता और प्रतीक्षा की नीति से ब्रिटेन और हिन्दुस्तान दोनों के बीच ग़लतफ़हमी बढ़ने की ही आशंका है।

वायसराय की कार्यकारिणी में ६ के स्थान पर १० सदस्य हों, नये सदस्यों में दो कांग्रेस के, १ मुस्लिम लीग का तथा एक रियासतों का प्रतिनिधि हो। यूरोपियन सदस्य तीन से अधिक न हों, रक्षा-सदस्य निश्चित रूप से हिन्दुस्तानी हो। वायसराय ने अपने सुझाव में जिस परामर्शदात्री समिति का उल्लेख किया है उसका नाम युद्ध-परामर्शदात्री समिति हो और वह इस समिति से सर्वथा पृथक् हो। यह युद्ध-समिति युद्ध-सम्बन्धी सब बातों में वायसराय को सलाह दे और उसकी रचना ऐसी हो जिससे अत्याचार के विरुद्ध प्रजातंत्री राष्ट्रों के युद्ध में हिन्दुस्तान की एकता प्रकट हो।

ब्रिटिश सरकार घोषणा कर दे कि यथासम्भव शीघ्र से शीघ्र ब्रिटिश उपनिवेशों के विधान के आधार पर हिन्दुस्तान का विधान बनाने के लिए कांग्रेस, मुस्लिम लीग, रियासतों तथा अन्य स्वार्थों के प्रतिनिधियों की एक छोटी-सी कान्फ़रेंस की जाय और ब्रिटिश सरकार इस कान्फ़रेंस की सिफ़ारिशों को अधिक से अधिक मात्रा में कार्य में परिणत करने का वचन दे। इस कान्फ़रेंस का अध्यक्ष धारा-सभाओं के संचालन का अनुभवी कोई अँगरेज़ हो।

राष्ट्रीय पंचायत सारे हिन्दुस्तान के लिए विधान नहीं बना सकती, रियासतों को ब्रिटिश भारत के वैधानिक विकास से कोई सम्बन्ध नहीं है। लेकिन यह निर्विवाद है कि इस प्रकार पृथक् पृथक् वैधानिक विकास होने से हिन्दुस्तान १० साल पीछे पड़ जायगा। शासकों के स्वार्थों और उनकी प्रजाओं के हितों में अन्तर है। रियासतों की शासन-पद्धति ऐतिहासिक तथा अन्य कारणों से ब्रिटिश शासन-पद्धति से भिन्न है, इसकी आलोचना करने से देश की एकता को निस्सन्देह क्षति पहुँचती है।

प्रोफ़ेसर कीथ और सर अकबर हैदरी

हैदराबाद के प्रधान मन्त्री सर अकबर हैदरी ने यह दावा उपस्थित किया है कि हैदराबाद-राज्य का सम्राट् से सीधा सम्बन्ध है, अतएव भारत में नया शासन-विधान-प्रवर्तन करते समय उसके सम्बन्ध में ब्रिटिश सरकार को निज़ाम की सरकार से मंज़ूरी लेनी होगी। उनके इस दावे का प्रोफ़ेसर बेरीडेल कीथ ने विरोध किया है। कीथ साहब राजनीति-शास्त्र के विशेषज्ञ माने जाते हैं। उनका उक्त विरोध-पत्र मदरास के 'हिन्दू' में छपा है, जो इस प्रकार है—

सर अकबर हैदरी वायसराय की उस घोषणा को भूल गये हैं जो उन्होंने २७ मार्च, १९३६ को की थी और जिसमें यह स्पष्ट किया था कि "कोई भी देशी राज्य ब्रिटिश सम्राट् के साथ बराबरी के दावे से बातचीत नहीं कर सकता। ब्रिटिश सम्राट् की श्रेष्ठता का आधार देशी राज्यों के साथ की गई सन्धियाँ नहीं हैं, बल्कि वह श्रेष्ठता तो इन सन्धियों से अलग एक सैद्धान्तिक मानी हुई चीज़ है। विदेशी राज्यों और नीति से सम्बन्धित मामलों में ब्रिटिश सरकार का यह अधिकार और कर्तव्य है कि वह देशी राज्यों के साथ की गई सन्धियों को स्वीकार करते हुए भी सम्पूर्ण भारत की शान्ति और रक्षा के उपाय करे।

ब्रिटिश सम्राट् के प्रभुत्व के अर्थ हैं ब्रिटिश सम्राट् का पार्लियामेंट के अन्तर्गत प्रभुत्व और इस प्रभुत्व पर हैदराबाद अथवा कोई भी अन्य राज्य किसी प्रकार की क़ानूनी अथवा नैतिक आपत्ति करने का अधिकार नहीं रखता। वे केवल यह माँग कर सकते हैं कि इस शक्ति का प्रयोग न्याय और ईमानदारी के साथ भारत की प्रजा के हितों के लिए ही किया जायगा न कि व्यक्तिगत स्वार्थों की पूर्ति के लिए।

यद्यपि अभी तक ब्रिटिश सम्राट् ने भारत में एकाधिकार-पूर्ण शासन किया है, लेकिन उन्होंने यह स्वीकार करने की बुद्धिमत्ता दिखाई है कि समय आ गया है जब कि अधिक

से अधिक मात्रा में शासनाधिकार स्वयं प्रजा के निर्वाचित प्रतिनिधियों के हाथों में सौंप दिये जायँ। ब्रिटिश सम्राट् के सलाहकारों के लिए यह असम्भव है कि वे देशी राज्यों की प्रजा को ब्रिटिश भारत की प्रजा के समान अधिकार न दें और यह उनका कर्त्तव्य है कि वे सम्राट् को सलाह दें कि वे अपनी शक्ति का उपयोग कर देशी नरेशों को बाध्य कर दें कि वे अपने राज्यों में शीघ्र से शीघ्र उत्तर-दायित्वपूर्ण शासन की स्थापना करें। ऐसा कोई भी फ़ेडरेशन भारत के हित में नहीं हो सकता जिसमें ब्रिटिश भारत के निर्वाचित प्रतिनिधियों को देशी राज्यों के नामज़द सदस्यों के साथ बैठने के लिए बाध्य किया जाय। वास्तव में गांधी जी की इस माँग का कोई उत्तर नहीं है कि देशी नरेश भी ब्रिटिश सम्राट् के समान प्रजा के प्रतिनिधियों को अधिकार देने के लिए बाध्य हैं।

ब्रिटेन का कर्तव्य है कि वह यह स्पष्ट कर दे कि बहुमत-द्वारा शासन का सिद्धान्त भारत के लिए भी पार्लियामेंट-द्वारा स्वीकृत किया गया है और मुस्लिम लीग को भी इस सिद्धान्त को स्वीकार करना चाहिए। इसके साथ ही देशी नरेशों को जान लेना चाहिए कि एकाधिकार के दिन अब पूरे हो चले हैं और उन्हें अपने राज्यों के शासन को ब्रिटिश भारत के शासन के समान ही उदार बनाना चाहिए।

बालकन-परिषद्

बालकन-प्रायद्वीप के राष्ट्रों का वर्तमान युद्ध-काल में अपना अलग महत्त्व है। हाल में उनकी एक सम्मिलित परिषद् हुई थी। उसका वर्णन श्री श्रीनिवास बालाजी हर्डीकर बी० ए० ने कानपुर के 'प्रताप' में किया है। यहाँ उसका अधिकांश दिया गया है—

योरप के दक्षिण-पूर्व में बालकन-प्रायद्वीप है। इसमें तुर्किस्तान, ग्रीस, रूमानिया, यूगोस्लोविया, हंगरी और बलगेरिया ये छः राष्ट्र हैं। गत महायुद्ध के बाद जो सन्धि हुई थी उसमें रूमानिया और यूगोस्लोविया को हंगरी और बलगेरिया के कई भाग मिले थे। उनको पुनः प्राप्त करने में हंगरी और बलगेरिया प्रयत्नशील रहे हैं। इस प्रकार बालकन-राष्ट्रों में आपस में काफ़ी फूट चली आ रही है। पर वर्तमान युद्ध के आरम्भ होते ही इन राष्ट्रों को जर्मनी और रूस की भूखी आँखें अपने ऊपर गड़ी हुई दिखाई दीं। इन बाहरी संकटों ने बालकन-राष्ट्रों को अपने आपसी मतभेद और दुश्मनी भुलाकर आत्म-रक्षा के लिए एक हो जाने के लिए बाध्य किया। इसी एकता के उद्देश्य की पूर्ति के लिए बालकन-राष्ट्रों की एक परिषद् गत तीन फ़रवरी को रूमानिया के पर-राष्ट्र मंत्री एम० गोफ़ेन्कू की अध्यक्षता में हुई।

इस परिषद् के सम्बन्ध में जो वक्तव्य प्रकाशित हुआ है उससे प्रकट होता है कि वर्तमान युद्ध में बालकन-राष्ट्र पूरी तरह से तटस्थ रहेंगे और बालकन-राष्ट्रों में शान्ति क़ायम रखने का प्रयत्न किया जायगा।

इँग्लेंड और फ़्रांस जर्मनी को चारों ओर से घेर कर कच्चे माल और तेल आदि से वंचित करना चाहते हैं। ये राष्ट्र चाहते थे कि बालकन-राष्ट्र जर्मनी को उपर्युक्त वस्तुएँ देने से इनकार कर दें।

जर्मनी की इच्छा ठीक इसके विपरीत थी। वह चाहता था कि बालकन-राष्ट्र पूरी तरह से तटस्थ रहें और युद्ध के पूर्व जर्मनी और बालकन-राष्ट्रों में जो व्यापार होता था वह पूर्ववत् जारी रहे। बालकन-राष्ट्र खाद्य पदार्थों और युद्धोपयोगी वस्तुओं का भाण्डार हैं। यदि इस भाण्डार से इँग्लेंड और फ़्रांस जर्मनी को वंचित करने में सफल होते हैं तो जर्मनी का युद्ध में अधिक काल तक टिकना कठिन हो जायगा।

इटली बालकन-प्रायद्वीप को योरप के किसी राष्ट्र के प्रभाव में देखना पसन्द नहीं करता। उसे रूस से विशेष डर है। रूस की कूटनीति भी बालकन-राजनीति में खुलकर खेलती हुई नज़र आ रही है। हंगरी और बलगेरिया पर रूस का काफ़ी प्रभाव है। रूस डार्डिनलीज़-जलडमरूमध्य पर अपना नियंत्रण चाहता है और रूमानिया के बसरेबिया प्रान्त को हड़प लेना चाहता है। अपने इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए बालकन-राष्ट्रों के आपसी मतभेदों की अग्नि को फूँककर प्रज्वलित कर देना चाहता है ताकि उसे अपनी इच्छा की पूर्ति का मौक़ा मिल सके। पर इटली रूस के इस दाँव को अच्छी तरह से जानता है। वह रूस का भूमध्य-सागर की ओर बढ़ना अपने लिए महान् सङ्कट समझता है। यही कारण है कि इटली ने अपना प्रभाव

डालकर प्रान्तों को वापस देने-लेने के प्रश्न को वर्तमान युद्ध की समाप्ति तक स्थगित करा दिया है। इसी कारण बल्गेरिया रुष्ट हो गया है और उसने इस परिषद् में भाग नहीं लिया। पर बल्गेरिया अभी इटली के विरुद्ध जाने में असमर्थ है, अतएव उसने भी अपनी पूरी तटस्थता घोषित कर दी है। इस प्रकार इस परिषद् में इटेलियन राजनीति ने रूसी राजनीति पर विजय प्राप्त की है।

इँग्लैंड और फ्रांस की कूटनीति को भी इस परिषद् में विशेष सफलता नहीं प्राप्त हुई। बाल्कन-प्रायद्वीप में ये राष्ट्र टर्की की सहायता से अपना प्रभाव जमाना चाहते थे। पर परिषद् के पूर्व ही रूमानिया, ग्रीस और यूगोस्लेविया ने यह शंका प्रकट की थी कि सम्भव है कि टर्की बाल्कन-राष्ट्रों को उसकी पूर्ण तटस्थता की नीति से विचलित कर दे। यही कारण है कि यह परिषद् इतनी शीघ्रता से कर ली गई। सात फ़रवरी से बाल्कन युद्ध की अध्यक्षता का आसन टर्की को मिलनेवाला था। यही कारण है कि परिषद् ३ फ़रवरी को ही की गई। इनसे स्पष्ट है कि इस परिषत् में ब्रिटिश और फ्रेंच राजनीति को विशेष सफलता नहीं मिली। इतना ही नहीं, परिषद् में ऐसी कोई बात नहीं की गई जिससे जर्मनी को शिकायत करने का मौक़ा मिलता।

यद्यपि इस परिषद् के निश्चय बाल्कन-राष्ट्रों पर सात वर्षों तक लागू होने की बात कही गई है, फिर भी बाल्कन-राष्ट्रों के आपसी मतभेद इतने तीव्रतर हैं कि कोई भी राष्ट्र इन मतभेदों का उपयोग अपने स्वार्थ-साधन के लिए कर सकता है। बहुत सम्भव है कि रूस उनकी इस अतृप्त आकांक्षा को पूर्ण करने का वादा कर बाल्कन-राष्ट्रों में अशान्ति की आग लगा दे।

हिन्दी का स्वरूप

काशी के हिंदी-साहित्य-सम्मेलन के २८वें अधिवेशन के स्वागताध्यक्ष के पद से महामना पं० मदनमोहन जी मालवीय ने जो महत्त्वपूर्ण भाषण किया था उसके मुख्य अंश 'नागरी-प्रचारिणी पत्रिका' से यहाँ उद्धृत हैं—

मैं केवल दो बातों पर विशेष ध्यान दिलाना चाहता हूँ। पहला हिन्दी-भाषा के स्वरूप पर, दूसरा नागरी लिपि पर। हमें यह जान लेना चाहिए कि भाषा बहुत-सी बातों के संयोग से बनती है, वह बनाई नहीं जाती। हिन्दी-भाषा के विषय में कम से कम यह बात बहुत स्पष्ट है, इसका स्वरूप भाषा के बनने के अनुसार बना है, इसका निकास उस भाषा से है जो पृथ्वीमंडल की भाषाओं में पुरानी है और जिसका सबसे पुराना ग्रन्थ ऋग्वेद है, जिसकी प्राचीनता और महत्ता का यूरोपियन लेखक भी आदर करते हैं और कम से कम चार हज़ार वर्षों का पुराना मानते हैं। ऋग्वेद की पहली ऋचा "अग्निमीळे पुरोहितं" में पहला शब्द आया है 'अग्निम्', वह आज भी हिन्दी में अगिन और आग के नाम से प्रचलित है। दूसरा शब्द आया है 'पुरोहितम्'। वह जैसा हज़ारों वर्ष पहले था वैसा ही आज भी है। यदि कोष लेकर कोई बैठे तो जान पड़ेगा कितने विशेष्य, विशेषण और क्रियात्मक शब्द हिन्दी में हैं, उनका मूल संस्कृत है। भाषा-विज्ञान-शास्त्र जाननेवालों का कहना है कि हिन्दी के समान दूसरी कोई भाषा नहीं है जिसमें तद्भव शब्दों के इतने और ऐसे सुन्दर उदाहरण मिलें जितने हिन्दी में मिलते हैं। जैसे नदी की तली में लुढ़कते लुढ़कते पत्थर गोल और चिकने हो जाते हैं, वैसे ही संस्कृत के शब्द समय के प्रवाह की रगड़ से गोल और चिकने हो गये। कर्ण कान हो गया, अक्ष आँख, मुख मुँह, दंत दाँत, हस्त हाथ, शिर सिर, मिष्ट मीठा, त्वक् त्वचा, त्रीणि तीन, सप्त सात हुआ। ऐसे ही और भी अनेक शब्द हैं।

मुसल्मानों के समय में बहुतक मुसल्मानी शब्द हमारी भाषा में मिल गये और अब वे भाषा के अंग हैं। इसी प्रकार अँगरेज़ों के आने से कुछ अँगरेज़ी-भाषा के शब्द भी हमारी भाषा में मिल गये, किन्तु इसका यह तात्पर्य नहीं है कि हमारी भाषा उन शब्दों से बनी है या उनके कारण बनी है। हमारी भाषा उन्हीं शब्दों से बनी है जो संस्कृत से प्राकृत और अपभ्रंश बनकर हिन्दी की शोभा को बढ़ाते हैं। जीवित भाषाओं की यह स्वाभाविक गति है कि उनमें प्रयोजन के अनुसार दूसरी भाषा के शब्द मिला लिये जाते हैं। किन्तु इसका यह अर्थ कदापि नहीं होना चाहिए कि हम अपने शब्दों को छोड़कर उनके स्थान पर दूसरी भाषा के शब्द भी ग्रहण करें। हमें केवल उन्हीं विदेशी शब्दों को ग्रहण करना चाहिए जिनके

हमारी भाषा की शक्ति बढ़े और भाव को स्पष्ट प्रकट करने में सहायता मिले।

× × ×

जब से भारतीयों के राष्ट्र को फिर से स्थापन करने का जतन होने लगा तब से इस बात की चिन्ता बहुत-से देशभक्तों को हो गई है कि राष्ट्रीय कार्यों और व्यवहारों के लिए एक राष्ट्री भाषा मान ली जाय। अतः उन्होंने हिन्दी को राष्ट्रभाषा मान लिया क्योंकि यही देश के अधिक स्थानों में बोली और समझी जाती है। यह उद्योग सर्वथा सराहने के योग्य है। किन्तु जिस रीति से आजकल भाषा का स्वरूप बदलने का जतन हो रहा है वह मेरी राय में देश और समाज के लिए हितकारी नहीं होगा और हमारे धार्मिक तथा अन्य सांस्कृतिक भावों को इससे हानि पहुँचने की आशंका है।

× × ×

दूसरा प्रश्न नागरी-लिपि का है। सुधार के नाम पर नागरी-लिपि का जो बिगाड़ किया जा रहा है उससे हम लोगों को सावधान हो जाना चाहिए। कई सदियों के निरन्तर कलात्मक विकास होने के बाद नागरी-अक्षरों ने एक सुन्दर रूप स्थिर कर लिया है और इस लिपि को सीखनेवाला बिना किसी बाधा के लिखने और पढ़ने लगता है। इससे अधिक लिपि की श्रेष्ठता का और क्या प्रमाण हो सकता है? इसमें अनावश्यक परिवर्त्तन करने से यह लिपि कल की वस्तु हो जायगी और हमारा सम्पूर्ण लिखा हुआ और छपा हुआ साहित्य अजायबघर की सामग्री बन जायगा।

फ़ील्डमार्शल मैनरहीम

गत रूस-फ़िन-संघर्ष का अन्त हो गया और उसमें फ़िनलैंड का पराभव हो गया। पर अब तक फ़िनलैंड ने जिस वीरता के साथ रूस की शक्ति का मुक़ाबिला किया उसका सारा श्रेय वहाँ के प्रधान सेनापति फ़ील्डमार्शल मैनरहीम को है। यहाँ हम उन्हीं महापुरुष की जीवनी के सम्बन्ध का कुछ विवरण 'भारत' से दे रहे हैं—

फ़िनलैंड के वयोवृद्ध सेनापति फ़ील्ड-मार्शल बैरन कार्ल गुस्टाफ़ मैनरहीम ७० साल के हैं।

इनका स्वास्थ्य देखकर यही जान पड़ता है कि इनकी अवस्था अभी ५० साल से अधिक नहीं होगी। मार्शल मैनरहीम ने अपने जीवन-काल में जिन दुस्तर तथा खतरे से भरे कार्यों को करके अपने अद्भुत साहस और शौर्य का परिचय दिया है, उन्हें दृष्टि में रखते हुए योरप का कोई सेनापति उनकी समानता कर सकता है, यह सन्देहजनक है।

बचपन में मैनरहीम रूस के सम्राट् ज़ार के दरबार में बाल-भृत्य थे। बाद में इनका सम्बन्ध रूसी घुड़सवार-सेना के एक रेजीमेंट के साथ स्थापित हुआ। ये सैनिक शिक्षा प्राप्त करने लगे।

रूस और जापान के युद्ध के समय मैनरहीम ने बड़ी ही सफलता के साथ अपनी युद्ध-कला का परिचय दिया।

रूस-जापान-युद्ध तथा १९०५ की क्रान्ति समाप्त होने पर मैनरहीम को रूसी जनरल स्टाफ़ की ओर से आदेश हुआ कि वे काज़न से पेकिन तक घोड़े से यात्रा करके जायँ और इस १७५० मील की यात्रा के बीच उन्हें जो कुछ फ़ौजी तथा वैज्ञानिक महत्त्व की बातें दीख पड़ें उन्हें नोट कर लें। मैनरहीम को यह काम पूरा करने में क़रीब दो साल का समय लगा।

पिछले महायुद्ध के समय उन्हें एक घुड़सवार-सेना का प्रधान सेनापति बनाया गया था। उन्होंने पोलिश, गैलीशियन, बुकोवीनियन तथा बेसरेबियन मोर्चों पर कार्य किया और अपनी बहादुरी और कार्य-कुशलता के लिए कई एक सम्मान-सूचक तमग़े आदि प्राप्त किये।

रूस में जो पिछली क्रान्ति हुई उसने मैनरहीम का रूस से सम्बन्ध-विच्छेद कर दिया और वे अपनी मातृभूमि फ़िनलैंड लौट आये। उस क्रान्ति के समय फ़िनलैंड एक स्वतंत्र राष्ट्र घोषित कर दिया गया और उस स्वतंत्र-राष्ट्र के निर्माण-कार्य में वे मदद करने के ही उद्देश्य से रूस से लौटे थे।

सन् १९१८ में फ़िनलैंड में जब साम्यवादी आन्दोलन फैल गया तो उस समय मैनरहीम उसको ज़ोरों के साथ दमन करने में लग गये। लेकिन क्रान्तिकारी रूसियों के बाहर निकाल दिये जाने पर सरकार ने शस्त्रास्त्रों का अभाव होने के कारण जर्मनी से मित्रता स्थापित करने का निश्चय किया। जर्मन सैनिकों के पहुँच जाने पर पाँसा पलट गया।

जब लाल क्रान्तिकारियों की सेना का अन्तिम दल कुचल दिया गया तो उसके उपरान्त मैनरहीम और सरकार के बीच मतभेद उत्पन्न हुआ। सरकार यह चाहती थी कि जर्मन राजकुमार फ़्रेडरिक को फ़िनलैंड का बादशाह बनाया जाय। लेकिन मैनरहीम का जर्मनों के प्रति अविश्वास था, इसलिए उनका कहना था कि ऐसा करके फ़िनलैंड के निवासी एक देश की गुलामी से छूटकर दूसरे देश की गुलामी को स्वीकार करने जा रहे हैं। जब किसी ने मैनरहीम की बात न मानी तब उन्होंने अपने पद से इस्तीफ़ा दे दिया।

किन्तु सौभाग्य से फ़िनलैंड की सरकार ने भी इस्तीफ़ा दे दिया। अब फ़िनलैंड की जो नई सरकार क़ायम हुई उसने मैनरहीम को मित्रराष्ट्रों से फ़िनलैंड की सरकार के प्रति सद्भाव बढ़ाने के लिए नियुक्त किया। इस सिलसिले में उन्होंने लन्दन का दौरा किया। प्रिन्स फ़्रेडरिक को इस बात के लिए राज़ी कर लिया गया कि वे फ़िनलैंड का राज-सिंहासन प्राप्त करने के सारे अधिकारों का परित्याग कर दें। इधर जर्मनी स्वतः बड़ी तेज़ी के साथ ह्रास की ओर बढ़ता जा रहा था। ऐसी अवस्था में फ़िनलैंड की स्वतंत्रता को अन्तिम रूप से फ़्रांस, ब्रिटेन और अमेरिका ने स्वीकार कर लिया।

फ़िनलैंड के उद्धारक का प्रयत्न इस प्रकार सफलीभूत हुआ और मैनरहीम ने स्वयं नई सरकार की बागडोर अपने हाथों में ली। उनका शासन-काल ७ महीने तक रहा।

जिन लोगों ने बोलशेविकों को मदद पहुँचाई थी उनसे मैनरहीम ने बड़ा कठोर बदला लिया। इसलिए प्रेसीडेंट पद के चुनाव के समय यदि उन्हें बहुत अधिक वोटों से हारना पड़ा तो इसमें कोई आश्चर्य नहीं था।

लेकिन मैनरहीम को इस बात से ही सन्तोष था कि उन्होंने अपनी इच्छा के अनुसार देश को दासता में पड़ने से बचा लिया। इसलिए उन्होंने शान्ति और सन्तोष-पूर्वक राजनीतिक जीवन से अवकाश ग्रहण कर लिया। उनको सभी लोगों का प्रेम नहीं प्राप्त हुआ। फिर भी कम से कम उन्हें सभी प्रकार के लोग आदर की दृष्टि से तो देखते ही थे।

सन् १९३१ में फ़िनलंड की सरकार ने मैनरहीम को फिर रक्षा-कौंसिल का अध्यक्ष पद स्वीकार करने के लिए निमंत्रित किया। इस पद पर नियुक्त होकर उन्होंने एक छोटी-सी किन्तु अत्यधिक कुशल सेना का संगठन किया है।

इस सेना में प्रधानतः ३०,००० स्थायी सैनिक हैं। इसकी सहायता के लिए एक रिज़र्व सैनिकों का दल है, जिसमें सिविक गार्ड भी सम्मिलित हैं। सिविक गार्डों में स्त्री-पुरुष दोनों हैं और इनकी संख्या लगभग ५ लाख है। इन सैनिकों की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि सरदी को ख़ूब अच्छी तरह बर्दाश्त कर सकते हैं और अपने शस्त्रास्त्रों को छिपाकर काम करने में उस्ताद हैं। जाड़े के दिनों में अपने शरीर पर सफ़ेद रंग की पोशाक धारण करते हैं, जिसके कारण वे सफ़ेद बरफ़ के रंग में मिल जाते हैं। इस सेना की तोपें तक सफ़ेद रंग में रँगी हुई हैं।

फ़ील्ड-मार्शल मैनरहीम साधारणतः सादा जीवन व्यतीत करते हैं। उनका वेतन ५०० पौंड सालाना है। वे फ़िनलैंड की राजधानी हेलसिंकी में एक छोटे-से मकान में रहते हैं। वे विवाहित हैं। उनके तीन लड़कियाँ भी हैं। उनकी एक लड़की फ़िनलैंड की नर्सों की संस्था की अध्यक्षा है।

विख्यात अन्वेषक मि० स्कोट के पुत्र मि० पीटर स्कोट हाल ही में कैस्पियन सागर के पास के दलदलों में दो महीने तक जंगली मुर्गियों का चित्र बनाते रहे। उनका कहना है कि उस प्रदेश के निवासी जो ज़्यादातर ईरानी हैं, मांस या तरकारी के बिना रह सकते हैं परन्तु प्रतिदिन ७ या ८ कप चाय के बिना नहीं! उन्हीं की आदतों के अनुसार मि० स्कोट भी प्रतिदिन चावल और मछली खाते और प्रत्येक भोजन के साथ चाय पीते थे।
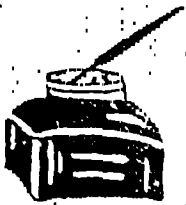
योरप की पहेली

योरपीय युद्ध पहेली सा होता जा रहा है। जर्मनी और फ़्रांस की सीमा पर दोनों ओर विशाल सेनायें मोर्चा लगाये बैठी हुई हैं। यदा कदा कहीं-कहीं गश्त लगानेवाली टोलियों में संघर्ष हो जाता है या किसी मोर्चे पर गोले गोलियों की वर्षा हो जाती है। इसके सिवा युद्ध के इस प्रधान क्षेत्र में कहीं कुछ नहीं हो रहा है। पर हाँ, अँगरेजी जंगी, बेड़े ने जर्मनी के समुद्र पर विकट घेरा डाल रक्खा है, जिससे जर्मनी का सारा व्यापार तहस-नहस हो गया है और वहाँ बाहर से किसी तरह का सामान नहीं पहुँच पा रहा है। इस घेरे के कारण जर्मनी वास्तव में संकट में पड़ गया है और वह बेतरह घबरा उठा है। इसी से उसकी पनडुब्बियाँ निरपेक्ष देशों के व्यापारी जहाज़ों आदि के भी डुबाने के गर्हित कार्य में संलग्न हो गई हैं। परन्तु अब अँगरेज़ी जंगी बेड़े ने भी अधिक चौकसी से काम लेना शुरू कर दिया है और वह दिन भी आ रहा है जब जर्मनी को अपने इस कायरतापूर्ण कार्य से शीघ्र ही तोबा बोलना पड़ेगा।

परन्तु भयंकर बात तो यह है कि इस युद्ध के ऐसे सीमित रूप में होते हुए भी इस बात की आशंका बढ़ती ही जा रही है कि भविष्य में यह युद्ध अधिक व्यापक रूप धारण कर जायगा। फ़रवरी के पिछले सप्ताह में रूमानिया ने अपनी फ़ौजों के तैयार रहने का हुक्म दे दिया और तुर्की ने भी अपनी रक्षा के लिए विशेष योजना कार्य में परिणत कर दी। ऐसा समझा जाता है कि फ़िनलैंड के परास्त होने के बाद रूस रूमानिया पर आक्रमण कर देगा। और फ़िनलैंड का युद्ध जैसा कि वहाँ की हाल की खबरों से प्रकट होता है, अब समाप्ति पर है, क्योंकि दोनों देशों में सुलह की बात हो रही है। और फ़िनलैंड से छुट्टी पाते ही रूस बाल्कन की ओर अवश्य ध्यान देगा। लोगों की यह कोरी आशंका ही नहीं है, किन्तु यह योरप के विशेषज्ञों का अनुमान है।

तो भी यह अभी अनुमान ही अनुमान है। युद्ध को इस तरह व्यापक रूप देना जर्मनी या रूस को भी अभीष्ट नहीं है। और ब्रिटेन तथा फ़्रांस तो बिलकुल ही नहीं चाहते। यदि ये चाहते होते तो इन्होंने रूस से तभी युद्ध की घोषणा कर दी होती। रूस को परास्त करके जर्मनी को ये तब और भी जल्दी हरा सकते थे। परन्तु इन्होंने अपनी ओर से युद्ध को बढ़ने नहीं दिया। और हम समझते हैं कि रूस भी अपनी ओर से ऐसा दुस्साहस न करेगा, क्योंकि युद्ध के व्यापक रूप धारण कर जाने पर उसकी सोलहो आने हानि की संभावना है। उसका स्वीडन या नार्वे से भी संघर्ष नहीं होगा, क्योंकि ये दोनों राष्ट्र निरपेक्षता की नीति पर पूर्ववत् दृढ़ हैं। इधर बाल्कन के राज्य भी लड़ना नहीं चाहते और अपनी आत्मरक्षा के लिए उनमें से कम से कम जुगोस्लाविया, रूमानिया और तुर्की में एक प्रकार का गुप्त समझौता-सा हो गया है। इसके सिवा इटली अलग धमकी दे रहा है कि यदि रूस बाल्कन की ओर मुँह करेगा तो इटली चुप नहीं बैठा रहेगा। इसके लिए उसने भी हंगरी से हाल में एक समझौता किया है। ऐसी दशा में रूस बाल्कन की शान्ति भंग करके जान-बूझ कर संकट नहीं मोल लेगा।

तब फिर क्या होगा? यही कहना कठिन है, हाँ, इतना तो स्पष्ट ही है कि योरप के सभी निरपेक्ष राज्य चाहते हैं कि यह युद्ध जल्दी से जल्दी बन्द हो जाय। उनकी जो आर्थिक हानि हो रही है सो तो हो ही रही है, उन्हें सबसे अधिक इस बात का डर है कि कहीं वे भी उसकी लपेट में न आजायँ। परन्तु लड़ाई के शीघ्र बन्द होने के लक्षण नहीं हैं। ब्रिटेन के प्रधान मंत्री चैम्बरलेन साहब इस बात के लिए तुल-सा गये हैं कि वे इस बार जर्मनी के विषैले दाँत उखाड़ कर ही दम लेंगे। उधर हिटलर साहब यह कह रहे हैं कि सुलह इस बार तभी होगी जब उसका जो पिछले युद्ध में छिन गया है, सबका सब वापस मिल जायगा। एक फ़्रेंच राजनीतिज्ञ का यह कहना है कि

जर्मनी राइन नदी के उस पार रक्खा जाय और राइनलैंड का एक नया बफ़र राज्य बना दिया जाय। इस प्रकार के परस्पर कथनोपकथन तो हो ही रहे हैं, दूसरे लोग भी सुलह के संबन्ध में अपनी अपनी राय देते रहे हैं। इस संबन्ध में लार्ड बक्सटन की शर्तें अधिक रोचक समझी गई हैं और योरप के निरपेक्ष राज्यों में उनकी चर्चा दिलचस्पी के साथ हुई है। लार्ड महोदय का कहना है कि हर्जाना न लिया जाय, असली जर्मनी की सीमायें अक्षुण्ण रक्खी जायँ, और निरपेक्ष राज्यों के निरीक्षण में जेता और पराजित की संधि की बातचीत हो। इधर संयुक्त राज्य, अमरीका, के राजदूत श्री सम्नर वेल्स कदाचित् मेलजोल कराने का भाव लेकर योरप आये हैं और वे वहाँ के भिन्न भिन्न राज्यों के सूत्रधारों से विचारविनिमय करने में लगे हुए हैं। देखना है, इनके इस प्रयत्न का क्या परिणाम होता है।

मुसलमानों की महत्त्वाकांक्षा

कहा जाता है कि मुसलमानों और कांग्रेस में जो मतैक्य नहीं हो रहा है उसका कारण यह है कि मुसलमानों की माँगें अनुचित हैं, जिन्हें पूरा करने में कांग्रेस असमर्थ है। कांग्रेस के बड़े बड़े नेताओं तक की यह धारणा है कि मुसलमान लोग असेम्बलियों में केवल अधिक सीटें तथा सरकारी नौकरियाँ चाहते हैं। परन्तु बात ऐसी नहीं है। मुस्लिम लीग के जन्म-काल के दिनों में उसके नेताओं की ऐसी आकांक्षा चाहे भले रही हो, परन्तु इधर जब से खिलाफ़त का आन्दोलन शुरू हुआ है, मुसलमान-नेताओं के मनोभावों में विलक्षण परिवर्तन हो गया है। खिलाफ़त-आन्दोलन के समय में मुसलमान नेता अपनी इस बात पर बराबर जोर देते रहे हैं कि अँगरेज़ों ने भारत का शासन-सूत्र मुसलमानों के हाथों से छीना है, अतएव हिन्दुओं की अपेक्षा भारत में उनकी विशेष स्थिति मानी जानी चाहिए। और अब तो मुसलमानों के प्रमुख नेता जिन्ना साहब ने बँटवारे की स्पष्ट माँग पेश भी कर दी है। जिन्ना साहब भारत को हिन्दुओं का देश नहीं मानते। उनका कहना है कि यह तो एक महाद्वीप है, जिसमें मुसलमान-जाति की अपनी विशेष स्थिति है, अतएव जिन जिन भूभागों में उनका बाहुल्य है उनका शासन-सूत्र मुसलमानों को मिल जाना चाहिए और जिन भूभागों में वे अल्प-संख्या में हैं, वहाँ उनकी तथा उनकी संस्कृति की रक्षा की पक्की व्यवस्था होनी चाहिए। महत्त्व की बात तो यह है कि मुसलमानों के नेता केवल माँगें उपस्थित करके चुप नहीं हो गये हैं, वरन उनकी प्राप्ति के लिए वे उसके अनुरूप अपना आन्दोलन एवं संगठन करने में भी तत्परता के साथ संलग्न हैं। यह सच है कि मुस्लिम-लीग में सभी मुसलमान शामिल नहीं हैं, परन्तु जो जो उसके बाहर अपना अपना संगठन कर रहे हैं वे भी समय आने पर उससे मिल जाने में आगा-पीछा नहीं करेंगे, क्योंकि उनका धर्म और उनका समाज उन्हें वैसा ही करने को बाध्य करता है। इस दृष्टि से देखने पर यही प्रतीत होगा कि मुसलमान सारे देश में आज जिस सुव्यवस्था से संगठित हो गये हैं उससे उनकी स्थिति को विशेष रूप से दृढ़ता प्राप्त होती जा रही है। और यह बात उनके महत्त्व को बढ़ाती है। मुसलमान-नेता भी अपनी इस अवस्था से पूर्णतया परिचित हैं। इसी से उनकी महत्त्वाकांक्षा और भी बढ़ गई है। यही कारण है जिससे वे कांग्रेस से समझौता नहीं कर रहे हैं। वे उसके साथ समझौता करने में अपनी हानि समझते हैं। वे जानते हैं कि कांग्रेस उनकी माँगों की पूर्ति नहीं करेगी, क्योंकि उनकी मुग़लकालीन प्रतिपत्ति उसे स्वीकार नहीं है। और मुस्लिम लीग के नेताओं की माँगों की आधार-शिला उनका उपर्युक्त मनोभाव ही है। ऐसी दशा में मुसलमानों से कांग्रेस का कैसे समझौता हो सकता है? साथ ही ब्रिटिश सरकार से भी नहीं हो सकेगा, क्योंकि उनकी माँग अन्यायमूलक है। यह दूसरी बात है कि अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थिति के कारण उसे उनकी माँगों को सुनकर अपना स्पष्ट विचार रोक रखना पड़ रहा है। चाहे जो हो, मुसलमानों के इस मनोभाव के कारण भारत की राजनैतिक अवस्था में ऐसी जटिलता आगई है कि महात्मा गांधी जैसे वीतराग महान् नेता भी उसे सुलझाने में अपने को असमर्थ पा रहे हैं।

बंगाली नवयुवकों का दुर्व्यवहार

अभी हाल में बंगाल के ढाका-ज़िले के मलाकाँदा में गान्धी-सेवा-संघ का वार्षिक अधिवेशन हुआ था।
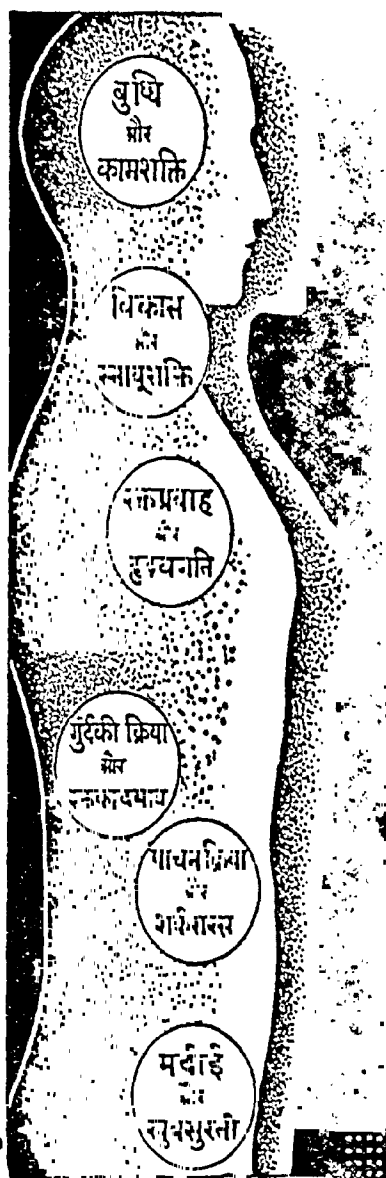
मर्दाई जवानी और शक्ति

प्राप्त करनेके लिये

ओकासा

तुरंत व्यव्हार कीजिये

OKASA

मनुष्य के शरीर में ऐसी ग्रंथियाँ है जिन पर मनुष्य की जवानी, आरोग्य और शक्ति निर्भर है। ओकासा इन ग्रंथियों की क्रिया को क़ाबू में रखता है और मनुष्य को स्वस्थ, जवान और शक्तिमान् रखता है।

२ सप्ताह ओकासा का व्यवहार कीजिए।

जंग के कारण ओकासा की क़ीमतों में परिवर्तन नहीं हुआ। क़ीमत छोटी साइज़ ३।।।), बड़ी साइज़ १०); हर दवावाले से खरीदिये।

ओकासा डिपो, पार्क मेनशन, देहली गेट, देहली से मँगाइए।

उसमें भाग लेने के लिए महात्मा गान्धी, सरदार पटेल आदि नेता मलाकांदा गये थे। मलाकांदा जाते समय ये लोकनेता कलकत्ते में ठहरे थे। कलकत्ते में तथा मलाकांदा में कुछ बंगाली युवकों ने महात्मा जी का तथा सरदार पटेल का काले झंडे दिखाकर 'लौट जाओ' तथा 'गान्धीवाद मुर्दाबाद' के नारे लगाये थे। यही नहीं, बंगाल से लौटते समय सेरमपुर के स्टेशन में गान्धी जी के डिब्बे में जूता भी फेंका गया। ऐसे प्रदर्शन से बंगाल की गौरव-वृद्धि नहीं हुई है और वह भी उस दशा में जब कि सुभाष बाबू का उन सभी स्थानों में धूमधाम से ही स्वागत किया गया है जहाँ उनके विरोधी-दल का बहुमत है। वास्तव में बंगाली नवयुवकों ने यह अशोभन कार्य किया है और सो भी उस दशा में जब उनके नेता इस बात का दावा करते हैं कि उनका प्रान्त कांग्रेस की कार्य-समिति के साथ नहीं है। बंगाल की प्रान्तीय कांग्रेस-कमिटी के सहकारी मंत्री ने अखबारों में छपवाया है कि बंगाल की २,६२७ प्रायमरी कांग्रेस-कमिटियों में से ८५ प्रतिशत कमिटियाँ, ९२ सब डिवीजनल कांग्रेसकमिटियों में ६७कमिटियाँ और ३२ ज़िला-कांग्रेस-कमिटियों में २० कमिटियाँ प्रान्तीय कांग्रेस-कमिटी के साथ हैं। यदि ये आंकड़े ठीक हैं तो इससे अधिक प्रामाणिक तथा प्रभावकारी और दूसरी बात नहीं हो सकती। खेद की बात है, उपर्युक्त प्रदर्शन करके बंगाल के कुछ युवकों ने उस मार्ग का ग्रहण किया है जो निंद्य और लज्जाजनक है।

कृषि-सम्बन्धी एक नई योजना

भारत में इस बात की सबसे अधिक आवश्यकता है कि उसका कृषि-उद्योग अधिक उन्नत तथा विस्तृत किया जाय। उसके विस्तृत करने की अभी काफ़ी अधिक गुंजाइश है। संयुक्त-प्रान्त की भूमि ६९½ करोड़ एकड़ है। इसमें ३ करोड़ और ५५ लाख एकड़ भूमि खेती में फैली हुई है। शेष में से २८½ लाख एकड़ में जंगल है, २० लाख एकड़ रेहभूमि है, ३० लाख एकड़ ऊसर है और ९९ लाख एकड़ भूमि कृषि-योग्य भूमि बेकार पड़ी है। यदि ऊसर भूमि खेती के योग्य बना ली जाय तो ३० लाख ऊसर भूमि और ९९ लाख एकड़ बेकार भूमि खेती के काम आ सकती है, जो इस प्रान्त की बेकारी की समस्या को सरलता से हल कर सकती है। श्रीयुत विशन मानसिंह ने 'लीडर' में एक लेख लिखकर बताया है कि ऊसर खेती के योग्य सरलता से बनाये जा सकते हैं। ज़रूरत इस बात की है कि इस कार्य की ओर प्रान्तीय सरकार समुचित रूप से ध्यान ही न दे, किन्तु ऊसरों को खेती के उपयुक्त बनाने की उनकी योजना को कार्य का रूप देने को तत्पर हो जाय।

ऊसर भूमि को खेती के उपयुक्त बनाने की एक प्रक्रिया पहले से ही इन प्रान्तों में प्रचलित है। वह है ऊसर में बबूल बोकर उसे खेती के उपयुक्त बना लेना। परन्तु इस प्रक्रिया को कभी व्यापक रूप नहीं दिया गया, साथ ही यह प्रक्रिया अधिक समय-साध्य है। इसके सिवा यह भी था कि ऊसरों को खेत बनाने की उतनी आवश्यकता भी नहीं थी। परन्तु अब यह बात नहीं रही। जन-संख्या की वृद्धि के कारण इस बात की नितान्त आवश्यकता है कि प्रान्त की बेकार पड़ी हुई भूमि जल्दी से जल्दी खेती के उपयुक्त बना ली जाय। और इस सम्बन्ध में श्रीयुत विशन मानसिंह ने जो योजना उपस्थित की है वह अधिक उपयुक्त प्रतीत होती है। उनका कहना है कि ऊसर भूमि का नमक निकाल देने से वह खेती के योग्य बनाई जा सकती है। और नमक निकालने की तरकीब यह है कि ऊसर में ऊँची मेंड़ के खेत बनाये जायँ और उनमें पानी भरा जाय, जो उनमें सात या दस दिन तक भरा रहने दिया जाय। ऐसा करने से उस भूमि का नमक उसमें भरे हुए पानी में आ जायगा। बाद को वह पानी नालियों के द्वारा निकाल दिया जाय। इस प्रक्रिया को वर्षा-ऋतु में जितनी बार हो सके करे। दो-तीन वर्ष ऐसा करने पर उस भूमि का नमक निकल जायगा और तब उसका ऊसरपन दूर हो जायगा और वह भूमि खेती के योग्य आसानी से बनाई जा सकेगी।

इसमें संदेह नहीं कि श्रीयुत विशन मानसिंह ने जो योजना उपस्थित की है वह सस्ती ही नहीं, जल्दी ही लाभ देनेवाली भी है। सरकार को तो उसे कार्य में परिणत ही करना चाहिए, ज़मींदारों और किसानों को भी उससे लाभ उठाना चाहिए।

अगले वर्ष का बजट

केन्द्रीय सरकार के दोनों बजट पास हो गये। केन्द्रीय असेम्बली से कांग्रेसी सदस्यों के असहयोग करने के कारण

इस वर्ष इन बजटों पर वैसा रोचक वाद-विवाद नहीं हो सका। तथापि राष्ट्रीय दल के तथा मुस्लिम लीग के सदस्यों में से कुछ ने दोनों बजटों की खरी और चोखी आलोचनायें करने से मुँह नहीं मोड़ा। रेलवे का बजट घाटे का बजट नहीं है, तो भी किराये की दरें बढ़ाई गई हैं, जिसका असर तीसरे दर्जे के यात्रियों पर भी पड़ेगा। मुसाफ़िरों के किराये और ढुलाई के महसूल में वृद्धि से वास्तव में सरकारी रेलों की आय पहले से ही बढ़ रही है और यदि वह किराये और महसूल में वृद्धि न करती तो भी उसे साधारण वर्षों की अपेक्षा कुछ अधिक ही आय होती। १९३९–४० के वर्ष के लिए पहले २१३ लाख की बचत का अनुमान किया गया था, किन्तु युद्ध होने के कुछ पहले से आय बढ़ने लगी और रेलवे अधिकारी अब इस अनुमान पर पहुँचे हैं कि चालू खर्च में अनुमान से ११० लाख की वृद्धि होने पर भी ३६१ लाख का लाभ होगा। रेलवे अधिकारियों ने स्वीकार किया है कि पिछले दस साल में रेलवे-बजट में किसी वर्ष मुनाफ़े की रक़म इतनी अधिक नहीं हुई है। फिर भी जनता पर भार बढ़ाकर रेलों की आय को और भी बढ़ाने की चेष्टा की जा रही है।

उधर जो देश का बजट है वह युद्धकाल का बजट है, अतएव उसका घाटे का होना अनिवार्य है ही। तथापि इसमें शक्कर पर जो चुंगी बढ़ा दी गई है उससे देश के इस नये उन्नतिशील धन्धे के विकास में रुकावट हो जायगी। आलोचकों ने अन्य दोषों के साथ साथ इन दोनों त्रुटियों की ओर सरकार का ध्यान विशेष रूप से आकृष्ट किया, परन्तु उनके एतराज़ नहीं माने गये। प्रधान बजट के आँकड़े 'हिन्दुस्तान' ने इस प्रकार दिये हैं–

१९४०–४१ में आनुमानिक आय ...	८५ करोड़ ४३ लाख
" " " व्यय ...	९२ करोड़ ५९ लाख
घाटा	७ करोड़ १६ लाख
चीनी के प्रस्तावित उत्पत्ति-कर से आय–	१ करोड़ ९० लाख
पेट्रोल के प्रस्तावित टैक्स से आय –	१ करोड़ ४० लाख
प्रस्तावित अतिरिक्त मुनाफ़ा-कर से आय–	३ करोड़ ...
गत साल (१९३९–४०) का शेष –	९१ लाख ...

इस प्रकार बढ़ाई गई ७ करोड़ २१ लाख की आय से ७ करोड़ १६ लाख का घाटा पूरा करके अन्तिम ने बजट यह बताया गया है—

आय–	९२ करोड़ ६४ लाख
व्यय–	९२ करोड़ ५९ लाख
बचत	५ लाख

युद्ध के खर्च के बारे में ब्रिटिश सरकार के साथ य समझौता हो गया है कि हिन्दुस्तान युद्ध के इन दिनों में युद्ध से पहले के दिनों के समान ही खर्च अदा करेगा, लेकि बढ़ा हुआ बाजार भाव और अपनी सैनिक तैयारि का खर्च इसमें बढ़ाया जायगा। हिन्दुस्तान की बाहर हमलों से रक्षा करने के लिए जहाँ-तहाँ समुद्री ना पर रक्खी गई सेना के खर्च के लिए हिन्दुस्तान सिर्फ़ ए मुश्त एक करोड़ रुपया दे देगा। इस एक करोड़ से अधि जो खर्च होगा वह ब्रिटिश सरकार करेगी। इस प्रका सेना के खर्च का जो अधिक भार होगा वह १९३९–४ में ३ करोड़ ७६ लाख और १९४०–४१ में ८ करोड़ २ लाख होगा।

फ़िनलैंड की पराजय

जैसा कि पहले से ही प्रकट था कि फ़िनलैंड रूस के आगे अधिक समय तक टिक न सकेगा, अन्त में वही हुआ। १०३ दिन तक घोर युद्ध करने के बाद लाचार होकर उसे रूस की ही शर्तों पर सुलह कर लेनी पड़ी। परन्तु जहाँ तक पुरुषार्थ से सम्बन्ध है, फ़िनलैंड के निवासियों ने अप्रतिम शौर्य का परिचय दिया, और इसके लिए वहाँ के निवासियों का नाम इतिहास में स्वर्णाक्षरों में लिखा जायगा। फ़िनलैंड की इस युद्ध से एक यह बात भी प्रकट हुई है कि वैज्ञानिक ढंग से निर्मित मोर्चों को तोड़कर किसी देश में एकाएक घुस जाना साधारण बात नहीं है। फ़िनलैंड के प्रधान सेनापति मैनरहीम ने मोर्चों की जो पंक्ति बनाई थी उनके तोड़ने में महीनों ही नहीं लग गये, रूस को अपने हज़ारों सैनिक कटवा देने पड़े। तब कहीं उसे विजय प्राप्त हो सकी।

इसमें संदेह नहीं कि फ़िनलैंड से ब्रिटेन, फ़्रांस, इटली और संयुक्त राज्यों की पूरी सहानुभूति प्राप्त थी और धन तथा युद्धसामग्री से उसे यथासंभव सहायता दी भी गई, और जब रूस का उस पर बहुत अधिक

दबाव पड़ा तब ब्रिटेन और फ्रांस ने उसकी सेना से भी सहायता करने को तैयार हुए। परन्तु फ़िनलैंड के दुर्भाग्य से नार्वे और स्वीडन ने अपनी निरपेक्षता की नीति के कारण अपने देश से उनकी सेनाओं को जाने की अनुमति ही न दी। ऐसी असहाय अवस्था में फ़िनलैंड संधि कर लेने के सिवा और क्या करता।

जो संधि हुई है उससे फ़िनलैंड का १५ हज़ार वर्ग मील का भूभाग उसके हाथ से निकल गया है और वह एक प्रकार से रूस के प्रभाव-क्षेत्र में आ गया है।

फ़िनलैंड की इस हार का भविष्य की अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति पर बुरा प्रभाव पड़ा है। इटली और तुर्की में सैनिक गति-विधि अधिक दिखाई देने लगी है। रूमानिया से भी रूस की बातचीत शुरू हो गई है। देखना है कि योरप की राजनीति अब कैसा रुख लेती है। यह तो प्रकट ही है कि अवस्था अधिक संकटपूर्ण हो गई है।

रेल के इंजनों का भारत में निर्माण

इस देश की जनता सरकार से बहुत दिनों से प्रार्थना कर रही थी कि भारतीय रेलों के लिए इंजन इसी देश में बनाये जायँ और इसके लिए यहाँ एक फ़ैक्टरी खोल दी जाय। पर सरकार अभी तक किसी विशेष कारण से इस बात को सुनी-अनसुनी कर रही थी। सरकारी पक्ष की दलील यह थी कि इस देश की रेलों में इंजनों की माँग कम है। इतनी थोड़ी माँग के लिए ही एक इंजन बनानेवाली फ़ैक्टरी खोल देना बुद्धिमानी और मुनाफ़े का व्यापार नहीं हो सकता।

पर अब लक्षणों से ज्ञात होता है कि सरकार को इसके लिए शीघ्र ही कुछ करना पड़ेगा। पिछले दिनों रेलवे के दो अफ़सरों की—जो इस विषय के विशेषज्ञ हैं—एक कमिटी यह जाँच करने के लिए नियुक्त की गई कि इस देश में इंजनों का बनाना सम्भव और व्यापारिक दृष्टि से लाभदायक हो सकता है या नहीं। कमिटी की रिपोर्ट अभी हाल में प्रकाशित हुई है। रेल-विभाग के मंत्री सर एन्ड्रयूक्लो ने रेलवे-बजट पर भाषण करते हुए केन्द्रीय धारा-सभा के गत अधिवेशन में कहा है कि सरकार इस रिपोर्ट में की गई सिफ़ारिशों की सम्भावनाओं पर शीघ्र ही विचार करेगी और फ़ैक्टरी खोलने के व्यय का तख़मीना तैयार होते ही एसेम्बली में इसके लिए माँग उपस्थित करेगी।

सरकार की यह सूझ सामयिक भी है और उपयोगी भी है, इसमें कोई सन्देह नहीं। और इसी लिए रेल-मंत्री के उक्त भाषण से प्रसन्न हुए हैं। इंजनों की माँग भी शीघ्र ही अधिक होनेवाली है, क्योंकि पिछले २० साल से रेलवे कम्पनी ने नये इंजन बहुत कम लिये हैं। जो कुछ इंजन थे उन्हीं की मरम्मत कराकर काम में लेती रही। किफ़ायत की दृष्टि से ही ऐसा किया गया। अब उनमें से अधिकांश इंजन बेकार हो चले हैं। उक्त रिपोर्ट से ज्ञात होता है कि इंजनों की माँग का वार्षिक औसत अब बढ़नेवाला है। प्रति ३५-३६ वर्ष में १०८ बड़ी लाइन के और ३८ छोटी लाइन के इंजनों की ज़रूरत यहाँ पड़ा करेगी। फलतः इस माँग की पूर्ति के लिए जो फ़ैक्टरी खोली जायगी उसे बराबर साल भर काम मिलेगा और वह भी लगातार आगामी कई सालों तक।

इस वस्तुस्थिति में इंजन बनानेवाली फ़ैक्टरी का इस देश में खोला जाना न केवल आवश्यक किन्तु अनिवार्य हो जाता है। बात यह है कि इंजनों की माँग यहाँ होगी ही, पर उसकी पूर्ति के लिए अब विलायत की ओर नहीं देखा जा सकता। क्योंकि एक तो वहाँ के जितने कारखाने हैं वे आजकल महायुद्ध की विभीषिका के कारण युद्धोपयोगी शस्त्रास्त्रों के ढालने में ही बुरी तरह संलग्न हैं, दूसरे अब माल का आना-जाना भी उतना सरल नहीं रह गया है। अतः इस फ़ैक्टरी के खोलने में जितनी शीघ्रता की जाय उतना ही अच्छा है, जिससे कहीं ऐसा न हो कि इंजनों के अभाव से भारत के आभ्यन्तरिक यातायात में भी बाधा उपस्थित हो जाय।

मदरास और हिन्दी-शिक्षा

कांग्रेसी सरकार ने अपने शासन के अल्प समय में ही मदरास की जनता को जो लाभ पहुँचाये थे उनमें हिन्दी-प्रचार भी एक था। 'हिन्दी या हिन्दुस्तानी' कांग्रेस-द्वारा भारत की राष्ट्रभाषा मान ली गई है, अतः उसकी दृष्टि में उसका प्रचार अहिन्दी-भाषी प्रान्तों में जितना शीघ्र हो जाय, राष्ट्र के लिए उतना ही अच्छा है। यह असम्भव सा है कि लोकोपयोगी कोई भी योजना, चाहे वह कैसी ही लाभदायक क्यों न हो, सर्वसाधारण-द्वारा एकमत

से स्वीकार कर ली जाय। आखिर समाज में दक़ियानूसों की भी कुछ संख्या रहती ही है और वे किसी भी योजना को, उसके नये होने के कारण ही, फूटी आँखों देखना तक पसन्द नहीं करते। अतः कोई सरकार इसके लिए यदि थोड़ा-बहुत बल-प्रयोग भी करे तो वह सह्य है। माननीय राजगोपालाचार्य जी ने भी अपने मंत्रित्व-काल में मदरास में हिन्दी की शिक्षा स्कूलों में अनिवार्य कर दी थी, माननीय राजा जी के अल्प-कालीन शासन में ही मदरास में हिन्दी की आशाजनक उन्नति और प्रगति हो गई थी।

इधर कांग्रेस-मंत्रिमण्डल के हटते ही और गवर्नर की सरकार के स्थापित होते ही वहाँ हिन्दी के विरोधियों की चढ़ बनी है। इसे राष्ट्र का और विशेषतः मदरास-प्रान्त का दुर्भाग्य ही समझना चाहिए। गवर्नर की सरकार ने हिन्दी को अनिवार्य-विषय के पद से उतारकर ऐच्छिक विषय के धरातल पर डाल दिया है और वह भी बुरी तरह से। आरम्भिक ३ कक्षाओं से तो हिन्दी हटा ही दी गई है। चौथी कक्षा से यदि कोई विद्यार्थी चाहे तो उसे ऐच्छिक विषय के रूप में ले सकता है। स्कूल लीविंग-सर्टीफ़िकेट के लिए भी हिन्दी एक विषय स्वीकार कर ली गई है, पर हाई स्कूलों में हिन्दी-शिक्षा की कोई व्यवस्था न रहने से अव्वल तो कोई छात्र हिन्दी लेगा ही क्यों, और यदि लेगा भी तो उसके उत्तीर्ण होने में ही सन्देह रहेगा। इस तरह मदरास में हिन्दी-प्रचार के मार्ग भारी में बाधा आ गई है।

पर मदरास की जनता का भी कुछ कर्तव्य है। उसे भी अपने भले-बुरे की समझ है। भले ही हिन्दी ऐच्छिक विषय रहे, पर इतने विद्यार्थियों को उसे लेने के लिए तैयार हो जाना चाहिए कि सरकार को उसके लिए शिक्षा-विभाग में सुव्यवस्था कर देने को विवश होना पड़े। गवर्नरों की सरकारें तो राष्ट्रीयता-प्रचार में अधिक उत्सुकता नहीं दिखायेंगी, पर इसका अर्थ यह नहीं है कि जनता भी अपना हिताहित न समझे। आशा है कि मदरास का विद्यार्थी-वर्ग इस दिशा में अपनी जिम्मेदारी का पालन पूरी तरह से करेगा।

राजयक्ष्मा और काला सर्प

काले सर्प का रक्त राजयक्ष्मा के रोगियों को विशेष लाभ करता है, पर इसके संबन्ध में साधारण चिकित्सकों का अनुभव अभी तक नहीं के बराबर ही है। बात यह है कि काले सर्प सर्वत्र पाये जाने पर भी, हर समय नहीं मिल सकते और उनसे काम लेना भी जान-जोखिम का काम है। कई वर्ष हुए, स्वर्गवासी मसीहुलमुल्क हकीम अजमल ख़ाँ साहब ने इसके प्रयोग आरम्भ किये थे, जिनमें उन्हें सफलता भी मिली थी। उन्होंने रामपुर-रियासत में एक विशेष प्रकार का गन्ना पैदा कराया था, जिसमें मरे हुए काले साँपों की खाद दी गई थी। साँप कम मिल सके थे, इसलिए गन्ने भी अँगुलियों पर गिनने लायक़ ही पैदा किये जा सके थे। पर ये गन्ने यक्ष्मा के जिन रोगियों को सेवन कराये गये थे उन्हें आश्चर्यजनक लाभ हुआ था। तब से रामपुर के अतिरिक्त शायद दो-एक और स्थानों में भी इसके प्रयोग किये गये हैं।

कहते हैं कि स्वर्गीय मसीहुलमुल्क ने अपनी किसी खानदानी पुरानी पोथी में यह नुस्खा पाया था। इससे सिद्ध होता है कि पुराने ज़माने में भारतीयों को इसके संबन्ध में काफ़ी अनुभव रहा होगा। पर इधर जापान में भी इस चिकित्सा के प्रचलित होने के समाचार मिले हैं। ओसवाल्ड हेनरी नामक एक सज्जन पिछले दिनों जापान गये थे। वहाँ के याकोहामा शहर में घूमते-फिरते वे एक ऐसी दूकान के सामने से निकले जिसमें साँप ही साँप थे। इनमें से कुछ तो शीशे की आलमारियों में बन्द थे और कुछ के रहने के लिए बाँबियों और अँधेरे कोटरों की व्यवस्था की गई थी। हेनरी महाशय कौतूहलवश उसमें घुस गये और उन्होंने देखा कि एक डाक्टर ने जो उस दूकान का मालिक था, एक काला साँप कोटर में हाथ डालकर निकाला। फिर उसका मुँह खोलकर क़ैंची से मुँह के भीतर की खाल का एक पर्त काट दिया। इससे एक 'धमनी' निकल आई। इस धमनी के काटने से आधा गिलास रक्त निकला। यह रक्त कुछ जल में मिलाकर एक रोगी को पिलाया गया जो यक्ष्मा से पीड़ित था। डाक्टर से पूछने पर पर्यटक महाशय को ज्ञात हुआ कि जापान में साँप का रक्त यक्ष्मा के रोग के लिए शत-प्रतिशत लाभदायक और अचूक प्रयोग माना जाता है।

आशा है, विज्ञान कभी न कभी इस संबन्ध में काफ़ी खोज करेगा। इससे न केवल यक्ष्मा की विभीषिका का अन्त हो जायगा, प्रत्युत एक जीव जो साधारणतः मनुष्य का काल समझा जाता है, उसका सबसे बड़ा मित्र बन जायगा।

रामगढ़ का कांग्रेस-अधिवेशन

कांग्रेस का ५३वाँ अधिवेशन इस वर्ष बिहार के राँची के पास रामगढ़ नाम के गाँव में किया गया। इस अधिवेशन के सभापति प्रसिद्ध मुस्लिम-नेता मौलाना अबुल क़लाम आज़ाद मनोनीत हुए थे। इस अधिवेशन की कार्यवाही की ओर सारे देशवासियों की आँखें लगी हुई थीं। परन्तु भयानक जलवृष्टि हो जाने से बीच में ही अधिवेशन की कार्यवाही बन्द कर देनी पड़ी। जो अधिवेशन चार चार दिन होता रहता था, जलवृष्टि के अनर्थ के कारण डेढ़ ही दिन में समाप्त कर दिया गया। राष्ट्रपति मौलाना आज़ाद अपना महत्त्वपूर्ण भाषण तक खुले अधिवेशन में नहीं पढ़ सके। उसका एक विशेष अंश इसी अंक में अन्यत्र दिया
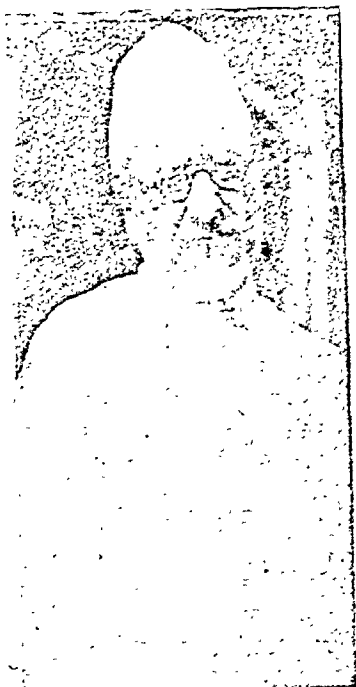
रामगढ़ कांग्रेस के प्रेसीडेंट मौलाना अबुलकलाम आज़ाद

गया है। इसमें सन्देह नहीं है कि कांग्रेस के इस अधिवेशन में लोक-नेताओं ने जो निश्चय किया है वह भले प्रकार सोच-विचार करके किया है। वास्तव में इस संकट-काल में बड़ी सावधानी की आवश्यकता है और जैसा कि सभापति मौलाना साहब ने अपने भाषण में कहा है कि हमें महात्मा जी के नेतृत्व पर पूर्ण विश्वास करना चाहिए, सर्वथा ठीक है, क्योंकि भारत में एक वही ऐसे व्यक्ति हैं जो देश की नौका को तूफ़ान में पार ले जा सकते हैं। सन्तोष की बात है कि महात्मा जी भी देश की वर्तमान संकटपूर्ण परिस्थिति को देखकर अपने कर्तव्य के पालन की ओर अग्रसर हुए हैं और उन्होंने देश का नेतृत्व ग्रहण करना स्वीकार कर लिया है। आशा है, उनके नेतृत्व में देश की अभिलाषा की इस बार पूर्ति होगी।

श्री काशीराम-पुरस्कार

नारायणगंज (ढाका) के बैंकर श्रीयुत चन्द्रभूषण जी वैश्य हिन्दी के बड़े प्रेमी हैं। उनका 'राजदुलारी' नाम का एक मौलिक उपन्यास इंडियन प्रेस से हाल में ही प्रकाशित हो चुका है। परन्तु वे स्वयं ही लिखकर अपने हिन्दी-प्रेम का परिचय नहीं देना चाहते, वरन दूसरे लेखकों तथा लेखिकाओं को भी हिन्दी में लिखने के लिए प्रोत्साहन देने को तैयार हुए हैं। इसके लिए उन्होंने अपने स्वर्गीय पिता श्रीयुत काशीराम जी वैश्य के नाम पर एक पुरस्कार देने की व्यवस्था की है। यह पुरस्कार प्रति तीसरे महीने दिया जायगा। एक बार कविता पर, दूसरी बार कहानी पर— इसी क्रम से चलेगा। इस पुरस्कार की ब्योरेवार सूचना इसी अंक में अन्यत्र छपी है। इस सद्-प्रयत्न के लिए हम श्रीयुत चन्द्रभूषण जी को बधाई देते हैं और चाहते हैं कि उनका यह हिन्दी-प्रेम उत्तरोत्तर उन्नति को प्राप्त होता रहे। आशा है, हिन्दी के सुलेखक और सुलेखिकायें इस पुरस्कार से लाभ उठाने को यत्नशील होंगी।

वर्ग-प्रतियोगियों को सूचना

सरस्वती वर्ग नं० ४३ की दुबारा जाँच के लिए आये हुए प्रार्थना-पत्रों के अनुसार जाँच करने से निम्न सज्जन पुरस्कार के अधिकारी प्रमाणित हुए हैं, अतः इन्हें भी उपयुक्त पुरस्कार में भाग मिला—

दो अशुद्धियों पर

(१) श्रीयुत ब्रजकिशोर गुप्त, पुराना थाना, महोबा।

तीन अशुद्धियों पर

(१) श्रीयुत प्रकाशचन्द्र जायसवाल, [illegible] होस्टल, इलाहाबाद।

(२) श्रीयुत मार्कण्डेय शुक्ल, नया कटरा, इलाहाबाद।

भूल-सुधार

'खुली हवा में' शीर्षक कविता में 'नावों ओर' की जगह 'नौओं ओर' और 'वारि-वीचियों की तलवट पर' की जगह 'वारि-वीचियों की सलवट पर' पढ़िए।

पचास रुपये का

श्री काशीराम-पुरस्कार

यह पुरस्कार इस वार—**कविता**—पर दिया जायगा। नियम निम्नांकित है—

(१) हिन्दी का कोई भी कवि या कवयित्री इस पुरस्कार की प्रतियोगिता में भाग ले सकेंगे।

(२) रचनायें भेजने की अन्तिम तारीख ३१ मई है।

(३) रचनायें खड़ी बोली में होनी चाहिए। छन्द-संख्या लगभग ५० के हो। केवल नई और मौलिक रचनाओं पर विचार किया जायगा।

(४) सर्वश्रेष्ठ रचना पर ५०) का पुरस्कार ३० जून को भेज दिया जायगा, और रचना 'सरस्वती' में छापी जायगी। पुरस्कार का रुपया निर्णायक भेजेंगे।

(५) रचनाओं का निर्णय 'सरस्वती'-सम्पादक पण्डित देवीदत्त जी शुक्ल करेंगे। प्रतियोगियों को अपनी रचनायें उन्हीं के नाम 'इण्डियन प्रेस लिमिटेड, इलाहाबाद,' के पते से भेजनी चाहिए।

(६) रचना पर 'श्री काशीराम पुरस्कार के लिए'—यह वाक्य अवश्य लिखा रहना चाहिए। रचना के साथ आवश्यक टिकट अवश्य होना चाहिए, अन्यथा अस्वीकृत होने पर कोई रचना वापस न की जायगी।

निवेदक

चन्द्रभूषण वैश्य, नारायणगंज (ढाका)

युद्ध की डायरी

२४ फ़रवरी—ब्रिटिश हवाई जहाज़ों ने ४ यू-बोट डुबा दिये।

२६ फ़रवरी—फ़िनियों ने कडिविस्टो द्वीप खाली कर दिया।

२७ फ़रवरी—फ़ोर्थ की खाड़ी के किनारे २ जर्मन हमलावर हवाई जहाज़ों को ब्रिटिश हवाई जहाज़ ने मार गिराया।

जर्मनी के एक जहाज़ 'वाहेहे' को (४,७०९ टन) ब्रिटिश फ़ौजी जहाज़ ने पकड़ लिया।

२८ फ़रवरी—फ़िनलैंड के कैरेलियन स्थल डमरूमध्य पर घनघोर युद्ध रूसी व फ़िन सेनाओं में हुआ।

१ मार्च—वीपुरी में रूसी व फ़िन सेनाओं में घमासान युद्ध हुआ।

४ मार्च—मोला नामक एक ब्रिटिश जहाज़ को जर्मन-जहाज़ ने आग लगाकर नष्ट कर दिया। 'वीपुरी' के निकट फ़िन-रूसी फ़ौजों में संघर्ष हुआ।

६ मार्च—मेगोनाट लाइन के एक ब्रिटिश फ़ौजी अड्डे पर जर्मनों ने हमला किया।

स्काटलैंड के पूर्वी-उत्तरी तट पर एक जर्मन-वायुयान ब्रिटिश सैनिक वायुयान के द्वारा मार गिराया गया।

१२ मार्च—रूस-फ़िन-सन्धि की चर्चा और आगे बढ़ी। फ़िनलैंड की कठपुतली सरकार के व्यक्ति गिरफ़्तार कर लिये गये।

१५ मार्च—एक जर्मन-पनडुब्बी डुबा दी गई। फ़िन व लाल फ़ौजें मोरचों से लौटने लगीं।

१६ मार्च—रूस व फ़िनलैंड की सन्धि फ़िनलैंड की पार्लियामेंट में स्वीकृत व प्रमाणित हो गई।

१९ मार्च—ब्रिटिश वायुयानों ने जर्मनी के सिल्ट द्वीपस्थित थकनम के हवाई अड्डे पर भयानक आक्रमण किया, बम बरसाये गये।

मोसेल व नीड नदियों के बीच जर्मनों ने फ़्रांसीसी सेनाओं पर कई हमले किये।

"कैपटेनी आगस्टिन" नामक फ़्रेंच जहाज़ इंग्लैंड के पूर्वी तट से कुछ दूर एक सुरंग से टकरा कर डूब गया।

२० मार्च—फ़्रांस में दलादिए के मंत्रि-मंडल ने इस्तीफ़ा दे दिया और उसके स्थान पर रेनो मंत्रि-मंडल क़ायम हुआ।

२१ मार्च—स्काटलैंड के पास ब्रिटिश जहाज़ों पर जर्मन हवाई जहाज़ों ने आक्रमण किया।

Printed and published by K. Mittra, at The Indian Press, Ltd. ALLAHABAD.

इस संख्या में पढ़िए

सिद्धार्थ-विदा

[श्रीयुत रेणुरञ्जन मल्लिक, ४ भुवन सरकार लेन, कलकत्ता के सौजन्य से

सचित्र मासिक पत्रिका

सम्पादक

देवीदत्त शुक्ल—उमेशचन्द्र मिश्र

मई १९४० } भाग ४१, खंड १ संख्या ५, पूर्ण संख्या ४८५ { वैशाख १९९७

दो गीत

लेखक, श्रीयुत मोहनलाल महतो

(१)

क्या गाऊँ माँ, कौन सुनेगा ?

कौन हार सरवस फिर दुःख पर सुख के जाल बुनेगा ?

पी जीवनमद बन मतवाला,
थिरक रहा ले खाली प्याला,
यह गति जग की, कौन करुण तानों पर सीस धुनेगा ?

अपनी मीठी नींद सँजोये,
निशा शेष है, पंछी सोये,
मेरे स्वर के ताल-ताल पर तिनके कौन चुनेगा ?

क्या गाऊँ माँ, कौन सुनेगा ?

(२)

स्वर अपने न रहे, क्या गाऊँ ?

निकल रहे हैं गीत 'आह' बन, कैसे इन्हें मनाऊँ ?

अन्धकार है, पथ अनजाना,
मुझे तुम्हारे तक है जाना,
वीणा बनी हाथ की लकुटी कैसे तार मिलाऊँ ?

वर देकर वरदान बनो तुम,
जो गाऊँ वह गान बनो तुम,
फिर बोलो मुझमें कवि बनकर, कैसे तुम्हें रिझाऊँ ?

स्वर अपने न रहे क्या गाऊँ ?

हिन्दू-संस्कृति की रक्षा

लेखक, श्रीयुत इन्द्र विद्या-वाचस्पति

'हिन्दू-संस्कृति' क्या है ? उसकी रक्षा होनी चाहिए या उसका नाश करके एक नई 'हिन्दुस्तानी-संस्कृति' का निर्माण करना चाहिए ? जैसा कि अनेक आधुनिकतावादियों की सम्मति है। इन दोनों में से कौन-सा मार्ग इस देश के लिए लाभदायक तथा व्यावहारिक है ? इन्हीं प्रश्नों की विवेचना व तर्कपूर्ण उत्तर लेखक महोदय ने इस लेख में दिया है।

'संस्कृति' का अभिप्राय

किसी जाति के धर्म, साहित्य, रीति-रवाज और आदर्शों के समुच्चय का नाम आजकल की भाषा में 'संस्कृति' है ? संस्कृति-शब्द का प्रयोग अँगरेज़ी-शब्द 'कल्चर' के स्थान पर होने लगा है। अनुवाद शाब्दिक तो नहीं है, परन्तु अभिप्राय दोनों शब्दों का एक ही है। आलंकारिक भाषा में हम कह सकते हैं कि जाति शरीर है तो संस्कृति उसकी आत्मा है। जीवित शरीर में आत्मा रहेगी ही। जीवित जाति की भी संस्कृति होनी ही चाहिए। यदि उसकी कोई विशेष संस्कृति न हो, तो समझ लो कि या तो वह जाति केवल एक भ्रान्ति है अथवा लाश है।

हिन्दू-संस्कृति का अस्तित्व

क्या हिन्दू-संस्कृति नाम की कोई वस्तु है ? इस प्रश्न का उत्तर देने के लिए एक और प्रश्न का उत्तर आवश्यक है। क्या हिन्दू नाम की कोई जाति है ? यदि इस प्रश्न का उत्तर 'हाँ' में है तो संस्कृति सम्बन्धी प्रश्न का उत्तर भी 'हाँ' में ही होगा, परन्तु यदि हिन्दू-जाति नाम की कोई वस्तु नहीं तो हिन्दू-संस्कृति को भी आकाश कुसुम की तरह अर्थ से शून्य केवल एक समस्त शब्द ही समझना चाहिए।

क्या हिन्दू नाम की कोई जाति है ? इस प्रश्न का उत्तर असन्दिग्ध रूप से 'हाँ', है। आप उसे पसन्द करें या न करें। आप हिन्दूकुल में पैदा होकर लज्जित हों या अभिमान करें। आपको यह तो मानना ही पड़ेगा कि हिन्दू नाम की एक जाति का अस्तित्व है और उसके निवासस्थान का नाम ही हिन्दुस्थान है, हिन्दू-जाति कोई आज की कल्पना नहीं है। इसका बीजारोप कई युग पहले हुआ था। वैदिक समय से लेकर आज तक इसके नाम और रूप बदलते रहे हैं, परन्तु इसका अस्तित्व क़ायम रहा है; सम्पत्ति में और विपत्ति में, स्वाधीनता में और पराधीनता में—किसी दशा में यह रही हो, परन्तु संसार की सब जातियों से पृथक् इसकी सत्ता आज तक बनी रही है। भारत में अनेक जातियों के आक्रमण हुए, यूनानी, हूण, शक, सीथियन, मुसलमान और अँगरेज़—एक के पीछे दूसरी जाति ने आकर भारत पर राजनैतिक प्रभुत्व जमाया, परन्तु जैसे सदियों के भयंकर विदेशी आक्रमण अँगरेज़-जाति की हस्ती को न मिटा सके, उसी प्रकार उपर्युक्त सब राजनैतिक आक्रमण भी हिन्दूजाति की सत्ता को नहीं मिटा सके।

जिन आक्रमणों के सामने कई जातियों ने पूरा आत्म-समर्पण कर दिया उनके आगे सिर झुकाने पर मजबूर होकर भी हिन्दू-जाति ने अपनी सत्ता को क़ायम रक्खा। इसका कोई विशेष कारण अवश्य होना चाहिए। वह कारण यह है कि जिस नींव पर हिन्दू-जाति की दीवार खड़ी है वह बहुत मज़बूत मसाले से बनी है, और बहुत गहरी है। हिन्दू-संस्कृति ही वह नींव है।

संस्कृति के चार अंग हैं—(१) धर्म, (२) साहित्य, (३) रीति-रवाज और (४) भाषा। हिन्दू-संस्कृति के मूलाधार धर्म और साहित्य इतने पुराने हैं जितना पुराना मानवीय ज्ञान। वर्तमान हिन्दू-धर्म और साहित्य कितना ही विकृत हो, परन्तु यह तो मानना ही पड़ेगा कि उसका मूल बहुत गहरा है, वह ऐतिहासिक काल से भी बहुत प्राचीन वैदिक काल में गड़ा हुआ है। हिन्दू-जाति का साहित्य इस समय अनेक शाखा-प्रशाखाओं में बँटा हुआ होने पर भी एक ही तने से फूटा है और एक ही मूल पर आश्रित है। वह मूल भी आपको वैदिक काल में गड़ा हुआ मिलेगा, और क्योंकि रीति-रवाज का उद्भव-स्थान धर्म और भाषा का उद्भव स्थान साहित्य है, इस कारण ऐतिहासिक दृष्टि से परीक्षा करने पर मालूम होगा कि

हिन्दू-जाति की वर्तमान संस्कृति अधिकांश में प्राचीनतम वैदिक संस्कृति पर आश्रित है, और उसी का रूपान्तर है।

हिन्दू-संस्कृति पर बाहर के असर

आर्य-हिन्दू-संस्कृति का उद्भवस्थान वैदिक समय की कन्दराओं में है, परन्तु इसका यह तात्पर्य नहीं कि बीती हुई सैकड़ों शताब्दियों में वह प्रवाह अछूता ही चलता रहा है। आर्य-जाति पृथ्वी के अनेक भागों पर फैली हुई दिखाई देती है। उसकी जो धारा आज के हिन्दुस्तान कहलानेवाले देश में बह रही है उसे हम आर्य-जाति का हिन्दू-विभाग और उस जाति की संस्कृति को आर्य-हिन्दू-संस्कृति या केवल हिन्दू-संस्कृति के नाम से पुकारते हैं। वह संस्कृति अपने जन्म-काल से आज तक बहुत से नदी-नालों से प्रभावित होती रही है। उनमें से कुछ एक का निर्देश हम नीचे करते हैं—

(१) अति प्राचीन भारत में विद्यमान अनार्य जातियों की संस्कृति।

(२) यूनानी यवनों के आचार-व्यवहार और विचार।

(३) शक, हूण, सीथियन आदि आगन्तुक जातियों के प्रभाव।

(४) भारत से बाहर धर्म-प्रचार, राजनैतिक नीति या व्यापार के लिए गये हुए भारतवासियों-द्वारा लाये गये विदेशी प्रभाव।

(५) इस्लाम की संस्कृति।

(६) योरपीय संस्कृति।

आर्य-हिन्दू-संस्कृति इन सभी प्रकार के प्रभावों को न केवल लेती रही है, अपितु लेकर जज़्ब भी करती रही है। दृष्टान्त के लिए पुराने अनार्य विचारों का ही असर लीजिए। पौराणिक देवमाला पर ब्राह्मणकालीन आर्य-संस्कृति का प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता है। यह मानी हुई बात है कि पुराणग्रन्थों में देवमाला का जो विशाल विस्तार हुआ है उसमें अनार्य-जातियों की देवमालाओं का काफ़ी मिश्रण है। शक, हूण आदि जातियों का भारतीय आर्यों के धर्म पर तो बहुत गहरा प्रभाव नहीं हुआ, परन्तु भाषा, शिल्प आदि पर काफ़ी प्रत्यक्ष प्रभाव हुआ, और यह निश्चय से कहा जा सकता है कि उस प्रभाव को आर्य-संस्कृति ने सर्वथा अपना लिया। इसी प्रकार इस्लाम की संस्कृति ने भी हिन्दू-संस्कृति पर अपने गहरे असर छोड़े हैं। आज जो हिन्दू-संस्कृति हमें दीख रही है वह आर्य-संस्कृति पर सब बाह्य संस्कृतियों की क्रिया-प्रतिक्रियाओं का परिणाम है।

यह एक बड़ा मनोरंजक प्रश्न है कि वर्तमान हिन्दू-संस्कृति में कितना भाग असली पौदे का और कितना क़लम का है; वर्तमान हिन्दू-संस्कृति में कितना फ़ी सदी हिस्सा प्राचीन आर्य-सभ्यता का और कितना फ़ी सदी बाह्य और आगन्तुक है।

इस प्रश्न का उत्तर देना बहुत कठिन है, तो भी इतनी बात भरोसे से कही जा सकती है कि सदियों की क्रिया-प्रतिक्रियाओं के बाद भी जहाँ वर्तमान हिन्दू-संस्कृति की अन्तरात्मा अक्षुण्ण है और उसका मुख्य भाग प्राचीन भारतीय आर्य-संस्कृति पर अवलम्बित है, वहाँ साथ ही उसका शरीर बदल चुका है, और उसके मन पर भी बाहर के गहरे असर विद्यमान हैं।

क्या हिन्दू-संस्कृति को जीवित रहना चाहिए?

जिसे हम हिन्दू-संस्कृति कहते हैं वही वस्तुतः हिन्दुस्तान की प्रधान संस्कृति है। जो जातियाँ बाहर से भारत में आती रही हैं उन सभी ने वर्तमान हिन्दू-संस्कृति में अपना-अपना हिस्सा डाला है। उस संस्कृति को हम केवल हिन्दुओं की संस्कृति नहीं कह सकते, क्योंकि उसमें ऐतिहासिक काल से भी पहले से लेकर आज तक भारत पर जो जो प्रभाव पड़ते रहे हैं, उन सभी का मिश्रण है। हिन्दुस्तान की मुख्य संस्कृति वही समझी जा सकती है जो हिन्दुस्तान के सम्पूर्ण इतिहास की उपज है। हिन्दुस्तान के सम्पूर्ण इतिहास की उपज वही संस्कृति समझी जा सकती है जो वैदिक काल से लेकर आज तक जय-पराजय के उतार-चढ़ाव में से गुज़र कर भी जीवित है और जिसके शरीर पर सैकड़ों सदियों के संघर्ष के निशान विद्यमान हैं।

हिन्दू-संस्कृति में हिन्दुस्तानीपन है। उसकी जड़ें हिन्दुस्तान की भूमि में गड़ी हुई हैं और उसका वर्तमान कलेवर हिन्दुस्तान की जल-वायु से तैयार हुआ है। यही कारण है कि उसका राष्ट्रीयता से गहरा सम्बन्ध है।

इतना ही नहीं, हिन्दू-संस्कृति में अपनी कुछ ऐसी विशेषतायें हैं जो उसे न केवल भारतवर्ष के लिए अपितु सारे संसार के लिए उपयोगी बनाती हैं। हिन्दू-अध्यात्म-शास्त्र,

हिन्दू-साहित्य और हिन्दू-दर्शन अपनी पृथक् सत्ता रखते हैं। उनके बिना संसार के प्राचीन और अर्वाचीन वाङ्मय का पूरा समन्वय नहीं हो सकता। इस पाश्चात्य सभ्यता के मध्याह्न काल में भी दुनिया की विचार-धारा को भारतवर्ष की विचार-धारा से कुछ न कुछ मिल ही सकता है। केवल भारतवासी ही की दृष्टि से ही नहीं, अपितु विद्या की दृष्टि से भी आर्य-हिन्दू-संस्कृति का जीवित रहना आवश्यक है।

कहा जा सकता है कि इस नवयुग में भारत की नई संस्कृति का ही निर्माण क्यों न किया जाय? हिन्दू-संस्कृति पुरानी बोसीदा हो गई, क्यों न उसकी जगह एक नई हिन्दुस्तानी संस्कृति पैदा की जाय?

विचार अच्छा है, परन्तु प्रश्न यह है कि वह नई संस्कृति भारत के पुराने इतिहास से सम्बद्ध होगी या कोई बिलकुल नई चीज़ होगी? उसकी जड़ें भारत की भूमि में होंगी या भारत के बाहर से लाकर गमले में लगाई जायँगी? उसमें भारतीयपन रहेगा या उसके स्थान पर ब्रिटिशपन, अरबीपन या जापानीपन रहेगा? यदि उत्तर यह है कि वह नई हिन्दुस्तानी संस्कृति भारत की ऐतिहासिक भूमि के अलग, केवल विदेश से आगन्तुक चीज़ न होगी तो उसका नाम आर्य-हिन्दुस्तानी या और जो भी नाम चाहें रख लें, हम उसे हिन्दू-संस्कृति के नाम से ही पुकारेंगे। समयानुसार उसमें परिवर्तन हो सकते हैं, और होने ही चाहिए परन्तु उसकी मूल धारा अविच्छिन्न रहनी चाहिए। परन्तु यदि आप उसे कहीं बाहर से लाकर भूमि से ऊपर जमाना चाहते हैं, तो समझ लीजिए कि आप आकाश-कुसुम की माला बनाना चाहते हैं और खरगोश के सींग से मकान को सजाना चाहते हैं।

हिन्दू और हिन्दुस्तानी में भेद

कुछ लोगों का प्रस्ताव है कि अब हिन्दू-संस्कृति की रक्षा की आवश्यकता नहीं, क्योंकि समय आगया है कि उसके स्थान पर एक नई 'हिन्दुस्तानी संस्कृति' का आविष्कार किया जाय। हिन्दू-संस्कृति के विरुद्ध जो युक्तियाँ दी जाती हैं, उनमें से मुख्य ये हैं—हिन्दू-संस्कृति पुरानी होने के कारण बूढ़ी हो गई है, उसमें जीवन नहीं रहा। हिन्दू-संस्कृति में साम्प्रदायिकता की बू आती है और राष्ट्रीयता के युग में साम्प्रदायिकता का जीवित रहना अच्छा नहीं। भारत की स्वाधीनता के लिए आवश्यक है कि एकता क़ायम की जाय, और एकता तभी क़ायम हो सकती है जब हिन्दुत्व को दबा कर हिन्दुस्तानीपन को जाग्रत किया जाय। हमें देखना चाहिए कि क्या इन तीनों युक्तियों में कुछ सार है।

पहली युक्ति यह है कि हिन्दू-संस्कृति अब बहुत बूढ़ी हो गई है, वह देर तक जीवित नहीं रह सकती। जो लोग इस युक्ति का प्रयोग करते हैं, कहना पड़ेगा कि वे जातियों के जीवन-मरण के उसूलों को बिलकुल नहीं जानते। मनुष्य पुराना होकर मृत्यु के समीप पहुँच जाता है, परन्तु संसार का इतिहास बतलाता है कि जातियाँ पुरानी होकर मृत्यु के समीप नहीं पहुँचतीं, क्योंकि जाति की जड़ें जितनी ही गहरी होंगी, उसका जीवन उतना ही मज़बूत होता जायगा। पुरानी जातियों का कायापलट हो सकता है, वे मर नहीं सकतीं। जो समय व्यक्तियों को बूढ़ा करके मार देता है—वही समय जातियों की जड़ों को मज़बूत कर देता है। समय के साथ जो चीज़ें मज़बूत होकर जाति के जीवन को मज़बूत बनाती हैं, उन्हीं के समुच्चय का नाम संस्कृति है। पुरानी संस्कृति का नाश हो जाने पर जातियाँ उतनी ही फल-फूल सकती हैं, जितनी जड़ से अलग हो जाने पर लतायें। इसलिए यह मौलिक कल्पना ही निर्मूल है कि जाति की जीवन-रक्षा के लिए पुरानी संस्कृति का नाश करना आवश्यक है। संस्कृति के नाश का अभिप्राय है जाति का नाश। जैसे बुनियाद के टूट जाने पर दीवार और दीवार के गिर जाने पर मकान की छत नहीं रह सकती, इसी प्रकार संस्कृति का नाश हो जाने पर जाति और जाति का नाश हो जाने पर राष्ट्र भी जीवित नहीं रह सकते।

दूसरी युक्ति यह है कि हिन्दू-संस्कृति में साम्प्रदायिकता की बू आती है। हिन्दू-शब्द में साम्प्रदायिकता का अंश है, और हिन्दुस्तानी शब्द में नहीं। इसका कारण समझ में नहीं आता। सिन्धु नदी के कारण इस देश का नाम हिन्द पड़ा, और हिन्द के निवासी हिन्दू कहलाये। हिन्दुस्तान हिन्दुओं के निवास-स्थान को कहते हैं। हिन्द और हिन्दुस्तान—इन दोनों शब्दों के शब्दार्थ और भावार्थ दोनों एक हैं। हिन्दू-शब्द का उद्भव देश की भावना में है—साम्प्रदायिकता की भावना से नहीं। हिन्दवासी को

हिन्दू कहते हैं, और उसी को हिन्दुस्तानी कहते हैं। याद रखना चाहिए कि हिन्दूपन, हिन्दुत्व या हिन्दू-संस्कृति आदि शब्द पीछे बने हैं, और हिन्दू शब्द पहले। ऐसी दशा में हिन्दू शब्द की बीजभूत देशभावना का तज्जन्य भावनाओं पर प्रभाव होना चाहिए, न कि तज्जन्य भावों के कारण मूल-भावना को ही अनुदार मान लेना चाहिए।

तीसरी युक्ति यह है कि आज-कल राष्ट्रीयता का युग है। राष्ट्रीयता के युग में हिन्दू-संस्कृति जैसी व्यर्थ वस्तु को जीवित नहीं रखना चाहिए। यह युक्ति, प्रयोग करनेवालों की ओर अनभिज्ञता का प्रबल प्रमाण है। उन्हें मालूम नहीं कि संस्कृति के आधार पर ही राष्ट्रीयता का निर्माण होता है। मान लीजिए कि आपने राष्ट्रीयता का मार्ग साफ़ करने के लिए हिन्दू शब्द पर हड़ताल फेरकर हिन्दुस्तानी शब्द का निर्माण किया तो क्या उससे समस्या हल हो गई? क्या जो लोग हिन्दू-संस्कृति का केवल इसलिए विरोध करते हैं कि वह इस्लामी तमद्दुन (संस्कृति) से अलग है वे हिन्दुस्तानी-संस्कृति को सहर्ष स्वीकार कर लेंगे? जो लोग हिन्द के निवासी हैं उनकी संस्कृति हिन्दू-संस्कृति कहलाती है, और हिन्द के प्रत्येक निवासी का कर्तव्य है कि वह अपने देश की संस्कृति की रक्षा करे। यदि इस सचाई की उपेक्षा करके हिन्दुस्तान के कुछ निवासी अपने देश की संस्कृति को अपनाने को तैयार नहीं तो कौन कह सकता है कि 'हिन्दुस्तानी' नाम का प्रयोग ही जादू का असर रक्खेगा। हिन्दी-भाषा के स्थान पर हिन्दुस्तानी-भाषा का प्रयोग उर्दू के प्रेमियों को हिन्दी-भक्त नहीं बना सका तो कैसे विश्वास किया जा सकता है कि जिन लोगों को हिन्दू-संस्कृति-नाम से चिढ़ है वे हिन्दुस्तानी संस्कृति का लेबल लगते ही उसे अपना लेंगे, और एकता का रास्ता खुल जायगा?

परिणाम

उपर्युक्त विचार-परम्परा से प्रतीत होगा कि हिन्दू-संस्कृति भारतीय राष्ट्र की आत्मा है। जैसे शरीर आत्मा के बिना जीवित नहीं कहला सकता, इसी प्रकार कोई जाति भी संस्कृति के बिना जीवित नहीं कहला सकती। हिन्दू-संस्कृति हम उसे कहते हैं जो हिन्द-देश (भारतवर्ष) के निवासियों की संस्कृति है। वह संस्कृति अगणित सदियों की क्रिया-प्रतिक्रियाओं का परिणाम है। आर्य, अनार्य, हूण, शक, यवन, मुसलमान और पाश्चात्य संस्कृतियों के परम्परागत मिश्रण से जो वस्तु पैदा हुई है वही आज हिन्दू-संस्कृति के नाम से पुकारी जाती है। भारत की सीमाओं के अन्दर आज तक जो कुछ हुआ उसके प्रभावों का समुच्चय हिन्दू-संस्कृति के अतिरिक्त और किसी वस्तु में नहीं मिल सकता। उसी संस्कृति को हम भारतीय राष्ट्र की आत्मा कहते हैं।

जो लोग संस्कृति को मारकर राष्ट्र को ज़िन्दा रखना चाहते हैं वे असम्भव को सम्भव बनाना चाहते हैं। प्रत्येक मानवीय संस्था परिवर्तनशील है। समय और परिस्थितियों के अनुसार वह बदलती रहती है, और उसे बदलना ही चाहिए। यदि वह समय और परिस्थिति के अनुसार न बदले तो मर जायगी। हिन्दू-संस्कृति इन सहस्रों वर्षों तक इसी लिए जीवित रही है कि वह परिस्थितियों के अनुसार बदलती रही है, बाहर के प्रभावों को अपनाती रही है, और उनका सामना करने के योग्य नये जीवन के कीटाणुओं को पैदा करती रही है। जिस प्रक्रिया ने उसे अब तक बचाया है वह प्रक्रिया आगे भी जारी रहनी चाहिए, परन्तु परिवर्तन का अर्थ नाश नहीं। हिन्दू-संस्कृति भारतीय राष्ट्र का प्राण है, उसके सुरक्षित रहने में ही भारतीय राष्ट्र का कल्याण है।
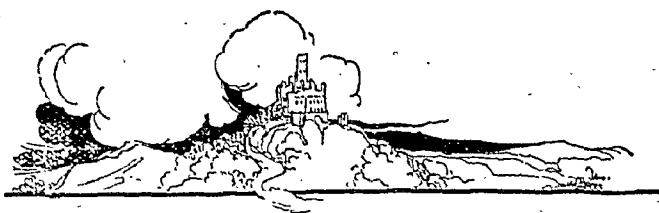
'रेल में डकैती' की एक भावपूर्ण घटना

अभिनय

लेखक, श्रीयुत हरवंश वर्मा, बी० ए०

"पान बीड़ी, सिगरेट", "गरम चाय"।

इस आवाज ने मेरे स्वप्न-संसार में खलबली मचा दी। मैंने तुरन्त ही बिजली जलाई और घड़ी में वक्त देखा। दो बजने में तीन मिनट बाक़ी थे। खिड़की को ऊपर उठाकर एक पास से ही गुज़रते हुए कुली से पूछा—

"कौन-सा स्टेशन है ?"

"भुसावल जंकशन। पंजाब मेल अभी खड़ा है।"

मुझे कुछ सान्त्वना हुई। घड़ी देखकर तो समझा था कि बस आगे निकल गये, लेकिन अब मालूम हुआ कि गाड़ी ही लेट पहुँची है।

"चलो, जल्दी से सामान निकालो।" मैंने कुली से कहा और खुद निजी चीज़ों को ठीक करने लगा।

सामान को इकट्ठा करके हम पुल को तेज़ी से फाँदते हुए प्लेटफ़ार्म नं० २ पर पहुँचे। गाड़ी के छूटने में केवल पाँच मिनट बाक़ी थे; रेल-कर्मचारी अति व्यग्रभाव से इधर-उधर चक्कर काट रहे थे। मैंने सामान एक सेकेंड क्लास के डिब्बे में लगवाया। कुली को मजदूरी देकर विदा कर ही रहा था कि एक वृद्ध सज्जन मेरे समीप आ पहुँचे और पूछने लगे—

"बेटा कहाँ तक जा रहे हो ?"

मैं उनके मुँह की ओर देखने लगा। सोचने लगा, भला इस प्रदेश में मेरा कौन आत्मीय।

"दिल्ली तक।" मैंने कुछ लापरवाही से उत्तर दिया।

वृद्ध महाशय खिल उठे और सन्तोषभरे धीमे स्वर में बोले—

"राम जी की कृपा। मुझे कितनी खुशी हुई की साथ सफ़र करनेवाला कोई संगी तो मिल गया। मैं यही सोच रहा था कि अपनी रत्ना को अकेले गाड़ी में सफ़र करने दूँ या न करने दूँ कि तुम आ गये।" इतना कहते कहते वे मुड़े और नौकर को संकेत किया कि वह सामान उसी डिब्बे में रख दे, और फिर मेरी ओर बढ़कर बोले—

"जानते ही हो बेटा, आजकल समय कितना नाजुक है। हाल में ही कितनी दुर्घटनायें सुनने में आई हैं। यह आज किसी ज़रूरी काम से भाई के पास......।"

इसी बीच में गार्ड ने सीटी बजा दी। अब गाड़ी हिल पड़ी। मैं उचक कर पायदान पर खड़ा हो गया। वृद्ध बोलते गये—"मुझे आशा है कि तुम इसे इच्छित स्टेशन पर सावधानी से उतार दोगे और.....।"

"ज़रूर। अपनी शक्ति के अनुसार सब ठीक-ठाक कर दूँगा।" मैं ने बात काटते हुए उसके लम्बे व्याख्यान का उत्तर दे दिया। गाड़ी तेज हो चुकी थी। वृद्ध महाशय खड़े हो गये और मैं भी दरवाज़ा बन्दकर अपनी सीट पर आ बैठा।

रत्ना अपनी चीज़ों को ठीक कर रही थी। उसकी बसन्ती रंग की साड़ी, एक हाथ में सुनहरी रिस्टवाच और दूसरे में काली चूड़ियाँ, माथे पर गुलाल-बिन्दी और जूड़े में मोतियों की दो कलियाँ अजब शोभा दे रही थीं। उसके मुख पर थी एक हलकी-सी मुसकान, पर थी विषाद-भरी।

मन में आया कि रत्ना से कुछ बात-चीत करूँ, मगर किस विषय पर यह समझ में न आया। प्रश्न यह था कि आरंभ किस ओर से हो। इसी असमञ्जस में पड़े पड़े मैंने अपना बिस्तर लगा लिया और लेटकर एक समाचारपत्र देखने लगा। रत्ना भी अपनी जगह पर बैठ गई। इसी प्रकार समय बीतने लगा।

थोड़ी देर के बाद गाड़ी एक छोटे से स्टेशन पर रुकी। मैं मन बहलाने के लिए खिड़की से बाहर झाँकने लगा। चारों ओर अन्धकार का साम्राज्य था; केवल स्टेशन पर दो-एक गैस-लैम्प अपनी अन्तिम घड़ियाँ पास देखकर भी व्यर्थ में धुँधली रोशनी फैलाने की चेष्टा कर रहे थे। टटीरों के मधुर अन्तर्भेदी आलाप को चीरते हुए कभी कभी रेलवे-कर्मचारियों के शब्द—'शंकर, इधर आना', 'इसको ब्रेक में रक्खो,' 'जल्दी करो', 'गाड़ी लेट हो रही है'—भी कर्णगोचर हो जाते थे। इतने में हाथ में

लालटेन लिये गार्ड हमारे डिब्बे की ओर बढ़ आया और बोला—

"आप भुसावल पर ही इस डिब्बे में बैठे थे न ?"

"जी हाँ।"

"कृपया टिकट तो दिखा दीजिए।" इतना कहकर उसने दरवाज़े को खोलकर अन्दर प्रवेश किया।

इस समय रत्ना की अवस्था अजब थी। वह बार बार अपनी जेबें तथा बटुआ टटोल रही थी, परन्तु हाथ प्रत्येक बार खाली ही बाहर आता। उसके इस हाव-भाव से मैं समझ गया कि टिकट उसके पास नहीं है; शायद उसके बाप के हाथ में ही रह गया है। मैं असमञ्जस में पड़ गया, मगर मन ने जल्द ही फ़ैसला दे दिया।

"यह तो इनका टिकट है।" मैंने टिकट को गार्ड की ओर बढ़ाते हुए कहा। "अपना टिकट मैं भुसावल पर नहीं ले सका, क्योंकि गाड़ी लेट पहुँची थी। किराया चार्ज कर लीजिए।"

"१० रुपये ७ आने निकालिए।"

मैंने किराया चुका दिया। गार्ड शान्तिपूर्वक नीचे उतर गया। गाड़ी फिर चलने लगी।

"धन्यवाद! मैं आपकी जीवन भर कृतज्ञ रहूँगी। मेरे कारण मुफ़्त में आपको ज़िल्लत सहनी पड़ी।" सहसा गाड़ी की खट-खटाहट के शब्द को चीरते हुए आवाज़ आई।

"इसमें ज़िल्लत की आख़िर बात ही कौन है! जल्दी में ऐसी भूल प्रायः हो जाती है। बेचारे टिकट देना भूल गये; अब सोचते होंगे, मेरी बिटिया रत्ना....।"

मेरे मुख से अभी रत्ना का शब्द भी पूरा न निकला था कि मैंने देखा उसका पीला मुख न जाने क्यों एकदम धुंधला पड़ गया। मैं कुछ भी न समझ सका और उसको सांत्वना देने के लिए बोला—

"क्या हुआ अगर वृद्ध बाप की जगह विनोद ने ही गाड़ी का किराया दे दिया, रत्ना।"

इस वाक्य का उस पर जादू-सा असर हुआ। उसका स्याह चेहरा तमतमा उठा; और भूखी सिंहिनी की तरह गरज कर बोली—"कौन वृद्ध बाप? वह मेरा कोई नहीं है, विनोद बाबू!"

"तो ये वृद्ध महाशय कौन थे?" मैंने उत्सुकता-पूर्वक पूछा।

"ये सब रँगे स्यार हैं, विनोद बाबू। ऐसे ऐसे सान चढ़ाये महाशय दुनिया में आपको कितने ही मिलेंगे; केवल खोज करनेवाली आत्मा चाहिए। हमारी सभ्यता तथा जाति को पतन के मार्ग पर ढकेलने के लिए ये लोग अपनी वृद्धता आदि की आड़ में क्या क्या नहीं कर रहे हैं!" सहसा वह रुक गई। उस स्वर-लहरी में उन्मत्त वेदना थी, कलेजे में कचोटनेवाली करुणा थी।

यह गोरखधंधा मेरी समझ में कुछ भी न आया। मेरी उत्सुकता शान्त होने के बजाय और बढ़ गई। मैंने फिर पूछा—

"तो यह रँगा स्यार आख़िर था कौन? और तुम्हारा इससे कैसे वास्ता पड़ गया, रत्ना?"

वह फिर भभक उठी—"यह रँगा स्यार उन पापिष्ठ आत्माओं में से है जो अपने रुपये-पैसे के ज़ोर पर हज़ारों दरिद्र अथवा सभ्यता की सीढ़ी पर चढ़ी अबलाओं को नरक के मार्ग की ओर अग्रसर करती हैं। जो जाति-उत्थान के धुरन्धर होते हुए भी उसी जाति को विष से सींचकर उसकी जड़ों को जला-जला कर ढीला कर रही हैं। जाति के पास इनकी कृतियों के लिए कोई क़ानून नहीं है; क़ानून तो ग़रीबों को ही विरासत में मिली हुई वस्तु है। क़ानून और क़ानून के उपासक तो इन पूँजीपतियों की जेब में घूमते हैं।...... और मेरा इससे कैसे वास्ता पड़ा! इसकी गाथा कुछ लम्बी और टेढ़ी है। मुफ़्त में समय नष्ट करोगे, फल कुछ न होगा।"

मेरी उत्सुकता और भी बढ़ गई। आख़िर मेरे बहुत आग्रह करने पर रत्ना बोली—

"पिता की मृत्यु के बाद घर में हम केवल तीन आदमी रह गये थे—मैं, रवीन्द्र और हमारी माता। यों तो पिता जी भी काफ़ी धन छोड़ गये थे, परन्तु रवीन्द्र के एक इन्शोरेंस कम्पनी से माहवारी २००) पाने के कारण हमारा हाथ खुला ही रहा। मैं उन दिनों लेडी हार्डिञ्ज कालेज, दिल्ली में पढ़ती थी।

"कोई आठ मास हुए हमारे कालेज में 'विफल-विनोद' नामी एक नाटक हुआ और उसमें मुझे नायिका का पार्ट मिला। नाटक में सफलता मिली। अख़बारों ने मेरे अभिनय पर ख़ूब प्रशंसनीय टिप्पणियाँ कीं, और आये दिन मेरे

चित्र अखबारों में छपने लगे। मुझे अपनी सफलता पर पूर्ण अभिमान था।

"एक दिन 'हिन्दुस्तान टाइम्स' के विज्ञापन-पृष्ठ पर यह विज्ञापन निकला—'एक हिन्दुस्तानी बोलपट में नायिका का अभिनय करने के लिए एक अभिनेत्री की आवश्यकता है। एक उच्च समाज की अथवा अनुभवी अभिनेत्री को तरजीह दी जायगी। वेतन योग्यतानुसार। समक्ष बातचीत आवश्यक है। पता—६ कारोनेशन होटल, दिल्ली।'

"इस विज्ञापन को पढ़कर मेरे मस्तिष्क में कुछ खुजली होने लगी। प्रिय सखियों ने भी मुझे प्रोत्साहन दिया। रवीन्द्र उन दिनों कम्पनी के काम पर मदरास था; अतः मैं उससे सलाह न ले सकी। सिर पर भूत तो सवार था ही; अन्त में मा के रोकने पर भी मैं न रुकी और एक दिन सायंकाल समक्ष बातचीत के लिए कारोनेशन होटल में पहुँच गई।

"वहाँ मैंने देखा, एक मेज़ के गिर्द भली-सी सूरतें बनाये दो आदमी बैठे हैं। पूर्व-शिष्टाचार के बाद उन्होंने मुझसे अभिनय की बाबत दो-एक प्रश्न पूछे; और अन्त में मेरी बातचीत से सन्तुष्ट होकर उन्होंने ३५०) प्रतिमास पर मुझे नौकर रखना स्वीकार कर लिया।

"बातचीत के बाद मैं अभी दरवाज़े से बाहर भी न हुई थी कि उनमें से एक बोला—

'चन्दन, अब तो चाँदी ही समझो—

हजूमे बुलबुल हुआ चमन में,
किया जो गुल ने जमाल पैदा।
कमी नहीं क़द्रदाँ की 'अकबर'
करे तो कोई कमाल पैदा।

देखना बेटा, अब हमारी कम्पनी का नाम कैसे चलता है! कैसा हुस्न, कैसा जमाल है और वह टपकता अल्हड़-पन! मा की क़सम देखने में एक चीज है, एक! उसकी आँखों में चमक है, मादकता है और है एक नृत्य। चमक आकर्षित करेगी, मादकता मदहोश कर देगी और नृत्य फँसा लेगा अपने मायाजाल में सब चित्र-दर्शकों को। चित्रपट तो बनने दो, सिनेमा-घरों के दरवाज़े न टूट गये तो देखना!'

"विनोद बाबू, अब मुझे स्पष्ट मालूम हो रहा है कि यह सब मुझे फुसलाने के लिए कहा गया था; और सच कहती हूँ, मैं बुरी तरह से फिसल भी गई। मुझे ऐसा प्रतीत होने लगा जैसे मुझे स्वर्ग-साम्राज्य ही मिल गया हो। उस रात मैं फूली न समाती थी। आह, कैसी भयङ्कर रात थी वह!" इतना कहते कहते उसकी आँखों में आँसू झलक पड़े। परन्तु अपनी बात को समाप्त करने की चेष्टा करती हुई फिर बोली—

"उस दिन मुझे बहुत ग़लतफ़हमी हुई, विनोद। आप जानते ही हैं कि ऐसे समय पर हम क्या कुछ नहीं कर गुज़रतीं। जिस बात या वस्तु का शौक़ हम पर चढ़ आता है उसकी हद तक ही नहीं बल्कि उसके परे तक घसीट ले जाती हैं। किसी की बात कान में भले ही घुस जाय, मगर करेंगी वही जो जी में आवेगा। बस, मैंने भी चित्रपट में नायिका का अभिनय करने के जोश में घर-बार को लात मारी और कुल-मर्यादा की बिना परवा किये चार महीने हुए ठीक इसी दिन मैं अपने घर से निकल पड़ी।

"गाड़ी हमको ले उड़ी। दूसरे दिन हम बम्बई में जा पहुँचीं। मेरे ठहरने का प्रबन्ध मैजस्टिक होटल में हुआ। इस व्यवहार से मुझे कुछ आशंका हुई, और मैं पूछ ही तो बैठी—

"मोहन बाबू, मेरे ठहरने का प्रबन्ध यहाँ क्यों हुआ है? क्या आपका कोई स्टूडियो नहीं है?"

"है क्यों नहीं" उसने गम्भीरता से उत्तर दिया—"लेकिन तुम्हारा अभी वहाँ जाकर ठहरना अच्छा न होगा। यहाँ पहुँचते ही खबर मिली है कि सेठ खुद चित्रपट के बाहरी दृश्यों के निरीक्षण के लिए पूना की ओर गया है। उसके आ जाने पर तुम्हारा ठीक ठीक प्रबन्ध कर दिया जायगा। और जानती ही हो कि स्टूडियो में वातावरण कैसा रहता है; कई तरह के आदमी होते हैं। मेरा तो विचार है कि कुछ दिन तुम यहीं ठहरो। क्यों, यहाँ ठहरने में कोई विशेष आपत्ति है?"

"नहीं तो। मैंने तो यों ही पूछ लिया।" मैं चुप हो गई; और कुछ लजाई भी अपनी सशंक प्रकृति पर। मेरे मन की भावी सुनहरी आशाओं ने मेरी शंका को और भी कोसों दूर भगा दिया। प्रतिदिन मैं उस दिन की प्रतीक्षा करने लगी जब कि मेरे अभिनय से विमोहित लोग सिनेमा-घरों के दरवाज़े तक तोड़ देंगे।

"मैं अकेली ही एक सुसज्जित कमरे में रहने लगी। दिन बीतने लगे। कभी कभी मोहन अपने साथ एक-दो साथी कलाकारों को ले आता। घंटों गप्पें हाँकते। कई कई बार परिचय कराते समय मोहन कहता—

'कुमार, ये हैं मिस रत्ना, जिनके अद्वितीय अभिनय ने दिल्ली में तहलका मचा दिया था। और मिस रत्ना ये हैं मिस्टर कुमार, जो संगीत-परिषदों में जीते हुए पदकों से लदे पड़े हैं। हाँ, मिस्टर कुमार, सुनाओ न ज़रा मिस रत्ना को कोई अपनी नवीन कृति; अभिनय में ये भी तो तुम्हारा साथ देंगी।'

"और फिर क्या था, तानों से तानें मिलने लगतीं। गाना प्रारम्भ हो जाता।

"इसी चहल-पहल में एक मास व्यतीत हो गया। मुझे भी सिनेमा-जीवन की दीक्षा मिल गई; और इससे मुझे कुछ रुचि भी हो चली।"

* * *

"एक दिन सायंकाल के समय मैं जँगले पर खड़ी नीचे सर्पाकार में गुज़रती हुई गाड़ियों की शोभा देख रही थी। एकाएक एक बिलकुल नई-सी गाड़ी होटल के दरवाज़े पर आकर ठहर गई। मोहन आज प्रतिदिन से अधिक सुथरे कपड़ों में सुसज्जित था। वह कमरे में पैर रखते ही टोपी को तिपाई पर फेंकता हुआ बोला—

"रत्ना, आज एक खुशखबरी सुनाने आया हूँ।"

"कहो न।" मैंने उत्सुकता से कहा।

"सेठ आज लौट आया है और चित्रपट का पूरा प्रबन्ध हो गया है। शूटिंग जल्दी ही आरम्भ होनेवाली है।"

"सच!"

"सच ही तो कहता हूँ। चलो सेठ से न मिलोगी। वह तुम्हारे ठहरने का भी ठीक ठीक प्रबन्ध कर देगा।"

"ज़रूर चलूँगी!" इतना कहकर मैंने कपड़ों को ठीक किया और मोहन के साथ गाड़ी में जा बैठी। सारे शहर का चक्कर काटती हुई मोटर मातुङ्गा पहुँची और एक विशाल भवन के सामने ठहर गई।

"यही है हमारे सेठ का भवन।" मोहन बोला।

दरवाज़े पर खड़े नौकर-द्वारा मोहन ने अपना कार्ड अन्दर भेजवा दिया। थोड़ी ही देर में एक वृहत्काय सेठ दरवाज़े में आ गया और मोहन से हाथ से हाथ मिलाते हुए बोला—

"मोहन, तुम आ गये। कुछ सफलता भी हुई।"

"क्यों नहीं, सोलहों आने।" फिर मेरा परिचय सेठ से कराता हुआ बोला—"यही अनुपम रत्न है जो हमारे आगामी बोलपट में आपके साथ नायिका का अभिनय करेंगी।"

"इसी तरह बातें करते हुए हम अन्दर पहुँचीं और एक सुसज्जित कमरे में जा बैठीं। यहाँ बैठे बैठे जो कुछ बात-चीत हुई उसका सारांश यह है कि मेरे ठहरने का प्रबन्ध सेठ के घर में ही कर दिया गया और बोलपट के शूटिंग का दिन निश्चित होने के साथ ही साथ मुझे भी ढाढ़स दिया गया कि अभिनय ठीक होने पर मेरा वेतन बढ़ा दिया जायगा।"

× × ×

"कुछ दिन बीतने पर एक रोज़ मोहन ने मेरे कमरे में प्रवेश किया और बोला—

"रत्ना हमारी इनर शूटिंग का पहला-चित्र इसी भवन के हाल में होगा। उसमें जितना तुम्हारा पार्ट है वह यह है।" इतना कह कर उसने चार-पाँच काग़ज़ मेरे हाथ पर रख दिये और चला गया। यह तीन दिन हुए तब की बात है।

"मैंने एक सरसरी नज़र से सारे 'मैनिस्क्रिप्ट' को पढ़ डाला। इसे पढ़ते ही मेरे कल्पित संसार के सब स्वर्ण-मन्दिर हवा में उड़ गये। सोचा था कि 'न्यू थियेटर' अथवा 'प्रभात' के चित्रपटों में हुए अभिनय की तरह कोई शुद्ध पार्ट करना होगा। मगर इस अभिनय में तो अश्लीलता की पुट मिली हुई थी। सोचने लगी, क्या इसी वेश्यावृत्ति के अभिनय के लिए अपने घर से आई थी। मुझे बहुत आत्म-ग्लानि हुई।" इतना कहते कहते वह सिसकियाँ भरने लगी।

यह शोचनीय कथा सुनकर मुझे उससे कुछ सहानुभूति हो चली थी; परन्तु इस कथानक का अन्त सुनने की भी मन में तीव्र लालसा थी। प्रोत्साहन देने के लिए मैंने पूछ ही तो लिया—

"लेकिन तुमने उसी समय जाकर सेठ से अपना असहयोग क्यों न प्रकट कर दिया।"

"किया तो मैंने ऐसा ही।" इतना कहकर वह चुप हो गई। फिर एकदम बोल उठी—

रवीन्द्र !" पुकारते हुए मैंने समूचे प्लेटफ़ार्म के दो चक्कर काट डाले। मगर उस भीड़ में कोई रवीन्द्र नज़र न आया। अब मन में विचार हुआ—'शायद अपनी बहन के आचरण से खीझ कर वह बाहर ही गाड़ी में बैठा उसकी प्रतीक्षा कर रहा हो। सोचता होगा, आख़िर बाहर ही तो आयेगी; जिसे बम्बई न अपना सकी उसे प्लेट-फ़ार्म थोड़े ही निगल जायगा। भला मैं ही उसकी क्यों आवभगत करने चला !'

यह सोच कर मैं प्लेट-फ़ार्म से बाहर निकल गया। वहाँ तो गाड़ियों का ताँता लगा हुआ था। इधर-उधर रवीन्द्र को टटोला, मगर वह न मिला। आख़िर एक मोटर में एक नव-युवक नज़र आया। सोचा यही रवीन्द्र होगा और झट से उसके पास जा पहुँचा।

"क्या आप ही रवीन्द्र बाबू हैं ?"

"जी नहीं, मेरा नाम नरेन्द्र है।"

आशा का फूल फिर मुरझा गया। मैं हताश हो उधर से चला ही था कि इंजन ने सीटी दे दी। मैं दौड़ता हुआ अपने डिब्बे की ओर बढ़ा। सोचा था, रत्ना उत्सुकता से मेरी राह देख रही होगी, मगर वहाँ कोई भी न था। मैं जल्दी से अन्दर घुसा। देखा तो रत्ना अन्दर न थी, और मेरा काला सूटकेस भी न था। पाँव तले से ज़मीन खिसक चली; सिर घूमने लगा।

मैं भागा भागा स्टेशनमास्टर के पास पहुँचा। रोते धोते सारी कहानी उससे कह सुनाई। उसने मुझे ढाढ़स देते हुए पूछा—

"उसमें आपका क्या माल है ?"

"पाँच-साँत सौ रुपये की क़ीमती चीजें।"

"कुछ बचा भी।"

"हाँ, एक क़ीमती बक्स बच गया है।"

"तो जितना नहाये उतना ही पुण्य जानिए। उस पर तीन और ऐसे ही केस हैं। तुम्हारा चौथा है। ख़ैर, जानो तुम बच गये; पहले मामलों में तो वह सारे सामान पर ही दफ़ा १४४ लगा जाती थी। पुलिस ने उसके पकड़ने-वाले को ५००) रु० का इनाम घोषित किया है। अगर आपको कोई ज़रूरी काम हो तो आप जा सकते हैं। उसकी अच्छी तरह खोज-बीन करके आपको पूरा पूरा पता दे दिया जायगा।"

मैं एक लम्बी-सी रिपोर्ट लिखा कर गाड़ी में आ बैठा और लगा उस अभिनय पर विचार करने।

गाड़ी धक-धक करती हुई चल पड़ी।

बड़ी भूल

लेखिका, श्रीमती तारा पाण्डेय

सखि, बता दे कौन-सा नूतन संदेशा आज लाई ?
शुष्क पतझड़ के दिवस ये
ला रहे हैं नित उदासी
बीच सागर में खड़ी हो
रह गई हूँ हाय ! प्यासी !

सो गये अरमान मन के, तू जगाने आज आई ?
भूल अपना पथ गई
उद्भ्रांत-सी हूँ फिर रही
कोई सुझा दे सहज-सा पथ
प्रार्थना मैं कर रही !

भूला हुआ वह मार्ग क्या मुझको बताने आज आई ?
पा सकूँ यदि मुक्ति मैं
यह सोच की थी साधना
प्यास थी अमरत्व की
करने लगी आराधना।

थी बड़ी वह भूल मेरी, यह सुझाने आज आई ?
मुक्ति बन्धन में मिलेगी
है यही विश्वास मेरा
किन्तु बन्धन प्रेम का हो
डाल दे चहुँ ओर घेरा !

सखि, नहीं तू भिन्न मुझसे आज उर में है समाई !

वह भूली कौशाम्बी

लेखक, श्रीयुत सतीशचन्द्र काला

निष्प्राण—सैकड़ों पगों की ठोकर खाकर भी जीवित रह सकनेवाली अनेक ईंटें पड़ी थीं एक ऊँचे टीले पर, और उनके बीच बीच पड़े थे मिट्टी के बर्त्तनों के कुछ टूटे-फूटे टुकड़े। इन ईंटों की भित्तियों ने लोगों को आश्रय दिया होगा—इन बर्त्तनों ने किसी की क्षुधा व प्यास बुझाई होगी। आज—आज तो कीड़े-मकोड़े ही इनके बीच घूमते नजर आते हैं, तनिक-सी आहट पाकर वे चौंकने लगते हैं। क्या वे भी अपने पुरखों से सुनते आये हैं कि इस टीले पर स्थित वैभवशाली नगरी को क्रूर तथा निर्दयी जातियों ने नष्ट किया था? कौशाम्बी वास्तव में करुण-राग का एक बुझा हुआ दीपक है, जिसकी ओर देखकर आँखों में आँसू आते हैं, दिलों में हूक उठती है।

वे यश व गौरव के दिन थे भारत के जब कौशाम्बी एक विशाल नगरी थी। इसका वैभव, यश, समृद्धि व संस्कृति उच्च पराकाष्ठा को पहुँच चुकी रही होगी। उस समय के विषय में हमारी जानकारी बहुत थोड़ी है। पाण्डुवंशी परीक्षित के बाद उसके वंशज महाराज निक्ष्वाकु के समय में एक बार गंगा में भयंकर बाढ़ आई थी, जिसके कारण हस्तिनापुर (कुरुराज्य की राजधानी) बह गया था। इस कारण राजा निक्ष्वाकु ने हस्तिनापुर छोड़कर कौशाम्बी को अपनी राजधानी बनाया। पौराणिक सूचियों से ज्ञात होता है कि कौशाम्बी का सर्वप्रथम नरेश शतानीक (द्वितीय) था। शतानीक ने विदेह की राजकुमारी से विवाह किया था। शतानीक का उत्तराधिकारी उदयन हुआ। ब्राह्मणों तथा उपनिषदों से ज्ञात होता है कि प्राचीन काल में कौशाम्बी विद्वानों की एक नगरी थी। इस नगर में ज्ञानोपार्जन के लिए लोग प्रायः देश-देशान्तरों से आया करते थे। रामायण में कौशाम्बी की स्थापना की एक विचित्र कहानी दी गई है। उसके अनुसार कौशाम्बी को कुश के पुत्र कुशाम्ब ने बसाया था।

पाली की पुस्तकें कौशाम्बी पर सुन्दर प्रकाश डालती हैं। कालिदास के 'मेघदूत' व 'कथा-सरित्-सागर' में भी यत्र-तत्र कौशाम्बी का वर्णन आता है। बौद्ध-जातकों से ज्ञात होता है कि कौशाम्बी एक व्यापारिक स्थान था, जहाँ जल तथा स्थल की राह से व्यापार होता था। 'दीघ निकाय' के 'महापरिनिर्वाण सूत्र' में महात्मा बुद्ध व आनन्द का जो वार्तालाप दिया है उससे कौशाम्बी के एक समृद्ध नगर मानने में कुछ भी संदेह नहीं रह जाता। बौद्ध-काल में कौशाम्बी भारत की ६ प्रमुख नगरियों में गिनी जाती थी।

महात्मा बुद्ध परमज्ञान प्राप्त करने के ठीक ९ वर्ष के बाद कौशाम्बी आये थे। इससे पहले वे राजगृह व वैशाली में भी ठहरे थे। तिब्बती लेखक कहते हैं कि जिस समय बुद्ध कौशाम्बी पहुँचे, वहाँ का राजा उदयन कनकवती पर धावा करने जा रहा था। उदयन की दृष्टि महात्मा बुद्ध पर पड़ी। उसे यह अपशकुन जान पड़ा। क्रोधाग्नि के आवेश में आकर उदयन ने बुद्ध भगवान् की ओर एक तीर छोड़ा। जैसे ही उसने तीर छोड़ा, आकाशवाणी हुई—"हत्या करनेवाला जीव नरक को जाता है... ...।" उदयन इसे सुनकर अवाक् हो गया। उसे ज्ञान हुआ अपनी भूल का। उदयन चुपके से बुद्ध भगवान् के सम्मुख झुक गया। शान्ति के अवतार भगवान् ने उदयन को क्षमा किया और उसे अनेक प्रकार की अमूल्य शिक्षायें दीं। इसके बाद कौशाम्बी एक प्रसिद्ध बौद्ध-केन्द्र हो जाती है।

कौशाम्बी के दक्षिण-पूर्वी भाग में एक धनी व्यक्ति ने घोसिताराम नामक एक विहार बनवाया था। यह नगर का सबसे बड़ा विहार था। फाह्यान ने ५वीं सदी में उसे उन्नत दशा में देखा था, किन्तु ७वीं सदी में जब हुयेनसाँग यहाँ आया तब वह विहार खँडहर हो चुका था। कनिंघम की धारणा है कि हूणों ने उस विहार का भी विनाश किया होगा। मथुरा व सारनाथ की समस्त वस्तुओं का विनाश उन्होंने किया था। भगवान् बुद्ध कौशाम्बी में संभवतः दो बार आये थे।

उदयन के बाद फिर कौशाम्बी का इतिहास अन्धकार में डूब जाता है। पुराणों में लिखा है कि उदयन के बाद वहीनर, दंडपाणि, निरमित्र व क्षेमक चार राजे हुए। किन्तु पाली-ग्रंथों में उदयन का उत्तराधिकारी कुमारबोधि है। कुमारबोधि को बुद्ध भगवान् ने स्वयं दीक्षा दी थी। हमें यह ज्ञात नहीं कि वास्तव में कुमारबोधि सिंहासनारूढ़ हुआ था या नहीं। पाली-ग्रंथों में तो प्रत्येक स्थान पर कुमारबोधि ही लिखा मिलता है।

उसके बाद कौशाम्बी चन्द्रगुप्त मौर्य्य के अधीन हुई। मौर्य्य-काल में पाटलिपुत्र, तक्षशिला व कौशाम्बी प्रमुख नगर थे।

अशोक के काल में कौशाम्बी मौर्य्य-साम्राज्य का उसके प्रदेश का नाम था, जिसका अधिकारी एक 'महामात्य'

था। इलाहाबाद में अशोक की जो लाट है उस पर कौशाम्बी के महामात्य के लिए आदेश है कि "जो संघ में फूट डालने की चेष्टा करे वह संघ से तुरन्त अलग किया जाय।" वह लाट पहले कौशाम्बी में ही स्थापित थी। अकबर के समय में वह प्रयाग में लाई गई।

शुंग-काल में संभवतः कौशाम्बी स्वतंत्र थी। शुंग-काल के अनेक खिलौने कौशाम्बी में पाये गये हैं। इनसे हम समझ सकते हैं कि कौशाम्बी से शुंग राजाओं का अवश्य कुछ संबन्ध था। यहाँ यह लिखना भी उचित होगा कि भारहुत-स्तूप की वेदिका पर ई० पू० दूसरी शताब्दी का जो लेख है उसमें लिखा है कि वत्स की राजकुमारी के पुत्र धनभूति वाशिपुत्र ने बनाया (मजूमदार—इंडियन म्यूज़ियम कैटलाग, भाग १, पृष्ठ २३)। धनभूति नाम मथुरा के एक शिलालेख में भी आया है। डाक्टर जायसवाल कहते हैं कि पवोसा का लेख ओद्रक (५वाँ शुंग-नरेश) के काल में खोदा गया था। विद्वानों ने कहा है कि दूसरी शताब्दी में पाञ्चाल, मथुरा तथा कौशाम्बी शुंग-राज्य के सामन्त राज्य थे। कुषाणकालीन सम्राटों के अधीन भी कौशाम्बी रही। कनिष्क ने गान्धार व काश्मीर से लेकर काशी तक का हिस्सा अपने साम्राज्य में मिलाया था।

कौशाम्बी कालान्तर में गुप्तवंशीय राजाओं के शासन में आई। इलाहाबाद की लाट में समुद्रगुप्त का लेख है। वहाँ के खँडहरों में, चुनार पत्थर में अंकित, गुप्तकालीन बुद्ध भगवान् की कई मूर्तियाँ मिली हैं। ७वीं शताब्दी में उस पर कन्नौज के राजाओं ने अपना आधिपत्य स्थापित किया। उस समय भी संभवतः कौशाम्बी अच्छी दशा में थी।

खेद है कि अभी तक कौशाम्बी का शृंखलाबद्ध इतिहास नहीं लिखा गया है। ऊपर वर्णित बिखरे प्रमाणों से ही फ़िलहाल हमें कौशाम्बी के इतिहास की नींव डालनी है। यद्यपि यह वर्णन भिन्न भिन्न काल की राजनैतिक परिस्थितियों पर विशेष प्रकाश नहीं डालता है, फिर भी हम मान सकते हैं कि कौशाम्बी की प्रसिद्धि ११वीं शताब्दी तक अनवरत रूप से रही है। बीती हुई शताब्दियों में न जाने कौशाम्बी ने कितनों का उत्थान और पतन देखा। अब तो इस देवनगर की कहानियाँ स्वप्नवत्-सी जान पड़ती हैं। वर्तमान 'कौसम' में न तो वह समृद्धि है और न वह चहल-पहल है।

कौशाम्बी में प्राप्त एक कनिष्ककालीन बुद्ध-मूर्त्ति

इधर की शताब्दियों में तो कौशाम्बी का नाम तक लुप्त रहा। पुरातत्त्व के पंडितों ने इसकी स्थिति को ढूँढ़ने की बड़ी चेष्टा की। वास्तव में यह समस्या हुयेनसाँग के प्रयाग व कौशाम्बी के बीच की ग़लत दूरी लिखने के कारण हुई थी। हुयेनसाँग अपने भ्रमण-ग्रंथ में इस दूरी को ५०० ली बतलाता है और कहता है कि उसे कौशाम्बी जाने में पूरे सात दिन लगे। कदाचित् हुयेनसाँग ने किसी घुमावदार रास्ते को पकड़ा था। जनरल कनिंघम ने सन् १८६१ में कौशाम्बी को वर्तमान कौसम से मिलाया। कुछ दिनों तक इस धारणा पर वाद-विवाद चलता रहा और डाक्टर स्मिथ तो एक प्रकार से विरोधियों के नेता-से बन गये थे। अब तो अनेक प्रमाण ऐसे मिल गये हैं जिनसे कौशाम्बी को कौसम से मिलाने में कुछ भी संदेह नहीं रह जाता है।
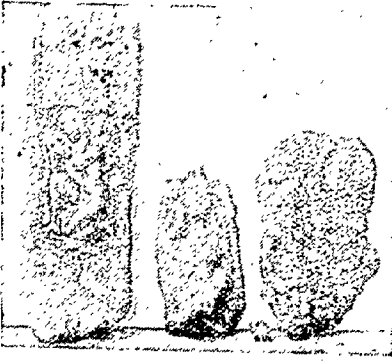
कौशाम्बी में प्राप्त गुप्त-कालीन मूर्त्तियाँ

रायबहादुर दयाराम साहनी ने ४ शिलालेखों का, जिनसे कौशाम्बी की स्थिति ज्ञात होती है, ध्यानपूर्वक सम्पादन किया है (जनरल रॉयल एशियाटिक सोसाइटी अक्टूबर १९२७)। इनमें एक लेख जो संवत् १६२१ का है, कौसम की अशोक की लाट पर है। इस लेख की प्रतिलिपि सन् १९१७ में आर्किलॉजिकल सर्वे रिपोर्ट में छप चुकी है। इसमें कौशाम्बी के ५ धनी सुनारों व उनके १३ नौकरों के द्वारा गणेश, शिव व भैरव की कौशाम्बी के सुनारों के लिए सुन्दर-दान की प्रार्थना की गई है। दूसरा लेख पवोसा की जैन पार्श्वनाथ की मूर्ति-संबन्धी है। पवोसा कौशाम्बी से ३ मील उत्तर-पश्चिम दिशा में है। इस लेख में लिखा है कि प्रयागनिवासी साधु श्री हीरालाल ने मंगसीर संवत् १८८९ में इस जैनमूर्त्ति की स्थापना कौशाम्बीनगर के बाहर पवोसा की चोटी पर की। तीसरा लेख इलाहाबाद-ज़िले के कड़ा के क़िले के दरवाज़े पर मिला है। इस लेख को पढ़ने में विद्वानों को बड़ी झंझटें उठानी पड़ी हैं। यह लेख संवत् १०८३ का है और इसमें महाराज यशपाल (प्रिन्सेप व कोलब्रुक के मतानुसार) कौशाम्बीमंडल में स्थित पयालास गाँव के सेनापति को कोई आदेश दे रहे हैं। साहनी ने पयालास को पयाहद पढ़ा है, क्योंकि कड़ा से ५ मील उत्तर-पश्चिम में 'परास' नाम का कोई गाँव है। चौथा लेख साहनी को कौसम से ३ मील की दूरी पर स्थित मेओंदर गाँव में मिला था। इस लेख में लिखा है कि संवत् १२४५ में राजा जयचन्द्र के राज्य में श्री वास्तव्य ठाकुर ने कौशाम्बी-ज़िले में स्थित गाँव मेओंदर में सिद्धेश्वर महादेव के मंदिर की स्थापना की।

इन प्रमाणों से ज्ञात होता है कि कनिंघम-द्वारा बतलाया हुआ कौसम ही प्राचीन कौशाम्बी है, और यह नाम अकबर के काल तक लोगों को ज्ञात था। भीटा की खुदाई से भी हमें कौशाम्बी की स्थिति के विषय में मालूम हुआ है। पाली की पुस्तकों में लिखा है कि कौशाम्बी जाने के लिए सहजाती नामक स्थान गंगा की राह में अन्तिम स्थान है। एक मिट्टी की मुद्रा पर जो भीटा में मिली है, 'सहजाती' लिखा है। इससे भी विदित होता है कि कौशाम्बी यमुना-तट पर भीटा से ऊपर थी।

वर्त्तमान कौशाम्बी के खँडहर कई मीलों तक फैले हुए हैं। कहीं भूमि नीची है, कहीं टीले ३०-३५ फ़ुट की ऊँचाई तक के हैं। इन खँडहरों के बीच 'छोटा गढ़वा' व 'बड़ा गढ़वा' नामक गाँव बसे हैं। गत कुछ वर्षों से पुरातत्त्व की ओर भारतवासियों का ध्यान आकर्षित हुआ है और इस कारण भी लोग प्रायः कौशाम्बी की यात्रा करने जाते हैं। ऐसी ही यात्राओं में एक यात्री इलाहाबाद के ख्यातनामा नागरिक पंडित ब्रजमोहन व्यास हैं। उन्होंने कौशाम्बी में प्राप्त वस्तुओं का इलाहाबाद म्यूज़ियम में अच्छा संग्रह किया है।

कनिंघम साहब को बड़े गढ़वा में बौद्ध वेदिकायुक्त दो स्तंभ प्राप्त हुए थे। एक मूर्ति चौकी भी उन्हें मिली थी, जिस पर श्री धम्म हेतु प्रभवा। लिखा था छोटे गढ़वा में केवल ४ स्तम्भ मिले, जिन पर स्तूपों का चित्रण था। कदाचित् ये स्तूप उस स्तूप की नक़ल थे जिसमें बुद्ध भगवान् के नाख़ून व बाल स्थापित थे। अशोक की लाट उस समय कुछ दबी-सी थी। कनिंघम साहब ने उसे कुछ खुदवाया किन्तु उसे सीधा खड़ा किया साहनी साहब ने और मरम्मत की। यह आश्चर्य्य-सा है कि ह्युयेनसांग न तो इस स्तंभ का ज़िक्र करता है और न
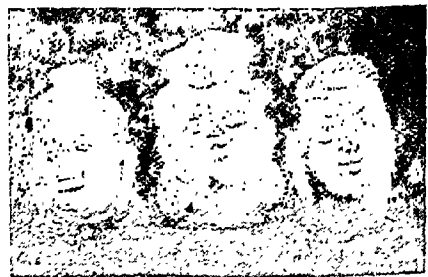
कौशाम्बी में प्राप्त जैन तीर्थंकरों की मूर्त्तियाँ

तीसरी सदी के रथ का एक चक्र। यह कौशाम्बी में मिला था

दृश्य बड़े ही मनोरंजक तथा कौतूहलप्रद हैं। कुछ पट्टों पर दम्पति प्रेम-क्रीड़ा में संलग्न हैं, कुछ में स्त्रियाँ भारहुत के तोरणों की स्त्रियों की तरह हँसती दीख पड़ती हैं। एक पट्टे पर विचित्र दृश्य है। एक पुरुष व स्त्री सोफ़ा के बग़ल में खड़े हैं। उनके निकट एक दासी एक हाथ में शीशा व दूसरे में पक्षियों को पकड़े है। एक पट्ट में यूनानी भावों के दर्शन होते हैं। इसमें एक स्त्री व पुरुष क्रमशः हाथ में मधु-घट व मधु-पात्र लिये हुए हैं कुषाण-कालीन एक दृश्य में आसव-पान से छकी हुई एक स्त्री उन्मत्त हो रही है, और उसे एक पुरुष थाम रहा है। ऐसा ही दृश्य मथुरा में प्राप्त एक पत्थर पर भी है, जिसमें आसव-पायी उन्मत्त भगवान् कुवेर को उनकी स्त्री हारिती थाम रही है।

प्रयाग के स्तंभ का। कौसम के स्तंभ पर अशोक-काल की-सी पालिश नहीं है, यद्यपि उसकी शैली अशोक-स्तंभों जैसी ही है।

कौशाम्बी में मिट्टी के असंख्य खिलौने मिले हैं। संभवतः भारत के अन्य किसी स्थान में विना खुदाई के इतने अधिक खिलौने नहीं मिले हैं। इनमें अनेक खिलौने उस वर्ग में रक्खे जा सकते हैं, जिन्हें पुरातत्त्व-पंडित प्रागैतिहासिक युग का मानते हैं। मिट्टी के खिलौनों को वनाने की प्रथा संसार के सभी प्राचीन देशों में एक समय प्रचलित थी। मोहेंजोदड़ो, चहूदड़ो तथा हड़प्पा की खुदाइयों से भी यही प्रमाणित हुआ है।

कौशाम्बी के कुछ खिलौनों को विद्वान् लोग प्राक् मौर्य्य-युग की मातृदेवी की मूर्त्तियाँ मानते हैं। इनका रूप बहुत सुन्दर नहीं। प्राचीन जातियों में भी आदि जननी के रूप में एक सबसे बड़ी देवी की कल्पना मान्य थी। इलम, फारस, मेसोपोटेमिया, लघु एशिया आदि देशों में कई ऐसी मूर्त्तियाँ पूजी जाती थीं। ऋग्वेद में वर्णित आदिशक्ति, प्रकृति, महानग्नि, अदिति देवी माता इन्हीं मूर्त्तियों की ओर संकेत करती हैं। मौर्य्य-काल तथा शुंग-काल में खिलौने में सुन्दरता आ गई थी। इनके विषय तथा

कौशाम्बी में पुष्पास्तरणों से सुसज्जित कई मृच्छ-कटियाँ प्राप्त हुई हैं। इनमें सुन्दर पुष्प बने हैं, प्रेमी व प्रेमिकाओं के दृश्य भी प्रायः इन पर अंकित किये गये हैं। एक में एक पुरुष स्त्री की जाँघ पर बैठा स्त्री के स्तन को छू रहा है।* उस काल की स्त्रियाँ आभूषणों से विशेष प्रेम रखती थीं। एक नर्त्तकी का-सा खिलौना है, जिसमें नर्त्तकी पूरे बाहों तक खिलौने पहने विविध प्रकार की सुन्दर शिरोभूषा व वस्त्रों से अलंकृत है। शुंगकालीन स्त्रियों को देखकर तो कभी कभी दंग रह जाना पड़ता है।

इन खिलौनों का महत्त्व तब मालूम होता है जब हम देखते हैं कि इनमें बहुत-से तो प्राचीन पत्थर की मूर्त्तियों की प्रतिलिपियाँ हैं। भीर (तक्षशिला) से प्राप्त एक खिलौने की तुलना पटना के यक्ष से की जा सकती है।

---

* ये दोनों खिलौने लेखक के निजी संग्रह में हैं।

जैनकाल की कुछ मूर्तियाँ

भीटा में भी भारहुत की एक यक्षिणी के सदृश एक खिलौना मिला था। (इंडियन हिस्टारिकल क्वाटरली, मार्च १९३६)।

हुयेनसांग लिखता है कि कौशाम्बी में उसने बुद्ध की एक पूरे आकार की लाल चन्दन में अंकित मूर्ति देखी थी। इसका निर्माण भगवान् बुद्ध जब जीवित थे तभी हो गया था। शुंग-काल के शिल्पियों ने तो बुद्ध को केवल लाक्षणिक चित्रों में अंकित किया है। बौद्ध तथा जैन-धर्म ने प्रतिमा-पूजन का आदेश कभी नहीं दिया। ऐसा प्रतीत होता है कि महायान के प्रचार के साथ बुद्ध-प्रतिमा की आवश्यकता जनता को जान पड़ी और तभी से मूर्तियाँ बनने लगीं। डाक्टर कुमारस्वामी के मतानुसार पहली शताब्दी में मथुरा में बुद्ध-प्रतिमा का निर्माण हुआ (आर्ट बुलेटिन जिल्द ९, नं० ४)। फिर भी न जाने कैसे हुयेन-सांग लिखता है कि कौशाम्बी में उसने एक बुद्ध-प्रतिमा देखी!

सिकरी के लाल पत्थर की बोधिसत्व की एक मूर्ति भी कौशाम्बी में पाई गई है। इस पर खुदे शिलालेख से मालूम होता है कि यह मूर्ति सम्राट् कनिष्क के राज्य के दूसरे वर्ष में बनी थी और इसका स्थापन भिक्षुणी बुद्धिमित्र ने किया था। यहाँ यह भी बतला देना ठीक होगा कि कनिष्क-काल की बोधिसत्व की यह सर्वप्रथम मूर्ति है। यह मूर्ति भी मथुरा से यहाँ आई होगी। कुशाण-काल में तो मथुरा में मूर्ति-कला बहुत बढ़-चढ़ चुकी थी और मथुरा से बुद्ध की मूर्तियाँ काशी, प्रयाग, पाटलिपुत्र, गया आदि स्थानों तक भेजी जाती थीं।

जैन-तीर्थंकरों के अनेक सिर तथा मूर्तियाँ कौशाम्बी में मिली हैं। यह संभव है कि मथुरा के कंकाली-टीले पर स्थित जैन-केन्द्र से कौशाम्बी का कुछ सम्बन्ध रहा हो।

चुनार के पत्थर के बुद्ध भगवान् के गुप्तकालीन सिर भी यहाँ मिलते हैं। प्रायः सभी सिरों में बुद्ध भगवान् स्मित-मुद्रा में दिखलाये गये हैं।*

आभूषणों के लिए स्त्रियाँ प्रायः मालायें पसन्द करती थीं। इसका प्रमाण कौशाम्बी में प्राप्त असंख्य गुरियों (माला के दानों) से मिलता है। मोहेंजोदडो में विचित्र प्रकार की गुरियायें प्राप्त हुई हैं। इनके रंग, कारीगरी, वर्णच्छटा, और वर्णना को देखकर मुग्ध रह जाना पड़ता है।

पंडित ब्रजमोहन व्यास ने कौशाम्बी में प्राप्त अनेक सिक्के इकट्ठे किये हैं। सर कनिंघम ने भी १८६१ में वहाँ कुछ सिक्के पाये थे, जिनका वर्णन उन्होंने अपनी पुस्तक 'कोयन्स ऑफ़ ऐनशेंट् इंडिया' में किया है। कौशाम्बी के प्राचीनतम सिक्के पटे हुए हैं। इनमें कुबड़ा बैल, बोधि, मेरु, वृक्ष, वेष्टनी, चक्र, पहिया, स्वस्तिका, लक्ष्मी आदि के चिह्न बने हुए हैं। बहिसमित्र, अश्वघोष, जेठमित्र आदि राजाओं ने अपने नाम के सिक्के चलाये थे। बहिसमित्र के विषय में भी कुछ वाद-विवाद हुआ है। पभोसा के शिलालेख से ज्ञात होता है कि इस गुफा को बनानेवाला आशवसेन था, जो बहिसमित्र का मामा था। आशवसेन पांचाल के राजा से किसी रूप में सम्बन्धित था। उधर मथुरा के मोरा नामक स्थान से जो शिलालेख मिला है उससे मालूम होता है कि बहिसमित्र की पुत्री यशमाता की शादी मथुरा के किसी राजा से हुई थी। इस प्रकार हम देखते हैं कि बहिसमित्र कोई प्रसिद्ध राजा था।

कौशाम्बी में प्राप्त वस्तुओं से भी वही अलंकार तथा आडम्बर का प्रेम झलकता है जिसके लिए भारत युगों से प्रख्यात रहा है। इनमें अनेक बाहरी प्रभाव दीख पड़ते हैं। किन्तु इन प्रभावों को भारतीय शिल्पियों ने अपने व्यक्तित्व में खूब पचाया है। फलतः इन वस्तुओं से उस काल के घरेलू जीवन व सौंदर्य-प्रेम का सुन्दर परिचय मिलता है।

गत वर्ष भारत-सरकार के पुरातत्त्व-विभाग ने कौशाम्बी में खुदाई की थी। निकट भविष्य में फिर यहाँ खुदाई होगी, जिससे कौशाम्बी के इतिहास पर अधिक प्रकाश पड़ने की सम्भावना है।

* ऐसे दो सिर लेखक के संग्रह में हैं, जिनमें एक आधा बना कर छोड़ दिया गया है।

भारतीय सुगन्धित तेल

अनुवादक, श्रीयुत जगतनारायण तायल, एम० एस-सी०

[इलाहाबाद-विश्वविद्यालय के डाक्टर एस० दत्त, एम० ए, पी० आर० एस० (कलकत्ता), डी० एस० सी० डी० आई० सी० (लन्दन) एफ० एन० आई० नामी रसायन-शास्त्री हैं। यह महत्त्व-पूर्ण लेख आपके एक हाल के लेख का अनुवाद है।]

भारतवर्ष सदा से जड़ी-बूटियों और अनेक प्रकार के सुगन्धित तेल प्रदान करनेवाले पौधों का घर रहा है। गुलाब, अगरु, चन्दन, खस, केवड़ा, चमेली आदि का मूलस्थान होने के कारण संसार में सभ्यता और संस्कृति के क्षेत्र में सर्वप्रथम स्थान हमारे देश ने प्राप्त किया है। यद्यपि भारतवर्ष सारे संसार के उच्च कोटि के सुगन्धित द्रव्यों और अर्कों तथा इत्रों आदि की माँग को उचित रूप से पूरा कर सकता है, तथापि दुर्भाग्यवश हमारे यहाँ कोई ऐसी संस्था नहीं है जो इस माँग को विस्तृत रूप से पूरा कर सके। सुगन्धित तेलों को अत्यधिक मात्रा में उत्पन्न करनेवाले साधनों के अतिरिक्त यहाँ अनेक प्रकार के सुगन्धित पुष्पोद्यानों की खेती भी की जा सकती है, जिससे हम खाद्यपदार्थों की उपज की अपेक्षा दस गुने अधिक लाभवाले अर्क-तेल प्राप्त कर सकते हैं। वस्तुतः फ़्रांस में राष्ट्रीय सम्पत्ति का प्रधान साधन अर्क-तेल की खेती ही है, जो रोम की घाटी में विशिष्ट रूप में होती है। फ़्रांस क्षेत्रफल में युक्तप्रान्त से कहीं अधिक छोटा होते हुए भी अपने सुव्यवस्थित और सुविधा-पूर्ण प्रबन्धों के कारण प्रायः समस्त संसार को उच्च कोटि के सुगन्धित द्रव्य प्रदान करता है। अतएव इस लेख में मैं केवल नवीन प्रकार के इत्र-तेलों के साधनों तथा उनकी उपयोगिताओं का संक्षेप में वर्णन करूँगा और विशेषतया उन पदार्थों का उल्लेख करूँगा जिनके सम्बन्ध में हम लोगों ने अपनी प्रयोग-शाला में अनुसंधान किया है।

तुलसी का अर्क वा तेल

तुलसी के पौधे में बड़ी तीव्र सुगन्धि रहती है। इसकी शाखायें सीधी रहती हैं। भली भाँति देख-रेख कर उत्पन्न किये जाने पर इसकी ऊँचाई प्रायः पाँच फ़ुट तक हो सकती है। ऐसी दशा में पौधे के नीचे की शाखायें कड़ी लकड़ी की भाँति हो जाती हैं। समस्त भारत के हिन्दू इस पौधे को बहुत पवित्र मानते हैं। धार्मिक कृत्यों तथा पूजाओं में तुलसी-पत्र बहुत आवश्यक होते हैं और ये देवताओं पर चढ़ाये जाते हैं। प्रायः प्रत्येक हिन्दू के घर में तुलसी के पौधे लगाये जाते हैं और देवता के समान उनकी पूजा होती है।

तुलसी-पत्र में औषधिक गुण होते हैं। इस कारण भी प्रत्येक घर में इसका होना प्रायः अनिवार्य माना जाता है। तुलसी-पत्र के रस में कुछ ऐसे विशेष गुण हैं जो श्वास अवयवों को साफ़ रखने म समर्थ होते हैं और इसी कारण श्वास-संबन्धी अनेक रोगों तथा कफ, नाक से पानी बहने और दमा इत्यादि में यह लाभदायक होता है। जल-द्वारा बनाये गये तुलसी की पत्ती के लेप का प्रयोग अनेक चर्म-रोगों—खुजली, दाद, छाजन और पित्ती इत्यादि के निराकरण के लिए भी होता है। बच्चों के यकृत और पाचन-सम्बन्धी रोगों में भी इसका प्रयोग किया जाता है। इसकी पत्तियाँ कमल-रोग और तिल्ली-सम्बन्धी अनेक रोगों के निराकरण में सफल सिद्ध हुई हैं तथा इनमें अनेक कीटाणु-नाशक गुण पाये गये हैं। घाव, व्रण तथा छालों पर इसके लेप से बहुत शीघ्र फ़ायदा पहुँचता है तथा यह उन्हें विषाक्त होने से बचाता है। तुलसी-पत्र के रस-द्वारा कान की पीड़ा को समुचित लाभ पहुँचता है। इसकी पत्ती के उबाले हुए रस के प्रयोग से जननेन्द्रिय-सम्बन्धी अव्यवस्थायें दूर हो जाती हैं। ऊनी और रेशमी वस्त्रों के साथ इसकी सूखी पत्तियों को रखने से गर्मी के दिनों में कपड़ों में किसी भी प्रकार के कीड़े नहीं लगने पाते। तुलसी की पत्तियों के सम्बन्ध में यह तो प्रसिद्ध ही है कि इसके पास मच्छड़ नहीं फटकते।

तुलसी का आवश्यक तत्त्व अथवा सुगन्धित अर्क आसानी से पत्तियों में से भाफ के द्वारा निकाला जाता है और उस अर्क में का सुगन्धित तेल बेंजीन अथवा पेट्रोल ईथर के मिलाने पर अलग हो जाता है। पत्तियों में सुगन्धित द्रव्य का अंश उनके उत्पन्न होने के ढंग पर निर्भर रहता है, परन्तु रासायनिक प्रयोग-द्वारा यह देखा गया है कि पत्तियों में अर्कतेल का अंश लगभग १०० में ७ होता है। हलके रंग की अपेक्षा काले रंग की तुलसी में अधिक अंश में सुगन्धित तेल पाया जाता है, परन्तु इन दोनों के रासायनिक तत्त्वों में कोई भी भेद नहीं पाया जाता। तेल को हलके दबाव पर स्रवण करके साफ़ कर सकते हैं। साफ़ किये गये तुलसी के तेल का रंग हल्का पीला होता है और उसमें तुलसी की अपनी विशेष महक तथा

कुछ हलकी लौंग की कड़ी महक भी पाई जाती है।

साफ़ किये हुए तुलसी के तेल में निम्नलिखित वस्तुएँ यथालिखित अनुपात में निकली हैं—

युजी नोल	... ७१·३	प्रतिशत
कारवाकोल	... ३·२	,,
मेथाइल यूजिनाल	... २०·४	,,
कैरयो फ़ीलीन	... १·७	,,
कोई विशेष पदार्थ जिसका पता नहीं पाया जा सका	... ४·४	,,
जोड़	१००	

तुलसी बहुत ही सरलता से बीज-द्वारा उत्पन्न की जा सकती है। एक एकड़ ज़मीन में साधारण कृषि से तुलसी के कम से कम १,००० पौधे उत्पन्न किये जा सकते हैं, जिनके प्रौढ़ होने के लिए ४-५ महीने के समय की आवश्यकता होती है और हर एक पौधे में लगभग ३ पौंड पत्ती होती है और ३०० पौंड पत्तियों-द्वारा प्रायः २० पौंड तेल भाप के द्वारा निकाला जा सकता है, जिससे १४ पौंड यूजीनोल जिसका मूल्य लगभग २००) होता है, प्राप्त किया जा सकता है। २० पौंड परिष्कृत तुलसी के तेल का मूल्य भी लगभग १०) पौंड के हिसाब से २००) होता है। तुलसी के तेल से यूजीनोल निकाल दिये जाने के पश्चात् बचा हुआ द्रव आसानी के साथ अच्छे साबुन में सुगन्ध देने के लिए काम में लाया जा सकता है।

ममरी का अर्क व तेल

ममरी जिसे बंबई, वनतुलसी या रामतुलसी भी कहते हैं, एक बहुत ही सुगन्धित पौधा होता है। यह नदियों के किनारे पर और नम स्थानों में झाड़ियों के रूप में पाई जाती है। वर्षा के दिनों में सारे संयुक्त-प्रान्त में और कुमायूँ-नेपाल की तराई में यह बहुतायत से मिलती है। पूरा पौधा दो या तीन फ़ुट ऊँचा होता है और इसकी शाखायें बहुत घनी होती हैं। देखने में ममरी के पौधे तुलसी के पौधे से बहुत मिलते-जुलते होते हैं—केवल इतना भेद होता है कि ममरी की पत्तियाँ कुछ छोटी और अधिक हरी होती हैं। अक्टूबर या नवम्बर में पौधा पूरा बढ़ जाता है और इसके बाद या तो धीरे धीरे सूख जाता है या इसे जानवर खा डालते हैं।

ममरी में बहुत-से औषधिक गुण होते हैं। पत्ती का काढ़ा पाचन-क्रिया में विशेषकर आमाशय की गड़बड़ी में बहुत लाभदायक होता है। ज्वर में पत्तियों की पुल्टिस हाथ व पैर पर लगाने से अंगों के सिरे गरम रहते हैं। यह बहुत-से चर्म-रोगों में जैसे दाद, स्केबीज़, खाज, छंजन इत्यादि के लिए बहुत लाभप्रद होता है। कोमल शाखाओं और पत्तियों में अर्क व तेल की मात्रा लगभग ६ व ७ प्रतिहज़ार होती है। ऐसा मालूम होता है कि अर्क व तेल ही इसका आवश्यक अंग है और इसके औषधिक गुण भी इसी पर निर्भर हैं। इसलिए इसका पूर्णतया रासायनिक अनुसन्धान किया गया, जिसके फलस्वरूप अर्क व तेल में ६८ प्रतिशत सिट्रल पाया गया। इस दृष्टि से यह बहुत-सी योरपीय निबूवाली घासों से अच्छा है और इसके व्यावसायिक गुण भी उच्चकोटि के हैं।

ममरी का अर्क व तेल पत्तियों से स्रवण-विधि-द्वारा बड़ी सरलता से निकाला जा सकता है। ऐसा करने से पानी के ऊपर तेल की एक तह जम जाती है और शुद्ध अर्क व तेल पीले रंग का होता है, जिसमें नींबू की तीव्र गंध के साथ साथ लैवेंडर की गंध का भी आभास होता है। इस सुगन्धित तेल में लिनालुअल और जिरा निओल तथा इस श्रेणी के दूसरे रासायनिक पदार्थों के होने के कारण इसकी महक नींबू व घास के तेल से कहीं अधिक कोमल तथा रुचिकर होती है। यह तेल बाल में लगाने के तेल, साबुन, क्रीम और स्नो, लोजेन्जेज़ और सोडा-वाटर इत्यादि के लिए उच्चकोटि के सुगन्धित ऐसेन्स का काम दे सकता है। इसके पूर्ण विश्लेषण का फल जो प्रयोगशाला में मैंने अपने छात्रों के साथ किया है, निम्नलिखित है—

ममरी के तेल का तत्त्व

लिना लुअल	... १०·१	प्रतिशत
एस्टर्स (प्रधान लिनालाइल और जिरानाइल एसीटेट	... ४·८	,,
जिरानिओल और सिट्रोनेलल्लोल	... ७·३	,,
मिथाइल हैप्टिनोन	... २·४	,,
सिट्राल	... ६०·०	,,
सिट्रोलनेलाल	... ७·३	,,
अनिर्धारित	... ४·८	,,
शेष	... २·४	,,
कुल	... १००·०	

ममरी की खेती करने से इसकी उपज अधिक अच्छी होती है और एक एकड़ ज़मीन में बड़ी आसानी से इसके १,२०० पौधे उग सकते हैं, जिनमें कम से कम ४०० पौंड

पत्तियाँ और हरी शाखायें होंगी। इसमें से कम से कम २५ पौंड सुगन्धित तेल निकाला जा सकता है। इस तेल का मूल्य बाज़ार में कम से कम २००) होगा।

पुदीने का सुगन्धित अर्क व तेल

संयुक्त-प्रान्त में या यों कहिए कि सारे उत्तरी भारतवर्ष में पुदीना सूखी ऋतु में अत्यधिक मात्रा में उगता है और उस समय बहुत बड़ी मात्रा में इसका प्रयोग होता है। बरसात और जाड़े में पौधा कुछ कम उगता है और छोटा भी होता है, परन्तु बाज़ारों में बराबर बारहो महीने यह बिकता रहता है। इसका विशेष प्रयोग खाद्य-पदार्थों में विशेषकर चटनी, अचार इत्यादि को सुगन्धित करने में होता है। इसके औषधिक गुण भी महत्त्वपूर्ण हैं और यह आमाशय तथा अँतड़ियों के सम्बन्ध की सब गड़बड़ियों को दूर करने में उपयुक्त है। सूखी पत्तियों के पीसे हुए चूर्ण को ज़ुकाम और कैटरा में सूँघते हैं और ताज़ी पत्तियों की पुल्टिस घाव में लगाते हैं। हकीम और वैद्य लोग पुदीने की हरी पत्तियों को भाफ के द्वारा स्रवित करके उसका अर्क निकालते हैं और यह अर्क पित्त-सम्बन्धी तथा पेट के और दूसरे रोगों के दूर करने में बहुत लाभदायक सिद्ध हुआ है।

पुदीने का अर्क व तेल हरी पत्तियों से स्रवण-विधि-द्वारा बड़ी सरलता से निकाला जा सकता है। अर्क व तेल की मात्रा लगभग २ प्रतिहज़ार होती है। अर्क व तेल का रंग पीलापन लिये हुए हरा होता है और इसका आपेक्षिक घनत्व ०·९५ होता है। इसमें पुदीने की तीव्र गंध होती है, जो बड़ी भली लगती है। तेल को कई दिनों तक रिफ़्रीजेरेटर में रखने पर भी कोई ठोस पदार्थ जमा होता हुआ नहीं दिखलाई देता। यह बड़ी आश्चर्यजनक बात है, क्योंकि जापान में जो पुदीना होता है उसका अर्क व तेल ठंडक पाकर जम जाता है और उसमें से एक रवेदार पदार्थ जिसे मैंथोन कहते हैं, बहुत बड़ी मात्रा में निकलता है। शुद्ध तेल मामूली तेल के १० सें० मी० दबाव पर स्रवित करके निकाला जाता है। इस अर्क व तेल में उच्च कोटि के कीटाणु-नाशक गुण मौजूद हैं। यदि यह तेल अधिक मात्रा में बनाया और शुद्ध किया जाय तो भारतीय आयुर्वेदशास्त्र का मुख्य स्तम्भ होगा। पुदीने के शुद्ध अर्क का आपेक्षिक घनत्व ०·९५८० है। प्रयोगशाला में इसका पूर्ण विश्लेषण करने से इसका वास्तविक संगठन अग्रलिखित निकला है—

डी कारवोन	...	८०·८ प्रतिशत
सिन्ट्रोनेलल	...	६·२ ,,
डी सिलवैस्ट्रीन	...	३·८ ,,
कैरीन	...	४·४ ,,
अनिर्धारित	...	५·८ ,,

इस प्रकार हम देखते हैं कि पुदीने के अर्क व तेल में विशेष अंग डी कारबोन का है और इसी कारण पुदीने में इतने महत्त्वपूर्ण गुण पाये जाते हैं। यदि अर्क व तेल बहुत अधिक मात्रा में निकाला जाय तो साबुन तथा सुगन्धित पदार्थों के व्यवसाय के लिए बहुत बड़ा साधन होगा। अगर एक एकड़ ज़मीन में पुदीने की खेती की जाय तो कम से कम ५०० पौंड ताज़ी पत्तियाँ मिल सकेंगी और इनमें से लगभग १० पौंड शुद्ध अर्क व तेल निकाला जा सकेगा, जिसका बाज़ार में मूल्य लगभग १५०) होगा।

नागपुरी संतरे के छिलके का अर्क व तेल

भारतीय बाज़ारों में पाँच प्रकार के मीठे सन्तरे पाये जाते हैं—(१) सिलहट या खसिया सन्तरे जो आसाम में उगते हैं; (२) नागपुरी सन्तरे जो मध्य-प्रदेश में उगते हैं; (३) दिल्लीवाले सन्तरे जो पंजाब तथा संयुक्त-प्रदेश के पश्चिमी भाग में उगते हैं; (४) पूना का सन्तरा जो पूना के आस-पास दक्षिण के पठार में होता है; और (५) दक्षिण-भारतीय सन्तरे जो कुर्ग, मैसूर और नीलगिरि की पहाड़ियों में होते हैं। सर जार्ज वाटसन का कथन है कि सिलहटी और नागपुरी सन्तरे भारतवर्ष की विशेषता है और बाक़ी तीन प्रकार के सन्तरे मोज़म्बिक, मैंडरीन और माल्टा सन्तरों के रूपान्तर-मात्र हैं। नागपुरी सन्तरा विशेष प्रकार का भारतीय फल है और रासायनिक दृष्टि से इसका अनुसन्धान कभी नहीं किया गया, इसलिए मैंने यह उचित समझा कि मैं प्रयोग-शाला में इसकी पूर्णरूप से रासायनिक परीक्षा करूँ। यहाँ मैं यह बतला देना आवश्यक समझता हूँ कि दुर्भाग्यवश हमारे देश में नागपुरी सन्तरे के छिलके का अर्क व तेल कभी नहीं निकाला गया, यद्यपि यह बात यथार्थ है कि छिलकों में अर्क व तेल बहुत बड़ी मात्रा में होता है, जो ओषधि तथा व्यावसायिक दोनों दृष्टियों से अति उपयोगी है। नागपुरी सन्तरे नवम्बर से मई तक उगते हैं और इस समय उनकी उपज इतनी अधिक होती है कि वे बड़े सस्ते हो जाते हैं। सन्तरे का

छिलका जो काफ़ी मोटा होता है, सदैव फेंक दिया जाता है। व्यावसायिक दृष्टि से लोग समझते हैं कि सन्तरे का व्यापार बहुत लाभदायक नहीं है, क्योंकि फ़सल के समय यह फल बहुत अधिक मात्रा में होता है और शीघ्र सड़ने के कारण इसका तुरन्त बेचना बहुत आवश्यक हो जाता है, जिसके फल-स्वरूप इसका मूल्य बहुत घट जाता है। परन्तु यदि फ़सल के समय फल को छीलकर गूदा जाम व जेली के बनाने में प्रयुक्त किया जाय और छिलके का अर्क व तेल निकाला जाय तो सन्तरे का व्यापार बहुत लाभदायक सिद्ध होगा।

संतरे का अर्क व तेल सुगन्धित पादर्यों के बनाने तथा शर्बत, जाम, जेली और सोडा-वाटर इत्यादि में सुगन्धि प्रदान करने के लिए बहुत ही उपयुक्त है। डायमार्क साहब का कथन है कि इसका अर्क व तेल बड़ा स्फूर्तिदायक होता है और यह पित्त को मारता ह तथा पाचन-शक्ति को बढ़ाता है।

संतरे के छिलकों को स्रवण करके अर्क व तेल बड़ी आसानी से निकाला जा सकता है और छिलके में तेल की मात्रा लगभग १ प्रति होती है। सन्तरे का मैला रंग हल्का पीला होता है, जिसका आपेक्षिक घनत्व ०·८५ है और इसमें ताज़े सन्तरे की-सी मनमोहनी सुगन्धि होती है। शुद्ध अर्क व तेल बिलकुल साफ़ बिना रंग का होता है। प्रयोगशाला में तेल का पूर्ण विश्लेषण करने पर निम्न-लिखित फल निकला है—

नागपुरी सन्तरे के छिलके के अर्क व तेल का रसायनिक विश्लेषण

डी लिमोनिन	...	९०·८ प्रतिशत
लीना लुआल	...	१·८ ,,
कैरीन	...	२·६ ,,
टरपीनीन	...	नाममात्र
मिथाइल एन्थरानिलेट	...	०·८ ,,
अनिर्धारित	...	४·० ,,
कुल		१,०००

एक एकड़ ज़मीन में लगभग १२० सन्तरे के पेड़ लगाये जा सकते हैं। पाँच वर्ष के पश्चात् इनमें से हर एक में लगभग २५० सन्तरे उत्पन्न होते हैं। इस प्रकार एक एकड़ भूमि से लगभग १२००—१५०० पौंड तक छिलका मिलेगा, जिससे १२-१५ पौंड तक उत्तम प्रकार का तेल निकाला जा सकता है। गूदे की बड़ी स्वादिष्ट जेली बनाई जा सकती है। इसका बाज़ार में मूल्य लगभग डेढ़ दो सौ रुपये होगा।

कपूरकचरी का अर्क व तेल

यह एक छोटी-सी जड़ी है, जो भारतवर्ष के अधिकांश स्थानों में पाई जाती है—उन स्थानों में जहाँ वर्षा ऋतु में ५० इंच से ज़्यादा वृष्टि होती है, जैसे बंगाल, आसाम, कमायूँ की पहाड़ियाँ, नैपाल और दक्षिणी भारत के कुछ सूबों में यह बहुतायत से पाई जाती है। इसकी जड़, तो प्रायः नैपाल से ही आती है। व्यावसायिक दृष्टि से यह एक बहुमूल्य चीज़ समझी जाती है और क़रीब क़रीब १३) मन के हिसाब से बिकती है। स्वाद में यह कड़वी होती है। इसकी गन्ध तीव्र और मनोमोहक होती है।

हम लोग जो अबीर प्रायः एक-दूसरे के माथे पर लगाते हैं उसको सुगन्धित बनाने के लिए लोग कचरी का व्यवहार करते हैं। धार्मिक कृत्यों में देवताओं को प्रसन्न करने के हेतु मन्दिर और मसजिद दोनों में इसको धूप के साथ जलाते हैं। बंगाल में इसे मछलियाँ पकड़ने के लिए भी बहुधा काम में लाते हैं। जिस बनारसी तम्बाकू को लोग बहुत चाव से खाते हैं उसको सुगन्धित करने के लिए यह जड़ी काम में लाई जाती है।

कीर्तिकर और बसु का—जिन्होंने भारत की आयुर्वेदिक जड़ी-बूटियों के ऊपर एक बड़ा-सा ग्रन्थ लिखा है—कथन है—यह बूटी पेट के समस्त विकारों के लिए और शरीर को शक्ति-प्रदान करने के लिए अति उत्तम औषधि है। इसका अर्क व तेल बड़ी सरलता से निकाला जा सकता है। जड़ी को कूट कर पानी के साथ भर कर भट्ठे में चढ़ा देते हैं। तेल और पानी दोनों आ-आकर एक बड़ी बोतल में एकट्ठा होते हैं। तेल को अलग करने के लिए पेट्रोल इथर अथवा बेन्ज़ीन जो कोलतार से निकाली जाती है, व्यवहार करते हैं। १०० सेर कपूर-कचरी से ४ सेर तक बढ़िया तेल निकाला जा सकता है। शुद्ध तेल में जड़ी के समान तीव्र गन्ध होती है। शुद्ध अर्क व तेल को एक बोतल में रखने पर एक रवेदार पदार्थ जमा हो जाता है, जिसका विश्लेषण करने पर पता चला है कि यह इथाइल पैरा मिथाक्सी सिनेमेट है।

शुद्ध तेल का रासायनिक संगठन निम्नलिखित है--

ईथाइल पैरामिथाक्सी सिनामेट	... ६७·८	प्रतिशत
ईथाइल सिनामेट	... १०·२७	"
डी सैवनिनि	... ४·०	"
सीनियोल	... ६	"
सेस्की टरपीन्स	... ५·५	"
सेस्की टरपीन अलकोहल	... ४·७	"
अनिर्धारित	... १·८	"
कुल जोड़	... १०००.	

कपूरकचरी का तेल बनाने के लिए व्यवसाय की दृष्टि से एक कारखाना खोलना बहुत ही उत्तम होगा। इसके सुगन्धित तेल को साबुनों, लगाने के तेलों, पाउडरों और समस्त शृंगार की वस्तुओं में काम में लाया जा सकता है। यदि इसका भाव १५) मन हो तो एक पौंड तेल बनाने के लिए लगभग ७) ख़र्च होंगे। इस तेल में जो रासायनिक पदार्थ निकलेंगे उनका मूल्य इससे कहीं अधिक होगा।

नरकचूर का अर्क व तेल

यह एक जड़ी है जो बंगाल में बहुतायत से पाई जाती है। बंगाल में इसको काली हल्दी कहते हैं। यह बारह से पन्द्रह रुपये मन के हिसाब से बिकती है और इसका व्यवहार अधिकतर तम्बाकू और उत्तम प्रकार के तेलों को सुगन्धित बनाने में किया जाता है।

आयुर्वेदानुसार इस दवा में विशेष गुण हैं। यह मूत्र-दोष-नाशक मानी गई है। सफ़ेद कुष्ठ में और प्रमेह में यह बहुत ही लाभदायक पाई गई है। ख़ून को साफ़ करने में यह अपने जोड़ की एक ही दवा है। शक्ति प्रदान करने के लिए और पेट के रोगों को दूर करने में भी यह काम में लाई जाती है। स्त्रियों के प्रसव के बाद शक्ति-प्रदान करने के लिए इसे कई प्रकार के नुसखों में इसका व्यवहार किया जाता है। तुर्क लोग इसको मालिश के लिए भी काम में लाते हैं।

कचूर से शुद्ध तेल निकालने के लिए उसे कूट कर पानी के साथ भर कर भट्ठे पर चढ़ाते हैं और पानी के साथ मिले हुए उसके अर्क को इकट्ठा करते हैं। फिर ऊपर दी हुई रासायनिक विधि के अनुसार उसमें से तेल को अलग करते हैं। एक मन जड़ी से क़रीब क़रीब तीन पाव से कुछ ज़्यादा ही तेल निकलता है। रक्खे रहने पर तेल की तह में कपूर जमा हो जाता है।

कचरी के शुद्ध अर्क व तेल का संगठन निम्नलिखित है--

कपूर	... ७६·६	प्रतिशत
केम्फीन और बोरोनाइलीन	... ८·२	"
सेस्कूई टरपीन्स	... १०·५	"
अनिर्वारित	... ४·७	"
कुल जोड़	१,०००	

भारतवर्ष में प्रत्येक वर्ष लाखों रुपये का कपूर चीन और जापान से आता है। चीन और जापान में यह एक प्रकार की लकड़ी से जिसे वनस्पति-शास्त्र में सिनामोनस कैम्फोरा कहते हैं, निकाला जाता है। सौ मन लकड़ी से प्रायः डेढ़ मन कपूर निकलता है। यह पेड़ बड़ी मुश्किल से उगाया जा सकता है। कचूर भारतवर्ष में बहुत ही आसानी से पैदा किया जा सकता है। एक एकड़ ज़मीन में ५० मन तक सूखा कचूर निकल सकता है, जिससे २५ सेर कपूर निकाला जा सकता है, जिसका बाज़ार-भाव से औसतन मूल्य क़रीब क़रीब १५०) आँका जा सकता है। इस जड़ी को उत्पन्न करने से यहाँ कपूर इतना पर्याप्त मात्रा में तैयार किया जा सकता है कि वह न केवल यहाँ की आवश्यकताओं के लिए पर्याप्त होगा, बल्कि दूसरे देशों को भी भेजा जा सकेगा। व्यावसायियों के लिए यह सवाल विचारणीय है।

मैंने रासायनिक दृष्टि से ऊपर लिखी हुई जड़ी-बूटियों का अनुसन्धान किया है। यदि मेरा लेख व्यावसायिक भाइयों तथा देश के हकीमों और वैद्यों का ध्यान आकर्षित करने में समर्थ होगा तो मैं अपने प्रयास को धन्य मानूँगा।

'विहारीसतसई' में फ़ारसी और अरबी

हिन्दी की उदारता

लेखक, पण्डित अमरनाथ झा, एम० ए०

भारतवर्ष की सभ्यता की ओर जो कुछ विलक्षणतायें हों, एक विशेषता यह अवश्य है कि यहां का सिद्धान्त रहा है "वसुधैव कुटुम्बकम्", और यह सिद्धान्त काव्य और साहित्य में तो बहुत ही स्पष्ट है। जीवित और प्रचलित भाषा का स्वभाव है कि वह नये शब्दों को सदा ग्रहण करती है। यदि शब्द उपयोगी हो तो फिर वह, चाहे कहीं का भी हो, अपनाया जाता है। इसी प्रकार से अँगरेज़ी में बहुत-से शब्द प्रचलित हैं जो हमारे देश के हैं—यथा 'अवतार', 'पंडित', 'पक्का', 'बन्दोबस्त', 'बाज़ार', 'बक' ('बाकना' से, अथवा 'बकने' से), 'छोकड़ा', 'घाट', 'ख़बर', 'पूजा', 'कोई है', 'सवार' इत्यादि। हमारे यहाँ हिन्दी ने फ़ारसी और अँगरेज़ी के बहुत शब्दों को अपनाया है और इसमें उदारता दिखाई है। यदि ऐसी ही उदारता उर्दू के कवियों ने दिखाई होती तो सम्भव है कि हिन्दी और उर्दू में जितना अन्तर है उतना न होता। परन्तु उर्दू के कुछ कवियों ने तो हिन्दी के 'लाज' शब्द के व्यवहार करने पर क्षमा-याचना की है। अस्तु, आज इस लेख में मैं पाठकों का ध्यान "विहारीसतसई" में फ़ारसी और अरबी शब्दों की ओर दिलाना चाहता हूँ। सम्भव है, यह किसी और लेखक ने भी पहले लिखा हो, मुझे इसका पता नहीं है।

(१) "मनु ससि सेखर की अकस"—عکس

(यदि इसमें किसी को आपत्ति हो कि عکس का अपभ्रंशरूप यहाँ प्रयोग किया गया है तो स्मरण रखना चाहिए कि 'शशि' और 'शेखर' का भी शुद्ध संस्कृत रूप इस दोहे में नहीं है। प्रचलित भाषा शब्दों को श्रवण-मधुर रूप में ही प्रयोग करती है।)

(२) "पारयौ सोर सुहाग कौ"—شور

(३) "स्तन मन नितम्ब कौ बड़ौ इजाफ़ा कीन"—
اضافه

(४) "नवनागरितन मुलक लहि जोबन आमिल ज़ोर।
बढ़ि बढ़ि दें बढ़ि घटि रकम करी और की ओर!"
ملک – عامل – زور – رقم

(५) "वाही तन ठहराति यह, किबलिनुमालों दीठि"
قبله نما

(६) "हलकी फौज हरौल ज्यौं परति गोल पर भीर"
فوج، غول

(७) "गिरह कबूतर लेत" گرد؛ کبوتر

(८) "नटन सीस साबित भई" ثابت

(९) "गनी घनी सिरताज" سرتاج

(१०) "यह बसन्त न खरी गरम" گرم

(११) "हद रद छद छवि देखियत" حد

(१२) "ज्यौं ज्यौं रुख रुखौ करति"—رخ

(१३) "लखि बेनी के दाग" داغ

(१४) "छ्यौं नेह कागद हिये" کاغذ

(१५) "लगी तमासे के दृगन" تماشا

(१६) "पैरी कोस हज़ार" هزار

(१७) "चित के हित चुगलये" چغل

(१८) "रसिक सुरसल ख़ियाल" خیال

(१९) "राख्यौ हियौ हमाम" حمام

(२०) "पर्यौ ज़ोर विपरीत रति" زور

(२१) "प्याले ओठ प्रिया बदन" پیاله

(२२) "परे लाल बेहाल" بیحال

(२३) "बचै न बड़ी सबील हू" سبیل

(२४) "भनी मदन छितिपाल की छाँह गीर छवि देत"
گیر

(२५) "करै गँवारि सुमार" شمار

(२६) "सील सिलसिलेवार" سلسله

(२७) "उपजी बड़ी बलाय" بلا

(२८) "लोयन बड़ी बलाय" بلا

(२९) "लाज लगाम न मान हीं" لگام

(३०) "ये मुख ज़ोर तुरंग लौं" زور

(३१) "लगा लगी लोयन करैं नाहक मन बँध जाहि"
ناحق

(३२) "कौन गरीब निवाजिबौ" غریب نواز

(३३) "क्यौं न होय बेहाल" بیحال

(३४) "नैं कोउ हिन जुदी करी" جدا
(३५) "अपनी गरज निबोलियत" غرض
(३६) "खूनी फिरत खुश्याल" خوني - خوشحال
(३७) "खरे अदब इठलाहटी" ادب
(३८) "औंधाई सीसी सुलखि" شیشي
(३९) "ये बदरा बदराह" بدراه
(४०) "कीने बदन नमूद" نمود
(४१) "कागद पर लिखत न बने" کاغذ
(४२) "दीनें हू चशमा चखन" چشمه
(४३) "नागर नरनि सिकार" شکار
(४४) "ये कजरारे कौन पर करत कजाकी नैन" قزاقي
(४५) "पायक धाय हजार" هزار
(४६) "बिन जिह भौंह कमान" کمان
(४७) "मनमथ नेजा नोक ही" نیزه - نوك
(४८) "जरी कोर गोरे बदन" زري
(४९) "मनौ गुलूबंद लाल की" گلو بند
(५०) "उठत घटत दृग दाग" داغ
(५१) "किये मनौ वाही कसरि" کسر
(५२) "किय हायल चित चाय लगि" حائل
(५३) "भूखन पायंजाद" پاے انداز
(५४) "अरगट ही फानूस सी" فانوس
(५५) "दर्पन के से मोरचा" مورچه
(५६) "कीने जतन हजार" هزار
(५७) "गहि गहि गरब गरूर" غرور
(५८) "नाजुक कमला बाल" نازك
(५९) "परी परी सी टूटि" پري
(६०) "खेलत फागु खियाल" خيال
(६१) "चली चहूँदिसि राह" راه
(६२) "जगत जुराफा कीन" زرافه
(६३) "नरम बिभौ की हानि" نرم
(६४) "दिये लोभ चसमा चखनि" چشمه
(६५) "सोरा जानि कपूर" شوره
(६६) "चढ़ि कत करति गुमान" گمان
(६७) "आगे कौन हवाल" حوال
(६८) "गई मुवीत बहार" بهار
(६९) "सफर परेई संग" سفر
(७०) "बाज पराये पानि पर" باز
(७१) "अतर दिखावत काहि" عطر
(७२) "बहुधन लै अहसान कै" احسان
(७३) "फसी फौज में बन्द बिच" فوج
(७४) "लखि सब ब्रज बेहाल" بیحال
(७५) "यौं दल काढ़े बलख तें" بلخ
(७६) "बाद मचावत सोर" باد ; شور
(७७) "चाहै जाहि बलाय" بلا
(७८) "दई दई सु कबूल" قبول
(७९) "मोहि तुम्हें बाढ़ी बहस" بحث
(८०) "बिनती बार हजार" هزار
(८१) "परचौ रहौं दरबार" دربار
(८२) "लखि लाखन की फौज" فوج
(८३) "लै लाखन की मौज" موج
(८४) "फते तिहारे हाथ" فتح
(८५) "हुकुम पाय जय साहि कौ" حکم
(८६) "बाम तमासे कर रही" تماشا
(८७) "रुख रुखे मिस रोख मुख" رخ

एक मर्मभेदी प्रेम-कहानी
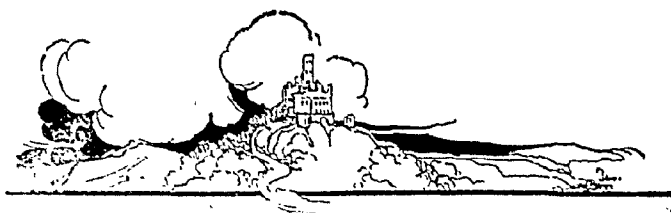
भूली हुई कहानी !

लेखक, श्रीयुत सरयू पण्डा, गौड़

"हलो !"

"हाँ, आप कौन साहब हैं? कहाँ से बोल रहे हैं?"

"सेन्ट्रल जेल बक्सर से। मैं हूँ जेलर। साहब हैं?"

"हाँ !"

"कृपाकर फोन पर उन्हें बुलाइए।"

"हाँ, मिस्टर मिश्रा, मैं आ गया। क्या बात है?"

"गुड मार्निङ्ग सर!"

"गुड मार्निङ्ग। हाँ, फ़रमाइए।"

"वह खूनवाली पगली-सी औरत है न, जिस पर अपने बच्चे को मार डालने का केस मैजिस्ट्रेट के यहाँ देखा जा रहा है।"

"हाँ, हाँ, है तो। तब !"

"तब, हुजूर वह बहुत तंग करती है। वह हवालात की असामी है। मैं करूँ तो क्या? आज जब वह सेल से खाने को निकाली गई तब एक क़ैदी का पत्थर चलाकर उसने सिर तोड़ दिया। जमादारिन डाँटते-धमकाते दौड़ी तब इस बेरहमी ने उसे दाँत से काट लिया कि बेचारी के खून आ गया। वह बाप-बाप चिल्लाती बेहोश तक हो गई!"

"अच्छा, तो उसे होशियारी से खिलाकर डंडा-बेड़ी दे दीजिए। मैं दूसरे वक्त ड्यूटी-टाइम पर आ जाऊँगा। समझे? घबराने की बात नहीं! अच्छा, गुडबाई।"

× × ×

जेल के क़ैदी से लेकर वार्डर, जेलर, नायब, हवलदार सबके वार्ड में इस विचित्र खूनी पगली की चर्चा थी। कोई कहता, विलक्षण है भैया! विलक्षण! कोई कहता, अरे! पक्की उस्ताद है मियाँ! खून करके कैसी पागल बन गई है।

"ओह! बोलती भी बहुत है ससुरी। कल की रात मे हमारी ही ड्यूटी उसके वार्ड में थी। सारी रात न जाने क्या बड़बड़ बेसिर-पैर की बकती रही।

एक रसिक सज्जन बोले—पर है बड़ी सुन्दर। आँख देखो, नाक देखो, बदन देखो, रंग देखो, मुँह देखो, अरे चाल तक देखो, सब एक से एक लूटनेवाली! है यह कोई बड़े घर की परी!

दूसरे बोले—इसमें क्या शक! परी तो है ही। और परी होती कैसी है? मगर, यार है बड़ी ज़ालिम हरामजादी। दया का तो इसमें जैसे लवलेश तक नहीं है। आँख नहीं देखते, रक्त की तरह लाल-लाल, हत्यारे की नाईं चढ़ी-चढ़ी!

"अरे, हत्यारिन तो है ही भाई। तिस पर सारी रात का जगना—बड़बड़ाना, आँखें लाल होगई, चढ़ गई तो कौन-सा बड़ा अचरज हो गया। साहब आते हैं। न जाने कौन रंग दिखावे।"

"हमें तो शक है, कहीं उन्हें भी—!"

"नहीं, नहीं, डंडा-बेड़ी भरी है।"

"तो बस, इसे ही ख़ैरियत समझो। नहीं तो बाबा, मरता क्या न करता! सोचती होगी, मैं तो दुनिया से जा ही रही हूँ, और दो-चार जनों को संगी बनाये चलूँ।"

× × ×

"सरकार सलाम!" के कुहराम से जेल का कोना-कोना गूँज उठा। "साहब आ गये!" जेल के शून्य, शान्त, नीरस वातावरण में एक व्यग्रता, एक हलचल की लहर-सी दौड़ गई। कहीं चक्कियाँ घरघराने लगीं, कहीं दनादन फावड़े चलने लगे, कहीं सड़कें पीटी जाने लगीं, सारा काम मशीन की भाँति चलने लगा, मानो इस जेल-रूपी फ़ैक्टरी के साहब बहादुर 'फ़ोरमैन' हों। आते ही सारी मशीनें 'स्टार्ट' हो गईं।

वह खूनवाली पगली जेल के ईश्वर—साहब—के सम्मुख पेश की गई। उसे देखते ही साहब बहादुर जो 'बहादुर' कहला कर भी बन्दूक-किरचों से लैस दर्जनों वार्डरों से घिरे थे, बुड़ककर बोले—क्यों री! तू बदमाशी करती है! वह वह हंटर पड़ेंगे कि ठंडी पड़ जायगी। बदमाश! यह जेल है, बाबा का घर नहीं। मिरचाई घर में डलवा दूँगा। समझी! तू लोगों को मारती क्यों है रे!

पगली अपने ढंग में बोली—मारती न तो क्या करती? उसी ने तो कहा, "मार दे, मार दे, जल्दी मार दे, नहीं तो अनर्थ हो जायगा।" मारती न तो क्या करती? उसका पाप मैं क्यों पोसती? हाँ, हाँ, हमारे इस सीने में

पहले पहले उसी ने आग धधकाई। हाँ जी, उसी ने। क्या भला-सा उसका नाम था? याद नहीं आता। ठीक तुम्हारी शकल का तो था। वह छोटा था, और मैं भी छोटी। हाँ, तुम ज़रा मोटे हो, वह पतला था। बड़ा तेज़। बहुत बोलता था; बड़ा चालाक। हमारे बापू उसे बैरिस्टर साहब कहा करते थे। ओह, बड़ा लुभावना था वह। हाँ, हाँ, वह तुम्हारी ही तरह था। उससे छुटपन में हमारी कई बार शादी भी हुई। वह दूल्हा बना, मैं दूल्हन। डंडे के घोड़े पर चढ़कर, केले के पत्ते का मौर पहनकर वह मुझे व्याहने आया था। पर मैं जवान हो गई, वह मुझे लेने न आया। लेने आया एक मरा-मरा-सा बुड्ढा, जिसका मूँड़ ताजिये की तरह झूल रहा था, जिसके गाल गड्ढे बन चुके थे और खाल बीता बीता भर लटक आई थी। हा! हा! हा! तब जानते हो क्या हुआ? हो! हो! बड़ी मज़ेदार बात। वह कलमुँहा कुल चार दिन में मर गया—दाँत बाकर! उस रोज़ मैं तालियाँ पीट पीट कर खूब हँसी। खूब—खूब—खूब—भरपेट! तब मैंने उसे ढूँढ़वाया। कह गया था, जल्दी आने को, पर अब तक न आया। तुम उसे जानते हो? नहीं। अरे! ठीक तुम्हारी ही तरह तो था। बहुत हँसता था—बात बात पर! मिनट मिनट पर! हाँ जी, मोती जैसे उसके दाँत थे, पान जैसा होंठ—

पगली कहती गई, साहब न जाने क्यों चुप आँखें फाड़ फाड़ कर उसे देखते उसकी बातें सुनते गये।

"तब! तब जानते हो क्या हुआ? नहीं। बड़ा तमाशा। कितने लोग मेरे निकट—! हाँ! समझे? नहीं। मेरा प्रेम पाने को आने लगे। पर मुझे एक जँचा। जानते हो क्यों? वह ठीक उसी की तरह था। पर हाँ जी, उस दाढ़ीजार का दिल उसके जैसा न था। उसी ने कहा, मार दे इसे। तब मैंने उसे मार दिया। तुम उसको—अरे उसको, मेरे पहलेवाले दूल्हे को नहीं जानते। वह तुम्हारी ही तरह था जी! बड़ा अच्छा। बड़ा सुन्दर। तुम साहब होकर भी अपराधी को नहीं जानते! बड़ा अचरज!! ही! ही! ही!

साहब बहादुर एकदम सुस्त व ढीले-से पड़ गये। वे गिरते हुए स्वर में जेलर की ओर देखते बोले—अफ़सोस! बड़ी अभागी औरत है यह! अभी इसका दिमाग उतना तो खराब नहीं हुआ है, मगर हाँ खराबी के रास्ते पर चल चुका है। हाँ, इस पर क्या चार्ज है? अपने बच्चे को मार डालने का न?

जेलर सविनय बोला—जी हाँ।

साहब—अच्छा, यह अपना अपराध कोर्ट में स्वीकार कर चुकी है?

जेलर—पता नहीं, शायद अभी कोर्ट में हाज़िर हुई या नहीं अथवा इसकी पेशी हुई या नहीं। कुछ बताती भी तो नहीं। इतनी बात बकबक बोल गई। हुज़ूर ने कुछ समझा? मुझे तो खाक-पत्थर कुछ भी समझ में न आया। कहाँ डंडे के घोड़े पर चढ़ा दूल्हा, फिर बूढ़ा, फिर वह—!!! जानें वह कौन इसका 'वह' है। हमसे भी बार बार यह यही पूछती है कि उसे तुम जानते हो, नहीं जानते, तुम्हारी ही तरह तो है वह।

साहब ज़रा विषादभरी स्मित मुस्की होठों पर लाकर बोले—हाँ, पागल ही तो है। इसकी बातों का क्या ठौर-ठिकाना? वे फिर ज़रा गम्भीर होकर बोले—'इसकी डंडा-बेड़ी आप खुलवा दें। यह हवालाती असामी है। इस पर ज़ोर-ज़ुल्म न होना चाहिए। जहाँ तक हो सके इसे आराम से रखिए।'

"जो हुक्म हुज़ूर" कहकर जेलर चुप हो रहे।

पर साहब बड़े खिन्न से, चिन्तित-से, गम्भीर-से होकर वहीं से आफ़िस रूम को लौट गये। अन्य वार्डों का उन्होंने उस दिन निरीक्षण नहीं किया।

× × ×

आफ़िस का घंटा एक बजा चुका है। जाड़े की लम्बी डरावनी रात भाँय भाँय कर रही थी। बाहर उपवन में कभी-कभी शृगाल-शृगाली फेंकर उठती थी। शयन-गृह के प्रवेशद्वार पर कम्बल पर अगले दोनों पैर फैलाये, उस पर मूँड़ धरे टामी ऊँघ रहा था। कभी कभी "उँ-उँ ऊँ" कर तथा कभी भूँक कर वह अपनी जागरूकता तथा चौकसी का पता दे रहा था। साहब शाम से ही पलँग पर पड़े बड़ी बेचैनी से करवटें बदल रहे थे। आज उन्होंने खाना भी नहीं खाया था। आज वे बहुत अशान्त, बहुत व्यग्र थे। कभी कभी उनकी आँखें भर आतीं तो कभी धीरे और कभी शीघ्र शीघ्र उनके होंठ हिलने लगते—हा! हतभागिनी शारदा! पागल! खूनी! सन्तान की जान लेनेवाली चाण्डालिनी माँ! ओफ़!! पिनल कोड की सबसे भयानक दफ़ा—३०२ की भावी अपराधिनी! फाँसी—फाँसी—कहाँ? कहाँ? हमारे ही जेल में—हमारी ही उपस्थिति में—! हा रे—समय। ओफ़—हम कुछ नहीं कर सकते। काली लिबास से आपाद-मस्तक ढँकी

चारुशा फाँसी के फंदे में गला डालेगी। एक—दो—तीन—! चारुशा समाप्त— उफ़ !

— विक्षिप्त की भाँति साहब उठ बैठे। माघ-पूस की बर्फ़वाली रात में भी साहब पलँग के पास रक्खी सुराही से लेकर दो गिलास पानी गटगट पी गये—ऐसा ही भयानक अग्निकाण्ड उनके हृदय में मचा हुआ था।

उफ़! बड़ी गरमी है!—गिलास रखते हुए साहब बोले। कुछ क्षण चुप रहे, फिर अपने सामने दीवार में टँगे मार्कण्डेय को अभय देते हुए भगवान् शंकर के चित्र की ओर एकटक ताकते हुए बोले—चारुशा का क्या होगा भगवान् भूतेश ? क्या वह क्षमा की पात्री नहीं? ओफ़! फिर उनकी आँखों से आँसुओं की झड़ी टूट चली।

साहब बोले—आह ! नारी के निर्मल स्नेह, पुनीत हृदय-दान की वह महान् तन्मयता है, जो वह अपने डंडे के घोड़े पर चढ़ने दूल्हेवाले को अब तक नहीं भूल सकी है। हर एक की सूरत में वह अभागिनी अपने 'उसी' की मूर्ति आज भी—इस विक्षिप्त दशा में भी—देख रही है। यह है नारी का पावन प्रेम! और उसका 'वह' अभागा—नहीं, नहीं, निठुर, नहीं, चाण्डाल, पातकी, कृतघ्न उस स्वप्न की बात-सी भूल कर उसके कोमल हाथ-पैरों में जिसे वह लक्षाधिक बार चूम-चाट कर परम आनन्द प्राप्त कर चुका है, डंडा-बेड़ी भरवा रहा है—बदनाम करा रहा है; सिरपर में झुलवाने की धमकी दे रहा है। हद हो गई कृतघ्नता की। राक्षसी-वृत्ति की पराकाष्ठा हो गई! ओह!

हाँ, मैंने उससे ज़रूर कहा था, "मैं जल्द आऊँगा।" वह युगों की बात उसे कल की बात-सी याद है! ओह! कितना अगाध प्रेम है। शुरू शुरू में मैंने इस निर्दोष, नारी-हृदय में प्रेम-चित्र अंकित किया था। वह सच कहती है। "तुम साहब होकर भी अपराधी को नहीं जानते?" जानता हूँ चारुशा! हाय! तुम्हारा वह अपराधी, तुम्हें फाँसी के तख़्ते तक पहुँचानेवाला पतित अपराधी, इस ज़िले का यही अभागा साहब है, जो पलँग पर आज सोया हुआ तुम्हें जेल में डंडा-बेड़ी डलवा कर फाँसी पर झुलाने को तैयार है। ओह! मानवता के संग ऐसी घृणित प्रवंचना! छिः-छिः !!

साहब कहते गये—हाँ, आज से १०-१५ बरस पहले की बात है। वह सात-आठ साल की रही होगी और मैं दस-बारह का। उन दिनों मेरे नगर में प्लेग का बड़ा प्रचंड प्रकोप था। मैं नाना जी के ग्राम में देहात भेज दिया गया था। वहीं इससे भेंट हुई थी। ग्राम की धूल भरी गलियों में वह बालू का महल बनाये खेल रही थी। मेरा डंडे का पागल घोड़ा बहका और उस महल को तोड़ता-फोड़ता रौंदता निकल गया। वह चिल्ला कर रो पड़ी—ऊँ-ऊँ-ऊँ, हमारा घर तोड़ दिया। जाती हूँ तुम्हारे नाना जी के पास! अपराध की गुरुता और भयंकरता तब मेरी समझ में आई। घोड़े को वहीं पटक एक डग में उसके पास पहुँचा, और उसे पुचकारता, पीठ सहलाता बोला—माई, भूल हो गई। जाने दो। लो इसे चखो, बरफ़ी है। आओ तुम्हारा घर बना दूँ।

उस 'भूली हुई कहानी' के सम्बन्ध में साहब कहते गये—हाँ, तब मैंने उसका घर उससे भी सुन्दर बना दिया। वह बहुत ख़ुश हुई, तालियाँ पीट-पीट कर नाचने लगी। फिर वह बड़े प्रेम से मेरे कन्धे को पकड़ कर बोली—सुनो, जी, तुम दूल्हा बनोगे। बन जाओ, बन जाओ। जाओ अपने उसी घोड़े पर चढ़कर आओ। तब तक मैं अपनी सखियों को बुला लाती हूँ। जाओ ना, खड़े क्या हो?—मैं उसकी यह प्रेमभरी आज्ञा न टाल सका। दूल्हा बन गया।

ओफ़! उस अभागी गली में मेरा, उसका रोज़ ब्याह रचता रहा। रोज़ फूल-पत्तों का ज्योनार हुआ किया। छुटपन की वह बाल-क्रीड़ा उस हतभागिनी बालिका के निर्मल हृत्-पट पर अनजाने में लिखकर शिला-लेख हो गई। पूरे सात-आठ साल पर नाना के गाँव फिर आया। अब मैं एक प्रकार से युवा था। और वह—वह थी लज्जा-शीला, कुल-कन्या। शरीर भर चुका था। सौंदर्य निखर आया था। इधर-उधर देख, बोली—बहुत दिन पर आये! किधर रास्ता भूल गये?

मैं उस ग्रामीण बालिका के तरल स्नेह-सागर में डुबकियाँ खाने लगा, डूबता डूबता जैसे बोला—हाँ, इस बार लौटने में देर हो गई है। छः सात साल पर लौटा हूँ। क्या करता, पढ़ाई का झंझट है। हाँ, तुम तो अच्छी हो। वह मुँह फेरकर अनमनी-सी होकर बोली—हूँ! अच्छी ही हूँ। तुम सात पर नहीं, आठ साल पर लौटे हो, मैंने बराबर दिन गिना किया है।

हाँ, तुम दिन गिनती रही!—आश्चर्य भौंवें सिकोड़ कर मैं बोला। यह कहकर मैं अपने काम से चला गया। उसी दिन रात में मेरे पेट में बड़ी भयंकर पीड़ा उत्पन्न हो गई। नानी-नाना, सभी हाय हाय करने लगे। पड़ोस में ही उसका भी घर था। अपनी माँ के साथ वह भी दौड़ी

आई। मैं उस समय बहुत बेचैन था। अँतड़ियाँ ताँत की तरह ऐंठ रही थीं। कराहते कराहते होंठ काले पड़ गये थे। आँखों के डोरे निकल आये थे। ज़रा भी चैन नहीं, तनिक भी शान्ति नहीं। मेरी दशा देखकर सभी घबरा गये। किसी ने कहा—अगर जामुन का सिरका मिलता तो क्षणों में सब कष्ट भाग जाता।

कहाँ मिलेगा?—मामी बोल पड़ी।

"मिलेगा गाँव के मालिक के घर। पर रात का समय है, सो भी, बारह एक का, और जाड़े की रात। मालिक लोगों को जगाना ज़रा कठिन है।"

"मैं अभी लाती हूँ।" वह झट उठकर खड़ी हो गई।

उस सन्-सन् बोलती हुई निस्तब्ध रजनी में वह दौड़ती दौड़ती ग्राम-अधिपति के घर पर गई और उन्हें जगा कर सिरका माँग लाई। मामी ने मुझे सिरका पिलाया और मैं मूकवत् उसे देखता सिरका पी गया। सुबह जब आँख खुली, देखा मामी से वह मेरा हाल पूछ रही है। यह है नारी का स्तुत्य स्नेह और पूजनीय सहानुभूति। जी में आया इस तपोमूर्ति के चरणों पर लोट जाऊँ। मुझे प्रसन्न देखकर चली गई। दिन में जब उसके यहाँ गया उसने पूछा—कैसे हो?

अच्छा हूँ!—कहकर मैं ज़रा मुस्कराता हुआ उसकी ओर बढ़ा। वह मुझे समझ चुकी थी। कपड़े समेट कर वह दीवार से ही लगी खड़ी रही। मैं उसके कंधे पर हाथ रख कर धीरे से बोला—यह ऋण मुझसे कैसे किस जन्म में चुकेगा?

वह निर्वाक् खड़ी रही। मैं और बढ़ा, उसकी ठुड्ढी को छूकर कहा—न बताओगी? इस छोटे-से सीने में किस देवता का दिल छिपा बैठा है। मुझे दिखलाओ, मैं उसकी पूजा करूँ। वह हँसती हुई घर के भीतर चली गई। मैं भी मामी के घर लौट आया।

सातवें दिन मैं पिता जी का तार लिये इसके पास पहुँचा, कहा—मैं तो जा रहा हूँ, देखो, पिता जी ने खीझ कर 'तार' तक दे डाला है। मेरा कालेज खुल गया है। विषादभरे कातर-नेत्रों से उसने मेरे 'तार' की ओर देखा और चुप होकर रह गई, मानो वह आघात उसके मर्म-मर्म के हेतु ऐसा असह्य था कि वह उफ़ तक न कर सकी, एक दीवार में मुर्दे की तरह पड़ गई। कुछ क्षण मैं भी मौन रहा, फिर साहस कर बोला—फिर आऊँगा!

परन्तु अब वह आघात उसका कोमल कलेजा तोड़ कर आँखों की राह खून उलीच रहा था। मोती के दानों जैसी बड़ी बड़ी अश्रुबूँद उसके नेत्रों से निकल कर कपोलों को भिगोती हुई टपटप गिरने लगीं; मैं काँप गया।

हरे, ईश्वर!! निकट जाकर उन अबाध्य अश्रु-बूँदों को अपने रूमाल के तुच्छ वस्त्र-खण्ड से विमोचन का विफल-प्रयास करता हुआ मैं बोला—रोती हो? रोओ मत! मैं बहुत घबरा रहा हूँ। तुम्हें मेरी सौगन्ध! मैं जल्द ही आऊँगा।

चट-पट आँसू पोंछती हुई वह बोली—तुम क्यों घबरा रहे हो? शहर में मुझसे ज्यादा चटकीली, चमकीली चीज़ तुम्हें मिलेगी। रोना-घबराना तो मुझे है! मैं कहाँ तुम-सा पाऊँगी?

ओफ़! साहब व्याकुल होकर पलँग पर उठ बैठे; उसकी वह भविष्य-वाणी अक्षरशः सत्य हुई। मैं शहर की चमकीली चीज़ों में सचमुच भूल गया—भूल गया। हरे भगवान्!

उसे किस तरह फाँसी के फन्दे से बचाऊँ। उसने अपने बच्चे को मार डाला है! क्यों? वह हिन्दू-समाज का पाप, ब्राह्मणी-विधवा का बच्चा था। ठीक ही तो वह कहती है, पराया पाप मैं क्यों पोसती। समाज के पाप को समाज के मत्थे उसने डाल दिया। उसमें उसका क्या दोष? उसने समाज-मर्यादा की रक्षा के लिए ही तो अपने बच्चे का वध किया। और उसके 'उस' हत्यारे ने भी तो जिसने उसके उदर में यह पाप संचय किया था, कहा था—मार दे, इसे जल्द मार दे, नहीं तो अनर्थ हो जायगा! फिर भी हत्यारी यह बताई गई। हाय रे, समाज! हाय रे क़ानून! मगर अब यह इस जालिम क़ानून के शिकंजे से छूटे कैसे?

पाँच! पाँच बज गया—सुबह! और मैं बैठा सोचता ही रहा। सारी रात इसी तरह बिता दी! अँगड़ाइयाँ लेते हुए साहब उठे। नौकर ने कपड़े उतारे। साहब पाखाने गये। अभी वे निपट कर दाँतून भी न कर पाये थे कि फोन की घंटी टन्टना उठी, वे टूथ-ब्रुश लिये ही फोन पर गये।

"हाँ, कहिए, कौन हैं, आप?"

"हुज़ूर मैं मिश्रा, जेलर।"

"हाँ, कहिए मिस्टर मिश्रा! खैरियत तो है?

"हुज़ूर, खैरियत नहीं है। बहुत बड़ी दुर्घटना हो गई। वह खूनवाली पगली—"

"हाँ, हाँ, क्या पगली—!" साहब घबराये से बीच में ही बोल उठे।

"हाँ, वही पगली। हुज़ूर के कहे मुताबिक़ मैंने उसकी डंडा-बेड़ी उतरवा दी थी। कुछ ख़ास सुविधा भी उसे दे दी थी। खाने-पीने की, रहने-बहने की। आज सुबह जब वह शौच के लिए 'सेल' से बाहर निकाली गई तब शौचालय की ओर जाने के बदले दूसरी ओर मुड़ी। वार्डर ने रोका तब तन गई। हुज़ूर की हिदायत के ख़याल से उस पर वह कुछ ज़ोर न कर सका, पगली के संग हो लिया। फिर वह जेल-बग़ान के कुएँ की ओर बड़े वेग से दौड़ी। चिल्लाते हुए वार्डर ने उसका पीछा किया, मगर पगली ने ईंट का एक टुकड़ा उठाकर साध कर वार्डर की ओर ऐसा फेंका कि वार्डर बेचारे की ठीक नाक पर जा बैठा और वह वहीं आह करता बेहोश हो गया। और जब तक कि और लोग जुटें, पगली दौड़ती हुई कुएँ में कूद पड़ी। "पगली" (घंटी) हो गई है। कलक्टर साहब को 'फ़ोन' करने के बाद हुज़ूर को कर रहा हूँ। पगली कुएँ से निकाल ली गई है, पर उसके बचने की आशा नहीं। काफ़ी अधिक पानी पी गई है। वार्डर की भी हालत नाज़ुक है। नाक बुरी तरह फट गई है।

ब्रुश-पाउडर वहीं पटक कर साहब 'ड्रेसिंग-रूम' को दौड़े। जल्दी जल्दी कपड़े पहन कार पर सवार हो जेल-ख़ाने को भागे।

जेल-बग़ान के कुएँ की पक्की जगत पर पगली का मरणासन्न, चेतनाहीन शरीर पड़ा था। पेट मसक की तरह फूल गया था, और बड़ी ही मन्द गति से वह उठ-दब रहा था। पगली धीरे धीरे इस असार और स्वार्थी संसार से रिश्ता तोड़ रही थी, जहाँ इस अभागिन को केवल प्रवंचना और प्रतारणा ही मिली थी। साहब उसके पास जाकर हतज्ञान-से हो अपनी भूली हुई कहानी का सजीव स्वरूप देख रहे थे।

साहब की आँखें झरने की तरह बरस पड़ीं। वे थकित-से, विजित-से, हो उठे और अपना टोप उतारकर काँख में रखते हुए आँसू पोंछते हुए मिस्टर मिश्रा से बोले—फ़िनिश!

सम्बोधन

लेखक, श्रीयुत विश्वप्रकाश दीक्षित 'बटुक' विद्यावाचस्पति

निष्ठुर जग के निर्मम मन रे!
उर-उपवन है कुसुमित पुलकित,
वरदान मिला, अभिमत अभिमित;
प्रिय चातक में, प्रिय में चातक लय होगा घिर आये घन रे!
निष्ठुर जग के निर्मम मन रे!!

ले देख, प्रणय की मृदु-वेला,
मृदु-मृदु हृदयों का मधु-मेला;
प्रिय प्रियतम के जो बीच रहा उठता है वह अवगुण्ठन रे!
निष्ठुर जग के निर्मम मन रे!

अभिशाप न एक फला तेरा,
जीवन-प्रभात है यह मेरा;
प्राणों में प्रियतम मुसकाता, तू देख इसे पाहन बन रे!
निष्ठुर जग के निर्मम मन रे!

पाकिस्तान की पार्श्वभूमि

लेखक, डाक्टर एस० सी० लले, बी० ए०, एम० बी०

[मुस्लिम लीग की पाकिस्तान-योजना की इस समय देश में काफ़ी चर्चा है। हम सरस्वती के पिछले अंकों में इस विषय पर दो लेख छाप चुके हैं। इस लेख में विद्वान् लेखक ने यह बताया है कि देश के मुसलमान नेताओं में यह अराष्ट्रीय भावना क्यों और कैसे ज़ोर पकड़ रही है]

जगत् का राजकीय नक़्शा यदि सूक्ष्म दृष्टि से देखा जाय तो यह ज्ञात होगा कि आज की अखिल ज्ञात दुनिया का अधिकांश श्वेतवर्ण की जातियों के हाथ में है। संसार का छोटा-सा भाग—केवल साठ लाख वर्ग मील का प्रदेश—उन लोगों की अधीनता में नहीं है। इस स्वतन्त्र भाग का दो तिहाई भाग जापानियों तथा चीनियों के अधिकार में है, शेष बीस लाख वर्ग मील के विभाग में अधिकतर मुसलमानों के स्वतन्त्र देश हैं। तुर्की और ईरान ये दो इस्लामी देश पूर्णतया स्वतन्त्र हैं। ईराक, सीरिया इत्यादि अन्य मुस्लिम देश स्वतन्त्रता के लिए लड़ ही नहीं रहे हैं, किन्तु स्वतन्त्रता का अधिकांश उनके हाथ में आ चुका है। सूडान, अलजीरिया, ट्रिपोली इन देशों में ग़ैरों का अधिराज्य है; परन्तु इस अधिराज्य के विरुद्ध खुला प्रचार, सशस्त्र प्रतिकार एवं विद्रोह जारी था, और वह आज-कल बन्द हो सो बात नहीं है। पैलेस्टाइन में आज-कल भी विद्रोह की ज्वाला धधक रही है। ब्रिटिश साम्राज्य के फन्दे में फँसा हुआ ईजिप्ट पूर्ण स्वतन्त्रता के समीप जा पहुँचा है। स्पेन और फ़्रांस से लड़ते-लड़ते थका हुआ हतोत्साह मोरक्को फिर एक बार विप्लव की तैयारी कर रहा है। इस प्रकार इस्लामी देश भविष्य के विद्रोह की तैयारी सावधानी एवं चतुरता से कर रहे हैं। उत्तर, मध्य तथा दक्षिण अफ़्रीका, पैलेस्टाइन, सीरिया, ईराक, अरब, ईरान, अफ़ग़ानिस्तान, भारत, चीन, जापान व समीपस्थ द्वीप-समूह में फैला हुआ मुस्लिम-समाज भविष्य के 'जिहाद' की तैयारी तत्परता एवं दृढ़ता से कर रहा है। इस प्रचंड तैयारी का ध्येय है विश्व-विजय। इस भविष्य के भीषण जिहाद का निश्चल प्रमाण निम्नलिखित घोषणा से मिलता है। यह घोषणा एक कट्टर तथा शिक्षा-विहीन मुसलमान ने नहीं की है, बल्कि अँगरेज़ी के एक विद्वान् व्यक्ति ने की है। इस व्यक्ति का नाम है इस्मत अब्दुल्ला। अब्दुल्ला साहब कहते हैं—

"हम एक जिहाद के लिए सामान एकत्र कर रहे हैं। यह जिहाद, यह पैन-इस्लाम, यह पवित्र युद्ध तैमूर के आक्रमणवाले दिन की याद दिलाता है। पर इस बार का तैमूरलंग बर्छियों और भालों का इस्तेमाल न करके बन्दूक़ों और कारतूसों से काम लेगा।" (सीन थ्रू मोहम्मडन आइज़ से।)

जिहाद की यह तैयारी स्वर्ग तथा ईश्वर की प्राप्ति के लिए नहीं, वरन् विश्व-विजय के लिए, इस्लामी अधिराज्य के लिए, इस्लामीधर्म दुनिया में फैलाने के लिए है। इस ध्येय की सिद्धि के लिए सारा मुस्लिमसमाज संगठित हो रहा है। इस्लाम-जगत् के कोने-कोने में इस्लाम-संगठन का, पैन-इस्लाम का प्रचार ज़ोर पकड़ रहा है। इस संगठन-द्वारा मिस्र से लेकर मैनिला (फ़िलीपाइन्स का एक प्रमुख नगर) तक एक मज़बूत भित्ति तैयार करने के प्रचंड कार्य में मुस्लिम जनता निमग्न है। लंडन जैसे दुनिया के बड़े शहर से लेकर छोटे-से-छोटे गाँव तक इस्लाम के संगठन के बीज बोये गये हैं। अफ़्रीका में तो इस्लाम के संगठन का कार्य परिपूर्ण हो चुका है। ईरान, अफ़ग़ानिस्तान और भारत में भी बहुत-सा कार्य हो चुका है। शेष संगठन-कार्य के पूर्ण होते ही या किसी सुवर्ण-अवसर के प्राप्त होते ही कट्टर मुस्लिम समाज 'जिहाद' का झंडा लेकर मैदान में कूद पड़ेगा और फिर सर्वत्र तैमूर का सत्यानाशी राज्य तथा भूतकालीन हत्या तथा अग्नि के काण्ड फिर आरम्भ हो जायँगे।

इस भीषण काण्ड की तैयारी अफ़्रीका में बहुत समय से हो रही है। अफ़्रीका में विशेषतः उत्तर व मध्य अफ़्रीका में ऐसा एक भी गाँव क़स्बा, शहर तथा छावनी नहीं है जहाँ इस संगठन का सावधान सैनिक न पहुँचा हो। फ़क़ीर, फेरीवाले, व्यापारी और किसान आदि के रूप में इस्लाम का कार्य-तत्पर सिपाही जगह-जगह नज़र आता है। यह इस्लाम का सैनिक किसी स्थान पर कभी अकेला नहीं जाता। वह अपने साथ अपना धर्म, कदापि न बदलनेवाली रेगिस्तानी कट्टर संस्कृति तथा आक्रमक संगठन—ये तीन मशहूर चीज़ें ले जाता है, और जहाँ जाता है वहाँ इनका बीजारोपण भी उत्साह के साथ करता रहता है। प्रत्येक मुस्लिम चाहे ग़रीब हो या अमीर, किसी भी श्रेणी का हो, जन्मतः धर्म-प्रचारक होता है। उसकी इस जन्मजात प्रचारक मनोवृत्ति का

[इस मानचित्र को समझने के लिए मार्च १९४० की सरस्वती में प्रकाशित पंडित वेंकटेश नारायण तिवारी का 'हिन्दूसंघ और मुस्लिमसंघ' शीर्षक लेख देखिए]

वर्णन एक जगन्मान्य लेखक इस प्रकार करता है—"प्रत्येक मुसलमान जन्मतः धर्म-प्रचारक होता है और वह स्वभावतः अपने मुस्लिम पड़ोसियों में अपने धर्म का प्रचार करता रहता है। इस्लाम-धर्म को अंगीकार कर लेनेवाला चाहे पहले हब्शी रहा हो या चीनी, वह चाहे हिन्दुस्तानी रहा हो या योरप का निवासी, पर मुसलमान होते ही उसके साथ पुत्र का-सा व्यवहार किया जाने लगता है। यहाँ तक कि उसके साथ अपने बेटे-बेटियों के सम्बन्ध करने में भी किसी को हिचक नहीं होती।" (टाउन्सेंड की 'एशिया एण्ड योरप' से)

यह इस्लामियों का एक पूर्ण तथा सत्य शब्द-चित्र है। इसका प्रत्येक अक्षर सत्यान्वित है। इस्लामियों का

[इस मानचित्र को समझने के लिए मार्च १९४० की सरस्वती में प्रकाशित पंडित वेंकटेश नारायण तिवारी का 'हिन्दूसंघ और मुस्लिमसंघ' लेख पढ़िए]

हर एक संगठन इस खुले सत्य की पूर्ति करने में समर्थ है। संकरता (वर्णसंकरता) नाम की चीज़ इस्लाम को अज्ञात है। इस्लाम के शब्द-कोष में वह है ही नहीं। अर्थात् वर्णसंकर घातक है, यह बात मुसलमान-समाज नहीं मानता। अतः मुसलमान किसी भी स्त्री के साथ विवाह कर लेता है और इसी कारण इस्लाम का प्रचार अधिक हुआ है। अन्य धर्मीय या पन्थीय, सुसंस्कृत या असंस्कृत, नागरिक या जंगली कोई भी हो, उसे ग्रहण करने का इस्लाम का कौशल अद्वितीय तथा प्रभावशाली है। सर्वसाधारण मुसलमान-समाज में सांस्कृतिक भेदाभेद का मूलतः अभाव है, अतः उसका सामाजिक संगठन द्रुत गति से होता है और उसका मध्ययुगीन कट्टर धर्म उस संगठन को आक्रमणकारी बनाता है। इस्लाम के संख्यावल के प्रतिदिन वृद्धिगत होने का मुख्य कारण यही उसका आक्रमणशीलत्व है। अपना संख्यावल बढ़ाकर उसके द्वारा अर्थ-जगत् का स्वामित्व प्राप्त करने के उद्योग में इस्लामी जगत् बहुत समय से संलग्न है।

आवश्यक संख्या-बल बढ़ाने के लिए इस्लाम ने अनेक मार्गों तथा युक्तियों का अवलम्बन किया है तथा आज भी करता है। अन्य धर्मियों को इस्लाम की दीक्षा देना ही संख्या-बल बढ़ाने का उसका सर्वसुलभ उपाय है। धर्म-प्रसार के बारे में आर्टिन पाशा महोदय ने निम्नलिखित स्वीकृति दी है—"बेहाल-उल-गजल सूबे के वान ज़िले में दासता के बजाय विवाह-सम्बन्ध के द्वारा यह प्रचार अधिक सफलता के साथ हो रहा है। सूडान के इलाक़े में मुस्लिम प्रचार फ़ौजों के रूप में किया जाता है, काली बटेलियन में जो मूर्तिपूजक हब्शी अपना नाम लिखाता है उसका पहले खतना किया जाता है और फिर उसे इस्लाम की दीक्षा दी जाती है। (मार गोलिथ कृत 'मोहम्मदनिज़्म' से)

इस प्रकार तथा अनेक प्रकार से अफ़्रीका में व अन्यत्र इस्लाम का प्रसार हो रहा है। इन सब आक्रमक उद्योगों को स्फूर्ति मिलती है 'हज' से। हज शक्ति तथा स्फूर्ति का केन्द्र है। हज अर्थात् मक्का की यात्रा की अत्यधिक लालसा प्रत्येक मुसलमान के हृदय में सदैव जाग्रत रहती है। जगत् के कोने-कोने से नैष्ठिक तथा कट्टर मुसलमान प्रतिवर्ष हज़ारों की संख्या में मक्का जाते हैं। अकेले जावा-द्वीप से आज-कल पचास हज़ार यात्री मक्का जाते हैं। सन् १९२० में यह संख्या केवल पाँच हज़ार थी। सन् १९२५ में यह संख्या पचीस हज़ार के ऊपर जा पहुँची और सन् १९३९ में यात्री-संख्या चालीस हज़ार हो गई थी। आज-कल पचास हज़ार के ऊपर जा पहुँची है। प्रतिवर्ष शुक्लेन्दुवत् वृद्धिगत होनेवाली केवल जावा-निवासियों की यात्री-संख्या से पता चल जाता है कि कितना प्रचंड समाज प्रतिवर्ष इस्लाम के जन्म-स्थान में एकत्र होता होगा।

'हज' एक प्रकार की पैन-इस्लामिक कांग्रेस है। वह उसका सत्य-स्वरूप है। यह कांग्रेस मुस्लिम समाज को धर्म-कार्य की स्फूर्ति देती है, स्फूर्ति के साथ-साथ इसके द्वारा इस्लाम-संगठन का महत्त्व प्रत्येक नैष्ठिक व कट्टर मुस्लिम के हृदय पर प्रभावित करने की चेष्टा भी की जाती है। इस चेष्टा-द्वारा इस्लाम के आक्रमक का ताज़ा खून इस्लाम-जगत् की नस-नस में भरा जाता है। 'हज' में

[इस मानचित्र को समझने के लिए मार्च १९४० की सरस्वती में प्रकाशित पंडित वेंकटेश नारायण तिवारी का 'हिन्दूसंघ और मुस्लिमसंघ' लेख पढ़िए]

जहाँ पैन-इस्लामिक कांग्रेस में इस्लाम-संगठन-कार्य-प्रणाली की चर्चा होती है; कार्य-पद्धति का परीक्षण किया जाता है। संगठन-कार्य-कर्ताओं का एक विशेष सम्मेलन मक्का में होता है। इस सम्मेलन में सम्मवनीय विरोध तथा कार्य में आनेवाली कठिनाइयों का परीक्षण किया जाता है तथा विरोध व कठिनाइयों को दूर करने के लिए सर्वोत्थ-प्रयत्न किये जाते हैं; नये कार्य व नये कार्य-क्षेत्र की रूपरेखा कार्य-कर्ताओं के इस सम्मेलन-द्वारा निश्चित की जाती है। पैन-इस्लाम के अन्तस्थ-हेतु इस्लामी अधिराज्य की सुन्दर चर्चा की जाती है और उसकी स्पष्ट एवं सम्पूर्ण कल्पना मक्का की पवित्र भूमि पर एकत्र हुए निष्ठावान् तथा कट्टर वादियों को, इस्लाम के एकनिष्ठ सेवकों को दी जाती है। अधिराज्य प्रलोभन से काफ़िरों को क़त्ल कर ऐहिक तथा पारलौकिक मोक्षप्राप्त्यर्थ प्रत्येक महम्मदीय अपने नियुक्त कार्य पर चौगुने उत्साह से डट जाता है और कार्यसिद्धि के लिए अविश्रान्त परिश्रम करता है। इस्लाम का जाग्रत् विराट् पुरुष बद्धपरिकर होकर आगामी धर्म-युद्ध के लिए, जिहाद के लिए, खड़ा हुआ है।

अफ़्रीका तथा एशिया में इस्लाम-प्रसार का कार्य करनेवाली सबसे पुरानी संस्था 'कदारिया' है। अल्जीरिया में महत्त्वपूर्ण कार्य करनेवाली संस्था का नाम 'शेलिया' है। अल्जीरिया में इस संस्था की शाखायें सर्वत्र स्थापित हो चुकी हैं। इस्लाम-प्रचार तथा इस्लामी अधि-राज्य की पार्श्वभूमि बनानेवाली तीसरी संस्था का नाम 'बाकादिया' है। मोरक्को, सेनेगल, टिम्बक्टू, सेनिगाल आदि देशों में इस संस्था का जाल फैला हुआ है। सेनिगाल-सेनेगल के दो हज़ार मील लम्बे समुद्री किनारे तथा उसके समीप के प्रदेश में ऐसा कोई भी गाँव तथा शहर नहीं होगा, जिसमें मौलवी तथा मस्जिद का अभाव हो।

'रहमानिया,' 'कुल्ला,' 'मदानिया' तथा 'तिजानिया' नाम की संस्थाओं के द्वारा मध्य, दक्षिण व पूर्व अफ़्रीका में इस्लाम-प्रसार तथा इस्लाम-संगठन का कार्य हो रहा है। इन चारों संस्थाओं में रहमानिया का कार्य विशेष रूप से उल्लेखनीय है। अल्जीरिया तथा उसके समीपस्थ प्रदेश में इस संस्था के ७७ आश्रम—इस्लाम-प्रचारक तैयार करने की पाठशालायें—हैं। इन पाठशालाओं के द्वारा उपयुक्त शिक्षा देकर प्रचारक तैयार किये जाते हैं तथा चीन जैसे सुदूर देशों तक में भेजे जाते हैं। इन प्रचारकों के परिश्रम के कारण पैन-इस्लाम का प्रचार व संगठन चीन, जापान व पूर्वस्थ द्वीप-समूह में प्रभावशाली रूप से हो रहा है। चीन में पैन-इस्लाम का बीज प्रथमतः रहमानिया के प्रचारकों, कैरो के नव-युवकों तथा रूस से भागकर चीन में गये हुए मुसल-मानों के द्वारा बोया गया। आजकल केवल पेकिंग शहर में ४०–५० मस्जिदें हैं, जिनमें अरबी-भाषा, क़ुरान, इस्लामी संस्कृति तथा जिहाद के महत्त्व आदि की शिक्षा दी जाती है। शिक्षा-प्रदान-कार्य रहमानिया के अल्जीरियन प्रचारक तथा कैरो के स्नातक करते हैं। इनका कार्य सावधानी से चल रहा है। इन लोगों ने चीन के सन् १९२८ के अकाल में दस हज़ार बालक ख़रीदे और उन्हें इस्लाम की दीक्षा दी।
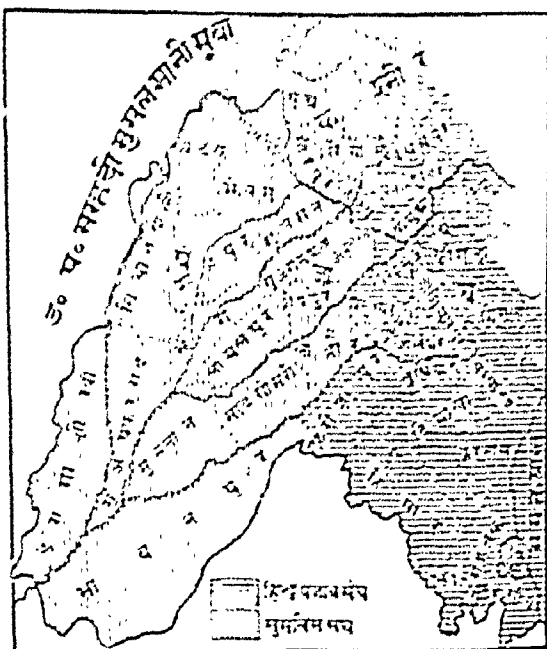
जापान में पैन-इस्लाम के प्रचार व संगठन के लिए जापानी मुसलमानों ने एक करोड़ येन का चन्दा जमा किया है। जापान की आज की इस्लाम-हितैषी

परराष्ट्र-नीति इस प्रचार का एक परिणाम है। जापान की अनुकूलता प्राप्त करने के लिए इस्लाम-जगत् ने बहुत यत्न किये। मांचुको का राज्य-स्थापन करने में अधिक-से-अधिक सहायता जापान को पैन-इस्लाम प्रचारकों-द्वारा मिली है। आजकल भी चीन में पैन-इस्लाम् का प्रचार करनेवाले जापान को सहायता दे रहे हैं। अतः जापान मुस्लिम-हितैषी बन गया है। आज-कल जापान में इस्लाम संस्कृति, धर्म, साहित्य इत्यादि का अध्ययन किया जा रहा है। मुस्लिम-जन-समूह से सम्पर्क बढ़ाने का प्रयत्न जापान ने जारी किया है। व्यापार तथा अन्य सम्बन्धों के द्वारा पूर्वी-द्वीप-पुञ्ज के साढ़े पाँच करोड़ मुसलमानों के समाज का जापान से सम्पर्क बढ़ता जा रहा है। ईरान, अरब आदि इस्लामी देशों को जापान हर प्रकार की सहायता देता है और मुस्लिम देश भी जापान के सहकार्य में हाथ उठाते हैं तथा जापान की सहायता भी करते हैं। जापान को हर प्रकार की सहायता देने में मुस्लिम जगत् का प्रधान हेतु यह है कि इस्लाम के शत्रुओं के विरुद्ध अवसर पर जापान से सहायता मिले। इन आशाओं का चित्र निम्नलिखित शब्दों में दिखाई देता है। मुस्लिम जगत् की ओर से जापान से यह प्रार्थना की गई है—

"अगर जापान बहुत बड़ी शक्ति बन जाना चाहता है और यह चाहता है कि एशिया तथा और महाद्वीपों पर राज्य करे तो उसे पवित्र इस्लाम-धर्म को स्वीकार कर लेना चाहिए। ('रेन्यूडे मोन्डे के 'मुसलमान' से) और आजकल जापान इस्लाम-धर्म व संस्कृति की ओर आत्मीयता से देख रहा है। यह सब विशेष भविष्य का ही सूचक है। चीन में जिस प्रकार इस्लाम के संगठन का कार्य जारी है, उसी प्रकार फ़िलिपाइन-द्वीपों में भी जारी है। साढ़े तीन लाख मुसलमान फ़िलिप्न मयंकांकित हरे झंडे के नीचे संगठित हो गये हैं। मलेनेशिया में से प्रतिवर्ष हज़ारों को इस्लाम की दीक्षा दी जाती है। इस द्वीप-समूह की कुल आबादी छः करोड़ के ऊपर पहुँच जायगी। एक तो इस्लाम की प्रबल आक्रमणशक्ति, दूसरे मलेनेशिया में खुद अपने धर्म का मूलतः अभाव है, अतएव, इस्लाम के प्रसार की वहाँ पूरी सम्भावना है।

विदेशों में प्रचार के इस प्रचण्ड कार्य का अधिकांश श्रेय 'रहमानिया' को दिया जाता है। इस संस्था के बारे में सेल साहब ने लिखा है—"यह अफ़्रीकन जाति की संस्थाओं में सबसे अधिक लड़ाकू और कर्त्तव्यशील संस्था है।" परन्तु प्रसार, सामर्थ्य, संगठन, कौशल इत्यादि सब बातों में अग्रसर संस्था है "सेनूसी"। इस शक्ति-शाली संस्था की शाखायें और उप-शाखायें सर्वत्र स्थापित हो चुकी हैं। इस्लाम के प्रसार तथा संगठन का कार्य उसकी शाखाओं-उपशाखाओं-द्वारा कुशलता से चलाया जाता है। इस शक्तिशाली प्रबल संस्था की संस्थापना मुहम्मद सेनूसी नामक एक व्यक्ति ने की थी। वे एक उच्चकुल के अरब थे। प्रारम्भ में कदारिया संस्था के एक सदस्य-मात्र थे और तन-मन-धन से इस्लाम के प्रचार का कार्य किया करते थे। प्रचार-कार्य के लिए वे एक बार मक्का भेजे गये। वहाँ उनको नया प्रकाश प्राप्त हुआ। वहाँ से लौटकर उन्होंने नूतन संस्था स्थापित की। वही 'सेनूसी' के नाम से प्रसिद्ध हुई। आज सेनूसी का संचालन उनका पौत्र कर रहा है। सेनूसी की शाखायें 'झविया' के नाम से प्रसिद्ध हैं। 'झविया' का मुख्य कार्य है पैन-इस्लाम का प्रचार। झविया का कारोबार योग्यता से चलाने के लिए दो अधिकारी नियुक्त किये जाते हैं—एक मुक़द्दम तथा दूसरा क़ाज़ी। झविया के सदस्यों तथा स्थानिक मुस्लिम जनता पर इन दोनों का अधिकार रहता है। इनकी आज्ञा राजाज्ञा की तरह मानी जाती है। जिहाद की पूर्व तैयारी की शिक्षा खुल्लम-खुल्ला झविया-द्वारा दी जाती है। अफ़्रीका में होनेवाले प्रत्येक षड्यन्त्र तथा विद्रोह के पीछे सेनूसी का शक्तिशाली हाथ सदैव होता है। यह बात योरपीय राज्य-कर्त्ताओं से छिपी नहीं है। इन सब बातों से वे पूर्ण परिचित हैं। अतः उनका सारा काम-काज दक्षता एवं चतुरता से चलाया जाता है। उसके महत्त्वपूर्ण सदस्य सामान्यतः पचासी लाख के ऊपर होंगे। तीन साल के पहले यह संख्या साठ लाख थी। इस संस्था का प्रधान केन्द्र चाड झील के समीप 'अस इस्टेट' नामक एक दुर्गम स्थान है। इस दुर्गम स्थान में बैठकर शेखमहादी सेनूसी अपना संगठन-कार्य संचालित करता रहता है। झविया-स्थापित प्रदेश पर अप्रत्यक्ष रीति से शेखमहादी का शासन चलता है, मानों वह उस प्रदेश का अनभिषिक्त राजा है। उसकी आज्ञा राजाज्ञा के सदृश मानी जाती है। उसके आज्ञापत्र दूतों के द्वारा सर्वत्र पहुँचाये जाते हैं। दुनिया की हर प्रकार की खबरें मुक़द्दमों, वकीलों, फ़क़ीरों तथा खास जासूसों के द्वारा शेखमहादी के पास नित्य पहुँचाई जाती हैं। वृत्तपत्र, मासिक पत्र,

लीफ़लेट, पैंफ़लेट इत्यादि-इत्यादि सब साहित्य अलअज़्हर में दिल्ली भेजा जाता है। और इन सबके अनुसार शेख़-महाशय उचित कार्यवाही करते हैं।

ख़लीफ़ाओं के द्वारा पाठशालायें भी चलाई जाती हैं। इन पाठशालाओं में प्रायः फ़ौजी शिक्षा दी जाती है तथा धर्म के लिए मरना तथा मारना—इस महान् तत्त्व की भी शिक्षा बालकों को दी जाती है। जिहाद के लिए हथियार रहो, ऐसा संदेश समय-समय पर दिया जाता है। जिहाद की पूर्व-तैयारी इन पाठशालाओं में की जाती है। इन सब सर्वाङ्गप्रयत्नों को देखकर टी० आर० थ्रेलकील साहब ने लिखा है—"अफ़्रीका के देशों में इस्लाम की आश्चर्यजनक उन्नति हो रही है। इसके मुक़ाबिले में ईसाईधर्म का प्रचार तो कहानी-मात्र रह गया है। जंगली जातियों में युद्ध-प्रिय इस्लामी धर्म को शीघ्र फैलता जाना उसके महत्त्व का प्रमाण है।" ख़लीफ़ा की कार्य-पद्धति के बीज भारत में भी बोये गये हैं। ब्रह्म देश तथा मलाबार आदि प्रदेशों में ख़लीफ़ा के अनेक दूत छद्म-वेश से प्रचार करते रहे हैं तथा अब भी करते हैं। यह प्रचार तथा संगठन का कार्य आज-कल अधिक तत्परता व सावधानी से हो रहा है। इस पैन-इस्लाम के प्रचार-कार्य को भारतीय मुस्लिम नेताओं के द्वारा उचित सहायता दी जाती है। भारतीय मुस्लिम नेता भारत का विभाजन करने के लिए सदा से उत्सुक हैं तथा उसके लिए प्रयत्न भी कर रहे हैं। इन प्रयत्नों का केन्द्र काबुल है। "व" नाम से एक नवाब साहब ने अपनी 'इण्डियन मुस्लिम' नामक अँगरेज़ी पुस्तक में लिखा है—"हिन्दुस्तान में पैदा होनेवाले मनसूबों के अण्डे सेये जाने का काम काबुल में होता है।" इस केन्द्र से सन् १९१६ में मुस्लिम विद्रोह का एक यत्न किया गया था। यह षड्यन्त्र 'रेशमी चिट्ठी' के नाम से प्रसिद्ध है। यद्यपि वह विद्रोह विफल हो गया तो भी भारतीय मुस्लिम-संगठन का कार्य बन्द नहीं हुआ। ख़लीफ़ा के प्रचारक भारत में बुलाये गये और उनके द्वारा भारत की तथा हिन्दू-समाज की राजकीय व सामाजिक स्थिति की जाँच कर इस्लाम-संगठन की नींव डाली गई। सर मोहम्मद इक़बाल साहब ने पाकिस्तान की रूप-रेखा प्रकट की। सर इक़बाल ने सन् १९३२ में मैंचेस्टर गार्जियन के संवाददाता से कहा कि "राजनैतिक मामलों में पंजाब को मध्य-एशिया का एक भाग समझना चाहिए, हिन्दुस्तान का नहीं।" पाकिस्तान बनाने की योजना मुस्लिम समाज के सामने रक्खी गई है। इस योजना की पूर्ति के लिए भिन्न-भिन्न स्थानों में संस्थायें स्थापित हो चुकी हैं। पंजाब तथा सरहद-प्रान्त में 'मुस्लिम ब्रादरहुड' नामक संस्था पाकिस्तान की पूर्व-तैयारी कर रही है। दक्षिण-भारत के निज़ाम-राज्य में 'मुस्लिम कल्चर सोसाइटी' पाकिस्तान का प्रचार-कार्य तथा इस्लाम के संगठन का कार्य बड़ल्ले से कर रही है। मलाबार में 'माऊनातुल इस्लाम असोसियेशन' (वह ख़लीफ़ा की शाखा है) पैन-इस्लाम का कार्य कर रही है। कुछ समय पूर्व यह मुस्लिम संस्था राष्ट्रीय कही जाती थी, परन्तु अब इसने अपना वह छद्मवेश हटा दिया है और यह संस्था इस्लाम-प्रसार का काम सावधानी से कर रही है। सन् १९३२ में इस संस्था के द्वारा १,२०० हिन्दू इस्लामी सेना में शामिल किये गये, और सन् १९३८ तक इस संस्था के द्वारा कुल १३,२२५ हिन्दुओं को इस्लाम की दीक्षा दी गई।

बंगाल व ब्रह्मदेश के लिए ख़ास प्रचारक नियुक्त हो चुके हैं। ख़ाकसार-संगठन भारत में जारी ही है। भारत के मुस्लिम राजाओं, ताल्लुक़दारों तथा अन्य धनवान् व्यक्तियों के द्वारा धर्मप्रचार के लिए द्रव्य की सहायता दी ही जाती है। मक्का, मदीना तथा अन्य स्थानों में भारतीय धन से मुस्लिम मंदिर बनाये ही जाते हैं। तथा अन्य प्रकार की सहायता भी दी जाती है। हिन्दू-संगठन, शुद्धि-संगठन के विरुद्ध उनका प्रचार जारी है। हसन निज़ामी की, 'दाइये इस्लाम' नामक पुस्तक इस प्रचार का एक उदाहरण है। ख़िलाफ़त पद प्राप्त करने के लिए भी भारत के मुस्लिम राजाओं की ओर से प्रयत्न हो रहा है।

योरपीय महायुद्ध का पर्व अब आ उपस्थित हुआ है। जिस स्वर्ण-अवसर की प्रतीक्षा मुस्लिम जगत् कर रहा था, कदाचित् वह आ गया है। हिन्दुस्तान की मुस्लिम सेना परदेशस्थ मुसल्मानों के साथ होनेवाली लड़ाई के काम में न लानी चाहिए, ऐसी सूचना क़ायदे आज़म जनाब जिना महोदय दे चुके हैं तथा वज़ीरिस्तानवाली पठानों को हिन्दुस्तान की फ़ौज में भर्ती करना चाहिए, ऐसी भी सूचना राष्ट्रीय मुस्लिम दल के सदस्य जनाब अब्दुल क़यूम दे चुके हैं। इन सब बातों से भविष्य का स्वरूप सुस्पष्ट हो जाता है। ऐसी दशा में अन्त में क्या होगा, यह कहने के लिए क्या किसी भविष्यवादी की आवश्यकता है?

कलाकार

लेखक, श्रीयुत विजय वर्मा

अरुण ने समझा था कि उसके नाम के समान उसका काम ही संसार में अरुण-काल का लानेवाला होगा, किन्तु जिस दिन उसकी भेंट मधुवाला से हुई उसी दिन उसे इसमें सन्देह होने लगा। उसने यह सोचा था कि उसकी जीवन-संगिनी वही होगी जिसने उसके समान आधुनिक विज्ञान की सभी प्रमुख शाखाओं का यथेष्ट ज्ञान प्राप्त कर लिया हो तथा जिसकी मुख्य कलाओं में भी प्रचुर प्रवीणता हो, इसी लिए तीस-इकतीस वर्ष की अवस्था हो जाने पर भी वह अब तक ज्ञान-क्षेत्र की ओर ही बढ़ता चला जा रहा था, किन्तु मधुवाला ने उससे पहले ही दिन स्पष्ट शब्दों में कह दिया कि उसे न तो विज्ञान से विशेष प्रेम है, न कला से। फिर भी आश्चर्य की बात यह है कि जब मधुवाला की माता ने उससे 'मधु' के बारे में पूछा तब उसने कहा कि 'आपको मुझसे कुछ भी पूछने की जरूरत नहीं है' और उसके साथ ही ऐसी मधुमयी हँसी उसके होठों पर दिखलाई दी, जिसका अर्थ यही हो सकता था कि मधुवाला को कौन न चाहेगा।

घर आने पर अपने मित्र नवीन को वहाँ बैठे देखकर वह बहुत प्रसन्न हुआ और बोला—हलो! नवीन, मैं रास्ते भर यही इच्छा करता आया था कि तुमसे जल्द से जल्द भेंट हो।

नवीन ने ज़ोर से हँस कर कहा—प्रसन्नता की मधु-मिठास बाँटने से वैसे ही अधिक बढ़ जाती है जैसे ज्ञान-गरिमा।

अरुण नवीन के पास एक कुर्सी पर बैठ गया और नवीन का दाहना हाथ अपने दाहने हाथ में लेकर बोला—मेरे जीवन का स्वप्न भंग हो गया है। मैंने सोचा था, मैं ऐसा कलाकार हूँगा जैसा अब तक कोई नहीं हो सका। लोग विज्ञान और कला को एक-दूसरे का विरोधी मान बैठे हैं। मैं अपनी कला-कृतियों से यह साबित कर देता कि ये दोनों एक-दूसरे के पूरक हैं। मैं कला में प्राणि-शास्त्र, रसायन-शास्त्र, वनस्पति-शास्त्र आदि के नये से नये अनुसन्धानों का उपयोग अपनी रचनाओं में ऐसी सुन्दरता से करता कि सभी मुग्ध रह जाते, किन्तु जिसको मैंने अपनी जीवन-संगिनी बनाने का निश्चय कर लिया है वह मुझे एक नये ही क्षेत्र की ओर ले जायगी।

नवीन गम्भीरता-पूर्वक ये बातें सुन रहा था। अब वह अपनी हँसी न रोक सका। हँसते हुए कहने लगा—तुम्हारी इस बात में कुछ भी नवीनता नहीं है। यह तो होता ही आया है।

अरुण उठकर खड़ा हो गया। बोला—तुम कुछ नहीं समझे। मैं आज तक कला और विज्ञान को अपना संगी बनाये हुए था। आज मैंने देख लिया कि भविष्य में मुझे इनसे बढ़कर एक ऐसी वस्तु का सामना करना पड़ेगा जिससे मैं डरता हूँ और जिसका अब तक मैंने कभी ठीक तरह से सामना नहीं किया।

नवीन ने उत्सुकता से पूछा—वह वस्तु क्या है—स्त्री?

अरुण ने कहा—नहीं। उसका नाम है जीवन।

नवीन रुष्ट-सा होकर बोला—तो क्या अब तक तुमने कभी कहीं जीवन के वेग का अनुभव ही न किया था? कलाकार और वैज्ञानिक—

बात काटकर अरुण कह उठा—वे जीवन क्या जानें? मधुवाला ने जो व्रत ले रक्खा है वही जीवन का मूल है।

"कैसा है वह व्रत?"

"यह मैं अभी पूरी तरह समझ नहीं सका।"

× × ×

(२)

दूसरे दिन नवीन मधुवाला के यहाँ दिखाई दिया। वह ज़ोर-शोर के साथ यह प्रतिपादित करना चाहता था कि अरुण पूरा सनकी है। किन्तु मधुवाला के पिता ने अन्त में कह दिया—सभी प्राणी कुछ न कुछ सनकी होते हैं। जो लोग उच्चतर बातों की ओर जाना चाहते हैं उन्हें मैं अच्छे सनकी समझता हूँ और जो रुपये-पैसे या विलासिता को ही सब कुछ समझकर निम्नतर वृत्तियों की ओर जाते हैं उन्हें मैं गये-बीते सनकी समझता हूँ। अरुण ऐसे व्यक्ति से सम्बन्ध जोड़ना मैं अपने लिए सौभाग्यप्रद समझता हूँ।

नवीन ने सिर हिलाकर कहा—मेरा भी तो यही मतलब है। और इसके बाद थोड़ी ही देर में वह उठ कर चल

बड़ा हुआ। उसने यह जान लिया था कि मधुबाला का व्रत क्या है।

उसी सप्ताह नवीन ने एक कहानी स्थानीय दैनिक पत्र में प्रकाशित करवाई, जिसका शीर्षक था "कलाकार का पतन"।

न जाने कैसे इस अंक की तीन प्रतियाँ अरुण के पास आ पहुँचीं और दो प्रतियाँ मधुबाला के यहाँ भी पहुँच गईं।

अरुण ने उस कहानी को पढ़कर उस पत्र की तीनों प्रतियों को अपने एक बक्स में बन्द कर दिया, किन्तु मधुबाला ने कहानी पढ़ने के बाद पत्र की दोनों प्रतियाँ चूल्हे में डाल दीं।

उसी दिन मधुबाला के पिता को एक पत्र मिला जिसमें लिखा था—

महोदय,

मैं आपका सच्चा शुभचिन्तक हूँ, इसलिए मैं आपसे यह कहना अपना कर्तव्य समझता हूँ कि अरुण की आर्थिक स्थिति आप जैसी समझ रहे हैं वास्तव में वह वैसी नहीं है। लोगों का यह विचार ठीक नहीं है कि इस समय के सर्वश्रेष्ठ वैज्ञानिकों और कलाकारों में से एक होने के कारण अरुण ने काफ़ी धन कमा लिया है। कदाचित् आप नहीं जानते कि वह ज्ञान का ऐसा प्रयोग एक प्रकार का व्यवसाय समझता है। इसके सिवा हिन्दी के कलाकारों और अँगरेज़ी आदि दूसरी भाषाओं के कलाकारों में बड़ा अन्तर है। हिन्दी में अभी तक यह वर्ग ठीक तरह से खड़ा भी नहीं हो सका है और न हो सकता है। आप अपनी हैसियत के योग्य किसी दूसरे युवक को आसानी से खोज सकते हैं। अरुण के मित्रों में ही ऐसे प्रतिष्ठित युवक आपको मिल सकते हैं। अदूरदर्शिता और भावावेश के कारण ऐसा सम्बन्ध जोड़ लेना जिसमें आगे चलकर अपमान और कष्ट हो, अच्छा नहीं कहा जा सकता। विशेष क्या लिखूँ? आप तो स्वयं ही दूरदर्शी और बुद्धिमान् पिता हैं।

आपका—
एक शुभचिन्तक

इस पत्र को पढ़कर मधुबाला के पिता चिन्ता में पड़ गये। किन्तु उसी रात्रि को उन्होंने उस कहानी के एक पत्र में प्रकाशित होने और मधुबाला के द्वारा उन अंकों के जलाये जाने के बारे में अपनी स्त्री से सुना तब उन्हें जान पड़ा कि उनका मन चिन्ता से सर्वथा मुक्त हो गया है।

× ×

(३)

संसारप्रसिद्ध रूसी उपन्यास-लेखक डास्टाविस्की ने अपना 'जुआड़ी' उपन्यास, रुपयों की ज़रूरत होने के कारण, केवल सत्ताईस दिन में लिख डाला था। अरुण ने भी अपना नया उपन्यास 'क्रान्तिकाल' सिर्फ़ बीस दिनों में समाप्त कर दिया। रुपयों की आवश्यकता के ही कारण उसने ऐसा किया था या उससे भी बढ़कर प्रेरक कोई भाव था, यह कहना कठिन है, किन्तु 'क्रान्तिकाल' के प्रकाशित होने के दूसरे ही महीने एक पत्रिका में उसकी बहुत ही कड़ी आलोचना प्रकाशित हुई। इसमें यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया गया था कि इस उपन्यास के लेखक को न तो भाषा का ज्ञान है, न भाव का। साहित्य की स्थायी सम्पत्ति, इस लेखक के अनुसार वे ही रचनायें हैं जिनमें वर्तमान युग की बातों को लेकर नहीं, वरन केवल उन बातों को लेकर चित्र खींचा जाय जो सभी कालों के लिए एक-सी होती हैं जैसा कि हमारे बिहारी, मतिराम आदि कवियों ने किया है और इस समय के अनेक कवि दूसरे दूसरे ढंगों से कर रहे हैं। नीतिशास्त्र और प्राणिशास्त्र आदि की बातों का उपयोग उपन्यास में करना इस समालोचक को वैसा ही हास्यप्रद मालूम हुआ, जैसा नायिका-भेद के ग्रन्थों में प्रकृतवाद।

अरुण ने आलोचना पढ़ ली। वह पूरे आठ पृष्ठों में थी। उसने उसका प्रतिवाद भी लिख डाला, किन्तु न जाने क्या सोचकर उस आलोचना और अपनी प्रत्यालोचना को उसी बक्स में बन्द करके धर दिया, जिसमें उसने 'कलाकार का पतन' शीर्षक लेख रक्खा था।

'क्रान्तिकाल' बिका और खूब बिका, किन्तु उसकी अधिक बिक्री से लेखक के लाभ का कोई सम्बन्ध न था। उसको प्रकाशक ने कृपा करके एक रुपया प्रति-पृष्ठ के हिसाब से एक मुश्त दो सौ इकतालीस रुपये आठ आने दे दिये थे और कह दिया था कि उसका विवाह निकट होने के कारण ऐसा किया गया है, नहीं तो नियमानुसार आधी रकम उसको अभी मिलनी चाहिए थी और आधी प्रकाशन के साल भर बाद।

× × ×

(४)

"जो लोग यह समझते हैं कि साहित्य-सेवी होने से अच्छा तो यह है कि आलू या गोभी की खेती की जाय, जैसा कि प्रसिद्ध फ़्रांसीसी लेखक अनातोले फ़्रांस ने सलाह दी थी—वे साहित्य-सेवा के क्षेत्र से अलग ही

रहें तो श्रेष्ठ हो, किन्तु जिनके हृदय में दलित, पीड़ित, बुभुक्षित या पराधीन और अपमानित लोगों के दुःखों और कष्टों की आग लग चुकी है उनके लिए यह असम्भव है कि वे और किसी क्षेत्र में जाने का स्वप्न देखें।" इस प्रकार एक प्रत्यालोचना का प्रारम्भ हुआ था और वह प्रत्यालोचना स्वयं मधुबाला ने 'सत्य' के नाम से उसी पत्रिका में लिखी थी जिसमें अरुण की पुस्तक 'क्रान्तिकाल' की आलोचना निकली थी। आगे चलकर उसने लिखा था—व्याकरणाचार्य लोग जिनकी कृतियों में तरह तरह की व्याकरण की भूलें निकालते हैं और साहित्याचार्य भावों और कल्पनाओं की, उन्हीं में से कुछ लेखक ऐसे निकलते हैं जो समाज में और देश में ऐसा नवजीवन लाते हैं जिसकी सदियों से राह देखी जाती है पर जिसे कोई व्याकरणाचार्य या साहित्याचार्य किसी तरह भी नहीं ला पाता। अरुण भी ऐसे ही लेखक जान पड़ते हैं—उनकी रचना में ऐसी ही नई ज़िन्दगी के बीज स्पष्ट दिखलाई देते हैं...

नवीन और अरुण दोनों ने यह सब पढ़ा। अन्त में एक दिन नवीन अपने को रोक न सका। उसने अरुण के पास आकर कहा—चलो, तुम्हें एक तमाशा दिखाऊँ। एक अनाथालय के कुछ लोग भिक्षा माँगने आये हैं, और उनकी नेत्री है तुम्हारी भावी स्त्री मधुबाला। निःसन्देह तुम यह दृश्य देखकर बहुत प्रसन्न होगे। तुमने सोचा होगा कि तुम्हारे ससुर बड़े धनवान् हैं। उन्हीं के धन से अनाथालय के बच्चों की शिक्षा-दीक्षा आदि का भी प्रबन्ध होगा। पर मैंने तो जब सुना कि उन्हें अपनी पुत्री मधुबाला को वहाँ शिक्षिका बनाने में संकोच नहीं हुआ, यही नहीं, बल्कि उसी अनाथालय की सेवा को मधुबाला ने यह कह कर अपना जीवन-व्रत बना लिया है कि मेरे पचास छोटे छोटे भाई हैं और तीस छोटी छोटी बहनें हैं तभी मैंने समझ लिया था कि अन्य ऐसे धूर्तों की भाँति ये महाशय भी बड़े-बड़े करिश्मे दिखलावेंगे। तभी तुम्हारे भावी जीवन के लिए मुझे बड़ा दुःख हुआ था, जो अब भी ज्यों-का-त्यों है।

वह और जाने क्या क्या कहता, पर अरुण उसका हाथ पकड़कर उठ खड़ा हुआ और बोला—चलो, जल्दी चलो। यह कहकर एक तरह उसे घसीटता हुआ वह वहाँ पहुँच गया जहाँ अनेक अनाथ बच्चे एक 'जीवन-गीत' गा रहे थे। उस गीत के स्वर में ऐसा जादू था कि वे चुपचाप खड़े रह गये। गीत के समाप्त होने पर लोगों ने कुछ देना चाहा, पर उनमें से एक लड़के ने कहा—हमें आपसे यही भिक्षा माँगनी है कि आप उस संगीत की बातों पर ध्यान दें जिसे अभी हमने गाया है। इस देश में करोड़ों अनाथ हैं—असल में तो पूरा देश ही अनाथ हो गया है। हमें ऐसी भिक्षा देकर जैसी हम चाहते हैं आप सभी का दुःख दूर कर सकेंगे। और वे सब आगे चल खड़े हुए। अरुण ने तब देखा कि मधुबाला के नेत्रों में आँसू भरे हुए हैं और वह अपने शरीर की सुध-बुध भूले, आगे बढ़ती जा रही है।

अरुण ने नवीन का हाथ झकझोर कर कहा—अरे! यही तो वास्तविक नवजीवन है। उसी को तो मुझे सम्पूर्ण हृदय से ग्रहण करना है।

नवीन हाथ छुड़ाकर चला गया।

उसी सप्ताह अरुण ने मधुबाला के पिता के पास जाकर विवाह की तिथि निश्चित कर लेने के लिए कहा और दूसरे सप्ताह ही उन दोनों का विवाह हो गया।

यह कहना कठिन है कि अरुण ने मधुबाला से 'सत्य' नाम के लेखक के बारे में कभी कुछ पूछा या नहीं।
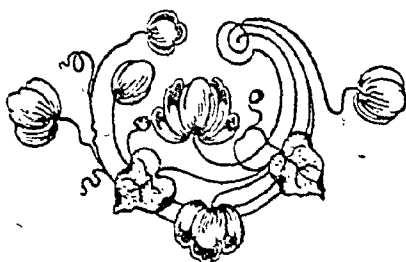
पाँच गीत

लेखक, श्रीयुत गोपालशरणसिंह

(१)

क्यों मैं भला करूँ अभिमान?
नभ के आभूषण तारागण,
करुणामय के हैं करुणा-कण,
करते हैं भूतल को शीतल
करके नित्य नयन-जल-दान। क्यों मैं भला करूँ अभिमान?
जो पथिकों को छाया देकर,
श्रान्ति-क्लान्ति हरते हैं सत्वर,
जो फल-फूल सदा देते हैं
उन तरुवर के कौन समान? क्यों मैं भला करूँ अभिमान?
सौरभ जग को सुरभित करता,
पवन उसे है प्रमुदित करता,
मिटते हैं जलधर जल देकर,
मैं क्या करता हूँ बलिदान? क्यों मैं भला करूँ अभिमान?
यदि मैं कुत्सित क्रूर नहीं हूँ,
तो भी उससे दूर नहीं हूँ,
मैं भी एक विश्व का दुर्बल
प्राणी हूँ मुझको है ज्ञान। क्यों मैं भला करूँ अभिमान?

(२)

यह खारा आँखों का पानी।
पुष्पों के उर का आभूषण,
शरद-शर्वरी का शोभा-कण,
प्रात-भूमि-लुंठित तारागण,
युग-युग की है एक निशानी, यह खारा आँखों का पानी।
मञ्जुल-मुक्ता-मणि-सा उज्ज्वल,
तरु-पल्लव से ढल-ढल प्रतिपल,
भरता है वसुधा का अञ्चल।
है जीवन की करुण-कहानी, यह खारा आँखों का पानी।
ढुलक-ढुलक नयनों से अविरल,
करता है कठोर को कोमल,
सन्तापित प्राणों को शीतल,
प्रेम-पयोधि, दया का दानी, यह खारा आँखों का पानी।
जग की दुख-पीड़ा का आगर,
लहराता है उर का सागर।
भरता है जीवन का गागर,
मन की मर्म व्यथा का ज्ञानी, यह खारा आँखों का पानी।

(३)

मेरे जीवन की मधुर साध!
सिंचित विलोचनों के जल से,
सुरभित उर-शतदल-परिमल से,
जीवित केवल आशा-बल से,
अपराध बनी है निरपराध,
मेरे जीवन की मधुर साध।
मन के विश्वासों से पालित,
उर के उच्छ्वासों से लालित,
शुभ अभिलाषों से संचालित,
है प्रेम-सिन्धु लहरी अगाध,
मेरे जीवन की मधुर साध।
कुछ लीन हुई हृदयस्थल में,
कुछ डूब गई दृग के जल में,
कुछ फैल गई जगतीतल में,
रह गई शेष है एक आध,
मेरे जीवन की मधुर साध।

(४)

यह कोमल लघु फूल।
कितनी बार खिला, मुरझाया?
मधुपों को मकरन्द चखाया?
किन्तु पा सका है जीवन में
केवल उर का शूल,
यह कोमल लघु फूल।
कितनी बार गिरा भूतल पर?
कितनी चोट सही मृदु दल पर?
किन्तु विटप पर फिर हँसता है
सभी दुखों को भूल,
यह कोमल लघु फूल।
रस-समूह संचित कर उर में,
छिपा विपिन के अन्तःपुर में,
देता है सौरभ समीर को,
ले बदले में धूल,
यह कोमल लघु फूल।

(५)

क्यों इतना उन्मन है तू मन?
विश्व सुखी है, विश्व दुखी है,
यह जग-जीवन उभय-मुखी है,
कितना त्याग-विराग-भावमय
है जग में अभावमय जीवन?
क्यों इतना उन्मन है तू मन?
मत डर जग की विपदाओं से,
जीवन की चिर-चिन्ताओं से,
मत अपने को समझ अकिञ्चन,
पाकर भी मानवता का धन।
क्यों इतना उन्मन है तू मन?
सुख हँसता है, दुख रोता है,
जो है धनी वही खोता है,
यह तो खेल चलेगा हर दम,
मत तू कभी भूल अपनापन।
क्यों इतना उन्मन है तू मन?
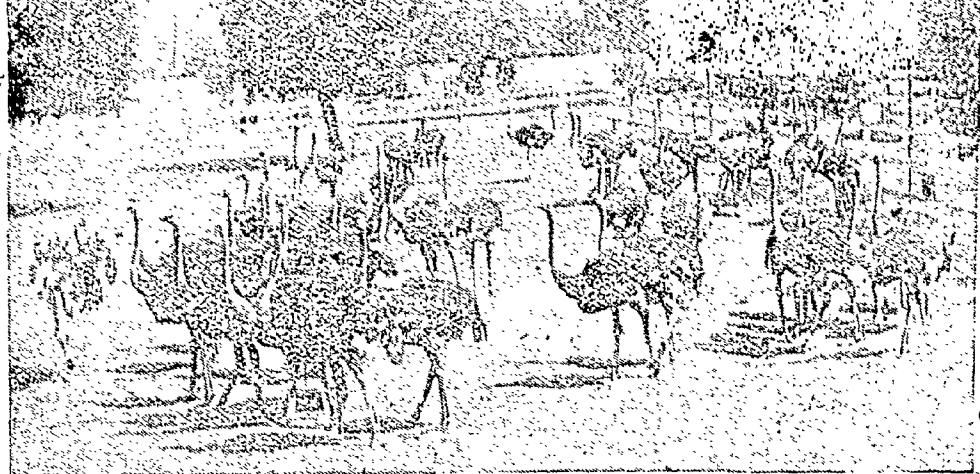
लेखक, श्रीयुत सेठ गोविन्ददास एम० एल० ए०

(१०)

दूसरे दिन संध्या को यूनियन-सरकार की राजधानी प्रीटोरिया में मुझे यूनियन सरकार के एक मन्त्री मिस्टर हाफ़मेयर से मिलने का निमंत्रण था। 'ट्रांसवाल इंडियन कांग्रेस' के मन्त्री श्री नाना तथा अन्य कुछ सज्जनों के साथ मैं प्रीटोरिया गया। मिस्टर हाफ़मेयर का दफ़्तर स्टैंडर्ड बैंक की इमारत में था। मैं इस बिल्डिंग में पहुँच, ज्यों ही लिफ़्ट में घुसने लगा, त्यों ही एक गोरे डच व्वाय ने मुझे लिफ़्ट के अन्दर घुसने से रोक दिया। मेरे इस अपमान से मुझे एकदम ऐसा हर्ष हुआ, मानो मुझे कोई बड़ी भारी निधि मिल गई हो। मन बार बार कहने लगा, 'अपने देशवासियों के रोज़मर्रा के अपमानों में कम से कम एक बार तो मुझे हिस्सा लेने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। मेरे इस अपमान से मेरे साथियों में बड़ी खलबली मच गई। श्री नाना तत्काल मिस्टर हाफ़मेयर के पास पहुँचे। उन्हें ज्यों ही यह हाल मालूम हुआ, त्यों ही उन्होंने अपने सेक्रेटरी को मुझे लिफ़्ट-द्वारा लाने के लिए भेजा। पर लिफ़्ट-व्वाय तो बड़ा दृढ़प्रतिज्ञ था। उसने मिस्टर हाफ़मेयर के सेक्रेटरी की आज्ञा न मानी, कह दिया किसी हिन्दुस्तानी को लिफ़्ट में ले जाना उसकी आत्मा (कांशन्स) के विरुद्ध है। लिफ़्ट व्वाय की यह दृढ़ता मेरी दृष्टि से अत्यन्त प्रशंसनीय थी। कितने भारतीयों में इस प्रकार की दृढ़ता देखने को मिलती है? आख़िर मिस्टर हाफ़मेयर के सेक्रेटरी को लिफ़्ट-व्वाय का काम करना पड़ा। मिस्टर हाफ़मेयर ने मेरा हार्दिक स्वागत किया और क़रीब ४५ मिनट तक मुझसे बातें कीं। दूसरे दिन ट्रान्सवाल के पत्रों ने प्रीटोरिया की इस घटना को बड़े बड़े शीर्षकों में छापा। आख़िर स्टैंडर्ड बैंक के मैनेजर ने इस सम्बन्ध में लिखित माफ़ी माँग ली।

मिस्टर हाफ़मेयर की मुलाक़ात के बाद हम लोगों ने यूनियन-सरकार भवन देखा, जो नई दिल्ली के भारतीय सेक्रेटेरिएट से मिलता-जुलता था, परन्तु उससे बहुत छोटा था। उसके बाद हम लोग प्रीटोरिया में घूम-घाम कर सूर्यास्त तक जोहान्सबर्ग लौट आये। आज रात को जोहान्सबर्ग के उसी पटीदार-हाल में फिर एक सार्वजनिक सभा हुई जिसमें अनेक वक्ताओं ने ट्रान्सवाल में भारतीयों के विरुद्ध जो क़ानून हैं उनका ब्योरेवार वर्णन मुझे सुनाया। लगातार भाषण करते रहने के कारण मेरा गला एकदम ख़राब हो गया था, फिर मिलने-वालों की इतनी संख्या थी कि प्रातःकाल से अर्द्धरात्रि तक बात करते करते समय बीतता था। विवश होकर मुझे एक दिन मौन रखने का निश्चय करना पड़ा। जिस दिन मेरा मौन था उसी दिन सर रज़ाअली मेरी रिटर्न विज़िट को मेरे निवासस्थान पर पहुँचे। उनसे
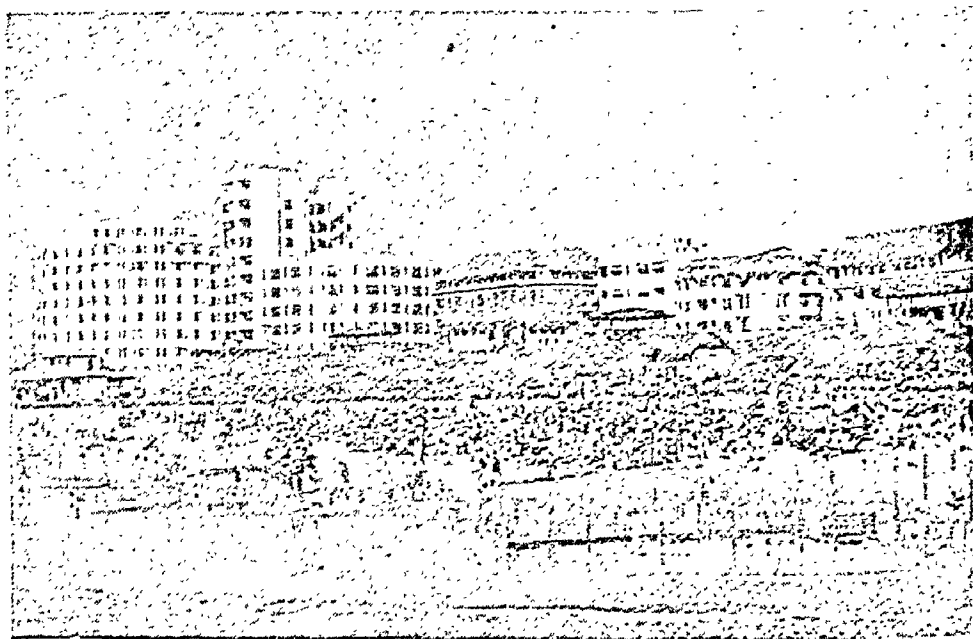
[डरबन-नगर के केन्द्र का एक दृश्य]

भी मुझे लिखकर ही बातें करनी पड़ीं। २४ घंटे के उस मौन ने गले को जितना लाभ पहुँचाया, उतना शायद २४ दिन की दवा न पहुँचाती। आज मुझे मौन का महत्त्व मालूम हुआ।

अब मुझे जोहान्सबर्ग के चारों ओर के छोटे-छोटे नगरों में घुमाकर वहाँ भारतीयों के रहने के स्थान दिखाये गये।

ट्रान्सवाल में पूरा सेग्रेगेशन था। वहाँ के योरपीय मुहल्लों में न भारतीय रह सकते थे और न रोजगार कर सकते थे। भारतीय ट्रान्सवाल में जायदाद भी नहीं खरीद सकते थे। ट्रान्सवाल में यही प्रश्न भारतीयों का सबसे बड़ा प्रश्न था। जिन स्थानों में भारतीय रहते थे वे बड़े गन्दे थे।

जहाँ जहाँ हम लोग गये, हमारा बड़ा आतिथ्य-सत्कार हुआ। यह तो असम्भव था कि हम बिना कुछ खाये-पिये कहीं से आ सकें। जोहान्सबर्ग में भी कोई दिन ऐसा न गया जब किसी न किसी ने मुझे लन्च, टी-पार्टी या डिनर न दिया हो। अफ़्रीका के भारतीय आतिथ्य-सत्कार में बहुत बढ़े-चढ़े मिले।

एक हफ़्ते रहने पर भी हमें इतना अवकाश न मिला कि हम जोहान्सबर्ग नगर को अच्छी तरह देखते और संसार में सबसे बड़ी वहाँ की सुवर्ण की खानों का अवलोकन करते। फिर भी इधर-उधर घूमने के कारण नगर कैसा है, इसका अनुमान हो गया। जोहान्सबर्ग में पूर्वी अफ़्रीका के नगरों के सदृश मुझे कोई खास बात न दिखी। वह एक बहुत बड़ा शहर है, बड़ा धनवान् नगर है। जब वह संसार भर में सबसे बड़ा सोने का केन्द्र है तब धनवान् क्यों न हो। फिर पड़ोस के किंबरली नगर में हीरे की भी खानें हैं। बड़े बड़े मकान, भारी भारी दूकानें, बड़ी बड़ी सड़कें, उन पर चलनेवाले सहस्रों मोटरें, बसें, ट्राम तथा जनसंख्या उसकी महत्ता सिद्ध करती हैं। जनता में हब्शी सबसे अधिक हैं फिर हैं योरपीय, फिर हैं कलर्ड और सबसे कम हैं हिन्दुस्तानी।

२२ दिसम्बर को हम लोग डरबन के लिए रवाना होनेवाले थे। अब मैंने भारतीयों के रिज़र्व्ड क्लास में एक साधारण भारतीय की भाँति यात्रा करने का निश्चय कर लिया था। स्टेशन पर मेरी विदाई के लिए एक भीड़ जमा थी। सभी वर्गों और समुदायों के लोग आये थे। सर रज़ाअली के सेक्रेटरी मिस्टर रिडली भी मौजूद थे। मेरे साथ श्री प्रागजीभाई और श्री रामदास गांधी भी जा रहे थे। ठीक समय ट्रेन रवाना हो गई। डाक्टर दादू के नेत्रों में जल भरा हुआ था और उनसे विदा

[डरबन में इंडियन-मारकेट का एक दृश्य]

होते होते मेरी आँखें भी भर आईं। इस युवक ने कैसे सौजन्य और कैसे प्रेम का परिचय दिया था! जिस डिब्बे से हम लोगों ने यात्रा की उसमें शारीरिक सुख चाहे योरपीय डिब्बे के फ़र्स्ट क्लास-सदृश न हो, पर हृदय अत्यन्त सन्तुष्ट था। मैं अपने देशवासियों के संग उन्हीं के सदृश यात्रा कर रहा था। हृदय एकदम हलका था। किसी बोझ के हट जाने से जिस क़िस्म की राहत का अनुभव होता है, उसी प्रकार की एक अजीब क़िस्म की राहत का अनुभव आज हो रहा था।

नेटाल में दस दिन

रात को ट्रेन में कोई ख़ास बात न हुई। ट्रेन में बैठने के समय से बहुत रात गये तक प्रागजी देसाई, रामदास जी, लक्ष्मीचन्द और मैं गपशप करते रहे।

जब प्रातःकाल हम लोग उठे उस समय ट्रेन पीटर मैरिट्सबर्ग स्टेशन के समीप थी, जहाँ से डरबन पहुँचने में क़रीब दो घंटे लगते थे। मैरिट्सबर्ग स्टेशन पर गाड़ी के ठहरते ही महात्मा गांधी के द्वितीय पुत्र इंडियन ओपीनियन के सम्पादक श्री मणिलाल गांधी मुझसे मिलने आ पहुँचे। फिनिक्स जहाँ महात्मा गांधी का आश्रम था और जहाँ मणिलाल जी रहते थे, यहाँ से क़रीब ५० मील था। मणिलाल जी ने फिनिक्स से क़रीब ३ बजे रात को मोटर से रवाना होने का कष्ट इसी लिए उठाया था कि वे ट्रेन के समय यहाँ पहुँच जायँ और मुझसे मिलकर यहीं से मेरे साथ डरबन जायँ। मणिलाल जी से मैं सन् १९३० में महात्मा गांधी के ऐतिहासिक डाँडी-कूच के अवसर पर अहमदाबाद में होनेवाली अखिल भारतीय कांग्रेस-कमिटी की बैठक में मिला था। उसे काफ़ी समय बीत गया था। इतने समय में उनमें और मुझमें, दोनों में ही बहुत परिवर्तन हो गया था, अतः हम एक-दूसरे को न पहचान सके। श्री रामदास गांधी ने हम लोगों का परिचय कराया। अतीत की विस्मृति अनेक बार ऐसे प्रसंग उपस्थित कर देती है।

'इंडियन ओपीनियन' ने मेरे स्वागत में अग्रलेख लिखने की कृपा की थी। उसी लेख में नेटाल के कार्यकर्ताओं के आपसी मतभेद की चर्चा भी थी। डरबन पहुँचने तक मणिलाल जी से इस मतभेद के सम्बन्ध में बहुत-सी बातें होती रहीं और मैंने अपने मन में निश्चय किया कि मैं अपने नेटाल में रहते हुए इस मतभेद को मिटाने का अवश्य यत्न करूँगा।

ठीक ९ बजे ट्रेन डरबन-स्टेशन पर पहुँच गई। 'नेटाल इंडियन कांग्रेस' ने मेरे स्वागत का धूम-धाम से आयोजन किया था। स्टेशन पर सभी वर्गों और सभी समुदायों

की एक भारी भीड़ इकट्ठा थी। इस भीड़ में सबसे पहले जिन्होंने मेरा ध्यान आकर्षित किया वे थे नेटाल के कहे जानेवाले नाहर श्री सोराब जी रुस्तम जी पारसी। विद्यार्थी-अवस्था में मैंने जब दक्षिण-अफ़्रीका के सत्याग्रह का नाम सुना था उसी समय सोराब जी के पिता सेठ रुस्तम जी का भी नाम सुना था। रुस्तम जी की महात्मा गांधी के प्रति श्रद्धा और देश के प्रति भक्ति का वृत्तान्त मैं भली भाँति जानता था। मुझे मालूम था कि उस वीर पुरुष ने केवल अपने शरीर रहते ही देश-सेवा नहीं की है, वरन् अपनी मृत्यु के पूर्व अपनी सम्पत्ति में से केवल दस दस हज़ार पौंड अपने दोनों पुत्रों—जालभाई और सोराब जी को देकर शेष साठ हज़ार पौंड का देश-सेवा के लिए ट्रस्ट कर दिया है। उस वीर पिता के इस वीर पुत्र सोराब जी का नाम भी मैं बहुत समय से जानता था और जानता था कि श्री सोराब जी भी अपने पिता के पद-चिह्नों पर चल कर पिता-द्वारा दिये गये उन दस हज़ार पौंड को भी देश-सेवा में स्वाहा करके फ़क़ीर हो गये हैं। 'दक्षिण-आफ़्रिकन इंडियन कांग्रेस' और 'नेटाल इंडियन कांग्रेस' ने सर रज़ाअली की शादी का विरोध न किया था, इसलिए श्री सोराब जी कांग्रेस की सदस्यता से इस्तीफ़ा देकर घर बैठ गये थे, पर भारत से आये हुए किसी अतिथि का सोराब जी स्वागत न करें, यह कैसे सम्भव था? अतः वे स्टेशन पर सबसे पहले आ गये थे। उन्होंने सबसे पहले मेरे गले में पुष्पहार डाला और उस समय से लेकर जब तक मैं जहाज़ में न बैठ गया वे ही सबसे अधिक मेरे साथ रहे तथा विदा होते समय सबसे अन्त में पुष्प-माला भी उन्हीं ने पहनाई। सोराब जी का परिचय किसी को कराने की आवश्यकता न थी। यद्यपि मैं उनसे इसके पहले कभी न मिला था, पर इसकी परवा करना उनके स्वभाव के विरुद्ध बात थी। सबसे आगे आकर वे इस प्रकार मुझसे मिले जैसे बचपन से मुझे जानते हों और इसके बाद स्टेशन पर उपस्थित अन्य सज्जनों से उन्हीं ने मेरा परिचय कराया।
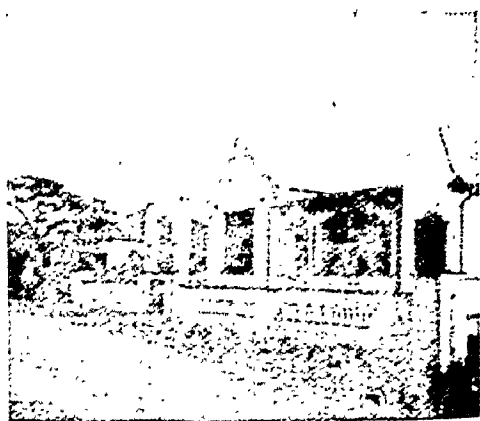
सबसे मिल-भेंटकर हम लोग स्वामी भवानीदयाल जी संन्यासी के डरबन के नज़दीक जैकब्स नामक स्थान पर लाये गये, जहाँ हमारे ठहरने की व्यवस्था की गई थी। कितना सुन्दर था वह स्थान और कितना सुन्दर था वह बँगला! फिर बँगले में रहनेवाले स्वामी जी के परिवार के लोगों का सौजन्य भी अपूर्व था। स्वामी

[भवानी-भवन का एक दृश्य]

जी की पुत्री गायत्री, उनकी पुत्र-वधू प्रकाशवती, उनके दामाद भगतलाल, उनके पुत्र आदि सभी ने हम लोगों का जैसा स्वागत किया और हमारे वहाँ रहते हमारी जैसी मेहमानदारी की वह तो हम कभी न भूलेंगे। स्वामी जी तो मेरे पहुँचने के क्षण से मेरे विदा होने के क्षण तक एक पैर से हम लोगों के आतिथ्य-सत्कार में लगे रहे। दस दिन तक न उन्होंने अन्य कोई काम किया, न पेट भर भोजन किया और न निद्रा ली।

आज ही सन्ध्या को एम० के० गांधी लाइब्रेरी एण्ड रुस्तम जी पारसी हाल में मेरे स्वागत में सार्वजनिक सभा थी। अतः आज की सभा तथा नेटाल के मेरे दस दिनों के कार्य-क्रम के सम्बन्ध में सब बातें उसी समय तय करने का हमने निश्चयकर क़रीब दो घंटे के भीतर सारी बातें तय कर लीं। यद्यपि सारा कार्यक्रम श्री सोराब जी की राय से निश्चित हुआ, तथापि आज की सभा 'नेटाल इंडियन कांग्रेस' की ओर से थी, इसलिए सभा में सोराब जी ने आने से इनकार कर दिया।

हम लोगों ने निश्चय किया कि सार्वजनिक सभा के पहले वहाँ के सभी दलों के सार्वजनिक कार्यकर्त्ताओं से मिल लिया जाय तथा इन दलों में समझौता कराने का प्रयत्न आज से ही आरम्भ कर दिया जाय। भोजन कर प्राग जी, मणिलाल जी, रामदास जी और लक्ष्मीचन्द को साथ ले मैं इन मुलाक़ातों के लिए मोटर में बैठ रवाना हुआ।

क्रमशः

मिट्टी का क्षय

लेखक, प्रोफ़ेसर प्रेमचन्द्र मलहोत्र

मारे देश की कृषि के सामने अनेक जटिल समस्यायें उपस्थित हैं । मुख्य प्रश्न तो ज़मीन को उपजाऊ बनाने का है। कृषि-भूमि सदियों से जोती जा रही है । परन्तु उसकी उपज-शक्ति स्थिर रखने के लिए यह अनिवार्य है कि उसमें खाद डाली जाय । यह सच है कि भारत में गंगा की घाटी बहुत उपजाऊ है, किन्तु उसको निरन्तर उपजाऊ रखने के लिए उसको खाद देनी अत्यावश्यक है । पृथ्वी की उपज उसकी मिट्टी पर निर्भर है। इस लेख में हम उपजाऊ मिट्टी के क्षय के सम्बन्ध में कुछ विचार प्रकट करेंगे।

मिट्टी का क्षय कृषि के लिए एक भयंकर रोग है, जिसका परिहार भली भाँति होना चाहिए । कृषि-सुधार की आधार-शिला तो भूमि ही है । यदि उसी का नाश बढ़ता गया तो शेष सब प्रयत्न व्यर्थ हो जायँगे।

मिट्टी का क्षय तीन प्रकार का होता है। पृथ्वी की ऊपरी उपजाऊ मिट्टी का क्षय, वर्षा के वेग से उपजाऊ भूमि का बह जाना और पवन-क्षय।

पृथ्वी के ऊपरी भाग का क्षय अधिक व्यापक तथा भयंकर है। इससे अज्ञात रूप में हानि होती रहती है और किसान को तब पता चलता है जब क्षय भयानक रूप धारण कर लेता है। सतह का क्षय सब ढालू ज़मीनों पर होता है, जहाँ ज़मीन की मिट्टी पर प्रचंड वायु पड़ती है।

प्रारम्भ में तो मिट्टी के सूक्ष्म कण बह जाते हैं और मोटे मोटे कण रह जाते हैं। यह क्रिया प्रायः अदृश्य रूप में होती रहती है। मिट्टी के सूक्ष्म कण पृथ्वी के लिए अमूल्य हैं, क्योंकि ये ज़मीन को इकट्ठा बाँधे रखते हैं। पृथ्वी की नमी धारण करने तथा पौधों की ख़ुराक ग्रहण करने की शक्ति पृथ्वी की गुंधी हुई बनावट पर निर्भर है। सूक्ष्म कणों का नाश होने पर पृथ्वी की उपजाऊ शक्ति भी क्षीण पड़ जाती है। कभी-कभी तो जब ऊपर की सतह की सब मिट्टी बह जाती है तब नीचे की भूमि की कम उपजाऊ मिट्टी ही रह जाती है। सतह का क्षय अखिल भारत में व्यापक रूप से हो रहा है। केवल नहरों तथा कुँओं से सींची जानेवाली पृथ्वी इस रोग से बची हुई है।

जल-प्रपात-क्षय—सतह के क्षय के बाद की दशा यह होती है कि पृथ्वी में जल-प्रपात के निरन्तर प्रवाह से एक गहरा मार्ग-सा बन जाता है। जब पानी के प्रवाह को रोकने के लिए ज़मीन पर घास, फूस तथा अन्य प्रकार की कोई वनस्पति नहीं होती तब ज़मीन वर्षा का पानी बहुत कम चूसती है और शेष पानी छोटे-छोटे नालों के द्वारा ढलवान की ओर बह जाता है। इस प्रकार एक अनिष्ट-चक्र स्थापित हो जाता है। जैसे पीछे से पानी का प्रवाह बढ़ता जाता है, वैसे पानी की धारा वेगवती होती जाती है और ज़मीन को बीच में से फाड़ देती है।

भूमि के ऊपरी भाग का क्षय अर्थात् सतह का क्षय और जल-प्रपात-क्षय तो पानी के कारण होते हैं, परन्तु तीसरे प्रकार का क्षय प्रचंड वायु के द्वारा होता है । जिन मैदानों पर वृक्ष इत्यादि न हों और घास इत्यादि भी हल चलाने अथवा चरने के कारण उखड़ चुकी हो, वहाँ पवन-क्षय होता है और तेज़ हवा अपने संग भूमि की मिट्टी को उड़ा ले जाती है। ऐसी भूमि पर रेत के छोटे-छोटे टीले जमा हो जाते हैं और झाड़ियाँ उगने लगती हैं। पवन-क्षय आस्ट्रेलिया के चरागाहों में बहुत होता है। भारत में पवन-क्षय का उदाहरण अटक के ज़िले (पंजाब) में कैम्बलपुर के उत्तरी भाग की पृथ्वी है।

उपाय—अब प्रश्न यह है कि भूमि के क्षय का कैसे परिहार हो सकता है। वर्षा के पानी को नदी में सीधा बहने से रोकने के लिए जहाँ ऊपर से वर्षा का पानी आता है वहाँ छोटे छोटे नालों को नियन्त्रण में करना चाहिए। यदि ज़मीन बोई हुई है तो प्रत्येक खेत से पानी के बहने को रोकना आवश्यक है।

अनेक लोगों का यह भ्रमात्मक विचार है कि जंगल के तले की भूमि क्षय का शिकार नहीं होती। एक घना जंगल तो पानी के लिए एक उत्तम स्पंज है, जो बहुत-सा पानी चूस लेता है, परन्तु यदि जंगल में जानवर बहुत चरें और ज़मीन जानवरों के खुरों से रौंदी जाय तो जंगल के तले की ज़मीन में से भी पानी बह निकलता है। इसलिए हमारा प्रयत्न यह होना चाहिए कि जानवरों को खुला चराने की अपेक्षा उन्हें घास कटवा कर दी जाय और पशुओं को उनके बाँधने के स्थान पर ही उनका खाना दिया जाय।

ऐसा करने के लिए हमें पुरानी प्रथा को तो बदलना पड़ेगा और प्रारम्भ में कई अड़चनें सा

जायँगी। परन्तु हमारे देश के गूजर अच्छे पशुओं की अपेक्षा संख्या में उनके अधिक होने को ही अधिक अच्छा समझते हैं। उनको यह समझना चाहिए कि एक हृष्ट-पुष्ट पशु जिसको पेट भर कर चारा मिलता हो, दुर्बल पशु से बीस गुना दूध देगा।

पंजाब के हुशियारपुर-ज़िले में ८०,००० एकड़ घास-वाली ज़मीन की चराई चार साल के लिए बंद कर दी गई थी। यह काम जंगल-विभाग के एक अफ़सर ने किया था और उसने गाँव गाँव में जाकर खुला चराने की प्रथा के बन्द कर देने के लाभ समझाये और लोगों ने ऐसा करने के लिए स्वयं ही प्रार्थना की।

स्थानीय भूमिसंरक्षक क़ानून के अनुसार सरकार को अधिकार है कि किसी भी इलाक़े को चरने के लिए बन्द कर दे। हुशियारपुर के ज़िले में १९०५ के चोस क़ानून के अनुसार कुछ एक इलाक़े चरने के लिए बन्द किये गये थे और अब उन्हीं इलाक़ों से कटी हुई घास से पर्याप्त आय होती है।

गाँववालों के मन में भ्रम होता है कि सरकार ज़मीनों पर चराई की रोक क्यों करती है। जब तक ज़मीन के दो-तिहाई मालिक किसी ज़मीन की चराई के बन्द करने की प्रार्थना न करें तब तक जंगल-विभाग का अफ़सर ऐसा नहीं कर सकता और भिन्न-भिन्न दलों के परस्पर झगड़ों के कारण दो-तिहाई बहुमत का होना कठिन हो जाता है।

गत वर्षों में यह काम सहकारी विभाग ने अपने हाथ में लिया था। उसने रेतीली भूमि को फिर से उपजाऊ बनाने के लिए 'पुनः भूमि-प्राप्ति' सभायें स्थापित कीं। रेतीली भूमि की पुनः प्राप्ति के लिए प्रथम पद ज़मीनों का चरने के लिए बन्द करना है। उदाहरणार्थ मटराला गाँव हुशियारपुर में एक छोटी-सी सभा है, जिसने चो (नदी के रेतीले तल) पर झाड़ियाँ इत्यादि बोई हैं। इससे न केवल भूमि में आगे का क्षय बन्द हो जायगा, किन्तु भूमि को कृषि-कर्म के लिए पुनः प्राप्ति हो जायगी।

भयंकर 'चो' भी नियन्त्रण में रक्खी जा सकती है। उसका उपाय यह है कि उसके दोनों किनारों पर वृक्ष तथा अन्य पौधे उगाये जायँ, जो रेत को बैठा रखने तथा पानी के वेग को थामने में सहायता दें।

क्षय से हानि—भूमि के ऊपर की अमूल्य मिट्टी जिससे पौधे अपना पोषण ग्रहण करते हैं, बह जाती है। इससे फ़सलों की उपज घटती जाती है और इस क्षति की पूर्ति खाद डालने तथा अच्छे बीजों के प्रयोग से भी नहीं हो सकती। चरागाहों की पशु-पालन-शक्ति घटती जाती है, क्योंकि यदि एक अच्छे चरागाह की दो एकड़ भूमि एक गाय का पेट पालन कर सकती है तो क्षयग्रस्त १० एकड़ भूमि भी एक गाय के पालन के लिए पर्याप्त नहीं है।

क्षय से एक हानि यह है कि नदी के तल पर बहुत-सी रेत जमा होने के कारण नदी का तल ऊँचा हो जाता है और इससे नदी में बाढ़ भी अधिक आने लगती है।

एक और दुष्परिणाम यह होता है कि अनावृष्टि की अवधि बढ़ती जाती है। पहाड़ी नाले अपने पानी का ८० प्रतिशत प्रवाह एक घंटे में समाप्त कर देते हैं और पृथ्वी में बहुत कम पानी सोखता है। क्योंकि धरती बहुत कम पानी चूसती है, इससे पानी के नीचे की तह में पानी कम पड़ जाता है। झरनों और कुओं के लिए ज़मीन के नीचे ही पानी जमा होता है, परन्तु यह पानी का ख़ज़ाना ज़मीन के क्षय होने के कारण घटता जाता है। इसका परिणाम यह होता है कि कुएँ और झरने सूखते जाते हैं और नदियाँ जो बारहों महीने बहती रहती थीं, सूखे मौसम में बहुत सिकुड़ जाती हैं।

यह काम व्यक्तिगत रूप में नहीं किया जा सकता और न इस काम के लिए कोई गाँववाला अपनी भूमि का अधिकार देने को तैयार होगा। ठीक उपाय तो यही है कि जितनी भी भूमि इस काम में लाई जाय वह सामान्य भूमि हो और जंगल के किसी शिक्षित संरक्षक के हाथ में उसका प्रबन्ध हो और यह जंगल का संरक्षक सहकारी सभा के अधीन हो।

पंजाब में भूमि-क्षय के थामने तथा परिहार के लिए एक छोटा-सा किन्तु व्यवस्थित विभाग है। जंगल-विभाग के अधीन एक क्षय-विरोध-विभाग काम कर रहा है। अम्बाला, हुशियारपुर, गुरदासपुर, गुजरात, जेहलम, काँगड़ा और रावलपिंडी के गाँवों के जंगलों का प्रबन्ध इस विभाग के अधीन रक्खा गया है। इन सब इलाक़ों में क्षय-विरोधक उपाय किये जा रहे हैं। भिन्न भिन्न स्थानों पर भिन्न भिन्न उपायों की आवश्यकता पड़ती है।

कई जगह तो चरने के नियन्त्रण से काम चल जाता है और जो ज़मीन कृषि के काम में नहीं आती उस पर घास इत्यादि उग जाती है। कई जगह जहाँ गहरे जल-मार्ग बन गये हैं वहाँ नालों के तल पर झाड़ियाँ इत्यादि उगाई जाती हैं जो बन्ध का काम देती हैं।

यदि भूमि के ऊपरी भाग का क्षय है तो उसका उपाय यह है कि जितना पानी किसी खेत में पड़े उसको दूसरे खेत में बहने से रोका जाय। प्रयाग के कृषि-कालेज में क्षय के रोकने के प्रयोग किये जा रहे हैं।

कई इलाक़ों में जंगलों के कटने से भूमि का क्षय शुरू हो गया है। वहाँ जंगल द्वारा लगवाना ही क्षय रोकने का उपाय है। इसके लिए खुला चरना बन्द करना पड़ेगा और नये पौधे तथा वृक्ष उगवाने पड़ेंगे।

जहाँ चारे की न्यूनता हो, वहाँ पत्तोंवाले वृक्ष उगवाने की आवश्यकता है, ताकि उनके पत्ते पशुओं के खाने के काम आजायँ।

इन सब उपायों को प्रयोग में लाने के लिए विशेष ज्ञान की आवश्यकता है। क्षय से हानि अधिक हो रही है। प्रान्तीय सरकार यह सब काम नहीं कर सकती। हाँ, गाँव के निवासियों को थोड़े से पैमाने पर काम करके मार्ग अवश्य दिखा सकती है। इसलिए जहाँ जहाँ भूमि-क्षय का रोग है उसके परिशोध के लिए गाँवों में सहकारी संस्थायें बननी चाहिए, जो गाँवों के हित तथा कृषि की उन्नति के लिए क्षय-विरोधक कार्यक्रम में लगने को सब प्रकार प्रस्तुत हो जायँ।
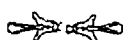
पंछी

लेखक, श्रीयुत शिवदत्त शर्मा

तरु शिखा मत छोड़, पंछी!

जब उषा ने गान गाया,
जागरण ने प्राण पाया,
पवन के कोमल करों से—
प्राण में उत्थान आया,

धन्य थी पाकर तुझे ही,
विटप की यह क्रोड़, पंछी!
तरु-शिखा मत छोड़, पंछी!

तू यहीं का मुक्त प्राणी,
भावना का भुक्त प्राणी,
जा रहा किस देश को तू—
प्रेम का अभियुक्त प्राणी!

जाल में किसके फँसेगा,
प्रेम बन्धन तोड़, पंछी?
तरु-शिखा मत छोड़, पंछी।

यह मुकुल है, यह कली है,
यह बुरा है, यह भली है,
पान कर रस को सभी के,
जगत् दो क्षण की गली है!

भ्रम भ्रमित उस भ्रमर की रे!
अब न कर तू होड़, पंछी!
तरु-शिखा मत छोड़, पंछी!

देख पतझर क्यों विकल है?
प्रेम क्या इतना निबल है?
देख मा, श्यामल धरा का,
अश्रु से अंचल सजल है!

जगत् दो क्षण, दो क्षणों को
नेह नाता जोड़ पंछी!
तरु-शिखा मत छोड़, पंछी!

रिक्ता

अनुवादक, पण्डित ठाकुरदत्त मिश्र

वह बड़े ही धैर्य और तत्परता के साथ घर के सारे काम-काज चलाती रही। किन्तु एकाएक काशी से एक पत्र आया कि सविता के नाना जी की तबीअत खराब है और सम्भव है कि वे जीवित न रहें, इससे वे सविता तथा अरुण को एक बार देखना चाहते हैं। इससे जगत बाबू ने अरुण को, सविता को लेकर काशी जाने का आदेश किया। किन्तु अरुण को इस आदेश के पालन करने में आपत्ति थी। इधर सविता भी यह नहीं चाहती थी कि अनिच्छा होने पर भी वह उसके साथ जाने के लिए बाध्य किया जाय। इससे उसने श्वशुर से कह दिया कि आपकी तबीअत खराब है इसलिए मैं अभी नहीं जाना चाहती। परन्तु जगत बाबू सविता के नाना की इस इच्छा को अपूर्ण नहीं रहने देना चाहते थे, और वे उसे भेजने की ही चिन्ता में थे। इतने में एकाएक कटक में अरुण की माता का देहान्त हो गया, इससे इस ओर ध्यान देने का किसी को अवसर ही नहीं रह गया। श्राद्ध आदि से निवृत्त होने के बाद नियमित रूप से परिवार का काम काज चलने लगा। परन्तु जगत बाबू का स्वास्थ्य उत्तरोत्तर खराब होता जा रहा था। इससे स्वास्थ्य सुधारने के लिए उन्होंने दार्जिलिङ्ग जाने का निश्चय किया।

(१५)

एक छोटा-सा झरना था, जिसमें से कल-कल निनाद करती हुई जल की मन्द मन्द धार गिर रही थी। उस झरने के समीप लाल मिट्टी के ऊपर फूल का एक बगीचा था। उस बगीचे के चारों ओर रंगीन साड़ी के किनारे के रूप में पोस्ते के फूल लगे हुए थे। बगीचे के बीच में एक रंग-बिरंगा बँगला था। देखने में जान पड़ता, मानो वह किसी कुशल चित्रकार के द्वारा अङ्कित किया हुआ कलापूर्ण चित्र है। समीप ही क़तार के क़तार पहाड़ी झाऊ के वृक्ष थे, जिनकी चोटियाँ मन्दिरों की चूड़ाओं के समान शोभायमान हो रही थीं।

झरना के समीप कुछ विलायती फूलों का वन-सा था। उस वन में फैली हुई घनी हरियालीरूपी अन्धकार की प्रगाढ़ता से वृक्षों को प्रकाशित करने के लिए बीच बीच में गहरे लाल और सफ़ेद रंग के फूल खिले हुए थे। विदेशी फूलों में से अधिकांश ही गन्धहीन होते हैं। रंग के भड़कीलेपन के कारण वे लोगों की दृष्टि आकर्षित किया करते हैं। पुलक अपनी पुलक की उमङ्ग में आ आकर फूलों के उस वन में एक सजीव फूल के ही समान उछलता-कूदता था।

जगत बाबू को दार्जिलिंग आये एक सप्ताह हो गया था। साथ में वे अरुण को लाये थे, सविता को लाये थे, आशा को लाये थे और पुलक को लाये थे। सविता को उस समय भी काशी से माता तथा नाना का कोई समाचार नहीं मिला था, इससे मन ही मन वह बहुत चञ्चल हो उठी थी। ऐसे अवसर पर मनुष्य के हृदय में अशुभ की आशङ्का ही विशेष रूप से उदय हुआ करती है। सविता का हृदय भी इस नियम का अपवाद नहीं था।

दार्जिलिंग आने पर पहले तीन-चार दिन तक सविता को कार्य्य की अधिकता के कारण कोई बात सोचने का अवसर ही नहीं मिल सका। परन्तु इस बीच में घर की सारी व्यवस्था करने के बाद जब उसे शान्ति की साँस लेने का अवसर मिला तब माता और नाना की चिन्ता ने उसे आ घेरा। अब वह बार बार यही सोचती कि इतना समय किस प्रकार कट सकेगा।

नई जगह में पहुँचकर मनुष्य प्रायः आनन्द का अनुभव किया करता है। परन्तु सविता में वैसा उत्साह नहीं दिखाई पड़ा। आशा भी जितने उत्साह के साथ यहाँ आई थी, उतना उत्साह यहाँ आने पर उसे नहीं रह गया था। उसी मास में आशा की बहन का विवाह होनेवाला था, जिसके कारण वह बहुत चञ्चल हो उठी थी। बहन के विवाह का समाचार उसे यहाँ आने पर मिला था।

सविता आशा के लिए एक लेस बुन रही थी। आशा बैठी बैठी एकाग्र मन से वही देख रही थी। कुछ क्षण के बाद उसने कहा—कुछ चिट्ठियाँ आई हैं, जाऊँ उनका जवाब लिख आऊँ।

सविता ने कहा—अच्छी बात है, जाओ लिख आओ।

"तो क्या तुम यहीं बैठी बैठी बुनती रहोगी?"

"तो और काम ही क्या है?" यह कह कर सविता हँसी।

"अच्छा, तो यही सही। तुम अपनी तपस्या करो, मैं चलूँ।"

"क्या कहा?"

आशा ने हँस कर कहा—शायद सुन नहीं पाई हो? शायद आजकल तुम्हारा मन अच्छा नहीं है दीदी?

सविता यह बात सुनकर चौंक पड़ी। क्षण भर के बाद ही हँसकर उसने कहा—यह कैसी बात है? मन अच्छा क्यों न रहेगा? कौन-सी ऐसी बात है?

"सचमुच, कितने दिन हो गये तुम्हें पिता के घर से आये! मुझे यदि लगातार इतने दिनों तक रुकना पड़ता तो मैं मर ही जाती। बाप रे!"

"हूँ! यदि मरने का समय होता तो मैं भी मर जाती, बच न पाती। तुम कोई काम करने जा रही थी न, जाओ अपना काम करो। मेरे सम्बन्ध की इन सब व्यर्थ की बातों पर विचार करने की तुम्हें क्या आवश्यकता है, ज़रा बताओ तो सही।

"अच्छी बात है। अब जाती हूँ, तुम्हारे सम्बन्ध की बातों पर विचार न करूँगी। मैं देवता तो हूँ नहीं, इससे ध्यान चला ही जाता है।"

आशा उठ गई। सविता हाथ में जो काम लिये हुए थी उसी में दत्तचित्त होने का उसने प्रयत्न कि इन सब बातों के कारण उसके हृदय में मानो तूफ़ान के बादल उमड़ आते। इसलिए वह उन्हें यथासाध्य दवा रखने का ही प्रयत्न किया करती। परन्तु प्रकृति की सन्तान प्रकृति के ही विरुद्ध कितने समय तक युद्ध कर सकती है?

स्वामी के साथ एक ही गृह में वह निवास किया करती थी। किन्तु इतने दिन बीत गय, किसी दिन एक बार आँख से उन्हें देखने का भी सुयोग उसे नहीं हुआ अथवा यदि वह सुयोग हुआ भी तो उसने स्वयं ही उसकी उपेक्षा कर दी है। जो आशा पूरी नहीं हो सकती उसके लिए निरर्थक प्रयत्न करने का उसका स्वभाव नहीं था।

दूर दूर रहने पर भी सविता को स्वामी के शरीर की हवा तो लगा ही करती थी। उनकी पद-ध्वनि, उनकी हँसी का अट्टहास कानों में पड़ा करता। इन सबके कारण सविता के नारी-हृदय का सुधापात्र क्या एक अनिर्वचनीय गुप्त आनन्द के उज्ज्वल वर्ण से परिपूर्ण नहीं हो उठता था? न्याय की दृष्टि से स्वामी से स्त्री को जो कुछ प्राप्त करने का अधिकार है वह कुछ भी उसे प्राप्त नहीं हो सका। उसे प्राप्त करने की उसने कभी चेष्टा भी नहीं की। स्वामी से कृपा के लिए प्रार्थना करते समय भी उसके मुख पर लालिमा दौड़ जाती, किन्तु तो भी जिस अज्ञात ऐश्वर्य्य से हृदय परिपूर्ण हो उठा करता था वह क्या उसके लिए कुछ था ही नहीं? सविता यह समझ नहीं पाती थी कि मेरी जीवन-रूपी नदी के सूखे हुए कछार में इस जल की तरङ्ग का कलकल निनाद कब से आरम्भ हुआ है? जीवन में जो वेदना पुञ्जीभूत हुई है उसमें भी ममता का जन्म कब से हुआ है।

हाथ का काम हाथ में ही लिये हुए सविता बैठी थी। एकाएक पुलक की आहट पाकर जब उसने मस्तक उठाया तब देखा कि सामने स्वामी खड़े हैं।

पुलक का हाथ पकड़े हुए अरुण वहाँ आया था। हाथ में उसके तुरन्त की आई हुई कई चिट्ठियाँ और कुछ समाचार-पत्र थे।

अस्ताचलगामी सूर्य की ताम्रवर्ण की किरणें सविता के आभामय मुख पर मानो दीपक जलाये हुए थीं। अपने बड़े बड़े रूखे बालों को धोकर उसने पीठ पर लटका दिया

था। कमरे की फ़र्श पर लोट लोट कर वे मानो सब प्रकार के मान-अपमान को प्रसन्नता-पूर्वक सहन कर लेने-वाली भगवती वसुन्धरा को अपने दुःख की कहानी सुना रहे थे। अरुण को देखते ही लज्जितभाव से उसने मस्तक पर का वस्त्र खींच लिया और उठ कर खड़ी हो गई। अरुण के हाथ में जो चिट्ठियाँ थीं उनकी ओर केवल एक बार देखकर उसने फिर अपनी दृष्टि फेर ली, मुँह से उसने कोई बात निकाली नहीं।

अरुण ने कहा—शायद तुम चिट्ठी के लिए बहुत चिन्तित हो उठी थीं। यह लो, तुम्हारी एक चिट्ठी आई है।

सविता के मुर्झाये हुए मुख पर प्रसन्नता की रेखा उदित हो आई। परन्तु स्वामी के हाथ से चिट्ठी लेने के लिए वह बढ़ी नहीं, व्यग्रभाव से ताकती ही रह गई।

अरुण ने कहा—चिट्ठी के लिए इस प्रकार चिन्तित थीं। अब लेती क्यों नहीं हो चिट्ठी?

"यह किसने कहा कि मैं बहुत चिन्तित हो उठी थी?"

"किसी ने भी कहा हो। किन्तु इसमें दोष ही क्या है?"

"दोष? नहीं, नहीं, इस चिन्ता या व्यग्रता का भी हिसाब-किताब रखना मेरे लिए सम्भव न होगा।"

अरुण ने स्वाभाविक भाव से ही ज़रा-सा हँस दिया। उसकी उस दिन की हँसी में अवज्ञा का तीव्र विष नहीं था। पता नहीं, क्या सोचकर हाथ में चिट्ठी लिये हुए वह स्वयं सविता की ओर बढ़ा।

सविता कुछ बोलने ही को थी कि पुलक ने चिट्ठी लेकर एक छलाँग में ही उसके हाथ पर रख दी। अरुण का सुन्दर मुख ज़रा-सा लाल हो उठा।

सविता ने वह चिट्ठी अपनी मुट्ठी में दाब ली। कितने दिनों की अधीरतामय चिन्ता के बाद उसे यह चिट्ठी मिली थी। चिट्ठी पर माता के हाथ का लिखा हुआ सिरोनामा देख कर ही उसने बहुत कुछ सान्त्वना प्राप्त की। परन्तु अरुण के सामने उसने चिट्ठी खोली नहीं।

कमरे में जो जो चीज़ें रक्खी हुई थीं उन्हें उठा-उठाकर अरुण देख रहा था। बिस्तरे पर एक पुस्तक रक्खी हुई थी। उसके बीच के एक पृष्ठ में एक काँटा खोंसा हुआ था, जिससे मालूम किया जा सके कि पुस्तक का कितना अंश पढ़ा जा चुका है। पुस्तक को हाथ में लेकर देखते देखते अरुण ने कहा—इसे क्या तुम पढ़ रही थीं?

सविता ने कहा—नहीं! मैं नहीं पढ़ रही थी। आया पढ़ रही थी।

"तुम तो पुस्तकें खूब पढ़ा करती हो। पढ़ा करती हो न?"

"यों ही एक-आध?"

"तो क्या छुटपन से ही पढ़ती आई हो?"

सविता चिट्ठी पढ़ने के लिए मन ही मन व्याकुल हो उठी थी, तो भी नम्र-स्वर से उसने कहा—नहीं, उस समय तो जो पढ़ने की पुस्तक थी वह पढ़ा करती थी।

"तुम्हारी उस पुस्तक का क्या नाम था? प्राइमरी रीडर?"

सविता का मुख काला पड़ गया। वह मन ही मन सोचने लगी—तो क्या ये कभी-कभी मेरी खिल्लियाँ उड़ाने के ही लिए आ जाया करते हैं?

मस्तक झुकाये हुए सविता चिट्ठी का कोना फाड़ने का प्रयत्न करने लगी। उसने देखा कि चिट्ठी एक नहीं दो हैं। एक तो स्वयं उसकी है और दूसरी अरुण की। अरुण के नाम से कार्ड आया था। उसे टेबिल पर रखकर सविता ने कहा—यह कार्ड मेरा नहीं है।

"तुम्हारा यह नहीं है? तो शायद मैंने भूल से तुम्हें दे दिया है।" यह कहकर अरुण ने कार्ड ले लिया और कहने लगा—यह तो कनक का पत्र है। उसने भी घूमने के लिए यहाँ आने को लिखा है। परसों-नरसों तक वह यहाँ आ पहुँचेगा।

इस बार भी सविता का ध्यान अरुण की बातों की ओर नहीं था। वह लिफ़ाफ़े का किनारा फाड़ रही थी, कुछ बोली नहीं। अरुण ने फिर कहा—शायद तुम कनक को पहचानती नहीं हो।

"पहचानती हूँ। वे कटक के हैं न?"

"हाँ, वह कटक से ही आवेगा। वह—"

उस समय आया उस कमरे में प्रवेश करने जा रही थी। एकाएक बहुत ही लज्जित होकर वह लौट गई।

ऐसे समय में, विशेषतः सविता के कमरे में आया

ने जेठ को किसी दिन भी नहीं देखा था। इसलिए वह निश्चित होकर आ रही थी। अरुण भी आशा को देखते ही बड़ी ही उतावली के साथ कमरे से निकल गया। उतावली के कारण उसकी कनकवाली चिट्ठी सविता के ही कमरे में रह गई।

सविता बाहर की ओर ताकती हुई कुछ सोच रही थी। उसके दोनों ही नेत्र जल रहे थे और उनमें जल आ रहा था। उसके मन पर एक ऊँचे से भीटे के समान अवसादों का जो भार लदा हुआ था उसके कारण वह बहुत ही क्लेश का अनुभव करने लगी।

सविता के मुख और नेत्रों से मानो आग निकल रही थी। अपने आपको धिक्कार देती हुई वह सोचने लगी—मैं भी किस प्रकार के लोभ से आतुर हूँ। परन्तु यह जो निष्ठुर अभिनय किया गया है वह किसके लिए किया गया है? अमृत समझकर मैं कैसे सहन कर लेती हूँ इस प्रकार के आचरण को? इसके बाद ही क्या मैं अपनी दुर्बलता के कारण पराजित होकर क्षणिक मनोविनोद का साधन बन कर रहूँगी? नेत्रों का जल पोंछते पोंछते उसे स्मरण आया कि हाथ में माता जी का पत्र है, जो अभी तक खोला तक नहीं जा सका।

वह पत्र खोल कर सविता ने शीघ्रतापूर्वक पढ़ लिया। माता ने लिखा था कि हम पिता-पुत्री दोनों ही रुग्ण हो गये थे, इससे समय पर पत्र नहीं लिख सके। अब हम दोनों ही निरोग हो गये हैं, किन्तु पिता जी का शरीर इस समय भी बहुत ही निर्बल है, वे चल फिर नहीं सकते।

माता ने सविता को बहुत दिनों से देखा नहीं था। इससे बहुत-सी बातें लिखी थीं। उन्होंने यह भी लिखा था कि यदि हम तुम्हें बुलाना चाहें तो तुम्हारे श्वशुर भेजेंगे या नहीं।

एकाएक पुलक के चिल्ला पड़ने के कारण सविता का चिट्ठी पढ़ना बन्द हो गया। सविता का अञ्चल खींच-कर उसने कहा—बहू, ओ बहू।

पुलक का माथा चूमकर सविता ने कहा—क्यों भैया, क्या हुआ है?

मारे अभिमान के मुँह फुलाये हुए पुलक ने कहा—छोटी मामी मुझे लिखने नहीं देती। तुम चलो, उसे डाँट आओ।

"अच्छी बात है, मैं चलती हूँ। परन्तु तुमने यह क्या किया? हाथ में इतनी स्याही कहाँ लगा ली? तुम तो न जाने कैसे पागल लड़के हो?"

पुलक के दोनों ही छोटे छोटे हाथों में स्याही लगी हुई थी। उन हाथों को आँख और मुँह पर फेर फेर कर उन पर और भी स्याही लगाते हुए उसने कहा—कहाँ? स्याही तो मैंने लगाई नहीं है बहू, पोंछ डाली है।

सविता ने कहा—बहुत अच्छी तरह से पोंछ डाला है। चलो, धुला दें।

आशा आई और हँसते हँसते कहने लगी—शायद नालिश हो रही है। सुनो दीदी, इन्होंने सारे कमरे में स्याही लपेट दी, सारे शरीर में लपेट ली, परन्तु अभी तक इन्हें सन्तोष नहीं हुआ। दावात नहीं टूट पाई है, इसी लिए मेरे ऊपर इतना क्रोध आया है।

पुलक ने मस्तक हिला कर कहा—तुम अच्छे लड़के नहीं हो। तुम पाजी लड़के हो? दुष्ट लड़के हो।

"अच्छा, अच्छा, तुम तो बड़े अच्छे लड़के हो।" यह कहकर आशा ने पुलक का माथा हिला दिया।

अपना कोमल मुख भारी करके पुलक ने तैश के साथ आशा का हाथ ठेल दिया। तब आशा ने हँसकर कहा—देखो दीदी, देखो। बाबू साहब को बड़ा क्रोध हो आया है मेरे ऊपर। अच्छा, अब चलो, पहले तुम्हारा मुँह तो धुला दें!

पुलक ने कहा—नहीं, जाओ, मैं तुमसे मुँह न धुलाऊँगा।

सविता ने पुलक को गोद में ले लिया। उसके हाथों में और मुँह में साबुन लगाकर उसने स्याही के सारे दाग़ साफ़ कर दिये।

आशा ने कहा—क्या समाचार है दीदी? नाना जी की तबीअत अच्छी हो गई न?

सविता ने चिट्ठी आशा के हाथ पर रख दी। उसने कहा—पढ़ कर देख लो।

आशा चिट्ठी पढ़ने लगी। सविता पुलक को खिलाने लगी। पुलक को जैसे ही वह खिला चुकी, वैसे ही श्वशुर को ओषधि आदि देने का समय हो आया। आजकल उन्हें बड़ी ही सावधानी के साथ रखना पड़ता था। उनमें जहाँ बहुत-से गुण थे, वहाँ एक दोष भी था। अपने शरीर की ओर उन्हें ज़रा भी ध्यान नहीं रहा करता था। कभी

कभी वे कह उठते कि तुम लोगों ने तो मुझे एकदम से छः महीने का बच्चा ही बना रक्खा है। बाद को शायद मैं चलने-फिरने भी न पाऊँगा।

जगत बाबू ने अपने आपको बिलकुल इन्हीं लोगों की इच्छा पर छोड़ दिया था। प्रायः किसी भी बात का वे विरोध नहीं किया करते थे। वे सदा से ही एक गम्भीर स्वभाव के आदमी थे, किसी भी कारण वे अधिक बातें नहीं किया करते थे। सविता भी उन्हीं के समान मित-भाषिणी थी। वह शान्तिपूर्वक सब प्रकार के दुःख-क्लेश सहन करती और परिवार के सभी लोगों की सेवा में लगी रहती, इस कारण जगत बाबू का स्नेह उसके प्रति दिन दिन बढ़ता ही गया, अन्त में उस स्नेह का कुछ अंश श्रद्धा के रूप में भी परिवर्तित हो गया।

सविता के अगणित गुणों की प्रशंसा सुनकर ही जगत बाबू ने उसके साथ अपने पुत्र का विवाह किया था। उन्होंने इस बात पर ध्यान नहीं दिया कि मेरे समान विभवशाली व्यक्ति के लिए एक निर्धन परिवा• में पुत्र का विवाह करना अप्रतिष्ठाजनक है। किसी धनी परिवार में विवाह करने पर दहेज के रूप में वे जो अतुलित धन-राशि प्राप्त कर सकते थे उसकी ओर भी उन्होंने ध्यान नहीं दिया था। परन्तु सविता में यदि वास्तव में उन गुणों का अभाव होता, सविता यदि तुच्छ स्वभाव की होती, तो जगत बाबू ने अपनी कुल-मर्यादा के प्रतिकूल जो यह विवाह किया था उसके कारण उनके क्षोभ की सीमा न रहती। इस विवाह की ज़िम्मेदारी पूर्ण रूप से उन्हीं पर तो थी।

जगत बाबू सविता के अगाध शील-गुण के कारण अब उसे गर्व की एक वस्तु समझने लगे थे। पुलक के आरोग्य और सुन्दर शरीर की ओर जब उनकी दृष्टि जाती तब उनके मन में यह बात आती कि कमला का यही एक मात्र चिह्न है। परन्तु मेरे घर में सात राजाओं की सम्मिलित निधि की तुलना में भी श्रेष्ठ सविता के का अञ्चल वर्तमान रह कर उसे ढँक न रखता क्या यह सम्भव था कि पुलक इस तरह पुलकता फिरता। माता की गोद से बिछुड़े हुए इस बालक को सविता ने ही जीवित रक्खा है।

अरुण झरना के समीप खड़ा था। उसके खूब पास ही झाऊ का जो पेड़ था उसकी डाली तोड़ते हुए वह कनक से बातें कर रहा था। कनक पत्थर के एक बड़े से टुकड़े पर बैठा था।

आकाश निर्मेघ था। ग्रीष्म-ऋतु के कारण सूखकर थोड़ी मात्रा में बचे हुए झरने के जल की धारा बाल-सूर्य की स्वच्छ किरणों के पड़ने से गलाई हुई चाँदी के समान मालूम पड़ रही थी। कनक ने कहा—चार मास का भैया समझकर आज मैं इतना अदब न मानूँगा।

अरुण ने हँस कर कहा—क्यों? ओ हो! तुम्हारे बच्चे की अवस्था शायद चार मास की हो गई है।

"मतलब भी आपने खूब निकाला है!"

"ऐसा नहीं है तो तुम आगे और किस बात में हुए हो? विवाह में? पहले पहल जब तुम्हारा विवाह हुआ था तब मैंने सोचा था, वाह, वाह रे—"

"ऐसा क्यों? ऐसा मैं किस तरह हो गया, यह कैसे बतलाऊँ? परन्तु तुम बड़ी चालाकी कर रहे हो अरुण! बात छेड़ने का तुम अवसर ही नहीं दे रहे हो मुझे?

"तो छेड़ते क्यों नहीं? किस तरह छेड़ोगे? क्या मैं तुम्हें रोक रहा हूँ?"

"अच्छा भैया, भाभी जी तो इतनी सीधी-सादी, इतनी गुणवती हैं, फिर भी वे तुम्हें पसन्द क्यों नहीं आतीं, ज़रा बताओ तो। परन्तु बताना सच सच।"

"कौन कहता है कि वे मुझे पसन्द नहीं हैं या यही बात कितने किससे कही है कि वे टेढ़ी हैं, उनमें गुण नहीं हैं; वे सदोष हैं?"

अरुण के हास्य में करुणा की पुट थी, उसका कण्ठ-स्वर भारी था।

कनक ने कहा—किसी ने कहा नहीं। मुझसे कहेगा ही कौन? मैं स्वयं ही तुम्हें आरम्भ से जानता हूँ। परन्तु विवाह हो जाने के बाद भी कर्तव्य को ताख पर रक्खे बैठे रहोगे, यह हम लोगों ने नहीं सोचा था। ऐसी अवस्था तुमने क्यों कर रक्खी है भैया? तुम तो अच्छे लड़के हो?

ज़रा देर तक चुपचाप रहने के बाद अरुण ने कहा—कैसी परेशानी है! शायद आज तुम सचमुच मुझे परेशान करने पर तुले हो। लो, और भी जो जो कहना हो, जल्दी से कह डालो।

"ज़रूर ! पहले से ही तो कह रक्खा है कि छका-ऊँगा । सुनो तुम । अच्छा, उस ज्योति को ही ले लो, जिसके साथ तुलना करते करते–"

दाँतों से होंठ दवाकर रोषमय स्वर में अरुण ने कहा—फिर ? 'रैस्केल', बन्दर कहीं के ! वही वात तुमने कार्ड में भी लिख दी थी ! रहने दे, रहने दे !

"कभी नहीं, कभी नहीं, मैं कभी नहीं रुकूँगा । पहले तुम मुझे यह वतला दो कि कौन-सी ऐसी वात है जिसके कारण तुम आज इतने वर्ष से इस परिवार को इस तरह अशान्तिमय किये हुए हो ।"

"परिवार को शान्तिहीन कर रक्खा है मैंने ? और मैं स्वयं खूब शान्ति-पूर्वक हूँ ?"

"तुम जैसे भी हो, स्वेच्छा से हो, वैसा ही होने का तुम्हें शौक़ है । कर्त्तव्य-ज्ञान खोकर तुम इस तरह का आचरण क्यों करते हो, जो मनुष्य का-सा न हो ? तुम मनुष्य की तरह क्यों नहीं रहते हो, ज़रा मुझे इसका कारण तो वतलाओ । मुझे तुम्हारा रत्ती रत्ती हाल मालूम है । तुम्हारे इस प्रकार के आचरण के कारण—बुआ जी भी कितना दुःख लिये हुए चली गई हैं । तुम फिर भी मुझसे छिपाना चाहते हो ।"

इस वार भी स्वाभाविक रूप से ही हँसकर अरुण ने कहा– समाप्त हुई तुम्हारी वातें ? अच्छा, किसी प्रकार का प्रतिवाद किये विना ही मैं स्वीकार किये ले रहा हूँ तुम्हारी सारी वातें । परन्तु मैं जिस तरह कोई उत्तर नहीं दे रहा हूँ, उसी तरह तुम भी चुप हो जाओ कनक ! तुम्हारी ये वातें मुझे ज़रा भी अच्छी नहीं मालूम पड़ रही हैं । यह क्या तुम नहीं समझ पा रहे हो ?

"मैं खूब समझ पा रहा हूँ । परन्तु इन वातों को मैंने यह समझकर ही छेड़ा है कि ये तुम्हें प्रिय न होंगी । आज इस अप्रिय प्रसङ्ग को उठाकर मैं इसका अन्त कर देना चाहता हूँ । यह प्रसङ्ग मैं न भी उठाऊँ तो तुम्हारा चित्त प्रसन्न तो किसी प्रकार होगा नहीं । तुम तो मेरी किसी वात का उत्तर ही नहीं दे रहे हो, वोलो । मेरी वातों का उत्तर दो ।"

अरुण अन्यमनस्क भाव से झाऊ की पत्तियाँ तोड़ता रहा । जो डाली वह पकड़े हुए था उसमें एक भी पत्ती नहीं रह पाई थी । डाली में जितनी भी पत्तियाँ थीं उन सभी को तोड़कर अरुण उसे साफ़ किये दे रहा था । वह कुछ वोला नहीं । उत्तर के लिए ज़रा देर तक प्रतीक्षा करने के वाद कनक ने कहा—किन्तु यदि तुलना ही करना चाहते हो तो सुनो । कहता हूँ कि ज्योति भी यहीं है, अधिक दूरी पर भी नहीं है । यह जो ऊपरवाली सड़क के पास ही सफ़ेद मकान दिखाई पड़ रहा है उसी में वे लोग रहते हैं । सुनते हो ?

अरुण गरज उठा । उसने कहा—कौन तुम्हारी ज्योति की चिन्ता में पड़ा है कनक ? मैं तो उसके संवन्ध की कोई वात जानना भी नहीं चाहता ! इसके सिवा उसका हाल जानकर मैं लाभ ही क्या उठाऊँगा ? तुम्हीं लोग तो कहा करते हो कि मैं केवल स्वार्थ की ही वात किया करता हूँ । तो फिर ?

"नहीं, तुमने मुझे पराजित कर दिया भाई । आखिर तुम वड़े भाई ही ठहरे । मेरी समझ में नहीं आ सका कि मामला क्या है । वतलाओगे नहीं भाई ?"

पत्तियों से शून्य डाली को तोड़कर फेंकते हुए अरुण ने कहा—कहो, क्या वतलाऊँ ? वतलाने की कोई वात तो है नहीं । तुम्हारी वह चिट्ठी मैंने क्या की है, जानते हो ?

"नहीं । क्या की आपने वह चिट्ठी ?"

"जिसका पक्ष लेकर तुम भिड़े हो उसी के कमरे में मैं फेंककर चला आया हूँ ।"

"जान-वूझकर वह चिट्ठी वहाँ छोड़ आये हो या भूलकर ? तो शायद अव संधि हो गई है ?"

"किसी प्रकार का संग्राम ही नहीं है तो फिर संधि का क्या प्रश्न है ? चिट्ठी मैं उस कमरे में भूल आया हूँ । अभी मुझे उसकी याद आई है । खैर, जो हुआ वह तो हो गया । क्या कहते हो तुम ?"

मस्तक हिलाते हुए कनक ने कहा—मुझे और कुछ नहीं कहना है भाई !

जिस वँगले में वे लोग ठहरे थे, यह झरना उसके पिछवाड़े था । वह स्थान एक प्रकार से प्रायः पूर्ण रूप से निर्जन ही था । पहाड़ के ऊपर कई प्रकार के फूल खिलकर उस स्थान को और भी मनोरम किये हुए थे ।

पास ही एक रास्ता था अवश्य, किन्तु उस रास्ते

से रिक्शा या टाँगे नहीं चलती थी। रास्ता बहुत ऊबड़-खाबड़, बहुत टेढ़ा-मेढ़ा था। दो-चार शौक़ीन आदमी पैदल ही आ आकर उस पर चहलक़दमी किया करते थे।

सविता जिस कमरे में रहा करती थी उसके समीप ही थी यह जगह। सविता भी बीच बीच में कमरे का इस ओर का द्वार खोलकर यहीं आकर बैठा करती। पुलक आस-पास घूम घूमकर खेला करता। इसी लिए पुलक को यह विश्वास हो गया था कि इस स्थान पर पूर्ण अधिकार हमीं लोगों का है। उछलते उछलते जाकर उसने कहा--देखो बहू, हम लोगों के बैठने के जो दो पत्थर हैं उन्हें बड़े मामा ने दखल कर रक्खा है। ज़रा देखो तो?

सविता काम में लगी थी। मुंह उठाये बिना ही उसने कहा—कैसे?

"तुम उठो, चलकर देखो न। वे लोग जाकर वहीं बैठे हैं!"

"अच्छी बात तो है पुलक! अब हम लोग वहाँ न बैठा करेंगे। उन लोगों को बैठने दो।"

क्रोध में आकर पुलक ने कहा—नहीं। तब तो मैं जाकर नाना जी से कह दूंगा।

"क्या कह देगा रे तू जाकर नाना जी से?" यह कहता हुआ कनक आया और पुलक को उसने गोद में उठा लिया। एक अपरिचित आदमी की गोद में होने के कारण पुलक के मुँह से उस तरह चट से बात नहीं निकल सकी। वह हक्का-बक्का-सा होकर ताकता रह गया।

कुछ क्षण की बातचीत के बाद ही पुलक का भय दूर हो गया। उसने कहा—तुम्हारे तो चश्मा नहीं है। टूट गया है शायद?

"नहीं, मैं चश्मा नहीं लगाता हूँ। इससे मेरे पास चश्मा नहीं है।"

मस्तक हिलाकर गर्व के साथ पुलक ने कहा—बड़े मामा जी के पास बड़ा अच्छा चश्मा है।

कनक ने हँसकर कहा—तुम्हारे मामा जी अन्धे हैं। आँख से देख नहीं सकते, इसलिए वे चश्मा लगाते हैं।

"दुर, अन्धे क्यों हैं? बड़े होने पर मैं भी चश्मा लगाऊँगा। पैसा देकर खूब बढ़िया चश्मा खरीदूंगा, अन्धा नहीं होऊँगा।"

कनक हँस पड़ा। उसने कहा—यह क्यों? तुम्हें तो अन्धा होना पड़ेगा। शास्त्र में लिखा है—'नराणां मातुलक्रमः'। तब क्यों तुम अन्धे न होओगे?

"नहीं, मैं कभी अन्धा न होऊँगा।" यह कहकर पुलक ने अपना हाथ छुड़ा लिया और कनक की गोद से वह उतर पड़ा। और मुँह टेढ़ा करके उसने कहा—"दुर, मानो मैं भिखारियों के समान अन्धा होऊँगा। ये आये हैं कहीं के। मुझे अन्धा होने को कहेंगे।" मानो वह कनक के कहने के अनुसार अन्धा होने ही जा रहा था।

आशा का भाई आकर उसे ले गया था। वह भी बहन के विवाह में जाने के लिए व्यग्र थी। इससे सविता फिर अकेली की अकेली रह गई।

सविता किसी समय भी खाली हाथ नहीं रहा करती थी। घर के छोटे छोटे कार्य्यों को भी बढ़ाकर वह उन्हीं में सदा लगी रहती। उसका शरीर क्या था, मानो एक यन्त्र था, जो सदा एक प्रकार की गति से काम में लगा रहता। उसकी गति का न तो कभी विराम होता और न कभी उसमें उच्छ्वास आता।

सविता को किसी प्रकार की आशा नहीं थी, आकांक्षा नहीं थी, दुःख नहीं था, क्षोभ नहीं था। वह अचञ्चल थी, स्थिर थी।

ब्रह्मचर्य्य-व्रत का पालन करनेवाले ब्राह्मण और विधवा के साथ रहकर सविता इतनी बड़ी हुई थी। वह प्राणों की बाज़ी लगाकर इस बात के लिए प्रयत्न किया करती कि वासना उत्पन्न होकर उसके चित्त को उद्विग्न न कर सके। वासना से उसे बड़ी घृणा थी।

चाहे प्रिय हो या अप्रिय हो, सविता को कठोर सत्य पसन्द था। स्वामी यदि उससे प्रेम नहीं ही करते तो वह इस बात की आवश्यकता नहीं समझती थी कि संसार को दिखलाने के लिए प्रेम का अभिनय किया जाय। उसे सुख की कामना नहीं थी, उसे कामना थी केवल सत्य की। यही कारण था कि कामना और वासना के ताप से हीन उसके स्नेह-शीतल हृदय को जो देखता वही सम्मान और श्रद्धा की दृष्टि से देखता। इस दो ही दिन की मुलाक़ात के बाद कनक भी उसे श्रद्धा की दृष्टि से देखने लगा था।

(क्रमशः)

जाग्रत नारियाँ

हाथरस का कन्या-गुरुकुल

लेखक, श्रीयुत महेशप्रसाद

मोलवी, आलिम फ़ाज़िल

श्रीमती विजयलक्ष्मी पंडित आप गोरखपुर में होनेवाले गोरखपुर कमिश्नरी-महिला-सम्मेलन की अध्यक्षा मनोनीत हुई हैं।

सवीं शताब्दी के आरम्भ में आर्य-समाज की ओर से कई गुरुकुल लड़कों के लिए स्थापित हुए, किन्तु लड़कियों के निमित्त कोई गुरुकुल न था।

सन् १९०९ ईसवी की बात है कि हाथरस के सेठ लाला मुरलीधर जी ने एक 'कन्या-गुरुकुल' स्थापित करने का विचार किया। सन् १९१० में उन्होंने सोलह सौ रुपयों में सो बीघा जमीन खरीद की जो हाथरस नगर से लगभग ६ मील की दूरी पर उस पक्की सड़क के समीप है जो हाथरस से अलीगढ़ को जाती है। उसी भूमि पर लगभग साठ हज़ार रुपये लगाकर एक विशाल भवन बनाया गया, जिसका घेरा लगभग २८ बीघा है। इसी भवन में सेठ जी ने गुरुकुल की स्थापना की। जितनी लड़कियाँ भर्ती की गईं सबके भोजन-वस्त्र आदि का भी प्रबन्ध सेठ जी ने अपने पास से ही किया।

[भारतीय नृत्यकला में प्रवीण कुमारी हीरा बोस]

कई वर्षों तक गुरुकुल चला, किन्तु कुछ कारणों से बन्द हो गया। सन् १९३० ईसवी से कुछ पहले श्रीमती लक्ष्मीदेवी के मन में एक 'कन्या-गुरुकुल' खोलने का विचार उठा। उपर्युक्त स्थान की ओर उनका ध्यान आकर्षित किया गया। देवी जी के पास धन न था, किन्तु साहस था, उत्साह था। किसी ने उनसे कहा कि इतना धन हो तो काम चलेगा अथवा इतना हो तो गुरुकुल स्थायी होकर रहेगा। किन्तु उन्होंने किसी बात की भी परवा न करके केवल नाममात्र के धन से काम करने का दृढ़ निश्चय किया और श्री नारायण स्वामी की संरक्षता में २८ जुलाई सन् १९३१ ईसवी को उक्त गुरुकुल को पुनः खोल दिया।

हाथरस का यह गुरुकुल एक निर्जन स्थान में है। ३ कन्यायें पहले-पहल भर्ती हुई थीं। आर्थिक अवस्था अच्छी न थी। एक बार यह संस्था टूट चुकी थी। निदान आरम्भ में जिन कठिनाइयों का सामना श्री लक्ष्मीदेवी जी को करना पड़ा था उनका उल्लेख क्या किया जाय, तथापि उन्होंने अपने धैर्य और साहस को अपने हाथ से न जाने दिया। फल यह हुआ कि जुलाई सन् १९३२ ईसवी में ४० कन्यायें हो गईं। सन् १९३९ ईसवी के अन्तिम सप्ताह में कन्याओं की संख्या १२५ से भी अधिक हो गई।

गुरुकुल में प्रायः ८ वर्ष की कन्या भर्ती की जाती है। यदि उसे हिन्दी-अक्षर का बोध भी न हो तो उसे अधिक से अधिक १२ वर्ष में वहाँ की पढ़ाई समाप्त करनी पड़ती है। वहाँ की पाठ-विधि सरकारी स्कूलों की पाठ-विधियों से बिलकुल भिन्न है—स्वतंत्र रूप की अपने ढंग पर है। देहरादून (राजपुरा) में जो कन्या-गुरुकुल है उसी से मिलता-जुलता पाठ्यक्रम है। भाषाओं में से संस्कृत व हिन्दी पर विशेष रूप से ज़ोर दिया जाता है। अँगरेज़ी का ज्ञान बहुत ही थोड़ा कराया जाता है। उक्त भाषाओं के ज्ञान के साथ ही साथ धार्मिक ज्ञान तथा धर्मोपदेश भी किया जाता है। दोनों काल संध्या होती है और हवन भी हुआ करता है। प्रति-सप्ताह में छुट्टी के दिन लड़कियाँ अपनी सभा करती हैं। इस सभा में वादविवाद भी हुआ करता है और निबन्ध भी पढ़े जाते हैं। गुरुकुल में एक पुस्तकालय भी है, किन्तु अभी बहुत छोटा है। उसका बड़ा होना आवश्यक है और जो समाचार-पत्र व पत्रिकायें वहाँ आती हैं उनमें भी वृद्धि की परमावश्यकता है।

पाक-शास्त्र स्त्री-शिक्षा का मुख्य अंग है। इसी कारण वहाँ भोजन बनाने की भी शिक्षा दी जाती है। गायन, चित्रकला, शिल्प व सिलाई की भी शिक्षा होती है। चर्खा का भी अभ्यास कराया जाता है। यहाँ के बुने व कढ़े हुए सूती व ऊनी वस्त्र बेच भी दिये जाते हैं। हाँ, इस अवसर पर मेरे विचार में इन बातों का भी उल्लेख करना आवश्यक प्रतीत होता कि लड़कियों को आटा पीसने की चक्की का भी अभ्यास कराया जाय और उनको चिकित्सा-सम्बन्धी शिक्षा भी दी जाय। परन्तु वास्तविक बात यह है कि गुरुकुल की आर्थिक दशा अच्छी नहीं है और बड़ी कठिनाइयों के साथ गुरुकुल का सञ्चालन हो रहा है। इस कारण यथोचित रूप से कुछ बातों का वहाँ होना असम्भव अथवा कठिन है।

[त्योहारों के अवसर पर चौक पूरने में भी भारतीय स्त्रियाँ कलाप्रेम का पूरा परिचय देती हैं]

सन् १८५७ के ग़दर में स्त्रियों की रक्षा का प्रश्न तीयों के लिए बड़ा विकट था। गत १५-२० वर्षों में कहीं हिन्दू-मुस्लिम दंगे जोरों से हुए हैं वहाँ भी इनकी की समस्या एक विकट रूप में उपस्थित हुई है, कि हमारी स्त्रियाँ अपनी शक्ति तथा बाहुबल से ी रक्षा नहीं कर सकती हैं। परन्तु यह बात बड़े क़े की है कि यहाँ लड़कियों के शारीरिक व्यायाम की भी अच्छा ध्यान रक्खा जाता है। मुग्दर, लाठी, ार, लेजम और धनुष-बाण की भी शिक्षा दी जाती ।

मैंने पिछले दिनों किसी समाचार-पत्र में पढ़ा था कि लोगों का ध्यान अब इस ओर गया है कि सरकारी ाालयों में लड़कियों के शारीरिक व्यायाम की ओर क़दम बढ़ाया जाय, किन्तु बड़े संतोष की बात है कि र्य-समाज के गुरुकुलों ने ही पहले-पहल हिन्दी-द्वारा शिक्षण-र्य अपनाया था और आर्य-समाज के कन्या-गुरुकुलों ही पहले-पहल लड़कियों के शारीरिक व्यायाम को आवश्यक समझा, क्योंकि हाथरस के सिवा जो अन्य गुरुकुल अथवा गुरुकुलरूपी शिक्षालय आर्य-समाजियों की ओर से लड़कियों के निमित्त हैं उनमें भी शारीरिक व्यायाम की शिक्षा दी जाती है।

एक बार की बात है कि रात के समय उपर्युक्त गुरुकुल में ईंट-पत्थर आये। बदमाशों से मुक़ाबिला करने की शक्ति न थी। एक निर्जन स्थान में होने के कारण यह प्रश्न बड़ा टेढ़ा था, किन्तु कुछ शुभचिन्तकों की कृपा से ऐसे संकट के निमित्त यथोचित प्रबन्ध किया गया। इसी समय में ही कुछ लोगों ने आवश्यकता समझी कि लड़कियों का शारीरिक व्यायाम ऐसा हो कि वे अपनी शक्ति व बाहुबल के भरोसे पर रह सकें। इसी बात का यह फल हुआ कि शारीरिक व्यायाम में यहाँ लड़कियों ने अच्छी उन्नति की है। उक्त घटना के पश्चात् फिर कभी ईंट-पत्थर गुरुकुल में न आये और अन्य लोगों पर भी उनके व्यायाम का अच्छा प्रभाव पड़ा।

[प्रसिद्ध सुधारप्रिय नेत्री श्रीमती रामेश्वरी नेहरू]

जितनी लड़कियाँ वहाँ हैं उनमें से प्रत्येक छोटी लड़की के संरक्षक से ८) मासिक व बड़ी लड़की के लिए १०) मासिक लिया जाता है। यह रक़म केवल भोजन व वस्त्र के निमित्त ली जाती है। किन्तु कुछ लड़कियाँ ऐसी भी हैं जिनसे मासिक शुल्क बहुत ही कम लिया जाता है। यद्यपि प्रान्त के विचार से गुरुकुल संयुक्त-प्रान्त में है, तथापि इस प्रान्त से बाहर की लड़कियाँ काफ़ी संख्या में वहाँ हैं। हैदराबाद (निज़ाम)-राज्य की १८ लड़कियाँ यहाँ हैं। एक लड़की अफ़्रीका की है। कुछ लड़कियाँ गुरुकुल के सिवा बाहर की अन्य परीक्षाओं में भी सम्मिलित होती हैं। छोटी छोटी लड़कियों को ही धार्मिक व राष्ट्रीय भजन तथा गाने सिखा दिये जाते हैं। वस्त्र के निमित्त शुद्ध खादी प्रयोग में लाई जाती है।

छोटी या बड़ी अर्थात् दोनों प्रकार की लड़कियों की देख-रेख का प्रश्न वास्तव में साधारण नहीं है। भवन में १२५ या इससे भी कुछ कम संख्या के निमित्त काफ़ी स्थान नहीं है और साथ ही साथ आर्थिक कठिनाइयों के कारण जितना दुःख वहाँ की लड़कियाँ सहन करती हैं वह अति प्रशंसनीय है। हर्ष की बात है कि दिसम्बर सन् १९३९ ईसवी में दो लड़कियाँ वहाँ से स्नातिका बनकर निकली हैं। इसके सिवा दूसरी बात मार्के की यह हुई है कि शिक्षालय के निमित्त एक पृथक् भवन की नींव श्री नारायण स्वामी जी महाराज के ही कर-कमलों से पड़ी है, जिनकी संरक्षता में इस गुरुकुल का पुनर्जन्म हुआ था और जो आर्य-सत्याग्रह हैदराबाद के प्रथम अधिनायक अथवा सब कुछ थे। और यह कहना भी आवश्यक है कि हाथरस व उसके आस-पास के कुछ लोगों ने इस अवसर पर विशेष रूप से अपनी उदारता का परिचय दिया है और उनकी यह उदारता और भी बढ़ी तो आशा है कि यह गुरुकुल सुन्दर दशा में बहुत ही शीघ्र हो जायगा।

बात यह है कि अभी तक रहने के स्थान के साथवाले बरामदों में ही ज्यों-त्यों पढ़ाई होती रही है और प्रत्येक ऋतु में बहुत कष्ट हुआ है, हानि हुई है। किन्तु अब शिक्षालय के पृथक् बन जाने पर यह कष्ट दूर हो जायगा, क्योंकि शिक्षालय के बनने का काम शीघ्र आरम्भ होनेवाला है। इसमें संदेह नहीं कि गुरुकुल सन् १९३९ से सरकारी तौर पर एक रजिस्टर्ड संस्था है और बहुत पहले से ही एक प्रबन्ध-कारिणी सभा के अधीन है। यद्यपि इसके संचालन में कई सज्जनों का हाथ है, तथापि इसकी सफलता का श्रेय श्रीमती माता लक्ष्मीदेवी जी को है, जो वास्तव में इस संस्था की आत्मा हैं और जो अथक परिश्रम तथा त्यागभाव से इसका संचालन कर रही हैं।

[कुमारी आशा ओझा। आपने गत दिनों लखनऊ के नृत्य-सम्मेलन में अपनी कला का प्रशंसनीय प्रदर्शन किया था]

भारत में अनाज की भयंकर कमी

लेखक, पण्डित दयाशंकर दुबे, एम० ए०, एल-एल० बी०

किसी भक्त ने सच ही कहा है 'भूखे भजन न होहिं गोपाला'। जब भूख ज़ोर से लगती है तब भजन में भी मन नहीं लगता। भोजन का प्रतिदिन काफ़ी परिमाण में मिलना प्रत्येक जीवधारी के लिए आवश्यक है। जीवन का मुख्य आधार अन्न है। यदि किसी व्यक्ति को कुछ दिनों तक अन्न न मिले तो उसे मृत्यु का सामना करना पड़ता है। अकाल के समय में अन्न के अभाव से हज़ारों व्यक्ति अपने प्राण का बलिदान दे देते हैं। साधारण समय में भी यदि किसी व्यक्ति को कुछ दिनों तक आधा पेट खाने को मिले तो धीरे-धीरे उसकी शक्तियों का ह्रास होने लगता है और एक न एक रोग का शिकार बनकर अन्त में उसे इस जीवन की लीला समाप्त कर देनी पड़ती है। 'सरस्वती' फ़रवरी सन् १९२० के अंक में मैंने सन् १९११-१२ से १९१७-१८ तक के सात वर्षों में भारत में आधापेट भोजन पानेवालों की संख्या का अनुमान लगाने का प्रयत्न किया था। उस लेख को कुछ मित्रों ने बहुत पसन्द किया और मुझसे अनुरोध किया कि मैं आधा पेट भोजन पानेवालों की संख्या का अनुपात २०–२५ वर्षों के लिए उसी आधार पर लगाने का प्रयत्न करूँ। उनकी सम्मति में केवल ७ वर्षों का समय इस प्रकार की जाँच के लिए पर्याप्त नहीं है। 'भारत में आधा पेट भोजन पानेवालों की संख्या' शीर्षक लेख को प्रकाशित हुए अब २० वर्ष हो गये। अपने मित्रों का अनुरोध मानकर अब मैं इस लेख में गत २५ वर्षों के (अर्थात् सन् १९११–१२ से १९३५–३६ तक के) ब्रिटिश भारत में आधापेट भोजन पानेवालों की संख्या का अनुमान लगाने का प्रयत्न करता हूँ।

देश में अनाज की वार्षिक माँग और उसकी वार्षिक पूर्ति का अन्दाज़ा लगाये बिना आधा पेट भोजन पानेवालों की संख्या का हिसाब लगाना सम्भव नहीं है। इसलिए अब हम इन्हीं दो बातों के अन्दाज़ा लगाने का प्रयत्न करते हैं।

अनाज की उपज वर्षा पर बहुत कुछ निर्भर रहती है और प्रतिवर्ष वर्षा सब जगह एक-सी नहीं होती। वर्षा की वार्षिक रिपोर्टों का अध्ययन करने से मालूम हुआ है कि उन २५ वर्षों में कृषि की दृष्टि से सन् १९११–१२, १२-१३, १४–१५, १५–१६, १७–१८, २१–२२, २३–२४ २४–२५, २५–२६, २६–२७, २८–२९, २९–३०, ३०–३१, ३३–३४ और ३४–३५ अर्थात् १५ वर्ष साधारण वर्ष थे। १९१६–१७, १९–२० २२–२३, ३१–३२ और ३२–३३ अर्थात् ५ वर्ष अच्छे वर्ष थे। १९१३–१४, १८–१९, २०–२१, २७–२८ और ३५–३६ अर्थात् ५ वर्ष ख़राब वर्ष थे। इस प्रकार उन २५ वर्षों में जिनके सम्बन्ध में हम जाँच कर रहे हैं, ५ वर्ष कृषि की दृष्टि से अच्छे थे, ५ वर्ष ख़राब थे और १५ वर्ष साधारण थे।

प्रतिवर्ष अनाज की माँग जानने के लिए यह आवश्यक है कि हम पहले यह जानने का प्रयत्न करें कि प्रतिवर्ष ब्रिटिश भारत में मनुष्यों के लिए, जानवरों के लिए और बीज के लिए कितने अनाज की आवश्यकता पड़ती है।

ब्रिटिश भारत की संपूर्ण जनता के लिए अमुक वर्ष में कुल कितने अन्न की आवश्यकता थी, यह जानने के लिए हमको यह भी मालूम करना चाहिए कि प्रतिव्यक्ति पीछे कितने अनाज की आवश्यकता होती है। हम जानते हैं कि जेलों और अस्पतालों में व्यक्तियों को उतना ही अन्न दिया जाता है, जितना कि उनके साधारण जीवन-निर्वाह के लिए आवश्यक समझा जाता है। अर्थात् वह खाना उतना ही होता है जिससे वह अपना जीवन ही केवल निर्वाह कर सकते हैं। यह मात्रा उनके जीवित रहने तक के लिए ही आवश्यक है। इसी प्रकार अकाल के समय सरकार की ओर से जो काम खोले जाते हैं वहाँ काम करनेवालों को उतना ही वेतन दिया जाता है जिससे वे केवल अपने जीवन की रक्षा कर सकें। संयुक्त-प्रदेश, पंजाब, बंगाल, बम्बई और मदरास के अकाल-नियमों में यह मेहनताना इस प्रकार लिखा हुआ है —

उन मनुष्यों के लिए जो मज़दूरी करते हैं :—

मिट्टी खोदनेवाले	...	१८ छटाँक अनाज
सामान ढोनेवाले	...	१४ छटाँक अनाज
मेहनत करनेवाले बालक	...	१० छटाँक अनाज

काम न कर सकनेवाले योग्य मनुष्यों के लिए:—

युवा पुरुष	...	१२ छटाँक अनाज
युवती स्त्रियाँ	...	१० छटाँक अनाज

बालक १०-१४ वर्ष ... ८ छटाँक अनाज
बालक ७-१० " ... ६ छटाँक अनाज
बालक ७ से नीचे ... ४ छटाँक अनाज
गोद के बच्चों के लिए :—
बालक की माँ को ... ३ छटाँक अनाज

संयुक्त-प्रदेश, पंजाब और बम्बई के अकाल-नियमों में यह भी लिखा है कि यदि पका-पकाया अन्न मनुष्यों को दिया जाय तो नमक, मसाला, तेल, लकड़ी इत्यादि के एवज़ में कुछ अन्न कम भी कर लेना चाहिए। बंगाल के फ़ेमिन-कोड में लिखा है कि काम करनेवाले और काम न करनेवाले युवा मनुष्यों के हिस्से में से २ छटाँक और १४ से ७ वर्ष तक के बालकों के हिस्से में से १ छटाँक अन्न पूर्वोक्त वस्तुओं के एवज़ में कम कर लेना चाहिए। इसलिए यदि पका-पकाया भोजन दिया गया तो उम्र के लिहाज़ से वह इस परिमाण में दिया जायगा—

उम्र (वर्ष)	अन्न का परिमाण (छटाँकों में)
० से १	... —
१ से २	३ (बालक की माँ को)
२ से ५	... ४
५ से १०	... ५
१० से १५	... ७ से ८ तक
१५ से ५० (मर्द)	... १० से १६ तक
१५ से ५० (औरत)	... ८ से १२ तक
५० से ऊपर	... —

मध्य-प्रदेश की सन् १८९६ की अकाल नियमावली में अन्न का परिमाण इस प्रकार निर्दिष्ट है—

उम्र (वर्ष)	भोजन का परिमाण
१ से २	... —छटाँक
२ से ५	... ३॥ छटाँक
५ से १०	... ७ छटाँक
१० से १५	... १०॥ छटाँक
१५ से ५० (मर्द)	... १४ छटाँक
१५ से ५० (औरत)	... १२ छटाँक
५० से ऊपर	... —

संयुक्त-प्रान्त की सन् १९२७ की जेल-मैन्युअल में भी इसी प्रकार अन्न के परिमाण का उल्लेख है। वहाँ के जेल-मैन्युअल में रोगी क़ैदियों को अन्न किस मात्रा में दिया जाता है उसका भी लेखा है। यह सब नीचे लिखे अनुसार है—

(१) काम करनेवाले प्रौढ़ पुरुषों को ... १४ छटाँक
(२) काम करनेवाली प्रौढ़ स्त्रियों को ... १२ छटाँक
(३) काम न करनेवालों के लिए ... १० छटाँक
(४) ३ साल के ऊपर के बच्चों को ... ६ छटाँक

इनके अतिरिक्त निम्नलिखित चीज़ें सभी को और भी मिलती हैं—

दाल	१ छटाँक
साग	४ छटाँक
तेल	·१२५ छटाँक
मिर्चा	·१५० छटाँक
हल्दी	·१५० छटाँक
नमक	·१६

परन्तु स्त्रियाँ जिनको अपने बच्चों का पालन करना पड़ता है, इतना और पायेंगी—

गेहूँ का आटा	२ छटाँक
घी	·१२ छटाँक

ऊपर दिये हुए परिमाण तो काम करनेवालों के लिए हैं परन्तु जो बीमार होते हैं उनके लिए परिमाण कुछ भिन्न है। बीमार मनुष्यों में से किसी को केवल दूध दिया जाता, किसी को साबूदाना तथा दूध और किसी को दूध और चावल। लेकिन जिन मनुष्यों को दाल और चावल मिलता है उनको ६ छटाँक चावल और २ छटाँक दाल—जिन्हें रोटी दी जाती है उन्हें १० छटाँक गेहूँ का आटा और १ छटाँक दाल के अलावा नीचे लिखी वस्तुएँ और भी मिलती हैं—

घी	·११२ छटाँक
साग	४ छटाँक
तेल	·१२५ छटाँक
मिर्चा	·१५० छटाँक
हल्दी	·१५० छटाँक
नमक	·१६ छटाँक

इस प्रकार हम देखते हैं कि विभिन्न स्थानों में विभिन्न परिमाण बतलाये गये हैं। अतः हम उन सबका मिलान करके ही अपने प्रयोजन के निमित्त परिमाण निर्धारित कर सकते हैं। मिलान के लिए उन सब परिमाणों को हम नीचे के कोष्ठक में देते हैं—

(छटाँकों में)

उम्र (वर्षों में)	मजदूरी फ़ेमिन-कोडों से	पकेपकाये भोजन का परिमाण	मध्य प्रदेश के फ़ेमिन कोडों से भोजन का परिमाण	संयुक्तप्रान्त के जेल मैन्युअल में भोजन का परिमाण	रोगियों को दिया जानेवाला भोजन का परिमाण
१ से २	३	३	—	२	—
२ से ५	४	४	३॥	२ से ७	—
५ से १०	६	५	७	७	—
१० से १५	८ से १०	७ से ८	१०॥	११	८ से ११
१५ से ५० (मर्द)	१२ से १८	१० से १६	१४	१५	८ से ११
१५ से ५० (औरत)	१० से १४	८ से १२	१२	१३	—

इस कोष्ठक मे भोजन देने के जो विभिन्न परिमाण बताये गये हैं उनका आपस में मिलान करके हमने अपने हिसाब के लिए अवस्था के अनुसार भोजन का परिमाण नीचे लिखे अनुसार लेना ठीक समझा है—

उम्र (वर्षों में)	प्रतिदिन भोजन का परिमाण छटाँकों में
१ से २	२½
२ से ५	४
५ से २०	६
१० से १५	८
१५ से ५० (मर्द)	१४
१५ से ५० (औरत)	१२
५० से ऊपर	१०

भारत जैसे ग़रीब देश में लोगों को मुख्य कर सूखा-सूखा ही अन्न खाने को मिलता है, अतएव यह सम्भव हो सकता है कि उनके लिए १४ छटाँक की मात्रा कम हो और उससे वे अपना स्वास्थ्य ठीक-ठीक सुरक्षित न रख सकें। हमारे किसानों को कठिन-से-कठिन परिश्रम करना पड़ता है—दिन भर के अविरल परिश्रम के बाद वे क्षुधा-तुर हो जाते हैं और ऐसी दशा में वे एक सेर तक खा लेते हैं। परन्तु इसके साथ ही साथ हमको एक बात और भी ध्यान में रखनी चाहिए और वह यह है कि जो व्यक्ति रोगी रहते हैं वे कदापि १४ छटाँक नहीं खा सकते।

इसी प्रकार मांसाहारियों के सम्वन्ध में भी कहा जा सकता है कि वे भी अन्न कुछ कमही खाते होंगे। इसलिए १४ छटाँक का परिमाण जो हमने लिया है बहुत समझ-बूझकर लिया है। इस हिसाब में अगर कोई भूल भी हो तो अन्तिम परिमाण लगभग वही रहेगा, उसमें कोई विशेष परिवर्त्तन न होगा।

अब हमें यह जनाना चाहिए कि अवस्था के लिहाज से ब्रिटिश भारत की मनुष्य संख्या कितनी है। सन् १९११ की जन-संख्या की गणना की रिपोर्ट के अनुसार यह संख्या इस प्रकार थी—

उम्र (वर्षों में)	मनुष्यसंख्या
० से १	८० लाख
१ से २	४० लाख
२ से ५	२१२ लाख
५ से १०	३४५ लाख
१० से १५	२७० लाख
१५ से ५० (मर्द)	६१० लाख
१५ से ५० (औरतें)	६०६ लाख
५० से ऊपर	२८० लाख

अवस्था के अनुसार मनुष्य-संख्या और अनाज की आवश्यकता का परिमाण जान लेने पर समूचे ब्रिटिश भारत के अनाज की वार्षिक आवश्यकता के परिमाण का अन्दाज़ा लगाना बहुत सरल है। यह हिसाब सन् १९११-१२ के लिए नीचे के कोष्ठक में लगाया गया है।

उम्र (वर्षों में)	मनुष्य-संख्या (लाख)	अन्न का परिमाण छटाँकों में	प्रतिदिन के लिए अन्न की आवश्यकता	
० से १	८०	—	—	—
१ से २	४०	२	१५,६२५	मन
२ से ५	२१२	४	१,३२,५००	,,
५ से १०	३४५	६	३,२३,४३७	,,
१० से १५	२७०	८	३३,७५०	,,
१५ से ५० (मर्द)	६१०	१४	१३,३४,३७५	,,
१५ से ५० (औरत)	६०६	१२	११,३६,२५०	,,
५० से ऊपर	२८०	१०	४,३७,५००	,,
प्रतिदिन का कुल परिमाण ...			३७,१७,१८७	,,
प्रतिवर्ष का कुल परिमाण ...			१३५.७	करोड़ मन

इस कोष्ठक से हमको यह मालूम हो जाता है कि अगर जनता को भर पेट भोजन मिल जाय तो सन् १९११-१२ में कुल भारतवासियों को १३५·७ करोड़ मन अनाज की आवश्यकता थी।

हमारे देश में मनुष्य-गणना प्रति १० वर्ष के बाद होती है। अतएव हमारे इस २५ वर्ष के समय में हमको तीन मनुष्य-गणनाओं का लेखा मिलता है—अर्थात् सन् १९११, २१ और ३१ का।

यद्यपि हमारे देश में मनुष्य-गणना प्रतिवर्ष नहीं की जाती, तथापि हमको अनाज की माँग प्रतिवर्ष ही निकालनी है। और हम जानते हैं कि जन-संख्या प्रतिवर्ष बढ़ती है। परन्तु एक ही अनुपात में नहीं—कभी अधिक और कभी कम। इसी प्रकार किन्हीं १० वर्षों में अधिक और किन्हीं १० वर्षों में कम बढ़ती है। अतः हम दोनों ही कालों का, अर्थात् १९११ से १९२१ तक और १९२१ से १९३१ तक, प्रतिवर्ष जन-संख्या के बढ़ने का औसत अलग-अलग निकालेंगे। हम प्रथम १० वर्ष अर्थात् १९११-२१ का काल लेते हैं। सन् १९२१ की संख्या लगभग २४,७१,३८,३९६ मनुष्य थी। सन् १९११ में यही संख्या २४,३९,३३,१७८ थी। इस प्रकार दस वर्षों में ३२,०५,२१८ व्यक्तियों की वृद्धि हुई। इसका औसत १·३ प्रति हजार प्रतिवर्ष हुआ। इसी रीति से हम अगले दस वर्षों का तथा उसके बाद के वर्षों का भी औसत निकाल सकते हैं। भिन्न भिन्न वर्षों के लिए मनुष्यों के लिए देश की कुल अनाज की आवश्यकता के निकालने के लिए हम यह मान लेंगे कि अनाज की आवश्यकता या माँग प्रतिवर्ष उसी अनुपात में बढ़ी जिस अनुपात में जन-संख्या बढ़ी। इसके बाद सन् १९११-१२ की तथा उसके बाद के वर्षों की माँग को उसी अनुपात से बढ़ाकर हम प्रत्येक वर्ष की माँग निकाल सकते हैं। वह इस प्रकार है—

वर्ष	मनुष्य के लिए अनाज की आवश्यकता (करोड़ मन)
१९११–१२	... १३५·७
१९१२–१३	... १३५·९
१९१३–१४	... १३६·१
१९१४–१५	... १३६·३
१९१५–१६	... १३६·५
१९१६–१७	... १३६·७
१९१७–१८	... १३६·९
१९१८–१९	... १३७·१
१९१९–२०	... १३७·३
१९२०–२१	... १३७·५
१९२१–२२	... १३८·१
१९२२–२३	... १३८·७
१९२३–२४	... १३९·३
१९२४–२५	... १३९·९
१९२५–२६	... १४०·५
१९२६–२७	... १४१·१
१९२७–२८	... १४१·७
१९२८–२९	... १४२·३
१९२९–३०	... १४२·९
१९३०–३१	... १४३·५
१९३१–३२	... १४४·१
१९३२–३३	... १४४·७
१९३३–३४	... १४५·३
१९३४–३५	... १४५·९
१९३५–३६	... १४६·५

यह तो हुआ मनुष्यों के लिए अनाज की आवश्यकता का हिसाब। जानवरों के लिए कितना अनाज दिया जाता है, अब हम यह जानने का प्रयत्न करते हैं। परन्तु इसके पूर्व हमको दो बातों का जानना अति आवश्यक है। प्रथम तो यह कि अमुक वर्ष में जानवरों की क्या संख्या थी और भिन्न-भिन्न जानवरों को कितना अनाज दिया जाता है। प्रत्येक प्रकार के जानवर को दाना समान रूप से नहीं दिया जाता—बैलों को किसी अन्य परिमाण में तो गायों को और भैंसों को किसी अन्य ही परिमाण में। इतना ही नहीं बल्कि दूध देनेवाली गायों तथा भैंसों को कुछ और परिमाण में दाना दिया जाता है और दूध न देनेवाली गायों तथा भैंसों को किसी अन्य ही परिमाण में। यही हाल छोटे तथा बड़े बैलों के सम्बन्ध में है। जब बैलों को दाना दिया जाता है तब उसकी मात्रा अवश्य ही आध सेर से अधिक रहती है। परन्तु यह मान लेना ठीक न होगा कि सभी बैलों को बराबर दाना दिया जाता है। ऐसे बैलों की ही संख्या बहुत होगी जिन्हें दाना बिलकुल दिया ही नहीं जाता। इसलिए उनके सम्बन्ध

में प्रतिदिन आध सेर अनाज दिये जाने का औसत मान लेना ठीक होगा। गायों और भैंसों को जब वे दूध नहीं देतीं तब प्रायः अनाज नहीं दिया जाता। जब वे दूध देने लगती हैं तभी उन्हें खली-बिनौले आदि भी दिये जाते हैं। इसलिए उन गायों के सम्बन्ध में जो दूध देती हैं और जिनकी संख्या उनकी कुल संख्या की आधी से अधिक न होगी, प्रतिदिन आध सेर अनाज दिये जाने का औसत लगाना अधिक न होगा। दुधार भैंसों को गायों की अपेक्षा अधिक परिमाण में दाना दिया जाता है। इसलिए उनके सम्बन्ध में एक सेर अनाज प्रतिदिन दिये जाने का औसत मान लिया गया है। घोड़ों को दाना ज़रूर दिया जाता है। उसका परिमाण १॥ सेर प्रतिदिन के हिसाब से कम नहीं हो सकता, इसलिए हमने अपने हिसाब में वही औसत मान लेना ठीक समझा है।

अब हमको जानवरों की संख्या जाननी चाहिए। बैलों, गायों, भैंसों तथा घोड़ों की संख्या सरकारी रिपोर्ट (Agricultural statistics of India) में सन् १९११—१२ के लिए इस प्रकार दी है—

जानवर	संख्या (लाखों में)
बैल	... ४६६
गाय	... ३६७
भैंस	... १३६
घोड़े	... १९

ऊपर अनुमान किये हुए परिमाणों के अनुसार इन जानवरों के लिए सन् १९११—१२ में प्रतिदिन अन्न की आवश्यकता इस प्रकार थी—

	लाख सेर
बैलों के लिए (आधा सेर प्रतिदिन के हिसाब से)	२३३
गायों के लिए (आधी गायों को आधा सेर के हिसाब से)	९२
भैंसों के लिए (आधी भैंसों को एक सेर के हिसाब से)	६८
घोड़ों के लिए (डेढ़ सेर प्रतिदिन के हिसाब से) ...	२९
मीज़ान ...	४२२लाख सेर

यह माँग पूरे साल के लिए $\frac{४.२२ \times ३६५}{४०}$ लाख मन थी या ३८·४ करोड़ मन। इसी प्रकार हम अन्य वर्षों के लिए भी जानवरों के लिए अनाज की आवश्यकता का परिमाण निकाल सकते हैं। वह इस प्रकार था—

जानवरों के लिए अनाज की आवश्यकता

	करोड़ मन
१९११–१२	... ३८·४
१९१२–१३	... ३७·५
१९१३–१४	... ३८·२
१९१४–१५	... ३९·५
१९१५–१६	... ३९·८
१९१६–१७	... ३९·९
१९१७–१८	... ३९·६
१९१८–१९	... ३९·६
१९१९–२०	... ३९·३
१९२०–२१	... ३९·४
१९२१–२२	... ३९·४
१९२२–२३	... ३९·४
१९२३–२४	... ३९·४
१९२४–२५	... ४०·९
१९२५–२६	... ४०·९
१९२६–२७	... ४०·९
१९२७–२८	... ४०·९
१९२८–२९	... ४०·९
१९२९–३०	... ४१·६
१९३०–३१	... ४१·६
१९३१–३२	... ४१·६
१९३२–३३	... ४१·६
१९३३–३४	... ४१·६
१९३४–३५	... ४१·६
१९३५–३६	... ४१·६

यहाँ तक हमको यह मालूम हो गया कि मनुष्यों और जानवरों के लिए अनाज की कितनी आवश्यकता प्रतिवर्ष होती है। अब हम यह जानने का प्रयत्न करते हैं कि बीज में कितना अनाज प्रतिवर्ष खर्च होता है। यह बात जानने के लिए हमें फिर दो बातों का जानना आवश्यक है।

(१) प्रतिवर्ष हर एक प्रकार की फ़सल में कितनी भूमि बोई जाती है।

(२) प्रत्येक प्रकार की फ़सल के लिए किस हिसाब से बीज की आवश्यकता होती है। वह नीचे लिखे अनुसार है—

फ़सल	प्रति एकड़ बीज की मात्रा
धान	... ... १२ सेर
गेहूँ	... ... २४ ,,
जौ	... ... २० ,,
ज्वार	... ... ६ ,,
बाजरा	... ... २ ,,
मकई	... ... १० ,,
चना	... ... १६ ,,
रगी	... ... १२ ,,
अन्य प्रकार के अनाज	... ८ ,,

इसके बाद हमको यह जानना चाहिए कि कितनी भूमि में हर साल खेती होती है। और किस प्रकार की फ़सल कितनी भूमि में थी। सरकारी रिपोर्ट (Agricultural Statistics of India) में इसका ब्योरा १९११-१२ के लिए इस प्रकार है—

फ़सल	ज़मीन (लाख एकड़ में)
धान	... ... ७६६
गेहूँ	... ... २५०
जौ	... ... ८४
ज्वार	... ... १८४
बाजरा	... ... १३१
मकई	... ... ५६
चना	... ... १४१
रगी	... ... ४३
अन्य प्रकार के अनाज	... २९५

इस हिसाब से कुल बीज की आवश्यकता सन् १९११-१२ के लिए इस प्रकार थी—

फ़सल	सन् १९११-१२ के लिए बीज की आवश्यकता (लाख सेरों में)
धान	... ... ९,१९२
गेहूँ	... ... ६,०००
जौ	... ... १,६८०
ज्वार	... ... १,१०४
बाजरा	... ... २६२
मकई	... ... ५६०
चना	... ... २,२५६
रगी	... ... ५१६
अन्य प्रकार के अनाज	... २,३६०
मीज़ान	... ... २३,९३०

या $\frac{२३९३०}{४०}$ लाख मन = ५.८ करोड़ मन। इसी प्रकार अन्य वर्षों का हिसाब लगाने से हमको परिणाम इस प्रकार मिलता है—

वर्ष	बीज की आवश्यकता करोड़ मन
१९११-१२	... ५·८
१९१२-१३	... ५·७
१९१३-१४	... ५·४
१९१४-१५	... ६·१
१९१५-१६	... ६·०
१९१६-१७	... ६·२
१९१७-१८	... ६·२
१९१८-१९	... ५·३
१९१९-२०	... ६·०
१९२०-२१	... ५·५
१९२१-२२	... ४·९
१९२२-२३	... ६·१
१९२३-२४	... ५·९
१९२४-२५	... ६·१
१९२५-२६	... ६·४
१९२६-२७	... ६·०
१९२७-२८	... ५·९
१९२८-२९	... ६·४
१९२९-३०	... ५·९
१९३०-३१	... ६·१
१९३१-३२	... ६·२
१९३२-३३	... ६·१
१९३३-३४	... ६·३
१९३४-३५	... ६·१
१९३५-३६	... ६·१

इस प्रकार हमें अब निम्नलिखित तीन बातें मालूम हो गईं—

(१) भारतवासियों को अपना स्वास्थ्य ठीक रखने के लिए कितना अनाज चाहिए।

(२) गाय-बैल आदि जानवरों को कितना अनाज दाना रूप में दिया गया और;

(३) बीज में कितना खर्च किया गया।

इन तीनों को जोड़ देने से अनाज की वार्षिक माँग का परिमाण मालूम हो जाता है।

वह नीचे लिखे अनुसार है—

(करोड़ मन)

सन्	मनुष्यों के लिए	जानवरों के लिए	बीज के लिए	मीज़ान
११–१२	१३५·३	३८·८	५·८	१७९·९
१२–१३	१३५·९	३७·५	५·७	१७९·१
१३–१४	१३६·१	३८·२	५·८	१७९·७
१४–१५	१३६·३	३९·५	६·१	१८१·९
१५–१६	१३६·५	३९·८	६·०	१८२·३
१६–१७	१३६·७	३९·९	६·२	१८२·८
१७–१८	१३६·९	३९·६	६·२	१८२·७
११८–१९	१३७·१	३९·६	५·३	१८२·२
११९–२०	१३७·३	३९·३	६.०	१८२·६
९२०–२१	१३७·५	३९·४	५·५	१८२·४
९२१–२२	१३८·१	३९·४	४·९	१८२·५
९२२–२३	१३८·७	३९·४	६·१	१८४.२
९२३–२४	१३९·३	३९·४	५·९	१८४·६
९२४–२५	१३९·९	४०·९	६·१	१८६·९
१९२५–२६	१४०·५	४०·९	६·४	१८७·८
१९२६–२७	१४१·१	४०·९	६·०	१८८·०
१९२७–२८	१४१·७	४०·९	५·९	१८८·५
१९२८–२९	१४२·३	४०·९	६·४	१८९·६
१९२९–३०	१४२·९	४१·६	५·९	१९०·४
१९३०–३१	१४३·५	४१·६	६·१	१९१·२
१९३१–३२	१४४·१	४१·६	६·२	१९१·९
१९३२–३३	१४४·७	४१·६	६·१	१९२·४
१९३३–३४	१४५·३	४१·६	६·३	१९३·२
१९३४–३५	१४५·९	४१·६	६.१	१९३·६
१९३५–३६	१४६·५	४१·६	६·१	१९४·२

अब पूर्ति का अन्दाज़ा लगाने के लिए हमको यह मालूम करना चाहिए कि—

(१) भारत में भिन्न-भिन्न अनाजों की प्रतिवर्ष उपज कितनी हुई।

(२) उस उपज का कितना भाग नष्ट हो जाता और फिर कितना बचा।

(३) अन्य देशों को भारत से प्रतिवर्ष कितना अनाज निर्यात किया गया।

उपज मालूम करने के लिए हमको एक और सरकारी रिपोर्ट (Area and yield of Principle crops in India) की सहायता लेनी पड़ती है। इस रिपोर्ट में मुख्य-मुख्य फ़सलों का रक़बा तथा उपज दी रहती है—परन्तु यह बिलकुल सही नहीं कही जा सकती क्योंकि इसमें कहीं कहीं तो देशी राज्यों का ब्यौरा दिया होता है और कहीं-कहीं नहीं। साथ ही कहीं-कहीं रिपोर्ट अपूर्ण भी रहती है। इसके अतिरिक्त जैसा अभी लिखा जा चुका है इस रिपोर्ट में केवल थोड़ी ही फ़सलों का जैसे चावल, गेहूँ, जव, ज्वार, बाजरा, मकई तथा चना आदि का ही ब्योरा रहता है। लेकिन फिर भी हमको इससे बहुत-कुछ सहायता मिलती है। इस रिपोर्ट में जो रक़बा दिया रहता है वह (Agricultural Statistics) में दिये हुए रक़बे से भिन्न रहता है। जैसे १९२०-२१ में पहली रिपोर्ट के अनुसार जैसा हम पहले लिख चुके हैं चावल की फ़सल में ७८१ लाख एकड़ भूमि थी परन्तु इस रिपोर्ट के अनुसार रक़बा ७९० लाख एकड़ होता है। पिछली रिपोर्ट (Agricultural Statistics) में उपज नहीं दी रहती परन्तु दूसरी रिपोर्ट में दी रहती है। अतः हम त्रैराशिक लगाकर पिछली रिपोर्ट में दिये हुए रक़बा के अनुसार उपज निकालते हैं। दूसरी रिपोर्ट में चावल की उपज सन् १९२०-२१ के लिए २७७ लाख टन दी हुई है (१ टन = २७·२ मन)। अतः त्रैराशिक नियम के अनुसार ७८१ लाख एकड़ की उपज $\frac{७८१ \times २७७}{७९०}$ लाख टन या ७५·१ करोड़ मन हुई। इस रीति से हम अन्य फ़सलों की उपज भी मालूम कर सकते हैं तथा जोड़ कर कुल उपज निकाल सकते हैं। परन्तु इतना जान लेने पर भी हमें कुछ और अनाजों की उपज इस रिपोर्ट से मालूम नहीं हो सकती। पीछे हम देख चुके हैं कि प्रतिवर्ष अन्य प्रकार का अन्न कितने एकड़ में बोया जाता है—अतः अब अगर यह मालूम हो जाय कि प्रतिएकड़ इनकी कितनी उपज साधारणतः होती है तो काम बन सकता है। उक्त रिपोर्ट से हमको यह पता चलता है कि एक एकड़ भूमि में ५७४ सेर रगी पैदा होती है। अतः हम भी यही आधार मानेंगे। इसी प्रकार अन्य प्रकार के अनाजों के लिए हमने २५० सेर प्रतिएकड़ उपज ही मानना उपयुक्त समझा है क्योंकि श्रीयुत एन० जी० मुकर्जी ने भी अपनी पुस्तक (Hand book of agriculture) में इसी प्रकार हिसाब लगाया है। इस प्रकार गत २५ वर्षों में कुल उपज ऊपर कही हुई विधि से निकालने पर आगे लिखे अनुसार आती है—

अन्य देशों को भेजे हुए अन्न का हिसाब लगाते हैं। यह हमको सरकारी रिपोर्ट (Trade Review) में इस प्रकार मिलता है—

वर्ष	अनाज का निर्यात (करोड़ मन)
१९११–१२	... १३·९
१९१२–१३	... १५·०
१९१३–१४	... ११·३
१९१४–१५	... ६·९
१९१५–१६	... ६·५
१९१६–१७	... ७·९
१९१७–१८	... १२·३
१९१८–१९	... ८·७
१९१९–२०	... १·९
१९२०–२१	... ४·१
१९२१–२२	... ४·५
१९२२–२३	... ७·१
१९२३–२४	... ९·३
१९२४–२५	... ८·९
१९२५–२६	... ८·४
१९२६–२७	... ६·६
१९२७–२८	... ७·६
१९२८–२९	... ६·३
१९२९–३०	... ६·८
१९३०–३१	... ७·१
१९३१–३२	... ७·१
१९३२–३३	... ५·६
१९३३–३४	... ५·१
१९३४–३५	... ४·८
१९३५–३६	... ४·१

ये संख्यायें भारत की वार्षिक उपज में से घटा देने पर भारत के अनाज की वार्षिक-पूर्ति मालूम हो जाती है। वह नीचे लिखे अनुसार है—

(करोड़ मन में)

सन्	उपज	अन्य देशों को निर्यात	पूर्ति
१९११–१२	१६६·९	१३·९	१५३·०
१९१२–१३	१५५·३	१५·०	१४०·३
१९१३–१४	१४५·५	११·३	१३४·२
१९१४–१५	१५४·४	६·९	१४७·५
१९१५–१६	१६४·७	६·५	१५८·२
१९१६–१७	१७०·३	७·९	१६२·४
१९१७–१८	१६६·७	१२·३	१५४·४
१९१८–१९	१२१·७	८·७	११३·०
१९१९–२०	१६७·१	१·९	१६५·२
१९२०–२१	१३०·२	४·१	१२६·१
१९२१–२२	१६५·०	४·५	१६०·५
१९२२–२३	१६४·९	७·१	१५७·८
१९२३–२४	१४५·९	९·३	१३६·६
१९२४–२५	१४८·९	८·९	१४०·०
१९२५–२६	१४४·६	८·४	१३६·२
१९२६–२७	१४६·५	६·६	१३९·९
१९२७–२८	१३६·३	७·६	१२८·७
१९२८–२९	१४६·३	६·३	१४०·०
१९२९–३०	१५३·३	६·८	१४६·५
१९३०–३१	१५५·१	६·१	१४८·०
१९३१–३२	१५८·०	७·१	१५०·९
१९३२–३३	१५१·७	५·६	१४६·१
१९३३–३४	१५०·०	५·१	१४४·९
१९३४–३५	१४८.८	४·८	१४४·०
१९३५–३६	१४२.०	४·१	१३७·८

भारत में अनाज की माँग और पूर्ति के अंक एक ही कोष्ठक में दिखाने पर यह आसानी से मालूम हो जाता है कि प्रतिवर्ष भारत में अनाज की कमी रही और वह नीचे अनुसार है।

(करोड़ मन में)

सन्	अनाज की माँग	अनाज की पूर्ति	अनाज की कमी
१९११-१२	१७९·९	१५३·०	२६·९
१९१२-१३	१७९·१	१४०·३	३८·८
१९१३-१४	१७९·७	१३४·२	४·५५
१९१४-१५	१८१·९	१४७.५	३४·४
१९१५-१६	१८२·३	१५८·२	२४·१
१९१६-१७	१८२·८	१६२·४	२०·४
१९१७-१८	१८२·७	१५४·४	२८·३
१९१८-१९	१८२·०	११३·०	६९·०
१९१९-२०	१८२·६	१६५·२	१७·४
१९२०-२१	१८२·४	१२६·१	५६·३
१९२१-२२	१८२·४	१६०·५	२१·९

(करोड़ मन में)

सन्	अनाज की मांग	अनाज की पूर्ति	अनाज की कमी
१९२२-२३	१८८·२	१५७·८	३०·४
१९२३-२४	१८८·६	१३९·६	४९·०
१९२४-२५	१८९·१	१४०·०	४९·१
१९२५-२६	१८७·८	१३६·२	५१·६
१९२६-२७	१८८·०	१३९·९	४८·१
१९२७-२८	१८८·५	१२८·७	५९·८
१९२८-२९	१८९·६	१४०·०	४९·६
१९२९-३०	१९०·४	१४६·५	४३·९
१९३०-३१	१९१·२	१४८·०	४३·२
१९३१-३२	१९१·९	१५०·९	४१·०
१९३२-३३	१९२·४	१४६·१	४६·३
१९३३-३४	१९३·२	१४४·९	४८·३
१९३४-३५	१९३·६	१४४·०	४९·६
१९३५-३६	१९४·२	१३७·८	५६·४

हमें मालूम है कि एक जवान पुरुषों को कमसे कम १४ छटाँक अन्न अपने स्वास्थ्य को ठीक रखने के लिए आवश्यक है। इसलिए वह वर्ष भर में $\frac{१४ \times ३६५}{१६ \times ४०} = \frac{७३ \times ७}{१६ \times ४}$ मन अनाज खायगा। यदि प्रतिवर्ष की न्यूनता की संख्या में इस $\frac{७३ \times ७}{१६ \times ४}$ संख्या का भाग दें तो यह मालूम होगा कि उस न्यूनता के कारण कितने युवा मनुष्यों को, वर्षभर, किसी प्रकार का अन्न प्राप्त किये बिना ही रहना पड़ा होगा। इस हिसाब से सन् १९११-१२ में वर्षभर जिन मनुष्यों को अन्न प्राप्त नहीं हुआ उनकी संख्या ३२८ लाख होगी। परन्तु लगातार वर्षभर भूखे रहकर जीवित रहनेवाले बहुत ही कम मनुष्य पाये जा सकते हैं। प्रायः ऐसे ही मनुष्य बहुतायत से पाये जाते हैं जो हमेशा आधा पेट ही खाकर जीवन धारण किये रहते हैं। इसलिए यदि हम सन् १९११-१२ के अन्न न प्राप्त करनेवाले युवा मनुष्यों की संख्या (३२८ लाख) को दो से गुणा कर दें तो हमें उस वर्ष के आधा पेट भोजन पानेवालों की संख्या ज्ञात हो जायगी। वह ६५६ लाख है। इसी तरह अन्य वर्षों के लिए भी आधा पेट भोजन पानेवालों की संख्या मालूम की जा सकती है। नीचे के कोष्ठक में इन आधा पेट भोजन पानेवालों की संख्या बतलाई गई है, और यह भी दिखाया गया है कि जवान स्त्री-पुरुषों में से फ़ी सैकड़ा कितने मनुष्य इस प्रकार आधा पेट अन्न खाकर अपना जीवन व्यतीत करते थे—

सन्	आधा पेट भोजन पानेवालों की संख्या		प्रतिसैकड़ा (फ़ी युवा मनुष्य)
१९११-१२	६५६	लाख	४८
१९१२-१३	२५२	"	३८
१९१३-१४	११२२	"	९२
१९१४-१५	८५२	"	७०
१९१५-१६	५८८	"	४८
१९१६-१७	४८६	"	४०
१९१७-१८	६८१	"	५७
१९१८-१९	१३१२	"	९४
१९१९-२०	४२१	"	३६
१९२०-२१	६८१	"	४०
१९२१-२२	२७४	"	१६
१९२२-२३	२०५	"	१२
१९२३-२४	६००	"	३५
१९२४-२५	५८९	"	३५
१९२५-२६	६५०	"	३९
१९२६-२७	६००	"	३५
१९२७-२८	७४९	"	४५
१९२८-२९	६२१	"	३५
१९२९-३०	५४९	"	३३
१९३०-३१	५४७	"	३२
१९३१-३२	५१३	"	३०
१९३२-३३	५१९	"	३०
१९३३-३४	६०१	"	३५
१९३४-३५	६२१	"	३६
१९३५-३६	६८१	"	४०
२५ वर्षों का औसत	६६७		४०

इस कोष्ठक के देखने से विदित होता है कि सन् १९१९-२० और सन् १९२२-२३ में, जो कृषि की दृष्टि से अच्छे वर्ष थे, आधा पेट भोजन पानेवालों की संख्या क्रमशः ४ करोड़ के और २ करोड़ के लगभग थी। यह संख्या १३-१४ में ११ करोड़ और १९१८-१९ में तो १३ करोड़ तक पहुँच गई थी। यह संख्या २ करोड़ से कभी कम नहीं हुई। २५ वर्षों में से एक भी किसी वर्ष में अनाज की पूर्ति अनाज के माँग के बराबर नहीं हुई। २५ वर्षों का औसत लगाने से मालूम होता है कि ४० प्रतिशत युवा मनुष्यों को अर्थात् करीब ७ करोड़ युवा व्यक्तियों को हमेशा आधा पेट भोजन पाकर

ही अपना सारा जीवन व्यतीत करना पड़ता है। पाठक इससे अनुमान कर सकते हैं कि भारत में इस समय रोटी का प्रश्न कितने महत्त्व का है और देश की आर्थिक दशा सुधारने की इस समय कितनी आवश्यकता है।

हम प्रायः यह कह दिया करते हैं कि भारत की दशा अत्यन्त ही खराब है, लोग बहुत ही शक्तिहीन हैं, उनकी हालत दिन पर दिन गिरती जा रही है, कार्य करनेवालों की कार्य-क्षमता दूसरे देशवालों की अपेक्षा बहुत ही कम है। परन्तु क्या हमने कभी गम्भीरतापूर्वक यह भी सोचा है कि यह सब त्राहि त्राहि जो हमारे देश के कोने कोने में मची हुई है क्यों है? इसका एकमात्र उत्तर यही हो सकता है कि परिश्रम करने पर भी पेट भर खाने को ही नहीं मिलता।

सात करोड़ युवा व्यक्तियों को निरन्तर भूखा रहते देखकर ऐसा कौन सच्चा देश-हितैषी मनुष्य होगा जिसको दुःख के कारण आँसू न आ जाते हों?

परन्तु केवल आँसू गिराने से ही काम न चलेगा। प्रारब्ध को दोष देकर हाथ पर हाथ धरे अकर्मण्य बैठे रहने से ही क्या कोई मनुष्य या समाज अपनी उन्नति कर सकता है? इस समय हमारा प्रथम कर्त्तव्य यही है कि हम भारत की करोड़ों मन अनाज की वार्षिक कमी की पूर्ति करने का तन, मन, धन से प्रयत्न करें।

मैं आहत का क्रन्दन स्वर हूँ

लेखक, श्रीयुत मित्तल

मैं आहत का क्रन्दन स्वर हूँ!

सुखी, मुझे वैभव दिखलाता, दुखी, कसक, तड़पन बतलाता,
सुख से कुछ सम्बन्ध नहीं है, मुझे दुखी युगयुग से भाता!
मैं विलास का केन्द्र नहीं, मैं गाँवों की बस्ती सुन्दर हूँ!
मैं आहत का क्रन्दन स्वर हूँ!

मैं वह युवक नहीं, वैभव में—
सुख में, मधु में घुल जाऊँ जो;
मैं तो उस दुख का प्यासा हूँ—
रहता पीड़ित के उर में जो
सुख की दुनिया नित्य बुलाती, मैं तो दुखियों का दिलवर हूँ!
मैं आहत का क्रन्दन स्वर हूँ!

मुझे याद है—उस बचपन की,
जब थोड़ा सुख, प्यार मिला था;
फिर यौवन के आते आते,
दुख का हाहाकार मिला था
दुख से तब से ही परिचित मैं, रहता दुख-तड़पन के घर हूँ!
मैं आहत का क्रन्दन स्वर हूँ!

मैंने देखी सुख की दुनिया,
निर्मम निर्दय-सार रहित है;
देखी मैंने दुख की दुनिया,
निर्मल-सजल दुलार सहित है
दुख की दुनिया बहुत बड़ी है, मैं तो उसका एक नगर हूँ।
मैं आहत का क्रन्दन स्वर हूँ!

सुखी जगत में—धनवानों को,
सुख है—मधु है—मधुर प्यार है;
औ, कंगालों की दुनिया में,
हँसता रहता दुख-प्रसार है
जो पल पल आहें भरते हैं, उन आहों का गान अमर हूँ!
मैं आहत का क्रन्दन स्वर हूँ!

दुखियों की बस्ती मेरा घर,
महलों से नफ़रत करता हूँ;
सरोकार क्या सुखी जगत् से?
जब दुख के जग में रहता हूँ!
मैं सुख का मधु मास नहीं मैं, अविरत दुख का ही पतझर हूँ!
मैं आहत का क्रन्दन स्वर हूँ!

निर्धन के दिल में कोमलता,
कोमलता में 'अपनापन' है,
धनवानों का दिल कठोर है,
उसमें क्या रहता जीवन है?
मुझे सुखी जग से लेना क्या? मैं तो दुखियों का अनुचर हूँ!
मैं आहत का क्रन्दन स्वर हूँ!

पंजाब में हिन्दी का विरोध

लेखक, पण्डित वेङ्कटेश नारायण तिवारी

काश्मीर की रियासत और पंजाब की सरकार अपनी अपनी अमलदारी से हिन्दुओं को निकाल फेंकने पर कटिबद्ध दीखती है। काश्मीर में, कुछ दिन हुए, शिक्षा-सुधार-समिति वहाँ की सरकार के द्वारा नियुक्त हुई थी। उसके सभापति थे मौलाना सैयदेन और सदस्यों में से एक थे जामिआ-मिल्लिया के प्रधानाचार्य डाक्टर जाकिर हुसेन। ये वही बुजुर्ग हैं जिनका नाम बुनियादी तालीम-योजना के सम्बन्ध में अक्सर सुनाई देता है। आपकी यह भी राय है कि युक्तप्रान्त और बिहार में उर्दू-लिपि और नागरी-लिपि प्रारम्भिक कक्षाओं के विद्यार्थियों के लिए अनिवार्य कर दी जायें। आप उर्दू-भाषा के हिमायती नहीं हैं, क्योंकि आप 'हिन्दुस्तानी'-भाषा के हमदर्द हैं, यद्यपि आपकी राय में जिस जबान को वे बोलते और लिखते हैं उर्दू कहें तो आपको कोई आपत्ति नहीं होगी, क्योंकि उर्दू और हिन्दुस्तानी में डाक्टर साहब को फ़र्क़ नहीं दिखाई देता है। आप चाहते हैं कि बिहार और युक्तप्रान्त में विद्यार्थियों के लिए उर्दू और देवनागरी लिपियों का सीखना लाज़िमी हो जाय। लेकिन इसके विपरीत काश्मीर में आप केवल उर्दू-लिपि के प्रचार के हामी हैं। आपकी और काश्मीरी शिक्षा-समिति के अन्य मेम्बरों की यह निश्चित धारणा है कि राष्ट्रीयता की दृष्टि से काश्मीर-रियासत में स्कूली लड़कों को केवल उर्दू-लिपि के द्वारा शिक्षा दी जानी चाहिए। डाक्टर जाकिर हुसेन और उनके साथियों की इन दो विभिन्न रायों और सम्मतियों के पीछे क्या रहस्य छिपा हुआ है, इसका उत्तर आप जानना चाहते हैं तो नीचे के आँकड़ों पर कृपया ध्यान दीजिए—

आँकड़े लाख में

प्रान्त	हिन्दू	मुसलमान
युक्तप्रान्त	४१०	७२
बिहार	२५१	४१
काश्मीर और जम्मू	७	२८

हिन्दू-प्रधान प्रान्तों में डाक्टर जाकिर हुसेन देवनागरी-लिपि के साथ-साथ उर्दू-लिपि का प्रचार करना चाहते हैं, लेकिन मुस्लिम-प्रधान काश्मीर में केवल उर्दू-लिपि के प्रचार के वे पक्षपाती हैं। हिन्दू-प्रधान प्रान्तों में वे अल्प-संख्यकों की भाषा और लिपि की दोहाई देकर उर्दू-लिपि और भाषा का प्रचार बहुसंख्यकों में करना चाहते हैं। लेकिन काश्मीर में उन्होंने अल्प-संख्यकों के हितों की कुछ भी चिन्ता नहीं की। वहाँ के विशुद्ध राष्ट्रवादी की हैसियत से अल्प-संख्यकों की माँग को ठुकराकर उनके बच्चों को उर्दू-भाषा और उर्दू-लिपि की शिक्षा पाने के लिए विवश करने में अपना गौरव समझते हैं। इस प्रपंच और पाखण्ड की न कोई हद है और न इन्तहा। डाक्टर जाकिर हुसेन लिपि सम्बन्धी मामले में कलियुग के मुनियों का जामा पहनकर अवतरित हुए हैं। किसी समय वे शैव और किसी समय वैष्णव का रूप धरकर अपना उल्लू सीधा करना चाहते हैं। उनका न कोई उसूल मालूम होता है और न राजनीतिक ईमानदारी की उन्हें कुछ परवा है। उर्दू का येनकेन प्रकारेण सर्वत्र प्रचार हो, यह उनकी आन्तरिक अभिलाषा है। किन साधनों से हो, इसकी उन्हें चिन्ता नहीं, और देश आज दिन इतना बावला है कि राष्ट्रीयता के नाम पर डाक्टर जाकिर हुसेन और उनके साथियों के पाखण्ड का विरोध करना तो दूर रहा, उलटा स्वागत करता है। कांग्रेसी सरकारों ने इन्हीं जाकिर हुसेन और इनके दूसरे सहायकों को अपना गुरु मान रक्खा था। ये सरकारें बिला उनकी आज्ञा के शिक्षा के सम्बन्ध में एक भी क़दम न आगे बढ़ने और न पीछे हटने को तैयार थीं। ये कठपुतली का नाच इन्हीं बने हुए राष्ट्रवादियों के इशारे पर नाचा करती थीं। डाक्टर जाकिर हुसेन राष्ट्रवादी नहीं और न वे हिन्दुस्तानी-भाषा के उस रूप के समर्थक हैं जिस रूप का समर्थन महात्मा गाँधी और श्री जवाहरलाल नेहरू करते हैं। इन दोनों नेताओं का आदर्श राष्ट्रीय है, लेकिन डाक्टर जाकिर हुसेन के से साहित्यिक बकुला भक्तों का दृष्टिकोण एकदम साम्प्रदायिक है। उर्दू को सर सैयद अहमद की तरह वे भी हिन्दुस्तान के मुसलमानों की 'निशानी' समझते हैं। इस्लामी जज़बात और

असरात को इस मुल्क में बनाये रखने का सबसे बड़ा और सबसे सरल साधन इन साम्प्रदायिक गुरु घण्टालों की दृष्टि में उर्दू-लिपि और भाषा का प्रचार ही है। इसलिए जहाँ हिन्दुओं का बहुमत है, वहाँ वे हिन्दुओं को भी उर्दू-लिपि और भाषा पढ़ाने के लिए मजबूर करने पर उतारू हैं। लेकिन जिन प्रान्तों या रियासतों में हिन्दुओं का बहुमत नहीं है, वहाँ वे मुस्लिम बहुमत के ज़ोर से अल्प-संख्यकों की भाषा और लिपि को निहायत बेरहमी के साथ पैरों तले कुचलने को तैयार हैं। यही हाल पंजाब में भी है। वहाँ की लीगी गवर्नमेंट आजकल इस उधेड़-बुन में लगी हुई नजर आती है कि कैसे पंजाब में हिन्दी का अन्त कर दिया जाय। यद्यपि पंजाब में मुसलमानों की आबादी जहाँ ५७ सैकड़ा है वहाँ हिन्दू और सिक्खों की आबादी ४० प्रतिशत है। पंजाब और काश्मीर में खालिश उर्दू के द्वारा शिक्षा दी जाती है। युक्तप्रान्त, बिहार और मध्य-प्रान्त में यदि ज़ाकिर हुसेन और उनके साथियों की चालें चल गईं तो देवनागरी-लिपि के साथ-साथ उर्दू-लिपि का भी प्रचलन हो जायगा। इस तरह, भारत के एक बहुत बड़े भाग में उर्दू-लिपि जन-साधारण की लिपि हो जायगी और हिन्दी को इस प्रदेश के कुछ हिस्सों की एक वैकल्पिक लिपि का पद प्राप्त हो जायगा। इस पर भी काका कालेलकर हमें यह मंत्र पढ़ाते हैं कि हिन्दुस्तान की राष्ट्र-लिपि देवनागरी-लिपि होगी। यदि डाक्टर ज़ाकिर हुसेन और उनके साथी अपने प्रयत्न में सफल हो गये तो काका कालेलकर और उनके साथियों की वही हालत होगी जो राजा बलि की हुई थी—

"बलि चाह्यो आकाश को, हरि पठयो पाताल।"

काका कालेलकर और उनकी राष्ट्र-भाषा-समिति चली थी हिन्दी-भाषा और देवनागरी-लिपि को राष्ट्र-पद देने के लिए, लेकिन डाक्टर ज़ाकिर हुसेन वामन के रूप में प्रकट होकर हिन्दी-भाषा और लिपि के स्थान में उर्दू-भाषा और लिपि को राष्ट्र-भाषा बना डालेंगे। हैदराबाद का उदाहरण भी हमारे सामने है। वहाँ की ८५ प्रतिशत हिन्दू-रियाया को स्कूल और कालिजों में उर्दू के द्वारा शिक्षा दी जाती है, क्योंकि वहाँ की मुस्लिम सरकार ने उर्दू-भाषा और लिपि को सरकारी भाषा और लिपि स्वीकार कर लिया है। दक्षिण में उर्दू-भाषा और लिपि का सबसे बड़ा केन्द्र इस समय हैदराबाद है। जैसे हैदराबाद में वैसे पंजाब और काश्मीर में अधिकांश जनता की भाषा उर्दू नहीं है। वहाँ के मुसलमान निवासियों के लिए भी उर्दू एक परदेशी ज़बान है। इस पर भी वर्षों से इन दोनों सरकारों ने उर्दू-भाषा और लिपि को सरकारी भाषा और लिपि का पद दे रक्खा है और इस प्रकार जनता के गले के नीचे परदेशी ज़बान और लिपि उतारने की कोशिश बहुत दिनों से जारी है।

× × ×

अब आप पंजाब को लें। जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, पंजाब की कुल आबादी २३६ लाख है। वहाँ हिन्दुओं की संख्या ६३ लाख, सिक्खों की संख्या ३१ लाख, मुसलमानों की १३३ लाख और ईसाइयों की तीन लाख है। इस प्रान्त में विभिन्न भाषा-भाषियों की संख्या निम्नलिखित है—

भारतीय आर्य-भाषायें ९९० प्रति हज़ार की मातृ-भाषा हैं। पूर्वी और पश्चिमी बंगाल में बोलनेवालों की संख्या हज़ार में ७६८ है। इसकी तुलना में पंजाब में हिन्दी-भाषा बोलनेवालों की संख्या हज़ार में केवल १४० है। पूर्वी पंजाब में बोलनेवालों की तादाद १४५ लाख और पश्चिमी पंजाब में बोलनेवालों की संख्या ४० लाख है—अर्थात् पंजाब-प्रान्त में जिन लोगों की मातृ-भाषा पंजाबी है उनकी संख्या ९७५ लाख सन् १९३१ की मनुष्य-गणना के हिसाब से थी। इसका अर्थ यह है कि पंजाब के २३६ लाख स्त्री-पुरुषों में १७५ लाख की मातृ-भाषा न हिन्दी, न उर्दू, न हिन्दुस्तानी, किन्तु पंजाबी है। यानी पंजाब में ७७७ आदमी पंजाबी बोलते हैं। वहाँ केवल १४ आदमी हिन्दुस्तानी अर्थात् हिन्दी या उर्दू बोलते हैं। छः फ़ी सदी आदमी पश्चिमी पहाड़ी भाषा के और दो फ़ी सदी राजस्थानी के बोलनेवाले हैं। जिनकी मातृ-भाषा पंजाबी है, लेकिन जो 'हिन्दुस्तानी'-भाषा को भी बोलते हैं उनकी संख्या १२१ हज़ार है। लेकिन हिन्दुस्तानी-भाषा-भाषियों में से केवल ६९ हज़ार ऐसे आदमी थे जिन्हें पंजाबी का भी ज्ञान था। ये आँकड़े मैंने पंजाब-प्रान्त की १९३१ वाली मर्दुमशुमारी की रिपोर्ट से लिये हैं। रिपोर्ट के लेखक का नाम है खान अहमद हसन खाँ, एम० ए० क़ैसरे हिन्द। एक मुस्लिम सज्जन

को लिखी हुई रिपोर्ट से ही हमें यह पता चलता है कि पंजाब में हिन्दी या उर्दू या हिन्दुस्तानी बोलनेवालों की संख्या १४ सैकड़ा है और पंजाबी बोलनेवालों की संख्या ७७ प्रतिशत है। तब किसी पाठक को इसमें सन्देह करने की कोई भी गुंजाइश नहीं कि पंजाब-प्रान्त की भाषा आज भी पंजाबी है। वहाँ की भाषा न तो हिन्दी है और न उर्दू। लेकिन इस पंजाबी-भाषी पंजाब में पंजाबी भाषा का वहाँ की सरकार की नजर में कुछ भी मान नहीं। वहाँ की सरकारी लिपि फ़ारसी-लिपि है और वहाँ की सरकारी भाषा पंजाबी नहीं किन्तु उर्दू-भाषा है। पंजाब में हिन्दू, मुसलमान, सिक्ख और ईसाई प्रायः सभी घर-बाहर पंजाबी-भाषा ही का प्रयोग करते हैं। साधारण जलसों में भी सभी सम्प्रदाय के वक्ता पंजाबी-भाषा में भाषण करते हैं। रात दिन जो कुछ वहाँ पर काम किया जाता है, निस्सन्देह वह इसी पंजाबी-भाषा के सहारे होता है। पंजाब में पंजाबी का वही स्थान है जो स्थान बंगाल में बँगला-भाषा को, गुजरात में गुजराती-भाषा को, महाराष्ट्र में मरहठी-भाषा को या तामिल नाड में तामिल-भाषा को प्राप्त है। लेकिन बंगाल की सरकारी भाषा बँगला है, मदरास के तामिल-प्रदेश की सरकारी भाषा तामिल है, गुजरात-प्रान्त की सरकारी भाषा गुजराती मानी गई है और महाराष्ट्र में मरहठी सरकारी भाषा है, किन्तु पंजाब में पंजाबी को वह स्थान नहीं प्राप्त है। ७७ फ़ी सदी की मातृ-भाषा को सरकारी भाषा न मान कर शासकों ने फ़ारसी-लिपि और उर्दू-भाषा को सरकारी भाषा का पद पंजाब में दिया था और यद्यपि १९२१ में और उसके बाद १९३७ में शासन में सुधार हुआ, तथापि मुस्लिम बहुमत ने भाषा के सम्बन्ध में वही नीति जारी रक्खी जिसका सूत्रपात अँगरेज़ी अमलदारी के ज़माने में विदेशी शासकों ने पंजाब में अँगरेज़ी सत्ता के स्थापित होने के बाद राजनीतिक कारणों से किया था। समय समय पर पंजाबी-भाषा के हिमायतियों और पंजाब के अन्य पढ़े-लिखे लोगों ने पंजाबी-भाषा को पंजाब की सरकारी भाषा का पद दिलाने की चेष्टायें कीं, लेकिन न तो ब्रिटिश हाकिमों ने और न मुस्लिम बहुमत ने उनका समर्थन किया। पंजाब के पढ़े-लिखे मुसलमान बोलेंगे पंजाबी, लेकिन उर्दू-भाषा को मुसलमानों की 'निशानी' मानकर उसको आदरस्थ करने के लिए कदापि तैयार नहीं होंगे। क्या ढोंग और प्रपंच है, जब हमसे यह कहा जाता है कि हिन्दुस्तान भर के मुसलमानों की मादरी ज़बान उर्दू है। पंजाब के मुसलमानों ही को ले लीजिए। वहाँ उनकी संख्या १ करोड़ १३ लाख है और यदि हम यह मान भी लें—यद्यपि ऐसा मानना प्रत्यक्ष रूप से ग़लत होगा—कि पंजाब के ४० लाख 'हिन्दुस्तानी'-भाषियों में भी हिन्दू या सिक्ख नहीं मिलते हैं और ये सबके सब मुसलमान हैं, तो भी इस बात को स्वीकार करने से कोई नहीं भाग सकता कि पंजाब में भी एक करोड़ १३ लाख मुसलमानों में से केवल ४० लाख ऐसे हैं जिनकी मातृ-भाषा हिन्दुस्तानी-भाषा है, पंजाबी-भाषा नहीं। अर्थात् पंजाब के १३ मुसलमानों में से कम से कम ९ ऐसे हैं जिनकी मातृ-भाषा पंजाबी है, उर्दू नहीं।

इस सम्बन्ध में हम पाठकों को सन् १८३७ ईसवी में प्रचारित उस घोषणा की याद दिलाना चाहते हैं जिसे ईस्ट इंडिया कम्पनी के बोर्ड आफ़ डाइरेक्टर्स ने निकाली थी। इस घोषणा के अनुसार पंजाब में अँगरेज़ी-भाषा और लिपि तथा पंजाबी-भाषा और गुरमुखी-लिपि को तो सरकारी पद मिलना चाहिए था, लेकिन ग़दर के कुछ साल पहले पंजाब पर जब अँगरेज़ों का क़ब्ज़ा हो गया तब वहाँ सरकारी भाषाओं और लिपियों का पद दिया गया अँगरेज़ी और फ़ारसी को। वहाँ भी वही हुआ जो बिहार, युक्तप्रान्त, मध्यप्रान्त और उड़ीसा में हुआ था। वहाँ की प्रान्तिक भाषाओं के स्थान में सरकारी अहलकारों ने उर्दू का चलन कर दिया। वर्षों की नीति के बाद बिहार, उड़ीसा और मध्यप्रान्त को अहलकारों की इस भाषा-सम्बन्धी अहमन्यता से छुटकारा मिल गया, लेकिन युक्तप्रान्त और पंजाब आज दिन भी इसी साम्प्रदायिक हठधर्मी और पक्षपात के शिकार बने हुए हैं।

पंजाबी-भाषा के साथ यह अन्याय क्यों किया जाता है? इस अनर्थ और अत्याचार की क्या ज़रूरत है? क्या पंजाबी-भाषा कोई अनुन्नत बोली है, जिसके द्वारा सभ्य और उन्नत व्यापारों का सम्पादन सम्भव नहीं? सर जार्ज ग्रियर्सन ने भारतवर्ष की भाषाओं-सम्बन्धी जाँच में पंजाबी-भाषा के गुणों का मुक्त कण्ठ से गान किया है। उनकी रिपोर्ट के भाग ९, खण्ड ए०, पृष्ठ ६०७-८०६ को वे पाठक

महोदय पढ़ने की कृपा करें जिन्हें इस विषय से दिलचस्पी है। यहाँ पर तो हम उनके मुख्य कथनों का सार मात्र ही देकर सन्तोष करेंगे। सर जार्ज ग्रियर्सन के अनुसार पंजाबी एक भारतीय आदि-भाषा है, जिसमें सिन्धी की तरह तद्भव शब्दों का एकमात्र साम्राज्य है। इस भाषा में तत्सम शब्दों का एक तरह से अभाव है। मिस्टर बीम्स के कथन को सर जार्ज ग्रियर्सन ने उद्धृत किया है और मिस्टर बीम्स का कहना है कि पंजाबी और सिन्धी में गेहूँ के आटे की सुगन्ध है और किसानों की कुटीरों का सौरभ। इस पर सर जार्ज ग्रियर्सन ने यह लिखा है कि यद्यपि भाषा का रूप घरेलू है, परन्तु इसका यह अर्थ नहीं है कि वह अपरिष्कृत है या उसमें साहित्य का सृजन नहीं हो सकता। पंजाबी में हर प्रकार के भाव और विचार सुगमता से व्यक्त किये जा सकते हैं और गद्य तथा पद्य के लिए यह भाषा एक-सी उपयुक्त है। इतनी समृद्धशालिनी भाषा का उसी के घर में इतना अनादर हो, इस बात को देख कर किसका हृदय विदीर्ण नहीं होगा। यदि आज दिन पंजाबी-भाषा में साहित्य का अभाव है तो इसका यह कारण नहीं है कि भाषा सदोष और अपूर्ण है, किन्तु इसका कारण है उन लोगों की उपेक्षा जिनके हाथ में शासन की बागडोर वर्षों से चली आई है। यदि पंजाबी को भी मरहठी, गुजराती या बँगला के समान प्रश्रय मिला होता तो इसमें कुछ भी सन्देह नहीं कि आज दिन इस भाषा में भी उसी तरह का साहित्य हमारे लिए सुलभ होता जिस तरह का साहित्य बँगला, गुजराती और महाराष्ट्री में हमें प्राप्त है।

अब प्रश्न के दूसरे पहलू पर विचार कीजिए। मान लीजिए पंजाब में पंजाबी-भाषा का उसी तरह से चलन और समादर है, उसे अपने घर और सरकार और जनता के द्वारा वही पद और मान प्राप्त है जो बंगाल में बँगला, गुजरात में गुजराती का रुतबा है। यह भी मान लीजिए कि पंजाब के मुसलमान राष्ट्र-भाषा की दृष्टि से उर्दू-भाषा और लिपि को भी सीखना चाहते हैं तो यहाँ पर प्रश्न यह उठता है कि जो अधिकार पंजाब के बहुसंख्यक मुसलमान अपने लिए चाहते हैं वही अधिकार वहाँ के अल्प-संख्यक हिन्दुओं और सिक्खों को क्यों न दिया जाय? यदि पंजाब में मुसलमानों की आबादी ५७ प्रतिशत है तो हिन्दुओं की भी आबादी वहाँ २७ प्रतिशत से ज़्यादा और सिक्खों की संख्या १३ सैकड़ा है। आज अकथ परिश्रम से पंजाब-प्रान्त में हिन्दी का प्रचार बहुत काफ़ी बढ़ रहा है। एक समय था जब वहाँ उसका बहुत कम प्रचार था। लेकिन अब वहाँ की दशा वैसी नहीं रह गई है। युक्तप्रान्त में जितनी उर्दू की पुस्तकें सन् १९३८ में प्रकाशित हुई उनकी संख्या ९ फ़ी सदी से कम थी, यद्यपि यह प्रान्त मुस्लिम संस्कृति का केन्द्र समझा जाता है। पंजाब में १९२२, १९२७, और १९३२ तक में हिन्दी, उर्दू और पंजाबी में जितनी पुस्तकें प्रकाशित हुईं उनकी संख्या हम नीचे देते हैं—

सन्	उर्दू	पंजाबी	हिन्दी
१९२२	६७९	९६६	१०१
१९२७	१,२०२	६०६	१९५
१९३२	६१४	५९६	१२६

१९३१ में तीनों लिपियों में प्रकाशित होनेवाले पत्रों की तुलना पर भी कृपया दृष्टिपात कीजिए—

पत्र	दैनिक	साप्ताहिक	मासिक	दूसरे	कुल जोड़
उर्दू	२२	१०९	१०७	२०	२५८
गुरमुखी	२	१६	१६	३	३७
हिन्दी	१	२	१३	२	१८

इनमें से प्रत्येक पत्र की नियमित औसत ग्राहक-संख्या १२०० थी। इस तरह से हिन्दी-अख़बारों के ख़रीदनेवालों की तादाद १९३१ में लगभग २२,००० थी। १९३१-४० की अवधि में हिन्दी ने और भी कहीं अधिक उन्नति की है।

पंजाब में सन् १९२२-३१ के बीच में उर्दू की प्रायः ९२ किताबों की तुलना में पंजाबी में ७३ और हिन्दी में २२ पुस्तकें प्रकाशित हुईं, अर्थात् इस एक ही वर्ष की अवधि के बीच में पंजाबी और हिन्दी में मिला कर यदि ९५ पुस्तकें प्रकाशित हुईं तो उर्दू में केवल ९२ किताबें निकलीं। इसकी युक्तप्रान्त से तुलना कीजिए। इस प्रान्त में १९३६ में ८९ प्रतिशत किताबें यदि हिन्दी की निकलीं तो ११ प्रतिशत किताबें उर्दू की प्रकाशित हुईं। जिस प्रान्त में उर्दू का इतना कम चलन है उस प्रान्त में सरकारी भाषा तो उर्दू मानी जाय, लेकिन जहाँ पर पंजाबी और हिन्दी की पुस्तकों की सम्मिलित संख्या उर्दू की प्रतिशत पुस्तकों की तुलना में अधिक है वहाँ पर न तो पंजाबी की

और न हिन्दी की वहाँ की सरकार की नज़र में कोई इज़्ज़त है। डाक्टर ज़ाकिर हुसेन युक्तप्रान्त में आकर हमें यह सलाह देने को तैयार है कि हिन्दी-भाषा और देवनागरी-लिपि के साथ-साथ उस भाषा और उस लिपि की पढ़ाई अनिवार्य कर दी जाय जिस भाषा और जिस लिपि की इस सूबे में केवल ११ प्रतिशत किताबें सन् १९३६ में प्रकाशित हुई थीं और सन् १९३८ में ऐसी पुस्तकों की संख्या ११ प्रतिशत से घट कर सिर्फ़ ९ प्रतिशत रह गई थी। लेकिन डाक्टर ज़ाकिर हुसेन पंजाब जाने का कष्ट नहीं उठाना पसन्द करते। यदि वे वहाँ तशरीफ़ ले जायँ तो हमें आशा है कि वे सर सिकन्दर हयात खाँ और उनके साथियों को यह सलाह दें कि उर्दू के साथ ही साथ पंजाबी और हिन्दी को भी समान पद मिलना चाहिए। डाक्टर ज़ाकिर हुसेन और उनके दूसरे दोस्त युक्तप्रान्त में उर्दू के संरक्षण के लिए क्यों इतने बेताब दीखते हैं जब वे पंजाब में खुद पंजाबी और हिन्दी-भाषाओं के साथ न्याय भी करने के लिए तैयार नहीं? मिस्टर ब्लन्ट के अनुसार युक्तप्रान्त में ऐसे लोगों की संख्या जिनकी मातृ-भाषा उर्दू है, केवल आठ फ़ी सदी है। आठ फ़ी सदी को प्रसन्न रखने के लिए युक्तप्रान्त में तो उर्दू को सर्वाराध्य बनाने की रात-दिन कोशिश होती है, लेकिन पंजाब के प्रान्त में ७७ फ़ी सदी की जिनकी मातृ-भाषा पंजाबी है, कुछ भी परवा नहीं की जाती। इतना ही यदि होता तो भी शिकायत का काफ़ी मौक़ा था, लेकिन पंजाब की हयाती हुकूमत साम्प्रदायिक संकीर्णता की नीति के कारण और भी आगे बढ़ने जा रही है। वहाँ पर इस बात की कोशिश की जा रही है कि जिन स्कूलों में हिन्दी या गुरमुखी की शिक्षा दी जाती है उन स्कूलों को सरकारी मदद न मिलने पाये। पाठकों को याद होगा कि सर अब्दुल क़य्यूम ने इसी तरह की आज्ञा सीमाप्रान्त में दी थी। वही करने पर अब पंजाब की सरकार तुली हुई है। हमें अब भी आशा है कि पंजाब में ऐसी कोई बात न होने पावेगी। वहाँ के हिन्दी-हितैषी सजीव हैं और हमें बेहद खुशी होगी कि सर सिकन्दर हयात और उनके दूसरे साथी हिन्दी और पंजाबी-भाषाओं को अनतिदूर भविष्य में उसी तरह का समान पद देने के लिए तैयार हो जायँगे जिस तरह का पद इस समय केवल उर्दू-भाषा और उर्दू-लिपि को वहाँ प्राप्त है। लेकिन जब तक ऐसा नहीं होता तब तक उन कांग्रेसी और ग़ैर-कांग्रेसी मुस्लिम दोस्तों से हम यह कहेंगे कि वे युक्तप्रान्त में उर्दू की रक्षा की कोशिश को बन्द कर दें, क्योंकि हमारे सूबे में उर्दू के बहिष्कार की ग़लत नीति का समर्थन करते हुए हमने आज तक किसी ज़िम्मेदार आदमी को नहीं देखा। हमें एक भी कोई ऐसा ज़िम्मेदार नेता नहीं मिला जो युक्तप्रान्त में उर्दू-विरोधी हो। इसलिए हम कहते हैं कि उर्दू के संरक्षण की कोशिश युक्तप्रान्त में व्यर्थ और निरर्थक है। ज़रूरत है कि हमारे कांग्रेसी और ग़ैर-कांग्रेसी मुस्लिम दोस्त पंजाब में अपने मतावलम्बियों से पंजाबी और हिन्दी के प्रति कुटिल अन्याय और अत्याचार को बन्द कर देने के लिए मजबूर करें। यदि वे ऐसा नहीं करेंगे तो उनकी निष्पक्षता में, उनकी राष्ट्रीयता में और उनकी अल्प-संख्यकों के प्रति सहानुभूति में लोगों को सन्देह होने लगेगा। लेकिन कहा जायगा कि वहाँवाले न्याय के साथ नहीं हैं? ये तो उर्दू की रक्षा की आवाज़ केवल इसलिए उठाते हैं कि कहीं हिन्दू-प्रधान प्रान्त से मुस्लिम 'निशानी' उखड़ न जाय।
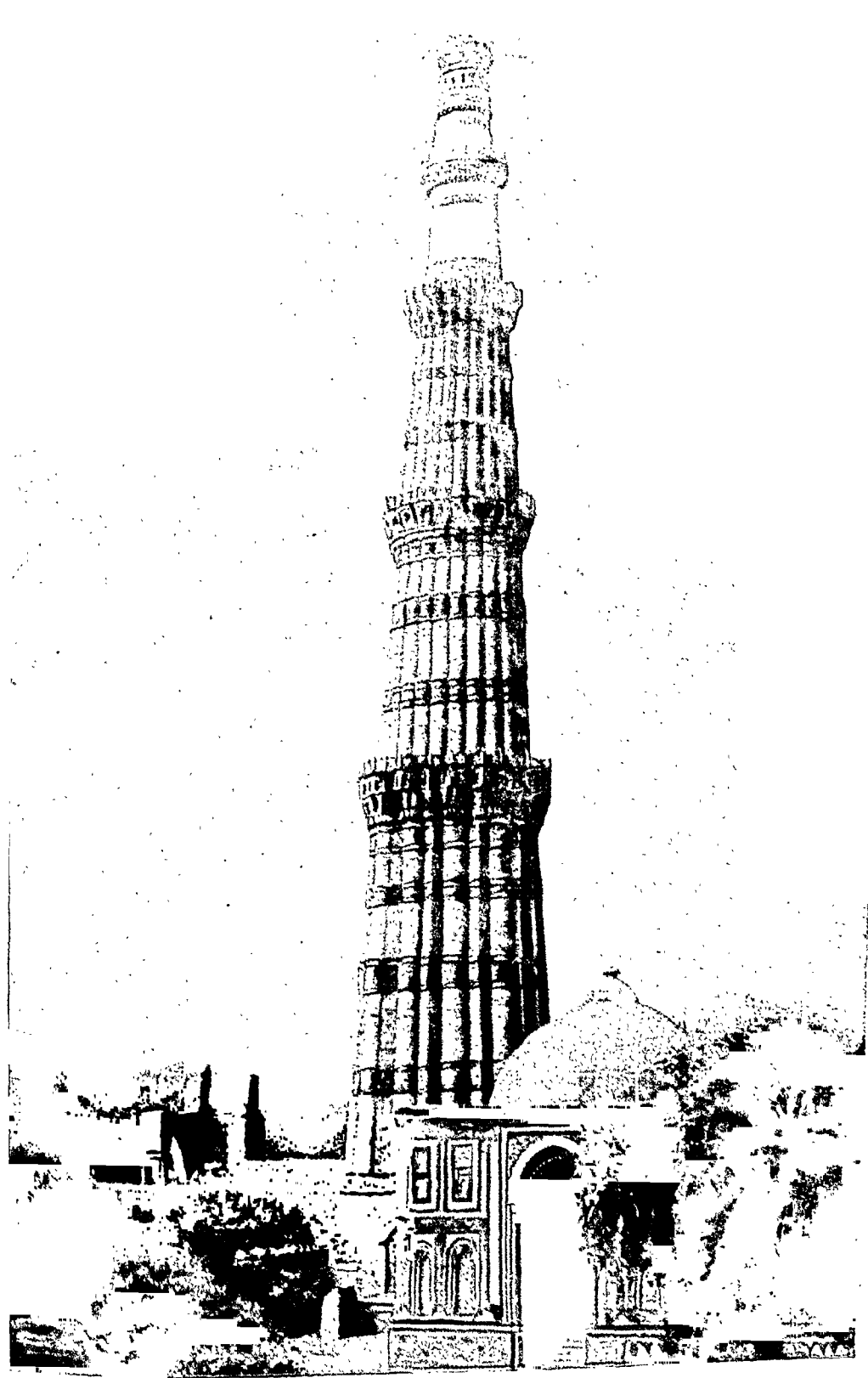
क़ुतुबमीनार, दिल्ली
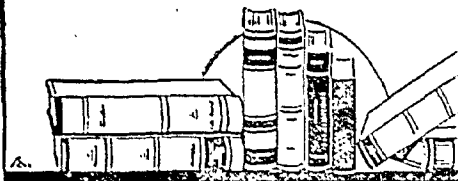
१-३ भारतीभवन, लीडर प्रेस, इलाहाबाद की ३ पुस्तकें—

१—ईरान के सूफ़ी कवि—सम्पादक, सर्वश्री बांकेविहारी व कन्हैयालाल हैं। छपाई उत्तम, पृष्ठ-संख्या ४११ और सजिल्द पुस्तक का मूल्य ४।।) है।

इस पुस्तक में ईरान के ९ सूफ़ी कवियों—सनाई, उमर खैयाम, निज़ामी, फ़रीदुद्दीन अत्तार, रूमी, शेखसादी, शब्सतरी, हाफ़िज़ और जामी का संक्षिप्त परिचय उनकी कविताओं के नमूनों के साथ दिया गया है। कविताओं का हिन्दी-भाषा में अनुवाद भी कर दिया गया है।

फ़ारसी के सूफ़ी-साहित्य का प्रभाव हमारे देश की उर्दू-कविता पर पूरा पूरा पड़ा है। लैला और शीरीं, खिज़्र, आवेवक़ा और मूसा आदि की कहानियाँ व गुल-बुलबुल आदि शब्द सीधे फ़ारसी से उर्दू में आये हैं। यही नहीं, यहाँ का सन्त-साहित्य भी सूफ़ीवाद से बहुत कुछ प्रभावित है। हिन्दीवालों के लिए फ़ारसी की इस प्रकार की कविता की थोड़ी-बहुत जानकारी इसलिए भी आवश्यक है क्योंकि उसकी मूल-प्रकृति के जाने विना हिन्दी के सन्त-साहित्य की प्रवृत्तियों का पूरा पूरा समझ सकना कठिन है। पर अभी तक हिन्दी में इस कार्य में सहायता देनेवाली कोई पुस्तक न छपी थी। इस अभाव की पूर्ति प्रस्तुत पुस्तक से बहुत कुछ हुई है। हमें विश्वास है कि साहित्य के विद्यार्थियों के निकट यह पुस्तक सम्मान प्राप्त करेगी। पर पुस्तक का भूमिका-भाग छोटा और शिथिल है। इसमें कुछ अधिक खोजपूर्ण व विवेचनात्मक सामग्री देकर पुस्तक की उपयोगिता बढ़ाई जा सकती थी। आशा है, अगले संस्करण में यह कमी दूर कर दी जायगी।

२—दो बहनें—(उपन्यास) लेखक, श्रीयुत भगवती-प्रसाद वाजपेयी हैं। पृष्ठ-संख्या २८८ और सजिल्द पुस्तक का मूल्य २) है।

वाजपेयी जी हिन्दी के लब्ध-प्रतिष्ठ कहानी-लेखक हैं। उनकी इस रचना में कला और सरसता का समान सम्मिश्रण हुआ है।

उपन्यास का प्रधान पात्र ज्ञानप्रकाश है; दिवाकर उसका प्रतिद्वन्द्वी है। आशा और लता दो सगी बहनें हैं, जो ज्ञानप्रकाश को प्रेम करती हैं। दिवाकर ज्ञानप्रकाश का मामा है। वह लता पर आसक्त है। लता ज्ञानप्रकाश को चाहती है, पर ज्ञानप्रकाश आशा को हृदय दे चुका है। यह एक प्रकार का प्रेम-चक्र है। इस गोरखधन्धे को अच्छे ढंग से सुलझाने के लिए ही लेखक महोदय ने अपनी प्रतिभा का सदुपयोग किया है। कथानक रोचक है और उसका विकास स्वाभाविक ढंग से हुआ है। चरित्र-चित्रण भी सफल है। व्यर्थ के पात्रों की भरमार न होने से कथा में एक सरलतापूर्ण रोचकता आ गई है और पाठक उलझन में न पड़ कर कथाकार के साथ साथ चलता रहता है। यह इसकी दूसरी विशेषता है। कथोपकथन के कुछ अंशों को एकदम अँगरेज़ी में देकर और फ़ुटनोट में भी उनका अनुवाद न देकर केवल हिन्दी जाननेवाले पाठकों के साथ न्याय नहीं किया गया है। पात्रों में 'आशा' का अन्त तो ठीक हुआ है, पर 'लीला' का भविष्य 'ज्ञानप्रकाश' के एकाएक चले जाने से लटका ही रह जाता है। उसके साथ पाठक के दिमाग़ में भी कुछ जिज्ञासा रह जाती है। आखिर उसका अपराध इतना गुरु नहीं था, जितना उसे दंड मिला है। 'मन्दा' का चरित्र भी कुछ अपूर्ण-सा रह गया है। ज्ञानप्रकाश, आशा, दिवाकर और राय साहब के चरित्र-चित्रण पूर्ण सफल हुए हैं। डाक्टर गंगोली को लेखक महोदय ने एक स्थान पर 'हँसी का सामान' बनाने का प्रयत्न किया, पर उधर सफलता मिलती न देखकर उन्होंने ग़ज़ब का संयम भी दिखला दिया है, जो अच्छा ही हुआ। सब मिलाकर पुस्तक रोचक है और इसके लिए हम वाजपेयी जी को बधाई देते हैं।

३—एक घूँट—लेखक, स्वर्गीय श्री जयशंकरप्रसाद हैं। मूल्य ।।) है। गेट-अप सुन्दर, पृष्ठ-संख्या ५९ है।

का जहाँ ज़िक्र किया है, वहाँ श्री भगवतीचरण वर्मा, श्री भगवतीप्रसाद वाजपेयी, आदि कई ऐसे उपन्यासकारों का ज़िक्र न होना पाठक को अखरता है। आशा है, लेखक महोदय पुस्तक के दूसरे संस्करण में इस प्रभाव की पूर्ति कर देंगे।

फिर भी पुस्तक सुन्दर बन पड़ी है। और पाठकों के—विशेष कर विद्यार्थियों के सामने हिन्दी के सामाजिक उपन्यासों की एक स्पष्ट रूप-रेखा प्रस्तुत करती है।

६—**रजकण**—लेखिका, श्रीमती शकुन्तला श्रीवास्तव हैं, प्रकाशक, पटना-पब्लिशर्स, पटना है। मूल्य ॥) है, सजिल्द का १) है। पृष्ठ-संख्या ८८ है।

प्रस्तुत कविता संग्रह को देखकर जान पड़ता है कि कवयित्री का भविष्य आशापूर्ण है। उनकी हिन्दी-साहित्य को यह प्रथम देन है। ऐसा जान पड़ता है कि कवयित्री महोदया छायावाद के अज्ञात तथा अस्पष्ट संसार की ओर न अग्रसर होकर जीवन के अनुभवों से अधिक प्रभावित हैं। उन पर श्रीमती सुभद्राकुमारी चौहान और श्रीमती ललीं जी का प्रभाव अधिक पड़ा है फिर भी अनेक स्थलों पर वे छायावादी कवियों से भी प्रभावित हुई प्रतीत होती हैं। कुछ कवितायें तो काफ़ी अच्छी बन पड़ी हैं। 'शिशु', सान्त्वना', 'उलाहना' आदि कवितायें सुन्दर हैं, जिनके आधार पर हम यह कह सकते हैं कि आगे चलकर कवयित्री हिन्दी को और भी सुन्दर साहित्य प्रदान करेंगी। भाषा सरल, किंतु प्राञ्जल है सही कवयित्री की एक विशेषता है जिससे वह जनता की कवयित्री हो सकती है।

७—**गांधी जी**—अनुवादक श्री प्रभुदयाल विद्यार्थी, प्रकाशक छात्र हितकारी पुस्तकमाला, दारागंज प्रयाग हैं। मूल्य ॥) है, पृष्ठ-संख्या ९२ है।

प्रस्तुत पुस्तक गुजराती की मूल-पुस्तक का अनुवाद है। इसके लेखक हैं श्री जुगतराम दवे। महात्मा जी कठोर व्रती तथा एक क्रान्तिकारी सुधारक हैं। उनके जीवन के अनेक पहलुओं में से सत्याग्रह, अहिंसा, सत्य और ईश्वर-भक्ति प्रमुख है, जिन पर उन्होंने बहुत कुछ लिखा है। उनके जीवन के सिद्धान्त सरल हैं और प्रत्येक मनुष्य उन्हें सरलता से प्राप्त कर सकता है, पर इसके लिए धुन की आवश्यकता है। प्रस्तुत पुस्तक महात्मा जी की जीवनकथा को संक्षिप्त रूप देकर राष्ट्र की भावी संतानों के लिए उक्त चीज़ों की आवश्यकता पर प्रकाश डाला गया है। लेखनशैली बालमनोविज्ञान के सिद्धान्त-समन्वित और रोचक है। आद्योपान्त पुस्तक इतनी सरल व आकर्षक है कि बालकों का एक बार उठा लेने पर छोड़ने को जी न चाहेगा। अनुवाद की भाषा सरल तथा मुहावरेदार है। बालकों के लिए यह पुस्तक विशेष उपयोगी है।

८—**मौलाना अबुलकलाम आज़ाद**—लेखक, श्री रमेशचन्द्र आर्य, प्रकाशक, विजयपुस्तक-भंडार, श्रद्धानन्द बाज़ार, देहली हैं। मूल्य ।=) है, पृष्ठ-संख्या ७६ है।

राष्ट्रपति आज़ाद उन मुसलमानों में से हैं जिनके हृदय-सिन्धु में राष्ट्रीयता की उमंगें लहरें लेती हैं, जिनकी सम्पूर्ण शक्ति भारत की परतन्त्रता की बेड़ियों को काटने में लगी हुई है। मौलाना साहब महात्मा गान्धी के परम भक्त हैं। उनका जीवन क्रान्ति की घटनाओं से पूर्ण है। इस पुस्तक में उनका जीवन-चरित सरल भाषा में लिखा गया है। लेखन-शैली यद्यपि ओजपूर्ण नहीं है, फिर भी पुस्तक को रोचक बनाने के लिए काफ़ी प्रयत्न किया गया है। भाषा सरल तथा सुबोध है। पुस्तक को पढ़ने के पश्चात् हमें आज़ादी के इस दीवाने के जीवन की एक झाँकी प्राप्त हो जाती है।

९—**आत्मतेज या स्वामी समन्तभद्र**—लेखक, श्री भगवतस्वरूप जैन 'भगवत्', प्रकाशक, श्री भगवतभवन पुस्तकालय, एत्मादपुर आगरा हैं। मूल्य ॥।) है, पृष्ठ-संख्या ३० है।

यह छोटी सी पुस्तिका, जैसा कि नाम से ही प्रकट है स्वामी समन्तभद्र की जीवन-कथा है। स्वामी जी का जैन-समाज में बहुत अधिक मान है। पुस्तक जैनियों के अधिक काम की है, परन्तु साधारण पाठक भी इस जीवन-कथा से कुछ लाभ उठा सकता है। तर्ज राधेश्याम रामायण का है।

१०—**बुलबुल** लेखक, श्री जोतिनप्रसाद और प्रकाशक, ग्रन्थमाला-कार्यालय, बाँकीपुर है। मूल्य ॥) है, पृष्ठ-संख्या १२० है।

बुलबुल में लेखक, की १६ कहानियाँ संगृहीत हैं। प्रत्येक कहानी-द्वारा बालकों को किसी न किसी आदर्श की

शिक्षा दी गई है। बच्चों के लिए जो कहानियाँ बहुधा लिखी या कही जाती हैं उनका उद्देश्य केवल बालकों का मनोरंजन करना ही होता है, परन्तु बुलबुल की कहानियाँ मनोरंजन करने के साथ ही साथ उनके मस्तिष्क के लिए कुछ भोजन भी प्रदान करती हैं। इस पुस्तक की प्रायः सभी कहानियाँ प्रकृति की सुखदायिनी गोद में ही खेलती हैं। भाषा सरल किन्तु कवित्वपूर्ण है। 'एकतारा', 'वह चित्र', 'भाई-बहन', 'पतझड़' आदि कहानियाँ अच्छी बन पड़ी हैं।

—अनन्तप्रसाद विद्यार्थी बी० ए०

११—हमारा ग्राम साहित्य—लेखक, पंडित रामनरेश त्रिपाठी, प्रकाशक, हिन्दी-मंदिर, प्रयाग हैं। पृष्ठ-संख्या ५६–३३०, मूल्य २।) है। पुस्तक सजिल्द है।

पंडित रामनरेश त्रिपाठी ने ग्राम-गीतों का बड़े परिश्रम और लगन के साथ संग्रह किया है। उन्होंने ग्राम-गीतों का संग्रह भी पुस्तक-रूप में प्रकाशित किया है, और उनके उस संग्रह की भूरि भूरि प्रशंसा भी हुई है। उन्हें ग्राम-साहित्य के विशेषज्ञ समझकर ही प्रान्तीय सरकार के शिक्षा-विभाग ने उपर्युक्त पुस्तक लिखवाई है। इस पुस्तक के प्रणयन में त्रिपाठी जी ने विशेष सावधानी से काम लिया है। उन्होंने गीतों का विषयों के अनुसार संग्रह किया है, २५ विषयों के गीत तथा खेती की कहावतें आदि अर्थसहित इसमें संग्रह की गई हैं। साथ ही यह भी अधिकांश में निर्देश किया है कि कौन गीत किस ज़िले का है। त्रिपाठी जी इस बात के क़ायल नहीं हैं कि गीतों के साथ उनके स्थान का निर्देश किया जाय, यद्यपि भाषा-विज्ञान के विचार से यह बात अतीव आवश्यक है। त्रिपाठी जी का यह भी मत है कि भाषा की दृष्टि से संयुक्त-प्रान्त के गीतों को केवल दो भागों में—पूर्वी और पश्चिमी भागों में बाँटना चाहिए। उनका यह मत ठीक नहीं है, क्योंकि भाषा या बोलियों की दृष्टि से संयुक्त-प्रान्त कुरु, पांचाल, शूरसेन, वत्स, काशी, अवध आदि भागों में बहुत पहले से विभक्त है। परन्तु यह विषयान्तर की बात है। यह पुस्तक उन्होंने जिस दृष्टि-कोण से लिखी है उसमें उन्हें पूरी सफलता मिली है। उन्होंने बताया है कि गाँवों का समाज एक प्रकार का 'मौखिक विश्वविद्यालय' है और अपनी इस सूक्ति को उन्होंने इस सुन्दर पुस्तक-द्वारा भले प्रकार सिद्ध भी कर दिया है। इस पुस्तक का एक बार आकलन कर जाने से पाठक को यह बात हृदयङ्गम हो जाती है कि हमारे ग्रामवासी भी ज्ञानवान् हैं, और वे भी अपने ढंग से जीवन के रहस्य को समझते हैं। इसके सिवा इसके पढ़ने से पाठक के मन में ग्रामीणों के प्रति सहानुभूति जाग्रत हो जाती है और वह उनकी 'मौखिक यूनीवर्सिटी' का छात्र बनने को उत्सुक हो जाता है। इसमें सन्देह नहीं है कि इस पुस्तक के प्रणयन में त्रिपाठी जी को काफ़ी अधिक सफलता मिली है। आशा है, वे एक ऐसा भी संग्रह तैयार करने को अग्रसर होंगे जो भाषा-विज्ञान की दृष्टि से भी उपयोगी हो। उनके पास ग्रामगीतों का काफ़ी अधिक संग्रह है भी। अन्त में हम त्रिपाठी जी को उस सफल रचना के लिए बधाई देते हैं और आशा करते हैं कि हिन्दी के प्रेमी इस उपयोगी पुस्तक का संग्रह करके उससे लाभ उठाने का प्रयत्न करेंगे।

१२—दर्शन-तत्त्व-रत्नाकर—ज्ञानलोक, दारागंज, प्रयाग से प्राप्य। (प्रथम तथा द्वितीय भाग), लेखक, श्री सूरजमल मोनागी हैं। दोनों भागों की पृष्ठ-संख्या क्रमशः १६० व ३०६ है।

प्रस्तुत पुस्तक में विद्वान् लेखक ने दर्शनों तथा दर्शन-साहित्य से सम्बन्ध रखनेवाले विशिष्ट-शब्दों, वाक्यों, सिद्धान्तों आदि का बहुत ही सुबोध ढंग से विवेचन किया है। दर्शन ऐसा गूढ़ विषय बहुत ही सरल और सुबोध कर के प्रतिपादित किया गया है। भारत के जनसमूह में दार्शनिक भाव आधार रूप से व्याप्त हैं। हिन्दी तथा अन्य भारतीय भाषाओं में जो भी प्राचीन, अर्वाचीन साहित्य है उसमें दार्शनिक तत्त्व ओत-प्रोत हैं। उन्हें ठीक से समझने के लिए पाठकों को दर्शन-शास्त्र के ज्ञान की बड़ी आवश्यकता पड़ती है। प्रस्तुत पुस्तक से साधारण पढ़े-लिखे पाठकों को थोड़े में, बड़ी सरलता से सम्पूर्ण दर्शनों (६ नास्तिक तथा ६ आस्तिक दर्शनों) का तथा उन दर्शनों में प्रयुक्त होनेवाले विशिष्ट शब्दों का ज्ञान हो जाता है। सरल भाषा में दर्शन ऐसे गूढ़ विषय को इतनी अच्छी तरह से समझा सकने और साधारण पढ़े-लिखे स्त्री-पुरुषों के निमित्त बोधगम्य बना सकने में लेखक सफल हुए हैं।
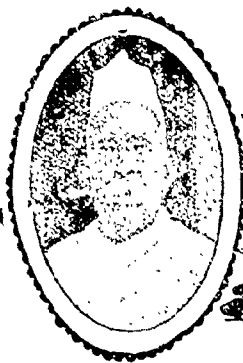
श्रीयुत बदरीनाथ गीता-वाचस्पति के नाम

(१)

भगवन्,

जुही, कानपुर, ता० २१ नवंबर १४

नमोनमः! आपका सौजन्यसूचक पत्र मिला। दो दफ़े पढ़ा। परमानन्द हुआ। मैं किसी योग्य नहीं। यह आपकी कृपा और उदारता है जो आप मुझे वैसा समझते हैं। आपका प्रेम मुझ पर है; इसी से आपको मेरे दोष नहीं देख पड़ते——

वसन्ति हि प्रेम्णि गुणा न वस्तुनि

मेरी लोग निन्दा करते हैं या स्तुति, इस पर मैं कभी हर्ष-विषाद नहीं करता। आप भी न किया कीजिए। मार्गभ्रष्ट कभी न कभी मार्ग पर आ ही जाते हैं। मेरा किसी से द्वेष नहीं, न लखनऊ के ही किसी सज्जन से, न और ही किसी से। उम्र थोड़ी है। वह द्वेष और शत्रुभाव-प्रदर्शन के लिए नहीं। मैं सिर्फ़ इतना करता हूँ कि जो मेरे हृद्‌गतभावों को नहीं समझते उनसे दूर रहता हूँ।

स्वामी दयानन्द सरस्वती का फोटो मेरे सिरहाने दीवार पर टँगा है। मैं रोज़ उनके दर्शन करता हूँ। वहीं शेषशायी विष्णु का भी चित्र है।

मेरी तन्दुरुस्ती खराब है। बाहर जाने में कष्ट होता है। मैं शहर कम जाता हूँ, शहर से दूर जंगल में एक कुटीर में रहता हूँ। इसी से सम्मेलन की सेवा नहीं कर सका। और कोई कारण नहीं।

आप बड़ी अच्छी हिन्दी लिखते हैं। कभी कभी कुछ लिख डाला कीजिए।

ईश्वर करे, कभी किसी दिन आपके दर्शनों का सौभाग्य मुझे प्राप्त हो।

विनीत

महावीरप्रसाद द्विवेदी

(२)

दौलतपुर—रायबरेली

१३-१२-१४

श्रीमन्,

१० दिसम्बर का पोस्ट कार्ड मिला। मैं आपके दूसरे पत्र का उत्तर दे चुका हूँ। तीन चार रोज़ हुए। आशा है, मिल गया होगा।

निवेदक

महावीरप्रसाद द्विवेदी

(३)

दौलतपुर—रायबरेली

२५-१२-१४

श्रीमन्,

२२ दिसम्बर का कृपाकार्ड मिला। मैं आपके पूर्व पत्र का उत्तर इलाहाबाद बैंक, मुरादाबाद के पते पर भेज चुका हूँ। वहाँ से मँगा लीजिएगा। मैंने समझा था कि आप बैंक में मुलाज़िम हैं।

मैं १०-१५ दिन बाद कानपुर लौट जाऊँगा। वहीं दर्शन दीजिएगा।

निवेदक

महावीरप्रसाद द्विवेदी

(४)

जुही, कानपुर,

ता० ३-२-१५.

प्रिय बाबू बदरीनाथ जी

बदायूँ से भेजा गया पत्र मिला। पहला पत्र भी मिल गया था।

आपके इस पत्र को पढ़कर खेद, आश्चर्य और कौतूहल—

सभी हुए। दुःख की बात है, आप लोग अपने ही समाज के लोगों पर अत्याचार कर रहे हैं।

बहादुरसिंह की बहादुरी पूर्ववत् अखण्डित रहने दीजिए। उन पर मुक़दमा तो क्या चलाऊँगा, परमेश्वर से प्रार्थना अवश्य करूँगा कि वह उन्हें विवेक, सहिष्णुता और उदारता दें।

वी० पी० लौट आने का कुछ भी हर्ष-विषाद नहीं। हर साल सैकड़ों वी० पी० लौटते हैं और सैकड़ों नये ग्राहक होते हैं।

कानपुर में समाज का भूकम्पकारी जल्सा होनेवाला है। बड़े बड़े महारथी आनेवाले हैं। शायद आप भी आवें।

मेरी तबीयत कोई १५ दिन ख़राब रही। अब अच्छा हूँ।

आशा है, आप प्रसन्न और कुशलपूर्वक हैं।

भवदीय

महावीरप्रसाद द्विवेदी।

(५)

दौलतपुर—रायबरेली,

११–५–१५

प्रियवर बदरीनाथ जी

९ मई का पत्र मिला। आपके पहले पत्र का उत्तर मैं कौंच के पते पर भेज चुका हूँ।

आप कानपुर में मेरे कुटीर पर गये और मैं न हुआ। इसे मैं अपना दुर्भाग्य समझता हूँ। मेरे साथ इस दफ़े लखनऊ के पं० रुद्रदत्त वाजपेयी आये थे। एक हफ़्ता रहे। आपको जानते हैं। मग में आपके विषय में बहुत बातें हुईं।

कौंच की दुर्घटना का हाल मैंने Leader में पढ़ा था। आपके पत्र से और भी कितनी ही बातें मालूम हुईं। सुनकर रंज हुआ। ईश्वर सिंह जी को शीघ्र ही आरोग्य करे। दूसरों के धर्म्म पर आक्रमण न हुआ करे तो अच्छा हो, इससे अनेक बुराइयाँ पैदा होती हैं। ये बातें झगड़े की जड़ हैं।

आज-कल यहाँ आने में और भी तकलीफ़ मिलती है। गंगा का रेत भड़भूजे का भाड़ हो जाता है। मैं स्वयं ही किसी मौक़े पर लखनऊ जाकर आपसे मिलूँगा।

मैं दो-ढाई महीने यहाँ रहूँगा।

—भवदीय

महावीरप्रसाद द्विवेदी।

(६)

जुही—कानपुर,

१६–९–१५

श्रीमन्,

नमो नमस्ते। कृपा-कार्ड मिला। मैं ४ महीने गाँव पर था। कल आया हूँ। मेरा हाल कुछ न पूछिए। वहाँ मकान के भीतर पानी भर गया। वहाँ गाँव पर आधा बाग़ तालाब में बह गया। कुछ पेड़ भी कट कर चले गये। बहुत नुक़सान हुआ। तबीयत ठीक नहीं। चित्त खिन्न रहता है। आशा है, आप प्रसन्न हैं। सौहार्द में कमी न होने पावे, यही "सेवा" मैं आपसे चाहता हूँ।

—भवदीय

महावीरप्रसाद द्विवेदी।

कुछ इधर उधर की
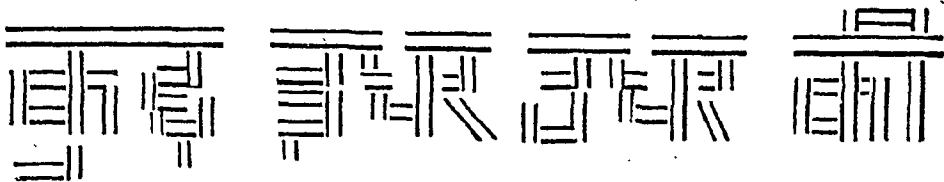
दो नये अन्वेषण

हिन्दी के प्रसिद्ध विद्वान् प्रोफ़ेसर सद्‌गुरुशरण अवस्थी ने दो बड़ी महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक खोजें की हैं। पहली तो यह है कि पृथ्वी की आकर्षण-शक्ति का पता भगवान् रामचन्द्र को था और उन्होंने पम्पासर के तट पर श्री लक्ष्मण जी को इस का सोदाहरण उपदेश किया था, और दूसरी यह कि रामायण के पात्र भी उसी छायावादी भाषा में वार्त्तालाप करते थे जिसमें 'प्रसाद' जी के नाटकीय पात्र। विद्वान् अवस्थी जी ने 'माधुरी' की अप्रैलवाली संख्या में इनका उल्लेख इस प्रकार किया है—

(१) "रामचन्द्र—भाई लक्ष्मण! पृथ्वी की अन्तर्निहित शक्ति 'आकर्षण' को भ्रम से प्रेमपूर्ण बुलावा समझकर जब कन्दुक दौड़कर उससे चिपट जाता है तो संघर्ष की ठेस से क्यों ऊपर को भागता है? इस नैसर्गिक क्षोभपूर्ण उड़ान में 'स्व' का 'अर्थ' केवल इतना ही रहता है कि वह अनमिल वातावरण से छूट जाय। मैं इसे कन्दुक की उदारभावना का जागरण समझूँगा!

(२) "लक्ष्मण—मुलाहिज़े-वाला मुलायम स्वभाव, चितवन की सौजन्यपूर्ण झेंप, हृदय की सब स्वीकार-वाली कोमलवृत्ति, 'नकार' और 'हँकार' से उलझी हुई संशयात्मक समस्या एक पंक्ति में खड़ी होकर दूसरे के सुखकर आग्रह का जब स्वागत करेगी, तो वह अतिथि बनकर स्वागत क्यों न करे।"

माननीय टण्डन जी और चिकित्सक

झाँसी में आयुर्वेदिक यूनीवर्सिटी का शिलान्यास करते समय माननीय बाबू पुरुषोत्तमदास टंडन ने कहा कि "जनता को बीमार पड़ने पर किसी भी वैद्य, हकीम, डाक्टर या होमियोपैथ की दवा न खानी चाहिए। पहले ही सावधानी रखनी चाहिए जिससे रोग पैदा ही न हों, और जब रोग पैदा हो जायँ तब दवा न खाकर प्राकृतिक साधनों से उन्हें दूर करने का प्रयत्न करना चाहिए। प्रकृति ही सब रोगों के लिए सबसे बड़ी चिकित्सक है, अतः किसी वैद्य, डाक्टर, हकीम की कोई ज़रूरत नहीं है।"

माननीय टंडन जी के इन नपे-तुले शब्दों में अनुभव और दूरदर्शिता की झलक स्पष्ट दिखाई देती है। और हमें विश्वास है कि जनता उनके इस अनुभव-जन्य ज्ञान से पूरा-पूरा लाभ उठाकर न केवल बीमारियों के पचड़े से ही, डाक्टरों-वैद्यों के लम्बे-लम्बे बिलों से भी आसानी से छुटकारा पा ज़ायगी।

अच्छा होता यदि माननीय टंडन जी उक्त 'आयुर्वेदिक यूनीवर्सिटी' का शिलान्यास करने से ही इनकार कर देते। आख़िर इन यूनीवर्सिटियों से भी तो वे ही जीव पैदा किये जायँगे जो जनता को कृत्रिम उपायों से रोग दूर करने को बाध्य करेंगे।

हिन्दी के मौलिक कवि

लोग झूठ ही कहते हैं कि हिन्दी में शेली की टक्कर का कोई कवि नहीं है। सच बात तो यह है कि हिन्दी के अनेक कवि भाव व भाषा में शेली से कहीं आगे निकल जाते हैं। 'विशाल भारत' के गत जनवरी १९४० के अंक में पृष्ठ ७४ पर श्रीकृष्णचन्द्र शर्मा 'चन्द्र' का एक सुन्दर गीत छपा है। इसे शेली के यहाँ दिये गये गीत से मिलाकर पढ़िए। आपको ज्ञात हो जायगा कि 'चन्द्र' जी ने शेली के शब्दों में कुछ जोड़ ही दिया है, कम नहीं किया है। हमें विश्वास है कि इन 'मौलिक कवियों' की रचनायें शीघ्र ही विश्व-साहित्य में स्थान पा जायँगी।

श्री कृष्णचन्द्र शर्मा 'चन्द्र' का गीत

सरित समुद्रों से मिलती हैं,
सरितों से मिलते हैं स्रोत;
धीर समीर पवन उपवन का,
मिले समय से लख निज गोत।
नीलाम्बर रमणी का चुंबन
करते उद्धत पर्वत-शृंग;
चन्द्र ज्योत्स्ना से मिलती हैं
उछल-उछल उत्ताल तरंग।
सृष्टि-संयोग नियम यह मुझको
करता है पर अधिक अधीर;
हम तुम ही न मिलें तो किसका
मिलना अरी वीर, वे पीर ?

शेली की कविता

Love's Philosophy

The fountains mingle with the river.
And the rivers with the Ocean.
The wind of heaven mix for ever
With a sweet emotion.
Nothing in the world is single.
All things by a law divine.
In one anothers being mingle—
Why not I with thine ?
See the mountains kiss high heaven
And the waves clasp one another
And the moonbeam kiss the sea—
What are all these kissings worth,
If thou kiss not me ?

पाकिस्तान की योजना

जनाब जिन्ना की पाकिस्तान-योजना ने दुनिया में एक खासी चहल-पहल पैदा कर दी है। हजारों नर उसका समर्थन कर रहे हैं और लाखों विरोध। सबसे मजेदार बात तो यह है कि बाहरवाले इसका समर्थन कर रहे हैं और घरवाले विरोध। लन्दन के अखबार इस योजना को हिन्दुस्तान के लिए बहुत ही फ़ायदेमन्द बतलाते हैं तो हिन्दुस्तानी अखबार, कांग्रेस, हिन्दू-महासभा, सिख और जाट इसे घातक समझते हैं। पर मिस्टर जिन्ना अच्छी तरह जानते-समझते हैं कि विदेशी समर्थन के मुक़ाबिले में इस देशी विरोध का कोई मूल्य नहीं है। और इसी लिए वे अपनी माँग से टस से मस होने को तैयार नहीं हैं।

पर पाकिस्तान के बीच अब एक बड़ी बाधा आपड़ी है। बेगम हामिदअली कहती हैं कि 'मुसलमान-महिलायें भेड़ें और बकरियाँ नहीं हैं कि जिन्ना साहब जहाँ चाहें उन्हें हाँक ले जायें।'

खेद है कि जनाब जिन्ना को यह बात पहले से किसी ने न सुझाई! और सुझाता कौन? घर में तो कोई सुझानेवाली थी नहीं। अब देखना यह है कि पाकिस्तान को आवाद करने के लिए जनाब जिन्ना जैसे जीव ही जाते हैं या बाल-बच्चोंवाले। यदि कहीं सब मुस्लिम औरतें बेगम साहबा के बहकाने में आगईं तो आदम की पसली से हव्वा को बनानेवाला अनुक्रम अल्लामियाँ को एक बार फिर दोहराना पड़ेगा।

जिन्ना साहब की माँग

मार्च के तीसरे सप्ताह के अन्त में लाहौर में मुस्लिम लीग का जो अधिवेशन हुआ है उसमें जिन्ना साहब ने भारत के बँटवारे की माँग पेश की है। सभापति के पद से इस अवसर पर उन्होंने जो भाषण किया है उसमें उन्होंने अपनी उक्त माँग का स्पष्ट शब्दों में उल्लेख किया है। उक्त भाषण का सारांश हम यहाँ 'भारत' से उद्धृत करते हैं—

यदि ब्रिटिश सरकार ने बिना मुस्लिमलीग की स्वीकृति तथा उसके साथ कान्फ्रेंस किये कोई घोषणा की तो मुस्लिम-भारत उसका विरोध करेगा। २॥ साल के प्रान्तीय सरकारों के कार्य ने यह साबित कर दिया है कि मुसलमानों को दिये संरक्षण कुछ भी महत्त्व नहीं रखते। यह ईश्वरीय सहायता थी जो कांग्रेस और ब्रिटिश सरकार के बीच हुआ समझौता युद्ध की घोषणा के साथ-साथ भंग हो गया।

मुसलमान अपने आत्म-बल पर ही निर्भर करें, किसी दूसरी शक्ति पर नहीं। यही उनके लिए सर्वोत्तम संरक्षण है। सरकार वस्तुतः इस उप-महाद्वीप की जनता में अमन-चैन क़ायम करने की हार्दिक इच्छा रखती है तो उसके लिए एक मात्र उपाय यही है कि भारत की बड़ी-बड़ी जातियों को अलग-अलग अपना "स्वाधीन राष्ट्र" क़ायम करने दिया जाय।

मुस्लिम-भारत ऐसा कोई भी विधान स्वीकार नहीं कर सकता जिसके फलस्वरूप बहुसंख्यक हिंदुओं की सरकार क़ायम हों। जनसत्तात्मक प्रणाली के अन्दर हिन्दुओं और मुसलमानों को ज़बर्दस्ती एक साथ रखने का अर्थ केवल हिन्दूराज क़ायम करना होगा। जिस तरह की जनसत्ता कांग्रेस चाहती है उसका अर्थ उस वस्तु का सम्पूर्ण विनाश होगा जो इस्लाम-धर्म के अन्दर सबसे अधिक मूल्यवान् है। हमें २॥ साल तक प्रान्तीय सरकारों के कार्यों का अनुभव हो चुका और यदि इस तरह की सरकारें फिर क़ायम की गईं तो उसका अर्थ गृह-युद्ध तथा निजी सेनायें तैयार करना होगा।

यह जानना बहुत ही कठिन है कि हमारे हिंदू भाई क्यों नहीं इस्लाम-धर्म तथा हिन्दू-धर्म के वास्तविक स्वरूप को समझते हैं। वास्तव में इस्लामधर्म तथा हिन्दूधर्म दोनों विभिन्न तथा स्पष्ट सामाजिक व्यवस्थायें हैं और यह ख़याल करना स्वप्न ही होगा कि हिन्दू और मुसलमान कभी राष्ट्रीय एकता स्थापित कर सकते हैं। एक भारतीय राष्ट्र की भ्रान्त धारणा आगे बढ़ गई है और यही हमारी अधिकांश कठिनाइयों का कारण है और यदि हमने समय के भीतर ही अपनी भावनाओं का परिष्कार नहीं कर लिया तो उसके फलस्वरूप भारत का विनाश हो जायगा। हिन्दुओं और मुसलमानों दोनों के अलग-अलग दर्शन, सामाजिक प्रथायें तथा साहित्य हैं। न तो वे एक दूसरे के साथ विवाह-सम्बन्ध स्थापित कर सकते हैं और न खान-पान रख सकते हैं। उनकी अलग-अलग सभ्यतायें हैं, जो स्वतः परस्पर विरोधी भावनाओं और विचारों पर अवलम्बित हैं।

भारत की वर्तमान कृत्रिम एकता केवल ब्रिटिश राज्य के बाद से चलती है और जो ब्रिटिश संगीन के द्वारा क़ायम है। लेकिन ब्रिटिश शासन के भंग होने के बाद वह नष्ट हो जायगी और उसके स्थान में इतना भयानक विध्वंस का दृश्य उपस्थित होगा जैसा विगत मुस्लिम शासन के १००० वर्षों में कभी नहीं हुआ था, लेकिन फिर भी यह निश्चय है कि ब्रिटिश सरकार १५० साल तक भारत का शासन करने के बाद ऐसा न होने देगी और न हिन्दू या मुसलिम-भारत ही उस विनाश का खतरा उठायेगा। हम लोग निश्चित रूप से भारत की आजादी के पक्ष में हैं, लेकिन वह स्वतन्त्रता वैसी नहीं है जैसी कि कांग्रेस चाहती है। हमें पिछले दो वर्षों से काफ़ी अनुभव हो चुके हैं और हम अब किसी का विश्वास

करने नहीं जा रहे हैं। चाहे जो भी हो किन्तु एक बार जो हमारे साथ विश्वासघात कर चुका है उसका हम फिर कभी विश्वास नहीं करते। हम कांग्रेस सरकारवाले प्रान्तों में होनेवाली घटनाओं के विरुद्ध लगातार चिल्ला रहे थे, लेकिन प्रान्तीय गवर्नर चुप रहे और गवर्नर जनरल ने भी कांग्रेस और ब्रिटिश सरकार के बीच "मैत्रीपूर्ण समझौते" के कारण अपनी असमर्थता प्रकट की। हमने उन्हें अल्पसंख्यकों के लिए दिये गये संरक्षणों का स्मरण दिलाया, लेकिन उसका कोई प्रभाव नहीं पड़ा। ईश्वर की दया से कांग्रेस और ब्रिटिश सरकार में समझौता भंग हो गया और कांग्रेस ने मन्त्रिपद का त्याग कर दिया है। अब वह उसके लिए पश्चात्ताप कर रही है। अब वह फिर शासन-भार ग्रहण करना चाहती है। लेकिन अब वह कैसे कर सकती है? अब हम दूसरों के बल अथवा विश्वास पर नहीं रह सकते। मैं आप लोगों से हार्दिक अपील करता हूँ कि आप अपने ही बल पर निर्भर करें। यही सबसे बढ़कर संरक्षण है।

महात्मा गांधी का उत्तर

महात्मा गांधी ने एक प्रश्न के उत्तर में प्रकारान्तर से जिन्ना साहब के बँटवारे की माँग का उत्तर अपने 'हरिजन' में दिया है। उनका वह उत्तर 'विकट परिस्थिति' शीर्षक में छपा है। उसका आवश्यक अंश इस प्रकार है—

मैं मानता हूँ कि मुस्लिमलीग ने लाहौर में जो क़दम उठाया है उससे एक विकट परिस्थिति पैदा हो गई है।

मुसलमानों को आत्म-निर्णय का वैसा ही अधिकार होना चाहिए जैसा शेष भारत को। आज हमारा सम्मिलित कुटुम्ब है। उसका कोई भी आदमी बँटवारे का दावा कर सकता है।

मैं विश्वास नहीं कर सकता कि जब सचमुच फ़ैसला करने की नौबत आयेगी तब मुसलमान देश के कभी टुकड़े करना चाहेंगे। उनकी समझदारी उन्हें रोकेगी, उनका स्वार्थ उनका हाथ पकड़ेगा, उनका धर्म उन्हें यह स्पष्ट आत्महत्या करने से मना करेगा। देश के इस अंग-भंग का और अर्थ हो भी क्या सकता है? "दो राष्ट्रोंवाला" सिद्धान्त झूठा है। हिन्दुस्तानी मुसलमानों में से ज्यादातर या तो अपना धर्म छोड़कर मुसलमान बने हैं या धर्म छोड़नेवालों की सन्तान हैं। धर्म छोड़ते ही उनका अलग राष्ट्र नहीं बन गया। एक बंगाली मुसलमान बंगाली हिन्दू की ही भाषा बोलता है, वैसा ही खाना खाता है और अपने हिन्दू पड़ोसी के जैसे ही मनोरंजन करता है। उनका पहनावा भी मिलता-जुलता है। मैंने अकसर देखा है कि किसी बाहरी चिह्न से बंगाली हिन्दू और मुसलमान को पहचानना कठिन होता है। यही बात थोड़ी या बहुत दक्षिण भारत के भी ग़रीबों में दिखाई देती है।

भारत के हिन्दू और मुसलमान दो राष्ट्र नहीं हैं। जिन्हें ईश्वर ने एक बनाया है उनके मनुष्य कभी टुकड़े नहीं कर सकेगा।

और क्या जैसा क़ायदे आज़म कहते हैं, इस्लाम इतना ही एकांगी धर्म है? क्या इस्लाम में और हिन्दुत्व या और किसी धर्म में कुछ भी समान बातें नहीं हैं? या इस्लाम सिर्फ़ हिन्दुत्व का शत्रु ही है? जब अली भाइयों और उनके साथियों ने हिन्दुओं को सगे भाई समझकर छाती से लगाया और दोनों में इतनी समान बातें देखी थीं तो क्या उन्होंने भूल की थी? इस समय मैं हिन्दू व्यक्तियों का विचार नहीं कर रहा हूँ। सम्भव है, मुसलमान मित्र उनको जैसा समझते थे वैसे न निकले हों।

जिन्ना साहब का कहना यह नहीं है कि कुछ हिन्दू बुरे हैं, वे तो यह कहते हैं कि हिन्दूमात्र में मुसलमानों से मिलती-जुलती कोई बात नहीं है। मैं साहस के साथ कहता हूँ कि वे और उनके से विचारवाले इस्लाम की सेवा नहीं कर रहे हैं, वे उस सन्देश का अनर्थ कर रहे हैं जो 'इस्लाम' शब्द में ही निहित है। मैं यह इसलिए कहता हूँ कि आज जो कुछ मुस्लिम लीग के नाम से हो रहा है उससे मेरे दिल को गहरी चोट पहुँचती है। मुसलमानों में आज जिस असत्य का प्रचार किया जा रहा है उससे उन्हें सचेत न करूँ तो मैं अपने धर्म से चूकता हूँ। यह चेतावनी देना मेरा फ़र्ज़ इसलिए है कि मैंने संकट के समय उनकी सच्ची सेवा की है और हिन्दू-मुस्लिम-एकता मेरे जीवन का एक विशेष कार्य रहा है और है।

बम्बई के भूतपूर्व शेरिफ़ का विरोध

जिन्ना साहब की बँटवारे की माँग का अनेक विचारवान् मुसलमानों ने विरोध किया है। उनमें से बम्बई के भूतपूर्व शेरिफ श्री मोहम्मद भाई आई० एम० राव जी का मत इस प्रकार है—

जबकि अखिल विश्व का उद्देश्य और योजनायें विविध सरकारों और राष्ट्रों में महान् एकता स्थापित करना है, यह कितनी अजीब बात है कि श्री जिन्ना बाल्कन देशों की भाँति भारतवर्ष के स्पष्ट खतरों के बावजूद टुकड़े-टुकड़े करना चाहते हैं

श्री जिन्ना के "दो खुदमुख्तार राष्ट्रों" के प्रस्ताव के पीछे कोई लोकमत नहीं है। यदि इस योजना पर अमल किया जाय तो बहुत से उपाधिधारी नवाब तथा बड़े-बड़े ज़मींदार बहुत मुश्किल में फँस जायेंगे, क्योंकि हिन्दू बहुमतवाले प्रान्तों में उनके निहित स्वार्थों पर कितना भारी कुठाराघात होगा।

श्री जिन्ना का यह नया प्रस्ताव ज्यादा से ज्यादा यही कर सकता है और यही शायद इसका उद्देश्य भी हो कि कुछ हिन्दू डर जायँगे, बहुत से मुसलमानों की आँखों में धूल झोंक दी जायगी और तीसरी पार्टी को, शायद अनजानपन से ही, इससे लाभ पहुँचेगा।

जब श्री जिन्ना भारतवर्ष को हिन्दू और मुस्लिम दो भागों में बाँटना चाहते हैं, वे जान बूझकर भारतीय मुसलमानों के विभिन्न सम्प्रदायों के पारस्परिक झगड़ों और मतभेदों के बारे में खामोशी अख्तियार किये हुए हैं। क्या जिन्ना साहब मुस्लिम भारत को भी शिया और सुन्नी मुस्लिम भारतों में बाँटने के लिए तैयार होंगे ताकि सुन्नी बहुमतवाले मुस्लिम भारत में शियाओं के हित खतरे में न पड़ें। इसके अलावा जिन्ना साहब भावी भारत में पारसी, सिक्ख, ईसाई और यहूदियों को कोई स्थान नहीं देते जिनके कि हिन्दू और मुसलमानों के साथ रस्म-रवाज तथा आचार-विचार में उसी प्रकार के मतभेद हैं। श्री जिन्ना की व्याख्या के अनुसार वे सबके सब पृथक् राष्ट्र हैं। क्या उनकी व्याख्या केवल उन्हीं की जाति तक सीमित है? क्यों नहीं भारत को दो के बजाय छः हिस्सों में तक़सीम कर दिया जाय?

भारत-मन्त्री का भाषण

मुस्लिम लीग की माँग का समर्थन ब्रिटेन के 'टाइम्स' पत्र ने भी किया है। यही नहीं, अभी अभी भारत-मंत्री लार्ड ज़ेटलैंड ने रेडियो पर जो भाषण किया है उसमें भी लीग की माँग का महत्त्वपूर्ण ढंग से उल्लेख हुआ है, जो इस तरह है—

गवर्नमेंट आफ़ इंडिया ऐक्ट के अनुसार भारत के प्रान्तों का शासन भारतीय मन्त्रियों के हाथ में दिया गया, जो भारतीय पार्लिमेंटों के ज़िम्मेदार रक्खे गये। ऐक्ट में प्रान्तों तथा देशी राज्यों को एक संघ-शासन में लाने की भी व्यवस्था की गई, लेकिन इस जगह पर कठिनाइयाँ उत्पन्न हो गई हैं, संघ-शासन के स्थापित करने के लिए तीन मुख्य राजनीतिक शक्तियों के सहयोग की आवश्यकता है। वे तीन राजनीतिक शक्तियाँ हैं भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस, देशी नरेश और अ० भा० मुस्लिम लीग। इन तीनों संस्थाओं ने अलग-अलग कारणों से ऐक्ट के संघ-शासन सम्बन्धी धाराओं पर आपत्ति की है, जिसका परिणाम यह हुआ है कि एक तरफ़ तो कांग्रेस केवल डोमीनियन स्टेट्स नहीं बल्कि पूर्ण स्वराज्य और विधान सम्मेलन-द्वारा बनाया गया विधान माँग रही है और दूसरी ओर मुस्लिम सम्प्रदाय एक पृथक् मुस्लिम राज्य माँग रहा है।

मुझे इस बात का पूरा विश्वास है कि मुसलमानों और हिन्दुओं के बीच वास्तविक सुलह हुए बिना भारतवर्ष में कोई स्थायी व्यवस्था सम्भव नहीं हो सकती। मैं यह भी कहूँगा कि भारत में चाहे जो कुछ भी कठिनाइयाँ हों हम पूरे दिल से हिन्दू-मुसलमानों में सुलह करवाने का भरसक प्रयत्न करते रहेंगे।

प्रवासी भारतीयों की दशा

इस सम्बन्ध में 'हिन्दुस्तान' लिखता है—

विदेशों में भारतीयों की दुर्दशा की शिकायत कोई नई चीज़ नहीं है। जिस ब्रिटिश साम्राज्य में भारत को भागीदार बतलाया जाता है और जिसकी भागीदारी के लिए उसे गर्वानुभव करने के लिए कहा जाता है, उसी के विविध भागों—उपनिवेशों और साम्राज्यान्तर्गत देशों—में भारतीयों की स्थिति बुरी ही नहीं है बल्कि और बुरी होती जा रही है। श्री गुलामभीख नारंग के प्रस्ताव पर इसी

बुधवार को केन्द्रीय असेम्बली में इस सम्बन्ध में जो बहस हुई, उसने इस स्थिति को एक बार फिर सामने ला दिया है।

इस बहस के दौरान में ये बातें सामने आई हैं—

(१) ब्रिटिश साम्राज्य के प्रायः सभी भागों में प्रवासी भारतीयों को हिक़ारत की नज़र से देखा जाता है; उनका अपमान किया जाता है और उन पर तरह-तरह के प्रतिबंध लगाये जाते हैं।

(२) बर्मावाले न केवल और भारतीयों को वहाँ आने देने के ख़िलाफ़ हैं, बल्कि पिछले दिनों वहाँ बर्मियों और भारतीयों में जो संघर्ष हुआ था उसके पीड़ित भारतीयों की क्षतिपूर्ति में भी आनाकानी कर रहे हैं।

(३) सीलोन में भारतीयों को नौकरी मिलने में ही कठिनाई नहीं होती, बल्कि ज़मीन-सम्बन्धी और इन्कमटैक्स के क़ानून भी अपमानजनक और असह्य हैं। इसके अलावा, पनाहत के कार्डों तथा भारतीयों को ज़बर्दस्ती भारत भेजने जैसे और सख़्त क़ानून भी वहाँ की सरकार बनाते जा रही है।

(४) दक्षिणअफ़्रिका में भारतीयों के साथ विविध भेद-भाव के, यहाँ तक कि उन्हें अछूतों की तरह अलग बसाने के, क़ानून बन रहे हैं और "आज भी स्थिति बदली नहीं है, बल्कि भारतीयों के ख़िलाफ़ तास्सुब बढ़ ही रहा है।"

(५) नेटाल में भारतीयों को यह वचन दे देना पड़ा है कि ऐसे इलाक़ों में वे ज़मीन नहीं ख़रीदेंगे जिनमें कि अँगरेज़ों की प्रधानता होगी।

(६) साम्राज्य के विविध भागों में जातिगत भेद-भाव का जो बुरा रूप है उसके चिह्न ब्रिटेन में भी दिखलाई पड़ने लगे हैं। इँगलैंड के होटलों में भी भारतीयों के साथ भेद-भाव किया जाता है।

यह स्थिति खेदजनक और शर्मनाक तो है ही, इससे यह भी साफ़ मालूम पड़ जाता है कि ब्रिटिश साम्राज्य में हमारी क्या स्थिति है। सरकार की ओर से सर गिरिजा-शंकर वाजपेयी ने इस बात का आश्वासन दिया है कि वह इस स्थिति को सुधारने के लिए यथासम्भव पूरी कोशिश कर रही है, और यह भी हम जानते हैं कि इस मामले में सरकार ने हमेशा अपना रुख़ जनता को सन्तुष्ट करनेवाला ही बतलाया है; लेकिन, जैसा कि सर हेनरी गिडनी ने बहस के दौरान में कहा, "इस स्थिति को सुधारने में इस देश की जनता और सरकार शक्तिहीन हो रहे हैं।" और, जैसा कि हमारे एक सहयोगी ने लिखा है, "इस सम्बन्ध में भारत-सरकार की सारी सहानुभूति असली तौर पर व्यर्थ हो रही है।"

ऐसा क्यों है? इस पर विचार करते ही 'सारे रोगों की जड़ दासता' का स्मरण हो आता है। मौ० ज़फ़रअली का यह कहना ठीक ही है कि "हमें अपने मुल्क में आज़ाद होना चाहिए। जब तक हिन्दुस्तान में हम आज़ाद नहीं होंगे, जब तक जैसे का तैसा जवाब देने के लिए हमारे पास फ़ौज और ताक़त नहीं होगी, तब तक हमारे लिए कोई उम्मीद नहीं है।"

श्री अणे की योजना

कांग्रेस और भारत-सरकार के बीच जो राजनैतिक मतभेद उठ खड़ा हुआ है उसको दूर करने के लिए लोकनायक अणे प्रयत्नशील हुए हैं। इस सम्बन्ध में उनका जो वक्तव्य निकला है उसका सारांश इस प्रकार है—

भारत के सभी दलों के प्रमुख राजनीतिज्ञों की ५० से १०० सदस्यों तक की एक कमेटी बना ली जाय, और भारतीय विधान तैयार करने का कार्य उसी के सुपुर्द कर दिया जाय। कांग्रेस, उदार-दल, हिन्दू-सभा, सनातनी, मुस्लिम लीग, अछूतवर्ग, सिख आदि सभी दलों के नेता इस कमेटी में सम्मिलित किये जायँ। कमेटी को अधिकार दिया जाय कि वह विभिन्न सम्प्रदायों के धार्मिक एवं सांस्कृतिक हितों की रक्षा के लिए नियम निश्चित करे, किन्तु ऐसा करने में भारत की एक-राष्ट्रीयता को क्षति न पहुँचे।

ब्रिटिश सरकार स्पष्ट रूप से यह घोषित कर दे कि वह भारत के आत्मनिर्णय के अधिकार को पूर्ण रूप से न्याय संगत मानती है।

उक्त कमेटी अपनी तजवीज़ों को भारत सरकार के सिपुर्द कर दे, और ब्रिटिश सरकार से राय लेने के बाद उन्हें कार्य रूप में परिणत किया जाय।

यदि आवश्यक हो तो कमेटी की तजवीज़ों में ब्रिटिश सरकार कुछ संशोधन भी कर सकती है, किन्तु वे संशोधन ऐसे न हों कि कमेटी की मौलिक तजवीज़ों के विरुद्ध हों। जो भी ऐसी तजवीज़ें होंगी, युद्ध समाप्त होने के बाद उन पर अमल किया जायगा और कमेटी की तजवीज़ों के आधार पर भारत का नया विधान निर्धारित होगा।

जर्मनी--विनाश की ओर

हिटलर की वदौलत योरप में जो लड़ाई छिड़ी हुई है उसने ९ मार्च से भयानक रुख ले लिया है। इस वहाने कि अँगरेज़ों ने नार्वे और डेन्मार्क की निरपेक्षता भंग कर दी है, उसने एकाएक ९ मार्च को डेन्मार्क और नार्वे पर धावा वोल दिया। डेन्मार्क ने तो डरकर आत्म-समर्पण कर दिया, पर नार्वे ने जर्मन-सेनाओं का विरोध किया। इस समय सारे डेन्मार्क पर और नार्वे के अधिकांश पर जर्मनी का अधिकार स्थापित है। इस प्रकार उसने इस वार फिर दो निर्वल राष्ट्रों को अपना शिकार वनाया है। परन्तु यह दुस्साहस का कार्य करके हिटलर ने अपने हाथ से अपने पैरों में कुल्हाड़ी मार ली है। अभी तक जर्मनी पड़ोस के निरपेक्ष देशों की आड़ में होने से अँगरेज़ों की मार से रक्षित था। परन्तु इस अकल्पित अन्यायमूलक कार्य से वह ब्रिटेन के सामने खुले में आ गया है और अव उसको अँगरेज़ी सेना से भीषण संघर्ष का सामना करना ही पड़ेगा। अखवारों के पढ़ने से प्रकट होता है कि अँगरेज़ी जंगी वेड़े से जर्मनी का युद्ध शुरू हो गया है और यह महाभीषण युद्ध नार्वे के तटवर्ती समुद्र में छिड़ा हुआ है। यह भी प्रकाशित हुआ है कि जर्मनी ने लगभग सौ जंगी जहाज़ों और एक हज़ार वायुयानों से नार्वे पर चढ़ाई की थी। इन्हीं से ब्रिटिश जंगी जहाज़ों का भयानक संग्राम हो रहा है। देखना है कि इस युद्ध में हिटलर कव तक ठहरता है।

अभी तक हिटलर चुप वैठा था, क्योंकि चारों ओर निरपेक्ष राज्यों से घिरा होने के कारण उसका देश सुरक्षित था। परन्तु इधर जव उसने देखा कि ब्रिटेन उसे अव चारों ओर से घेर ही नहीं लेना चाहता है, किन्तु नार्वे के तटवर्ती समुद्र में वारूद की सुरंगें विछाकर वहाँ से जर्मनी में लोहा नहीं आने देना चाहता तव उसने लाचार होकर यह अनीति का मार्ग ग्रहण किया है और आखिर मरता क्या न करता की नीति को उसने चरितार्थ कर दिखाया है। चाहे जो हो, हिटलर के इस निन्द्य कार्य से ब्रिटेन को विना प्रयत्न के ही वह अवसर अपने आप प्राप्त हो गया है जिसकी खोज में वह अव तक था। अव ब्रिटेन का जंगी वेड़ा अपना पुरुषार्थ प्रकट कर सकेगा और वह जर्मनी को समुचित दण्ड भी दे सकेगा।

परन्तु हिटलर की इस आकस्मिक कार्रवाई से अन्य निरपेक्ष राज्य विचलित हो उठे हैं और उनमें अव कोई भी अपना कुशल नहीं समझ रहा है। ऐसा प्रतीत होता है कि हिटलर के इस कार्य से यह युद्ध अधिक व्यापक रूप धारण कर जायगा और निरपेक्ष देशों को भी लाचार होकर इसमें अपना वलिदान करना पड़ेगा। चाहे जो हो, इस युद्ध के ऐसी भीषण गति पकड़ जाने से योरप का भविष्य अन्धकारमय हो गया है।

भारतीय मुसलमानों की नई परम्परा

लाहौर में मार्च के अन्तिम सप्ताह में मुस्लिम लीग का वार्षिक अधिवेशन जिन्ना साहव के सभापतित्व में धूमधाम से हो गया। इस वार लीग का अधिवेशन विशेष समारोह से होता, यदि उसके कुछ पहले लाहौर में पुलिस से खाकसारों का संघर्ष न हो जाता और उनको क़ावू में रखने के लिए सरकार को कड़ी कार्रवाई न करनी पड़ती। लाहौर में इस विशेष परिस्थिति के उत्पन्न हो जाने से सभापति का जुलूस नहीं निकाला जा सका, तथापि अधिवेशन में लगभग ५० हज़ार व्यक्तियों का जमाव था। परन्तु इस अधिवेशन की विशेषता तो इस वात में है कि जिन्ना साहव ने अपनी पिछली माँगों को भुलाकर देश के वँटवारे की एक नई ही माँग की है। वे चाहते हैं कि पाकिस्तान आदि की योजनाओं के अनुसार मुसलमान-वसित भूभागों के भारत में दो स्वतंत्र मुस्लिम राज्य अलग कर दिये जायँ। जिन्ना साहव की यह माँग इतनी विकट है कि इसके आधार पर उनसे न कांग्रेस का, न हिन्दू-महासभा का ही समझौता हो

सकता है। हाँ, सर्वशक्तिमान ब्रिटिश सरकार अलबत्ता उनकी इच्छा की पूर्ति कर सकती है। लन्दन के 'टाइम्स' ने जब लीग की इस माँग का समर्थन किया है तब आशंका होती है कि भारत का बँटवारा अवश्य होगा और यह बात इस महान् देश के भविष्य के लिए कदापि मंगलप्रद न होगी। परन्तु उपाय ही क्या है? जब इस देश के मुसलमानों के नेता अपनी जाति के लोगों की भलाई बँटवारे में ही मानते हैं तब उनसे कोई कुछ कहे भी तो वे क्यों मानने लगे।

परन्तु इस बँटवारे की छूत, जान पड़ता है, व्यापक रूप धारण कर जायगी। दक्षिण की जस्टिस-पार्टी के नेता भी 'द्रविड़-भारत' की माँग उपस्थित कर रहे हैं। उधर सिक्ख भी अपना हिस्सा अलग चाहते हैं। परन्तु इन नये हिस्सा माँगनेवालों की ओर 'टाइम्स' आदि पत्र ध्यान नहीं दे रहे हैं। ऐसी दशा में शायद ही इनकी सुनवाई हो। परन्तु इस समय अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति की जो अवस्था है उसको देखते हुए यह बात स्पष्ट है कि मुसलमानों की माँग की उपेक्षा नहीं की जा सकेगी। इसका कारण है। मुसलमान नेता केवल इस बँटवारे से ही सन्तुष्ट न होंगे। उनकी इस माँग के पीछे कुछ और भी रहस्य है जैसा कि पाकिस्तान-सम्बन्धी आन्दोलन के प्रवर्तक मौलाना सी० रहमतअली के वक्तव्य से प्रकट होता है। वे कहते हैं—'आल इंडिया मुस्लिम लीग' के नाम में 'भारतीयता' की गन्ध आती है, इसलिए इस संस्था को तोड़ देना चाहिए और इसके स्थान में 'लीग आफ़ दी एशियाटिक नेशंस आफ़ पाकिस्तान, बंगाल और उस्मानिस्तान' की स्थापना करनी चाहिए, क्योंकि ऐसे महान् संघ की स्थापना से ही उनके महान् उद्देश की सिद्धि हो सकेगी, मुसलमानों में वास्तविक 'मिल्लत' तभी सम्भव हो सकेगी। मुसलमानों को न तो गांधीवाद के विधान से, न अँगरेज़ी साम्राज्यवाद के विधान से और न दोनों के सम्मिलित विधान से ही सन्तोष होगा। वे तो तभी राज़ी होंगे जब उनके सारे हक़ मान लिये जायँगे। फलतः यदि मुसलमान चाहते हैं कि उनका भिन्न राष्ट्र अलग स्थापित हो और हमारे राष्ट्रीय राज्यों में एक-दूसरे से 'मिल्लत' हो तो उन्हें उपर्युक्त नया संघ क़ायम करना पड़ेगा।

उक्त वक्तव्य से मुसलमानों के बँटवारे की माँग का रहस्य अपने आप स्पष्ट हो जाता है। उसके विवेचन की आवश्यकता नहीं है। ऐसी परिस्थिति में मुसलमानों का हिन्दुओं से कैसे मेल हो सकेगा, इसे महात्मा गांधी और लार्ड ज़ेटलेंड ही बतला सकते हैं। हम तो यही कहेंगे कि लीग के नेताओं की बुद्धि मारी गई है, अन्यथा वे इस महान् संकट-काल में ऐसा झमेला कभी न उठाते।

वास्तव में उनके मन में ऐसी विचित्र बातें घर किये हैं। उनका एक यह भी दावा है कि उन्हें मुसलमानों का बहुमत प्राप्त है। लीग के जनरल सेक्रेटरी श्री नवाबज़ादा लियाक़त अली ने तो गांधी जी को आह्वान तक किया है कि वे उनके बँटवारे के प्रस्ताव के सम्बन्ध में मुसलमानों का मत संग्रह करके देख लें कि उनके साथ कितना बहुमत है। इस प्रकार लीगी नेता लोगों की आँखों में धूल झोंककर लोगों से काले को सफ़ेद कहला लेना चाहते हैं। कौन नहीं जानता कि लीग के उक्त प्रस्ताव का स्वयम् मुसलमान ही कितना विरोध कर रहे हैं। जब लीग को हो पिछले चुनाव में ही बहुमत नहीं प्राप्त हुआ तब उसको आज बहुमत प्राप्त होने की बात कहना कोरी डींग है। सीमाप्रान्त, काश्मीर और सिन्ध के मुसलमानों का बहुमत इस प्रस्ताव के द्वारा भी वह नहीं प्राप्त कर सकी है। फिर अहरार, मोमिन, खोजा, शिया आदि तो प्रकट रूप से उसकी माँग का विरोध कर रहे हैं। परन्तु लीगी नेता यही कहेंगे कि मुसलमानों का बहुमत उन्हीं के साथ है। बहुमत उनके साथ तो नहीं है, किन्तु एक बात ज़रूर है और वह है कुछ अँगरेज़ों तथा कुछ कांग्रेसियों के द्वारा उनको विशेष महत्त्व दे दिया गया है। और सारे फ़िसाद की जड़ यही मान्यता है। रही राजनीति की बात सो यहाँ के मुसलमान तो उससे सम्राट् अकबर की मृत्यु के साथ ही नमस्कार कर चुके हैं। इस सम्बन्ध में उनमें जो जोश-ख़रोश आज दिखाई दे रहा है वह लघुता-बोध की झोंक भर है और यदि यह उनमें दुराग्रह के साथ जड़ पकड़ती ही गई तो इससे मुसलमानों की तो हित-हानि होगी ही, साथ ही वे अपने साथ देश को भी ले डूबेंगे।

आपके बच्चे का चर्म इतना कोमल है कि इसके लिए केवल अच्छे से अच्छे मरहम या बुकनी की आवश्यकता है। क्यूटीकूरा टैलकम (CUTICURA TALCUM) बहुत ही बारीक तथा विशुद्ध है। इसमें कुछ दवा का भी असर रहता है। यह बच्चों के कोमल चर्म को ठंढक तथा आराम पहुँचाता है और उसे सुगन्धित तथा स्वस्थ रखता है। नहाने के बाद थोड़ा-सा अपने बदन पर डाल दीजिए जिससे किसी प्रकार की रगड़ न लग सके।

दुनिया के सारे डाक्टर तथा नर्सें क्यूटीकूरा टैलकम (CUTICURA TALCUM) को बच्चों के कोमल चर्म के लिए शिफ़ारिश करती हैं। स्त्रियों को भी नहाने के बाद या बदन में पीड़ा होने पर इसे लगाने से बड़ी प्रसन्नता होती है। पसीने को जल्दी दूर करता है तथा चर्म को नरम तथा सुगन्धित बनाता है। अपने यहाँ के दवाफ़रोश से आज ही ख़रीदिए।

बच्चों के लिए

क्यूटीकूरा टैलकम बुकनी

CUTICURA TALCUM POWDER

बलपूर्वक अपने अधिकार में कर लिया था। परन्तु उस अन्याय के प्रतीकार के लिए रूस अस्त्र नहीं ग्रहण करेगा। इसी प्रकार उन्होंने तुर्की तथा भारत पर आक्रमण करने की बातों को भी निराधार बताया है और स्पष्ट शब्दों में कहा है कि रूस योरप के महायुद्ध में नहीं शामिल होगा और वह अपने पड़ोसियों के साथ शान्तिपूर्वक ही रहना चाहता है।

मोलोटोव साहब के उपर्युक्त भाषण से इस बात की भी आशंका नहीं रही कि जर्मनी, इटली और रूस का त्रिदल स्थापित होगा, जिससे वर्तमान युद्ध और अधिक व्यापक रूप धारण कर जायगा। इसके साथ ही यह बात भले प्रकार स्पष्ट हो गई है कि जर्मनी अकेला पड़ गया है और इस युद्ध में उसे न इटली से सहायता मिलेगी, न रूस से मिलेगी। वास्तव में योरप का कोई भी देश इस युद्ध में किसी की भी ओर लड़ने को तैयार नहीं है। और अकेले जर्मनी को ही ब्रिटेन तथा फ्रांस से लड़ना पड़ेगा, जिसमें उसकी हार पूर्णतया निश्चित है।

दूसरा भाषण सर राबर्ट क्रेगी का है जो उन्होंने टोकियो में २२ मार्च को किया है। क्रेगी साहब जापान में ब्रिटेन के राजदूत हैं। चीन में अँगरेज़ों के हितों की जो उपेक्षा जापान ने पिछले दिनों की थी उस सिलसिले में जापान की सरकार से सारी बातचीत क्रेगी साहब करते रहे हैं। ऐसी दशा में उनका यह २८ मार्च का भाषण अधिक महत्त्व का माना गया है। अमरीका के संयुक्त राज्यों में उनके उक्त भाषण का यह अर्थ लगाया गया है कि ब्रिटिश सरकार जापान को चीन में अपनी मनमानी कार्यवाही करने देगी। यदि ऐसा है तो समझना चाहिए कि एशिया के उस अंचल की समस्या जटिल से जटिलतर हो गई है, क्योंकि संयुक्त राज्य इसके लिए तैयार नहीं है कि चीन जापान का एक संरक्षित राज्य हो जाय और उसके हितों की हानि हो। इसी तरह रूस भी नहीं चाहता कि चीन का राज्य भंग हो जाय और जापान की वहाँ प्रतिपत्ति बढ़ जाय। परन्तु जापान को इन दोनों की परवा न होगी, यदि ब्रिटेन चीन के मामले में उदासीन हो जाय। उसके सौभाग्य से क्रेगी साहब से उसे आवश्यक आश्वासन मिल गया है। सो अब जापान एशिया के उस अञ्चल में खुल खेलेगा।

सेठ श्रीनिवास जी का वैकुण्ठ लाभ

गत ११ मार्च को श्रीवेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई के मालिक रायसाहब श्री रंगनाथ जी के छोटे भ्राता तथा स्वर्गीय सेठ खेमराज के पुत्र सेठ श्रीनिवासदास जी का देहान्त हो गया। सेठजी इधर कुछ समय से कुछ अस्वस्थ थे। ५ मार्च की संध्या को कालबादेवी रोड के एक विद्युच्चिकित्सक ने आपको संखिया का इंजेक्शन दिया था। इस इंजेक्शन के लगते ही आप एकाएक शय्याशायी हो गये। फिर दिन-प्रति-दिन अवस्था बिगड़ती ही गई। अनेक प्रकार के उपाय किये गये, पर कोई कारगर न हुआ। सेठ जी बम्बई के प्रतिष्ठित व जन-प्रिय व्यक्तियों में से थे। हम ईश्वर से उनकी दिवंगत आत्मा के लिए शान्ति की प्रार्थना करते हैं।

पूना में सम्मेलन

इस बार हिन्दी साहित्य-सम्मेलन का अधिवेशन पूना में होने को था और आशा थी कि राष्ट्र-भाषा के प्रमुख कर्णधार श्री काका कालेलकर के तत्त्वावधान में वह धूमधाम के साथ सम्पन्न हो जायगा। परन्तु आश्चर्य की बात है कि जो काका साहब हमारी इस अखिल भारतीय संस्था के पथ-प्रदर्शक थे उनका उन्हीं के प्रान्त-वासियों ने साथ नहीं दिया और सम्मेलन के स्वागतार्थ जिस स्वागत-समिति का उन्होंने संगठन करना चाहा था उसने काका साहब की बात नहीं मानी, जिससे काका साहब ने उस समिति से अपने को अलग ही नहीं कर लिया, किन्तु उन्होंने नाराज़ होकर सम्मेलन-सम्बन्धी अपना निमन्त्रण भी लौटा लेने की घोषणा कर दी। काका जी के इस तरह रूठ जाने से सम्मेलन बड़े चक्कर में पड़ गया है और अब शायद ही उसका अधिवेशन पूना में हो सके। परन्तु हमें सम्मेलन के प्रधान सूत्रधार बाबू पुरुषोत्तमदास टंडन की गम्भीर बुद्धि पर पूर्ण विश्वास है और वे इस संकट से सम्मेलन का उद्धार करने में सफल होंगे और सम्मेलन का अधिवेशन पूना में ही किया जायगा, क्योंकि वहाँ बाक़ायदा स्वागत-समिति का संगठन हो चुका है और पूना के हिन्दी-प्रेमी सम्मेलन का अधिवेशन अपने यहाँ करने को उत्सुक भी हैं। हम भी चाहते हैं कि पूना का आपसी झगड़ा आपस में ही तय हो जाय और वहाँ सम्मेलन का अधिवेशन धूम-धाम से सम्पन्न हो। हमें विश्वास है, सम्मेलन के कर्णधार परिस्थिति पर ठंडे दिल से विचार कर सम्मेलन के गौरव की रक्षा करने को कटिबद्ध होंगे।

Cuticura
TALCUM POWDER
COMFORTS PURIFIES AND BEAUTIFIES

आपके बच्चे का चर्म इतना कोमल है कि इसके लिए केवल अच्छे से अच्छे मरहम या बुकनी की आवश्यकता है। क्यूटीकूरा टैलकम (CUTICURA TALCUM) बहुत ही बारीक तथा विशुद्ध है। इसमें कुछ दवा का भी असर रहता है। यह बच्चों के कोमल चर्म को ठंढक तथा आराम पहुँचाता है और उसे सुगन्धित तथा स्वस्थ रखता है। नहाने के बाद थोड़ा-सा अपने बदन पर डाल दीजिए जिससे किसी प्रकार की रगड़ न लग सके।

दुनिया के सारे डाक्टर तथा नर्सें क्यूटीकूरा टैलकम (CUTICURA TALCUM) को बच्चों के कोमल चर्म के लिए शिफ़ारिश करती हैं। स्त्रियों को भी नहाने के बाद या बदन में पीड़ा होने पर इसे लगाने से बड़ी प्रसन्नता होती है। पसीने को जल्दी दूर करता है तथा चर्म को नरम तथा सुगन्धित बनाता है। अपने यहाँ के दवाफ़रोश से आज ही ख़रीदिए।

बच्चों के लिए

क्यूटीकूरा टैलकम बुकनी

CUTICURA TALCUM POWDER

श्रीमती पद्मा घोष का स्वर्गवास

इण्डियन प्रेस के संस्थापक स्वर्गीय बाबू चिन्तामणि घोष के चतुर्थ पुत्र श्रीमान् हरिसाधन घोष की धर्म-पत्नी श्रीमती पद्मा घोष का गत १ अप्रैल की रात्रि को ११॥ बजे देवलोकवास हो गया। श्रीमती घोष कितनी बुद्धिमती और प्रतिभाशाली थीं, इसका पता इसी से लग सकता है कि अपने पाणिग्रहण के चतुर्थ-वर्ष—सन् १९२८—में ही आपने कलकत्ते में इण्डियन प्रेस की एक ब्रांच स्थापित करने के लिए अपने पति को प्रेरणा दी थी और जब वह ब्रांच स्थापित हो गई तब उसकी व्यवस्था व संचालन में योग देने के लिए आप स्वयं अपने पति के साथ कलकत्ते में रहने लगी थीं। आपके ही अध्यवसाय व प्रोत्साहन के फल-स्वरूप ब्रांच दिन-दूनी और रात चौगुनी उन्नति करती गई। अँगरेज़ी में एक मुसज्जित व सचित्र साप्ताहिक निकालने की आपकी बहुत दिनों से इच्छा थी। आपकी प्रेरणा से ही 'ओरियण्ट' नामक अँगरेज़ी साप्ताहिक निकाला गया था। आप उसके प्रत्येक अंक के लेखों व चित्रों को मनोयोगपूर्वक देखती थीं और उनके विषय में बहुमूल्य सम्मति भी देती थीं।

आपके आकस्मिक निधन से घोष-परिवार तथा इण्डियन प्रेस के कर्मचारियों को असहनीय शोक हुआ है। इधर आप गत २ महीने से आन्त्रिक ज्वर से पीड़ित थीं। कलकत्ते के सभी नामी नामी चिकित्सकों के अत्यन्त मनोयोग-पूर्वक चिकित्सा करने पर भी कोई विशेष लाभ न हुआ और आप अपने ६ बच्चों, पति व परिवार को शोक-सन्तप्त छोड़कर स्वर्ग-गामिनी हो गईं। हम ईश्वर से आपकी वियुक्त आत्मा की सद्गति के लिए प्रार्थना करने के अतिरिक्त और कर ही क्या सकते हैं? मनुष्य की शक्ति कितनी अल्प है, इसका पता ऐसी ही घटनाओं से लगता है। अन्ततः यही कह कर दिल को समझाना पड़ता है कि जो योग्य व होनहार होते हैं उन्हें ईश्वर शीघ्र ही अपने पास बुला लेता है।

पचास रुपये का

श्री काशीराम-पुरस्कार

इसका प्रथम पुरस्कार इस वार—**कविता**—पर दिया जायगा। नियम निम्नांकित है —

(१) हिन्दी का कोई भी कवि या कवयित्री इस पुरस्कार की प्रतियोगिता में भाग ले सकेगी।

(२) रचनायें भेजने की अन्तिम तारीख ३१ मई है।

(३) रचनायें खड़ी बोली में होनी चाहिए। छन्द-संख्या लगभग ५० के हो। केवल नई और मौलिक रचनाओं पर विचार किया जायगा।

(४) सर्वश्रेष्ठ रचना पर ५०) का पुरस्कार ३० जून को भेज दिया जायगा, और रचना 'सरस्वती' में छापी जायगी। पुरस्कार का रुपया निर्णायक भेजेंगे।

(५) रचनाओं का निर्णय 'सरस्वती'-सम्पादक पण्डित देवीदत्त जी शुक्ल करेंगे। प्रतियोगियों को अपनी रचनायें उन्हीं के नाम 'इण्डियन प्रेस लिमिटेड, इलाहाबाद,' के पते से भेजनी चाहिए।

(६) रचना पर 'श्री काशीराम पुरस्कार के लिए'—यह वाक्य अवश्य लिखा रहना चाहिए। रचना के साथ आवश्यक टिकट अवश्य होना चाहिए, अन्यथा अस्वीकृत होने पर कोई रचना वापस न की जायगी।

निवेदक

चन्द्रभूषण वैश्य, नारायणगंज (ढाका)

युद्ध की डायरी

२२ मार्च—डेनमार्क के तट के क़रीब 'हिडलनहीम' नामक जर्मन जहाज़ डुबा दिया गया। दो दिन में डेनमार्क के ६ जहाज नष्ट हुए।

२६ मार्च—२ जर्मनी के व १ डेनमार्क के जहाज़ डूब गये। ब्रिटेन के २ विध्वंसकों ने नार्वे के समुद्र में जर्मनी के ३ जहाजों को परेशान किया और उन्हें डुबाने का प्रयत्न किया। पश्चिमी मोर्चे के विभिन्न स्थानों पर कुछ गोलाबारी हुई।

२७ मार्च—फ़िनलैंड के मंत्रि-मण्डल ने इस्तीफ़ा दे दिया और मिस्टर रैंडी के प्रधान मंत्रित्व में नया मंत्रि-मण्डल स्थापित हुआ।

२८ मार्च—हांगकांग में मित्रराष्ट्रों ने एक रूसी जहाज़ को रोककर उसकी तलाशी ली। फ्रांस की सीमा पर हल्का वायुयुद्ध हुआ। उत्तरी सागर में एक जर्मन जहाज़ जिस पर पेट्रोल था, डुबा दिया गया।

२८ मार्च—फ्रांस की सीमा पर हल्का आकाश-युद्ध हुआ। ब्रिटिश हवाई जहाज़ों ने उत्तरी सागर में जर्मनी के एक पेटरोल-जहाज़ को डुबा दिया।

जर्मनी के एक यू-बोट को नार्वे के अधिकारियों ने तटस्थ देशों के समुद्र में चलने के अपराध में पकड़ लिया।

३१ मार्च—जर्मन-सेना की एक टुकड़ी ने नीड के निकटवाले फ्रांस के इलाक़े में हमला किया, पर वह व्यर्थ कर दिया गया।

१ अप्रैल—एक जर्मन पनडुब्बी नष्ट कर दी गई।

३ अप्रैल—जर्मनी के ३ और फ्रांस के १ वायुयान नष्ट हुए। पश्चिमी मोर्चे पर बोसगे के पश्चिम में काफ़ी गोलाबारी हुई।

४ अप्रैल—जर्मनी की एक आक्रमणकारी पार्टी ने नीड के इलाक़े में एक फ्रांसीसी चौकी को पूरी तरह घेर लिया। सात जर्मन क़ैद किये गये। नार्वे के पास जर्मन जंगी हवाई जहाज़ों ने ब्रिटेन के ट्रालरों पर हमला किया। ओसन्ये के पास से दिन भर तोपों की आवाज़ आती रही, जिससे वहां भीषण लड़ाई होने का जनता ने अनुमान किया। डच-सीमा के कई स्थानों पर जर्मन व ब्रिटिश हवाई जहाज़ों में गहरी मुठभेड़ हुई। पश्चिमी मोर्चे पर ३ जर्मन व १ फ्रेंच वायुयान नष्ट हुए।

५ अप्रैल—पश्चिमी युद्ध-क्षेत्र में एक जर्मन टुकड़ी ने एक ब्रिटिश चौकी पर हमला करके १५ सैनिकों को मार डाला।

८ अप्रैल—नार्वे की पार्लियामेंट की बैठक में मित्र-राष्ट्रों से अपील की गई कि वे नार्वे के समुद्री तट से अपनी सुरंगें व जंगी जहाज़ हटा लें।

९ अप्रैल—सुबह को जर्मन सेनाओं ने डेनमार्क की राजधानी कोपनहैगन पर अधिकार कर लिया, साथ ही नार्वे पर हमला कर दिया। नार्वे की सरकार राजधानी छोड़ कर भाग गई। जर्मनों ने 'ओसलो' पर अधिकार कर लिया। नार्वे व जर्मनी की सेनाओं में भयानक युद्ध आरम्भ हो गया। नार्वे के कई नगरों पर बम गिराये गये। पश्चिमी मोर्चे पर मोसले के पूर्व में तोपों की गोलाबारी हुई।

१० अप्रैल—उत्तरी सागर में जर्मन व ब्रिटिश जहाज़ों की घोर लड़ाई हुई। २४ घन्टे में १ दर्जन जर्मन जहाज़ काम आये।

१२ अप्रैल—लड़ाई भीषण रूप से जारी रही। कुछ ब्रिटिश जंगी जहाज़ों ने ट्रॉण्डहीम खाड़ी में घुसने का प्रयत्न किया, पर सफलता नहीं मिली।

१५ अप्रैल—नार्वे के समुद्र में ७ जर्मन विध्वंसक डुबा दिये गये।

१६ अप्रैल—कांगस्विगर और स्काजरिक के बीच सामुद्रिक लड़ाई बड़े भयानक रूप में हुई। ब्रिटिश सेना फ़ैरो द्वीप में उतर गई।

१७ अप्रैल—जर्मन फ़ौजें स्वीडन की सीमा के स्टोरलीन स्टेशन तक पहुँच गई। बेयरनसेल्स पर जर्मनों का क़ब्ज़ा हो गया। ब्रिटिश फ़ौजें नार्वे की फ़ौजों से मिल गईं।

१८ अप्रैल—नार्विक पर ब्रिटिश फ़ौजों का अधिकार होगया। स्टेवेन्ग्जर के हवाई अड्डे पर भयानक बम वर्षा की गई। एक ब्रिटिश जंगी जहाज़ डूब गया और २ को हानि पहुँची।